1103२3

RT-01423

110323

* ॐ श्री परमात्मने नमः *

कल्याण

110323

1972

वर्ष
२

भगवल्लीला-अङ्क

संख्या
१-२

[जनवरी एवं फरवरी

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय-जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,३०,०००)

लीलावतरणका परम प्रयोजन

जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं
न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः।
लीलावतारैः स्वयशःप्रदीपकं
प्राज्वालयत्त्वा तमहं प्रपद्ये॥

(श्रीमद्भा० १०।७०।३९)

शरीर और इससे सम्बन्ध रखनेवाली वासनाओंमें फँसकर जीव जन्म-मृत्युके चक्करमें भटकता रहता है तथा [वह] यह नहीं जानता कि मैं इस शरीरसे कैसे मुक्त हो सकता हूँ। [हे लीलापुरुषोत्तम!] वास्तवमें उसी [जीव]-के हितके लिये आप नाना प्रकारके लीलावतार ग्रहण करके अपने पवित्र यशका दीपक जला देते हैं, जिसके सहारे वह इस अनर्थकारी शरीरसे मुक्त हो सके। इसलिये मैं आपकी शरणमें हूँ।

आवश्यक सूचना

फरवरी मासका अङ्क (परिशिष्टाङ्क) विशेषाङ्कके साथ संलग्न है।

इस अङ्कका मूल्य ८० रु० (सजिल्द ९० रु०)

वार्षिक शुल्क
(भारतमें)
डाक-व्ययसहित ८० रु०
(सजिल्द ९० रु०)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

वार्षिक शुल्क
(विदेशमें)
समुद्री डाकसे US$
हवाई डाकसे US$2

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARDWAR

॥ श्रीहरि: ॥

'कल्याण' के सम्मान्य ग्राहकों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण' के ७२ वें वर्ष सन् १९९८ का यह विशेषाङ्क 'भगवल्लीला-अङ्क' आप लोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४०८ पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और ८ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे चित्र भी दिये गये हैं। इस विशेषाङ्कमें फरवरी माहका अङ्क भी संलग्न किया गया है।

२-जिन ग्राहकोंसे शुल्क-राशि अग्रिम मनीआर्डरद्वारा प्राप्त हो चुकी है, उन्हें विशेषाङ्क तथा फरवरी एवं मार्चका अङ्क रजिस्ट्रीद्वारा भेजा जा रहा है और जिनसे शुल्क-राशि यथासमय प्राप्त नहीं होगी, उन्हें उपर्युक्त अङ्क ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार वी० पी० पी० द्वारा भेजा जायगा। रजिस्ट्रीकी अपेक्षा वी० पी० पी० के द्वारा विशेषाङ्क भेजनेमें डाकखर्च आदि अधिक लगते हैं; अत: वार्षिक शुल्क-राशि मनीआर्डरद्वारा भेजनी चाहिये। 'कल्याण' का वर्तमान वार्षिक शुल्क डाकखर्चसहित ८०.०० (अस्सी रुपये) मात्र है, जो केवल विशेषाङ्कका ही मूल्य है। सजिल्द विशेषाङ्कके लिये १०.०० (दस रुपये) अतिरिक्त देय होगा।

३-ग्राहक सज्जन मनीआर्डर-कूपनपर अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या या पुराना ग्राहक न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है, जिससे आपकी सेवामें 'भगवल्लीला-अङ्क' नयी ग्राहक-संख्याके क्रमसे रजिस्ट्रीद्वारा पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्याके क्रमसे इसकी वी० पी० पी० भी जा सकती है। वी० पी० पी० भेजनेकी प्रक्रिया प्रारम्भ होनेके बाद जिन ग्राहकोंका मनीआर्डर प्राप्त होगा, उनका समयसे समायोजन न हो सकनेके कारण हमारे न चाहते हुए भी विशेषाङ्क उन्हें वी० पी० पी० द्वारा जा सकता है। ऐसी परिस्थितिमें आप वी० पी० पी० छुड़ाकर किसी अन्य सज्जनको 'कल्याण' का नया ग्राहक बनानेकी कृपा करें। ऐसा करनेसे आप 'कल्याण' को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ 'कल्याण' के पावन प्रचार-कार्यमें सहयोगी होंगे। ऐसे ग्राहकोंसे मनीआर्डरद्वारा प्राप्त राशि अन्य निर्देश न मिलनेतक अगले वर्षके वार्षिक शुल्कके निमित्त जमा कर ली जाती है। जिन्होंने वी० पी० पी० छुड़ाकर दूसरे सज्जनको ग्राहक बना दिया है, वे हमें तत्काल नये ग्राहकका नाम और पता, वी० पी० पी० छुड़ानेकी सूचना तथा अपने मनीआर्डर भेजनेका विवरण लिखनेकी कृपा करें, जिससे उनके आये मनीआर्डरकी जाँच करवाकर रजिस्ट्रीद्वारा उनका अङ्क तथा नये ग्राहकका अङ्क नियमितरूपसे भेजा जा सके।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय पुस्तकालय

४-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी ग्राहक-संख्या एवं पता छपा हुआ है, उसे कृपया जाँच लें तथा अपनी ग्राहक-संख्या सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री अथवा वी० पी० पी० का नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये। पत्र-व्यवहारमें ग्राहक-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है; क्योंकि इसके बिना आपके पत्रपर हम समयसे कार्यवाही नहीं कर पाते हैं। डाकद्वारा अङ्कोंके सुरक्षित वितरणमें सही पिन-कोड-नम्बर आवश्यक है। अत: अपने लिफाफेपर छपा पता जाँच लेवें।

५-'कल्याण' एवं 'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग' की व्यवस्था अलग-अलग है। अत: पत्र तथा मनीआर्डर आदि सम्बन्धित विभागको पृथक्-पृथक् भेजने चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर) (उ० प्र०)

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी तेरह पुस्तकोंका ग्रन्थाकार अद्भुत संकलन

साधन-कल्पतरु

इस दिव्य ग्रन्थमें प्रकाशित सामग्री पहले समय-समयपर कल्याणमें एवं पुन: तेरह पुस्तकोंके रूपमें प्रकाशित हुई है। इस ग्रन्थके प्रकाशनका उद्देश्य कई पुस्तकोंमें संगृहीत महत्त्वपूर्ण सामग्री पाठकोंको एक साथ उपलब्ध कराना है। साधनोपयोगी इस ग्रन्थके अध्ययनसे सबका सहज कल्याण सम्भव है। यह उपहारमें देने तथा घरमें रखने योग्य कल्याणकारी ग्रन्थ है। कपड़ेकी मजबूत जिल्द तथा आकर्षक लेमिनेटेड रंगीन आवरणसहित (कोड-नं० ८१४) मूल्य रुपये ५०.००।

(पूर्व पुस्तक-रूपमें प्रकाशित १३ पुस्तकें अलग-अलग भी उपलब्ध हैं।)

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान)

गीताप्रेस, गोरखपुर (प्रधान कार्यालय—श्रीगोविन्दभवन, कलकत्ता)-द्वारा संचालित राजस्थानके चूरू नगर-स्थित इस आश्रममें बालकोंके लिये प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं वैदिक परम्परानुरूप शिक्षा-दीक्षा और आवासकी उचित व्यवस्था है। इस आश्रमकी स्थापना ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा आजसे लगभग ७४ वर्ष पूर्व इस विशेष उद्देश्यसे की गयी थी कि इसमें पढ़नेवाले बालक अपनी संस्कृतिके अनुरूप विशुद्ध संस्कार तथा तदनुरूप शिक्षा प्रासकर सच्चरित्र, आध्यात्मिक दृष्टिसे सम्पन्न आदर्श भावी नागरिक बन सकें—एतदर्थ भारतीय संस्कृतिके अमूल्य स्रोत—वेद तथा श्रीमद्भगवद्गीता आदि शास्त्रों एवं प्राचीन आचार-विचारोंकी दीक्षाका यहाँ विशेष प्रबन्ध है। संस्कृतके मुख्य अध्ययनके साथ अन्य महत्त्वपूर्ण उपयोगी विषयोंकी शिक्षा भी यहाँ दी जाती है। विस्तृत जानकारीके लिये मन्त्री, श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान)-के पतेपर सम्पर्क करना चाहिये।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोनों विश्व-साहित्यके अमूल्य ग्रन्थ-रत्न हैं। इनके पठन-पाठन एवं मननसे मनुष्य लोक-परलोक दोनोंमें अपना कल्याण-साधन कर सकता है। इनके स्वाध्यायमें वर्ण-आश्रम, जाति, अवस्था आदि कोई भी बाधक नहीं है। आजके इस कुसमयमें इन दिव्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है। अत: धर्मपरायण जनताको इन कल्याणमय ग्रन्थोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं विचारोंसे अधिकाधिक लाभ पहुँचानेके सदुद्देश्यसे श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघकी स्थापना की गयी है। इसके सदस्योंकी संख्या इस समय लगभग ३० हजार है। इसमें श्रीगीताके छ: प्रकारके और श्रीरामचरितमानसके तीन प्रकारके सदस्य बनाये गये हैं। इसके अतिरिक्त उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्यप्रति इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी पूजा करनेवाले सदस्योंकी श्रेणी भी है। इन सभीको श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानसके नियमित अध्ययन तथा उपासनाकी सत्प्रेरणा दी जाती है। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन 'परिचय-पुस्तिका' नि:शुल्क मँगवाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी कृपा करें एवं श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमें सम्मिलित होकर अपने जीवनका कल्याणमय पथ प्रशस्त करें।

पत्र-व्यवहारका पता—**मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ**, पत्रालय—**स्वर्गाश्रम**, पिन—२४९३०४ **(वाया-ऋषिकेश)**, जनपद—**पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)**

साधक-संघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्म-विकासपर ही अवलम्बित है। आत्म-विकासके लिये जीवनमें सत्यता, सरलता, निष्कपटता, सदाचार, भगवत्परायणता आदि दैवी गुणोंका ग्रहण और असत्य, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, हिंसा आदि आसुरी गुणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ और सरल उपाय है। मनुष्यमात्रको इस सत्यसे अवगत करानेके पावन उद्देश्यसे लगभग ५० वर्ष पूर्व 'साधक-संघ'-की स्थापना की गयी थी। इसका सदस्यता-शुल्क नहीं है। सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषोंको इसका सदस्य बनना चाहिये। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम बने हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी' एवं एक 'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है, सदस्य बननेके इच्छुक भाई-बहनोंको 'साधक-दैनन्दिनी' का वर्तमान मूल्य रु० २.०० तथा डाकखर्च रु० १.००—कुल रु० ३.०० मात्र, डाकटिकट या मनीआर्डरद्वारा अग्रिम भेजकर उन्हें मँगवा लेना चाहिये। संघके सदस्य इस दैनन्दिनीमें प्रतिदिन साधन-सम्बन्धी अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं। विशेष जानकारीके लिये कृपया नियमावली नि:शुल्क मँगवाइये।

पता—**संयोजक, 'साधक-संघ'**, पत्रालय—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)**

श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोनों मङ्गलमय एवं दिव्यतम ग्रन्थ हैं। इनमें मानवमात्रको अपनी समस्याओंका समाधान मिल जाता है तथा जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्राय: सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोंका समादर है और करोड़ों मनुष्योंने इनके अनुवादोंको भी पढ़कर अवर्णनीय लाभ उठाया है। इन ग्रन्थोंके प्रचारके द्वारा लोकमानसको अधिकाधिक परिष्कृत करनेकी दृष्टिसे श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानसकी परीक्षाओंका प्रबन्ध किया गया है। दोनों ग्रन्थोंकी परीक्षाओंमें बैठनेवाले लगभग दस हजार परीक्षार्थियोंके लिये २०० परीक्षा-केन्द्रोंकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये कृपया निम्नलिखित पतेपर पत्र-व्यवहार करें।

व्यवस्थापक—**श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति**, पत्रालय—**स्वर्गाश्रम**, पिन—२४९३०४ **(वाया-ऋषिकेश)**, जनपद—**पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)**

॥ श्रीहरिः ॥

'भगवल्लीला-अङ्क' की विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

१- नाचत त्रैलोकनाथ माखन के काजै १

मङ्गलाचरण—

२- वैदिक स्तवन २
३- कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ३
४- पञ्चदेव-स्तुति ४
५- दशावताररूप जगदीश्वरकी जय हो! ५
६- नमोऽस्तु सततं मम शङ्कराय ६
७- प्रसीद विष्णो भगवन् नमस्ते ७
८- जन्म कर्म च मे दिव्यम् ९
९- ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः १०
१०- भगवल्लीला-कथाका वैशिष्ट्य १२
११- परब्रह्मकी विश्वरूप-लीलाका दर्शन (राधेश्याम खेमका) १४

प्रसाद—

१२- आदिकवि महर्षि वाल्मीकिका मधुरतम आदि-लीला-चित्रण १७
१३- भगवान् व्यासदेवका भगवल्लीला-आकर्षण १८
१४- अमलात्मा परमहंस श्रीशुकदेवजीकी भगवल्लीला-निष्ठा १९
१५- भगवत्पाद आद्यशंकराचार्यका भगवल्लीला-चिन्तन २०
१६- जब अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा-लीलाओंका स्मरणकर अभिभूत हो उठे (ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज) [प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल] २१
१७- रामावतारका महत्त्व (स्वामी श्रीविवेकानन्दजी) २२
१८- श्रीरासलीलारहस्य (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज) २५
१९- श्रीकृष्णावतारका रहस्य (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज) ३२
२०- श्रीअयोध्या-माहात्म्य (जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी श्रीश्यामनारायणाचार्यजी महाराज) ४१
२१- विविध रूपोंमें हनुमान् (गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज) [संकलनकर्ता—डॉ० श्रीविद्याधरजी द्विवेदी] ... ४३
२२- परमात्म-साक्षात्कार ४५

विषय पृष्ठ-संख्या

२३- जन्म कर्म च मे दिव्यम् (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ४६
२४- श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन एवं भगवल्लीला-चिन्तनसे ही कल्याण सम्भव है (पूज्यपाद नित्यलीलालीन श्रीहरिबाबाजी महाराजके सदुपदेश) [प्रस्तोता—भक्त श्रीरामशरणदासजी पिलखुवा] ५२
२५- भगवत्-लीला-चिन्तन कैसे हो! (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ५४

आशीर्वाद—

२६- परमशिवकी परम लीला (अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदा-पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज) ५९
२७- लीलामयका लीला-तत्त्व (श्रीमत् स्वामी श्रीनिगमानन्दजी सरस्वती परमहंसदेव) [बँगला-भाषासे अनूदित—अनुवादक—प्रभाकर महान्ति] ६२
२८- कृष्णस्तु लीलामयः (अनन्तश्रीविभूषित द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज) ६५
२९- लीला-कथाके श्रवणसे परमधामकी प्राप्ति ६७
३०- भगवल्लीलाके कुछ रहस्य (दण्डी स्वामी श्री १०८ श्रीविपिनचन्द्रानन्द सरस्वतीजी 'जज स्वामी') ६८
३१- भगवत्तत्त्व-भगवल्लीला-रस-रहस्य (अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज) ७०
३२- लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् (स्वामी श्रीविज्ञानानन्दजी सरस्वती) ७४
३३- भगवान्का लीला-वैभव (अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटि-पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीजयेन्द्र सरस्वतीजी महाराज) ७६

विषय पृष्ठ-संख्या

३४- श्रीकृष्णलीलाका विश्वव्यापी प्रभाव (श्रीमद् ए० सी० 'भक्तिवेदान्त' स्वामी प्रभुपादजी महाराज) ७७
३५- भगवल्लीलाकी तात्त्विक मीमांसा (अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशी-सुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्द सरस्वतीजी महाराज) ७९
३६- सूरसागरमें कृष्णलीलाका सरसतम वर्णन (स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी) ८३
३७- लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी लीलाका प्रयोजन (अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्-विष्णुस्वामिमतानुयायि श्रीगोपाल-वैष्णवपीठाधीश्वर श्री १००८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज) ८६
३८- भगवान् ब्रह्मा ८८
३९- भगवल्लीलाका तत्त्व (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ८९
४०- श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभव (श्रीगोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज) ९०
४१- भगवल्लीला-रहस्य (महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी) ९४
४२- श्रीकृष्णके लीला-विलासका परिचय—लीलाका अर्थ (पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय) ९६

लीला-चिन्तन—

४३- श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन .... ९९—१२०
  (१) जन्म-महोत्सव ९९
  (२) शिशु श्रीकृष्णका अन्नप्राशन-महोत्सव, कुबेरके द्वारा गोकुलमें स्वर्णवृष्टि १०६
  (३) श्रीकृष्णकी मनोहर बाललीलाएँ १११
  (४) मणिस्तम्भ-लीला (प्रथम नवनीत-हरण-लीला) ११६
४४- श्रीरामलीला-चिन्तन .... १२१—१४४
  (१) मर्यादापुरुषोत्तमका प्रादुर्भाव—(श्रीराम-जन्म-महोत्सव) १२१
  (२) भरतादिका जन्म १२४
  (३) बालक्रीडा १२५
  (४) कुमार-क्रीडा १२५
  (५) महर्षि विश्वामित्रका शुभागमन १२६
  (६) महर्षि विश्वामित्रके साथ राम-लक्ष्मणका प्रस्थान १२८
  (७) जनकपुरमें पदार्पण तथा नगर-दर्शन १२९
  (८) श्रीसीता-राम-विवाह-लीला (साकेतवासी लक्ष्मणकिलाधीश स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज) १३१
४५- श्रीशिव-लीला-चिन्तन .... १४५—१६६
  (१) सतीशिरोमणि सती और भगवान् सदाशिव १४५
  (२) पार्वती-शंकरकी विवाह-लीला १५१
  (३) भगवान् शंकरका शाश्वत नृत्य १५९
  (४) लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रजीकी शिवोपासना १६१
  (५) ब्रह्माजीकी शिवोपासना १६३
  (६) शिवकृपासे दानवीर राजा बलिका प्रादुर्भाव .. १६४
  (७) पञ्चाक्षर-मन्त्रकी महिमा १६६
४६- गणेश-लीला-चिन्तन .... १६७—१८३
  (१) बाल-लीला १६७
  (२) विवाहकी स्पर्धा १६७
  (३) गजवक्त्रका परिणय १६९
  (४) खिन्न कार्तिकेय १६९
  (५) महिमामय मोदक-प्राप्ति १६९
  (६) कुशाग्रबुद्धि १७०
  (७) सर्वहितकारी १७०
  (८) देवताओंका छिद्रान्वेषण १७१
  (९) मङ्गलमूर्ति ज्योतिषी बने १७२
  (१०) शिवा-शिवका पुनः काशी-आगमन १७३
  (११) महाभारत-लेखन १७३
  (१२) ब्रह्माद्वारा गणेश-पूजा १७४
  (१३) विष्णुकी गणेशोपासना १७४
  (१४) गृत्समदकी गणेशोपासना १७५
  (१५) त्रिपुरकी गणेशोपासना १७६
  (१६) देवताओंद्वारा गणेशाराधन १७७
  (१७) शिवकी गणेशोपासना १७८
  (१८) श्रीराधाकी गणेशोपासना १८०
  (१९) देवताओंद्वारा गणेश-वन्दना १८१
  (२०) अभिशप्त चन्द्र १८२
४७- पराम्बा-लीला-चिन्तन .... १८४—२०९
  (१) भगवती मूल प्रकृतिके विविध लीलावतारोंका चिन्तन १८४
    [१] भगवती सावित्री १८४

[२] रासेश्वरी श्रीराधा १८४
[३] भगवती षष्ठीदेवीकी लीला-कथा ..१८५
[४] देवी दक्षिणाके आविर्भावकी लीला १८७
[५] माता स्वधाका लीला-आख्यान.....१८७
[६] माता स्वाहा देवीकी आविर्भाव-लीला .१८८
[७] देवी मङ्गलचण्डीका लीला-आख्यान१९०
[८] देवी मनसाकी लीला-कथा १९०
[९] देवी पृथ्वीकी लीला-कथा १९३
(२) देवीके शताक्षी, शाकम्भरी तथा दुर्गा नामवाले लीला-विग्रहोंकी कथाका चिन्तन.......................................१९४
(३) देवी रक्तदन्तिका, भीमा, भ्रामरी एवं नन्दा-रूप विग्रहोंके लीला-आख्यान............१९७
[१] देवी रक्तदन्तिकाकी लीला-कथा ..१९७
[२] देवी भीमाका आख्यान १९८
[३] भगवती भ्रामरीदेवीकी लीलाएँ.....१९९
[४]देवी नन्दा (विन्ध्यवासिनी)-की लीला-कथा २०१
(४) भगवती सरस्वतीकी लीला-कथा २०२
(५) जगज्जननी लक्ष्मीकी प्राकट्य-लीला.....२०५
४८- सूर्य-लीला-चिन्तन ....२१०—२१५
(१) सूर्यके परब्रह्म होनेकी लीला-कथा......२१०
(२) भगवान् श्रीरामकी आदित्योपासना.......२११
(३) सूर्यदेवद्वारा हनुमान्जीको विद्या-दान....२११
(४) भगवान् सूर्यका अक्षयपात्र................२१२
(५) सूर्यप्रदत्त स्यमन्तकमणिकी कथा २१४

भगवल्लीला-विमर्श—

४९- लीला—सृष्टिका एकमात्र प्रयोजन (पं० श्रीलालबिहाजी मिश्र) २१६
५०- 'भगवल्लीला' शब्दका धातुगत अर्थ, परिभाषा, पर्याय और लीलाका स्वरूप (डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रचूडामणि स्कालर २१९
५१- भगवल्लीला-स्वरूप एवं वैशिष्ट्य (डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्०ए० पी-एच्० डी०).........................२२१
५२- भगवान् शेष...२२३
५३- 'करउँ सकल रघुनायक लीला' (आचार्य श्रीकृपाशंकरजी रामायणी) २२४
५४- गोकुल-लीलाका आध्यात्मिक संदेश (आचार्य डॉ० श्रीविष्णुदत्तजी राकेश, पी-एच्०डी०, डी० लिट्०) २२६
५५- भगवदवतार-लीलानुवर्णन (डॉ० आचार्य श्रीगौरकृष्णजी गोस्वामी शास्त्री, आयुर्वेद-शिरोमणि, काव्य-पुराण-दर्शन-तीर्थ).........२२८
५६- श्रीकृष्णकी रासलीला एवं उसका आध्यात्मिक रहस्य (आचार्य श्रीरामगोपालजी गोस्वामी, एम्०ए०, एल्०टी०, साहित्यरत्न) २३०
५७- लीलाधरकी दिव्य-लीला (श्रीनारायणदासजी भक्तमाली) २३२
५८- परब्रह्म-स्तुति २३६
५९- लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी ऐश्वर्य एवं माधुर्यमयी लीलाएँ (आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र) २३७
६०- विश्व-ब्रह्माण्ड-लीलाके सूत्रधार—परब्रह्म परमात्मा (प्रो० श्रीसिद्धेश्वरप्रसादजी राज्यपाल—त्रिपुरा) २३९
६१- भगवान्की द्वैध-लीला (डॉ० श्रीभुवनेश्वरप्रसादजी वर्मा 'कमल', एम्०ए०, डी०लिट्०) २४१
६२- श्रीरामने भी शिवलीला की (श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास).......................२४३
६३- भगवल्लीला-शक्तिका स्वच्छन्द विलास (श्रीश्यामलालजी हकीम) २४५
६४- निरन्तर नाम-जप एवं भगवल्लीला-दर्शन (डॉ० श्रीसत्यपालजी गोयल, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, आयुर्वेदरत्न) २४८
६५- श्रीभगवान्की लीलाओंसे पग-पगपर प्रेरणा (श्रीशिवकुमारजी गोयल) २५०
६६- भगवल्लीला-चिन्तन (श्रीराजेशजी पाठक, शास्त्री 'दीन') २५२

पञ्चदेवोंके लीला-आख्यान—

६७- (१)लीलावपु भगवान् श्रीगणेशका लीला-वैचित्र्य २५४-२७३
[१] भगवान् गणेशका प्राकट्य एवं उनकी लीलाएँ २५५
[२] अस्वाभाविक दक्षिणा..................२५६
[३] पार्वतीकी व्याकुलता और विश्वविमोहन श्रीकृष्णके दर्शन.........................२५८
[४] परब्रह्मका प्राकट्य २५८
[५] पार्वतीनन्दनका छिन्न मस्तक २६१
[६] पार्वती-पुत्र गजमुख हुए................२६२
[७] गजमुखको प्रथमपूज्यताका आशीर्वाद २६३
[८] परशुरामका कैलास-दर्शन............२६४

विषय पृष्ठ-संख्या

[९] गजमुख एकदन्त हुए...................... २६४
[१०] गणेशका तुलसीको शाप................. २६६
[११] श्वेतकल्पकी गणेशोत्पत्तिकी कथा...... २६७
[१२] गणेशका शिवगणोंसे अद्भुत युद्ध....... २६८
[१३] शिवके त्रिशूलसे दण्डपाणि गणेशका मस्तक कटा.............................. २६९
[१४] शिवाकी व्यथा और उनका कोप....... २७०
[१५] माता पार्वतीकी स्तुति २७१
[१६] दण्डपाणि गजमुख हुए २७१
[१७] आनन्दोत्सव और गजमुखको वर-प्रदान .. २७२
(२) भगवान् श्रीगणेशके विभिन्न अवतारोंकी लीला-कथाएँ......................... २७४—२८२
[१] महोत्कटका प्राकट्य एवं उनकी लीलाएँ... २७४
[२] भगवान् मयूरेश्वरकी लीला-कथा २७६
[३] श्रीगजाननकी प्राकट्य-लीला............ २७८
[४] श्रीधूम्रकेतु.. २८२
[५] श्रीगणेशके प्रमुख आठ अवतार २८२
(६८) भगवान् सूर्य और उनकी लीला-कथाएँ........ २८३
(१) भगवान् सूर्यकी महिमा और ब्रह्ममयता..... २८३
(२) सूर्यके विविध लीला-विग्रह .... २८६—२९०
[१] भगवान् सूर्यके द्वादश लीला-विग्रहोंके आख्यान.. २८७
[२] सूर्यार्घ्य-दानकी महत्ता......................... २८८
[३] सूर्यकी आराधनासे महाराज राज्यवर्धनको दीर्घ आयुकी प्राप्ति......... २८९
[४] भगवान् सूर्यका परिवार २८९
(३) भगवान् भुवनभास्करकी कृपामयी लीलाएँ .... २९०—२९६
[१] महर्षि याज्ञवल्क्यपर भगवान् सूर्यकी कृपा ... २९२
[२] सूर्योपासक महर्षि विश्वामित्रपर सवितादेवका अनुग्रह २९३
[३] भक्तके अधीन रहनेकी एक लीला....... २९३
[४] साम्बपर भगवान् भास्करकी कृपा २९४
[५] आरोग्य-दानकी एक अन्य लीला-कथा ... २९५
(४) काशीके द्वादश आदित्योंकी पौराणिक कथाएँ (राधेश्याम खेमका) २९६
६९-(१) भक्त-वत्सल भगवान् विष्णुकी दिव्य लीलाएँ...................... ३०२—३०८
[१] भगवान् विष्णुके स्वरूप-ध्यानकी विलक्षणता...................................... ३०३
[२] भगवान्द्वारा हरि-रूपमें गजेन्द्रका उद्धार....................................... ३०४
[३] भक्तश्रेष्ठ ध्रुवके लिये भगवान्का अवतार ३०४
[४] अजामिलपर कृपा........................... ३०५
[५] भक्त भद्रतनु और उनके गुरु दान्त ३०६
(२) भगवान्के सगुण स्वरूप और अवतार-लीलाएँ— .... ३०८—३२९
[१] श्रीसनकादि-३०९, [२] भगवान् वाराह-३१०, [३] देवर्षि नारद-३११, [४] भगवान् नर-नारायण-३१३, [५] भगवान् कपिल-३१४, [६] भगवान् दत्तात्रेय-३१४, [७] भगवान् यज्ञ-३१५, [८] भगवान् ऋषभदेव-३१५, [९] भगवान् आदिराज पृथुके रूपमें-३१६, [१०] भगवान् मत्स्य-३१७, [११] भगवान् कच्छप-३१८, [१२] भगवान् धन्वन्तरि-३१८, [१३] भगवान् मोहिनीरूपमें-३१९, [१४] भगवान् नृसिंह-३१९, [१५] भगवान् वामन-३२१,[१६] भगवान् परशुराम-३२२, [१७] भगवान् व्यास-३२२, [१८] भगवान् श्रीराम-३२३, [१९] भगवान् बलराम-३२५, [२०] भगवान् श्रीकृष्ण-३२५, [२१] भगवान् बुद्ध-३२८, [२२] भगवान् कल्कि-३२९, [२३] भगवान् हंस-३२९, [२४] भगवान् हयग्रीव-३२९
७०- (१) भगवान् शिवकी अवतार-लीलाएँ ... ३३०-३३१
[१] परिवार,पार्षद, निवास, आयुध एवं वाहन ३३०
[२] सुर और असुर दोनोंके उपास्य ३३१
(२) भगवान् शिवकी विविध लीला-मूर्तियाँ एवं उनके ध्यान-स्वरूप ३३१-३३२
[१] पञ्चमूर्ति.. ३३१
[२] भगवान् शिवके पञ्चकृत्य ३३१
[३] अष्टमूर्ति ३३१
[४] ज्योतिर्लिङ्ग ३३१
[५] सदाशिव.. ३३२
[६] महामृत्युञ्जय ३३२
[७] महेश... ३३२
[८] अर्धनारीश्वर ३३२
(३) भगवान् शिवके कतिपय नाम-विग्रहोंके आख्यान ३३२
(४) भगवान् शिवकी विविध लीला-कथाएँ३३४—३४३
[१] भगवान् शिवके नन्दीश्वर-

विषय पृष्ठ-संख्या
अवतारकी लीला ३३४
[२] कालभैरव नामक अवतारकी लीला ३३५
[३] यक्षावतार-लीला ३३६
[४] दुर्वासा-अवतार-लीला ३३६
[५] भगवान् शंकरकी हनुमदवतार-लीला-कथा ३३७
[६] शिवजीके पिप्पलादावतारकी कथा ३३७
[७] भगवान् शिवके द्विजेश्वरावतारकी कथा ३४०
[८] यतिनाथ एवं हंसावतारकी लीला ३४१
[९] भगवान् शिवकी अर्धनारीश्वर-लीला ३४२
७१-(१) पराम्बा भगवतीके लीला-चरित .... ३४४—३४६
[१] पराशक्ति भगवती श्रीदुर्गा ३४४
[२] दुर्गादेवीका आविर्भाव ३४५
(२) महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती .. ३४६—३४९
[१] महाकालीकी उत्पत्ति ३४६
[२] महालक्ष्मीकी उत्पत्ति ३४७
[३] महासरस्वतीकी उत्पत्ति ३४७
(३)दस महाविद्याओंके लीला-आख्यान ३४९
(४) भगवतीके विविध नामरूपोंकी लीला ... ३५३
(५) श्रीविद्याके लीला-विग्रह—एक कथानक .. ३५४

विविध देवों तथा अवतारोंकी लीलाएँ—

७२- मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी आदर्श लीलाकी एक झाँकी (मानसमर्मज्ञ, आचार्यप्रवर पं० श्रीसच्चिदानन्ददासजी रामायणी महाराज) ३५७
७३- सेतुबन्ध भगवान् रामकी अद्भुत लीला (डॉ० श्रीओम्प्रकाशजी द्विवेदी ३६०
७४- कुमार कार्तिकेयकी लीला-कथा ३६२
७५- लीलावतार अवधूतश्रेष्ठ भगवान् 'श्रीदत्तात्रेय' (प० पू० दण्डी स्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज) ३६४
७६- श्रीजगन्नाथदेवका प्राकट्य-रहस्य (व्रजके एक महात्मा) ३६७
७७- स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम् (श्रीगंगाधरजी गुरु, बी० ए०, एल्-एल्०बी०) [अनुवादक—श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु] ३७०
७८- पुष्टि-पुरुषोत्तम प्रभु श्रीनाथजी एवं उनके विविध लीला-आख्यान (श्रीप्रभुदासजी वैरागी, एम्०ए०, बी०एड्०, साहित्यालंकार) ३७३
७९- हरिहरेश्वरका मिलन—एक लीला-रहस्य (डॉ० श्रीकेशवरघुनाथजी कान्हेरे, एम्०ए०, पी-एच्०डी०) ३७६
८०- आशुतोष शिवकी निग्रहानुग्रह-लीला (डॉ० श्रीरमाकान्तजी झा) ३७९
८१- विश्व-नाटकका चतुर खिलाड़ी—शिव (राष्ट्रपति-सम्मानित पण्डित श्रीजानकीनाथजी कौल 'कमल') ३८२
८२- मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी आदर्श लीलाएँ (मानसरत्न संत श्रीसीतारामदासजी) ३८३
८३- हनुमान्के माध्यमसे सेवकोंके गर्वका दमन (श्रीशिवनाथजी दुबे एम्०कॉम्०, एम्०ए०, साहित्यरत्न, धर्मरत्न) ३८४
८४- भगवान् विष्णुकी कल्याणकारी लीला (श्रीअर्जुनलालजी बन्सल) ३८६

आर्षग्रन्थोंमें भगवल्लीला—

८५- श्रीमद्भागवतमें दिव्य लीला-तत्त्व (डॉ० श्रीविद्यानिवासजी मिश्र) ३८९
८६- तुलसी-काव्यमें श्रीराम-लीला (डॉ० श्रीशुकदेवरायजी,एम्०ए०, पी-एच्०डी०, साहित्यरत्न) ३९५
८७- श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामकी अन्तरङ्ग-लीलाएँ (मानस-मराल डॉ० श्रीजगेशनारायणजी 'भोजपुरी') ३९७
८८- श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्णकी विश्वरूप-दर्शन-लीला (डॉ० श्रीभीष्मदत्तजी शर्मा, साहित्याचार्य, एम्०ए०(संस्कृत- ..... हिन्दी-दर्शनशास्त्र), एम्०एड्०, पी-एच्०डी०) ३९९
८९- 'कुमारसम्भव' में वर्णित शिवलीला (विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीरंजन सूरिदेवजी) ४०१
९०- निर्गुणोपासनापरक रामस्नेहि संत-साहित्यमें भगवल्लीला-दर्शन (खेड़ापा रामस्नेहि सम्प्रदायाचार्य श्रीपुरुषोत्तमदासजी शास्त्री) ... ४०४
९१- श्रीकृष्णकी लीलाओंसे पगे बुंदेली लोक-गीत (डॉ० श्रीहरीमोहनजी पुरवार) ४०६
९२- पुरातत्त्वमें श्रीकृष्ण-लीला-चरित्रके शिला-पट्टकी प्राप्ति (विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीराजेश-कुमारजी उपाध्याय नार्मदेय, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, आचार्य) ४०७

चित्र-सूची

(रंगीन-चित्र)

विषय पृष्ठ-संख्या

१- भक्तोंके उपास्य पञ्चदेव ....आवरण-पृष्ठ

२- भगवान् गणपति-रूपमें सिद्धि (पत्नी)-सहित (८-९)

३- परब्रह्म महाशिव और उनकी नित्यलीला-संगिनी भगवती भुवनेश्वरी...........,, ,,

४- मर्यादापुरुषोत्तमकी आदर्श लीलाएँ ....,, ,,

५- नवनीतप्रियका नृत्य-उपक्रम ....,, ,,

६- (१) श्रीदशरथ-नन्दन, (२) क्रीडावेषमें आनन्दकन्द ....(१५२-१५३)

७- उमा करत रघुपति नरलीला ....,, ,,

विषय पृष्ठ-संख्या

८- आनन्दकन्द व्रजेन्द्रनन्दनकी मधुर बाल-लीलाएँ..................................१५२-१५३

९- भगवान् शिवका ताण्डव-नृत्य ....,, ,,

१०- वराह-रूप भगवान् श्रीहरिद्वारा हिरण्याक्षका उद्धार ....(३१२-३१३)

११- भगवान् वामन-रूपमें...................................,, ,,

१२- भक्त प्रह्लादकी रक्षाके लिये भगवान् नारायणका नृसिंहावतार ....,, ,,

१३- भगवान्‌की मोहिनी लीला...........................,, ,,

(इकरंगा-चित्र)

१- श्रीमुरलीमनोहर ९८

२- पञ्च-दिव्यधामेश्वरी २०७

(फरवरीके अङ्ककी विषय-सूची)

१- श्रीरामद्वारा हनुमान्‌जीको आलिङ्गन-दान ४०९

लीला-दर्शन—

२- भगवल्लीला-दर्शन ....४१०—४१९
  - (१) कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला (डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता) ४१०
  - (२) विदेशोंमें रामकी लीला [काशिराज डॉ० श्रीविभूतिनारायणसिंहजीके सौजन्यसे] ४१६

भगवान्‌के लीला-सहचर तथा उनके रोचक आख्यान—

३- भगवान्‌के लीला-सहचर तथा भक्तोंके लीला-चरित्र और उनके रोचक आख्यान (आचार्य श्रीसियारामदासजी नैयायिक, न्यायवेदान्ताचार्य, पी-एच०डी०) ४२०

४- श्रीहनुमंत-लीला (स्वामी श्रीविद्यानन्दजी) [अनुवादक—श्रीप्रभाकरजी पौण्डरीक] ४२३

५- श्रीहनुमान्‌जीकी विविध लीलाएँ (मानसमणि पं० श्रीरामनारायणजी शुक्ल, शास्त्री, व्यास) ४२६

६- जनकललीजीकी रुदन-लीला (डॉ० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी, 'रत्नमालीय') ..४२९

७- बालचरित बिलोकि हरषाऊँ (श्रीआनन्दीलालजी यादव) .४३२

८- भगवान् शिवकी त्रिपुरदहन-लीला (आचार्य श्रीगंगारामजी शास्त्री) ४३३

९- भगवान्‌की वामन-लीला (डॉ० श्रीश्रीनिवासजी शर्मा, एम्० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच्० डी०) ...४३६

१०- शक्तिपीठ 'हिंगलाजदेवी' की लीला-कथा (सुश्री धीरजबेन दिनकरभाई पटेल) ४३९

११- परब्रह्मकी नित्यलीला (श्रीरामपदारथसिंहजी) ..४४०

१२- संत और सुधारक महात्मा कबीरकी सेवा-साधनासे भगवल्लीलाकी अनुभूति (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०) ४४२

१३- मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी आदर्श लीलाएँ (श्रीरामकृष्ण रामानुजदासजी 'श्रीसंतजी महाराज') ४४५

१४- श्रीद्वारकाधीश प्रभुकी पारिजात-हरण-लीला (श्रीजयन्तीलालजी जोशी 'शास्त्री') ४४७

१५- मां भजन्तु विचक्षणाः ४५०

भगवल्लीलाके दिव्य धाम—

१६- वृन्दावनकी निकुंजलीलाका रस-रहस्य—राधा (डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी, डी० लिट्०) ...४५१

१७- भगवल्लीलाधाम द्वारकाका माहात्म्य एवं इसमें भक्तोंद्वारा लीलानुभूति (डॉ० श्रीकमलजी पुंजाणी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ४५२

१८- भगवान्‌का लीलाधाम—भारत (श्रीयज्ञनारायणजी त्रिपाठी) ४५५

१९- भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलास्थलीका महत्त्व (डॉ० श्रीविद्यानिवासजी मिश्र) ४५६

२०- नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना ४५८

(चित्र-सूची)

१- भगवान्‌के दस अवतार (इकरंगा) .....आवरण-पृष्ठ

२- श्रीरामद्वारा हनुमान्‌जीको आलिङ्गन-दान ..मुख-पृष्ठ

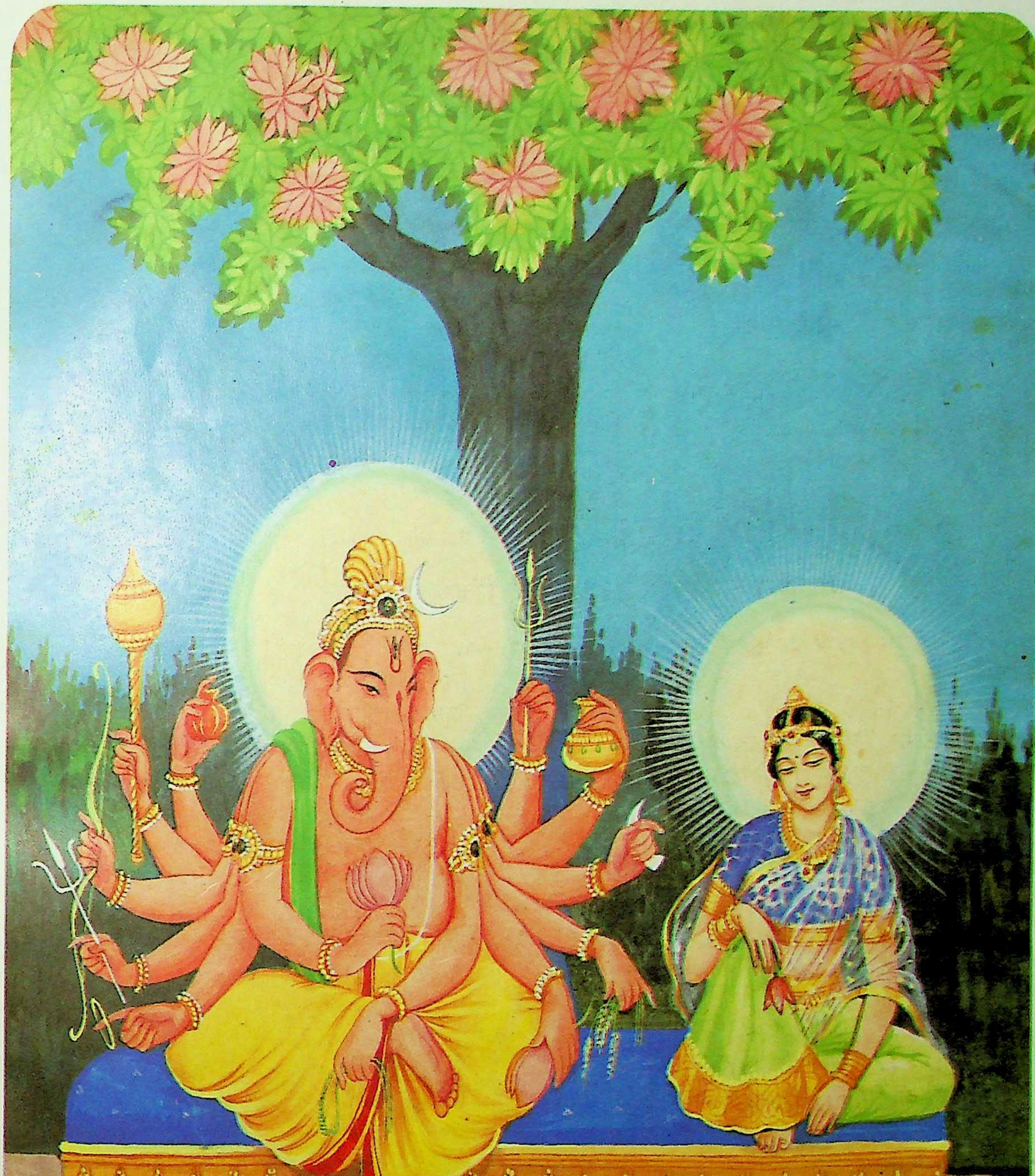

भगवान् गणपति-रूपमें सिद्धि (पत्नी)-सहित

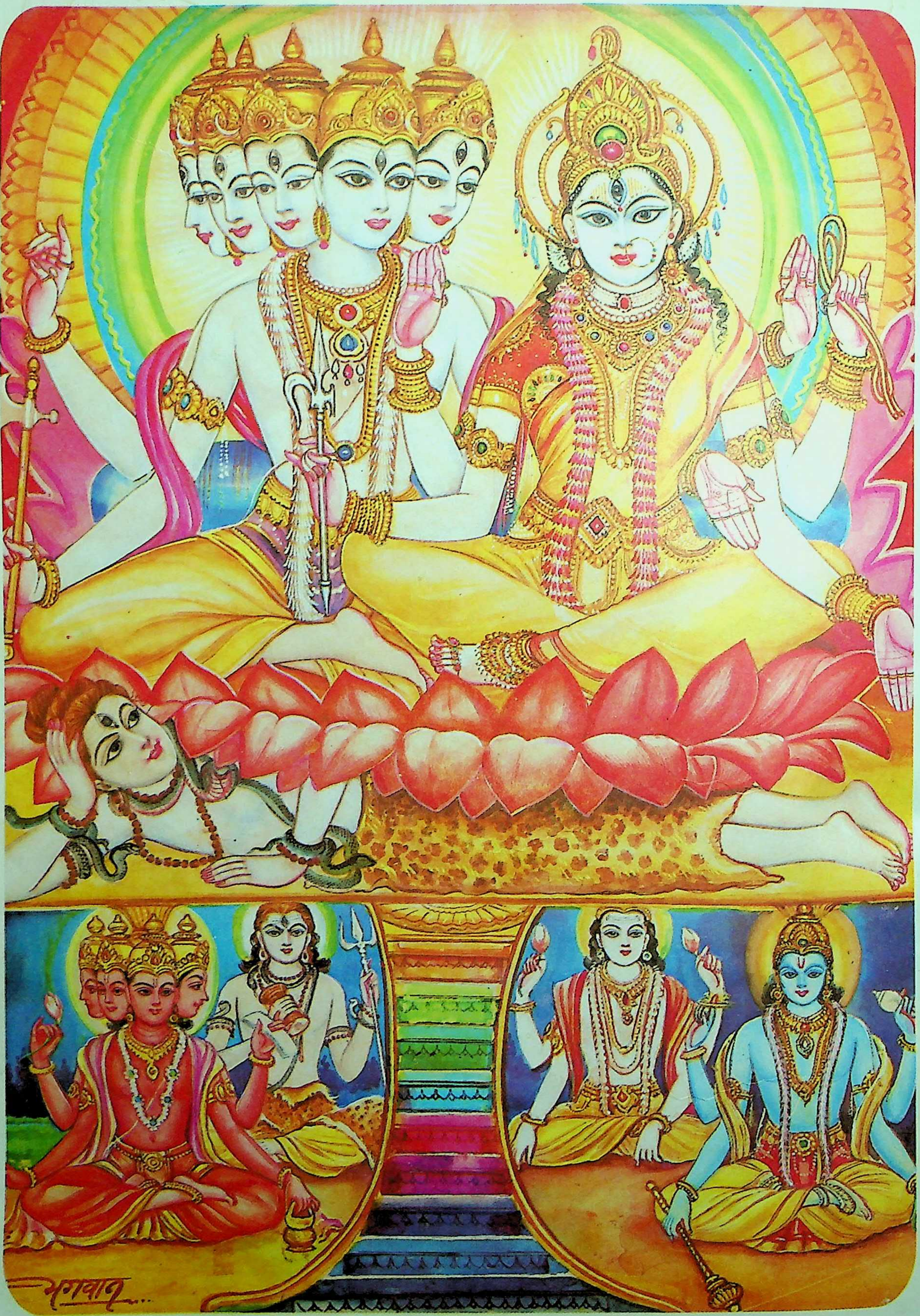

परब्रह्म महाशिव और उनकी नित्यलीला-संगिनी भगवती भुवनेश्वरी

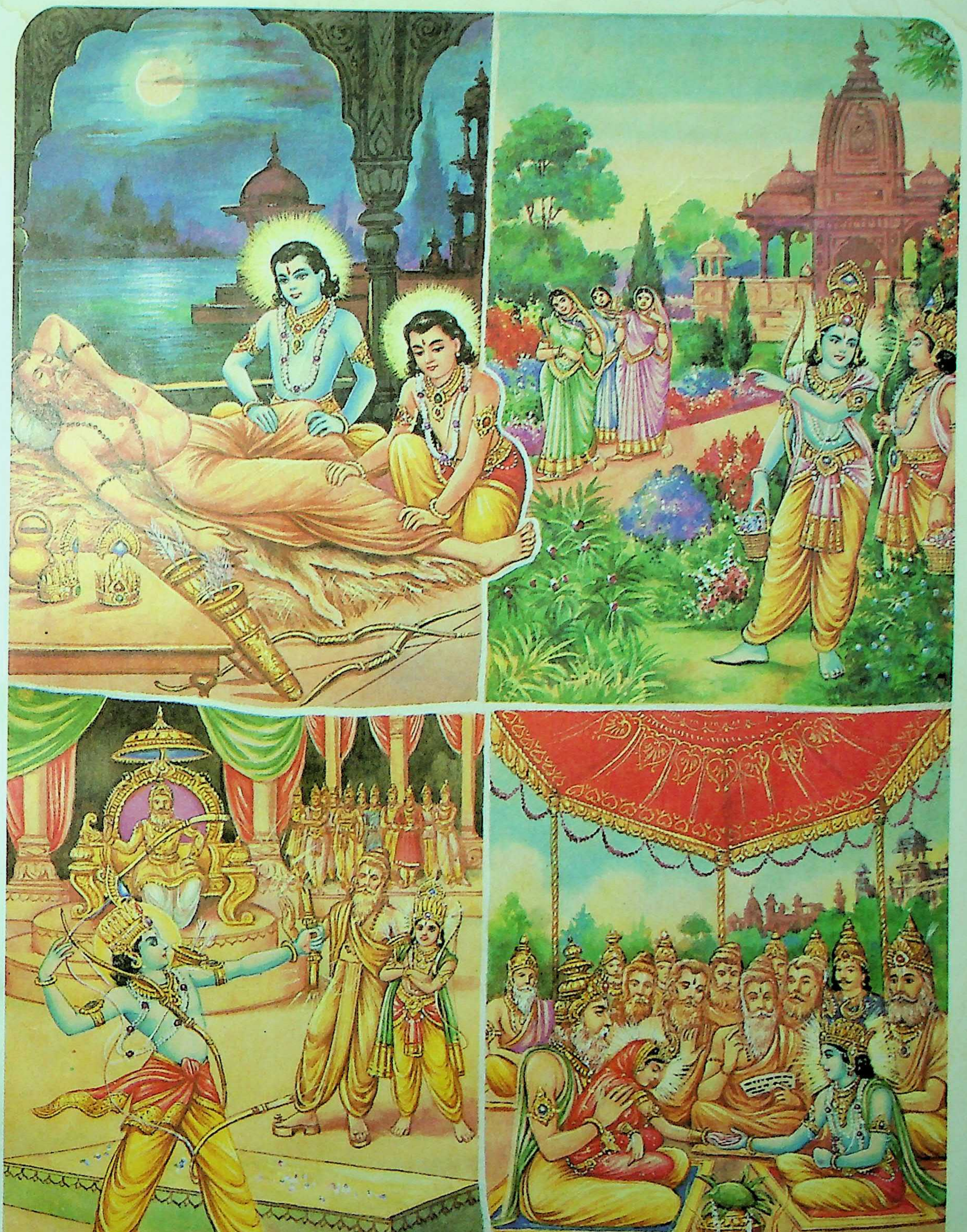

मर्यादापुरुषोत्तमकी आदर्श लीलाएँ

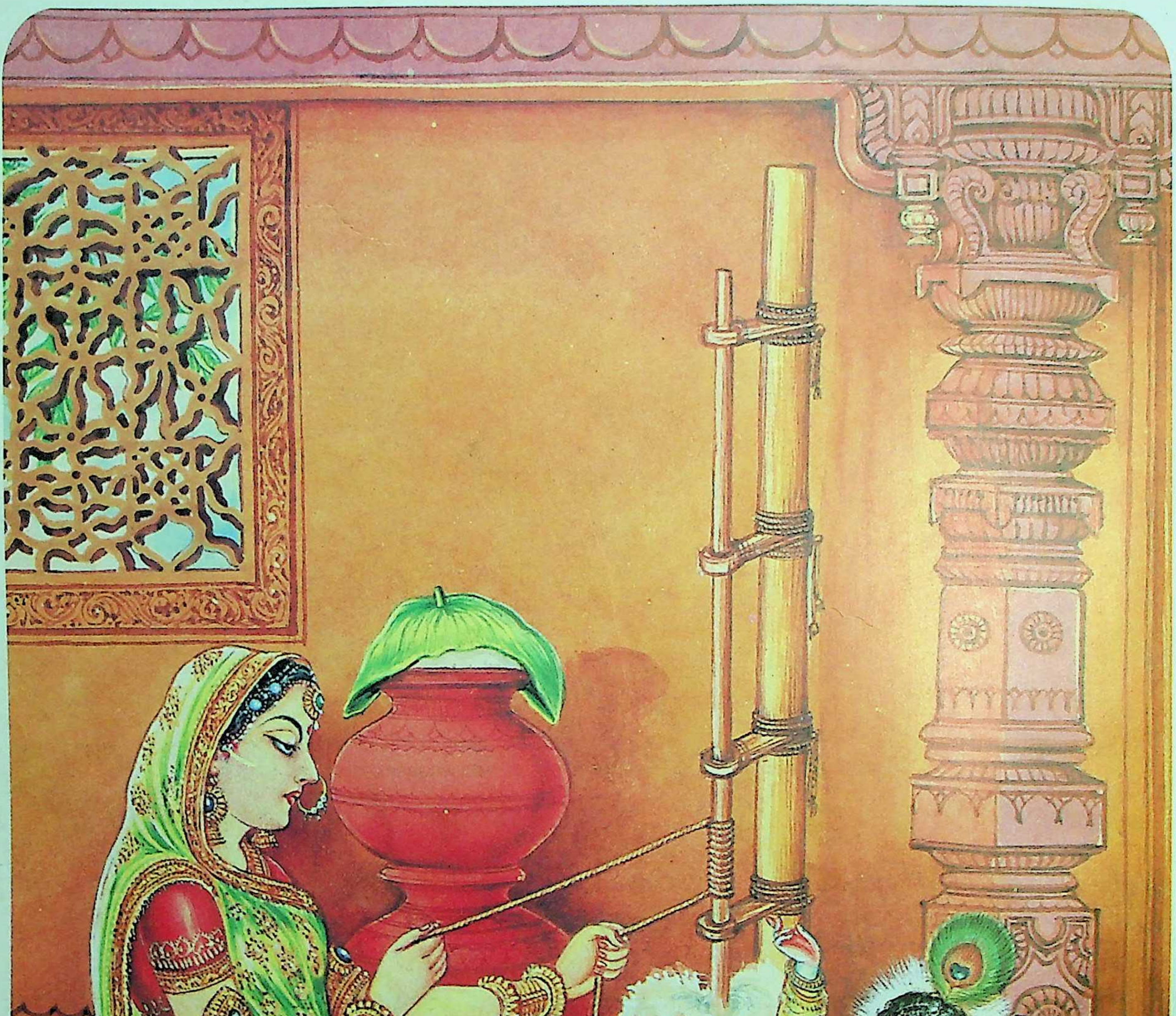

नवनीतप्रियका नृत्य-उपक्रम

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

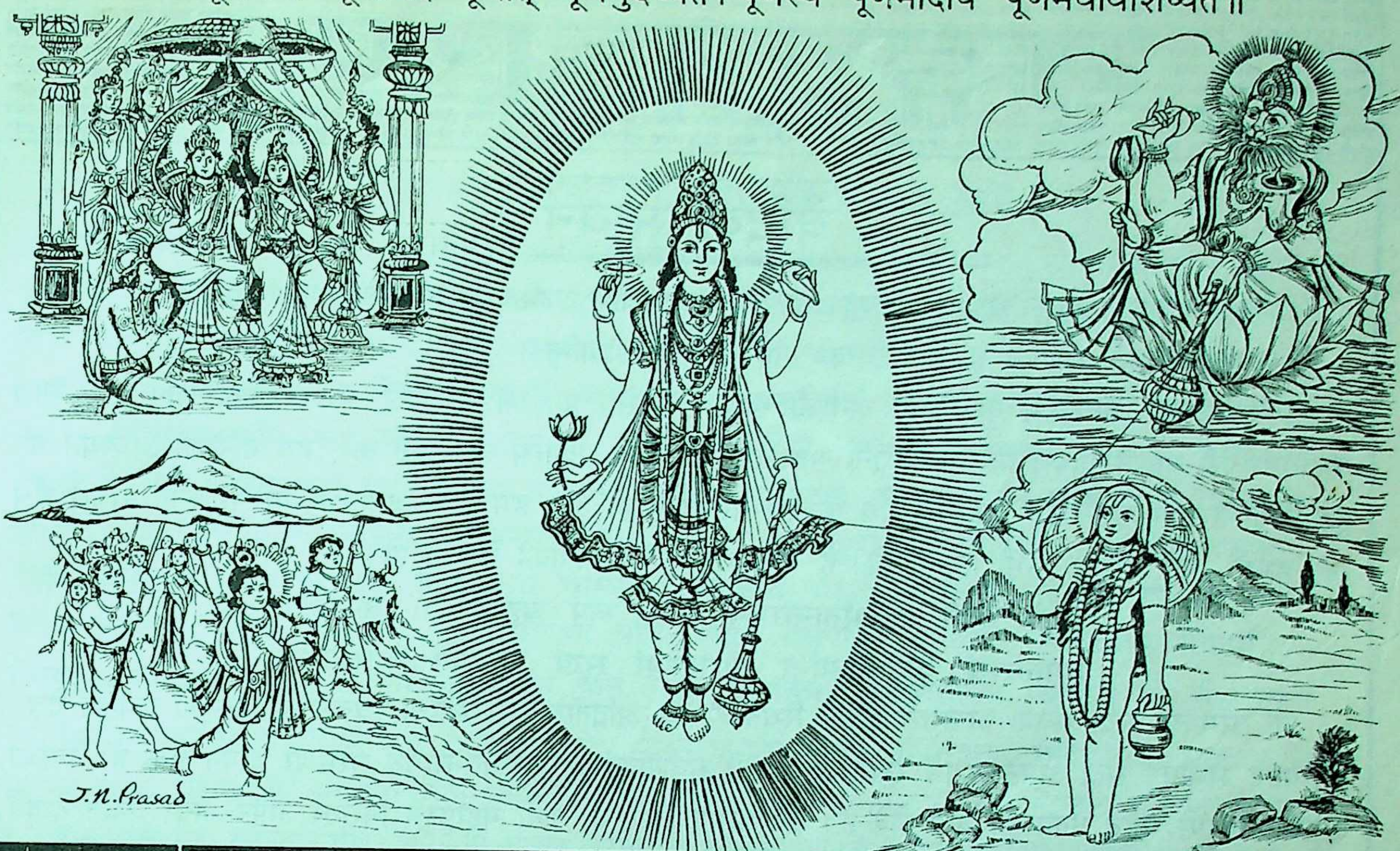

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

वर्ष ७२ | गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०५४, श्रीकृष्ण-सं० ५२२३, जनवरी १९९८ ई० | संख्या १
पूर्ण संख्या ८५४

नाचत त्रैलोकनाथ माखन के काजै

जसुमति दधि मथन करति, बैठी बर धाम अजिर,
ठाढ़े हरि हँसत नान्ह दँतियनि छबि छाजै।
चितवत चित लै चुराइ, सोभा बरनी न जाइ,
मनु मुनि-मन-हरन-काज मोहिनी दल साजै॥
जननि कहत नाचौ तुम, दैहौं नवनीत मोहन,
रुनुक-झुनुक चलत पाइ, नूपुर-धुनि बाजै।
गावत गुन सूरदास, बढ़्यो जस भुव-अकास,
नाचत त्रैलोकनाथ माखन के काजै॥

* * *

मङ्गलाचरण

वैदिक स्तवन

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

हे परमात्मन्! आप हम गुरु-शिष्य दोनोंकी साथ-साथ सब प्रकारसे रक्षा करें, हम दोनोंका आप साथ-साथ समुचितरूपसे पालन-पोषण करें, हम दोनों साथ-ही-साथ सब प्रकारसे बल प्राप्त करें, हम दोनोंकी अध्ययन की हुई विद्या तेजपूर्ण हो—कहीं किसीसे हम विद्यामें परास्त न हों और हम दोनों जीवनभर परस्पर स्नेह-सूत्रसे बँधे रहें, हमारे अंदर परस्पर कभी द्वेष न हो। हे परमात्मन्! तीनों तापोंकी निवृत्ति हो।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥

जो परमात्मा सदा सबके अन्तरात्मारूपसे स्थित हैं, जो अद्वितीय और सर्वथा स्वतन्त्र हैं, सम्पूर्ण जगत्में देव-मनुष्यादि सभीको सदा अपने वशमें रखते हैं, वे ही सर्वशक्तिमान् सर्वभवनसमर्थ परमेश्वर अपने एक ही रूपको अपनी लीलासे बहुत प्रकारका बना लेते हैं। उन परमात्माको जो ज्ञानी महापुरुष निरन्तर अपने अंदर स्थित देखते हैं, उन्हींको सदा स्थिर रहनेवाला—सनातन परमानन्द मिलता है, दूसरोंको नहीं।

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद् वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति।
वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देवः स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥

जो रूप-रंग आदिसे रहित होकर भी, छिपे हुए प्रयोजनवाला होनेके कारण, विविध शक्तियोंके सम्बन्धसे, सृष्टिके आदिमें, अनेक रूप-रंग धारण कर लेता है तथा अन्तमें यह सम्पूर्ण विश्व [जिसमें] विलीन भी हो जाता है, वह परमात्मा अद्वितीय है, वह हम लोगोंको शुभ बुद्धिसे संयुक्त करे।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

हे देवगण! हम अपने कानोंसे शुभ—कल्याणकारी वचन ही सुनें। निन्दा, चुगली, गाली या दूसरी-दूसरी पापकी बातें हमारे कानोंमें न पड़ें और हमारा अपना जीवन यजन-परायण हो—हम सदा भगवान्की आराधनामें ही लगे रहें। न केवल कानोंसे सुनें, नेत्रोंसे भी हम सदा कल्याणका ही दर्शन करें। किसी अमङ्गलकारी अथवा पतनकी ओर ले जानेवाले दृश्योंकी ओर हमारी दृष्टिका आकर्षण कभी न हो। हमारा शरीर, हमारा एक-एक अवयव सुदृढ़ एवं सुपुष्ट हो—वह भी इसलिये कि हम उनके द्वारा भगवान्का स्तवन करते रहें। हमारी आयु भोग-विलास या प्रमादमें न बीते। हमें ऐसी आयु मिले जो भगवान्के कार्यमें आ सके। [देवता हमारी प्रत्येक इन्द्रियमें व्याप्त रहकर उसका संरक्षण और संचालन करते हैं। उनके अनुकूल रहनेसे हमारी इन्द्रियाँ सुगमतापूर्वक सन्मार्गमें लगी रह सकती हैं, अतः उनसे प्रार्थना करना उचित ही है।] जिनका सुयश सब ओर फैला है, वे देवराज इन्द्र, सर्वज्ञ पूषा, अरिष्ट-निवारक तार्क्ष्य (गरुड) और बुद्धिके स्वामी बृहस्पति—ये सभी देवता भगवान्की दिव्य विभूतियाँ हैं। ये सदा हमारे कल्याणका पोषण करें। इनकी कृपासे हमारे साथ प्राणिमात्रका कल्याण होता रहे। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—सभी प्रकारके तापोंकी शान्ति हो।

* * *

कुर्वन्तु वो मङ्गलम्

[समस्त देवतागण आपका मङ्गल करें]

श्रीमत्पङ्कजविष्टरो हरिहरौ वायुर्महेन्द्रोऽनलश्चन्द्रो भास्करवित्तपालवरुणाः प्रेताधिपाद्या ग्रहाः।
प्रद्युम्नो नलकूबरौ सुरगजश्चिन्तामणिः कौस्तुभः स्वामी शक्तिधरश्च लाङ्गलधरः कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
गौरी श्रीः कुलदेवता च सुभगा भूमिः प्रपूर्णा शुभा सावित्री च सरस्वती च सुरभिः सत्यव्रतारुन्धती।
स्वाहा जाम्बवती च रुक्मभगिनी दुःस्वप्नविध्वंसिनी वेलाश्चाम्बुनिधेः समीनमकराः कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
गङ्गा सिन्धुसरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा कावेरी सरयूर्महेन्द्रतनयाश्चर्मण्वती देविका।
क्षिप्रा वेत्रवती महासुरनदी ख्याता गया गण्डकी पुण्याः पुण्यजलैः समुद्रसहिताः कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
लक्ष्मीः कौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा धेनुः कामदुघा सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गनाः।
अश्वः सप्तमुखो विषं हरिधनुः शङ्खोऽमृतं चाम्बुधेः रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
ब्रह्मा वेदपतिः शिवः पशुपतिः सूर्यो ग्रहाणां पतिः शक्रो देवपतिर्हविर्हुतपतिः स्कन्दश्च सेनापतिः।
विष्णुर्यज्ञपतिर्यमः पितृपतिः शक्तिः पतीनां पतिः सर्वे ते पतयः सुमेरुसहिताः कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥

सर्वैश्वर्यसम्पन्न ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव, वायुदेव, देवराज इन्द्र तथा अग्निदेवता, चन्द्रदेवता, भगवान् सूर्य, धनाध्यक्ष कुबेर, वरुण और संयमनीपुरीके स्वामी यमराज, सभी ग्रह, श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न, नल और कूबर, ऐरावत गज, चिन्तामणि रत्न, कौस्तुभमणि, शक्तिको धारण करनेवाले स्वामी कार्तिकेय तथा हलायुध बलराम—ये सब आप लोगोंका मङ्गल करें। भगवती गौरी (पार्वती), भगवती लक्ष्मी, अपने कुलदेवता, सौभाग्ययुक्त स्त्री, सभी धन-धान्योंसे सम्पन्न पृथ्वीदेवी, ब्रह्माकी पत्नी सावित्री और सरस्वती, कामधेनु, सत्य एवं पातिव्रत्यको धारण करनेवाली वसिष्ठपत्नी अरुन्धती, अग्निपत्नी स्वाहादेवी, कृष्णपत्नी जाम्बवती, रुक्मभगिनी रुक्मिणीदेवी तथा दुःस्वप्ननाशिनी देवी, मीन और मकरोंसे संयुक्त समुद्र एवं उनकी वेलाएँ—ये सब आप लोगोंका मङ्गल करें। भागीरथी गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी, सरयू तथा महेन्द्र पर्वतसे निःसृत समस्त नदियाँ, चर्मण्वती, देविका नामसे प्रसिद्ध देवनदी, क्षिप्रा, वेत्रवती (बेतवा), महानदी, गयाकी फल्गुनदी, गण्डकी या नारायणी—ये सब पुण्य जलवाली पवित्र नदियाँ अपने स्वामी समुद्रके साथ आप लोगोंका मङ्गल करें। भगवती लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, पारिजात नामका कल्पवृक्ष, वारुणीदेवी, वैद्यराज धन्वन्तरि, चन्द्रमा, कामधेनु गौ, देवराज इन्द्रका ऐरावत हस्ती, रम्भा आदि सभी अप्सराएँ, सात मुखवाला उच्चैःश्रवा नामक अश्व, कालकूट विष, भगवान् विष्णुका शार्ङ्गधनुष, पाञ्चजन्य शंख तथा अमृत—ये समुद्रसे उत्पन्न चौदह रत्न आप लोगोंका प्रतिदिन मङ्गल करें। वेदोंके स्वामी ब्रह्मा, पशुपति भगवान् शंकर, ग्रहोंके स्वामी भगवान् सूर्य, देवताओंके स्वामी इन्द्र, हव्य पदार्थोंमें श्रेष्ठ हविर्द्रव्य—पुरोडाश, देव-सेनापति भगवान् कार्तिकेय, यज्ञोंके स्वामी भगवान् विष्णु, पितरोंके पति धर्मराज और सभी स्वामियोंकी स्वामिनी शक्तिस्वरूपा भगवती महालक्ष्मी—ये सभी स्वामिगण पर्वतराज सुमेरुगिरिसहित आप लोगोंका मङ्गल करें।

* * *

कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्त्राम्बुजं शशाङ्ककलयोज्ज्वलं शमितघोरतापत्रयम्।
करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपुर्धराधरसुताभुजोद्वलयितं महो मङ्गलम्॥

जिसकी कृपापूर्ण चितवन बड़ी ही सुन्दर है, जिसका मुखारविन्द मन्द मुसकानकी छटासे अत्यन्त मनोहर दिखायी देता है, जो चन्द्रमाकी कलासे परम उज्ज्वल है, जो आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंको शान्त कर देनेमें समर्थ है, जिसका स्वरूप सच्चिन्मय एवं परमानन्दरूपसे प्रकाशित होता है तथा जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके भुजपाशसे आवेष्टित है, वह शिव नामक कोई अनिर्वचनीय तेजःपुञ्ज सबका मङ्गल करे।

* * *

पञ्चदेव-स्तुति

विष्णु

उद्यत्कोटिदिवाकराभमनिशं शङ्खं गदां पङ्कजं चक्रं बिभ्रतमिन्दिरावसुमतीसंशोभिपार्श्वद्वयम्।
कोटीराङ्गदहारकुण्डलधरं पीताम्बरं कौस्तुभैर्दीप्तं विश्वधरं स्ववक्षसि लसच्छ्रीवत्सचिह्नं भजे॥

उदीयमान करोड़ों सूर्यके समान प्रभातुल्य, अपने चारों हाथोंमें शंख, गदा, पद्म तथा चक्र धारण किये हुए एवं दोनों भागोंमें भगवती लक्ष्मी और पृथ्वीदेवीसे सुशोभित, किरीट-मुकुट, केयूर, हार और कुण्डलोंसे समलंकृत, कौस्तुभमणि तथा पीताम्बरसे देदीप्यमान विग्रहयुक्त एवं वक्षःस्थलपर श्रीवत्स-चिह्न धारण किये हुए भगवान् विष्णुका मैं निरन्तर स्मरण-ध्यान करता हूँ।

शिव

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

चाँदीके पर्वतके समान जिनकी श्वेत कान्ति है, जो सुन्दर चन्द्रमाको आभूषणरूपसे धारण करते हैं, रत्नमय अलंकारोंसे जिनका शरीर उज्ज्वल है, जिनके हाथोंमें परशु, मृग, वर और अभयमुद्रा है, जो प्रसन्न हैं, पद्मके आसनपर विराजमान हैं, देवतागण जिनके चारों ओर खड़े होकर स्तुति करते हैं, जो बाघकी खाल पहनते हैं, जो विश्वके आदि, जगत्की उत्पत्तिके बीज और समस्त भयोंको हरनेवाले हैं, जिनके पाँच मुख और तीन नेत्र हैं, उन महेश्वरका प्रतिदिन ध्यान करना चाहिये।

गणेश

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम्।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम्॥

जो नाटे और मोटे शरीरवाले हैं, जिनका गजराजके समान मुख और लंबा उदर है, जो सुन्दर हैं तथा बहते हुए मदकी सुगन्धके लोभी भौंरोंके चाटनेसे जिनका गण्डस्थल चपल हो रहा है, दाँतोंकी चोटसे विदीर्ण हुए शत्रुओंके खूनसे जो सिन्दूरकी-सी शोभा धारण करते हैं, कामनाओंके दाता और सिद्धि देनेवाले उन पार्वतीके पुत्र गणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ।

सूर्य

रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं भानुं समस्तजगतामधिपं भजामि।
पद्मद्वयाभयवरान् दधतं कराब्जैर्माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम्॥

लाल कमलके आसनपर समासीन, सम्पूर्ण गुणोंके रत्नाकर, अपने दोनों हाथोंमें कमल और अभयमुद्रा धारण किये हुए, पद्मराग तथा मुक्ताफलके समान सुशोभित शरीरवाले, अखिल जगत्के स्वामी तीन नेत्रोंसे युक्त भगवान् सूर्यका मैं ध्यान करता हूँ।

दुर्गा

सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला॥

जो सिंहकी पीठपर विराजमान हैं, जिनके मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट है, जो मरकतमणिके समान कान्तिवाली अपनी चार भुजाओंमें शंख, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, तीन नेत्रोंसे सुशोभित होती हैं, जिनके भिन्न-भिन्न अङ्ग बाँधे हुए बाजूबंद, हार, कङ्कण, खनखनाती हुई करधनी और रुनझुन करते हुए नूपुरोंसे विभूषित हैं तथा जिनके कानोंमें रत्नजटित कुण्डल झिलमिलाते रहते हैं, वे भगवती दुर्गा हमारी दुर्गति दूर करनेवाली हों।

* * *

दशावताररूप जगदीश्वरकी जय हो!

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्। विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ॥
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे॥ १ ॥
क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे। धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ॥
केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे॥ २ ॥
वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना। शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना॥
केशव धृतसूकररूप जय जगदीश हरे॥ ३ ॥
तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम्। दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम् ॥
केशव धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे॥ ४ ॥
छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन। पदनखनीरजनितजनपावन ॥
केशव धृतवामनरूप जय जगदीश हरे॥ ५ ॥
क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापम्। स्नपयसि पयसि शमितभवतापम्॥
केशव धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे॥ ६ ॥
वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयम्। दशमुखमौलिबलिं रमणीयम्॥
केशव धृतरघुपतिवेष जय जगदीश हरे॥ ७ ॥
वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम्। हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ॥
केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे॥ ८ ॥
निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्। सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ॥
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे॥ ९ ॥
म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम्। धूमकेतुमिव किमपि करालम्॥
केशव धृतकल्किशरीर जय जगदीश हरे॥१०॥
श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम्। शृणु सुखदं शुभदं भवसारम्॥
केशव धृतदशविधरूप जय जगदीश हरे॥११॥

हे मत्स्यरूपधारी केशव! हे जगदीश्वर! हे हरे! प्रलयकालके बढ़े हुए समुद्रजलमें बिना क्लेश नौका चलानेकी लीला करते हुए आपने वेदोंकी रक्षा की थी, आपकी जय हो॥ १॥ हे केशव! पृथ्वीको धारण करनेके कारण पड़े हुए घट्ठोंसे कठोर और अत्यन्त विशाल आपकी पीठपर पृथ्वी स्थित है, ऐसे कच्छपरूपधारी जगत्पति आप हरिकी जय हो॥ २॥ चन्द्रमामें स्थित कलङ्करेखाके समान यह पृथ्वी आपके दाँतकी नोकपर अटकी हुई सुशोभित हो रही है, ऐसे शूकररूपधारी जगत्पति हरि केशवकी जय हो॥ ३॥ हिरण्यकशिपुरूपी तुच्छ भृङ्गको चीर डालनेवाले विचित्र नुकीले नख आपके करकमलमें हैं, ऐसे नृसिंहरूपधारी जगत्पति हरि केशवकी जय हो॥ ४॥ हे आश्चर्यमय वामनरूपधारी केशव! आपने पैर बढ़ाकर राजा बलिको छला तथा अपने चरण-नखोंके जलसे लोगोंको पवित्र किया, ऐसे आप जगत्पति हरिकी जय हो॥ ५॥ हे केशव! आप जगत्के लोगोंको क्षत्रियोंके रुधिररूप जलसे स्नान कराकर उनके ताप और पापोंका नाश करते हैं, ऐसे आप परशुरामरूपधारी जगत्पति हरिकी जय हो॥ ६॥ जो युद्धमें सब दिशाओंमें लोकपालोंके लिये लोभनीय रावणके सिरोंकी सुन्दर बलि देते हैं, ऐसे श्रीरामावतारधारी आप जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ ७॥ जो अपने गौर-शरीरमें हलकी चोटके भयसे आकर मिली हुई यमुना और मेघके सदृश नीलाम्बर धारण किये रहते हैं, ऐसे आप बलरामरूपधारी जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ ८॥ सदय हृदयके कारण पशुहत्याकी कठोरता दिखाते हुए यज्ञविधानसम्बन्धी श्रुतियोंकी निन्दा करनेवाले आप बुद्धरूपधारी जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ ९॥ जो म्लेच्छ-समूहका नाश करनेके लिये धूमकेतुके समान अत्यन्त भयंकर तलवार चलाते हैं, ऐसे कल्किरूपधारी आप जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ १०॥ जयदेव कविकी कही हुई इस मनोहर, आनन्ददायक, कल्याणजनक, संसारमें साररूपा स्तुतिको सुनो; हे दशावतारधारी जगत्पति हरि! आपकी जय हो॥ ११॥

* * *

नमोऽस्तु सततं मम शङ्कराय

नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं पाशारुणोत्पलकपालत्रिशूलहस्तम्।
अर्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम्॥

भगवान् अर्धनारीश्वर शिवके शरीरका दाहिना भाग नीलवर्णका और बायाँ भाग प्रवाल अर्थात् मूँगेकी कान्तिके समान लाल वर्णका है। उनके तीन नेत्र सुशोभित हो रहे हैं, उनके वामभागके हाथोंमें पाश और लाल कमल विराजमान है तथा दाहिनी ओरके दो हाथोंमें त्रिशूल और कपाल स्थित है। इस प्रकार बायीं ओर भगवती पार्वती और दाहिनी ओर भगवान् शङ्करके सम्मिलित स्वरूपको जिनके अङ्गोंमें अलग-अलग आभूषण सुशोभित हो रहे हैं और मस्तकके ऊपर बाल-चन्द्रमा तथा मुकुट विराजित हैं, मैं उस रूपको प्रणाम करता हूँ।

नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतेऽनन्ततेजसे। नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः॥
नमस्ते ह्यस्मदादीनां भूतानां प्रभवाय च। वेदकर्मावदातानां द्रव्याणां प्रभवे नमः॥
विद्यानां प्रभवे चैव विद्यानां पतये नमः। नमो व्रतानां पतये मन्त्राणां पतये नमः॥
अप्रमेयस्य तत्त्वस्य यथा विद्मः स्वशक्तितः। कीर्तितं तव माहात्म्यमपारं परमात्मनः॥
शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते॥

[ब्रह्मा और विष्णु स्तुति करते हुए बोले—] भगवन्! आप सुव्रत और अनन्त तेजोमय हैं, आपको प्रणाम है। आप क्षेत्राधिपति तथा विश्वके बीज-स्वरूप और शूलधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप हम सभी भूतोंके उत्पत्ति-स्थान और वेदोक्त सभी श्रेष्ठ यज्ञ आदि कर्मोंको सम्पन्न करानेवाले, समस्त द्रव्योंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप विद्याके आदि कारण और स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप व्रतों एवं मन्त्रोंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप अप्रमेय तत्त्व हैं। अपनी शक्तिसे जैसा हमने आपको समझा, वैसा ही आपके अपार माहात्म्यका यशोगान किया। आप हमारे लिये सर्वत्र कल्याणकारक हों। आप जो हैं, वही हैं अर्थात् अज्ञेय और अगम्य हैं, आपको नमस्कार है।

शीतांशुशुभ्रकलया कलितोत्तमाङ्गं ध्यानस्थितं धरणिभृत्तनयार्चितं तम्।
कालानलोपमहलाहलकृष्णकण्ठं श्रीशङ्करं कलिमलापहरं नमामि॥

चारु चन्द्रमाकी शुभ्रकलासे आपका शिरोभाग शोभित है। पर्वतराज हिमालयकी कन्या पार्वतीजी स्वयं ही आपकी पूजा-अर्चा करती हैं। संसारको दग्ध हो जानेसे बचानेके लिये, कालानलके समान महाभीषण हलाहल पी जानेसे आपका कण्ठ काला हो गया। इस कलिकालका मल अपहरण करनेमें आप अपना सानी नहीं रखते। ऐसे ध्यानावस्थित आप शङ्करको मेरा प्रणाम है।

त्रैलोक्यमेतदखिलं ससुरासुरं च भस्मीभवेद् यदि न यो दययार्द्रदेहः।
पीत्वाऽहरद्गरलमाशु भयं तदुत्थं विश्वावनैकनिरताय नमोऽस्तु तस्मै॥

आप बड़े ही दयालु हैं। आपकी दया सीमारहित है। उसका प्रमाण लीजिये। समुद्र-मन्थनसे हलाहल निकलनेपर उसकी आग असह्य हो गयी। उस समय और किसीसे कुछ भी करते-धरते न बना। जब आपने देखा कि सुरासुरोंसे पूर्ण त्रैलोक्यका नाश होना ही चाहता है, तब उस कालकूटका पान स्वयं ही करके तीनों लोकोंको जल जानेसे बचा लिया। संसारकी रक्षाका इतना खयाल रखनेवाले आपके पादपद्मोंपर मैं अपना सिर रखता हूँ।

नो शक्यमुग्रतपसापि युगान्तरेण प्राप्तुं यदन्यसुरपुङ्गवतस्तदेव।
भक्त्या सकृत्प्रणमनेन सदा ददाति यो नौमि नम्रशिरसा च तमाशुतोषम्॥

युग-युगान्तपर्यन्त तपस्या करनेपर भी जो फलप्राप्ति भक्तोंको अन्य सुरपुङ्गवोंसे भी नहीं हो सकती, वही आपको भक्ति-भावपूर्वक प्रणाममात्र करनेसे आपके सच्चे भक्तोंको सुलभ हो जाती है। बात यह है कि आप आशुतोष हैं—थोड़ी ही सेवासे प्रसन्न हो जाते हैं। मैं आपके सामने अपना सिर झुकाता हूँ।

गायन्ति यस्य चरितानि महाद्भुतानि पद्मोद्भवोद्भवमुखाः सततं मुनीन्द्राः।
ध्यायन्ति यं यमिनमिन्दुकलावतंसं सन्तः समाधिनिरतास्तमहं नमामि॥

आपके अत्यन्त अद्भुत चरितोंका गान कोई ऐसे-वैसे नहीं, नारदादि बड़े-बड़े महामुनि तक किया करते हैं। साधु-शिरोमणि योगीश्वर भी समाधि लगाकर आपहीका ध्यान करते रहते हैं। ऐसे आप चन्द्रशेखरको मेरा पुनरपि प्रणाम।

भूतिप्रियोऽपि वितरत्यनिशं विभूतिं भक्ताय यः फणिगणानपि धारयन् सन्।
हस्ते प्रचण्डभवभीमभुजङ्गभीतिं तस्मै नमोऽस्तु सततं मम शङ्कराय॥

आपकी महिमा अपरम्पार है। वह साधारण जनोंकी समझमें आ ही नहीं सकती। देखिये न, इधर तो आप स्वयं ही विभूति-प्रिय (विभूति-भस्म) हैं, उधर वही अपनी प्यारी वस्तु विभूति अपने भक्तोंको रोज ही लुटाया करते हैं और देखिये, स्वयं तो आप महाभयंकर नागोंके कंठे और मालाएँ आदि धारण करते हैं, उधर आप ही जन्म-मरणरूपी भीम भुजङ्गके भयसे अपने सेवकोंकी रक्षा करते हैं। परम कारुणिक और कल्याणकर्ता आपको मेरा नमस्कार है।

* * *

प्रसीद विष्णो भगवन् नमस्ते

नमामि देवं नरनाथमच्युतं नारायणं लोकगुरुं सनातनम्।
अनादिमव्यक्तमचिन्त्यमव्ययं वेदान्तवेद्यं पुरुषोत्तमं हरिम्॥
आनन्दरूपं परमं परात्परं चिदात्मकं ज्ञानवतां परां गतिम्।
सर्वात्मकं सर्वगतैकरूपं ध्येयस्वरूपं प्रणमामि माधवम्॥

मैं सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी भगवान् अच्युतको, सनातन लोकगुरु भगवान् नारायणको नमस्कार करता हूँ। जो अनादि, अव्यक्त, अचिन्त्य और अविनाशी हैं, उन वेदान्तवेद्य पुरुषोत्तम श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो परमानन्दस्वरूप, परात्पर, ज्ञानमय एवं ज्ञानियोंके परम आश्रय हैं तथा जो सर्वमय, सर्वव्यापक, अद्वितीय और सबके ध्येयरूप हैं, उन भगवान् लक्ष्मीपतिको मैं प्रणाम करता हूँ।

भक्तप्रियं कान्तमतीव निर्मलं सुराधिपं सूरिजनैरभिष्टुतम्।
चतुर्भुजं नीरजवर्णमीश्वरं रथाङ्गपाणिं प्रणतोऽस्मि केशवम्॥
गदासिशङ्खाब्जकरं श्रियः पतिं सदाशिवं शार्ङ्गधरं रविप्रभम्।
पीताम्बरं हारविराजितोदरं नमामि विष्णुं सततं किरीटिनम्॥

जो भक्तोंके प्रेमी, अत्यन्त कमनीय और दोषोंसे रहित हैं, जो समस्त देवताओंके स्वामी हैं, विद्वान् पुरुष जिनकी स्तुति करते हैं, जिनकी चार भुजाएँ हैं, नील-कमलके समान जिनकी श्यामल कान्ति है, जो हाथमें चक्र धारण किये रहते हैं, उन परमेश्वर केशवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके हाथोंमें गदा, तलवार, शंख और कमल सुशोभित हैं, जो लक्ष्मीजीके पति हैं, सदा ही कल्याण करनेवाले हैं, जो शार्ङ्गधनुष धारण किये रहते हैं, जिनकी सूर्यके समान कान्ति है, जो पीत वस्त्र धारण किये रहते हैं, जिनका उदरभाग हारसे विभूषित है तथा जिनके मस्तकपर मुकुट शोभा पा रहा है, उन भगवान् विष्णुको मैं सदा प्रणाम करता हूँ।

गण्डस्थलासक्तसुरक्तकुण्डलं सुदीपिताशेषदिशं निजत्विषा।
गन्धर्वसिद्धैरुपगीतमृग्ध्वनिं जनार्दनं भूतपतिं नमामि तम्॥
हत्वासुरान् पाति युगे युगे सुरान् स्वधर्मसंस्थान् भुवि संस्थितो हरिः।
करोति सृष्टिं जगतः क्षयं यस्तं वासुदेवं प्रणतोऽस्मि केशवम्॥

जिनके कपोलोंपर सुन्दर रक्तवर्ण कुण्डल शोभा पा रहे हैं, जो अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित

कर रहे हैं, गन्धर्व और सिद्धगण जिनका सुयश गाते रहते हैं तथा जिनका वैदिक ऋचाओंद्वारा यशोगान किया जाता है, उन भूतनाथ भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो भगवान् प्रत्येक युगमें पृथ्वीपर अवतार ले देवद्रोही दानवोंका वध करके अपने धर्ममें स्थित देवताओंकी रक्षा करते हैं तथा जो इस जगत्की सृष्टि एवं संहार करते हैं, उन सर्वान्तर्यामी भगवान् केशवको मैं प्रणाम करता हूँ।

यो मत्स्यरूपेण रसातलस्थितान् वेदान् समाहृत्य मम प्रदत्तवान्।
निहत्य युद्धे मधुकैटभावुभौ तं वेदवेद्यं प्रणतोऽस्म्यहं सदा॥
देवासुरैः क्षीरसमुद्रमध्यतो न्यस्तो गिरिर्येन धृतः पुरा महान्।
हिताय कौर्मं वपुरास्थितो यस्तं विष्णुमाद्यं प्रणतोऽस्मि भास्करम्॥

जिन्होंने युद्धमें मधु और कैटभ—इन दोनों दैत्योंको मारा तथा मत्स्य-रूप धारण करके रसातलमें पहुँचे हुए वेदोंको लाकर मुझे दिया था, उन वेदवेद्य परमेश्वरको मैं सदा ही प्रणाम करता हूँ। पूर्वकालमें जिन्होंने देवता और असुरोंद्वारा क्षीरसमुद्रमें डाले हुए महान् मन्दराचलको सबका हित करनेके लिये कूर्मरूपसे पीठपर धारण किया था, उन प्रकाश देनेवाले आदिदेव भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ।

हत्वा हिरण्याक्षमतीव दर्पितं वराहरूपी भगवान् सनातनः।
यो भूमिमेतां सकलां समुद्धरंस्तं वेदमूर्तिं प्रणमामि सूकरम्॥
कृत्वा नृसिंहवपुरात्मनः परं हिताय लोकस्य सनातनो हरिः।
जघान यस्तीक्ष्णनखैर्दितेः सुतं तं नारसिंहं पुरुषं नमामि॥

जिन सनातन भगवान्ने वराहरूप धारण करके इस सम्पूर्ण वसुन्धराका जलसे उद्धार किया और उसी समय अत्यन्त अभिमानी दैत्य हिरण्याक्षको मार गिराया था, उन वेदमूर्ति सूकररूपधारी भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ। जिन सनातन भगवान् श्रीहरिने त्रिलोकीका हित करनेके लिये श्रेष्ठ नृसिंहरूप धारण करके अपने तीखे नखोंद्वारा दितिनन्दन हिरण्यकशिपुका वध किया था, उन परम पुरुष भगवान् नरसिंहको मैं प्रणाम करता हूँ।

यो वामनोऽसौ भगवाञ्जनार्दनो बलिं बबन्ध त्रिभिरूर्जितैः पदैः।
जगत्त्रयं क्रम्य ददौ पुरंदरे तं देवमाद्यं प्रणतोऽस्मि वामनम्॥
यः कार्तवीर्यं निजघान रोषात् त्रिःसप्तकृत्वः क्षितिपात्मजानपि।
तं जामदग्न्यं क्षितिभारनाशकं नतोऽस्मि विष्णुं पुरुषोत्तमं सदा॥

जिन वामनरूपधारी भगवान् जनार्दनने बलिको बाँधा था और अपने बढ़े हुए तीन पगोंसे त्रिभुवनको नापकर उसे इन्द्रको दे दिया था, उन आदिदेव वामनको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने कोपवश राजा कार्तवीर्यको मार डाला तथा इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार किया, पृथ्वीका भार दूर करनेवाले परशुरामरूपधारी उन पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुको मैं सदा नमस्कार करता हूँ।

सेतुं महान्तं जलधौ बबन्ध यः सम्प्राप्य लङ्कां सगणं दशाननम्।
जघान भूत्यै जगतां सनातनं तं रामदेवं सततं नतोऽस्मि॥
यथा तु वाराहनृसिंहरूपैः कृतं त्वया देवहितं सुराणाम्।
तथाद्य भूमेः कुरु भारहानिं प्रसीद विष्णो भगवन् नमस्ते॥

जिन्होंने समुद्रपर बहुत बड़ा पुल बाँधा और लंकामें पहुँचकर त्रिलोकीके कल्याणके लिये रावणको उसके गणोंसहित मार डाला था, उन सनातनदेव भगवान् श्रीरामको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। भगवन्! विष्णो! जिस प्रकार [पूर्वकालमें] वराह-नृसिंह आदि रूपोंसे आपने देवताओंका हित किया है, उसी प्रकार आज भी प्रसन्न होकर पृथ्वीका भार दूर करें। देव! आपको सादर नमस्कार है।

* * *

जन्म कर्म च मे दिव्यम्

हंसस्वरूप्यवददच्युत आत्मयोगं दत्तः कुमार ऋषभो भगवान् पिता नः।
विष्णुः शिवाय जगतां कलयावतीर्णस्तेनाहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये॥
गुप्तोऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रौडे हतो दितिज उद्धरताम्भसः क्ष्माम्।
कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात् प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम्॥
संस्तुन्वतोऽब्धिपतिताञ्छ्रमणानृषींश्च शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम्।
देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेन्द्रमभयाय सतां नृसिंहे॥
देवासुरे युधि च दैत्यपतीन् सुरार्थे हत्वान्तरेषु भुवनान्यदधात् कलाभिः।
भूत्वाथ वामन इमामहरद् बलेः क्ष्मां याच्ञाच्छलेन समदाददितेः सुतेभ्यः॥
निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाप्ययभार्गवाग्निः।
सोऽब्धिं बबन्ध दशवक्त्रमहन् सलङ्कं सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः॥
भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि।
वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हान् शूद्रान् कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते॥
एवंविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः।
भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज॥

(श्रीमद्भा० ११। ४। १७—२३)

भगवान् विष्णुने अपने स्वरूपमें एकरस स्थित रहते हुए भी सम्पूर्ण जगत्के कल्याणके लिये बहुत-से कलावतार ग्रहण किये हैं। विदेहराज! हंस, दत्तात्रेय, सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार और हमारे पिता ऋषभके रूपमें अवतीर्ण होकर उन्होंने आत्मसाक्षात्कारके साधनोंका उपदेश किया है। उन्होंने ही हयग्रीव-अवतार लेकर मधु-कैटभ नामक असुरोंका संहार करके उन लोगोंके द्वारा चुराये हुए वेदोंका उद्धार किया है। प्रलयके समय मत्स्यावतार लेकर उन्होंने भावी मनु सत्यव्रत, पृथ्वी और ओषधियोंकी—धान्यादिकी रक्षा की और वराहावतार ग्रहण करके पृथ्वीका रसातलसे उद्धार करते समय हिरण्याक्षका संहार किया। कूर्मावतार ग्रहण करके उन्हीं भगवान्ने अमृत-मन्थनका कार्य सम्पन्न करनेके लिये अपनी पीठपर मन्दराचल धारण किया और उन्हीं भगवान् विष्णुने अपने शरणागत एवं आर्त भक्त गजेन्द्रको ग्राहसे छुड़ाया। एक बार बालखिल्य ऋषि तपस्या करते-करते अत्यन्त दुबले हो गये थे। वे जब कश्यप ऋषिके लिये समिधा ला रहे थे, तो थककर गायके खुरसे बने हुए गड्ढेमें गिर पड़े, मानो समुद्रमें गिर गये हों। उन्होंने जब स्तुति की, तब भगवान्ने अवतार लेकर उनका उद्धार किया। वृत्रासुरको मारनेके कारण जब इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी और वे उसके भयसे भागकर छिप गये, तब भगवान्ने उस हत्यासे इन्द्रकी रक्षा की; और जब असुरोंने अनाथ देवाङ्गनाओंको बंदी बना लिया, तब भी भगवान्ने ही उन्हें असुरोंके चंगुलसे छुड़ाया। जब हिरण्यकशिपुके कारण प्रह्लाद आदि संत पुरुषोंको भय पहुँचने लगा, तब उनको निर्भय करनेके लिये भगवान्ने नृसिंहावतार ग्रहण किया और हिरण्यकशिपुको मार डाला। उन्होंने देवताओंकी रक्षाके लिये देवासुरसंग्राममें दैत्यपतियोंका वध किया और विभिन्न मन्वन्तरोंमें अपनी शक्तिसे अनेकों कलावतार धारण करके त्रिभुवनकी रक्षा की। फिर वामन-अवतार ग्रहण करके उन्होंने याचनाके बहाने इस पृथ्वीको दैत्यराज बलिसे छीन लिया और अदितिनन्दन देवताओंको दे दिया। परशुराम-अवतार ग्रहण करके उन्होंने ही पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियहीन किया। परशुरामजी तो हैहयवंशका प्रलय करनेके लिये मानो भृगुवंशमें अग्निरूपसे ही अवतीर्ण हुए थे। उन्हीं भगवान्ने रामावतारमें समुद्रपर पुल बाँधा एवं रावण और उसकी राजधानी लंकाको मटियामेट कर दिया। उनकी कीर्ति समस्त लोकोंके मलको नष्ट करनेवाली है। सीतापति भगवान् राम सदा-सर्वदा-सर्वत्र विजयी-ही-विजयी हैं। राजन्! अजन्मा होनेपर भी पृथ्वीका भार उतारनेके लिये वे ही भगवान् यदुवंशमें जन्म लेंगे और ऐसे-ऐसे कर्म करेंगे, जिन्हें बड़े-बड़े देवता भी नहीं कर सकते। फिर आगे चलकर भगवान् ही बुद्धके रूपमें प्रकट होंगे और यज्ञके अनधिकारियोंको यज्ञ करते देखकर अनेक प्रकारके तर्क-वितर्कोंसे मोहित कर लेंगे तथा कलियुगके अन्तमें कल्कि-अवतार लेकर वे ही शूद्र राजाओंका वध करेंगे। महाबाहु विदेहराज! भगवान्की कीर्ति अनन्त है। महात्माओंने जगत्पति भगवान्के ऐसे-ऐसे अनेकों जन्म और कर्मोंका प्रचुरतासे गान भी किया है।

* * *

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः

स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः। देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम्॥
येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः। तेनेशितं कर्म विवर्तते ह पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखानि चिन्त्यम्॥

कितने ही बुद्धिमान् लोग तो कहते हैं कि इस जगत्का कारण स्वभाव है। अर्थात् पदार्थोंमें जो स्वाभाविक शक्ति है—जैसे अग्निमें प्रकाशन-शक्ति और दाह-शक्ति, वही इस जगत्का कारण है। कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि काल ही जगत्का कारण है; क्योंकि समयपर ही वस्तुगत शक्तिका प्राकट्य होता है, जैसे वृक्षमें फल आदि उत्पन्न करनेकी शक्ति समयपर ही प्रकट होती है। इसी प्रकार स्त्रियोंमें गर्भाधान ऋतुकालमें ही होता है, असमयमें नहीं होता—यह प्रत्यक्ष देखा जाता है। परंतु अपनेको पण्डित समझनेवाले ये वैज्ञानिक मोहमें पड़े हुए हैं, अतः ये इस जगत्के वास्तविक कारणको नहीं जानते। वास्तवमें तो यह परमदेव सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी ही महिमा है, जगत्की विचित्र रचनाको देखने और उसपर विचार करनेपर उन्हींका महत्त्व प्रकट होता है। वे स्वभाव और काल आदि समस्त कारणोंके अधिपति हैं और उन्हींके द्वारा यह संसार-चक्र घुमाया जाता है। इस रहस्यको समझकर इस चक्रसे छुटकारा पानेके लिये उन्हींकी शरण लेनी चाहिये।

जिन जगन्नियन्ता जगदाधार परमेश्वरसे यह सम्पूर्ण जगत् सदा—सभी अवस्थाओंमें सर्वथा व्याप्त है, जो कालके भी महाकाल हैं—अर्थात् जो कालकी सीमासे परे हैं, जो ज्ञानस्वरूप चिन्मय परमात्मा सुहृदता आदि समस्त दिव्य गुणोंसे नित्य सम्पन्न हैं, समस्त गुण जिनके स्वरूपभूत और चिन्मय हैं, जो समस्त ब्रह्माण्डोंको भली प्रकारसे जानते हैं, उन्हींका चलाया हुआ यह जगत्-चक्र नियमपूर्वक चल रहा है। वे ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँचों महाभूतोंपर शासन करते हुए इनको अपना-अपना कार्य करनेकी शक्ति देकर इनसे कार्य करवाते हैं। उनकी शक्तिके बिना ये कुछ भी नहीं कर सकते, यह बात केनोपनिषद्में यक्षके आख्यानद्वारा भलीभाँति समझायी गयी है। इस रहस्यको समझकर मनुष्यको उन सर्वशक्तिमान् परमेश्वरका उपर्युक्तभावसे चिन्तन करना चाहिये।

तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूयस्तत्त्वस्य तत्त्वेन समेत्य योगम्। एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः॥
आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान् विनियोजयेद् यः। तेषामभावे कृतकर्मनाशः कर्मक्षये याति स तत्त्वतोऽन्यः॥

परमेश्वरने ही अपनी शक्तिभूता मूलप्रकृतिसे पाँचों स्थूल महाभूत आदिकी रचना-रूप कर्म करके उसका निरीक्षण किया, फिर जड तत्त्वके साथ चेतन तत्त्वका संयोग कराके नाना रूपोंमें अनुभव होनेवाले विचित्र जगत्की रचना की। अथवा इस प्रकार समझना चाहिये कि एक अविद्या, दो पुण्य और पापरूप संचित कर्म-संस्कार, सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण और एक काल तथा मन, बुद्धि, अहंकार, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये आठ प्रकृतिभेद, इन सबसे तथा अहंता, ममता, आसक्ति आदि आत्मसम्बन्धी सूक्ष्म गुणोंसे जीवात्माका सम्बन्ध कराके इस जगत्की रचना की। इन दोनों प्रकारके वर्णनोंका तात्पर्य एक ही है।

जो कर्मयोगी सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे व्याप्त अपने वर्ण, आश्रम और परिस्थितिके अनुकूल कर्तव्यकर्मोंका आरम्भ करके उनको और अपने सब प्रकारके अहंता, ममता, आसक्ति आदि भावोंको उस परब्रह्म परमेश्वरमें लगा देता है, उनके समर्पण कर देता है, उस समर्पणसे उन कर्मोंके साथ साधकका सम्बन्ध न रहनेके कारण वे उसे फल नहीं देते। इस प्रकार उनका अभाव हो जानेसे पहले किये हुए संचित कर्म-संस्कारोंका भी सर्वथा नाश हो जाता है। इस प्रकार कर्मोंका नाश हो जानेसे वह तुरंत परमात्माको प्राप्त हो जाता है; क्योंकि यह जीवात्मा वास्तवमें जड-तत्त्वसमुदायसे सर्वथा भिन्न एवं अत्यन्त विलक्षण है। उनके साथ इसका सम्बन्ध अज्ञानजनित अहंता-ममता आदिके कारण ही है, स्वाभाविक नहीं है।

आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः। तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम्॥
स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम्। धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम॥

वे समस्त जगत्के आदि कारण सर्वशक्तिमान् परमेश्वर तीनों कालोंसे सर्वथा अतीत हैं। उनमें कालका कोई भेद नहीं है, भूत और भविष्य भी उनकी दृष्टिमें वर्तमान ही हैं। वे [प्रश्नोपनिषद्में बतायी हुई] सोलह कलाओंसे रहित होनेपर भी अर्थात् संसारसे सर्वथा सम्बन्धरहित होते हुए भी प्रकृतिके साथ जीवका संयोग करानेवाले कारणके भी कारण हैं। यह बात इस रहस्यको

जाननेवाले ज्ञानी महापुरुषोंद्वारा देखी गयी है। वे ही एकमात्र स्तुति करने योग्य हैं। उन्हें ढूँढ़नेके लिये कहीं दूर जानेकी आवश्यकता नहीं है। वे हमारे हृदयमें ही स्थित हैं। इस बातपर दृढ़ विश्वास करके सब प्रकारके रूप धारण करनेवाले तथा जगत्‌रूपमें प्रकट हुए, सर्वाधार, सर्वशक्तिमान् परम देव पुराणपुरुष परमेश्वरकी उपासना करके उन्हें प्राप्त करना चाहिये।

जिनकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे यह प्रपञ्चरूप संसार निरन्तर घूम रहा है—प्रवाहरूपसे सदा चलता रहता है, वे परमात्मा इस संसार-वृक्ष, काल और आकृति आदिसे सर्वथा अतीत और भिन्न हैं। अर्थात् वे संसारसे सर्वथा सम्बन्धरहित, कालका भी ग्रास कर जानेवाले एवं आकाररहित हैं। तथापि वे धर्मकी वृद्धि एवं पापका नाश करनेवाले, समस्त ऐश्वर्योंके अधिपति और समस्त जगत्‌के आधार हैं। यह सम्पूर्ण विश्व उन्हींके आश्रित है, उन्हींकी सत्तासे टिका हुआ है। अन्तर्यामीरूपसे वे हमारे हृदयमें भी हैं। इस प्रकार उन्हें जानकर ज्ञानयोगी उन अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्। पतिं पतीनां परमं परस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

वे परब्रह्म पुरुषोत्तम समस्त ईश्वरोंके—लोकपालोंके भी महान् शासक हैं, अर्थात् वे सब भी उन महेश्वरके अधीन रहकर जगत्‌का शासन करते हैं। समस्त देवताओंके भी वे परम आराध्य हैं, समस्त पतियों—रक्षकोंके भी परम पति (रक्षक) हैं तथा समस्त ब्रह्माण्डोंके स्वामी हैं। उन स्तुति करने योग्य प्रकाशस्वरूप परम देव परमात्माको हम लोग सबसे पर जानते हैं। उनसे पर अर्थात् श्रेष्ठ और कोई नहीं है। वे हीं इस जगत्‌के सर्वश्रेष्ठ कारण हैं और वे सर्वरूप होकर भी सबसे सर्वथा पृथक् हैं।

उन परब्रह्म परमात्माके कार्य और करण—शरीर और इन्द्रियाँ नहीं हैं। अर्थात् उनमें देह, इन्द्रिय आदिका भेद नहीं है। [तीसरे अध्यायमें यह बात विस्तारपूर्वक बतायी गयी है कि] वे इन्द्रियोंके बिना ही समस्त इन्द्रियोंका व्यापार करते हैं। उनसे बड़ा तो दूर रहे, उनके समान भी दूसरा कोई नहीं दीखता; वास्तवमें उनसे भिन्न कोई है ही नहीं। उन परमेश्वरकी ज्ञान, बल और क्रियारूप स्वरूपभूत दिव्य शक्ति नाना प्रकारकी सुनी जाती है।

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्। स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः॥
यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतो देव एकः स्वमावृणोत्। स नो दधाद्ब्रह्माप्ययम्॥

जगत्‌में कोई भी उन परमात्माका स्वामी नहीं है। सभी उनके दास और सेवक हैं। उनका शासक—उनपर आज्ञा चलानेवाला भी कोई नहीं है। सब उन्हींकी आज्ञा और प्रेरणाका अनुसरण करते और उनके नियन्त्रणमें रहते हैं। उनका कोई चिह्नविशेष भी नहीं है; क्योंकि वे सर्वत्र परिपूर्ण, निराकार हैं। तथा वे सबके परम कारण—कारणोंके भी कारण और समस्त अन्तःकरण और इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ-देवताओंके भी अधिपति—शासक हैं। इन परब्रह्म परमात्माका न तो कोई जनक—अर्थात् इन्हें उत्पन्न करनेवाला पिता है और न कोई इनका अधिपति ही है। ये अजन्मा, सनातन, सर्वथा स्वतन्त्र और सर्वशक्तिमान् हैं।

जिस प्रकार मकड़ी अपनेसे प्रकट किये हुए तन्तुजालसे स्वयं आच्छादित हो जाती है—उसमें अपनेको छिपा लेती है, उसी प्रकार जिन एक देव परमपुरुष परमेश्वरने अपनी स्वरूपभूत मुख्य एवं दिव्य अचिन्त्यशक्तिसे उत्पन्न अनन्त कार्योंद्वारा स्वभावसे ही अपनेको आच्छादित कर रखा है, जिसके कारण संसारी जीव उन्हें देख नहीं पाते, वे सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्मा हम लोगोंको सबके परम आश्रयभूत अपने परब्रह्मस्वरूपमें स्थापित करें।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥

वे एक ही परमदेव परमेश्वर समस्त प्राणियोंके हृदयरूप गुहामें छिपे हुए हैं, वे सर्वव्यापी और समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी परमात्मा हैं। वे ही सबके कर्मोंके अधिष्ठाता—उनको कर्मानुसार फल देनेवाले और समस्त प्राणियोंके निवासस्थान—आश्रय हैं, तथा वे ही सबके साक्षी—शुभाशुभ कर्मको देखनेवाले, परम चेतनस्वरूप तथा सबको चेतना प्रदान करनेवाले, सर्वथा विशुद्ध अर्थात् निर्लेप और प्रकृतिके गुणोंसे अतीत हैं।

जो विशुद्ध चेतनस्वरूप परमेश्वरके ही अंश होनेके कारण वास्तवमें कुछ नहीं करते, ऐसे अनन्त जीवात्माओंके जो अकेले ही नियन्ता—कर्मफल देनेवाले हैं, जो एक प्रकृतिरूप बीजको बहुत प्रकारसे रचना करके इस विचित्र जगत्‌के रूपमें बनाते हैं,

उन हृदयस्थित सर्वशक्तिमान् परम सुहृद् परमेश्वरको जो धीर पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं, निरन्तर उन्हींमें तन्मय हुए रहते हैं, उन्हींको सदा रहनेवाला परम आनन्द प्राप्त होता है; दूसरोंको, जो इस प्रकार उनका निरन्तर चिन्तन नहीं करते, वह परमानन्द नहीं मिलता—वे उससे वञ्चित रह जाते हैं।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्। तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥

जो नित्य चेतन सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्मा अकेले ही बहुत-से नित्य चेतन जीवात्माओंके कर्मफलभोगोंका विधान करते हैं, जिन्होंने इस विचित्र जगत्की रचना करके समस्त जीवसमुदायके लिये उनके कर्मानुसार फलभोगकी व्यवस्था कर रखी है, उनको प्राप्त करनेके दो साधन हैं—एक ज्ञानयोग, दूसरा कर्मयोग; भक्ति दोनोंमें ही अनुस्यूत है, इस कारण उसका अलग वर्णन नहीं किया गया। उन ज्ञानयोग और कर्मयोगद्वारा प्राप्त किये जाने योग्य सबके कारणरूप परमदेव परमेश्वरको जानकर मनुष्य समस्त बन्धनोंसे सर्वथा मुक्त हो जाता है। जो उन्हें जान लेता है और प्राप्त कर लेता है, वह कभी किसी भी कारणसे जन्म-मरणके बन्धनमें नहीं पड़ता। अतः मनुष्यको उन सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्माको प्राप्त करनेके लिये अपनी योग्यता और रुचिके अनुसार ज्ञानयोग या कर्मयोग—किसी एक साधनमें तत्परतापूर्वक लग जाना चाहिये। [श्वेताश्वतरोपनिषद्]

भगवल्लीला-कथाका वैशिष्ट्य

को नाम तृप्येद् रसवित् कथायां
महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
नान्तं गुणानामगुणस्य जग्मु-
र्योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः॥

(श्रीमद्भा० १। १८। १४)

ऐसा कौन रस-मर्मज्ञ होगा, जो महापुरुषोंके एकमात्र जीवन-सर्वस्व श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंसे तृप्त हो जाय? समस्त प्राकृत गुणोंसे अतीत भगवान्के अचिन्त्य अनन्त कल्याणमय गुणगणोंका पार तो ब्रह्मा, शंकर आदि बड़े-बड़े योगेश्वर भी नहीं पा सके।

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्
वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि।
यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं
प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति॥
यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धस-
त्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम्।
मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते
नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ॥
तदा पुमान् मुक्तसमस्तबन्धन-
स्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः ।
निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा
भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम्॥

(श्रीमद्भा० ७। ७। ३४—३६)

जब भगवान्के लीलाशरीरोंसे किये हुए अद्भुत पराक्रम, उनके अनुपम गुण और चरित्रोंको श्रवण करके अत्यन्त आनन्दके उद्रेकसे मनुष्यका रोम-रोम खिल उठता है; आँसुओंके मारे कण्ठ गद्गद हो जाता है और वह संकोच छोड़कर जोर-जोरसे गाने-चिल्लाने और नाचने लगता है; जिस समय वह ग्रहग्रस्त पागलकी तरह कभी हँसता है, कभी करुण-क्रन्दन करने लगता है, कभी ध्यान करता है तो कभी भगवद्भावसे लोगोंकी वन्दना करने लगता है; जब वह भगवान्में ही तन्मय हो जाता है, बार-बार लंबी साँस खींचता है और संकोच छोड़कर 'हरे! जगत्पते!! नारायण!!!' कहकर पुकारने लगता है—तब भक्तियोगके महान् प्रभावसे उसके सारे बन्धन कट जाते हैं और भगवद्भावकी ही भावना करते-करते उसका हृदय भी तदाकार—भगवन्मय हो जाता है। उस समय उसके जन्म-मृत्युके बीजोंका खजाना ही जल जाता है और वह पुरुष श्रीभगवान्को प्राप्त कर लेता है।

स वा इदं विश्वममोघलीलः
सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन्।
भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः
षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः॥
न चास्य कश्चिन्निपुणेन धातु-
रवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः।
नामानि रूपाणि मनोवचोभिः
संतन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः॥

स वेद धातुः पदवीं परस्य
दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः ।
योऽमायया संततयानुवृत्त्या
भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ॥

(श्रीमद्भा० १। ३। ३६—३८)

भगवान्‌की लीला अमोघ है। वे लीलासे ही इस संसारका सृजन, पालन और संहार करते हैं, किंतु इसमें आसक्त नहीं होते। प्राणियोंके अन्तःकरणमें छिपे रहकर ज्ञानेन्द्रिय और मनके नियन्ताके रूपमें उनके विषयोंको ग्रहण भी करते हैं, परंतु उनसे अलग रहते हैं, वे परम स्वतन्त्र हैं—ये विषय कभी उन्हें लिप्त नहीं कर सकते। जैसे अनजान मनुष्य जादूगर अथवा नटके संकल्प और वचनोंसे की हुई करामातको नहीं समझ पाता, वैसे ही अपने संकल्प और वेदवाणीके द्वारा भगवान्‌के प्रकट किये हुए इन नाना नाम और रूपोंको तथा उनकी लीलाओंको कुबुद्धि जीव बहुत-सी तर्क-युक्तियोंके द्वारा नहीं पहचान सकता। चक्रपाणि भगवान्‌की शक्ति और पराक्रम अनन्त हैं—उनकी कोई थाह नहीं पा सकता। वे सारे जगत्‌के निर्माता होनेपर भी उससे सर्वथा परे हैं। उनके स्वरूपको अथवा उनकी लीलाके रहस्यको वही जान सकता है, जो नित्य-निरन्तर निष्कपट-भावसे उनके चरणकमलोंकी दिव्य गन्धका सेवन करता है—सेवा-भावसे उनके चरणोंका चिन्तन करता रहता है।

कुतोऽशिवं त्वच्चरणाम्बुजासवं
महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित्।
पिबन्ति ये कर्णपुटैरलं प्रभो
देहम्भृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम् ॥

(श्रीमद्भा० १०। ८३। ३)

भगवन्! बड़े-बड़े महापुरुष मन-ही-मन आपके चरणारविन्दका मकरन्द-रस-पान करते रहते हैं। कभी-कभी उनके मुखकमलसे लीला-कथाके रूपमें वह रस छलक पड़ता है। प्रभो! वह इतना अद्भुत दिव्य रस है कि कोई भी प्राणी उसको पी ले तो वह जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाली विस्मृति अथवा अविद्याको नष्ट कर देता है। उसी रसको जो लोग अपने कानोंके दोनोंमें भर-भरकर जीभर पीते हैं, उनके अमङ्गलकी आशंका ही क्या है?

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ३९)

संसारमें भगवान्‌के जन्मकी और लीलाकी बहुत-सी मङ्गलमयी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनको सुनते रहना चाहिये। उन गुणों और लीलाओंका स्मरण दिलानेवाले भगवान्‌के बहुत-से नाम भी प्रसिद्ध हैं। लाज-संकोच छोड़कर उनका गान करते रहना चाहिये। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति, वस्तु और स्थानमें आसक्ति न करके विचरण करते रहना चाहिये।

यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ।
शृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यञ्जसा तमः ॥

(श्रीमद्भा० ११। ६। २४)

प्रभो! कलियुगमें जो साधुस्वभाव मनुष्य आपकी इन लीलाओंका श्रवण-कीर्तन करेंगे, वे सुगमतासे ही इस अज्ञानरूप अन्धकारसे पार हो जायँगे।

तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममङ्गलम्।
कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः ॥

(श्रीमद्भा० ११। ६। ४४)

प्यारे कृष्ण! आपकी एक-एक लीला मनुष्योंके लिये परम मङ्गलमयी और कानोंके लिये अमृतस्वरूप है। जिसे एक बार उस रसका चसका लग जाता है, उसके मनमें फिर किसी दूसरी वस्तुके लिये लालसा ही नहीं रह जाती।

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥

(श्रीमद्भा० १२। १३। २३)

जिन भगवान्‌के नामोंका संकीर्तन सारे पापोंको सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान्‌के चरणोंमें आत्मसमर्पण, उनके चरणोंमें प्रणति सर्वदाके लिये सब प्रकारके दुःखोंको शान्त कर देती है, उन्हीं परमतत्त्व-स्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।

* * *

परब्रह्मकी विश्वरूप-लीलाका दर्शन

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥

जो परमेश्वर एक हैं, जिनकी कोई इच्छा नहीं है, जिनका कोई रूप और नाम नहीं है, जो अजन्मा, सच्चिदानन्द एवं परमधाम हैं तथा जो सबमें व्यापक और विश्वरूप हैं, उन्हीं भगवान्ने दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकारकी लीलाएँ की हैं।

'हरि अनंत हरि कथा अनंता' जिस प्रकार भगवान् अनन्त हैं, उसी प्रकार उनकी लीला भी अनन्त है। बड़े-बड़े महात्मा, योगी, ज्ञानी अनादिकालसे उसी अनन्तकी खोज कर रहे हैं। बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानी पारखियोंने उस लीलारूपी अमूल्य रत्नको परखनेका प्रयास किया, यह जानते हुए भी कि भगवान्की अनन्तता और उनकी लीलाओंकी विचित्रता अकथनीय है, उनकी खोज करना मानवबुद्धिसे परे है। परंतु यह जानकर भी आत्मनिष्ठ महापुरुष उसकी खोज करनेसे नहीं रुकते। अब भी अनेक महात्मा भगवान्की लीलाके रहस्यको जाननेके लिये एकान्तमें योग-साधन कर रहे हैं। उस अनन्तकी खोज सृष्टिके आदिकालसे हो रही है और अनन्त कालतक होती ही रहेगी। यह भी तो उनकी लीलाका रहस्य ही है।

लीला क्या है? लीलामय स्वयम्भू भगवान् ही लीलारूप हैं। उनके द्रव्य, कर्म और गुणोंद्वारा ही लीलाका प्रदर्शन होता है। विराट् विश्व उनकी लीलाका ही क्षेत्र है। उनकी प्रत्येक लीलाका गोपनीय रहस्य छिपा रहता है, जिसे संसार नहीं समझ सकता। लीलाओंको प्राकृतिक समझकर श्रद्धा नहीं रहती है, इसीसे उनके गूढ तत्त्वोंका बोध नहीं होता। बहुधा लोग लीलाका बाह्य रूप ही देखते हैं, उसकी अन्तरङ्ग-भावोंकी जाँच विमलबुद्धिसे नहीं करते। भगवान्की लीलाएँ विश्वमें नित्य ही हुआ करती हैं, परंतु अनित्यमें लिप्त होनेके कारण हम उन्हें समझ नहीं पाते।

आधुनिक पाश्चात्त्य सभ्यताके इस युगमें सभ्य कहलानेवाले बड़े-बड़े महाशय ईश्वरके अस्तित्व एवं उनकी लीलाओंको एक कोरी कल्पना ही समझते हैं और एक अदृश्यकी खोज करनेमें वे अपने अमूल्य समयको नष्ट करना नहीं चाहते। क्यों न हो? कृत्रिमताकी सीमासे बाहर जानेका उनको अवकाश भी तो नहीं मिलता, जड-व्यापारमें जुड़ी हुई उनकी बुद्धि जडमें ही आकर्षित रहती है। उनका दोष ही क्या? यह भगवान्की ही लीला है कि उन्हें जडसे बाहर नहीं होने देती।

लीलातत्त्वको समझना बड़ा ही कठिन है। लीलाके प्रेमी जितना कुछ भी समझ सकते हैं, उतना कह ही डालते हैं—

'तदपि कहें बिनु रहा न कोई'

अपनी-अपनी भावनाके अनुसार कोई सगुणमें, कोई निर्गुणमें प्रभुकी दिव्य लीलाओंकी खोज कर रहा है। अध्यात्मवादी आत्मामें, प्रगतिवादी जगत्में, मायावादी मायामें, द्वैतवादी द्वैतमें, शून्यवादी शून्यमें, अनीश्वर जडवादी जड-जगत्में, अद्वैतवादी ब्रह्ममें, प्रेमवादी केवल एक प्रेममें ही उस प्रेममूर्ति भगवान् और उनकी प्रेममयी लीलाओंका पता लगा रहे हैं।

'लीला' शब्द कितना प्रिय, कितना सरस और कितना मधुर है, इस शब्दका वाणीमें स्फुरण होते ही मन प्रफुल्लित हो जाता है। 'लीला!' कौन-सी लीला? सांख्यवादियोंकी प्रकृति-लीला, योगियोंकी योगलीला, वेदान्तियोंकी मायालीला, नैयायिकोंकी परमाणु-लीला, वैशेषिकोंकी द्रव्य-लीला, मीमांसकोंकी यज्ञ-लीला, जडवादियोंकी जडलीला या सांसारिक जनोंकी संसार-लीला! क्या ये ही लीलाएँ हैं? नहीं,ये वास्तविक लीलाएँ नहीं हैं। केवल एक भगवान्की ही लीला वास्तविक है। उन्हींकी दिव्य लीलाका तो प्रदर्शन विश्वकी समस्त लीलाओंमें हो रहा है।

यह विराट् विश्व उन्हीं पुरुषोत्तमका रूप है। इसमें जो क्रिया-प्रतिक्रिया हो रही है, वही उनकी लीला है। विश्वात्मा परमात्मा अपनेहीमें अपनी लीलासे अपने विश्वको

प्रकट करके पुनः अपनेहीमें उसे विलीन कर लेते हैं। अन्तर और बाह्य जगत्‌में भगवान् और उनकी लीलाकी ही सत्ता नजर आती है। श्रुतियोंने भी कहा है—

'ब्रह्मैव वेदं सर्वम्', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'यह सब ब्रह्म है।' **'यस्मात् परं नापरमस्ति किंचित्'**—इसके आगे-पीछे और कुछ भी नहीं है। किसी-किसीको यह शंका होती है कि आप्तकाम नित्यतृप्त निर्लिप्त ब्रह्मको किस अभावकी पूर्तिके लिये सृष्टि करनी पड़ी। इसका उत्तर ब्रह्मसूत्रमें इस प्रकार दिया गया है—**'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** अर्थात् सृष्टि उसकी लीलाका विलासमात्र है। अखण्ड पूर्ण ब्रह्म अपने एक ही अंशसे जगत्‌को धारण करके अचलरूपसे स्थित रहता है और उसकी पूर्णतामें कभी किसी प्रकारकी भी न्यूनता नहीं होती। इसीलिये श्रुतिमें कहा गया है—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

वह पूर्ण है, यह पूर्ण है, पूर्णसे ही पूर्णकी वृद्धि होती है। पूर्णमेंसे पूर्ण लेनेपर भी पूर्ण ही बच रहता है। भगवान् अंशयुक्त होनेपर भी पूर्ण हैं। कर्ता होनेपर भी अकर्ता हैं। गुणयुक्त होनेपर भी गुणातीत हैं। सबमें व्याप्त होनेपर भी विलग हैं—यही उनकी विचित्र लीला है। जिस समय हमारा ध्यान सृष्टिकी नियमित अलौकिक और विचित्र रचनाकी ओर जाता है, उस समय सहसा ही भगवान् और उनकी लीलाका स्मरण हो आता है। समस्त ब्रह्माण्डमें, अनेकानेक सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रादिमें, असीम आकाशमण्डलमें, विस्तृत वसुंधरामें उन्हींकी अनोखी छटा नजर आने लगती है।

पल-पलपर पलटनेवाले चमत्कार, नाना प्रकारके दृश्य उन्हींकी लीलाके कारण हमें देखनेको मिलते हैं। पर इसकी विलक्षणता यह है कि उनकी लीलाका दर्शन तो होता है, किंतु उस लीलाके सूत्रधारका दर्शन नही होता। जैसे कठपुतलीके नाचमें कठपुतली और उसका नृत्य दर्शकोंको दिखायी पड़ता है, परंतु कठपुतलियोंको नचानेवाला सूत्रधार पर्देके पीछे रहता है, जिसे दर्शक देख नहीं पाते। इसी प्रकार यह संसार जो प्रभुकी लीला है, वह तो दीखता है, पर इसका संचालक—सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता प्रभु दिखायी नहीं पड़ता। परंतु जो कुछ दीखता है अर्थात् दीखनेवाला यह जगत् सत्य नहीं है, यह तो लीलामात्र है। सत्य है परमात्मप्रभु, यानी ब्रह्म ही सत्य है। इसीलिये स्वामी श्रीशंकराचार्यने लिखा—

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'

इसका तात्पर्य यह है कि जगत्‌का अपना कोई अस्तित्व नहीं है, यह मिथ्या है। ब्रह्म ही अपनी लीलावपुके रूपमें जगदवतार धारण करता है। अर्थात् यही सत्य है।

सगुण-साकार-स्वरूपमें जब कभी प्रभु इस माया-संसारमें अवतरित होते हैं, तो वे अपनी माधुर्य-लीलाके साथ-साथ ऐश्वर्य-लीला भी दिखाते हैं, ताकि उनकी भगवत्ताका पता चल जाय। परंतु इसका दर्शन और इसकी अनुभूति उन्हीं भक्तोंको होती है, जिन्हें भगवत्कृपासे विशेष दृष्टि प्राप्त होती है। सर्वसाधारण तो प्रभुकी मायासे अभिभूत होनेके कारण इसे समझ नहीं पाता। भगवान्‌ने कहा—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं। इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, किंतु मुझे ही प्राप्त होता है। भगवान्‌के दिव्य जन्म और कर्मके तत्त्वको वही जानता है, जिसपर भगवत्कृपा होती है और जिसे महापुरुषोंका सत्संग मिलता है।

विभिन्न अवसरोंपर प्रभुने विराट् विश्वरूपका दर्शन और उसकी अनुभूति अपने भक्तोंको करायी। वटपत्रपर स्थित बालकृष्ण प्रभु अपने श्वाससे मार्कण्डेयको अपने पेटमें ले गये, वहाँ प्रभुके उदरमें मार्कण्डेयजीने सम्पूर्ण सृष्टिका दर्शन किया।

वामन-अवतारमें भगवान्‌ने राजा बलिसे तीन पग भूमिकी माँग की। तीन पग भूमि मापनेके लिये वामनरूप

प्रभुने विराट् रूप धारणकर राजा बलिको अपने विश्वरूपका दर्शन कराया।

माता यशोदाको बालकृष्ण भगवान्के मुखारविन्दमें सम्पूर्ण विश्वके दर्शन हुए।

कुरुक्षेत्रके मैदानमें भगवान् श्रीकृष्णने मोहसे ग्रसित अर्जुनको दिव्य दृष्टि प्रदानकर स्वयंमें विराट् विश्वरूपका दर्शन कराया।

इसी प्रकार भगवान् कृष्ण जब पाण्डवोंकी ओरसे शान्ति-संदेश लेकर कौरवोंके पास आये तो अपनी ऐश्वर्य-लीलाके अन्तर्गत दुर्योधनको भी अपने विराट् विश्वरूपका दर्शन तो कराया, परंतु अहंकारवश दुर्योधन भगवान्के उस विश्वरूपका वास्तविक दर्शन प्राप्त न कर सका।

इससे यह स्पष्ट है कि भगवान्के विश्वरूपका वास्तविक दर्शन जिसे प्राप्त नहीं होता, वह स्वयंको ही कर्ता मानता है, अहंकारसे आविष्ट रहता है और संसारकी सभी परिस्थितियोंमें सुखी-दुखी होता रहता है, जो उसके जन्म-मरणके बन्धनका मुख्य कारण है।

जो सत्पुरुष हैं, वे संसारकी प्रत्येक घटनाको भगवान्का अवश्यम्भावी मङ्गलमय विधान मानकर संतुष्ट रहते हैं। ऐसे महात्मा इस सत्यका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं कि उनके अन्तःकरण और इन्द्रियोंसे होनेवाली प्रत्येक चेष्टा श्रीभगवान्की शक्तिद्वारा ही निर्दिष्ट और संचालित होती है। जो कुछ होता है। वह सब भगवान्की प्रकृति (शक्ति) ही करती है। अतः यह स्मरण रखना चाहिये कि भगवान्की इस लीलामें कुछ भी अनहोनी बात नहीं होती। जो कुछ होता है, वही होता है जो होना है, और जो होना है वही ठीक है, वही मङ्गलमय है। भगवान्का कोई भी विधान मङ्गलसे रहित नहीं हो सकता।

वास्तवमें यह जगत् प्रभुकी नाट्य-लीलाका रंगमंच है, जिसमें हम सभी अभिनय करनेवाले कलाकार हैं। अभिनयकर्ताका सीधा सम्बन्ध नाट्य-मण्डलीके स्वामीसे होता है। उसे जो स्वाँग (पार्ट) मालिककी ओरसे दिया जाता है, उसे वह कुशलतापूर्वक करता है। जो जितनी कुशलतासे करता है, मालिक उससे उतना ही प्रसन्न होता है। उसका उद्देश्य अपने अभिनयके द्वारा नाट्य-मण्डलीके स्वामीको प्रसन्न करना होता है। अभिनय-मंचपर जो स्वाँग (पार्ट) अभिनयकर्ताओंको दिये जाते हैं, उनके परस्पर सम्बन्धोंमें भी उनकी कोई आसक्ति नहीं होती; क्योंकि वे सम्बन्ध उतनी देर प्रदर्शनमात्रके लिये होते हैं, जितनी देर वह अभिनय चलता है। इसी प्रकार परमात्मप्रभुके इस संसाररूपी रंगशालामें जिसे जो स्वाँग प्रभुकी ओरसे प्राप्त हुआ है, उसे पूर्ण कुशलतापूर्वक ईमानदारीसे करना ही हम सबका कर्तव्य है।

असलमें अभिनयकर्ताके मनमें कोई स्वतन्त्र इच्छा नहीं हुआ करती। नाटकके स्वामीकी आज्ञाकें अनुसार अपना अभिनय करना ही उसकी एकमात्र इच्छा और चेष्टा होती है। इसके अनुसार अपनी सारी कामनाओंको त्यागकर भगवान्के इस संसाररूपी लीला-मंचपर उनकी प्रसन्नताके लिये उन्हीं प्रभुके संकेतानुसार कर्म करना ही अपना परम धर्म है, यही उनकी उपासना है और यही उनकी भक्ति। भगवान्ने गीता (३। ९)-में कहा—'**तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचरः**'—'अर्जुन! तुम आसक्ति छोड़कर भगवान्के लिये भलीभाँति कर्मोका सम्पादन करो।'

जिस साधककी प्रत्येक कर्ममें यह दृष्टि रहती है तथा बिना किसी आसक्ति और कामनाके इस प्रकारके कर्तव्य-कर्म करता है, वह आगे चलकर भगवान्के हाथका सच्चा यन्त्र बन जाता है, फिर उसमें कोई अहंकार नहीं रहता। वह कठपुतलीकी भाँति, भगवान् जैसे नचाते हैं वैसे ही नाचता है। भगवान् जो कुछ कराते हैं, वही वह करता है। इस प्रकारका साधक प्रभुसे प्रार्थना करता है—

तुम हो यन्त्री, मैं यन्त्र, काठकी पुतली मैं, तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ, कहलाओ, मुझे नचाओ, निज इच्छानुसार॥
मैं करूँ, कहूँ, नाचूँ, नित ही परतन्त्र, न कोई अहंकार।
मन मौन—नहीं, मन ही न पृथक् मैं अकल खिलौना, तुम खिलार॥

(पद-रत्नाकर)

—राधेश्याम खेमका

* * *

प्रसाद

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिका मधुरतम आदि-लीला-चित्रण

विद्वत्परम्परामें आदिकाव्यके प्रणेता महर्षि वाल्मीकिकी प्रतिष्ठा कवि-शिरोमणिके रूपमें निरापद है, क्योंकि कवियोंने एक स्वरसे श्रद्धापूर्वक सिंहनाद किया है—

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधा भवेत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि॥

(साहित्यभाण्डागारम्)

अर्थात् कवि शब्दका प्रयोग जब एक वचनमें होगा तब वह केवल वाल्मीकिजीका बोधक होगा, द्विवचनमें प्रयोग होनेपर महर्षि वाल्मीकि और व्यासदेवजीका बोधक होगा तथा बहुवचनमें प्रयोग होनेपर फिर वह दण्डी, कालिदास एवं आनन्दवर्धन आदि कवियोंका बोधक होगा।

'क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः' के वचनानुसार आदि दिव्य वाणीका प्रस्फुटन महर्षिके श्रीमुखसे तो अनायास—सहसा ही हो गया था—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

तभी तो ब्रह्माजीने कहा था—

'मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती।'

अर्थात् 'मेरी प्रेरणासे सरस्वती तुम्हारे मुखमें प्रविष्ट हुई हैं और तुम्हारे मुखसे संसारका सर्वप्रथम श्लोक प्रकट हुआ है—उच्चरित हुआ है। इसी छन्दःश्लोकमें सौ करोड़की संख्यामें तुम रामचरितका उपनिबन्धन करोगे। वह भूतल-पाताल और स्वर्गमें—सर्वत्र व्याप्त रहेगा। जबतक पृथ्वी रहेगी, तबतक यह कथा भी रहेगी। इसीको आधार बनाकर कोटि-कोटि रामायण रचे जायँगे।'

फिर वैसा ही हुआ भी! नित्य त्रैलोक्य-भ्रमणकारी 'नारायण'-नामधारी देवर्षि नारदजी घूमते-घूमते आये और वाल्मीकिजीने उनसे कुछ प्रश्न पूछे—'संसारमें सबसे बड़ा पुण्यात्मा, सुन्दर, बलिष्ठ, धनी, यशस्वी आदि कौन व्यक्ति है?' नारदजीने कहा—'ये तो अत्यन्त दुर्लभ गुण हैं, किंतु तुम्हें एक ही व्यक्तिको बताता हूँ, जिसमें केवल ये ही गुण नहीं, अपितु अनन्त गुण विद्यमान हैं।' नारदजीने उस गुणनिधिके गुणानुवादमें संक्षिप्त रामचरित सुना दिया। उसीके आधारपर आदि रामायणकी रचना हुई। भगवती सीता स्वयं उनके आश्रमपर अनेक वर्षोंतक रहीं और उन चरित्रोंको पुनः विस्तारसे वाल्मीकिजीसे बताया। उसी रामकथाको लव-कुशको कण्ठस्थ कराया गया, जिसे उन्होंने नैमिषारण्यके यज्ञमें सभी ऋषियों एवं राजाओंको सुनाया।

कालावसानमें उस रामकथाके दो संस्करण हो गये—पहला लवद्वारा गाया गया लवपुरीय (लाहौरका) पश्चिमोत्तरशाखीय वाल्मीकीय रामायण तथा दूसरा कुशका गाया हुआ दाक्षिणात्य, प्राच्य और औदीच्य संस्करण जिसका प्रचार-प्रसार अधिक हुआ। लवपुरीय संस्करणपर कोई टीका नहीं है। दाक्षिणात्य संस्करणपर सैकड़ों टीकाएँ हैं।

भगवन्नाम-यश-लीला-कीर्तन करनेमें महर्षि वाल्मीकिका नाम अद्वितीय है। प्रायः सभी रामचरितकार महर्षिके ही ऋणी हैं, क्योंकि आदिकाव्य वाल्मीकिरामायण ही उन कवियोंका उपजीव्य है। वेद जिस 'परमतत्त्व'का वर्णन करते हैं, वही 'श्रीमन्नारायण-तत्त्व' श्रीमद्रामायणमें श्रीरामरूपसे निरूपित है।

पाठक उनका श्रवण-मनन-चिन्तनकर अपने जीवनको रामके समान बनाकर कृतार्थ कर सकते हैं। यहाँ तो केवल संक्षिप्त दिशा-निर्देशमात्र किया गया है। अस्तु, आदिकवि महर्षि वाल्मीकिका आदि-लीला-चित्रण सम्पूर्ण विश्वका चूडान्त लोकादर्श है। वह सर्वथा अनुकरणीय और परमपद प्रदान करनेवाला है। अतः वाल्मीकिके पादपद्मोंमें नमन करते हुए निरन्तर श्रीरामलीलाका चिन्तन-मनन करते रहना चाहिये।

◆

भगवान् व्यासदेवका भगवल्लीला-आकर्षण

भगवान् व्यासदेवका कथन है कि सभी जप, तप, स्वाध्याय, श्रवण, मनन, यज्ञ, दान एवं तीर्थ आदि धर्माचरणोंका एकमात्र फल है—भगवल्लीलाका अनुसंधान, चिन्तन, वर्णन और श्रवण—

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥
(श्रीमद्भा० १।५।२२)

विद्वानोंने इस बातका निरूपण किया है कि मनुष्यके तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान और दानका एकमात्र प्रयोजन यही है कि पुण्यश्लोक श्रीकृष्णके गुणों और लीलाओंका वर्णन किया जाय।

तदनुसार ही उन्होंने वैदिक ग्रन्थों एवं अष्टादश महापुराणों, उपपुराणों तथा स्थलपुराणों आदिका निर्माण किया, जिनमें समस्त भगवत्-चरित्रका निरूपण किया गया। विशेषकर भागवतके बारह स्कन्धोंमें सर्वाधिक सुन्दर चित्रण हुआ, उनमें भी भगवान्‌के चौबीस अवतारोंका वर्णन दिव्य एवं अद्भुत लोकोत्तर-चमत्कारपूर्ण है; उनमें भगवान् श्रीराम एवं श्रीकृष्णकी लीलाएँ मधुरतम हैं। भगवान् श्रीरामकी बाललीला, विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा, धनुष-भंग, विवाह, वन-यात्रा और दुष्ट दानवोंका वध अति दिव्य-रूपमें वर्णित हुआ है। अध्यात्मरामायणमें जो ब्रह्माण्डपुराणका परिशिष्ट है, उसमें अत्यन्त चमत्कृतरूपसे इन लीलाओंका मधुरतम वर्णन हुआ है जो लोगोंके कण्ठका हार बना हुआ है। इन्हीं सब भावोंको लेकर श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसकी रचना की जो जन-जनका कण्ठहार बना हुआ है। बाल-वृद्ध, स्त्री तथा शूद्रों तकको इसका कुछ-न-कुछ अंश कण्ठस्थ हो गया है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण और भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णकी बाललीला, माखन-चोरी, ऊखल-बन्धन, यमलार्जुन-उद्धार, गो-चारण, वृन्दावन-विहार, वेणुगीत, युगलगीत, गोपीगीत तथा रासलीलाकी झाँकी देखते ही बनती है, साथ ही रुक्मिणी, सत्यभामा आदि अष्टमहिषियोंके साथ विवाह, पाण्डवोंकी पग-पगपर रक्षा तथा दुर्योधन, दुःशासन, जरासन्ध, शिशुपाल आदि असुरबुद्धिके राजाओंके दर्प-दलन करनेकी लीला भी बड़ी विचित्र है। अर्जुनको गीताका ज्ञान सुनाने एवं विराट्स्वरूपके दर्शन कराने-जैसे एक-से-एक दिव्य चरित्रोंके चित्रण हुए हैं। अर्जुनके समान ही भागवतके ग्यारहवें स्कन्धमें उद्धवजीको ज्ञान प्रदान करनेकी लीलाका वर्णन किया गया है, जिसका 'भिक्षुक-गीत' सर्वाधिक सर्वोत्तम अंश है।

इसी प्रकार भगवान् व्यासदेवने 'शिवपुराण' और 'लिङ्ग-पुराण'में भगवान् शिवजीकी लीलाओंका तथा देवीपुराण, कालिकापुराण, देवीभागवत और महाभागवतमें देवीकी लीलाओंका एवं गणेशपुराणमें भगवान् गणेशकी लीलाओंका तथा विष्णु-पुराणमें भगवान् विष्णुकी लीलाओंका गान किया है और सभीमें ऋषि-मुनियों एवं उनके चरित्रोंका गान किया है।

भगवान् व्यासदेव अभी कहीं गये नहीं हैं। आद्य-शंकराचार्यजीके साथ सत्ताईस दिनोंतक बिना हिले-डुले खड़े रहकर उलटा शास्त्रार्थ कर उन्हें चकित कर दिया और उनकी आयुको दोगुनी कर दी। आज भी वे अपने भक्तोंको दर्शन देते रहते हैं तथा उनको कृतार्थ करते रहते हैं। सारा विश्व-साहित्य उन्हींका उच्छिष्ट है—**'व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वम्'**।

प्राणपणसे उनका मनन-चिन्तन करता हुआ मनुष्य उन्हींके समान बन सकता है। उन्होंने सब कुछ कह दिया, कुछ भी शेष नहीं है। इसीलिये तो भगवान् वेदव्यासके अगाध बुद्धिसागरको उपलक्षित करते हुए कहा गया—**'यन्न भारते तन्न भारते'** अर्थात् जो महाभारतमें नहीं है, वह सम्पूर्ण भारतमें नहीं है। यह उनकी कृपाका फल है। उन्होंने विश्व-कल्याणके लिये सब कुछ कर दिया है। वेद, पुराण, महाभारत—सभी तो भगवान्‌के साक्षात् लीला-विग्रह ही हैं। इतनेपर भी कोई लाभ न उठाये तो इससे बढ़कर दुःख और आश्चर्यकी बात क्या है और उनका दोष क्या है?

अज्ञानके अन्धकाररूपी समुद्रमें निमग्न प्राणियोंको शिक्षा देनेके लिये, भगवान्‌के ललित-ललाम लीलाओंका रस-पान करानेके लिये ही उनका लीला-चित्रण और लीलावतरण हुआ है। ऐसे महनीय बुद्धिसागर व्यासको कोटिशः नमन है—**'नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे'**।

* * *

अमलात्मा परमहंस श्रीशुकदेवजीकी भगवल्लीला-निष्ठा

लीला-कथा-रस-वैचित्र्यसे ओतप्रोत, भगवल्लीला-कथाके साक्षात् सगुण-साकार-स्वरूप श्रीमद्भागवत-महापुराणके विषयमें जब शौनकादि महर्षियोंने यह सुना कि इस कथाका गुणगान श्रीशुकदेवजीने किया है, तो वे आश्चर्यचकित होकर बोल उठे—

तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ् निर्विकल्पकः।
एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते॥

(श्रीमद्भा० १।४।४)

'वे व्यासनन्दन तो महायोगी समदर्शी, विकल्पशून्य, एकान्तमति और अविद्यारूप निद्रासे जगे हुए थे। वे तो प्रच्छन्न-भावसे मूढवत् विचरते रहते थे, फिर वे किस प्रकार इस बृहत् आख्यानका श्रवण करानेमें प्रवृत्त हो गये?'

इस सम्बन्धमें एक कथा प्रसिद्ध है। एक बार भगवान् सदाशिव पराम्बा भगवती पार्वतीको अमर-कथा सुना रहे थे। पार्वतीजी बीचमें हुँकारी भर रही थीं, परंतु कथाके मध्यमें कुछ ही समय-पश्चात् शंकरप्रिया निद्राभिभूत हो गयीं।

संयोगवश एक शुक भी वहाँ बैठकर कथा-श्रवण कर रहा था। जब पार्वतीजी सो गयीं, तब वही शुक-शावक हुँकारी भरना शुरू कर दिया था। इसलिये शंकरजीको पार्वतीजीके सो जानेका पता न चला और उनके द्वारा अमर-कथाका अनवरत प्रवाह चलता रहा। इस प्रकार उस शुकने पूरी कथा सुन ली। इधर जब पार्वतीजी जगीं तो उन्होंने अपने प्राणवल्लभसे कहा—'प्रभो, इस वाक्यके बाद मैंने कथा नहीं सुनी है, क्योंकि मुझे नींद आ गयी थी।' अब तो देवाधिदेवके आश्चर्यकी सीमा न रही। उन्होंने वहाँ उपस्थित अपने गणोंसे कहा—'आखिर कथाके मध्यमें हुँकारी कौन भर रहा था? शीघ्र पता लगाओ।' गणोंने वृक्षपर बैठे शुक-शावककी ओर जब इशारा किया, तब शंकरजी उसे मारनेके लिये त्रिशूल लेकर दौड़ पड़े।

वह शुक दौड़ता हुआ व्यास-आश्रममें पहुँचा और जम्हाई लेती हुई व्यास-पत्नी वट्टिकाके मुखमें प्रवेश कर गया। शिवजीने वहाँ पहुँचकर कहा—'मैं वट्टिकाका इस त्रिशूलसे संहार करना चाहता हूँ।' व्यासजीने कहा—'इसका अपराध क्या है?' तब शंकरजीने कहा—'इसके मुखमें प्रविष्ट शुकने 'अमर-कथा' सुन ली है।' यह सुनकर व्यासजी मुसकराते हुए बोले—'प्रभो, तब तो यह अमर हो ही गया।' निरुपाय शंकरजी वहाँसे लौट आये।

इधर कथाके प्रभावसे वह अमलात्मा शुक ब्रह्मनिष्ठ हो व्यास-पत्नीके गर्भमें बारह वर्षोंतक निवास करता रहा। जब व्यासदेवने दिव्य दृष्टिसे इस गर्भस्थ शिशुको देखा तो उन्होंने पूछा कि 'तुम बाहर क्यों नहीं आते?' तब उसने कहा—'मुझे सांसारिक माया घेर लेगी। हाँ, यदि भगवान् श्रीकृष्ण आकर यह आश्वासन दें कि मुझपर मायाका प्रभाव नहीं होगा, तब मैं बाहर प्रकट हो जाऊँगा।' फिर वैसा ही हुआ।

शुकदेव गर्भसे बाहर निकलते ही संसारसे उपरत होकर एकान्त अरण्यमें चले गये और ध्यानावस्थित हो समाधिस्थ हो गये। इसी समय भगवान् व्यासदेवके कुछ शिष्यगण उधर आये और इस श्लोकका निरन्तर गान करने लगे—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥

(श्रीमद्भा० १०।२१।५)

इस श्लोकार्थकी स्फूर्ति होनेपर कथा-रस-रूप अनुपम भगवद्विग्रहकी रूप-माधुरीने शुकदेवजीके अन्तःकरणको क्षुभित कर दिया, उनकी समाधि-भंग हो गयी। उन्होंने उन मुनिकुमारोंसे पूछा—'इस श्लोकको आप लोगोंने कहाँसे सीखा?' मुनिकुमारोंने कहा—'गुरु व्यासदेवजीसे।' यह सुनकर श्रीशुकदेवजी भगवान् व्यासके पास आये और उनसे भगवल्लीला-कथा-विग्रह-रूप महाग्रन्थ श्रीमद्भागवतका अध्ययन किया। इससे शौनकादि मुनियोंके प्रश्नका समाधान हो जाता है कि वे व्यासनन्दन हरिगुणाक्षिप्तमति थे, इसलिये ये आत्माराम होनेपर भी इस भागवत-कथामें प्रवृत्त हुए।

अहा! उन व्यासनन्दनकी हरिभक्तिप्रवणताका—लीला-निष्ठाका कहाँतक वर्णन किया जाय। यद्यपि निरन्तर आत्मसुखमें विश्रान्त रहनेके कारण उनके हृदयसे द्वैतप्रपञ्चका सर्वथा तिरोभाव हो गया था, तथापि परमानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रकी ललित लीलाओंने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर ही लिया।

यह है आप्तकाम परम निष्कामकी अतृप्त लीला-कथा-निष्ठा, जिसे उन्होंने परीक्षित्‌को सुनाया और वे परमपदको प्राप्त हो गये। अतः हम सभीको श्रीशुकदेवजीके चरणोंमें कोटिशः नमन करते हुए लीला-कथामें सदैव निमग्न रहना चाहिये।

* * *

भगवत्पाद आद्यशंकराचार्यका भगवल्लीला-चिन्तन

आद्यशंकराचार्य भगवान् शंकर साक्षात् शिवके ही अवतार या विग्रह थे। वे योग, ज्ञान तथा वैराग्यके साथ ही भक्तिके भी मूर्तिमान् स्वरूप थे। उनकी कर्मठता इतनी प्रचण्ड थी कि उन्होंने थोड़े ही समयमें बौद्धों तथा जैनियों आदिको परास्त कर भारतके चारों सीमाओंपर चार मठों, उपमठों आदिका निर्माण करते हुए समस्त देशमें सत्य सनातन धर्मकी स्थापना कर दी। साथ ही उपनिषदों, गीता, वेदान्त-दर्शन आदिपर अद्भुत भाष्योंकी रचनाकर अपनी तीव्र प्रतिभा और दिव्य विज्ञानसे समस्त संसारको चकित कर दिया। उनके भाष्योंकी उत्कृष्टता दिखानेके लिये परवर्ती विद्वानोंने अनेक भाष्योत्कर्षदीपिका व्याख्याएँ तथा उपव्याख्याएँ लिखीं। शक्तिकी उपासनापर 'सौन्दर्यलहरी', नृसिंह-उपासनापर 'लक्ष्मी-नृसिंह-स्तोत्र' तथा इसी प्रकार शिव, विष्णु, कृष्ण, गणपति और हनुमान् आदि देवताओंकी उपासनापर भी उनके स्तोत्र अत्यन्त दिव्य एवं उत्कृष्ट हैं।

यद्यपि महर्षि वाल्मीकिने आदिकाव्य श्रीमद्रामायणकी रचनाकर अनुपम कार्य किया, जिसकी कोई तुलना सम्भव नहीं है, पर आचार्यके 'श्रीरामभुजंगप्रयातस्तोत्र'को देखकर भी यही प्रतीत होता है कि केवल २९ श्लोकोंमें ही इन्होंने भगवान् श्रीरामके प्रति जो अनन्यनिष्ठा, विशुद्ध भक्ति और आत्मपरायणता दिखलायी है, उससे ऐसा लगता है कि उन्होंने वाल्मीकिरामायणसहित तत्कालीन प्राप्त विविध रामचरितोंका अनेक बार बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे स्वाध्याय किया जो श्रीरामभक्तिमें सबसे आगे थे। उनके 'श्रीराम-भुजंगप्रयातस्तोत्र'के प्रत्येक श्लोकसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे अहर्निश राम-नामका जप करते, श्रीरामके स्वरूपका ध्यान करते, अत्यन्त नम्रतापूर्वक भगवान् रामकी स्तुति करते और सदा ही अपने आराध्यदेवकी नवधाभक्तिमें लवलीन रहते थे।

इस स्तुतिमें उनके २९ श्लोक हैं, पर यह पता नहीं चलता कि इनमें कौन-सा पद सर्वोत्तम है। इस स्तोत्रमें आचार्यने अपनी रामनिष्ठा, राम-प्रेमको इतने मार्मिक ढंगसे वर्णित किया है कि इसे बार-बार पढ़नेसे मन नहीं हटता। साथ ही पाठककी भी श्रीरामके प्रति भक्ति बढ़ने लगती है। इस स्तोत्रके किसी एक मात्र श्लोकके चिन्तन-मननसे पाठकोंको अपार लाभ तो होता ही है, साथ ही भगवत्पादकी परमोत्कृष्ट भगवद्भक्ति एवं उनके अद्वितीय वैदुष्यका सम्पूर्ण चरित्राङ्कन हो जाता है। स्तुति करते हुए आचार्य शंकर भगवत्पाद कहते हैं—

असीतासमेतैरकोदण्डभूषै-
रसौमित्रिवन्द्यैरचण्डप्रतापैः।
अलङ्केशकालैरसुग्रीवमित्रै-
ररामाभिधेयैरलं दैवतैर्नः॥

अर्थात् सीतासे समन्वित, कोदण्ड-धनुषसे विभूषित, लक्ष्मणजीके द्वारा अभिवन्दित, प्रचण्ड प्रतापसे समन्वित, लङ्केश रावणके लिये काल-स्वरूप, सुग्रीवके परम मित्र और श्रीराम-नामसे सुशोभित परमदैवत भगवान् श्रीरामको छोड़कर मेरा किसी अन्य दूसरे देवतासे कोई प्रयोजन नहीं है।

इसमें परम भक्त श्रीशंकराचार्यजीकी काव्यकला, वेद-शास्त्रोंका ज्ञान, नित्य अद्वैतनिष्ठाके साथ आत्यन्तिक विनय, नम्रता, निरभिमानता, हृदयकी स्वच्छता, निर्मलता, पवित्रता, भावोंकी कोमलता, ध्यानकी परिपक्वता, श्रद्धा-भक्तिका उद्रेक और भगवान् श्रीरामके प्रति अनन्य भक्तिनिष्ठा भी सूर्यलोककी भाँति सुस्पष्टरूपसे परिलक्षित—प्रकाशित होती है। इसमें पूरे रामचरितका भी आद्योपान्त निबन्धन हो गया है। वैसे तो इसका प्रत्येक श्लोक अप्रतिम महिमामय है और बार-बार पठन-मननके बाद भी इसकी नवीनता और रमणीयता तथा आकर्षण और अधिक बढ़ते जाते हैं। पर जिन श्लोकोंके अन्तिम चरणोंमें आवर्तन दीखता है, वे तो और भी रमणीय लगते हैं, किंतु जिनके अन्तमें '**अरामाभिधेयैरलं दैवतैर्नः**' यह पद आवृत होता है, उसमें उनके हृदयकी राम-भक्ति इस प्रकार उद्वेलित होती है कि जो किसी भी नीरस पाठकके मनको भी झकझोर देगी और दृढ़ भक्तिके प्रभावसे उसे रामके सम्मुख लाकर खड़ा कर देगी। छन्द एवं पदबन्ध यद्यपि अत्यन्त सरल हैं, पर उनके भाव इतने गम्भीर, योग-वैराग्य, भक्तियुक्त चमत्कारसे परिपूर्ण हैं कि

जो अत्यन्त सामान्य व्यक्तिको भी उत्कृष्ट भगवद्भक्त बनानेके लिये सक्षम है।

भगवत्पाद आद्यशंकराचार्यका यह दिव्य, अलौकिक भगवल्लीला-चिन्तन समस्त साधकों-भक्तोंके लिये परब्रह्मसे परमैक्य स्थापित करनेवाला है और निरन्तर मननीय भी। अतः साक्षात् शिवावतार धर्मध्वज आद्य भगवत्पाद सदैव विश्ववन्द्य हैं, ध्येय हैं तथा उनका भगवल्लीला-चिन्तन अनुपमेय है।

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार
110323

जब अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा-लीलाओंका स्मरणकर अभिभूत हो उठे

~~77083~~

(ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

भगवान्‌की लीला अपरम्पार है। भगवान् अपनी दिव्य लीलासे मानवको ही नहीं, देवताओं तथा नारदजी-जैसे ब्रह्मर्षिको भी चकित कर देते थे।

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णके परम आश्रित थे। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओंके माध्यमसे समय-समयपर उनकी कृपाकी अनुभूति की थी।

एक समयकी बात है—जब अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनोंके लिये व्याकुल हो उठे तो वे द्वारका पहुँचे। द्वारकासे लौटनेपर धर्मराज युधिष्ठिरने उनसे भगवान् श्रीकृष्णकी कुशलताका समाचार पूछा। अर्जुनके मौन हो जानेपर युधिष्ठिरको महान् अशुभकी आशंका हो गयी। उन्हें त्रिकालदर्शी देवर्षि नारदजीकी भविष्यवाणी स्मरण हो आयी। वे कहने लगे कि क्या हमारे भगवान् श्रीकृष्ण लीलालीन हो गये? क्या वे गोलोक पधार गये?

अब युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके चिन्तनमें निमग्न हो उठे। वे कहने लगे—'साक्षात् सच्चिदानन्द भगवान् श्रीकृष्णने हमें तथा हमारे परिवारको ही अपनी दिव्य लीलाओंसे आह्लादित नहीं किया, अपितु उन्होंने न्याय और धर्मकी रक्षाके लिये महाभारतके युद्धमें हमारा नेतृत्व भी किया। वे तो हमारे प्राण थे। श्रीकृष्णरूपी प्राण जब इस संसाररूपी देहसे निकल गये तो यह संसार ही हमारे लिये निस्सार हो उठा है। उनकी लीलाओंका दर्शन किये बिना अब हम इस संसारमें रहकर क्या करेंगे?'

अर्जुन भी भगवान् श्रीकृष्णके लीलाओंके माध्यमसे किये गये उपकारोंका स्मरणकर कहने लगे—'जब हम द्रौपदीके स्वयंवरमें गये, तब वहाँ द्रुपदकी बहुत ही कठिन प्रतिज्ञा सुनी। हमें भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा तथा उनके पावन स्मरणसे ही ऊपर घूमते हुए चक्रके बीचसे बाणद्वारा मछलीकी आँखको नीचे जलमें परछाईंकी ओर लक्ष्य करके बेध देने-जैसे दुष्कर कार्यमें सफलता मिली। उनकी इस कृपा-लीलाके कारण ही हम द्रौपदीका वरण कर सके।

अर्जुनने प्रभुकी कृपा-लीलासे अभिभूत होकर पुनः कहा कि एक बार हम तथा भगवान् श्रीकृष्ण खाण्डव वनमें बैठे थे कि अग्निदेवताके दर्शन हुए। अग्निदेवने भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना करते हुए कहा कि 'प्रभो! हमें अजीर्ण हो गया है, अतः यदि आप आज्ञा दें तो हम इस वनकी वनस्पतिका औषधि-रूपमें भक्षण कर लें।' भगवान्‌ने आज्ञा दे दी। अब अग्निदेव कहने लगे कि 'महाराज, इस खाण्डव वनमें इन्द्रका मित्र तक्षक रहता है। इन्द्र उसकी रक्षाके लिये सदा तत्पर रहते हैं। जैसे ही हम वनमें दाह करेंगे वैसे ही इन्द्रदेव अपने मित्र तक्षककी रक्षाके लिये जल-वृष्टि कर हमारा सारा परिश्रम निष्फल कर देंगे।' भगवान् श्रीकृष्णके संकेतपर मैंने तीरोंकी वर्षा कर खाण्डव वनके ऊपर तंबू वितान-सा तान दिया। जैसे ही अग्निदेवने दाह किया, इन्द्रदेवने वर्षा शुरू कर दी, किंतु भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाके कारण वर्षा वनतक पहुँच ही नहीं सकी और अग्निदेवको औषधि प्राप्त हो गयी।

अर्जुनने पुनः भगवान्‌की कृपा-लीलाओंसे पूर्ण एक घटनाका वर्णन करते हुए कहा—जिस समय हम वनवासमें थे, दुर्वासा ऋषि हमारे पास शिष्योंके साथ आये और भोजनकी इच्छा प्रकट कर शिष्योंसहित स्नान करने चले गये। उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण भी वहाँ आ गये

और द्रौपदीसे बोले—'हमें बड़ी भूख लगी है, कुछ खानेको दो।' द्रौपदी पहलेसे ही चिन्तातुर थी, अब कृष्णको भोजन देनेकी चिन्ताने उसकी व्याकुलता और बढ़ा दी। वह कहने लगी—'महाराज, सारा भोजन समाप्त हो गया है, अब कुछ भी शेष नहीं है।' भगवान्ने कहा—'हमें अपने भोजनका पात्र देखने दो कहीं कुछ बचा होगा, उसीसे हमारी तृप्ति हो जायगी।' यह कहकर जब भगवान्ने सूर्य-प्रदत्त उस दिव्य अक्षय पात्रमें देखा तो उसमें उन्हें एक शाकका पत्ता दिखायी पड़ा। वे बड़े प्रेमसे उस पत्तेका रसास्वादन करने लगे। उसका इतना तीव्र प्रभाव हुआ कि दुर्वासा अपने सभी शिष्योंसमेत बिना भोजन किये ही तृप्त हो गये। सबके पेट फूल गये और भोजनकी किसीको इच्छा ही नहीं हुई।

इसी प्रकार भगवान्ने हमारी सदा रक्षा की। अब हम सब निराधार हो गये, वे कृष्ण हमें त्यागकर चले गये। युद्धके समय कौरवोंकी अनन्त सेनामें अपने सगे-सम्बन्धियोंको देखकर जब हम चकित हो गये थे, तब भी भगवान्ने ज्ञानोपदेशद्वारा अर्जुनका मोह दूर किया।

उर्वशीके प्रसंगमें भी जो हमें विजय मिली, वह भगवान् श्रीकृष्णका ही प्रताप था। कीचकने द्रौपदीके प्रति जो दुर्व्यवहार किया और मेरे भाई भीमद्वारा मारा गया, इसमें भी भगवत्कृपा ही मुख्य कारण है। उत्तरकुमारको कौरवोंके प्रति विजय प्राप्त करानेमें मेरा उद्योग कुछ अधिक नहीं था। यह सब भगवत्कृपाका ही परिणाम था।

इस प्रकार अर्जुन कोटिशः भगवत्कृपा-लीलासे अभिभूत होते हुए उन्हीं विश्वरूप लीलाधारीके चिन्तन-मननमें तन्मय हो गये, मानो उन्होंने परमात्मप्रभुके साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया हो।

[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]

रामावतारका महत्त्व

(स्वामी श्रीविवेकानन्दजी)

अघटन-घटना-पटीयसी अतर्क्य-नाटक-नटी ब्रह्मशक्ति महामायाके विलासस्वरूप अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंमेंसे एक ब्रह्माण्डके मर्त्यलोकमें कर्म करनेकी स्वाधीनता प्राप्त करके मनुष्य जब उस प्रकृति-माताके ऊर्ध्वगतिशील प्रवाहके प्रतिकूल अर्थात् धर्मके प्रतिकूल कर्म करने लगते हैं, तब धर्मकी ग्लानि होने लगती है और अधर्मका अभ्युत्थान होने लगता है। ऐसी अवस्थामें सत्पुरुषोंकी रक्षा, पापियोंका विनाश और धर्मकी स्थापना करनेके लिये भगवदवतारकी अथवा अन्य शब्दोंमें जगज्जननी भगवतीके अवतारकी आवश्यकता होती है। भगवान् और भगवतीमें अभेद है। मायोपहित चैतन्य भगवान् और ब्रह्ममयी जगदम्बा भगवती हैं। अपने बनाये हुए जगत्में कर्म करनेके लिये स्वाधीनता-प्राप्त जीवोंके कार्योंसे जब असामञ्जस्य उत्पन्न होता है, तब उसे दूर करनेके लिये किसी केन्द्रविशेषमें जगदम्बाका प्रादुर्भाव ही भगवदवतार-नामसे अभिहित होता है। चेतन निराकार है, जगदम्बाके आश्रयके बिना साकार-मूर्तिमें भगवदाविर्भाव असम्भव है। सृष्टि-स्थिति-प्रलय करनेका स्वभाव जगदम्बाका ही है। चेतनके आश्रयके बिना माया कुछ कार्य नहीं कर सकती। इसी कारण मायाके कार्यका आरोप चेतनमें करके शास्त्रोंमें भगवान्का जो माहात्म्य-वर्णन किया गया है, वह युक्तियुक्त ही है। जगदम्बाके ब्रह्ममयी नाममें इन दोनों भावोंका समावेश हो जाता है। शक्ति-उपासक जो भगवदवतारोंके साथ काली-तारा आदि शक्तियोंका सम्बन्ध बतलाते हैं, उसका सामरस्य भी इसी सिद्धान्तसे हो जाता है। हमारे शास्त्रोंमें कहीं मतभेद नहीं है, जो मतभेद प्रतीत होता है, वह दार्शनिक ज्ञानके अभावका ही कुफल है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका प्रादुर्भाव अन्य सकल अवतारोंकी अपेक्षा अनेक विशेष महत्त्व रखता है। इस लेखमें श्रीरामके गुणानुवाद-रूपसे हम उन महत्त्वोंका किंचित् प्रतिपादन करनेकी चेष्टा करेंगे।

आदर्श सामने होनेसे मनुष्योंकी शिक्षामें अत्यन्त सुभीता होता है। श्रीरामको सत्-आदर्शोंका खजाना कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। उनके चरित्रसे मनुष्य सब तरहकी सत्-शिक्षा प्राप्त कर सकता है। मनुष्योंकी सत्-शिक्षाके

लिये जितना गुरु-पदका कार्य श्रीरामचरित्र कर सकता है, उतना अन्य किसीका चरित्र नहीं कर सकता। श्रीरामका मर्यादा-पुरुषोत्तम नाम इसी कारणसे पड़ा है।

श्रीरामकी बाललीला तथा विद्याभ्यास अतुलनीय और बालकोंके लिये अनुकरणीय है। उनकी गुरु-भक्ति आदर्श गुरु-भक्ति थी, जिसके प्रतापसे वे सब विद्याओंमें निपुण हो सके थे। विश्वामित्रजीके साथ जाकर उनकी सेवारूप गुरु-शुश्रूषासे ही वे 'बला' और 'अतिबला' विद्याको प्राप्त करके धनुर्विद्या और अस्त्र-शस्त्रकी विद्यामें पारंगत हो सके थे। विश्वामित्रजीसे उन्होंने गुरु-भक्तिके कारण ही धर्मशास्त्रकी शिक्षा पौराणिक कथाके रूपमें प्राप्त की थी और धर्म-संकटके समय कर्तव्य-कार्योंकी शिक्षा स्त्रीवधरूप ताड़का-वधके रूपसे प्राप्तकर धार्मिकमात्रके लिये एक आदर्श स्थापन कर दिया है। क्षत्रिय बालकोंके लिये बालकपनसे ही निर्भीकता, वीरता और पापियोंको समुचित दण्ड देनेकी प्रकृतिका होना आवश्यक है। इसको श्रीरामने विश्वामित्रजीके साथ जाकर, वीरतापूर्वक सुबाहुको मारकर और मारीचको दण्ड देने आदिका कार्य करके बतला दिया है।

योगवासिष्ठकी कथाके आधारपर कहा जा सकता है कि आदर्श गुरुभक्त और आदर्श वैराग्यसम्पन्न श्रीरामने उस प्रारम्भिक अवस्थामें ही ज्ञानकी प्राप्ति करके जीवन्मुक्त-पदको प्राप्त करते हुए अपने अवतारके सकल कार्योंको किया था। प्रत्येक मनुष्यको इसी प्रकार गृहस्थाश्रमसे पूर्व ही यथाधिकार और यथासम्भव सब प्रकारका ज्ञान प्राप्त करके कर्तव्य-कर्मरूपसे गृहस्थादि आश्रमोंके कर्म करते रहना चाहिये। मनुष्यके लिये यही एक राजमार्ग है, जिससे वह अन्तमें आवागमन-चक्रसे छूटकर मुक्त हो सकता है। यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिसे गृहस्थाश्रम छूट जाता है अथवा गृहस्थाश्रम धारण करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती, यह विभीषिकामात्र है। यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिसे मनुष्यका मार्ग सरल हो जाता है और कर्तव्य-कर्मरूपसे सब कर्मोंको करते हुए कर्म-त्यागकी प्रवृत्तिकी आवश्यकता ही नहीं होती। इस अवस्थाके प्रधान उदाहरण विदेहराज जनक हैं।

जनकपुरकी फुलवारीमें जिस समय सीताजीको श्रीरामके दर्शन हुए थे, उस समय श्रीरामने कहा था कि 'मैंने सपनेमें भी पर-स्त्रीको प्रेमदृष्टिसे नहीं देखा, फिर सीतापर दृष्टि पड़ते ही मेरा मन क्यों आकर्षित हुआ? इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामने '**मातृवत् परदारेषु**'का अभ्यास बालकपनसे ही कर रखा था। इस आदर्शको ग्रहण करनेमें किस मनुष्यका मतभेद हो सकता है? यह तो सर्ववादिसम्मत सिद्धान्त है।

पिता दशरथकी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये श्रीरामने केवल राज्य-श्रीका ही त्याग नहीं किया, अपितु वनवासका कठिन व्रत-पालन करके जगत्को पितृभक्तिकी पराकाष्ठा बतला दी थी। यदि ऐसा नहीं करते तो पिताके सत्यकी पूर्ण रक्षा नहीं हो सकती। श्रीरामने माता कौसल्यासे कहा था कि 'पिता-माताकी परस्पर विरुद्ध आज्ञाओंके पालन करते समय पिताकी आज्ञा ही पुत्रके लिये शिरोधार्य हुआ करती है।' ऐसे धर्म-संकटके समय अपने कर्तव्यका निश्चयकर उसको कार्यमें परिणत करते हुए श्रीरामने क्षेत्रकी अपेक्षा बीजका ही प्राधान्य सिद्ध कर दिया है, क्योंकि पुत्र-संतानमें वीर्य-प्राधान्य होनेके कारण पुरुष-शक्तिकी ही अर्थात् पिताकी ही प्रधानता हुआ करती है।

श्रीरामने आदर्श भ्रातृ-प्रेम अपने तीनों भाइयोंके साथ सारी रामायणमें जहाँ-जहाँ दिखलाया है, वह एक अद्भुत आदर्श है। सब अवसरोंमें यह आदर्श भ्रातृ-प्रेम अक्षुण्ण रहा है।

सहधर्मिणीके साथ पतिका क्या कर्तव्य है वह सीताके साथ किये हुए श्रीरामके व्यवहारोंसे सबपर प्रकट ही है। वनवास जाते समय सब प्रकारकी वनवासकी यातनाओंको समझाते हुए श्रीरामने सत्पतिका ही आदर्श दिखलाया था और वनवासमें अपनी सहधर्मिणीकी सब प्रकारसे रक्षा करते हुए आदर्श गृहस्थके धर्मोंकी पराकाष्ठा बतला दी थी। चित्रकूटमें इन्द्रपुत्र जयन्तको दण्ड दिया, शूर्पणखाके कान-नाक लक्ष्मणसे कटवाये, ससैन्य खरदूषण-त्रिशिराको अकेले ही मारा और अन्तमें अपनी सहधर्मिणीके उद्धारके लिये ही रावण-कुलका विध्वंस किया। आदर्श गृहस्थधर्मका कार्यतः निरूपण करनेके लिये लंकामें सीताकी अग्नि-परीक्षा ली और आदर्श प्रजावत्सलता, जो राजाके लिये मुख्य धर्मस्वरूप है, उसका संसारमें प्रचार करनेके लिये ही श्रीरामने सीताका अयोध्यामें परित्याग कर दिया। अधिक क्या कहा जाय,

श्रीराम एक आदर्श मानव-रूपसे अवतीर्ण हुए थे।

चित्रकूटमें भरतके आनेपर दशरथके मन्त्रियोंकी सभाके एक मन्त्रीको धमकाते हुए श्रीरामने जैसा राजधर्मका आदर्श प्रतिपादन किया और उसके अनुसार कार्य किया, वह एक अपूर्व दृश्य था। ऐसे धर्मसंकटके समय इस प्रकार निर्णय करना एक आदर्श नरपतिका ही कार्य था, जिसको श्रीरामने अद्भुत रीतिसे निभाया।

पञ्चवटीमें सीताको रावणसे छुड़ानेकी चेष्टा करते हुए मृत दशरथके मित्र जटायुका दाह-संस्कार श्रीरामने स्वयं किया। यह कार्य ईश्वरावतार श्रीरामके महत्त्वको अधिक उज्ज्वल बनानेवाला है। प्रत्येक मनुष्यको महान्-से-महान् होनेपर भी ऐसी ही दयालुताकी वृत्ति रखनी चाहिये, इससे उसका महत्त्व ही बढ़ता है।

ऋष्यमूक-पर्वतपर सुग्रीवसे सख्य करके श्रीरामने अपने सख्य-भावको अन्तिम समयतक कैसा निभाया वह तो एक दिव्य दृश्य है। श्रीराम सुग्रीवके प्रेममें उन्मत्त नहीं थे। वे स्वयं भी मैत्री-धर्मका पालन करते थे और सुग्रीवसे भी मैत्री-धर्म-पालन करानेमें त्रुटि नहीं करते थे। सीताकी खबर लानेके आयोजन करनेमें जब सुग्रीवने कुछ विलम्ब किया, तब लक्ष्मणको उसके पास भेजकर स्वयं उन्होंने कहलवाया था—

न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः॥

'हे सुग्रीव! वाली मारे जानेपर जिस रास्तेसे गया है, वह आज भी बंद नहीं हुआ है। इसलिये तुम अपनी प्रतिज्ञापर डटे रहो। वालीके मार्गका अनुसरण न करो।'

समुद्र-तटपर विभीषणके आनेपर राजधर्म और युद्धधर्मके वशवर्ती होकर किसीने भी उसको आश्रय देनेकी सम्मति नहीं दी; परंतु श्रीरामने शत्रुका भ्राता होनेपर भी अपना यह परम प्रसिद्ध व्रत बतलाते हुए उसको आश्रय देकर शरणागत-वत्सलताकी पराकाष्ठा बतला दी थी कि 'अचानक आकर जो मेरे शरण होता है और 'मैं आपका ही हूँ' ऐसा कहता है, उसे मैं प्राणिमात्रसे निर्भय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है।'

अनेक धर्मोंका संकट उपस्थित होनेपर ठीक-ठीक निर्णय करना ही आदर्श मानवका स्वरूप है। श्रीरामके चरित्रमें कहीं भी उस स्वरूपसे उनकी च्युति नहीं हुई है। रामायणमें पद-पदपर यह दृश्य प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति देख सकता है।

मानव-चरित्रको बतलानेके उपलक्ष्यसे श्रीरामके चरित्रमें कई जगह अधीरता पायी जाती है, जैसे सीताके विरहमें रोना आदि, परंतु वास्तवमें वह अधीरता नहीं है, क्योंकि उस अधीरतासे उन्होंने कोई अधैर्यका कार्य नहीं किया था। इससे मनुष्योंको शिक्षा लेनी चाहिये कि जैसे भी कष्टका समय आये, अन्तर्धृतिको कभी न छोड़े। वह अन्तर्धृति ही धर्मका निर्णय कर लेगी।

वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डमें कथा है कि एक दिन श्रीराम किसीसे एकान्तमें बातचीत कर रहे थे। कोई आये नहीं, इसके लिये लक्ष्मणको पहरेदारके रूपमें खड़ा कर दिया था और कहा था कि जबतक मेरी आज्ञा न हो कोई अंदर न आये, यदि आया तो दण्ड दिया जायगा। इसी बीचमें दुर्वासाने आकर लक्ष्मणसे कहा कि 'अंदर जाकर श्रीरामको मेरे आनेकी सूचना दे दो।' लक्ष्मणने अपने दण्डकी परवा न करके दुर्वासाके शापसे राज्यको बचानेके लिये श्रीरामको उनके आनेकी सूचना दी। उसने सोचा कि दुर्वासाकी अप्रसन्नताकी अपेक्षा श्रीरामकी अप्रसन्नता विशेष भयानक नहीं होगी। श्रीरामने आज्ञा उल्लंघन करनेके अपराधमें लक्ष्मणको अयोध्यासे चले जानेको कहा। राजधर्मके अनुसार चाहे राजपुत्र ही क्यों न हो, अपराध करनेपर वह दण्डनीय होता है। राजधर्मके सामने प्राणप्रतिम भाई लक्ष्मणकी श्रीरामने कुछ भी परवा नहीं की। इस कथानकसे श्रीरामका आदर्श राजधर्म-प्रतिपालन सिद्ध होता है।

इस लेखमें श्रीरामके साधारण व्यवहारोंकी ही समालोचना की गयी है। उनकी अवतारविषयक महत्ताओंको नहीं लिखा गया। इस प्रकार जितना भी विचार किया जायगा, विचारवान् व्यक्ति समझ सकेंगे कि श्रीरामावतारकी महत्ता अतुलनीय है और उनसे मनुष्यत्वकी शिक्षा बहुल प्रमाणोंमें मिल सकती है।

* * *

श्रीरासलीलारहस्य

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

प्राचीन आर्षग्रन्थोंमें श्रीमद्भागवत एक अत्यन्त देदीप्यमान उज्ज्वल ग्रन्थरत्न है। इसके दशम और एकादश स्कन्धोंमें परमानन्दघन लीला-पुरुषोत्तम भगवान् कृष्णचन्द्रकी दिव्यातिदिव्य लीलाओंका वर्णन है। लीलाविहारी श्रीश्यामसुन्दर सर्वथा रसमय हैं। उनकी कोटि-कोटि कन्दर्प-कमनीय मनोहर मूर्ति भावुक भक्तोंके लिये जैसी-जैसी मनोमोहिनी है वैसी ही उनकी लीलाएँ भी हैं। यों तो भगवान्‌की सभी लीलाएँ लोकोत्तर आनन्दातिरेकका सञ्चार करनेवाली हैं, परंतु उनकी व्रजलीलाएँ तो महाभाग भक्तों एवं कविपुङ्गवोंका सर्वस्व ही हैं। उनमें भी, जिसका आविर्भाव एकमात्र रसाभिव्यक्तिके लिये ही हुआ था, वह महारास तो मानो सर्वथा माधुर्यका ही विलास था। प्रभुकी रासक्रीडा जैसी मधुर है वैसी ही रहस्यमयी भी है। उसके भीतर जो गुह्यातिगुह्य रहस्य निहित है, वह आपाततः दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। वह इतना गूढ है कि उसमें जितना प्रवेश किया जाता है, उतना ही अधिकाधिक दुरवगाह्य प्रतीत होता है। हम यथामति उसका विचार करनेका प्रयत्न करते हैं।

इस रासलीलाका वर्णन श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धके अध्याय उनतीससे तैंतीसतक है। ये पाँच अध्याय 'श्रीरासपञ्चाध्यायी' के नामसे सुप्रसिद्ध हैं। ये श्रीमद्भागवत-रूप कलेवरके मानो पाँच प्राण हैं; अथवा यदि इन्हें श्रीमद्भागवतका हृदय कहा जाय तो भी अयुक्त न होगा।

वस्तुतः श्रीमद्भागवत कोई साधारण ग्रन्थ नहीं है। श्रीशुकदेवजीका तो मिलना ही बहुत दुर्लभ था; फिर जिस ग्रन्थका वे वर्णन करें, उसका महत्त्व क्या कुछ साधारण हो सकता है? जिस समय शौनकादि महर्षियोंने यह सुना कि इस ग्रन्थका वर्णन श्रीशुकदेवजीने किया है तो वे आश्चर्यचकित हो गये और बोले—

'तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ् निर्विकल्पकः।
एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते॥'

'वे व्यासनन्दन तो महायोगी, समदर्शी, विकल्पशून्य, एकान्तमति और अविद्यारूप निद्रासे जगे हुए थे। वे तो प्रसन्न-भावसे मूढवत् विचरते रहते थे। वे किस प्रकार इस बृहत् आख्यानका श्रवण करानेमें प्रवृत्त हो गये?' भला जो गोदोहन-वेलासे अधिक कहीं खड़े नहीं होते थे, उन श्रीशुकदेवजीने किस प्रकार श्रीमद्भागवत सुनायी? ऐसी शंका होनेपर श्रीसूतजीने कहा यह महाराज परीक्षित्‌का सौभाग्य ही था।

'स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम्।
अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम्॥'

यहाँ एक दूसरी शंका भी हो सकती है। महाभारतके कथनानुसार श्रीशुकदेवजी अपने तपके प्रभावसे ब्रह्मभावापन्न हो गये थे। उन्हें बाह्य प्रपञ्चका अनुसंधान भी नहीं रहा था। फिर इस महासंहिताके स्वाध्यायमें उनकी किस प्रकार प्रवृत्ति हुई?

इसका उत्तर श्रीसूतजी महाराजने इस प्रकार दिया है—

'हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः।
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः॥'

सूतजी कहते हैं—ठीक है, यद्यपि श्रीशुकदेवजी ऐसे ही निर्विशेष परब्रह्ममें परिनिष्ठित थे, शास्तृ, शिष्य आदि सम्बन्धोंमें उनकी प्रवृत्ति होनी सर्वथा असम्भव थी; तथापि उन्हें एक व्यसन था। उससे आकृष्ट होकर ही उन्होंने इस महान् आख्यानका अध्ययन किया था। व्यास-सूत भगवान् श्रीशुकदेवजीकी बुद्धि श्रीहरिके गुणोंसे आक्षिप्त थी, वह हरिगुणगानकी मनोमोहिनी माधुरीमें फँसी हुई थी। **'हरते इति हरिः'** जो बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंके मनको भी हर लेते हैं, उन दिव्य मङ्गलमूर्ति भगवान्‌का नाम ही 'श्रीहरि' है। भगवान्‌के परम दिव्य नाम, गुण, चरित्र एवं स्वरूप ऐसे ही मधुर हैं। उन्हींके गुणोंने श्रीशुकदेवजीके शुद्ध ब्रह्माकार-वृत्तिसम्पन्न मनको भी हठात् अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। इसीसे उन्होंने इस बृहत् संहिताका स्वाध्याय किया था।

अहा! उन श्रीव्यासनन्दनकी हरिभक्तिप्रवणताका कहाँ-तक वर्णन किया जाय? यद्यपि निरन्तर आत्मसुखमें विश्रान्त रहनेके कारण उनकी मनोवृत्ति किसी दूसरी ओर नहीं जाती थी; उनके हृदयसे द्वैतप्रपञ्चका सर्वथा तिरोभाव हो गया था, तथापि परमानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रकी ललित लीलाओंने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर ही लिया। इसीसे उन्होंने भगवल्लीलाके निगूढतम रहस्यभूत इस महाग्रन्थका आविर्भाव किया।

यद्यपि ऐसे महानुभावोंकी प्रवृत्ति ग्रन्थाध्ययनमें नहीं हुआ करती, तथापि भगवल्लीलाओंसे आकृष्टचित्त होनेके कारण ही उन्होंने इस महासंहिताका अध्ययन किया था—

'परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥'

इस सम्बन्धमें एक इतिहास भी प्रसिद्ध है। एक बार श्रीशुकदेवजी संसारसे उपरत होकर वनमें चले गये और वहाँ ध्यानाभ्यासमें तत्पर होकर समाधिस्थ हो गये। उनकी बुद्धिवृत्ति निखिल दृश्य-प्रपञ्चका निरासकर अशेष-विशेष-शून्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त परब्रह्ममें लीन हो गयी और उन्हें बाह्य जगत्का कुछ भी भान न रहा। इसी समय भगवान् व्यासदेवके कुछ शिष्यगण उधर आ निकले। उन्होंने उन बालयोगीन्द्रको देखकर कुतूहलवश श्रीव्यासजीसे जाकर कहा कि 'भगवन्! हमने वनमें एक परम सुन्दर बालकको देखा है। वह बहुत दिनोंसे पाषाण-प्रतिमाके समान निश्चल-भावसे एक ही आसनसे बैठा हुआ है। उसे बाह्य जगत्का कुछ भी भान होना नहीं जान पड़ता।'

तब भगवान् व्यासदेवने सारी परिस्थिति समझकर उन्हें एक श्लोक कण्ठ कराया और कहा कि तुम लोग उस बालयोगीके पास जाकर इसे सुमधुर ध्वनिसे गाया करो। तदनन्तर शिष्यगण वनमें जाकर इस श्लोकका गान करने लगे—

'बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥'

शिष्योंके निरन्तर गान करनेसे भगवान् शुकदेवजीके अन्तःकरणमें इस श्लोकके अर्थकी स्फूर्ति हुई। यह नियम है कि जितना ही चित्त शुद्ध होगा, उतना ही शीघ्रतर उसमें भगवत्तत्त्वका अनुभव होगा। इसीसे किन्हीं-किन्हीं उत्तम अधिकारियोंको, जिनकी उपासना पूर्ण हो चुकी होती है, महावाक्यका श्रवण करते ही स्वरूप-साक्षात्कार हो जाता है।

उस श्लोकार्थकी स्फूर्ति होनेपर भगवद्विग्रहकी अनुपम रूपमाधुरीने उनके चित्तको क्षुभित कर दिया। उनकी समाधि खुल गयी और उन्होंने श्रीश्यामसुन्दरकी स्वरूपमाधुरीका वर्णन करनेवाले इस श्लोकको कई बार उन बालकोंसे कहलाया और कितनी ही बार आनन्दविभोर होकर स्वयं भी कहा। शिष्योंने भगवान् व्यासदेवके पास जाकर उन्हें यह सारा वृत्तान्त सुनाया। श्रीव्यासजी सोचने लगे कि इसे सुनकर भी वह आया क्यों नहीं! जब उन्होंने ध्यानस्थ होकर इसके कारणका अन्वेषण किया तब उन्हें मालूम हुआ कि उसे यह संदेह है कि जिसका सौन्दर्यमाधुर्य ऐसा विलक्षण है वह मेरे-जैसे अकिञ्चन पुरुषसे स्नेह क्यों करेगा? तब व्यासजीने इस शंकाकी निवृत्ति करनेके लिये भगवान्की दयालुताको प्रकट करनेवाला यह श्लोक उन बालकोंको पढ़ाया और पूर्ववत् उन्हें श्रीशुकदेवजीके पास जाकर इसे गानेका आदेश किया।

'अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥'
(श्रीमद्भा० ३।२।२३)

—इस श्लोकको सुनकर श्रीशुकदेवजीको आश्वासन हुआ और उन्होंने बालकोंसे पूछा कि तुमने यह श्लोक कहाँसे याद किया है? बालकोंने कहा—'हमारे गुरुदेव श्रीव्यास भगवान्ने एक अष्टादश सहस्र श्लोकोंकी महासंहिता रची है। यह श्लोक उसीका है।'

यह सुनकर वे भगवान् व्यासदेवके पास आये और उनसे उस महाग्रन्थका अध्ययन किया। अध्ययन करनेमें एक दूसरा हेतु और भी था। '**नित्यं विष्णुजनप्रियः**'—भगवान् शुकदेवजीको सर्वदा विष्णुभक्तोंका संग प्रिय था। श्रीमद्भागवत वैष्णवोंका परमधन है। अतः इसके कारण उन्हें सदा ही वैष्णवोंका सहवास प्राप्त होता रहेगा, इस लोभसे भी उन्होंने उसका अध्ययन किया।

इससे शौनकजीके प्रश्नका उत्तर हो जाता है। वे हरिगुणाक्षिप्तमति थे, इसीलिये आत्माराम होनेपर भी उन्होंने इस महासंहिताका अध्ययन किया। इस भागवत-शास्त्रमें भगवान्का दिव्यातिदिव्य रहस्य निहित है; अतः जिस प्रकार वशीकरणमन्त्रसे लोगोंको अपने अधीन कर लिया जाता है, उसी प्रकार इस परम मन्त्रके कारण भक्तजन स्वयं ही आकृष्ट हो जाते हैं। इसके सिवा भगवान्के गुण, चरित्र और स्वरूपकी माधुरी स्वयं भी ऐसी मोहिनी है कि बड़े-बड़े सिद्ध मुनीन्द्र भी उनके कीर्तनमें प्रवृत्त हो जाया करते हैं। भाष्यकार भगवान् शंकराचार्यने नृसिंहतापिनीयोपनिषद्के भाष्यमें कहा है—

'मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा तं भजन्ते।'

अर्थात् मुक्तजन भी लीलासे देह धारणकर भगवान्का गुणगान किया करते हैं। यही बात सनकादिके विषयमें भी कही जा सकती है।

जिस समय महाराज परीक्षित् गङ्गातटपर आकर बैठे,

उस समय बहुतसे ऋषि, मुनि, सिद्ध एवं योगीन्द्रगण उनके पास आये। उन सबसे उन्होंने यही प्रश्न किया कि 'भगवन्! मैं मरणासन्न हूँ; अतः मुमूर्षु पुरुषके लिये जो एकमात्र कर्तव्य हो वह मुझे बतलाइये।' इस विषयमें उस मुनीन्द्र-मण्डलीमें विचार हो रहा था; भिन्न-भिन्न महानुभाव अपने भिन्न-भिन्न मत प्रकट कर रहे थे; अभी कुछ निश्चय नहीं हो पाया था कि इतनेहीमें शुकदेवजी आ गये। उनसे भी यही प्रश्न हुआ। राजाने पूछा—'भगवन्! अब मेरी मृत्युमें केवल सात दिन शेष हैं; अतः कोई ऐसा कृत्य बतलाइये जिसके करनेसे मैं धीरोंकी प्राप्तव्य गतिको प्राप्त कर सकूँ।'

तब श्रीशुकदेवजी बोले—'राजन्! अन्यान्य आत्मज्ञ लोगोंके लिये तो सहस्रों साधन हैं, परंतु भक्तोंके लिये तो एकमात्र श्रीहरिश्रवण ही परमावलम्ब है।' इसके तीन भेद हैं—श्रीहरिका स्वरूपश्रवण, गुणकीर्तन और नामकीर्तन। उपनिषदादिसे भगवान्का स्वरूपकीर्तन होता है, इतिहास-पुराणादिसे रूप-गुण-कीर्तन होता है और विष्णुसहस्रनामादिसे नाम-कीर्तन होता है।

आचार्योंका ऐसा मत है कि सम्पूर्ण भागवतमें दशम स्कन्ध सार है, उसका भी सारातिसार रासपञ्चाध्यायी है। इस रासपञ्चाध्यायीके अनेक प्रकारके अर्थ किये जाते हैं। आचार्यगण जो एक ही वाक्यकी अनेक प्रकारकी व्याख्या किया करते हैं, उसमें उनका यही तात्पर्य होता है कि किसी-न-किसी प्रकार जीवोंका भगवान्में प्रेम हो। देवर्षि नारदको संक्षेपमें श्रीमद्भागवतका उपदेश करके उनसे भी ब्रह्माजीने यही कहा था—

'यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति।
सर्वात्मन्यखिलाधारे इति सङ्कल्प्य वर्णय॥'

श्रीमद्भागवतमें यद्यपि शुद्ध निर्विशेष सच्चिदानन्दघन तत्त्व ही वर्णित है, तथापि यह आग्रह भी उचित नहीं है कि उसमें द्वैतका वर्णन है ही नहीं, और न निर्गुणवादियोंका यह कथन ही उचित है कि उसमें सगुणवाद नहीं है। वास्तवमें भागवतमें प्रेम-विघातक वेदान्त नहीं है। इसमें तो भक्ति, विरक्ति और भगवत्प्रबोध—इन तीनोंका ही वर्णन है।

यद्यपि यह समग्र दशम स्कन्ध आश्रयरूप ही है, तथापि लीलाविशेषके लिये इसमें भी अन्तरङ्ग-बहिरङ्गकी कल्पना की गयी है। जिनका भगवान्से जितना ही अधिक संसर्ग है वे उतने ही अधिक अन्तरङ्ग हैं। इसका वर्णन 'उज्ज्वल-नीलमणि' नामक ग्रन्थमें बहुत स्पष्टतया किया गया है। मथुरावासियोंकी अपेक्षा गोकुल-निवासी अधिक अन्तरङ्ग हैं, उनसे भी श्रीदामादि नित्यसखा अन्तरङ्ग हैं, उनकी अपेक्षा गोपाङ्गनाएँ अन्तरङ्ग हैं, गोपाङ्गनाओंमें ललिता-विशाखा आदि प्रधान यूथेश्वरियाँ अधिक अन्तरङ्ग हैं और उन सभीकी अपेक्षा श्रीवृषभानुनन्दिनी अन्तरतम हैं। क्योंकि इस क्रमसे, रासलीलामें सर्वान्तरतम व्रजाङ्गनाओंका ही प्रसंग है, यह सर्वान्तरतम लीला है।

इससे पूर्व भगवान्ने गोपोंको अपना स्वरूप-साक्षात्कार कराया था। यद्यपि कालियदमन, गोवर्धनधारण, अघासुरादिके वध तथा अन्य अनेक अतिमानुष-लीलाओंके कारण गोपगण यह समझ चुके थे कि कृष्ण कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। फिर वरुणलोकमें उनका ऐश्वर्य देखकर तो गोपोंको यह निश्चय हो ही गया था कि ये साक्षात् भगवान् हैं, तथापि अन्तमें भगवान्ने अपने योगबलसे उन्हें अपने निर्विशेष स्वरूपका साक्षात्कार कराया और फिर वैकुण्ठलोकमें ले जाकर अपने सगुण स्वरूपका भी दर्शन कराया। इस प्रकार उन्होंने गोपोंको रासदर्शनका अधिकारी बनाया। यह अधिकार बिना स्वरूप-साक्षात्कारके प्राप्त नहीं होता। आजकल व्रजमें इसे छठी भावना कहते हैं—*'छठी भावना रास की।'* पहली पाँच भावनाओंको क्रमशः पार कर लेनेपर ही रासदर्शनका अधिकार प्राप्त होता है। पाँचवीं भावनामें देह-सुधि भूल जाती है—*'पाँचे भूले देह-सुधि'।* अर्थात् इस भावनामें ब्रह्मस्थिति हो ही जाती है। ऐसी स्थिति हुए बिना पुरुष रासदर्शनका अधिकारी नहीं होता।

श्रीमद्भागवतमें जहाँ गोपोंको वैकुण्ठधाममें ले जाकर अपने सगुण-स्वरूपका साक्षात्कार करानेकी बात आती है, वहाँ उनके प्रत्यावर्तनके विषयमें कोई उल्लेख नहीं है। इससे कुछ लोगोंका ऐसा मत है कि यह भगवान्के नित्यधामकी नित्यलीलाका ही वर्णन है। इस लोकमें यह लीला हुई ही नहीं थी। यदि ऐसी बात हो तब तो भगवान्की इस लोकोत्तर लीलाके विषयमें कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती, क्योंकि इस लोकमें न होनेके कारण इसमें इस लोकके नियमोंकी रक्षा करना आवश्यक नहीं हो सकता। किंतु यदि भगवान्ने इस लोकमें ही यह लीला की हो तब भी उनके—

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥'

इस कथनसे जो विरोध प्रतीत होता है वह ठीक नहीं, क्योंकि भगवान्के विषयमें ऐसा नियम नहीं है कि वे लोकमर्यादाका अतिक्रमण करते ही न हों। जब उनके अनन्य

भक्त और तत्त्वनिष्ठ मुनिजन भी मर्यादातिलंघन करते देखे गये हैं तो साक्षात् भगवान्‌के विषयमें तो कहना ही क्या है। उनके पादपद्ममकरन्दका सेवन करनेवाले मुनिजनोंकी गतिविधि भी सर्वसाधारणके लिये सुबोध नहीं हुआ करती—

'त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषां मुनीनां
वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम्।'

वस्तुस्थिति तो ऐसी है कि आत्मतत्त्व सभी प्रकारके शुभाशुभ कर्मोंसे शून्य है। जब कि उस आत्मतत्त्वको जाननेवाले महापुरुषोंकी अविलुप्त महिमा भी कर्मोंसे न्यूनाधिक नहीं होती तो श्रीकृष्णरूपमें अवतीर्ण साक्षात् परमात्मतत्त्वका किसी भी शुभाशुभ कर्मसे किस प्रकार संश्लेष हो सकता है? अतः प्रकृति और प्राकृत सब प्रकारके प्रपञ्चसे अतीत परमात्मा सब प्रकारकी शृंखलाओंसे शून्य है। अब हमें यह विचार करना है कि भगवान्‌के अवतारका प्रधान प्रयोजन क्या है? भगवान् स्वयं कहते हैं—

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥'

परंतु यह बात ऐसी है जैसे मच्छरको मारनेके लिये तोप लगायी जाय। भला जो भगवान् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं, जिनके संकल्पमात्रसे सम्पूर्ण प्रपञ्च बन गया है तथा जिनके विषयमें यह कहा जाता है—**'निःश्वसितमस्य वेदा वीक्षितमेतस्य पञ्च भूतानि स्मितमेतस्य चराचरम् अस्य च सुप्तं महाप्रलयः।'**

उन्हें क्या इस तुच्छ कार्यके लिये अवतार लेनेकी आवश्यकता है? अतः इसका तो कोई ऐसा कारण होना चाहिये, जहाँ भगवान्‌की सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता कुण्ठित हो जाती हो और जिसके लिये उन्हें दिव्य-मङ्गल-विग्रह धारण करना अनिवार्य हो जाता हो।

हमें इसका उत्तर महारानी कुन्तीके इन शब्दोंसे मिलता है—

'तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः॥'

कुन्ती कहती हैं—'भगवन्! जो अमलात्मा परमहंस मुनि हैं उनको भक्तियोगका विधान करनेके लिये आपका अवतार होता है; हम स्त्रियाँ इस रहस्यको कैसे समझ सकती हैं।'

यहाँ भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन अमलात्मा मुनियोंके लिये भक्तियोगका विधान करना बतलाया गया है। जैसे कर्मका स्वरूप द्रव्य और देवता हैं, उसी प्रकार भक्तिका स्वरूप भजनीय है। भजनीयके बिना भक्ति नहीं हो सकती। प्रेमलक्षणा भक्तिका आलम्बन कोई अत्यन्त चित्ताकर्षक और परम अभिलषित तत्त्व ही हो सकता है, जो महामुनीश्वर प्रकृति-प्राकृत प्रपञ्चातीत परमतत्त्वमें परिनिष्ठित हैं, उनके मनका आकर्षक भगवान्‌के सिवा प्राकृत पदार्थोंमें तो कोई नहीं हो सकता। अतः इस बातकी आवश्यकता होती है कि उनके परमाराध्य भगवान् ही अचिन्त्य एवं अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यमयी मङ्गलमूर्तिमें अवतीर्ण होकर उन्हें भजनीय-रूपसे अपना स्वरूप समर्पण कर भक्तियोगका सम्पादन करें, क्योंकि जो कार्य पूर्ण परब्रह्म परमात्माके अवतीर्ण हुए बिना सम्पन्न न हो सकता हो, जिसके सम्पादनमें उनकी सर्वशक्तिमत्ता और सर्वज्ञता कुण्ठित हो जाय उसीके लिये उनका अवतीर्ण होना सार्थक है।

जिस समय शुद्ध परब्रह्म अपनी अचिन्त्य लीला-शक्तिसे कोटि-कामकमनीय महामनोहर श्रीकृष्ण-मूर्तिमें प्रादुर्भूत होंगे, उस समय उस तत्त्वज्ञको भी उनका वह दिव्य-दर्शन निर्विशेष ब्रह्मदर्शनकी अपेक्षा अधिक आनन्दप्रद प्रतीत होगा। जिस प्रकार सूर्यको दूरवीक्षण यन्त्रद्वारा देखनेपर उसमें जो विचित्रता प्रतीत होती है वह केवल नेत्रोंसे देखनेपर प्रतीत नहीं होती, उसी प्रकार लीला-शक्त्युपहित सगुण ब्रह्मदर्शनमें जो आनन्दानुभव होता है वह अशेष-विशेषशून्य शुद्ध परब्रह्मके साक्षात्कारमें भी नहीं होता। इसीसे श्रीरामचन्द्रका दर्शन होनेपर तत्त्वज्ञशिरोमणि महाराज जनकने कहा था—

'इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥'

महाराज जनकके इस बरबस ब्रह्मसुखत्याग और रामदर्शनानुरागमें क्या कारण था? केवल यही कि अबतक वे शुद्ध परब्रह्म-रूप सूर्यको अपने नेत्रोंसे ही देखते थे, किंतु इस समय वे उसके लीलाशक्तिरूप दूरवीक्षणोपहित स्वरूपका दर्शन कर रहे थे। केवल नेत्रसे दीखनेवाले आदित्यकी अपेक्षा दूरवीक्षणोपहित आदित्यदर्शनमें विशेषता है ही।

ब्रह्मदर्शी तत्त्वज्ञगण जिस निर्विशेष शुद्ध ब्रह्मका साक्षात्कार करते हैं, उसकी अपेक्षा भगवान्‌का सगुण दिव्य-मङ्गल-विग्रह अधिक आकर्षक क्यों है। इस विषयमें भावुकोंका ऐसा कथन है कि जिस प्रकार पार्थिवत्वमें समानता होनेपर भी पाषाणादिकी अपेक्षा हीरा अधिक मूल्यवान् होता है तथा कपासकी अपेक्षा उससे बना हुआ वस्त्र बहुमूल्य होता है, उसी प्रकार शुद्ध परब्रह्मकी अपेक्षा उसीसे विकसित भगवान्‌की दिव्य-मङ्गलमयी मूर्ति कहीं अधिक माधुर्य-

सम्पन्न होती है। इक्षुदण्ड स्वभावसे ही मधुर है, किंतु यदि उसमें कोई फल लग जाय तो उसकी मधुरिमाका क्या कहना है? मलयाचलोत्पन्न चन्दनके वृक्षमें यदि कोई पुष्प आ जाय तो वह कैसा सौरभसम्पन्न होगा? इसी प्रकार भगवान्‌की सगुण मूर्तिके सम्बन्धमें समझना चाहिये।

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि भगवान्‌के निर्गुण निर्विशेष स्वरूपमें वह परमानन्द है ही नहीं जो उनकी सगुण मूर्तिमें है। कारण, इक्षुदण्डकी मधुरिमा, पाषाणादिका मूल्य और चन्दनादिकी सुगन्धि—ये सब सातिशय हैं। इनमें न्यूनाधिकता हो सकती है, परंतु भगवान्‌में जो सौन्दर्य-माधुर्य एवं आनन्दादि हैं वे निरतिशय हैं।

जो लोग निर्विशेष परब्रह्मका अपरोक्ष साक्षात्कार कर चुके हैं उन्हें कैवल्य तो ज्ञानसे ही प्राप्त होता है; किंतु वे जीवन्मुक्तिकालमें भी भगवान्‌की अचिन्त्य लीलामयी शक्तिके योगसे दिव्य मङ्गलमय विग्रहमें आविर्भूत हुए परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रकी सौन्दर्य-माधुर्य-सुधाका समास्वादन किया करते हैं। अचिन्त्यानन्द सुधासिन्धु श्रीभगवान्‌के जिस माधुर्यका समास्वादन केवल वृत्ति-शून्य अन्तःकरणसे नहीं किया जा सकता, उसे भी तत्त्वज्ञ भावुकगण भगवान्‌की दिव्य लीलाशक्तिकी सहायतासे अनुभव कर लेते हैं।

तत्त्वज्ञगण केवल निर्वृत्तिक अन्तःकरणसे वैसी मधुरताका अनुभव नहीं कर सकते जैसी कि लीलाशक्तिके योगसे आविर्भूत हुए भगवान्‌के सगुण स्वरूपका साक्षात्कार करनेपर होती है। इसीसे अमलात्मा तत्त्वज्ञ मुनियोंको उनका भजनीय स्वरूप समर्पणकर भक्तियोगके द्वारा उन्हें अपने सौन्दर्य-माधुर्यका समास्वादन करानेके लिये ही परब्रह्म परमात्मा अवतीर्ण होते हैं। उन्हें यदि सगुण साकार ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाय तो भी देहपातके अनन्तर वे कैवल्यपद ही प्राप्त करेंगे, किंतु सगुणोपासक अपने इष्टदेवका नित्यधाम प्राप्त करेंगे। इसीसे भक्ति-रसायनादि ग्रन्थोंमें तत्त्वज्ञको सगुण-दर्शनसे केवल दृष्ट-फल माना है और उपासकको दृष्ट और अदृष्ट दोनों।

अतः ऊपर जो बतलाया है, इससे यही निश्चय होता है कि भगवान्‌के अवतारका प्रधान प्रयोजन अमलात्मा परमहंसोंके लिये भक्तियोगका विधान करना है। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये वे अपनी लीलाशक्तिसे दिव्य मङ्गलमय देह धारण करते हैं। यह लीलाशक्ति भगवान्‌की परम अन्तरङ्गा है।

गोपाङ्गनाओंको भी भगवद्दर्शनके बिना '**त्रुटिर्युगायते**'—एक-एक पल युगके समान हो रहा था। उन्हें संतुष्ट करनेमें भगवान्‌का निर्विशेष रूप असमर्थ था। इसलिये ऐसी अवस्थामें भगवान्‌को मूर्तिमान् होकर अवतीर्ण होना ही पड़ा, क्योंकि उनकी तृप्ति तथा जीवन बिना इसके नहीं हो सकते। भगवान्‌के अवतीर्ण हुए बिना वे कार्य नहीं हो सकते थे; इसी कारण प्रभुका प्रादुर्भाव हुआ।

अब, साथ ही यह भी सोचना चाहिये कि—

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥'

—यह श्लोक भी ठीक ही है। यहाँ 'साधु' शब्दसे गोपाङ्गना-जैसे साधु ही समझने चाहिये, जिनका परित्राण भगवान्‌के दर्शनोंके बिना हो ही नहीं सकता था तथा दुष्कृती भी साधारण नहीं बल्कि भगवान्‌के अन्तरङ्ग जय-विजय-जैसे दुष्कृती समझने चाहिये, जिनका दुष्कृत भगवान्‌की लीला-विशेषके विकासके ही लिये था; अन्य दुष्कृतियोंको तो उनका दुष्कर्म ही नष्ट कर देगा। इसके सिवा धर्मसंस्थापनसे भी भक्तियोगरूप धर्मकी ही स्थापना समझनी चाहिये, जो कि ऐसे भजनीयके बिना नहीं हो सकती।

इस श्लोककी व्याख्या करते हुए भगवान् भाष्यकारादिने भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन सर्वसाधारणके कल्याणोपयुक्त धर्मकी स्थापना ही बतलाया है। इस प्रकार यद्यपि उनके प्रादुर्भावका प्रधान प्रयोजन अमलात्माओंके भक्तियोगका विधान करना ही है, तथापि अवान्तर प्रयोजन सन्मार्गस्थ साधुओंकी रक्षा और वैदिक-स्मार्तादि कर्मोंकी स्थापना भी है ही। आगेके कथनानुसार भगवान्‌में लोक-शिक्षादि भी देखे ही जाते हैं। भगवान् तो सर्वनियन्ता हैं, इसलिये उनका प्रादुर्भाव योगारुरुक्षुओंके लिये भी था और योगारूढोंके लिये भी। योगारुरुक्षुओंको वैदिक-स्मार्त कर्मोंमें प्रवृत्त करना था और योगारूढोंको केवल भगवन्निष्ठामें नियुक्त करना था। अतः भगवान्‌की यह उक्ति उचित ही है—

'न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥'

वस्तुतः भगवान् तो विधि-निषेधातीत हैं। वे केवल लोकशिक्षाके लिये ही शास्त्रीय शृंखलाका अवलम्बन करते हैं, क्योंकि शास्त्रादि लोगोंको मर्यादापालनमें वैसा परिनिष्ठित नहीं कर सकते, जैसा कि उस मर्यादाका पालन करनेवाले महापुरुष कर सकते हैं। अतः शास्त्रके अर्थज्ञानके साथ शास्त्रार्थके

अनुष्ठानमें परिनिष्ठित व्यक्तियोंके सहवासकी भी बहुत आवश्यकता है। अतः लोगोंको वैदिक-स्मार्त कर्मोंमें प्रवृत्त करनेके लिये ही भगवान् स्वयं भी उनका यथाविधि अनुष्ठान करते हैं—

इसका तात्पर्य यही है कि जो लोग आरुरुक्षु हैं, जो संसारसागरसे पार नहीं हुए हैं उनके उपदेशार्थ तो भगवान् लौकिक-वैदिक मर्यादाओंका पालन करते हैं। इसलिये जिन्हें संसाररूप स्वाभाविक मृत्युको पार करना है, उन्हें तो मर्यादापालनरूप महौषधका सेवन करना चाहिये। उनके लिये तो भगवान् भी मर्यादापालन करते हैं; किंतु जो योगारूढ अमलात्मा परमहंस हैं उनके लिये ऐसी कोई विधि नहीं है; उन्हें एकमात्र भगवन्निष्ठामें ही स्थिर करनेके लिये भगवान् मर्यादाका उल्लंघन कर देते हैं, क्योंकि वे स्वयं तो समस्त विरुद्ध धर्मोंके आश्रय ही हैं। उनके लिये मर्यादापालन और मर्यादातिलंघन दोनों ही समान हैं।

यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण '**तत्**' पदार्थ हैं और गोपाङ्गनाएँ '**त्वम्**' पदार्थ हैं। यदि इन दोनोंका परस्पर संश्लेष हो तो क्या वह कामक्रीडा कही जायगी? स्थूल दृष्टिसे तो अवश्य यह कामक्रीडा-सी मालूम होती है, परंतु अन्तरङ्ग दृष्टिसे तो यह जीव और ब्रह्मका अद्भुत संयोग ही है।

श्रीमद्भागवतमें यह कई स्थानोंमें देखा जाता है कि गोपाङ्गनाएँ श्रीकृष्णचन्द्रके वियोगमें संतप्त रहती थीं और हर समय उनके दर्शनोंके लिये लालायित रहती थीं तथा इसी प्रकार भगवान् भी व्रजसुन्दरियोंकी विरह-व्यथासे व्याकुल रहते थे। उन दोनोंहीको पारस्परिक संयोग बहुत अभीष्ट था। प्रेमका यह स्वभाव है कि प्रेमी परस्पर गाढालिङ्गनके लिये उत्सुक रहा करते हैं। माता अपने सुकुमार शिशुको हृदयसे लगानेमें कितना सुख अनुभव करती है। जो जितना अधिक प्रेमास्पद होता है उसका व्यवधान उतना ही अधिक असह्य होता है।

यहाँ गोपाङ्गनाएँ और भगवान् दोनों ही सच्चिदानन्दस्वरूप थे। अतः उनकी लीला प्राकृत है ही नहीं। इसलिये इसमें मर्यादातिलंघनका प्रश्न ही नहीं हो सकता। यह तो वह स्थिति है जिसकी प्राप्तिके लिये सारी मर्यादाओंका पालन किया जाता है।

अतः जिस समय भगवान्का प्रादुर्भाव हुआ, उस समय उन्होंने यही विचार किया कि पहले अवतारके प्रधान प्रयोजनकी ही पूर्ति करनी चाहिये। इसीसे पहले उन्होंने अमर्यादित दिव्य लीलाएँ कीं और पीछे मर्यादित लोक-संग्रहमयी। लोकमें भी यह प्रायः देखा जाता है कि उपनयन-संस्कारसे पूर्व उच्छृंखल प्रवृत्ति रहती है और उसके पीछे मर्यादानुसार आचरण किया जाता है। यही बात भगवान्के विषयमें भी देखी जाती है। इस प्रकार प्रधान प्रयोजनकी पूर्तिके लिये स्वीकार की हुई भगवान्की उच्छृंखलतामें भी एक प्रकारकी सुशृंखलता ही है; इस मर्यादातिलंघनमें भी विशेष प्रकारका मर्यादापालन ही है।

यद्यपि साधकोंके लिये स्त्रियोंका चिन्तनमात्र भी महान् अनर्थका हेतु होता है, तथापि भगवान्ने तो कामजयके लिये ही यह अद्भुत लीला की थी।

टीकाकार श्रीश्रीधरस्वामी लिखते हैं—

'ब्रह्मादिजयसंरूढदर्पकन्दर्पदर्पहा ।
जयति श्रीपतिर्गोपीरासमण्डलमण्डनः ॥'

अर्थात् ब्रह्मादि लोकपालोंको जीत लेनेके कारण जो अत्यन्त अभिमानी हो गया था, उस कामदेवके दर्पको दलित करनेवाले गोपियोंके रासमण्डलके भूषणस्वरूप श्रीलक्ष्मीपतिकी जय हो। वस्तुतः रासक्रीडामें प्रवृत्त होकर भगवान्ने मर्यादाका उल्लंघन नहीं किया, बल्कि उन्होंने तत्त्वज्ञोंकी निष्ठाकी दृढ़ता ही प्रदर्शित की है। अहो! जो साक्षात् शृंगाररसकी अभिवृद्धि करनेवाले हैं, उन आकृष्टकारक अनेकविध दिव्य हाव-भाव-कटाक्षोंका सम्प्रयोग होनेपर भी उनका चित्त तनिक भी विचलित नहीं हुआ। भगवान्की इस स्थितिका श्रीशुकदेवजीने भिन्न-भिन्न शब्दोंमें कई जगह वर्णन किया है, जैसे—'**साक्षान्मन्मथमन्मथः**', '**आत्मन्यवरुद्धसौरतः**', '**आत्मारामोऽप्यरीरमत्**' इत्यादि।

भगवान् सर्वेश्वर हैं; उनकी यह लीला कामजयके लिये ही हुई थी। कामने ब्रह्मादिको जीत लिया था। इससे उसका अभिमान बहुत बढ़ गया था और अब उसने उन सबके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे भी युद्ध करनेका निश्चय किया। भगवान्ने उसका यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। कन्दर्पने भी श्रीकृष्णके अद्भुत प्रभावको जानकर विजयकी लालसासे श्रीव्रजाङ्गनाओंके अङ्गरूप काञ्चनमय कामग दुर्गका आश्रयण किया एवं वहाँ प्रधान-प्रधान अवयवोंको अपना खास निवासस्थान चुना और अपने मित्र वसन्तकी सहायतासे नाना प्रकारके कुसुमोंका ही धनुष-बाण तथा अस्त्र-शस्त्र लेकर स्वाधीन व्रजाङ्गनाओंके काञ्चनमय अङ्गरूप कामग दुर्गमें स्थित होकर युद्धकी पूर्ण तैयारी कर ली। इतनेपर भी श्रीकृष्णने उसे दुर्बल ही देखा। यह नियम है कि बड़े-बड़े योद्धा दुर्बल शत्रुसे युद्ध करना उचित नहीं समझा करते। इसलिये युद्ध करनेसे पूर्व वे उसे सबल कर देते हैं। अपूर्ण

चन्द्रपर राहु भी आक्रमण नहीं करता। जब एक राक्षसकी भी ऐसी नीति है तो सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ही ऐसा क्यों न करते? अत: भगवान्ने पहले तो श्रीमहादेवजीके कोपानलसे दग्ध हुए कन्दर्पको पुष्ट किया। वह गोपाङ्गनाओंके हृदयमें स्थित था। उसे वेणुनाद-द्वारा अपनी दिव्य अधर-सुधाका पान कराकर भगवान्ने सबल कर दिया, परंतु गोपाङ्गनाओंके हृदयमें तो मन भी रहता है और वह भगवान् श्रीकृष्णका परम भक्त है तथा कामदेव मनोज होनेके कारण उसका पुत्र है। अत: अपने पिताके विरुद्ध वह कोई चेष्टा कैसे कर सकता था और वृद्ध पिताके सामने उससे कोई धृष्टता भी कैसे बन सकती थी? इसलिये उसे नि:संकोच करनेके लिये भगवान्ने वेणुनाद-द्वारा उस मनको अपने पास बुला लिया। अब कामदेव स्वतन्त्र हो गया। गोपाङ्गनाओंके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंने उसके अस्त्र-शस्त्र होकर भी सहायता की तथा चन्द्रमा, वसन्त, यमुनापुलिन, निकुञ्ज और मलय-मारुत भी उसके सहकारी हो गये। इस प्रकार पहले सर्वसाधन-सम्पन्न करके फिर उसे परास्त करनेके लिये ही भगवान्ने यह ललित लीला की; इसीसे यहाँ उन्हें '**साक्षान्मन्मथमन्मथ:**' कहा गया है।

भगवान्का स्वमाधुर्य ऐसा मोहक था कि जो काम संसारके प्रत्येक प्राणीको मोहित करनेमें समर्थ है, वही जिस समय अपने दल-बल-सहित भगवान्की परम सुन्दर दिव्य मङ्गलमयी मूर्तिके सामने आया तो उनका लावण्य देखकर मानो धूलिमें मिल गया। इसीसे उन्हें '**साक्षान्मन्मथमन्मथ:**' कहा गया है। वस्तुत: श्रीकृष्णचन्द्रके पादारविन्दकी नखमणि-चन्द्रिकाकी एक रश्मिके माधुर्यका अनुभव करके कन्दर्पका दर्प प्रशान्त हो गया और उसे ऐसी दृढ़ भावना हुई कि मैं लक्षों जन्म कठिन तपस्या करके श्रीव्रजाङ्गनाभावको प्राप्तकर श्रीकृष्णके पादारविन्दकी नखमणिचन्द्रिकाका यथेष्ट सेवन करूँगा, फिर साक्षात् श्रीकृष्ण-रसमें निमग्न व्रजाङ्गनाओंके संनिधानमें कामका क्या प्रभाव रह सकता था? यह भी एक आदर्श है। जिस प्रकार साधकोंके लिये चित्रलिखित स्त्रीको भी न देखना आदर्श है, उसी प्रकार जो बहुत उच्च कोटिके सिद्ध महात्मा हैं उनके लिये मानो यह चेतावनी है कि भाई, तुम अभिमान मत करना; जबतक तुम ऐसी परिस्थितिमें भी अविचलित न रह सको तबतक अपनेको सिद्ध मत मान बैठना। अहो! जिनके नखमणिकी ज्योत्स्नासे भी अनन्तकोटि कन्दर्पोंका दर्प दलित हो जाता है, ऐसे परम सुन्दरी व्रजसुन्दरियोंको भी जिन्होंने रमाया, उन श्रीहरिके दिव्यातिदिव्य योगका माहात्म्य कहाँतक कहा जा सकता है?

साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि कामुकोंके लिये तो नर-नारायणका आदर्श भी अनुपयुक्त है। उन्हें तो मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके ही चरणचिह्नोंका अनुसरण करना चाहिये। श्रीनर-नारायणका आदर्श साधकोंके लिये है; उन्हें ऋषभदेवजीके आदर्शका अनुकरण नहीं करना चाहिये, क्योंकि सर्वकर्म-संन्यासका अधिकार सबको नहीं है। उनका आचरण तो परमोत्कृष्ट तत्त्वज्ञोंके लिये ही है। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके दिव्यातिदिव्य आचरणोंका तो यदि कोई मनसे भी अनुकरण करेगा तो पतित हो जायगा, '**नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वर:**' क्योंकि वे तो निरतिशय ऐश्वर्यवान् साक्षात् भगवान्की ही अलौकिक लीलाएँ हैं। कोई भी जीव इस स्थितिपर नहीं पहुँच सकता। भला भगवान्के सिवा ऐसा कौन है जिसने सम्पूर्ण जगत्को मोहित करनेवाले कामदेवका मान-मर्दन किया हो! मदनमोहन तो एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। करना तो दूर; हर किसीको तो इसे सुनना भी नहीं चाहिये, क्योंकि '*छठी भावना रास की*', इसे सुनने-देखनेका अधिकार तो देहाध्याससे ऊपर उठे बिना प्राप्त ही नहीं होता।

भगवान्ने जो कहा है कि—

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन:।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥'

उसका तात्पर्य यह नहीं है कि श्रेष्ठ पुरुषोंके सभी आचरणोंका अनुकरण करना चाहिये; बल्कि जो अपनी योग्यताके अनुसार हो उसीका आचरण करना उचित है। भगवान् शंकर हलाहल विषका पान कर गये थे, इसलिये क्या सभीको विष-पान करना चाहिये? तैत्तिरीयोपनिषद्में आचार्य अपने शिष्योंसे कहते हैं—

'यान्यस्माकꣳसुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।'

यह बहुत सम्भव है कि कोई चरित्र महापुरुषोंके लिये उचित हो, किंतु साधारण पुरुषोंके लिये उचित न हो। संन्यासी लोग संध्योपासन नहीं करते, इसलिये क्या गृहस्थोंको भी उसे छोड़ देना चाहिये? फिर यहाँ तो अलौकिक लीलाकारी भगवान्की बात है, जिसका अनुकरण करना तो दूर रहा, समझना भी महा कठिन है।

इस प्रकार भगवान्की यह रासलीला उच्च कोटिके योगारूढोंके लिये ही एक उच्च आदर्श है। इसके श्रवणमात्रसे पुण्य होता है।

* * *

श्रीकृष्णावतारका रहस्य

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भगवान्‌के सब अवतार लीला-परिपूर्ण होते हैं। भगवान्‌में कोई न्यूनाधिक्य, कोई तारतम्य, कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। परंतु वे जहाँ जिस गुणकी, जिस धर्मकी आवश्यकता होती है, वहाँ उस अवतारके द्वारा मुख्य रूपसे उसीको प्रकट करते हैं। सच्चिदानन्दमें-से कुछ कम कर दिया जाय या उसमें कुछ बढ़ा दिया जाय—ऐसा सामर्थ्य तो किसीमें भी नहीं है। भगवान् श्रीरामचन्द्रका अवतार सत्-तत्त्वकी प्रधानतासे है। सद्धर्म, सद्भाव, सद्विचारसम्पन्न श्रीरामचन्द्र मूर्तिमान् धर्म हैं—'**रामो विग्रहवान् धर्मः।**' कपिल-दत्तात्रेय आदि अवतार चित्-प्रधान अवतार हैं, उनमें अधिक-से-अधिक ज्ञान ही प्रकट होता है; किंतु भगवान् श्रीकृष्णका अवतार आनन्द-प्रधान अवतार है। सभी अवतारोंकी अपनी पृथक् विशेषता होते हुए भी किसी-किसी अवतारमें विशेष धर्मकी अभिव्यक्ति होती है। श्रीकृष्णमें आनन्द अधिक प्रकट हुआ है। इसलिये आसक्तिके विषय ही जाते हैं श्रीकृष्ण। आनन्दसे सबका प्रेम होता है, अतः सब आनन्द चाहते हैं। मुझे सुख मिले, दुःख कभी न मिले—यह प्रार्थना प्रसिद्ध है—

सुखं मे भूयाद् दुःखं मे मा भूत्।

इस प्रकार सुखके प्रति, आनन्दके प्रति सबका आकर्षण होता है और श्रीकृष्णके जीवनमें उसकी अभिव्यक्ति बहुत अधिक है। इसीलिये वे लोगोंकी प्रीतिको, आसक्तिको अपनी ओर अधिक खींचते हैं; क्योंकि जहाँ सुख होता है, वहाँ मन जाता है। भगवान्‌में लोगोंकी प्रीति हो, आसक्ति हो और दुनियाका जो बखेड़ा है, इन्द्रजाल है, वह भूल जाय—इसके लिये भगवान् श्रीकृष्णका अवतार होता है। हमारे मनके लिये कोई ऐसा स्थान चाहिये, जहाँ पहुँचकर हम दुनियाके सब दुःखोंको, सब पीडाओंको, सब उत्पीडनोंको, सब शोषणोंको एवं सब अभावोंको भूल जायँ। मनुष्यके हृदयमें एक ऐसा स्थान होना आवश्यक है और उस हृदयके रूपमें स्वयं भगवान् ही रहते हैं। '**हृदि अयते इति हृदयं ब्रह्म**' जो हृदयमें विराजमान हो, उसका नाम हृदय है। हृत् माने संस्कारोंको आकृष्ट करनेवाला। हम जो-जो देखते हैं, सुनते हैं, अनुभव करते हैं, उनका संस्कार जहाँ इकट्ठा होता है, उसका नाम होता है हृत्। '**हरति इति हृत्**'—'हृ' धातुसे 'त' जुड़ जाता है। 'हृत्' शब्दका अर्थ होता है अनुभूत विषयोंके संस्कारको अपने अंदर आहरण करके रखनेवाला। उन्हीं संस्कारोंके भीतर भगवान् एक-एक संस्कारको जगाते हैं, शान्त करते हैं और हमारी बुद्धिको भी वही प्रेरणा देते हैं—

धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (ऋग्० ३। ६२। १०)

ध्यान देनेकी बात यह है कि एक मैं हूँ और एक मेरी बुद्धि है। बुद्धि दुनियाके बारेमें सोचती-विचारती रहती है। पर इस बुद्धि-यन्त्रको, इसकी मशीनको जो चलानेवाला है, वही मेरे और मेरी बुद्धिके बीचमें अर्थात् मुझमें सबसे निकट रहता है। पहले हमारा दृश्य अन्तर्यामी होता है, फिर उसके द्वारा नियम्य बुद्धि और बुद्धिका प्रपञ्च होता है। वह नियामक कौन है? हमारा परम प्रेमास्पद, हमारी आत्मासे अभिन्न स्वयं भगवान् ही नियामक है।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता १८। ६१)

बुद्धि-यन्त्रपर आरूढ होकर माया दिखायी पड़ रही है। इस यन्त्रको सतत चलानेवाला वही परमेश्वर हमारे हृदयमें विराजमान है। भगवान्‌की लीला ही ऐसी है। लीला तो करता ही है वह। लीलामें कर्तापनका अभिमान नहीं होता, कर्मका कोई फल उदय नहीं होता और कर्ममें वासना नहीं रहती अर्थात् जिसमें कर्तापन न हो, वासना न हो, फलोदय न हो, उसको लीला कहते हैं। यह कर्मसे विलक्षण है, चरित्रसे विलक्षण है।

यह जो आनन्द-प्रधान लीला है भगवान्‌की, वह सभी जीवोंको सुख देनेवाली है। तत्त्वज्ञानी पुरुष उसका गान करनेमें आनन्द लेते हैं। हृदयमें जो प्रेम है, रस है, उसकी बोलीका नाम संगीत है। वास्तवमें प्रेम ही सौरभ्य है, सुगन्ध है, सौरस्य है, मिठास है, सौन्दर्य है, सौकुमार्य है और प्रेम ही सौस्वर्य तथा संगीत है। प्रेम हमारी सब इन्द्रियोंको अपनी ओर खींच लेता है। हमारे जीवनमें एक बार भगवत्-रस आ जाये तो क्या होता है, यह आप गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें सुनिये—

जो मोहि राम लागते मीठे।
तौ नवरस-षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे॥

इससे जीवन्मुक्त पुरुष, जिन्हें कोई तृष्णा नहीं है, इसका

गान करते हैं स्वयं भगवान्‌के पास बैठकर। जो मुमुक्षु पुरुष हैं, उनके लिये यह संसाररूप रोगकी औषधि है। औषधि क्या होती है? **'ओषति दोषान्, धत्ते गुणान्'** जो हमारे दोषोंको मिटा दे और हमारे जीवनमें सद्‌गुणका आधान करे, उसका नाम औषधि है। जो लोग इन्द्रियोंका जीवन ही जी रहे हैं, उनके लिये भी **'श्रोत्रमनोभिरामात्'**—कानसे सुननेमें भी आनन्दमयी और मनसे विचार करनेमें भी आनन्ददायी है। जब हम श्रीमद्भागवतमें यह श्लोक पढ़ते हैं, तब पढ़नेमें भी कितना आनन्द आता है—

> **पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-**
> **र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः।**
> **स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो**
> **गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः॥**
> (श्रीमद्भा० १०। ३३। ८)

कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण। रसवर्षी बादलोंका समूह और उसमें कौंधती हुई बिजली। केनोपनिषद्‌में ध्यानकी यह उपासना बतायी हुई है कि **'विद्युतो व्यद्युतत्'** (केन० ४। ४)। इस प्रकारका ध्यान करो कि रसवर्षी घन-घटा छायी हुई है अपने हृदयमें और उसमें जैसे बारम्बार बिजली कौंध जाती है, वैसे ही प्रकाश आ जाता है। ठीक यही उपमा देकर श्रीमद्भागवतमें रासके प्रसंगका वर्णन है।

श्रीकृष्णका जीवन लौकिक दृष्टिसे भी सम्पूर्ण कलाओंसे परिपूर्ण है। महाभारतमें वर्णन आता है कि जब महाभारत-युद्धके समय अर्जुनके घोड़े घायल हो जाते या थक जाते तब अर्जुन तो अपने शिविरमें जाकर विश्राम करने लगते, किंतु श्रीकृष्ण घोड़ोंकी मालिश करते और जहाँ चोट लगी होती, वहाँ मरहम-पट्टी करते। इससे सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण आयुर्वेदके महान् ज्ञाता थे। वे केवल मनुष्यकी चिकित्सामें ही नहीं, पशुओंकी चिकित्सामें भी निपुण थे। जरासन्धने तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर सत्रह बार मथुरापर चढ़ाई की, लेकिन मथुराका एक आदमी भी नहीं मरा और बलराम तथा श्रीकृष्णने उसकी सेनाका संहार कर दिया। इससे यह भी सिद्ध होता है कि उनको युद्ध-विद्यामें कितनी निपुणता प्राप्त थी। आयुर्वेद, धनुर्वेद, स्थापत्य-वेद अथवा शिल्पवेद सबमें वे पारंगत थे। उन्होंने इतनी जल्दी द्वारकाकी रचना करवायी थी कि सब लोग चकित हो गये थे। श्रीकृष्णको स्थापत्य-वेदका कितना ज्ञान था—इसका परिचायक उनके द्वारा निर्मित धर्मराजका वह सभागार था, जिसमें जल-थलका भ्रम हो जाता था।

गन्धर्व-वेदके चारों अङ्गों—संगीत, वाद्य, नृत्य और अभिनयमें श्रीकृष्ण निपुण थे। यह केवल वंशी-ध्वनि नहीं—आध्यात्मिक लीला-ध्वनि है। आध्यात्मिक उन्नति तो जीवन जीनेकी एक कला है, जिसमें पूरा-का-पूरा सौन्दर्य और पूरा-का-पूरा माधुर्य अभिव्यक्त होता है। जब हम श्रीकृष्णकी लीलापर ध्यान देते हैं, तब उसमें मनुष्यका मन खींचनेके लिये जो भी सामग्री चाहिये, वह सब मिलती है। श्रीकृष्णकी बाल्यावस्था जीवनमें आनन्द प्राप्त करने तथा ध्यानके लिये है, वह अनुकरण करनेके लिये नहीं है। उनकी बाल्यावस्थाका जीवन तो ध्येय जीवन है।

आपको यह बात मालूम होगी कि जब हम आँख बन्द करके देखते हैं कि यमुनाजी बह रही हैं, गोवर्धनका शिखर दीख रहा है और यह वृन्दावन है, तब हमें कैसा सुखद अनुभव होता है। इसका वर्णन भी केनोपनिषद्‌में है—**'तद्ध तद्वनं नाम'** (४। ६)। वेदोंमें भी मन्त्र आता है—

'किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस। (ऋग्वेद १०। ८१। ४)

यहाँ प्रश्न है कि वह वन कौन-सा है, वह वृक्ष कौन-सा है, जिससे विश्वकर्माने विश्वसृष्टि बनायी? कृष्णयजुर्वेदके तैत्तिरीय ब्राह्मणमें इसका उत्तर है—**'ब्रह्म वनं, ब्रह्म स वृक्ष आस।'** अर्थात् ब्रह्म ही वह वन है और ब्रह्म ही वह वृक्ष है, जिससे विश्वकर्माने यह सृष्टि रची है। जैसे कलाकार लकड़ीमें मूर्ति बनाते हैं, वैसे ही ब्रह्म-रूप वृक्षमें यह सम्पूर्ण विश्व-सृष्टि बनी हुई है। जब हम आँख बन्द करके ब्रह्मका ध्यान करते हैं, तब वह वन, जड वन नहीं होता। वह वन आकृतिमें देखनेपर जड-सा लगता है, परंतु वास्तवमें चित्-प्रधान वन होता है, चिन्मय वन होता है। उसमें जो पर्वत हैं, वृक्ष हैं, लता हैं, गाय हैं, हरिणी हैं, अन्य पशु हैं, पक्षी हैं, स्त्री हैं, पुरुष हैं और इनमें जो क्रियाएँ हैं, भोजन हैं, लेना-देना है, वह सब चिन्मय हो जाता है। ध्येय वस्तु जड नहीं होती, वह चेतनकी प्रधानतासे हमारे हृदयमें स्थित होती है। सामान्य लोगोंको इन सब बातोंका जरा कम पता होता है, इसलिये वे तर्क-वितर्क करते रहते हैं। किंतु गम्भीर दृष्टिसे गवेषणापूर्ण विचार करनेपर आपको मालूम पड़ेगा कि जैसे बाहर घड़ा दीखता है, वैसे भीतर दीखनेवाला घड़ा होता है। मृत्तिकामय घट बाहर होता है और मनोमय घट अंदर होता है। वह यदि गोपीके सिरपर हो और भगवान् उसके साथ छेड़छाड़

कर रहे हों, तब तो उस घटके चिन्मय होनेमें किसी प्रकारके कुतर्क या शंकाके लिये अवकाश ही नहीं रहता।

अब मैं इसका दर्शन तो क्या सुनाऊँ आपको? आइये भगवान्के अवतारके बारेमें दो बात कर लें। जबतक मनुष्य अपनेको साकार, शरीरधारी व्यक्तिके रूपमें मानता है और ईश्वरको भी मानता है, तबतक साकार जीवके लिये, वह अंशी भी, जिसका वह अंश है, साकार ही हो सकता है। साकार अंशीका ही साकार जीव होगा। जब जीवमें-से आकारकी भ्रान्ति मिटेगी, तब ईश्वरमें उसे आकार नहीं दिखायी पड़ेगा और वे दोनों निराकार-निराकार एक हो जायँगे।

आप इस तर्कपर भी ध्यान दीजिये कि आत्मा निराकार होता हुआ भी शरीरधारी हो जाता है। तब ईश्वर निराकार होकर भी शरीरधारी क्यों नहीं हो सकता?

आप श्रीकृष्णका प्राकट्य चाहे जेलखानेमें मानिये, चाहे यह मानिये कि वह जेलखाना कंसके महलका एक अंश था। चाहे यह मानिये कि देवकी-वसुदेव अपने ही घरमें नजरबन्द किये गये थे। कोई भी स्थान हो, यह निश्चित है कि देवकी-वसुदेव भोजेन्द्रके बन्धनमें थे—'**भोजेन्द्र बन्धने।**' उसी भोजेन्द्र कंसके बन्धनमें भगवान्का अवतार हुआ। मुक्तिमें भगवान्का अवतार नहीं हुआ, बन्धनमें अवतार हुआ। यही अवतारका प्रयोजन है। भगवान् मुक्त नहीं रहे, अपने भक्तके हाथों बँध गये—यशोदा मैयाने रस्सीसे बाँध लिया उनको—यही उनकी प्रशंसा है।

'विष्णुसहस्रनाम'में भगवान्का एक नाम है '**सत्कृतिः**'। श्रीशंकराचार्यजीने उसका अर्थ किया है कि सृष्टि-स्थिति-प्रलयरूप कृति जिनकी है, जिन्होंने संसार बनाया है और जो इसकी रक्षा करते हैं, इसका प्रलय करते हैं, उन भगवान्का नाम '**सत्कृतिः**' है।

किंतु श्रीवत्साङ्काचार्य कहते हैं कि सत्कृति क्या है? अजन्मा प्रभुका भक्ति-पराधीन होकर जन्म लेना। जो सबके स्वामी हैं, वे चोरी कर-करके लोगोंके मनको अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। जीवोंके शरीरपर जो पर्दा पड़ा है, उसके निवारणके लिये चीर-हरण करते हैं और नाचकर, गाकर, रिझाकर लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करते हैं। यही भगवान्की सत्कृति है।

इस तरहसे वे भगवान्की लीलाका अर्थ करते हुए लिखते हैं—

एका लीला भगवता बह्वर्थानां तु साधिका।

भगवान्की लीला तो एक होती है, किंतु उसके अभिप्राय अनेक निकलते हैं—जैसे ब्रह्माकी दृष्टिसे एक अभिप्राय, शिवकी दृष्टिसे एक अभिप्राय, व्यासकी दृष्टिसे एक अभिप्राय, शुकदेवकी दृष्टिसे एक अभिप्राय और परीक्षित्की दृष्टिसे एक अभिप्राय—ऐसी है भगवान्की लीला। जब हम उसको केवल अपनी बुद्धि और अपनी दृष्टिमें समेट लेना चाहते हैं, विपर्ययमें हमारा आग्रह हो जाता है—विपर्यय माने उलटी बुद्धि, उलटा ज्ञान, उलटी समझ और यह जिद कि ऐसा नहीं बिलकुल ऐसा ही है—तब लीलाके पीछे भगवान्की जो दृष्टि है, वह ओझल हो जाती है।

उदाहरणके तौरपर पूतनाको देखिये। '**पूतानपि नयति**'—जो पवित्रात्मा बच्चोंको भी उठाकर ले जाती है और विद्वानोंको भी भ्रममें डाल देती है, उसका नाम पूतना है। '**अविद्या पूतना प्रोक्ता**'—पूतना अविद्या है, अज्ञान है। भगवान् श्रीकृष्ण इस अविद्याका नाश करते हैं। पर यह तो हुई विद्वानोंकी दृष्टि। अब भक्तोंकी दृष्टि देखिये। पूतना जातिकी राक्षसी है, स्वभावकी घोर है, खून पीनेवाली है, बच्चोंको मारनेवाली है, कंसकी भेजी हुई है और श्रीकृष्णको मारनेकी नीयतसे उसने अपना स्तन पिलाया है। लेकिन उसके प्रति भगवान्की दृष्टि कैसी है? वे न तो उसकी जाति देखते हैं, न स्वभाव देखते हैं, न उसका भोजन देखते हैं, न उसके प्रेरकको देखते हैं, न उसकी क्रिया देखते हैं और न उसके विषयको देखते हैं। श्रीकृष्णको तो वह दीखती है माँ—केवल माँ!

गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातुकी गति दई ताहि कृपालु जादवराइ॥

गोस्वामी तुलसीदासजी पूतनाके प्रसंगमें देखते हैं भगवान्का स्वभाव, भगवान्की करुणा। भगवान्की आँखोंमें उसका दोष नहीं दीखता है, उसके हृदयमें जो प्रीति है, वह दीखती है। भगवान्को दीखती है कि पूतनाके रूपमें माँ दूध पिलाने आयी है।

इस प्रकार एक ही लीलाका—एक हुआ आध्यात्मिक दृष्टिसे अविद्याका वर्णन, दूसरा हुआ भगवान्के स्वभावका वर्णन और तीसरा हुआ यह वर्णन कि जब पूतनाके दूधपर भगवान्ने इतनी कृपा की कि उसको माताकी गति दे दी तो वे जिन गायोंके थनमें अपना मुँह लगाकर दूध पीते हैं, उनको क्या देंगे? जो ग्वालिनें गोदमें लेकर अपनी छातीसे सटाकर उनको दूध पिलाती हैं, उन ग्वालिनोंको वे क्या देंगे? भई, यशोदा मैयाको तो रखो अलग। उसका अर्थ क्या

हुआ? देवकी माँ कभी श्रीकृष्णको ब्रह्मरूपमें देखती थीं और कभी पुत्र रूपमें देखती थीं। दक्षिणमें जो तमिल भाषाका भागवत है, उसमें तो ऐसा आता है कि श्रीकृष्ण एक रूपसे तो देवकीके पास ही रहे। वे ग्यारह वर्षोंतक छिपकर रोज देवकी मैयाका दूध पीते थे और देवकी उनको सँवारती थीं, सजाती थीं। यदि श्रीकृष्ण उनके पास नहीं रहते तो देवकी मर जातीं। लेकिन आप यह देखिये कि भगवान् यशोदा मैयाके पेटसे पैदा हुए कि नहीं हुए—इसमें मतभेद है। वल्लभ-सम्प्रदाय और चैतन्य-सम्प्रदाय दोनोंमें यह माना जाता है कि यशोदा मैयाके पेटसे भी श्रीकृष्णका जन्म हुआ था। परंतु श्रीधरस्वामी और दूसरे आचार्य मानते हैं कि ऐसा नहीं है, यह तो यशोदा मैयाका भाव था। उनको यह शंका ही नहीं थी कि उनका बेटा उनके पेटसे पैदा हुआ है कि नहीं हुआ। उनको तो यही मालूम था कि यह उन्हींके पेटका बालक है और इसीके अनुसार उनका भगवान्के प्रति वात्सल्य-भाव था।' इस वात्सल्य-भावकी कितनी महिमा है—इसको जाननेके लिये पूतनाकी गति देखो, गायोंकी गति देखो, ग्वालिनोंकी गति देखो और यशोदा मैयाकी ओर देखो। भगवान् तो सदा-सदाके लिये यशोदा मैयाके ऋणी हैं, जिन्होंने इतने प्रेमसे उनको अपना दूध पिलाया। उनका इतना वर्णन क्यों है? इसीलिये है कि दूसरा कोई भी यदि भगवान्के साथ मातृभावसे सम्बन्ध जोड़े, मित्रभावसे सम्बन्ध जोड़े, पतिभावसे सम्बन्ध जोड़े, तो उसके अपने कर्तृत्वके बलपर नहीं, क्रियाके बलपर नहीं, उपासनाके बलपर नहीं, केवल भगवान्की कृपाके बलपर—भगवान्की करुणाके बलपर उसका मङ्गल हो जाता है। यह भगवान्का बल है कि वह भगवान्का पूज्य हो जाता है। इतना ही नहीं, ऋणी हो जाते हैं भगवान् उसके और ऋणी नहीं, वह भगवान्को बाँध भी सकता है रस्सीमें। भक्तिकी ऐसी महिमाका प्राकट्य और कहाँ है? देखनेमें पूतनाकी कहानीमें अध्यात्म-भाव भी है, अधिदैव-भाव भी है, अधिभूत-भाव भी है, परंतु भगवान्ने उसके साथ जो लीला की, वह भक्तोंको एक महती प्रेरणा दे जाती हैं।

जिनका सब कुछ भगवान्के लिये है और जिन्होंने अपना सब कुछ भगवान्को माना, उनके सम्बन्धमें, भावमें कितनी प्रगाढ़ता है, कितनी भगवन्मयता है—यह एक दृष्टिकोण है, जिसपर आपको ध्यान देना है।

भगवान्की सब लीलाओंका वर्णन करना कहाँतक सम्भव है। फिर भी स्थाली-पुलाक-न्यायसे केवल एक चावलको पका देखकर जैसे पूरा चावल पका समझ लिया जाता है, वैसे ही यदि आप भगवान्की किसी एक लीलापर दृष्टि डालें तो सभी लीलाओंके बारेमें विचार करनेकी प्रेरक विधि प्राप्त हो जाती है। ध्यान कीजिये आपके सामने श्रीकृष्ण एक छोटे-से बालकके रूपमें हैं, मुष्टिमेय कटि है—माने मुट्ठीमें आ जाय इतनी कमर है उनकी, करधनी बँधी हुई है, पाँवोंमें नूपुर हैं, हाथोंमें कँगन हैं, गलेमें बघनखा है, सिरपर तिलक है, सुन्दर बाल हैं और अपनी मुस्कानसे, चितवनसे, हमारे मनको अपनी ओर खींच रहे हैं। क्या इस ध्यानसे आपको आनन्द नहीं आ रहा है?

अरे बाबा, जो छोटा-सा दीखता है वही सबसे बड़ा होता है—'**वामनोह विष्णुरास**' (शतपथब्राह्मण १। २। ५। ५)। यशोदा मैयाने दो बार श्रीकृष्णके मुँहमें सम्पूर्ण विश्वको देखा। उनके सामने तो उनकी छातीका दूध पीनेवाला नन्हा-सा बालक था, जिसके लिये वात्सल्य रक्तको दूध बनाता है। पिताके प्रेममें वह शक्ति नहीं, भाईके प्रेममें वह शक्ति नहीं, बहनके प्रेममें वह शक्ति नहीं, जो शरीरके रक्तको दूधमें परिणत कर दे। यह तो वात्सल्यकी ही, स्नेहकी ही असीम शक्ति है, अमूर्त भाव है, निराकार भाव है कि वह दूधके रूपमें साकार होकर आता है।

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत् स्थास्नु च खं दिशः।

(श्रीमद्भा० १०। ८। ३७)

माँ बच्चेको दूध पिलाती है और बच्चेको बच्चा समझती है, किंतु यह नहीं मानती कि वह सम्पूर्ण विश्वको दूध पिला रही है। माँ कितनी पूर्णतासे, कितनी एकाग्रतासे, कितनी भावनासे अपने बच्चेका पालन-पोषण करती है और उसका वह पालन-पोषण भगवान्के दर्शनका कितना छोटा-सा आलम्बन है। कितना बड़ा भगवान् और उसके दर्शनका कितना छोटा आलम्बन। छान्दोग्योपनिषद्में तो दृष्टान्त है कि एक बड़का बीज ले आओ। उस बीजका जो छोटा-सा दाना है, उसको देखो। तोड़कर देख लो उसमें क्या है? कुछ नहीं है। परंतु इसी छोटे-से बीजमें वह वट-वृक्ष छिपा हुआ है, जिसमें हर साल अरबों दाने पैदा होंगे और उन दानोंमें अरबों वृक्षोंके उत्पादनकी क्षमता होगी।

अब आप एक भक्तिका प्रसंग लीजिये। धरा और वसुप्रवर द्रोणको देखिये। वहाँ भी पृथ्वी और अन्न दोनों हैं। वसुप्रवर द्रोण और धरा पृथ्वी। उसमें क्या छिपा है? प्रजापति ब्रह्माके आशीर्वादसे भगवान् अपुत्र होनेपर भी पुत्र हो गये। इसकी एक कथा है—प्रजापति ब्रह्माके आशीर्वादसे वसुप्रवर द्रोण और धरा ही नन्द-यशोदारूपमें अवतरित हुए थे। वसुप्रवर द्रोण और धराने ब्रह्माजीसे यह वरदान माँगा था कि हम जब भी जन्म लें, तब भगवान्‌में हमारी पराभक्ति हो। प्रजापति ब्रह्माने तथास्तु कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसीके फलस्वरूप नन्द एवं यशोदाको भगवान् श्रीकृष्ण पुत्ररूपमें प्राप्त हुए—

'ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने।'

(श्रीमद्भा० १०। ८। ५१)

भगवान् जब अपुत्र होनेपर भी पुत्र हो गये, तब यशोदा माताका कितना प्रेम बढ़ा उनके प्रति। वे श्रीकृष्णका लालन-पालन स्वयं करती हैं दासियोंपर नहीं छोड़तीं। आजकलकी माताएँ अपने पुत्रको दासियोंके सहारे छोड़ देती हैं, उनको देखकर कहना पड़ता है कि *'तेरो कठिन हियो री माई!'*

अब पुनः स्नेहका एक दृश्य देखिये। एक बार यशोदा मैयाने दासियोंको हटा दिया। अपने हाथसे दही मथने लगीं और अपने प्यारे पुत्रके बाल-चरित्रका स्मरण करने लगीं। यह उनका नित्य-कर्म है। कर्म भी उसके लिये, स्मरण भी उसके लिये और संगीत भी—वचन भी उसके लिये। सब कुछ उसके लिये। जब यशोदाजी दहीका मन्थन कर रही थीं तब श्रीकृष्ण वहाँ स्वयं आ गये। यदि कोई मनसे, वचनसे, कर्मसे अपने कर्तव्यमें तन्मय है तो उसको भगवान्‌के पास जाना नहीं पड़ता, भगवान् स्वयं उसके पास आ जाते हैं। केवल आते ही नहीं, दूध पीनेके लिये रोने भी लगते हैं। निष्काम भगवान्‌के मनमें अपने भक्तका दूध पीनेकी कामना हो जाती है। यही भक्तिकी महिमा है। वह अपुत्रको भी पुत्र बना देती है, निष्कामको भी सकाम बना देती है, नित्य तृप्तको अतृप्त बना देती है, निर्ममर्में भी ममता जगा देती है, शान्तमें भी क्रोध उत्पन्न कर देती है, सबके मालिकको भी चोर बना देती है और निर्बन्धको भी बन्धनोंमें बाँध देती है। भगवान् ऐसे हैं, जो अपने भक्त और भक्तिके पासमें आबद्ध हो जाते हैं, रस्सीसे बँध जाते हैं—

दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने॥

(श्रीमद्भा० १०। ९। १८)

मैयाका नाम यशोदा क्यों पड़ा? इसलिये पड़ा कि उसने भगवान्‌को यश दिया—**'यशांसि ददाति'**। अच्छा, माताने क्या यश दिया? यह दिया कि उनको सगुण बना दिया, बाँध दिया। होंगे ब्रह्म निर्गुण, जिनको रस्सी नहीं लगती होगी। गुण माने रस्सी, निर्गुण माने जिसको रस्सी न लगे। इसलिये वे निर्गुण होनेके कारण कभी बन्धनमें नहीं आते होंगे; लेकिन प्रेम ऐसा है कि वह निर्गुण भगवान्‌को भी बाँधकर रख देता है।

ब़न्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत्।
दारुभेदनिपुणोऽपि षडंघ्रिर्निष्क्रियो भवति पङ्कजकोशे॥

देखो, दुनियामें बन्धन बहुत हैं, रस्सियाँ बहुत हैं, परंतु प्रेमकी रस्सी दूसरी चीज होती है। जो भौंरा सूखे काठमें छेद करके घर बना लेता है, वही भौंरा जब कोमल पंखुड़ियोंमें कैद होता है तब उसकी वह क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। भगवान् ऐसे कृपालु हैं कि कभी डरते भी हैं, कभी रोते भी हैं, कभी भागते भी हैं, कभी पकड़े भी जाते हैं और कभी बँध भी जाते हैं। इसलिये भजन करने योग्य तो यही भगवान् हैं। यह देखो भक्तिकी महिमा कि माता यशोदा उनको यश देती हैं। उन्होंने नित्यमुक्तको बाँधकर भक्तिकी महिमा दिखा दी और भगवान्‌ने ऐसी करुणा की कि नित्यमुक्त होनेपर भी बँध गये।

अब देखो वेदान्तकी बात। भगवान्‌में न बन्धन है और न मुक्ति है। मैयाने बन्धनका आरोप किया और पिताने बन्धनका अपवाद कर दिया। उसका अर्थ हुआ कि मेरे शरीरमें तो बन्धन नहीं है, मैयाने लगाये हैं। यह माताका दृष्टिकोण है, प्रमाताका दृष्टिकोण है, जो बन्धन लगाता है। परंतु आनन्दस्वरूप परमैश्वर्यशाली ज्ञानका, आनन्दका, परम समृद्धिका यह दृष्टिकोण है कि भगवान्‌में बन्धन नहीं है।

अब आपको एक तत्त्व-दृष्टिकी लीला सुनाता हूँ। आपने सुना होगा कि ब्रह्माजीने जब अघासुरकी मुक्ति देखी, तब उनको यह आश्चर्य हो गया कि पापकी मुक्ति नहीं, पापकी मुक्ति कैसे हो गयी? वह असुर सीधे-सादे बछड़ोंको भी निगल लेता था तथा उसने भगवान्‌को भी निगलना चाहा, परंतु वह भगवान्‌के स्वरूपसे परिचित नहीं

था। इसलिये उसका जो बाहरी चोला था, वह रह गया ज्यों-का-त्यों और उसकी आत्म-ज्योति श्रीकृष्णकी आत्म-ज्योतिसे एक हो गयी। ब्रह्माको इसलिये आश्चर्य हुआ कि वे विधि-विधानके चक्करमें रहते हैं। विधि-विधानके बारेमें बाहर कुछ देख ही नहीं पाते, क्योंकि उनमें तत्त्व-दृष्टि नहीं है। विधि शब्दका अर्थ ब्रह्मा भी है। जब उन्होंने अपने विधि-विधानके चक्करमें हरी-हरी घासके लोभमें फँसे हुए बछड़ों और बछड़ोंकी चिन्तामें लगे हुए ग्वाल-बालोंका हरण कर लिया; तब क्या हुआ?

सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसावजगाम ह॥

(श्रीमद्भा० १०। १३। १७)

श्रीकृष्ण उन सभी अपहृत बछड़ों, ग्वाल-बालों, उनके छड़ी-छीकों, भोज्य पदार्थों और वस्त्रादि परिधानोंके रूपमें प्रकट हो गये। उन सबको अपने नाम मालूम थे, अपने बछड़ोंकी पहचान मालूम थी, अपने माँ-बाप मालूम थे। यह देखकर ब्रह्माके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। उनको सबसे अधिक आश्चर्य यह हुआ कि जब मैं सृष्टि बनाता हूँ, तब पञ्चभूत मेरे सामने होते हैं। अलग-अलग जीव होते हैं, उनके अन्तःकरण होते हैं और उनकी कर्म-वासना होती है। उनकी विद्या, उनके कर्म, उनकी पूर्व प्रज्ञा अलग-अलग होती है। उसके बाद मैं पुर्जोको जोड़कर सृष्टि बनाता हूँ। यहाँ न तो अलग-अलग जीव हैं, न उनके अलग-अलग अन्तःकरण हैं, न उनकी कोई कर्म-वासना है, न उपासना है, न विद्या है, न पञ्चभूत है। तब यह सब क्या है? क्या, भान-मूर्तियाँ हैं? यहाँ देखनेकी बात यह है कि श्लोकमें '**बभूव**' नहीं है, '**बभौ**' है—

यावद् वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत् कराङ्घ्र्यादिकं
यावद् यष्टिविषाणवेणुदलशिग् यावद् विभूषाम्बरम्।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद् विहारादिकं
सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ॥

(श्रीमद्भा० १०। १३। १९)

अन्तमें जब ब्रह्माजीकी आँखें खुलीं और उनका मोह-भंग हुआ, तब उन्होंने देखा कि ये सब अलग-अलग दिखायी देनेवाले अनेक नहीं हैं, एक ही हैं।

यह श्रीमद्भागवतके तत्त्वनिरूपणकी शैली है। जैसे सूर्यमें दिन-रातका भेद नहीं होता, वैसे ही ब्रह्ममें जीव-जगत्‌का भेद नहीं होता। यह तत्त्व-दृष्टि है।

अब आपको मैं एक व्यवहारकी बात सुनाता हूँ। ऐसे तो यह भी भगवान्‌की लीलाका एक नमूना है। श्रीमद्भागवतमें स्पष्ट लिखा है—'**यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया**' (श्रीमद्भा० १०। २६। ३) अर्थात् सात वर्षके बालकने गोवर्धनको उठा लिया अपनी अँगुलीपर। यह अद्भुत लीला थी उस बालककी। श्रीमद्भागवतमें यह भी लिखा है कि जन्म-दिनसे ले करके कुल ग्यारह वर्षोंतक श्रीकृष्ण व्रजमें रहे। बारहवें वर्ष मथुरा चले गये। जो लोग यह बात नहीं जानते उन्हींके मनमें रासलीला आदि प्रसंगोंको लेकर शंकाएँ होती हैं।

अब बालक श्रीकृष्णका व्यवहार-ज्ञान देखो। पहले इन्द्र देवताकी पूजा होती थी। श्रीजीवगोस्वामीने इसका बहुत विश्लेषण किया है, अनुसन्धान किया है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको इन्द्रकी पूजा होनी थी। उसको श्रीकृष्णने बंद करवा दिया। उस समय श्रीकृष्ण सात वर्षके थे।

जब इन्द्रकी पूजाका समय आया तब श्रीकृष्णने नन्दबाबासे पूछा कि बाबा, आपने इन्द्रको देखा है? बाबाने कहा नहीं देखा है। श्रीकृष्णने कहा कि जब पूजा करते इतने दिन हो गये और अभीतक आपने इन्द्रको देखा ही नहीं, तब उसकी पूजा क्यों करते हैं? दृश्यकी पूजा कीजिये। स्वर्गके देवता इन्द्रकी पूजा मत करें। अपने व्रजमें पत्थरका जो गोवर्धन पर्वत है, उसकी पूजा करें। अपनी नजरको स्वर्गपरसे धरतीपर ले आयें। स्वर्गको देखते-देखते धरतीको मत भुला दें। हमारे पास न कोई नगर है, न कटरा है, न गाँव है, न घर है—

न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम्।
नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः॥

(श्रीमद्भा० १०। २४। २४)

हम तो वनवासी हैं। वन और पहाड़में रहनेवाले हैं। हमें इस धरतीको भूल नहीं जाना चाहिये। जो आसमानकी ओर आँख करके खसूचि बनकर धरतीपर चलता है, उसको ठोकर लगती है, वह गिर पड़ता है। इसलिये स्वर्गके देवतासे बड़ी पूजा है इस मर्त्यलोक की।

अन्तमें गोवर्धनकी पूजा हुई। इन्द्र देवता कुपित हुए। उन्होंने व्रजको भारी संकटमें डाल दिया। परंतु श्रीकृष्णने सबको बचा लिया। उस दृश्यको देखकर भी ग्वाल-बालोंके मनमें श्रीकृष्णके प्रति कोई ऐश्वर्यका भाव नहीं आया। इस सम्बन्धमें श्रीरूपगोस्वामीजीका एक श्लोक है।

जिसमें ग्वाल-बाल कहते हैं कि अरे कन्हैया! सात रातें बीत गयीं। तुमने नींद नहीं ली। तुम्हारा हाथ सिरसे ऊपर उठा हुआ है। तुम थक गये हो। तुम्हारी थकावट देखकर हमारे हृदयमें बड़ी पीडा हो रही है। आओ, आओ श्रीदामाके हाथमें दे दो यह पर्वत अथवा इसको अपने दाहिने हाथमें ले लो। हम तुम्हारे बाँयें हाथका थोड़ा संवाहन कर देंगे।

इस प्रकार ग्वाल-बालोंके मनमें श्रीकृष्णके प्रति कहीं ऐश्वर्य-दृष्टि है ही नहीं। ऐसा है हमारा लौकिक कृष्ण और उसका क्रान्तिकारी दृष्टिकोण। वह स्वर्गके देवताकी अपेक्षा मर्त्यलोकके वनकी, पर्वतकी अथवा इनके उपलक्षण वनवासी, पर्वतवासीको अधिक महत्त्व देता है। वह इन्द्रसे अधिक आदर गायोंका करता है, गाय चरानेवालोंका करता है, गायोंको घास-चारा-पानी देनेवालोंका करता है। यह है उसकी गोवर्धन-धारण-लीलाका रहस्य। मैंने यह बात आपको बिलकुल लौकिक दृष्टिसे सुनायी है।

अब आप श्रीकृष्णकी रासलीलापर एक नजर डालें। उनके सातवें वर्षमें जो गोवर्धन-पूजन हुआ और इन्द्रके प्रकोपके कारण सात दिनतक गोवर्धन-धारण करना पड़ा, उसमें शरद् ऋतु बीत गयी। उसके बाद ग्यारह वर्षकी उम्रतक श्रीकृष्णने जो बाल-लीला की, उसे आप किस अर्थमें ग्रहण करना चाहते हैं? आपसमें खेलते समय बालकोंमें कोई स्त्री बनता है, कोई पुरुष बनता है, कोई मूँछ बना लेता है, कोई डण्डा हाथमें ले लेता है और कोई बूढ़ा बनकर चलता है, कोई युवा बनकर लीला कर रहा है और कोई बालिका युवती बनकर लीला कर रही है—ऐसे ही अनेक प्रकारकी लीलाएँ होती हैं, उनका वर्णन असम्भव है। बात-बातमें तो यह बालक है, यह नाटक है, ऐसा वर्णन नहीं किया जा सकेगा। यदि ऐसा कहा जायगा तो उसमें सर्वथा रस-भंग हो जायगा। उसमें तो रसपरिपाकके लिये इतनी तन्मयता चाहिये कि पाँच हजार वर्ष पहले हुई वह लीला परोक्ष न रह जाय अथवा प्रत्यक्ष नाटक भी न बन जाय। जो लोग काव्यमें परोक्ष रस मानते हैं, उनको मीमांसक बोलते हैं और जो अपरोक्ष रस मानते हैं, उनका ऐसा मानना होता है कि हमारे हृदयमें रंगमञ्च है और वहाँ लीला हो रही है। यह अपरोक्ष रस अभिनवगुप्तके मतानुसार है। शंकुक आदि बड़े-बड़े आचार्योंने रसको परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष माना है, किंतु अभिनवगुप्त रसको अपरोक्ष मानते हैं। श्रीमधुसूदन सरस्वतीका कहना है कि जबतक स्थायी-भावावच्छिन्न चैतन्यका आलम्ब-भावावच्छिन्न चैतन्यसे एकता नहीं होगी, तबतक रसानुभूति नहीं हो सकती। आप गोपीसे एक हो जाइये, कृष्णसे एक हो जाइये और फिर गोपी-कृष्ण बनकर नाचिये, तब देखिये रसका कैसा आविर्भाव होता है। इस प्रकार रसानुभूतिकी चार प्रणालियाँ हुईं—परोक्ष रस, प्रत्यक्ष रस, अपरोक्ष रस और तादात्म्य रस—एकत्व रस। यही रासलीला है—

अङ्गनामङ्गनामन्तरेमाधवोमाधवंमाधवं चान्तरेणाङ्गना।
इत्थमाकल्पितेमण्डलेमध्यगः संजगौवेणुना देवकीनन्दनः॥

(श्रीकृष्णकर्णामृत २। ३५)

रासलीला क्या है? '**रस एव रासः, रसानां समूहो रासः, रसो वै सः। रसꣳह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति**'—यही भगवान्की आनन्द-प्रधान लीला है, जो जीवको विषय-रससे विमुख करके पूर्ण रसमें, नित्य रसमें निमग्न करती है।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित रासलीलाके पहले श्रीकृष्ण और गोपियोंमें शास्त्रार्थ हुआ। श्रीकृष्णने पूर्व-मीमांसाका पक्ष लेकर कहा कि तुम लोग घर लौट जाओ। वहाँ अपने धर्मका पालन करो। लेकिन गोपियोंने उत्तर मीमांसाका पक्ष लिया और कहा—

यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्।

(जाबालोपनिषद् ४)

इस प्रकार पूर्व पक्ष और उत्तर पक्षमें शास्त्रार्थ हुआ। संत कवि सूरदास और नन्ददासने भी उद्धव और गोपियोंका शास्त्रार्थ करवाया। नन्ददास कहते हैं—

कहाँ ब्रह्म की ज्योति ज्ञान कासों कहो ऊधौ।
हमरे तो सुन्दर श्याम प्रेम को मारो मूधौ॥

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण और गोपियोंका शास्त्रार्थ है। उसमें श्रीकृष्ण हार गये हैं। हारनेवालेके प्रति हरानेवालेके हृदयमें प्रेमका उदय होता है और प्रेममें जो जीत जाता है, उसके प्रति एक स्पर्द्धा बनती है कि उसको कभी-न-कभी हराकर छोड़ेंगे। भक्ति-सिद्धान्त अपनेको छोटा बनाकर भगवान्से एक हो जाता है। किसीका प्रेम प्राप्त करना हो तो वाद-विवादमें उसको पराजित मत करो। जब वह और हम एक हो जायँगे तो हमारा सिद्धान्त उसमें और उसका सिद्धान्त हममें अपने-आप ही संचरित हो जायगा। उसमें वाद-विवादकी कोई आवश्यकता नहीं है।

रासलीलामें जीवोंका कितना बड़ा पक्ष लिया गया है, आप इसपर ध्यान दें। संसारमें अधिकांश जीव भगवान्‌के वियोगमें जी रहे हैं। ऐसे कुछ ही भगवत्कृपा-पात्र भावुक भक्त हैं, जो भगवान्‌के संयोगका भी अनुभव करते हैं। संयोग और वियोग दोनों ही प्रेमके विभाग हैं और एक दूसरेके सहयोगी हैं।

न बिना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।

जबतक वियोगकी पीडा न होगी, तबतक संयोगके सुखका अनुभव नहीं होगा। जिसको प्यास नहीं है, वह पानीका स्वाद नहीं जान सकता। हमारे महापुरुषोंने वियोगके बारेमें बताया है कि वह तापक भी है और प्रकाशक भी है। जब किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्तिका वियोग होता है तब उसमें क्या-क्या गुण हैं, क्या-क्या विशेष हैं और उसका कैसा स्वभाव है—इसका चिन्तन होने लगता है। वियोगसे बिछुड़े हुए व्यक्तिके स्वरूपका प्रकाश होता है। उसके द्वारा जो ताप होता है, वह हमारे हृदयको पिघला देता है और संसारमें जो पकड़ है, कठोरता है उसको वह मिटा देता है। श्रीमद्भागवतके रासपञ्चाध्यायीमें संयोग और वियोग, विप्रलम्भ और सम्भोग दोनों शृंगारोंका वर्णन करके रसका ऐसा परिपाक कर दिया गया है कि वहाँ तो काम है नहीं, विकार है नहीं। रासलीलाके समय रतिपति कामदेवजी आये थे। श्रीकृष्णने कहा कि **'उत्तम्भय'** ठहर जा बेटा आसमानमें। कामदेव स्तब्ध हो गया श्रीकृष्णकी लीला सुनकर, देखकर। जो काम हम कर सकते हैं, उससे अधिक महत्त्वपूर्ण और आश्चर्ययुक्त कर्म जब दीखता है तब अपने-आप ही स्तम्भका उदय हो जाता है। आपने रासलीलामें पढ़ा होगा—

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि-
र्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। १७)

जिस प्रकार कोई बालक शीशेमें पड़े हुए अपने प्रतिबिम्बको सच्चा समझकर उसके साथ खेलता है, इसी प्रकार श्रीकृष्णका यह एक खेल है, एक क्रीडा है। उनको अपने स्वरूपका ज्ञान हो गया हो, दूसरेके स्वरूपमें सत्यता हो गयी हो और वे भ्रान्त हो गये हों—ऐसा नहीं है। वहाँ तो कामका लेश भी नहीं है। बल्कि जो उस लीलाका श्रवण-वर्णन करते हैं, उनकी काम-वासना निवृत्त हो जाती है—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। ४०)

नाट्यशास्त्रमें इस रसका वर्णन ऐसे आता है कि एक नट हो और अनेक नटिनियाँ हों। वहाँ नट इतनी त्वरासे अपनेको नचाता है कि सभी नटिनियोंको यह प्रतीत होता है कि यह हमारी ओर ही देख रहा है, हमारे साथ ही नाच रहा है। इसीको नाट्यशास्त्रमें हल्लीशक नृत्य कहते हैं। गान्धर्व वेदका जो लौकिक आनन्द है, नृत्य है, संगीत है, वाद्य है, अभिनय है, वह श्रीकृष्णके जीवनमें लौकिक, पारलौकिक दोनों ही दृष्टियोंसे पूर्ण प्रकट है। क्या यह बात आपके ध्यानमें नहीं आती, इस बातपर आपकी दृष्टि नहीं जाती कि बारह वर्षके श्रीकृष्ण जब व्रजसे मथुरा जाते हैं तब फिर लौटकर नहीं आते। इस भक्ति-भावनाकी बात दूसरी है कि श्रीकृष्ण वृन्दावन छोड़कर कहीं नहीं जाते। यह तो भावुकोंकी भावना है और उस भावनासे उनको आनन्द आता है, रस आता है, वह तो होना ही चाहिये। परंतु यह भी तो देखिये कि मथुरा जाकर फिर कभी वृन्दावनकी ओर मुख नहीं करना कम महत्त्वपूर्ण बात है। क्या इसमें असंगता और वैराग्यका प्रकाश नहीं है श्रीकृष्णके जीवनमें? क्या भगवान्‌का स्वरूप केवल राग ही है कि नाचें और गायें? क्या वैराग्य उनका स्वरूप नहीं है?

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

(विष्णुपु० ६। ५। ७४)

यदि गोवर्धन उठानेमें ऐश्वर्य है, यदि प्रातःकाल उठकर धर्मानुष्ठान करनेमें धर्म है, यदि आजतक उनका यश विश्वसृष्टिमें व्याप्त हो रहा है, यदि रुक्मिणी, लक्ष्मी उनकी पत्नी हैं और यदि उनके पास उद्धव एवं अर्जुनको उपदेश करनेवाला ज्ञान है तो जरा यह भी देखिये कि उनको वैराग्य कितना है? इतने बड़े-बड़े प्रेमियोंको असंग-भावसे छोड़कर एकाएक चले जाना—यह क्या उनकी भगवत्ता नहीं? क्या आप ऐसा समझते हैं कि जैसे स्त्री-पुरुष आपसमें आसक्त होकर और बातोंको भूल जाते हैं, वैसे ही

भगवान् भी अपनेसे सम्बन्धित जनोंमें आसक्त होकर अपनी भगवत्ताको हमेशाके लिये लुप्त कर दें? नहीं यदि भगवान्में राग है तो वैराग्य भी है।

असलमें जब भगवान्की असंगतापरसे दृष्टि हट जाती है तभी भ्रम होता है। फिर हटती क्यों है? फिरकापरस्त हो जानेसे, एक पन्थकी सीमामें बँध जानेसे। जब हम पन्थके गन्तव्यको देख नहीं पाते और मार्गमें पड़नेवाली सरायको, धर्मशालाको सब कुछ मानकर वहाँ बँध जाते हैं, तब परमार्थ-यथार्थका दर्शन अथवा साक्षात्कार नहीं हो पाता। अरे भई! अमेरिकाके लोग भारतीय संविधानका पालन क्यों करें और भारतके लोग अमेरिकन संविधानका पालन क्यों करें? आपकी दृष्टिमें जो गुण-दोष हैं,उनके तराजूपर जब श्रीकृष्णको तौलनेके लिये चलते हैं, तब आपकी बुद्धि बिलकुल फेल हो जाती है और आपके तराजूपर भगवान् तौले नहीं जाते। यह तो जो निर्विकार परमात्माका साक्षात्कार करके स्वयं निर्विकारसे एक हो गये हैं, उनकी वस्तु है। जब हम किसी एक पन्थमें दुराग्रह करके, राहु-केतु-शनिश्चर-रूप दुराग्रहसे गृहीत होकर भगवान्की लीलाका चिन्तन करते हैं; तब उसमें हमको कहीं दोष मालूम पड़ता है और कहीं हम अपनी वासनाके अनुसार उसीको रंग देते हैं। इसलिये परमात्माकी निर्विकारताको ध्यानमें रखकर इसपर विचार करो और फिर देखो कि उसका लीला-रहस्य कितना गूढ है।

निर्विकार परमात्माकी निर्विकार लीला निर्विकार अन्तःकरणसे ही समझमें आती है। श्रीमद्भागवत सविकार अन्तःकरणको निर्विकार बना देता है।

श्रीमद्भागवतमें वर्णन आता है कि जब श्रीकृष्ण द्वारकामें कहींसे लौटकर आते तो किसीकी ओर सिर झुकाकर, किसीको हाथ जोड़कर और किसीका पाँव छूकर प्रणाम करते, किसीको मुसकराकर देख लेते। लेकिन जो गरीब लोग थे, उनसे एक-एक करके मिलते और पूछते कि आपको क्या कष्ट है? फिर उनको जो चाहिये था, उसकी व्यवस्था करके नगरमें प्रवेश करते। आप अमेरिकाके पूँजीवादको मत देखिये, रूसके साम्यवादको मत देखिये, देखिये अपने ही देशमें आजसे पाँच हजार वर्ष पहलेकी बात और वह भी लौकिक दृष्टिसे। श्रीकृष्णके जीवनमें लौकिक ज्ञान भी है, लौकिक सुख भी है। वे नृत्य, गीत, वाद्य, अभिनय आदि सब कलाओंमें निपुण हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, स्थापत्य-वेदमें पारंगत हैं। इसलिये एकाङ्गी सृष्टि नहीं होनी चाहिये। आप अगर सबको पालकके पत्तेका रस ही पिलाओगे तो फौजमें कौन जायगा और वहाँ जाकर क्या करेगा? यदि आप सबको अल्पाहारी बना दोगे तो वाणीमें वेदोच्चारण करनेका जो सामर्थ्य है, कहाँसे आयेगा? जब हम बिलकुल एकाङ्गी दृष्टिकोणसे सोचने लगते हैं तब हमारे महापुरुषोंके, श्रीकृष्णके जो चरित्र हैं, वे अच्छी तरह समझमें नहीं आते।

अब आप प्रतीकार्थोंके द्वारा श्रीकृष्णके चरित्रपर विचार कीजिये। भीष्मक समुद्र कितना बड़ा भयंकर होता है। उसमें-से निकला विष, विष माने रुक्मी। समुद्रमेंसे निकलनेवाली मुद्राएँ हैं लक्ष्मी-रुक्मिणी। शक्ति—सूर्यकी शक्ति सत्यभामा हैं। उन्हें सूर्यने ही दिया था सत्राजितको। इसलिये श्रीकृष्णमें सूर्य-शक्तिका उपयोग है कि नहीं? समुद्रकी मुद्राका उपयोग है कि नहीं? ब्राह्मी शक्ति है जाम्बवती। ब्राह्मी शक्ति माने प्रजनन-शक्ति। ब्रह्माके अवतार थे जाम्बवान्। रामावतारकी कथामें आप यह देखते हैं कि कौन देवता क्या हुआ?

मनुष्यमें प्रजनन-शक्ति भी चाहिये, ताप और प्रकाशकी शक्ति भी चाहिये, सम्पदाकी शक्ति भी चाहिये और बुद्धिमें जो उलझनें होती हैं, राग-द्वेष-अभिनिवेश आदि होते हैं, इनको दूर करनेकी शक्ति भी होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त सौम्य चन्द्रमाकी जो सौम्य रश्मियाँ हैं, सोलह कलाएँ हैं—पुरुषमें भी सोलह कला,मनमें भी सोलह कला और एक-एक कलाकी जो सहस्र रश्मियाँ हैं—आह्लादिनी, प्रकाशिनी, जीवनी आदि वे सब मनुष्यमें होनी चाहिये। चन्द्रमामें पेड़-पौधों और औषधियोंको जीवन देनेवाली शक्ति है, प्रकाशिनी शक्ति है और आह्लादिनी शक्ति भी है। उन सबको सहस्र-सहस्ररूपमें प्रकट करके जीवनके लिये जो परमावश्यक तत्त्व है, उसको चन्द्रमा प्रकट करते हैं। श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्ण बताते हैं कि हमारे जीवनमें इन सब जीवन-रश्मियोंका, आनन्द-रश्मियोंका, ज्ञान-रश्मियोंका विकास होना चाहिये।

* * *

श्रीअयोध्या-माहात्म्य

श्रीलक्ष्मणजीद्वारा श्रीअवधलीलानुभूति

(जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी श्रीश्यामनारायणाचार्यजी महाराज)

विराट् पुरुष भगवान्‌का श्रीअवन्तिकापुरी चरण, श्रीद्वारकापुरी नाभि, वाराणसी नासिका तथा मथुरा ग्रीवा माना गया है। उसी प्रकार विराट् पुरुषका मस्तक श्रीअयोध्यापुरी माना गया है।

शरीरका वैसे तो प्रत्येक अङ्ग अपनी-अपनी जगहपर श्रेष्ठ है; फिर भी शरीरका सबसे मुख्य अङ्ग मस्तक माना गया है। सम्पूर्ण शरीरकी बाह्य या आभ्यन्तर क्रियाका निर्देशन मस्तकके अंदर समाहित मन-बुद्धिके द्वारा होता है। जो मन संकल्प करता है; बुद्धि उसका निश्चय कर देती है। ठीक इसी तरह अयोध्यापुरी भगवान्‌का मस्तक है। सृष्टिके प्रधान कर्णधार श्रीमनु-शतरूपा, इक्ष्वाकु रुक्मांगद, दिलीप, रघु, हरिश्चन्द्र आदि प्रतापशाली राजाओंने इसी अयोध्यामें रहकर सृष्टिकी बागडोर सँभाला था।

उदयाचलसे अस्ताचल तक राज्य करनेका सौभाग्य श्रीअयोध्याके नरेशोंको प्राप्त था। यहाँतक कि साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीरामने भी इसी अयोध्यामें अवतार लेकर अपनेको गौरवान्वित समझा। श्रीअयोध्याकी महिमा सभी शास्त्र-पुराणोंमें वर्णित है। इसका मुख्य कारण है कि साक्षात् परमात्मा श्रीरामने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके मानव-समाजको मर्यादाका उपदेश दिया है। इतना ही नहीं, जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त मनुष्यको कैसे जीना चाहिये, कैसे रहना चाहिये, यहाँतक कि बालक, पिता, पुत्र, मित्र, शत्रु, परिजन, पुरजन, मन्त्री और गुरुका कैसा बर्ताव एवं आदर्श होना चाहिये—इन सभीका उपदेश श्रीरामके चरित्रसे प्राप्त होता है। ऐसे मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामने भी अयोध्याके प्रभावको समझकर यहाँ अवतार लेना श्रेयस्कर समझा।

वन-यात्रासे लौटते समय श्रीराम स्वयं हनुमान्-लक्ष्मण आदिको सम्बोधन करके श्रीअवधकी महिमाको बखानते हुए कहते हैं—

अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥

(रा० च० मा० ७। ४। ४)

श्रीरामजी कहते हैं—'भैया! मुझे अवधपुरीके समान कुछ भी प्रिय नहीं लगता, क्योंकि इस पुरीकी अनन्त महिमा है।' इसका अनुभव साक्षात् शेषावतार श्रीलक्ष्मणजीको भी प्राप्त था।

पुराणोंमें एक कथा आती है। एक बार श्रीलक्ष्मणजी तीर्थयात्रा जानेके लिये श्रीरामजीसे प्रार्थना करने लगे। श्रीरामने कहा—'भैया! आपकी तीर्थयात्रा जानेकी इच्छा है तो बहुत ही अच्छी बात है। आप श्रीअयोध्यापुरीकी व्यवस्था करके अवश्य पधारिये।' इतना कहनेके बाद श्रीरामजी मुसकराने लगे। श्रीलक्ष्मणजीने कहा—'भगवन्! दाससे कौन-सी त्रुटि हो गयी, जिसके कारण आप मुसकरा रहे हैं।' श्रीरामने कहा—'लक्ष्मण! समय आनेपर खुद ही आप समझ जायँगे।'

श्रीरामकी आज्ञा प्राप्त करके लक्ष्मणजी तीर्थयात्रा जानेके लिये अपनी तैयारी करने लगे। सैकड़ों सेवक, मन्त्री, मित्र, पुरजन, परिजन भी साथमें जानेके लिये तैयारीमें लगे हुए थे।

सभीको तीर्थयात्रा जानेकी बड़ी प्रसन्नता थी। गुरुदेव श्रीवसिष्ठजी यात्राका मुहूर्त श्रावण शुक्लपक्ष पञ्चमीको निकाले। मुहूर्तके अनुसार सूर्योदयके पहले प्रस्थान करना था। इसीको ध्यानमें रखकर तैयारी हो रही थी। श्रीअयोध्यापुरीकी देख-भाल करनेके लिये श्रीभरतजी, श्रीशत्रुघ्नजी, श्रीहनुमान्‌जी एवं सुमन्त आदि मन्त्रियोंको समझा दिया गया।

इस प्रकार करते-कराते रात्रिके दो बज गये। श्रीलक्ष्मणजी सोचने लगे। आज प्रातः पाँच बजे यात्रा करनी है। यदि अब विश्राम करूँगा तो विलम्ब होगा।

अब ब्रह्ममुहूर्त होनेवाला भी है। अतः पहले जाकर श्रीसरयूजीका स्नान कर लें। ऐसा निश्चय करके स्नान करनेके लिये

श्रीलक्ष्मणजी सरयूजीके किनारे पधारे। वहाँ बहुत प्रकाश हो रहा था। राजघाटपर हजारों राजा-महाराजा स्नान कर रहे थे और संध्या करके आकाशमार्गसे चले जा रहे थे।

श्रीलक्ष्मणजी सोचने लगे। कोई रामनवमीका पर्व नहीं, कोई उत्सव-विशेष नहीं, फिर इस ब्राह्मवेलामें इतनी भीड़ कैसे इकट्ठा हो गयी। इस प्रकार सोचते हुए महिलाओंके घाटपर पहुँचे, जहाँ क्रमशः कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदि हजारों माताएँ स्नान कर रही थीं। लक्ष्मणजी यह सारा दृश्य देखकर लौट आये। श्रीरामने पूछा—'लक्ष्मण! आज आपके तीर्थयात्रा जानेका मुहूर्त था, परंतु आप अभीतक स्नान ही नहीं किये।' श्रीलक्ष्मणजी प्रणाम करके कहने लगे—'भगवन्! आज मैंने एक आश्चर्यमय घटना श्रीसरयूजीके किनारे देखा।' श्रीरामके पूछनेपर श्रीलक्ष्मणजीने सारी घटना सुना दी। श्रीरामने कहा—'लक्ष्मण! आपने उन लोगोंसे पूछा नहीं कि आप कौन हैं, कहाँसे पधारे हैं।'

श्रीलक्ष्मणजीने कहा—'भगवन्! यह तो दाससे बड़ी भूल हो गयी। मैं संकोचवश कुछ भी नहीं पूछ सका, क्योंकि वहाँ हजारों लोग स्नान कर रहे थे; परंतु कोई किसीसे बोलता तक नहीं था।'

श्रीलक्ष्मणजीने कहा—'आज मैं पुनः जाऊँगा और सबसे परिचय पूछूँगा।' श्रीलक्ष्मणजी दूसरे दिन पुनः दो बजे रात्रिमें गये। कलकी तरह आज भी हजारों लोग स्नान कर रहे थे। कोई किसीसे बोलता नहीं है। सबके मुँहपर प्रसन्नता एवं तेज झलक रहा है। श्रीलक्ष्मणजी हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए बोले—'भगवन्! आप लोगोंका परिचय जानना चाहता हूँ।' हजारों राजाओंने कहा—'हम लोग काशी, गया, जगन्नाथ, बद्रीनाथ, केदारनाथ, श्रीरंगम्, रामेश्वरम् और द्वारकापुरी आदि अड़सठ करोड़ तीर्थ देवताओंका रूप धारण करके यहाँ नित्यप्रति श्रीअयोध्याका दर्शन एवं सरयूजीका स्नान करने आते हैं।' इसके बाद लक्ष्मणजी महिलाओंके घाटपर गये और उन्होंने उन माताओंको प्रणाम करके उनका परि पूछा। उन माताओंने कहा—'हम गङ्गा, यमुना, सरस्व ताप्ती, तुंगभद्रा, कमला, कोशी, गंडक, नर्मदा, कृष्णा ए क्षिप्रा आदि भारतकी हजारों पवित्र नदियाँ नित्यप्रति श्रीरामपुरी दर्शन एवं श्रीसरयूजीका स्नान करने आती हैं।' उसी सम एक विकराल काला पुरुष आकाशमार्गसे आया अ श्रीसरयूजीकी धारामें गिरा। थोड़ी देर बाद जलसे निक तो गौरवर्ण, हाथमें शंख, चक्र, गदा आदि धारण कि प्रकट हुआ। श्रीलक्ष्मणजीने ऋषियोंसे पूछा—'भगवन्! देवता कौन हैं, जो अभी कितने काले थे और सरयूजी गोता लगाते ही गौरवर्णके हो गये।' ऋषियोंने कहा—'लक्ष्मण ये तीर्थराज प्रयाग हैं। हजारों यात्री नित्यप्रति तीर्थरा प्रयागके संगममें स्नान करके अपना पाप छोड़ जाते है पापका स्वरूप काला होता है, इसलिये श्रीसरयूमें स्ना करनेमात्रसे इनका सारा पाप नष्ट हो गया।' श्रीलक्ष्मण राजमहलमें आकर यह आश्चर्यमयी घटना श्रीरामजीक सुनाने लगे। श्रीरामने कहा—'भैया लक्ष्मण! इस पुरी दर्शन एवं स्नान-हेतु अड़सठ करोड़ तीर्थ अयोध्यामें आ हैं और आप अयोध्या छोड़कर अन्य तीर्थोंका दर्शन कर जा रहे थे। इसीलिये जब आपने मुझसे मुसकरानेका कार पूछा था, तब मैंने कहा था कि उचित समयपर आप स्व जान जायँगे। अब आप निर्णय कर लीजिये कि तीर्थयात्रा जाना है या नहीं।' लक्ष्मणजी श्रीरामके चरणोंमें गिर ग और बोले—'प्रभु! धन्य है यह अवधपुरी, जहाँ सारे ती दर्शन-स्नान-हेतु आते हैं। अब दास कहीं किसी यात्रामें जायगा।' अवधकी इस दिव्यलीलाका स्मरण करते हु बन्धु-बान्धवोंसहित श्रीराम-लक्ष्मण इस घटनाको स अयोध्यावासिओंको सुनाने लगे।

अवधकी लीलाका अनुभव करनेके लिये हजारों संत महात्मा एवं बड़े-बड़े सद्गृहस्थ अपना घर छोड़क सीताराम-नामका जप करते हुए श्रीअवधकी गलियों विचरण करते रहते हैं।

* * *

विविध रूपोंमें हनुमान्

(गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

स्वामीका कार्य पूरा होनेपर स्वामीकी अपेक्षा सेवकको सबसे अधिक संतोष तथा सुख होता है। सेवकका कोई एक रूप नहीं होता, स्वामीको जिससे सुख हो, जिस रूपसे स्वामीका कार्य सम्पन्न हो, सेवक वही रूप बना लेता है। गरुडजी भगवान् विष्णुकी सेवाके आवश्यकतानुसार दास, सखा, वाहन, आसन, ध्वजा, चाँदनी एवं व्यजन आदि सब कुछ बन जाते हैं। यही बात हनुमान्‌जीकी है। वे दूतका भी कार्य करते हैं, युद्ध भी कर लेते हैं, पूछनेपर सम्मति दे देते हैं, आवश्यकता पड़नेपर वाहन भी बन जाते हैं। ऐसे ही सेवक स्वामीसे भी अधिक सम्मानके भाजन बन जाते हैं।

हनुमान्‌जीने संजीवनी लाकर लक्ष्मणजीकी मूर्च्छा भंग करायी। युद्धके समय जब रावणने अपने सेनापति तथा मन्त्री धूम्राक्षको युद्ध करनेके लिये भेजा, तब बहुत-से वानर एक ही साथ उससे युद्ध करने लगे, उस समय धूम्राक्षने बड़े गर्वके साथ कहा—'मैं लंकामें महावीरके नामसे विख्यात हूँ, अतः साधारण वानरोंसे नहीं लड़ता। मैं तो राम, लक्ष्मण और सुग्रीव तथा विभीषणको मारने आया हूँ, तुम साधारण वानरोंको मारकर क्या करूँगा। तुम अपने-अपने प्राणोंको लेकर भाग जाओ।'

इसपर हनुमान्‌जीने कहा—'मन्त्रीजी लंकामें आप महावीरके नामसे प्रसिद्ध हैं और यहाँ वानर मुझे भी महावीर ही कहकर सम्बोधित करते हैं। अतः पहले आप हमारे साथ युद्ध करें, तब आगे बढ़ें।'

हनुमान्‌जीका इतना कहना ही था कि धूम्राक्षने बाणोंकी बौछार शुरू कर दी। हनुमान्‌जी भला कब चूकनेवाले थे, उन्होंने एक पहाड़का शिखर उठाकर धूम्राक्षको लक्ष्य करके मारा। उससे धूम्राक्ष तो बच गया, परंतु उसके रथ, घोड़े तथा सारथी सभी चकनाचूर हो गये। तब धूम्राक्षने एक गदा हनुमान्‌जीके सिरपर मारी, किंतु वह ऐसे ही लगी जैसे कोई शिलापर लात मारे। तब हनुमान्‌जीने दूसरा पर्वत-शिखर उठाकर धूम्राक्षपर मारा। जिसके भीषण आघातसे वह दबकर तत्काल मर गया। सभीने हनुमान्‌जीके इस कार्यकी अत्यन्त ही प्रशंसा की।

रावणने जब देखा कि मेरे सभी प्रधान-प्रधान सेनानायक मरते जा रहे हैं; तो वह स्वयं रथपर चढ़कर श्रीरामचन्द्रजीसे लड़ने चला। सम्मुख उसे लक्ष्मणजी मिल गये। लक्ष्मणजीने उसे रोक लिया। दोनोंमें घनघोर युद्ध होने लगा। लक्ष्मणजीकी वीरता देखकर रावण विस्मित हुआ, उसने एक ऐसा अमोघ बाण छोड़ा कि लक्ष्मणजी उससे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। समरमें स्वामीके लिये सदा सचेत रहनेवाले शंकरसुवनने जब देखा कि लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये तो वे उन्हें तुरंत अपनी पीठपर लादकर श्रीरामचन्द्रजीके समीप ले गये। अपने भाईको मूर्च्छित तथा अचेत देखकर उन्हें अपनी गोदमें लिटाकर श्रीराम अत्यन्त करुण विलाप करने लगे। श्रीरामचन्द्रजीको विलाप करते देख वानर दुःखी हुए। उसी सभय शनैः-शनैः लक्ष्मणजी स्वयं ही सँभले। उन्हें चेत हो गया। मूर्च्छासे जागकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रणाम किया। अब श्रीरामचन्द्रजीको रावणपर क्रोध आया। वे केसरीनन्दन मारुतिसे बोले—'हनुमान् तुम उस दुष्ट रावणके समीप मुझे ले चलो। आज मैं उसके बल-पुरुषार्थको देखूँगा। मैं बहुत दिनोंसे उसे देखना चाहता हूँ।'

हनुमान्‌जीने प्रार्थना की—'प्रभो! रावण रथपर है। आप पैदल उससे युद्ध करें यह उचित नहीं। आप मेरे कन्धोंपर बैठकर उससे युद्ध करें।

हनुमान्‌जीकी यह प्रार्थना श्रीरामने स्वीकार कर ली। हनुमान्‌जीको अपना वाहन बनाकर उनके कन्धोंपर बैठकर वे रावणसे युद्ध करनेके लिये चले। रावणने जब श्रीरामको हनुमान्‌जीके कन्धेपर चढ़ा देखा तो कहा—'मैं बहुत दिनोंसे रामको खोज रहा था। आज मैं रामको मारकर राक्षसोंके भयको दूर कर दूँगा।'

श्रीरामजीने यह सुनकर कहा—'अरे राक्षसाधम, शूरवीर बकवाद नहीं किया करते, वे तो रणमें अपना कौशल दिखाते हैं। अच्छा आ जा! आज मैं तेरा गर्व खर्व कर दूँगा।'

ऐसा कहकर श्रीरामजी रावणसे युद्ध करने लगे। दोनोंका युद्ध अपूर्व था। बड़ी देरतक भयंकर युद्ध होता रहा। हनुमान्‌जी अपने कौशलसे उसके प्रहारोंको बचाते रहते। इसपर रावणको बड़ा क्रोध आया। पहले हनुमान्‌जीने उसे मूर्च्छित भी किया था। रावणने अपने मनमें सोचा, यह

वानर ही हत्याकी जड़ है। जिस काममें देखो उसीमें यह आगे आ जाता है। इसे किसी भी छोटे-से-छोटे कार्यमें लज्जा-संकोच नहीं। यह दूत बनकर समुद्र लाँघ गया, इसीने मेरी लंकापुरीमें आग लगायी, मेरे पुत्र अक्षयकुमारको मारा और मेरे मन्त्री धूम्राक्षको रणमें संहारा। इसीने संजीवनी बूटी लाकर लक्ष्मणको बचा लिया तथा युद्धमें मुझे घायल किया। अब यह रामका वाहन बनकर आ गया, पहले इसीको मार डालूँ। इसके मरनेसे राम निर्बल हो जायगा। हनुमान्जी तो लड़ नहीं रहे थे, वे तो वाहन बने हुए थे। अतः उसके प्रहारसे घायल हो गये। हनुमान्जीको घायल देखकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा क्रोध आया। अब वे रावणपर और तीव्र प्रहार करने लगे।

बहुत देरसे युद्ध करते रहनेके कारण रावण बहुत थक गया था, इसलिये अब वह बेमनसे लड़ रहा था। श्रीराम उसकी दुर्बलताको समझ गये और बोले—'राक्षसराज! प्रतीत होता है, चिरकालसे युद्ध करते-करते तुम अत्यन्त ही श्रमित हो गये हो, मैं अधर्म युद्ध करना नहीं चाहता, अब तुम कल आना, हमारा तुम्हारा युद्ध कल होगा।'

यह सुनकर रावण अत्यन्त लज्जित हुआ। यथार्थमें वह बहुत अधिक थक गया था। अतः लौटकर लंकापुरीमें चला गया।

दूसरे दिन युद्ध हुआ, श्रीरामने रावणको मार दिया। रावणके मरते ही राक्षसोंकी सेना भाग गयी। वानर-सेना प्रमुदित हुई, श्रीरामकी विजय हुई। श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मणजीने लंकापुरीमें जाकर विभीषणको लंकाके राज्यपर अभिषिक्त किया। इस शुभ समाचारको लेकर हनुमान् माता जानकीके समीप गये। यह सुनकर जनकनन्दिनीके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। वे हनुमान्जीके उपकारोंके कारण मानो कृतज्ञताके भारसे दब-सी गयीं। उन्होंने कहा—'हनुमान्! तुमने जो साहसके कार्य किये हैं, तुमने जो उपकार किया है, उसे व्यक्त करनेके लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं। तुम्हारे ऋणसे मैं कभी उऋण न हो सकूँगी, सदा तुम्हारी ऋणी ही बनी रहूँगी।'

हनुमान्जीने कहा—'माँ! आप कैसी बात कह रही हैं। पुत्र तो माँके ऋणसे कभी उऋण नहीं हो सकता। माँ, मेरी एक इच्छा है, आप कहें तो उसे पूरा कर लूँ।'

माता जानकीने कहा—'कौन-सी इच्छा है भैया!'

इसके पहले जिस समय मैं अशोकवाटिकामें आया था, उसी समय रावण आपके समीप आया था, जब आपने उसकी बात नहीं मानी, तब वह इन राक्षसियोंको आज्ञा दे गया कि 'सीताको भाँति-भाँतिकी यातनाएँ दो।' इन राक्षसियोंने आपको बहुत पीडाएँ पहुँचायीं, भाँति-भाँतिकी यातनाएँ दीं। अब उन्हें देखकर मेरे हाथ खुजला रहे हैं, आपकी आज्ञा हो तो इन्हें दो-दो झापड़ जमा दूँ, आपको कष्ट देनेका इन्हें मजा चखा दूँ, इनकी थोड़ी-सी मरम्मत कर दूँ।

यह सुनकर सीताजीने कहा—'ना, भैया! ऐसा कभी मत करना। अरे, हनुमान्! तुम समझते नहीं। उस समय ये बेचारी परवश थीं। दूसरेके अधीन थीं। मनुष्य अपनी स्थितिसे विवश होकर न करने योग्य कार्य भी करता है। परिस्थितियाँ उसे ऐसा करनेपर विवश कर देती हैं। ये सब-की-सब निरपराधिनी हैं। पवनतनय उन्हें मारकर तुम्हें क्या मिलेगा। इन्हें दण्ड देनेसे मुझे अत्यन्त दुःख होगा। बेटा! कोई किसीको दुःख-सुख नहीं देता। सब काल करवा लेता है। ये कालकी क्रूर चेष्टाएँ हैं। सबल पुरुषोंको निर्बलोंपर दया करनी चाहिये। तुम तो दो-दो झापड़की बात करते हो, ये तो तुम्हारे एक ही झापड़में धराशायी हो जायँगी। उस समय ये रावणके अधीन थीं। जो भी करती थीं, रावणकी आज्ञासे करती थीं। इनके कार्योंका उत्तरदायित्व रावणके ही ऊपर था। जब रावण मर गया तो वे बातें भी समाप्त हो गयीं। अब तो यह तुम्हारी कृपाकी इच्छुक हैं, इनपर कृपा करो, इन्हें पारितोषिक दो।'

यह सुनकर हनुमान्जी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'माँ! ये वचन श्रीरामजीकी प्राणप्रियताके ही अनुरूप हैं।'

तदनन्तर श्रीसीता-रामका मिलन हुआ। विभीषणसे पुष्पक विमान लेकर श्रीरामचन्द्रजी सीताजी, लक्ष्मणजी तथा मुख्य-मुख्य वानरोंको साथ लेकर अवधपुरीको चल दिये। मार्गमें कुछ देरके लिये पुष्पक विमान किष्किन्धामें उतरकर पुनः आगे बढ़ा। आगे चलकर हनुमान्जीने भगवान्से प्रार्थना की—'प्रभो! यहाँ समीपके ही पहाड़पर मेरी माताजी रहती हैं, आज्ञा हो तो मैं उनके दर्शन कर आऊँ।'

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'अंजनानन्दवर्धन! हमने ऐसा कौन-सा अपराध किया है जो तुम हमें माताजीके दर्शनसे वंचित रखना चाहते हो। अंजना केवल तुम्हारी ही माँ हैं क्या? वे हमारी माँ नहीं हैं क्या भैया? वे तो जगन्माता हैं हमें भी कृपा करके ले चलो, ऐसी वीरप्रसवा माँके

दर्शनोंसे तो महान् पुण्य होता है।'

यह सुनकर हनुमान्‌जी लज्जित हुए, उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तबतक पुष्पक विमान माता अंजनादेवीके समीप उतर पड़ा।

आगे जाकर हनुमान्‌जीने माताके चरणकमलोंमें साष्टांग प्रणाम किया, माताने उठाकर अपने लालको गोदमें बिठा लिया, उनका सिर सूँघा और प्यार किया। इतनेमें ही श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी, सीताजी तथा अन्यान्य वानर आ गये। हनुमान्‌जीने कहा—'माँ! ये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं, ये इनके छोटे भाई लक्ष्मणजी हैं और ये जानकी माता हैं। वनमें राक्षसराज रावण माता सीताको हर ले गया था। असंख्य वानरोंकी सेना एकत्र करके समुद्रपर पुल बाँधकर, रावणको मारकर, सीताको छुड़ाकर अब हम सब लोग अयोध्यापुरी जा रहे हैं।'

इतना सुनते ही माताकी त्यौरियाँ बदल गयीं, उनका मुख रक्तवर्णका हो गया, उनकी दोनों आँखें लाल-लाल हो गयीं, वे क्रोधसे भरकर बोलीं—'हनुमान्! तूने मेरे दूधको लज्जित कर दिया। अरे मूर्ख, इस छोटेसे कार्यके लिये श्रीरामको इतना कष्ट सहन करना पड़ा। तूने तो मेरा दूध पिया था। अरे, तू अकेला जाकर उस राक्षसराजको पकड़ लाता, नहीं तो उस लंकापुरीको ही उखाड़ लाता। रावणको मच्छरकी भाँति मसल डालता। तूने मेरे दूधको लाञ्छित कर दिया। धिक्कार है तुझे! ऐसा कहकर माताने हनुमान्‌जीको गोदीसे नीचे फेंक दिया। तब श्रीरामचन्द्रजीने माताको प्रणाम करके कहा—'माता तुम्हारा पुत्र सब कुछ करनेमें समर्थ है। वह अकेला ही रावणको मार सकता था, वह अकेला ही लंकाको उखाड़कर समुद्रमें डुबो सकता था, किंतु माताजी फिर तुम्हारे पुत्रका ही नाम होता—केवल उसीकी प्रसिद्धि होती, फिर लोकपावन रामचरित कैसे लिखा जाता? मैंने जगत्‌में लीलाका विस्तार करनेके लिये ही ऐसा किया है। आप हनुमान्‌जीपर प्रसन्न हों। इन्होंने जो कुछ भी किया, मेरी इच्छासे, मेरी आज्ञासे किया है। आप इन्हें पूर्ववत् प्यार करें।'

श्रीरामचन्द्रजीकी बातें सुनकर माँ प्रसन्न हुईं। उन्होंने जानकी एवं लक्ष्मणसहित श्रीरामकी पूजा की और हनुमान्‌जीको बहुत-बहुत आशीर्वाद दिया।

लक्ष्मणजीके मनमें शंका हुई कि 'यह बुढ़िया बार-बार अपने दूधकी प्रशंसा कर रही है। इनके दूधमें ऐसी क्या विशेषता है।' माता रामानुजके भावको ताड़ गयीं और बोलीं—'प्रतीत होता है कि छोटे राजकुमारको मेरे दूधपर संदेह हो रहा है। मैं इन्हें अभी अपने दूधका प्रभाव दिखाती हूँ।' यह कहकर माताने अपने स्तनको दबाकर दूधकी एक धार सामनेके पर्वतपर छोड़ी। दूधकी धारसे वह समूचा पर्वत फट गया, यह देखकर सभी आश्चर्यचकित हुए।

तदनन्तर माताकी आज्ञा लेकर सब लोग विमानपर चढ़कर प्रयागराजमें भगवान् भरद्वाजके आश्रमपर आ गये।

(संकलनकर्ता—डॉ० श्रीविद्याधरजी द्विवेदी)

* * *

परमात्म-साक्षात्कार

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

(केनोप० २। ५)

मानव-जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। इसे पाकर जो मनुष्य परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें तत्परताके साथ नहीं लग जाता, वह बहुत बड़ी भूल करता है। अतएव श्रुति कहती है कि 'जबतक यह दुर्लभ मानव-शरीर विद्यमान है, भगवत्कृपासे प्राप्त साधन-सामग्री उपलब्ध है, तभीतक शीघ्र-से-शीघ्र परमात्माको जान लिया जाय तो सब प्रकारसे कुशल है—मानव-जन्मकी परम सार्थकता है। यदि यह अवसर हाथसे निकल गया तो फिर महान् विनाश हो जायगा—बार-बार मृत्युरूप संसारके प्रवाहमें बहना पड़ेगा। फिर, रो-रोकर पश्चात्ताप करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं रह जायगा। संसारके त्रिविध तापों और विविध शूलोंसे बचनेका यही एक परम साधन है कि जीव मानव-जन्ममें दक्षताके साथ साधन-परायण होकर अपने जीवनको सदाके लिये सार्थक कर ले। मनुष्य-जन्मके सिवा जितनी और योनियाँ हैं, सभी केवल कर्मोंका फल भोगनेके लिये ही मिलती हैं। उनमें जीव परमात्माको प्राप्त करनेका कोई साधन नहीं कर सकता। बुद्धिमान् पुरुष इस बातको समझ लेते हैं और इसीसे वे प्रत्येक जातिके प्रत्येक प्राणीमें परमात्माका साक्षात्कार करते हुए सदाके लिये जन्म-मृत्युके चक्रसे छूटकर अमर हो जाते हैं।

* * *

जन्म कर्म च मे दिव्यम्

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान् श्रीकृष्णके जन्म-कर्मकी दिव्यता एक अलौकिक और रहस्यमय विषय है, इसके तत्त्वको वास्तवमें तो भगवान् ही जानते हैं, अथवा यत्किंचत् उनके वे भक्त जानते हैं, जिनको उनकी दिव्य-मूर्तिका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ हो; परंतु वे भी जैसा जानते हैं कदाचित् वैसा कह नहीं सकते। जब एक साधारण विषयको भी मनुष्य जिस प्रकार अनुभव करता है उस प्रकार नहीं कह सकता, तब ऐसे अलौकिक विषयको कोई कैसे कह सकता है? भगवान्के जन्म-कर्म तथा स्वरूपकी दिव्यताके विषयमें विस्तारपूर्वक सूक्ष्म विवेचनरूपसे शास्त्रोंमें प्रायः स्पष्ट उल्लेख भी नहीं मिलता, जिसके आधारसे मनुष्य उस विषयमें कुछ विशेष समझ सके, इस स्थितिमें यद्यपि इस विषयपर कुछ लिखनेमें मैं अपनेको असमर्थ मानता हूँ, तथापि अपने मनके कुछ भावोंको यत्किंचित् प्रकट करता हूँ। इस अवस्थामें कुछ अनुचित लिखा जाय तो भक्तजन बालक समझकर मुझे क्षमा करेंगे।

भगवान्का जन्म दिव्य है, अलौकिक है, अद्भुत है। इसकी दिव्यताको जाननेवाला करोड़ों मनुष्योंमें शायद ही कोई एक होगा। जो इसकी दिव्यताको जान जाता है, वह मुक्त हो जाता है, भगवान्ने गीता (४। ९)-में कहा है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

'हे अर्जुन! मेरा वह जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् अलौकिक है, इस प्रकार जो पुरुष तत्त्वसे जानता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको नहीं प्राप्त होता, किंतु मुझे ही प्राप्त होता है।'

इस रहस्यको नहीं जाननेवाले लोग कहा करते हैं कि निराकार सच्चिदानन्दघन परमात्माका साकाररूपमें प्रकट होना न तो सम्भव है और न युक्तिसंगत ही है। वे यह भी शंका करते हैं कि सर्वव्यापक, सर्वत्र समभावसे स्थित, सर्वशक्तिमान् भगवान् पूर्णरूपसे एक देशमें कैसे प्रकट हो सकते हैं? और भी अनेक प्रकारकी शंकाएँ की जाती हैं। वास्तवमें ऐसी शंकाओंका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। जब मनुष्य-जीवनमें इस लोककी किसी अद्भुत बातके सम्बन्धमें भी बिना प्रत्यक्ष ज्ञान हुए उसपर पूरा विश्वास नहीं होता—तब भगवान्के विषयमें विश्वास न होना आश्चर्य अथवा असम्भव नहीं कहा जा सकता। भौतिक विषयको तो उसके क्रियासाध्य होनेके कारण विज्ञानको जाननेवाले किसी भी समय प्रकट करके उसपर विश्वास करा भी सकते हैं। किंतु परमात्मा-सम्बन्धी विषय बड़ा ही विलक्षण है। प्रेम और श्रद्धासे स्वयमेव निरन्तर उपासना करके ही मनुष्य इस तत्त्वका प्रत्यक्ष कर सकता है। कोई भी दूसरा मनुष्य अपनी मानवी शक्तिसे इसे प्रकट करके नहीं दिखला सकता। भगवान्ने कहा है—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(गीता ११। ५४)

'हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन! अनन्यभक्ति करके तो इस प्रकार मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये और तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।'

विचार करनेपर यह प्रतीत होगा कि ऐसा होना युक्तिसंगत ही है। प्रह्लादको भगवान्ने खम्भमेंसे प्रकट होकर दर्शन दिये थे। इस प्रकार भगवान्के प्रकट होनेके अनेक प्रमाण शास्त्रोंमें विभिन्न स्थलोंपर मिलते हैं। सर्वशक्तिमान् परमात्मा तो असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं, फिर यह तो सर्वथा युक्तिसंगत है। भगवान् जब सर्वत्र विद्यमान हैं तब उनका स्तम्भमेंसे प्रकट हो जाना कौन आश्चर्यकी बात है? यदि यह कहें कि निराकार सर्वव्यापक परमात्मा एक देशमें पूर्णरूपसे कैसे प्रकट हो सकते हैं; तो इसको समझानेके लिये हम अग्निका उदाहरण सामने रखते हैं, यद्यपि यह सम्पूर्णरूपसे पर्याप्त नहीं है; क्योंकि परमात्माके सदृश व्यापक वस्तु अन्य कोई है ही नहीं जिसकी परमात्माके साथ तुलना की जा सके।

अग्नि-तत्त्व कारणरूपसे अर्थात् परमाणुरूपसे निराकार है और लोकमें समभावसे सभी जगह अप्रकटरूपेण व्याप्त

है। लकड़ियोंके मथनेसे, चकमक पत्थरसे और दियासलाईकी रगड़से अथवा अन्य साधनोंद्वारा चेष्टा करनेपर वह एक जगह अथवा एक ही समय कई जगह प्रकट होती है; और जिस स्थानमें अग्नि प्रकट होती है, उस स्थानमें अपनी पूर्ण शक्तिसे ही प्रकट होती है। अग्निकी छोटी-सी शिखाको देखकर कोई यह कहे कि यहाँ अग्नि पूर्णरूपसे प्रकट नहीं है, तो यह उसकी भूल है। जहाँपर भी अग्नि प्रकट होती है, वह अपनी दाहक तथा प्रकाशक शक्तिको पूर्णतया साथ रखती हुई ही प्रकट होती है और आवश्यक होनेपर वह जोरसे प्रज्वलित होकर सारे ब्रह्माण्डको भस्म करनेमें समर्थ हो सकती है। इस तरह पूर्ण शक्तिसम्पन्न होकर एक जगह या एक ही समय अनेक जगह एकदेशीय साकाररूपमें प्रकट होनेके साथ ही वह अव्यक्त—निराकाररूपमें सर्वत्र व्याप्त भी रहती है। इसी प्रकार निराकार सर्वव्यापी विज्ञानानन्दघन अक्रियरूप परमात्मा अप्रकटरूपसे सब जगह व्याप्त होते हुए भी सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न अपने पूर्ण प्रभावके सहित एक जगह अथवा एक ही कालमें अनेक जगह प्रकट हो सकते हैं; इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है? इस प्रकार भगवान्का प्रकट होना तो सर्व प्रकारसे युक्तिसंगत है।

कोई-कोई पुरुष यह शंका करते हैं कि भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, वे अपने संकल्पमात्रसे ही रावण और कंस आदिको दण्ड दे सकते थे, फिर उन्हें श्रीराम और श्रीकृष्णके रूपमें अवतार लेनेकी क्या आवश्यकता थी? यह शंका भी सर्वथा अयुक्त है। ईश्वरके कर्तव्यके विषयमें इस प्रकारकी शंका करनेका मनुष्यको कोई अधिकार नहीं है; तथापि जिनका चित्त अज्ञानसे मोहित है, उनके मनमें ऐसी शंका हो जाया करती है। भगवान्के अवतरणमें बहुत-से कारण हो सकते हैं, जिनको वस्तुतः वे ही जानते हैं। फिर भी अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार कई कारणोंमेंसे एक यह भी कारण समझमें आता है कि वे संसारके जीवोंपर दया करके सगुणरूपमें प्रकट होकर एक ऐसा ऊँचा आदर्श रख जाते हैं—संसारको ऐसा सुलभ और सुखकर मुक्ति-मार्ग बतला जाते हैं, जिससे वर्तमान एवं भावी संसारके असंख्य जीव परमेश्वरके उपदेश और आचरणको लक्ष्यमें रखकर, उनका अनुकरण कर कृतार्थ होते रहते हैं।

भगवान्के जन्म और विग्रह दिव्य होते हैं, यह बड़े ही रहस्यका विषय है। भगवान्का जन्म साधारण मनुष्योंकी भाँति नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण जब कारागारमें वसुदेव-देवकीके सामने प्रकट हुए, उस समयका श्रीमद्भागवतका प्रसंग देखने और विचारनेसे मनुष्य समझ सकता है कि उनका जन्म साधारण मनुष्योंकी भाँति नहीं हुआ। अव्यक्त सच्चिदानन्दघन परमात्मा अपनी लीलासे ही शंख, चक्र, गदा, पद्मसहित विष्णुके रूपमें वहाँ प्रकट हुए। उनका प्रकट होना और पुनः अन्तर्धान होना उनकी स्वतन्त्र लीला है, वह हम लोगोंके उत्पत्ति-विनाशकी तरह नहीं है। भगवान्की तो बात ही निराली है। एक योगी भी अपने योगबलसे अन्तर्धान हो जाता है और पुनः उसी स्वरूपमें प्रकट होकर दर्शन देता है, परंतु उसकी अन्तर्धानकी अवस्थामें उसे कोई मरा हुआ नहीं समझता। जब महर्षि पतञ्जलि आदि योगके ज्ञाता एक योगीकी ऐसी शक्ति बतलाते हैं, तब परमात्मा ईश्वरके लिये अपने पहले रूपको छिपाकर दूसरे रूपमें प्रकट होने आदिमें तो बड़ी बात ही क्या है? अवश्य ही भगवान् श्रीकृष्णका अवतरण साधारण लोकदृष्टिमें उनके जन्म लेनेके सदृश ही हुआ, परंतु वास्तवमें वह जन्म नहीं था, वह तो उनका प्रकट होना था। श्रीमद्भागवत (१०। १४। ५५)-में श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥

'आप इन श्रीकृष्णको सम्पूर्ण भूतप्राणियोंके आत्मा जानें। इस लोकमें भक्तजनोंके उद्धारके लिये ये भगवान् अपनी मायासे देहधारी-से प्रतीत होते हैं।'

जब भगवान् दिव्यरूपसे प्रकट हुए, तब माता देवकी उनकी अनेक प्रकारसे स्तुति करती हुई कहती हैं—

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्।
शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम्॥

(श्रीमद्भा०। १०। ३। ३०)

'हे विश्वात्मन्! आप शंख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित चार भुजावाले अपने अद्भुत रूपको छिपा लीजिये।' देवकीके प्रार्थना करनेपर भगवान्ने अपने चतुर्भुजरूपको

छिपाकर द्विभुज बालकका रूप धारण कर लिया—

पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः ॥

(श्रीमद्भा० १०। ३। ४६)

इससे उनका प्रकट होना ही स्पष्ट होता है। गीतामें भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने अर्जुनके प्रार्थना करनेपर पहले उसे अपना विश्वरूप दिखलाया, फिर उसीकी प्रार्थनापर चतुर्भुजरूप धारण किया और अन्तमें पुनः द्विभुजरूप होकर दर्शन दिये। इससे प्रकट होता है कि भगवान् अपने भक्तोंकी इच्छाके अनुसार उन्हें दर्शन देकर अन्तर्धान हो जाते हैं। इस प्रकार भगवान्‌के प्रकट और अन्तर्धान होनेको जो लोग मनुष्योंके जन्म और मरणके सदृश समझते हैं, वे भगवान्‌के तत्त्वको नहीं जानते। अपने जन्मकी दिव्यताको दिखलाते हुए भगवान् गीता (४। ६)-में अर्जुनके प्रति कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥

'मैं अविनाशीस्वरूप, अजन्मा होनेपर भी तथा सब भूतप्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके योगमायासे प्रकट होता हूँ।'

इस श्लोकमें '**अपि**' और '**सन्**' शब्दोंसे भगवान्‌का यह कथन स्पष्ट है कि मेरे प्रकट होनेके तत्त्वको नहीं जाननेवाले मूर्खोंको मैं अजन्मा होता हुआ भी जन्मता और मरता हुआ-सा प्रतीत होता हूँ। जब मैं सगुणरूपसे अन्तर्धान होता हूँ, तब मेरे इस छिपनेके रहस्यको न जाननेवाले मूर्खोंकी दृष्टिमें मैं अविनाशी विनाशभावको प्राप्त होता हुआ-सा प्रतीत होता हूँ और जब मैं लीलासे साधारणरूपमें प्रकट होता हूँ, तब उसका यथार्थ मर्म न जाननेवाले मूढोंकी दृष्टिमें मैं सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मा सारे भूतप्राणियोंका ईश्वर होता हुआ भी साधारण मनुष्य-सा प्रतीत होता हूँ।

उपर्युक्त वर्णनसे यह सिद्ध हो जाता है कि भगवान्‌का प्रकट होना और अन्तर्धान होना मनुष्योंकी उत्पत्ति और विनाशके सदृश नहीं है। उनका जन्म मनुष्योंके जन्मकी भाँति होता तो एक क्षणके अंदर एक शरीरसे दूसरे शरीरका परिवर्तन करना—जैसे उन्होंने देवकी और अर्जुनके सामने किया था, कभी नहीं बन सकता।

मनुष्योंके शरीरके विनाशकी तरह भगवान्‌के दिव्य वपुका विनाश भी नहीं समझना चाहिये, जिस शरीरका विनाश होता है वह तो यहीं पड़ा रहता है, किंतु देवकीके सामने चतुर्भुजरूपके और अर्जुनके सामने विश्वरूप और चतुर्भुजरूपके अदृश्य हो जानेपर उन वपुओंकी वहाँ उपलब्धि नहीं होती। इतना ही नहीं, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने जिस देहसे एक सौ पचीस वर्षतक लोकहितके लिये विविध लीलाएँ कीं वह देह भी अन्तमें नहीं मिली। वे उसी लीलामय वपुसे परमधामको पधार गये। इसके बाद भी जब-जब भक्तोंने इच्छा की, तब-तब उसी श्यामसुन्दर-शरीरसे पुनः प्रकट होकर उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया। यदि उनकी देहका विनाश हो गया होता तो परमधाम पधारनेके अनन्तर इस प्रकार पुनः प्रकट होना कैसे बनता?

इससे यह बात सिद्ध हुई कि भगवान्‌का अन्तर्धान होना अपने परमधाममें सिधारना है, न कि मनुष्यदेहोंकी भाँति विनाश होना। श्रीमद्भागवत (११। ३१। ६)-में भी लिखा है—

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम्।
योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत् स्वकम् ॥

'भगवान् योगधारणाजनित अग्निके द्वारा अपनी लोकाभिराम मोहिनी मूर्तिको भस्म किये बिना ही इस अपने शरीरसे ही परमधामको पधार गये।'

भगवान्‌का प्राकट्य भूतप्राणियोंकी उत्पत्तिकी अपेक्षा ही नहीं, अपितु योगियोंके प्रकट होनेकी अपेक्षा भी अत्यन्त विलक्षण है। वह जन्म दिव्य है, अलौकिक है, अद्भुत है। भगवान् मूल प्रकृतिको अपने अधीन किये हुए ही अपनी योगमायासे प्रकट होते हैं। जगत्‌के छोटे-बड़े सभी चराचर जीव प्रकृतिके और अपने गुण, कर्म स्वभावके वशमें हुए प्रारब्धके अनुसार सुख-दुःखादि भोगोंको भोगते हैं। यद्यपि योगीजन साधारण मनुष्योंकी भाँति ईश्वरकी मायाके और अपने स्वभावके पराधीन तो नहीं हैं, तथापि उनका जन्म भी मूल प्रकृतिको वशमें करके ईश्वरकी भाँति लीलामात्र नहीं होता। परंतु परमात्मा किसीके वशमें होकर प्रकट नहीं होते। वे अपनी इच्छासे ही अवतरित होते हैं, इसीलिये भगवान्‌ने गीता (४। ६)-में कहा है—

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥

ईश्वरका प्रकट होना उनकी लीला है और जीवोंका जन्म लेना दुःखमय है; ईश्वर प्रकट होनेमें सर्वथा स्वतन्त्र हैं और जीव जन्म लेनेमें सर्वथा परतन्त्र हैं। ईश्वरके जन्ममें हेतु है जीवोंपर उनकी अहैतुकी दया और जीवोंके जन्ममें हेतु है उनके पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म। जीवोंके शरीर अनित्य, पापमय, रोगग्रस्त, लौकिक और पाञ्चभौतिक होते हैं एवं ईश्वरका शरीर परम दिव्य अप्राकृत होता है। वह पाञ्चभौतिक नहीं होता। श्रीमद्भागवत (१०। १४। २)-में ब्रह्माजी कहते हैं—

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।
नेशे महि त्ववसितुं मनसाऽऽन्तरेण
साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः॥

'हे देव! आपके इस दिव्य प्रकट देहकी महिमाको भी कोई नहीं जान सकता, जिसकी रचना पञ्चभूतोंसे न होकर मुझपर अनुग्रह करनेके लिये अपने भक्तोंकी इच्छाके अनुसार ही हुई है। फिर आपके उस साक्षात् आत्मसुखानुभव अर्थात् विज्ञानानन्दघन स्वरूपको तो हम लोग समाधिके द्वारा भी नहीं जान सकते।'

इससे भी यह बात समझमें आती है कि भगवान्का शरीर लौकिक पञ्चभूतोंसे बना हुआ नहीं था। वह तो उनका खास संकल्प है; दिव्य प्रकृतियोंसे बना है, पाप-पुण्यसे रहित होनेके कारण अनामय अर्थात् रोगसे रहित एवं विशुद्ध है। विज्ञानानन्दघन परमात्माके सगुणरूपमें प्रकट होनेके कारण ही उस रूपको आनन्दमय कहा है। सम्पूर्ण अनन्त आनन्द ही मूर्तिमान् होकर प्रकट हो गया है, या यों समझिये कि साक्षात् प्रेम ही दिव्य मूर्ति धारण कर प्रकट हो गया है। इसीसे जो उस आनन्द और प्रेमार्णव श्यामसुन्दर दिव्य शरीरका तत्त्व जान लेता है, वह प्रेममें मुग्ध हो जाता है; आनन्दमय बन जाता है। प्रेम और आनन्द वास्तवमें एक ही चीज है, क्योंकि प्रेमसे ही आनन्द होता है। प्रकृतिके सम्बन्ध बिना मनुष्यकी चर्मदृष्टिसे वे दृष्टिगोचर नहीं हो सकते। इसीलिये परमेश्वर अपनी प्रकृतिके शुद्ध सत्त्वको साथ लिये हुए प्रकट होते हैं अर्थात् जिन दिव्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिका योगी लोगोंको अनुभव होता है, उन्हीं दिव्य धातुओंसे सम्बन्ध किये हुए भगवान् प्रकट होते हैं और भक्तोंपर अनुग्रह कर वे विज्ञानानन्दघन परमात्मा जब अपने भक्तोंको दर्शन देकर उनसे वार्तालाप करते हैं, तब अपनी लीलासे उपर्युक्त दिव्य तन्मात्राओंको स्वाधीन करके ही वे प्रकट हुआ करते हैं, क्योंकि नेत्र रूपको देख सकता है, अतएव भगवान्को रूपवाला बनना पड़ता है, त्वचा स्पर्शको विषय करती है, अतएव भगवान्को स्पर्शवाला बनना पड़ता है, नासिका गन्धको विषय करती है, अतएव भगवान्को दिव्य गन्धमय-वपु धारण करना पड़ता है। इसी प्रकार मन और बुद्धि मायाका कार्य होनेसे मायासे सम्मिलित वस्तुको ही चिन्तन करने और समझनेमें समर्थ हैं। इसलिये निराकार सर्वव्यापी विज्ञानानन्दघन परमात्मा प्रकृतिके गुणों-सहित अपने भक्तोंको विशेष ज्ञान करानेके लिये साकार होकर प्रकट होते हैं, प्रकृतिके सहित उस शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्माके प्रकट होनेका तत्त्व सबकी समझमें नहीं आता। इसीलिये भगवान्ने गीता (७। २५)-में कहा है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥

'अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ, इसीलिये यह अज्ञानी मनुष्य मुझ जन्मरहित, अविनाशी परमात्माको तत्त्वसे नहीं जानता है, अर्थात् मुझे जन्मने-मरनेवाला मानता है।'

तत्त्वको न जाननेके कारण ही लोग भगवान्का अपमान भी किया करते हैं और भगवान्के शक्ति-सामर्थ्यकी सीमा बाँधते हुए कह देते हैं कि विज्ञानानन्दघन निराकार परमात्मा साकाररूपसे प्रकट हो ही नहीं सकते। वे साक्षात् परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको परमात्मा न मानकर एक मनुष्यविशेष मानते हैं; भगवान्के सम्बन्धमें इस प्रकारकी धारणा किसी चक्रवर्ती विश्व-सम्राट्को एक साधारण ताल्लुकेदार मानकर उसका अपमान करनेकी भाँति ईश्वरकी अवज्ञा या उनका अपमान करना है। भगवान्ने गीता (९। ११)-में कहा भी है—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

'सम्पूर्ण भूतोंके महान् ईश्वररूप मेरे परमभावको न जाननेवाले मूढ लोग, मनुष्यका शरीर धारण करनेवाले मुझ परमात्माको तुच्छ समझते हैं अर्थात् अपनी योगमायासे संसारके उद्धारके लिये मनुष्यरूपमें विचरते हुए मुझको साधारण मनुष्य मानते हैं।'

इससे यह बात सिद्ध हो गयी कि निराकार सर्वव्यापी भगवान् जीवोंके ऊपर दया करके धर्मकी संस्थापनाके लिये दिव्य साकाररूपसे समय-समयपर अवतरित होते हैं, इस प्रकार शुद्ध सच्चिदानन्द निराकार परमात्माके दिव्य गुणोंके सहित प्रकट होनेके तत्त्वको जो जानता है, वही पुरुष उस परमात्माकी दयासे परमगतिको प्राप्त होता है। जिस प्रकार भगवान्‌के जन्मकी अलौकिकता है, उसी प्रकार भगवान्‌के कर्मोंकी भी अलौकिकता है। इसलिये भगवान्‌के कर्मोंकी दिव्यता जाननेसे पुरुष परमपदको प्राप्त हो जाता है। भगवान्‌के कर्मोंमें क्या दिव्यता है, उसका जानना क्या है और जाननेसे मुक्ति कैसे होती है, इस विषयमें कुछ लिखा जाता है। भगवान्‌के कर्मोंमें अहैतुकी दया, समता, स्वतन्त्रता, उदारता, दक्षता और प्रेम आदि गुण भरे रहनेके कारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या, सिद्ध योगियोंकी अपेक्षा भी उनके कर्मोंमें अत्यन्त विलक्षणता होती है। वे सर्वशक्तिमान्, सर्वसामर्थ्यवान् तथा असम्भवको भी सम्भव कर देनेवाले होनेपर भी न्यायविरुद्ध कोई कार्य नहीं करते, उन विज्ञानानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णने सर्व भूतप्राणियोंपर परम दया करके धर्मकी स्थापना और जीवोंका कल्याण किया। उनकी प्रत्येक क्रियामें प्रेम एवं दक्षता, निष्कामता और दया परिपूर्ण है। जब भगवान् वृन्दावनमें थे, तब उनकी बाललीलाकी प्रत्येक प्रेममयी क्रियाको देखकर गोप और गोपियाँ मुग्ध हो जाया करती थीं, भगवान् श्रीकृष्णके तत्त्वको जाननेवाले जितने भी स्त्री-पुरुष थे, उनमें कोई एक भी ऐसा नहीं था जो उनकी प्रेममयी लीलाको देखकर मुग्ध न हो गया हो। उनकी मुरलीकी तान सुनकर मनुष्य तो क्या पशु-पक्षीतक मुग्ध हो जाते थे। उनके शरीर और वाणीकी चेष्टाएँ ऐसी अद्भुत थीं, जिनका किसी मनुष्यमें होना असम्भव है। प्रौढ़ अवस्थामें भी उनके कर्मोंकी विलक्षणता देखकर उनके तत्त्वको जाननेवाले प्रेमी भक्त पद-पदपर मुग्ध हुआ करते थे। अर्जुन तो उनके कर्म औ आचरणोंपर तथा हाव-भाव-चेष्टाको देख-देखकर इतना मुग्ध हो गया था कि वह सदा उनके इशारेपर कठपुतलीकी भाँति काम करनेके लिये तैयार रहता था।

भगवान्‌के लिये कोई कर्तव्य न होनेपर भी वे केवल जीवोंको सन्मार्गमें लगानेके लिये ही कर्म किया करते हैं। गीता (३। २२)-में भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥

'हे अर्जुन! यद्यपि मुझे तीनों लोकोंमें कुछ भी कर्तव्य नहीं है तथा किंचित् भी प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्त नहीं है तो भी मैं कर्ममें ही बर्तता हूँ।' भगवान्‌को समता बड़ी प्रिय थी। इसलिये गीता (६। ९)-में भी उन्होंने समताका वर्णन किया है—

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥

'सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी औ बन्धुगणोंमें तथा धर्मात्माओंमें और पापियोंमें भी जो समान-भाववाला है वह अति श्रेष्ठ है।'

गीतामें केवल कहा ही नहीं, अपितु काम पड़नेप भगवान्‌ने अपने मित्र और वैरियोंके साथ बर्ताव भ समताका ही किया। महाभारत युद्धके प्रारम्भमें दुर्योधन औ अर्जुन युद्धके लिये मदद माँगने द्वारका गये और दोनोंहीं भगवान्‌से युद्धमें सहायताकी प्रार्थना की। भगवान् श्रीकृष्ण कहा कि एक ओर मेरी एक अक्षौहिणी नारायणी सेना है और दूसरी ओर मैं अकेला हूँ, पर मैं युद्धमें हथियार नहीं लूँगा। इससे यह बात सिद्ध हुई कि भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन और दुर्योधन दोनोंके साथ समान व्यवहार किया यहाँ यह विचारणीय विषय है कि भगवान् श्रीकृष्णक अर्जुन कितना अधिक प्रिय था, वास्तवमें वे कहनेमात्रके ही दो शरीर थे। महाभारत, मौसलपर्व (६। २१-२२)- श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीवसुदेवजीसे कहा था—

योऽहं तमर्जुनं विद्धि योऽर्जुनः सोऽहमेव तु॥
यद् ब्रूयात् तत् तथा कार्यमिति बुद्‌ध्यस्व माधव।

‘जो मैं हूँ वह अर्जुन है और जो अर्जुन है वह मैं हूँ, वह जैसा कहे, आप वैसा ही कीजियेगा।’ तथा श्रीमद्भगवद्गीता (४।३)-में भी भगवान्ने कहा है—

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥

इतना होते हुए भी वे अपने प्रिय सखा अर्जुनके विपक्षमें लड़नेवाले उसके शत्रु दुर्योधनको भी समानभावसे सहायता करनेको तैयार हो गये। जो अपने मित्रका शत्रु होता है, वह अपना शत्रु ही समझा जाता है। महाभारत, उद्योगपर्व (९१। २८)-में भगवान् श्रीकृष्ण जब संधि कराने गये तब उन्होंने स्वयं यह कहा भी था—

यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु।
ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः॥

‘जो पाण्डवोंका वैरी है, वह मेरा वैरी है और जो उनके अनुकूल है, वह मेरे अनुकूल है। मैं धर्मात्मा पाण्डवोंसे अलग नहीं हूँ। ऐसा होनेपर भी भगवान्ने दुर्योधनकी सैन्यबलसे सहायता की। संसारमें ऐसा कौन पुरुष होगा जो अपने प्रेमी मित्रके शत्रुको उसीसे युद्ध करनेके कार्यमें सहायता दे। परंतु भगवान्की समताका कार्य विलक्षण था। इस मददको पाकर दुर्योधन भी अपनेको कृतकृत्य मानने लगा और उसने ऐसा समझा कि मानो मैंने कृष्णको ठग लिया—

कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा सम्प्राप परमां मुदम्।
दुर्योधनस्तु तत् सैन्यं सर्वमादाय पार्थिवः॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ७। २४)

भगवान् श्रीकृष्णके प्रभावको दुर्योधन नहीं जानता था, इसीलिये उसने इसमें उनकी उदारता और समता तथा महत्ताका तत्त्व न जानकर इसे मूर्खता समझा। जो लोग महान् पुरुषोंके प्रभावको नहीं जानते, उनको उन महापुरुषोंकी क्रियाओंके अंदर दया, समता एवं उदारता आदि गुण दृष्टिगोचर नहीं होते। दुर्योधनके उदाहरणसे यह बात प्रत्यक्ष प्रमाणित होती है।

भगवान् श्रीकृष्ण जो कुछ भी करते थे, उन सबमें समता, निःस्वार्थता तथा अनासक्तता आदि भाव पूर्ण रहते थे, इसीसे वे कर्मोंके द्वारा कभी लिपायमान नहीं होते थे। गीता (४। १३-१४)-में उन्होंने कहा भी है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥

‘हे अर्जुन! गुण और कर्मोंके विभागसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मेरे द्वारा रचे गये हैं, उनके कर्ताको भी—मुझ अविनाशी परमेश्वरको तू अकर्ता ही जान। क्योंकि कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मुझको कर्म लिपायमान नहीं करते। इस प्रकार जो मुझको तत्त्वसे जानता है वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता है।’ तथा—

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु॥

(गीता ९। ९)

‘हे अर्जुन! उन कर्मोंमें आसक्तिरहित और उदासीनके सदृश स्थित हुए मुझ परमात्माको वे कर्म नहीं बाँधते।’

भगवान्की तो बात ही क्या है, तत्त्वको जाननेवाला पुरुष भी कर्मोंमें लिपायमान नहीं होता है। अब यह बात समझनेकी है कि उपर्युक्त श्लोकोंके तत्त्वको जानना क्या है? वह यही है कि भगवान् श्रीकृष्णको कर्मोंमें आसक्ति, विषमता और फलकी इच्छा नहीं रहती थी। जो मनुष्य यह समझकर कि कर्मोंमें आसक्ति, फलकी इच्छा एवं विषमता ही बन्धनके हेतु हैं, इन दोषोंको त्यागकर अहंकाररहित होकर कर्म करता है, वही कर्मोंके तत्त्वको जानकर कर्म करता है। इस प्रकार कर्मके तत्त्वको जानकर कर्म करनेवाला कर्मके द्वारा नहीं बँधता। ऐसा समझकर जो स्वयं इन दोषोंको त्यागकर कर्म करता है, वही इस तत्त्वको समझता है। जैसे संखिया, पारा आदिके दोषोंको मारकर उनका सेवन करनेवालेको हानिकी जगह परम लाभ पहुँचता है, इसी प्रकार विषमता, अभिमान, फलकी इच्छा और आसक्तिको त्यागकर कर्मोंका सेवन करनेवाला मनुष्य उनसे न बँधकर मुक्तिको प्राप्त होता है।

दूधमें विष मिला हुआ है, यह जानकर कोई भी मनुष्य उस दूधका पान नहीं करता है, यदि करता है तो उसे अत्यन्त मूढ समझना चाहिये। इसी प्रकार कर्मोंमें आसक्ति, कर्तृत्व-अभिमान, फलकी इच्छा और विषमता आदि दोष

विषसे भी अधिक विष होकर मनुष्यको बार-बार मृत्युके चक्करमें डालनेवाले हैं, जो पुरुष इस प्रकार समझता है वह उपर्युक्त दोषोंसे मुक्त होकर कभी कर्म नहीं करता।

भगवान् श्रीकृष्णके कर्मोंमें और भी अनेक विचित्रताएँ हैं, जिनको हम नहीं जान सकते और जो यत्किंचित् जानते हैं, उसको भी समझना बहुत कठिन है। हम तो चीज ही क्या हैं, भगवान्‌की लीलाओंको देखकर ऋषि, मुनि और देवतागण भी मोहित हो जाया करते थे। श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि एक समय श्रीकृष्णचन्द्रजीकी लीलाओंको देखकर ब्रह्माजीको भी मोह हो गया था, उन्होंने ग्वाल-बालोंके सहित बछड़ोंको ले जाकर एक कन्दरामें रख दिया, महाराज श्रीकृष्णचन्द्रजीने यह जानकर तुरंत वैसे ही दूसरे ग्वाल-बाल और बछड़े रच लिये और गौएँ तथा गोपियों आदि—किसीको यह मालूम नहीं हुआ कि ये बालक तथा बछड़े दूसरे ही हैं।

वास्तवमें ब्रह्माजी-जैसे महान् देव ईश्वरके विषयमें मोहित हो जायँ, यह बात युक्तिसे सम्भव नहीं मालूम होती, किंतु ईश्वरके लिये कोई बात भी असम्भव नहीं है। असम्भवको भी सम्भव करके दिखा सकते हैं। विचारने बात है कि इस प्रकारके अलौकिक तथा अद्भुत क साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या है; योगी लोग भी न कर सकते।

परमात्माके जन्म और कर्मकी दिव्यताका विषय ब अलौकिक और रहस्यमय है। अर्जुन भगवान्‌का अत्य प्रिय सखा था, इसीलिये भगवान्‌ने यह अत्यन्त गोपनी रहस्य अर्जुनके प्रति कहा था।

इस प्रकार भगवान्‌के जन्म और कर्मकी दिव्यताको तत्त्वसे जानता है, वही भगवान्‌को तत्त्वसे जानता अतएव हम सबको इसके तत्त्वको समझनेकी कोशि करनी चाहिये। जो पुरुष इस तत्त्वको जितना ही अधि समझेगा, वह उतना ही आनन्दमें मुग्ध होता हुआ परमात्मा नजदीक पहुँचेगा। उसके कर्मोंमें भी अलौकिकता भास लगेगी और वह भगवान्‌के प्रभावको जानकर प्रेममें मु हो शीघ्र ही परमगतिको प्राप्त हो जायगा।

◆

श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन एवं भगवल्लीला-चिन्तनसे ही कल्याण सम्भव है

(पूज्यपाद नित्यलीलालीन श्रीहरिबाबाजी महाराजके सदुपदेश)

पूज्यपाद श्रीहरिबाबाजी महाराज एक महान् सिद्ध संत थे। वे श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन तथा भगवल्लीला-चिन्तनको कलियुगमें एकमात्र कल्याणका साधन मानते थे। वे स्वयं रासलीलाके रसिक संत थे। श्रीरासलीलामें घंटों-घंटों खड़े रहकर वे अपने हाथोंसे भगवान् श्रीकृष्ण तथा श्रीराधाजीको पंखा झला करते थे। बाँध (गवां—बँदायू)-में आयोजित रासलीला-समारोहमें हमने एक बार श्रीभगवल्लीलाके महत्त्वपर उनके उपदेश लिख लिये थे, जिसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्रीराधा-कृष्णकी लीलाका रसास्वादन करनेकी क्षमता बड़े भाग्यवान् व्यक्तिको प्राप्त होती है। उन लोगोंके मन बड़े मलिन हैं, जो श्रीकृष्ण-राधामें स्त्री-पुरुषका भाव करते हैं। इसीलिये श्रीरासलीलाका रसास्वादन करनेसे पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण और जगज्जननी श्रीराधाजीके यथार्थ स्वरूपका प्राप्त कर लेना बहुत जरूरी है। इन लीलाओंको जाननेके लि परमोच्च भावोंसे युक्त निर्मल मनका होना जरूरी है।

वर्तमान समयमें चारों ओर दूषित वातावरण बढ़ता रहा है। सिनेमा तथा अश्लील पुस्तकोंके कारण हृदय मस्तिष्क निरन्तर दूषित होता जा रहा है। ऐसी स्थिति भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् श्रीराम, महादेव शंकर पार्वतीजी आदिकी दिव्य लीलाओंका चिन्तन करना चाहि यदि हमारा मन भगवान्‌की दिव्य लीलाओंमें रमने ल तो सांसारिक दृश्य हमारी आँखोंमें स्वतः चुभने लगें

भगवल्लीलाके प्रति हमारे हृदयमें तभी रुचि उत्पन्न सकती है, जब हम अपने हृदयको पवित्र बनायें। हृद पावन बनानेका एकमात्र साधन श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन

नाम-जप है। पावन हुआ हृदय ही भगवान्‌की लीलाओंको धारण कर सकता है।

चैतन्य महाप्रभुजी महाराजने अपने भक्तोंको पूरी तरह प्रभु-प्रेममें तन्मय होकर उनकी लीला-माधुरीको हृदयमें विराजित कर संकीर्तन करनेकी शिक्षा दी थी। मुखसे प्रभुके नामका उच्चारण तथा हृदय, मन और आँखोंमें प्रभुकी छबिको धारण करनेवाला व्यक्ति सहजहीमें प्रभुके अनुग्रहका अधिकारी बन जाता है। भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्ट कहा है—

नारायणाच्युतानन्त वासुदेवेति यो नरः।
सततं कीर्तयेद् भूमिं याति मल्लयतां हि सः॥

जो प्राणी नारायण, अच्युत, अनन्त और वासुदेव आदि नामोंका सदा कीर्तन करता है, वह मुझमें लीन होनेवाले भक्तोंकी भूमिको प्राप्त हो जाता है।

अतः कलियुगमें सदैव मुँहसे भगवान्‌के पवित्र नामका उच्चारण करना चाहिये तथा एकाग्र होकर हृदयमें भगवान्‌की कोई भी अपनी रुचिकी दिव्य लीलाका ध्यान करना चाहिये।

जितने भी अवतार हुए हैं उन सबके आधार श्रीकृष्ण हैं। जिसे वेदान्तमें सच्चिदानन्द कहा जाता है, वही श्रीकृष्ण हैं, अखिल ब्रह्माण्डनायक सर्वात्मा श्रीकृष्ण हैं। वे समस्त ऐश्वर्यों, समस्त शक्तियोंके आधार एवं चिन्मय हैं। गोपियों और ग्वालोंके साथ लीला करनेवाले श्रीकृष्ण ही पूर्ण अवतार हैं। भगवान् विभिन्न रूपोंमें लीला करनेके लिये ही अवतार लेते हैं। इसीलिये वे 'लीलावतार' कहलाते हैं।

जब समष्टि लगन होती है, तब भगवान् अवतार लेते हैं और जबतक लगन होती है तबतक उसके भावके अनुसार लीलाके माध्यमसे दर्शन देते हैं। हमें शुद्ध भावसे भगवान्‌की लीलाका चिन्तन करना चाहिये। उनकी लीलामें सुध-बुध खो देनेका अभ्यास करना चाहिये। श्रीचैतन्य महाप्रभुजी महाराजकी तरह यदि हम भगवन्नाम-संकीर्तनमें तन्मय हो जायँ तथा केवल भगवान्‌की लीलाका ही निरन्तर चिन्तन करते रहें तो हम बिना किसी संदेहके भगवान्‌की शरणके अधिकारी बन जायँगे।

श्रीकृष्ण साक्षात् जो हैं वही श्रीराधिका हैं और श्रीराधिका जो हैं वही श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण राधिकासे भिन्न नहीं हैं। शक्ति और शक्तिवाला जिस प्रकार अभिन्न है, गुलाबका फूल और उसकी सुगन्ध जिस प्रकार अभिन्न है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण और राधिकाजी अभिन्न हैं। श्रीजीके कारण ही श्रीकृष्ण पूर्ण हैं, आनन्दकन्द हैं। श्रीजीको शास्त्रोंमें 'ह्लादिनीशक्ति' कहा गया है। ह्लादिनीशक्तिका सार दिव्य प्रेम है। जो व्यक्ति सुबहसे शामतक गंदी-गंदी फिल्में देखता है, गंदी कहानियाँ पढ़ता है, दूषित वातावरणमें रहता है, वह श्रीरासलीला, श्रीकृष्णलीलाके महत्त्वको कदापि नहीं समझ सकता। भक्ष्याभक्ष्यका सेवन करनेवाला कलुषित भावनाओंसे ग्रस्त होनेके कारण भगवान्‌की लीलाओंके प्रति शंकाग्रस्त रहता है। इसलिये यदि भगवल्लीलाका आनन्द उठाना हो तो सबसे पहले अपने खान-पानको शुद्ध करना चाहिये। मांस, मदिरा, अंडा, प्याज, लहसुन, तंबाकू-जैसे तामसिक राक्षसी पदार्थोंका तुरंत त्याग करनेका दृढ़ संकल्प लेना चाहिये। भगवान्‌को भोग लगाकर शुद्ध सात्त्विक आहार 'प्रसाद'के रूपमें ग्रहण करना चाहिये। परस्त्रीकी ओर आँख उठाकर कदापि नहीं देखना चाहिये। परस्त्रियोंमें, माता-बहनके रूपके दर्शन करने चाहिये। इस प्रकार इन्द्रियोंपर नियन्त्रण करनेके उपरान्त ही हम भगवान्‌की दिव्य लीलाओंका रसपान करनेके अधिकारी बन सकते हैं।

जिस प्रकार बच्चा रोता है तो माता तुरंत उसे गोदमें लेने दौड़ पड़ती है, उसी प्रकार यदि हम भगवान्‌का ध्यानकर उनके प्रेममें अश्रुपात करने लगें तो परम कृपालु लीलामय भगवान् तुरंत हमें अपनी शरणरूपी गोदमें लेनेको तत्पर हो उठेंगे। जो जीव भगवान्‌से प्रेम रखता है, भगवान्‌की शरणमें जानेको लालायित होता है, भगवान् तुरंत उसे शरण देनेको उसतक पहुँच जाते हैं।

इसलिये सबसे पहले अपने हृदय तथा मनको निष्कपट बनाओ, अहंकारको पास न फटकने दो। अभक्ष्य पदार्थों और तंबाकू-जैसे दुर्व्यसनोंको पूरी तरह त्याग दो। दूसरोंके दुःखमें दुःखी तथा सुखमें सुखी होनेकी प्रवृत्ति अपनाओ। फिर देखना कि प्रभु मात्र नाम-संकीर्तन तथा लीला-चिन्तनके माध्यमसे तुम्हारे पास स्वयं चले आयेंगे। यही भगवल्लीलाका सार-तत्त्व है।

[प्रस्तोता—भक्त श्रीरामशरणदासजी पिलखुवा]

* * *

भगवत्-लीला-चिन्तन कैसे हो!

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जगत्के बन्धनसे मुक्त होनेके लिये निःसंकल्प होना बहुत आवश्यक है। जबतक जगत्के संकल्प होते रहते हैं, तबतक मनकी जागतिक क्रिया बंद नहीं होती; परंतु मनका निःसंकल्प होना सहज बात नहीं है, फिर भी निःसंकल्प होनेका एक दूसरा बहुत सीधा रास्ता है—संकल्पोंसे लड़ना छोड़ दे, संकल्पोंका विषय बदल दे। जगत्के स्थानपर भगवत्-संकल्प करे। भगवान्का लीला-गुणानुवाद, श्रवण, पठन, मनन किसलिये? क्या व्यासजी—जिन्होंने वेदोंका विभाग किया, ब्रह्मसूत्रोंकी रचना की, जो ब्रह्मसूत्र समस्त वेदान्तवादियोंके आदर्श हैं, वे इतने निकम्मे बैठे थे कि वेदान्तका परिशीलन छोड़कर वे लीला-कथाका गान करें! क्या नारदजी इतने अल्पबुद्धि व्यक्ति थे, जो व्यासजीको शान्ति प्राप्त करनेके लिये लीला-कथाका गान करनेका अनुरोध करें! परंतु व्यासजी अपनेको अशान्त पाते हैं। यद्यपि संकल्पोंका अभाव व्यासजीमें स्वाभाविक माना जाता है, क्योंकि व्यासजी भगवदवतार हैं; वेदान्त सूत्रोंके निर्माता हैं, उनमें संकल्प क्यों हो? तथापि वे अशान्त हैं। नारदजी कहते हैं कि आपको शान्ति इसलिये नहीं मिली कि आपने ज्ञान-विज्ञानका निरूपण किया, परंतु भगवत्-लीला-रसका पान न किया, न कराया, इसीलिये आपका चित्त अशान्त है।

इससे तो बस यही समझना चाहिये कि ये व्यास, शुकदेव, वसिष्ठ और नारद आदि ऐसे साधारण लोग नहीं थे जो बहुत ऊँची चीजको छोड़कर नीची चीजकी ओर चलें, परंतु हमारा मन तो प्राकृतिक मन है और अमलात्मा मुनियोंका मन तो मनोनाशके द्वारा मिट चुका है। उस मिटे हुए मनके स्थानपर भगवान्के गुण, सौन्दर्य आदिका चिन्तन करनेके लिये जो मन बनता है, वह भगवान्का दिया हुआ मन बनता है।

उत्तम साधन यह है कि आप केवल भगवत्-सम्बन्धी संकल्प करें। जैसे संध्याका समय है, बछड़ोंको लेकर भगवान् लौटेंगे। भगवान्के आगमनकी प्रतीक्षा करें कि भगवान् आ रहे हैं, अभी-अभी भगवान् आनेवाले हैं—इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए खड़े हो गये। अब मनमें वह भाव, वही संकल्प-विकल्प आते रहें—अब वे बछड़ों पीछे आते होंगे। अब मुरली बजाते होंगे। उनकी लीलाओंक अन्त नहीं है। अपने मनमें जैसी लीला जब आवे, किस क्रमका बन्धन नहीं है कि अमुक प्रकारके क्रमसे भगवान्की लीलाका चिन्तन हो। जब जैसी मनमें आ भगवान्की लीलाओंका संकल्प-विकल्प मनमें होता र फिर तो मनमें यही चिन्तन होता रहेगा कि हम भी खेलें हमको भी भगवान् अपना परिकर बना लें। यह साधनाक बात है।

निकुंज-साधनाकी बात मोटे-रूपमें कह देना है निकुंज-साधनामें क्या करना पड़ता है। इसमें संकल्प देहका, सेवाका निर्माण होता है। पहले तो संकल्प कर पड़ता है—'भगवान्के मण्डलमें निकुंजका जो मण्डल बड़ा विस्तृत है और उसके बहुत-से स्तर हैं, उनमें ए मंजरी-मण्डल है। यह जो मंजरी-भाव है, बड़ा ऊँचा भा है। उसमें निज-सुखका अभाव है। वे केवल राधा माधवका सुख-सम्पादन करनेमें ही लगी रहती हैं, उन अपने लिये कुछ नहीं चाहिये। उन मंजरियोंमेंसे किसी एकको भावराज्यमें भावसे आचार्यत्वके पदपर वरण करें—गु मानें। अपनेको संकल्पसे किसी मंजरी-देहमें ले जायँ मंजरी-कल्पना करें। मंजरीमें, उसके रूप-रंग इत्यादिक बहुत-सी बातें हैं जिन्हें यहाँ कहनेकी आवश्यकता नहीं है मंजरी-कल्पना करें और उक्त गुरु-मंजरीके साथ सेवा हिस्सा मिले ऐसी प्रार्थना करें तथा यह प्रार्थना उ भावराज्यमें संकल्पसे ही जब स्वीकार हो जाय, तब से प्रारम्भ करें। पहले बाहरकी सेवा प्राप्त होगी। क निकुंजके बाहर झाड़ू इत्यादि लगा दी जाय, कहीं कु कंटक साफ कर दिये जायँ। पीकदानीको लेकर फेंक दि जाय। ये बड़े लोगोंकी बातें नहीं जो बड़े ज्ञान-निष्ठ हैं—उनके लिये तो ये चर्चा पागल लोगोंकी चीज है। ऐ करते-करते क्या होगा उसे मंजरीत्व प्राप्त होगा, पह

ल्पना-राज्यमें तत्पश्चात् भावराज्यमें। इसके लिये बड़े ास्त्र हैं। एक रासोल्लास-तन्त्र है, उसमें बड़ी विधि है और वल विधिसे काम नहीं चलता, विधिवत् साधनामें प्रवृत्त ोना पड़ता है, फिर क्या होता है कि मंजरी-देहकी प्राप्ति ो जाती है। पहले कल्पना-मंजरी, फिर भाव-मंजरी, फिर ंजरी देहकी प्राप्ति हो जाती है। इस देहके रहते जब भी-कभी ऐसी तीव्र इच्छा हो या जब वहाँकी आज्ञा हो, ब उस गुरु-मंजरीका अनुकरण करते हुए; जो सेवा तायी जाय उस सेवामें वह साधक नियुक्त हो जाता है। फर ऐसा होते-होते उस मंजरीके साथ उसको निकुंजमें वेशका अधिकार मिल जाता है।

यह निकुंजमें प्रवेशका अधिकार मामूली चीज नहीं । जो पुरियोंका अन्तःपुर है उसमें भी सबका वेशाधिकार नहीं है। जैसे मथुरा, द्वारका, अयोध्या त्यादि—ये भगवान्‌की लीला-पुरियाँ हैं। व्रज तो वन , गोष्ठ है, वृन्दावन है। यहाँके निकुंज दो प्रकारके ,धातुनिर्मित निकुंज और रत्ननिर्मित निकुंज। इसके तिरिक्त बहुत-से निकुंज यहाँ लता-पुष्पनिर्मित हैं। हाँका अधिकार मिलना तो बहुत कठिन बात है। रियोंके अन्तःपुरमें भी सबको प्रवेशका अधिकार नहीं । भगवान् श्रीकृष्णके अन्तःपुरमें जब संजय जाते हैं वहाँका वर्णन करते हुए कहते हैं कि भगवान्‌के उस न्तःपुरमें प्रवेशका अधिकार प्रद्युम्न तथा अभिमन्युको नहीं है, जो कि पुत्र हैं। संजय इत्यादि जो गवान्‌के विशिष्ट अंतरंग सहचर हैं; इन्हें मंजरी-थानापन्न ही समझिये। इनको अन्तःपुरमें प्रवेशका धिकार है। उसने वहाँका दृश्य देखा। अर्जुन, श्रीकृष्ण, त्यभामा और द्रौपदीकी अंतरंग-लीलाका दृश्य। निकुंजमें वेशका अधिकार हर एकको नहीं होता। इसमें प्रवेशका धिकार जिस मंजरी-देहसे प्राप्त हो जाता है, उसे ष्णव साधनामें बहुत ऊँचा स्थान माना जाता है।

इसलिये संकल्पका परित्याग करनेकी आवश्यकता हीं है। भगवत्-लीला-सम्बन्धी संकल्प और उनमें भी र्वोत्तम निर्दोष बाल-लीला है—भगवान्‌का बाल-चरित। गवान्‌के प्राकट्यसे लेकर गोवर्धन उठानेतकका जो बाल-चरित है वह सर्वथा निर्दोष, सबके कामकी चीज, घरमें देखी हुई, अपने बच्चोंकी क्रीडा, उसीमें भगवान्‌को देखे। विशेष कुछ करना-कराना नहीं है। इस तरहके संकल्प होने लगें तो क्या होगा? कुछ दिनों बाद ऐसे ही दृश्य आने लगेंगे। यह करके देखनेकी चीज है। यह वही कर सकता है जो करना चाहे। यदि मनमें तीव्र आकांक्षा पैदा हो जाय तो इस सीधी चीज—घरमें देखी हुई चीजका हम भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। फिर क्या होगा कि हमें अकल्पित लीला-दर्शन होने लगेंगे। इस प्रकारकी लीला चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते—हर समय हमारे मनमें आने लगेगी। ध्यान करना नहीं पड़ेगा, लीलाके वे दृश्य जबरदस्ती सामने आने लगेंगे; पर आने लगेंगे उनके सामने जो उनको पकड़ना चाहे। उपेक्षा करेगा तो वहाँ मनमें नहीं आयेंगे और यदि कहीं मनमें यह हो जाय कि आज तो बड़ा हर्ज हो गया, बड़ा जरूरी काम था तो भगवान् तो किसीका भी जरूरी काम छीनना नहीं चाहते। जब भगवान्‌की जरूरत पैदा हो तब भगवान्‌को पुकार लेना। भगवान् तो हर समय तैयार हैं।

गोपाङ्गनाओंकी क्या कम परीक्षा हुई, ये परीक्षा मामूली परीक्षा नहीं थी, लेकिन वे इसमें उत्तीर्ण हो गयीं। इस प्रकारके प्रलोभन, भय सामने आते हैं। रासमण्डलकी परीक्षा मामूली परीक्षा नहीं थी। भगवान् कहते हैं—'नरकमें जाओगी, पतियोंको छोड़कर आयी हो, ये किसी पतिव्रता स्त्रीका काम नहीं है।' स्वयं भगवान् कहते हैं, कोई दूसरा नहीं कहता है, कोई भी व्यक्ति उसी वक्त डर जाय, काँप जाय। सबसे बड़ी परीक्षा होती है स्वसुखकी। यह बड़ी महीन चीज है। मान लेते हैं कि स्वसुखकी वाञ्छा नहीं है, लेकिन स्वसुखकी वाञ्छा ही वहाँ काम करानेमें लगी रहती है। ये तो पीछेकी चीजें हैं। हम तो बहुत पहलेकी बात कहते हैं कि मनमें भगवान्‌का संकल्प करें। आत्माका स्वरूप क्या है, कैसा है,—ये जाननेकी आवश्यकता नहीं है। ये जिसको जितना जनानेकी आवश्यकता होगी; वे जना देंगे और नहीं जनाना चाहें तो कहेंगे कि भई! तुम ज्ञानवान् हो, जहाँ जाते हो, वहाँ तुम्हें ले चलेंगे, तुम इनको जानकर क्या करोगे? भगवान् तो कहते हैं—'**सर्वधर्मान् परित्यज्य०**' मेरी शरणमें आ जा मैं

तुम्हें मुक्त कर दूँगा। लेकिन संकल्पोंका सब तरहसे विनाश होना मामूली बात नहीं है। यदि जगत्का संकल्प आ गया तो जगत्का चिन्तन त्यागके लिये भी न करें। यह मनोवैज्ञानिकोंका सिद्धान्त है कि त्यागके लिये भी त्यागके योग्य वस्तुका चिन्तन अधिक न करें, क्योंकि इससे त्याग तो होगा नहीं, उलटे उस वस्तुका चिन्तन करते रहनेसे वह वस्तु मनके संकल्पमें आ जायगी। इसलिये संकल्पोंके विषयको बदलना होगा। प्राकृत संकल्पोंके स्थानपर भगवत्-संकल्प लाने होंगे। भगवान्का चिन्तन किसी प्रकारसे चित्तमें आवे। गीताके विभूतियोगमें भगवान्ने एक जगह कहा—

द्यूतं छलयतामस्मि।

—जुआ बताया अपनेको। किसी भी मनु, याज्ञवल्क्य या पराशरस्मृतिमें कहीं भी जुएका समर्थन हो तो बताइये! पर भगवान् कहते हैं कि 'मैं जुआ हूँ।' क्यों कहते हैं? किनमें जुआ मैं हूँ—छल करनेवालोंमें '**छलयताम्**'। जुआरियोंसे कोई कहे कि गीताभवनमें बैठो, अमुक-अमुक स्थानसे महात्मा आये हैं, जाकर उनके उपदेश सुनो, तो उन्हें फुरसत नहीं है। पर वे यदि कहते हैं—भइया एक काम करो—जुआ खेलते हो? हाँ खेलते हैं। पासा फेकते हो? हाँ फेंकते हैं। तो प्रत्येक पासेमें कहो—ये जुआ भगवान्, तो भगवदाकार-वृत्ति हो गयी। भगवदाकार-वृत्ति हुई कि जुआ छूटा। करना भी यही है। भगवदाकार-वृत्ति होनी चाहिये। इस प्रकार जुआरीकी वृत्ति भगवदाकार हो गयी। भगवान् थे ही कोई झूठी बात तो है नहीं। अतः संकल्पोंमें भगवत्-सम्बन्धी विषयोंको लानेकी चेष्टा करनी चाहिये। सीधी बात यह कि इन्द्रियोंमें आनेवाले भगवान्के सौन्दर्य-माधुर्यका संकल्प करें। बड़ा सुन्दर भगवान्का सौन्दर्य। जैसा-जैसा अपने मनमें आवे, उसी प्रकारके भगवान्के सौन्दर्यकी कल्पना करें। उस कल्पित रूपको बार-बार अपने मनमें देखें। उस रूपमें मन न लगे तो उनकी लीलाको देखें—

अरे खेल ही रहे हैं—गुल्ली-डंडा खेल रहे हैं, आँख-मिचौनी खेल रहे हैं, सखाओंके साथ खेल रहे हैं। ये जो भगवान् हैं; बड़ी ठोस चीज हैं और सब चीज तो तरल है, उड़नेवाली है, केवल हवा भरी है। भगवान्को मनमें भरने
लगो, बेकारकी हवा अपने-आप निकलने लगेगी। भग
भर गये हवा निकल गयी। भगवान् मनमें जितना भर जा
उतना निकलेंगे नहीं। भगवान्को पकड़ना आसान
छोड़ना आसान नहीं है। भगवान् पकड़ना जानते हैं, छो
नहीं जानते। मनमें भगवान् जितना भर गये उतना स
उन्होंने ले लिया, जो उनके अधिकारमें आ गया वे उ
सदाके लिये मालिक बन गये। इसलिये भगवत्-सम्ब
संकल्प जैसे-जैसे मनमें आवे उसी प्रकार करता रहे। इ
भगवत्-संकल्पका मन हो जायगा—उसकी प्रवृत्ति दृढ़
जायगी। मनकी एक बड़ी सुन्दर स्थिति यह है कि
तदाकार होना जानता है और जिसमें लगाया जाता
उसीके आकारका बन जाता है—तदाकार ही हो जाता
ब्रह्माकार भी, विषयाकार भी।

मनको भोगसे हटाकर भगवान्में लगाना है। अभी
ऐसा हमारा बुरा अभ्यास है कि भोगोंमें पद-पदपर दुःख
अनुभव हो रहा है, तब भी हम उन्हींकी ओर खिचते
हैं। लेकिन भगवत्-सम्बन्धी संकल्प करनेका रस मन
चखा दिया जाय तो मन वह रस अपने-आप लेने लगे
चित्त चाहता है शान्ति, चित्त चाहता है आनन्द, चित्त चा
है द्वन्द्वरहित सुख। ऐसा सुख—आत्यन्तिक नित्य-पूर्ण-
सिवाय भगवान्के और कहीं नहीं है। जो सुखस्वरू
आनन्दरूप भगवान् हैं, उन भगवान्के सम्पर्कका सुख
चित्तमें ठहरने लगे तो अपने-आप उसमें एक न
सुखकी अनुभूति होने लगेगी जो अत्यन्त विलक्षण हो
जिसने बहुत कमजोर एवं पतली-सी बत्तीकी रोश
रहनेका अभ्यास डाला हो तो एक बार तो बिजली देख
वह चौंधिया ही जायगा। उसे इस रोशनीका अनुभव
नहीं है, लेकिन जब बिजली देख लेगा, उसका प्र
मालूम हो जायगा, तो सोचेगा इसमें न बत्ती चाहिये, न
चाहिये, न दीपक चाहिये और न हवाका भय। अब इ
अच्छी रोशनीके रहते फिर बत्तीको क्यों याद करेगा

इसी प्रकार हमारा मन भगवान्का संकल्प करने
बनने लगे तो क्या होगा, संसार उसमेंसे निकलने लगेगा
ये भगवद्-भावका राज्य है, वह प्रेमका राज्य है। इस रा

भगवान्‌को प्रियतम मानकर उनकी लीलाओंका संकल्प करना पड़ता है। मन तो मानता नहीं, मन अभी भरा नहीं है। मनमें भगवान्‌को बार-बार लायें तो इससे मन भगवान्‌में जल्दी लगने लगेगा।

भगवान्‌की ऐसी चरित्र-कथा है कि इसमें सबका मन लगेगा। इस चरित्रमें सबका मन स्वाभाविक लगता है। चीज यह मधुर है और इसमें त्यागवाली कठिनता नहीं है। त्याग चाहे कैसा भी हो, मनुष्यको त्याग करना पड़ता है। यह भगवद्-भाव जब मिलेगा तो जगत्‌के वर्तमान भावको खा जायगा। चाहे जगत् इसी रूपमें रहे; पर उसकी दृष्टिमें यह भगवत्-स्वरूप ही बन जायगा। जगत्‌में प्रत्येक क्षण, प्रत्येक दशामें भगवत्-लीलाके दर्शन होंगे। सब जगह भगवान् खेल रहे हैं, सब जगह भगवान्‌का लीला-विलास हो रहा है और सभी परिस्थितियोंमें उनका लीला-विहार हो रहा है। अतः मृत्युमें भी, जीवनमें भी, सुखमें भी, दुःखमें भी प्रेमी अपने प्रेमास्पदका सुखद स्पर्श प्राप्त करता रहेगा। जो स्पर्श केवल हाथसे होता है, वह तो स्थूल स्पर्श है। सूक्ष्म स्पर्श या वास्तविक स्पर्शसे अर्थ है—आत्मस्पर्श, ब्रह्मस्पर्श एवं भगवत्-स्पर्श। यह स्पर्श इतना सुखद है कि हम लोगोंको इसकी कल्पना नहीं है। उसे व्यक्त करनेके लिये शब्द नहीं है। शब्द तो मनकी भाषाके भी नहीं होते हैं और अध्यात्मका कोई शब्द है नहीं। इनको तो संकेतोंसे, शाखाचन्द्रन्यायसे बताया जाता है—यह गूँगेके गुड़के स्वाद-जैसे अवर्ण्य है। भगवान्‌के सम्पर्कका जो सुख है; उसे बतलाया नहीं जा सकता—

गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

(रा० च० मा० १। २२९। २)

इसको अपने संकल्पोंमें जैसा आये वैसा ही करना शुरू कर दें। अपनी कल्पनाके अनुसार करनेसे क्या होगा? यह भाव उत्पन्न होने लगेगा—भगवान् सत्य है, सर्वमय है, सर्वत्र है, सबके लिये है और सब समय है। भगवान्-सम्बन्धी संकल्प भी यदि भगवान् चाहें तो सत्य कर सकते हैं, क्योंकि वे वहाँपर हैं—संकल्पित जगत्‌में भी तथा उस संकल्पित ध्यानमें भी वे तो हैं ही। भगवान्‌का वहाँ अभाव नहीं है; इसलिये जब भगवान्‌का संकल्प करने लगेंगे तो संकल्पके अनुसार उनका दर्शन होने लगेगा। यह करनेकी चीजें हैं। जब ठीक ऐसा ही होने लगेगा, तब उसमें एक ऐसे आनन्द विशेषकी अनुभूति होगी कि, फिर उसके बाद तो वहाँसे मन हटेगा ही नहीं। फिर वहाँ उसके लिये जागतिक त्याग करना सहज हो जायगा। त्याग करनेमें हमको कठिनता इसीलिये पड़ती है कि हम जिस वस्तुके लिये त्याग करते हैं, उसका महत्त्व हमारी दृष्टिमें इस त्याग करनेवाली वस्तुकी अपेक्षा बहुत अधिक नहीं है। वह वस्तु आवश्यक भी हो तो भी उसके लिये त्याग हो जाता है, जैसे—घरमें दाल नहीं है, दाल लानी है, रुपया ले जाय तो दाल थैलीमें डालेंगे और रुपया फेंक देंगे। ऐसी आवश्यक परिस्थितिमें रुपयेका त्याग करनेमें कठिनाई नहीं होगी।

वैसे ही भगवान्‌की आवश्यकता और भगवान्‌में प्रियता—ये दो हो जायँ तो फिर और कुछ नहीं चाहिये। प्रियता तो सर्वोपरि है। प्रियता होनेपर तो उस प्रेमीके लिये भगवान् मनका निर्माण करके उसके साथ मिलना चाहते हैं—

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। १)

भगवान् स्वयं रसास्वादन करना चाहते हैं। यदि रस पवित्र हो, यदि रस अव्यभिचारी हो, यदि उसमें कुरसता, विरसता, अरसता न हो तो उस रसका रसास्वादन करनेके लिये भगवान् चले आते हैं। मनमें विषय तो हो नहीं और जो समर्पण है जीवनका, वह उनके सुखके लिये हो तथा उसमें भरा हो त्याग तो यह रस और सरस बन जाता है। इसमें प्रेम-रस भरा रहता है। सरस रस जहाँ बन गया तो उसको लेने भगवान् आते हैं! सरस रस होता है प्रियतामें—प्रियत्वमें। जहाँ भगवान् प्रिय लगे उनका नाम प्रिय हो गया, उनका धाम प्रिय हो गया, उनका सब कुछ प्रिय हो गया, उनकी बात प्रिय हो गयी, सारा-का-सारा मधुर हो गया। वल्लभाचार्यजीका एक मधुराष्टक है—सारा मधुर-ही-मधुर; ये मधुर क्यों? भगवान्‌के माधुर्यका जब प्राकट्य होता है तो सारे जगत्‌में मधुरता भर जाती है। भगवान्‌के रसका प्रादुर्भाव होता है तो जगत् सरस बन जाता है। भगवान्‌के प्रकाशका प्राकट्य होता है तो जगत् प्रकाशमय बन जाता है। परंतु जहाँ भगवान्‌का सम्पर्क नहीं, वहाँ न रस है, न प्रकाश है और न

औज्ज्वल्य ही। वहाँ तो तम है, अन्धकार है, कुरस है, विरस है, अरस है। भगवान्‌की चाह पैदा हो जाय, प्रियता न भी हो तब भी काम हो जाता है। जीवमात्र सुख चाहता है; पर अखण्ड-पूर्ण-नित्य-सुख इस संसारमें नहीं है—इसीलिये कहीं भी तृप्ति नहीं मिलती। सिद्धान्त यही है—इन्द्र हो जायँ, ब्रह्मा हो जायँ तब भी हम आगे कुछ और प्राप्त करना चाहते हैं। इसका अर्थ यही है कि नित्य-अखण्ड-पूर्णको चाहते हैं, वह चाहे आत्मा हो, ब्रह्म हो, भगवान् हो—जो नित्य है, पूर्ण है, अखण्ड है उसीको हम चाहते हैं। आवश्यकता तो हो गयी और कहींपर मलका कीड़ा टट्टीपर जाकर बैठ गया तो वह कहेगा अमृत है; फिर यदि उसीसे अपनी आवश्यकताकी पूर्ति करता रहेगा तो अमृत कहाँ मिलेगा? सीधी बात तो यह है कि हम सब मलभक्षी हैं, आवश्यकता तो हमें अमृतकी है, परंतु हम मलमें अमृत मानते हैं। दो प्रकारकी मक्खियोंका वर्णन आता है। रामकृष्ण परमहंसजीने कहा कि दो प्रकारकी मक्खियाँ होती हैं। एक तो मधुमक्खी होती है जो केवल शहद खाती है और एक विष्ठादि मक्खी होती है जो शहद भी खाती है और यदि मल दिख जाय तो वह शहदको छोड़कर मल भी खाने लगती है। इसलिये विषयासक्त लोगोंका स्वभाव है मलासक्ति। विषयासक्तिका अर्थ है—मलासक्ति। भोगासक्तिका अर्थ है मलासक्ति।

विषयरूपी विषको माँग-माँग कर पीना चाहते हैं और यदि भगवान्‌ने नहीं दिया तो कहते हैं महाराज, हमको तो अभावमें रख दिया आपने। भाग्य फूट गया हमारा जो आपने कृपा हमपर नहीं की। बोले भगवान्, हम याद आते हैं? वे बोले आप याद आते हैं तो क्या! आप न याद आयें, पर हम तकलीफ जो पाते हैं; पहले इसे मिटाओ। फिर आपकी बात करेंगे।

रसकी आवश्यकता सबको है, क्योंकि रस भगवान्‌का स्वरूप है। सभी भगवान्‌को चाहते हैं ये भी ठीक है, लेकिन हम भगवान्‌की चाह पूरी कर लेते हैं भोगोंसे—विषयोंसे पूरी करना चाहते हैं भगवान्‌की चाहको। चाह पूरी होती भी नहीं और मिलता है दुःख-ही-दुःख। भगवान्‌की कृपासे वह क्षण हमें तभी प्राप्त होगा, जब हमारा मन यथार्थ देखेगा—हम उस रसको ही केवल प्राप्त करना चाहेंगे। हमने तो गंदी चीजको मिठाई मान लिया—विषको सुधा समझ लिया। तुलसीदासजी भी यही कहते हैं—

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

(रा० च० मा० ७। ४४। २)

जो नर-तन लेकर विषयोंमें मन लगाते हैं, वे अमृत देकर बदलेमें जहर लेते हैं। ऐसे लोगोंको कौन बुद्धिमान् कहेगा, जो पारसमणिको खोकर घुँघची लेते हैं—

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

(रा० च० मा० ७। ४४। ३)

उसको मिलता क्या है? इस जीवनमें भोगीको—नरक-यन्त्रणा और दुर्भाग्य।

ते नर नरकरूप जीवत जग भव-भंजन-पद-बिमुख अभागी।

(विनय-पत्रिका १४०)

इसीलिये सावधानीकी आवश्यकता है। सावधान हो करके भगवान्‌में रस मानकर चले। किसी दूसरी चीजमें मन ललचाया नहीं कि तत्काल गंदगी याद कर ली और सच्ची बात तो यह है कि उधर मन लगनेपर स्थिति अपने-आप बनेगी। जिसका मन एक बार भगवान्‌में खिंचा; वह लौटेगा नहीं। यह उसका विलक्षण जादू है। भगवान्‌की ओर मन खिंच जाय तो उसे लौटाना अपने वशकी बात नहीं है, ऐसी मजबूत पकड़ है कि फिर लौटता नहीं। बस दो काम करें—एक तो मनमें भगवत्-सम्बन्धी बहुत सुन्दर संकल्प करनेका प्रयास करें, दूसरे अपनी भाषामें—प्रेम-भावकी भाषामें अपना दुःख भगवान्‌के सामने रोवें। कातर प्रार्थना करें कि महाराज, आप कृपा करके ऐसा करें कि मेरे मनमें आपके सिवाय सारे संकल्पोंका संन्यास हो जाय। मैं नहीं चाहता किसी और प्रकारका सुख, केवल आपका स्मरण मनमें बना रहे—यही सत्य-संकल्प भगवत्-चिन्तनका मूल है। ऐसा करते रहनेसे सहज ही भगवान्‌का, उनकी लीलाका चिन्तन होता रहेगा। फिर तो हम साधनको ही नहीं साध्यको भी प्राप्त कर लेंगे।

(कैसेट-नं० १०६ के आधारपर)

* * *

परमशिवकी परम लीला

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)

समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मा, सर्वव्यापी, परमानन्दस्वरूप, निर्विकल्प और सत्यस्वरूप परमतत्त्व परमेश्वरको ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानीलोग अविनाशी, कलिल, गूढदेह, ब्रह्मानन्द, अमृत तथा विश्वरूप कहते हैं और कहते हैं कि उसे प्राप्त करनेपर पुनरावृत्तिका भय नहीं होता। परमेश्वरकी विचित्र लीला है। सृष्टि, स्थिति और लय उसका ही लीला-विलास है। जो उसके लीला-विलासको जानता है, वह उसे प्राप्त कर लेता है। श्रीभगवत्पाद आद्यशंकराचार्यजीने 'शिवानन्दलहरी' (६६)-में कहा है—'हे शम्भु! हे पशुपति! समस्त विश्वका सृजन तुम क्रीडार्थ ही करते हो, लोग तुम्हारे क्रीडामृग हैं। मुझसे आचरित जो भी कर्म है, वह तुम्हारी संतुष्टिके लिये ही है। मेरे सभी कार्य कौतूहलपूर्ण तुम्हारी क्रीडाका ही कारण या प्रतीक होनेसे मेरी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य ही है'—

क्रीडार्थं सृजसि प्रपञ्चमखिलं क्रीडामृगास्ते जना
यत्कर्माचरितं मया च भवतः प्रीत्यै भवत्येव तत्।
शम्भो स्वस्य कुतूहलस्य करणं मच्चेष्टितं निश्चितं
नित्यं मामकरक्षणं पशुपते कर्तव्यमेव त्वया॥

अव्याज-करुणासमुद्र भगवान्‌की विचित्र लीलाओंकी पहचान केवल भक्त-हृदय ही कर सकता है। भक्तोंके उपकार तथा भक्तोंके उद्धारके लिये भगवान्‌की नाना प्रकारकी लीलाएँ होती हैं। उन लीलाओंके स्मरण, दर्शन और श्रवणसे भक्तका हृदय बाग-बाग हो जाता है एवं पुलकित होकर वह गान करने लगता है—

वक्षस्ताडनमन्तकस्य करिणोऽपस्मारसम्मर्दनं
भूभृत्पर्यटनं नमत्सुरशिरःकोटीरसंघर्षणम्।
कर्मेदं मृदुलस्य तावकपदद्वन्द्वस्य गौरीपते
मच्चेतो मणिपादुकाविहरणं शम्भो सदाङ्गीकुरु॥
(शिवानन्दलहरी-८१)

तपस्याके फलके रूपमें महर्षि मृकण्डुने अल्प आयुवाले, परंतु बुद्धिमान् पुत्र मार्कण्डेयको प्राप्त किया था। बुद्धिमान् इसलिये हैं कि वे परमेश्वरकी अविचल भक्तिके रहस्यको जानते थे। जब वे सोलह वर्षकी आयुके हुए और उनके समीप जब मृत्यु पहुँचनेवाली थी, तब वे माता-पिताकी आज्ञा प्राप्तकर देवालयमें भगवान् शंकरके सांनिध्यमें एकाग्रचित्तसे तपस्या करने बैठ गये। यम-किंकर उनको ले जानेमें सफल न हुए तो स्वयं यम वहाँ पहुँच गये। यम अपने कर्तव्यसे अस्थिर न हुए, परंतु भगवान्‌के सांनिध्यमें स्थिर बैठे हुए मार्कण्डेयको वे हिला न सके। अपने भक्तकी रक्षामें तत्पर भक्तवत्सल भगवान् परमशिवने लात मारकर अन्तकका ही अन्त कर दिया और मार्कण्डेयको चिरंजीवी बना दिया। भगवान्‌की विचित्र लीला है। उन्होंने बादमें अन्तकको जीवित भी कर दिया। सर्वज्ञ, सर्वव्यापी परमेश्वरके लिये क्या यह असम्भव है?

दारुका-वनमें यज्ञ-यागादिके समय समुद्भूत अपस्मारका निज पदाघातसे सम्मर्दन किया परमशिव परमेश्वरने। यह भी उनका लीला-विलास है। ताण्डव-नृत्य करनेवाले नटराजके पादतलमें यह अपस्मार दर्शित है। यह अपस्मार क्या है? यह तो अज्ञानका प्रतीक है। मृत्युञ्जय परमेश्वरकी प्राप्तिके लिये अज्ञानका नाश आवश्यक है न!

सुरम्य कैलासमें विहार करनेवाले शिवशंकरके कोमल चरणोंको छूनेके लिये किरीटधारी सुरगणोंका ताँता लगा रहता है। देवताओंके प्रणिपातके समय भगवान्‌के मृदुल चरणोंको कठिन संघर्षण सहना पड़ता है। दयानिधि परमेश्वर उसे सह लेते हैं, क्योंकि वे भक्तप्रिय और भक्तिप्रिय हैं। वस्तुतः वे भक्तजनचेतोविहारी हैं। भक्तमानस-मणिपादुका-विहरण वे सदा स्वीकार करनेवाले हैं।

तपस्वियोंमें अग्रगण्य, भृगुकुलतिलक मार्कण्डेय नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। उन्होंने अविद्यादि पञ्च क्लेशोंको जीत लिया था। कई सहस्र वर्ष अनवरत वे श्रीहरिके ध्यानमें मग्न रहे। छः मन्वन्तरोंके अतिदीर्घकालको उन महर्षिने व्यतीत किया और इस सातवें वैवस्वत मन्वन्तरमें वे तपस्यामें लीन रहे। महेन्द्रने उनके तपोवृत्तान्तसे भीत होकर उनके तपोभंगके लिये अप्सराओं, गन्धर्वों, मदन और वसन्त आदिको प्रेषित किया। मार्कण्डेयके पुण्याश्रममें वे सब पहुँचे। अपनी समस्त शक्तिका प्रयोग करनेके बावजूद भी वे लोग ब्रह्मनिष्ठ

महर्षि मार्कण्डेयको तपस्यासे विचलित न कर सके। हताश वे लोग अपना-सा मुँह लेकर महेन्द्रके पास लौटे। महेन्द्रने मार्कण्डेयकी तपोनिष्ठा और प्रभावके बारेमें जानकर दाँतों-तले उँगली दबायी। सभी देवता परमाश्चर्य-चकित हुए। ऐसे मार्कण्डेयको श्रीहरिके अवतार नर-नारायणने दर्शन दिया। भगवल्लीलाको कौन जान सकता है? श्रीमद्भागवत (१२। ८। ३५)-में वर्णन है—

ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी।
दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्ननामाङ्गेन दण्डवत्॥

मार्कण्डेयने उनको दण्डवत् प्रणाम किया। वे रोमांचित हुए। आनन्द-बाष्पोंके कारण वे नर-नारायणको ठीक-ठीक देख न सके; फिर वे गद्गदकण्ठसे उनकी स्तुति करने लगे—'हे आत्मबन्धो! यद्यपि सत्त्व, रज और तम-गुणात्मक इस जगत्की उत्पत्ति-स्थिति और लयके कारण ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-रूप लीला-मूर्तियोंके कारण तुम्हीं हो; तथापि उनमें सत्त्वमय रूप ही मोक्षका साधन है, अन्य कोई नहीं—

सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबन्धो
मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य।
लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशान्त्यै
नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम्॥

(श्रीमद्भा० १२। ८। ४५)

परब्रह्म परमात्माको स्तुतिसे संतुष्ट कर, उनसे वर-प्राप्तिका अवसर प्राप्त होनेपर महर्षि मार्कण्डेयने कहा—

जितं ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत।
वरेणैतावतालं नो यद् भवान् समदृश्यत॥
गृहीत्वाजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम्।
मनसा योगपक्वेन स भवान् मेऽक्षगोचरः॥
अथाप्यम्बुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे।
द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदाम्॥

(श्रीमद्भा० १२। ९। ४—६)

भगवान्की माया देखनेकी इच्छा प्रकट की मार्कण्डेयने। उनको ऐसी इच्छा हुई, यह भी तो भगवल्लीला है। अन्यथा लीलामयकी अगोचर लीलाके विस्तारके बारेमें कैसे ज्ञात होता?

एक दिन सायंकाल पुष्पभद्रा नदीके तटपर मार्कण्डेय ध्यानमग्न थे। देखते-ही-देखते उनको प्रबल प्रभंजनका आघात सहना पड़ा। वे प्रलयंकर झंझावातके चपेटमें आ गये। अनेक वर्ष प्रलय-जलधिकी महामायाकी भयंकरतामें घूमते-घूमते वे आक्लान्त हो गये। तब एक उन्नत स्थानमें उन्होंने एक वटवृक्षको देखा और देखा उसके एक पत्तेपर सोये हुए एक कोमल शिशुको, जिसकी देहकान्तिसे प्रलयान्धकार दूर हो जाता था। वटपत्रशायी शिशु मृदुल-कोमल उँगलियोंवाले अपने दोनों हाथोंसे अपने चरणाम्बुजको अपने मुँहके भीतर रख रहा था। उसे देखकर मार्कण्डेयको अतीव विस्मय हुआ। वे उसके पास पहुँचकर उससे प्रश्न करना चाहते थे। इतनेमें उसके उच्छ्वाससे मशकके समान वे उसके शरीरके भीतर प्रवेश कर गये। प्रलयके पूर्व जगत्की जैसी स्थिति थी, वैसा दृश्य देखकर वे विस्मय-विमुग्ध हुए। भूमि, स्वर्ग, नक्षत्रमण्डल, पर्वत, समुद्र, आकाशादि पञ्चभूत, नगर-ग्राम, युग-काल आदि जो असत्य हैं, तो भी वे सत्यके रूपमें दिखायी पड़े। हिमालय, वह स्थान जहाँ नर-नारायणके दर्शन हुए थे, पुष्पभद्रा नदी और अपना आश्रम भी उन्होंने उस शिशुके जठरमें देखा। तदनन्तर शिशुके निःश्वाससे वे बाहर प्रलयसागरमें गिरे। फिर उसी उन्नत स्थानमें वटपत्रशायी शिशुको देखकर, अमृतके समान उसकी मंद मुस्कान और करुणापूर्ण दृष्टिसे आकर्षित होकर उसे गले लगानेके निमित्त उसके पास वे जाना चाहते थे कि वह शिशु अदृश्य हो गया। भगवान्की योगमायाका यह वैचित्र्य है! तत्पश्चात् पार्वती-परमेश्वरने मुनि मार्कण्डेयके मायाके अवलोकनसे आक्लान्त मनको अपने दर्शनसे सुख और आराम ही नहीं पहुँचाया, अपितु उनको वर भी प्रदान किया कि भगवान् श्रीहरिकी भक्ति उनमें निरतिशय रूपमें हो, कल्पान्ततक यशस्वी तथा जरा-मरणरहित चिरायु होकर वे पुराणनिर्माणकी शक्तिसे सम्पन्न हों। उन्होंने त्रिकाल-ज्ञान और विशेष ब्रह्मवर्चस्का वर भी प्राप्त किया।

भगवल्लीलाके एक और मनोरम प्रसंगका उल्लेख शिवानन्दलहरी (३१-३२)-में है। देव-दानवोंने अमृतकी प्राप्तिके लिये क्षीरसागरका मन्थन किया। तब रज्जुरूपमें स्थित वासुकीके सहस्र मुखोंसे थकावटके कारण महोल्बण हालाहल नामक विष उत्पन्न हुआ। प्रसरित होनेवाली विषज्वालासे सुर-असुर क्षुब्ध और विकल होने लगे। समुद्रके जलचर मीन-मकरादि जीव-जन्तु भी विक्षुब्ध हुए। सभी ओर व्याप्त होनेवाले विषको देखकर दिक्पालोंसहित सभी लोग जगद्रक्षक सदाशिवके सांनिध्यमें दौड़े आये। लोकहित तथा मोक्षमार्गोपदेशसे ऋषियोंके

उद्धारके लिये भवानीश कैलासगिरिमें तपस्या कर रहे थे। प्रणाम कर सभीने परमेश्वरकी स्तुति की। जिसका वर्णन श्रीमद्भागवत (८।७।२१—२४)-में इस प्रकार किया गया है—

देवदेव महादेव भूतात्मन् भूतभावन।
त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद् विषात्॥
त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः।
तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम्॥
गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान् विभो।
धत्से यदा स्वदृग् भूमन् ब्रह्मविष्णुशिवाभिधान्॥
त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः।
नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः॥

स्वप्रकाश, सर्वव्यापक, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-रूपमें सृष्ट्यादि कार्य करनेवाले, शरणागतरक्षक, नानाशक्तिरूपमें प्रादुर्भूत होनेवाले तथा उपनिषत्प्रतिपाद्य परब्रह्म परमात्मा वही जगदीश्वर हैं। विषकी ज्वालाओंसे त्रिलोककी रक्षा करनेवाले उस दिव्य शक्तिकी—उन परमेश्वर नीलकण्ठ महादेवके परमोपकारको कैसे विस्मृत किया जा सकता है! भक्तका उद्गार है—

नालं वा परमोपकारकमिदं ह्येकं पशूनाम्पते
पश्यत्कुक्षिगतान् चराचरगणान् बाह्यस्थितान् रक्षितुम्।
सर्वामर्त्यपलायनौषधमतिर्ज्वालाकरं भीकरं
निःक्षिप्तं गरलं गलेन मिलितं नोद्गीर्णमेव त्वया॥
(शिवानन्दलहरी ३३)

अज्ञानियोंके उद्धारक! जगद्रक्षक! निज जठरमें तथा बाहर विद्यमान चराचरगणोंकी रक्षाको दृष्टिमें रखकर तुमने अतिज्वालाकर और भयंकर विषको, जिसे देखकर सभी देवता भी पलायन कर रहे थे, अपने कण्ठमें ही स्थित कर दिया, उसे पूरा निगला नहीं और बाहर भी आने न दिया। यह क्या कम उपकार है? तुम्हारी अपरम्पार महिमाके सम्बन्धमें क्या कहें? हे परमेश्वर! हे महात्मा! सभी देवगण अत्यन्त भयंकर विषको देखकर काँप रहे थे, उनमें भगदड़ मची हुई थी। देवताओंकी ही जब यह स्थिति है तो अन्य लोगोंके बारेमें कहना ही क्या है? ऐसे महान् विषको तुमने कैसे देखा भी? अथवा उसे तुमने हाथमें कैसे लिया? हथेलीमें रखा भी कैसे? क्या वह पका जामुनका फल था? अथवा जिह्वापर रखनेके लिये सिद्धगुटिका थी? जिसे तुमने गले या कण्ठमें स्थिर कर दिया। तुम्हीं बताओ कि क्या यह तुम्हारे गलेमें विभूषित नीलमणि है?—

ज्वालोग्रः सकलामरातिभयदः क्ष्वेडः कथं वा त्वया
दृष्टः किं मुकुरो धृतः करतले किं पक्वजम्बूफलम्।
जिह्वायां निहिता च सिद्धगुटिका वा कण्ठदेशे धृतः
किं ते नीलमणिर्विभूषणमयं शम्भो महात्मन् वद॥
(शिवानन्दलहरी ३४)

महादेवकी इस अद्भुत लीलाका वर्णन श्रीमद्भागवतकारने इस प्रकार किया है—

ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम्।
अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः॥
तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः।
यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम्॥
तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः॥
(८।७।४२—४४)

सच है कि लोकके तापसे साधु लोग तप्त होते हैं और लोकको तापमुक्त करते हैं। उनकी तपस्याका फल लोकके लिये होता है। अखिलात्मा परमेश्वरके विषयमें यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है। वे नाना प्रकारकी लीलाएँ करते रहते हैं, नाना रूपमें अपनी असीम शक्तिका वे बोधन करते रहते हैं। उनकी लीलाएँ भक्तोंके उद्धारके लिये ही हैं।

विचार करनेपर ज्ञात होगा कि भगवल्लीलाके नानारूपोंके रहस्योद्घाटनके निमित्त क्षीरसागरमन्थन-जैसे प्रसंगोंकी अवतारणा की गयी है। क्षीरसागरमन्थनके आधार कौन हैं? मन्थन करते समय मंदराचलके डूब जानेपर महाकूर्म-रूपमें उसके लिये कौन आधार बने? रज्जुरूप वासुकि कौन हैं? मन्थन करनेसे प्रारम्भमें उत्पन्न महाविषका पान करनेवाले नीलकण्ठ महादेव कौन हैं? धन्वन्तरि कौन हैं? सभी तो एक ही तत्त्वके नाना लीलारूप हैं, जो इस रहस्यको जानता है, वह परमगतिको प्राप्त कर लेता है। जैसा कि कहा गया है—

तस्मादनादिमध्यान्तं वस्त्वेकं परमं शिवम्।
स ईश्वरो महादेवस्तं विज्ञाय विमुच्यते॥
(कूर्मपु०, उ० वि० १०।१२)

ईश्वर, महादेव, परमशिव आदि सब नाम उस अद्वितीय परम तत्त्वके ही हैं, जो इस विज्ञानसे सम्पन्न होता है, वह विमुक्त हो जाता है। अतएव हमें सदा भगवल्लीलाके श्रवण-स्मरणसे तथा पठन-मननसे जीवनको सफल बनाना चाहिये।

* * *

लीलामयका लीला-तत्त्व

(श्रीमत् स्वामी श्रीनिगमानन्दजी सरस्वती परमहंसदेव)

नित्य-भावलोक गोलोकमें सच्चिदानन्दघन-विग्रह रसमय भगवान् अपनी ह्लादिनी शक्तिके साथ नित्य लीला कर रहे हैं। वहाँपर दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर आदि भाव मूर्तिमान् होकर विराजित हैं। द्वापरयुगके अन्तिम भागमें जीव कर्म और ज्ञानकी कठोर साधनासे तापित-कण्ठ हो भगवान्‌की कृपा-याचना कर रहा था। वह अपने वासना-विदग्ध प्राणोंसे आनन्दकी खोज करते हुए मृगतृष्णासे भ्रान्त मृगकी तरह दिशा-विदिशाओंमें भटक रहा था। ऐसे समयमें जीवको परमानन्द प्रदान करने और उसके प्यासे कण्ठमें मधुर प्रेम-रसकी पूर्ण धारा उड़ेल देनेके लिये भगवान् अपनी ह्लादिनी शक्ति राधाके साथ श्रीराधाकृष्णके रूपमें व्रजधाममें अवतरित हुए थे। प्रेम ही जगत्‌का श्रेष्ठ भाव है। उस प्रेमको देने, उस प्रेमकी शिक्षा प्रदान करने, उस प्रेम-रससे जगत्‌को जाग्रत् और सराबोर करनेके लिये भगवान्‌ने अपनी ह्लादिनी शक्तिके साथ मर्त्य-वृन्दावनमें मधुर रास-लीला की थी। कृष्णावतारका उद्देश्य अपूर्ण मानवको प्रेमका आस्वादन कराकर अर्थात् भगवत्प्रेमकी सुधासे तृप्तकर निवृत्तिके पथपर अग्रसर करना था। क्या अपूर्ण जीव कभी पूर्णानन्दकी प्रतिष्ठा कर सकता है? गुणोंसे आवृत गुणमय जीव कभी निर्गुण प्रेमका आदर्श बन सकता है? तब इस अपूर्ण जगत्‌में पूर्ण-स्वरूप कौन है? इसलिये भगवान्‌ने भक्तोंके प्रति अनुग्रह दिखानेके लिये मनुष्यदेहका आश्रय लेकर वैसी ही क्रीडा की थी, जिसे सुनकर भक्तगण भगवत्-प्रेमपरायण बन सकेंगे। वह क्रीडा ही वृन्दावन-लीलाके नामसे ख्यात है—

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। ३७)

सर्वप्रथम लीला क्या है? उसे समझनेकी चेष्टा करेंगे। विषय और विषयीके बीच पारस्परिक सम्बन्धयुक्त वृत्तियोंके स्फुरणको 'लीला' कहते हैं। आश्रय-तत्त्वको 'विषयी' और आश्रित-तत्त्वको 'विषय' कहते हैं। आश्रय-तत्त्वमें श्रीभगवान् विषयी और आश्रित-तत्त्व उनके शक्तिवर्गको विषय कहते हैं। शक्ति और शक्तिमान्‌में आपसमें कोई भेद नहीं है। इसलिये शक्तिमान् विषयी भगवान् और उनकी शक्ति विषयके बीच कोई भेद नहीं है। विषयी भगवान् एक एवं अद्वितीय हैं। विषय या शक्ति-समूह श्रीभगवान्‌की लीला-सामर्थ्य है। इसलिये उनसे अभिन्न है।

श्रीभगवान्‌की लीलाएँ मुख्यतः त्रिविध हैं—नित्य-लीला, सृष्टि-लीला और संसार-लीला। नित्यधामकी नित्य-क्रियाका नाम 'नित्य-लीला' है। जगत्-सृजनकी क्रिया 'सृष्टि-लीला' है और जन्म-मृत्यु एवं मोक्ष आदिसे सम्बन्धित क्रियाएँ 'संसार-लीला' है। उनमेंसे संसार-लीला-सामर्थ्यका नाम 'जीव-शक्ति', सृष्टि-लीला-सामर्थ्यका नाम 'माया-शक्ति' और नित्य-लीला-सामर्थ्यका नाम 'स्वरूपशक्ति' है। इन तीन शक्तियोंके भी 'शक्ति-रूप' और 'अधिष्ठात्री' या 'अधिष्ठाता'के नामसे दो रूप हैं। उनमेंसे शक्ति-रूप भगवान्‌के स्वरूपके अन्तर्गत आता है तथा अधिष्ठात्री-रूप भिन्न आकारमें प्रकाशित है। स्वरूपशक्तिका शक्तिरूप भगवान्‌की श्रीमूर्तिके अन्तर्गत है और उनकी नित्य-लीलाके परिकरवृन्द उनका अधिष्ठात्री-रूप है। माया-शक्तिका शक्तिरूप भगवान्‌के प्राकट्य-विशेष या अन्तर्यामी परमात्माके अन्तर्गत है और अधिष्ठात्री-रूप 'महामाया' है। जीव-शक्तिका शक्ति-रूप भगवान्‌के अपर आविर्भाव या सत्-स्वरूप ब्रह्मके अन्तर्गत है तथा अधिष्ठात्री-रूप जीव-सृष्टि है। नित्य-लीलामें आश्रय-तत्त्व श्रीभगवान् और उनके शक्ति-रूप तथा शक्तिके अधिष्ठात्री-रूप द्विविध विषय-तत्त्वके पारस्परिक सम्बन्धोंसे उत्पन्न वृत्तियोंका स्फुरण स्वभावतः सिद्ध होता है। जिसके द्वारा वह नित्य-लीला-रस और आस्वादनके योग्य बनती है, वह 'रासलीला' है। यह रासलीलाका सामान्य लक्षण है, परंतु जिसके द्वारा नित्य-लीला आस्वादनके योग्य बननेकी पराकाष्ठातक पहुँचती है, वह रासलीलाका विशेष लक्षण है।

विषय-तत्त्व और आश्रय-तत्त्वके स्वाभाविक स्फुरण-रूपी नित्यलीलासे दो उद्देश्य सिद्ध होते हैं। पहला उद्देश्य साधक-जीवको आकर्षित करना और दूसरा उद्देश्य नित्यसिद्ध-परिकरोंकी वासनाएँ पूर्ण करना है। भगवान् साधक भक्तोंको आकर्षित करने और प्रेमी सिद्ध भक्तोंके मनोरथको पूरा करनेके लिये लीला करते हैं। यह लीला उनकी सच्चिदानन्दमयी वृत्तियोंके स्फुरणके अतिरिक्त और कुछ

नहीं है। अत: यह व्रजलीला भक्तोंका आकर्षण और स्वरूपानन्द है। भगवान् विश्वमय हैं। इस व्रजलीलामें भक्तोंके आकर्षणसे भक्तोंके हृदयमें जिस स्वरूपानन्दका उद्रेक हुआ था, वह पुन: भगवान्‌को अर्पित हुआ था। इस स्वरूपानन्द-शक्तिकी लीला जगत्‌में 'अवतार-लीला'के रूपमें प्रत्यर्पित हुई थी। मर्त्यजीवोंके शुष्क कण्ठमें स्वरूपानन्दका अमृत प्रदान करनेके लिये भगवान् अवतरित हुए थे। वे ह्लादिनी शक्तिके आकर्षणके लिये नित्य-मुक्त स्वगणोंको साथ लेकर आये थे। स्वगण ह्लादिनी शक्तिको आकर्षित करके तद्गत प्राणोंसे उसे पुन: उन्हें अर्पित करते थे। स्वगणोंको अपने सुख या अपने आनन्दका ज्ञान नहीं था। वे उस आनन्द या उस सुखको श्रीभगवान्‌को अर्पित करते थे। भगवान् विश्वरूप हैं, इसलिये उनका वह भाव जगत्‌में बिखर पड़ा है। उस शरद्-पूर्णिमाकी रातमें फूलोंकी महकसे आमोदित होकर दिशाओंमें जो अमृतकी धारा बह रही थी, वह अब भी मर्त्य-जगत्‌में प्रत्येक प्राणमें प्रवाहित है। उस आनन्दको पानेके लिये लीलातत्त्वकी साधना करनी होती है। लीलातत्त्वकी साधनासे अन्तर्हृदय प्रेमरस-से पूर्ण हो जाता है। इससे मनुष्यका जीवन और जन्म धन्य हो जाता है। जीवके हृदयमें कामका उन्मेष होनेपर उसमें आत्मप्रसाद या आत्मेन्द्रिय-प्रीतिकी इच्छा जागती है, परंतु भगवान्‌के संयोगसे प्रभामयी ह्लादिनी शक्तिपर आश्रित होनेके कारण जीवके अन्तरमें भगवत्-मिलनकी इच्छा जागती है। मायाश्रित होनेपर जीवके अन्तरमें जैविक मिलनकी वासना जागती है तथा आत्मेन्द्रिय-प्रीतिकी इच्छा जागती है, परंतु योगाश्रित होनेपर भक्तके प्राण भगवान्‌को पाना चाहते हैं। इसलिये लीलातत्त्वकी साधनासे कामपर विजय प्राप्त की जाती है तथा भगवत्-प्रेमका उद्रेक होता है।

भगवान् जीवको इस नित्य-लीला-तत्त्वका आस्वादन करानेके लिये और साधनाकी शिक्षा प्रदान करनेके लिये राधाकृष्णके रूपमें व्रजधाममें अवतरित हुए थे। इस व्रजलीलाके रहस्यको जाननेके लिये व्रजलीलाके आध्यात्मिक भावको हृदयंगम करना चाहिये। तभी सही अर्थमें लीलाको हृदयंगम किया जा सकता है।

जीवात्मा जिस समय संसारकी कुटिलता और मायासे परिव्राजित होता है, उस समय उसके अन्तरमें व्रजका भाव खिल उठता है। जबतक तृणावर्त, अघासुर, वकासुररूपी कुटिलताका विनाश नहीं होता, तबतक व्रजलीला कभी भी सम्भव नहीं है। उस व्रज-भावमें प्रकृति-व्रजेश्वरीका मिलन आनन्दधाम ही वृन्दावन है। जबतक जीवके अन्तरमें सांसारिक बीज नष्ट नहीं होते, तबतक जीवकी मुक्ति सम्भव नहीं है। सांख्यदर्शनके मतानुसार प्रकृति और पुरुषकी घनिष्ठता ही संसारके रूपमें प्रकाशित है। जगत्‌में प्रकृति और पुरुष एक दूसरेके प्रति पूर्णत: आसक्त हैं। उनका बिछुड़न ही मुक्तिकी सीढ़ी है।

श्रीराधारानीका श्रीकृष्णसे शत वर्षका विच्छेद जीवात्माके शत वर्षकी अनासक्तिजन्य मुक्ति प्राप्त करनेके समान है। शत वर्षके बाद श्रीराधिकाजीके साथ श्रीकृष्णका मिलन होता है। यह मिलन जीवात्माकी मोक्षपद-प्राप्ति है। व्रजलीलामें इस निगूढ योगतत्त्वका एक-एक करके स्फुरण हुआ है। योगके द्वारा जीवात्मा परमात्माके साथ जितने रूपोंमें रमण करता है, उसके अनुभव और मिलनके जितने स्तर हैं, वह सब श्रीराधा-कृष्णकी लीलामें प्रकाशित है।

संसारधाम-रूपी गो-गोष्ठमें श्रीकृष्ण प्रजापालन-रूपी गोचारण कर रहे हैं। पहले आनन्दधाम-नन्दालयमें श्रीकृष्णका नन्द महाराजके साथ पिता-पुत्रका सम्बन्ध स्थापित होता है। माता-पिताका पुत्रके प्रति वात्सल्य-भाव भक्तोंकी भक्तिसे भी प्रगाढ है। भक्तोंका ईश्वरके प्रति जो अनुराग है, वह वात्सल्य-भावसे भी श्रेष्ठ है। यशोदा और नन्दका जो वात्सल्य-भाव है, उसे भक्तोंके लिये वात्सल्य-भावकी साधनाके आदर्शके रूपमें स्वीकार किया जा सकता है। भक्तगण भगवान्‌को दूध, मलाई और मक्खनका भोग लगाते हैं। वे अन्त:करणके सर्वश्रेष्ठ उपहारको भक्ति-रूपी फूल और चन्दनसे भिगोकर अर्चना करते हैं। वे नन्द-यशोदाकी तरह स्नेहके दृढ़ बन्धनसे उन्हें बाँधकर रखना चाहते हैं। सख्यभावमें व्रजके ग्वाल-बालोंकी तुलना की जा सकती है; परंतु नन्द-यशोदाका स्नेह और व्रजबालाओंकी उस प्रीतिकी तुलनामें एक और श्रेष्ठ वस्तु है—और वह है राधारानीका कृष्णानुराग। भक्तोंका भगवत्-अनुराग स्फुरित होकर क्रमश: सख्य और वात्सल्यभावसे प्रगाढतर होकर राधाप्रेममें पहुँचता है। पति और पत्नीके प्रेममें थोड़ा दूर रहनेका भाव है; परंतु राधा-कृष्णके प्रेममें वैसा भाव नहीं है। राधा श्रीकृष्णके साथ मिलनके लिये लालायित रहती थीं। राधा उस मिलनके आनन्द-सागरमें निमग्न हो जाया करती थीं। क्षणिक मिलनमें योगियोंका जो आनन्द है, राधाका आनन्द उससे कहीं अधिक है। श्रीराधारानी अपने अन्तरमें इसी तरहका अनुराग लेकर कृष्ण-प्रेममें उन्मत्त हुई थीं। राधा-कृष्णका मिलन पति-पत्नीके संयोगसे भी अधिक

प्रगाढ है। श्रीभगवान्में यह अनुराग परम भक्तके परानुरक्तिके सदृश है। इस परानुरक्ति या प्रेमके क्रम-विकासको योगतत्त्वसे अनुभव किया जाता है। उस प्रेमके स्फुरणका बाह्य विकास ही व्रजलीला है। विप्रलम्भ-अवस्थामें अधिरूढ-भाव-हेतु जिस सम्भोगकी स्फूर्ति होती है, उसका नाम 'प्रेम-विलास' है। व्रजलीलामें इस प्रेम-विलासकी समस्त अवस्थाओंका परिपूर्ण विकास हुआ था।

स्वरूपशक्ति और मायाशक्तिके बीच जीव-शक्ति या तटस्था-शक्ति है। मायाशक्तिद्वारा प्रताड़ित होकर जीव क्रमशः स्वरूपशक्तिकी ओर अग्रसर होता है। इसे जीवकी क्रमोन्नति कहते हैं। जब भगवद्-भक्तमें स्वरूपशक्ति प्रकाशित होती है, तब वह उस शक्तिको भगवान्को अर्पित करता है। स्वरूपशक्ति त्रिविध है—संधिनी, संवित् और ह्लादिनी। भक्तोंकी ये तीनों स्वरूप-शक्तियाँ भगवान्को आलिंगन करके अधिष्ठित रहती हैं। संधिनी-शक्तिके सार अंशके शुद्ध सत्त्वमें भगवत्-सत्ता विश्राम करती है। संवित्-शक्ति भगवान्के भगवत्ता-ज्ञानको प्रतिष्ठित करती है। ह्लादिनी-शक्तिकी सार वस्तु प्रेम और भाव है। भावकी पराकाष्ठाको 'महाभाव' कहते हैं। श्रीराधारानी महाभाव-स्वरूपिणी हैं।

ह्लादिनी-शक्ति ही भगवान्को आनन्दका आस्वादन कराती है। इस ह्लादिनी-शक्तिकी सहायतासे भक्तोंका पोषण होता है। इसलिये उन्हें 'गोपी' कहते हैं। जिनके कारण जीवोंके हृदयमें नित्यानन्दकी अनुभूति होती है, उन्हें आनन्द अर्पित करना जीवोंका मुख्य कार्य है। जब ह्लादिनी-शक्ति भगवान्को अर्पित होती है, तब यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आनन्दरससे सराबोर हो जाता है। इससे जगत्में आनन्दकी धारा निरन्तर प्रवाहित होती है। उस आनन्दसे भक्तोंको अखण्ड आनन्दकी अनुभूति होती है। आनन्दमय-आनन्दमयीके मिलनके परिणामस्वरूप यह जगत् आनन्द-रससे भर जाता है। इसलिये ह्लादिनी-शक्तिने रासलीलामें भगवान्को आनन्द-रस दिया था। इसी कारण भगवान्ने धरतीपर व्रजलीलाके अन्तर्गत रास-विहार करके जगत्को आनन्द-रससे परितृप्त किया था। जिस दिनसे व्रजलीला आरम्भ हुई थी, उसी दिनसे जीव रस और आनन्दका दिग्दर्शन प्राप्तकर कृतार्थ हो रहा है।

भगवान्की नित्यलीलाके प्रेम और रसमाधुर्यका प्रकाश करने तथा सांसारिक जीवोंको उसे प्राप्त करनेके उपाय सिखानेके लिये श्रीकृष्णने व्रजलीलाका अभिनय किया था। प्रकृति और पुरुषकी प्रेमलीलाके रहस्यको पूर्णतया अवगतकर उनकी लीलाके आनन्दसे आत्माको अभिभूत करके रखना ही संसारसे निवृत्तिका एकमात्र उपाय है। ऐसा करनेसे अन्तरमें अपूर्व आनन्दकी अनुभूति होती है। उस समय फलमें, फूलमें, पेड़-पौधोंमें, वायु-अग्निमें, जल-स्थलमें, मनुष्य और मनुष्येतर समस्त जीवोंमें, सर्वत्र उन पुरुष और प्रकृतिकी नित्य-रासलीलाके रसकी अनुभूति होती है। उस समय सबके साथ अपनी आत्माका मिलन-भाव उत्पन्न होता है—जीवके साथ जीवका सम्बन्ध दूर होकर जीव और चैतन्यके मध्य मिलन होता है। इससे जीवके हृदयमें मिलनजन्य प्रेमरसकी धारा प्रवाहित होती है।

चारों ओर कामकी आग जल रही है। इसलिये चाहे कितना भी कहो कि चित्तवृत्तिका निरोध करूँगा, कर्मानुष्ठान करूँगा, शास्त्रोंका पाठ करूँगा और निष्काम कर्म करूँगा, फिर भी उससे कुछ लाभ होनेवाला नहीं है। क्या कोई उस अविजित कामकी आगके प्रभावसे बच पाया है? प्रकृतिको लेकर काम है। प्रकृतिके परिणामसे ही जीवकी काम्य-वस्तु उत्पन्न होती है। प्रकृतिके इस माया-आवरणको भेदकर योगमायाकी निर्मल शुद्ध ज्योति मर्त्यधाममें बिखेरने, भक्त-भगवान् तथा आनन्दमय और आनन्दमयीके मिलनजन्य उस धर्मकी आनन्दधाराको मायासे आवृत इस जगत्में प्रवाहित करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण अवतरित हुए थे। उन्होंने जीवको कामकी शिक्षा देनेके लिये व्रजलीला की थी। जीव भगवान्की सृष्टि-लीलाके भीतर संसारलीला करते-करते नित्यलीलामें पहुँचकर स्वरूपानन्दका भोग कर सके, यही लीलावतार श्रीकृष्णकी व्रजलीलाका उद्देश्य है।

'ब्रह्मसंहिता' कहती है—जो गोविन्द आनन्दचिन्मय रससे प्रतिभावित और आत्मस्वरूप आत्मकलारूपिणी गोपियोंके साथ गोलोकधाममें नित्यलीला कर रहे हैं, मैं उन 'गोविन्द' नामधारी भगवान्का भजन करता हूँ। वे ही समस्त जीवोंकी आत्मा हैं—

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव विलसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

[बँगला-भाषासे अनूदित—अनुवादक—प्रभाकर महान्ति]

* * *

कृष्णस्तु लीलामयः

(अनन्तश्रीविभूषित द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज)

सामान्यतया लोकमें अपने वास्तविक स्वरूपको छिपाकर समाजको अपने किसी अन्य नाम-रूप तथा कर्मोंका बोध करानेकी प्रक्रियाको 'लीला' कहते हैं। वैसे तो 'लीला' शब्द श्लेषण-अर्थमें पठित **'लीङ्' (लीङ् श्लेषणे)**-धातुके साथ **'क्विप्'** प्रत्यय करनेपर और आदान-अर्थमें पठित **'ला' (ला आदाने)**-इस धातुसे **'क'** प्रत्यय करनेपर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है—खेल, क्रीडा, आनन्द, विनोद, स्वेच्छाचारिता, रतिक्रीडा, सुविधा, बालक्रीडा, आभास एवं हाव-भाव आदि। जिस समय जिस पात्रका रूप धारण करके व्यक्ति लीला करता है, उस समय समाजद्वारा वह व्यक्ति उसी पात्रके रूपमें देखा-समझा जाता है। नट-नटी अथवा अन्य किसी पात्रका वास्तविक रूप वही जान पाता है, जो यवनिकाके अन्तर्गर्भमें प्रवेश करता है अथवा अपनी वास्तविकताको वे नट-नटी ही स्वयं जानते हैं, अन्य कोई नहीं। यदि ऐसा न हो तो नाटकके रसका बोध सामान्य जनको हो ही नहीं सकता। वस्तुतः यह सारा संसार भ्रम है। सच्चिदानन्दघन परमेश्वरका अंशभूत यह जीव अलग-अलग शरीर धारण करके विविध पात्रोंके रूपमें अपने वास्तविक रूपसे अलग हटकर नाम-रूपात्मक अभिनय कर रहा है।

इसी प्रकार अशरणशरण अकारण करुणावरुणालय आनन्दकन्द सच्चिदानन्द परब्रह्म भी अनित्य-भ्रमात्मक विश्वरूपी रंगमंचपर लोकहित-हेतु अपने विविध नाम-रूपोंसे नित्य लीलाएँ करते रहते हैं। किंतु इनके वास्तविक स्वरूपको मायारूपी यवनिकाके कारण हमारी सामान्य इन्द्रियाँ न देख पाती हैं और न समझ पाती हैं। ज्ञान, भक्ति, कर्म, ऐश्वर्य, सौन्दर्य, माधुर्य, स्नेह, सौहार्द एवं सौष्ठवकी मूर्ति, रसस्वरूप, निखिल-ब्रह्माण्ड-नियन्ता भगवान्की लीलाएँ अनेकानेक अवतारोंके रूपमें इस धराधामके निवासियोंको देखनेको मिलती रहती हैं। सज्जनोंकी रक्षा, दुष्टोंके विनाश, धर्मकी स्थापना, अधर्मके उन्मूलन एवं प्रेम और सौमनस्यकी स्निग्ध-स्नेहिल धाराको प्रवाहित करनेके लिये भगवान् कभी मत्स्य, वराह, नृसिंह तथा कच्छप बनते हैं, तो कभी राम, कृष्ण अथवा परशुराम। भारतीय चिन्तन-परम्पराके विद्वद्-धुरीण मनीषियोंका मत है कि भगवान्के जो अनेक अवतार हैं, वे अलग-अलग कलाओंके हैं; किंतु श्रीकृष्णावतार पूर्ण कलाका अवतार है, क्योंकि **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'**।

कंसके कारागारमें जन्मके समय प्रहरियोंका सो जाना, वसुदेवद्वारा नवजात शिशुको नन्दबाबाके घर पहुँचाना, मार्गमें शिशु श्रीकृष्णके अङ्गुष्ठसंस्पर्शसे यमुनाजलका शान्त होना, बादमें खेलते-खेलते अपना अँगूठा पीना, शकटासुर-तृणावर्त और पूतना राक्षसीको दण्ड देना, माखनचोरी, गोचारण, कालियनागका विनाश, कंसमर्दन, रासलीला, गोपीप्रेम, राधाप्रेम, ग्वालबालोंकी मैत्री, मथुरागमन, कालयवन-जरासन्ध प्रभृतिका संहार, ब्राह्मण-सम्मान, राजदूतकी भूमिका, कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें महाभारत-युद्धका संचालन, सारथिका कर्म, कौरवसंहार, उत्तंक ऋषिसे वार्ता, द्वारकागमन, फिर प्रभासगमन, यदुकुलका संहार तथा अन्तमें भगवान्के स्वधाम-गमन आदि लीलाएँ इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि सामान्य दृष्टिमें श्रीकृष्णचन्द्र संसारके साथ बिलकुल बँधे-बँधे-से दिखायी पड़ते हैं। उनकी बालक्रीडाकी एक झाँकी देखें—

विहाय पीयूषरसं मुनीश्वरा
ममांघ्रिराजीवरसं पिबन्ति किम्।
इति स्वपादाम्बुजपानकौतुकी
स गोपबालः श्रियमातनोतु वः॥

अर्थात् बालकृष्ण अपने अँगूठेको पीनेके पहले यह सोचते हैं कि क्या कारण है कि बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि अमृतरसको छोड़कर मेरे पादारविन्दरसका पान करते हैं। क्या वह अमृतसे भी ज्यादा स्वादिष्ट है? इसी बातकी परीक्षाके लिये शिशु कृष्ण निज-पद-पान-रूपी लीला किया करते थे। इसी प्रकार रासलीलाका वर्णन करते हुए भागवतकार कहते हैं—

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः।

योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः॥

तात्पर्य यह कि दो-दो गोपियोंके मध्यमें एक-एक श्रीकृष्ण दीखते थे तथा हर गोपी व्रजनन्दनको अपने समीपस्थ समझती थी। मण्डलाकार खड़ी गोपियोंके साथ श्रीकृष्णने नृत्य किया था। इस संदर्भमें पद्मपुराणकारका मत है कि त्रेताके जिन ऋषियोंकी इच्छा रामके साथ रहनेकी थी, वे सभी द्वापरमें गोपी बन गये। अन्यत्र गोपियोंको श्रुतियाँ तथा देवकन्याएँ आदि कहा गया है। यथा—

पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः।
दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम्।
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुद्भूताश्च गोकुले॥

तथा—

गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोपकन्यकाः।
देवकन्याश्च राजेन्द्र न मानुष्यः कथंचन॥

परमार्थतः भगवान् श्रीकृष्ण पद्मपत्रमिवाम्भसा संसारसे पूर्णतः निर्लिप्त हैं। वे दुनियाके सभी अनुबन्धोंसे ऊपर शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-चैतन्य हैं। वे अपने विराट् स्वरूपके कारण महान्-से-महत्तम और परमाणुसे भी लघुतम हैं। वे असंख्यासंख्य ग्राहोंसे आक्रान्त भक्त-गजराजोंके रक्षक हैं और असहाय-दीन-आर्त भारतीय नारीकी अस्मिता-लज्जा और गौरवको बचानेवाले भी हैं। वे एक ओर अपनी वंशीकी सुरीली तानपर समग्र गोपाङ्गनाओंके चित्तापहारक हैं तो दूसरी ओर निखिल विश्वके सबसे बड़े समरके दिशा-निर्देशक भी हैं। जिनके रोम-रोममें कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड समाहित है, ऐसे भवभयहारी विपिनविहारी मुरारी वनवारी नित्यलीलारसधारी गोपीवल्लभ यशोदानन्दवर्धन व्रजनन्दनका चरित्र एक सम्पूर्णताका द्योतक है। उसमें कोई खण्ड-भाव हो ही नहीं सकता। क्योंकि भगवान् पूर्ण पुरुषोत्तम हैं—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र विश्व-चिन्तनका आदर्श-बिन्दु है। निरुक्तकार कहते हैं कि—'**भग इति ऐश्वर्यं नाम तद्वान् भगवान् इति**'—अर्थात् समस्त विश्वका सर्वविध ऐश्वर्य जिसके भीतर समाहित है तथा जो ज्ञान-विज्ञान, भूत-भविष्यत्-वर्तमान, सत्त्व-रजस्-तमस्, जड-चेतनात्मक समूची सृष्टिका जनक है और निखिल ब्रह्माण्डकी समस्त लीलाएँ जिसके भ्रूभंगमात्रसे संचालित होती हैं एवं जो केवल भक्तोंकी पूर्ण निष्ठा, भक्ति तथा उनके प्रेम और समर्पणसे ही बँधता है, ऐसे भगवान्‌की भक्तिमें पगे रसखान कविकी प्रस्तुत पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

नारद-से शुक व्यास रटे..................।
ताहि अहीरकी छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं।

अर्थात् नारद, शुकदेव, व्यास, शेषनाग, शिव, गणेश, सविता एवं इन्द्र आदि देवता सतत उपासनाके बावजूद जिनका अन्त न पा सके, जिन्हें अपना न बना सके ऐसे सृष्टि-नियामक व्रजवल्लभको गोपोंकी सामान्य कन्याएँ थोड़ेसे छाछपर यथेच्छ नाच नचाती रहती हैं। भक्तकी पुकार सुन लीलानायक कभी गोवर्धन धारण करते हैं, कभी कुब्जाको सुन्दर बनाते हैं, कभी दावानलका पान करते हैं तो कभी लौह-खम्भको चीरकर प्रकट हो भक्तकी रक्षा करते हैं। गोपियोंके लिये प्राणप्रिय तथा उद्धव और श्रीदामाके लिये मित्र, नन्द-यशोदाके लिये पुत्र, रुक्मिणीके लिये पति, राधाके लिये प्रेमी, सामान्यजनके लिये गोप-किशोर, इन्द्रके लिये विश्वव्यापी आत्मा, देवोंके लिये आनन्ददाता, स्त्रियोंके लिये रति-पति तथा मुष्टिक-चाणूर एवं कंसके लिये वे साक्षात् कालस्वरूप दीखते हैं। कंसकी सभामें इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

मल्लैः शैलेन्द्रकल्पः शिशुरखिलजनैः
पुष्पचापोऽङ्गनाभिः.......................।

आदर्श कर्मयोगी, विश्वमङ्गलरूप, सेवाधर्मव्रती, समदर्शी तथा आदर्श गृहस्थ मुरलीधरके वंशीकी ध्वनि सुनकर सम्पूर्ण व्रज ही नहीं, सारा त्रैलोक्य भी मुग्ध हो जाता है। इसीलिये रसखानने कहा—

कौन ठगौरी भरी हरि आजु
बजाई है बाँसुरिया रँग-भीनी।
तान सुनी जिनहीं तिनहीं
तबहीं तित लाज बिदा करि दीनी॥
घूमै घरी घरी नंद के द्वार,
नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी।

या ब्रजमंडल मैं रसखानि
सु कौन भटू जु लटू नहिँ कीनी॥

सर्वतोभावेन न केवल मधुर बल्कि जो मधुराधिप हैं—ऐसे नन्दनन्दनकी लीला विश्वकल्याणकी पथप्रदर्शिका है, मानव-जीवनकी समग्र समस्याओंका समाधान है। अपने-अपने जीवनको सार्थक बनानेकी सफल कुंजी, मोक्ष-प्राप्तिका निर्विघ्न सुगम राजमार्ग, अखण्ड तपश्चर्यासे पवित्रीकृत सहृदय-हृदयकी परमपूत सद्भावना एवं **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** की संवाहिका है। वस्तुतस्तु उनके असंख्य नाम हैं और नामानुरूप उनकी अगणित लीलाएँ हैं। जिनकी उपस्थापनामें शब्दोंकी सामर्थ्य भी कुण्ठित हो जाती है। इसीलिये तो उपनिषत्कार कहते हैं कि—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

अतः संक्षेपमें यही कहा जा सकता है कि भगवत्-लीला विशिष्टातिविशिष्ट है; क्योंकि जो उनके शत्रु-जैसे दीखते हैं, उन्हें भी भगवान् मुक्ति प्रदान करते हैं। वे अजातशत्रु हैं। जो मुक्ति ऋषि-मुनियोंको अपने जन्म-जन्मान्तरीय विकट साधनाके बावजूद दुर्लभ है, वह उनका शत्रुभावसे भजन करनेवालोंके लिये सहज सुलभ है। मात्र नामानुकीर्तन करनेवाले आजन्मपातकी अजामिल तकको उन्होंने परमधाम प्रदान किया। भागवत (१२। ४)-में महर्षि वेदव्यासका कहना है कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला संसार-सागरमें विद्यमान है, विविध दुःखोंके भयावह अग्निसे जलते हुए जीवके पार जाने और शान्तिके लिये एकमेव सफल नौका है।

सुर-मुनिदुर्लभ मुक्तिकी विधायिका तथा मङ्गलरूपात्मिका भगवत्-लीलाका रसास्वाद जिसे मिल गया, वह सम्पूर्ण सुख-दुःख, इच्छा-अनिच्छा, कर्माकर्म एवं स्व-परकी भावनासे ऊपर उठकर आत्माराममय हो जाता है। वह जन्म-मरणके बन्धनसे सदा-सदाके लिये छूट जाता है। भागवतकारके शब्दोंमें कहें तो कह सकते हैं कि—

तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममङ्गलम्।
कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः॥

इस प्रकार गीता हो या महाभारत, भागवत हो या अन्य पुराण, वेद हो या उपनिषद् सम्पूर्ण वाङ्मय भगवत्-लीलाका ही शाब्दिक स्वरूप है। जिसके प्रति हृदयसे समर्पित होकर कोई भी प्राणी आवागमनसे मुक्त हो जाता है—

भगवल्लीलामृतं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।

* * *

लीला-कथाके श्रवणसे परमधामकी प्राप्ति

इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयाऽऽत्तलीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि।
कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन्॥
मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्दश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति।
तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं ग्रामाद् वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः॥

(श्रीमद्भागवत १०। ९०। ४९-५०)

परीक्षित! प्रकृतिसे अतीत परमात्माने अपनेद्वारा स्थापित धर्म-मर्यादाकी रक्षाके लिये दिव्य लीला-शरीर ग्रहण किया और उसके अनुरूप अनेक अद्भुत चरित्रोंका अभिनय किया। उनका एक-एक कर्म स्मरण करनेवालोंके कर्मबन्धनोंको काट डालनेवाला है। जो यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाका अधिकार प्राप्त करना चाहे, उसे उनकी लीलाओंका ही श्रवण करना चाहिये। परीक्षित्! जब मनुष्य प्रतिक्षण भगवान् श्रीकृष्णकी मनोहारिणी लीला-कथाओंका अधिकाधिक श्रवण, कीर्तन और चिन्तन करने लगता है, तब उसकी यही भक्ति उसे भगवान्के परमधाममें पहुँचा देती है। यद्यपि कालकी गतिके परे पहुँच जाना बहुत ही कठिन है, तथापि भगवान्के धाममें कालकी दाल नहीं गलती। वह वहाँतक पहुँच ही नहीं पाता। उसी धामकी प्राप्तिके लिये अनेक सम्राटोंने अपना राजपाट छोड़कर तपस्या करनेके उद्देश्यसे जंगलकी यात्रा की है। इसलिये मनुष्यको उनकी लीला-कथाका ही श्रवण करना चाहिये।

* * *

भगवल्लीलाके कुछ रहस्य

(दण्डी स्वामी श्री १०८ श्रीविपिनचन्द्रानन्द सरस्वतीजी 'जज स्वामी')

तत्त्ववेत्ता जिसे तत्त्व कहते हैं, उसे योगशास्त्रमें 'परमात्मा' कहा जाता है, भगवद्भक्त और भागवतशास्त्र उसे षडैश्वर्यसम्पन्न 'भगवान्' कहते हैं, वेदान्तशास्त्रोंमें उसे 'ब्रह्म' कहा गया है। अभिप्राय यह है कि परमात्मा, भगवान् और ब्रह्मरूपसे प्रसिद्ध अद्वितीय अनन्त सच्चिदानन्द ही तत्त्व है।

भगवान् यद्यपि आप्तकाम अर्थात् पूर्णकाम हैं, अतएव उनके अंदर कोई कामना नहीं हो सकती, तथापि वे अपने आनन्दके उल्लासके लिये लीला करते हैं, जिसके फलस्वरूप भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। भगवल्लीलासे अभिव्यक्त उल्लसित आनन्द प्रेमी भक्तोंको परम प्रफुल्लित करता है।

'सोऽकामयत। (एकोऽहम्) बहु स्यां प्रजायेय' (तैत्तिरीयोपनिषद् २। ६) आदि श्रुतियोंका यही तात्पर्य है कि भगवान् अपने आनन्दस्वरूपका विस्तार करनेके लिये अनेक रूपोंमें प्रकट होते हैं। श्रीकृष्णावतारमें, बाल-लीला-संदर्भमें श्रीहरि मणिमयस्तम्भमें अपना सुन्दर प्रतिबिम्ब देखकर अत्यन्त आनन्दित होते हैं। उसे माखन देनेके लिये उद्यत होते हैं; माखन हाथसे गिर पड़ता है। तब वे रोने लगते हैं। यशोदा मैया इस लीलाको देखकर अपार आनन्दित होती हैं।

श्रीमद्भागवत (१। ८। २०)-के अनुसार कुन्तीदेवीने श्रीभगवान्के द्वारका पधारते समय उनकी स्तुति की है। उस स्तुतिमें उन्होंने भगवान्से यही कहा है कि आपका अवतार परमहंस-मुनि-अमलात्माओंको भक्तियोग प्रदान कर आनन्दित करनेके लिये होता है।

उक्त वचन तथा **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** (ब्रह्मसूत्र २। १। ३३)—इस सूत्रसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि लोकवत् लीला करनेवाले श्रीहरि भक्तोंके आनन्दको उछालनेके लिये ही अवतार ग्रहण करते हैं।

यद्यपि श्रीमद्भगवद्गीता (४। ८)-में भगवान्ने—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

—कहकर अपने अवतारका प्रयोजन धर्मसंस्थापन, साधुपरित्राण और दुष्टोंके विनाशके लिये बताया है, तथापि दुष्टोंका विनाश तो श्रीभगवान्के संकल्पमात्रसे सम्भव है। केनोपनिषद्की कथा है कि यक्षावतार यजनीय श्रीहरिने दृष्टिमात्रसे अग्नि और वायुकी शक्तिको स्तम्भित कर दी। ऐसी स्थितिमें रावण और कंसादिके लिये श्रीभगवान्को साक्षात् अवतार लेनेकी क्या आवश्यकता है? साधुओंका रक्षण तो भगवान्की दैवी शक्तियों और **'धर्मो रक्षति रक्षितः'** के अनुसार उनके धर्मसे ही सम्भव है, फिर इस प्रयोजनकी सिद्धिके लिये श्रीप्रभुको अवतार लेनेकी क्या आवश्यकता है?

यद्यपि यह सत्य है कि साधुओंका रक्षण और दुष्टोंका विनाश भी अवतारलीलामें हो जाता है, तथापि ये गौण प्रयोजन हैं, मुख्य प्रयोजन तो भक्तोंको आनन्द देना ही है।

जलतरंगकी उत्पत्ति जलमें ही होती है, जलतरंग जलमें ही उछलती है और लीन भी जलमें ही होती है, अतएव जलतरंग जलरूप ही मान्य है, तथापि समुद्र तरंगरूपसे दर्शकोंको अत्यन्त प्रमुदित करता है। कभी-कभी तटको स्पर्श करके वहाँ बैठे यात्रियोंको तरंगमाला विभोर कर देती है, तटवर्ती छोटी-छोटी नौकाओंको तथा जलपात्रोंको बहाकर ले जाती हुई तरंगमाला कितनी सुहावनी परिलक्षित होती है! वायुयोगसे जलतरंगके रूपमें स्फुरित समुद्रसदृश भगवान् सगुण-साकार श्रीराम-कृष्णादिरूपसे अवतरित होकर अत्यन्त आह्लादक परिलक्षित होते हैं।

अवतारलीलामें श्रीभगवान्का आनन्दांश विशेषरूपसे स्फुरित होता है, अचिन्त्य-शक्ति मायाके योगसे विशेष आनन्दका आविर्भाव भक्तोंको अत्यन्त आनन्दित करता है। यद्यपि यदा-कदा किसी शाप एवं वरदानका आदर करनेके लिये की गयी भगवल्लीलामें भी साधुओंका परित्राण और दुष्टोंका विनाश हो जाता है, परंतु ये भगवल्लीलाके गौण प्रयोजन हैं, मुख्य प्रयोजन तो प्रेमी भक्तोंको आनन्दमें

सराबोर करना ही है। श्रीमद्भागवत (११। २। ३९-४०)-में कवि नामक योगेश्वरने कहा है कि भगवल्लीला-चिन्तन और भगवन्नाम-संकीर्तन तथा स्मरणसे भक्तिका अंकुर उदित होता है।

गीतोक्त धर्मसंस्थापनार्थ अवतार-प्रयोजनका रहस्य इस प्रकार है—अट्ठाईसवें द्वापरमें श्रीकृष्णचन्द्रद्वारा प्रतिष्ठित कृष्णभक्ति एवं भागवतधर्मकी धारा अबतक प्रवाहित है और आगे भी प्रवाहित होती रहेगी। यह भी ध्रुव सत्य है कि अनादि और अनन्त सनातन वैदिक धर्मको अवतार-कालमें पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता है। साधुपरित्राण और दुष्टदलनकी लीला भगवान् श्रीकृष्णके अवतार-कालमें भी सम्पन्न हुई, किंतु उनके लीलासंवरणके तीस वर्ष बाद ही कलियुगके आ जानेपर साधुओंका कष्ट और दुष्टोंका उत्कर्ष पुनः प्रारम्भ हो गया, जो आज भी देखनेमें आता है। साधुओंके कष्ट-निवारण और दुष्ट-दलनके लिये आज भी हम भगवान्से कातरस्वरसे प्रार्थना करते हैं। अतएव यह सिद्ध हुआ कि यह सब कार्य भगवान्के अवतारका गौण प्रयोजन है तथा अपनी मुदमयी लीलाओंसे भक्तोंको आनन्दित करना मुख्य प्रयोजन है।

अब हम कतिपय शास्त्रीय लीलाओंके रहस्यपर कुछ विचार करते हैं। भक्तोंकी दृष्टि जबतक भगवान्पर स्थिर रहती है, तबतक वे आनन्दविभोर रहते हैं। ज्यों ही उनकी दृष्टि श्रीहरिसे हटती है, वे संकटमें फँस जाते हैं। ब्रह्माजीके वत्सहरण-प्रसंगमें श्रीहरि ग्वाल-बालोंके साथ बाल-लीलाके व्याजसे सख्य-रसकी वर्षा कर रहे थे। समस्त ग्वाल-बाल बैठे थे। आमोदपूर्वक सब भोजन कर रहे थे। सबकी दृष्टि बीचमें विराजमान भगवान्पर थी। इतनेमें बछड़े दूर निकल गये। ग्वाल-बालोंकी दृष्टि श्रीकृष्णसे हटकर बछड़ोंपर चली गयी। फलस्वरूप ग्वाल-बालोंको एक वर्षका वियोग हो गया। इसी प्रकार महारासलीलामें आनन्दकी वर्षा हो रही थी। गोपियोंकी दृष्टि अपने सौन्दर्य, माधुर्य, सौगन्ध और सौभाग्यपर गयी। उसी क्षण श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। फलतः गोपियोंको भयंकर विरह-वेदना सहनी पड़ी। एक लीला ऊखल-बन्धनकी है, जिसे हम वात्सल्यरसका रास कहते हैं। यशोदा मैया बालकृष्णको गोदमें लिये आनन्दमग्न होकर बैठी हैं। श्रीकृष्ण दुग्धपान कर रहे हैं। माँ-बेटेकी आँखें मिली हुई हैं। परस्पर रसका आदान-प्रदान हो रहा है। यशोदा माताकी दृष्टि उफनते हुए दूधपर गयी। यद्यपि दूध बालमुकुन्दके लिये ही था, फिर भी स्वयं यशोदाके दुग्ध-पान कर रहे लालासे अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हो सकता था। कदाचित् कुछ उफनकर गिर भी पड़ता तो क्या अनर्थ हो जाता? शेष तो बर्तनमें बचा ही रहता; परंतु मैया यशोदा अतृप्त बालकृष्णको गोदीसे उतारकर दूध सँभालने चली गयीं। बस, अनर्थ हो गया। दधिभाण्ड फूटे। माखन फैल गया। मैयाने आकर देखा तो कुपित हो गयीं। लालाको दूध पिलानेकी जगह दण्ड देनेका विचार किया। स्नेहमयी माता तो अपने बच्चोंको डाँट-फटकार सकती है, दण्ड दिखाकर भयभीत कर सकती है, कुछ देर भोजन बंद कर सकती है और हाथ बाँधकर कमरेमें बंद कर सकती है। यशोदा मैयाने लालाको डाँटा, डराया, धमकाया तथा अन्तमें ऊखलसे बाँधनेका प्रयास किया। ठाकुरजी न बँधनेकी लीला करते रहे और अन्तमें बँध गये। नल-कूबरका उद्धार किया। अन्ततोगत्वा व्रजवासियोंने यशोदा मैयाको ही दोषी बताया। इस प्रकार वात्सल्यरसकी लीला पूर्ण हुई। मृद्भक्षणकी लीला तो पहले ही सम्पन्न हो चुकी थी। इसके बाद और कोई यशोदाजीद्वारा ताड़ना देनेकी लीला नहीं हुई।

इस प्रकार इन सब लीलाओंके वर्णनसे यह तथ्य स्वतः सिद्ध हो जाता है कि श्रीभगवान् अवतारकालमें लीला करते हैं, जिसका मुख्य उद्देश्य भक्तोंको आनन्द देना है और इसीके व्याजसे दुष्ट-विनाश, साधुपरित्राण तथा धर्मसंस्थापनकी लीलाएँ भी अनायास ही सम्पन्न होती रहती हैं, जिससे महारास-रसिक, लीलाप्रेमी भक्तों-साधकोंमें भगवत्प्रेम तथा भक्ति जाग्रत् होकर निरन्तर संवृद्धिको प्राप्त होती रहती है।

* * *

भगवत्तत्त्व-भगवल्लीला-रस-रहस्य

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भगवत्तत्त्व

श्रीमद्भागवतके अनुसार अद्वय (अद्वितीय)- ज्ञान तत्त्व है। उसीको ब्रह्म, परमात्मा, भगवान्, क्षेत्रज्ञ, आत्मा, पुरुष, पुराण, साक्षात्स्वयंज्योति, अज, परेश, नारायण और वासुदेव आदि नामोंसे निरूपित किया गया है। वह अपनी मायासे सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे स्फुरित हो रहा है तथा स्वशक्तिगत सत्त्वसे श्रीराम-कृष्णादि विविध रूपोंमें अवतरित होता है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(श्रीमद्भा० १। २। ११)

क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः
साक्षात्स्वयंज्योतिरजः परेशः।
नारायणो भगवान् वासुदेवः
स्वमाययाऽऽत्मन्यवधीयमानः ॥

(श्रीमद्भा० ५। ११। १३)

भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावनः।
लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु॥

(श्रीमद्भा० १। २। ३४)

भगवत्तत्त्व यद्यपि सच्चिदानन्दस्वरूप है, तथापि अद्वय-ज्ञानको तत्त्व कहनेका सात्त्विक रहस्य इस प्रकार है—ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयमें ज्ञातारूप आश्रय और ज्ञेयरूप विषयसे निरपेक्ष त्रिपुटीका अधिष्ठानात्मक आश्रयरूप बोध अद्वय-ज्ञान है, वही तत्त्व है। जिस प्रकार अधिभूत रूप, अध्यात्म नेत्र और अधिदैव सूर्य तेजःसापेक्ष हैं, उसी प्रकार ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता ब्रह्मसापेक्ष हैं, परंतु अद्वय-बोधात्मा ब्रह्म ज्ञेयादिसापेक्ष नहीं है। शब्दादि विषयभेदसे अनुगत ज्ञानमें तात्त्विक भेद असिद्ध है। जागरादि अवस्था-भेदसे भी अनुगत ज्ञानमें वास्तव-भेद असिद्ध है। इसी प्रकार दिन, पक्ष, मास, वर्ष, कल्पादि-भेदसे भी अनुगत ज्ञानमें वास्तव-भेद असिद्ध है। इस प्रकार ज्ञानकी नित्यता और एकरूपता ज्ञानको सत् सिद्ध करती है। ज्ञानकी अवेद्य अपरोक्षता उसे चित् सिद्ध करती है। ज्ञानकी सच्चिद्रूपता उसे आत्मा सिद्ध करती है। जो सदा रहे और भानका विषय न हो, अपितु भानस्वरूप हो, वही आत्मा हो सकता है। प्राप्त-बोध आत्मा होनेसे परम प्रेमास्पद है। परम प्रेमास्पद होनेसे परमानन्दरूप है। इस प्रकार अद्वय-बोधकी सच्चिदानन्दरूपता सिद्ध होती है। लक्षणसाम्यसे वस्तुसाम्यके कारण वही विवक्षावशात् ब्रह्म, परमात्मा, भगवानादि नामोंसे निरूपित होता है। वेदान्ती उसे ब्रह्म, योगी परमात्मा और भक्त भगवान् शब्दसे अभिहित करते हैं। भक्तोंकी भावनाके अनुसार निर्गुण-निराकार भूमिमें जिस सच्चिदानन्द-तत्त्वको ब्रह्म कहा जाता है, उसीको सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्तादि- गुणगण-समलंकृत सगुण-निराकार भूमिमें परमात्मा कहा जाता है तथा श्रीराम-कृष्णादि सगुण-साकार भूमिमें विलसित उसीको भगवान् कहा जाता है। इस प्रकार भगवत्तत्त्वका सात्त्विक विवेचन सूत्रशैलीमें सम्पन्न हुआ।

भगवल्लीला

'लीला' पदका प्रयोग क्रीडा, विनोद, आनन्द, मनोरञ्जन, चरित, रतिक्रीडा, केलिक्रीडा, अनायास, सुगमतापूर्वक, दर्शन, आयास, हाव-भाव, छबि, सौन्दर्य, लावण्य, लालित्य, माया आदि अर्थोंमें किया जाता है। परमानन्दस्वरूप प्रभुकी अचिन्त्य ह्लादिनी सार-सर्वस्वभूता मायायोगसे विविध रूपोंमें अभिव्यक्ति और प्रीति तथा प्रवृत्ति लीला है।

कार्यकारणातीत सच्चिदानन्दस्वरूप निर्गुण-निराकार परब्रह्म ही अचिन्त्य संधिनी, संवित् और ह्लादिनी-स्वरूपभूता शक्तियोंके योगसे सगुण-निराकार अन्तर्यामी होता है। वही श्रीविष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेशसंज्ञक सगुण-साकार भगवान् होता है। सगुण-निराकार और निर्गुण-निराकार भूमिमें पञ्चदेवोंमें सर्वथा साम्य है। सगुण-साकार अवतारभूमिमें नाम, रूप, लीला और धामको लेकर उनमें जो भेद प्रतीत होता है वह लीलामात्र है। निर्गुण-निराकार कार्यकारणातीत परब्रह्म मृत्तिका-तुल्य है। सगुण-निराकार अन्तर्यामी बीजतुल्य है। सगुण-साकार हिरण्यगर्भ और विराट् अंकुर, वृक्ष शाखा, प्रशाखा, पत्र पुष्पतुल्य है। सगुण-साकार श्रीराम-

कृष्णादि फलतुल्य हैं।

भगवल्लीलाके प्रमुख दो भेद हैं—(१) सृष्टि-स्थिति-संहार-लीला और (२) अवतार-लीला।

सृष्टि-स्थिति-संहार-लीला—

इस लीलाके प्रयोजन इस प्रकार हृदयंगम करने योग्य हैं—स्वप्नतुल्य सृष्टि-लीला है। जाग्रत्तुल्य स्थिति-लीला है। सुषुप्तितुल्य संहार-लीला है। जिस प्रकार जलतरंगका उदय-निलय और विलय-स्थान जल है, उसी प्रकार सम्पूर्ण संसारके उदय, निलय और विलय (उत्पत्ति-स्थिति और संहृति)-स्थान श्रीहरि हैं। अतएव वे जगत्के उपादानकारण हैं। महाकल्पके प्रारम्भमें ईक्षणयोगसे समग्र सृष्टिके स्रष्टा होनेसे वे निमित्तकारण भी हैं। इस प्रकार जालेके मकड़ी-तुल्य, स्वप्नप्रपञ्चके स्वप्नसाक्षीतुल्य श्रीहरि सम्पूर्ण जगत्के अभिन्न-निमित्तोपादानकारण हैं। अतएव जलतरंगकी जलरूपता, मृद्घटकी मृद्रूपता, रज्जुसर्पकी रज्जुरूपताके तुल्य श्रीहरिकी सर्वरूपता सिद्ध है। वे जहाँ घटाकाशके महाकाशतुल्य, जलचन्द्रके जलतुल्य, जीवोंके अंशी-सरीखे हैं, वहाँ आत्मरूप भी। अंशी-सरीखे होनेसे परम आत्मीय हैं और आत्मरूप होनेसे आत्मरूप ही हैं। अतएव परम प्रेमास्पद और एकमात्र प्रेमास्पद श्रीहरि ही हैं।

सृष्टिपरक श्रुतियोंमें विगान (विगीति, विकूलता, अनेकरूपता)-सृष्टिपरक श्रुतियोंका परम तात्पर्य सृष्टिमें संनिहित सिद्ध नहीं होने देती। स्रष्टा परमेश्वरके स्वरूप-प्रतिपादनमें अविगीति सृष्टिपरक श्रुतियोंका परम तात्पर्य स्रष्टामें ही संनिहित सिद्ध करती है। सृष्टि-स्थिति और संहतिलीलाके व्याजसे परमेश्वर निज निष्प्रपञ्च-स्वरूपमें प्रपञ्चावलम्बनके योगसे जीवोंके मन सुगमतापूर्वक अपनेमें उसी प्रकार रमानेका सुयोग समुपस्थित करते हैं, जिस प्रकार निराकार अग्नि स्वयंको साकार कर स्वयंमें मनोयोगको सुगम करता है। **'उपायः सोऽवताराय'** (माण्डूक्यकारिका ३। १५)-की उक्तिसे श्रीगौडपाद महाभागने उक्त तथ्यको प्रकाशित किया है। योगदर्शनके अनुसार भोग और अपवर्ग सृष्टिका प्रयोजन है। श्रीमद्भागवतने पुरुषार्थ-चतुष्टय अर्थात् भोगरूप धर्म, अर्थ और काम तथा अपवर्गरूप मोक्षको सृष्टि-रचनाका प्रयोजन माना है। अर्थात् अकृतार्थ जीवोंको कृतार्थ होनेका अवसर प्रदान करना जीव-रचना एवम् सृष्ट्यादि-लीलाका प्रयोजन है:—

बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् जनानामसृजत् प्रभुः।
मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च॥

(श्रीमद्भा० १०। ८७। २)

तथापि बहिर्मुखताके वशीभूत अन्य प्राणी यहाँतक कि मनुष्य भी विषयेन्द्रियसंस्पर्शज भोगमें ही मनोवृत्तियोंको रमाते हैं, न कि नाम-रूपात्मक जगत्का आकर्षण विदीर्ण कर अस्ति, भाति, प्रियरूप जगदाश्रय श्रीहरिमें। ऐसी स्थितिमें जगद्रचनाका प्रयोजन गिने-चुने प्रबुद्ध मनीषियोंके जीवनमें ही चरितार्थ होता देख भगवान् श्रीराम-कृष्णादि-रूपोंमें अवतरित होते हैं।

अवतार-लीला—

भगवान् विचार करते हैं—'यद्यपि स्थावर-जङ्गमात्मक कार्य-प्रपञ्चका अभिन्न निमित्तोपादानकारण मैं ही हूँ, तथापि जीवनिष्ठ अविद्या, काम और कर्मोंके योगसे जगत् बनाता हूँ। गङ्गा, काशी, उर्वशी, स्वर्ग, कल्पतरु, हीरा आदि पदार्थोंकी रचना जहाँ जीवोंके कर्मोंके फलस्वरूप करता हूँ, वहाँ कर्मनाशा, मगध, उल्लू, नरक, कीकर, कोयला आदिकी रचना भी जीवोंके कर्मोंके फलस्वरूप ही करता हूँ। स्वर्गादि शुभ वस्तुओंकी रचना कर भी मैं संतुष्ट नहीं होता, क्योंकि कर्मका फल स्वल्प और सीमित ही सम्भव है। पृथ्वी यद्यपि चरम कार्य होनेसे पद्मादि दिव्य पुष्पोंके रूपोंमें विकसित होती है, पद्मादिमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप पाँचों विशेषताएँ संनिहित होती हैं, तथापि वे विशेषताके साथ ही विकारकी पराकाष्ठा ही सिद्ध हैं, स्वल्प और सीमित (नश्वर) तो हैं ही। पृथिव्यादिकी अपेक्षा जलादिमें संनिहित निर्विशेषता, सूक्ष्मता, शुद्धता, विभुता और प्रत्यग्रूपताकी अवधिरूप मुझ ब्रह्मात्मतत्त्व तक जीवोंकी दृष्टि नहीं पहुँच पाती है, मनोहर रूपादिमें ही उलझ जाती है। ऐसी स्थितिमें अविद्या, काम और कर्मोंके बिना तथा पञ्चभूतोंके बिना ही

स्वयंको श्रीराम-कृष्णादि-रूपोंमें अभिव्यक्त कर हठपूर्वक अधिकाधिक जीवोंका हृदय अपनी ओर आकृष्ट कर उन्हें भवबन्धनसे विमुक्त करना आवश्यक है।' ऐसा सोचकर भगवान् सकल सुन्दरताओंके संनिवेशसे समलंकृत विशेषता और पूर्णताकी पराकाष्ठा तथा निर्विकार (कार्यकोटिविनिर्मुक्त) श्रीराम-कृष्णादि-विग्रह धारण करते हैं। वह विग्रह जलनिष्ठ अनागन्तुक अतएव स्वाभाविक शैत्यकी अधिकताके योगसे अभिव्यक्त हिमके तुल्य **'आकाशशरीरं ब्रह्म'** (तैत्ति० १।६।४) आदि श्रुतियोंके अनुसार उस भगवद्विग्रहका निमित्तोपादान वेदान्तवेद्य सच्चिदानन्द-तत्त्व ही सिद्ध है। महेश्वरकर्तृक ईक्षणसिद्ध किंतु ईक्षणतुल्य तत्त्वान्तरपरिणामरहित होनेसे वह विग्रह कार्य-सरीखा परिलक्षित होनेपर भी वस्तुतः कार्यतुल्य बाधित नहीं होता। उस विग्रहमें संनिहित समता, असंगतादि गुणगण सम, असंग, निर्गुण परमात्माकी ही अभिव्यक्ति होनेसे वस्तुतः निर्गुण ही मान्य हैं। भगवद्विग्रहसे विनिःसृत शब्दादि भी अशब्द, अस्पर्शादिरूप निर्गुण ही मान्य हैं। उक्त गुणगणोंसे समलंकृत परमात्मा पामरों और विषयी पुरुषोंका मन भी हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर उन्हें सारूप्यादि सद्गति प्रदान करते हैं।

ऐसे भक्तवत्सल मननीय नारायण महाप्रभु श्रीकृष्णावतारमें नररूप अर्जुनके प्रति कितने अनुरक्त परिलक्षित होते हैं, इसके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

(१) खाण्डववनदाहके अनन्तर श्रीकृष्णपर संतुष्ट इन्द्रने उन्हें वर माँगनेको कहा। भगवान् वासुदेवने इन्द्रसे यह वर माँगा कि अर्जुनके साथ मेरा प्रेम निरन्तर बढ़ता रहे—

वासुदेवोऽपि जग्राह प्रीतिं पार्थेन शाश्वतीम्।
ददौ सुरपतिश्चैवं वरं कृष्णाय धीमते॥

(महाभारत, आदिपर्व २३३।१३)

आश्चर्य है, 'भगवान् प्रीतिके विषय हैं', यह तो प्रसिद्ध ही है, परंतु प्रीतिके आश्रय अर्थात् प्रेम करनेवाले भी हैं, उक्त दृष्टान्तसे यह तथ्य अत्यन्त स्फुट है। तभी तो महानुभावोंने कहा है—

'प्रीति कि रीति रंगीलो हि जानत',
'जानत प्रीति-रीति रघुराई।'

(२) अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर भगदत्तने कुपित हो अपने अंकुशको ही वैष्णवास्त्रसे अभिमन्त्रित करके पाण्डुनन्दन अर्जुनकी छातीपर छोड़ दिया। भगदत्तका छोड़ा हुआ वह अस्त्र सबका नाश करनेवाला था। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको ओटमें करके स्वयं ही अपनी छातीपर उसकी चोट सह ली। भगवान् श्रीकृष्णकी छातीपर आकर वह अस्त्र वैजयन्तीमालाके रूपमें परिणत हो गया। वह माला कमलकोशकी विचित्र शोभासे युक्त तथा सभी ऋतुओंके पुष्पोंसे सम्पन्न थी। उससे अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रभा फैल रही थी। उसका एक-एक दल अग्निके समान प्रकाशित हो रहा था। कमलदलोंसे सुशोभित तथा हवासे हिलती हुई दलोंवाली उस वैजयन्ती-मालासे तीसीके फूलोंके समान श्याम वर्णवाले केशिहन्ता, शूरसेननन्दन, शार्ङ्गधन्वा, शत्रुसूदन, भगवान् केशव अधिकाधिक शोभा पाने लगे, मानो वर्षाकालमें संध्याके मेघोंसे आच्छादित श्रेष्ठ पर्वत सुशोभित हो रहा हो।

उस समय अर्जुनके मनमें बड़ा क्लेश हुआ। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—'अनघ! आपने तो प्रतिज्ञा की है कि मैं युद्ध न करके अश्वोंको काबूमें रखूँगा—केवल सारथिका काम करूँगा; किंतु कमलनयन! आप वैसी बात कहकर भी अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं कर रहे हैं। यदि मैं संकटमें पड़ जाता अथवा अस्त्रका निवारण करनेमें असमर्थ हो जाता तो उस समय आपका ऐसा करना उचित होता। जब मैं युद्धके लिये तत्पर हूँ, तब आपको ऐसा नहीं करना चाहिये। आपको तो यह भ विदित है कि यदि मेरे हाथमें धनुष और बाण हों तो देवता, असुर और मनुष्योंसहित इन सम्पूर्ण लोकोंपर विजय प्राप्त कर सकता हूँ।'

तब वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे ये रहस्यपू वचन कहे—'अनघ! इस विषयमें यह गोपनीय रहस्य बात है, सुनो। मैं चार स्वरूप धारण करके सदा सम्पू लोकोंकी रक्षाके लिये उद्यत रहता हूँ। अपनेको ही य

अनेक रूपोंमें विभक्त करके समस्त संसारका हितसाधन करता हूँ। मेरी एक मूर्ति इस भूमण्डलपर बदरिकाश्रममें नर-नारायणरूपमें स्थित हो तपश्चर्या करती है। दूसरी परमात्मस्वरूप मूर्ति कर्म करनेवाले जगत्‌को साक्षी-रूपसे देखती रहती है। तीसरी मूर्ति मनुष्यलोकमें अवतरित हो नाना प्रकारके कर्म करती है। चौथी मूर्ति वह है जो सहस्र युगोंतक एकार्णवके जलमें शयन करती है। सहस्र युगके पश्चात् मेरा वह चौथा स्वरूप जब योगनिद्रासे उठता है, उस समय वर पानेके योग्य श्रेष्ठ भक्तोंको उत्तम वर प्रदान करता है। एक बार भूदेवीने अपने पुत्र नरकासुरके लिये वर माँगा—'मेरा पुत्र वैष्णवास्त्रसे सम्पन्न होकर देवताओं और दानवोंके लिये अवध्य हो जाय, अतः आप कृपापूर्वक अपना वह अस्त्र प्रदान करें।'

मैंने अपना परम उत्तम अमोघ वैष्णवास्त्र उसे दे दिया। मनस्विनी पृथ्वीदेवी कृतार्थ होकर चली गयीं। नरकासुर उसे प्राप्त कर शत्रुओंको संताप देनेवाला तथा अत्यन्त दुर्जय हो गया। नरकासुरसे मेरा वह अस्त्र इस प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्तको प्राप्त हुआ। आर्य! इन्द्र तथा रुद्रसहित तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा वीर नहीं है, जो इस अस्त्रके लिये अवध्य हो। अतः मैंने तुम्हारी रक्षाके लिये उस अस्त्रको दूसरे प्रकारसे उसके पाससे हटा दिया है। पार्थ! यह महान् असुर उस उत्कृष्ट अस्त्रसे वंचित हो गया है। अब तुम इसे मार डालो।'

(३) खाण्डववनमें जब अर्जुन अपने हाथमें धनुष लेकर अग्निदेवको तृप्त कर रहे थे, उस समय ऐरावत-कुलमें उत्पन्न अश्वसेन नामक नाग अपनी माताके मुखमें घुसकर अपने शरीरको सुरक्षित करके आकाशमें उड़ा जा रहा था। अर्जुनने उसे एक ही सर्प समझकर केवल उसकी माताका वध किया। उसी वैरको याद करके वह कर्ण तथा अर्जुनका भीषण संग्राम देखकर बड़े वेगसे ऊपरकी ओर उछला और उस युद्धस्थलमें आ पहुँचा। वह यह सोचकर कि 'दुरात्मा अर्जुनके वैरका बदला लेनेके लिये यही सबसे अच्छा अवसर है', बाणका रूप धारण करके कर्णके तरकसमें घुस गया। जब किसी तरह कर्ण युद्धमें अर्जुनसे बढ़कर पराक्रम न दिखा सका और अर्जुनने अपने बाणोंके आघातसे कर्णका सारा शरीर क्षत-विक्षत कर दिया, तब कर्णने सर्पमुख-बाणके प्रहारका विचार किया। उत्तम बलशाली कर्णने अर्जुनको मारनेकी इच्छासे ही जिसे सुदीर्घ कालसे सुरक्षित रख छोड़ा था, सोनेके तरकसमें चन्दनके चूर्णके अंदर जिसे रखता था और सदा जिसकी पूजा करता था, उस शत्रुनाशक झुकी हुई गाँठवाले, स्वच्छ महातेजस्वी, सुसंचित, प्रज्वलित एवं भयानक सर्पमुख-बाणको उसने धनुषपर रखा और कानतक खींचकर अर्जुनकी ओर संधान किया। कर्ण युद्धमें सव्यसाची अर्जुनका मस्तक काट लेना चाहता था, पर उसे यह विदित नहीं था कि अश्वसेन नाग ही योगबलसे बाणमें प्रविष्ट हो गया है। इन्द्र उस बाणमें सर्पको प्रविष्ट देख यह सोचकर शिथिल हो गये कि 'अब तो मेरा पुत्र मारा गया।' तब जितात्मा ब्रह्माजीने बताया कि—'देवेश्वर! दुःखी न होओ। विजयश्री अर्जुनको ही प्राप्त होगी।' धनुष और प्रत्यंचासे छूटकर आकाशमें जाते ही बाण प्रज्वलित हो उठा। भगवान् श्रीकृष्णने लीलापूर्वक अर्जुनके उत्तम रथको तुरंत ही पैरसे दबाकर उसके पहियोंका कुछ भाग पृथ्वीमें दबा दिया। साथ ही चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेतवर्णवाले उनके घोड़े भी धरतीपर घुटने टेककर झुक गये। देव, ऋषि, गन्धर्वादिने पुष्पवृष्टि और स्तुतियोंसे भगवान् मधुसूदनका स्वागत किया। श्रीब्रह्माजीद्वारा निर्मित इन्द्रप्रदत्त विजयप्रद त्रिभुवनविख्यात अर्जुनके किरीटको हड़पकर उसे दग्ध करता हुआ बाणरूप सर्प पुनः कर्णके तरकसमें घुसना ही चाहता था कि कर्णने उसे देख लिया। कर्णको उसने अपना परिचय देते हुए पुनः प्रयोग करनेका अनुरोध किया। परंतु कर्णने कहा—'मैं सौ अर्जुनको मार सकूँ तो भी एक बाणका दो बार संधान नहीं कर सकता।' निराश सर्प अपना स्वरूप प्रकट कर अर्जुनके वधके लिये उद्यत हो आकाशमार्गसे अर्जुनपर आक्रमण ही करना चाहता था कि श्रीकृष्णकी प्रेरणासे अर्जुनने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

* * *

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्

(स्वामी श्रीविज्ञानानन्दजी सरस्वती)

इस परिदृश्यमान विशाल विश्व-ब्रह्माण्डके पीछे एक महान् अद्वितीय तत्त्व विद्यमान है। उसीकी सत्तासे जगत्के समस्त तत्त्वसमूह सत्तावान् और गतिशील हैं। सृष्टि, स्थिति और लयका कारण भी वही है—

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।

'हे सोम्य! सृष्टिके पूर्व एकमात्र अद्वितीय सत् ब्रह्म ही था अन्य कुछ नहीं था। उसी परम सत्तासे निखिल विश्व-ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति होती है।' जैसे श्रुतिमें कहा है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति॥

'ये सब प्रत्यक्ष दीख पड़नेवाले सम्पूर्ण भूत-प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसमें रहते हैं और अन्तमें जिसमें लयभावको प्राप्त हो जाते हैं, उसीको जाननेकी इच्छा कर, वही ब्रह्म है।' वही निरुपाधिक ब्रह्म मायाविशिष्ट होकर सृष्टिकर्ता परमेश्वर-संज्ञक बन जाता है। उसी परमेश्वरने—'**सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्**'-के अनुसार सृष्टिकी रचना की है।

अब यहाँपर शंका यह होती है कि वह परमेश्वर इस दुःखमय संसारको क्यों रचता है, क्या वह अकेला रहनेमें घबराता था? डरता था? इसके समाधानके लिये कहना यह है कि परमेश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। उसे भला किससे भय हो सकता है, अर्थात् किसीसे भी नहीं। भय द्वैतमें होता है—'**द्वितीयाद् वै भयं भवति।**' अद्वैतमें भय नहीं होता है। पुनः शंका होती है—तो क्या परमेश्वर अपने किसी प्रयोजनसे सृष्टिकी रचना करता है? यदि ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं है। इसके लिये कहना यह है कि ईश्वर किसी प्रयोजनको लेकर सृष्टिकी रचना नहीं करता है; क्योंकि वह पूर्णकाम तथा आप्तकाम है। '**आप्तकामस्य का स्पृहा**'—आप्तकामको क्योंकर इच्छा हो सकती है, अभिप्राय यह कि उसका कोई प्रयोजन नहीं हो सकता है। अतः परमेश्वर अपने किसी प्रयोजनसे सृष्टिकी रचना नहीं करता, इसलिये उसके परमेश्वर होनेमें किंचिन्मात्र संदेह नहीं है।

यहाँपर पुनः शंका उठाते हुए कहते हैं कि, तो क ईश्वरकी यह सृष्टि-रचना किसी प्रयोजनके बिना उन्मत्तव अन्यथा प्रवृत्तिमात्र है? इस शंकाके समाधानके लिये कह है कि नहीं, उन्मत्तवत् अन्यथा प्रवृत्ति भी नहीं है; क्यों यदि परमेश्वर सृष्टिकी रचना नहीं करता, तब भी उस अल्पज्ञताका दोष लग ही जाता। ऐसी स्थितिमें परमेश्वर उभयपाशरज्जु गले पड़ती। अतएव परमेश्वरकी सृष्टि-रच उन्मत्तवत् अन्यथा प्रवृत्ति नहीं, अपितु उनका वह स्वभा है। जैसे हमारा श्वास और प्रश्वास स्वतः ही एक बार बा जाता है, एक बार भीतर जाता है, वह उसका स्वभाव अतः परमेश्वरकी सृष्टि-रचनामें कोई हेतु या प्रयोजन होनेपर भी उसका स्वभाव या लीला-विलास मात्र कहा सकता है। इसलिये ब्रह्मसूत्रमें कहा भी है—'**लोकव लीलाकैवल्यम्॥**' जैसे लोकमें प्रयोजनके बिना ही क्री आदिमें किसी विशिष्ट पुरुषकी प्रवृत्ति देखी जाती है, वै ही परमात्माकी भी यह जगत्-रचना प्रयोजनरहित केव लीला-विलासमात्र है। भाष्यकार भगवान् शंकराचार्यने अपने भाष्यमें लिखा है—

यथा लोके कस्यचिदाप्तैषणस्य राज्ञो राजामात्यस्य व व्यतिरिक्तं किंचित्प्रयोजनमभिसंधाय केवलं लीलारूप प्रवृत्तयः क्रीडाविहारेषु भवन्ति, यथा चोच्छ्वास प्रश्वासादयोऽनभिसंधाय बाह्यं किंचित्प्रयोजनं स्वभावा सम्भवन्ति, एवमीश्वरस्याप्यनपेक्ष्य किंचित् प्रयोजना स्वभावादेव केवलं लीलारूपा प्रवृत्तिर्भविष्यति।' (ब्रह्मसू शांकरभाष्य० २। १। ३३) 'जैसे लोकमें आप्तैषणावाले ऐ किसी राजा अथवा मन्त्री आदिकी क्रीडा-क्षेत्रोंमें प्रवृत्ति किसी अन्य प्रयोजनकी अभिलाषा न करके केवल लीला होती हैं, तथैव ईश्वरकी सृष्टि-रचना भी अपने कि प्रयोजनसे रहित केवल लीलामात्र होती है। जैसे श्वास औ प्रश्वास आदि किसी बाह्य प्रयोजनकी इच्छाके बिना स्वभाव ही होते हैं, वैसे ही अन्य किसी प्रयोजनके बिना स्वभाव ईश्वरकी भी केवल लीलारूप प्रवृत्तिमात्र होती है।'

परंतु निर्गुण-निराकारमें लीला नहीं हो सकती है। सगुण-साकारमें ही लीला होती है। इसलिये परमेश्वरने जगत्की रचना की और—'**तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्**' सृष्टिकी रचना करके उसमें वह अनुप्रविष्ट हो गया। अर्थात् वह अनेक रूपोंमें हो गया है। जैसे वेदमें कहा गया है—'**इन्द्रो मायाभिः पुरु रूप ईयते।** (ऋ० ६। ४७। १८)' इन्द्र '**इन्द्रो ब्रह्मेति**' (कौषीतकि ब्राह्मण) परमेश्वर अपनी माया-शक्तिके द्वारा अनेक रूपोंमें हो जाता है। अभिप्राय यह है कि उपाधिको धारणकर वह ब्रह्म अनेक रूपोंमें हो जाता है, किंतु स्वरूपतः एक ही रहता है। जैसे श्रुतिमें कहा है—

एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।

जैसे प्रतिबिम्बके रूपमें चन्द्रमा अनेक भासनेपर भी बिम्बस्थानीय चन्द्रमा एक ही रहता है, वैसे ही ब्रह्मात्माके विषयमें भी समझ लेना चाहिये। वही परमेश्वर जगत्का अधीश्वर है और वही अनेक अवतार धारणकर विचित्र लीलाएँ करता है।

अवतार और उनका प्रयोजन

अवतरण करनेको 'अवतार' कहते हैं। अर्थात् जो '**देवानामंशावेशवशेन प्रादुर्भावः**' है, वही अवतार है। जिसका ज्ञान अविलुप्त रहता हुआ मायिक जगत्में मानुषी लीलाएँ करता है, वही अवतार है। अब यहाँपर प्रश्न होता है कि परमेश्वर किस प्रयोजनसे अवतार धारण करता है? इस विषयमें भगवान् स्वयं ही गीतामें कहते हैं—'जब-जब धर्मकी ग्लानि—हानि और अधर्मकी अभिवृद्धि होती है, तब-तब मैं विशेष रूप धारण करता हूँ अर्थात् विभूति-सम्पन्न रूप धारण करता हूँ। साधु अर्थात् धार्मिक सत्पुरुषोंका उद्धार और पापकर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये एवं धर्मकी पुनः भलीप्रकारसे स्थापना करनेके लिये युग-युगमें मैं प्रकट होता हूँ अर्थात् अवतार धारण करता हूँ।'

यदि यहाँपर पुनः शंका की जाय कि परमेश्वर जब किसी समय कहींपर भी अवतार धारण करता है, तब अन्यत्र उसका अभाव हो जाता होगा, उस कालमें जगत्की व्यवस्था कैसे होती होगी? इसका समाधान यह है कि, कहींपर भी, किसी भी कालमें अवतार धारण करनेपर परमेश्वरकी सत्ताका लोप नहीं होता। इसलिये जगत्की व्यवस्थामें कोई अन्तर नहीं पड़ता। इस विषयमें कठोपनिषद् (२। २। ९)-में कहा है। यथा—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

जैसे एक ही अग्नि सम्पूर्ण जगत्में अनुप्रविष्ट होकर अनेक रूपोंमें भासित होता है, वैसे ही चैतन्य-स्वरूप परमात्मा भी अनेक रूपोंमें भासित होता है। आकाशके समान अविकारी रूपसे वह उनसे बाहर भी है। यदि पुनः शंका हो कि भगवान्के सब अवतार केवल भारतवर्षमें ही हुए हैं, अन्य किसी देशमें नहीं। ऐसा क्यों? क्या परमेश्वरका इसमें कोई पक्षपात नहीं है? इसका समाधान यह है कि परमेश्वरका इसमें कोई पक्षपात नहीं है। यह बात तो पहले ही कही जा चुकी है कि भगवान्का अवतार धर्मकी रक्षाके लिये होता है और वह धर्म वैदिक सनातनधर्म। वेद प्रतिपादित होनेके कारण वह वैदिक है और '**सदातन सनातनः**'—इस न्यायसे अनादि सनातन कालसे चला आया होनेके कारण वह सनातन है। इसलिये इसे 'वैदिक सनातनधर्म'के नामसे कहते हैं। शेष अन्य सब धर्म इसीकी शाखा, उपशाखाएँ मात्र हैं। '**ध्रियते इति धर्मः**' जिसे धारण किया जाता है वही धर्म है।

इस वैदिक सनातनधर्मका उद्भव आर्यावर्तदेश भारतवर्षमें ही हुआ है, इसलिये इसकी रक्षाके लिये सभी अवतार इसी भारतवर्षमें ही हुए, यही इसका तात्पर्य है। अवतार भी एक दो नहीं है, किंतु पूरे चौबीस हैं। अभी एक कल्कि अवतार लेना शेष है। मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि अवतारोंके नाम हैं। परमेश्वरके इन अवतारोंने एक-से-एक बढ़कर विचित्र लीलाएँ की हैं, जो पुराण-प्रसिद्ध हैं। अतएव अन्तमें यही कहा जा सकता है कि परमेश्वरकी यह सृष्टि-रचना केवल '**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**' मात्र ही है।

* * *

भगवान्का लीला-वैभव

(अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीजयेन्द्र सरस्वतीजी महाराज)

श्रीपरमेश्वर नाम-रूपोंसे रहित हैं, तथापि अति विचित्र इस जगत्की सृष्टि-स्थिति-संहार आदिके कर्ता हैं। इन कार्योंमें उन्हें किंचिदपि परिश्रम नहीं करना पड़ता, ये सब लीलासे ही बना देते हैं। बिना शरीरके तथा बिना किसी परिश्रमके सृष्टि-स्थिति-संहार आदि करना ही उनकी लीला कही जाती है।

इसी तथ्यको श्रीवेदव्यासजीने अपने वेदान्त-सूत्र '**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**'-में स्पष्ट किया है। लीला वह है जो बिना परिश्रमके स्वाभाविक रूपसे तथा बिना किसी विशेष उद्देश्यसे सम्पन्न होता है। ये दोनों ही लीलाकी विशेषताएँ हैं।

मानव जन्मतः स्वाभाविक रूपसे उच्छ्वास-निःश्वास लेता रहता है। इसके लिये उसे कोई विशेष प्रयत्न करना पड़ता है क्या? बालकगण क्रीडामग्न हो सिकतासे विचित्र-विचित्र घर आदि बना देते हैं, नाश भी कर देते हैं। इनमें उनका उद्देश्य क्या होता है? कुछ भी नहीं। इसी तरह भगवान् भी अपना सृष्ट्यादि कर्म कर डालते हैं। उनकी यह कार्य-प्रणाली सुचारु-रूपसे शास्त्रोंमें विशदीकृत है।

श्रीपरमात्मा सर्वव्यापी हैं। सब लोगोंके हृदयमें अन्तर्यामी होकर बैठे हैं। वे कूटस्थ हैं तथा नित्य भी।

वे सृष्टि-स्थिति आदिके कारण होते हुए भी अशरीरी हैं। शरीरके बिना भी मायासे सब कार्य बना देते हैं। यह माया भी उनसे ही है। यही उनकी लीला है।

इसी तत्त्वका विशदीकारक वाक्य है—'**मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।**' इस कार्य-प्रणालीसे श्रीपरमेश्वरको कोई भी लाभ नहीं है, परंतु हमें होता है महान् लाभ—'मोक्ष-प्राप्ति।' पुनर्जन्मरहित नित्य-विशुद्ध भाव ही मोक्ष है।

एक बार देवर्षि नारदजीने भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना की कि 'भगवन्! आप अपनी लीला-विभूतिके दर्शनका सौभाग्य प्रदान करें।' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'जाकर मेरे वासस्थलोंका दर्शन करें, वहीं आपको मेरी लीला-विभूतिका अनुभव हो जायगा।'

नारदजी एक घरमें घुसे तो क्या देखते हैं? वहाँ श्रीभगवान् नित्यकर्मानुष्ठानमें रत हैं और दूसरे घरमें घुसे तो भगवान्को पूजा-पाठमें निरत देखते हैं तथा तीसरे घरमें गये तो भगवान्को नायिकासे लीला-विनोदमें मग्न पाते हैं। प्रकारके विभिन्न दृश्य देखकर एवं भगवान्की सर्वव्यापकता अनुभवकर अन्तमें नारदजी श्रीकृष्णभगवान्से बोले—' सर्वत्र विराजते हैं। यही आपकी लीला-विभूति है'—इस परिपूर्ण अनुभव हुआ मुझे।

ऐसे ही रासलीलामें भी एक ही भगवान् अनेक रूपों अपनेको विभक्तकर प्रत्येक गोपियोंके साथ लीला क लगे। सभी गोपियाँ अपने ही साथ भगवान्को देख अत्यन्त हर्षित हुईं।

एक बार सृष्टिकर्ता श्रीब्रह्माजीको भी ऐसा ही अनु हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण गाय-बछड़ोंको चराते थे। उ साथ थे कई गोप-बालक। ब्रह्माजीने सब-के-सब गा बछड़ोंका अपहरण कर लिया, गोप-बालकोंको भी छोड़ा। पर क्या हुआ? भगवान् श्रीकृष्ण उन सबका धारण करके शामको घर लौटे। उतनी ही संख्या, व रूपादिके गाय-बछड़े एवं गोप-बालक विद्यमान र यथावत् सब कार्य होते रहे। कहीं कोई गड़बड़ी न किसीको इस लीला-रहस्यका आभास नहीं।

निशि-दिन बीतते रहे। ब्रह्माजी अपने कार्यकी फलश्रु अनुसंधानमें गोकुल पधारे। यहाँ वैसे ही गायों एवं गो बालकोंको देखकर यह समझ नहीं पाये कि कौन अस हैं कौन नकली? क्या करें बेचारे। यह तो है भगवान लीला। भ्रमित-चकित हो गये सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी।

महाभारतके युद्धक्षेत्र—कुरुक्षेत्रमें सेनाओंके देखते-दे मोहित होकर अपना कर्तव्य भूलकर अर्जुन वेदान्ती बन उन्हें विश्वरूप दिखाकर, अपनी लीला-विभूतिका अनु कराकर भगवान् श्रीकृष्णने बताया—'**मया हतांस्त्वं जहि व्यथिष्ठाः।**' इसी प्रकार अनन्त लीलाएँ करते-करते परम जगत्का संहार भी कर डालते हैं। यह है उनकी लील

अतः स्पष्ट है कि श्रीपरमात्मा निरूप होकर ही माय सृष्टि-स्थिति-संहार आदि बिना किसी प्रयोजन तथा प्रय करवाते हैं हमें अमूल्य फल दिलानेके लिये ही। यह श्रीभगवान्का लीला-वैभव।

* * *

श्रीकृष्णलीलाका विश्वव्यापी प्रभाव

(श्रीमद् ए० सी० 'भक्तिवेदान्त' स्वामी प्रभुपादजी महाराज)

[अन्ताराष्ट्रिय कृष्णभावनामृत-संघके संस्थापक श्रीकृष्णकृपा-श्रीमूर्ति श्रीमद् ए० सी० 'भक्तिवेदान्त' स्वामी प्रभुपादजी महाराजने भारत ही नहीं, पूरे संसारके देशोंका भ्रमणकर वहाँके लोगोंको भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओं तथा उनके नाम-संकीर्तनके प्रभावसे परिचित कराकर करोड़ों व्यक्तियोंको सनातनधर्ममें दीक्षित किया। अब ये अंग्रेज (ईसाई) कृष्ण-भक्त बन सिरपर लम्बी चोटी एवं माथेपर तिलक धारण किये श्रीकृष्ण-लीलाके चिन्तनमें लीन रहते हैं। उनके माध्यमसे ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, जापान, जर्मनी, कनाडा आदि देशोंमें भव्यतम श्रीराधा-कृष्ण-मन्दिरोंका निर्माण हुआ; टैक्सास, डल्लास आदिमें गुरुकुलों तथा गोशालाओंकी स्थापना हुई, वहाँ रथयात्राएँ प्रदर्शित कर भगवान्‌की दिव्य लीलाओंके दर्शनोंकी परम्परा शुरू हुई।

सन् १९७१ में भक्त श्रीरामशरणदासजी 'पिलखुवा' तथा उनके सुपुत्र श्रीशिवकुमारजी गोयलको स्वामी प्रभुपादसे साक्षात्कारका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय कुछ प्रश्नोत्तर उनसे किये गये थे। उसके प्रमुख अंशोंको यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।—सं०]

मैंने भौतिकवादसे अति त्रस्त संसारके लोगोंको सच्ची सुख-शान्तिका मार्ग दिखानेका संकल्प लेकर 'श्रीकृष्ण-भावनामृत-अभियान' शुरू किया था। मैंने विभिन्न धर्मशास्त्रोंका अध्ययन करनेके बाद यह निष्कर्ष निकाला कि भगवान्‌की दिव्य लीलाओं तथा उनके उपदेशोंके माध्यमसे ही संसार ऐसी सत्प्रेरणा तथा शिक्षा ग्रहण कर सकता है, जिससे मानवमात्रका लौकिक और पारलौकिक जीवन सफल हो सके। जब सबसे पहले मैं सन् १९६५ में अमेरिका पहुँचा तथा उसी वर्ष पश्चिमी वर्जीनियाकी पहाड़ियोंमें 'नव-वृन्दावन' की स्थापना की तो उस समय भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओंकी दिव्य कथाएँ सुनकर भौतिक जगत्‌के अनेक शीर्ष बुद्धिजीवी कह उठे थे—'आज हम समझे हैं कि श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओंका क्या प्रयोजन था। उनकी प्रत्येक लीलाके पीछे मानवके कल्याणकी भावना निहित थी।'

कुल ८४ लाख योनियाँ हैं और उन सबमें श्रीकृष्णकी चेतना व्याप्त है। कृष्ण हर शरीरमें घटित होनेवाली हर बातको जानते हैं। जब हम अपने हृदय या मस्तिष्कमें श्रीकृष्णका, उनकी दिव्य लीलाओंका, उनके पावन नामोंका चिन्तन करते हैं तो कृष्ण तुरंत हमारे इस चिन्तनको समझकर हमपर कृपा बरसानेके लिये तत्पर हो उठते हैं। भगवान् होनेके कारण कृष्णका हरेकके प्रति समभाव है—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।

मानव अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके लिये सांसारिक लोगोंको प्रसन्न करनेका प्रयास करता है। यदि वह भगवान् श्रीकृष्णको अपना मित्र बना ले तो उसकी तमाम सदिच्छाएँ स्वतः पूर्ण हो जायँगी।

कृष्णभावना कोई विश्वास या आस्थाका ही प्रश्न नहीं, अपितु यह एक विज्ञान भी है। इस शरीरके भीतर जो 'जीवन-शक्ति' है, हम उसकी बात कृष्णभावनामें करते हैं। यह कृष्णभावना एक 'आध्यात्मिक विज्ञान' है। 'हरे कृष्ण आन्दोलन' जीवमात्रको भगवान्‌के विज्ञान तथा श्रीकृष्ण-श्रीरामकी लीलाओंका रहस्य समझाकर उनके कल्याणका मार्ग प्रशस्त करनेकी दिशामें प्रयत्नशील है। वे हम लोगोंको यह समझाना चाहते हैं कि जब शरीरका अन्त होगा—विनाश होगा, तब भी आपका अन्त नहीं होगा। यदि शरीर रहते श्रीकृष्णकी शरणमें चले गये तो शरीरके अन्तमें भगवान्‌की लीलामें लीन हो जाओगे।

चैतन्य महाप्रभुका आदेश

चैतन्य महाप्रभुका आदेश है—

'यारे देख, तारे कह 'कृष्ण उपदेश'
आमार आज्ञाय गुरू हमा तार एइ देश'

—'भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवतमें कृष्णने जिस तरह आदेश दिये हैं, उनका पालन करनेके लिये हर-एकको उपदेश दो तथा हर प्राणीको तारनेका प्रयास करो।'

'श्रीकृष्णभावनामृत-आन्दोलन'का यही लक्ष्य है। उसका अभियान भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओंके प्रचार, उनके उपदेशोंके विस्तार तथा श्रीमद्भगवद्गीताके माध्यमसे पूरे संसारके प्राणियोंको तारनेके लिये है।

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

'उनपर दया करनेके लिये, उनके हृदयमें स्थित मैं स्वयं अज्ञानसे उत्पन्न अन्धकारको ज्ञानके प्रकाशमय दीपकद्वारा नष्ट कर देता हूँ।'

यदि आप वास्तवमें कृष्णभावनाभावित हों तो आपको कृष्णकी विशेष कृपा प्राप्त होने लगेगी। कृष्ण अत्यन्त कृपालु हैं; वे अपनी दिव्य लीलासे भक्तोंको अनुप्राणित करनेमें एक क्षणकी देरी भी नहीं लगाते।

चैतन्य महाप्रभु, भक्त सूरदास, मीराबाई-जैसे असंख्य भक्तोंको भगवान् श्रीकृष्णने अपनी दिव्य लीलासे आह्लादित करनेकी कृपा की है।

भगवान् श्रीकृष्णने अपनी दिव्य लीलाओंके माध्यमसे जीवके अहंकार, कृत्रिमता, उसकी क्षुद्र भावनाको निरर्थक एवं पतनशील सिद्ध किया है। श्रीकृष्ण, श्रीराम तथा अन्य अवतारोंकी लीलाओंका प्रयोजन ही 'परम सत्य'को उद्घाटित कर अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करना है। भगवान् समय-समयपर अपनी लीलाद्वारा असहायों तथा धार्मिक जनोंकी सहायता करनेके लिये तत्पर रहे हैं। अहंकार एवं क्रूरताके नशेमें चूर हुए पापियोंसे जीवकी रक्षाके लिये वे दौड़े-दौड़े आते हैं। अन्तमें अधर्मका नाश तथा धर्मकी स्थापनाकी लीला कर जगत्को अपने धर्मकी रक्षाका शाश्वत संदेश देते हैं।

श्रीकृष्ण-लीलाओंका व्यापक प्रभाव

भगवान्की पावन लीलाओंको श्रवणकर आज संसारके सभी देशोंमें तेजीसे 'श्रीकृष्णभावनामृत-अभियान'का विस्तार हो रहा है। गोपालकृष्णकी पावन लीलाओंके प्रभावने घोर मांसाहारी समाजको शाकाहार एवं दुग्धाहारके प्रति आक करना शुरू कर दिया है। अमेरिका, ब्रिटेन, जापान फ्रांस एवं जर्मनी ही नहीं, चीन और रूस-जैसे कम्यु देशोंके भी लाखों ईसाई अंडा, मांस, मछली त्याग भगवान् श्रीकृष्णको भोग लगाये तथा पवित्र प्रसाद ग्र कर जब *'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे'* उद्घोष कर सड़कोंपर नृत्य करते हैं तो मैं सोचता हूँ भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाके प्रत्यक्ष प्रभावका इससे ज्वल उदाहरण और क्या हो सकता है!

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका महान् वाङ्मय-स्व श्रीमद्भागवत तथा भगवान् श्रीकृष्णकी पावन वाणी साक्षात् स्वरूप श्रीमद्भगवद्गीता आज संसारकी प्रायः प्रत्ये भाषामें अनूदित हो चुकी है। संसारके अनेक बुद्धिजीवी तथा विभिन्न वर्गोंके अग्रणी लोग भौतिकवाद भ्रम-जालको त्यागकर श्रीकृष्णकी शरणमें आते जा रहे वे पुनर्जन्म तथा सनातनधर्मके संस्कारोंपर दृढ़ विश्वास र लगे हैं। कर्मोंके फलपर उनकी दृढ़ आस्था होती जा है। इसे मैं भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलाओंका प्रभाव मानता हूँ।

'श्रीकृष्णभावनामृत-प्रचार-अभियान'के दौरान मैंने भी अनुभव किया कि संसारके युवाजनोंका विज्ञान- भौतिक विज्ञानसे मोह-भंग होता जा रहा है। वे यह गये हैं कि वैज्ञानिक जन्म तथा मृत्युकी समस्या रहस्यका निदान कदापि नहीं कर सकते।

पाश्चात्त्य देशोंके लोग अपनेको सुसभ्य और सुशि होनेका दावा करते थे, किंतु उन्होंने जिस प्रकार गर्भ शिशुका पता लगाकर उसे मारनेके तरीके खोजे, भ्रू हत्याओंके पापका विज्ञान निकाला, उसे देखकर क्या सभ्य कहा जा सकता है? यह तो कुत्तों एवं पशु-पक्षि भी बदतर सभ्यता है। कुत्ते-बिल्ली भी अपनी संतानको मारते। हमारे धर्मशास्त्रोंमें गर्भस्थ शिशुके प्रति ममता स्नेह व्यक्त करनेका तरीका बताया गया है, किंतु वर्त समयकी तथाकथित सभ्य माताएँ गर्भस्थ शिशु 'कन्या' यह पता चलते ही उसे क्रूरतापूर्वक मरवा देती हैं।

विज्ञान नहीं क्रूरतम कार्यका निकृष्टतम उदाहरण है। इसी प्रकार छोटी-छोटी बातोंपर तलाक देनेकी प्रवृत्तिसे भी पश्चिमी देशोंके परिवार उजड़ते जा रहे हैं। वे जब श्रीकृष्ण-जीवन-लीलाका अध्ययन करते हैं—भारतीय संयुक्त परिवार-प्रणालीको देखते हैं तो दंग रह जाते हैं।

इसी कारण अतिभौतिकवादसे त्रस्त विदेशी अब अपने जीवनसे, आधुनिकतम सुविधाओंसे ऊबकर श्रीकृष्ण तथा सनातन धर्मकी ओर आकृष्ट हो रहे हैं और साथ ही वे श्रीकृष्ण-लीलाओंसे वात्सल्य, पारिवारिक स्नेह, मर्यादा तथा एक दूसरेके प्रति कर्तव्य-भावना आदिकी प्रेरणा ले रहे हैं।

यह भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओंका ही प्रभाव है कि विदेशोंके अनेक नगरोंमें श्रीकृष्ण-बलरामके भव्य मन्दिरोंकी स्थापना हो चुकी है। गोशालाओंकी स्थापना कर अंग्रेज, फ्रांसीसी आदि गोपालनके महत्त्वको समझने लगे हैं। गोमांस ही नहीं, अपितु हर प्रकारके मांस तथा शराब-जैसी अखाद्य वस्तुओंका प्रयोग न करनेका संकल्प लेकर वे पूरी तरह शुद्ध शाकाहारी बनते जा रहे हैं। जगह-जगह गुरुकुलोंकी स्थापना करके बच्चोंको श्रीकृष्ण-लीलाओंका दिग्दर्शन कराया जाता है। उन्हें श्रीमद्भगवद्गीता तथा लीला-वाङ्मयके साक्षात् स्वरूप श्रीमद्भागवतकी शिक्षा दी जाती है।

हम भारतीय तथा हिंदू कहलानेवाले चोटी, यज्ञोपवीत तथा तिलक-जैसे धर्म-चिह्नोंकी उपेक्षा—अवहेलना करने लगे हैं, जबकि ये विदेशी कृष्ण-भक्त इन धार्मिक चिह्नोंको गर्वपूर्वक धारण कर हाथमें सुमिरनी लिये भगवान्का जाप करते हुए सड़कोंपर निकलनेमें तनिक भी नहीं हिचकिचाते। वे ढोलक-मँजीरोंके साथ—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

—की ध्वनिपर नृत्य करनेमें अपना जीवन सफल मानते हैं। हमें इस बातका संतोष है कि चैतन्य महाप्रभु-जैसी विभूतियोंका श्रीकृष्णलीला एवं भगवन्नाम-संकीर्तन-अभियान अब विश्वव्यापी रूप धारण कर चुका है। समझदार लोग इस संसारकी असारता तथा भौतिक सुखोंकी निःसारताको समझकर भगवान्की दिव्य लीलाओंमें लीन हो जानेमें ही अपना जीवन सफल मानने लगे हैं।

⁂

भगवल्लीलाकी तात्त्विक मीमांसा

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्द सरस्वतीजी महाराज)

श्रुतियोंने भगवान्को रसरूप माना है—'**रसो वै सः**' (तैत्तिरीयोपनिषद् २। ७)। रसाभिव्यक्तिके लिये ही भगवान्का अवतार भी होता है। रसाभिव्यक्तिमें प्रतिबन्धक दुष्टोंका दलन तथा अन्तःशत्रु—कामादिका शमन भी भगवान्के अवतारसे सिद्ध होता है। '**इदं विष्णुर्वि च क्रमे त्रेधा नि दधे पदम्**' (ऋग्वेद १। २२। १७) आदि श्रुतियोंको चरितार्थ करनेके लिये जहाँ श्रीवामन भगवान्का अवतार होता है, वहाँ '**रसो वै सः**', '**तद् दूरे तद्वन्तिके**' (ईशावास्योपनिषद् ५), '**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते**' (तैत्तिरीयोपनिषद् ३। १) आदि स्वरूपप्रतिपादक निमित्तोपादान-कारणपरक श्रुतियोंको चरितार्थ करनेके लिये श्रीकृष्णावतार होता है। अतएव कारणब्रह्म और कारणातीत परब्रह्म ही श्रीकृष्णरूपसे स्फुरित हैं। श्रीकृष्णावतारमें सबसे महत्त्वपूर्ण आनन्दाभिव्यञ्जक लीला रासलीला मानी जाती है। उत्पत्ति-प्रक्रियाके अनुसार रासलीलाका अर्थ है—रसरूप श्रीकृष्णचन्द्रकी विविध रूपोंमें तथा विविध व्यक्तियोंमें अभिव्यक्ति। लय-प्रक्रियाके अनुसार रासलीलाका अर्थ है विविध वस्तुओंमें संनिहित रस-तत्त्वकी श्रीकृष्णके प्रति स्फूर्ति। '**कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः।**' (श्रीमद्भा० १०। ३३। २०)—'जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप श्रीकृष्णने धारण किये।'

व्रजवासी गोपोंने भगवान् श्रीकृष्णमें तनिक भी दोषबुद्धि नहीं की। वे उनकी योगमायासे मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि वे हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही हैं। 'तदङ्गसङ्ग-

प्रमुदा कुलेन्द्रियाः' भगवान्‌के अङ्गोंका संस्पर्श प्राप्त करके गोपियोंकी इन्द्रियाँ प्रेम और आनन्दसे विह्वल हो गयीं।

उक्त वचनोंसे उत्पत्ति प्रक्रियाके अनुसार रासलीला चरितार्थ है, क्योंकि भागवतकार लिखते हैं—

एवं परिष्वङ्गकराभिमर्श-
स्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।
रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि-
र्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। १७)

'जैसे नन्हा-सा शिशु निर्विकार-भावसे अपनी परछाईंके साथ खेलता है, वैसे ही रमारमण भगवान् श्रीकृष्ण कभी उन्हें अपने हृदयसे लगाते, कभी हाथसे उनका अङ्ग स्पर्श करते, कभी प्रेमभरी तिरछी चितवनसे उनकी ओर देखते, तो कभी लीलासे उन्मुक्त हँसी हँसने लगते। इस प्रकार उन्होंने व्रजसुन्दरियोंके साथ क्रीडा की—विहार किया।'

उक्त वचनसे प्रलय-प्रक्रियाके अनुसार रासलीला चरितार्थ है।

स्थिति-प्रक्रियाके अनुसार रासलीलाका अर्थ है—तत्त्वशोधन। पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहम्, महत् और अव्यक्तका पृथक्-पृथक् तथा युगपत् शोधन श्रीकृष्णावतारमें चरितार्थ है। मृद्भक्षण और नवनीत-भक्षण आदि पृथिवीशोधन-लीला है। कालियदमन तथा ह्रदशोधन जलशोधन-लीला है। दावानलपान तेजःशोधन-लीला है। तृणावर्तोद्धार वायुशोधन-लीला है। व्योमासुर-उद्धार आकाशशोधन-लीला है। अघासुर-उद्धार अहंशोधन-लीला है। ब्रह्मपराभव महत्-शोधन-लीला है। पूतनावध अविद्यारूपा अव्यक्तशोधन-लीला है। अष्टधाप्रकृतिरूपा गोपाङ्गनाओंके दुकूलापहरणके अनन्तर रसाविष्ट, स्वसंस्पृष्ट वस्त्रप्रदानसे स्वसम्मिलनके निमित्त गोपाङ्गनाओंमें शक्तिपात युगपत् सर्वतत्त्वशोधन-लीला है।

श्रीहरिकी दुष्टदलन-लीला भी मनोरम ही है। रसाभिव्यक्तिमें प्रतिबन्धक तामस शरीरका अपहरण कर वैरभावसे स्मरणके प्रभावसे ब्रह्माभिव्यंजक ब्राह्मीतनुको प्रदान करना रसाभिव्यक्ति नहीं तो और क्या है?

श्रीहरि दुर्जनप्रदत्त यातनाको दूरकर, रोगादिसे त्राण दिलाकर—जीवनदान देकर, धन-मान देकर, बन्धु-बान्ध वियोग दूरकर, तत्त्वोपदेश देकर, जीवन्मुक्तिके विल आनन्दको अभिव्यक्तकर आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु, ज्ञानी प्रेमी सभी प्रकारके साधुओंका परित्राण करते हैं। इस साधु-परित्राण भी रसाभिव्यक्ति ही है।

भगवान् अपने शापित जय-विजयपर कितने अनुग्रह थे, यह तथ्य श्रीमद्भागवतके अनुशीलनसे अत्यन्त स्प जाता है। श्रीसनकादि योगीश्वरोंद्वारा शापित जय-विज शीघ्र ही ब्रह्मदण्डरूप शापसे मुक्ति मिल सके औ निर्वासनकाल समाप्त कर शीघ्र ही श्रीहरिके समीप जायँ, इसके प्रति विह्वल भगवान् सनकादि मुनियोंसे करते हुए बोले—

तन्मे स्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ
युष्मद्व्यतिक्रमगतिं प्रतिपद्य सद्यः।
भूयो ममान्तिकमितां तदनुग्रहो मे
यत्कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवासः॥

(श्रीमद्भा० ३। १६।

'मेरे इन सेवकोंने मेरा अभिप्राय न समझकर ही महानुभावोंका अपमान किया है। इसलिये मेरे अनु आप केवल इतनी कृपा कीजिये कि इनका यह निर्वासन शीघ्र ही समाप्त हो जाय, ये अपने अपराधके अ अधमगतिको भोगकर शीघ्र ही मेरे पास लौट आयें।

निज पार्षदोंको मेरे प्रति क्रोधान्वित होकर क्रोधावेश-सम्भव एकाग्रतारूप समाधिके द्वारा सुदृढ़ सम्पन्न होकर पुनः शीघ्र ही मेरे पास लौट आओगे। आश्वासन तथा शाप देनेवाले मुनियोंको हानि और ग्ला मुक्त करते हुए 'ब्राह्मणो! आपने इन्हें जो शाप दिया है जानिये, वह मेरी ही प्रेरणासे हुआ है।'—यह श्रीहरिको जय-विजय और सनकादि सभीके प्रति वात्सल सिद्ध करता है। भगवान्‌के इस स्वभावको परख श्रीहरिके प्रति अनुरक्त हुए बिना कैसे रह सकते हैं

श्रीप्रह्लादजीके सिरपर वात्सल्यपूर्ण वरदहस्त हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थलका तीक्ष्ण नाखूनोंसे विदार दोनों ही अनुग्रह नहीं तो और क्या है? एक वात्सल

शल्यचिकित्सामें निपुण माँ अपने स्वस्थ बच्चेको दूध पिलाती और व्रणपीडित बच्चेके व्रणको चीरकर रक्त बहाती हुई परिलक्षित होनेपर भी मर्मज्ञ महानुभावोंकी दृष्टिमें दोनोंपर यथाकाल यथायोग्य अनुग्रह ही बरसाती सिद्ध होती है।

उक्त दो उदाहरणोंके अतिरिक्त तीसरा उदाहरण अर्जुन और भीष्मपर यथावसर यथोचित अनुग्रहकी वर्षाका है—

तीसरे दिनके युद्धमें अर्जुन, भीम, धृष्टद्युम्न, घटोत्कच, सात्यकि, अभिमन्यु आदिके पराक्रमसे कौरवसेना अत्यन्त भयविह्वल होकर युद्धभूमिसे पलायन करने लगी। भीष्म और द्रोण भी पलायन करते हुए सैनिकोंको रोक नहीं सके। सेनाकी दुर्दशा देखकर दुर्योधनने भीष्मपितामहके समीप जाकर कहा—'आपके, अस्त्रविद्यानिपुण द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामाके जीवित रहते मेरी सेनाका इस प्रकार भागना आप लोगोंके पराक्रमके अनुरूप मैं नहीं मानता। निःसंदेह आप पाण्डवोंपर कृपा करके उन्हें क्षमा कर रहे हैं। मैंने आपके, द्रोणाचार्य और कृपाचार्यके वचनपर विश्वास करके ही कर्णके साथ कर्तव्यकी सम्मति करके यह युद्ध प्रारम्भ किया था। आप अपने पराक्रमके अनुरूप युद्ध करके शत्रुओंको नष्ट कर दीजिये।'

दुर्योधनके ये वचन सुनकर महापराक्रमी भीष्म बार-बार हँसकर और फिर क्रोधसे नेत्र लाल करके दुर्योधनसे बोले—'हे राजेन्द्र! मैंने बहुत बार सत्य और हितकर वचन कहा कि इन्द्रसहित सब देवता भी युद्धमें पाण्डवोंको जीत नहीं सकते। मैं इस समय वृद्ध और गतायु होकर भी जो कुछ कर सकता हूँ, वह यथाशक्ति करूँगा। तुम अपने भाइयोंसहित मेरा पराक्रम देखो। इस समय सब लोगोंके सामने मैं अकेला ही सेनासहित पाण्डवोंको रोकूँगा।'

भीष्मके ये वचन सुनकर दुर्योधनादि प्रसन्न होकर शंख और नगाड़े आदि बजाने लगे। इस महानादको सुनकर पाण्डवगण भी शंख, भेरी आदि बाजे बजाने लगे। उस दिनका पूर्वभाग समाप्तप्राय हो चुका था। सूर्यदेव कुछ पश्चिम आकाशकी ओर झुक चले थे। पाण्डवलोग विजय-लाभ करके प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे। इसी समय भीष्मने यथाशक्ति पराक्रम प्रकट करके पाण्डवोंको रोकनेकी प्रतिज्ञा की। भीष्म हाथमें मण्डलाकार धनुष लेकर नागसदृश प्रज्वलित अग्रभागवाले बाण छोड़ने लगे। वे अलातचक्रकी तरह इधर-उधर सब जगह दिखायी पड़ने लगे। भीष्मके हाथकी स्फूर्तिके कारण पाण्डव और सृञ्जयगण युद्धभूमिमें एकमात्र वीर भीष्मको सैकड़ों और हजारोंके तुल्य देख रहे थे। वे सभी वीर भीष्मको मायावी जानने लगे। सहस्रों क्षत्रियगण पतंगोंकी तरह मोहित होकर स्वयं ही अपने नाशके लिये अमानुषिक रूपसे विचरनेवाले क्रुद्ध भीष्मरूप अग्निमें गिर-गिरकर भस्म होने लगे। पाण्डवपक्षके बहुत-से योद्धा कवच और केश खोलकर इधर-उधर प्राणोंकी रक्षाकी भावनासे आर्तनाद करते हुए भागने लगे। तब यदुनन्दन श्रीकृष्णने सैनिकोंको भागते देखकर रथ लौटाकर अर्जुनसे कहा—'हे पार्थ! यह वही समय है जिसकी तुम प्रतीक्षा कर रहे थे। इस समय तुम भीष्मपर प्रहार करो।'

भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणा पाकर अर्जुनने कहा—'हे वासुदेव! जहाँपर भीष्मका रथ है, वहाँ इस सैन्यसागरके मध्यसे मेरा रथ ले चलिये।' फिर क्या था, श्रीकृष्णने रथको हाँका और जहाँपर भीष्मका सूर्यके समान दुर्निरीक्ष्य रथ खड़ा था, वहाँपर श्वेत अश्वोंसे शोभित अर्जुनका रथ पहुँचा दिया। युधिष्ठिरकी सेना अर्जुनको भीष्मसे युद्ध करनेके लिये उद्यत देखकर लौट पड़ी। तत्पश्चात् कुरुकुलप्रधान भीष्मने बार-बार सिंहनाद करके शीघ्र ही बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनका रथ ढक दिया। तब अर्जुनने मेघके समान गरजनेवाला दिव्य गाण्डीव धनुष चढ़ाकर तीक्ष्ण बाणसे भीष्मका धनुष काट डाला। फिर क्या था, अर्जुनकी प्रशंसा करके भीष्म घोर पराक्रम दिखाने लगे, परंतु अर्जुन मृदुयुद्ध ही करते रहे। श्रीकृष्णने यह जानकर कि आज ही भीष्म पाण्डवपक्षका संहार कर डालेंगे। मन-ही-मन सोचा—पाण्डवोंके हितकी रक्षाके लिये आज मैं ही भीष्मको मारूँगा। यद्यपि भीष्म तीक्ष्ण बाण मार रहे थे, किंतु अर्जुन पितामहके गौरवकी रक्षाके लिये अपने कर्तव्यका पालन नहीं करते। सात्यकिसे भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'आज

कौरव-सेनाका एक भी वीर मेरे क्रोधसे नहीं बच सकता। मैं अभी भयंकर चक्र हाथमें लेकर भीष्मको मार डालूँगा। धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंको और उनके पक्षके मुख्य राजाओंको मारकर आज मैं प्रसन्नतापूर्वक राजा युधिष्ठिरको राजसिंहासनपर बिठाऊँगा।' ऐसा कहकर श्रीकृष्णने घोड़ोंकी रास हाथसे छोड़ दी। सहस्र वज्रसहित बहुत ही तीक्ष्ण सूर्यसदृश प्रभासम्पन्न सुदर्शनचक्रको हाथमें घुमाते हुए वे रथसे कूद पड़े। सिंह जैसे गजराजको मारनेके लिये दौड़े, वैसे ही श्रीकृष्ण भीष्मको मारनेके लिये कौरव-सेनाकी ओर दौड़े। उस समय उनके शरीरका पीताम्बर आकाशमें स्थित बिजलीयुक्त मेघके समान शोभाको प्राप्त होने लगा। क्रुद्ध श्रीकृष्णको चक्र हाथमें लिये देखकर सब प्राणी ऊँचे स्वरसे हाहाकार करने लगे। सबने समझा कि अब कुरुकुलका नाश हुआ। धूमकेतु जैसे चराचर जगत्‌को जलानेके लिये उदित होता है, वैसे ही लोकगुरु वासुदेव चक्र हाथमें लेकर जीवलोकको जलानेवाले प्रलयकालके अग्निके समान भीष्मकी ओर वेगसे दौड़े। श्रीकृष्णको चक्र लिये हुए अपनी ओर आते देखकर महात्मा भीष्म तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे अविचल-भावसे गाण्डीवके समान श्रेष्ठ धनुषकी डोरी बजाते हुए कहने लगे—'हे श्रीकृष्ण! हे जगन्निवास! हे चक्रपाणि! आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आप प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले शरण्य हैं। आप बलपूर्वक इस श्रेष्ठ रथपरसे मुझे मार गिराइये। आप मुझको मारेंगे तो मुझे इस लोक और परलोकमें कल्याण प्राप्त होगा। हे यदुनाथ! आप मुझे मारने दौड़े, इससे मेरी प्रतिष्ठा एवं कीर्ति और भी बढ़ गयी।'

भीष्मके ये वचन सुनकर वेगके साथ उनके सामने जानेके लिये उद्यत श्रीकृष्णने कहा—'हे भीष्म! आपके कारण ही दुर्योधन भाई-बन्धुओं-सहित विनष्ट होगा। द्यूतमें आसक्त राजाको उससे रोकना ही धार्मिक मन्त्रियो कर्तव्य है। यदि कोई राजा काल-विपर्ययके कारण उपदेशको न मानकर धर्मविरुद्ध कार्यको न छोड़ना चाहे उसको छोड़ देना ही श्रेयस्कर है।'

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके वचनको सुनकर भीष्मने कहा- जनार्दन! दैव ही प्रबल है। मैंने हित-कामनासे बार- धृतराष्ट्रसे कहा कि यदुवंशी आदिने अपने हितके कंसको छोड़ दिया था, तुम भी दुर्योधनको त्याग दो। उसने दैववश बुद्धि विपरीत होनेके कारण मेरा हितोपदेश नहीं सुना।'

इसी समय विशालबाहु वीर अर्जुन रथसे कू यदुवीर श्रीकृष्णके पीछे दौड़े। अर्जुनने जाकर श्रीकृ दोनों हाथ पकड़ लिये। योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र उस क्रोधमें थे, इस कारण यद्यपि अर्जुनने उन्हें रोकना तो भी वे उसी प्रकार अर्जुनको खींचते हुए भीष्मकी चले, जैसे प्रबल आँधी किसी वृक्षको खींच ले जाती दसवें पगपर जाकर अर्जुन बलपूर्वक पाँवोंको जमा श्रीकृष्णको रोक सके। उस समय श्रीकृष्णके नेत्र क्रो व्याप्त हो रहे थे। वे फुफकारते हुए सर्पके समान ल साँस खींच रहे थे। उनके सखा अर्जुन आर्तभावसे प्रेमपू बोले—'महाबाहो! लौटिये, अपनी प्रतिज्ञाको झूठी कीजिये। केशव! आपने पहले जो कहा था कि 'मैं नहीं करूँगा', इस वचनकी रक्षा कीजिये। अन्यथा मा लोग आपको मिथ्यावादी कहेंगे। यह सारा भार मुझप मैं अपने अस्त्र-शस्त्र, सत्य और सुकृतकी शपथ ख कहता हूँ कि पितामह भीष्मका वध करूँगा।'

भगवान् श्रीकृष्ण महामना अर्जुनका यह वचन सु तथा उनके पराक्रमको जानते हुए और ऊपरसे कुछ बोलकर पुनः क्रोधपूर्वक ही रथपर जा बैठे।

◆

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि। वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄंस्तत्पादसलिलं यथा॥

(श्रीमद्भागवत १०। १

भगवान् श्रीकृष्णकी कथाके सम्बन्धमें प्रश्न करनेसे ही वक्ता, प्रश्नकर्ता और श्रोता तीनों ही पवित्र हो जाते हैं- गङ्गाजीका जल या भगवान् शालग्रामका चरणामृत सभीको पवित्र कर देता है।

◆

सूरसागरमें कृष्णलीलाका सरसतम वर्णन

(स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी)

श्रीकृष्णने भारतीय चिन्तनधाराको एक नया मोड़ प्रदान किया है। 'स्वर्ग और मोक्ष मरणके बादका विषय है'—यह विचारधारा श्रीकृष्णकी लीलाओंमें पूर्णत: ध्वस्त हो गयी है। जीते-जी जीवन्मुक्तिका आनन्द अध्यात्म-जीवनदर्शनकी विशेषता है। यही सूरकी साधना है, जो उनके पदोंमें प्रतिबिम्बित हो उठी है। देहकी आसक्ति और वासनाके बन्धनको छोड़ना ही मुक्ति है। समस्त धर्मशास्त्र इस विषयमें एक मत हैं कि 'आसक्ति अध्यात्म-विकासमें बाधक है'—यह कह देना जितना सरल प्रतीत होता है, वास्तवमें व्यवहारकी दृष्टिसे उतना है नहीं। वल्लभाचार्यजी इस शास्त्रीय विचारसे अनभिज्ञ भला कैसे हो सकते हैं, अत: उन्होंने यह तो स्वीकार किया कि आसक्ति सर्वथा त्याज्य है, किंतु यदि उसे त्याग देना सम्भव न हो तब संतोंमें आसक्ति करनी चाहिये, क्योंकि संत स्वयमेव आसक्तिकी औषधि हैं—

संगः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः संगस्य भेषजम्॥

आइये, भक्तशिरोमणि सूरदासकी रचनाओंके संगद्वारा इस आसक्ति-रोगका उपचार करें। श्वेताश्वतरोपनिषद् (६। १६)-में परमेश्वरके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहा गया है—

स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनि-
र्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः
संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः॥

'वह विश्वका कर्ता, विश्ववेत्ता, आत्मयोनि (स्वयम्भू), ज्ञाता, कालका प्रेरक, अपहतपाप्मत्वादि गुणोंसे युक्त और सम्पूर्ण विद्याओंका आश्रय है तथा वही प्रधान और पुरुषका अध्यक्ष, गुणोंका नियामक एवं संसारके मोक्ष, स्थिति और बन्धनका हेतु भी है।' इसी क्लिष्टतम परमेश्वर-तत्त्वका निरूपण सूरदासने कितने सहज ढंगसे प्रस्तुत किया है—

जाको ब्रह्मा अंत न पावै।
तापै नंद की नारि जसोदा, घर की टहल करावै॥
सेष, सनक, नारद, गनेस, मुनि, जाके गुन नित गावैं।
निसि-बासर खोजत पचिहारैं, मनसा ध्यान न आवै॥
धनि गोकुल, धनि-धनि ब्रज-बनिता, निरखत स्याम बधावै।
सूरदास प्रभु प्रेमहिँ के बस, संतनि दुरस दिखावैं॥

वेदव्यासने श्रीमद्भागवत-पुराणान्तर्गत भगवान् कृष्णके प्राकट्यका जो स्वरूप वर्णन किया है—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं
चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं
पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्॥
(श्रीमद्भा० १०। ३। ९)

—ठीक यही वर्णन सूरदासजीकी भावनामें प्रखर-रूपमें प्रतिबिम्बित हो उठा है—

बुध-रोहिनी-अष्टमी-संगम, वसुदेव निकट बुलायौ।
सकल लोकनायक, सुखदायक, अजन, जन्म धरि आयौ॥
माथैं मुकुट, सुभग पीतांबर, उर सोभित भृगु-रेखा।
संख-चक्र-गदा-पद्म बिराजत, अति प्रताप सिसु-भेषा॥
जननी निरखि भई तन ब्याकुल, यह न चरित कहुँ देखा।
बैठी सकुचि, निकट पति बोल्यौ, दुहुँनि पुत्र-मुख पेखा॥

जिस प्रज्ञाचक्षुके समक्ष लाखों आँखोंवाले भी चक्षुविहीन-जैसे ही हैं, उसकी अन्तर्दृष्टिने कृष्ण-जन्मसे संलग्न 'नालोच्छेदन'-जैसी अनिवार्य क्रियाका कैसा विचित्र और अनूठा वर्णन किया है। दाईका हठ उसके अन्त:करणकी सरस अभिव्यक्ति है और यशोदाका उपहार तो जैसे शब्दोंमें सजीव हो उठा है—

जसुदा, नार न छेदन दैहौं।
मनिमय जटित हार ग्रीवा कौ, वहै आजु हौं लैहौं॥
औरनि कै हैं गोप-खरिक बहु, मोहिँ गृह एक तुम्हारौ।
मिटि जु गयौ संताप जनम कौ, देख्यौ नंद-दुलारौ॥
बहुत दिनन की आशा लागी, झगरिनि झगरौ कीनौ।
मनमैं बिहँसि तबै नँदरानी, हार हिये कौ दीनौ॥
जाकैं नार आदि ब्रह्मादिक, सकल-बिस्व-आधार।
सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे, मेटन कौं भू-भार॥

कृष्ण-चरित्रसे सम्बन्धित साहित्यमें ज्योतिष शास्त्रानुसार श्रीकृष्णकी जन्मकुण्डलीका जितना प्रामाणिक चित्रण सूरने

किया है, उतना अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। प्रत्येक ग्रहकी स्थिति और उसका फल-विवरण सूरदासके ज्योतिष-सम्बन्धी ज्ञानका परिचायक है—

(नंद जू) आदि जोतिषी तुम्हरे घर कौ, पुत्र-जन्म सुनि आयौ।
लगन सोधि सब जोतिष गनिकै, चाहत तुमहिं सुनायौ॥
संबत सरस बिभावन, भादौं, आठैं तिथि, बुधवार।
कृष्न पच्छ, रोहिनी, अर्द्ध निसि, हर्षन जोग उदार॥
बृष है लग्न, उच्च के निसिपति, तनहिं बहुत सुख पैहैं।
चौथैं सिंह रासि के दिनकर, जीति सकल महि लैहैं॥
पचऐं बुध कन्या कौ जौ है, पुत्रनि बहुत बढ़ैहैं।
छठऐं सुक्र तुला के सनि जुत, सत्रु रहन नहिं पैहैं॥
ऊँच नीच जुवती बहु करिहैं, सतऐं राहु परे हैं।
भाग्य-भवन मैं मकर मही-सुत, बहु ऐस्वर्य बढ़ैहैं॥
लाभ-भवन मैं मीन बृहस्पति, नवनिधि घर मैं ऐहैं॥
कर्म-भवन के ईस सनीचर, स्याम बरन तन ह्वैहैं॥
आदि सनातन परब्रह्म प्रभु, घट-घट अंतरजामी।
सो तुम्हरैं अवतरे आनि कै, सूरदास के स्वामी॥

नन्हे बच्चोंका रूठना, मचलना, रोना और हठ करना साधारण बात है, पर अपनी माँसे इस बातके लिये झगड़ना कि 'माँ! मेरी चोटी क्यों नहीं बढ़ रही है?' असाधारण बात है। नन्हे कृष्ण न केवल माँसे हठपूर्वक पूछते हैं, वरन् इस चोटीके न बढ़नेका कारण भी अपनी ओरसे सजीव एवं सशक्त ढंगसे प्रस्तुत करते हैं कि—'तू कच्चा दूध तो भरपेट देती है, पर माखन-रोटीके बिना शिखावर्धन नहीं हो पायेगा'—

मैया, कबहिं बढ़ैगी चोटी?
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी!

× × ×

काँचौ दूध पिवति पचि-पचि, देति न माखन-रोटी।

'कृष्ण' शब्दका परिष्कृत अर्थ अपनी ओर आकर्षित करना भी होता है। रसखान तो कृष्णके हाथसे माखन-रोटी छुड़ाकर भाग जानेवाले कौएके भाग्यकी सराहना करते हैं, पर उस तपःपूत सूरदासका अन्तःकरण तो कृष्णको भोजन करा देनेके पश्चात् बाबा नन्दसे उनकी मधुमय जूठन माँगता है—

भोजन करि नंद अचमन लीन्हौ, माँगत सूर जुठनियाँ।

महर्षि व्यासदेवके कथनानुसार श्रीकृष्णको पौगण्ड-अवस्था (छठे वर्ष)-में गौ चरानेकी स्वीकृति प्राप्त हो जाती है—

ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ।
(श्रीमद्भा० १०। १५।

सचमुच जिनका कोमलाङ्ग गोधूलिधूसरित ग्वाल-सखा साथ गोधूलिवेलामें गौओंको यथास्थान बाँधनेके लिये रहा हो, उन सलोने बाल-गोपालके चरणोंमें प्रणाम कर किसका मन नहीं चाहेगा?

उक्त नयनाभिराम दृश्यपर सूरका शब्द-कौशल अनु है। कितने सरलभावसे कृष्ण माँसे मनुहार कर हैं—'मैया! अब मैं बड़ा हो गया हूँ। अब मुझे वनमें नहीं लगेगा। सभी सखा—रैता, पैता, मना, मनसुखा हलधर भैया भी तो साथ हैं। भूख लगेगी तो दही-भा काँवरि तू देगी ही'—

मैया हौं गाइ चरावन जैहौं।
तू कहि महर नंद बाबा सौं, बड़ो भयौ न डरैहौं॥
रैता, पैता, मना, मनसुखा, हलधर संगहि रैहौं।
बंसीबट तर ग्वालनि कैं सँग, खेलत अति सुख पैहौं॥
ओदन भोजन दै दधि काँवरि, भूख लगे तैं खैहौं।
सूरदास है साखि जमुन-जल, सौंह देहु जु नहैहौं॥

ऐसी अनुपम रूप-माधुरीपर भला कौन मुग्ध न हो

सुन्दरता को पार न पावति रूप देखि महतारी।
सूरसिन्धु की बूँद भई मिलि मति गति दीठि हमारी॥

महापुरुषोंके जीवन-आख्यानोंद्वारा बचपनमें ही बालक कथा-श्रवण करवाना भारतीय संस्कृतिकी विशिष्ट पर रही है। नन्हे कन्हैयाको बाल्यावस्थामें ही माताद्वारा मर्या पुरुषोत्तम श्रीरामकी जीवनी सुनाना सूरदासके मनोभाव इसी आदर्श परम्पराका परिचायक है—

सुनि सुत एक कथा कहौं प्यारी।
कमल-नैन मन आनँद उपज्यौ, चतुर सिरोमनि देत हुँक
दसरथ नृपति हुतौ रघुबंसी, ताकैं प्रगट भए सुत
तिनमैं मुख्य राम जो कहियत, जनक-सुता ताकी बर
तात-बचन लगि राज तज्यौ तिन, अनुज, घरनि सँग गए बन
धावत कनक-मृगा के पाछैं, राजिव लोचन परम उ
रावन हरन सिया कौ कीन्हौ, सुनि नँद-नंदन नींद निँ
चाप-चाप करि उठे सूर प्रभु, लछिमन देहु, जननि भ्रम

राजसूय-यज्ञमें देवर्षि नारदद्वारा भगवान्का स्व

वर्णन सूरको भी ग्राह्य है—'**साक्षात् स विबुधारिघ्नः क्षेत्रे नारायणो विभुः**' तथा '**संदिदेश पुरा योऽसौ विबुधान् भूतकृत् स्वयम्**' जो सर्वव्यापक हो, स्वयं नारायण हो, सम्पूर्ण भूतोंका उत्पादक हो, स्वयं कर्ता-धर्ता हो, पर उस आँधरे भिखारीको तबतक संतोष नहीं होता है, जबतक कि वह उस ब्रह्माण्डनायकसे रुदन कराकर भोजन न मँगवा ले। यह भक्तिका पराकाष्ठातीत स्वरूप है। भला जो जगत्के रचयिता हों उनका कौन माता-पिता हो सकता है—

मातु पिता इनके नहिँ कोइ।
आपुहिँ करता, आपुहिँ हरता, त्रिगुन रहित हैं सोइ॥
कितिक बार अवतार लियौ ब्रज, ये हैं ऐसे ओइ।
जल-थल, कीट-ब्रह्म के व्यापक, और न इन सरि होइ॥
बसुधा-भार-उतारन काजैं, आपु रहत तनु गोइ।
सूर स्याम माता-हित-कारन, भोजन माँगत रोइ॥

कृष्णलीलामें जहाँ अनेक चेतन पात्र हैं, वहीं कुछ ऐसे जड पात्र भी हैं जिनके बिना कृष्ण अपूर्ण-से प्रतीत होते हैं, उन्हींमेंसे एक है बाँसुरी। जड होकर भी चेतनका चित्त हरण करनेकी सामर्थ्य रखनेवाली बाँसुरी सूरकी दृष्टिमें—

मुरली तौ यह बाँस की।
बाजति स्वास परति नहिँ जानतिँ, भई रहति पिय पास की॥
चेतन कौ चित हरति, अचेतन, भूखी डोलति माँस की।
सूरदास सब ब्रज-बासिनि सौँ, लिये रहति है गाँस की॥

श्रीकृष्ण-लीलाओंके सम्बन्धमें इस कालजयी कविके कृतित्वका विवेचन उस समयतक अपूर्ण ही रहेगा, जबतक गम्भीर अध्ययनद्वारा उनकी सार्थक वाणीसे निःसृत भक्ति और ज्ञानकी निर्मल धारामें अवगाहन न किया जाय। भगवद्भजनसे रहित मानव-देहको ऊँट, बैल और भैंसा कह देनेसे भी जब सूरको संतुष्टि नहीं हुई— ***'सूरदास भगवंत भजन बिनु, मनो ऊँट वृष भैंसो'*** तब उन्होंने और भी निम्नस्तरीय पशुओंसे मानवकी तुलना करते हुए कहा—***'सूरदास प्रभु तुम्हरे भजन बिनु जैसे सूकर स्वान सियार'***-यह उपदेशकी भाषा नहीं, अपितु सूरदास स्वयं अपनेको इंगित कर कहते —'सूरदासरूपी कुत्तेको पालनेवाले स्वामी इसे घरहीमें बाँधकर रखो। मेरे कारण दूसरोंसे गाली क्यों सुनते हो'—

'अब अनखाइ कहौं घर अपने राखौं बांधि विचार'॥

'सूर स्वान के पालनहारे आवति हैं नित गारी।'

यह भी तो कृष्णलीलाका ही एक रूप है—प्रतिदिनकी भाँति आज भी श्यामने सूरके हाथमें इकतारा देकर कहा—'सुनाओ कोई नया पद! तुम बजाओ मैं नाचूँगा।'

अभी सूर इकतारेका स्वर मिला ही रहे थे कि न जाने उस नटखटको क्या सूझा—सूरदासके हाथसे इकतारा ले लिया और बोला—'तुम रोज गाते-बजाते हो और मैं सुन-सुनकर नाचता हूँ, पर आज मैं गाऊँगा-बजाऊँगा और तुम नाचोगे।'

'मैं नाचूँ! यह क्या कौतुक है कन्हाई! मुझ बूढ़ेको नचाओगे। पर मुझे नाचना आता कहाँ है?'

'नहीं आज तो नाचना ही पड़ेगा।'

'अच्छा गिरधारी! नहीं मानते हो तो नाच लूँगा, पर एक बात बताओ! कितनी बार नचाओगे। चौरासी लाख बार मुझे नचाकर भी तुम्हारा मन नहीं भरा! अब अधिक न नचाओ मुरली-मनोहर!'

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा-सब्द-रसाल।
भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल॥
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल सुधि नहिँ काल।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करौ नँदलाल॥

जंगलके लोगोंद्वारा आतंकित किये जानेसे आप भयाक्रान्त क्यों हैं? चाहे संसार दाँत पीसकर मर जाय, पर प्रभुके शरणागतका बाल भी बाँका नहीं कर सकता—

'सूर केस नहिं टार सकै कोउ दाँत पीसि जो जग मरै'

जलनिधिसे रत्न निकालना तो अभ्यस्त गोताखोरोंका ही कौशल है और फिर सूर-सागरके सहस्राधिक पदोंमेंसे चयन तो अधिकारी मनीषी ही कर सकते हैं, मुझ-जैसे अल्पज्ञकी क्या बिसात! बस हमें तो इतना ही चाहिये कि हम तेरे गुलाम कहलाते रहें, सुन-सुनकर प्रफुल्लित होते रहें और तेरी जूँठन प्राप्त करते रहें—

सब कोउ कहत गुलाम स्यामको सुनत सिहात हियौ।
सूरदास प्रभु जू को चेरो जूठनि खाय जियो॥

* * *

लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी लीलाका प्रयोजन

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्विष्णुस्वामिमतानुयायि श्रीगोपालवैष्णवपीठाधीश्वर श्री १००८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

अखिल ब्रह्माण्डनायक, वेदान्तवेद्य, परमब्रह्म, नराकार सच्चिदानन्दविग्रह श्रीगोपालजी ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् आदि शब्दोंसे अभिधेय यथार्थतः एक ही तत्त्व हैं। **'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'**—इस श्रुति-वचनसे अद्वितीय एक ही तत्त्व ब्रह्म-पदसे वेदान्तोंमें प्रतिपादित है।

जब उनकी रमण करनेकी अभिलाषा हुई, तब **'एकाकी न रमते, द्वितीयमैच्छत्'**—इस श्रुति-वाक्यसे अकेले रमण न कर सकनेपर दूसरेकी इच्छा हुई। दूसरा कोई न होनेपर जब **'एकोऽहं बहु स्याम'** इस श्रुतिसे स्वयं बहुविध होनेकी इच्छा की, तब **'स आत्मानं स्वयमकुरुत'**—इस श्रुतिसे उन्होंने स्वयंको आधार बनाकर अपनेको ही प्रपञ्चरूपमें परिणत कर लिया।

'स एकधा भवति, द्विधा भवति, बहुधा भवति'—इस श्रुतिसे एकविध कृष्ण, द्विविध राधाकृष्ण एवं राम-कृष्ण तथा बहुविध गो, गोप, गोपी आदि लीलाके उपकरण-रूपसे प्रकट हो गये। अतः सभी नित्य ही सिद्ध हुए और प्रपञ्च ब्रह्मात्मक होनेसे उनकी लीला-प्रयोजनकी सार्थकता स्वतःसिद्ध ही है।

मथुरापुरीमें लीलानट गोपाल-वेषधारी श्रीकृष्णने अवतार लिया है। आत्माराम-पूर्णकाम होनेपर भी उनका भूमिपर अवतरण मानव-कल्याणके लिये ही है—

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।

(श्रीमद्भा० १०। २९। १४)

भगवल्लीलाएँ माधुर्य-ऐश्वर्य—इन दो भागोंमें विभक्त हैं। माधुर्य-लीला व्रजमें तथा ऐश्वर्य-लीला द्वारकामें की है। बाललीला, पौगण्ड-लीला एवं किशोर-लीला व्रजमें की है। उनमें प्रथम बाललीला गोकुलमें की है। पौगण्डलीला वृन्दावन, गोवर्धन, नन्दगाँव, बरसाना और कामवनादिमें की है। किशोर-लीला वृन्दावन एवं मथुरापुरीमें की है।

वे लीलाएँ आन्तर्य तथा बाह्य-भेदसे दो प्रकारकी हैं। भगवान्ने जितनी लीलाएँ की हैं, उनमें गोपाल-लीला ही प्रमुख है। क्योंकि गोचारणके लिये वृन्दावन, गोवर्धन एवं यमुना-पुलिनपर जाकर गौओंको चराते हुए ग्वाल-बाल सखाओंसहित क्रीडा करते हैं। उनकी क्रीडाको भंग करने लिये कंसादि दैत्योंद्वारा जितने दैत्य-दानवोंको भेजा जा है, वे सभी लीला-लीलामें ही मार दिये जाते हैं। उस बाद वे प्रभु निर्भय अपने गोप-सखाओंके साथ विहा विलास करते हैं।

अन्तरङ्ग-लीला निकुंजोंमें करते हैं। उस लीला अधिनायिका श्रीराधारानी हैं। अष्ट सखियोंके सौ-सौ होते हैं। वे सहेली कहलाती हैं। उनमें भी प्रत्येकके सौ सहचरी कहलाती हैं। बहिरङ्ग-लीलाके नायक कृ कन्हैया-दाऊभैया हैं, संगी-सखा-ग्वाल-बाल समवय होते हैं। ग्वाल-बालोंको गायोंकी देख-रेखमें लगाकर त दाऊदयालकी सेवामें सौंपकर किसी बहानेसे निकुं प्रवेश कर राधाके साथ रमण-लीला करते हैं। पुनः कु काल-बाद उनको भी छलकर ग्वालोंके साथ कंदुक क्रीडा करते हैं। इस प्रकार गोचारणके प्रसंगवश भीत बाहरी द्विविध लीलाएँ करनेसे गोपाल-लीला ही लीला प्रमुख केन्द्र है।

वंशीधरकी वंशी प्यारी सखी है जो दूतीका कार्य क है। मुरलीमनोहरकी लीला अति अद्भुत शृंगाररससे परिपू है, जो वर्णनातीत है तथा भगवान् कृष्णके जन्म-कर्म दिव्य हैं—**'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'**—इस भगवद्-वाक स्पष्ट ही है। उनके स्वरूप-गुण-कर्मोंकी स्फूर्ति भगवत्कृ बिना असाध्य ही है, क्योंकि—

जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥

(श्रीमद्भा० १०। १४।

यशोदाजीने ऊखलसे बाँधनेके लिये जब रज्जु-ख उठाया तब कृष्णकी आँखोंसे अश्रुपूरित काजलके क कण गालोंपर छलक रहे थे। मुखको नीचाकर भयभी भावनासे खड़े देखकर मुझे मोहित कर दिया, क्योंकि भी जिससे भयभीत होता है, फिर वही भयभीत कैसे

इस दामोदर-लीला प्रकरणसे भी स्पष्ट होता है

जब माता यशोदा बेंत उठाकर हाथ पकड़कर डराती हुई बोलीं तो कृष्ण कजरारे नैन मीजते हुए रोने लगे। भांड फोड़नेका कारण यह था कि, मैया दूध पिलाते समय उफनते दूधकी कड़ाही उतारनेके लिये अतृप्त कृष्णको गोदीसे उतारकर वेगसे चली गयी थीं। यद्यपि भगवान् कृष्णको भूख-प्यास आदि जैव-धर्म लिप्त नहीं कर सकते, तथापि उनका ऐसा करना यशोदाजीका निरोध करनेके लिये शिशुत्व-नाट्य ही है।

कोटिकाम, लावण्यधाम, घनश्याम, गोपीजनोंके अभिराम श्यामसुन्दरको देखकर खेचरोंकी नारियाँ भी मोहित हो गयी थीं। पुनः भूचरोंकी नारियाँ मोहित हो जायँ तो कहना ही क्या? उनकी मानवीय लीलाके अनुरूप स्वरूप धारण करना योगमायाके बलको दिखानेके लिये ही था, जिसको दर्पणमें देखकर वे स्वयं विस्मित हो गये थे; क्योंकि उनके श्रीअङ्गोंसे भूषणोंकी शोभा होती थी। ऐसा असाधारण स्वरूप धारण कर विश्व-विमोहन, मनमोहन कृष्णने अनुपम लीलाएँ की हैं। सज्जनोंके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही स्वकीय भक्तोंकी भावनाके अनुरूप रूप ग्रहण किया है। उनके रूप-गुण-कर्मादिके श्रवण-कीर्तन-स्मरणादिसे कलियुगीय जीवोंका उद्धार हो—इस प्रयोजनसे ही लीलाएँ की हैं। मुमुक्षु-बुभुक्षु सभीका अभीष्ट कार्य सिद्ध करना ही लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी ईश्वरता है।

वे श्रीकृष्ण अवतारी पूर्ण-पुरुषोत्तम हैं। उन्हींके अंशावतार, कलावतार तथा आवेशावतार आदि होते हैं। कृष्ण किसीके अंश-कला नहीं हैं—'**एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**'—इस प्रथमस्कन्धीय भागवतवचनसे सिद्ध है।

उनका अवतार विश्वविश्रुता मथुरापुरीमें कंसासुरके कारागारमें देवकी-वसुदेवजीके समक्ष हुआ है। देवकी-वसुदेवने तप करके भगवत्प्रसादसे उनके समान ही पुत्रकी इच्छा की थी। अतः चतुर्भुजरूपसे प्रकट हुए तथा द्रोण-वसुन्धराने तपकर पुत्रीभूत हरिका प्रेमसे लाड़-प्यार करनेका वरदान माँगा था। दोनोंको प्रसन्न करनेके लिये '**द्विभुजोऽपि चतुर्भुजः**' योगेश्वर कृष्णने देवकी-वसुदेवकी इच्छानुसार विश्वासके लिये दोनों रूप दिखाये। 'एकान्तमें गर्गाचार्यको भेजकर नामकरण-संस्कार कराना' इसका परिचायक है। ग्यारह वर्षतक अपने प्रकाशको छिपाकर बलदाऊजीके साथ नन्दके घर रहे थे—'**गूढार्चिः सबलोऽवसत्**' (भागवत)।

जब अक्रूरजीको भेजकर कंसने उनको धनुर्याग-दर्शनके व्याजसे बुलाया, तब उन्होंने मथुरामें पदार्पण करते ही चमत्कारिक लीलाएँ दिखाकर सभी मथुरावासियोंको वशीभूत कर लिया। मथुरा जाते समय गोपियोंका विलाप तथा उद्धवजीको नन्दगाँव भेजकर सान्त्वना देना इसका द्योतक है कि कृष्ण एक ही थे। यदि गोकुलनाथ पृथक् कृष्ण होते तो ऐसा रुदन-भ्रमरगीत व्यर्थ ही है।

इस प्रकार व्रजमें माधुर्य-लीला करके व्रजवासियोंका निरोध किया; क्योंकि बिना भगवन्निष्ठाके भगवत्प्राप्ति दुर्लभ ही है। उनकी प्राप्तिमें मद-मान बाधक होते हैं। रसिकशिरोमणि रासविहारी गोपालने गोपियोंके मद एवं प्रियाजीके मानको दूर करनेके लिये ही स्वरूपको तिरोहित किया था। अर्थात् उन्हींके हृदय-कमलमें अन्तर्हित हो गये थे। गोपियोंने उन्हें सम्पूर्ण वनोंमें ढूँढ़ा, गुल्म-लताओंसे पूछा, कहीं उत्तर न मिलनेपर हताश होकर यमुना-पुलिनपर बैठकर श्यामसुन्दरको पुकारती हुई गीत गाने लगीं—

न खलु गोपिकानन्दनो भवा-
नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले॥

(श्रीमद्भा० १०। ३१। ४)

—गोपियोंकी इस उक्तिसे भी प्रमाणित होता है कि कृष्णने यादवकुलमें '**वसुदेवगृहे साक्षादवतीर्णः स्वमायया**' स्वेच्छया या स्वजनेच्छया अवतार लिया है। यशोदाजीको तो पुत्री हुई थी, जिसको लेकर वसुदेवजी मथुरा चले गये। वहाँ कंसके हाथसे उछलकर आकाशमें जाकर कंससे कह दिया—'मुझे मारनेसे क्या? तेरा मारनेवाला कहीं और स्थित है।' केशी दैत्यके वधके पश्चात् नारदजीने भी कंसको सूचित कर दिया था—'**द्वाभ्यां ते पुरुषा हताः**' व्रजमें जहाँ-जहाँ तुमने अपने दैत्य-दानव भेजे थे, वे सभी कृष्ण-कन्हैया और दाऊ भैयाद्वारा लीलामें ही मार डाले गये। यह सुन क्रोधाविष्ट कंसने देवकी-वसुदेवको मारनेके लिये शस्त्र उठाया तो नारदने उसे रोक दिया था, तब उसने वसुदेव-देवकीको कैद कर दिया। इसके बाद कुरुक्षेत्रमें आगन्तुक ऋषि-मुनियोंसे वसुदेवजीने कर्मबन्धनसे छुटकारा पानेका उपाय पूछा तो नारदजीने उनको मायामोहित जानकर कृष्णके सत्य-स्वरूपका परिचय दिया था। उनके उपदेशसे वसुदेव-

देवकीका मोह दूर हुआ। इस प्रकारकी बहुविध कृष्णलीलाएँ निरन्तर चिन्तनीय तो हैं, लेकिन अनुकरणीय नहीं।

धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें अग्र-पूजाके पात्र-चयनके अवसरपर सहदेवने **'एष वै देवताः सर्वाः'** इत्यादि वचनोंसे कृष्णको सर्वोच्च बताया तथा सभी सभासदोंने सहर्ष अनुमोदन किया। इस चरित्रसे भी कृष्णकी महत्ता प्रतीत होती है। असहिष्णु शिशुपालका वध भी वहीं हुआ था। **'मानं विधुन्वन् जगदीशमानिनाम्'**—इस उक्तिसे यह भी स्पष्ट है कि सभी राजाओंका मान-मर्दन करनेके लिये ही उन्होंने रुक्मिणी-हरणादि लीलाएँ की हैं। द्वारकामें ऐश्वर्य-लीलाओंके द्वारा सभीको यह दिखा दिया कि पूर्णपुरुषोत्तम कृष्णके सिवाय कोई परम देवता नहीं है। उनकी लीलाका मुख्य प्रयोजन है—शिष्टोंपर अनुग्रह और दुष्टोंका निग्रहकर आत्मनिष्ठ बनाकर संसारसे मुक्त कर देना।

यद्यपि भगवान् समदर्शी हैं, तथापि निग्रह-अनुग्रहरूप परस्पर विरुद्ध कार्य करनेसे उनमें विषमता-निर्दयता आदि दोष नहीं हैं। दुष्टोंका निग्रह किये बिना वैदिक सद्धर्म-मर्यादाकी तथा देव, द्विज, गौ और साधु-संतोंकी रक्षा असम्भव है। दुष्टोंको दण्ड देना भी अनुग्रह है।

सर्वजनोद्धारक श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म हैं। प्रधानत श्रीभागवतमें महामुनीन्द्र श्रीशुकदेवजीने उनकी लीला वर्णन करते हुए कहा है कि ऐसी रसीली लीलाएँ अन्य उपलब्ध नहीं हैं, तभी तो श्रीधर स्वामीने अपनी अद्विती टीकामें कह दिया कि—**'वर्वर्ति सर्वोपरि।'**

पार्वती-पटलमें श्रीसदाशिवजीने पार्वतीके प्रति दि श्रीकृष्ण-लीलासे परिपूर्ण होनेके कारण ही भागवत माहात्म्यके सम्बन्धमें कहा कि—

> **यदि न स्याद् भागवतं कलौ सर्वमलाकुले।**
> **तदा गतिः कथं नृणां सत्यं सत्यं मयोदितम्॥**

अर्थात् सभी दोषोंसे परिपूर्ण कलिकालमें यदि श्रीमद्भाग न हो तो मानवोंका कल्याण कैसे होगा, मैं सत्य-स कहता हूँ कि भागवतके श्रवण-कीर्तन-मनन करनेसे मनुष्य मोक्ष हो जाता है। इन माहात्म्यपूर्ण वचनोंसे यह सर्वविध सि है कि स्वजनोंके उद्धारार्थ ही लीला है। उनकी महि अपार है। गागरमें सागर नहीं समाता, अतः यहीं उप करते हैं।

◆

भगवान् ब्रह्मा

'मैं कहाँ हूँ?' प्रलयाब्धिके मध्य एक सुमहत् प्रकाशमय अरुण कमल खिला था। उसकी कर्णिकापर एक प ही रंगका बालक बैठा था। बालकने चारों ओर देखनेकी इच्छा की और वह चतुर्मुख हो गया। वहाँ उस कमल अ समुद्रको छोड़कर कुछ नहीं था। तेजःपुञ्ज पद्मके अतिरिक्त दिशाएँ अन्धकारमय थीं। बालकने कमलनालमें प्रवेश कि कमलमूल जाननेकी उत्कण्ठा थी।

सहस्त्रों वर्ष कमलनालमें नीचे जानेपर भी जब उसका अन्त न मिला, तब ब्रह्माजी लौट आये। सहसा अलक्ष्यवाण उन्हें 'तप! तप! तप!'—तपस्याका आदेश दिया। युगोंके तपके पश्चात् हृदयमें ही उन्होंने उस कमलनाभके दर्शन कि जो सहस्त्रफणमौलि हिमश्वेत शेषकी शय्यापर सोये हुए कृपापूर्वक उनकी ओर देख रहे थे।

'सृष्टि तो बढ़ती ही नहीं।' ब्रह्माजीकी स्वाभाविक रुचि सृष्टिकर्ममें थी। वे बराबर अपने मनसे मानसिक सृष्टि रहे थे। मानसिक सृष्टिके प्राणी कल्पान्त अमर तो हो गये, पर उनकी प्रवृत्ति सृष्टिमें तबतक न हुई। अन्तमें स्वयं स्र अपने दाहिने भागसे मनु और वाम भागसे शतरूपाको प्रकट किया। यह जोड़ी सृष्टि बढ़ानेमें प्रवृत्त हुई। मनुकी क देवहूति महर्षि कर्दमको विवाही गयीं। इस प्रकार मानसिक सृष्टिका भी सहयोग क्रमशः मिला।

भगवान् ब्रह्मा असुरोंके उपास्य रहे हैं। सृष्टिकर्ममें लगे रहनेसे वे बहुत कठोर तप करनेपर ही तुष्ट होते हैं। इन्द्र अ विरोचनने उन्हींसे तत्त्वज्ञान प्राप्त किया। सृष्टिमें सामञ्जस्य बनाये रखनेके लिये, असुरोंसे पराजित देवताओंकी रक्षाके लि बार-बार उन्हें क्षीरसागरशायी प्रभुसे प्रार्थना करनी पड़ी है। पृथु या विश्वामित्रकी भाँति कोई समर्थ जब सृष्टिमें व्यति करने लगता है, तब भी उसे समझानेके लिये उन्हें आना पड़ता है। वे हंसवाहन प्रभु नित्य ही जगत्‌के प्रति सचिन्त रहते हैं। उ चरित पुराणोंमें बहुत अधिक हैं। समस्त कार्योत्पादनके वे ही अधिष्ठाता हैं।

◆

भगवल्लीलाका तत्त्व

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

कर्म, क्रिया और लीला—तीनों एक दीखते हुए भी वास्तवमें सर्वथा भिन्न हैं। जो कर्तृत्वाभिमानपूर्वक किया जाय तथा अनुकूल-प्रतिकूल फल देनेवाला हो, वह 'कर्म' होता है। जो कर्तृत्वाभिमानपूर्वक न की जाय तथा जो फल देनेवाली भी न हो, वह 'क्रिया' होती है; जैसे—श्वासोंका चलना, आँखोंका खुलना और बंद होना आदि। जो क्रिया कर्तृत्वाभिमान तथा फलेच्छासे रहित तो होती ही है, साथ-साथ दिव्य तथा दुनियामात्रका हित करनेवाली भी होती है, वह 'लीला' होती है। सांसारिक लोगोंके द्वारा 'कर्म' होता है, मुक्त पुरुषोंके द्वारा 'क्रिया' होती है और भगवान्‌के द्वारा 'लीला' होती है—

'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'

(ब्रह्मसूत्र २। १। ३३)

'ईश्वरका सृष्टिरचना आदि कार्य लोकमें तत्त्वज्ञ महापुरुषोंकी तरह केवल लीलामात्र है।'

भगवान्‌की छोटी-से-छोटी तथा बड़ी-से-बड़ी प्रत्येक क्रिया 'लीला' होती है। लीलामें भगवान् सामान्य मनुष्यों-जैसी क्रिया करते हुए भी निर्लिप्त रहते हैं*। भगवान्‌की लीला दिव्य होती है—**'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'** (गीता ४। ९)। यह दिव्यता देवताओंकी दिव्यतासे भी विलक्षण होती है। देवताओंकी दिव्यता मनुष्योंकी अपेक्षासे होनेके कारण सापेक्ष और सीमित होती है, पर भगवान्‌की दिव्यता निरपेक्ष और असीम होती है। यद्यपि जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञ, भगवत्प्रेमी महापुरुषोंकी क्रियाएँ भी दिव्य होती हैं, तथापि वे भी भगवल्लीलाके समान नहीं होतीं। भगवान्‌की साधारण लौकिक लीला भी अत्यन्त अलौकिक होती है। जैसे, भगवान्‌की रासलीला लौकिक दीखती है, पर उसको पढ़ने-सुननेसे साधककी कामवृत्तिका नाश हो जाता है†!

यह जगत् भगवान्‌का आदि अवतार है—**'आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य'** (श्रीमद्भा० २। ६। ४१)। तात्पर्य है कि भगवान् ही जगत्-रूपसे प्रकट हुए हैं। परंतु जीवने भोगासक्तिके कारण जगत्‌को भगवद्रूपसे स्वीकार न करके नाशवान् जगत्-रूपसे ही धारण कर रखा है—**'जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्'** (गीता ७। ५)। इस धारणाको मिटानेके लिये साधकको दृढ़तासे ऐसा मानना चाहिये कि जो दीख रहा है, वह भगवान्‌का स्वरूप है और जो हो रहा है, वह भगवान्‌की लीला है। ऐसा मानने (स्वीकार करने)-पर जगत् जगत्-रूपसे नहीं रहेगा और 'भगवान्‌के सिवाय कुछ नहीं है'—इसका अनुभव हो जायगा। दूसरे शब्दोंमें, संसार लुप्त हो जायगा और केवल भगवान् रह जायँगे। कारण कि प्रत्येक वस्तु एवं व्यक्तिको भगवान्‌का स्वरूप और प्रत्येक क्रियाको भगवल्लीला माननेसे भोगासक्ति, राग-द्वेष नहीं रहेंगे। भोगासक्तिका नाश होनेपर जो क्रियाएँ पहले लौकिक दीखती थीं, वही क्रियाएँ अलौकिक भगवल्लीला-रूपसे दीखने लगेंगी और जहाँ पहले भोगासक्ति थी, वहाँ भगवत्प्रेम हो जायगा।

साधकको ऐसा मानना चाहिये कि भगवान् जैसा रूप

---

*तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥ (गीता ४। १३)

'उस (सृष्टि-रचना आदि)-का कर्ता होनेपर भी मुझ अव्यय परमेश्वरको तू अकर्ता जान।'

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा। (गीता ४। १४)

'कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मुझे कर्म लिप्त नहीं करते।'

†विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥ (श्रीमद्भा० १०। ३३। ४०)

'परीक्षित्! जो धीर पुरुष व्रजयुवतियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णके इस चिन्मय रास-विलासका श्रद्धाके साथ बार-बार श्रवण और वर्णन करता है, उसे भगवान्‌के चरणोंमें पराभक्तिकी प्राप्ति होती है और वह बहुत ही शीघ्र अपने हृदयके रोग—कामविकारसे छुटकारा पा जाता है। उसका काम-भाव सदाके लिये नष्ट हो जाता है।'

धारण करते हैं, उसीके अनुरूप लीला करते हैं*। जब वे अर्चावतार अर्थात् मूर्तिका रूप धारण करते हैं, तब वे मूर्तिकी तरह ही अचल रहनेकी लीला करते हैं। अगर वे अचल नहीं रहेंगे तो वह अर्चावतार कैसे रहेगा? भगवान्ने राम, कृष्ण आदि रूप भी धारण किये और मत्स्य, कच्छप, वराह आदि रूप भी धारण किये। उन्होंने जैसा रूप धारण किया, वैसी ही लीला की। जैसे, वराहावतारमें भगवान्ने सूअर बनकर लीला की और वामनावतारमें ब्रह्मचारी ब्राह्मण बनकर लीला की।

भगवल्लीलाको पढ़ने-सुननेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, संसारकी आसक्ति मिटती है और भगवान्में प्रेम होता है। ज्ञानस्वरूप भगवान् शंकर, ब्रह्माजी, सनकादिक ऋषि, देवर्षि नारद आदि भी भगवान्की लीलाओंको गाकर और सुनकर प्रेममग्न हो जाते हैं। भगवान् अवतार लेकर जिन स्थानोंमें लीलाएँ करते हैं, वे स्थान भी इतने पवित्र हो जाते हैं कि उनमें श्रद्धा-प्रेमपूर्वक निवास करनेसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है। इसका कारण यह है कि भगवान् मात्र जीवोंका कल्याण करनेके उद्देश्यसे ही अवतार लेकर लीलाएँ करते हैं—'**नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।**' (श्रीमद्भा० १०। २९। १४)

* * *

श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभव

(श्रीगोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)

अलख-निरञ्जन स्वसंवेद्य श्रीनाथ दैवत शिवगोरक्षका लीला-वैभव अनिर्वचनीय और उन्हींकी सिसृक्षा-शक्ति आदिमहामाया-कल्पित किंवा सृजित होकर भी नितान्त अमायिक है—निरञ्जन है। श्रीनाथ एक मात्र सच्चिदानन्दस्वरूप शिवकी तरह स्वसंवेद्य, अखण्ड, नित्यसनातन हैं और इसी प्रकार इनकी स्वरूपाभिव्यक्ति, लीला-स्वरूपता भी नित्य-नवीन स्वसंवेद्य, अखण्ड-निरञ्जन, अञ्जनातीत-मायातीत-निर्मल, शुद्धस्वरूपिणी है। नाथ-सम्प्रदायके ही नहीं समस्त चराचरके परम उपास्य अलख-निरञ्जन आदिनाथ, विश्वातीत सदाशिव हैं। वे उत्पत्ति-स्थिति और संहार-लयके मूल अधिष्ठान हैं। वे जगदानन्द-हेतु परिपूर्ण परब्रह्म परमेश्वर हैं।

'श्रीनाथ दैवत ही स्वसंवेद्य अलख-निरञ्जन शिवगोरक्ष हैं।' ऐसी स्थितिमें श्रीनाथ दैवत शिवगोरक्षकी लीलासम्पत्तिमें तिलमात्र भी भेद नहीं है—सम्पूर्ण सामंजस्य किंवा सच्चिदानन्दायित, मायातीत स्वरूपायित लीला-चैतन्याभिव्यक्ति है।

श्रीनाथ दैवत (शिवगोरक्ष)-का अचिन्त्य लीला-वैभव उनके अनिर्वचनीय तात्त्विक स्वरूप-श्रीनाथस्वरूपके विमर्श-निर्वचनमें ही परिव्याप्त है और उनकी सिसृक्षा-शक्ति—उनके विश्वव्यापक विष्णु-रूपमें ही यह अमायिक निरञ्जन नित्य-निरन्तर लीलातत्त्व अनुस्यूत है। श्रीनाथस्वरूपके निर्वचनमें यही युक्तियुक्त है—

अवाच्यमुच्येत कथं पदं तत्
अचिन्त्यमप्यस्ति कथं विचिन्तयेत्।

---

*भगवान् श्रीकृष्ण उत्तङ्क ऋषिसे कहते हैं—

धर्मसंरक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च॥
तैस्तैर्वेषैश्च रूपैश्च त्रिषु लोकेषु भार्गव। (महाभारत, आश्व० ५४। १३-१४)

'मैं धर्मकी रक्षा और स्थापनाके लिये तीनों लोकोंमें बहुत-सी योनियोंमें अवतार धारण करके उन-उन रूपों और वेषोंद्वारा तदनु बर्ताव करता हूँ।'

यदा त्वहं देवयोनौ वर्तामि भृगुनन्दन। तदाहं देववत् सर्वमाचरामि न संशयः॥
यदा गन्धर्वयोनौ वा वर्तामि भृगुनन्दन। तदा गन्धर्ववत् सर्वमाचरामि न संशयः॥
नागयोनौ यदा चैव तदा वर्तामि नागवत्। यक्षराक्षसयोन्योस्तु यथावद् विचराम्यहम्॥

(महा०, आश्व० ५४। १७—१९)

'भृगुनन्दन! जब मैं देवयोनिमें अवतार लेता हूँ, तब देवताओंकी ही भाँति सारे आचार-विचारका पालन करता हूँ, इसमें संशय नहीं है।'

'जब मैं गन्धर्वयोनिमें प्रकट होता हूँ, तब मेरे सारे आचार-विचार गन्धर्वोंके ही समान होते हैं, इसमें संदेह नहीं है।'

'जब मैं नागयोनिमें जन्म ग्रहण करता हूँ, तब नागोंकी तरह बर्ताव करता हूँ। यक्षों और राक्षसोंकी योनियोंमें प्रकट होनेपर मैं उन आचार-विचारका यथावत् रूपसे पालन करता हूँ।'

अतो यदस्त्येव तदस्ति तस्मै
नमोऽस्तु कस्मै बत नाथतेजसे॥

(गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह)

जो पद अनिर्वचनीय है, उसका वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है, अचिन्त्यका चिन्तन किस तरह किया जाय, इसलिये जो है वह ऐसा ही है, मेरा तो उस नाथतेज (दैवत)-को नमस्कार है।

श्रीनाथस्वरूप परब्रह्मतत्त्व है, यह निर्मल, निश्चल, नित्य, निष्क्रिय, निर्गुण महत्तत्त्व है, यह निर्मल व्योमविज्ञानरूप आनन्दब्रह्म है, इस तरह ब्रह्मज्ञ इसका निर्वचन करते हैं। स्वतः शिवगोरक्षका स्वरूप इसका निर्णय है—

निर्मलं निश्चलं नित्यं निष्क्रियं निर्गुणं महत्।
व्योमविज्ञानमानन्दं ब्रह्म ब्रह्मविदो विदुः॥

(गोरक्षपद्धति २। ९३)

शिव (शक्तिमान्) और शक्तिके लीलायित तत्त्वके साथ त्रिदेवक्रममें लीला-व्याप्ति-हेतु सदाशिवसे ईश्वर, ईश्वरसे रुद्र, रुद्रसे विष्णु, विष्णुसे ब्रह्माका रूप निर्वचित है। इनके द्वारा सृजन, नियमन (रक्षण) और संहरणकी लीला चलती रहती है—**सदाशिवात् ईश्वरः, ईश्वराद् रुद्रः, 'रुद्राद् विष्णुः विष्णोर्ब्रह्मेति।** (सिद्धसिद्धान्तपद्धति १। ३७)

त्रिदेव-शक्तिके लीलानुक्रमका बड़ा ही सूक्ष्म निरूपण गोरक्षसिद्धान्त-संग्रहके प्रारम्भिक दो श्लोकों (मङ्गलाचरण)-में मिलता है, जिनसे नाथ दैवतके लीला-वैभवपर सहज प्रकाश पड़ता है। इसमें श्रीनाथस्वरूपके निर्वचनमें श्रीनाथ दैवत और उनका सम्पूर्ण लीला-वैभव अभिव्यक्त है—

निर्गुणं वामभागे च सव्यभागेऽद्भुता निजा।
मध्यभागे स्वयं पूर्णस्तस्मै नाथाय ते नमः॥
मध्ये नाथः परंज्योतिस्तज्ज्योतिर्मे तमोहरम्।
वामभागे स्थितः शम्भुः सव्ये विष्णुस्तथैव च॥

जिनकी बायीं ओर निर्गुणस्वरूप ब्रह्म और दायीं ओर अद्भुत निजा शक्ति—इच्छा-शक्ति पराम्बा महामाया विद्यमान हैं और बीचमें जो स्वयं पूर्ण अखण्ड (परमशिव) सर्वाधार, अलख-निरञ्जन विद्यमान हैं, उन श्रीनाथ-आदिनाथ परमेश्वरको नमस्कार है। जिनकी बायीं ओर कल्याणस्वरूप शिव और दायीं ओर विश्वरूप-विश्वव्यापक परमेश्वर विष्णु विराजमान हैं और मध्यभागमें परम ज्योतिः-स्वरूप श्रीनाथ ही विद्यमान हैं, यही श्रीनाथ-स्वरूप अखण्ड ज्योति हमारे हृदयस्थित (अज्ञान) अन्धकारका नाश करती है। श्रीनाथस्वरूपलीला-वैभवका कर्तृत्व शक्तिमान् शिव और शिवस्वरूपिणी सिसृक्षा-शक्ति, स्वाश्रित चैतन्य निरञ्जनके निर्गुण-निर्विकार-निराकार परमात्मतत्त्वके लीलाविलासका पर्याय है।

परमात्मा अमायिक निराकार और निष्कल परब्रह्म अलख-निरञ्जन है, वह अञ्जन (माया)-में अथवा दृश्य-प्रपञ्चमें उसी तरह अप्रकट है, जिस तरह तिलमें तेल अप्रकट रहता है। जिस तरह तिल पेरनेसे तेलकी प्राप्ति हो जाती है, उसी तरह अञ्जनमें योग-ज्ञानके प्रकाशमें मैंने निरञ्जन ब्रह्मका साक्षात्कार-लीलादर्शन कर लिया है। मैंने साकारमें निराकारका, मूर्तमें अमूर्त परमात्माका स्पर्श (अनुभव) कर लिया है। यह निगूढ लीला (खेल) सनातन है। सच्चिदानन्द-स्वरूप अलख ब्रह्म ही सर्वत्र अभिव्यक्त है। मेरे द्वारा शून्यमें जो नहीं कहा गया है तथा जिस अखिलब्रह्माण्डनायक परब्रह्म अलख-निरञ्जनका दर्शन किया गया है, वह स्वसंवेद्य तत्त्व है। इसलिये शब्दके माध्यमसे उसके स्वरूप-निरूपणमें तथा अनुभूतिमें किसीको विश्वास नहीं होगा। पर वह सत्य है—निरालम्ब-निराधार निरञ्जन और शून्य है। शून्य-स्वरूप परब्रह्मका साक्षात्कार ही कैवल्य-पदकी प्राप्ति है। उसमें तादात्म्य-लाभ कर मेरा द्वैतभाव मिट गया है।

द्वैताद्वैतविलक्षण अप्रत्यक्ष स्वसंवेद्य निरञ्जनीय लीलाके समान ही प्रत्यक्ष बहिरङ्ग-लीला भी श्रीनाथ दैवतके परिप्रेक्ष्यमें अप्रत्यक्ष स्वसंवेद्य निरञ्जनीय है। **'एकमेवाद्वितीयम्'** उसकी यथार्थता किंवा सार्थकता है।

भक्तानुरक्त होकर श्रीनाथ दैवत लीलावैभव-प्रसृत है। शिवसंहितामें कहा गया है—

भक्तानुरक्तोऽहं वक्ष्ये योगानुशासनम्।

(शिवसंहिता १। २)

भक्त—जीवमात्रके प्रति अनुराग (अनुरक्ति) ही भगवल्लीला-वैभवके प्राकट्यका मुख्य हेतु है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

पोषणं तदनुग्रहः।

(श्रीमद्भा० २। १०। ४)

यह भगवदनुग्रह ही श्रीनाथ दैवत लीला-वैभवमें अप्रत्यक्ष-

प्रत्यक्ष-विलक्षण स्वसंवेद्य मायातीत निरञ्जन-स्वरूप प्रकट-अभिव्यक्त है। नाथ दैवत-लीला-वैभव-कर्तृत्वमें परमेश्वर शिव, उनकी आद्या तत्स्वरूपिणी सिसृक्षाशक्ति महामाया और विश्वव्यापक विष्णुका वृत्तान्त अनुभवगम्य होता है। आदिनाथ शिवने सप्तशृंगपर क्षीरसागरमें जब भगवती महाशक्तिको महायोगज्ञानका उपदेश दिया, तब उस लीलामें मत्स्योदरमें स्थित विष्णुने उसे सुना और शिवने उन्हें अपना सुत 'मत्स्येन्द्रनाथ सिद्धनाथ' स्वीकार किया। श्रीनाथ-तीर्थावलीमें महाराजा जोधपुराधीश्वर मानसिंहने श्रीरुक्मिणीके साथ प्रभास क्षेत्रमें शिवगोरक्षद्वारा रुक्मिणी-कृष्ण-कंकण-बन्धन-सिद्धिकी लीला निरूपित की है और ऐसे ही लीला-परिवेशमें गोरखनाथ शिवावतारने मत्स्येन्द्रनाथकी सद्-गुरुता स्वीकार कर अपने-आपको कृतार्थ किया है।

विश्ववन्द्य शिव ही गोरखनाथ हैं, साक्षात् शिव हैं। वे अगम्य हैं, अगोचर हैं। अनन्तलोकनाथ हैं। इसलिये अनन्त लोक उनकी अप्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष लीलासे समलंकृत है। परब्रह्म (शिव)-के मानसोल्लास-सृष्टिकी इच्छाके उत्साहमात्रसे (शिवमें ही शयन करनेवाली—लयको प्राप्त होनेवाली) पराशक्ति (जगदीश्वरी गौरी पार्वती) जाग्रत् होती है—अभिव्यक्त होती है। आदिनाथ परम शिवमें पराशक्ति अधिष्ठित है। इस पराशक्तिके स्वाभिव्यक्त परमेश्वर शिवके स्पन्दनमात्रसे अपराशक्ति—(क्रिया-प्रधान) लीलाशक्ति जाग जाती है। यह लीलाशक्ति सृष्टिक्रममें परमेश्वरकी सहायता करती है। इस लीला-शक्तिको इसीकी प्रेरणासे तत्त्वोपदेश देने-हेतु क्षीरसागरमें सप्तशृंगपर व्यवस्था की थी। यह व्यवस्था ही श्रीनाथ दैवतके लीला-वैभवका एक महनीय उपक्रम है।

नारदपुराणके उत्तरभाग (६९।१७।२३)-में श्रीनाथ दैवतका लीलाङ्कन इस प्रकार है—उपदेशामृत (अमरकथामृत)-का श्रवण करते-करते जब भगवती महामाया पार्वती निद्राभिभूत हो गयीं, तब मत्स्यके उदरसे निकलकर मत्स्येन्द्र-स्वरूप विष्णुने उसका श्रवण किया। उन्होंने शिव-पार्वतीको नमस्कार कर समस्त लीला-वृत्तान्त—महायोगज्ञान निरूपित कर दिया। शिवने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें अपनी गोदमें बैठाकर उनका मुख चूमा और अपना पुत्र 'सिद्धनाथ मत्स्येन्द्रनाथ' कहा।

इसी निरञ्जनीय श्रीनाथ दैवत-लीलावैभवका महत्त्वाङ्कन हठयोग-प्रदीपिका (१।५)-की ज्योत्स्ना टीकामें ब्रह्मानन्दने इस प्रकार प्रकट किया है—

आदिनाथ शिव ही समस्त नाथोंमें आदिनाथ हैं। नाथसम्प्रदायी कहते हैं कि इन्हीं नाथसे नाथसम्प्रदाय प्रवर्तित है। मत्स्येन्द्र आदिनाथके शिष्य हैं। किंवदन्ती है कि एक बार आदिनाथ किसी द्वीपमें स्थित थे। इस स्थानको निर्जन और एकान्त जानकर उन्होंने भगवती गिरिजाको योगज्ञानका उपदेश दिया। तीरके समीप नीरमें स्थित एक मत्स्यने उस उपदेशका श्रवण किया। जो वहाँ एकाग्रचित्त निश्चलकाय होकर स्थित था। उसको उस हालतमें देखकर कृपालु आदिनाथने सोचा कि इसने योगज्ञानक श्रवण कर लिया है, उन्होंने उसपर जल छिड़का, जल छिड़कने मात्रसे वह दिव्यकाय मत्स्येन्द्र सिद्ध हो गया। उन्हीं मत्स्येन्द्र सिद्धको मत्स्येन्द्रनाथ कहा जाता है।

संत योगी ज्ञानेश्वर अपने ज्ञानेश्वरी गीता (भाष्य)- इसी तथ्यपर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

क्षीरसमुद्रके तटपर श्रीशंकरने न जाने कब एक बा शक्ति पार्वतीके कानमें जो उपदेश दिया था, वह क्षीरसमुद्रक लहरोंमें किसी मत्स्यके पेटमें गुप्त मत्स्येन्द्रनाथके हा लगा। मत्स्येन्द्रनाथ सप्तशृंग-पर्वतपर चौरंगीनाथसे मिले जिनके हाथ-पैर लूले थे। मिलते ही चौरंगीनाथ पूर्णाङ्ग गये। अचल समाधिका उपभोग लेनेकी इच्छासे मत्स्येन्द्रनाथ उपदेश गोरखनाथको दिया। इस तरह उन्होंने योगरू कमलिनीके सरोवर-विषयोंको ध्वंस करनेवाले एक ही शंकरके रूपमें उस पदपर अभिषिक्त किया। शंकरसे यह अद्वैतानन्दवैभव गोरखनाथसे गहिनीनाथने ग्रहण किय वे सब प्राणियोंको कलिकालसे ग्रस्त देखकर दौड़ और श्रीनिवृत्तिनाथको यह आज्ञा दी कि आदिगुरु शंकर शिष्य-परम्परानुसार हमें जो ज्ञाननिधि प्राप्त हुई, उसे कलिके जीवोंकी रक्षा करो। कदरी (कदली) योगेश्वर (मंगलदीप) मंगलोरकी परम्परा भी अनुश्रुत है सह्याद्रिपर्वत-परिसरमें समुद्र-तटपर शंकरने सूक्ष्म धारणकर पार्वतीको योगज्ञानोपदेश दिया। तो माया- रूप धारणकर विष्णुने वह अमरकथा सुनी थी और शिव वत्सलतासे पुत्ररूपमें स्वीकृत हुए।

इन उपर्युक्त समस्त वृत्तान्तोंसे यही प्रकट होता है श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभवके निरूपणमें श्रीनाथस्वरूप उनकी निजा शक्ति पार्वती और विष्णुकीही प्रधानता स्पष्ट है कि योगरहस्य-प्राकट्यमें शिवश्रीनाथ ही अभिनयली

विशिष्ट पात्र हैं। पार्वती अपराशक्तिकी स्वरूप-शक्ति हैं और उपदेश-श्रवण करनेवाले विष्णुने शिव-पार्वतीके पुत्ररूपमें वत्सलता प्राप्त की तथा पुत्ररूप विष्णु शिव-गुरुके रूपमें प्रणम्यतासे विभूषित हो उठे। इस वृत्तान्तका यथार्थ तत्त्व गोरक्ष-शतकके प्रारम्भिक दो श्लोकों—मङ्गलाचरणमें मिलता है। शिवगोरक्षकी गुरुके चरणमें प्रणति है—

श्रीगुरुं परमानन्दं वन्दे स्वानन्दविग्रहम्।
यस्य सांनिध्यमात्रेण चिदानन्दायते तनुः॥

मैं अपने गुरुदेव (मत्स्येन्द्रनाथ)-की वन्दना करता हूँ जो साक्षात् परमानन्द हैं, जो सच्चिदानन्दस्वरूप-आनन्दविग्रह अथवा मूर्तिमान् आनन्द हैं, जिनके सांनिध्यसे ही यह शरीर चिदानन्द, चिन्मय और परमानन्द हो जाता है।

महाराजा जोधपुराधीश्वर मानसिंह-रचित श्रीनाथतीर्थावलीमें श्रीरुक्मिणी-कृष्ण-कंकण-बन्धन सिद्ध होना श्रीनाथ दैवतका विशिष्ट लीला-दर्शन है। इसमें शिवगोरक्षका महत्त्व निरूपित है। श्रीरुक्मिणी और श्रीकृष्णके विवाहके अवसरपर द्वापर युगमें गोरक्षनाथ (शिव)-ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर उनको आशीर्वाद प्रदान किया था। मानसिंह महाराजने प्रभास क्षेत्रका वर्णन करते हुए कहा है—

इतः पश्चात्तत्र देशे प्रभासः क्षेत्रमुत्तमम्।
तत्र गोरक्षमठिका नाम धामास्ति पावनम्॥
रुक्मिणीकृष्णयोस्तत्राभूत् पुरा पाणिपीडनम्।
रुक्मिणीरूपलावण्यान्मोहिताः सकलाः सुराः॥
बभूवुः शक्तिरहितास्तस्याः कंकणबन्धने।
तदा देवाः सऋषयः प्रजग्मुर्मिलिताः परे॥
गोरक्षनाथं राजन्तं गुप्तभावेन तत्र तम्।
स्तुवन्तः प्रार्थयामासुर्दर्शनं तस्य शूलिनः॥
स्तुत्या तुष्टो योगीन्द्रस्तेभ्यः संदर्शनं ददौ।
साधितं पाश्रयं तैस्तेन तस्याः कंकणबन्धनम्॥
ततस्तुष्टुवुर्नाथं रुक्मिणीदेवकी सुतौ।
भक्त्या परमया सा तु प्रसिद्धा जगतीतले॥
ततोऽसि तुष्टो योगीन्द्रो वरदानोन्मुखोऽभवत्।
उवाच स वरं वृत्तं युवां यन्मनसीप्सितम्॥
ततस्तौ ववृतुर्नाथं भवानत्रैव तिष्ठतु।
तथास्त्विति वरं दत्त्वा नाथस्तत्रैव तस्थिवान्॥

(श्रीनाथतीर्थावली ३१। ३८)

(रैवतक पर्वतसे) पश्चिम देशमें क्षेत्रोंमें श्रेष्ठ प्रभास क्षेत्र है। वहाँ गोरखमठिका नामका परम धाम है। वहीं रुक्मिणी और श्रीकृष्णजीका परिणय (विवाह) हुआ था। श्रीरुक्मिणीजीके रूपलावण्यसे देवता मोहित हो गये और उनके कंकण-बन्धनमें असमर्थ हो गये। तब ऋषियों तथा अन्य लोगोंने वहाँ विराजमान गोरक्षनाथकी स्तुति की कि आप दर्शन दीजिये। स्तुतिसे संतुष्ट होकर योगीन्द्र गोरक्षनाथने उन लोगोंको दर्शन दिया। उनकी प्रार्थनासे कंकण-बन्धन सिद्ध हुआ। उसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण और रुक्मिणीजीने परमभक्तिसे उनकी स्तुति की; जो संसारमें प्रसिद्ध है। गोरक्षनाथ योगीन्द्रने स्तुतिसे प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा। दोनोंने निवेदन किया कि हे नाथ! आप यहीं निवास कीजिये। नाथजीने 'तथास्तु' कहा और प्रतिष्ठित हो गये।

इसी लीलानुक्रममें यह भी स्मरणीय है कि श्रीकल्पद्रुम तन्त्र श्रीकृष्ण और महर्षि गर्गके संवादके रूपमें प्रसिद्ध है। गर्गाचार्यने श्रीकृष्णको गोरक्षोपासनाका उपदेश दिया था। इसमें वर्णन आता है—

विना गोरक्षमन्त्रेण योगसिद्धिर्न जायते।

उसमें श्रीनाथ दैवत गोरक्षनाथके ध्यान आदिपर प्रकाश डाला गया है।

समस्त श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभव साक्षात् श्रीनाथस्वरूप आदिनाथ अलख-निरञ्जन शिवका ही स्वसंवेद्य साक्षात्कार है—

देदीप्यमानस्तत्त्वस्य कर्ता साक्षात् स्वयं शिवः।

(सिद्धसिद्धान्तपद्धति)

यह निर्विवाद है—

एकः सत्तापूरितानन्दरूपः
पूर्णो व्यापी वर्तते नास्ति किंचित्।
एतज्ज्ञानं यः करोत्येव नित्यं
मुक्तः स स्यान्मृत्युसंसारदुःखात्॥

(शिवसंहिता १। ९५)

श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभवकी यही सार्थकता है कि एक सत्तासे पूर्ण यह आत्मा ही सर्वत्र आनन्दस्वरूप विद्यमान है, उससे भिन्न कोई नहीं है, जिसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर उसीमें चित्त रमा लिया, वही पुरुष जन्म-मरणरूपी संसार-बन्धनसे मुक्त हो गया। यही श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभवसे श्रीनाथस्वरूपकी प्राप्ति है।

* * *

भगवल्लीला-रहस्य

(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी)

उस अनन्तका अन्त कौन जान सकता है, अवाङ्मनसगोचरका वर्णन कैसे किया जा सकता है और निर्गुण-निराकार, निर्विकार ब्रह्मको सर्वसुलभ सगुण-साकार कैसे बनाया जा सकता है?

यह अद्भुत पहेली अज्ञात-अनबूझी ही बनी रहती, ये सभी प्रश्न अनुत्तरित ही बने रहते, यदि शास्त्रों और आचार्योंके द्वारा भगवल्लीला-रहस्यका विधिवत् समाधान न किया गया होता।

भगवल्लीलाकी गरिमा, महिमा, सत्ता, महत्ता, उपयोगिता और आवश्यकताको उजागर करनेके लिये ही आचार्योंने उस कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं सक्षम, समर्थ, सर्वाधिष्ठान, सर्वशक्तिमान्, स्वयंप्रकाशमान, अखण्ड, अनन्त, सदा एकरस रहनेवाले ब्रह्मको **'अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपंच्यते-'** के सिद्धान्तद्वारा लोक-लीलाओंका स्वाँग करते हुए दिखाकर सबके लिये गति, मति, भक्ति और मुक्तिका मार्ग प्रशस्त कर दिया है। इसीको वेदान्तसूत्रोंमें **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** (वेदान्तदर्शन २। १। ३३) कहकर प्रदर्शित किया गया है।

शास्त्रोंमें भक्ति, मुक्ति, शान्ति, रति और विरति (निर्वेद)—इन सबके स्फुरण और जागरणका मूल कारण भगवल्लीलाओंको ही माना गया है। इसीलिये अद्वैतवादी भगवान् शंकराचार्यने भी भगवल्लीलाओंकी सतत सार्थकताको स्वीकार करते हुए कहा है—

'मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा तं भजन्ते।'

जैसे अपार जलराशिवाला सिंधु बिंदु बन करके ही लोगोंकी पिपासा शान्त करता है, जैसे सर्वव्यापी महाकाश घटाकाश या मठाकाश बन करके ही लोगोंको सुख-सुविधाएँ प्रदान करता है, वैसे ही सर्वव्यापी, सर्वाधार, अनादि, अनन्त, शुद्ध-बुद्ध ब्रह्म अपनी अघटितघटनापटीयसी मायाशक्तिके द्वारा लोकलीलाएँ करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी पुरुषार्थ-चतुष्टयकी उपलब्धि बड़ी ही सरलता, सरसता और सुगमतासे सबको सुलभ करा देता है। यथा—

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥
(रा० च० मा० १। ३१४। १)

अजका जन्म लेना, अव्यक्तका व्यक्तीकरण और निर्गुण-निराकारका सगुण-साकार विग्रह धारण करना—ये ही सब भगवल्लीलाके ऐसे चमत्कार हैं, जिन्हें गीतादि अध्यात्म-ग्रन्थों और पुराणोंमें अनेक प्रकारसे दिखाया गया है। साधारण जनोंकी कौन कहे, बड़े-बड़े विद्वानोंको भी ये भगवल्लीलाएँ चकित, विस्मित कर देती हैं। गीतामें कहा गया है कि—

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥
(२। २

ये भगवल्लीलाएँ नास्तिकको आस्तिक, भोगीको योगी, स्वार्थीको परमार्थी, कृपणको उदार और नीरसको सरस बनाकर मानव-जीवनके चरम लक्ष्यका भी बोध कराती हैं। इसीलिये भगवान्की इन लीलाओंका मुख्य हेतु उनकी कृ ही माना जाता है—**'मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्।'**

भक्तोंको इन भगवल्लीलाओंका रसास्वादन, समास्वाद करानेके उद्देश्यसे लीलाओंमें माधुर्यभावकी प्रधानता रह है। ऐश्वर्यादिभाव गौण होकर समयानुसार यदा-कदा विशे अवसरोंपर ही प्रकट होते हैं।

खेल खेलते समय खेलमें हार जानेपर एक राजकुमार चोर बनकर दण्ड भुगतना पड़ा। वहींपर खड़े किसी भावु महानुभावने दयार्द्र होकर राजकुमारसे अपने राजकी अधिकारोंका प्रयोग करनेके लिये कहा। राजकुमारने ब ही विनम्र स्वरमें उत्तर दिया—'भैया, राजपुत्र होनेके कार यदि मैं इस खेलमें अपने राजकीय अधिकारोंका प्रयोग क तब तो इस क्रीडा—लीलाका माधुर्य ही समाप्त हो जाय मुझे इस चोर-क्रीडा-लीलामें दण्ड मिलनेसे जो आनन्द रहा है, वह राजकुमार और उसके राजकीय अधिकारों गरिमासे कई गुना अधिक है।' किंतु इस लौकिक क्रीड लीलासे भी कई गुना अधिक मीठा और आनन्दप्रद

है वह भगवल्लीला-रहस्यका रसास्वादन।

भगवल्लीलाओंका श्रवण, मनन, निदिध्यासन और दर्शन, इसके साथ ही भगवल्लीलाओंकी साधना, आराधना और उपासना करनेसे लोगोंमें एक नयी शिक्षा, नयी दीक्षा, नया उपदेश, नया संदेश, नयी स्फुरणा, नयी प्रेरणा और नयी चेतनाकी जागृति होती है।

भगवल्लीलाओंका सौन्दर्य-माधुर्य इतना अधिक है कि उस आनन्दका अनुभव बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्र, आप्तकाम, पूर्णकाम, परमनिष्काम सनकादि, शुकादिक एवं नारदादिकोंके लिये भी दुर्लभ बताया गया है। जो सुख-सौभाग्य इन्द्रादिक, ब्रह्मादिक और सर्वप्रकारके अर्थ-अधिकारोंसे समन्वित देवताओंको भी सरलतासे सुलभ नहीं हो पाता, वह सुख, वह आनन्द भगवान्‌की लीलामाधुरीका भक्तिभावसे रसास्वादन, समास्वादन करनेवाले भावुक भक्तोंको अति सुगमतासे अनुभूत होता है। तभी तो रसखान-जैसे भक्त आठों सिद्धियों और नवों निधियोंका परित्याग करके भी भगवल्लीलाएँ देखनेकी प्रबलतम इच्छा प्रकट करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका व्रजाङ्गनाओं, गोपाङ्गनाओंपर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि अब वह अपने कानोंसे कृष्णलीला-चर्चाके अतिरिक्त कुछ सुनना ही नहीं चाहतीं, वे अब अपनी आँखोंसे कृष्णलीलाके अतिरिक्त और कुछ देखना ही नहीं चाहतीं। लोगोंके द्वारा कुलटा, कुलमर्यादा-विघातिका आदि कही जानेपर भी वे कृष्णलीलाओंसे तदाकार होकर निर्भीकतापूर्वक ललकार कर कहती हैं—

कोऊ कहै कुलटा कुलीन-अकुलीन कोऊ,
रीति-नीति जगसे बनाये सब न्यारी हों।
गौर वर्ण अपनो ही तनिको न नीको लगै,
अंग-अंग रोम-रोम श्याम रंग धारी हों॥
नेति-नेति वेद नित जिसका गायन करें,
उसके ही चरणोंमें तन-मन वारी हों।
हौं तो हम निपट लबारी और गँवारी किंतु,
केसवकी लीलाओंपर सर्बस हारी हों॥

वेदकी ऋचाओं, उपनिषदोंके मन्त्रों, वेदान्तके सूत्रों, इतिहास-पुराणोंके आख्यानों तथा काव्यग्रन्थोंके सुमधुर गीतोंद्वारा भगवल्लीलाके गुह्यतम रहस्योंका अनेक प्रकारसे उद्घाटन किया गया है।

तैत्तिरीयोपनिषद्के ब्रह्मानन्दवल्लीके षष्ठ अनुवाकमें भगवल्लीला-रहस्यका स्पष्ट संकेत मिलता है। यथा—**'सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेय'** अर्थात् उस परमेश्वरने विचार किया कि मैं अनेक नाम-रूप धारण करके लोक-लीला करूँ।

इसी प्रकार ऐतरेयोपनिषद्के प्रथम अध्यायके प्रारम्भमें ही भगवल्लीलाका सूत्ररूपमें संकेत उपलब्ध होता है—**'स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति।'**

वेदान्तसूत्रोंमें तो **'जन्माद्यस्य यतः'** (१। १। २)-के सूत्रसे लोकलीला-रहस्यका प्रारम्भ करके आगे अनेक प्रकारकी शंकाएँ उठाकर इस भगवल्लीला-वैचित्र्यका बड़ी ही कुशलतापूर्वक तर्कसंगत ढंगसे समाधान किया गया है। स्थानाभावसे उसका वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है।

भगवल्लीलाओंसे सम्बन्धित ये वैदिक और दार्शनिक सूत्र, पुराणों और काव्यग्रन्थोंमें अतिरोचक एवं बृहदाकार होते चले गये हैं। धीरे-धीरे भगवल्लीलाओंके ये रहस्य जनमानसमें इतने गहरे समा गये कि भगवान् श्रीरामका सम्पूर्ण जीवनचरित्र ही रामलीला कहा जाने लगा और भगवान् श्रीकृष्णका जीवनवृत्त भी कृष्णलीला अथवा रासलीलासे सम्बोधित होने लगा। आगे चलकर इन भगवल्लीलाओंका मञ्चन करके **'मीठा और कठौताभर'**—महामधुर ब्रह्मरस, राम-रस, कृष्ण-रसके रूपमें लोगोंको पिलाया जाने लगा।

इन भगवल्लीलाओंकी महिमाका कहाँतक वर्णन करें? आस्तिक-नास्तिक, ईश्वरवादी-अनीश्वरवादी, मूर्ख-पंडित, धनी-निर्धन, द्वैती-अद्वैती सभी अपने-अपने आख्यानों, व्याख्यानों एवं दैनिक व्यवहारोंमें इनका आश्रय लेने लगे।

जाति-पाँति, बल-पौरुष, आयु-अवस्था आदिका भी कोई विशेष प्रतिबन्ध इन लीलाओंके श्रवण-दर्शनमें नहीं है। भगवल्लीलाओंका यह अनुपम प्रभाव है कि जानसे, अनजानसे, इच्छासे, अनिच्छासे, वैरसे अथवा प्रेमसे, किसी भी प्रकारसे इनमें मन लगनेपर कल्याण ही होता है।

अतः उन अकारणकरुण करुणावरुणालय परात्पर परब्रह्म परमात्माकी पावन लीलाओंके श्रवण, कीर्तन, स्मरण और दर्शनादिसे साधकों, भक्तोंके जीवनमें सद्यः सुख-शान्ति और भगवत्प्राप्तिके साथ कृतकृत्यता तथा पूर्णता भी आ जाती है।

* * *

श्रीकृष्णके लीला-विलासका परिचय—लीलाका अर्थ

(पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

'लीला' शब्दके अर्थका विचार विस्तारसे शब्दकल्पद्रुम (चतुर्थ भाग, पृष्ठ २२४)-में किया गया है। सामान्यतः लीलाका अर्थ है—केलि, विलास तथा शृंगारभाव-चेष्टा। श्रीमद्भागवतपुराणके प्रथम स्कन्ध (१। १८)-में ही इस शब्दका समुचित संनिवेश उपलब्ध होता है—

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः।
लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया॥

लीलाके दो प्रकार होते हैं—प्रकटा और अप्रकटा।

गोकुले मथुरायां च द्वारकायां च शार्ङ्गिणः।
यास्तत्र तथा प्रकटास्तत्र तत्रैव सन्ति ताः॥

(भागवतामृतम्)

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ अनन्त हैं, किंतु प्रमुख रूपसे उनकी तीन लीलाएँ विशेष प्रसिद्ध हैं। इन तीनों लीलाओंमें सर्वथा ऐक्य है। इसका आरम्भ होता है—व्रज-लीलासे, तदनन्तर आती है माथुर-लीला और अन्तिम है द्वारका-लीला।

एक ही व्यक्तिने इन तीन लीलाओंका प्रदर्शन अपने जीवनके विभिन्न भागोंमें किया था। अतः श्रीकृष्णकी एकतामें किसी प्रकारका संदेह नहीं किया जा सकता। जो व्यक्ति श्रीकृष्णके व्यक्तित्वमें भेद मानता है, उसका चिन्तन सर्वथा निराधार है।

श्रीकृष्णका गोपियोंके साथ लीला-विलासका सम्बन्ध जीवनके आरम्भसे लेकर अन्ततक रहता है। माताके उदराश्रित होनेसे लेकर आगे बढ़ता चला गया था। उन्होंने उस समय अपने ज्येष्ठ भ्राताको गोकुलमें नन्दके घरमें रोहिणी माताके गर्भमें योगमायाके आश्रयसे संनिविष्ट करा दिया था, जो 'संकर्षण' नामसे विख्यात हुए। शिशुके प्रभावसे देवकी तथा वसुदेवको कारागारमें रखनेपर भी उनके जीवनमें अद्भुत लीला दृष्टिगोचर हुई थी। रक्षक लोगोंको निद्रा आ गयी थी तथा उनके बन्धन मुक्त हो गये थे। कृष्ण जब अपने जीवनके आरम्भमें गोकुल आये, तब यशोदाको कन्याकी प्राप्ति हुई थी। यह भी कृष्णके जीवनके आरम्भिक कालका लीला-विलास था।

श्रीकृष्णके आरम्भिक जीवनमें गोपियोंके साथ नान प्रकारकी लीलाओंका विन्यास दृष्टिगोचर होता है। कंसद्वार कृष्णको मारनेके अनेक उपायोंमें उनकी लीलाका विला दृष्टिगोचर होता है। कृष्णकी जीवन-लीलाको समाप्त करनेके लिये कंसने विविध चेष्टाएँ की थीं और इनमें कृष्णके जीवनका विलास प्रचुर मात्रामें देखा जा सकता है। उन मारनेके लिये पूतना भेजी गयी थी और बालक कृष्णने उ दूध पीते ही मार डाला। यह भी उनके आरम्भिक जीवनका विलास ही था।

यमुनाजीमें कालियनागकी नाना प्रकारकी चेष्टाएँ दीख हैं, जिनके कारण यमुनाका जल विषमिश्रित हो गया थ कृष्णने कालियनागके सिरपर नृत्यकर उसके दोषको करनेका प्रयास किया था। यह उनकी नृत्य-लीलाका स विलास था।

गोपियोंके चीरहरणके प्रसंगमें लीलाका विलास स स्फुरित होता है। इस लीलाके द्वारा उन्होंने नग्न-स्नान दोषको सदाके लिये व्रजसे दूर कर दिया था, नदीक पवित्रताकी रक्षा की थी और साथ ही उन्होंने यह प्रदर्शि किया था कि भगवान्‌का सांनिध्य प्राप्त करनेके लि मनुष्यको ऊपरी दोषोंको हटाना पड़ेगा, तभी उनके स उसका सर्वथा मिलन सम्भव होगा।

गोवर्धन-धारण-लीलाका महत्त्व सबके सामने कृष्ण दिखाया था। व्रजके लोग इन्द्रकी पूजा करते थे। कृष्ण इसका अनौचित्य सिद्ध किया और इन्द्रके महत्त्वको करनेकी दृष्टिसे यह लीला प्रदर्शित की थी। श्रीकृष्णने ब्रह्मा गर्व चूर्ण करनेके लिये अपने संकल्पसे गोप, ग्वाल-ब तथा अन्य जीवोंको छिपा रखा था तथा एक वर्षके अन उन सबको उसी रूपमें प्रकट किया। किसीको भी अन्तरंग लीलाकी गम्भीरताका—रहस्यका पता नहीं चला ब्रह्माके गर्वको भी कृष्णने चूर्ण-विचूर्ण कर दिया।

श्रीकृष्णकी लीलाका अनुकरण उनके जीवनकालमें

होने लगा था। यह विशेष रूप है लीलाका। रासके समय गोपियोंके गर्वको दूर करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अन्तर्हित हो गये, तब गोपियोंने उनके जीवनकी समस्त घटनाओंका स्वयं अनुकरण किया था। कृष्णकी जितनी लीलाएँ पहले हो चुकी थीं, उन सबका अनुकरणकर गोपियोंने उन्हें पुनर्जीवित कर दिया था। कोई पूतना बनी थी, तो कोई यमलार्जुन। इसी प्रकार कृष्णद्वारा सम्पादित लीलाओंको गोपियोंने पूर्णतया अनुकरणके द्वारा दिखलाया था। यह विचित्र घटना है।

इसी प्रसंगमें सुदामाजीकी छोटी कुटिया हटाकर भगवान्ने वहाँ महल खड़ा कर दिया था। गुरुके यहाँ पढ़ने गये तो उन्होंने सान्दीपनि गुरुके मृत पुत्रको पुनः जीवित करके गुरुदक्षिणाके रूपमें उन्हें समर्पित कर दिया था। श्रीकृष्णके जीवनकी ये लीलाएँ सर्वदा स्मरणीय रहेंगी। इनका विस्मरण कोई नहीं कर सकता।

भगवान् श्रीकृष्ण राधिकाके विषयमें स्वयं कहते हैं—

कृष्णं वदन्ति मां लोकास्त्वयैव रहितं यदा।
श्रीकृष्णं च तथा तेऽपि त्वयैव सहितं परम्॥

(ब्रह्मवैवर्त ६। ६३)

श्रीकृष्णका जीवन वृन्दावनमें आनेपर वहाँ रहनेवाली गोपियोंके साथ इतना हिल-मिल गया कि उसका पार्थक्य करना नितान्त असम्भव है। गोपियोंके साथ होनेवाली प्रेमलीलाका वर्णन यथार्थतः कठिन होता है। राधाके साथ की गयी उनकी प्रेमलीला इतनी मधुरिमामयी है कि उसका यथार्थ वर्णन करना कठिन ही नहीं, असम्भव-सा है। दोनों आपसमें मिलकर प्रेमके उत्कर्षको स्वयं चखते हैं तथा दूसरोंको भी चखाते हैं। कृष्णका राधाके लिये जिस लीला-विलासका उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है, वह रागानुगा-भक्तिका चरम उत्कर्ष है। भक्त कवियोंने इस आनन्दमयी दशाकी अभिव्यञ्जना अपने काव्योंमें बड़ी सरसताके साथ किया है। इस प्रेमदशाका सुन्दर चित्रण निम्न पंक्तियोंमें देखिये—

घर तजों वन तजों नागर-नगर तजों।
बंसीवट-तट तजों काहू पै न लगिहौं

× × ×

बावरो भयो है लोक, बावरी कहत मोंको
बावरी कहैते मैं काहू ना बरजिहौं॥
कहै या सुनै या तजों, बाप और मैया तजों
दैया तजों मैया पै कन्हैया नाहिं तजिहौं।

माधुर्य-रसोपासनाकी कैसी दिव्य भावविभूति है यह!

प्रेम तथा कामका तारतम्य

प्रेम तथा काममें अन्तर होता है—

प्रेममें त्यागकी भावना प्रबल होती है और काममें स्वार्थकी भावना निहित होती है। नारदजीकी दृष्टिमें प्रेमकी प्रधान पहचान है—**'तत्सुखसुखित्वम्'**—प्रियतमके सुखमें अपनेको सुखी मानना। राधाका जीवन ही कृष्णमय था। काम दूसरेके द्वारा अपनी तृप्ति चाहता है, परंतु प्रेम अपने द्वारा प्रेमपात्रकी तृप्ति चाहता है। दोनोंका तारतम्य चैतन्य-चरितामृतमें बड़े सुन्दर शब्दोंमें अभिव्यक्त किया गया है—

आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तार नाम काम
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा तार नाम प्रेम।
काम अन्धतम प्रेम निर्मल भास्कर
अतएव गोपी गणे नाहि काम गन्ध
कृष्ण सुख हेतु मात्र कृष्णेर सम्बन्ध॥

श्रीकृष्णका राधाके साथ जो लीला-विलास है, प्रेम-प्राचुर्य है, उसकी गम्भीरताका वर्णन कथमपि सम्भव नहीं। दक्षिण भारतके आलवारोंकी भक्तिभावनामें राधा-कृष्णके गम्भीर प्रेमभावनाकी जो स्थिति है, उसे यथार्थतः समझनेमें भक्त लोग सर्वथा असमर्थ रहते हैं। आलवारोंके जीवनका आदर्श इस पद्यमें बड़ी सुन्दरताके साथ अंकित किया गया है—

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
ज्ञातिर्वा विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्।
कुब्जायाः किमु वामरूपमधिकं किं तत् सुदाम्नो धनं
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः॥

तात्पर्य यह कि भक्तोंमें दोषोंकी सत्ता होनेपर भी माधव उनसे केवल गुणोंके कारण ही प्रसन्न नहीं होते, प्रत्युत भक्तिके द्वारा प्रसन्न होते हैं।

* * *

श्रीमुरलीमनोहर

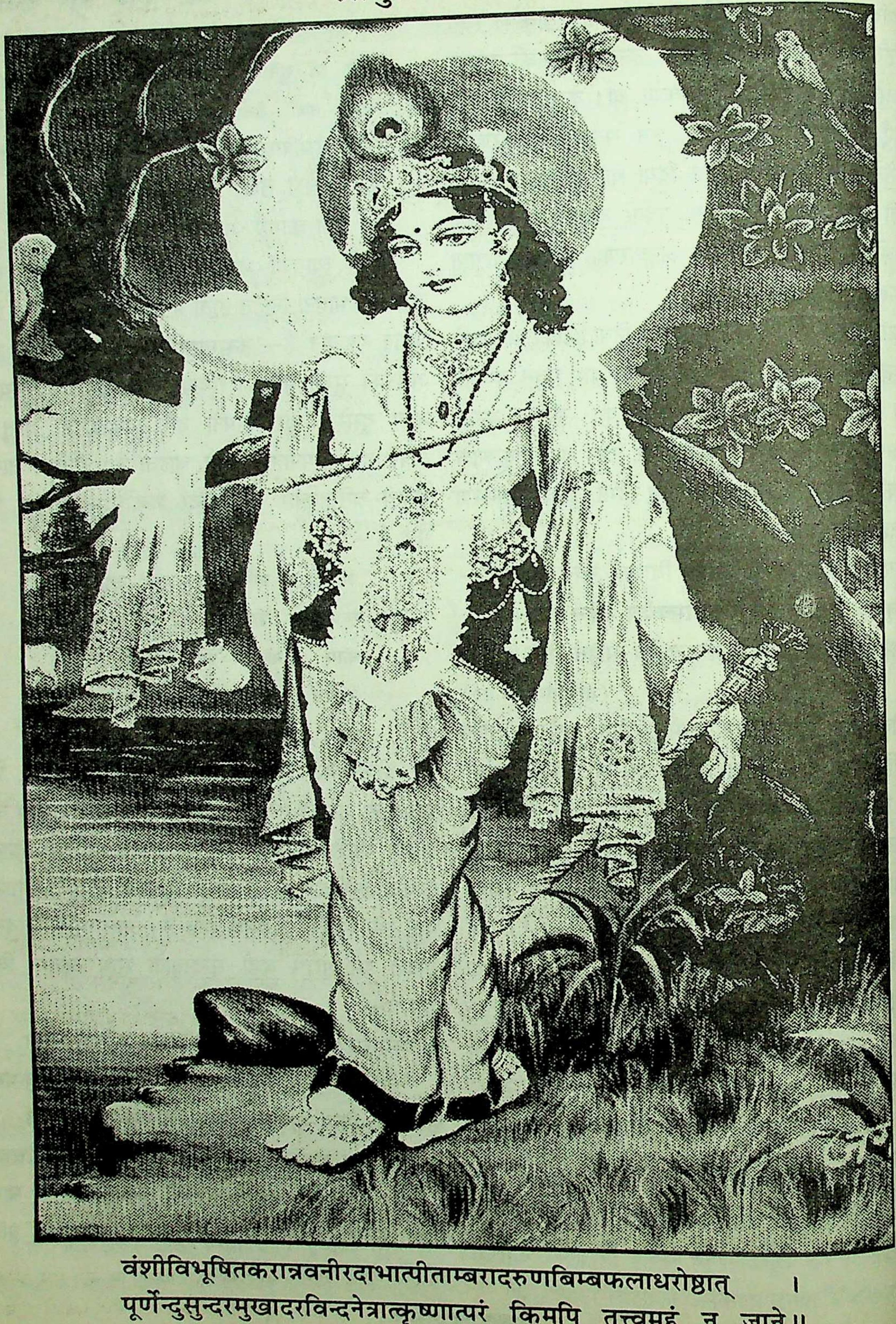

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥

लीला-चिन्तन

[प्रभुके भजनमें मन लग जाय, इसके लिये भौतिकरूपसे भगवान्‌की लीलाओंका दर्शन करना अपेक्षाकृत सरल है, परंतु प्रभु लीलाका चिन्तन-मनन सर्व-साधारणके वशकी बात नहीं है। सगुण-साकार सच्चिदानन्दप्रभुकी लीलाओंके चिन्तन-मननसे साधकको एक प्रकारकी समाधि-जैसी अवस्था प्राप्त होती है। उतने क्षणोंके लिये बाह्य चेतना सुषुप्त-सी हो जानेके कारण साधकको एक विशेष प्रकारके आनन्दकी अनुभूति प्राप्त होती है, जो सांसारिक अनुभूतियोंसे विलक्षण है। भगवल्लीला-चिन्तन करते-करते वह साधक स्वयं भी भावविभोर हो जाता है, भगवन्मय बन जाता है एवं लीला-चिन्तनके साथ-ही-साथ अपनी जीवन-लीलाको भी भगवल्लीला-चिन्तनमें समाहित कर देता है।

विशिष्ट संतोंद्वारा अनुभूत लीलाओंको चिन्तन-मननकी दृष्टिसे यहाँ प्रस्तुत करनेका प्रयास किया जा रहा है, जिससे 'कल्याण' के पाठक-साधकोंको भी यह सौभाग्य प्राप्त हो सके।

सर्वप्रथम यहाँ प्रस्तुत है पूज्य भाईजीके एक निकटस्थ साधुद्वारा पूर्वकालमें लिखित आनन्दकन्द व्रजेन्द्रनन्दन मदनमोहन श्यामसुन्दरकी मधुर-मनोहर बाल-लीलाका चिन्तन।—सम्पादक]

श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन

जन्म-महोत्सव

व्रजेन्द्रगेहिनी यशोदा नेत्र निमीलित किये मणिमय दीवालके सहारे चुपचाप निस्पन्द बैठी हैं। श्रीरोहिणीजीकी आँखें भी बंद हैं। अन्य समस्त परिचारिकाएँ भी निद्राभिभूत होकर बाह्यज्ञानशून्य हो रही हैं। इसलिये दिव्य नराकृति परब्रह्मको सूतिकागारमें पदार्पण करते तो किसीने नहीं देखा, परंतु उनके आते ही समस्त सूतिकागार एक अभिनव चिन्मय रससे प्लावित हो गया, वहाँका अणु-अणु उस रसमें निमग्न हो गया। व्रजमहिषीकी लीलाप्रेरित प्रसव-वेदनाजन्य मूर्च्छा, रोहिणी तथा परिचारिकाओंकी योगमायाप्रेरित तन्द्रा एवं निद्रा भी उस रसके स्पर्शसे चिन्मय भावसमाधि बन गयी।

यशोदाके क्रोडसे संलग्न सच्चिदानन्दकन्द श्रीहरि शिशुरूपमें अवस्थित हैं। कदाचित् अनन्त सौभाग्यवश कोई कवि दिव्यातिदिव्य नेत्र पाकर उस क्षणकी शोभाका अनुभव करता, अनुभवको वाणीसे व्यक्त करनेकी शक्ति पाता, तो वह इतना ही कह सकता—'मानो चिदानन्द-सुधा-रस-सरोवरमें अभी-अभी एक अद्भुत अपूर्व नवीनतम नीलपद्म प्रस्फुटित हुआ हो—वह अभूतपूर्व अरविन्द, जिसका आघ्राण मधुगन्धलुब्ध भ्रमरोंने आजतक नहीं पाया था, जिसके सौरभका अपहरण करके कृतार्थ होनेका अवसर अनिलको आजतक नहीं प्राप्त हुआ था, जल जिस अरविन्दको उत्पन्न ही न कर सका था, जलके वक्षःस्थलपर खेलनेवाली चञ्चल तरङ्गें जिस पद्मको प्रकम्पित करनेका गर्व न कर सकी थीं, जिस कमलको आजतक कहीं किसीने भी नहीं देखा था!'

अनाघ्रातं भृङ्गैरनपहृतसौगन्ध्यमनिलै-
रनुत्पन्नं नीरेष्वनुपहतमूर्मीकणभरैः।
अदृष्टं केनापि क्वचन च चिदानन्दसरसो
यशोदायाः क्रोडे कुवलयमिवौजस्तदभवत्॥*

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः २। ११)

अचिन्त्यलीलामहाशक्तिकी प्रेरणासे सर्वप्रथम रोहिणी माताकी आँखें खुलती हैं। वे जान पाती हैं—'यशोदाने पुत्र प्रसव किया है।' परिचारिकाएँ भी जाग उठती हैं; पर उस इन्द्रनीलद्युति शिशुका सौन्दर्य कुछ इतना निराला है कि

---

* भाव यह है—अप्रतिम अनिन्द्यसुन्दर श्रीकृष्णरूपका जो माधुर्य है, वैसा इससे पूर्वके अवतारोंमें भक्तों (भृङ्गैः)-ने भी अनुभव नहीं किया। कवीश्वरों (अनिलैः)-ने भी भगवल्लीलाका वर्णन करते हुए ऐसी अतुलनीय रूपमाधुरीका विस्तार आजतक नहीं किया; भगवान् ऐसे अतुलनीय सुन्दर मधुर मनोहररूपसे प्रापञ्चिक जगत् (नीरेषु)-में कभी प्रकट ही नहीं हुए। यह रूप त्रिगुणों (ऊर्मीकणभरैः)-से सर्वथा परेका है।

सभी निर्निमेष नयनोंसे देखती ही रह जाती हैं, किसीको भी समयोचित कर्तव्यका ज्ञान नहीं होता। वे सद्योजात शिशुका मधुर अस्फुट क्रन्दन सुन पा रही हैं; लेकिन काष्ठपुत्तलिकाकी भाँति सभी ज्यों-की-त्यों, जहाँ-की-तहाँ खड़ी हैं—आनन्दातिरेकसे सबके शरीर सर्वथा अवश हो गये हैं। अवश्य ही सर्वान्तर्यामी विभु अवश शरीरमें भी सजग हैं। अतः वे ही मानो विलम्ब होते देखकर श्रीरोहिणीजीके मुखसे बोल पड़े—'अरी! तुम सब क्या देखती ही रहोगी? कोई दौड़कर व्रजेश्वरको सूचना तो दे दो।' सचमुच अन्तर्यामी यदि न बोलते तो पता नहीं, शिशुरूप श्रीहरिको वात्सल्य-रस-पानके लिये कितनी देर और रोना पड़ता; क्योंकि रोहिणीजी तो आनन्दमें बेसुध हैं, उनमें समयोचित आदेश देनेकी शक्ति सर्वथा लुप्त हो चुकी है! अस्तु।

इस आदेशने परिचारिकाओंके अन्तर्हृदयमें बहते हुए आनन्दस्रोतको तरङ्गित कर दिया। फिर क्या था, दूसरे ही क्षण सूतिकागार आनन्द-कोलाहलसे मुखरित हो उठा। साथ ही जो करना था, उसमें सभी जुट पड़ीं। एक व्रजेश्वरको सूचना देने गोष्ठकी ओर दौड़ी, एक दाईको बुलाने गयी, एक उपनन्द-पत्नीको परम शुभ समाचार देकर क्षणोंमें ही लौट आयी, एक सहनाईवालेके घर जा पहुँची और एक बावली-सी विविध अनर्गल आनन्दध्वनि करती हुई समस्त व्रजपुरमें सूचना देती हुई दौड़ने लगी। यह सब हो रहा है, परंतु सूतिकागारमें व्रजेश्वरी तो अभी भी किसी अनिर्वचनीय भावसमाधिमें निमग्न हैं।

उपनन्द-पत्नी आयीं, पश्चात् निकटवर्ती पुर-महिलाओंका दल नन्द-प्राङ्गणमें एकत्र होने लगा। तुमुल आनन्दध्वनिसे प्रसूतिगृह ही नहीं; समस्त प्रासाद निनादित हो उठा। व्रजरानीकी भावसमाधि शिथिल हुई, धीरे-धीरे आँखें खोलकर वे देखने लगीं। कुछ क्षण निहारते रहकर समझ पायीं—गर्भस्थ शिशु भूमिष्ठ हो गया है, पर यह क्या? जननीके मुखमण्डलपर आश्चर्य एवं भय छा जाता है। वे देखती हैं 'शिशुके श्याम अङ्गोंमें मेरा मुख प्रतिबिम्बित हो रहा है—यह भी भला सम्भव है?' वात्सल्य-प्रेमवती माताका हृदय अनिष्ट-आशङ्कासे काँप उठता है। वे सोचने लगती हैं—'निश्चय ही, मैं जब मूर्च्छित थी, तब कोई बालापहारिणी योगिनी मायासे मेरा वेष धारणकर यहाँ गयी है और वह अन्तरिक्षमें अवस्थित है; यह उसीक प्रतिच्छाया है। हाय! हाय! नृसिंह! जय नृसिंह! रक्षा करो भयहारी नृसिंह-नामके प्रभावसे योगिनी नष्ट हो जाय नृसिंह! नृसिंह! डाकिनी, चली जा। अन्यथा तू नष्ट हो जायगी।' व्रजमहिषी एक साथ ही आकुल कण्ठसे बहुत कुछ बोल गयीं। इस व्याकुलताने दृष्टिकी एकाग्रता नष्ट क दी। बस, प्रतिबिम्ब तिरोहित हो गया। उसी वात्सल्यरसघनविग्रह यशोदाका हृदय-संचित स्नेह-रस उमड़ आँखोंमें आया तथा सामने कोई भी व्यवधान न पा अश्रुबिन्दुओंके रूपमें झरने लगा। भावाभिभूत नन्दरा कभी अपने सिरको अत्यन्त नीचे झुकाकर, कभी बायीं टेढ़ा करके, कभी दाहिनी ओर घुमाकर और कभी उठाकर पुत्रके सौन्दर्यका सुख ले रही हैं। इससे अश्रुबि भी ढलककर मालाकर बन गये। मानो माताने एक नि मुक्ताहारकी प्रथम भेंट दी हो। यह भेंट सर्वथा उपयुक्त है; क्योंकि देवाराधनका नियम ही है—पहले माला सम होती है, तब नैवेद्य-अर्पण होता है। यहाँ भी तो प्रेमदेव आराधना ही हो रही है। सर्वोत्कृष्ट रागमयी आराधन उपकरण कुछ भी हों, पर नियमका व्यतिक्रम क्यों इसीलिये मानो जननी यशोदा भी वात्सल्य-रस-सार स्तनदुग्ध नैवेद्य चढ़ानेके पूर्व अश्रुबिन्दुओंकी मनोहर माला कर रही हैं—

ज्ञात्वा जातमपत्यमीक्षितुमथ न्यञ्चत्तनुस्तत्तना-
वालोक्य प्रतिबिम्बितां निजतनूमन्येति शङ्काकुला।
गच्छारादिति तन्निरासनपरा पश्यन्त्यमुष्याननं
मुक्ताहारमिवोपढौकितवती स्नेहाश्रुणो बिन्दुभिः।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः २।

इधर गोदोहनमें संलग्न व्रजराज नन्दजीके पास सूचना परिचारिका आयी। प्रतिदिनका नियम है—व्रजेन्द्र रात ढलते ही स्वयं गोष्ठमें चले आते हैं, गायोंकी करते हैं। आज भी आये थे। अपने इष्टदेव नाराय स्मरण करते हुए एक गायके समीप खड़े थे। परिचारि कहा—'महाभाग! आपको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है।' व्रज प्रतीत हुआ मानो हठात् किसीने कानोंमें अमृत

दिया—नहीं, नहीं, उनके चारों ओर अमृतका महासागर लहराने लगा। वे उसमें निमग्न हो गये; इतना ही नहीं, आनन्दमन्दाकिनीकी प्रबल धारासे उस महासागरमें एक आवर्त (भँवर) बन गया है। व्रजराज उस आवर्तमें फँसकर चक्कर लगा रहे हैं। आनन्दमन्दाकिनी व्रजराजको अपने भुजपाशमें लपेटकर घुमा रही है—

प्रविष्ट इवामृतमहार्णवेषु, आलिङ्गित इवानन्दमन्दाकिन्या।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः २। १८)

व्रजेन्द्र नन्दबाबा बाह्यज्ञान खोकर अन्तश्चेतनाके जगत्में जा पहुँचे। एक अतीत दृश्य सामने आ गया—व्रजराज व्रजरानीसे कह रहे हैं—'प्रिये! स्पष्ट जानता हूँ, मेरे द्वारा सम्पादित इन पुत्रेष्टि आदि अनेक यज्ञानुष्ठानोंकी सफलता असम्भव-सी है; फिर भी परिजनों, गोपबन्धुजनोंका आग्रह देखकर आयोजन स्वीकार कर लेता हूँ। संकल्पके अनुरूप ही तो परिणाम होगा। असम्भव वस्तुके लिये किये गये संकल्पकी सफलता कैसे सम्भव है? अनुष्ठान आरम्भ करते हुए जब मैं संकल्प करने बैठता हूँ तो चित्त एक अनोखी पुत्रकी कल्पना कर बैठता है। तू ही बता, भला, मेरे इष्टदेव नारायणसे अधिक सुन्दर त्रिलोकमें, त्रिकालमें भी कोई सम्भव है क्या? असम्भव! सर्वथा असम्भव! पर चित्तभूमिकामें ठीक संकल्पके क्षण ऐसे ही एक, इष्टदेव नारायणकी अपेक्षा भी अधिक अनिर्वचनीय अनन्त असीम सुन्दर बालककी मूर्ति अङ्कित हो जाती है। ओह! उस क्षण मैं स्पष्ट देखता हूँ—यह बालक तुम्हारी गोदमें तुम्हारे दुग्धस्त्रावी स्तनोंपर बैठकर खेल रहा है। उसके श्याम अङ्गोंको, चञ्चल सुन्दर दीर्घ नेत्रोंको देखकर मैं सर्वथा मुग्ध हो जाता हूँ। मुझे भ्रम हो जाता है कि यह स्वप्न है या जाग्रत्। यह सचमुच क्या है, मैं निर्णय ही नहीं कर पाया। मनमें आया, एक बार तुमसे पूछूँ कि तुम्हारे हृदयमें भी ऐसी ही अनुभूति उस समय होती है क्या'—

श्यामश्चञ्चलचारुदीर्घनयनो वालस्तवाङ्कस्थले
दुग्धोगारिपयोधरे स्फुटमसौ क्रीडन्मयाऽऽलोक्यते।
स्वप्नस्तत्? किमु जागरः? किमथवेत्येतन्न निश्चीयते
सत्यं ब्रूहि सधर्मिणि! स्फुरति किं सोऽयं तवाप्यन्तरे?

(श्रीगोपालचम्पूः)

व्रजरानी बोलीं—'स्वामिन्! ठीक ऐसी ही कल्पना मुझे भी उस समय होती है। लज्जावश अबतक आपसे न कह सकी।'

बाह्यज्ञानशून्य व्रजराज एक ही क्षणमें इस दृश्यको देख गये। परिचारिका खड़ी रहकर इनकी दशा देख रही थी। उसे क्या पता, व्रजराज क्या देख रहे हैं। वह अन्य गोपोंको लक्ष्यकर बोली—'तुम लोग सभी चलो, गोवत्सोंको छोड़ दो, दूध पी लेने दो, एक बार चलकर उस अद्भुत बालकको तो देखो। नेत्र शीतल हो जायँगे। आजतक…………' कहते-कहते परिचारिका वहीं बैठ गयी। नन्दरायको बुलाने आयी है, यह बात वह भूल-सी गयी। उसकी आँखोंके सामने प्रसूतिगृह आ गया, वहीं बैठी-बैठी वह सौन्दर्यनिधि शिशुको देखने लग गयी।

व्रजराजका मन अभीतक उसी भावस्रोतका रस ले रहा है। वे देख रहे हैं—हम लोगोंने एक वर्षतक श्रीनारायणकी उपासना की है। श्रीनारायण स्वप्नमें दर्शन देकर कह रहे हैं—'गोपवर! वह सचमुच तुम्हारा अनादिसिद्ध पुत्र है, तुम्हारा संकल्प शीघ्र ही सत्य होगा।' इस घटनाके बाद कुछ दिन बीत गये हैं। आज माघकृष्णा प्रतिपदा है, आजकी रजनी एक विचित्र शोभासे सम्पन्न-सी प्रतीत हो रही है। हठात् व्रजरानी तन्द्रासे जागकर कहती है—'नाथ! अभी-अभी मैंने स्पष्ट देखा है—ठीक वही बालक तुम्हारे हृदयसे निकलकर मेरे हृदयमें आ बैठा है। एक आश्चर्यकी बात और है। उसके सुन्दर श्याम शरीरके ऊपर एक ज्योतिर्मयी दिव्यकुमारीका मानो आवरण पड़ा हुआ है। पहली दृष्टिमें वह ज्योतिमयी बालिका-सा दीखता है, पर किंचित् गम्भीरतासे देखनेपर उसका अप्रतिम सुन्दर श्याम कलेवर स्पष्ट दीखने लग जाता है।' सुनकर व्रजराज आनन्दमुग्ध हो गये हैं। वे स्वयं भी ऐसी अनुभूति कर चुके हैं।

उपर्युक्त घटनावलीका दृश्य व्रजराजके मनोराज्यकी कल्पना नहीं है। वह सर्वथा इसी रूपमें घटित हो चुकी है।

परिचारिकाके शब्दोंने तो अतीतकी स्मृतिको उद्‌बुद्धमात्र कर दिया, जिससे वह घटना मानो वर्तमानमें अभी-अभी हो रही है, इस रूपमें व्रजराजको वह दीखने लगी। जो हो, किसी अज्ञात प्रेरणासे नन्दरायके कानोंमें अब वह शब्दावली पुनः गूँज उठी—'महाभाग! आपको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है।' नन्दरायने आँखें खोल दीं तथा वे अविलम्ब प्रासादकी ओर दौड़ पड़े। पीछे-पीछे परिचारिका भी दौड़ी। पथमें जाते हुए नन्दराय सोचते जा रहे हैं—क्या सचमुच वही, वही श्याम बालक उत्पन्न हुआ है? पर हृदयके उमड़ते हुए आनन्द-प्रवाहमें विवेक लुप्त हो गया है; विचारशक्ति आनन्द-तरङ्गोंसे तरङ्गित हो रही है—चञ्चल बन गयी है। फिर निर्णय कौन करे? व्रजेन्द्र निर्णय नहीं कर सके—

आह्लादेन समं जज्ञे बालः किं किं स एव सः।
एवं विवेक्तुं नन्दस्य नासीन्मतिमती मतिः॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

व्रजराज आकर प्रसूतिगृहके सामने आँगनमें खड़े हो जाते हैं। प्राणोंकी उत्कण्ठा लेकर आये हैं कि पुत्रका मुख देखूँगा, पर देख नहीं पाते। प्रसूतिगृहके कपाट खुले हैं; पर उपनन्द-सनन्दका परिवार, पड़ोसकी गोपियोंकी भीड़ कपाटकी अपेक्षा अधिक सुदृढ़ व्यवधान बन गये हैं। इससे पूर्व व्रजेन्द्र जब कभी अन्तःपुरमें आते तो गोपियाँ घूँघटकी ओट कर लेतीं, किनारे हो जातीं; परंतु आज तो आह्लादवश वे जानतक नहीं पायीं कि व्रजेश्वर खड़े हैं, पथ पानेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। नन्दरायके प्राण व्याकुल हो उठे। तत्क्षण ही उन दर्शक गोपियोंके अन्तरालसे कुछ क्षणके लिये एक क्षुद्र छिद्र बन गया, व्रजेशको अपने पुत्रकी एक स्पष्ट झाँकी प्राप्त हो गयी। अहा! वही है, वही है! सचमुच वही शिशु आया है! इतनेमें छिद्रके सामने एक गोपी आ गयी, छिद्र बंद हो गया, व्रजराजकी आँखें भी बंद हो गयीं। पर आश्चर्य है, अब मानो कोई व्यवधान नहीं। गोपेश स्पष्ट देख पा रहे हैं, प्रसूति-पर्यङ्कपर उत्तानशायी होकर शिशु अवस्थित है। शिशु क्या है, मानो अनन्तजन्मार्जित पुण्यराशिरूप कल्पतरु-उद्यानका प्रफुल्ल कुसुम हो, नहीं, नहीं, समस्त उपनिषद्‌रूप कल्पलता-श्रेणीका मधुर फल हो—

कुसुममिव चिरतरसमयसमुत्पन्नसुकृतकल्पमहीरुहारामस्
फलमिव सकलोपनिषत्कल्पलतावितते:।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः २। १८

उपनन्दजी नन्दके आनेसे पूर्व ही आ गये थे। समयोचित व्यवस्थामें लगे हैं। ब्राह्मणोंको बुलानेके लि दूत भेज चुके हैं। अब तोरणद्वारके पास नगारेवालों समस्त व्रजमें घोषणा करनेकी बात समझा रहे हैं। गद् कण्ठसे कह रहे हैं—

नैन भरि देखौ नंदकुमार।
जसुमति-कूख चंद्रमा प्रगट्यौ या ब्रज कौ उजियार॥
वन जिन जाउ आजु कोऊ गोसुत अरु गाय गुवार।
अपनें अपनें भेष सबै मिलि लावौ बिबिध सिंगार॥
हरद-दूब-अच्छत-दधि-कुंकुम मंडित करौ दुवार।
पूरौ चौक बिबिध मुक्ताफल, गावौ मंगलचार॥

सहनाईवाले सदल-बल आ पहुँचे हैं। नगारेवाल पहला डंका लगाया। दूसरे ही क्षण सहनाईवालोंने मधुरातिमधुर रागिनीकी तान छेड़ दी। नन्दप्रासादकी मणि भित्ति, आच्छादन (छत) और स्तम्भोंको निनादित क हुई वह सुरीली ध्वनि समस्त व्रजपुरमें फैलने लगी। यद्य इससे पहले भी व्रजमें अनेक बार सहनाई बजी थी, तथ आजकी तान तो आज ही बजी है।

अब ब्राह्मण आ गये हैं। व्रजेश स्नान करके, अलं होकर ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हैं। मातृकापूजन, नान्दीमु श्राद्ध सम्पन्न करके ब्राह्मणोंको साथ लिये हुए वे सूतिका आते हैं। विधिवत् जातकर्म-संस्कार आरम्भ होता है। नित्य अजन्माका जातकर्म है। जिनके एक-एक रोम अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड अवस्थित हैं, प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक ब्रह्मा जिनके नियन्त्रणमें सृजनका कार्य वहन कर आज उन्हींका ब्रह्ममुखनिःसृत वेदमन्त्रोंसे संस्कार हो है। यह कैसी विडम्बना है! लीलाविहारिन्! तुम्हारी मन-मोहनकारिणी लीलाको धन्य है! अस्तु, 'भूर्' इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करके शिशुके बिम्बविडम्बित अध किंचित् खोलकर सुवर्णसंयुक्त अनामिका अँगुलीसे एक कण चटाया गया। आयुष्यक्रिया करते समय

देवता शिशुके दक्षिण कर्णमें **'अग्निरायुष्मान्'** इत्यादि जपनेके लिये मुख निकट ले गये। उन्हें प्रतीत हुआ मानो यह कर्ण नहीं, किसी अनिर्वचनीय श्यामल तेजोलतिकाका नवोन्मिषित पल्लव है। जपते समय ब्राह्मणके सारे शरीरमें कम्प होने लगा। ब्राह्मण आश्चर्यमें थे कि सारे अङ्ग काँपने क्यों लगे, आजतक तो ऐसी घटना नहीं हुई! इसके बाद **'दिवस्परि'** इत्यादि मन्त्रसे बालकका स्पर्श किया गया, फिर भूमि अभिमन्त्रित की गयी। एक बार बालकका अङ्ग पुनः पोंछ दिया गया। आगेकी अन्य क्रियाएँ सम्पन्न की गयीं। अन्तमें शिशुके कुञ्चितकेशकलापमण्डित मस्तकसे सटाकर **'आपो देवेषु'** इत्यादि मन्त्रसे एक जल-पात्र सूतिका-पर्यङ्कके नीचे रखा गया। इस तरह जातकर्म-संस्कार सम्पन्न हुआ—

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा॥

(श्रीमद्भा० १०। ५। २)

अब दाई नाल-छेदन करती है। किसकी नाल?

जाकैं नार आदि ब्रह्मादिक, सकल-बिस्व-आधार।
सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे, मेटन कौं भू-भार॥

× × ×

जाकैं नार भए ब्रह्मादिक सकल, जोग-ब्रत साध्यौ।
ताकौ नार छीनि ब्रजजुबती बाँटि तगा सौं बाँध्यौ॥

नेग पानेका इतना सुन्दरतम अवसर धात्रीके जीवनमें कभी नहीं आया था। इस विचित्र सुन्दर शिशुको देखकर ही वह सब कुछ पा चुकी थी, निहाल हो चुकी थी; पर व्रजरानीसे प्रणय-झगड़ा करके नेग लेनेका सुदुर्लभ आनन्द वह क्यों छोड़ने लगी। लेना ही चाहिये, व्रजेश-कुलकी धात्री जो ठहरी—

औरनि कै हैं गोप-खरिक बहु, मोहिं गृह एक तुम्हारौ।
मिटि जु गयौ संताप जनम कौ, देख्यौ नंद-दुलारौ॥
बहुत दिनन की आशा लागी, झगरिनि झगरौ कीनौ।

तथा व्रजेश्वरी भी कब चूकनेवाली थीं—

मन मैं बिहँसि तबै नँदरानी, हार हिये कौ दीनौ॥

नन्दरानीके गलेको सुशोभित करनेवाला मणिमुक्ताका मनोहर मूल्यवान् हार सौभाग्यमयी दाईके गलेमें झूलने लगा। धात्रीने उत्फुल्ल नेत्रोंसे एक बार व्रजेश्वरीकी ओर देखा, फिर शिशुकी ओर; क्षणोंमें ही नाल-छेदन सम्पन्न हो गया। अबतक शीलवती व्रजरानीके चित्तमें शास्त्रमर्यादाका विचार था; स्तनदानके पूर्व ही जातकर्म-संस्कार हो जाना चाहिये—यह मर्यादा मानो व्रजेन्द्रगेहिनीके हृदयमें बाँध-सी बनी थी, इस बाँधसे वात्सल्यरसकी धाराएँ रुकी हुई थीं। अब मर्यादा पूरी हो चुकी। व्रजरानी बड़ी ललकसे हाथ बढ़ाती हैं, अपने हृदय-धनको उठाकर छातीसे लगा लेती हैं। द्विदल जवा-पुष्पकी कलिका-सदृश अधरोष्ठको खोलकर उसमें अपना स्तनाग्र दे देती हैं। वात्सल्य-रस-सुधा-साररूप दूध झर रहा है और अलौकिक नराकृति परब्रह्म बड़े प्रेमसे और उत्कण्ठासे उसका पान कर रहे हैं।

इधर व्रजेश्वर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे रहे हैं। व्रजराजने उस दिन बीस लाख गायें ब्राह्मणोंको दीं। गायोंके सींग सुवर्णपत्रोंसे, खुर रजतपत्रोंसे मढ़े हैं; प्रत्येकके कण्ठ-देशमें बहुमूल्य मणियोंकी माला है। सभी नवप्रसूता हैं। व्रजेशकी आज्ञासे अविलम्ब तिलके सात पर्वत निर्मित हुए, उन पर्वतोंपर सघन पत्रावलीकी तरह रत्न बिछा दिये गये, फिर पर्वतोंको सुनहले वस्त्रोंसे सर्वत्र ढक दिया गया। ये पर्वत भी ब्राह्मणोंके लिये ही बने थे, उन्हें दान कर दिया गया। व्रजराज जिस समय इस पर्वतदानका संकल्प पढ़ने लगे, उस समय आश्चर्यमें भरे हुए ब्राह्मण कुछ क्षण अवाक् रह गये।

अब समस्त व्रज सजाया जा रहा है। व्रजका प्रत्येक प्रासाद, प्रासादका प्रत्येक गृह, द्वार, प्राङ्गण, गृहद्वार-प्राङ्गणका कोना-कोनातक पहले झाड़ दिया गया, पश्चात् चन्दन-वारिसे धो दिया गया; फिर सर्वत्र पुष्प-रस-सार (इत्र) छिड़क दिया गया। रंग-बिरंगे वस्त्र एवं सुकोमलतम पल्लवोंके बंदनवार बाँधे गये। चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाएँ यथास्थान फहरा रही हैं। पुष्पमालाकी लड़ियाँ, मणिमय स्तम्भों एवं गवाक्ष-रन्ध्रोंसे बाँध दी गयी हैं। प्रत्येक द्वारपर आम्रपल्लवसमन्वित जलपूर्ण मङ्गलघट है। हरिद्रा, दूब, अक्षत, दधि और कुंकुमसे प्रत्येक द्वार-देश चित्रित है। स्थान-स्थानपर मोतियोंके चौक पूरे गये हैं।

व्रजेशके ऐसे सजे हुए तोरण-द्वारपर एक ओर ऊँचे आसनपर विराजमान ब्राह्मण आशीर्वादात्मक मङ्गलवचनोंका पाठ कर रहे हैं। उनसे कुछ दूरपर सूत पुराणका पारायण

कर रहे हैं। उनसे कुछ हटकर मागध व्रजेश-वंशावलीका कीर्तन कर रहे हैं। उनसे सटी हुई बंदीजनोंकी पंक्तियाँ हैं, वे मधुर स्वरमें व्रजेशकी स्तुति गा रहे हैं। ब्राह्मणोंके ठीक सामने दूसरी ओर संगीतज्ञोंका दल है, वे वीणाके स्वरमें स्वर मिलाकर सुमधुर रागिनी अलाप रहे हैं। उनसे कुछ दूरपर भेरी बजानेवालोंका दल है। इनसे कुछ हटकर दुन्दुभियाँ बज रही हैं। इनसे कुछ दूरपर बंदीजनोंके ठीक सामने सहनाईवाले मधुर तान छेड़ते हुए रसकी वर्षा कर रहे हैं। बीचमें राजपथ है, जिसपर गौओं, गोपों और गोपाङ्गनाओंकी भीड़ उमड़ी चली आ रही है।

गौ, गोवत्स आदिको हल्दी-तेलसे रँगकर, गैरिक आदि धातुओंसे चित्रितकर, मयूरपिच्छ एवं पुष्परचित माला पहनाकर, सुवर्णशृंखलासे मण्डित करके तथा स्वयं बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण, अँगरखे, पगड़ीसे विभूषित होकर हाथोंमें, काँवरोंमें, सिरपर घी, दही, नवनीत, आमिक्षा (फटे हुए दूधसे बने द्रव्य—छेना आदि)-से पूर्ण घड़े लिये व्रजके समस्त गोप नन्दभवनकी ओर आ रहे हैं। उनके पीछे दौड़ती हुई गोपाङ्गनाएँ आ रही हैं—

सुनि धाईं सब ब्रज नारि, सहज सिँगार किये।
तन पहिरे नूतन चीर, काजर नैन दिये॥
कसि कंचुकि, तिलक लिलार, सोभित हार हिये।
कर-कंकन, कंचन-थार, मंगल-साज लिये॥
सुभ स्रवननि तरल तरौन, बेनी सिथिल गुही।
सिर बरषत सुमन सुदेस, मानौ मेघ फुही॥
मुख मंडित रोरी रंग, सैंदुर माँग छुही॥
उर अंचल उड़त न जानि, सारी सुरँग सुही।
ते अपनैं-अपनैं मेल, निकासीं भाँति भली।
मनु लाल-मुनैयनि पाँति, पिँजरा, तोरि चली॥
गुन गावत मंगल-गीत, मिलि दस पाँच अली।
मनु भोर भएँ रवि देखि, फलीं कमल-कली॥

गोपाङ्गनाएँ गोपोंसे थीं पीछे, पर पहुँचीं पहले—

पिय-पहलैं पहुँचीं जाइ अति आनंद भरीं।

गोपाङ्गनाओंका स्वागत रोहिणी एवं उपनन्द-पत्नीने किया। पश्चात् वे सब क्रमशः सूतिकागारमें गयीं। शिशुका श्रीमुख देखकर अनुभव करने लगीं कि स्रष्टाने नेत्रोंकी सृ इस नन्दपुत्रको निहारनेके लिये ही की है, आज वह नेत्र-निर्माणका फल प्राप्त हो गया—

अनन्तरं प्रविश्य सूतिकाभवनमालोक्य च तमभिनवं नव नयननिर्माणस्य फलमिव।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः २। २२)

गोपाङ्गनाएँ नन्दनन्दनको आशीर्वाद देने लगीं—

चिरजीवौ जसुदा-नंद, पूरन-काम करी।
धनि दिन है , धनि यह राति, धनि-धनि पहर घरी॥
धनि-धन्य महरि कौ कोख, भाग-सुहाग भरी।
जिनि जायौ ऐसौ पूत, सब सुख-फरनि फरी॥
थिर थाप्यौ सब परिवार, मन की सूल हरी॥

पाहि चिरं व्रजराजकुमार!
अस्मानत्र शिशो! सुकुमार!

(श्रीगोपालचम्पू

'रे सुकुमार बालक! रे व्रजराजकुमार! तू बड़ा होक चिरकालतक हम लोगोंकी रक्षा कर।'

बाहर समस्त व्रजगोपोंकी मण्डली गायोंसहित अ पहुँची है—

सुन ग्वालनि गाइ बहोरि, बालक बोलि लए।
गुहि गुंजा घसि वनधातु, अंगिनि चित्र ठए॥
सिर दधि-माखन के माट, गावत गीत नए।
डफ-झाँझ-मृदंग बजाइ, सब नँद-भवन गए॥

नन्दजी सबसे यथायोग्य मिलते हैं। आनन्दमें उन्मा से हुए गोप हल्दी-दही छींटते हुए विविध भाव-भङ्गिमाओं प्रदर्शन कर रहे हैं—

मिलि नाचत करत कलोल, छिरकत हरद-दही।
मानु बरषत भादौं मास, नदी घृत-दूध बही॥
जब जहाँ-जहाँ चित जाइ, कौतुक तहीं-तहीं।
सब आनँद मगन गुवाल, काहूँ बदत नहीं॥
इक धाइ नंद पै जाइ, पुनि-पुनि पाइ परैं।
इक आपु आपुहीं माहिं, हँसि-हँसि मोद भरैं।
इक अभरन लेहिं उतारि, देत न संक करैं।
एक दधि-रोचन अरु दूब सबनि के सीस धरैं॥

गोपोंका आनन्दोन्माद उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। बूढ़े व्रजेन्द्रको भी उन सबने अपने बीचमें ले लिया है और इतना दूध, दही, घृत और नवनीत ढरकाया है कि नदी-सी बह चली है। दूध-दहीके अनेक गम्भीर गर्त बन गये हैं। उनमें लोटते हुए गोपोंका शरीर सर्वथा उज्ज्वल दीखने लगा है, मानो ये गोप दुग्धसागरकी चञ्चल तरङ्गें हों।

व्रजेन्द्र कभी तो इस दूध-दहीकी नदीमें स्नान करने आते हैं, कभी रत्नराशि लुटानेके लिये द्वारदेशपर खड़े हो जाते हैं। याचनाकी आवश्यकता नहीं, कोई भी विद्योपजीवी आकर खड़ा हुआ कि नन्दराज रत्नोंकी झोली, वस्त्रोंकी गठरी और गोधनकी टोली लेकर उसके पास जा पहुँचे; सदाके लिये उसका मँगतापन मिटा दिया। व्रजेश-कुलके सूत, मागध, बंदीजन आज अयाची बन गये—इसमें तो कहना ही क्या है।

व्रजेन्द्र जो इतनी सम्पत्ति लुटा रहे हैं, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। उनका भंडार ही अब अनन्त, असीम बन गया है; क्योंकि सारे विश्वकी समस्त सम्पत्ति जिनकी चरणसेविका लक्ष्मीजीकी आंशिक विभूति है, वे स्वयं आज पुत्रके रूपमें व्रजेशके घर पधारे हैं। प्राकृत भंडारकी सीमा होती है, उसमेंसे कुछ निकालनेपर उतना अंश कम हो जाता है, उतने अंशकी पूर्णता अपेक्षित होती है। पर व्रजेशका भंडार प्राकृत नहीं; वह ऐसा है कि उसमेंसे जितना वे निकालेंगे, उतना ही बचा रह जायगा। अपनी जानमें सम्पूर्ण निकाल लेंगे तो भी उसमें सम्पूर्ण बचा रहेगा। इसीलिये उनके देनेमें आज विराम नहीं, हिसाब नहीं; देते ही चले जा रहे हैं। हाँ, देते समय व्रजेशके वात्सल्य-प्रेमपरिभावित मनमें निरन्तर केवल एक भावना है—

अनेन प्रीयतां विष्णुस्तेन स्तान्मे सुते शिवम्।

(श्रीगोपालचम्पूः)

'इस दानसे मेरे इष्टदेव नारायण प्रसन्न हों, उनकी प्रसन्नतासे मेरे पुत्रका कल्याण हो।'

भीतर, अन्त:पुरमें हरिद्रा-तैलकी कीच मची है। गोपाङ्गनाएँ परस्पर एक-दूसरेपर हल्दी-तेल छिड़क रही हैं। छिड़कती हुई बाहर आती हैं और व्रजेन्द्रकी एवं गोपोंकी दशा देखकर आनन्दमें निमग्न होकर गाने लगती हैं—

पश्य सखीकुल! गोकुलराजं
पुत्रोत्सवमनु खेलाभाजम्।
उदधिप्रभदधिसम्प्लवदेशं
परितो घूर्णितमन्दरवेशम्॥
मध्यधटीफणिराजे कृष्टं
हृद्यसुहृद्भिरतीव च हृष्टम्।
मध्ये मध्ये दुर्लभदानं
ददतं दधतं विस्मयभानम्॥
एकं पुनरलमभवदपूर्वं
अजनि विधुर्वत यदितः पूर्वम्॥*

(श्रीगोपालचम्पूः)

आज व्रजेश्वरने सबसे अधिक सम्मान श्रीरोहिणीजीका किया है। आजका सम्मान रोहिणीने स्वीकार भी कर लिया है। इससे पूर्व रोहिणीने कभी नन्द-घरके सुन्दर वस्त्र, सुन्दर आभूषणोंकी ओर ताकातक नहीं था। वे सदा पतिवियोग, पति-बन्धनसे मन-ही-मन खिन्न रहती थीं। पर आज यशोदानन्दनका मुख देखते ही रोहिणीका रोम-रोम आनन्दमें निमग्न हो गया। इसीसे वे नन्दप्रदत्त दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर पुर-महिलाओंके सत्कारमें लगी हुई हैं।

दिन बीत चुका है। पर गोप-गोपाङ्गनाओंका उत्साह शिथिल नहीं हुआ। अभी भी उसी नृत्य, उसी आनन्द-कोलाहलसे नन्द-प्रासाद मुखरित हो रहा है। एक वृद्ध

---

* सखियो! गोकुलेश्वर नन्दजीको तो देखो। पुत्रोत्सवके आनन्दमें निमग्न होकर आज वे कितने चञ्चल, कितने कौतुक-परायण हो रहे हैं। बहनो! यह सामनेका दृश्य देखकर मुझे तो सागर-मन्थनकी स्मृति हो रही है। देखो तो सही, दहीसे भरा हुआ यह व्रज सागर-जैसा हो गया है और उसमें मन्दर-पर्वत-से होकर नन्दजी सर्वत्र घूम रहे हैं। उनकी कमरमें लपेटा हुआ वस्त्र, घृत-दधिसे चिकना होकर, फूलकर ठीक वासुकि नाग-जैसा बन गया है। उसे पकड़कर उनके प्रिय सुहृद्जन उन्हें इधर-उधर खींच ले जा रहे हैं और वे अतिशय प्रसन्न हो रहे हैं। इतना ही नहीं, जैसे समुद्र-मन्थनके समय अनेक रत्न निकल रहे थे, मन्दर-पर्वत सागरके रत्नोंको निकाल-निकालकर फेंक रहा था,वैसे ही ये नन्दजी बीच-बीचमें रत्नराशि लुटाने लग जाते हैं। अहा! आज इनकी कैसी आश्चर्यमयी शोभा है। पर बहनो! क्या बताऊँ, आश्चर्यकी कोई सीमा नहीं, इस सागर-मन्थनमें तो एक अपूर्व बात हुई है। सर्वत्र प्रसिद्ध है—चन्द्रमा मन्थन प्रारम्भ होनेपर—सागर मथे जानेपर निकले थे; पर नन्दका यह शिशु-चन्द्र तो मन्थन प्रारम्भ होनके पूर्व ही प्रकट हो गया।

बन्दी भी दिनभरसे अतिशय सुमधुर कण्ठसे गाता रहा है। दिनभर उसके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहती रही है। अब सूर्य अस्ताचलको जा रहे हैं, पर वह अब भी पीली पगड़ी बाँधे सहनाईवालेके स्वरमें स्वर मिलाकर गा रहा है—

आज कहूँ ते या गोकुल में अद्भुत बरषा आई।
मनिगन-हेम-हीर-धारा की ब्रजपति अति झरि लाई॥
बानी बेद पढ़त द्विज-दादुर हिऐं हरषि हरियारे।
दधि-घृत-नीर-छीर-नाना रँग बहि चले खार-पनारे॥
पटह-निसान-भेरि-सहनाई महा गरज की घोरें।
मागध-सूत बदत चातक-पिक, बोलत बंदी-मोरें॥
भूषन-बसन अमोल नंदजू नर-नारिन पहराए।
साखा-फल-दल-फूलन मानों उपबन झालर लाए॥
आनँद भरि नाचत ब्रजनारी पहिरें रँग-रँग सारी।
बरन-बरन बादरन लपेटी विद्युत न्यार-न्यारी॥
दरिद्र-दवानल बुझे सबन के जाचक-सरबर पूरे।
बाढ़ी सुभग सुजस की सरिता, दुरित-तीरतरु चूरे॥
ऊल्ह्यौ ललित तमाल बाल एक, भई सबन मन फूल।
छाया हित अकुलाय गदाधर तक्यौ चरन कौ मूल॥

शिशु श्रीकृष्णका अन्नप्राशन-महोत्सव, कुबेरके द्वारा गोकुलमें स्वर्णवृ

शिशिरका ब्राह्ममुहूर्त है। दो घड़ी पश्चात् माघशुक्ला चतुर्दशीका प्रभात होगा। इसीके साथ व्रजेन्द्रनन्दनके अन्नप्राशनका उत्सव-समारोह भी आरम्भ होगा, मानो इसकी सूचना प्रातः-समीरको भी मिल चुकी है। इसीलिये वह गवाक्षरन्ध्रोंके पथसे आया; आकर प्रथम पर्यङ्कशायिनी व्रजेन्द्रमहिषीके, फिर उनके वक्षःस्थलपर विराजित निद्रित व्रजेन्द्रनन्दन कृष्णचन्द्रके पादारविन्द उसने स्पर्श किये। स्पर्शसे कृतार्थ होकर राशि-राशि कुन्दपुष्पोंसे संचित परिमल अपने दुकूलसे निकालकर शयनागारमें सर्वत्र बिखेर दिया। उत्सवके उपलक्षमें अपनी क्षुद्र भेंट चढ़ा दी तथा फिर अतिशय शीघ्रतासे आनन्दातिरेकवश चञ्चल होकर 'झुर-झुर' शब्द करता हुआ अन्य व्रजवासियोंको जगाने चला गया।

व्रजरानी तो जागी हुई ही हैं। वे सारी रात क्षणभरके लिये भी सो नहीं सकी हैं, फिर भी रात्रि कब कैसे समाप्त हो गयी, यह उन्होंने नहीं जाना। जानतीं कैसे? वे तो अनेक सुखमय मनोरथोंकी कल्पनामें विभोर थीं, नीलमणिका भावी अन्नप्राशन प्रत्यक्ष वर्तमान-सा बनकर नेत्रोंमें भरा था। वे उस दृश्यमें, अपने नीलमणिमें तन्मय हो रही थीं; किंतु प्रातः-समीरके स्पर्शसे जननीके प्रशान्त वात्सल्यसिन्धुमें एक कम्पन हुआ। उसमें एक लहर उठ आयी। जननीके कृष्णमय मन-प्राण इस लहरीसे सिक्त हो गये एवं तत्क्षण उनमें स्फुरणा हुई—कहीं मेरे नीलमणिके अङ्ग अनावृत हों, शिशिरकी शीतल वायुसे उनमें ठंढ लग गयी तो? बस, व्रजरानी तुरंत उठ बैठीं एवं वस्त्र सँभालने लगीं। वास्तवमें ही यशोदानन्दनके श्रीअङ्गोंसे कहीं-कहीं वस्त्र हट गये जननी उन्हें गोदमें लेकर वस्त्रोंसे ढँकने लगीं। इसी सम उनका ध्यान नीलमणिके वक्षःस्थलकी ओर गया, वक्षः स्थलपरका श्रीवत्सचिह्न मणिदीपके प्रकाशमें स्पष्ट चम-च कर रहा था; किंतु जननीको पुनः भ्रम हो ही गया। इस पूर्व भी जननी कई बार भ्रमित हो चुकी हैं। इस भ्रमक प्रारम्भ तो प्रथम स्तनदानके समय हुआ था। उस सम जातकर्मके पश्चात् जननी स्तन्यपान करा रही थीं। पुत्र प्रत्येक अङ्गका सौन्दर्य निरखती हुई जननीने हृदयकी देखा था। हृदयके दक्षिण भागमें रोमावलीका अनादिसि श्रीवत्स नामक चिह्न अङ्कित था ही। उसकी शोभा अद्भुत ही थी, मानो मृणालतन्तुओंका चूर्ण एकत्र हो हो! वैसा ही सुन्दर, वैसा ही सुस्निग्ध! किंतु श्रीवत्स देखकर जननीने तो यह समझा था—मैं शिशुको स्तन्य पि रही हूँ, मेरे स्तनक्षरित दुग्धकण ही पुत्रके कपोलपर हों हुए वक्षःस्थलपर आ ढलके हैं; उन दुग्धकणोंसे ही चिह्न निर्मित हो गया है। इतना ही नहीं, जननी सुकोमल सूक्ष्म वस्त्राञ्चलसे धीरे-धीरे उसे पोंछ देनेका प्रयत्न लगी थीं; किंतु चिह्न मिटता न था। जब वस्त्रसे उस चिह्न मार्जन न कर सकीं, तब वे सोचने लगी थीं कि सम्भव यह किसी महापुरुषका लक्षण हो—

वक्षसि दक्षिणभागे मृणालतन्तुक्षोदसोदरसुभ सुस्निग्धश्रीवत्साख्यरोमराजिलक्ष्म लक्षयित्वा स्तनर कणनिपातविन्यासविशेषोऽयमिति पुनरपि मृदुत

चीनसिचयाञ्चलेनापसारयन्ती यदा तन्नापसरति, तदा किमपीदं महापुरुषलक्षणमिति चिन्तयन्ती।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः २। १७)

इसी तरह आज पुनः पूर्वकी भाँति जननीको एक क्षणके लिये भ्रम हो जाता है कि निद्रित नीलमणिके अधरोंसे क्षरित दुग्धकण ही यहाँ आकर इस रूपमें परिणत हो गये हैं। अवश्य ही इस बार वे मार्जन करने नहीं जातीं; क्योंकि तुरंत ही अन्तर्वृत्ति सचेत कर देती है। जननी अपनी भूलपर मन्द-मन्द मुसकराती हुई वस्त्रोंसे शीत-निवारणकी उचित व्यवस्था करके पुत्रको हृदयसे लगा लेती हैं।

सूर्योदयमें अभी विलम्ब है, किंतु गोपसुन्दरियोंके दल-के-दल नन्द-प्राङ्गणमें एकत्र होने लगे। घड़ीभर दिन चढ़ते-चढ़ते तो नन्दभवन गोप-वनिताओंसे सर्वत्र परिपूर्ण हो गया। नन्दभवनमें पुर-महिलाओंके लिये समय-असमयकी रोकथाम तो है नहीं तथा व्रजपुरमें नन्दनन्दनके अन्नप्राशनमुहूर्तकी सूचना फैल चुकी है। इसलिये आज यमुना-स्नान करके कितनी ही गोपसुन्दरियाँ तो घर भी नहीं गयीं, सीधे नन्दभवनमें ही चली आयीं। जिनके अतिशय अल्पवयस्क पुत्र हैं, उन्हें ही आनेमें कुछ विलम्ब हुआ; पर आयीं सब। छोटे शिशुओंको गोदमें लिये, किंचित् वयस्क पुत्रोंकी अँगुली पकड़े, मङ्गलगीत गाते आती हुई गोपसुन्दरियोंकी मधुर कण्ठध्वनिसे सुमधुर झन्-झन्, झिन्-झिन्, रुन-झुन, रुन-झुन, कङ्कण-किङ्किणी-नूपुरध्वनिसे राजपथ तथा राजपथके दोनों ओर स्थित उत्तुङ्ग प्रासाद प्रतिशब्दित—प्रतिध्वनित होने लगे। उन गोपाङ्गनाओंकी प्रत्येक भावभङ्गीसे एक अद्भुत वात्सल्य, अप्रतिम मातृभावका निर्झर झरता जा रहा है।

उपनन्दजीने आदेश दे रखा है कि आज मध्याह्नतक गोचारण स्थगित रहे। व्रजेन्द्रनन्दनके अन्नप्राशनके पश्चात् समय रहनेपर गायें निकटवर्ती वनमें कुछ समय घुमा ली जायँ। अतः गोपमण्डली भी शीघ्रतासे गायोंको दुहकर, उनके सामने प्रचुर हरित-तृण डालकर तथा स्वयं स्नान आदि समासकर, विविध वेशभूषासे अलंकृत होकर नन्दभवनकी ओर उमड़ पड़ती है। उनकी पत्नियाँ, माताएँ तो पहले ही चली गयी हैं। गायोंकी व्यवस्था करनेके लिये ये रुके थे। उनकी व्यवस्था तो इन्होंने कर भी दी। किंतु शीघ्र-से-शीघ्र नन्दभवन पहुँचनेकी, नेत्रोंसे नन्दनन्दनको जी भरकर निहारनेकी प्रबल उत्कण्ठावश दूधकी उचित व्यवस्था ये नहीं ही कर सके। दुहे हुए दूधसे पूर्ण भाण्डोंको घर पहुँचानेतकका भी धैर्य इनमें न रहा। कुछ ही भाण्ड घर आये, अधिकांश गोष्ठमें ही रह गये; और तो क्या, बहुत-सी गायें बिना दुहे ही रह गयीं। गोवत्सोंको यों ही उन्मुक्त कर दिया गया। चौकड़ी भरते हुए बछड़े अपनी माताओंसे जा मिले। इसी अवस्थामें उन्हें छोड़कर गोप द्रुतगतिसे नन्दालयकी ओर चल पड़े।

यथासमय व्रजरानी नित्यकर्मसे निवृत्त होकर पुत्रको गोदमें लिये आँगनमें चली आती हैं। गोपाङ्गनाओंकी अपार भीड़ उन्हें चारों ओरसे घेर लेती है। निकटतम कुटुम्बियोंको नन्दरानीने दासी भेजकर निमन्त्रित किया है। वे सब आ गयी हैं। व्रजरानी एक बार भंडारकी ओर जाती हैं। वहाँ पुत्रको गोदमें लिये श्रीरोहिणीजी सारी व्यवस्था कर रही हैं—

आजु कान्ह करिहैं अनप्रासन।
मनि-कंचन के थार भराए, भाँति-भाँति के बासन॥

श्रीरोहिणीजीका यह परिश्रम देखकर व्रजरानीकी आँखोंमें स्नेह-जल भर आता है। सजल नेत्रोंसे वे कुछ क्षण रोहिणीजीकी ओर देखकर फिर उन निमन्त्रित कुटुम्बी व्रजवधुओंकी ओर देखने लगती हैं। इतना संकेत पर्याप्त है। वे शतशः व्रजवधुएँ तुरंत ही पकवान बनानेमें जुट पड़ती हैं—

नंद-घरनि ब्रज-बधू बुलाईं, जे सब अपनी पाँति।
कोउ ज्यौनार करति, कोउ घृत-पक, षटरस के बहु भाँति॥
बहुत प्रकार किए सब ब्यंजन, अमित बरन मिष्टान।
अति उज्ज्वल-कोमल-सुठि-सुंदर, देखि महरि मन मान॥

व्रजेन्द्रका उत्साह तो देखने योग्य ही है। उनकी योजना ऐसी है कि उनके पुत्रका अन्नप्राशन-उत्सव अतीत एवं भविष्यके इतिहासमें अद्वितीय बन जाय। नन्द-प्रासादसे संलग्न, कालिन्दीतीरपर्यन्त विस्तीर्ण सुमनोहर नन्दोद्यानमें व्रजेन्द्रने एक नयी सृष्टि-सी रच दी है। उस सुरम्य उद्यानमें नौ छोटी-छोटी नदियोंका निर्माण हुआ है। जलकी नदियाँ

नहीं, विभिन्न भोज्यरसोंकी। पहली नदी दधिकी है, उसमें दधिकी धवल धारा बह रही है, दोनों तट दधिसे भरपूर हैं। दूसरी गोदुग्धकी नदी है, निर्मल उज्ज्वल शीतल दुग्ध प्रवाहित हो रहा है। तीसरी नदी घृतकी है, पीतवर्णा यह घृत-नदी मन्दगतिसे प्रवाहित हो रही है, दोनों किनारे घृतसिक्त हो गये हैं। चौथी गुड़की नदी है, पीताभ गुड़की यह पयस्विनी अत्यन्त स्थिर-सी है—मानो सचमुच ही किसी नदीकी पीताभ जलधारा हिमके संयोगसे जम गयी हो, ऐसी इस गुडकुल्या (गुड़की नदी)-की शोभा है। पाँचवीं तैल-नदी प्रवाहित हो रही है, मन्द मन्थरगतिसे धीरे-धीरे यमुनाकी ओर इसकी गति है। छठी नदी अत्यन्त विस्तीर्ण है, यह मधुकुल्या है, इसमें मधुधारा बह रही है। सातवीं नवनीत-नदी है, उज्ज्वल हिमपिण्डकी भाँति नवनीतखण्ड जम-से गये हैं। अत्यन्त शान्त-सी प्रतीत हो रही है। इसका प्रवाह परिलक्षित नहीं होता। इन सातके अतिरिक्त तक्र-नदियाँ भी हैं। ये कई हैं तथा द्रुतगतिसे झर-झर करती हुई यमुनाकी ओर भागी जा रही हैं। कुछ शर्करोदक नदियाँ हैं, इनकी शर्करामिश्रित मिष्ट जलधाराएँ अत्यन्त प्रखर गतिसे उद्यानकी परिक्रमा कर रही हैं।

इन नदियोंके मध्यवर्ती देशमें उज्ज्वल प्रस्तरखण्डोंसे पटी हुई भूमिपर व्रजेन्द्रने शालितण्डुलोंके एक शत एवं पृथुकतण्डुलों (चिउरों)-के एक शत पर्वत बनवाये हैं। वहीं सात लवण-पर्वतोंका भी निर्माण करवाया है। इसी तरह शर्कराके सात एवं लड्डूके सात पर्वत निर्मित हुए हैं। परिपक्व सुमधुर फलोंके सोलह पर्वत रचे गये हैं। यवचूर्ण (जौके आटे) तथा गोधूमचूर्ण (गेहूँके आटे)-के भी अनेक पर्वत बने हैं। मोदकोंका पर्वत निर्मित हुआ है। विशेष कौशलसे निर्मित, अत्यन्त सुस्वादु, एक प्रकारकी पूरियोंके अनेक पर्वत खड़े किये गये हैं। इन पूरियोंके पर्वतोंपर राशि-राशि सुसंस्कृत लड्डू रख दिये गये हैं। इनसे कुछ हटकर व्रजेन्द्रने सात कौड़ियोंके पर्वत बनवाये हैं। वहींपर सुवासित जलयुक्त, कर्पूरादिमिश्रित, चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम-समन्वित ताम्बूलोंका अत्यन्त विस्तृत, परंतु द्वारहीन एक मन्दिर निर्माण करवाया है। विभिन्न जातिकी रत्नराशि एवं सुवर्ण, सुरम्य मुक्ताफल तथा प्रवालपुञ्ज ढेर-के- यथास्थान रख दिये गये हैं। रंग-बिरंगे सुन्दर वस्त्र सुन्दर आभूषणोंके स्तूप लग गये हैं—

दधिकुल्यां दुग्धकुल्यां घृतकुल्यां प्रपूरिताम्॥
गुड़कुल्यां तैलकुल्यां मधुकुल्यां च विस्तृताम्।
नवनीतकुल्यां पूर्णां च तक्रकुल्यां यदृच्छया॥
शर्करोदककुल्यां च परिपूर्णां च लीलया।
तण्डुलानां च शालीनामुच्चैश्च शतपर्वतान्॥
पृथुकानां शैलशतं लवणानां च सप्त च।
सप्त शैलाञ्छर्कराणां लड्डुकानां च सप्त च॥
परिपक्वफलानां च तत्र षोडश पर्वतान्।
यवगोधूमचूर्णानां पक्वलड्डुकपिण्डकान्॥
मोदकानां च शैलं च स्वस्तिकानां च पर्वतान्।
कपर्दकानामत्युच्चैः शैलान् सप्त च नारद॥
कर्पूरादिकयुक्तानां ताम्बूलानां च मन्दिरम्।
विस्तृतं द्वारहीनं च वासितोदकसंयुतम्॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन समन्वितम्।
नानाविधानि रत्नानि स्वर्णानि विविधानि च॥
मुक्ताफलानि रम्याणि प्रबालानि मुदान्वितः।
नानाविधानि चारूणि वासांसि भूषणानि च॥
पुत्रान्नप्राशने नन्दः कारयामास कौतुकात्।

(ब्रह्मवैवर्तपु० कृष्णजन्मखण्ड, अ० १३, १५२—१६

जिस आँगनमें श्रीकृष्णचन्द्र अन्नप्राशन करेंगे, उसे व्रजेन्द्रने स्वयं उपस्थित रहकर सजाया है। सुमार्जि चन्दनवारिसे सर्वत्र सिक्त विशाल सुन्दर प्राङ्गणमें चा ओरसे ऊँचे-ऊँचे सघन कदलीस्तम्भ खड़े कर दिये गये हैं कदलीस्तम्भोंपर यथास्थान सूक्ष्म वस्त्रोंमें ग्रथित आम्र नवपल्लव टँगे हैं। स्थान-स्थानपर फल-पल्लवसमन्वि चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-पुष्पपरिशोभित अनेक मङ्गलकल रखे हैं। कलशके समीप पुष्प-समूहोंके, चित्र-विवि वस्त्रोंके ढेर लगे हैं। ब्राह्मणोंके विराजनेके लिये यथास्थ आसन एवं उनकी पूजाके लिये मधुपर्कपूरित अनेक रखे हैं तथा शत-शत स्वर्णसिंहासन दानके लिये सजा सजाकर रखे हुए हैं।

यह सारी व्यवस्था व्रजेन्द्रने केवल तीन पहरमें की है। असंख्य गोपसेवकोंको लेकर आधी रातके समय व्रजेश्वरने कार्य प्रारम्भ किया था। पहर दिन चढ़ते-चढ़ते सारी व्यवस्था पूर्ण हो गयी है। अब इधर रेवती नक्षत्र भी प्रारम्भ हो चुका है। शुभ योग भी आ गया है। आज चन्द्र तो मीन लग्नमें अवस्थित हैं ही। ब्राह्मण भी कदलीमण्डपमें पधार गये हैं। अतः अविलम्ब क्रिया आरम्भ हो जाती है।

शास्त्र-विधिका अनुसरण करते हुए व्रजेन्द्र, व्रजरानी दोनों ही पुनः मङ्गलस्नान करते हैं। स्वयं निवृत्त होकर फिर व्रजेश्वरी श्रीकृष्णचन्द्रको स्नान कराती हैं, पश्चात् पूर्वाभिमुख होकर आसनपर नन्ददम्पति विराजते हैं। उस समय व्रजरानीकी गोदमें श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर व्रजेन्द्र कुछ क्षणके लिये तो सब कुछ भूल जाते हैं। याजक भूदेवोंकी भी यही दशा होती है। मङ्गलगान करती हुए व्रजाङ्गनाएँ भी श्रीकृष्णचन्द्रकी वह दिव्य छबि देखकर विमुग्ध हो जाती हैं। ब्राह्मण कुछ देर बाद प्रकृतिस्थ होकर आचमन, स्वस्तिवाचन, दीपप्रज्वालन, अर्घ्यस्थापन आदि सम्पन्न कराते हैं; पर उनकी मुद्रा ऐसी हो गयी है, मानो किसी गाढ़ समाधिसे अभी-अभी उठे हों। व्रजेन्द्र भी नान्दीश्राद्ध आदि सभी कर्मोंका समाधान करते जा रहे हैं—किंतु इस तरह, जैसे उनके हाथोंसे कोई अचिन्त्य शक्ति क्रिया करवा दे रही हो, स्वयं वे इस शरीरसे कहीं अलग चले गये हों।

शास्त्रीय कर्मकाण्ड पूरा होते ही एक साथ दुन्दुभि, ढक्का, पटह, मृदङ्ग, मुरज, आनक, वंशी, संनहनी, कांस्य आदि वाद्य बजने लगते हैं। उमंगमें भरे वन्दीजन वाद्य-स्वरमें अपना स्वर मिलाकर गाने लगते हैं। व्रजाङ्गनाएँ तो सुमधुर कण्ठसे पहलेसे ही गा रही हैं। इनके अतिरिक्त इसी समय आकाशपथमें विद्याधरियाँ नृत्य करने लगती हैं और गन्धर्व गान करने लगते हैं। विशुद्ध-प्रेमरस-भावितचित्त व्रजवासी आश्चर्यसे आकाशकी ओर देखते हैं, नृत्य-गानका अनुभव करते हैं, पर किसीको देख नहीं पाते। वे सोचते हैं—सम्भव है, हमारे ही नृत्यगानकी प्रतिध्वनि हो अथवा अभी-अभी व्रजेन्द्रनन्दनके अन्नप्राशन-संस्कार-सम्बन्धी दी हुई आहुतिको ग्रहण करनेके लिये अन्तरिक्षमें जो देववृन्द पधारे थे, उन्हींका नर्तन-गायन हो, अस्तु!

अब तुमुल आनन्द-कोलाहलसे पुलकित होते हुए व्रजेन्द्र अपने पुत्रके अधरसे अन्नका स्पर्श कराते हैं—

घरी जानि सुत-मुख-जुठरावन नँद बैठे लै गोद।
महर बोलि बैठारि मंडली, आनँद करत विनोद॥
कनक-थार भरि खीर धरी लै, तापर घृत-मधु नाइ।
नँद लै-लै हरि मुख जुठरावत, नारि उठीं सब गाइ॥
षटरस के परकार जहाँ लगि, लै-लै अधर छुवावत।
बिस्वंभर जगदीस जगत-गुरु, परसत मुख करुवावत॥

जिस समय व्रजेन्द्र तीक्ष्ण, कटु, अम्ल, लवण रसोंका कृष्णचन्द्रके अधरोंसे स्पर्श कराते हैं,उस समय वे अभिनव बाल्यमाधुरीका प्रकाश करते हुए अपने होठ सिकोड़ने लगते हैं। ओह! जो अपने एक क्षुद्र अंशमें स्थित अनन्त ब्रह्माण्डको क्षणभरमें चूर्ण-विचूर्णकर विलीन कर लेते हैं, ऐसे अनन्त महाप्रलय, महाभोजनके समय भी जिनमें विकृति नहीं आती, उनका कणिकामात्र तीक्ष्ण, कटु आदि रसोंसे मुख करुआना—मुख विकृत करना कितना आश्चर्यमय है, यह कितना मोहक लीला-विलास है!

व्रजेन्द्रको भी ऐसा प्रतीत हुआ कि ऐसे सुकोमलतम पाटलदलसदृश अधरोंपर तीक्ष्ण, कटु रस रखना अत्याचार है, महान् क्रूरता, अत्यन्त नृशंसता है। इसलिये उन्होंने अतिशय शीघ्रतासे जल लेकर श्रीकृष्णके अधरोंको पोंछ दिया, पोंछकर व्रजरानीकी गोदमें उन्हें रख दिया।

तनक-तनक जल अधर पोंछि कै, जसुमति पै पहुँचाए।

व्रजरानी गोदमें लेकर चाहती हैं कि इसे छोड़ूँ ही नहीं, हृदयसे लगाये ही रहूँ; पर अन्य व्रजाङ्गनाओंकी व्याकुलता देखकर वे द्रवित हो जाती हैं। पासमें खड़ी, यशोदानन्दनको हृदयपर धारण करनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित एक गोपीकी गोदमें वे पुत्रको रख देती हैं। फिर तो क्रमशः गोदमें ले-लेकर मुख चूम-चूमकर गोपसुन्दरियाँ कृतार्थ हो जाती हैं—

हरषवंत जुबती सब लै-लै,मुख चूमतिं उर लाए।

इन सब कामोंसे निवृत्त होकर व्रजेन्द्र अगणित ब्राह्मणोंको भोजन कराते हैं। दक्षिणाका तो कहना ही क्या है। इतनी प्रचुर

दक्षिणा प्रत्येक ब्राह्मणको मिली है कि वे ढो नहीं सकते। इनके अतिरिक्त कितना दान हुआ, इसकी इयत्ता करना सम्भव नहीं। वे सब अन्नादिके पर्वत भी वितरण कर दिये गये। दधि-दुग्धकी नदियोंके लिये तो कोई प्रतिबन्ध ही नहीं है। जो चाहे, जितना चाहे, उसमेंसे ले सकता है। बहुतोंने लिये भी, पर वह तो नदी है, चतुर्थांश भी रिक्त न हो सकी। इसलिये वह आनन्दोन्मत्त हुए गोपोंकी, गोपबालकोंकी क्रीडास्थली बन गयी। उसमें कूद-कूदकर वे स्नान करने लगे। व्रजेन्द्रने सोच-समझकर ही इनका निर्माण कराया था। व्रजेन्द्रनन्दनके जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें दूध-दही बिखेरकर गोपोंने दधि-दुग्धकी धारा बहा दी थी, गर्त बना दिये थे। आज व्रजेन्द्रने उनका आनन्द-वर्द्धन करनेके लिये अपनी ओरसे दधि-दुग्ध आदिकी नदियाँ बहा दीं।

ब्राह्मण-भोजन, अतिथि-सत्कार समाप्तकर गोपकुलके साथ व्रजेन्द्र भोजन करने बैठते हैं—

महर गोप सबही मिलि बैठे, पनबारे परसाए।
भोजन करत अधिक रुचि उपजी, जो जाकैं मन भाए॥

व्रजेन्द्र भोजन करके उठे ही थे कि कुछ गोपबालकोंने आकर कहा—'बाबा! हम लोग तो यहाँ थे,उत्सवमें विभोर थे, पीछेसे किसीने आकाशसे समस्त गोकुलमें स्वर्णकी वृष्टि की है।' वास्तवमें ही वृष्टि हुई थी। कुबेर दर्शनकर कृतार्थ होनेकी आशासे श्रीकृष्णचन्द्रका अन्नप्राशन देखने आये थे। मनमें आया—अपने स्वामी व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रको मैं क्या भेंट चढ़ाऊँ? मेरे पास है ही क्या? सब वस्तु तो उनकी ही है, पर उनकी वस्तु ही उन्हें अर्पण कर देनेपर वे प्रसन्न हो जाते हैं; फिर संकोच क्या है। लो नाथ! मेरा यह क्षुद्र उपहार तुम्हारी प्रीतिका कारण हो। यह सोचकर कुबेरने तीन मुहूर्ततक स्वर्ण-वृष्टि करके गोकुलको परिपूर्ण कर दिया था—

त्रिमुहूर्तं कुबेरश्च श्रीकृष्णप्रीतये मुदा।
चकार स्वर्णवृष्ट्या च परिपूर्णं च गोकुलम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, कृष्णजन्मखण्ड, अ० १३। १७७)

गोप इस स्वर्ण-वृष्टिसे चकित अवश्य हुए, प
यह उनके आदरकी वस्तु नहीं बन सकी। कैसे ब
जिन व्रजवासियोंके सामने व्रजेन्द्रनन्दन हैं, उनके लि
इस तुच्छातितुच्छ स्वर्णराशिका मूल्य ही क्या है
ऐश्वर्यज्ञानविहीन विशुद्ध प्रेमके आस्वादनमें ये व्रजगो
गोपसुन्दरियाँ तो तन्मय हैं। उनके लिये व्रजेन्द्रनन्द
तत्त्वतः क्या हैं, इसके अनुसंधानकी आवश्यकता नह
क्योंकि वस्तुस्थिति तो अनुसंधानकी अपेक्षा नहीं रखत
वह तो जो है, वह रहेगी ही। ये व्रजेन्द्रनन्दन ही
आत्माके आत्मा हैं, प्रियोंके भी प्रियतम हैं; इन्हींके लि
देहादि भी प्रिय है, इनसे प्रेम करनेमें ही जीवनकी प
सार्थकता है—शेषशायी पुरुषके रूपमें व्रजेन्द्रनन्दनने ही
यह कहा है—

अहमात्माऽऽत्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि।
अतो मयि रतिं कुर्याद् देहादिर्यत्कृते प्रियः॥

(श्रीमद्भा० ३। ९। ४

ऐसे इन स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनको पाकर इनके प्र
अपना मन-प्राण न्योछावर कर देनेवाले व्रजपुरवासियों
लिये तो कुबेरका वैभव अत्यन्त नगण्य है। वे भला इ
तुच्छ वस्तुको क्या आदर दें?

इस तरह व्रजेन्द्रनन्दनका अन्नप्राशन-संस्कार समाप्त हुअ
उस दिनकी संध्या आयी, रात्रि आयी, फिर नूतन प्रभ
आया। जननी यशोदा एवं व्रजवासियोंके लिये ये आठ प
क्षणके समान बीत गये। जननी तो आठों पहर श्रीकृष्णचन्द्र
मुख ही देखती रही हैं। एक दिनसे नहीं, पाँच मह
इक्कीस दिन हो गये हैं। इतने दिनसे वे निरन्तर पुत्रकी छ
देखती आयी हैं और बलिहार जाती रही हैं—

जननी देखि छबि, बलि जाति।
जैसैं निधनी धनहिं पाएँ, हरष दिन अरु राति॥
बाल-लीला निरखि हरषति, धन्य-धन्य ब्रजनारि।
निरखि जननी-बदन किलकत, त्रिदस-पति दै तारि॥
धन्य नँद, धनि धन्य गोपी, धन्य ब्रज कौ बास।
धन्य धरनी-करन-पावन-जन्म सूरजदास॥

श्रीकृष्णकी मनोहर बाललीलाएँ

निर्मल चन्द्रज्योत्स्नासे उद्भासित नन्द-प्राङ्गणमें व्रज-पुरन्ध्रियोंके तालबन्धपर श्रीकृष्णचन्द्र नृत्य कर रहे हैं—

निर्मञ्छनं तव भजाम कुलेश-लाल्य!
बाल्यातिमोहन! बलानुज! नृत्य नृत्य।
इत्यङ्गनाभिरुदितस्थि थि थि थि थीति
क्लृप्तेन तालवलयेन हरिर्ननर्त्त॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

'व्रजेशदुलारे! अपनी बाल्यचेष्टासे विमोहित करनेवाले! हम सब तेरी बलिहार जायँ। तू नाच दे! नाच दे! बलराम-अनुज! यह ले—'थेई थेई थेई तत्त थेई '—इस प्रकार मनुहार करती हुई व्रजसुन्दरियाँ ताल देने लगीं एवं श्रीकृष्णचन्द्र नाचने लगे।

आजसे पंद्रह दिवस पूर्व, अशोक-आलवाल (थाल्हे)-में अर्घ्य समर्पण करते हुए, वृक्षशाखाकी ओटसे व्रजेन्द्रमहिषीने अपने नीलमणिका सर्वप्रथम नृत्य देखा था—

हरि अपनैं आँगन कछु गावत।
तनक-तनक चरननि सौं नाचत, मनहिं मनहिं रिझावत॥
बाहँ उठाइ काजरी-धौरी गैयनि टेरि बुलावत।
कबहुँक बाबा नंद पुकारत, कबहुँक घर मैं आवत॥
माखन तनक आपनैं कर लै, तनक बदन मैं नावत।
कबहुँ चितै प्रतिबिंब खंभ मैं, लौनी लिए खवावत॥
दुरि देखति जसुमति यह लीला, हरष अनंद बढ़ावत।
सूर स्याम के बाल-चरित, नित नितही देखत भावत॥

जननी अशोक-पूजन भूल गयीं। अर्घ्यपात्र हाथोंमें ही रह गया। निर्निमेष नयनोंसे नीलमणिका अद्भुत अस्फुट गायन, रुनझुन-रुनझुन तालसमन्वित नर्तन देखती हुई न जाने कितने समयके लिये वे आत्मविस्मृत हो गयीं।

इसके दूसरे दिन प्राणोंकी उत्कण्ठा लिये व्रजेन्द्र आये। पुत्रका वह मनोहर नृत्य उन्होंने देखना चाहा, किंतु पिताको देखकर श्रीकृष्णचन्द्र किंचित् संकुचित होने लगे। जननीने उन्हें गोदमें उठा लिया, कपोलोंको बारम्बार चूमकर वात्सल्यकी धारामें स्नान कराने लगीं। जब इस रसधारामें वह संकोच बह चला, तब जननी उन्हें पुनः मणिभूमिपर खड़ा करके प्रोत्साहन देने लगीं—

बलि-बलि जाउँ मधुर सुर गावहु।
अबकी बार मेरे कुँवर कन्हैया, नंदहि नाचि दिखावहु॥
तारी देहु आपने कर की, परम प्रीति उपजावहु।
आन जंतु-धुनि सुनि कत डरपत, मो भुज कंठ लगावहु॥
जनि संका जिय करौ लाल मेरे, काहे कौं भरमावहु।
बाहँ उचाइ काल्हि की नाईं, धौरी धेनु बुलावहु॥
नाचहु नैंकु, जाउँ बलि तेरी, मेरी साध पुरावहु।
रतन-जटित किंकिनि पग-नूपुर, अपनैं रंग बजावहु॥
कनक-खंभ प्रतिबिंबित सिसु इक, लवनी ताहि खवावहु।
सूर स्याम मेरे उर तैं कहुँ टारे नैंकु न भावहु॥

बस, जननीका प्रेमनिर्बन्ध और पिताके प्राणोंकी लालसा—दोनोंने श्रीकृष्णचन्द्रको नचा ही तो दिया। नूपुरकी रुनझुन-रुनझुन तालपर करताली देते हुए वे नाचने लगे। उनके साथ व्रजेन्द्रका मन भी नाचने लगा। इतना ही नहीं, शरीरसे सर्वथा निकलकर व्रजेन्दका मन उस नूपुरध्वनिमें ही मानो विलीन हो गया। मन-शून्य व्रजेन्द्र प्रवालस्तम्भपर अपने शरीरका भार दिये, अपलक नेत्रोंमें उस छबिको भरे एक पहरके लिये अन्य सब कुछ भूल गये।

अब तो व्रजपुरमें यह लहर-सी दौड़ गयी। दल-की-दल व्रजवनिताएँ श्रीकृष्णचन्द्रका यह नृत्य देखने आने लगीं। श्रीकृष्णचन्द्र भी मुक्तहस्त होकर अपनी यह मधुरिमा वितरण कर रहे थे। केवल इतना ही नहीं, वे इसपर अन्य अनेक बाल्यसुलभ चेष्टाओंकी पुट भी लगा देते थे। मानो श्रीकृष्णचन्द्रकी शैशवधारा क्रमशः गम्भीर होती जा रही थी—पहले बुद्बुदे उठे, फिर धारा फेनिल हो उठी, इसके बाद उनके वक्षःस्थलपर तरंगे नृत्य करने लगीं और फिर उसमें आवर्त (भँवर) बन गये। इस प्रकार पहले उनके मुखारविन्दसे अस्फुट स्खलित शब्द निस्सरित हुए, पश्चात् उज्ज्वल हास्यरञ्जित तोतली वाणी निकली; फिर मधुर गायन-नर्तन आरम्भ हुआ और पुनः ये नृत्यगीत अत्यन्त मनोहर बाल्यभङ्गिमाओंसे सम्पुटित होने लगे। एक अद्भुत लीलामृतधारा व्रजपुरमें प्रवाहित हो रही थी। इस धाराका, इसके एक कणका आस्वाद इन्दिरा तो स्वप्नमें भी न पा सकीं; किंतु व्रजवनिताएँ अञ्जलि भरकर पान कर रही थीं—

इसमें अवगाहन कर रही थीं। निगम इसके स्वरूपनिर्धारणमें संलग्न थे; महेश सोच रहे थे; शेषकी समस्त युक्तियाँ समाप्त हो गयी थीं; पर किसीने भी पार नहीं पाया कि यह लीला-सुधाधारा क्या, कैसी, कितनी अद्भुत है। ओह! रूपयौवनभारसे दबी किन्नरियाँ जिन्हें कभी न देख पायीं, वीणाकी झंकारसे विश्वको विमोहित करनेकी सामर्थ्य रखनेवाली गन्धर्वाङ्गनाओंके दृष्टिपथमें जो कभी न आये, पातालके सुरदुर्लभ वैभवकी अधिकारिणी नागतरुणियाँ जिनका कभी अनुसंधान न पा सकीं, उन श्रीकृष्णचन्द्रको गोबर पाथनेवाली आभीरबालाएँ करताली दे-देकर सूत्रबद्ध कपिकी भाँति नचा रही थीं; श्रीकृष्णचन्द्र भी सर्वथा उनके भावका अनुसरण करते हुए नाच रहे थे। नृत्यमात्र नहीं, उनके प्रत्येक मनोरथकी पूर्ति—प्रत्येक आज्ञाका पालन कर रहे थे।

एक गोपी कहती—'मेरे लाल! वह पाँवड़ी उठाकर मेरे हाथोंमें दे तो दे।' यह सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र जाते, अरुण-नव-किसलय हाथोंमें व्रजेन्द्रकी वह काष्ठनिर्मित पाँवड़ी (पादुका) उठा लाते, गोपीके हाथोंमें रख देते। दूसरी गोपी कहती—'मेरे प्राणधन! शक्ति लगाकर उस पीढ़ेको तो उठा ला!' यशोदानन्दन जाकर पीढ़ेको क्रमशः अपने घुटनोंपर, फिर उदरपर रखते, फिर मन्द-मन्द गतिसे चलते हुए ग्वालिनके सम्मुख जाकर उसे रख देते। तीसरी नन्दनन्दनको पीठ-वहनके श्रमसे श्रमित-सा देखकर कहती—'मेरे हृदयधन! सोहनी (झाड़ू) किसे कहते हैं? तू जानता है? उसे तू मेरे हाथमें दे दे तो जानूँ।' नन्दनन्दन पद्मराग-निर्मित चौखटकी आड़में पड़ी सोहनीकी ओर सलोनी चितवनसे देखते हुए उसे उठा लाते और गोपाङ्गनाके हाथोंपर रख देते। चौथी पूछती—'नन्दलाल! सीढ़ीपर चढ़ तो भला!' श्रीकृष्ण वैदूर्यरचित गृहचूड़ासे संलग्न स्फटिक निःश्रेणीकी ओर दौड़ पड़ते, चढ़ने लग जाते; आनन्दसे विवश होकर अश्रुपूरित-नेत्र हुई वह ग्वालिन शीघ्रतासे पकड़ लेती, प्राङ्गणमें लाकर खड़ा कर देती।

एक आभीरबाला संकेत करती—'वह देख, नीलमणि! मयूरका नृत्य देख! अहा! कितना सुन्दर नृत्य है। तू भी उसकी तरह नाच तो सही।' ग्वालिनके मनोरथकी पूर्तिके लिये नीलमणि अपनी दोनों भुजाओंको पीठकी ओर ले जाकर फैला देते, कमर झुका देते, पीठ बङ्किम बना लेते ग्रीवा ऊपर उठा देते तथा रुनझुन-रुनझुन ध्वनि करते हु आभीरबालाकी परिक्रमा करने लगते; नन्द-प्राङ्गण गोपाङ्गनाओं तुमुल हर्षध्वनिसे निनादित होने लगता। कोई गोपबाल प्रश्न करती—'बता, मेरे लाल! भ्रमरका गुञ्जारव कैसे होत है?' उसकी बात सुनकर श्रीकृष्ण कुछ क्षण उद्यानसे उड़ उड़कर आते हुए मधुमत्त भ्रमरोंकी ओर देखते; तत्पश्चा उसीका अनुकरण करते हुए—'गूँ ऊँ ऊँ ऊँ……………' ध्व करते। गोपिकाएँ अट्टहास करने लगतीं, श्रीकृष्ण भी उन स्वरमें मानो स्वर मिलाकर हँसने लगते। कोई ग्वालि द्वारदेशतक दौड़नेकी आज्ञा देती, नीलमणि दौड़ पड़त द्वारतक पहुँचनेके पूर्व ग्वालिन अपनी ग्रीवासे हीरक-हा निकाल लेती और चौखटपर फेंक देती। ग्वालिनके प्राणोंमें स्पन्द होने लगता—'आह! अब इस हीरक-हारसे क्या प्रयोजन यशोदाके नीलमणिको ही वक्षःस्थलका हार बनाऊँगी।'

इस प्रकार व्रजवधुएँ जो-जो आदेश करतीं, वही-व श्रीकृष्णचन्द्र करते; करनेके पश्चात् तोतली बोलीमें पूछते कि 'री चतुर हूँ न?' अवश्य ही जब किसीका निर्देश पा वे उन्मान (बाट) आदि भारी वस्तु उठाने जाते और व न उठता तो रोने भी लग जाते। उनके रोते ही जननी दौ पड़तीं, हृदयसे लगाकर अरुण अधरोंका चुम्बन करने ल जातीं। इतनी छोटी आयुमें ही वे अनेक बातें सीख गये उन्हें तोतले शब्दोंमें शिशु-सुलभ मुद्रामें व्रजसुन्दरियों सुनाते, सुनाकर उनकी ओर प्रत्याशाभरी दृष्टि डालते त फिर हँसने लग जाते। व्रजसुन्दरियाँ भी उत्तरके बदले उ भुजपाशमें बाँध लेतीं। उनके (गोपसुन्दरियोंके) आनन्द पार नहीं रहता। वे तो अपना समस्त गृहकार्य, सभी सेवा शुश्रूषा भूल चुकी थीं; जागनेसे सोनेतक छायाकी त श्रीकृष्ण एवं बलरामका अनुगमन कर रही थीं। क्षुधा पिपासासे भी वे ऊपर उठने लगी थीं। श्रीकृष्णके मधुमय चरित्रोंसे निरन्तर मधुका निर्झर झरता था। वे उ पी-पीकर मत्त होती जा रही थीं। श्रीकृष्णलीला-रसपा छकी इन व्रजाङ्गनाओंके लिये अन्य समस्त अमृत-रा नित्सार हो चुकी थी। अन्य तुच्छातितुच्छ वैषयिक सुख वासना उनमें जाग्रत् होनेकी बात तो अत्यन्त दूर, योगी

मुनीन्द्र-वाञ्छित मुक्ति-सुख भी इस परमानन्दकी तुलनामें उन्हें नमक-जैसा कटु प्रतीत हो रहा था—

बनी सहज यह लूट हरिकेलि गोपीन कैं, सुपनैं ये कृपा कमला न पावै।
निगम निरधार, त्रिपुरारहु विचार रह्यौ, पचि रह्यौ सेस, नहिँ पार पावै॥
किंनरी बहुर अरु बहुर गंधरबनी पंनगनी चितवन नहिँ माँझ पावैँ।
देत करताल वे लाल गोपाल सौँ, पकर ब्रजबाल कपि ज्यौं नचावैँ॥
कोऊ कहै ललन पकराव मोहि पाँवरी, कोऊ कहै लाल बल लाऔ पीढ़ी।
कोऊ कहै ललन गहाव मोहि सोहनी, कोऊ कहै लाल चढ़ि जाउ सीढ़ी॥
कोऊ कहै ललन देखौ मोर कैसैं नचैं, कोऊ कहै भ्रमर कैसैं गुँजारैं।
कोऊ कहै पौर लगि दौर आऔ लाल, रीझ मोतीन के हार बारैं॥
जो कछु कहैं व्रजबधू सोइ सोइ करत, तोतरे बैन बोलन सुहावैं।
रोय परत वस्तु जब भारी न उठै तबै, चूम मुख जननी उर सौँ लगावैं।
बैन कहि लोनी पुनि चाहि रहत बदन हँस, स्वभुज बीच लै लै कलोलैं॥
धाम के काम ब्रजबाम सब भूल रहीं, कान्ह बलराम के संग डोलै॥
सूर गिरिधरन मधु चरित मधु पान कै, और अमृत कछू आन लागै।
और सुख रंक की कौन इच्छा करै, मुक्तिहू लौन सी खारी लागै॥

कभी स्वजनोंका आनन्दवर्द्धन करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र बाहुक्षेप करते—ताल ठोंकते। उस समय गोपिकाएँ कदाचित् कह बैठतीं—'नीलमणि! तेरी अपेक्षा तो राममें बल अधिक है।' यह सुनकर श्रीकृष्ण अपने चूर्णकुन्तलमण्डित सिरको हिला-हिलाकर असम्मति प्रकट करते। रोहिणीनन्दन राम भी अपने अनुजकी ओर देखकर हँसने लगते। गोपाङ्गनाएँ दोनोंको पुचकारकर पास खड़ा कर देतीं और स्वयं दो मण्डलोंमें विभक्त हो जातीं। एक मण्डली श्रीकृष्णको अधिक बलवान् बताती, दूसरी रोहिणीतनय रामका पक्ष-समर्थन करती। फिर तो—

बलेन सममन्योन्यं प्राबल्यं दर्शयन्निव।
ऊर्ध्वाधोभावमासाद्य सर्वा हासयति स्म सः॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

श्रीबलदाऊके साथ श्रीकृष्णचन्द्र नन्ही-सी भुजा फैलाकर लिपट पड़ते। दोनों परस्पर एक-दूसरेके प्रति अपना प्राबल्य दिखाते हुए-से कभी श्रीकृष्ण ऊपर तो राम नीचे, राम ऊपर तो श्रीकृष्ण नीचे—इस प्रकार एक परम मनोहारी अभिनव मल्ल-क्रीडाकी रचना करते। अपनी इस बाल्यमाधुरीसे व्रजसुन्दरियोंको हँसा-हँसाकर लोट-पोट कर देते। दोनों भाइयोंकी शोभा भी—वे जब कभी भी एकत्र होते—अद्भुत ही होती। ओह! स्वच्छता तो ऐसी मानो स्फटिकमणिके पार्श्वमें महामरकत हो। स्निग्धता वह, मानो पूर्णचन्द्रमण्डित जलधर-अंकुर हो। सौरभ्य, सौकुमार्य ऐसे मानो पुण्डरीक (उज्ज्वल कमल)-के सहित नीलोत्पल विकसित हुआ हो। सुखमयी ऐसी चेष्टा मानो हंसवलित यमुनालहरी हो। श्रीअङ्गकान्ति ऐसी मानो ज्योत्स्नाखण्ड-समन्वित तिमिर-अंकुर हो।

तदा स्फटिकमणिनेव महामारकतः, चन्द्रमसेव जलदाङ्कुरः, पुण्डरीकेणेव नीलोत्पलम्, हंसेनेव यमुना-तरङ्गः, ज्योत्स्नाशकलेनेव तिमिरकडम्बः।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

अस्तु! तबसे आज एक पक्ष पूर्ण हो रहा है। श्रीकृष्णचन्द्रका नृत्यदर्शन, गान-श्रवण, क्रीडावलोकन ही व्रजसुन्दरियोंकी अविच्छिन्न दिनचर्या है। अब इस समय कोजागरी (आश्विन-पूर्णिमाकी) रजनीमें जागरण करनेके मिससे वे नन्दालयमें एकत्र हुई हैं तथा महान् आश्चर्य है, आज अभीतक श्रीकृष्णचन्द्र भी निद्रित नहीं हुए। हों कैसे? उन्हें तो जगत्‌के समक्ष, जगत्‌के अनन्त योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंके सामने अपनी अप्रतिम भक्ताधीनता प्रकाशित करनी है। अपनी अतुल भृत्यवश्यताको प्रकट करते हुए ही तो वे प्रतिक्षण व्रजरामाओंके संकेतपर नित्य-नूतन बाल्यचेष्टाका विकास करते थे, व्रजको आनन्दमें निमग्न कर देते थे—

दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम्।
व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान् बालचेष्टितैः॥

(श्रीमद्भा० १०।११।९)

—फिर आज जब शत-सहस्र गोपसुन्दरियाँ अन्तर्हृदयमें श्रीकृष्णचन्द्रकी कोई नयी-सी चेष्टा देखनेकी लालसा छिपाये आ रही हैं, उस समय वे सो जायँ—यह कभी सम्भव है? वे तो उनकी वासनाकी छाया लेकर उनकी कल्पनासे भी सर्वथा परेकी एक अतिशय कमनीय बाल्यभङ्गिमा ग्रहण करने जा रहे हैं; योगमायाके सजाये हुए

रंगमंचपर अवस्थित होकर वे तो प्रतीक्षा कर रहे हैं कि गोपसुन्दरियाँ आयें और अभिनय आरम्भ हो। उनके नेत्रोंमें आज निद्रा कहाँ? इसीलिये गोपसुन्दरियाँ श्रीकृष्णचन्द्रको जागे हुए ही पाती हैं, दिनकी भाँति ही उन्हें सर्वथा निरालस्य एवं चञ्चल देखकर नचाने लग जाती हैं; श्रीकृष्णचन्द्र भी 'थेइ थेइ थेइ तत्त थेई' तालपर पद-संचालन करते हुए नाच रहे हैं।

व्रजरानी समागत गोपरामाओंकी समुचित अभ्यर्थना इस समय नहीं कर पा रही हैं, पर उन्हें देखकर उनके आनन्दका पार नहीं; क्योंकि नन्दरानी सोच रही हैं—ये जागरण रखकर श्रीनारायणका नामोच्चारण करेंगी, उतने समयतक मेरे नीलमणिको कोई विपत्ति स्पर्शतक नहीं कर सकेंगी। तृणावर्त-निधनके दिनसे जननी अत्यन्त सावधान जो रहती हैं। और तो क्या, समीरके झोकोंसे तरुपत्र प्रकम्पित होते देखकर चंचल पत्रोंकी ध्वनिमात्र सुनकर वे पुत्रको गोदमें उठा लेती हैं। केवल व्रजरानी ही नहीं, व्रजेन्द्र भी अतिशय सजग हैं। उन्होंने अपनी महती सभामें सर्वसम्मतिसे उसी दिन यह निश्चय कर लिया है—नियम बना दिया है—

गोष्ठमिदं दुष्टानामधिष्ठानं वृत्तम्।
तस्माद् गृह एव गोपनीयमिदं बालयुगलमिति॥

(श्रीगोपालचम्पू:)

—'यह गोष्ठ तो दुष्टोंका आवास बन गया है। इसलिये दोनों बालकोंको अन्तर्गृहमें ही छिपाये रखना चाहिये।' इसीलिये उस दिनसे श्रीकृष्णचन्द्र तोरणद्वारसे उस पार न जा सके। विशाल मणिमय प्राङ्गण ही तबसे उनका लीलामंच बना हुआ है। उसी मंचपर इस समय नूपुरकी स्वरलहरी झंकृत हो रही है, व्रजतरुणियाँ श्रीकृष्णचन्द्रका नृत्य देखकर तन-मन-प्राण न्योछावर कर रही हैं। अस्तु!

अचानक नृत्यका विराम करके श्रीकृष्णचन्द्र हँसने लगते हैं तथा समीपवर्ती मन्थन-गगरीकी ओर देखते हैं। गगरीमें गगनस्थ चन्द्र प्रतिबिम्बित है। इस प्रतिबिम्बने ही श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान आकर्षित किया है। अत: वे और भी समीप जाकर उसे देखते हैं। सोचते हैं—यह ऐसी सुन्दर वस्तु क्या है! फिर कुछ क्षण बाद जननीसे पूछते हैं—'री मैया! गगरीमें यह अत्यन्त उज्ज्वल क्या समाया हुआ है?' जननी पुत्रकी भोली बात सुनकर केवल उनके मुखकमल ओर देखती हैं, कोई उत्तर नहीं देतीं। उत्तर न पाक श्रीकृष्ण किंचित् दूर खड़ी हुई जननीके पास जाक अंचल पकड़कर फिर प्रश्न करते हैं। इस बार जन हँसकर कहती हैं—'मेरे लाल! यह चन्द्र-प्रतिबिम्ब है श्रीकृष्ण विस्फारितनेत्र होकर आश्चर्यमें भरकर बोले—'य चन्द्र है?' उत्तरमें जननीके मुखसे निकल पड़ा—'हाँ, प्राणधन! यह चन्द्र है।' फिर तो श्रीकृष्णके उल्लासकी सी न रही। हाथोंको नचाकर ताली पीटकर वे बोले—'मै मैया! तू इसे गगरीसे निकालकर मेरे हाथोंपर रख दे

नन्दरानी हँसने लगती हैं, व्रजसुन्दरियाँ हँस-हँसक लोट-पोट हो जाती हैं; किंतु श्रीकृष्ण जननीके अंचल छोर पकड़े बारम्बार कह रहे हैं—'री! उसे निकाल शीघ्र निकालकर मेरे हाथोंमें दे दे।' जननी पुत्रको अ बातोंमें भुलाना चाहती हैं; पर वे तो भूलते ही नहीं, बलि रोना आरम्भ करते हैं। इसी समय समीप अवस्थित प्रभाव (उपनन्दपत्नी)-को एक सुन्दर बुद्धि उपज आती है। नन्दरानीको धीरेसे कानमें संकेत कर देती हैं। संकेत कर स्वयं भंडारमें चली जाती हैं, एक विशाल नवनीतख पीठकी ओर छिपाकर ले आती हैं तथा श्रीकृष्णकी दृ बचाकर मन्थन-गगरीमें डाल देती हैं। यह हो जानेपर अंचल पुत्रकी आँखें पोंछती हुई जननी बोलीं—'अच्छा, चल, मैं हाथपर रख देती हूँ।' जननी आती हैं, गगरीके पास आ उसमें हाथ डालकर उज्ज्वल नवनीतखण्ड निकाल लेती तथा नीलमणिके हाथोंपर रख देती हैं। ओह! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दका पार नहीं—जैसे सचमुच चन्द्र ही उनके हाथमें गया हो! आनन्दमें निमग्र हुए नीलमणि गगरीकी ओर देख हैं। यद्यपि गोपिकाओंके निकट खड़े हो जानेसे प्रतिबि विलुप्त हो गया है, तथापि किंतु श्रीकृष्णचन्द्र यह सोच हैं कि चन्द्र गगरीसे निकलकर मेरे हाथोंपर आ गया है

रुदन्तमिन्दवे मन्थगर्गर्यां प्रतिरूपिणे।
पिण्डेन नावनीतेन वृद्धागर्द्धयतार्भकम्॥

(श्रीगोपालच

नवनीतपिण्ड लेकर वे आँगनमें दौड़े। उनके नन्दरानी एवं गोपिकाएँ भी दौड़ीं। पर बाहर जानेका द्वार

गोपिकाओंकी भीड़से रुद्ध है। वे बाहर जा ही कैसे सकते हैं? इसीलिये पुनः मन्थन-गगरीके ही समीप आ जाते हैं। अब भी चन्द्र गगरीमें प्रतिभासित हो रहा है। नीलमणिकी दृष्टि भी उसपर पड़ ही जाती है। बस!…………… नीलमणिने समझ लिया—जननीने मेरी वञ्चना की है, चन्द्र तो अभी भी गगरीमें ही है। उनके पङ्कजनयनोंमें रोष-मान-व्यथा भर जाती है। वे वहीं भूमिपर लोट जाते हैं, हाथ-पैर पटक-पटककर करुणक्रन्दन प्रारम्भ करते हैं।

रूठे हुए श्रीकृष्णचन्द्र जननीकी गोदमें भी नहीं उठना चाहते। किसी प्रकार जननी उन्हें वक्षःस्थलपर उठा लेती हैं। समझाती हैं—मेरे लाल! चन्द्र तो गगनमें है, गगरीमें नहीं। वह देख—

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनैं हरिहिं लिए चंदा दिखरावत।
रोवत कत बलि जाउँ तुम्हारी, देखौं धौं भरि नैन जुड़ावत॥

श्रीकृष्णचन्द्र गगनस्थ चन्द्रको देखकर चुप हो जाते हैं। वे कभी आकाशचन्द्रकी ओर, तो कभी गगरीमें प्रतिबिम्बित चन्द्रकी ओर देखने लगते हैं। उन्हें प्रतीत हो रहा है—दो चन्द्र हैं; एक गगरीमें, एक आकाशमें । जननी पुत्रका मनोभाव जान लेती हैं। समझाती हैं—'मेरे प्राणधन! देख, चन्द्र तेरा मुख देखने आता है; जब तू गगरीकी ओर देखता है, तब चन्द्र गगरीमें आ जाता है; तू आकाशकी ओर देखता है, तब आकाशमें चला जाता है।' जननीके इस उत्तरसे नीलमणिका यह समाधान तो हो जाता है कि चन्द्र एक है; पर इससे क्या हुआ? उन्हें तो चन्द्र जो चाहिये। उसे पानेके लिये वे उपाय सोचते हैं एवं चन्द्रको ला देनेके लिये जननीके सामने पुनः मचल उठते हैं—

मनहीं मन हरि बुद्धि करत हैं माता सौं कहि ताहिं मँगावत।
लागी भूख, चंद मैं खैहौं, देहि देहि रिस करि बिरुझावत॥

हठीले पुत्रको जननी बार-बार समझा रही हैं—

(आछे मेरे) लाल हो, ऐसी आरि न कीजै।
मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, जोइ भावै सोइ लीजै॥
सद माखन घृत दह्यौ सजायौ, अरु मीठौ पय पीजै।
पालागौं हठ अधिक करौ जनि, अति रिस तैं तन छीजै॥

—किंतु श्रीकृष्ण मानते नहीं। जननी समझ नहीं पातीं कि कैसे समझाऊँ। वे सोच रही हैं—गगनस्थ चन्द्रको दिखाकर मैंने भूल की—

किहिं बिधि करि कान्हहिं समुझैहौं?
मैं ही भूलि चंद दिखरायौ, ताहि कहत मैं खैहौं!

कुछ देर सोचती रहकर फिर जननी बोलीं—

अनहोनी कहुँ भई कन्हैया, देखी-सुनी न बात।
यह तौ आहि खिलौना सबकौ, खान कहत तिहिं तात॥

अच्छी बात है। खिलौना ही सही। तू इसे ला तो दे। मैं खाऊँगा नहीं, इससे खेलूँगा। मैं इस खिलौनेको लूँगा ही—श्रीकृष्णचन्द्र पहलेकी अपेक्षा भी और अधिक हठ कर बैठे—

मैया, मैं तौ चंद-खिलौना लैहौं।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं॥

अब व्रजसुन्दरियाँ एक नयी युक्ति करती हैं। निर्मल पात्रमें जल भर देती हैं। उस जलपात्रमें जननी चन्द्रका आवाहन कर रही हैं—

बार-बार जसुमति सुत बोधति, आउ चंद तोहिं लाल बुलावै।
मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, आपुन खैहै, तोहिं खवावै॥
हाथहिं पर तोहिं लीन्हे खेलै, नैंकु नहीं धरनी बैठावै।
जल-बासन कर लै जु उठावति, याही मैं तू तन धरि आवै॥

—कुछ देर इस भाँति चन्द्रको आनेके लिये बार-बार निमन्त्रितकर जननी जलपात्रको भूमिपर स्थापित कर देती हैं एवं उल्लासभरे स्वरमें कहती हैं—

लै लै मोहन, चंदा लै।
कमल नैन बलि जाउँ सुचित ह्वै, नीचैं नैंकु चितै॥
जा कारन तैं सुनि सुत सुंदर, कीन्ही इती अरै।
सोइ सुधाकर देखि कन्हैया, भाजन माहिं परै॥
नभ तैं निकट आनि राख्यौ है, जल-पुट जतन जुगै।
लै अपने कर काढ़ि चंद कौं जो भावै सो कै॥
गगन-मँडल तैं गहि आन्यौ है, पंछी एक पठै।
सूरदास प्रभु इती बात कौं, कत मेरौ लाल हठै॥

इस बार श्रीकृष्णचन्द्रका मनोरथ मानो पूर्ण हो गया, वे आनन्दमें भर जाते हैं; क्योंकि जलपात्रमें उन्हें चन्द्रके स्पष्ट दर्शन हो रहे हैं। वे गोदसे उतरकर चन्द्रको पकड़नेके उद्देश्यसे अपने दोनों हस्तकमल जलपात्रमें डाल देते हैं। झलमल-झलमल करती हुई चन्द्र-परछाई विलीन हो जाती है। ठीक उसी समय योगमायाप्रेरित एक शुभ्र मेघखण्ड

आकाशचन्द्रको आच्छादित कर लेता है। श्रीकृष्णचन्द्र दृष्टि फिराकर आकाशकी ओर देखते हैं—वहाँ भी चन्द्र नहीं है। जननीसे पूछते हैं—'री मैया! चन्द्र कहाँ चला गया?' मैया उत्तर देती हैं—'मेरे लाल! तू उसे हाथोंसे पकड़ना चाहता था, तुझसे डरकर वह पातालमें भाग गया।' 'पाताल क्या है?' —श्रीकृष्णने अतिशय आश्चर्यमें भरकर बड़ी उतावलीसे पूछा। जननीको अब कहीं पुत्रको भुलानेका सूत्र प्राप्त हुआ। वे बोलीं—'मेरे नीलमणि! पातालकी बड़ी सुन्दर कथा है; चल, तुझे पातालकी कथा सुनाऊँ।'

—यह कहती हुई नन्दरानी नीलमणिको हृदयसे लगाकर शय्या-मन्दिरकी ओर चल पड़ती हैं।

व्रजसुन्दरियाँ, हम कोजागरीका जागरण करने आयी हैं—यह कहकर आयी थीं। अतः वे व्रजेन्द्रके नारायणमन्दिरकी ओर चली जाती हैं। वहाँ जाकर वे जागरण कर भी रही हैं, पर उनके नयन-मन-प्राणोंमें तो श्रीकृष्णचन्द्र छाये हैं। इसलिये वे नारायणका नामोच्चारण तो भूल गयी हैं। उसके बदले परस्पर एक दूसरीको अपने चित्तकी दशा सु रही हैं। एक गोपसुन्दरी अपनी दशा बता रही है—

मैं देख्यौ जसुदा कौ नंदन, खेलत आँगन बारौ री।
ततछन प्रान पलटि गयौ मेरौ, तन-मन ह्वै गयौ कारौ री॥
देखत आनि सँच्यौ उर अंतर, दै पलकनि कौ तारौ री।
मोहिं भ्रम भयौ सखी, उर अपनैं चहुँ दिसि भयौ उज्यारौ री॥
जौ गुंजा सम तुलत सुमेरहिं, ताहू तैं अति भारौ री।
जैसैं बूँद परत बारिधि मैं, त्यौं गुन ज्ञान हमारौ री॥
हौं उन माहँ कि वै मोहिं महियाँ, परत न देह सँभारौ री।
तरु मैं बीज कि बीज माहँ तरु, दुहुँ मैं एक न न्यारौ री॥
जल-थल-नभ-कानन-घर-भीतर, जहँ लौं दृष्टि पसारौ री।
तितही तित मेरे नैननि आगैं निरतत नंद-दुलारौ री॥

मणिस्तम्भ-लीला (प्रथम नवनीत-हरण-लीला)

ग्वालिनने प्रत्याशाभरी आँखोंसे व्रजरानीकी ओर देखा। कदाचित् कोई-सा कार्यभार वे मुझे पुनः सौंप दें, कुछ क्षण यहाँ और रुक जानेका मिस हो जाय, श्रीकृष्णचन्द्रका सौन्दर्य निहारकर मैं शीतल होती रहूँ—अन्तस्तलके ये आकुल भाव उसके नेत्रोंकी ओटसे झाँक रहे थे। इधर रन्धनशालाके द्वारपर अवस्थित व्रजरानी भी सोच रही थीं—क्या करूँ? किसकी सहायता लूँ? रोहिणीजी तो समागत ब्राह्मणोंकी सेवा-सत्कारमें लगी हैं, परिचारिकाएँ गोष्ठसे आये हुए दुग्धपूरित कलशोंको यथास्थान रखनेमें अत्यन्त व्यस्त हैं, व्रजेश्वर नारायण-सेवामें संलग्न हैं, शीघ्र ही भोग-सामग्रियोंको नारायणमन्दिरमें पहुँचा देनेका आदेश भी आ चुका है, दधि-मन्थनका कार्य अधूरा छोड़कर मैं उठ भी आयी; पर मेरा नीलमणि स्तन्यपानके लिये अंचल पकड़े खड़ा है, स्तन्यपानके लिये मचल रहा है। इसे दूध पिलाकर, पुनः वस्त्रपरिवर्तन कर मैं रन्धनशालामें तो चली जाऊँगी; किंतु इस आधे मथे दहीसे माखन तो निकला नहीं। विलम्ब होनेपर तो निकलेगा ही नहीं। फिर पद्मगन्धा कजरीसे दूधका सद्योमथित नवनीत आज मैं अपने नीलमणिको कैसे दे पाऊँगी? अच्छा, इस ग्वालिनसे बिलोनेको कह दूँ क्या……? बस, दो हृदयकी ये चंचल धाराएँ अज्ञात चेतनाके धरातलपर जा मिलीं, व्रजरानी उस गोपसुन्दरी ओर दृष्टि फेरकर कह ही तो उठीं—

पाहुनी, करि दै तनक मह्यौ।
हौं लागी गृह-काज-रसोई, जसुमति बिनय कह्यौ।
आरि करत मनमोहन मेरो, अंचल आनि गह्यौ॥

अब तो उसके हर्षका पार नहीं। आनन्दमें निमग्न व मथानीकी ओर चली। अवश्य ही उसकी दृष्टि मथानी नहीं देख पा रही है, दृष्टि तो यशोदारानीके अङ्कमें विरा श्रीकृष्णचन्द्रके रूपसे भरी है। वह कुञ्चित केशकल ललाटका वह केसरबिन्दु, रतनारे चंचल नयन, सुढार कपोल, अरुणिम अधर, कठुलाभूषित कम्बुकण्ठ, व्याघ्रनख वक्षःस्थल, सुन्दर नाभिकमल, किङ्किणी-भूषित कटि सुकोमल छोटे बाहुयुगल, हस्तकमल, सुन्दर मनोहर गुल्फ, चरणतल—गोपसुन्दरीके नेत्रमें तो ये भरे हैं; म समा सके, इतना अवकाश नेत्रोंमें कहाँ। इसीलिये अनुमा मथानीके समीप वह जा तो पहुँची, पर देख न पा कि कहाँ क्या है। आते ही दधिभाण्डसे चरणोंका वे स्पर्श हुआ, वह दधिपात्र उलटा हो गया, दहीकी धारा चली। गोपसुन्दरीने हाथसे टटोलकर केवल यह समझा मटका तिरछा हो गया है, अपनी जानमें सीधा करके

बिलोने चली। प्रेमविवश हुई ग्वालिन यह नहीं जानती कि वह रीते पात्रमें ही मन्थनदण्ड चला रही है, दही तो बाहर बह गया है—

ब्याकुल मथति मथनियाँ रीती, दधि भुव ढरकि रह्यौ॥

यशोदारानीने भी तब जाना कि जब श्रीकृष्णचन्द्र स्तन्यपानसे विरत होकर हँसते हुए-से उस ग्वालिनकी ओर देखने लगे, जननीको उस ओर देखनेके लिये इङ्गित करने लगे। अन्यथा जननी तो बिलोनेका आदेश देकर अपने नीलमणिमें ऐसी उलझ गयी थीं कि अन्य सब कुछ विस्मृत हो गया था। वे तो अपने नीलमणिको स्तन्यदान करनेमें तन्मय हो रही थीं। श्रीकृष्णचन्द्रने ही उन्हें जगाया तथा जागकर जननीने देखा—हैं! माखन तो बहता जा रहा है! जननीने पुकारकर कहा—'री सखी! अपनेको सँभाल!' अब कहीं जाकर व्रजसुन्दरीको मथानीकी, दधिपात्रकी वास्तविक अवस्थाका भान हुआ; फिर तो संकोच-लज्जामें वह बह चली। व्रजरानीको भी संकोच हुआ कि इसकी सुख-समाधि मैंने तोड़ दी—

माखन जात जानि नँदरानी, सखी सम्हारि कह्यौ।
सूर स्याम-मुख निरखि मगन भई, दुहुनि सँकोच सह्यौ॥

इसके दूसरे दिनकी बात है। ग्वालिन पुनः नन्दभवनमें आयी। आकर देखा—व्रजेश्वरी दूध पीनेके लिये अपने नीलमणिकी मधुर मनुहार कर रही हैं। अग्रज बलराज भी समीप ही बैठे हैं। उन्होंने तो जननीका लाड़ स्वीकारकर दूध पी लिया, किंतु हठीले श्रीकृष्णचन्द्र नहीं पीते। अन्तमें जननी बड़ी ही आकर्षक युक्ति अपने पुत्रके सामने रखती हैं—

कजरी कौ पय पियहु लाल, जासौं तेरी बेनि बढ़ै।
जैसैं देखि और ब्रज बालक, त्यौं बल-बैस चढ़ै॥

तथा इस प्रलोभनमें श्रीकृष्णचन्द्र फँस ही जाते हैं। कजरीके दुग्धपानसे मेरी वेणी बड़ी लंबी हो जायगी, इस उल्लासमें भरकर वे दूध पीने लग जाते हैं; किंतु साथ-साथ अपने घनकृष्ण केशोंपर हाथ रखकर देखते जा रहे हैं कि वेणी वास्तवमें बढ़ी या नहीं। जब बढ़ती नहीं दीखती, तब उन्हें अपनी जननीकी वञ्चनाका भान होता है। उस समय उनके मुखारविन्दपर नाचती हुई विविध भावलहरियोंकी शोभा देखने ही योग्य है। पराजयका रोष, अब भविष्यमें दुग्धपानसे विरत होनेकी भावना, जननीके प्रति अविश्वास, क्षुधाकी निवृत्ति, दुग्धपानजन्य स्वाभाविक तृप्ति—ये सब एक साथ उनके कमनीय मुखकमलपर व्यक्त हो रहे हैं। यशोदारानी हँसी संवरण न कर सकीं—

पुनि पीवत हीं कच टकटोरत, जूँठहि जननि रढ़ै।
सूर निरखि मुख हँसति जसोदा, सो सुख उर न कढ़ै॥

अपनेको भूली-सी रहकर ग्वालिन यह दृश्य देख रही थी! इतनेमें जननीसे रूठे हुए श्रीकृष्णचन्द्र वहाँसे उठकर उसके समीप आकर खड़े हो गये। ग्वालिनका उनके शरीरसे किंचित् स्पर्श हो गया, फिर तो वह बाह्यज्ञान-शून्य हो गयी। जब चेतना हुई, तब घरके लोगोंने उसे बताया, पूरे आठ पहर वह प्रस्तर-प्रतिमाकी भाँति निस्पन्द बैठी थी। किंतु वह नन्दभवनसे अपने आवासमें कैसे चली आयी, यह प्रश्न किसीके मनमें उदय न हुआ; स्वयं ग्वालिनने भी इसका रहस्य न जाना। जाननेका अवकाश ही जो न था। वह तो निरन्तर देख रही थी—व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र दुग्धपान कर रहे हैं एवं वेणी बढ़ी कि नहीं, इसकी परीक्षा कर रहे हैं। जब समाधिसे बाहर आयी, तब भी झाँकी नेत्रोंके सामने बनी ही थी; चिर अभ्यासवश आधी घड़ीमें ही उसने आवश्यक गृहकार्यकी व्यवस्था कर दी और नन्दभवनकी ओर दौड़ चली। अस्तु—

आज तीसरे दिन वह पुनः आयी है तथा देख रही है—विविध पक्वान्न-मिष्टान्न थालोंमें सजाकर सामने रखकर व्रजेश्वरी श्रीकृष्णचन्द्रको लाड़ लड़ा रही हैं; किंतु पक्वान्न भोजन करनेकी बात तो दूर, श्रीकृष्णचन्द्र उस ओर ताक भी नहीं रहे हैं, बल्कि खीझकर कह रहे हैं—

मैया री, मोहिं माखन भावै।
जो मेवा पकवान, कहति तू, मोहिं नहीं रुचि आवै॥

वह गोपसुन्दरी श्यामसुन्दरके ठीक पीछे खड़ी है; श्रीकृष्णचन्द्रके मधुर वचनोंसे अमृत झर रहा है, उसे पीकर वह मत्त होती जा रही है। इस मत्तताके आवेशवश ही उसके अन्तस्तलमें आज सहसा एक वासना जाग उठती है—'क्या श्रीकृष्णचन्द्र कभी मेरे घर चलेंगे, मेरे घरका नवनीत ग्रहण करेंगे? पर मेरे सामने रहनेपर तो ये संकुचित हो जायँगे! अतः मैं तो दधि-मन्थन करके छिप जाऊँ और तब ये मथानीके समीप जायँ, वहाँ बैठकर यथारुचि माखन आरोगें; मैं यह देखकर निहाल हो जाऊँ। मेरे नेत्रोंकी यह साध कभी पूरी होगी क्या?'

ग्वालिन तो अपनी जानमें अपने मनमें मनोरथचित्र अंकित कर रही है, पर ये अंकित हो रहे हैं अनन्तैश्वर्य-निकेतन, भक्तवाञ्छाकल्पतरु, प्रेमके भूखे, सर्वान्तर्यामी स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मनःपटलपर—

बैठैं जाइ मथनियाँ कैं ढिग, मैं तब रहौं छपानी।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, ग्वालिनि मन की जानी॥

इस मनोरथके प्रवाहमें ग्वालिनका मन ही नहीं, शरीर भी मानो बह चला। सहसा वह नन्दभवनसे लौट पड़ी, अपने घर आ पहुँची। जाते समय दधिमन्थन किये बिना ही चली गयी थी। अब आकर यन्त्र-परिचालितकी भाँति दही बिलोने लग जाती है। रह-रहकर उसे ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो श्रीकृष्णचन्द्र उसके द्वारपर पधारे हैं; अचकचाकर वह कभी-कभी विस्फारित नेत्रोंसे द्वारकी ओर देखने भी लग जाती है, परंतु द्वार सूना पाकर पुनः अपने भावोंमें विभोर हो जाती है। उसे यह पता नहीं कि मनोरथतन्तुमें बँधे, आकृष्ट होते हुए वाञ्छाकल्पतरु स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र वास्तवमें ही उसके घरकी ओर चल पड़े हैं।

सचमुच ज्यों ही गोपसुन्दरी नेत्रोंसे ओझल हुई कि बस, श्रीकृष्णचन्द्र जननीकी गोदसे कूदकर बाहरकी ओर भाग चले। जननीने लपककर थाम तो लिया, पर अतिशय चेष्टा करके भी आज पक्वान्न-मिष्टान्न वे उन्हें न खिला सकीं। केवल किंचित् माखन ही मुखमें डाल सकीं। आज क्षणभरका भी विलम्ब श्रीकृष्णचन्द्रको सर्वथा असह्य हो रहा है। वे हाथ छुड़ाकर आखिर भाग ही गये। यशोदारानीको भी आश्चर्य हो रहा है; क्योंकि नीलमणिको बाहर जानेके लिये इतना अधिक व्यग्र उन्होंने पहली बार देखा है। अस्तु—

श्रीकृष्णचन्द्र क्षणभरमें ही गोपसुन्दरीके घरपर चले आये—

गए स्याम तिहिं ग्वालिनि कैं घर।
देख्यौ द्वार नहीं कोउ, इत-उत चितै, चले तब भीतर॥

बलराम एवं अन्य गोपबालक घरसे उनके साथ अवश्य चले थे; किंतु पथमें सभी पीछे रह गये, भ्रान्त होकर दूसरी ओर बढ़ गये। श्रीकृष्णचन्द्र निर्बाध एकाकी ग्वालिनके घरपर आये हैं। ग्वालिनने द्वारकी ओर देखा—हैं! नन्दनन्दन तो मेरे द्वारपर खड़े हैं। ओह! यह रूप! ग्वालिनके प्राणोंमें स्पन्दन होने लगता है, लेकिन क्षणभरका भी विलम्ब मनोरथको तोड़ देगा! ग्वालिन विद्युत्-गतिसे मणिस्तम्भकी ओटमें अपनेको छिपा लेती है—

हरि आवत गोपी जब जान्यौ, आपुन रही छपाइ।

तथा श्रीकृष्णचन्द्र चुपचाप भीतर प्रवेश कर जाते हैं, मथानीके निकट जाकर शान्त-मौन होकर बैठ जाते हैं—

सूनें सदन मथनियाँ कैं ढिग, बैठि रहे अरगाइ॥

ओह! उस समय उनकी अतुलित शोभा निहारकर गोपसुन्दरीका अणु-अणु मानो झंकार कर उठता है—

मुख पर चंद डारौं वारि।
कुटिल कच पर भौंर वारौं, भौंह पर धनु वारि॥
भाल-केसरि-तिलक छवि पर मदनसर सत वारि।

× × ×

मीन खंजन मृगज वारौं, कमल के कुल वारि॥

× × ×

झलक ललित कपोलछबि पर, मुकुट सत सत वारि॥
नसिका पर कीर वारौं, अधर बिद्रुम वारि।
दसन पर कन बज्र वारौं, बीज दाड़िम वारि॥
चिबुक पर चितबित्त वारौं, प्रान डारौं वारि।
'सूर' हरि की अंगसोभा, को सकै निरवारि।

किंतु अब वह सौन्दर्यसागर मानो तरंगित हो उठता है। श्रीकृष्णचन्द्र ग्वालिनके मनोरथकी पूर्ति करते हुए नवनीत-हरणकी लीला करने चलते हैं। उनके पास ही नवनीतपू एक पात्र पड़ा है। चंचल नेत्रोंसे एक बार वे द्वारकी ओ देखते हैं तथा फिर पात्रमेंसे माखन निकालकर खाने लग हैं। सहसा मणिस्तम्भमें उन्हें अपना प्रतिबिम्ब दीख पड़ है। उन्हें प्रतीत होता है कि मेरे आनेसे पूर्व एक अन्य शि यहाँ आया है, मणिस्तम्भसे सटकर खड़ा है। श्रीकृष्णचन्द्र यह भय होने लगता है कि कहीं यह मेरी चोरी प्रकट कर दे। वे उसे प्रलोभित करने लगते हैं। उससे कह हैं—'भैया! देख, तू किसीसे मेरी बात बता न देना, भ आजसे हम दोनों साथी हुए, हम लोग सभी वस्तु आधी आधी बाँट लेंगे। यह ले, मैं खा रहा हूँ; तू भी खा!' कहकर श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथोंसे नवनीत उठाकर प्रतिबिम्ब मुखमें डाल देते हैं। तत्क्षण माखन नीचे गिर जाता है! सोचते हैं, शिशु रूठा हुआ है। उसे पुनः समझाते हैं—'अ तू फेंक क्यों दे रहा है? बावला हो गया है! नहीं भैया, ठीक नहीं; तू भी खा ले, मैं भी खाऊँ। अच्छा, बाँट खायगा? ले, यह एक लौंदा तेरे हाथपर, एक मेरे हाथपर। तूने फिर गिरा दिया! क्या सब लेना चाहता है? नहीं-नहीं,

तो उचित नहीं। अच्छा, अब तू मान जा, खा ले; कितना मीठा है! यदि तुझे भी अत्यन्त रुचिकर लगे तो मैं कमोरी भरकर तुझे माखन दूँ।'

नन्दनन्दनकी यह मुग्ध चेष्टा देखकर ग्वालिनके हृदयमें प्रेम-समुद्र लहराने लगता है, रसतरंगोंके आवेगसे धैर्यका बाँध टूट जाता है। आनन्दपूरित हँसीके रूपमें तरंगें मुखसे बाहर आ जाती हैं, ग्वालिन स्तम्भकी ओटसे मुख निकालकर हँसने लगती है। बस, फिर तो यवनिका गिर गयी। दृश्य परिवर्तित हो गया। श्रीकृष्णचन्द्रने ग्वालिनको देख लिया। एक अप्रतिम सुमधुर संकोचकी छाया नन्दनन्दनके मुखचन्द्रको आवृत कर लेती है, साथ ही वे तुरंत उठकर कुञ्जवीथीकी ओर भाग चलते हैं—

आजु सखी मनि-खंभ निकट हरि, जहँ गोरस कौं गो री।
निज प्रतिबिंब सिखावत ज्यौं सिसु, प्रगट करै जनि चोरी॥
अरध बिभाग आजु तैं हम-तुम, भली बनी है जोरी।
माखन खाहु कतहिँ डारत हौ, छाँड़ि देहु मति भोरी॥
बाँट न लेहु, सबै चाहत हौ, यहै बात है थोरी।
मीठौ अधिक, परम रुचि लागै, तौ भरि देउँ कमोरी॥
प्रेम उमँगि धीरज न रह्यौ, तब प्रगट हँसी मुख मोरी।
सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख, भजे कुंज की खोरी॥

ओह! जिनसे इस जगत्‌का सृजन, संस्थान, संहार है, जिनकी सत्तापर ही जगत्‌की सत्ता अवलम्बित है, जगत्‌का अवसान हो जानेपर भी जो अक्षुण्ण रहते हैं, जो सर्वज्ञ हैं, अखण्ड अबाध ज्ञानसम्पन्न हैं, स्वयंप्रकाश हैं, जो अपने संकल्पमात्रसे पद्मयोनिमें वेदज्ञानका विस्तार करते हैं, जिनके सम्बन्धमें योगीन्द्र-मुनीन्द्र विमोहित हो जाते हैं, जिनके ज्ञानमय प्रकाशसे माया सदा निरस्त रहती है, उनका अपने प्रतिबिम्बसे मोहित हो जाना कितना आश्चर्यमय है! जिस मायासे मोहित होकर जगत्‌के मूढ प्राणी 'मैं-मेरे' का प्रलाप कर रहे हैं, वही माया जिनके दृष्टिपथमें ठहर भी नहीं पाती, लज्जित होकर भाग खड़ी होती है—

विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया।
विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः॥

(श्रीमद्भा० २। ५। १३)

—उनका मणिस्तम्भमें अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर भ्रमित हो जाना कितना मोहक है! ओह! जिन विराट्‌के कटिसे ऊपरके भागमें भूलोक, नाभिमें भुवर्लोक, हृदयमें स्वर्लोक, वक्षःस्थलमें महर्लोक, ग्रीवामें जनलोक, स्तनोंमें तपोलोक एवं मस्तकमें सत्यलोककी कल्पना है, कटिदेशमें अतल, ऊरुओंमें वितल, जानुओंमें सुतल, जंघाओंमें तलातल, गुल्फोंमें महातल, एड़ियोंमें रसातल एवं पादतलमें पाताल कल्पित है; जिन विराट्‌के मुखसे वाणी एवं अग्नि उत्पन्न हुए; गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, पंक्ति एवं जगती—ये सात छन्द जिनकी सात धातुओंसे निर्गत हुए; हव्य, कव्य, अमृतमय अन्न, समस्त रस, रसनेन्द्रिय एवं वरुण जिनकी जिह्वासे निस्सृत हुए; पञ्चप्राण एवं वायु जिनके नासाछिद्रोंसे उद्भूत हुए; अश्विनीकुमार, ओषधिसमुदाय, मोद (साधारण गन्ध), प्रमोद (विशेष गन्ध) जिन विराट्‌की घ्राणेन्द्रियसे उत्पन्न हुए; रूप एवं तेज जिनके नेत्रेन्द्रियसे निकले; सूर्य एवं स्वर्ग जिनके नेत्रगोलकसे प्रकट हुए; समस्त दिशाएँ, समस्त तीर्थ जिनके कर्णयुगलसे व्यक्त हुए; आकाश एवं शब्द जिनके श्रोत्रेन्द्रियसे निकले; जिन विराट्‌का शरीरसंस्थान समस्त वस्तुओंका सारस्वरूप एवं समस्त सौन्दर्यका भाजन है; जिनकी त्वचासे सारे यज्ञ, स्पर्श एवं वायु निकले; जिनके रोमसे यज्ञके उपकरणभूत समस्त उद्भिज्ज उद्भूत हुए; जिनके केश, श्मश्रु (दाढ़ी-मूँछ) एवं नखोंसे मेघ, विद्युत्, शिला तथा लोह प्रकट हुए; जिनकी भुजाओंसे रक्षक लोकपाल आविर्भूत हुए; जिनका पदसंचालन '**भूः, भुवः, स्वः**'—त्रिलोकका निर्माण कर देता है; जिनके भयहारी चरणकमल अप्राप्तकी प्राप्ति एवं प्राप्तकी रक्षा कर देते हैं, समस्त कामनाओंकी पूर्ति कर देते हैं; जो विराट् जल, वीर्य, सर्ग, पर्जन्य, प्रजापति, कामसुख, यम, मित्र, मलत्याग, हिंसा, निर्ऋति, मृत्यु, निरयके उद्गम हैं; जिनके पृष्ठदेशसे पराजय, अधर्म, अज्ञान उद्भूत हुए; जिनकी नाड़ियोंसे नद-नदी-समूहका निर्माण हुआ; जिनके अस्थिसंस्थानसे पर्वतश्रेणियाँ निर्मित हुईं; जिनके उदरमें मूलप्रकृति रस नामक धातु, समुद्र, समस्त प्राणी-समुदाय, प्राणियोंका निधन समाया हुआ है; जिनके हृदयसे मनकी अभिव्यक्ति हुई; जिनका चित्त ब्रह्मा, शंकर, नारद, धर्म, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमारका आश्रय है, विज्ञान एवं अन्तःकरणका आधार है; अधिक क्या, जिन विराट्‌की ही अभिव्यक्ति ये ब्रह्मा, शंकर, नारद, सनकादि हैं; सुर, असुर, नर, नाग हैं; खग, मृग, सरीसृप हैं; गन्धर्व, अप्सराएँ हैं; यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, सर्प हैं; जिनकी मूर्तिमें पशु हैं,

पितर हैं, सिद्ध हैं, विद्याधर हैं, चारण हैं, द्रुमपुञ्ज हैं; जिन विराट्‌की परिणति नभ-जल-थलवासी विविध जीव हैं, जिन विराट्‌के ही रूप ग्रह, नक्षत्र, केतु, तारावलि, तडित्, मेघ हैं; अतीत, वर्तमान एवं भविष्यके विश्व जिनके रूप हैं;* उन विराट्पुरुषके भी स्रष्टा स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रका यह नवनीत-हरण, यह मुग्धभाव, यह शैशव-नाट्य कितना विस्मित कर देनेवाला है! भक्तवत्सलताका ऐसा निदर्शन व्रजेन्द्रनन्दनके अतिरिक्त और कहीं है क्या? व्रजेन्द्रनन्दन! यशोदाप्राणधन! श्रीकृष्णचन्द्र! बलिहारी है तुम्हारी ऐसी मुनिमनहरणी मोहिनी भक्तसर्वस्वदायिनी लीलाकी!

वह बड़भागिनी गोपसुन्दरी तो आनन्दातिरेकवश आत्मविस्मृत-सी हो गयी—विक्षिप्त-सी हुई घरसे बाहर निकल पड़ी। उसकी यह अत्यन्त अद्भुत विचित्र दशा देखकर अन्य गोपसुन्दरियाँ तो चकित रह गयीं। उसके रोम-रोमसे आनन्द झर रहा है, इतना तो स्पष्ट था; किंतु परमानन्दका हेतु कोई भी व्रजसुन्दरी ढूँढ़ नहीं पा रही सभी कारण पूछतीं, पर बताये कौन? ग्वालिन तो मनोराज्यमें रह रही थी। जब कभी यहाँ इस शरीरमें भी तो कण्ठको रुद्ध पाती, सखियोंको कुछ भी बत असमर्थ हो जाती। दूसरे दिन सारा भेद खुल गया, आज तो ग्वालिन केवल इतना ही बता सकी—'बहिन! एक अनूप रूपके दर्शन पाये हैं'—

फूली फिरति ग्वालि मन मैं री।
पूछतिँ सखी परस्पर बातैं, पायौ पर्‌यौ कछू कहुँ तैं री?
पुलकित रोम-रोम, गद-गद, मुख बानी कहत न आवै।
ऐसौ कहा आहि सो सखि री, हमकौं क्यौं न सुनावै॥
तन न्यारौ, जिय एक हमारी, हम तुम एकै रूप।
सूरदास कहै ग्वालि सखिनि सौं; देख्यौ रूप अनूप॥

* * *

---

*भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः। हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः॥
ग्रीवायां जनलोकश्च तपोलोकः स्तनद्वयात्। मूर्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः॥
तत्कट्यां चातलं क्लृप्तमूरुभ्यां वितलं विभोः। जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जङ्घाभ्यां तु तलातलम्॥
महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम्। पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान्॥

× × ×

वाचां वह्नेर्मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्त धातवः। हव्यकव्यामृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च॥
सर्वासूनां च वायोश्च तन्नासे परमायने। अश्विनोरोषधीनां च घ्राणो मोदप्रमोदयोः॥
रूपाणां तेजसां चक्षुर्दिवः सूर्यस्य चाक्षिणी। कर्णौ दिशां च तीर्थानां श्रोत्रमाकाशशब्दयोः।
तद्गात्रं वस्तुसाराणां सौभगस्य च भाजनम्॥
त्वगस्य स्पर्शवायोश्च सर्वमेधस्य चैव हि। रोमाण्युद्भिज्जजातीनां यैर्वा यज्ञस्तु सम्भृतः॥
केशश्मश्रुनखान्यस्य शिलालोहाभ्रविद्युताम्। बाहवो लोकपालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम्॥
विक्रमो भूर्भुवः स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च। सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरण आस्पदम्॥
अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः। पुंसः शिश्न उपस्थस्तु प्रजात्यानन्दनिर्वृतेः॥
पायुर्यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद। हिंसाया निर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्य गुदः स्मृतः॥
पराभूतेरधर्मस्य तमसश्चापि पश्चिमः। नाड्यो नदनदीनां तु गोत्राणामस्थिसंहतिः॥
अव्यक्तरससिन्धूनां भूतानां निधनस्य च। उदरं विदितं पुंसो हृदयं मनसः पदम्॥
धर्मस्य मम तुभ्यं च कुमाराणां भवस्य च। विज्ञानस्य च सत्त्वस्य परस्यात्मा परायणम्॥
अहं भवान् भवश्चैव त इमे मुनयोऽग्रजाः। सुरासुरनरा नागाः खगा मृगसरीसृपाः॥
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतगणोरगाः। पशवः पितरः सिद्धा विद्याध्राश्चारणा द्रुमाः॥
अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकसः। ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तडितः स्तनयित्नवः॥
सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत्।
(श्रीमद्भा० २। ५। ३८—४१; २। ६। १—१५)

श्रीरामलीला-चिन्तन

[मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी लीलाओंका विशेष महत्त्व है। श्रीरामके जीवनमें भगवत्ता, अलौकिकता और दिव्य गुणोंका दर्शन तो होता ही है, साथ ही उनका चरित मानवोचित मर्यादाओंसे भी बँधा है, जो सबके लिये अनुकरणीय है। इसलिये रामलीला-दर्शनके सभी अधिकारी हैं।

वास्तवमें परमात्मप्रभुके जिस स्वरूप, गुण और लीला-चरितका चिन्तन-मनन साधकद्वारा होता है, वे गुण साधकमें भी स्वतः आ जाते हैं। इसलिये मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामका लीला-चरित सर्वसाधारणके लिये परम हितकारी है। अतः यहाँ श्रीराम-जन्म, सीता-राम-विवाह, वन-गमन और राज्याभिषेक आदि लीलाओंको संक्षिप्तरूपमें प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है।—सं०]

मर्यादापुरुषोत्तमका प्रादुर्भाव[१]—(श्रीराम-जन्म-महोत्सव)

साकेत मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका नित्यधाम है। अयोध्या सामान्य नगर दीखनेपर भी भगवत्स्वरूप दिव्य भूमि है और अब तो इस समाचारसे वहाँकी प्रजा अत्यन्त उल्लसित हो उठी थी कि महारानियाँ अन्तर्वत्नी (गर्भवती) हैं। महाराज दशरथने देव-मन्दिरोंमें विशेष अर्चन-अनुष्ठानोंकी व्यवस्था करवा दी थी।

पुंसवन तथा गर्भाधान-संस्कारका प्रश्न ही नहीं था। महाराज दशरथने महारानियोंको अग्निदेवसे प्राप्त पायस प्रदान किया था, इसे 'पुंसवन' कहना हो तो कहा जा सकता है। उस पायसके प्राशनको 'गर्भाधान' मानना पड़ेगा। महारानियोंके अन्तर्वत्नी होनेके तीसरे मास सविधि 'सीमन्तोन्नयन-संस्कार' सम्पन्न हुआ।

चक्रवर्ती महाराज बार-बार महारानियोंसे पूछते रहते थे कि उनके मनमें कोई इच्छा होती है? केवल महारानी कौसल्याने दोहद (गर्भवती माताकी इच्छा) सूचित की। उनके मनमें ऋषियों-ब्राह्मणोंके पूजन तथा दान करनेकी इच्छा बनी रहती थी।

'तुम प्रारम्भसे ऐसी हो।' महाराजने स्नेहपूर्वक कहा—'तुम्हें देव-विप्रपूजन तथा दानमें तो सदासे रुचि है। अपने लिये कोई विशेष आहार, आभरण, वस्त्र अथवा कहीं जाने, कुछ देखनेकी भी इच्छा होती है?'

महारानीने कहा—'मुझे दूसरोंको भोजन कराकर उसे तृप्त देखनेमें आनन्द आता है। वस्त्राभरण, स्वर्ण-अन्न एवं गौ आदि पाकर जब ब्राह्मण अथवा अन्य कोई प्रसन्न होता है, तब मेरा हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। हाँ! इन दिनों एक विशेष इच्छा अवश्य हो रही है।'

'वही तो मैं बार-बार पूछता हूँ।' महाराजने आग्रहपूर्वक जानना चाहा।

'महाराज, घोषित कर दें कि राज्यमें जो भी अभाव-पीड़ित हों, ऋणग्रस्त हों, वे राजकीय कोषसे जितना धन चाहें ले लें।' महारानीने पुनः अनुरोधके स्वरमें कहा—'मैं चाहती हूँ कि राज्यमें किसीको किसी भी प्रकारका कष्ट न हो।'

महाराजने सस्मित कहा—'घोषणा तो मैं आज ही करवा देता हूँ, किंतु देवि, दशरथ कभी इतना कृपण अथवा प्रमत्त नहीं रहा कि राज्यमें कोई किसीसे ऋण ग्रहण करे अथवा अभावकी पीडा सहे। प्रजामें किसी प्रकारका कष्ट नहीं है, देवि! इस सम्बन्धमें आश्वस्त रह सकती हैं।'

'तुम्हारी अपनी कोई इच्छा?' महाराजने कैकेयीसे पूछा।

'महाराज! मैं तो कभी सेवा-प्रिय रही नहीं, परंतु इन दिनों बड़ी जीजीके समीपसे हटनेको मन ही नहीं होता है।' हँसकर महारानीने पुनः कहा—'बार-बार जी करता है कि उनके सदनकी सब दासियोंको पृथक् कर दूँ और उनकी सब सेवा स्वयं करूँ, लेकिन यह भी कर नहीं पाती, कारण कि किसी दासीको सेवाधिकारसे वंचित कैसे करूँ? और बड़ी जीजीसे तो इन दिनों पता नहीं क्यों कुछ कहनेमें मुझे संकोच होने लगा है। लगता है कि जो आनेवाला है, वह

---

[१] प्रस्तुत लेखमें श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र'जीद्वारा लिखित 'श्रीरामचरित' के कुछ अंश संक्षेपमें उद्धृत किये गये हैं।

बड़ी जीजीके कुमारका दृढ़ अनुगामी रहेगा।'

'मुझे कोई इच्छा नहीं होती।' महाराजके पूछनेपर सुमित्राने बड़े ही सरल भावसे कह दिया—'अपनी दोनों बहनोंकी सुविधाकी व्यवस्था मेरा स्वत्व है और मुझे इसमें परम संतोष है। दोनोंने स्नेहपूर्वक मुझे यह अधिकार दे रखा है। मुझे भी कुछ चाहिये—यह तो मैं सोच ही नहीं पाती।'

महाराजने अत्यन्त कुशल सेविकाएँ महारानियोंकी सेवामें नियुक्त कर रखी थीं। वे सेवामें, आवश्यक उपचारमें तो निपुण थीं ही, इस विषयमें भी अत्यन्त ख्यात थीं कि अन्तर्वत्नीके वस्त्र, आभरण कैसे होने चाहिये, उनके समीप कौन-से रत्न कब रहने चाहिये, उनका शृंगार एवं अंगराग किस ऋतुमें किस दिन कैसा रहे—इस विषयमें उनसे अधिक ज्ञाता मिलना दुष्कर है।

इन दिनों अयोध्यामें दुर्लभ पदार्थ भी सामान्य हो गये हैं—आकाश स्वच्छ रहता है, दिशाएँ निर्मल रहती हैं, नदियोंमें-सरोवरोंमें स्वच्छ जल परिपूर्ण रहता है, वायु सदा मन्द सुख-स्पर्शी चलता है एवं वर्षा समयपर और सुहावनी होती है तथा सूर्यातप केवल शीत-निवारण करता है।

सम्पूर्ण प्रकृति जैसे शृंगार करके किसीके स्वागतमें प्रतीक्षारत हो। स्वच्छता, सम्पन्नता, शोभा एवं संगीतसे विश्व भव्य हो गया है। लगता है कि भगवती ज्येष्ठाने अपने सब उपकरण समेट लिये और उन्हें लेकर कहीं ग्रहान्तर चली गयीं।

अयोध्यामें प्रतीक्षा चल रही है—प्रतीक्षा चल रही है जन-जनके मानसमें और प्रतीक्षा तो चल रही है स्वर्गमें, ऋषि-लोकोंमें तथा ब्रह्मलोकतकमें। परमपुरुष धरापर महाराज दशरथके राजसदनमें आविर्भूत होनेवाले हैं। उनके आगमनकी प्रतीक्षा चल रही है।

अयोध्यामें तो लोग रात्रिमें निद्रासे चौंक-चौंक पड़ते हैं—'राजभवनसे मङ्गल-ध्वनि गूँजी? स्वयं महाराज दशरथके समीप जब अन्तःपुरसे कोई सेविका आती है तो उसे देनेके लिये महाराजका कर अपने कण्ठकी मणिमालापर पहुँच जाता है। वे विश्वस्त हो जाते हैं कि—'यह शिशु-जन्मका शुभ-संवाद देने आ रही है!'

महाराजकी ही चर्चा क्यों, महर्षि वसिष्ठ तथा दूसरे ऋषिगण तक जो सहज वीतराग, परम गम्भीर हैं, राजसदनसे किसीको आता देखते हैं तो समुत्सुक होकर यज्ञाहुतिके लिये बढ़ाये हुए हाथको रोक लेते हैं, वह इसलिये कि सम्भवतः—'राजकुमारके जातकर्मका आमन्त्रण आ रहा है!'

सचमुच वह समय आ गया। चैत्र-मास, शुक्ल-पक्ष, नवमी-तिथि, दिवस मङ्गलवार, अन्ततः जो मर्यादापुरुषोत्तम पधार रहे थे, उनके स्वागतके लिये काल मधुमास शुक्ल-पक्षकी मध्य तिथि रिक्ता—किसी भी शुभाशुभसे शून्या-शुद्धा तथा मध्याह्नके ज्योति-क्षणसे अधिक उपयुक्त समय क्या प्रस्तुत कर सकता था! पावन पुनर्वसु-नक्षत्रका तृतीय चरण था।

कर्क-लग्नका उदयकाल था और लग्नाधिप चन्द्रके साथ उच्चके गुरु वहाँ आसीन थे। मेषमें सूर्यनारायण, तुलामें शनिदेव, मीनमें आचार्य शुक्र, मकरमें राहु तथा वृश्चिकमें केतु भी उच्चस्थ थे। बुध मिथुनमें स्वगृही थे। वृषमें राहु तथा वृश्चिकमें केतु भी उच्चस्थ थे।

सहसा महारानी कौसल्याका कक्ष ज्योतिके अपार अम्बारसे भर उठा। कोटि-कोटि पूर्णचन्द्र-ज्योत्स्ना—असीम तेज, परंतु सुशीतल, सुमधुर, आह्लादक। महारानीको तो पता ही नहीं लगा कि प्रसववेदना क्या होती है? उन्हें न तन्द्रा आयी और न वे मूर्च्छित हुईं, किंतु जो नेत्रोंके सामने था—सहसा वे विश्वास नहीं कर सकीं कि वह प्रत्यक्ष है। उन्होंने दोनों करोंसे नेत्र मले—'मैं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ!'

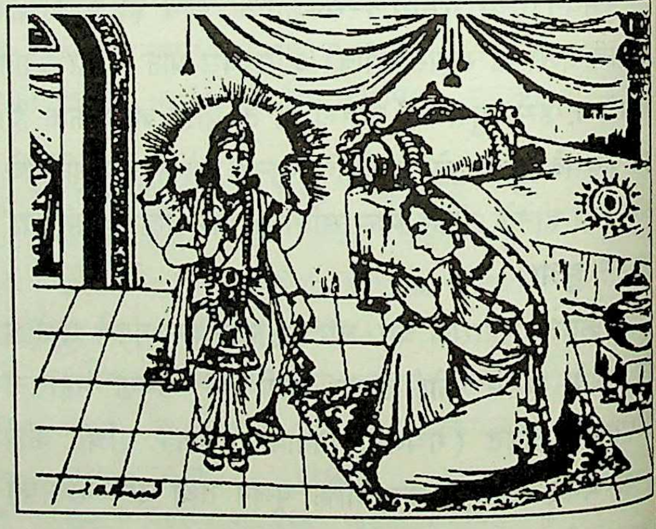

कुछ देरमें महारानी कौसल्या केवल तन्द्राको प्राप्त हुईं। वे चकित, आनन्दमग्न थीं। नेत्र मलकर भी देख लिया—'नहीं वे स्वप्न नहीं देख रही हैं।' वे जाग्रत् हैं और प्रत्यक्ष देख

रही हैं, किंतु जो कुछ देख रही हैं, वह कितना अतर्क्य, अविश्वसनीय एवं अद्भुत है, कितना आह्लादकारी है—वे समझ ही नहीं पातीं कि किसीके जीवनमें इतना कल्पनातीत सौभाग्य भी सम्भव है। उनके सम्मुख एक अमल, अचिन्त्य ज्योति है—सत्य तो यह है कि जो कुछ है, उसका वर्णन सम्भव नहीं है।

अबतक महारानी उस विग्रहको सम्पूर्ण रूपसे देख नहीं सकी थी। उन्होंने कुछ देखा भी था, यह भी कहना कठिन है। वह दिव्य ज्योति ही उनका 'स्व' बनकर अपनेको ही देख रही थी। उन अनन्त-असीमका क्या दीखना था। विराट्को देखा भी कैसे जा सकता है? यह तो उस ज्योतिका प्रभाव था कि उसे देखा गया—ऐसा लगने लगा था।

उन चतुर्भुज-परम पुरुष—वेदवेद्य, ऋषि-मुनि-आराध्य श्रीनारायणके सम्पूर्ण श्रीविग्रहका ध्यान हृदयमें भले कर लिया जाय—महारानी तो सदा ही करती रही हैं, किंतु जब वे ज्योतिर्घन होकर नेत्रोंके सम्मुख आये तब उन सौन्दर्यघनका सम्पूर्ण दर्शन क्या? दृष्टि जहाँ पहुँची—वहीं अटक गयी। केवल सूक्ष्म झाँकी, अस्पष्ट प्रतीति चतुर्भुज आकारकी—अन्यथा दृष्टि तो उनके कमल-दल-विशाल लोचनोंको ही देखती रह गयी थी। अहा! कैसे थे वे अरुणाभ अनन्त कृपावारिधि-लोचन। महारानीको उस समय भी अपना 'स्व' विस्मृत ही रहा था।

महारानीने स्तुति की, यह कहना उपयुक्त नहीं है। इनके मुखसे कुछ स्वतः निकलने लगा। जहाँतक उनकी बात है, उनका हृदय मचल उठा था—'उस शिशुको अङ्कमें उठा लेनेके लिये।'

वह ज्योति विलीन नहीं हुई, घनीभूत होकर शिशु बन गयी थी और महारानीके अङ्कमें ही थी। ज्योतिके इस घनीभावके साथ कक्षमें जो-जो भी थीं, सबकी चेतना जाग्रत् हो गयी, एक साथ सब हड़बड़ाकर उठीं और कक्ष कांस्यपात्रकी ध्वनिसे, शंखनादसे गूँजने लगा।

उस कक्षके वाद्योंकी ध्वनिके साथ ही राजद्वारपर वाद्य गूँजने लगे थे। क्षणभरमें तो सम्पूर्ण नगर वाद्यध्वनि तथा कोलाहलसे परिपूर्ण हो गया। गगन और धरामें जैसे वाद्य, नृत्य तथा गायनकी स्पर्धा चलने लगी। आकाशसे सुरगण पुष्पवृष्टि करने लगे। देवता, गन्धर्व, अप्सराएँ—ये सभी कब गगनसे नृत्य करते, गाते, वाद्य लिये अयोध्याके हर्षमग्न लोगोंमें आ मिले, कौन जानने-पहचाननेकी स्थितिमें था!

'अयोध्याने युवराज पाया!' दासियाँ दौड़ीं, पहले समाचार देने महारानी कौसल्याके सदनसे।

'बड़ी महारानीको पुत्र हुआ!' वाद्य-ध्वनिने ही यह समाचार एक साथ सम्पूर्ण नगरको दे दिया; क्योंकि वाद्य-ध्वनि बड़ी महारानीके सदनसे उठी थी और पुत्रके होनेका मङ्गलवाद्य भी क्या पहचानना पड़ता है!

'बधाई!' जो जहाँ थे, वहींसे दौड़ पड़े। कोई नहीं देखता कि वह किससे कह रहा है। नियमतः सेवकोंको समाचार देना चाहिये। बड़ोंको उपहार देना चाहिये, किंतु जब आनन्दके महापूरमें तन-मनका स्मरण ही न हो, तब इन सबका ध्यान ही कौन रख सकता है? अयोध्यामें तो गृहपति, गृहस्वामिनी अपने ही सेवक या दासीको बधाई देने लगे थे। जिसे जो भी सम्मुख मिला, उसीको जो आभरण हाथमें आया, उतारकर दे दिया तो लेनेमें किसीने संकोच नहीं किया।

महाराज दशरथतक एक दासी दौड़ गयी थी। महाराज अभी मध्याह्न-संध्या करके उठे ही थे। करोंने कैसे कण्ठहार उतारकर दासीकी ओर बढ़ा दिया, महाराजको पता नहीं, दो क्षण महाराजका अङ्ग-अङ्ग आनन्दातिरेकसे शिथिल रहा।

महामन्त्री सुमन्त्र स्वतः रथ ले आये और सम्मुख खड़े हो गये। महाराजको एक शब्द नहीं बोलना पड़ा। उन्हें अविलम्ब कुलगुरुके समीप जाना था।

महर्षि वसिष्ठके आश्रममें महोत्सव प्रारम्भ हो गया था। अयोध्याके सभी वृद्ध, तरुण, युवा ब्राह्मण वहाँ आ चुके थे। मार्गमें ही महर्षिने महाराजसे सस्नेह कहा—'वत्स! तुम्हारा पुत्र होकर जो आया है, वह परम ज्योति अप्रकट नहीं रह सकता। मध्याह्न-हवनके समय आहुति-दानसे पूर्व ही अग्निदेव स्वतः निर्धूम ज्वाला देने लगे, ब्राह्मण-कुमारोंका समुदाय मेरे समीप दौड़ आया। सबने मुझे प्रणाम कर कहा—'महर्षिने यजमान पाया।'

महाराज दशरथने महर्षिको प्रणिपात किया तो महर्षिने

आशीर्वाद देते हुए कहा—'नवजात चिरायु हो! चिरायु हों उसके आनेवाले अनुज!'

महर्षिगण एवं विप्रवृन्द राजसदनकी ओर प्रस्थान कर रहे थे। आज अयोध्यामें किसीसे कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं थी। औपचारिक शिष्टाचार आनन्दातिरेकके प्रवाहमें बह चुका था। वाद्य, शंखनाद, वेद-ध्वनिसे गगन गूँज रहा था। गायक, सूत, मागध, वन्दी पूरे उत्साहमें थे। उन्हें यह भी अपेक्षा नहीं थी कि उनका संगीत, उनका काव्य या स्तवन कोई सुन भी रहा है अथवा नहीं। स्त्री-पुरुष सब सुसज्जित हो विविध उपहार लिये राजसदनकी ओर दौड़ पड़े थे। राजपथोंपर रथ, अश्व या गजके लिये मार्ग नहीं रह गया था।

महाराज दशरथका राजकोष खुल गया था, यह कहना बहुत अल्प वर्णन है। अयोध्यामें प्रत्येक दे रहा था—लुटा रहा था। जो सम्मुख मिल जाय उसे ही दे रहा था। कोई नहीं देखता था कि वह सेवक होकर अपने सम्पन्नतम स्वामीको ही देने लगा है। यहाँ तक कि दासियाँ भी आभूषण उछाल रही थीं, सम्मुख जो मिले, उसीकी ओर।

दधि, दूर्वा, लाजा, कुंकुम, हरिद्रा और सुगन्धित पुष्पसार (इत्र)—इनसे राजपथ, वीथिकाओं-प्रांगणोंमें कीच हो जाती यदि गगनकी अजस्र पुष्प-वर्षा वहाँ सुमन-राशि आस्तृत न करती होती। गगन मेघाच्छन्न-जैसा बन गया कुंकुम उड़नेसे। आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सब रंगोंसे लथपथ और आनन्दमग्न। उछलते-कूदते, नाचते-गाते, स्तुति करते, जय-ध्वनि करते लोगोंका समुदाय। शंख तथा मङ्गलवाद्योंका चित्ताकर्षक स्वर।

महाराज दशरथने मुनियोंके साथ राजभवनमें प्रवेश किया। स्नान करके देवताओं एवं पितरोंका तर्पण-पूजन किया। महर्षि वसिष्ठने ब्राह्मणोंके साथ सविधि जातकर्म कराया।

महाराज दशरथको पुत्र-मुख-दर्शन करके जो आह्लाद हुआ—अङ्ग-अङ्ग शिथिल, स्तब्ध रह गया। रोम-रोम उत्थित, देह स्वेद-स्नात। किसी प्रकार महर्षिके चरण-कमलोंमें शिशुको रखा—'यह आपका मूर्तिभूत आशीर्वाद……।'

महर्षिका कण्ठ भी मन्त्र-पाठमें असमर्थ हो रहा था। इस महोत्सवका वर्णन अशक्य है और दान—आभूषणों तथा रत्नोंसे आवृत अयोध्याके पथ तथा प्रांगण चलनेके अयोग्य हो गये थे। उनको हटानेकी विशेष व्यवस्था महाराजके मन्त्रियोंको करनी पड़ी।

भरतादिका जन्म

अयोध्यामें महोत्सवका महापूर प्रवाहित हो रहा था। चैत्रशुक्ल नवमीके मध्याह्नमें महाराज दशरथका राजसदन प्रथम पुत्रके प्रादुर्भावसे प्रोज्ज्वल हुआ। मधुमास, मङ्गलवार महामङ्गल लेकर आया। पता ही नहीं लगा कि वह दिन कैसे क्षणार्धके समान व्यतीत हो गया और कैसे व्यतीत हो गयी वह रजनी!

धन्य था वह मङ्गलवार। अपने जाते-जाते, अपने अन्तिम प्रहरमें वह अयोध्याको एक और उपहार देता गया। ऐसा उपहार जो त्रिभुवनमें अतुलनीय रहा और रहेगा। किसीने संध्या समाप्त नहीं की थी, अभी सूर्योदय हुआ नहीं था। बुधवारका प्रभात तो होनेवाला था, अतः अवश्य ही सब लोगोंने संध्याके संकल्पमें अब दशमी तिथिका उच्चारण किया था। चन्द्रमा-पुष्य नक्षत्रपर आ चुके थे और मीन-लग्न था। इसी समय महारानी कैकेयीके सदनमें पुत्रके पदार्पणका मङ्गल-वाद्य गूँजा।

धर्मप्राण जन थे अयोध्याके, किंतु आज आह्निक कृत्यमें यह व्याघात सबको प्रिय—अत्यन्त प्रिय लगा। ऋषि-मुनियोंने ही नहीं, महर्षि वसिष्ठने भी बहुत शीघ्रतासे प्रातःकालीन तर्पण-हवन समाप्त किया। लगता था कि भगवान् भुवन-भास्करको भी अपने वंशकी यह परमोत्तम श्रीवृद्धि-दर्शनका कुतूहल है, इसी कारण वे भी त्वरित पदोंसे गगनमें उठ आये हैं।

वही उल्लास, वही जयनाद एवं वाद्यध्वनि—अभी तो प्रथम महोत्सव ही चल रहा था—इस कारण जो दूसरा आया था, उसका पहलेसे पृथक् अस्तित्व ही नहीं था। वह अपने लिये पृथक् महोत्सवका अवसर भी लेकर नहीं आया।

अयोध्याके पथ-वीथियाँ, उनके दिये-लुटाये पदार्थोंसे पटते जा रहे थे। उन्हें लगता था कि उन्हें ग्रहीता मिल नहीं रहे हैं—जो मिलते भी हैं, वे अत्यल्प भी बहुत आग्रह करनेपर स्वीकार करते हैं।

अभी इस महोत्सवका जैसे प्रारम्भ ही हुआ हो, अभी नर-नारी सबका उत्साह पूरे आवेगमें ही था कि महारानी सुमित्राके सदनसे भी मङ्गल-वाद्य गूँज उठा। महाराज दशरथके कुमारोंको लोकाराध्य होना था, अतः सभी कुमार आराधनाके पावन-कालमें ही प्रकट हुए।

दशमी-तिथि, बुधवार, वही चैत्रमासका शुक्लपक्ष। मध्याह्नका ही समय। महारानी सुमित्राके युग्मज संतान हुई—दो कुमार।

प्रायः युग्मज शिशुओंकी आकृति तथा प्रकृति समान होती है। महारानी सुमित्राके दोनों शिशुओंका शरीर तप्त-स्वर्ण-गौर, किंतु शरीरके अङ्ग तो जैसे चारों कुमारोंके एक ही साँचेमें ढले थे। इन दोनों कुमारोंमें भेद कर पाना, दोनों नील-सुन्दर कुमारोंमें भेद कर पानेसे भी कठिन था।

महारानी सुमित्राने पहली बात शिशुओंको देखते ही कही—'मैं निश्चिन्त हो गयी। ये दोनों अपने अग्रजोंके अनुगामी बनेंगे। मैं अपनी दोनों बहनोंकी सेवासे संतुष्ट हूँ। अब ये दोनों मुझे चारोंकी माताका गौरव देने आ गये हैं।'

महाराज दशरथको जैसे चारों पुरुषार्थ साकार प्राप्त हो गये। इन कुमारोंका दर्शन करके महर्षि वसिष्ठने कहा—'राजन्! धन्य हो तुम! श्रीनारायणका तुमपर असीम अनुग्रह। सृष्टिमें वे अपने चतुर्व्यूहात्मक स्वरूपोंसे आपको पिताका गौरव देने पधारे।'

महाराजके चार कुमार—परम सुन्दर, भुवन-मनोहारी चारों शिशु 'युग-युग जीते रहें।'

आशीर्वाद ब्राह्मण वेदमन्त्रोंके द्वारा देते हैं और आज तो वे 'स्वस्ति'-पाठ करते, आशीर्वाद देते मानो थकते ही नहीं। आशीर्वाद तो जन-जनके हृदयसे निकल रहा है। महिलाएँ अंचल फैलाकर सूर्यनारायणसे, देवताओंसे आशीर्वाद माँगने लगी हैं—इन चारों राजकुमारोंके लिये।

अयोध्यामें अब अविराम महोत्सव चलना था। असंख्य अतिथि आ रहे थे। उनके आवासकी, आतिथ्यकी व्यवस्था राजकर्मचारियोंने प्रारम्भ कर दी थी और महर्षि वसिष्ठने महाराजको आगत तपस्वी, ऋषि-मुनि-गणोंकी ओरसे निश्चिन्त कर दिया था।

अयोध्यामें यह पहचाननेका उपाय नहीं रह गया था कि आगतोंमें मानव-वेशमें कितने दिव्य लोकोंके पूज्य हैं, कितनी देवियाँ हैं। सबका ही पूजनीयके समान सत्कार और सभी तो आते थे स्नेहका, सेवाका अवसर पानेकी उत्कण्ठाका भाव लेकर ।

नित्य-नूतन पुरी अयोध्या। नित्य-नूतन महोत्सव। नित्य-नूतन उत्साह जन-जनमें। अब तो अतिथियोंका अजस्र प्रवाह अयोध्याकी ओर उमड़ पड़ा था। अयोध्यामें महाराज दशरथके अन्तःपुरमें जो शिशु आ गये थे, त्रिभुवन जैसे उनके जन्मोत्सवमें उन्मद हो उठा था।

बालक्रीडा

चक्रवर्ती महाराजके कुमार बड़े हुए और खड़े होकर चलने भी लगे, फिर ये किसी एक ही प्राङ्गणमें कैसे रह सकते थे? चाहे जब ये भवन-द्वारसे निकल पड़ते हैं और जिधर मनमें आये, उधर ही चल देते हैं। सेवक-सेविकाएँ साथ रहते हैं, किंतु बालकोंको मना करनेकी आज्ञा उन्हें नहीं है। ये सब केवल सुरक्षा तथा सहायता ही कर सकते हैं।

कुमार-क्रीडा

अयोध्याके नागरिकोंका आनन्द शत-सहस्र-गुणित हो उठा, जब चक्रवर्ती सम्राट्के कुमार राजसदनसे बाहर क्रीडाके लिये निकलने लगे। कितनी आकांक्षा थी सबकी कि कुमार उनके गृह, उनके आपण-स्थानतक भी कभी पधारें। अब उस अभिलाषाके पुष्पित-फलित होनेका अवसर आ गया।

चरणोंमें स्वर्ण-रत्न-खचित उपानह, कटिमें कौशेय कछनी, स्कन्धपर दुकूल, कण्ठमें मौक्तिक माला, वनमाला तथा भुजाओंमें रत्नाङ्गद, कलाइंयोंमें कङ्कण, अञ्जन-रञ्जित खञ्जन-मञ्जु विशाल दृग, तिलक-भूषित भाल, कर्णोंमें रत्न-कुण्डल, घुँघराली सघन-सुकोमल अलकें, मस्तक मणिरत्न-खचित कुलहियोंसे मनोरम, करोंमें छोटे-छोटे धनुष और चमकते बाण। अभी ये परम सुकुमार इस योग्य कहाँ हैं कि कटिपर तूणीर धारण कर सकें। अभी तो सेवक इनके साथ निषङ्ग लिये चलते हैं, जब ये सरयू-पुलिनपर लक्ष्य-वेधकी क्रीडा करना चाहते हैं।

प्रायः एक ही रथमें चारों कुमार निकलते हैं। सेवक तथा मन्त्री-पुत्र साथ होते हैं और राजसदनसे बाहर आते ही अनेक रथ साथ हो जाते हैं। नगरके सभी बालक तो

इनके साथ ही रहना चाहते हैं।

चक्रवर्ती महाराजके सेवक तथा मन्त्री साथ चलते हैं—'राजकुमार जिस वस्तुको लेना चाहें, उसका पूरा निष्क्रय दिया जाय! यह आज्ञा है', किंतु वणिक् कहाँ इसे स्वीकार करते हैं। उनका एक ही स्वर है—'हमारे पिता-पितामहकी परम्परासे प्राप्त सम्पत्ति सम्राट्का प्रसाद है। हमारे ऐसे भाग्य कहाँ कि हम महाराजाधिराजके कुमारोंकी अल्प सेवा भी कर सकें। कोई क्षुद्र उपहार तक भी राजकुमार स्वयं पधारनेपर स्वीकार न करें। ऐसा अपराध तो हमारा नहीं माना जाना चाहिये।'

वस्त्र-आभूषण, मिष्टान्न, पुष्पसार, मालाएँ आदि सबके व्यापारी हैं। राजकुमार जब चाहे जिसकी प्रार्थनापर उसके यहाँ जा खड़े होते हैं और बालक अब चाहे जितना भी अस्वीकार करें, वह अपना श्रेष्ठतम उपहार राजसदन भेजेगा ही। मन्त्री प्रबन्ध कर देते हैं कि उस व्यापारीको निष्क्रय न कहकर राजकीय पारितोषिक रूपमें अनेक गुणित धन प्राप्त हो जाय।

इस प्रकार श्रीरामका समय अपने अनुजोंके साथ आमोद-प्रमोद और बाल-क्रीडामें व्यतीत होने लगा। जैसे-जैसे वे बड़े होने लगे, अपने पूज्य पिता दशरथके राजकाज तथा अन्य कार्योंमें स्वतः रुचि लेते और अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे सत्-परामर्श भी देनेका प्रयास करते। कुमारकी इन विशेषताओंको देखकर राजा दशरथका हृदय अत्यन्त आह्लादित हो जाता।

महर्षि विश्वामित्रका शुभागमन

अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथ दिनके प्रथम प्रहरके अन्तमें राजसभामें सिंहासनपर विराजमान हुए ही थे कि द्वारपालने समाचार दिया—'ऋषि विश्वामित्र महाराजसे साक्षात्कार करने पधारे हैं।'

'ब्रह्मर्षि विश्वामित्र!' अच्छी बात यह थी कि रघुकुल-गुरु महर्षि वसिष्ठ उस समय राजसभामें ही थे। वे सबसे पहले अपने आसनसे उठे और उन्होंने महाराजसे कहा—'ब्रह्मर्षि पहले राजर्षि रहे हैं, अतः ऋषिगणोंके साथ सेनापतियोंको भी उनका स्वागत करना चाहिये।'

महर्षि वसिष्ठके साथ वामदेव, जाबालि आदि सभी उपस्थित ऋषिगण उठे। सभी मन्त्री और सेनापति महाराजके साथ हो गये। महाराज शीघ्रतापूर्वक द्वारपर पहुँचे। शंख-ध्वनि, विप्रोंका मन्त्रपाठ एक क्षणको विरमित हुआ ज महाराजने भूमिमें पड़कर दण्डवत् प्रणिपात किया—'य ऐक्ष्वाकु अज-तनय दशरथ श्रीचरणोंमें प्रणत है।'

विश्वामित्रजीने महाराजको उठाया। वसिष्ठजीने उ अङ्कमाल दी। दूसरे सभी ऋषियोंने उनकी वन्दना की मन्त्रपाठ, वाद्यध्वनिके स्वागतके मध्य महाराज विश्वामित्रजीक राजसभामें ले आये। वहाँ रत्नसिंहासनपर मृगचर्म आस्तृ करके उन्हें विराजमान कराकर महाराजने उनके चर धोये। उस पादोदकसे पूरी राजसभा सिंचित हुई और उ राजसदन सिंचित करनेको भेज दिया गया।

अर्घ्य, पाद्य, चन्दन-माल्य, धूप-दीपादिसे पूजा करके महाराजने कहा—'आज मेरे जन्म-जन्मान्तरके पुण्योंका उद हुआ है। आज मेरे पितर परितृप्त हुए। आज मुझपर भगव जनार्दनकी कृपाका अवतरण हुआ कि आपके चरण-दर्शनक सौभाग्य मिला। आज आपका पादोदक पाकर मैं निष्कलुष गया। आपने जैसे इतनी अहैतुकी कृपा की है, वैसे ही राजसद पधारकर अपना प्रसाद प्राप्त करनेका सौभाग्य अन्तः पुरवासियों तथा राजकुमारोंको भी प्रदान करें।'

'राजन्! नियम यह है कि याचक अतिथि अप याचना-पूर्ति होनेपर ही आहार ग्रहण करता है।' विश्वामित्रजी कहा—'मैं आप सत्यसन्ध तथा परमोदारके समीप याच बनकर आया हूँ।'

'भगवन्! दशरथका इससे महान् सौभाग्य और क होगा।' महाराजने अंजलि बाँधकर भक्ति-विभोर-स्वर कहा—'यह सम्पूर्ण राज्य, समस्त कोष, सारी सेना, अन्तःपुर, मैं स्वयं और मेरे सब पुत्र आपके हैं। मैं अप मस्तक भी देकर सेवा कर सकूँ तो कृतार्थ हो जाऊँगा।'

'रघुकुलकी परम्पराके अनुरूप आपका वचन है' विश्वामित्रने शान्त-स्वरमें कहा—'विवश होकर ही आपके समीप याचना करने आया हूँ।'

'आप आज्ञा करें!' महाराजने कहा—'मैं अपना सर्व देकर उसे पूर्ण करूँगा।'

'राजन्! आप सत्यनिष्ठ हैं और परम उदार हैं। इस वं

कोई ऐसा कृपण या कापुरुष नहीं हुआ जो आगत तपस्वीको निराश कर दे।' विश्वामित्रने फिर कहा—'आप तो प्रख्यात महादानी हैं। मुझे आपके औदार्यपर भरोसा न होता तो मैं तपोवन छोड़कर अयोध्या नहीं आता।'

महाराजने कहा—'धर्म और सत्यसे महान् कुछ नहीं है। आप आज्ञा करें!'

'मुझे हिमालयमें अपनी तपोभूमि कौशिकीके तटपर तपस्या करना प्रिय है। लोकमें और परलोकमें भी मेरी कोई स्पृहा नहीं है।' विश्वामित्रजीने कहना प्रारम्भ किया—'किंतु मैंने एक पार्वण-यज्ञका संकल्प किया और गङ्गातटपर सिद्धाश्रम आ गया। वह अनादि पुण्यस्थली मुझे प्रिय लगी। वहाँ पहलेसे ही अनेक तपस्वी मुनिगण रहते थे। सबने मुझे सहयोग दिया।'

महर्षि वसिष्ठ प्रारम्भसे ही चौंक गये थे—'ऐसी क्या समस्या है जो विश्वामित्रजी नहीं सुलझा पाते। सृष्टिमें इनके लिये दुर्लभ, दुर्गम, अलभ्य, अशक्य तो कुछ है नहीं। तब ये कहना क्या चाहते हैं!'

मन्त्रियोंको, ऋषियोंको भी आश्चर्य था—विश्वामित्रजी और याचना?

'लेकिन मेरा यज्ञ पूर्ण नहीं हो पाता है। जब पर्वपर हम लोग यज्ञारम्भ करते हैं, राक्षस आकर अपवित्र पदार्थोंकी वर्षा करके यज्ञ-स्थान भ्रष्ट कर देते हैं।' विश्वामित्रजीने कहा—'आपके कुलगुरुके सम्मुख ही मैंने शस्त्र-न्यास किया। कोई यज्ञ-दीक्षित ऋषि अस्त्र लेकर असुर-संहार करे, यह उचित नहीं है। शाप देकर भी मैं उन सबको भस्म कर सकता हूँ; किंतु अनेक बार इसी प्रकार मेरा तप नष्ट हो चुका है। अतः मैं आपके समीप आया हूँ। यज्ञ-विघ्न करनेवाले राक्षसोंके नायक दूसरे किसीसे भी अवध्य हैं। अब उनकी मृत्युका समय आ गया है। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामके करोंसे ही उनकी मृत्यु विहित है। अतः मैं रामकी याचना करता हूँ।'

'श्रीरामकी याचना?' महाराज दशरथ तो सुनते ही लगभग मूर्च्छित-से हो गये। बड़े कातर कण्ठसे उन्होंने कहा—'भगवन्! वृद्धावस्थामें मुझे चार पुत्र प्राप्त हुए। चारों ही मुझे अत्यन्त प्रिय हैं और उनमें भी राम तो मेरे प्राण हैं। अभी तो राम पूरे सोलह वर्षके भी नहीं हुए। ये बालक हैं, कोई युद्ध-विशारद नहीं और न शत्रुके बलाबलको जानते हैं।'

'राजन्! कमललोचन रामके प्रभावको मैं जानता हूँ, आपके कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ जानते हैं और दूसरे तपोधन जानते हैं। आप इनके प्रभावको नहीं जानते। आप तो इन्हें अपना सुकुमार पुत्र मात्र जानते हैं।' विश्वामित्र गम्भीर होकर बोले—'आप किसी प्रकारका भय मत करें। मैं इनकी रक्षाका दायित्व लेता हूँ। इनका कोई अनिष्ट नहीं होगा। इनका बहुत मङ्गल होगा।'

महर्षि वसिष्ठ संतुष्ट हो गये। जब विश्वामित्रजी रक्षाका दायित्व लेते हैं, तब सृष्टिमें अनिष्ट करनेकी शक्ति किसमें है। ब्रह्मर्षिके चरणोंमें प्रणिपात करके भाइयोंके साथ श्रीराम पिताके समीप बैठे थे। विश्वामित्रजी बात कर रहे थे महाराजसे, किंतु उनकी अपलक दृष्टि श्रीरामके मुखपर लगी थी। महर्षि वसिष्ठने श्रीरामकी ओर देखा तो उन शील-सिन्धुने किंचित् मस्तक झुका दिया। यह उनकी स्वीकृति थी विश्वामित्रजीके साथ जानेकी।

'मैं एक अक्षौहिणी सेना लेकर आपके साथ चलता हूँ।' महाराजने कातर प्रार्थना की—'वृद्ध हो गया फिर भी मरणपर्यन्त युद्ध करूँगा। आप श्रीरामको ले जाना चाहते हैं तो मुझे ससैन्य साथ चलनेकी अनुमति दें।'

'राजन्! वे राक्षस-नायक हैं मारीच और सुबाहु। लंकाधिप राक्षसराज रावणके वे अनुचर हैं। रावण स्वयं नहीं आता, उसने अपने इन सेवकोंको हमारे उत्पीडनके लिये नियुक्त कर रखा है।' विश्वामित्रजीने अब संकटका स्वरूप स्पष्ट किया—'आप अयोध्याकी सेना लेकर चलेंगे तो दशग्रीव भी ससैन्य आ धमकेगा। श्रीराम बालक हैं, अतः उनके जानेसे आतंक नहीं फैलेगा। वे उन दुष्ट असुरोंको समाप्त कर देंगे। रावणको आनेका अवसर नहीं मिलेगा।'

'मैं युद्धमें अब इस वार्धक्यमें मायावी दशग्रीवको पराजित कर सकूँगा, इसकी आशा मुझे नहीं है।' महाराजने स्पष्ट कहा—'उस क्रूरसे शत्रुता करना बुद्धिमानी नहीं है। मैं उसके अनुचरोंके विरुद्ध युद्ध करने अपने पुत्रोंको नहीं भेज सकता। आप मुझे क्षमा………।'

महाराज दशरथकी बात पूरी नहीं हुई। विश्वामित्रजी क्रुद्ध हो सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये। उनकी भृकुटि कठोर हो गयी। उन्होंने अत्यन्त उग्र स्वरसे कहा—'पहले प्रतिज्ञा करके अब तुम उसे भंग कर रहे हो? तुम ऐसा कर नहीं सकते।'

'ब्रह्मर्षि!' रघुकुलगुरु वसिष्ठजी अत्यन्त सशंक हो उठे। उन्होंने उठकर विश्वामित्रका हाथ पकड़ा और आसनपर बैठाया तथा अनुरोधके स्वरमें कहा—'आप मुझे भी कुछ समय अवश्य देंगे। अन्ततः मैं रघुकुलका पुरोहित हूँ। महाराज और श्रीराम मेरे भी शिष्य हैं।'

ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने वसिष्ठकी ओर देखा और फिर श्रीरामकी ओर देखा। उन पद्मपलाश-लोचनोंसे दृष्टि मिलते ही विश्वामित्रकी कठोर भृकुटि सीधी हो गयी। उनका रोषसे तमकता मुख सहज हो गया। वे सहज स्वरमें बोले—'अपनी प्रतिज्ञा भंग करके यदि आप सुखी होते हों तो मैं लौट जाऊँगा, किंतु विश्व सदा यही कहेगा कि रघुकुलका प्रथम नरेश दशरथ था, जिसके यहाँसे तपस्वी अतिथि निराश लौट गया और उस नरेशने तपस्वीको वचन देकर उसका मोहवश पालन नहीं किया।'

'राजन्! आप अपनी प्रतिज्ञा भंग करके धर्मको नष्ट मत करो।' अब महर्षि वसिष्ठ बोले—'श्रीराम अस्त्रज्ञ हों या न हों, ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जिसके रक्षक हैं, उसका त्रिभुवनके सब राक्षस मिलकर भी क्या बिगाड़ लेंगे? आपको पता नहीं है कि अमित-तेजा कृशाश्वने अपने सब अस्त्र विश्वामित्रजीको दे दिये हैं। सुप्रभाके भी सब अस्त्र इनके समीप हैं। देवताओं तथा असुरोंके समीप भी कोई ऐसा दिव्यास्त्र नहीं जो इन्हें उपलब्ध न हो। त्रिलोकीमें अभूतपूर्व अस्त्रज्ञ विश्वामित्रजी हैं। इनके समान अस्त्रज्ञ आगे भी नहीं होगा। इनके रक्षणमें रामको क्या भय है? ये राक्षसोंका वध करनेमें स्वयं समर्थ हैं, किंतु आपके पुत्रका हित करने आये हैं।'

महाराज दशरथके लिये अपने कुलगुरुकी आज्ञाको टाल देना सम्भव नहीं था। उन्होंने अत्यन्त कातरभावसे कुलगुरुकी ओर देखा।

'आप कुछ क्षण मुझे क्षमा करें।' महर्षिने विश्वामित्रजीसे कहा। उनके संकेतके अनुसार महाराज उनके पीछे एकान्त-मन्त्रणा-कक्षमें चले गये।

महर्षि विश्वामित्रके साथ राम-लक्ष्मणका प्रस्थान

'आप अब अपने श्रीचरणोंसे राजसदनको पवि करें।' महर्षि वसिष्ठने राजसभामें पहुँचते ही विश्वामित्रजी प्रार्थना-भरे स्वरमें कहा—'अयोध्या-नरेशको आपके आतिथ्य सौभाग्य प्राप्त होना चाहिये। आप आहार ग्रहण कर किंचित् विश्राम कर लें। श्रीरामको भी लक्ष्मणके साथ भोज करके माताओंसे अनुज्ञा प्राप्त करनेका अवसर दें। दो राजकुमार इसके अनन्तर आपका अनुगमन करेंगे।'

'चक्रवर्ती महाराजका अक्षय यश भुवनको पवि करेगा।' ब्रह्मर्षि विश्वामित्र सुप्रसन्न होकर राजसदनके अन्तः पुरमें जानेके लिये उठ पड़े। महर्षि वसिष्ठको उनका सा देना था।

सानुज श्रीरामने माताओंको प्रणाम किया। प्राण पुत्रोंको ऋषिके साथ राक्षसोंसे संग्राम करने जानेको भेज बहुत दारुण, अत्यन्त दुःखद है, परंतु क्षत्राणी तो पुत्र उत्प ही करती है युद्धमें सहर्ष भेजनेके लिये। अतः महारानियों उन्हें अङ्कसे लगाकर आशीर्वाद दिया। भरत-शत्रुघ्न श्रीरामकी पद-वन्दना की।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्रका इष्टदेवके समान राजसदनमें सत्क हुआ, किंतु वे आज ही प्रस्थान कर देना चाहते थे, अ शीघ्र गमनोद्यत हो गये। पुत्रों, मन्त्रियों तथा कुलगुरुके सा महाराज सरयू-तटतक ब्रह्मर्षिके साथ आये।

'राजन्! आप किसी प्रकारकी शंका मत करें विश्वामित्रजीने आश्वासन दिया—'इनका कल्याण होगा। आपके यशको उज्ज्वल करके आपके चरणोंमें प्रणाम करें विश्वामित्र अपने नेत्रगोलकोंके समान इन्हें मानेगा।'

राजसदनसे चलते समय ही ब्राह्मणोंके साथ मह वसिष्ठने मङ्गल-पाठ किया था। सरयू-तटपर श्रीरा लक्ष्मणने पिताको, कुलगुरुको, ब्राह्मणोंको पुनः प्र किया। भाइयोंको अङ्कमाल दी। दोनों महर्षि मिले परस्प आशीर्वाद प्राप्तकर दोनों भाई विश्वामित्रजीके साथ अयोध्या प्रस्थान कर गये।

मस्तकोंपर राजकुमारोंके योग्य मुकुट नहीं थे। घुँघरा काली अलकोंमें पुष्पमाल्य सजे थे। ललाटपर लगे कुंकु

तिलकपर अक्षतके दाने चिपके थे। कुटिल भृकुटि, विशाल मनोहर लोचन, कर्णोंमें झलमलाते रत्नकुण्डल, कम्बुकण्ठोंमें मौक्तिक मालाएँ, वनमाला, उत्तरीय। पीठपर कसे त्रोण, वाम-स्कन्धपर धनुष, कटिमें पीतपट—दोनों भाइयोंकी अद्भुत छटा थी!

महर्षि विश्वामित्रने सरयूके दक्षिण-तटसे यात्रा प्रारम्भ की। मार्गमें दोनों राजकुमारोंको महर्षिने कई विद्याएँ प्रदान कीं। चलते-चलते एक वन आया। ताड़का राक्षसी इसी वनमें रहती है। दो कोसतक इस वनमें कोई प्रवेश नहीं करता। यह जन-वर्जित क्षेत्र हो गया है। महर्षि विश्वामित्रने दोनों राजकुमारोंको सावधान करते हुए ताड़का-वधका संकेत किया, फिर क्या था? एक बाणसे ही प्रभुने ताड़काका उद्धार कर दिया और वह वन निरापद हो गया।

इसी प्रकार अन्य राक्षसोंसे भी वहाँके यज्ञ-स्थलको मुक्त करना था। दोनों राजकुमार महर्षि विश्वामित्रके साथ आगे बढ़े और सिद्धाश्रममें पहुँचे, जहाँ कई तपस्वी निवास करते थे। विश्वामित्र इस सिद्धाश्रमके कुलपति थे। यज्ञ प्रारम्भ हुआ। मारीच-सुबाहु आदि राक्षसोंने अपने दलबलके साथ यज्ञको ध्वंस करनेका प्रयत्न किया। प्रभुने सभी राक्षसोंका संहारकर उस भूमिको भी निरापद कर दिया। दोनों राजकुमारोंने कुछ समय यज्ञाश्रममें निवास किया। इसी क्रममें महर्षि विश्वामित्रने विदेहराज जनक और उनकी तनया भगवती सीताकी चर्चा राजकुमारोंसे की और जनकपुरसे परिचित कराया। इसी बीच महर्षिको यह समाचार मिला कि जनकपुरमें विदेहराजके द्वारा धनुष-यज्ञ और सीता-स्वयंवरका आयोजन किया गया है। राजकुमारोंको भी इस समारोहको देखनेकी उत्सुकता होनी स्वाभाविक थी। दोनों राजकुमार महर्षि विश्वामित्रके साथ जनकपुरके लिये प्रस्थान कर गये।

जनकपुरमें पदार्पण तथा नगर-दर्शन

अकस्मात् पहुँचे थे महर्षि विश्वामित्र मिथिलामें। ऋषि-मुनि किसीको पूर्व सूचना देकर कदाचित् ही आते हैं। अपनी इच्छाके धनी इन आत्माराम आप्तकाम महापुरुषोंका पदार्पण मानवका सौभाग्य। लेकिन विश्वामित्रजी अनवसर नहीं आये थे। मिथिला-नरेश महायज्ञ कर रहे थे। वहाँ उपस्थित सभीने यथाविधि सम्मान किया। सब जानते थे कि एक विख्यात कुलपति ऋषिको किसीके भी आश्रमकी अपेक्षा पृथक् आवासमें सुविधा होती है। अतः विश्वामित्रजीके लिये पृथक् आवासकी सुन्दर व्यवस्था की गयी।

जलका सुपास (सुभीता) था। आम्रोपवनकी शीतल छाया थी और आस-पासके ऋषि-मुनियोंने कन्द, मूल, फलकी राशि अर्पित कर दी थी प्रथम सत्कारमें। महर्षि विश्वामित्र तथा उनके साथके तपस्वी इधर-उधर वृक्षोंकी छायामें सुविधानुसार बैठ गये।

मध्याह्न-स्नान, संध्यादिके अनन्तर जब फलाहार करके महर्षि अल्प विश्राम कर चुके, श्रीराम सानुज महर्षिके समीप आकर बैठ गये। लक्ष्मणने अग्रजके मुखकी ओर देखा। उनके मनमें हो रहा था—'जनकपुरीकी प्रशंसा है कि यह विवेकी लोगोंकी नगरी है। वीतराग, निःस्पृह, केवल कर्तव्य-पालनार्थ कर्म-तत्पर नागरिकोंका नगर कैसा होता होगा? इस नगरको एक दृष्टि देख तो आना चाहिये।'

अनुजकी साभिप्राय दृष्टिका तात्पर्य श्रीरामने समझ लिया। उन्होंने महर्षिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर अंजलि बाँध ली। इस शील-सौजन्य एवं शिष्टतापर मुग्ध महर्षि पुलकित-भावमें बोले—'वत्स! बिना संकोच कहो, क्या चाहते हो?'

'भगवन्! लक्ष्मण नगर-दर्शनको उत्सुक हैं।' श्रीरामने कहा—'अनुमति हो तो इन्हें ले जाऊँ। मैं शीघ्र इनको लेकर लौट आऊँगा।'

'तुम्हारे देखने योग्य है यह विदेहपुरी।' महर्षिने अनुमति दे दी। 'नगरके पुण्यात्मा नागरिकोंको तुम दोनों भाइयोंका दर्शन होना चाहिये, तुम जाओ। किसी प्रकार लौटनेमें शीघ्रताकी आवश्यकता नहीं है।'

किसीको साथ भेजनेकी आवश्यकता नहीं थी। कोई तपस्वी साथ होगा तो राजकुमारोंको संकोच होगा। अयोध्याके चक्रवर्ती महाराजके कुमारोंको किसी भी नगरमें न भटकनेका भय था, न कोई सूचना आवश्यक थी। मिथिला तो निरापद शान्त नगरी थी।

पहली ही दृष्टिमें मिथिलाने दोनों कुमारोंकी दृष्टिको आकृष्ट कर लिया। अयोध्याकी शोभाकी समता नहीं थी

सृष्टिमें, किंतु मिथिलाका आकर्षण भी कम नहीं था। अयोध्याके निर्माणमें, साज-सज्जामें जहाँ सौन्दर्य था, वहीं उस कलामें अपार वैभव एवं अजेय प्रभुत्वकी झलक सर्वत्र प्रकट थी, परंतु मिथिलाका निर्माण, साज-सज्जा सर्वथा पृथक् थी उससे। नगर सुसज्ज था, किंतु उस सज्जामें सौकुमार्य एवं सात्त्विकता थी। उपमा ही देना हो तो कहना होगा कि अयोध्या 'सम्राज्ञी' प्रतीत होती थी और मिथिला 'स्वयंवरोन्मुखी राजकन्या।'

राजपथ, वीथियाँ, चतुष्क, भवनद्वार सब सुसज्ज थे, किंतु सर्वत्र वही सुकुमारता, वही सात्त्विकता। कहीं राजस-प्रदर्शनका एक बिन्दु तक नहीं था वहाँ। वैभव था—विराट् वैभव था, किंतु रत्नखचित द्वारोंमें भी हंस, सरोज, कुसुम-कलिकाएँ और देवकुमारियाँ अंकित थीं। केसरी तथा महावृषभ चित्रांकनमें भी स्थान नहीं पा सके थे।

राजपथ तथा वीथियाँ, कौशेय पटोंके छाया-वितानोंसे, जौ-मुक्ता-झालरोंसे अलंकृत थीं। पथपर सुकुमार सुमन एवं लाजाके चित्रांकन थे। द्वारों तथा चतुष्कोंपर प्रदीप-समन्वित मङ्गल-कलश शोभित थे। सुरभि-सिंचित थे पथ और गवाक्षोंसे सुरभित धूम्र उठ रहा था।

श्रीरामने सानुज नगरमें प्रवेश किया तो सर्वप्रथम बालकोंका समूह समीप दौड़ आया। यह समूह क्रमशः बढ़ता गया। बालकोंके लिये अपना-पराया कहाँ होता है! उन्हें परिचय करते कितनी देर लगती है! कोई बालक दौड़ा आता था और श्रीराम या लक्ष्मणका हाथ पकड़कर कहने लगता था—'मेरा नाम जयध्वज है! मैं निमिवंशी क्षत्रिय हूँ। मेरे पिता महाराजके कृपापात्र हैं। आप दोनों कहाँसे आये? क्या नाम है आप दोनोंका? कब आ गये हमारे नगरमें? मैंने तो पहले आपको कभी नहीं देखा। आपके पिताश्री साथ आये हैं? कहाँ आवास लिया है आपने? मेरे भवन चलकर विराजें। मेरी माताजी बहुत प्रसन्न होंगी। मेरे पिताजी आप दोनोंका, आपके पिताश्री और सेवकोंका भी सत्कार करेंगे। आइये! मेरा भवन दूर नहीं है।'

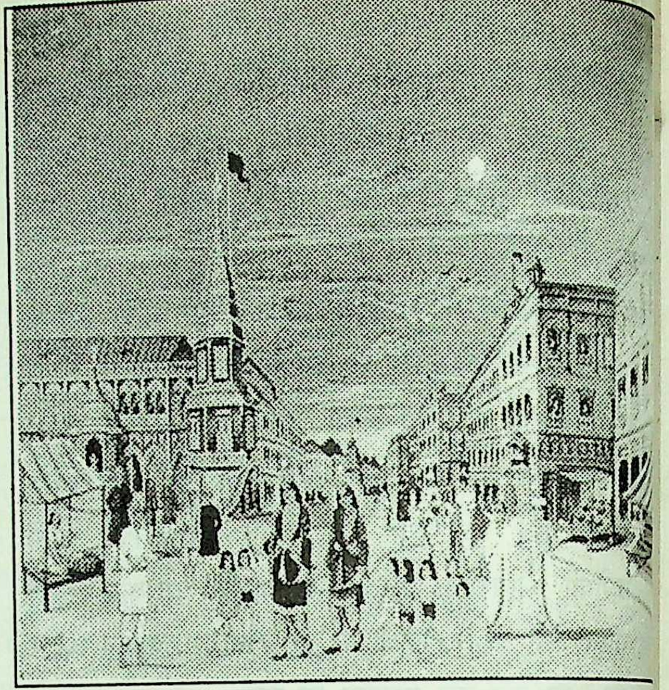

लोग भवनोंसे पथमें आ गये। पथके दोनों ओर भवनोंके गवाक्ष, छज्जे पुर-नारियोंसे भर उठे। वृद्धा द्वारोंपर आ खड़ी हुईं। भवनोंसे लाजा, दूर्वा, पुष्पके सा केसरके सीकरोंकी वर्षा प्रारम्भ हो गयी। जिधरसे निक रहे थे, उधरके पथ एवं भवनोंपरसे आशीर्वादकी मङ्गल ध्वनि गूँजती चलती थी।

'महर्षि विश्वामित्रके साथ चक्रवर्ती महाराज दशरथ दो कुमार नगरमें आये हैं।' पूरे नगरमें चर्चा फै गयी—'इन्दीवर-सुन्दर श्रीराम और स्वर्ण-गौर लक्ष्म मन्मथ इनके चरणोंमें बैठे तो बहुत कुरूप दीखेगा, इत सौन्दर्य और ऐसे शीलसिन्धु कि दोनोंमेंसे किसी एकने तो किसी गवाक्षकी ओर दृष्टि नहीं उठायी।'

'दोनों कुमार बहुत विनयी हैं।'

नगरमें दोनों अयोध्याके राजकुमारोंकी ही चर्चा और घरोंमें आज बालक प्रमुख हो गये थे। वृद्धाएँ, वधु कुमारियाँ ही नहीं, पुरुष भी बालकोंको समीप बैठा बार-बार अनेक प्रकारसे पूछ रहे थे दोनों कुमारों सम्बन्धमें और बालक इस प्रकार गर्वके साथ वर्णन कर थे कि जैसे दोनों कुमार उनके अत्यन्त घनिष्ठ मित्र हों उनके सम्बन्धमें सब कुछ वे जानते ही हों।

* * *

श्रीसीता-राम-विवाह-लीला

(साकेतवासी लक्ष्मणकिलाधीश स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज)

[यद्यपि प्रभुकी समस्त लीलाएँ मङ्गलमयी हैं, आनन्दमयी हैं, किंतु विवाह-लीला परम मङ्गलमयी है, क्योंकि इस लीलामें युगलकिशोर चितचोरका मङ्गलमय दुलह-दुलहिनरूपमें भक्तोंको दर्शन प्राप्त होता है। त्रिदेव अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ युगलरूपका दर्शनकर आनन्दमें विभोर हो गये तथा शरीरकी सुधि-बुधि भूल गये—

हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥

प्रभुके नाम, रूप, लीला तथा धामके साथ ही मधुरा-भक्तिका विवेचन जिस प्रकार विवाह-प्रसंगमें हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

अतएव श्रीगोस्वामीजीने इस विवाह-लीलाको महामङ्गलमयी कहा है। मिथिलामें नगर-दर्शनसे लेकर विवाह-पर्यन्तकी लीलाओंका दिग्दर्शन यहाँ प्रस्तुत है।—सं०]

मिथिला-प्रसंगमें श्रीराघवेन्द्रके नगर-दर्शनका समाचार सुनते ही नर-नारीगण धाम-काम छोड़कर दौड़ पड़े—

धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥

मिथिलामें बाल-वृद्ध, नर-नारीगण सभी प्रभुके दर्शनार्थ दौड़े, यहाँ कोई किसीको रोकनेवाला नहीं। रंगभूमिके प्रसंगमें स्पष्ट है—

चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जुबान जरठ नर नारी॥

नगर-दर्शनमें भी गोस्वामीजीने कहा है कि श्रीराघवेन्द्रने अपनी रूप-माधुरीसे समस्त नर-नारियोंको वशमें कर लिया—

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥

गोस्वामीजी 'नर' का नाम प्रथम लेते हैं 'नारी' का नाम बादमें लेते हैं। इसका निहितार्थ यह है कि नारियोंको वशमें करना सरल है, किंतु नरको वशमें करना कठिन है। श्रीराम-रूपकी यही विशेषता है कि कठोर चित्तवाले पुरुषोंको भी अपने रूप-गुणोंसे वशमें कर लेते हैं।

इस संदर्भमें सर्वप्रथम श्रीविदेहराज जनकका प्रसंग सामने आता है। वह अपने सचिव, पुरोहित, सेनापति एवं बन्धु-बान्धवोंके साथ श्रीराघवेन्द्रका दर्शनकर विमुग्ध हो गये। उनका ब्रह्मानन्द भी शिथिल हो गया। उनके मनने ब्रह्मानन्दका परित्याग कर दिया—

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

जब ज्ञानिशिरोमणिकी ऐसी दशा हो गयी, तब अन्य पुरवासियोंकी दशाका वर्णन कहाँ सम्भव है? फिर कोमल हृदयवाली सखियोंकी दशा तो नितान्त विलक्षण हो गयी। उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा काम आदि समस्त रूप-सम्पन्नोंको श्रीरामरूपके समक्ष नगण्य कर दिया—

बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी॥

तब फिर अन्य देवोंकी क्या सामर्थ्य है? इनके रोम-रोमपर कोटि-कोटि काम न्योछावर कर दिये—

अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम॥

अन्तमें यह निर्णय दिया कि ऐसा कौन तनुधारी है जो इनको देखकर मोहित न हो जाय—

कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी॥

यह मिथिलाका सूत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस सूत्रके अनुसार सुर-असुर, नर-वानर आदि सभीका श्रीराघवेन्द्रकी रूप-माधुरीपर मोहित होना सूचित है। प्रभुको देखकर सर्प-बिच्छू भी अपने विषका परित्याग कर देते हैं। यह आश्चर्य-घटना मानसमें पठनीय है। ऐसे चराचर-मोहक श्रीरामरूपको देखकर भी सखियाँ कहती हैं कि यह वर श्रीजनकनन्दिनी श्रीजानकीजीके योग्य है—***'जोगु जानकिहि यह बरु अहई।'*** मधुर-रसका प्राण निष्कामता है। इसलिये परम वीतराग साधक इनके अधिकारी माने गये हैं। मिथिलाके मधुर-भावमें स्वसुखका गन्ध लेशमात्र भी नहीं है। एकमात्र तत्सुखसुखित्व अर्थात् श्रीयुगलकिशोरके सुखमें सुखी रहनेका भाव है। युगल-भावकी उपासना ही यहाँके मधुर-भावकी चरम परिणति है। चारों राजकुमारोंके दर्शन करनेके पश्चात् इन सखियोंका मनोरथ ध्यान देने योग्य तथा मननीय है—

पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं॥

वे विधिसे अंचल फैलाकर याचना करती हैं कि श्रीसीताजीका श्रीरामसे, श्रीमाण्डवीजीका श्रीभरतजीसे, श्रीउर्मिलाजीका श्रीलक्ष्मणकुमारसे तथा श्रीश्रुतिकीर्तिजीसे श्रीशत्रुघ्नकुमारका विवाह हो तथा हम सब मङ्गल-गान करें। युगलोपासनाका यह उज्ज्वल स्वरूप अन्यत्र देखनेको नहीं मिलता।

युगल-उपासनाका मूल स्रोत मिथिला है। यहीं युगलकिशोरका प्रथम मिलन हुआ। मधुर-भावके समस्त आलम्बन-उद्दीपन-विभाव आदि रस-तरंगें यहीं तरंगायित हुईं। श्रीप्रिया तथा प्रियतम एक दूसरेसे मिलनेके लिये लालायित रहे।

दोनों अनजान प्रिया-प्रियतमकी उत्कण्ठा, मिलनकी तीव्र इच्छा ही मिलनको रसमय बना सकती है। पुष्पवाटिकामें दो अपरिचितोंका मिलन हुआ। प्रथम मिलनमें प्रियाप्रियतमको चुपकेसे हृदयके एकान्त कुंजमें बिठाकर नेत्रके कपाट बंद कर लेती हैं—

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥

उधर श्रीराघवेन्द्र श्रीराजकिशोरीका चित्र अपने कोमल हृदयकी भित्तिपर अंकित कर चले जाते हैं। जाते समय श्रीराजकिशोरीजी मृग, पक्षी, तरु और लता आदिको देखनेके बहाने राजकिशोरको देखती हैं। इस गुप्त दर्शनमें जो उत्कण्ठा एवं प्रेम है उसका वर्णन असम्भव है—

देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि॥

उधर राजनन्दन श्रीरघुनन्दन भ्रातासे वार्तालाप करते हैं, किंतु मन श्रीजनकनन्दिनीजूके रूपमें लुब्ध है—*'मन सिय रूप लोभान'* तथा संध्या-वन्दनको भूलकर श्रीराजकिशोरीकी शोभाका वर्णन करते हैं। चन्द्रमाको देखकर उद्दीपन-विभाव प्रकट हो गया। तथा—

प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा॥
सिय मुख छबि बिधु ब्याज बखानी।

प्रीतिका यह प्रवाह धनुष-यज्ञमें अत्यन्त वेगसे प्रवाहित हुआ है। एक ओर चक्रवर्तीन्द्रनन्दन श्रीरघुनन्दनकी सुकुमारता, दूसरी ओर धनुषकी कठोरता—इन दोनोंके विरोधपू स्वरूपसे मिलनकी उत्कण्ठामें असाधारण वृद्धि हुई।

जब श्रीविदेहराज धनुर्भंग न होनेपर दुखी और निरा होकर यह कह रहे थे कि *'तजहु आस निज निज गृह जाहू लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥'* तब श्रीजानकीजीक दशा अत्यन्त ही शोचनीय हो उठी थी, किंतु श्रीलक्ष्मण कुमारकी वीर वाणीका श्रवणकर प्रीति-लतिका पु प्रफुल्लित हो गयी—

'लखन सकोप बचन जे बोले।'
'सिय हियँ हरषु जनकु सकुचाने॥'

जब छोटे सरकारके प्रतापसे पृथ्वी डोल गयी, तब व सरकारके बल-प्रतापकी क्या बात है? प्रीति-साग ज्वारभाटाकी भाँति उथल-पुथल तबतक चलती र जबतक धनुर्भंग नहीं हुआ। धनुर्भंगमें जैसे-जैसे विल होता है, उत्कण्ठाका वेग तीव्र होता जाता है—

तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेहीं।
मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी।
गननायक बरदायक देवा॥

देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर॥

इस प्रकार देवताओंसे व्याकुल होकर प्रार्थना करने त श्रीमिथिला-राजकिशोरीके अङ्ग-अङ्ग पुलकित होने त नेत्रोंसे प्रेम-जलकी वर्षा होने आदिसे यह स्पष्ट है कि पूर्वराग-प्रसंगमें स्वेद, रोमांच, स्तम्भ आदि आठों सात्वि भावोंका प्रादुर्भाव हुआ है। अभी भी दोनोंके हृद मिलनोत्कण्ठाकी प्रतिक्षण वृद्धि हो रही है, किंतु दोनों मिलनमें बाधक धनुषकी कठोरता अभी भी विद्यमान इसलिये पितृप्रण एवं धनुर्भंग—दोनों अवरोध प्रीति-रस वृद्धिमें महान् योगदान कर रहे हैं। जैसे मघाकी व पश्चात् जब नदी वेगके साथ समुद्रमें मिलनेके लिये दौड़ है, तब उसके तीव्र वेगमें तृण, वीरुध, वृक्ष-शिलाखण्ड सभी उसके साथ बहकर समुद्रकी ओर अनायास चल प हैं, उसी प्रकार प्रेमी प्रेमास्पदके मध्य आनेवाले स अवरोध—विघ्न-बाधाएँ प्रीतिरस-सरितामें प्रवाहित हो ज हैं। जो अवरोध लौकिक दृष्टिसे बाधक हैं, वही सात्वि आध्यात्मिक प्रेमकी वीथिकामें प्रीति-रस-वर्धक हैं,

मानसका पूर्वराग विप्रलम्भ-प्रसंग अलौकिक, आश्चर्यमय है।

इधर प्रियके दर्शनसे प्रियाके मृग-शावक-नयनोंसे प्रेमाश्रु प्रवाहित हैं। किंतु पिताकी प्रतिज्ञाका स्मरण होते ही मनमें क्षोभ उत्पन्न हो जाता है—

नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा॥

गीतावलीमें सखियाँ कहती हैं—'सखि! महाराज जनकके मनकी रीति प्रीति-रहित है—उनके मनमें प्रेमका कोई स्थान नहीं है। यदि ऐसी मनोहर मूर्तिको देखनेके बाद भी उनका पहला विचार और निश्चय बना रहा तथा उनका हृदय नहीं बदला तो वे पूर्णतः प्रीति-शून्य हैं। सखि! कोई महाराजको क्यों नहीं समझाता है कि प्रतिज्ञा तथा राजकुमारको प्रेमके तराजूपर एक बार तौल कर तो देखें। राजमर्यादाकी तुलापर नहीं, किंतु प्रेमकी तुलापर तौलनेपर प्रतिज्ञा हलकी हो जायगी तथा राजकुमार भारी हो जायँगे'—

जनक मनकी रीति जानि बिरहित प्रीति,
× × ×
'पन औ कुवँर दोउ प्रेमकी तुला धौं तारु'॥

जैसे-जैसे धनुर्भंगमें विलम्ब हो रहा है, वैसे-वैसे मिलनोत्कण्ठाका वेग बढ़ रहा है। पिताके दारुण हठकी चिन्ता हृदयको अत्यन्त विकल किये हुए है—

अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानी॥

धनुष कठोर है, राजकुमार अत्यन्त कोमल हैं। ऐसी दशामें राजकिशोरको धनुष तोड़नेके लिये विवश किया जाना सभीके लिये लज्जाजनक है। यदि महाराज विवेक खो बैठे हैं तो सचिव एवं सभासद उनको क्यों नहीं समझाते हैं? जैसे शिरीष-सुमनसे हीरेका भेदन असम्भव है, वैसे ही सुकुमार राजकुमारसे कठोर धनुषका भंजन कठिन है—

सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा॥

धनुषसे प्रार्थना करती हैं कि श्रीरघुनन्दन जितने कोमल हैं, उसी अनुपातमें तुम हलके हो जाओ। श्रीराजकिशोरीजीको इतना परिताप है कि एक-एक क्षण सैकड़ों युगोंके समान प्रतीत हो रहे हैं—

अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग सय सम जाहीं॥

वे प्रभुकी ओर देखती हैं, साथ ही पृथ्वीकी ओर देख रही हैं। उनके चंचल नेत्र ऐसे लग रहे हैं, मानो कामदेवकी दो मछलियाँ विधु-मण्डलमें डोल-क्रीडा कर रही हों—

प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल॥

प्रेम-रस-रसिकोंने प्रेम-गोपनका महत्त्व स्वीकार किया है। चैलांचल-आच्छादित नेत्रोंसे प्रियके दर्शनका एक विलक्षण रस है। प्राणेश्वरसे प्रेयसीका चित्त मिला होनेपर भी घूँघटकी ओटसे देखनेमें जो आनन्द है वह अंचलरहित नेत्रोंसे देखनेमें नहीं है—

प्राणेश्वरश्चतुरया मिलितेऽपि चित्ते
चैलाञ्चलव्यवहितेन निरीक्षणीयः।

श्रीराजकिशोरीजीने अपने प्रेमका गोपन जिस कौशलसे किया, वह अनिर्वाच्य है—

लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसें परम कृपन कर सोना॥

जिस प्रकार कृपण सुवर्णको छिपाकर रखता है, उसी प्रकार श्रीराजकिशोरीजीने भी नेत्रसे निःसृत प्रेम-जलको नेत्रके कोनेमें छिपा लिया। यदि नेत्र-जल बाहर गिरता तो लोग जान जाते। भाव-गोपनकी यह मुद्रा वास्तवमें विस्मयकारिणी है।

देवताओंसे बार-बार प्रार्थना करनेपर भी जब विश्वास नहीं हुआ कि श्रीराजकिशोर धनुर्भंग कर सकेंगे, तब किशोरीजीने अपने अलौकिक स्नेहपर विश्वास कर प्रेम-प्रण ठान लिया।

अब प्रेमराज्यकी राजधानी मिथिलापुरीमें दो प्रण प्रकट हो गये। एक जनकराजका दूसरा जनककिशोरीका। जनक-प्रण तो सर्वत्र प्रसिद्ध है जो मर्यादाकी सीमा है तथा जनकराजकिशोरीका प्रण प्रेमकी सीमा है।

स्नेह दो प्रकारका होता है एक असत्य और एक सत्य। स्वार्थसे सम्बन्धित स्नेह असत्य होता है तथा स्वार्थरहित स्नेह सत्य होता है। श्रीराजकिशोरीजीका स्नेह सत्य है। ऐश्वर्यकी दृष्टिसे तो दोनोंका पुरातन प्रेम है—***'प्रीति पुरातन लखइ न कोई॥'*** किंतु माधुर्यकी दृष्टिसे उनका प्रेम अलौकिक है।

अन्तमें श्रीराजकिशोरीजी इसी सिद्धान्तपर दृढ़ हो गयीं कि जिसपर जिसका सत्य स्नेह होता है, वह उसको अवश्य प्राप्त होता है—

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥
प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना॥

यह स्नेह-रीतिकी पराकाष्ठा है। रतिके परिपाक होनेपर प्रेम और प्रेमके परिपाक होनेपर स्नेह-रसका उदय होता है। घृत-स्नेह तथा मधु-स्नेहके भेदसे स्नेह भी दो प्रकारका होता है। घृत-स्नेहमें तदीयत्व तथा मधु-स्नेहमें मदीयत्व है। श्रीराजकिशोरीमें मधु-स्नेह है। अतः इस स्नेहके परवश होकर श्रीराजकिशोर धनुर्भंगके लिये व्याकुल हो गये—

सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें। चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसें॥

जैसे छोटे साँपको गरुड देखता है, उसी प्रकार श्रीराजकिशोरजीने धनुषकी ओर देखा। जैसे गरुडकी दृष्टि पड़ते ही सर्प सिकुड़ कर छोटा हो जाता है, उसी प्रकार श्रीराघवेन्द्रको देखते ही धनुष सिकुड़कर छोटा हो गया।

इस प्रकार प्रिया-प्रेम-परतन्त्र श्रीराघवेन्द्रने देखा कि श्रीराजकिशोरीकी व्याकुलता इतनी अधिक है कि उनको एक निमेष कल्पके समान प्रतीत हो रहा है। अतः श्रीरामभद्रने खेल-खेलमें शिव-धनुषको तोड़ डाला—

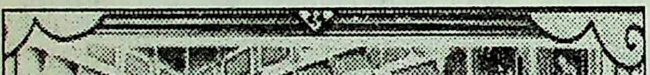

देखी बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करइ का सुधा तड़ागा॥
का बरषा सब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें॥
अस जियँ जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेषी॥

× × ×

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें। काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि समस्त लोकोंमें जय-जयकार होने लगा तथा प्रमुदित नर-नारीगण *'हय गय धन मनि चीर'* न्योछावर करने लगे। विविध वाद्य बजने लगे, सखियाँ मङ्गलगान करने लगीं। श्रीराजकिशोरीके सुखका क्या कहना? उन्हें तो जैसे चातकीको स्वातिजल मिल गया हो—

सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥

श्रीशतानन्दजीकी आज्ञासे श्रीजनकराजनन्दिनी श्रीरघुनन्दनको जयमाल पहनानेके लिये चलीं। साथमें सुन्दर सखियाँ मङ्गलगान करती चल रही हैं। बाल मरालकी गतिसे श्रीराजकिशोरीजी चल रही हैं, उनके अङ्गमें अपार सुषमा है—*'सुषमा अंग अपार।'* सखियोंके मध्यमें श्रीराजकिशोरीजी उसी प्रकार शोभा पा रही हैं जैसे छबि-समूहके मध्यमें महाछबि शोभित हो। कर-कमलमें जयमाल इस प्रकार शोभायमान है, मानो विश्व-विजयकी शोभा विद्यमान है। श्रीराजकिशोरीके मनमें उत्साह है, किंतु तनमें संकोच है, गूढ़ प्रेम किसीको पता नहीं है। समीप जाकर श्रीराघवेन्द्रकी शोभा देखकर चित्रलिखित-सी प्रतीत होने लगीं। चतुर सखीके समझानेपर युगल कर-कमलोंसे जयमाल उठा रही हैं, किंतु प्रेमके कारण पहना नहीं पा रही हैं। मानो दो नालसहित कमल सभीत चन्द्रमाको जयमाल पहना रहा हो। सखियाँ छबिका दर्शन कर गान करने लगीं। जयमाल लेकर श्रीराजकिशोरीने जब श्रीरघुनन्दनके वक्षःस्थलकी ओर देखा तो उनके हृदयमें एक सुन्दर राजकुमारीका चित्र दीखा—

जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी॥

साधारण अर्थ तो यही है कि भित्ति-चित्रकी भाँति राजकुमारी प्रतीत हो रही थीं। जैसे दीवारका चित्र जडवत् होता है, उसी प्रकार चेष्टाशून्य हो गयीं—प्रेमकी सर्वश्रे दशा है जडता।

श्रीअवधके एक सिद्ध संतने-*'रहि जनु कुअँरि चि अवरेखी।'* का विलक्षण अर्थ करते हुए कहा है—

'राजकुमारीजीने प्रियतमके वक्षःस्थलमें एक राजकुमारीका चित्र देखा। बस, मान-लीला प्रारम्भ हो गयी। श्रीराजकिशोरीजीको मानवश यह भ्रम हो गया कि इनके हृदयमें पहलेसे ही एक राजकुमारी बैठी है, फिर इन

जयमाला पहनानेसे क्या लाभ? राजकिशोरीजीकी यह स्थिति देखकर एक चतुर सखीको यह समझाना पड़ा कि इनके हृदयमें जो चित्र है वह आपका ही है। आप अपनी अँगुलीकी अँगूठी आरसीसे मिलान कर देख लें। आपके मुखचन्द्रसे चित्र अभिन्न है या नहीं? श्रीराजकिशोरीने जब मिलान किया तो उनका भ्रम दूर हो गया। उन्हींका चित्र प्रियतमके हृदयमें विराजमान मिला, किंतु उनका आश्चर्य और बढ़ गया कि मेरा चित्र इनको मिला कैसे? तब सखीने कहा कि पुष्पवाटिकामें चुपकेसे आपका चित्र हृदयकी भित्तिपर राजकुमारने खींच लिया था, इसका आपको भान नहीं हो सका'—

प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी॥
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही॥

चतुर सखीने इस रहस्यको बताकर उनका मान दूर कर दिया। रसशास्त्रमें स्नेहकी पराकाष्ठामें मान-रसका उदय कहा गया है। मानके बिना मधुर-रसकी पुष्टि नहीं होती—ऐसा भी कहा गया है। जब मान दूर हुआ तब भी एक समस्या सामने खड़ी हो गयी। श्रीरघुनन्दन थोड़े बड़े हैं, सिरपर चौतनी भी धारण किये हैं—

पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाईं। कुसुम कलीं बिच बीच बनाईं॥

ऐसी स्थितिमें जबतक श्रीरामचन्द्र झुकते नहीं हैं, तबतक श्रीकिशोरीजी उनको जयमाला कैसे पहनावें? श्रीरघुकुलावतंस रघुवर झुकनेमें संकोच कर रहे हैं; क्योंकि राजसमाज सामने है। प्रेमरसकी दृष्टिसे अभीसे लाड़िलीजूके समक्ष झुकनेसे कहीं सर्वदा झुकना न पड़े यह भी आशंका है। इस रहस्यको सखियाँ समझ गयीं, अतः उन्होंने संगीतके उच्चतम राग-तालोंमें गान प्रारम्भ कर दिया। संगीत-लहरीमें राघवेन्द्र थोड़ा झुके और श्रीकिशोरीजीने श्रीराघवेन्द्रको जयमाला पहना दी। श्रीरघुवरके उरमें जयमाला देखकर देवता पुष्प बरसाने लगे। नगरमें तथा आकाशमें बाजे बजने लगे।

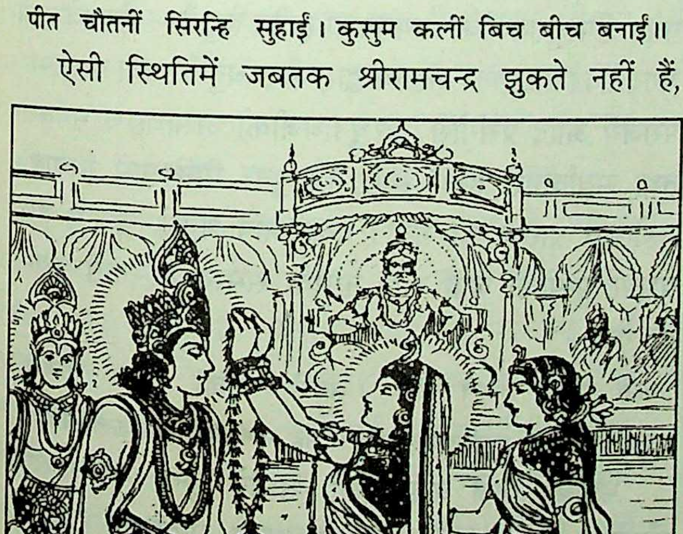

देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग और मुनीश्वर 'जय हो, जय हो' ऐसा कह-कहकर आशीर्वाद दे रहे हैं। देवांगनाएँ नृत्य-गान करती हैं, बारम्बार पुष्पोंकी अंजलियाँ अर्पण की जा रही हैं। ब्राह्मण वेद-ध्वनि कर रहे हैं, भाट विरदावली—वंशयशका उच्चारण कर रहे हैं। पृथ्वी, पाताल और आकाशमें यह यश फैल गया कि श्रीरामजीने शिव-धनुष तोड़कर श्रीसीताजीका वरण कर लिया—

महि पाताल नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा॥

नगरके नर-नारी आरती उतार रहे हैं और अपनी धन-सम्पत्ति निछावर कर रहे हैं। आनन्दातिरेकके कारण धनका लोभ नहीं रह गया है। अपने सामर्थ्यसे अधिक धन न्योछावर कर रहे हैं। श्रीसीतारामजीकी जोड़ी ऐसी सुशोभित हो रही है, मानो छबि और शृंगार एक ही स्थानपर एकत्र हो गये हों। सखियाँ श्रीसीताजीसे कहती हैं—'प्रभुके चरणोंका स्पर्श करो', किंतु वे अत्यन्त भयके कारण चरणोंका स्पर्श नहीं करती हैं। यहाँ श्रीसीताजी छबि हैं और श्रीरामजी शृंगार हैं। यथा—

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें। छबिगन मध्य महाछबि जैसें॥

श्रीसीताजी गौरवर्णा हैं और छबिका वर्ण भी उज्ज्वल है। श्रीरामजी श्याम हैं तथा शृंगार भी श्याम-वर्ण है—'**श्यामो भवति शृंगारः**'। अतएव गौर-श्याम जोड़ीकी महाशोभा है। जयमाल पहनानेके पश्चात् वधूको वरके चरणोंका स्पर्श करना चाहिये, किंतु श्रीसीताजी भयभीत हैं, अतः चरणस्पर्श नहीं करतीं। यह रहस्य सखियाँ नहीं जानती हैं, अतएव वे समझती हैं कि लज्जाके कारण सीताजी प्रभुके चरणोंका स्पर्श नहीं कर रही हैं। अतः सखियाँ, लोक-वेद-विधिज्ञा सर्वज्ञा श्रीसीताजीको लोकरीति बताती हैं और श्रीजानकीजीको

प्रभुके श्रीचरणोंका स्पर्श करनेको कहती हैं, किंतु फिर भी अति भीत होनेके कारण श्रीराजकिशोरीजी चरण-स्पर्श नहीं करती हैं, क्योंकि उन्हें ऋषि गौतमकी पत्नी अहल्याकी गतिका स्मरण करके भय हो रहा है कि कहीं इन चरणोंका स्पर्श करनेसे मेरी गति भी ऋषिपत्नीकी भाँति न हो जाय। इस भयसे श्रीचरणोंका हाथसे स्पर्श नहीं करती हैं। रघुकुलभूषण राघवेन्द्र श्रीसीताजीकी ऐसी अलौकिक प्रीति देखकर मनमें हँसने लगे—

गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥

इस प्रकार धनुष-यज्ञ एवं श्रीसीय-स्वयंवर भी सम्पन्न हुआ। दुष्ट राजाओंके कटु वचनोंका श्रवणकर साधु राजाओंने भलीभाँति उनका प्रतिवाद किया तथा उन्हें फटकारा। श्रीलक्ष्मणकुमार श्रीराघवेन्द्रके भयसे कुछ बोल नहीं सकते; किंतु उनकी भृकुटी टेढ़ी हो गयी। वे राजाओंकी ओर क्रोधसे उसी प्रकार देखने लगे, जैसे मत्त गजराजको देखकर सिंह-शावक देखता है। उसी समय धनुर्भंग सुनकर श्रीपरशुरामजी पधारते हैं, जिनको देखकर समस्त राजा हतप्रभ हो जाते हैं तथा उनको प्रणाम कर धीरेसे चल देते हैं। तब श्रीजनकजी श्रीसीताजीको बुलाकर प्रणाम कराते हैं—

सीय बोलाइ प्रनामु करावा॥

श्रीपरशुरामजीने आशीर्वाद दिया, सखियाँ प्रसन्न हुईं, पुनः श्रीराजकिशोरीजीको अपने समाजमें ले गयीं। '**सौभाग्यवती भव, सावित्री भव**' इत्यादि आशीर्वाद सुनकर सखियाँ प्रसन्न हुईं कि श्रीराघवेन्द्रको अब इनसे कोई भय नहीं है, इस आशीर्वादसे दोनोंका कल्याण भी निश्चित है। श्रीविश्वामित्रजीने दोनों भ्राताओंका परिचय देते हुए उनके चरणोंमें प्रणाम कराया। मनोज-मदमर्दन श्रीरघुनन्दनके अपार सौन्दर्यको देखकर श्रीपरशुरामजीके नेत्र चकित हो गये अर्थात् पलकोंका गिरना बंद हो गया। यद्यपि श्रीपरशुरामजी अत्यन्त क्रुद्ध हैं, किंतु श्रीराम-रूपका ऐसा चमत्कार है कि उनका क्रोध प्रभुके दर्शनमात्रसे दूर हो गया तथा वे श्रीरामचन्द्र-मुखचन्द्रके चकोर बन गये—

रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥

श्रीपरशुरामजी विदेहराजकी ओर देखकर जानते हुए भी अनजानकी भाँति पूछते हैं कि यह भारी भीड़ कैसी है? श्रीजनकजीने सब समाचार कह सुनाया, जिस कारण सब राजा आये थे। समाचार सुनकर उन्होंने जब दूसरी ओर देखा तो भूमिपर धनुषके टुकड़े दीख पड़े, तब वे अत्यन्त क्रोधमें भरकर जनकजीसे इस प्रकार बोले—'रे जड़ जनक! सच-सच बता धनुष किसने तोड़ा है?'

इस प्रसंगमें ध्यान रखने योग्य बात यह है कि श्रीपरशुरामजी जानते हुए अनजान बनकर पूछ रहे हैं, अतः इससे स्पष्ट है कि इनके आगमनका विशेष प्रयोजन है। प्रथम तो श्रीमिथिलापुरीमें अमङ्गलको रोकना है, क्योंकि दुष्ट राजाओंके प्रति श्रीलक्ष्मणकुमारका क्रोध बढ़ रहा था। वे एक क्षणमें ही दुष्ट राजाओंका वध कर डालते। जयमालके पश्चात् जो मङ्गलमय वातावरण बना था, वह अमङ्गलमें परिणत हो जाता। दूसरा कारण है कि प्रभुके क्षमा-गुणका विस्तार करना। अन्तमें स्वयं प्रभुकी स्तुति करते हुए उन्होंने कहा है कि अनजानमें मैंने आपको बहुत अनुचित वचन कहे हैं, अतः क्षमाके मन्दिर दोनों भ्राता हमें क्षमा कर दें—

अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता॥

'रघुकुलकेतु! आपकी जय हो, जय हो, जय हो' ऐसा कहकर श्रीपरशुरामजी तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। श्रीपरशुरामजीके आगमनका तृतीय हेतु है—श्रीराघवेन्द्रकी भगवत्ताका प्रकाशन। अहल्योद्धार, शैव-धनुर्भंग तथा परशुराम-पराजय आदि प्रसंगोंसे श्रीरघुनाथजीकी असाधारण भगवत्ता तथा सर्वावतारी होना स्पष्ट है। पुनः मिथिलामें विवाह-महोत्सव प्रारम्भ हो गया। देवताओंने नगाड़े बजाये तथा प्रभुपर पुष्पोंकी वर्षा की। नगरके समस्त नर-नारी प्रसन्न हो गये—

अति गहगहे बाजने बाजे । सबहिं मनोहर मंगल साजे॥
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनीं। करहिं गान कल कोकिलबयनीं॥

घमाघम बाजे बजने लगे, सभीने सुन्दर मङ्गल-साज सँवारकर रखे। समूह-के-समूह सुन्दर मुखवाली सुनयनी कोकिल-बयनी स्त्रियाँ परस्पर मधुर गान करने लगीं। श्रीजनकजीने श्रीविश्वामित्रजीको प्रणाम किया और बोले—'प्रभो! आपकी कृपासे श्रीरामजीने धनुष तोड़ दिया। दोनों भ्राताओंने मुझे कृतार्थ किया, अब जो उचित हो उसके लिये आज्ञा करें।' मुनि बोले—'राजन्! विवाह धनुषके अधीन था, यद्यपि धनुषके टूटते ही विवाह हो गया, यह बात देव-दानव—सभीको विदित है; फिर भी अब आप जाकर वंशके

परम्पराके अनुसार विप्रों, कुल-वृद्धोंसे पूछकर वेद-विहित आचारका पालन करें। अवधपुरीमें दूत भेजिये जो जाकर श्रीदशरथजीको बुला लावें। राजाने उसी समय दूतोंको बुलाकर अयोध्यापुरी भेज दिया। सभी महाजनोंको बुलाकर बाजार, मार्ग, देव-मन्दिर तथा समस्त नगरको सजानेकी आज्ञा दी। पुनः परिचारकोंको बुलाकर विचित्र मण्डप बनानेकी आज्ञा दी। मण्डप-रचनाकी विधिमें निपुण कारीगरोंने ब्रह्माजीकी वन्दना कर कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने सोनेके केलेके खम्भे बनाये, उनमें हरित मणियोंके पत्ते तथा फल एवं पद्मरागमणिके फूल ऐसे रचकर बनाये गये कि उस विचित्र रचनाको देखकर ब्रह्माका मन चकित हो गया कि यह केलेका वृक्ष वास्तविक है या कृत्रिम—

बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा॥

× × ×

रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल॥

हरित मणिके ही बाँस बनाये गये; क्योंकि मण्डपमें हरे बाँस ही लगाये जाते हैं। पानोंकी लता सुवर्णकी बनायी गयी, क्योंकि पके पान पीले होते हैं। सोनेकी नाग-बेलिको रचकर उससे मण्डप बाँधा गया तथा बीच-बीचमें मुक्ताओंकी माला शोभित थी। माणिक, मरकत, हीरा तथा फिरोजाको चीरकर कमल बनाये गये। भौंरे तथा अनेक रंगके पक्षी बनाये गये जो पवनके संचारसे कलरव करते हुए गुंजार करते थे। यदि ये मणियोंके पक्षी मौन होते तो कृत्रिम जान पड़ते।

खम्भोंमें देवताओंकी प्रतिमाएँ गढ़कर निकाली गयी हैं तथा वे मङ्गल-पदार्थ लिये खड़ी हैं। खड़ी हुई प्रतिमा बनानेका भाव यह है कि श्रीरामचन्द्रजी इस मण्डपमें जब पधारेंगे, उस समय उनके आगमनपर सबको उठकर खड़ा होना चाहिये, किंतु पत्थरमें गढ़ी हुई कृत्रिम प्रतिमाएँ कैसे उठेंगी? न उठनेके कारण इनका धर्म भी जायगा तथा लोग इनको कृत्रिम जानेंगे। मिथिलाके गुणियोंका कौशल यहाँ दर्शनीय है। अनेक प्रकारकी गजमुक्तामय चौकें पुरायी गयीं। नीलमको खरोंचकर सुन्दर आमके पत्ते बनाये। सोनेकी बौर-पन्नाके घौर (गुच्छे) रेशमकी डोरसे बँधे हुए शोभा दे रहे हैं।

इस प्रकार मिथिला-मण्डपकी अलौकिक शोभाके विस्तारके लिये उसमें वंदनवार लटकाये। अगणित मङ्गल-कलश, ध्वजा, पताका, पाटम्बर, चमर आदिसे तथा मणिमय मनोहर दीपक आदिसे मण्डप सुशोभित है। मण्डपकी ऐसी शोभा है कि उसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता—'***जाइ न बरनि बिचित्र बिताना***'। वास्तवमें जिस मण्डपमें दुलहिन श्रीविदेहराजनन्दिनी हों तथा दूलह दशरथनन्दन श्रीरघुनन्दन हों उस मण्डपका वर्णन करे ऐसी बुद्धि किस कविकी है? युगल सरकार ऐश्वर्यकी दृष्टिसे अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि प्रकाशकोंके भी प्रकाशक हैं। उन्हींके प्रकाश-लेशसे तीनों लोक प्रकाशित हैं। अतः प्रकाश-प्रकाश्यका वर्णन कैसे हो? यह भी भाव है कि श्रीजनकराजनन्दिनीकी कृपासे निर्मल मतिको प्राप्तकर कुछ वर्णन किया—'***जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ***' -से स्पष्ट है।

श्रीजनक-भवनकी जैसी शोभा है, वैसी ही नगरके प्रत्येक घर-घरमें दीख पड़ती है। जिसने उस समय मिथिलापुरीको देखा, उसे चौदहों भुवन तुच्छ लगते हैं। जो सम्पत्ति नीचके घरमें थी, उसे देखकर सुरपति इन्द्र भी मोहित हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि यदि मानसकार जनकके भवनको देखकर इन्द्रके मोहित होनेकी बात कहते तो जनकपुरकी बड़ाई नहीं होती, राजमहल मात्रकी ही बड़ाई होती, परंतु नीचके घरको देखकर इन्द्रके मोहित होनेके वर्णनसे सम्पूर्ण नगरकी बड़ाई हुई। जब जनकपुरका नीच भी इन्द्रसे अधिक ऐश्वर्यवाला है, तब राजाकी सम्पदाकी कौन कह सकता है—

जनक भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी॥
जेहि तेरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगहिं भुवन दस चारी॥
जो संपदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥

जिस नगरमें महालक्ष्मी नारीका कपट-वेष धारण कर वास करती हों, उस पुरकी शोभाका वर्णन करनेमें शेष-शारदाको भी संकोच होता है। कुछ लोग इसका अर्थ ऐसा भी करते हैं कि श्रीजानकीजीके अंशसे तो अगणित उमा, रमा तथा ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं—

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥

अतः '**लच्छि**' शब्दसे सम्पदाकी देवी लक्ष्मी अभिप्रेत हैं। श्रीसीय-रघुवीर-विवाह-दर्शनार्थ वेष बदलकर वे मिथिलामें निवास कर रही हैं। आगे परिछनमें उनका आगमन होगा—

सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी॥
कपट नारि बर बेष बनाई। मिलीं सकल रनिवासहिं जाई॥

दिव्य मण्डपके निर्माणके बाद अब बारातके शुभागमन-

स्वागतकी तैयारी प्रारम्भ हो गयी। दूतोंको अयोध्या भेजा गया—

पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन॥

मुनिकी आज्ञासे महाराजने श्रीअवधपुरसे दशरथजीको बुलाने जो दूत भेजे थे, वे वहाँ महाराजके दरबारमें पहुँचकर श्रीदशरथजी महाराजको प्रणामकर उन्हें पत्रिका दी। आनन्दित होकर उन्होंने स्वयं उठकर पत्रिका ले ली। पत्रिका पढ़ते ही दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। शरीर पुलकित हो गया। हृदय प्रसन्नतासे भर आया। श्रीराम-लक्ष्मणजी हृदयमें हैं तथा हाथमें सुन्दर पत्रिका है। वे अत्यन्त भाव-विह्वल हैं, फिर भी धैर्य धारणकर उन्होंने पत्रिका पढ़ी। माङ्गलिक समाचार सुनकर सारी सभा प्रसन्न हो गयी। चारों ओर आनन्द छा गया। मुनिकी आज्ञा है कि श्रीभरत-शत्रुघ्नजीके साथ बारात लेकर जनकपुर पधारें। यह मधुर बेला है।

श्रीभरतजी सखाओंके साथ खेल रहे थे, समाचार पाते ही मित्रों तथा शत्रुघ्नजीके साथ वहाँ आ गये। प्रेमसे सकुचाते हुए पिताजीसे पूछते हैं—'हे तात! पत्रिका कहाँसे आयी है? प्राणप्रिय दोनों भाई कुशलसे तो हैं? किस देशमें हैं?' प्रेमसिक्त वचन सुनकर राजाने पुनः पत्रिका पढ़ी। पत्रिका सुनकर दोनों भ्राता पुलकित हो गये, स्नेह शरीरमें नहीं समाता। श्रीभरतजीका पवित्र प्रेम देखकर सारी सभाको बहुत सुख प्राप्त हुआ। यहाँ श्रीभरतजीका श्रीराम-प्रेम दर्शनीय है। महाराजने दूतोंको समीप बैठाकर उनसे मधुर वचन कहे—'भैया! कहो दोनों बालक कुशलसे तो हैं? तुमने अपनी आँखोंसे उन्हें भलीभाँति देखा है? श्याम-गौर, नित्य-किशोर विश्वामित्रजीके साथ हैं। यदि तुम पहचानते हो तो उनका स्वभाव कहो;' प्रेमवश राजा इस प्रकार बार-बार पूछ रहे हैं। जिस दिनसे मुनि उनको साथ ले गये हैं, उस दिनसे आज ही सच्ची खबर पायी है। विदेहराजने उनको कैसे पहचाना?

प्रेमपूर्ण वचन सुनकर दूत मुसकराने लगे। महाराजसे बोले—'आपके समान कोई भी धन्य नहीं है, विश्वके विभूषण जिनके राम-लक्ष्मण पुत्र हैं। आपके पुत्र पूछने योग्य नहीं हैं—पुरुषोंमें सिंह तथा तीनों लोकोंके प्रकाशक हैं। जिनके प्रतापके सामने चन्द्रमा मलिन तथा सूर्य शीतल हैं, उनके लिये आप कहते हैं कैसे पहचाना? क्या सूर्यको हाथमें दीपक लेकर देखा जाता है? श्रीकिशोरीजीके स्वयंवरमें अनेक राजा आये, किंतु शिवजीके धनुषको कोई उठा तक न सका। सभी वीर हार गये, सबकी शक्ति शिवजीके धनुषने डाली, बाणासुर, रावण आदि भी पराजित हो गये, श्रीरामजीने बिना प्रयास कठोर धनुषको उसी प्रकार डाला—जैसे हाथी कमलकी डंडीको तोड़ डालता परशुरामजी भी पराजित होकर लौट गये। श्रीरामजीके ही श्रीलक्ष्मणजी भी तेजस्वी हैं। उनको देखकर सभी ऐसे काँपने लगते थे, जैसे सिंह-शावकसे हाथी काँपने ल है। देव! आपके दोनों पुत्रोंको देखकर अब कोई आँ सामने नहीं आता।'

उपनिषद्‌में कहा गया है कि 'जिसको देखनेके अन्य किसीको देखनेकी इच्छा न रह जाय—वही भूमा, आनन्द है।' दूतकी वही स्थिति है जो बड़ी साधनाके ब्रह्मज्ञानीकी होती है। दूतके वचन सुनकर सभास महाराज प्रेममें निमग्न हो गये तथा दूतोंको न्योछावर लगे। दूतने कहा—'यह अनीति है'—ऐसा कहकर बंद कर लिये। धर्म समझकर सभीने सुख माना। श्रीजानकीजीको अपनी कन्याके समान जानते हैं, पुत्रीका धन कैसे लें? आज भी भारतमें अनेक स्थानोंमें प्रथा है कि जहाँ ग्रामकी कन्याका विवाह होता है, वहाँका जल तक नहीं पीते, न्योछावर लेनेकी बात तो रही। ऐसी बात कानसे सुनना भी नहीं चाहते, इसलिये बंद कर लिये। दूतोंकी इस निष्ठापर चारों पुरुषार्थ न्यो करने योग्य हैं। महाराजने वसिष्ठजीको पत्रिका दी तथा कथा सुनायी। गुरुदेवने कहा कि पुण्यात्मा पुरुषके समस्त पृथ्वी सुखसे भरी रहती है। जिस प्रकार न स्वयं समुद्रमें जाती हैं, उसी प्रकार सुख-सम्पत्तियाँ धर्मा पास चली जाती हैं। वसिष्ठजीने बारात लेकर मि चलनेकी आज्ञा दी। महाराजने रनिवासमें जाकर प रानियोंको बाँचकर सुनायी। सभी रानियाँ शुभ सम सुनकर आनन्दविभोर हो गयीं। ब्राह्मणों एवं याचक न्योछावर देने लगीं। चारों राजकुमारोंको चिरंजीवी हों आशीर्वाद देते हुए याचक चले गये—

'चिरु जीवहुँ सुत चारि चक्रबर्ति दसरत्थ के॥'

समाचार सुनते ही घर-घरमें बधाइयाँ बजने ल श्रीजनकसुता तथा श्रीरघुवीरके विवाहका उत्साह चौ लोकोंमें भर गया—

भुवन चारिदस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआ

यद्यपि श्रीअवध सदा सुहावनी तथा श्रीरामजीकी मङ्गलमयी पावन पुरी है, फिर भी प्रीतिकी अधिकताके कारण मङ्गल-रचनाओंद्वारा पुरी अधिक सजायी जा रही है। अवधपुरी इतनी सुन्दर है कि नारदादि, सनकादि इसका दर्शन करते ही अपने वैराग्यको भूल जाते हैं—

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा॥
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं॥

जहाँ-तहाँ बिजली-सी कान्तिवाली मृग-शावक-नयनी, रति-मानमर्दनी, सुहागिनी स्त्रियाँ सुहाग-शृंगार किये हुए सुन्दर वाणीसे मङ्गल-गान कर रही हैं। विश्वभरको मोहित करनेवाले मण्डपकी रचना जहाँ हुई है, उस राजमहलका वर्णन कौन कर सकता है? कहीं वन्दी विरदावली गा रहे हैं, कहीं ब्राह्मण वेद-ध्वनि कर रहे हैं। सुन्दर स्त्रियाँ श्रीरामजी तथा श्रीसीताजीका नाम लेकर मङ्गल-गान कर रही हैं। उत्साह बड़ा है तथा महल छोटा है, अत: उमड़कर चारों दिशाओंमें निकल चला। जहाँ समस्त देवताओंके शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने अवतार लिया, उस दशरथजीके राजमहलकी शोभाका वर्णन कौन कवि कर सकता है?

महाराजने श्रीभरतजीको बुलाकर घोड़ा-हाथी सजाकर बारातमें चलनेकी आज्ञा दी। श्रीभरतजीने समस्त उच्च अधिकारियोंको घोड़े तथा हाथी सजानेकी आज्ञा दी। उनपर श्रीभरतजीके समान अवस्थावाले बने-ठने रँगीले राजकुमार सवार हुए, प्रत्येक सवारके साथ दो-दो पैदल सिपाही चल रहे हैं। सभी वीर नगरसे बाहर आकर अपने-अपने चतुर घोड़ोंको अनेक चालोंसे फिरा रहे हैं। सुसज्जित रथमें श्याम-कर्ण घोड़े लगे हैं। रथपर चढ़कर नगरके बाहर बारात एकत्र होने लगी, शुभ शकुन होने लगे।

सबके हृदयमें अपार हर्ष है, शरीर पुलकित है। सभीको यही लालसा लगी है कि श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भ्राताओंको नेत्र भरकर कब देखेंगे? श्रीअवधवासी नर-नारी-बाल-वृद्ध—सभीको श्रीराम-लक्ष्मण प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, अत: उनके दर्शनकी लालसामें हर्ष स्वाभाविक है। यहाँ अयोध्यावासियोंकी श्रीरामभक्तिका सम्यक् परिचय मिलता है। हाथियोंके गर्जन और घंटों, रथों, घोड़ों तथा नगाड़ोंके घोर शब्दके सामने अपना-पराया कुछ सुनायी नहीं देता। अटारियोंपर चढ़ी स्त्रियाँ थालियोंमें मङ्गल-आरती लिये देख रही हैं तथा सुन्दर गीत गा रही हैं। सुमन्तजी दो सुसज्जित रथ महाराजके पास लाये। एकपर श्रीवसिष्ठजी विराजमान हुए तथा दूसरेपर चक्रवर्तीजी स्वयं विराजमान हुए। सर्वत्र मङ्गल-गान हो रहे हैं। रसीले रागमें शहनाइयाँ बज रही हैं। देवगण पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं। सेवकगण विभिन्न प्रकारके करतबें दिखाते चलते हैं। विदूषक हास्य-विनोद करते हुए चल रहे हैं। राजकुमारगण मृदंग-निशान आदिका शब्द सुनकर घोड़ोंको इस प्रकार नचाते हैं कि तालके बंधानसे डिगते नहीं। तालकी गतिसे घोड़ोंको नचाना संगीत-कलाकी पराकाष्ठा है। बारात ऐसी सजी है कि उसका वर्णन असम्भव है। मङ्गलदायक शकुन हो रहे हैं। नीलकण्ठ बायीं ओर चारा ले रहा है, दाहिनी ओर काक अच्छे खेतमें शोभित हैं। नकुलका दर्शन हो रहा है। तीनों प्रकारकी हवा अनुकूल होकर बह रही है। यात्रामें पीछेकी हवा शुभ होती है, आगेकी नहीं। सौभाग्यवती सुन्दर स्त्री बालक तथा जलसे भरे घड़ेके साथ आ रही है। लोमड़ी पीछे फिरकर दर्शन देती है। गाय अपने बच्चोंको सामने खड़ी दूध पिलाती है। मृग-समूह दाहिनी ओर आ गये। क्षेमकरी पक्षी कल्याणकी सूचना दे रही है। श्यामा पक्षी बायीं ओर वृक्षपर दिखायी दी। दही, मछली तथा दो विद्वान् ब्राह्मण पुस्तक हाथमें लिये सामने आये। सभी शकुन सच्चे होनेके लिये एक साथ प्रकट हो गये। अभीतक ये शकुन कोटि-कोटि वर-कन्याके विवाहमें प्रकट हुए होंगे, किंतु किसी कन्याका अखण्ड सौभाग्य प्राय: नहीं रहा। प्रथम बार अखण्ड सौभाग्यवती श्रीकिशोरीजीको प्राप्त कर सभी शकुन सच्चे हो गये—

राम सरिस बरु दुलहिनि सीता। समधी दसरथु जनकु पुनीता॥
सुनि असि ब्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥

महाराज श्रीदशरथजीका आगमन सुनकर महाराज जनकने नदियोंमें सेतुका निर्माण करा दिया। बीच-बीचमें ठहरनेके लिये सुन्दर निवास-स्थान बनवाये। जहाँ देव-लोकके समान ऐश्वर्य भरा पड़ा था। सभी बराती भोजन, शय्या, वस्त्र आदि अपने-अपने मनके अनुकूल पाने लगे। नित्य-नवीन सुखको देखकर सभी बराती घरको भूल गये। अयोध्यावासियोंका वैभव असाधारण है। शेष भी उसका वर्णन नहीं कर सकते—

अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज॥

ऐसा ही सुख यहाँ मिला कि घर भूल गये। अथवा घरसे भी ज्यादा यहाँ सेवा हुई, इसलिये भी घर भूल गये। महाराज श्रीजनकने सुवर्णके कलश, अमृतके समान पकवान तथा फल आदि भूषण-वसन बारातकी अगवानीके समय भेंट-स्वरूप भिजवाये। दधि, चिउड़ा एवं अन्य भेंटकी वस्तुएँ बहँगियोंमें भर-भरकर कहार ले चले। मिथिलामें दही-चिउड़ाका महत्त्व प्रसिद्ध है। दधि अधिक हो चिउड़ा कम हो उसे दधि-चिउड़ा कहा जाता है। यदि चिउड़ा अधिक हो दधि कम तो उसे चिउड़ा-दधि कहा जाता है। अगवानियोंने जब बारातको देखा तो उनके हृदय भर गये। बारातियोंने भी सुसज्जित अगवानोंको देखकर नगाड़े बजाये। प्रसन्न होकर एक दूसरेसे मिलने लगे। जब बारात कन्याके गृह पहुँचती है तो इधरसे लोग अगवानीके लिये चलते हैं—इसीका यहाँ वर्णन किया गया।

देवांगनाएँ पुष्प-वर्षा कर गीत गा रही हैं और देवता नगाड़े बजा रहे हैं। अगवानीकी वस्तुएँ दशरथजीके समक्ष रखी गयीं। उन्होंने प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लिया। पुन: वे याचकोंको न्योछावरके रूपमें दे दी गयीं। आदरपूर्वक बारातको जनवासेमें लिवा ले चले। रंग-विरंगके बहुमूल्य वस्त्रोंके पाँवड़े पड़ रहे हैं। जिन्हें देखकर कुबेर भी धनका अभिमान छोड़ देते हैं। बारातको सुन्दर जनवासा दिया, जहाँ सबको आराम था। बारात नगरमें आ गयी, यह जानकर श्रीजानकीजीने अपनी कुछ महिमा प्रकट दिखायी—

जानी सियँ बरात पुर आई । कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाई । भूप पहुनई करन पठाईं॥

हृदयमें स्मरणकर समस्त सिद्धियोंको बुलाया तथा महाराज श्रीदशरथजीकी पहुनाई करनेके लिये भेजा। श्रीकिशोरीजीकी आज्ञा पाकर सिद्धियाँ समस्त सम्पदा-सुख तथा देवलोकका भोग-विलास लिये जनवासेमें उपस्थित हो गयीं। *'कछु निज महिमा'* -का तात्पर्य यह है कि श्रीराजकिशोरीजीके लिये सिद्धियोंको बुलाकर बारातका स्वागत करना कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता, इसलिये *'कछु निज महिमा'* -का प्रयोग किया। इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि देवताओंके ऐश्वर्य भी श्रीकिशोरीजीके अधीन हैं। श्रीकिशोरीजीकी महिमाका गान करती हुई श्रीगङ्गाजी कहती हैं—

सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही । तव प्रभाउ जग बिदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें । तोहि सेवहिं सब सिधि कर जों

श्रीकिशोरीजीके कृपा-कटाक्षसे लोकपाल बनते समस्त सिद्धियाँ उनके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती इतना ही नहीं उमा-रमा-ब्रह्माणी अपनी-अपनी पति साथ श्रीजानकीजीकी वन्दना करती हैं। इनके कृपा-क देवता चाहते हैं; किंतु अपने पति श्रीराघवको छोड़कर देवताओंकी ओर देखनेका इन्हें अवकाश ही नहीं मिलत

उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता । जगदंबा संततमनिंदित
जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।

श्रीराजकिशोरीजीने जिन सिद्धियोंको जनवासेमें भे वे साधारण सिद्धियाँ नहीं थीं, क्योंकि महाराज दशरथ महलमें साधारण सिद्धियाँ दासी बनकर सेवा करती गीतावलीमें गोस्वामीजी कहते हैं—

अष्टसिद्धि नवनिद्धि, भूति सब भूपति भवन कमाहिं।
समउ-समाज राज दसरथको लोकप सकल सिहाहिं॥

मुनियोंके आश्रममें भी सिद्धियाँ सेवा करती हैं, यहाँ वसिष्ठ आदि ऋषिगण तथा श्रीदशरथजी इन सिद्धि चमत्कारको नहीं जान सके। सभी लोग श्रीजनकजीका ऐश्वर्य समझ रहे हैं। गुप्त रहस्य किसीने नहीं ज श्रीराजकिशोरीजीकी महिमाको केवल श्रीरघुनाथजी ही पाये। इससे वे अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। प्रभुने विचार कि यद्यपि श्रीजनकराजने स्वागतकी पूरी व्यवस्था की किंतु कोई त्रुटि न रहे इसलिये श्रीकिशोरीजीने स्वाग व्यवस्था स्वयं सँभाल ली। अब विनोदमें भी श्रीराघ यह नहीं कह सकेंगे कि अमुक त्रुटि रह गयी। इसी को जानकर प्रभु प्रसन्न हुए—

सिय महिमा रघुनायक जानी । हरषे हृदयँ हेतु पहिचा

पिताका आगमन सुनकर दोनों भ्राताओंके हृ अत्यन्त आनन्द है। संकोचवश गुरुजीसे कह नहीं स मनमें पिताके दर्शनकी बड़ी लालसा है। इस विनम्र देखकर महर्षिका शरीर पुलकित हो गया, नेत्रोंमें जल आया। दोनों भ्राताओंको हृदयसे लगा लिया। जब जनवासेको चले जहाँ श्रीदशरथजी थे तो ऐसा लगा सरोवर प्यासेको देखकर उसकी ओर बढ़ चला हो। मुनिको दण्डवत् कर दोनों राजकुमारोंको हृदयसे ल दु:सह दु:ख दूर किया, मानो मरे हुए शरीरमें प्रा

संचार हो गया। वसिष्ठजी एवं ब्राह्मणोंको प्रणामकर आशीर्वाद प्राप्त किया। भरतजीने शत्रुघ्नजीके साथ प्रभुको प्रणाम किया, श्रीरामभद्रने उन्हें हृदयसे लगा लिया। श्रीरघुनाथजी सभी अवधवासियोंसे यथायोग्य मिले। श्रीरामजीको देखकर बारातियोंके नेत्र शीतल हो गये। राजाके पास चारों पुत्र ऐसे शोभायमान हो रहे हैं मानो धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—ये चारों फल शरीर धारण किये हुए शोभित हैं। बारातसहित राजाका आदर-सत्कार कर अगवानी करनेवाले लोग लौट आये।

बारात लग्नसे बहुत पहले आ गयी थी, अत: पुरवासियोंको ब्रह्मानन्दका अनुभव होने लगा। वे ब्रह्माजीसे विनय करते हैं कि दिन-रात बढ़ जायँ। विवाह मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमीको हुआ, बारात कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीको आ गयी। ब्रह्माका दिन-रात सबसे बड़ा होता है—चारों युग एक हजार बार बीत जाते हैं, तब ब्रह्माका एक दिन होता है तथा इतनी ही बड़ी रात्रि होती है। अत: विधिसे विनती करते हैं इन दिन-रातोंको अपने दिन-रातोंके समान बड़े कर दीजिये। श्रीजनकजीके सुकृतोंकी मूर्ति श्रीजानकीजी हैं, श्रीदशरथजीके सुकृत श्रीरामजी हैं। उनके समान न कोई हुआ न होनेवाला है। हम सब सम्पूर्ण पुण्योंकी राशि हैं जो श्रीजनकपुरके निवासी हुए। हमने श्रीजानकीजी तथा श्रीरामजीकी छबि देखी हमारे समान सुकृती कौन होगा? इतना ही नहीं, हम लोग श्रीरघुवीर-विवाहका भी दर्शन करेंगे। प्रेमके वश महाराज बार-बार श्रीसीताजीको बुलायेंगे, तब दोनों भ्राता उन्हें बिदा कराने आया करेंगे, फिर तो अनेक प्रकारसे उनकी पहुनाई होगी; क्योंकि ऐसी ससुराल किसको प्यारी न लगेगी? जब दोनों भ्राता बार-बार पधारेंगे तब उनको देखकर सभी पुरवासी सुखी होंगे।

सखि! जैसी श्रीराम-लक्ष्मणजीकी जोड़ी है, वैसे ही महाराजके साथ दो और पुत्र हैं। एक श्याम हैं दूसरे गोरे हैं, श्रीभरतजी श्रीरामजीके समान तथा श्रीलक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी एक-रूप हैं। दोनों अनुपम सुन्दर हैं, तीनों लोकोंमें इनकी उपमाके योग्य कोई नहीं है। सब जनकपुरकी स्त्रियाँ अंचल फैलाकर विधिको यह वचन सुना रही हैं कि चारों भाइयोंका इसी नगरमें विवाह हो तथा हम सब मङ्गल-गान करें—

पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहिं बचन सुनावहीं।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं॥

मिथिलाकी इस 'तत्सुखसुखित्व'-की भावनापर समस्त उपासकोंकी उपासना न्योछावर करने योग्य हैं, ऐसी निष्कामता अन्यत्र दुर्लभ है। नगर-दर्शनमें प्रथम बार जब स्त्रियोंने श्रीराघवेन्द्रको देखा तब भी कहा कि ये श्रीजानकीजीके योग्य वर हैं। अब पुन: दूसरी बार कह रही हैं कि चारों राजकुमारियोंके साथ चारों राजकुमारोंका विवाह यहाँ हो और हम सब मङ्गल-गान करेंगी। श्रीयुगल-सरकारके सुखके समक्ष अपने सुखोंका परित्याग करनेवाला उपासक अत्यन्त दुर्लभ है। पूर्वाचार्योंके रहस्य-ग्रन्थके अनुशीलनसे स्पष्ट है कि अवध-मिथिलाकी युगलोपासनामें सखियोंकी अवस्था आठसे ग्यारह वर्ष मात्र है। ऐसी अवस्थामें विवाहका प्रश्न ही नहीं। श्रीप्रिया-प्रियतमको नित्य-विलास-आमोद-प्रमोदमें कोई संकोच न हो, इसलिये इन्होंने अपनी अवस्था छोटी रखी है। मधुरोपासनामें यह भावना अत्यन्त रमणीय एवं अनुकरणीय है।

जिस तिथिकी प्रतीक्षा थी, वह मङ्गलोंका मूल लग्नका दिन आ गया। हिम ऋतुमें सुन्दर अगहनका महीना आया। ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग, दिन आदि शोधकर ब्रह्माजीने उस लग्न-पत्रिकाको नारदजीके हाथ श्रीजनकजीके पास भेज दिया। श्रीजनकजीके ज्योतिषियोंने प्रथम ही इसी तिथिको निश्चित कर लिया था। महाराजने शतानन्दजीसे कहा कि अब विलम्बका क्या कारण है? मन्त्रियोंने समस्त मङ्गल-साज सजा दिये। सौभाग्यवती स्त्रियाँ मङ्गल-गीत गा रही हैं, ब्राह्मण वेद-ध्वनि कर रहे हैं। जनवासेसे श्रीदशरथजीको बुलाया गया। शिव-ब्रह्मादि देवगण विमानपर चढ़कर ऐसे अनुरक्त हो गये कि सभीको अपने-अपने लोक तुच्छ लगने लगे। यहाँकी समस्त रचनाएँ अलौकिक तथा अप्राकृत दीख पड़ीं। रूप एवं गुणोंके निधान नगरके नर-नारियोंको देखकर देवता तथा देवांगनाएँ ऐसे फीके पड़ गये जैसे चन्द्रमाके प्रकाशमें तारागण। अपनी एक भी करनी न देखकर ब्रह्माजीको भी आश्चर्य हुआ। श्रीशिवजीने सभी देवताओंको समझाया कि आश्चर्यमें मत भुला जाओ। हृदयमें धैर्य धारणकर विचार करो कि यह श्रीसिय-रघुवीरका विवाह है। जिनका नाम लेते ही संसारमें समस्त

अमङ्गलके मूल नष्ट हो जाते हैं तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ सहजमें प्राप्त हो जाते हैं—ये वही श्रीसीता-रामजी हैं। जिनके नामकी ऐसी महिमा है, उनकी विवाह-लीलाका वर्णन कौन कर सकता है? भाव यह है कि जब केवल नामका यह चमत्कार है तब यहाँ तो नाम, रूप, लीला और धाम चारों विराजमान हैं। श्रीसीता-रामजीकी ही भाँति उनके युगल-धाम भी दिव्य हैं, ब्रह्माकी सृष्टिसे परे हैं—

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥

चारों राजकुमार श्रीमहाराज दशरथजीके साथ जनवासेसे विवाह-मण्डपकी ओर चले। मोरके कण्ठकी द्युतिके समान श्याम अंग हैं, तडित-विनिन्दक पीत वस्त्र धारण किये हुए हैं। विवाहके आभूषण अंगमें सजाये हुए हैं। अलौकिक सौन्दर्य है। चंचल घोड़ोंको नचाते जा रहे हैं। जिस घोड़ेपर श्रीरघुनन्दन विराजमान हैं उसकी चाल देखकर गरुड भी लज्जित हैं, मानो कामदेवने घोड़ोंका वेष धारण कर लिया है और अपनी अवस्था, बल, रूप, गुण और चालसे समस्त लोकोंको मोहित कर रहा है। मणिमण्डित जड़ाऊ जीन जगमगा रही है। किंकिनी-लगामको देखकर सुर-नर-मुनि सब ठगे-से रह गये। प्रभुके मनमें अपने मनको लयलीन करके चलता हुआ घोड़ा ऐसी छबि पा रहा है मानो कोई बादल बिजली तथा तारागणसे विभूषित सुन्दर मोरको नचा रहा है। जिस घोड़ेपर श्रीरामजी सवार हैं, शारदा भी उसका वर्णन नहीं कर सकतीं। शिवजी अपने पंद्रह नेत्रोंसे दूलह-सरकारका दर्शन कर रहे हैं। विष्णु-भगवान्‌ने जब दूलह-रूपमें श्रीरघुनन्दनको देखा तो लक्ष्मीसहित लक्ष्मीपति मोहित हो गये। रमासहित रमापतिका मोहित होना एक असाधारण लीला है। रमापति श्रीहरि अपने रूप-गुणोंसे चराचरको मोहित करनेवाले हैं, उनका मोहित होना श्रीरामरूपके उत्कर्षका द्योतक है। श्रीहरिके अन्य अवतारोंमें न तो ऐसी विवाह-लीला हुई, न बारात निकली। न तो इस प्रकार घोड़ेपर सवार होकर परिछनके लिये चले। न तो मौर सिरपर धारण करके करकमलमें मेंहदी तथा चरणकमलमें महावर लगा और न ही इस प्रकार दूलह-रूपमें किसीको दर्शन हुआ था। इसी रस-वैचित्र्यके कारण ब्रह्माने आठ नेत्रसे, कार्तिकेयने बारह नेत्रसे तथा इन्द्रने हजारों नेत्रोंसे दूलह-चितचोरका दर्शन किया।

जब महारानी सुनयना सौभाग्यवती स्त्रियोंके स परिछनके लिये मङ्गल सजाने लगीं, तब इन्द्राणी, सरस्व और भवानी आदि चतुर देवपत्नियाँ कपटसे श्रेष्ठ नारियों वेष बनाकर रनिवासमें जा मिलीं। आनन्दातिरेकके का न तो इनके तरफ किसीका ध्यान गया और न ही किसी इन्हें पहचाना। मिथिलाका परिछन भी विलक्षण है—मङ्ग वस्तुओंसे परिपूर्ण थालमें ताम्बूल, दीपक तथा लोढ़ा होता है। पानके पत्तेमें घी लगाकर दीपककी बत्तीमें गर्म करके दूलहके दोनों गाल सेंके जाते हैं। लोढ़ाको गर्मकर कपोलसे संस्पर्श कराया जाता है। श्रीलक्ष्मणकुमा श्रीपरशुरामजीसे जो वार्तालाप किया, उसमें ईंटका जव पत्थरसे दिया था, अतः मिथिलाकी सखियाँ सोचने ल कि यदि इसी प्रकार मण्डप, कोहबर तथा कलेवामें दो चार जवाब देंगे तो कठिनाई होगी, अतः गालको सेंक दे चाहिये। गर्म होनेपर कम बजेगा, ठंडा होनेपर अधि बजेगा। इस माधुर्य-भावकी तुलना असम्भव है। मिथिलाव गर्वके साथ गाते हैं कि—

आजु मिथिला नगरिया निहाल सखिया,
चारों दुलहामें बड़का कमाल सखिया।
जिनका लागी जोगी मुनि बड़ तप कैयलन,
सेहे हमर मिथिलामें पाहुन बनकर अइलन।
आज लोढ़ासे सेंकाइल इनकर गाल सखिया॥

मिथिलावासिनीका रूप धारणकर उमा तथा रमा आदि जब दूलह-चितचोरके कपोलका संस्पर्श प्राप्त किया, तब कृतार्थ हो गयीं। परिछनकर कुल-रीतिके अनुसार महारा सभी व्यवहार किये। नाना प्रकारके वस्त्र-पाँवड़े पड़ हैं। आरती आदिके पश्चात् श्रीराघवेन्द्र मण्डपमें पधा ब्रह्मादि देवता विप्र-वेष बनाकर विवाह-महोत्सव दे लगे। नाई, बारी, भाट, नट निछावर पाकर दूलह आशीर्वाद दे रहे हैं। देवगण कहते हैं कि जबसे ब्रह्मा संसार बनाया, तबसे हमने बहुत विवाह देखे-सुने हैं, कि समान-समधी हमने आज ही देखे। मण्डपकी रच देखकर मुनियोंके मन मोहित हो गये। विधि, हरि, महे दिक्पाल तथा सूर्य आदि जो श्रीरघुवीरका प्रभाव जानते वे कपटसे ब्राह्मणका सुन्दर वेश बनाये हुए कौतुक देख आनन्दित हो रहे हैं। श्रीरघुनाथजीने उन्हें पहचान लि

तथा उन्हें मानसिक आसन दिया।

रामचंद्र मुख चंद्र छबि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर॥

श्रीमिथिलेश-राजकिशोरी सीताजीका शृंगारकर सखियाँ मण्डपमें लिवा ले चलीं। सभी सोलह शृंगार किये हैं तथा मत्त गजगामिनी हैं। उनका मनोहर गान सुनकर मुनिगण ध्यान छोड़ देते हैं तथा कामदेव-रूपी कोकिल लज्जित हो जाते हैं। नूपुर, मंजीर, कंकण-तालकी गतिपर बज रहे हैं। सहज-सुन्दर जनक-लाड़िली श्रीसीताजी स्त्रियोंके झुंडमें ऐसी शोभा पा रही हैं, मानो छबि-रूपी स्त्री-समाजके बीचमें परमा शोभा शोभित हो—

सोहति बनिता बृंद महुँ सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय॥

यहाँ सखियोंके शृंगार आदिका वर्णनकर परोक्षरूपसे श्रीराजकिशोरीजीकी भी शोभाका संकेत कर दिया। जब सखियोंके करधनी, मंजीर, नूपुर आदि तालकी गतिसे बज रहे हैं, तब स्वामिनीजूके भूषणोंकी ध्वनिका वर्णन कौन करे? श्रीराजकिशोरीजीकी सुन्दरताका वर्णन सम्भव नहीं है, क्योंकि सौन्दर्य अपार है, बुद्धि तुच्छ है। श्रीरामचन्द्रजी श्रीकिशोरीजीको देखकर पूर्णकाम हो गये। यद्यपि प्रभु पूर्णकाम हैं, किंतु श्रीजीकी प्राप्तिसे अपने अवतारका मुख्य प्रयोजन सिद्ध हुआ। श्रीराजकिशोरीजीके बिना उनकी लीला रसमयी नहीं होती। इस प्रकार श्रीराजकिशोरीजी मण्डपमें विराजमान हो गयीं।

दूलहको देखकर राजा-रानी प्रेममें मग्न हो गये तथा दम्पति उनके पद-कमलोंको पखारने लगे—

लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली॥

× × ×

करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं।
ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहैं॥

वर तथा कन्याकी हथेलियोंको मिलाकर अर्थात् वरकी दक्षिण हथेलीपर कन्याकी दक्षिण हथेली रखवाकर दोनों कुलगुरु शाखोच्चार करने लगे। पाणिग्रहण हुआ, यह देखकर देव-मुनि सभी आनन्दसे भर गये। श्रीजनकजीने लोक-वेद-विधानसे कन्यादान किया। जैसे हिमाचलने शिवजीको पार्वती तथा सागरने श्रीहरिको लक्ष्मी दी, वैसे ही श्रीजनकजीने श्रीरामभद्रको श्रीसीताजी समर्पण की। सुन्दर वर तथा कन्या भाँवरी फेर रहे हैं, सभी लोग नेत्रोंका लाभ ले रहे हैं। इस अद्वितीय मनोहर जोड़ीका वर्णन नहीं हो सकता। श्रीसीता-रामजीकी सुन्दर परछाईं मणि-खम्भोंमें ऐसे झलक रही है मानो काम विवाह देख रहे हैं। दर्शनकी लालसासे प्रकट होते हैं और संकोचसे छिपते हैं। मुनियोंने आनन्दपूर्वक भाँवरी फिरवायी तथा नेगसहित सब रीति निपटायी। सात भाँवरी भी पूरी हुई। श्रीरामचन्द्रजी जब श्रीकिशोरीजीके सिरमें सिन्दूर दे रहे हैं, उस समयकी छटा ऐसी लग रही है मानो कमलमें भली प्रकार लाल पराग भरकर सर्प अमृतके लोभसे चन्द्रमाको भूषित कर रहा है। फिर वसिष्ठजीने आज्ञा दी, तब दुलहा-दुलहिन दोनों एक आसनपर विराजमान हो गये।

चौदहों लोकोंमें उत्साह भर गया। सभी कहने लगे कि श्रीरामचन्द्रजीका विवाह हो गया। जिह्वा एक है, मङ्गल महान् है; अतः किस प्रकार वर्णन करें? वैसे तो प्रभुका अन्य समग्र चरित्र मङ्गलमय ही है, किंतु विवाह-लीला महामङ्गलमयी है। बाललीला मङ्गलमयी थी, किंतु श्रीकिशोरीजीकी अनुपस्थितिके कारण महामङ्गलमयी नहीं हो सकी। बार-बार श्रीरामललाजीको श्रीजनकललीका स्मरण होता रहता था। राज्याभिषेक-लीला भी मङ्गलमयी थी; क्योंकि युगल-सरकार सिंहासनपर एक साथ विराजमान थे। श्रीदशरथजी महाराजके धाम पधारनेके कारण उनका अभाव बना रहा। माताओंके वैधव्यके कारण भी वह उत्सव फीका रहा। विवाह-लीलामें तो समस्त राज-समाज, देव-समाज एकत्रित है। एक मण्डपमें चारों जोड़ीका दर्शनकर सभी कृतकृत्य हैं। अतः यह विवाह-लीला महामङ्गलमयी है—

भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यहु मंगलु महा॥

वसिष्ठजीकी आज्ञासे श्रीजनकजीने श्रीमाण्डवी, श्रीश्रुतिकीर्ति, श्रीउर्मिलाजी—इन तीनों कन्याओंको बुला लिया। प्रथम महाराज कुशध्वजकी गुण-शील-सुख-शोभामयी बड़ी कन्या श्रीमाण्डवीजीका श्रीभरतजीके साथ विवाह कर दिया, फिर श्रीजानकीजीकी छोटी बहिन श्रीउर्मिलाजीका श्रीलक्ष्मण-कुमारके साथ तथा श्रीश्रुतिकीर्तिजीका श्रीशत्रुघ्नजीके साथ विवाह कर दिया। सब सुन्दरी दुलहिनें सुन्दर दुलहोंके साथ एक ही मण्डपमें ऐसी शोभित हो रही हैं, मानो जीवके

हृदयमें चारों जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय अवस्थाएँ अपने-अपने स्वामियोंके साथ विराजमान हैं। 'जाग्रत्'-अवस्था श्रीश्रुतिकीर्तिजी और उनके विभु स्वामी विश्व-आत्मा श्रीशत्रुघ्नजी हैं। 'स्वप्न'-अवस्था श्रीउर्मिलाजी तथा उनके स्वामी श्रीलक्ष्मणकुमार विश्व-भावन हैं। 'सुषुप्ति'-अवस्था श्रीमाण्डवीजी प्राज्ञ श्रीभरतजी एवं 'तुरीय'-अवस्था श्रीसीताजी तथा स्वयं अन्तर्यामी श्रीरघुनाथजी हैं—

अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः।
अर्धमात्रात्मको रामः ब्रह्मानन्दैकविग्रहः॥

विवाहके पश्चात् महाराज जनवासे पधारे तथा मुनिकी आज्ञासे सुन्दरी सखियाँ मङ्गल-गान करती हुई दुलहिनोंसहित चारों दुलहोंको लेकर कोहबरमें चलीं। कोहबरमें अनेक मधुर हास्य-विनोद-पूर्ण लीलाएँ होती हैं। जिसमें दुलहा-दुलहिन दोनोंको जितानेका प्रयास सखियाँ करती हैं। इस विनोद-लीलामें जिसकी विजय होती है, वही वर श्रेष्ठ घोषित किये जाते हैं। इसमें दुलहिनकी विजय तथा दुलहाकी पराजय निश्चितप्राय है—

तब सखीं मंगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै॥

श्रीराजकिशोरीजी बार-बार श्रीरघुनाथजीकी ओर देखती हैं, फिर सकुचा जाती हैं, किंतु मन नहीं सकुचाता। प्रेम-प्यासे नैन सुन्दर मछलीकी छबिका हरण कर रहे हैं। मण्डपमें श्रीकिशोरीजीने लज्जाके मारे श्रीरामजीकी ओर नहीं देखा। यहाँ केवल सखियाँ हैं, वे भी गान एवं हास्य-विलास करती हुई चल-फिर रही हैं। अतः अनुकूल समय पाकर अपने प्रियतमको देखती हैं। संयोगमें भी यह प्रेम-पिपासा उपासकोंके लिये रसनीय है।

कोहबरमें जाते समय श्रीराघवेन्द्रकी अपार शोभाका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—प्रभुका श्याम शरीर स्वाभाविक सुन्दर एवं कोटि-कामकी शोभाको लज्जित करनेवाला है। महावरसे युक्त चरण शोभा दे रहे हैं, जिनमें मुनियोंके मनरूपी मधुप छाये रहते हैं। कटिमें पुनीत पीत धोती, किंकिनी, कटिसूत्र, भुजाओंमें सुन्दर भूषण शोभित हैं। पीत यज्ञोपवीत है, कर-मुद्रिका चित्तको चुरा लेती है। ब्याहके साजसे शोभित हैं। छाती चौड़ी है, उसपर उर-भूषण विराजमान है। मणि-मोती-मण्डित पीला दुप काँखा सोती पड़ा है। कानोंमें कुण्डल, भृकुटी सुन्दर, नासि मनोहर, मस्तकपर तिलक सुन्दरताका निवास-स्थान है माथेपर मङ्गलमय मणि-मुक्ताओंसे गुँथा हुआ मौर सोह है। सुन्दर मौरमें महामणि गुँथे हुए हैं। सभी अङ्ग चित्त चुरानेवाले हैं। नगरकी स्त्रियाँ तथा देवपत्नियाँ दूलहको देख तिनका तोड़ती हैं, जिससे किसीकी नजर न लगे। मणि वस्त्र-आभूषणोंको न्योछावर कर आरती उतारती त मङ्गल-गीत गाती हैं। देवता फूल बरसाते हैं, सूत-माग सुयश गाते हैं। सुवासिनी स्त्रियाँ दुलहा-दुलहिनको कोहब लाकर गीत गाकर लौकिक रीति करने लगती हैं। गौरि श्रीराघवेन्द्रको लहकौरि सिखाती हैं तथा श्रीसरस्वती श्रीराजकिशोरीजीको। समस्त रनिवास हास-विलासमें निम है। सखियाँ सभी जन्मका फल पा रही हैं। अपने हाथ मणियोंमें स्वरूप-निधान श्रीराघवेन्द्रका प्रतिबिम्ब देख श्रीजानकीजी दर्शनमें वियोगके भयसे भुजवल्ली त दृष्टिको नहीं हटातीं। हास्य-विलास-मोद-विनोद कहा न जाता, सखियाँ ही जानती हैं—

कौतुक बिनोद प्रमोदु प्रेमु न जाइ कहि जानहिं अलीं।

मानसकारने विवाहकी फलश्रुतिमें कहा है कि श्रीसीता-रामजीके विवाहका गान-श्रवण करता है, उस सदा मङ्गल होता है—

सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु॥

इतना ही नहीं दूलह-दुलहिनकी छबिका दर्शन जीवनका फल है—

दूलह राम, सीय दुलही री!
घन-दामिनि बर बरन, हरन-मन सुंदरता नखसिख निबही,
ब्याह-बिभूषन-बसन-बिभूषित, सखि अवली लखि ठगि-सी रही,
जीवन-जनम-लाहु, लोचन फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही,
सुखमा सुरभि सिँगार-छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही,
मथि माखन सिय-राम सँवारे, सकल भुवन छबि मनहु मही,
तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल, न जाति कही,
रूप-रासि बिरची बिरंचि मनो, सिला लवनि रति-काम लही,

(गीतावली १।१

[क्रमश

* * *

श्रीशिव-लीला-चिन्तन

[महामहेश्वरकी लीलाएँ अपरम्पार हैं। वे दया करके जिनको अपनी लीलाएँ एवं लीलाओंका रहस्य जनाते हैं, वे जान सकते हैं। उनकी कृपाके बिना तो उनकी विचित्र लीलाओंको देख-सुनकर देवी-देवता एवं मुनियोंको भी भ्रम हो जाया करता है, फिर साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या? परंतु वास्तवमें शिवजी महाराज हैं बड़े ही आशुतोष! स्वल्प भी उपासना करनेवालेपर वे अतिशीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। उनकी कुछ लीलाओंका दिग्दर्शन यहाँ प्रस्तुत है।—सं०]

सतीशिरोमणि सती और भगवान् सदाशिव

भगवान् शंकर स्वभावसे ही विरक्त एवं आत्माराम हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें ही उन्होंने स्त्री-परिग्रहकी इच्छा त्याग दी। ब्रह्माजीको उनके इस अखण्ड वैराग्यसे अपने सृष्टिकार्यमें बाधा पड़ती दिखायी दी। वे शंकरजीके वीर्यसे एक पराक्रमी पुत्र प्राप्त करना चाहते थे, जो विध्वंसकारी असुरोंका दमन करनेवाला तथा देवताओंका संरक्षक हो। इसके लिये उन्होंने शंकरजीसे विवाह करनेके लिये अनुरोध किया, किंतु वे अपने संकल्पसे विचलित न हुए। भगवान् शिव दीर्घकालीन समाधिमें संलग्न होकर सदा अपने इष्टदेव साकेत-विहारी श्रीरघुनाथजीका चिन्तन करते रहते थे। सृष्टि और संहारके झमेलेमें पड़ना उन्हें स्वीकार नहीं था। ब्रह्माजी एक ऐसी नारीकी खोजमें थे, जो महादेवजीके अनुकूल हो, उनके तेजको धारण कर सके और अपने दिव्य सौन्दर्यसे उनके मनपर भी अधिकार प्राप्त करनेमें समर्थ हो; किंतु ऐसी कोई स्त्री उन्हें दिखायी न दी। तब उन्होंने अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये भगवती विष्णुमायाकी आराधना करनी ही उचित समझी।

ब्रह्माजीके नौ मानस पुत्रोंमें प्रजापति दक्ष बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी उत्पत्ति ब्रह्माजीके दाहिने अँगूठेसे हुई थी। एक समय शापवश इनको यह शरीर त्यागना पड़ा। उसके बाद वे दस प्रचेताओंके अंशसे उनकी पत्नी मारिषाके गर्भसे उत्पन्न हुए। तबसे प्राचेतस दक्षके नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई। प्रजापति वीरणकी कन्या वीरिणी इनकी धर्मपत्नी थी।[1] ब्रह्माजीके आदेशसे दक्षने आराधना करके भगवतीको पुत्रीरूपमें प्राप्त किया, परंतु भगवतीने उनसे पहले ही कह दिया कि 'यदि तुम कभी मेरा तिरस्कार करोगे, तो मैं तुम्हारी पुत्री न रह सकूँगी तथा शरीर त्यागकर अन्यत्र चली जाऊँगी।'

कन्याका साधु-स्वभाव और भोलापन देखकर ही माता-पिताने उसका नाम 'सती' रख दिया था। सतीका हृदय बचपनसे ही भगवान् शंकरकी ओर आकृष्ट था। कुछ बड़ी होनेपर उन्होंने खेल-कूद और मनोरंजनसे मनको हटा लिया और वे नियमपूर्वक महादेवजीकी आराधना करने लगीं। वे प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर गङ्गास्नान करतीं और भगवान्‌की पार्थिव मूर्ति बनाकर फूल तथा बिल्वपत्र आदिसे उसकी विधिवत् पूजा करती थीं; फिर नेत्र बंद करके मन-ही-मन प्राणाधारका ध्यान करतीं और उनसे मिलनेके लिये उत्सुक होकर देरतक आँसू बहाया करती थीं।

सच्चे प्रेमकी पिपासा प्रतिक्षण बढ़ती ही रहती है, यही दशा सतीकी भी थी—उनके मन-प्राण भगवान् शंकरके लिये व्याकुल रहने लगे, उन्हें विरहका एक-एक क्षण युगके समान प्रतीत होता था, उनकी जिह्वापर 'शिव'-का नाम था एवं हृदयमें उन्हींकी मनोहर मूर्ति बसी हुई थी तथा उनकी आँखें शिवके सिवा दूसरे पुरुषको देखना नहीं चाहती थीं। वे सोचतीं—'क्या आशुतोष भगवान् शिव मुझ दीन अबलापर भी कभी कृपा करेंगे? क्या कभी ऐसा समय भी आयेगा, जब मैं अपने-आपको उनके चरणोंमें समर्पित करके यह तन, मन, जीवन और यौवन सार्थक कर सकूँगी?' इन्हीं भावनाओंमें वे बेसुध रहती थीं। सतीकी यह प्रेम-साधना आगे चलकर कठोर तपस्याके रूपमें

---

[1] कहीं-कहीं स्वायम्भुव मनुकी कन्या 'प्रसूति'को इनकी धर्मपत्नी बताया गया है।

परिणत हो गयी।

उधर ब्रह्मा आदि देवता भगवान् शंकरके पास गये और उनसे असुर-विनाशक पुत्रकी प्राप्तिके लिये विवाह करनेका अनुरोध करने लगे। शिवने विवाहकी अनुमति दे दी और योग्य कन्याकी खोज करनेको कहा। ब्रह्माजीने कहा—'महेश्वर! दक्ष-कन्या सती आपको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये तपस्या कर रही हैं। वे ही आपके सर्वथा अनुरूप हैं, आप उन्हें ग्रहण करें।' शिवने 'तथास्तु' कहकर देवताओंको विदा कर दिया।

सतीकी व्रताराधना अब पूर्ण होनेको आयी। आश्विन मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथि थी। सतीने उस दिन बड़े प्रेम और भक्तिके साथ अपने प्राणाराध्य महेश्वरका पूजन किया। दूसरे दिन व्रत पूर्ण होनेपर भगवान् शिव एकान्त कुटीरमें सतीके सम्मुख प्रकट हुए। सती निहाल हो गयीं। जिनकी बाट जोहते-जोहते युग बीत गये थे, उन्हीं आराध्यदेवको सहसा सामने पाकर वे क्षणभरके लिये लज्जासे जडवत् हो गयीं। मन आनन्दके समुद्रमें हिलोरें लेने लगा, उनकी आँखें भगवान्के चरणोंमें जा लगीं तथा शरीर रोमांचित हो उठा। उन्होंने काँपते हाथोंसे प्रियतमका चरण-स्पर्श किया और भक्तिभावसे प्रणाम करके प्रेमाश्रुओंसे वे उनके पाँव पखारने लगीं।

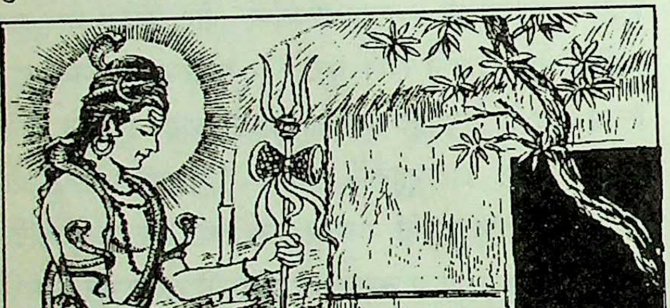

भगवान्ने अपने हाथोंसे सतीको उठाकर खड़ा किया। उस समय उनका रोम-रोम अनिर्वचनीय रसमें डूबा हु था। शंकरजी सतीकी तपस्याका उद्देश्य जानते थे, तो उन्होंने उन्हींके मुँहसे उनका मनोरथ सुननेकी इच्छ कहा—'दक्ष-कुमारी! मैं तुम्हारी आराधनासे बहुत स हूँ। बताओ, किसलिये तुमने अपने कोमल अङ्गोंको कठोर साधनाके द्वारा कष्ट पहुँचाया है?'

सती संकोचसे मुख नीचे किये हुए ही बोलीं—'देवाधि आप घटघटवासी हैं, मेरी अभिलाषा आपसे छिपी नहीं आप स्वयं ही आज्ञा दें, मैं आपकी क्या सेवा कर सतीका वह अलौकिक प्रेम देखकर भगवान् शिव उ हाथों बिना दाम बिक गये। वे सहसा बोल उठे—'दे तुम मेरी पत्नी बनकर मुझे अनुगृहीत करो।' सतीका ह भगवान् शिवके हाथमें था। प्रभुकी वह अनुरागभरी व सुनकर वे पुनः रमणी-सुलभ लज्जाके वशीभूत हो ग उनकी जन्म-जन्मकी साध अब पूरी होने जा रही थी। समय उनके मनमें कितना सुख, कितना आह्लाद था, इस वर्णन नहीं हो सकता। उन्होंने थोड़ी ही देरमें अप सँभाला और मन्द मुसकानके साथ संकोचयुक्त वा कहा—'भगवन्! मैं अपने पिताके अधीन हूँ; आप उ अनुमतिसे मुझे अपनी सेवाका सौभाग्य प्रदान करें।'

'बहुत अच्छा' कहकर शंकरजीने सतीको आश्व दिया और उससे विदा लेकर वे वहीं अन्तर्धान हो इधर सतीकी तपस्या और वरदान-प्राप्तिकी बात दक्षके फैल गयी। उसे सुनकर दक्ष बहुत चिन्तित थे कि ' प्रकार सतीका विवाह शिवजीके साथ होगा?' इत भगवान् शंकरकी अनुमतिसे ब्रह्माजीने आकर कहा- स्वयं ही शंकरजीको साथ लेकर यहाँ आऊँगा; विवाहकी तैयारी करो।' नियत समयपर ब्रह्मा देवताओंके साथ भगवान् शिव विवाहके लिये पधारे। समय भी उनका वही विचित्र वेष था। दक्षको उ वेश-भूषापर क्षोभ हुआ; फिर भी उन्होंने समारोह सतीका विवाह शिवजीके साथ कर दिया।

विवाहके पश्चात् सती माता-पितासे विदा हो साथ कैलासधाम चली गयीं। वे भगवान् शिवके दीर्घकालतक वहाँके सुरम्य प्रदेशोंमें सुखसे रहने

देवताओं और यक्षोंकी कन्याएँ उनकी सेवा किया करती थीं। भगवान् शिवके पास अनेक देवर्षि, ब्रह्मर्षि, योगी, यति, संत-महात्मा पधारते और सत्संगका लाभ उठाया करते थे। सतीको वहाँ भगवच्चर्चामें बड़ा सुख मिलता था। उस दिव्य वातावरणमें रहते हुए उन्हें कितने ही युग बीत गये। सतीके तन, मन और प्राण केवल शिवकी आराधनामें लगे रहते थे। उनके पति, प्राणेश और देवता सब कुछ भगवान् शिव ही थे।

एक बार त्रेतायुगमें पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीहरिने रघुवंशमें अवतार लिया था। उस समय वे पिताकी आज्ञासे राज्यका परित्याग करके तापस-वेषमें दण्डकवनके भीतर विचरण कर रहे थे। इसी समय रावणने मारीचको कपटमृग बनाकर भेजा था और एकान्त आश्रमसे सीताको हर लिया था एवं श्रीरामजी साधारण मनुष्यकी भाँति विरहसे व्याकुल होकर लक्ष्मणजीके साथ वनमें सीताकी खोज कर रहे थे। जिनमें कभी संयोग-वियोग नहीं है, उनमें भी विरहका दुःख प्रत्यक्ष देखा जा रहा था।

इसी अवसरपर भगवान् शंकर सतीदेवीके साथ अगस्त्यके आश्रमसे राम-कथाका आनन्द लेकर कैलासकी ओर लौट रहे थे। जब उन्होंने अपने आराध्यदेव श्रीरघुनाथजीको देखा, तब उनके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ। श्रीराम शोभाके समुद्र हैं, उन्हें शिवजीने आँख भरकर देखा; परंतु ठीक अवसर न होनेके कारण परिचय नहीं किया। उनके मुँहसे सहसा निकल पड़ा—‘***जय सच्चिदानंद जग पावन।***’ शंकरजी सतीके साथ चले जा रहे थे, आनन्दातिरेकसे उनके शरीरमें बारम्बार रोमांच हो आता था। सतीने जब उनकी इस अवस्थाको लक्ष्य किया तो उनके मनमें बड़ा संदेह हुआ। वे सोचने लगीं—‘शंकरजी तो सारे जगत्के वन्दनीय हैं; मनुष्य और मुनि सब इनको मस्तक झुकाते हैं; फिर इन्होंने एक राजकुमारको ‘सच्चिदानन्द परमधाम’ कहकर प्रणाम कैसे किया और उसकी शोभा देखकर ये इतने प्रेममग्न कैसे हो गये कि अबतक इनके हृदयमें प्रीति रोकनेसे भी नहीं रुकती! जो ब्रह्म सर्वत्र व्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छारहित और भेदशून्य है, जिसे वेद भी नहीं जान पाता, वह क्या देह धारण करके मनुष्य बन सकता है? देवताओंके हितके लिये जो मनुष्य-शरीर धारण करनेवाले विष्णु हैं, वे भी तो शिवजीकी ही भाँति सर्वज्ञ हैं, भला वे कभी अज्ञानीकी भाँति स्त्रीको खोजते फिरेंगे? परंतु शिवजीने सर्वज्ञ होकर भी उन्हें ‘सच्चिदानन्द’ कहा है, उनकी बात भी तो झूठी नहीं हो सकती।’

इस प्रकार सतीके मनमें महान् संदेह उत्पन्न हो गया। यद्यपि उन्होंने प्रकट रूपसे कुछ भी नहीं कहा, फिर भी अन्तर्यामी शिवजी सब जान गये। उन्होंने सतीको समझाकर कहा कि ‘समस्त ब्रह्माण्डोंके अधिपति मायापति, नित्य, परम स्वतन्त्र ब्रह्मरूप मेरे इष्टदेव भगवान् श्रीरामने ही अपने भक्तोंके हितके लिये अपनी इच्छासे ही ‘रघुकुल-रत्न’ होकर अवतार लिया है।’ पर सतीके मनमें उनका उपदेश नहीं बैठा। तब महादेवजी मन-ही-मन भगवान्की मायाका बल जानकर मुसकराते हुए बोले—‘यदि तुम्हारे मनमें अधिक संदेह है, तो जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेती? जबतक तुम लौट न आओगी, मैं इसी बटकी छाँहमें बैठा रहूँगा।’

भोली-भाली सतीपर भगवान्की योगमायाका प्रभाव पड़ चुका था। वे पतिकी आज्ञा पाकर भगवान्की परीक्षा लेने चल पड़ीं। इधर शंकरजी अनुमान करने लगे—‘आज सतीका कल्याण नहीं है। मेरे समझानेपर भी जब संदेह दूर नहीं हुआ तो विधाता ही विपरीत है, इसमें भलाई नहीं है। जो कुछ रामने रच रखा है, वही होगा, तर्क करके कौन प्रपंचमें फँसे।’ यों विचारकर वे भगवान्का नाम जपने लगे। उधर सतीने खूब सोच-विचारकर सीताका रूप धारण किया और आगे बढ़कर उस मार्गपर चली गयीं, जिधर श्रीरामचन्द्रजी आ रहे थे। लक्ष्मणजी सीताको मार्गमें खड़ी देखकर चकित हो गये। जिनके स्मरणमात्रसे अज्ञान मिट जाता है, उन सर्वज्ञ श्रीरामचन्द्रजीने सारी बात जानकर मन-ही-मन अपनी मायाके बलका बखान करते हुए हाथ जोड़कर सीतारूपिणी सतीको प्रणाम किया। अपना और अपने पिताका नाम बतलाया तथा हँसकर पूछा—‘देवि! शिवजी कहाँ हैं? आप वनमें अकेली क्यों विचर रही हैं?’ अब तो सतीजी संकोचसे गड़ गयीं। वे भयभीत होकर शंकरजीके पास लौट आयीं। उनके हृदयमें बड़ी चिन्ता हो गयी थी, वे सोचने लगीं—‘हाय! मैंने स्वामीका कहना नहीं

माना, अपना अज्ञान श्रीरामचन्द्रजीपर आरोपित किया। अब मैं उनको क्या उत्तर दूँगी।'

फिर वे बारम्बार श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रणाम करके उस स्थानकी ओर चलीं, जहाँ शिवजी उनकी प्रतीक्षामें बैठे थे। निकट जानेपर शिवजीने हँसकर कुशल-समाचार पूछा और कहा—'सच-सच बताओ, किस प्रकार परीक्षा ली है?' सतीने श्रीरघुनाथजीके प्रभावको समझकर भयके मारे शिवजीसे अपने सीतारूप धारण करनेकी बात छिपा ली। शंकरजीने ध्यान लगाकर देखा और सतीने जो कुछ किया था, वह सब जान लिया; फिर उन्होंने श्रीरामजीकी मायाको मस्तक झुकाया!

'सतीने सीताका वेष बना लिया', यह जानकर शिवजीके मनमें बड़ा विषाद हुआ। उन्होंने सोचा—'अब यदि मैं सतीसे पत्नीकी भाँति प्रीति करता हूँ तो भक्तिमार्गका लोप हो जाता है और बड़ा अन्याय होता है। सती परम पवित्र हैं, अतः इन्हें छोड़ते भी नहीं बनता और प्रेम करनेमें बड़ा पाप है।' महादेवजी प्रकटरूपसे कुछ नहीं कह सके; किंतु उनके हृदयमें बड़ा संताप था। तब उन्होंने श्रीरामको मन-ही-मन प्रणाम किया। भगवान्‌की याद आते ही उनके हृदयमें यह संकल्प उदित हुआ—***'एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं।'*** ऐसा निश्चय करके वे श्रीरामका स्मरण करते हुए चल दिये। उस समय आकाशवाणी हुई—'महेश्वर! आपकी जय हो, आपने भक्तिको अच्छी दृढ़ता प्रदान की। आपको छोड़कर ऐसी प्रतिज्ञा कौन कर सकता है। आप श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हैं, सर्वसमर्थ हैं और भगवान् हैं।'

सतीने भी वह आकाशवाणी सुनी। उनके मनमें बड़ी चिन्ता हो गयी। उन्होंने सकुचाते हुए पूछा—'दयामय! कहिये, आपने कौन-सा प्रण किया है। प्रभो! आप सत्यके धाम और दीनदयालु हैं। मुझ दीनपर दया करके अपनी की हुई प्रतिज्ञा बताइये।' सतीने भाँति-भाँतिसे पूछा, किंतु उन्होंने कुछ नहीं बताया। तब सतीने अनुमान किया—'शिवजी सर्वज्ञ हैं, वे सब कुछ जान गये। हाय! मैंने इनसे भी छल किया। स्त्री स्वभावसे ही मूर्ख और बेसमझ होती है।' अपनी करनीको याद करके सतीके हृदयमें बड़ा सोच और अपार चिन्ता हुई। उन्होंने समझ लिया कि शिवजी कृपाके अथाह सागर हैं, इसीसे प्रकटमें इन्होंने मेरा अपराध न कहा; किंतु उनकी मुखाकृतिका भाव देखकर सतीको विश्वास हो गया कि स्वामीने मेरा परित्याग कर दिया।

त्यागका विचार आते ही उनका हृदय व्याकुल हो ग सतीको चिन्तामग्न देख शंकरजी उन्हें सुख देनेके लि सुन्दर-सुन्दर कथा-वार्ता कहने लगे। मार्गमें अनेक प्रका इतिहासका वर्णन करते हुए वे कैलासधाम पहुँचे। वहाँ अ प्रतिज्ञाको याद करके वे वटवृक्षके नीचे आसन लगाकर गये तथा अपने सहज स्वरूपका स्मरण किया और अ समाधि लग गयी। सतीजी कैलासपर रहकर एकाकी जी व्यतीत करने लगीं। उनके मनमें बड़ा दुःख था। एक- दिन एक-एक युगके समान बीत रहा था और इस दुः समुद्रसे पार होनेका कोई उपाय भी नहीं सूझता था।

इस प्रकार दक्ष-कुमारी सतीके दारुण दुःखकी सीमा नहीं थी। वे रात-दिन चिन्ताकी आगमें झुलस थीं। इस अवस्थामें पड़े-पड़े उनके सत्तासी हजार वर्ष गये। इतने दिनों बाद शिवकी समाधि खुली, वे वाणीमें 'राम-राम'का उच्चारण करने लगे। तब सतीने कि जगदीश्वर शिव समाधिसे जगे हैं। उन्होंने ज शंकरजीके चरणोंमें प्रणाम किया। शिवजीने उनको बैठ लिये सामने आसन दिया और श्रीहरिकी रसमयी क सुनाने लगे। इस प्रकार दयालु महेश्वरने सतीके हृदयको कुछ शीतल करनेका प्रयत्न किया। भगव लग जानेसे मानसिक दुःखका आवेग बहुत कुछ हो गया।

इसी बीचमें सतीके पिता दक्ष 'प्रजापति'के अभिषिक्त हुए। यह महान् अधिकार पाकर दक्षके हृ बड़ा भारी अभिमान पैदा हो गया। संसारमें कौन ऐस जिसे प्रभुता पाकर मद न हो। उन्होंने ब्रह्मनिष्ठ देवत महात्माओंको, जिनमें शंकरजी भी थे, उपेक्षाकी दृष्टिसे दे आरम्भ किया। शंकरजीपर उनके रोषका कुछ विशेष था। वे उनके स्वरूप-तत्त्वसे बिलकुल अनभिज्ञ थे। सतीके वि कुछ ही समय बाद एक बार प्रजापतियोंने यज्ञका आ किया था। उसमें बड़े-बड़े ऋषि, देवता, मुनि और आदि भी अपने अनुयायियोंसहित उपस्थित हुए थे।

और शिवजी भी उस सभामें विराजमान थे। उसी समय दक्ष भी वहाँ पधारे। सभी सभासद उनके स्वागतमें उठकर खड़े हो गये। केवल ब्रह्माजी और महादेवजी अपने स्थानपर बैठे रहे। ब्रह्माजी दक्षके पिता ही थे; अतः उन्होंने झुककर उनके चरणोंमें प्रणाम किया, किंतु शंकरजीका बैठे रहना उनको बहुत बुरा लगा। उन्हें इस बातके लिये खेद था कि शंकरजीने उठकर मुझे प्रणाम क्यों नहीं किया।' अतः उन्होंने भरी सभामें उनकी बड़ी निन्दा की, कठोर वचन सुनाये और शाप तक दे डाला। भगवान् शंकर चुपचाप चले आये। उन्होंने उनकी बातका कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

इतनेपर भी दक्षका रोष उनके प्रति शान्त नहीं हुआ था। वे शिवसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिसे द्वेष रखने लगे। यहाँतक कि अपनी पुत्री सतीके प्रति भी उनका भाव अच्छा नहीं रह गया। प्रजापतियोंके नायक बन जानेपर उनको वैर साधनका अच्छा अवसर मिला। पहले तो उन्होंने वाजपेय यज्ञ किया और उसमें शंकरजीको भाग नहीं लेने दिया। उसके बाद पुनः बड़े समारोहके साथ 'बृहस्पति-सव' नामक यज्ञका आयोजन किया। इस उत्सवमें प्रायः सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर, देवता और उपदेवता आदि आमन्त्रित थे। सबने अपनी-अपनी पत्नीके साथ जाकर यज्ञोत्सवमें भाग लिया और स्वस्तिवाचन किया। केवल ब्रह्मा और विष्णु कुछ सोचकर उस यज्ञमें सम्मिलित नहीं हुए। सतीने देखा, कैलासशिखरके ऊपर आकाशमार्गसे विमानोंकी श्रेणियाँ चली जा रही हैं। उनमें देवता, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर तथा किन्नर आदि बैठे हैं। उनके साथ उनकी स्त्रियाँ भी हैं, जो चमकीले कुण्डल, हार तथा विविध रत्नमय आभूषण पहने भलीभाँति सज-धजकर गीत गाती हुई जा रही हैं।

सतीने पूछा—'भगवन्! यह सब क्या है? ये लोग कहाँ जा रहे हैं?' भगवान् शिवने मुसकराते हुए कहा—'तुम्हारे पिताके यहाँ बड़ा भारी यज्ञ हो रहा है। उसीमें यह लोग आमन्त्रित हैं।' पिताके यज्ञकी बात सुनकर सतीको कुछ हर्ष हुआ। उन्होंने सोचा—'यदि स्वामीकी आज्ञा हो तो यज्ञके बहाने कुछ दिन वहीं चलकर रहूँ।' यह विचारकर वे य, संकोच और प्रेमरसमें सनी हुई वाणीमें बोलीं—'देव! पिताजीके घर यज्ञ हो रहा है तो उसमें मेरी अन्य बहनें भी अवश्य पधारेंगी। माता और पितासे मिले मुझे युग बीत गये। इस अवसरपर आपकी आज्ञा हो तो आप और मैं दोनों वहाँ चलें। यज्ञका उत्सव भी देखेंगे और सबसे भेंट-मुलाकात भी हो जायगी। प्रभो! यह ठीक है कि उन्होंने निमन्त्रण नहीं दिया; अतः वहाँ जाना ठीक नहीं है, तथापि पति, गुरु और माता-पिता आदि सुहृदोंके यहाँ बिना बुलाये भी जाना चाहिये। सम्भव है अति व्यस्तताके कारण वे निमन्त्रण देना भूल गये हों, अथवा देनेपर भी यहाँ पहुँच न पाया हो।'

शिवजीने कहा—'इसमें संदेह नहीं कि माता-पिता आदि गुरुजनोंके यहाँ बिना बुलाये भी जा सकते हैं, परंतु ऐसा तभी करना चाहिये जब वहाँके लोग प्रेम रखते हों। जहाँ कोई विरोध मानता हो, वहाँ जानेसे कदापि कल्याण नहीं होता। तुम्हारे पिता मुझसे द्वेष रखते हैं, अतः तुम्हें उनको और उनके अनुयायियोंको देखनेका भी विचार नहीं करना चाहिये। यदि तुम मेरी बात न मानकर वहाँ जाओगी तो इसका परिणाम अच्छा न होगा; क्योंकि किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिको जब अपने स्वजनोंद्वारा तिरस्कार प्राप्त होता है, तो वह तत्काल उसकी मृत्युका कारण बन जाता है।'

इसके बाद शंकरजीने बहुत प्रकारसे समझाया-बुझाया, पर सती रहना नहीं चाहती थीं। स्वजनोंके स्नेहका स्मरण करके उनका हृदय भर आया। वे आँखोंमें आँसू भरकर रोने लगीं। तब महादेवजीने अपने प्रधान-प्रधान पार्षदोंके साथ सतीको अकेली ही विदा कर दिया। सती अपने समस्त सेवकोंके साथ गङ्गातटपर बनी हुई दक्षकी यज्ञशालामें पहुँचीं। मण्डपमें पहुँचनेपर दक्षने सतीका किंचित् भी सत्कार नहीं किया। उनकी चुप्पी देखकर दूसरे लोग भी उन्हींके भयसे कुछ भी न बोले। केवल माता और बहनें सतीसे प्रेमपूर्वक मिलीं और उन्हें आदरपूर्वक उपहारकी वस्तुएँ देने लगीं, किंतु पितासे अपमानित होनेके कारण स्वाभिमानिनी सतीने किसीकी दी हुई कोई भी वस्तु स्वीकार नहीं की। सतीको स्वामीकी कही हुई बातें याद आने लगीं।

उस यज्ञमें शिवजीके लिये कोई भाग न देकर उनका घोर अपमान किया गया था। सतीने इस बातकी ओर भी

लक्ष्य किया। इससे उनके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। उनकी भौंहें तन गयीं, आँखें लाल हो गयीं और ऐसा जान पड़ा, मानो वे सम्पूर्ण जगत्‌को भस्म कर डालेंगी। उनका यह भाव देखकर शिवके पार्षद भी दक्षको दण्ड देनेके लिये उद्यत हो गये, किंतु सतीने उन्हें रोक दिया और समस्त सभासदोंके सामने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

'पिताजी! भगवान् शंकर सम्पूर्ण देहधारियोंके प्रिय आत्मा हैं, उनसे बढ़कर इस संसारमें दूसरा कोई भी नहीं है। उनके लिये न कोई प्रिय है, न अप्रिय। वे सर्वरूप हैं, अतः उनका किसीके साथ भी वैर-विरोध नहीं है। ऐसे भगवान्‌के साथ आपको छोड़कर दूसरा कौन विरोध कर सकता है? विप्रवर! आप-जैसे ज्ञानशून्य लोग ही दूसरोंके गुणोंमें भी दोष देखते हैं, किन्तु श्रेष्ठ पुरुष ऐसा नहीं करते। जो दूसरोंके थोड़े-से गुणोंको भी बहुत बड़े रूपमें देखना चाहते हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ महात्मा पुरुष हैं। आपने ऐसे महापुरुषोंमें भी दोष देखना आरम्भ किया है। जो दुष्ट इस मुर्दे शरीरको ही आत्मा मानते हैं, वे ईर्ष्यावश सदा ही महात्माजनोंकी निन्दा करें तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि महापुरुषोंकी चरण-धूलि उन निन्दा करनेवाले पापियोंके तेजका नाश कर देती है; अतः उनके लिये यही उचित भी है। जिनका 'शिव' यह दो अक्षरका नाम बातचीतके प्रसंगमें भी जिह्वापर आ जाय तो नाम लेनेवालेके समस्त पापोंका तत्काल विनाश कर देता है। जिनके शासनका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता, जिनकी कीर्ति परम पवित्र है, उन्हीं मङ्गलमय शिवसे आप द्वेष करते हैं—यह महान् आश्चर्य है। सचमुच ही आप अमङ्गलरूप हैं। अहो! महापुरुषोंके मनरूपी भ्रमर ब्रह्मानन्दमय रसका पान करनेकी इच्छासे जिनके चरण-कमलोंका निरन्तर सेवन करते हैं तथा जो भोग चाहनेवाले पुरुषोंको उनके अभीष्ट भोग भी प्रदान करते हैं, उन्हीं विश्वबन्धु भगवान् भूतनाथसे आप वैर करते हैं, यह आपके लिये बड़े दुर्भाग्यकी बात है। सुनती हूँ, आप कहा करते हैं, वे केवल नाममात्रके शिव हैं; उनका वेष तो महान् अशिव—अभद्र है, क्योंकि वे नरमुण्डोंकी माला, चिताकी राख और हड्डियाँ धारण किये, जटा बिखराये, भूत-पिशाचोंको साथ लिये श्मशानमें विचरण करते रहते हैं। मालूम होता है, उस अशिव रूपका ज्ञान सबसे अधिक आपको आपके सिवा दूसरे देवता ब्रह्मा आदि भी इस बातको जानते। तभी तो वे शिवके चरणोंपर चढ़े हुए निर्मा अथवा उनके चरणोदकको अपने मस्तकपर धारण क पिताजी! शास्त्र क्या कहता है? यदि कोई उच्छृंखल धर्मकी रक्षा करनेवाले ईश्वरकी निन्दा करे, तो अपनेमें दण्ड देनेकी शक्ति न होनेपर दोनों कान मूँद ले और हट जाय। अथवा यदि शक्ति हो तो उस बकवादीके जिह्वाको काटकर फेंक दे, ऐसा करते समय क प्राणोंपर संकट आ जाय तो प्राणोंको भी त्याग दे; वह है। आप भगवान् नीलकण्ठकी निन्दा करनेवाले हैं; आपसे उत्पन्न हुए इस शरीरको अब मैं नहीं धारण क यदि भूलसे कोई दूषित अन्न खा लिया जाय तो वमन उसे निकाल देना ही आत्मशुद्धिके लिये आवश्यक गया है। भगवान् शिव जब-जब आपके साथ मेरा दिखलाते हुए मुझे हँसीमें भी दाक्षायणी (दक्षकुमा नामसे पुकारते हैं, तब-तब उस हास-परिहासको मेरा मन तुरंत ही दुःखके अगाध समुद्रमें डूब जा अतः आपके अङ्गसे उत्पन्न हुए इस शवतुल्य शरीरको त्याग देती हूँ; क्योंकि यह मेरे लिये कलंकरूप है।

यज्ञमण्डपमें इस प्रकार कहकर देवी सती मौ उत्तर-दिशामें बैठ गयीं। उनका शरीर पीताम्बरसे ढ वे आचमन करके नेत्र बंद किये योगमार्गमें स्थित हो पहले उन्होंने आसनको स्थिर किया, फिर प्राण और वायुको एकरूप करके नाभिचक्रमें स्थापित किया। उदान वायुको नाभि-चक्रसे धीरे-धीरे ऊपर उठा बुद्धिसहित हृदयमें स्थापित कर दिया; फिर हृद वायुको वे कण्ठमार्गसे भृकुटियोंके बीचमें ले महापुरुषोंके भी पूजनीय भगवान् शिव जिसको आदरके साथ अपने अङ्कमें बिठा चुके थे, उसी मनस्विनी सतीदेवी दक्षपर क्रोध होनेके कारण त्या चाहती थीं; अतः उन्होंने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें अ वायुकी धारणा की। इसके बाद वे अपने स्वामी ज भगवान् शिवके चरणारविन्द मकरन्दका चिन्तन करते

उसके सिवा दूसरी किसी वस्तुका उन्हें भान न रहा। उस समय उनका वह दिव्य देह, जो स्वभावसे ही निष्पाप था, तत्काल योगाग्निसे जलकर भस्म हो गया।[1]

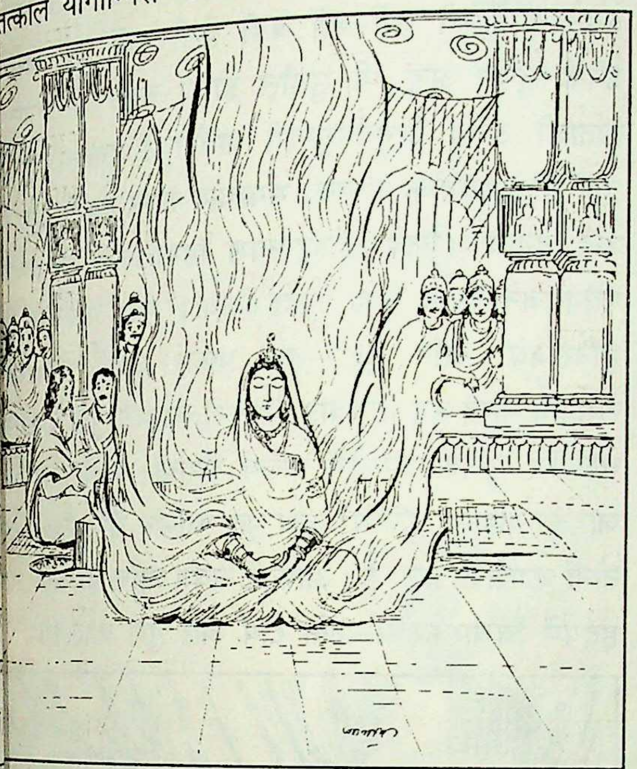

इस प्रकार पतिप्राणा सतीकी ऐहलौकिक लीला समाप्त हुई। उन्होंने जीवनभर सदा ही तन, मन, प्राणसे अपने पति भगवान् शिवकी सेवा और समाराधना की तथा अन्तमें भी उन्हींका चिन्तन करते-करते प्राण-त्याग किया। मरते समय भी उन्होंने भगवान्‌से यही वर माँगा था कि 'प्रत्येक जन्ममें मेरा भगवान् शिवके ही चरणोंमें अनुराग हो[2]।' इसीलिये वे पुनः गिरिराज हिमालयके यहाँ पार्वतीके रूपमें प्रकट हुईं और उन्होंने भगवान् शंकरको ही पतिरूपमें प्राप्त किया। सतीका यह दिव्य पतिप्रेम भारतकी नारियोंके लिये आदर्श बन गया। आज घर-घरमें सती-पूजाकी जो प्रथा चली आती है, उसमें दक्ष-कन्या सतीके प्रति ही भारतीय नारियाँ अपनी श्रद्धा और भक्ति अर्पित करती हैं। सतीजी भगवान् शिवके लिये ही उत्पन्न हुईं, उन्हींकी सेवाके लिये जीवित रहीं और उसीमें बाधा पड़नेपर फिर उन्हींको सम्पूर्णरूपसे प्राप्त करनेके लिये उन्होंने अपने शरीरको त्याग दिया। गङ्गाके किनारे जिस स्थानपर सतीने अपना शरीर छोड़ा था, वह आज भी 'सौनिक तीर्थ'के नामसे विख्यात है।

पार्वती-शंकरकी विवाह-लीला

पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष॥
(रा० च० मा० १। २३५)

सतीत्व ही नारीका सौन्दर्य है, पातिव्रत्यकी रक्षा ही सका व्रत है। मन, वाणी और क्रियाद्वारा पतिके चरणोंमें वित्र प्रेम ही उसका धर्म है। ऊँची-से-ऊँची स्थितिको कर भी मनमें अहंकारका उदय न होना, भारी-से-भारी कट आनेपर भी धैर्य न छोड़ना, स्वयं कष्ट सहकर भी ामी तथा कुटुम्बीजनोंको यथायोग्य सेवासे प्रसन्न रखना, नय, कोमलता, दया, प्रेम, लज्जा, सुशीलता और वत्सलता दि सद्गुणोंको हृदयमें धारण करना—यह प्रत्येक साध्वी ीका स्वभाव होता है। नारी न भीरु होती है, न अबला। भीरुता और अबलापनको तो वह अपने पति और गुरुजनोंके सामने केवल विनयकी रक्षा और अविनयसे बचनेके लिये धारण किये रहती है। सती नारीकी सबसे बड़ी शक्ति है उसका पातिव्रत्य, जो सम्पूर्ण जगत्‌को सबल और निर्भय बना सकता है। वह प्राणोंके रहते सतीत्वपर आँच नहीं आने देती। आवश्यकता हुई तो सतीत्वकी रक्षाके लिये वह शस्त्र भी ग्रहण करती है और आततायीके लिये भयानक रणचण्डी बन जाती है। अपने पति और पुत्रोंके ललाटमें रक्तका चन्दन लगाकर स्वयं ही उन्हें रणमें भेजती है और इस प्रकार संसारमें वह वीराङ्गना एवं वीरजननीके रूपमें सम्मानित होती हैं। नारीके इन सभी सद्गुणों और सभी रूपोंका एकत्र समन्वय देखना हो तो जगज्जननी भगवती पार्वतीके जीवनपर दृष्टिपात

---

[1] १-ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम्। ददर्श देहो हतकल्मषः सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना॥
(श्रीमद्भा० ४। ४। २७)

[2] २-सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥ (रा० च० मा० १। ६५। ५)

करना चाहिये। पार्वतीने जहाँ प्रेम और विनयकी प्रतिमूर्ति होकर पतिके आधे अङ्गमें स्थान प्राप्त किया, उन्हें अर्धनारीश्वर बनाया; वहीं स्वामीको अपनी विराट् शक्ति देकर मृत्युञ्जयके रूपमें प्रतिष्ठित किया, दोनों पुत्रोंको सेनानी और गणाध्यक्ष बनाया तथा स्वयं भी वे पातिव्रत्यकी रक्षा एवं लोककल्याणके लिये शस्त्र हाथमें ले चण्ड-मुण्डविनाशिनी चामुण्डा बन गयीं; वेद, उपनिषद्, इतिहास, पुराण, तन्त्र और आगम—ये सभी शिव और पार्वतीके गुणगानसे भरे हैं। यहाँ अति संक्षेपसे ही उनके जीवनपर कुछ प्रकाश डाला जा रहा है।

पार्वती पूर्वजन्ममें दक्षप्रजापतिकी कन्या सतीके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं। उस समय भी उन्हें भगवान् शंकरकी प्रियतमा पत्नी होनेका सौभाग्य प्राप्त था। जब वे अपने स्वामीके साथ कैलास पर्वतपर रहती थीं, उन दिनों गिरिराज हिमालयकी धर्मपत्नी मेनकादेवी उनसे बड़ा प्रेम रखती थीं। उनके मनमें सदा यही अभिलाषा होती कि मेरे गर्भसे भी एक सती-जैसी ही सुन्दरी तथा सुलक्षणा कन्या जन्म ले। सतीका भी उनके प्रति माता-जैसा ही प्रेम था। दक्षके यज्ञमें सतीका देहावसान सुनकर मेनकाको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये बड़ी भक्तिके साथ आद्या शक्ति जगदम्बाकी आराधना आरम्भ कर दी। इससे प्रसन्न होकर देवीने प्रत्यक्ष दर्शन दिया और मनोवाञ्छित वर माँगनेको कहा। मेनकाने पहले पुत्र और फिर कन्या प्राप्त होनेका वर माँगा। देवीने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की।

इसी प्रकार महर्षि कश्यपके उपदेशसे श्रेष्ठ संतानकी प्राप्तिके लिये गिरिराज हिमवान्ने तपस्या करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया और उनसे उत्तम पुत्र और महान् सद्गुणवती कन्या प्राप्त करनेका वर-लाभ किया।

हिमालयकी पत्नी मेनका पितरोंकी मानसी कन्या थीं। वे कुल और शील दोनों ही दृष्टियोंसे श्रेष्ठ थीं। उनके गर्भसे पहले एक प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम 'मैनाक' था। मैनाकके जन्मके कुछ काल पश्चात् सतीने नूतन शरीर धारण करनेके लिये मेनकाके गर्भमें प्रवेश किया। समय आनेपर जैसे सुनीति नवीन सम्पत्ति उत्पन्न करती है, उसी प्रकार मेनकाने एक कन्या-रत्नको जन्म दिया।

पर्वतसे उत्पन्न होनेके कारण कन्याको सब 'पार्वती' कहने लगे। कुछ लोग 'गिरिजा' और 'शै भी कहते हैं। धीरे-धीरे पार्वती प्रतिदिन चन्द्रकलाके बढ़ने लगीं। वे ज्यों-ज्यों बड़ी होती गयीं, त्यों-ही उनके सुन्दर अङ्ग भी सुडौल होकर बढ़ने लगे। पिताकी आँखें त्रिभुवनसुन्दरी पार्वतीको देखकर नहीं थीं। पार्वतीके जन्मका समाचार पाकर देवर्षि नार उन्हें देखनेके लिये कौतूहलवश हिमाचलके घर पर्वतराजने उनका बड़ा आदर किया। 'मेरा अहोभाग्य मुनिराजके दर्शन हुए'—इस प्रकार अपने सौभा सराहना करते हुए हिमवान्ने अपनी लाड़ली पुत्री पार्व बुलाकर मुनिके चरणोंमें प्रणाम कराया। इसके बाद जोड़कर कहा—'मुनिवर! आप भूत, वर्तमान और भविष्य- तीनों कालोंके ज्ञाता हैं। आपकी सर्वत्र पहुँच है; अतः हृदयमें विचारकर कन्याके दोष और गुण बतलाइये।

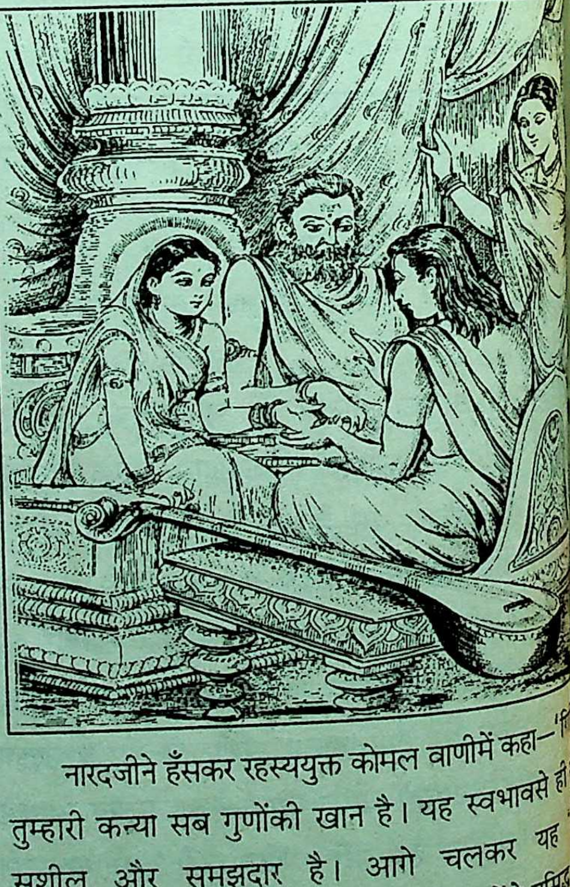

नारदजीने हँसकर रहस्ययुक्त कोमल वाणीमें कहा—'गि तुम्हारी कन्या सब गुणोंकी खान है। यह स्वभावसे ही सुशील और समझदार है। आगे चलकर यह 'अम्बिका' और 'भवानी' आदि विविध नामोंसे प्रसिद्ध इसमें सम्पूर्ण शुभ लक्षण विद्यमान हैं। यह अपने सर्वदा प्यारी होगी। इसका सुहाग सदा अचल रहे

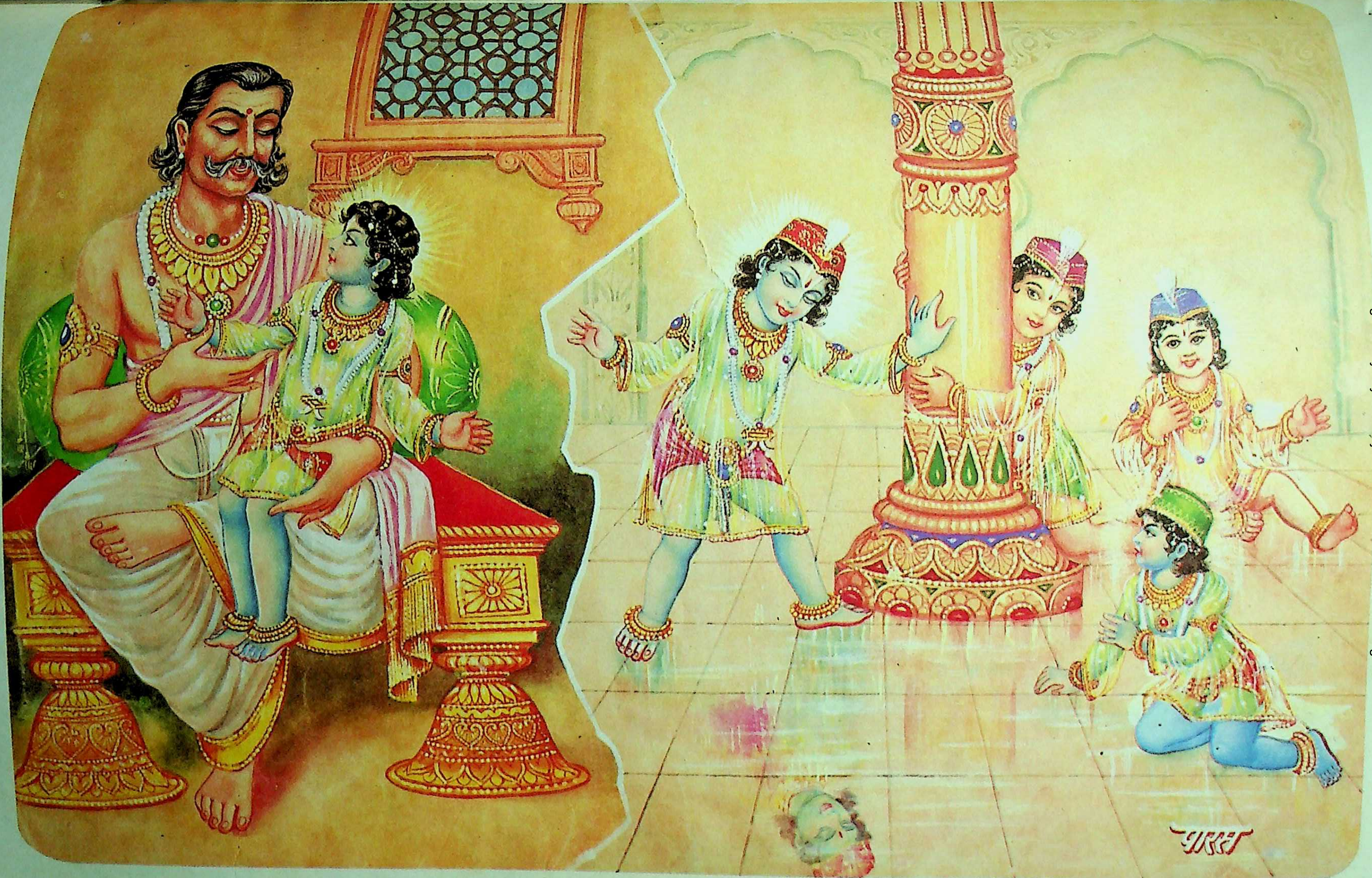

श्रीदशरथ-नन्दन

क्रीडावेषमें आनन्दकन्द

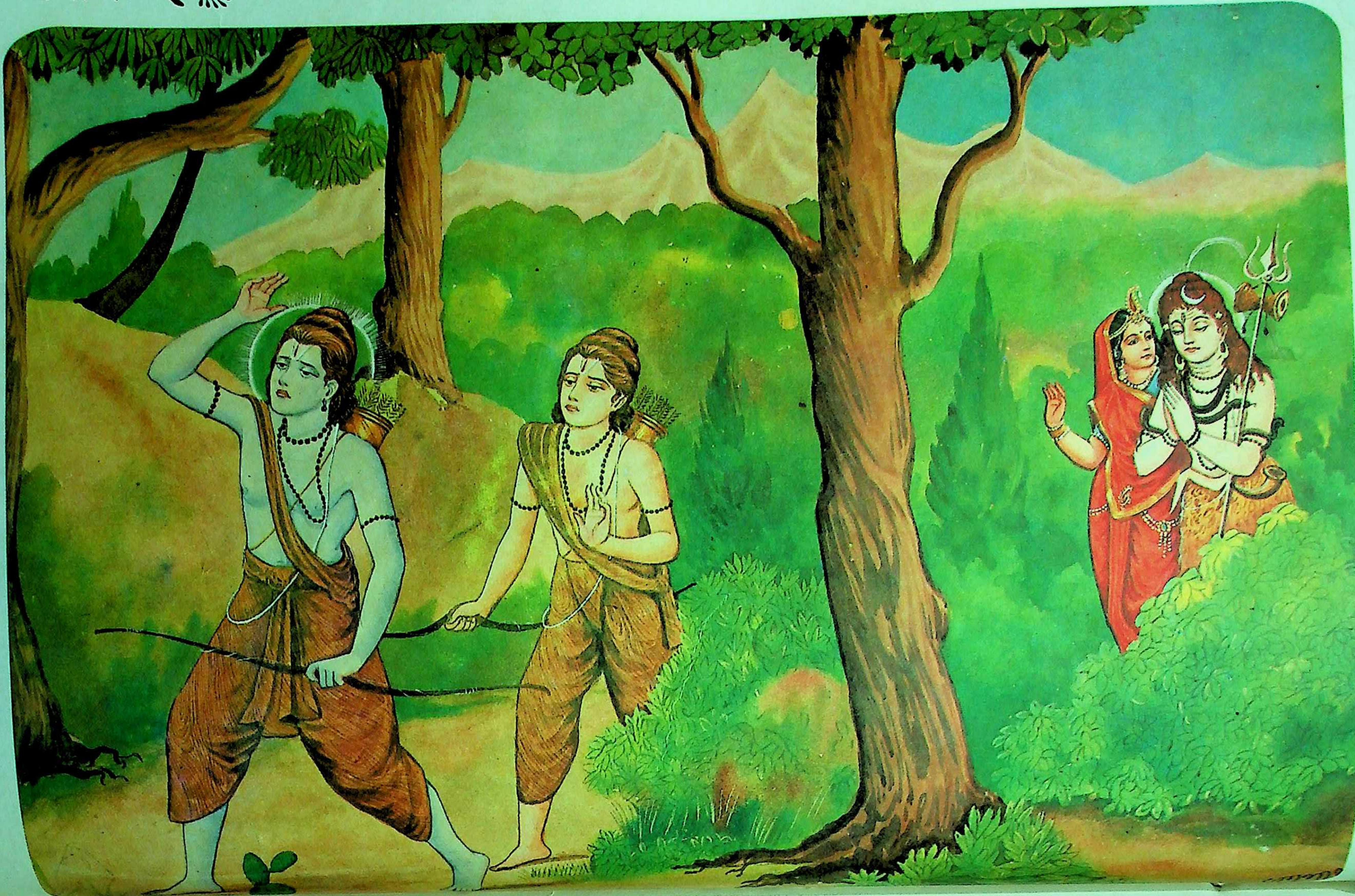

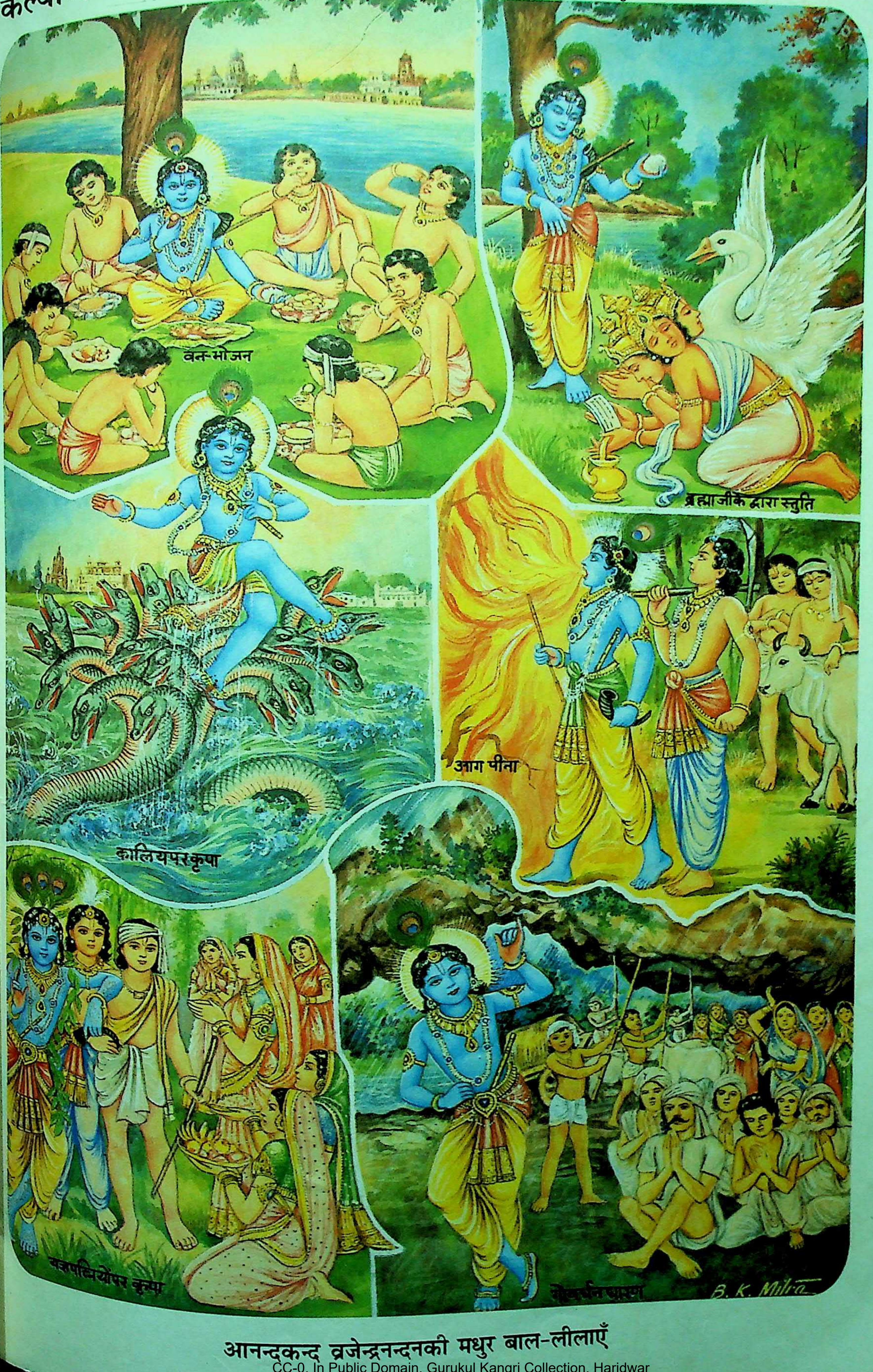

वन-भोजन
ब्रह्माजीके द्वारा स्तुति
कालियपरकृपा
आग पीना
यज्ञपत्नियोंपर कृपा
गोवर्धनधारण
B. K. Mitra

आनन्दकन्द व्रजेन्द्रनन्दनकी मधुर बाल-लीलाएँ

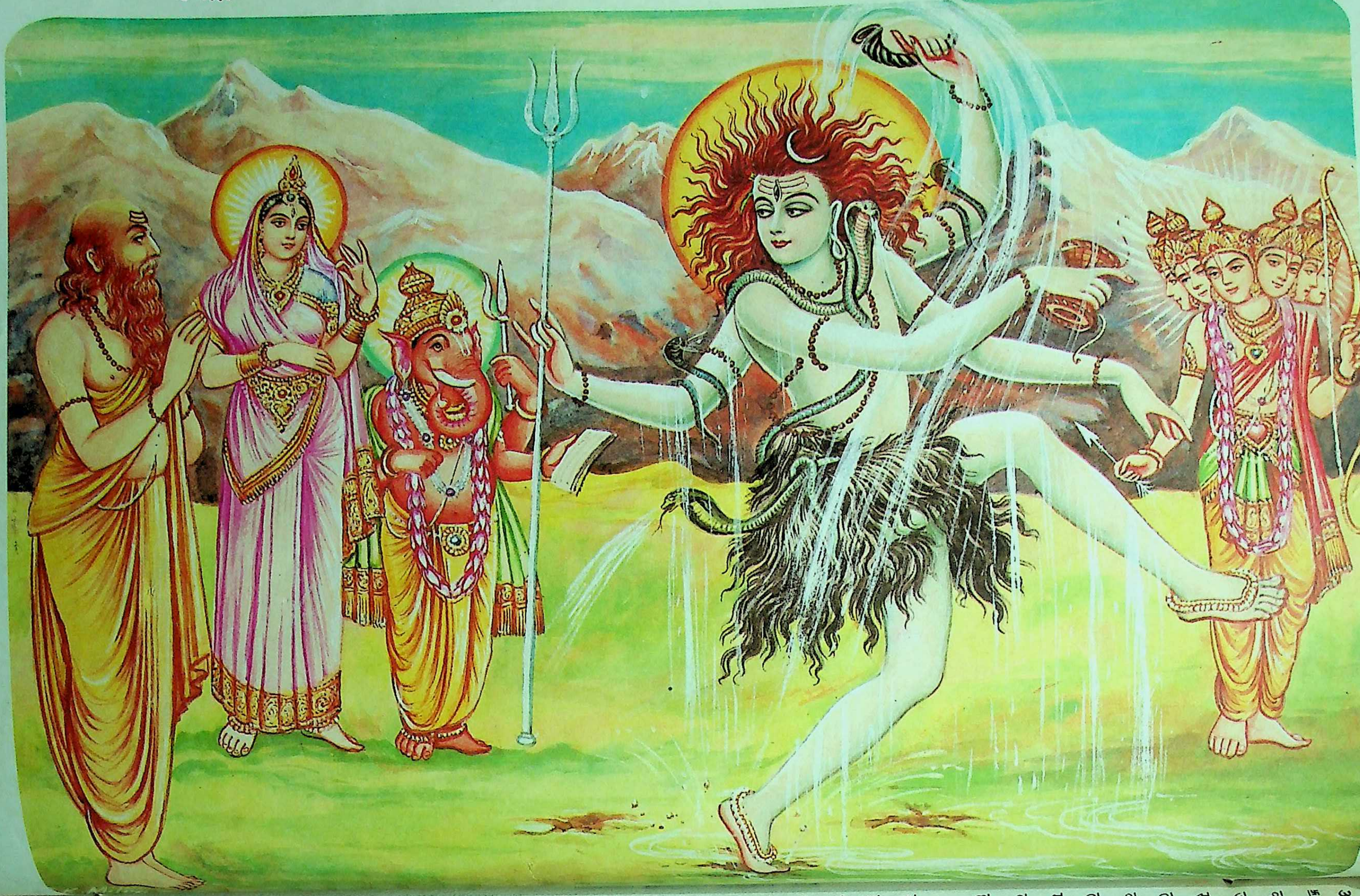

कन्यासे माता-पिताको बड़ा भारी यश मिलेगा। यह सारे जगत्में पूज्य होगी। इसकी सेवासे कुछ भी दुर्लभ न होगा। संसारमें स्त्रियाँ इसके नामका स्मरण करके पातिव्रत्यरूपी तलवारकी धारपर चढ़ जायँगी। शैलपते! इस प्रकार तुम्हारी कन्या सब प्रकारसे सुलक्षणी है; किंतु इसमें जो एक अशुभ लक्षण है, उसे भी सुन लो। इसको पति गुणहीन, मानहीन, माता-पितासे रहित, उदासीन, संशय-शून्य, योगी, जटाधारी, कामना-शून्य, नंगा और अमङ्गल वेषवाला मिलेगा। इसके हाथमें ऐसी ही रेखा पड़ी है।'

मुनिकी यह बात सुनकर और मन-ही-मन उसको सत्य जानकर दोनों दम्पति हिमवान् और मैना बहुत दुःखी हुए; किंतु पार्वतीजी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। हिमवान्को चिन्तित देखकर नारदजीने कहा—'हिमवान्! इसमें संदेह नहीं कि तुम्हारी कन्याको वैसा ही वर प्राप्त होगा, जैसा कि मैंने बताया है; परंतु मैंने वरके जो-जो दोष बताये हैं, मेरे अनुमानसे वे सभी शिवजीमें हैं। यदि उनके साथ इसका विवाह हो जाय, तो दोषोंको भी सब लोग गुणके ही समान कहेंगे। शिवजी सहज समर्थ हैं, क्योंकि वे भगवान् हैं; अतः इस विवाहमें सब प्रकारसे कल्याण है। यद्यपि महादेवजीकी आराधना बड़ी कठिन है, तथापि तपस्या करनेसे वे शीघ्र ही संतुष्ट हो जाते हैं। यदि तुम्हारी कन्या तप करे, तो महादेवजी होनहारको भी मिटा सकते हैं। वे कृपाके समुद्र और सेवकोंके मनको प्रसन्न करनेवाले हैं। शिवजीकी आराधना किये बिना करोड़ों योग और जप करनेपर भी मनोवाञ्छित फलकी सिद्धि नहीं हो सकती।' ऐसा कहकर नारदजीने पार्वतीको आशीर्वाद दिया और भगवान्का स्मरण करके वे ब्रह्मलोकमें चले गये। हिमवान् पार्वतीके तप करनेका उपयुक्त अवसर देखने लगे।

उधर जबसे सतीने पिताके हाथों महादेवजीका अपमान होनेपर योगाग्निसे अपने शरीरको जला दिया, तबसे महादेवजीने दूसरा विवाह नहीं किया। भोग-विलासको तो वे बहुत पहलेसे ही छोड़ चुके थे। हिमालयके सुन्दर शिखरपर जाकर उन्होंने तपस्या आरम्भ की। वहाँ भगवान्की सेवामें उनके पार्षद प्रमथगण और नन्दी भी साथ-साथ रहते थे। परम विरक्त शिवजी श्रीरघुनाथजीका नाम जपते हुए उन्हींका ध्यान करने लगे। महादेवजीको तपस्यामें स्थित देख हिमवान् अपनी पुत्रीको साथ लेकर उनकी पूजाके लिये गये। पहले उन्होंने स्वयं शिवजीकी पूजा की; फिर अपनी पुत्रीको आज्ञा दी कि 'सखियोंके साथ आकर तुम यहीं रहकर भगवान्की पूजा करो।' यद्यपि पार्वतीजीके रहनेसे शिवजीकी तपस्यामें बाधा पड़नेकी सम्भावना थी; फिर भी उन्होंने पार्वतीजीकी सेवा स्वीकार कर ली; क्योंकि वास्तवमें ज्ञानी और महात्मा पुरुष वे ही हैं, जिनका चित्त विकारके साधन उपस्थित रहनेपर भी विचलित न हो। पार्वती नियमसे प्रतिदिन वहाँ रहकर पूजाके लिये फूल चुनकर लातीं, वेदीको धो-पोंछकर स्वच्छ बनातीं और नित्यकर्मके लिये जल और कुशा लाकर रख दिया करती थीं। यह सब करते हुए उनके तन-मनमें तनिक भी थकानका अनुभव नहीं होता था।

उन्हीं दिनों तारक नामसे प्रसिद्ध एक अजर-अमर असुर हुआ, जिसकी भुजाओंका बल, प्रताप और तेज बहुत अधिक था। उसने सब लोक और लोकपालोंको जीत लिया। तब उन्होंने ब्रह्माजीके पास जाकर अपनी कष्ट-कथा सुनायी। ब्रह्माजीने देवताओंको समझाकर कहा—'उस दैत्यकी मृत्यु तब होगी, जब शिवजीके वीर्यसे कोई पुत्र उत्पन्न हो। वही इसे युद्धमें जीतेगा। दक्षकन्या सती हिमवान्के यहाँ पार्वतीके रूपमें अवतीर्ण हुई हैं। वे ही शिवका वीर्य धारण करनेमें समर्थ हैं; परंतु शिवजी परम विरक्त होकर समाधि लगाये बैठे हैं, हिमगिरिके शिखरपर तपस्या कर रहे हैं। उन्हें विवाहके लिये उद्यत करना कठिन है। इसके लिये तुम्हें कोई उपाय सोचना चाहिये।'

यह सुनकर इन्द्र आदि देवताओंने कामदेवको अपनी दुःखभरी गाथा सुनाकर वसन्त आदि सहायकोंके साथ वहाँ भेजा। उसके हाथमें पुष्पमय धनुष शोभा पा रहा था। वहाँ जाकर वह एक सुन्दर डालीपर जा बैठा। उसने पुष्प-धनुषपर अपने पाँचों बाण चढ़ाये और अत्यन्त क्रोधसे लक्ष्यकी ओर देखकर उन्हें छोड़ दिया। बाण भगवान् शंकरके हृदयमें जा लगे। उनकी समाधि टूट गयी और वे जाग उठे। इससे

उनके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ और उन्होंने आँखें खोलकर सब ओर देखा। आमके पत्तोंमें छिपे हुए कामदेवपर उनकी दृष्टि पड़ गयी। शिवजीने जैसे ही अपना तीसरा नेत्र खोला, कामदेव जलकर भस्म हो गया। जगत्‌में हाहाकार मच गया। कामदेवकी स्त्री रति अपने पतिकी यह दशा सुनकर मूर्च्छित हो गयी। वह रोती, चिल्लाती और करुण विलाप करती हुई शिवजीकी शरणमें गयी। आशुतोष शिव अबलाकी करुण पुकार सुनकर पिघल गये और बोले—'रति! तुम्हारा पति मरा नहीं है, केवल उसका शरीर जल गया है। अब वह बिना शरीरके ही सबमें व्याप्त हो सकेगा। अबसे उसका नाम 'अनङ्ग' होगा। जब पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुवंशमें श्रीकृष्णका अवतार होगा, उस समय तुम्हारा पति उनके पुत्ररूपमें उत्पन्न होगा। तभीसे उसे अपने खोये हुए शरीरकी भी प्राप्ति हो जायगी।' यह सुनकर रति लौट गयी। इसी समय गिरिराज हिमालयने वहाँ पहुँचकर अपनी कन्याको गोदमें उठा लिया और सखियोंसहित उसे घर ले आये। शंकरजीकी भक्ति और दृढ़तासे संतुष्ट होकर श्रीरघुनाथजीने उन्हें दर्शन दिया और पार्वतीजीसे विवाह करनेको विवश किया। शिवने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की।[1]

घर आनेपर पार्वतीजीने भगवान् शिवकी प्राप्तिके लिये घोर तपस्या करनेका निश्चय किया। उन्होंने अपना यह विचार माता-पितापर भी प्रकट किया। हिमवान्‌को तो यह अभीष्ट ही था; किंतु माताका कोमल हृदय इसे सहन न कर सका। उसने सोचा, 'मेरी सुकुमारी कन्या इन कोमल अङ्गोंसे तपस्याका कष्ट कैसे सह सकेगी।' इस विचारसे उसका हृदय भर आया, नेत्रोंमें आँसू छलक आये। मैनाने पार्वतीको छातीसे लगा लिया और कहा—बेटी 'उ'........'मा' (ऐसा न कर); तभीसे पार्वतीका नाम 'उमा' पड़ गया। माता-पिताको हर तरहसे समझा-बुझाकर पार्वतीजी बड़े हर्षके साथ तपस्या करनेके लिये चलीं। हिमालयके एक सुन्दर शिखरपर पार्वतीने घोर तपस्या आरम्भ की। उनका सुकुमार शरीर तपके योग्य नहीं था, तो भी शिवके चरणोंका चिन्तन करके उन्होंने सब भोग छोड़ दिये। स्वामीके चरणोंमें नित्य नया अनुराग उत्पन्न होने लगा और तपमें ऐसा मन लगा शरीरकी सुध-बुध बिसर गयी।

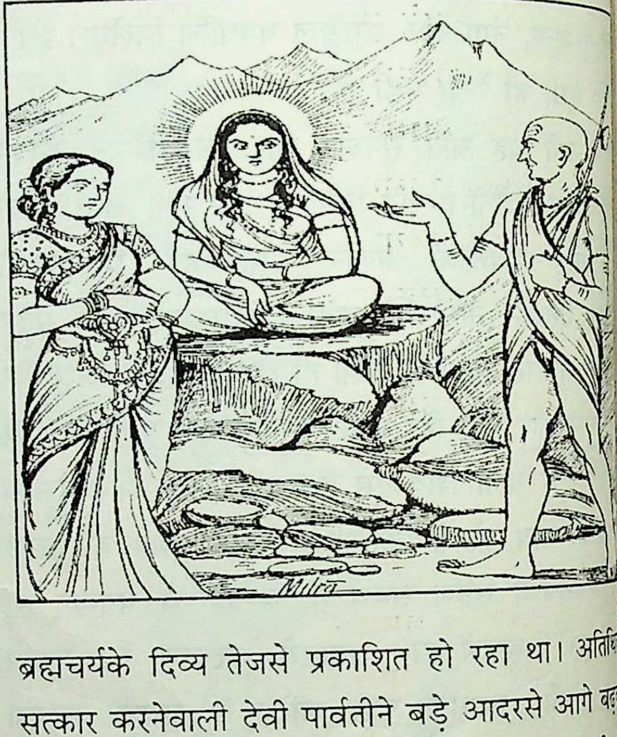

इस प्रकार रात-दिन कठोर तपस्याके द्वारा सुकोमल अङ्गोंको सुखाकर पार्वतीने कठोर शरीर तपस्वियोंको भी लज्जित कर दिया। इसी बीचमें पार्व आश्रमपर एक तेजस्वी ब्रह्मचारी आया। उसका ब्रह्मचर्यके दिव्य तेजसे प्रकाशित हो रहा था। अतिथि सत्कार करनेवाली देवी पार्वतीने बड़े आदरसे आगे ब ब्रह्मचारीका विधिवत् पूजन किया। ब्रह्मचारीने उनकी ग्रहण करके पलभर अपनी थकावट मिटायी; फिर पार्व तपश्चर्याकी महान् प्रशंसा करते हुए तपका उद्देश्य चाहा। ब्रह्मचारीने ऐसे ढंगसे बातें कहीं, मानो पार्वतीके हृदयमें पैठकर सब बातें जान ली हों। सुनकर पार्वती ऐसी लजा गयीं कि अपने मनकी बात न निकाल सकीं, अतः उन्होंने सखीकी ओर देखकर कहनेके लिये संकेत किया। तब पार्वतीजीकी ब्रह्मचारीको बड़े मधुर शब्दोंमें पार्वतीकी मानस वर्णन करते हुए यह बता दिया कि ये पिनाक श्रीमहादेवजीको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये तप कर हैं। इसपर ब्रह्मचारीने अपनी अरुचि व्यक्त करते महादेवजीके अशुभ वेषका वर्णन करके उनकी निन्दा

---

[1] १-सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा॥

और अन्तमें कहा कि 'मेरे विचारसे तुम्हें अपने मनको इस अनुचित आग्रहसे हटा लेना चाहिये। कहाँ तुम और कहाँ वह। दोनोंमें आकाश-पातालका अन्तर है।'

ब्रह्मचारीकी ऐसी उलटी-सीधी बातें सुनकर पार्वतीके ओठ क्रोधसे काँपने लगे, भौंहें तन गयीं और आँखें लाल हो गयीं। उन्होंने ब्रह्मचारीकी ओर आँखें तरेरकर देखा और कहा—'निश्चय ही महादेवजीके वास्तविक स्वरूपको तुम नहीं जानते, तभी तुम्हारे मुँहसे ऐसी बातें निकली हैं। मूर्ख लोग महात्मा पुरुषोंके उस अलौकिक चरित्रकी निन्दा ही करते हैं, जिसके रहस्यको जानने या समझनेकी उनमें क्षमता नहीं होती। जो लोग अपने ऊपर आयी हुई विपत्ति दूर करना चाहते हैं अथवा धनके लिये उत्सुक रहते हैं, वे ही ढूँढ़-ढूँढ़कर माङ्गलिक कही जानेवाली वस्तुओंका सेवन करते हैं; परंतु जो सम्पूर्ण जगत्‌को शरण देनेवाले हैं, जिनके मनमें कोई इच्छा ही नहीं है, उन महेश्वरको ऐसी वस्तुओंसे क्या लेना है? कहते हो उनके पास कुछ नहीं है, वे श्मशानमें घूमते हैं और उनका रूप भयंकर है; किंतु सच बात यह है कि अकिंचन होते हुए भी वे ही सम्पूर्ण सम्पदाओंके दाता हैं। श्मशानमें विचरनेवाले होकर भी वे तीनों लोकोंके रक्षक हैं; भयानक रूपवाले होनेपर भी वे ही शिव (कल्याणकारी) कहलाते हैं। पिनाकपाणि महादेवजीके यथार्थ स्वरूपको जाननेवाले इस संसारमें नहीं हैं। वे सुन्दर आभूषण पहने या साँप लपेटे रहें। हाथीकी खाल ओढ़ें अथवा स्वच्छ वस्त्र धारण करें। हाथमें कपाल लिये हों अथवा माथेपर चन्द्रमाका मुकुट सजाये हों; संसारमें जितने भी रूप हैं, सब उन्हींके हैं; अतः उनका रूप ऐसा है, ऐसा नहीं है, इस बातका निश्चय नहीं किया जा सकता। जिन्हें तुम निर्धन कहते हो, वे ही जब अपने बैलपर चढ़कर चलते हैं, उस समय मदोन्मत्त ऐरावत हाथीपर चढ़कर चलनेवाला इन्द्र भी आकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाता है और खिले हुए पारिजात पुष्पोंके परागसे उनके चरणोंकी अँगुलियोंको लाल रंगका बना देता है। तुम्हारी आत्मा अपने स्वरूपसे भ्रष्ट हो चुकी है। तुम शंकरजीके दोष ही बतलाना चाहते थे, तो भी तुम्हारे मुखसे एक बात तो उनके लिये अच्छी ही निकल गयी। अरे! जो ब्रह्माजीको भी उत्पन्न करनेवाले हैं, उन महेश्वरके जन्म, कुल और माता-पिता आदिका पता हो ही कैसे सकता है? जो सबके माता-पिता हैं, उनके माता-पिता दूसरे कौन हो सकते हैं; अस्तु, इस विवादसे कोई लाभ नहीं, तुमने शंकरजीके बारेमें जैसा सुना है, वे वैसे ही सही; मेरा प्रेम-रसमें डूबा हुआ मन उन्हींमें रम गया है। अब उसे उनकी ओरसे हटाया नहीं जा सकता। प्रेमीका अन्तःकरण प्रेमास्पदके दोषोंपर दृष्टि नहीं डालता[१]।'

इतनेमें ही पार्वतीने देखा, ब्रह्मचारी फिर कुछ कहना चाहता है, तब वे सहसा बोल उठीं—'सखी! देखो, इस ब्रह्मचारीके ओठ फड़क रहे हैं। यह पुनः कुछ कहना चाहता है, इसे रोक दो। अब यह एक शब्द भी बोलने न पाये, क्योंकि जो महात्मा पुरुषोंकी निन्दा करता है, केवल वही नहीं पापी होता; जो उसके मुँहसे सुनता है, उसे भी पापका भागी होना पड़ता है।[२] अथवा मैं ही यहाँसे उठकर

१-गोस्वामी तुलसीदासजीने भी इस प्रसंगका अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है। सप्तर्षियोंने पार्वतीकी प्रेम-परीक्षा लेते समय जब महादेवजीके दोष और विष्णुके गुणोंका वर्णन करके उनका मन विष्णुकी ओर खींचनेका प्रयत्न किया तथा नारदके उपदेशको हानिकर बताकर उन्हें तपस्यासे विरत करनेकी चेष्टा की, उस समय पार्वतीने उन्हें मुँहतोड़ उत्तर देते हुए कहा था—

महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम॥
(रा० च० मा० १। ८०)

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू॥
(रा० च० मा० १। ८१। ५)

२-निवार्यतामालि किमप्ययं वटुः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।
न केवलं यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्॥
(कुमारसम्भव ५। ८३)

चली जाऊँगी।' यों कहकर उमा ज्यों ही चलनेको उद्यत हुईं, महादेवजीने अपना वास्तविक रूप प्रकट करके मुसकराते हुए उनका हाथ पकड़ लिया। अपने जीवन-निधिको सहसा सामने उपस्थित देख पार्वतीजीके शरीरमें कम्पन होने लगा। समस्त अङ्ग पसीने-पसीने हो गये। आगे चलनेको जो पैर उठ चुका था, वह जहाँ-का-तहाँ रुक गया। भगवान् शंकर बोले—'कोमलाङ्गी! आजसे मैं तपस्यासे मोल लिया हुआ तुम्हारा सेवक हूँ।' इतना सुनते ही पार्वती अनिर्वचनीय आनन्दमें डूब गयीं। तपस्यासे उन्हें जितना कष्ट हुआ था, वह सब जाता रहा। मनोवाञ्छित फल मिल जानेके कारण उनके तन-मन दोनों हरे हो गये। तदनन्तर पार्वतीने अपनी सखीके मुँहसे यह कहलाया कि 'मेरे इस शरीरके स्वामी मेरे पिता हैं; अतः आप उन्हींके पास आदेश देकर मेरा वरण करें।' 'एवमस्तु' कहकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्धान हो गये।

कुछ कालके बाद हिमालयके विशाल शिखरपर पार्वतीका स्वयंवर रचाया गया। उस समय सम्पूर्ण देवताओंके विमानोंसे वह स्थान खचाखच भरा हुआ था। इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, यक्ष, नाग और किन्नरगण मनोहर वेष बनाये वहाँ उपस्थित थे। भगवती उमा माला हाथमें लिये देवसमाजमें खड़ी हुईं। इसी समय उनकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शंकर पाँच शिखावाले बालक बनकर उनकी गोदमें आकर सो गये। देवीने ध्यानके द्वारा उन्हें पहचानकर बड़े प्रेमके साथ अङ्कमें ले लिया। पार्वतीका संकल्प शुद्ध था। वे अपना मनोवाञ्छित पति पा गयीं; अतः भगवान् शंकरको हृदयमें रखकर स्वयंवरसे लौट पड़ीं। इन्द्रने उस बालकको अपने मार्गका कण्टक माना और उसे मार डालनेके लिये वज्रको ऊपर उठाया। यह देख शिशुरूपधारी शिवने उन्हें वज्रसहित स्तम्भित कर दिया। वे अपने स्थानसे हिल भी न सके। तब भगदेवताने एक तेजस्वी शस्त्र चलाना चाहा,

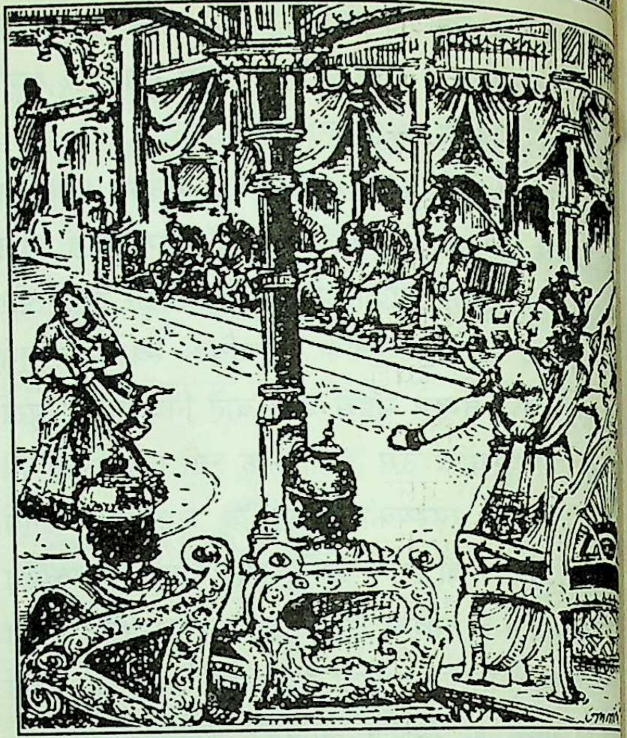

किंतु उनकी भी बाँह जडवत् हो गयी। यह देख ब्रह्मा भगवान् शिवको पहचान लिया और देवताओंको उ शरणमें जानेके लिये कहा। देवता भगवान्के चरणोंमें पड़े। महेश्वर प्रसन्न हो गये, फिर सब देवताओंका श पूर्ववत् हो गया। तदनन्तर भगवान् शिव अपने सा स्वरूपसे प्रकट हुए। पार्वतीने अपने हाथकी माला उ चरणोंमें चढ़ा दीं।

तत्पश्चात् भगवान् शंकर और पार्वतीका विवाह धूमधामसे सम्पन्न हुआ। वरपक्षकी ओरसे ब्रह्मा, विष्णु इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता बारात लेकर आये थे, हिमव सबका बड़े प्रेमसे स्वागत-सत्कार किया। तदनन्तर विदा समय आया। उस समय प्रेम और करुणाका समुद्र उ पड़ा। सबके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। माताने अ लाड़िली पुत्रीको गोदमें बिठाकर शिक्षा दी—'बेटी! तू शिवजीके चरणोंकी पूजा करना। नारियोंका यही धर्म उनके लिये पति ही देवता है और कोई देवता नहीं है इतना कहते-कहते माताके नेत्रोंमें आँसू भर आये। उ कन्याको छातीसे चिपका लिया। उसके बाद पार्वती स मिल-जुलकर विदा हुईं। हिमवान्ने सब बरातियोंको

१-करेहु सदा संकर पद पूजा। नारिधरमु पति देउ न दूजा॥ (रा०च०मा० १। १०२। ३)

आदरपूर्वक विदा किया।

कैलास पहुँचकर युगोंके बाद दो अनादि दम्पतियोंका पुनर्मिलन हुआ। वे सदासे ही एक प्राण—एक आत्मा थे और पुनः उसी प्रकार रहने लगे। फिर पार्वतीसे छः मुखोंवाले स्कन्द उत्पन्न हुए। छहों कृत्तिकाएँ भी इन्हें पुत्र मानती थीं, इसीसे इनका नाम 'कार्तिकेय' भी है। इन्होंने तारकासुरको मारकर देवताओंको निर्भय किया। देवसेनाके अध्यक्ष-पदपर अभिषिक्त होनेसे इनका नाम 'सेनानी' भी हो गया। पार्वतीजीके दूसरे पुत्र 'गणेश' हैं। ये अनादि देवता माने गये हैं। इनकी उत्पत्तिका वृत्तान्त विभिन्न पुराणोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारका मिलता है। एक समयकी बात है, पार्वतीजीने स्नान करनेसे पहले अपने शरीरमें उबटन लगवाया। उससे जो मैल गिरी, उसको हाथमें लेकर देवीने कौतूहलवश एक बालककी प्रतिमा बनायी। वह प्रतिमा बड़ी सुन्दर बन गयी। ऐसा जान पड़ा, मानो कोई सुन्दर बालक सो रहा है। यह देख उन्होंने उसमें अपनी शक्तिसे प्राण-संचार कर दिया। बालक सजीव हो उठा और बोला, 'मेरे लिये क्या आज्ञा है?' देवीने कहा—'तुम हाथमें शस्त्र लेकर इस स्थानपर पहरा दो; मैं स्नानके लिये जाती हूँ। जबतक स्नान करके लौट न आऊँ, तबतक किसीको अंदर न आने देना।' यों कहकर उमादेवी स्नानके लिये चली गयीं और बालक पहरा देने लगा। कुछ ही देरमें भगवान् शिव आये और घरके भीतर प्रवेश करने लगे। बालकने उन्हें रोका; फिर तो उन दोनोंमें भयंकर संग्राम छिड़ गया। शिवने त्रिशूलसे बालकका मस्तक काट गिराया। यह देख पार्वती धरतीपर लोटकर करुणक्रन्दन करने लगीं। चारों ओर हाहाकार मच गया। भगवान् शिव बालकको जीवित करनेकी इच्छासे इधर-उधर दृष्टिपात करने लगे, किंतु उसका कटा हुआ मस्तक कहीं नहीं मिला। इतनेमें उनकी दृष्टि गजासुरपर पड़ी। उन्होंने तुरंत उस दैत्यका मस्तक काटकर हाथमें ले लिया और उस बालकके धड़से जोड़ दिया। बालक जी उठा। तबसे उसका नाम 'गजानन' पड़ा। ये गजानन ही अनादि सिद्ध गणेशके मूर्तिमान् स्वरूप हुए। इन्होंने भगवन्नामके प्रभावसे समस्त देवादि गणोंका अध्यक्षत्व प्राप्त किया है।

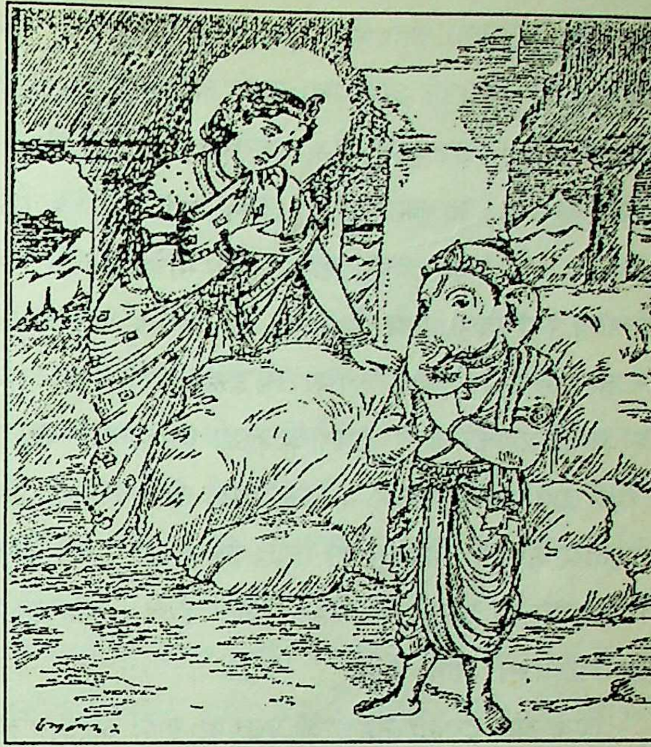

एक बार पार्वतीदेवी कैलासके समीप बहनेवाली गङ्गाजीके तटपर स्नान करने गयीं। उस समय वहाँ सम्पूर्ण देवता देवीकी स्तुति कर रहे थे। पार्वतीने पूछा, 'आप लोग यहाँ किसकी स्तुति करते हैं?' इतनेहीमें उन्हींके शरीरसे एक कल्याणमयी देवी प्रकट हुईं और बोलीं—'ये देवता शुम्भ और निशुम्भ नामक दैत्योंसे पराजित और पीडित होकर यहाँ एकत्रित हुए हैं और मेरी ही स्तुति करते हैं।' वे अम्बिकादेवी पार्वतीजीके ही शरीरकोशसे प्रकट हुई थीं; इसलिये उन्हें 'कौशिकी' कहते हैं। कौशिकीके प्रकट होनेके बाद पार्वतीजीका शरीर काले रंगका हो गया; अतः वे हिमालय-निवासिनी 'कालिकादेवी' के नामसे विख्यात हुईं। इस प्रकार उनके दो रूप हो गये, 'गौरी' और 'काली'। इन दोनों ही रूपोंसे उन्होंने धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज, निशुम्भ और शुम्भ आदि बड़े-बड़े दैत्योंका संहार करके सम्पूर्ण जगत्‌का कल्याण किया। वे कौशिकीदेवी ही 'महासरस्वती' के नामसे प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार पार्वती देवीने अन्यान्य भक्तोंको भी अपनी कृपासे ही अनुगृहीत किया था। हैहयराज कार्तवीर्य अर्जुनपर कृपा करनेवाली आदिशक्ति महामायादेवी ये ही हैं।

एक समयकी बात है, देवता असुरोंपर विजय पाकर अभिमानसे फूल उठे और ऐसा मानने लगे कि हमने अपनी ही शक्तिसे विजय पायी है। इतनेहीमें एक तेजस्वी यक्ष प्रकट हुआ। 'वह कौन है?' इसका पता लगानेके लिये क्रमशः अग्नि और वायु गये। यक्षने उनके सामने एक तिनका रख दिया, उसे वे अपनी सारी शक्ति लगाकर भी न जला सके, न उड़ा सके। अन्तमें इन्द्र गये। यक्ष अन्तर्धान हो गया। उसकी जगह पार्वतीजी खड़ी थीं; उन्होंने बताया, 'वह ब्रह्म था। उसीकी शक्तिसे तुमने विजय पायी है।' देवताओंका अभिमान दूर हो गया। इस प्रकार सबसे पहले ब्रह्मविद्यारूपा उमासे ही ब्रह्मका ज्ञान हुआ। (यह प्रसंग केनोपनिषद्‌में आया है।)

एक बार देवदेव महेश्वरके पूछनेपर गङ्गा आदि पवित्र नदियोंके सामने पतिव्रताशिरोमणि श्रीपार्वती—उमाने स्त्रीधर्मका वर्णन करते हुए कहा—

नारी-धर्म

'देवि! मुझे स्त्रियोंके धर्मका जैसा ज्ञान है, उसके अनुसार उसका विधिवत् वर्णन करती हूँ, तुम ध्यान देकर सुनो—विवाहके समय कन्याके भाई-बन्धु पहले ही उसे स्त्री-धर्मका उपदेश कर देते हैं जब कि वह अग्निके समीप अपने पतिकी सहधर्मिणी बनती है। जिसके स्वभाव, बातचीत और आचरण उत्तम हों, जिसको देखनेसे भी पतिको सुख मिलता हो, जो अपने पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषमें मन नहीं लगाती और स्वामीके समक्ष सदा प्रसन्नमुख बनी रहती है, वह स्त्री धर्माचरण करनेवाली मानी गयी है। जो साध्वी स्त्री अपने स्वामीको सदा देव-तुल्य समझती है, वही धर्मपरायण और वही धर्मके फलकी भागिनी होती है। जो पतिकी देवताके समान सेवा-शुश्रूषा और परिचर्या करती, पतिके सिवा और किसीसे हार्दिक प्रेम नहीं करती, कभी रंज नहीं होती तथा उत्तम व्रतका पालन करती है, पुत्रके मुखकी भाँति स्वामीके मुखकी ओर सदा निहारती रहती है और नियमित आहारका सेवन करती है, वह साध्वी स्त्री धर्मचारिणी है। 'पति और पत्नीको एक साथ रहकर धर्मका आचरण करना चाहिये।' इस मङ्गल दाम्पत्यधर्मको सुनकर जो स्त्री धर्म-परायण हो जाती वह पतिके समान व्रतका पालन करनेवाली (पतिव्रता) साध्वी स्त्री सदा अपने पतिको देवताके समान देखती पति और पत्नीका यह सहधर्म (साथ-साथ रहकर धर्मा करना)-रूप धर्म परम मङ्गलमय है। जो अपने हृद अनुरागके कारण स्वामीके अधीन रहती है, अपने चित्त प्रसन्न रखती है, उत्तम व्रतका पालन करती है और देखे सुखदायक—सुन्दर वेष धारण किये रहती है, जिसका अपने पतिके सिवा और किसीका चिन्तन नहीं करता, प्रसन्नवदन रहनेवाली स्त्री धर्मचारिणी मानी गयी है। स्वामीके कठोर वचन कहने या क्रूरदृष्टिसे देखनेपर प्रसन्नतासे मुसकराती रहती है, वही स्त्री पतिव्रता है। सिवा दूसरे किसी पुरुषकी ओर देखना तो दूर रहा, पुरुषके समान नाम धारण करनेवाले चन्द्रमा, सूर्य किसी वृक्षकी ओर भी दृष्टि नहीं डालती, वही पति धर्मका पालन करनेवाली है। जो नारी अपने दरिद्र, दीन अथवा रास्तेकी थकावटसे खिन्न हुए पतिकी समान सेवा करती है, उसीको धर्मका पूरा-पूरा फल मि है। जो स्त्री अपने हृदयको शुद्ध रखती, गृहकार्य क कुशल होती, पतिसे प्रेम करती और पतिको ही अपने समझती है, वही धर्मका फल पानेकी अधिकारिणी होती जो प्रसन्नचित्तसे पतिकी सेवा-शुश्रूषामें लगी रहती है, ऊपर पूर्ण विश्वास रखती है और उसके साथ विनययुक्त करती है, वह नारी-धर्मका फल पाती है। जिसके हृ पतिके लिये जैसी चाह होती है, वैसी काम, भोग, ऐश्वर्य सुखके लिये नहीं होती, जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठनेमें रखती, गृहके काम-काजमें योग देती और घरको बुहारकर उसे गायके गोबरसे लीप-पोतकर स्वच्छ रखती है, जो पतिके साथ रहकर नित्य अग्निहोत्र देवताओंको पुष्प और बलि अर्पण करती तथा देवता, और सास-ससुर आदि पोष्य-वर्गको भोजन देकर और विधिके अनुसार शेष अन्नका स्वयं भोजन कर

तथा घरके लोगोंको हृष्ट-पुष्ट एवं संतुष्ट रखती है, वही नारी-धर्मका पालन करनेवाली है। जो उत्तम गुणोंसे युक्त होकर सदा सास-ससुरके चरणोंकी सेवामें संलग्न रहती और माता-पिताके प्रति भक्ति रखती है, वह स्त्री तपस्विनी मानी गयी है। जो ब्राह्मणों, दुर्बलों, अनाथों, दीनों, अंधों और कंगालोंको अन्न देकर उनका पालन-पोषण करती है, उसे पतिव्रत-धर्मका फल प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन उत्तम व्रतका पालन करती, पतिमें ही मन लगाती और निरन्तर पतिके हित-साधनमें लगी रहती है, उसे पतिव्रता समझना चाहिये। जो नारी पतिव्रत-धर्मका पालन करती हुई स्वामीकी सेवामें तत्पर रहती है, उसका यह कार्य महान् पुण्य, बड़ी भारी तपस्या और अक्षय स्वर्गका साधन है। पति ही स्त्रियोंका देवता, पति ही उनका बन्धु-बान्धव और पति ही उनकी गति है। नारीके लिये पतिके समान न दूसरा कोई सहारा है, न दूसरा कोई देवता। एक ओर पतिकी प्रसन्नता और दूसरी ओर स्वर्ग; ये दोनों नारीकी दृष्टिमें समान हो सकते हैं या नहीं, इसमें संदेह है। मेरे प्राणनाथ महेश्वर! मैं तो आपको अप्रसन्न रखकर स्वर्गको भी नहीं चाहती। पति दरिद्र हो जाय, किसी रोगसे घिर जाय, आपत्तिमें फँस जाय, शत्रुओंके बीचमें पड़ जाय अथवा ब्राह्मणके शापसे कष्ट पा रहा हो और उस अवस्थामें वह न करने योग्य कार्य, अधर्म अथवा प्राण त्याग देनेकी भी आज्ञा दे तो उसे आपत्तिकालका धर्म समझकर निःशंक भावसे तुरंत पूरा करना चाहिये। भगवन्! आपकी आज्ञासे मैंने यह स्त्री-धर्मका वर्णन किया है। जो स्त्री ऊपर बताये धर्मके अनुसार अपना जीवन बनाती है, वह पातिव्रत्य-धर्मके फलकी भागिनी होती है।'

पार्वतीजी समस्त पतिव्रताओंकी शिरोमणि हैं। भगवती सीताको इन्हींकी आराधनासे श्रीरघुनाथजीकी प्राप्ति हुई थी। ये महादेवजीको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। इन्हींके अनुरोधसे महादेवजीने अनेकानेक उपयोगी तथा गुप्त साधनोंका वर्णन किया है, जो भिन्न-भिन्न पुराणों, तन्त्रों, आगमों तथा गुरुपरम्परासे उपलब्ध होते हैं। बहुत-से मन्त्रोंका प्राकट्य भी इन्हींकी दयासे हुआ है। भगवान्‌के बहुत-से शतनाम, सहस्रनाम तथा अन्य स्तोत्र, व्रत आदि माहात्म्यसहित इन्हींके प्रयत्नसे प्रकट हुए हैं। इस प्रकार इनके द्वारा लोककल्याणके असंख्य कार्य हुए हैं।

भगवान् सदाशिवने पराम्बा—भगवती पार्वतीको ही सर्वप्रथम अमर कथाका श्रवण कराया था। गौरीशंकरकी मङ्गलमयी विवाह-लीला-कथाका पठन-श्रवण-मनन और चिन्तन सबके लिये कल्याणकारी है।

भगवान् शंकरका शाश्वत नृत्य

भगवान् शंकरको पुराणोंमें 'रुद्र' कहा गया है; क्योंकि वे प्रत्याहारके, प्रलयके आकर्षण हैं। वे परम नर्तक, महान् नटराज भी हैं। भगवान् शंकरका नृत्य शाश्वत है; क्योंकि उनमें कल्याणकी मङ्गलमयी अनुभूति भी शाश्वत है। यह विश्व ही उनकी नृत्यशाला है। संसारमें अणु-परमाणुसे लेकर बड़ी-से-बड़ी शक्तिमें जो स्पन्दन दिखलायी पड़ता है, वह उनके नृत्य एवं नादका ही परिणाम है। स्वयं भगवान् शंकरने स्वीकार किया है—

नित्यमात्तकरणक्रमोन्मिषच्चित्रभावशतसन्निवेशिनीः।
निष्क्रियो निजमरीचिनर्तकीर्नर्तयामि परनृत्तदेशिकः॥

अर्थात्, मैं सबसे उत्तम नाट्यका आचार्य निष्क्रिय होकर अपनी करणेश्वरीरूपी नटियोंको नचाता हूँ, ये इन्द्रियदेवियाँ सदैव अपने वृत्तिक्रमके प्रत्याहरणसे उदय होनेवाले अद्भुत और भिन्न-भिन्न प्रकारके भावोंके सन्निवेशवाली हैं।

नृत्यसे भगवान् शंकर ब्रह्माण्डमें गति लाते हैं और जीव-निर्जीवकी सृष्टि करते हैं। उनके नृत्यकी गति है उपरति, निवृत्ति, समाधि, प्रलयकी ओर—अर्थात् अन्तरतमकी, ऊर्ध्वतमकी ओर। उनका नृत्य भयंकर है, लेकिन शिवत्वसे शून्य नहीं। वे ब्रह्माण्डका कभी भी विनाश नहीं चाहते। वे तो स्रष्टा हैं, पालक हैं, कल्याण करनेवाले हैं। उन्हें संहार कदापि प्रिय नहीं; लेकिन जब पाप अपनी चरम स्थितिको प्राप्त कर लेता है तो उनका नर्तन विवश होकर प्रलयंकारी रूप ग्रहण कर लेता है, परंतु शिवकी यह क्रिया भी निःसंदेह जगत्‌की रक्षाके लिये ही होती है—

जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता।

पुष्पदन्तने लिखा है—'नर्तनके समय शंकरके पदाघातसे

पृथ्वी डोलने लगती है। परिधिकी तरह परिपुष्ट भुजाओंके घूमनेसे आकाश संत्रस्त हो उठता है। लेकिन उस समय भी शंकरके मनमें संहारकी नहीं, निर्माणकी भावना ही होती है।'

शंकरका नृत्य यथार्थमें ईशकी पञ्चक्रियाओं (सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह)-का द्योतक है। अलग-अलग ये क्रियाएँ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर और सदाशिवकी क्रियाएँ हैं। इन समस्त क्रियाओंकी निष्पत्ति शिवसे है—यही नटराजकी प्रतिमाका संकेत है।

भगवान् शिवका 'नटराज-नृत्य' उनके महिमामय स्वरूप और अमित ऐश्वर्यकी अभिव्यक्ति करता हुआ **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** का अमर संदेश देता-सा प्रतीत होता है। नटराजके रूपमें शिवकी कल्पना भारतीय संस्कृति और धर्मकी एक ऐसी समन्वयात्मक विशेषता है, जिसका दूसरा उदाहरण अन्यत्र उपलब्ध नहीं। चतुर्भुज नटराजके एक हाथमें रजोगुणका प्रतीक डमरू है, जो द्यावा, पृथ्वी, अनन्तलोक और जीव-जगत्‌की सृष्टि करता है और उनके दूसरे हाथमें है तमोगुणकी प्रतीक अग्नि, जिससे वे उन बन्धनोंका संहार करते हैं जो मानवात्माको बाँधे रहते हैं। भूमिपर आरोपित एक चरणसे वे माया, मोह और अविद्याको दबाये रहते हैं और उठे हुए दूसरे पैरसे संकटोंसे त्रस्त प्राणियोंको मुक्ति देते हैं। कटिवस्त्र दिक्‌का प्रतीक है और भुजाओंपर लिपटा हुआ सर्प कालका प्रतीक है।

'अशुभदभेदागम'में नटराजके चारों हाथोंका वर्णन यों किया गया है—नटराजकी मूर्ति उत्तम दशतालमें बनती है। नटराज-मूर्तिका सामनेका बायाँ हाथ दण्डहस्त या गजहस्त मुद्रामें होकर उत्थित वामपादकी ओर संकेत करता है। दूसरे वामहस्तमें पञ्चस्फुलिङ्गयुक्त अग्नि रहती है। सामनेका हाथ वरद मुद्रामें होता है, पीछेके दाहिने हाथमें डमरू होता है। डमरूका विशद और अद्भुत वर्णन पुराणों एवं अन्य ग्रन्थोंमें प्राप्त होता है। संस्कृतके प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनिके कथनानुसार, भगवान् शंकरके नृत्य करते समय उनके डमरूके घोषसे जो 'अ इ उ ण्…………' इत्यादि चौदह सूत्र निकले, उन्हें सनकादि ऋषियोंने संगृहीत किया और उसीसे संस्कृत भाषाकी उत्पत्ति हुई—

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

शिवकी जटा-लटाएँ पाँचसे तेरहतक दिखलायी ग हैं। जटाओंमें नर-कपाल और चन्द्रमा भी दिखाये गये जो अमृत-तत्त्वके प्रतीक हैं। इसके अतिरिक्त धर्म प्रतीक गङ्गाका स्रोत-स्थान भी उनकी जटाएँ ही हैं। उन लंबी जटाएँ वैसे सदा बँधी रहती हैं, लेकिन युगान्त (जब पापिनी और आसुरी शक्तियोंसे विश्व त्रस्त हो उ है) एकाध बार सृष्टिके त्राणके लिये खुलती हैं।

यद्यपि ब्रह्माण्ड नटराजकी नाट्यशाला है, लेकि उनकी व्याप्ति अनन्त है। आकाश उनका शरीर है। आ दिशाएँ उनकी भुजाएँ हैं। तीनों ज्योति (सूर्य, चन्द्र अ उनके तीन नेत्र हैं। शिवका प्रथम नेत्र धरातल, द्वि आकाश, तृतीय बुद्धिके अधिदेव सूर्य एवं ज्ञानाग्निका सू है। इसी तृतीय नेत्रके खुलनेसे काम भस्म हो गया शिवकी निर्निमेष तापस ऊर्ध्व दृष्टि कुटिलको सरल ब है, अस्पष्टको स्फुट करती है और द्विधाको तिरोहित स्थैर्य और निश्चितता प्रदान करती है।

नटराज सर्वाङ्गमें विभूतिसे अनुलिप्त-आच्छन्न रहते भस्म मौलिक तत्त्व है, इसे नष्ट नहीं किया जा सक शिवपुराणमें तो यहाँतक कहा गया है कि भस्मसे शंकरजी सृष्टिकी रचना करते हैं। नटराजकी कुछ प्रति त्रिशूलधारी हैं। त्रिशूल आध्यात्मिक, आधिभौतिक आधिदैविक दुःखोंका सूचक है। त्रिशूल ही उनका प्रिय अस्त्र है।

नटराज-स्वरूपकी कथा

भगवान् शिव तो आशुतोष हैं, वे किसीका अकल् नहीं चाहते, फिर उन्होंने नटराज-स्वरूप क्यों ग्रहण कि इस सम्बन्धमें दक्षिणमें बहुत-सी कथाएँ प्रचलित सर्वमान्य और सर्वाधिक प्रसिद्ध कथा यह है कि ता नामक एक निर्जन स्थानमें कुछ मीमांसक अभि ऋषिगण निवास करते थे और वहाँके लोगोंको स्वार्थोंकी सिद्धि-हेतु तंग किया करते थे। उनका मिथ्याभि चूर करनेके लिये वहाँकी जनताने शिवाराधना की। फ ऋषियोंके समक्ष भगवान् शिव गये, परंतु अभि ऋषियोंने उन्हें वहाँ देखकर उनका सम्मान न किया उलटे उनके प्रति क्रोध प्रकट किया। अभिमानी ऋषि वाराहको भगवान्‌पर आक्रमण करनेका आदेश दिया। भय गुर्राहटके साथ वह शिवजीपर टूटा; परंतु अमित बल

भगवान्‌ने उसे पकड़कर एक छिंगुलीमात्रसे उसकी खाल उधेड़ डाली और उसे पहन लिया। ये देखकर ऋषिगण आगबबूला हो उठे और भयंकर विषधर नागको शिवजीकी ओर फेंका, परंतु ज्यों ही वह शिवजीके पास पहुँचा, उन्होंने उसे गलेमें मालावत् लपेट लिया। क्रोध और अभिमानमें पागल ऋषियोंने अपने मन्त्रबलसे वहाँ एक राक्षस पैदा किया। वह राक्षस भीषण गर्जना करता हुआ भगवान् शंकरकी ओर दौड़ा, किंतु महिमामय भगवान्‌ने उसे पकड़कर पैरोंसे रौंद डाला और उसके शवपर खड़े होकर नृत्य करने लगे। यही भगवान् शिवके नटराज-स्वरूपके प्राकट्यकी कथा है।

शंकर और शक्ति

शंकर कभी अकेले नृत्य नहीं करते, नृत्यके समय उनकी अर्धाङ्गभूता शक्ति (गौरी) उनके साथ रहती हैं। 'प्रदोषस्तोत्र' में लिखा है—

कैलासभवने त्रिजगज्जनित्रीं
गौरीं निवेश्य कनकशैलाचितरत्नपीठे।
नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ
देवाः प्रदोषसमये नु भजन्ति सर्वे॥

लेकिन शंकरका यह अनादि और अनन्त नृत्य केवल उन्हींको दिखलायी पड़ता है, जो मायासे ही नहीं, महामायासे भी ऊपर उठ चुके हैं। (श्रीअशोक महाजन)

लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रजीकी शिवोपासना

लीला-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी आठ पटरानियाँ थीं। उनमेंसे जाम्बवतीको एक भी पुत्र नहीं था। उन्होंने एक बार श्रीकृष्णजीसे प्रार्थना की कि 'हे देव! मुझे एक भी पुत्र नहीं है, इसलिये मैं बड़ी चिन्तित रहती हूँ। आपने भगवान् शंकरकी आराधना करके रुक्मिणीके आठ पुत्र उत्पन्न किये। इसी प्रकार आप मेरे लिये भी शंकरजीकी आराधना कीजिये। हे प्रभो! आपके लिये कोई भी कार्य असाध्य नहीं है। आप अपने समान पुत्र देकर मुझे कृतार्थ एवं चिन्तारहित कीजिये।'

जाम्बवतीकी प्रार्थना सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण गरुडपर आरूढ हो हिमालय पर्वतकी ओर चल पड़े। वहाँ वे एक आश्रममें उतर गये। उस आश्रमकी शोभा विचित्र थी। धव, कदम्ब, नारिकेल, केतक, जम्बु, वट, बिल्व, सरल, कपित्थ, प्रियाल, साल तथा तमाल आदि अनेक प्रकारके वृक्षोंसे वह आश्रम एकदम हरा-भरा हो रहा था। भिन्न-भिन्न प्रकारके विहंग सुस्वाद और सुपक्व फलोंके लोभसे उनपर मँडरा रहे थे। मृग, वानर, शार्दूल, सिंह, व्याघ्र, महिष, ऋक्ष आदि अनेक श्वापदोंसे उसमें एक विचित्र रमणीयता दृष्टिगोचर हो रही थी।

देवियोंके गीतसे, धाराके निनादोंसे, विहंगमोंके कलरवसे, मत्त-मतंगजोंके गर्जनसे, किंनरोंके मनोहर गानसे और सामवेदकी रमणीय ध्वनिसे वह आश्रम कर्णप्रिय शब्दोंसे गुंजायमान हो रहा था।

वहाँपर असंख्य मुनि तपस्या कर रहे थे। कोई केवल वायु पीकर जीवन-निर्वाह करते थे, तो कोई केवल जल पीकर अपने शरीरकी रक्षा कर रहे थे और कोई दो-चार घूँट दूध पीकर अपने पाञ्चभौतिक शरीरका पोषण कर रहे थे। वे सब केवल चीर अथवा वल्कल धारण किये हुए कठिन व्रतका पालन कर रहे थे और अपने जीवन-लाभका पूर्ण फल पा रहे थे।

भगवान् श्रीकृष्ण भी उसी परम पुनीत वनके एक रुचिर प्रदेशमें महर्षि उपमन्युकी दीक्षा लेकर तपस्या करने लगे। उन्होंने दण्ड और मेखला धारण कर लिया। हाथमें कुशा ले लिया। मुण्डन करा लिया। एक शिवलिङ्ग स्थापित करके उनकी प्रतिदिन षोडशोपचारसे पूजा करते हुए घोर तप करने लगे। प्रारम्भमें उन्होंने एक महीनेतक केवल फल खाया। दूसरे महीनेमें केवल जल पीकर निर्वाह किया। तीसरे तथा चौथे और पाँचवें महीनेमें केवल वायु पीकर समय बिताया। ऊपरकी ओर बाँह उठाये हुए एक पैरपर खड़े हो वे पाँच महीनोंतक 'पञ्चाक्षर-मन्त्र' का एकाग्रचित्तसे जप करते रहे। एक दिन शिवार्चन करके वे आकाशकी ओर देखते हुए भगवान् शंकरका ध्यान कर रहे थे। उसी समय आकाशमें सहस्र सूर्यके समान एक देदीप्यमान तेज दृष्टिगोचर हुआ। उस तेजके मध्यमें जगन्माता पार्वतीसमेत भगवान् शंकर विराजमान थे। महादेवजी किरीटसे सुशोभित हो रहे थे, त्रिशूल हाथमें लिये हुए थे, व्याघ्रचर्म अपने

शरीरमें लपेटे हुए थे, नागका यज्ञोपवीत पहने हुए थे और अनेक वर्णके दिव्य पुष्पोंकी माला घुटनोंतक लटकती हुई अपूर्व शोभा दे रही थी। प्रमथ आदि गण उनके आस-पास विद्यमान थे। सभी देवता, सभी मुनि तथा सभी विद्याधर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति कर रहे थे।

उनके तेजसे भगवान् श्रीकृष्णकी आँखें बंद हो गयीं और वे हाथ जोड़े खड़े रह गये। उसी समय श्रीशिवजीने समीप आकर कहा कि 'हे श्रीकृष्ण! आप मेरे बड़े प्यारे हैं, आपने मेरी सैकड़ों बार आराधना की है। मैं आपसे बहुत प्रसन्न हूँ।' तब भगवान् श्रीकृष्णने उनको आदरसहित नमस्कार कर इस स्तोत्रसे स्तुति करना प्रारम्भ किया—

नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने
ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति।
तपश्च सत्त्वं च रजस्तमश्च
त्वामेव सत्यं च वदन्ति सन्तः॥
त्वं वै ब्रह्मा च रुद्रश्च वरुणोऽग्निर्मनुर्भवः।
धाता त्वष्टा विधाता च त्वं प्रभुः सर्वतोमुखः॥
त्वत्तो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
त्वया सृष्टमिदं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥
यानीन्द्रियाणीह मनश्च कृत्स्नं
ये वायवः सप्त तथैव चाग्नयः।
ये देवसंस्थास्तवदेवताश्च
तस्मात् परं त्वामृषयो वदन्ति॥
वेदाश्च यज्ञाः सोमश्च दक्षिणा पावको हविः।
यज्ञोपगं च यत् किंचिद् भगवांस्तदसंशयम्॥
इष्टं दत्तमधीतं च व्रतानि नियमाश्च ये।
ह्रीः कीर्तिः श्रीर्द्युतिस्तुष्टिः सिद्धिश्चैव तदर्पणी॥
कामः क्रोधो भयं लोभो मदः स्तम्भोऽथ मत्सरः।
आधयो व्याधयश्चैव भगवंस्तनवस्तव॥
कृतिर्विकारः प्रणयः प्रधानं बीजमव्ययम्।
मनसः परमा योनिः प्रभावश्चापि शाश्वतः॥
अव्यक्तः पावनोऽचिन्त्यः सहस्रांशुर्हिरण्मयः।
आदिर्गणानां सर्वेषां भवान् वै जीविताश्रयः॥
महानात्मा मतिर्ब्रह्मा विश्वः शम्भुः स्वयम्भुवः।
बुद्धिः प्रज्ञोपलब्धिश्च संवित् ख्यातिर्धृतिः स्मृतिः॥
पर्यायवाचकैः शब्दैर्महानात्मा विभाव्यते।
त्वां बुद्ध्वा ब्राह्मणो वेदात् प्रमोहं विनियच्छति॥
हृदयं सर्वभूतानां क्षेत्रज्ञस्त्वमृषिस्तुतः।
सर्वतःपाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः॥
सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि।
फलं त्वमसि तिग्मांशोर्निमेषादिषु कर्मसु॥
त्वं वै प्रभार्चिः पुरुषः सर्वस्य हृदि संश्रितः।
अणिमा महिमा प्राप्तिरीशानो ज्योतिरव्ययः॥
त्वयि बुद्धिर्मतिर्लोकाः प्रपन्नाः संश्रिताश्च ये।
ध्यानिनो नित्ययोगाश्च सत्यसत्त्वा जितेन्द्रियाः॥
यस्त्वां ध्रुवं वेदयते गुहाशयं
प्रभुं पुराणं पुरुषं च विग्रहम्।
हिरण्मयं बुद्धिमतां परां गतिं
स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति॥
विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गं त्वां च मूर्तितः।
प्रधानविधियोगस्थस्त्वामेव विशते बुधः॥

(महाभारत, अनुशा० पर्व १४। ४०७-४

इस प्रकार स्तुति करनेसे भगवान् शंकर अत्यन्त प्र हुए। उसी समय भगवान् श्रीकृष्णके ऊपर सुग पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और सुखद वायु बहने ल श्रीशिवजीने भगवान् कृष्णसे कहा कि 'मैं आपकी भ परम संतुष्ट हूँ। मैं आठ वर देनेके लिये तैयार हूँ, आ जो माँगना हो माँग लीजिये।'

भगवान् श्रीकृष्णने नतमस्तक हो प्रणाम करके कि 'हे महाराज! आपके दर्शनोंसे ही मैं कृतकृत्य हो हूँ। फिर भी आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये मैं प्रार्थना करता हूँ कि मेरी धर्ममें दृढ़ बुद्धि हो, रणमें शत्रुओंका विनाश हो, यशकी वृद्धि हो, अलौकिक प्राप्त हो, योगसाधनकी ओर प्रवृत्ति बनी रहे, आपमें भक्ति हो, आपका सांनिध्य प्राप्त हो और एक सहस्र उत्पन्न हों।'

श्रीशिवजीने बड़ी प्रसन्नताके साथ ये सब व दिये। तब पार्वतीजीने कृपा करके कहा कि 'हे दे

मुझसे भी आठ वर माँग लीजिये। मैं प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रदान करूँगी।'

श्रीकृष्णने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे मातः! आप मुझे ये वर दीजिये—'मुझे कभी ब्राह्मणके ऊपर कोप करनेका अवसर प्राप्त न हो, पूज्य पितरोंकी प्रसन्नता हो, सौ लड़के हों, सांसारिक सभी भोग सदा प्राप्त रहें, मेरे कुलमें कभी आपसमें वैमनस्य न हो, माताएँ प्रसन्न रहें, हृदयमें सदा शान्ति रहे और सब भार्याओंके ऊपर मेरा समान स्नेह रहा करे।'

जगदम्बाने ये सब वर बड़ी प्रसन्नताके साथ दे दिये और कहा कि 'आपकी १६,१०८ भार्याएँ आपसे सदा प्रेम रखेंगी, आपके कुलके लोगोंमें सदा अटूट स्नेह बना रहेगा। आपके शरीरके सौन्दर्यकी वृद्धि अक्षुण्ण बनी रहेगी।'

इस प्रकार वर देकर भगवती पार्वती और भगवान् श्रीशिव अपने गणोंके साथ अन्तर्धान हो गये तथा भगवान् श्रीकृष्ण तपस्या समाप्त करके अपनी नगरीको चले गये और वहाँ सुखपूर्वक अनेक प्रकारके भोग भोगने लगे। समय आनेपर जाम्बवतीके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए और सब प्रकार आनन्द हो गया।

भगवान् शंकरकी दयासे सब कुछ प्राप्त हो सकता है। महाभारतमें व्यासदेवने कहा है कि शिवजीके समान संसारमें कोई देवता नहीं। वे ही समस्त सांसारिक जीवोंको सद्गति देते हैं। कल्याण और सुख देनेमें शिवजीसे बढ़कर कोई दयालु नहीं। युद्ध करनेमें भी उनसे बढ़कर कोई पराक्रमी नहीं—

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे॥

(महाभारत, अनुशा० पर्व० १५। ११)

ब्रह्माजीकी शिवोपासना

प्रजापति ब्रह्मदेवने सृष्टि रचनेका परम प्रयत्न किया, परंतु उसकी वृद्धि होती हुई न दिखायी दी। तब वे बड़े ही चिन्तित हुए और अन्तमें उन्होंने विचार किया कि 'देवदेव महादेवकी शरणमें जानेसे मेरी मनःकामना सिद्ध हो सकती है; क्योंकि वे त्रैलोक्यकी रचनामें समर्थ उस शक्तिसे सम्पन्न हैं, जो सम्पूर्ण सचराचर जगत्का नियन्त्रण करती है। सृष्टि रचनामें मेरी सहायता करनेकी असीम शक्ति उनमें है।' ऐसा निश्चय करके ब्रह्मदेवने भगवान् त्रिलोचनके सम्मुख चिरकालतक तप किया। उनके कठिन तपको देखकर सदाशिव बहुत प्रसन्न हुए और अर्ध-नर-नारीश्वरका रूप धारण कर प्रकट हुए।

अर्धाङ्गिनी पार्वतीसमेत अद्वितीय अमोघ-शक्ति, अतुलनीय-पराक्रमसम्पन्न उन परम तेज देवदेवके दर्शन पाकर ब्रह्मदेव परम प्रसन्न हुए और साष्टाङ्ग प्रणाम करके हाथ जोड़ विनयपूर्वक शिव-पार्वतीकी स्तुति करने लगे। श्रद्धा-विनयसम्पन्न सारगर्भित भावपूर्ण शब्दोंमें वे कहने लगे कि 'हे देवदेव परम पूज्य शिव! आपकी जय हो। सर्वशक्तिमान् सर्वदेवाधिपति! आपकी जय हो। हे परम शक्तिमती जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेमें समर्थ पार्वती! आपकी जय हो। आपकी माया अपरम्पार है। हे पार्वतीश! आपकी यथार्थ स्तुति करनेमें सहस्रमुख शेषनाग भी असमर्थ हैं, दूसरोंकी बात ही क्या?' आपकी महिमा अपार है, उसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी नहीं जान सकते। आप वाणी और मनके अगोचर हैं तथा श्रुतियाँ और स्मृतियाँ चकित होकर आपकी स्तुति करती हैं, फिर भी पार नहीं पातीं। आपका ऐश्वर्य जगत्की उत्पत्ति, रक्षा और प्रलय करनेमें समर्थ है। चारों वेदोंके, छहों शास्त्रोंके और अठारहों पुराणोंके प्रतिपाद्य पर-तत्त्व आप ही हैं। अभीष्ट सिद्धिके लिये सभी देवोंने और सभी मुनियोंने आपकी आराधना की और यथेप्सित वर पाकर जगत्पूज्य बन गये। यह समस्त संसार आपकी सत्तासे व्याप्त है और आपहीके प्रकाशसे प्रकाशमान है। हे परमप्रकाशस्वरूप! आप अज्ञानान्धकारमें भटकते हुए जीवोंको सूर्यके समान प्रकाश देकर सन्मार्ग दिखा देते हैं। हे महाशिव! जब-जब भक्तोंके ऊपर कष्ट आता है, तब-तब आप उनका

उद्धार करते हैं और उनका कष्ट दूर करते हैं। हे महादेवि! आपकी शक्तिसे इस संसारकी उत्पत्ति है और उसीसे इसकी रक्षा होती है तथा संहार भी उसी शक्तिसे होता है। हे महाशक्ति! प्रजाके लिये कठिन प्रयत्न करनेपर भी मुझे सफलता नहीं मिल रही है। अतः असहाय होकर मुझे आपकी शरण आना पड़ा। हे जगन्मातः! आपकी दयाके बिना सृष्टिक्रम सुचारुरूपसे नहीं चल सकता।

इस प्रकार कोमल-कान्त-पदावलीसे स्तुति करते हुए वे बारम्बार प्रणाम करने लगे। इस परम मनोहर स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर और भगवती परमेश्वरीने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा कि इस तपस्या और आराधनासे हम बहुत प्रसन्न हैं। हमें अच्छी तरह ज्ञात है कि 'प्रजा-वृद्धिके लिये यह कठिन तपस्या की गयी है', इसलिये हम वर देते हैं कि 'तुम्हारी अभीष्ट-सिद्धि हो।' इतना कहते ही महादेवी पार्वतीके भ्रूमध्यसे उन्हीं समान कान्तिवाली एक शक्ति उत्पन्न हुई। उसको देखक शिवजी बहुत प्रसन्न हुए और उस शक्तिसे कहने ल कि 'तुम ब्रह्माजीकी अभीष्ट-सिद्धिमें सहायता करो।' वचन कहकर श्रीमहादेवजी अन्तर्धान हो गये और श शिवजीके आदेशानुसार प्रजापति ब्रह्माके कथनसे दक्ष पुत्री हुई। तदनन्तर सृष्टिका क्रम सुचारुरूपसे चलने ल और ब्रह्माजीको परम आनन्द तथा संतोष हुआ।

शिवकृपासे दानवीर राजा बलिका प्रादुर्भाव

प्राचीन कालमें देवताओं और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला एक बड़ा पातकी कितव था। वह प्रतिदिन जुआ खेलता और उससे जो कुछ धन मिलता, उसे वेश्याओंको प्रसन्न करनेमें व्यय करता। संसारमें जितने बुरे व्यसन हैं, वे सब उसमें विद्यमान थे।

एक दिन उसने अपने साथियोंको धोखा देकर जुएमें बहुत-सा धन जीत लिया। उस धनसे उसने सुन्दर गजरे, बहुमूल्य इत्र तथा सुगन्धित चन्दन खरीदे और इन सबको हाथोंमें लिये दौड़ता हुआ वेश्याके घरकी ओर चला। रास्तेमें उसे जोरकी ठोकर लगी और वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। गिरते ही उसे मूर्च्छा आ गयी और कुछ देरतक वह उसी दशामें पड़ा रहा। उसके चन्दन, इत्र और गजरे भूमिपर गिरकर मिट्टीमें मिल गये। अब वे पदार्थ वेश्याके कामके नहीं रह गये, इसलिये उसने इन सब सुगन्धित द्रव्योंको शिवजीको चढ़ा दिया।

समय आनेपर जब उसकी मृत्यु हुई तो यमदूत उसे यमलोक ले गये। वहाँ यमराज कहने लगे कि 'रे दुष्ट! तूने बड़े-बड़े पातक किये हैं, इसलिये तुझे नरककी कठिन यातनाएँ भोगनी पड़ेंगी।' उसने हाथ जोड़कर कहा—'हे भगवन्! मैंने तो कोई भी पाप नहीं किया, आप चित्रगुप्तजीसे अच्छी तरह जाँच कराइये।'

चित्रगुप्तने खाता खोलकर देखा और कहा कि 'तु पाप तो असंख्य किये हैं और उन सबका फल भी तु भोगना पड़ेगा, पर तुमने शिवजीको चन्दन अ चढ़ाये हैं, इसलिये तुम्हें आरम्भमें तीन घंटेके लि इन्द्रपद मिलेगा।'

उसी समय ऐरावत हाथी आया और उसे इन्द्रलोक गया। बृहस्पतिने इन्द्रसे कहा कि 'हे महाराज! कितवने बिना श्रद्धाके शिवजीको गन्ध-पुष्प अ चढ़ाये थे, उसके पुण्यसे उसे तीन घंटेके लिये इन्द्र मिला है। इसलिये आपको उतने समयके लिये अ पद छोड़ देना चाहिये। देखिये, शिवजीकी नि भक्तिकी आराधनासे भी एक महापातकी कितवको कि भारी फल मिला। जो लोग श्रद्धा और भक्तिके शिवजीकी आराधना करते हैं, उन्हें सायुज्य-मुक्ति मिलती ही है, बड़े-बड़े देवता भी उनके किङ्कर हो हैं। शान्त-चित्तसे शिव-पूजा करनेवाले मनुष्योंको जो प्राप्त होता है, वह ब्रह्मा, विष्णु आदि देवोंको भी मिलता। विषयलोलुप जीव इनकी आराधनाका मा नहीं जानते।

बृहस्पतिके वचन सुनकर इन्द्र तो कहीं दूसरी जगह चले गये और कितवको इन्द्रासन मिला। उसी समय इन्द्राणी लायी गयीं, पर शिवजीकी पूजाके प्रभावसे कितवके हृदयमें सद्बुद्धि उत्पन्न हुई और उसने उन्हें प्रणाम कर कहा कि 'आप मेरी माता हैं, आप अपने मन्दिरको जाइये।' तदनन्तर उसने अगस्त्यमुनिको ऐरावत हाथी, विश्वामित्रको उच्चैःश्रवा घोड़ा, वसिष्ठको कामधेनु, गालवको चिन्तामणि और कौंडिन्यको कल्पवृक्ष दे दिया। शिव-प्रीत्यर्थ उसने ऋषियोंको और भी अनेक दान दिये। इन सब दान-पुण्यके काममें तीन घंटे समाप्त हो गये और उसे फिर यमलोकको पहुँचाया गया।

इन्द्रने अपने यहाँके सब रत्नोंको समाप्त जानकर यमराजसे जाकर शिकायत की। यमराजने कितवसे कहा कि 'दान करनेका अधिकार भूलोकमें ही होता है। स्वर्गमें किसीको दान नहीं करना चाहिये। इसलिये हे मूढ! तू दण्डनीय है, तुझे नरककी दारुण यातना भोगनी पड़ेगी।'

यमराजकी बातें सुनकर चित्रगुप्तने कहा कि 'हे महाराज! इसने शिवजीके नामपर अगस्त्य आदि उत्तम ऋषियोंको इतने महार्घ्य दान दिये हैं, फिर इसे नरककी यातना क्यों भोगनी होगी? शिवके नामपर स्वर्गलोक अथवा मर्त्यलोक कहीं भी कुछ दिया जाय उसका अक्षय फल मिलता है—

शिवमुद्दिश्य यद्दत्तं स्वर्गे मर्त्ये च यैर्नरैः।
तत्सर्वं त्वक्षयं विद्यान्निश्छिद्रं कर्म चोच्यते॥

(स्कन्दपुराण, माहेश्वर खं० १८। १०९)

इस कितवके जितने पाप थे, वे सब शम्भुके प्रसादसे भस्म होकर सुकृत हो गये। यमराजकी समझमें यह बात आ गयी और उन्होंने उस कितवसे क्षमा माँगी।

उसी पुण्यके प्रभावसे उस कितवका जन्म परम भागवत प्रह्लादके पुत्र महादानवीर विरोचनके घरमें पुण्यवती सुरुचिके उदरसे हुआ। विरोचन इतने बड़े दानी थे कि वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण किये हुए इन्द्रके माँगनेपर उन्होंने अपना सिरतक अपने हाथोंसे काटकर दे दिया। विरोचनका यह दान तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। आजतक कवि लोग उनके इस अपूर्व दानकी प्रशंसा करते हैं।

उन्हीं महापुरुष विरोचनके गृहमें इस कितवका जन्म हुआ और नाम रखा गया बलि। पूर्वजन्मोंके शिव-पूजनके प्रभावसे इस जन्ममें भी बलिमें दान देनेकी प्रबल प्रवृत्ति थी। दानमें वे अपना सर्वस्व देनेके लिये भी सदा तत्पर रहते थे।

देवोंका दुःख देखकर भगवान् विष्णुने जब वामनका रूप धारणकर बलिसे भिक्षा माँगी, तब उन्होंने त्रैलोक्यका राज्य और अपना आधा शरीर दानमें दे डाला। उस दानका आजतक विद्वान् लोग कीर्तन करते हैं। दानवीरोंकी जब गणना होने लगती है तो सर्वप्रथम राजा बलिका नाम लिया जाता है।

उस मिट्टीमें मिले हुए चन्दन आदिके चढ़ानेसे एक महापातकी जुआरी जगत्प्रसिद्ध राजा बलि हो गया। अतः जो लोग पूर्ण भक्ति और श्रद्धाके साथ गन्ध-पुष्प-फल आदिसे महेश्वरकी पूजा करते हैं, वे तो साक्षात् शिवके समीप पहुँच जाते हैं। शिवसे बढ़कर पूजनीय देव संसारमें दूसरे हैं नहीं। लूले, लँगड़े, अंधे, बहरे, जाति-हीन, चांडाल, श्वपच, अन्त्यज आदिमेंसे कोई भी हो, यदि शिवकी भक्ति करे तो अवश्य परमगतिको प्राप्त हो सकता है। परमार्थको जाननेवाले विद्वान् महेश्वरका सदा चिन्तन किया करते हैं। शिवकी आराधनाके बिना जितना काम किया जाता है, वह सब अशुभ होता है। इसलिये सदाशिवकी सदा पूजा करनी चाहिये। मुमुक्षुजनोंको लिङ्गरूपी महादेवकी आराधना करनी चाहिये, क्योंकि उनसे बढ़कर भुक्ति और मुक्ति देनेवाले अन्य कोई भी देवता नहीं हैं। स्कन्दपुराण (माहेश्वरखण्ड १९। ६८, ८२)-में लिखा है—

तस्मात् सदाशिवः पूज्यः सर्वैरेव मनीषिभिः।
पूजनीयो हि सम्पूज्यो ह्यर्चनीयः सदाशिवः॥
लिङ्गरूपो महादेवो ह्यर्चनीयो मुमुक्षुभिः।
शिवात् परतरो नास्ति भुक्तिमुक्तिप्रदायकः॥

* * *

पञ्चाक्षर-मन्त्रकी महिमा

'शिवोऽयं परमो देवः शक्तिरेषा तु जीवजा।' 'ॐ नमः शिवायेति याजुषमन्त्रोपासको रुद्रत्वम्प्राप्नोति। कल्याणम्प्राप्नोति। य एवं वेद।'

(त्रिपुरातापिन्युपनिषत्)

सर्वव्रतेषु सम्पूज्य देवदेवमुमापतिम्।
जपेत् पञ्चाक्षरीं विद्यां विधिनैव द्विजोत्तमाः॥

[सूतजी कहते हैं—] 'हे मुनीश्वरो! समस्त व्रतोंमें देवदेव उमापति भगवान् शिवकी अर्चना करके विधिसे पञ्चाक्षरी विद्याका जप करना चाहिये।

ऋषियोंने पूछा कि पञ्चाक्षरी विद्या कौन है? उसका क्या प्रभाव है और जपका क्या विधान है? यह श्रवण करनेकी हमारी इच्छा है, आप इसका वर्णन करें।

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! एक समय पार्वतीजीके प्रति शिवजीने इस विषयमें जैसा वर्णन किया था, वही हम आपको सुनाते हैं—

पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि।
न शक्यं कथितुं देवि तस्मात् संक्षेपतः शृणु॥

श्रीमहादेवजी पार्वतीजीसे कहने लगे—देवि! पञ्चाक्षर-मन्त्रके माहात्म्यका वर्णन करोड़ों वर्षोंमें भी होना कठिन है, परंतु संक्षेपमें हम सुनाते हैं, उसे सुनो। प्रलयकालमें स्थावर, जंगम, देव, असुर, नाग इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। प्रकृतिके रूपमें तुम भी लीन हो जाती हो। तब हम अकेले ही रहते हैं, कोई दूसरा अवशिष्ट नहीं रहता। उस समय वेद और शास्त्र हमारी शक्तिद्वारा पालन किये हुए पञ्चाक्षर-मन्त्रमें निवास करते हैं। फिर जब हम दो रूप धारण करते हैं, तब हमारी प्रकृति ही मायामय शरीर धारणकर नारायणरूपसे समुद्रमें शयन करती है। उसके नाभिकमलसे पञ्चमुख ब्रह्मा उत्पन्न होकर सृष्टि करनेकी सामर्थ्य-प्राप्तिके लिये प्रार्थना करते हैं। एक बार ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुन उनके हितके लिये मैंने पाँच मुखोंसे पाँच अक्षरोंका उच्चारण किया। उन वर्णोंको ब्रह्माजीने पाँच मुखोंसे ग्रहण किया और वाच्य—वाचक-भाव करके परमेश्वरको जाना। पाँच अक्षरोंद्वारा त्रैलोक्यपूजित शिव-वाच्य है। यह 'पञ्चाक्षर-मन्त्र' शिवका वाचक है। उस मन्त्रको तथा उसकी विधिको जानकर बहुत काल जप करके सिद्धि पाकर जगत्के हितके लिये अपने पुत्रोंको ब्रह्माजीने उस पञ्चाक्षर-मन्त्रका उपदेश किया। ब्रह्मा उस मन्त्रको पाकर भगवान् शिवजीको प्रसन्न करनेके लि मेरु पर्वतके मुञ्जवान् शिखरपर दिव्य हजार वर्षतक तप कि उनकी दृढ़ भक्ति देख भगवान्ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर लोकहि लिये 'पञ्चाक्षर-मन्त्र'के ऋषि, छन्द, देवता, शक्ति, बी षडङ्गन्यास, दिग्बन्ध और विनियोगका उपदेश किया।

वे ऋषिगण भी इस तरह मन्त्रका माहात्म्य सुन अनुष्ठान करने लगे। क्योंकि उसीके प्रभावसे देवता, मनु असुर, चार वर्णोंके धर्मादि, वेद, ऋषि तथा शाश्वत धर्म यह जगत् स्थित है।

पञ्चाक्षर-मन्त्र अल्पाक्षर है, परंतु अनन्त अर्थोंसे युक्त वेदका सार, मुक्ति देनेवाला, असंदिग्ध, अनेक सिद्धि देनेवा सुखसे उच्चारण करने योग्य, सब कामना देनेवाला, विद्याओंका बीज-मन्त्र, सब मन्त्रोंमें आदि-मन्त्र, वट-बी भाँति बहुत विस्तार-युक्त और परमेश्वरका वाक्य पञ्चाक्षर ही उसके आदिमें प्रणव लगा देनेसे यह 'षडक्षर' हो जाता है

'पञ्चाक्षर-मन्त्र' तथा 'षडक्षर-मन्त्र'में वाच्य-वाचक भावसे शिव स्थित है। शिव वाच्य है और मन्त्र वाचक यह वाच्य-वाचक-भाव अनादि-सिद्ध है। जिस पुरुषके हृद पञ्चाक्षर-मन्त्र विद्यमान है, मानो उसने सारे शास्त्र और पढ़ लिये, क्योंकि शिव ही ज्ञान है, इतना ही परम पद इतनी ही ब्रह्मविद्या है। इसलिये नित्य 'पञ्चाक्षर-मन्त्र जपना चाहिये। पञ्चाक्षर भगवान् शिवजीका हृदय, गुह्यसे गुह्य और मोक्ष—ज्ञान-प्राप्तिका सबसे उत्तम साधन है।

जपके प्रभावको जानकर सदाचारमें तत्पर हो नि जप करे तो अवश्य कल्याण हो। आचारहीन पुरुषका साधन निष्फल होता है। परम धर्म और परम तप आ ही है। आचारयुक्त पुरुषको कहीं भी भय नहीं र सदाचारके पालन करनेसे पुरुष ऋषि और देवता तक जाते हैं। मुख्यतः असत्यका त्याग करे, क्योंकि सत्य है और असत्य ब्रह्मका दूषण है।

असत्य तथा कठोर वाक्य, पैशुन्य (चुगली), प पराया धन तथा हिंसा—इनको मन-वचन-कर्मसे त्या

गणेश-लीला-चिन्तन

बाल-लीला

उमा-महेश्वरके अलौकिक पुत्रद्वय स्कन्द और गणेश अद्भुत बाल-लीला करते थे। उन्हें देखकर माता-पिता अत्यन्त सुखी होते और उनका अतिशय स्नेहसे पालन करते थे। गणेशकी परम मनोहारिणी बाल-लीलाओंका ग्रन्थोंमें बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। एक स्थानपर उल्लेख है—

क्रोडं तातस्य गच्छन् विशदबिसधिया शावकं शीतभानो-
राकर्षन् भालवैश्वानरनिशितशिखारोचिषा तप्यमानः।
गङ्गाम्भः पातुमिच्छन् भुजगपतिफणाफूत्कृतैर्दूयमानो
मात्रा सम्बोध्य नीतो दुरितमपनयेद् बालवेषो गणेशः॥

'बालक गणेशजी अपने पिता शंकरजीके मस्तकपर सुशोभित बालचन्द्रकलाको सुन्दर श्वेत कमलनाल समझकर उसे खींच लानेके लिये उनकी गोदमें चढ़कर ऊपर लपके; लेकिन तृतीय नेत्रसे निकली लपटोंकी आँच लगी, तब जटाजूटमें बहनेवाली गङ्गाका जल पीनेको बढ़े तो सर्प फुफकार उठा। इस फुफकारसे घबराये हुए गणेशको माता पार्वती बहला-फुसलाकर अपने साथ ले गयीं। ऐसे बाल-गणेश हमारे सब पाप-तापका निवारण करें।'

स्कन्द और गणेशमें भी बड़ी प्रीति थी। वे सदा मिल-जुलकर साथ-साथ बाल-क्रीडा किया करते थे और एक-दूसरेके बिना रह नहीं सकते थे। वे दोनों शिशु अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक माता-पिताकी सेवा भी करते थे। इस कारण उन बालकोंपर माता-पिताका स्नेह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था।

विवाहकी स्पर्धा

धीरे-धीरे दोनों बालक विवाह-योग्य हुए। माता-पिता उनकी वय देखकर विवाह-सम्बन्धी परामर्श भी करने लगे। स्कन्द और गणेश—दोनों शिव और शिवाको समानरूपसे प्राणप्रिय थे। वे सोच रहे थे, इन बालकोंका मङ्गल-परिणय किस प्रकार करें?

'पहले मेरा विवाह होगा।' माता-पिताके विचार समझकर एकदन्तने उन लोगोंसे निवेदन किया।

'नहीं, पहले मैं विवाह करूँगा।' स्कन्दने शिवा-शिवसे कहा।

बालकोंकी इन बातोंको सुनकर जगदाधार महादेव और संसारस्वामिनी गिरिजा चकित हुईं। फिर एक दिन शिव और शिवाने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाकर कहा—

'बालको! हमें तुम दोनों प्राणप्रिय हो। हमने तुम्हारे विवाहके लिये एक शर्त रखी है। तुम दोनोंमें जो कोई सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा करके पहले लौट आयेगा, उसीका विवाह पहले होगा।'

माता-पिताके वचन सुनकर मयूरवाहन कार्तिकेय सम्पूर्ण धरित्रीकी यथाशीघ्र परिक्रमा करनेके लिये तत्क्षण मन्दरगिरिसे द्रुतगतिसे चल पड़े।

'मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ?' परम बुद्धिमान् मूषकवाहन लम्बोदर वहीं खड़े-खड़े सोचने लगे—'मैं तो एक योजन भी नहीं चल सकता, फिर इस विशालतम पृथ्वीकी परिक्रमा करके पहले कैसे लौट पाऊँगा?'

फिर सचिन्त मनसे विचार करनेके अनन्तर विशालतुण्डने अपना कर्तव्य निश्चित किया। सर्पयज्ञोपवीतधारी गणेशजीने स्नानकर शुद्ध वस्त्र धारण किये।

'परमपूज्य पिताजी एवं माताजी! मैंने आप लोगोंके लिये

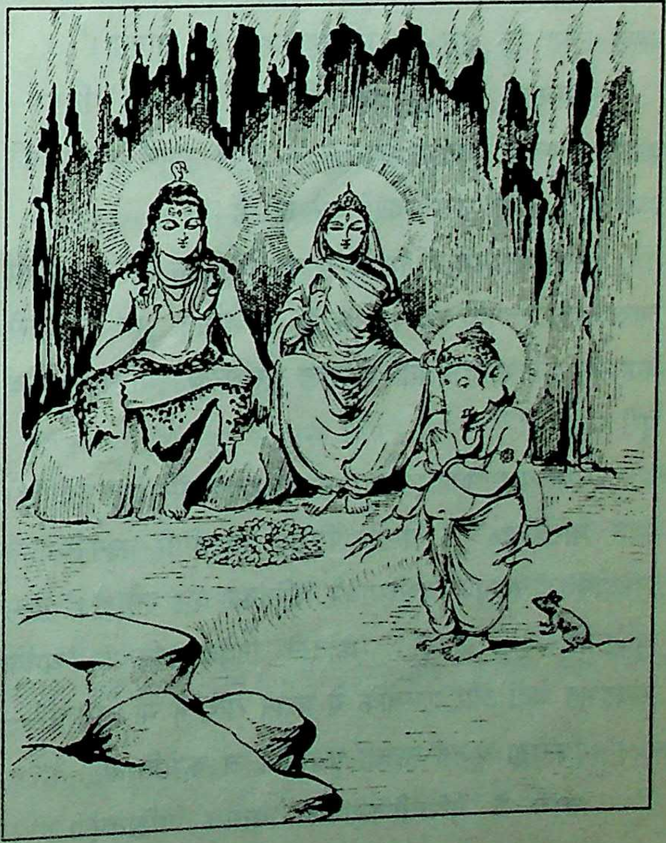

दो सुन्दर और पवित्र आसन बिछा दिये हैं।' सर्वविघ्नेशने चन्द्रार्धभूषण शिव एवं करुणामयी माता पार्वतीसे मधुर वाणीमें प्रार्थना की—'आप लोग कृपापूर्वक उसपर बैठकर मेरा मनोरथ पूर्ण करें।'

आशुतोष एवं सद्यःफलदायिनी जननी उक्त आसनपर विराजमान हुईं। मूषकवाहन गणेशने उन लोगोंकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा की और उनके मङ्गलालय चरण-कमलोंमें बार-बार दण्डवत्-प्रणाम किया। फिर वे अपने सर्वाधार एवं सर्वसमर्थ माता-पिताकी भक्ति-विभोर-भावसे परिक्रमा करने लगे। खण्डरद गणेश बार-बार शिव और शिवाके चरण-युगलमें प्रणाम करते और उनकी परिक्रमा करते जाते। इस प्रकार उन्होंने सर्वेश्वर महादेव एवं सर्वज्ञा माता पार्वतीकी सात प्रदक्षिणाएँ पूरी कीं और हाथ जोड़कर उनका स्तवन किया। फिर कहा—'अब आप लोग कृपापूर्वक मेरा मङ्गल-परिणय शीघ्र कर दीजिये।'

'गजानन!' महाबुद्धिमान् गणेशकी प्रार्थना सुनकर धर्माध्यक्ष वामदेवने उत्तर दिया—'तेरा भाई स्कन्द सरिताओं, समुद्रों, पर्वतों एवं काननोंसहित पृथ्वीकी परिक्रमा करने गया है। तू भी जा और पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके कार्तिकेयसे पहले लौट आ, तब तेरा विवाह पहले हो जायगा।'

'पवित्रतम धर्ममूर्ति माताजी और पिताजी!' नियम-परायण लम्बोदरने कुपित होकर कहा—'मैंने सम्पूर्ण भूमण्डलकी एक नहीं, सात प्रदक्षिणाएँ कर ली हैं।'

'अरे!' लीलाधारी शिवा-शिवने लौकिक रीतिसे आश्चर्य व्यक्त करते हुए अपने परम बुद्धिमान् पुत्र गणेशसे कहा—'तूने सप्तद्वीपवती विशाल वसुंधराकी परिक्रमा कब पूरी कर ली?'

'धर्माध्यक्ष पिता एवं परम पावनी माता! मैंने आप लोगोंकी सात परिक्रमा पूरी करके निश्चय ही गिरि-काननोंसहित सप्तद्वीपवती सम्पूर्ण वसुंधराकी परिक्रमा कर ली है।' परम बुद्धिमान् एवं ज्ञानमूर्ति महोदरने निवेदन किया—'धर्मके संग्रहभूत वेदों और शास्त्रोंके ये वचन सत्य हैं या असत्य?—

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम्॥
अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत्।
तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा॥
पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम्।
अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः॥
इदं संनिहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम्।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम्॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १९। ३९-४

'जो पुत्र माता-पिताकी पूजा करके उनकी प्रदक्षि करता है, उसे पृथ्वी-परिक्रमाजनित फल सुलभ हो जा है। जो माता-पिताको घरपर छोड़कर तीर्थयात्राके लि जाता है, वह माता-पिताकी हत्यासे मिलनेवाले पाप भागी होता है; क्योंकि पुत्रके लिये माता-पिताके चर सरोज ही महान् तीर्थ हैं। अन्य तीर्थ तो दूर जानेपर होते हैं, परंतु धर्मका साधनभूत यह तीर्थ तो पासमें सुलभ है। पुत्रके लिये (माता-पिता) और स्त्रीके लि (पति) सुन्दर तीर्थ घरमें ही वर्तमान हैं।'

बुद्धिराशि विघ्ननायकने आगे कहा—'वेद-शास्त्रों द्वारा निरन्तर उद्घोषित वचन असत्य सिद्ध होनेपर लोगोंका वेदवर्णित स्वरूप भी मिथ्या समझा जा अतएव आप या तो वेद-वचन असत्य कीजिये, अ शीघ्र ही मेरा विवाह कर दीजिये। आप लोग धर्म-वि हैं; अतः सर्वोत्तम निर्णय कीजिये।'

यथार्थभाषी एवं प्रतिभाशाली विलक्षण-बुद्धि पार्वतीनन्द वचन सुनकर शिवा-शिव अत्यन्त चकित हुए। फिर उ भालचन्द्र गणेशकी प्रशंसा करते हुए कहा—

'बेटा! तू महान् आत्मबलसे सम्पन्न है, इसीसे निर्मल बुद्धि उत्पन्न हुई है। तुमने जो बात कही है, बिलकुल सत्य है, अन्यथा नहीं। वेद-शास्त्र और पुरा बालकके लिये धर्मपालनकी जैसी बात कही गयी है, सब तूने पूरी कर ली। तूने जो बात की है, वह दूसरा कर सकता है? हमने तेरी बात मान ली; अब विपरीत नहीं करेंगे।'

इस प्रकारके वचन कहकर शिवा-शिवने बुद्धि गजवक्त्रको सान्त्वना दी और फिर वे गणेश-विवाहके

विचार करने लगे।

गजवक्त्रका परिणय

जब यह संवाद प्रजापति विश्वरूपको विदित हुआ तो उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उनकी दिव्य-रूप-यौवन-सम्पन्ना, परम लावण्यवती, सुशीला एवं सद्‌गुणवती 'सिद्धि' और 'बुद्धि' नामक दो कन्याएँ थीं। वे सर्वलोकपति शिवके भवन पहुँचे और उन्होंने शिवा और शिवसे अपनी पुत्रियोंका सर्वपूज्य गणेशके साथ विवाह करनेका अनुरोध किया। भगवान् शंकर और जगद्धात्री माता पार्वतीने उनका प्रस्ताव हर्षपूर्वक स्वीकार कर लिया।

फिर शुभ मुहूर्तमें विश्वकर्माने कर्पूरगौर शिव और परम सती पार्वतीकी इच्छाके अनुसार सविधि विवाह सम्पन्न कराया। उस समय समस्त देव-समुदाय एकत्र हुआ। देवताओंकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। सर्वत्र हर्ष व्याप्त था। देववाद्य बज रहे थे। नृत्य हो रहा था। मङ्गल-गीत गाये जा रहे थे। भगवान् शंकर और माता पार्वती—दोनों अपने परम प्रिय बुद्धिराशि शुभगुण-सदन पुत्र गणेशका विवाह करके परम प्रसन्न हुए।[1]

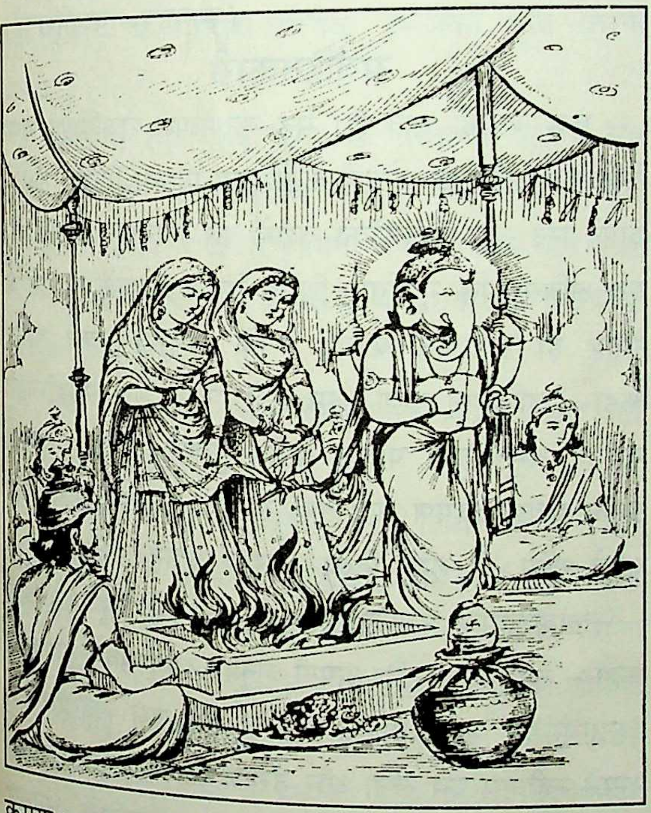

अपने मङ्गल-परिणयसे सर्वानन्दप्रदाता गजमुख भी बड़े आनन्दित हुए। अत्यन्त सुशीला एवं मधुरभाषिणी पत्नियोंके साथ उनका जीवन बड़ा सुखद था। समयपर गणेश-पत्नी सिद्धिकी कोखसे 'क्षेम' और बुद्धिके उदरसे 'लाभ' नामक अतिशय सुन्दर दिव्य बालकोंने जन्म लिया। इस प्रकार सर्वकारणकारण गणाध्यक्ष सानन्द निवास करने लगे।

खिन्न कार्तिकेय

उधर सम्पूर्ण धरित्रीकी परिक्रमा करके गजानन-भ्राता कार्तिकेय लौटे तो देवर्षि नारदके द्वारा गजवदनके विवाहका समाचार पाकर अत्यन्त खिन्न हुए। उन्होंने दुःखी मनसे अपने परम पूज्य पिताके चरणोंमें प्रणामकर शिव-सदन त्याग देनेका निश्चय कर लिया। शिवा तथा शिवने उन्हें बहुत समझाया, किंतु वे अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुए और क्रौञ्च-पर्वतपर चले गये।

'उसी दिनसे शिव-पुत्र स्वामिकार्तिकका कुमारत्व (कुँआरपना) प्रतिष्ठित हुआ।[2] उनका 'कुमार'-नाम त्रैलोक्यमें विख्यात हो गया। वह नाम शुभदायक, सर्वपापहारी, पुण्यमय और उत्कृष्ट ब्रह्मचर्यकी शक्ति प्रदान करनेवाला है।'

(शिवपुराण रुद्रसंहिता, कुमारखण्ड)

महिमामय मोदक-प्राप्ति

एक बारकी बात है। अत्यन्त सुन्दर, अद्भुत, अलौकिक एवं तेजस्वी गजानन और षडाननके दर्शन करके देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए। माता पार्वतीके चरणोंमें उनकी अगाध श्रद्धा हुई। उन्होंने सुधासिंचित एक दिव्य मोदक माता पार्वतीके हाथमें दिया। उक्त दिव्य मोदकको माताके हाथमें देखकर दोनों बालक उसे माँगने लगे।

'पहले इस मोदक (लड्डू)-का गुण सुनो।' माताने दोनों पुत्रोंसे कहा—'इस मोदकको गन्धसे ही अमरत्वकी प्राप्ति होती है। निस्संदेह इसे सूँघने या खानेवाला सम्पूर्ण

---

[1] १-ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार भगवान् शंकरने सुर-समुदायकी संनिधिमें 'पुष्टि' नामक परम गुणवती अनिन्द्यसुन्दरी कन्याके साथ गणेशका विवाह किया था।

[2] २-ब्रह्मवैवर्तपुराणमें आया है कि प्रजापतिने अपनी रत्नाभरणभूषिता परम सुन्दरी एवं शीलवती कन्या 'देवसेना' (जिसे विद्वान् शिशुओंकी रक्षा करनेवाली 'महाषष्ठी' कहते हैं)-को वैवाहिक विधिके अनुसार वेद-मन्त्रोच्चारणपूर्वक कार्तिकेयको समर्पित किया था।

शास्त्रोंका मर्मज्ञ, सब तन्त्रोंमें प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान्, ज्ञान-विज्ञान-विशारद और सर्वज्ञ हो जाता है।'

माता पार्वतीने आगे कहा—'मेरे साथ तुम्हारे पिताकी भी सहमति है कि तुम दोनोंमेंसे जो धर्माचरणके द्वारा अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर देगा, वही इस मोदकका अधिकारी होगा।'

माताकी आज्ञा प्राप्त होते ही चतुर कार्तिकेय अपने तीव्रगामी वाहन मयूरपर आरूढ हो त्रैलोक्यके तीर्थोंकी यात्राके लिये चल पड़े और मुहूर्तभरमें ही उन्होंने समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लिया। इधर मूषकवाहन लम्बोदरने अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक माता-पिताकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर वे उनके सम्मुख खड़े हो गये।

'मोदक मुझे दीजिये।' कुछ ही देर बाद स्कन्दने पिताके सम्मुख उपस्थित होकर निवेदन किया।

'समस्त तीर्थोंमें किया हुआ स्नान, सम्पूर्ण देवताओंको किया हुआ नमस्कार, सब यज्ञोंका अनुष्ठान तथा सब प्रकारके व्रत, मन्त्र, योग और संयमका पालन—ये सभी साधन माता-पिताके पूजनके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकते।' माता पार्वतीने दोनों पुत्रोंकी ओर देखकर कहा—'अतएव यह गजानन सैकड़ों पुत्रों और सैकड़ों गणोंसे भी बढ़कर है। इस कारण यह देवनिर्मित अमृतमय मोदक मैं गणेशको ही देती हूँ। माता-पिताकी भक्तिके कारण यह यज्ञादिमें सर्वत्र अग्रपूज्य होगा।'

'इस गणेशकी अग्रपूजासे ही समस्त देवगण प्रसन्न हों।' पिता कर्पूरगौर शिवने भी कह दिया।

माता पार्वतीने सर्वगुणदायक पवित्र मोदक गणेशजीको ही दिया और अत्यन्त प्रसन्नतासे उन्होंने समस्त देवताओंके सम्मुख ही उन्हें गणोंके अध्यक्ष-पदपर प्रतिष्ठित कर दिया।

(पद्मपुराण)

कुशाग्रबुद्धि

इसी प्रकारकी एक कथा और मिलती है, जिससे गुणगण-निलय गणेशकी पितृभक्ति एवं असीम कुशाग्रबुद्धिताका परिचय प्राप्त होता है। वह कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

एक बारकी बात है। चन्द्रार्धभूषण भगवान् शंकरने एक यज्ञ करनेका निश्चय किया। उक्त पावन यज्ञमें उन्हें समस्त देवताओंको निमन्त्रण देना आवश्यक था। उन्होंने यह भार अपने पुत्र कार्तिकेयको दिया; किंतु निश्चित अवधिके भीत प्रत्येक देवताके समीप जाकर उन्हें आमन्त्रण दे देना सम्भ नहीं था। तब पार्वतीश्वरने यह भार महाकाय गजाननको दिय वे अपने वाहन क्षुद्र मूषकपर सर्वत्र कैसे पहुँचते? पर उन्हों उपाय ढूँढ़ निकाला, वे विद्या-बुद्धि-वारिधि जो ठहरे।

'मेरे परम पिता महादेवके पावनतम अङ्गमें सम देवता निवास करते हैं।'—यह सोचकर उन्होंने सर्वदेवम पशुपतिकी तीन बार प्रदक्षिणा की और वहीं प्रत्ये देवताको यज्ञमें पधारनेका निमन्त्रण दे दिया। फलतः सम देवताओंको सर्वलोकमहेश्वर शिवके यज्ञकी सूचना प्राप्त गयी और सभी देवता यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये ठी समयपर पहुँच गये।

(स्कन्दपु० काशीखण्ड

सर्वहितकारी

एक बारकी बात है। मनु-कुलोत्पन्न राजर्षिश्रेष्ठ रा रिपुंजयने अविमुक्त-क्षेत्रमें कठोर तप प्रारम्भ किया। उन्हों अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर लिया था। उन एवं क्षत्रियधर्मके मूर्तिमान् विग्रह रिपुंजयनरेशके तपश्चर संतुष्ट हो प्रजापति ब्रह्माने उनके सम्मुख प्रकट होक कहा—'बुद्धिमान् नरेश! तुम वनों, पर्वतों एवं समुद्रोंसहि सम्पूर्ण वसुंधराका पालन करो। तुम्हारे धर्मनिष्ठ राज्य प्रसन्न होकर देवगण सदा तुम्हें स्वर्गीय रत्न और पुष्प प्रद करते रहेंगे। मैं तुम्हें दिव्य सामर्थ्य प्रदान करूँगा।'

लोकस्रष्टाने अत्यन्त स्नेहपूर्वक तपस्वी रिपुंजयसे अ कहा—'नागराज वासुकि अपनी अनुपम लावण्यवती नागक अनंगमोहिनी तुम्हें अर्पित करेंगे। तुम उसे सहधर्मिणी रूपमें स्वीकार कर लेना और उसके साथ धर्मपूर्वक धरा शासन करना। '**दिवो दास्यन्ति**'—इस व्युत्पत्तिके अनु तुम्हारा नाम 'दिवोदास' होगा।'

'पितामह! इस विशाल धरणीपर अनेक नरेश हैं अत्यन्त विनयपूर्वक रिपुंजयनरेशने विधातासे निवे किया—'फिर प्रजा-पालनका आदेश मुझे ही क्यों दिया रहा है?'

'तुम धर्माचरण-सम्पन्न आदर्श वीर पुरुष हो।' पिताम उन्हें प्रेमपूर्वक समझाया—'तुम्हारा राज्य धर्मपर आ

होगा; इस कारण तुमपर संतुष्ट होकर देवराज इन्द्र सुवृष्टि करेंगे; सुवृष्टि होगी तो प्रजा धन-धान्यसे सम्पन्न रहेगी एवं धर्मप्राण प्रजासे देवता, पितर एवं सम्पूर्ण प्राणी सुखी रहेंगे। किसी अन्य धर्मविहीन नरेशके द्वारा अनावृष्टि आदिके कारण सर्वत्र दुःख-दारिद्र्यका साम्राज्य फैल जायगा।'

'महामान्य पितामह! त्रैलोक्यकी रक्षा करनेमें आप स्वयं समर्थ हैं।' रिपुंजयनरेशने विधाताकी स्तुति करते हुए कहा—'किंतु आप कृपापूर्वक मुझे यश प्रदान कर रहे हैं; अतएव आपका आदेश मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ, पर यदि आप मेरा एक निवेदन स्वीकार कर लें तो सोत्साह आपके आज्ञा-पालनमें मुझे सुविधा रहेगी।'

'राजन्! तुम्हें जो कहना हो, अवश्य कहो।' पद्मोद्भवने तुरंत कहा—'मैं तुम्हारी प्रत्येक इच्छाकी पूर्ति करना चाहता हूँ।'

'परमपूज्य पितामह! यदि मैं धरतीका शासन-सूत्र ग्रहण करूँ तो सुर-समुदाय स्वर्गमें ही निवास करे; पृथ्वीपर न आये।' राजा रिपुंजयने अपने मनकी बात स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दी—'इस प्रकार मैं धरणीका निष्कण्टक राज्य कर सकूँगा।'

'तथास्तु!' सृष्टिकर्ताने तत्क्षण वचन दिया और वहीं अन्तर्धान हो गये।

'मनुष्योंके स्वस्थ और सुखी रहनेके लिये यह आवश्यक है कि देवगण इस पृथ्वीको छोड़कर अमरावती पधारें और वहीं रहें। वे कृपापूर्वक इस धरतीपर न आयें।' राजा दिवोदासके आदेशसे दुन्दुभि बजा-बजाकर चतुर्दिक् घोषणा कर दी गयी। 'नागगण भी यहाँ पधारनेका कष्ट न करें। मेरे शासनकालमें सुर-समुदाय स्वर्गमें और मनुष्य धरातलपर सानन्द निर्वाह करें।'

भगवान् शंकर मन्दरगिरिके तपसे संतुष्ट थे। इस कारण सृष्टिकर्ताके वचनोंकी रक्षाके लिये वे गिरिराज मन्दरपर चले गये। सम्पूर्ण देवता भी करुणामूर्ति उमापतिके साथ वहीं गये। लक्ष्मीपति श्रीविष्णुने भूमण्डलके समस्त वैष्णव-तीर्थोंका त्याग कर दिया और वे भी अपने प्राणप्रिय महादेवजीके पास मन्दरगिरिपर जा पहुँचे।

पृथ्वीसे देवताओंके चले जानेपर परम पराक्रमी राजा दिवोदासने यहाँ निर्द्वन्द्व राज्य किया। उन्होंने काशीपुरीको अपनी राजधानी बनाया और धर्मपूर्वक शासन करने लगे। उनके शासनकालमें प्रजा धन-धान्य एवं सुख-समृद्धिसे पूर्ण हो गयी। प्रत्येक दिशामें देश उन्नतिशील था। उनके राज्यमें अपराधका कहीं नाम भी नहीं था। असुर भी मनुष्यके वेषमें राजा दिवोदासकी सेवामें उपस्थित होते एवं उनकी आज्ञाके पालनमें सतत तत्पर रहते थे। धर्मपरायण नरेश दिवोदासके राज्यमें सभी नगर एवं ग्राम ईति[१]-भीतिसे रहित थे। सर्वत्र धर्मकी प्रधानता थी, अधर्मका कहीं नाम भी नहीं था। इस प्रकार राजा दिवोदासको शासन करते अस्सी सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

देवताओंका छिद्रान्वेषण

राजा दिवोदासकी इस व्यवस्थासे कि देवता लोग भूमि छोड़ अपने-अपने स्थानमें जाकर रहें; काशीका बिछोह हो जानेके कारण भगवान् शंकर तथा अन्य देवगण दुःखी थे और राजाका छिद्र इसलिये ढूँढ़ रहे थे कि इनका शासन समाप्त कर दिया जाय। उक्त धर्मप्राण नरेशका छिद्र ढूँढ़नेके लिये देवताओंने बड़ा प्रयत्न किया; किंतु वे सफल न हो सके। इन्द्रादि देवताओंने तपस्वी नरेश दिवोदासका शासन विफल करनेके लिये अनेक बाधाएँ उपस्थित कीं; किंतु नरेशके तपोबलके सम्मुख वे सफलमनोरथ न हो सके। इसके अनन्तर भगवान् शंकरने मन्दरगिरिसे चौंसठ योगिनियोंको राजाके छिद्रान्वेषणके लिये भेजा। वे योगिनियाँ काशीमें बारह मासतक रहकर निरन्तर प्रयत्न करनेपर भी पुण्यात्मा राजामें कोई छिद्र (दोष) नहीं पा सकीं। राजापर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे वहीं रह गयीं।

'सप्ताश्ववाहन! तुम यथाशीघ्र मङ्गलमयी काशीपुरीमें जाओ, जहाँ धर्मात्मा राजा दिवोदास विद्यमान है।' भगवान् वृषभध्वजने श्रीसूर्यदेवको बुलाकर कहा—'राजाके धर्मविरोधसे जिस प्रकार वह क्षेत्र उजाड़ हो जाय, वैसा करो। किंतु उस राजाका अनादर न करना; क्योंकि वह परम धर्मात्मा एवं

---

[१] ईतियाँ ये हैं—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहों, टिड्डियों और पक्षियोंद्वारा फसलका खाया जाना, अन्य नृपतियोंका आक्रमण, संक्रामक रोग, कलह और प्रवास।

तपस्वी है।'

आशुतोष शिवकी आज्ञा शिरोधार्य करके सूर्यदेव परम पावनी काशीपुरीमें गये। वहाँ बाहर-भीतर विचरते हुए उन्होंने राजामें तनिक भी धर्मका व्यतिक्रम नहीं देखा। भगवान् सूर्यने कभी, कहीं, किसी मनुष्यमें भी कोई छिद्र नहीं देखा। इस प्रकार तिमिरारि लोकचक्षु सूर्यदेव बारह रूपोंमें व्यक्त होकर महिमामयी काशीपुरीमें स्थित हो गये। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—'लोलार्क, उत्तरार्क, साम्बादित्य, द्रौपदादित्य, मयूखादित्य, खखोल्कादित्य, अरुणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य, गङ्गादित्य और यमादित्य।'

'कमलोद्भव! मैंने काशीका समाचार जाननेके लिये पहले योगिनियोंको और फिर सूर्यदेवको भेजा; पर वे अभीतक नहीं लौटे।' काशीको अत्यन्त प्रिय समझनेवाले भगवान् कर्पूरगौरने ब्रह्माजीसे कहा—'अतः अब आप जाइये। आपका मङ्गल हो।'

भगवान् पार्वतीवल्लभके आदेशानुसार लोकपितामह वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें काशी पहुँचे तो उस मनोहर पुरीका दर्शनकर उनका हृदय हर्षोल्लाससे भर गया। वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी ब्रह्मा राजा दिवोदासके समीप पहुँचे। राजाने उनके चरणोंमें प्रणामकर प्रत्येक रीतिसे उनकी पूजा की और उनके शुभागमनका कारण पूछा।

'राजन्! इस समय मैं यहाँ यज्ञ करना चाहता हूँ।' ब्रह्माने राजा दिवोदासके धर्मपूर्ण शासन एवं काशीकी महिमाका गान करते हुए कहा—'और इस कार्यमें तुम्हें सहायक बनाना चाहता हूँ।'

'यज्ञेच्छु श्रेष्ठ ब्राह्मण! मैं आपका दास हूँ।' धर्ममूर्ति दिवोदासने विनयपूर्वक निवेदन किया—'आप मेरे कोषागारसे समस्त यज्ञ-सामग्रियोंको ले जायँ और एकाग्रचित्त होकर यज्ञ करें।'

धर्मपरायण राजा दिवोदासके श्रद्धा-भक्तिपूर्ण विनीत उत्तरसे लोकस्रष्टा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने दिवोदासकी सहायतासे यज्ञ-सामग्रियोंका संग्रह करके दस अश्वमेध-महायज्ञोंद्वारा भगवान्का यजन किया और तभीसे वाराणसीमें मङ्गलदायक 'रुद्रसरोवर' नामक तीर्थ 'दशाश्वमेध' के नामसे प्रख्यात हुआ। तदनन्तर पुण्यसलिला गङ्गाके पधारनेपर वह तीर्थ और अधिक पुण्यजनक हो गया। ब्रह्माजी वहाँ दशाश्वमेधेश्वरलिङ्गकी स्थापनाकर स्थित हो गये। चतुर्मुख ब्रह्मा धर्मानुरागी राजा दिवोदासमें कोई छिद्र नहीं पा सके; फिर वे भगवान् शंकरके समीप जाकर क्या कहते। उन्होंने उक्त क्षेत्रका प्रभाव समझकर वहीं ब्रह्मेश्वरलिङ्गकी स्थापना की और भगवान् विश्वनाथका ध्यान करते हुए परम पावनी काशीपुरीमें ही रह गये।

मङ्गलमूर्ति ज्योतिषी बने

इसके अनन्तर आशुतोषकी आज्ञा प्राप्तकर मङ्गलमूर्ति गणेशजी मन्दरगिरिसे काशीपुरीके लिये प्रस्थित हुए। श्रीगणेशजीने काशीमें प्रविष्ट होते समय वृद्ध ब्राह्मणका वेष धारण कर लिया। वे वृद्ध ज्योतिषीके रूपमें अविमुक्त-क्षेत्रके निवासियोंके घरोंमें जा-जाकर उन्हें प्रसन्न करते। वृद्ध ज्योतिषीके वेषमें श्रीगणेशजीकी वाणी अत्यन्त मधुर थी। उनके प्रत्येक वचन सत्य सिद्ध होते थे। इस प्रकार कुछ ही समयमें उनकी सर्वत्र ख्याति फैल गयी। ख्यातिप्राप्त वृद्ध ज्योतिषी राजाके अन्तःपुरमें बुलाये गये। सर्वान्तर्यामी वयोवृद्ध ज्योतिषीने सर्वथा सत्य घटनाओंका उल्लेख किया। उसने रानियोंके प्रत्येक प्रश्नका प्रत्यक्ष द्रष्टाकी तरह उत्तर दिया। इस प्रकार वे सभी स्त्रियोंके विश्वास-भाजन ही नहीं, श्रद्धाके केन्द्र भी हो गये।

'राजन्! एक अद्भुत विद्वान् एवं वेदोंकी मूर्तिमान् निधि वृद्ध ब्राह्मण-ज्योतिषी पधारे हैं।' एक दिन राजा दिवोदासकी पत्नी लीलावतीने अपने पतिसे निवेदन किया—'वे सद्गुणसम्पन्न अत्यन्त बुद्धिमान् सुवक्ता ब्राह्मण हैं। आप भी उनका दर्शन कीजिये।'

दूसरे दिन धर्मात्मा नरेश दिवोदासने उक्त परम गुणज्ञ वृद्ध ज्योतिषीको अत्यन्त आदरपूर्वक बुलवाया। राजाने वृद्ध ब्राह्मण-वेषधारी पार्वतीनन्दनका यथावत् सत्कार किया।

'मेरी दृष्टिमें आप तत्त्वज्ञान-सम्पन्न श्रेष्ठ द्विज हैं।' एकान्तमें राजा दिवोदासने अत्यन्त विनयपूर्वक वृद्ध ब्राह्मण-ज्योतिषीसे निवेदन किया—'इस समय मेरा मन जागतिक पदार्थों एवं सभी कर्मोंसे विरत हो रहा है। अतएव आप भलीभाँति विचारकर मेरे शुभ भविष्यका वर्णन कीजिये।'

'धर्ममूर्ति नरेश! आजके अठारहवें दिन उत्तर दिशासे एक तेजस्वी ब्राह्मण पधारेंगे।' वृद्ध ज्योतिषीने राजासे कहा—'यदि तुम श्रद्धापूर्वक उनसे प्रार्थना करोगे तो वे निश्चय ही तुम्हें उपदेश देंगे। तुम यदि उनकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करोगे तो निश्चय ही तुम्हारे सभी मनोरथ सिद्ध हो जायँगे।'

राजा दिवोदासने अत्यन्त प्रसन्न होकर ज्योतिषीजीकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा की। ज्योतिषी महाराज धर्मात्मा नरेशकी अनुमति लेकर अपने आश्रमपर पहुँचे। इस प्रकार बुद्धिराशि, शुभगुण-सदन गणेशजीने सम्पूर्ण काशीनगरीको अपने वशमें कर लिया। दिवोदासके राज-पद-ग्रहणके पूर्व काशीमें गणेशजीके जो-जो स्थान थे, उन-उन स्थानोंको गणेशजीने अनेक रूप धारण करके पुनः सुशोभित किया।

धर्मात्मा नरेश दिवोदाससे दूर रहकर भी गणेशजीने उनके चित्तको राज्यकी ओरसे विरक्त कर दिया; फिर अठारहवें दिन क्षीरोदधिशायी श्रीविष्णुने परम तेजस्वी ब्राह्मणके वेषमें पधारकर दिवोदासको सदुपदेश दिया। श्रीविष्णुके आदेशसे राजा दिवोदासने अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक दिवोदासेश्वरलिङ्गकी स्थापनाकर उसकी सविधि पूजा की। राजा दिवोदासने शूलपाणि विश्वनाथके अनुग्रहसे सशरीर शिवधामकी परम शुभ यात्रा की।

शिवा-शिवका पुनः काशी-आगमन

इसके अनन्तर भगवान् शंकर अपनी धर्मपत्नी पार्वतीके साथ काशी पधारे। उस समय भगवान् शिवने गणेशजीकी बड़ी प्रशंसा की। उन्होंने हर्षातिरेकसे कहा—

यदहं प्राप्तवानस्मि पुरीं वाराणसीं शुभाम्।
मयाप्यतीव दुष्प्राप्यां स प्रसादोऽस्य वै शिशोः॥
यद् दुष्प्रसाध्यं हि पितुरपि त्रिजगतीतले।
तत् सूनुना सुसाध्यं स्यादत्र दृष्टान्तता मयि॥
पुत्रवानहमेवास्मि यच्च मे चिरचिन्तितम्।
स्वपौरुषेण कृतवानभिलाषं करस्थितम्॥

(स्कन्द०, काशी० ५७। १२-१३, १५)

'यह वाराणसीपुरी मेरे लिये भी दुष्प्राप्य है। इसको जो मैंने प्राप्त किया है, वह इस बच्चेका प्रसाद है। त्रिलोकमें जो काम पिताके लिये भी दुःसाध्य होता है, उसे पुत्र सिद्ध कर देता है, इसका दृष्टान्त मुझपर ही घटित हो रहा है। मैं ही पुत्रवान् हूँ; क्योंकि जो मेरी चिरचिन्तित अभिलाषा थी, उसको इसने अपने पौरुषसे करस्थित बना दिया।'

महाभारत-लेखन

'इस महान् पुण्यमय ग्रन्थका अध्ययन शिष्योंको किस प्रकार कराऊँ?' पञ्चम वेद महाभारतकी रचनाकर पराशरनन्दन ब्रह्मर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन विचार करने लगे—'इस ग्रन्थरत्नका प्रचार कैसे हो?'

सत्यवतीनन्दन भगवान् व्यासका विचार जानकर उनकी प्रसन्नता एवं लोककल्याणकी दृष्टिसे स्वयं चतुरानन उनके आश्रमपर उपस्थित हुए।

सहसा वेदगर्भ ब्रह्माके दर्शनकर महर्षि व्यास अत्यन्त चकित हो गये। उन्होंने अंजलि बाँध प्रीतिपूर्वक विधाताके चरणोंमें प्रणामकर उन्हें बैठनेके लिये पवित्र आसन दिया। वे लोकस्रष्टाकी ओर हाथ जोड़कर उनके सम्मुख खड़े हो गये। महर्षि व्यास मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे।

स्रष्टाकी आज्ञासे निग्रहानुग्रहसमर्थ व्यासजी उनके सम्मुख दूसरे आसनपर बैठ गये। फिर अत्यन्त विनयपूर्वक उन्होंने निवेदन किया—

'भगवन्! मैंने सम्पूर्ण लोकोंसे अत्यन्त पूजित एक महाकाव्यकी (मनमें ही) रचना की है। ब्रह्मन्! मैंने इस महाकाव्यमें सम्पूर्ण वेदोंका गुह्यतम रहस्य तथा अन्य सब शास्त्रोंका सार-सार संकलित करके रख दिया है। केवल वेदोंका ही नहीं, उनके अङ्ग एवं उपनिषदोंका भी इसमें विस्तारसे निरूपण किया है। ……और भी जितने लोकोपयोगी पदार्थ हो सकते हैं, उन सबका इसमें प्रतिपादन किया गया है; परंतु मुझे इस बातकी चिन्ता है कि पृथ्वीपर इस ग्रन्थको लिख सके, ऐसा कोई नहीं है।'

लोकपितामहने महर्षि व्यासविरचित महाकाव्यकी प्रशंसा करते हुए कहा—'मुनिवर! अपने इस काव्यको लिखवानेके लिये तुम गणेशजीका स्मरण करो—

'काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः स्मर्यतां मुने।'

(महा०, आदि० १। ७४)

लोकस्रष्टा ब्रह्म-सदनके लिये प्रस्थित हुए। तदनन्तर सत्यवतीनन्दन व्यासने सिद्धि-सदन एकदन्त गणेशजीका

स्मरण किया। स्मरण करते ही भक्तवाञ्छाकल्पतरु श्रीगणेशजी महाराज व्यासजीके सम्मुख उपस्थित हो गये। महर्षि व्यासने अत्यन्त आदर और प्रेमपूर्वक उनका अभिनन्दन किया। फिर पार्वतीनन्दन श्रीगणेशजीके बैठनेपर उन्होंने उनसे अत्यन्त आदरपूर्वक निवेदन किया—

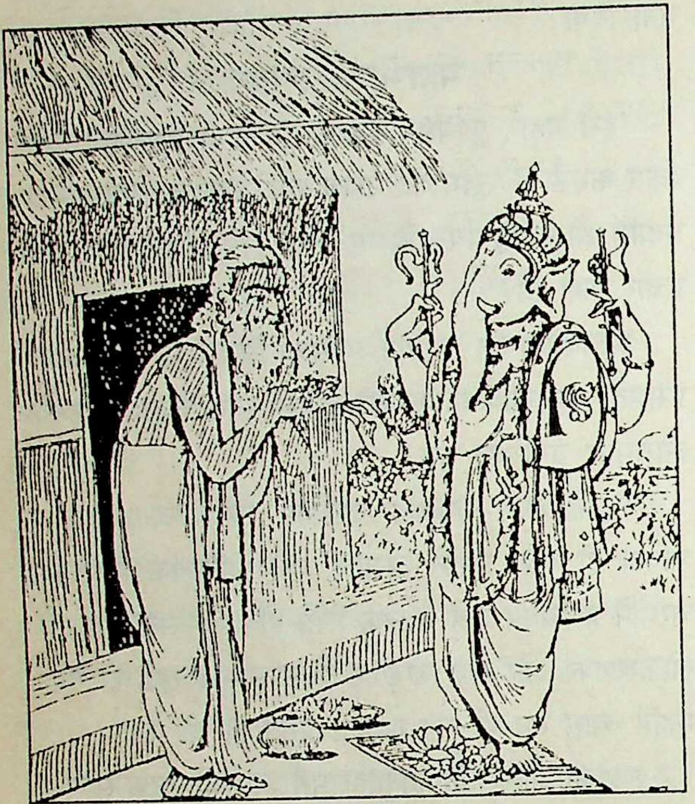

लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक।
मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च॥

(महा०, आदि० १। ७७)

'गणनायक! आप मेरे द्वारा निर्मित इस महाभारत-ग्रन्थके लेखक बन जाइये; मैं इसे बोलकर लिखाता जाऊँगा। मैंने मन-ही-मन इसकी रचना कर ली है।'

महर्षि व्यासकी बात सुनकर बुद्धिराशि श्रीगणेशजीने उत्तर दिया—'व्यासजी! यदि लिखते समय क्षणभरके लिये भी मेरी लेखनी न रुके तो मैं इस ग्रन्थका लेखक बन सकता हूँ।'

.......................यदि मे लेखनी क्षणम्।
लिखतो नावतिष्ठेत तदा स्यां लेखको ह्यहम्॥

(महा०, आदि० १। ७८)

'आप किसी भी प्रसंगको बिना समझे एक अक्षर भी मत लिखियेगा।' व्यासजीने कहा।

'ॐ'—कहकर बुद्धिराशि, शुभगुण-सदन अरुणव श्रीगणेशजीने इसे लिखना स्वीकार कर लिया और उनके अनुग्रहसे महाभारत-जैसा लोकपावन ग्रन्थ-रत्न जगत् प्राप्त हुआ।

(महाभारत, आदिपर्व)

ब्रह्माद्वारा गणेश-पूजा

गणेशपुराणके उपासना-खण्डमें आता है कि एक बा चतुर्मुख ब्रह्माके मनमें सृष्टिकर्तापनका अभिमान हो गया इससे उनके सम्मुख इतनी आपदाएँ उपस्थित हुईं कि वे किंकर्तव्यविमूढ हो गये। अन्ततः उन्होंने एकदन्तधा गणेशकी आराधना की। विधाताके तपसे संतुष्ट होक दौर्भाग्यनाशन महामना गणेश उनके सम्मुख उपस्थित हुए चतुराननने सृष्टिके आदिप्रवर्तक, परम तेजस्वी, सिन्दूरा गजकर्णकी भक्तिपूर्ण स्तुति की। सुराग्रजने प्रसन्न होक उन्हें इच्छित वर प्रदान किया। मूषकारोही गणेशके उ वरके प्रभावसे पद्मयोनिने पुनः सृष्टि-रचना प्रारम्भ की।

विष्णुकी गणेशोपासना

वेदगर्भ ब्रह्मा जब जगत्‌की सृष्टिमें तल्लीन थे, त क्षीरोदधिशायी विष्णुके कानोंसे मधु और कैटभ नामक दो शूर-वीर असुर उत्पन्न हुए। उन प्रबल पराक्रमी असुरों उपद्रवोंसे ऋषि-मुनि एवं देवगण अत्यन्त व्याकुल हो गये विधाताने व्याकुल होकर योगमायासे प्रार्थना की। योगमाया प्रेरणासे लक्ष्मीपति विष्णुकी निद्रा भंग हुई।

मधु-कैटभके उपद्रवको शान्त करनेके लिये अ किरीट-कुण्डल एवं शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, नवघनश्याम विष्णुने शंखध्वनि की। पाञ्चजन्यकी भयानक ध्वनि त्रैलोक्य काँप उठा। वीरवर मधु और कैटभ एक साथ मायापति विष्णुपर टूट पड़े। पाँच सहस्र वर्षोंतक सुर विष्णु उन दोनों असुरोंसे युद्ध करते रहे, पर उन्हें परा न कर सके।

तब श्रीविष्णुने संगीतज्ञ गन्धर्वका अत्यन्त सुन्दर धारण कर लिया और दूसरे वनमें जाकर वीणाकी मधुर छेड़ दी तथा लोकोत्तर श्रुतिमधुर गीत गाने लगे। भग लक्ष्मीपतिका वह गीत सुनकर मृग, पशु-पक्षी, देव-ग और राक्षस—सभी मुग्ध हो गये। क्षीराब्धिशायीका

भुवनमोहन आलाप कैलासमें बार-बार सुनायी देने लगा। उस संगीतसे मुदित होकर भगवान् चन्द्रशेखरने उक्त गायकको बुला लानेके लिये भेजा।

निकुम्भ और पुष्पदन्त उक्त स्वर-लहरीके सहारे गन्धर्व-वेषधारी विष्णुके समीप पहुँचे और उन्होंने उनसे सदाशिवके समीप चलनेका अनुरोध किया। श्रीविष्णु प्रसन्नतापूर्वक कैलासके लिये प्रस्थित हुए। कैलासमें पहुँचकर गन्धर्वने प्रणतार्तिविनाशन कर्पूरगौरके चरण-कमलोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। भगवान् पार्वतीकान्तने अधोक्षजको अपने कर-कमलोंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया और फिर उन्हें सुन्दर आसनपर बैठाकर उनकी पूजा की। शेषशायीने अत्यन्त मुदित होकर देवाधिदेव महादेवसे कहा—'आज धर्म-काम-अर्थ-मोक्ष प्रदान करनेवाले परम प्रभुका दर्शन कर मैं धन्य हो गया।'

पुनः जनसुखदायक विष्णुने जब वीणाके तारोंका स्पर्श किया तो उसकी मधुर ध्वनिसे वृषभध्वज, माता पार्वती, गजमुख, स्वामिकार्तिक और सभी देवता मुग्ध हो गये। आनन्दघन विष्णुके गीत सुनकर पार्वतीवल्लभ आत्मविभोर हो गये। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी नवघनसुन्दर श्रीहरिको अपने हृदयसे लगा लिया। परम संतुष्ट महादेवने कहा—'आपने मुझे प्रसन्न कर लिया है। आप क्या चाहते हैं?'

'आप मधु-कैटभके वधका उपाय बताइये।' मधु-कैटभ असुरद्वयकी उत्पत्ति, उनके उपद्रव एवं उनके साथ अपने युद्धका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताते हुए विष्णुने शिवसे निवेदन किया—'मैं उन्हें पराजित नहीं कर पा रहा हूँ।'

'आपने मधु-कैटभसे युद्ध करनेके पूर्व विनायककी पूजा नहीं की, इसी कारण शक्तिहीन रहे और आपको क्लेश सहना पड़ा।' पार्वतीपतिने श्रीहरिसे कहा—'आप गणेशकी अर्चनाकर उन पराक्रमी असुरोंसे युद्ध करने जाइये। वे असुरोंको अपनी मायासे मोहितकर आपके वशमें कर देंगे, फिर मैं प्रसादसे आप निश्चय ही उन दुष्टोंका संहार करेंगे।'

श्रीहरिके पूछनेपर आशुतोषने उन्हें गणेशका सर्वसिद्धिप्रद महामन्त्र प्रदान किया। तब श्रीविष्णुने अत्यन्त प्रसन्न होकर देवेश शिवके चरणोंमें प्रणाम किया और प्रख्यात सिद्धक्षेत्रमें पहुँचे।

वहाँ क्षीरोदधिशायीने स्नानादिसे निवृत्त होकर मङ्गलमूर्ति पाशाङ्कुशधारी श्रीगणेशका ध्यानकर नाना प्रकारके मनोमय द्रव्योंद्वारा षोडशोपचारसे उनका पूजन किया। फिर संयतेन्द्रिय होकर उन्नतानन आदिदेवका ध्यान करते हुए वे उनके महामन्त्रका जप करने लगे।

इस प्रकार लोकपालक विष्णुके सौ वर्षोंतक कठोर आराधना करनेपर करि-कलभानन प्रसन्न हो गये। फिर कोटि सूर्याग्नि-तुल्य परम तेजस्वी इच्छाशक्तिधर गणेशने श्रीविष्णुके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'मैं तुम्हारे तपसे संतुष्ट हूँ। तुम जो कुछ चाहते हो, माँग लो। मैं सब कुछ दूँगा। यदि तुमने पहले ही मेरी पूजा की होती तो निश्चय ही तुम्हारी विजय हो गयी होती।'

'मधु-कैटभसे युद्ध करते-करते थककर मैं आपकी शरण आया हूँ।' श्रीहरिने सर्वसंहारकर्ता गणेशकी स्तुति कर निज-कर्णमलोद्भूत मधु-कैटभकी दुष्टता एवं अपने युद्धका हाल बताकर उनसे प्रार्थना की—'अब जिस प्रकार उनका वध हो, वही कीजिये। मैं मधु-कैटभका वधकर यश प्राप्त करना चाहता हूँ। इसके साथ ही आप मुझे अपनी दुर्लभ भक्ति भी प्रदान करें।'

'तुमने जो कुछ कहा है, वह सब कुछ तुम्हें निश्चय ही प्राप्त होगा।' कर्माकर्मफलप्रद आदिदेवने श्रीविष्णुसे कहा—'तुम यश, बल एवं महान् कीर्ति प्राप्त करोगे और कोई विघ्न नहीं होगा।'

यद्यत्ते प्रार्थितो विष्णो तत्तत्ते भविता ध्रुवम्॥
यशो बलं परा कीर्तिरविघ्नश्च भविष्यति।

(गणेशपु० १। १८। १८-१९)

—इतना कहकर सिन्दूरप्रिय अन्तर्धान हो गये।

श्रीहरिने मधु-कैटभसे युद्ध किया और वे दोनों असुर मारे गये, फिर श्रीविष्णुने प्रसन्न होकर सिद्धक्षेत्रमें विनायकका अद्भुत मन्दिर बनवाया और वहाँ सिद्धिविनायककी प्रतिमा स्थापित की। उस क्षेत्रमें सर्वप्रथम श्रीहरिने सिद्धि प्राप्त की, इस कारण उस पवित्र स्थलका नाम 'सिद्धक्षेत्र' प्रख्यात हुआ।

गृत्समदकी गणेशोपासना

वाचक्नवि मुनिकी पत्नी मुकुन्दाने कुपित होकर अपने पुत्र गृत्समदको शाप दे दिया—'तुझे भयानक पुत्र होगा।

वह अत्यन्त शक्तिसम्पन्न भयंकर दैत्य होगा। उसके आचरणसे त्रैलोक्य काँप उठेगा।'

खिन्न-मन गृत्समद अत्यन्त रमणीय पुष्पकवनमें पहुँचे। वहाँ वीतराग वयोवृद्ध ऋषि रहते थे और जल-फल वहाँ सुविधानुसार प्राप्त थे। ऋषियोंकी आज्ञा प्राप्तकर गृत्समद वहीं रहने लगे।

गृत्समदने ज्ञान-गुण-अयन, औदार्यनिधि विनायकको प्रसन्न करनेके लिये बड़ी कठोर तपस्या प्रारम्भ की। स्नानादिके उपरान्त वे पैरके अँगूठेके बलपर खड़े होकर दीनवत्सल गणनाथका ध्यान करने लगे। अत्यन्त संयतेन्द्रिय गृत्समदने प्रथमेश्वर गणेशका जप करते हुए केवल वायुके आधारपर एक सहस्र दिव्य वर्षतक घोर तपश्चरण किया। तदनन्तर उन्होंने एक जीर्ण पत्ता खाकर पंद्रह हजार वर्षतक कठोर तपस्या की ।

जैसे गाय अपने बछड़ेका रँभाना सुनकर दौड़ती चली आती है, उसी प्रकार गृत्समदके अत्यन्त कठोर तपसे संतुष्ट होकर अनुग्रहमूर्ति गणेशजी अत्यन्त शीघ्रतासे उनके समीप पहुँचे। उस समय उनका तेज सहस्रों सूर्योंके समान था, जिससे वे सम्पूर्ण विश्वको उद्भासित कर रहे थे। तालपत्रके समान उनके कान हिल रहे थे। वे विशाल गजराजकी-सी लीला कर रहे थे और आकर्षक क्रीडामें सानन्द आसक्त थे। उनके मस्तकपर चन्द्रमा शोभायमान था, गलेमें विशाल कमल-माला सुशोभित थी। उनके एक हाथमें सनाल कमल था और वे सिंहपर आरूढ थे। उनकी दस भुजाएँ थीं। वे सर्पका यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे । उनके विग्रहपर केसर, अगर, कस्तूरी और शुभ्र चन्दनका लेप था। उन जगत्कारण प्रभुकी दोनों पत्नियाँ सिद्धि और बुद्धि उनके साथ थीं। उनका स्वरूप अनिर्देश्य था और वे लीलासे ही मुनि (गृत्समद)-के सम्मुख प्रकट हो गये। बुद्धिसिन्धु गणनाथने अत्यन्त स्नेहपूर्ण स्वरसे कहा—'तुम्हारे कठोर तपसे मैं प्रसन्न हूँ, तुम अपनी इच्छा व्यक्त करो; मैं उसे पूर्ण करूँगा।'

'सर्वशक्तिसम्पन्न प्रभो ! आप मुझे अपनी सुदृढ़ भक्ति दीजिये और यथार्थ ज्ञान प्रदान कीजिये।' गृत्समदने भयापह गजदन्तके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणामकर करबद्ध याचना की—'सर्वकल्याणकारी मङ्गलमय प्रभो ! यह 'पुष्पकव गणेशपुरके नामसे प्रख्यात हो और आप यहाँ रहक भक्तोंकी वाञ्छा पूर्ण करते रहें।'

'तुम मेरे नैष्ठिक भक्त होओगे और तुम्हारी सम कामनाएँ पूरी होंगी।' भक्तवत्सल वरदमूर्तिने वर प्रदा करते हुए कहा—'तुम्हें त्रैलोक्यविख्यात अत्यन्त शक्तिशा पुत्रकी प्राप्ति होगी। उसे केवल कालकाल शिव ही परा कर सकेंगे। कृतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुगमें इस क्षेत्र नाम क्रमशः पुष्पक, मणिपुर, मानक और भद्रक होंगे। य स्नान-दानसे मनुष्यकी समस्त कामनाएँ पूरी होंगी।'

यों कहकर सर्प-यज्ञोपवीतधारी गजानन अन्तर्धान हो ग

गृत्समदमुनिने अत्यन्त हर्षित होकर वहाँ एक सु मन्दिरका निर्माण करवाया और उसमें अपने आरा प्रथमेश्वर गजमुखकी प्रतिमा स्थापित की। उसका न 'वरद' प्रसिद्ध हुआ।

ब्राह्मणों एवं ऋषियोंसे सम्मानित गृत्समदमुनि अ आराध्यके ही ध्यान, पूजन एवं भजन-स्मरणमें अ समय व्यतीत करने लगे। एक दिनकी बात है, उ सम्मुख एक अत्यन्त तेजस्वी वस्त्रालंकारभूषित बाल प्रकट हुआ।

त्रिपुरकी गणेशोपासना

आश्चर्यचकित मुनिके प्रश्न करनेपर उस बालक कहा—'मैं आपका पुत्र हूँ। आपकी छींकसे मेरी उत् हुई है। आप कृपापूर्वक मेरा कुछ दिन पालन करें। अपने पौरुषसे इन्द्रादि देवताओंसहित त्रैलोक्यपर वि प्राप्त करूँगा।'

उस तेजस्वी बालककी वाणीसे भयभीत मुनिने उ अपने इष्टदेवकी उपासना करनेकी प्रेरणा दी। देव गणेशका मन्त्र भी उन्होंने उसे बता दिया।

पिताकी प्रेरणासे वह बालक एकान्त-शान्त वनमें गया और वहाँ वह एक अँगूठेपर खड़ा होकर अज, अ और अनन्त विनायकका ध्यान करते हुए उनके मन्त्रका करने लगा। इस प्रकार उसे निराहार रहकर कठोर तप हुए पंद्रह सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

भक्तवत्सल गजमुख प्रसन्न हुए। दयाधाम एक

तपस्वी बालकके सम्मुख प्रकट होकर भयानक शब्द किया। मुनिपुत्रने देखा—सम्मुख नाना प्रकारके वस्त्राभरणोंसे अलंकृत, चतुर्भुज महाकाय इष्टदेव खड़े हैं। उनके कर-कमलोंमें परशु, कमलमाला एवं मोदक सुशोभित है—

चतुर्भुजं महाकायं नानाभूषाविभूषितम्॥
परशुं कमलं मालां मोदकान् बिभ्रतं करैः।

(गणेशपु० १। ३८। २५-२६)

'प्रभो! आपके अपरिमित तेजसे मैं भयभीत हो रहा हूँ। आप कृपापूर्वक प्रसन्न होकर मेरी कामना-पूर्ति कीजिये।' चरणोंमें प्रणामकर मुनिपुत्रने डरते हुए सर्वव्यापी, सर्वात्मा, समस्त जीव-जगत्‌के स्वामी गजाननसे प्रार्थना की।

'मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हूँ। तुम इच्छित वर माँगो।' सिन्दूराङ्गने अपना तेज समेटकर अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा।

'मैं बालक हूँ। स्तुति करना नहीं जानता।' गृत्समदके पुत्रने इच्छाशक्तिधर गणपतिसे वरकी याचनाकी—'आप प्रसन्न होकर त्रैलोक्यको आकृष्ट करनेकी विशिष्ट शक्ति मुझे प्रदान कीजिये। देव, दानव, गन्धर्व, मनुष्य, राक्षस और सर्पादिकोंको मैं अपने वशमें कर लूँ। इन्द्रादि लोकपाल सदा मेरी सेवा करें और मेरी इच्छित सभी वस्तुएँ मुझे प्राप्त होती रहें। इस जीवनमें सम्पूर्ण सुखोंका उपभोग कर मैं मृत्युके समय मोक्ष प्राप्त कर लूँ। मेरी यह तपोभूमि पवित्र 'गणेशपुर' के नामसे प्रसिद्ध हो।'

'तुम सतत निर्भय एवं त्रैलोक्यविजयी होओगे।' रक्ताम्बरधर गजदन्तने वर प्रदान करते हुए कहा—'लौह, रजत एवं स्वर्णके तीन नगर मैं तुम्हें देता हूँ। भगवान् शूलपाणिके अतिरिक्त अन्य कोई इन्हें नष्ट नहीं कर सकेगा। तुम्हारा नाम 'त्रिपुर' होगा। जब भूतभावन महादेव अपने एक ही शरसे इन तीनों पुरोंको ध्वस्त करेंगे, तब तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी। मेरी कृपासे तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूर्ण होंगी।'

ऐसा कहकर मूषकारोही अन्तर्धान हो गये। त्रिपुरासुरकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उसने वहाँ मूषकध्वजका अत्यन्त भव्य मन्दिर बनवाया और फिर आदिदेव गणेशकी प्रतिमा स्थापितकर उसकी श्रद्धा और विधिपूर्वक षोडशोपचारसे पूजा की। उसने गद्‌गद-कण्ठसे धन-धान्यपति सिद्धि-सदनकी स्तुतिकर, उनके चरणोंमें दण्डकी भाँति लोटकर बार-बार प्रणाम किया। फिर उसने गजमुखसे क्षमा-याचना कर ब्राह्मणोंको दान दिया। तदनन्तर वह त्रैलोक्य-विजयके लिये निकल पड़ा।

वरप्राप्त महान् त्रिपुरके सम्मुख पृथ्वी, स्वर्ग और पातालके देव, दनुज तथा नाग आदि शूर-वीर नहीं टिक सके। सभी पराजित हुए। अमरावतीपर त्रिपुरका अधिकार हो गया। देव-समुदाय प्राण-भयसे यत्र-तत्र पलायित हुआ। गृत्समदके पुत्र त्रिपुरके भयसे चतुर्मुख नाभि-कमलमें प्रविष्ट हो गये। लक्ष्मीपति क्षीराब्धिके लिये प्रस्थित हुए। अत्यन्त शक्तिशाली त्रिपुरने अपने पुत्र चण्डको वैकुण्ठका और प्रचण्डको ब्रह्मलोकका अधिकार प्रदान किया।

इसके अनन्तर अत्यन्त उद्धत त्रिपुर युद्धकी कामनासे कैलास पहुँचा। उसने कैलासको झकझोर दिया। वरदमूर्ति गणेशके वरसे त्रिपुरकी शक्तिका अनुमान करके पार्वतीवल्लभने उसके सम्मुख जाकर कहा—'मैं संतुष्ट हूँ, वर माँगो।'

'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कैलास मुझे देकर स्वयं मन्दरगिरिपर चले जायँ।' यही उसने निस्संकोच माँगा।

मदमत्त असुरसे बचनेके लिये देवाधिदेव महादेवने कैलास छोड़ दिया और मन्दरगिरिके लिये प्रस्थित हुए।

अमित शक्तिसम्पन्न त्रिपुरने परम विरक्त तपस्वी ऋषि-मुनियोंको बंदी बनाकर उनके शान्ति-निकेतन आश्रमोंको ध्वस्त कर डाला। इतना ही नहीं, उसके भयसे यज्ञादि कर्म एवं श्रुतियोंका उद्घोष शान्त हो गया। त्रैलोक्यमें सर्वत्र असुरताका साम्राज्य व्याप्त था।

देवताओंद्वारा गणेशाराधन

स्वर्गसे निर्वासित गिरि-कन्दराओंमें छिपे देवगण चिन्तित एवं दुःखी थे। 'असुर कैसे पराजित हों?'—यही सोचा करते; किंतु वे सर्वथा असहाय एवं निरुपाय थे। उनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी।

एक दिन उनके समीप ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारद पहुँचे। उन्होंने सुरोंको बताया—'त्रिपुरकी अजेयताका मुख्य हेतु सर्वसमर्थ विनायकका वर है। आप लोग भी उन आदिदेव सिन्दूरपूर-परिपूरिताङ्ग गजमुखको संतुष्ट कर लें, तब उस

असुरका वध हो सकेगा।'

देवर्षिने देवताओंको सर्वव्यापी गणेशका मन्त्र बताया और वे अपनी वीणापर हरि-गुण-गान करते हुए प्रस्थित हुए।

देव-समुदाय आदिदेव गणेशकी तुष्टिके लिये उनकी आराधनामें प्रवृत्त हुआ। सुरोंकी निष्ठा देखकर करुणामय गजानन उनके सम्मुख उपस्थित हुए। देवताओंने हर्षातिरेकसे करि-कलभाननके चरण-कमलोंमें प्रणाम किया और फिर वे भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे।

'देवताओ! मैं तुम्हारी तपस्या एवं स्तुतिसे प्रसन्न हूँ।' करुणामय वरदाता गजकर्णने सुर-समुदायको आनन्द प्रदान करते हुए कहा—'तुम वर माँगो। मैं तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूरी करूँगा।'

'सर्वेश्वर!' देवताओंने अपनी व्यथा-कथा सुनाते हुए निवेदन किया—'अमित शक्तिसम्पन्न त्रिपुरके भयसे हम गिरि-गुहामें रहनेके लिये विवश हैं। अमरावतीका उपभोग दुर्दान्त दानव कर रहा है। आप उद्दण्ड त्रिपुरका वध करके हमारी विपत्ति दूर करें।'

'मैं निश्चय ही क्रूरकर्मी त्रिपुरसे आप लोगोंकी रक्षा करूँगा।' द्विरदाननने सुरोंको आश्वस्त करते हुए कहा। यह कहकर गजानन अन्तर्धान हो गये। वे बुद्धिराशि प्रभु ब्राह्मणके वेषमें त्रिपुरासुरके समीप पहुँचे और परिचय देते हुए बोले—

'कलाधर मेरा नाम है।' त्रिपुरासुरने उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी पूजा की। उसके पूछनेपर सर्वथा निःस्पृह ब्राह्मण-वेषधारी गणनाथने उसके वैभवकी प्रशंसा करते हुए कहा—'भगवान् शिवद्वारा पूजित सर्वकामप्रद अद्वितीय गणेश-प्रतिमा कैलासमें है; मैं उक्त त्रैलोक्यदुर्लभ मूर्तिकी कामनासे तुम्हारे पास आया हूँ।'

'मैं निश्चय ही वह मूर्ति आपको दूँगा।' त्रिपुरने ब्राह्मणको गणेश-प्रतिमा प्रदान करनेके लिये वचन देनेके साथ उन्हें वस्त्राभूषण, बहुमूल्य रत्न, मृगचर्म, सुरभि तथा अश्व, गज और रथ आदि भी प्रदान किये।

त्रिपुर-दूत मन्दरगिरि पहुँचे। वहाँ उन्होंने पार्वतीवल्लभसे उक्त गणेश-मूर्ति देनेके लिये कहा। शिवजी कुपित हो गये। उनके संरक्षणमें देवताओंका दैत्योंसे भयानक संग्राम छिड़ा। दैत्योंका बड़ा विनाश हुआ, किंतु उनकी अपरिसीम सैन्य शक्तिसे देवगण व्याकुल होकर भागने लगे।

शिवकी गणेशोपासना

देवताओंको युद्धक्षेत्रसे पलायन करते देखकर त्रिपुरा जगज्जननी पार्वतीको एकाकी जान कैलासकी ओर दौ इस संवादसे जननी काँप उठीं, पर हिमगिरिने उन्हें अत्यन्त सुरक्षित दुर्गम गिरिगह्वरमें पहुँचा दिया।

हिमगिरिनन्दिनीकी अनुपस्थितिमें त्रिपुरने कैलासमें ढूँढ़ 'चिन्तामणि' की शुभमूर्ति प्राप्त कर ली। उक्त सर्ववाञ्छाकल्प दुर्लभ, सुन्दरतम गणेश-प्रतिमाको लेकर त्रिपुर स्वधाम लिये प्रस्थित हुआ। वन्दीजन उसका स्तवन कर रहे किंतु मार्गमें विनायककी वह मङ्गलमयी मूर्ति त्रिपुर हाथसे छूटकर अदृश्य हो गयी। यह अपशकुन देख त्रिपुरासुर खिन्न-चित्त हो लौटा।

सदाशिव चिन्तित थे। उद्धत असुर अत्यन्त पराक्रम था और धरतीपर अनीति, अनाचार एवं कुकर्मोंका ताण्डव रहा था। धर्मसंस्थापक मुञ्जकेश विरूपाक्ष उद्विग्न-से हो थे। उसी समय देवर्षि नारद उनके समीप पहुँचे। पार्वतीका उन्हें आदरपूर्वक आसन देकर उनकी पूजा की।

'दैत्योंके पराक्रमसे त्रैलोक्यमें अधर्म फैल गया है दुःखी मनसे शूलपाणिने नारदजीको बताया—'युद्धमें दे टिक नहीं सके; वे प्राण लेकर भाग खड़े हुए। महा असुरने मेरे अस्त्रोंको भी विफल कर दिया।'

'सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वज्ञ एवं सर्वान्तर्यामी महे साश्चर्य देवर्षिने महादेवसे कहा—'आप सर्वसमर्थ सृष्टिस्थित्यन्तकारी होकर भी अद्भुत लीला कर रहे हैं

कुछ क्षण ध्यान करके उन्होंने भुजगेन्द्रहा बताया—'वह्निनेत्र! युद्धके लिये प्रस्थित होते समय विघ्नेश्वरकी पूजा नहीं की, इसी कारण आपकी पराजय आप अपने पुत्र गणेशकी पूजाकर उन्हें प्रसन्न कर लीजि फिर आपकी विजय सुनिश्चित है।'

'ब्रह्मन्! आपका कथन यथार्थ है।' कर्पूरगौरने दे कहा—'उन्होंने पहले ही मुझे विघ्ननिवारक मन्त्र दि किंतु युद्धमें मुझे उनके जपकी विस्मृति हो गयी।'

देवर्षि चले गये। शोक-शूल-निर्मूलन वृषभ

दण्डकवनमें जाकर पद्मासन लगाया और वे विनायकको प्रसन्न करनेके लिये कठोर तप करने लगे।

सौ वर्ष बीते। तपश्चरणनिरत व्याघ्रचर्माम्बरधर शिवके मुखसे एक परम तेजस्वी श्रेष्ठ पुरुष निकले। उनके पाँच मुख और दस हाथ थे, ललाटपर चन्द्रमा सुशोभित था, उनकी शरीर-कान्ति चन्द्रमाको मात कर रही थी, कण्ठमें मुण्डमाला थी, सर्पोंके आभूषण थे एवं मुकुट और बाजूबंदकी निराली छटा थी। वे अपनी प्रभासे अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाको तिरस्कृत कर रहे थे। उन्होंने अपनी दसों भुजाओंमें दस आयुध धारण कर रखे थे।

'क्या मेरे ही दो रूप हो गये?' नीलकण्ठ शिव आश्चर्यचकित हो सोचने लगे—'या यह त्रिपुरासुरकी माया तो नहीं है? मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ अथवा मैं जिन आदिदेव विनायकका अहर्निश ध्यान करता हूँ, उन्होंने ही कृपापूर्वक मुझे दर्शन दिया है?'

'आप अपने मनमें जिनका विचार करते हैं, मैं वही विघ्नविनाशक हूँ।' सर्वकर्ता सुमुखने आशुतोषसे कहा—'मेरे यथार्थ स्वरूपको देवता, ऋषि और विधाता भी नहीं जानते। वेद और उपनिषद् भी नहीं जानते, फिर षट्शास्त्रोंके ज्ञाता तो कैसे जान सकते हैं? मैं अनन्त लोकोंका स्रष्टा, पालक एवं संहारक हूँ। मैं चराचर जगत् एवं ब्रह्मा तथा तीनों गुणोंका स्वामी हूँ। आपके तपसे संतुष्ट होकर मैं यहाँ वर प्रदान करने आया हूँ, महादेव! आप इच्छानुसार वर माँग लीजिये।'

वरद विनायकके वचन सुन महेश्वर अपना स्वरूप भूलकर हर्ष-गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगे—

'हे देव! आज आपकी पूजा करनेसे मेरे दसों नेत्र और दसों भुजाएँ धन्य हैं। आपको प्रणाम करनेसे मेरे पाँचों सिर और आपका स्तवन करनेसे मेरे पाँचों मुख भी धन्य हो गये। पृथ्वी,जल, वायु, दिशाएँ, तेज, कलनात्मक काल, आकाश, रस, रूप, गन्ध, स्पर्श, शब्द, मन, इन्द्रियाँ, गन्धर्व, यक्ष, पितर, मनुष्य, देवर्षि, देवगण, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वसु, साध्य तथा आपसे उत्पन्न सभी चराचर धन्य हैं। आप रजोगुणसे सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना और सत्त्वगुणसे पालन करते हैं, तथा हे गुणेश्वर! आप तमोगुणके द्वारा उनका संहार करते हैं। आप नित्य, निरपेक्ष एवं समस्त कर्मोंके साक्षी हैं।'

'आपके स्मरण करते ही मैं आपके समीप आ जाऊँगा और आपका कार्य पूरा हो जायगा।' देवाधिदेव महादेवके स्तवनसे संतुष्ट होकर गुणाधीशने उनसे कहा—'आप मेरे बीज-मन्त्र (गं)-का उच्चारण करके पुरत्रयपर एक शर छोड़ेंगे तो वह ध्वस्त हो जायगा।'

इसके अनन्तर शिवपर प्रसन्न हुए गम्भीरलोचन गजमुखने उन्हें अपने सहस्रनामका उपदेश दिया और बोले—'तीनों संध्याओंमें इसके पाठसे मनुष्यकी कामनाएँ सिद्ध होंगी। युद्धके पूर्व आप इसका पाठ कर लें तो असुरोंका शीघ्र नाश हो जायगा।'

द्विरदाननके वरसे प्रसन्न होकर काम-मद-मोचन शिवने विधिपूर्वक उनकी पूजा की[१] और वहाँ एक अत्यन्त सुन्दर एवं विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें उनकी प्रतिष्ठा की। फिर देवता, मुनि और सिद्धोंको तृप्तकर ब्राह्मणोंको दान दिया। इसके अनन्तर तामरसलोचन वृषभध्वजने पुनः गुरुमन्त्रफलप्रद गणेशकी प्रीतिपूर्वक पूजा करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया। देवगण गङ्गाधरप्रिय गजमुखका स्तवन कर रहे थे। उसी समय पशुपतिने कहा—'इन गणेशजीका यह स्थान सम्पूर्ण लोकोंमें 'मणिपुर' के नामसे विख्यात हो।'

गम्भीर-गुणसम्पन्न गणेश अन्तर्धान हो गये। ज्ञानद गणेशके दर्शनसे प्रसन्न देवता, मुनि, सिद्ध एवं ब्राह्मण भी अपने-अपने भाग्यकी प्रशंसा करते हुए प्रस्थित हुए। स्वर्गापवर्गदाता गङ्गाधर भी प्रसन्नतापूर्वक उठे। त्रिपुरासुर मारा गया। त्रैलोक्य तृप्त हुआ। सबने सुख-संतोषकी साँस ली। सर्वत्र हर्षकी लहर दौड़ गयी।

शिवपुराणमें कथा आती है कि असुरोंसे पूर्ण त्रिपुरको भस्म करनेके लिये कामारि शम्भुने शर-संधान किया। धनुषको दृढ़तासे धारण किये रणकर्कश शिव लक्ष्यपर दृष्टि गड़ाये एक लाख वर्षतक अडिग खड़े रहे, किंतु त्रिपुरपर[२]

---

[१] कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥ (रा० च० मा० १। १००)

[२] शिवपुराणके अनुसार तारकासुरको समान बलशाली तीन महान् पुत्र थे—तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमलाक्ष। इन तीनोंने कठोर तपसे विधाताको संतुष्ट करके अपने-अपने लिये क्रमशः सुवर्ण, रजत एवं वज्रतुल्य लौह पुरोंको प्राप्त किया था। वे तीनों पुर एक सहस्र वर्षोंके बाद मध्याह्नमें अभिजित् मुहूर्तमें एक स्थानपर स्थित होते थे।

लक्ष्य स्थिर नहीं हुआ। उस समय देवत्राता शिवने आकाशवाणी सुनी—

भो भो न यावद् भगवन्नर्चितोऽसौ विनायकः।
पुराणि जगदीशेश साम्प्रतं न हनिष्यति॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, यु० खं० १०। ६)

'हे अखिलेश! हे भगवन्! जबतक आप विनायकको पूजा नहीं करेंगे, तबतक इन तीनों पुरोंको नष्ट नहीं कर सकेंगे।'

यह सुनकर अन्धकासुरसंहारी त्रिलोचनने भद्रकालीको बुलाकर गणेशजीकी पूजा की, भगवान् पशुपतिकी हर्षपूरित पूजासे विनायक संतुष्ट हुए, तत्पश्चात् लोकनाथ हरने महात्मा तारकपुत्रोंके तीनों पुरोंको देखा, तब उन्होंने अभिजित् मुहूर्तमें अपने अद्भुत धनुषकी प्रत्यञ्चाको खींचा। उससे अत्यन्त भयानक शब्द हुआ। देवदेव शिवने असुरोंको अपना नाम सुनाते हुए कोटिसूर्यसमप्रभ उग्र शर छोड़ दिया। उक्त परम तेजस्वी अग्नितुल्य दहकते हुए तीक्ष्ण शरके स्पर्शसे समस्त दैत्योंसहित त्रिपुर भस्म हो गया।

शिवप्राणवल्लभा भगवती उमाने भी मिष्टान्न-भोजी गजाननकी श्रद्धा और भक्तिसे पूजा की थी। रेणुकानन्दन परशुराम भी इन गङ्गाजल-रसास्वाद-चतुर गजमुखकी उपासनासे शक्ति अर्जित करनेमें समर्थ हुए।

(गणेशपुराण)

श्रीराधाकी गणेशोपासना

पुण्यमय शुभ क्षेत्र सिद्धाश्रमकी बड़ी महिमा है। सनत्कुमारने वहीं सिद्धि प्राप्त की थी। स्वयं लोक-पितामहने भी वहाँ तपश्चरण किया था और सिद्ध हुए थे। महात्मा कपिल और महेन्द्रने भी वहीं सिद्धि प्राप्त की थी। इसी कारण उस दुर्लभ पावन क्षेत्रका नाम 'सिद्धाश्रम' प्रसिद्ध हुआ। उस पुण्यमय क्षेत्रमें नित्यदेवता गजानन नित्य निवास करते हैं।

वहाँ वैशाखी पूर्णिमाके अवसरपर सभी देवता, नाग, मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र, योगीन्द्र और सनकादि भी वरद गणपतिकी पूजा करते हैं।

एक बारकी बात है। पवित्र वैशाखकी पूर्णिमा थी। उस पुनीत अवसरपर हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीके साथ कल्याणकारी जगत्पति शिव, गणोंसहित षडानन और स्वयं पद्मयोनि भी सिद्धाश्रम पहुँचे। भगवान् गणेशकी पूजा करनेके लिये सभी देवता, मनु, मुनिगण और नरेश भी वहाँ उपस्थित हु द्वारकापुरीके निवासियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण गोकुलवासियोंके साथ नन्द भी वहाँ पधारे। सौ वर्ष व्य हो जानेपर श्रीकृष्ण-प्राणवल्लभा रासरासेश्वरी श्रीराधारानी भी गोलोकवासिनी गोपकुमारी सखियोंके साथ वहाँ शुभाग हुआ। भक्तानुग्रहमूर्ति श्रीराधारानीने वहाँ स्नान करके साड़ी और कंचुकी धारण की, फिर त्रैलोक्यपावनी कृष्णप्रि अपने चरणोंको अच्छी प्रकार धोया। इसके अनन्तर उन् निराहार एवं संयतेन्द्रिय हो मणि-मण्डपमें प्रवेश किय

वहाँ गोलोकविहारिणी श्रीकृष्णप्रियाने अपने प्राण श्रीकृष्णकी प्राप्तिकी कामनासे विधिवत् संकल्प कि तदनन्तर उन्होंने परम पावनी सुरसरिके निर्मल जलसे भाल गजाननको स्नान कराया। फिर सत्कीर्तिसम्पन्ना भगवती अपने कर-कमलोंमें श्वेत पुष्प लेकर सामवेदोक्त प्रका

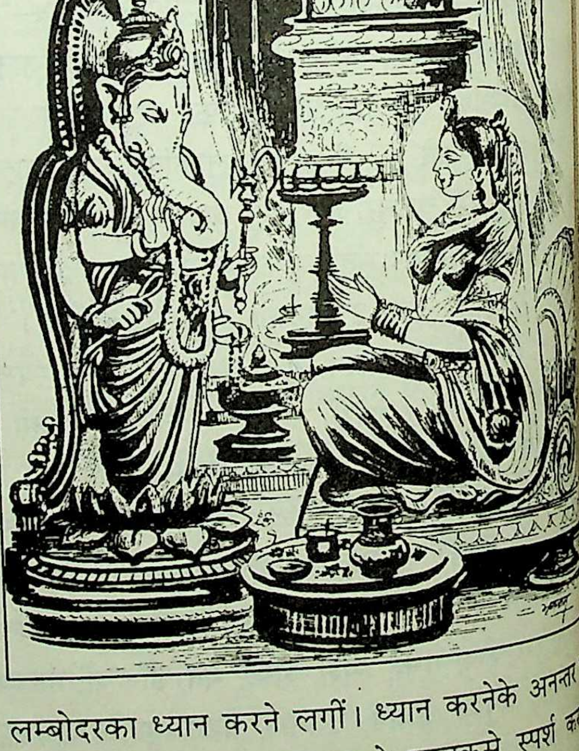

लम्बोदरका ध्यान करने लगीं। ध्यान करनेके अनन्तर सती राधाने उक्त पुष्पका अपने मस्तकसे स्पर्श क फिर सर्वाङ्गशुद्धिके लिये वेदोक्त न्यास किया। तद ब्रह्मस्वरूपा राधारानीने पुनः उपर्युक्त कल्याणकर द्वारा उक्त पुष्प शूर्पकर्णके चरणोंमे अर्पित कर दिया। बाद परम महिमामयी श्रीकृष्ण-प्राणवल्लभा श्रीराधाने सु सुशीतल पवित्र तीर्थजल, दूर्वा, चावल, सुगन्धित श्वेत

सुगन्धित चन्दनयुक्त अर्घ्य, पारिजात-पुष्पोंकी माला, कस्तूरी-केसरयुक्त चन्दन, उत्तम धूप, घृतदीप, सुस्वादु रमणीय नैवेद्य, चतुर्विध अन्न, फल, विविध प्रकारके मोदक और व्यञ्जन, अमूल्य रत्ननिर्मित सिंहासन, दो सुन्दर वस्त्र, मधुपर्क, ताम्बूल, अमूल्य श्वेत चँवर, मणि-मुक्ता-हीरासे सुसज्जित सुन्दर सूक्ष्मवस्त्रद्वारा सुशोभित शय्या, सवत्सा कामधेनु गौ और पुष्पाञ्जलि अर्पितकर अत्यन्त श्रद्धा और विधिपूर्वक शिवप्रिया पार्वतीके प्राणप्रिय पुत्रकी षोडशोपचारपूर्वक पूजा की। इसके बाद श्रीकृष्णहृदयाधिकारिणी श्रीराधाने गणेशके इस षोडशाक्षर मन्त्रका एक सहस्र जप किया।

'ॐ गं गौं गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा॥'

(ब्रह्मवैवर्तपु०, कृ० ज० खं० १२१। १००)

जपके अनन्तर पराम्बा भगवती राधाके कमल-सरीखे नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे सिर झुकाये पुलकित होकर गद्गद-कण्ठसे गणेशजीका स्तवन करने लगीं।

सर्वेश्वरी श्रीराधाने भक्तिपूर्वक विधिवत् गणेशकी पूजा एवं वन्दना की। उनके मङ्गलमय सर्वाङ्गमें धारण करने योग्य बहुमूल्य रत्नोंके विविध आभूषण प्रदान किये।

'जगज्जननी! तुम्हारा यह अर्चन-वन्दन जगत्को शिक्षा देनेके लिये है।' सत्यस्वरूपा श्रीराधाकी श्रद्धा-भक्ति एवं पूजोपकरणोंसे संतुष्ट होकर वरद गणेशने कहा—'तुम स्वयं ब्रह्मस्वरूपा एवं श्रीकृष्ण-वक्षःस्थलपर वास करनेवाली हो।'

महामहिमामयी श्रीराधाकी कल-कीर्तिका गान करते हुए परम प्रसन्न गणपतिने कहा—'मातः! तुमने मुझे जिन-जिन वस्तुओंको समर्पित किया है, उन सबको सार्थक कर डालो अर्थात् अब मेरी प्रसन्नताके लिये उन्हें ब्राह्मणोंको दे दो। तब मैं उसका भोग लगाऊँगा; क्योंकि देवताओंको देने योग्य दान या दक्षिणा ब्राह्मणको दे देनेसे अनन्त हो जाती है। राधे! ब्राह्मणोंका मुख ही देवताओंका प्रधान मुख है; क्योंकि ब्राह्मण जिस पदार्थको खाते हैं, वह देवताओंको मिलता ही है।'

तब गोलोकवासिनी श्रीराधाने वह सारा पदार्थ ब्राह्मणोंको खिला दिया। इससे मङ्गलमूर्ति गणेश तत्क्षण परम प्रसन्न हो गये।

इस प्रकार अभीष्ट-पूर्त्यर्थ प्रायः समस्त देवताओंने समय-समयपर इन विघ्नविनाशन मोदकप्रिय आदिदेवकी पूजा-अर्चा की।

(ब्रह्मवैवर्त कृष्णजन्मखण्ड)

देवताओंद्वारा गणेश-वन्दना

एक बारकी बात है। पवित्र गौतमीके उत्तर तटपर देवताओंने यज्ञ प्रारम्भ किया, परंतु उसमें अनेक विघ्न पड़ने लगे। यज्ञ सम्पन्न नहीं हो सका। उदास होकर देवताओंने ब्रह्मा और विष्णुसे इसका कारण पूछा। दयामय चतुराननने ध्यानस्थ होकर इसके कारणका पता लगाया और फिर उन्होंने सुर-समुदायसे कहा—'इस यज्ञमें श्रीगणेशजी विघ्न उपस्थित कर रहे हैं। इसी कारण यज्ञ सविधि सम्पन्न नहीं हो पा रहा है। आप लोग आदिदेव विनायकको प्रसन्न कर लें, तब यज्ञ पूर्ण हो जायगा।'

विधाताके परामर्शसे देवताओंने गौतमीके निर्मल जलमें स्नान किया और फिर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक वे अम्बिकानन्दन श्रीगणेशजीकी स्तुति करने लगे—

यः सर्वकार्येषु सदा सुराणामपीशविष्ण्वम्बुजसम्भवानाम्।
पूज्यो नमस्यः परिचिन्तनीयस्तं विघ्नराजं शरणं व्रजामः॥
न विघ्नराजेन समोऽस्ति कश्चिद्देवो मनोवाञ्छितसम्प्रदाता।
निश्चित्य चैतत् त्रिपुरान्तकोऽपि तं पूजयामास वधे पुराणाम्॥
करोतु सोऽस्माकमविघ्नमस्मिन् महाक्रतौ सत्वरमाम्बिकेयः।
ध्यातेन येनाखिलदेहभाजां पूर्णा भविष्यन्ति मनोऽभिलाषाः॥
महोत्सवोऽभूदखिलस्य देव्या जातः सुतश्चिन्तितमात्र एव।
अतोऽवदन् सुरसंघाः कृतार्थाः सद्योजातं विघ्नराजं नमन्तः॥
यो मातुरुत्सङ्गगतोऽथ मात्रा निवार्यमाणोऽपि बलाच्च चन्द्रम्।
संगोपयामास पितुर्जटासु गणाधिनाथस्य विनोद एषः॥
पपौ स्तनं मातुरथापि तृप्तो यो भ्रातृमात्सर्यकषायबुद्धिः।
लम्बोदरस्त्वं भव विघ्नराजो लम्बोदरं नाम चकार शम्भुः॥
संवेष्टितो देवगणैर्महेशः प्रवर्ततां नृत्यमितीत्युवाच।
संतोषितो नूपुररावमात्राद् गणेश्वरत्वेऽभिषिषेच पुत्रम्॥
यो विघ्नपाशं च करेण बिभ्रत् स्कन्धे कुठारं च तथा परेण।
अपूजितो विघ्नमथोऽपि मातुः करोति को विघ्नपतेः समोऽन्यः॥
धर्मार्थकामादिषु पूर्वपूज्यो देवासुरैः पूज्यत एव नित्यम्।
यस्यार्चनं नैव विनाशमस्ति तं पूर्वपूज्यं प्रथमं नमामि॥
यस्यार्चनात् प्रार्थनयानुरूपां दृष्ट्वा तु सर्वस्य फलस्य सिद्धिम्।

स्वतन्त्रसामर्थ्यकृतातिगर्वं भ्रातृप्रियं त्वाखुरथं तमीडे॥
यो मातरं सरसैर्नृत्यगीतैस्तथाऽभिलाषैरखिलैर्विनोदैः।
संतोषयामास तदातितुष्टं तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये॥

(ब्रह्मपुराण ११४। ६—१६)

'सदा सब कार्योंमें सम्पूर्ण देवता तथा शिव, विष्णु और ब्रह्माजी भी जिनका पूजन, नमस्कार और चिन्तन करते हैं, उन विघ्नराज गणेशकी हम शरण ग्रहण करते हैं। विघ्नराज गणेशके समान मनोवाञ्छित फल देनेवाला कोई देवता नहीं है, ऐसा निश्चय करके त्रिपुरारि महादेवजीने भी त्रिपुरवधके समय पहले उनका पूजन किया था। जिनका ध्यान करनेसे सम्पूर्ण देहधारियोंके मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं, वे अम्बिकानन्दन गणेश इस महायज्ञमें शीघ्र ही हमारे विघ्नोंका निवारण करें। देवी पार्वतीके चिन्तनमात्रसे ही गणेशजी-जैसा पुत्र उत्पन्न हो गया, इससे सम्पूर्ण जगत्‌में महान् उत्सव छा गया है।'—यह बात उन देवताओंने अपने मुखसे कही थी, जो नवजात शिशुके रूपमें गणेशजीको नमस्कार करके कृतार्थ हुए थे। माताकी गोदमें बैठे हुए और माताके मना करनेपर भी जिन्होंने पिताके ललाटमें स्थित चन्द्रमाको बलपूर्वक पकड़कर उनकी जटाओंमें छिपा दिया, यह गणेशजीका बालविनोद था। यद्यपि वे पूर्ण तृप्त थे, तब भी अधिक देरतक माताके स्तनोंका दूध इसलिये पीते रहे कि कहीं बड़े भैया कार्तिकेय भी आकर न पीने लगें। उनकी बुद्धिमें बालस्वभाववश भाईके प्रति ईर्ष्या भर गयी थी। यह देखकर भगवान् शंकरने विनोदवश कहा—'विघ्नराज! तुम बहुत दूध पीते हो, इसलिये लम्बोदर हो जाओ।' यों कहकर उन्होंने उनका नाम 'लम्बोदर' रख दिया। देवसमुदायसे घिरे हुए महेश्वरने कहा—'बेटा! तुम्हारा नृत्य होना चाहिये।' यह सुनकर उन्होंने अपने घुँघुरूकी आवाजसे ही शंकरजीको संतुष्ट कर दिया। इससे प्रसन्न होकर शिवने अपने पुत्रको गणेशके पदपर अभिषिक्त कर दिया। जो एक हाथमें विघ्नपाश और दूसरे हाथसे कंधेपर कुठार लिये रहते हैं तथा पूजा न पानेपर अपनी माताके कार्यमें भी विघ्न डाल देते हैं, उन विघ्नराजके समान दूसरा कौन है। जो धर्म, अर्थ और काम आदिमें सबसे पहले पूजनीय हैं तथा देवता और असुर भी प्रतिदिन जिनकी पूजा करते हैं, जिनके पूजनका फल कभी नष्ट नहीं होता, उन प्रथम पूजनीय गणेशको हम पहले मस्तक नवाते हैं। जिनकी पूजासे स प्रार्थनाके अनुरूप सब प्रकारके फलकी सिद्धि दृष्टिगोचर हो है, जिन्हें अपने स्वतन्त्र सामर्थ्यपर अत्यन्त गर्व है, बन्धुप्रिय मूषक-वाहन गणेशजीकी हम स्तुति करते जिन्होंने अपने सरस संगीत, नृत्य, समस्त मनोरथोंकी सि तथा विनोदके द्वारा माता पार्वतीको पूर्ण संतुष्ट किया है, अत्यन्त संतुष्ट हृदयवाले श्रीगणेशकी हम शरण लेते हैं।'

'देवताओ! अब तुम्हारा यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो जाय सुर-समुदायके स्तवनसे संतुष्ट होकर भगवान् गजाननने प्र होकर कहा—'जो लोग इस स्तोत्रसे मेरा स्तवन करेंगे,

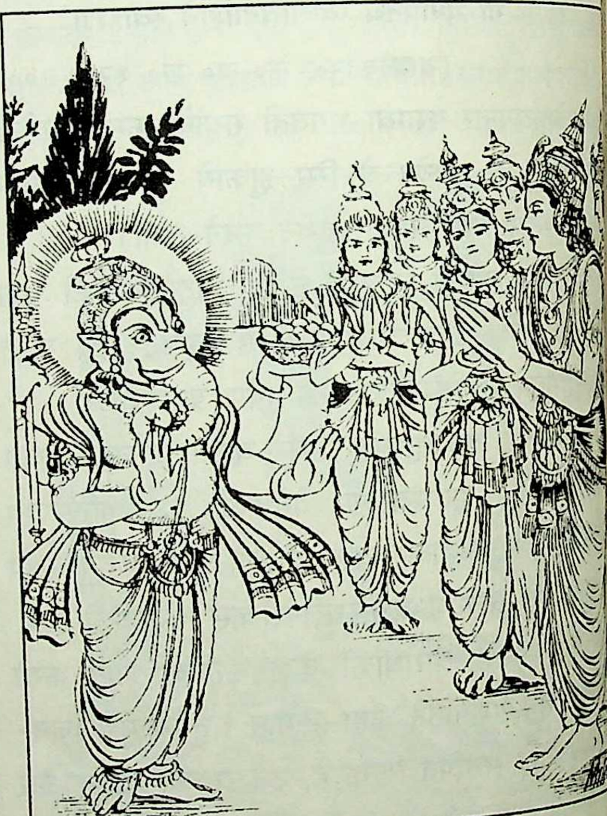

दरिद्रता और दुःखसे बचे रहेंगे। इस तीर्थमें सोत्साह स स्नान-दान करनेवालोंके कार्यमें भी विघ्न उपस्थित नहीं ह आप लोग भी इसका समर्थन करें।'

भगवान् लम्बोदरके वचनसे प्रसन्न होकर देवत उक्त पावन अविघ्न तीर्थके सम्बन्धमें तुरंत एक कहा—'ऐसा ही होगा।'

फिर देवताओंने उल्लासपूर्वक यज्ञ पूर्ण कर लि

अभिशप्त चन्द्र

एक समय गणेशजीके द्वारा चन्द्रमाको शाप प्रा

था। गणेशपुराणकी वह कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

एक बारकी बात है, कैलासके शिव-सदनमें लोक-पितामह ब्रह्मा कर्पूरगौर शिवके समीप बैठे थे। उसी समय वहाँ देवर्षि नारद पहुँचे। उनके पास एक अतिशय सुन्दर और स्वादिष्ट अपूर्व फल था। उक्त फल देवर्षिने करुणामय उमानाथके कर-कमलोंमें अर्पित कर दिया।

उक्त अद्भुत और सुन्दर फल पिताके हाथमें देखकर गणेश और कुमार दोनों बालक उसे आग्रहपूर्वक माँगने लगे। तब शिवने ब्रह्मासे पूछा—'ब्रह्मन्! देवर्षि-प्रदत्त यह अपूर्व फल एक ही है और इसे गणेश एवं कुमार दोनों चाहते हैं; आप बतायें, इसे किसे दूँ?'

चतुर्मुखने उत्तर दिया—'प्रभो! छोटे होनेके कारण इस एकमात्र फलके अधिकारी तो षडानन ही हैं।'

गङ्गाधरने फल कुमारको दे दिया, किंतु पार्वतीनन्दन गणेश सृष्टिकर्ता ब्रह्मापर कुपित हो गये।

लोक-पितामहने अपने भवन पहुँचकर सृष्टि-रचनाका प्रयत्न किया तो गजवक्त्रने अद्भुत विघ्न उत्पन्न कर दिया। वे अत्यन्त उग्ररूपमें विधाताके सम्मुख प्रकट हुए। विघ्नेश्वरके उत्कट स्वरूपको देखकर विधाता भयभीत होकर काँपने लगे।

गजाननकी विकट मूर्ति एवं ब्रह्माका भय और कम्प देखकर चन्द्रदेव अपने गणोंके साथ हँस पड़े।

चन्द्रमाको हँसते देख गजमुखको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने चन्द्रदेवको तुरंत शाप दे दिया—'चन्द्र! अब तुम किसीके देखने योग्य नहीं रह जाओगे और यदि किसीने तुम्हें देख लिया तो वह पापका भागी होगा।'

गजकर्ण वहाँसे चले गये। चन्द्रमा श्रीहत, मलिन एवं दीन होकर अत्यन्त चिन्तापूर्वक मन-ही-मन कहने लगे—'अणिमादि गुणोंसे युक्त, जगत्-कारण-कारण परमेश्वरके साथ मैंने मूर्खकी भाँति दुराचरण कैसे किया? मैं सबके लिये अदर्शनीय, वर्णहीन और अत्यन्त मलिन हो गया। अब मैं पुनः कलाओंसे युक्त, सुन्दर, वन्द्य एवं देवताओंके लिये सुखद कैसे हो सकूँगा?'

ऐसा विचारकर दु:खी सुधाकर परम प्रभु गजमुखकी शरण हुए। वे पुण्यतोया जाह्नवीके दक्षिण तटपर उन सर्वसुखदायक प्रभु गजाननका ध्यान करते हुए उनके एकाक्षरी मन्त्रका जप करने लगे। इस प्रकार चन्द्रदेवने गणेशको संतुष्ट करनेके लिये बारह वर्षतक कठोर तप किया। इससे आदिदेव गजानन प्रसन्न हुए।

सिन्दूरारुण, रक्तमाल्याम्बरधर, रक्तचन्दनचर्चित, चतुर्भुज, महाकाय, कोटिसूर्याधिक दीप्तिमान् देवदेव गजानन चन्द्रमाके सम्मुख प्रकट हो गये। निशानाथने परम प्रभुके महान् स्वरूपको देखा तो वे आश्चर्यचकित ही नहीं हुए, भयसे काँपने लगे, परंतु फिर उन्होंने मन-ही-मन विचार किया—'मेरे सम्मुख दयामय आदिदेव गजानन ही मुझे कृतार्थ करनेके लिये प्रकट हुए हैं।' तब वे हाथ जोड़कर कहने लगे—

'दयानिधान! मैंने अज्ञान-दोषके कारण आपके प्रति अपराध किया है; उसके लिये आप क्षमा-प्रदान करें। महात्मन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। यदि आप शरणागतका त्याग कर देंगे तो यह आपके लिये भी दोषकी बात होगी; अतः मुझपर कृपा कीजिये।'

चन्द्रमाके गद्‌गद-कण्ठसे किये गये स्तवन और दण्डवत् प्रणामसे संतुष्ट होकर परम प्रभु गणेशने कहा—'चन्द्रदेव! पहले तुम्हारा जैसा रूप था, वैसा ही हो जायगा; किंतु जो मनुष्य भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको तुम्हें देख लेगा, वह निश्चय ही अभिशापका भागी होगा। उसे पाप, हानि एवं मूढताका सामना करना पड़ेगा। उस तिथिको तुम अदर्शनीय रहोगे।[1] कृष्णपक्षकी चतुर्थीको जो लोगोंद्वारा व्रत किया जाता है, उसमें तुम्हारा उदय होनेपर यत्नपूर्वक मेरी और तुम्हारी पूजा होनी चाहिये। उस दिन लोगोंको तुम्हारा दर्शन अवश्य करना चाहिये; अन्यथा व्रतका फल नहीं मिलेगा। तुम एक अंशसे मेरे ललाटमें स्थित रहो, इससे मुझे प्रसन्नता होगी। प्रत्येक मासकी द्वितीया तिथिको लोग तुम्हें नमस्कार करेंगे।'

परम प्रभु गजाननके वर-प्रभावसे सुधांशु पूर्ववत् तेजस्वी, सुन्दर एवं वन्द्य हो गये। (गणेशपुराण)

* * *

---

[1] १-भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको चन्द्र-दर्शनजनित दोष दूर करनेके लिये श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्धके ५७वें अध्यायमें वर्णित स्यमन्तकहरणका प्रसंग पढ़ना या सुनना चाहिये।

पराम्बा-लीला-चिन्तन

[सृष्टिकर्त्री भगवती आदिशक्तिका नाम ही मूल प्रकृति है। सृष्टिके अवसरपर परब्रह्म परमात्मा स्वयं 'प्रकृति' 'पुरुष'—इन दो रूपोंमें प्रकट होकर अनेक प्रकारकी लीला करते हैं। ये प्रकृतिदेवी सृष्टिके पूर्वमें भी स्थित रहती इसलिये मूल प्रकृति कही जाती हैं। परब्रह्म परमात्माके सभी गुण इनमें विद्यमान रहते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इन्हींका लील विलास है। विभिन्न प्रकारकी सृष्टिका सृजनकर अपनी लीलासे जगत्को आह्लादित करना इनका प्रधान उद्देश्य भगवती प्रकृति भक्तोंके अनुरोधसे अथवा उनपर अनुग्रह करनेके लिये अनेक लीला-रूप धारण करती हैं। ये ही शक्तिदेवी मूल रूपसे विभिन्न लीलारूपोंमें प्रादुर्भूत होती हैं। इनका संक्षिप्त परिचय लीला-चिन्तनके रूपमें यहाँ प्र है।—सं०]

भगवती मूल प्रकृतिके विविध लीलावतारोंका चिन्तन

भगवती सावित्री

देवी सावित्री वेद-जननी हैं। ये सदा ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान रहती हैं। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये इन्होंने शुद्ध चिन्मय विग्रह धारण किया है। इनका विग्रह मङ्गलमय तथा मन्त्रमय है। छन्द और वेद इन्हींसे आविर्भूत हैं। संध्या-वन्दनके मन्त्रोंकी अधिष्ठात्री देवी भगवती सावित्री ही हैं। इन्हींका नाम गायत्री है। ये जपरूपा, तपस्विनी ब्रह्मतेजसे सम्पन्न तथा सर्वसंस्कारमयी हैं। प्रातः-मध्याह्न तथा सायं तीन कालोंमें ये त्रिविध कृपामय लीला-विग्रह धारण करती हैं और अपने उपासकोंके कल्याणके लिये स्वयंको भी समर्पित कर देती हैं। इनकी नित्य त्रिकाल उपासनाका विधान निरूपित है। बिना गायत्रीकी उपासनाके कोई भी धर्म-कर्म सफल नहीं हो पाता। इसलिये अत्यन्त पवित्र-बुद्धिसे बाह्याभ्यन्तर शुद्ध होकर भगवती सावित्रीकी उपासना करनी चाहिये। सर्वप्रथम भगवान् ब्रह्माजीने इनकी उपासनाकर इन्हें अपनी शक्तिरूपमें प्राप्त किया था। ये अपने एक रूपसे सूर्यमण्डलमें स्थित रहकर नित्य सबको अपने लीला-विग्रहका दर्शन कराती रहती हैं। भगवती सावित्रीकी स्वच्छ कान्ति शुद्ध स्फटिक मणिके समान है। ये शुद्ध सत्त्वमय विग्रहसे शोभा पाती हैं। ये परब्रह्मस्वरूपा हैं। ब्रह्मतेजसे सम्पन्न परम शक्ति हैं। महाराज अश्वपतिने इन्हीं देवी सावित्रीकी उपासना करके इन्हें अपनी पुत्रीके रूपमें प्राप्त किया, जिनका पातिव्रत्य-धर्म त्रैलोक्यके लिये आदर्श एवं पूज्य बन गया, इन्होंने कालशक्तिको जीत लिया। इस प्रकार अपने भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लि भगवती सावित्री अनेक लीला-रूप धारणकर उन्हें आनन्द प्रदान करती हैं।

रासेश्वरी श्रीराधा

रासेश्वरी श्रीराधा नित्यनिकुंजेश्वरी, नित्य-किशोरी रासक्रीडा तथा अलौकिक प्रवर्धमान आनन्दकी अधिष्ठा देवी हैं। सौन्दर्यसारसर्वस्व हैं। ये साक्षात् लीला-रूप क्रीडा-रूप हैं, आनन्द-रूप हैं। परमात्मा श्रीकृष्ण महारासमण्डलमें इन नित्यकिशोरीजीका आविर्भाव हु वैसे ये परमात्मा श्रीकृष्णके हृदयमें नित्य विराजमान र हैं। गोलोक इनका लीलाधाम है। ये परम आह्लादस्वरूपि हैं। प्रेम-मूर्ति हैं। 'रासेश्वरी' तथा 'सुरसिका' इनका प्रि नाम है। ये गोपी-वेषसे विराजती हैं। बड़े-बड़े ज्ञानी, महात्मा एवं ऋषि-मुनि भी इनके लीला-रहस्योंको त समझनेमें भूल कर जाते हैं। वस्तुतः बिना रासेश्व कृपाशक्तिके उनकी लीलाको समझना असम्भव ही यद्यपि इनका विग्रह विशुद्ध चिन्मयरूप है, तथापि आनन्द महालीलाके लिये ये वृषभानुपुत्रीके रूपमें अवतरित हु ये नीलवर्णके दिव्य वस्त्र धारण करती हैं तथा प्रकारके दिव्य आभूषण इन्हें सुशोभित किये रहते हैं। कान्ति करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान है और सर्वाङ्गपूर्ण विग्रह सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न है। समग्र ऐश्वर्य, माधुर्य, लावण्य, तेज, कान्ति, श्रीवैभव और परमानन्द इन देवी भगवती श्रीराधामें प्रतिष्ठित हैं।

चरण-कमलका स्पर्श पाकर पृथ्वी परम पवित्र और धन्य हुई है। ये परब्रह्म भगवान्की सनातनी लीला हैं। इनकी लीलाएँ अचिन्त्य एवं परम आह्लादमयी हैं।

इस प्रकार भगवती मूल प्रकृति ही अपने पूर्णरूपमें दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री तथा राधा—इन पाँच पृथक्-पृथक् नामोंसे व्यवहृत होती हैं। ये मूल प्रकृतिकी परिपूर्णतम अवतार हैं। इन्हींके अंश, अंशांश, कला, कलांशसे यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्याप्त है। ब्रह्माण्डमें स्त्रीवाचक जो भी शक्तिरूप है अथवा पुरुषवाची शक्तियों, पदार्थोंमें जो शक्ति अथवा विभूति निहित है, वह वस्तुतः इन्हीं भगवती मूल प्रकृतिकी कृपाका ही अंश है। इससे स्पष्ट है कि भगवती मूलशक्ति सर्वत्र व्याप्त हैं और समस्त स्थावर-जङ्गमात्मक यह जगत् उन्हींकी शक्तिका विलास है। जगत्की जितनी भी स्त्रियाँ हैं वे सब शक्तिरूपा ही हैं—'……**तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।**' इन्हीं प्रकृति देवीके एक प्रधान अंशसे भगवती गङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ और भगवती तुलसी भी इन्हीं देवी मूल प्रकृतिकी एक समग्र लीला-रूप हैं, ऐसे ही भगवतीके षष्ठी आदि कुछ लीला-विग्रहोंका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है—

भगवती षष्ठीदेवीकी लीला-कथा[1]

इन्हीं मूल प्रकृतिके छठे अंशसे जिन देवीका आविर्भाव होता है, वे 'षष्ठीदेवी' कहलाती हैं। ये षष्ठीदेवी बालकोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। नवजात शिशुके जन्मके छठे दिन इनकी विशेष पूजा होती है, इसलिये भी ये षष्ठी कहलाती हैं। इन्हें 'विष्णुमाया' और 'बालदा' भी कहा जाता है। मातृकाओंमें ये देवसेनाके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये स्वामिकार्तिकेयकी पत्नी हैं। बालकोंको दीर्घायु बनाना और उनका भरण-पोषण तथा रक्षण करना इनका स्वाभाविक गुण है, ये परम दयारूपिणी हैं। पूर्व समयमें जब देवता दैत्योंसे पराजित हो गये तो इन्होंने स्वयं सेना बनकर देवताओंका पक्ष लेकर दैत्योंसे युद्ध किया था। इनकी कृपासे देवता विजयी हो गये, अतएव इनका नाम 'देवसेना' पड़ गया।

मूलतः ये ब्रह्माजीकी मानसी कन्या हैं। इनके प्रसादसे पुत्रहीन व्यक्ति सुयोग्य पुत्र, प्रियाहीन जन मनोहारिणी प्रिया, दरिद्री अभिलषित धन तथा पुरुषार्थी उत्तम कर्मोंके उत्तम फल प्राप्त करता है। देवी षष्ठी मनुष्योंको सत्कर्म करनेकी प्रेरणा प्रदान करती हैं, उनकी सहायता करती हैं और सब प्रकारसे अपने भक्तोंका अभ्युदय करती हैं। इनका स्वभाव अत्यन्त ही करुणासे भरा है, वात्सल्यकी ये प्रतिमूर्ति हैं—अत्यन्त ही दयालु हैं। यों तो संसारके सभी प्राणी इनके पुत्र हैं, तथापि वात्सल्यकी अधिष्ठात्री होनेसे नवजात शिशुओंकी तो ये साक्षात् माता ही हैं। नवजात शिशु अकेलेमें जो स्वयंसे क्रीडा करते दीखता है, हँसता है, रोता है, हाथ-पाँव पटकता है तथा नींदमें भी कभी रोता है, कभी हँसता है और कभी चौंक जाता है, वस्तुतः यह सब माता षष्ठीदेवीका ही खेल है। वे बालकको अपना ही शिशु मानती हैं और उसके साथ अव्यक्त-रूपसे अनेक प्रकारकी लीलाएँ करती रहती हैं। ये सिद्धयोगिनी देवी अपने योगके प्रभावसे बच्चोंके पास सदा विराजमान रहती हैं। अतः माताओंको अपने बालकोंकी रक्षा, उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घ आयु तथा अभ्युदयकी कामनासे देवी षष्ठीकी विशेषरूपसे आराधना करनी चाहिये।

वैसे तो देवीकी अनन्त लीलाएँ हैं, जो आनन्द देनेवाली हैं। फिर भी जैसे बालक स्वाभाविक बाल-लीला दिखाता है, उसी प्रकार देवी षष्ठी भी जगत्को बालरूप समझकर क्रीडा करती रहती हैं। यहाँ एक ऐसी ही लीला-कथा दी जा रही है—

स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत नामक पुत्र थे। वे सम्पूर्ण पृथ्वीके एकमात्र शासक थे। वे बड़े ही धर्मात्मा, न्यायप्रिय, उदार, दयालु और प्रजावत्सल थे। अध्यात्मज्ञान तथा तपस्यामें विशेष रुचि होनेके कारण ये विवाह नहीं करना चाहते थे; किंतु ब्रह्माजीकी आज्ञासे सृष्टिके विस्तारके लिये उन्होंने विवाह कर लिया। दीर्घ कालतक उन्हें कोई संतान प्राप्त नहीं हुई, तब महर्षि कश्यपने इनसे पुत्रेष्टि-याग करवाया और यज्ञके प्रसाद चरुके प्रभावसे रानी मालिनीने यथासमय एक दिव्य कुमारको जन्म दिया, किंतु कालकी प्रेरणासे वह कुमार मरा हुआ था।

रानी मालिनी मरे हुए पुत्रको देखकर शोकसे मूर्च्छित

---

[1] १-देवीभागवत, नवम स्कन्ध तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणके प्रकृति-खण्डमें यह कथा समान-रूपसे प्राप्त होती है।

हो गयी। राजा प्रियव्रत दुःखसे अत्यन्त व्याकुल हो गये। समस्त राजपरिवार शोकसे संतप्त हो गया। राजा अत्यन्त विचारमें पड़ गये—'प्रथम तो कोई संतान ही नहीं और विशेष प्रयत्नसे हुई भी तो मरी हुई। हाय, मैं बड़ा हतभाग्य हूँ, न जाने मैंने कौनसे दुष्कर्म किये, जिसके परिणाम-स्वरूप यह दुःख भोगना पड़ रहा है। इससे तो अच्छा था संतान ही न होती', इस प्रकारसे वे विलाप करने लगे। मन्त्रियोंने उन्हें अनेक प्रकारसे ढाढस दिलाया और आगेका कार्य करनेकी सलाह दी।

रानीको रोता-विलखता छोड़ राजा प्रियव्रत पुत्रको लेकर श्मशानमें गये और वहाँ एकान्त भूमिमें पुत्रको छातीसे चिपकाकर उच्च स्वरमें रोने लगे। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। राजाकी अत्यन्त ही दयनीय स्थिति हो गयी थी, वे करें तो क्या करें, पुत्रशोकसे वे स्वयं भी मरे हुए-से हो गये थे।

इतनेमें ही उन्हें वहाँ एक दिव्य विमान दिखलायी पड़ा। शुद्ध स्फटिकके समान देदीप्यमान वह विमान अमूल्य रत्नों तथा मणियोंसे जटित एवं पुष्पोंकी मालासे सुशोभित था। राजाने उस विमानपर बैठी हुई दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित कान्तिपूर्ण एवं मनोरम स्वरूपवाली एक युवा देवीको देखा। उनका वर्ण श्वेत चम्पा-पुष्पके समान उज्ज्वल था। उनके मनोहर मुखमण्डलपर सौन्दर्य, माधुर्य एवं सौम्यताकी आभा झलक रही थी। देवीके मुखमण्डलके चारों ओर एक दिव्य तेजोमय मण्डल प्रकाशित हो रहा था। वे मधुर मुसकान बिखेर रही थीं। इस रूपमें उन्हें देखकर ऐसा मालूम पड़ता था, मानो वे साक्षात् कृपाकी मूर्ति ही हों।

उनका दर्शन करते ही राजाके मनमें एक विलक्षण शान्तिका अनुभव हुआ, उन्हें लगा कि निश्चित ही ये कोई दैवीशक्ति-सम्पन्न मातृरूपा देवी हैं, जो मेरे दुःखको देखकर मुझपर कृपा करने आयी हैं। सहज ही राजाके हाथ जुड़ गये, वे उन्हें प्रणाम करने लगे और फिर उन्होंने अपने मृत बालकको भूमिपर रख दिया तथा कातर दृष्टिसे वे देवीके किसी विशिष्ट अनुग्रहकी प्रतीक्षा करने लगे। देवी षष्ठी विमानसे उतरकर राजाके समीप चली आयीं और कहने लगीं—'राजन्! मैं देवसेना हूँ, मेरा नाम षष्ठी है, मैं बालकोंकी अधिष्ठात्री देवी हूँ। आज तुम्हारे पुत्रशोकसे दुःखी होकर मैं यहाँ आयी हूँ। राजन्! यह अपने ही कर्मोंका प्रभाव होता है कि कुछ लोग संतानहीन होते हैं, कुछ लोगोंकी
मर जाती हैं और कोई उत्तम संतानसे युक्त होते हैं।
दुःख, हर्ष-भय और शोक, सम्पत्ति तथा विपत्ति—ये
कर्मोंके अनुसार ही होते हैं। ऐसा समझकर
सत्कर्ममें ही प्रेरित होना चाहिये। आपके दुर्दैवसे
आपको संतानहीनता प्राप्त है, उसका फल आपको मिल
गया है, किंतु मेरा दर्शन अमोघ है, यह बालक
आपको प्रिय है, वैसे ही मुझे भी प्रिय है। आपकी
मालिनीका जितना मातृस्नेह इसके प्रति है, उससे
मुझे इससे प्रेम है, बालकोंकी विशेष रूपसे रक्षा करना
कार्य है, अतः अब आप शोकका परित्याग करें।'
कहकर कृपामयी देवीने उस बालकको अपनी गोदमें
लिया और अपनी योगलीलाद्वारा खेल-खेलहीमें
जीवित कर दिया।

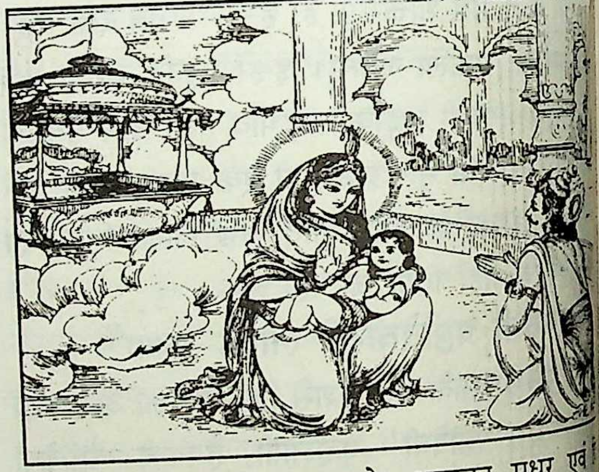

अपनी वास्तविक माताके अङ्गका मधुर एवं
स्पर्श पाते ही उस बालककी आभा एवं छबि
द्विगुणित हो उठी और वह बालक माँकी गोदमें
हुए किलकारी भरने लगा। राजा हाथ जोड़े उस
दृश्यको देखते ही रह गये। महान् आश्चर्य और
कृपाशक्तिको देखकर राजा अभिभूत-से हो गये, तब
राजासे कहा—

'राजन्! यह तुम्हारा पुत्र सभी सद्गुणोंसे
यह भगवान् नारायणका कलावतार है, यह
सर्वश्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण पृथ्वीका अधिपति
सहस्र यज्ञोंको सम्पन्न करेगा। यह महान् ऐश्वर्यसे
गुणी, निर्मल-हृदय, विद्वानोंका प्रेमभाजन तथा
ज्ञानियों और तपस्वियोंका सिद्ध-रूप होगा। इसे
सभी बातें याद रहेंगी। तीनों लोकोंमें इसके यश एवं

गुणगान होता रहेगा।' ऐसा कहकर देवीने उस बालकको 'सुव्रत' नामसे पुकारा और तभीसे उसका यह नाम प्रसिद्ध हो गया। देवीने पुनः कहा—'राजन्! तुम स्वायम्भुव मनुके पुत्र हो, सम्पूर्ण त्रिलोकीपर तुम्हारा शासन चलता है। अतः तुम सर्वत्र मेरी पूजा कराओ और स्वयं भी करो।'

इस प्रकार कहकर षष्ठी देवीने बालक सुव्रतको राजाको समर्पित कर दिया और अनेक आशीर्वाद एवं वर प्रदानकर वे अन्तर्धान हो गयीं। राजाने प्रसन्न होकर अनेक माङ्गलिक उत्सव किये। देवी षष्ठीका पूजन किया और उनकी कृपाशक्तिका सभीको उपदेश दिया। तभीसे देवी षष्ठीके पूजा-महोत्सवका क्रम प्रारम्भ हो गया तथा प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको, बालकके जन्मपर छठे दिन, इक्कीसवें दिन तथा अन्नप्राशनके समय यत्नपूर्वक देवी षष्ठीकी पूजा होती आ रही है।

देवी दक्षिणाके आविर्भावकी लीला

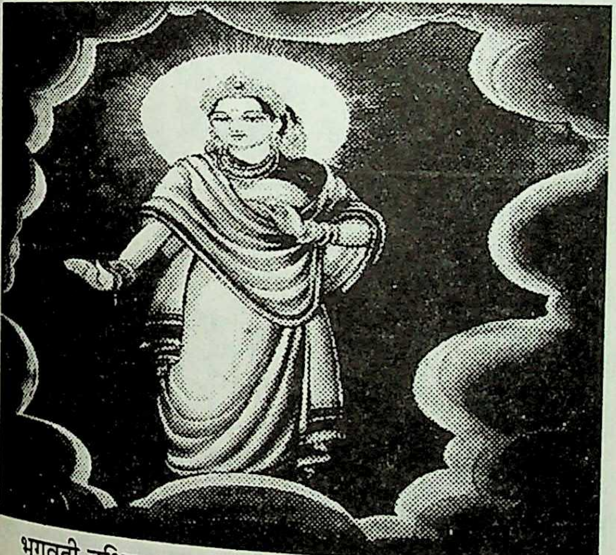

भगवती दक्षिणा महालक्ष्मीके दक्षिण अंशसे प्रादुर्भूत हैं, इसलिये ये दक्षिणा कहलाती हैं। ये उपासकको सभी सत्कर्मोंके फल प्रदान करती हैं। इन्हें साक्षात् कमला (लक्ष्मी)-का कलावतार बताया गया है और ये भगवान् विष्णुकी शक्तिस्वरूपा हैं। इनके आविर्भाव तथा महिमाकी एक कथा[1] देवीभागवतमें प्राप्त होती है, जिसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

प्राचीन कालकी बात है, गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेयसी एक गोपी थी, जिसका नाम सुशीला था। सौभाग्यमें वह लक्ष्मीके समान थी और सभी सद्गुणों तथा सदाचारसे सम्पन्न थी। भगवान् श्रीकृष्णमें उसकी परम निष्ठा थी तथा स्वयं भगवान् भी उससे विशेष स्नेह रखते थे और अधिकाधिक समय उसके पास ही रहते थे। रासेश्वरी भगवती श्रीराधाको सुशीलाका यह भाव अच्छा नहीं लगा, अतः भगवान्‌की लीलाको बिना समझे ही श्रीराधाजीने सुशीलाको गोलोकसे च्युत हो जानेका शाप दे डाला।

तदनन्तर महारासके मध्य एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण सहसा अन्तर्धान हो गये। यह देखकर रासेश्वरी भगवान्‌को जोर-जोरसे पुकारने लगीं, पर भगवान् अन्तर्हित ही रहे। अब तो रासेश्वरी शोकसे व्यथित होकर उनकी अनेक प्रकारसे प्रार्थना करते हुए क्षमा माँगने लगीं। उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रुकी अविरल धारा प्रवाहित होने लगी, तब भगवान्‌ने प्रकट होकर उन्हें आश्वस्त किया।

इधर गोलोकसे च्युत होकर वह सुशीला गोपी अनन्य-मनसे तपस्यामें निरत हो गयी। तपस्याके प्रभावसे उसने विष्णुप्रिया भगवती महालक्ष्मीके विग्रहमें प्रवेश कर लिया। उन्हीं दिनों एक विचित्र घटना यह हुई कि देवताओंको यज्ञका फल मिलना बंद हो गया। यह देखकर वे ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया, तब श्रीहरिने अपनी प्रिया महालक्ष्मीके दिव्य विग्रहसे एक अलौकिक देवीको प्रकट किया, दक्षिण भागसे प्रादुर्भूत होनेके कारण भगवान्‌ने उन देवीका 'दक्षिणा' नाम रखा। श्रीहरिने दक्षिणादेवीको ब्रह्माजीको सौंप दिया, तब ब्रह्माजीने यज्ञपुरुषके साथ दक्षिणादेवीका विवाह कर दिया। इसके बाद देवताओंको यज्ञका फल मिलने लगा; इसीलिये दक्षिणा-विरहित यज्ञ करनेका शास्त्रीय निषेध है। तभीसे देवी दक्षिणा यज्ञपुरुषकी पत्नीके रूपमें प्रतिष्ठित हो गयीं। भगवती दक्षिणाका जो पुत्र हुआ वह 'फल' नामसे प्रसिद्ध हुआ। देवी दक्षिणाकी कृपाके बिना प्राणियोंके सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं। इसलिये प्राणिमात्रको यज्ञ-पत्नी भगवती दक्षिणाका अनुग्रह प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

माता स्वधाका लीला-आख्यान

माता स्वधा अत्यन्त करुणामयी एवं पितरोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। पितरोंके निमित्त श्राद्ध तथा तर्पण आदिमें प्रदत्त कव्योंको देवी स्वधा ही उनतक पहुँचाती हैं। इनकी अत्यन्त महिमा पुराणोंमें आयी है। पितामह ब्रह्माने कहा है कि स्वधादेवीके नामोच्चारणमात्रसे मनुष्य सभी तीर्थोंके स्नानका फल प्राप्त करता है, सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और

---

[1] ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्डमें यह कथा समान-रूपसे आती है।

वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त करता है—

स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफलं लभेत्॥

(देवीभागवत० ९। ४४। ७)

इतना ही नहीं यदि 'स्वधा, स्वधा, स्वधा'—इस प्रकार तीन बार उच्चारण किया जाय तो श्राद्ध, बलिवैश्वदेव और तर्पणका फल प्राप्त हो जाता है—

स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत्।
श्राद्धस्य फलमाप्नोति बलेश्च तर्पणस्य च॥

(देवीभागवत० ९। ४४। २८)

जबतक माता स्वधाका आविर्भाव नहीं हुआ था, तबतक पितरोंको भूख एवं प्याससे पीडित रहना पड़ता था; क्योंकि ब्राह्मण आदि जो कुछ उनके उद्देश्यसे देते थे, वह उनको मिल नहीं पाता था। भूखसे पीडित होकर वे पितर ब्रह्माके पास पहुँचे और उन्होंने अपना कष्ट उनसे निवेदित किया। पितरोंके इस कष्टसे ब्रह्मा चिन्तित हो गये; वे सोचने लगे कि मैंने इनके भोजनके लिये कव्यकी व्यवस्था की थी, वह ब्राह्मणोंके द्वारा देनेके बाद भी पितरोंतक क्यों नहीं पहुँचता। उन्होंने माता स्वधाका ध्यान किया तो वे उनके मनसे प्रकट हो गयीं। इसी कारण वह ब्रह्माजीकी 'मानसी कन्या' भी कहलाती हैं। मूलरूपमें देवी स्वधा मूलप्रकृतिकी अंशभूता और शुद्धस्वरूपा हैं। लक्ष्मीकी भाँति समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं, इनका लीलाविग्रह नित्य सत्य और पुण्यमय है। इनकी आभामें सैकड़ों चन्द्रमाके समान आह्लादता है। ये शतदल-कमलके आसनपर विराजमा रहती हैं। ये अत्यन्त सौम्य तथा शान्त हैं। इनके नेत्र औ मुख अत्यन्त मनोरम और कमलके समान प्रफुल्लित है नित्य युवा रहनेवाली देवी स्वधाका श्वेत चम्पाके समा उज्ज्वल वर्ण है। ये रत्नमय आभूषण तथा माला धारण कर हैं और वरदा तथा कल्याणरूपिणी हैं।

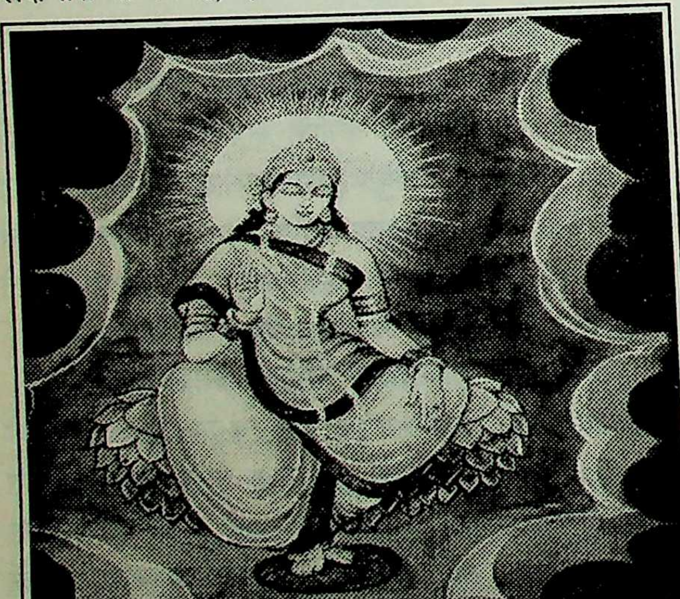

पितामहने भगवती स्वधाको पितरोंके हाथ सौंप दि और मनुष्योंको एक गोपनीय बात भी बता दी कि पितरों उद्देश्यसे जो भी पदार्थ अर्पण किया जाय, उसमें 'स्व अवश्य लगा दिया करें और तभीसे स्वधा लगाकर पितरों कव्य दिया जाने लगा, तब सब पदार्थ पितरोंको मिलने ल

उस समय सम्पूर्ण देवताओं, मुनियों और मानवोंने म स्वधाकी सविधि भावपूर्वक पूजा एवं स्तुति की। तब म स्वधाने सबको मनोवाञ्छित वर प्रदान किया। पि ब्रह्माने घोषणा की कि अन्य अवसरोंपर तो भग स्वधाका पूजन होना ही चाहिये, श्राद्धके अवसरपर प स्वधादेवीकी पूजा करके श्राद्ध करना चाहिये। इससे श्रद्धाकी विशेष प्रीति प्राप्त होती है और पितर भी होकर उपासकको अक्षय फल प्रदान कर देते हैं।

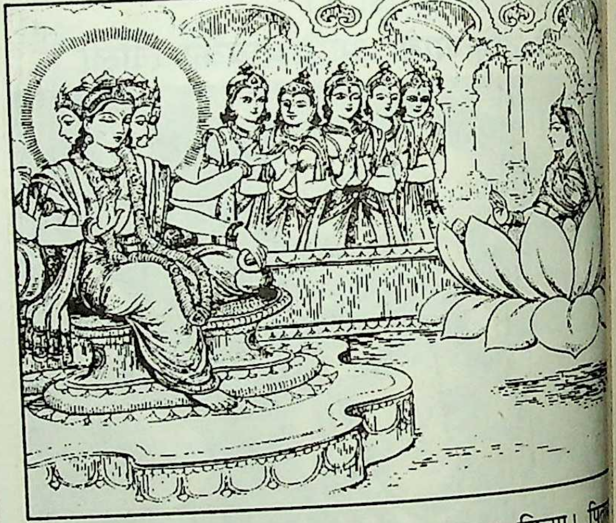

माता स्वाहा देवीकी आविर्भाव-लीला

सृष्टिके आरम्भकालकी बात है, जब अव्यक्त-स्व देवी व्यक्तरूपमें प्रकट नहीं हुई थीं, उस समय ब्र आदि यज्ञकर्ता देवताओंको उद्देश्य करके विष्णुरूप- जो हवनीय पदार्थ अर्पित करते थे, वह हव्य पदार्थ उ पहुँच नहीं पाता था; क्योंकि देवी स्वाहा ही देवता हव्य पदार्थ उनके आहारके रूपमें उनतक पहुँचा उदास होकर देवता ब्रह्माजीके पास गये और उन्हें

वृत्तान्त बतलाया। तब ब्रह्माजीने भगवान् श्रीहरिकी आराधना की और नारायणने उन्हें बताया कि आप मूल प्रकृतिकी आराधना करें। ब्रह्माजीने भक्तिपूर्वक भगवती मूलप्रकृतिका स्मरण-ध्यान किया। तब भगवतीकी कलासे प्रकट होकर सर्वशक्तिस्वरूपिणी देवी स्वाहाने ब्रह्माजीको दर्शन दिया। उस समय देवी स्वाहाके लीला-विग्रहकी सुन्दर श्यामल कान्ति थी। वे प्रसन्नमुख तथा अत्यन्त सौम्यरूपमें थीं और एक विलक्षण दिव्य तेजसे व्याप्त थीं—भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये उन भगवती स्वाहा-देवीने ब्रह्माजीसे वर माँगनेके लिये कहा।

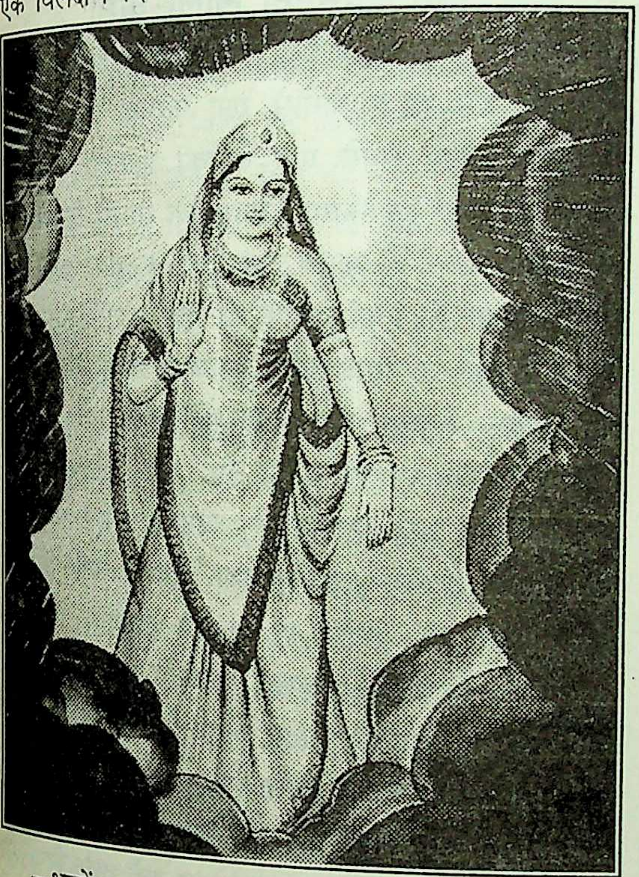

ब्रह्माजी बोले—हे देवि! आप भगवान् अग्निदेवकी दाहिकाशक्ति होनेकी कृपा करें। आपके बिना अग्नि आहुतियोंको भस्म करनेमें असमर्थ हैं, इसीलिये देवताओंको अर्पित हव्य पदार्थ उन्हें प्राप्त नहीं हो पा रहा है। अम्बिके! श्रीरूपिणी आप अग्निदेवकी गृहस्वामिनी बनकर लोकपर महान् उपकार करें।

उस समय माता स्वाहा भगवान् श्रीकृष्णके अनुरागमें अनुरक्त थीं, उनके ध्यान-चिन्तनमें निमग्न थीं। यह देखकर भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए और उन्होंने स्वाहाका सम्मान किया तथा कहा कि वाराहकल्पमें नाग्नजितीके रूपमें तुम मुझसे मिलोगी। इस समय तुम अग्निदेवकी दाहिकाशक्तिके रूपमें उनकी पत्नी बनकर देवताओंको आप्यायित करो, भक्तोंका कल्याण करो।

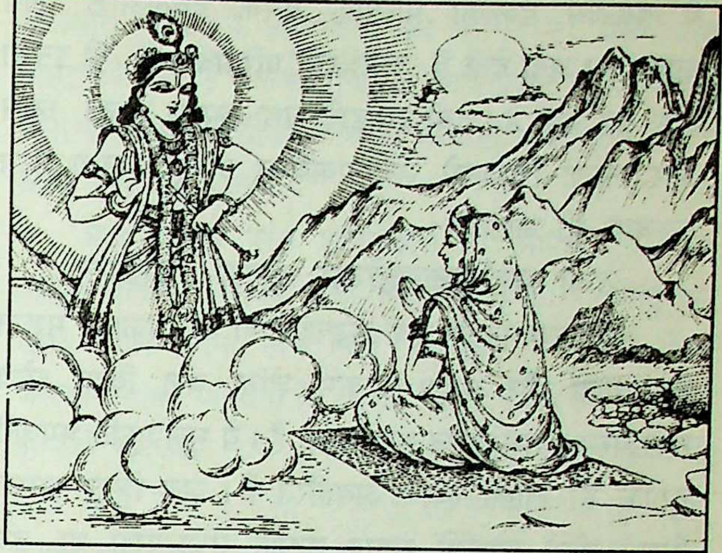

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। देवी स्वाहाको भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई, उन्होंने संसारके मङ्गलके लिये तथा देवताओंको संतृप्त करनेके लिये अग्निकी पत्नीके रूपमें स्वयंको माना। अनुकूल अवसर देखकर ब्रह्माने अग्निदेवताको भगवती स्वाहाके पास भेजा। अग्निदेवता वहाँ आये और सामवेदमें कही गयी विधिके अनुसार स्वाहाकी पूजा और स्तुति की। स्वाहा देवी अनुकूल हो गयीं। मन्त्रोच्चारणपूर्वक दोनोंका विवाह हुआ और शक्ति तथा शक्तिमान्के रूपमें दोनों प्रतिष्ठित होकर जगत्के कल्याणमें लग गये। तभीसे ऋषि-मुनि एवं द्विज मन्त्रोंके साथ 'स्वाहा' का उच्चारणकर अग्निमें आहुति देने लगे और वह हव्य पदार्थ देवताओंके पास पहुँचकर उनके लिये तृप्तिकारक हो गया।

इस प्रकार भगवती स्वाहादेवीका स्वरूप अत्यन्त कृपामय है। दाहिकाशक्तिके रूपमें वे अव्यक्तरूपमें रहती हैं और भक्तोंकी उपासनासे प्रसन्न होकर दिव्य मनोरम देवीके रूपमें उन्हें दर्शन देती हैं। भगवान् अग्निदेवमें जो जलानेकी तीक्ष्ण तेजोरूपा शक्ति है, वह और कोई नहीं, देवी स्वाहाका ही सूक्ष्म रूप है। इनका दिव्य विग्रह मन्त्रसिद्धि-स्वरूप है, इसलिये मन्त्रोंके अन्तमें स्वाहाका नाम लेकर ही यज्ञाग्निमें आहुति दी जाती है। यदि स्वाहादेवीका नाम

स्मरण न किया जाय तो मन्त्रशक्ति निष्फल ही रहती है। ये हवनीय द्रव्यका परिपाक करके देवताओंके लिये आहाररूप बना देती हैं, इसीलिये '**परिपाककरी**' भी इनका एक श्रेष्ठ नाम है। देवी स्वाहाके नाम-स्मरण, पूजन, ध्यान और लीला-चिन्तनसे सब प्रकारका अभ्युदय तथा परम कल्याण हो जाता है।

देवी मङ्गलचण्डीका लीला-आख्यान

सर्वमङ्गलमङ्गला देवी मङ्गलचण्डी सब प्रकारसे मङ्गल करनेवाली और अद्भुत पराक्रम, शक्ति, बल, विद्या, ओज तथा परम ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली हैं। ये मूलप्रकृति भगवती दुर्गाके ही लीला-रूपमें अवतरित हैं। जब त्रिपुर नामक दैत्यने तीनों लोकोंमें महान् उत्पात मचा रखा था, तब भयभीत देवता भगवान् शंकरकी शरणमें गये। जगत्-कल्याणार्थ भगवान् शंकरका त्रिपुरासुरके साथ भयंकर युद्ध हुआ। उस समय भगवान् शंकरने शक्तिरूपा दुर्गाका स्मरण किया। भगवती दुर्गा मङ्गलचण्डीके रूपमें आविर्भूत हुईं और शक्तिरूपसे भगवान् शंकरमें प्रविष्ट हो गयीं। विशेष शक्तिसम्पन्न हो जानेसे वे त्रिपुरको पराजित करनेमें समर्थ हो गये। भगवान् शंकरने पुनः भक्तिपूर्वक अनेक उपचारोंसे देवी मङ्गलचण्डीकी पूजा-आराधना की। यजुर्वेदकी माध्यन्दिन शाखामें कहे गये ध्यानमन्त्रके द्वारा भगवतीका ध्यान किया। तभीसे सभी देवताओं, ऋषि-महर्षियों तथा मनुष्योंने देवी मङ्गलचण्डीकी पूजा-उपासना प्रारम्भ कर दी।

देवी मङ्गलचण्डीका शुद्ध स्वरूप अत्यन्त दिव्य है। वे सुस्थिर-यौवना हैं। उनके ओष्ठ बिम्बफलके सदृश लाल हैं और मुखमण्डल शरत्कालीन कमलके सदृश प्रफुल्लित एवं कान्तियुक्त है। इनका वर्ण श्वेत चम्पाके समान उज्ज्वल है। आँखें खिले हुए नीलकमलके समान हैं। ये देवी सबका धारण-पोषण करनेवाली हैं। संसाररूपी घोर अन्धकारमय समुद्रमें पड़े हुए व्यक्तियोंके लिये ये ज्योतिःस्वरूपा हैं। ये सम्पूर्ण विपत्तियोंको ध्वंस करनेवाली तथा सदा हर्ष एवं मङ्गल प्रदान करनेवाली हैं। मङ्गल-ही-मङ्गल करनेके कारण और सर्वविध शक्ति प्रदान करनेके कारण इनका मङ्गलचण्डी यह नाम सार्थक ही है। इसीलिये ये मङ्गलदायिका, शुभा, मङ्गलदक्षा, मङ्गला तथा कल्याणी कहलाती हैं। ये समस्त कल्याण-मङ्गलोंकी आश्रयभूता हैं, मङ्गलाधार
और मङ्गलमयी हैं। भगवान् शंकरने मङ्गलवारके
ही इनकी पूजा की थी और इनके सर्वप्रथम पूजकके
भगवान् शंकर ही परिगणित हैं। इनके दूसरे उपा
भूमिपुत्र मङ्गल ग्रह हैं। मनुवंशमें उत्पन्न राजा मङ्गलने
इनकी उपासना की तथा पुनः सभी स्त्रियों तथा मनुष्योंके
ये विशेष पूज्य हो गये। मङ्गलवारका दिन भग
मङ्गलचण्डिकाकी उपासनाके लिये विशेष रूपसे प्रशस्त

देवी मनसाकी लीला-कथा

प्राचीन कालकी बात है, जब सृष्टिमें नागोंका भय
गया तो उस समय नागोंसे रक्षा करनेके लिये भग
ब्रह्माजीने अपने मनसे एक देवीका प्राकट्य किया,
मनसे प्रकट होनेके कारण 'मनसा'के नामसे विख्यात
और फिर बादमें ये महर्षि कश्यपकी कन्याके रूपमें
गयीं। मूलतः ये प्रकृतिदेवीके ही एक अंशसे समुद्भूत
दिव्य योगशक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण ये अपनी कुमाराव
ही भगवान् शंकरके धाम कैलासमें पहुँच गयीं और
हजार वर्षोंतक उन्होंने महान् तप किया। भगवान्
प्रसन्न होकर इन्हें उत्तम ज्ञान-योगसे सम्पन्न कर
सामवेदका अध्ययन कराया तथा 'मृतसंजीवनी' वि
प्रदान कर दी। साथ ही उन्होंने वैष्णवी दीक्षा
श्रीकृष्णके जपनीय अष्टाक्षर मन्त्र—'ॐ श्रीं ह्रीं
कृष्णाय नमः' का भी उपदेश प्रदान किया। तत्पश्चात्
आज्ञा लेकर तपस्विनी मनसा पुष्कर क्षेत्रमें चली गयीं
वहाँ दिव्य तीन युगोंतक श्रीकृष्णकी आराधनामें
रहीं। भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर इन्हें दर्शन दिया
समय सिद्धयोगिनी देवी मनसाके वस्त्र और शरीर
जीर्ण हो गये थे। इसी कारण कृपानिधि भगवान्
इनका नाम 'जरत्कारु' रख दिया और स्वयं उनकी
कर इन्हें जगत्पूज्य तथा जगद्वन्द्य होनेका वर प्रदान
इसके बाद शंकर आदि देवताओंने भी इनकी पूजा
तभीसे ये त्रिलोकीमें सर्वत्र पूज्य बन गयीं।
श्रीकृष्णद्वारा अनेकों वर एवं सिद्धि प्राप्तकर ये देवी
(जरत्कारु) महर्षि कश्यपके पास चली आयीं।

तदनन्तर महर्षि कश्यपने अपनी कन्या जर

---

[१] -देवीभागवत तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इनके आख्यान तथा स्तोत्र-मन्त्रादि निरूपित हैं।

विवाह 'जरत्कारु' नामवाले ही एक महान् योगीके साथ कर दिया। ये मुनि 'जरत्कारु' भगवान् श्रीकृष्णके अंशरूप ही थे और साक्षात् कृपाके समुद्र थे। इस प्रकार मूलप्रकृति देवीकी अंशभूता भगवती मनसा (जरत्कारु) और भगवान् श्रीकृष्णके अंशभूत महर्षि जरत्कारुका दिव्य संयोग हो गया।

एक दिनकी बात है, महर्षि जरत्कारु अपनी पतिपरायणा देवी जरत्कारुके अङ्कमें सिर रखकर लेटे हुए थे। ऐसे ही उन्हें नींद आ गयी और कुछ समय बाद सायंकाल हो आया। सूर्यनारायण अस्ताचलको जाने लगे। देवी मनसा परम साध्वी एवं पतिव्रता थीं, धर्मके रहस्योंको वे जानती थीं। उन्होंने मनमें विचार किया कि द्विजोंके लिये नित्य संध्या-वन्दन करनेका विधान है, यदि मेरे पति सोये ही रह जाते हैं तो इन्हें पाप लग जायगा, क्योंकि ऐसा नियम है कि जो प्रातः और सायंकी संध्या ठीक समयपर नहीं करता है, वह अपवित्र होकर पापका भागी होता है। यदि ऐसा हो गया तो इसमें मुझे ही निमित्त बनना पड़ेगा और यदि इन्हें जगा देती हूँ तो मुझे इनके कोपका भाजन बनना पड़ेगा, फलतः ये मेरा परित्याग कर देंगे। ऐसी शर्त विवाहसे पूर्व महर्षि जरत्कारुने रखी थी कि जिस दिन मुझे किसी कार्यसे रोका जायगा उसी दिन मैं पत्नीका परित्याग कर दूँगा। शर्तके अनुरूप ही विवाह हुआ था। आज दैवी लीलासे वह परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी। पहले तो देवी जरत्कारु असमंजसमें पड़ गयीं, पर फिर उन्होंने निश्चय किया कि 'भले ही स्वामी मेरा परित्याग कर दें, लेकिन पतिके धर्मका लोप होना ठीक नहीं है।'—ऐसा निश्चय कर देवी मनसाने अपने पतिको जगा दिया। इसपर मुनि जरत्कारु क्रुद्ध हो गये, तब देवी मनसाने कहा—'प्रभो! आपका क्रोध उचित ही है, किंतु मैंने तो आपकी संध्याका लोप न हो जाय इस भयसे आपको जगाया है, यह मेरा दोष अवश्य है, इसलिये मुझे क्षमा करनेकी कृपा करें।' ऐसा कहकर वे बार-बार उन्हें प्रणाम करने लगीं। उस समय महर्षि जरत्कारु अत्यन्त क्रोधमें थे। वे सूर्यको ही भर्त्सित करने लगे कि 'मैं संध्या न कर सकूँ और सूर्य अस्त हो जायँ, यह कैसे हो सकता है?' त्रिकाल-संध्योपासनाके प्रभावसे उन्हें असीम शक्ति एवं सामर्थ्य प्राप्त थी, वे सब कुछ करनेमें समर्थ थे। वे परम भगवद्भक्त थे, अपने आराध्यमें उनकी असीम निष्ठा थी, किंतु उनके आराध्य उनकी पूजा ग्रहण किये बिना कैसे चले जायँगे, ऐसा उनका अटूट विश्वास था और इसी दृढ़ आस्थासे वे अपने आराध्यपर ही कुपित हो बैठे। अब आराध्यको अपने भक्तको मनानेके लिये प्रकट होना ही था। उसी समय संध्यादेवीको साथ ले भगवान् सूर्य उनके समीप आये और कहने लगे—

'महर्षे! आप परम शक्तिशाली हैं, आपमें तपस्याका असीम बल है, आपकी भक्ति-निष्ठा आदर्शरूप है, किंतु इस समय क्रोध करना ठीक नहीं। आपकी ये साध्वी देवी जरत्कारु महान् पतिव्रता हैं, आपमें इनकी प्राणपणसे निष्ठा है, आपकी संध्याका लोप न हो जाय इसलिये इन्होंने आपको जगा दिया, यदि ये ऐसा न करतीं तो इनके सम्बन्धमें यही कहा जाता कि इन्होंने संध्याका समय होनेपर भी अपने पतिको जगाया नहीं, अतः आप इनपर प्रसन्न रहें। आपका मुझपर क्रोध करना भी उचित नहीं है, क्योंकि ब्राह्मणोंका क्रोध उनकी तपस्याको ही क्षीण कर देता है। संतोंका हृदय तो सदैव नवनीतके समान कोमल रहता है, अतः आप शान्त हो जायँ।' सूर्यके वचनोंको सुनकर महर्षि जरत्कारुको परम प्रसन्नता हुई। तदनन्तर भगवान् सूर्य यथास्थान चले गये।

इधर महर्षि जरत्कारुने विवाहके समय की हुई अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये देवी मनसाका परित्याग कर दिया। देवी मनसा शोकसे विह्वल हो गयीं। फिर उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान्‌का स्मरण किया, उसी समय उनके विद्यादाता भगवान् शंकर, इष्ट देवता ब्रह्मा, भगवान् श्रीकृष्ण तथा पिता कश्यप वहाँ उपस्थित हो गये।

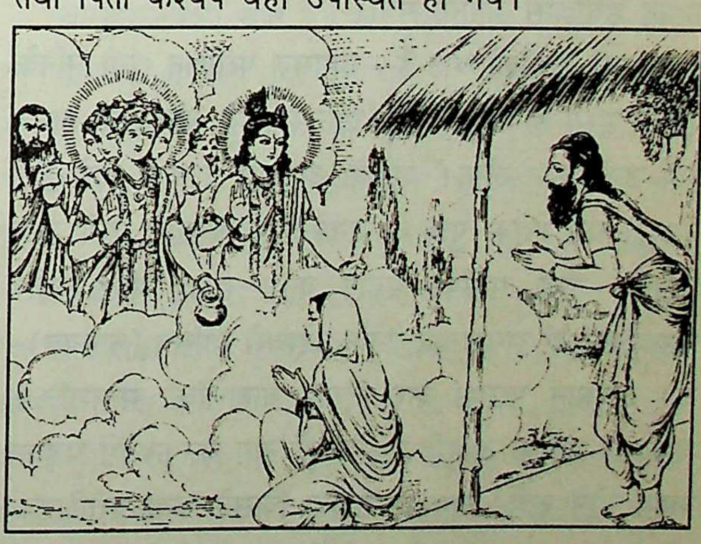

अपने परमाराध्य भगवान् श्रीकृष्ण और ब्रह्मादि देवताओंका दर्शनकर जरत्कारु हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उस समय ब्रह्माजीने मुनिसे कहा—मुने! आपकी ये धर्मपत्नी महान्

साध्वी हैं, अभी संतानसे रहित भी हैं, ऐसी अवस्थामें इनका परित्याग उचित नहीं है। अतः आप इन्हें पुत्रवती होनेका सौभाग्य प्रदान करें।

तब महर्षि जरत्कारुने अपने योगबलसे देवी मनसाको सभी दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न, महान् ज्ञानी, योगी तथा विष्णुभक्त पुत्र प्राप्त करनेका वर प्रदान किया और उन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति करनेका निर्देश देकर वे तपस्या करनेके लिये चले गये।

इधर देवी मनसा अपने गुरु भगवान् शंकरके धाम कैलासपर चली आयीं। वहाँ माता पार्वतीने उन्हें आश्वस्त किया और भगवान् शंकरने उन्हें दिव्य उपदेश दिया। ऐसे ही कुछ समय बाद एक दिन देवी मनसाने सर्वलक्षण-सम्पन्न पुत्रको जन्म दिया। उस दिन मङ्गलवार था। भगवान् शंकरकी कृपासे वह बालक जन्मजात दिव्य योग-ज्ञानसे सम्पन्न था। भगवान् शंकरने उस बालकके सभी संस्कार कराये और सभी विद्याओंको पढ़ाया। साथ ही 'मृत्युञ्जय' विद्याकी दीक्षा भी दे दी। चूँकि पिताके अस्त होनेके अवसरपर बालककी उत्पत्ति हुई थी, इसलिये उसका 'आस्तीक' यह नाम रखा गया। इस समाचारको जानकर महर्षि जरत्कारुको भी परम प्रसन्नता हुई।

देवी मनसा अपने पुत्र आस्तीकको लेकर अपने पिता महर्षि कश्यपके यहाँ चली आयीं। वहाँ इस अवसरपर महान् हर्षोल्लास मनाया गया।

उन्हीं दिनोंकी बात है—महाराज परीक्षित् शृंगी मुनिके शापसे ग्रस्त हो गये थे कि 'एक सप्ताहके बीतते ही तक्षक सर्प उन्हें काट लेगा।' शापके अनुसार तक्षकने उन्हें डँस लिया। परीक्षित्के पुत्र थे जनमेजय! पिताकी ऐसी मृत्यु देखकर उन्हें सर्पोंपर महान् क्रोध हुआ और उन्होंने नागवंशको ही समाप्त कर देनेके उद्देश्यसे सर्पसत्र (नागयज्ञ)-का अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया। ब्राह्मणोंकी मन्त्रशक्तिके प्रभावसे प्रत्येक आहुतिपर सैकड़ों नाग यज्ञकुण्डमें पड़कर भस्म होने लगे। नागराज तक्षक जिसने राजा परीक्षित्को डँसा था, डरकर इन्द्रकी शरणमें जा पहुँचा। ऐसी स्थितिमें ब्राह्मणोंने इन्द्रसहित तक्षककी यज्ञमें आहुति देनेके लिये संकल्प करनेका विचार किया। इन्द्र भयसे अधीर हो उठे। वे भगवती मनसादेवीक शरणमें गये और उनकी स्तुति करते हुए अपनी रक्षाके लि प्रार्थना करने लगे। तब देवी मनसाने योगिश्रेष्ठ अपने पु आस्तीकको राजा जनमेजयके पास भेजा और फिर आस्तीकके महान् प्रयत्नसे जनमेजय सर्पसत्रसे विरत हो गये। ब्राह्मणों यज्ञ पूर्ण किया। इस प्रकार देवी मनसा तथा मुनिव आस्तीकसे नागवंशकी रक्षा हुई। पुनः इन्द्रादि सभी देवताओं भगवती मनसाकी अनेक प्रकारसे स्तुति—प्रार्थना की।

तभीसे सभी नाग देवी मनसाकी विशेष पूजा क लगे। नागराज शेषने इन्हें अपनी बहन बना लिया। इन्हें नागोंकी रक्षाकर उन्हें जीवनदान दिया, इसलिये ये नागम कहलाने लगीं और नागेश्वरी भी इनका नाम पड़ गया त नाग ही इनके वाहन एवं शय्या भी बन गये। ये स्वयं तपस्या करती हैं और तपस्वियोंको उनकी तपस्याका फ भी देती हैं। ये सम्पूर्ण मन्त्रोंकी अधिष्ठात्री देवी ब्रह्मतेजसे इनका विग्रह सदा प्रकाशित रहता है, इसीलि ये 'परब्रह्मस्वरूपा' भी कहलाती हैं। 'गौरी' तथा 'जगद् भी इनका नाम है। भगवान् शिवसे शिक्षा प्राप्त करनेके क ये 'शैवी' कहलाती हैं। भगवान् विष्णुकी अनन्य उपासि होनेसे ये 'वैष्णवी' नामसे अभिहित होती हैं। दारुणसे दारुण विषका संहार करनेमें परम समर्थ होनेके क इनका 'विषहरी' भी एक मुख्य नाम है। इन्हें संजीवनीवि ज्ञान है, अतः 'मृतसंजीवनी' और 'ब्रह्मज्ञानयुता' जाती हैं। आस्तीककी माता हैं, इसलिये 'आस्तीकमा कहलाती हैं, जरत्कारु नाम इन्हें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा था और मानसी उत्पत्तिके कारण इनका 'मानसी' यह ही विशेष प्रसिद्ध हो गया।

भगवती मनसाके नामोंका स्मरण करनेसे सर्प मुक्ति मिलती है तथा सर्पविषसे रक्षा हो जाती है। नागोंका प्रिय भाजन होकर भगवान् विष्णुका सांनिध्य प्राप्त कर लेता है, साथ ही उसके वंशमें नागोंका भय रहता—

'तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च।'

(देवीभागवत ९। ४७।

अतः भगवती मनसा देवीकी कृपा प्राप्त करनेके

उनकी आराधना करनी चाहिये। सामवेदमें उनकी पूजा निरूपित है। वे महान् करुणा एवं दयासे सम्पन्न हैं, भक्त उन्हें विशेष प्रिय हैं। वे सभी प्रकारके अभ्युदयोंको प्राप्त करा देती हैं। उनका स्वरूप भी अत्यन्त ही दिव्य, अलौकिक एवं चिन्मय है, वे विशुद्ध चिन्मय वस्त्रालंकारोंको धारण करती हैं। श्वेत चम्पकके समान उनकी दिव्य वर्णकान्ति है। वे अद्भुत लावण्यसे सम्पन्न हैं, सर्पोंका यज्ञोपवीत एवं हार धारण करती हैं, किंतु ये सर्प भक्तोंके लिये भयहेतु नहीं, अपितु प्रिय भाजन बने रहते हैं। उनका विष भक्तोंके लिये अमृत बन जाता है। देवी मनसा महान् ज्ञानसम्पन्न हैं एवं सिद्ध पुरुषोंकी अधिष्ठात्री हैं। इनकी लीलाएँ अचिन्त्य हैं और उन लीलाओंके स्मरण-ध्यानसे परम कल्याण सध जाता है। ऐसी उन कृपामयी—लीलामयी देवी मनसाको बार-बार नमस्कार है।

देवी पृथ्वीकी लीला-कथा

भगवती वसुन्धरा या पृथ्वी प्रकृति देवीके प्रधान अंशसे प्रकट हैं। ये सम्पूर्ण जगत्की आश्रय हैं। ये न रहें और इनकी कृपा न हो तो सारा चराचर जगत् कहीं भी ठहर नहीं सकता। 'सर्वशस्या' भी इन्हींका नाम है। सबका भरण-पोषण करनेके लिये देवी पृथ्वीका लीलारूप ही यह फैली हुई पृथ्वी है और जो पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवी हैं वे भी 'पृथ्वी' नामसे ही अभिहित होती हैं। विस्तृत रूपसे भूमिके रूपमें जो फैली हुई हैं यह देवी पृथ्वीका पोषणात्मक रूप है, क्योंकि पृथ्वीपर ही सब लोग टिके हुए हैं और पृथ्वीकी शस्य-सम्पदासे ही अन्नरूप प्राण उत्पन्न होता है। इतना ही नहीं, ये पृथ्वीदेवी अपने गर्भमें अनन्त ऐश्वर्योंको रखे हुए हैं, इसीलिये लोग इन्हें 'रत्नगर्भा' और 'रत्नाकरा' भी कहते हैं। ये कश्यपकी पुत्री हैं। उनका एक देवी-रूप है जो भक्तोंके सामने व्यक्त होता है और उनपर अनन्त कल्याणकी वृष्टि करता है। इन पृथ्वीदेवीके श्रीविग्रहका वर्ण स्वच्छ कमलके समान उज्ज्वल है। मुख ऐसा जान पड़ता है, मानो शरत्पूर्णिमाका चन्द्रमा हो। सम्पूर्ण अङ्गोंमें ये चन्दन लगाये रहती हैं। रत्नमय अलंकारोंसे इनकी अनुपम शोभा होती है। समस्त रत्न इनके ऊपर तथा अंदर भी विद्यमान हैं। ये विशुद्ध चिन्मय वस्त्र धारण किये रहती हैं। इनका मुखमण्डल अत्यन्त सौम्य तथा मधुर मन्दस्मितहाससे सुशोभित रहता है। ये भक्तोंको वर देनेके लिये सदा उद्यत रहती हैं। इनका विग्रह पुण्यमय तथा शस्यमय है।

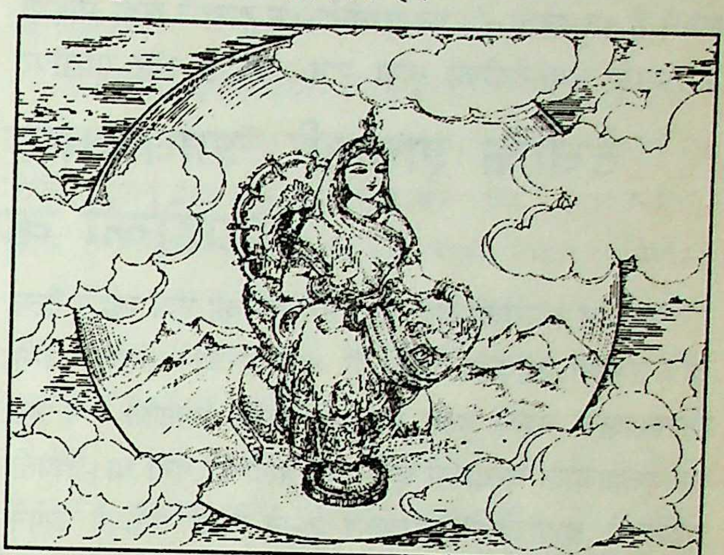

सृष्टिके समय ये प्रकट होकर जलके ऊपर स्थिर हो जाती हैं और प्रलयकालके उपस्थित होनेपर छिपकर जलके भीतर चली जाती हैं, यह इनकी विलक्षण लीला है। कल्प-भेदसे दूसरी कथा यह है कि जलसे ढकी इन पृथ्वीदेवीका मधु-कैटभके मेदसे स्पर्श हुआ इस कारण इनका 'मेदिनी' यह नाम पड़ गया। पृथ्वीदेवीकी आविर्भाव और तिरोधानलीला युगों, मन्वन्तरों तथा कल्प-कल्पान्तरोंसे भिन्न-भिन्न रूपोंमें होती ही आयी है। इस दृष्टिसे इनका अव्यक्त स्वरूप नित्य एवं शाश्वत है।

वाराहकल्पकी बात है। जब हिरण्याक्ष दैत्य पृथ्वीको चुराकर रसातल चला गया, तब भगवान् श्रीहरि हिरण्याक्षको मारकर रसातलसे पृथ्वीको ले आये और उसे जलपर इस प्रकार रख दिया, मानो तालाबमें कमलका पत्ता हो। इसके बाद ब्रह्माजीने उसी पृथ्वीपर मनोहर विश्वकी रचना की। उस समय वाराहरूपधारी श्रीहरिने परम सुन्दरी देवीके वेषमें उपस्थित पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवीका सम्मान किया और वे 'विष्णुप्रिया'के नामसे जानी गयीं। भगवान्ने परम साध्वी पृथ्वीका वेदकी काण्वशाखाके मन्त्रोंद्वारा स्वयं पूजन किया और जगत्पूज्य होनेका उन्हें वर प्रदान किया। तबसे पृथ्वीदेवीकी सभी पूजा करने लगे।

यथासमय पृथ्वीदेवीका मङ्गल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ,

जो ग्रहोंमें प्रतिष्ठित हुआ। इसीलिये वह भौम, भूमिपुत्र या भूमिज कहलाया। इस प्रकार पृथ्वीदेवी अपने एक रूपसे संसारके रूपमें सर्वत्र फैली हुई हैं और दूसरे रूपसे देवी-रूपमें स्थित रहती हैं। इन पृथ्वीदेवीके दानकी बड़ी महिमा है, इससे पृथ्वीदेवीकी कृपा प्राप्त होती है और पृथ्वीपर शास्त्रविपरीत अभद्र व्यवहार अथवा आचरण करने पृथ्वीदेवीको अप्रसन्नता होती है तथा घोर नरकोंकी प्रा होती है, इसलिये पृथ्वीदेवीका सदा सम्मान करना चाहि **'ॐ ह्रीं श्रीं वसुधायै स्वाहा'** यह पृथ्वीदेवीका जपनी मन्त्र है।

देवीके शताक्षी, शाकम्भरी तथा दुर्गा नामवाले लीला-विग्रहोंकी कथाका चिन्तन

प्राचीन समयकी बात है, दुर्गम नामका एक महान् दैत्य था। उसकी आकृति बड़ी ही भयंकर थी। उसका जन्म हिरण्याक्षके वंशमें हुआ था तथा उसके पिताका नाम रुरु था। ब्रह्माजीके वरदानसे दुर्गम महाबली हो गया था। अपनी तपस्यासे ब्रह्माजीको प्रसन्नकर उसने चारों वेदोंको अपने हाथमें कर लिया और भूमण्डलमें अनेक उत्पात शुरू कर दिये। वेदोंके अदृश्य हो जानेपर सारी धार्मिक क्रियाएँ नष्ट हो गयीं, सभी यज्ञ-यागादि बंद हो गये तथा देवताओंको यज्ञभाग मिलना बंद हो गया। मन्त्र-शक्तिके अभावमें ब्राह्मण भी अपने पथसे च्युत हो गये। नियम, धर्म, जप, तप, संध्या, पूजन तथा देवकार्य एवं पितृकार्य सभी कुछ लुप्त-सा हो गया। धर्म-मर्यादाएँ विच्छृंखलित हो गयीं। न कहीं दान होता था, न यज्ञ होता था। इसका परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीपर सौ वर्षोंतकके लिये वर्षा बंद हो गयी। तीनों लोकोंमें हाहाकार मच गया। सब लोग दुःखी हो गये। सबको भूख-प्यासका महान् कष्ट सताने लगा। कुआँ, बावली, सरोवर, सरिताएँ और समुद्र भी जलसे रहित हो गये। समस्त वृक्ष और लताएँ भी सूख गयीं। प्राणी भूख-प्याससे बेचैन होकर मृत्युको प्राप्त होने लगे।

देवताओं तथा भूमण्डलके प्राणियोंकी ऐसी दशा देखकर दुर्गम बहुत खुश था, परंतु इतनेपर भी उसे चैन न था। उसने अमरावतीपर अपना अधिकार जमा लिया। देवता उसके भयसे भाग खड़े हुए, पर जायँ कहाँ, सब ओर तो दुर्गमका उत्पात मचा हुआ था। तब उन्हें शक्तिभूता सनातनी भगवती महेश्वरीका स्मरण आया—**'क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति'**। वे सभी हिमालय पर्वतपर स्थित महेश्वरी योगमायाकी शरणमें पहुँचे। ब्राह्मण लोग भी जगत्-कल्याणार्थ देवीकी उपासना तथा प्रार्थना करनेके लिये उनकी शरणमें आये।

देवता कहने लगे—'महामाये! अपनी सारी प्रजाकी र करो, रक्षा करो! माँ! जैसे आपने शुम्भ, निशुम्भ, धूम्र चण्ड-मुण्ड, मधु-कैटभ तथा महिषासुरका वधकर संसार रक्षा की है, देवताओंका कल्याण किया है, उसी प्र जगदम्बिके! इस दुर्गम नामक दुष्ट दैत्यसे हम सबकी र करो। माँ! घोर अकाल पड़ गया है, हम आपकी शर हैं। हे देवि! आप कोई लीला दिखायें, नहीं तो यह स ब्रह्माण्ड विनष्ट हो जायगा। महेशानि! आप शरणागतों रक्षा करनेवाली हैं, भक्तवत्सला हैं, समस्त जगत्की म हैं। माँ! आपमें अपार करुणा है, आपके एक ही कृ कटाक्षसे प्रलय हो जाता है, आपके पुत्र महान् कष्ट पा हैं। फिर हे मातेश्वरि! आज आप क्यों विलम्ब कर रही हमें दर्शन दें।' ऐसी ही प्रार्थना ब्राह्मणोंने भी की।

अपने पुत्रोंकी यह हालत माँसे देखी न गयी। भला कष्टमें हो तो माँको कैसे सहन हो सकता है, फिर दे जगन्माता हैं, माताओंकी भी माता हैं, उनके कारुण्यकी सीमा? करुणासे उनका हृदय भर आया। वे तत्क्षण ही प्रकट हो गयीं। उस समय त्रिलोकीकी ऐसी व्याकुल स्थिति देखकर कृपामयी माँकी आँखोंसे आँसू छल आये। भला दो आँखोंसे हृदयका दुःख कैसे प्रकट होता सैकड़ों नेत्र बना लिये, इसीलिये आप शताक्षी (शत- कहलायीं। नीले-नीले कमल-जैसी दिव्य आँखोंमें ममता आँसू बनकर उमड़ आयी। इसी रूपमें माताने सबको दर्शन कराये। उनका मुखारविन्द अत्यन्त ही मनोरम अपने चारों हाथोंमें कमल-पुष्प तथा नाना प्रकारके फल लिये हुई थीं। करुणार्द्रहृदया भगवती भुवनेश्वरी कष्ट देखकर लगातार नौ दिन और नौ रात रोती रहीं। अपने सैकड़ो नेत्रोंसे अश्रुजलकी सहस्रों धाराएँ प्रवाहित

धन्य है माँ आपकी करुणामयी लीला! आपकी करुणाका थाह कौन पा सकता है? माँकी अनन्त करुणाको देखकर भगवान् व्यासदेवजीने तो यहाँतक कह दिया कि 'इस पृथ्वीपर महेश्वरी माता शताक्षीकी तरह कोई दयालु हो ही नहीं सकता। वे अपने बच्चोंका कष्ट देखकर नौ दिनोंतक लगातार रोती ही रहीं'—

न शताक्षीसमा काचिद् दयालुर्भुवि देवता।
दृष्ट्वारुदत् प्रजास्तप्ता या नवाहं महेश्वरी॥

(शिवपु० उमा० ५०। ५२)

देवी शताक्षीके सैकड़ों नेत्रोंसे जो अश्रुजलकी सहस्रों धाराएँ प्रवाहित हुईं, उससे नौ दिनोंतक त्रिलोकीमें महान् वृष्टि होती रही। इस अथाह जलसे पृथ्वीकी सारी जलन मिट गयी। सभी प्राणी तृप्त हो गये। सरिताओं और समुद्रोंमें अगाध जल भर गया। सम्पूर्ण औषधियाँ भी तृप्त हो गयीं। उस समय भगवतीने अनेक प्रकारके शाक तथा स्वादिष्ट फल देवताओं तथा अन्य सभीको अपने हाथसे बाँटे तथा खानेके लिये दिये और भाँति-भाँतिके अन्न सामने उपस्थित कर दिये। उन्होंने गौओंके लिये सुन्दर हरी-हरी घास और दूसरे प्राणियोंके लिये उनके योग्य भोजन दिया।

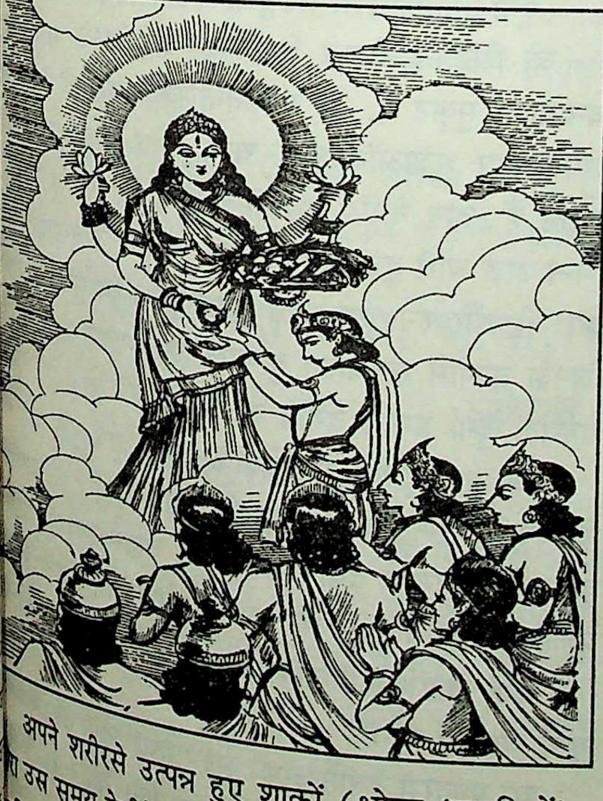

अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाकों (भोज्य-सामग्रियों)- उस समय देवीने समस्त लोकोंका भरण-पोषण किया, सलिये देवीका 'शाकम्भरी' यह नाम विख्यात हुआ।

देवी शाकम्भरीकी कृपासे देवता, ब्राह्मण और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड संतुष्ट हो गया। सबकी भूख-प्यास मिट गयी, उन सभीको अपनी माताके दर्शन हो गये। जीवलोक हर्षमें भर गया।

उस समय देवीने पूछा—'देवताओ! अब तुम्हारा कौन-सा कार्य मैं सिद्ध करूँ।' सभी देवता समवेत स्वरमें बोले—'देवि! आपने सब लोगोंको संतुष्ट कर दिया है। अब कृपा करके दुर्गमासुरके द्वारा अपहृत वेद लाकर हमें दे दीजिये।'

देवीने 'तथास्तु' कहकर कहा—'देवताओ! आप लोग अपने-अपने स्थानको जायँ, मैं शीघ्र ही उस दुर्गम दैत्यका वधकर वेदोंको ले आऊँगी।'

यह सुनकर देवता बड़े प्रसन्न हुए और वे देवीको प्रणामकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये। सब ओरसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। तीनों लोकोंमें महान् कोलाहल मच गया। इधर अपने दूतोंसे दुर्गम दैत्यने सारी स्थितिको समझ लिया। उसके विपक्षी देवता फिर सुखी हो गये हैं, यह देखकर उस दैत्यने सेना लेकर न केवल स्वर्गलोकको बल्कि पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्षलोकको भी घेर लिया। एक बार पुनः देवता संकटमें पड़ गये। उन्होंने पुनः मातासे रक्षाकी गुहार लगायी। माँ तो सब देख ही रही थीं, वे इसी अवसरकी प्रतीक्षामें थीं।

शीघ्र ही भगवतीने अपने दिव्य तेजोमण्डलसे तीनों लोकोंको व्याप्तकर एक घेरा बना डाला और देवता, मनुष्य आदि उस घेरेमें सुरक्षित हो गये। स्वयं देवी घेरेसे बाहर आकर दुर्गमके सामने खड़ी हो गयीं। दुर्गम भी अपनी सेनाके साथ युद्धके लिये संनद्ध था। क्षणभरमें ही लड़ाई ठन गयी। दोनों ओरसे दिव्य बाणोंकी वर्षा होने लगी। इसी बीच देवीके श्रीविग्रहसे काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, वगला, धूम्रा, त्रिपुरसुन्दरी तथा मातङ्गी नामवाली दस महाविद्याएँ उत्पन्न हुईं, जो अस्त्र-शस्त्र लिये हुई थीं। तत्पश्चात् दिव्य मूर्तिवाली असंख्य मातृकाएँ उत्पन्न हुईं। उन सबने अपने मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण कर रखा था तथा वे दिव्य आयुधोंसे सुसज्जित थीं। उन मातृगणोंके साथ दैत्योंका भयंकर युद्ध हुआ। मातृकाओंने दुर्गम दैत्यकी सेनाको तहस-नहस कर दिया। दस दिन यह युद्ध चलता रहा। दैत्य-सेनाका विनाश देखकर ग्यारहवें दिन स्वयं दुर्गम सामने आ डटा। वह लाल रंगकी माला

और लाल वस्त्र धारण किये हुए था। एक विशाल रथमें बैठकर वह महाबली दैत्य क्रोधके वशीभूत हो देवीपर बाणोंकी बौछार करने लगा। इधर देवी भी रथपर आरूढ हो गयीं। उन्होंने भी बाणोंका कौशल दिखाना प्रारम्भ किया। युद्ध तो भयंकर हुआ, किंतु भगवती कालरात्रिके सामने दुर्गम कबतक टिका रहता? देवीने एक ही साथ पंद्रह बाण छोड़े। चार बाणोंसे रथके चारों घोड़े गिर पड़े। एक बाणने सारथीका प्राण ले लिया। दो बाणोंने दुर्गमके दोनों नेत्रोंको तथा दो बाणोंने उसकी भुजाओंको बींध डाला।

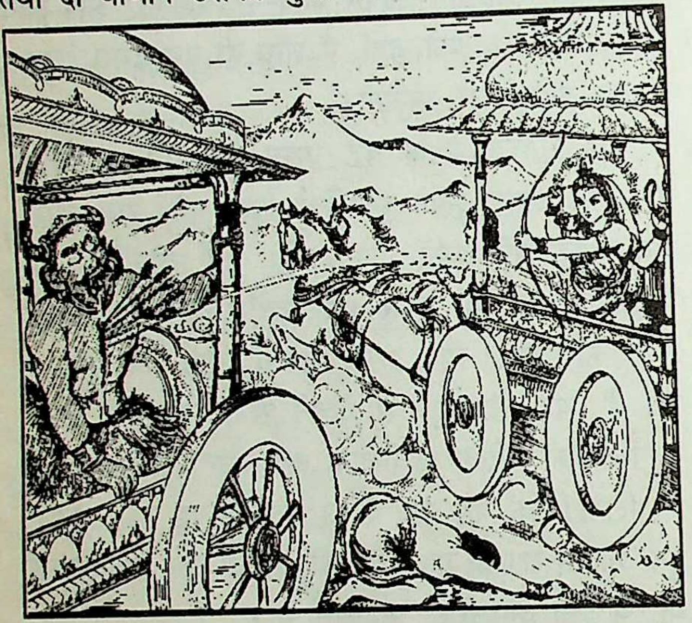

एक बाणने रथकी ध्वजाको काट डाला। शेष पाँच तीक्ष्ण बाण दुर्गमकी छातीमें जाकर घुस गये। रुधिर वमन करता हुआ वह दैत्य परमेश्वरीके सामने ही अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठा। उसके शरीरसे एक दिव्य तेज निकला जो भगवतीके शरीरमें प्रविष्ट हो गया। देवीके हाथसे उसका उद्धार हो गया। देवी भुवनेश्वरीने दुर्गम दैत्यका वध किया था, इसीलिये वे 'दुर्गा' इस नामसे प्रसिद्ध हो गयीं। स्वयं देवीने भी अपने इस नामकी प्रसिद्धिके विषयमें कहा है—

तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम्॥
दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ४९-५०)

उन्होंने वेदोंको पुनः देवताओं तथा ब्राह्मणोंको समर्पित कर दिया। उस दैत्यके मर जानेपर त्रिलोकीका संकट दूर हो गया। सब ओर प्रसन्नता छा गयी। माँकी कृपासे अभिभूत हो सभी अनेक प्रकारसे देवी दुर्गाकी स्तुति-प्रार्थना करने लगे। पुनः देवीने अनेक आशीर्वाद दिये और सभीको निर्भय बना दिया।

मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत तेरह अध्यायोंमें जो दें माहात्म्य वर्णित है, वह सब भगवती दुर्गाकी ही महि पर्यवसित है। वहाँ देवता भगवतीकी स्तुति करते हुए क हैं—'माँ दुर्गे! आप स्मरण करनेपर सब प्राणियोंका भय लेती हैं और स्वस्थ पुरुषोंद्वारा चिन्तन करनेपर उन्हें कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुःख-दरिद्रता और हरनेवाली देवि! आपके सिवा दूसरी कौन है, जिसका सबका उपकार करनेके लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो।

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ४।

भगवतीके स्वरूपका वर्णन

ध्यानम्—

ॐ सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला॥

जो सिंहकी पीठपर विराजमान हैं, जिनके मस्त चन्द्रमाका मुकुट है, जो मरकतमणिके समान कान्ति अपनी चार भुजाओंमें शंख, चक्र, धनुष और बाण करती हैं, तीन नेत्रोंसे सुशोभित होती हैं, जिनके भिन्न अङ्ग बाँधे हुए बाजूबंद, हार, कंकण, खनखना करधनी और रुन-झुन करते हुए नूपुरोंसे विभूषित हैं जिनके कानोंमें रत्नजटित कुण्डल झिलमिलाते रहते हैं भगवती दुर्गा हमारी दुर्गति दूर करनेवाली हों।

एक बार सभी देवता देवीके समीप गये और बड़े विनयपूर्वक पूछने लगे—'हे महादेवि! आप कौन हैं? इसे ब कृपा करें।' इसपर देवीने कहा—'मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ। प्रकृतिपुरुषात्मक सद्रूप और असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ

'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं शून्यं चाशून्यं च॥'

इस प्रकारसे देवीने अपने सूक्ष्म तथा स्थूल और सूक्ष्मसे भी परे अपने परात्पर स्वरूपका वर्णन करते बताया कि 'जिनसे और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, वे

नामसे प्रसिद्ध हैं'—

यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता॥

(दुर्गा० देव्यथर्वशीर्ष २४)

भगवती शाकम्भरी नामवाले जिस लीलास्वरूपका पूर्वमें वर्णन हुआ है, वे ही शाकम्भरी देवी शताक्षी तथा दुर्गा कही गयी हैं—

शाकम्भरी शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता॥[1]

(दुर्गा, मूर्तिरहस्य १५)

दुर्गासप्तशतीमें देवताओंकी प्रार्थनापर देवीने उन्हें बताया कि 'जब पृथ्वीपर सौ वर्षोंके लिये वर्षा रुक जायगी और पानीका अभाव हो जायगा, उस समय मुनियोंके स्तवन करनेपर मैं पृथ्वीपर अयोनिजा रूपमें प्रकट होऊँगी और सौ नेत्रोंसे मुनियोंको देखूँगी, अतः मनुष्य 'शताक्षी'-नामसे मेरा कीर्तन करेंगे'—

भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा॥
ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ४६-४७)

इसी प्रकार अपने शाकम्भरी नामवाले लीला-विग्रहके विषयमें देवीने बताया—

'देवताओ! उस समय मैं अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाकोंद्वारा समस्त संसारका भरण-पोषण करूँगी। जबतक वर्षा नहीं होगी, तबतक वे शाक ही सबके प्राणोंकी रक्षा करेंगे। ऐसा करनेके कारण पृथ्वीपर 'शाकम्भरी' के नामसे मेरी ख्याति होगी—

ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः॥
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि।

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ४८-४९)

देवी शाकम्भरीके शरीरकी कान्ति नीले रंगकी है। उनके नेत्र नील कमलके समान हैं। नाभि गम्भीर है तथा त्रिवलीसे विभूषित कटिभाग सूक्ष्म है। उनका वक्षःस्थल उन्नत एवं सुडौल है, वे परमेश्वरी कमलमें निवास करनेवाली हैं और हाथोंमें बाणोंसे भरी मुष्टि, कमल, शाकसमूह तथा प्रकाशमान धनुष धारण करती हैं। वह शाकसमूह अनन्त मनोवाञ्छित रसोंसे युक्त, क्षुधा, तृषा (प्यास) और मृत्युके भयको नष्ट करनेवाला तथा फूल, पल्लव, मूल एवं फलों आदिसे सम्पन्न है। वे शोकसे रहित, दुष्टोंका दमन करनेवाली तथा पाप और विपत्तिको शान्त करनेवाली हैं। उमा, गौरी, सती, चण्डी, कालिका और पार्वती भी वे ही हैं। जो मनुष्य शाकम्भरीदेवीकी स्तुति, ध्यान, जप, पूजा और वन्दन करता है, वह शीघ्र ही अन्न, पान एवं अमृत-रूप अक्षय फलका भागी होता है—

शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायञ्जपन् सम्पूजयन्नमन्।
अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृतं फलम्॥

(दुर्गा, मूर्तिरहस्य १७)

देवी रक्तदन्तिका, भीमा, भ्रामरी एवं नन्दा-रूप विग्रहोंके लीला-आख्यान

देवी रक्तदन्तिकाकी लीला-कथा

देवी भुवनेश्वरीने विविध प्रकारकी अवतार-लीलाओंके द्वारा दुष्ट दैत्योंका वध करके संसारको विनाशसे बचाया। वे देवी आर्तजनोंका कष्ट दूर करनेवाली हैं। शुम्भ आदि महान् दैत्योंसे त्राण पानेके बाद देवता लोग भगवती कात्यायनीकी स्तुति करते हुए कहने लगे—

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ३)

शरणागतकी पीड़ा दूर करनेवाली देवि! हमपर प्रसन्न

---

[1] १-शाकम्भरी, शताक्षी और दुर्गा—इन तीनों स्वरूपोंकी अभिन्नताका वर्णन शिवपुराण (उमासंहिता अ० ५०) तथा देवी-भागवत (७। २८)-में भी हुआ है।

होओ। सम्पूर्ण जगत्की माता! प्रसन्न होओ। विश्वेश्वरि! विश्वकी रक्षा करो। देवि! तुम्हीं चराचर-जगत्की अधीश्वरी हो।

हे देवि! तुम्हीं इस जगत्का एकमात्र आधार हो। सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। तुमने ही इस विश्वको व्याप्त कर रखा है। नारायणि! तुम सब प्रकारका मङ्गल प्रदान करनेवाली मङ्गलमयी हो, कल्याणदायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली एवं गौरी हो, तुम्हें नमस्कार है—

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। १०)

हे देवि! जो लोग तुम्हारी शरणमें जा चुके हैं, उनपर विपत्ति तो आती ही नहीं। तुम्हारी शरणमें गये हुए मनुष्य दूसरोंको शरण देनेवाले हो जाते हैं—

त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। २९)

हे जगन्मातः! हे अम्बिके! तुम अपने रूपको अनेक भागोंमें विभक्त कर नाना प्रकारके लीला-रूप धारण करती हो, वैसा क्या अन्य कोई कर सकता है?

रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं
कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ३०)

इसलिये हे परमेश्वरि! आप सबके लिये वरदान देनेवाली होओ—

'लोकानां वरदा भव॥'

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ३५)

स्तुतिसे प्रसन्न होकर देवीने अनेक लीला-रूपोंमें आविर्भूत होकर दुष्टोंसे त्राण दिलानेका वर देवताओंको प्रदान किया। उस समय देवीने अपने रक्तदन्तिका नामक लीला-अवतारके विषयमें बताया—

अत्यन्त भयंकर-रूपसे पृथ्वीपर अवतार लेकर मैं वैप्रचित्त नामवाले दानवोंका वध करूँगी। उन भयंकर महादैत्योंको भक्षण करते समय मेरे दाँत दाडिम (अनार)-के फूलकी भाँति लाल हो जायँगे, तब स्वर्गमें देवता और मर्त्यलोक मनुष्य सदा मेरी स्तुति करते हुए मुझे 'रक्तदन्तिका' कहेंगे-

स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम्॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११।४

देवी रक्तदन्तिकाका स्वरूप यद्यपि बहुत भयंकर किंतु वह केवल दुष्टोंके लिये ही है। भक्तोंके लिये उनका सौम्य, शान्त एवं मनोरम लीला-रूप ही प्रकट हो है। वे सब प्रकारके भयोंको दूर करनेवाली हैं। वे ला रंगके वस्त्र धारण करती हैं। उनके शरीरका रंग भी ला ही है और अङ्गोंके समस्त आभूषण भी लाल रंगके उनके अस्त्र-शस्त्र, नेत्र, सिरके बाल, तीखे नख दाँत—सभी रक्तवर्णके हैं। इसीलिये उन्हें रक्ताम्बरा, रक्तव रक्तकेशा, रक्तायुधा, रक्तनेत्रा, रक्तदशना तथा रक्तदन्ति आदि नामोंसे कहा जाता है। जैसे पतिव्रता स्त्री अ पतिके प्रति अनुराग रखती है, उसी प्रकार देवी रक्तदन्ति अपने भक्तोंपर स्नेह रखते हुए उसकी सेवा करती हैं-

'पतिं नारीवानुरक्ता देवी भक्तं भजेज्जनम्॥'

(दुर्गा० मूर्तिरहस्य

तथा—

तं सा परिचरेद् देवी पतिं प्रियमिवाङ्गना॥

(दुर्गा० मूर्तिरहस्य

देवी रक्तदन्तिकाका आकार वसुधाके समान वि है। वे सबकी मातृरूपा हैं। सभी रक्तदन्तिका माताके हैं। इसीलिये माता अपने पुत्रोंको अपना अमृतके आनन्ददायी दुग्ध पिलाकर सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति हैं। वे अपने चार भुजाओंमें खड्ग, पानपात्र, मुसल और धारण करती हैं। रक्तचामुण्डा और योगेश्वरी भी इन्हींको है। इन्होंने सम्पूर्ण चराचर-जगत्को व्याप्त कर रखा है

जो भक्तिपूर्वक देवी रक्तदन्तिकाका पूजन, ध्यान, वन्दन करता है, वह भी चराचर-जगत्में व्या जाता है—

'इमां यः पूजयेद्भक्त्या स व्याप्नोति चराचरम्

(दुर्गा० मूर्तिरह

देवी भीमाका आख्यान

देवी भगवतीने हिमालयपर रहनेवाले मुनियोंके

करनेके लिये अपना 'भीम' नामक लीला-रूप धारण किया और राक्षसोंका वध किया। उस समय मुनियोंने भक्तिपूर्वक बड़े ही विनम्र-भावसे देवीकी स्तुति की। 'भीम'-रूप धारण करनेके कारण देवीका वह लीला-विग्रह 'भीमा' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। अपने लीला-रूपके विषयमें देवीने देवताओंसे कहा—

पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले॥
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात्।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः॥
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।
(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ५०—५२)

भीमादेवीका वर्ण नीला है। उनकी दाढ़ें और दाँत चमकते रहते हैं। उनके नेत्र बड़े-बड़े हैं। वे अपने हाथोंमें चन्द्रहास नामक खड्ग, डमरू, मस्तक और पानपात्र धारण करती हैं, वे ही एकवीरा, कालरात्रि तथा कामदा भी कहलाती हैं।

भगवती भ्रामरीदेवीकी लीलाएँ

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायिका भगवती जगदम्बाकी लीलाएँ अचिन्त्य हैं, मङ्गलकारिणी हैं तथा आनन्ददायिनी हैं। उनके अनेक लीला-विग्रहोंमें भ्रामरी भी एक मुख्य विग्रह है। भ्रामरीदेवीकी कथा इस प्रकार है—

पूर्व समयकी बात है, अरुण नामका एक पराक्रमी दैत्य था। देवताओंसे द्वेष रखनेवाला वह दानव पातालमें रहता था। उसके मनमें देवताओंको जीतनेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी, अतः वह हिमालयपर जाकर ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिये कठोर तप करने लगा। कठिन नियमोंका पालन करते हुए उसे हजारों वर्ष व्यतीत हो गये। तपस्याके प्रभावसे उसके शरीरसे प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाएँ निकलने लगीं, जिससे देवलोकके देवता भी घबरा उठे। वे समझ ही न सके कि यह अकस्मात् क्या हो गया। सभी देवता ब्रह्माजीके पास गये और सारा वृत्तान्त उन्हें निवेदित किया। देवताओंकी बात सुनकर ब्रह्माजी गायत्रीदेवीको साथ ले हंसपर बैठे और उस स्थानपर गये जहाँ दानव अरुण तपमें स्थित था। उसकी गायत्री-उपासना बड़ी तीव्र थी। उसकी तपस्यासे प्रसन्न हो ब्रह्माजीने वर माँगनेके लिये कहा। देवी गायत्री तथा ब्रह्माजीका आकाशमण्डलमें दर्शन करके दानव अरुण अत्यन्त प्रसन्न हो गया। वह वहीं भूमिपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम करने लगा—

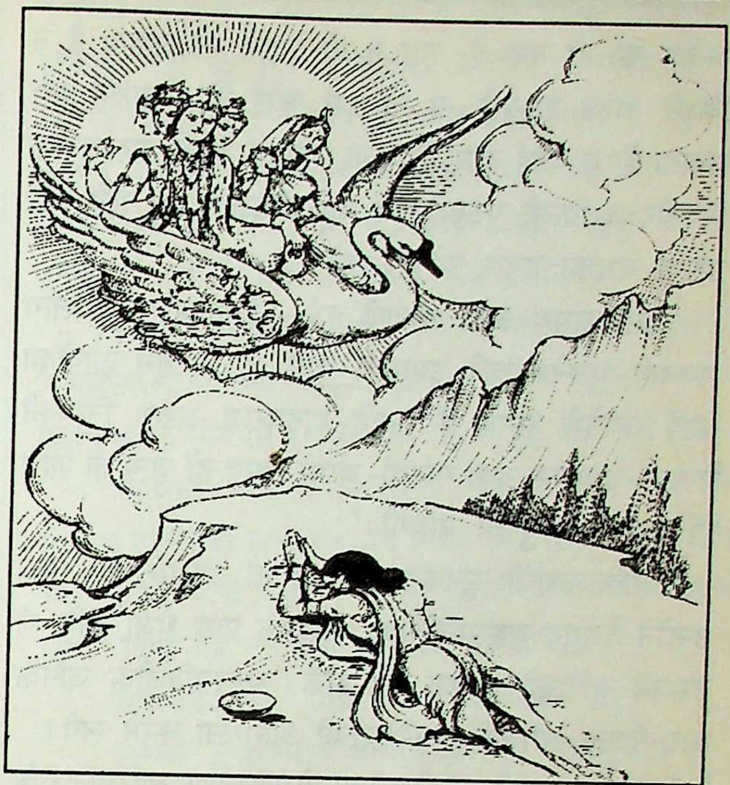

उसने अनेक प्रकारसे स्तुति की और अमर होनेका वर माँगा। परंतु ब्रह्माजीने कहा—'वत्स! संसारमें जन्म लेनेवाला अवश्य मृत्युको प्राप्त होगा, अतः तुम कोई दूसरा वर माँगो।' तब अरुण बोला—'प्रभो! यदि ऐसी बात है तो मुझे यह वर देनेकी कृपा करें कि—'मैं न युद्धमें मरूँ, न किसी अस्त्र-शस्त्रसे मरूँ, न किसी भी स्त्री या पुरुषसे ही मेरी मृत्यु हो और दो पैर तथा चार पैरोंवाला कोई भी प्राणी मुझे न मार सके। साथ ही मुझे ऐसा बल दीजिये कि मैं देवताओंपर विजय प्राप्त कर सकूँ।'

'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और इधर अरुण दानव विलक्षण वर प्राप्तकर उन्मत्त हो गया। उसने पातालसे सभी दानवोंको बुलाकर विशाल सेना तैयार कर ली और स्वर्गलोकपर चढ़ाई कर दी। वरके प्रभावसे देवता पराजित हो गये। देवलोकपर दानव अरुणका अधिकार हो गया। वह अपनी मायासे अनेक प्रकारके रूप बना लेता था। उसने तपस्याके प्रभावसे इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, यम, अग्नि आदि देवताओंका पृथक्-पृथक् रूप बना लिया और सबपर शासन करने लगा।

देवता भागकर अशरणशरण आशुतोष भगवान् शंकरकी शरणमें गये और अपना कष्ट उन्हें निवेदित किया। उस समय भगवान् शंकर बड़े विचारमें पड़ गये। वे सोचने लगे कि ब्रह्माजीके द्वारा प्राप्त विचित्र वरदानसे यह दानव

अजेय-सा हो गया है, यह न तो युद्धमें मर सकता है न किसी अस्त्र-शस्त्रसे, न तो इसे कोई दो पैरवाला मार सकता है न कोई चार पैरवाला, यह न स्त्रीसे मर सकता है और न किसी पुरुषसे। वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये और उसके वधका उपाय सोचने लगे।

उसी समय आकाशवाणी हुई—'देवताओ! तुम लोग भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना करो, वे ही तुम लोगोंका कार्य करनेमें समर्थ हैं। यदि दानवराज अरुण नित्यकी गायत्री-उपासना तथा गायत्री-जपसे विरत हो जाय तो शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जायगी।'

आकाशवाणी सुनकर सभी देवता आश्वस्त हो गये। उन्होंने देवगुरु बृहस्पतिजीको अरुणके पास भेजा ताकि वे उसकी बुद्धिको मोहित कर सकें। बृहस्पतिजीके जानेके बाद देवता भगवती भुवनेश्वरीकी आराधना करने लगे।

इधर भगवती भुवनेश्वरीकी प्रेरणा तथा बृहस्पतिजीके उद्योगसे अरुणने गायत्री-जप करना छोड़ दिया। गायत्री-जपके परित्याग करते ही उसका शरीर निस्तेज हो गया। अपना कार्य सफल हुआ जान बृहस्पति अमरावती लौट आये और इन्द्रादि देवताओंको सारा समाचार बताया। पुनः सभी देवता देवीकी स्तुति करने लगे।

उनकी आराधनासे आदिशक्ति जगन्माता प्रसन्न हो गयीं और विलक्षण लीला-विग्रह धारणकर देवताओंके समक्ष प्रकट हो गयीं। उनके श्रीविग्रहसे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। असंख्य कामदेवोंसे भी सुन्दर उनका सौन्दर्य था। उन्होंने रमणीय वस्त्राभूषणोंको धारण कर रखा था और वे नाना प्रकारके भ्रमरोंसे युक्त पुष्पोंकी मालासे शोभायमान थीं। वे चारों ओरसे असंख्य भ्रमरोंसे घिरी हुई थीं। भ्रमर 'ह्रीं' इस शब्दको गुनगुना रहे थे। उनकी मुट्ठी भ्रमरोंसे भरी हुई थी।[1]

उन देवीका दर्शनकर देवता पुनः स्तुति करते हुए कहने लगे—सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली भगवती महाविद्ये! आपको नमस्कार है। भगवती दुर्गे! आप ज्योतिःस्वरूपिणी एवं भक्तिसे प्राप्य हैं, आपको हमारा नमस्कार है। नीलसरस्वती देवि! उग्रतारा, त्रिपुरसुन्दरी, पीताम्बरा, भैर मातंगी, शाकम्भरी, शिवा, गायत्री, सरस्वती तथा स्वा स्वधा—ये सब आपके ही नाम हैं। हे दयास्वरूपिणी दे आपने शुम्भ-निशुम्भका दलन किया है, रक्तबीज वृत्रासुर तथा धूम्रलोचन आदि राक्षसोंको मारकर संसा विनाशसे बचाया है। हे दयामूर्ते! धर्ममूर्ते! आपको ह नमस्कार है। हे देवि! भ्रमरोंसे वेष्टित होनेके कारण आ 'भ्रामरी' नामसे यह लीला-विग्रह धारण किया है, भ्रामरीदेवि! आपके इस लीलारूपको हम नित्य प्र करते हैं। बार-बार नमस्कार करते हैं—

भ्रमरैर्वेष्टिता यस्माद् भ्रामरी या ततः स्मृता।
तस्यै देव्यै नमो नित्यं नित्यमेव नमो नमः॥

(देवीभागवत १०।१३।

इस प्रकार बार-बार प्रणाम करते हुए देवता ब्रह्माजीके वरसे अजेय बने हुए अरुण दैत्यसे प्राप्त पी छुटकारा दिलानेकी भ्रामरीदेवीसे प्रार्थना की।

करुणामयी माँ भ्रामरीदेवी बोलीं—'देवताओ! सभी निर्भय हो जायँ। ब्रह्माजीके वरदानकी रक्षा क लिये मैंने यह भ्रामरी-रूप धारण किया है। अरुण दा वर माँगा है कि मैं न तो दो पैरवालोंसे मरूँ और न पैरवालोंसे, मेरा यह भ्रमररूप छः पैरोंवाला है, इस भ्रमर षट्पद भी कहलाता है। उसने वर माँगा है कि युद्धमें मरूँ और न किसी अस्त्र-शस्त्रसे। इसीलिये मेरा भ्रमररूप उससे न तो युद्ध करेगा और न अस्त्र-शस्त्रका करेगा। साथ ही उसने मनुष्य, देवता आदि किसीसे मरनेका वर माँगा है, मेरा यह भ्रमररूप न तो मनुष्य है न देवता ही। देवगणो! इसीलिये मैंने यह भ्रामरी-रूप किया है। अब आप लोग मेरी लीला देखिये।' ऐसा क भ्रामरीदेवीने अपने हस्तगत भ्रमरोंको तथा अपने चारों स्थित भ्रमरोंको भी प्रेरित किया, असंख्य भ्रमर 'ह्रीं-ह्रीं' उस दिशामें चल पड़े जहाँ अरुण दानव स्थित था।

---

[1] १-मार्कण्डेयपुराणमें बताया गया है कि भ्रामरीदेवीकी कान्ति विचित्र (अनेक रंगकी) है। वे अपने तेजोमण्डलके कारण दुर्धर्ष देती हैं। उनका अङ्गराग भी अनेक रंगका चित्र-विचित्र आभूषणोंसे विभूषित है। चित्रभ्रमरपाणि और महामारी आदि नामोंसे उनकी म गान किया जाता है—

तेजोमण्डलदुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत्। चित्रानुलेपना देवी चित्राभरणभूषिता॥
चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीति गीयते। (श्रीदुर्गासप्तशती, मूर्तिरहस्य

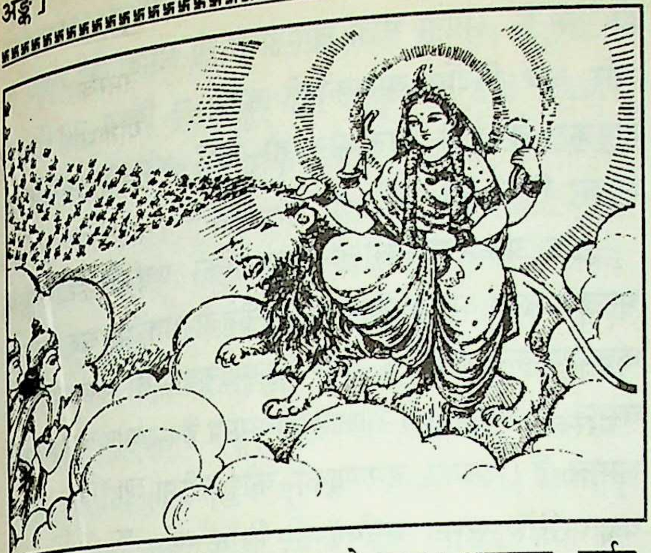

उन भ्रमरोंसे त्रैलोक्य व्याप्त हो गया। आकाश, पर्वत, शृंग, वृक्ष, वन जहाँ-तहाँ भ्रमर-ही-भ्रमर दृष्टिगोचर होने लगे। भ्रमरोंके कारण सूर्य छिप गया। चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार छा गया। यह भ्रामरीदेवीकी विचित्र लीला थी। बड़े ही वेगसे उड़नेवाले उन भ्रमरोंने दैत्योंकी छाती छेद डाली। वे दैत्योंके शरीरमें चिपक गये और उन्हें काटने लगे। तीव्र वेदनासे दैत्य छटपटाने लगे। किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे भ्रमरोंका निवारण करना सम्भव नहीं था। अरुण दैत्यने बहुत प्रयत्न किया, किंतु वह भी असमर्थ ही रहा। थोड़े ही समयमें जो दैत्य जहाँ था वहीं भ्रमरोंके काटनेसे मरकर गिर पड़ा। अरुण दानवका भी यही हाल रहा। उसके सभी अस्त्र-शस्त्र विफल रहे। देवीने भ्रामरी-रूप धारणकर ऐसी लीला दिखायी कि ब्रह्माजीके वरदानकी भी रक्षा हो गयी और अरुण दैत्य तथा उसकी समूची दानवी सेनाका संहार भी हो गया।

इस प्रकारका अद्भुत कार्य करके वे सभी भ्रमर देवीके पास लौट आये और उन्हींमें प्रतिष्ठित हो गये तथा कुछ देवीके आभूषण रूपमें स्थित हो गये। देवता जय-जयकार करने लगे। ऐसी आश्चर्यजनक लीला देखकर वे कहने लगे—'भगवती महामायाके लिये कौन-सा कार्य दुष्कर है।' पुनः अनेक प्रकारसे स्तुतिकर तथा देवीका आशीर्वाद प्राप्तकर वे देवगण यथास्थान प्रस्थान कर गये। संसारके सभी प्राणी सुखी हो गये। और देवीने भी अपनी भ्रामरी-लीलाका संवरण कर लिया।

देवी नन्दा (विन्ध्यवासिनी)-की लीला-कथा

देवी नन्दाकी महिमा और कृपा-लीला विलक्षण ही है। इनका कृपामय विग्रह भक्तोंके लिये परम आराध्य है। देवी नन्दाका ही दूसरा नाम नन्दजा है और इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम है विन्ध्यवासिनी। सबको आनन्द प्रदान करनेवाली होनेसे ये 'नन्दा', नन्दगोपकी कन्या होनेके कारण 'नन्दजा' और विन्ध्याचलपर निवास करनेके कारण 'विन्ध्यवासिनी' कहलाती हैं। इनके आविर्भावकी अनेक लीला-कथाएँ हैं, जिनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—

मार्कण्डेयपुराण जो भगवती पराम्बाकी महिमा एवं आराधनामें पर्यवसित है, उसके देवी-माहात्म्यमें स्वयं भगवती अपने आविर्भावके विषयमें देवताओंको बताती हुई कहती हैं कि—

'देवताओ! वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें युगमें शुम्भ और निशुम्भ नामक दो अन्य महादैत्य उत्पन्न होंगे, तब मैं नन्दगोपके घरमें उनकी पत्नी यशोदाके गर्भसे अवतीर्ण हो विन्ध्याचलमें जाकर रहूँगी और उन दोनों असुरोंका नाश करूँगी'—

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ॥
नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ४१-४२)

भगवती नन्दाके श्रीअङ्गोंकी कान्ति कनकके समान उत्तम है। वे सुनहरे रंगके सुन्दर वस्त्र धारण करती हैं। उनकी आभा सुवर्णके तुल्य है तथा वे सुवर्णके ही उत्तम आभूषण धारण करती हैं। उनकी चारों भुजाएँ कमल, अंकुश, पाश और शंखसे सुशोभित रहती हैं। वे इन्दिरा, कमला, लक्ष्मी, श्री तथा रुक्माम्बुजासना (सुवर्णमय कमलके आसनपर विराजमान) आदि नामोंसे पुकारी जाती हैं।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित है कि कंसके भयसे त्रस्त वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णको लेकर नन्दगोपके घरमें गये। वहाँ बालकको यशोदाके समीप सुलाकर देवी यशोदाकी कोखसे आविर्भूत कन्याको लेकर मथुरामें चले आये और पूर्व-प्रतिज्ञानुसार कंसको सौंप दिया। उस समय क्रूर कंस उस कन्याको जब मारनेके लिये उद्यत हुआ, तब वह दिव्य कन्या उसके हाथसे छूटकर आकाशमें विराट्‌रूपमें स्थित हो गयी। विराट्‌रूपा उन देवी योगमायाने दिव्य वस्त्रालंकारोंको धारण कर रखा था। उनके आभूषण रत्नोंसे जटित थे। उनकी आठ भुजाएँ थीं, जिनमें वे धनुष, बाण, त्रिशूल, ढाल, तलवार, शंख, चक्र तथा गदा धारण की हुई थीं। आकाशमें वे एक दिव्य तेजोमण्डलसे व्याप्त थीं, जिससे सभी दिशाएँ प्रकाशमान हो

रही थीं। समस्त देवता, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर एवं ऋषि-महर्षि उनकी स्तुति करते हुए उनपर पुष्पवृष्टि कर रहे थे। उनका वह विराट्‌रूप वसुदेव-देवकीके लिये तो अत्यन्त सौम्य तथा वरद था, किंतु कंसको वे साक्षात् कालरूपा ही दिखलायी पड़ रही थीं।

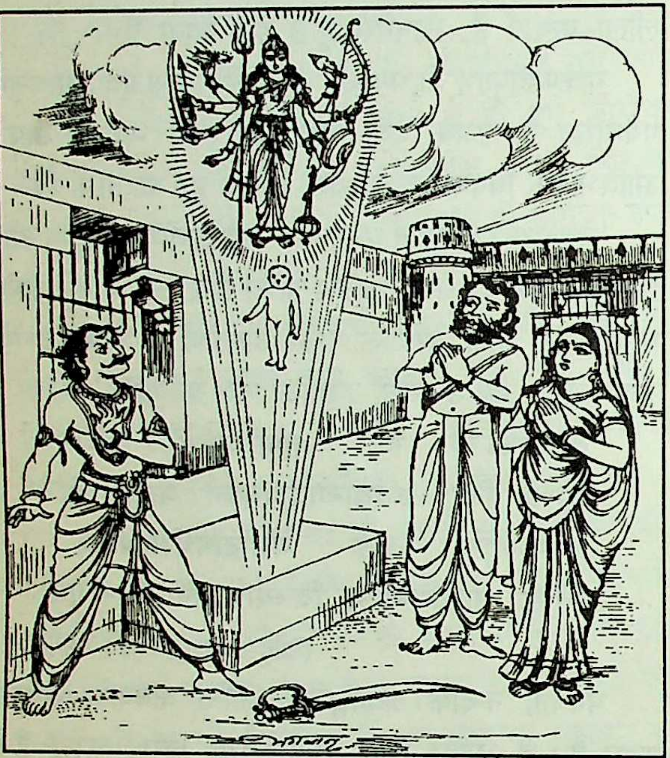

उस योगमायाने आकाशवाणीमें कहा—'अरे मूर्ख कंस! तुम मुझे क्या मारेगा? तुम्हें मारनेवाला तो दूसरी जगह पैदा हो गया है, अपना भला चाहता है तो भगवान्‌की शरण और अब निर्दोष बालकोंकी हत्या न किया कर।' कहकर वे देवी अन्तर्धान हो गयीं और विन्ध्यपर्वत जाकर स्थित हो गयीं।

इस प्रकारकी लीला-कथाओंको प्रदर्शित करनेवाली भगवती नन्दा अथवा विन्ध्यवासिनीदेवी भक्तोंका सब प्रकार कल्याण करनेवाली हैं, इन्हें 'कृष्णानुजा' भी कहा गया है। वस्तुतः ये भगवान्‌की साक्षात् योगमाया हैं। सम्पूर्ण योगैश्वर्यों सम्पन्न हैं। इनकी करुणाकी कोई सीमा नहीं है। इनका वाहन सिंह समग्र धर्मका ही विग्रह-रूप है।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायिका राजराजेश्वरी भगवती विन्ध्यवासिनीका स्थान विन्ध्यपर्वतपर है। यह देवीका जाग्रत् शक्तिपीठ है। यहाँ देवी अपने समग्र रूपसे प्रतिष्ठित हैं और महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वतीके त्रिकोण रूपमें पूजित होती हैं। भक्तिपूर्वक स्तुति और पू करनेवालोंके अधीन तीनों लोक हो जाते हैं, ऐसी कृपाम देवी नन्दाको बार-बार नमन है।—

नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम्॥

(दुर्गा० मूर्तिरहस्य १)

भगवती सरस्वतीकी लीला-कथा

सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्।

सम्पूर्ण जगत्‌की कारणभूत आद्या शक्ति परमेश्वरीकी अभिव्यक्ति तीन रूपोंमें होती है—महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती। इनकी मूल प्रकृति महालक्ष्मी ही हैं। वे ही विशुद्ध सत्त्वगुणके अंशसे महासरस्वतीके रूपमें प्रकट होती हैं। इनका चन्द्रमाके समान गौर वर्ण है। इनके हाथोंमें अक्षमाला, अंकुश, वीणा तथा पुस्तक शोभा पाती है। महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक् , सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भा और धीश्वरी (बुद्धिकी स्वामिनी)—ये इनके नाम हैं। ये वाणी और विद्याकी अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं। ऋग्वेदमें वाग्देवीका नाम सरस्वती बताया गया है। इनके तीन स्थान हैं—स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्ष। स्वर्गकी वाग्देवीका नाम भारती, पृथ्वीके वाग्देवीका नाम इला और अन्तरिक्षवासिनी वाग्देवीका नाम सरस्वती है। तन्त्रशास्त्रमें प्रसिद्ध तारादेवीका नाम भी सरस्वती है। तन्त्रोक्त नीलसरस्वतीकी पीठशक्तियोंमें भी सरस्वतीका नाम आया है। तारिणीदेवीकी एक मूर्तिका नाम भी सरस्वती है। सरस्वतीदेवी सम्पूर्ण संशयोंका उच्छेद करनेवाली तथा बोधस्वरूपिणी हैं। इनकी उपासनासे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ये संगीत-शास्त्रकी भी अधिष्ठात्री देवी हैं। ताल, स्वर, लय, राग-रागिनी आदिका प्रादुर्भाव भी इन्हींसे हुआ है। सात प्रकारके स्वरोंद्वारा इनका स्मरण किया जाता है, इसलिये ये स्वरात्मिका कहलाती हैं। सप्तविध स्वरोंका ज्ञान प्रदान करनेके कारण इनका नाम सरस्वती है।

'देवीभागवत'में लिखा है, सरस्वतीदेवी भगवान् श्रीकृष्णकी जिह्वाके अग्रभागसे प्रकट हुई हैं। श्रीकृष्णने उन्हें भगवान् नारायणको समर्पित किया। श्रीकृष्णने ही संसारमें सरस्वतीकी पूजा प्रचारित की। पूर्वकालमें भगवान् नारायणकी तीन पत्नियाँ थीं—लक्ष्मी, गङ्गा और सरस्वती। तीनों ही बड़े प्रेमसे रहतीं और अनन्यभावसे भगवान्का पूजन किया करती थीं। एक दिन भगवान्की ही इच्छासे ऐसी घटना हो गयी, जिससे लक्ष्मी, गङ्गा और सरस्वतीको भगवान्के चरणोंसे कुछ कालके लिये दूर हट जाना पड़ा। भगवान् जब अन्तःपुरमें पधारे, उस समय तीनों देवियाँ एक ही स्थानपर बैठी हुई परस्पर प्रेमालाप कर रही थीं, भगवान्को आया देख तीनों उनके स्वागतके लिये खड़ी हो गयीं। उस समय गङ्गाने विशेष प्रेमपूर्ण दृष्टिसे भगवान्की ओर देखा। भगवान्ने भी उनकी दृष्टिका उत्तर वैसी ही स्नेहपूर्ण दृष्टिमें हँसकर दिया; फिर वे किसी आवश्यकतावश अन्तःपुरसे बाहर निकल गये। तब देवी सरस्वतीने गङ्गाके उस बर्तावको अनुचित बताकर उनके प्रति आक्षेप किया। गङ्गाने भी कठोर शब्दोंमें उनका प्रतिवाद किया। उनका विवाद बढ़ता देख लक्ष्मीजीने दोनोंको शान्त करनेकी चेष्टा की। सरस्वतीने लक्ष्मीके इस बर्तावको गङ्गाजीके प्रति पक्षपात माना और उन्हें शाप दे दिया, 'तुम वृक्ष और नदीके रूपमें परिणत हो जाओगी।' यह देख गङ्गाने भी सरस्वतीको शाप दिया, 'तुम भी नदी हो जाओगी।' यही शाप सरस्वतीकी ओरसे गङ्गाको भी मिला। इतनेहीमें भगवान् पुनः अन्तःपुरमें लौट आये। अब देवियाँ प्रकृतिस्थ हो चुकी थीं। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई तथा भगवान्के चरणोंसे विलग होनेके भयसे दुखी होकर रोने लगीं।

इस प्रकार उनका सब हाल सुनकर भगवान्को खेद हुआ। उनकी आकुलता देखकर वे दयासे द्रवीभूत हो उठे। उन्होंने कहा—'तुम सब लोग एक अंशसे ही नदी होओगी; अन्य अंशोंसे तुम्हारा निवास मेरे ही पास रहेगा। सरस्वती एक अंशसे नदी होंगी। एक अंशसे इन्हें ब्रह्माजीकी सेवामें रहना पड़ेगा तथा शेष अंशोंसे ये मेरे ही पास निवास करेंगी। कलियुगके पाँच हजार वर्ष बीतनेके बाद तुम सबके शापका उद्धार हो जायगा। इसके अनुसार सरस्वती भारतभूमिमें अंशतः अवतीर्ण होकर 'भारती' कहलायीं। उसी शरीरसे ब्रह्माजीकी प्रियतमा पत्नी होनेके कारण उनकी 'ब्राह्मी' नामसे प्रसिद्धि हुई। किसी-किसी कल्पमें सरस्वती ब्रह्माजीकी कन्याके रूपमें अवतीर्ण होती हैं और आजीवन कुमारीव्रतका पालन करती हुई उनकी सेवामें रहती हैं।

एक बार ब्रह्माजीने यह विचार किया कि इस पृथ्वीपर सभी देवताओंके तीर्थ हैं, केवल मेरा ही तीर्थ नहीं है। ऐसा सोचकर उन्होंने अपने नामसे एक तीर्थ स्थापित करनेका निश्चय किया और इसी उद्देश्यसे एक रत्नमयी शिला पृथ्वीपर गिरायी। वह शिला चमत्कारपुरके समीप गिरी; अतः ब्रह्माजीने उसी क्षेत्रमें अपना तीर्थ स्थापित किया। एकार्णवमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुकी नाभिसे जो कमल निकला, जिससे ब्रह्माजीका प्राकट्य हुआ, वह स्थान भी वही माना गया है। वही पुष्कर तीर्थके नामसे विख्यात हुआ। पुराणोंमें उसकी बड़ी महिमा गायी गयी है। तीर्थ स्थापित होनेके बाद ब्रह्माजीने वहाँ पवित्र जलसे पूर्ण एक सरोवर बनानेका विचार किया। इसके लिये उन्होंने सरस्वती नदीका स्मरण किया। सरस्वतीदेवी नदीरूपमें परिणत होकर भी पापीजनोंके स्पर्शके भयसे छिपी-छिपी पातालमें बहती थीं। ब्रह्माजीके स्मरण करनेपर वे भूतल और पूर्वोक्त शिलाको भी भेदकर वहाँ प्रकट हुईं। उन्हें देखकर ब्रह्माजीने कहा—'तुम सदा यहाँ मेरे समीप ही रहो; मैं प्रतिदिन तुम्हारे जलमें तर्पण करूँगा।'

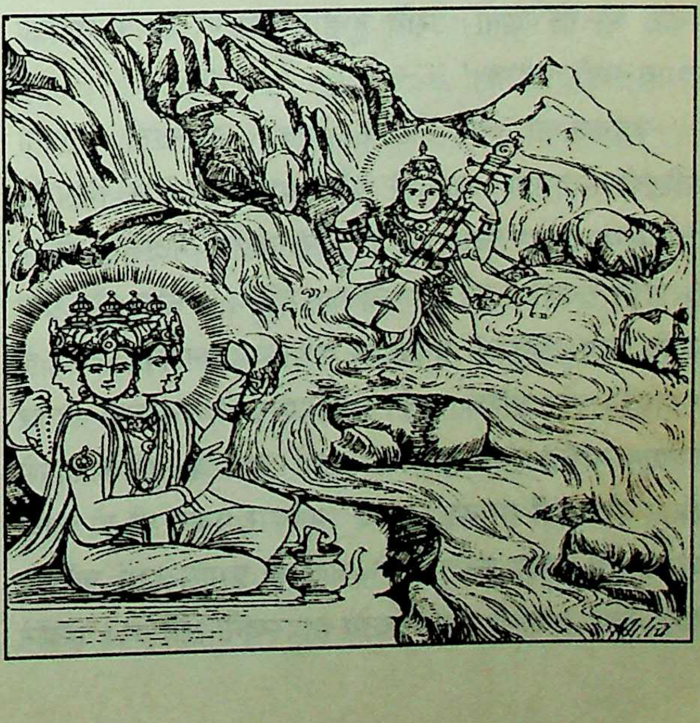

ब्रह्माजीका यह आदेश सुनकर सरस्वतीको बड़ा भय हुआ। वे हाथ जोड़कर बोलीं—'भगवन्! मैं जन-सम्पर्कके भयसे पातालमें रहती हूँ। कभी प्रकट नहीं होती; किंतु आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना भी मेरी शक्तिके बाहर है; अतः आप इस विषयपर भलीभाँति सोच-विचारकर जो उचित हो, वैसी व्यवस्था कीजिये।' तब ब्रह्माजीने सरस्वतीके निवासके लिये वहाँ एक विशाल सरोवर खुदवाया। सरस्वतीने उसी सरोवरमें आश्रय लिया। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने बड़े-बड़े भयानक सर्पोंको बुलाकर कहा—'तुम लोग सावधानीके साथ सब ओरसे इस सरोवरकी रक्षा करते रहना; जिससे कोई भी सरस्वतीके शरीरका स्पर्श न कर सके।'

एक बार भगवान् विष्णुने सरस्वतीको यह आदेश दिया कि 'तुम बडवानलको अपने प्रवाहमें ले जाकर समुद्रमें छोड़ दो।' सरस्वतीने इसके लिये ब्रह्माजीकी भी अनुमति चाही। लोकहितका विचार करके ब्रह्माजीने भी उन्हें उस कार्यके लिये सम्मति दे दी। तब सरस्वतीने कहा—'भगवन्! यदि मैं भूतलपर नदीरूपमें प्रकट होती हूँ, तो पापीजनोंके सम्पर्कका भय है और यदि पातालमार्गसे इस अग्निको ले जाती हूँ तो स्वयं अपने शरीरके जलनेका डर है।' ब्रह्माजीने कहा—'तुम्हें जैसे सुगमता हो, उसी प्रकार कर लो। यदि पापियोंके सम्पर्कसे बचना चाहो तो पातालके ही मार्गसे जाओ; भूतलपर प्रकट न होना; साथ ही जहाँ तुम्हें बडवानलका ताप असह्य हो जाय, वहाँ पृथ्वीपर नदीरूपमें प्रकट भी हो जाना। इससे तुम्हारे शरीरपर उसके तापका प्रभाव नहीं पड़ेगा।'

ब्रह्माजीका यह उत्तर पाकर सरस्वती अपनी सखियों—गायत्री, सावित्री और यमुना आदिसे मिलकर हिमालयपर्वतपर चली गयीं और वहाँसे नदीरूप होकर धरतीपर प्रवाहित हुईं। उनकी जलराशिमें कच्छप और ग्राह आदि जल-जन्तु भी प्रकट हो गये। बडवानलको लेकर वे सागरकी ओर प्रस्थित हुईं। जाते समय वे धरतीको भेदकर पाताल मार्गसे ही यात्रा करने लगीं। जब वे अग्निके तापसे संतप्त हो जातीं तो कहीं-कहीं भूतलपर प्रकट भी हो जाया करती थीं। इस प्रकार जाते-जाते वे प्रभासक्षेत्रमें पहुँचीं। वहाँ चार तपस्वी मुनि कठोर तपस्यामें लगे थे। इन्होंने पृथक्-पृथक् अपने-अपने आश्रमके पास सरस्वतीको बुला इसी समय समुद्रने भी प्रकट होकर सरस्वतीका आवा किया। सरस्वतीको समुद्रतक तो जाना ही था, ऋषियों अवहेलना करनेसे भी शापका भय था; अतः उन्होंने अप पाँच धाराएँ कर लीं। एकसे तो वे सीधे समुद्रकी ओर च और चारसे पूर्वोक्त चारों ऋषियोंको स्नानकी सुविधा दे गयीं। इस प्रकार वे 'पञ्चस्रोता' सरस्वतीके नामसे प्रसि हुईं और मार्गके अन्य विघ्नोंको दूर करती हुई अन समुद्रसे जा मिलीं।

एक समयकी बात है, ब्रह्माजीने सरस्वतीसे कहा—'तु किसी योग्य पुरुषके मुखमें कवित्वशक्ति होकर निव करो।' ब्रह्माजीकी आज्ञा मानकर सरस्वती योग्य पात्र खोजमें बाहर निकलीं। उन्होंने ऊपरके सत्यादि लोकों भ्रमण करके देवताओंमें पता लगाया तथा नीचेके स पातालोंमें घूमकर वहाँके निवासियोंमें खोज की; किंतु क भी उनको सुयोग्य पात्र नहीं मिला। इसी अनुसंधानमें पू एक सत्ययुग बीत गया। तदनन्तर त्रेतायुगके आरम्भ सरस्वतीदेवी भारतवर्षमें भ्रमण करने लगीं। घूमते-घूमते तमसा नदीके तीरपर पहुँचीं। वहाँ महातपस्वी मह वाल्मीकि अपने शिष्योंके साथ रहते थे। वाल्मीकि उ समय अपने आश्रमके इधर-उधर घूम रहे थे। इतनेमें उनकी दृष्टि एक क्रौञ्च पक्षीपर पड़ी; जो तत्काल ही ए व्याधके बाणसे घायल हो पंख फड़फड़ाता हुआ गिरा था पक्षीका सारा शरीर लहूलुहान हो गया था। वह पीड़ा तड़प रहा था और उसकी पत्नी क्रौञ्ची उसके पास गिरकर बड़े आर्तस्वरमें 'चें-चें' कर रही थी। पक्षीके उ जोड़ेकी यह दयनीय दशा देखकर दयालु महर्षि अप सहज करुणासे द्रवीभूत हो उठे। उनके मुखसे तुरंत ही ए श्लोक निकल पड़ा; जो इस प्रकार है—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

यह श्लोक सरस्वतीकी ही कृपाका प्रसाद था। उन्हों महर्षिको देखते ही उनकी असाधारण योग्यता और प्रतिभा परिचय पा लिया था; अतः उन्हींके मुखमें उन्होंने सर्वप्रथ प्रवेश किया। कवित्वशक्तिमयी सरस्वतीकी प्रेरणासे

उनके मुखकी वह वाणी, जो उन्होंने क्रौञ्चीकी सान्त्वनाके लिये कही थी, छन्दोमयी बन गयी। उनके हृदयका शोक ही श्लोक बनकर निकला था—'**शोकः श्लोकत्वमागतः**'। सरस्वतीके कृपापात्र होकर महर्षि वाल्मीकि ही 'आदिकवि' के नामसे संसारमें विख्यात हुए।

इस तरह सरस्वतीदेवी अनेक प्रकारकी लीलाओंसे जगत्का कल्याण करती हैं। बुद्धि, ज्ञान और विद्या-रूपसे सारा जगत् इनकी कृपा-लीलाका अनुभव करता है। ये मूलतः भगवान् नारायणकी पत्नी हैं तथा अंशतः नदी और ब्राह्मी रूपमें रहती हैं। ये ही गौरीके शरीरसे प्रकट होकर 'कौशिकी' नामसे प्रसिद्ध हुईं और शुम्भ-निशुम्भ आदिका वध करके इन्होंने संसारमें सुख-शान्तिकी स्थापना की। तन्त्र और पुराण आदिमें इनकी महिमाका विस्तृत वर्णन है। यहाँ संक्षेपसे ही इनके लीला-कथाका परिचय दिया गया है।

जगज्जननी लक्ष्मीकी प्राकट्य-लीला

पद्मालयां पद्मकरां पद्मपत्रनिभेक्षणाम्।
वन्दे पद्ममुखीं देवीं पद्मनाभप्रियामहम्॥

देवीकी जितनी शक्तियाँ मानी गयी हैं, उन सबका मूल महालक्ष्मी ही हैं। ये ही सर्वोत्कृष्ट पराशक्ति हैं। ये ही समस्त विकृतियोंकी प्रधान प्रकृति हैं। सारा विश्वप्रपञ्च महालक्ष्मीसे ही प्रकट हुआ है। तीनों गुणोंकी साम्यावस्थारूपा प्रकृति भी इनसे भिन्न नहीं है। स्थूल, सूक्ष्म, दृश्य, अदृश्य अथवा व्यक्त, अव्यक्त सब इन्हींके स्वरूप हैं। ये ही सच्चिदानन्दमयी साक्षात् परमेश्वरी हैं। यद्यपि अव्यक्तरूपसे ये सर्वत्र व्यापक हैं तथापि भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये परम दिव्य चिन्मय सगुणरूपसे भी सदा विराजमान रहती हैं। इनके उस श्रीविग्रहकी कान्ति तपाये हुए सुवर्णके सदृश है। ये नित्य सनातन होती हुई भी लीलाके लिये अनेक रूपोंमें प्रकट होती रहती हैं। 'देवता, मनुष्य तथा पशु-पक्षी आदि योनियोंमें जो कुछ पुरुषवाची है, वह सब भगवान् श्रीहरि हैं और जो कुछ स्त्रीवाची है, वह सब श्रीलक्ष्मीजी हैं। इनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है'—

देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुन्नामा भगवान् हरिः।
स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम्॥
(वि०पु० १। ८। ३५)

यों तो महालक्ष्मी ही जगज्जननी हैं, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भी इन्हींसे प्रकट होते हैं; तथापि ये अपने एक-एक स्वरूपसे ब्रह्मा, विष्णु आदिकी सेवामें भी रहती हैं। लक्ष्मीकी अभिव्यक्ति दो रूपोंमें देखी जाती है—श्रीरूपमें और लक्ष्मीरूपमें। ये दो होकर भी एक हैं और एक होकर भी दो। दोनों ही रूपोंसे ये भगवान् विष्णुकी पत्नियाँ हैं। श्रुति भी कहती है—'**श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ।**' श्रीदेवीको कहीं-कहीं 'भूदेवी' भी कहते हैं। इस प्रकार लक्ष्मीके दो स्वरूप हैं—एक तो सच्चिदानन्दमयी लक्ष्मी, जो श्रीनारायणसे अभिन्न हैं, सदा उनके वक्षःस्थलमें वास करती हैं और कभी उनसे विलग नहीं होतीं। दूसरा रूप है भौतिक या प्राकृत सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवीका। यही श्रीदेवी या भूदेवी हैं। ये भी अनन्यभावसे भगवन्नारायणकी ही सेवामें रहती हैं। उक्त भौतिक या प्राकृत सम्पत्ति स्वरूपतः जड है, किंतु उसे भी 'श्री' या 'लक्ष्मी' कहा जाता है। यह प्रयोग औपचारिक है, मुख्य नहीं। इस जड-सम्पत्तिपर भिन्न-भिन्न समयमें भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंका अधिकार होता रहता है। यह कभी एककी होकर नहीं रहती, कहीं भी स्थिर नहीं रहती। इसीलिये लक्ष्मीको सर्वभोग्या, नीचसेव्या, चञ्चला, चपला, बहुगामिनी आदि कहकर आक्षेप किया जाता है। यहाँ यह बात ध्यानमें रखनेकी है, यह निन्दा अथवा आक्षेप जड-सम्पत्तिको लक्ष्य करके ही किया जाता है। साक्षात् चिन्मयी देवी श्रीलक्ष्मीजीको नहीं। वे तो पतिप्राणा हैं। सनातन भगवान्की सनातन अनपायिनी शक्ति हैं। उनका जीवन नित्य-निरन्तर भगवान्की सेवामें ही व्यतीत होता है। वे भगवान्के सिवा दूसरेको न देखती हैं, न जानती हैं। यह बात अवश्य है कि वह जड-सम्पत्ति उनके अधिकारमें रहती है। जिसे भगवान् देना चाहते हैं या जिसपर लक्ष्मीकी कृपा हो जाती है, उसे यदि आवश्यकता हो तो ये जड-सम्पत्ति प्रदान करती हैं। इन्हें कमल अधिक प्रिय है। ये कमलवनमें निवास करती हैं, कमलपर बैठती हैं और हाथमें भी कमल धारण किये रहती हैं। सब सम्पत्तियोंकी अधिष्ठात्री श्रीदेवी

शुद्ध सत्त्वमयी हैं। इनके पास लोभ, मोह, काम, क्रोध और अहंकार आदि दोषोंका प्रवेश नहीं है। ये स्वर्गमें 'स्वर्ग-लक्ष्मी,' राजाओंके यहाँ 'राज-लक्ष्मी,' मनुष्योंके घरोंमें 'गृह-लक्ष्मी,' वणिग्-जनोंके यहाँ 'वाणिज्य-लक्ष्मी' तथा युद्धमें विजेताओंके पास 'विजय-लक्ष्मी' के रूपमें रहती हैं।

पतिप्राणा चिन्मयी लक्ष्मी समस्त पतिव्रताओंकी शिरोमणि हैं। एक बार उन्होंने भृगुकी पुत्रीरूपमें अवतार लिया था; इसलिये इन्हें 'भार्गवी' कहते हैं। समुद्र-मन्थनके समय ये ही क्षीरसागरसे प्रकट हुई थीं; इसलिये इनका नाम 'क्षीरोदतनया' अथवा 'क्षीरसागर-कन्या' हुआ। ये पद्मिनी विद्याकी भी अधिष्ठात्री देवी हैं। तन्त्रोक्त नील-सरस्वतीकी पीठ-शक्तियोंमें भी इनका नाम आता है। भगवान् जब-जब अवतार लेते हैं, तब-तब उनके साथ लक्ष्मीदेवी भी अवतीर्ण हो उनकी सेवा करती और उनकी प्रत्येक लीलामें योग देती हैं। इनके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है—

महर्षि भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे एक त्रिलोकसुन्दरी भुवनमोहिनी कन्या उत्पन्न हुई। वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित थी; इसलिये उसका नाम लक्ष्मी रखा गया। अथवा साक्षात् लक्ष्मी ही उस कन्याके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं; इसलिये वह लक्ष्मी कहलायी, धीरे-धीरे बड़ी होनेपर लक्ष्मीने भगवान् नारायणके गुण और प्रभावका वर्णन सुना। इससे उनका हृदय भगवान्में अनुरक्त हो गया। वे उन्हें पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छासे समुद्रके तटपर जाकर घोर तपस्या करने लगीं। तपस्या करते-करते एक हजार वर्ष बीत गये। तब इन्द्र भगवान् विष्णुका रूप धारण करके लक्ष्मीदेवीके समीप आये और वर माँगनेको कहा। लक्ष्मीने कहा—'आप अपने विश्वरूपका मुझे दर्शन कराइये।' इन्द्र इसके लिये असमर्थ थे, अतः लज्जित होकर वहाँसे लौट गये। इसके बाद और कई देवता पधारे, परंतु विश्वरूप दिखानेकी शक्ति न होनेके कारण उनकी भी कलई खुल गयी।

यह समाचार पाकर साक्षात् भगवान् नारायण वहाँ देवीको दर्शन देने और उन्हें कृतार्थ करनेके लिये आये। भगवान्ने देवीसे कहा—'वर माँगो।' यह आदेश सुनकर देवीने भगवान्का गौरव बढ़ानेके लिये ही कहा—'देवदेव! यदि आप साक्षात् भगवान् नारायण हैं तो अपने विश्वरूपका दर्शन देकर मेरा संदेह दूर कर दीजिये।' भगवान्ने विश्वरूपका दर्शन कराया औ लक्ष्मीजीकी इच्छाके अनुसार उन्हें पत्नीरूपमें ग्रहण किय इसके बाद वे बोले—'देवि! ब्रह्मचर्य ही सब धर्मोंका मूल त सर्वोत्तम तपस्या है। तुमने ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक इस स्थान कठोर तपस्या की है, इसलिये मैं यहाँ 'मूलश्रीपति' के नाम विख्यात होकर रहूँगा तथा तुम भी ब्रह्मचर्यस्वरूपिणी 'मूलश्री के नामसे यहाँ प्रसिद्धि प्राप्त करोगी।'

लक्ष्मीजीके प्रकट होनेका दूसरा इतिहास इस प्रका है—एक बार भगवान् शंकरके अंशभूत महर्षि दुर्वा भूतलपर विचर रहे थे। घूमते-घूमते वे एक मनोहर वन गये। वहाँ एक विद्याधर-सुन्दरी हाथमें पारिजात-पुष्पों माला लिये खड़ी थी, वह माला दिव्य पुष्पोंकी बनी थ उसकी दिव्य गन्धसे समस्त वन-प्रान्त सुवासित हो रह था। दुर्वासाने विद्याधरीसे वह मनोहर माला माँगी। विद्याधरी उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम करके वह माला दे दी। माल लेकर उन्मत्त वेषधारी मुनिने अपने मस्तकपर डाल ली औ पुनः पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे।

इसी समय मुनिको देवराज इन्द्र दिखायी दिये, जो मतवाले ऐरावतपर चढ़कर आ रहे थे। उनके साथ बहुत-से देवता भी थे। मुनिने अपने मस्तकपर पड़ी माल उतारकर हाथमें ले ली। उसके ऊपर भौंरे गुंजार कर र थे। जब देवराज समीप आये तो दुर्वासाने पागलोंकी तर वह माला उनके ऊपर फेंक दी। देवराजने उसे लेक ऐरावतके मस्तकपर डाल दिया। ऐरावतने उसकी ती गन्धसे आकर्षित हो सूँड़से माला उतार ली और सूँघक पृथ्वीपर फेंक दी। यह देख दुर्वासा क्रोधसे जल उठे औ देवराज इन्द्रसे इस प्रकार बोले—'अरे इन्द्र! ऐश्वर्यके घमंड तुम्हारा हृदय दूषित हो गया है। तुमपर जडता छा रही है तभी तो मेरी दी हुई मालाका तुमने आदर नहीं किया है। व माला नहीं, लक्ष्मीका धाम थी। माला लेकर तुमने प्रणाम त नहीं किया। इसलिये तुम्हारे अधिकारमें स्थित तीनों लोकों लक्ष्मी शीघ्र ही अदृश्य हो जायगी।' यह शाप सुनकर देवरा इन्द्र घबरा गये और तुरंत ही ऐरावतसे उतरकर मुनिके चरणों पड़ गये। उन्होंने दुर्वासाको प्रसन्न करनेकी लाख चेष्टाएँ क किंतु वे महर्षि टस-से-मस न हुए। उलटे इन्द्रको फटकार

पञ्च-दिव्यधामेश्वरी

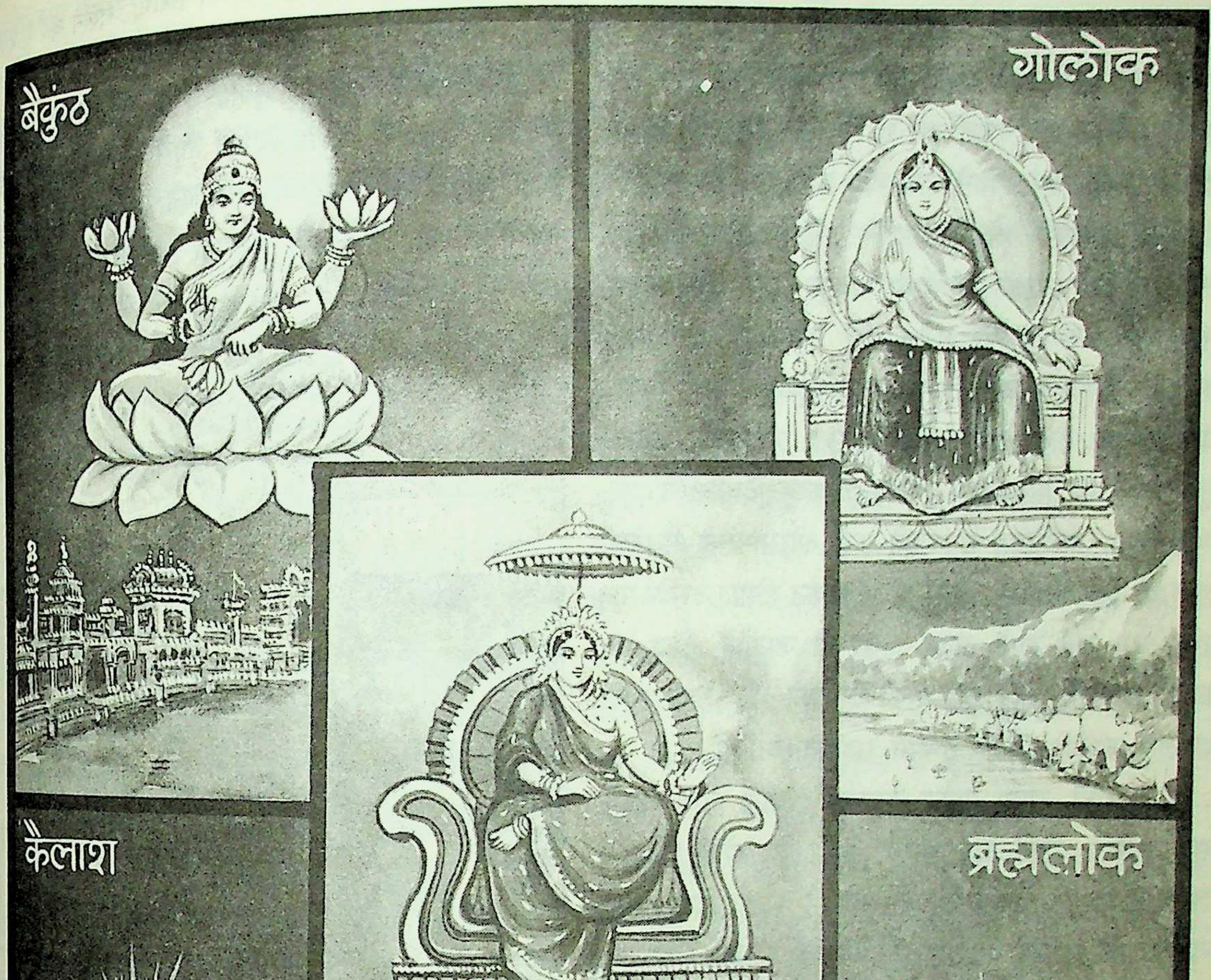
बैकुंठ
गोलोक
कैलाश
ब्रह्मलोक
जगन्नाथ

रमा, राधिका, सीता, गौरी, ब्रह्माणीदेवी, अनुरूप।
दिव्यधाम-स्वामिनि ये पाँचों दिव्य नारिके हैं शुभरूप॥

वहाँसे चल दिये। इन्द्र भी ऐरावतपर सवार हो अमरावतीको लौट गये। तबसे तीनों लोकोंकी लक्ष्मी नष्ट हो गयी।

इस प्रकार त्रिलोकीके श्रीहीन एवं सत्त्वरहित हो जानेपर दानवोंने देवताओंपर चढ़ाई कर दी। देवताओंमें अब उत्साह कहाँ रह गया था? सबने हार मान ली। फिर सभी देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने उन्हें भगवान् विष्णुकी शरणमें जानेकी सलाह दी तथा सबके साथ वे स्वयं भी क्षीरसागरके उत्तर तटपर गये। वहाँ पहुँचकर ब्रह्मा आदि देवताओंने बड़ी भक्तिसे भगवान् विष्णुका स्तवन किया। भगवान् प्रसन्न होकर देवताओंके सम्मुख प्रकट हुए। उनका अनुपम तेजस्वी मङ्गलमय विग्रह देखकर देवताओंने पुनः स्तवन किया, तत्पश्चात् भगवान्ने उन्हें क्षीरसागरको मथनेकी सलाह दी और कहा—'इससे अमृत प्रकट होगा। उसके पान करनेसे तुम सब लोग अजर-अमर हो जाओगे; किंतु यह कार्य है बहुत दुष्कर; अतः तुम्हें दैत्योंको भी अपना साथी बना लेना चाहिये। मैं तो तुम्हारी सहायता करूँगा ही।'

भगवान्की आज्ञा पाकर देवगण दैत्योंसे संधि करके अमृत-प्राप्तिके लिये यत्न करने लगे। वे भाँति-भाँतिकी ओषधियाँ लाये और उन्हें क्षीरसागरमें छोड़ दिया; फिर मन्दराचलको मथानी और वासुकिको नेती (रस्सी) बनाकर बड़े वेगसे समुद्रमन्थनका कार्य आरम्भ किया। भगवान्ने वासुकिकी पूँछकी ओर देवताओंको और मुखकी ओर दैत्योंको लगाया। मन्थन करते समय वासुकिकी निःश्वासाग्निसे झुलसकर सभी दैत्य निस्तेज हो गये और उसी निःश्वासवायुसे विक्षिप्त होकर बादल वासुकिकी पूँछकी ओर बरसते थे; जिससे देवताओंकी शक्ति बढ़ती गयी। भक्तवत्सल भगवान् विष्णु स्वयं कच्छपरूप धारणकर क्षीरसागरमें घूमते हुए मन्दराचलके आधार बने हुए थे। वे ही एक रूपसे देवताओंमें और एक रूपसे दैत्योंमें मिलकर नागराजको खींचनेमें भी सहायता देते थे तथा एक अन्य विशाल रूपसे, जो देवताओं और दैत्योंको दिखायी नहीं देता था, उन्होंने मन्दराचलको ऊपरसे दबा रखा था। इसके साथ ही वे नागराज वासुकिमें भी बलका संचार करते थे और देवताओंकी भी शक्ति बढ़ा रहे थे।

इस प्रकार मन्थन करनेपर क्षीरसागरसे क्रमशः कामधेनु, वारुणी देवी, कल्पवृक्ष और अप्सराएँ प्रकट हुईं। इ बाद चन्द्रमा निकले, जिन्हें महादेवजीने मस्तकपर धा किया। फिर विष प्रकट हुआ, जिसे नागोंने चाट लि तदनन्तर अमृतका कलश हाथमें लिये धन्वन्तरिका प्रादु हुआ। इससे देवताओं और दानवोंको भी बड़ी प्रसन्नता हु सबके अन्तमें क्षीरसमुद्रसे भगवती लक्ष्मीदेवी प्रकट हुईं।

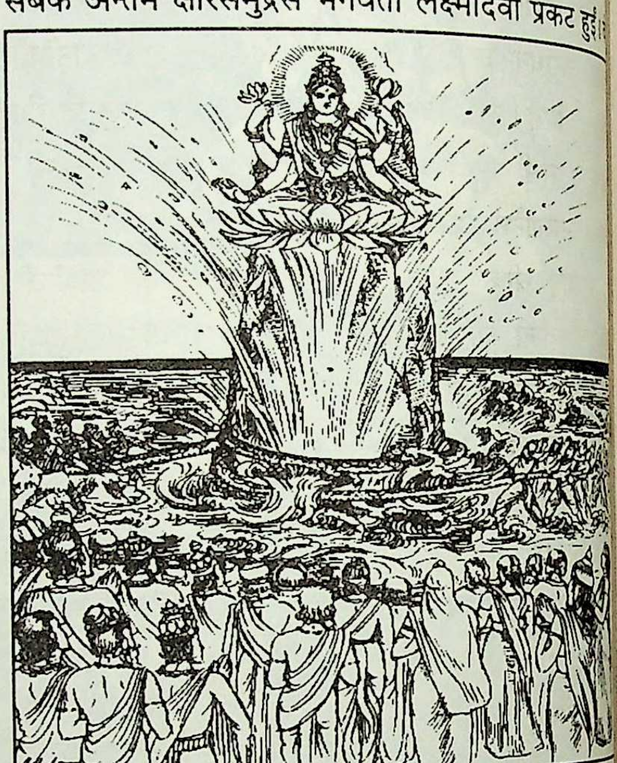

खिले हुए कमलके आसनपर विराजमान थीं। उन श्रीअङ्गोंकी दिव्य कान्ति सब ओर प्रकाशित हो रही थ उनके हाथमें कमल शोभा पा रहा था। उनका दर्शन क देवता और महर्षिगण प्रसन्न हो गये। उन्होंने वैदि श्रीसूक्तका पाठ करके लक्ष्मीदेवीका स्तवन किया। फि देवताओंने उनको स्नानादि कराकर दिव्य वस्त्राभूषण अ किये। वे उन दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित होकर सब देखते-देखते अपने सनातन स्वामी श्रीविष्णुभगवान् वक्षःस्थलमें चली गयीं। भगवान्को लक्ष्मीजीके स देखकर देवता प्रसन्न हो गये। दैत्योंको बड़ी निराशा हु उन्होंने धन्वन्तरिके हाथसे अमृतका कलश छीन लि किंतु भगवान्ने मोहिनी स्त्रीके रूपसे उन्हें अपनी माया मोहित करके सारा अमृत देवताओंको ही पिला दि तदनन्तर इन्द्रने बड़ी विनय और भक्तिके साथ श्रीलक्ष्मीदेवी स्तवन किया। उससे प्रसन्न होकर लक्ष्मीने देवताओं

मनोवाञ्छित वरदान दिया। इस प्रकार ये लक्ष्मीजी भगवान् विष्णुकी अनन्य प्रिया हैं। भगवान्के साथ प्रत्येक अवतारमें ये साथ रहती हैं। जब श्रीहरि विष्णु नामक आदित्यके रूपमें स्थित हुए तब ये कमलोद्भवा 'पद्मा' के नामसे विख्यात हुईं। ये ही श्रीरामके साथ 'सीता' और श्रीकृष्णके साथ 'रुक्मिणी' होकर अवतीर्ण हुई थीं। भगवान्के साथ इनकी आराधना करनेसे अभ्युदय और निःश्रेयस दोनोंकी सिद्धि होती है। लक्ष्मीजी सतीत्व और साधुताकी मूर्ति हैं। इसीलिये सभी सती-साध्वी स्त्रियोंको घरकी 'लक्ष्मी' कहकर सम्मानित किया जाता है।

भगवान् श्रीकृष्णकी पट्टमहिषी महारानी रुक्मिणीजी एक बार अपनी अभिन्नरूपा लक्ष्मीजीसे भेंट करने वैकुण्ठ पधारीं और वहाँ लक्ष्मीजीको भगवान् विष्णुके समीप बैठी देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं, फिर लोक-कल्याणके लिये प्रद्युम्नकी माता रुक्मिणीजीने लक्ष्मीदेवीसे पूछा—'देवि! आप किस स्थानपर और कैसे मनुष्योंके पास रहती हैं?'

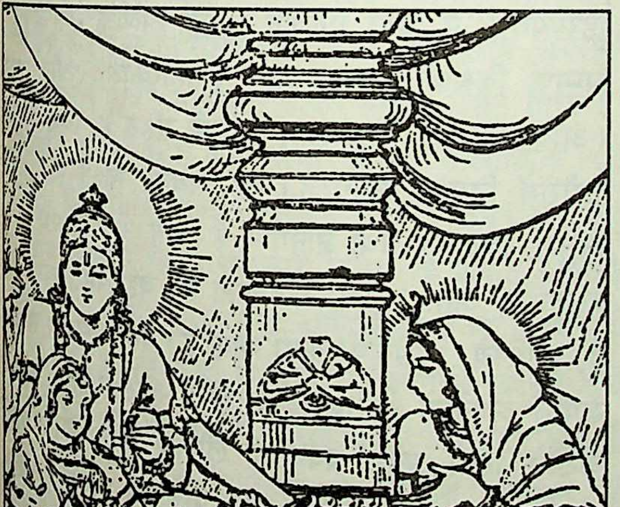

लक्ष्मीने उत्तर दिया—'कल्याणि! सुनो, जो मनुष्य मिष्टभाषी, कार्यकुशल, क्रोधहीन, भक्त, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और उदार हैं, उनके यहाँ मेरा निवास होता है। सदाचारी, धर्मज्ञ, बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें तत्पर, पुण्यात्मा, क्षमाशील और बुद्धिमान् मनुष्योंके पास मैं सदा रहती हूँ। जो स्त्रियाँ पतिकी सेवा करती हैं, जिनमें क्षमा, सत्य, इन्द्रियसंयम, सरलता आदि सद्गुण होते हैं, जो देवताओं और ब्राह्मणोंमें श्रद्धा रखती हैं, जिनमें सभी प्रकारके शुभ लक्षण मौजूद हैं, उनके समीप मैं निवास करती हूँ। सवारी, कन्या, आभूषण, यज्ञ, जलसे पूर्ण मेघ, फूले हुए कमल, शरद् ऋतुके नक्षत्र, हाथी, गायोंके रहनेके स्थान, आसन, फूले हुए कमलोंसे सुशोभित तालाब, मतवाले हाथी, साँड़, राजा, सिंहासन, सज्जन पुरुष, विद्वान् ब्राह्मण, प्रजापालक क्षत्रिय, खेती करनेवाले वैश्य तथा सेवापरायण शूद्र मेरे प्रधान निवासस्थान हैं। जिस घरमें सदा होम होता है और देवता, गौ तथा ब्राह्मणोंकी पूजा होती है, उस घरको मैं कभी नहीं छोड़ती। भगवान् नारायण धर्म, ब्राह्मणत्व और संसारके एकमात्र आधार हैं, इसीसे मैं इनके शरीरमें एकाग्रचित्त और अभिन्न रूपसे रहती हूँ। भगवान् नारायणके सिवा अन्यत्र कहीं भी मैं शरीर धारण करके नहीं रहती। जहाँ मेरा वास होता है, वहाँ धर्म, अर्थ और सुयशकी वृद्धि होती रहती है। 77083

अब जिन स्थानोंसे मुझे घृणा है, उसका वर्णन सुनो—'जो अकर्मण्य, नास्तिक, कृतघ्न, आचारभ्रष्ट, नृशंस, चोर, गुरुद्रोही, उद्धत तथा कपटी हैं और बल, बुद्धि तथा वीर्यसे हीन हैं, उनके पास मैं नहीं रहती। जो हर्ष और क्रोधका अवसर नहीं जानते, धन-प्राप्तिकी आशा नहीं करते और थोड़ेमें ही संतुष्ट हो जाते हैं, ऐसे लोगोंके पास भी मैं कभी नहीं रहती। जो स्त्रियाँ गंदी रहती हैं, घरकी वस्तुओंको इधर-उधर बिखेरे रखती हैं, जिनमें उत्तम विचार नहीं होता, जो सदा पतिके प्रतिकूल बातें करती हैं, जिन्हें दूसरोंके घरोंमें रहना अधिक पसंद है, जिनमें न धैर्य है, न लज्जा, जो स्वभावसे निर्दय और शरीरसे अपवित्र होती हैं, काम-काजमें जिनका मन नहीं लगता, जो सदा लड़ाई-झगड़े किया करती और अधिक सोती हैं, उनके पास मैं कभी नहीं रहती।'

* * *

सूर्य-लीला-चिन्तन

[भुवन-भास्कर भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। ये परमात्मा नारायणके साक्षात् प्रतीक हैं। इन्हें परमात्म-परब्रह्मस्व माना गया है। सूर्यसे ही समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है, पालन होता है और उन्हींमें उनका विलय भी हो है। इनका अवतरण ही संसारके कल्याणके लिये हुआ है। चराचर-जगत्पर सहज कृपा करना ही इनका प्रभाव इनकी कुछ लीलाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं।—सं०]

सूर्यके परब्रह्म होनेकी लीला-कथा

एक बारकी बात है, पितामह ब्रह्मा मुनियोंको भगवान् सूर्यकी महिमा तथा उनकी भक्तवत्सलताकी बात बता रहे थे, उसी प्रसंगमें ब्रह्माजीने बताया कि भगवान् सूर्य एक बार ध्यानमें निमग्न थे। इस बातको सुनकर मुनियोंके मनमें संदेह उत्पन्न हुआ और उन्होंने ब्रह्माजीसे पूछा—

'प्रभो! अभी-अभी आपने बतलाया कि सूर्य साक्षात् परब्रह्म हैं, परमात्मा हैं, निर्गुण हैं, निराकार हैं, फिर वे स्वयं किसका ध्यान करते हैं, क्यों तपस्या करते हैं? उन्हें किस वस्तुकी अभिलाषा है? इसे आप बतानेकी कृपा करें।'

ब्रह्माजी बोले—'मुनियो! यह अत्यन्त गोपनीय रहस्यका विषय है। पूर्वकालमें मित्र देवता (भगवान् सूर्यका एक नाम)-ने देवर्षि नारदको जो बात बतलायी थी, वही मैं आप लोगोंको बताता हूँ। आप लोग ध्यानसे सुनें—

एक समयकी बात है; महायोगी नारद लोकोंमें भ्रमण करते हुए गन्धमादन पर्वतके उस प्रदेशमें पहुँचे, जहाँ मित्र देवता (सूर्य) तपस्या कर रहे थे। उन्हें तपस्यामें संलग्न देखकर नारदजीके मनमें कौतूहल हुआ। वे सोचने लगे—'जो अक्षय, अविकारी, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप और सनातन पुरुष हैं, साक्षात् नारायण हैं, जिन्होंने तीनों लोकोंको धारण कर रखा है, जो सब देवताओंके पिता और परसे भी परे हैं, वे किस देवताका ध्यान कर रहे हैं।' इस प्रकार मन-ही-मन विचार करके नारदजी उनसे बोले—

भगवन्! अङ्गों तथा उपाङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदों एवं पुराणोंमें आपकी महिमाका गान किया जाता है। आप अजन्मा, सनातन, धाता तथा उत्तम अधिष्ठान हैं। भूत-भविष्य तथा वर्तमान—सब कुछ आपमें ही प्रतिष्ठित हैं। गृहस्थ आदि चारों आश्रम प्रतिदिन आपका ही यजन करते हैं। आप ही सबके पिता, माता और सनातन देवता हैं, आप किस देवताकी आराधना करते हैं, यह मेरी सम नहीं आता, इसे बतानेकी कृपा करें।

इसपर मित्र देवताने कहा—ब्रह्मन्! यह परम गोप सनातन रहस्य कहने योग्य तो नहीं है, परंतु आप भक्त इसलिये यह रहस्य आपको बतलाता हूँ—'वह जो सू अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल, ध्रुव, इन्द्रियरहित, इन्द्रि विषयोंसे परे तथा सम्पूर्ण भूतोंसे पृथक् है, वही स जीवोंकी अन्तरात्मा है, उसीको 'क्षेत्रज्ञ' भी कहते हैं। तीनों गुणोंसे भिन्न पुरुष कहा गया है। उसीका नाम 'भा हिरण्यगर्भ' है, वही भगवान् सूर्यका अव्यक्त रूप है। सम्पूर्ण विश्वका आत्मा, शर्व (संहारकारी) और अ (अविनाशी) है। वह स्वयं शरीरसे रहित है, किंतु स शरीरोंमें निवास करता है। वह सबका साक्षी है, स निर्गुण, विश्वरूप तथा ज्ञानगम्य है। वह अव्यक्तपुरमें करता है, अतः 'पुरुष' कहलाता है। वह बहुत रूपों है, इसलिये 'विश्वरूप' कहा जाता है। वह परमात्मा सै रूपोंमें अपनेको अभिव्यक्त करता है और भक्तोंपर अ करनेके लिये अनेक प्रकारकी लीलाएँ करता है। सं जो चराचर भूत हैं, वे नित्य नहीं, परंतु वह परमात्मा अ अप्रमेय तथा सर्वव्यापी कहा जाता है। लोकमें देवकार्य पितृकार्यके अवसरपर उसीकी पूजा होती है। वह श्रद्धा की गयी पूजाको स्वीकार करता है और अभीष्ट मनोरथ सद्गति प्रदान करता है। निर्गुण-निराकार होनेपर भी वह स साकार रूप धारण करता है। मैं अपने आत्मरूप उसी सू ध्यान करता हूँ। वर प्रदान करनेवाले उन दिवा अर्चन-पूजन तथा वन्दन सभीको करना चाहिये।'

मित्र देवतासे भगवान् सूर्यकी परब्रह्ममयताका जानकर नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे भगवद्गुण

करते हुए अन्य लोकोंमें विचरण करने लगे। मुनिगणोंको भी ब्रह्माजीसे भगवान् सूर्यकी लीला-कथा सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

भगवान् श्रीरामकी आदित्योपासना

धर्मविग्रह भगवान् श्रीराम साक्षात् परमात्मा हैं। अयोध्यामें महाराज दशरथके यहाँ इनका अवतरण, साधु-परित्राण, लोकरञ्जन, लोक-शिक्षण, धर्ममर्यादा-स्थापन तथा रावणादि राक्षसोंका उद्धार आदि सब कुछ सर्वविश्रुत है। उनके अनन्त कल्याणगुणगणोंमें भक्तवत्सलता-गुण सर्वोपरि है। ये भगवान् सूर्यके कुलमें ही प्रकट हुए थे। इसीलिये ये 'सूर्यवंशी' कहलाते हैं।

भगवान् विवस्वान् (सूर्य)-से मनुजी प्रकट हुए, जिन्होंने 'मनुस्मृति'का निर्माण किया। इन्हीं मनुके पुत्र इक्ष्वाकु हुए, इसी इक्ष्वाकुके वंशमें आगे चलकर मान्धाता, दिलीप तथा भगीरथ आदि महान् प्रतापी और धर्मात्मा राजा उत्पन्न हुए, जो भगवान् सूर्यकी कृपासे त्रैलोक्य-विजयी हुए। आगे चलकर महाराज दशरथजीके यहाँ भगवान् श्रीरामका आविर्भाव हुआ। अत: अपने कुलके आदिपुरुष भगवान् आदित्यकी उपासना करना इनका सहज स्वभाव रहा है। समय-समयपर इन्हें भगवान् सूर्यने उपस्थित होकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। श्रीरामके जन्म तथा कर्म सभी दिव्य, अलौकिक एवं चिन्मय थे, तथापि लोक-शिक्षणके लिये श्रीरामने लोकवत् सामान्य व्यवहार किया था, इसी कारण वे प्राकृत पुरुषोंके समान हर्ष, शोक, दु:ख-सुख आदिसे प्रभावित दिखलायी देते हैं। इस क्रममें कहीं वे सीताके वियोगमें व्यथित होते हैं, तो कहीं युद्धादि क्षेत्रोंमें देवताओंकी आराधना करते हैं और रावणसे युद्ध करते समय वे अत्यन्त व्याकुल भी दिखायी देते हैं कि किस प्रकार रावणका वध किया जाय। इस प्रकार रणभूमिमें श्रीराम विचारमग्न हो जाते हैं।

उसी समय महामुनि अगस्त्यजी वहाँ आये और बोले—'श्रीराम! यह सनातन गोप्य स्तोत्र सुनो, इसके जप करनेसे तुम युद्धमें अपने समस्त शत्रुओंपर विजय पा सकोगे—'**येन सर्वानरीन् वत्स समरे विजयिष्यसे**' ऐसा कहकर अगस्त्यजीने भगवान् सूर्यकी महिमा तथा उनकी कृपाशक्तिका परिचय देनेवाला एक स्तोत्र उन्हें बतलाया तथा सूर्योपासनाकी विधि भी बतला दी और कहा—'हे राम! तुम एकाग्रचित्त होकर इन देवाधिदेव जगदीश्वर भगवान् सूर्यकी पूजा करो, इस 'आदित्यहृदयस्तोत्र'का तीन बार जप करनेसे तुम युद्धमें विजय प्राप्त करोगे'—

पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम्।
एतत् त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यसे॥

(वा० रा० ६। १०५। २६)

—ऐसा कहकर अगस्त्यजी चले गये। भगवान् श्रीरामका शोक दूर हो गया। उन्होंने सूर्यका ध्यान करके तीन बार 'आदित्यहृदयस्तोत्र'का पाठ किया। फलत: वे युद्धमें विजयी हुए और युद्धस्थलमें उन्हें साक्षात् भगवान् सूर्यके दर्शन हुए।

सूर्यदेवद्वारा हनुमान्‌जीको विद्या-दान

रुद्रावतार श्रीहनुमान्‌जी सभी प्रकारके अमङ्गलोंको दूरकर कल्याणराशि प्रदान करनेवाले हैं। उनके हृदयमें भगवान् श्रीसीताराम सदा ही निवास करते हैं—

मंगल-मूरति मारुत-नंदन। सकल-अमंगल-मूल-निकंदन॥
पवनतनय संतन-हितकारी। हृदय बिराजत अवध-बिहारी॥

(विनय-पत्रिका ३६। १-२)

बजरंगबली तथा महाबलीके रूपमें वे शक्ति, बल, वीर्य, ओज, स्फूर्ति, विद्या-बुद्धि, नीति, वाक्पाटव तथा ज्ञानके प्रदाता हैं और अपने भक्तोंको श्रीसीतारामजीसे मिला देते हैं।

अञ्जनादेवीके अङ्कमें त्रिभुवनगुरु शिव जब हनुमद्रूपसे अवतरित हुए, तब उनके शिक्षा-गुरु तथा आचार्य भगवान् सूर्यदेव ही बने। उनसे ही उन्हें सारी विद्याएँ प्राप्त हुईं। श्रीआञ्जनेय विद्या पढ़नेके लिये भगवान् सूर्यके पास ही गये—

'भानुसों पढ़न हनुमान गये'

(हनु० बाहु० ४)

कहा जाता है कि हनुमान्‌जीको जन्म-ग्रहण करनेके पश्चात् बारह घंटे व्यतीत हो जानेपर अधिक भूख लगी। माताके पय:पानसे वे तृप्त न हो सके। इससे चिन्तित होकर अञ्जना उनके लिये कुछ फल आदि लाने जंगलमें निकल गयीं, तबतक इधर सूर्योदय होने लगा। सूर्यको सहसा आकाशमें उठते देखकर हनुमान्‌जीने उन्हें कोई लाल फल समझा और वे उछलकर सूर्यको निगलनेके लिये आगे बढ़े। इसपर इन्द्रने उनपर वज्रका प्रहार किया, जिससे उनकी हनु (ठुड्डी) टेढ़ी हो गयी। उसी समय वायुदेव तथा ब्रह्माजीने

आकर हनुमान्‌को स्वस्थ कर दिया और अमरत्व प्रदान किया। हनुके टेढ़ी हो जानेसे उनका 'हनुमान्' यह नाम प्रसिद्ध हो गया। उस समय सूर्यदेवने भी उन्हें शिक्षा प्रदान करनेका वर दिया और कहा—

यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति।
तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति।

(वा० रा० ७। ३६। १४)

कुछ समय पश्चात् अध्ययन-अध्यापनका क्रम प्रारम्भ हुआ। भगवान् सूर्यदेवकी अध्यापन-शैली विचित्र थी। आदिकवि वाल्मीकिजीने उसका वर्णन करते हुए लिखा है—

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्
सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम
ग्रन्थं महद्धारयन्नप्रमेयः॥

(वा० रा० ७। ३६। ४५)

आशय यह है कि सूर्यभगवान्‌के पास हनुमान्‌जी पढ़ने गये, सूर्यदेवने प्रथम तो बालक्रीडा समझकर टालमटोल की और कहा कि मैं तो एक जगह स्थिर नहीं रहता हूँ, उदयाचलसे अस्ताचलकी ओर जाता रहता हूँ, पढ़ने-पढ़ानेके लिये गुरु-शिष्यका आसनपर आमने-सामने बैठना आवश्यक है। इसलिये मैं आपको नहीं पढ़ा पाऊँगा, किंतु श्रीहनुमान् ज्ञानपिपासु थे, वे बोले—'भगवन्! मैं आपके अतिरिक्त और किसीसे भी विद्या नहीं ग्रहण करूँगा।' उनकी दृढ़ता देखकर भगवान् सूर्य प्रसन्न हो गये, वे तो उनकी ज्ञानपिपासाकी परीक्षा ले रहे थे। भला रामभक्त हनुमान्‌से श्रेष्ठ उन्हें कौन शिष्य मिल सकता था। वे विद्या-दान देनेको राजी हो गये, तब हनुमान्‌जीने सूर्यकी ओर मुख कर लिया और आकाश-मार्गमें वे भगवान् सूर्यके आगे-आगे उन्हींकी गतिसे लेटे-लेटे ही बालकोंके समान खेल करते हुए पूर्वसे पश्चिमकी ओर जाने लगे। सूर्यदेव जो भी उपदेश देते, हनुमान्‌जी शीघ्र ही उसे याद कर लेते। ऐसा अद्भुत और आश्चर्यमय अध्ययन-अध्यापनादि इन्द्रादि देवताओं, त्रिदेवों तथा लोकपालोंने कभी नहीं देखा था। इस दृश्यको देखकर वे चकित रह गये और उनकी आँखें चौंधिया गयीं—

कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर बिधि,
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सो।

(हनु० बा०

सूर्यभगवान्‌ने थोड़े ही समयमें सम्पूर्ण विद्याएँ, वेद शास्त्र, समस्त आगम-पुराण, नीति, अर्थशास्त्र, दर्शन व्याकरणशास्त्र आदिका शीघ्र ही उन्हें ज्ञान करा दि भगवान् सूर्यकी कृपासे उनके समान शास्त्र-विशारद कोई नहीं हुआ। इसी कारण हनुमान्‌जी समस्त विद्या, तथा तपोविधानमें बृहस्पतिके समान हुए—

नह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे
वैशारदे छन्दगतौ तथैव॥
सर्वासु विद्यासु तपोविधाने
प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम्।

(वा० रा० ७। ३६। ४६-

वाल्मीकीय रामायणमें स्वयं भगवान् श्रीरामने लक्ष्म इनके वाक्पाटव और व्याकरण-ज्ञानकी भूरि-भूरि प्र की है, उन्होंने कहा—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥

(वा० रा० ४। ३। २८-

अर्थात् 'जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा न मिली हो, जि यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया हो तथा जो सामवे विद्वान् न हो, वह ऐसा सुन्दर नहीं बोल सकता। नि ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरणका अनेक बार अध्ययन है; क्योंकि बहुत-सी बातें बोलनेपर भी इनके मुखसे अशुद्धि नहीं निकली।'

इस प्रकार हनुमान्‌जीका जो भी ज्ञान-विज्ञान है, भगवान् सूर्यदेवकी कृपाशक्तिका ही परिचायक है।

भगवान् सूर्यका अक्षयपात्र

महाराज युधिष्ठिर सत्यवादी, सदाचारी और अवतार थे। महान्-से-महान् संकट पड़नेपर भी उ कभी धर्मका त्याग नहीं किया। ऐसा सब कुछ होते भी राजा होनेके नाते दैवात् वे द्यूत-क्रीडामें सम्मिलि गये। जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूरस्थ देशमें

शत्रुओंके विनाशमें लगे हुए थे, उस समय महाराज युधिष्ठिरको जूएमें अपना राज्य, धन-धान्य एवं समस्त सम्पदा गँवानी पड़ी। अन्तमें उन्हें बारह वर्षोंका वनवास भी जूएमें हार-स्वरूप मिला। महाराज युधिष्ठिर अपने पाँचों भाइयोंके साथ वनवासके कठिन दु:खको झेलने चल पड़े। साथमें सती द्रौपदी भी थीं। महाराज युधिष्ठिरके साथ उनके अनुयायी ब्राह्मणोंका वह दल भी चल पड़ा, जो अपने धर्मात्मा राजाके बिना अपना जीवन व्यर्थ मानता था। उन ब्राह्मणोंको समझाते हुए महाराज युधिष्ठिरने कहा—'ब्राह्मणो! जूएमें मेरा सर्वस्व हरण हो गया। हम फल-मूल तथा अन्नके आहारपर रहनेका निश्चयकर संतप्त हृदयसे वनमें जा रहे हैं। वनकी इस यात्रामें महान् कष्ट होगा; अत: आप सब मेरा साथ छोड़कर अपने-अपने स्थानको लौट जायँ।' ब्राह्मणोंने दृढ़ताके साथ कहा—'महाराज! आप हमारे भरण-पोषणकी चिन्ता न करें। अपने लिये हम स्वयं ही अन्न आदिकी व्यवस्था कर लेंगे। हम सभी ब्राह्मण आपका अभीष्ट-चिन्तन करेंगे और मार्गमें सुन्दर-सुन्दर कथा-प्रसंगोंसे आपके मनको प्रसन्न रखेंगे, साथ ही आपके साथ प्रसन्नतापूर्वक वन-विचरणका आनन्द भी उठायेंगे।' (महाभारत, वनपर्व २। १०-११)

महाराज युधिष्ठिर उन ब्राह्मणोंके इस निश्चय और अपनी स्थितिको जानकर चिन्तित हो गये। उनको चिन्तित देखकर परमार्थ-चिन्तनमें तत्पर और अध्यात्म-विषयके महान् विद्वान् शौनकजीने महाराज युधिष्ठिरसे सांख्ययोग एवं कर्मयोगपर विचार-विमर्श किया और धनकी अनुपयोगिता सिद्ध करते हुए बोले—'जो मानव धर्म करनेके लिये धनके उपार्जनकी कामना करता है, उसकी वह इच्छा ठीक नहीं है, अत: धनके उपार्जनकी इच्छा नहीं करना ही उचित है। कीचड़ लगाकर पुन: उसे धुला जाय, इसकी अपेक्षा कीचड़ नहीं लगाना ही ठीक है, श्रेयस्कर है—

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य श्रेयो न स्पर्शनं नृणाम्॥

(महाभारत, वनपर्व २। ४९)

शौनकजीने वन-यात्रामें युधिष्ठिरको आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये एक विचित्र त्यागीका मार्ग अपनानेके लिये बताया था। फिर भी किसी सत्पुरुषके लिये अपने अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करना परम कर्तव्य है, तो ऐसी स्थितिमें स्वागत कैसे किया जा सकेगा?

युधिष्ठिरके इस प्रश्नपर शौनकजीने कहा—

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥

(महाभारत, वनपर्व २। ५४)

'हे युधिष्ठिर! अतिथियोंके स्वागतार्थ आसनके लिये तृण, बैठनेके लिये स्थान, जल और चौथी मधुर वाणी—इन चार वस्तुओंका अभाव सत्पुरुषोंके घरमें कभी नहीं रहता।' इनके द्वारा अतिथिसेवाका धर्म निभ सकता है।

महाराज युधिष्ठिर अपने पुरोहित धौम्यकी सेवामें उपस्थित हुए और उनकी सलाहसे सूर्यभगवान्‌की उपासनामें जुट गये। पुरोहितने भगवान् सूर्यके 'अष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्र' (एक सौ आठ नामोंका जप)-का अनुष्ठान बताया और उपासनाकी विधि समझायी। महाराज युधिष्ठिर सूर्योपासनाके कठिन नियमोंका पालन करते हुए सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि इत्यादि एक सौ आठ नामोंका जप करने लगे। महाराज युधिष्ठिरने सूर्यदेवकी प्रार्थना करते हुए कहा—

त्वं भानो जगतश्चक्षुस्त्वमात्मा सर्वदेहिनाम्।
त्वं योनि: सर्वभूतानां त्वमाचार: क्रियावताम्॥
त्वं गति: सर्वसांख्यानां योगिनां त्वं परायणम्।
अनावृतार्गलद्वारं त्वं गतिस्त्वं मुमुक्षताम्॥
त्वया संधार्यते लोकस्त्वया लोक: प्रकाश्यते।
त्वया पवित्रीक्रियते निर्व्याजं पाल्यते त्वया॥

(महाभारत, वनपर्व ३। ३६—३८)

'हे सूर्यदेव! आप अखिल जगत्‌के नेत्र तथा समस्त प्राणियोंकी आत्मा हैं, आप ही सब जीवोंके उत्पत्तिस्थान हैं और सब जीवोंके कर्मानुष्ठानमें लगे हुए जीवोंके सदाचार हैं। हे सूर्यदेव! आप ही सम्पूर्ण सांख्ययोगियोंके प्रासव्य स्थान हैं, आप ही मोक्षके खुले द्वार हैं और आप ही मुमुक्षुओंकी गति हैं। हे सूर्यदेव! आप ही सारे संसारको धारण करते हैं; सारा संसार आपसे ही प्रकाश पाता है। आप ही इसे पवित्र करते हैं और आप ही इस संसारका बिना किसी स्वार्थके पालन करते हैं।'

इस प्रकार विस्तारसे महाराज युधिष्ठिरने भगवान्

सूर्यकी प्रार्थना की। भगवान् सूर्य युधिष्ठिरकी इस आराधनासे प्रसन्न होकर सामने प्रकट हो गये और उनके मनोगत भावको समझकर बोले—

यत् तेऽभिलषितं किञ्चित् तत् त्वं सर्वमवाप्स्यसि।
अहमन्नं प्रदास्यामि सप्त पञ्च च ते समाः॥

(महाभारत, वनपर्व ३। ७१)

'धर्मराज! तुम्हारा जो भी अभीष्ट है, वह तुमको मिलेगा। मैं बारह वर्षोंतक तुमको अन्न देता रहूँगा।'

भगवान् सूर्यने इतना कहकर महाराज युधिष्ठिरको वह अपना 'अक्षयपात्र' प्रदान किया, जिसमें 'बना भोज्य पदार्थ' 'अक्षय्य' बन जाता था। भगवान् सूर्यका वह अक्षयपात्र ताम्रकी एक विचित्र 'बटलोई' थी। उसकी विशेषता यह थी कि उसमें बना भोज्य पदार्थ तबतक अक्षय्य बना रहता था, जबतक सती द्रौपदी भोजन नहीं कर लेती थीं। पुनः जब वह पात्र माँज-धोकर पवित्र कर दिया जाता था और जब दूसरी बार भोज्य पदार्थ बनता था तो वही अक्षय्यता उसमें आ जाती थी—

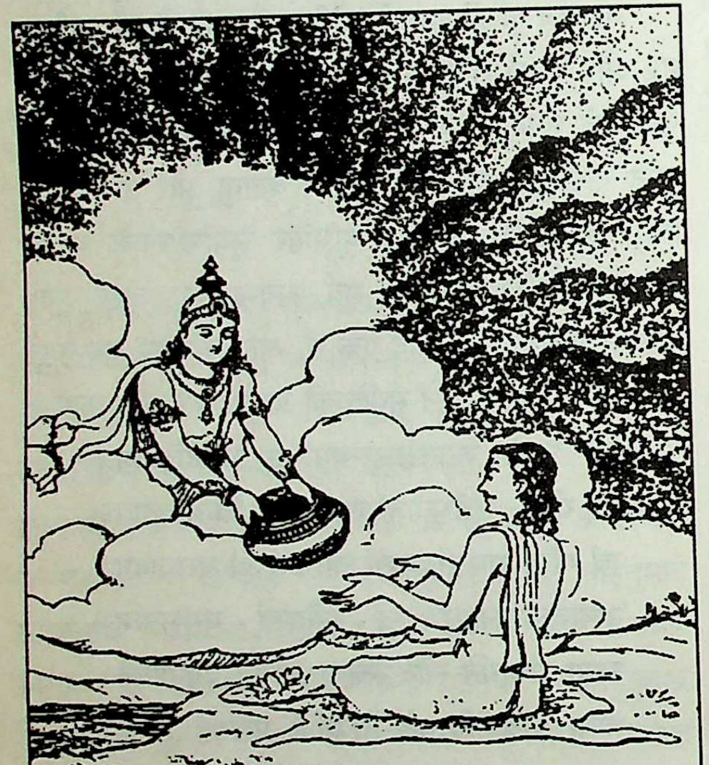

गृह्णीष्व पिठरं ताम्रं मया दत्तं नराधिप।
यावद् वर्त्स्यति पाञ्चाली पात्रेणानेन सुव्रत॥
फलमूलामिषं शाकं संस्कृतं यन्महानसे।
चतुर्विधं तदन्नाद्यमक्षय्यं ते भविष्यति॥

(महाभारत, वनपर्व ३। ७२-

इस प्रकार भगवान् सूर्यने धर्मात्मा युधिष्ठिरको उ तपस्यासे प्रसन्न होकर अपना 'अक्षयपात्र' प्रदान किया युधिष्ठिरकी मनःकामना सिद्ध करके भगवान् सूर्य अन्त हो गये।

महाभारतमें उसी प्रसंगमें यह भी लिखा है कि कोई मानव या यक्षादि मनको संयममें रखकर—चि वृत्तियोंको एकाग्र करके युधिष्ठिरद्वारा प्रयुक्त स्तोत्रका करेगा, वह यदि कोई अति दुर्लभ वर भी माँगेगा भगवान् सूर्य उसे वरदानके रूपमें पूरा कर देंगे—

इमं स्तवं प्रयतमनाः समाधिना
पठेदिहान्योऽपि वरं समर्थयन्।
तत् तस्य दद्याच्च रविर्मनीषितं
तदाप्नुयाद् यद्यपि तत् सुदुर्लभम्॥

(महाभारत, वनपर्व ३। ३

सूर्यप्रदत्त स्यमन्तकमणिकी कथा

प्रसेनो द्वारवत्यां तु निवसन्त्यां महामणिम्॥
दिव्यं स्यमन्तकं नाम समुद्रादुपलब्धवान्।
तस्य सत्राजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत्॥

(हरिवंशपुराण १। ३८। १३-

प्रसेन द्वारकापुरीमें विराजमान थे। उन्हें स्यम नामकी एक दिव्य मणि अपने बड़े भाई सत्राजित्से प्राप्त थी। वह सत्राजित्को समुद्रके तटपर भगवान् भु भास्करसे उपलब्ध हुई थी। सूर्यनारायण सत्राजित्के प्रा समान प्रिय मित्र थे।

सुप्रसिद्ध महाराज यदुकी वंशपरम्परामें अनमित्रके निघ्न नामक एक प्रतापी राजा हुए, जिनसे प्रसेन सत्राजित् नामक दो पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। वे शत्रु सेनाओंको जीतनेमें पूर्ण समर्थ थे।

एक समयकी बात है—रथियोंमें श्रेष्ठ सत्राजित् रा अन्तमें स्नान एवं सूर्योपस्थान करनेके लिये समुद्रके त गये थे। जिस समय सत्राजित् सूर्योपस्थान कर रहे थे उसी समय सूर्यनारायण उनके सामने आकर खड़े हो सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् सूर्यदेव अपने तेजस्वी मण्ड

मध्यमें विराजमान थे, जिससे सत्राजित्‌को सूर्यनारायणका रूप स्पष्ट नहीं दीख रहा था। इसलिये उन्होंने अपने सामने खड़े हुए भगवान् सूर्यसे कहा—'ज्योतिर्मय ग्रह आदिके स्वामिन्! मैं आपको जैसे प्रतिदिन आकाशमें देखता हूँ; यदि वैसे ही तेजका मण्डल धारण किये हुए अपने सामने अब भी खड़ा देखूँ तो फिर आप जो मित्रतावश मेरे यहाँ पधारे—इसमें विशेषता ही क्या हुई?[१]

इतना सुनते ही भगवान् सूर्यनारायणने अपने कण्ठसे उस मणिरत्न स्यमन्तकको उतारा और अलग एकान्त स्थानमें रख दिया। तब राजा सत्राजित् स्पष्ट अवयवोंवाले सूर्यनारायणके शरीरको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने उन भगवान् सूर्यके साथ मुहूर्तभर (दो घड़ी—अर्थात् ४८ मिनट) वार्तालाप किया। बातचीत करनेके अनन्तर जब सूर्यनारायण वापस लौटने लगे, तब राजा सत्राजित्‌ने उनसे प्रार्थना की—'भगवन्! आप जिस दिव्यमणिसे तीनों लोकोंको सदा प्रकाशित करते रहते हैं, वह स्यमन्तकमणि मुझे देनेकी कृपा कीजिये[२]।'

तब भगवान् सूर्यनारायणने कृपा करके वह तेजस्वी मणि राजा सत्राजित्‌को दे दी। वे उसे कण्ठमें धारणकर द्वारकापुरीमें गये। 'ये सूर्य जा रहे हैं'—ऐसा कहते हुए अनेक मनुष्य उन नरेशके पीछे दौड़ पड़े। इस प्रकार नगरवासियोंको विस्मित करते हुए सत्राजित् अपने रनिवासमें चले गये।

वह मणि वृष्णि और अन्धककुलवाले जिस व्यक्तिके घरमें रहती थी, उसके यहाँ उस मणिके प्रभावसे सुवर्णकी वर्षा होती रहती थी। उस देशमें मेघ समयपर वर्षा करते थे तथा वहाँ व्याधिका किंचिन्मात्र भय नहीं होता था। वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना दिया करती थी।[३]

जब भगवान् संसारी लोगोंके साथ क्रीडा करनेके लिये अवतार धारण करते हैं, तो सर्वसाधारण अल्पज्ञ व्यक्ति उन नटनागरको अपने समान ही कर्मबन्धनमें बँधा हुआ समझते हैं, उनके कार्योंपर शंका करते हैं और लाञ्छन लगनेवाली समालोचना भी कर बैठते हैं; परंतु जब भगवान्‌को नरनाट्य करना होता है तो वे अपनी भगवत्ताका प्रदर्शन नहीं करते।

लोभका ऐसा घृणित प्रभाव है कि उसके कारण भाई-भाईमें विरोध उत्पन्न हो जाता है, अपने पराये हो जाते हैं तथा मित्र शत्रु बन जाते हैं। इसी भावको प्रदर्शित करनेके लिये भगवान् श्यामसुन्दरने स्यमन्तकमणिके हरणकी लीला दिखायी थी। इस स्यमन्तकमणिके हरण एवं ग्रहणकी लीलाका विस्तृतरूपसे वर्णन श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध (अ० ५६-५७)-में हुआ है।

ऐसी प्रसिद्धि है कि भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिमें उदित चन्द्रमाका दर्शन होनेसे मनुष्यमात्रको कलंक लगनेकी सम्भावना होती है। चन्द्र-दर्शन हो जानेपर कलंकका निवारण हो जाय, इसके लिये श्रीमद्भागवतके इन दो (५६-५७) अध्यायोंका कथा-प्रसंग पढ़ना एवं सुनना अत्यन्त लाभप्रद है।

इस 'स्यमन्तकोपाख्यान'की फलश्रुतिका वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोंसे परिपूर्ण यह पवित्र आख्यान समस्त पापों, अपराधों और कलंकोंका मार्जन करनेवाला तथा परम मङ्गलमय है। जो इसे पढ़ता, सुनता अथवा स्मरण करता है, वह सब प्रकारकी अपकीर्ति एवं पापोंसे छूटकर परम शान्तिका अनुभव करता है।[४]

◆

१- यथैवं व्योम्नि पश्यामि सदा त्वां ज्योतिषाम्पते॥
तेजोमण्डलिनं देवं तथैव पुरतः स्थितम्। को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः सख्येनोपागतस्य वै॥
(हरिवंशपुराण १। ३८। १७-१८)

२-तदेतन्मणिरत्नं मे भगवन् दातुमर्हसि॥ (हरिवंशपुराण १। ३८। २१)

३-चार धानकी एक गुंजी या एक रत्ती होती। पाँच रत्तीका एक पण (आधे मासेसे कुछ अधिक), आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक पल (जो ढाई छटाँकके लगभग होता है), सौ पल (सोलह सेरके लगभग)-की एक तुला होती है, बीस तुलाका एक भार होता है अर्थात् आजके मापसे आठ मनका एक भार होता है।

४-यस्त्वेतद् भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च। आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद् वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम्॥
(श्रीमद्भा० १०। ५७। ४२)

भगवल्लीला-विमर्श

लीला—सृष्टिका एकमात्र प्रयोजन

आप्तकामकी सृष्टिकामना

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

वेदने परमात्माको 'आप्तकाम'[1] कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि परमात्माको सभी कामनाएँ स्वत: प्राप्त रहती हैं; अत: वह कोई कामना कभी नहीं करता—

आप्तकामस्य का स्पृहा?

किंतु बहुत-सी ऐसी श्रुतियाँ मिलती हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि परमात्मा सृष्टिकी कामना करता है। जैसे—

(क) **सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति।**

(तैत्ति० उप० २। ६)

(ख) **तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति।**

(छा०उप० ६। २। ३)

अर्थात् परमात्माने कामना की कि 'मैं अकेला रह गया हूँ बहुत हो जाऊँ।' बहुत होनेका अभिप्राय है—अनेक नामों और रूपोंमें अभिव्यक्त होना—

तन्नामरूपव्याकरणं बहुभवनम् (शां०भाष्य)

जैसे शान्त समुद्र जब खेलनेकी इच्छा करता है, तब अपनेको अनेक तरंगों, बर्फों, बुद्बुदों और फेनोंके रूपमें अभिव्यक्त कर लेता है; फिर इन आभासित द्वैतोंके साथ खेल प्रारम्भ कर देता है। उमंगमें भरकर लहरोंको अपनेमें लिपटा लेता है, लहरें जब मचलकर अलग होने लगती हैं, तब फिर कसकर अपनेमें लिपटा लेता है। बर्फोंको कभी आलिंगनमें छिपा लेता है और कभी उछाल देता है। एक ओर बुलबुलोंके साथ आँख-मिचौनीका खेल खेलता है तो दूसरी ओर फेनोंके साथ हास-परिहासका। वेदने इसी दृष्टान्तसे सृष्टिरूपी लीलाको समझाया है—

समुद्रादूर्मिर्मधुमानः उदारत्।

(तै०आ० प्रपा० १० अनु० १०)

यहाँ 'मधुमान' पदका सबके साथ सम्बन्ध है। समुद्र भी मधुमान (प्रेममय) है, तरंगें भी मधुमान हैं, भोग्य वस् भी मधुमान हैं और लीला-स्थली भी मधुमान है।

इससे यह समझमें आता है कि परमात्मा सृष्टि कामना करता है और कामनाके अनुरूप प्रेमका खेल प्रारम्भ कर देता है। इस तरह एक तरफ तो श्रुति 'आप्तका कहकर सूचित करती है कि 'परमात्मा कोई कामना न करता और दूसरी ओर अन्य वचनोंसे स्पष्ट प्रतिपादित कर है कि वह सृष्टिकी कामना करता है।' इस तरह परस् विरुद्ध होनेसे वेदमें वदतोव्याघात दोष आ जाता है— संशय होता है। इसके समाधानमें वेद कहता है—

…………………………… जगन्निर्माणलीलया।
परमात्ममयी शक्तिरद्वैतैव विजृम्भते॥

(महोपनिषद् ६। ६

भाव यह है कि परमात्माकी सृष्टि-विषयक जो काम है, वह केवल लीलाके लिये है—

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् (ब्र०सू० २। १। ३३)

लीलाके अतिरिक्त सृष्टिका और कोई प्रयोजन है नहीं। यदि लीलाके अतिरिक्त सृष्टि-रचनाका और को प्रयोजन होता, तब वेदमें व्याहत दोष आता।

लीलासे दोष कैसे हट जाता है?

अब जिज्ञासा होती है कि 'लीलामें ऐसी कौन- विशेषता है कि उक्त दोष हट जाता है। भगवान् शंकराचा वह विशेषता बतायी है—

यथा चोच्छ्वासप्रश्वासादयोऽनभिसंधाय बाह्यं किञ्चि प्रयोजनं स्वभावादेव सम्भवन्ति, एवमीश्वरस्याप्यनपेक्ष्य किञ्चि प्रयोजनान्तरं स्वभावादेव केवलं लीलारूपा प्रवृत्तिर्भवि

(ब्रह्मसू० शां०भा० २। १। ३

---

[1] १-आप्तकामश्रुतेः। (ब्र०सू०शां०भा० २। १। ३३)

जैसे साँसोंका लेना और फेंकना किसी बाह्य प्रयोजनके बिना ही स्वभावसे होते रहते हैं, वैसे ही बिना किसी अन्य प्रयोजनके स्वभावसे ही ईश्वरकी लीला-रूप प्रवृत्ति हुआ करती है।

इसी तरह स्पष्ट हो जाता है कि 'लीलामें रमे रहना' ईश्वरका स्वभाव है। इसी तथ्यको श्रुतिने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है—**नित्यलीलानुरागी।**

इस लीलाके अतिरिक्त सृष्टिका और कोई प्रयोजन है ही नहीं। भाष्यकारने जोर देकर कहा है कि 'न तो किसी श्रुतिसे और न किसी युक्तिसे ही लीलाके अतिरिक्त सृष्टिका और कोई प्रयोजन सिद्ध किया जा सकता है—

न हीश्वरस्य प्रयोजनान्तरं निरूप्यमाणं न्यायतः श्रुतितो वा सम्भवति। (ब्रह्मसूत्र शां० भा० २। १। ३३)

परमात्माका स्वभाव ऐसा क्यों?

अब कोई यह आक्षेप कर सकता है कि 'परमात्मा' तो '**महतो महीयान्**' है, फिर वह बच्चोंकी तरह खेलना क्यों पसंद करता है? भाष्यकारने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि यह ईश्वरका स्वभाव है और स्वभावपर ऐसा आक्षेप करना अनर्थक है—

न च स्वभावः पर्यनुयोक्तुं शक्यते।

(ब्रह्मसूत्र शां० भा० २। १। ३३)

'स्वभाव' पर कोई आक्षेप नहीं किया जा सकता। भाष्यकारका यह कथन यथार्थ है। सबका स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है और यह स्वभावकी भिन्नता ही उसके अस्तित्वका कारण होती है। आगका स्वभाव है दाह करना और प्रकाश करना। उसका यह स्वभाव ही उसके अस्तित्वका कारण है। स्वभावका अर्थ है वस्तुकी सत्ता। यदि अग्निमें दाहकता और प्रकाशकता न रहे तो उसे कोई 'अग्नि' कैसे कह सकता है? हम जल और मिट्टीको आग नहीं कहते। इसलिये कि इनमें न दाहकता है और न प्रकाशकता। स्वभावकी भिन्नता ही वस्तुका स्वरूपाधायक होती है। हम आकाशसे अतिरिक्त 'वायु' को तत्त्व क्यों मानते हैं? केवल इसलिये कि वायुका स्वभाव जो 'स्पर्श' है, वह आकाशमें नहीं है। इसी वायुसे उत्पन्न होती है आग। 'आग' को हम पृथक् तत्त्व इसलिये मानते हैं कि इसमें विशेष स्वभाव आ गया है—'रूपका होना', 'जलाना' और 'प्रकाश करना'—ये तीनों ही विशेषताएँ इनके जनक वायु और आकाशमें नहीं हैं। अग्निसे उत्पन्न होता है जल। इसका स्वभाव है स्वाद और संयोजन। ये दोनों ही न इसके पिता अग्निमें हैं, न पितामह वायुमें हैं और न प्रपितामह आकाशमें ही हैं। क्या आगको जीभसे चखा जा सकता है या वायु अथवा आकाशको ही चखा जा सकता है? जलका 'रस'-रूप स्वभाव ही जलकी सत्ताका कारण है। जलसे उत्पन्न होती है पृथ्वी। पृथ्वीका स्वभाव है गन्ध। यही 'गन्ध'-स्वभाव पृथ्वीको जल, अग्नि, वायु और आकाशसे अतिरिक्त द्रव्य माननेके लिये बाध्य करता है।

ऐसी स्थितिमें किसी वस्तुका स्वभाव 'इस तरह क्यों है, कैसे है?' यह प्रश्न उठाना क्या सचमुच निरर्थक नहीं है क्या?

प्रेमका स्वभाव है—लीला

जैसे पृथ्वीका स्वभाव 'गन्ध' है, जलका स्वभाव 'स्वाद' है, अग्निका स्वभाव 'रूप' है, वायुका स्वभाव 'स्पर्श' है, वैसे ईश्वरका स्वभाव है प्रेम। स्वभाव ही स्वरूप होता है, अतः ईश्वर प्रेम-रूप[1] है, रस-रूप[2] है, और आनन्द-रूप[3] है।

प्रेमका स्वभाव 'लीला' है, इस तथ्यको हृदयंगम करनेके लिये पहले एक लौकिक दृष्टान्त ले लिया जाय। किसी नायकका एक नायिकासे प्रेम हो जाता है। अब उसकी दुनिया बदल जाती है। सब वस्तुएँ रंगीन हो जाती हैं, सब सरस हो जाती हैं। अब नायिकाके बिना उससे रहा नहीं जाता है, वह उसके आस-पास मँडराता रहता है। कभी एकटक निहारता है, कभी मीठी-मीठी बातें करता है। इतनी बातें करता है कि वे कभी समाप्त नहीं होतीं। सब बातें क्रमबद्ध हों, यह आवश्यक नहीं। बस, बात करनेमें उसे रस मिलता है, इसलिये बातें करता चला जाता है। ये

---

[1] तस्मात् प्रेमानन्दात्। (सामरहस्योपनिषद्)

[2] रसो वै सः। (तैत्ति० उप० २। ६। ९)

[3] आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। (तैत्ति० उप० ३। ६। १)

जितनी क्रियाएँ हो रही हैं—यही तो 'लीला' है और प्रेममें यह स्वाभाविक है। प्रेमका यह 'स्वभाव' क्यों है, यह प्रश्न सचमुच निरर्थक है।

पति-पत्नीका जो प्रेम है, वह वस्तुतः उसी प्रेम-रूप प्रभुका अंश है। जैसे ईश्वरका 'सत्'-'अंश' सर्वत्र अनुस्यूत है, वैसे ही उसका प्रेमांश भी सभी प्रेमोंमें अनुस्यूत है। इसलिये कण-कणसे प्रेम करना मानवमात्रका कर्तव्य है। राष्ट्र-प्रेम, विश्व-प्रेम, भ्रातृ-प्रेम, पितृ-प्रेम तथा पुत्र-प्रेम आदि समस्त प्रेमोंमें उसी प्रभुका प्रेम अंशतः व्याप्त है, अतः पवित्र है। हाँ, प्रेमके नामपर आसक्ति नहीं होनी चाहिये; क्योंकि 'आसक्ति' प्राकृतिक है और प्रेम ईश्वरीय। आसक्ति पातक है और 'प्रेम' उन्नायक।

हाँ तो राष्ट्र-प्रेममें डूबकर यदि कोई आत्मदान करता है, विश्व-प्रेममें मत्त होकर जो अपना सब कुछ निछावर कर देता है, इस तरहकी और जितनी सुरभित क्रियाएँ करता है, आखिर इन्हीं क्रियाओंका नाम ही 'प्रेम-लीला' है न? प्रेममें इस तरहकी क्रियाओंका होना स्वाभाविक है। प्रेममें अगणित अभिलाषाएँ तो उठती ही रहती हैं और वे ही अगणित लीलाओंमें परिणत होती रहती हैं।

यह तो सांसारिक प्रेमकी बात हुई। परमात्मा तो प्रेम-रूप है। वह जो प्रेम अपने प्रेमास्पदोंसे करता है, वह सांसारिक प्रेममें कैसे सम्भव है? जब सांसारिक प्रेम होनेपर प्रेमी अपने प्रेमास्पदके बिना नहीं रह पाता, तब प्रेमरूप परमात्माका मन प्रलयमें प्रेमास्पदोंके बिना कैसे लगेगा? वेदने बताया है कि अकेले रहनेपर परमात्माका मन न लगा—

प्रजापतिर्वा एषोऽग्रेऽतिष्ठत् स नारमतैकः स आत्मानमभिध्यायद् बह्वीः प्रजा असृजत्।

(मैत्र० उप० २। ६)

अर्थात् प्रलयावस्थामें जब परमात्मा एक था, अद्वितीय था। तब (प्रेमास्पदोंके बिना) उसका मन न लगता था। प्रेमी तो अपने प्रियको देखना चाहता है, छूना चाहता है और गले लगाना चाहता है, फिर क्या? झट उसने अपने प्रेमास्पदोंको प्रकट कर लिया और स्वयं चिन्मय शरीर धारणकर उन्हें गले लगा लिया—

वर्ष्मणोप स्पृशामि।

(ऋग्वेद १०। १२५।

मायात्मकेन मदीयेन देहेन उपस्पृशामि।

(सा

कैसा सुहावना खेल चल पड़ा, जब स्वयं प्रेम धारण करके प्रेमी बन जाता है और प्रियको अपने सुको अङ्कमें भरकर अपनी आँखोंकी स्निग्ध छाया प्रदान है, सहलाता है, तब मुक्तोंको ब्रह्मानन्दमें जो उल्लास होंगे, उनकी कोई सीमा रह जाती होगी क्या? यह महान्-से-महान् है और कितना लुभावना है?

किंतु बिना सृष्टिके न तो लीलास्थली बन सकती है, भोग्यजात बन सकते हैं और न लीलामें भाग लेनेवालोंकी ही खड़ी हो सकती है। इसीके लिये सृष्टिकी रचना होती

प्रभुकी प्रेम-परवशता

साधारण प्रेममें जब प्रिय अपने प्रेमीके अधीन हो हैं, तब प्रेमरूप प्रभुके लिये तो यह भक्त-पराधीनता लाँघ जाती है और सरकारका हृदय प्रेमीके हाथमें होता प्रेमीको छोड़कर भगवान् अपने-आपको भी नहीं चाहते

नाहमात्मानमाशासे।

(श्रीमद्भा० ९। ४।

प्रेमकी लीला तो भगवान्‌को पागल तक बना देती वे स्वयं कहते हैं कि मैं अपने प्रेमीके पीछे-पीछे लगाया फिरता हूँ कि इसके चरणकी धूलि मेरे मस्तक पड़ जाय—

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥

(श्रीमद्भा० ११। १४।

है न यह पागलपन?

सिन्धु यदि बिन्दुके पीछे-पीछे इसलिये मारा फिरे वह इसके चरणकी धूल पा जाय और पवित्र हो जाय क्या यह सिन्धुका पागलपन नहीं है?

किंतु प्रेममें यह पागलपन कितना प्यारा है, महान् है और कितना सुहावना है।

यह है आप्तकामकी सरस कामना।

* * *

'भगवल्लीला' शब्दका धातुगत अर्थ, परिभाषा, पर्याय और लीलाका स्वरूप

(डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रचूडामणि स्कालर)

संस्कृत व्याकरणके अनुसार 'भगवल्लीला' शब्दमें दो शब्दोंका योग है। ये दोनों शब्द अपने-आपमें विशिष्ट हैं और जब इन दोनोंका योग हो जाय तो फिर पूछना ही क्या है? मणि-काञ्चन-योगकी तरह एक अपूर्व समरसता आ जाती है। इन दोनों शब्दोंमें षष्ठी-तत्पुरुष समास होनेके कारण इसका विग्रह होगा—'**भगवतः या लीला सा भगवल्लीला**'। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि दोनोंकी व्युत्पत्ति कैसी होगी और उनका धातुगत अर्थ क्या होगा? वस्तुतः '**भग**' शब्दके छः अर्थ होते हैं। जैसा कि कहा गया है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

अर्थात् समग्र ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, शोभा (लक्ष्मी), ज्ञान और वैराग्यको 'भग' कहते हैं। 'भग' है जहाँ और जिसमें, वह भगवान् या भगवती कहलाते हैं। यहाँ ऐश्वर्यबोधक '**भग**' (**भग ऐश्वर्ये**) शब्दसे '**मतुप्**' प्रत्यय करनेपर '**भगवत्**' शब्द व्युत्पन्न होगा और इस '**भगवत्**' शब्दसे निष्पन्न होगा '**भगवान्**'। भगवान्की स्वाभाविक या कृत्रिम लीला भगवल्लीला कहलाती है।

अब लीला शब्दपर जरा दृष्टिपात करें—'**लयनमिति लीः सम्पदादित्वात् क्विप्, पुनः लियं लातीति=ली+ला+क+टाप्=लीला**। इस लीला शब्दके शृंगार, भाव, चेष्टा, केलि, विलास और क्रीडा विशेष अर्थ होते हैं। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवतके उस श्लोकसे होती है, जिसमें कहा गया है कि—

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः।
लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया॥
(१।१।१८)

अर्थात् हे विद्वन्! अब उस भगवान् श्रीहरिके उन अवतार-कथाओंको कहिये, जिनमें ईश्वरकी आत्ममायासे स्वेच्छापूर्वक लीला-विहार करना कहा गया है। इससे भगवल्लीलाकी यथार्थता सिद्ध होती है।

'उज्ज्वलनीलमणि'में तो क्रीडा और विलासके अर्थमें लीला शब्दका प्रयोग किया गया है। जिससे दास्यभक्ति प्रकट होती है और उसमें नायिकाद्वारा प्रियतमके अनुकरणको ही 'लीला' कहा गया है—

अप्राप्तवल्लभसमागमनायिकायाः
सख्याः पुरोऽत्र निजचित्तविनोदबुद्ध्या।
आलापवेशगतिहास्यविलोकनाद्यैः
प्राणेश्वरानुकृतिमाकलयन्ति लीलाः॥

'हलायुध कोश' एवं 'वाचस्पत्यम्' आदि कोशोंमें इसी लीला शब्दकी व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहा गया है—

अलब्धप्रियसमागमया स्वचित्तविनोदार्थं प्रियस्य या।
वेशगतिदृष्टिहसितभणितैरनुकृतिः क्रियते सा लीला॥

इसका आशय यह है कि जिस नायिकाके द्वारा प्रिय-समागमको अप्राप्त करके अर्थात् वियोगावस्थामें अपने चित्तके विनोदके लिये प्रियके वेश-भूषा, गति-गमन, दृष्टि, हँसना और कथोपकथन आदिका अनुकरण किया गया हो या किया जाता हो—उसी अनुकरणको 'लीला' कहते हैं।

उपर्युक्त विवेचनके आधारपर 'लीला' शब्दके अनेक अर्थ हैं। इनमें प्रमुख अर्थ अवतारोंके चरित्र तथा कार्य-कलापोंका अभिनय ही है। यह अनुभूत विषय है कि जब परब्रह्म परमात्माके कार्य-कलाप या सृष्टिका रहस्य व्यक्ति नहीं समझ पाता, तब वह कहता है कि—'परमेश्वरकी यह अद्भुत लीला अपरम्पार है।' आशय यह है कि बुद्धिसे परे रहस्यमय कार्य-कलाप 'लीला' संज्ञासे अभिहित होता है। चाहे वह निर्गुण या सगुण ब्रह्मका हो अथवा मनुष्यका या अवतारके रूपमें किसी अन्य प्राणीका।

सर्वव्यापी भगवान्के विग्रहके दो रूप हैं—प्रथम परात्पर ब्रह्म और दूसरा मनुज-अवतार। इन दोनों रूपोंमें वह अपनी लीला करता है। लीलाका उद्देश्य भगवान्का विनोद अथवा क्रीडा है। ब्रह्मके रूपमें सृष्टि-रचना उसकी क्रीडा है। आदिकालसे भक्त लीला-दर्शनसे धन्य होते रहे हैं। निर्गुण

भक्त विश्वमें उसकी प्राकृतिक शक्तिसे चमत्कृत होते हैं। श्रद्धा या भक्तिका मूल कारण यह विश्व-व्याप्त लीला ही है।

अतः निर्गुण मतसे लीलाका यह रूप अगम है। उसके दर्शन तथा विवेचनके लिये ज्ञानसम्पन्न मेधाकी आवश्यकता पड़ती है। इसलिये कुछ ही सिद्ध पुरुष उसके दर्शनमें समर्थ होते हैं। भगवान्‌का दूसरा रूप मानव-अवतार है। इसमें वे मनुष्यकी भाँति कार्य-व्यापार करते हैं। उनकी नरलीला हमारे कार्य-व्यापारोंके तुल्य होती है। अतः उनके प्रति सहज आकर्षण होता है। जहाँ निर्गुण स्वरूपकी लीलाके दर्शनके लिये विवेक तथा ज्ञानकी आवश्यकता पड़ती है, वहाँ नरलीलाके स्वरूपको ग्रहण करनेके लिये हृदय स्वतः उसकी ओर उन्मुख होता है।

यदि लीलाकी भावनाको भक्तिका प्रमुख आधार माना जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। किसीको भक्तिके लिये हृदयमें श्रद्धाकी आवश्यकता पड़ती है। श्रद्धाका उदय अनायास नहीं होता। श्रद्धा सद्‌गुण या सत्कर्मके प्रति होती है। अतः श्रद्धाकी भावनाके लिये सर्वप्रथम भगवान्‌के दिव्य गुण तथा कर्मोंका दिग्दर्शन आवश्यक है। इस लक्ष्यकी पूर्तिके लिये लीलाका सम्यक् विवेचन तथा उसे हृदयंगम करनेकी परमावश्यकता पड़ती है। अतः निर्गुण तथा सगुण दोनों प्रकारके भक्त लीलाका महत्त्व स्वीकार करते हैं।

सगुण भक्तिमें निर्गुण एवं सगुण—इन दोनों प्रकारकी लीलाओंका समावेश है। भागवत सम्प्रदायकी कृष्णभक्ति-शाखामें भगवान्‌की दो लीलाएँ मानी गयी हैं। पहली लीला भगवान् गोलोकमें नित्य करते हैं। दूसरा रूप प्रतिबिम्ब लीलाका है जो वृन्दावनमें होती है। भगवान् रामकी लीलाके भी दो स्थल माने जाते हैं—पहला साकेत और दूसरा अयोध्या। वहाँकी स्थितिके अनुरूप लीलाके दो स्वरूप हैं। एकसे साकेतकी लीलाका तथा दूसरेसे अयोध्याकी लीलाका संचालन होता है। प्रथममें उनका अन्तरङ्ग 'आत्मस्वरूप' तथा द्वितीयमें ईश्वरत्वका 'बहिरङ्ग' रूप मिलता है। लीलाके लिये अन्य व्यक्तियोंकी भी आवश्यकता पड़ती है। अतः द्वैत-भावका विशिष्ट व्यवहार लीलाका मुख्य अंग है। अवतार-लीलासे सम्बन्धित सभी व्यक्ति साकेत लीलामें ही उपस्थित रहते हैं। इन दोनों प्रकारकी लीलाओंका उद्देश्य पृथक् है। दिव्य लीलामें भक्तोंको स्वरूपानन्द प्रदान करने अथवा नित्य कैंकर्य-सुख प्रदान करनेकी भावना है। पार्थिव नरलीला जीवोंके उद्धार तथा पथ-प्रदर्शनके लिये होती लीलाका उद्देश्य माया-पीडित जीवका भगवान्‌के अन्त स्वरूपके दर्शनद्वारा उद्धार करना है। साक्षात् परमेश्वरकी लील दर्शनसे मनुष्यके 'अहं' तथा 'स्वार्थ' की भावनाका परिष्क हो जाता है; उसमें पूर्ण तन्मयता आ जाती है—उपास्य आनन्द ही उसका आनन्द हो जाता है और वह उस आनन्द आप्लावित हो जाता है। जिस प्रकार भक्तिकी सम्यक् उपलब्धि लिये भगवत्कृपाकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार लील प्रवेश भगवान्‌की कृपासे होता है। वैष्णव मतानुसार मन्त्र शक्ति-साधना एवं आचार्यके द्वारा लीला-दर्शन सम्भव है। तथा योगके साधक इच्छाको मारनेकी साधना करते हैं। लील दर्शन इच्छाके बिना नहीं हो सकता। अतः सगुण भक्ति इच्छा परिष्कारद्वारा लीला-दर्शन करनेमें समर्थ है। भगवान्‌के ही लीला भी नित्य है।

भगवल्लीलाकी कोई इयत्ता नहीं है, वे कब कि प्रकारकी लीला करेंगे यह अज्ञात है। नानापुराण-नि आगम सबमें भगवल्लीला व्याप्त है। अनेक देवी-देवताओं लीलाएँ यत्र-तत्र-सर्वत्र उपलब्ध होती हैं। यहाँ तक लीलाके प्रसंगमें राम-पुरुषमें रामत्व, कृष्णमें कृष्ण नृसिंहमें नृसिंहत्व, हनुमान्‌में हनुमत्त्वका पराक्रम आ जाता है। वाल्मीकीय रामायण तथा श्रीमद्भागवतमें भगवा अनेक लीलाओंका दर्शन होता है। तभी तो रामचरितमा कहा गया है— ***'उमा करत रघुपति नरलीला'*** 'करउँ स ***रघुनायक लीला'***। रामकी लीला तो विश्वके अधि भागोंमें भी होती है। वन-गमन, अहल्या-उद्धार, ताड़ वध, सीता-स्वयंवर-सभामें धनुर्भंग, तथा रावण-वध रामकी अलौकिक लीलाएँ हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ और भी अपरम्पार हैं। उनकी बाल-लीला श्रीमद्भागवतमें अद्भुत मनोहारी वर्णन है।

श्रीकृष्णका माखन खाना, ऊखलसे बाँधा यमलार्जुनका उद्धार, वत्सासुर-वकासुर-अघासुर धेनुकासुरका उद्धार तथा ग्वाल-बालोंको कालिय बचाना आदि अलौकिक लीलाएँ हैं।

इस प्रकार भगवल्लीलाके स्वरूपका दिग्दर्शन हमें होता है।

◆

भगवल्लीला-स्वरूप एवं वैशिष्ट्य

(डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, डी० एस्० सी०)

'लीला' शब्दका सामान्य अर्थ है क्रीडा, आनन्द अथवा विलास। भगवान् आत्माराम होते हुए भी क्रीडा अथवा स्वकीय मनोरंजनके लिये—दूसरे शब्दोंमें लीलाके लिये ही सृष्टि करते हैं। भगवान्‌की लीला अमोघ है। वे लीलासे ही इस विश्वका सृजन-पालन और संहार करते हैं; किंतु इसमें आसक्त नहीं होते। परम स्वतन्त्र होनेके कारण वे प्राणियोंके अन्तःकरणमें अन्तर्हित होकर ज्ञानेन्द्रिय और मनके नियन्ताके रूपमें उनके विषयोंको तो ग्रहण करते हैं; परंतु रहते हैं उनसे सर्वथा असम्पृक्त ही। उनकी एतद्विषयक स्थिति पद्मपत्रमिवाम्भसा-जैसी होती है।

जिस प्रकार अज्ञानवश मानव नटके संकल्प तथा वचनोंसे रचित माया-सृष्टिको यथावत् नहीं पहचान पाता, उसी प्रकार भगवल्लीलाओंको भी नहीं पहचान पाता।

वे लीलामय विभिन्न लीलाओंके आश्रय होते हुए भी उनसे परे और विलक्षण हैं। वल्लभाचार्यजी कहते हैं—

सर्वाधारं वश्यमायमानन्दाकारमुत्तमम्।
प्रापञ्चिकपदार्थानां सर्वेषां तद् विलक्षणम्॥

(तत्त्वार्थ-दीप-निबन्ध, शास्त्रार्थ, प्र० का० ६७)

श्रीमद्भागवत आदिके अनुसार भगवल्लीलाएँ दशविध मानी गयी हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) सर्ग, (२) विसर्ग, (३) स्थान, (४) पोषण, (५) ऊति, (६) मन्वन्तर, (७) ईशानुकथा (८) निरोध, (९) मुक्ति तथा (१०) आश्रय। सर्वेशकी इन्हीं शाश्वत लीलाओंके अनुसार विश्वका खेल चलता रहता है।

इन लीलाओंका स्वरूप शास्त्रोंमें इस प्रकार प्रतिपादित हुआ है—

[१] सर्गलीला—सर्गका अर्थ है—सृष्टि। स्वेच्छारूपधारी परब्रह्म परमात्मा जब **'एकोऽहं बहु स्याम्'** का संकल्प करते हैं, तब वे प्रकृति, महत्तत्त्व, महाऽहंकार, आकाशादि पञ्चमहाभूत, स्पर्शादि पञ्चतन्मात्राएँ, दशेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारका समुदाय एवं अन्तःकरण—इन पचीस तत्त्वोंसे युक्त पुरुष-संज्ञक अक्षर ब्रह्मरूपसे शरीर धारणकर विविध प्रकारकी लीलाएँ करते हैं—वे जब भी सगुण-रूपमें अवतरित होते हैं, उस समय प्रकृति और माया—ये दोनों नित्य शक्तियाँ उनके साथ ही रहती हैं, जैसा कि भगवान् स्वयं अपने श्रीमुखसे श्रीमद्भगवद्गीता (४। ६)-में कहते हैं—

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

—इन्हीं माया-शक्तियोंके कारण मैं अनेक रूप धारण कर संसारमें आता हूँ।

[२] विसर्गलीला—इन्हीं अक्षर ब्रह्मद्वारा त्रिगुणात्मिका प्रकृतिजन्य गुणोंके वैषम्यसे ब्रह्मादिकी सृष्टिकी जो लीला निष्पादित होती है, उसीको विसर्ग-लीला कहा जाता है। ये अक्षर ब्रह्म परमधाम-व्यापी वैकुण्ठ-रूपसे स्थित रहकर भक्तोंको परमानन्द प्रदानकर, धामके साथ नामको भी—**'वैकुण्ठो विष्टरः श्रवाः'** अन्वर्थक बनाया करते हैं। श्रीमद्भागवतमें अक्षर ब्रह्मके इस परमधामके सम्बन्धमें कहा गया है—

तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्।
विष्णोर्धाम परं साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः॥

(३। ११। ४१)

समष्टिरूपमें सृष्टिके विस्तारकी उपक्रमभूता भगवल्लीला ही विसर्ग-लीला है। इस लीलाको रजोगुण-प्रधान प्रतिपादित किया जाता है।

[३] स्थानलीला—वैकुण्ठ-रूपसे व्याप्त श्रीमन्नारायणके आधिपत्यमें ब्रह्मादि देवोंका अपनी मर्यादामें स्थित हो जाना ही स्थानलीला है।

इस लीलाद्वारा सर्वनियन्ता प्रभु देवोंकी मर्यादा निश्चित करते हैं।

[४] पोषणलीला—अपने-अपने स्थानमें स्थित ब्रह्मादि देवोंको अनुग्रहपूर्वक पुष्टि प्रदान करते हुए उनके नियत कार्यके अनुरूप शक्ति प्रदानकर उन्हें कार्य-साधनमें सक्षम बनाना पोषणलीला है। पोषण वस्तुतः और कुछ नहीं बल्कि भगवदनुग्रह ही है, जैसा कि श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—**'पोषणं तदनुग्रहः।'**

उनकी अहैतुकी दयाके परिचायक श्रीमद्भागवतमें अनुस्यूत विभिन्न चरित्रोंमें मानव-जीवनकी सार्थकताका भाव और लक्ष्य पूर्णतः निहित है। समष्टिरूपमें भक्तोंका, शरणागतोंका

सम्बल प्रभुद्वारा गृहीत यह अनुग्रहात्मिका पुष्टिलीला ही है।

[५] **ऊतिलीला**—ब्रह्मादि देवोंके हृदयमें उनके गुणानुकूल कार्यको पूर्ण करनेकी सत्-कामना जाग्रत् करना भगवान्‌की ऊतिलीला है।

ऊतिका अर्थ है कर्मवासना—'**ऊतयः कर्मवासनाः**' (श्रीमद्भा० २। १०। ४)। इस लीला-प्रसंगमें बताया गया है कि ईश्वरांश जीवके नाना योनियोंमें जन्म लेकर कष्ट भोगनेका कारण उसके स्वकीय कर्म हैं। इस कर्मपाश तथा भटकावसे मुक्ति परमेश्वरकी दयोपलब्धि ही है। ईश्वरका अनुग्रह प्राप्तकर कर्मवासनासे छुटकारा पाना मानवका प्रथम कर्तव्य है।

[६] **मन्वन्तरलीला**—युग-युगान्तरसे सृष्टिक्रममें चली आ रही मनु-संततिके हृदयमें कल्पनाशक्ति, निश्चयात्मिका मनीषाशक्ति, कार्यसाधिका संकल्प-शक्ति आदि उत्पन्नकर उसे सद्धर्मकी ओर प्रेरित करना प्रभुकी मन्वन्तरलीला है।

तैंतालीस लाख बीस हजार वर्षोंकी एक चतुर्युगी होती है। इकहत्तर चतुर्युगीका एक मन्वन्तर होता है। प्रत्येक मन्वन्तरमें एक मनु होते हैं, जो अपने कालमें सद्धर्मकी रक्षा और प्रचार करते हैं। श्रीमद्भागवतमें मन्वन्तरका वर्णन आश्रयत्व (अवतार)-के समर्थनमें ही उपलब्ध होता है।

अवतार होता ही है धर्मकी रक्षा और स्थापनाके लिये। मन्वन्तरमें सद्धर्मकी स्थापनाका उद्देश्य मानवको धर्माभिमुखी बनाना है और यह कार्य जिनके सहयोगसे पूरा होता है, वे सब भगवदीय कथन—'**यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्**' के परिचायक होते हैं।

[७] **ईशानुकथालीला**—सृष्टिका क्रम अनवरत-रूपमें प्रवर्तित होता रहता है। यदि जीव भगवान्‌का आश्रय लेकर इस प्रवाह-परम्परासे ऊपर न उठ जाय तो उसे सतत भटकते ही रहना पड़ेगा। इसी आश्रयकी प्राप्तिके प्रसंगमें श्रीमद्भागवतमें ईशानुकथाका वर्णन आता है। भगवान् और भक्तोंके अनेक आख्यानोंसे युक्त चरित्रको 'ईशानुकथा' कहते हैं। दूसरे शब्दोंमें निज अंशभूत प्राणियोंके कल्याणार्थ सृष्टि तथा स्रष्टाके एकत्व-दर्शनपूर्वक अपना प्रामाणिक ज्ञान प्रस्तुत करते हुए समय-समयपर विभिन्न अवतार धारण कर त्रिभुवनको पावन करनेके लिये भगवान् जो लीलाएँ करते हैं तथा इसीके साथ उनके आश्रित भक्तोंकी जो शिक्षादायिनी गाथाएँ हैं, उन्हीं सबको ईशानुकथा- कहा गया है।

[८] **निरोधलीला**—निरोधका सामान्य शास्त्रीय है प्रलय। जब संसारमें तमोगुणका आधिक्य हो जाता तब भगवान् विपरीत गतिका निरोध करनेके लिये करते हैं। इसके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतमें बताया है—'जब भगवान् अपनी शक्तियोंसहित सो जाते हैं, सारे जगत्‌का निरोध हो जाता है—

निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः।

(श्रीमद्भा० २। १०।

[९] **मुक्तिलीला**—आत्यन्तिक लयको मुक्ति जाता है। आत्यन्तिक लयकी उपलब्धि भगवत्तत्त्व-ज्ञान प्राप्ति तथा भगवान्‌की प्राप्तिके उपरान्त होती है। ईश्वरोपलब्धि पश्चात् ही जीवके पुरुषार्थकी समाप्ति होती है और उ लिये संसारका आत्यन्तिक लय हो जाता है। वेदान्त दृष्टिसे एकमात्र मुक्ति कैवल्य ही है और उसकी उपल अन्तःकरणकी शुद्धिके पश्चात् परम ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा अविद्या नाशसे होती है। इस अविद्याका नाश अन्तःकरणकी शु निष्कामकर्म और ईश्वरोपासना आदिपर निर्भर है। कैवल्य मुक्तिके लिये ज्ञानोपलब्धि परमावश्यक है। श्रीमद्भागवत अनुसार—'अपने अज्ञानकल्पित असत्य-रूपको छोड़ अपने वास्तविक रूपमें स्थिति ही मुक्ति है'—

मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः॥

(२। १०।

[१०] **आश्रयलीला**—श्रीमद्भागवतमें इस लीला वैशिष्ट्य इस रूपमें प्रतिपादित है—'**दशमस्य विशुद्ध** **नवानामिह लक्षणम्**।' दशम आश्रयलीला-रूपसे स आश्रय-स्वरूप स्वयं वे प्रभु ही निरूपित हुए हैं। आश्रय विद्वानोंके अनुसार मुख्य रूपसे तीन प्रकारकी मानी है—कृपामार्गी शरणागत भक्तोंकी, मर्यादामार्गी ज्ञानी पुरु तथा प्रवाही-रूपसे अखिल विश्वकी।

कृपामार्गी शरणागत भक्त विडाल-शावकवत् प्रेमाभ कभी स्खलित न होनेवाले प्रभु-चरणोंका आश्रय सर्वात्मना निश्चिन्त हो जाते हैं। सर्वात्मना समर्पित इन अपना कुछ नहीं होता, ये पूर्णतः विश्वात्माको ही होते हैं और वे ही विश्वात्मा इनके सर्वस्व होते हैं।

मर्यादामार्गी ज्ञानी भक्त दशेन्द्रियों, मन, बुद्धि

चित्तद्वारा गृहीत विषयासक्तिका त्यागकर भगवदाश्रित हो जाते हैं।

उपर्युक्त विभिन्न आश्रयणोंद्वारा प्राप्य परब्रह्म ही सर्ग (सृष्टि)-से लेकर मुक्तिपर्यन्त स्वतः सम्पादित होनेवाली लीलाओंके आश्रय-स्वरूप हैं। उन्हींका आधार पाकर यह जगत् प्रादुर्भूत होता, स्थित रहता तथा प्रलयकालमें उन्हींमें विलीन हो जाता है। इसे ही प्रवाही आश्रयलीला कहा जाता है।

लीला-आसक्तिकी महत्ता—ऊपर विवेचित दशविध लीलाओंके अन्तर्गत विशेषतः अनुग्रहरूपिणी पोषणलीला तथा ईशानुकथालीलाके अनुसार वे परब्रह्म सृष्टि तथा स्रष्टाके भेदको निरस्तकर ऐसी मङ्गलमयी लीलाएँ किया करते हैं, जिनके श्रवण, कीर्तन एवं मनन-मात्रसे जीव कृतकृत्य हो जाता है। इन लीलाओंमें आसक्ति होना अनेक जन्म-जन्मान्तरके पुण्योंका प्रभाव है। जिन भावुक भक्तोंके हृदयमें जिस समय भगवल्लीला-कथामें आसक्तिका उदय हो जाता है, उस समय उनके हृदयमें स्वयं 'श्रीहरि' ही आ विराजते हैं। इसे दृष्टिगत कर श्रीमद्भागवत (१।२।८)-में कहा गया है—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

अर्थात् जिनकी प्रेरणासे सूर्यादि ग्रह निज कक्षामें अवस्थित रहकर निरन्तर निज-दायित्व निर्वहनमें संलग्न रहते हैं, विश्वकी सारी गतिविधियाँ जिनके कटाक्ष-मात्रसे परिचालित होती रहती हैं, उन सर्वेश्वरकी लीलाकथामें जिस धर्म-कर्मद्वारा प्रीति उत्पन्न नहीं होती, वह मात्र श्रम ही है और कुछ नहीं।

भगवल्लीला-आसक्ति अनन्यभक्ति, यथार्थ ज्ञान और वैराग्यकी उत्पादिका तो है ही, इन सबकी यथार्थताकी परिचायिका एवं रसज्ञताकी प्रामाणिक कसौटी भी है।

भगवल्लीलाकी महिमा वर्णनातीत है। जिनके हृदयमें सर्वेश्वरके कृपाप्रसादसे प्रभुकी लीलाकथामें अनुरक्ति उत्पन्न हो जाती है, वह भले ही नराधम ही क्यों न हो, श्रेष्ठतम साधु पुरुष ही बन जाता है। जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपने श्रीमुखसे श्रीमद्भगवद्गीता (९।३०)-में कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

अतः प्राणिमात्रको पूर्णरूपेण भगवान्‌की ही शरण ग्रहण करनी चाहिये—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(गीता १८।६६)

अन्ततः यही सिद्ध होता है कि समष्टि-रूपमें भगवल्लीला ईश्वरके अपने अंशकी सर्वात्मना उन्नतिका आनन्दाभिधायी सोपान है।

* * *

भगवान् शेष

सहस्रफणधारी, कमल-तन्तुके समान श्वेतवर्ण, मणिमण्डितमौलि, एक-कुण्डलधर, नीलवस्त्रधारी भगवान्‌का यह संकर्षण-विग्रह जगत्‌का आधार है। सम्पूर्ण पृथ्वी भगवान् शेषके एक फणपर राईके समान स्थित है। प्रलयके समय उनके फूत्कारकी अग्निमें विश्व सूखे गोबरके समान भस्म हो जाता है।

प्रलयकालमें भगवान् विष्णु शेषजीके भोगपर शयन करते हैं। भगवती लक्ष्मी चुपचाप उनके श्रीचरणोंको दबाती हैं। शेषजी अपने पूर्व फणसे उनके नाभिनालके लोकपद्मको, उत्तर फणसे प्रभुके मस्तकको एवं दक्षिण फणसे उनके चरणोंको आच्छादित किये रहते हैं। वे अपना पश्चिम फण फैलाकर सर्वेशको व्यजन करते हैं तथा अन्य फणोंसे भगवान्‌के शंख, चक्र, गदा, पद्म, नन्दक-खड्ग, दोनों तूणीर, धनुष तथा गरुड आदिको धारण किये रहते हैं।

पातालमें नागकन्याएँ भगवान् अनन्तके महाभोगको नाना प्रकारके सुगन्धित अङ्गरागोंसे उपलिप्त करती हैं। मुनिजन इष्टसिद्धिके लिये उनकी आराधना करते हैं। सनकादि उनसे तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं। प्रभुका यह रूप प्राणतत्त्वका अधिष्ठान है। वे समस्त बलके आश्रय हैं और वे ही जीवोंके परमोपदेष्टा आदिगुरु हैं।

* * *

'करउँ सकल रघुनायक लीला'

(आचार्य श्रीकृपाशंकरजी रामायणी)

श्रीरामचरित्रके—श्रीरामलीलाके परम रसिक एवं अनुभवी भक्तवर श्रीकाकभुशुण्डिजी अपने पूर्वजन्मके चरित्रको श्रीगरुडजीसे अत्यन्त भावपूर्ण भाषामें अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि 'मुझे तिर्यक् योनिसे लेकर देवयोनिपर्यन्त अनेक योनियोंमें—अनेक शरीरोंमें जन्म लेना पड़ा'—

कवन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं॥

(रा० च० मा० ७। ९६। ८)

परंतु श्रीगुरुदेवकी भास्वती अनुकम्पासे और भगवान् देवाधिदेव महादेवके अलौकिक प्रभावसे जन्म-मृत्युका कठिन क्लेश हमें रंचमात्र भी व्याप्त नहीं कर सका। प्रत्येक योनियोंमें मेरी भगवद्भजनकी वृत्ति अक्षुण्ण रूपसे बनी रही—

त्रिजग देव नर जोइ तनु धरऊँ। तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ॥

(रा० च० मा० ७। ११०। १)

परमात्मप्रभुकी करुणामयी स्मृति और भगवद्भजनकी वृत्ति जिसके मनमें नैरन्तर्येण—अविच्छिन्नरूपेण सर्वदा विद्यमान रहती है, उसे किसी भी परिस्थितिमें, किसी भी योनिमें, किसी भी कालमें, किसी भी देशमें और किसी भी वेशमें क्लेश नहीं हो सकता है। सुतरां भक्तोंकी याचना होती है कि—

जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू॥

(रा० च० मा० २। २४। ५-६)

रामभजनकी वृत्ति जिस भाग्यवान्‌के पास होती है, उसके अशेष क्लेशोंका शमन निश्चित ही हो जाता है।

श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं कि काक देहके पूर्व मुझे पवित्र एवं दुर्लभ ब्राह्मण-कुलमें जन्म मिला—

चरम देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई॥

(रा० च० मा० ७। ११०। ३)

उस ब्राह्मण-शरीरके बचपनमें मैं बालकोंके साथ मिलकर खेल खेलता था—*'खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला'* (७। ११०। ४)। परंतु मेरे खेलनेका साधन अन्य प्राकृत बालकोंसे सर्वथा भिन्न था, अनूठा था और अत्यन्त अनुरागमय था।

इस संदर्भमें यह ध्यातव्य है कि मात्र श्रीकाकभुशुण्डि ही नहीं, अपितु इस कोटिके अन्य महाभागवतोंका बाल भी लौकिक बचपनसे कुछ भिन्न प्रकारका ही होता अलौकिक होता है, दिव्य होता है और स्नेहोर्मिल होता उसमें भगवत्प्रेमकी मनोरम तरंगें समुच्छलित होती हैं। महाभागवत श्रीउद्धवजीके अनोखे, रसमय, उपासन बालपनका वर्णन और उनके भक्तिमय क्रीडा-साधन वर्णन महामुनीन्द्र व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी महाराज भाववि होकर करते हैं—

यः पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः।
तन्नैच्छद्रचयन् यस्य सपर्यां बाललीलया॥

(श्रीमद्भा० ३। २।

श्रीउद्धवजी जब मात्र पाँच ही वर्षके थे, तब अ भावमयी बालक्रीडा सम्पन्न करनेके लिये भगवत्-अधिष्ठा कल्पना करके अर्थात् मृत्तिका आदिकी मूर्तिका नि करके स्नेहोच्छलित भावपूर्ण हृदयसे उस भावमय श्रीविग्रह समर्चन करते थे। यही उनका दिव्य एवं अलौकिक था। उस समय भाग्यशालिनी जननी प्रातराश—बाल करनेके लिये जब बुलाती थीं, तब उन्हें श्रीकृष्णचन्द्रकी— परम प्रियतम प्रेमाराध्य, परम प्रेमास्पद प्राणाराध्यकी बीचमें ही छोड़कर कलेवा करनेकी इच्छा नहीं होती और वे 'मेरी भगवत्परिचर्या अभी सर्वाङ्ग सम्पन्न नहीं है'—इस प्रकारका भावपूर्ण प्रत्युत्तर दे देते थे अ वात्सल्यमयी जननीको। धन्य हैं श्रीउद्धवजी! धन्याति है उनकी मङ्गलमयी-स्नेहमयी बालक्रीडा!

श्रीकाकभुशुण्डिजी अपने पूर्वजन्ममें, अपने जन्मान्तरोंके श्रीरामभक्तिमय संस्कारोंके कारण; श्रीरामभक्तिरसका उदार हृदयसे परिवेषण करनेवाले भ विश्वनाथकी भास्वती अनुकम्पाके कारण अपने समव बालकोंके साथ मिलकर अपने परम प्रेमास्पद करु रघुनन्दन श्रीरामजीकी समग्र लीलाओंका अभिनय करते

'करउँ सकल रघुनायक लीला'॥

उपर्युक्त पंक्तिमें 'सकल' शब्द अत्यन्त सारगर्भित है। 'सकल' का भाव है कि श्रीरामजन्मसे लेकर श्रीरामराज्याभिषेक-पर्यन्त वे समस्त लीलाओंका रसास्वादन करते थे। एक बात यहाँ विशेष मनन करने योग्य है कि श्रीकाकभुशुण्डिजी साधनके आरम्भकालमें स्वयं बालकोंके साथ मिल करके श्रीरामलीलाका दिव्य अनुकरण करते थे और साधनकी चरमावस्थामें भी भगवल्लीलारसका समास्वादन करके परमानन्द-सुधासागरमें अवगाहन करके परमानन्द-रससार-सर्वस्वका अनुभव करते थे—

'सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ'॥

(रा० च० मा० ७। ११४। १३)

आरम्भिक अवस्थामें स्वयं लीलाभिनय करते थे और चरमावस्थामें भगवल्लीलाका मङ्गलमय दर्शन करते थे। भाव यह है कि लीलाभिनयका प्रत्यक्ष परिणाम है—स्वयं ठाकुरजीद्वारा सम्पादित लीलाओंका प्रत्यक्ष दर्शन। दूसरा भाव है मानव देहद्वारा भगवल्लीलाका अनुकरण और काक शरीरद्वारा भगवल्लीलाका प्रत्यक्ष दर्शन तथा तीसरा भाव है-भगवल्लीलाके स्नेहमय अनुकरणस्वरूप साधनके द्वारा प्रत्यक्ष श्रीरामलीलाका सहज सम्भव दर्शन।

भगवल्लीलाका अनुकरण एवं चिन्तन वियोगी भक्तोंको भगवत्-मिलनकी तरह ही मधुर आनन्द प्रदान करता है। लीलाकी परिभाषा है—'**अनायासेन हर्षात् क्रियमाणा चेष्टा लीला**'। अपने प्रियतमकी भाँति वेश धारण करना, उनकी ही तरह चलना, दृष्टि निक्षेप करना, हँसना, सम्भाषण करना तथा पूर्णतया प्रियतमकी अनुकृति ही लीला है—

'अप्राप्तवल्लभसमागमनायिकाया:
सख्या पुरोऽत्र निजचित्तविनोदबुद्ध्या।
आलापवेषगतिहास्यविलोकनाद्यै:
प्राणेश्वरानुकृतिमाकथयन्ति लीला:॥'

उदाहरणके रूपमें श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णगत-प्राणा व्रजसीमन्तिनियोंका प्रसंग—उनकी अलौकिक स्नेहोर्मिल लीलानुकृतिका प्रसंग मननीय है—

श्रीकृष्णवियोगिनी, श्रीकृष्णैकपरायणा, श्रीकृष्णैकमनस्का श्रीकृष्णमयी गोप-वधूटियाँ अपने प्राणप्रियतम प्राणेश्वर जीवनधन जीवन-सार-सर्वस्व रसिकशेखर परमानन्दकन्द व्रजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रके वियोगका अनुभव करके आकुल-व्याकुल हो गयीं। उनके मन-प्राण वियोगाग्निसे संतप्त हो गये। उनके अदर्शनके तीव्र तापसे वे संतप्त हो गयीं—'**अतप्यंस्तमचक्षाणा:**।' ठाकुरजीकी गति, स्नेहमयी मुसकान, मधुर चितवन, मनको प्रलुब्ध करनेवाली मनोविनोदपूर्ण बातें, उनकी मधुमयी लीलाएँ तथा रमारमण चित्तचोरकी विविध भावभंगिमाओंने गोपाङ्गनाओंके चित्तका अपहरण कर लिया था। वे तो पूर्णरूपेण कृष्णात्मिका हो गयी थीं, फिर तो वे अपने प्राणेश्वरकी विविध चेष्टाओंका अनुकरण करने लगीं—

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितै-
र्मनोरमालापविहारविभ्रमै:।
आक्षिप्तचित्ता: प्रमदा रमापते-
स्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिका:॥

(श्रीमद्भा० १०। ३०। २)

अनुराग-सरोवरमें निमग्न गोपियाँ अश्वत्थ, वट, प्लक्ष, रसाल, प्रियाल, कटहल आदि वृक्षोंसे तथा मालती, माधवी, मल्लिका, चमेली, जूही आदि लताओंसे अपने प्राणेश्वरके विषयमें पूछती हुई, भावपूर्ण अन्वेषण करती-करती जब वे श्रान्त-क्लान्त-परिश्रान्त हो गयीं, तब मुरली-मनोहर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रकी मधुर लीलाओंका अनुकरण करने लगीं—

इत्युन्मत्तवचोगोप्य: कृष्णान्वेषणकातरा:।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिका:॥

(श्रीमद्भा० १०। ३०। १४)

कोई भावमयी गोपी पूतना बन गयी। पूतनाके अभिनयमें उस गोपीका बड़ा स्नेहिल भाव था, धन्य है पूतना! श्लाघ्य है उसका सौभाग्य!

इसी प्रकार प्रस्तुत प्रसंगमें भी श्रीकाकभुशुण्डिजीके नेत्रोंमें, मनमें, प्राणोंमें श्रीरामदिदृक्षा—प्राणेश्वरकी दर्शन-लालसा समुल्लसित हो रही थी; सुतरां जन्म-जन्मान्तरके वियोगी भक्त श्रीकाकभुशुण्डिजी बालकोंके साथ सम्मिलित होकर अपने परमाराध्यके असमोर्ध्व मङ्गलमय सच्चिदानन्दमय श्रीविग्रहकी मङ्गलमयी दर्शन-लालसासे अपने प्राणधन कौसल्यानन्द-संवर्धन दशरथनन्दन रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रकी समग्र लीलाओंका अनुकरण करने लगे। इसी भावनासे भावित हो करके पूज्य-चरण गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी लिखते हैं—

'करउँ सकल रघुनायक लीला'॥

* * *

गोकुल-लीलाका आध्यात्मिक संदेश

(आचार्य डॉ० श्रीविष्णुदत्तजी राकेश, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०)

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ साधकोंका मार्ग-दर्शन करनेवाली हैं और वे स्वयं सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय हैं। उन्होंने वेदोक्त धर्मका बार-बार आचरण करके साधनरत प्राणियोंको यह बात दिखला दी कि घरमें रहकर भी धर्म, अर्थ और कामकी पवित्र सिद्धि प्राप्त की जा सकती है—

एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन् सतां गतिः।
गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत् पदम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ९०। २८)

उपदेश देनेका सच्चा अधिकारी वही है, जो अपने जीवनको स्वयं वैसा बना चुका है। प्रवृत्ति और निवृत्ति-प्रधान धर्मको अपने जीवनमें उतारकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने दोनों मार्गोंके साधकोंका मार्ग-दर्शन किया। द्वारकामें भगवान्का आचरण इसी प्रकारका रहा है। वे अनासक्त भावसे कामनाओंकी पूर्ति करते रहे और निष्काम कर्मयोगका आश्रय लेकर भोगोंके बीच रहते हुए भी महात्माओंका जीवन जीते रहे। श्रुति तथा लोकमार्गका समन्वय उन्होंने ही किया।

भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः।
कामान् सिषेवे द्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः॥

(श्रीमद्भा० ३। ३। १९)

श्रीकृष्णकी गोकुल-लीला कर्मयोगके इसी रहस्यको बतानेके लिये है। इसीलिये शुकदेवजी महाराजने इसका प्रारम्भ पूतना-मोक्षसे तथा समापन फल-विक्रयिणी लीलासे किया है। संसारमें साधकका स्वभाव कैसा हो? इसका संकेत पूतना-मोक्ष लीलामें है। श्रीकृष्ण शय्यापर लेटे हुए हैं। पूतना सुन्दरी बनकर वहाँ जाती है तथा श्रीकृष्णको गोदमें उठा लेती है। भगवान् उस बालघातिनीको देखकर आँखें मूँद लेते हैं—

चराचरात्माऽऽस निमीलितेक्षणः। (श्रीमद्भा० १०। ६। ८)

मानो भगवान् बताना चाहते हैं कि अविद्यारूपी पूतनाकी गोदमें रहना तो साधककी नियति है, पर अविद्याके क्रियाकलापके प्रति साधकको पूर्ण उपेक्षाभाव रखना चाहिये—उसकी ओरसे आँखें मूँद लेनी चाहिये। सांसारिक आकर्षणोंके प्रति आँखें मूँद लेना ही साधना है। श्रीकृष्ण जगद्गुरु हैं। साधकोंको उपदेश करते हैं कि 'जहाँ साधक सांसारिक आकर्षणोंसे आँखें हटा लेता है तथा नेत्र मूँदकर ध्यानाभ्यासद्वारा चित्तकी प्रगाढ एकाग्रता क रखता है, वहाँ यह पूतनारूपी अविद्या दिन-रात क्षीण हो हुई धीरे-धीरे विलीन हो जाती है।' श्रीकृष्ण आँख मूँदक निजात्मरूपका ध्यान करने लगे। उन्होंने अविद्या पूतनाको पहचान लिया; फिर भला उन आत्मारामका पूतना (अविद्या) क्या बिगाड़ सकती थी?

पूतनाके स्तनोंमें दूध और विष दोनों विद्यमान संसारमें भी विष और अमृत दोनों प्राप्त होते हैं। यहाँ पा पुण्य, हर्ष-शोक, राग-विराग, जन्म-मरण-जैसे विषमभ निरन्तर विद्यमान रहते हैं। बन्धन तथा मोक्ष भी रहते अब यह साधकपर निर्भर करता है कि वह बन्धन चाह है या मोक्ष। पाप करता है या पुण्य। श्रीकृष्णने पूतना स्तनपान करते हुए दूध ग्रहण कर लिया तथा विष छ दिया। हंसकी तरह दूध-पानी अलग-अलग कर दूध लिया। संतोंका स्वभाव ही ऐसा होता है—

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥

श्रीकृष्णने उपदेश किया, जगत् गुण-दोषमय होता इसमेंसे मेरी तरह अच्छाई ग्रहण करो तथा बुराई छोड़ यह कर्मयोगीका सकारात्मक गुण है।

ऐसे ही साधकको अपनी जागतिक प्रवृत्तियोंके शक उलट देना चाहिये। श्रीकृष्णने शकट-भञ्जन-लीलाद्वारा उपदेश दिया। उन्होंने लात मारकर शकट उलट दि साधकको भी भौतिक सुखों एवं अनात्म जगत्को ऐसे लात मार देनी चाहिये, उसे ठुकरा देना चाहिये। अनात्म त्याग श्रेयस्कर होता है। यहाँ भागवतकारने शकटको उ दिया—ऐसा वर्णन किया है—

कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात्॥

इससे सिद्ध है कि भगवान् साधकोंकी शिक्षाके ही यह लीला कर रहे हैं। मानो भगवान् कहते हैं कि जीवात्मा! तू अपनेको नहीं जानता, इस नष्ट होने मिट्टीकी गाड़ीको सरपर रखकर लेटा हुआ है। तू पुरुष नीचे लेटा है और यह जड-प्रपञ्च तेरे सिरपर हुआ है। तू तो गरुडके समान सुन्दर और चिदा उड़नेवाला है। तू इस धरती या एक परिवार, एक

एक देश तथा एक सम्प्रदायका नहीं। तू पृथ्वीसे ऊपर उठ, अपने ज्ञानालोकसे द्युलोकको प्रकाशित कर, अपने तेजसे दिशाओंको उन्नति कर।' यजुर्वेद (१७। ७२)-की एक श्रुति है—

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद।
भासाऽन्तरिक्षमा पृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद्दृꣳ ह॥

और ठीक इस लीलाके बाद इस मन्त्रके परिप्रेक्ष्यमें तृणावर्त-लीलाका आयोजन होता है। सुपर्ण कृष्ण पृथ्वीपर बैठे हैं—

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता।

अपनी दीप्तिसे अन्तरिक्षको भर देनेकी चाह उनमें पैदा हो रही है। वे संसारको दीप्त करनेवाले वैश्वानर हैं। प्राणियोंमें—'**अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः**'के कथनानुसार वे अग्निरूपसे विद्यमान हैं, अपने तेजसे वे संसारको व्याप्त किये हुए हैं। अतः साधकको उपदेश करते हैं कि 'तू वैश्वानर बन और मर्त्यलोकसे ऊपर उठ। तू गरुत्मान् है अर्थात् महान् आत्मावाला है, अतः उस महान् आत्माका साक्षात्कार कर।' तृणावर्त विक्षेप है और प्रपञ्चका व्यवहार विक्षेपशक्ति कहलाता है।

श्रीकृष्णतत्त्वको या आत्मतत्त्वको विक्षेपके समाप्त हो जानेपर ही पाया जा सकता है। अनात्मबोधके त्रिपुर या तृणावर्तको आत्मज्ञानके शिव ही मार सकते हैं। इसीलिये श्रीशुकदेवजी इस वधकी तुलना त्रिपुर-संहारसे करते हैं, क्योंकि त्रिपुर-संहार ज्योतिरूप दिव्यज्ञानास्त्रसे हुआ, अतः विक्षेपका निरसन भी ब्रह्मज्ञानके उदयसे ही होगा।

विक्षेपके साथ ही दूसरी शक्ति है आवरण। आवरण सत्य वस्तुके ज्ञानमें बाधक होता है। अतः निर्विकार आत्मदर्शनके लिये, श्रीकृष्णतत्त्वके साक्षात्कारके लिये आवरणकी निवृत्ति परमावश्यक मानी गयी है। माँ श्रीकृष्णको दूध पिलाते हुए उनके मुखमें सम्पूर्ण जगत्का दर्शन करती हैं। इस रूपको देखकर माँने आश्चर्यसे आँखें बंद कर लीं।

साधकको विश्वतोमुख भगवान्का परिचय आवरण हट जानेके बाद ही होता है। बिना आवरण हटे उनका स्वरूप नहीं दिखायी दे सकता। तभी तो भगवान् प्रेरणा देते हैं, साधको! स्वचक्षुओंको बंद करो तथा दिव्य चक्षुओंसे मेरे विराट् रूपका दर्शन करो'—

'**न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।**'

यहाँ यशोदाद्वारा अपनी आँखें मूँद लेनेका यही तात्पर्य है और इसीके बाद भगवान्का अनुग्रह बरसने लगता है। उन्हें दिव्य चक्षु मिल जाते हैं। वे विश्वरूपका दर्शन करती हैं तथा उनकी अहंता-ममता नष्ट हो जाती है। वे कह उठती हैं—'यह मैं हूँ, ये मेरे पति हैं, यह मेरा पुत्र है, मैं व्रजराजकी राजरानी समस्त सम्पत्तियोंकी स्वामिनी हूँ। ये गोप, गोपी और गोधन मेरे अधीन हैं। जिनकी मायासे मुझे इस प्रकारकी कुमति घेरे हुए हैं, वे भगवान् ही मेरे एकमात्र आश्रय हैं, मैं उन्हींकी शरणमें हूँ'—

अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो
व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती।
गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे
यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः॥

(श्रीमद्भा० १०। ८। ४२)

नल-कूबरके उद्धार-प्रसंगमें संत सांनिध्यकी महत्ता बतायी गयी है। बिना दरिद्रता या अकिंचनत्वके बोधके समदर्शिता या समताका भाव पैदा नहीं होता। सिद्धि या असिद्धिमें महत्त्व-बुद्धि होनेके कारण समताका उदय नहीं होता। उलूखल-बन्धन-लीला इसी ओर ध्यान खींचती है। विनाशी पदार्थोंका महत्त्व यदि अन्तःकरणमें बना रहता है तो समताका उदय नहीं होता। माँ यशोदा श्रीकृष्णको छोड़कर दही मथने बैठती हैं, यह विनाशी पदार्थोंके प्रति बढ़े हुए महत्त्वका ही सूचक है। अनुकूलता-प्रतिकूलताका, नाम और रूपका द्वन्द्व यहाँ बना रहता है। अतः यमलार्जुन-उद्धार प्रसंगमें देवर्षि नारदसे कहलवाया गया—संतोंके संगसे लालसा-तृष्णा मिट जाती है और साधकका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, अतः दरिद्रता (बाह्य पदार्थोंसे संकोच)-का अभ्यास करो, क्योंकि उसके भोगपदार्थ क्रियामें तो छूटे हुए हैं ही, केवल विचारमें शेष हैं, तृष्णा लालसारूपमें विचाररूपसे रहनेवाले भोग साधुओंकी प्रेरणासे समूल नष्ट हो जाते हैं। अतः विचार और क्रिया दोनोंमें ही समभाव जाग्रत् हो जाता है—

दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः।
सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद् विशुद्ध्यति॥

इसके बाद कर्म समर्पण या ब्रह्मार्पणभावसे क्रियासिद्धि प्राप्त होती है। यह दिखानेके लिये गोकुलकी फल-विक्रयिणी-लीला समापनके रूपमें घटित होती है। इसीके बाद श्रीकृष्णका वृन्दावन-गमन होता है, जहाँसे साधकको

भक्तियोगका संदेश मिलता है। गोकुल-लीला कर्मयोग सिद्धिकी लीला है।

कर्मयोगी जब कर्मका फल अपने लिये निर्धारित करता है, सत्कर्मके फलको धर्म, सम्पत्ति, पुत्र एवं पौत्रादि सुखतक सीमित मानता है, तबतक वह बन्धनका कारण रहता है, इसे फलका बेचना कहा गया है, पर जब कर्म ब्रह्मार्पणभावसे होता है तो वह मुक्ति प्रदान करनेवाला होता है। शुकदेवजी कहते हैं—वह फल बेचनेवाली गोकुलमें भगवान्‌की अटारीके सामने आवाज लगा रही थी—'फल, लो फल'—

क्रीणीहि भोः फलानि। (श्रीमद्भा० १०। ११। १०)

सुनते ही समस्त कर्म और उपासनाओंके फल देनेवाले भगवान् अच्युत फल खरीदनेके लिये अपनी छोटी-सी अंजलिमें अनाज लेकर दौड़े। उनकी अंजलिसे अनाज मार्गमें बिखर गया, फल बेचनेवालीने उनकी अंजलि फलोंसे भर दी और उधर भगवान्‌ने उसकी फल रखनेवाली टोकरी रत्नोंसे भर दी—

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यं करद्वयम्।
फलैरपूरयद् रत्नैः फलभाण्डमपूरि च॥

जो यज्ञादि कर्म सकाम होते हैं। उनसे स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्ति होती है। किंतु जो निष्काम कर्म करते हैं, उन्हें भगवान् भक्तिरूपी रत्न प्रदान करते हैं। यह टोकरी यज्ञवेदी है। फल बेचनेवाली पूर्वमीमांसा है तथा श्रीकृष्ण यज्ञेश्वर परमपुरुष। भगवान् मानो उपदेश करते हैं कि सकाम उपासक पुण्यफलोंको बेचनेवाले हैं, अतः तुलन कम महत्त्वके हैं, पर निष्काम उपासक तथा कर्मयो पुण्यफलोंका समर्पण करनेवाले हैं, अतः अपेक्षाकृत सर्वश्रेष्ठ हैं। गीतामें भगवान्‌ने कहा भी है कि मुझे सम्पू यज्ञों तथा तपोंका भोक्ता, सम्पूर्ण लोकोंका महान् ईश्वर औ सम्पूर्ण प्राणियोंका सुहृद् जानकर मनुष्य शान्तिको प्र करता है—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २

इस प्रकार कर्मयोगीकी सिद्धि इस बातमें है कि क समस्त पदार्थ समर्पित कर दे तथा पदार्थोंका दान औ क्रिया-कलाप भी समर्पित कर दे। फलेच्छाका त्याग कर ही कर्म करना श्रेयस्कर है। भगवदर्पण-भावसे कर्म ए कर्मफल प्रदान करनेसे समस्त कर्म शुद्ध हो जाते हैं औ कर्ता कर्तापनके अहंकारसे विमुक्त तथा आसक्तिसे अ होकर सर्वथा मुक्त हो जाता है। कर्म और कर्मफल उ संलिप्त नहीं करते—'**न कर्म लिप्यते नरः।**'

सारांश यह कि निष्कामकर्म-सम्पादन, कर्मफल ब्रह्मार्पण तथा परहित-चिन्तन मनुष्यको परमेश्वरकी प्रि प्रदान करते हैं तथा ऐसा कर्मयोगी दुर्लभ मुक्तिको सह ही प्राप्त कर लेता है।

* * *

भगवदवतार लीलानुवर्णन

(डॉ० आचार्य श्रीगौरकृष्णजी गोस्वामी शास्त्री, आयुर्वेद शिरोमणि, काव्य पुराणदर्शन तीर्थ)

'महतां चरितं चारुलीलानुश्रवणं हरेः'

इस वचनानुसार साधकजन नित्य एवं आवश्यक कर्तव्यके रूपमें महज्जनोंके चमत्कारिक चरित तथा मनोहारी भगवल्लीलाओंका अनुश्रवण-स्मरण आदि करते रहते हैं।

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥

(श्रीमद्भा० १। ३। २६)

जिस प्रकार अगाध सरोवरसे निःसृत जल अनेक प्रणालियोंद्वारा प्रवाहित होता है, उसी प्रकार भगवान्‌के अनन्त अवतार हैं, जिनके द्वारा वे विविध रूपसे अपनी अलौकिक लीलाओंद्वारा जगत्‌को आनन्दित करते रहते हैं।

भगवान्‌के अवतारोंके मुख्यतः छः भेद हैं—

(१) पुरुषावतार

कारणार्णवशायी महाविष्णुके अवतार रूपमें यह संक अंशावतार हैं, जो अपने भृकुटि-विन्याससे प्रकृतिको विक्षु कर महत्तत्त्वादिद्वारा इस प्रपञ्चात्मक विश्वकी करते हैं।

(२) गुणावतार

जो सत्त्वगुणद्वारा विश्वके पालक विष्णुस्वरूप हैं उन द्वारा रजोगुणात्मक सृष्टि-कारक ब्रह्मा तथा तमोगुण

सृष्टि-संहारक शिवकी उत्पत्ति है।

(३) मन्वन्तरावतार

ये चौदह प्रकारके हैं। ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर होते हैं एवं प्रत्येक मन्वन्तरमें एक-एक अवतार होते हैं।

(४) शक्त्यावेशावतार

इसके आवेश, प्रभाव, वैभव तथा परावस्थ भेद हैं, इनमें उत्तरोत्तर अधिक शक्ति एवं प्रकाशकरूपमें अवतारोंकी श्रेष्ठता है।

(५) युगावतार

सत्य, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग—इन चार युगोंमें भगवान् युगावतार-रूपमें अवतीर्ण होते हैं।

सत्ययुगमें—

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः।
कृष्णाजिनोपवीताक्षान् बिभ्रद् दण्डकमण्डलू॥

(श्रीमद्भा० ११। ५। २१)

भगवान् शुक्लवर्ण, जटावल्कल वस्त्रधारी, मृगचर्म, यज्ञोपवीत, अक्षमाला तथा दण्ड-कमण्डलु धारणकर अवतरित होते हैं।

त्रेतायुगमें—

त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः।
हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः॥

(श्रीमद्भा० ११। ५। २४)

भगवान् रक्तवर्ण, चतुर्भुज, त्रिगुण मेखलाधारक, सुनहरे केश, त्रयी वेदात्मक रूप तथा स्रुक-स्रुवादि धारणकर अवतीर्ण होते हैं।

द्वापरयुगमें—

द्वापरे भगवाञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः।
श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः॥

(श्रीमद्भा० ११। ५। २७)

भगवान् श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, चक्रादि आयुधोंसहित कौस्तुभादि मणियोंसे अलंकृत होकर अवतीर्ण होते हैं।

कलियुगमें—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥

(श्रीमद्भा० ११। ५। ३२)

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कृष्ण-प्रभाभासित होकर अपनी महाभाव-स्वरूपा प्रियतमा श्रीराधिकाकी भावाङ्ग गौरकान्ति धारणकर अपने श्रीनित्यानन्दादि प्रिय पार्षदोंके सहित कलियुगका एकमात्र साधन हरिनाम संकीर्तनके प्रचार-प्रसारहेतु श्रीगौरांग महाप्रभु रूपमें अवतरित हुए। बौद्धिकजन संकीर्तनात्मक यज्ञसे उनकी आराधना करते हैं।

(६) लीलावतार

भगवान्के श्रीवामन, वाराह, कूर्म, धन्वन्तरि आदि अनेक लीलावतार हैं, जो प्रतिकल्पमें एक बार अवतरित होते हैं और इनकी अंशावतार-रूपमें परिगणना है।

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

(श्रीमद्भा० १। ३। २८)

'कृष्णो वै परमं दैवतम्।'

(गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत् १)

किंतु श्रीकृष्ण षोडश कलात्मक पूर्ण भगवदवतार हैं, एवं इस श्रीकृष्णावतारमें ऐश्वर्य और माधुर्यका पूर्ण प्रकाश होनेके कारण कृष्णावतार ही सर्वश्रेष्ठ अवतार है।

मानवरूपमें श्रीकृष्णकी जितनी लीलाएँ हैं, वे सर्वोत्कृष्ट एवं रसिकजनोंके हृदयोंमें रसोत्पादक हैं। उनका वह नटवर-नागर गोपवेश चराचर जगत्को विमोहित कर देता है। जब वे कदम्ब-काननमें मधुर मादक मुरलीकी तान छेड़ते हैं, तब पानी-भरे बादल सहसा रुक जाते हैं, गन्धर्व अपने गायनको छोड़ चमत्कृत हो उठते हैं, सनकादि मुनियोंके ध्यानमें बाधा उत्पन्न हो जाती है, ब्रह्मा चकित-भ्रमित हो जाते हैं एवं शेषनाग फणोंको ऊपर उठाकर झूमने लगते हैं। इस प्रकार कन्हैयाकी बाँसुरीके स्वर ब्रह्माण्डको भेदकर चारों ओर गुंजायमान हो उठते हैं।

श्रीकृष्ण जब व्रजवृन्दावनमें स्वजनोंके साथ रहते हैं, तब उनका प्रकाश पूर्णतम, मथुरामें पूर्णतर, द्वारकामें पूर्ण तथा गोलोकमें पूर्ण कल्पकी स्थितिमें रहता है एवं इसीके अनुसार व्रजवृन्दावनमें माधुर्य विशेष तथा ऐश्वर्यमें कमी रहती है। मथुरासे द्वारकामें और द्वारकासे गोलोकमें माधुर्य कम तथा ऐश्वर्य विशेष रूपसे रहता है। गोलोककी लीलाएँ और वृन्दावनकी लीलाओंमें भेद नहीं है, किंतु व्रजवृन्दावनमें माधुर्य तथा गोलोकमें ऐश्वर्यका पूर्णतम प्रकाश है, यही इन दोनोंका भावान्तर भेद है।

वे रसिक भावुक व्रजवासीजन आज भी उस गौर-श्याम युगलकी लीलाओंका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्तकर अपने भाग्यकी सराहना करते हैं। धन्य है श्रीराधा-माधवका यह वृन्दावन और धन्य हैं उनकी वे ललित लीलाएँ।

◆

श्रीकृष्णकी रासलीला एवं उसका आध्यात्मिक रहस्य

(आचार्य श्रीरामगोपालजी गोस्वामी, एम्०ए०, एल्० टी०, साहित्यरत्न)

रासलीला एक दिव्य प्रेम-सुधा-रसका समुद्र है, उसकी दो धाराएँ हैं। दो ओरसे आती हैं, टकराती हैं और एक हो जाती हैं। पहली लहर दूसरी हो जाती है, दूसरी लहर पहली हो जाती है। इस प्रकार प्रेमी-प्रियतम, प्रियतम-प्रेमीके अन्यतम मिलनकी यह अनन्त धारा चलती रहती है। नया मिलन, नया रूप, नया रस, नयी प्यास और नयी तृप्ति—यही प्रेम-रसका अद्वैत स्वरूप है। इसीका नाम रास है।

गोपियाँ रसविशिष्ट प्रेमवृत्ति हैं। राधारानी मूर्तिमती ब्रह्मविद्या हैं, आराधना हैं, आराधिका हैं, आह्लादिनी शक्ति हैं। एक कृष्ण, एक वृत्तिकी अद्वैत-रसभावनासे ओतप्रोत हृदयके रंगमंचपर संधिस्थानीय श्याम-ब्रह्म और तदाकार-वृत्तियोंकी धाराके रूपमें गोपियोंका नृत्य ही रासलीला है।

रास—शास्त्रीय दृष्टि

शास्त्रीय दृष्टिसे देखें तो—‘**श्रीकृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**’ भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं, पूर्ण परब्रह्मके अवतार हैं और सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप हैं। सद्भावका प्रकाश उनके धर्माचरणमें, चिद्भावका प्रकाश उनके निर्विकार अनुभूति एवं उपदेशोंमें तथा आनन्दभावका परिपूर्ण विकास उनकी रासलीलामें हुआ है। रासलीला एक आनन्द-प्रधान लीला है। वेदोंमें मधु, आनन्द, रस एवं सुखके नामसे उन्हींका वर्णन है।

रासमें साहित्य, संगीत और कला (नृत्य)-का समन्वय होता है। ‘**सत्यं शिवं सुन्दरम्**’ की यही पहचान है। इस रासलीलामें काम अंशमात्र भी नहीं है। देव, गन्धर्व, किन्नर तथा नारद आदिने भी आकाशसे एवं श्रीमहादेवजीने स्वयं गोपी बनकर गोपीश्वर महादेवके रूपमें वंशीवटपर वृन्दावनमें रासलीलामें प्रवेशकर महारासको अपने तीनों नेत्रोंसे निहारा करते हैं। आज भी श्रीगोपीश्वर महादेवके रूपमें निहार रहे हैं।

आध्यात्मिक रहस्य

रासलीलाके प्रमुखतः तीन सिद्धान्त हैं—(१) रासलीलामें गोपीके शरीरके साथ कुछ लेना-देना नहीं है, (२) लौकिक काम नहीं है और (३) यह साधारण स्त्री-पुरुषका नहीं, जीव और ब्रह्मका मिलन है।

शुद्ध जीवका ब्रह्मके साथ विलास ही रास है। शु जीवका अर्थ है—मायाके आवरणसे रहित जीव। ऐ जीवका ही ब्रह्मसे मिलन होता है। इसीलिये गोपियोंके सा श्रीकृष्णने महारासके पूर्व ‘चीरहरण’-लीला की थी। चीरहरण-लीलामें जब बाह्यावरण उपाधि नष्ट हुई तो रासलीला हुई जीव और ब्रह्मका तादात्म्य हुआ।

जिस प्रकार वस्त्र देह ढँकता है, उसी प्रकार वास और अज्ञान आत्माको ढक देते हैं और परमात्माको द करते हैं। जबतक अज्ञान और वासनाका आच्छादन दूर न हो जाता, तबतक शिवसे मिलन नहीं हो पाता। वस्त्रहरण-लीला बुद्धिगत वासना, बुद्धिगत अज्ञानको उड़ा ले जाने लीला है। वासना और अज्ञानरूपी वस्त्र प्रभु-मिलन बाधक हैं। इन्द्रियोंके कामको हटाना सरल है, कि बुद्धिगत कामको निकाल बाहर करना बड़ा कठिन है श्रीकृष्णने गोपियोंके वासनारूपी आवरणको हटा दि शुद्ध-बुद्ध गोपियोंके साथ महारास किया।

श्रीधरस्वामीके अनुसार पञ्चाध्यायी रासलीला निवृत्तिधर्म परम फल है। रासलीलाके पाँच अध्याय पञ्च प्रा सूचक प्रतीत होते हैं। पञ्च प्राणोंका ईश्वरके साथ रमण है ‘रास’ है।

वेणुगीतकी बाँसुरी तो केवल पशु-पक्षियोंको ही न सबको सुनायी देती है, किंतु रासलीलाकी बाँसुरी तो ई मिलनातुर अधिकारी जीव गोपीको ही सुनायी देती है।

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः।

रासलीला कोई साधारण स्त्रीकी नहीं, देह-मान हुई, देहाध्याससे मुक्त स्त्रीकी कथा है। देहाध्यास होनेपर प्रभुकी चिन्मयी लीलामें प्रवेश मिलता है।

अन्तर्मुख-दृष्टि करके जीव जब भगवान्‌के पास पहुँचत तब वे उससे पूछते हैं—‘मेरे पास क्यों आया है?’ गोपि भी पूछा—‘अर्धरात्रिमें क्यों आयी हो?’ पतिसेवा तथा संतान करो, रात्रिमें मिलन उचित नहीं। जीवको परमात्मा सहज

मिलते हैं। जीवको भ्रान्ति होती है। संसारमें रत रहो, वहीं तुमको सुख मिलेगा। मैं सुख नहीं, केवल आनन्द ही दे सकता हूँ। ब्रह्म जीवको संसारमें लौटाता है, प्रलोभन देता है, माया-जालमें फँसाता है। रासलीलाके रसिक-शिरोमणि नटवर नागर श्रीकृष्णके इतना कहनेपर गोपियाँ कहती हैं—

पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। ३४)

'(हे गोविन्द!) हमारे पाँव आपके चरण-कमलोंको छोड़कर एक पग भी पीछे हटनेको तैयार नहीं हैं, हम व्रजको लौटें तो कैसे? और यदि हम लौटें भी तो मनके बिना वहाँ हम क्या करें? हमारा मन आपमें ही रमा हुआ है। हम भी आपके स्वरूपसे तदाकार होना चाहती हैं।'

प्रभुने सोचा कि इन गोपियोंका प्रेम सच्चा है। जीव शुद्ध भावसे मुझसे मिलने आया है तो उसे अपना लिया। श्रीकृष्णने एक साथ अनेक स्वरूप धारण किये। जितनी गोपियाँ थीं, उतने स्वरूप बना लिये और प्रत्येक गोपीके साथ एक-एक स्वरूप रखकर रासलीला आरम्भ किया।

हजारों जन्मोंका विरही जीव आज प्रभुके सम्मुख उपस्थित हो सका है, जीव आज ईश्वरमय हो गया। वे दोनों एक हो गये। इस मिलनसे जीव और ईश्वर दोनोंको अति आनन्द हुआ।

गोपियाँ श्रीकृष्णमय तथा भगवन्मय हो गयीं। सभी हाथोंसे हाथ मिलाकर नाचने लगीं। यह तो ब्रह्मसे जीवका मिलन हुआ है। इस प्रकार अद्वैत सिद्धान्तके आचार्य श्रीशुकदेवजीने रासलीलामें अद्वैतका वर्णन किया है।

महारास देखते-देखते श्रीब्रह्माजी सोचने लगे कि कृष्ण और गोपियाँ निष्काम तो हैं, फिर भी देहभान भूलकर इस प्रकार परायी नारीसे लीला करना शास्त्र-मर्यादाका उल्लंघन ही है। ब्रह्माजी सशंकित हुए। ब्रह्माजी यह नहीं जानते कि यह रासलीला धर्म नहीं धर्मका फल है। श्रीकृष्णने एक और खेल रचा—

श्रीकृष्णने सभी गोपियोंको अपना स्वरूप दे दिया। अब तो सर्वत्र कृष्ण-ही-कृष्ण दिखायी दे रहे थे। गोपियाँ थीं ही नहीं। सभी पीताम्बरधारी कृष्ण हैं और एक-दूसरेसे रास खेल रहे हैं।

श्रीब्रह्माजीने मान लिया कि यह स्त्री-पुरुषका मिलन नहीं है। श्रीकृष्ण गोपीरूप हो गये हैं। ब्रह्माजीने श्रीकृष्णको साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

यह विजातीय तत्त्वका—स्त्रीत्व और पुरुषत्वका मिलन नहीं अंश और अंशीका मिलन है। आज गोपियाँ श्रीकृष्णमय हो गयीं, प्रभुरूप बन गयीं। ब्रह्मरूप हो जानेके बाद जीवका स्वत्व कहाँ रहा?

रासलीला करनेका कारण

जब हम **'श्रीकृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** कहते हैं तब यह बात अपने-आप स्पष्ट हो जाती है कि कृष्ण कामी नहीं, भोगी नहीं, बल्कि निष्काम-कर्मके अधिष्ठाता एवं स्वयं योगेश्वर हैं। जिस प्रकार उन्होंने ब्रह्माजीका गर्व गो-वत्स-हरण-लीला करके, अग्निका गर्व दावानल-पान-लीला करके और इन्द्रका गर्व गोवर्धन-धारण-लीला करके नष्ट किया, उसी प्रकार उन्होंने रासलीला करके कामदेवका गर्व भी नष्ट किया।

रासलीला श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा और गोपियोंके साथ की गयी लीला है। उनका परस्पर अपूर्व मिलन है।

रासलीला श्रीकृष्णका श्रीकृष्णसे तथा जीवका ब्रह्मसे मिलन है। **'एकोऽहं बहु स्याम्'** में लीलाका आध्यात्मिक पर्यवसान है। ब्रह्म ही ऋषियोंसे, गोपियोंसे, आह्लादिनी शक्तिसे, राधा-गोपियोंसे एवं जीवधारियोंसे मिल रहा है।

उपर्युक्त लीला-प्रसंगोंमें यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रासलीला महालीला है, अद्वैतभावका व्यक्त स्वरूप है, अंशका अंशीमें परम मिलन है, भेदबुद्धिरूप लौकिक दृष्टिका निरसनकर अभेदबुद्धिरूप आध्यात्मिक यथार्थ तत्त्वका महिमामण्डित स्वरूप है। प्रेम, प्रेमी और प्रेमास्पदका अभिन्न प्रतिपादक है। अतः इस लीलाके रसांशका भी अनुभव हो जानेपर जीवको वह सायुज्य प्राप्त हो जाता है, जिसे जन्म-जन्मान्तरके प्रयाससे भी सिद्ध, मुनि, योगी और साधक प्राप्त नहीं कर पाते और अन्ततः इस रासलीलाके आनन्दातिरेकमें जीव शिव हो जाता है। यह तादात्म्य ही रासलीलाकी आध्यात्मिकता है, उसका रहस्य है।

◆

लीलाधरकी दिव्य-लीला

(श्रीनारायणदासजी भक्तमाली)

ब्रह्ममयी मायामयी, युग विध एकहि सृष्टि।
ताको तैसी लखि परै, जाकी जैसी दृष्टि॥

यह अखिल विश्व उस सद्घन-चिद्घन-आनन्दघन, परम सत्य-स्वरूप सर्वेश्वर, सर्वनियामक, सर्वाधार परमात्मा प्रभुका लीला-चिद्-विलास वैभव है। उस अपरिमेय, अपरिसीम, निरुपम, एकमेवाद्वितीय सर्वशक्तिमान् लीलाधर प्रभुने अपनी निरंकुश इच्छासे—अपने सत्-संकल्पद्वारा अपनेको तथा अपनी शक्तिको अनेक रूपोंमें विभाजित करके अपने मनोरंजनके लिये यह अद्भुत खेल रचा रखा है। यथा—

'एकोऽहं बहु स्याम्'

अर्थात् मैं हूँ तो एक, किंतु अनेक रूपोंमें व्यक्त होकर एक खेल रचाऊँ ऐसी इच्छा की। प्रश्न उठता है कि उस आत्माराम, पूर्णकाम प्रभुके मनमें ऐसी इच्छा क्यों? इस 'क्यों' का सही-सही उत्तर तो वह परमात्मा ही दे सकता है, किंतु यह तो स्पष्ट है कि इच्छा करने अथवा न करनेमें वह स्वतन्त्र है, क्योंकि वह स्वराट् है। उसका नाम है 'राम'। उसका नाम राम क्यों? रामका क्या तात्पर्य? इस सम्बन्धमें सूरिजन कहते हैं कि—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

(रामपूर्वतापिन्युपनिषद् ६)

'आत्मारामोऽप्यरीरमत्' आदि वचनोंसे उसका सहज ही रमण (क्रीडा)-परायण स्वभाव व्यक्त होता है। हाँ, इस रमणकी प्रक्रियाके लिये उसे अपनी अभिन्न स्वरूपभूताशक्ति अर्थात् अपनी अन्तरङ्गा प्रकृति श्रीकिशोरीजीका सहारा लेना पड़ता है, जिन्हें अनेक नाम एवं रूपोंमें जाना जाता है। यथा—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६। ८)

इन्हें अन्तरङ्गा प्रकृति, बहिरङ्गा प्रकृति तथा तटस्था प्रकृतिके नामसे भी जाना जाता है। अन्तरङ्गा प्रकृति तो साक्षात् श्रीजी हैं, जो श्रीदेवी, भूदेवी एवं लीलादेवी अथवा नीलादेवीके रूपसे प्रभुकी रुचिके अनुसार सेवा क रहती हैं। अन्य दो प्रकृतियाँ अनेक नाम और भेदसे जा जाती हैं। बहिरङ्गा और तटस्थाको श्रीमद्भगवद्गीतामें अ एवं परा प्रकृति अथवा क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ कहकर वर्णन कि गया है। यथा—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। इत्यादि।

लीला-रचना एवं क्रीडाके लिये उस प्रभुको अ प्रकृतिका सहयोग लेना इसलिये आवश्यक हुआ कि—' **एकाकी न रमते'**। अतः—'**प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्या मायया'** अथवा '**योगमायामुपाश्रितः**' इत्यादि वचन इ बातके प्रमाण हैं कि अपनी प्रकृतिको अपनी संगि रूपमें प्रकटकर वह क्रीडा करता है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

(गीता ७।

इस श्लोकमें वर्णित अष्टधा (अपरा) प्रकृतिको अपने विश्वरूपी रंगमंचकी तैयारी-हेतु करण अर्थात् सा रूपमें प्रयुक्त किया। फिर इसकी रचना करनेके लिये क अथवा कारिणीके रूपमें अपनी योगमाया शक्तिको निर्दे दिया, जो योगमाया प्रभुकी रुचिके अनुसार रचना करा कराती हैं। तत्पश्चात् प्रभुने इसके संचालनार्थ—अ रचनार्थ, पालनार्थ एवं उपसंहारार्थ, अपनेको तीन रू व्यक्त किया। इसके लिये उन्हें पुनः अपनी प्रकृतिके स रज एवं तम—इन तीन गुणोंको स्वीकार करना पड़ा।

इस प्रकार लीला-मंच भी तैयार हो गया, मंच मंच-लीलाकी व्यवस्था करनेवाले रचनाकार, निर्देशक समेटनेवाले भी तैयार हो गये। अब आवश्यकता प्रतीत इस मंचपर पधारकर, विभिन्न रूपोंमें उपस्थित हो अपनी-अपनी भूमिका निभानेवाले पात्र-परिकरोंकी। ए प्रभुने अपने संकल्पसे प्रकट किये हुए अपने अं जीवात्म चेतनधारियोंको इस विश्वरूपी रंगमंचपर उता

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।'

(गीता १५

काल, कर्म, गुण एवं स्वभाव आदिके घेरेमें डलवाकर प्रभुने इन सबकी नकेल—डोरी अपने हाथोंमें रखी। यथा—

सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी॥
(रा० च० मा० १। १०५। ५)

इस प्रकार यह विश्वरूपी रंगमंच सज गया एवं लीला प्रारम्भ हो गयी। इसका दर्शक कौन होगा? मानसके इन शब्दोंमें प्रभु ही दर्शक होकर आनन्द लेने लगे। यथा—

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
(रा० च० मा० २। १२७। १)

यह लीला कबसे प्रारम्भ हुई है, कुछ पता नहीं। कबतक चलेगी, इसका भी कोई निर्णय नहीं। कभी प्रलय करके एक बार सारा खेल समेट भी लिया जाय, तो पुनः सृष्टि-रचनाका वही पुराना क्रम चालू हो जाता है—**'यथापूर्वमकल्पयत्'**।

वह नटवर विचित्र खिलाड़ी है। कभी तो मात्र दर्शक रहकर देखता है, कभी स्वयं भी कूद पड़ता है और खेलने लगता है। विश्वके सभी चेतन उसीके अंश हैं। कोई किसी भावमें भावित हैं, कोई किसी भावमें भावित हैं। खेल अधिकतर सख्य-भावभावित होकर ही विशेष रूपसे जँचता है; क्योंकि—

रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥
(रा० च० मा० २। ७४। ६)

इस दिशामें एक तुकबंदी प्रस्तुत की जा रही है। सम्भव है, उसके खेलका एक नमूना होकर भा जाय। यह नमूना उसके सख्य-भावभावित खेलका है—

दुनिया के बाल सखा, आपसमें
खेल कोई भी जब खेलैं।
तब एक दूसरे से आनन्द लहैं-
सुख सरितामें हेलैं॥
वृद्धावस्था तक खेल-खेल,
जीवात्मा उर संतोष धरै।
जीवात्मा एक जीवात्मा को
किस सीमा तक आह्लाद भरै॥
यद्यपि जीवात्मा ईश्वरांश है,
सत्-चित् और आनन्द रूप।
पर ईश्वर की तुलना में है,
सर-वापी और तड़ाग कूप॥
परमात्मा है आनन्द सिन्धु,
तो बिन्दु मात्र यह जीव अहे।
एक बिन्दु, दूसरे बिन्दु सखा से,
बिन्दु मात्र आनन्द लहे॥
आनन्द सिन्धु प्रभु सखा रूप में,
मिल जाये तो क्या कहना?
उसके आगे फिर शेष नहीं,
रह जाता है कुछ भी लहना॥
वे जीव भाग्यशाली अतिशय,
जिनको प्रभु ने अपनाय लिये।
जो अन्तर्मुख हो शरण पड़े,
औ प्रभु ने हृदय लगाय लिये॥
जब जैसा खेल उसे भावे
निज सखन संग खेला करता।
जो उसका रुचि अनुवर्त्ती है,
उसके नखड़े झेला करता॥
जग उसका खेल तमाशा है,
वह नटवर अजब खेलाड़ी है।
उसके इस खेल तमाशे को,
क्या समझे मूढ़ अनाड़ी है॥
कबहूँ नभ में उड़ती पतंग,
कबहूँ भौंरा और चकडोरी।
कबहूँ तो आँख मिचौनी खेले,
कबहूँ करै माखन चोरी॥
कबहूँ तो स्वयं आँख मींचे,
औ छिपैं सखा, खोजै नटवर।
कबहूँ अनजान बना भटकै,
कबहूँ तो लेइ पकड़ि सत्वर॥
कबहूँ मन में आई, अब लौं-
ये छिपे और खोजा मैंने।
अब मैं छिप जाऊँ ये खोजैं,
पड़ जावैं लैने के दैने॥

बोला, तुम सभी नेत्र मूँदो,
इस बार छिपूँगा मैं प्यारे।
छिपने की ठौर बता भी दूँ,
भव-अटवी में खोजो सारे॥
ऐसा कह कर छिप गया छली,
सबही की आँखें मुँदवाईं।
व्यापक हो बैठा कण-कण में
ज्यों मेंहदी में लाली छाई॥
सरसों और तिल में तैल-
पुष्प में गन्ध, ईख में मधुराई।
घृत छिपा दुग्ध में, वृक्ष बीज में,
बर्फ माँहि शीतलताई॥
अब खोजि लेहु मुझको मित्रो,
मैं छिपा विश्व के कण-कण में।
धरती पाताल गगन जल में,
जड़ चेतन, कार्य अरु कारण में॥
श्रुति शास्त्र सन्त औ सद्गुरु-
युक्ति बताते मुझको पाने की।
आवश्यकता है, प्रियतम की-
वह प्रीति-रीति अपनाने की॥
अपनाकर प्यारी प्रीति रीति,
प्रह्लाद ने पाये खम्भे में।
कुत्ते में पाये नामदेव,
दुनिया रह गई अचम्भे में॥
गर्दभ में एकनाथ पाये,
मीरा ने विषके प्याले में।
नाहर में रत्नावती देवि,
कुन्ती ने विपति कसाले में॥
धन्ना ने श्याम शिला के माँहिं,
कीर्तन में गौर निताई ने।
श्रीशालिग्राम शिला में पाये,
प्रेमी सदन कसाई ने॥
तुलसी ने देखा चित्रकूट में,
सूरदास वृन्दावन में।
श्रीरामानुज ने विन्ध्य क्षेत्र-
वन बीहड़ के सूनेपन में॥
देखा कबीर ने याचक में,
कुंजन में रूप सनातन ने।
जित देखें उत में श्याम-श्याम,
व्रज मण्डल के विरही जन ने॥
सतयुग वालों ने ध्यान योग में,
त्रेता यज्ञ-विधानों में।
द्वापर में परिचर्या विधि में,
कलियुग में हरि-गुण-गानों में॥
पण्डित प्रवरों ने श्वान श्वपच-
पर्यन्त मूर्ख-विद्वानों में।
समदर्शी हो, बहुतों ने देखा,
देवल और मसानों में॥
श्रीभीष्म सुधन्वा चन्द्रहास-
हंसध्वज ने समरांगण में।
शुक सनकादिक ज्ञानी भक्तन ने
लखा विश्व के कण-कण में॥
इस तरह बना जिनसे जैसा,
जिन जिन की दृष्टि रही जैसी।
तहँ तहँ तिन तिन ने मोहन प्यारे-
की झाँकी देखी तैसी॥
इन पूर्व खोजियों में से जिनकी,
पद्धति जिसको जँच जावै।
वह वही रीति अपनावै, औ-
गुरु कृपया नटवर को पावै॥
यद्यपि श्रुति सन्त कहैं, उसको,
साधन से कोई पा न सके।
फिर भी साधन करिये जिससे,
आलस्य प्रमाद सता न सके॥
वह साधन-साध्य नहीं प्यारे,
बस कृपा-साध्य कहलाता है।
जिसको मिलना चाहे छलिया,
बस वही तो उसको पाता है।
पर इसका यह तात्पर्य नहीं है,
साधन से मुँह मोड़ै हम।

जो प्रीति रीति गुरुवर ने दी,
वह जान बूझकर छोड़ैं हम॥
अति वृष्टि होय या अनावृष्टि,
खेती नहिं छोड़ैं कास्तकार।
ऐसे ही लागे रहो, भजन-सुमिरन
में हो के तदाकार॥
तुम उसको खोज नहीं पावो,
वह तुम्हें खोजता आयेगा।
वह दीनबन्धु असहाय-सखा,
कबहूँ न कबहूँ अपनायेगा॥
बौना ऊँची डालीका फल,
नहिं उछल कूद से पा सकता।
पर, बौना उछल रहा भरसक,
साधन नहिं छोड़ा जा सकता॥
एक लम्बे व्यक्ति, दयालु-हृदय में,
करुणा सहज उमड़ आई।
दे दिया तोड़ फल, हाथ बढ़ा,
अब तो बौने की बनि आई॥
अब करिये जरा बिचार बन्धु,
फल मिला उसे किस साधन से।
लम्बे दयालु की करुणा से,
या उछल कूद आराधन से॥
दोनों हैं परमावश्यक, लम्बे की-
करुणा, लघु का प्रयास।
लम्बे की कृपा क्यों होती, यदि,
बौना बैठा होता निराश॥
बौना तो है यह क्षुद्र जीव,
लम्बे दयाल हरि-गुरु कृपाल।
हरि-गुरु की कृपा होय जब ही,
यह जीव होय तब ही निहाल॥
है यदपि स्वरूप साम्य इसमें,
फिर भी ये जीव है बाल सखा।
श्रुति शास्त्र सन्त बतलाते हैं,
ईश्वर इसका प्रतिपाल सखा॥
इस बाल सखा को कृपा अपेक्षित,
अहै सदा प्रतिपालक की।
प्रतिपालक ही कर सकता है,
साँची सम्हाल इस बालक की॥
ईश्वर तो सदा व्यग्र रहता है,
कृपा-प्रेम बरसाने को।
'नारायण' रह तैयार सदा,
अपने में पात्रता लाने को॥
है हृदय तुम्हारा पात्र,
रहे नहिं औंधा, शीघ्र सीधा कर लो।
प्रभु-कृपा-प्रेम के अमृत से,
रह सतत प्रयत्नशील भर लो॥
संशय का छिद्र न हो हिय में,
कचड़ा भी हो न वासना का!
जग-चिन्ता तज, रख ध्यान सदा,
सन्तत प्रभु की उपासना का॥

यह तो रही, इस विश्वकी त्रिगुणात्मिका मंच-लीला। इसके अतिरिक्त वह नटवर, नट-नागर अपने नित्य सिद्ध परिकरोंके साथ अपने त्रिपाद-विभूतिगत साकेत, गोलोक अथवा वैकुण्ठ संज्ञक त्रिगुणातीत धाममें अपनी नित्यलीलामें सतत संलग्न रहता है। जिस धामका संकेत देते हुए श्रीमद्भगवद्गीता (१५। १६)-में वह स्वयं कहता है—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

जो एक बार उस त्रिगुणातीत भगवद्धाममें पहुँच जाय, उसके लिये उद्घोष है—'**न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते।**'

यह समग्र स्थिति उन्हें सहजमें प्राप्त होती है, जो प्रभुके लीला-चरित्रका सेवन किया करते हैं, यथा—

यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥
(रा० च० मा० १। १९२ छं० ४)

जो जीव उस प्रभुकी विश्व-मंचवाली त्रिगुणात्मिका लीलाको नहीं समझ पाते हैं, या इस लीलामें उसकी लीलाका दर्शन नहीं कर पाते हैं, उनके लिये वह नटवर किसी-न-किसी बहाने अवतार लेकर अपना दिव्य धामगत लीला-वैभव लेकर सपरिकर स्वयं भूतलपर उतर आता है—

नारायण बैकुण्ठ महँ बैठे करत विचार।
बनै बहानो अस कछू, लूँ भूतल अवतार॥
विविध रूप धरि के करूँ, लीला को विस्तार।
जीवन के उद्धार हित, होय बड़ो आधार॥
जीव हमारे अंश हैं, भटकत जगत मँझार।
गाय-गाय लीला ललित, उतरैं भव से पार॥

इस अवतार-लीला-क्रममें साधारण-से-साधारण प्राणी भी सहज भावसे अत्यन्त सरलतापूर्वक उसके श्रीचरणारविन्दोंको प्राप्त कर लेता है। यह प्रभुकी लीलाका ही चमत्कार है कि साधनहीना, परम दीना, पतिता, परित्यक्ता एवं प्रस्तरीभूता अहल्या अपने पूर्व रूपको प्राप्तकर भक्ति-जैसे चरम लाभसे लाभान्वित हो सकी—

प्रभु को पद पद्म पराग परत पल भर में,
पतिता परित्यक्ता पाथरी में प्राण परि गो।

यदि उसकी लीलामें यह चमत्कार नहीं होता तो पूतना-जैसी लोक-बालघ्नी, रुधिराशना राक्षसीको—**'लेभे गतिं धात्र्युचितां॰'** का सौभाग्य सुलभ हो पाता? और श्रीशुकदेवजी सरीखे नैर्गुण्य-परिनिष्ठित आत्माराम महानुभाव, लीलागृहीतचेता होकर श्रीमद्भागवतके अध्ययन एवं गायनमें प्रवृत्त हो सकते थे? यही तो विशेषता है कि भगवान् शिव भी इस लीला-रसके आस्वादनार्थ विश्वनाथत्व छोड़कर हनुमद्रूप वानरत्व एवं स्वामित्व छोड़कर सेवकत्व स्वीकारते हैं। तथा—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

—इस मुग्ध झाँकीका मुग्धकारी दर्शन दिया करते श्रीदेवर्षि नारद एवं श्रीसनकादि कुमार भी—

दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसराव
नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहा
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुन गाव
सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहि
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिका
जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहि तजि ध्यान।
जे हरि कथाँ न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान॥
(रा॰ च॰ मा॰ ७। २७। २; ७। ४२। ५—८; ७।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥
(श्रीमद्भा॰ १। ७।

जो लोग संसारकी नश्वरता, विश्वकी व्यापकता, आत्म परमात्माके स्वरूप, सत्त्व, महत्ता एवं भगवत्ता आदिका रखते हैं, उनके भी ज्ञान आदिकी चरम परिणति लीलारसके समास्वादनमें ही है—

सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसील
(रा॰ च॰ मा॰ ७। २२।

जय लीलाधर, जय जय लीला।
मुनि-जन-मनन्हि, विमोहन शीला॥

* * *

परब्रह्म-स्तुति

यस्माद्विश्वमुदेति यत्र रमते यस्मिन्पुनर्लीयते
भासा यस्य जगद्विभाति सहजानन्दोज्ज्वलं यन्महः।
शान्तं शाश्वतमक्रियं यमपुनर्भावाय भूतेश्वरं
द्वैतध्वान्तमपास्य यान्ति कृतिनः प्रस्तौमि तं पूरुषम्॥

जिन परमात्मासे यह विश्व प्रकट होता है, जिनके द्वारा आनन्दपूर्वक संचालित होता है और अन्तमें जिनमें वि हो जाता है, जिनके प्रकाशसे यह संसार प्रकाशित है, जिनका तेजोमय स्वरूप स्वभावसे ही विशुद्ध आनन्दमय है, नित्य, शान्त, निष्क्रिय और द्वैतमयी अज्ञानान्धकारको हटाकर मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं तथा पुण्यात्मा जन जिन पुरुष भूतेशकी शरण ग्रहण करते हैं, उनकी मैं (सदा) स्तुति करता हूँ।

* * *

लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी ऐश्वर्य एवं माधुर्यमयी लीलाएँ

(आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र)

आनन्द-चिन्मय-सदुज्ज्वल-विग्रह वासुदेव श्रीकृष्ण निरतिशय ऐश्वर्यशाली होनेके कारण स्वयं साक्षात् भगवान् हैं तथा क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तम परमतत्त्व हैं और जगत्-लीलाके असाधारण कारण होनेसे लीलापुरुषोत्तम हैं। यह समस्त स्मृति-पुराण-साहित्यका सिद्धान्त है।

इस प्रसंगमें एक स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि 'लीला' क्या है?

[ऋषियोंने बुद्धिमान् सूतजीसे पूछा—] 'भगवान् अपनी योगमायासे स्वच्छन्द लीला करते हैं। आप उन श्रीहरिकी मङ्गलमयी अवतार-कथाओं (लीला)-का अब वर्णन कीजिये।'

इस 'लीला' शब्दके अर्थको प्रकारान्तरसे 'शब्दकल्पद्रुम', 'हलायुध' आदि कोशोंमें इस प्रकार बतलाया गया है—'अपने प्रियतमके साक्षात्कार आदिका सुख न मिलनेपर अपने चित्त-विनोदके लिये नायिकाद्वारा जो प्रियतमके वेश, हसित, भणित, गति, दृष्टि आदिकी अनुकृति होती है, उसे 'लीला' कहते हैं। 'लीला' का यह रूप श्रीमद्भागवतके रासपञ्चाध्यायी-प्रकरणमें लीलापुरुषोत्तम व्रजराज भगवान् श्रीकृष्णके अन्तर्हित हो जानेपर व्रजबालाओंकी लीलामें स्पष्ट देखा जाता है।

यह लीला दो प्रकारकी होती है। एक नित्य-वास्तविक लीला और दूसरी उसपर आधारित व्यावहारिक लीला। पद्मपुराणके अनुसार इसे प्रकट और अप्रकटलीला कहते हैं—

'प्रकटाप्रकटा चेति लीला सेयं द्विधोच्यते'

अप्रकटलीलामें पुरुषोत्तम भगवान्के अपने परमधाममें अनन्त प्रकाश और अनन्त लीलाओंका निरन्तर विलास होता रहता है तथा प्रकटलीलामें उनके एक प्रकाश (अंश)-से संसारमें यदा-कदा उनके सपरिकर जन्मादिकी लीला होती है। सांसारिक प्रपञ्चमें प्रत्यक्ष होनेके कारण इसे प्रकटलीला कहते हैं। इसी लीलामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, द्वारका आदि स्थानोंमें जाना-आना होता है। अप्रकटलीला वास्तविक, नित्य, आद्यलीला है और प्रकटलीला व्यावहारिक तथा सामयिक लीला है।

ऐश्वर्य तथा माधुर्यके आधारपर 'लीला' का एक और भेद माना गया है—ऐश्वर्य-लीला एवं माधुर्य-लीला। ऐश्वर्य-लीला साधनरूप है तथा माधुर्य-लीला साध्यरूप; जो आगेके उदाहरणोंसे स्पष्ट होता है।

ईश्वरीय सांसारिक लीलाके सम्बन्धमें एक यह प्रश्न उठता है कि ईश्वर जब पूर्णकाम और आप्तकाम हैं तो उन्हें कुछ भी प्राप्तव्य नहीं है, अतः उन्हें किसी कार्यका कोई प्रयोजन नहीं है। फिर भी वे जगत्की सृष्टि करते हैं तो इस सृष्टिका कोई-न-कोई प्रयोजन अवश्य होना चाहिये। सारांश यह कि प्रयोजन-सापेक्ष सृष्टि माननेपर सृष्टिसे पूर्व ईश्वरमें पूर्णता सिद्ध नहीं होती और प्रयोजन-निरपेक्ष सृष्टि-लीला सम्भव नहीं। इस शंकाका समाधान महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासने 'ब्रह्मसूत्र' के द्वितीय अध्यायमें **'न प्रयोजनत्वात्'** तथा **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** इन सूत्रोंके द्वारा किया है। तात्पर्य यह है कि जैसे लोकमें प्रमत्त व्यक्ति केवल सुखोद्रेकसे प्रयोजन-निरपेक्ष नृत्त, गान आदि लीलाएँ करता है, वैसे ही परमेश्वर भक्तजनानुरञ्जनार्थ सांसारिक लीलाएँ करते हैं। अतएव नारायणसंहितामें कहा गया है—

सृष्ट्यादिकं हरिर्नैव प्रयोजनमपेक्ष्य तु।
कुरुते केवलानन्दाद् यथा मत्तस्य नर्तनम्॥
पूर्णानन्दस्य तस्येह प्रयोजनमतिः कुतः।
मुक्ता अप्याप्तकामाः स्युः किमु तस्याखिलात्मनः॥

'माण्डूक्योपनिषद्' में भी ऐसे ही बतलाया गया है कि आप्तकाम परमेश्वर किसी इच्छापूर्तिके लिये सृष्टि नहीं करते, यह तो उनका शुद्ध स्वभावमात्र है—

देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा।

इसी प्रसंगमें एक और शंका होती है—ईश्वर जब सभी प्राणियोंके लिये समान हैं[1], तब इनकी सृष्टिमें विषमता क्यों देखी जाती है? इसका भी समाधान महर्षिने वहीं ब्रह्मसूत्रमें विस्तारके साथ किया है, जिसका सारांश है कि प्राणियोंके

---

[1] समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। (गीता ९। २९)

अनादिकालीन अपने-अपने कर्मोंके अनुसार ही उनकी सृष्टि होती है, अतः ईश्वरमें वैषम्य, नैर्घृण्य-दोष नहीं है।[1] प्राणियोंके ये अनादि कर्म भी ईश्वराधीन ही हैं, इसलिये उनके सर्व-कर्तृत्वमें कोई आपत्ति नहीं है।[2]

इस उपर्युक्त विवेचनसे यह सिद्ध होता है कि परम कारुणिक भगवान् केवल भक्तानुग्रहके लिये ही ऐश्वर्य एवं माधुर्यमय लीलाएँ जगत्‌में किया करते हैं। इन द्विविध लीलाओंमें ऐश्वर्य-लीलाद्वारा भगवान् भक्तोंके कष्टोंको दूर करते हैं। जब कभी भक्तोंको उनकी भगवत्तामें संदेह हो जाता है, तब लीलाद्वारा अपने ऐश्वर्यको प्रदर्शितकर उनके संदेहको मिटाते हैं। जब कभी भक्तके मनमें मिथ्याभिमान होने लगता है, उस समय उसके कल्याणके लिये अपना ऐश्वर्य दिखाकर उसके अहंकारको दूर करते हैं। किंतु अपनी माधुर्य-लीलामें भगवान् अपने अनन्य भक्तोंपर निरतिशय आनन्दामृतकी वृष्टि करते हैं। इस लीलामें न तो किसी प्रकारका भय है, न संदेह है और न ही अभिमानका लेश है। इसी माधुर्य-लीलामें भक्तोंको परम सिद्धि मिलती है। उदाहरणके लिये—

अर्जुनके मनमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऐश्वर्यके प्रति कुछ संदेह हो गया था। भगवान्‌ने उन्हें दिव्य दृष्टि देकर विश्वरूपका दर्शन कराया। जिसे देखकर अर्जुनका मन भयसे अति व्याकुल हो गया[3], शरीर काँपने लगा[4] और सख्यभावसे पूर्वमें किये गये व्यवहारोंसे उन्हें पश्चात्ताप होने लगा। किंतु अनन्यशरण होकर ज्यों ही उन्होंने भगवान्‌के मधुर सौम्य-रूपका दर्शन किया, त्यों ही उनको अपूर्व आनन्दकी अनुभूति होने लगी।

भक्त प्रह्लादकी रक्षाके लिये भगवान्‌ने नृसिंहकी ऐश्व लीला की थी, वहाँ दुर्दान्त हिरण्यकशिपुका वध तो हुआ किंतु वातावरण क्रोधमय हो गया था। फिर भी भक्त प्रह्ला द्वारा स्तुति करनेपर भक्तवत्सल भगवान्‌का मधुर वात्सल्य उमड़ पड़ा था। उस माधुर्य-लीलामें आह्लाद-ही-आह्लाद

यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अपनी बाल-लीला अनेक बार अपने ऐश्वर्यका प्रदर्शन किया था। मृद्-भक्ष व्याजसे अपने मुखमें समस्त विश्वको दिखलाकर उन् माताको आश्चर्यचकित कर दिया था। उलूखल-बन्ध लीलामें रस्सियोंका दो अंगुल घटते ही रहना माताके लि आश्चर्यजनक घटना थी। गोकुलसे मथुरा आनेके स अक्रूरजी भगवान् श्रीकृष्णको यमुना-जलमें और स्थल एक ही क्षणमें देखकर चकित थे। इस तरह भग श्रीकृष्णकी ऐश्वर्य-लीलाओंके अनेक प्रसंग आते हैं, जि भक्तोंको उनकी 'भगवत्ता' का ज्ञान हुआ है, जो भक्तों परम सिद्धिमें साधनका काम करता है। परंतु उस पुरुषोत्त माधुर्य-लीलामें अनन्य-शरण भक्त परमानन्दको करता है। इस लीलामें भक्तके लिये केवल आनन्द-ही आनन्द है।

सांसारिक माधुर्य-लीलाका रासलीला चूडान्त नि है। अनन्यशरण होनेके बाद अर्जुनको इस माधुर्य-लील दर्शन हुआ था। अतएव कहा जाता है कि पुरुषोत्त दोनों ही लीलाएँ अपूर्व होनेपर भी ऐश्वर्य-लीला साधन है और माधुर्य-लीला स्वयं सिद्धि-रूप है।

❖

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम्। कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्॥

(श्वेता० ५।१

श्रद्धा और भक्तिके भावसे प्राप्त होने योग्य, आश्रयरहित कहे जानेवाले, (तथा) जगत्‌की उत्पत्ति और संहार करने कल्याणस्वरूप, (तथा) सोलह कलाओंकी रचना करनेवाले परमदेव परमेश्वरको, जो साधक जान लेते हैं, वे शरी (सदाके लिये) त्याग देते हैं—जन्म-मृत्युके चक्करसे छूट जाते हैं।

❖

---

[1] वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथा हि दर्शयति। (ब्रह्मसूत्र २। ३४)

[2] द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च। यदनुग्रहतः सन्ति न सन्ति यदुपेक्षया॥

[3] गीता (११। ४५), [4] गीता (११। ३५)

विश्व-ब्रह्माण्ड-लीलाके सूत्रधार—परब्रह्म परमात्मा

(प्रो० श्रीसिद्धेश्वरप्रसादजी, राज्यपाल—त्रिपुरा)

विश्व-ब्रह्माण्ड-लीलाका सूत्रधार, परब्रह्म परमेश्वरके अतिरिक्त और कौन हो सकता है? परब्रह्म परमेश्वर ही सृष्टिके निमित्त और उपादान कारण हैं (ब्रह्मसूत्र १-२ तथा २।१।११।३३)। अत: विश्व-ब्रह्माण्ड परब्रह्म परमेश्वरका ही '**रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव**' (कठोपनिषद् २।२।९) है। ऐसी स्थितिमें '**ईशावास्यमिदꣳ सर्वं०** (ईश० १)-के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

सृष्टिके एकमात्र निमित्त और उपादान कारणको '**रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव**'के कारण ही लीलाके सूत्रधारकी संज्ञा दी गयी है। साधारण बुद्धि यह समझ नहीं पाती कि विश्व-ब्रह्माण्ड उसी एकका प्रतिरूप है। 'भगवल्लीला' शब्दमें परब्रह्म पस्मेश्वरके लीलारत होनेका भाव निहित है। लीलाका सामान्य अर्थ है क्रीडा। इस अर्थमें क्रीडा मनबहलाव है। क्या इसी सामान्य अर्थमें भगवल्लीला क्रीडा है? स्पष्ट उत्तर है—नहीं। 'भगवल्लीला' शब्दमें सृष्टि-प्रक्रियाका गूढार्थ एवं उसका सात्त्विक स्वरूप निहित है। सृष्टि-प्रक्रियाके इस सात्त्विक स्वरूपकी अनिर्वचनीयताको 'भगवल्लीला' शब्दसे व्यक्त किया जाता है; क्योंकि यह तत्त्व इतना गूढ है कि सामान्य गणितका नियम यहाँ अप्रासंगिक हो जाता है—'**पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते**'— पूर्णमेंसे पूर्णको निकाल लें तब भी पूर्ण ही शेष रहता है। जीव-विज्ञान इसी अनिर्वचनीय नियमसे शासित होते हैं, उस निर्जीव भौतिक विज्ञानके गणितके नियमसे नहीं, जिसमें पूरेसे पूरा निकाल लेनेपर शेष रहता है शून्य।

प्रचलित धारणा है कि भगवल्लीलाका सम्बन्ध सगुण-साकार ईश्वरसे है, निर्गुण-निराकार ब्रह्मसे नहीं। यह न केवल अतिशयोक्तिपूर्ण है, बल्कि सनातन भारतीय परम्पराकी मान्यताके भी विपरीत है। हाँ, यह अवश्य है कि सगुण-साकार ईश्वरकी लीलाका स्वरूप निर्गुण-निराकार ब्रह्मकी लीलाके स्वरूपसे भिन्न होता है। वेदके देवतावाचक सभी शब्द, ब्रह्म, विष्णु तथा नारायणके ही वाचक हैं, जो इस धारणाको पुष्ट करते हैं कि सगुण और साकार तथा निर्गुण और निराकारका अन्तर्भाव परस्पर अभेद सम्मत है।

ऋग्वेदका नासदीय सूक्त (१०।१२९।१—७) विश्वसाहित्यमें लीला-भावकी पूर्ण दार्शनिक अभिव्यक्ति है, जिसमें अव्यक्तके व्यक्त, व्यक्तके अव्यक्त और इन दोनोंसे परे अनेक अनिर्वचनीय स्वरूपोंको अत्यन्त कवित्वपूर्ण रूपमें ऋषिने देखा है। यह सृष्टिके आरम्भके पूर्वकी उस स्थितिकी दृष्टि है जब न असद् (अव्यक्त) था, न सद् (व्यक्त), न मृत्यु थी, न अमृत था, न रात्रि थी, न दिन था। उस निर्वात-स्थितिमें भी वह एक अकेला स्वत: साँस ले रहा था।

इस सूक्तके अन्तिम मन्त्रका उत्तरार्ध मनुष्यकी उस परम जिज्ञासाको व्यक्त करता है, जो सृष्टिकी इस अनिर्वचनीय लीलामें अनादि कालसे रमती आ रही है। यह उत्कट, उद्दाम, उदात्त और विराट् जिज्ञासा वस्तुत: दर्शनीय है, जो यह प्रश्न उठाती है कि यह सृष्टि जिससे पैदा हुई, जो इसे धारण करता है, परम व्योममें स्थित जो इसका अध्यक्ष है, वह भी इसका रहस्य जानता है अथवा नहीं, इसे कौन जानता है? (**'वेद यदि वा न वेद'**) सृष्टि-रहस्यसे अभिभूत होकर आइन्स्टीनने कहा था कि 'हमारी सर्वाधिक प्रीतिकर अनुभूति रहस्यमय होती है। यही भाव कला और विज्ञानका मूल है।'

लीलामें आनन्दका, भगवल्लीलामें विराट्के विस्मयकारी रूप-दर्शनके आनन्दका भाव निहित होता है। भगवल्लीला आनन्दका, रास-लीलाका, उत्स क्यों है? क्योंकि सृष्टिका आरम्भ ही होता है इच्छासे—'**कामस्तदग्रे समवर्तताधि०** (ऋग्वेद १०।१२९।४) अर्थात् प्रजापतिके मनमें काम-भावना—सृष्टिकी इच्छा उत्पन्न हुई। तैत्तिरीय उपनिषद् (२।६)-में कहा गया है—'**सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति**'। अर्थात् उस (परमात्मा)-ने कामना की कि मैं बहुत हो जाऊँ। यह विस्तार कैसे सम्भव हुआ? '**स तपोऽतप्यत**' अर्थात् उसने तप करके यह सारा जगत् उत्पन्न किया। ऐतरेयोपनिषद् (१।१)-में एकके मनमें बहुत होनेकी कामना उत्पन्न होनेकी बात कही गयी है। पर साथ ही दो और बातें भी हैं। उसने एकसे बहुत होनेकी इच्छा क्यों की? क्योंकि वह एक अकेला था—'**आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्**'। दूसरा यह कि वहाँ '**अकामयत**' के स्थानपर '**ईक्षत**' शब्दका प्रयोग किया गया है। आत्माने कामना की, विचार किया। स्पष्ट है, एकमें दूसरा भाव भी समाविष्ट है।

आत्माकी इस सृजन-प्रक्रियाके सम्बन्धमें मुण्डकोपनिषद् (१। १। ७)-में कहा गया है—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि
तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥

अर्थात् जिस प्रकार मकड़ी जालेको बनाती है और फिर निगल जाती है, जिस प्रकार पृथ्वीमें नाना प्रकारकी ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं और जिस प्रकार जीवित पुरुषसे केश और रोयें निकलते हैं, उसी प्रकार अक्षर-ब्रह्मसे यह विश्व उत्पन्न होता है।

लीला-प्रसंगमें ब्रह्मके मूर्त एवं अमूर्त-रूपको लेकर शंका की जाती है। इस सम्बन्धमें बृहदारण्यकोपनिषद् (२। ३। १)-में कहा गया है—

'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च मर्त्यं चामृतं च स्थितं च यच्च सच्च त्यच्च।'

अर्थात् ब्रह्मके दो रूप हैं—'मूर्त और अमूर्त, मर्त्य और अमृत, स्थित और यत् (चर) तथा सत् और त्यत्।' शंकराचार्यने अपने भाष्यमें अन्य (मर्त्य-अमृत आदि)-को मूर्त और अमूर्तका विशेषण कहा है।

तपके बिना सृष्टि सम्भव नहीं है। इसीलिये कहा गया है—**'स तपोऽतप्यत'** (तैत्तिरीय० २। ६)। ब्रह्मने केवल कामना ही नहीं की, उस कामनाकी सिद्धिके लिये तप किया। तप क्या है? तैत्तिरीय उपनिषद् (२। ६)-के अनुसार **'ज्ञानमयं तपः'**—तप ज्ञान-रूप है। इसीलिये आचार्यने कहा है—**'तप इति ज्ञानमुच्यते।'** अर्थात् 'तप' शब्दसे यहाँ 'ज्ञान' कहा जाता है। इस ज्ञानका विस्मरण हो जानेपर लीला-भाव मोह-जाल हो जाता है।

मुण्डकोपनिषद् (१। २। ८) सृष्टिके क्रमको इस रूपमें स्पष्ट करता है—

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।
अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्॥

अर्थात् ब्रह्म तपसे वृद्धिको प्राप्त होता है, उससे अन्न उत्पन्न होता है, अन्नसे प्राण, मन, सत्य, समस्त लोक और कर्मोंसे अमृत उत्पन्न होता है।

यह अव्यक्त व्यक्त होने, उसके इन्द्रियातीतसे इन्द्रियगम्य होने और लीलाकी भाषामें कहें तो उसके अवतरणकी प्रक्रियाकी दार्शनिक-वैज्ञानिक स्थितिका निरूपण है— निर्गुण-निराकारके सगुण-साकार अवतरण-प्रक्रि अभिव्यक्ति है।

निर्गुण-निराकार ब्रह्मका जब सगुण-साकार-रूपमें अव होता है तो उस नर-चरितको देखकर बुद्धि भ्रममें जाती है—

'बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाइ।

विकल नर-रूपमें रामको देखकर सतीके मनमें पैदा हुआ—

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥

पर शिवको कोई भ्रम नहीं हुआ—

जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसाव

राम ब्रह्म हैं, माँ कौसल्याको यह जन्मके समय प्रतीत हो जाता है—

करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता।

तुलसीदासकी इन पंक्तियोंमें अवतार-तत्त्व, भ तत्त्व, लीला-तत्त्व और वात्सल्य-भाव सबका समावेश राम कौसल्या-सुत तो हैं, पर हैं परब्रह्म परमेश्वर कृष्णकी बाल-लीलाका वर्णन करनेवाली सूरदासकी पंक्तियोंमें भी इसी भावको चित्रांकित किया गया है—

घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित, मुख दधि लेप किए॥

'स्पष्ट है, अवतार-भावके आधारके बिना भगवल्ली भाव सम्भव नहीं है। इसीलिये तुलसीदासजी बार- स्मरण दिखाते हैं—

सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसार
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज ने

रामावतारके बारेमें तुलसीदासजीने जो कुछ यहाँ है; कृष्णावतार या अन्य अवतारोंके बारेमें भी इसी अन्यत्र भी ऐसी ही बातें कही गयी हैं।

'भागवत-धर्म-सार' के मराठी संस्करणकी प्रस्ता भगवत्-लीला-कथाके सम्बन्धमें भक्तिप्रवणता एवं लीला ओतप्रोत ग्रन्थ श्रीमद्भागवतके विषयमें संत विनोबाने है—'भागवतने जिसके मनको पकड़ न लिया हो, चित्तको रिझाया न हो, रमाया न हो और शान्त न हो, ऐसा कौन भक्त इस जाग्रत् भारतमें हुआ होगा

भक्तके लिये सर्वस्व मुक्ति नहीं भक्ति है। नारदभक्तिसूत्रमें भक्तिको 'परमप्रेमरूपा' एवं 'अमृतस्वरूपा' कहा गया है। कैसी होती है ऐसी भक्ति? नारद कहते हैं—'**यथा व्रजगोपिकानाम्**'। गोपिकाओंको कृष्णकी भक्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिये—न मुक्ति, न युक्ति और न ज्ञान। कृष्णकी भक्तिमें वे ऐसी रमीं कि स्वयं 'परमप्रेमरूपा' हो गयीं।

नवधा भक्ति वस्तुतः भगवल्लीलाका विभिन्न रूपोंमें श्रवण-कीर्तन है। नाम-रूपका भेद भक्तकी सीमाके कारण है। घट-घटमें वास करनेवाले भगवान् भक्तके बाह्याचारको नहीं, उसके अन्तर्मनके समर्पण-भावके भूखे होते हैं। विश्व-ब्रह्माण्ड-लीलाके सूत्रधारके सामने आत्म-वञ्चनाके लिये कोई स्थान नहीं होता, जैसे प्रकाशके सामने अन्धकारका।

भक्त अपने इष्टकी भक्ति ईश्वरके रूपमें करता है, वह इष्ट ही उसकी दृष्टिमें सर्वस्व-सर्वोपरि है, लीलाका सूत्रधार है। इसका मूलाधार यह वैदिक दृष्टि है—'**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति**।' (ऋग्वेद १। १६४। ४६)। उसके नामका कोई अन्त है क्या? विष्णुसहस्रनामकी सीमाके भी वह परे है, लक्ष या कोटिके भी परे। वह तो अनन्त है।

भक्तिमें भेदके लिये कोई स्थान नहीं हो सकता। रामने बालिका वध किया है, इस कारण जब रावणने अंगदके मनमें भेद पैदा करना चाहा तो अंगदने उत्तर दिया—

सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाकें॥

भक्तके लिये तो सारी सृष्टि प्रभुमय हो जाती है।

सारांश यह कि भारतीय जीवन-दृष्टि भगवल्लीला-दृष्टि है। वेदसे लेकर आजतक यह जीवन-दृष्टि निर्बाध विविध रूपोंमें विकसित होती चली आ रही है। अद्वैत भक्ति-भावके बिना इस लीला-तत्त्वको हृदयंगम नहीं किया जा सकता। इसके अभावके कारण ही कभी भक्तिके लिये द्वैताद्वैतका सहारा लिया जाता है, कभी द्वैतका, कभी किसी औरका। वस्तुतः भगवल्लीला विश्व-ब्रह्माण्ड-लीलाका ही भाव-रूप है, परमप्रेम-रूप होनेके कारण ही यह अमृतस्वरूपा भी है, अतः आनन्दरूपा और अखण्ड ज्योतिरूपा भी है।

इसका सूत्रधार सृष्टिके कण-कणमें व्याप्त है, हम सबके हृदयमें समाया हुआ है। जब हमारा चित्त निर्मल होगा, तभी वह हमें दिखायी देगा, फिर इसकी यह लीला भी हमें रसमय प्रतीत होगी।

◆

भगवान्की द्वैध-लीला

(डॉ० श्रीभुवनेश्वरप्रसादजी वर्मा 'कमल', एम्० ए०, डी० लिट्०)

भगवान् दो रूपोंमें अपनी लीलाएँ प्रकट करते हैं—एक निराकार और निर्गुण-रूपमें तथा दूसरा सगुण और साकार-रूपमें। इसलिये उनकी लीलाएँ द्वैध—दो प्रकारकी हैं।

तैत्तिरीयोपनिषद् (२। ६)-में आया है कि '**सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति**'। तात्पर्य यह कि उस परमेश्वरने विचार किया कि मैं प्रकट हो जाऊँ (अनेक नाम-रूप-धारण करके बहुत हो जाऊँ), इस स्थितिमें एक ही परमात्मा अनेक नाम-रूपोंमें होनेकी भावनासे प्रेरित होकर जब सृष्टिकी रचना करते हैं; क्षिति, जल, पावक, गगन और समीरका निर्माण करते हैं; अनन्त अन्तरिक्षमें सूर्य-चन्द्रादि विभिन्न ग्रहों और नक्षत्रोंको अपनी कक्षाओंमें घूमनेका विधान करते हैं; पृथ्वी और अन्य लोकोंपर विविध प्राणियोंका सर्जन करते हैं तथा उन्हें कर्मानुसार सुख-दुःख भोगनेको विवश करते हैं, तब हम उनकी इन लीलाओंको निर्गुण-लीलाके नामसे अभिहित करते हैं।

गीता (१०। ८)-में भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्ट शब्दोंमें उद्घोष किया है—'**अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।**' अर्थात् मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिका कारण हूँ और मेरेसे ही सारा जगत् चेष्टा करता है। पुनः उन्होंने कहा है—'**बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।**' अर्थात् हे अर्जुन! तुम मुझे ही सम्पूर्ण प्राणियोंका सनातन बीज समझो।

दूसरी ओर कठोपनिषद् कहती है—'**एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति** (२। २। १२)। अर्थात् वह ब्रह्म सर्वभूतोंके अन्तरात्माके रूपमें सम्पूर्ण विश्वमें एक है और एक रूपको अनेक रूपोंमें प्रकट करता है। तैत्तिरीयोपनिषद् (३। १)-का कहना है—'**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।**' अर्थात् जिससे ये सारे भूत उत्पन्न होते हैं, जिससे ये सारे उद्भूत

प्राणी जीवन धारण करते हैं और पुन: अन्तमें जिसमें सब लीन हो जाते हैं—वही जानने योग्य है, वही ब्रह्म है। वाल्मीकिरामायणमें ब्रह्माका वचन है—**'कर्ता सर्वस्व लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां विभुः'** (युद्धकाण्ड ११७। ६)। अर्थात् हे ईश्वर! आप ही सम्पूर्ण लोकोंके कर्ता हैं। श्रीमद्भागवत (४। ७। ५०)-में भगवान् कहते हैं—**'अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।'** अर्थात् मैं ही सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना करता हूँ। मैं ही उसका मूल कारण हूँ। तथा श्रीमद्भागवत (११। ३। ३५)-में **'स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य'** कहकर इसी भावनाकी पुष्टि की गयी है कि भगवान् नारायण ही सम्पूर्ण सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं और यह सारा दृश्य जगत् उन्हीं अलख अगोचर-परब्रह्मका लीला-विस्तार है।

यह अनन्त ब्रह्माण्ड उसी एक अगम-अगोचर अलख निरंजन परब्रह्म परमात्माका खेल ही तो है। इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका खेल ही उसकी निर्गुण-लीला है। जैसे बालक मिट्टीके घरौंदेको बनाता है, कुछ क्षण उसमें रहनेका अभिनय करता है और अन्तमें उसे ध्वस्त कर चल देता है। उसी प्रकार निर्गुण-निराकार ब्रह्म भी इस अनन्त सृष्टिकी रचना करता, उसका पालन करता और अन्तमें उसका संहारकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है। यही उसकी क्रीडा है। यही उसका अभिनय है। यही उसका मनोविनोद है। यही उसकी निर्गुण-लीला है। जिसमें हम उसकी लीलाको तो देखते हैं, परंतु उस लीलाकर्ताको नहीं देखते। तभी तो गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहुँ न पावा॥
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥

यहाँ स्पष्ट है कि इस सम्पूर्ण सृष्टिका लीला-विस्तार कठपुतलीके नृत्यके समान है, जिसमें हम कठपुतलियोंको नाचते-गाते तो देखते हैं, पर उसके सूत्रधारको नहीं देखते। हमारा यह अलख-अगोचर-ब्रह्म उसी सूत्रधारकी तरह नेपथ्यमें रहकर ही सूर्य, चन्द्र और तारोंको नचाता है, जिसे हम नहीं देख पाते। इसीलिये उसकी यह लीला निर्गुण-लीला है। भगवान्की इन्हीं निर्गुण-लीलाओंपर विस्मय-विमुग्ध होकर गोस्वामीजीने विनय-पत्रिकामें लिखा—

केसव! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना बिचित्र हरि! समुझि मनहिं मन रहिये॥

भगवान्की वे ही निर्गुण-लीलाएँ अतर्क्य हैं, अ हैं, विचित्र हैं और मन-वाणीके लिये परम अगोचर

भगवान्के निर्गुण-स्वरूपको समझना और उनकी निर्गु लीलाओंका वर्णन करना आसान नहीं। जैसे निरा भगवान्का स्वरूप अग्राह्य है, उसी प्रकार उनकी निर्गु लीलाएँ वर्णनातीत हैं। ऐसी स्थितिमें स्वभावत: भक्त सूरदासकी बुद्धि इन निर्गुण-लीलाओंको देखकर च गयी थी, इन लीलाओंके सूत्रधारका अता-पता नहीं रहा था, तभी उन्होंने बड़ी विवशताके साथ भगवा सगुण-स्वरूप और उनकी सगुण-लीलाओंका गान कर निश्चय किया था—

रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालंब कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिँ तातैं सूर सगुन-पद गावै॥

जैसे निर्गुण-निराकार परब्रह्म परमात्माकी निर्गु लीलाओंका वर्णन करनेमें सूरदासजीके मन-बुद्धि स्त हो गये, ठीक उसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास तथा नंद प्रभृति भक्त कवियोंने भगवान्की निर्गुण-निराकार लीलाओं वर्णन करनेमें अपनेको असमर्थ पाकर सगुण परमात्म लीलाओंके गानको ही अपनी प्रतिभा और लेख उपजीव्य बनाया। यह लीला-वर्णन अगम नहीं, है—कविके लिये भी और भगवान्की लीलाओंकी रसमाधु पान करनेवाले भक्तोंके लिये भी।

जो प्रभु त्रिगुणातीत हैं, जो मन और वाणीसे अगम हुए भी अपनी इच्छासे ही भिन्न-भिन्न युगोंमें भिन्न- रूपोंमें अवतार धारणकर प्राकृत नरके अनुरूप लीलाएँ करते हैं, उन्हें ही हम सगुण-लीलाके नामसे जानते हैं

परंतु भगवान्की इन सगुण-लीलाओंको देखकर स सबके वशकी बात नहीं। माता सतीकी बुद्धि भी भ रामकी प्राकृत नर-लीलाओंको देखकर भ्रमित हो ग और उन्होंने भगवान् शंकरजीसे प्रश्न कर दिया था—

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥
(रा० च० मा० १

गोस्वामी तुलसीदासजी स्पष्टत: भगवान्की इन लील दुरूह और अतर्क्य मानते हैं—

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी।

—तथापि यह सत्य है कि जिसे हम अलख, निर्गुण-निराकार परब्रह्म कहते हैं, वे प्रेम-भक्तिके वशीभूत होकर विविध अवसरोंपर अवतार धारण करते हैं और अपनी सगुण-लीलाओंसे भक्तोंको विस्मय-विमुग्ध करते रहते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥

भगवान्‌की सगुण-लीलाओंको देखकर समझ लेना अत्यन्त दुरूह है। इसी कटु सत्यका उद्घोष गोस्वामीजी करते हैं—

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥

भगवान्‌ने जितने भी अवतार धारण किये और विभिन्न अवतारोंमें जो-जो लीलाएँ कीं, वे सारी लीलाएँ दर्शकोंको कौतूहलमें डाल देती हैं। सगुण-रूपधारी नृसिंह भगवान् जब खम्भा फाड़कर प्रकट होते हैं तो हिरण्यकशिपु आश्चर्यचकित हो जाता है। उसे विश्वास नहीं होता कि वह जो कुछ देख रहा है, वह सच है। माता कौसल्या यह देखकर विस्मित हो जाती हैं कि मैंने तो अपने लल्लाको पलनापर पौढ़ा दिया था, फिर यहाँ इष्टदेवका भोग कौन लगा रहा है—

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा।

माता कौसल्या उसे पकड़नेके लिये दौड़ती हैं, जिसका अन्त वेद भी नहीं पा सका—

निगम नेति सिव अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा॥

जिस ब्रह्मकी साँसोंसे वेदकी उत्पत्ति हुई, वह विद्याध्ययनके लिये गुरुगृह जाता है—

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥

भगवान् राम जब सीताकी खोजमें भटकते हैं, तब माता पार्वतीको आश्चर्य होता है—

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी।
× × ×
खोजइ सो कि अग्य इव नारी।

इसी प्रकार लोगोंको यह देखकर सहसा विश्वास नहीं होता कि अल्पवयस्क बालक राम ताड़का-जैसी राक्षसीका वध कर सकता है और एक दुधमुँहा बालक कृष्ण दूध पीनेके बहाने विशालकाय पूतनाका वध कर सकता है। इस बातपर भी सहसा विश्वास नहीं होता कि एक अल्पवय किशोर कृष्ण अपनी मात्र कनिष्ठिका अँगुलीपर विशाल गोवर्धन पर्वतको उठा सकता है। भगवान्‌की सगुण-लीलाओंको समझनेमें यही दुरूहता है।

सामान्य जनोंके लिये तो ये लीलाएँ अति विचित्र हैं ही—*'अति बिचित्र रघुपति चरित'* (रा० च० मा० १। ४९)। परंतु इन लीलाओंको देखकर विमल विचारवाले विज्ञजन आश्चर्य नहीं मानते—

सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार॥

श्रीरामने भी शिवलीला की

(श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास)

शिव कौन? जो विश्व-ब्रह्माण्डके लिये कल्याणकारी है, वही शिव। अपने सर्वविदित गुण और लक्षणके कारण उनका नाम गुणवाचक अथवा कल्याणकारी गुणोंका बोधक बन गया है। परम त्यागी और सतत तपस्वी रहते हुए सर्व कल्याणकारी—ऐसी उनकी प्रकृति, ऐसा उनका अलौकिक व्यक्तित्व है। वे सर्वसमर्थ परमात्मा और सृष्टिके गुरुतत्त्व हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने '**वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्**' कहकर रामचरितमानसमें उनकी प्रारम्भिक वन्दना की है। उनका वाहन वृषभ या बैल उनके मूल आधारभूत अलौकिक स्वरूपका परिचय देता है। वृषभ तो धर्मका प्रतीक माना गया है, अनेक शास्त्रोंमें ऐसी चर्चा है। अर्थात् शिवजी धर्मपर आरूढ हैं या वे स्वयं धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप हैं।

शिवजीके इष्टदेव कौन? मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम—परात्पर परब्रह्म श्रीराम। वाल्मीकिरामायणमें उनका तीन शब्दोंका एक परिचय '**रामो विग्रहवान् धर्मः**' त्रेतायुगसे आजतक जन-जनतक पहुँच चुका है और यह परिचय भी किसके मुखसे कराया गया है? उनके शत्रुपक्षके मारीच राक्षसके द्वारा उस समय, जब रावण उसके पास आया—यह अनुरोध करने कि वह छलसे स्वर्णमृग बनकर सीताजीको लुभाये और जब श्रीराम धनुष-बाण लेकर उसे मारने दूरतक जायँ, तब वह (रावण) साधु-वेशमें जाकर भिक्षा लेनेके बहाने सीताजीका हरण कर ले। तब मारीच रावणको समझाता है कि श्रीराम

'धर्मके विग्रह' हैं, अतएव उनसे मित्रता करनी चाहिये। उनसे वैर ठानना अपनी मृत्युको निमन्त्रित करना है। अन्ततः वही हुआ।

धर्मकी मूल प्रकृति या आधार है समष्टिके लिये व्यष्टिका त्याग अर्थात् आत्म-त्याग या आत्म-बलिदान, जिसपर धर्मका प्रासाद खड़ा होता है। शिवजी जैसा सर्वत्यागी कौन हो सकता है? सम्पत्तिके नामपर केवल एक व्याघ्रचर्म जो उनका आसन और वसन दोनों है। औढरदानी ऐसे कि चाहे जो उनसे माँग लें—सुर, असुर, नाग, किन्नर, मानव, अमानव कोई भी। भूत-प्रेत जिनको सब अशुभ, अपावन और अकल्याणकारी मानते हैं, वे सब उनके गण हैं और शिव-विवाह होनेपर वे देवताओंके साथ बाराती बनकर जाते हैं। सच्चे अर्थोंमें उनसे बड़ा सर्वहितकारी कौन होगा। इतना ही नहीं, बल्कि जब समुद्र-मन्थनसे अनेक दुर्लभ वस्तुओंमें लक्ष्मीसहित अमृत निकला, तब सृष्टिका सारभूत हलाहल विष भी निकला था। उस समय लक्ष्मीजी विष्णुजीके पास चली गयीं, अन्य अनेक दुर्लभ वस्तुओंका वितरण उनके अधिकारियोंमें हो गया और देवतागण अमृत पा गये। तब समस्या हुई कि सर्वविनाशकारी हलाहलका पान कौन करे? उस समय शिवजी सर्व-सहायक बने और रामका नाम लेकर उस हलाहलका पान कर गये। बल्कि कण्ठमें ही रोक लेनेसे 'नीलकण्ठ' बन गये।

जिनका नाम लेकर शिवजीने हलाहल पान किया, वे भी जब मानव बनकर संसारमें आये, तब जीवनके सभी पक्षों और आचार-विचारोंमें मर्यादाओंके बाँध बाँधकर उन्होंने धर्मकी साक्षात् और शाश्वत परिभाषा प्रस्तुत की। इन मर्यादाओंके पूर्णरूपेण पालनमें उन्हें तथा उनके परिवारको आजीवन अपार कष्टों, दुःखों और संघर्षोंका सामना करना पड़ा। राजतिलक होते-होते परिस्थितियाँ अचानक ऐसी बदलीं कि उन्हें पत्नी और अनुजके साथ चौदह वर्षोंके लिये वन जाना पड़ा। वियोगमें चक्रवर्ती सम्राट् पिताकी मृत्यु हुई, माताएँ विधवा हो गयीं, पत्नीका हरण हुआ, वानर-भालुओंको जुटाकर और सेतु बाँधकर महाप्रतापी रावणका वध किया, राज्याभिषेक हुआ तथा रामराज्य स्थापित हुआ, परंतु इसके बाद भी श्रीरामके लिये सर्वोच्च आत्म-बलिदानकी स्थिति तब उत्पन्न हुई, जब उ प्राणप्रियतमा सती-साध्वी सीताको वनवास देना पड़ा इस प्रकार आजीवन अपने पारिवारिक सुख-चैनको तिला देनी पड़ी।

इस अपूर्व त्याग, तपस्या, संघर्ष, बलिदानका फल अच्छा होना ही था। वे भारतके त्यागमयी धर्म और संस्कृ जीवन्त स्वरूप बन गये। धर्मकी परिभाषा जाननी हो रामके महान् जीवनको प्रस्तुत किया जा सकता है। राम भारतीय संस्कृति एक दूसरेके पर्याय बन गये। वे सा आदर्शरूपी हिमालयके चमकते सर्वोच्च शिखर हैं। ही नहीं विश्वकी मानव संस्कृति उनके इर्द-गिर्द घूमती इसमें कोई रामके पास है और कोई उनसे दूर। स विश्वके सांस्कृतिक इतिहासको प्रभावित करनेवाला कोई अन्य महापुरुष आजतक धरतीपर नहीं जन्मा। भा हिमालयका सर्वोच्च शिखर वस्तुतः विश्वका सर्वोच्च है

किंतु राम बननेकी इस सम्पूर्ण प्रक्रियामें उनको और शिव बनना पड़ा? यदि शिवको सृष्टि बचानेके उसके सारभूत हलाहलको पान करना पड़ा तो रा सम्पूर्ण मानव-सृष्टिमें धर्म और मर्यादाके पालन पुनःस्थापना-हेतु अपार कष्ट, संघर्ष, दुःख और वि हलाहल पीना पड़ा। रामका रामत्व उनके शिवत्वमें है तभी राम और शिव अन्योन्याश्रित हैं, एक हैं या दूसरेके पूरक हैं। शिवका शिवत्व राम बननेमें है रामका रामत्व शिव बननेमें। भारतीय संस्कृतिकी गङ्गा एकके चरणसे प्रकट होकर दूसरेके सिरपर आ होकर कोटि-कोटिका कल्याण करती हुई धरतीपर प्र होती है। वस्तुतः शिवके संकल्प और रामकी मर्या प्रतिपादित धर्मका पूर्ण दर्शन आत्म-त्यागके प्रकाश किया जा सकता है। वस्तुतः श्रीरामने सीताजी जीवनपर्यन्त इतने अपार दुःख और कष्ट सहन कि अब उनका नाम लेने मात्रसे मनुष्यके समस्त दु दर्द दूर हो जाते हैं, मानो उन्होंने सबके हिस्सेमें विपत्तियाँ स्वयं झेल लीं। राम-नाम सर्व विपत्तियोंके या शमनमें पूर्ण समर्थ है। छोटी-सी शर्त यह है कि हम उससे जुड़ें तो।

* * *

भगवल्लीला-शक्तिका स्वच्छन्द विलास

(श्रीश्यामलालजी हकीम)

परब्रह्म आनन्दघन स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण रसस्वरूप हैं—'**रसो वै सः**'। उनकी स्वरूपगत स्वाभाविकी अनन्त शक्तियाँ हैं। स्वरूपाशक्ति परमास्वाद्या है एवं भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूपमें अविच्छिन्नरूपसे वह नित्य अवस्थित है।

भगवल्लीला-क्षेत्र एक स्वतन्त्र परिमण्डल है, परम स्वच्छन्द स्वयम्प्रकाश प्रदेश है। उसकी अधिष्ठात्री है योगमाया। वह अपने अचिन्त्य प्रभावसे लीला-क्षेत्रमें अनन्त वैचित्र्य एवं अनन्त रसास्वादन-चमत्कारिता स्वतः प्रकाशित करती है। रसिकशेखर श्रीभगवान् वहाँ आस्वादनजनित मनःप्रसादकी चरम पराकाष्ठा प्राप्तकर विमुग्ध हो जाते हैं। भगवल्लीलाशक्तिके रसपरिवेषणका कौशल इतना कौतुकमय है कि वह लीलाधारी श्रीभगवान्के अनुसंधानकी अपेक्षा नहीं रखता। उनको आत्मविस्मृत कर देता है; फिर लीलान्तःपाती तो भाव-मुग्ध रहते ही हैं। परम स्वच्छन्द विलास है योगमायाका। भगवल्लीला-क्षेत्रमें श्रीब्रह्मा-शिव आदि देवगणों तथा सुर-मुनियोंकी महामुग्धताका क्या कहना?

बाल-क्रीडा-रसिक श्रीनन्दनन्दनने सोचा—सब सखाओंके साथ सबेरेका कलेवा एक दिन वनमें किया जाय, फिर क्या था? लीलाशक्तिकी प्रेरणासे उस दिन सब ग्वाल-बाल अपनी भोजन-सामग्री छीकों, पोटलियोंमें बाँधकर श्रीकृष्णके साथ आनन्द मनाते हुए वनकी ओर चल दिये। आगे-आगे असंख्य बछड़े कूदते-फाँदते चल रहे थे।

कंसका भेजा हुआ अति विकराल असुर अघासुर भयानक अजगरका रूप धारणकर मार्गमें आ लेटा और पर्वत-गुफाके समान मुँह फाड़े हुए श्रीकृष्णसहित सखा एवं बछड़ोंको निगल जानेकी प्रतीक्षा करने लगा। यह दृश्य देखकर एक सखा कहने लगा—'देखो भई! लगता है यह सामने कोई अजगर मुँह फैलाए बैठा है।' दूसरेने कहा—'अरे! यह हमारे वृन्दावनकी शोभा है।' रमणीय लाल सड़क गुफाकी ओर जा रही है। 'जितने मुँह उतनी बातें।' अन्तमें एक सखाने कहा—'मित्रो! यदि अजगर भी हो तो हमें निगलकर उसे मरना है क्या? हमारा कन्हैया तो हमारे साथ है!'

श्रीनन्दनन्दनने देखा—यह तो सचमुच अजगर है, परंतु मेरे सखा तो मात्र अजगर-जैसे होनेकी बात ही कर रहे हैं। गिरिगुहा जानकर इसके मुँहमें प्रवेश कर रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें रोकनेकी बात अभी सोच ही रहे थे कि इतनी देरमें समस्त बछड़े-बालक उस अजगररूपी गुहामें घुस गये। लीलाशक्तिने ग्वाल-बालोंके संकल्पकी पूर्तिको प्राथमिकता दे दी, क्योंकि वह अघासुरका नाश कराकर भगवान् श्रीनन्दनन्दनके 'हतारिगतिदायक' (मारे जानेवाले शत्रुओंको भी मुक्ति प्रदान करनेवाले) गुणको प्रकाशित करना चाह रही थी। दस हजार ग्वाल-बाल और असंख्य बछड़े अजगरके मुँहमें समा गये। परंतु योगमायाने उसे मुँह तबतक बंद नहीं करने दिया, जबतक श्रीकृष्ण उसमें प्रविष्ट नहीं हुए।

श्रीभगवान्ने उसके मुँहमें जाते ही अपना शरीर इतना बढ़ाया कि दम घुटनेसे तत्क्षण अजगरके प्राण ब्रह्मरन्ध्र फोड़कर बाहर निकल गये। उसके शरीरसे एक ज्योति निकली और वह वैकुण्ठमें चली गयी। उसके पलक झपकते ही श्रीनन्दनन्दनने अपनी अमृतदृष्टिसे उन ग्वाल-बालों और बछड़ोंको जीवित कर दिया। सबको साथ लेकर पूर्व-संकल्पानुसार श्रीकृष्ण अति रमणीय यमुना-पुलिनमें आकर हरी-हरी घासपर बैठ गये। कलेवा करनेके लिये सब अपनी-अपनी भोजन-सामग्री खोलने तथा परोसने लगे। बछड़ोंको वनमें चरनेके लिये छोड़ दिया गया था। ग्वाल-बाल मण्डलाकार पंक्तियोंमें सटकर बैठ गये एवं उनके बीचमें श्रीनन्दनन्दन शोभायमान थे। लीलाशक्तिने ऐसा कौतुक रचा कि सब ग्वाल-बालोंको ऐसा लगा कि श्रीकृष्ण उन्हींकी ओर मुख किये बैठे हैं। अब हास-परिहास करते हुए वे सब मिलकर भोजन करने लगे।

अघासुर अत्यन्त बलवान् था। उसके भयसे अमृतपान करनेवाले देवता भी मृत्युसे डरते थे। उसके मर जानेपर देवताओंने इतने जोर-जोरसे जय-जयकी हर्षध्वनि की कि ब्रह्मलोकमें बैठे ब्रह्मा भी विस्मित हो उठे। वे हंस-वाहनसे तपोलोकमें आये तथा फिर वहाँसे जनलोकमें आये। वहाँ

आकर वृन्दावनमें अघासुरके विनाशका समाचार सुना। विशेषकर उसकी सामीप्य-मुक्तिकी बात सुनी तो ब्रह्माजी आश्चर्यचकित रह गये। सोचने लगे कि आजतक मैंने भी किसी जीवात्माकी ज्योतिको श्रीभगवान्‌में लीन होते या भगवल्लोकमें जाते आँखोंसे नहीं देखा; परंतु अघासुर-जैसे पापीके लिये अत्यन्त दुर्लभ सामीप्य-मुक्ति! जिसे सबने देखा?—

अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः
प्रापात्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम्॥

(श्रीमद्भा० १०। १२। ३८)

ब्रह्माजीने सोचा—बड़े सौभाग्यसे वृन्दावन आया हूँ। अतः श्रीनन्दनन्दनकी कोई और भी मनोहारी लीलाका दर्शन करना चाहिये। हंसपर बैठे-बैठे आकाशसे उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंके साथ भोजन कर रहे हैं। देखते ही वे स्तब्ध हो गये—'क्या ये सब वही सामग्री खा रहे हैं, जिसे लेकर अजगरके उदरमें प्रविष्ट हुए थे? अपवित्र और विषैला भोजन? छिः-छिः, ये तो एक दूसरेका जूठा पदार्थ भी खा रहे हैं। अरे! यह क्या—श्रीकृष्ण तो हथेलीपर ही दही-भात और अचार-मुरब्बेकी फाँकें लिये बैठे हैं।' 'क्या ये वही हैं जो यज्ञोंमें केवल उद्देश्यमात्रसे मन्त्रोंद्वारा समर्पित हवि ग्रहण करते हैं?' ब्रह्माजी कुछ समझ न पाये, भगवान् श्रीकृष्णके इस लीलासे वे विमोहित हो गये।

भगवल्लीला-शक्तिने भी ब्रह्माजीको श्रीकृष्णकी लीलामायाकी महिमासे छकानेका पूरा मन बना लिया। इस लीला-शक्तिकी लीला-प्रेरणाके वशीभूत होनेपर सृष्टिकर्ता ब्रह्माके मनमें बछड़ोंको चुरा लेनेकी सूझी, किंतु लीलाशक्तिने इसके पहले ही उन सब बछड़ोंको अन्तर्धानकर वहाँ मायिक बछड़े विचरनेके लिये छोड़ दिया। ब्रह्माने उन्हें चुराकर अपनी बड़ी चतुराई समझी। तब योगमायाने भोजनमें तन्मय ग्वाल-बालोंका ध्यान बछड़ोंकी तरफ आकृष्ट किया। जब सब चिन्तित होकर उठने लगे, तब श्रीकृष्णने उन्हें वहीं बैठे रहनेको कहा और स्वयं ही उन्हें ढूँढ़ने चले गये। योगमाया उन्हें बहुत दूर वन-पर्वत आदिकी गुफाओंमें ले गयी, ताकि ब्रह्मा कुछ और भी चुरा सकें। अपने मनकी कर लें। ब्रह्माने जब देखा कि सब ग्वाल-बाल अकेले हैं, वहाँ श्रीकृष्ण नहीं हैं तो उन्हें चुरा ले जाना चाहा। योगमायाने पहले ही उन ग्वा बालोंको भी अन्तर्धान कर दिया और उनके स्था मायिक ग्वाल-बाल स्थापित कर दिये। ब्रह्मा उन ग्वा बालोंको भी ले गये। ब्रह्मलोकमें ले जाकर मायासे नि कर सुला दिया। सृष्टिका ईश्वर और चोरी? यह स्वच्छन्द विलास है भगवल्लीला-शक्तिका।

सर्वज्ञ भगवान् बछड़ोंको कहीं न देखकर भोजन-स्थ आये। कैसा आश्चर्य कि यहाँ ग्वाल-बाल भी नदारद। क्षणोंके लिये लीलाशक्तिने अपने स्वामीको भी चक्क डाल दिया, किंतु उन्हें यह जाननेमें अधिक देर न लगी यह सब करतूत सृष्टिकर्ता ब्रह्माकी है; फिर भी वे यह जान पाये कि मेरे ग्वाल-बाल, बछड़े योगमायाने अ पास सुरक्षित कर लिये हैं। कैसा अचिन्त्य प्रभाव भगवल्लीला-शक्तिका?

भगवान् श्रीकृष्णने जान लिया कि ब्रह्माको सृष्टि-रच गर्व है, वे भले ही मेरेद्वारा सृजित उपादानोंको लेकर ही क्यों न करते हों, स्वतन्त्र-सृष्टि देखकर इनका गर्व-ख होगा, मेरी मंजु महिमाका भी उन्हें अनुभव हो सकेगा। सखाओं तथा बछड़ोंके बिना तो गोष्ठमें नहीं जा सकत

ऐसा सोचते ही भगवान् श्रीकृष्णने अपनेको उन ग्वाल-बालों और बछड़ोंके रूपमें प्रकटित कर लिया। उनके छोटे-बड़े शरीर थे, वय, वस्त्र, छींके, लाठी भूषण आदि थे; वैसे ही सब कुछ आप भी बन गये। ही चाल-ढाल और वैसा ही स्वभाव तथा रंग-रूप कर लिया। अपराह्णके समय निजरूपी बछड़ोंको, नि ग्वाल-बालोंको, निजरूपसे घेरते हुए प्रतिदिनकी गोष्ठमें खेलते-कूदते प्रवेश किया। परब्रह्म श्रीकृष्ण प्रयोजक—कर्ता थे, स्वयं ही बछड़ोंके रूपमें कार्य थे, ही सखाओंके रूपमें बछड़ोंके घेरनेवाले प्रयोज्य-क स्वयं ही आत्मस्वरूपभूत सखाओंके साथ खेल क्रिया-कारक थे। श्रीकृष्णरूपमें अपने पुत्रोंको गोपीवृन्द तथा गौएँ अतिशय वर्द्धित प्रेममें विभोर हो किंतु इस रहस्यको गोष्ठमें कोई भी न जान सका।

एक दिन नहीं, एक मास नहीं, बल्कि एक वर्षपर्यन्त यह अद्भुत लीला-विलास चलता रहा। अब ब्रह्माजी सोचने लगे, जरा देखूँ—'क्या हुआ नरशिशुलीला नन्दलालाका?' देखा कि यहाँ तो सब सखा बछड़ोंके साथ वनमें आ रहे हैं, गोष्ठमें लौट रहे हैं, उनकी बालक्रीडा ज्यों-की-त्यों आनन्दसे चल रही है। ब्रह्माजी झट ब्रह्मलोकमें भागकर गये। वहाँ देखा मेरे चुराये हुए सब सखा तथा बछड़े निद्रित-अवस्थामें तो यहीं मोहित पड़े हैं, फिर वृन्दावनमें वे ग्वाल-बाल, बछड़े कौन हैं? दोनों स्थलोंपर एक ही समान यह दृश्य कैसे? ज्ञान-दृष्टिसे वास्तविकता देखना चाहा, किंतु ज्ञान-दृष्टि कुछ काम न आयी। अत्यन्त आश्चर्यान्वित हो अपनी ही मायामें स्वयं मोहित हो गये।

इतनेमें ब्रह्माजी देखते हैं कि सभी ग्वाल-बाल और बछड़े सुन्दर श्यामवर्ण हैं। पीताम्बरधारी श्रीविष्णुरूपमें उनके सामने शोभायमान हैं। एक-एक विष्णु पृथक् एक-एक ब्रह्माण्डका ईश्वर है। प्रत्येकके सामने एक-एक ब्रह्मा उपस्थित हैं और अनेक उपकरणोंसे उनकी आराधना-पूजा कर रहे हैं। समस्त सिद्धियाँ-शक्तियाँ उनकी उपासना कर रही हैं। आश्चर्यचकित ब्रह्माजीके नेत्र मुँद गये। वृन्दावनके एक भागमें ही अगणित ब्रह्माण्डोंको चारों ओर देखकर ब्रह्मा अपनेको सँभाल न सके। हंसवाहनसे अचेत होकर नीचे आ गिरे।

जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि अब ब्रह्माजी मेरी लीला-महिमा-सागरमें डूब गये हैं। वृन्दावनमें विद्यमान होते हुए भी उन्हें इसका दर्शन प्राप्त नहीं हो रहा है। तब उन्हीं भगवान्‌की इच्छासे कल्पवृक्ष परिवेष्टित पुष्पान्वित श्रीवृन्दावनका दर्शन प्राप्त हुआ और जब योगमायाने अपना प्रभाव हटाया, तब उन्होंने नराकृति परब्रह्म लीलापुरुषोत्तमको किंचित् पहचाना। मायापतिपर अपनी मायाके प्रसार करनेकी मूर्खतापर ब्रह्माजी पछताने लगे। नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। अब वे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें बार-बार साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए दोनों हाथ जोड़कर उनकी अद्भुत स्तुति करने लगे।

अब ब्रह्माका गर्व-भंग हुआ देखकर भगवल्लीला-शक्तिने भी अपने स्वच्छन्द विलासका अदृश्य रूपमें उपसंहार किया। उसने ब्रह्माद्वारा चुराये हुए मायिक बालक और बछड़ोंको अन्तर्धान कर दिया, जिनको उसने आच्छादित कर अपने पास सुरक्षित रख लिया था, उन वास्तविक बालकों, बछड़ोंकी श्रीकृष्णरूपी बालकों तथा बछड़ोंके साथ एकात्मता स्थापित कर दी। वे तो पहले श्रीकृष्ण-स्वरूपभूत थे, किंतु इस कौतुकका अनुसंधान भगवान् लीलापुरुषोत्तम भी न कर पाये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रसस्वरूप रसिकशेखर अपनी स्वरूपाशक्तिके स्वच्छन्द विलासमें एक ही लीलामें विभिन्न रसवैचित्र्यका अद्भुत आस्वादन प्राप्त करते हैं। **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** होते हुए भी लीलापुरुषोत्तम अपने प्रिय भक्तोंके अनेक प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वे अपने श्रीमुखसे स्वीकारते हैं—

'मद्भक्तानां विनोदार्थं करोमि विविधाः क्रियाः।'

वास्तवमें प्रिय—परिकर भक्तोंके विनोदार्थ सम्पन्न होनेवाली असंख्य लीलाओंके अति गम्भीर रससागरके अन्तस्तलमें रसिकचूडामणि श्रीभगवान्‌की निजी स्वरूपगत रसास्वादन-स्पृहारूपी अगणित स्फटिक-मणियाँ छिपी हुई हैं, जिन्हें देख पाते हैं, निकाल पाते हैं लीलारस-सागरके गोताखोर रसिकजन।

आनुषंगिकरूपमें जीवानुग्रह—कातर भगवान् लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सृष्टि-लीलामें जीव-जगत्‌के प्रति करुणा-कादम्बिनी प्रकाशित करते हैं और साथ ही अनेक प्रकारके दुःखोंके दावानलमें जलते-झुलसते सांसारिक लोगोंके लिये अति दुस्तर भवसागरसे पार उतरनेके लिये अपनी लीला-कथा-रस-माधुरीकी एकमात्र सुदृढ़ नौका स्थापित करते हैं—

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य॥

(श्रीमद्भा० १२। ४। ४०)

* * *

निरन्तर नाम-जप एवं भगवल्लीला-दर्शन

(डॉ० श्रीसत्यपालजी गोयल, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, आयुर्वेदरत्न)

नामचिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णशुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥

अर्थात् नाम और नामीमें कुछ भी भेद नहीं है। इसलिये श्रीकृष्ण-नाम श्रीकृष्णकी तरह चैतन्य रसविग्रह है, सर्वशक्तिपूर्ण है तथा नित्यमुक्त एवं चिन्तामणिकी तरह सर्वाभीष्ट प्रदान करनेवाला है।

पूर्वजन्मोंके पाप-कर्मोंका प्रबल प्रभाव ही जीवको नामके प्रति निष्ठा उत्पन्न नहीं होने देता। माया उसे निरन्तर अपनी ओर खींचती रहती है। संसारकी विषयासक्ति उसे भगवान्के नाम-रूप-गुण और लीलाके प्रति लगाव उत्पन्न नहीं होने देती। जिस प्रकार पाण्डुरोगसे पीडित व्यक्तिको मिश्री कड़वा लगती है, परंतु उसी मिश्रीका निरन्तर सेवन करनेसे रोगीके पीलिया (पाण्डु)-रोगका शमन हो जाता है। उसी प्रकार मायाग्रस्त जीव भव-व्याधिसे पीडित है। उसे नामका जप कड़वा लगता है, परंतु निरन्तर कृष्ण या रामका नाम-जप करनेसे संसार-बन्धन क्षीण हो जाता है और उसका हृदय शुद्ध हो जाता है। उसके हृदयमें भगवान्के दिव्य रूप, गुण और लीलाकी अनुभूति होने लगती है।

भगवान् जिस प्रकार नित्य-शुद्ध-तत्त्व हैं, उसी प्रकार उनकी लीलाएँ भी नित्य-शुद्ध हैं। वे अनादि-तत्त्व हैं। उनकी लीलाएँ भी अनादि हैं। पाप-पंकिल हृदयमें उनकी दिव्य लीलाएँ स्फूर्त नहीं होती हैं। अतएव उनका नाम ही कृपा करके जीवको अपनी ओर आकर्षित करता है—

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः॥
सेवोन्मुखे हि जिह्वाऽऽदौ स्वयमेव स्फुरत्यदः।

(भक्तिरसामृतसिन्धु पूर्वविभाग २। ६२-६३)

अर्थात् श्रीकृष्ण-नाम चिन्मय होनेसे प्राकृत इन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं किये जा सकते, परंतु जब लोगोंकी रसना उसे ग्रहण करनेकी इच्छा रखती है, तब कृष्ण-नाम कृपा करके स्वयं रसनापर स्फुरित होने लगते हैं।

संतोंका ऐसा अनुभव है कि साधकको नाम, संत, लीला और धाममेंसे किसी एकसे अवश्य जुड़ जाना चाहिये, फिर तो साधककी निष्ठा उसे चारोंसे जोड़ देगी। नाममें नामीसे भी अधिक शक्ति है। नाम एक क्षणमें ब्रह्माण्डके जीवोंको शुद्ध कर नामीसे मिलानेकी शक्ति रखता है।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण नित्य सनातन तथा अद्वय तत्त्व जीव भी उसी प्रकार नित्य और सनातन तत्त्व है। जीवका भगवान्से अद्वय नित्य-सम्बन्ध है। जीवका यह सम्बन्ध दास, मित्र, माता या पिता एवं प्रेमिका- भी रूपमें हो सकता है। मायाबद्ध हो जानेसे वह स्वरूपको भूल गया है, इसलिये श्रीकृष्णसे उसका सम्बन्ध है? उसे यह भी ज्ञात नहीं है।

निरन्तर कृष्ण-नामका जप करनेसे उसकी शुद्ध होने लगती है। उसका मन एकाग्र होकर कृष्ण- जपमें निष्ठावान् हो जाता है। उस समय उसके सभी विकल्प शान्त हो जाते हैं तथा साधकको उसके सम्बन्धके अनुरूप लीलाओंकी स्फूर्ति होने लगती है। आप दर्पणमें अपना प्रतिबिम्ब देखना चाहते हैं, उस दर्पणको निरन्तर हिलाते-डुलाते रहें तो उस दर्पणमें प्रतिबिम्ब दिखायी नहीं देगा, परंतु यदि उस दर्पणको कर स्वच्छ कर लिया जाय तो अपना प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ने लगेगा। उसी प्रकार चंचल मनको शुद्ध स्थिर कर लेनेपर आपको अपना तथा श्रीकृष्णका एवं उनकी लीलाओंका स्पष्ट दर्शन होने लगेगा। नाम-जपमें ही वह दिव्य शक्ति है, जो मन तथा शुद्ध कर लीलाओंकी अनुभूति कराने लगती है।

श्रीकृष्ण-नाम-जप प्रारम्भ करते समय किसी प्रकारके सम्बन्धकी स्थापना नहीं करनी चाहिये; इस प्रकार बनाया गया सम्बन्ध काल्पनिक तथा लिये ही होगा और नाम-जपमें बाधक भी होगा। नाम-जप करते-करते नाम-प्रभुकी कृपासे जीवका शुद्ध सम्बन्ध स्वतः जाग्रत् होने लगता है तथा साधक भावसे साधना करने लगता है—

'साधक देहे भावे जेई
सिद्ध देहे पावे सेई'

(श्रीचैतन्य

जीव और कृष्णके मध्य जो नित्य-सम्बन्ध (

वह तीन प्रकारसे सिद्ध हो सकता है—(१) गुरुकृपा-साध्य, (२) कृष्णकृपा-साध्य तथा (३) साधन-साध्य। परंतु इस भाव-सम्बन्धमें कृत्रिमताका आवरण कभी नहीं ओढ़ना चाहिये, अन्यथा भयंकर पतनकी सम्भावना रहती है।

व्रजके गोप-गोपियाँ, नन्द बाबा, माता यशोदाजी, राधाजी तथा लीला-परिकरोंका श्यामसुन्दरके प्रति जो प्रेम है उसे 'राग' कहते हैं। व्रजलीला-परिकरोंकी इस प्रेमवृत्तिको रागात्मिका भक्ति कहते हैं। जब कोई साधक व्रजलीलाके किसी परिकरके अनुगत होकर सेवा-साधना करता है तो उसे रागानुगा भक्ति कहते हैं। स्वतन्त्र-रूपसे स्वयंको नन्द, यशोदा, राधा, ललिता, विशाखा या मनसुखा आदि मानकर नाम-जप-साधना कर लीला-स्फूर्ति करनेसे इन परिकरोंके चरणोंमें अपराध हो सकता है, क्योंकि यशोदा-नन्द, राधा एवं ललिता सखी तो एक ही हो सकती हैं; परंतु उनके आनुगत्यमें, उनके मार्गदर्शनमें, उनके भावाधीन होकर साधना करनेसे किसी अपराधकी सम्भावना नहीं रहती।

एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ४०)

अर्थात् जो साधक भक्ति-अंगोंका अनुष्ठान करते हैं, अपने प्रिय कृष्ण-नामका संकीर्तन (जप) करते-करते उनके हृदयमें कृष्ण-प्रेम (लीला-स्फूर्ति) उदय हो जाता है, वे उन्मत्तकी तरह उच्च स्वरमें कभी हँसने लगते हैं तो कभी रोने लगते हैं तथा कभी अपने प्यारेकी लीला-स्मृतिमें नृत्य करने लगते हैं और ***'हा कृष्ण! हा कृष्ण!!'*** कहकर जोर-जोरसे पुकारने लगते हैं—यह नाम-जप-स्मरण एवं चिन्तनका दिव्य प्रभाव है।

वैष्णवनिष्ठ साधकोंके हृदयमें दिव्य लीलाओंकी स्फूर्ति निरन्तर होती रहती है, उन्हें सांसारिक दायित्वों तथा सम्बन्धोंमें रंचमात्र भी आसक्ति नहीं रहती। प्रतिक्षण उनके हृदयमें अपने प्यारेकी अष्टकालीन लीलाओंका दिव्य प्रकाश होने लगता है। व्रजभावके बिना कृष्ण-प्रेमकी उज्ज्वल रसानुभूति कदापि सम्भव नहीं है। यह कृष्ण-नाम-स्मरण हो रहा है या नहीं—इसका साधकको निरन्तर आत्मपरीक्षण करते रहना चाहिये, क्योंकि—

तदश्मसारं हृदयं बतेदं
यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो
नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः॥

(श्रीमद्भा० २। ३। २४)

अर्थात् शौनकजीने सूतजीसे कहा—'हे सूत! श्रीकृष्ण-नाम-ग्रहण करते-करते यदि नेत्रोंमें अश्रु तथा शरीरमें रोमांचादि विकार उत्पन्न होकर हृदय द्रवीभूत नहीं होता हो तो वह हृदय वज्रके समान कठोर होता है।'

जबतक अश्रु-रोमांचादि नाम-ग्रहणके समय उत्पन्न न हों, तबतक साधकको समझना चाहिये कि उसके हृदयमें कृष्ण-नामके प्रति निष्ठाका उदय नहीं हुआ तथा मन एवं हृदय शुद्ध नहीं हुआ है। उसमें भौतिक विषयासक्ति बनी हुई है।

परंतु जब भगवान्‌के नाम, रूप, गुणके जप-चिन्तन-मननके आनन्दोद्रेकसे साधकका रोम-रोम खिल उठता है, आसुओंके मारे कण्ठ गद्‌गद हो जाता है और वह संकोच छोड़कर जोर-जोरसे गाने-चिल्लाने लगता है, पागलकी तरह कभी हँसने एवं रोने लगता, कभी ध्यान करने और भगवन्नामका जप करने लगता है। जब वह भगवान्‌में एकदम तन्मय हो जाता है, बार-बार **'हरे! नारायण!! जगन्नाथ!!!'** पुकारने लगता है—तब नाम-जपके प्रभावसे उसके सारे बन्धन कट जाते हैं और भगवद्भावना करते-करते उसका हृदय भी तदाकार अर्थात् भगवन्मय हो जाता है। उस समय उसे भगवल्लीलाका साक्षात् दर्शन होने लगता है।

अतः जिन भगवान्‌के नामोंका संकीर्तन सारे पापोंको सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान्‌के चरणोंमें आत्मसमर्पण एवं प्रणति सर्वदाके लिये सभी दुःखोंको शान्त कर देती है, आत्यन्तिक सुख—तदाकारकारिता प्रदान करती है। उन्हीं परमात्मस्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ—

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥

(श्रीमद्भा० १२। १३। २३)

* * *

श्रीभगवान्‌की लीलाओंसे पग-पगपर प्रेरणा

(श्रीशिवकुमारजी गोयल)

भारत ऐसी पवित्रतम एवं दिव्यातिदिव्य भूमि है, जहाँ भगवान् धर्मकी पुनःस्थापना करने, अधर्मियों और अन्यायियोंका नाश करने तथा अपनी दिव्य लीलाओंके माध्यमसे जीवोंका उद्धार करने एवं उन्हें प्रेरणा देनेके लिये अवतार लेते हैं—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
(रा०च०मा० १। १२१। ६—८)

जब-जब धर्मपर आघात किये जाते हैं, धर्म तथा नैतिक मूल्योंका ह्रास होने लगता है और असुरों, धर्मद्रोहियोंका बोलबाला होने लगता है, वे अनीति एवं अधर्ममें लिप्त हो जाते हैं, तब-तब भगवान् मनुष्य-शरीर धारण करके गो-ब्राह्मणों तथा सज्जनोंकी पीडा हरनेके लिये अवतरित होते हैं।

धर्मकी पुनःस्थापना तथा अन्यायियों एवं पापियोंके विनाशके साथ-साथ भगवान् अपनी लीलाओंके माध्यमसे न केवल मनुष्यों, अपितु जीवमात्रको भक्ति, सन्मार्गपर चलनेका तथा उनके कल्याणका मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। हमारे अनेक आचार्योंने भगवान्‌के लीलाके लिये अवतार लेनेके प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा है—

शीलः क एष तव हन्त दयैकसिन्धो
क्षुद्रे पृथग्जनपदे जगदण्डमध्ये।
क्षोदीयसोऽपि हि जनस्य कृते कृतीत्व-
मत्रावतीर्य ननु लोचनगोचरोऽभूः॥

हे दयाके एकमात्र सागर प्रभु, अपने विराट् ब्रह्माण्डके बीच क्षुद्र प्राणियोंके कल्याणके लिये आप अवतार धारणकर हम सबको साक्षात् दर्शन देनेके लिये प्रस्तुत हो गये हैं, आपका यह शील, आपकी यह लीला अनुपमेय है।

भगवान् करुणा या अनुग्रहके लिये ही लीलावतार धारण करते हैं। कहा गया है—

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥
(श्रीमद्भा० १०। ३३। ३७)

भगवान्‌को गीता (११। ४३)-में सारे संसारका पिता कहा गया है—**'पितासि लोकस्य चराचरस्य'** अर्थात् वे साक्षात् दयामूर्ति, करुणामूर्ति एवं भक्तवत्सल हैं। जहाँ प्राणियोंपर अपनी अहैतुक कृपाकी बौछार करके उसके अ करणमें बैठकर ज्ञानदीपसे अज्ञानका उन्मूलन करके आत्मस्वरूपका साक्षात्कार कराते हैं, वहीं लीला भगवान् अपने भक्तोंको संकटसे उबारनेमें एक पलका विलम्ब नहीं करते। असंख्य भक्तोंने शुद्ध हृदय निष्कपट-मनसे जब कभी भगवान्‌की भक्ति की, तो भगवा उन्हें अवश्य शरणागति प्रदान की। कहा गया है—

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्।
कुब्जायाः कमनीयरूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनं
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः॥

कैसे-कैसे लोगोंको लीलावतार भगवान्‌ने अपनी शरण देकर तार दिया। प्राणियोंकी हत्या करके जीवन- करनेवाला व्याध, निष्कपट प्रभुभक्त बालक ध्रुव, कंस पिता उग्रसेन, कुरूपा कुबड़ी तथा निर्धन सुदामा—ये इस लीलाधिपति भगवान्‌की अनुकम्पाका प्रसाद जीवन्मुक्त हो गये।

भगवान् श्रीकृष्ण तो साक्षात् लीलावतार थे, जि अपनी दिव्य लीलाओंके माध्यमसे विभिन्न प्रयोजनों असंख्य प्राणियोंका उद्धार किया, उन्हें बार-बार लेनेके झंझटसे मुक्ति दिलायी। महाभारत-युद्धके निश्चय ही भगवान् श्रीकृष्णकी राजनीतिसे सराबोर लीला ही है, जो अन्यायके विरुद्ध सतत संघर्ष क सदैव प्रेरणा देती रहेगी।

इसी प्रकार मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी लीला माध्यमसे हम माता-पिताकी आज्ञाका पालन करने, मुनियों तथा गोमाताको सतानेवाले राक्षसोंका संहार क आगे आने, पर-स्त्रीपर कुदृष्टि रखनेवाले साम्राज्य तकके विरुद्ध सतत संघर्षकर उसका समूल विनाश डालने-जैसे राष्ट्रिय कर्तव्यकी प्रेरणा प्राप्त करते रहें

श्रीरामकी पावन लीलाएँ एवं श्रीकृष्णकी दिव्य ली अतिभौतिकवादकी चकाचौंधमें फँसे आजके मानव-जी भी बदल डालनेकी अद्भुत सामर्थ्य रखती हैं, इसके उ

समय-समयपर मिलते रहते हैं।

श्रीरामलीला देखकर चरण-स्पर्श करना सीखा

आजकल विदेशोंमें भी प्रवासी भारतीयोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्ण तथा भगवान् श्रीरामकी लीलाओंका मंचन कराया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप संसारके अनेक देशोंमें भगवान्‌की लीलाओंके प्रदर्शनकी बहुत सराहना भी होती है। कुछ दिन पूर्वकी बात है—भूतपूर्व सांसद स्व० श्रीप्रकाशवीर शास्त्री लन्दन गये तो वे अपने पूर्व-परिचित प्रवासी भारतीय परिवारमें ठहरे। सबेरे जब वे सोकर उठे तो उस परिवारके कई युवक तथा बच्चे उनके पास आये और चरण-स्पर्शकर आशीर्वाद प्राप्त किये। शास्त्रीजी पहले भी कई बार इस परिवारका आतिथ्य ग्रहण कर चुके थे। उस समय परिवारके युवक तथा बच्चे हाथ हिलाकर 'गुडमार्निंग' कहा करते थे। इस बार चरण-स्पर्शको देखकर वे कुतूहलमें पड़ गये। शास्त्रीजीके कुतूहलको देखकर परिवारके मुखिया बोले—'शास्त्रीजी, जब हमारे यहाँ लन्दनमें भारतीय सांस्कृतिक केन्द्रकी ओरसे रामलीलाका प्रदर्शन किया गया, उसी समय अनेक प्रवासी भारतीय परिवारोंके बच्चोंने भगवान् श्रीरामको अपने माता-पिता और गुरुके चरण-स्पर्श करते देखकर चरण-स्पर्श करनेकी प्रेरणा ली। रामलीला तथा कृष्णलीलाने तो हमारे बच्चों एवं महिलाओंपर अमिट प्रभाव छोड़ा है। ऐसे आयोजन करके ही हम भारतीयोंकी नयी पीढ़ीको भारतीयता तथा धार्मिक संस्कारोंसे जोड़े रख सकते हैं।'

शास्त्रीजीने जब यह घटना सुनायी तो हमें लगा कि भगवान्‌की लीलाएँ ही पूरे संसारमें रहनेवाले भारतीयोंके अंदर भारतीय संस्कारको अक्षुण्ण रखनेकी क्षमता रखती हैं।'

रूसी बालक रामलीलासे प्रभावित

सन् १९८८ की बात है। मास्को (रूस)-में रहनेवाले दसवर्षीय बालक 'दिमित्रीत्सिगत्ज' रामचरितमानसमें वर्णित भगवान् श्रीरामकी लीलाओंसे इतना प्रभावित हुआ कि उसने भगवान् श्रीराम एवं सीताजीकी लीलाओंके अनेक सुन्दर चित्र बना डाले। उसने भगवान्‌की लीलाभूमि भारतके दर्शनोंका संकल्प किया तथा अपने बनाये रामलीलाके चित्रोंके साथ वह १४ जनवरी १९८९ को भारत आनेमें सफल हो गया। दिल्लीकी 'नेशनल म्यूजियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री'की ओरसे आयोजित चित्र-प्रतियोगितामें उसके द्वारा निर्मित श्रीरामलीलाके चित्र पुरस्कृत किये गये। उसने उस समय दूरदर्शनपर दिये गये साक्षात्कारमें कहा था—'मैंने श्रीरामकी लीलाओंका दिग्दर्शन करके तथा रूसी भाषामें अनूदित रामचरितमानस पढ़कर सुरापान एवं मांसाहार त्याग दिया तथा अपना जीवन भगवान् श्रीरामकी भक्तिके लिये समर्पित कर दिया है।'

स्वामी भक्तिवेदान्तजीकी अनुभूति

श्रीकृष्णभावनामृत-अभियानके प्रणेता पूज्यपाद श्रीकृष्ण-कृपामूर्ति श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपादजी महाराजने पूरे संसारमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका प्रचार करके लाखों विदेशियोंको सनातनधर्ममें दीक्षित करनेमें सफलता प्राप्त की थी। एक बार उन्होंने नयी दिल्लीमें हम पत्रकारोंसे बातचीत करते हुए बताया था कि इंग्लैंड, अमेरिका, जापान, जर्मनी, इटली आदि अनेक देशोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलाओंसे प्रेरणा प्राप्तकर पति-पत्नीके बीच तलाककी प्रवृत्तिपर नियन्त्रण लगता जा रहा है। प्रवासी भारतीयोंमें भी पाश्चात्त्य कुसंस्कारोंके कारण तलाक-जैसी प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही थीं। हमने श्रीकृष्णलीला तथा श्रीरामलीलाका प्रचार करके तथा प्रभुकी लीलाओंसे प्रेरित करके अनेक परिवारोंको आदर्श भारतीय बननेकी दिशामें संकल्पित कराया। हम श्रीकृष्ण-भक्तिके प्रचारके साथ-साथ माता-पिताकी सेवा करने, बड़ोंका आदर करने, मांसाहार एवं शराबका त्याग करने एवं शुद्ध शाकाहार करनेका संकल्प भी दिलाते हैं। भगवान्‌की लीलाओंसे प्रभावित होकर न केवल भारतीय परिवार ही, अपितु असंख्य विदेशी भी हमारे 'हरे कृष्ण-आन्दोलन'के लिये समर्पित होते जा रहे हैं।

उन्होंने बताया कि केवल अँग्रेज एवं अमेरिकन ही नहीं, लाखों रूसी और चीनीतक भगवान् श्रीकृष्णके तत्त्वको समझकर हिन्दू (सनातन)-धर्मकी शरणमें दीक्षित हो चुके हैं। वे सिर मुड़वाकर लम्बी-लम्बी चोटियाँ रखते हैं। माथेपर तिलक लगाते हैं तथा श्रीकृष्णलीलामृतके रस-पानसे भाव-विभोर होकर सड़कोंपर संकीर्तन करते हुए सभीको आश्चर्यचकित कर देते हैं।

इस प्रकार श्रीकृष्णलीलाओंके दर्शन, चिन्तन, मनन एवं दिव्य प्रेरणासे संसारके असंख्य शीर्षस्थ बुद्धिजीवी भगवान् श्रीकृष्णकी शरण ग्रहण कर चुके हैं।

* * *

भगवल्लीला-चिन्तन

(श्रीराजेशजी पाठक, शास्त्री 'दीन')

भगवत्पादारविन्द-मकरन्द-रससार-सरोवरमें निमग्न जीव ही परम पुरुषार्थकी ओर अग्रसर होता है। वह परब्रह्म परमात्मा भगवान् निर्गुण-निराकार है एवं अपने भगवत्-भागवत-परायण भक्तोंके लिये अकारण-करुण-करुणावरुणालय लोकमङ्गलकारी श्रीराम-कृष्णादिके रूपमें सगुण-साकार भी है। सम्पूर्ण शक्तियोंसे युक्त परब्रह्म परमेश्वर ही भगवान् हैं।

भगवान्की लीला-रस-माधुरीका रसास्वादन करनेहेतु बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्र भी बलात् खिंचे चले आते हैं। शेष-महेशादि भी अनन्तानन्दकी लीलाओंमें सदा निमग्न रहते हैं। उस भगवान्की लीलाएँ अद्भुत एवं असंख्य हैं।

परब्रह्म परमात्मा भगवान्की रसमयी मधुमयी सुमधुर लीलाओंका चिन्तन योगी एवं भक्तजन करते रहते हैं। भगवान्की अति मधुर लीलाओंका चिन्तन उनके परम प्रिय नित्य-सेवकोंको ही लभ्य है, वे धन्यातिधन्य हैं। भगवान्के मङ्गलमय नामका चिन्तन, सुमनोहारि त्रिभङ्गललित बाँकी-झाँकीका चिन्तन, उस प्यारे-दुलारे नटवरनागर गोपीजनवल्लभकी सुमधुर लीलाओंका चिन्तन तथा व्रज, अवध एवं वैकुण्ठ आदि धामोंका चिन्तन—ये सभी भगवत्तत्त्वको प्राप्त करानेवाले हैं।

भगवत्तत्त्व-विमर्श—अब 'भगवत्' शब्दके अर्थपर विचार करते हैं। भगवत् '**भग**' शब्दसे '**मतुप्**' प्रत्यय होनेपर निष्पन्न होता है।

पुराणोंकी दृष्टिसे 'भगवत्' शब्दकी व्याख्या इस प्रकार है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(श्रीमद्भा० १। २। ११)

तत्त्ववेत्ता महापुरुष इसे तत्त्व कहते हैं। निरतिशय बृहद् होनेसे वही तत्त्व ब्रह्म है। सबका अन्तरात्मा होनेके कारण परमात्मा एवं समस्त भजनीय गुणोंसे युक्त होनेके कारण यही तत्त्व 'भगवान्' नामसे निरूपित होता है।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादि ....।
.................................सत्यं परं धीमहि॥

(श्रीमद्भा० १। १। १)

श्रीमद्भागवतके इस प्रथम श्लोकके अनुसार भगवान् ही जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका जनक है, जो स्वयम्प्रकाश है, सर्वज्ञ है, ब्रह्माको वेदोंका ज्ञान देनेवाला है, जिसके सम्बन्धमें विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं एवं जो त्रिगुणात्मिका मायासे परे है, उस परम सत्यका हम ध्यान करते हैं। इसमें भी सत्यस्वरूप भगवान्का ही महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

'भगवान्' शब्दकी व्याख्या विष्णुपुराण (६। ५। ७४)-के अनुसार इस प्रकार है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान एवं समग्र वैराग्य-इन छः भगोंसे युक्त तत्त्व ही भगवान् है।

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥

(विष्णुपु० ६। ५। ७८)

इन चराचरात्मक प्राणियोंकी उत्पत्ति, विनाश, विद्या-अविद्या एवं गमनागमनको जो जानता है, वही 'भगवान्' नामसे शास्त्रोंमें वर्णित किया गया है।

लीलातत्त्व-विमर्श—'लीला' शब्द श्लेषार्थक '**ली श्लेषणे**' धातुसे '**क्विप्**' प्रत्यय होनेपर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है—आश्लेष अर्थात् परब्रह्म परमात्मा-भगवान्का जिसके द्वारा मिलन हो जाय, संयोग हो जाय, संश्लेष प्राप्त हो जाय; उसका नाम 'लीला' है। 'ली' माने हृदयसे लगाना, '**ला**' माने ग्रहण करना (ला आदाने)। हमको भगवान्के हृदयसे लगा दे, ग्रहण करा दे—मिला दे, उसका नाम 'लीला' है। सत्य-स्वरूप भगवान्का संश्लेष, संस्पर्श ही लीलाका अर्थ है। यह भगवान्की लीला रसस्वरूप है, अमृतस्वरूप है एवं इस रसमय लीलाके प्राणी आनन्दमय हो जाता है।

ब्रह्म चिन्मय, अद्वितीय, निष्कल एवं अशरीर हैं। उपासकों (भक्तों)-की कार्यसिद्धिहेतु तथा अपनी लीला लिये इस धराधामपर अवतार ग्रहण करना पड़ता है। भक्तोंके विशुद्ध भावोंमें अवश्य ही आना होता है। 'आ

ब्रह्मेति व्यजानात्' और वही ब्रह्मानन्द-लीलारस-ब्रह्म साँवरा-सलोना अवधराजकिशोर होकर अवधमें आया, व्रजमें आया एवं अनन्त अद्भुत लीलाओंका प्रदर्शन किया, जिसके दर्शनार्थ मुक्त-सिद्ध-मुनि भी यहाँ आते हैं, एवं उसकी लीलाके मृग्य बनकर विचरते रहते हैं—

मुक्ताश्चापि लीलाविग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ति।

(नृसिंहताप० उप० शां० भाष्य)

यह बड़ी अद्भुत लीला है भक्तिकी। भगवान् परम स्वतन्त्र हैं, वे माया आदिसे मुक्त हैं, परंतु वे सर्व-सार-स्वरूप अपनी आह्लादिनी शक्तिको भक्तके हृदय-देशमें स्थित करके अपनी लीलाओंका विस्तार करते हैं—

भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावनः।
लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु॥

(श्रीमद्भा० १। २। ३४)

इस प्रकार विश्वात्मा भगवान् मानव एवं निम्न प्राणियोंसे पूरित समस्त लोकोंका पालन करते हैं तथा लीलापूर्वक राम-कृष्ण आदि अनेक अवतारोंका नाट्य स्वीकार करते हैं, ताकि जीवको विशुद्ध सत्त्व-तत्त्वकी प्राप्ति हो जाय।

यो लीलालास्यसंलग्नो गतोऽलोलोऽपि लोलताम्।
तं लीलावपुषं बालं वन्दे लीलार्थसिद्धये॥

जो ब्रह्म स्वकार्य-सिद्धि-हेतु लीलापूर्वक लीला-लास्यमें संलग्न हैं, निमग्न हैं, उस लीलावपुधारी बालकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ। भगवान्की लीला-कथामें तन्मय रहना ही जीवका परम सौभाग्य है।

चिन्तन-शब्द-विमर्श—चिन्तन '**चिति स्मृत्याम्**' धातुसे 'ल्युट्' प्रत्यय होनेपर निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है स्मरण करना, स्मृति रखना। भगवान्की अति मधुर लीलाओंका चिन्तन करते रहना ही जीवका परम धर्म है। भगवल्लीलाओंका सुमधुर चिन्तन करते-करते भगवन्मय बन जाओगे, अमृताधिक्य बन जाओगे एवं प्रभुकी अनन्त लीलाओंका चिन्तन आपको लीलामय परमात्मा भगवान्से अवश्य ही मिला देगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

व्रजांगनाएँ भगवान् श्रीकृष्णके मथुरागमनके बाद व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरकी उन अनन्त लीलाओंके चिन्तन-मनन एवं ध्यानमें सदैव तल्लीन रहती हैं। '**तत्सुखसुखित्वम्**' की कामना लिये गोपियाँ श्रीकृष्णरसकी सरितामें अवगाहन करती हुई निमग्न रहती हैं—

रसो वै सः। रसः ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।

देवर्षि नारदके शब्दोंमें भगवान्को प्राप्त करनेके लिये व्रजवनिताओंने तीव्र काम अर्थात् प्रेमसे, कंसने भयसे, शिशुपालादि राजाओंने द्वेषसे, यदुवंशियोंने पारिवारिक-सम्बन्धसे, तुम लोगों (पाण्डवों)-ने स्नेहसे एवं हम लोगोंने भक्तिसे अपने मनको भगवान्में लगाया है—

गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद् यूयं भक्त्या वयं विभो॥

(श्रीमद्भा० ७। १। ३०)

वैरकी ग्रन्थि बाँधकर कंस उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते एवं चलते-फिरते, सदा ही श्रीकृष्णके चिन्तनमें लगा रहता था—

आसीनः संविशंस्तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन् महीम्।
चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत् तन्मयं जगत्॥

(श्रीमद्भा० १०। २। २४)

हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन कंसकी प्रत्येक क्रिया-अक्रियामें होने लगा था—हर काल, हर समय उसे श्रीकृष्ण ही दीखते थे। इस अनन्य चिन्तनके कारण ही उसे भगवत्सारूप्यकी उपलब्धि हुई।

भगवान्का चिन्तन किसी भी भावसे करो, कुभावसे करो, अन्तमें उनकी कृपा अवश्य होती है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

(रा० च० मा० १। २८। १)

निष्कर्ष—भगवान्की लीलाएँ अनन्त एवं अद्भुत हैं, वेद-शास्त्र भी जिनका वर्णन करनेमें असमर्थता प्रकट करते हैं एवं नेति-नेति शब्दके द्वारा यही कहते रहते हैं कि भगवान्की लीलाओंकी 'इति' नहीं है। संसारके निर्माणसे आजतक जितनी भी वर्षाकी बूँदें गिरी हैं, जितने भी बालूके कण हैं एवं आकाशमें जितने भी तारे हैं उन सबकी गणना सम्भव है, परंतु परमात्माकी लीलाओंकी गणना सम्भव ही नहीं है। परब्रह्म परमात्मा लोकमें लीला-हेतु निर्गुण-निराकारसे नराकार बन जाता है—

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।

उस प्यारे प्रभुकी लीला-माधुरीका अनुपम चिन्तन ही कल्याणकारी है। भगवल्लीला-चिन्तन करते-करते भगवन्मय बन जाओ एवं लीला-चिन्तनके साथ-ही-साथ अपनी जीवन-लीलाको भी भगवल्लीला-चिन्तनमें विलीन कर दो।

* * *

पञ्चदेवोंके लीला-आख्यान

[इस सृष्टिके कर्ता-धर्ता-हर्ता एकमात्र ईश्वर ही हैं। ये ही परमदेव हैं। शास्त्रोंके अनुसार एक, अनन्त, अख अद्वय, निर्गुण-निराकार, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप सच्चिदानन्द ही परमतत्त्व हैं। इनका न कोई नाम है, न रूप क्रिया है, न सम्बन्ध और न कोई गुण है, न कोई जाति ही है। तथापि इनमें गुण-सम्बन्धका आरोपण करके इन्हें विष्णु, कहीं शिव, कहीं देवी, कहीं गणेश और कहीं सूर्यनारायण कहा गया है—ये पाँचों भगवान्के ही स्व हैं। प्रत्येक सगुण-साकार ब्रह्मके एक-एक रूप हैं। इन एक-एक देवोंकी विभिन्न अवतार-लीलाएँ होती हैं तथा अ रुचिके अनुसार व्यक्ति किसी एकको अपना इष्ट मानकर उसकी उपासना तथा उसकी लीलाओंका चिन्तन करता यहाँ हम पञ्चदेवोंके विभिन्न अवतार-लीलाओंका आख्यान प्रस्तुत करते हैं।—सम्पादक]

लीलावपु भगवान् श्रीगणेशका लीला-वैचित्र्य

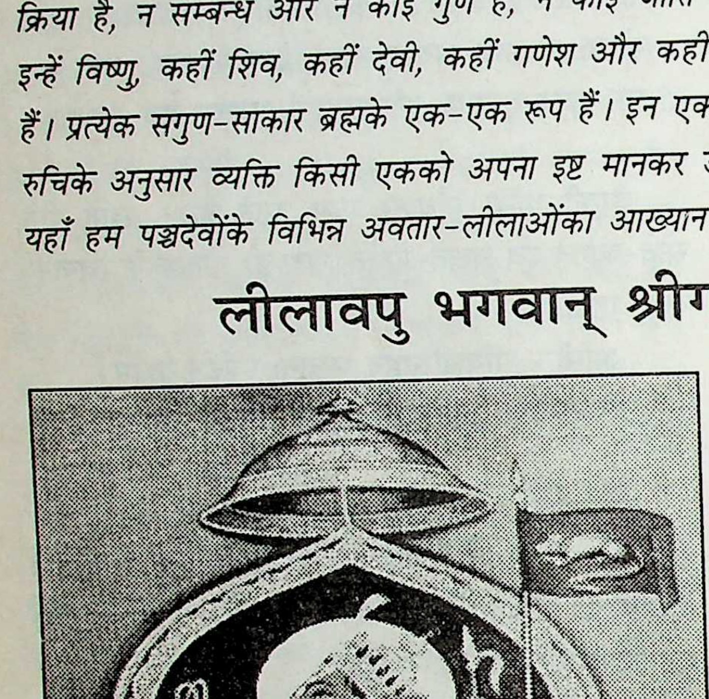

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणपतिखण्ड १३। ३२)

भगवान्के लीला-अवतारोंके चरित विभिन्न पुराणों-शास्त्रोंमें विभिन्न रूपोंमें उपलब्ध होते हैं। भगवान् लीला-विहारी सर्वसमर्थ हैं एवं कल्पभेदसे उनके अनन्त अवतार हुए हैं; अतएव उनके चरित भी अनन्त हैं। '*हरि अनंत हरिकथा अनंता*'से संतशिरोमणि श्रीतुलसीदासजीने इसी भावको स्पष्ट किया है। वस्तुतः भगवान्के सभी चरित यथार्थ हैं एवं भक्तोंके प्राण हैं। प्रस्तुत प्रसंगका अध्ययन करते समय इस तथ्यको निरन्तर स्मृतिमें रखना चाहिये; तभी भग श्रीगणेशकी लीलाओंके आस्वादनका वास्तविक आ एवं फल प्राप्त हो सकेगा।

सिद्धि-सदन श्रीगणेश सर्वात्मा शिव और धर्ममध्यनिवा पार्वतीके प्राणप्रिय पुत्र तथा परम तेजस्वी, परम परा षडाननके अग्रज हैं। कहीं-कहीं ये स्वयं उनके अनुज जाते हैं। ये खर्व (छोटे कदवाले), अरुणवर्ण, एकद गजमुख, शूर्पकर्ण, लम्बोदर, अरुण-वस्त्र, त्रिपुण्ड्रति मूषकवाहन, पार्वती-पुत्र, विद्या-वारिधि एवं मङ्गलमूर्ति भगवान् गणपति बुद्धिके अधिष्ठाता हैं और साक्षात् प्रण हैं। भौतिक सिद्धि प्राप्त करनेवालोंको चाहिये कि गणेशजीकी उपासना करें, क्योंकि पार्वतीनन्दन अत्यल्प ही मुदित और द्रवित हो जाते हैं। इन मङ्गलवपुके स्मरण, ध्यान, जप, आराधना एवं प्रार्थनासे मेधाशक्ति होती है, समस्त कामनाओंकी पूर्ति और विघ्नोंका निवार जाता है। त्रयतापका शमन हो जाता है एवं धर्म, अर्थ, तथा मोक्ष हस्तामलकवत् हो जाते हैं। मोदक-प्रिय गजमु प्रसन्नतासे निरन्तर आनन्द-मङ्गलकी वृद्धि होती ही रहत

वेदविहित समस्त कर्मोंमें प्रथमपूज्य अम्बिका गणेश नित्यदेवता हैं, किंतु भिन्न-भिन्न कालों एवं अव जगत्के मङ्गलके लिये इनका मङ्गलमय लीला-प्र होता है। इनकी लीला और इनके कर्म अद्भुत अलौकिक होते हैं। करुणामूर्ति गणेश सदा ही अ अनीति, अनाचार एवं पाप-तापका शमन करते हुए

परित्राण एवं सद्धर्मकी स्थापनाकर उसका संवर्धन करते हैं।

बुद्धि-विधाता गणपतिका प्राकट्य, उनका मङ्गलमय विग्रह एवं उनकी लीलाएँ सभी अद्भुत एवं अलौकिक हैं—आनन्दमयी एवं मङ्गलप्रदायिनी हैं। भक्तप्राणधन वृषभध्वजके पुत्र गजमुखकी विभिन्न काल-क्रमोंकी विभिन्न लीला-कथाएँ अनुपम, आदर्श एवं मनोहर हैं। उन कथाओंमें शंका उचित नहीं—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥

(रा०च०मा० १। १००)

भगवान् गणेशका प्राकट्य एवं उनकी लीलाएँ

(१)

हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीका पाणिग्रहण करनेके बाद भगवान् शंकर रमणीय उद्यानों और एकान्त वनोंमें उनके साथ विहार करने लगे। परमानन्द-प्रदायिनी भवानीके प्रति शुद्धात्मा शिवके हृदयमें अत्यधिक अनुराग था। एक बारकी बात है—शंकरेच्छानुवर्तिनी पार्वतीने सुगन्धित तैल और चूर्णसे अपने शरीरमें उबटन लगवाया और उससे जो मैल गिरा, उसे हाथमें उठाकर उन्होंने एक पुरुषकी आकृति बनायी, जिसका मुँह हाथीके समान था। क्रीडा करते हुए उन्होंने उस गजमुख पुरुषाकृतिको पुण्यसलिला गङ्गाजीके जलमें डाल दिया। त्रैलोक्यतारिणी गङ्गाजी त्रैलोक्यसुन्दरी पार्वतीको अपनी सहेली मानती थीं। उनके पुण्यमय जलमें पड़ते ही वह पुरुषाकृति विशालकाय हो गयी। प्रथम तो शंकरार्धशरीरिणी माता पार्वतीने उसे 'पुत्र' कहकर पुकारा, फिर सुरसरिने भी उसे 'पुत्र' कहकर सम्बोधित किया तथा देव-समुदायने 'गाङ्गेय' कहकर सम्मान प्रदान किया। इस प्रकार गजवदन देवताओंके द्वारा पूजित हुए। कमलोद्भव ब्रह्माजीने उन्हें गणोंका आधिपत्य प्रदान किया।

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड)

(२)

एक बारकी बात है। देवताओंने परस्पर विचार किया कि 'प्रायः सभी असुर सृष्टिस्थित्यन्तकारी वृषभध्वज एवं चतुर्मुखकी आराधना करके उनसे इच्छित वर प्राप्त कर लेते हैं। इस कारण युद्धमें हम उनसे सदा पराजित होते रहते हैं और हमें अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। अतः हम लोग दैत्योंके कार्यमें विघ्न उपस्थित करने, उनपर विजय प्राप्त करने तथा सर्वसिद्धि-प्राप्तिके लिये आशुतोष शिवसे प्रार्थना करें।'

सुर समुदाय पार्वतीवल्लभ शिवके समीप पहुँचकर उनकी स्तुति करने लगा। वृषभध्वज प्रसन्न हुए और उन्होंने देवताओंसे कहा—'अभीष्ट वर माँगो।'

'करुणामूर्ति प्रभो!' देवताओंकी ओरसे बृहस्पतिने निवेदन किया—'देव-शत्रु दानवोंकी उपासनासे संतुष्ट होकर आप उन्हें वर-प्रदान कर देते हैं और वे समर्थ होकर हमें अत्यन्त कष्ट पहुँचाते हैं। उन सुरद्रोही दनुजोंके कर्ममें विघ्न उपस्थित हुआ करे, हमारी यही कामना है।'

'तथास्तु।' परम संतुष्ट वरद आशुतोषने सुर-समुदायको आश्वस्त किया।

कुछ ही समय बाद सर्वलोकमहेश्वर शिवकी सती पत्नी पार्वतीके सम्मुख परब्रह्मस्वरूप स्कन्दाग्रजका प्राकट्य हुआ। उक्त परम तेजस्वी बालकका मुख हाथीका था। उसके एक हाथमें त्रिशूल तथा दूसरे हाथमें पाश था।

सर्वविघ्नेश मोदक-प्रियके धरतीपर अवतरित होते ही देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक सुमन-वृष्टि करते हुए गजाननके चरणोंमें बार-बार प्रणाम किया। गजमुख अपने कृपाविग्रह माता-पिताके सम्मुख आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगे।

त्रैलोक्यतारिणी दयामयी हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीने अपने समस्त मङ्गलालय पुत्रको अत्यन्त सुन्दर एवं विचित्र वस्त्राभरण पहनाये। देवाधिदेव महादेवने प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणप्रिय पुत्रका जातकर्मादि संस्कार करवाया। तदनन्तर उन्होंने अपने पुत्रको प्रेमपूर्वक गोदमें उठाकर वक्षसे सटा लिया। फिर सर्वदुरितापहारी कल्याणमूर्ति शिवने अपने पुत्रसे कहा—

'मेरे पुत्र गणेश! यह तुम्हारा अवतार दैत्योंका नाश करने तथा देवता, ब्राह्मण एवं ब्रह्मवादियोंका उपकार करनेके लिये हुआ है। देखो, यदि पृथ्वीपर कोई दक्षिणाहीन यज्ञ करे तो तुम स्वर्गके मार्गमें स्थित हो उसके धर्मकार्यमें विघ्न उत्पन्न करो; अर्थात् ऐसे यज्ञकर्ताको स्वर्ग मत जाने दो। जो इस जगत्में अनुचित ढंगसे—अन्यायपूर्वक अध्ययन, अध्यापन, व्याख्यान और दूसरा कार्य करता हो, उसके प्राणोंका तुम सदा ही हरण करते रहो। नरपुंगव प्रभो! वर्णधर्मसे च्युत स्त्री-पुरुषों तथा स्वधर्मरहित व्यक्तियोंके भी प्राणोंका तुम अपहरण करो। विनायक! जो स्त्री-पुरुष ठीक समयपर सदा तुम्हारी पूजा करते हों, उनको तुम अपनी

समता प्रदान करो। हे बाल गणेश्वर! तुम पूजित होकर अपने युवा एवं बूढ़े भक्तोंकी भी सब प्रकारसे इस लोकमें तथा परलोकमें भी रक्षा करना। तुम विघ्नगणोंके स्वामी होनेके कारण तीनों लोकोंमें पूज्य एवं वन्दनीय होओगे, इसमें संदेह नहीं। जो लोग मेरी, भगवान् विष्णुकी अथवा ब्रह्माजीकी भी यज्ञोंद्वारा अथवा ब्राह्मणोंके माध्यमसे पूजा करते हैं, उन सबके द्वारा तुम पहले पूजित होओगे। जो तुम्हारी पूजा किये बिना श्रौत, स्मार्त या लौकिक कल्याणकारक कर्मोंका अनुष्ठान करेगा, उसका मङ्गल भी अमङ्गलमें परिणत हो जायगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंद्वारा भी तुम सभी कार्योंकी सिद्धिके लिये भक्ष्य-भोज्य आदि शुभ पदार्थोंसे पूजित होओगे। तीनों लोकोंमें चन्दन, पुष्प, धूप-दीप आदिके द्वारा जो तुम्हारी पूजा किये बिना ही कुछ पानेकी चेष्टा करेंगे, वे देवता हों अथवा और कोई, उनका अभीष्ट सिद्ध नहीं होगा। जो लोग तुझ विनायककी पूजा करेंगे, वे निश्चय ही इन्द्रादि देवताओंद्वारा भी पूजित होंगे, परंतु यदि वे फलकी कामनासे ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र अथवा अन्य देवताओंकी तो पूजा करें, किंतु तुम्हारी पूजा न करें, तब तुम उन्हें विघ्नोंद्वारा बाधा पहुँचाना।'

सर्वात्मा प्रभु शिवका आशीर्वाद प्राप्तकर भगवान् गणपतिने विघ्नगणोंको उत्पन्न किया और उन गणोंके साथ उन्होंने भगवान् शंकरके मङ्गलमय चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धा और प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया; फिर वे त्रैलोक्यपति पशुपतिके सम्मुख खड़े हो गये। तबसे लोकमें श्रीगणपतिकी अग्रपूजा होती है। इसके बाद श्रीगणेशजीने दैत्योंके सुरद्रोही कर्मोंमें विघ्न पहुँचाना आरम्भ कर दिया।

(लिङ्गपुराण)

(३)

ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार शिव-प्राणवल्लभा पार्वतीके मङ्गलमय अङ्कमें श्रीकृष्णरूपी परमतत्त्व ही व्यक्त हुआ था, वह पाप-संतापहारिणी एवं निखिलानन्दवर्द्धिनी कथा भगवान् श्रीनारायणने देवर्षि नारदको इस प्रकार सुनायी थी—वैराग्यज्ञाननिरता शैलपुत्री पार्वतीके साथ सर्वसाक्षी वृषभध्वजके मङ्गल-परिणयके अनन्तर चराचरात्मा शिव उन्हें साथ लेकर निर्जन वनमें चले गये। वहाँ दीर्घकालतक देवाधिदेव महादेवका विहार चलता रहा। एक दिन धर्मज्ञा पार्वतीने भगवान् शंकरसे निवेदन किया—'प्रभो! मैं एक श्रेष्ठ पुत्र चाहती हूँ।'

'प्रिये! मैं तुम्हें सम्पूर्ण व्रतोंमें एक श्रेष्ठ व्रत बताता हूँ, सम्पूर्ण अभीष्ट-सिद्धिका बीजरूप, परम मङ्गलदायक तथा प्रदान करनेवाला है।' सर्वभूतपति भगवान् त्रिपुरा त्रैलोक्यसुन्दरी पार्वतीसे मुदित मनसे कहा—'उस परम शुभ व्रतका नाम 'पुण्यक' है। तुम श्रीहरिका स्मरणकर यह प्रारम्भ करो। इसके अनुष्ठानकी पूर्ति एक वर्षमें होती है।'

'इस व्रतके फलस्वरूप श्रीहरिके चरणोंमें सुदृढ़ भक्ति जाती है और भुवन-विख्यात पुत्र, सौन्दर्य, पति-सौभाग्य ऐश्वर्य एवं अपरमिति धनकी प्राप्ति होती है। यह महान् प्रत्येक जन्ममें वाञ्छित सिद्धियोंका बीज है।'

पाप-संतापहारिणी भगवती पार्वती अपने सर्वलोकमहेश्वर पतिके अमृतमय वचनोंसे आनन्द-विभोर हो गयीं तपके विधाता भगवान् चन्द्रमौलि पार्वतीको सदुपदेश दे चले गये।

हिमगिरिनन्दिनी उमाने अपने पतिकी आज्ञासे प्रसन्नतापूर्वक महान् 'पुण्यक-व्रत' के अनुष्ठानका सुदृढ़ निश्चय करके पु और फल आदि व्रतोपयोगी सामग्रियोंको एकत्र करने लिये ब्राह्मणों तथा भृत्योंको प्रेरित किया। सभी वस्तुओं एकत्र हो जानेपर वेद-विद्या-प्रकाशिनी भगवती पार्व शुभ मुहूर्तमें व्रतारम्भ किया और वे 'पुण्यक-व्रत' पालनीय प्रत्येक नियमोंका वर्षपर्यन्त श्रद्धा एवं विश्वास साथ सोल्लास पालन करती रहीं।

अस्वाभाविक दक्षिणा

'सुव्रते! मुझे दक्षिणा चाहिये।' व्रत-समाप्तिपर पुरोहि देवी पार्वतीसे कहा।

'मैं मुँहमाँगी दक्षिणा दूँगी।' परम तपस्विनी अम्बि पुरोहितसे कहा—'आप कौन-सा दुर्लभ पदार्थ चाहते हैं'

'देवि! इस व्रतमें दक्षिणास्वरूप मुझे अपने पतिको दो।' पुरोहितने अस्वाभाविक दक्षिणाकी याचना की।

सर्वथा अकल्पित, अनभ्र वज्रपात-जैसी निष्ठुर व सुनकर देवी उमा व्याकुल होकर विलाप करती हुई मूर्च्छित हो गयीं।

निखिल-सृष्टि-नियामिका मोहनाशिनी भगवती परा मूर्च्छित देखकर लोकपितामह ब्रह्मा, विष्णु एवं मुनि हँसी आ गयी। तब उन्होंने पार्वतीको समझानेके उमापति महादेवको भेजा।

'धर्मिष्ठे! उठो; निश्चय ही तुम्हारा मङ्गल हो

पार्वतीको होशमें लानेके लिये उन्हें समझाते हुए आशुतोषने अनेक धर्ममय वचन कहे। उनकी चेतना लौट आनेपर देवदेव महादेवने कहा—'देवकार्य, पितृकार्य अथवा नित्य-नैमित्तिक जो भी कर्म दक्षिणासे रहित होता है, वह सब निष्फल हो जाता है; और उस कर्मसे दाता निश्चय ही कालसूत्र नामक नरकमें गिरता है। उसके बाद वह दीन होकर शत्रुओंसे पीडित होता है। ब्राह्मणको संकल्प की हुई दक्षिणा उसी समय न देनेसे वह बढ़कर कई-गुनी हो जाती है।'

क्षीरोदधिशायी विष्णु और कमलासनने भी पार्वतीसे धर्म-रक्षाके लिये अनुरोध किया। स्वयं धर्मने कहा—'साध्वि! पुरोहितकी अभीष्ट दक्षिणा देकर मेरी रक्षा करो। महासाध्वि! मेरे सुरक्षित रहनेपर प्रत्येक रीतिसे मङ्गल होगा।' देवताओंने भी यही बात कही। मुनियोंने भी हवन पूरा करके दक्षिणा देनेकी प्रेरणा देते हुए कहा—'धर्मज्ञे! हम लोगोंके यहाँ रहते तुम्हारा अकल्याण सम्भव नहीं।'

'शिवे! या तो तुम मुझे दक्षिणामें अपने सर्वेश्वर पतिको प्रदान करो या अपने दीर्घकालीन कठोर तपका फल भी त्याग दो।' ब्रह्माके तेजस्वी पुत्र सनत्कुमारने देवी पार्वतीसे सुस्पष्ट कहा—'साध्वि! इस प्रकार इस महान् कर्मकी दक्षिणा न मिलनेपर मैं इस दुर्लभ कठोर व्रतका फल ही नहीं, यजमानके (तुम्हारे) समस्त कर्मोंका फल भी प्राप्त कर लूँगा।'

'देवाधिपो! पतिसे वञ्चित हो जानेवाले कर्मसे क्या लाभ?' अत्यन्त उद्विग्न सत्यस्वरूपा परम सती पार्वतीने देवताओंसे कहा—'दक्षिणा देनेसे तथा धर्म और पुत्रकी प्राप्तिसे मेरा क्या हित होगा? पृथ्वीदेवीकी उपेक्षाकर वृक्षकी पूजासे क्या प्राप्त हो सकेगा? यदि बहुमूल्य प्राण ही विसर्जित हो जायँ तो शरीरकी रक्षा कैसे होगी?'

अत्यधिक दुःखसे शिवप्रियाने आगे कहा—'देवेश्वरो! साध्वी स्त्रियोंके लिये पति सौ पुत्रोंके समान होता है। ऐसी स्थितिमें यदि व्रतमें अपने पतिकी ही दक्षिणा दे दी जाय तो पुत्रसे क्या लाभ होगा? पुत्र पतिका ही वंश होता है, किंतु उसका एकमात्र मूल तो पति ही होता है। मूलधनके नष्ट होनेपर तो समस्त व्यापार ही विनष्ट हो जायगा।'

उसी समय अन्तरिक्षमें देवताओं और ऋषियोंने एक बहुमूल्य रत्ननिर्मित रथ देखा, जो घननील पार्षदोंसे घिरा था। वे सभी पार्षद वनमालाधारी और रत्नाभरणोंसे विभूषित थे। उस रथसे चतुर्भुज वैकुण्ठवासी श्रीनारायण उतरकर देवताओंके सम्मुख उपस्थित हुए। उन परम तेजस्वी, भक्त-प्राणधन, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीनारायणको ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने एक श्रेष्ठ रत्नसिंहासनपर बैठाकर उनके पाप-तापहारी अभयद चरण-कमलोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और हाथ जोड़कर गद्गद कण्ठसे उनकी स्तुति की।

वहाँका सारा वृत्तान्त जानकर भक्त-भयहारी श्रीनारायणने अपने स्वरूप-तत्त्वकी विस्तृत व्याख्या करते हुए देवगणों और मुनियोंसे कहा—'शिवप्रिया पार्वतीका यह व्रत लोकशिक्षाके लिये है, अपने लिये कदापि नहीं; क्योंकि ये तो स्वयं समस्त व्रतों एवं तपस्याओंका फल प्रदान करनेवाली हैं, इनकी मायासे ही चराचर जगत् मोहित है।'

फिर परम प्रभु श्रीनारायणने त्रैलोक्यवन्दिता उमासे कहा—'शिवे! इस समय तुम अपने पति महादेवको दक्षिणामें देकर अपना व्रत पूर्ण कर लो, पुनः समुचित मूल्य देकर अपने जीवनधनको वापस ले लेना। गौओंकी भाँति शिव भी विष्णुके शरीर हैं; अतः तुम ब्राह्मणको गोमूल्य प्रदानकर अपने पतिको लौटा लेना।'

इतना कहकर महामहिम त्रैलोक्यपावन श्रीनारायण वहीं अन्तर्धान हो गये। सृष्टिनायक श्रीनारायणके मुखारविन्दसे ये मङ्गलमय वचन सुनकर समस्त सुर-मुनि-समुदाय हर्षोत्फुल्ल हो गया। कलिकल्मषहन्त्री शिवा भी प्रसन्नमनसे अपने प्राण-सर्वस्वको दक्षिणामें देनेके लिये उद्यत हो गयीं।

भगवती पार्वतीने हवनकी पूर्णाहुति की और अपने जीवननाथ शिवको दक्षिणा-रूपमें दे दिया।

'स्वस्ति!' कहते हुए सनत्कुमारने दक्षिणा ग्रहण कर ली। उस समय भयवश परम कोमलाङ्गी पार्वतीके कण्ठोष्ठ-तालु सूख गये।

'विप्रवर! गौका मूल्य मेरे पतिके बराबर है।' अम्बिकाने दुःखी हृदयसे अत्यन्त मधुर एवं विनीत वाणीमें ब्राह्मणसे निवेदन किया—'मैं आपको अत्यन्त सुन्दर एक लाख गायें प्रदान करूँगी; इसके बदले आप मेरे जीवन-सर्वस्वको लौटा दें। अभी तो मैं आत्मासे रहित कोई भी कर्म करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ; प्राणनाथके मिल जानेपर मैं पुनः ब्राह्मणोंको विपुल दक्षिणाएँ प्रदान करूँगी।'

'देवि! मैं ब्राह्मण हूँ।' सनत्कुमारने सतीशिरोमणि पार्वतीसे कहा—'मैं एक लाख गौएँ लेकर क्या करूँगा? अरे! इस दुर्लभ रत्नके सम्मुख इन गौओंकी क्या तुलना? मैं परमधन इन दिगम्बरको अपने साथ लेकर त्रिलोकीमें भ्रमण करूँगा। उस समय समस्त बालक इन्हें देखकर प्रसन्नतापूर्वक ताली बजा-बजाकर अट्टहास करेंगे।'

इतना कहकर सनत्कुमारने उमानाथको अपने समीप बैठा लिया।

पार्वतीकी व्याकुलता और विश्वविमोहन श्रीकृष्णके दर्शन

'आह!' सुकोमलहृदया गिरिजा जलहीन मीनकी भाँति छटपटाने लगीं। मन-ही-मन वे सोचने लगीं—'कैसा दुर्भाग्य है कि मुझे न तो अभीष्ट देवका दर्शन प्राप्त हुआ और न व्रतका फल ही प्राप्त हो सका।' अधीर होकर परम सती हिमगिरितनया शरीर-त्यागके लिये प्रस्तुत हो गयीं।

उसी समय पार्वतीसहित देवता और ऋषियोंने शून्यमें कोटि-कोटि सूर्योंके प्रकाशसे भी परमोत्कृष्ट तेजसमूह देखा। उस प्रभा-पुंजसे समस्त दिशाएँ एवं विस्तृत कैलास देदीप्यमान हो गया था। उसकी मण्डलाकृति असीम एवं अनन्त थी। प्रभुके उस महान् तेज:पुंजको देखकर जगन्माता पार्वतीने भगवान् शिवकी प्रेरणासे व्रतके उन आराध्यदेवका गुणगान करते हुए कहा—'परमात्मन्! मैं पुत्र-दु:खसे दु:खी होकर आपकी स्तुति कर रही हूँ और इस समय आपके सदृश पुत्र प्राप्त करना चाहती हूँ; परंतु अङ्गोंसहित वेदके विधानानुसार इस व्रतमें अपने पतिकी दक्षिणा दी जाती है, यह अत्यन्त दारुण कार्य है। दयामय! यह सब समझकर आप मुझपर दया कीजिये।'

भगवती पार्वती श्रीकृष्णके ध्यानमें तल्लीन थीं, उस समय उस असीम एवं महान् तेजोराशिके मध्य उन्होंने अद्भुत रूप-लावण्य-सम्पन्न विश्वविमोहन श्रीकृष्ण-स्वरूपका दर्शन किया। वह हीरकजटित बहुमूल्य रत्ननिर्मित आसनपर आसीन एवं मणियोंकी मालासे सुशोभित था। नवनीरद-वपुपर अद्भुत पीताम्बरकी अवर्णनीय शोभा थी। रत्नाभरणोंसे अलंकृत उस अनुपम विग्रहके कर-कमलोंमें पीयूषवर्षिणी मुरली विद्यमान थी। उनके ललाटपर चन्दनकी खौर और मस्तकपर मनको मोहित करनेवाला सुन्दर मयूरपिच्छ श
उस अनुपम सौन्दर्यकी तुलना कहीं सम्भव नहीं थी।

ऐसे भुवनमोहन अनूप रूपको देखकर भगवती पार्व
उसीके सदृश पुत्रकी कामना करने लगीं और उसी क्ष
उन्हें वह वर प्राप्त भी हो गया। इतना ही नहीं, उस सम
शिवाने जो-जो कामनाएँ कीं, वे सब पूरी हुईं। देवताओं
भी अभीष्टकी पूर्ति हुई। तदनन्तर वह तेज वहीं तिरोहि
हो गया।

तब सुर-समुदायने ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारको समझा
और उन्होंने दिगम्बर शिवको उनकी प्राणेश्वरी शिवा
लौटा दिया।

फिर तो भगवती पार्वतीकी प्रसन्नताकी सीमा न र
जगज्जननीने ब्राह्मणोंको बहुमूल्य रत्न प्रदान किये। वन्दि
एवं भिक्षुओंको स्वर्ण-राशि देकर ब्राह्मणों एवं देवताओं
परम सुस्वादु व्यञ्जनोंका भोजन कराया।

महिमामयी भवानीने अलौकिक उपहारोंसे अत्यन्त प्रीतिपू
अपने प्राणनाथ देवदेव महादेवकी पूजा की। देववाद्य ब
लगे। अनेक माङ्गलिक कार्योंके साथ-साथ श्रीहरिसे सम्बन्धि
गाये गये माङ्गलिक गीतोंसे वह शुभ स्थान ध्वनित हो उ
सर्वत्र आनन्द और उल्लासका साम्राज्य व्याप्त हो गया।

इस प्रकार सनातनी उमाका पवित्रतम 'पुण्यक-व्र
सम्पन्न हुआ। पराम्बाने विपुल रत्नराशिका दान क
सबको भोजन कराया। तदनन्तर उन्होंने अपने जीवन
धर्माध्यक्ष शिवके साथ स्वयं भी भोजन किया; फिर स
कर्पूरादिसे सुवासित ताम्बूल देकर उन्होंने भगवान् शि
साथ स्वयं भी उसे ग्रहण किया। इसके अनन्तर जगद
प्रसन्नतापूर्वक अपने पतिके साथ एकान्तमें चली गयीं।

परब्रह्मका प्राकट्य

'महादेव! मैं क्षुधा और तृषाधिक्यसे व्याकुल अ
दीन और दुर्बल ब्राह्मण भोजनकी इच्छासे बड़ी
चलकर आपकी शरणमें आया हूँ।' एक दीन-हीन ब्र
सर्वसम्पत्समन्विता पार्वतीके द्वारपर आया और क्षुधा-निवा
भोजनकी याचना करते हुए कहा—'शिव! आप क्या क
हैं? जगन्माता पार्वती शीघ्र आओ। माताके रहते पु
कैसे रह सकता है?'

भगवान् शंकर और पार्वती द्वारपर आये। अत्यधिक दुर्बल ब्राह्मण किसी प्रकार उनके चरणोंमें प्रणामकर स्तुति करने लगा। उसके मधुरातिमधुर वचन सुनकर शिव-पार्वती दोनों प्रसन्न हो गये।

'विप्रवर! आप कहाँसे पधारे हैं?' भगवान् शंकरने अशक्त वृद्ध ब्राह्मणसे पूछा—'कृपया बताइये आपका शुभ नाम क्या है?'

'वेदज्ञ ब्राह्मण! आपका आगमन कहाँसे हुआ है?'

धर्ममयी पार्वतीने भी बड़े प्रेमसे कहा—'मेरा परम सौभाग्य है, जो आपने अतिथिके रूपमें मेरे द्वारपर पधारनेका कष्ट किया। अभीष्ट अतिथिकी सेवाकी अमित महिमा है।'

'माता! आप वेदोक्त-विधिसे मेरी पूजा कीजिये।' वृद्ध ब्राह्मणने काँपते हुए कहा—'उपवासव्रती, रोगग्रस्त एवं क्षुधार्त व्यक्ति स्वेच्छानुसार भोजन करना चाहता है। मैं तृषा-क्षुधासे आकुल हूँ।'

'द्विजसत्तम! आप क्या भोजन करना चाहते हैं?'

साक्षात् अन्नपूर्णाने कहा—'आपका त्रैलोक्यदुर्लभ अभीष्ट पदार्थ मैं आपकी सेवामें उपस्थित कर दूँगी। आप मुझे आज्ञा देकर कृतार्थ कीजिये।'

'माता! मैं आप पुत्रहीनाका अनाथ पुत्र हूँ।' ब्राह्मणने रुक-रुककर धीरे-धीरे कहा—'मैंने सुना है, आपने महान् 'पुण्यक-व्रत' सम्पन्न किया है। उसके लिये दुर्लभ सामग्रियाँ एकत्र हुई होंगी। उन अद्भुत पक्वान्नों एवं मिष्टान्नोंसे आप मेरी पूजा कीजिये। इसके अनन्तर सुवासित निर्मल तथा स्वादिष्ठ जल और सुवासित श्रेष्ठ ताम्बूल प्रदान कीजिये। ये दुर्लभ पदार्थ इतना खिलाइये, जिससे मेरी तोंद सुन्दर हो जाय, मैं लम्बोदर हो जाऊँ।'

'आपके आशुतोष पति सृष्टिकर्ता एवं सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको प्रदान करनेवाले हैं और आप सम्पूर्ण सत्कीर्तियोंको प्रदान करनेवाली महालक्ष्मीस्वरूपा हैं। अतः आप मुझे रमणीय रत्नसिंहासन, बहुमूल्य रत्नाभरण, अग्निशुद्ध सुन्दर वस्त्र, अत्यन्त दुर्लभ श्रीहरिका मन्त्र, श्रीहरिमें सुदृढ़ भक्ति, मृत्युञ्जय नामक न, सुखदायिनी दानशक्ति और सर्वसिद्धि दीजिये।'

'सती माता! पुत्रके लिये आपको क्या अदेय है?' वृद्ध ब्राह्मण धीरे-धीरे कहते जा रहे थे—'मैं तप एवं उत्तम धर्मका पालन करते हुए समस्त कर्मोंका पालन करूँगा; किंतु जन्म-जरा-व्याधि और मृत्युके हेतुभूत कर्मोंका स्पर्श भी नहीं करूँगा।'

इस प्रकार संसारकी असारता एवं भगवद्भक्तिका माहात्म्य-गान करते हुए ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, तेजस्वी कृशकाय ब्राह्मणने अन्तमें कहा—'समस्त कर्मोंका फल प्रदान करनेवाली माता! आप नित्यस्वरूपा सनातनी देवी होकर भी लोकशिक्षाके लिये पूजा और तपश्चरण करती हैं। प्रत्येक कल्पमें गोलोकवासी श्रीकृष्ण गणेशके रूपमें आपके अङ्कमें प्रकट होकर क्रीडा करते हैं।'

इतना कहते-कहते अशक्त वृद्ध ब्राह्मण वहीं अन्तर्धान हो गये। वे परमेश्वर इस प्रकार अन्तर्हित होकर परम साध्वी, परम मङ्गलमयी एवं परम धन्या माता पार्वतीकी शय्यापर नवजात शिशुके रूपमें लेटकर छतकी ओर देखने लगे—

शुद्धचम्पकवर्णाभः कोटिचन्द्रसमप्रभः।
सुखदृश्यः सर्वजनैश्चक्षूरश्मिविवर्धकः॥
अतीव सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः।
मुखं निरुपमं बिभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम्॥
सुन्दरे लोचने बिभ्रच्चारुपद्मविनिन्दके।
ओष्ठाधरपुटं बिभ्रत् पक्वबिम्बविनिन्दकम्॥
कपालं च कपोलं च परमं सुमनोहरम्।
नासाग्रं रुचिरं बिभ्रत् खगेन्द्रचञ्चुनिन्दकम्॥
त्रैलोक्येषु निरुपमं सर्वाङ्गं बिभ्रदुत्तमम्।
शयानः शयने रम्ये प्रेरयन् हस्तपादकम्॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० ८ । ८५—८९)

'उस बालकके शरीरकी आभा शुद्ध चम्पकके समान थी। उसका प्रकाश करोड़ों चन्द्रमाओंकी भाँति उद्दीप्त था। सब लोग सुखपूर्वक उसकी ओर देख सकते थे। वह नेत्रोंकी ज्योतिको बढ़ानेवाला था। उसका अत्यन्त सुन्दर शरीर कामदेवको विमोहित करनेवाला था। उसका अनुपम मुख शारदीय पूर्णिमाके चन्द्रका उपहास कर रहा था। उसके सुन्दर नेत्र मनोहर कमलको तिरस्कृत करनेवाले थे। ओष्ठ और अधरपुट ऐसे लाल थे कि उसे देखकर पका हुआ

बिम्बफल भी लज्जित हो जाता था। कपाल और कपोल परम मनोहर थे। रुचिर नासिका गरुडकी चोंचको भी तिरस्कृत करनेवाली थी। उसके सभी अङ्ग उत्तम थे। त्रिलोकीमें कहीं उसकी उपमा नहीं थी। इस प्रकार वह शय्यापर सोया हुआ रमणीय शिशु हाथ-पैर उछाल रहा था।'

किंतु अत्यन्त कृशकाय वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी अतिथिके अकस्मात् अन्तर्हित हो जानेपर परमादर्श गृहिणी पार्वती व्याकुल हो गयीं। उन्होंने अपने प्राणपति शिवजीको उन्हें ढूँढ़नेके लिये कहा और स्वयं दुःखी होकर कहने लगीं—'तृषा-क्षुधासे आकुल ब्रह्मन्! आप कहाँ चले गये? भूखसे पीड़ित अतिथिके द्वारसे चले जानेपर गृहस्थका जीवन व्यर्थ चला जाता है।'

'जगज्जननी! शान्त हो जाओ।' अतिथिदेवके अचानक अन्तर्हित हो जानेपर छटपटाती हुई अम्बिकाने आकाशवाणी सुनी—'मन्दिरमें जाकर अपने पुत्रको देखो। 'पुण्यक-व्रत' के फलस्वरूप परिपूर्णतम परात्पर श्रीकृष्ण ही तुम्हारे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए हैं।'

यत्तेजो योगिनः शश्वद् ध्यायन्ते सततं मुदा॥
ध्यायन्ते वैष्णवा देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
यस्य पूज्यस्य सर्वाग्रे कल्पे कल्पे च पूजनम्॥
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नो विनश्यति।
पुण्यराशिस्वरूपं च स्वसुतं पश्य मन्दिरे॥
कल्पे कल्पे ध्यायसे यं ज्योतीरूपं सनातनम्।
पश्य त्वं मुक्तिदं पुत्रं भक्तानुग्रहविग्रहम्॥
तव वाञ्छापूर्णबीजं तपः कल्पतरोः फलम्।
सुन्दरं स्वसुतं पश्य कोटिकन्दर्पनिन्दकम्॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिख० ९ । ९—१३)

'योगी लोग जिस अविनाशी तेजका प्रसन्न-मनसे निरन्तर ध्यान करते हैं, वैष्णवगण तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता जिसके ध्यानमें लीन रहते हैं, प्रत्येक कल्पमें जिस पूजनीयकी सर्वप्रथम पूजा होती है, जिसके स्मरणमात्रसे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं तथा जो पुण्यराशिस्वरूप है, मन्दिरमें विराजमान अपने उस पुत्रकी ओर तो दृष्टि डालो। प्रत्येक कल्पमें तुम जिस सनातन ज्योतिरूपका ध्यान करती हो, वही तुम्हारा पुत्र है। यह मुक्तिदाता तथा भक्तोंके अनुग्रहका मूर्तरूप है। जरा उसकी ओर तो निहारो। जो तुम्हारी कामनापूर्तिका बीज, तपरूपी कल्पवृक्षका फल सुन्दरतामें करोड़ों कामदेवोंको तिरस्कृत करनेवाला है, उस लावण्यमूर्ति पुत्रको तो देखो।'

आकाशवाणीने आगे अम्बिकाका भ्रम निवारण हुए कहा—'उस क्षुधार्त अतिथि वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें सम्मुख साक्षात् जनार्दन ही उपस्थित हुए थे।'

'तुम प्रसन्नचित्त हो अपने देवाग्रगण्य सुन्दरतम देखो'—आकाशवाणीके द्वारा इस प्रकारकी प्रेरणा प्राप्त ही माता पार्वती शीघ्रतासे अपने महलमें पहुँचीं। उन्होंने अत्यन्त अद्भुत, परम सुन्दर, पद्मपत्राक्ष शिशु अपनी शय्यापर लेटे हुए देखा। वह त्रैलोक्यसुन्दर शिशु छतकी ओर निहार रहा था। उसके दिव्य दिव्य तेज फैल रहा था। वह इधर-उधर अपने हाथ- फेंक रहा था। परम पावनी माताका स्तनपान करनेके वह क्रन्दन कर रहा था।

'प्राणनाथ! आप घर चलकर मन्दिरके भीत देखिये।' हर्षोल्लासपूर्ण हृदयसे पुत्रवत्सला भगवती दौड़कर त्रिलोकैश्वर्यदायक भक्तवाञ्छाकल्पतरु कहा—'सद्यः फलदायिनी आपकी ध्यानमूर्ति ही रूपमें प्रकट हुई है।'

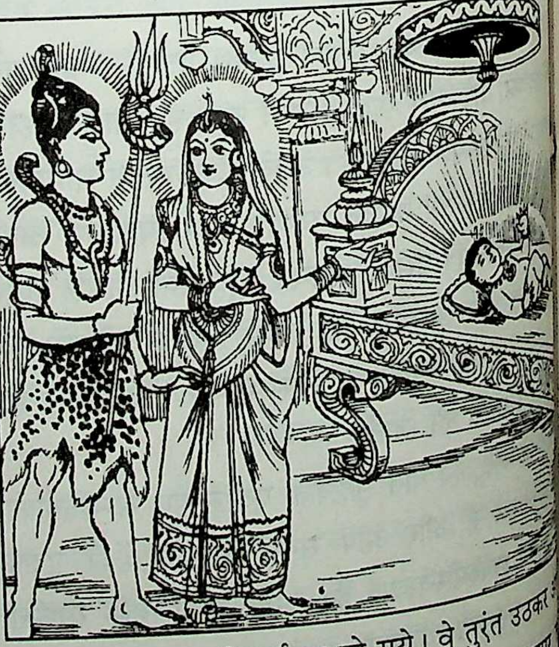

भुजङ्गभूषण भी हर्षमग्न हो गये। वे तुरंत उठकर प्राणप्रियाके साथ घरमें गये। वहाँ उन्होंने शय्यापर स्वर्ण-तुल्य कान्तिमान् अपने पुत्रको देखा। घोरदैत्य प्रसन्न और चकित होकर सोच रहे थे—'अरे! मैं

तेजस्विनी और परम मङ्गलमयी मूर्तिका ध्यान करता रहता हूँ, वह मूर्ति तो प्रत्यक्ष मेरे पुत्रके रूपमें मेरे सम्मुख मुस्कराती हुई क्रीडा कर रही है।'

सर्वानन्दप्रदायिनी पार्वतीके आनन्दकी सीमा न थी। उन्होंने पुत्रको अङ्कमें ले लिया और हर्षके आवेगमें उसका चुम्बन करने लगीं। आनन्दमग्ना नित्यरूपा पार्वतीने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—

सम्प्राप्यामूल्यरत्नं त्वां पूर्णमेव सनातनम्।
यथा मनो दरिद्रस्य सहसा प्राप्य सद्धनम्॥
कान्ते सुचिरमायाते प्रोषिते योषितो यथा।
मानसं परिपूर्णं च बभूव च तथा मम॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० ९ । २७-२८)

'बेटा! जैसे दरिद्रका मन सहसा उत्तम धन पाकर संतुष्ट हो जाता है, उसी तरह तुझ सनातन अमूल्य रत्नकी प्राप्तिसे मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। जैसे चिरकालसे प्रवासी हुए प्रियतमके घर लौटनेपर स्त्रीका मन पूर्णतया हर्षमग्न हो जाता है, वही दशा मेरे मनकी भी हो रही है।'

इस प्रकार कहती हुई माता पार्वती शिशुको अत्यन्त प्रेमसे अपना अमृतमय दूध पिलाने लगीं।

इसके अनन्तर चराचर प्राणियोंके आश्रय भगवान् शंकरने भी अत्यन्त प्रसन्नतासे अपने पुत्रको गोदमें उठा लिया। वहाँ पधारे सभी ऋषियों, मुनियों और सिद्धोंने नवजात शिशुको अनेक प्रकारके मङ्गलमय आशीर्वचन दिये। ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर अपने हृदयका सम्पूर्ण आशीर्वाद प्रदान किया एवं वन्दियोंने समस्त मङ्गलकामनाएँ प्रकट कीं।

पार्वतीनन्दनका छिन्न मस्तक

उसी समय गौरीनन्दनके दर्शनार्थ प्रज्वलित अग्निशिखा-तुल्य दीप्तिमान्, पीताम्बरधारी, श्यामल सूर्यपुत्र शनैश्चर वहाँ पधारे।

सूर्यपुत्र शनैश्चरने अलौकिक भवनमें उस समय प्रवेश किया, जब वस्त्रालंकारभूषिता मङ्गलमयी जननी पार्वती नवागत शुभानन शिशुको गोदमें लेकर रत्नसिंहासनपर बैठी हुई प्रसन्नतासे मुसकरा रही थीं। पाँच सखियाँ उनके समीप खड़ी होकर श्वेत चँवर डुला रही थीं। शनैश्चरने त्रैलोक्यदुर्लभ जननी पार्वतीके पाद-पद्मोंमें मस्तक झुकाये श्रद्धा एवं प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया। जगदम्बाने उन्हें आशिष् देकर उनसे कुशल-समाचार पूछा—

'ग्रहेश्वर! आपके नेत्र कुछ मुँदे हैं और आपने सिर झुका रखा है', सम्पूर्ण बाधाओं एवं कलाओंके अधिपतिकी जननी पार्वतीने धर्मात्मा शनैश्चरसे पूछा—'आप मेरी ओर और मेरे पुत्रकी ओर देख नहीं रहे हैं! इसका क्या हेतु है?'

'माता! सम्पूर्ण प्राणी अपने कर्मका ही फल भोगते हैं।' शनैश्चरदेवने सिर झुकाये कहा—'वे अपने शुभाशुभ कर्मोंसे ही सुख-दुःख प्राप्त करते हैं। मेरी कथा गोपनीय है और माताके सम्मुख कहने योग्य नहीं है; तथापि आपकी आज्ञासे मैं उसे प्रकट कर दे रहा हूँ।'

'शंकरवल्लभे!' शनैश्चरदेवने आगे कहा—'बाल्यकालसे ही मेरे मनमें श्रीकृष्ण-पद-पद्मानुरक्ति थी। मैं प्रायः उन्हींके अत्यन्त सुखद ध्यानमें तल्लीन रहता था। सर्वथा विरक्त एवं तप-निरत था, किंतु मेरे पिताने चित्ररथकी पुत्रीसे मेरा परिणय करा दिया। मेरी पत्नी साध्वी, तेजस्विनी एवं तपस्विनी थी।

'एक दिनकी बात है; मेरी सहधर्मिणी ऋतुस्नानके अनन्तर उस समय मेरे समीप आयी, जब मैं भगवच्चरणोंके ध्यानमें तल्लीन सर्वथा बाह्यज्ञानशून्य था।'

'तुम जिसकी ओर दृष्टिपात करोगे, वही नष्ट हो जायगा।' ऋतुकालके विफल होनेपर उसने दुःखी मनसे मुझे शाप दे दिया।

'यद्यपि ध्यानसे विरत होनेपर मैंने उसे संतुष्ट किया, किंतु वह पश्चात्ताप करनेपर भी शाप लौटानेमें समर्थ नहीं थी। इसी कारण मैं जीवहिंसाके भयसे अपने नेत्रोंसे किसीकी ओर नहीं देखता और सहज ही सदा सिर झुकाये रहता हूँ।'

शनैश्चरदेवकी बात सुनकर नर्तकियों और किंनरियोंके समुदायके साथ अनन्तानन्तसुखदायिनी जगदम्बा हँसने लगीं।

'सम्पूर्ण विश्व ईश्वरेच्छाके अधीन है।' सर्वकाम-फलप्रदायिनी जगदीश्वरीने ऐसा कहते हुए शनैश्चरदेवसे कहा—'तुम मेरी ओर तथा मेरे शिशुकी ओर देखो।'

'मैं पार्वतीनन्दनकी ओर देखूँ या नहीं ?' शनैश्चरदेव मन-ही-मन सोचने लगे। 'यदि मैं इस दुर्लभ बालककी ओर देखूँगा तो निश्चय ही इसका अनिष्ट हो जायगा; किंतु सर्वेश्वरी जननीकी आज्ञा कैसे टाली जाय?'

इस प्रकार सोचते हुए धर्मात्मा शनैश्चरदेवने धर्मको साक्षी देकर गिरिजाकी ओर तो नहीं, किंतु उनके पाप-संताप-हरण पुत्रकी ओर देखनेका निश्चय किया।

पहलेसे ही खिन्न शनैश्चरके कण्ठोष्ठतालु शुष्क हो गये थे; फिर भी उन्होंने वामनेत्रके कोनेसे केवल पार्वतीनन्दनकी ओर दृष्टिपात किया। शनैश्चरदेवकी शापग्रस्त दृष्टि पड़ते ही भगवान् शिव एवं भगवती उमाके प्राणप्रिय पुत्रका मस्तक धड़से पृथक् होकर गोलोकमें अपने अभीष्ट परात्पर श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हो गया। अत्यन्त दुःखी शनैश्चरने अपनी आँख फेर ली और सिर झुकाकर खड़े हो गये।

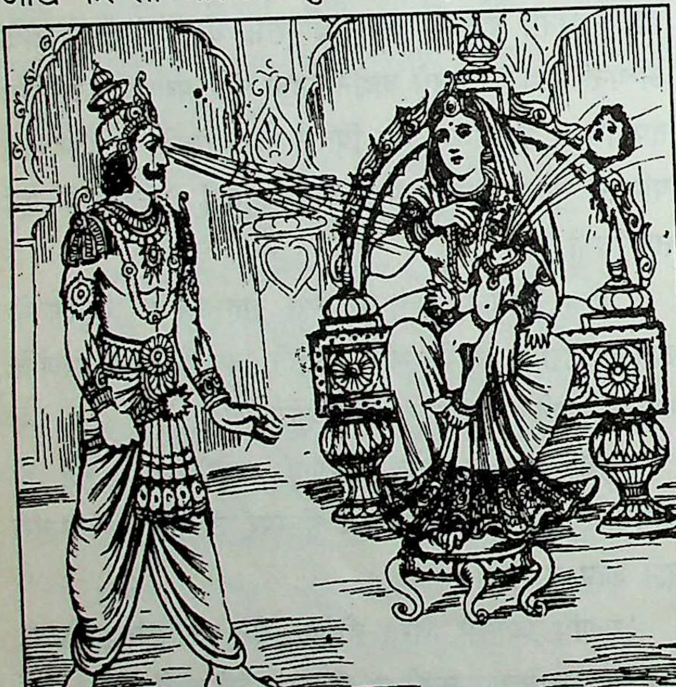

अपने अङ्कमें दुर्लभतम कम्बुकण्ठ शिशुका रक्तसे लथपथ शरीर देखकर माता पार्वती चीत्कार कर उठीं। वे बालकका धड़ वक्षसे सटाये रोती-कलपती और विलाप करती उन्मत्तकी तरह इधर-उधर घूमती हुई मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ीं। यह आश्चर्यजनक दृश्य देखकर वहाँ उपस्थित सभी देवता, देवियाँ, पर्वत, गन्धर्व, शिव तथा समस्त कैलासवासी अवसन्न हो गये। वे सभी निष्प्राण-से प्रतीत होने लगे।

पार्वती-पुत्र गजमुख हुए

मस्तकहीन रक्तस्नात पार्वतीनन्दनपर दृष्टिपात करनेके श्रीहरिने सबको मूर्च्छित देखा तो तुरंत गरुडपर विराजमान तीव्रगतिसे उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े। वहाँ उन्हों पुष्पभद्रा नदीके तटपर एकान्त वनमें हथिनी और बच्चों साथ एक गजेन्द्रको सोते हुए देखा। उसका सिर उ दिशाकी ओर था। सर्वमङ्गलकर श्रीहरिने तुरंत अ सहस्रारसे उसका मस्तक उतारकर गरुडपर रख लिया।

गजके कटे अङ्गके गिरनेसे हथिनीकी नींद टूट गयी अपने स्वामीकी निर्जीव देह देखकर वह चीत्कार क लगी। उसके बच्चे भी अपनी माताके रुदनसे जाग व्याकुलतासे क्रन्दन करने लगे। हथिनीने गरुडासन विराजमान सम्पूर्ण निषेक (कर्मफलयोग)-का खण्ड करनेमें समर्थ शंख-चक्र-गदा-पद्मधर नवजलधरवपु श्रीहरि अचिन्त्य सौन्दर्यमयी मूर्तिको देखा तो वह परम प्रभु स्तवन करने लगी।

हथिनीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सर्वसमर्थ प्रभुने द गजका मस्तक उतार उसके शरीरसे जोड़ दिया और नि अपने ब्रह्मज्ञानसे उसे जीवित कर दिया।

'भाग्यवान् गज! तू सकुटुम्ब कल्पपर्यन्त जीवित र अपने मङ्गलमय चरणोंसे उसके सर्वाङ्गका स्पर्श क हुए परम प्रभुने उसके परम मङ्गलके लिये वरदान प्र किया। तदनन्तर गरुड वायुवेगसे उड़कर तुरंत कैला पहुँच गये।

श्रीहरिने पार्वती-पुत्रको उठाकर अपने वक्षसे ल लिया और गज-मुखको सुन्दर बनाकर शिवनन्दनके ध जोड़ दिया।

'हुं'! परम प्रभुके इस उच्चारणसे ही वह बालक ज हो गया; फिर तो उन्होंने मोहनिवारिणी अम्बिकाको करके उनका पुत्र उनके अङ्कमें रख दिया और वि मनोरम मधुर वचनोंसे शोकाकुल पार्वतीको समझाने ल

श्रीहरिकी वाणी सुनकर वात्सल्यमयी जननी संतुष्ट हो गयीं और उन परम प्रभुके अरुणोत्पल-च प्रणामकर अपने शिशुको गोदमें लेकर उसे दुग्धपान लगीं। फिर उन्होंने अपने प्राणवल्लभ शिवकी प्रेरणासे

जोड़कर भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी स्तुति-प्रार्थना की।

परम तपस्विनी उमाके स्तवनसे प्रसन्न होकर लक्ष्मीपति विष्णुने अपना कौस्तुभ उस लम्बोष्ठ बालकके गलेमें डालते हुए उसे तथा जगदीश्वरी पार्वतीको शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

लम्बकर्ण पार्वती-पुत्रके जीवित हो जानेपर हर्षातिरेकसे लोकस्रष्टाने उसे अपना किरीट और धर्मने रत्नाभूषण प्रदान किया। इसके अनन्तर देवियों, उपस्थित सभी देवताओं, मुनियों, पर्वतों, गन्धर्वों और एकत्र समस्त स्त्रियोंने प्रसन्न-मनसे बहुमूल्य रत्नादि उस शम्भुकुमारको प्रदान किये।

अपने सुमङ्गलमङ्गल बालकके जीवित होनेकी प्रसन्नतामें सर्वलोकमहेश्वर शिव एवं निखिलसृष्टि-संचालिका पार्वतीने असंख्य रत्नोंका दान किया। हिमगिरिने वन्दियोंको सौ गज तथा एक सहस्र अश्व प्रदान किये। देवताओंने सभी ब्राह्मणोंको दान दिया और स्त्रियोंने भी अपने दानोंसे वन्दियोंको संतुष्ट कर दिया।

क्षीरोदधिशायी लक्ष्मीपतिने समस्त माङ्गलिक कार्योंके साथ वेदों और पुराणोंका पाठ करवाया तथा समस्त ब्राह्मणोंको अत्यन्त आदरपूर्वक दुर्लभ सुमिष्ट पक्वान्नोंके भोजनसे पूर्ण तृप्त कर दिया।

'तुम अङ्गरहित हो जाओ।' उक्त सभाके बीच लज्जावश शनैश्चरको सिर झुकाये देखकर माता पार्वतीने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दे दिया।

गजमुखको प्रथमपूज्यताका आशीर्वाद

कुछ समय व्यतीत हुआ। क्षीराब्धिशायी लक्ष्मीपति विष्णु शुभ मुहूर्तमें देवताओं और मुनियोंके साथ भगवान् शंकरके सदनमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रेष्ठतम उपहारोंसे पद्म-प्रसन्न-नयन गजाननकी पूजा की और आशीर्वाद प्रदान की—

सर्वाग्रे तव पूजा च मया दत्ता सुरोत्तम।
सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भव वत्सेत्युवाच तम्॥
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० १३।२)

'सुरश्रेष्ठ! मैंने सबसे पहले तुम्हारी पूजा की है, अतः वत्स! तुम सर्वपूज्य तथा योगीन्द्र होओ।'

प्रसन्न-कमलनयन विष्णुने रुद्रप्रिय बालकके कण्ठमें वनमाला पहनायी और मोक्षदायक ब्रह्मज्ञान तथा सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदानकर उसे अपने समान बना दिया। फिर षोडशोपचारकी सामग्रियाँ देकर देवताओं और मुनियोंके साथ उसका नामकरण किया—

विघ्नेशश्च गणेशश्च हेरम्बश्च गजाननः।
लम्बोदरश्चैकदन्तः शूर्पकर्णो विनायकः॥
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० १३।५)

'विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त, शूर्पकर्ण और विनायक—ये उस बालकके नाम रखे गये।'

तत्पश्चात् दयामय श्रीहरिने पुनः मुनियोंको बुलवाकर हेरम्बको आशीर्वाद दिलवाया। इसके अनन्तर सभी देव-देवियों एवं मुनियों आदिने मुक्तिदाता शिवपुत्रको विविध प्रकारके उपहार प्रदान किये और बार-बार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनका पूजन किया।

फिर सर्वव्यापिनी जननीने अपने अघनाशन पुत्रको रत्नसिंहासनपर बैठाकर समस्त तीर्थोंके जलपूरित सौ कलशोंसे स्नान कराया। उस समय मुनिगण वेद-मन्त्रोंका उच्चारण कर रहे थे। इसके अनन्तर उन्होंने अपने दुःख-भञ्जनकारक पुत्रको अग्निशुद्ध दो वस्त्र दिये। फिर जननीने गणेशको पुण्यतोया गोदावरीके जलसे पाद्य, पापनाशिनी गङ्गाजीके जलसे अर्घ्य एवं दूर्वा, अक्षत, पुष्प और चन्दनमिश्रित पवित्र तीर्थ पुष्करके जलसे आचमन कराकर रत्नपात्रमें रखे हुए मधुपर्क एवं शर्करायुक्त द्रव प्रदान किये।

इसके अनन्तर स्वर्गलोकके वैद्य अश्विनीकुमारद्वारा निर्मित स्नानोपयोगी विष्णु-तैल, बहुमूल्य-रत्नाभरण, विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्प, पारिजातकी पुष्पमालाएँ, अनेक प्रकारके सुगन्धित चन्दन तथा दिव्य सुगन्धमय धूप-दीप प्रदान किये; फिर पशुपाशविमोचन गणाधिराजको उनका प्रिय लड्डू तथा उनको प्रिय लगनेवाले विविध प्रकारके अन्य अनेक व्यञ्जन अर्पित किये। उन पुष्कल व्यञ्जनोंका पर्वत-तुल्य ढेर लग गया। तदनन्तर ढेर-के-ढेर अनार, बेलके फल, भाँति-भाँतिके खजूर, कैथ, जामुन, कटहल, आम, केला और नारियलके फल दिये। फिर आचमन और सुवासित ताम्बूल समर्पित करके जननीने सुन्दर पानके बीड़े और सैकड़ों स्वर्णपात्र लड्डुकप्रिय गणेशको अर्पित किये।

इसके अनन्तर मेनका, हिमालय, हिमालयके पुत्र, वहाँ उपस्थित ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने—

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० १३ । ३२)

—इस मन्त्रसे प्रणताज्ञानमोचन गिरिजापुत्रकी पूजा की और उन्हें भाँति-भाँतिकी दुर्लभ वस्तुएँ प्रदान करके वे आनन्दमें निमग्न हो गये।

परशुरामका कैलास-दर्शन

एक दिनकी बात है, जब जमदग्निनन्दन परशुरामने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित कर दिया, तब वे अपने गुरु भूतनाथके चरणोंमें प्रणाम करने और गुरुपत्नी अम्बा शिवा तथा उनके नारायण-तुल्य दोनों गुरुपुत्र कार्तिकेय और गणनायकको देखनेकी लालसासे कैलास पहुँचे। वहाँ उन्होंने अत्यन्त अद्भुत कैलासपुरीका दर्शन किया।

अपने गुरुदेवकी उस दिव्य पुरीके दर्शनकर रेणुकानन्दन आनन्द-विभोर हो गये।

'बन्धुवर! मैं परमानुग्रहमूर्ति, भक्तवत्सल, समदर्शी अपने गुरु शूलपाणिका दर्शन करना चाहता हूँ।' वीरवर परशुरामने सम्मुख खड़े मुद्गरायुध गणेशसे कहा।

'इस समय भूतेश्वर शिव एवं माता पार्वती अन्तःपुरमें हैं।' अमोघ-सिद्ध गणेशने उन्हें अनेक प्रकारसे समझाते हुए कहा—'अतएव अभी आपको वहाँ नहीं जाना चाहिये।'

'मैं तो परमपिता शिव एवं दयामयी माँके दर्शनार्थ जाऊँगा ही।' बलपूर्वक रेणुकानन्दन आगे बढ़ना ही चाहते थे कि विघ्नराजने उन्हें रोक दिया।

इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करनेवाले भृगुनन्दन कुपित हो गये और उनका गणाधिराजसे विवाद ही नहीं मल्लयुद्ध भी होने लगा। कुमार कार्तिकेयने भी उन्हें समझानेका प्रयत्न किया; किंतु क्रुद्ध क्षत्रियद्रोही परशुरामने परम विनयी बुद्धिविशारद ईशानपुत्रको धक्का दे दिया, जिससे वे गिर गये।

शिवपुत्र गणेशने उठकर परशुरामकी उद्दण्डताके लिये उनकी भर्त्सना की तो परशुरामने अपना तीक्ष्ण परशु उठा लिया। तब अजरामर गौरीतेज गणेशने अपनी सूँड़ बढ़ा परशुरामको उसमें लपेट लिया और उन्हें घुमाने ल योगाधिप गणेशकी महान् सूँड़में लिपटे परशुराम सं असहाय और निरुपाय थे। धरणीधर गणेशके योगब परशुराम स्तम्भित हो गये थे।

गजमुख एकदन्त हुए

कुछ ही देर बाद परशुराम सचेत हो गये। तब उन्हों अपने अभीष्ट देवता श्रीकृष्णके जगद्गुरु शिवद्वारा प्र परम दुर्लभ स्तोत्र एवं कवचका स्मरण किया और सम् शक्तिसे ग्रीष्मकालीन मध्याह्न सूर्यकी प्रभाके तुल्य तीक्ष्ण अपने परशुसे प्रणतार्ति निवारक गौरीनन्दनपर प्रहार क दिया। गणाधिराजने अपने परमपूज्य पिताके अ अस्त्रका सम्मान करनेके लिये उसे अपने बायें दाँ पकड़ लिया। शिव-शक्तिके प्रभावसे वह तेजस्वी प गणेशके बायें दाँतको समूल काटकर पुनः रेणुका परशुरामके हाथमें लौट आया।

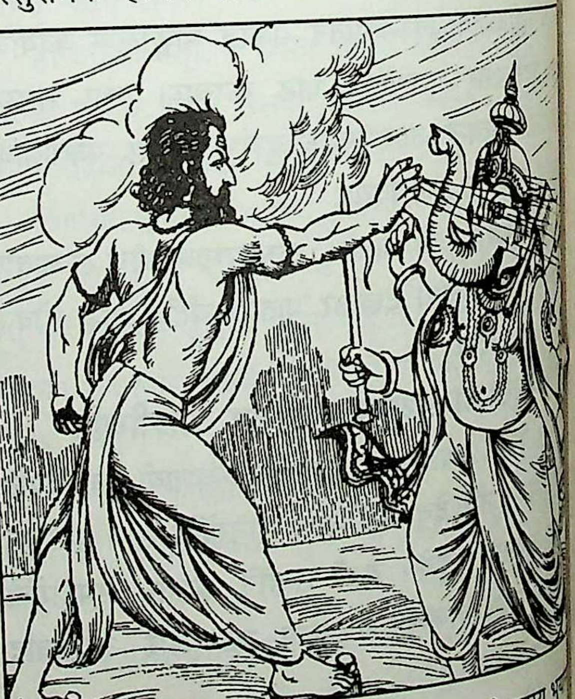

सिद्धि-बुद्धि-प्रदायक गणेशका दाँत टूटते समय भ शब्द हुआ और सत्यसंकल्प गिरिजानन्दनके मुखसे र फव्वारा छूट पड़ा। मुँहसे निकलकर रक्तसे सना भूतलपर गिर पड़ा। उस समय धरित्री काँप उठी। यह देखकर वीरभद्र, कार्तिकेय, क्षेत्रपाल आदि पार्षद शून्यमें देवगण अत्यन्त भयाक्रान्त हो हाय-हाय करने

कैलासवासी डरसे मूर्च्छित हो गये। निद्रापति शुद्धात्मा शिवकी निद्रा भङ्ग हो गयी।

'बेटा! यह क्या हुआ?' दौड़ी हुई परमाद्या भगवती पार्वती आयीं तो उन्होंने अपने प्राणप्रिय पुत्र गणेशके टूटे दाँत तथा रक्तमें डूबे हुए मुँहको देखा और देखा कि उनके हृदयखण्ड गणेश क्रोधशून्य, परम शान्त, लज्जासे सिर झुकाये खड़े हैं। अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने स्कन्दसे पूछा—'क्या बात है? यह कैसे हुआ?' स्कन्दके द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर महामोहशमनी सती पार्वती अत्यन्त क्रुद्ध हुईं और अपने प्राणाधिक प्रिय सुकुमार पुत्र गणेशको अङ्कमें लेकर क्रन्दन करने लगीं।

'समदर्शी प्रभो!' दुःख और शोकसे अभिभूत देवी पार्वतीने डरते-डरते अपने पति दयासिन्धु शूलपाणिसे कहा—'मेरे पुत्र गणेश और आपके शिष्य परशुराममें किसका दोष है, आप ही निर्णय करें।'

अत्यन्त दुःखसे व्याकुल पुत्रवत्सला पार्वतीने गणेशकी महिमाका बखान करते हुए परशुरामसे कहा—'जितेन्द्रिय पुरुषोंमें श्रेष्ठ गणेश तुम्हारे-जैसे लाखों-करोड़ों जन्तुओंको मार डालनेकी शक्ति रखता है; परंतु वह मक्खीपर भी हाथ नहीं उठाता। श्रीकृष्णके अंशसे उत्पन्न हुआ यह गणेश तेजमें श्रीकृष्णके ही समान है। अन्य देवता श्रीकृष्णकी कलाएँ हैं। इसीसे इसकी अग्रपूजा होती है।'

इतना कहकर क्रोधाभिभूत गिरिराजकिशोरी परशुरामको मारनेके लिये प्रस्तुत हो गयीं। भयवश परशुरामने मन-ही-मन करुणासागर गुरुको प्रणामकर अपने इष्टदेव गोलोकनाथ श्रीकृष्णका स्मरण किया।

तत्क्षण उमाने अपने सम्मुख भानुकोटिशतप्रभ एक बौने ब्राह्मण-बालकको देखा।

उस परम तेजस्वी ब्राह्मण-बालकको देखकर आतुरतासे भृत्योंसहित भगवान् शंकरने भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। उसके बाद माता पार्वतीने भी उसे साष्टाङ्ग प्रणाम किया। परम तेजस्वी ब्राह्मण-बालकने भृत्योंसहित शिव एवं पार्वतीको शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

तत्पश्चात् फिर भगवान् शंकरने उनका षोडशोपचार पूजन एवं स्तवन किया। वे वामनभगवान् रत्नसिंहासनपर विराजमान थे। उनका उत्कृष्ट तेज सर्वत्र फैल रहा था।

'आज मेरा परम सौभाग्य है, जो आपने कृपापूर्वक मेरे यहाँ पधारकर मुझे सेवाका अवसर प्रदान किया है।' भगवान् शंकरने मधुर शब्दोंमें कहा—'अतिथि-सत्कार करनेवालेके द्वारा स्वतः समस्त देवताओंकी पूजा सम्पन्न हो जाती है; क्योंकि अतिथिके संतुष्ट होनेसे स्वयं श्रीहरि संतुष्ट हो जाते हैं।'

'आप लोगोंकी वर्तमान परिस्थिति जानकर मैं श्वेतद्वीपसे आ रहा हूँ।' आशुतोष शिवकी मधुर वाणीसे प्रसन्न होकर ब्राह्मण-बालकरूपी स्वयं श्रीहरिने गम्भीर स्वरमें कहा—'मेरे भक्तोंका कभी अमङ्गल नहीं होता। मेरा सहस्रार उनके रक्षार्थ प्रतिक्षण प्रस्तुत रहता है; किंतु गुरुके रुष्ट होनेपर मैं विवश हो जाता हूँ। गुरुकी अवहेलना बलवती होती है। विद्या और मन्त्र प्रदान करनेवाला गुरु अभीष्टदेवसे सौगुना श्रेष्ठ है। गुरुसे बढ़कर कोई देवता नहीं है और '**न पार्वतीपरा साध्वी न गणेशात्परो वशी।**' (ब्रह्मवैवर्त, गणपतिखं० ४४। ७५) पार्वतीसे बढ़कर कोई पतिव्रता नहीं है तथा गणेशसे उत्तम कोई जितेन्द्रिय नहीं है। भृगुनन्दनने गुरु-पत्नी एवं गुरुपुत्रकी अवहेलना कर दी है, उसीका मार्जन करनेके लिये मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।'

'हिमगिरिनन्दिनि!' अब श्रीहरिने भगवती पार्वतीसे कहा—'तुम जगज्जननी हो। तुम्हारे लिये गणेश और कार्तिकेयके समान ही परशुराम भी पुत्र-तुल्य हैं। इन परशुरामके स्नेहके प्रति शिव और तुम्हारे मनमें भेद नहीं है। अतएव जो उचित समझो, करो। दैव बड़ा प्रबल होता है। बालकोंका यह विवाद तो दैव-दोषसे ही घटित हुआ है। तुम्हारे इस प्रिय पुत्रका 'एकदन्त'-नाम वेदोंमें प्रसिद्ध है। पुराणोंमें भी तुम्हारे पुत्रके आठ नाम बताये गये हैं—

गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम्।
लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० ४४। ८५)

'गणेश, एकदन्त, हेरम्ब, विघ्ननायक, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, गजवक्त्र और गुहाग्रज।' इस प्रकार श्रीहरिने माता पार्वतीको अनेक प्रकारसे सान्त्वना दिया।

पुनः श्रीहरिने परशुरामसे कहा—'राम! तुमने क्रोधवश

शिवा-पुत्र गणेशका दाँत तोड़कर अनुचित किया है।' इस कारण तुम निश्चय ही अपराधी हो। ये सर्वशक्तिस्वरूपा पार्वती प्रकृतिसे परे और निर्गुण हैं। श्रीकृष्ण भी इन्हींकी शक्तिसे शक्तिशाली हुए हैं। ये समस्त देवताओंकी जननी हैं। तुम इनकी स्तुति करके इन्हें संतुष्ट करो।'

इतना कहकर श्रीहरि वैकुण्ठके लिये प्रस्थित हुए और परशुरामने स्नानकर शुद्ध वस्त्र धारण किये। फिर वे हाथ जोड़ गुरुदेवके चरणोंमें प्रणामकर सिर झुकाये जगज्जननी गौरीका स्तवन करने लगे—

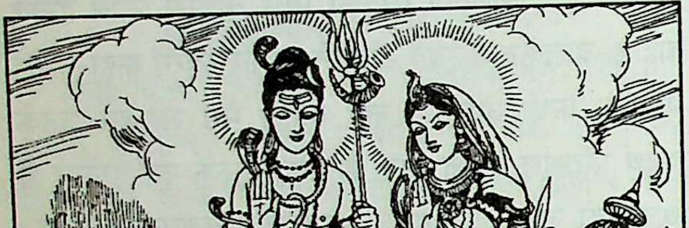

रक्ष रक्ष जगन्मातरपराधं क्षमस्व मे।
शिशूनामपराधेन कुतो माता हि कुप्यति॥
(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० ४५। ५७)

'जगज्जननी! रक्षा करो, रक्षा करो, मेरे अपराधको क्षमा कर दो। भला, कहीं बच्चेके अपराध करनेसे माता कुपित होती है?'

स्तुति करनेके बाद परशुरामने माता पार्वतीके चरणोंमें प्रणाम किया और अत्यन्त दुःखी होकर वे रोने लगे।

'वत्स! तुम अमर हो जाओ!' परशुरामकी करुण प्रार्थनासे करुणामयी भक्तवत्सला जननी पार्वतीका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने प्रीतिपूर्वक परशुरामको अभय-दान देते हुए कहा—'बेटा! अब शान्त हो जाओ। प्रभु आशुतोषके अनुग्रहसे तुम्हारी सर्वत्र विजय हो। सर्वान्तरात्मा श्रीहरि तुमपर सदा प्रसन्न रहें। गुरुदेव शिवमें तुम्हारी भक्ति सुदृढ़ रहे।'

इस प्रकार सर्वशक्तिसमन्विता दयामयी पार्वतीने परशुरामको आशीर्वाद दिया और फिर वे अपने अन्तःपुरमें चली गयीं।

उस समय वहाँ श्रीभगवान्के मङ्गलमय नामका उच्च घोष होने लगा। परशुरामके हर्षकी सीमा न रही।

फिर रेणुकानन्दनने एकदन्त गणेशका स्तवन किया और गन्ध, पुष्प, धूप-दीप एवं तुलसीरहित नैवेद्य आदिसे लम्बोदरकी प्रीतिपूर्वक पूजा की। परशुरामने भक्तिभावसे भाई गणेशको संतुष्ट करके जगन्माता पार्वती एवं कृपासिन्धु त्रिलोचनके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने गुरुकी आज्ञा प्राप्तकर प्रसन्नतापूर्वक तपश्चरणके लिये प्रस्थान किया।

गणेशका तुलसीको शाप

ब्रह्मकल्पकी बात है। नवयौवनसम्पन्ना परम लावण्यवती तुलसीदेवी भगवान् नारायणका स्मरण करती हुई तीर्थोंमें भ्रमण कर रही थीं। इस प्रकार वे पतितपावनी श्रीगङ्गाजीके पावनतम तटपर पहुँचीं।

'अत्यन्त अद्भुत और अलौकिक रूप है आपका!' वहाँ तुलसीदेवीने अत्यन्त सुन्दर और शुद्ध पीताम्बर धारण किये नवयौवनसम्पन्न परमसुन्दर कृष्णपादाब्जका ध्यान करते हुए निधिपति गणेशको देखा। उनके सम्पूर्ण शरीरमें चन्दनकी खौर लगी थी और वे रत्नाभरणोंसे विभूषित थे। सर्वथा निष्काम एवं जितेन्द्रिय पार्वतीनन्दनको देखकर तुलसीदेवीका मन उनकी ओर बरबस आकृष्ट हो गया। विनोदके स्वरमें उन्होंने योगाधिप खण्डेन्दुशेखरसे कहा—'गजवक्त्र! शूर्पकर्ण! एकदन्त! घटोदर! सारे आश्चर्य आपके ही शुभ विग्रहमें एकत्र हो गये हैं। किस तपस्याका फल है यह?'

'वत्से! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो? यहाँ किस हेतुसे आयी हो?' उमानन्दन एकदन्तने शान्त स्वरमें कहा—'माता! तपश्चरणमें विघ्न डालना उचित नहीं। यह सर्वथा अकल्याणका हेतु होता है। मङ्गलमय प्रभु तुम्हारा मङ्गल करें।'

'मैं धर्मात्मजकी नवयुवती पुत्री हूँ।' तुलसीदेवीने परम जितेन्द्रिय शम्भुकुमारसे उपहास छोड़कर मधुरवाणीमें निवेदन किया—'मैं मनोऽनुकूल पतिकी प्राप्तिके लिये तपस्यामें संलग्न हूँ। आप मुझे पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लीजिये।'

'माता! विवाह बड़ा दुःखदायी होता है।' घबराते हुए लम्बोदरने उत्तर दिया। तुम मेरी ओरसे अपना

हटाकर किसी अन्य पुरुषको पतिके रूपमें वरण कर लो। मुझे क्षमा करो।'

'तुम्हारा विवाह अवश्य होगा!' कुपित होकर तुलसीदेवीने लम्बोदरको शाप दे दिया।

'देवि! तुम्हें भी असुर पति प्राप्त होगा।' एकदन्त गणेशने भी तुरंत तुलसीको शाप दिया—'उसके अनन्तर महापुरुषोंके शापसे तुम वृक्ष हो जाओगी।'

पार्वतीनन्दनके अमोघ शापके भयसे तुलसीदेवी सर्वाग्रपूज्य हेरम्बका स्तवन करने लगीं।

'देवि! तुम पुष्पोंकी सारभूता एवं कलांशसे नारायण-प्रिया बनोगी!' भक्तसुलभ मूषक-वाहनने तुलसीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उनसे कहा—'यों तो सभी देवता तुमसे संतुष्ट होंगे, किंतु श्रीहरिके लिये तुम विशेष प्रिय होओगी। तुम्हारे द्वारा श्रीहरिकी अर्चनाकर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करेंगे; किंतु मेरे लिये तुम सर्वदा त्याज्य रहोगी। इतना कहकर भालचन्द्र गणनाथ तपश्चरणार्थ बदरीनाथके संनिकट चले गये।[1]

(ब्रह्मवैवर्त; प्रकृतिखण्ड)

(४)

श्वेतकल्पकी गणेशोत्पत्तिकी कथा

श्वेतकल्पमें गणेशोत्पत्तिकी मङ्गलमयी कथा इससे सर्वथा भिन्न है। उस कल्पमें स्वयं भगवान् शंकरने ही अपने पुत्र गणेशजीका मस्तक काट दिया था। वह पापनाशिनी कथा 'शिवपुराण'में इस प्रकार वर्णित है—

भगवती पार्वती अपने प्राणपति भगवान् शंकरके साथ आनन्दोल्लासपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थीं। उनकी अत्यन्त रूपवती, गुणवती एवं मधुरहासिनी जया और विजया—ये दो सखियाँ थीं।

'सखी! सभी गण रुद्रके ही हैं।' एक दिन उन दोनों सखियोंने भगवती उमाके समीप आकर कहा—'नन्दी, भृङ्गी आदि जो हमारे हैं, वे भी भगवान् शंकरकी ही आज्ञामें तत्पर रहते हैं। असंख्य प्रमथगणोंमें भी हमारा कोई नहीं है। वे शिवकी अनन्यताके कारण ही द्वारपर खड़े रहते हैं। यद्यपि वे सभी हमारे भी हैं, तथापि आप कृपापूर्वक हम लोगोंके लिये भी एक गणकी रचना कर दीजिये।'

माता पार्वती उन सहचरियोंकी बात ध्यानपूर्वक सुनकर विचार करने लगीं।

एक दिनकी बात है। भगवती उमा स्नानागारमें थीं। लीलावपु भगवान् कामारि अपनी प्राणप्रियाके द्वारपर पहुँचे।

'माता स्नान कर रही हैं।' नन्दीने महेश्वरसे निवेदन किया।

किंतु भगवान् भूतभावनने नन्दीके निवेदनकी उपेक्षा कर दी। वे सीधे स्नानागारमें पहुँचे।

परम प्रभु शिवको देखकर स्नान करती हुई माता पार्वती लज्जित होकर खड़ी हो गयीं। वे चकित थीं।

'जया-विजया ठीक ही कह रही थीं।' शिवप्रियाने मन-ही-मन विचार किया—'द्वारपर यदि मेरा कोई गण होता तो मेरे प्राणनाथ सहसा स्नानागारमें कैसे आ जाते? निश्चय ही इन गणोंपर मेरा पूर्ण अधिकार नहीं है। मेरा भी कोई ऐसा सेवक होना चाहिये, जो परम शुभ तथा कार्यकुशल हो एवं मेरी आज्ञाका सतत पालन करनेमें कभी विचलित न हो।'

इस प्रकार सोचकर त्रिभुवनेश्वरी उमाने अपने मङ्गलमय पावनतम शरीरके मैलसे एक चेतन पुरुषका निर्माण किया।

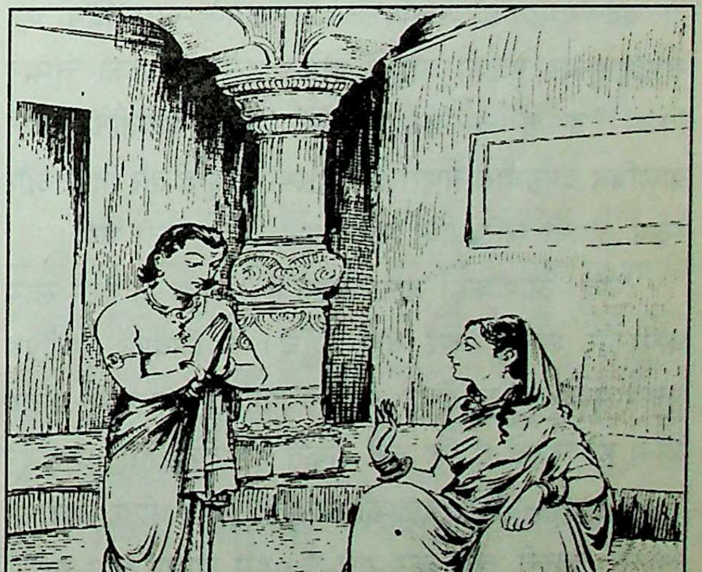

---

[1] कालान्तरमें तुलसीदेवी वृन्दाके नामसे दानवराज शंखचूड़की पत्नी हुईं। शंखचूड़ भगवान् शंकरके त्रिशूलसे मारा गया और उसके बाद नारायण-प्रिया तुलसी कलांशसे वृक्षभावको प्राप्त हो गयीं। यह कथा पुराणोंमें विस्तारसे आयी है।

वह शुभ लक्षणोंसे संयुक्त था। उसके सभी अङ्ग दोषरहित एवं सुन्दर थे। उसका वह शरीर विशाल, परम शोभायमान और महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था। देवीने उसे अनेक प्रकारके वस्त्र, नाना प्रकारके आभूषण और बहुत-से उत्तम आशीर्वाद देकर कहा—'तुम मेरे पुत्र हो। मेरे अपने ही हो। तुम्हारे समान प्यारा मेरा यहाँ कोई दूसरा नहीं है।'

परम सुन्दर, परम बुद्धिमान् और परम पराक्रमी उस पुरुषने आदिशक्ति माता पार्वतीके चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिके साथ प्रणाम करके अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'माता! आपका प्रत्येक आदेश शिरोधार्य है। आप क्या चाहती हैं, आज्ञा प्रदान करें। मैं आपका बताया प्रत्येक कार्य निष्ठापूर्वक करूँगा।'

'तुम मेरे पुत्र हो, सर्वथा मेरे हो।' महाशक्ति देवी पार्वतीने कहा—'तुम मेरे द्वारपाल हो जाओ। चाहे कोई हो, कहींसे भी आया हो, मेरी आज्ञाके बिना मेरे अन्तःपुरमें प्रवेश न कर सके, इसका ध्यान रखना।'

गणेशका शिवगणोंसे अद्भुत युद्ध

शिवप्रियाने अपने पुत्र गणेशके हाथमें एक सुदृढ़ छड़ी दे दी। फिर उन्होंने अपने यष्टि-धारी पुत्रका सौन्दर्य देखा तो आनन्दमग्न हो गयीं। उन्होंने अपने परम प्रिय एवं सर्वाङ्गसुन्दर पुत्रको अङ्कमें लेकर उसके मुखका चुम्बन किया। इसके अनन्तर दयामयी माता पार्वतीने अपने प्राणप्रिय दण्डधारी गणराजको द्वारपर नियुक्त कर दिया और स्वयं अपनी सखियोंके साथ स्नान करने चली गयीं।

'देव! आप कहाँ जाना चाहते हैं?' कुछ ही देरमें स्वयं कर्पूरगौर शशाङ्कशेखर वहाँ पहुँचे। वे शिवाके प्राणप्रिय पुत्रसे सर्वथा अपरिचित थे। चन्द्रमौलि अन्तःपुरमें प्रविष्ट होना ही चाहते थे कि उन्हें रोकते हुए दण्डधारी गणराजने उनसे कहा—'आप माताकी आज्ञाके बिना भीतर नहीं जा सकते। जननी स्नान कर रही हैं। इस समय आप यहाँसे चले जाइये।'

'मूर्ख! तू किसे रोक रहा है?' दण्डधारी गणराजके द्वारा अनपेक्षित व्यवधान देखकर करुणामय त्रिनयनने कहा—'तुझे पता नहीं कि मैं कौन हूँ? मैं प्रत्यक्ष शिव ही यहाँ आया हूँ।'

'आप चाहे जो कोई हों, किंतु मेरी माताकी आज्ञा बिना इस समय भीतर नहीं जा सकते।' मातृभक्त ने बालक गणेशने अपनी सुदृढ़ यष्टि आगे कर दी।

'यह कौन है और मेरा मार्गावरोध क्यों कर रहा है?' लीलानायक सर्वान्तर्यामी, विनोदी शिवने अपने गणोंको आज्ञा दी और स्वयं वहाँसे कुछ दूर हटकर द्वारके समी ही खड़े हो गये।

'तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? और तुम्हें क्या अभीष्ट है?' महेश्वरके गणोंने पार्वतीनन्दनके समीप जाक उससे कहा—'यदि तुम अपनी प्राण-रक्षा चाहते हो तो यहाँसे शीघ्र ही अन्यत्र चले जाओ।'

'तुम लोग कौन हो और कहाँसे आये हो?' अत्य धीर-वीर गिरिजानन्दनने निर्भय होकर शिवगणोंसे कहा—'देखनेमें तो बड़े सुन्दर हो, किंतु अकारण मुझे क्यों छे रहे हो?'

'हम मुख्य शिवगण और द्वारपाल हैं।' 'हम सर्वान्तर्या एवं सर्वसमर्थ श्रीपार्वतीवल्लभके आदेशसे तुम्हें यहाँ हटाने आये हैं। तुम्हें भी गण समझकर हम लोगोंने कु नहीं कहा है। अब कुशल इसीमें है कि तुम यहाँसे स्व हट जाओ; अन्यथा व्यर्थ ही मृत्यु-मुखमें चले जाओगे

'मैं माता पार्वतीका पुत्र हूँ। माताने मुझे किसीको भी भीतर प्रवेश करनेकी आज्ञा नहीं दी है।' महाशक्ति शक्तिमान् पुत्र गणेशने शिवगणोंसे कहा—'यदि तुम्हें अ स्वामी शिवकी आज्ञाका पालन करना आवश्यक है यहीं खड़े रहो; पर द्वारके भीतर नहीं जा सकते।'

'प्रभो! वह बालक माता पार्वतीका पुत्र है अ अपने स्थानसे विचलित नहीं हो रहा है।' शिवग महेश्वरके समीप जाकर उनकी स्तुति करते हुए अत्य विनीत स्वरमें निवेदन किया—'वह शक्तिसम्पन्न तेज बालक द्वारसे किसी प्रकार नहीं हटता और युद्धके लि प्रस्तुत है।'

'एक बालकके सम्मुख तुम लोग सर्वथा अवश हो ग लीलाविहारी कर्पूरगौर श्रीपार्वतीवल्लभने सरोष मुद्रामें अ गणोंसे कहा—'कुछ नहीं कर सके? वह निरा बा और एकाकी है। यदि तुम्हें युद्ध भी करना हो तो अ

करो। शत्रुकी भाँति बकनेवाले बालकको द्वारसे शीघ्र भगा दो।'

शिवगणोंने महेश्वरके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने-अपने शस्त्र ले पार्वतीनन्दनकी ओर चले। शिवगणोंकी सशस्त्र-वाहिनीको अपनी ओर आती देख परमपराक्रमी षडानन-अनुज दण्डपाणिने अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक उनसे कहा—

'शिवकी आज्ञा-पालन करनेवाले गणो! आओ! मैं अकेला बालक ही शिवाकी आज्ञाका पालन करनेवाला हूँ, तथापि देवी पार्वती अपने पुत्रका और त्रिपुरारि अपने गणोंका बल देखें।

सर्वेश्वरी-तनयने आगे कहा—'विजय और पराजय हमारी-तुम्हारी नहीं होगी। यह तो माता अम्बिका और पशुपतिकी होगी। तुम लोग अपने स्वामीकी ओर देखकर अपने शस्त्रोंका प्रयोग करो, मैं अपनी माताकी आज्ञाके पालन-हेतु युद्धके लिये प्रस्तुत हूँ।'

बालक गणपतिके तीक्ष्ण वाक्-शरोंसे क्रुद्ध होकर नन्दी, भृङ्गी आदि गणोंने उनपर आक्रमण कर दिया। तब कुपित होकर गणेशजीने भी उनपर कठोर प्रहार करना प्रारम्भ किया। गणेशजीके भीषण प्रत्याक्रमणसे शिवगण अत्यन्त व्याकुल हो गये। वे शक्ति-पुत्रके असह्य प्रहारसे प्राण बचाकर यत्र-तत्र भाग खड़े हुए।

कल्पान्तकरणे कालो दृश्यते च भयंकरः।
यथा तथैव दृष्टः स सर्वेषां प्रलयंकरः॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १५। २०)

'जैसे कल्पके अन्तमें भयंकर काल दिखायी देता है, उसी प्रकार गणेशजी उस समय सबको प्रलयंकर दिखायी देने लगे।'

उस समय जगन्माता पार्वतीके अप्रतिम शूर पुत्रके कठोर प्रहारसे कितने ही शिवगणोंका अङ्ग-भंग हो गया, कुछ गण वहीं धराशायी हो गये और कुछके शरीरसे रुधिर बहने लगा।

'उस प्रबल पराक्रमीके सम्मुख हम नहीं टिक सकते।' कुछ गणोंने तुरंत भगवान् भूतभावनके चरणोंमें प्रणामकर विनयपूर्वक निवेदन किया। 'उस बालकका प्रलयाग्नि-तुल्य क्रोध हमें दग्ध-सा किये देता है।'

अपने गणोंके मुखसे उनके संहार एवं पराजयका संवाद प्राप्तकर लीला-विशारद महादेव क्रुद्ध हुए। उन्होंने इन्द्रादि देवताओं, षडानन आदि श्रेष्ठ गणों एवं भूत-प्रेत-पिशाचोंको बुलाकर उनसे कहा—'उसे पराजित करो। मेरे ही द्वारपर बालकका यह उपद्रव मुझे असह्य हो रहा है।'

सुरेन्द्रादि देव, वीरवर तारकारि कार्तिकेय आदि गण एवं समस्त प्रेत-पिशाचोंने अपने-अपने आयुध उठाये और निर्विकार कामारिके आदेशानुसार योगक्षेमकर्त्री माहेश्वरीके किशोर कुमार गणेशको चारों ओरसे घेर लिया।

चतुर्दिक् अप्रतिम सशस्त्र देवता, गण एवं भूत-प्रेत उनके मध्य सर्वथा एकाकी दण्डपाणि पार्वती-पुत्र गणेश। सबने एक साथ बुद्धिविशारद गणेशपर भयानक आक्रमण कर दिया, किंतु महाशक्तिके पुत्र कुमार गणेश अप्रतिम शौर्य-वीर्यसम्पन्न एवं प्रबल पराक्रमी थे। उन्होंने शत्रुपक्षके तीक्ष्णतम प्रहारको शिरीष-सुमनके तुल्य समझा और स्वयं वे शिवप्रेषित वाहिनीका वीरतापूर्वक संहार करने लगे।

शर्वाणी-सुत गणेशके प्रहारसे अधीर होकर देव-गण आदि परस्पर कहने लगे—

किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं न ज्ञायन्ते दिशो दश।
परिघं भ्रामयत्येष सव्यापसव्यमेव च॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १५। ५३)

'क्या करें? कहाँ जायँ? दिशाएँ दीखती नहीं, यह बालक दायें-बायें दोनों ओर परिघ घुमाता है।'

'प्रभो! यह कौन-सा श्रेष्ठ गण है?' युद्धसे भागे हुए देवता और गणोंने नीलकण्ठके चरणोंमें बारम्बार प्रणामकर निवेदन किया। 'हमने अनेक युद्ध देखे हैं, पर ऐसा समर न कभी सुना, न देखा है। इस दुर्धर्ष उग्र बालकपर विजय प्राप्त करना कठिन प्रतीत होता है। आप कृपापूर्वक कोई यत्न कीजिये।'

शिवके त्रिशूलसे दण्डपाणि गणेशका मस्तक कटा

'इस संवादसे परम क्रोधी रुद्र अत्यधिक कुपित हुए। वे अपने गणोंके साथ माया संहार-रूपिणी उमाके अन्यतम वीर पुत्र गणेशके सम्मुख पहुँचे। यह देख सम्पूर्ण देव-सेना क्षीराब्धिशायी विष्णुके साथ हर्षोल्लासपूर्वक शिवके समीप पहुँच गयी।'

रुद्रदेवको बालक गणेशके साथ युद्धके लिये उद्यत देखकर देवताओंने उनके त्रैलोक्यपावन चरणोंका स्पर्श किया और फिर सोत्साह रणाङ्गणमे कूद पड़े। महादिव्य आयुधधारी महाशक्तिशाली श्रीहरि भी गणेशसे युद्ध करने लगे।

महाशक्ति-पुत्र गणेशने देवताओंपर भीषण दण्ड-प्रहार किया। उनके दण्ड-प्रहारसे श्रीहरि भी घबरा गये। भगवान् त्रिलोचन भी दीर्घकालतक भीषण संग्राममें अपने सैन्यदलका निर्मम दलन होते देखकर चकित हो गये। उन्होंने मन-ही-मन विचार किया—'**छलेनैव च हन्तव्यो नान्यथा हन्यते पुनः।**' (शिवपु० रुद्रसं०, कु० खं० १६। ८)—इसे छलसे ही मारा जा सकता है, अन्य किसी रीतिसे इसे मारना सम्भव नहीं।'

इस निश्चयके साथ ही त्रिनेत्र विशाल वाहिनीके मध्य खड़े हो गये। सर्वाधार श्रीहरि भी वहाँ आ गये। शिवके गण हर्षोल्लासपूर्वक नृत्य करने लगे। उस समय धर्म-परायणा पार्वतीके पुत्रने अपने दण्डसे श्रीविष्णुकी पूजा की।

'विभो! मैं इसे मोहित करता हूँ।' श्रीहरिने धीरेसे वृषभध्वजसे कहा—'उस समय आप इसे मार डालें। यह बालक छलके बिना नहीं मारा जा सकता।'

भगवान् शिवने श्रीहरिको ऐसा करनेकी अनुमति दे दी। त्रैलोक्यपति श्रीविष्णुके विचारसे अवगत होते ही धर्ममयी पार्वतीकी दोनों शक्तियोंने गणेशको अपना बल दे दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गयीं। श्रीहरिने आशुतोष शिवका स्मरण किया और गणेशको ठगनेका प्रयत्न करने लगे।

भगवान् शिवने कुपित होकर अपना तीक्ष्णतम त्रिशूल उठाया। शिवापुत्र गणेशने शिवको त्रिशूल उठाते देख सर्वशक्तिप्रदायिनी माताके चरणोंका स्मरणकर शिवके हाथमें शक्ति मारी। गणेशके भयानक प्रहारसे शिवका त्रिशूल उनके हाथसे छूट गया।

रुद्र अत्यन्त कुपित हुए। उन्होंने अपना पिनाक नामक धनुष उठाया। वीरवर गणेशने परिघ-प्रहारसे उसे भी धरतीपर गिरा दिया। उनके पाँचों हाथ भी घायल हो गये। तब उन्होंने दूसरे पाँच हाथोंमें शूल लिये।

महाशक्तिका शक्तिमान् पुत्र अपने परिघके प्रहारसे देवसैन्यको व्यथित और विचलित कर रहा था। यह देखकर त्रिपुरारिने मन-ही-मन कहा—'अरे! जब इस युद्धमें मेरी दशा है; तब मेरे गणोंको कितना कष्ट हुआ होगा?'

अद्भुत पराक्रमी पार्वतीपुत्रके परिघ-प्रहारसे देवता गण खड़े नहीं रह सके। वे अपने प्राणोंकी रक्षाके जिधर मार्ग दीखा, उधर ही भागने लगे।

गणपतिने अपनी जननीका स्मरणकर अनुपम विष्णुपर आक्रमण किया। उस घातक आक्रमणसे धरती पर गिर पड़े, किंतु फिर उठकर वे पार्वतीनन्दनसे करने लगे।

पार्वती-पुत्र गणेशको विष्णुसे युद्धमें संलग्न देख शिवने उत्तर दिशासे अपने तीक्ष्णतम शूलसे उनपर प्रहार जिससे बालक गणेशका मस्तक कटकर दूर जा गिरा।

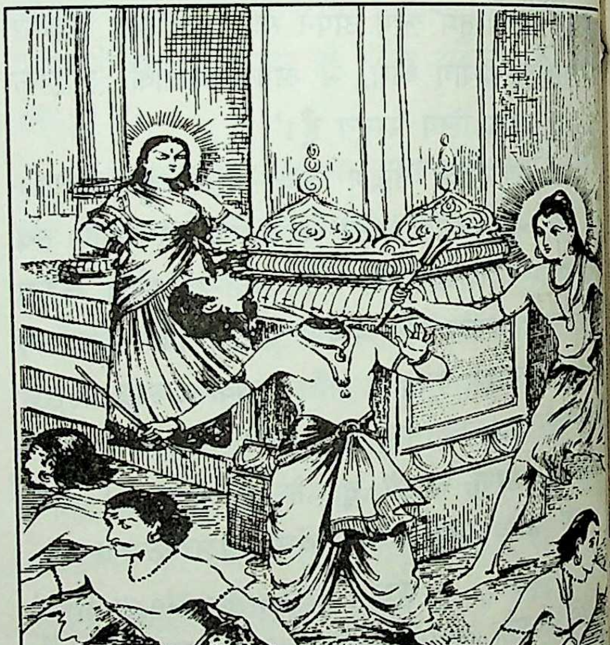

देवताओं और गणोंने संतोषकी साँस ही नहीं हर्षोल्लासपूर्वक वे मृदङ्ग और नगाड़े भी बजाने लगे।

शिवाकी व्यथा और उनका कोप

'मेरे पुत्रका शिरश्छेद करके देव-समुदाय और विजय-महोत्सव मना रहे हैं'—यह विदित होते शंकरार्धशरीरिणी रुद्राणी विकल-विह्वल हो गयीं।

फिर उमाने कुपित होकर सहस्त्रों तेजस्विनी रचना की। वे सभी शक्तियाँ परम शक्तिसम्पन्न एवं थीं। उन्होंने जगदम्बाके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम

और अत्यन्त विनयपूर्वक पूछा—'माता! हमें क्या आज्ञा है?'

'शक्तियो! मेरी आज्ञासे तुम लोग किसी प्रकारका विचार किये बिना प्रलय मचाओ।' अत्यन्त शोकाकुल जगज्जननीने क्रुद्ध होकर शक्तियोंको आज्ञा प्रदान की—'तुम लोग देव, ऋषि, यक्ष, राक्षस तथा स्वजन-परिजन—जिनको जहाँ पाओ, वहीं भक्षण करो।' फिर क्या था? वे महाभयानक देवियाँ कुपित होकर देवता आदि जिन्हें जहाँ पातीं, वहीं उन्हें पकड़कर अपने भयानक मुँहमें डाल लेतीं। उन शक्तियोंका वह जाज्वल्यमान तेज सभी दिशाओंको दग्ध-सा कर रहा था। सर्वत्र हाहाकार मच गया। इन्द्रादि देवगण तथा ऋषियोंके मनमें असमयमें ही संहारका विश्वास होने लगा। सभी अपने जीवनसे निराश होने लगे।

'यदि भगवती गिरिजा संतुष्ट हों, तभी यह आपदा टल सकती है। सबने मन्त्रणा की। सुख-शान्तिका अन्य कोई पथ नहीं दीखता।'

'क्रुद्धा पार्वतीके समीप कौन जाय?' 'देवताओंकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। पुत्रका वधकर माताके सम्मुख जानेका साहस कौन करे?'

उसी समय देवर्षि नारद वहाँ पहुँचे। विपत्तिग्रस्त देवताओंने उन्हें अपनी व्यथा-कथा सुनायी और कहा—'परमेश्वरी गिरिजाकी प्रसन्नताके बिना हमारा कल्याण सम्भव नहीं।'

माता पार्वतीकी स्तुति

नारदजीके साथ समस्त देवता और ऋषिगण माता पार्वतीके समीप पहुँचकर उन्हें प्रसन्न करनेके लिये उनकी स्तुति करने लगे। ऋषियोंकी स्तुति एवं उनका दैन्य देखकर दयामयी सर्वलोकेश्वरी जननीका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने ऋषियोंसे कहा—

मत्पुत्रो यदि जीवेत तदा संहरणं न हि।
यथा हि भवतां मध्ये पूज्योऽयं च भविष्यति॥
सर्वाध्यक्षो भवेदद्य यूयं कुरुत तद्यदि।
तदा शान्तिर्भवेल्लोके चान्यथा सुखमाप्स्यथ॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० ख० १७। ४२-४३)

'ऋषियो! यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय और वह आप लोगोंके मध्य पूजनीय मान लिया जाय तो संहार नहीं होगा। जब आप लोग उसे 'सर्वाध्यक्ष' का पद प्रदान कर देंगे, तभी लोकमें शान्ति हो सकती है, अन्यथा आप लोगोंको सुख नहीं प्राप्त हो सकता।'

दण्डपाणि गजमुख हुए

'ठीक है, जिस प्रकार त्रैलोक्य सुखी हो, वही करना चाहिये।' ऋषियोंने निखिल-सृष्टि-नियामिका जननीका कथन इन्द्रादि देवताओंको सुनाया। वे सभी उदास और दुःखी मनसे अहिभूषणके समीप पहुँचे। उन्होंने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक त्रैलोक्यपति शिवके चरणोंमें प्रणामकर माताकी बात कही। तब सर्वान्तर्यामी कर्पूरगौरने देवताओंसे कहा—'अब उत्तर दिशाकी ओर जाना चाहिये और जो जीव पहले मिले, उसका सिर काटकर उस बालकके शरीरपर जोड़ देना चाहिये।'

महेश्वरकी आज्ञासे देवताओंने तत्काल सर्वपापविमोचनी पार्वतीके शिशु गणेशका कबन्ध (मस्तकरहित शरीर) धो-पोंछकर विधिपूर्वक उसकी पूजा की और फिर उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े।

वहाँ मार्गमें सर्वप्रथम एक गज मिला, जिसको एक ही दाँत था। देवताओंने उसका सिर लाकर गणेशके शरीरपर जोड़ दिया।

'हमने अपना काम पूरा कर लिया।' देवताओंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश—त्रिदेवोंके चरणोंमें प्रणामकर निवेदन किया और नीलकण्ठकी ओर अभिमुख होकर वे कहने लगे—'प्रभो! आपके जिस तेजसे हम सब प्रकट हुए हैं, आपका वही तेज वेद-मन्त्रोंके योगसे इस शिशुमें प्रवेश करे।'

इस प्रकार समस्त देवताओंने वेद-मन्त्रोंसे जलको अभिमन्त्रित किया, फिर सर्वात्मा शिवका स्मरणकर उस जलको उस बालकपर छिड़क दिया। उस अभिमन्त्रित जलका स्पर्श होते ही सर्वदेवमय शिवकी इच्छासे उस बालककी चेतना लौट आयी। वह जीवित हो गया और इस प्रकार उठ बैठा, जैसे निद्रा त्यागकर उठा हो—

सुभगः सुन्दरतरो गजवक्त्रः सुरक्तकः।
प्रसन्नवदनश्चाति सुप्रभो ललिताकृतिः॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १७। ५७)

'वह सौभाग्यशाली बालक अत्यन्त सुन्दर था। उसका

मुख हाथीका-सा था। उसके शरीरका रंग लाल था, चेहरेपर अत्यन्त प्रसन्नता खेल रही थी। उसकी कमनीय आकृतिसे सुन्दर प्रभा फैल रही थी।'

उस परम तेजस्वी पार्वती-पुत्रको जीवित देखकर उपस्थित सुर-समुदाय एवं शिवगण आनन्द-विभोर हो गये। सबका दुःख दूर हो गया। सबने यह सुखद संवाद हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीको सुनाया। जननी दौड़ी आयीं और अपने योग्यतम शिशुको जीवित देखा तो जैसे सब कुछ भूल गयीं। उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही।

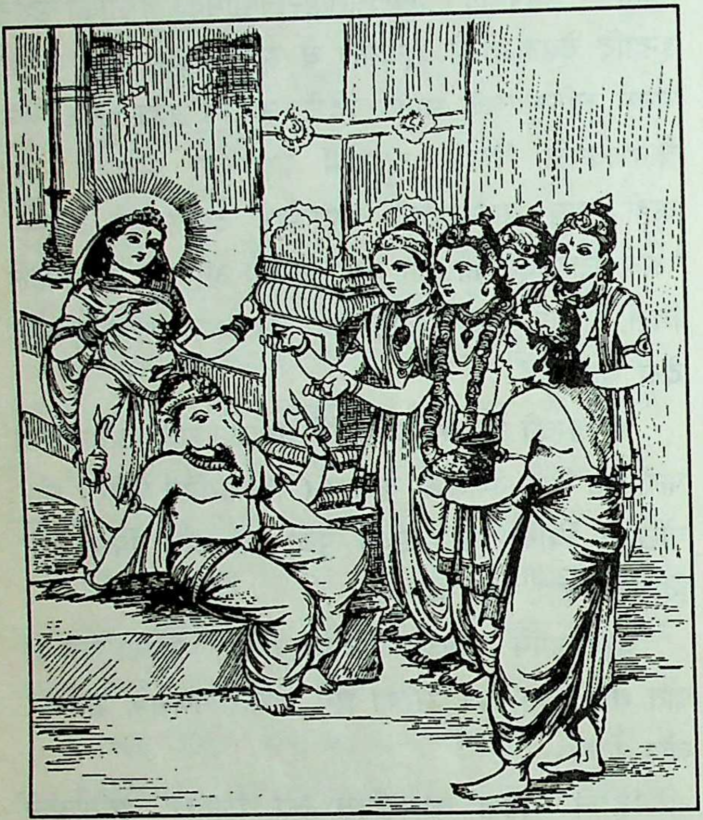

समस्त देवताओं और गणाध्यक्षोंने गजाननका अभिषेक किया।

आनन्दोत्सव और गजमुखको वर-प्रदान

जननीने तो हर्षविह्वल होकर अपने प्राणप्रिय पुत्रको दोनों हाथोंसे उठाकर अपनी गोदमें लेकर छातीसे सटा लिया। पुत्रके पुनर्जीवित हो जानेसे उनका प्रज्वलित हृदय शीतल हो रहा था। हर्षातिरेकसे जगदीश्वरीके नेत्र मुँद-से गये थे। कुछ देर बाद योगमार्गप्रदर्शिनी माता पार्वतीने प्रसन्न होकर अपने प्राणाधिक पुत्र गजमुखको अनेक प्रकारके वस्त्र और आभूषण प्रदान किये।

सिद्धियोंने उनकी विधिपूर्वक पूजा की तथा क्लेशना करुणामूर्ति जगदम्बाने अपने सर्वदुःखहारी कर-कम उनके अङ्गोंका स्पर्श किया। अत्यधिक स्नेहके कारण अपने पुत्र गजाननका मुख बारम्बार चूमने लगीं।

'बेटा! इस समय तुम्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा।' अत्यन्त प्रेमपूर्वक शिवज्ञानस्वरूपिणी शिवप्रियाने अद्वितीय पुत्रको वर प्रदान करते हुए कहा—तू धन्य है अबसे सम्पूर्ण देवताओंमें तेरी अग्रपूजा होती रहेगी तुझे कभी दुःखका सामना नहीं करना पड़ेगा—

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पूर्वपूज्यो भवाधुना।
सर्वेषाममराणां वै सर्वदा दुःखवर्जितः॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८।

संसारतारिणी दयामयी जननीने अपने आत्मज गजवक् अमोघ वर प्रदान करते हुए आगे कहा—

'इस समय तेरे मुखपर सिन्दूर दीख रहा है, इस मनुष्योंको सदा सिन्दूरसे तेरी पूजा करनी चाहिये। मनुष्य पुष्प, चन्दन, सुन्दर गन्ध, नैवेद्य, रमणीय आ ताम्बूल और दानसे तथा परिक्रमा और नमस्कार क विधिपूर्वक तेरी पूजा करेगा, उसे सारी सिद्धियाँ प्राप्त जायँगी और उसके सभी प्रकारके विघ्न नष्ट हो जायँगे—इस लेशमात्र भी संशय नहीं है।'

इन्द्रादि देवगण पार्वतीके प्रिय पुत्र गजमुखको ले आशुतोष शिवके पास पहुँचे और उन्हें परमपिता शि गोदमें बैठा दिया। तब सर्व-पावन भगवान् वृषभध्वजने उनके मस्तकपर अपना वरद कर-कमल रखते हु कहा—'**पुत्रोऽयमिति मे परः**'—'यह मेरा दूसरा पुत्र है

अरुणवर्ण गणेशने भी उठकर अपने पिता नीलक अभयद पद-पङ्कजमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम कि फिर उन्होंने अपनी मोक्षप्रदायिनी माता पार्वती ब्रह्मा, विष्णु तथा नारदादि समस्त ऋषियोंके च प्रणामकर कहा—

'क्षन्तव्यश्चापराधो मे मानश्चैवेदृशो नृणाम्।'

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८।

'यों अभिमान करना मनुष्योंका स्वभाव ही है,

आप लोग मेरा अपराध क्षमा करें।' तब ब्रह्मा, विष्णु और शिव—त्रिदेवोंने प्रसन्न होकर शिवा-पुत्र गणेशको एक साथ वर प्रदान करते हुए कहा—

'अमरवरो! जैसे त्रैलोक्यमें हम तीनों देवोंकी पूजा होती है, उसी तरह तुम सबको इन गणेशका भी पूजन करना चाहिये।……मनुष्योंको चाहिये कि पहले इनकी पूजा कर लें; तत्पश्चात् हम लोगोंका पूजन करें। ऐसा करनेसे हम लोगोंकी पूजा सम्पन्न हो जायगी। देवगणो! यदि कहीं इनकी पूजा पहले न करके अन्य देवोंका पूजन किया गया तो उस पूजनका फल नष्ट हो जायगा—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

इतना ही नहीं, अमित महिमाशालिनी पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी सुरोंने वहीं उनके पुत्र शूर्पकर्णको 'सर्वाध्यक्ष' घोषित कर दिया।

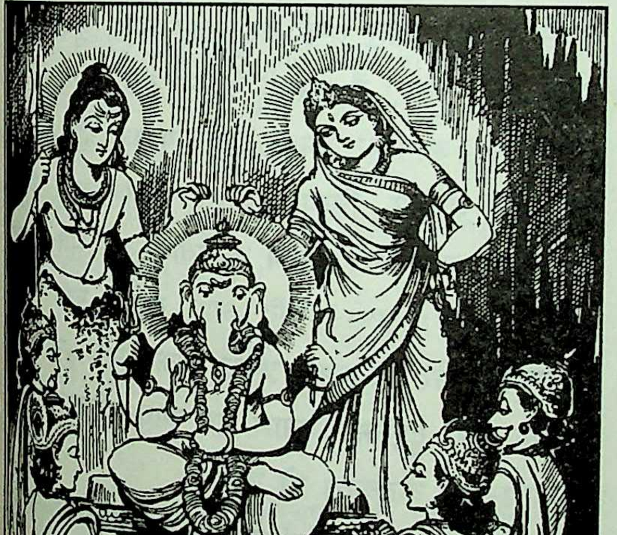

अत्यधिक हर्षोत्फुल्ल होनेके कारण भवाब्धिपोत धूर्जटिने आगे कहा—'गणनाथ! तू भाद्रपद-मासके कृष्ण-पक्षकी चतुर्थी-तिथिको शुभ चन्द्रोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है, गिरिजाके सुन्दर चित्तसे रात्रिके प्रथम प्रहरमें तेरा रूप प्रकट हुआ है; इसलिये उसी तिथिमें तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये।[१]

फिर सर्वसिद्धिप्रद उत्तम 'चतुर्थी-व्रत'की विधि बताते हुए करुणामय सर्वभूतपति कर्पूरगौरने कहा—

सर्वैर्वर्णैः प्रकर्तव्या स्त्रीभिश्चैव विशेषतः।
उदयाभिमुखैश्चैव राजभिश्च विशेषतः॥
यं यं कामयते यो वै तं तमाप्नोति निश्चितम्।
अतः कामयमानेन तेन सेव्यः सदा भवान्॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। ५९-६०)

'सभी वर्णके लोगोंको, विशेषकर स्त्रियोंको यह पूजा अवश्य करनी चाहिये तथा अभ्युदयकी कामना करनेवाले राजाओंके लिये भी यह व्रत अवश्यकर्तव्य है। व्रती मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, उसे निश्चय ही वह वस्तु प्राप्त हो जाती है; अतः जिसे किसी वस्तुकी अभिलाषा हो, उसे अवश्य तुम्हारी सेवा करनी चाहिये।'

'तथास्तु!' स्वर्गापवर्गदाता उमानाथके प्रसन्नतापूर्वक वर प्रदान करनेपर सम्पूर्ण देवताओं, ऋषियों और गणोंने उसका अनुमोदन करते हुए अनेक विधि-विधानोंसे गणाध्यक्षकी पूजा की। शिवगणोंने विशेषरूपसे वक्रतुण्डकी अर्चना एवं वन्दना की। अपने प्राणप्रिय पुत्र गजमुखकी श्रेष्ठ प्रतिष्ठा देखकर योगेश्वरेश्वरी भवानी अत्यन्त मुदित हुईं।

---

[१] चतुर्थ्यां त्वं समुत्पन्नो भाद्रे मासि गणेश्वर। असिते च तया पक्षे चन्द्रस्योदयने शुभे॥
प्रथमे च तया यामे गिरिजायाः सुचेतसः। आविर्बभूव ते रूपं यस्मात्ते व्रतमुत्तमम्॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। ३५-३६)

भगवान् श्रीगणेशके विभिन्न अवतारोंकी लीला-कथाएँ

जब-जब आसुरी शक्तियोंके प्रबल होनेसे जन-जीवन कण्टकाकीर्ण हो जाता है, निर्दय दैत्य सत्त्वगुण-सम्पन्न सुर-समुदायका सर्वस्व हरणकर निरन्तर उन्हें पीडित करते हैं, धराधामपर सर्वत्र अनीति, अनाचार और दुराचारका साम्राज्य स्थापित हो जाता है, धर्मका ह्रास एवं अधर्मकी वृद्धि होने लगती है, तब-तब मङ्गल-मोद-निधान श्रीगणेशजी भू-भार-हरणार्थ अवतार ग्रहण करते हैं। वे गुणतत्त्व-विवेचक आदिदेव गजमुख दैत्योंका विनाशकर देवताओंका अपहृत अधिकार उन्हें लौटाते हैं तथा प्रत्येक रीतिसे सद्धर्मकी स्थापना करते हैं, जिससे समस्त प्राणियोंको सुख-शान्तिकी अनुभूति होती है।

प्रत्येक युगमें उन महामहिम प्रभुके नाम, वाहन, गुण, लीला और कर्म आदि पृथक्-पृथक् होते हैं तथा उनके द्वारा जिन दैत्योंका संहार होता है, वे भी भिन्न-भिन्न ही होते हैं।

कृतयुगमें ये परमप्रभु गजानन सिंहारूढ 'महोत्कट विनायक'के नामसे प्रख्यात हुए, त्रेतामें ये मङ्गलमोद-प्रदाता गणेश मयूरारूढ 'मयूरेश्वर'के नामसे प्रसिद्ध हुए; द्वापरमें मूषकवाहन शिवपुत्रकी 'गजानन' या 'गौरीपुत्र'के नामसे ख्याति हुई; तथा कलिके अन्तमें ये धर्मरक्षक गजानन अश्वारोही 'धूम्रकेतु' के नामसे प्रसिद्ध होंगे।

(१)

महोत्कटका प्राकट्य एवं उनकी लीलाएँ

एक बारकी बात है, महर्षि कश्यप अग्निहोत्र कर चुके थे। सुगन्धित यज्ञ-धूम आकाशमें फैला हुआ था। इसी समय पुण्यमयी अदिति अपने पति महर्षि कश्यपके समीप पहुँचीं। परम तपस्वी पतिके श्रीचरणोंमें प्रणामकर उन्होंने निवेदन किया—'स्वामिन्! इन्द्रादि देवगणोंको तो मैंने पुत्ररूपमें प्राप्त किया है; किंतु पूर्ण परात्पर सच्चिदानन्द परमात्मा मेरे पुत्ररूपसे प्राप्त हों—यह कामना मेरे मनमें बार-बार उदित हो रही है। वे परम प्रभु किस प्रकार मेरे पुत्र होकर मुझे कृतकृत्य करेंगे, आप कृपापूर्वक बतलानेका कष्ट कीजिये।'

महर्षि कश्यपने अपनी प्रिय पत्नी अदितिको विनायक ध्यान, उनका मन्त्र और न्याससहित पुरश्चरणकी विधि विस्तारपूर्वक बताकर उन्हें कठोर तपस्याके प्रोत्साहित किया।

महाभागा अदिति अत्यन्त प्रसन्न हुईं और पतिकी प्राप्तकर कठोर तप करनेके लिये एकान्त शान्त अरण्यमें पहुँचीं तथा वहाँ देवदेव विनायकके ध्यान और तन्मय हो गयीं।

भगवती अदितिकी सुदृढ़ प्रीति एवं कठोर कोटि-कोटि भुवनभास्करकी प्रभासे भी अधिक परम तेज कामदेवसे भी अधिक सुन्दर देवदेव गजानन विनायक उनके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'मैं तुम्हारे अत्यन्त तपसे संतुष्ट होकर तुम्हें वर प्रदान करने आया हूँ। इच्छित वर माँगो। मैं तुम्हारी कामना अवश्य पूरी करूँ

'प्रभो! आप ही जगत्के स्रष्टा, पालक और संहारक हैं। आप सर्वेश्वर, नित्य, निरञ्जन, प्रकाशस्वरूप, निरहंकार, नाना रूप धारण करनेवाले और सर्वस्व करनेवाले हैं। प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं कृपापूर्वक मेरे पुत्ररूपमें प्रकट होकर मुझे कृतार्थ आपके द्वारा दुष्टोंका विनाश एवं साधु-परित्राण हो सामान्य-जन कृतकृत्य हो जायँ।'

'मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।' वाञ्छाकल्पतरु विना तुरंत कहा—'साधुजनोंका रक्षण, दुष्टोंका विनाश एवं इच्छाकी पूर्ति करूँगा।'

इतना कहकर देवदेव विनायक अन्तर्धान हो गये देवमाता अदिति अपने आश्रमपर लौटीं। उन्होंने पतिके चरणोंमें प्रणामकर उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त महर्षि कश्यप आनन्दमग्न हो गये।

× × ×

उधर देवान्तक और नरान्तकके कठोरतम क्रूर समस्त देव-समुदाय और ब्राह्मण अत्यन्त भयाक्रान्त हो

पा रहे थे। वे अधीर और अशान्त हो गये थे। तब ब्रह्माजीके निर्देशानुसार दुष्ट दैत्योंके भारसे पीडित—व्याकुल धरित्रीसहित देवताओं और ऋषियोंने हाथ जोड़कर आदिदेव विनायककी स्तुति करते हुए कहा—'देव! सम्पूर्ण जगत् हाहाकारसे व्याप्त एवं स्वधा और स्वाहासे रहित हो गया है। हम सब पशुओंकी तरह सुमेरु-पर्वतकी कन्दराओंमें रह रहे हैं। अतएव हे विश्वम्भर! आप इन महादैत्योंका विनाश करें।'

—इस प्रकार करुण प्रार्थना करनेपर पृथ्वीसहित देवताओं और ऋषियोंने आकाशवाणी सुनी—

कश्यपस्य गृहे देवोऽवतरिष्यति साम्प्रतम्।
करिष्यत्यद्भुतं कर्म पदानि वः प्रदास्यति॥
दुष्टानां निधनं चैव साधूनां पालनं तथा।

(गणेशपु० २। ६। १७—१८)

'सम्प्रति देवदेव गणेश महर्षि कश्यपके घरमें अवतार लेंगे और अद्भुत कर्म करेंगे। वे ही आप लोगोंको पूर्वपद भी प्रदान करेंगे। वे दुष्टोंका संहार एवं साधुओंका पालन करेंगे।'

'देवि! तुम धैर्य धारण करो।' आकाशवाणीसे आश्वस्त होकर पद्मयोनिने मेदिनीसे कहा—'समस्त देवता पृथ्वीपर जायँ और निःसंदेह महाप्रभु विनायक अवतार ग्रहणकर तुम्हारा कष्ट निवारण करेंगे।'

पृथ्वी, देवता तथा मुनिगण विधाताके वचनसे प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये।

× × ×

कुछ समय बाद सती कश्यप-पत्नी अदितिके समक्ष मङ्गलमयी वेलामें अद्भुत, अलौकिक, परमतत्त्व प्रकट हुआ। वह अत्यन्त बलवान् था। उसकी दस भुजाएँ थीं। कानोंमें कुण्डल, ललाटपर कस्तूरीका शोभाप्रद तिलक और मस्तकपर मुकुट सुशोभित था। सिद्धि-बुद्धि साथ थीं और कण्ठमें रत्नोंकी माला शोभायमान थी। वक्षपर चिन्तामणिकी अद्भुत सुषमा थी और अधरोष्ठ जपापुष्प-तुल्य अरुण थे। नासिका ऊँची थी और सुन्दर भ्रुकुटिके संयोगसे ललाटकी सुन्दरता बढ़ गयी थी। वह दाँतसे दीप्तिमान् था। उसकी अपूर्व देह-कान्ति अन्धकारको नष्ट करनेवाली थी। उस शुभ बालकने दिव्य वस्त्र धारण कर रखा था।

महिमामयी अदिति उस अलौकिक सौन्दर्यको देखकर चकित और आनन्द-विह्वल हो रही थीं। उस समय परम तेजस्वी अद्भुत बालकने कहा—'माता! तुम्हारी तपस्याके फलस्वरूप मैं तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे आया हूँ। मैं दुष्ट दैत्योंका संहारकर साधु-पुरुषोंका हित एवं तुम्हारी कामनाओंकी पूर्ति करूँगा।'

'आज मेरे अद्भुत पुण्य उदित हुए हैं, जो साक्षात् गजानन मेरे यहाँ अवतरित हुए।' हर्ष-विह्वल माता अदितिने विनायकदेवसे कहा—'यह मेरा परम सौभाग्य है; जो चराचरमें व्याप्त, निराकार, नित्यानन्दमय, सत्यस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर गजानन मेरे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए। किंतु अब आप इस अलौकिक एवं परम दिव्य रूपका उपसंहारकर प्राकृत बालककी भाँति क्रीडा करते हुए मुझे पुत्र-सुख प्रदान करें—

इदं रूपं परं दिव्यमुपसंहर साम्प्रतम्।
प्राकृतं रूपमास्थाय क्रीडस्व कुहको यथा॥

(गणेशपु० २। ६। ३५)

तत्क्षण अदितिके सम्मुख अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट सशक्त बालक धरतीपर तीव्र रुदन करने लगा। उसके रुदनकी ध्वनि आकाश, पाताल और धरतीपर दसों दिशाओंमें व्याप्त हो गयी। अद्भुत बालकके रुदनसे धरती काँपने लगी, वन्ध्या स्त्रियाँ गर्भवती हो गयीं, नीरस वृक्ष सरस हो गये; देव-समुदायसहित इन्द्र आनन्दित और दैत्यगण भयभीत हो गये।

महर्षि कश्यपकी पत्नी अदितिके अङ्कमें बालक आया जानकर ऋषि-मुनि एवं ब्रह्मचारी आदि आश्रमवासी तथा देवगण सभी प्रसन्न थे। बालकके स्वरूपके अनुसार पिता कश्यपने उसका नामकरण किया—'महोत्कट।'

ऋषिपुत्र—महोत्कटके जन्मका समाचार सुनकर असुरोंके मनमें भय व्याप्त हो गया और उन्हें बाल्यकालमें ही मार डालनेका प्रयत्न करने लगे। असुरराज देवान्तकने महोत्कटको मारनेके लिये 'विरजा' नामकी एक क्रूर राक्षसीको भेजा, परंतु महोत्कटने खेल-खेलमें ही उसे परमधाम प्रदान कर

दिया। इसके बाद 'उद्धत' और 'धुन्धुर' नामक दो राक्षस शुक-रूपमें कश्यपके आश्रममें पहुँचकर अपने तीक्ष्ण चोंचोंसे मुनिकुमार 'महोत्कट'को मारनेका प्रयास करने लगे। इसपर क्रुद्ध हो उन्होंने क्षणभरमें उन शुकरूप राक्षसोंको धरतीपर पटककर मार डाला। इसी प्रकार महोत्कटने धूम्राक्ष, जृम्भा, अन्धक, नरान्तक तथा देवान्तक आदि भयानक मायावी असुरों एवं आसुरी सेनाका अनेक लीलाओंसे संहारकर तीनों लोकोंको आनन्दित किया—विश्वकी रक्षा की। भगवान्‌के हाथों मृत्यु होनेसे इन असुरोंको परमपदकी प्राप्ति हुई। देवान्तक-युद्धमें प्रभु द्विदन्तीसे एकदन्ती हो गये और अपने एक रूपसे 'ढुण्ढिविनायक'के नामसे काशीमें प्रतिष्ठित हो गये।

(२)

भगवान् मयूरेश्वरकी लीला-कथा

त्रेतायुगकी बात है। मैथिलदेशमें प्रसिद्ध गण्डकी नगरके सद्धर्मपरायण नरेश चक्रपाणिके पुत्र सिन्धुके क्रूरतम शासनसे धराधामपर धर्मकी मर्यादाका अतिक्रमण हो रहा था। उसी समय भगवान् गणेशने 'मयूरेश्वर'के रूपमें लीला-विग्रह धारणकर विविध लीलाएँ कीं और महाबली सिन्धुके अत्याचारोंसे त्रैलोक्यका रक्षण करते हुए पुनः विधाताके शाश्वत नियमोंकी प्रतिष्ठापना की।

अत्यन्त शक्तिशाली सिन्धुके दो सहस्र वर्षकी उग्र तपस्यासे सहस्रांशु बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे अभीष्ट वरके रूपमें अमृतपात्र प्रदान करते हुए कहा—'जबतक यह अमृतपात्र तुम्हारे कण्ठमें रहेगा, तबतक तुम्हें देवता, नाग, मनुष्य, पशु एवं पक्षी आदि कोई भी दिन, रात, प्रातः तथा सायं किसी भी समय मार न सकेगा।' अब तो वर प्राप्तकर वह अत्यन्त मदोन्मत्त हो गया। अकारण ही सत्य-धर्मके मार्गपर चलनेवालोंका तथा निरपराध नर-नारियों एवं अबोध शिशुओंकी हत्या करनेमें गर्वका अनुभव करने लगा। सम्पूर्ण धरित्री रक्त-रंजित-सी हो गयी। इसके बाद उसने पातालमें भी अपना आधिपत्य जमा लिया और ससैन्य स्वर्गलोकपर चढ़ाई करके वहाँ शचीपति इन्द्रादि देवताओंको पराभूतकर तथा विष्णुको बंदी बनाकर स हाहाकार मचा दिया।

चिन्तित देवताओंने इस विकट कष्टसे मुक्ति पाने लिये अपने गुरु बृहस्पतिसे निवेदन किया। सुरगु कहा—'परम प्रभु विनायक स्वल्प पूजासे ही शीघ्र प्र होनेवाले हैं; अतः आप लोग असुरसंहारक, दशभु विनायककी स्तुति-प्रार्थना करें। ऐसा करनेसे वे करुणासि अवतरित होकर असुरोंका वधकर धराका भार हलका क और आप लोगोंका अपहृत पद पुनः प्रदान करेंगे।' प्रसन्नतापू देवताओंने भक्तिपूर्वक उनका स्तवन प्रारम्भ कर दिया।

देवताओंकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर परम प्रभु विना प्रकट हो गये और कहने लगे—'जिस प्रकार मैंने महामु कश्यपकी परम साध्वी पत्नी अदितिके गर्भसे जन्म लि था, उसी प्रकार शिवप्रिया माता पार्वतीके यहाँ अवत होकर महादैत्य सिन्धुका वध करूँगा और आप सब अपना-अपना पद प्रदान करूँगा। इस अवतारमें मेरा न 'मयूरेश्वर' प्रसिद्ध होगा'—इतना कहकर परम प्रभु विना अन्तर्धान हो गये। देवगणोंके तो हर्षका ठिकाना न र

एक बार माता पार्वती देवाधिदेव भगवान् शंकर तपश्चरणमें निरत देख उनसे कहने लगीं—'प्रभो! आप स्वयं सृष्टिके पालन एवं संहारकर्ता तथा अनन्तानन्त-को ब्रह्माण्डोंके नायक हैं, फिर आप किसे प्रसन्न करनेके लि तप करते हैं'? शूलपाणिने उत्तर दिया—'निष्पापे! मैं अनन्त महाप्रभुकी प्रसन्नताके लिये तप करता हूँ, जि शक्ति, गुण और कर्म सभी अनन्त हैं। अनन्तानन्त ब्र उनके प्रत्येक रोममें निवास करते हैं और समस्त गु ईश होनेके कारण वे 'गुणेश' कहे जाते हैं। मैं उन्हीं 'गु का निरन्तर ध्यान करता रहता हूँ।' यह सुनकर गौ जिज्ञासा प्रकट की—'प्रभो! वे परम प्रभु मुझपर कैसे प्र होंगे, मुझे उनका प्रत्यक्ष दर्शन किस प्रकार हो सके भगवान् शंकरने कहा—'हे प्रिये! निष्ठापूर्वक किये आराधन तथा तपश्चरणसे ही उनका दर्शन सुलभ हो स इसके लिये तुम्हें बारह वर्षोंतक गणेशके एकाक्षरी म

जप करना होगा।' जगन्माता पार्वती भगवान् शंकरसे उपदिष्ट उस एकाक्षरी गणेशमन्त्र (गं)-का जप करने लगीं।

× × ×

कुछ ही समय बाद भाद्रपद-मासकी शुक्ल पक्षीय चतुर्थी-तिथि आयी। सभी ग्रह-नक्षत्र शुभस्थ एवं मङ्गलमय योगमें विराजमान थे। उसी समय विराट्‌रूपमें पार्वतीके सम्मुख भगवान् गणेशका अवतरण हुआ। इस रूपसे चकित-थकित होती हुई तपस्विनी पार्वतीने कहा—'प्रभो! मुझे अपने पुत्र-रूपका दर्शन कराइये।' इतना सुनना था कि सर्वसमर्थ प्रभु तत्काल स्फटिकमणितुल्य षड्भुज दिव्य विग्रहधारी शिशुरूपमें क्रीडा करने लगे। उनकी देहकी कान्ति अद्भुत लावण्ययुक्त एवं प्रभासम्पन्न थी। उनका वक्ष:स्थल विशाल था। सभी अंग पूर्णत: शुभ चिह्नोंसे अलंकृत थे। दिव्य शोभासम्पन्न यह विग्रह ही 'मयूरेश्वर' रूपमें साक्षात् प्रकट हुआ था। मयूरेशके आविर्भावसे ही प्रकृतिमात्र आनन्दविभोर हो उठी। आकाशस्थ देवगण पुष्प-वर्षण करने लगे।

आविर्भावके समयसे ही सर्वविघ्नहारी शिवा-पुत्रकी दिव्य लीलाएँ प्रारम्भ हो गयी थीं। एक दिनकी बात है। समस्त ऋषियोंके अन्यतम प्रीतिभाजन हेरम्ब क्रीडा-मग्न थे, सहसा गृध्ररूपधारी एक भयानक असुरने उन्हें अपनी चोंचमें पकड़ लिया और बहुत ऊँचे आकाशमें उड़ गया। जब पार्वतीने अपने प्राणप्रिय बालकको आकाशमें उस विशाल गृध्रके मुखमें देखा तो सिर धुन-धुनकर करुण विलाप करने लगीं। सर्वात्मा हेरम्बने माताकी व्याकुलता देखकर मुष्टि-प्रहार मात्रसे ही गृध्रासुरका वध कर दिया। चीत्कार करता हुआ वह विशालकाय असुर पृथ्वीपर गिर पड़ा। बाल भगवान् मयूरेश उस असुरके साथ ही नीचे आये थे, परंतु वे सर्वथा सुरक्षित थे, उन्हें खरोंचतक नहीं लगी थी। माता पार्वतीने दौड़कर बच्चेको उठा लिया और देवताओंकी मिन्नतें करती हुई दुग्धपान कराने लगीं।

इसी तरह एक दिन माता पार्वती जब उन्हें पालनेमें लिटाकर लोरी सुना रही थीं, उसी समय क्षेम और कुशल नामक दो भयानक असुर वहाँ आकर बालकको मारनेका प्रयत्न करने लगे, पार्वती अभी कुछ समझ पातीं तबतक बालकने अपने पदाघातसे ही उन राक्षसोंका हृदय विदीर्ण कर दिया। वे राक्षस रक्त-वमन करते हुए वहीं गिर पड़े। भगवान्ने उन्हें मोक्ष प्रदान कर दिया।

× × ×

एक दिन माता पार्वती सखियोंके साथ मन्दिरमें पूजा करने गयीं। बालक गणेश वहीं मन्दिरके बाहर खेलने लगे। उसी समय क्रूर नामक एक महाबलवान् असुर ऋषिपुत्रके वेषमें आकर उनके साथ खेलने लगा और खेल-खेलमें हेरम्बको मार डालनेके लिये उनके केश पकड़कर धरतीपर पटकना चाहता था, परंतु लीलाधारी भगवान्ने उसका गला दबाकर तत्क्षण ही उसकी इहलीला समाप्त कर दी। सखियोंसहित पार्वती यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गयीं।

इसी तरह मङ्गलमोद प्रभु गणेशने लीला करते हुए असुर सिन्धुद्वारा भेजे गये अनेक छल-छद्मधारी असुरोंको सदा-सर्वदाके लिये मुक्त कर दिया। इस क्रममें उन्होंने दुष्ट वकासुर तथा कुत्तेरूपधारी 'नूतन' नामक राक्षसका वध किया। अपने शरीरसे असंख्य गणोंको उत्पन्न कर 'कमलासुर' की बारह अक्षौहिणी सेनाका विनाश कर दिया तथा त्रिशूलसे कमलासुरका मस्तक काट डाला। उसका मस्तक भीमा नदीके तटपर जा गिरा। देवताओं तथा ऋषियोंकी प्रार्थनापर गणेश वहाँ 'मयूरेश' नामसे प्रतिष्ठित हुए।

इधर दुष्ट दैत्य सिन्धुने जब सभी देवताओंको कारागारमें बंदी बना लिया, तब भगवान्ने दैत्यको ललकारा। भयंकर युद्ध हुआ। असुर-सैन्य पराजित हुआ। यह देख कुपित दैत्यराज अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे मयूरेशपर प्रहार करने लगा; परंतु सर्वशक्तिमान्के लिये शस्त्रास्त्रोंका क्या महत्त्व! सभी प्रहार निष्फल हो गये। अन्तमें महादैत्य सिन्धु मयूरेशके परशु-प्रहारसे निश्चेष्ट हो पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे दुर्लभ मुक्ति प्राप्त हुई। देवगण मयूरेशकी स्तुति करने लगे। भगवान् मयूरेशने सबको आनन्दितकर सुख-शान्ति प्रदान किया और अपने लीलावतरणके प्रयोजनकी पूर्णता बतलाते हुए अन्तमें अपनी लीलाका संवरण करके वे परम प्रभु परमधामको पधार गये—वहीं अन्तर्धान हो गये।

(३)

श्रीगजाननकी प्राकट्य-लीला

द्वापर युगकी बात है। एक दिन पार्वतीवल्लभ शिव ब्रह्म-सदन पहुँचे। उस समय चतुर्मुख शयन कर रहे थे। कमलासनने निद्रासे उठते ही जँभाई ली। उसी समय उनके मुखसे एक महाघोर पुरुष प्रकट हुआ। जन्म लेते ही उसने त्रैलोक्यमें भय उत्पन्न करनेवाली घोर गर्जना की। उसके उस गर्जनसे सम्पूर्ण वसुधा काँप गयी, दिक्पाल चकित हो गये।

उस महाघोर पुरुषकी अङ्ग-कान्ति जपा-पुष्पके सदृश लाल थी और उसके शरीरसे तीव्र सुगन्ध निकल रही थी। उसके रूप-सौन्दर्यको देखकर पद्मयोनि भी चकित हो गये। उन्होंने उससे पूछा—'तुम कौन हो? तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ है और तुम्हें क्या अभीष्ट है?'

उक्त पुरुषने उत्तर दिया—'देवाधिदेव! आप अनेक ब्रह्माण्डोंका निर्माण करते हैं, सर्वज्ञ हैं, फिर अनजानकी तरह कैसे पूछ रहे हैं? जँभाई लेते समय मैं आपके मुखसे प्रकट हुआ आपका पुत्र हूँ; अतएव आप मुझे स्वीकार कीजिये और मेरा नामकरण कर दीजिये।'

विधाता अपने पुत्रका सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो गये थे, अब उसकी मधुर वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'बेटा! अतिशय अरुणवर्ण होनेके कारण तेरा नाम 'सिन्दूर' होगा। त्रैलोक्यको अधीन करनेकी तुझमें अद्भुत शक्ति होगी। तू क्रोधपूर्वक अपनी विशाल भुजाओंमें पकड़कर जिसे दबोच लेगा, उसके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे, त्रैलोक्यमें तेरी जहाँ इच्छा हो, तुझे जो स्थान प्रिय लगे, वहीं निवास कर।'

पितासे इतने वर प्राप्तकर मदोन्मत्त सिन्दूर सोचने लगा—'उनका वर-प्रदान सत्य है कि नहीं, कैसे पता चले? यहाँ कोई है भी नहीं, जिसे मैं अपनी भुजापाशमें आबद्धकर वरका परीक्षण कर लूँ। कहाँ जाऊँ? कहीं तो कोई नहीं दीखता।'

अब वह सीधे पितामहके समीप पहुँचा। उसने अपनी दोनों भुजाओंको तौलते हुए गर्जना की। उसकी कुचेष्टाकी कल्पना करके भयभीत पद्मयोनिने दूर जाकर पूछा—'लौट कैसे आये बेटा?'

'आपके वरकी परीक्षा करना चाहता हूँ।'

सिन्दूरका कथन सुनकर पितामहने उसे शाप देते कहा—'सिन्दूर! अब तू असुर हो जायगा। सिन्दूर-सिन्दूरारुण प्रभु गजानन तेरे लिये अवतरित होंगे और नि ही तुझे मार डालेंगे।'

इस प्रकार शाप देते हुए पितामह प्राण लेकर दौड़ते-दौड़ते वे वैकुण्ठ पहुँचे और श्रीहरिसे नि किया—'प्रभो! इस दुष्टसे आप मेरी रक्षा कीजिये।'

वर-प्राप्त सिन्दूरकी सुगठित प्रचण्ड काया देख श्रीविष्णुने अत्यन्त मधुर वाणीमें उसे समझाना चा लेकिन सर्वथा मूर्ख, उद्दण्ड-प्रचण्ड वह असुर युद्धके लि विष्णुकी ओर बढ़ने लगा। तब भगवान् विष्णुने उसे भग शंकरसे युद्धके लिये प्रेरित किया।

बलोन्मत्त मूर्ख असुर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह वेगसे उड़ा और कैलासपर्वतपर जा पहुँचा। वहाँ आ शिव पद्मासन लगाये ध्यानस्थ थे। नन्दी और भृङ्गी आ गण उन परम प्रभुके आस-पास थे और माता पार्वती उन सेवा कर रही थीं।

सिन्दूर सतीकी ओर मुड़ा ही था कि वे वटपत्रकी काँपती हुई मूर्च्छित हो गयीं। महापातकी असुरने जगज्जन वेणी पकड़ ली और उन्हें बलपूर्वक ले चला। कोलाह त्रिपुरारिकी समाधि भङ्ग हुई।

यह देख क्रोधसे भगवान् शंकरके नेत्र लाल हो ग वे तीव्रतम गतिसे सिन्दूरके पीछे दौड़े तथा क्षणभरमें उसके समीप पहुँच गये। अत्यन्त कुपित वृषभध्वज असुरसे युद्ध करनेके लिये उद्यत थे ही; उसी समय पार्वतीने मन-ही-मन मयूरेशका चिन्तन किया। त कोटि-सूर्यसमप्रभ देवदेव मयूरेश्वर ब्राह्मणके वेषमें और शंकरके बीच प्रकट हो गये। वे अत्यन्त सुन्दर वस्त्राभूषण-भूषित थे। उन्होंने अपने तीक्ष्णतम ते परशुसे असुरको पीछे हटाकर अत्यन्त मधुर कहा—'माता गिरिजाको तुम मेरे पास छोड़ दो; शिवके साथ युद्ध करो। युद्धमें जिसकी विजय पार्वती उसीकी होंगी; अन्यथा नहीं।'

ब्राह्मणवेषधारी मयूरेशके वचन सुनकर सिन्दूर हुआ। उसने माता पार्वतीको मयूरेशके पास चले जाने और फिर युद्ध आरम्भ हुआ। परशुके आघातसे सि शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गयी। उसके शिथिल

मदनान्तकने उसपर अपने कठोर त्रिशूलका प्रहार किया, जिससे आहत होकर असुर वहीं गिर पड़ा।

विवश हो सिन्दूरने पार्वतीकी आशा छोड़ दी और वह पृथ्वीके लिये प्रस्थित हुआ। शंकर विजयी हुए।

अब ब्राह्मणवेषधारी मयूरेश अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये और अपनी माताकी ओर देखकर मन्द-मन्द मुस्कराने लगे तथा मातासे कहा—'मैं आपके पुत्ररूपमें शीघ्र ही प्रकट होकर असुरोंका विनाश करूँगा।' इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

इधर जब सिन्दूरके आतंकसे त्रैलोक्य कम्पित हो गया तब सुरगुरु बृहस्पतिके निर्देशानुसार देवगण करुणामय विनायककी स्तुति करने लगे। स्तुति करके देवता और मुनि सभी तपस्यामें संलग्न हुए। देवताओं और ऋषियोंके कठोर तपसे देवदेव गणराज प्रसन्न हो उनके समक्ष प्रकट हुए और उन्होंने कहा—'देवताओ! मैं असुर सिन्दूरका वध करूँगा। तुम लोग निश्चिन्त हो जाओ। 'गजानन' यह मेरा सर्वार्थसाधक नाम प्रसिद्ध होगा। मैं सिन्दूरका वधकर पार्वतीके सम्मुख अनेक प्रकारकी लीलाएँ करूँगा।' इतना कहकर गजानन अन्तर्धान हो गये।

देवाधिदेव भगवान् शंकरके अनुग्रहसे जगज्जननी पार्वतीके सम्मुख अतिशय तेजोराशिसे उद्दीप्त चन्द्र-तुल्य परमाह्लादक परम तत्त्व प्रकट हुआ।

माता पार्वतीने उस परम तेजस्वी मूर्तिसे पूछा—'आप कैसे हैं? कृपया परिचय देकर आप मुझे आनन्द प्रदान करें।'

तेजस्वी विग्रहने उत्तर दिया—'माता! त्रेतामें शुभ्रवर्ण षड्भुज मयूरेश्वरके रूपमें मैंने ही आपके पुत्रके रूपमें अवतरित होकर सिन्धु-दैत्यका वध किया था और द्वापरमें पुनः आपको पुत्र-सुख प्रदान करनेका जो वचन दिया था, उसका पालन करनेके लिये मैं आपके पुत्र-रूपमें प्रकट हुआ हूँ। मैंने ही ब्राह्मण-वेषमें आकर सिन्दूरके हाथसे आपकी रक्षा की थी। माता! अब मैं सिन्दूरका वधकर त्रिभुवनको सुख-शान्ति दूँगा और भक्तोंकी कामना-पूर्ति करूँगा। मेरा नाम 'गजानन' प्रसिद्ध होगा।

देवदेव विनायकको पहचानकर गौरीने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर वे उनका स्तवन करने लगीं।

माताकी प्रार्थना सुनते ही परम प्रभु अत्यन्त अद्भुत चतुर्भुज शिशु हो गये। उनकी चार भुजाएँ थीं। नासिकाके स्थानपर शुण्डदण्ड सुशोभित था। उनके मस्तकपर चन्द्रमा और हृदयपर चिन्तामणि दीप्तिमान् थी। वे गणपति दिव्य वस्त्र धारण किये, दिव्यगन्धयुक्त नवजात शिशुकी तरह माताके सम्मुख उपस्थित थे। कुछ क्षणके पश्चात् शिशुरूपधारी परम प्रभु गजाननने शिवसे कहा—'सदाचारपरायण परम पवित्र धर्मात्मा राजा वरेण्य मेरा भक्त है। उसकी सुन्दरी साध्वी पत्नीका नाम पुष्पिका है। पुष्पिका पतिव्रता, पतिप्राणा और पतिवाक्परायणा है। उन दोनोंने मुझे संतुष्ट करनेके लिये बारह वर्षोंतक कठोर तप किया था। मैंने प्रसन्न होकर उन्हें वर प्रदान किया था—'निश्चय ही मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा।' पुष्पिकाने अभी-अभी प्रसव किया है, किंतु उसके पुत्रको एक राक्षसी उठा ले गयी है। इस समय वह मूर्च्छित है; पुत्रके बिना वह प्राण त्याग देगी। अतएव आप मुझे तुरंत उस प्रसूताके पास पहुँचा दीजिये।'

गजाननकी वाणी सुनकर भगवान् शंकरने नन्दीको बुलाकर कहा—'पराक्रमी नन्दी ! माहिष्मती नामक श्रेष्ठ नगरीमें वरेण्य नामक नरेशकी पत्नी पुष्पिकाने अभी कुछ ही देर पूर्व प्रसव किया है। वह कष्टसे मूर्च्छित हो गयी है और उसके शिशुको एक राक्षसी उठा ले गयी है। तुम इस पार्वती-पुत्रको तुरंत उसके समीप रखकर लौट आओ। पुष्पिकाकी मूर्च्छा दूर होनेके पूर्व ही यह शिशु उसके समीप पहुँच जाय; अन्यथा प्रसूताके प्राण-संकटकी सम्भावना है।'

नन्दी अपने स्वामीके चरणोंमें प्रणामकर गजाननको लेकर वायुवेगसे उड़ चले और मूर्च्छिता पुष्पिकाके सम्मुख चुपचाप गजमुखको रखकर तुरंत लौट आये।

रात्रि व्यतीत हुई। अरुणोदय हुआ। पुष्पिकाने ध्यानपूर्वक अपने शिशुको देखा—रक्तवर्ण, चतुर्बाहु, गजवक्त्र, कस्तूरी-तिलक, चन्दन-चर्चित अङ्गपर पीतवर्ण-परिधान और मोतियोंकी माला तथा विविध रत्नाभरण शोभित हो रहे थे।

इस प्रकारका अद्भुत बालक देखकर पुष्पिका चकित और दुःखी ही नहीं हुई, भयसे काँपती हुई वह प्रसूति-गृहसे बाहर भागी। वह शोकसे व्याकुल होकर रोने लगी। रानीका रुदन सुनकर परिचारिकाएँ प्रसूति-गृहमें गयीं। अलौकिक बालकको देखकर वे भी भयाक्रान्त हो काँपती हुई बाहर आ गयीं। दूसरे जिन-जिन स्त्री-पुरुषोंने उन

शिशु-रूपधारी परम पुरुषका दर्शन किया, वे सभी भयभीत हुए। कुछ तो मूर्च्छित हो गये।

प्रत्यक्षदर्शियोंने राजासे कहा—ऐसे विचित्र बालकको घरमें नहीं रखना चाहिये।'

सबके मुँहसे भयभीत करनेवाले ऐसे वचन सुनकर नरेश वरेण्यने अपने दूतको बुलाकर आज्ञा दी—'इस शिशुको निर्जन वनमें छोड़ आओ।'

राजाके दूतने नवजात शिशुको उठाया और शीघ्रतासे निर्जन वनमें एक सरोवरके तटपर धीरेसे रख दिया और द्रुत गतिसे लौट चला।

गहन काननमें सरोवरके तटपर पड़े नवजात शिशुपर अचानक महर्षि पराशरकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने शिशुके समीप पहुँचकर देखा—'दिव्य वस्त्रालंकारविभूषित, सूर्यतुल्य तेजस्वी, चतुर्भुज, गजमुख अलौकिक शिशु।'

महामुनिने शिशुको बार-बार ध्यानपूर्वक देखा। उसके नन्हे-नन्हे अरुण चरण-कमलोंपर दृष्टि डाली। उनपर ध्वज, अंकुश और कमलकी रेखाएँ दिखायी दीं।

महर्षिको रोमांच हो आया। हर्षारितेकसे हृदय गद्गद, कण्ठ अवरुद्ध और नेत्र सजल हो गये। आश्चर्यचकित मुनिके मुँहसे निकल गया—'अरे, ये तो साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं। इन करुणामयने देवता और ऋषियोंका कष्ट निवारण करने और मेरा जीवन—जन्म सफल बनानेके लिये अवतार ग्रहण किया है।'

महर्षिने शिशुके चरणोंमें प्रणामकर उसे अत्यन्त आदरपूर्वक अङ्कमें ले लिया और प्रसन्न-मन द्रुत गतिसे आश्रमकी ओर चले।

गजाननके चरण-स्पर्शसे ही महर्षि पराशरका सुविस्तृत आश्रम अतिशय मनोहर हो गया। वहाँके सूखे वृक्ष भी पल्लवित और पुष्पित हो उठे। वहाँकी गायें कामधेनु-तुल्य हो गयीं। सुखद पवन बहने लगा। आश्रम दिव्यातिदिव्य हो गया।

'मेरे शिशुका पालन दिव्यदृष्टि-सम्पन्न महर्षि पराशर कर रहे हैं।' इस संवादसे नरेश वरेण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने यहाँ पुत्रोत्सव मनाया। वाद्य बजने लगे। घर-घर मिष्टान्न-वितरण हुआ। नरेशने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको बहुमूल्य वस्त्र, स्वर्ण और रत्नालङ्करण देकर संतुष्ट किया।

गजानन नौ वर्षके हुए। इस बीच उन्होंने अ भुवनमोहिनी बाल-क्रीडाओंसे महर्षि पराशर, माता व और आश्रमके ऋषियों, ऋषि-पत्नियों तथा मुनि-पु अतिशय सुख प्रदान किया। साथ ही कुशाग्रबुद्धि वि गजानन समस्त वेदों, उपनिषदों, शास्त्रों एवं शस्त्रा संचालन आदिमें पारंगत विद्वान् हो गये। उनकी प्र प्रतिभाका अनुभव करके महर्षि पराशर चकित हो ऋषिगण विस्मित रहते। गजमुख सबके अन्यतम प्री भाजन बन गये थे।

इधर सर्वथा निरंकुश, परम उद्दण्ड, शक्तिशाली सिन्दू अत्याचार पराकाष्ठापर पहुँच गया था। उसके भयसे दे पूजन और यज्ञ-यागादि सब बंद हो गये थे तथा दे ऋषि और ब्राह्मण त्रस्त थे, भीत थे। कुछ गिरि-गुफा और निविड वनोंमें छिपकर अपने दिन व्यतीत करते अधिकांश सत्त्वगुणसम्पन्न धर्मपरायण देव-विप्रादि सिन्दू कारागारमें यातना सह रहे थे।

उस उद्धत असुरकी इस अनीतिका संवाद जब परा आश्रममें पहुँचता तो गजानन अधीर और अशान्त हो और अब तो त्रैलोक्यकी दारुण स्थिति उनके लिये अ हो गयी। क्षुब्ध गजाननने अपने पिता पराशरके स जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'मुनि सिन्दूरासुरके दुराचारसे धरती त्रस्त हो गयी है, अतः और माँ दोनों मुझे आशिष् दें, जिससे मैं अधर्मका और धर्मकी स्थापना कर सकूँ।'

पुलकित महर्षि और महर्षि-पत्नीके नेत्र बरस पड़े लोग गजाननके सिरपर हाथ फेरते हुए गद्गद-कण्ठ बोल न सके, उनके मुँहसे केवल अधूरा वाक्य नि सका—'माता-पिता तो अपने प्राण-प्रिय पुत्रकी सद विजय……।'

फिर वत्सलानन्दन अपने चारों हाथोंमें अंकुश, पाश और कमल धारणकर मूषकपर आरूढ हुए। बालक गजाननने गर्जना की। उनके गर्जनसे त्रिभुवन लगा। गजानन वायुवेगसे चल पड़े। उनके परम ते स्वरूपसे प्रलयाग्नि-तुल्य ज्वाला निकल रही थी।

भयभीत दूतोंने सिन्दूरके पास जाकर इसकी दी। सिन्दूर आकाशवाणीकी स्मृतिसे चिन्तित हो

किंतु दूसरे ही क्षण क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये। वह वेगसे चला और गजमुखके सम्मुख पहुँच गया तथा अनेक प्रकारके अनर्गल प्रलापसे गजाननको डराने-धमकाने लगा।

'दुष्ट असुर!' गजाननने अत्यन्त निर्भीकतासे कहा—'मैं दुष्टोंका सर्वनाश कर धरणीका उद्धार और सद्धर्मकी स्थापना करनेवाला हूँ। यदि तू मेरी शरण आकर अपने पातकोंके लिये क्षमा-प्रार्थनापूर्वक सद्धर्मपरायण नरेशकी भाँति जीवित रहनेकी प्रतिज्ञा कर ले, तब तो तुम्हें छोड़ दूँगा; अन्यथा विश्वास कर, तेरा अन्तकाल समीप आ गया है।'

इतना कहते ही पार्वतीनन्दनने विराट् रूप धारण कर लिया। उनका मस्तक ब्रह्माण्डका स्पर्श करने लगा। दोनों पैर पातालमें थे। कानोंसे दसों दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। वे सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद विश्वरूप प्रभु सर्वत्र व्याप्त थे। वे अनादिनिधन, अनिर्वचनीय विराट् गजानन दिव्य वस्त्र, दिव्य गन्ध और दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत थे। उन अनन्त प्रभुका तेज अनन्त सूर्योंके समान था।

महामहिम गजाननका महाविराट् रूप देखकर परम प्रचण्ड वर-प्राप्त असुर सिन्दूर सहम गया, पर उसने धैर्य नहीं छोड़ा। उसने भयानक गर्जना की और फिर वह प्रज्वलित दीपपर शलभकी तरह अपना खड्ग लेकर प्रहार करना ही चाहता था कि देवदेव गजाननने कहा—'मूढ! तू मेरे अत्यन्त दुर्लभ स्वरूपको नहीं जानता; अब मैं तुझे मुक्ति प्रदान करता हूँ।'

देवदेव गजाननने महादैत्य सिन्दूरका कण्ठ पकड़ लिया। इसके बाद वे उसे अपने वज्र-सदृश दोनों हाथोंसे दबाने लगे। असुरके नेत्र बाहर निकल आये और उसी क्षण उसका प्राणान्त हो गया।

क्रुद्ध गजाननने उसके लाल रक्तको अपने दिव्य अङ्गोंपर पोत लिया। इस कारण जगत्में उन भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभुका 'सिन्दूरवदन' और 'सिन्दूरप्रिय' नाम प्रसिद्ध हो गया।

'जय गजानन!' उच्च घोष करते हुए आनन्दमग्न देवगण आकाशसे पुष्प-वृष्टि करने लगे। वहाँ हर्षके वाद्य बज उठे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं।

ब्रह्मा, इन्द्रादि देव और वसिष्ठादि मुनि 'गजाननकी जय' बोलते हुए पवित्रतम उपहार लिये धरणीका दुःख दूर करनेवाले परम प्रभु गजमुखके सम्मुख एकत्र हुए। सिन्दूर-वधसे प्रसन्न नृपतिगण भी वहाँ पहुँच गये।

उन सबने सर्वाभरणभूषित, पाश, अंकुश, परशु और मालाधारी, चतुर्भुज, मूषक-वाहन गजाननकी भक्तिपूर्वक षोडशोपचार पूजा की।

'मेरे पुत्रने लोककण्टक सिन्दूरको समाप्त किया है।' इस समाचारसे प्रसन्न होकर राजा वरेण्य भी वहाँ आ पहुँचे।

अपने पुत्रका प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर राजा वरेण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक गजाननकी पूजा की और कहा—'जिस अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-नायकको ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जान पाते, भला मैं अज्ञानी मनुष्य उसे कैसे जान पाता। मैं अपनी मूढताको क्या कहूँ? घर आयी कामधेनु और सुरतरुको मैंने बाहर खदेड़ दिया। आपकी मायासे मोहित होकर मैंने बड़ा अनर्थ किया है। आप मुझे क्षमा करें।'

पश्चात्ताप करते हुए राजा वरेण्यकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वरेण्यनन्दन गजाननने उन्हें अपनी चारों भुजाओंसे आलिङ्गन किया और फिर कहा—'नरेश! पूर्वकल्पमें जब तुमने अपनी पत्नीके साथ सूखे पत्तोंपर जीवन-निर्वाह करते हुए दिव्य सहस्र वर्षोंतक कठोर तप किया था, तब मैंने प्रसन्न होकर तुम्हें दर्शन दिया। तुमने मुझसे मोक्ष न माँगकर मुझे पुत्र-रूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की। अतएव तुम्हारे पुत्र-रूपमें सिन्दूर-वधकर भू-भार-हरण करने तथा साधु-जनोंके पालनके लिये मैंने साकार विग्रह धारण किया; अन्यथा मैं तो निराकार-रूपसे अणु-परमाणुमें व्याप्त हूँ। मैंने अवतार धारणकर सारा कार्य पूर्ण कर लिया। अब स्वधाम-प्रयाण करूँगा। तुम चिन्ता मत करना।'

'प्रभो! जगत् शाश्वत दुःखालय है।' प्रभुके स्वधाम-गमनकी बात सुनते ही राजा वरेण्यने अत्यन्त व्याकुलतासे हाथ जोड़कर कहा—'आप कृपापूर्वक मुझे इससे मुक्त होनेका मार्ग बता दीजिये।'

कृपापरवश प्रभु गजानन वहीं आसनपर बैठ गये। अपने सम्मुख बद्धाञ्जलि-आसीन राजा वरेण्यके मस्तकपर उन्होंने अपना त्रितापहारी वरद हस्त रख दिया। तदनन्तर उन्होंने नरेश वरेण्यको सुविस्तृत ज्ञानोपदेश प्रदान किया। तत्पश्चात् भगवान् श्रीगजानन अन्तर्धान हो गये।

परम प्रभुकी संनिधि, उनके कर-स्पर्श एवं अमृतमय उपदेशसे नरेश वरेण्य पूर्ण विरक्त हो गये। उन्होंने राज्यका दायित्व अमात्योंको सौंपा और स्वयं तपश्चरणार्थ वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने अपना चित्त विषयोंसे हटाकर परब्रह्म श्रीगजाननमें केन्द्रित किया तथा अपना जीवन-जन्म सफल कर लिया।

श्रीगजानन-प्रदत्त वह अमृतोपदेश 'गणेश-गीता' के नामसे प्रख्यात हुआ।

(४)

श्रीधूम्रकेतु

श्रीगणेशका कलियुगीय भावी अवतार 'धूम्रकेतु'के नामसे विख्यात होगा। जब कलियुगमें सर्वत्र धर्मका लोप हो जायगा, अत्याचार-अनाचारका साम्राज्य व्याप्त हो जायगा, आसुरी-तामसी वृत्तियोंकी प्रबलता छा जायगी, तब कलिके अन्तमें सर्वदुःखापह परम प्रभु गजानन धराधामपर अवतरित होंगे। उनका 'शूर्पकर्ण' और 'धूम्रवर्ण' नाम भी प्रसिद्ध होगा। क्रोधके कारण उन परम तेजस्वी प्रभुके शरीरसे ज्वाला निकलती रहेगी। वे नीले अश्वपर आरूढ होंगे। उन प्रभुके हाथमें शत्रु-संहारक तीक्ष्णतम खड्ग होगा। वे अपने इच्छानुसार नाना प्रकारके सैनिक एवं बहुमूल्य अमोघ शस्त्रास्त्रोंका निर्माण कर लेंगे।

फिर पातकध्वंसी परम प्रभु शूर्पकर्ण अपने तेज एवं सेनाके द्वारा सहज ही म्लेच्छोंका सर्वनाश कर देंगे। म्लेच्छ या म्लेच्छ-जीवन व्यतीत करनेवाले निश्चय ही परम प्रभु धूम्रकेतुके द्वारा मारे जायँगे। उन धर्म-संस्थापक प्रभुके नेत्रोंसे अग्नि-वर्षा होती रहेगी।

वे सर्वाधार, सर्वात्मा प्रभु धूम्रकेतु उस समय गिरिकन्दराओं एवं अरण्योंमें छिपकर वनफलोंपर जीवन-निर्वाह करनेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें सम्मानित करेंगे और करुणामय धर्ममूर्ति शूर्पकर्ण उन सत्पुरुषोंको सद्धर्म एवं सत्कर्मके पालनके लिये प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करेंगे। फिर सबके द्वारा धर्माचरण सम्पादित होगा और धर्ममय सत्ययुगका शुभारम्भ हो जायगा। (गणेशपुराण)

श्रीगणेशके प्रमुख आठ अवतार

मुद्गलपुराणमें कहा गया है कि विघ्नविनाशन गणेशके अनन्त अवतार हैं। उनका वर्णन सौ वर्षोंमें भी सम्भव नहीं है। उनमें कुछ मुख्य हैं। उन मुख्य अवतारोंमें भी ब्रह्मधारक आठ मुख्य अवतार हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

'वक्रतुण्डावतार' देह-ब्रह्मको धारण करनेवाला है, व मत्सरासुरका संहारक तथा सिंहवाहनपर चलनेवाला मा गया है। 'एकदन्तावतार' देहि-ब्रह्मका धारक है, वह मदासुर वध करनेवाला है; उसका वाहन मूषक बताया गया है 'महोदर'-नामसे विख्यात अवतार ज्ञान-ब्रह्मका प्रकाशक है उसे मोहासुरका विनाशक और मूषक-वाहन बताया गया है जो 'गजानन' नामक अवतार है, वह सांख्यब्रह्म-धारक है उसको सांख्ययोगियोंके लिये सिद्धिदायक जानना चाहिये उसे लोभासुरका संहारक और मूषकवाहन कहा गया है 'लम्बोदर' नामक अवतार क्रोधासुरका उन्मूलन करनेवाला है वह सत्स्वरूप जो शक्तिब्रह्म है, उसका धारक कहलाता है वह भी मूषकवाहन ही है। 'विकट'-नामसे प्रसिद्ध अवता कामासुरका संहारक है। वह मयूर-वाहन एवं सौरब्रह्मका धार माना गया है। 'विघ्नराज' नामक जो अवतार है, उसके वाह शेषनाग बताये जाते हैं, वह विष्णुब्रह्मका वाचक (धार तथा ममतासुरका विनाशक है। 'धूम्रवर्ण' नामक अवता अभिमानासुरका नाश करनेवाला है, वह शिवब्रह्म-स्वरूप है उसे भी मूषक-वाहन ही कहा जाता है।

इस प्रकार मङ्गलमूर्ति आदिदेव परब्रह्म परमेश्व श्रीगणपतिके अवतारोंकी अत्यन्त संक्षिप्त मङ्गलमयी लीला-कथा पूरी हुई। इसका पठन, श्रवण और मनन-चिन्तन जन-जनके लिये परम कल्याणकारक है। इन अवतारोंक पौराणिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, उससे भ बढ़कर आध्यात्मिक महत्त्व है। सर्वव्यापी परमात्म श्रीगणपति सबके हृदयमें नित्य विराजमान हैं। संग औ प्राक्तन संस्कारवश प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें समय-समयपर मात्सर्य, मद, मोह, लोभ, काम, ममता एवं अहंता-इन आन्तरिक दोषोंका उद्बोधन होता ही है। आसु सम्पत्तिके प्रतीक होनेसे इनको 'असुर' कहा गया है। इ आसुरी वृत्तियोंसे परित्राण पानेका अमोघ उपाय है—'भग गणपतिका चरणाश्रय।' गीतामें भी भगवान्‌ने यही क है—'**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते**॥' अतः आसुरी वृत्तियोंके दमन तथा दैवी सम्पदाओंके संवर्धन लिये परम प्रभु गणपतिका मङ्गलमय स्मरण करना सब लिये सर्वथा श्रेयस्कर है और यही इस अवतार-कथा सारभूत संदेश है।

◆

भगवान् सूर्य और उनकी लीला-कथाएँ

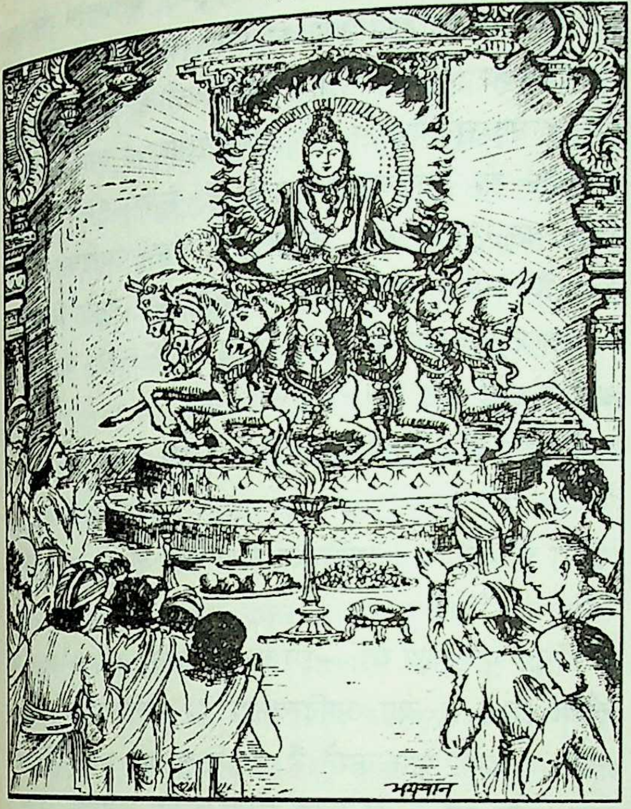

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे
जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे
विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥

(आदित्य-हृदय०)

'जो जगत्के एकमात्र नेत्र (प्रकाशक) हैं, संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं, उन वेदत्रयीस्वरूप, सत्त्वादि तीनों गुणोंके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामक तीन रूप धारण करनेवाले भगवान् सूर्यको नमस्कार है।'

भगवान् सूर्यकी महिमा और ब्रह्ममयता

भुवनभास्कर भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। वे सम्पूर्ण चराचरकी अन्तरात्मा हैं (**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च** ऋ० १।११५।१), सर्वत्र व्याप्त हैं और सभीको नित्य प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। प्रतिदिन वे पूर्व दिशामें उदित होते हैं और सायंकाल पश्चिम दिशामें अस्त होते हैं। उनकी यह दैनन्दिन लीला है। अपनी इस दैनन्दिन लीलाका वे सबको साक्षात्कार कराते हैं। वे प्रतिदिन उदय होने, उन्नतिके शिखरपर आरूढ होने तथा अस्त होनेकी लीला करते हैं। भगवान् सूर्यकी इस त्रिविध लीलाके साथ त्रिकाल गायत्री-उपासनाका प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

भगवान् सूर्य परमात्मा नारायणके साक्षात् प्रतीक हैं, इसलिये वे सूर्यनारायण कहलाते हैं। सूर्य साक्षात् परमात्म-परब्रह्म-स्वरूप हैं। सूर्यसे ही समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है, पालन होता है और उन्हींमें विलय हो जाता है। सूर्योपनिषद्में कहा गया है—

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

सूर्यनारायण और ब्रह्ममें कोई भेद नहीं है। तत्त्वतः भगवान् सूर्य परब्रह्म हैं। ब्रह्मके भर्ग—तेजका रूप ही सूर्यनारायण हैं। श्रुतियों तथा उपनिषदोंमें भगवान् सूर्य तथा ब्रह्मको एक ही निरूपित किया गया है। छान्दोग्य श्रुतिका कथन है—

'सूर्याद्वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते।' 'असावादित्यो ब्रह्म।'

प्राणिमात्रके हेतु, सृष्टिकर्ता तथा प्रत्यक्ष देवता होनेके कारण सूर्य ब्रह्मरूप हैं, इसलिये सबके उपास्य हैं। ये सर्वप्रसिद्ध देवता हैं। अन्य किसी देवताकी स्थितिमें संदेह भी हो सकता है; किंतु भगवान् सूर्यकी सत्तामें किसीको भी संदेहके लिये किंचिन्मात्र कोई अवसर नहीं है। भगवान् भुवनभास्कर आकाशमण्डलमें स्पष्ट दिखलायी पड़ते हैं। अशेष जगत्पर जो उनका नित्य चैतन्यमय अनुग्रह प्रसारित होता आया है, उसकी कोई इयत्ता नहीं है। उनकी अनन्त महिमा है। वे साक्षात् लीला-विग्रहके रूपमें सबको अपना प्रत्यक्ष दर्शन दे रहे हैं। उनका सबपर समान अनुग्रह है। उनकी अनुग्रह-लीलाओंसे सभी प्राणी अभिभूत हैं। एक दिन भी उनकी आविर्भाव एवं तिरोधान-लीला न हो तो जगत्की सम्पूर्ण मर्यादाएँ विच्छृंखलित हो जायँगी। संसारके समस्त प्राणी, जीव-जन्तु तथा वनस्पतियाँ भगवान् सूर्यकी चैतन्यशक्तिसे ही अनुप्राणित हैं। सूर्यके अभावमें न तो संसारमें कोई गति हो सकती है और न कोई क्रिया ही होना सम्भव है।

उपनिषदोंमें भगवान् सूर्यके तीन रूप माने गये हैं—(१) निर्गुण-निराकार, (२) सगुण-निराकार तथा (३) सगुण-साकार। यद्यपि भगवान् सूर्य निर्गुण-निराकार हैं, तथापि अपनी माया-शक्तिके सम्बन्धसे सगुण-साकार भी हैं। उपनिषदोंमें इनके स्वरूपका मार्मिक वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है—

'य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीत।'

(छान्दोग्य० १। ३। १)

'जो ये भगवान् सूर्य आकाशमें तपते हैं, उनकी उद्गीथरूपसे उपासना करनी चाहिये।' **'आदित्यो ब्रह्मेति** (छान्दोग्य० ३। १९। १)। 'आदित्य ब्रह्म है'—इस रूपमें आदित्यकी उपासना करनी चाहिये।

'आदित्य ओमित्येवं ध्यायंस्तथात्मानं युञ्जीतेति ॥'

(मैत्रा० ५। ३)

'आदित्य ही ओम् है'—इस रूपमें आदित्यका ध्यान करते हुए अपनेको तद्रूप करना चाहिये।

चाक्षुषोपनिषद्में यह वर्णन आया है कि सांकृति मुनिने आदित्यलोकमें जाकर भगवान् सूर्यको नमस्कार किया और चाक्षुष्मती-विद्या-प्राप्तिके लिये उनकी प्रार्थना की। महामुनि-याज्ञवल्क्यने भी आदित्यलोकमें जाकर और उन्हें प्रणामकर कहा—'भगवन् आदित्य! आप अपने आत्मतत्त्वका वर्णन कीजिये।' सूर्यदेवने दोनों मुनियोंको अभीष्ट विद्याएँ प्रदान कीं।

भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्व (अध्याय ४८। २१—२८)-में भगवान् वासुदेवने साम्बको उनकी जिज्ञासाका उत्तर देते हुए कहा—'सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं, वे इस समस्त जगत्के नेत्र हैं, इन्हींसे दिनका सर्जन होता है। निरन्तर रहनेवाला इनसे अधिक कोई देवता नहीं है। इन्हींसे यह जगत् उत्पन्न होता है और अन्तसमयमें इन्हींमें लयको प्राप्त होता है। कृत आदि लक्षणोंवाला यह काल भी दिवाकर ही कहा गया है। जितने भी ग्रह, नक्षत्र, योग, राशियाँ, करण, आदित्यगण वसुगण, रुद्र, अश्विनीकुमार, वायु, अग्नि, शक्र, प्रजापति, समस्त भूर्भुवः स्वः आदि लोक, सम्पूर्ण नग (पर्वत), नाग, नदियाँ, समुद्र तथा समस्त भूतोंका समुदाय है—इन सभीके हेतु दिवाकर ही हैं। इन्हींसे यह जगत् स्थित रहता, अपने अर्थमें प्रवृत्त होता तथा चेष्टाशील होता हुआ दिखलायी पड़ता है। इनके उदय होनेपर सभीका उदय होता है और अस्त होनेपर सब अस्त हो जाते हैं। जब ये अदृश्य होते हैं तो फिर कुछ भी यहाँ नहीं दीख पड़ता। तात्पर्य यह कि इनसे श्रेष्ठ कोई देवता न है, न हुआ है और न भविष्यमें होगा ही। इसीलिये ये समस्त वेदोंमें 'परमात्मा' नामसे पुकारे जाते हैं। इतिहास और पुराणोंमें इन्हें 'अन्तरात्मा' नामसे अभिहित किया जाता है। ये बाह्यात्मा, सुषुम्णास्थ, स्वप्नस्थ और जाग्रत्-स्थितिवाले होकर रहते हैं। इस प्रकार ये भगवान् सूर्य आर्य देवता हैं।'

जैसे भगवान् विष्णुका स्थान वैकुण्ठ, भूतभावन शंकरका कैलास तथा चतुर्मुख ब्रह्माका स्थान ब्रह्मलोक है, वैसे ही भुवनभास्कर सूर्यका स्थान आदित्यलोक सूर्यमण्डल है। प्रायः लोग सूर्यमण्डल और सूर्यनारायणको एक ही मानते हैं। सूर्य ही कालचक्रके प्रणेता हैं, सूर्यसे ही दिन-रात्रि, घटी, पल, मास, पक्ष, अयन तथा संवत् आदिका विभाग होता है। सूर्य सम्पूर्ण संसारके प्रकाशक हैं, इनके बिना सब अन्धकार है। सूर्य ही तेज, ओज, बल, यश, चक्षु, श्रोत्र, आत्मा और मन हैं—

'आदित्यो वै तेज ओजो बलं यशश्चक्षुःश्रोत्रे आत्मा मनः'

(नारायणोपनिषद् १५

'मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते।'

(तै० उ० १।५।१

भूः, भुवः एवं स्वः—इन तीन लोकोंकी अपेक्षा 'महः' जो चौथा लोक है, वह आदित्य ही है। आदित्यमें ही समस्त लोक वृद्धिको प्राप्त करते हैं। आदित्यलोक महान् है। 'भूः भुवः और स्वः'—ये तीनों लोक इसके अवयव—अङ्ग हैं और यह अङ्गी है। आदित्यके योगसे ही अन्य लोक महत्ता प्राप्त करते हैं, अतः आदित्यकी महिमा अद्वितीय है।

आदित्यलोकमें भगवान् सूर्यनारायणका साकार विग्रह है। वे रक्तकमलपर विराजमान हैं, उनका वर्ण हिरण्मय है। उनकी चार भुजाएँ हैं। वे दो भुजाओंमें पद्म धारण किये हैं और उनके दो हाथ अभय तथा वर-मुद्रासे सुशोभित हैं। वे सप्ताश्वयुक्त रथमें स्थित हैं। जो उपासक ऐसे स्वरूपवाले उन भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं—'उन्हें मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। उपासकके सम्मुख प्रकट होकर वे उसकी इच्छापूर्ति करते हैं और उनकी कृपासे मनुष्यके मानसिक, वाचिक तथा शारीरिक सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।' ब्रह्मपुराणमें कहा गया है—

मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दुष्कृतम्।
सर्वं सूर्यप्रसादेन तदशेषं व्यपोहति॥

भगवान् सूर्य अजन्मा हैं, फिर भी एक जिज्ञासा अन्तस्तलको प्रेरित करती रहती है—'उनका जन्म कैसे हुआ, कहाँ हुआ और किसके द्वारा हुआ?' यह बात ठीक है कि वे परमात्मा हैं तो उनका जन्म कैसा? परमात्माका अवतार होता ही है, तो उनका क्या अव

हुआ? उन्होंने क्या जन्म ग्रहण किया? इस सम्बन्धमें पुराणोंमें एक कथा प्राप्त होती है। तदनुसार एक बार देवासुर-संग्राममें दैत्य-दानवोंने मिलकर देवताओंको हरा दिया, तबसे देवता मुँह छिपाये अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षामें सतत प्रयत्नशील थे। देवताओंकी माता अदिति प्रजापति दक्षकी कन्या थीं, उनका विवाह महर्षि कश्यपसे हुआ था। इस हारसे अत्यन्त दुःखी होकर वे सूर्यकी उपासना-प्रार्थना करने लगीं—'भगवन्! आप मुझपर प्रसन्न हों। गोप (किरणोंके स्वामिन्)! मैं आपको भलीभाँति देख नहीं पाती। दिवाकर! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे आपके स्वरूपका सम्यक् दर्शन हो सके। भक्तोंपर दया करनेवाले प्रभो! मेरे पुत्र आपके भक्त हैं। आप उनपर कृपा करें। प्रभो! मेरे पुत्रोंका राज्य एवं यज्ञभाग दैत्यों एवं दानवोंने छीन लिया है। आप अपने अंशसे मेरे गर्भद्वारा प्रकट होकर पुत्रोंकी रक्षा करें।' भगवान् सूर्य प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—'देवि! मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। मैं अपने हजारवें अंशसे तुम्हारे उदरसे प्रकट होकर तेरे पुत्रोंकी रक्षा करूँगा।' इतना कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्धान हो गये।

तदनन्तर माता अदिति विश्वस्त होकर भगवान् सूर्यकी आराधनामें तत्पर हो यम-नियमसे रहने लगीं। महर्षि कश्यपजी इस समाचारसे अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। समय पाकर भगवान् सूर्यका जन्म अदितिके गर्भसे हुआ। इस अवतारको 'मार्तण्ड'के नामसे पुकारा जाता है। देवतागण भगवान् सूर्यको भाईके रूपमें पाकर बहुत ही प्रसन्न हुए। अग्निपुराणमें चर्चा है कि भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका जन्म हुआ। ब्रह्माजीके पुत्रका नाम मरीचि है। मरीचिसे महर्षि कश्यपका जन्म हुआ। ये महर्षि कश्यप ही सूर्यके पिता हैं।

नित्य-निरन्तर सबको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाले तो भगवान् भुवनभास्कर सूर्य ही हैं। सौर सम्प्रदायके अनुसार वेदोक्त सहस्रबाहु, सहस्रशीर्षा, प्रजापति, परमपुरुष, पुराणात्मा, सभी भुवनोंके गोप्ता, आदित्य-वर्णसे निर्दिष्ट ये प्रत्यक्ष सूर्यदेव ही हैं—

सहस्रशीर्षा. सुमनाः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीपथे यः पुरुषो निगद्यते।
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्व एकः पुरुषः पुराणः॥

(भविष्यपुराण १। ७७। १९, २०)

परम दिव्य तेजःपुञ्ज ही भगवान् सूर्यका स्वरूप है, जिसकी (दीप्तिमान्) प्रभाशक्तिसे चौदहों लोक दीप्तिमान् हो रहे हैं। सूर्यके समग्र तेजोमण्डल दो भागोंमें विभक्त हैं, उनका कार्य पाताललोकसे ब्रह्मलोकपर्यन्त चतुर्दश लोकोंमें निवास करनेवाले प्राणियोंके भीतर ज्ञान एवं क्रिया-शक्तिका उद्दीपन करना है। सूर्यमण्डलका पहला तेज ऊर्ध्वकी ओर ब्रह्मलोकपर्यन्त उद्दीपन करता है। उस तेजकी शक्ति 'संज्ञा' है। दूसरा तेज अधोगामी—पृथ्वीसे पातालपर्यन्त उद्दीपन करता है। उस तेजकी शक्तिका नाम 'छाया' है। पुराणकी कथाके अनुसार संज्ञा तथा छाया—ये दोनों सूर्यकी पत्नियाँ मानी गयी हैं। भगवान् सूर्यकी ये पत्नियाँ शक्तिके स्थानपर निरन्तर कार्यरत रहती हैं।

कहते हैं कि देवता, मुनि और महर्षियोंने श्रेय तथा प्रेयका मार्ग भगवान् सूर्यके तेजसे ही उपलब्ध किया था। संज्ञा श्रेयोगामिनी शक्ति है, यह मुनि एवं महर्षियोंके हृदयमें संवित्-चेतनाका उदय कराती है, जिसके कारण भगवान् सूर्यके द्युलोक-व्याप्त तेजसे अनन्य संयोग होनेपर 'विद्या' नामकी शक्ति उत्पन्न हुई। '**विद्ययामृतमश्नुते**'—इस श्रुतिके अनुसार विद्याकी उपासनासे उन्हें अमृतपानका अवसर मिला।

अविद्या प्रेयमार्गका प्रकाशन करनेवाली शक्ति है। भगवान् सूर्यका अधोव्याप्त तेज छायासे संयुक्त होनेपर अर्थात् छाया और तेजके परस्पर मिलनेसे अविद्या उत्पन्न हुई। छाया अविद्याकी जननी है। अविद्यासे मनुष्योंको कर्मका मार्ग ही सत्य दिखलायी पड़ता है। वेद-शास्त्रके ज्ञाता विद्वान् भी प्रेय-ऐहिक विषयसुख या आमुष्मिक स्वर्गमें प्राप्त भोग-ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये अविद्याकी उपासना करते हैं।

सभी प्राणियोंको जन्मसे ही भगवान् सूर्यकी विविध लीलाओंके दर्शन होते हैं। वे इस ब्रह्माण्डके केन्द्र, स्थूल कालके नियामक, तेजके महान् आकर, विश्वके पोषक, प्राणदाता, समस्त चराचर प्राणियोंके आधार तथा प्रत्यक्ष दीखनेवाले और समस्त देवोंमें श्रेष्ठ हैं। त्रिकाल-संध्यामें सूर्यरूपसे भगवान् नारायणकी ही उपासना होती है। उनकी उपासनासे हमारे तेज, बल, आयु, बुद्धि तथा नेत्र-ज्योतिकी वृद्धि होती है और मृत्युके अनन्तर वे अपनी रश्मियोंके द्वारा भगवान्‌के परमधाममें ले जाते हैं। भारतीय चिन्तन-पद्धतिके अनुसार सूर्योपासना किये बिना कोई भी मानव किसी भी शुभ कर्मका अधिकारी नहीं बन सकता। भगवान् श्रीकृष्णने

विभूतिस्वरूपके वर्णनमें **'ज्योतिषां रविरंशुमान्'**-से स्वयंको इंगित किया है। पातञ्जलयोगसूत्र (३। २६)-में वर्णित है कि सूर्यका ध्यान करनेसे निखिल भुवनमण्डलका ज्ञान हो जाता है—**'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्'**।

महाभारतमें युधिष्ठिरने सूर्यकी स्तुति करते हुए कहा है—

त्वामिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।
त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्म शाश्वतम्॥

अर्थात् हे सूर्य! आप इन्द्र, रुद्र, विष्णु, प्रजापति, अग्नि सूक्ष्म मन, प्रभु और शाश्वत ब्रह्म हैं।

सूर्यतापिनी-उपनिषद्में कहा गया है कि ये सूर्य ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और भास्कर हैं। ये ही त्रिमूर्तिरूप और वेदत्रयी हैं। ये सूर्य सर्वदेवमय हैं—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः।
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः॥

आदित्यहृदयके अनुसार एक ही सूर्य तीनों कालोंमें क्रमशः त्रिदेव बनते हैं। यथा—

उदये ब्रह्मणो रूपं मध्याह्ने तु महेश्वरः।
अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिश्च दिवाकरः॥

ये कभी क्षीण नहीं होते, इनका मण्डल सदा अक्षय बना रहता है। ये पितरोंके भी पिता और देवताओंके भी देवता हैं। असंख्य योगिजन अपने कलेवरका त्याग करके वायुस्वरूप हो तेजोराशि भगवान् सूर्यमें ही प्रवेश करते हैं। ये सम्पूर्ण जगत्के माता-पिता और गुरु हैं।

भगवान् सूर्यकी रश्मियोंमें विलक्षण जीवनीशक्ति है तथा सभी प्रकारके शारीरिक तथा मानसिक रोगोंको सर्वथा अपहत करनेकी अद्भुत सामर्थ्य है। **'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'**-इस पुराण-वचनसे सिद्ध है कि आरोग्यकी प्राप्तिके लिये भगवान् भास्करकी आराधना विशेष फलवती होती है। नित्य अरुणोदय-वेलामें भगवान् सूर्यके अरुण बिम्बके दर्शन तथा पुनः प्रत्यक्ष सूर्यके दर्शनसे न केवल नेत्र-ज्योतिका विकास होता है, अपितु अन्तःकरण भी निर्मल होता है, बुद्धि शुद्ध हो जाती है, सात्त्विकताका संचार होता है और मानव सत्कर्म करनेके लिये प्रेरित होता है। अक्षि-उपनिषद् तथा चाक्षुष्मती विद्याके पाठसे नेत्र-ज्योति दिव्य हो उठती है तथा कुष्ठादि रोग दूर हो जाते हैं। श्रद्धापूर्वक सूर्यार्घ्यदान, सूर्य-नमस्कार, सूर्य-सम्बन्धी स्तोत्रोंका पाठ तथा यथाधिकार संध्या-वन्दन करनेसे भगवान् सूर्यकी अनुकम्पा सहज ही प्राप्त हो जाती है। ऋषियोंके दीर्घ आयुष्य, विशदप्रज्ञा, यश, कीर्ति तथा ब्रह्मवर्चस्का एकमात्र मूल कारण दीर्घकालीन संध्यामें सौरी गायत्रीका जप एवं सूर्योपस्थान आदि क्रियाएँ ही थीं। ऋषिगण तीनों संध्याओंमें प्राणायाम और समाधिद्वारा भगवान् सविताके वरेण्य तेजका ध्यान करते हुए गायत्री-मन्त्रका जप करते थे। गायत्री-मन्त्रमें मूलतः परब्रह्मस्वरूप सूर्यदेवताकी आराधना ही ध्येय है, इसीलिये नित्य त्रिकाल संध्या-वन्दनका विधान शास्त्रोंमें प्रतिपादित है। यहाँतक कि अशौच आदिमें भी संध्या-कर्मका लोप नहीं होता। यह सब भगवान् सूर्यकी ही महिमाका परिचायक है।

सूर्यके विविध लीला-विग्रह

सूर्यनारायणके अनेक ध्यानरूप-लीला-विग्रह बताये गये हैं। कुछका निर्देश इस प्रकार है—

एक ध्यानस्वरूपमें बताया गया है कि—'उत्तम रत्नोंसे जटित मुकुट जिनके मस्तककी शोभा बढ़ा रहे हैं, जो चमकते हुए अधरोष्ठकी कान्तिसे शोभित हैं, जिनके सुन्दर केश हैं, जो भास्वान् अलौकिक तेजसे युक्त हैं, जिनके हाथोंमें कमल हैं, जो प्रभाके द्वारा स्वर्णवर्ण हैं एवं ग्रहवृन्दके सहित आकाशदेशमें उदयगिरि-उदयाचल पर्वतपर शोभा पाते हैं, जिनसे समस्त जीवलोक आनन्द प्राप्त करते हैं, हरि और हरके द्वारा जो नमित हैं, ऐसे विश्वचक्षु भगवान् सूर्यनारायण मेरी रक्षा करें।' ध्यानका मूल श्लोक इस प्रकार है—

भास्वद्रत्नाढ्यमौलिः स्फुरदधररुचा रञ्जितश्चारुकेशो
भास्वान् यो दिव्यतेजाः करकमलयुतः स्वर्णवर्णः प्रभाभिः।
विश्वाकाशावकाशे ग्रहगणसहितो भाति यश्चोदयाद्रौ
सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमितः पातु मां विश्वचक्षुः॥

भगवान् भास्करदेवका एक अन्य प्रसिद्ध लीला-विग्रह इस प्रकार निर्दिष्ट है—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।

केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥
(तन्त्रसार)

भगवान् सूर्य ग्रहाधिपति हैं। नवग्रह-मण्डलमें उनका प्रथम आवाहन एवं पूजन होता है। उनके आवाहनमें इस प्रकारसे ध्यानस्वरूप प्रतिपादित है—

जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥

वेदोंमें तो भगवान् सूर्यके शतशः मन्त्र निर्दिष्ट हैं, उनका प्रसिद्ध मन्त्र इस प्रकार है—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवनानि पश्यन्॥
(ऋ० १। ३५। २)

भगवान् सूर्यके द्वादश लीला-विग्रहोंके आख्यान

एक ही परमात्मा सूर्य संसारचक्रके प्रवर्तनके लिये तथा कालकी मर्यादा प्रतिष्ठित करनेके लिये बारह रूपोंमें प्रविभक्त होकर अनेक प्रकारकी लीलाएँ करते हैं। वेदों तथा ब्राह्मणग्रन्थोंमें भगवान् सूर्यके 'आदित्य' तथा 'सविता'—ये दो नाम विशेषरूपसे निरूपित हैं। सृष्टिके भी आदिमें प्रतिष्ठित रहने तथा माता अदितिके पुत्र होनेके कारण सूर्य ही 'आदित्य' कहलाते हैं। वेदोंमें जिन तैंतीस देवताओंका परिगणन किया गया है, उनमें द्वादश आदित्य ही प्रधान हैं। वहाँ इन्हें सब प्रकारसे उपकारी, अनन्त शक्तिसम्पन्न और सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपोंमें निरूपित किया गया है तथा इनकी महिमाका गान अनेक सूक्तों-मन्त्रोंमें किया गया है। पुराणोंमें भी सूर्यरथके वर्णन-प्रकरणमें बारह महीनोंमें बारह आदित्य ही बारह नामोंसे अभिहित किये गये हैं। इन द्वादश आदित्योंके नाम इस प्रकार हैं—

(१) इन्द्र, (२) धाता, (३) पर्जन्य, (४) त्वष्टा, (५) पूषा, (६) अर्यमा, (७) भग, (८) विवस्वान्, (९) विष्णु, (१०) अंशुमान्, (११) वरुण तथा (१२) मित्र।—इन बारह मूर्तियोंद्वारा परमात्मा सूर्यने सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है। इनका अति संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

इन्द्र—भगवान् आदित्यकी जो प्रथम मूर्ति है, उसका नाम 'इन्द्र' है, वह देवराज-पदपर प्रतिष्ठित है, वह देवशत्रुओंका नाश करनेवाली लीला-मूर्ति है तथा आश्विन मासकी अधिष्ठाता है। इस आश्विनमासके आदित्यके लीला-विग्रहका नाम 'इन्द्र' है। वेदों तथा पुराणोंमें भगवान् आदित्यके इन्द्र नामवाले लीला-विग्रहके अनेक प्रसिद्ध आख्यान आये हैं। वे वृष्टिके भी स्वामी हैं।

धाता—भगवान् सूर्यके दूसरे विग्रहका नाम 'धाता' है, जो प्रजापतिके पदपर स्थित हो नाना प्रकारके प्रजावर्गकी सृष्टि करते हैं, इन्हींका दूसरा नाम 'ब्रह्मा' भी है। कार्तिक-मासके सूर्यका नाम 'धाता' है।

पर्जन्य—सूर्यदेवकी तीसरी लीलामूर्ति 'पर्जन्य' के नामसे विख्यात है। यह बादलोंमें स्थित हो अपनी किरणोंद्वारा वर्षा करती है। श्रावणमासके सूर्य 'पर्जन्य' नामसे कहे जाते हैं।

त्वष्टा—भगवान् सूर्यके चौथे विग्रहका नाम 'त्वष्टा' है। त्वष्टा सम्पूर्ण वनस्पतियों और ओषधियोंमें स्थित रहते हैं। फाल्गुनमासमें 'त्वष्टा' नामक सूर्य तपते हैं।

पूषा—भगवान् सूर्यके पाँचवें विग्रहका नाम 'पूषा' है। ये अन्नमें स्थित होकर सर्वदा प्रजाजनोंकी पुष्टि करते हैं। पौषमासके सूर्यका नाम 'पूषा' है।

अर्यमा—सूर्यकी जो छठी मूर्ति है, उसका नाम 'अर्यमा' है। यह वायुके आश्रयसे समस्त देवताओंमें स्थित रहती है। वैशाखमासके सूर्य 'अर्यमा' कहलाते हैं।

भग—भगवान् भास्करका सातवाँ विग्रह 'भग' नामसे विख्यात है। यह ऐश्वर्य-रूपमें तथा देहधारियोंके शरीरमें प्रतिष्ठित रहता है। माघमासके सूर्यदेव 'भग' नामसे प्रसिद्ध हैं।

विवस्वान्—सूर्यदेवकी आठवीं मूर्ति 'विवस्वान्' कहलाती है, यह अग्निमें स्थित होकर जीवोंके खाये हुए अन्नको पचाती है। ज्येष्ठमासके सूर्य 'विवस्वान्' नामसे जाने जाते हैं।

विष्णु—सूर्यकी नवीं मूर्ति 'विष्णु'के रूपमें प्रतिष्ठित है, जो देवशत्रुओंका विनाश करनेके लिये अवतार धारण करती है। राम, कृष्ण आदि इसी वैष्णवी विग्रहके अवतार हैं। चैत्रमासके सूर्य 'विष्णु' नामसे प्रसिद्ध हैं। महाभारतमें कहा गया है कि द्वादश आदित्योंमें विष्णु ही सबसे श्रेष्ठ हैं और गुणोंमें सबसे बढ़कर हैं—

'.......सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः॥'

(महा०, आदिपर्व)

लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुकी लीला-कथाएँ अति प्रसिद्ध तथा महान् कल्याणकारिणी हैं।

अंशुमान्—सूर्यकी दसवीं मूर्तिका नाम 'अंशुमान्' है, जो वायुमें प्रतिष्ठित होकर समस्त प्रजाको आनन्द प्रदान करती है। आषाढ़मासके सूर्य 'अंशुमान्' कहलाते हैं।

वरुण—सूर्यका ग्यारहवाँ रूप 'वरुण' के नामसे प्रसिद्ध है, जो सदा जलमें प्रतिष्ठित होकर प्रजाका पोषण करता है। इस प्रकार सूर्यदेव ही जल-रूप होकर अन्न उत्पन्न करते हैं और जीवोंकी पिपासा शान्त करते हैं। जीवन-धारणके लिये जलकी कितनी आवश्यकता है, यह सबके अनुभवका विषय है। भगवान् सूर्यका जलरूप होना हमारे लिये कितने बड़े उपकारकी बात है। भाद्रपदमासके सूर्य ही 'वरुण' कहलाते हैं, इसीलिये भाद्रपदमासमें वृष्टि अधिक होती है।

मित्र—सूर्यदेवकी जो बारहवीं लीला-मूर्ति है, उसका नाम है 'मित्र'। अपने नामके अनुरूप भगवान् सूर्य सबके सच्चे मित्र तथा हितैषीके रूपमें स्थित रहते हैं और सम्पूर्ण जगत्के कल्याणमें निरत रहते हैं। मार्गशीर्षमासके सूर्यदेव ही 'मित्र' देवताके नामसे विख्यात हैं।

इस प्रकार द्वादश आदित्य सब प्रकारसे संसारका भला ही करते हैं। ये व्यक्त तथा अव्यक्त दोनों रूपोंमें प्रतिष्ठित हैं। इनकी पूजा-उपासनासे अपना जीवन सफल बनाना चाहिये।

सूर्यार्घ्य-दानकी महत्ता

भगवान् सूर्यके अर्घ्यदानकी विशेष महत्ता है। प्रतिदिन प्रातःकाल रक्तचन्दनादिसे मण्डल बनाकर, पीठशक्तियोंकी स्थापना-पूजाकर ताम्रमय पात्रमें जल, लालचन्दन, तण्डुल, श्यामाक, रक्तकमल (अथवा रक्तपुष्प) और कुश आदि रखकर घुटने टेककर प्रसन्न-मनसे सूर्यमन्त्रका जप करते हुए अथवा निम्नलिखित श्लोकका पाठ करते हुए भगवान् सूर्यको अर्घ्य देकर पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये, तत्पश्चात् प्रदक्षिणा एवं नमस्कार अर्पित करना चाहिये—

सिन्दूरवर्णाय सुमण्डलाय नमोऽस्तु वज्राभरणाय तुभ्यम्।
पद्माभनेत्राय सुपङ्कजाय ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय॥
सरक्तचूर्णं ससुवर्णतोयं स्रक्कुंकुमाढ्यं सकुशं सपुष्पम्।
प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं प्रशस्तमर्घ्यं भगवन् प्रसीद॥

(शिवपु०, कै० सं० ६। ३९-४०)

'सिन्दूरवर्णके-से सुन्दर मण्डलवाले, हीरक-रत्नोंके आभरणोंसे अलंकृत, कमलनेत्र, हाथमें कमल लिये, ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादि (सम्पूर्ण सृष्टि)-के मूल कारण (हे प्रभो! हे आदित्य!) आपको नमस्कार है। भगवन्! आप सुवर्णपात्रमें रक्तवर्णके चूर्ण-कुंकुम, कुश, पुष्पमालादिसे युक्त, रक्त-स्वर्णिम जलद्वारा दिये गये श्रेष्ठ अर्घ्यको ग्रहणकर प्रसन्न हों।'

इस अर्घ्यदानसे भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर आयु, आरोग्य, धन-धान्य, क्षेत्र, पुत्र, मित्र, कलत्र, तेज, वीर्य, यश, कान्ति, विद्या और वैभव एवं सौभाग्य आदि प्रदान करते हैं तथा सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। भगवान् सूर्य अत्यन्त उपकारक और दयालु हैं, वे अपने उपासकको सब कुछ प्रदान करते हैं। उसके लिये मुक्ति भी सुलभ हो जाती है, इसमें संदेह नहीं।

भगवान् सूर्यकी दशाङ्ग-उपासनामें उनके मन्त्र, ध्यान, कवच, हृदय, पटल, सूक्त, स्तोत्र, स्तवराज, शतनाम, सहस्रनाम, उनके चरित्रका पठन तथा यजन-पूजन आदि भी संनिविष्ट रहते हैं।

सूर्योपासकोंको निम्नलिखित नियमोंका पालन करना चाहिये—

१-प्रतिदिन सूर्योदयसे पूर्व ही शय्या त्यागकर शौच-स्नान करना चाहिये।

२-स्नानोपरान्त श्रीसूर्यनारायणको तीन बार अर्घ्य देकर प्रणाम करना चाहिये।

३-नित्य संध्याके समय भी अर्घ्य देकर प्रणाम करना चाहिये।

४-प्रतिदिन उनके स्तोत्र तथा शतनाम अथवा सहस्रनामका श्रद्धापूर्वक पाठ करना चाहिये तथा उनके मन्त्रका जप करना चाहिये।

५-'आदित्यहृदय'का नियमित पाठ करना चाहिये।

६-स्वास्थ्य-लाभकी कामना एवं नेत्ररोगसे बचने और अंधेपनसे रक्षाके लिये नेत्रोपनिषद्-(अक्षि-उपनिषद्)-का प्रतिदिन पाठ करना चाहिये।

७-रविवारको तेल, नमक नहीं खाना चाहिये तथा

समय हविष्यान्नका भोजन करना चाहिये और ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करना चाहिये।

वेदों, शास्त्रों और विशेषकर पुराणोंमें भगवान् सविताकी सर्वज्ञता, सर्वाधिपता, सृष्टि-कर्तृता, कालचक्र-प्रणेता आदिके रूपोंमें वर्णन करते हुए इनकी उपासनाका विधान किया गया है, अतः प्रत्येक आस्तिक जनके लिये ये उपास्य और नित्य ध्येय हैं।

उपासकको उनकी लीलाओंके चिन्तनसे सब प्रकारका अभ्युदय प्राप्त हो जाता है।

सूर्यकी आराधनासे महाराज राज्यवर्धनको दीर्घ आयुकी प्राप्ति

भगवान् श्रीरामके पूर्वज सूर्यवंशी राजा दमके पुत्र महाराज राज्यवर्धन बड़े विख्यात नरेश हुए हैं। वे अत्यन्त सजगतासे धर्मपूर्वक अपने राज्यका शासन करते थे। उनके राज्यमें सभी लोग सुखी एवं प्रसन्न थे। प्रजा धर्मके अनुकूल रहकर ही विषयोंका उपभोग करती थी। दीनोंको दान दिया जाता एवं यज्ञोंका आयोजन होता रहता था।

राजा राज्यवर्धनको सुखपूर्वक प्रजा-पालन करते हुए बहुत समय बीत गया। एक दिन महाराज राज्यवर्धनकी महारानी उनके सिरमें तेल लगा रही थीं। उसी समय उन्हें अपने पतिके सिरमें एक सफेद बाल दिखायी दिया। उसे देखकर उनकी आँखोंमें आँसू आ गये। आँसू देखकर महाराजने साग्रह पूछा—'प्रिये! तुम्हारे इस प्रकार दुःखी होनेका कारण क्या है?' रानीने उत्तर दिया—'नाथ! आपके मस्तकका यह पका हुआ श्वेत केश ही मेरे दुःखका कारण है।' राजाने कहा—'कल्याणि! मैंने सभी तरहसे अपना कर्तव्य-पालन कर लिया है, अतः अब जीवनकी क्या चिन्ता है? जन्म लेनेवालेकी तो मृत्यु निश्चित है ही, अतः अब मुझे वनमें जाकर तपस्या करनी चाहिये।'

महाराजके वनगमनकी बात सुनकर सभी प्रजाजन व्याकुल हो उठे। प्रजापालक राज्यवर्धनके अनुरागके सामने प्रजावर्ग नतमस्तक था, कृतज्ञ था। सभी लोगोंने महाराजसे आग्रहपूर्वक कहा—'नाथ! आप हमारी प्रार्थना सुनकर कुछ दिन और प्रजा-पालन करें।' तत्पश्चात् सभी प्रजाजन महाराज राज्यवर्धनकी दीर्घ आयुके लिये भगवान् भास्करकी आराधनामें लग गये। कुछ लोगोंने विधिपूर्वक भगवान् भास्करको अर्घ्य देना आरम्भ किया, कुछ लोगोंने 'सूर्यसूक्त'का पाठ प्रारम्भ किया, कुछ लोगोंने वेद-मन्त्रोंके जप, स्वाध्याय एवं कुछ लोगोंने व्रत-उपवासद्वारा भगवान् सूर्यदेवको प्रसन्न करना चाहा। सभी लोगोंकी एक ही अभिलाषा थी कि महाराज राज्यवर्धन दीर्घायु हो जायँ।

अन्तमें कृपालु भगवान् सूर्यदेव प्रजाजनकी आराधनासे प्रसन्न होकर उनके समक्ष प्रकट हो गये और उन्होंने उनका अभीष्ट वर (राज्यवर्धनकी यौवनयुक्त लंबी आयु) प्रदान किया। सभी प्रजाजन भगवान् भास्करकी कृपा प्राप्तकर परम प्रसन्न हो गये।

महाराज राज्यवर्धनको जब यह बात ज्ञात हुई तो वे प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने सोचा—'मैं तो लंबी आयुका उपभोग करूँगा, परंतु मेरे परिवार एवं प्रजाके लोग तो समयपर मृत्युको प्राप्त होंगे।' अतः वे भी अपनी रानीके साथ कामरूप (आसाम) पर्वतपर जाकर भगवान् दिवाकरकी आराधनामें लग गये। भगवान् सूर्यको प्रसन्न करनेके लिये महाराज राज्यवर्धन एवं रानी व्रत-उपवासादि करते हुए उनकी पूजा-स्तुति करने लगे। अन्तमें भगवान् सूर्य कृपा करके उनके सामने प्रकट हो गये और उनके इच्छानुसार उन्होंने राजपरिवार एवं प्रजाजनकी आयु भी राजाके समान ही लंबी होनेका वर प्रदान किया। भगवान् सूर्यकी कृपा प्राप्तकर महाराज राज्यवर्धन एवं सभी प्रजाजन सुखपूर्वक रहने लगे।

भगवान् सूर्यका परिवार

अधिकांश पुराणोंमें सूर्यलोकमें सूर्यके परिवारकी स्थिति समानरूपसे निर्दिष्ट हुई है। वहाँ वे अपने समस्त परिवार, परिकर एवं परिच्छदोंके साथ सुशोभित रहते हैं। इस संदर्भमें भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वमें उपलब्ध सामग्री विशिष्ट कोटिकी है। तदनुसार सूर्यलोकमें भगवान् सूर्यके समक्ष इन्द्रादि सभी देवता, ऋषिगण स्थित रहते हैं तथा विश्वावसु आदि गन्धर्व, नाग, यक्ष तथा रम्भादि अप्सराएँ—ये सभी नृत्य-गीत करते हुए उनकी स्तुति करते रहते हैं। तीनों संध्याएँ मूर्तिमान् रूपमें उपस्थित होकर वज्र एवं नाराच धारण किये भगवान् सूर्यकी स्तुति करती हैं। वे सात

छन्दोमय अश्वोंसे युक्त हैं। घटी, पल, ऋतु, संवत्सरादिकालके अवयवोंद्वारा निर्मित दिव्य रथपर आरूढ होकर सुशोभित होते रहते हैं। गरुडके छोटे भाई अरुण अपने ललाटपर अर्धचन्द्राकार कमल धारण किये हुए अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे सूर्यके सारथिका कार्य करते हैं। उनके दोनों पार्श्वोंमें दाहिनी ओर राज्ञी (संज्ञा[१]) और बायीं ओर निक्षुभा (छाया) नामकी दो पत्नियाँ स्थित रहती हैं। उनके साथमें पिङ्गल नामके लेखक, दण्डनायक नामके द्वाररक्षक तथा कल्माष नामके दो पक्षी द्वारपर खड़े रहते हैं। दिण्डि उनके मुख्य सेवक हैं, जो उनके सामने खड़े रहते हैं।

इनके साथ ही भगवान् सूर्यकी दस संतानें हैं। संज्ञा (अश्विनी)-से वैवस्वत मनु, यम, यमी (यमुना), अश्विनीकुमार और रेवन्त तथा छायासे शनि, तपती, विष्टि (भद्रा) और सावर्णि मनु हुए। इनमेंसे रेवन्त नामक पुत्र सभी प्रतिमा तथा चित्रादिमें नित्य उनके साथ विशेष रूपसे प्रविष्ट रहते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य देवता तथा सौरमण्डलके ग्रह-नक्षत्रादि भी मूर्तिमान्-रूपमें उनकी उपासना करते हैं। इनके परिवारकी मुख्य कथा जो भविष्य, मत्स्य, पद्म, ब्रह्म, मार्कण्डेय तथा साम्ब आदि पुराणोंमें वर्णित हैं, उसका सारांश संक्षेपमें इस प्रकार है—

विश्वकर्मा (त्वष्टा)-की पुत्री संज्ञा (त्वाष्ट्री)-से जब इनका विवाह हुआ, तब वह अपनी प्रथम तीन संतानों—वैवस्वत मनु, यम तथा यमी (यमुना)-की उत्पत्तिके बाद उनके तेजको न सह सकनेके कारण अपने ही रूप-आकृति तथा वर्णवाली अपनी 'छाया'को वहाँ स्थापितकर अपने पिताके घर होती हुई 'उत्तरकुरु' में जाकर वडवा (अश्वा)-का रूप धारणकर अपनी शक्तिवृद्धिके लिये कठोर तप करने लगी। इधर सूर्यने छायाको ही पत्नी समझा तथा उससे उन्हें सावर्णि मनु, शनि, तपती तथा विष्टि (भद्रा)—ये चार संतानें हुईं, जिन्हें वह अधिक प्यार करती; किंतु वैवस्वत मनु तथा यम, यमीका निरन्तर तिरस्कार करती रहती।

एक दिन दुःखी होकर धर्मराज (यमराज)-ने छाया [illegible] पैर उठाया, जिसपर उसने उनके पैरको गिर जानेका शाप [illegible] दिया। इसपर उन्होंने अपने पिता सूर्यसे कहा कि 'यह [illegible] लोगोंकी माता नहीं हो सकती, क्योंकि एक तो यह निर [illegible] हमें तिरस्कृत करती है, यमीकी ताड़ना भी करती है; [illegible] दूसरी ओर सावर्णि मनु आदिको अधिक प्यार करती है [illegible] मेरे द्वारा दुःखी होकर पैर उठानेपर उसने उसे गिर जानेका शाप दे दिया, जो अपनी माताके लिये कभी सम्भव न [illegible] है। संतान माताका कितना ही अनिष्ट करे, किंतु वह अ [illegible] संतानको कभी शाप नहीं दे सकती।' यह सुनकर सू [illegible] कहा—'तुम दुःखी न होओ, तुम्हारा पैर नहीं गिरेगा, केव [illegible] इसका एक लघु कण कृमि लेकर पृथ्वीपर चले जायँगे।' ऐसा कहकर सूर्य कुपित होकर छायाके पास गये [illegible] उसके केश पकड़कर पूछा—'सच-सच बता तू कौन है? कोई भी माता अपने पुत्रके साथ ऐसा निम्न कोटि [illegible] व्यवहार नहीं कर सकती।' यह सुनकर छाया भयभीत [illegible] गयी और सारा रहस्य प्रकट कर दिया।

सूर्य तत्काल संज्ञाको खोजते हुए विश्वकर्माके [illegible] पहुँचे। विश्वकर्माने तेज न सहन करनेके कारण उस [illegible] उत्तरकुरुमें तप करनेकी बात बतायी। विश्वकर्माने सूर्य [illegible] इच्छापर उनके तेजको खरादकर कम कर दिया। [illegible] भगवान् सूर्य अश्वरूपमें वडवा (संज्ञा—अश्विनी)-के [illegible] उससे मिले। वडवाने परपुरुषके स्पर्शके भयसे सूर्यका [illegible] नाकोंसे फेंक दिया, उसीसे दोनों अश्विनीकुमारोंकी उत [illegible] हुई, जो देवताओंके वैद्य हुए। तेजके अन्तिम अंशसे रेव [illegible] नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो गुह्यकों एवं अश्वोंके अधिपति [illegible] प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार भगवान् सूर्यका विशाल प [illegible] प्रतिष्ठित हो गया, जिसकी पूजा-उपासना सदासे [illegible] रही है।

भगवान् भुवनभास्करकी कृपामयी लीलाएँ

भगवान् सूर्यका अवतरण ही संसारके कल्याणके लिये हुआ है। वे नित्य सभीको चेतनता तथा गति प्रदान करते हैं। चराचर जगत्पर कृपा करना ही उनका सहज स्वभाव है। अपने भक्तों तथा उपासकोंपर तो उनकी विशेष प्रीति रहती है। भगवान् सूर्य नित्य त्रिकाल उपास्यदेव हैं। पञ्चदेवोपास [illegible] उनका विशिष्ट स्थान है। भगवान् भास्कर समस्त बुराइ [illegible] दूरकर भद्र, कल्याण, श्रेय तथा मङ्गलको देनेवाले हैं, इस [illegible] उनसे प्रार्थना की जाती है—

---

[१] पुराण, आगम एवं शिल्पग्रन्थोंमें इनके सुरेणु, त्वाष्ट्री, द्यौ, वडवा तथा प्रभा—ये नाम भी आते हैं।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव॥

(ऋ० ५। ८२। ५, यजु० ३०। ३)

भगवान् किरणमालीकी कृपासे व्यक्ति अतिमृत्युको भी लाँघ जाता है। बल्कि यहाँतक कहा गया है कि उनकी कृपाके बिना मोक्ष भी दुर्लभ है—

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

(यजु० ३१। १८)

सहस्रों किरणवाले भुवनभास्कर असत्से सत्की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर तथा मृत्युसे अमरत्वकी ओर ले जानेवाले हैं—

असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय॥

(शतपथब्राह्मण १४। ४। १३०)

उनका अनुग्रह प्राप्त होनेपर व्यक्ति शतायु ही नहीं दीर्घायु हो जाता है—'**जीवेम शरदः शतं ……भूयश्च शरदः शतात्॥**' (यजु० ३६। २४) भगवान् सविताकी उपासनासे बुद्धि अत्यन्त निर्मल हो जाती है, अन्तःकरण पवित्र हो जाता है और साधक भगवत्प्राप्तिके योग्य हो जाता है। बुद्धिके प्रेरक भगवान् सविता ही हैं, इसीलिये गायत्री-मन्त्रमें सद्बुद्धि-प्राप्तिकी प्रार्थना की गयी है—'**धियो यो नः प्रचोदयात्।**'

वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि-महर्षि सभी आदित्योपासनाके द्वारा ही अध्यात्म-ज्ञान तथा आर्ष-मेधासे सम्पन्न हुए। भगवान् सूर्य स्वल्प भी उपासना-आराधनासे प्रसन्न होकर भक्तको अपनी महनीय कृपाका अवलम्बन प्रदान कर देते हैं। उनकी कृपासे न जाने कितनोंका उद्धार हुआ, इसकी कोई गणना नहीं। औपनिषदिक ऋषियोंको भगवान् सूर्यकी कृपा प्राप्त थी। उपनिषदोंमें वर्णित ब्रह्मविद्या, दहरविद्या, मधुविद्या, उपकोसलविद्या पञ्चाग्निविद्या आदिके मूलमें भगवान् सूर्यकी उपासना ही प्रतिपादित है।

अव्यक्त एवं अजन्मा परतत्त्वरूप भगवान् सूर्यके अवतारकी लीलाकथा पुराणोंमें विस्तारसे प्राप्त होती है, उसीका सार-रूप यहाँ प्रस्तुत है—

पूर्व समयमें यह सम्पूर्ण लोक प्रभा एवं प्रकाशसे रहित था। चारों ओर घनघोर अन्धकार व्याप्त था। उस समय परम कारणस्वरूप एक अविनाशी एवं बृहत् अण्ड प्रकट हुआ। उसके भीतर सबके प्रपितामह लोकस्रष्टा कमलयोनि साक्षात् ब्रह्माजी विराजमान थे। उस अण्डका भेदन करते समय उनके मुखसे महान् 'ॐ' शब्द प्रकट हुआ। उसमें ॐकारसे भूः, भुवः तथा स्वः—ये तीन व्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं, जो भगवान् सूर्यके स्वरूप हैं। 'ॐ' इस स्वरूपसे सूर्यदेवका अत्यन्त सूक्ष्मरूप प्रकट हुआ। उससे क्रमशः महः, जनः, तपः और सत्यम्—ये स्थूलरूप प्रकट हुए। इस प्रकार ये सात सूर्यके सूक्ष्म और स्थूल रूप हैं। ब्रह्माजीके मुखसे चारों वेदोंका आविर्भाव हुआ। उस ॐकारमें चारों वेद प्रतिष्ठित हुए। सबके आदिमें प्रकट होनेके कारण वह प्रणव ही 'आदित्य' कहलाया। वह आदित्य ही इस विश्वका अविनाशी कारण है। इसीलिये भगवान् सूर्य वेदात्मा, वेदमें स्थित, वेद-विद्यारूप तथा परम पुरुष कहलाते हैं। वे सनातन देवता सूर्य ही गुणोंका आश्रय लेकर सृष्टि, पालन और संहारके हेतु बनते हैं। वे आदित्य महान् तेजोरूप हैं। उनके असह्य तेजसे जब सभी लोक संतप्त होने लगे और ब्रह्माजीकी रची हुई सृष्टि दग्ध होने लगी तब ब्रह्माजी आदित्यकी शरणमें गये। उन्होंने उनकी प्रार्थना की और कहा—'प्रभो! मैं सृष्टि करनेके लिये उद्यत हूँ, किंतु आपका यह तेजःपुञ्ज सृष्टिका विनाशक हो रहा है, अतः आप अपने इस तेजको समेट लीजिये।'

ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर भगवान् सूर्यने अपने तेजको स्वल्प एवं सुखदायक बना लिया। तदनन्तर ब्रह्माजीने पूर्वकल्पोंके अनुसार जगत्की सृष्टि की। समुद्र, पर्वत और द्वीपोंका विभाजन किया; देवताओं, मनुष्यों, पशु-पक्षियों, वृक्ष-लताओं तथा अन्य सभीका सृजन किया।

सूर्यको गुरु भी कहा गया है। श्रीमारुतिने इन्हींसे शिक्षा ग्रहण की थी। इन्हींकी कृपासे भगवान् सांकृति तथा महायोगी याज्ञवल्क्यको ब्रह्मविद्या तथा चाक्षुष्मती विद्याका ज्ञान प्राप्त हुआ।

महर्षि याज्ञवल्क्यने सूर्योपासनाद्वारा ही शुक्लयजुर्वेदको प्रकाशित किया। भगवान् श्रीरामने 'आदित्यहृदयस्तोत्र'का पाठ करके रावणपर विजय पायी थी। धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् सूर्यकी कृपासे ही अक्षय-पात्र प्राप्त किया था।

कुष्ठरोगसे अभिभूत मयूरकविने 'सूर्यशतक'की रचना करके उनके अनुग्रहसे कुष्ठरोगसे छुटकारा प्राप्त किया। कृष्णपुत्र साम्बकी सूर्योपासनाका चमत्कार तो प्रसिद्ध ही है। महाराज अश्वपतिने सूर्यकी कृपासे सावित्रीदेवीको अपनी कन्याके रूपमें प्राप्त किया था। सूर्यवंशी सभी राजाओंको उनका अनुग्रह प्राप्त था। महाराज सत्राजित् सूर्यके महान् भक्त थे, उन्हींकी कृपासे उन्हें स्यमन्तक मणि प्राप्त हुई थी। अपनी एक कृपालीलाके द्वारा भगवान् सूर्यने महाराज राज्यवर्धनके साथ-ही-साथ उनकी प्रजाको भी दीर्घ आयु तथा अपना लोक प्रदान किया था। समर्थ रामदासजी सूर्यको नित्य एक सौ आठ बार साष्टाङ्ग प्रणाम करते थे, इसलिये वे समर्थ कहलाये, गुरुपदभाक् बने। संत श्रीतुलसीदासजीको भी सूर्यकी कृपा प्राप्त थी। ऐसे ही सहस्रों आख्यान हैं, जिनमें भगवान् सूर्यकी कृपामयी लीलाका वर्णन हुआ है। यहाँ संक्षेपमें कुछ लीला-कथाओंको दिया जा रहा है—

(१)

महर्षि याज्ञवल्क्यपर भगवान् सूर्यकी कृपा

महान् योगी, अध्यात्मज्ञानी, श्रीरामकथाके प्रवक्ता तथा निरन्तर सूर्योपासनामें निरत महर्षि याज्ञवल्क्यजी वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। त्रिकाल संध्योपासना तथा सूर्योपस्थान आदि दीर्घकालीन साधनाओंसे भगवान् आदित्यके लोकमें आया-जाया करते थे। एक बार वे आदित्यलोकमें गये और वहाँ भगवान् सूर्यको प्रणामकर उन्होंने कहा—'भगवन् आदित्य! आप अपने आत्मतत्त्वका वर्णन कीजिये'—

याज्ञवल्क्यो ह वै महामुनिरादित्यलोकं जगाम। तमादित्यं नत्वा भो भगवन्नादित्यात्मतत्त्वमनुब्रूहीति।'

(मण्डलब्राह्मणोपनिषत् १। १)

—इसपर सूर्यदेवने कृपाकर उन्हें अपने आत्मतत्त्वका उपदेश दिया।

याज्ञवल्क्यजीने अपने गुरु वैशम्पायनजीसे वेदोंका ज्ञान प्राप्त किया था, किंतु एक बार उनसे कुछ विवाद हो जानेके कारण गुरुजी रुष्ट हो गये और कहने लगे—'तुम मेरे द्वारा पढ़ी हुई यजुर्वेदकी शाखाको उगल दो।' गुरुजीकी आज्ञा अनुल्लंघनीय थी, अतः याज्ञवल्क्यजीने अन्नरूपसे वे ऋचाएँ उगल दीं, जिन्हें वैशम्पायनजीके दूसरे शिष्योंने तीतर (एक पक्षी-विशेष) बनकर ग्रहण कर लिया। यजुर्वेदकी वह शाखा, जो तीतर बनकर ग्रहण की गयी थी, 'तैत्तिरीयशाखा'के नामसे विख्यात हुई।

पुनः याज्ञवल्क्यजीने वेदज्ञान और वेदविद्या प्राप्त करनेका निश्चय किया; किंतु अब उन्हें ज्ञान कौन प्राप्त कराता? गुरुजी तो रुष्ट हो चुके थे। महर्षि याज्ञवल्क्य भगवान् सूर्यकी कृपाशक्तिसे परिचित थे, अतः उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधना करनेका निश्चय किया। फिर क्या था, वे अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें लग गये। उन्होंने प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! मुझे ऐसे यजुर्वेदकी प्राप्ति हो, जो अभीतक किसीको न मिला हो—

अहमयातयामयजुःकाम उपसरामीति॥

(श्रीमद्भा० १२।६।

महर्षि याज्ञवल्क्यकी स्तुति-उपासनासे प्रसन्न होकर भगवान् उनके सामने अश्वरूपसे प्रकट हुए और उन्हें यजुर्वेदके उन मन्त्रोंका उपदेश दिया, जो अभीतक किसीको भी प्राप्त नहीं हुए थे—

एवं स्तुतः स भगवान् वाजिरूपधरो हरिः।
यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात् प्रसादितः॥

(श्रीमद्भा० १२।६।

अश्वरूप सूर्यसे मध्याह्नकालमें प्राप्त होनेके कारण शुक्ल यजुर्वेदकी यह शाखा 'वाजसनेय' या 'माध्यन्दिन' नामसे प्रसिद्ध हुई।

भगवान् सूर्यकी कृपासे ही महर्षि याज्ञवल्क्य शतपथब्राह्मण तथा बृहदारण्यक उपनिषदके द्रष्टा बने। जनक-जैसे महान् ज्ञानीका गुरु होनेका सौभाग्य इन्हें प्राप्त था। सौरी दीक्षासे सम्पन्न होनेके कारण ही ये महाराज जनकके दरबारमें ब्रह्मनिष्ठ ऋषियों तथा ऋषिका गार्गी आदिको शास्त्रार्थमें संतुष्ट कर सके और इसी शक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण इन्हें भगवान् श्रीरामकी भी कृपा प्राप्त थी। प्रयागमें इन्होंने ऋषियोंके समाजमें महर्षि भरद्वाजजीको दिव्य रामचरित सुनाया। 'याज्ञवल्क्यस्मृति'में जो दिव्य ज्ञान तथा धर्मशास्त्रकी मर्यादा प्रतिष्ठित हुई है, वह भगवान् सूर्यकी कृपाका मुख्य परिणाम है। भगवान् सवितादेवकी आराधनाके मुख्य फल हैं, ब्रह्मगायत्रीका इन्होंने ही सर्वप्रथम भाष्य किया है।

उनकी सूर्योपासना तथा सूर्यकी कृपामयी लीलाका ही परिचायक है। इस प्रकार भगवान् सूर्यने अपने महान् भक्त महर्षि याज्ञवल्क्यजीको समय-समयपर सम्पूर्ण विद्या-बुद्धि और ज्ञान प्राप्त कराकर लोकका महान् उपकार किया।

(२)

सूर्योपासक महर्षि विश्वामित्रपर सवितादेवका अनुग्रह

तपस्याके धनी महर्षि विश्वामित्रजीका नाम सर्वविश्रुत ही है। इन्होंने अपने पुरुषार्थसे क्षत्रियत्वसे ब्रह्मत्व प्राप्त किया और ये राजर्षिसे ब्रह्मर्षि बन गये। तपस्याके प्रभाव तथा भगवती गायत्रीकी उपासनासे ये जगत्पूज्य हुए तथा सप्तर्षियोंमें इन्हें स्थान प्राप्त हुआ। इसी कारण ये भगवान् श्रीरामके भी गुरु बने। मूलतः आज जो ब्रह्मगायत्री[1] है, उसके मुख्य द्रष्टा विश्वामित्रजी हैं। यह गायत्री-मन्त्रमें निर्दिष्ट भगवान् सवितादेवके अनुग्रहशक्ति प्राप्त होनेका ही परिणाम है। इन्हें ही सर्वप्रथम वेदमाता भगवती गायत्रीके दर्शन हुए। महर्षि विश्वामित्र वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। ऋग्वेदके तृतीय मण्डलके मन्त्रोंका इन्हें ही सर्वप्रथम दर्शन हुआ। इसलिये यह मण्डल 'वैश्वामित्र मण्डल' कहलाता है। इस प्रकार गायत्री-मन्त्र जो सूर्यकी कृपा प्राप्त करनेका अन्यतम साधन है, महर्षि विश्वामित्रद्वारा ही हमें प्राप्त है। महर्षि विश्वामित्रजीने 'विश्वामित्रकल्प', 'विश्वामित्रसंहिता' तथा 'विश्वामित्रस्मृति' आदि अनेक ग्रन्थ रचे। ये सभी ग्रन्थ गायत्री-उपासना, संध्योपासन-विधान तथा सूर्यकी उपासना एवं उनकी कृपा प्राप्त करनेके लिये ही निर्मित हैं। इस दृष्टिसे सूर्योपासक महामुनि विश्वामित्रजीका हमपर बड़ा उपकार है।

(३)

भक्तके अधीन रहनेकी एक लीला

महाभारतके आदिपर्वमें जरत्कारु ऋषिकी कथा आती है। वे बड़े भारी तपस्वी और मनस्वी थे। उन्होंने सर्पराज वासुकिकी बहन अपने ही नामवाली जरत्कारु नामक नागकन्यासे विवाह किया। विवाहके समय उन्होंने उस कन्यासे यह शर्त की थी कि 'यदि तुम मेरा कोई भी अप्रिय कार्य करोगी तो मैं उसी क्षण तुम्हारा परित्याग कर दूँगा।'

एक बारकी बात है, ऋषि अपनी धर्मपत्नीकी गोदमें सिर रखे लेटे हुए थे कि उनकी आँख लग गयी। देखते-देखते सूर्यास्तका समय हो आया, किंतु ऋषि जागे नहीं, वे निद्रामें थे। ऋषिपत्नीने सोचा कि ऋषिकी सायं-संध्याका समय हो गया, यदि इन्हें जगाती हूँ तो ये नाराज होकर मेरा परित्याग कर देंगे और यदि नहीं जगाती हूँ तो संध्या करनेकी वेला बीत जायगी, जिससे ऋषिके धर्मका लोप हो जायगा। ऋषिपत्नी धर्मसंकटमें पड़ गयी। अन्तमें उसने यही निर्णय लिया कि पतिदेव मेरा परित्याग भले ही कर दें, परंतु उनके धर्मकी रक्षा मुझे अवश्य करनी चाहिये। यही सोचकर उसने पतिको जगा दिया। ऋषिने अपनी इच्छाके विरुद्ध जगाये जानेपर रोष प्रकट किया और अपनी पूर्व-प्रतिज्ञाका स्मरण दिलाकर पत्नीको छोड़ देनेपर उतारू हो गये। जगानेका कारण बतानेपर ऋषिने कहा—'देवि! इतने दिन मेरे साथ रहकर भी तुमने मेरे प्रभावको नहीं जाना। मैंने आजतक कभी संध्याकी वेलाका अतिक्रमण नहीं किया। मैं नित्य त्रिकाल-संध्या करता हूँ। भगवान् सवितादेव मेरे इष्ट हैं, वे मेरी आस्था एवं विश्वासके सम्बल हैं, आजतक कभी ऐसा नहीं हुआ, फिर क्या आज सूर्यभगवान् मेरा अर्घ्य लिये बिना ही अस्त हो सकते थे, कभी नहीं—

शक्तिरस्ति न वामोरु मयि सुप्ते विभावसोः।
अस्तं गन्तुं यथाकालमिति मे हृदि वर्तते॥

(महा०, आदि० ४७। २६)

अर्थात् हे वामोरु! मेरे हृदयमें यह विश्वास है कि मेरे सोते रहनेपर भगवान् सूर्यकी यह शक्ति नहीं है कि वे अस्ताचलकी ओर जानेमें समर्थ हो सकें।

सच है, जिस भक्तकी उपासनामें इतनी दृढ़ निष्ठा होती है कि उसके इष्टदेव उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकते तो ऐसे हठीले भक्तोंके लिये भगवान्‌को अपने नियम भी तोड़ने पड़ते हैं। उन्हें तो जैसे भी हो अपने भक्त, अपने उपासकका ख्याल रखना ही पड़ता है। भगवान् अपने विरदको कभी नहीं भूलते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने प्रतिज्ञा की थी कि मैं कुरुक्षेत्रके मैदानमें शस्त्र नहीं उठाऊँगा, किंतु अपने प्यारे भक्त अर्जुनकी रक्षा तथा महाभागवत पितामह भीष्मकी प्रीतिके लिये उन्हें शस्त्र उठाना पड़ा। वास्तवमें भगवान् अपने भक्तके अधीन रहते हैं, **'अहं**

---

[1] 'तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥' (ऋग्वेद ३। ६२। १०)

भक्तपराधीनः' इसीमें उनकी भक्तवत्सलता है और इसीमें है उनकी भगवत्ता।

(४)

साम्बपर भगवान् भास्करकी कृपा

भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र साम्ब महारानी जाम्बवतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। बाल्यकालमें इन्होंने बलदेवजीसे अस्त्रविद्या सीखी थी। बलदेवजीके समान ही ये बलवान् थे। महाभारतमें इनके सम्बन्धमें विस्तृत वर्णन मिलता है। ये द्वारकापुरीके सप्त अतिरथी वीरोंमें एक थे, जो युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भी श्रीकृष्णके साथ हस्तिनापुरमें आये थे। इन्होंने वीरवर अर्जुनसे धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने शल्यके सेनापतित्वमें क्षेमवृद्धिको युद्धमें पराजित किया था और वेगवान् नामक दैत्यका भी वध किया था।

भविष्यपुराणमें उल्लेख है कि साम्ब बलिष्ठ होनेके साथ ही अत्यन्त रूपवान् भी थे। अपनी सुन्दरताके अभिमानमें वे किसीको कुछ नहीं समझते थे। यही अभिमान आगे इनके पतनका कारण बना। अभिमान किसीको भी गिरा देता है।

हुआ यह कि एक बार वसन्त ऋतुमें रुद्रावतार दुर्वासा मुनि तीनों लोकोंमें विचरते हुए द्वारकापुरीमें आये। उन्हें तपसे क्षीणकाय देखकर साम्बने उनका परिहास किया। इससे दुर्वासा मुनिने क्रोधमें आकर अपने अपमानके बदलेमें साम्बको शाप दे दिया कि 'तुम अति शीघ्र कोढ़ी हो जाओ।' उपहास बुरा होता है; वही हुआ। साम्ब शप्त होनेपर संतप्त हो उठे।

साम्बने अति व्याकुल हो कुष्ठ-निवारणार्थ अनेक प्रकारके उपचार किये; परंतु किसी भी उपचारसे उनका कुष्ठ नहीं मिटा। अन्तमें वे अपने पूज्य पिता आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके पास गये और उनसे विनीत प्रार्थना की कि 'महाराज! मैं कुष्ठरोगसे अत्यन्त पीडित हो रहा हूँ। मेरा शरीर गलता जा रहा है, स्वर दबा जा रहा है, पीड़ासे प्राण निकले जा रहे हैं, अब क्षणभर भी जीवित रहनेकी क्षमता नहीं है। आपकी आज्ञा पाकर अब मैं प्राण त्याग करना चाहता हूँ। आप इस असह्य दुःखकी निवृत्तिके लिये मुझे प्राण त्यागनेकी अनुमति दें।'

महायोगेश्वर श्रीकृष्ण क्षणभर विचारकर बोले—'पुत्र! धैर्य धारण करो। धैर्य त्यागनेसे रोग अधिक सताता है। मैं उपाय बताता हूँ, सुनो! तुम श्रद्धापूर्वक श्रीसूर्यनारायणकी आराधना करो। पुरुष यदि विशिष्ट देवताकी आराधना विशिष्ट ढंगसे करे, तो अवश्य ही विशिष्ट फलकी प्राप्ति होती है। देवाराधन विफल नहीं होता।

साम्बके संदेह करनेपर श्रीकृष्ण पुनः बोले—शास्त्र और अनुमानसे हजारों देवताओंका होना सिद्ध होता है, किंतु प्रत्यक्षमें सूर्यनारायणसे बढ़कर कोई दूसरा देवता नहीं है। सारा जगत् इन्हींसे उत्पन्न हुआ है और इन्हींमें लीन हो जायगा। ग्रह, नक्षत्र, राशि, आदित्य, वसु, इन्द्र, वायु, अग्नि, रुद्र, अश्विनीकुमार, ब्रह्मा, दिशा, भूः, भुवः, स्वः आदि सब लोक, पर्वत, नदी-नद, सागर-सरिता, नाग-नग एवं समस्त भूतग्रामकी उत्पत्तिके हेतु सूर्यनारायण ही हैं। वेद, पुराण, इतिहास—सभीमें इनको परमात्मा, अन्तरात्मा आदि शब्दोंसे प्रतिपादित किया गया है। इनके सम्पूर्ण गुण और प्रभावका वर्णन सौ वर्षोंमें भी कोई नहीं कर सकता। तुम यदि अपना कुष्ठ मिटाकर संसारमें सुख भोगना चाहते हो और मुक्ति-भुक्तिकी इच्छा रखते हो तो विधिपूर्वक सूर्यनारायणकी आराधना करो, जिससे आध्यात्मिक, आधिभौतिक दुःख तुमको कभी नहीं होंगे।'

पिता श्रीकृष्णकी आज्ञा शिरोधार्यकर साम्ब चन्द्रभागा नदीके तटपर जगत्प्रसिद्ध मित्रवन नामक सूर्यक्षेत्रमें गये। वहाँ सूर्यकी 'मित्र' नामक मूर्तिकी स्थापना करके उसकी आराधना करने लगे। जिस स्थानपर इन्होंने मूर्तिकी स्थापना की थी, आगे चलकर उसीका नाम 'मित्रवन' हुआ। साम्बने चन्द्रभागा नदीके तटपर 'साम्बपुर' नामक एक नगर भी बसाया, जिसे आजकल (पंजाबका) 'मुलताननगर' कहते हैं। (साम्बरी नामकी एक जादूगरी विद्या भी है, जिसका आविष्कार साम्बने ही किया था।) मित्रवनमें साम्ब उपवासपूर्वक सूर्यके मन्त्रका अखण्ड जप करने लगे। उन्होंने ऐसा घोर तप किया कि शरीरमें अस्थिमात्र शेष रह गया। वे प्रतिदिन अत्यन्त भक्तिभावसे गद्गद होकर— '**यदेतन्मण्डलं शुक्रं दिव्यं चाजरमव्ययम्**'—इस प्रथम चरणवाले स्तोत्रसे सूर्यनारायणकी स्तुति करते थे। इसके अतिरिक्त तप करके

समय वे सहस्रनामसे भी सूर्यका स्तवन करते थे[1] ।

इस आराधनासे प्रसन्न होकर सूर्यभगवान्ने स्वप्नमें दर्शन देकर साम्बसे कहा—'प्रिय साम्ब! सहस्रनामसे हमारी स्तुति करनेकी आवश्यकता नहीं है। हम अपने अत्यन्त गुह्य और पवित्र इक्कीस नाम तुम्हें बताते हैं[2] जिनका पाठ करनेसे सहस्रनामके पाठ करनेका फल मिलता है। हमारा यह स्तोत्र त्रैलोक्यमें प्रसिद्ध है। जो दोनों संध्याओंमें इस स्तोत्रका पाठ करते हैं, वे सभी पापोंसे छूट जाते हैं और धन, आरोग्य, संतान आदि वाञ्छित पदार्थ प्राप्त करते हैं। साम्बने इस स्तवराजके पाठसे अभीष्ट फल प्राप्त किया। यदि कोई भी पुरुष इस स्तोत्रका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पाठ करेगा, तो वह निश्चय ही समस्त रोगोंसे मुक्त हो जायगा।

साम्ब भगवान् सूर्यके आदेशानुसार इक्कीस नामोंका पाठ करने लगे। तत्पश्चात् साम्बकी अटल भक्ति, कठोर तपस्या, श्रद्धायुक्त जप और स्तुतिसे प्रसन्न होकर सूर्यनारायणने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये और बोले—'वत्स साम्ब! तुम्हारे तपसे हम बहुत प्रसन्न हुए हैं, वर माँगो।' देवता प्रसन्न होनेपर अभीष्ट सिद्धि देते हैं।

अब साम्ब भक्तिभावमें अत्यन्त लीन हो गये थे। उन्होंने केवल यही एक वर माँगा—'परमात्मन्! आपके श्रीचरणोंमें मेरी दृढ़ भक्ति हो।'

भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर कहा—'यह तो होगा ही, और भी कोई वर माँगो।' तब लज्जित-से होकर साम्बने दूसरा वर माँगा—'भगवन्! यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो मुझे यह वर दीजिये कि मेरे शरीरका यह कलंक निवृत्त हो जाय।' कुष्ठको जीवनके सबसे बड़े पापका फल समझा जाता है।

सूर्यनारायणके 'एवमस्तु' कहते ही साम्बका रूप दिव्य और स्वर उत्तम हो गया। इसके अतिरिक्त सूर्यने और भी वर दिये; जैसे—'यह नगर तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा। हम तुमको स्वप्नमें दर्शन देते रहेंगे; अब तुम इस चन्द्रभागा नदीके तटपर मन्दिर बनवाकर उसमें हमारी प्रतिमा स्थापित करो।'

साम्बने श्रीसूर्यके आदेशानुसार चन्द्रभागा नदीके तटपर मित्रवनमें एक विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें विधिपूर्वक सूर्यनारायणकी मूर्ति स्थापित करायी।

इसके बाद मौसल-युद्धमें साम्बने वीरगति प्राप्त की। मृत्युके पश्चात् भगवान् भास्करकी कृपासे ये विश्वेदेवोंमें प्रविष्ट हो गये।

(५)

आरोग्य-दानकी एक अन्य लीला-कथा

पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड अ० ८२)-में एक कथा आयी है कि मध्यदेशमें भद्रेश्वर नामके एक चक्रवर्ती सम्राट् थे। वे महान् तपस्वी, धर्मात्मा, न्यायशील तथा प्रजावत्सल राजा थे। प्रतिदिन देवता, अतिथि एवं ब्राह्मणोंका पूजन तथा गौओंकी सेवा करते थे। किंतु एक समयकी बात है कि उनके बायें हाथमें श्वेत कुष्ठ हो गया। वैद्योंने बहुत कुछ उपचार किया, परंतु वह कोढ़ बढ़ता ही गया। राजा अति चिन्तित हो गये। यह उनके लिये महान् लज्जा एवं कष्टका विषय हो गया। उनका मन अत्यन्त ग्लानिसे भर गया। 'राजा कोढ़ी हो गये' यह प्रवाद सर्वत्र फैल गया। राजाने ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक बुलाकर अपना दुःख उन्हें निवेदित किया और राज्यका परित्याग कर देनेकी बात बतलायी।

ब्राह्मणोंने क्षणभर विचार किया और फिर कहा—'राजन्! आप ऐसा खयाल छोड़ दें, राजाके अभावमें प्रजा नष्ट हो जायगी। आप भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना करें, वे आरोग्यके देवता हैं।' यह कहकर ब्राह्मणोंने उन्हें सूर्योपासनाकी विधि बतला दी। तदनुसार राजा बड़ी ही निष्ठासे सूर्यकी पूजामें जुट गये। सूर्य-मन्त्रोंका जप करने लगे, सूर्यको अर्घ्य देने लगे। 'राजाका कष्ट दूर हो' इस उद्देश्यसे समस्त राजपरिवार, मन्त्रिगण, पुरोहित तथा प्रजाजन भी सूर्यार्घ्य देने लगे।

ऐसे ही एक वर्षका समय निकल गया। राजाकी श्रद्धा बढ़ती ही गयी। वर्षके अन्तमें ऐसा चमत्कार हुआ कि एक दिन सूर्यार्घ्य देते समय एकाएक राजाका कुष्ठरोग दूर हो

---

[1] सूर्यसहस्रनामस्तोत्र 'गीताप्रेस'से प्रकाशित है।

[2] इक्कीस नाम ये हैं—

ॐविकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकः श्रीमान् लोकचक्षुर्महेश्वरः॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा। तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः॥

(भविष्यपुराण)

गया। उस समय पूर्वदिशामें भगवान् सूर्य प्रकाशित हो रहे थे। यह चमत्कार देखकर राजा मुग्ध हो गये। क्षणभरमें यह समाचार सर्वत्र फैल गया। सभी भगवान् सूर्यकी कृपासे अभिभूत हो गये।

अब तो राजाने सम्पूर्ण राज्यमें घोषणा करा दी कि आजसे सभी लोग नित्यप्रति भगवान् सूर्यको सूर्यार्घ्य प्रदान करें, जल चढ़ाया करें और संयम-नियमसे रहते हुए सूर्याराधना किया करें। राजाज्ञा थी, कौन उल्लंघन कर सकता। सभी लोग सूर्यपूजक बन गये और सभीमें सूर्य-भक्तिका संचार भी हो आया।

राजाकी ऐसी दृढ़ निष्ठा देखकर भगवान् सूर्य उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये और बोले—'राजन्! तुम्हारी भक्ति अत्यन्त ही श्रेष्ठ है, तुम्हारी प्रेरणासे तुम्हारे समस्त राज्यमें सब लोग भक्त बन गये हैं। यह बड़ा ही उत्तम कार्य तुमसे बना है, मैं बहुत प्रसन्न हूँ, जो इच्छा हो वह वर माँग लो।'

राजाने कहा—'भगवन्! इन सांसारिक सुख-भोगोंमें क्या रखा है जो इनकी कामना की जाय। मैं तथा मेरी समस्त प्रजा आपमें दृढ़ निष्ठा रखती है, अतः आप कृपाकर ऐसा वर प्रदान करें जिससे हम सभीको आपकी संनिधि प्राप्त हो और हम सभी आपके प्रकाशसे प्रकाशित हो उठें।'

राजाकी बुद्धिमत्ता, उदारता तथा प्रजावत्सलताको देखकर भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर बोले—'राजन्! यदि आपकी ऐसी इच्छा है तो ऐसा ही होगा।' फिर क्या था, भगवत्कृपा हो ही चुकी थी। राजा भद्रेश्वर अपने समस्त परिजनों, पुरजनों-सहित सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित हुए। उस राज्यमें जो भी पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, कीड़े-मकोड़े आदि थे, वे भी राजा भद्रेश्वरकी सूर्यनिष्ठाके परिणामस्वरूप आदित्यधामके निवासी बन गये। धन्य है प्रभो! आपकी लीला, अपने भक्तके लिये आप क्या-क्या नहीं कर देते हैं। भगवन्! आपको तथा आपके भक्तोंको बार-बार प्रणाम है।

काशीके द्वादश आदित्योंकी पौराणिक कथाएँ

सर्वतीर्थमयी विश्वनाथपुरी काशी त्रैलोक्यमङ्गल भगवान् विश्वनाथ एवं कलि-कल्मषहारिणी भगवती भागीरथीके अतिरिक्त अगणित देवताओंकी आवासभूमि है। यहाँ कोटि-कोटि शिवलिङ्ग चतुष्षष्टियोगिनियाँ, षट्पञ्चाशत विनायक, नव दुर्गा, नव गौरी, अष्ट भैरव, विशालाक्षीदेवी प्रभृति सैकड़ों देव-देवियाँ काशीवासीजनोंके योग-क्षेम, संरक्षण, दुरित एवं दुर्गतिका निरसन करते हुए विराजमान हैं। इनमें द्वादश आदित्योंका स्थान और माहात्म्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनका चरित्र-श्रवण महान् अभ्युदयका हेतु एवं दुरित और दुर्गतिका विनाशक है। यहाँ साधकोंके अभ्युदयके लिये द्वादश आदित्योंका संक्षिप्त माहात्म्य-चित्रण कथा-रूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) लोलार्क—किसी समय भगवान् शिवको काशीका वृत्तान्त जाननेकी इच्छा हुई। उन्होंने सूर्यसे कहा—सप्ताश्व! तुम शीघ्र वाराणसी नगरीमें जाओ। धर्ममूर्ति दिवोदास वहाँका राजा है। उसके धर्मविरुद्ध आचरणसे जैसे वह नगरी उजड़ जाय, वैसा उपाय शीघ्र करो; किंतु राजाका अपमान न करना।

भगवान् शिवका आदेश पानेके अनन्तर सूर्यने अपना स्वरूप बदल लिया और काशीकी ओर प्रस्थान किया। उन्होंने काशी पहुँचकर राजाकी धर्म-परीक्षाके लिये विविध रूप धारण किये एवं अतिथि, भिक्षु आदि बनकर उन्होंने राजासे दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तुएँ माँगीं, किंतु राजाके कर्तव्यमें त्रुटि या राजाकी धर्म-विमुखताकी गन्धतक उन्हें नहीं मिली।

उन्होंने शिवजीकी आज्ञाकी पूर्ति न कर सकनेके कारण उनकी झिड़कीके भयसे मन्दराचल लौट जानेका विचार त्यागकर काशीमें ही रहनेका निश्चय किया। काशीके दर्शन करनेके लिये उनका मन लोल (सतृष्ण) था, अतः उनका नाम 'लोलार्क' हुआ। वे गङ्गा-असि-संगमके निकट भद्रवनी (भदैनी)-में विराजमान हैं। वे काशीनिवासी लोगोंका सदा योग-क्षेम वहन करते रहते हैं। वाराणसीमें निवास करनेपर जो लोलार्कका भजन, पूजन आदि नहीं करते हैं, वे क्षुधा, पिपासा, दरिद्रता, दद्रु (दाद) तथा फोड़े-फुंसी आदि विविध व्याधियोंसे ग्रस्त रहते हैं।

काशीमें गङ्गा-असि-संगम तथा उसके निकटवर्ती लोलार्क आदि तीर्थोंका माहात्म्य स्कन्दपुराण आदिमें वर्णित है—

सर्वेषां काशितीर्थानां लोलार्कः प्रथमं शिरः।
लोलार्ककरनिष्टप्ता असिधारविखण्डिताः॥
काश्यां दक्षिणदिग्भागे न विशेयुर्महामलाः॥

(स्कन्दपु०, काशीखण्ड ४६। ५९, ६

(२) उत्तरार्क—बलिष्ठ दैत्योंद्वारा देवता बार-

युद्धमें परास्त हो जाते थे। देवताओंने दैत्योंके आतंकसे सदाके लिये छुटकारा पानेके निमित्त भगवान् सूर्यकी स्तुति की। स्तुति करनेपर सम्मुख उपस्थित हुए प्रसन्नमुख भगवान् सूर्यसे देवताओंने प्रार्थना की—'हे प्रभो! बलिष्ठ दैत्य कोई-न-कोई बहाना बनाकर हमारे ऊपर आक्रमण कर देते हैं और हमें परास्त कर हमारे सब अधिकार छीन लेते हैं। निरन्तरकी यह महाव्याधि सदाके लिये जैसे समाप्त हो जाय, वैसा समाधायक उत्तर आप हमें देनेकी कृपा करें।'

भगवान् सूर्यने विचारकर अपनेसे उत्पन्न एक शिला उन्हें दी और कहा कि यह तुम्हारा समाधायक उत्तर है। इसे लेकर तुम वाराणसी जाओ और विश्वकर्माद्वारा इस शिलाकी शास्त्रोक्त विधिसे मेरी मूर्ति बनवाओ। मूर्ति बनाते समय छेनीसे इसे तराशनेपर जो प्रस्तरखण्ड निकलेंगे वे तुम्हारे दृढ़ अस्त्र-शस्त्र होंगे। उनसे तुम शत्रुओंपर विजय प्राप्त करोगे।

देवताओंने वाराणसी जाकर विश्वकर्माद्वारा सुन्दर सूर्यमूर्तिका निर्माण कराया। मूर्ति तराशते समय उससे पत्थरके जो टुकड़े निकले, उनसे देवताओंके तेज और प्रभावी अस्त्र बने। उनसे देवताओंने दैत्योंपर विजय पायी। मूर्ति गढ़ते समय जो गड्ढा बन गया था, उसका नाम उत्तरमानस (उत्तरार्ककुण्ड) पड़ा। वही कालान्तरमें भगवान् शिवसे माता पार्वतीकी यह प्रार्थना करनेपर कि '**वर्करीकुण्डमित्याख्या त्वर्ककुण्डस्य जायताम्।**' (स्कन्दपु०, काशीखण्ड ४७। ५६) अर्थात् 'अर्ककुण्ड' (उत्तरार्ककुण्ड)-का नाम वर्करीकुण्ड हो जाय, वही कुण्ड 'वर्करीकुण्ड'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। वर्तमानमें उसीका विकृत रूप 'बकरियाकुंड' है। यह अलईपुराके समीप है। उत्तररूपमें दी गयी शिलासे मूर्ति बननेके कारण उनका उत्तरार्क नाम पड़ा। उत्तरार्कका माहात्म्य बड़ा ही अद्भुत और विलक्षण है। पहले पौषमासके रविवारोंको वहाँ बड़ा मेला लगता था, किंतु सम्प्रति वह मूर्ति भी लुप्त है।

उत्तरार्कस्य माहात्म्यं शृणुयाच्छ्रद्धयान्वितः।
……………………………………
लभते वाञ्छितां सिद्धिमुत्तरार्कप्रसादतः।
(आदित्यपु०, रविवारव्रतकथा ३६—३८)

(३) **साम्बादित्य**—किसी समय देवर्षि नारदजी भगवान् कृष्णके दर्शनार्थ द्वारकापुरी पधारे। उन्हें देखकर सब यादवकुमारोंने अभ्युत्थान एवं प्रणामकर उनका सम्मान किया; किंतु साम्बने अपने अत्यन्त सौन्दर्यके गर्वसे न अभ्युत्थान किया और न प्रणाम ही; प्रत्युत उनकी वेष-भूषा और रूपपर हँस दिया। साम्बका यह अविनय देवर्षिको अच्छा नहीं लगा। उन्होंने इसका थोड़ा-सा संकेत भगवान्के समक्ष कर दिया।

दूसरी बार जब नारदजी आये, तब भगवान् श्रीकृष्ण अन्तःपुरमें गोपीमण्डलके मध्य बैठे थे। नारदने बाहर खेल रहे साम्बसे कहा—'वत्स! भगवान् कृष्णको मेरे आगमनकी सूचना दे दो।' साम्बने सोचा—एक बार मेरे प्रणाम न करनेसे ये खिन्न हुए थे। यदि आज भी इनका कहना न मानूँ तो और भी अधिक खिन्न होंगे; सम्भवतः शाप दे डालें। उधर पिताजी एकान्तमें मातृमण्डलके मध्य स्थित हैं। अनुपयुक्त स्थानपर जानेसे वे भी अप्रसन्न हो सकते हैं। क्या करूँ, जाऊँ या न जाऊँ? मुनिके क्रोधसे पिताजीका क्रोध कहीं अच्छा है—यह सोचकर वे अन्तःपुरमें चले गये। दूरसे ही पिताजीको प्रणामकर नारदके आगमनकी सूचना उन्हें दी। साम्बके पीछे-ही-पीछे नारदजी भी वहाँ चले गये। उन्हें देखकर सबने अपने वस्त्र सँभाले।

नारदजीने गोपीजनोंमें कुछ विकृति ताड़कर भगवान्से कहा—'भगवन्! साम्बके अतुल सौन्दर्यसे ही इनमें कुछ चाञ्चल्यका आविर्भाव हुआ प्रतीत होता है।' यद्यपि साम्ब सभी गोपीजनोंको माता जाम्बवतीके तुल्य ही देखते थे, तथापि दुर्भाग्यवश भगवान्ने साम्बको बुलाकर यह कहते हुए तो शाप दे दिया कि एक तो तुम अनवसरमें मेरे निकट चले आये, दूसरा यह कि ये सब तुम्हारा सौन्दर्य देखकर चञ्चल हुई हैं, इसलिये तुम कुष्ठरोगसे आक्रान्त हो जाओ।'

घृणित रोगके भयसे साम्ब काँप गये और भगवान्के समक्ष मुक्तिके लिये बहुत अनुनय-विनय करने लगे। तब श्रीकृष्ण भगवान्ने भी पुत्रको निर्दोष जानकर दूर्दैववश प्राप्त रोगकी विमुक्तिके लिये उन्हें काशी जानेका आदेश दिया। तदनुसार साम्बने भी काशी जाकर विश्वनाथजीके पश्चिमकी ओर कुण्ड बनाकर उसके तटपर सूर्यमूर्तिकी स्थापना की एवं भक्तिभावसहित सूर्याराधनासे रोग-विमुक्त हुए।

तभीसे सब व्याधियोंको हरनेवाले साम्बादित्य सकल सम्पत्तियाँ भी प्रदान करते हैं। इनका मन्दिर सूर्यकुण्ड मुहल्लेमें कुण्डके तटपर है। साम्बादित्यका माहात्म्य भी बड़ा चमत्कारी है—

साम्बादित्यस्तदारभ्य सर्वव्याधिहरो रविः।
ददाति सर्वभक्तेभ्योऽनामयाः सर्वसम्पदः॥
(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४८। ४७)

(४) **द्रौपदादित्य**—प्राचीन कालमें जगत्-कल्याणकारी

भगवान् पञ्चवक्त्र शिवजी ही पाँच पाण्डवोंके रूपमें प्रादुर्भूत हुए एवं जगज्जननी उमा द्रौपदीके रूपमें यज्ञकुण्डसे उद्भूत हुईं। भगवान् नारायण उनके सहायतार्थ श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण हुए।

महाबलशाली पाण्डव किसी समय अपने चचेरे भाई दुर्योधनकी दुष्टतासे बड़ी विपत्तिमें पड़ गये। उन्हें राज्य त्यागकर वनोंकी धूलि फाँकनी पड़ी। अपने पतियोंके इस दारुण क्लेशसे दुःखी द्रौपदीने भगवान् सूर्यकी मनोयोगसे आराधना की। द्रौपदीकी इस आराधनासे सूर्यने उसे कलछुल तथा ढक्कनके साथ एक बटलोई दी और कहा कि जबतक तुम भोजन नहीं करोगी, तबतक जितने भी भोजनार्थी आयँगे वे सब-के-सब इस बटलोईके अन्नसे तृप्त हो जायँगे। यह सरस व्यञ्जनोंकी निधान है एवं इच्छानुसारी खाद्योंकी भण्डार है। तुम्हारे भोजन कर चुकनेके बाद यह खाली हो जायगी।

इस प्रकारका वरदान काशीमें सूर्यसे द्रौपदीको प्राप्त हुआ। दूसरा वरदान द्रौपदीको सूर्यने यह दिया कि विश्वनाथजीके दक्षिण भागमें तुम्हारे सम्मुख स्थित मेरी प्रतिमाकी जो लोग पूजा करेंगे उन्हें क्षुधा-पीड़ा कभी नहीं होगी। द्रौपदादित्यजी विश्वनाथजीके समीप अक्षय-वटके नीचे स्थित हैं। द्रौपदादित्यके सम्बन्धमें पुराणोंमें बहुत माहात्म्य वर्णित है—

आदित्यकथामेतां द्रौपद्याराधितस्य वै।
यः श्रोष्यति नरो भक्त्या तस्यैनः क्षयमेष्यति॥

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४९। २४)

(५) **मयूखादित्य**—प्राचीन कालमें पञ्चगङ्गाके निकट 'गभस्तीश्वर' शिवलिङ्ग एवं भक्तमङ्गलकारिणी मङ्गला गौरीकी स्थापनाकर उनकी आराधना करते हुए सूर्यने हजारों वर्षतक कठोर तपस्या की। सूर्य स्वरूपतः त्रैलोक्यको तप्त करनेमें समर्थ हैं। तीव्रतम तपस्यासे वे और भी अत्यन्त प्रदीप्त हो उठे। त्रैलोक्यको जलानेमें समर्थ सूर्य-किरणोंसे आकाश और पृथ्वीका अन्तराल भभक उठा। वैमानिकोंने तीव्रतम सूर्य-तेजमें फतिंगा बननेके भयसे आकाशमें गमनागमन त्याग दिया। सूर्यके ऊपर, नीचे, तिरछे—सब ओर किरणें ही दिखायी देती थीं। उनके प्रखरतम तेजसे सारा संसार काँप उठा। सूर्य इस जगत्की आत्मा हैं, ऐसा भगवती श्रुतिका उद्घोष है। वे ही यदि इसे जला डालनेको प्रस्तुत हो गये तो कौन इसकी रक्षा कर सकता है? सूर्य जगदात्मा हैं, जगच्चक्षु हैं। रात्रिमें मृतप्राय जगत्को वे ही नित्य प्र कालमें प्रबुद्ध करते हैं। वे जगत्के सकल व्याप संचालक हैं। वे ही यदि सर्वविनाशक बन गये तो कि शरण ली जाय? इस प्रकार जगत्को व्याकुल दे जगत्के परित्राता भगवान् विश्वेश्वर वर देनेके लिये सू निकट गये। सूर्यभगवान् अत्यन्त निश्चल एवं समाधिमें प्रकार निमग्न थे कि उन्हें अपनी आत्माकी भी सुधि थी। उनकी ऐसी स्थिति देखकर भगवान् शिवको उ तपस्याके प्रति महान् आश्चर्य हुआ। तपस्यासे प्रसन्न हो उन्होंने सूर्यको पुकारा, पर वे काष्ठवत् निश्चेष्ट रहे। भगवान्ने अपने अमृत-वर्षी हाथोंसे सूर्यका स्पर्श किया उस दिव्य स्पर्शसे सूर्यने अपनी आँखें खोलीं और दण्डवत्-प्रणामकर उनकी स्तुति की।

भगवान् शिवने प्रसन्न होकर कहा—'सूर्य! उठो, भक्तोंके क्लेशको दूर करो। तुम मेरे स्वरूप ही हो। मेरा और गौरीका जो स्तवन किया है, इन दोनों स्तव पाठ करनेवालोंको सब प्रकारकी सुख-सम्पदा, पौत्रादिकी वृद्धि, शरीरारोग्य आदि प्राप्त होंगे एवं वियोगजनित दुःख कदापि नहीं होंगे। तुम्हारे तपस्या समय तुम्हारे मयूख (किरणें) ही दृष्टिगोचर हुए, नहीं, इसलिये तुम्हारा नाम 'मयूखादित्य' होगा। तु पूजन करनेसे मनुष्योंको कोई व्याधि नहीं होगी। रवि दिन तुम्हारा दर्शन करनेसे दारिद्र्य सर्वथा मिट जाय

त्वदर्चनान्नृणां कश्चिन्न व्याधिः प्रभविष्यति।
भविष्यति न दारिद्र्यं रविवारे त्वदीक्षणात्॥

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४९।

मयूखादित्यका मन्दिर मङ्गलागौरीमें है।

(६) **खखोल्कादित्य**—दक्ष प्रजापतिकी पुत्रियाँ और विनता मुनिवर कश्यपकी पत्नियाँ थीं। एक खेल-खेलमें कद्रूने आग्रहपूर्वक विनतासे कहा— आकाशमें तुम्हारी अकुण्ठ गति है, इसलिये पराजित एक-दूसरेकी दासी बननेका शर्त लगाकर यह बतला सूर्यके रथका उच्चैःश्रवा नामक अश्वका रंग सफेद चितकबरा? शर्त लगाकर तुम्हें जो रुचे उसे विनताने उत्तर दिया—'सफेद है।'

कद्रूने अपने पुत्रोंसे कहा—'बच्चो! तुम सब समान महीन रूप बनाकर उच्चैःश्रवाकी पूँछमें जाओ, जिससे उसके रोएँ तुम्हारी विषैली साँसोंसे

रंगके हो जायँ।' माता शाप न दे—इस भयसे बचनेके लिये कुछने उसकी यह खोटी बात मान ली। शुक्ल उच्चैःश्रवाको कर्बुरित (चितकबरा) कर दिया।

विनताकी पीठपर बैठकर कद्रूने आकाशमार्गको लाँघकर सूर्य-मण्डलको देखा। तेज किरणोंके तापके कारण वह व्याकुल हो गयी। आकाशमार्गमें आगे उड़ रही विनतासे कद्रूने कहा—'बहन विनते! मेरी रक्षा करो। सखि! यह अग्निपिण्ड गिरता है'—'**सखि उल्का पतेदेषा**' कहनेकी जगह घबराहटमें उसने '**खखोल्का निपतेदेषा**' कह डाला। विनताने खखोल्क नामके अर्ककी स्तुति की। उससे सूर्यताप कुछ कम होनेपर आकाशमार्गसे सूर्यके गुजरनेपर उन्होंने उच्चैःश्रवाको कुछ चितकबरा देखा। कद्रूकी सूर्यतापके प्रभावसे नेत्रज्योति बेकार हो गयी थी। सत्यवादिनी विनताने क्रूरा कद्रूसे कहा—'बहन! तुम्हारी जीत हुई। चन्द्र-किरणोंके तुल्य प्रभावाला यह कर्बुरित (चितकबरा)-सा मालूम पड़ता है।' यथार्थ बात कहती हुई विनता कद्रूके घर गयी। शर्तके अनुसार उसने कद्रूकी दासता स्वीकार कर ली। कद्रू दुष्ट स्वभावकी थी। वह विनताको बहुत परेशान करती थी। स्वयं उसपर सवार होकर इधर-उधर सैर करती और अपने बच्चोंको भी उसपर सवार कराकर दूर-दूरतक सैर कराती थी।

एक दिन गरुडने दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई मलिनमुख और अत्यन्त उदास विनताकी आँखोंमें आँसू देखे। गरुडने कहा—'माँ ! तुम प्रतिदिन सबेरे-सबेरे कहाँ जाती हो और शामको थकी-माँदी कहाँसे आती हो? आँखोंमें आँसू भरकर क्यों सिसकती हो? माँ! जल्दी कहो। कालको भी भयभीत करनेवाले मुझ-जैसे अपने बच्चेके जीवित रहते तुम क्यों दुःखी हो?'

पुत्रकी ऐसी मार्मिक वाणी सुनकर विनताने कद्रूद्वारा की जाती हुई परेशानी और उसकी दासी होनेका अपना सारा वृत्तान्त गरुडको सुना दिया। उक्त वृत्तान्तको सुनकर गरुडने कहा—'माँ! तुम उन दुष्टोंके पास जाकर कहो—जो अत्यन्त दुर्लभ हो और जिसमें तुम्हें अत्यन्त अभिरुचि हो वह वस्तु दासीत्वसे छुटकारेके लिये माँगो, वह मैं तुम्हें देती हूँ।' विनताने जाकर सर्पोंसे उक्त बात कही। सर्प उसे सुनकर बड़े खुश हुए। उन्होंने आपसमें विचारकर विनतासे कहा—'माताके शापसे विमुक्तिके लिये यदि हमें अमृत दोगी तो तुम्हारी इच्छा पूरी होगी, अन्यथा तुम दासी हो हो।' विनताने सर्पोंकी माँग स्वीकार कर ली और कद्रूके पास गयी; उससे विदा लेकर वह शीघ्र गरुडके निकट आयी। गरुडको प्रसन्नचित्त देखकर उससे सारा हाल कहा। गरुडने कहा—'माँ! चिन्ता मत करो, अमृतको लाया हुआ ही जानो।'

अमृत स्वर्गमें बड़े कड़े पहरेमें रखा हुआ था। गरुडने पहरेदारोंको अपने परोंकी वायुसे सूखे पत्तोंकी तरह अत्यन्त दूर फेंक दिया। फिर शिवजीकी स्तुतिसे प्राप्त हुई अपनी सूझ-बूझसे कठिनाईके साथ अमृत प्राप्त कर लिया। अमृतकलश लेकर वे वहाँसे निकले। शोर मचाते हुए देवताओंने भगवान् विष्णुसे निवेदन किया। भगवान्ने त्वराके साथ गरुडका पीछा किया। दोनोंमें खूब युद्ध हुआ। गरुडकी बलवत्तासे भगवान् बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'वीर! सर्पोंको अमृत दिखाकर माताको दासतासे छुड़ा लो। सर्पोंके साथ ऐसा कौशल करो जिससे वे शीघ्र सुधा-पान न कर सकें एवं अमृत देवताओंको मिल जाय।' 'तथास्तु' कहकर गरुड वहाँसे निकले। उन्होंने माँको दासतासे मुक्तकर सर्पोंके सामने अमृत महान् कमण्डलुमें रख दिया। वे जब अमृत-पानके लिये प्रस्तुत हुए तब गरुडने कहा—'सर्पवृन्द! इस पवित्र सुधाका पान पवित्र होकर करना चाहिये। यदि स्नान किये बिना इसका स्पर्श करोगे तो देवताओंद्वारा सुरक्षित यह सुधा गायब हो जायगी।'

वे सब सर्प अपनी माताके साथ स्नान करनेके लिये गये और इधर भगवान् विष्णुने अमृत-कलश देवताओंको दे दिया।

दासतासे मुक्त हुई विनताने गरुडसे कहा—'वत्स! मैं दासतारूपी पापकी निवृत्तिके लिये पापराशि-विनाशिनी काशी जाऊँगी; इसलिये कि प्राणियोंमें तभीतक नाना जन्मोंके अर्जित पाप बलिष्ठ रहते हैं, जबतक काशीका स्मरण और दर्शन नहीं किया जाता।' माँका कथन सुनकर गरुडने भी नमस्कारपूर्वक माँसे कहा—'माँ! मैं भी शिवार्चित काशीके दर्शनार्थ तुम्हारे साथ चलूँगा।'

दोनों क्षणभरमें मोक्षदायिनी काशी पहुँचे। दोनोंने कठोर तपस्या की। विनताने 'खखोल्क' नामक आदित्यकी स्थापना की और गरुडने शाम्भवलिङ्गकी स्थापना की। उन दोनोंकी उग्र तथा श्रद्धाभक्तियुक्त तपस्यासे शंकर और भास्कर दोनों प्रसन्न हो गये।

शिवजीकी ही अन्य मूर्ति-रूप खखोल्क नामक भास्करकी तपस्या करती हुई विनताको देखकर शिवने ज्ञानपूर्ण पापसंहारी वर प्रदान किया। काशीवासीजनोंके अनेक

जन्मोंके पापोंका क्षय करनेवाले 'विनतादित्य', 'खखोल्क' नामसे काशीमें विराजमान हैं। वे काशीवासीजनोंके विघ्नान्धकारको दूर करनेवाले हैं। उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य सकल पापोंसे मुक्त हो जाता है। खखोल्कादित्य पाटन दरवाजा मुहल्लेमें कामेश्वर मन्दिरके द्वारपर है। खखोल्कादित्यके दर्शन करनेसे मनुष्योंके मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं एवं रोगी नीरोग हो जाता है—

काश्यां पैशिङ्गिले तीर्थे खखोल्कस्य विलोकनात्।
नरश्चिन्तितमाप्नोति नीरोगो जायते क्षणात्॥

(७) अरुणादित्य—विनता अपनी सपत्नी (सौत)-को गोदमें बच्चे खेलाते देख स्वयं भी बच्चेको गोदमें खेलानेकी अभिलाषा न त्याग सकी; अतः जो अंडा अभी सेवा जा रहा था—जिसकी अवधि पूरी नहीं हुई थी, उसे उसने फोड़ दिया। विकलाङ्ग शिशु ऊरु (जंघा)-रहित होनेसे 'अनूरु' एवं अवधिसे पूर्व ही अंडा फोड़ देनेसे माँके प्रति क्रोधवश अरुण (लाल) होनेसे 'अरुण' कहलाया। अरुणने काशीमें तपस्या करते हुए सूर्यकी आराधना की। सूर्यने उसपर प्रसन्न हो उसे अनेक वर दिये एवं उसके नामसे स्वयं सूर्य 'अरुणादित्य' हुए।

सूर्यने कहा—'हे अनूरो! तुम त्रैलोक्यके हितार्थ मेरे रथपर सदा स्थित रहो एवं मुझसे पहले अन्धकारका विनाश करो। जो मनुष्य वाराणसीमें विश्वेश्वरके उत्तर तुम्हारे द्वारा स्थापित अरुणादित्य नामक मेरी मूर्तिका अर्चन-पूजन करेंगे, उन्हें न तो दुःख होगा, न दरिद्रता होगी और न पातक लगेगा। वे न विविध प्रकारकी व्याधियोंसे आक्रान्त होंगे और न नाना प्रकारके उपद्रवोंसे पीडित होंगे। अरुणादित्य पाटन दरवाजा मुहल्लेमें त्रिलोचन-मन्दिरमें स्थित हैं। अरुणादित्यके सेवकोंको शोकाग्निजनित दाह भी कदापि नहीं होगा'—

येऽर्चयिष्यन्ति सततमरुणादित्यसंज्ञकम्।
मामत्र तेषां नो दुःखं न दारिद्र्यं न पातकम्॥

(८) वृद्धादित्य—काशीमें प्राचीन कालमें वृद्धहारीत नामके एक महातपस्वी रहते थे। उन्होंने विशालाक्षीदेवीके दक्षिण ओर मीरघाटपर महातपकी समृद्धिके लिये सूर्यनारायणकी एक सुन्दर मूर्ति स्थापित की और उनकी आराधना की। उन्होंने अपनी अतुल भक्तिपूर्ण आराधनासे प्रसन्न हुए सूर्यसे वर माँगा—'भगवन्! वृद्ध पुरुषमें तप करनेकी शक्ति नहीं रहती। यदि मुझे आपके अनुग्रहसे फिर तारुण्य हो जाय तो मैं उत्तम तप कर सकूँगा।' मनुष्यकी सर्वां अभ्युन्नतिके लिये तप ही परम साधन है। वृद्धहारीतके त प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने वृद्ध तपस्वीकी वृद्धाव तत्क्षण मिटाकर उन्हें यौवन प्रदान कर दिया। यौ प्राप्तकर हारीतने महान् उग्र तप किया। वृद्धादित्यके भक्तिभा अर्चन-पूजनसे वार्धक्य, दरिद्रता एवं विविध रोगोंसे मु पाकर बहुतोंने सिद्धि पायी है—

वृद्धादित्यं समाराध्य वाराणस्यां घटोद्भव।
जरादुर्गतिरोगघ्नं बहवः सिद्धिमागताः॥

(९) केशवादित्य—किसी समय आकाशमें सं कर रहे सूर्यनारायणने भगवान् आदिकेशवको बड़े श्रद्धाभ शिवलिङ्गका पूजन करते देखा। वे महान् आश्चर्यसे च हो आकाशसे उतरकर भगवान् केशवके निकट अवस प्रतीक्षा करते हुए चुपचाप बैठ गये। भगवान् केशवद्वारा जा रही शिवपूजा समाप्त होनेपर सूर्यने उन्हें सभक्ति प्र किया। भगवान्‌ने भी उनका उचित स्वागत-सत्कार पासमें बैठा लिया। अवसर पाकर सूर्यने पूछा—'भग आपसे ही यह जगत् उत्पन्न होता है और आपमें ही हो जाता है। आपका भी कोई पूज्य है—यह जानकर बड़ा आश्चर्य हो रहा है।'

भगवान् केशवने कहा—'भास्कर! सब कारणोंके कारण देवाधिदेव महादेव उमापति ही एकमात्र पूज्य हैं। त्रिलोचनके सिवा अन्यकी पूजा करता है, वह आँख होनेपर भी अन्धा है। जिन लोगोंने एक बार भी पार्वती लिङ्गकी पूजा की, उन्हें विविध दुःखोंसे भरे संसारमें दुःख नहीं होगा।'

न लिङ्गाराधनात् पुण्यं त्रिषु लोकेषु चापरम्।
सर्वतीर्थाभिषेकः स्याल्लिङ्गस्नानाम्बुसेवनात्॥

अर्थात् 'शिवलिङ्गकी आराधनासे बढ़कर तीनों लो दूसरा पुण्य नहीं है एवं शिवलिङ्गके स्नानके जलके सब तीर्थोंमें स्नानका पुण्य प्राप्त हो जाता है।'

भगवान् विष्णुके मुखसे शिवजीका ऐसा अद्भुत म सुनकर कि हे सूर्य! तुम भी विपुल तेजको बढ़ा परम लक्ष्मीको प्राप्त करनेके लिये शिवलिङ्गकी पूजा भगवान् सूर्य स्फटिकका लिङ्ग बनाकर उसकी पूजा लगे। तभीसे सूर्य आदिकेशवको अपना गुरु

आदिकेशवके उत्तरमें आज भी स्थित हैं।

काशीमें भक्तजनोंके अज्ञानान्धकारका विनाश करनेवाले वे 'केशवादित्य' पूजा-अर्चा करनेवालोंको सदा मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं—

केशवादित्यमाराध्य वाराणस्यां नरोत्तमः।
परमं ज्ञानमाप्नोति येन निर्वाणभाग्भवेत्॥

मतिमान् श्रेष्ठ पुरुष वाराणसीमें 'केशवादित्य' की आराधनापूर्वक परम ज्ञान प्राप्त करते हैं, जिससे उन्हें निर्वाण (मुक्ति) प्राप्त होता है तथा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक इनके माहात्म्यके श्रवणसे मनुष्यको पाप स्पर्श नहीं करते और शिवभक्ति प्राप्त होती है।

(१०) **विमलादित्य**—विमल नामका एक क्षत्रिय था। वह बड़ा सत्कार्यकारी होनेपर भी प्राक्तन कर्मवश कुष्ठरोगसे आक्रान्त हो गया। वह घर-द्वार, पुत्र-कलत्र, धन-दौलत सबका परित्याग कर काशी आया। उसने हरिकेशवन (जङ्गमवाड़ी)-में हरिकेशेश्वरके निकट सूर्यमूर्ति स्थापितकर परम भक्ति-श्रद्धापूर्वक सूर्यकी आराधना की। वह कनैर, अड़हुल, सुन्दर किंशुक, लाल कमल, सुगन्धपूर्ण गुलाब और चम्पाके पुष्पों, चित्र-विचित्र मालाओं, कुंकुम, अगुरु और कर्पूरमिश्रित लाल चन्दन, सुगन्धित धूपों, कपूर और बत्तियोंकी आरार्ति, विविध प्रकारके सुमिष्ट नैवेद्यों, भाँति-भाँतिके फलों, अर्घ्यप्रदान एवं सूर्य-स्तोत्रोंद्वारा सूर्यकी पूजा करता था। इस प्रकार निरन्तर आराधना करनेसे उसपर भगवान् सूर्य प्रसन्न हुए। उन्होंने वर माँगनेको कहा एवं यह भी कहा कि तुम्हारा कुष्ठरोग तो मिटेगा ही, उसके अतिरिक्त और भी वर माँगो। दण्डवत्-प्रणाम करते हुए विमलने कहा—'भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो जो लोग आपके भक्तिनिष्ठ हों, उनके कुलमें कुष्ठ तथा अन्यान्य रोग भी न हों; उन्हें दरिद्रता भी न सतावे; आपके भक्तोंको किसी प्रकारका दुःख न हो, यही वर दें।'

विमलके उक्त वरोंको सुनते हुए सूर्यने 'तथास्तु' कहकर आगे कहा—'विमल! तुमने काशीमें जो यह मेरी मूर्ति स्थापित की है, इसकी संनिधिका मैं कभी त्याग नहीं करूँगा एवं यह मूर्ति तुम्हारे नामसे प्रख्यात होगी। सब व्याधियोंको दूर करनेवाली तथा सकल पापोंका विध्वंस करनेवाली 'विमलादित्य' नामक यह प्रतिमा भक्तोंको सदा वर प्रदान करेगी।'

इत्थं स विमलादित्यो वाराणस्यां शुभप्रदः।
तस्य दर्शनमात्रेण कुष्ठरोगः प्रणश्यति॥

इस प्रकार शुभप्रद (मङ्गलकारी) विमलादित्य काशीमें विराजमान हैं। उनके दर्शनमात्रसे कुष्ठरोग मिट जाता है।

(११) **गङ्गादित्य**—गङ्गादित्य वाराणसीमें ललिताघाटपर विराजते हैं। केवल उनके दर्शनोंसे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। भगीरथके रथका अनुसरण करती हुई भागीरथी जब यहाँ (काशीमें) पधारीं, तो रविने वहींपर स्थित होकर गङ्गाकी स्तुति की। आज भी वह गङ्गाको सम्मुखकर रात-दिन उनकी स्तुति करते हैं। 'गङ्गादित्य'की आराधना करनेवाले नरश्रेष्ठोंकी न दुर्गति होती है और न वे रोगाक्रान्त ही होते हैं। इनका दर्शन पुण्यप्रद है।

(१२) **यमादित्य**—यमेश्वरसे पश्चिम और आत्मवीरेश्वरसे पूर्व संकटाघाटपर स्थित यमादित्यके दर्शन करनेसे मनुष्योंको यमलोक नहीं देखना पड़ता। भौमवारी चतुर्दशीको यमतीर्थमें स्नानकर यमेश्वर और यमादित्यके दर्शनकर मानव सब पापोंसे छुटकारा पा जाते हैं। प्राचीन कालमें यमराजने यमतीर्थमें कठोर तपस्या करके भक्तोंको सिद्धि प्रदान करनेवाले यमेश्वर और यमादित्यकी स्थापना की थी। यमराजद्वारा स्थापित यमेश्वर और यमादित्यको प्रणाम करनेवाले एवं यमतीर्थमें स्नान करनेवाले पुरुषोंको यामी (नारकीय) यातनाओंका भोगना तो दूर, यमलोकको देखना तक नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त यमतीर्थमें श्राद्ध करके, यमेश्वरका पूजनकर एवं यमादित्यको प्रणामकर मनुष्य पितृऋणसे भी उऋण हो जाता है—

श्राद्धं कृत्वा यमे तीर्थे पूजयित्वा यमेश्वरम्।
यमादित्यं नमस्कृत्य पितृणामनृणो भवेत्॥

ये बारह आदित्य पाप-राशि-विनाशी हैं। इनके दर्शन-पूजन आदिसे मनुष्योंके यामी यातनाएँ नहीं होती हैं। इनके अतिरिक्त काशीमें गुह्यकार्क आदि और भी अनेक आदित्य हैं। सबकी पूजा-अर्चा लाभप्रद है। इनकी पूजा-अर्चा प्रत्येक नर-नारीको करनी चाहिये।

बारह आदित्योंके आविर्भावकी संसूचक कथाको सुनने अथवा दूसरोंको सुनानेवाले मनुष्योंके पास दुर्गति कदापि नहीं आ सकती।

—राधेश्याम खेमका

* * *

भक्त-वत्सल भगवान् विष्णुकी दिव्य लीलाएँ

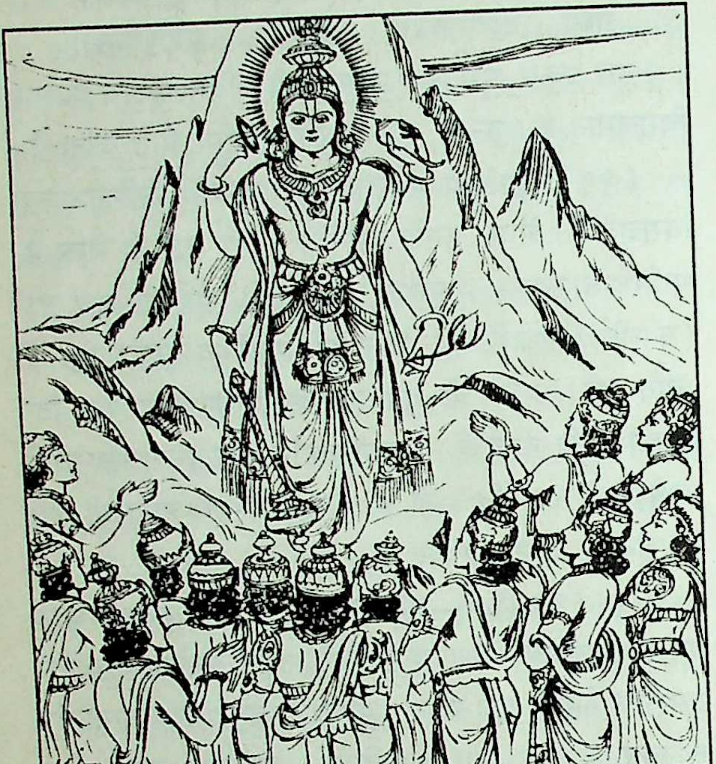

सर्वव्यापक परमात्मा ही भगवान् विष्णु हैं। वे ही ब्रह्मवाचक सभी नामोंके वाच्य हैं। उनकी दिव्य व्यापकता जिस प्रकार निर्गुण-निराकाररूपमें है, उसी प्रकार सगुण-साकाररूपमें भी है। यह सम्पूर्ण विश्व उन परमात्मप्रभुकी ही शक्तिसे व्याप्त है। उन्हींके उन्मेष और निमेषमात्रसे संसारकी उत्पत्ति तथा प्रलय होते हैं। वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी तथा निर्गुण-सगुण दोनोंसे विलक्षण भी हैं। वे चराचर जगत्के सर्जक, पालक-पोषक, संहारक, षडैश्वर्य-सम्पन्न, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं-समर्थ होते हुए भी भक्तोंकी पुकार सुनते आये हैं। व्यापक होनेपर भी वे एकदेशमें अवतरित होते हैं। इस प्रकार विचार-दृष्टिसे जो निर्गुण है, भावदृष्टिसे वही सगुण बन जाता है; जो अव्यक्त है, वही साधकों-भक्तोंके लिये व्यक्त भी हो जाता है। **'सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्'** उनके सगुण-साकार सौम्य चतुर्भुज-स्वरूपका भक्तजनोंको प्रत्यक्ष दर्शन होता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चतुर्विध पुरुषार्थ प्रदान करनेके लिये वे अपने चारों हाथोंमें शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये रहते हैं। राम-कृष्णादि उन्हींके अवतार हैं।

भगवान् नारायण श्रीविष्णु अत्यन्त दयालु हैं। वे अकारण ही जीवोंपर करुणा-दृष्टि करते रहते हैं। उनकी शरणमें जानेपर तो परम कल्याण हो ही जाता है। जो भगवान्के नामोंका कीर्तन, स्मरण, उनका दर्शन, गुणोंका श्रवण और उनका पूजन करता है, वे भगवान् भक्तके सभी पाप-तापोंको विनष्ट कर देते हैं।

भगवान् विष्णु अपरिमित गुणोंके आकर हैं मूर्तिमान् सद्गुण हैं, तथापि उनके अनन्त गुणोंमें भक्तवत्सलता-गुण सर्वोपरि है। चतुर्विध भक्त जिस भावनासे उनकी ग्रहण करते हैं, जिस कामनासे उनका भजन करते हैं वे उस-उस कामना-भावनाको अवश्य पूर्ण करते हैं। गजराज, द्रौपदी आदि अनेक भक्तोंकी रक्षा उन्होंने

भक्तवत्सल भगवान्को भक्तोंका कल्याण करनेमें विलम्ब हो जाय तो भगवान् उसे अपनी भूल मानते हैं उसके लिये उससे क्षमा-याचना करते हैं। उसकी रक्षा हैं; क्योंकि उनका नाम लेनेपर भी भक्तको यातनाएँ पड़ी थीं। धन्य है प्रभुकी भक्तवत्सलता।

भक्त प्रह्लादका चरित्र भगवान् विष्णुकी भक्तवत्सलता अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है। उनके मत्स्य, वराह, वामन, श्रीराम, कृष्णादि अवतारोंमें अनेक आये हैं। जिनसे स्पष्ट होता है कि भगवान् कल्याणके लिये ही अनेक रूप धारण करते हैं।

वेदोंमें अनेक प्रकारसे इन्हीं भगवान् विष्णुकी महिमाका गान किया गया है—

'न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः

(ऋक्० ७।९९।

'हे विष्णुदेव! कोई ऐसा प्राणी न तो उत्पन्न और न होनेवाला है, जिसने आपकी महिमाका पाया हो।'

वैदिक पुरुष-सूक्तमें जिस परमात्मतत्त्वका किया गया है, वह विष्णुतत्त्व ही है। श्रुतिसार- भक्तवाञ्छाकल्पद्रुम भगवान् श्रीहरिकी महिमाका शास्त्रोंमें गान हुआ है—

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥

(हरिवंशपु० ३।१३२

इसीलिये भगवान् नारायण ही परम ध्येय हैं।

उपास्य हैं और ये ही समस्त शास्त्रोंके सारतत्त्व भी हैं।

भगवान् विष्णुके स्वरूप-ध्यानकी विलक्षणता

जो शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी तथा किरीट और कुण्डलोंसे विभूषित, पीताम्बरसे सुशोभित, सुन्दर कमलोंके समान नेत्रोंवाले, वनमाला तथा कौस्तुभमणिको धारण करनेवाले, श्री एवं भूदेवियोंके साथ नित्य रहनेवाले शेषशायी नारायणका ध्यान करता है, वह मुक्त हो जाता है।

यस्तं विश्वमनाद्यन्तमाद्यं स्वात्मनि संस्थितम्।
सर्वज्ञममलं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥

(नरसिंहपु० १६। १७)

'जो सदा उन विश्वरूप, आदि-अन्तसे रहित, सबके आदिकारण, स्वरूपनिष्ठ, अमल एवं सर्वज्ञ भगवान् विष्णुका ध्यान करता है, वह मुक्त हो जाता है।'

यद्यपि भगवान्‌की रूप-माधुरी और उनका वैभव अपार है—वर्णनातीत है, तथापि वाल्मीकि, व्यासादि महर्षियोंने जो उनकी रूप-माधुरीका आस्वाद कराया है, वह अत्यन्त विलक्षण है। श्रीमद्भागवतमें देवर्षि नारदद्वारा ध्रुवके लिये निरूपित भगवत्स्वरूप बड़ा ही सुन्दर है—

विष्णुभगवान्‌के मुखारविन्दपर प्रसन्नता झलक रही है। उनके वदन और नयनोंसे आनन्द छलक रहा है। उनकी नासिका मनोरम है, भ्रू-युगल कमनीय हैं, कपोलयुगल रुचिर हैं। वे तो कामदेवादिसे भी अधिक सुन्दर हैं। वयमें वे तरुण हैं, नित्यकिशोर जो ठहरे। उनके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग रमणीय हैं। होंठ उनके गुलाबी हैं और अपाङ्गों (नेत्रोंके कोनों)-में किंचित् अरुण आभा दृष्टिगत हो रही है। प्रपन्नजनके लिये परम आश्रय हैं। वे 'नृम्ण' अर्थात् स्वजनोंके परमोत्तम धन हैं, चिन्तामणिके समान समस्त अभिलाषाओंके पूरक हैं। शरणागतोंके रक्षक एवं करुणा-वरुणालय हैं। उनके वक्षःस्थलके दक्षिण भागमें श्रीवत्स अर्थात् भृगु-पदका चिह्न सुशोभित है। वे घनश्याम हैं तथा समस्त प्रपञ्चमें अपनी अतर्क्य-शक्तिके प्रभावसे व्याप्त हैं। गलेमें वे आजानुलम्बिनी वनमाला धारण किये हुए हैं, जिसमें समस्त ऋतुओंके सुन्दर सुगन्धित पुष्प ग्रथित हैं और मध्यमें कदम्ब-कुसुम भी लगा हुआ है। उनकी चार भुजाएँ हैं और वे अपने चारों कर-कमलोंमें क्रमशः पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा और एक लीला-पद्म धारण किये हुए हैं। उनके मस्तकके ऊपर किरीट-मुकुटके रत्नोंकी किरणावली छिटक रही है और कानोंमें मकराकृत कुण्डल चमक रहे हैं। बाहुओंमें केयूर और मणिबन्धों (कलाइयों)-में रत्न-खचित कङ्कण विराज रहे हैं। ग्रीवा पद्मराग-मणिमय कौस्तुभ नामक रत्नकी भी शोभाको बढ़ा रही है। कोमल-मञ्जुल पीताम्बर धारण किये हुए हैं उत्तरीय भी पीताम्बरका ही है। कटितटपर कलित काञ्चीकी छटा अतिशय कमनीय है। चरण-कमलोंमें सुवर्णमय मणिजटित नूपुर मुखरित हो रहे हैं। कहाँतक कहें, त्रिलोकीमें जितने भी दर्शनीय हैं, उन सबसे अधिक आकर्षक हैं वे। इतने आकर्षक होनेपर भी उनमें बड़ी शान्ति है। अतएव उन्हें एक बार देख लेनेपर दर्शकके मन और नयनोंमें पुनः-पुनः उनका दर्शन करते रहनेकी प्यास-सी बनी रहती है। जो उनका आराधन करते हैं, उनके हृदयकमलकी कर्णिकापर वे (विष्णुभगवान्) अपनी नखमणियोंसे सुशोभित चरण-कमलोंकी स्थापना करके स्वयं भी उनके अन्तःकरणमें निवास करने लगते हैं। वे जब कृपा करके भक्तकी ओर निहारते हैं, तब उनके अधरपर स्मित और नयनोंमें अनुराग भरा रहता है।

इसी प्रकार भगवान्‌की एक मनोरम झाँकीके दिव्य दर्शन उस समय अर्जुनको होते हैं, जब श्रीकृष्ण उन्हें एक मृत ब्राह्मणके उद्धार करनेके लिये ले चलते हैं—

ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं
महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम्।
सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ्गवाससं
प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम्॥
महामणिव्रातकिरीटकुण्डल-
प्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम् ।
प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं
श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालया वृतम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ८९। ५५-५६)

'उन्होंने सजल जलदकी-सी नील-कान्ति, सुन्दर पीत-वसन, प्रसन्न-वदन, मनमोहक विशाल नेत्र, विशिष्ट मणियोंसे जटित किरीट-कुण्डलोंकी प्रभासे सुशोभित सहस्रों घुँघराली अलकें, सुदीर्घ सुन्दर आठ भुजाएँ, शुभ्र कौस्तुभमणि तथा श्रीवत्सकी शोभासे युक्त, वनमाला-विभूषित, महाप्रभावशाली, विभुस्वरूप पुरुषोत्तमोत्तम श्रीमन्नारायणको शेषनागकी शय्यापर सुखपूर्वक आसीन देखा।'

ऐसे करुणावरुणालय श्रीहरिकी अपने भक्तों-आराधकोंपर परम अनुकम्पा रहती है। भगवान्‌का नाम-स्मरणमात्र ही सब प्रकारके पापोंका नाश कर देता है। इतिहास-पुराणोंमें इस विषयमें अनेक आख्यान प्राप्त होते हैं। यहाँपर दो-एक आख्यान उदाहरणके लिये संक्षेपमें दिये जा रहे हैं—

भगवान्‌द्वारा हरि-रूपमें गजेन्द्रका उद्धार

क्षीरोदधिके मध्यमें विशाल द्वीप है। उसपर भगवान् वरुणका 'ऋतुमत्' नामक क्रीडाकानन है। काननमें यूथपति गजेन्द्र अपनी हथिनियों, कलभों तथा दूसरे गजोंके साथ स्वेच्छापूर्वक घूमते रहते थे। महर्षि अगस्त्यको अभ्युत्थान न देनेसे राजा सुद्युम्न शप्त होकर इस कुञ्जर-योनिमें आये थे। उनके अमित पराक्रमके सम्मुख सिंहादि तुच्छ थे। वे उनके गण्डमण्डलकी मदधाराकी गन्धसे ही दूर भागते।

ग्रीष्म ऋतु, मध्याह्नकाल, गजेन्द्रको प्यास लगी। सूँड़ उठाकर सूँघा। जलकी गन्ध मिली। मार्गके कदली-काननको कुचलते अपने यूथके साथ वे सरोवरतक पहुँचे। कमल-पुष्पोंसे भरा स्वच्छ सरोवर गजोंकी क्रीडासे क्षुब्ध हो गया। कलभ सूँड़ोंसे जल उछाल रहे थे। गजेन्द्र उन्हें स्नान कराते, अपनी सूँड़से जल पिलाते और स्वयं उनके द्वारा स्नात होते। सारा परिवार स्नेहसे उनका सत्कार कर रहा था।

पता नहीं कहाँसे एक मगरने गजेन्द्रका चरण पकड़ लिया। उन्होंने सूँड़ उठाकर चीत्कार की। बल लगाया। दूसरे हाथियोंने उन्हें अपनी सूँड़से सहायता दी, हथिनियाँ कभी जलमें, कभी बाहर दौड़ने लगीं। कोई सफल न हुआ। गन्धर्वश्रेष्ठ हूहू महर्षि देवलके शापसे ग्राह हो गये थे। उनका भी पराक्रम कम नहीं था। गजेन्द्र बाहर खींचना चाहते और ग्राह भीतर। जल कीचड़ होने लगा। कमल-दल-कीचड़से मलिन हो गये। जलजीव व्याकुल हो गये। सहस्र वर्षोंतक यह संघर्ष चलता रहा।

गजेन्द्रका बल थकित हो गया। जलमें जलजंतुसे कबतक वे युद्ध करें। अब डूब जायँगे—अब और नहीं टिका जा सकता। शिथिल शरीर खिंचा जा रहा था। सूँड़से एक कमल तोड़कर ऊपर उठाया और पुकारकी 'विश्वेश्वर जनार्दन!! नारायण!!!'

भगवान्‌ने हरिमेधस ऋषिकी पत्नी हरिणीमें अवतार धारण किया था। वे गरुडारूढ प्रभु दौड़े। गजेन्द्र उन्हें पुकार रहे थे, ब्रह्मादि देव गजेन्द्रके साथ उनका स्तवन कर रहे थे। चक्र चमका और ग्राह अपने शरीरसे छूटकर पुनः गन्धर्वपद पा गया। गजेन्द्रको प्रभुने अपने हाथों उठाया। वे प्रभुका स्पर्श प्राप्तकर उनके दिव्य नित्य पार्षद हो गये।

भक्तश्रेष्ठ ध्रुवके लिये भगवान्‌का अवतार

वह ध्रुव जो समस्त मार्ग-निर्देशकोंका मार्गदर्शक है, वह ध्रुव जो चल-नक्षत्रोंमें स्थिर है, वह ध्रुव जो शुभ कार्योंमें स्मरण किया जाता है, वह ध्रुव जिसकी सतत नक्षत्रमण्डल परिक्रमा करता है, भगवान्‌के उसी अविचल धामके अधिष्ठाताकी बात है—

मनुके पुत्र महाराज उत्तानपाद अपनी छोटी रानी सुरुचिपर अधिक आकृष्ट थे। बड़ी रानी सुनीतिके पुत्र ध्रुव पिताकी गोदमें बैठ गये थे। पतिप्रेम-गर्विता सुरुचिने बालकको गोदसे बलात् उतार दिया। 'तुझे पिताकी गोद या पिताका सिंहासन चाहिये तो भगवान्‌की आराधना करके उनकी कृपासे मेरे उदरसे उत्पन्न हो। इनपर मेरे पुत्र उत्तमका अधिकार है।'

'तुम्हारी विमाताने ठीक ही कहा है। भगवान् ही तुम्हें पिताका सिंहासन या उससे भी श्रेष्ठ पद देनेमें समर्थ हैं।' सुनीतिके नेत्र स्वयं क्षोभसे भर आये थे। उनका प्राणप्रिय पुत्र तिरस्कारके कारण हिचकियाँ ले रहा था। वे उसे कैसे आश्वस्त करें।

'मैं वह पद चाहता हूँ, जिसे मेरे पिता, पितामह और किसीने भी न पाया हो!' पाँच वर्षका बालक घरसे माताके वचनोंपर विश्वास करके वनको चल पड़ा। मार्गमें देवर्षि नारदने उसे समझाया। लौटानेका प्रयत्न किया। संतोषकी शिक्षा दी। जब कोई बात ध्रुवके हृदयपर न

सकी, तब वे द्रवित हुए। द्वादशाक्षरकी दीक्षा देकर मधुवन (मथुरा)-में यमुनातटपर जानेका आदेश दे दिया!

ध्रुव बालक सही, पर वह आदियुगकी निष्ठा और विश्वास था। पहले महीने कपित्थ (कैथ) और बेर, दूसरे महीने सूखे पत्ते, तीसरे महीने जल, चौथे महीने केवल वायु—ये सब भी नित्य नहीं, इनको ग्रहण करनेकी अवधि भी बड़ी होती गयी। पाँचवें महीने तो वह बालक एक चरणसे खड़ा हो गया। श्वास लेना बंद कर दिया। मन्त्रके अधिष्ठाता भगवान् वासुदेवमें उसका चित्त एकाग्र हो गया।

देवता विघ्न पहुँचाते हैं उसे, जो बाहर देखता है। वर्षा, ग्रीष्म, वायु, शीत, सर्प, व्याघ्र या वसन्त और काम उसका क्या करें, जो श्वासतक नहीं लेता। जिसे शरीरका पता ही नहीं। देवताओंकी कठिनाई बढ़ती जा रही थी। ध्रुव जगदाधारमें एकाग्र होकर श्वासरोध किये हुए थे। देवताओंका श्वासरोध स्वत: हो रहा था। वे बहुत पीड़ा पा रहे थे। उन्होंने प्रभुसे प्रार्थना की उस बच्चेको तपसे निवृत्त करनेकी।

हृदयकी वह ज्योति अन्तर्हित हो गयी। व्याकुल ध्रुवने नेत्र खोले और चकित देखते रहे। वही सुनील, सुमधुर, चतुर्भुज, वनमाली, कमललोचन, रत्नकिरीटी बाहर प्रत्यक्ष खड़े थे। ध्रुव अज्ञान बालक—उसने हाथ जोड़े। सुना था कि भगवान्‌की स्तुति करनी चाहिये। क्या कहे? क्या करे? वह तो कुछ जानता नहीं। उन सर्वज्ञने मन्दस्मितके साथ अपना हाथ बढ़ाया। करस्थ श्रुतिरूप शंखसे बालकके कपोलका स्पर्श कर दिया। बालकके मानसमें हंसवाहिनी जाग्रत् हो गयीं।

ध्रुवको अविचल पदका वरदान मिला था; पर वे प्रसन्न नहीं थे। सर्वेश्वरको प्राप्तकर फिर याचना क्या? उनको ही सदाके लिये प्राप्त किया जा सकता था। महाराज उत्तानपाद तो जबसे ध्रुव वन गये, निरन्तर उन्हींका चिन्तन करते थे। अपनी भूल उनके हृदयका शूल बन गयी थी। उन्होंने ध्रुवका स्वागत किया। विमाता इस प्रकार मिलीं, जैसे ध्रुव उनके ही पुत्र हों। जिसपर विश्वेश प्रसन्न हों, उसपर सभी प्रसन्न रहते हैं। पिताने ध्रुवको सिंहासनपर अभिषिक्त किया और स्वयं वानप्रस्थ स्वीकार करके तप करने चले गये।

ध्रुव नरेश हुए। उनके छोटे भाई उत्तम आखेट-हेतु वनमें गये थे। कुबेरके किसी अनुचरने उनको मार डाला। उत्तमकी माता पुत्रशोकसे वनमें गयीं और दावाग्निमें जल गयीं। ध्रुवने कुबेरपर भ्रातृवधसे क्रुद्ध होकर चढ़ाई की। बहुत-से यक्ष मारे गये। पितामह मनुने ध्रुवको शान्त किया। क्रोध शान्त होनेपर कुबेरने दर्शन देकर आश्वस्त किया, वरदान दिया।

संसारमें प्रारब्ध शेष हो गया। दिव्य विमान आया ध्रुवको लेने। विप्रोंके मङ्गलपाठके मध्य ध्रुव विमानारोहण करने जा रहे थे। 'मर्त्यलोकके प्रत्येक प्राणीका मैं स्पर्श करता हूँ।' मृत्युने प्रार्थना की। प्रार्थनासे अधिककी शक्ति थी नहीं। ध्रुव हँसे, 'तुम्हें मेरा स्पर्श प्राप्त हो!' मृत्युके मस्तकपर पैर रखकर विमानमें बैठ गये वे। मार्गमें अपनी माताका उन्हें स्मरण हुआ। भला, कहीं ऐसे पुत्रकी माता मर्त्यलोकमें रहेंगी। वे ध्रुवसे आगे जा रही थीं।

वह अविचल धाम ध्रुवको प्राप्त हुआ। ध्रुव वहाँ अब भी भगवान्‌की उपासना करते हैं। उत्तर दिशामें एक ही स्थानपर स्थित वही ज्योतिर्मय ध्रुव-धाम है, जो रात्रिमें निर्मल गगनमें दीख पड़ता है।

अजामिलपर कृपा

अजामिल एक श्रेष्ठ ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुआ था। वह अनेक अलौकिक गुणोंसे सम्पन्न था। शील, सदाचार, विनम्रता, सत्यता, पवित्रता—ये सभी गुण उसमें सहज ही विद्यमान थे। उसने शास्त्रोंका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया था। गुरुजन एवं अतिथियोंकी सेवामें वह कभी त्रुटि नहीं करता था। उसकी वाणीमें संयम था। गुणज्ञ होकर भी अहंकाररहित होना बहुत कठिन है, परंतु उसे तो अहंकार छू भी नहीं पाया था।

उसके पिता नित्य यज्ञ किया करते थे। उनके लिये वनसे फल-फूल, समिधा, कुश आदि हवन-पूजनकी समग्र सामग्री वही लाता था। एक दिन वह यज्ञ-सामग्री लेकर वनसे लौट रहा था। संयोगवश उसकी दृष्टि एक युवकपर पड़ी जो शृङ्गारचेष्टाओंके द्वारा एक वेश्याके साथ आनन्दित हो रहा था। उन दोनोंको इस उन्मत्तावस्थामें देखकर अजामिलने अपने मनको बहुत रोकना चाहा, परंतु कुसंग उसपर अपना प्रबल प्रभाव डाल चुका था। वह बार-बार उस दृश्यको देख-देखकर आनन्दित होने लगा। सच है,

कुसंगने किसका विनाश नहीं किया!

अजामिल मोहाच्छन्न हो चुका था, उसका विवेक कुण्ठित हो गया। वह उस वेश्याके पास जा पहुँचा। अब तो वेश्याकी प्रसन्नता ही अजामिलकी प्रसन्नता थी। वह प्रसन्न रहे, इसके लिये अजामिल अपना घर-बार लुटाने लगा। उस कुलटाकी कुचेष्टाओंसे प्रभावित हो वह अपनी विवाहिता पत्नीको भी भूल गया एवं उसका परित्याग करके उस वेश्याके घर ही रहने लगा। अब वेश्याके पूरे कुटुम्बके भरण-पोषणका सारा भार अजामिलपर ही था। कुसंगके दुष्परिणामस्वरूप सदाचारी एवं शास्त्रोक्त वर्णाश्रमधर्मपालक अजामिल आज एक कुलटाके कुटुम्ब-पालनके लिये न्यायसे-अन्यायसे जिस किसी प्रकार भी धन अर्जित करके लाता। बहुत दिनोंतक अपवित्र अन्न खाने तथा उस कुलटाका संसर्ग करनेसे अजामिलकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। अब वह धन संचित करनेके लिये कभी यात्रियोंको बाँधकर उन्हें लूट लेता, कभी लोगोंको जुएमें छलसे हरा देता, कभी किसीका धन चुरा लेता। दूसरे प्राणियोंको सतानेमें अब उसे तनिक भी हिचक नहीं थी। इसी प्रकार पाप कमाते-कमाते अजामिल बूढ़ा हो गया। उस वेश्यासे उसकी दस संतानें हुईं। उसके सबसे छोटे पुत्रका नाम था 'नारायण'। वृद्ध अजामिल उसे बहुत प्यार करता था। अब वह अधिक समय उस बच्चेको खिलानेमें ही लगाता था। उसके प्रति उसका प्रगाढ़ ममत्व था।

मृत्यु किसको छोड़ती है? अजामिलकी मृत्युका समय भी आया। हाथोंमें फंदे लिये डरावने यमदूत उसे लेने पहुँच गये। उन भयंकर यमदूतोंको देखकर उसने उच्च स्वरसे अपने प्रिय पुत्र नारायणको पुकारा—'नारायण! नारायण!!' उसके प्राण प्रयाण कर रहे थे।

'नारायण' नामका उच्चारण सुनते ही भगवान् विष्णुके पार्षद तत्काल अजामिलके पास पहुँच गये और उन्होंने बलपूर्वक अजामिलको उन यमदूतोंके पाशसे मुक्त करा दिया। यमदूतोंने बहुत कुछ कहा, परंतु कृपासिन्धुकी कृपा अजामिलपर मानो बरस गयी थी। विष्णुपार्षदोंने कहा—

एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम्।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम्॥

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥

(श्रीमद्भा० ६। २। ८, १

'जिस समय इसने 'ना-रा-य-ण'— इन चार अक्षरों उच्चारण किया, उसी समय (केवल उतनेसे ही) पापीके समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो गया। यमदूतो! जान या अनजानमें ईंधनसे अग्निका स्पर्श हो जाय तो भस्म हो ही जाता है, वैसे ही जान-बूझकर या अनजा भगवान्के नामोंका संकीर्तन करनेसे मनुष्यके सारे भस्म हो जाते हैं।'

भगवत्कृपा-प्राप्तिके लिये भगवन्नाम एक अमोघ सा है। पापी दुरात्मा अजामिलने 'नारायण' नामके उच्चारणमा भगवत्कृपाका अनुभवकर कालान्तरमें विष्णुलोक प्राप्त कि

भक्त भद्रतनु और उनके गुरु दान्त

प्राचीन समयमें पुरुषोत्तमपुरीमें एक ब्राह्मण रहता उसका नाम था भद्रतनु। वह देखनेमें सुन्दर था और प कुलमें उत्पन्न हुआ था। माता-पिता उसे बचपनमें अनाथ करके परलोक चल बसे थे। कोई संरक्षक न हो भद्रतनु युवावस्थामें कुसंगमें पड़ गया। भद्रतनु कुसं प्रभावसे स्वाध्याय, संयम, नित्यकर्म आदिसे विमुख गया। सत्य, अतिथि-सत्कार एवं उपासनादि सब उ छूट गये। वह धर्मका निन्दक हो गया, सदा परधन परस्त्रीको पानेकी घातमें रहने लगा। भोगासक्त और क क्रोध-परायण हो गया। जुआ, चोरी, मदिरापान प्रभृति उसमें आ गये।

नगरके पास ही सुमध्या नामकी एक सुन्दरी रहती थी। बुरे संगमें पड़कर उसका भी पतन हो गया किंतु इस वृत्तिसे उसे बहुत घृणा थी। वह अपनी सदा दुखी रहती, पछताती। उसके हृदयमें धर्मका परलोकपर विश्वास था, ईश्वरपर आस्था थी। अपने उ लिये वह भगवान्से सदा प्रार्थना करती रहती थी।

भद्रतनुका सुमध्यापर वासनामय प्रेम था; पर सु उससे सचमुच प्रेम करती थी। उसने भद्रतनुको अनेक समझाना चाहा। जुआं-शराब आदिके भयंकर बतलाकर उसे दोषमुक्त करनेके प्रयत्नमें वह लगी रह

इस ब्राह्मण-युवकके पतनसे उसे बड़ा दुःख होता था।

एक दिन भद्रतनुके पिताका श्राद्ध-दिवस आया। श्रद्धा न होनेपर भी लोक-निन्दाके भयसे उसने श्राद्धकर्म किया, किंतु उसका चित्त सुमध्यामें लगा रहा। श्राद्धकर्मसे छुटकारा पाकर वह वेश्याके यहाँ पहुँच गया। सुमध्या ब्राह्मण-कुमारकी मूर्खतापर हँसने लगी। उसे भद्रतनुपर क्रोध आ गया। उसने कहा—'अरे ब्राह्मण! धिक्कार है तुझे। तेरे-जैसे पुत्रके होनेसे अच्छा था कि तेरे पिता पुत्रहीन ही रहते। आज तेरे पिताका श्राद्ध-दिन है और तू निर्लज्ज होकर एक वेश्याके यहाँ आया है। मेरे इस शरीरमें हड्डी, मांस, रक्त, मज्जा, मेद, मल, मूत्र आदिके अतिरिक्त और क्या है? ऐसे घृणित शरीरमें तूने क्यों सौन्दर्य मान लिया है? मैं तो वेश्या हूँ, अधम हूँ, मुझपर आसक्त होनेमें तो तेरी अधोगति ही होनी है। यही आसक्ति यदि तेरी भगवान्में होती तो पता नहीं अबतक तू कितनी ऊँची स्थितिको पा लेता। जीवनका क्या ठिकाना है, मृत्यु तो सिरपर ही खड़ी है। कच्चे घड़ेके समान काल कभी भी जीवनको नष्ट कर देगा। तू ऐसे अल्पजीवनमें क्यों पापमें लगा है? विचार कर। मनको मुझसे हटाकर भगवान्में लगा। भगवान् बड़े दयालु हैं, वे तुझे अवश्य अपना लेंगे।'

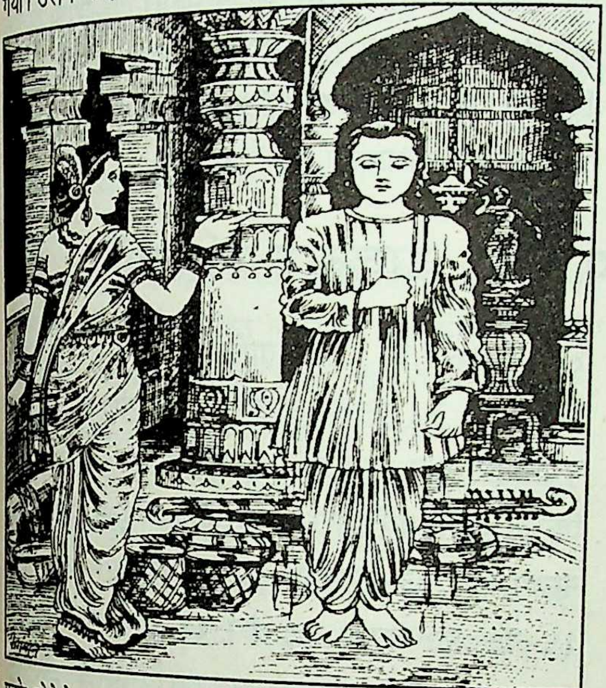

सुमध्याके वचनोंका भद्रतनुपर बहुत प्रभाव पड़ा। वह सोचने लगा—'सचमुच मैं कितना मूर्ख हूँ, एक वेश्यामें जितना ज्ञान है, उतना भी मुझ दुरात्मामें नहीं है। ब्राह्मणकुलमें जन्म लेकर भी मैं पाप करनेमें ही लगा रहा। जब मृत्यु निश्चित है और मृत्युके पश्चात् पापका दण्ड भोगनेके लिये यमराजके पास जाना भी निश्चित ही है, तब क्यों मैं और पाप करूँ? मैंने तो जप-तप, अध्ययन, पूजन, हवन-तर्पण आदि कोई सत्कर्म किये नहीं। मुझसे भगवान्की उपासना भी नहीं हुई, अब मेरी क्या गति होगी? कैसे मेरा पापोंसे छुटकारा होगा।' इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ वह सुमध्याको पूज्यभावसे प्रणाम करके लौट आया। सुमध्याने भी उसी समयसे वेश्यावृत्ति छोड़ दी और वह भगवान्के भजनमें लग गयी।

भद्रतनु पश्चात्ताप करता हुआ मार्कण्डेय मुनिके समीप गया। वह उनके चरणोंपर गिर पड़ा और फूट-फूटकर रोने लगा। मार्कण्डेयजीने भद्रतनुकी बात सुनकर उससे बड़े स्नेहसे कहा—'तुम्हारी बुद्धि पापसे अलग हुई, यह तुमपर भगवान्की कृपा है। जो पहले पापी रहा हो, पर पापप्रवृत्ति छोड़कर भगवान्के भजनका निश्चय कर ले, तो वह भगवान्का प्रिय पात्र है, भगवान् ही उसे पापसे दूर होनेकी सद्बुद्धि देते हैं। तुमने अनेक जन्मोंमें भगवान्की पूजा की है, अतः तुम्हारा कल्याण शीघ्र होगा। मैं इस समय एक अनुष्ठानमें लगा हूँ, अतः तुम दान्तमुनिके पास जाओ। वे सर्वज्ञ महात्मा तुम्हें उपदेश करेंगे।'

भद्रतनु वहाँसे दान्तमुनिके आश्रमपर गया। वहाँ उसने मुनिके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रार्थना की—'महात्मन्! मैं जातिसे ब्राह्मण होनेपर भी महापापी हूँ। मैंने सदा पाप ही किये हैं। आप सर्वज्ञ हैं, दयालु हैं। कृपया मुझ पापीके लिये संसार-बन्धनसे छूटनेका उपदेश कीजिये।'

दान्तमुनिने कृपापूर्ण स्वरमें कहा—'भाई! भगवान्की कृपासे ही तुम्हारी बुद्धि ऐसी हुई है। मैं तुम्हें वह उपाय बतला रहा हूँ, जिससे मनुष्य सहज ही भव-बन्धनसे छूट जाता है।' तुम पाखण्ड तथा काम, क्रोध, लोभादिका पूर्णतः परित्यागकर निरन्तर स्थिरचित्त हो **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करो। इसके फलस्वरूप तुम्हें शीघ्र ही भगवद्दर्शन होंगे।

दान्तमुनिसे उपदिष्ट होकर भद्रतनु एकान्तमें जाकर मन लगाकर श्रद्धापूर्वक निष्ठासे भगवान्का भजन तथा मन्त्र-जप करने लगा। भगवान्की अनन्य भक्तिसे भद्रतनुका हृदय शुद्ध

हो गया। अतः उसपर कृपा करनेके लिये उसके सम्मुख दयामय प्रभु श्रीविष्णु प्रकट हो गये।

भगवान्का दर्शन करके भद्रतनुको बड़ा आनन्द हुआ, वह गद्गदस्वरसे विविध भावापन्नरूपमें स्तुति करने लगा तथा भगवान्की महिमाका बहुत देरतक गुणानुवाद करता रहा और अन्ततक भगवान्की कृपाका अनुभव करके भद्रतनु विह्वल होकर उनके चरणोंमें पड़ा रहा। भगवान्ने उसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। भगवान्का दर्शन करते ही भद्रतनुकी मुक्तिकी इच्छा दूर हो गयी थी। वह तो भक्तिका भूखा हो उठा था। उसने भगवान्से प्रार्थना की—'प्रभो! आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया, फिर भी मैं आपसे एक वरदान माँगता हूँ। आ चरणोंमें जन्म-जन्म मेरा अनुराग अविचल रहे।'

जन्मजन्मनि मे भक्तिस्त्वय्यस्तु सुदृढा प्रभो।

(पद्मपुराण, क्रियायोग० १७।

भगवान्ने उसे 'सख्य-भक्ति' प्रदान की। उसके अनु उसके गुरु दान्तमुनिको भी भगवान्ने दर्शन दिये। दान्तमु भी भगवान्से भक्तिका ही वरदान माँगा। गुरु-शिष्य दोनों कृतार्थ करके भगवान् अन्तर्धान हो गये। भक्तिमय जी बिताकर अन्तमें गुरु दान्तमुनि और शिष्य भद्रतनु दोनों भगवान्के परमधामको प्राप्त हुए।

भगवान्के सगुण स्वरूप और अवतार-लीलाएँ

जगत्की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलयका अहेतु-हेतु वह परमात्मा विश्व-ब्रह्माण्डके कल्याणार्थ लीलापूर्वक अनेक भावमय नित्य आनन्दघन रूपोंको धारणकर नित्य लीला करता है। उसके इन सगुण, साकार, चिन्मय रूपोंके ध्यान-स्मरण, नाम-जप, लीला-चिन्तनसे मानव-हृदय शुद्ध हो जाता है। मनुष्य इन रूपोंमेंसे किसीको नैष्ठिकरूपसे हृदयमें विराजमान करके संसार-सागरसे पार हो जाता है।

सगुण-साकार प्रभुके ये रूप नित्य सर्वेश्वर तथा अवताररूप दोनों प्रकारके हैं। सृष्टि, स्थिति, प्रलयके लिये ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूपसे वे उपासित होते हैं। उनके साथ उनकी अभिन्न शक्तियाँ होती ही हैं। वे ही सूर्य और गणेश-रूपसे भक्तोंद्वारा सेवित होते हैं। पञ्चदेवोपासनामें गणेश, शिव, शक्ति, सूर्य और विष्णु उन्हींके रूप हैं।

जगत्में धर्मकी स्थापना, ज्ञानके संरक्षण, भक्तोंके परित्राण तथा आततायी असुरोंके दलनके लिये एवं प्रेमी भक्तोंकी प्रेमोत्कण्ठा पूर्ण करनेके लिये वे प्रभु बार-बार अवतीर्ण होते हैं। उनके ये अवताररूप दिव्य, सच्चिदानन्दघन हैं और उनकी ये अवतार-लीलाएँ परम मङ्गलमयी हैं।

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।

सत्त्वमूर्ति भगवान्के अवतारोंकी कोई संख्या नहीं। १-मत्स्य, २-कच्छप, ३-वाराह, ४-नृसिंह, ५-वामन, ६-परशुराम, ७-श्रीराम, ८-बलराम, ९-बुद्ध और १०-कल्कि—इन दशावतारोंको शास्त्रोंने युगावता रूप माना है। इनके अतिरिक्त ११-श्रीकृष्णका अव पूर्णावतार कहा जाता है। उसका कोई निश्चित समय न पिछले अट्ठाईसवें द्वापरमें यह अवतार हुआ था। १२-न नारायण, १३-सनकादि, १४-कपिल, १५-दत्ता १६-यज्ञ, १७-ऋषभ, १८-हंस, १९-धन्वन्तरि, २०-हय २१-व्यास—भगवान्के ये अवतार विश्वमें ज्ञान-परम रक्षा, प्रसार तथा उसके आदर्श-स्थापनके लिये हुए। पृथुरूपमें भगवान् लोक-व्यवस्थाके सञ्चालनके लिये प २३-ध्रुवके लिये और २४-गजेन्द्रके लिये भगवान्का अ हुआ। इनके अतिरिक्त असुरोंको मोहित करनेके लिये भग मोहिनीरूप धारण किया था।

हिंदू-शास्त्रोंने ही इस सगुण तत्त्वके रहस्यको और स्वीकार किया। मूर्तिपूजा विश्वके प्रत्येक प्रत्येक प्राचीन जातिमें प्रचलित थी और मानव- मूर्तिपूजक होनेसे किसी-न-किसी रूपमें मनुष्य उसकी मान्यता रहेगी ही; परंतु मनुष्यको यह स्वभा दयामयने क्यों प्रदान किया? इसका उत्तर श्रु महर्षि ही दे सके। वह स्वयं सगुण-साकार है। दिव्यरूपमें हमारी अनुरक्ति हो तो हम समस्त कष्टोंसे पा जायँ। अवतार-रहस्य तो पुराणोंमें भरे पड़े हैं। यहाँ भगवान्के नित्य दिव्य रूपों एवं चरितोंका अत्यन्त

स्मरण मात्र करना है।

[१]

श्रीसनकादि

सृष्टिके प्रारम्भमें लोकपितामह ब्रह्माने विविध लोकोंको रचनेकी इच्छासे तपस्या की। स्रष्टाके उस अखण्ड तपसे प्रसन्न होकर विश्वाधार प्रभुने 'तप' अर्थवाले 'सन' नामसे युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन चार निवृत्तिपरायण ऊर्ध्वरेता मुनियोंके रूपमें अवतार ग्रहण किया। ये प्राकट्य-कालसे ही मोक्षमार्ग-परायण, ध्यानमें तल्लीन रहनेवाले, नित्यसिद्ध एवं नित्य-विरक्त थे। इन नित्य ब्रह्मचारियोंसे ब्रह्माजीके सृष्टि-विस्तारकी आशा पूरी नहीं हो सकी।

देवताओंके पूर्वज और लोकस्रष्टाके आद्य मानस-पुत्र सनकादिके मनमें कहीं किंचित् आसक्ति नहीं थी। वे प्राय: आकाशमार्गसे विचरण किया करते थे। एक बार वे श्रीभगवान्के श्रेष्ठ वैकुण्ठधाममें पहुँचे। वहाँ सभी शुद्ध-सत्त्वमय चतुर्भुजरूपमें रहते हैं। सनकादि भगवद्दर्शनकी लालसासे वैकुण्ठकी दुर्लभ दिव्य दर्शनीय वस्तुओंकी उपेक्षा करते हुए छठी ड्योढ़ीके आगे बढ़ ही रहे थे कि भगवान्के पार्षद जय और विजयने उन पञ्चवर्षीय-से दीखनेवाले दिगम्बर तेजस्वी कुमारोंकी हँसी उड़ाते हुए उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। भगवद्दर्शनमें व्यवधान उत्पन्न होनेके कारण सनकादिने उन्हें दैत्यकुलमें जन्म लेनेका शाप दे दिया।

अपने प्राणप्रिय एवं अभिन्न सनकादि कुमारोंके अनादरका संवाद मिलते ही वैकुण्ठनाथ श्रीहरि तत्काल वहाँ पहुँच गये। भगवान्की अद्भुत, अलौकिक एवं दिव्य सौन्दर्यराशिके दर्शनकर सर्वथा विरक्त सनकादि कुमार चकित हो गये। वे अपलक नेत्रोंसे प्रभुकी ओर देखने लगे। उनके हृदयमें आनन्द-सिन्धु उच्छलित हो रहा था। उन्होंने वनमालाधारी लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णुकी स्तुति करते हुए कहा—

प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूत रूपं
तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः।
तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम
योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान् प्रतीतः॥

(श्रीमद्भा० ३। १५। ५०)

'विपुलकीर्ति प्रभो! आपने हमारे सामने जो यह मनोहर रूप प्रकट किया है, उससे हमारे नेत्रोंको बड़ा ही सुख मिला है; विषयासक्त अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये इसका दृष्टिगोचर होना अत्यन्त कठिन है। आप साक्षात् भगवान् हैं और इस प्रकार स्पष्टतया हमारे नेत्रोंके सामने प्रकट हुए हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं।'

'ब्राह्मणोंकी पवित्र चरण-रजको मैं अपने मुकुटपर धारण करता हूँ।' श्रीभगवान्ने अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा। 'जय-विजयने मेरा अभिप्राय न समझकर आप लोगोंका अपमान किया है। इस कारण आपने इन्हें दण्ड देकर सर्वथा उचित ही किया है।'

लोकोद्धारार्थ लोक-पर्यटन करनेवाले, सरलता एवं करुणाकी मूर्ति सनकादि कुमारोंने श्रीभगवान्की सारगर्भित मधुर वाणीको सुनकर उनसे अत्यन्त विनीत स्वरमें कहा—

'सर्वेश्वर! इन द्वारपालोंको आप जैसा उचित समझें, वैसा दण्ड दें, अथवा पुरस्काररूपमें इनकी वृत्ति बढ़ा दें—हम निष्कपटभावसे सब प्रकार आपसे सहमत हैं। अथवा हमने आपके इन निरपराध अनुचरोंको शाप दिया है, इसके लिये हमें ही उचित दण्ड दें। हमें वह भी सहर्ष स्वीकार है।'

'यह मेरी प्रेरणासे ही हुआ है।' श्रीभगवान्ने उन्हें संतुष्ट किया। इसके अनन्तर सनकादिने सर्वाङ्गसुन्दर भगवान् विष्णु और उनके धामका दर्शन किया और प्रभुकी परिक्रमा करके उनका गुणगान करते हुए वे चारों कुमार लौट गये। जय-विजय इनके शापसे तीन जन्मोंतक क्रमशः हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष, रावण-कुम्भकर्ण और शिशुपाल-दन्तवक्त्र हुए।

उस समय जब भगवान् सूर्यकी भाँति परम तेजस्वी सनकादि आकाश-मार्गसे भगवान्के अंशावतार महाराज पृथुके समीप पहुँचे, तब उन्होंने अपना अहोभाग्य समझते हुए उनकी सविधि पूजा की। उनका पवित्र चरणोदक माथेपर छिड़का और उन्हें सुवर्णके सिंहासनपर बैठाकर बद्धाञ्जलि हो विनयपूर्वक निवेदन किया—

अहो आचरितं किं मे मङ्गलं मङ्गलायनाः।
यस्य वो दर्शनं ह्यासीद्दुर्दर्शानां च योगिभिः॥
नैव लक्ष्यते लोको लोकान् पर्यटतोऽपि यान्।
यथा सर्वदृशं सर्व आत्मानं येऽस्य हेतवः॥

(श्रीमद्भा० ४। २२। ७,९)

'मङ्गलमूर्ति मुनीश्वरो! आपके दर्शन तो योगियोंको भी

दुर्लभ हैं; मुझसे ऐसा क्या पुण्य बना है, जिसके फलस्वरूप मुझे स्वतः आपका दर्शन प्राप्त हुआ।…इस दृश्य-प्रपञ्चके कारण महत्तत्त्वादि यद्यपि सर्वगत हैं, तो भी वे सर्वसाक्षी आत्माको नहीं देख सकते; इसी प्रकार यद्यपि आप समस्त लोकोंमें विचरते रहते हैं, तो भी अनधिकारी लोग आपको नहीं देख पाते।'

फिर अपने सौभाग्यकी सराहना करते हुए उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा—

तदहं कृतविश्रम्भः सुहृदो वस्तपस्विनाम्।
सम्पृच्छे भव एतस्मिन् क्षेमः केनाञ्जसा भवेत्॥

(श्रीमद्भा० ४। २२। १५)

'आप संसारानलसे संतप्त जीवोंके परम सुहृद् हैं; इसलिये आपमें विश्वास करके मैं यह पूछना चाहता हूँ कि इस संसारमें मनुष्यका किस प्रकार सुगमतासे कल्याण हो सकता है।'

भगवान् सनकादिने आदिराज पृथुका ऐसा प्रश्न सुनकर उनकी बुद्धिकी प्रशंसा की और उन्हें विस्तारपूर्वक कल्याणका उपदेश देते हुए कहा—

अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम्।
भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम्॥
न कुर्यात्कर्हिचित्सङ्गं तमस्तीव्रं तितीरिषुः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां यदत्यन्तविघातकम्॥
कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशां
षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीरषन्ति।
तत् त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं
कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम्॥

(श्रीमद्भा० ४। २२। ३३-३४, ४०)

'धन और इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करना मनुष्यके सभी पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है; क्योंकि इनकी चिन्तासे वह ज्ञान और विज्ञानसे भ्रष्ट होकर वृक्षादि स्थावर योनियोंमें जन्म पाता है। इसलिये जिसे अज्ञानान्धकारसे पार होनेकी इच्छा हो, उस पुरुषको विषयोंमें आसक्ति कभी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिमें बड़ी बाधक है।'

'जो लोग मन और इन्द्रियरूप मगरोंसे संकुल इस संसार-सागरको योगादि दुष्कर साधनोंसे पार करना चा हैं, उनका उस पार पहुँचना कठिन ही है; क्योंकि उ कर्णधाररूप श्रीहरिका आश्रय नहीं है। अतः तुम भगवान्के आराधनीय चरणकमलोंको नौका बनाकर अना ही इस दुस्तर दुःख-समुद्रको पार कर लो।'

भगवान् सनकादिके इस अमृतमय उपदेशसे आप्या होकर आदिराज पृथुने उनकी स्तुति करते हुए पुनः उन्हें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सविधि पूजा की।

ऋषिगण प्रलयके कारण पहले कल्पका आत्मज्ञान भू गये थे। श्रीभगवान्ने अपने इस अवतारमें उन्हें यथो उपदेश दिया, जिससे उन लोगोंने शीघ्र ही अपने हृद उस तत्त्वका साक्षात्कार कर लिया।

सनकादि अपने योगबलसे अथवा 'हरिः शरण मन्त्रके जप-प्रभावसे सदा पाँच वर्षके ही कुमार बने र हैं। ये प्रमुख योगवेत्ता, सांख्यज्ञान-विशारद, धर्मशास्त्रों आचार्य तथा मोक्षधर्मके प्रवर्तक हैं। श्रीनारदजीको इ श्रीमद्भागवतका उपदेश किया था।

भगवान् सनत्कुमारने ऋषियोंके तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी प्र उत्तरमें सुविस्तृत उपदेश देते हुए बताया था—

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्॥
निवृत्तिः कर्मणः पापात् सततं पुण्यशीलता।
सद्वृत्तिः समुदाचारः श्रेय एतदनुत्तमम्॥

(महाभारत, शान्ति० ३२९। ६

'विद्याके समान कोई नेत्र नहीं है। सत्यके समान तप नहीं है। रागके समान कोई दुःख नहीं है और त्य समान कोई सुख नहीं है। पापकर्मोंसे दूर रहना, सदा पुण्य अनुष्ठान करना, श्रेष्ठ पुरुषोंके-से बर्ताव और सदाचारका करना—यही सर्वोत्तम श्रेय (कल्याण)-का साधन है

प्राणिमात्रके सच्चे शुभाकांक्षी लीला-वपुधारी इन कु चतुष्टयके पावन पद-पद्मोंमें अनन्त प्रणाम!

[२]

भगवान् वाराह

'भगवन्! हमारे लिये स्थान निर्देश करें!' स्व मनुने स्रष्टासे प्रार्थना की। चारों ओर महाप्रलयका

तरंगें ले रहा था। लोकमूल कमलपर ब्रह्माजीने मानसिक सृष्टि व्यक्त कर ली। मनुको सृष्टिकी आज्ञा हुई। मानव-सृष्टिके लिये स्थूल स्थान चाहिये। पृथ्वी तो जलमें डूब गयी थी।

'वे सर्वेश्वर ही इसका उद्धार करें।' भगवान् ब्रह्माने देखा कि रसा (पृथ्वी) तो रसातलमें है। वे ध्यानस्थ हो गये। सहसा छींक आयी। अङ्गुष्ठके बराबर एक उज्ज्वल वाराह शिशु नासिकासे निकलकर आकाशमें स्थित हो गया।

'यह क्या है?' ऋषियोंके साथ ब्रह्माजी साश्चर्य देख रहे थे। वाराह क्षणभरमें हाथीके बराबर हो गया। वह बढ़ता जा रहा था। एक घनगर्जन-सी घुरघुराहट हुई। वाराहने सटाएँ हिलायीं और समुद्रमें प्रविष्ट हो गये।

× × ×

'आपको विष्णुका कुछ पता है?' जैसे काला पर्वत हो। सोनेकी भारी गदा लिये वह दितिका पीली आँखोंवाला छोटा पुत्र हिरण्याक्ष देवर्षि नारदसे पूछ रहा था। उसने वरुणदेवको युद्धके लिये ललकारा था। देवता उसकी हुँकार सुनकर स्वर्गसे भाग गये थे। समुद्र उसकी क्रीडासे चीत्कार कर उठा था। उसे कोई चाहिये, जिससे वह लड़े। उसका बल किसी योद्धाको चाहता था। युद्ध किये बिना उसे शान्ति नहीं थी। वरुणने भी कह दिया था कि वे वृद्ध हो गये हैं। उन्होंने ही उसे विष्णुभगवान्‌के पास भेजा था।

'वे अभी श्वेत वाराहरूप धारण करके इसी समुद्रमें सीधे नीचे जा रहे हैं। तुम शीघ्रता करो तो पकड़ लोगे।' देवर्षिने दैत्यको देखा। भगवान्‌के पार्षद जय और विजयने सनकादिकुमारोंको वैकुण्ठ-प्रवेशके समय रोक दिया था। ऋषियोंने शाप दे दिया उन्हें असुर होनेका। अब वे दितिके गर्भसे प्रकट हुए हैं। उनमें एक तो यही है। देवर्षिको दया आयी। भगवान्‌के हाथसे मरकर यह दूसरा जन्म ले। तीन जन्ममें तो फिर अपने रूपको पा लेगा। इन जन्मोंसे जितनी जल्दी छूटे, उतना अच्छा।

'अरे, इसे कहाँ ले जाता है? यह तो स्रष्टाने हम पातालवासियोंके लिये भेजी है।' दैत्य पाताल पहुँचा। भगवान् वाराहने पृथ्वीको अपने दाँतोंपर उठा लिया था। दैत्यको तो विवाद करना था, पर भगवान्‌ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। वे पृथ्वीको लेकर चले। दैत्य पीछे-पीछे दौड़ा। 'तू इसे छोड़ दे, नहीं तो मारा जायगा।'

'अच्छा, अब तू अपने मनकी कर ले!' दैत्य पीछे दौड़ आया। भगवान्‌ने पृथ्वीको ऊपर स्थापित करके उसे ललकारा। दोनोंमें घोर संग्राम हुआ। अन्तमें दैत्य मारा गया। यह श्वेतवाराह-कल्पकी सृष्टि पृथ्वीकी उसी पुनः प्रतिष्ठाके समयसे प्रारम्भ हुई है।

[३]

देवर्षि नारद

मङ्गलमूर्ति नारदजी श्रीभगवान्‌के मनके अवतार हैं। कृपामय प्रभु जो कुछ करना चाहते हैं, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी वीणापाणि नारदजीके द्वारा वैसी ही चेष्टा होती है।

श्रीमद्भागवत (१। ३। ८)-में कहा गया है—

तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः॥

'ऋषियोंकी सृष्टिमें उन्होंने देवर्षि नारदके रूपमें तीसरा अवतार ग्रहण किया और सात्वत-तन्त्रका (जिसे 'नारद-पञ्चरात्र' कहते हैं) उपदेश किया; उसमें कर्मोंके द्वारा किस प्रकार कर्मबन्धनसे मुक्ति मिलती है, इसका वर्णन है।'

परम तपस्वी और ब्राह्मतेजसे सम्पन्न नारदजी अत्यन्त सुन्दर हैं। उनका वर्ण गौर है। उनके मस्तकपर शिखा सुशोभित है। अत्यन्त कान्तिमान् नारदजी देवराज इन्द्रके दिये हुए दो उज्ज्वल, महीन, दिव्य, शुभ और बहुमूल्य वस्त्र धारण करते हैं। वेद और उपनिषदोंके ज्ञाता, देवताओंद्वारा पूजित, पूर्वकल्पोंकी बातोंके जानकार, महाबुद्धिमान् और असंख्य सद्गुणोंसे सम्पन्न महातेजस्वी नारदजी भगवान् पद्मयोनिसे प्राप्त वीणाकी मनोहर झंकृतिके साथ दयामय भगवान्‌के मधुर, मनोहर एवं मङ्गलमय नाम और गुणोंका गान करते हुए लोक लोकान्तरोंमें विचरण किया करते हैं। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले साधु पुरुषोंके हितके लिये नारदजी सतत प्रयत्नशील रहते हैं। वे सचल कल्पवृक्ष हैं।

वे स्वयं अपने मुखारविन्दसे कहते हैं—

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि॥

(श्रीमद्भा० १। ६। ३४)

'जब मैं उनकी लीलाओंका गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु, जिनके चरण-कमल समस्त तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं और जिनका यशोगान मुझे बहुत ही प्रिय लगता है, बुलाये हुएकी भाँति तुरंत मेरे हृदयमें आकर दर्शन दे देते हैं।'

कृपाकी मूर्ति नारदजी वेदान्त, योग, ज्यौतिष, आयुर्वेद एवं संगीत आदि अनेक शास्त्रोंके आचार्य हैं और भक्तिके तो वे मुख्याचार्य हैं। उनका पाञ्चरात्र भागवत-मार्गका प्रधान ग्रन्थरत्न है। प्राणिमात्रकी कल्याण-कामना करनेवाले नारदजी श्रीहरिके मार्गपर अग्रसर होनेकी इच्छा रखनेवाले प्राणियोंको सहयोग देते रहते हैं। मुमुक्षुओंका मार्ग-दर्शन उनका प्रमुख कर्तव्य है। उन्होंने त्रैलोक्यमें कितने प्राणियोंको किस प्रकार परम प्रभुके पावन पद-पद्मोंमें पहुँचा दिया, इसकी गणना सम्भव नहीं।

बालक प्रह्लादकी दृढ़ भक्तिसे भगवान् नृसिंह अवतरित हुए। प्रह्लादके इस भगवद्विश्वास एवं प्रगाढ़ निष्ठामें भगवान् नारद ही मुख्य हेतु थे। उन्होंने गर्भस्थ प्रह्लादको लक्ष्य करके उनकी माता दैत्येश्वरी कयाधूको भक्ति और ज्ञानका उपदेश दिया। प्रह्लादजीका वही ज्ञान उनके जीवन और जन्मको सफल करनेमें हेतु बना। इसी प्रकार पिताके तिरस्कारसे क्षुब्ध ध्रुवकुमारके वन-गमनके समय नारदजीने उन्हें भगवान् वासुदेवका मन्त्र दिया तथा उन्हें उपासनाकी पद्धति भी विस्तारपूर्वक बतायी। जब दक्ष प्रजापतिने पञ्चजनकी पुत्री असिक्नीसे 'हर्यश्व' नामक दस सहस्र पुत्र उत्पन्नकर उन्हें सृष्टि-विस्तारका आदेश दिया और एतदर्थ वे पश्चिम दिशामें सिन्धु नदी और समुद्रके संगमपर स्थित पवित्र नारायण-सरपर तपश्चरण करने पहुँचे, तब नारदजीने अपने अमृतमय उपदेशसे उन सबको विरक्त बना दिया। दक्ष प्रजापति बड़े दुःखी हुए। उन्होंने फिर 'शबलाश्व' नामक एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये। नारदजीने कृपापूर्वक उन्हें भी श्रीभगवच्चरणारविन्दोंकी ओर उन्मुख कर दिया। फिर तो अत्यन्त क्रुद्ध होकर प्रजापति दक्षने अजातशत्रु नारद शाप दे दिया—'तुम लोक-लोकान्तरोंमें भटकते रहोगे तुम्हें कहीं भी दो घंटेसे अधिक ठहरनेके लिये ठौर मिलेगी।' साधुशिरोमणि नारदजीने इसे प्रभुकी मङ्गलम इच्छा समझकर दक्षका शाप स्वीकार कर लिया।

जब वेदोंका विभाग तथा पञ्चम वेद महाभारतकी कर लेनेपर भी श्रीव्यासजी अपनेको अपूर्णकाम अ करते हुए खिन्न हो रहे थे, तब दयापरवश श्रीनारदजी समीप पहुँच गये और व्यासजीके पूछनेपर उ बताया—'व्यासजी! आपने भगवान्‌के निर्मल यशका प्रायः नहीं किया। मेरी ऐसी मान्यता है कि वह शास्त्र ज्ञान सर्वथा अपूर्ण है, जिससे जगदाधार स्वामी संतुष्ट न वह वाणी आदरके योग्य नहीं, जिसमें श्रीहरिकी परम कीर्ति वर्णित न हो। वह तो कौओंके लिये उच्छिष्ट फेंक स्थानके समान अपवित्र है। उसके द्वारा तो मूर्ख व्यक्तियोंका ही मनोरञ्जन हो सकता है। मानस- कमलवनमें विहार करनेवाले राजहंसोंके समान ब्रह्म विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भ मन उसमें कैसे रम सकता है? विद्वान् पुरुषोंने नि किया है कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान समस्त धर्म-कर्मोंकी सफलता इसीमें है कि पुण्य श्रीप्रभुकी कल्याणमयी लीलाओंका गान किया अतएव—

त्वमप्यदभ्रश्रुत विश्रुतं विभोः
समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम्।
आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां
संक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा॥

(श्रीमद्भा० १। ५

'व्यासजी! आपका ज्ञान पूर्ण है; आप भगवान् कीर्तिका—उनकी प्रेममयी लीलाका वर्णन कीजिये। बड़े-बड़े ज्ञानियोंकी भी जिज्ञासा पूर्ण होती है। उनके दुःखोंके द्वारा बार-बार रौंदे जा रहे हैं, उनके शान्ति इसीसे हो सकती है। इसके सिवा उसका उपाय नहीं है।'

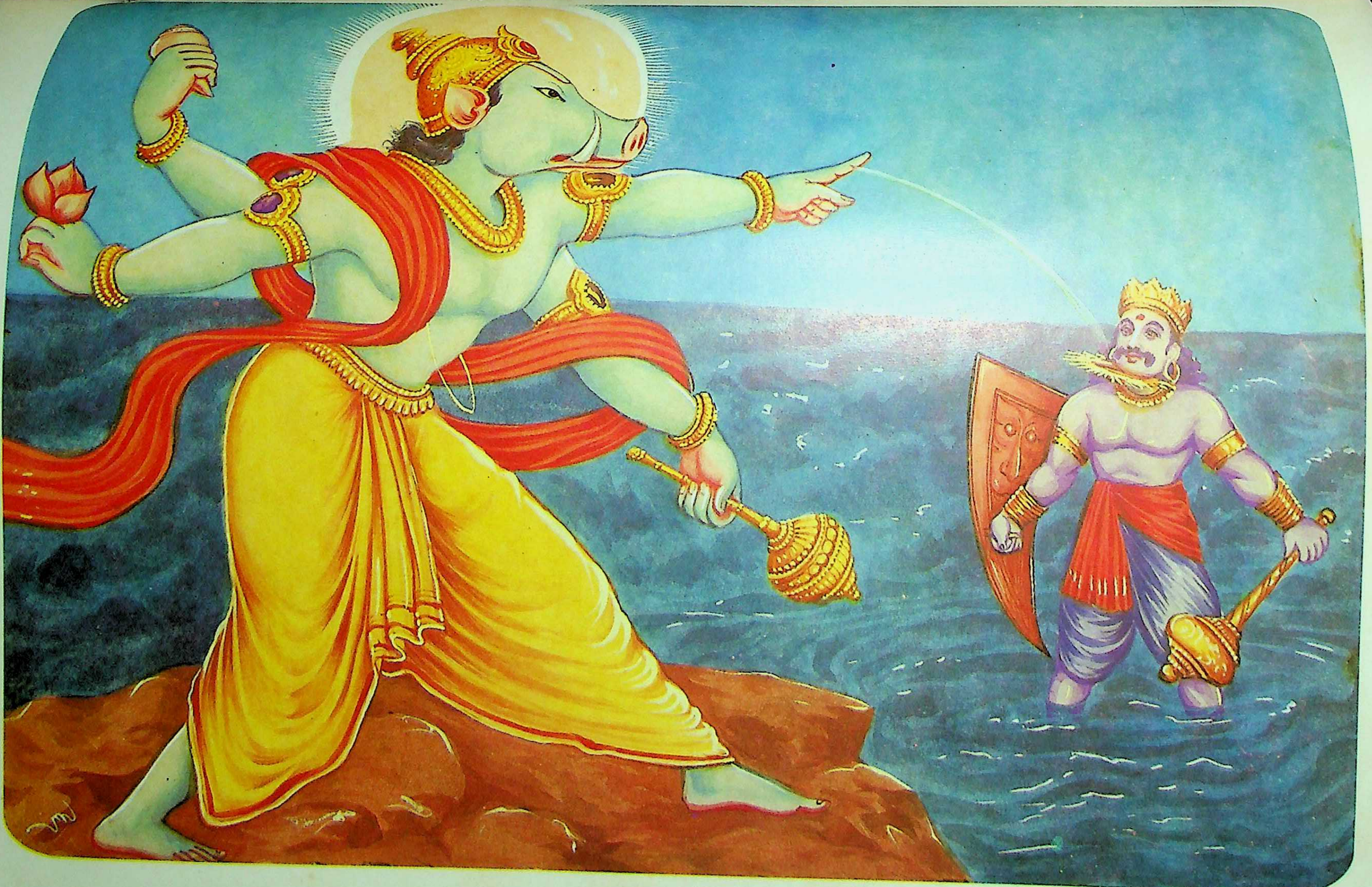

वराह-रूप भगवान् श्रीहरिद्वारा हिरण्याक्षका उद्धार

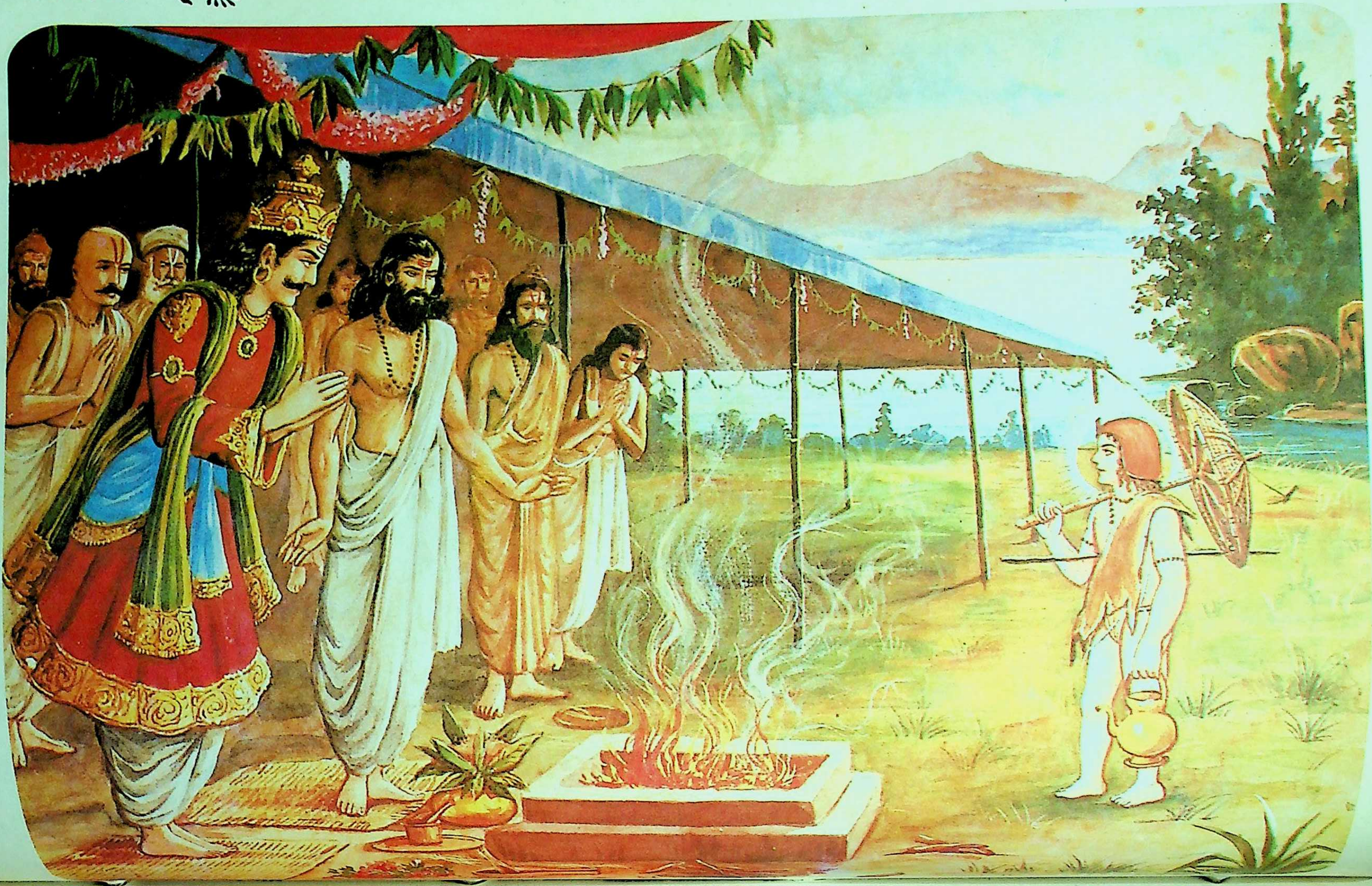

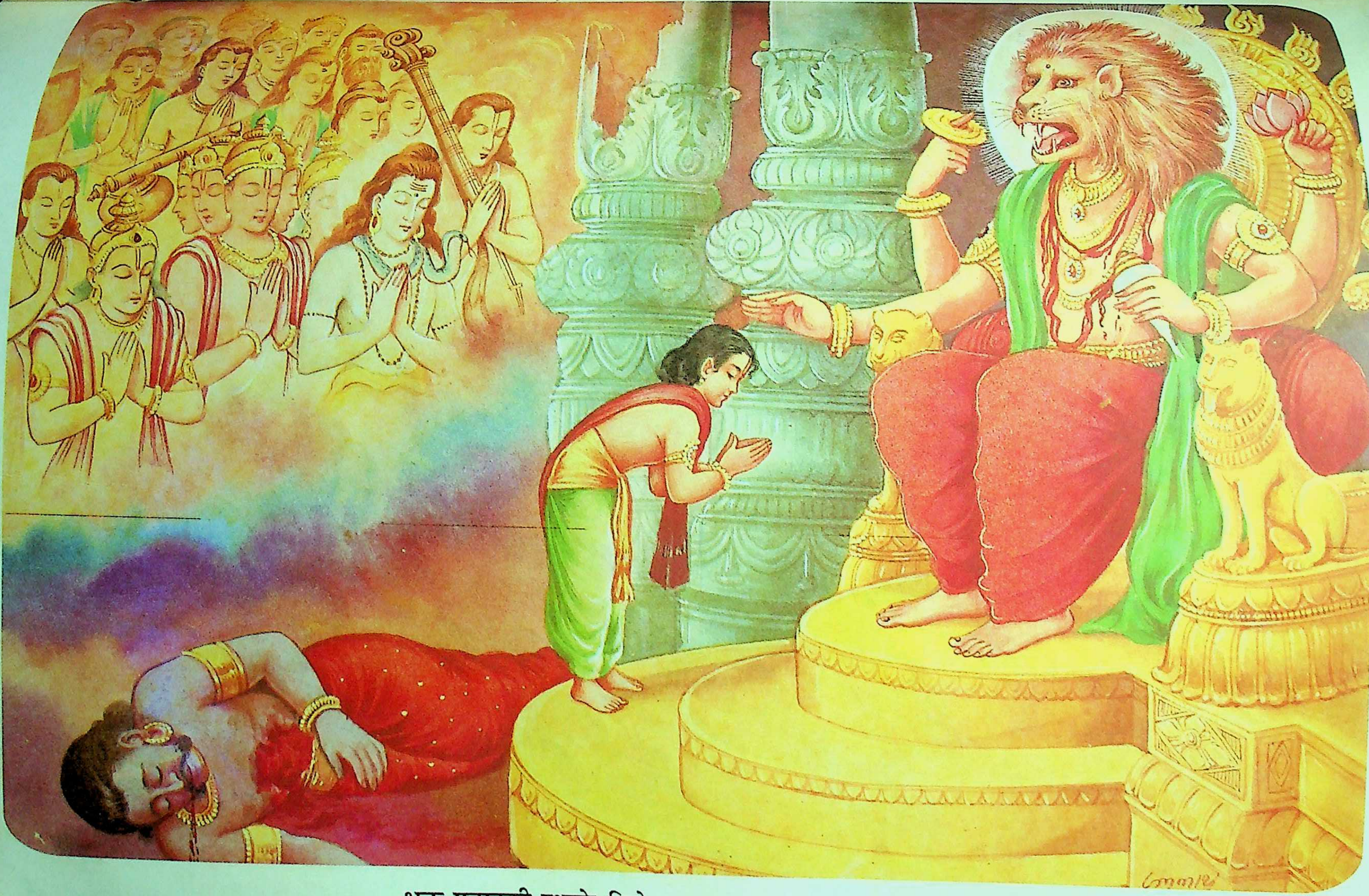

भक्त प्रह्लादकी रक्षाके लिये भगवान् नारायणका नृसिंहावतार

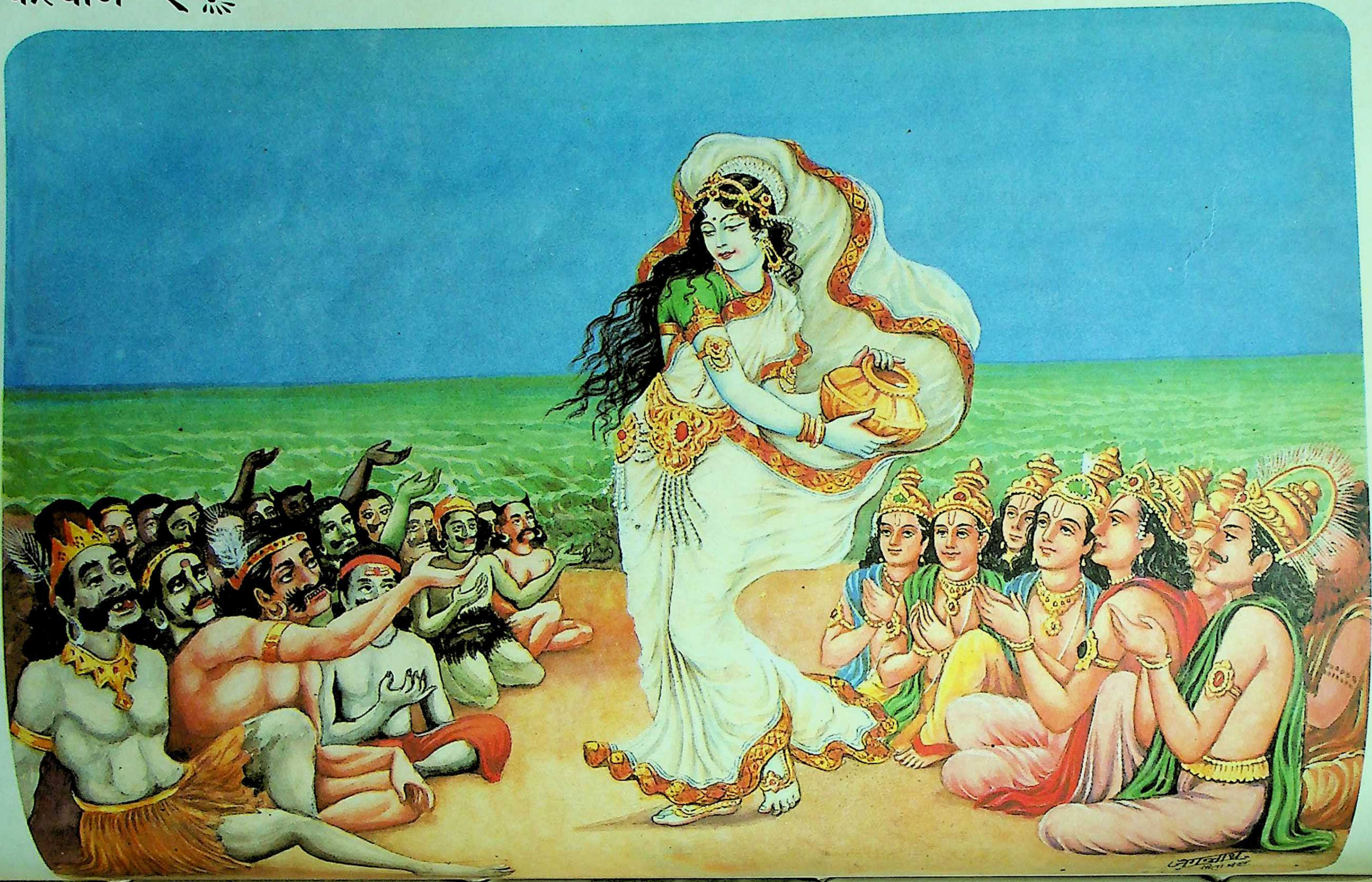

जब दुर्योधनके छल और कुटिल नीतिसे सहृदय पाण्डवोंने अरण्यके लिये प्रस्थान किया, उस समय भरतवंशियोंके विनाशसूचक अनेक प्रकारके भयानक अपशकुन होने लगे। चिन्तित होकर इस सम्बन्धमें धृतराष्ट्र और विदुर परस्पर बातचीत कर ही रहे थे कि उसी समय महर्षियोंसे घिरे भगवान् नारद कौरवोंके सामने आकर खड़े हो गये और सुस्पष्ट शब्दोंमें उन्होंने भविष्यवाणी करते हुए कहा—

इतश्चतुर्दशे वर्षे विनक्ष्यन्तीह कौरवाः।
दुर्योधनापराधेन भीमार्जुनबलेन च॥

(महाभारत, सभा० ८०। ३४)

'आजसे चौदहवें वर्षमें दुर्योधनके अपराधसे भीम और अर्जुनके पराक्रमद्वारा कौरवकुलका नाश हो जायगा।'

इतना कहकर महान् ब्रह्मतेजधारी नारदजी आकाशमें जाकर सहसा अन्तर्धान हो गये।

सर्वोच्च ज्ञानके परम पावन विग्रह श्रीशुकदेवजीको उपदेश देते हुए महामुनि नारदजीने कहा था—

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन यश्चरेत् स सुखी भवेत्॥

(महाभारत, शान्ति० ३३०। २०, ३०)

'संग्रहका अन्त है विनाश। ऊँचे चढ़नेका अन्त है नीचे गिरना। संयोगका अन्त है वियोग और जीवनका अन्त है मरण।'

'जो अध्यात्मविद्यामें अनुरक्त, कामनाशून्य तथा भोगासक्तिसे दूर है, जो अकेला ही विचरण करता है, वही सुखी होता है।'

जब अविनाशी नारायण और नर बदरिकाश्रममें घोर तप करते हुए अत्यन्त दुर्बल हो गये थे और उन परम तेजस्वी प्रभुका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ था, उस समय नारदजी महामेरु पर्वतसे गन्धमादन पर्वतपर उतर गये और जब भगवान् नर और नारायणके समीप पहुँचे, तब उन्होंने शास्त्रीय विधिसे नारदजीकी पूजा की। नारदजीने उनसे अनेक भगवत्-सम्बन्धी प्रश्नोंका तृप्तिकर उत्तर प्राप्त किया और फिर उनकी अनुमतिसे श्वेतद्वीपमें पहुँचकर श्रीभगवान्‌के विश्वरूपका दर्शन-लाभ प्राप्त करके पुनः गन्धमादन पर्वतपर श्रीनर-नारायणके समीप चले आये। नारदजीने भगवान् नर-नारायणको सारा वृत्तान्त सुनाया और उनके समीप दस सहस्र दिव्य वर्षोंतक रहकर वे भजन एवं मन्त्रानुष्ठान करते रहे।

स्कन्दपुराणमें इन्द्रकृत श्रीनारदजीकी एक अत्यन्त सुन्दर स्तुति है। उसके सम्बन्धमें एक बार भगवान् श्रीकृष्णने नारदजीके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए राजा उग्रसेनसे कहा था कि 'मैं देवराज इन्द्रद्वारा किये गये स्तोत्रसे दिव्यदृष्टिसम्पन्न श्रीनारदजीकी सदा स्तुति किया करता हूँ।'

सर्वसुहृद् श्रीनारदजी ही एकमात्र ऐसे हैं, जिनका सभी देवता और दैत्यगण समानरूपसे सम्मान एवं विश्वास करते हैं, उन्हें अपना शुभैषी समझते हैं और निश्चय ही वे दयामय सबके यथार्थ हित-साधनके लिये सचिन्त और प्रयत्नशील रहते हैं। अब भी करुणामय प्रभुके सच्चे प्रेमी भक्तोंको उनके दर्शन हो जाते हैं।

[४]

भगवान् नर-नारायण

तपसे ही लोककी सृष्टि है। तप ही लोकका धारण एवं रक्षण करता है। विनाशके अधिष्ठाता भगवान् शिव तो तपोमूर्ति हैं ही। आज युग शारीरिक तामस तपका है। वैसे बिना तप—कष्टके आज भी कोई कार्य नहीं होता। तप भगवान्‌का स्वरूप है। ऋषियोंने तपका महत्त्व जाना और कहा है। आज भी सृष्टि तपकी अज्ञात शक्तिपर ही प्रतिष्ठित है। बिना शुद्ध अन्तर्मुख चित्तके उस शक्तिका अनुभव नहीं होता। स्वयं श्रीहरिने सृष्टिके आदिमें धर्मकी पत्नी मूर्तिसे दो रूपोंमें अवतार धारण किया। शुक्ल-वर्ण, तापस-वेश वे नर-नारायण दो शरीर होकर भी रूप-रंग तथा स्वभावमें एक-से हैं। प्रकट होते ही वे उत्तराखण्डमें तपस्या करने चले आये। तपस्वियोंके वे वरदाता, परमाराध्य प्रभु तप करते हैं—अब भी तपोलीन हैं। उन्हींकी तपःशक्ति संसारको धारण करती है।

भगवान् नर-नारायण बदरीनाथमें अविचल तप कर रहे हैं। द्वापरमें भी अधिकारी ही उनके दर्शन पाते थे और जो अधिकारी हों, वे आज भी पा सकते हैं। भगवान्‌का यह अवतार कल्पतक तप करनेको हुआ। हमारी संस्कृति त्याग

एवं तपकी संस्कृति है। भगवान् स्वयं उसका आदर्श उपस्थित कर रहे हैं। जहाँ पृथ्वीमें देश-भेदसे आराध्यरूपके भेदका विधान शास्त्रोंने किया है, वहाँ तपोभूमि भारतके आराध्य भगवान् नर-नारायण ही कहे गये हैं।

[५]

भगवान् कपिल

'पुत्र! सृष्टिका अभिवर्द्धन करो। यही मेरी और श्रीहरिकी सेवा है।' भगवान् ब्रह्माको एक ही धुन है। वे स्रष्टा हैं। अपने सभी पुत्रोंको उनका एक ही आदेश है। कुमारोंकी भाँति महर्षि कर्दमने पिताकी आज्ञा अस्वीकार नहीं की। वे उसे स्वीकार करके बिन्दुसर तीर्थके समीप तप करने लगे। उस समय तप ही समस्त उद्देश्योंका दाता था। आजकी भाँति कीटप्राय प्राणी उत्पन्न करना किसीको अभीष्ट नहीं था। भगवान् प्रसन्न हुए। उन्होंने वरदान दिया। आदिराज मनु स्वयं आश्रममें पधारे और अपनी पुत्री देवहूतिका महर्षिसे परिणय कर गये।

'कल्याणि! तुमने मेरी सेवामें अपनेको सुखा दिया! अब तुम्हें जो अभीष्ट हो, माँग लो।' महर्षि कर्दमने भोग-बुद्धिसे विवाह किया ही न था। विवाहके पश्चात् वे अपने तपमें लग गये। राजकुमारी देवहूति उनकी परिचर्यामें लगीं। समिधाएँ, कुश, फल तथा जल वनसे संग्रह करना, आश्रम स्वच्छ रखना—ये सब उनके कार्य हो गये। एक दिन महर्षिका ध्यान पत्नीकी सेवापर गया। श्रम और कष्टसे वे दुर्बल हो गयी थीं। मस्तकके सुगन्ध-सिंचित केश कहाँ थे, वे तो अब जटा बन चुके थे। केवल वल्कलधारिणी तापसी थीं वे। महर्षि प्रसन्न हुए।

देवहूतिको संततिकी कामना थी। महर्षि कर्दमका योग-प्रभाव प्रकट हुआ। दिव्य विमान, सहस्रों दास-दासियाँ, रत्नोपकरण—सभी लोकोत्तर ऐश्वर्य थे विमानमें। महर्षिने देवहूतिके साथ विमानारोहण किया। गार्हस्थ्यमें वर्षों व्यतीत हो गये। नौ पुत्रियाँ हुईं। उनमें कलाका मरीचि ऋषिसे, अनसूयाका अत्रिसे, श्रद्धाका अङ्गिरासे, हविर्भूका पुलस्त्यसे, गतिका पुलहसे, युक्तिका क्रतुसे, ख्यातिका भृगुसे, अरुन्धतीका वसिष्ठसे और शान्तिका अथर्वासे महर्षि कर्दमने विवाह कर दिया।

'देव! मैं इन्द्रियोंके विषयमें मूढ बनी रही। मैंने आ
परम प्रभावको नहीं जाना; फिर भी आप-जैसे महापुरु
संग कल्याणकारी होना चाहिये।' देवहूति अत्यन्त व्याकु
हो रही थीं। उनके पति पुनः विरक्त होकर वनमें जा र
थे। इस बार वे अकेले जायँगे। विषयोंमें लगकर तो स
जीवन व्यर्थ चला गया। उनमें वैराग्यका पूर्णोदय हुआ। उ
देवदुर्लभ विमान तथा उसके ऐश्वर्यमें उनका कोई आकर्ष
नहीं था।

'भद्रे! व्याकुल मत हो। तुम्हारे गर्भसे परम पुरुष प्रक
होनेवाले हैं। वे तुम्हें तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे। मैं उन
दर्शन करके ही यहाँसे जाऊँगा!' महर्षिको उन सर्वेश
दर्शन हुए। वे आदेश लेकर तप करने गये। भगव
कपिलने माताको तत्त्वज्ञानका उपदेश किया और उन
जिज्ञासाका समाधान करके वे उनकी आज्ञासे समुद्र-तट
गये। समुद्रने उन्हें अपने भीतर स्थान दिया। माता देवहू
उन परात्पर प्रभुको पुत्ररूपमें प्राप्तकर धन्य हो गयीं। उन्हों
उस उपदिष्ट ज्ञानमें चित्तको एकाग्र कर दिया। कुछ दि
दूसरोंके द्वारा उनका शरीर सेवित, रक्षित होता रहा औ
कब वह वेणीकुसुमके समान गिर गया—इसका प
देवहूतिजीको लगा ही नहीं।

साठ सहस्र सगर-पुत्र अश्वान्वेषणके लिये पृथ्वी खो
समय कपिलाश्रम पहुँचे और महर्षि कपिलकी नेत्राग्नि
भस्म हो गये। गङ्गासागर-संगमपर पर्वोत्सवोंमें कपिलाश्र
दर्शन तो हो जाते हैं; किंतु महर्षि कपिलका दर्शन तो
ही हो सकता है, जिस अधिकारीपर वे कृपा करें।
सांख्य-दर्शनके प्रवर्तक, ज्ञान-मार्गके परमाचार्य प्रभु जग
कल्याणके लिये वहाँ तपमें स्थित हैं।

[६]

भगवान् दत्तात्रेय

'जगत्के अधिष्ठाता प्रभु प्रसन्न हों! मुझे वे अपने स
संतति प्रदान करें।' महर्षि अत्रि तप कर रहे थे। उनके म
केवल पितामहकी सृष्टि वर्द्धित करनेका आदेश था।

'मैंने एक ही जगदाधारकी आराधना की है।' महर्षि
आश्चर्य हुआ। उनके सम्मुख वृषभारूढ कर्पूर-गौर भ
शशाङ्कशेखर, हंसपर विराजमान सिन्दूरारुण भगवान् च

और गरुडकी पीठपर शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी मेघसुन्दर श्रीरमानाथ एक साथ प्रकट हुए थे। जगत्के तो तीनों ही अधिष्ठाता हैं। प्रभु त्रिमूर्तिमें ही जगत्का विनाश, सृष्टि और पालन करते हैं। महर्षिने तीनोंकी पूजा की। तीनोंकी स्तुति की। तीनोंके अंशसे संतान-प्राप्तिका उन्हें वरदान मिला।

महासती अनसूयाकी गोद तीन कुमारोंसे भूषित हुई। भगवान् शंकरके अंशसे तपोमूर्ति महर्षि दुर्वासा, भगवान् ब्रह्माके अंशसे सचराचरपोषक चन्द्रमा और भगवान् विष्णुके अंशसे त्रिमुख, गौरवर्ण, ज्ञानमूर्ति श्रीदत्तात्रेय प्रभु।

भगवान् दत्तात्रेय आदियुगमें प्रह्लादके उपदेष्टा हैं। अजगर मुनिके वेशमें प्रह्लादजीको उन्होंने अवधूतकी स्थितिका उपदेश किया है। महाराज अलर्कको उन्होंने तत्त्वज्ञानका उपदेश किया। कुत्तोंसे घिरे, उन्मत्त-सा वेश बनाये, उन सिद्धोंके परमाचार्यको पहचानना बहुत उच्च कोटिके अधिकारीका ही काम है।

गिरिनार प्रभुका सिद्धपीठ है। दक्षिणमें दत्तात्रेयकी उपासनाका व्यापक प्रचार है। सिद्धोंकी एक परम्परा ही भगवान् दत्तात्रेयको उपास्य मानती आयी है। इनमें 'रस-सिद्धि'का बहुत प्रचार था। ये सिद्धियाँ भले लोगोंको प्रलुब्ध करें और कुतूहल या कामनावश सामान्य साधक इन्हींको लक्ष्य बनाते हों; परंतु भगवान् दत्तात्रेयके उपदेश मनुष्यको इन प्रलोभनोंसे सावधान करते हैं। साधनके द्वारा परम पुरुषार्थ मोक्षकी प्राप्ति ही मनुष्यका सच्चा लक्ष्य है। योग-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ भगवान् दत्तात्रेयके कहे जाते हैं। दक्षिणमें भगवान् दत्तकी उपासनाका बहुत प्रचार है।

[७]

भगवान् यज्ञ

स्वायम्भुव मन्वन्तर—इस कल्पके प्रथम मन्वन्तरमें देवता अनाहारसे क्षीण हो रहे थे। देवताओंके दुर्बल होनेसे व्यक्त जगत् नष्ट होता जा रहा था। वर्षा, अन्न, अग्नि, वायु और पृथ्वी—सब निःसत्त्वप्राय हो चले। यमराज क्या करें? उनके यहाँ प्राणियोंका एक ही अपराध था कि वे अशक्त थे। उनमें प्रमाद था। उनके सम्मुख कोई व्यवस्थित कृत्य भी तो नहीं था। तीनों लोक इस अवस्थासे त्रस्त हो रहे थे।

प्रभु तो सदासे आर्त-पुकार सुननेवाले हैं। उन्होंने प्राणियोंकी पुकार सुनी। महर्षि रुचिकी पत्नी आकूतिसे वे प्रकट हुए। उन्होंने अग्निहोत्रकी स्थापना की। उन्हींके नामसे अग्निहोत्र यज्ञ कहा जाने लगा। हवनसे देवता पुष्ट हुए। देवताओंकी शक्तिसे जगत् शक्तिसम्पन्न हुआ। देव-पूजा छोड़कर अपनी और पदार्थोंकी शक्तिका नाश करनेवाले वर्तमान युगके प्राणी इसे कैसे समझेंगे। पदार्थ आज चाहिये और देव-जगत्को छोड़ दिया गया। इस आसुर-वृत्तिमें संघर्ष, उत्पीडन और क्लेश ही तो मिलता है। वे यज्ञ-पुरुष प्रभु दया करें।

[८]

भगवान् ऋषभदेव

महाराज नाभिने संतान-प्राप्तिके लिये यज्ञ किया। तपः-पूत ऋत्विजोंने श्रुतिके मन्त्रोंसे यज्ञ-पुरुषकी स्तुति की। श्रीनारायण प्रकट हुए। विप्रोंने उन सौन्दर्य, ऐश्वर्य, शक्तिघनके समान ही नरेशको पुत्र हो, यह प्रार्थना की। उस अद्वयके समान दूसरा कहाँसे आये? महाराज नाभिकी महारानीकी गोदमें स्वयं वही परम तत्त्व प्रकट हुआ।

महाराज नाभि कुमार ऋषभदेवको राज्य देकर वनके लिये विदा हो गये। देवराज इन्द्रको धराका वह सौभाग्य ईर्ष्याकी वस्तु जान पड़ा। अखिलेशकी उपस्थितिसे पृथ्वीने स्वर्गको अपनी सम्पदासे लज्जित कर दिया था। महेन्द्र वृष्टिके अधिष्ठाता हैं। वर्षा ही न हो तो पृथ्वीका सौन्दर्य रहे कहाँ? शस्य ही तो यहाँकी सम्पत्ति है। देवराजको लज्जित होना पड़ा। वर्षा बंद न हो सकी। भगवान् ऋषभने अपनी शक्तिसे वृष्टि की। अन्ततः देवराजने अपनी पुत्री जयन्तीका विवाह कर दिया उन धरानाथसे। पृथ्वी और स्वर्गमें सम्बन्ध स्थापित हुआ।

पूरे सौ पुत्र हुए ऋषभदेवजीको। इनमें सबसे ज्येष्ठ चक्रवर्ती भरत हुए। इन्हीं आर्षभ भरतके नामपर यह देश 'भारतवर्ष' कहा जाता है। शेष पुत्रोंमें नौ ब्रह्मर्षि, नौ पुत्र नौ द्वीपोंके अधिपति हो गये और इक्यासी महातपस्वी हुए। भरतका राज्याभिषेक करके भगवान्ने वानप्रस्थ स्वीकार किया।

काक, गौ, मृग, कपि आदिके समान आचरण, आहार-ग्रहण, निवासादि जडयोग हैं। ये सिद्धिदायक हैं और संयमके साधक भी। भगवान् ऋषभने इनको क्रमशः अपनाया, पूर्ण

किया; किंतु इनकी सिद्धियोंको स्वीकार नहीं किया। उनकी तपश्चर्याका अनुकरण जो सिद्धियोंके लिये करते हैं, वे उन प्रभुके परमादर्शको छोड़कर पृथक् होते हैं।

आत्मानन्दकी वह उन्मद अवधूत-अवस्था—बिखरे केश, मलावच्छन्न शरीर, न भोजनकी सुध और न प्यासकी चिन्ता। किसीने मुखमें अन्न दे दिया तो स्वीकार हो गया। जहाँ शरीरको आवश्यकता हुई, मलोत्सर्ग हो गया। उस दिव्य-देहका मल अपने सौरभसे योजनोंतक देशको सुरभित कर देता। जहाँ शरीरका ध्यान नहीं, वहाँ शौचाचारका पालन कौन करे? यह आचरणीय नहीं—यह तो अवस्था है। शरीरकी स्मृति न रहनेपर कौन किसे सचेत करेगा; शास्त्रसे परे है यह दशा!

मुखमें कंकड़ी रखे, निराहार, मौन, उन्मत्तकी भाँति भारतके पश्चिमीय प्रदेश—कोंक, वेंक, कुटकादिके वनोंमें भगवान् ऋषभदेव भ्रमण कर रहे थे। उनका शरीर तेजोमय, किंतु अनाहारसे कृश हो गया था। वनमें दावाग्नि लगी। देह आहुति बन गया।

जैनधर्म भगवान् ऋषभको प्रथम तीर्थङ्कर मानता है। उन्हींके आचारकी व्याख्या पीछेके जैनाचार्योंने की है।

[९]

भगवान् आदिराज पृथुके रूपमें

'कुपुत्रकी अपेक्षा पुत्रहीन रहना ही भला था।' महाराज अङ्गने देवताओंका यजन करके पुत्र प्राप्त किया और वह पुत्र घोरकर्मा हो गया। प्रजा उसके उपद्रवोंसे त्राहि-त्राहि करने लगी। ताडनादिसे भी उसका शासन हो नहीं पाता। महाराजको वैराग्य हो गया। रात्रिमें ही वे चुपचाप अज्ञात वनमें चले गये।

'कोई यज्ञ न करे! कोई किसी देवताका पूजन न करे। एकमात्र राजा ही प्रजाके आराध्य हैं! आज्ञा भंग करनेवाला कठोर दण्ड पायेगा।' भेरीनादके साथ ग्राम-ग्राममें घोषणा हो रही थी। महाराज अङ्गका कोई पता न लगा। ऋषियोंने उनके पुत्र वेनको सिंहासनपर बैठाया। राज्य पाते ही उसने यह घोषणा करायी।

'राजन्! यज्ञसे यज्ञपति भगवान् विष्णु तुष्ट होंगे! उनके प्रसन्न होनेपर आपका और प्रजाका भी कल्याण होगा!' ऋषिगण वेनको समझाने एकत्र होकर आये थे। उस दर्पमत्तने उनकी अवज्ञा की। ऋषियोंका रोष हुंकारके साथ कुशोंमें ही ब्रह्मास्त्रकी शक्ति बन गया। वेन मारा गया। वेनकी माता सुनीथाने पुत्रका शरीर स्नेहवश सुरक्षित रखा।

'ये साक्षात् जगदीश्वरके अवतार हैं!' उन दूर्वादलश्याम प्रलम्बबाहु, कमलाक्ष पुरुषको देखकर ऋषिगण प्रसन्न हुए। अराजकता होनेपर प्रजामें दस्यु बढ़ गये थे। चोरी, बलप्रयोग, मर्यादानाश, परस्वहरणादि बढ़ रहे थे। शासक आवश्यक था। ऋषियोंने एकत्र होकर वेनके शरीरका मन्थन प्रारम्भ किया। उसके ऊरुसे प्रथम ह्रस्वकाय, कृष्ण-वर्ण पुरुष उत्पन्न हुआ। उसकी संतानें निषाद कही गयीं। मन्थन चलता रहा। दक्षिण हस्तसे पृथु और वाम बाहुसे उनकी नित्य-सहचरी लक्ष्मीस्वरूपा आदि-सती अर्चि प्रकट हुईं।

'महाराज हम सब क्षुधासे मरणासन्न हैं। हमारी रक्षा करें!' विश्वमें प्रथम राजाके सम्मुख प्रजा पुकार कर रही थी। धरामें पहला अकाल पड़ा था। न फल थे, न अन्न। वन सूखते जा रहे थे। वेनके अत्याचारसे देवशक्ति क्षुभित हो गयी थी। देवताओंका रोष मानवके अभ्युदयका घातक होगा ही। समाज आचारहीन, कुकर्म-रत हो गया। त्रेताके आदिमें पदार्थ उपभोगके लिये नहीं थे। सम्पूर्ण पदार्थ यज्ञार्थ थे। मनुष्य केवल यज्ञावशेषभोजी था। जब मनुष्यने पदार्थोंको अपने लिये समझना प्रारम्भ किया, धराने उनका उत्पादन बंद कर दिया।

'यह मेदिनी—यह मेरी अवज्ञा करती है!' पृथुने प्रजाकी पुकार सुनी। धरा अन्न देती क्यों नहीं? नेत्रोंमें बंकिमा आयी। आजगव धनुषपर बाण चढ़ाया उन्होंने! 'मैं इसके मर्दनसे सबको तृप्त करूँगा! लोकका धारण मेरी योगशक्ति करेगी।' उन्हींकी योगमाया तो लोक-धारण करती है।

'देव, मुझे क्षमा करें।' काँपती, भीता गोरूपधारिणी पृथ्वी शरणापन्न हुई। मुझे समान (समतल) करें, जिससे वर्षाका जल टिक सके। योग्य वत्स हो तो मैं कामदुघा (अभीष्ट फल देनेवाली) हूँ।'

पृथुने पृथ्वीका दोहन किया। भूमि समान की गयी। कृषिका प्रारम्भ हुआ। मनुष्यने तरु एवं गुफाओंका स्वच्छन्द निवास छोड़ दिया। समाज बना। नगर, ग्राम, खेट, खर्वट आदि

बसाये गये। इस प्रकार पृथुने प्रजाकी व्यवस्था की।

पृथुने धराको पुत्री माना। तबसे यह भूमि 'पृथ्वी' कही जाती है। वे ही प्रथम नरेश थे। मनुष्यको नगर, ग्रामादिमें बसाकर वर्तमान संस्कृति एवं सभ्यताको उन्होंने ही जन्म दिया था। जीवन भोगके लिये नहीं, आराधनाके लिये है। उन आदि शासकका मानवके लिये यही आदेश है। जबतक मानव उनके आदेशपर चला, सुख एवं शान्ति उसे नित्य प्राप्त रही; आदेश भंग करके वह पीडा, संघर्ष एवं चिन्तामें उलझ गया।

[१०]

भगवान् मत्स्य

पूर्व कल्पकी बात है—भगवान् ब्रह्मा अपने दिनके कार्यसे श्रान्त होकर योगनिद्राका आश्रय ले रहे थे। श्रुतियाँ सहज अलस-भावसे उनके मुखसे निकलीं। उन श्रुतिस्वरूपके मुखसे निद्रामें और प्रकट भी क्या होता। दितिपुत्र हयग्रीवने उन्हें स्मरण कर लिया। एक असुर श्रुतिका न शुद्धोच्चारण कर सकता और न उसका अर्थ-दर्शन। वह अपनी मलिन बुद्धिसे श्रुतियोंका अनर्थ करेगा। श्रुतियोंके उद्धारके लिये, उनकी परम्परा विशुद्ध बनाये रखनेके लिये भगवान् विष्णुने मत्स्यरूप धारण किया।

भुवन-भास्कर विवस्वान्के पुत्र राजर्षि सत्यव्रत जल पीकर घोर तपमें लीन थे। प्रातःस्नान करके कृतमाला नदीमें तर्पणके लिये उन्होंने अंजलि उठायी। हिलसा जातिकी स्वर्ण-वर्ण एक शफरी (छोटी मछली) उसमें आ गयी थी। राजर्षिने अंजलि विसर्जित कर दी।

'यहाँ हम छोटी मछलियोंको आहार बना लेनेवाले बहुत जन्तु हैं। उनसे डरकर मैं आपकी शरण आयी हूँ।' शफरी भागी नहीं। वह बोल रही थी। राजर्षिने उसे उठाकर कमण्डलुके जलमें रख लिया।

'मैं आपकी शरण हूँ। मेरी सुविधाका आपको प्रबन्ध करना चाहिये। यहाँ तो मैं हिल भी नहीं सकती।' आश्रममें पहुँचते ही मछलीने पुनः प्रार्थना की। वह इतनी बढ़ गयी थी कि कमण्डलुमें उसका हिलना कठिन था। क्रमशः उसे बड़े पात्र, कुण्ड, सरोवर और सरितामें रखना पड़ा। सब कहीं कुछ मुहूर्तोंमें वह स्थान उसकी वृद्धिसे पूर्ण हो जाता था। अन्तमें समुद्रमें छोड़ना पड़ा उसे।

'निश्चय ही आप सर्वेश हैं। जब आपने मुझपर कृपा की है, तब अपने इस शरीर-धारणका प्रयोजन बतायें।' राजर्षिने तब प्रार्थना की, जब समुद्रमें मत्स्यने अपने लिये मगर आदिका भय बताया। भला, कोई जलजीव इतनी शीघ्र यह आकार-वृद्धि कहाँ पा सकता था। भगवान् मत्स्यने बताया कि प्रलय सातवें दिन ही होनी है। भगवान्के आदेशानुसार राजर्षिने बहुत बड़ी नौका बनवायी। उसमें सम्पूर्ण वनस्पतियोंके बीज और प्राणियोंके जोड़े सुरक्षित किये। सातवें दिन चारों ओरसे बढ़कर समुद्रने पृथ्वीको प्लावित कर दिया। नौकामें इसी समय सप्तर्षि भी आकर बैठ गये। प्रबल पवनसे नौका चंचल हो उठी। उसी समय एक-शृंगधारी अयुत योजन विशाल स्वर्णोज्ज्वल भगवान् मत्स्य प्रलय-सागरमें प्रकट हुए। नागराज वासुकी पहलेसे नौकामें विराजमान थे। नौका उन महासर्पकी रज्जुसे मत्स्यके सींगमें बाँध दी गयी।

भूः-भुवः आदि सम्पूर्ण लोक जलमग्न हो गये थे। अन्धकारमें सागरकी उत्तुङ्ग तरङ्गोंके बीच महामत्स्य प्रभु विचरण कर रहे थे। नौकामें ऋषियोंका तेज प्रकाश किये था। राजर्षिने प्रश्न किया और भगवान्ने उत्तर दिया। भगवान् मत्स्यका वही दिव्य उपदेश भगवान् व्यासने मत्स्य-पुराणमें संकलित किया है। प्रलयकाल व्यतीत हुआ। समुद्र उतरा। भगवान्के आदेशसे हिमालयके एक शृंगमें राजर्षि सत्यव्रतने अपनी नौका बाँध दी। वह शृंग अब भी 'नौका-बन्धन शृंग' कहा जाता है। राजर्षि सत्यव्रत इस मन्वन्तरके वैवस्वत मनु हैं। भगवान् मत्स्यने हयग्रीवका वध किया; क्योंकि सृष्टिकालमें असुरके समीप श्रुतिका रहना अभीष्ट नहीं था।

यहूदियोंके धर्मग्रन्थमें, बाइबिलमें और कुरानमें भी मनुकी इस जल-प्रलय और नौकारोहणका प्रकारान्तरसे वर्णन है। चीनमें तथा प्राचीन आस्ट्रेलिया एवं अमेरिका-निवासियोंमें भी यह चरित प्रसिद्ध है। कथामें बहुत थोड़ा अन्तर इन स्थानोंमें हुआ है। कथाका सब कहीं मिलना यह स्पष्ट करता है कि सब जातियाँ भारतसे गयी हैं और मनुकी संतति हैं। देश, कालके प्रभावसे कथामें परिवर्तन स्वाभाविक है। इस प्रकार भगवान् मत्स्य पूरे विश्व-संस्कृतिके ही रक्षक

एवं प्रतिष्ठापक हैं।

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः
श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा।
दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रतानां
तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि॥
(श्रीमद्भा० ८। २४। ६१)

[११]

भगवान् कच्छप

अहंकार और महज्जनोंकी उपेक्षा अनर्थोंके कारण होते ही हैं। महर्षि दुर्वासा प्रसन्न थे। उन्होंने ऐरावतपर जाते हुए इन्द्रको अपने कण्ठकी पुष्पमाला दी। महेन्द्रने उसे गजराजके मस्तकपर डाल दिया। ऐरावतने सूँड़से उठाकर नीचे डाला और पैरसे कुचल दिया। 'तेरी श्री नष्ट हो जाय।' अपने प्रसादका अपमान देख महर्षिने शाप दिया और चले गये।

कहाँ ऋषिके अपमानसे श्रीहीन देवता और कहाँ आचार्य शुक्रके श्रद्धालु सेवक दैत्यराज बलि। दोनोंके युद्धमें देवता हार गये। स्वर्ग असुरोंका क्रीडोद्यान हो गया। बलिने तीनों लोकोंपर अधिकार कर लिया। देवता और क्या करते, वे ब्रह्माजीकी शरण गये। सबने मिलकर शेषशायी प्रभुसे प्रार्थना की।

'आप सब दैत्योंसे सन्धि कर लें। समस्त ओषधियाँ क्षीरसागरमें डालकर उसका मन्थन करें। मन्दराचलको मथानी बनावें और वासुकी नागको रस्सी। यह काम अकेले देवताओंसे न होगा। पहले महाविष निकलेगा, उससे भय मत करना। वस्तुओंमें लोभ करके लड़ना मत। अन्तमें जरा-मृत्यु-हारिणी सुधा प्रकट होगी।' भगवान्ने प्रकट होकर युक्ति बतायी।

इन्द्र गये दैत्यराजके समीप। कुशलतापूर्वक उन्होंने बन्धुत्वका स्मरण कराया। अमृतके लोभसे सन्धि हो गयी। देव-दैत्य दोनोंने मिलकर मन्दराचलको उखाड़ा। पर्वत अधिक दूर न जा सका। वह गिरा, बहुतसे लोग पिस उठे। अन्तमें वही भक्त-भयहारी स्मरण करनेपर पधारे। एक हाथसे उठाकर उन्होंने गरुडपर मन्दराचलको रख लिया।

पर्वत क्षीराब्धि-तटपर आया। समुद्रमें डालनेपर वह डूबने लगा। समस्त देवता और दैत्य मिलकर उसे सँभालनेमें असमर्थ थे। अन्ततः भगवान्ने नियुत योजन विशाल कच्छपरूप धारण करके मन्दराचलको पीठपर धारण किया। उनकी पीठपर स्थित पर्वतसे मन्थन सम्पन्न हुआ।

एक कथा और—प्रलयमें भगवान् शेषशय्यापर योग-निद्राका आश्रय किये हुए थे। उनके शरीरसे आद्याशक्ति प्रकट हुईं। उसीसे इस ब्रह्माण्डके ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रकट हुए। शक्ति शवरूपमें ब्रह्माके पास गयी। उं उन्होंने चारों ओरसे देखा, फलतः वे चतुर्मुख हो गये विष्णुने उसे दूरसे लौटा दिया। सौ बार शरीर बदलने शिवने उसे स्वीकार कर लिया।

शक्ति स्थिर हो गयी; किंतु ब्रह्मा सृष्टि न क सके—पृथ्वी जो नहीं थी। भगवान् विष्णुने कर्णमलसे दैत्य उत्पन्न किये। वे दोनों रुष्ट होकर ब्रह्माजीको मारने दौड़े। भगवान् विष्णुने उन्हें मार डाला। उन दैत्योंके मेद मेदिनी—पृथ्वी बनी। उनकी अस्थियाँ पर्वत बनीं। पृथ्वीको स्थिर करनेके लिये भगवान्ने कच्छपरूप धारण किया।

भगवान्के अवतार नित्य हैं। वही प्रभु पृथ्वीको धारण करते हैं, वही मन्दर धारण करके अमृत-मन्थनके हेतु बनते हैं। वही मनुष्यकी धृति बनते हैं और तभी मानव अक्षयधामके पथमें स्थिर होता है। सबके वे आधार हैं।

पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयना-
न्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पातु वः।
यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद् वेलानिलेनाम्भसां
यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति॥
(श्रीमद्भा० १२। १३।

[१२]

भगवान् धन्वन्तरि

बात समझमें आये या न आये; पर सत्य यही है कि सम्पूर्ण जड-चेतन जगत् दैवी जगत्से प्रकट हुआ है। दैवी परस्पर विकसित नहीं है। देवता एवं दैत्योंके सम्मिलित प्रयासके श्रान्त हो जानेपर क्षीरोदधिका मन्थन स्वयं क्षीरसागरशायी कर रहे थे। हलाहल, गौ, ऐरावत, उच्चैः-श्रवा अश्व, अप्सराएँ, कौस्तुभमणि, वारुणी, महा

कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, लक्ष्मीजी और कदलीवृक्ष उससे प्रकट हो चुके थे। अन्तमें हाथमें अमृतपूर्ण स्वर्णकलश लिये श्यामवर्ण, चतुर्भुज भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए।

अमृत-वितरणके पश्चात् देवराज इन्द्रकी प्रार्थनापर भगवान् धन्वन्तरिने देव-वैद्यका पद स्वीकार कर लिया। अमरावती उनका निवास बनी। कालक्रमसे पृथ्वीपर मनुष्य रोगोंसे अत्यन्त पीड़ित हो गये। प्रजापति इन्द्रने धन्वन्तरिजीसे प्रार्थना की। भगवान्ने काशिराज दिवोदासके रूपमें पृथ्वीपर अवतार धारण किया। इनकी 'धन्वन्तरि-संहिता' आयुर्वेदका मूल ग्रन्थ है। आयुर्वेदके आदि आचार्य सुश्रुत मुनिने धन्वन्तरिजीसे ही इस शास्त्रका उपदेश प्राप्त किया।

[१३]

भगवान् मोहिनीरूपमें

क्षीरोदधिका मन्थन हुआ; जैसे ही धन्वन्तरि प्रकट हुए, प्रत्येक वस्तुके लिये झगड़नेवाले दैत्य उनके हाथसे अमृत-कलश छीनकर भागे। उनमेंसे प्रत्येक प्रथम अमृतपान करना चाहता था। किसीको किसीपर विश्वास नहीं था। 'यदि एक ही सब पी जाय तो?' कलशपर छीना-झपटी चल रही थी। देवता निराश खड़े थे। असुर भी समझ रहे थे कि यदि यह द्वन्द्व न मिटा तो अमृत व्यर्थ गिरकर नष्ट हो जायगा। कोई समाधान ज्ञात नहीं होता था।

'सुन्दरि! हम सब महर्षि कश्यपके पुत्र हैं। हममें इस कलशस्थ द्रवके लिये विवाद हो रहा है। तुम्हारी बड़ी कृपा होगी—हममें इसका उचित विभाजन कर दो। हमने इसके लिये समान श्रम किया है।' एक अद्वितीय लावण्यवती नारी वहाँ प्रत्यक्ष हुई। सब उसके रूपसे मुग्ध थे। सब उसे आकृष्ट करना चाहते थे। असुरोंने उसीको मध्यस्थ बनाना चाहा। सब परस्पर इस निर्णयसे सहमत थे।

'तुम्हें मेरे कुल, शील आदिका पता नहीं, तुम मुझपर कैसे विश्वास कर रहे हो?' नारीने अपने कोकिल-कण्ठकी मधुरिमा भ्रूविलास, मन्दहास्यादिसे पूर्ण कर दी। असुर इस प्रत्याख्यानसे अधिक विश्वस्त हुए।

'मैं उचित विभाजन करूँ या अनुचित—तुम लोग बीचमें बाधा न दो, तभी इस कार्यको करूँगी।' बात ठीक ही है। मध्यस्थके निर्णयमें अपनी सम्मति बाधा दे तो निर्णय कैसे होगा।

देव-दैत्य दोनों वर्गोंने स्नान किया, नूतन अनाहत वस्त्र धारण किये, अग्निको आहुतियाँ दीं, विप्रोंसे स्वस्तिपाठ कराया और तब पूर्वाग्र कुशोंके आसनोंपर पंक्तिमें बैठ गये। उस नारीके आदेशसे देवता पृथक् और दैत्य पृथक् पंक्तिमें बैठे।

'यह असुर है!' सूर्य एवं चन्द्रने नेत्रोंसे संकेत किया। नारी असुरोंके समीपसे चल रही थी और दूरस्थ सुरोंको अमृत-पान करा रही थी। असुरोंको उससे प्रेम पानेकी सम्भावना थी। वे उसकी भाव-भंगीसे मुग्ध थे। एक स्त्रीसे विवाद न करनेकी प्रतिज्ञा करके फिर झगड़ना उचित नहीं था। वे मौन बैठे थे। छायापुत्र स्वर्भानु (राहु) धैर्य न रख सका। वह देवताओंका रूप धारण करके चन्द्रमा और सूर्यके समीप जा बैठा। जैसे ही उसे अमृत-घूँट मिला, दोनों देवताओंने संकेत कर दिया।

'यह तो विष्णु हैं!' असुर चौंके। नारी सहसा चतुर्भुज घनश्याम, पीताम्बरधारी पुरुष हो गयी। उन परम प्रभुके चक्रसे राहुका मस्तक कटा पड़ा था। असुरोंने शस्त्र उठाये। देवासुर-संग्राम होने लगा।

भगवान्की यह नित्य लीला है। जगत् भी उसीका एक रूप है। **'कामिनां बहु मन्तव्यं संकल्पप्रभवोदयम्'** कामनाके वश पुरुषके लिये अभीष्ट-सिद्धि ही सब कुछ है। यह दृश्य जगत्, इसके पदार्थ, यह आकर्षण—सब उसी मायापतिकी मोहिनी है। सब कामके वश उसे भूलकर इस मायारूपमें मुग्ध हैं। यह आसुर भाव अमृतसे वंचित कर रहा है। वे प्रभु दया करें, तभी उनका वास्तविक रूप बुद्धिमें प्रतिष्ठित हो।

असदविषयमंघ्रिं भावगम्यं प्रपन्ना-
नमृतममरवर्यानाशयत् सिन्धुमथ्यम्।
कपटयुवतिवेषो मोहयन् यः सुरारीं-
स्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि॥

(श्रीमद्भा० ८। १२। ४७)

[१४]

भगवान् नृसिंह

धराके उद्धारके समय भगवान्ने वाराहरूप धारण करके हिरण्याक्षका वध किया। उसका बड़ा भाई हिरण्यकशिपु

बड़ा रुष्ट हुआ। उसने अजेय होनेका संकल्प किया। सहस्रों वर्ष बिना जलके वह सर्वथा स्थिर तप करता रहा। ब्रह्माजी संतुष्ट हुए। दैत्यको वरदान मिला। उसने स्वर्गपर अधिकार कर लिया। लोकपालोंको मार भगा दिया। स्वतः सम्पूर्ण लोकोंका अधिपति हो गया। देवता निरुपाय थे। असुरको किसी प्रकार वे पराजित नहीं कर सकते थे।

'बेटा, तुझे क्या अच्छा लगता है?' दैत्यराजने एक दिन सहज ही अपने चारों पुत्रोंमें सबसे छोटे प्रह्लादसे पूछा।

'इन मिथ्या भोगोंको छोड़कर वनमें श्रीहरिका भजन करना!' बालक प्रह्लादका उत्तर स्पष्ट था। दैत्यराज जब तप कर रहे थे, देवताओंने असुरोंपर आक्रमण किया। असुर उस समय भाग गये थे। यदि देवर्षि न छुड़ाते तो दैत्यराजकी पत्नी कयाधूको इन्द्र पकड़े ही लिये जाते थे। देवर्षिने कयाधूको अपने आश्रममें शरण दी। उस समय प्रह्लाद गर्भमें थे। वहींसे देवर्षिके उपदेशोंका उनपर प्रभाव पड़ चुका था।

'इसे आप लोग ठीक-ठीक शिक्षा दें!' दैत्यराजने पुत्रको आचार्य शुक्रके पुत्र शण्ड तथा अमर्कके पास भेज दिया। दोनों गुरुओंने प्रयत्न किया। प्रतिभाशाली बालकने अर्थ, धर्म और कामकी शिक्षा सम्यक् रूपसे प्राप्त की; परंतु जब पुनः पिताने उससे पूछा तो उसने श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—इन नौ भक्तियोंको ही श्रेष्ठ बताया।

'इसे मार डालो। यह मेरे शत्रुका पक्षपाती है।' रुष्ट दैत्यराजने आज्ञा दी। असुरोंने आघात किया। भल्ल-फलक मुड़ गये, खड्ग टूट गया, त्रिशूल टेढ़े हो गये; पर वह कोमल शिशु अक्षत रहा। दैत्य चौंका। प्रह्लादको विष दिया गया; पर वह जैसे अमृत हो। सर्प छोड़े गये उनके पास और वे फण उठाकर झूमने लगे। मत्त गजराजने उठाकर उन्हें मस्तकपर रख लिया। पर्वतसे नीचे फेंकनेपर वे ऐसे उठ खड़े हुए, जैसे शय्यासे उठे हों। समुद्रमें पाषाण बाँधकर डुबानेपर दो क्षण पश्चात् ऊपर आ गये। घोर चितामें उनके लिये अग्निकी लपटें शीतल प्रतीत हुईं। गुरुपुत्रोंने उन्हें मारनेके लिये मन्त्र-बलसे कृत्या (राक्षसी) उत्पन्न की तो वह गुरुपुत्रोंको ही प्राणहीन कर गयी। प्रह्लादने ही प्रभुकी प्रार्थना करके उन्हें जीवित किया। अन्तमें वरुणपाशसे बाँधकर गुरुपुत्र पुनः उन्हें पढ़ाने ले गये। वहाँ प्रह्लाद समस्त बालकोंको भगवद्भक्तिकी शिक्षा देने लगे। भयभीत गुरुपुत्रोंने दैत्येन्द्रसे प्रार्थना की—'यह बालक सब बच्चोंको अपना ही पाठ पढ़ा रहा है!'

'तू किसके बलसे मेरे अनादरपर तुला है?' हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको बाँध दिया और स्वयं खड्ग उठाया।

'जिसका बल आपमें तथा समस्त चराचरमें है!' प्रह्लाद निर्भय थे।

'कहाँ है वह?'

'मुझमें, आपमें, खड्गमें, सर्वत्र!'

'सर्वत्र? इस स्तम्भमें भी?'

'निश्चय!' प्रह्लादके वाक्यके साथ दैत्यने खम्भेपर घूँसा मारा; फिर तो केवल वही नहीं, अपितु समस्त लोक चौंक गये। स्तम्भसे बड़ी भयंकर गर्जनाका शब्द हुआ। एक ही क्षण पश्चात् दैत्यने देखा—समस्त शरीर मनुष्यका और मुख सिंहका, बड़े-बड़े नख एवं दाँत, प्रज्वलित नेत्र, स्वर्णिम सटाएँ, बड़ी भीषण आकृति खम्भेसे प्रकट हुई। जब दैत्यके अनुचर झपटे तो वे मारे गये अथवा भाग गये। हिरण्यकशिपुको भगवान्‌ने पकड़ लिया।

'मुझे ब्रह्माजीने वरदान दिया है!' छटपटाते हुए दैत्य चिल्लाया। 'दिनमें या रातमें न मरूँगा; कोई देव, दैत्य, मानव, पशु मुझे न मार सकेगा। भवनमें या बाहर मेरी मृत्यु न होगी। समस्त शस्त्र मुझपर व्यर्थ सिद्ध होंगे। भूमि, जल, गगन—सर्वत्र मैं अवध्य हूँ।'

'यह सन्ध्याकाल है। मुझे देख कि मैं कौन हूँ। यह द्वारकी देहली, ये मेरे नख और यह मेरी जंघापर पड़ा तू।' अट्टहास करके भगवान्‌ने नखोंसे उसके वक्षको विदीर्ण कर डाला।

वह उग्ररूप—देवता डर गये, ब्रह्माजी अवसन्न हो गये, महालक्ष्मी दूरसे लौट आयीं; पर प्रह्लाद—वे तो प्रभुके वरप्राप्त पुत्र थे। उन्होंने स्तुति की। भगवान् नृसिंहने गोदमें उठाकर उन्हें बैठा लिया। स्नेहसे चाटने लगे। प्रह्लाद दैत्यपति हुए।

[१५]

भगवान् वामन

श्रीहरि जिसपर कृपा करें, वही सबल है। उन्हींकी कृपासे देवताओंने अमृत-पान किया। उन्हींकी कृपासे असुरोंपर युद्धमें वे विजयी हुए। पराजित असुर मृत एवं आहतोंको लेकर अस्ताचल चले गये। असुरेश बलि इन्द्रके वज्रसे मृत हो चुके थे। आचार्य शुक्रने अपनी संजीवनी विद्यासे बलि तथा दूसरे असुरोंको भी जीवित एवं स्वस्थ कर दिया। बलिने आचार्यकी कृपासे जीवन प्राप्त किया था। वे सच्चे हृदयसे आचार्यकी सेवामें लग गये। शुक्राचार्य प्रसन्न हुए। उन्होंने यज्ञ कराया। अग्निसे दिव्य रथ, अक्षय त्रोण तथा अभेद्य कवच आदि प्रकट हुए।

आसुरी सेना अमरावतीपर चढ़ दौड़ी। इन्द्रने देखते ही समझ लिया कि इस बार देवता इस सेनाका सामना नहीं कर सकेंगे। बलि ब्रह्मतेजसे पोषित थे। देवगुरुके आदेशसे देवता स्वर्ग छोड़कर भाग गये। अमर-धाम असुर-राजधानी बना। शुक्राचार्यने बलिका इन्द्रत्व स्थिर करनेके लिये अश्वमेध-यज्ञ कराना प्रारम्भ किया। सौ अश्वमेध करके बलि नियमसम्मत इन्द्र बन जायँगे; फिर उन्हें कौन हटा सकता है?

'स्वामी, मेरे पुत्र मारे-मारे फिरते हैं!' देवमाता अदिति अत्यन्त दुःखी थीं। अपने पति महर्षि कश्यपसे उन्होंने प्रार्थना की। महर्षि तो एक ही उपाय जानते हैं—भगवान्की शरण, उन सर्वात्माकी आराधना। अदितिने फाल्गुनके शुक्ल पक्षमें बारह दिन पयोव्रत करके भगवान्की आराधना की। प्रभु प्रकट हुए। अदितिको वरदान मिला। उन्हींके गर्भसे भगवान् प्रकट हुए। शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज पुरुष अदितिके गर्भसे जब प्रकट हुए, तत्काल वामन ब्रह्मचारी बन गये। महर्षि कश्यपने ऋषियोंके साथ उनका उपनयन-संस्कार सम्पन्न किया। भगवान् वामन पितासे आज्ञा लेकर बलिके यहाँ चले।

नर्मदाके उत्तर-तटपर असुरेन्द्र बलि अश्वमेध-यज्ञमें दीक्षित थे। यह उनका अन्तिम अश्वमेध था। छत्र, पलाश, दण्ड तथा कमण्डलु लिये, जटाधारी, अग्निके समान तेजस्वी वामन ब्रह्मचारी वहाँ पधारे। बलि, शुक्राचार्य, ऋषिगण—सभी उस तेजसे अभिभूत अपनी अग्नियोंके साथ उठ खड़े हुए। बलिने उनके चरण धोये, पूजन किया और प्रार्थना की कि जो भी इच्छा हो, वे माँग लें।

'मुझे अपने पैरोंसे तीन पद भूमि चाहिये!' बलिके कुलकी शूरता, उदारतादिकी प्रशंसा करके वामनने माँगा। बलिने बहुत आग्रह किया कि और कुछ माँगा जाय; पर जो माँगना था, वामनने वही माँगा था।

'ये साक्षात् विष्णु हैं!' आचार्य शुक्रने सावधान किया। समझाया कि इनके छलमें आनेसे सर्वस्व चला जायगा।

'ये कोई हों, प्रह्लादका पौत्र देनेको कहकर अस्वीकार नहीं करेगा!' बलि स्थिर रहे। आचार्यने ऐश्वर्य-नाशका शाप दे दिया। बलिने भूमिदानका संकल्प किया और वामन विराट् हो गये। एक पदमें पृथ्वी, एकमें स्वर्गादि लोक तथा शरीरसे समस्त नभ व्याप्त कर लिया उन्होंने। उनका वाम पद ब्रह्मलोकसे ऊपरतक गया। उसके अङ्गुष्ठ-नखसे ब्रह्माण्डका आवरण तनिक टूट गया। ब्रह्मद्रव वहाँसे ब्रह्माण्डमें प्रविष्ट हुआ। ब्रह्माजीने भगवान्का चरण धोया और चरणोदकके साथ उस ब्रह्मद्रवको अपने कमण्डलुमें ले लिया। वही ब्रह्मद्रव गङ्गाजी बना।

'तीसरा पद रखनेका स्थान कहाँ है?' भगवान्ने बलिको नरकका भय दिखाया। संकल्प करके दान न करनेपर तो नरक होगा ही।

'इसे मेरे मस्तकपर रख लें!' बलिने मस्तक झुकाया। प्रभुने वहाँ चरण रखा। बलि गरुडद्वारा बाँध लिये गये।

'तुम अगले मन्वन्तरमें इन्द्र बनोगे! तबतक सुतलमें निवास करो। मैं नित्य तुम्हारे द्वारपर गदापाणि-समन्वित उपस्थित रहूँगा।' दयामय द्रवित हुए। प्रह्लादके साथ बलि सब असुरोंको लेकर स्वर्गाधिक-ऐश्वर्यसम्पन्न सुतल लोकमें पधारे। शुक्राचार्यने भगवान्के आदेशसे यज्ञ पूरा किया।

महेन्द्रको स्वर्ग प्राप्त हुआ। ब्रह्माजीने भगवान् वामनको उपेन्द्र-पद प्रदान किया। वे इन्द्रके रक्षक होकर अमरावतीमें अधिष्ठित हुए। बलिके द्वारपर गदापाणि प्रभु द्वारपाल तो बन ही चुके थे। त्रेतामें दिग्विजयके लिये रावणने सुतल-प्रवेशकी

धृष्टता की। बेचारा असुरेश्वरके दर्शनतक न कर सका। बलिके द्वारपालने पैरके अँगूठेसे उसे फेंक दिया। पृथ्वीपर सौ योजन दूर लङ्कामें आकर गिरा था वह।

[१६]

भगवान् परशुराम

'यह गौ आप मुझे दे दें।' हैहयराज सहस्रबाहु अर्जुन ससैन्य महर्षि जमदग्निके आश्रमके पाससे निकले थे। महर्षिने उनको आतिथ्यके लिये निमन्त्रित किया। आश्रमकी कामधेनुकी कृपासे सबका सत्कार हुआ। राजाके मनमें लोभ आया। जब महर्षिने गौ माँगनेपर भी न दी तो बलपूर्वक उसने छीन ली। वह अपने बलके गर्वसे उन्मत्त हो रहा था।

'राम, तुमने अधर्म किया। हम ब्राह्मण हैं। हमें क्षमा करना चाहिये।' परशुराम वनसे लौटकर राजाका अन्याय सह न सके थे। अकेले ही परशु लेकर ससैन्य सहस्रार्जुनका युद्धमें वध करके वे कामधेनु लौटा लाये थे। महर्षि जमदग्नि संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने पुत्रको वर्षभर समस्त तीर्थोंमें प्रायश्चित्त-हेतु घूमनेका आदेश दिया।

'राम, हा राम!' भगवान् परशुराम यात्रासे लौटे। दूरसे माता रेणुकाका करुणस्वर उन्होंने सुना। अग्निशालामें ध्यानस्थ महर्षि जमदग्निको सहस्रार्जुनके पुत्रोंने मार दिया था और उनका मस्तक लेकर भाग गये थे। भगवान् परशुरामके नेत्रोंने अग्निवर्ण धारण किया। उन्होंने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे हीन कर दिया। स्यमन्त पञ्चक स्थानमें राजाओंके रक्तसे नौ सरोवर बन गये। परशुरामजीने यज्ञ किया। पिताके मस्तकको लाकर शरीरपर स्थापित करके मन्त्रपाठ किया। महर्षि जमदग्नि जीवित हुए। उन्हें सप्तर्षियोंमें पञ्चम स्थान प्राप्त हुआ।

'राम! तुम अब मेरी भूमिसे चले जाओ!' ऋषिगण बार-बार क्षत्रियोंके गर्भस्थ बालकोंकी रक्षा करते। उनको राजा बनाते। परशुरामजी उनका वध कर डालते। अन्तिम बार जब कश्यपजीको उन्होंने समस्त पृथ्वी दान कर दी, तब महर्षि कश्यपने उन्हें आदेश दिया कि 'अब मेरी भूमिपर कभी रात्रिवास न करना।' तबसे परशुरामजी महेन्द्र-पर्वतपर निवास करते हैं। वे कल्पान्त अमर हैं। अनेक बार योग्य अधिकारी उनके दर्शन पाते हैं।

[१७]

भगवान् व्यास

महर्षि पराशरके पुत्र कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यास हैं। उत्पन्न होते ही वे मातासे आज्ञा लेकर तपस्या करने चले गये। द्वीपमें जन्म होनेसे व्यासजी 'द्वैपायन' कहे गये। उनका वर्ण घननील है, अतः उन्हें 'कृष्णद्वैपायन' कहा जाता है।

आदियुगमें वेद एक ही था। महर्षि अङ्गिराने उसमेंसे सरल तथा भौतिक उपयोगके छन्दोंको पीछे संगृहीत किया। यह संग्रह छान्दस, आङ्गिरस या अथर्ववेद कहलाया। शेष भाग एक ही रूपमें था। भगवान् व्यासने उसमेंसे ऋचाओं, गायनयोग्य मन्त्रों और गद्यभागको पृथक्-पृथक् संकलित किया। इस प्रकार ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदका वर्तमान स्वरूप निश्चित हुआ। इस कार्यसे वे वेदव्यास कहलाये।

स्त्री, शूद्र तथा पतित द्विज (द्विजबन्धु) वेदपाठके अधिकारी नहीं थे। उत्तरोत्तर द्विजबन्धुओंकी संख्या बढ़ती जा रही थी। उनका उद्धार भी होना ही चाहिये। वेदार्थ-दर्शनकी शक्तिके साथ अनादि पुराण भी लुप्त हो रहे थे। भगवान् व्यासने पुराणोंका संकलन किया। निष्ठाके अनुकूल उनमें आराध्यके रूपकी प्रतिष्ठा हुई। वेदार्थ सबके लिये सहज-सुलभ हो गया। अष्टादश पुराणोंके अतिरिक्त बहुत-से उपपुराण तथा अन्य ग्रन्थ भी उन्हींके हैं।

पुराण बहुत विस्तृत हैं। उनमें कल्पभेदसे चरितोंमें भेद आया है। समस्त चरित इस कल्पके अनुरूप और समस्त धर्म-अर्थ-काम-मोक्षसम्बन्धी सिद्धान्त एकत्र करनेके विचारसे उन्होंने महाभारतकी रचना की। महाभारतको 'पञ्चम वेद' कहा गया। श्रुतिमें जो कुछ है, महाभारतमें भगवान् व्यासने उसको एकत्र कर दिया है। भगवान् व्यास बोलते जाते थे और साक्षात् गणेशजी लिख रहे थे। इस प्रकार यह पञ्चम वेद लिपिबद्ध हुआ।

उपासना तथा साधनकी प्रतिष्ठा दर्शनशास्त्रके द्वारा होती है। श्रुतियोंमें भगवान्के जिस निर्विशेष रूपका प्रतिपादन हुआ है, कोई दर्शन उसे व्यक्त नहीं करता था। भगवान् व्यासने उन सिद्धान्तोंको सूत्ररूपमें ग्रथित किया। वह सूत्रग्रन्थ वेदान्त-दर्शन या उत्तरपूर्वमीमांसा कहा जाता है।

भारतके सम्प्रदायोंमें उसीको मानकर चलनेकी प्राचीन प्रणाली है।

भगवान् व्यास कल्पान्ततक रहेंगे। श्रीआद्यशंकराचार्यने उनके दर्शन पाये थे और भी अनेक महापुरुषोंको उनका साक्षात् लाभ हुआ, यह वर्णन मिलता है। उनका आश्रम बदरीनाथ धाम है, पर वे लोकमें पर्यटन करते रहते हैं। उच्च कोटिके अधिकारी उन्हें देख पाते हैं।

हिन्दू-संस्कृतिका वर्तमान स्वरूप भगवान् व्यासद्वारा सँवारा एवं सजाया गया है। यह अनादि सनातन संस्कृति आज भगवान् व्यासके पुराणों, महाभारत तथा दूसरे ग्रन्थोंपर अवलम्बित है। भगवान्‌ने स्वयं इस रूपमें अवतार धारण करके कलिके मानवोंके लिये श्रुतिका तात्पर्य सरल कर दिया है।

[१८]

भगवान् श्रीराम

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः॥

(श्रीमद्भा० ९। १०। ४)

अयोध्याका सिंहासन शून्य होने जा रहा था। रघुकी संतति-परम्पराका इस प्रकार कहीं उच्छेद हो सकता है। महाराज दशरथने तीन विवाह किये, अवस्था अधिक हो गयी; किंतु उस चक्रवर्ती साम्राज्यका उत्तराधिकारी किसी रानीकी गोदमें न आया। रघुवंशके परम रक्षक तो महर्षि वसिष्ठ हैं। महाराजने अपने उन कुलगुरुकी शरण ली। गुरुदेवके आदेशसे शृंगी ऋषि आमन्त्रित हुए। पुत्रेष्टियज्ञका अनुष्ठान हुआ। साक्षात् अग्निदेवने प्रकट होकर चरु प्रदान किया। उस दिव्य चरुको ग्रहणकर रानियाँ गर्भवती हुईं।

देवता लङ्काधिप पुलस्त्यके पौत्र राक्षसराज रावणसे संत्रस्त हो गये थे। अपने ऐश्वर्यमें मत्त वह कुबेरका छोटा भाई वेदज्ञ होनेपर भी राक्षस हो गया। दानवेन्द्र मयने अपनी पुत्री मन्दोदरीका उससे विवाह कर दिया। श्वशुरकुलसे ही उसकी प्रकृति एक हो गयी। ऋषियों, ब्राह्मणों, देवताओं तथा धर्मका वह शत्रु हो गया। यज्ञ बलपूर्वक रोक दिये गये, पूजन-स्थल ध्वस्त किये गये। तपोवन राक्षसोंने जला दिये। ऋषि-मुनि राक्षसोंके भक्ष्य हो गये। देवराज इन्द्र पराजित हो चुके थे। लोकपालगण रावणकी आज्ञा माननेपर विवश थे। अन्ततः धरा यह अधर्म-भार कहाँतक सहे! पृथ्वीकी आर्त पुकार, देवताओंकी प्रार्थना, स्त्रष्टाकी चिन्ता—सबने उन परात्पर प्रभुको आकृष्ट किया। अयोध्यानरेश चक्रवर्ती महाराज दशरथकी बड़ी रानी कौसल्याकी गोदमें चैत्रकी रामनवमीके मध्याह्नमें वे साकेताधीश शिशु बनकर आ गये। उनके अंश भी आये—माता सुमित्राकी गोद दो स्वर्ण-गौर कुमारोंसे भूषित हुई और कैकेयीजीने भावमूर्ति नवजलधर वर्ण रूपराशि भरतको प्राप्त किया।

चारों कुमार बड़े हुए। कुलगुरुसे शास्त्र एवं शस्त्रकी शिक्षा मिली। सहसा एक दिन महर्षि विश्वामित्र आ पहुँचे। उनके आश्रममें प्रत्येक पर्वपर राक्षस उपद्रव करते थे। महर्षिको राम-लक्ष्मणकी आवश्यकता थी। केवल दो कुमार—अवधकी चतुरङ्गिणी सेनाको तपोवनमें ले जाना इष्ट नहीं था। चक्रवर्ती महाराजकी चाहे जितनी अनिच्छा हो, सृष्टि-समर्थ विश्वामित्रजीका आग्रह कैसे टले? श्रीरामने भाईके साथ प्रस्थान किया। राक्षसी ताड़का मार्गमें ही एक बाणकी भेंट हो गयी। मुनिवरका यज्ञ रक्षित हुआ। सदल सुबाहु मारा जा चुका था और उसका भाई मारीच रामके 'फल'-हीन बाणके आघातसे सौ योजन दूर समुद्र-तटपर जा गिरा था।

महर्षिको तपोवनमें ही विदेहराज जनकका आमन्त्रण मिला। उनकी अयोनिजा कन्या सीताका स्वयंवर हो रहा था। महर्षिके साथ दोनों अवध-कुमार मिथिलाको धन्य करने पधारे। गौतमाश्रममें पाषाणभूता अहल्या श्रीरामकी चरण-रजका स्पर्श पाकर पतिके शापसे मुक्त हो गयी और अपने पति-धामको चली गयी। 'जनकपुत्री भूमिसुता उसे वरण करेंगी, जो शंकरके महाधनुष पिनाकको तोड़ेगा।' मिथिलानरेशकी यह प्रतिज्ञा श्रीरामने पूर्ण की। श्रीपरशुरामजी अपने आराध्यदेवके धनुर्भंगसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए; परंतु श्रीरामके शील, शक्ति एवं तेजसे गर्वरहित होकर लौट गये। अयोध्यानरेशको आमन्त्रण मिला। उनके चारों कुमार जनकपुरमें विवाहित हुए।

महाराज चाहते हैं, प्रजा चाहती है, गुरुदेव चाहते हैं

कि श्रीरामका राज्याभिषेक हो; परंतु राम राज्य करें तो धराका भार कौन दूर करे? देवताओंने प्रेरणा की। माता कैकेयीको मोह हुआ। 'भरत-शत्रुघ्न ननिहाल हैं और चुपचाप रामको राज्य दिया जा रहा है!' संदेह स्वयं पापका मूल है। 'भरतको राज्य और रामको चतुर्दश वर्ष वनवास!' छोटी रानीने महाराजको वचनबद्ध करके वरदान माँगा। पिताके सत्यके रक्षार्थ रघुवंशविभूषण वल्कलधारी होकर प्रातः वनको विदा हुए। लक्ष्मण और श्रीजानकी उनसे पृथक् कैसे रह सकते हैं!

श्रीराम भाई एवं पत्नीके साथ वन गये। महाराजने प्रिय पुत्रके वियोगमें शरीर छोड़ दिया। भरत—उनकी दशा, दुःख, वेदना कौन कैसे कहे? गुरुका आदेश ननिहालमें चरने सुनाया था। अयोध्या आकर पिताकी अन्त्येष्टि करनी पड़ी। समस्त समाज लेकर श्रीरामको चित्रकूट लौटाने गये, पर वहाँसे भी चरण-पादुका लेकर लौटना पड़ा। भरत बड़े भाईकी चरण-पादुका लेकर लौटे। अयोध्याका चक्रवर्ती सिंहासन उन पादुकाओंसे भूषित हुआ। रामहीन अयोध्यामें भरत रहेंगे? उन्होंने नन्दिग्राममें *'महि खनि कुस साथरी सँवारी।'* और 'गोमूत्र-यावक' (गोबरसे निकले जौको गोमूत्रमें पकाकर) उसके आहारपर तप करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत करना स्थिर किया।

श्रीराम चित्रकूटसे आगे चले। अयोध्यासे ही महर्षियोंके दर्शनकी सुलालसा थी। प्रयागमें भरद्वाजजी, आगे महामुनि वाल्मीकिके दर्शन हुए ही थे। चित्रकूटके तो महर्षि अत्रि ही कुलपति थे। आगे शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्यादिके दर्शन करके दण्डकारण्यको पवित्र किया उन्होंने। असुर विराध चित्रकूटसे निकलते ही मिला और मारा गया। पञ्चवटीमें पर्णकुटी बनी। कुछ वर्ष वहाँ शान्तिसे व्यतीत हुए। गृध्रराज जटायुसे परिचय हुआ।

उस दिन रावणकी बहन कुलटा शूर्पणखा कहींसे घूमती-घामती आ पहुँची। मर्यादापुरुषोत्तम वासना एवं दुष्टोंका निग्रह तो करते ही। नाक-कान कटनेपर उसने खर-दूषणसे पुकार की। वे असुर चौदह सहस्र सेनाके साथ आये और अकेले श्रीराघवेन्द्रके शरोंके भोग हो गये। शूर्पणखा रावणके पास पहुँची। रावणने मारीचको साथ लिया। स्वर्ण-मृगके पीछे श्रीजानकीकी इच्छासे श्रीराम दौड़े। मारीचका छल सफल हुआ। वह शराघातसे मारा, किंतु रावण एकाकिनी जानकीको हरण करनेमें सफल हो गया। लङ्काके अशोकवनमें वह विश्वधातृ बंदिनी बनीं।

श्रीराम लौटे मृगकी वञ्चनाका दण्ड देकर। आश्रम शून्य था। अन्वेषण प्रारम्भ हुआ। आहत जटायु मिले। वे दशाननको रोकनेके प्रयत्नमें छिन्नपक्ष हुए थे। श्रीरामके चरणोंमें उनका शरीर छूटा। राघवने अपने कर-कमलोंसे उनकी अन्त्येष्टि की। कबन्ध असुरका वध और शबरीके बेरोंका आस्वादन करते वे पम्पासर पहुँचे। वालीसे निर्वासित सुग्रीवको शरण मिली और दूसरे ही दिन जब वाली श्रीरामके बाणसे परधाम पधारे, सुग्रीव किष्किन्धाधीश हो गये। ऋष्यमूकपर राघवने वर्षा-ऋतु व्यतीत की। शरदागमनमें वानर-भालु सीतान्वेषणके लिये निकले।

श्रीपवनकुमार शतयोजन सागर पार लङ्कामें विदेहनन्दिनीका दर्शन कर आये। स्वर्णपुरी उनकी पूँछकी लपटोंमें जल चुकी थी। श्रीरामने ससैन्य प्रस्थान किया। मदान्ध रावणसे पादताडित विभीषण उन विश्व-शरणदके शरण आ गये। सागरपर सेतु बना और वह सुरासुर-अगम्य पुरी वानर-भालुओंसे धर्षित होने लगी। राक्षस-सेनानी मारे जाने लगे। रणभूमिने रावणपुत्र इन्द्रजित् तथा कुम्भकर्णकी आहुति ले ली। अन्तमें दशाननका वध करके श्रीरामने सु-कार्य पूर्ण कर दिया।

भरत चौदह वर्षसे एक दिन अधिक प्रतीक्षा न करें। उनके प्राण इस अवधिमें आबद्ध हैं। पुष्पक सज्जित हुआ। श्रीराम भाई तथा श्रीजानकी एवं सुग्रीव, विभीषण, हनुमान्, अङ्गदादि प्रधान नायकोंके साथ उस दिव्य विमानसे अयोध्या पधारे। पुरवासियोंकी, माताओंकी, भरतकी चिरप्रतीक्षा सफल हुई। श्रीराम कोसलके चक्रवर्ति-सिंहासनपर वैदेहीके साथ विराजमान हुए।

'राम-राज्य'—सुशासन, सुव्यवस्था, धर्म, शान्ति, सदाचारादिकी पूर्णताके द्योतनके लिये आज भी मनुष्यके पास इससे सुन्दर शब्द नहीं। ग्यारह सहस्र वर्ष वह दि शासन धराको कृतार्थ करता रहा। श्रीवाल्मीकीय राम और गोस्वामी तुलसीदासजीके श्रीरामचरितमानस श्री

मङ्गलमय चरितसे लोकमें कल्याणका प्रसार करते हैं। भगवान् व्यासके अतिरिक्त अनेक संस्कृत, हिंदी तथा अन्य भाषाओंके कवियों, विद्वानोंने अपनी वाणी राम-गुणगानसे पवित्र की है।

श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। हिंदू-संस्कृतिकी पूर्ण प्रतिष्ठा उनके चरितमें हुई है। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रके लिये उसमें आदर्श हैं। हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप 'श्रीरामचरित' के दर्पणमें ही पूर्णतः प्रतिबिम्बित हुआ है। भारतका वह आदर्श आज विश्व-मानवका गेय-ध्येय बने, तभी मानव सुसंस्कृत बन सकेगा।

[१९]

भगवान् बलराम

श्रीकृष्णावतार तो पिछले द्वापरमें सत्ताईस कलियुगोंके पश्चात् हुआ था। द्वापरमें पृथ्वीका भार हरण करने तो भगवान् बलराम ही प्रायः पधारते हैं। उन्हींको श्रुतियाँ द्वापरका युगावतार कहती हैं। माता देवकीके सप्तम गर्भमें वे पधारे। योगमायाने गोकुलमें नन्दबाबाके यहाँ स्थित रोहिणीजीमें उन्हें पहुँचा दिया। इस प्रकार वे सङ्कर्षण कहलाये। इनकी गोकुल, मथुरा और द्वारकाकी कई लीलाएँ बड़ी ही अद्भुत और आनन्ददायिनी हैं।

श्रीकृष्ण-बलराम परस्पर नित्य अभिन्न हैं। उनकी चरित-चर्चा एक दूसरेसे पृथक्-जैसे कुछ है ही नहीं। गोकुलमें दोनोंकी संग-संग बालक्रीडा और वहाँसे वृन्दावन-प्रस्थान। बहुत थोड़े चरित हैं, जब श्यामसुन्दरके साथ उनके अग्रज नहीं थे। ऐसे ही बलरामजी अपने अनुजसे पृथक् बहुत कम रहे हैं।

वहाँ कंस-प्रेरित असुर प्रलम्ब आया था। श्रीकृष्णको तो कोई साथी चाहिये खेलनेके लिये। एक नवीन गोप-बालकको देखा और मिला लिया अपने दलमें। असुरने श्यामके दैत्य-दलन-चरित सुने थे। उसे उनसे भय लगा। अपने छद्मवेशमें वह दाऊको पीठपर बैठानेमें सफल हुआ और भागा। जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका धारक है, उसे कौन ले जा सकता है। दैत्यको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा। एक घूसा पड़ा तत्क्षण उसके,मस्तकपर और फिर क्या सिर बच रहना था? उस दिन सखा कह रहे थे कि उन्हें पक्व ताल-फलोंकी सुरभि लुब्ध कर रही है। सखा कुछ चाहें तो वह अप्राप्य कैसे रहे! असुर-गर्दभ धेनुक और उसका गर्दभ-परिवार—सब क्रीडामें ही नष्ट हो गये। प्रकृतिका उन्मुक्त दान कानन है। इन दुष्ट गर्दभोंने उसे पशुओं तकके लिये अगम्य बना दिया था। भगवान् बलरामने सखाओंको ताल-फल प्रदान करनेके बहाने सबके लिये निर्बाध कर दिया उसे।

कन्हैया तो महाचंचल है; किंतु दाऊ भैया गम्भीर परमोदार, शान्त हैं। श्याम उन्हींका संकोच भी करता है। वे भी अपने अनुजकी इच्छाको ही जैसे देखते रहते हैं। व्रज-लीलामें जब श्यामने शङ्खचूड़को मारा, तब उसने समस्त गोप-नारियोंके सम्मुख उस यक्षका शिरोरत्न अपने अग्रजको उपहाररूपमें दिया। कुवलयापीड—कंसका उन्मत्त गजराज दोनों भाइयोंकी थप्पड़ों और घूसोंकी भेंट हुआ और मल्लशालामें चाणूरको श्यामने पछाड़ा तो मुष्टिक बलरामजीकी मुष्टिकाकी भेंट हो गया।

दोनों भाइयोंने गुरुगृहमें साथ-साथ निवास किया। जरासन्धको बलरामजी ही अपने योग्य प्रतिद्वन्द्वी जान पड़े और यदि श्रीकृष्णचन्द्रने अग्रजसे उसे छोड़ देनेकी प्रार्थना न की होती तो वह पकड़ लिया गया था तथा बलरामजी उसे मारने ही जा रहे थे। जिसे सत्रह युद्धोंमें पकड़कर छोड़ दिया, उसीके सामनेसे अठारहवीं बार भागना कोई अच्छी बात नहीं थी। किया क्या जाय? श्रीकृष्णने प्रातःसे वह दिन पलायनके लिये स्थिर कर लिया था। कालयवनके सम्मुख वे अकेले भागे। जरासन्धके सम्मुख भागनेमें इतना आग्रह किया कि अग्रजको साथ भागना ही पड़ा।

'यह भी कोई बात है कि केवल हँसा जाय! जो बना-बिगाड़ न सकता हो, वह हँसे या पश्चात्ताप करे?' बलरामजीका विवाह हुआ। रेवतीजी सत्ययुगकी कन्या ठहरीं। स्वभावतः बहुत लंबी थीं। श्यामसुन्दर तो सदाके परिहासप्रिय हैं। बलरामजीने पत्नीको अपने अनुरूप ऊँचाईमें पहुँचा दिया।

'श्याम अकेला गया है?' कुण्डिनपुरके राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीके विवाहमें शिशुपालके साथ जरासन्धादि ससैन्य आ रहे हैं, यह समाचार तो मिल ही चुका था। वहाँ अकेले श्रीकृष्ण कन्या-हरण करने गये, यह तो अच्छा नहीं

हुआ। बलरामजीने यादवी सेना सज्जित की। वे इतनी शीघ्रतासे चले कि श्रीकृष्ण मार्गमें ही मिल गये। श्यामसुन्दरको केवल रुक्मिणीजीको लेकर चल देना था। शिशुपाल और उसके साथी तो बलरामके सैन्यसमूहसे ही पराजित हुए।

'कृष्ण! सम्बन्धियोंके साथ तुम्हें ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये।' बलरामजी राजाओंकी सेनाको परास्त करके आगे बढ़े तो रुक्मीकी सेना आ गयी। उसके साथ उलझनेमें कुछ विलम्ब हुआ। आगे आकर देखा तो छोटे भाईने अपने ही साले रुक्मीको पराजित करके रथमें बाँध रखा है। उसके केश, श्मश्रु आदि मुण्डित कर दिये हैं। बड़ी दया आयी। छुड़ा दिया उसको; परंतु आगे चलकर रुक्मीने अपने स्वभाववश बलरामजीका अपमान किया, तब वह उन्हींके हाथों मारा गया।

दुर्योधन भी मदमत्त हो उठा था। क्या हुआ जो श्रीकृष्णके पुत्र साम्बने उसकी पुत्री लक्ष्मणाका हरण किया? क्षत्रियके लिये स्वयंवरमें कन्या-हरण अपराध तो है नहीं। अकेले लड़केको छः महारथियोंने मिलकर बंदी किया, यह तो अन्याय ही था। श्रीकृष्णचन्द्र कितने रुष्ट हुए थे समाचार पाकर। यदि वे नारायणी सेनाके साथ आ जाते—बलरामजीने छोटे भाईको शान्त किया। दुर्योधन उनका शिष्य था। सत्राजित्‌का वध करके शतधन्वा जब स्यमन्तकमणि लेकर भागा, श्यामसुन्दरके साथ बलभद्रजीने उसका पीछा किया। वह मिथिलाके समीप पहुँचकर मारा जा सका। मणि उसके वस्त्रोंमें मिली नहीं। बलरामजी इतने समीप आकर मिथिला-नरेशसे मिले बिना लौट न सके। दो मासतक वहीं दुर्योधनने उनसे गदा-युद्धकी शिक्षा ली। वही दुर्योधन यदुवंशियोंको अपना कृपाजीवी, क्षुद्र कहकर चला गया था और भगवान् बलरामके सम्मुख ही यादव महाराज उग्रसेनके प्रति उसने अपशब्द भी कहे। क्रुद्ध हलधरने हल उठाया। हस्तिनापुर नगर घूमने लगा। वे धराधार नगरको यमुनाजीमें फेंकने जा रहे थे। '**पशूनां लगुडो यथा।**' 'पशु डंडेसे मानते हैं।' दण्डसे भीत कौरव शरणापन्न हुए। वे क्षमामय दण्डका तो केवल नाट्य करते हैं। उन्हें भी क्या रोष आता है?

महाभारतमें वे किस ओर होते? एक ओर प्रिय शिष्य दुर्योधन और दूसरी ओर श्रीकृष्ण। वे तीर्थयात्रा करने चले गये। नैमिष-क्षेत्रमें इल्वल राक्षसका पुत्र बल्वल अपने उत्पातोंसे ऋषियोंको आकुल किये था। उस विपत्तिसे उन तपस्वियोंको त्राण मिला। जब वे तीर्थयात्रासे लौटे, तब महाभारत-युद्ध समाप्त हो चुका था। भीम-दुर्योधनका अन्तिम संग्राम चल रहा था। दोनोंमेंसे कोई समझानेसे माननेको उद्यत नहीं था।

यदुवंशका उपसंहार होना ही था। भगवान्‌की इच्छासे अभिशप्त यादव परस्पर संग्राम कर रहे थे। भगवान् बलराम उन्हें समझाने—शान्त करने गये, पर मृत्युके वश हुए उन्होंने इनकी बात नहीं सुनी और नष्ट हो गये। अब लीला-संवरण करना था। समुद्र-तटपर उन्होंने आसन लगाया और अपने 'सहस्रशीर्षा' स्वरूपसे जलमें प्रविष्ट हो गये।

[२०]

भगवान् श्रीकृष्ण

'तू जिसे इतने उत्साहसे पहुँचाने जा रहा है, उसीका आठवाँ पुत्र तुझे मारेगा!' आकाशवाणीसे कंस चौंका। सचमुच वह अपने चाचाकी छोटी लड़की देवकीको विवाह होनेपर कितने उत्साहसे पहुँचाने जा रहा था। दिग्विजयी कंस—मृत्युका भय शरीरासक्तको कायर बना देता है। वह अपनी बहनका वध करनेको ही उद्यत हो गया। वसुदेवजीने सद्योजात शिशु उसे देनेका वचन दिया। इतनेपर भी कंसने दम्पतिको रखा कारागारमें ही। विरोध करनेपर अपने ही पिता उग्रसेनको भी उसने बन्दी बनाया और वह स्वयं मथुराका नरेश बन गया।

बच्चे होते, सत्यभीरु वसुदेवजी कंसके सम्मुख लाकर रख देते। वह उठाकर शिलापर पटक देता। हत्या शिलातल कलुषित होता गया। छः शिशु मरे। सातवें गर्भमें भगवान् शेष पधारे। योगमायाने उन्हें आकर्षित करके गोकुलमें रोहिणीजीके गर्भमें पहुँचा दिया। अष्टम गर्भमें वह अखिलेश आया। धरा असुर-नरेशोंके अशुभ कर्मोंसे आकुल है, उसके आराधक उसीकी प्रतीक्षामें पीडित हो रहे हैं, वह आयेगा ही।

कंसका कारागार, भाद्रकृष्ण अष्टमीकी मेघाच्छन्न अर्धनिशा—जैसे प्रकृतिने सम्पूर्ण कलुषको मूर्ति दे दी है। बन्दि चन्द्रोदयके साथ श्रीकृष्णचन्द्र-प्राकट्य हुआ।

नेत्र धन्य हो गये। वह चतुर्भुज देखते-देखते शिशु बना, शृंखलाएँ स्वतः शिथिल हुईं, द्वार उन्मुक्त हुआ, वसुदेवजी उस हृदय-धनको गोकुल जाकर नन्दभवन रख आये। कंसको मिली यशोदाकी योगमाया-रूपी कन्या और जब कंस उन्हें शिलातलपर पटक रहा था तब वे योगमाया, गगनमें सायुधाभरण अष्टभुजा हो गयीं।

गोकुलकी गलियोंमें आनन्द उमगा। आनन्दघन नन्दरानीकी गोदमें जो उतर आया था। कंसके क्रूर प्रयास उस प्रवाहमें प्रवाहित हो गये। पूतना, शकटासुर, वात्याचक्र—सब विफल होकर भी कन्हैयाके करोंसे सद्गति पा गये। मोहन चलने लगा, बड़ा हुआ और घर-घर धूम मच गयी—वह हृदयचोर नवनीत-चोर जो हो गया था। गोपियोंके उल्लसित भाव सार्थक करने थे उसे। यह लीला समाप्त हुई अपने घरका ही नवनीत लुटाकर। मैयाने ऊखलमें बाँधकर दामोदर बना दिया। यमलार्जुनका उद्धार तो हुआ, किंतु उन महावृक्षोंके गिरनेसे गोप शंकित हो गये। वे गोकुल छोड़कर वृन्दावन जा बसे।

वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना-पुलिन, व्रज-युवराजकी मधुरिम क्रीडाके चलनेमें सबने और सहायता दी। श्रीकृष्ण वत्स-चारक बने। कंसका प्रयत्न भी चलता रहा। बकासुर, वत्सासुर, प्रलम्ब, धेनुक, अघासुर, मयपुत्र, व्योमासुर आदि आते रहे। श्यामसुन्दर तो सबके लिये मोक्षका अनावृत द्वार है। कालियके फणोंपर उस व्रजविहारीने रासका पूर्वाभ्यास कर लिया। ब्रह्माजी भी बछड़े चुराकर अन्तमें उस नटखटकी स्तुति ही कर गये। इन्द्रके स्थानपर गोवर्धन-पूजन किया गोपोंने और गोपालने। देव-कोपकी महावर्षासे गिरिराजको सात दिन अँगुलीपर उठाकर व्रजको बचा लिया। देवेन्द्र उस गिरिधारीको गोविन्द स्वीकार कर गये। कंसके प्रेषित वृषासुर, केशी आदि जब गोपालके करोंसे कर्मबन्धन-मुक्त हो गये, तब उसने अक्रूरको भेजकर उन्हें मथुरा बुलवाया। नन्दबाबा राम-श्याम तथा गोपोंके साथ मथुरापुरी पहुँचे।

राजाको सन्देश मिला धोबीकी मृत्युसे श्यामके पधारनेका। उस दिनका उनका अङ्गराग मार्गमें ही उस चिर-चंचलने स्वीकार करके कुब्जाका कूबर दूर कर दिया। कंसका आराधित धनुष उसके गर्वकी भाँति तोड़ डाला गया। दूसरे दिन महोत्सव था कंसकी कूटनीतिका। रंगमण्डपके द्वारपर श्रीकृष्णचन्द्रने महागज कुवलयापीडको मारकर उसका श्रीगणेश किया। अखाड़ेमें उन सुकुमार-श्याम-गौर अङ्गोंसे चाणूर, मुष्टिक, शल, तोशल-जैसे मल्ल चूर्ण हो गये। कंसके जीवनकी पूर्णाहुतिसे उत्सव पूर्ण हुआ। महाराज उग्रसेन बन्दीगृहसे पुनः राज्यसिंहासनपर शुभासीन हुए।

श्रीकृष्ण व्रजमें कुल ग्यारह वर्ष, तीन मास रहे थे। इस अवस्थामें उन्होंने जो दिव्य लीलाएँ कीं, वे भावुकोंका जीवनपथ तो प्रशस्त करती हैं, पर आलोचककी कलुषित बुद्धि उनका स्पर्श नहीं कर सकती। वह इस वयके बालकमें या तो उन लीलाओंको समझ न पायेगा, या अपने अन्तरके कलुषमें डूबेगा। अस्तु, फिर तो श्याम व्रज पधारे ही नहीं। उद्धवको भेज दिया एक बार आश्वासन देने। अवश्य ही बलरामजी द्वारकासे आकर एक मास रह गये एक बार।

अवन्ती जाकर श्यामसुन्दरने अग्रजके साथ शिक्षा प्राप्त की। गुरुदक्षिणामें गुरुका मृतपुत्र पुनः प्रदान कर आये। मथुरा लौटते ही कंसके श्वशुर जरासन्धकी चढ़ाइयोंमें उलझना पड़ा। वह सत्रह बार ससैन्य आया और पराजित होकर लौटा। अठारहवीं बार उसके आनेकी सूचनाके साथ कालयवन भी आ धमका। कहाँतक इस प्रकार युद्धमय जीवन सहा जाय? समुद्रके मध्यमें दुर्गम दुर्ग द्वारका नगर बना। यादवकुलको वहाँ पहुँचाकर श्रीकृष्ण पैदल यवनके सम्मुखसे भागे। पीछा करता हुआ यवन गुफामें जाकर चिर-सुप्त मुचुकुन्दकी नेत्राग्निसे भस्म हो गया। उधरसे लौटते ही जरासन्ध सेना लेकर आ पहुँचा। श्रीकृष्ण आज 'रणछोड़' हो रहे थे। बलरामजीको भी साथ भागना पड़ा। दोनों भाई प्रवर्षणपर चढ़कर भाग चले।

श्रीकृष्णके विवाह तो लोकप्रसिद्ध हैं। रुक्मिणीजीका उन्होंने हरण किया था। स्यमन्तकमणिकी खोजमें जाम्बवन्तसे युद्ध करके उपहारस्वरूप जाम्बवतीजीको ले आये। 'मणि'-के कारण कलंक लगानेके दोषसे लज्जित सत्राजित्ने अपनी पुत्री सत्यभामाको स्वयं उन्हें प्रदान की। कालिन्दीजी उनके लिये तप ही कर रही थीं। लक्ष्मणाजीके स्वयंवरका मत्स्यभेद करनेमें दूसरा कोई समर्थ ही न हो सका और नग्नजित् नरेशके सातों साँड़ एक साथ नाथकर उनकी पुत्री सत्यासे दूसरा कौन विवाह कर पाता। मित्रविन्दाजीको उन्होंने स्वयं हरण किया और भद्राजीको उनके पिताने सादर प्रदान किया। यह तो आठ पटरानियोंकी बात है। पृथ्वीपुत्र

भौमासुरने वरुणका छत्र, अदितिका कुण्डल हरण किया था। उसका वध आवश्यक था। सत्यभामाजीके साथ गरुडारूढ होकर जब उसे निजधाम दे चुके, तब जो सोलह सहस्र नरेन्द्र-कन्याएँ उसने बन्दी बना रखी थीं, उनका उद्धार भी आवश्यक था। उनको अपनाये बिना उद्धार-कार्य कैसे पूर्ण होता। इस यात्रामें अमरावतीसे बलात् कल्पतरु द्वारका ले आये। इन्द्रने युद्धकी धृष्टता की और वे पराजित हुए।

बाणासुरसे विवश होकर युद्ध करना पड़ा। अपनी सहस्र भुजाओंके मदमें वह अपने आराध्य भगवान् शंकरका अपमान करने लगा था। अनिरुद्धको बन्दी बना लिया था उसने। भक्तवत्सल आशुतोषने फिर भी युद्धमें उसका पक्ष ग्रहण किया। चक्रने असुरके सभी हाथ काट डाले। केवल उसकी चार भुजाएँ शेष रहीं। पौण्ड्रक, दन्तवक्त्र और शाल्व—ये सब मारे गये अपने ही अपराधसे। पौण्ड्रक वासुदेव ही बननेपर तुला था। युद्ध माँगा था उसने। दन्तवक्त्रने आक्रमण किया और शाल्व तो मय-निर्मित विमानसे द्वारका ही नष्ट करने आया था। शिशुपाल भरी सभामें गालियाँ देने लगा तो कहाँतक क्षमा की जाय? सौ गालियोंके पश्चात् चक्रकी भेंट हो गया वह।

पाण्डवोंका परित्राण तो श्रीकृष्ण ही थे। राजसूय यज्ञ युधिष्ठिरका होता नहीं, यदि जरासन्ध मारा न जाता। राजसूयका वह सभास्थल—उसे वनमालीके आदेशसे मयने बनाया। द्यूतमें हारे पाण्डवोंकी पत्नी राजसूयकी साम्राज्ञी द्रौपदी जब भरी सभामें दुःशासनद्वारा नग्न की जाने लगी, वस्त्रावतार धारण किया प्रभुने। दुर्योधनने दुर्वासाजीको वनमें भेजा ही था पाण्डवोंके विनाशके लिये, पर शाकका एक पत्र खाकर त्रिलोकीको तुष्ट करनेवाला वह पार्थ-प्रिय उपस्थित जो हो गया।

वह मयूरमुकुटी पाण्डवोंके लिये सन्धिदूत बनकर आया। विदुरपत्नीके केलेके छिलकोंका रसास्वाद कर गया। सुदामाके तन्दुलोंने प्रेमका स्वाद सिखा दिया था। युद्धारम्भ हुआ और वह राजसूयका अग्रपूज्य पार्थ-सारथि बना। संग्रामभूमिमें उस गीता-गायकने अर्जुनको अपनी दिव्य अमर वाणीसे प्रबुद्ध किया। भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामाके दिव्यास्त्रोंसे रक्षा की पाण्डवोंकी। युद्धका अन्त हुआ। युधिष्ठिरको सिंहासन प्राप्त हुआ। पाण्डवोंका एकमात्र वंशधर उत्तरापुत्र परीक्षित् मृत उत्पन्न हुआ। अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रने उसे प्राणहीन कर दिया था। श्रीकृष्णने उसे पुनर्जीवन दिया।

'यादवकुल पृथ्वीपर रहे तो वही बलोन्मत्त होकर अधर्म करेगा।' श्रीकृष्णको यह अभीष्ट नहीं था। ऋषियोंका शाप तो निमित्त बना। समस्त यादव परस्पर कलहसे कट मरे और आप देखते रहे। व्याधने पादतलमें बाण मारा तो उसे सशरीर स्वर्ग भेजनेका पुरस्कार दिया गया। इस प्रकार लीला-संवरण की द्वारकेशने।

श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णपुरुष लीलावतार कहे गये हैं। भगवान् व्यासकी वाणीने श्रीमद्भागवतमें उनकी दिव्य लीलाओंका वर्णन किया है। शुकदेवजी-से विरक्त उस रसाम्बुधिमें मग्न रहा करते थे। श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण-लीलाका अमृतपयोनिधि है। श्रीकृष्णका चरित पूर्णताका ज्वलन्त प्रतीक है। भगवत्ताके छः गुण—ऐश्वर्य, धर्म, यश, शोभा, ज्ञान और वैराग्य—सब उसमें पूर्ण हैं। त्याग, प्रेम, भोग और नीति—सब उन पूर्ण पुरुषमें पूर्ण ही हैं। हिंदू-संस्कृति निष्ठाकी पूर्णताको आदर्श मानती है। श्रीकृष्णमें समस्त निष्ठाओंकी पूर्णता होती है।

[२१]

भगवान् बुद्ध

यह विवादास्पद विषय है कि पुराणोंमें जिस बुद्धावतारका वर्णन है, वह महाराज शुद्धोदनके पुत्र अमिताभ गौतम बुद्ध ही हैं। पुराणोंका बुद्धावतार कीकट देशमें (गयाके पास) ही हुआ था, यह तो ठीक; किंतु उनके पिताको वहाँ 'अजिन' कहा गया है। जो भी हो, यहाँ तात्पर्य भगवान्‌के उस बुद्धावतारसे है, जिसका वर्णन पुराणोंमें है।

दैत्य प्रबल हो गये थे। स्वर्गपर उनका अधिकार था। दैत्येन्द्रने इन्द्रका पता लगाया और पूछा, 'हमारा राज्य स्थिर कैसे रहे?' इन्द्रने शुद्धभावसे उन्हें यज्ञ एवं वैदिक आचरणका उपदेश दिया। दैत्य यज्ञपरायण हो गये। वे यज्ञके प्रभावसे अजेय थे। संसारमें उनका उपद्रव बना था। विश्वमें आसुर भाव बढ़ रहा था।

'राम-राम! तुम लोग यह क्या पाप करते हो! कितनी हिंसा होती है। अग्निमें ही पता नहीं कितने जलते हैं।' भगवान् विष्णुने बुद्धरूप धारण किया। वे हाथमें झाड़ू लिये मार्ग स्वच्छ करके पादक्षेप करते असुरोंके पास। उनके वस्त्र मलिन थे। स्नान वे करते

दन्तधावनके बिना दाँत स्वच्छ न थे, सबमें हिंसा जो थी। दैत्योंको उनका वह तत्त्वबोध ठीक जान पड़ा। यज्ञ छूट गया। देवताओंने उन यज्ञहीन, मलिन, अल्पप्राण, प्रतिरोधहीन असुरोंको पराजित करके स्वर्गसे मार भगाया।

[२२]

भगवान् कल्कि

कलिके अन्तमें सम्भल-ग्राममें विष्णुयश ब्राह्मणके यहाँ भगवान् कल्किका प्रादुर्भाव होगा। अभी कलिके पाँच सहस्रसे कुछ ही अधिक वर्ष बीते हैं। इस अवतारके होनेमें लाखों वर्ष अभी शेष हैं। उस समय श्रुतियोंका लोप हो चुकेगा। मानव सदाचारहीन, अल्पकाय, अल्पसत्त्व एवं अत्यन्त अल्पायु होंगे।

भगवान् परशुराम स्वयं कल्कि भगवान्‌को वेदोंका उपदेश करेंगे। भगवान् शिव उन्हें शस्त्रास्त्रकी शिक्षा देंगे। शंकरजीसे अश्व एवं खड्ग प्राप्तकर भगवान् पृथ्वीके समस्त आसुरी वृत्तिके प्राणियोंका वध कर डालेंगे। भगवान्‌के पृथ्वीपर होनेके कारण नूतन संतति शुद्ध भावापन्न तथा सबल होगी। इस प्रकार सत्ययुग प्रतिष्ठित होगा।

[२३]

भगवान् हंस

'चित्त स्वयं त्रिगुणात्मक है और तीनों गुण चित्तमें ही रहते हैं। इनका सम्बन्ध स्थायी है। ऐसी दशामें निस्त्रैगुण्यकी प्रतिष्ठा कैसे होगी?' सनकादि कुमारोंने लोकस्रष्टासे प्रश्न किया। यदि चित्त गुणहीन नहीं हो सकता तो मोक्ष किस प्रकार सम्भव है? हिंदू-धर्मका परम लक्ष्य तो मोक्ष है। यदि वही सिद्ध न हो तो सम्पूर्ण धर्म ही व्यर्थ हो जायगा। ब्रह्माजीने बहुत सोचा; परंतु प्रश्नमें कहाँ संदेहका बीज है, पता न लगा। वे आदिपुरुषका ध्यान करने लगे।

'आप कौन हैं?' वहाँ एक महाहंस प्रकट हो गया, जैसे सहस्र-सहस्र चन्द्रज्योत्स्ना घनीभूत हो गयी हो। कुमारोंके साथ लोकस्रष्टाने अर्घ्य निवेदित करके परिचय जानना चाहा।

'मैं क्या कहूँ—यह आप लोग स्वयं निर्णय करें!' हंसकी वाणीमें विचित्र भंगी थी। 'आत्मामें कोई भेद नहीं, कोई परिचय नहीं और शरीरकी दृष्टिसे भी सबमें वही पञ्चतत्त्व हैं। उनमें भी कोई विलक्षणता नहीं। आप सब ब्रह्मज्ञानी हैं। आप स्वयं सोचें कि गुणोंमें चित्त स्थित है और चित्तमें गुण हैं; पर मुझमें तो चित्त और गुण दोनों हैं तथा दोनों नहीं हैं। स्वप्नमें देखनेवाला, देखनेकी क्रिया और दृश्य—सब क्या भिन्न-भिन्न होते हैं?' भगवान्‌की वाणीने संदेहका निराकरण कर दिया। ब्रह्माजीके साथ कुमारोंने उनकी विधिवत् पूजा की।

[२४]

भगवान् हयग्रीव

कलपभेद हरिचरित सुहाए।

क्षीरोदधिमें अनन्तशायी प्रभुकी नाभिसे पद्म प्रकट हुआ। पद्मकी कर्णिकासे सिन्दूरारुण चतुर्मुख लोकस्रष्टा व्यक्त हुए। क्षीरोदधिसे दो विन्दु कमलपर पहुँच गये। वह चेतनात्मक नाभिपद्म—दोनों विन्दु सजीव हो गये। वे ही आदिदैत्य मधु-कैटभ थे। दैत्योंने कमल-कर्णिकापर बैठे ब्रह्माजीको देखा। वे एकाग्र मनसे भगवान्‌के निःश्वाससे निकली श्रुतियोंको ग्रहण कर रहे थे। दैत्योंने श्रुतिका हरण किया और वहाँसे नीचे भाग गये। आदिमें ही अनधिकारियोंको श्रुतिकी प्राप्ति हो जानेसे ब्रह्माजी चंचल हुए। उन्होंने भगवान्‌की स्तुति प्रारम्भ की। प्रभु प्रसन्न हुए, उन्होंने हयग्रीवरूप धारण किया। दैत्योंको मारकर उन्होंने श्रुतिका उद्धार किया।

× × ×

दूसरे कल्पकी बात—

दितिपुत्र हयग्रीव सरस्वतीके तटपर उग्रतपमें संलग्न था। महामाया प्रसन्न हुईं। उन्होंने वरदान माँगनेको कहा। दैत्यको अमरत्व अभीष्ट था; किंतु कोई भी आसुरभावापन्न होकर अमर कैसे हो सकता है। 'मुझे हयग्रीवके अतिरिक्त कोई न मारे!' दैत्यने समझा कि मैं स्वयं अपना वध क्यों करूँगा। देवीने 'तथास्तु' कह दिया। असुरको लगा, उसका छल सफल हो गया। वह अमर ही तो हो गया।

सात्त्विकता न हो तो अमरत्व जगत्‌के लिये अभिशाप बनेगा। दैत्य हयग्रीव निःसंकोच अपनी असुरता चरितार्थ कर रहा था। देवता उससे विजय नहीं पा सकते थे। धर्म एवं मर्यादाका विनाश हो रहा था। सर्वेश्वर कबतक यह अधर्म चलने देते। हयग्रीवने देखा कि अङ्गारतप्त सटाओं-जैसा, मुखसे ज्वाला निकालता हयग्रीव पुरुष प्रकट हो गया है। दैत्य-समुदाय उस ज्वालामें पतिंगेकी भाँति नष्ट हो गया।

भौमासुरने वरुणका छत्र, अदितिका कुण्डल हरण किया था। उसका वध आवश्यक था। सत्यभामाजीके साथ गरुडारूढ होकर जब उसे निजधाम दे चुके, तब जो सोलह सहस्र नरेन्द्र-कन्याएँ उसने बन्दी बना रखी थीं, उनका उद्धार भी आवश्यक था। उनको अपनाये बिना उद्धार-कार्य कैसे पूर्ण होता। इस यात्रामें अमरावतीसे बलात् कल्पतरु द्वारका ले आये। इन्द्रने युद्धकी धृष्टता की और वे पराजित हुए।

बाणासुरसे विवश होकर युद्ध करना पड़ा। अपनी सहस्र भुजाओंके मदमें वह अपने आराध्य भगवान् शंकरका अपमान करने लगा था। अनिरुद्धको बन्दी बना लिया था उसने। भक्तवत्सल आशुतोषने फिर भी युद्धमें उसका पक्ष ग्रहण किया। चक्रने असुरके सभी हाथ काट डाले। केवल उसकी चार भुजाएँ शेष रहीं। पौण्ड्रक, दन्तवक्त्र और शाल्व—ये सब मारे गये अपने ही अपराधसे। पौण्ड्रक वासुदेव ही बननेपर तुला था। युद्ध माँगा था उसने। दन्तवक्त्रने आक्रमण किया और शाल्व तो मय-निर्मित विमानसे द्वारका ही नष्ट करने आया था। शिशुपाल भरी सभामें गालियाँ देने लगा तो कहाँतक क्षमा की जाय? सौ गालियोंके पश्चात् चक्रकी भेंट हो गया वह।

पाण्डवोंका परित्राण तो श्रीकृष्ण ही थे। राजसूय यज्ञ युधिष्ठिरका होता नहीं, यदि जरासन्ध मारा न जाता। राजसूयका वह सभास्थल—उसे वनमालीके आदेशसे मयने बनाया। द्यूतमें हारे पाण्डवोंकी पत्नी राजसूयकी साम्राज्ञी द्रौपदी जब भरी सभामें दु:शासनद्वारा नग्न की जाने लगी, वस्त्रावतार धारण किया प्रभुने। दुर्योधनने दुर्वासाजीको वनमें भेजा ही था पाण्डवोंके विनाशके लिये, पर शाकका एक पत्र खाकर त्रिलोकीको तुष्ट करनेवाला वह पार्थ-प्रिय उपस्थित जो हो गया।

वह मयूरमुकुटी पाण्डवोंके लिये सन्धिदूत बनकर आया। विदुरपत्नीके केलेके छिलकोंका रसास्वाद कर गया। सुदामाके तन्दुलोंने प्रेमका स्वाद सिखा दिया था। युद्धारम्भ हुआ और वह राजसूयका अग्रपूज्य पार्थ-सारथि बना। संग्रामभूमिमें उस गीता-गायकने अर्जुनको अपनी दिव्य अमर वाणीसे प्रबुद्ध किया। भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामाके दिव्यास्त्रोंसे रक्षा की पाण्डवोंकी। युद्धका अन्त हुआ। युधिष्ठिरको सिंहासन प्राप्त हुआ। पाण्डवोंका एकमात्र वंशधर उत्तरापुत्र परीक्षित् मृत उत्पन्न हुआ। अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रने उसे प्राणहीन कर दिया था। श्रीकृष्णने उसे पुनर्जीवन दिया।

'यादवकुल पृथ्वीपर रहे तो वही बलोन्मत्त होकर अधर्म करेगा।' श्रीकृष्णको यह अभीष्ट नहीं था। ऋषियोंका शाप तो निमित्त बना। समस्त यादव परस्पर कलहसे क मरे और आप देखते रहे। व्याधने पादतलमें बाण मारा तो उसे सशरीर स्वर्ग भेजनेका पुरस्कार दिया गया। इस प्रकार लीला-संवरण की द्वारकेशने।

श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णपुरुष लीलावतार कहे गये हैं। भगवान् व्यासकी वाणीने श्रीमद्भागवतमें उनकी दिव्य लीलाओंका वर्णन किया है। शुकदेवजी-से विरक्त उस रसाम्बुधिमें म रहा करते थे। श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण-लीलाका अमृतपयोनिधि है। श्रीकृष्णका चरित पूर्णताका ज्वलन्त प्रतीक है। भगवत्ताके छः गुण—ऐश्वर्य, धर्म, यश, शोभा, ज्ञान और वैराग्य—सब उसमें पूर्ण हैं। त्याग, प्रेम, भोग और नीति—सब उन पूर्ण पुरुषमें पूर्ण ही हैं। हिंदू-संस्कृति निष्ठाकी पूर्णताको आदर्श मानती है। श्रीकृष्णमें समस्त निष्ठाओंकी पूर्णता होती है।

[२१]

भगवान् बुद्ध

यह विवादास्पद विषय है कि पुराणोंमें जिस बुद्धावतारका वर्णन है, वह महाराज शुद्धोदनके पुत्र अमिताभ गौतम बुद्ध ही हैं। पुराणोंका बुद्धावतार कीकट देशमें (गयाके पास) ही हुआ था, यह तो ठीक; किंतु उनके पिताको वहाँ 'अजिन' कहा गया है। जो भी हो, यहाँ तात्पर्य भगवान्‌के उस बुद्धावतारसे है, जिसका वर्णन पुराणोंमें है।

दैत्य प्रबल हो गये थे। स्वर्गपर उनका अधिकार था। दैत्येन्द्रने इन्द्रका पता लगाया और पूछा, 'हमारा राज्य स्थिर कैसे रहे?' इन्द्रने शुद्धभावसे उन्हें यज्ञ एवं वैदिक आचरणका उपदेश दिया। दैत्य यज्ञपरायण हो गये। वे यज्ञके प्रभावसे अजेय थे। संसारमें उनका उपद्रव बना था। विश्वमें आसुर भाव बढ़ रहा था।

'राम-राम! तुम लोग यह क्या पाप करते हो! कितनी हिंसा होती है। अग्निमें ही पता नहीं कितने जलते हैं।' भगवान् विष्णुने बुद्धरूप धारण किया। वे हाथमें झाड़ू लिये मार्ग स्वच्छ करके पादक्षेप करते असुरोंके पास। उनके वस्त्र मलिन थे। स्नान वे करते न

दन्तधावनके बिना दाँत स्वच्छ न थे, सबमें हिंसा जो थी। दैत्योंको उनका वह तत्त्वबोध ठीक जान पड़ा। यज्ञ छूट गया। देवताओंने उन यज्ञहीन, मलिन, अल्पप्राण, प्रतिरोधहीन असुरोंको पराजित करके स्वर्गसे मार भगाया।

[२२]

भगवान् कल्कि

कलिके अन्तमें सम्भल-ग्राममें विष्णुयश ब्राह्मणके यहाँ भगवान् कल्किका प्रादुर्भाव होगा। अभी कलिके पाँच सहस्रसे कुछ ही अधिक वर्ष बीते हैं। इस अवतारके होनेमें लाखों वर्ष अभी शेष हैं। उस समय श्रुतियोंका लोप हो चुकेगा। मानव सदाचारहीन, अल्पकाय, अल्पसत्त्व एवं अत्यन्त अल्पायु होंगे।

भगवान् परशुराम स्वयं कल्कि भगवान्‌को वेदोंका उपदेश करेंगे। भगवान् शिव उन्हें शस्त्रास्त्रकी शिक्षा देंगे। शंकरजीसे अश्व एवं खड्ग प्राप्तकर भगवान् पृथ्वीके समस्त आसुरी वृत्तिके प्राणियोंका वध कर डालेंगे। भगवान्‌के पृथ्वीपर होनेके कारण नूतन संतति शुद्ध भावापन्न तथा सबल होगी। इस प्रकार सत्ययुग प्रतिष्ठित होगा।

[२३]

भगवान् हंस

'चित्त स्वयं त्रिगुणात्मक है और तीनों गुण चित्तमें ही रहते हैं। इनका सम्बन्ध स्थायी है। ऐसी दशामें निस्त्रैगुण्यकी प्रतिष्ठा कैसे होगी?' सनकादि कुमारोंने लोकस्रष्टासे प्रश्न किया। यदि चित्त गुणहीन नहीं हो सकता तो मोक्ष किस प्रकार सम्भव है? हिंदू-धर्मका परम लक्ष्य तो मोक्ष है। यदि वही सिद्ध न हो तो सम्पूर्ण धर्म ही व्यर्थ हो जायगा। ब्रह्माजीने बहुत सोचा; परंतु प्रश्नमें कहाँ संदेहका बीज है, पता न लगा। वे आदिपुरुषका ध्यान करने लगे।

'आप कौन हैं?' वहाँ एक महाहंस प्रकट हो गया, जैसे सहस्र-सहस्र चन्द्रज्योत्स्ना घनीभूत हो गयी हो। कुमारोंके साथ लोकस्रष्टाने अर्घ्य निवेदित करके परिचय जानना चाहा।

'मैं क्या कहूँ—यह आप लोग स्वयं निर्णय करें!' हंसकी वाणीमें विचित्र भंगी थी। 'आत्मामें कोई भेद नहीं, कोई परिचय नहीं और शरीरकी दृष्टिसे भी सबमें वही पञ्चतत्त्व हैं। उनमें भी कोई विलक्षणता नहीं। आप सब ब्रह्मज्ञानी हैं। आप स्वयं सोचें कि गुणोंमें चित्त स्थित है और चित्तमें गुण हैं; पर मुझमें तो चित्त और गुण दोनों हैं तथा दोनों नहीं हैं। स्वप्नमें देखनेवाला, देखनेकी क्रिया और दृश्य—सब क्या भिन्न-भिन्न होते हैं?' भगवान्‌की वाणीने संदेहका निराकरण कर दिया। ब्रह्माजीके साथ कुमारोंने उनकी विधिवत् पूजा की।

[२४]

भगवान् हयग्रीव

कलपभेद हरिचरित सुहाए।

क्षीरोदधिमें अनन्तशायी प्रभुकी नाभिसे पद्म प्रकट हुआ। पद्मकी कर्णिकासे सिन्दूरारुण चतुर्मुख लोकस्रष्टा व्यक्त हुए। क्षीरोदधिसे दो विन्दु कमलपर पहुँच गये। वह चेतनात्मक नाभिपद्म—दोनों विन्दु सजीव हो गये। वे ही आदिदैत्य मधु-कैटभ थे। दैत्योंने कमल-कर्णिकापर बैठे ब्रह्माजीको देखा। वे एकाग्र मनसे भगवान्‌के निःश्वाससे निकली श्रुतियोंको ग्रहण कर रहे थे। दैत्योंने श्रुतिका हरण किया और वहाँसे नीचे भाग गये। आदिमें ही अनधिकारियोंको श्रुतिकी प्राप्ति हो जानेसे ब्रह्माजी चंचल हुए। उन्होंने भगवान्‌की स्तुति प्रारम्भ की। प्रभु प्रसन्न हुए, उन्होंने हयग्रीवरूप धारण किया। दैत्योंको मारकर उन्होंने श्रुतिका उद्धार किया।

× × ×

दूसरे कल्पकी बात—

दितिपुत्र हयग्रीव सरस्वतीके तटपर उग्रतपमें संलग्न था। महामाया प्रसन्न हुई। उन्होंने वरदान माँगनेको कहा। दैत्यको अमरत्व अभीष्ट था; किंतु कोई भी आसुरभावापन्न होकर अमर कैसे हो सकता है। 'मुझे हयग्रीवके अतिरिक्त कोई न मारे!' दैत्यने समझा कि मैं स्वयं अपना वध क्यों करूँगा। देवीने 'तथास्तु' कह दिया। असुरको लगा, उसका छल सफल हो गया। वह अमर ही तो हो गया।

सात्त्विकता न हो तो अमरत्व जगत्‌के लिये अभिशाप बनेगा। दैत्य हयग्रीव निःसंकोच अपनी असुरता चरितार्थ कर रहा था। देवता उससे विजय नहीं पा सकते थे। धर्म एवं मर्यादाका विनाश हो रहा था। सर्वेश्वर कबतक यह अधर्म चलने देते। हयग्रीवने देखा कि अङ्गारतस सटाओं-जैसा, मुखसे ज्वाला निकालता हयग्रीव पुरुष प्रकट हो गया है। दैत्य-समुदाय उस ज्वालामें पतिंगेकी भाँति नष्ट हो गया।

भगवान् शिवकी अवतार-लीलाएँ

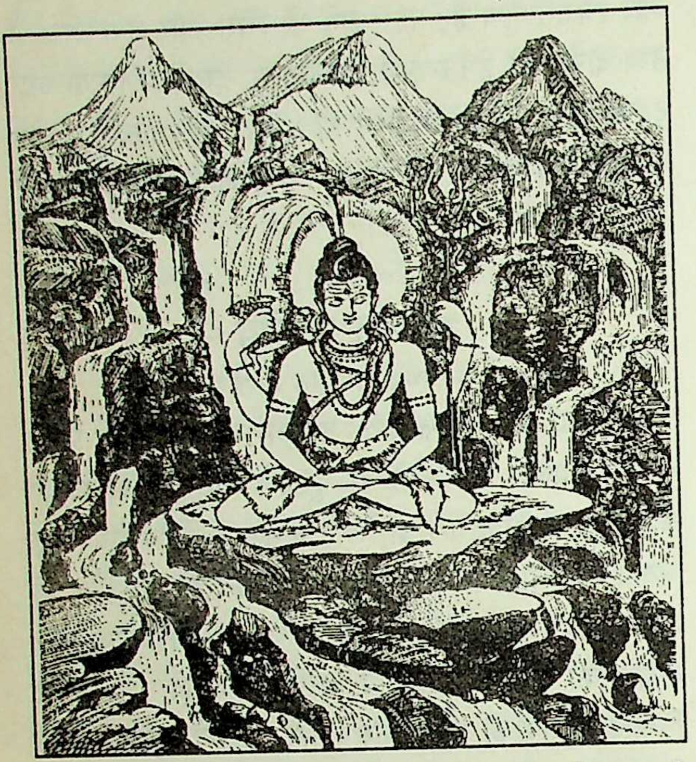

भगवान् शिव तथा भगवान् शिवके नाम और उनकी लीलाएँ समस्त संसारके मङ्गलोंके मूल हैं। वे कल्याणमय हैं, मङ्गलमय हैं और परम शान्तमय हैं। समस्त विद्याओंके मूलस्थान भगवान् शिव ही हैं। वे विशुद्ध ज्ञानस्वरूप, सबके मूलकारण, मूलाधार, रक्षक, पालक, नियन्ता एवं ईश्वरके भी ईश्वर होनेके कारण महामहेश्वर कहे जाते हैं। वे सभी देवताओंके भी परम दैवत या आराध्यदेव, सभी स्वामियोंके भी स्वामी, नित्य, अनादि, अजन्मा और परब्रह्म पूर्णप्रकाशयुक्त परमात्मा हैं। वे दिग्वसन होते हुए भी भक्तोंको अतुल ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, अनन्त राशियोंके अधिपति होते हुए भी भस्मविभूषित, श्मशानवासी कहे जानेपर भी अर्धनारीश्वर, सदा कान्तासे आलिङ्गित रहते हुए भी मदनजित्, अज होते हुए भी अनेक रूपमें आविर्भूत, गुणहीन होते हुए भी गुणाध्यक्ष, अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त तथा सबके कारण होते हुए भी अकारण हैं। यह उनकी लीला-विभूतिका ही वैशिष्ट्य है।

आशुतोष एवं औढरदानी होनेके कारण वे शीघ्र ही प्रसन्न होकर भक्तोंको सर्वस्व—यहाँ तक कि स्वयंको भी प्रदान कर देते हैं। केवल देवता ही नहीं, अपितु ऋषि-मुनि, ज्ञानी-ध्यानी, योगी-सिद्ध-महात्मा, विद्याधर, असुर, नाग, किन्नर, चारण, मनुष्य आदि सभी भगवान् शिवके लीला-चरित्रोंका ध्यान, संस्तवन, स्मरण, चिन्तन करते आनन्दित होते रहते हैं और उनकी कृपा-लीलाकी अनुभूति करते हुए सदाके लिये उन्हींके हो जाते हैं।

भगवान् शंकरकी समस्त जीवोंपर परम अनुकम्पा है। अशेष ब्रह्माण्ड उन्हींका स्वरूप है, शिवमय ही है। अन्तर्यामी-रूपसे सर्वत्र वे ही व्याप्त हैं। यह सम्पूर्ण संसार भगवान् शिव और उनकी शक्ति शिवाका ही लीला-विलास है। उनके व्यक्त एवं अव्यक्त सभी लीलाओंमें अनन्त कल्याण एवं अनन्त मङ्गल परिव्याप्त है। उनकी संहारलीला भी जीवोंके हितके लिये ही होती है। यद्यपि उनका न कोई नाम है न कोई रूप है, तथापि जितने नाम हैं और जितने भी रूप हैं वे सब भगवान् शिवके ही हैं। जितनी भी क्रियाएँ हैं वे सब शिवलीलापरक ही हैं। इसीलिये उनके अनन्त नाम हैं, अनन्त रूप हैं, अनन्त गुण हैं, अनन्त कल्याणकारिणी चेष्टाएँ और अनन्त आनन्ददायिनी लीलाएँ हैं। इसीलिये वे लीलाधर भी कहलाते हैं। प्रकृति-नटीके सूत्रधार, सर्वाधार, लीलावपु भगवान् शंकर ही हैं। उनकी लीलाएँ बड़ी ही विलक्षण और मनोरम हैं। उनका स्वरूप ही लीलामय है।

परिवार, पार्षद, निवास, आयुध एवं वाहन

भगवान् शिवका परिवार बहुत बड़ा है। वहाँ सभी द्वैतोंका अन्त दीखता है। एकादश रुद्र, रुद्राणियाँ, चौंसठ योगिनियाँ, मातृकाएँ तथा भैरवादि इनके सहचर तथा सहचरी हैं। जिनके अध्यक्ष वीरभद्र हैं, ऐसे अनेक रुद्र इनके साथ रहते हैं। माता पार्वतीकी सखियोंमें विजया आदि प्रसिद्ध हैं। गणपति-परिवारमें उनकी पत्नी सिद्धि, बुद्धि तथा क्षेम और लाभ दो पुत्र हैं, उनका वाहन मूषक है। भगवान् कार्तिकेयकी पत्नी देवसेना तथा वाहन मयूर है। भगवती पार्वतीका वाहन सिंह कहा गया है तथा स्वयं भगवान् शिव धर्मावतार नन्दीपर आरूढ होते हैं।

बाण, रावण, चण्डी, रिटि तथा भृङ्गी आदि उनके मुख्य पार्षदोंमें परिगणित हैं। इनके द्वाररक्षकके रूपमें कीर्तिमुख प्रसिद्ध हैं, उनकी पूजाके बाद ही मन्दिरमें प्रवेश तथा भगवान् शिवकी पूजा करनेका विधान है।

भगवान् शंकर अति प्रसन्न होते हैं।

यद्यपि भगवान् शिव सर्वत्र व्याप्त हैं, तथापि काशी एवं कैलास—ये दो उनके मुख्य निवास-स्थान कहे गये हैं। भक्तोंके हृदय-प्रदेशमें तो वे सर्वदा निवास करते ही हैं।

उनके अनेक आयुध हैं जैसे—त्रिशूल, टंक (छेनी), कृपाण, वज्र, अग्नियुक्त कपाल, सर्प, घण्टा, अंकुश, पाश तथा पिनाक धनुष। इन सबमें भी त्रिशूल और पिनाक—ये उनके दो मुख्य आयुध हैं।

स्कन्दपुराणके अनुसार यह प्रसिद्ध है कि एक बार भगवान् धर्मकी यह इच्छा हुई कि मैं देवाधिदेव शंकरका वाहन बनूँ और तब दीर्घकालतक उन्होंने इसके लिये तपस्या की। अन्तमें भगवान्ने उनपर अनुग्रह किया और उन्हें अपने वाहनके रूपमें स्वीकार किया तथा वे भगवान् धर्म ही नन्दी वृषभके रूपमें उनके सदाके लिये वाहन बन गये—'**वृषो हि भगवान् धर्मः।**'

सुर और असुर दोनोंके उपास्य

भगवान् शिव देवताओंके उपास्य तो हैं ही, साथ ही उन्होंने अनेक असुरों—अन्धक, दुन्दुभी, महिष, त्रिपुर, रावण, निवातकवच आदिको भी अतुल ऐश्वर्य प्रदान किया। इसके साथ ही ऐश्वर्य-मदसे दुराचारको प्राप्त अन्धकासुर, गजासुर, भस्मासुर, त्रिपुरासुर आदिका संहारकर उनका भी उद्धार कर दिया। गजासुरका गजाजिन ही भगवान् शिवके अजिन-वस्त्रके रूपमें सुशोभित होता है। कुबेरादि लोकपालोंको आपकी ही कृपासे उत्तर दिशाका स्वामित्व, निधिपतित्व, यक्षोंका स्वामित्व, राजाधिराज तथा राजराजका महनीय पद प्राप्त हुआ। भगवान् शिवकी महिमा अनन्त है, वे सबके परम उपास्य देव हैं।

भगवान् शिवकी विविध लीला-मूर्तियाँ एवं उनके ध्यान-स्वरूप

भगवान् शंकरके चरित्र बड़े ही उदात्त एवं अनुकम्पापूर्ण हैं। वे ज्ञान, वैराग्य तथा साधुताके परम आदर्श हैं। समुद्र-मन्थनके समय वासुकिनागके मुखसे भयंकर विषकी ज्वालाएँ उठीं और समुद्रके जलमें मिश्रित होकर वे कालकूट विषके रूपमें प्रकट हो गयीं। वे ज्वालाएँ आकाशमें व्याप्त होने लगीं, जिससे समस्त देवता, ऋषि, मुनि और चराचर जगत् जलने लगा। सभी देवगणों तथा ऋषि-मुनियोंको दुःखित देखकर भगवान् विष्णुके अनुरोधपर उन्होंने तत्काल उस विषको अपनी योगशक्तिसे आकृष्टकर कण्ठमें धारणकर लिया। इसीसे वे 'नीलकण्ठ' कहलाये। उसी समय समुद्रसे अमृतकिरणोंसे युक्त चन्द्रमा भी प्रकट हुए, जिन्हें देवताओंके अनुरोधपर भगवान् शंकरने उस उद्दीप्त गरलकी शान्तिके लिये अपने ललाटपर धारण कर लिया और 'चन्द्रशेखर'-'शशिशेखर' यह नाम पड़ गया। अपनी जटाओंमें गङ्गा धारण करनेसे वे 'गङ्गाधर' कहलाते हैं।

शास्त्रोंमें उनकी उपासना भी निर्गुण, सगुण, लिङ्ग-विग्रह तथा प्रतिमा-विग्रहमें परिकरसहित अनेक प्रकारसे निर्दिष्ट है। उनके अनेक रूपोंमें उमा-महेश्वर, अर्धनारीश्वर, मृत्युञ्जय, पञ्चवक्त्र, एकवक्त्र, पशुपति, कृत्तिवास, दक्षिणामूर्ति तथा योगीश्वर आदि अति प्रसिद्ध हैं। भगवान् शिवका एक विशिष्ट रूप लिङ्गरूपमें भी है, जिसमें ज्योतिर्लिङ्ग; स्वयम्भूलिङ्ग; नर्मदेश्वर तथा अन्य रत्नादि-धात्वादि एवं पार्थिवादि-लिङ्ग हैं। इन सभी तथा अन्य रूपोंकी भी उपासना भक्तजन बड़ी श्रद्धाके साथ करते हैं।

पञ्चमूर्ति

ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—ये भगवान् शिवकी पाँच विशिष्ट मूर्तियाँ हैं। ये ही उनके पाँच मुख भी कहे जाते हैं। शिवपुराणके अनुसार शिवकी प्रथम मूर्ति क्रीडा, दूसरी तपस्या, तीसरी लोकसंहार, चौथी अहंकारकी अधिष्ठात्री और पाँचवीं ज्ञानप्रधान होनेके कारण सद्वस्तुयुक्त सम्पूर्ण संसारको आच्छन्न कर रखती है।

भगवान् शिवके पञ्चकृत्य

सृष्टि, पालन, संहार, निग्रह तथा अनुग्रहरूप पञ्चकृत्य उपर्युक्त पञ्चमूर्तियोंद्वारा सम्पादित किये जाते हैं।

अष्टमूर्ति

भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियाँ—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव—ये क्रमशः पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमें अधिष्ठित रहती हैं। पञ्चतत्त्वात्मक पञ्चलिङ्गोंकी दक्षिण भारतमें विशेष उपासना होती है। क्षेत्रज्ञमूर्तिकी पशुपतिनाथके रूपमें आराधना की जाती है।

ज्योतिर्लिङ्ग

सोमनाथ, मल्लिकार्जुन, महाकालेश्वर, परमेश्वर (ओंकारेश्वर), केदारेश्वर, भीमशंकर, विश्वेश्वर, त्र्यम्बक,

वैद्यनाथ, नागेश, रामेश्वर तथा घुश्मेश्वर—ये प्रसिद्ध बारह ज्योतिर्लिङ्ग हैं।

भगवान् शिवके तत्तत्स्वरूपपरक यद्यपि अनेक ध्यान-स्वरूप शास्त्रोंमें निर्दिष्ट हैं, उन नाम-रूपोंसे उनकी उपासना भी होती है, उनमेंसे कुछ ध्यान-स्वरूपोंका संक्षिप्त उल्लेख यहाँ किया जा रहा है—

१-सदाशिव

भगवान्‌के सदाशिवकी मूर्तिमें ऊपरकी ओर गजमुक्ताके समान किंचित् श्वेत-पीत-वर्ण, पूर्वकी ओर सुवर्णके समान पीतवर्ण, दक्षिणकी ओर सजल मेघके समान सघन नीलवर्ण, पश्चिमकी ओर स्फटिकके समान शुभ्र उज्ज्वलवर्ण तथा उत्तरकी ओर जपापुष्प या प्रवालवर्णके समान रक्तवर्ण है। इस प्रकार उनके पाँच मुख हैं, तीन नेत्र हैं, मुकुट बालचन्द्रसे सुशोभित है, शरीरकी प्रभा करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाके समान है और दस हाथोंमें क्रमशः त्रिशूल, टंक (छेनी), तलवार, वज्र, अग्नि, नागराज, घण्टा, अंकुश, पाश तथा अभयमुद्रा विराजमान हैं।

२-महामृत्युञ्जय

भगवान्‌का यह स्वरूप मृत्युको भी जीतनेवाला है। इस स्वरूपमें वे अपने ऊपरके दो हाथोंमें स्थित दो कलशोंके द्वारा आर्त व्यक्तिके सिरको अमृतजलसे आप्लावित कर रहे हैं और दो हाथोंमें क्रमशः मृगमुद्रा तथा वलयाकार रुद्राक्षमाला लपेटे हुए हैं, दो हाथोंको गोदमें रखकर उसपर अमृत-कलश लिये हुए हैं तथा अन्य दो हाथोंसे उसे ऊपरसे ढके हुए हैं। इस प्रकार आठ हाथोंसे युक्त सुन्दर कैलासपर्वतपर स्थित, स्वच्छ कमलपर विराजमान और ललाटपर बालचन्द्रमाको मुकुटके रूपमें धारण किये हुए त्रिनेत्रोंसे सुशोभित हैं।

३-महेश

भगवान् शिवके इस स्वरूपकी कान्ति चाँदीके पर्वतके समान श्वेत है। ये सदैव सुन्दर चन्द्रमाको आभूषणरूपमें धारण करते हैं तथा रत्नमय अलंकारोंसे यह विग्रह उज्ज्वल हो गया है। ये हाथोंमें परशु, मृग, वर और अभय मुद्रा धारण करते हैं। प्रसन्न-मुद्रामें पद्म-आसनपर विराजमान हैं, देवतागण इनके चारों ओर खड़े होकर स्तुति करते हैं, ये बाघकी खाल पहनते हैं तथा विश्वके आदि, जगत्‌की उत्पत्तिके बीज और समस्त भयोंको हरनेवाले हैं। इन महेश्वरका स्वरूप भी पाँच मुखों और तीन नेत्रोंसे देदीप्यमान होता रहता है।

४-अर्धनारीश्वर

भगवान् अर्धनारीश्वर शिवके शरीरका दाहिना भाग नीलवर्णका और बायाँ भाग प्रवाल अर्थात् मूँगेकी कान्तिके समान लालवर्णका है। उनके तीन नेत्र सुशोभित हो रहे हैं। उनके वामभागके हाथोंमें पाश और लाल कमल विराजमान हैं तथा दाहिनी ओरके दो हाथोंमें त्रिशूल और कपाल लिये है। इस प्रकार बायीं ओर भगवती पार्वती और दाहिनी ओर भगवान् शंकरके सम्मिलित स्वरूपमें अलग-अलग आभूषण सुशोभित हो रहे हैं और मस्तकके ऊपर बालचन्द्रमा तथा मुकुटकी विलक्षण समुज्ज्वल शोभा झलक रही है।

ये सभी ध्यानस्वरूप भगवान् शिवके लीलारूप हैं जो सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं। इसलिये सबको अभय दान देना, सबपर अनुग्रह करना—यह विश्व शिवका आराधन ही माना गया है।

भगवान् शिवके कतिपय नाम-विग्रहोंके आख्यान

भगवान् शंकरके अनेक नाम-विग्रह हैं। उनमें एक भी निरर्थक नहीं, सब सार्थक हैं। प्रत्येक नाममें नामके गुण, प्रयोजन और तथ्य भरे हैं। यदि उसका अर्थ सोचा जाय, या उसके प्रचार होनेका मूल देखा जाय तो अधिकांश नामोंसे भ्रम्-निवृत्ति, मोह-नाश और सौभाग्य-लाभादि हो सकते हैं। भक्तोंके हित-साधनार्थ यहाँ शिवके कुछ नाम-विग्रहोंका उल्लेख मात्र किया जा रहा है—

'शिव'—जो समस्त कल्याणोंके निधान हैं और भक्तोंके समस्त पाप और त्रितापके नाश करनेमें सदैव समर्थ हैं, उनको 'शिव' कहते हैं।

'पशुपति'—ज्ञानशून्य-अवस्थामें सभी पशु माने गये हैं (**ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः**)। दूसरे जो सबको अविवेकसे देखते हों, वे भी 'पशु' कहलाते हैं। अतः ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सभी पशु माने जा सकते हैं और शिव सबको ज्ञान देनेवाले तथा उनको अज्ञानसे बचानेवाले हैं, इसलिये वे 'पशुपति' कहलाते हैं।

'मृत्युञ्जय'—यह सुप्रसिद्ध बात है कि मृत्युको जीत नहीं सकता। स्वयं ब्रह्मा भी युगान्तमें मृत्युको

द्वारा ब्रह्ममें लीन होते हैं। परंतु उनके अनेक बार लीन होनेपर शिवका एक बार निर्गुणमें लय होता है, अन्यथा अनेक बार मृत्युकी ही पराजय होती है। इसीलिये वे 'मृत्युञ्जय' कहलाते हैं।

'त्रिनेत्र'—एक बार भगवान् शिव शान्तरूपसे बैठे हुए थे। उसी समय हिमाद्रितनया भगवती पार्वतीने विनोदवश पीछेसे आकर भगवान् शिवके दोनों नेत्र मूँद लिये। नेत्र क्या थे, शिवरूप त्रैलोक्यके चन्द्र और सूर्य थे। ऐसे नेत्रोंके बंद होते ही विश्वभरमें अन्धकार छा गया और संसार अकुलाने लगा। तब शिवजीके ललाटसे युगान्तकालीन अग्निस्वरूप तीसरा नेत्र प्रकट हुआ। उसके प्रकट होते ही दसों दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं, अन्धकार हट गया और हिमालय-जैसे पर्वत भी जलने लग गये। यह देखकर पार्वती घबरा गयीं और हाथ जोड़कर स्तुति करने लगीं। तब शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने संसारकी परिस्थिति यथापूर्व बना दी; तभीसे वे 'चन्द्रार्काग्निविलोचन' अर्थात् 'त्रिनेत्र' कहलाने लगे।

'कृत्तिवासा'—कृत्तिवासा वे हैं जिनके गजचर्मका वस्त्र हो। ऐसे वस्त्रवाले शिव हैं। उनको इस प्रकारका वस्त्र रखनेकी क्या आवश्यकता हुई थी, इसकी स्कन्दपुराणमें एक कथा है; उसमें लिखा है—जिस समय महादेव पार्वतीको रत्नेश्वरका माहात्म्य सुना रहे थे, उस समय महिषासुरका पुत्र गजासुर अपने बलके मदसे उन्मत्त होकर शिवके गणोंको दुःख देता हुआ शिवके समीप चला गया। ब्रह्माके वरसे वह इस बातसे निडर था कि 'कन्दर्पके वश होनेवाले किसीसे भी मेरी मृत्यु नहीं हो सकती।' किंतु जब वह कन्दर्पके दर्पका नाश करनेवाले भगवान् शिवके सामने गया तो उन्होंने उसके शरीरको त्रिशूलमें टाँगकर आकाशमें लटका दिया। तब उसने वहींसे शिवकी बड़ी भक्तिसे स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने वर देना चाहा। इसपर गजासुरने अति नम्र होकर प्रार्थना की—'हे दिगम्बर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपा करके मेरे चर्मको धारण कीजिये और अपना 'कृत्तिवासा' नाम रखिये, इसपर शिवजीने 'एवमस्तु' कहा और वैसा ही किया।

'पञ्चवक्त्र'—एक बार भगवान् विष्णुने किशोर-अवस्थाका अत्यन्त मनोहर रूप धारण किया। उसको देखनेके लिये ब्रह्मा-जैसे चतुर्मुख तथा अनन्त-जैसे बहुमुख अनेक देवता आये और उन्होंने एक मुखवालोंकी अपेक्षा अधिक आनन्द प्राप्त किया। यह देखकर एक मुखवाले शिवजीको बहुत क्षोभ हुआ। वह सोचने लगे कि यदि मेरे भी अनेक मुख और अनेक नेत्र होते तो भगवान्के इस किशोर-रूपका सबसे अधिक दर्शन करता। बस, फिर क्या था; इस वासनाके उदय होते ही वे पञ्चमुख हो गये और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र बन गये। तभीसे इनको 'पञ्चवक्त्र' कहते हैं।

'शितिकण्ठ'—किसी समय बदरिकाश्रममें नर और नारायण तप कर रहे थे। उसी समय दक्षयज्ञको ध्वंस करनेके लिये शिवने त्रिशूल छोड़ा था। दैवयोगसे वह त्रिशूल यज्ञ विध्वंस करके नारायणकी छातीको भी भेद गया और शिवके पास आ गया। इससे शिव क्रोधित हुए और आकाश-मार्गसे नारायणके समीप गये, तब उन्होंने शिवका गला घोंट दिया। तभीसे ये 'शिति (नील)-कण्ठ' कहलाने लगे।

'खण्डपरशु'—एक बार नरने परशुके आकारके एक तृणखण्डको ईषिकास्त्रसे अभिमन्त्रितकर शिवपर छोड़ा था और शिवने उसका अपने महत्-प्रभावसे खण्ड कर दिया था। तबसे यह 'खण्डपरशु' भी कहलाते हैं।

'प्रमथाधिप'—कालिकापुराणमें लिखा है कि ३६ कोटि प्रमथगण शिवकी सदा सेवा किया करते हैं। उनमें १३ हजार तो भोगविमुख तथा योगी और ईर्ष्यादिसे रहित हैं। शेष कामुक तथा क्रीडा-विषयमें शिवकी सहायता करते हैं। उनके द्वारा प्रकटमें किसीका कुछ अनिष्ट न होनेपर भी उनकी विकटतासे लोग भयकम्पित रहते हैं।

'गङ्गाधर'—संसारके हित और सगर-पुत्रोंके उपकारके लिये भगीरथने त्रिभुवनव्यापिनी गङ्गाका आवाहन किया, तब यह संदेह हुआ कि आकाशसे अकस्मात् पृथिवीपर प्रपात होनेसे अनेक अनिष्ट हो सकते हैं। अतः भगीरथकी प्रार्थनासे गौरीशंकरने उसे अपने जटामण्डलमें धारण कर लिया। इसीसे इनको 'गङ्गाधर' कहते हैं।

'महेश्वर'—जो वेदोंके आदिमें ओंकाररूपसे माने गये हैं और वेदान्तमें निर्गुणरूपसे स्थित रहते हैं, वे महेश्वर कहलाते

हैं। अथवा सम्पूर्ण देवताओंमें प्रधान होनेसे भी 'महेश्वर' नामसे विख्यात हैं।

'**रुद्र**'—दुःख और उसके समस्त कारणोंके नाश करनेसे तथा संहारादिमें क्रूर रूप धारण करनेसे शिवको 'रुद्र' कहते हैं।

'**विष्णु**'—पृथिवी, अप्, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच महाभूतोंमें तथा जड-चैतन्यादि सम्पूर्ण सृष्टिमें जो सदैव व्याप्त रहते हैं, उन्हींको विष्णु कहते हैं। यह गुण भगवान् शिवमें सर्वदा विद्यमान रहता है। अतः शिवको 'विष्णु' कहते हैं।

'**पितामह**'—अर्यमा आदि पितरोंके तथा इन्द्रादि देवोंके पिता होने और ब्रह्माके भी पूज्य होनेसे शिवजी 'पितामह' नामसे विख्यात हैं।

'**संसारवैद्य**'—जिस प्रकार निदान और चिकित्साके जाननेवाले सद्वैद्य उत्तम प्रकारकी महौषधियों और अनुभूत प्रयोगोंसे संसारियोंके समस्त शारीरिक रोगोंको दूर करते हैं, उसी प्रकार शिव अपनी स्वाभाविक दयालुतासे संसारियोंको भवरोगसे छुड़ाते हैं। अन्य वेदादि शास्त्रोंमें यह भी सिद्ध किया गया है कि भगवान् शिव अनेक प्रकारकी अद्भुत, अलौकिक और चमत्कृत ओषधियोंके ज्ञाता हैं। उनके पाससे अनेक प्रकारकी महौषधियाँ प्राप्त हो सकती हैं और वे मनुष्योंके अतिरिक्त पशु-पक्षी और कीट-पतङ्गादि ही नहीं, स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण सृष्टिके प्राणिमात्रकी प्रत्येक व्याधिके ज्ञाता और उसको दूर करनेवाले भी हैं। इसीलिये वे 'संसारवैद्य' सिद्ध हुए हैं।

'**सर्वज्ञ**'—तीनों लोक और तीनों कालकी सम्पूर्ण बातोंको (जिनको अन्य लोग नहीं जान सकते) सदाशिव अनायास ही जान लेते हैं। इसीसे उनको 'सर्वज्ञ' कहते हैं।

'**परमात्मा**'—उपर्युक्त सम्पूर्ण गुणोंसे संयुक्त होने और समस्त जीवोंके आत्मा होनेसे श्रीशिव 'परमात्मा' कहलाते हैं।

'**कपाली**'—ब्रह्माके मस्तकको काटकर उसके कपालको कई दिनोंतक करमें धारण करनेसे आप 'कपाली' कहे जाते हैं।

आध्यात्मिक दृष्टिसे ऐसे नामोंका तथा उनके तथ्य और कथाओंके अन्यान्य प्रयोजन सिद्ध हैं। अतः ऐसे कल्याणकारी नामोंवाले विश्वव्यापी, विश्वरक्षक और विश्वेश्वर महादेवका प्राणिमात्रको स्मरण करना चाहिये।

भगवान् शिवकी विविध लीला-कथाएँ

'रुद्र' भगवान् शिवका ही नाम है। वेदोंमें उनके अनेक नामोंमें रुद्र नाम ही विशेष है। वहाँ बताया गया है कि रुद्र एक हैं और असंख्य भी हैं। यथा—

एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः। असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्। (निरुक्त १। ५। १५)

—यह वचन भगवान् शिवके अनन्त माङ्गलिक लीलावतारोंका ही परिचायक है। कभी-कभी भगवान् शिव भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये और उनकी इच्छापूर्तिके लिये स्वयं ही उसके घरमें पुत्र आदि बनकर रहने लगते हैं। यहाँ भगवान्‌की इसी प्रकारकी कुछ लीलाओंका दर्शन कराया जा रहा है—

भगवान् शिवके नन्दीश्वर-अवतारकी लीला

पूर्व समयकी बात है, शिलाद नामके एक धर्मात्मा मुनि थे। वे भगवान् शिवके परम भक्त थे। एक बार उनके मनमें यह इच्छा उत्पन्न हुई कि एक ऐसा पुत्र मुझे प्राप्त हो, जो अयोनिज हो और अमर भी हो। वे महान् तपस्वी तो ही, ऐसा कर भी सकते थे, पर उन्होंने अपने आराध्य भगवान् शंकरके सामने अपना निवेदन प्रस्तुत किया और कहा—'प्रभो! मैं आपके समान ही अयोनिज पुत्र चा हूँ।' शिव बोले—'वत्स! ऐसा होना तो कठिन है, किंतु स्वयं ही आपके पुत्रके रूपमें अवतार धारण करूँगा।' कहकर शंकरजी अन्तर्धान हो गये।

शिलादमुनिकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। वे आश्रममें आकर पूर्ववत् यज्ञ-यागादि तथा तपोऽनुष्ठानमें गये। एक दिन यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महामुनि शिलाद करनेके लिये यज्ञक्षेत्रको जोत रहे थे, उसी समय शरीरसे भगवान् शिव प्रकट हो गये। उस समय दिशाओंमें प्रसन्नता छा गयी। ब्रह्मादि देवता, ऋषि- सभी साक्षात् शंकरके ही अवतार शिलाद-पुत्रके लिये वहाँ आ पहुँचे। उस समय वे सूर्यके समान प्रभा

दीख रहे थे। उनके तीन नेत्र थे, चार भुजाएँ थीं। जटा-मुकुट धारण किये थे। त्रिशूल आदि आयुधोंको धारण किये हुए थे। ऐसे बालकको देखकर शिलाद आनन्दमें निमग्न हो गये और उससे कहने लगे—'सुरेश्वर! चूँकि तुमने नन्दी नामसे प्रकट होकर मुझे आनन्दित किया है, इसलिये मैं तुम आनन्दमय जगदीश्वरको नमस्कार करता हूँ'—

त्वयाऽहं नन्दितो यस्मान्नन्दीनाम्ना सुरेश्वर।
तस्मात् त्वां देवमानन्दं नमामि जगदीश्वरम्॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० ६। ४५)

सबको आनन्दित करनेके कारण उस बालकका नाम नन्दी पड़ गया। शिलादमुनि अपने दिव्य बालक नन्दीको लेकर अपनी पर्णशालामें आये, वहाँ पहुँचते ही लीलाधारी शिव (नन्दी)-ने अपना चतुर्भुज एवं त्रिनेत्रवाला लीला-रूप छोड़ दिया और वे एक सामान्य मनुष्यके बालकके समान हो गये। तब महामुनिने बालकके जातकर्म आदि सभी संस्कार किये और फिर बादमें साङ्गोपाङ्ग सभी वेदादि शास्त्रोंका अध्ययन कराया। जब नन्दी सात वर्षके हो गये तो एक दिन मित्र और वरुण देवता महामुनि शिलादके पास आये और मुनिको आश्वस्त करते हुए बोले—'महामुने! यह बालक सर्वगुणसम्पन्न है, किंतु इसकी आयु अत्यन्त ही अल्प है।' यह सुनकर शिलाद अपने पुत्रका आलिङ्गन कर रोने लगे। पिताकी ऐसी पुत्रवत्सलता देखकर नन्दी (जो स्वयं शिवरूप ही थे, लीलासे पुत्र बने थे) बोले—'पिताजी! किस कारणसे आप रो रहे हैं?' तब पिताने उसके अल्पायु होनेकी बात उसे बतायी। नन्दीने कहा—'पिताजी, आप चिन्तित न होइये। देवता-दानव तथा काल आदि कोई मुझे मार नहीं सकता, अतः आप दुःखी न हों।' पिताको आश्चर्य हुआ, बोले—'मेरे प्यारे लाल! तुमने ऐसा कौन-सा तप किया है अथवा तुम्हें कौन-सा ऐसा ज्ञान, योग या ऐश्वर्य प्राप्त है, जिसके बलपर तुम ऐसा कह रहे हो।'

इसपर नन्दीने कहा—'तात! मैं न तो तपसे मृत्युको हटाऊँगा और न विद्यासे। मैं महादेवजीके भजनसे मृत्युको जीत लूँगा, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है—

महादेवस्य भजनान्मृत्युं जेष्यामि नान्यथा॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० ६। ६१)

—ऐसा कहकर पिताको प्रणाम तथा उनकी परिक्रमा करके नन्दी तपस्याके लिये वनमें चले गये और एकान्त स्थानमें समाधियोगके द्वारा भगवान् शंकरका ध्यान करने लगे। भगवान् शंकरने दर्शन देकर उसे कृतार्थ किया। अनेक वर प्रदान किये और उन्हें अपने गणोंका अधिपति बना दिया। भगवान् शंकरकी कृपासे नन्दीश्वरके दस हाथ और तीन नेत्र हो गये; वह दूसरे शिवके समान ही प्रतीत होने लगा। अब नन्दी नन्दीश्वर हो गये। मरुतोंकी कन्या सुयशासे नन्दीश्वरका विवाह हुआ।

भगवान् शंकर तथा माता पार्वतीने नन्दीश्वरको अजेय, अमर तथा सदा पूज्य होनेका वर प्रदान किया और अपनी संनिधि भी प्रदान की। उन्हींके वरदानसे नन्दीके पिता शिलाद आदिको भी भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त हुआ। तभीसे नन्दीश्वर शिवके पुत्ररूपमें जाने गये। यह भगवान् शंकरकी लीला ही थी।

कालभैरव नामक अवतारकी लीला

परमेश्वर शिव उत्तमोत्तम लीलाएँ करनेवाले हैं। उन्हींकी मायासे मोहित ब्रह्मा एवं विष्णुमें एक बार विवाद उत्पन्न हो गया, उसी विवादको शान्त करनेके लिये भगवान् शिवने क्रोध-रूपमें कालभैरव नामसे अवतार धारण किया। भगवान्का यह अवतार विश्वका भरण-पोषण करनेवाला है। भीषण होनेके कारण 'भैरव' कहलाता है। इन्हींसे कालका आविर्भाव हुआ है। ये साक्षात् काल-रूप हैं, इसलिये 'आमर्दक' भी इनका एक नाम है। ये भक्तोंके समस्त पापोंका तत्क्षण ही भक्षण कर देते हैं। इसलिये 'पापभक्षण' इनका यह नाम पड़ा। इन्हें काशीपुरीका आधिपत्य प्राप्त है। भगवान् शिवने मार्गशीर्षमासमें कृष्णपक्षकी अष्टमीको 'कालभैरव' नामसे अवतार लिया था—

कृष्णाष्टम्यां तु मार्गस्य मासस्य परमेश्वरः।
आविर्बभूव सल्लीलो भैरवात्मा सतां प्रियः॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० ९। ६३)

इसलिये इस दिन कालभैरवके संनिकट उपवासपूर्वक रात्रि-जागरण करनेसे भगवान् भैरवकी कृपासे समस्त पाप दूर हो जाते हैं और समस्त विघ्नोंसे मुक्ति मिलती है तथा सद्गति प्राप्त होती है। काशीमें प्रत्येक भौमवारकी अष्टमीको इनके दर्शन करनेका विशेष माहात्म्य है।

यक्षावतार-लीला

भगवान्ने यक्षरूपसे अवतार धारण किया था। भगवान्का यह यक्षावतार अभिमानियोंके अभिमानको दूर करनेवाला तथा साधु पुरुषोंके लिये भक्तिको बढ़ानेवाला है। एक बारकी बात है, समुद्र-मन्थनके बाद जब अमृत निकला तो उसका पानकर देवताओंने असुरोंपर विजय प्राप्त कर ली और इस खुशीमें वे उन्मत्त हो उठे तथा शिवाराधनाको भूल बैठे। उन्हें यह अभिमान हो आया कि हम ही सर्वशक्तिमान् हैं। भक्तको अपनी भक्तिका—साधनाका मिथ्याभिमान हो जाय तो भगवान्को भला कैसे सहन हो! यह तो पतनका ही मार्ग ठहरा, अतः उन्होंने देवताओंके मिथ्या गर्वको दूर करनेके लिये 'यक्ष' नामक अवतार धारण किया और वे लीला करनेके लिये इसी यक्षरूपसे देवताओंके समीप जा पहुँचे। वहाँ भगवान्ने पूछा कि आप सब लोग एकत्र होकर यहाँ क्या कर रहे हैं, तो सभी देवता समुद्र-मन्थनके संदर्भमें अपना-अपना पराक्रम बढ़-चढ़कर सुनाने लगे और कहने लगे कि हमारी ही शक्तिसे असुर पराजित होकर भाग गये।

देवताओंके उन अभिमान-भरे वचनोंको सुनकर यक्षरूपी महादेवने कहा—'देवताओ! आपको गर्व करना ठीक नहीं; कर्ता-हर्ता तो कोई दूसरा ही देव है, आप लोग उन महेश्वरको भूलकर व्यर्थ ही अपने बलका अभिमान कर रहे हैं। यदि आप अपनेको महान् बली समझते हों तो यह एक 'तृण' है, इसे आप तोड़कर दिखायें, ऐसा कहकर यक्षावतारी शिवने लीला करते हुए अपने तेजसे सम्पन्न एक तृण (तिनका) उनके पास फेंका और उसे तोड़नेके लिये कहा।

इन्द्रादि सभी देवताओंने प्रथम तो पृथक्-पृथक् और फिर मिलकर अनेक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया, अपनी पूरी शक्ति लगा दी, पर उस रुद्रतेज-सम्पन्न तृणको तोड़नेमें वे समर्थ न हो सके। भला जब स्वयं शिव ही लीला कर रहें थे तो उस लीलाको उनकी कृपाके बिना कौन समझ सके? देवता हतप्रभ हो गये।

उसी समय आकाशवाणी हुई, जिसे सुनकर देवताओंको बड़ा विस्मय हुआ। आकाशवाणीमें कहा गया—'अरे देवो! भगवान् शंकर ही परम शक्तिमान् हैं, वे ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। उनके बलसे ही सभी बलवान् हैं, उनकी लीला अपरम्पार है, उनकी लीलासे ही आप लोग मोहित हैं, आप सभी उन्हींकी शरण ग्रहण करें।' यह सुनकर देवता लो यक्षावतारी शिवको पहचान सके और अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। तब भगवान् शिवने अपने यक्षरूपका परित्याग करके शिव-रूप धारण किया, जिसका दर्शनकर देवताओंको बड़ा आनन्द हुआ।

दुर्वासा-अवतार-लीला

महातपस्वी तथा धर्मात्मा महर्षि दुर्वासा भगवान् शंकरके ही अवतार-रूप हैं। श्रेष्ठ धर्मका प्रवर्तन करने, भक्तोंकी धर्मपरीक्षा करने तथा भक्तिकी अभिवृद्धि करनेके लिये साक्षात् भगवान् शंकरने ही दुर्वासा मुनिके रूपमें अवतार धारणकर अनेक प्रकारकी लीलाएँ की हैं। इस अवतारकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

ब्रह्मज्ञानी अत्रि ब्रह्माजीके पुत्र थे। वे ब्रह्माजीके मानसपुत्र कहलाते हैं। इनकी अनसूया नामकी सती-साध्वी धर्मपत्नी थीं। अनसूयाका पातिव्रत-धर्म विश्व-विश्रुत ही है। पुत्रकी आकांक्षासे महर्षि अत्रि तथा देवी अनसूयाने ऋक्षमान नामक पर्वतपर जाकर निर्विन्ध्या नदीके पा तटपर सौ वर्षतक दुष्कर तप किया। उनके तपका ऐ प्रभाव हुआ कि एक उज्ज्वल अग्निमयी ज्वाला प्रकट हुई जिसने तीनों लोकोंको व्याप्त कर लिया। देवता, ऋषि, मु सभी चिन्तित हो उठे। तब ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर— तीनों देव उस स्थानपर गये, जहाँ महामहर्षि अत्रि तथा दे अनसूया तप कर रहे थे। तदनन्तर प्रसन्न होकर तीनों दे उन्हें अपने-अपने अंशसे एक-एक पुत्र (इस प्रकार ती पुत्र) प्राप्त करनेका वर प्रदान किया।

वरदानके प्रभावसे ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा, वि अंशसे दत्तात्रेय तथा भगवान् शंकरके अंशसे मुनि दुर्वासाका आविर्भाव हुआ। ये तीनों अत्रि और अनसू पुत्र कहलाये। दुर्वासाके रूपमें अवतार लेकर भ शंकरने अनेक लीलाएँ की हैं, जो अति प्रसिद्ध हैं। भ शंकरके रुद्ररूपसे महर्षि दुर्वासा प्रकट हुए थे, इस उनका रूप अति रौद्र था; इसी कारण वे अतिक्रोधी भ किंतु वस्तुतः महर्षि दुर्वासा दयालुताकी मूर्ति हैं, अ करुणासम्पन्न हैं। भक्तोंका दुःख दूर करना तथा रू धारणकर दुष्टोंका दमन करना ही उनका स्वभाव र शिवपुराणमें कथा आयी है कि एक बार नदीमें स्नान समय महर्षि दुर्वासाका वस्त्र नदीके प्रवाहमें प्रवा

गया। कुछ दूरीपर देवी द्रौपदी भी स्नान कर रही थीं, उस समय द्रौपदीने अपने अंचलका एक टुकड़ा फाड़कर उन्हें प्रदान किया, इससे प्रसन्न होकर शंकरावतार महर्षि दुर्वासाने उन्हें वर दिया कि यह वस्त्रखण्ड वृद्धिको प्राप्तकर तुम्हारी लज्जाका निवारण करेगा और तुम सदा पाण्डवोंको प्रसन्न रखोगी। इसी वरका प्रभाव था कि जब कौरवसभामें दुःशासनके द्वारा द्रौपदीकी साड़ी खींची जाने लगी तो वह बढ़ती ही गयी। वरके प्रभावसे द्रौपदीकी लाज बच गयी। इसी प्रकारसे इनके द्वारा अनेक भक्तोंकी रक्षा हुई।

[शतरुद्र० अ० १९]

भगवान् शंकरकी हनुमदवतार-लीला-कथा

रामसेवक हनुमान्‌जी भगवान् शंकरके ही अवतार हैं। हनुमद्रूपसे शिवजीने बड़ी ही उत्तम लीलाएँ की हैं। एक समयकी बात है, जब अत्यन्त अद्भुत लीला करनेवाले गुणशाली भगवान् शम्भुको विष्णुके मोहिनीरूपका दर्शन प्राप्त हुआ; उस समय राम-कार्यकी सिद्धिके लिये भगवान् शंकरने अपना तेजःपात किया। उस च्युततेजको सप्तर्षियोंने भगवान्‌की प्रेरणासे कानके माध्यमसे गौतम-कन्या देवी अञ्जनाके उदरमें प्रविष्ट करा दिया। कालान्तरमें अञ्जनाके गर्भसे साक्षात् शिव अवतरित हुए, जो हनुमान् तथा कपीश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए। वे महान् बल और पराक्रमकी मूर्ति हैं। उन्होंने अनेक प्रकारकी लीलाएँ की हैं। जब कपीश्वर हनुमान् शिशुरूपमें थे, उसी समय उन्होंने उदय होते हुए रक्तिम सूर्यबिम्बको कोई छोटा-सा फल समझकर निगल लिया, जब देवताओंने उनकी प्रार्थना की, तब उन्होंने सूर्यको उगल दिया। देवर्षियोंने हनुमान्‌जीको शिवका अवतार जानकर अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति-प्रार्थना की। माताकी आज्ञासे हनुमान्‌जीने नित्य सूर्यके पास जाकर सम्पूर्ण विद्याओंका ज्ञान प्राप्त किया।

गुरुदक्षिणा-स्वरूप हनुमान्‌जीने गुरु सूर्यभगवान्‌को यह वचन दिया कि वह उनके अंशसे उत्पन्न सुग्रीवकी सदा रक्षा करेगा। हनुमान्‌जी रामके परम भक्त एवं सेवक हैं और सर्वदा राम-कार्यमें तत्पर रहते हैं। वे सभी प्रकारके अमङ्गलोंको दूरकर कल्याणराशि प्रदान करनेवाले हैं तथा भगवान्‌की तरह साधु-संत, देवता-भक्त एवं धर्मकी रक्षा करनेवाले हैं। उनके हृदयमें भगवान् सीता-राम सदा ही निवास करते हैं। रुद्रावतार हनुमान्‌जीने श्रीरामकी लीलामें पूर्ण सहयोग किया और उनके सभी कार्य पूर्ण किये तथा भूतलपर सीताराम-भक्तिकी स्थापना की।

शंकरजीने वानररूप क्यों धारण किया? इसके सम्बन्धमें यह लीला-कथा भी प्रसिद्ध है कि भगवान् श्रीराम बाल्यकालसे ही सदाशिवकी आराधना करते हैं और भगवान् शिव भी श्रीरामको अपना परम उपास्य तथा इष्ट देवता मानते हैं—

सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥

किंतु साक्षात् नारायणने जब नर-रूप धारणकर श्रीरामके नामसे अवतार ग्रहण किया तो शंकरजी शिवरूपमें नररूपकी कैसे आराधना कर सकते थे, अतः उन्होंने नरावतार भगवान् श्रीरामकी उपासनाकी तीव्र लालसाको सफल बनानेके लिये वानर-रूप धारण किया और वे हनुमान् कहलाये। तुलसीदासजी महाराजने दोहावली (१४३)-में इसीका वर्णन किया है—

जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।
पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान॥

शिवजीके पिप्पलादावतारकी कथा

जहाँ महान् त्याग, तपस्या, दान, परोपकार एवं लोक-कल्याणके लिये आत्मदानकी बात आयेगी, वहाँ महर्षि दधीचिका नाम बड़े ही आदरसे लिया जायगा। महर्षि दधीचि भृगुवंशमें उत्पन्न हैं। वेदोंमें दध्यङ्ङाथर्वण भी इनका नाम आया है। भगवान् शिवमें इनकी अनन्य निष्ठा रही है। इसीलिये ये महाशैव भी कहलाते हैं। शिवजीके आशीर्वादसे ही इनकी अस्थियाँ वज्रके समान कठोर हुई थीं। इनकी पत्नीका नाम सुवर्चा था, ये सदाचार-सम्पन्न, महान् साध्वी, पतिव्रता तथा भगवान् शिवमें विशेष भक्तिसम्पन्न थीं। इन दोनोंकी शिवभक्तिसे ही प्रसन्न होकर भगवान् शिवने महासाध्वी सुवर्चाके गर्भसे 'पिप्पलाद' नामसे अवतार धारणकर जगत्‌का कल्याण किया और अनेक लीलाएँ कीं—

तस्मात् तस्यां महादेवो नानालीलाविशारदः।
प्रादुर्बभूव तेजस्वी पिप्पलादेति नामतः॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २४। ५)

भगवान् शिवके पिप्पलादावतार धारण करनेकी बड़ी ही रोचक कथा पुराणोंमें मिलती है, जिसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

देवकार्यकी सिद्धि तथा वृत्रासुर आदि दैत्योंसे जगत्‌की रक्षाके लिये महर्षि दधीचिद्वारा अपनी अस्थियोंके दान तथा शिवकृपासे उनके लोककी प्राप्तिकी बात सर्वविश्रुत ही है। हुआ यों कि जब इन्द्र, बृहस्पति आदि देवता दधीचिसे उनकी अस्थियोंकी याचना करनेके लिये उनके आश्रमपर पहुँचे तो वहाँ देवोंको महर्षि दधीचि और सुवर्चाके दर्शन हुए। देवताओंने अत्यन्त विनम्रतासे उन्हें प्रणाम किया। महर्षि दधीचि सर्वज्ञ थे। वे अपने पास आये हुए देवताओंका अभिप्राय समझ गये। तब उन्होंने अपनी धर्मपत्नी देवी सुवर्चाको किसी कार्यके बहाने दूसरे आश्रममें भेज दिया। देवी सुवर्चा उस समय गर्भवती थीं।

देवताओंने देखा कि देवी सुवर्चा चली गयी हैं तो उन्होंने प्रार्थना करते हुए महर्षिसे कहा—'महामुने! आप सब कुछ जानते ही हैं कि हम क्यों आये हैं, तथापि प्रभो! आप महान् शिवभक्त हैं, दाता हैं तथा शरणागतरक्षक हैं, वृत्र आदि दैत्योंने महान् उपद्रव मचा रखा है, सारी सृष्टि पीडित है, हम लोग भी अपने स्थानोंसे च्युत हो गये हैं। इस समय आप ही रक्षा करनेमें समर्थ हैं, आपकी अस्थियोंमें शिव-तेज तथा हमारे अस्त्र-शस्त्रोंकी दिव्य शक्ति समाहित है, अतः आप अपनी अस्थियोंको हमें दान कर दें, इनसे वज्रका निर्माण करके वृत्रासुर आदि दैत्योंका नाश करनेमें हम सक्षम हो पायेंगे। अन्य किसी अस्त्र-शस्त्रमें ऐसी शक्ति नहीं है कि वह दैत्योंका नाश कर सके; क्योंकि वरदानके प्रभावसे वृत्रासुर इस समय अजेय हो गया है।' ऐसा कहकर देवता कातर-दृष्टिसे मुनिकी ओर देखने लगे।

महर्षि दधीचि देवताओंके आगमनको समझ ही रहे थे। दानका मौका आये, फिर महात्मा दधीचि कैसे चूक सकते थे। आज तो सारे ब्रह्माण्डकी रक्षा करनी है, फिर इसके लिये एक शरीर तो क्या कई जन्मोंतक शरीर त्याग करना पड़ता तब भी महर्षिके लिये कम ही बात थी। संत तो थे ही, परहितके लिये उन्होंने प्राणोंके उत्सर्गको कम ही समझा। देवताओंकी याचनाको वे सहर्ष स्वीकार कर लिये।

दधीचि मुनिने अपने आराध्य भगवान् शंकरका ध्यान किया और ध्यान-समाधिसे अपने प्राणोंको खींचते हुए शिवतेजमें समाहित कर लिया। महर्षिका प्राणहीन शरीर पार्थिवकी तरह स्थित हो गया। आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। उसी समय इन्द्रने सुरभि गौको बुलाया और महर्षिके शरीरको चटवाया। तब उनकी अस्थियोंसे विश्वक वज्रादि अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रोंको बनाया। देवराज इन्द्र वज्रके प्रयोगसे वृत्रासुर मारा गया और देवता विजयी हु संसारमें सुख-शान्तिका साम्राज्य छा गया।

देवताओंके आश्रम-प्रदेशसे जानेपर जब महर्षि सुवर्चा आश्रममें वापस आयीं तो देवताओंकी नीति उ समझमें आ गयी। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि उ परोक्षमें देवताओंने उनके प्राणाराध्यसे अस्थियोंकी याच की और महामतिने अपनी अस्थियोंका दानकर अ प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। वे कुपित हो उठीं और उन्हों देवताओंको पुत्रहीन होनेका शाप दे डाला तथा उसी स अत्यन्त क्रोधाविष्ट हो उन्होंने पतिलोकमें जानेका नि किया। फिर उन्होंने लकड़ियाँ एकत्रकर एक चि निर्माण किया और पतिका ध्यान करते हुए वे ज्यों चितापर आरूढ होनेको उद्यत हुईं; उसी समय लीला भगवान् शंकरकी प्रेरणासे आकाशवाणी हुई—

'हे देवि! तुम इस प्रकारका साहस न करो, क्यों तुम्हारे गर्भमें महर्षि दधीचका ब्रह्मतेज है, जो भग शंकरका अवतार-रूप है। उसकी रक्षा आवश्यक सगर्भाके लिये देह-त्याग करना शास्त्रविरुद्ध है'—

सगर्भा न दहेद् गात्रमिति ब्रह्मनिदेशनम्॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २४।

आकाशवाणी सुनकर सुवर्चाको अत्यन्त विस्मय हु और वे पास ही स्थित एक पीपलके वृक्षके नीचे बैठ ग वहीं उन्होंने एक दिव्य बालकको जन्म दिया, जो स शिवका अवतार ही था। उस समय उसके दिव्य तेजसे दिशाएँ आलोकित हो उठीं। देवी सुवर्चाने उसे रुद्रावतार समझकर प्रणाम किया और रुद्रस्तवसे स्तुति की और कहा—'हे परमेशान! तुम इस (अश्वत्थ)-वृक्षके निकट चिरकालतक स्थित रहो। मह तुम समस्त प्राणियोंके लिये सुखदाता और अनेक प्र लीला करनेमें समर्थ होओ। अब इस समय पति जानेकी मुझे आज्ञा प्रदान करो।' ऐसा कहकर अपने वहीं पीपलके समीप छोड़कर पतिका ध्यान कर सुवर्चा सती हो गयीं और उन्होंने पतिके साथ शि प्राप्त किया।

इसी समय सभी देवता तथा ऋषि-महर्षि वह

और दधीचि एवं सुवर्चाके उस पुत्रको साक्षात् रुद्रावतार जानकर अनेक स्तुतियोंसे उनकी प्रार्थना करने लगे तथा इसे भगवान् शिवकी ही कोई लीला समझकर आनन्दित हो गये। वहाँपर देवताओंने महान् उत्सव किया। आकाशसे पुष्पवृष्टि भी होने लगी। विष्णु आदि देवताओंने उस दिव्य बालकके सभी संस्कार कराये। ब्रह्माने प्रसन्न होकर उस बालकका 'पिप्पलाद' यह नाम रखा—

पिप्पलादेति तन्नाम चक्रे ब्रह्मा प्रसन्नधीः।

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २४। ६१)

चूँकि शिवावतार वह बालक पीपलके वृक्षके नीचे आविर्भूत हुआ था और माताकी आज्ञासे पीपल-वृक्षके समीप रहा तथा पीपलके मुलायम पत्तोंका भक्षण भी किया, इसलिये उसका पिप्पलाद यह नाम सार्थक ही हुआ। कुछ समय बाद देवता तथा ऋषि-महर्षि सब अपने स्थानोंको चले गये। पिप्पलाद उसी पीपल-वृक्षके मूलमें स्थित रहकर तपस्यामें स्थित हो गये। ऐसे ही तप करते हुए उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया।

एक दिन पिप्पलादमुनि पुष्पभद्रा नामक नदीमें स्नान करनेके लिये गये। वहाँ उन्हें राजा अनरण्यकी कन्या राजकुमारी पद्मा दिखलायी दी। वह पार्वतीके अंशसे प्रादुर्भूत हुई थी तथा दिव्य रूप एवं गुणोंसे सम्पन्न थी। उसे प्राप्त करनेकी आकांक्षासे महात्मा पिप्पलाद उसके पिता अनरण्यके पास गये और विवाहके लिये कन्याकी याचना की। प्रथम तो राजा अनरण्य महर्षिकी वृद्धावस्था और जर्जर शरीरको देखकर चिन्तित हुए, किंतु फिर उन्होंने उनके अलौकिक तेज और प्रभावको समझते हुए अपनी कन्या उन्हें सौंप दी।

वृद्ध होते हुए भी अपने पति महात्मा पिप्पलादकी पद्मा अनन्य मनसे सेवा करने लगी। वह महान् पातिव्रत्य-गुणसे सम्पन्न थी।

एक बार पद्मा नदीमें स्नान करने गयी हुई थी, उसी समय उसके पातिव्रत-धर्मकी परीक्षा करनेके लिये साक्षात् धर्म देवता दिव्य रूप एवं रमणीय दिव्याभरणोंको धारणकर उसके पास आये और वृद्ध दधीचिकी जरावस्थाका ध्यान दिलाते हुए अपनेको वरण करनेके लिये बार-बार आग्रह करने लगे; परंतु पद्मा तनिक भी डिगी नहीं। महात्मा पिप्पलाद उसके प्राणाधार थे। मन-वाणी तथा कर्मसे उसकी पतिमें अनन्य भक्ति थी। उसने धर्मदेवकी बड़ी भर्त्सना की और उसे क्षीण हो जानेका शाप दे दिया। धर्मदेव भयभीत हो अपने वास्तविक रूपमें प्रकट हो हाथ जोड़कर खड़े हो गये और बोले—'देवि! मैं साक्षात् धर्म हूँ। तुम्हारी पतिभक्ति देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ; किंतु तुम्हारे शापसे मैं भयभीत हूँ।' देवी पद्मा बोली—'धर्मदेव! मैंने अज्ञानमें ही यह सब किया है, किंतु शाप तो मिथ्या हो नहीं सकता, इसलिये तीनों युगोंमें चतुष्पाद धर्मके एक-एक पाद क्षीण रहेंगे। सत्ययुगमें तुम चारों पादोंसे स्थित रहोगे, त्रेतामें तीन पादोंसे रहोगे, द्वापरमें दो पादोंसे तथा कलियुगमें केवल एक पादसे स्थित रहोगे। इस तरह प्रत्येक चतुर्युगीमें ऐसी ही व्यवस्था रहेगी। इसके साथ ही शापका परिहार बताकर पद्मा पुनः पतिसेवामें जानेको उद्यत हुई। तब प्रसन्न हुए धर्मदेवने वृद्ध महात्मा पिप्पलादको रूपवान्-गुणवान्, स्थिर यौवनसे युक्त पूर्ण युवा हो जानेका वर प्रदान किया और पद्माको भी चिरयौवना होकर अखण्ड सुख-सौभाग्य होनेका वर दिया।

वरदानके प्रभावसे पिप्पलाद तथा देवी पद्माने बहुत समयतक धर्माचरणपूर्वक गृहस्थ-जीवनका आचरण किया। इस प्रकार महाप्रभु शंकरके लीलावतार पिप्पलादने अनेक प्रकारकी लीलाएँ कीं—

एवं लीलावतारो हि शंकरस्य महाप्रभोः।
पिप्पलादो मुनिवरो नानालीलाकरः प्रभुः॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २५। १४)

जब महात्मा पिप्पलादका अवतार हुआ था, उस समय उन्होंने देवताओंसे प्रश्न किया था कि 'हे देवगणो! क्या कारण है कि मेरे जन्मसे पूर्व ही पिता (दधीचि) मुझे छोड़कर चले गये और जन्म होते ही माता भी सती हो गयीं? तब देवताओंने बताया कि शनिग्रहकी दृष्टिके कारण ही ऐसा कुयोग बना। इसपर क्रुद्ध हो पिप्पलादने शनिको नक्षत्र-मण्डलसे गिरनेका शाप दिया। तत्क्षण ही शनि आकाशसे गिर पड़े। पुनः देवताओंकी प्रार्थनापर पिप्पलादने उन्हें पूर्ववत् स्थिर हो जानेकी आज्ञा दे दी। इसीलिये महर्षि

पिप्पलादके नाम-स्मरण तथा पीपल (जो भगवान् शंकरका ही रूप है)-के पूजनसे शनिकी पीडा दूर हो जाती है। महामुनि गाधि, कौशिक तथा पिप्पलाद—इन तीनोंका नाम-स्मरण करनेसे शनिग्रहकृत पीडा नष्ट हो जाती है। शंकरावतार महामुनि पिप्पलाद तथा देवी पद्माके चरित्रका श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक पाठ अथवा श्रवण शनिग्रहद्वारा किये गये अनिष्ट—पीडा आदिको दूर करनेके लिये श्रेष्ठतम उपाय है—

गाधिश्च कौशिकश्चैव पिप्पलादो महामुनिः।
शनैश्चरकृतां पीडां नाशयन्ति स्मृतास्त्रयः॥
पिप्पलादस्य चरितं पद्माचरितसंयुतम्।
यः पठेच्छृणुयाद् वापि सुभक्त्या भुवि मानवः॥
शनिपीडाविनाशार्थमेतच्चरितमुत्तमम्　　।

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २५। २०—२२)

भगवान् शिवके द्विजेश्वरावतारकी कथा

प्राचीन कालमें भद्रायु नामक एक महाप्रतापी राजा थे, वे शिवके परम भक्त थे। देवी कीर्तिमालिनी भद्रायुकी साध्वी पत्नी थीं। अपने स्वामीके समान ही कीर्तिमालिनीकी भी शिवमें परम श्रद्धा एवं निष्ठा थी। एक बार वसन्तकालमें राजा-रानी दोनों वन-विहारके लिये वनमें गये। भगवान् शिवने उनकी भक्ति तथा धर्मकी परीक्षा करनेके लिये द्विज-दम्पति-रूप धारणकर लीला करनेकी इच्छा प्रकट की और वे स्वयं द्विज-रूपमें हो गये तथा माँ पार्वती ब्राह्मणी बन गयीं। द्विज-दम्पति उस वनमें उसी स्थानपर आये जहाँ राजा भद्रायु और रानी कीर्तिमालिनी सुखपूर्वक बैठे हुए थे। भगवान् शंकरने अपनी लीलासे वहाँ एक मायामय व्याघ्रकी भी रचना कर ली—

अथ तद्धर्मदृढतां परीक्षन् परमेश्वरः।
लीलां चकार तत्रैव शिवया सह शंकरः॥
शिवा शिवश्च भूत्वोभौ तद्वने द्विजदम्पती।
व्याघ्रं मायामयं कृत्वाविर्भूतौ निजलीलया॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २७। ८-९)

अब भगवान् शंकरने लीला दिखानी प्रारम्भ की। भगवान् शंकर तथा पार्वती द्विज-दम्पतिके रूपमें व्याघ्रके भयसे भाग रहे थे और उनके पीछे व्याघ्र भयंकर गर्जना करते हुए आ रहा था। वे दोनों 'अरे कोई है, बचाओ, बचाओ—' इस प्रकार चिल्लाते-चिल्लाते रोते-रोते वहाँ पहुँचे जहाँ राजा भद्रायु स्थित थे। वे दोनों राजासे अपने प्राणोंकी रक्षा की प्रार्थना करने लगे। उनके आर्त स्वरको सुनकर तथा भयंकर व्याघ्रको उनके पीछे आते देखकर जबतक राजा धनुषपर बाण चढ़ाते उतने ही समयमें उस तीक्ष्ण दाँतोंवाले व्याघ्रने ब्राह्मणी (पार्वती)-को दबोच लिया। ब्राह्मणी रोती-चिल्लाती रह गयी। राजाने अनेक अस्त्रोंसे व्याघ्रपर प्रहार किया, किंतु उसे कुछ भी असर नहीं हुआ। होता भी कैसे, उसे तो लीलाधारी भगवान् शंकरने अपनी मायासे लीलाके लिये ही बनाया था। वह व्याघ्र ब्राह्मणीको दूरतक घसीटता चला गया। राजाके सारे अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ साबित हुए।

ब्राह्मण राजाके क्षत्रियत्वको बहुत प्रकारसे धिक्कारने लगा कि उनके रहते उनकी पत्नीको व्याघ्र हर ले गया। 'जो शरणागतकी रक्षा न कर सके उसका जीना व्यर्थ है।' यह सुनकर राजाके मनमें अत्यन्त ग्लानि हुई। उन्हें अपना जीवन व्यर्थ लगने लगा। अतः उन्होंने प्राणोंके उत्सर्गका निश्चय किया और वृद्ध ब्राह्मणके चरणोंमें गिरकर वे क्षमा-याचना करते हुए कहने लगे—'ब्रह्मन्! अब मेरा जीवन बेकार ही है। मेरा बल, पराक्रम सब व्यर्थ गया। मैं दे ब्राह्मणीको छुड़ा नहीं सका, अतः अब मुझे राज्य तथा समस्त वैभव आदिसे कोई प्रयोजन नहीं है, इसलिये आप स्वीकारकर मुझे क्षमा करें।

इसपर लीलारूप वृद्ध ब्राह्मणने कहा—'अरे राजन्! मेरी प्रिया ब्राह्मणी नहीं रही, इसलिये मेरे लिये सुखोपभोग व्यर्थ ही है, यह तो वैसा ही है जैसे अन्धेके लिये दर्पण निष्प्रयोजन ही होता है। यदि आपको देना है तो मेरी स्त्री नहीं रही, इसलिये आप अपनी स्त्री प्रदान करें। अन्यथा मेरे प्राण शरीरमें नहीं रह सकेंगे।'

वृद्ध ब्राह्मणकी बात सुनकर पहले तो राजा भद्रायु ही संकटमें पड़ गये। उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। वे निर्णय करनेमें समर्थ नहीं हुए; किंतु दूसरे ही क्षण निश्चय किया कि ब्राह्मणके प्राणोंकी रक्षा न करनेसे पाप होगा। अतः उन्होंने पत्नीका दान करके अग्निमें कर जानेका निर्णय लिया। ऐसा निश्चय करके

लकड़ी एकत्र की तथा अग्नि प्रज्वलितकर ब्राह्मणको बुलाकर अपनी पत्नी उन्हें दे दी और फिर भगवान् शिवका स्मरण-ध्यान करके ज्यों ही राजा भद्रायु अग्निमें प्रविष्ट होनेके लिये उद्यत हुए, त्यों ही लीलाधारी भगवान् शंकर जो द्विजरूपमें थे, वे साक्षात् शिवरूपमें सामने प्रकट हो गये। उनके पाँच मुख थे। मस्तकपर चन्द्रकला सुशोभित थी, जटाएँ लटकी हुई थीं। हाथोंमें त्रिशूल, खट्वाङ्ग, ढाल, कुठार, पिनाक तथा वरद और अभय-मुद्रा धारण किये थे। वे वृषभपर आरूढ थे। उनका मुखमण्डल अद्भुत दिव्य प्रकाशकी आभासे प्रकाशित हो रहा था। उनका वह रूप अत्यन्त मनोरम तथा सुखदायी था।

अपने आराध्य लीलाधारी भगवान् शिवको अपने सामने पाकर राजा भद्रायुके आनन्दकी सीमा न रही। वे बार-बार प्रणाम करते हुए अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। उस समय आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। देवी उमा भी वहाँ प्रकट हो गयीं।

राजाके महान् त्याग और दृढ़भक्तिसे प्रसन्न होकर शिवने भद्रायुको लीलाका रहस्य समझाते हुए कहा—'राजन्! मैं ही तुम्हारे शिव-भावकी परीक्षा लेनेके लिये द्विजरूपमें अवतरित हुआ था और वह वृद्ध ब्राह्मणी भी और कोई नहीं मेरी प्रिया देवी ये पार्वती ही थीं। वह व्याघ्र भी मैंने लीलासे ही रचा था। तुम्हारे धैर्यको देखनेके लिये ही मैंने तुम्हारी पत्नीको माँगा था। तुम्हारी पत्नी कीर्तिमालिनी और तुम्हारी भक्तिसे हम प्रसन्न हैं, कोई वर माँगो!' फिर शिवभक्तिका वरदान प्राप्तकर अन्तमें राजा भद्रायु तथा कीर्तिमालिनीने शिव-सायुज्य प्राप्त किया। भद्रायुने अपने माता-पिता तथा कुल-परम्परा और कीर्तिमालिनीने भी अपने माता-पिता एवं कुल-परम्पराको शिव-भक्त होनेका वरदान प्राप्त किया।

इस प्रकार भगवान् शिवने अपने भक्तके कल्याणके लिये द्विजरूप होकर लीला की और वे द्विजेश्वर कहलाये।

यतिनाथ एवं हंसावतारकी लीला

अर्बुदाचल नामक पर्वतपर एक भील निवास करता था, जिसका नाम था आहुक। उसकी पत्नीका नाम आहुकी था। वे दोनों पति-पत्नी महान् शिवभक्त थे तथा शिवकी आराधना-पूजामें लगे रहते थे। एक दिन वह भील आहारकी खोज करनेके निमित्त वनमें बहुत दूरतक चला गया। संध्याकाल होनेको आया। इसी समय भीलकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शिवने एक यति (संन्यासी)-का रूप धारण किया और वे लीला करनेके लिये भीलके घरपर चले आये। उस समय घरपर केवल भीलनी ही थी। शंकरकी प्रेरणासे उसी समय वह भील भी जंगलसे घर लौट आया। तब अतिथिको घर आया जानकर भील-भीलनीने उनका स्वागत-सत्कार तथा पूजन किया।

उसके मनोभावकी परीक्षा करनेके लिये महान् लीला करनेवाले यतिरूप भगवान् शंकरने दीन वाणीमें भीलसे कहा—'भील! रात होनेवाली है। यह भयंकर जंगल है, यहाँ अनेक प्रकारके हिंसक प्राणी रहते हैं, इस समय रातमें अन्यत्र जाना मेरे लिये सम्भव नहीं है, अतः आज यहीं रहनेके लिये मुझे स्थान दे दो। सबेरा होते ही मैं चला जाऊँगा।'

भीलने कहा—'स्वामीजी! आप ठीक कहते हैं, तथापि मेरे घरमें स्थान तो बहुत थोड़ा है। यह एक कुटिया है, इसीमें हम दोनों पति-पत्नी रहते हैं, फिर आपका रहना कैसे सम्भव हो सकता है? यहाँ कोई दूसरा कमरा भी नहीं है।'

भीलकी बात सुनकर लीला-वपुधारी यति (शिव) जानेको उद्यत हुए; किंतु उसी समय भीलनीने भीलसे कहा—'प्राणनाथ! घरमें आये अतिथिका इस प्रकार अनादर करना ठीक नहीं। अतिथिके घरसे निराश चले जानेसे गृहस्थधर्मकी महान् हानि होती है, अतः स्वामीजीके साथ आप घरमें भीतर रहिये, मैं अस्त्र-शस्त्रोंको लेकर बाहर द्वारकी रक्षा करूँगी।'

पत्नीकी बात सुनकर भीलने सोचा—स्त्रीको रात्रिमें घरसे बाहर पहरेमें खड़ा करके मैं घरके अंदर कैसे रह सकता हूँ, यह तो अनीति होगी और संन्यासीका अन्यत्र चला जाना भी मेरे लिये अधर्मकारक ही होगा। ये दोनों ही कार्य गृहस्थके लिये सर्वथा अनुचित हैं। अतः मुझे ही घरके बाहर रहना चाहिये। 'जो होनहार होगी वह होकर ही रहेगी।' ऐसा निर्णयकर भीलने संन्यासी तथा अपनी स्त्रीको घरमें रहनेके लिये कहा और स्वयं शस्त्रोंको लेकर द्वारपर हिंसक पशुओंसे रक्षा करनेके लिये खड़ा हो गया।

रातमें जंगली क्रूर एवं हिंसक पशु उसे पीडा देने लगे। उसने यथाशक्ति उनपर शस्त्रोंका प्रहार किया, किंतु जब स्वयं भगवान् शंकर ही लीला कर रहे थे तो भीलकी क्या चलती! भील हिंसक जानवरोंका आहार बन गया। प्रातः-काल हुआ। यतिने देखा कि भीलको हिंसक पशुओंने खा डाला है तो उन्होंने अनेक प्रकारसे दुःख प्रकट करनेकी लीला की। भीलनी इस लीलाको समझ न सकी, वह दुःखसे व्याकुल थी अवश्य, पर सदाचारसम्पन्न थी। अतिथिसेवा-धर्मको समझती थी, शिवभक्त थी, अतः वह बोली—'स्वामीजी! आप दुःखी न हों, मेरे स्वामी तो अतिथि-धर्मका पालन करते हुए सद्गतिको प्राप्त हुए हैं, अब मैं भी चिताकी आगमें जलकर इनका अनुसरण करूँगी। आप प्रसन्नतापूर्वक मेरे लिये एक चिता तैयार कर दें, क्योंकि स्वामीका अनुसरण करना स्त्रियोंके लिये सनातन धर्म है।'

उसकी धर्ममय बातें सुनकर संन्यासीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने हाथोंसे चिता तैयार की और भीलनीने अपने धर्मके अनुसार उसमें प्रवेश किया। उसी समय भगवान् शंकर अपने साक्षात् स्वरूपसे उसके सामने प्रकट हो गये। अब उनका वह संन्यासीका लीलारूप विलुप्त हो गया। वे उसकी प्रशंसा करते हुए बोले—

'देवि! तुम धन्य हो, धन्य हो, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम यथेच्छ वर माँगो!'

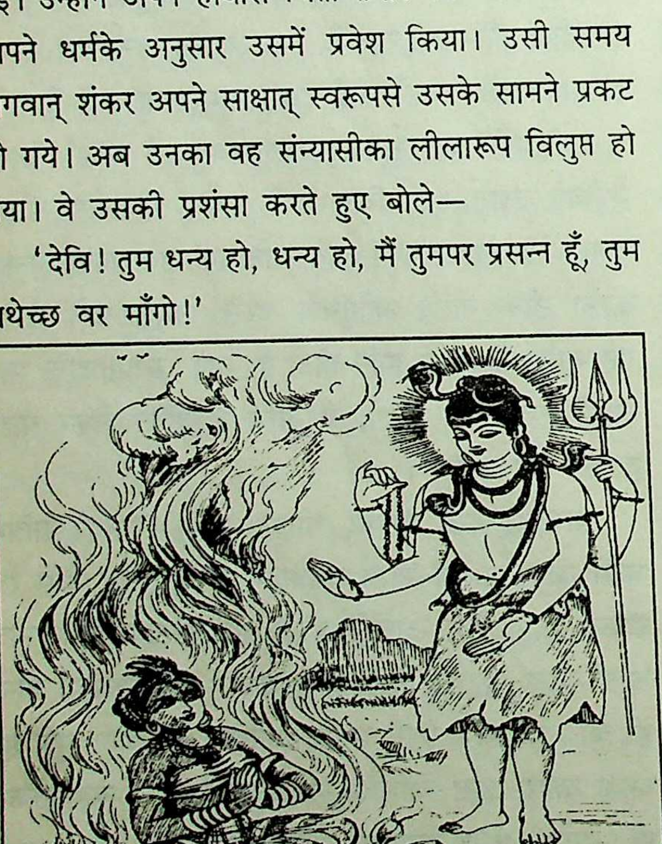

साक्षात् भगवान् शंकरका दर्शन पाकर भीलनी आनन्दित हो गयी। हाथ जोड़े-जोड़े वह मुग्ध हो गयी। कुछ भी न माँग सकी। इसपर भक्तवत्सल लीला भगवान् शंकरने कहा—'देवि! मैंने ही संन्यासीका धारण करके तुम दोनोंकी परीक्षा ली थी। तुम दोनों परी सफल हुए हो, अतः अगले जन्ममें मैं ही 'हंस'- अवतार धारणकर लीला करूँगा और तुम दोनोंका सं कराऊँगा। तुम्हारा पति भील आहुक निषधदेशकी राजधा राजा वीरसेनका श्रेष्ठ पुत्र होगा। उस समय 'नल' नामसे इ ख्याति होगी और तुम विदर्भ-नगरमें भीमराजकी पुत्री दम होओगी। तुम दोनों मिलकर राज-भोग करके अन्तमें प्राप्त करोगे।' ऐसा कहकर भगवान् शिव उस समय लिङ्ग प्रतिष्ठित हो गये और 'अचलेश्वर' नामसे विख्यात हु

दूसरे जन्ममें वरदानके प्रभावसे आहुक तथा आहु राजा नल-दमयन्ती हुए। वहाँ हंसरूपसे प्रकट हो भगवान् शिवने उन दोनोंका विवाह कराया। वे सबके परम आनन्ददायक हुए।

भगवान् शिवकी अर्धनारीश्वर-लीला

सृष्टिके आदिमें जब सृष्टिकर्ता ब्रह्माद्वारा रची हुई प्रजाएँ विस्तारको नहीं प्राप्त हुईं तब ब्रह्मा उस दुः दुखी हो चिन्ताकुल हो गये। उसी समय आकाश हुई—'ब्रह्मन्! अब मैथुनी सृष्टिकी रचना करो, सृष्टिका विस्तार होता जायगा।' इस आकाशवाणीको सु ब्रह्मा विचारमें पड़ गये, क्योंकि मैथुनी सृष्टि बिना पुरुषके सम्भव है नहीं, और तबतक स्त्रीकी सृष्टि हु नहीं थी, केवल पुरुष-तत्त्व ही था। बिना स्त्री-पु मैथुनी सृष्टि कैसे हो सकती है? ब्रह्माजी आद्याशक्ति तथा भगवान् शंकरकी शरणमें गये और उन्हें आकाश बात बतलायी। यह सुनकर भगवान् शिव हँस प प्रसन्न होकर क्षणभरमें ही लीलाधारी भगवान् शि शरीरसे नारी और आधे शरीरसे पुरुषरूप होकर ब्र समक्ष प्रकट हो गये। उनका वाम-भाग स्त्रीका दक्षिण-भाग पुरुषका। वह अद्भुत लीलारूप देखकर ब्र बड़ा ही आनन्द हुआ और वे हाथ जोड़कर महा महादेवीकी स्तुति करने लगे।

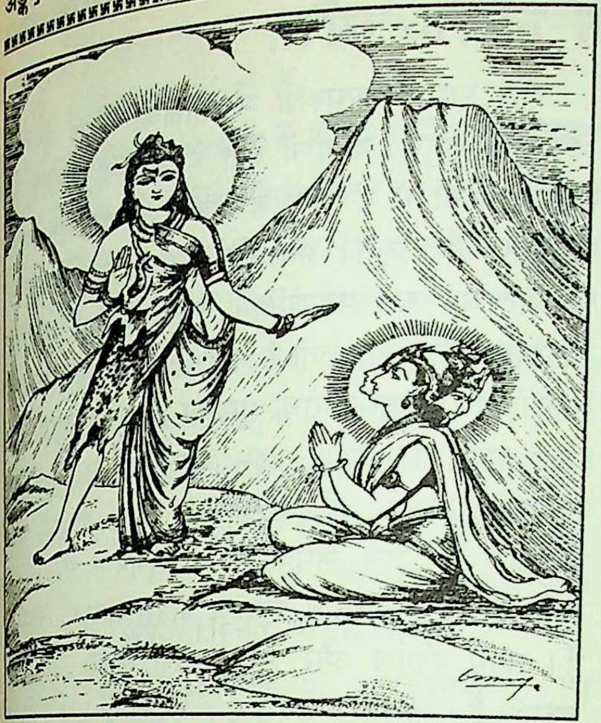

स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने अपने अर्धनारीश्वररूपसे अपने वाम-भागमें प्रतिष्ठित शिवारूप (नारीरूप)-को अपनेसे पृथक् कर लिया, वे ही देवी परमात्मा शिवकी पराशक्ति हैं, भवानी हैं, रुद्राणी हैं, मृडानी हैं, जगदम्बा हैं, जगज्जननी हैं। उन सर्वलोक-महेश्वरी परमेश्वरीका पृथक् दर्शनकर ब्रह्माजीको महान् विस्मय हुआ और वे उनकी प्रार्थना करने लगे।

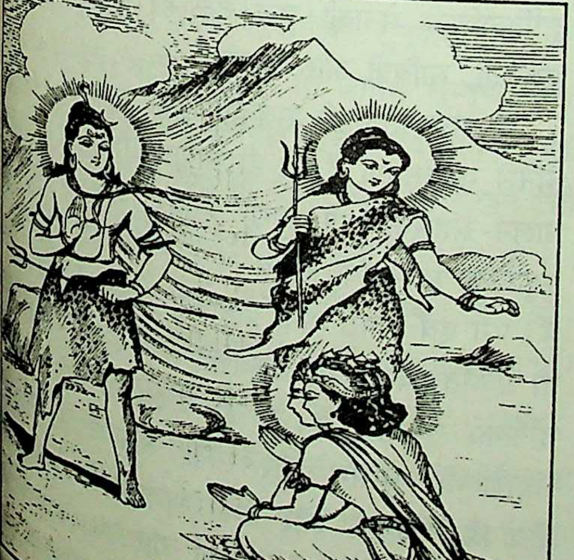

ब्रह्माजीने कहा—'देवि! महादेवजीने सबसे पहले मुझे उत्पन्न किया और प्रजाकी सृष्टिके कार्यमें लगाया। इनकी आज्ञासे मैं समस्त जगत्की सृष्टि करता हूँ, किंतु देवि! मेरे मानसिक संकल्पसे रचे गये देवता, प्रजापति आदि समस्त प्राणी बारम्बार सृष्टि करनेपर भी बढ़ नहीं रहे हैं, अतः अब मैं मैथुनी सृष्टिसे अपनी सारी प्रजाको बढ़ाना चाहता हूँ। माँ! आपके पहले नारी-कुलका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, इसलिये आप ही सृष्टिकी प्रथम नारी-रूप हैं। प्रथम मातृरूप हैं, प्रथम शक्तिरूप हैं; अतः हे देवि! आप अपने एक दूसरे रूपमें इस चराचर जगत्की वृद्धिके लिये मेरे पुत्र दक्षप्रजापतिकी पुत्रीके रूपमें प्रतिष्ठित हो जायँ। ऐसा वर देनेकी कृपा करें।'

तब प्रसन्न होकर देवी रुद्राणीने अपने भौंहोंके मध्य-भागसे अपने ही समान प्रभावाली एक दिव्य नारी-शक्तिको प्रादुर्भूत किया, जो प्रजापति दक्षकी 'सती' नामकी पुत्रीके रूपमें प्रतिष्ठित हुई। तब ब्रह्माजीने भी अपने ही शरीरसे मनु-शतरूपाको प्रकट किया और फिर सृष्टिका विस्तार होता गया।

इस प्रकार ब्रह्माजीका मनोरथ पूर्ण करके आदिशक्ति भवानी भगवान् शिवमें प्रविष्ट हो गयीं और भगवान् शिवने उस शक्तिरूपको अपनेमें अन्तर्हित कर लिया। उनका वह अर्धनारीश्वर-रूप सदाके लिये भक्तोंके हेतु आराध्य बन गया। लीलाविहारीका लीला-वैचित्र्य सचमुच विलक्षण ही है। द्रोणाचार्यकी शिवभक्तिसे प्रसन्न होकर वे अश्वत्थामाके रूपमें उनके पुत्र बने। ऐसे ही व्याघ्रपादके पुत्र उपमन्युकी तपस्याको सिद्ध करनेके लिये वे सुरेश्वरावतारके रूपमें अवतरित हुए। लिङ्ग-रूपमें तो वे सर्वत्र व्याप्त ही हैं। द्वादश-ज्योतिर्लिङ्गोंके रूपमें वे ही प्रतिष्ठित हैं। एकादश रुद्र भगवान् शिवके ही विविध लीलारूप हैं। विभिन्न युगोंमें प्रादुर्भूत होकर योगका उपदेश देनेवाले योगाचार्योंके रूपमें भगवान् शिव ही नाना प्रकारकी लीलाएँ करके शिव-मार्गको प्रशस्त करते हैं।

◆

पराम्बा भगवतीके लीला-चरित

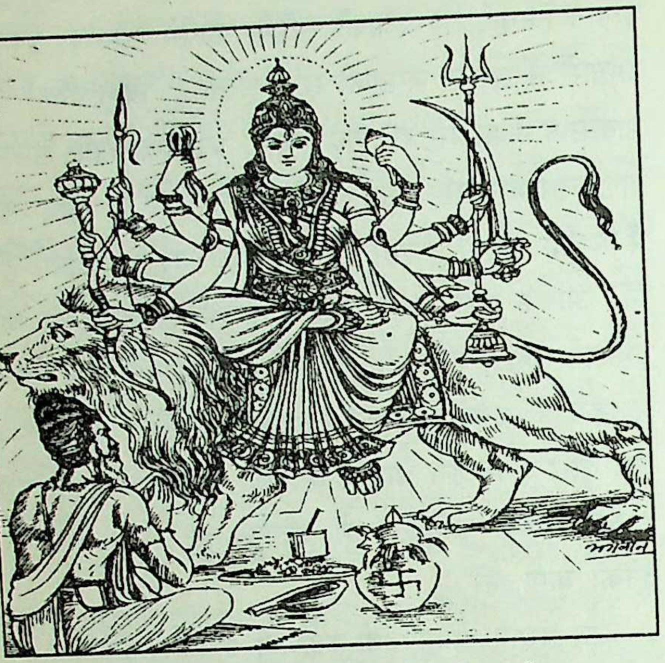

पराशक्ति भगवती श्रीदुर्गा

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डात्मक प्रपञ्चकी अधिष्ठानभूता सच्चिदानन्दरूपा भगवती श्रीदुर्गा ही सम्पूर्ण विश्वको सत्ता, स्फूर्ति तथा सरसता प्रदान करती हैं। विश्व-प्रपञ्च उन्हींसे उत्पन्न होता है और अन्तमें उन्हींमें लीन हो जाता है। जैसे दर्पणमें आकाशमण्डल, भूधर, सागरादि-प्रपञ्च प्रतीत होता है, किंतु दर्पणको स्पर्श कर देखा जाय तो वहाँ वास्तवमें कुछ भी उपलब्ध नहीं होता, वैसे ही सच्चिदानन्दरूपा महाचिति भगवतीमें सम्पूर्ण विश्व भासित होता है। जैसे दर्पणके बिना प्रतिबिम्बका भान नहीं होता, दर्पणके उपलम्भमें ही प्रतिबिम्बका उपलम्भ होता है, वैसे ही अखण्ड, नित्य, निर्विकार महाचितिमें ही—उसके अस्तित्वमें ही प्रमाता, प्रमाण, प्रमेयादि विश्व उपलब्ध होता है। अधिष्ठान न होनेपर भास्यके उपलम्भकी आशा नहीं की जा सकती।

यद्यपि शुद्ध ब्रह्म स्त्री, पुमान् या नपुंसकमेंसे कुछ नहीं है; तथापि वह चिति, भगवती, दुर्गा आदि स्त्री-वाचक शब्दोंसे, आत्मा, पुरुष आदि पुम्बोधक शब्दोंसे और ब्रह्म, ज्ञान आदि नपुंसक—शब्दोंसे भी व्यवहृत होता है। वस्तुतः स्त्री, पुमान्, नपुंसक—इन सबसे पृथक् होनेपर भी उस-उस शरीरके सम्बन्धसे या वस्तुके सम्बन्धसे वही अचिन्त्य, अव्यक्त, स्वप्रकाश, सच्चिदानन्दस्वरूपा महाचिति भगवती दुर्गा, आत्मा, पुरुष, ब्रह्म आदि शब्दोंसे व्यवहृत होती है। मायाशक्तिका आश्रयणकर वे ही अनेक रूपोंमें व्यक्त होती हैं।

कोई इस परमात्मरूपा महाशक्तिको निर्गुण कहते हैं और कोई सगुण। ये दोनों बातें भी ठीक हैं; क्योंकि एकके ही तो ये दो नाम हैं। जब मायाशक्ति क्रियाशील रहती है, तब उसका अधिष्ठान महाशक्ति सगुण कहलाती है और जब वह महाशक्तिमें मिली रहती है, तब वह महाशक्ति निर्गुण कहलाती है। इन अनिर्वचनीया परमात्मरूपा महाशक्तिमें परस्पर विरोधी गुणोंका नित्य सामञ्जस्य है। वे जिस समय निर्गुण हैं, उस समय भी उनमें गुणमयी मायाशक्ति छिपी हुई वर्तमान है और जब वे सगुण कहलाती हैं, उस समय भी वे गुणमयी मायाशक्तिकी अधीश्वरी और सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होनेसे वस्तुतः निर्गुण ही हैं। उनमें निर्गुण और सगुण दोनों लक्षण सभी समय वर्तमान हैं। जो जिस भावसे उन्हें देखता है, उसे उनके वैसे ही रूपका भान होता है। वास्तवमें वे कैसी हैं, क्या हैं—इस बातको वे ही जानती हैं। इन्हींकी शक्तिसे ब्रह्मादि देवता बनते हैं, जिनसे विश्वकी उत्पत्ति होती है। इन्हींकी शक्तिसे विष्णु और शिव प्रकट होकर विश्वका पालन और संहार करते हैं। दया, क्षमा, निद्रा, स्मृति, क्षुधा, तृष्णा, तृप्ति, श्रद्धा, भक्ति, धृति, मति, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, कान्ति एवं लज्जा आदि इन्हीं महाशक्तिकी शक्तियाँ हैं। ये ही गोलोकमें श्रीराधा, साकेतमें श्रीसीता, क्षीरोदसागरमें लक्ष्मी, दक्षकन्या सती, दुर्गतिनाशिनी मेनाकी पुत्री दुर्गा हैं। ये ही वाणी, विद्या, सरस्वती, सावित्री और गायत्री हैं।

ये महाशक्ति ही सर्वकारणरूपा प्रकृतिकी आधार होनेसे महाकारण हैं, ये ही मायाधीश्वरी हैं, ये ही सर्व पालन-संहारकारिणी आद्या नारायणी शक्ति हैं तथा ये प्रकृतिके विस्तारके समय भर्ता, भोक्ता और महेश्वर हैं। परा एवं अपरा दोनों प्रकृतियाँ इन्हींकी हैं अथवा ये दो प्रकृतियोंके रूपमें प्रकाशित होती हैं। इनमें द्वैत, दोनोंका समावेश है। ये ही वैष्णवोंकी श्रीनारायण महालक्ष्मी, श्रीराम और सीता, श्रीकृष्ण और राधा, शैवोंकी श्रीशंकर और उमा, गाणपत्योंकी श्रीगणेश ऋद्धि-सिद्धि, सौरोंकी श्रीसूर्य और उषा, ब्रह्मवादि शुद्धब्रह्म और ब्रह्मविद्या तथा शास्त्रोंकी महादेवी हैं। ये ही पञ्चमहाशक्ति, दशमहाविद्या तथा नवदुर्गा हैं। ये ही जगद्धात्री, कात्यायनी एवं ललिताम्बा हैं। ये ही

और शक्ति हैं। ये ही नर और नारी हैं। ये ही माता, धाता, पितामह हैं; सब कुछ ये ही हैं।

यद्यपि श्रीभगवती नित्य ही हैं और उन्हींसे चराचर प्रपञ्च व्याप्त है; तथापि देवताओंके कार्यके लिये वे समय-समयपर अनेक रूपोंमें जब प्रकट होती हैं, तब वे नित्य होनेपर भी 'देवी उत्पन्न हुईं—प्रकट हो गयीं,' इस प्रकारसे कही जाती हैं—

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।

(श्रीदुर्गासप्तशती १। ६४—६६)

दुर्गादेवीका आविर्भाव

भगवती दुर्गा शिवस्वरूपा हैं, गणेशजननी हैं। ये नारायणी, विष्णुमाया और पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणी नामसे प्रसिद्ध हैं। सभी देवता इनकी पूजा करते हैं। ये भगवान् शंकरकी परम प्रेयसी हैं। इनका लीला-चरित्र अति पावन है।

दुर्गादेवीके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है—प्राचीन कालमें दुर्गम नामक एक महाबली असुर उत्पन्न हुआ था। उसने ब्रह्मासे एक अद्भुत वरदान प्राप्त कर लिया था। उसके प्रभावसे उसने चारों वेदोंको विश्वसे लुप्त कर लिया था। बलके घमण्डमें आकर उसने विश्वको अपमानित और पीड़ित कर रखा था। उसके उत्पातोंको सुनकर देवता भी भयभीत हो गये। वेदोंके अदृश्य हो जानेसे सम्पूर्ण धर्म-क्रियाएँ नष्ट हो गयीं और अवर्षण होनेसे घोर अकाल पड़ गया, नदी और नद तो सूख ही गये, समुद्र भी सूखने लगे थे। भोजन और पानीके अभावमें लोग चेतनाहीन हो रहे थे। तीनों लोकोंमें त्राहि-त्राहि मची थी। तब देवताओंने भगवतीकी शरण ली। उन्होंने प्रार्थनापूर्वक कहा—'माँ! जैसे आपने शुम्भ-निशुम्भ, धूम्राक्ष, चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज, मधु-कैटभ तथा महिष आदि असुरोंका वधकर हमारी रक्षा की है, उसी तरह दुर्गमासुरसे भी हमें बचाइये और इसके द्वारा लाये गये अकालसे प्राणियोंकी रक्षा कीजिये।'

देवताओंकी करुणापूर्ण वाणीसे कृपामयी देवी प्रकट हो गयीं और अपने अनन्त नेत्रोंसे युक्त रूपका उन्हें दर्शन कराया। अन्न और जलके लिये छटपटाते जीवोंको देखकर उन्हें बड़ी दया आयी तथा उनके अनन्त नेत्रोंसे अश्रुजलकी सहस्रों धाराएँ प्रवाहित हो उठीं। उन धाराओंसे सब लोग तृप्त हो गये। सरिताओं और समुद्रोंमें अगाध जल भर गया। देवीने गौओंके लिये सुन्दर घास और दूसरे प्राणियोंके लिये यथायोग्य भोजन सामग्री प्रस्तुत कर दिया। उन्होंने शुद्ध महात्मा पुरुषोंको अपने हाथसे दिव्य फल बाँटे। देवता, ब्राह्मण और मनुष्योंसहित सभी प्राणी संतुष्ट हो गये।

तब देवीसे देवताओंने कहा—'माँ! जैसे आपने समस्त विश्वको मरनेसे बचाकर हम लोगोंको तृप्त किया, वैसे ही अब इस दुष्ट दुर्गमासुरसे हमारी रक्षा कीजिये। उसने वेदोंका अपहरण कर लिया है, जिससे सारी धर्मक्रिया ही लुप्त हो गयी है।'

देवीने कहा—'देवगण! मैं आपकी इच्छाएँ पूर्ण करूँगी। अब आप लोग निश्चिन्त होकर यथास्थान लौट जायँ।' देवता उन्हें प्रणामकर यथास्थान लौट गये। देवीकी कृपासे तीनों लोकोंमें आनन्द छा गया।

दुर्गमासुर यह जानकर अत्यन्त विस्मित हुआ, सोचने लगा—मैंने तो तीनों लोकोंको रुला डाला था, सब भूख-प्याससे मर रहे थे, देवता भी भयभीत थे, किंतु यह क्या हो गया, कैसे हो गया? वस्तुस्थितिसे अवगत होते ही दुर्गमासुरने अपनी आसुरी सेना लेकर देवलोकको घेर लिया। करुणामयी माँने देवताओंको बचाने तथा विश्वकी रक्षा करनेके लिये देवलोकके चारों ओर अपने तेजोमण्डलकी चहारदीवारी खड़ी कर दी और स्वयं घेरेसे बाहर आ डटीं।

देवीको देखते ही दैत्योंने उनपर आक्रमण कर दिया। इसी बीच देवीके दिव्य शरीरसे सुन्दर रूपवाली—**काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, वगला, धूम्रा, त्रिपुरसुन्दरी** और **मातङ्गी**—ये दस महाविद्याएँ अस्त्र-शस्त्र लिये निकलीं। साथ ही असंख्य मातृकाएँ भी प्रकट हो गयीं। उन सबने अपने मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण कर रखा था और वे सभी विद्युत्के समान दीप्तिमती दिखायी देती थीं। इन शक्तियोंने देखते-देखते दुर्गमासुरकी सौ अक्षौहिणी सेनाको काट डाला। इसके पश्चात् देवीने अपने तीखे त्रिशूलसे दुर्गमासुरका वध कर डाला और वेदोंका उद्धारकर उन्हें देवताओंको दे दिया। (शिवपु०, उमासं०, अ० ५०)

इस प्रकार देवीने दुर्गमासुरका वधकर विश्वकी रक्षा की। उन्होंने दुर्गम असुरको मारा था, इसीलिये उनका नाम 'दुर्गा' प्रसिद्ध हुआ। शताक्षी एवं शाकम्भरी भी उन्हींका नाम है। वे दुर्गतिनाशिनी हैं, इसलिये भी वे 'दुर्गा' कहलाती हैं।

महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती

महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती—ये तीनों नाम जगन्नियन्ता परमात्माकी चितिशक्तिके हैं। शास्त्रकारोंका दृढ़ विश्वास है कि परमात्माको स्वरचित सृष्टिकी मर्यादा-रक्षार्थ युग-युगमें अपनी अलौकिकी योगमायाका आश्रयकर पुरुष या स्त्रीरूपसे अवतीर्ण होना पड़ता है। जब वे पुरुषवेषमें अवतार लेते हैं, तब जगत् उनकी ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि नामोंसे स्तुति करता है और जब वे स्त्रीरूपसे जगत्में अवतीर्ण होते हैं, तब उन्हें महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती कहते हैं। जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश—रज, सत्त्व और तमःप्रधान हैं, उसी प्रकार चितिशक्तिके ये तीनों रूप भी तम, सत्त्व, रज आदि गुणोंकी अधिकताके अनुसार वेष धारण करते हुए तत्तद्गुणानुरूप कार्य करते हैं। चितिशक्तिके तमःप्रधान रौद्ररूपको महाकाली कहते हैं, जो प्रधानतया दुष्टोंका संहार करती है। सत्त्वप्रधान वैष्णवरूपको महालक्ष्मी कहते हैं, जो जगत्का पालन करती है। रजःप्रधान ब्राह्मीशक्तिको सरस्वती कहते हैं, जो प्रधानतया जगत्की उत्पत्ति और उसमें ज्ञानका संचार करती है। दुर्गासप्तशतीमें चितिशक्तिके इन तीनों स्वरूपोंकी उत्पत्ति-कथा इस प्रकार है—

स्वारोचिष-मन्वन्तरमें चक्रवर्ती राजा सुरथ राज्य करता था। एक समय शत्रुओंद्वारा पराजित होकर वह अपने राज्यमें आकर शासन करने लगा, परंतु वहाँपर भी उसके शत्रुओंने आक्रमण कर दिया, जिससे दुःखी होकर वह शिकारके बहानेसे वनमें जाकर मेधामुनिके आश्रममें रहने लगा। परंतु वहाँ भी उसे रात-दिन अपने राज्य-कोष आदिकी ही चिन्ता घेरे रहती थी। एक समय राजा आश्रमके निकट घूम रहा था कि उसकी दृष्टि एक वैश्यपर पड़ी। उसे उदास देखकर राजाने पूछा कि 'तुम कौन हो और यहाँ किसलिये आये हो? तुम्हारा मुख उदास और चिन्तित क्यों प्रतीत होता है?' राजाके वचन सुनकर विनीतभावसे वैश्य कहने लगा—'महाराज! मेरा नाम समाधि है। मैं उच्च कुलमें उत्पन्न वैश्य हूँ, परंतु दुर्भाग्यवश मेरे दुष्ट पुत्रोंने मेरा धन छीनकर मुझे निकाल दिया, जिससे मैं इस वनमें भटकता फिरता हूँ और अपने उन्हीं स्वजनोंके कुशल-समाचार नहीं प्राप्त होनेसे मैं सर्वदा चिन्तित रहता हूँ। यद्यपि अर्थलोलुप पुत्रोंने मुझे निकाल दिया, फिर भी मेरा चित्त उनके मोहको नहीं छोड़ता। इस प्रकार परस्पर बातें करते वे दोनों आश्रममें गये और राजाने ऋषिसे बड़े ही विनीतभावसे कहा—'क्या कारण है कि मेरा सम्पूर्ण राज्य छिन जानेपर भी अभीतक उसमें मेरी आसक्ति बनी हुई है और यही दशा इस वैश्यकी भी हो रही है? आप हमें उपदेश देकर चिन्तासे छुड़ाइये।'

मुनिने कहा—'राजन्! महामायाकी विचित्र लीलासे समस्त प्राणी ममता और मोहके गर्तमें पड़े हुए हैं—

महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्॥

(श्रीदुर्गासप्तशती १। ५५-५८)

जिसके द्वारा सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है, वह भगवान् विष्णुकी महामाया है। वह महामाया देवी भगवती ज्ञानियोंके चित्तको भी बलपूर्वक आकृष्टकर मोहमें डाल देती है। उसीके द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् रचा गया है। वह जिसपर प्रसन्न होती है, उसे मुक्ति प्रदान करती है और वही संसारके बन्धनका हेतु है। मुक्तिकी हेतुभूता सनातनी पराविद्या वही है।'

राजाने पूछा—महाराज! जिसका आपने वर्णन किया, वह महामाया देवी कौन है और कैसे उत्पन्न हुई है? उसके गुण, कर्म, प्रभाव और स्वरूप कैसे हैं?

ऋषिने कहा—वह नित्या है, समस्त जगत् उसकी मूर्ति है, उसके द्वारा यह चराचर जगत् व्याप्त है। फिर भी देवकार्य करनेके लिये जब वह प्रकट होती है, तब उसे उत्पन्न हुई कहते हैं।

महाकालीकी उत्पत्ति

प्रलयकालमें सम्पूर्ण संसारके जलमग्न होनेपर भगवान् विष्णु शेषशय्यापर योगनिद्रामें सो रहे थे। उस

भगवान्‌के कर्णमलसे उत्पन्न मधु और कैटभ नामक दो घोर राक्षस ब्रह्माको मारनेके लिये उद्यत हो गये। भगवान्‌के नाभिकमलमें स्थित प्रजापति ब्रह्माने असुरोंको देखकर भगवान्‌को जगानेके लिये एकाग्रहृदयसे भगवान्‌के नेत्रकमलस्थित योगनिद्राकी स्तुति की—

'हे देवि! तू ही इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाली है, तू ही महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति और महामोहस्वरूपा है, दारुण कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी तू ही है। तूने जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले साक्षात् भगवान् विष्णुको भी योगनिद्राके वशीभूत कर दिया है और विष्णु, शंकर एवं मैं (ब्रह्मा) तुम्हारे ही द्वारा शरीर ग्रहण करनेको बाधित किये गये हैं। ऐसी महामायाशक्तिकी स्तुति कौन कर सकता है? हे देवि! अपने प्रभावसे इन असुरोंको मोहित करके मारनेके लिये भगवान्‌को जगा।'

इस प्रकार स्तुति करनेपर वह महामाया भगवती भगवान्‌के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु तथा हृदयसे बाहर निकलकर प्रत्यक्ष खड़ी हो गयी। भगवान् भी उठे और देखा कि दो भयंकर राक्षस ब्रह्माको खानेके लिये उद्यत हो रहे हैं। ब्रह्माकी रक्षाके लिये स्वयं भगवान् उनसे युद्ध करने लगे। युद्ध करते-करते पाँच हजार वर्ष बीत गये, परंतु वे राक्षस नहीं मरे। तब महामायाने उन राक्षसोंकी बुद्धि मोहित कर दी, जिससे वे अभिमानपूर्वक विष्णुभगवान्‌से कहने लगे कि 'हम तुम्हारे युद्धसे अति संतुष्ट हुए हैं, तुम ईप्सित वर माँगो।' भगवान् कहने लगे—'यदि आप मुझे वर ही देना चाहते हैं तो यही वर दीजिये कि आप दोनों मेरे द्वारा मारे जायँ।' मधु-कैटभने 'तथास्तु' कहा और बोले कि 'जहाँ पृथ्वी जलसे ढकी हुई हो वहाँ हमको नहीं मारना।' अन्तमें भगवान्‌ने उनके सिरोंको अपनी जंघाओंपर रखकर चक्रसे काट डाला। इस प्रकार देवकार्य सिद्ध करनेके लिये उस सच्चिदानन्दरूपिणी चितिशक्तिने महाकालीका रूप धारण किया, जिसका स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

अपने हाथोंमें 'खड्ग, चक्र, गदा, धनुष, बाण, परिघ, शूल, भुशुण्डी, कपाल और शंखको धारण करनेवाली, तीन नेत्रोंवाली सम्पूर्ण अङ्गोंमें दिव्य आभूषणोंसे सुसज्जित, नीलमणिके समान कान्तियुक्त, दस मुख और दस पादवाली महाकालीका मैं ध्यान करता हूँ, जिसकी स्तुति विष्णुभगवान्‌की योगनिद्रास्थितिमें ब्रह्माजीने मधु और कैटभको मारनेके लिये की थी।'

महालक्ष्मीकी उत्पत्ति

एक समय देवता और दानवोंमें सौ वर्षतक घोर युद्ध हुआ। देवताओंका राजा इन्द्र था और दानवोंका महिषासुर। पराक्रमी दानवोंद्वारा देवताओंको पराजितकर महिषासुर जब स्वयं इन्द्र बन बैठा, तब सम्पूर्ण देवगण पद्मयोनि ब्रह्माजीको आगेकर भगवान् विष्णु और शंकरके पास गये और उन्हें अपनी सम्पूर्ण विपत्ति-गाथा सुनायी। देवताओंकी आर्तवाणी सुनकर भगवान् विष्णु तथा शंकर कुपित हो गये, उनकी भृकुटी चढ़ गयी। उस समय समस्त देवताओंके शरीरसे पृथक्-पृथक् महान् तेजःपुञ्ज निकला और वह एकत्रित होकर प्रज्वलित पर्वतकी तरह सम्पूर्ण दिशाओंको देदीप्यमान करता हुआ नारी-शरीर बन गया। उस भगवतीको देखकर सब देवता प्रसन्न हुए और उसे अपने-अपने शस्त्र समर्पित किये। तब प्रसन्न होकर देवीने अट्टहास किया, जिससे समस्त दिशाएँ गूँज उठीं, समुद्र उछलने लगे, पृथिवी काँप उठी और पर्वत भी डगमगाने लगे तथा देवताओंने जयध्वनि की और मुनिगण स्तुति करने लगे। उस भयंकर गर्जनाको सुनकर महिषासुर क्रोधित होकर अस्त्र-शस्त्र-सुसज्जित दानव-सेनाको लेकर वहाँ आया और तेजःपुञ्ज महालक्ष्मीको उसने देखा। तदनन्तर असुरोंका देवीके साथ अति भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें सम्पूर्ण दानव मारे गये। महिषासुर भी अनेक प्रकारकी माया करके थक गया और अन्तमें महालक्ष्मीके द्वारा मारा गया। देवताओंने भगवतीकी विविध प्रकारसे स्तुति की। इस प्रकार महालक्ष्मीने रूप धारण किया, जिसका स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

अक्षस्त्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

'अपने हाथोंमें अक्षमाला, परशु, गदा, बाण, वज्र, कमल, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, चर्म, शंख, घण्टा, मधुपात्र, शूल, पाश और सुदर्शनचक्रको धारण करनेवाली, कमलस्थित, महिषासुरमर्दिनी महालक्ष्मीका हम ध्यान करते हैं।'

महासरस्वतीकी उत्पत्ति

पूर्वकालमें जब शुम्भ और निशुम्भने इन्द्रादि देवताओंके सम्पूर्ण अधिकार छीन लिये तथा वे स्वयं ही यज्ञभोक्ता बन

बैठे, तब अपने अधिकारोंको पुनः प्राप्त करनेके लिये देवताओंने हिमालयपर जाकर देवी भगवतीकी अनेक प्रकारसे स्तुति की। उस समय पतितपावनी भगवती पार्वती आयीं और उनके शरीरमेंसे शिवा प्रकट हुईं। सरस्वतीदेवी पार्वतीके शरीरकोषसे निकली थीं, इसलिये उनका 'कौशिकी' नाम प्रसिद्ध हुआ। कौशिकीके निकल जानेके बाद पार्वतीका शरीर काला पड़ गया, इसलिये उन्हें 'कालिका' कहते हैं। तदनन्तर भगवती कौशिकी परम सुन्दर रूप धारणकर बैठी हुई थीं कि उन्हें चण्ड-मुण्ड नामक शुम्भ-निशुम्भके दूतोंने देखा। उन्होंने जाकर शुम्भ-निशुम्भसे कहा कि 'हे दानवपति! हिमालयपर एक अति लावण्यमयी परम मनोहरा रमणी बैठी है। वैसा मनोज्ञ रूप आजतक किसीने नहीं देखा। आपके पास ऐरावत हाथी, पारिजात तरु, उच्चैःश्रवा अश्व, ब्रह्माका विमान, कुबेरका खजाना, वरुणका सुवर्णवर्षी छत्र तथा अन्य विविध रत्न विद्यमान हैं, पर ऐसा स्त्री-रत्न नहीं है, अतः आप उसे ग्रहण कीजिये।' दूतोंकी वाणी सुनकर शुम्भ-निशुम्भने अपने सुग्रीव नामक दूतको उस देवीको प्रसन्न करके अपने पास लानेको कहा। दूतने जाकर देवीको शुम्भ-निशुम्भका आदेश सुनाया और उनके ऐश्वर्यकी बहुत प्रशंसा की। देवीने कहा कि तुम जो कुछ कहते हो वह सब सत्य है, परंतु मैंने पहले एक प्रतिज्ञा कर ली थी, वह यह है कि—

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ५। १२०)

'जो मुझे संग्राममें जीतकर मेरे दर्पको चूर्ण करेगा, वही मेरा पति होगा।' अतः तुम अपने स्वामीको जाकर मेरी प्रतिज्ञा सुना दो कि मुझे युद्धमें जीतकर मेरा पाणिग्रहण कर ले। दूतने देवीको बहुत समझाया, परंतु देवीने नहीं माना। तब कुपित होकर दूतने सम्पूर्ण वृत्तान्त शुम्भ-निशुम्भको जाकर सुनाया, जिससे कुपित होकर उन्होंने अपने सेनापति धूम्रलोचनको देवीके साथ युद्ध करनेके लिये भेजा; परंतु देवीने थोड़े ही समयमें उसे सेनासहित मार डाला। इसी प्रकार चण्ड और मुण्डको भी देवीने मार डाला। तब क्रुद्ध होकर उन्होंने अपनी समस्त सेना लेकर देवीको चारों ओरसे घेर लिया। भगवतीने घण्टाध्वनि की, जिससे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। इसी समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कार्तिकेय और इन्द्रादिके शरीरोंसे शक्तियाँ निकलकर चण्डिकाके पास आयीं। वे देवियाँ जिसकी शक्ति थीं, तत्-तत् शक्तिके अनुरूप स्वरूप, भूषण और वाहनसे युक्त थीं। उन शक्तियोंके मध्यमें स्वयं महादेवजी आये और देवीसे बोले कि 'मुझे प्रसन्न करनेके लिये सम्पूर्ण दानवोंका संहार कीजिये।' उसी समय देवीके शरीरसे अति भीषण चण्डिका-शक्ति प्रकट हुई और शिवजीसे बोली—'हे भगवन्! आप हमारे दूत बनकर दानवोंके पास जाइये और उन्हें कह दीजिये कि यदि तुम जीना चाहते हो तो त्रैलोक्यका राज्य इन्द्रको समर्पित करके पाताललोकको चले जाओ।' शिवजीने शुम्भ-निशुम्भको देवीकी आज्ञा सुनायी, पर वे बलगर्वित दानव कब माननेवाले थे। आखिर भयंकर युद्ध छिड़ गया और अस्त्र-शस्त्र-प्रहार होने लगे। शक्तियोंद्वारा आहत होकर दानव-सेना गिरने लगी। तब क्रुद्ध होकर रक्तबीज युद्ध-भूमिमें आया। इस दानवके रक्तसे उत्पन्न दानव-समूहसे सम्पूर्ण युद्ध-स्थल भर गया, जिससे देवगण काँप उठे। तब चण्डिकाने कालीसे कहा कि 'तुम अपना मुख फैलाकर इसके शरीरसे निकले हुए रक्तका पान करो, जब यह क्षीणरक्त होगा तब मारा जायगा।' फिर देवीने रक्तबीजपर शूलप्रहार किया। उससे जो रक्त निकला, उसे काली देवी पीती गयीं। क्षीणरक्त होते ही देवीके प्रहारसे वह धराशायी हो गया। तत्पश्चात् शुम्भ और निशुम्भ भी युद्ध-भूमिमें मारे गये। देवगण हर्षित होकर जयध्वनि करने लगे। महासरस्वतीने जो रूप धारण किया, उसका स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

'स्वहस्तकमलमें घण्टा, त्रिशूल, हल, शंख, मूसल, चक्र, धनुष और बाणको धारण करनेवाली, गौरी-देहसे उत्पन्न, शरद् ऋतुके शोभा-सम्पन्न चन्द्रमाके समान कान्तिवाली, तीनों लोकोंकी आधारभूता, शुम्भादि दैत्यमर्दिनी महासरस्वतीको हम नमस्कार करते हैं।'

देवतागण महासरस्वतीकी स्तुति करने लगे—'हे देवि! आप अनन्त पराक्रमशाली वैष्णवी शक्ति हैं, संसा आदिकारण महामाया आप ही हैं। आपके द्वारा सम्पूर्ण संसार मोहित हो रहा है। आप ही प्रसन्न होनेपर

प्रदान करती हैं। हे देवि! सम्पूर्ण विद्याएँ आपके ही भेद हैं, सम्पूर्ण स्त्रियाँ आपका ही स्वरूप हैं। आपके द्वारा समस्त संसार व्याप्त है। कौन ऐसी विशेषता है कि जिससे हम आपकी स्तुति करें! हे देवि! आप प्रसन्न हों और शत्रुओंके भयसे सर्वदा हमारी रक्षा करें। आप समस्त संसारके पापोंका और उत्पातके परिणामस्वरूप उपसर्गोंका नाश कर दीजिये।' देवताओंकी स्तुति सुनकर भगवती प्रसन्न होकर कहने लगीं—'हे देवगण! तुम्हारी की हुई स्तुतिके द्वारा एकाग्रचित्त होकर जो मेरा स्तवन करेगा, उसकी समस्त बाधाएँ मैं अवश्य नष्ट कर दूँगी।' यह कहकर देवगणके देखते-देखते ही भगवती अन्तर्धान हो गयीं।

मेधा ऋषिने देवीकी उत्पत्ति और देवादिकृत स्तुति सुनाकर कहा कि 'हे राजन्! तुम और यह वैश्य तथा अन्य विवेकीजन इन महामाया भगवतीकी मायासे मोहित हो रहे हैं, अतः तुम इन्हीं परमेश्वरीकी शरण ग्रहण करो। आराधना करनेसे वे मनुष्योंको शीघ्र ही भोग, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान कर देती हैं।' ऋषिके वचन सुनकर वे दोनों नदीके किनारे जाकर देवीकी पार्थिव मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करने लगे। देवीको प्रसन्न करनेके लिये उन्होंने अनेक संयम-नियमोंका पालन करते हुए तीन वर्षतक कठोर तपस्या की। उनके तपको देखकर भगवती प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष आ खड़ी हुईं और बोलीं—'मैं तुम दोनोंपर प्रसन्न हूँ। इच्छित वर माँग लो।' तब राजाने अपने राज्य और वैश्यने ज्ञान-प्राप्तिकी याचना की। देवीने 'तथास्तु' कहा। दोनोंके मनोरथ पूर्ण हुए, वैश्य मुक्त हो गया और राजाने अपना राज्य प्राप्त किया तथा वह दूसरे जन्ममें सूर्यपुत्र होकर सावर्णि नामक मनु हुआ।

दस महाविद्याओंके लीला-आख्यान

भगवती आद्याशक्ति जगन्माता पराम्बाके अनन्त नामोंमें एक नाम 'महाविद्या' भी है। ये ही सती, शिवा, पार्वती, दुर्गा, चामुण्डा तथा विष्णुप्रिया आदि नामोंसे अभिहित हैं। मूलतः एक ही शक्ति विविध रूपोंमें अवतरित होकर अनेक प्रकारकी लीलाएँ करती रहती हैं और लीलानुरूप उनका वैसा ही नाम भी प्रख्यात हो जाता है, जैसे भगवती आद्याशक्तिने दुर्गम नामक दैत्यसे देवताओंको त्राण दिया तो वे 'दुर्गा' कहलायीं तथा शाक-मूल-फलके रूपमें त्रिलोकीको अकालसे मुक्ति दिलायी और सबका भरण-पोषण किया, इसलिये 'शाकम्भरी' कहलायीं। तत्त्वतः वे एक ही हैं—**'एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।'** आगमोंकी उपासना-पद्धतिमें विशेष रूपसे भगवतीका 'महाविद्या' यह नाम अधिक प्रतिष्ठित है—

साक्षाद् विद्यैव सा न ततो भिन्ना जगन्माता।

(वरिवस्या रहस्य २। १०७)

'अथर्वशीर्ष' में कहा गया है—**'एषा श्रीमहाविद्या'**। इसी प्रकार 'तन्त्रोक्त रात्रिसूक्त' में कहा गया है—

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी॥

इन्हीं महादेवीसे समस्त जगत् व्याप्त है, समस्त विद्याएँ और समस्त स्त्रियाँ देवी भगवतीकी ही लीलाके रूप हैं—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।

वास्तवमें महाविद्यारूप वे देवी नित्य हैं, सनातनी हैं, यह जगत् उन्हींका रूप है; तथापि उनका प्राकट्य अनेक प्रकारसे होता है—

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।

महाभागवतपुराण (श्रीदेवीपुराण)-में महाविद्याओंके प्रादुर्भावकी एक रोचक कथा प्राप्त होती है। तदनुसार शिवसे द्वेष रखनेके कारण दक्ष प्रजापतिने सभी देवताओं तथा महर्षियोंको अपने यज्ञमें सादर आमन्त्रित किया, किंतु शिवकी उपेक्षाकर उन्हें नहीं बुलाया। सतीने पिताके उस यज्ञमें जानेकी अनुमति माँगी। शिवने वहाँ जाना अनुचित बताकर उन्हें जानेसे रोका, परंतु सती अपने निश्चयपर अटल रहीं। उन्होंने कहा—'मैं प्रजापतिके यज्ञमें अवश्य जाऊँगी और वहाँ या तो अपने प्राणेश्वर देवाधिदेवके लिये यज्ञभाग प्राप्त करूँगी या यज्ञको ही नष्ट कर दूँगी।'[1] यह कहते हुए सतीके नेत्र लाल हो गये। वे शिवको उग्र दृष्टिसे देखने लगीं। उनके अधर फड़कने लगे, वर्ण कृष्ण हो गया।

---

[1] ततोऽहं तत्र यास्यामि तदाज्ञापय वा न वा। प्राप्स्यामि यज्ञभागं वा नाशयिष्यामि वा मखम्॥

(महाभागवत० ८। २)

क्रोधाग्निसे दग्ध शरीर महाभयानक एवं उग्र दीखने लगा। उस समय महामायाका विग्रह प्रचण्ड तेजसे तमतमा रहा था। कालाग्निके समान महाभयानक रूपमें देवी मुण्डमाला पहनी हुई थीं और उनकी भयानक जिह्वा बाहर निकली हुई थी, शीशपर अर्धचन्द्र सुशोभित था और उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकराल लग रहा था। वे बार-बार विकट हुंकार कर रही थीं। देवीका यह स्वरूप साक्षात् महादेवके लिये भी भयप्रद और प्रचण्ड था। उस समय उनका श्रीविग्रह करोड़ों मध्याह्नके सूर्योंके समान तेजःसम्पन्न था और वे बारम्बार अट्टहास कर रही थीं। देवीके इस विकराल महाभयानक रूपको देखकर शिव भाग चले। भागते हुए उनको दसों दिशाओंमें रोकनेके लिये देवीने अपनी अङ्गभूता दस देवियोंको प्रकट किया। देवीकी ये स्वरूपा शक्तियाँ ही दस महाविद्याएँ हैं, जिनके नाम हैं—**१-काली, २-तारा, ३-छिन्नमस्ता, ४-षोडशी, ५-भुवनेश्वरी, ६-त्रिपुरभैरवी, ७-धूमावती, ८-वगलामुखी, ९-मातङ्गी** और **१०-कमला।**

इन दस महाविद्याओंमें मूलरूपा महाकाली ही मुख्य हैं और उन्हींके उग्र और सौम्य दो रूपोंसे अनेक रूप धारण करनेवाली ये दस महाविद्याएँ ही हैं। महाकालीके दशधा प्रधान रूपोंको ही दस महाविद्या कहा जाता है। सर्वविद्यापति शिवकी शक्तिरूपा ये दस महाविद्याएँ लोक और शास्त्रमें यद्यपि अनेक रूपोंमें पूजित हुईं, पर इनके दस रूप प्रमुख हो गये। ये रूप अपनी उपासना, मन्त्र और दीक्षाओंके भेदसे अनेक होते हुए भी मूलतः एक ही हैं। अधिकारिभेदसे अलग-अलग रूप और उपासना-स्वरूप प्रचलित हैं। काली, तारा, छिन्नमस्ता, वगला और धूमावती विद्यास्वरूप भगवतीके प्रकट कठोर किंतु अप्रकट करुण-रूप हैं तो भुवनेश्वरी, षोडशी (ललिता), त्रिपुरभैरवी, मातङ्गी और कमला विद्याओंके सौम्यरूप हैं। ये ही महाविद्याएँ साधकोंकी परम धन हैं, जो सिद्ध होकर अनन्त सिद्धियाँ और अनन्तका साक्षात्कार करानेमें समर्थ हैं।

यद्यपि दस महाविद्याओंका स्वरूप अचिन्त्य है, तथापि शाखाचन्द्रन्यायसे उपासक, स्मृतियाँ और पराम्बाके चरणानुगामी इस विषयमें कुछ निर्वचन अवश्य कर लेते हैं। इस दृष्टिसे काली-तत्त्व प्राथमिक शक्ति है। निर्गुण ब्रह्मकी पर्याय इस महाशक्तिको तान्त्रिक ग्रन्थोंमें विशेष प्रधानता दी गयी है। वास्तवमें इन्हींके दो रूपोंका विस्तार ही दस महाविद्याओंके स्वरूप हैं। महानिर्गुणकी अधिष्ठात्री शक्ति होनेके कारण हैं इनकी उपमा अन्धकारसे दी जाती है। महासगुण होकर ये 'सुन्दरी' कहलाती हैं तो महानिर्गुण होकर 'काली'। तत्त्वतः सब एक है, भेद केवल प्रतीतिमात्रका है। 'कादि' और 'हादि' विद्याओंके रूपमें भी एक ही श्रीविद्या क्रमशः कालीसे प्रारम्भ होकर उपास्या होती हैं। एकको 'संहार-क्रम' तो दूसरेको 'सृष्टि-क्रम' नाम दिया जाता है। देवीभागवत आदि शक्ति-ग्रन्थोंमें महालक्ष्मी या शक्तिबीजको मुख्य प्राधानिक बतानेका रहस्य यह है कि इसमें 'हादि' विद्याकी क्रम-योजना स्वीकार की गयी है और तन्त्रों (विशेषकर अत्यन्त गोपनीय तन्त्रों)-में कालीको प्रधान माना गया है। तात्त्विक दृष्टिसे यहाँ भी भेदबुद्धिकी सम्भावना नहीं है। '*सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा*' का तर्क दोनोंको दोनोंसे अभिन्न सिद्ध करता है।

'बृहन्नीलतन्त्र'में कहा गया है कि रक्त और कृष्णभेदसे काली ही दो रूपोंमें अधिष्ठित हैं। कृष्णाका नाम 'दक्षिणा' है तो रक्तवर्णाका नाम 'सुन्दरी'—

विद्या हि द्विविधा प्रोक्ता कृष्णा रक्ताप्रभेदतः।
कृष्णा तु दक्षिणा प्रोक्ता रक्ता तु सुन्दरी मता॥

उपासनाके भेदसे दोनोंमें द्वैत है, पर तत्त्वदृष्टिसे अद्वैत है। वास्तवमें काली और भुवनेश्वरी दोनों मूल-प्रकृतिके अव्यक्त और व्यक्त रूप हैं। कालीसे कमलातककी दस सोपानोंमें अथवा दस स्तरोंमें पूर्ण होती है। महाविद्याओंका स्वरूप इसी रहस्यका परिणाम है।

दस महाविद्याओंकी उपासनामें सृष्टिक्रमकी उपासना लोकग्राह्य है। इसमें भुवनेश्वरीको प्रधान माना गया है। समस्त विकृतियोंकी प्रधान प्रकृति है। देवीभागवतके अनुसार सदाशिव फलक हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ईश्वर उस फलक या श्रीमञ्चके पाये हैं। इस श्रीमञ्च भुवनेश्वरी भुवनेश्वरके साथ विद्यमान हैं। सात करोड़ इनकी आराधनामें लगे हुए हैं। विद्वानोंका कथन है निर्विशेष ब्रह्म ही स्वशक्ति-विलासके द्वारा ब्रह्मा, आदि पञ्च आख्याओंको प्राप्त होकर अपनी शक्ति सांनिध्यसे सृष्टि, स्थिति, लय, संग्रह तथा अनुग्रहरूप कृत्योंको सम्पादित करते हैं। वह निर्विशेष तत्त्व 'परमेश्वर' पद-वाच्य है और उसकी स्वरूपभूत अभिन्न शक्ति भुवनेश्वरी।

महाविद्याओंके प्रादुर्भावकी अन्यान्य कथाएँ

१-काली—दस महाविद्याओंमें काली प्रथम हैं। कालिकापुराणमें कथा आती है कि एक बार देवताओंने हिमालयपर जाकर महामायाका स्तवन किया। पुराणकारके अनुसार यह स्थान मतङ्गमुनिका आश्रम था। स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवतीने मतङ्ग-वनिता बनकर देवताओंको दर्शन दिया और पूछा कि 'तुम लोग किसकी स्तुति कर रहे हो।' तत्काल उनके श्रीविग्रहसे काले पहाड़के समान वर्णवाली एक दिव्य नारीका प्राकट्य हुआ। उस महातेजस्विनीने स्वयं ही देवताओंकी ओरसे उत्तर दिया कि 'ये लोग मेरा ही स्तवन कर रहे हैं।' वे गाढ़े काजलके समान कृष्णा थीं, इसीलिये उनका नाम 'काली' पड़ा।

लगभग इसीसे मिलती-जुलती कथा 'श्रीदुर्गासप्तशती'-में भी है। शुम्भ-निशुम्भके उपद्रवसे व्यथित देवताओंने हिमालयपर देवीसूक्तसे देवीको जब बार-बार प्रणाम निवेदित किया, तब गौरी-देहसे कौशिकीका प्राकट्य हुआ और उनके अलग होते ही अम्बा पार्वतीका स्वरूप कृष्ण हो गया, वे ही 'काली' नामसे विख्यात हुईं—

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ५। ८८)

वास्तवमें कालीको ही नीलरूपा होनेसे 'तारा' भी कहा गया है। वचनान्तरसे 'तारा' नामका रहस्य यह भी है कि वे सर्वदा मोक्ष देनेवाली—तारनेवाली हैं, इसलिये तारा हैं। अनायास ही वे वाक् प्रदान करनेमें समर्थ हैं, इसलिये 'नीलसरस्वती' भी हैं। भयंकर विपत्तियोंसे रक्षणकी कृपा प्रदान करती हैं, इसलिये वे 'उग्रतारिणी' या 'उग्रतारा' हैं।

नारद-पाञ्चरात्रके अनुसार—एक बार कालीके मनमें आया कि वे पुनः गौरी हो जायँ, यह सोचकर वे अन्तर्धान हो गयीं। उसी समय नारदजी प्रकट हो गये। शिवजीने नारदजीसे कालीका पता पूछा। नारदजीने उनसे सुमेरुके उत्तरमें देवीके प्रत्यक्ष उपस्थित होनेकी बात कही। शिवकी प्रेरणापर नारदजी वहाँ गये और उन्होंने शिवजीसे विवाह करनेके लिये कालीके समक्ष प्रस्ताव रखा। देवी क्रुद्ध हो गयीं और उनकी देहसे एक अन्य विग्रह—षोडशी प्रकट हुईं; जिससे छायाविग्रह त्रिपुरभैरवीका प्राकट्य हो गया।

मार्कण्डेयपुराणमें देवीके लिये 'विद्या' और 'महाविद्या' दोनों शब्दोंका प्रयोग हुआ है। ब्रह्माकी स्तुतिमें 'महाविद्या' तथा देवताओंकी स्तुतिमें '**लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये**' सम्बोधन आये हैं। 'अ' से लेकर 'क्ष' तक पचास मातृकाएँ आधारपीठ हैं, इनके भीतर स्थित शक्तियोंका साक्षात्कार शक्ति-उपासना है। शक्तिसे शक्तिमान्‌का अभेद-दर्शन, जीवभावका लोप और शिवभावका उदय; किंवा पूर्ण शिवत्व-बोध शक्ति-उपासनाकी चरम उपलब्धि है। कालीकी साधना यद्यपि दीक्षागम्य है, तथापि अनन्य-शरणागतिके द्वारा उनकी कृपा किसीको भी प्राप्त हो सकती है। मूर्ति, यन्त्र अथवा गुरुद्वारा उपदिष्ट किसी आधारपर भक्तिभावसे मन्त्र, जप, पूजा, होम और पुरश्चरण करनेसे काली प्रसन्न हो जाती हैं। कालीकी प्रसन्नता सम्पूर्ण अभीष्टोंकी प्राप्ति है।

२-तारा—तारा और काली यद्यपि एक ही हैं, बृहन्नीलतन्त्रादि ग्रन्थोंमें उनके विशेष रूपकी चर्चा है। हयग्रीवका वध करनेके लिये देवीको नीलविग्रह प्राप्त हुआ है। शव-रूप शिवपर प्रत्यालीढ मुद्रामें भगवती आरूढ हैं। उनकी आकृति नीले रंगकी और नीलकमलोंकी भाँति तीन नेत्र हैं तथा हाथोंमें कैंची, कपाल, कमल और खड्ग हैं। व्याघ्रचर्मसे विभूषिता उन देवीके कण्ठमें मुण्डमाला है। वे उग्रतारा हैं, पर भक्तोंपर कृपा करनेके लिये उनकी तत्परता अमोघ है। इस कारण वे महाकरुणामयी हैं।

शत्रुनाश, वाक्-शक्तिकी प्राप्ति तथा भोग-मोक्षकी प्राप्तिके लिये तारा अथवा उग्रताराकी साधना की जाती है। रात्रिदेवी-स्वरूपा शक्ति तारा महाविद्याओंमें अद्भुत प्रभाव और सिद्धिकी अधिष्ठात्री देवी कही गयी हैं।

३-छिन्नमस्ता—'छिन्नमस्ता'के प्रादुर्भावकी कथा इस प्रकार है—एक बार भगवती भवानी अपनी सहचरियों—जया और विजयाके साथ मन्दाकिनीमें स्नान करनेके लिये गयीं। वहाँ स्नान करनेपर क्षुधाग्निसे पीडित होकर वे कृष्णवर्णकी हो गयीं। उस समय उनकी सहचरियोंने उनसे कुछ भोजन करनेके लिये माँगा। देवीने उनसे प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। कुछ समय प्रतीक्षा करनेके बाद पुनः याचना करनेपर देवीने पुनः प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। बादमें उन देवियोंने विनम्र स्वरमें कहा कि 'माँ तो शिशुओंको तुरंत भूख लगनेपर भोजन प्रदान करती है।' इस प्रकार उनके मधुर वचन सुनकर कृपामयीने अपने कराग्रसे अपना सिर काट दिया। कटा हुआ सिर देवीके बायें हाथमें आ गिरा और

कबन्धसे तीन धाराएँ निकलीं। वे दो धाराओंको अपनी दोनों सहेलियोंकी ओर प्रवाहित करने लगीं, जिसे पीती हुई वे दोनों प्रसन्न होने लगीं और तीसरी धारा जो ऊपरकी ओर प्रवाहित थी, उसे वे स्वयं पान करने लगीं। तभीसे ये 'छिन्नमस्ता' कही जाने लगीं।

छिन्नमस्ता नितान्त गुह्य तत्त्वबोधकी प्रतीक हैं। छिन्न यज्ञ-शीर्षकी प्रतीक ये देवी श्वेतकमल-पीठपर खड़ी हैं। इनकी नाभिमें योनिचक्र है। दिशाएँ ही उनके वस्त्र हैं। कृष्ण (तम) और रक्त (रज) गुणोंकी देवियाँ उनकी सहचरियाँ हैं। वे अपना शीश स्वयं काटकर भी जीवित हैं, जिससे उनमें अपनेमें पूर्ण अन्तर्मुखी साधनाका संकेत मिलता है।

४-षोडशी—इनमें षोडश कलाएँ पूर्णरूपेण विकसित हैं, अतएव वे 'षोडशी' कहलाती हैं। षोडशी माहेश्वरी शक्तिकी सबसे मनोहर श्रीविग्रहवाली सिद्ध विद्यादेवी हैं। सोलह अक्षरोंके मन्त्रवाली उन देवीकी अङ्गकान्ति उदीयमान सूर्यमण्डलकी आभाकी भाँति है। उनकी चार भुजाएँ एवं तीन नेत्र हैं। शान्त मुद्रामें लेटे हुए सदाशिवपर स्थित कमलके आसनपर विराजिता षोडशी देवीके चारों हाथोंमें पाश, अंकुश, धनुष और बाण सुशोभित हैं। वर देनेके लिये सदा-सर्वदा उद्यत उन भगवतीका श्रीविग्रह सौम्य और हृदय दयासे आपूरित है। जो उनका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, उनमें और ईश्वरमें कोई भेद नहीं रह जाता। वस्तुतः उनकी महिमा अवर्णनीय है। संसारके समस्त मन्त्र-तन्त्र उनकी आराधना करते हैं। वेद भी उनका वर्णन नहीं कर पाते। भक्तोंको वे प्रसन्न होकर क्या नहीं दे देतीं। 'अभीष्ट' तो सीमित अर्थवाच्य शब्द है, वस्तुतः उनकी कृपाका एक कण भी अभीष्टसे अधिक प्रदान करनेमें समर्थ है।

५-भुवनेश्वरी—देवीभागवतमें वर्णित मणिद्वीपकी अधिष्ठात्री देवी हृल्लेखा (ह्रीं)-मन्त्रकी स्वरूपा शक्ति और सृष्टिक्रममें महालक्ष्मीस्वरूपा—आदिशक्ति भगवती भुवनेश्वरी शिवके समस्त लीला-विलासकी सहचरी और निखिल प्रपञ्चोंकी आदि कारण, सबकी शक्ति और सबको नाना प्रकारसे पोषण प्रदान करनेवाली हैं। जगदम्बा भुवनेश्वरीका स्वरूप सौम्य और अङ्गकान्ति अरुण है। भक्तोंको अभय एवं समस्त सिद्धियाँ प्रदान करना उनका स्वाभाविक गुण है। शास्त्रोंमें इनकी अपार महिमा बतायी गयी है।

देवीका स्वरूप 'ह्रीं' इस बीजमन्त्रमें सर्वदा विद्यमान है, जिसे देवीभागवतमें देवीका 'प्रणव' कहा गया है। शास्त्रोंमें कहा गया है कि इस बीजमन्त्रके जपका पुरश्चरण करनेवाला और यथाविधि होम, ब्राह्मण-भोजन करानेवाला भक्तिमान् साधक साक्षात् प्रभुके समान हो जाता है।

वृद्धिंगत विश्वके अधिष्ठान त्र्यम्बक सदाशिव हैं, उनकी शक्ति 'भुवनेश्वरी' है। सोमात्मक अमृतसे विश्वका आप्यायन (पोषण) हुआ करता है, इसीलिये भगवतीने अपने किरीटमें चन्द्रमा धारण कर रखा है। ये ही भगवती त्रिभुवनका भरण-पोषण करती रहती हैं, जिसका संकेत उनके हाथकी मुद्रा करती है। ये उदीयमान सूर्यवत् कान्तिमती, त्रिनेत्रा एवं उन्नत कुचयुगला देवी हैं। कृपादृष्टिकी सूचना उनके मृदुहास्य (स्मेर)-से मिलती है। शासनशक्तिके सूचक अंकुश-पाश आदिको भी वे धारण करती हैं।

६-त्रिपुरभैरवी—इन्द्रियोंपर विजय और सर्वत्र उत्कर्षकी प्राप्ति-हेतु त्रिपुरभैरवीकी उपासनाका विधान शास्त्रोंमें कहा गया है। क्षीयमान विश्वके अधिष्ठान दक्षिणामूर्ति कालभैरव हैं। उनकी शक्ति ही 'त्रिपुरभैरवी' हैं। उनके ध्यानमें बताया गया है कि वे उदित हो रहे सहस्रों सूर्योंके समान अरुण कान्तिवाली और क्षौमाम्बरधारिणी होती हुई मुण्डमाला पहने हैं। रक्तसे उनके पयोधर लिप्त हैं। वे तीन नेत्र एवं हिमांशु-मुकुट, हाथमें जपवटी, विद्या, वर एवं अभय-मुद्रा धारण किये हुए हैं। ये भगवती मन्द-मन्द हास्य करती रहती हैं।

७-धूमावती—धूमावती देवीके विषयमें कथा आती है कि एक बार पार्वतीने महादेवजीसे अपनी क्षुधा-निवारणके लिये निवेदन किया। महादेवजी चुप रह गये। कई बार निवेदन करनेपर भी जब देवाधिदेवने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया, तब उन्होंने महादेवजीको ही निगल लिया। उनके शरीरसे धूमराशि निकली। तब शिवजीने शिवासे कहा कि 'आपकी मनोहर मूर्ति वगला अब 'धूमावती' या 'धूम्रा' कही जायगी।' यह धूमावती वृद्धास्वरूपा, डरावनी और भूख-प्याससे व्याकुल स्त्री-विग्रहवत् अत्यन्त शक्तिमयी हैं।

८-वगलामुखी—पीताम्बरा विद्याके नामसे विख्यात वगलामुखीकी साधना प्रायः शत्रुभयसे मुक्त होने और वाक्सिद्धिके लिये की जाती है। इनकी उपासनामें पीतवर्ण हरिद्रामाला, पीत आसन और पीत पुष्पोंका विधान है। व्यष्टिरूपमें शत्रुओंको नष्ट करनेकी इच्छा रखनेवाली और समष्टिरूपमें परमेश्वरकी संहारेच्छाकी अधिष्ठात्री शक्ति व

या वगलामुखी हैं। ये देवी सुधा-समुद्रके मध्य स्थित मणिमय मण्डपमें रत्नवेदीपर, रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। स्वयं पीतवर्ण होती हुई पीतवर्णके ही वस्त्र, आभूषण एवं माला धारण किये हुए हैं। इनके एक हाथमें शत्रुकी जिह्वा और दूसरे हाथमें मुद्गर है। इनके आविर्भावके विषयमें इस प्रकारकी कथा आती है—

सत्ययुगमें सम्पूर्ण जगत्को नष्ट करनेवाला तूफान आया! प्राणियोंके जीवनपर मँडराते हुए संकटके घनघोर बादलको देखकर महाविष्णु चिन्तित हो गये और वे सौराष्ट्र देशमें हरिद्रा सरोवरके समीप जाकर भगवतीको प्रसन्न करनेके लिये तप करने लगे। श्रीविद्याने उस सरोवरसे निकलकर पीताम्बराके रूपमें उन्हें दर्शन दिया और बढ़ते हुए जल-वेग तथा विध्वंसकारी उत्पातका स्तम्भन किया। वास्तवमें दुष्ट वही है, जो जगत्के या धर्मके छन्दका अतिक्रमण करता है। वगला उसका स्तम्भन किंवा नियन्त्रण करनेवाली महाशक्ति हैं। वे परमेश्वरकी सहायिका हैं और वाणी, विद्या तथा गतिको अनुशासित करती हैं। ब्रह्मास्त्र होनेका यही रहस्य है। '**ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वा उ**' आदि श्रुति वाक्योंमें वगला-शक्ति ही पर्यायरूपमें संकेतित हैं। वे सर्वसिद्धि देनेमें समर्थ और उपासकोंकी वाञ्छाकल्पतरु हैं।

९-मातङ्गी—'मतङ्ग' शिवका नाम है, उनकी शक्ति 'मातङ्गी' है। उनके ध्यानमें बताया गया है कि ये श्यामवर्णा हैं। चन्द्रमाको मस्तकपर धारण किये हुए हैं। त्रिनेत्रा, रत्नमय सिंहासनपर विराजमान, नीलकमलके समान कान्तिवाली और राक्षस-समूहरूप अरण्यको भस्मसात् करनेमें दावानलके समान हैं। ये देवी चार भुजाओंमें पाश, खड्ग, खेटक और अंकुश धारण किये हुए हैं तथा असुरोंको मोहित करनेवाली एवं भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाली हैं। गृहस्थ-जीवनको सुखी बनाने, पुरुषार्थ-सिद्धि और वाग्विलासमें पारंगत होनेके लिये मातङ्गी-साधना श्रेयस्कर है।

१०-कमला—कमला वैष्णवी शक्ति हैं। महाविष्णुकी लीला-विलास-सहचरी कमलाकी उपासना वास्तवमें जगदाधार-शक्तिकी उपासना है। इनकी कृपाके अभावमें जीवमें सम्पत्-शक्तिका अभाव हो जाता है। मानव, दानव और देव—सभी इनकी कृपाके बिना पंगु हैं। विश्वभरकी इन आदिशक्तिकी उपासना आगम-निगम दोनोंमें समान रूपसे प्रचलित है। भगवती कमला दस महाविद्याओंमें एक हैं। जो क्रम-परम्परा मिलती है, उसमें इनका स्थान दसवाँ है। (अर्थात् इनमें—इनकी महिमामें प्रवेशकर जीव पूर्ण और कृतार्थ हो जाता है।) सभी देवता, राक्षस, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व इनकी कृपाके प्रसादके लिये लालायित रहते हैं। ये परम वैष्णवी, सात्त्विक और शुद्धाचारा, विचार-धर्मचेतना और भक्त्यैकगम्या हैं। इनका आसन कमलपर है। इनके ध्यानमें बताया गया है कि ये सुवर्णतुल्य कान्तिमती हैं। हिमालय-सदृश श्वेतवर्णके चार गजोंद्वारा शुण्डाओंसे गृहीत सुवर्ण-कलशोंसे स्नापित हो रही हैं। ये देवी चार भुजाओंमें वर, अभय और कमलद्वय धारण की हुई हैं तथा किरीट और क्षौम-वस्त्रके परिधानोंसे सुसज्जित हैं।

महाविद्याओंका स्वरूप वास्तवमें एक ही आद्याशक्तिके विभिन्न स्वरूपोंका विस्तार है। इनकी उपासनासे विजय, ऐश्वर्य, धन-धान्य, पुत्र और अन्यान्य कीर्ति आदि अवाप्त होती है। पारमार्थिक स्तरपर इन विद्याओंकी उपासनाका आशय अन्ततः मोक्षकी साधना है, भगवत्प्राप्तिकी साधना है।

भगवतीके विविध नामरूपोंकी लीला

परम्बाके जैसे अनन्त विग्रह हैं, वैसे ही उनके नाम भी अनन्त हैं और वैसे ही उनकी लीलाएँ भी अनन्त हैं। और वे हैं सभी अचिन्त्य एवं नित्य चिन्मय। भक्तोंके लिये तो विशेष कल्याणकारी और आनन्दप्रद। जिस प्रकार लीला-चिन्तन, लीला-दर्शनसे परम हित सध जाता है, वैसे ही लीला-विग्रहोंके नामोच्चारण, नाम-स्मरण आदिसे भी महान् कल्याण हो जाता है। जो कृपामय विग्रह है, वही नाम भी है और उसीके अनुरूप लीला भी होती है, इसलिये तत्त्वतः इनमें सर्वथा अभेद है, यहाँ देवीके कुछ लीलामय श्रीविग्रहोंका नाम-स्मरण किया जा रहा है, जिनकी विविध लीलाओंने जगत्का महान् कल्याण किया है—

श्रीदुर्गासप्तशतीमें भगवतीके त्रिविध विग्रहोंकी ऐश्वर्यमयी एवं कृपामयी लीलाओंका गान हुआ है—उन त्रिविध लीला-विग्रहोंके नाम हैं—

(१) महाकाली, (२) महालक्ष्मी तथा **(३) महासरस्वती।** भगवतीका सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम दुर्गा या चण्डी है।

श्रीदुर्गाके नौ लीला-विग्रह विख्यात ही हैं, जिनका स्मरण इस प्रकार किया जाता है—

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम्॥
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः।

ऐसे ही देवीके कुछ लीला-विग्रह इस प्रकार परिगणित हैं—

(१) जयन्ती, (२) मङ्गला, (३) काली, (४) भद्रकाली, (५) कपालिनी, (६) दुर्गा, (७) क्षमा, (८) शिवा, (९) धात्री, (१०) स्वाहा और **(११) स्वधा।**

देवी 'जयन्ती' सबसे उत्कृष्ट और विजयशालिनी हैं। देवी 'मङ्गला' भक्तोंके जन्म-मरणादि संसार-बन्धनको दूर कर मोक्ष-प्रदान करनेवाली हैं। प्रलयकालमें सृष्टिको अपना ग्रास बना लेनेवाली देवी 'काली' हैं। जो भद्र, सुख अथवा मङ्गल-ही-मङ्गल करनेवाली हैं, वे 'भद्रकाली' हैं। हाथमें कपाल तथा मुण्डमाला रूप अशिव वेष धारणकर भी जो शिवरूपा हैं, वे 'कपालिनी' हैं। जो दुर्गति दूर करनेवाली हैं, दुर्गम दैत्यसे मुक्ति दिलानेवाली हैं और जो दुःसाध्य साधनसे प्राप्त होती हैं, वे 'दुर्गा' हैं। सम्पूर्ण जगत्की जननी होनेसे देवीमें करुणाकी पराकाष्ठा है। इसी कारण वे भक्तोंके अथवा दूसरोंके भी सभी अपराध क्षमा कर देती हैं, इसीलिये 'क्षमा' कहलाती हैं। सबका शिव—कल्याण करनेवाली हैं, इसलिये वे 'शिवा' हैं। सम्पूर्ण प्रपञ्चको धारण करनेके कारण वे 'धात्री' कही गयी हैं। 'स्वाहा'-भागसे वे देवी हवि ग्रहणकर देवताओंको हव्य तथा 'स्वधा'कारसे पितरोंको कव्य पहुँचाती हैं। ऐसी इन देवी रूपोंको नमस्कार है।

श्रीविद्याके लीला-विग्रह—एक कथानक

यों तो श्रीविद्याके लीला-विग्रह अनन्त हैं, फिर भी त्रिपुरारहस्य, माहात्म्यखण्ड तथा ब्रह्माण्ड-पुराणोत्तरखण्ड आदि पुराणेतिहासोंमें कुछ मुख्य विग्रहोंका ही परिगणन किया गया है। उन्हीं दस विग्रहोंकी सेतिहास झाँकी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

(१) कुमारी—सर्वप्रथम इन्द्रादि देवोंके गर्व-परिहारके लिये माता श्रीविद्या कुमारीरूपसे 'बालाम्बा'के रूपमें प्रकट हुईं।

(२) त्रिरूपा—कारणपुरुष ब्रह्मा, विष्णु और शिवको उनके अधिकृत सृष्टि, स्थिति और संहारात्मक कार्योंमें सहायता करनेके लिये श्रीविद्या माताने वाणी, रमा तथा रुद्राणी शक्तियोंको अपने शरीरसे उत्पन्न किया और तीनों देवियोंका तीनों देवोंसे विवाह करा दिया।

(३) गौरी और **(४) रमा**—मर्त्यलोकमें मानवोंद्वारा यज्ञ-यागादि कर्मोंके न होनेसे इन्द्रादि देव चिन्तित हुए। फिर ब्रह्मदेवके आदेशानुसार उन लोगोंने श्रीमहालक्ष्मीकी आराधना की। श्रीमहालक्ष्मीने अपने पुत्र कामदेवको देवकार्यमें सहायता करनेके लिये भेजा। कामदेवका भूलोकाधिपति राजा वीरव्रतके सैनिकोंसे घोर युद्ध हुआ, जिसमें कामदेवने सबको भगा दिया। राजा वीरव्रतने इस आपत्तिके निवारणार्थ भगवान् शंकरकी आराधना की। शंकरसे विजय-प्राप्तिका वरदान पाकर राजाने कामदेवसे पुनः युद्ध छेड़ दिया। उन्होंने शंकरप्रेषित त्रिशूलात्मक बाण कामदेवपर चलाकर उसे धराशायी कर दिया।

लक्ष्मीजीके दूतोंने जब कामदेवका निश्चेष्ट शरीर लक्ष्मीजीके पास पहुँचाया, तब उन्होंने त्रिपुराम्बा-प्रसाद अमृतद्वारा उसे पुनरुज्जीवित कर दिया। शंकरके प्रभावसे अपनी पराजय तथा मृत्युका वृत्तान्त सुननेके साथ ही कामदेवके मनमें शंकरके प्रति घोर द्वेषकी गाँठ पड़ गयी। उसने त्रिपुराम्बाकी आराधनाद्वारा बल-संचयकर शंकरको हरानेकी अपने मनमें प्रतिज्ञा की।

इतनेमें ही श्रीमहालक्ष्मीने त्रिपुराम्बाकी प्रार्थना की। तदनुसार त्रिपुराम्बाद्वारा प्रेषिता गौरी वहाँ प्रकट हुईं। श्रीमहालक्ष्मीने कामदेवकी पराजय तथा उसकी प्र आदिका वृत्तान्त गौरीको सुनाकर इस आपत्तिके निवार उपाय पूछा।

गौरीने लक्ष्मी तथा कामदेव दोनोंको समझाते हुए कि 'शंकरजी सर्वश्रेष्ठ हैं, उनसे स्पर्धा करना उचित उन्हींकी आराधना करके अपना अभीष्ट प्राप्त करना होगा।' गौरीकी उक्ति सुनकर कामदेव रुष्ट हो गया

उसने शंकरको जीतनेकी अपनी प्रतिज्ञासे टस-से-मस न होनेकी बात कही। यह सुनकर गौरी भी क्रुद्ध हो उठीं और उन्होंने कामदेवको शाप दे डाला—'तुम शिवजीके द्वारा दग्ध हो जाओगे।'

प्रिय पुत्रको गौरीद्वारा शापित सुनकर महालक्ष्मीने भी गौरीको शाप दे डाला कि 'तुम भी पतिनिन्दा सुनकर दग्ध हो जाओगी।' महालक्ष्मीका यह शाप सुनकर गौरीने भी लक्ष्मीको शाप दिया—'तुम पति-विरहका दुःख तथा सपत्नियोंसे क्लेश पाओगी।' परिणामस्वरूप लक्ष्मी और गौरीमें युद्ध आरम्भ हो गया। परस्परके प्रहारसे दोनों मूर्च्छित होने लगीं। किसी तरह ब्रह्मा और सरस्वतीके बीच-बचावसे वह युद्ध शान्त हुआ।

शिवजीको जीतनेकी अभिलाषासे कामदेवने अपनी माता महालक्ष्मीसे त्रिपुराम्बाके 'सौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्र'का उपदेश ग्रहणकर मन्दराचलकी गुफामें बैठ आराधना आरम्भ कर दी। कुछ दिन बाद त्रिपुराम्बाने प्रसन्न होकर स्वप्नमें कामदेवको अत्यन्त गुप्त 'पञ्चदशी विद्या' का उपदेश दिया। दिव्य वर्षत्रयतक कामदेवने एकाग्रभावसे श्रीमाताकी आराधना की। भगवतीने प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया और 'काम! आजसे तुम अजेय हुए'—यह कहते हुए अपने धनुष और शरोंसे धनुष तथा शर उत्पन्नकर उन्होंने कामदेवको सौंप दिये।

दक्षयज्ञमें पतिनिन्दा सुनकर भस्मीभूत सतीरूपा गौरी नभोरूपमें स्थित हो गयीं और कुछ समय बाद हिमाचलकी कठोर आराधनासे प्रसन्न होकर उन्होंने उसकी कन्या बनना स्वीकार कर लिया। कालान्तरमें वे पर्वतराजपुत्री उमारूपमें प्रकट हुईं।

इधर तारकासुर-वधमें शिवपुत्रको सेनापति बनाना आवश्यक समझकर इन्द्रने शिवका तपोभंग करनेके लिये कामको आज्ञा दी; किंतु गौरीके समक्ष ही शिवजीने अपने तृतीय नेत्रसे कामको दग्ध कर डाला।

(५) **भारती**—एक बार ब्रह्मदेवकी सभामें देवर्षिद्वारा सावित्रीकी स्तुति सुनकर ब्रह्मदेवने उसका उपहास किया। सावित्रीने इसे अपना अपमान समझकर ब्रह्मदेवको खूब फटकार सुनायी; तब ब्रह्माजी बिगड़कर बोले—'पतिका अपमान करनेवाली तुम पत्नीत्वके योग्य नहीं रही। आजसे यज्ञोंमें मेरे साथ न बैठ सकोगी।' सावित्रीने भी बिगड़कर कहा—'यदि मैं तुम्हारी पत्नी होने योग्य नहीं तो शूद्रकन्या तुम्हारी पत्नी होगी।'

दोनोंके क्रोधसे जगत्‌में व्याकुलता देखकर हरि और हरने दोनोंको आश्वस्त करते हुए कहा कि 'देहान्तरमें सावित्री ही शूद्रकन्या होगी।' फिर भी ब्रह्मा और सावित्री पूर्णतः शान्त नहीं हुए। ब्रह्माने सावित्रीको 'शूद्रकन्या-जन्ममें पूर्व-वृत्तान्तका स्मरण न रहनेका शाप दिया तो प्रत्युत्तरमें सावित्रीने भी ब्रह्माजीको निन्द्य-स्त्रीमें कामुक होनेका शाप दिया।'

एक बार ब्रह्माजीने यज्ञ करनेका विचार किया और सावित्रीको बुलाया, किंतु वह न आयीं। मुहूर्तका अतिक्रमण होनेके भयसे विष्णुने भूतलसे एक गोपकन्या लाकर उससे ब्रह्माका विवाह कर दिया और यज्ञ यथाविधि पूरा हो गया। इससे सावित्री अत्यन्त क्रुद्ध हुईं, उनके क्रोधसे त्रैलोक्य जलने लगा। तब पार्वतीकी प्रार्थनापर त्रिपुराम्बाने आविर्भूत होकर सावित्रीको शान्त किया। यही 'भारती' हुईं।

(६) **काली**—एक बार आदिदैत्य मधु और कैटभके कुलमें उत्पन्न शुम्भ-निशुम्भ नामके दो दैत्योंने उग्र तपस्या करके ब्रह्माजीसे पुरुषमात्रसे अजेय होनेका वर प्राप्त कर लिया। फिर क्या था? तीनों लोकोंपर उन दोनों असुर-बन्धुओंने आक्रमण किया। सारे देवता स्वर्गसे निर्वासित कर दिये गये। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवसहित इन्द्रादि देवोंने जाह्नवी-तटपर '**नमो देव्यै**' इस स्तोत्रसे त्रिपुराम्बाकी स्तुति की। त्रिपुराम्बाने प्रसन्न होकर गौरीको भेजा। गौरीने देवोंका वृत्तान्त सुनकर कालीका रूप धारण किया और शुम्भ-निशुम्भद्वारा प्रेषित असुर-सेनापति चण्ड और मुण्ड नामक दैत्योंका वध किया।

(७) **चण्डिका** और (८) **कात्यायनी**—भगवती श्रीविद्याके छठे, सातवें, आठवें अवतारोंकी कथाएँ 'श्रीदुर्गा-सप्तशतीस्तोत्र' में प्रसिद्ध तथा सर्वविदित हैं। अतएव यहाँ स्थानाभावके कारण उसका विशेष उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

(९) **दुर्गा**—महिषासुरको मारनेके लिये महालक्ष्मी दुर्गारूपमें माँ श्रीविद्याने अवतार ग्रहण किया। यह कथा भी 'श्रीदुर्गासप्तशती' के मध्यमचरित्रमें प्रसिद्ध है।

(१०) **ललिता**—पूर्वकालमें भण्ड नामक एक असुरने श्रीशिवजीकी आराधना की और उनसे अभयरूप वर प्राप्तकर वह त्रिलोकीका अधिपति बन बैठा। उसने देवताओंके हविर्भागका भी स्वयं ही भोग आरम्भ कर दिया। इन्द्राणीको भी वह हरनेकी बात सोचने लगा तो वे भयसे गौरीके

निकट आश्रयार्थ पहुँचीं। इधर भण्डने 'विशुक्र' को पृथिवीका और 'विषङ्ग'को पातालका आधिपत्य सौंप दिया और स्वयं इन्द्रासनपर आरूढ होकर इन्द्रादि देवताओंको अपनी पालकी ढोनेमें नियुक्त किया। दयावश शुक्राचार्यजीने इन्द्रादिकोंको इस दुर्गतिसे मुक्त किया। भण्ड दैत्यने असुरोंकी मूल राजधानी 'शोणितपुर'को मयासुरद्वारा स्वर्गसे भी सुन्दर बनवाकर उसका नया नाम 'शून्यकपुर' रखा और वहीं वह राज्य करने लगा।

स्वर्गको तो दैत्यराज भण्डने नष्ट कर ही डाला, दिक्पालोंके स्थानोंपर भी अपने दैत्योंको बैठा दिया! इस प्रकार एक सौ पाँच ब्रह्माण्डोंपर भण्डने आक्रमण किये और उन सबको अपने अधिकारमें कर लिया।

इसके पश्चात् पुनः भण्ड दैत्यने घोर तपस्या करके शिवजीसे अमरत्वका वरदान प्राप्त कर लिया। 'इन्द्राणीने गौरीका आश्रय लिया है', यह जानकर वह कैलास पहुँचा और गणेशजीकी भर्त्सनाकर उनसे इन्द्राणीको अपने लिये माँगने लगा।

गणेशजी बिगड़कर प्रमथादि गणोंको साथ लेकर उससे युद्ध करने लगे। पुत्रको युद्धमें प्रवृत्त देखकर उसकी सहायताके लिये गौरी अपनी कोटि-कोटि शक्तियोंके साथ युद्धस्थलमें उतरीं और दैत्योंसे युद्ध करने लगीं। इधर गणेशजीकी गदाके प्रहारसे मूर्च्छित होकर पुनः प्रकृतिस्थ होते ही भण्डासुरने उन्हें अंकुशके आघातसे मार गिराया। गौरी यह देखकर बहुत क्रुद्ध हुईं और हुंकारसे भण्डको बाँधकर ज्यों ही मारनेके लिये उद्यत हुईं, त्यों ही ब्रह्माजीने गौरीको शंकरजीके अमरत्व-वरका स्मरण दिलाया। विवश होकर गौरीने उसे छोड़ दिया।

इस प्रकार भण्ड दैत्यसे त्रस्त हो उठनेपर इन्द्रादि देवोंने गुरुके आज्ञानुसार हिमाचलमें त्रिपुरादेवीके उद्देश्यसे 'तान्त्रिक महायाग' आरम्भ कर दिया। अन्तिम दिन याग समाप्तकर जब देवगण माता श्रीविद्याकी स्तुति कर रहे थे, तब उसी क्षण यज्ञकुण्डकी ज्वालाके बीचसे महाशब्दपूर्वक अत्यन्त तेजस्विनी 'त्रिपुराम्बा' प्रादुर्भूत हुईं। उस महाशब्दको सुनकर तथा लोकोत्तर प्रकाशपुञ्जको देखकर गुरु बृहस्पतिको छोड़ सभी देव अन्धे-बहरे होकर मूर्च्छित हो गये।

गुरु बृहस्पति तथा ब्रह्माने हर्षपूर्वक गद्गद-स्वरसे श्रीविद्यामाताकी स्तुति की। श्रीमाताने प्रसन्न होकर उनका अभीष्ट पूछा। उन्होंने भी भण्डासुरकी कथा सुनाकर उसके नाशकी प्रार्थना की। माताने उसे मारना स्वीकार किया और मूर्च्छित इन्द्रादि देवोंको अपनी अमृतमय कृपा-दृष्टिसे चैतन्य प्रदान किया तथा अपने दर्शनकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये उन्हें विशेषरूपसे तपस्या करनेकी आवश्यकता बतलायी। देवता लोग भी माताके आज्ञानुसार तपस्यामें जुट गये।

इधर भण्डासुरने देवोंपर धावा बोल दिया। कोटि-कोटि सैनिकोंके साथ आते हुए भण्ड दैत्यको देखकर देवोंने त्रिपुराम्बाकी प्रार्थना करते हुए अग्नि-कुण्डमें अपने शरीरोंका होम देना शुरू कर दिया। त्रिपुराम्बाके आज्ञानुसार 'ज्वालामालिनी' शक्तिने देवगणोंके चारों ओर ज्वालामण्डल प्रकट कर दिया। देवोंको ज्वालामें भस्मीभूत समझकर भण्ड दैत्य सैन्यके साथ वापस चला गया।

दैत्यके जानेके बाद देवतागण अपने अवशिष्टाङ्गोंकी पूर्णाहुति करनेके लिये ज्यों ही उद्यत हुए, त्यों ही ज्वालाके मध्यसे तडित्पुञ्जनिभा 'त्रिपुराम्बा' आविर्भूत हुईं। देवोंने जयघोषपूर्वक पूजनादिद्वारा उन्हें संतुष्ट किया। देवोंको अपना दर्शन सुलभ हो, इसलिये श्रीमाताने विश्वकर्माके द्वारा सुमेरु-शृंगपर निर्मित श्रीनगरमें सर्वदा निवास करना स्वीकार कर लिया।

इसके बाद श्रीमाताने देवोंकी प्रार्थनाके अनुसार श्रीचक्रराज रथपर आरूढ होकर भण्ड दैत्यको मारनेके लिये प्रस्थान किया। दोनोंके बीच महाभयानक युद्ध हुआ। श्रीमाताके कुमार श्रीमहागणपति तथा कुमारी बालाम्बाने भी युद्धमें अत्यधिक पराक्रम दिखाया। श्रीमाताकी मुख्य दो शक्तियों १-मन्त्रिणी 'राज मातङ्गीश्वरी' और २—दण्डिनी 'वाराही' सहित अन्य अनेक शक्तियोंने अपने प्रबल पराक्रमसे दैत्य-सैन्यमें खलबली मचा दी।

अन्तमें बड़ी कठिनाईसे जब श्रीमाताने महाकामेश्वरास्त्र चलाया, तब सपरिवार भण्ड दैत्य कथाशेष हो गया। देवोंका भय दूर हो गया और वे स्वर्गमें अपने-अपने स्थानोंपर पूर्ववत् अधिष्ठित हो गये। दैत्यद्वारा आक्रान्त एक सौ पाँच ब्रह्माण्डोंमें भी चैनकी वंशी बजने लगी।

* * *

विविध देवों तथा अवतारोंकी लीलाएँ

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी आदर्श लीलाकी एक झाँकी

(मानसमर्मज्ञ, आचार्यप्रवर पं० श्रीसच्चिदानन्ददासजी रामायणी महाराज)

हिन्दी विश्वकोशके अनुसार 'लीला' शब्दके कई पर्यायवाची शब्द हैं—केलि, क्रीडा, खेल, रहस्यमय व्यापार और मनुष्योंके हितके लिये ईश्वरावतारोंका अभिनय, चरित्र तथा लीलादि।

श्रीरामभक्ति-साहित्यमें परमात्मा श्रीरामकी लीलाओंके प्रमुखतः तीन प्रकार बताये गये हैं—(१) नित्य, (२) अवतरित एवं (३) अनुकरणात्मक। इन्हीं तीनों लीलाओंको कहीं-कहीं 'अक्षर', 'वास्तविक' तथा 'व्यावहारिक' लीला भी कहा गया है।

[१] परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जो लीलाएँ दिव्यधाम साकेतमें अनवरत चलती रहती हैं, उन दिव्य लीलाओंको 'नित्य-लीला' कहा गया है।

[२] जीवोंके उद्धारकी इच्छासे जो लीलाएँ धराधामपर होती रहती हैं, उन्हें 'अवतरित-लीला'के नामसे जाना जाता है।

[३] जिन परम दिव्य लीलाओंको प्रेमी भक्तोंद्वारा यत्र-तत्र लीलाभिनय (श्रीरामलीला)-के रूपमें किया जाता है, उन्हें 'अनुकरणात्मक-लीला' कहा गया है।

प्रकट और अप्रकटके भेदसे भूमण्डलपर 'अवतरित' अवतारकालीन लीलाओंके भी दो प्रकार हैं—'**सा लीला प्रकटाप्रकटभेदेन द्विविधा।**' पद्मपुराणमें भी कहा गया है—'**प्रकटाप्रकटा चेति लीला सेयं द्विधोच्यते।**' जब प्रभु श्रीरामकी इच्छासे उनकी लीलाएँ विविध ब्रह्माण्डोंमें गोचरीभूत होती हैं, तब उन्हीं लीलाओंको 'प्रकटलीला' कहते हैं और जो लीलामें गोचरीभूत नहीं हो पातीं, उन्हें 'अप्रकटलीला' कहते हैं। जैसे भास्कर प्रभामय, वारि रसमय तथा वायु प्रवाहमय है, उसी प्रकार अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक परब्रह्म परमात्मा श्रीराम भी लीलामय हैं।

भूतलपर भी मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामकी प्रकट लीलाएँ अनन्त हैं। उन्हीं अवतरित-प्रकट लीलाओंसे मानवोंके लिये अत्यन्त प्रेरणाप्रद एक आदर्श-लीलाकी झाँकी प्रस्तुत है—

'**एकपत्नीव्रती रामो मर्यादापुरुषोत्तमः।**' यह शास्त्रवाक्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। स्वयं भगवान् श्रीरामने भी मिथिलाकी फुलवारी-लीलामें अत्यन्त विश्वासपूर्वक अपनी मानसिक प्रवृत्तिका उद्घोष किया है। यथा—

अत्यन्तमस्ति विश्वासो मह्यं तु मम चेतसः।
कदाप्यनेन स्वप्नेऽपि परस्त्री नावलोकिता॥

तात्पर्य मुझे अपने मनपर पूरा-पूरा विश्वास है कि वह स्वप्नकालमें भी परायी नारीकी ओर नहीं देख सकता।

और-तो-और महर्षि प्राचेतसने भी श्रीरामायणके एक प्रसंगमें वर्णन किया है—

कच्चिन्न परदारान् वा राजपुत्रोऽभिमन्यते।
कस्मात् स दण्डकारण्ये भ्राता रामो विवासितः॥
(वा०रा० २। ७२। ४५)

ननिहालसे लौटनेके पश्चात् धर्मज्ञ राजकुमार भरतने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके निर्वासित होनेका कारण पूछते हुए कहते हैं—'राजकुमार श्रीरामका मन किसी परायी स्त्रीकी ओर तो नहीं चला गया था? किस अपराधके कारण भैया श्रीरामको दण्डकारण्यमें जानेके लिये निर्वासित कर दिया गया है?'

तब श्रीभरतसे वनवासदायिनी कैकेयीने भी इस प्रकार उत्तर दिया था—'वे तो परायी स्त्रीको आँखसे भी नहीं देखते।' यथा—

न रामः परदारान् स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति॥
(वा०रा० २। ७२। ४८)

गोस्वामीजीने लिखा है—*'बैरिउ राम बड़ाई करहीं।'* ऐसे थे मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम। श्रीरामचरितमानसमें भी प्रभु श्रीरामने स्वयं अपना मन्तव्य दिया है—

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥

(रा०च०मा० १। २३१। ६)

श्रीभगवान्‌ने अपने इस आदर्श कथनको श्रीरामावतारकी लीलाओंमें पूर्णतः चरितार्थ करते हुए श्रीजानकीजीके अतिरिक्त संसारकी सम्पूर्ण नारियोंके प्रति मातृभाव रखकर जगत्‌में एक उच्चतम आदर्शकी स्थापना की है।

आनन्दरामायणमें भी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको 'एकपत्नीव्रती' और 'पवित्र राजर्षि' कहा गया है—

एकपत्नीव्रतो रामो राजर्षिः सर्वदा शुचिः॥

(आनन्द०रा०सार० १३। २०५)

आगे चलकर स्वयं भगवान् श्रीराघवेन्द्रने अपने इस श्रेष्ठतम व्रतपर जोर देते हुए श्रीसीताजीसे कहा—'मैं एकपत्नीव्रती हूँ, मेरे लिये तुम्हें छोड़कर अन्य सारी नारियाँ माता कौसल्याजीके समान हैं। तुम मुझसे इस प्रकार अन्यथा बात क्यों कह रही हो?' यथा—

एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति कौसल्यासदृशी मम।
अन्या स्त्रीति मृषा वाक्यं कत्थसे त्वं पुनः पुनः॥

(आनन्द०रा० विलास० ८। ६३)

इसके अतिरिक्त भी यह पंक्ति प्रसिद्ध है—'**रामचन्द्रः परान् दारान् नाभिवीक्षते।**' '**मातृवत् परदारेषु……।**' एवं *'जननी सम जानहिं परनारी।'* इत्यादि पंक्तियाँ निम्नलिखित लीला-झाँकीसे पूर्ण चरितार्थ होती हैं।

लंकेश दशाननके मरणोपरान्त महारानी मन्दोदरी अन्य बहुत-सी रानियोंसहित रणाङ्गणमें रुदन एवं विलाप कर रही थीं। श्रीरामानुज वीर लक्ष्मणजीके समझानेपर विभीषणने शोकमुक्त होकर महारानी मन्दोदरीको जैसे-तैसे समझा-बुझाकर राजमहलमें भेज दिया। परम विदुषी माननीया महारानी शोकनिवृत्त होकर रनिवासमें तो आ गयी, परंतु अपने पराक्रमी प्रियतमकी मृत्युपर उसके हृदयमें एक जिज्ञासा उभरने लगी और वह धीरे-धीरे बलवती होती गयी। यद्यपि यशस्विनी मयनन्दिनी भगवान् श्रीरामकी भगवत्तासे परिचित थी, फिर भी पतिकी मृत्युसे वह व्याकुल हो उठी। उसने अपने-आपको समझानेका बहुत प्रयास किया—'श्रीराम साक्षात् परब्रह्म हैं, वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके स्वामी हैं। जगन्नियन्ता, जगन्नाथ-रघुनाथके समक्ष भला उसके स्वामी दशग्रीवकी बिसात ही क्या!

उन अतुल बलशाली विश्वविजेता महाराज रावणका, दो मानवकुमारों एवं ऋक्ष-वानरोंकी सेनाद्वारा इस प्रकार असहायावस्थामें मारा जाना सर्वथा अस्वाभाविक है। निश्चय ही मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराममें कुछ ऐसे मानवोचित विशिष्ट गुण अवस्थित हैं, जो मेरे प्राणवल्लभ लंकेश्वरमें नहीं थे।

'मैं मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी मर्यादा-परीक्षण करूँगी और परीक्षा-हेतु उनका दर्शन करने जाऊँगी।' महारानी लंकेश्वरीने दृढ़ निर्णय करके अपनेको षोडशोचित शृंगारसे सुसज्जित कर लिया और वे श्रीरामके दर्शनार्थ चल पड़ीं।

सोलहों शृंगारसे सज्जित महारानीका लोकोत्तर सौन्दर्य अद्भुत दिखायी देने लगा। महारानी लंकेश्वरीने अपनी एक परिचारिका भेजकर विभीषणको बुलवाया। उनके आनेपर राजेश्वरीने अपनी अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहा—'सुव्रत! मैं मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करना चाहती हूँ। आप इसके लिये शीघ्र ही समुचित व्यवस्था करानेकी कृपा कर दें।'

लंकेश्वरीके संकेतमात्रसे महाराज विभीषणने राजकीय साज-सज्जासे सुसज्जित स्वर्णभूषिता एक सुन्दर शिविकाकी व्यवस्था कर दी।

महारानी राजकीय सवारीपर बैठ गयीं और वाहक प्रसन्नतापूर्वक उठाकर ले चले। उस समय लंकेश्वरीके आगे-पीछे, दायें-बाँयें सैकड़ों अङ्गरक्षक सैनिक चल रहे थे। महाराज विभीषणने आगे बढ़कर वानरेश सुग्रीवसे मिलकर सूचना देते हुए कहा—'महारानी मन्दोदरी शिविकारूढ़ होकर प्रभु-दर्शनार्थ आ रही हैं।'

कपीश्वर सुग्रीवजीके संकेतानुसार ऋक्षों-वानरोंकी सेना दो पंक्तियोंमें सुव्यवस्थित होकर खड़ी हो गयी। इसके पश्चात् वानरेशने श्रीरघुनाथजीसे महारानी मन्दोदरीके आगमनकी सूचना दी। सुनते ही मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम और श्रील

दोनों बन्धुओंके नेत्र धरतीकी ओर उन्मुख हो गये। उसी समय महारानी मन्दोदरीने शिविकासे नीचे उतरकर आगे बढ़कर दोनों भाइयोंको दोनों हाथ जोड़कर शीश झुकाकर नमन किया। महाराज सुग्रीवने श्रीरघुनाथजीसे निवेदन करते हुए कहा—

इयमियं त्वयि दानवनंदिनी त्रिदशनाथजितः प्रसवस्थली।
किमपरं दशकन्धरगेहिनी त्वयि करोति करद्वययोजनम्॥

(हनुमन्नाटक १४। ५८)

अर्थात् हे प्रभो! ये असुरोंके विश्वकर्मा मयदानवकी पुत्री, महाराज दशग्रीव रावणकी महारानी, सर्वदा तीसरी दशा (अवस्था)-से युक्त, देवों और उनके स्वामी इन्द्रको भी परास्त करनेवाले, वीरवर इन्द्रजित्को उत्पन्न करनेवाली, मेघनादकी माताजी आपको करबद्ध हो प्रणाम कर रही हैं।

महाराज सुग्रीवकी बात सुनकर सूर्यकुल-भूषण श्रीरामने नीचे मुख किये हुए ही कहा—'महारानी मन्दोदरीकी क्या आज्ञा है?'

मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामका मर्यादित व्यवहार तथा उनकी अमृतमयी विनम्र वाणी श्रवण करते ही महारानीकी समस्त जिज्ञासाओंका तत्काल समाधान हो गया। उसका हृदय शीतल होकर आनन्दसे रोम-रोम पुलकित हो उठा और वह भुवनमोहन श्रीराघवेन्द्रका जयघोष करती हुई बोल पड़ी—'मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मणकी सदा जय हो, सदा जय हो!'

'श्रीराम! आपकी जन्मदायिनी माता कौसल्या धन्य हैं, जिन्होंने आप-जैसे सदाचारी, धर्मव्रती, शीलवान्, मर्यादापालक पुत्रको जन्म देनेका सौभाग्य प्राप्त किया। आपके जन्मदाता धर्मात्मा पिताश्री धन्यवादके पात्र हैं, जिन्होंने आप-जैसे कीर्तिमान्, गुणवान्, बलवान् पुत्रको उत्पन्न करनेका सौभाग्य प्राप्त किया। आपका श्रेष्ठतम सूर्यवंश-कुल धन्य है, जिसमें आप-जैसे मर्यादापालक, पुरुषोत्तम, महावीर पैदा हुए हैं, जो कभी भी परायी स्त्रियोंकी ओर आँख उठाकर देखते तक नहीं—

धन्या राम त्वया माता धन्यो राम त्वया पिता।
धन्यो राम त्वया वंशः परदारान्न पश्यसि॥

(हनुमन्नाटक १४। ५९)

'हनुमन्नाटक'में महारानी मन्दोदरीका कथन स्पष्टतः प्रमाणित करता है कि श्रीरामजीके लिये गोस्वामीजीने सत्य ही लिखा है—*'बैरिउ राम बड़ाई करहीं।'*

महारानीके ज्ञान-नेत्र खुल चुके थे, वह मन-ही-मन विचारोंमें खो गयी—'मेरे परम प्रतापी प्रियतम महाराज रावणमें यह चरित्रबल नहीं था, इसीके कारण वे भ्राता, पुत्र तथा पौत्रोंसहित रणाङ्गणमें मारे गये। सदाचार-परायण धर्मज्ञ श्रीविभीषणजीने यही सुझाव तो भरी राजसभामें उस समय दिया था—

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥

(रा०च०मा० ५। ३८। ५-६)

'पर हा हन्त! महाराज रावणने उनके कथनकी अवहेलना करके उसपर ध्यान नहीं दिया, बल्कि अपने प्रिय सदाचारी भ्राताको लंकासे निकाल दिया। उसी आचारहीनता-चारित्रिक दोषके परिणाम-स्वरूप आज वे रणभूमिमें सदाके लिये सो रहे हैं।'

अन्तमें महारानी मन्दोदरीने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके परम पावन चरणारविन्दमें नमन किया और प्रभुका आशीर्वाद लेकर राजमहल लौट गयीं। महाराज सुग्रीवने उसे ससम्मान श्रीविभीषणजीके साथ लंकामें विदा कर दिया।

इस प्रकार उपर्युक्त लीला-झाँकीमें श्रीरघुनाथजीने '**मातृवत् परदारेषु**' को पूर्णतः चरितार्थ किया। गोस्वामीजीके कथनानुसार भगवान् श्रीरामके भक्तोंको भी—*'जननी सम जानहिं परनारी'*-के अनुसार अपनेको चरित्रवान् बनाना चाहिये। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके लिये यह प्रसिद्ध श्लोक है—

एकपत्नीव्रती रामो श्रुतिमर्यादापालकः।
जनकजां तु परित्यज्य सर्वाः कौसल्यासमाः॥

* * *

सेतुबन्ध भगवान् रामकी अद्भुत लीला

(डॉ० श्रीओमप्रकाशजी द्विवेदी)

भगवान्का सगुण-साकार अवतार भक्तोंको दिव्यता प्रदान करने-हेतु तथा धर्मसंस्थापनार्थ एवं दुष्टोंके विनाशके लिये होता है। भगवान् अपने हर अवतारमें नरलीला करते हैं, जिसके यशको गाकर-सुनकर भक्त अनायास संसार-सागरसे पार उतर जाते हैं।

भगवान् अपनी सेनासहित समुद्रतटपर खड़े हैं। समुद्र शरणागत हो गया है। शरणागतकी रक्षा भगवान् करते हैं। अतः समुद्रकी बात ध्यानसे सुनकर उसकी पीडा हरण करते हैं। समुद्रने अपने बन्धनका उपाय नल-नीलको प्राप्त वरदान बताया और पूर्ण सहयोगका वचन देकर चला गया। जिसमें भगवान् रामकी आश्चर्यमय लीला ही प्रधानरूपसे कारण थी। जिससे ४०० कोस लंबा और ४० कोस चौड़ा पुल बनकर तैयार हो सका। समुद्रका जल पुल बननेतक स्थिर रहा। उसमें ज्वारभाटा भी नहीं आया, किसी प्रकारकी हलचल तक न हुई। जब रामने जाम्बवान्को सेतु-रचनाकी आज्ञा दी तो जाम्बवान्ने कहा—'प्रभु! आपका नाम ही सेतु है, जिसपर चढ़कर भक्तजन अत्यन्त दुर्गम संसार-सागरको पार करनेमें सफल हो जाते हैं। इस लघु समुद्रकी बात ही क्या है?'—

सुनहु भानुकुल केतु जामवंत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भव सागर तरहिं॥
(रा०च०मा० ६। सो० २)

यहाँ संसार एवं समुद्रपर विचार करना आवश्यक है। विनय-पत्रिकामें कहा गया है कि संसारमें देहाभिमान अत्यन्त भयंकर, अथाह, अपार, दुस्तर समुद्र है, जिसमें राग-द्वेष और कामनारूपी अनेक घड़ियाल हैं। आसक्ति एवं संकल्पोंकी लहरें उठ रही हैं। परम वैराग्यवान् हनुमान्जीकी सहायता एवं मोक्षके साधन-स्वरूप बंदर-भालुओंके सहयोगसे संसार-सागरको वीर, धीर एवं गम्भीर जन ही पार करते हैं।

सेतु-बन्धन-लीला भगवान्के अतुलित बल, पराक्रम एवं सौन्दर्यका ही द्योतक है। आनन्दरामायण (१। १०। ६५)-में आया है कि नल-नील अपने चंचल-स्वभावके कारण ऋषियोंके शालग्रामको जलमें फेंक देते थे। एक बार ऋषियोंने शाप दिया कि तुम्हारे द्वारा फेंके गये पत्थर जलमें नहीं डूबेंगे वरन् तैरेंगे। आज वही शाप भगवान्के पुल बाँधते समय वरदान बन गया। यही बात समुद्रने भी बताई थी। आज्ञा पाते ही बंदर-भालु अपने पुल बनानेके कार्यमें जुट गये—

अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाइ॥
(रा०च०मा०६। १

अर्थात् बंदर-भालु बहुत ऊँचे-ऊँचे पर्वतों और वृक्षोंको खेलकी तरह आसानीसे उठा लेते हैं और ला-लाकर नल-नीलको देते हैं। वे उन वृक्षों एवं पर्वतखण्डोंको सुव्यवस्थित करके सुन्दर सेतुका निर्माण करते हैं।

संतोंके मुखसे सुना है कि नल-नीलके स्पर्शसे पत्थर जलमें तैरते हुए दूर-दूरतक फैलने लगे। इस अवसरपर हनुमान्जीने एक पर्वत-खण्डपर 'रा' और दूसरेपर 'म' लिख दिया, जिससे '*ब्रह्म जीव इव सहज सँघाती*' के समान पत्थर एक दूसरेसे जुड़ने लगे, वे जलपर स्थिर हो गये और सेतुका कार्य आगे बढ़ने लगा। विनय-पत्रिकामें कहा गया है—

जयति पाथोधि-पाषाण-जलयानकर।
(वि०-प०२६।

अर्थात् (हे हनुमान्जी!) आप समुद्रपर पत्थरका पुल बाँधनेवाले हैं। आपकी जय हो!

—इस प्रसंगमें एक और सुन्दर लीला-कथा सुननेमें मिलती है। भगवान् श्रीरामने हनुमान्जीसे कहा कि इस महायज्ञमें मैं भी एक-दो पत्थर आहुति-स्वरूप डालना चाहता हूँ। भगवान्ने एक पत्थर डाला, वह डूब गया। आश्चर्यचकित होकर हनुमान्जीसे श्रीरामने डूबनेका कारण पूछा। हनुमान्जीने कहा—'भगवन्! आप जिसे छोड़ देंगे, वह तो डूब ही जायगा।'

इस सेतु-बन्धन-लीलाको देखनेके लिये समुद्रके जलचर अपना स्वाभाविक वैर त्यागकर जलके ऊपर आ गये और मन्त्र-मुग्ध हो अपने अपलक नेत्रोंसे भगवान्को निहारने लगे। अपनी कुटिलता भूल गये और

समानान्तर पुलके रूपमें बंदर-भालुओंकी सहायता-हेतु तैयार हो गये—

सेतु बंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं॥

(रा०च०मा० ६। ४)

अर्थात् सेतुबन्धपर बड़ी भीड़ हो गयी, इससे कुछ वानर आकाश-मार्गसे उड़ने लगे और दूसरे कितने ही जलचर-जीवोंपर चढ़-चढ़कर पार जाने लगे। सच है, जब कुटिल जीव अपनी कुटिलता छोड़कर भगवान्के सम्मुख होता है तो वह पवित्र एवं परोपकारी बन जाता है। स्वयं तरता है और दूसरोंको भी संसार-सागर पार करानेमें समर्थ हो जाता है।

पुल बन जानेपर वह स्थल भगवान्को अत्यन्त रमणीय लगा। उस उत्तम धरणीपर भगवान्ने शिवलिङ्गकी विधिवत् स्थापना की। भगवान्ने रामेश्वर-दर्शनकी महिमाका सप्रेम वर्णन किया, जिसे भक्त स्मरणकर आज भी हर्षित, पुलकित एवं आनन्दित होते हैं।

रावणने जल, थल, नभ सर्वत्र ऐसी व्यवस्था की थी कि लंकामें कोई प्रवेश न कर सके। लंकामें प्रवेश करनेवाली परछाईं तक भी पकड़में आ जाय—ऐसी सशक्त सुरक्षा-व्यवस्था थी। सिंहिका जो जलमें परछाईंको पकड़कर जीवोंको खाती थी, वह भी रुद्रावतार हनुमान्जीके हाथों सद्गतिको प्राप्त हुई। लंकिनी लंकाके द्वारपर रक्षिका थी। रोकनेपर हनुमान्जीने उसपर भी मुष्टिका-प्रहार किया, जिससे मुखसे रक्त वमन करती हुई वह भूमिपर गिरी और उसे ब्रह्माके वचनकी स्मृति हो आयी तथा हनुमान्जीसे सत्संगकी महिमाका वर्णन करने लगी—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(रा०च०मा० ५। ४)

अर्थात् हे तात! स्वर्ग और मोक्षके सब सुखोंको तराजूके एक पलड़ेपर रखा जाय तो भी वे सब मिलकर उस सुखके बराबर नहीं हो सकते, जो लवमात्रके सत्संगसे होता है।

भगवान्के न्याय-मार्गपर चलनेमें जड-चेतन सभीने पूर्ण सहायता की। जड समुद्रने भी चेतन-स्वरूप होकर व्यवहार किया। राक्षसियाँ हनुमान्जीके लिये अनुकूल हो गयीं। इस प्रकार भगवान्की लीला-कृपाके फलस्वरूप लंका जानेका मार्ग प्रशस्त हो गया। सेतुसे सारी सेना पार उतर गयी। सेतुबन्धकी आश्चर्यमयी घटना सुनकर रावणका चित्त भ्रमित हो गया। व्याकुलतामें अपने दसों मुखसे बोल उठा—

बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥

(रा०च०मा० ६। ५)

अर्थात् वननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिन्धु, वारीश, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोनिधि, नदीशको क्या सचमुच ही बाँध लिया है?

मन्दोदरीने सेतु बननेपर रावणको समझाया कि वे दोनों तापस-बन्धु अवतारी हैं, भूभार-हरण-हेतु अवतरित हुए हैं। इनसे वैर न कीजिये। सीताजीको लौटा दीजिये। पुत्र प्रहस्तने भी जब श्रीरामके विषयमें ऐसा सुना, तब उसने भी रावणको समझाया—

जेहिं बारीस बँधायउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुबेला॥
सो भनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई॥

(रा०च०मा० ६। ९। ५-६)

'हे तात! जिन्होंने खेलमें समुद्र बाँध लिया। सेनासहित इस पार लंकामें आ गये, वे कोई साधारण मनुष्य नहीं हो सकते हैं। इनके इस अद्भुत प्रभावको समझते हुए शीघ्र ही सीताजीको लौटाकर मैत्री कीजिये; परंतु हठी रावणने किसीकी बात नहीं मानी, जिसका कुफल उसे आगे भोगना पड़ा।

आज इसी रावणवृत्तिपरक हठवादिताके कारण कुण्ठा, संत्रास और तनावके युगमें हमारी सामाजिक व्यवस्था बिखर रही है। मानव-सम्बन्ध टूट-से रहे हैं। इस विखण्डनको रोकनेकी शक्ति भारतीय संस्कृतिमें है। राम-कृष्णके लीला-चरित्र टूटे एवं बिखरे समाजको जोड़नेके लिये सेतु हैं। भगवान्की लीला-कथाएँ उत्ससे युक्त हैं। ऐसे उनकी लीला-चरित्रकी श्रेष्ठताका प्रभाव जब हमारे जीवनपर पड़ता है तब हमारे कर्म, भाव तथा आचरण दिव्य बन जाते हैं।

काकभुशुण्डिजीने मानसके उत्तरकाण्डमें कथाकी पूर्णाहुतिके

अवसरपर गरुडजीको मधुर अमृतमय वाणीमें समझाते हुए कहते हैं कि भगवान् लीलावपुधारी हैं, लीला-विहारी हैं, नटवरनागर हैं—

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥
(रा०च०मा० ७। ७२ (ख))

असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी॥
(रा०च०मा० ७। ३१। १)

अर्थात् जैसे नट अनेक प्रकारकी नृत्यभाव-लीलाएँ करता है, जिसका असर भिन्न-भिन्न लोगोंपर भिन्न-भिन्न प्रकारसे होता है, पर नट स्वयं अप्रभावित रहता है। उसी प्रकार भगवान् नर-तन धारण करके लीलाएँ करते हैं। दनुज उन लीलाओंसे विमोहित हो जाते हैं, पर भक्तजन-जिनकी स्वार्थबुद्धि कामनाएँ एवं अहंभाव नष्ट हो गये हैं, उन्हें ये लीलाएँ अत्यन्त सुखद प्रतीत होती हैं।

इस प्रकार भगवान्‌की सेतुबन्ध-लीला अद्भुत एवं प्रेरणाप्रद है। इसके स्मरण-मननसे भगवत्कृपाकी सात्त्विक अनुभूति होती है। हमारा जीवन दिव्य एवं धन्य बन जाता है।

* * *

कुमार कार्तिकेयकी लीला-कथा

प्रातःस्मरणीया भगवती सती अपने प्राणाधार महादेवजीका अपमान नहीं सह सकीं। अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने अपने पिता दक्षके यज्ञमें ही योगाग्निके द्वारा अपना शरीर भस्म कर दिया। फिर वे हिमगिरि-पत्नी मेनाकी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुईं। उन्होंने अपने जीवन-सर्वस्व शिवकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त कठोर तप किया। फलतः समयपर जगद्वन्द्य शिवके साथ उनका मङ्गल-परिणय हुआ। विवाहोपरान्त भगवान् शंकर पार्वतीके साथ कैलास पर्वतपर लौट आये और वहाँ वे पार्वतीके साथ सुखपूर्वक रहने लगे।

एक बारकी बात है, माता पार्वती एक सरोवरके तटपर गयीं। सरोवरका जल अत्यन्त निर्मल और स्वच्छ था। उसमें स्वर्ण-वर्णके कमल खिले थे। भगवती उमाने पहले तो जल-विहार किया, फिर उसके रमणीय तटपर उन्होंने स्वच्छ एवं सुमिष्ट जल पीनेकी इच्छा की। उसी समय उन्होंने देखा कि पद्मपत्रमें जल लेकर छः कृत्तिकाएँ अपने घर जानेवाली ही हैं।

'देवियो! पद्मपत्रमें रखा हुआ जल मैं भी पीना चाहती हूँ।' गिरिजाने कृत्तिकाओंसे अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा।

'भुवनपावनी देवि! हम तुम्हें एक शर्तपर यह जल दे सकती हैं।'

कृत्तिकाओंने स्नेहसिक्त स्वरमें माता पार्वतीसे निवेदन किया—'तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र हममें भी मातृभाव रखे और हमारा भी पुत्र माना जाय। वह त्रैलोक्यविख्यात पुत्र हमारा रक्षक हो।'

'अच्छा, ऐसा ही हो।' शिवाने तत्क्षण वचन दे दिया।

कृत्तिकाएँ अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने कमल-पत्रमें रखा हुआ स्वच्छ सलिल थोड़ा उमाको भी दिया। भगवती पार्वतीने कृत्तिकाओंके साथ उस मधुर जलका पान किया।

त्रिनेत्रकी प्राणवल्लभा पार्वतीके जल पीते ही तत्क्षण उनकी दाहिनी कोखसे एक रोग-शोक-निवारक परम तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। तिमिरारिके तुल्य उसके शरीरसे. प्रभापुञ्जका प्रसार हो रहा था। वह अग्नितुल्य तेजस्वी बालक स्वर्णके समान गौरवर्णका था। उसके मनोहर कर-कमलोंमें तीक्ष्ण शक्ति, शूल और अंकुश सुशोभित थे।

वह बालक कुत्सित दैत्योंके संहारके लिये प्रकट हुआ था, इस कारण 'कुमार' उसकी संज्ञा हुई। वह कृत्तिका-प्रदत्त जलसे शाखाओंसहित प्रकट हुआ था, वे कल्याणमयी शाखाएँ छहों मुखोंके रूपमें विस्तृत थीं, इन्हीं कारणोंसे वह विशाख, षण्मुख, स्कन्द, षडानन और कार्तिकेय आदि नामोंसे प्रख्यात हुआ।

स गर्भो दिव्यसंस्थानो दीप्तिमान् पावकप्रभः।
दिव्यं शरवणं प्राप्य ववृधे प्रियदर्शनः॥
ददृशुः कृत्तिकास्तं तु बालमर्कसमद्युतिम्।
जातस्नेहाच्च सौहार्दात् पुपुषुः स्तन्यविस्रवैः॥

अभवत् कार्तिकेयः स त्रैलोक्ये सचराचरे।
स्कन्नत्वात् स्कन्दतां प्राप्तो गुहावासाद् गुहोऽभवत्॥
(महा०, अनु० ८६। १२—१४)

'वह कान्तिमान् शिशु अग्निके समान प्रकाशित हो रहा था। उसके शरीरकी आकृति दिव्य थी। वह देखनेमें बहुत ही प्रिय जान पड़ता था। वह दिव्य सरकंडेके वनमें जन्म ग्रहण करके दिनोंदिन बढ़ने लगा। कृत्तिकाओंने देखा कि वह बालक अपनी कान्तिसे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा है। इससे उनके हृदयमें स्नेह उमड़ आया और वे सौहार्दवश अपने स्तनोंका दूध पिलाकर उसका पोषण करने लगीं। इसीसे चराचर प्राणियोंसहित त्रिलोकीमें वह 'कार्तिकेय'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। स्कन्दन (स्खलन)-के कारण वह 'स्कन्द' कहलाया और गुहामें वास करनेसे 'गुह' नामसे विख्यात हुआ।'

लोकपितामह ब्रह्मा, क्षीरोदधिशायी विष्णु, शचीपति इन्द्र और भगवान् भुवनभास्कर आदि समस्त देवताओंने चन्दन, माला, सुन्दर धूप, खिलौने, छत्र, चँवर, भूषण और अङ्गराग आदिके द्वारा कुमार षड्वदनका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया। भगवान् श्रीविष्णुने उन्हें सब प्रकारके आयुध प्रदान किये। धनाधिपति कुबेर, अग्नि और वायुने उन्हें क्रमशः दस लाख यक्षोंकी सेना और वाहन अर्पित किये। सुर-समुदायने कुमार कार्तिकेयको अनन्त पदार्थ समर्पित किये। तदनन्तर देवताओंने घुटने टेककर स्कन्दकी स्तुति-प्रार्थना की।[1]

'देवताओ! आप लोग शान्त होकर बताइये कि मैं आपकी कौन-सी इच्छा पूरी करूँ?' देवताओंकी स्तुतिसे संतुष्ट होकर कुमारने उनसे कहा—'यदि आपके मनमें चिरकालसे कोई असाध्य कार्य भी करनेकी इच्छा हो तो कहिये।'

'कुमार! तारक नामक प्रख्यात असुरराज सुर-समुदायका सर्वनाश कर रहा है।' देवताओंने अत्यन्त मधुर वाणीमें निवेदन किया—'वह अत्यन्त बलवान्, अजेय, क्रूर, दुराचारी एवं क्रोधी भी है। हम लोग उस असुरसे भयभीत और त्रस्त हैं। अतएव आप उस दुर्दमनीय तारकासुरका वध कीजिये। यही एक कार्य शेष रह गया है।'

'तथास्तु!' दुःखी देवताओंके वचन सुनते ही षडाननने कह दिया और भू-कण्टक तारकासुरका वध करनेके लिये वे देवताओंके पीछे-पीछे चल पड़े।

कार्तिकेयका आश्रय प्राप्त हो जानेपर सुरेन्द्रने अपना एक दूत भयानक आकृतिवाले अजेय तारक असुरके पास भेजा।

'असुरराज! देवराज इन्द्रने संदेश दिया है।' दूतने तारकासुरके पास जाकर कहा—'वे देवगण तुमसे युद्ध करने आ रहे हैं, तुम अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये जो भी प्रयत्न करना चाहो, कर लो।'

'निश्चय ही सुरेन्द्रको कोई आश्रय प्राप्त हो गया है।' दूतके चले जानेपर असुरराजने विचार किया—'अन्यथा वे ऐसी बात नहीं कह सकते थे।'

'ऐसा कौन वीर पुरुष है, जिसे मैंने अबतक परास्त नहीं किया है।' तारकासुर पुनः विचार कर ही रहा था कि उसे वन्दियोंके द्वारा बालक विशाखका स्तवन सुनायी पड़ा।

'तुम्हारा वध बालकके द्वारा होगा।' दैत्यराज तारकको पितामहका वर स्मरण हो आया। वह भयभीत हो गया, तथापि उसने शस्त्र धारण किया और अपने दुर्दमनीय सेनाके साथ कुमारके सम्मुख डट गया।

'बालक! तू युद्ध क्यों चाहता है?' तारकासुरने अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्न सुकोमल कुमारको देखकर कहा—'जा, कन्दुक खेल। तू निरा बच्चा है। युद्ध बलात् तेरे सिरपर लाद दिया गया है। यह तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय हुआ है। अभी तुझे समझ नहीं है। जा, घर चला जा।'

'तारक! यहाँ शास्त्रार्थ नहीं करना है।' कुमारने स्पष्ट शब्दोंमें तारकासुरसे कहा—'भयंकर संग्राममें शस्त्रोंके द्वारा ही अर्थकी सिद्धि होती है। तुम मुझे शिशु समझकर मेरी अवहेलना न करो। विषधरका नन्हा बच्चा भी मार डालनेमें समर्थ होता है, बालसूर्यकी ओर भी दृष्टिपात करना कठिन होता है, अत्यन्त छोटे मन्त्रमें भी अद्भुत शक्ति होती है, इसी प्रकार मैं भी दुर्जय हूँ। तुम मुझे पराजित नहीं कर सकोगे।'

कार्तिकेयका कथन पूर्ण भी नहीं हो पाया था कि धर्मविध्वंसी असुरने उनके ऊपर वज्रतुल्य मुद्गरका प्रहार किया; किंतु कुमारने उसे अपने अमोघ तेजवाले चक्रसे बीचमें ही नष्ट कर दिया। असुरने अपने जिन-जिन भयंकर

---

[1] कुमार कार्तिकेयके प्राकट्यकी पावन कथा महाभारत, शिवपुराण, स्कन्दपुराण, पद्मपुराण एवं ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणोंमें विस्तारपूर्वक वर्णित है। कल्पभेदसे सभी कथाएँ सत्य हैं। यह अत्यन्त संक्षिप्त कथा पद्मपुराणके आधारपर लिखी गयी है।

अस्त्रोंका प्रहार किया, वे सभी कुमारके द्वारा नष्ट हो गये। फिर पार्वतीकुमारने दैत्यपर अपनी भयानक गदा फेंकी। उसकी चोटसे पर्वताकार दैत्य तिलमिला उठा।

'निश्चय ही यह बालक असाधारण एवं दुर्जय शूरवीर है।' गदाघातसे व्याकुल तारकने मन-ही-मन सोचा—'अब निस्संदेह मेरी मृत्यु समीप आ गयी है।'

मृत्यु-भयसे भीत अजेय तारक काँप उठा। उसके ललाटपर स्वेद-कण झलकने लगे। उसकी यह दशा देखकर कालनेमि आदि दैत्यपतियोंने अत्यन्त वेगसे कुमारपर आक्रमण कर दिया, किंतु अमित तेजस्वी एवं परम पराक्रमी कार्तिकेय तनिक भी विचलित नहीं हुए। दैत्योंके भयानक प्रहार और विभीषिकाएँ उन्हें स्पर्शतक नहीं कर सकीं। उन्होंने दैत्यपतियोंके समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको विदीर्ण कर दिया, किंतु दैत्य उनके भयानक प्रहारका निवारण करनेमें सर्वथा असमर्थ थे। कार्तिकेयके अस्त्रोंकी निरन्तर वर्षासे दैत्य-सेना क्षत-विक्षत हो गयी, धरतीपर जैसे रक्तकी सरिता प्रवाहित हो गयी और सर्वत्र दैत्य-वीरोंके रुण्ड-मुण्ड दीखने लगे। बड़ा भयानक दृश्य था।

रुद्रपुत्र कार्तिकेयके अस्त्रोंकी अनवरत वर्षासे दैत्य-दल विचलित ही नहीं, व्याकुल हो गया। अधीर होकर कालनेमि आदि भयानक देवशत्रु युद्ध छोड़कर पलायित हुए।

दैत्य-वाहिनी चतुर्दिक् भागी जा रही थी और किन्नरगण परम पराक्रमी कुमारके विजय-गीत गाने लगे। यह देखकर महाशूर तारक क्रोधसे उन्मत्त हो गया। उसने स्वर्णकान्ति सुशोभित अद्भुत गदासे कुमारपर भीषण प्रहार किया और इतने तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा की कि कार्तिकेयवाहन मयूर रक्तसे लथपथ हो भाग खड़ा हुआ।

'दुष्ट दैत्य, खड़ा रह' कुमारने अत्यन्त कुपित होकर तारकसे कहा। 'अब मैं तेरी जीवन-लीला समाप्त कर रहा हूँ, तू कुछ देर और अपने नेत्रोंसे इस संसारको देख ले।'

कुमारने क्रुद्ध होकर महान् तारकासुरपर अपनी शक्तिका प्रहार किया। शक्तिमूर्ति पार्वतीपुत्र कार्तिकेयकी वह अमोघ शक्ति केयूरकी खनखनाहटके साथ चली और सुर-शत्रु तारकके वज्र-तुल्य वक्षमें बड़े वेगसे प्रविष्ट हो गयी। तारकका हृदय विदीर्ण हो गया। उस अमित बलशाली अजेय दैत्यका विशाल निर्जीव शरीर धरतीपर गिर पड़ा।

तारक-वधसे धरतीका पातक कट गया। सभी सुखी हुए। देवगण विपत्तिनिवारक परमोपकारी महेश्वर-पुत्र कार्तिकेयका स्तवन करने लगे। उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वे आनन्द-मग्न होकर हँसते हुए उछलने-कूदने तथा नृत्य करने लगे। उन्होंने अमित तेजस्वी कुमारकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और उन्हें अनेक वर प्रदान किये।

इस प्रकार हर्षित और पुलकित देवगण सर्वथा निश्चिन्त होकर अपने-अपने लोकोंके लिये प्रस्थित हुए।

⁂

लीलावतार अवधूतश्रेष्ठ भगवान् 'श्रीदत्तात्रेय'

(प०पू० दण्डी स्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

दत्तात्रेयो महायोगी भगवान् भूतभावनः।
चतुर्भुजो महाविष्णुर्योगसाम्राज्यदीक्षितः॥

(जाबालदर्शन-उपनिषद् १। १)

दत्तपुराणमें स्पष्ट उल्लेख है कि '**दत्तस्तु भगवान् स्वयम्।**' अभिप्राय यह है कि श्रीविष्णुका चौथा अवतार (मत्स्यपुराणके अनुसार) होनेसे दत्तात्रेयकी 'भगवान्' संज्ञा है। जाबालदर्शनोपनिषद्में दत्तात्रेयको महाविष्णु और भगवान्‌की संज्ञासे अभिहित किया गया है। अथर्ववेदके दत्तात्रेय-उपनिषद्में श्रीविष्णु ब्रह्माजीको तारक-मन्त्रका उपदेश करते समय अपनेको 'दत्तात्रेयस्वरूप' बतलाकर कहते हैं कि 'आप मेरे सत्यानन्द-चिदात्मक साक्षी दत्तस्वरूपकी उपासना कीजिये, दत्त-मन्त्र ही तारक-मन्त्र है।' इससे स्पष्ट होता है कि विष्णु एवं दत्तात्रेय अभिन्न हैं। शाण्डिल्य-उपनिषद्में तो दत्तात्रेयको निर्गुण ब्रह्मका साकाररूप कहा गया है। वहाँपर भी उनको भगवान्, प्रभु, देव इत्यादि कहा गया है।

'श्रीदत्तकल्पद्रुम' नामक ग्रन्थके विद्वान् कवि दत्तात्रेयके विषयमें लिखते हैं कि—

अखण्डं सच्चिदानन्दं परं ब्रह्मैव केवलम्।
श्रीदत्तात्रेयरूपेण ब्रह्माण्डेषु विराजते॥

अर्थात् अखण्ड सच्चिदानन्दरूप केवल परब्रह्म ही श्रीदत्तात्रेय भगवान्के रूपमें इस ब्रह्माण्डमें विराजते हैं।

संत-महात्मा कहते हैं कि अज्ञानी बालक जो खेल करते हैं, उसे क्रीडा कहते हैं; किंतु भगवान् अवतीर्ण होकर जो अद्भुत, अलौकिक खेल करते हैं, उन्हें 'लीला' कहते हैं। विश्ववन्द्य जगद्गुरु श्रीमद् आद्यशंकराचार्य महाराजने 'ब्रह्मसूत्र' के अपने भाष्यमें '**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**' में भगवान्के अवतार और लीलाके विषयमें ऐसा ही लिखा है कि जैसे लोकमें बालक स्वभावसे क्रीडा किया करते हैं, वैसे ही ईश्वर अवतीर्ण होकर अनेक अद्भुत लीला रचा करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता (४। ६)-में स्वयं भगवान्ने अपने अवतारके विषयमें स्पष्ट कहा है कि—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥

अर्थात् मैं अजन्मा हूँ, अविनाशी हूँ, सर्वव्यापक हूँ, सभी प्राणियोंका ईश्वर हूँ, फिर भी अपनी प्रकृतिको अधीन—वश करके योगमायाद्वारा प्रकट होता हूँ।

तात्पर्य यह है कि भगवान् वस्तुतः अज (अजन्मा) होनेपर भी जन्म लेता-सा प्रतीत होता है, अव्यय (अविनाशी) होनेपर भी 'मरता-सा' प्रतीत होता है, 'आत्मा' होनेपर भी किसी एक विशेष स्थानमें प्रादुर्भूत होता-सा दिखायी पड़ता है तथा सभी प्राणियोंके ईश्वर होनेपर भी किसी योग्य माता-पिताका छोटा बच्चा-सा मालूम पड़ता है। यही तो ईश्वरकी लीला है। उनकी कृपावर्षाके बिना उनकी इस लीलाको कौन समझ सकता है? भगवान्के इन अलौकिक जन्म एवं कर्मको अर्थात् भगवान्की इन लीलाओंको जो पुरुष तत्त्वतः जानता है, वह अपना देह छूट जानेके बाद पुनः जन्मको प्राप्त नहीं होता, अपितु भगवान्को ही प्राप्त होता है।

महाविष्णुस्वरूप भगवान् दत्तात्रेयके प्राकट्य (अवतार)-के विषयमें 'श्रीदत्तकल्पद्रुम' में कहा गया है कि—

अज्ञानतिमिराद् घोराज्जीवानुद्धर्तुमेव यः।
अवतीर्णः कृपासिन्धुर्दययास्मिन् महीतले॥

अर्थात् अज्ञानरूपी घोर अन्धकारसे जीवोंका उद्धार करने-हेतु कृपासागर भगवान् श्रीदत्तात्रेय दयासे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं।

बादमें कहते हैं कि—

त्रिगुणात्मा त्रिमूर्तिश्च दत्त एवंविधोऽपि सन्।
त्रिगुणातीततां तद्वदैकरूप्यं प्रयच्छति॥

अर्थात् भगवान् श्रीदत्तात्रेय स्वतः त्रिगुणात्मक एवं त्रिमूर्तिस्वरूप होनेसे अपने भक्तजनोंको गुणत्रयके उस पार करते हैं, अपनी असीम अनुकम्पासे भक्तोंको 'निस्त्रैगुण्य' बनाते हैं। वे अपने भक्तजनोंको एकरूपता (समरसमग्रता) या परब्रह्मस्वरूपता भी प्राप्त करवा देते हैं।

श्रीदत्तकल्पद्रुम, दत्तात्रेय-सर्वस्व इत्यादि ग्रन्थोंमें वर्णित है कि भगवान् श्रीदत्तात्रेयका आविर्भाव स्वयम्भू मन्वन्तरके पूर्व सत्ययुगमें हुआ। जगत्के जीवोंके दुःख एवं ताप नष्ट करने-हेतु वे स्वेच्छासे जगत्में प्रकट हुए, अतः जबतक जगत्में दुःख और ताप विद्यमान रहेंगे, तबतक वे (दत्तात्रेय) अपने देहका विसर्जन नहीं करेंगे, उसी 'देह' और उसी 'महाभाव' से (सिद्ध अवस्थामें) सदाके लिये रहेंगे। उनका अस्तित्व महाप्रलयपर्यन्त माना गया है। इसीलिये तो धर्मग्रन्थोंने उन्हें सिद्धावतार कहा है। कविकुलगुरु कालिदासने अपने 'कुमारसम्भव' (२।४)-में त्रिमूर्तिस्वरूप, लीलाविश्वम्भर दत्तात्रेयको नमस्कार करते हुए परमात्माकी लीलाका रहस्योद्घाटन किया है—

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे॥

सारांश यह है कि परमात्मा एक है, फिर भी कार्यभेदसे त्रिविधरूपमें प्रकट हुआ है। यह तो त्रिगुणी (दत्तात्रेयकी) सगुण-लीला-विग्रह है।

'लीला-विग्रह' अर्थात् लीलासे भक्तोंके सकल मनोरथ पूर्ण करनेके लिये धारण किया हुआ दिव्य मानव-देह। ऐसे लीला-विग्रह 'दत्तात्रेय' को गुरु-अवतार भी कहा गया है। शिवपुराण नकुलीश्वर-माहात्म्यमें उनको त्रेतायुगका सद्गुरु माना गया है—

कृते ज्ञानप्रदः सत्यः त्रेतायां दत्त एव च।
द्वापरे व्यासनामा तु कलौ शंकर उच्यते॥

अर्थात् सत्ययुगमें सद्गुरु सत्य था (**सत्यं परं धीमहि**), त्रेतायुगमें दत्तात्रेय थे, द्वापरयुगमें वेदव्यास थे और कलियुगमें आद्यशंकराचार्य हैं।

जगद्गुरु आद्यशंकराचार्यने लिखा है कि—'**त्रेतायां**

विश्वगुरू ऋषिसत्तमः' अर्थात् त्रेतायुगके विश्वगुरु दत्तात्रेय माने गये हैं।

महर्षि अत्रि—लीलावतार भगवान् दत्तात्रेयके पिता महर्षि अत्रि थे और माता महासती अनसूया थीं। महर्षि अत्रि विश्वस्रष्टा ब्रह्माके सात मानस-पुत्रोंमें एक थे।

एक बार उनके पिता ब्रह्माजीने उनको गङ्गा-यमुना प्रदेशका प्रजापति नियुक्त करना चाहा, किंतु अत्रिने तपोमय जीवन व्यतीत करनेका निश्चय किया। जब पिताने इसका कारण पूछा तब उन्होंने कहा कि 'मैं तो तपद्वारा ही विश्वके एक ईश्वरको प्रसन्न करके उनको अपने पुत्ररूपमें अवतीर्ण करवाना चाहता हूँ।' पुत्र अत्रिकी विचारधारा जानकर पिता ब्रह्मा उनपर प्रसन्न हुए और अभीष्ट सिद्धिहेतु आशीर्वाद प्रदान किये।

इस प्रसंगसे स्पष्ट होता है कि अत्रिने स्वपत्नी अनसूयाके देहके माध्यमसे पुत्र पैदा करना नहीं चाहा था। वे तो 'ईश्वर'को अयोनिज पुत्रके रूपमें ही देखना चाहते थे। धर्मग्रन्थोंमें भगवान् दत्तात्रेयको अयोनिज (माताके उदरसे नहीं जन्मा है वैसा) कहा गया है।

अयोनिजा भविष्यन्ति तव पुत्रा वरानने॥

(श्रीदत्तकल्पद्रुम)

ऐसे महान् माता-पिताके वहाँ लीला-विश्वम्भर भगवान् दत्तात्रेय कैसे आविर्भूत हुए इस विषयमें अब हम विश्वसनीय धर्मग्रन्थोंके प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत करते हैं।

श्रीमद्भागवत (४। १)-में ऐसी कथा वर्णित है कि पिता ब्रह्माकी आज्ञा एवं आशीर्वाद प्राप्त करके अत्रि और अनसूया पुत्र-कामनार्थ तपस्या करनेके लिये 'त्र्यक्षकुल-पर्वत' पर गये। वहाँपर निर्विन्ध्या नदीके तटपर अत्रिने तपस्या प्रारम्भ की। अनसूया पतिकी सेवा करने लगीं।

कुछ वर्ष बाद अत्रिके उत्कट तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु, और महेश (त्रिदेव) अत्रिके सम्मुख प्रकट हुए। त्रिदेवने अवतार ग्रहण करनेसे पूर्व ही इस प्रकारकी लीला की। यह देखकर अत्रिने अपनी शंका व्यक्त की कि 'मैंने तो एक अविकारी निराकार ईश्वरके लिये ही तपस्या की थी, किंतु आप तीन साकार देव किसलिये आये हैं?' अपनी लीलाका रहस्योद्घाटन करते हुए त्रिदेवोंने अत्रिसे कहा कि 'जगत्की सृष्टि, स्थिति और लयके कारण हम तीनों देव वस्तुतः एक ही निर्गुण ब्रह्मके स्वरूप हैं।' इस प्रकार त्रेतामें ऐक्यका बोध स्वयं त्रिदेवोंसे प्राप्त करके अत्रि प्रसन्न हुए—'**एको देवस्त्रिधा स्मृतः॥**'

श्रीमद्भागवत (२। ७। ४)-में कहा है कि—

अत्रेरपत्यमभिकांक्षत आह तुष्टो
दत्तो मयाहमिति यद् भगवान् स दत्तः।

सारांश यह है कि अत्रि एवं अनसूयाके तप और भक्तिसे प्रसन्न होकर त्रिदेवोंने अपनेको उनके पुत्ररूपमें दान कर दिया—'**अहं तुभ्यं मया दत्तः।**' दानवाचक शब्द 'दत्त' तथा 'अत्रि'के पुत्र होनेसे आत्रेय—ये दोनों शब्द मिलकर दत्त+आत्रेय ='दत्तात्रेय' नाम 'लीलावतार'का रखा गया। इस विषयमें 'श्रीदत्तकल्पद्रुम' ग्रन्थमें लिखा गया है—

अथ ब्रह्मा हरिः शम्भुरवतेरुः स्त्रियां ततः।
पुत्ररूपैः प्रसन्नास्ते नानालीलाप्रकाशकाः॥

अर्थात् इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु और महेशने प्रसन्न होकर [अत्रि-अनसूयाके] पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए, उनका चरित्र प्रसिद्ध ही है, उनमेंसे दत्तात्रेयका लीला-चरित्र तो अगाध एवं लोकोत्तर है।

'श्रीदत्तात्रेय-पूजाविधि' ग्रन्थमें कहा गया है—

लीलाविग्रहरूपायानसूयानन्दनाय च।
संसारश्रमनाशाय कर्मणार्घ्यं ददाम्यहम्॥

अर्थात् 'हे दत्तात्रेय! आपने भक्तजनोंके कल्याण-हेतु लीलासे मूर्तस्वरूप धारण किया है। हे अनसूयादेवीके सुपुत्र दत्तात्रेय! आप भक्तजनोंके सांसारिक कष्टोंका नाश कर देते हैं। हे दयालु परमेश्वर! मैं इस पूजा-प्रसंगमें अर्घ्य समर्पण करता हूँ।'

शैवग्रन्थोंमें दत्तात्रेयको 'दिव्यसम्भूति' एवं 'महेश्वरावतार' कहा गया है। उन ग्रन्थोंमें कथित पूर्णावतार, विभवावतार, कलावतार, अंशांशावतार, आवेशावतार, अर्चावतार, हार्दावतार इत्यादिमें दत्तात्रेयको पूर्णावतार या षोडशकलावतार भी कहा गया है।

ब्रह्मपुराण (२१३। १०६—११२)-में उत्तम कथन है कि सर्वभूतोंके अन्तरात्मा, विश्वव्यापक भगवान् श्रीविष्णु विश्वकल्याण-हेतु पुनः अवतीर्ण हुए और दत्तात्रेय नामसे विख्यात हुए। श्रीमद्भागवतमें उनको ज्ञान-वैराग्यका अव

कहा गया है। 'दत्तात्रेय-उपनिषद्‌में उनको पिशाच-ज्ञान-सागर बताते हुए लीलावतार होनेका संकेत किया गया है। मत्स्यपुराणमें वर्णित भगवान् विष्णुकी बारह विभूतियोंमें लीला-विग्रह दत्तात्रेय समाविष्ट हैं।

दत्तात्रेयका लीलावतार रेवा-सागर-संगमके समीप सुवर्णशिला-तीर्थ (गुजरात प्रदेशमें भडौचके पास)-में होनेका स्कन्दपुराण (अवन्तीखण्ड, अध्याय १०)-में वर्णन है। इस स्थानको लोग 'अनसूया-क्षेत्र' कहते हैं। रेवा (नर्मदा) तटपर इस तीर्थ-क्षेत्रमें सत्ययुगके प्रारम्भमें स्वयम्भू मन्वन्तरके मार्गशीर्ष पूर्णिमा, सोमवारको संध्याकाल, शुभ मुहूर्तमें लीलावतार भगवान् श्रीदत्तात्रेयका आविर्भाव हुआ था। वे अयोनिज संतान थे। [क्रमशः]

* * *

श्रीजगन्नाथदेवका प्राकट्य-रहस्य

(व्रजके एक महात्मा)

श्रीमन्माध्वगौडेश्वराचार्यवर्य श्रीजीवगोस्वामिचरणके मतमें एक अद्वय ज्ञान-तत्त्व ही ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान्-संज्ञामें संज्ञित हुआ है और भगवत्-तत्त्वने ही ब्रह्म एवं परमात्मा—इन दोनों तत्त्वोंको क्रोडीकृत कर रखा है। इस अति विशाल भगवत्ताको समझनेके लिये सम्पूर्ण अपारगता प्रयुक्त अल्पबुद्धि जीव विशेष चेष्टा करते हुए भी कुछ भी धारण नहीं कर सकता। इसीलिये महाकरुणापारावार श्रीभगवान् स्वकरुणावश होकर स्वयं जीव-समुदायके समक्ष लीलामनुज-विग्रह-धारणपूर्वक अवतीर्ण होते हैं। श्रीभगवान् जब-जब जैसी-जैसी लीला प्रकट करनेकी इच्छा करते हैं, तब-तब तदनुयायी देश-काल-पात्रावलेपनपूर्वक सांगोपांगास्त्र-पार्षद स्वयं अवतीर्ण होते हैं। सर्वशास्त्र-प्रसिद्ध है कि यद्यपि श्रीभगवान्‌के असंख्य अवतार हैं तथा प्रत्येक अवतार असमोर्ध्व रूप-गुण-माधुर्यसम्पन्न हैं, तथापि भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रस्वरूपमें ही यह रूपगुणलीलामाधुरी महाप्रेमरसमाधुरी महाभावसारसम्पुट-सम्पुटित महामहारसराजत्व चरम अवधिको प्राप्त हुआ है। इसीसे तो श्रीमद्भागवत (१। ३। २८)-में '**एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**' कहा गया है। श्रीभगवदवतारके सम्बन्धमें कहा गया है कि यद्यपि श्रीभगवान् असंख्य-रूपमें अपनेको प्रकाशित करते हैं, तथापि उन रूपोंमें श्रीनामी, नाम एवं अर्चाविग्रहरूप ही प्रधान हैं। श्रीभगवान्‌की मङ्गलविहारभूमि भारतवर्षमें अनेक मङ्गल-स्थान श्रीअर्चाविग्रह-रूपी प्रभुके मङ्गलमय प्रकाशसे प्रकाशित हो रहे हैं। उन सबमें श्रीलीलापुरुषोत्तम-स्वरूप श्रीजगन्नाथदेव विशेष प्रसिद्ध हैं। निविड निगूढता एवं सुमहान् भावगाम्भीर्यप्रयुक्त अति चमत्कार रहस्यातिरहस्य श्रीजगन्नाथदेवके प्राकट्यकी कथा जनसाधारणको सुविदित नहीं है। अतएव सेवाकाम यह महापतित आज उसी सुमहान्, अति गोपनीय रहस्यको कल्याणकल्पद्रुमाश्रित 'कल्याण' पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करता है।

एक समय श्रीधाम—द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी रात्रिकालमें श्रीरुक्मिणी, सत्यभामा-प्रभृति प्रधान षोडश राजमहिषियोंके मध्यवर्ती शयन कर रहे थे। स्वप्नावस्थामें आप अकस्मात् 'हा राधे! हा राधे!' उच्चारण करते हुए क्रन्दन करने लगे। जब अन्य किसी प्रकार प्रभुका क्रन्दन नहीं रुका तो बाध्य होकर महारानी श्रीरुक्मिणीदेवीने अपने प्राणवल्लभको चरणसंवाहनपूर्वक जागृत किया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र निद्राभंग होनेपर किंचित् लज्जित हुए और उन्होंने अति संतर्पणपूर्वक अपना भाव-गोपन कर लिया। महारानियोंके द्वारा इस प्रकारके विषादका कारण पूछे जानेपर श्रीकृष्णचन्द्र यह कहते हुए कि 'मुझे तो कुछ स्मरण नहीं' पुनः निद्रित हो गये। परंतु इसका रहस्य जाननेके लिये महारानियोंके हृदयमें अत्यन्त व्यग्रता उत्पन्न हुई। सब परस्पर कहने लगीं—'देखो, हम सब सोलह सहस्र महिषी हैं और कुल, शील, रूप एवं गुणमें कोई भी अन्य किसी रमणीसे न्यून नहीं है, तथापि हमारे प्राणवल्लभ किसी अन्य रमणीके लिये इतने व्याकुल हैं, यह तो बड़े ही विस्मयकी बात है। रात्रिमें स्वप्नावस्थामें भी जिस रमणीके लिये प्रभु इतने व्याकुल होते हैं, वह रमणी भी न मालूम कितनी रूप-गुणवती होगी।' इसपर श्रीरुक्मिणीदेवी

कहने लगीं—'हमने सुना है कि वृन्दावनमें राधानाम्नी एक गोपकुमारी है, उसके प्रति हमारे प्राणेश्वर अत्यन्त आकृष्ट हैं, इसीलिये रूपलावण्यवैदग्धपुंज नयनाभिराम श्रीप्राणनाथ हम सबके द्वारा परिसेवित होकर भी उस सर्वचित्ताकर्षक-चित्ताकर्षिणीके अलौकिक गुण-ग्राम भूल नहीं सके हैं।' श्रीसत्यभामादेवी कहने लगीं—'सब ठीक ही है, तो भी वह एक गोपकन्याके सिवा और कुछ तो नहीं, फिर उसके प्रति हमारे प्राणकान्त इतने आसक्त क्यों हैं? अस्तु! जो कुछ भी हो, हमारी सम्मतिमें तो इस सम्बन्धमें श्रीरोहिणीमातासे पूछनेपर ही इसका ठीक-ठीक पता लग सकेगा, क्योंकि उन्होंने स्वयं वृन्दावनमें वास किया है और उस समयकी सम्पूर्ण घटनाओंको वे भलीभाँति जानती हैं।' यह प्रस्ताव सबको रुचा। रात्रि बीती, प्रातःकाल हुआ। श्रीकृष्णचन्द्र प्रातःकृत्य समापन करके राज-सभाको पधारे और यथासमय पुनः अन्तःपुर पधारकर स्नानादि-समाधानपूर्वक भोजन करने बैठे। राजभोग सम्मुख आकर उपस्थित हुए, उद्धवादि सखावृन्दसहित प्रभुने भोजन किया और आचमन करके किंचित् विश्रामपूर्वक पुनः राजसभाकी ओर प्रस्थान किया।

इस अवसरको पाकर महारानियोंने श्रीरोहिणीदेवीको पूर्वरात्रिकी घटना सुनाकर उनसे व्रज-वृत्तान्त पूछा। माताजी कहने लगीं—'प्यारी पुत्रियो! यद्यपि मैं व्रजलीलाकी सम्पूर्ण घटनाएँ जानती हूँ, किंतु माता होकर पुत्रकी गुप्त लीलाओंका रहस्य किस प्रकार कह सकती हूँ? यदि राम-कृष्ण यह कथा सुन लें तो फिर लज्जाकी सीमा न रहेगी।' इसपर महिषीगण कहने लगीं—'माताजी! जिस-किसी प्रकारसे भी हो सके, हमें व्रजलीलाकी कथा तो आपको अवश्य ही सुनानी होगी।' माताजीने कहा—'तब एक उपाय करो, सुभद्राको द्वारपर पहरेके लिये बैठा दो, कह दो, किसीको अंदर न आने दे, फिर मैं निःसंकोच तुम्हारे निकट व्रजलीलाका वर्णन करूँगी। माताजीने यह कहकर सुभद्राकी ओर देखा और कहा—'सुभद्रे! यदि राम-कृष्ण आवें तो उन्हें भी कदापि भीतर मत आने देना।' माताजीका आदेश पालन किया गया। सुभद्रा 'जो आज्ञा' कहकर द्वार-रक्षा करने लगीं। महिषी-वृन्द माताजीको चारों ओरसे घेरकर बैठ गयीं और माताजीने सुमधुर व्रजलीलाका वर्णन करना आरम्भ किया।

इधर राजसभामें राम-कृष्ण दोनों भाई चंचल हो उठे। जब किसी प्रकार भी राजसभामें नहीं ठहर सके तो उत्कण्ठित-चित्त होकर अन्तःपुरकी ओर चल पड़े। आकर देखते हैं कि सुभद्रादेवी द्वारपर खड़ी हैं। उन्होंने सुभद्रादेवीसे पूछा—'तुम आज यहाँ क्यों खड़ी हो? द्वार छोड़ दो, हम लोग भीतर जायँ।' श्रीमती सुभद्रादेवीने कहा—'रोहिणी माँने इस समय तुम्हारा अन्तःपुरमें प्रवेश करना निषेध कर रखा है, अतः तुम लोग भी भीतर नहीं जा सकोगे।'

यह सुनकर जब दोनों भाई आश्चर्यान्वित होकर इस निषेधका कारण ढूँढ़ने लगे तो माताजीकी वह रहस्यपूर्ण व्रजलीलात्मक वार्ता उन्हें सुनायी दी। वह वार्ता श्रीवृन्दावनचन्द्रकी परम कल्याणमय, परम पावन, अद्भुत मङ्गलरासविहारात्मक थी। सुनते-सुनते दोनों भाइयोंके मङ्गल श्रीअङ्गमें अद्भुत प्रेमविकारके लक्षण दिखायी देने लगे। क्रमशः दोनों ही प्रेमानन्दमें विह्वल हो गये। अविश्रान्त प्रेमाश्रुकी मन्दाकिनी-धारा प्रवाहित होकर दोनोंके गण्डस्थल एवं वक्षःस्थलको प्लावित करने लगी। यह देखकर श्रीमती सुभद्रादेवी भी एक अनिर्वचनीय महाभावावस्थाको प्राप्त हो गयीं। जिस समय माताजी स्वामिनी श्रीवृन्दावनेश्वरीजीकी अद्भुत प्रेम-वैचित्त्यावस्थाका वर्णन करने लगीं, उस समय श्रीबलरामजी किसी प्रकार भी धैर्य धारण न कर सके। उनके धैर्यका बाँध टूट गया, श्रीअङ्गमें इस प्रकार महाभावका प्रकाश हुआ कि उनके श्रीहस्त-पद संकुचित होने लगे और जब माताजी निभृत निगूढ-विलासका वर्णन करने लगीं तब तो श्रीकृष्णचन्द्रजीकी भी यही अवस्था हुई। दोनों भाइयोंकी यह अद्भुत अवस्था देखकर श्रीमती सुभद्रादेवीकी भी वही दशा हो गयी। तीनों मङ्गलस्वरूप ही महाभावस्वरूपिणी स्वामिनी श्रीवृन्दावनेश्वरीजीके अवारपार महाभावसिन्धुमें निमज्जित होकर ऐसी स्वसंवेद्यावस्थाको प्राप्त हो गये कि लोगोंके देखनेमें निश्चल-स्थावर प्रतिमूर्ति-स्वरूप परिलक्षित होने लगे। निश्चल, निर्वाक्, स्पन्दरहित महाभावावस्था अतिशय मनोऽभिनिवेशपूर्वक दर्शन करनेपर भी श्रीहस्तपद किंचित् भी परिलक्षित नहीं हो सकते थे। आयुध श्रीसुदर्शनजीने भी विगलित होकर लम्बिताकार धारण कर लिया।

इसी समय स्वच्छन्दगति देवर्षि नारदजी भगवद्दर्शनके अभिप्रायसे श्रीधाम-द्वारकामें आ उपस्थित हुए। उन्होंने

राजसभामें जाकर सुना कि राम-कृष्ण दोनों भाई अन्त:पुर पधारे हैं। देवर्षिजीकी सर्वत्र अबाधगति तो है ही, अन्त:-पुरके द्वारपर जाकर उन्हें जो अद्भुत दर्शन हुए, उससे देवर्षिजी स्तम्भित हो गये। इस प्रकारका दर्शन उन्होंने पूर्वमें कभी नहीं किया था। निज प्राणनाथकी ऐसी अद्भुत अवस्थाके कारणका विचार करते हुए प्रेमविवश स्तम्भ-भावको प्राप्त होकर देवर्षिजी भी वहीं चुपचाप खड़े रह गये। कुछ ही क्षण पश्चात् जब माताजीने पुन: कोई एक रसान्तरका प्रसंग उठाया तब उन सबको पूर्ववत् स्वास्थ्य-लाभ हुआ। सिद्धान्तत: रसान्तरद्वारा रसापत्तिका विदूरित होना संगत ही है। इसी अवसरपर महाभावविस्मित देवर्षि नारदजीने बहुविध स्तुति करना आरम्भ कर दिया। करुणावरुणालय श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रने देवर्षिद्वारा स्तुत होकर प्रसन्नतापूर्वक कहा—'देवर्षे! आज बड़े ही आनन्दका अवसर है, कहिये मैं आपका क्या प्रीति-सम्पादन करूँ?' देवर्षिजीने कर जोड़कर प्रार्थना की—'हे प्रभो! इस समय यहाँ उपस्थित होकर आप सबका जो एक अदृष्टाश्रुतपूर्व महाभावावेश परिलक्षित हुआ है, स्वरूपत: वह क्या पदार्थ है और किस प्रकार उस महावस्थाका प्राकट्य हुआ? कृपया सविशेष उल्लेख करके दासको कृतार्थ कीजिये। सर्वप्रथम तो सेवामें यही एकान्त निवेदन है।'

भक्तवत्सल सर्वात्मा श्रीभगवान् अमन्दहास्यचन्द्रिका-परिशोभित सुन्दर श्रीवदनचन्द्रमासे देवर्षि नारदजीको आप्यायित करते हुए इस प्रकार वचनामृत-वर्षण करने लगे—'देवर्षे! प्रात: तथा मध्याह्न-कृत्यसमापनपूर्वक जिस समय हम दोनों भाई राजसभामें समासीन थे, उसी समय महिषीगणद्वारा पूछे जानेपर माता श्रीरोहिणीदेवीने महाचित्ताकर्षिणी अपारमाधुर्यमयी व्रजलीला-कथाकी अवतारणा की। महामाधुर्यशिखरिणी व्रजलीला-वार्ताका ऐसा प्रभाव है कि हम जहाँ और जिस अवस्थामें भी हों, हमें वहींसे और उसी अवस्थामें ही आकर्षण करके वह कथा-स्थलपर खींच लाता है। हम दोनों भाई ऐसे ही आकर्षित होकर यहाँ उपस्थित हुए और देखा कि सुभद्राजी द्वारपालिकारूपमें द्वारपर खड़ी हैं। उत्कण्ठावश अन्त:-प्रवेशकाम हम दोनों श्रीसुभद्राद्वारा रोके जानेपर प्रवेश-निषेधका कारण ढूँढ़ते रहे, उसी समय श्रीमाताजीके मुखारविन्दविगलित अत्यद्भुत व्रजलीलामाधुरीने कर्णपथगत होकर हमारे हृदय विगलित कर दिये। तत्पश्चात् जो अवस्था हुई उसका तो आपने प्रत्यक्ष दर्शन किया ही है। मेरी प्राणेश्वरी महाभावरूपिणी श्रीस्वामिनीजीके महाभावकर्तृक सम्पूर्ण भावसे ग्रसित होनेके कारण हम आपका पधारना भी नहीं जान सके।' इतना कहकर भगवान्ने जब देवर्षिजीसे पुन: वर-ग्रहणका अनुरोध किया तो देवर्षिजी प्रार्थना करने लगे—'भगवन्! मैं और किसी वरका प्रार्थी नहीं हूँ, निजजनोंके सर्वाभीष्टप्रदाता चरणयुगलमें केवल यही प्रार्थना है कि आप चारोंकी जो एक अत्यद्भुत महाभावावेश-मूर्तिका मैंने प्रत्यक्ष दर्शन किया है, वही भुवनमङ्गल चारों स्वरूप जनसाधारणके नयनगोचरीभूत होकर सर्वदा इस पृथिवीतलपर विराजमान रहें। मायासंनिपातमें ग्रस्त जीवसमूह एवं तद्दर्शन-विरहकातर भक्तजनके लिये यह महासंजीवनी-रसायन-स्वरूप चतुष्टय सर्वोत्कर्षतासहित जययुक्त होवें।' करुणायतन भक्तवाञ्छा-पूरणकारी श्रीभगवान्ने कहा—'देवर्षे! इस विषयमें मैं पूर्वसे ही अपने दो और परम भक्तोंके प्रति भी आपके प्रार्थनानुरूप ही वचनबद्ध हूँ—एक भक्तचूडामणि महाराज इन्द्रद्युम्न और द्वितीय परमभक्तिस्वरूपिणी श्रीविमलादेवी। निखिलप्राणि-कल्याणहित भक्तचूडामणि महाराज इन्द्रद्युम्नकी घोरतर तपस्यासे प्रसन्न होकर मैं नीलाचलक्षेत्रमें दारुब्रह्मस्वरूपमें अवतीर्ण होकर जन-साधारणको दर्शन देनेका वर प्रदान कर चुका हूँ तथा महाविद्यास्वरूपिणी श्रीविमलादेवीद्वारा अनुष्ठित महातपस्यासे प्रसन्न होकर उनकी प्राणिमात्रको महाप्रसाद वितरण करनेकी प्रतिज्ञाको उक्त स्वरूपसे ही पूर्ण करनेकी स्वीकृति दे चुका हूँ। अतएव इन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये हम चारों इसी स्वरूपमें आगामी कलियुगमें लवणसमुद्रतटवर्ती नीलाचलक्षेत्रमें अवतीर्ण होकर प्रकाशमान रहेंगे।' सर्वजीव-कल्याणव्रत देवर्षि श्रीनारदजीने मनोवाञ्छित वर प्राप्त करके प्रभुचरणारविन्दमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और मधुर वीणासे करुणावारिधि श्रीप्रभुके अमृतमय नामगुणमाधुरीका गान करते-करते यदृच्छा गमन किया। श्रीराम-कृष्णने भी माताजीके कथंचित् संकोचकी आशंका करके उस स्थानसे प्रस्थान किया। ये ही श्रीजगन्नाथ, मूर्तिचतुष्टय—श्रीकृष्ण, बलराम, सुभद्रा एवं सुदर्शनरूपमें श्रीनीलाचलक्षेत्रको विभूषित करके अद्यापि विराजमान हैं।

* * *

स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्

[पुरुषोत्तम प्रभु जगन्नाथकी लीला]

(श्रीगंगाधरजी गुरु, बी०ए०, एल्-एल्० बी०)

सनातन-धर्मके नित्य-लीलामय उत्कल प्रदेश अपनी विश्ववन्द्य पुरुषोत्तम-संस्कृतिके लिये प्रख्यात है। पार्वतीवल्लभ श्रीशंकर, गगनविलासी श्रीसूर्यनारायण और वैकुण्ठनिवासी श्रीविष्णु आदि भगवत्स्वरूप जगत्की रक्षाके लिये भुवनेश्वर, कोणार्क (अर्कक्षेत्र) तथा श्रीजगन्नाथपुरी (नीलाचल) इत्यादि स्थानोंमें आविर्भूत हुए हैं। उत्कलके परमाराध्य प्रभु श्रीजगन्नाथदेव हैं। जगन्नाथ अजन्मा और सर्वव्यापक होनेपर भी दारुब्रह्मके रूपमें अपनी अद्भुत लीला दर्शाते आ रहे हैं। संक्षेपमें भगवान् दारुब्रह्मकी दिव्यलीला ब्रह्मपुराणमें निम्न प्रकारसे वर्णित है—

सत्ययुगकी बात है। इन्द्रद्युम्न नामके इन्द्रसदृश पराक्रमी अर्थशास्त्रनिपुण ब्राह्मण-भक्त सत्यवादी सर्वसद्गुणसम्पन्न एक राजा थे। मालवा देशकी अवन्तीनगरी उनकी राजधानी थी। वे प्रजाओंका पुत्रवत् पालन करते थे। एक बार उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं किस प्रकार भोग-मोक्षदाता योगेश्वर श्रीहरिकी आराधना करूँ?

राजा सैन्य-सामन्त-पुरोहितादिके सहित दक्षिण समुद्रके तटपर पहुँचे। उस अनन्त तरङ्गाकुलरमणीय समुद्रका दर्शनकर राजा विस्मयाभिभूत हो गये और वहीं समुद्र-तटपर एक मनोहर दिव्य पवित्र स्थानमें उन्होंने निवास किया। त्रिभुवन-विख्यात पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें महाराज इन्द्रद्युम्नने विविध रमणीय स्थानोंके दर्शन किये। भगवान्के उस मानसतीर्थ पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें इन्द्रनीलमणिसे निर्मित प्रतिमा विराजित है, जिसे स्वयं भगवान्ने छिपा दिया है। राजाने दृढ संकल्प किया कि मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे सत्यपराक्रमी जगदीश्वर विष्णु मुझे साक्षात् दर्शन देंगे। अनन्यभावसे भगवत्पादारविन्दोंमें सर्वस्व-समर्पणपूर्वक यज्ञ, दान, तपस्या, पूजा और उपवासादि करनेके लिये एवं दिव्य भगवन्मन्दिर-निर्माण करनेके लिये दृढसंकल्प होकर राजा अपने कर्तव्यमें लग गये। मन्दिर-निर्माण-कार्य समारम्भ हुआ। अश्वमेधयज्ञ तथा दान-पुण्य आदि कर्म कर लिये गये। पुरुषोत्तम-प्रासाद-निर्माण-कार्य विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ। राजाको अब अहर्निश भगवत्प्रतिमाके लिये चिन्ता सताने लगी। वे सोचने लगे—'सृष्टि-स्थिति-लयकारी लोकपावन भगवान् पुरुषोत्तमका मैं कैसे दर्श कर सकूँगा? कैसे विष्णुप्रतिमाका निर्माण किया जा सकेगा?' पाञ्चरात्रकी विधिसे राजाने पुरुषोत्तम-पूजन करके भावमयी प्रार्थनाएँ कीं (ब्रह्मपु० ४९। १—५५)।

स्तुति-प्रार्थनाके बाद राजाने सर्वकामप्रद सनातन पुरु भगवान् जगन्नाथ वासुदेवको प्रणाम किया एवं चिन्तानिम हो धरतीपर कुश और वस्त्र बिछाकर सो गये। देवाधिदे भगवान्ने राजाको स्वप्नमें अपने शंख-चक्र-गदा-पद्मस्वरूप दर्शन कराया एवं कहा—'राजन्! तुम धन्य हो, तुम् दिव्य यज्ञ, भक्ति और श्रद्धासे मैं संतुष्ट हूँ। तुम चिन्ता न करो। यहाँ जो जगत्पूज्य सनातनी प्रतिमा है, उसकी प्राप्तिका उपाय मैं बतलाता हूँ। आजकी रात बीतने सूर्योदयके समय समुद्रतटपर जाना। वहाँ समुद्र-प्रान्तमें ए विशाल वृक्ष सुशोभित है, जिसका कुछ अंश तो जलमें औ कुछ अंश स्थलपर है। समुद्रकी लहरोंसे आहत होनेपर भी वह वृक्ष कम्पित नहीं होता। तुम हाथमें तीक्ष्ण अस्त्र ले अकेले ही वहाँ जाना और उस वृक्षको काट डाल वहींसे अद्भुत वस्तु दिखायी देगी। उससे विचार-विमर्श दिव्य प्रतिमाका निर्माण करना। अब मोहप्रद चिन्ता त्या दो। तत्पश्चात् श्रीहरि अदृश्य हो गये। राजा विस्मित हु प्रातः उठकर वे समुद्रतटपर पहुँचे एवं स्वप्नानुसार ते वृक्षराजको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उस वृ काट गिराया और दो टुकड़े करनेका विचार किया। स दो ब्राह्मणोंने आकर पूछा—'आपने किसलिये वनस्प काट गिराया है?' राजाने कहा—'आद्यन्तहीन विष्णु आराधनाके लिये मैं प्रतिमा-निर्माण करना चाहता एतदर्थ भगवान्ने मुझे स्वप्नमें प्रेरित किया है।' यह सु विप्ररूपधारी भगवान् जगन्नाथने हर्षपूर्वक कहा—'रा आपका विचार अत्युत्तम है। मेरे ये साथी श्रेष्ठ शिल्पी ये मेरे निर्देशानुसार प्रतिमा-निर्माण करेंगे।' तब विश्वकर्माने भगवान्की आज्ञाके अनुसार प्रतिमाओंका नि कर दिया। जिनमें पहली मूर्ति श्रीबलभद्रजीकी, श्रीजगन्नाथजीकी एवं तीसरी श्रीसुभद्राजीकी थी।

देखकर इन्द्रद्युम्नने साश्चर्य पूछा—'गुप्तरूपसे आप कौन हैं?' तब भगवान्ने कहा—'मैं देवता, यक्ष, दैत्य, इन्द्र, रुद्र, ब्रह्मा आदि कोई भी नहीं हूँ। मुझे पुरुषोत्तम समझो। सर्वपीडाहारी, अनन्त बलशाली मैं सभीका आराध्य हूँ। वेदादि धर्मशास्त्रोंमें जिसका उल्लेख हुआ है, वही मैं हूँ। संसारमें जो कुछ वाणीद्वारा वर्णनीय है, वह मेरा ही स्वरूप है। इस चराचर विश्वमें मेरे सिवा कुछ भी नहीं है।' भगवान्की वाणी सुनकर राजाके शरीरमें रोमांच हो आया। वे स्तुतिपूर्वक प्रणाम करते हुए बोले—'जो निर्गुण-निर्मल एवं शान्त परमपद ध्येय है, उसे मैं आपके प्रसादसे पाना चाहता हूँ।' तब भगवान् राजाको वर देते हुए अन्तर्धान हो गये। भगवद्दर्शनसे कृतकृत्य हो बुद्धिमान् नरेशने श्रीजगन्नाथजी, श्रीबलभद्रजी एवं वरदात्री श्रीसुभद्राजीको मणिकाञ्चनजटित विमानाकार रथमें बिठाकर मन्त्रियोंसहित बड़ी धूमधामसे पुण्यस्थानमें प्रवेश कराया। यथासमय शुभमुहूर्तमें प्रतिष्ठा करायी। राजाने सर्वोत्तम प्रासादमें वेदोक्त-विधिसे प्रतिष्ठितकर सब विग्रहोंको स्थापित किया एवं नियमित प्रभु- पूजनद्वारा सर्वस्वत्यागी होकर अन्तमें परमपदको प्राप्त किया।

स्कन्दपुराणमें भी जगन्नाथजीकी लीला प्रकारान्तरसे वर्णित है। इसके अनुसार राजा इन्द्रद्युम्नने एक दिन अपने पुरोहितसे कहा—'आप उस उत्तम क्षेत्रका अनुसंधान करें, जहाँ हमें साक्षात् भगवान् जगन्नाथके दर्शन मिलें।' तब पुरोहितके भाई विद्यापतिको एक तीर्थयात्रीके मुखसे पुरुषोत्तम क्षेत्रका-माहात्म्य सुनकर जगन्नाथ-दर्शनपूर्वक निवासस्थलका निर्णय करके लौट आनेके लिये भेजा गया। गोविन्द-चिन्तनपूर्वक विद्यापति एक आम्रकाननमें पहुँचे। आकाशचुम्बी नीलाचलशिखर देखकर साक्षात् विग्रहवान् भगवान् विष्णुके वासस्थान खोजते हुए वे नीलाचलकी उपत्यकामें जा पहुँचे। वहाँसे आगे बढ़नेको मार्ग नहीं मिला। तब भूमिपर कुशा बिछाकर वे मौन-भावसे भगवत्-शरणाश्रित हुए। फिर भक्तोंकी लोकोत्तर वाणी सुनकर उसीका अनुसरण करते अग्रसर हुए एवं शबरदीपक नामक आश्रमपर जा पहुँचे। वहाँ विश्वावसु नामक एक शबर विष्णुका पूजन करनेके बाद आया। विद्यापति सोचने लगे—'इन श्रेष्ठ वैष्णवसे दुर्लभ समाचार प्राप्त होगा।' तब विश्वावसुने पूछा—'ब्रह्मन्! आप कहाँसे पधारे हैं? यह वनका मार्ग दुस्तर है। आप बहुत क्लान्त-श्रान्त हो गये होंगे। यहाँ विश्राम कीजिये।' ऐसा कहते हुए शबरने पाद्य, आसनार्घ्य देकर फिर पूछा—'आप फलाहार करेंगे या तैयार की हुई भोजन-सामग्री? आज मेरा जीवन सफल हुआ, क्योंकि दूसरे विष्णुकी भाँति आप मेरे घर पधारे हैं।' विद्यापतिने कहा—'मैं जिस उद्देश्यसे आया हूँ, उसे सफल करो। भोजनकी चिन्ता न करो। अवन्तिराज इन्द्रद्युम्नके आज्ञानुसार मैं भगवद्दर्शनार्थ यहाँ आया हूँ। नीलमाधव श्रीहरिका दर्शनकर उक्त समाचार जबतक राजाको नहीं दिया जायगा, तबतक वे निराहार रहेंगे। अतः मुझे शीघ्र ही प्रभुसे मिला दो।' इसके बाद दोनों गहन वनमें पहुँचे। वहाँ पहुँचकर विद्यापति भगवद्दर्शनसे कृतार्थ हुए। पुनः शबर उन्हें आश्रममें वापस लाया और उनका सविधि सत्कार किया। उसने जो अलौकिक वस्तुएँ अर्पित कीं, उन्हें देखकर विद्यापतिने विस्मित होकर कहा—'तुम्हारे घरमें ऐसी दिव्य वस्तुओंका संग्रह आश्चर्यका विषय है।' शबरने कहा—'इन्द्रादि देव नित्य ही जगन्नाथजीकी पूजा करनेके लिये आते हैं। ये सब पदार्थ भगवान्के प्रसादरूप हैं।' तत्पश्चात् ब्राह्मण विद्यापतिने कहा—'यदि मुझपर तुम्हारी कृपा हो तो मुझे हमेशा-हमेशाके लिये अपना बन्धु बना लो। तुम्हारे साथ मैत्री-स्थापन करनेका मेरा दृढ निश्चय है। मेरे लौट जानेपर राजा इन्द्रद्युम्न यहाँ आयेंगे एवं विशाल मन्दिरका निर्माण करके सहस्रोपचारोंसे जगन्नाथजीकी पूजा करेंगे।' यह सुनकर शबरने कहा—'ये सब बातें तो ठीक ही हैं; किंतु राजा यहाँ नीलमाधवका दर्शन नहीं कर सकेंगे, क्योंकि भगवान् स्वर्णमयी बालुकामें अदृश्य हो जायँगे। आप सौभाग्यशाली होनेसे भगवान्का दर्शन पा सके हैं। हाँ, जब राजा यहाँ आकर भगवान्को न देख सकनेके कारण प्राण-त्याग तकको तैयार हो जायँगे तब भगवान् गदाधर स्वप्नमें उन्हें अवश्य दर्शन देंगे। उस समय राजा उन्हींके आदेशानुसार भगवान्की काष्ठमयी चतुर्मूर्तियोंको ब्रह्माजीके द्वारा स्थापित कराकर पूजा करेंगे।' शबरसे इतना सब जाननेके बाद पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी परिक्रमाकर विद्यापति अवन्ती चले आये और उन सभी बातोंको राजासे निवेदित कर दिये।

सब बातें जानकर यथासमय राजा श्रीक्षेत्र पहुँचे तथा वहाँ उन्होंने सहस्र अश्वमेध-यज्ञानुष्ठान किया। देवर्षि नारद

भी राजाके साथ आये हुए थे। वे बोले—'राजन्! पूर्णाहुतिके बाद यज्ञ सफल होगा। तुम्हारे भाग्योदयका समय निकट आ गया है—भगवान्के शरीरका रोम गिरते ही वह वृक्षभावको प्राप्त हो जायगा। इस पृथ्वीपर स्थावररूपमें वह भगवान्का अंशावतार होगा। भक्तवत्सल प्रभु अभी उसी रूपमें अवतीर्ण होंगे। यज्ञान्त-स्नान समाप्त करके वृक्षरूपमें प्रकटित यज्ञेश विष्णुको तुम इस महावेदीपर स्थापित करो।' इसके बाद दोनों ही प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये। वृक्षको देखकर राजाने अपने परिश्रमको सफल माना और नीलमणि माधवके विरहजन्य संतापका परिहार करके बार-बार उस वृक्षको प्रणाम किया एवं आनन्दाश्रु-पूर्ण लोचनोंसे राजाने ब्राह्मणोंके द्वारा उस वृक्षको मँगवाया। ब्राह्मण लोग माला और चन्दनसे विभूषित विष्णुके दिव्य वृक्षको महावेदीपर ले आये। नारदजीके कथनानुसार उक्त वृक्षका पूजन करके राजाने प्रश्न किया—'मुनिवर! भगवान् विष्णुकी प्रतिमाएँ कैसे बनेंगी और उनका निर्माण कौन करेगा? नारदजीने कहा—'भगवान्की लीला अलौकिक है, उसे कौन जान सकता है? इसी समय आकाशवाणी सुनायी दी—'अत्यन्त गुप्तसे रखी हुई महावेदीपर भगवान् विष्णु स्वयं अवतीर्ण होंगे। पंद्रह दिनोंतक उक्त स्थानको आवृत रखा जाय। हाथमें हथियार लेकर जो वृद्ध शिल्पी उपस्थित है, उसको भीतर प्रवेश कराकर यत्नसे दरवाजा बंद करना चाहिये। मूर्ति-रचनातक बाहर वाद्य बजते रहें, अंदर जानेकी चेष्टा कोई भी न करे, कारण कि शिल्पकारके अतिरिक्त अन्य कोई देखेगा तो वह दोनों नेत्रोंसे अन्धा हो जायगा। तत्पश्चात् आकाशवाणीके अनुसार राजाने समस्त व्यवस्था की। पंद्रहवाँ दिन आते ही भगवान् चार विग्रहों—बलभद्र, सुभद्रा और सुदर्शनचक्रके साथ स्वयं प्रकट हुए। तबसे विधिपूर्वक उनकी पूजा चली आ रही है। उत्कलमें दारुब्रह्मकी पूजा वैदिक युगसे अबतक होती आ रही है।

चतुर्धामोंमें अन्यतम श्रीजगदीशपुरीधाम ही है। सत्ययुगका धाम बदरीनाथ, त्रेताका रामेश्वर एवं द्वापरका धाम द्वारका है और कलियुगका पवित्र धाम श्रीजगन्नाथपुरी है। सर्वप्रथम नीलाचल-संज्ञक पर्वत इस स्थानपर था तथा सर्वदेवाराधनीय भगवान् नीलमाधवजीका श्रीविग्रह उक्त पर्वतपर था, कालक्रमसे वह पर्वत पातालमें चला गया। देवतागण भगवद्विग्रहको स्वर्गलोकमें ले गये। इस क्षेत्रको उन्हींकी पावन स्मृतिमें आज भी सश्रद्ध नीलाचल कहा जाता है। श्रीमन्दिर-शिखरपर लगे चक्र 'नीलच्छत्र' के दर्शन जहाँतक होते रह हैं, वह सम्पूर्ण क्षेत्र ही श्रीजगदीशपुरी है। 'सिद्धान्तदर्पण'-में उनकी स्तुति इस प्रकार की गयी है—

योऽसौ सर्वत्र पूर्णोऽप्यसितगिरिदरीकेशरी योऽप्यरूपः
पद्मप्रद्युम्नरूपोऽप्यणुरतनुतनूसम्भृताशेषलोकः।
निस्त्रैगुण्योऽप्यगण्यामलगुणनिलयो वाङ्मनोऽतीतधामा
मादृक्चर्माक्षिलक्ष्यः स्फुरतु मनसि नः चित्रसिन्धुर्मुकुन्दः॥

(सि०द० २३।४३)

'जो सर्वत्र परिपूर्ण होते हुए भी नीलगिरि-दरी-केशरीरूपसे स्थित हैं, अरूप होते हुए भी जो पद्मप्रद्युम्नस्वरूप हैं, अणु होनेपर भी विशाल विश्वरूपमें निःशेष लोकोंको धारणकर उनका पोषण करते हैं, गुणातीत होनेपर भी अगणनीय सद्गुणाकर हैं तथा जो अवाङ्मनसगोचर हैं, वे आश्चर्यसिन्धु मुकुन्द मादृक्चर्मचक्षुका भी लक्ष्य होकर हमारे मनमें स्फुरित हों।'

अत्यन्त प्राचीन कालसे अबतक दार्शनिक कवि और भक्त लेखक-वृन्द जगन्नाथकी अवर्ण्य-लीलाएँ अपने दृष्टिकोणसे वर्णन कर चुके हैं, किंतु उनकी लीलाओंका अन्त प्राप्त कर सके। वे अवाङ्मनसगोचर, अनन्यसाधारण रहस्यशाली हैं और उनकी माया भी दुरत्यया है। निःसंदेह तदं जगत्पावन परमोदार साम्य-मैत्री-धर्म महनीय तथा पूज्य है।

जगन्नाथ-क्षेत्रमें जगन्मैत्रीकी श्रेष्ठ भावना संनिहित है, उसका प्रमाण श्रीजगदीश-रथयात्रा है। जगन्नाथकी ली विश्वब्रह्माण्डका सच्चा मङ्गल-विस्तार करे, यह प्रार्थ पूर्वक मैं श्रीजगन्नाथ-दर्शन करता हुआ कल्याण 'कल्याण' की शुभाशंसा कर रहा हूँ—

स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्।
प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं किं मे मृत्युः करिष्यति॥
मैत्रीशतदलानन्दः साम्यधर्मार्क ईश्वरः।
सनातनो जगन्नाथो धर्मो रक्षतु साम्प्रतम्॥
'कल्याणस्य' जयो भूयाच्छिवदस्य जगद्गुरोः।
भगवदीयलीलाङ्को भूयात् सद्धर्मवर्धकः॥

[अनुवादक—श्रीरवीन्द्रनाथजी

* * *

पुष्टि-पुरुषोत्तम प्रभु श्रीनाथजी एवं उनके विविध लीला-आख्यान

(श्रीप्रभुदासजी वैरागी, एम्० ए०, बी० एड्०, साहित्यालंकार)

प्रभु श्रीगोवर्धनधरण श्रीनाथजीका गिरि-गोवर्धनपर प्राकट्य ही जीवोद्धार-हेतु हुआ है। जीवके कल्याणार्थ आप गिरिराज गोवर्धनपर प्रकट होते ही नाना प्रकारकी लीलाएँ करने लगे। सारा व्रजमण्डल यह मानने लगा कि स्वयं गिरिराज गोवर्धन ही कन्हैयाजीके रूपमें हम व्रजभक्तोंकी रक्षा-हेतु इस गिरि-कन्दरासे प्रकट हुए हैं और भाँति-भाँतिकी लीलाएँ कर रहे हैं।

इधर भारतवर्षके पूर्वाञ्चलपर दक्षिण-यात्राके लिये निकले आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजीको इन प्रभुने आज्ञा दी कि तुम अपनी यात्रा यहीं रोककर सर्वप्रथम गिरि-गोवर्धनपर आकर मुझसे मिलो। आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजी इस भगवदाज्ञाको सुनकर आश्चर्यचकित हो गये और अपनी यात्रा स्थगित करके तत्काल उन्होंने अपने भक्तों तथा अन्य व्रजवासियोंके साथ गिरि-गोवर्धनकी ओर प्रस्थान किया। महाप्रभु कुछ ही ऊपर चढ़े होंगे कि तत्क्षण सबके देखते-देखते प्रभु श्रीनाथजी अपनी गिरि-कन्दरासे बाहर आ गये और श्रीमद्वल्लभाचार्यजीसे गले मिलकर भेंटने लगे। उस समय समग्र व्रजवासी प्रभु और महाप्रभुके इस अद्भुत मिलनकी प्रशंसा करते हुए जय-जयकार करने लगे। आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजीने व्रजभक्तोंको बतलाया कि गर्गसंहितान्तर्गत श्रीगर्गाचार्यकी भविष्यवाणीके अनुसार स्वयं सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्णका ही यह प्राकट्य हुआ है और कलियुगमें आप श्रीनाथजीके नामसे पुकारे जाते हुए सदा वन्दनीय रहेंगे—

श्रीनाथं देवदमनं तं वदिष्यन्ति सज्जनाः।
गोवर्धनगिरौ राजन् सदा लीलां करोति यः॥

(गर्गसंहिता ७। ३०-३१)

आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजी गिरिराज गोवर्धनपर रहकर प्रभु श्रीनाथजीकी सेवाएँ करने लगे। एक दिन प्रभु श्रीनाथजीने श्रीमहाप्रभुजीको दुग्ध-पान-हेतु एक गाय खरीदनेकी आज्ञा दी। भगवदाज्ञा शिरोधार्यकर श्रीमहाप्रभुजीने एक गाय खरीदी। इसके बाद आचार्यचरण श्रीमहाप्रभुजीने गिरि-गोवर्धनपर अपने एक भक्तसे कहकर प्रभु श्रीनाथजीके लिये एक मन्दिर भी बनवा दिया। धूमधामसे प्रभु श्रीनाथजी उसमें विराजे, अब तो श्रीनाथजीकी लीलाएँ और बढ़ गयीं। अनेक प्रकारके शृंगार, विविध व्यंजन तथा सुमधुर गान आदि होने लगा। आचार्यचरण महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी पुष्टि-सम्प्रदायके प्रधान आचार्य थे, अतः अपने समयके चार गायक भक्त कवियोंको 'ब्रह्मसम्बन्ध' की दीक्षा देकर प्रभुकी कीर्तनमयी सेवाओंमें नियुक्त किया। धीरे-धीरे प्रभु श्रीनाथजीकी लीलाएँ इन गायक भक्त कवियोंके संग भी होने लगीं।

प्रभु श्रीनाथजीकी सब सेवा-व्यवस्थाएँ व्यवस्थित हो जानेके बाद श्रीमद्वल्लभाचार्यजी भारत-परिक्रमापर निकले। उस समय प्रभु श्रीनाथजीके मुखियाको बुलाकर उन्होंने कहा कि 'भक्त सूरदास वैसे तो जन्मान्ध हैं, परंतु यहाँ प्रभु श्रीनाथजीकी सेवामें कीर्तन करते समय इन्हें प्रभुजीके साक्षात् दर्शन होते हैं, अतः तुम कभी इनकी परीक्षा मत लेना।' इतना निर्देश देनेके बाद वे तो यात्रार्थ प्रस्थान कर गये, परंतु मुखियाके मनमें संदेह उत्पन्न हो गया। उसने मनमें सोचा कि ऐसा कैसे हो सकता है? कैसे सूरदासजीको प्रभु श्रीनाथजीके शृंगारके साङ्गोपाङ्ग दर्शन हो सकते हैं? अतः एक दिन सूरदासकी परीक्षाके लिये उष्णकालमें मोतीका आड़बंद, श्रीमस्तकपर कुल्हे, हल्की-फुल्की मोतियोंकी माला प्रभु श्रीनाथजीको पहनायीं तथा सूरदासजीकी सेवामें आनेपर झूठ-मूठ ही भारी शृंगार होनेकी बात कही। भक्त सूरदासजीने अपना तानपूरा उठाया और उस दिन जो शृंगार नन्दनन्दन प्रभु श्रीनाथजीने अङ्गीकार किया, उसका वर्णन अपने एक पदमें गा सुनाया—

देखे री हरि नंगमनंगा।
जल-सुत भूषन अंग बिराजत, बसनहीन छबि उठत तरंगा॥
अंग अंग प्रति अमित माधुरी, निरखि लजित रति कोटि अनंगा।
किलकत दधि-सुत मुख ले मन भरि 'सूर' हँसत ब्रज जुवतिन संगा॥

मुखिया इस पदको सुनकर दंग रह गये। भक्त सूरदासजीको प्रभु श्रीनाथजीके नख-शिख-शृंगारके साक्षात् दर्शन होते हैं, यह पूर्ण विश्वास हो गया। अब वे आचार्यचरण श्रीमहाप्रभुजी भारत-यात्रा करके जब गिरि गोवर्धन पधारे, तब उनसे अपने कियेकी क्षमा माँगी। आज

भी उष्णकालमें गायक भक्त कवि सूरदासजीके इस प्रसंगके संस्मरणार्थ प्रभु श्रीनाथजीको उक्त शृंगार धारण कराते हैं। अधिकांश साहित्याभिरुचि रखनेवाले यह भलीभाँति जानते हैं कि सूरसागरमें अनेक पद जो सूरदासजीने प्रारम्भ किये थे, बादमें श्रीकृष्णस्वरूप प्रभु श्रीनाथजीने उन्हें पूरे किये। उनपर 'सूरस्याम' की छाप लगी हुई है। यह भक्त-भक्ति एवं भगवान्‌की अनुपम लीलाका श्रेष्ठ निदर्शन है।

एक थे भक्त श्रीकुंभनदास। उन्हें अपने प्रथम दर्शनमें ही प्रभु श्रीनाथजीने विमोहित कर लिया था। श्रीकुंभनदासने ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षा लेकर श्रीमहाप्रभुजीकी शिष्यता स्वीकार कर ली। आचार्यचरणने इनके संगीतपर रीझकर इन्हें प्रभु श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवामें नियुक्त किया। अब तो श्रीकुंभनदास प्रभु श्रीनाथजीकी युगल-लीलामें छके रहने लगे। तत्पश्चात् श्रीमहाप्रभुजीने इन्हें आशीर्वाद दिया— 'कुंभनदासको निकुंज-लीला-सम्बन्धी रसका अनुभव हुआ है। वे बड़भागी हैं आगे अब वे सदा ही हरिरसमें ही मगन रहेंगे—'

रूप देखि नैननि पलक लागे नहीं।
गोवर्द्धन-धर अंग-अंग प्रति जहाँ ही परति दृष्टि रहति तहीं-तहीं॥
कहा कहों कछु कहत न आयो, चोर्‌यौ मन मांगि वे दही।
'कुंभनदास' प्रभु के मिलवे की, सुन्दर बात सकल सखीनु सों कही॥

इसी प्रकार प्रयागमें त्रिवेणी-संगमके पावन तटपर भजन करते हुए गायक भक्त कवि श्रीपरमानन्ददासजीने देखा कि श्रीमहाप्रभुजीके अनन्य सेवक कपूरजलघरियाकी गोदमें नन्दराजकुमार प्रभु श्रीनाथजी बालक बनकर बैठे हुए हैं और तल्लीनतासे प्रभु उसका भजन सुन रहे हैं—इस अनोखी लीलाको देखकर वे आनन्दविभोर हो गये। प्रभु श्रीनाथजीकी इस एक ही लीलाने श्रीपरमानन्ददासको श्रीमहाप्रभुजीका शिष्य बनाकर प्रभु श्रीनाथजीकी कीर्तनसेवामें प्रवेश दिला दिया। इस व्रजभक्त गायक कविने व्रजराज प्रभु श्रीनंाथजीके व्रजमण्डलकी कैसी महिमा गायी है—

कहा करों वैकुंठहि जाइ।
जहाँ नहिं नंद जसोदा गोपी जहाँ नहिं बच्छ ग्वाल और गाँइ॥
जहाँ नहिं निर्मल जल जमुना कौ जहाँ नहिं वृच्छ कदम की छाँइ।
'परमानंद' प्रभु चतुर ग्वालिनी ब्रज-रज तजि मेरी जाइ बलाइ॥

इसी भाँति आचार्यचरण महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके चौरासी शिष्योंको भी प्रभु श्रीनाथजीकी अनेक लीलाओं दर्शन हुए।

प्रात:स्मरणीय आचार्यचरण महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यके यशस्वी सुवन स्वनामधन्य गुसाँई श्रीविट्ठलनाथजीके प्रभु श्रीनाथजीकी लीलाओंमें और भी वृद्धि हुई। अपने समयके चार और गायक भक्त कवियोंको श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवामें रखकर 'अष्टछाप'की की। श्रीगोविन्दस्वामी उस समयके अच्छे भक्त-कवि संगीतज्ञ थे। उनकी संगीतप्रियतापर पसीजकर श्रीविट्ठलनाथजीने उन्हें प्रभु श्रीनाथजीकी कीर्तनसे स्थान दिया। धीरे-धीरे प्रभु श्रीनाथजीसे उनका सम्बन्ध हो गया। श्रीगुसाँईजी महाराजकी भी श्रीगोविन्दस्वा असीम कृपा थी। प्रभु श्रीनाथजीके साथ श्रीगोविन्दस्वामी हास्य-विनोद चलता रहता था। कभी किसी कारणवश श्रीगोविन्दस्वामी सेवामें नहीं आते तो प्रभु अवकाश पाकर उनकी कुटीपर पहुँच जाते थे। प्रभु सख्यभावकी क्रीडाएँ उनके साथ चलती रहती थीं। एक श्रीगुसाँईजी प्रभु श्रीनाथजीका शृंगार कर रहे थे, ओर श्रीगोविन्दस्वामी कीर्तन करने बैठ गये। जब शृंगारकी सामग्री लाने-हेतु इधर-उधर होते, तब श्रीनाथजी एक कंकड़ श्रीगोविन्दस्वामीपर फेंक देते, श्रीगोविन्दस्वामी प्रभु श्रीनाथजीके इस करतूतको कर देते। देखते-देखते प्रभु श्रीनाथजीने सात श्रीगोविन्दस्वामीपर फेंके। तब थोड़ेसे आक्रोशमें श्रीगोविन्दस्वामीने एक बड़ा कंकड़ प्रभु मारा। कंकड़की तीव्र चोटसे प्रभु श्रीनाथजी उठे और श्रीगुसाँईजीका अङ्गीकार कराया बहुमूल्य शृंगार धड़ामसे नीचे आ गिरा। महाराजको श्रीगोविन्दस्वामीकी धृष्टतापर बड़ा क्रोध परंतु प्रभु श्रीनाथजीने अपनी ही उच्छृंखलता श्रीगुसाँईजीके क्रोधको ठंडा कर दिया। अपने प्रिय श्रीगोविन्दस्वामीकी इस स्नेह-लीलाको जीवन्त लिये आज भी प्रभु श्रीनाथजी नित्य ग्वालके समय बनी सात कंकरिया आरोगते हैं।

एक बार प्रभु श्रीनाथजी श्रीगोविन्दस्वामीके

गये और वहाँ वृक्षकी टहनीपर बैठकर वंशी बजाने लगें। इसी बीच मन्दिरमें उत्थापन-दर्शनका समय समीप आ गया तो प्रभु वृक्षके ऊपरसे ही कूदे। ऊटपटाँग कूदनेपर प्रभुका वस्त्र वृक्षकी टहनीमें उलझकर फट गया। उत्थापनमें श्रीगुसाँईजीने प्रभुका फटा वस्त्र देखकर श्रीगोविन्दस्वामीसे इसका कारण पूछा। इसपर श्रीगोविन्दस्वामीने श्रीगुसाँईजीको उस वृक्षकी टहनीमें फँसे वस्त्रके अंशको बतलाया जो प्रभुके कूदते समय फटकर वहाँ फँस गया था। श्रीगुसाँईजीको ठाकुरजीकी इस लीलापर बड़ा आश्चर्य हुआ तथा सखा श्रीगोविन्दस्वामी और नन्दनन्दन गोविन्दके मैत्री-भावपर बड़ी प्रसन्नता भी हुई।

गायक भक्त कवि श्रीचत्रभुजदास गिरि-गोवर्धन छोड़कर कहीं नहीं जाते थे। एक बार श्रीगुसाँईजीके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजीने प्रभु श्रीनाथजीको मथुरा ले जाकर सतघरामें पधराये। उधर गिरि-गोवर्धनपर प्रभु श्रीनाथजीको नहीं देखकर श्रीचत्रभुजदास प्रभुके विरहमें व्याकुल हो गये और गाने लगे—

श्रीगोवर्धनवासी साँवरेलाल, तुम बिन रह्यो न जाय हो।

उधर मथुरा सतघरामें प्रभु श्रीनाथजी भक्तकी मनोव्यथा समझकर आकुल हो उठे और उन्होंने उन्हें तुरंत गोवर्धन पधरानेकी आज्ञा दी। प्रभु-आज्ञानुसार श्रीनाथजीको पुनः गिरि-गोवर्धन पधराया गया। इस कारण राजभोगमें विलम्ब हो गया, अतः गिरि-गोवर्धन आकर राजभोग और शयन-भोग दोनों साथ ही आरोगे। प्रभुकी लीला बड़ी विचित्र है, आज भी प्रभु श्रीनाथजी नृसिंह-चतुर्दशीको शयनभोगके साथ राजभोग आरोगकर उस भक्तगाथाको अमर किये हुए हैं। इन अष्ट-सखाओंने लीलाविहारी प्रभु श्रीनाथजीकी गोवर्धनलीला, दानलीला, मानलीला, श्यामसगाई और प्रभासरास आदि कई लीलाओंपर अपने काव्य-ग्रन्थोंका सृजन किया है।

एक दिन लीलापुरुषोत्तम प्रभु श्रीनाथजी वि० सं० १७२८ में व्रजभूमि और गिरि-गोवर्धन छोड़कर मेवाड़ पधारे। मेवाड़में जिस निरापद स्थानपर आप विराजे, वहाँ एक सुन्दर नगर बस गया। श्रीनाथजीके नामपर उसका भी नाम श्रीनाथद्वारा पड़ा। ऋद्धि-सिद्धि यहाँ अठखेलियाँ करने लगीं और जंगलमें मङ्गलके बाजे बज उठे। प्रभु श्रीनाथजीके मेवाड़ पधारते ही यहाँ भी उनकी अद्भुत-अद्भुत लीलाएँ प्रारम्भ हो गयीं।

एक बार घस्यार-ग्राममें प्रवास करते हुए जलवायु अनुकूल नहीं होनेके कारण तिलकायत महाराजके एकके बाद एक करके तीन बालक स्वर्ग सिधार गये। चौथे बालकके प्रकट होते ही उसे शुद्ध स्नान कराकर तत्कालीन तिलकायत श्रीगिरिधरजी महाराजने उसे प्रभु श्रीनाथजीके चरणारविन्दमें डाल दिया और उस बालकको चिरायु प्रदान करने-हेतु प्रभुसे करबद्ध प्रार्थना की। तत्क्षण प्रभु श्रीनाथजीने अपने दायें कर-कमलसे उस बालकके सिरको स्पर्श कर दिया, उसे दीर्घायु होनेका वरदान मिल गया। वही बालक पुष्टि-सम्प्रदायमें तिलकायत श्रीदाऊजी महाराजके नामसे विभूषित हुआ। उसी बालकने युवावस्था प्राप्त होते ही पुनः प्रभु श्रीनाथजीको नाथद्वारा पधराया तथा सम्प्रदायका महामनोरथ द्वितीय सप्तस्वरूपोत्सव किया।

इन्हीं तिलकायत श्रीदाऊजी महाराजके समयमें वि० सं० १८६० ज्येष्ठ कृष्ण २ बुधवारको प्रभु श्रीवल्लभलालजी महाराज प्रभु श्रीनाथजीके सेवा-दर्शन करने नाथद्वारा पधारे। उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि वे प्रभु श्रीगोकुलचन्द्रमाजीको छोड़कर अन्य किसी भी भगवद्-विग्रहकी सेवा नहीं करते। नाथद्वारा आये और प्रातः प्रभु श्रीनाथजीकी सेवामें भी गये, परंतु प्रभुके समक्ष रोते रहे, लेकिन श्रीविग्रहको स्पर्श तक नहीं किया। महाराजश्रीकी यह भक्ति-विह्वलता देखकर प्रभु श्रीनाथजी हँस पड़े और उनसे कहा कि मैं ही श्रीगोकुलचन्द्रमा हूँ। इसपर महाराजने देखा कि प्रभु श्रीनाथजीके स्थानपर प्रभु श्रीगोकुलचन्द्रमाजी खड़े हैं। गोस्वामी श्रीवल्लभलालजी महाराजने गद्गदकण्ठ हो प्रेमाश्रु भरकर अत्यन्त भक्तिभावसे प्रभु श्रीनाथजीका सेवा-शृंगार किया तथा अपनी हठधर्मिताके लिये प्रभुसे क्षमा-याचना की। प्रभु श्रीनाथजीकी यह भक्तानुग्रह-लीला अत्यन्त रोमांचकारी थी।

वि० सं० १८६७ में एक विधर्मी सेनापति प्रभु श्रीनाथजीके प्रति अमङ्गलभावना लिये हुए अपनी शक्तिसे मन्दिरमें प्रवेश कर गया। प्रभुके समक्ष जाते ही उसकी आँखोंकी रोशनी गायब हो गयी। उसने प्रभुका प्रत्यक्ष चमत्कार जानकर हाथ जोड़ते हुए कई मिन्नतें कीं। प्रभु श्रीनाथजीने उसकी फरियाद सुनकर उसको उसकी नेत्रज्योति पुनः प्रदान की। इसके बाद उसने अपनी दाढ़ीसे प्रभु-मन्दिरकी सीढ़ियोंको बुहारा तथा लालदरवाजेपर हिन्दू और मुसलमान कोई भी प्रभु श्रीनाथजीके प्रति बुरी भावना नहीं

रखे—ऐसी शपथ दिलाते हुए गाय तथा सूअरके चिह्नाङ्कित दो शिलालेख लगवाये, वे आज भी लगे हुए हैं।

लीलाप्रभु श्रीनाथजीकी लीलाएँ अनन्त हैं। प्रभु श्रीनाथजीकी की गयी प्रार्थनाएँ कभी निष्फल नहीं जाती हैं। भक्तगण दौड़-दौड़कर प्रभु श्रीनाथजीके दर्शनार्थ यहाँ वर्षभर आते रहते हैं। सारे विश्वमें जहाँ-जहाँ वैष्णवोंके घर इन प्रभुकी सेवा है, वहाँ-वहाँ नाना प्रकारकी लीलाएँ करते हुए उनके प्राङ्गणमें प्रभु श्रीनाथजी प्रेमरूपी पयोदसे प्रमोदरूपी पीयूष बरसाते रहते हैं। वैष्णवगण इन भगवल्लीलाओंपर मुग्ध होकर नाथद्वारा आते हैं तथा प्रभुमें छप्पन भोग, राजभोग, मङ्गलभोग, शयनभोग, वस्त्रालंकार, रत्नाभरण तथा चाँदी और सोनेको भेंटकर मन-ही-मन आनन्दित होते रहते हैं। यहाँकी गौमाता तथा गोपालजीकी लीलाएँ भी सदैव सुदर्शनीय एवं बारम्बार वन्दनीय हैं।

* * *

हरिहरेश्वरका मिलन—एक लीला-रहस्य

(डॉ० श्रीकेशवरघुनाथजी कान्हेरे, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

प्रभुकी लीला अपरम्पार है। उसकी लीलाका आदि, मध्य और अन्त खोजना मानव-शक्तिके लिये असम्भव है। प्रभु जब भी कोई लीला रचते हैं, तब वह केवल लीलामात्र नहीं होती, अपितु उसके पीछे बड़ा भारी रहस्य, महान् तत्त्व, कोई शिक्षा तथा कोई आदर्श विद्यमान रहता है। शैव, वैष्णव, शाक्त आदि देव एक ही हैं, उनमें कोई भेद नहीं है। शिव ही विष्णु हैं और विष्णु ही शिव। इस भावको जनमानसमें प्रतिष्ठापित करनेके लिये प्रभुने एक लीला रची।

प्रदोषकाल था। कैलासपर्वतपर विराजमान देवाधिदेव महादेव अपने हाथपर चिताभस्म लेकर सर्वाङ्गपर लेपन करना चाहते थे कि भस्ममें एक छोटा-सा कंकड़ आ गया। महारुद्रने जब उस कंकड़को भस्मसे निकालकर नीचे फेंका, तब एक अद्भुत चमत्कार हुआ—उस कंकड़मेंसे एक असुरका जन्म हुआ। जन्म होते ही वह असुर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और कैलासपतिकी स्तुति करने लगा। साम्ब सदाशिवसे भूतगणोंने पूछा—'हे प्रभु! यह कौन है? इसका नाम क्या है?'

भोलेनाथ मन-ही-मन मुसकराये और उन्होंने कहा—'यह हमारा पुत्र है और इसका नाम भस्मासुर है।' भस्मासुर बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर बोला—'हे परमपिता! मुझे कोई सेवा बताइये, ताकि मैं अपने-आपको धन्य समझ सकूँ, मेरा जीवन सफल हो सके।'

सदाशिवने कहा—'हे भस्मासुर! तुम प्रतिदिन सत्शीलवान् सदाचारी एवं ईश्वरभक्त व्यक्तिकी चिताभस्म लाकर मुझे दिया करो।'

ऐसी सेवा सुनकर भस्मासुरको संतोष हुआ। वह प्रतिदिन कर्मभूमिसे चिताभस्म प्राप्तकर शिवशंकरको समर्पित करता और शिव-महिमा श्रवणकर स्वयंको धन्य समझता।

भूलोकपर आनेवाला भस्मासुर गौ-ब्राह्मण, ऋषि-मुनि तपस्वी मनुष्योंको देखकर आश्चर्य करता—'पृथ्वीपर रहनेवाले यह मानव ऐश्वर्य-सम्पन्न होकर बड़े सुखसे इस लोकमें निवास करते हैं और उधर स्वर्गमें निवास करनेवाले इन्द्रादि देवगण, गन्धर्व आदि भी सुखोपभोगमें मस्त रहते हैं! किंतु भला मैं ही क्यों इस अवस्थामें रहकर केवल चिताभस्म एकत्रित करके सदाशिवको समर्पित करता रहूँ? यह क्रम कबतक चलेगा? क्यों न इन सबका संहार करके, इन्द्रादि देवोंपर विजय पाकर, असुरोंका राज्य प्रस्थापित करके सर्वांगसुन्दर पार्वतीको अपनी पत्नी बनाकर स्वयं इन्द्र बन जाऊँ।'

ऐसा मनमें संकल्प लिये वह कपटी हाथ जोड़कर भगवान् शिवके सम्मुख आकर खड़ा हो गया और कहने लगा—'हे प्रभो! सम्पूर्ण सृष्टिमें खोजकर आपके लिये चिताभस्म लाना बड़ा ही कष्टप्रद होता है। आज तीनों लोक देखा, परंतु कहीं चिताभस्म नहीं मिली। इस कारण आपकी सेवामें व्यवधान आया है। अतः हे देवाधिदेव महादेव परमपिता प्रभो! इस बालकको ऐसा वर दीजिये, जिससे आपकी सेवा निरन्तर कर सकूँ, इस प्रकार कहकर वह भोलेनाथके चरणोंको पकड़कर रोने लगा।

उसकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भोलेनाथ उसे वर देने-हेतु सिद्ध हो गये और कहने लगे—'अरे भस्मासुर! हम प्रसन्न हैं। वर माँगो।'

यह देखकर माता पार्वतीने कहा—'हे परमेश्वर! इसे वरदान मत दीजिये। यह असुर धरणीपर कोलाहल मचा देगा। एक तो यह पहलेसे ही मर्कट है फिर उसमें मद्यपान और वृश्चिकदंश, ऐसी दशामें यह क्या नहीं करेगा? अतः इसे वरदान देना उचित नहीं है।'

लीलावतारी देवाधिदेवकी लीलाका रहस्य माता पार्वती भी समझ नहीं सकीं, फिर क्षुद्र मानव इस रहस्यको कैसे समझे? भोलेनाथने कहा—'उमा, यह हमारा बालक परम भक्त है। यह अनाचार नहीं करेगा।' इतना कहकर वृषभनाथ भस्मासुरसे बोले—'कहो भक्त! क्या चाहते हो?'

—यह सुनकर भस्मासुर मन-ही-मन प्रसन्न होता हुआ प्रकट-रूपमें बोला—'हे प्रभो! जिस व्यक्तिके मस्तकपर मैं अपना हाथ रखूँ वह उसी क्षण भस्म हो जाय। फलस्वरूप आपके लिये चिताभस्म लानेमें कोई बाधा उत्पन्न नहीं होगी।'

आशुतोष नन्दिकेश्वरने कहा—'तथास्तु!' वरदान मिलते ही वह असुर आनन्दसे नाचने लगा।

वह प्रतिदिन भूलोकपर विहार करता और ऋषि-मुनि, तपस्वी, भक्त, गौ-ब्राह्मण आदिको खोजकर उन्हें भस्म कर देता तथा कैलासपतिको बड़ी नम्रतासे चिताभस्म अर्पण करता। भस्मासुरके अत्याचारसे सारी सृष्टि प्रभावित होने लगी। ऋषि-मुनि, देवी-देवता भयाक्रान्त हो गये।

अनेक दिनोंतक भस्मासुरका कार्य निर्बाध-गतिसे चलते-चलते वह मदान्ध हो गया। उसे अपनी शक्तिपर गर्व होने लगा। धीरे-धीरे उसके विचारोंमें परिवर्तन आने लगा। वह सोचने लगा—पहले इन्द्रादि देवोंको भस्म करूँगा; फिर शेषशायी विष्णुको और भोलेनाथ वृद्ध हो चुके हैं तथा पार्वती अभी यौवनावस्थामें हैं एवं त्रिभुवन-सुन्दरी भी। अतः अन्तमें भोलेनाथको ही भस्म करके पार्वतीका हरण करके सारे विश्वका सम्राट् बन पार्वतीको सम्राज्ञी बनाऊँगा।

इधर पृथ्वीमाता काँप उठीं। सारी प्रजा—ऋषि-मुनि-तपस्वी, देव आदि भयभीत होकर ब्रह्माजीसे मिले और उन्हें सारी व्यथा कह सुनायी। ब्रह्माजी सभीको साथ लिये शेषशायी विष्णुभगवान्से मिले। नारायण स्वयं शिवशंकरके पास गये और कहने लगे—'हे देव! आपने यह क्या किया? आपके वरदानसे भस्मासुरने अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया है। भोलेनाथ! इसे सँभालिये, अन्यथा मुझे तो आपका भविष्य भी अन्धकारमय दिखायी दे रहा है। अतः स्वयंकी रक्षा कीजिये।' नारायणका वचन सुनकर त्रिलोचन शिवने हँसते हुए कहा—'आप स्वयं अन्तर्यामी हैं, फिर भी चिन्ताका विषय नहीं है। भस्मासुरका अन्त समीप समझें।'

इतनेमें भस्मासुर चिताभस्म लेकर कैलासपर आया। भस्मासुरको देख, कर्पूरगौर क्रोधित होकर बोले—'अरे दुष्ट, मैंने तुझे चिताभस्म-प्राप्ति-हेतु वरदान दिया था, लेकिन तूने उसका दुरुपयोग करते हुए पृथ्वीपर अराजकता फैला दी।'

भोलेनाथके वचन सुनकर मदहोश भस्मासुर कहने लगा—'हे वृषभनाथ, तुम अब वृद्ध हो चुके हो। पार्वती अभी तरुण है, सुन्दर है। तुम उसके लायक नहीं रहे। अतः पार्वतीको मुझे दे दो, अन्यथा मैं तुम्हें ही भस्म कर दूँगा।' इतना कहनेके साथ ही वह भस्मासुर शिवशंकरकी ओर दौड़ पड़ा। यह दृश्य देखकर माता पार्वती अपने सदनमें भाग गयीं। भूतगण इधर-उधर दौड़ने लगे और लीला-नाटकी शिवशंकर जंगलकी ओर भागे। उनके पीछे भस्मासुर भागने लगा।

वेदशास्त्रोंने जिसे 'नेति-नेति' कहा—वे देवाधिदेव महारुद्र भस्मासुरके हाथ भला कैसे आ सकते थे! क्षणमें वे उसे समीप दिखायी देते और दूसरे ही क्षण वे कोसों दूर दिखायी पड़ते।

उधर माता पार्वती शेषशायी विष्णुनारायणकी प्रार्थना करने लगीं—'हे प्रभु! इस संकटसे रक्षा करो।' क्षीरसागरमें निवास करनेवाले लक्ष्मीपति शिवशंकरकी लीला देखनेमें तल्लीन थे। माता पार्वतीकी पुकार सुनते ही उनकी समाधि टूट गयी और तुरंत मोहिनी रूप धारणकर भोलेनाथ और भस्मासुरके मध्य आकर खड़े हो गये।

लावण्यमयी मोहिनीको देखकर दौड़नेवाला भस्मासुर वहीं रुक गया। उसके पाँव वहीं थम गये और एकटक उसकी ओर देखने लगा। भस्मासुरकी आँखोंको मोहिनीने आकृष्ट कर लिया। मोहिनीको देखते ही भस्मासुर अपने कार्यको भूल गया। उसकी स्मरण-शक्ति मोहिनीने हरण कर ली।

उधर महारुद्र भगवान्ने नटवरधारी श्रीविष्णुका वह

अलौकिक रूप देखकर एक वटवृक्षके रूपमें खड़े होकर उनकी लीला देखनेमें मस्त हो गये। अद्वितीय रूप-सम्पन्ना मोहिनीको नृत्य करते देख भस्मासुरके कदम मोहिनीकी ओर बढ़ने लगे।

वह मोहिनीके समीप आकर बड़ी भावुकतासे कहने लगा—'हे सर्वाङ्ग-सुन्दरी रूपयौवना! तुम इतनी सुन्दर हो कि विश्वकी सारी सौन्दर्यसम्पन्न युवतियाँ, इन्द्रकी अप्सराएँ और लक्ष्मी तथा पार्वती-जैसी त्रिभुवन-सुन्दरी भी तुम्हारे समक्ष नगण्य हैं। हे विश्व-मोहिनी, मैं त्रैलोक्यमें शक्तिशाली हूँ। यदि तुम मुझसे विवाह करोगी तो जीवनभर तुम्हारा दास बनकर तुम्हारी सेवा करता रहूँगा। त्रैलोक्यका अधिपति बनकर तुम्हें महाराज्ञी बनाऊँगा।

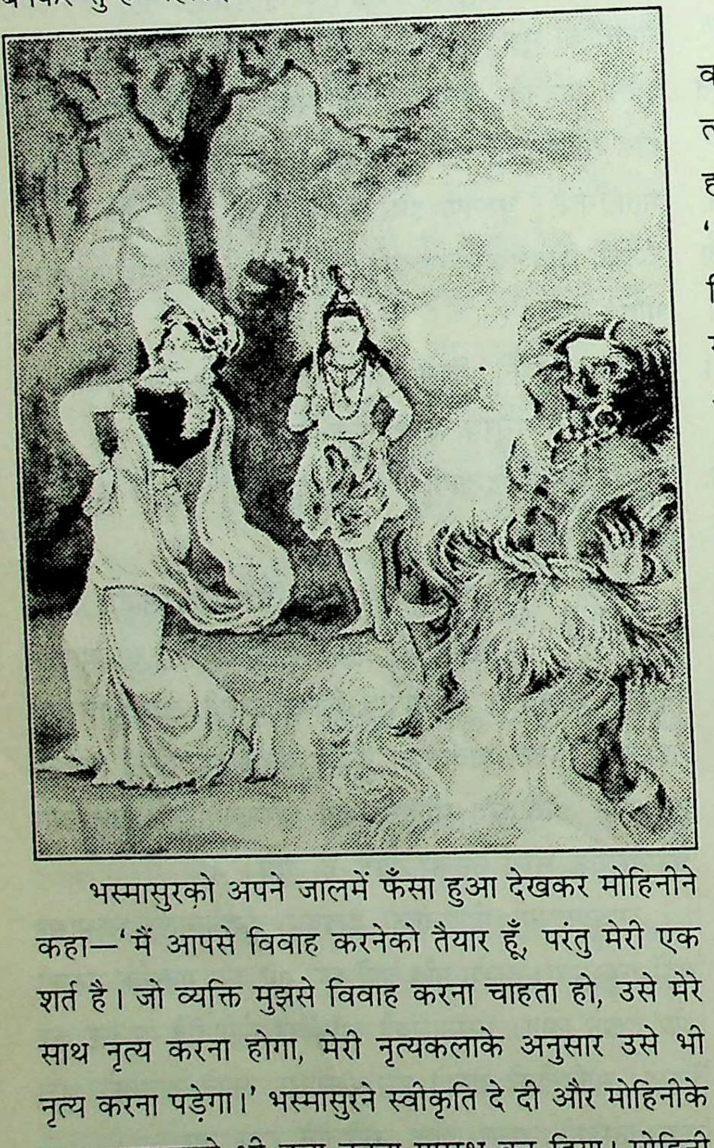

भस्मासुरको अपने जालमें फँसा हुआ देखकर मोहिनीने कहा—'मैं आपसे विवाह करनेको तैयार हूँ, परंतु मेरी एक शर्त है। जो व्यक्ति मुझसे विवाह करना चाहता हो, उसे मेरे साथ नृत्य करना होगा, मेरी नृत्यकलाके अनुसार उसे भी नृत्य करना पड़ेगा।' भस्मासुरने स्वीकृति दे दी और मोहिनीके साथ भस्मासुरने भी नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया। मोहिनी जो हाव-भाव प्रकट करती, जो मुद्राएँ धारण करती, ठीक उसी प्रकार भस्मासुर भी हाव-भाव-मुद्राएँ धारणकर नृत्य करता। सारे देवता—इन्द्र, गन्धर्व, किन्नर, अप्सराएँ तटस्थ होकर प्रभुका नृत्य-गायन देखनेमें तल्लीन हो गये।

मोहिनीने लीलाएँ करनी प्रारम्भ कर दीं। कभी अपने हाथ पैरोंपर, कभी कमरपर, पेटपर, कंधोंपर रख नृत्य करती। भस्मासुर भी उसी प्रकार बड़ी तन्मयतासे नृत्य करता। भस्मासुर पूर्णरूपसे नृत्याधीन है। उसे वरदानका भी स्मरण नहीं है। मोहिनीने यह देखा और नृत्यभाव-मुद्रामें अपना हाथ मस्तकपर रखा। उधर भस्मासुरने भी जैसे ही अपना हाथ अपने मस्तकपर रखा, क्षणभरमें ही वह वहीं भस्म हो गया।

भस्मासुरका अन्त होते ही वटवृक्षरूपधारी शिवशंकर वहीं प्रकट हो गये और मोहिनी-रूपधारी नारायणने वह रूप त्यागकर जैसे ही चतुर्भुज-रूप धारण किया, उसी क्षण हरने हरिको गले लगा लिया। उसी दिनसे लीला-नाटकी भगवान् 'हरिहरेश्वर'के नामसे विख्यात हुए। उन्होंने जगत्‌को दिखाया—'हरि-हर'में कोई भेद नहीं है। वहीं अम्बिका तथा महालक्ष्मी प्रकट हुईं और उन दोनोंने उन्हें वन्दनकर पूजा-अर्चा और आरती की। सारा ब्रह्माण्ड आनन्दसे नाच उठा।

ब्रह्माजीने कहा—

वेदानुवर्तिनो रुद्रं देवं नारायणं तथा।
एकीभावेन पश्यन्ति मुक्तिभाजो भवन्ति ते॥
यो विष्णुः स स्वयं रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः।
इति मत्वा यजेद् देवं स याति परमां गतिम्॥

(कूर्मपुराण, पू० वि० अ० १४। ८८-

'हे ईश्वरभक्तो! जो विष्णु हैं, वे ही साक्षात् रुद्र हैं और जो रुद्र हैं, वे ही जनार्दन विष्णु हैं। शंकरकी निन्दा प्रयत्नपूर्वक छोड़ दो। दोनों एक ही हैं। जो लोग विष्णुभगवान्को शिवशंकरसे पृथक् मानते हैं, वे नरकके भागीदार होते हैं। जो रुद्रदेव तथा नारायणको एकीभावसे देखते हैं, वे मुक्तिपदके भागी होते हैं।'

हे भगवन्! श्रीविष्णुरुद्र आपकी लीला अपरम्पार है। आपकी जय हो! दासका प्रणाम आप स्वीकार करें।

※ ※ ※

आशुतोष शिवकी निग्रहानुग्रह-लीला

(डॉ० श्रीरमाकान्तजी झा)

सम्पूर्ण भारतीय संस्कृतिमें भगवान् शिव देवाधिदेवरूपमें पूज्य हैं। वे महादेव हैं, क्योंकि उनके अन्तः और बाह्य दोनों पक्ष शुद्ध-सत्त्व-प्रधान हैं। वे शंकर हैं—**'शम्=कल्याणं करोति इति शंकरः।'** वे आशुतोष हैं, भक्तजनोंपर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् शिव अनायास ही आराधककी शुद्ध भावनाको जानकर उसे अभिलषित वर दे देते हैं। **'भावमिच्छन्ति देवताः'**—इस वचनके अनुसार भक्तके शुद्ध भावका आभास पाते ही बिना परीक्षा लिये ही वे प्रकट होकर उसकी मनःकामना पूरी करते हैं। इसीलिये वे औढरदानी भी कहे जाते हैं। विष्णु आदि अन्य देवोंकी अपेक्षा शिव सुर-असुर, दानव-मानव सबके निर्विवाद आराध्य हैं। शिवके आशुतोषत्व, महादेवत्व और सर्वकल्याणकारकत्व ही उनकी सर्वप्रियताके हेतु हैं। ऐसे सर्वप्रिय, भक्तवत्सल, सर्वसुलभ शिवकी मङ्गलमयी मूर्ति सर्वथा नमस्य है।

समस्त विश्वको रुद्ररूप कहा गया है। शिवका अर्धनारीश्वर-रूप तो अत्यन्त विलक्षण है। उनका यह यामल विग्रह सृष्टितत्त्वके सम्पूर्ण आयामको समेटे है। प्रकृति-पुरुषात्मक जगत्का रहस्य इस विग्रहमें अनुस्यूत है। स्त्री-पुंभावकी एकरूपताका यह प्रतीक है। परम शुभंकर शिव तथा शक्तिके अभिन्न युग्मरूपके द्योतक परम शिवकी निग्रह-अनुग्रह-लीलाका दिग्दर्शन प्रस्तुत निबन्धका प्रतिपाद्य विषय है।

'लीला' शब्दका अर्थ है—खेल, क्रीडा, विनोद, मनोरंजन, आनन्द। लीलाका एक अर्थ प्रीतिविषयक विनोद—केलिक्रीडा भी होता है। प्रकृत प्रसंगमें लीलाका अर्थ हम आनन्द लेते हैं। भगवान् शिव आनन्दरूप हैं। वे स्वतः आनन्दानुभूतिके लिये तथा विश्वको आनन्दित करनेके लिये क्रीडा करना चाहते हैं, किंतु **'एकाकी न रमते'**, अकेले कैसे खेलें, किसके साथ खेलें?

अतः स्वाभिन्ना शिवाशक्तिको लीला-विग्रह देकर उसी आद्याशक्तिके साथ क्रीडा करते हैं। उसी अर्धनारीश्वर शिवाऽभिन्न शक्तिका यह समस्त प्रपञ्च खेल है। यह विश्व उसी शिव-शक्तिकी लीलामयी परिणति है। विश्व-कल्याण तथा लोकसंग्रहके लिये परम शिवकी निग्रह-अनुग्रहरूपा लीला होती है। परम शिवकी वह लीला निग्रहदृष्टिसे नियन्त्रणपरक है और अनुग्रह-दृष्टिसे मोक्षपरक। संसार-भावमें व्यवस्था एवं मर्यादारक्षणके लिये संयमन तथा प्राणियोंके परम पुरुषार्थ—मोक्षके लिये प्रसाद—कृपाकी अपेक्षा होती है। सृष्टिकर्ता शिव नियन्त्रण और प्रसाद दोनों भावोंसे अपनी संवित्-शक्तिके साथ निग्रह और अनुग्रह-लीला करते हैं।

लीलाका आध्यात्मिक पक्ष

काश्मीरी शैवोंकी आध्यात्मिक दृष्टिके अनुसार केवल परम शिव-उपनिषदोंका परब्रह्म ही एकमात्र सत्य तत्त्व है। वह सर्वशक्तिमान् है और उसमें उसकी शक्तिके रूपमें समस्त अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड विद्यमान रहते हैं। वह परम शिव अनन्त और पूर्ण चित् है। उस पारमेश्वरी चित्का स्वभाव आनन्द है। उस आनन्दसे प्रभावित वह चित्-शक्ति जब झूमने लगती है, तो आनन्द लीलाके रूपको धारण करता है। उस लीलारूप स्वभावकी अभिव्यक्ति ही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और उसमें होनेवाले सर्जन-संहार आदि सब-के-सब परम शिवकी शक्तियोंके बहिर्मुखी आभास हैं, जो प्रतिबिम्ब-न्यायसे आभासित होते रहते हैं। उन पारमेश्वरी शक्तियोंके इस अद्भुत आभासके होते रहनेपर भी परम शिवमें कोई विकार नहीं आता, जैसे दर्पणमें मुख प्रतिबिम्बित होते रहनेपर भी मुख और दर्पण विकारशून्य ही बने रहते हैं।

पूर्ण शुद्ध तथा असीम चिद्रूप परम शिवका स्वभाव आनन्द है। वह सदैव स्पन्दमान होता हुआ स्व-स्वभावसे ही क्रीडनशील होता है। अतः प्रतिबिम्बात्मक सर्जन-संहार आदिकी ऐसी लीलाएँ परम शिवके असीम चिदानन्दमें चलती रहती हैं। इन लीलाओंका इस प्रकार चलते रहना ही परमेश्वरकी परमेश्वरता या परमशिवकी परशिवता है। आत्मस्वरूप संसारको अपनेसे भिन्नरूपमें और अभेदको भी भेदरूपमें परिवर्तित करनेवाली माया भी उस परमेश्वरकी ही एक शक्ति है। श्वेताश्वतरोपनिषद्‌में परमेश्वर शिवकी शक्तिको माया कहा गया है।

बन्धन और मोक्ष भी उसीकी लीलाएँ हैं। सब कुछ वही परम शिव है। शैव साधक विश्वकी प्रत्येक वस्तुको शिवरूपमें अनुभव करते हैं। परमेश्वर शिव ही स्वयंको नटके समान बद्ध जीवोंके रूपमें प्रकट करता हुआ बन्धन-लीलाका स्वयं अभिनय मात्र करता है। वह योग, ज्ञान और भक्तिके समन्वित साधना-पथपर अग्रसर होता हुआ मुक्ति-लीलाका अनुभव करता है। बन्धनका आभास परम शिवकी निग्रह-लीला है और मोक्षकी प्राप्ति उसकी अनुग्रह-लीलाका परिणाम है।

पूर्ण चेतन परम शिव तथा परा शिवताकी लीलाका जो अभिनय सतत चलता रहता है, उसके भीतर ही विज्ञजन उसका दर्शन और विमर्शन दो रूपोंमें किया करते हैं। उसके अनुसार वे साधक एक मात्र पूर्ण और असीम तथा विश्वातीत चिदानन्दघन-रूपमें उसका साक्षात्कार करते हैं, उस रूपमें उसे शिव कहते हैं, साथ ही वे समग्र विश्वके रूपमें तथा इस विश्वमयी लीलाके रूपमें भी उसीका साक्षात्कार करते हैं, इस रूपमें उसे शक्ति कहते हैं। इस प्रकार एक ही परम शिव एक ओरसे शिवतत्त्व है और दूसरी ओरसे शक्तितत्त्व है। परमेश्वर शिवकी यही स्वाभाविक पराशक्ति प्रयोजनवश दस महाविद्याओंके रूपमें प्रकट होकर भक्तोंद्वारा आराधित—पूजित होती है।

परमशिवकी वह अनादि-स्वातन्त्र्य शक्ति दो रूपोंमें अभिव्यक्त होती है—जड-शक्ति और संवित्-शक्ति। परम शिव जडशक्तिसे बन्धनकी लीला और संवित्-शक्तिसे मोक्षकी लीला करते हैं। शिवकी यह स्वातन्त्र्य-शक्तिकी लीला ही भवबन्धन और भवमुक्तिका हेतु है—

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी॥
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥

(श्रीदुर्गासप्तशती १। ५७-५८)

शक्तिविशिष्ट शिवसे ही समस्त प्रपञ्चकी सृष्टि होती है, अतः प्रत्येक वस्तु यत्किंचित् शक्ति-विशिष्ट ही दृष्टिगोचर हो रही है। यथा पृथिवीमें धारण, जलमें आप्यायन, अग्निमें ज्वलन, वायुमें स्पन्दन, आकाशमें व्यापन आदि शक्तियाँ दिखायी पड़ती हैं। ये सारी शक्तियाँ शिवकी स्वतन्त्र-शक्तिकी मूर्तियाँ हैं, जो यथासमय यथास्थान अपनी लीलाएँ दिखाती हैं।

शिव और शक्तिका कभी वियोग नहीं होता। शिव इसी अवियुक्त शक्तिसे विश्वकी सृष्टि करता है। यह सृष्टि शिवशक्तिकी यामल-लीला ही है। शक्तितत्त्वके उपासक भगवती शिव-शक्तिकी सकल शब्दमयी मूर्तिकी उपासनामें ही अपने जीवनके प्रत्येक क्षणको सार्थक मानते हैं—

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके!
सकलशब्दमयी किल ते तनुः।

परम शिव अपने प्रसादसे प्राणियोंके कल्याणके लिये नाना लीलाएँ करते हैं। उनकी आदिशक्ति लीलामयी हैं। उसी लीलात्मिका शक्तिके सहयोगसे परम शिव विश्व-रंगमंचपर नर्तनलीला करते हैं, अतएव वे 'नटराज' भी कहे जाते हैं।

व्यावहारिक पक्ष

परम शिवकी लीलाके आध्यात्मिक पक्षकी भाँति ही व्यावहारिक पक्ष भी स्पृहणीय है। यजुर्वेद, पुराणों और काव्योंमें वर्णित शिवचरितके आधारपर शिवकी लीलाके व्यावहारिक पक्षके अन्तर्गत उनका दाम्पत्य-जीवन, भगवत्प्रेम, सती-संशय, दक्षयज्ञ-विध्वंस, मदन-दहन, पार्वती-परीक्षा, विवाह-लीला, गरलपान और त्रिपुरसंहार प्रमुख हैं। इन प्रसंगोंसे सम्बद्ध लीलाओंमें दाम्पत्य-प्रेम, भगवत्प्रेम, पार्वती-परीक्षा और विवाह-कौतुक तो परम शिवकी अनुग्रह-लीला है और सती-संशय, दक्षयज्ञ-ध्वंस, मदन-दाह, गरलपान और त्रिपुरसंहार निग्रह-लीला है। शिवचरितसे सम्बन्धित व्यावहारिक लीलाका उद्देश्य लोकसंग्रह है।

भगवान् शिवके दाम्पत्य-जीवनका क्या कहना! दक्ष सती, जो शिवकी आद्याशक्ति हैं वे अवतरित होकर दक्षके विरोध करनेपर भी शिवको पतिके रूपमें सहर्ष करती हैं। शिवके प्रति सतीका नैसर्गिक निर्व्याज दाम्पत्य-जीवनकी मधुरिमामें चार चाँद लगा देता है। शिव और शक्तिको लीला अभीष्ट है। अतः दोनों ही लीला करते हैं। यह लीला दोनों विभूतियोंकी भगत है।

भगवान् शिवके दाम्पत्य-जीवनके पूर्वचरितमें सती और उत्तर-चरितमें पार्वतीकी अहं भूमिका है। सतीके साथ दाम्पत्य-प्रेममें शिवकी निग्रह-लीलाकी प्रमुखता है और पार्वतीके साथ अनुग्रह-लीला की। शिवकी पत्नीके रूपमें जहाँ सतीने अपने शरीरकी आहुति देकर परमाराध्य शिवजीके प्रति अपनी अनन्य पतिपरायणताका उदाहरण प्रस्तुत किया है, वहीं पार्वतीने अपनी फूल-सी सुकुमार कायाको तपस्यामें लगाकर शिवके प्रति अपनी प्रेमा भक्तिका परिचय दिया है। सती और पार्वती दोनोंने ही परम शिवकी परमाशक्तिके रूपमें उनकी उभयविध लीलाओंको लोकमङ्गलकारी बनाया है। संसार-भावके व्यावहारिक पक्षमें सती-प्रसंगकी लीला विश्व-मानवको यह संदेश देती है कि दाम्पत्य-जीवनमें स्वजन—पति-पत्नीके बीच संदेह, अविश्वास, झूठ और कपटका कोई स्थान नहीं है। अतएव दाम्पत्य-प्रेममें उपर्युक्त संशय आदि नहीं करने चाहिये। आत्मीय जनमें परस्पर स्नेह, विश्वास और निष्कण्टक भावमें ही मङ्गल है। पार्वतीके साथ शिवजीका दाम्पत्य-प्रेम तो सफलतम गार्हस्थ्य जीवनका प्रशस्त उदाहरण है। इसीलिये प्रत्येक विवाहादि माङ्गलिक कार्योंके आरम्भमें गौरी-गणेशकी पूजा की जाती है। भगवान् शिवकी दक्षयज्ञ-ध्वंस-लीला भी सतीसे जुड़ी है। वे अपने ही पिताद्वारा अपने आराध्य पति शिवजीका अपमान सहन न कर योगाग्निमें अपना शरीर उत्सर्ग कर देती हैं।

दक्ष-प्रसंगमें शिवजीकी निग्रह-लीला दक्षको प्राण-दण्ड देकर समाप्त होती है। परंतु वहींपर देवताओंके हितको ध्यानमें रखकर शिवजीने दक्षको पुनर्जीवन और वरदान देकर अपनी अनुग्रह-लीला भी दिखायी है।

परम शिवकी मदन-दहन-लीला उनके निग्रह और पर्यवसानमें अनुग्रह-लीलाका उदाहरण है। मदन-दहनका यह प्रसंग परम शिवकी निग्रह-लीलाका निदर्शन है। परंतु इस प्रसंगकी परिणति तो शिवजीकी अनुग्रह-लीलामें हुई है और वह अनुग्रह-लीला है कामदेवकी पत्नी रतिपर कृपा। आशुतोष शिवकी यह लीला अद्भुत है। कामके देहको जलाकर भी—निग्रह-लीला करके भी उसके अस्तित्वकी अनंगरूपमें रक्षा तथा कृष्णपुत्र प्रद्युम्नके रूपमें अवतरण शैवी अनुग्रह-लीला ही तो है।

पार्वती-प्रेम-परीक्षा और उनके साथ विवाहोल्लासका संदर्भ तो प्रकारान्तरसे सतीके प्रति शिवजीकी अनुग्रह-लीलाका प्रतीक है। पार्वतीके साथ सफल और सुखी दाम्पत्य-जीवनका प्रसंग सतीके प्रति पुरातन प्रीतिका निर्वाह है। वस्तुतः सती ही तो पार्वतीके रूपमें पर्वतराज हिमालयके घर अवतरित हुईं, अतः सती और पार्वती दोनों ही शिवजीकी परमा शक्ति हैं। ऋग्वेद (१०। १२५। ६)-में देवीने स्वयं कहा है—

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि।

गरलपानका प्रसंग शिवजीकी अनुग्रह-लीलाकी चरम परिणति है। देवासुरके सम्मिलित समुद्रमन्थनसे जो चौदह रत्न निकले, उनमें एक हलाहल भी था। अच्छे-अच्छे रत्नोंको तो देवताओंने आपसमें बाँट लिया, परंतु विषको कौन ले? अगर कोई विष न ले तो उसके कुप्रभावसे विश्व ही विपद्ग्रस्त हो जायगा। विष फैलकर संसारको नष्ट कर देगा। देवताओंमें सबसे वृद्ध और समर्थ शिव ही थे, इसीलिये वे देवताओंके मुखिया भी थे। महादेवने विश्व-कल्याणके लिये उस हलाहलको पी लिया, किंतु उसे कण्ठगत ही रखा। शिव तो परम भक्त थे। उन्होंने सोचा कि गरल यदि उदरतक पहुँचेगा तो हृदयमें विराजमान परमात्माको कष्ट होगा, अतः उन्होंने गरलको कण्ठसे नीचे जाने ही नहीं दिया। तभीसे उनका एक नाम 'नीलकण्ठ' भी हो गया। यही है शिवजीकी विश्वमङ्गल-भावना और भगवद्भक्तिकी पराकाष्ठा। शिवजीके गरलपानसे व्यावहारिक जीवनमें यह तथ्य सामने आता है कि परिवारके मुखियाको परिवारके कलह, अशान्ति और स्वार्थ-भावनाके जहरको पीना पड़ता है। इतना उदार और समर्थ मुखिया ही परिवार चला सकता है।

ये उपर्युक्त प्रसंग शिवजीकी निग्रहानुग्रह-लीलाके बोधक तत्त्व हैं। इस शैवी लीलाको नमन है।

* * *

विश्व-नाटकका चतुर खिलाड़ी—शिव

(राष्ट्रपति-सम्मानित पण्डित श्रीजानकीनाथजी कौल 'कमल')

काश्मीर शैव-दर्शनके अनुसार अनुत्तर प्रकाशस्वरूप परमशिवसे अभिन्न महाशक्तिके विकासका उल्लेख करते हुए श्रीआद्यनाथ 'अनुत्तरप्रकाशपञ्चाशिका' के आरम्भमें भगवान् शिवके लीला-लावण्यकी क्रीडाका सांकेतिक विवरण देते हुए कहते हैं—

अकृत्रिमाहमामर्शप्रकाशैकघनः शिवः।
शक्त्या विमर्शवपुषा स्वात्मनोऽनन्यरूपया॥
शिवादिक्षितिपर्यन्तं विश्वं वपुरुदञ्चयन्।
पञ्चकृत्यमहानाट्यरसिकः क्रीडति प्रभुः॥

(युगलकम्)

अर्थात् केवल प्रकाश ही स्वरूप है जिसका ऐसा वह महान् तेज परप्रमाता विश्वोत्तीर्ण शिव[1] स्वाभाविक पूर्णाहन्तारूप अपनी अभिन्न विमर्शशक्तिद्वारा सदाशिवके रूपमें प्रकट होकर ईश्वर-रूपसे प्रसरोन्मुख होता है।

इस प्रकार पञ्चकृत्यरूप[2] महानाटकका रसिक प्रभु[3] शिवतत्त्वसे लेकर पृथ्वी-तत्त्वतक[4] विश्वमयताको ग्रहणकर स्वतन्त्र लीला अर्थात् लावण्यमय क्रीडा करता है।

भगवान् शिवकी यह विश्व-लीला अलौकिक है। केवल चिच्चमत्कारका चर्वणानन्द साधारण जनके लिये सहज बात नहीं है। शास्त्रोंने उस लीलामय शिवकी विचित्र और लावण्यमयी क्रीडाको सत्त्वगुण-सम्पन्न साधकके लिये समझानेका प्रयास किया है।

जगत् त्रिगुणमयी प्रकृतिका त्रिवर्गात्मक विकास है। ये तीन वर्ग हैं—जाग्रत्-जगत्, स्वप्न-जगत् और सुषुप्ति-जगत्। यही त्रिवर्गात्मक विश्व भगवान् शिवकी नृत्य-क्रीडाका स्थल बना है। इस नाटककी व्यवस्था भी कितनी विचित्र है, देखिये—

जगत्त्रयं शाम्भवनर्तनस्थली
नटाधिराजोऽत्र परः शिवः स्वयम्।
सभानटो रङ्ग इति व्यवस्थितिः
स्वरूपतः शक्तियुतात् प्रपञ्चितः॥

(सोमस्तवराज ४०)

अर्थात् जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति-रूप यह जगत् भगवान् शिवका नर्तन-स्थल है। स्वयं परम शिव इस नाटकके प्रधान नट हैं। दर्शकोंकी सभा, नट तथा नाटक करनेके लिये रंगमंच—यह सब वास्तवमें शक्तिसम्पन्न शिवसे ही प्रपञ्चित हो रहे हैं।

तात्पर्य यह है कि विश्व-सर्जनकी इस अलौकिक लीलामें कर्ता-कर्म-क्रिया, द्रष्टा-दृश्य-दर्शन, भोक्ता-भोग्य-भोग आदि सब प्रकारकी त्रिपुटी शिव-शक्तिकी ही विकास-मुद्रा है। इसमें भगवान्‌के सृष्टि-क्रम तथा स्थिति-क्रम—इन दोनोंका अन्तर्भाव है। इसी प्रकार विसर्ग-लीला भी शक्तियुक्त शिवकी ही संकोच-मुद्रा है।

भगवान् शिवसे अभिन्न भगवती शक्तिकी संकोच-मुद्रा तथा विकास-मुद्रा-रूप लीलाकी स्तुति भक्तोंने इस प्रकार की है—

संकोचमिच्छसि यदा गिरिजे तदानीं
वाक्तर्कयोस्त्वमसि भूमिरनामरूपा।
यद्वा विकासमुपयासि यदा तदानीं
त्वन्नामरूपगणनां सुकरीकरोषि॥

(धर्माचार्यविरचिता पञ्चस्तवी ४।१

---

[1] १-काश्मीर शैव-दर्शनमें जो 'विश्वोत्तीर्ण' परमशिव हैं, वही वेदान्तदर्शनमें कारण-ब्रह्म परब्रह्म हैं।

[2] २-सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह—ये शिवके पञ्चकृत्य हैं।

[3] ३-विश्वमय शिव। कार्यब्रह्म। परमात्मा।

[4] ४-शैव तथा शाक्त-प्रक्रियाके अनुसार जगत्‌का वर्णन छत्तीस तत्त्वोंमें होता है। वे हैं—(१) शिव, (२) शक्ति, (३) सदा (४) ईश्वर, (५) शुद्धविद्या, (६) माया, (७) कला, (८) विद्या, (९) राग, (१०) काल, (११) नियति, (१२) पुरुष, (१३) प्र (१४) बुद्धि, (१५) अहंकार, (१६) मन, (१७—२१) श्रोत्रादि पञ्चज्ञानेन्द्रिय, (२२—२६) वागादि पञ्चकर्मेन्द्रिय, (२७—३१) पञ्चतन्मात्राएँ और (३२—३६) पृथ्वीपर्यन्त पञ्चमहाभूत ('श्रीक्षेमराजरचित पराप्रवेशिका' पृष्ठ ६)। उपर्युक्त गणनामें सांख्यदर्शनके तत्त्वोंको भी अन्तर्भूत कर लिया गया है।

अर्थात् हे गिरिजे! जब आप उस भूमा-अवस्था (विश्वोत्तीर्ण-भाव)-में प्रवेशकर स्वरूप-संकोचकी इच्छा करती हैं, तब आप शब्द-संसार तथा विकल्प-संसारसे परे अर्थात् वाणी और मनसे अगोचर भासती हैं और जब आप विश्वरूपतामें प्रसार करती हैं अर्थात् अपने स्वरूपके विकासकी क्रीडा रचाती हैं, तब आप स्वयं ही जगत्‌की नाना-रूपता—विश्वमय भावमें प्रकट होती हैं।

भगवत् शक्तिकी इस विकासमय अनुपम लीलासे भक्तजनोंका उत्तम अभिप्राय सिद्ध होता है। भगवती शक्तिके नानारूपोंमें प्रकट होनेकी लीलामें भक्तजन भगवन्नाम-कीर्तन-जप और ध्यानके सरल उपाय पाते हैं। इससे वे साधना-पथपर अडिग रहकर अपने यथार्थ स्वरूपको पहचान लेते हैं। इससे जीव-ईश्वरका अद्वैत-स्वरूप सिद्ध होता है। अत: भगवान् शिवके विश्वमय होनेकी यह लीला भक्तजनके लिये बड़ा वरदान है। यतिवर भोलेबाबाजीने ठीक ही कहा है—**'विश्वेशका यह विश्व होता भक्तपर उपकार है।'**

* * *

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी आदर्श लीलाएँ

(मानसरत्न संत श्रीसीतारामदासजी)

'राम-राज्य'-जैसी आदर्श शासन-व्यवस्थाके अधिष्ठाता मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी, मानव-जीवनको सर्वाङ्ग-सुन्दर बनानेवाली आदर्श लीलाओंका स्मरणकर मन पुलकित हो उठता है। वे आदर्श लीलाएँ चिरप्रासंगिक हैं और हमारे लिये विशेष महत्त्व रखती हैं; क्योंकि उनके साथ ही हमारा धर्म, संस्कृति, साहित्य और लोक-व्यवहार भी जुड़ा हुआ है। उनमें भारतीय संस्कृतिके अनुरूप ही पारिवारिक और सामाजिक जीवनके उच्चतम आदर्श पाये जाते हैं। आज भी हम उनसे प्रेरणा तथा शक्ति लेकर अपने अशान्त एवं अस्थिर जीवनमें **'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्'**की त्रिवेणी प्रवाहित कर सकते हैं।

श्रीरामकी मानवताके पावन, पुनीत एवं उज्ज्वल धरातलपर प्रतिष्ठित आदर्श लीलाओंसे प्राप्त भावनाएँ, चिन्तन-धाराएँ और विचार एक ऐसे स्तरपर पहुँचे हैं, जो सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं तथा सारी दुनियाको जाग्रत् करनेमें पूर्ण समर्थ हैं। इन दिव्यातिदिव्य लीलाओंसे सारा मानव-समाज अपने दिन-प्रति-दिनके जीवनमें मार्ग-दर्शन प्राप्तकर कृतकृत्य हो सकता है।

जीवनके उच्च मूल्योंके लिये हाथमें आती हुई सत्ताका तृणवत् त्याग करनेवाले पुरुषपुङ्गव श्रीरामकी आदर्श लीलाएँ मानवीय सम्बन्धोंको मर्यादाका शिखर प्रदान करनेवाली एवं मानव-जीवनकी मूल प्रेरणा-स्रोत हैं। वर्तमान समाजकी अनेक अवाञ्छित प्रवृत्तियोंके निराकरणकी आवश्यकताओंके संदर्भमें उनकी प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। आज जब हमारे मन अपने आधार और दिग्ज्ञान खो बैठे हैं, तब हमें विश्वको मार्गदर्शन करानेकी क्षमता रखनेवाली भारतीय संस्कृतिके मूर्तिमान् प्रतीक श्रीरामकी त्याग, उदारता, परोपकार, परदु:खकातरता एवं उच्च सदाशयतासे आपूरित आदर्श लीलाओंसे अपने जीवनके लिये प्रेरणा लेनी चाहिये। वे लीलाएँ सर्वथा दिग्भ्रमित जन-मनको दिशा-बोध कराती हैं और कर्तव्य-पालनका संदेश देती हैं।

अपने आदर्शोंसे मानवताको प्रेरित तथा अनुप्राणित करनेवाले, मानवीय मूल्योंके प्रतिष्ठापक श्रीरामकी, जनप्रेम तथा सामाजिक समता, लोकमतनिष्ठा, अन्याय-प्रतिकार, अत्याचार-दमन, ऊँच-नीच-भेद-भावरहित, वन्य-जाति-प्रेमसे ओत-प्रोत आदर्श लीलाएँ हमारा भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक हर प्रकारसे सम्मार्जन, प्रसादन, प्रोन्नयन करनेवाली हैं। उनके आचरणसे ही मानवताका मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

लोकधर्मकी मर्यादाओंको बाँधकर उनका पालन करने और करानेवाले लोकादर्श श्रीरामकी शौर्य आदिसे समुज्ज्वल एवं मण्डित आदर्श लीलाएँ उत्तम चरित्रके लिये वाञ्छित सभी सद्‌गुणोंसे परिपूर्ण हैं। वे मानवके चरित्रको ऊँचा उठानेमें, पारिवारिक आदर्शोंकी स्थापना करनेमें, समाजके लिये माङ्गलिक विधानकी सृष्टि करनेमें तथा राष्ट्रिय

चरित्रके मालिन्यको दूर करके उसे आलोकित करनेमें पूर्णतः सक्षम हैं। वे भारतवर्षकी यावत् सांस्कृतिक धाराओंको मिलानेवाली, समस्त जनता, समस्त वर्णों और वर्गोंके सम्पूर्ण जीवन-यात्राके लिये प्रेरणाप्रद तथा आदर्श उपस्थित करनेवाली हैं। अतः मनुष्यमात्रका कर्तव्य है कि वह अपना जीवन मानवता और मर्यादाके पथका अनुगमन करनेवाले समस्त मानवीय गुणोंके आदर्श श्रीराम-जैसा बनाकर स्वयं सुख-शान्ति प्राप्त करे तथा परिवार, समाज और राष्ट्रको समृद्धि, विकास एवं उन्नतिके मार्गपर ले चलनेमें सक्षम बने।

उनके शास्त्रानुकूल आचरणोंको देश-काल-परिस्थितिके अनुसार मर्यादित ढंगसे सम्पादित करनेवाली आदर्श लीलाओंसे भारतके ही नहीं, अपितु विदेशोंके भी मैक्समूलर, कामिल बुल्के, प्रो० वरान्निकोव, जोन्स, कीथ, ग्रिफिथ, नेशनल, ओमन, रेम्से, मेकडानल्ड आदि विद्वान् आकृष्ट हुए हैं। उनसे मानवता गौरवान्वित हुई है। इंडोनेशिया-जैसे मुस्लिम-देश और थाईलैंड-जैसे बौद्ध देशमें श्रीराम, रामायण और रामलीला—ये उनकी अपनी श्रेष्ठतम सांस्कृतिक धरोहर हैं। फिर भारतमें—अपने देशमें जाति-पंथ-निरपेक्ष श्रीराम सर्वमान्य आदर्श क्यों नहीं बन सकते? क्या भारतमें उनको राष्ट्रिय एकताका प्रतीक माननेके लिये हमें इंडोनेशियाके उदाहरणकी ओर देखना पड़ेगा?

स्मरण रहे! सम्पूर्ण विश्वमें भारत जिस संस्कृतिके कारण पूजनीय रहा है, उस संस्कृतिका स्वरूप राम-संस्कृतिसे ही निर्मित हुआ है। यह संस्कृति सुरक्षित रहेगी तो भारत राष्ट्र भी सुरक्षित रहेगा। यदि यह संस्कृति न बचेगी तो भारत राष्ट्र भी नहीं बचेगा और यह संस्कृति तभी बचेगी, जब यह देश आर्यावर्तके प्रतिनिधि-पुरुष श्रीरामसे निर्विवाद-रूपसे जुड़ेगा। यहाँकी राष्ट्रियता, संस्कृति और राष्ट्रके प्रतीक श्रीराम राष्ट्रिय अखण्डताके प्रमाण-पत्र हैं। यदि यह देश उनकी संस्कृति और उनकी प्रेरणाओंसे जुड़ा रहेगा तो उसकी अखण्डता अक्षुण्ण रहेगी और सांस्कृतिक एकता भी अभंग रहेगी।

अतः प्राणिमात्रको चाहिये कि वह लीलावतार मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी आदर्श लीलाओंसे प्रेरणा ग्रहण करते हुए उसे अपने जीवनमें कार्यान्वित करे तो उसके स्वयंके, देशके, विश्वके, सनातन भारतीय संस्कृतिके और प्राणिमात्रके लौकिक-पारलौकिक साधनोंकी अभिवृद्धि होगी। इसीमें आदर्श लीलाओंकी पूर्णता है।

⁂

हनुमान्‌के माध्यमसे सेवकोंके गर्वका दमन

(श्रीशिवनाथजी दुबे एम० कॉम०, एम० ए०, साहित्यरत्न, धर्मरत्न)

वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें द्वापरमें भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण एवं भगवान् श्रीराम—दोनों आन्तरिक दृष्टिसे एक ही हैं। भगवान् अपने प्रिय भक्त एवं सेवक श्रीहनुमान्‌के बिना रह ही नहीं सकते।

एक बार भगवान् श्रीकृष्णने सोचा कि अपने कहलानेवाले भक्तों एवं सेवकोंमें जो अभिमान और दुर्गुण प्रवेश कर गये हैं, उन्हें अवश्य दूर करना चाहिये, अतः प्रिय भक्त हनुमान्‌को अपनी लीलाके माध्यमसे अपने पास बुलानेका निश्चय किया। भगवान् श्रीकृष्णके निश्चय करनेमात्रसे ही प्रिय भक्त हनुमान् द्वारकाके संनिकट ही एक उपवनमें विराजमान हो गये और भगवन्नामका संकीर्तन करते हुए वृक्षोंकी डालियाँ तोड़ने, पेड़ हिलाने और फलोंको खाने लगे।

भगवान् श्रीकृष्णने सत्यभामाके लिये पारिजात-ह किया था, अतः सत्यभामाजीके मनमें यह गर्व रहता था भगवान्का सर्वाधिक स्नेह केवल मुझपर ही है; क्योंकि सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी हूँ। अपने सौन्दर्यके गर्वमें उन्होंने एक भगवान्से कह भी दिया कि क्या जानकीजी मुझसे अ सुन्दर थीं, जो उनके लिये आप घने वनोंमें भटकते-फिरते विलाप करते रहे। यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मौन

सत्यभामाकी तरह चक्र भी यह गर्व किया करते थे मैंने ही देवराज इन्द्रके वज्रको पराजित किया था और भी इसी प्रकार मनमें यह सोचा करते थे कि मैं सहयोगसे भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रपर विजय प्राप्त कर सके श्रीकृष्णने विचार किया कि ये सब अपने होकर

करें—यह मुझे सह्य नहीं है। इन सेवकोंके गर्वका दमन किया जाना नितान्त अपेक्षित है।

भगवान् श्रीकृष्णने गरुडजीको आदेश दिया कि 'गरुड! द्वारकाके उपवनमें एक बंदर है, उसे पकड़कर मेरे पास शीघ्र ले आओ। उस बंदरको पकड़कर लानेका साहस यदि तुममें हो तो अकेले ही जाओ, नहीं तो अपने साथ सैनिकोंको भी लेते जाओ।' गरुड अपने मनमें यह सोचने लगे कि 'भगवान् मुझे एक साधारण बंदर पकड़कर लानेके लिये भेज रहे हैं, दूसरी ओर यह भी कह रहे हैं कि यदि उस बंदरको अकेले न पकड़ सको तो साथमें सैनिकोंको भी लेते जाओ। यह मेरे लिये बड़ी ही लज्जाकी बात है।' गरुडने उस उपवनमें अकेले ही जाकर देखा कि श्रीहनुमान्‌जी उनकी ओर पीठ करके फल खाते जा रहे हैं और राम-नामका कीर्तन भी करते जा रहे हैं। पहले तो गरुडजीने हनुमान्‌जीको डरा-धमकाकर ले जानेका प्रयास किया; परंतु जब हनुमान्‌जीपर इसका लेशमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा, तब गरुडने उनपर आक्रमण कर दिया। पहले तो वे छोटे-छोटे पक्षियोंकी तरह उनके साथ खेलते और मुस्कराते रहे; परंतु गरुड जब न माने तब हनुमान्‌जीने उन्हें अपनी पूँछमें लपेटकर जरा-सा कस दिया। गरुड छटपटाने लगे; फिर उन्होंने अपने आनेका कारण बताते हुए कहा कि भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे मैं यहाँ आपको बुलाने आया हूँ। तब हनुमान्‌जीने गरुडको छोड़ दिया और कहा—'यद्यपि राम एवं कृष्णमें कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं, फिर भी मैं तो सीतानाथ भगवान् श्रीरामका ही पक्षधर होनेके कारण श्रीकृष्णके पास जाना उचित नहीं समझता हूँ।' हनुमान्‌ने यह उत्तर देकर भगवान्‌की कल्याणकारी लीलामें सहयोग प्रदान किया।

अभी गरुडका गर्व समाप्त नहीं हुआ था, वे सोच रहे थे कि यदि मैं पकड़ न लिया गया होता तो हनुमान्‌को बलपूर्वक ले जा सकता था। गरुडने दूसरी बार हनुमान्‌पर आक्रमण किया। भगवान् श्रीकृष्णका दूत जानकर हनुमान्‌ने उनपर जोरसे प्रहार नहीं किया, बल्कि हलके हाथसे पकड़कर उनको समुद्रकी ओर फेंक दिया। समुद्रमें गिरनेपर गरुड बहुत देरतक कष्टसे विलखते-छटपटाते रहे। कोई और उपाय न देखकर अब वे भगवान् श्रीकृष्णका हृदयमें ध्यान करने लगे। कुछ ही क्षणमें उन्हें द्वारकाका प्रकाश दीख पड़ा, तब वे भगवान् श्रीकृष्णके पास गये। श्रीकृष्णने उनकी सभी बातें सुनीं और मुसकराये। अभीतक गरुडके मनमें तीव्र गतिसे उड़नेका गर्व शेष था। गरुडजी सदैव यह सोचा करते थे कि बलमें हनुमान् भले ही मुझसे अधिक हैं; परंतु उड़नेमें मेरी तुलना पवन भी नहीं कर सकता।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'गरुड! इस बार फिर जाकर तुम हनुमान्‌से कहो कि भगवान् श्रीरामने तुम्हें बुलाया है। अतिशीघ्र चलो। हनुमान्‌को अपने साथ ही ले आना। वे तुम्हारा आदर करेंगे और तुम्हें कुछ भी नहीं कहेंगे।' यद्यपि गरुड जानेमें मन-ही-मन भयभीत हो रहे थे, फिर भी अपनी तीव्र गतिसे उड़नेकी शक्तिका प्रदर्शन करनेके लिये वे चले गये।

भगवान् श्रीकृष्णने सत्यभामासे कहा—'सीताजीका रूप धारण करके आओ, हनुमान्‌जी आ रहे हैं।' चक्रसे कहा—'सावधानीपूर्वक पहरा दो, कोई भी द्वारकामें प्रवेश न करने पाये।' सत्यभामाजी पूर्ण श्रृंगारके साथ अपने सौन्दर्यके गर्वमें मत्त होकर भगवान् श्रीकृष्णके वाम-भागमें आकर बैठ गयीं तथा सुदर्शनचक्र पूर्ण सतर्कताके साथ द्वारकाके फाटकपर पहरा देने लगे। अब भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं धनुष-बाणधारी रामभद्र बनकर बैठ गये।

गरुडकी हनुमान्‌के पास जानेकी हिम्मत नहीं पड़ी। उन्होंने साहस बटोरकर दूरसे ही कहा— 'भगवान् श्रीराम आपको बहुत ही जल्द बुला रहे हैं। आप मेरे ही साथ चल सकें तो चलें, अन्यथा मेरे कंधेपर बैठ जायँ, मैं लेता चलूँ, क्योंकि आपको चलनेमें देर हो सकती है।'

हनुमान्‌ने अत्यन्त प्रसन्नतासे कहा—'मेरा परम सौभाग्य है, जो भगवान् श्रीरामने मुझे बुलाया है। तुम चलो मैं आता हूँ।' गरुडने सोचा कि ये क्या कह रहे हैं। मुझसे पीछे चलकर ये देरमें ही तो पहुँचेंगे! परंतु गरुड भयभीत थे, हनुमान्‌से फिर कुछ भी कहनेका उन्हें साहस नहीं हुआ। अतः वे चुप्पी साधे वहाँसे चल पड़े। जाते हुए मार्गमें सोच रहे थे कि भगवान्‌के पास चलकर अपनी तीव्र गतिसे उड़नेका प्रदर्शन अवश्य करूँगा।

हनुमान्‌जी गरुडसे पूर्व ही द्वारकामें पहुँच चुके थे। हनुमान्‌जीकी दृष्टिमें यह द्वारका नहीं थी, बल्कि अयोध्या थी। फाटकपर सुदर्शनचक्रने जोरदार शब्दोंमें हनुमान्‌से कहा—'तुम्हें प्रवेश नहीं करने दूँगा।' हनुमान्‌जीने कहा—'तुम भगवान्‌के दर्शनमें अवरोध पैदा कर रहे हो?' इतना कहकर हनुमान्‌ने चक्रको पकड़कर अपने मुँहमें रख लिया। भगवान्‌के महलमें जाकर हनुमान्‌ने देखा कि सिंहासनपर भगवान् श्रीराम विराजमान हैं, परंतु उन्हें माता सीताके दर्शन नहीं हो सके। हनुमान्‌जीने भगवान्‌के श्रीचरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम करनेके पश्चात् कहा—'महाराज! आज माता सीताजी कहाँ हैं? उनके स्थानपर यह कौन बैठी है? आपने किस दासीको इतना सम्मान दे दिया है?' सत्यभामाजी लज्जित-सी हो गयीं। उनके सौन्दर्यका गर्व नष्ट हो गया। भगवान्‌ने कहा—'हनुमान्! तुम्हें किसीने यहाँ आनेसे रोका नहीं? तुम यहाँ कैसे आ पहुँचे?' हनुमान्‌जीने अपने मुँहमेंसे चक्रको निकालकर भगवान्‌के समक्ष रख दिया। चक्र लज्जित हो गया और अब उसका गर्व नष्ट हो चुका था। इसके बाद जब वेगपूर्वक दौड़ते हुए गरुड आये, तब उन्होंने देखा कि पवनकुमार तो पहलेसे ही यहाँ उपस्थित हैं। अब गरुडका एकमात्र अवशिष्ट तीव्र गतिसे उड़नेका गर्व भी समाप्त हो गया। इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जीके माध्यमसे भगवान्‌ने अपने तीनों सेवकोंके गर्वको नष्ट किया। भगवान्‌के प्रत्येक कार्यमें कोई-न-कोई कल्याणकारी लीला छिपी रहती है।

श्रीहनुमान्‌जीमें अभिमानका लेशमात्र भी अंश नहीं है। हनुमान्‌जीका जीवन अभिमानसे सर्वथा मुक्त रहा है। यही कारण है कि भगवान्‌ने अपने भक्तों एवं सेवकोंके गर्वको नष्ट करनेका कार्य हनुमान्-जैसे निरभिमान भक्तको निमित्त बनाकर किया और ऐसे ही अन्य अनेक भक्तोंके माध्यमसे लीला-लीलामें ही अपने शरणागतों, भक्तों, सेवकों एवं अभिमानी सहचरोंका गर्व भंगकर उनकी मुक्तिका मार्ग प्रशस्त करते हैं—परमार्थ-सत्ताके यथार्थ शक्तिका ज्ञान प्रदानकर उन्हें निर्मल बनाते हैं।

* * *

भगवान् विष्णुकी कल्याणकारी लीला

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

भगवान् श्रीविष्णुकी महिमा अपरम्पार है। वे अपने भक्तोंकी रक्षा, सहायता तथा मोक्षके लिये समय-समयपर विभिन्न लीलाएँ किया करते हैं। इन लीलाओंसे जहाँ भक्तोंका कल्याण होता है, वहीं जगत्‌को भी भौतिक तापोंसे मुक्ति मिलती है। जब कभी उनका कोई परम भक्त सिद्ध, योगी और तपस्वी होते हुए भी सांसारिक प्रभावके कारण अपने भक्तिमार्गसे भटक जाता है, उस समय भगवान् संसारके समस्त कष्टोंको स्वयं सहन करके भी उसको मोह-मायाके जालसे मुक्त कर देते हैं। आइये, भगवान् विष्णुकी ऐसी ही एक दिव्य और निराली लीलाका दर्शन करें—

एक समयकी बात है, ऋषिवर नारद हिमालयपर भ्रमण कर रहे थे। वहाँसे कुछ ही दूरीपर उन्हें एक रमणीक स्थलपर परम पवित्र आश्रम दिखायी पड़ा। उसके समीप एक गुफा भी थी। भगवती भागीरथीकी कल-कल करती जलधारा, पर्वतोंके बीच बहते झरनोंका सुमधुर संगी विशाल और घने वनोंसे आच्छादित तथा बर्फसे ढ ऊँची-ऊँची पर्वत-मालाओंके सौन्दर्यने मुनिका मन मो लिया। नारदजीने विचार किया कि भगवान्‌के भजनके लि इससे उपयुक्त स्थान और कहाँ मिलेगा? इसी उद्देश्य नारदजीने गुफामें प्रवेश किया और एक पवित्र स्थ देखकर वहीं भजनाविष्ट हो गये। निर्मल-मन और प्र चरणोंमें दृढ़ अनुरागके कारण ऋषिको समाधि लग ग उधर देवराज इन्द्रको जब पता चला कि नारदजी हिमाल कन्दरामें घोर तपस्या कर रहे हैं तो अमरावतीका जानेके भयसे वे विचलित हो गये। शंकालु-स्वभ इन्द्रने ऋषिकी तपस्याका यही मूल कारण समझा तुरंत ही कामदेवको ऋषिके तपको भंग करनेका दे दिया। इन्द्रकी आज्ञा पाकर कामदेव उसी कन्दरामें

गया, जहाँ ऋषिवर नारद भजनके आनन्दमें निमग्न थे। संत तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानसके बालकाण्ड (१२६।१—४)-में लिखते हैं—

तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज मायाँ बसंत निरमयऊ॥
कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा॥
चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनिहारी॥
रंभादिक सुर नारि नबीना। सकल असमसर कला प्रबीना॥

इस प्रकार कामदेवने अपनी समस्त उद्दीपक शक्तियों और मदोन्मादक कलाओंके माध्यमसे ऋषिके तपको भंग करनेका असफल प्रयास किया, परंतु नारदजी पूर्ववत् निश्चल अपने भजनमें लीन रहे। अन्ततः कामदेवकी हार हुई। अपने इस कुकृत्यसे लज्जित और कुपित कामदेवने ऋषिके चरणोंमें पड़कर क्षमा-याचना की। उसके स्पर्शसे जब मुनिका ध्यान टूटा, तब उन्होंने वस्तुस्थितिको समझकर संत-स्वभावके कारण उसको क्षमा कर दिया।

कामदेव तो चला गया, परंतु इसपर विजयका मद अहंकारके रूपमें मुनिपर सवार हो गया। इस कन्दर्प-दलनके अभिमानसे प्रभावित होकर महर्षि नारद तत्क्षण ही भजन छोड़कर शीघ्र गुफासे बाहर आ गये और कैलास पर्वतपर पहुँचकर भगवान् शंकरको अपनी विजयका वर्णन सुनाने लगे। मुनिके विजयोन्मादका अहंकार स्पष्ट झलक रहा था—यह देख भोलेनाथको ऋषिपर तरस आ गया, उन्होंने नारदको सम्मति दी कि अपनी इस उपलब्धिका प्रदर्शन विष्णुभगवान्के समक्ष न करें। शंकरजी इसके परिणामको जानते थे; परंतु अहंकारके प्रभावसे नारद तुरंत ही ब्रह्मलोकमें विष्णुभगवान्के समीप पहुँचकर अपनी गर्वोक्तिपूर्ण विजयश्रीकी सम्पूर्ण लीला उन्हें सुनाने लगे।

यह सुनकर भगवान् अनेक प्रकारसे नारदकी प्रशंसा करते हुए उनको अहंकार-मुक्त करनेके लिये अपनी मायाका स्मरण किये। अब तो ऋषि भगवान्के श्रीमुखसे अपनी प्रशंसा सुनकर और अधिक अहंकारी हो गये। इसी अवस्थामें नारद हाथोंमें वीणा लिये श्रीहरिका गुणगान करते हुए वहाँसे प्रस्थान कर गये।

नारदजीके मार्गमें भगवान्ने अपनी मायाके माध्यमसे एक अत्यन्त रमणीक मनोरम और शोभायमान नगरीका निर्माण कर दिया। इसकी सुन्दरता अनायास ही सबका मन मोहनेमें सक्षम थी। उस माया-नगरीके राजाका नाम था शीलनिधि! इस तेजस्वी राजाकी विवाह-योग्य एक रूपवती कन्या थी जिसका नाम था विश्वमोहिनी। इसका रूप-लावण्य साक्षात् लक्ष्मीजीको भी मोहित करने योग्य था। राजाने अपनी कन्याके विवाहके लिये स्वयंवरकी घोषणा कर दी थी, इसी कारण अनेक राजा-महाराजा, वीर और पराक्रमी अपने वैभवपूर्ण प्रदर्शनके साथ नगरमें डेरा डाले हुए थे। इस स्वयंवरके दर्शन-हेतु नारदजी अपना मोह संवरण न कर सके और राजाके महलमें पहुँच गये। राजा शीलनिधिने ऋषिका समुचित आदर-सत्कार करके आसन ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। राजाने उपयुक्त अवसर जानकर नारदजीसे अपनी कन्याका भविष्य जाननेकी उत्सुकता प्रकट की। कन्या विश्वमोहिनी मुनिको प्रणामकर उनके समीप बैठ गयी। राजकन्याके रूप-लावण्यसे मोहित हो वे वैरागी नारद आज रागी हो गये। उस कन्याके गुण देखकर उनके मनमें स्वयं ही उसे वरण करनेका विचार बन गया। राजा शीलनिधिको सभी प्रकारसे संतुष्ट करके एक पंख-कटे पक्षीकी भाँति आहत होकर वे विष्णुलोककी ओर चल पड़े और रास्तेभर यही विचार करते रहे कि केवल भगवान् विष्णुका रूप ही इस कन्याका वरण करनेमें सहायक हो सकता है।

विश्वमोहिनीके रूप-लावण्यके आकर्षणमें बेसुध हुए मुनि विष्णुलोकमें पहुँच गये। भगवान् विष्णु क्षीरसागरमें लक्ष्मीजीके संग विश्राम कर रहे थे। नारदने विधिवत् दोनोंको प्रणामकर अपने मनकी वेदनासे अवगत कराते हुए भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करने लगे— प्रभो! आप अपना रूप मुझे प्रदान करें, तभी मेरी मनःकामना पूर्ण होगी। 'भगवान्' मन-ही-मन अपनी माया-लीलाका प्रभाव देख मुसकराते हुए नारदसे बोले—

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥

(रा०च०मा० १।१३२)

नारदजी उनके वचनसे आश्वस्त हो पुनः राजमहलके स्वयंवर-कक्षमें पहुँच राजाओंके मध्यमें स्थान ग्रहण कर लिये हैं। नारदजीको पूर्ण विश्वास था कि विष्णुभगवान्की रूप-माधुरीसे युक्त मेरे मुखड़ेपर आकर्षित होकर विश्वमोहिनी मेरा ही वरण करेगी। भगवान्की मायाके प्रभावसे उनका प्रदान किया हुआ स्वरूप केवल राजकुमारीको ही दिखायी देता था। सभा-मण्डपमें विराजमान अन्य लोगोंको नारदके मूल स्वरूपके ही दर्शन हो रहे थे।

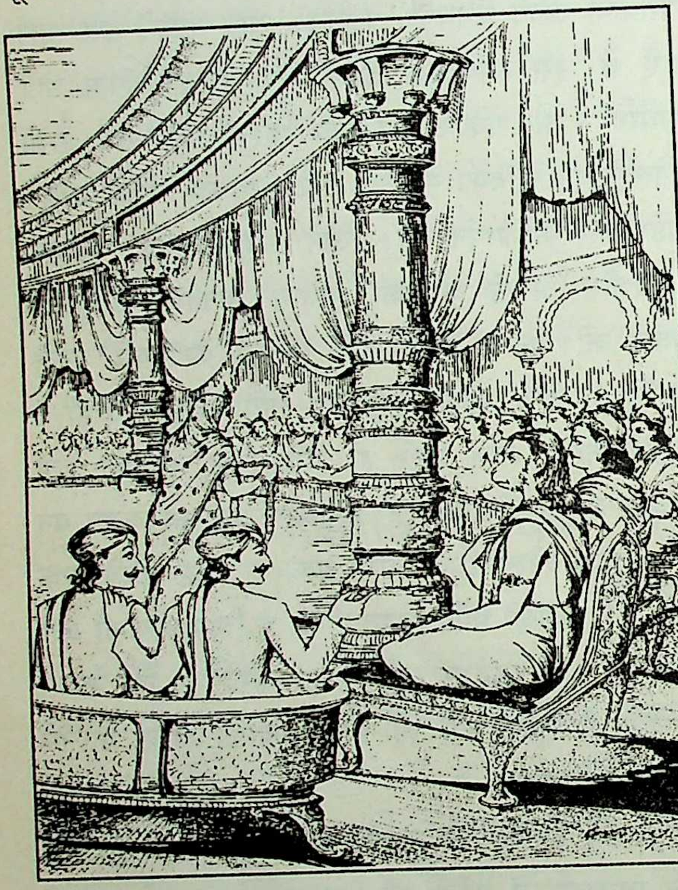

स्वयंवर प्रारम्भ हुआ। विश्वमोहिनी अपने हाथोंमें जयमाल लिये स्वयंवर-कक्षमें घूमने लगी। राजकुमारीने जब वानरका मुख धारण किये भयंकर स्वरूपधारी व्यक्तिकी ओर निहारा तो डरके मारे पुनः उस ओर देखनेका साहस नहीं किया। इधर नारद अपना मुख आगे कर-करके राजकन्याको आकर्षित करनेका असफल प्रयास करते रहे। इसी कक्षमें राजाके वेशमें भगवान् विष्णु भी बैठे थे। राजकुमारी उनके रूपपर मोहित हो गयी और उनके गलेमें जयमाला पहना दी। इस प्रकारसे भगवान्ने विश्वमोहिनीका वरण किया और अपनी दुलहनको संग ले अपने लोकको प्रस्थान कर गये।

इधर उसी स्वयंवर-प्राङ्गणमें शिवके गण भी उपस्थित थे। उन्होंने एक दर्पण लाकर नारदजीको दे दिया तथा उसमें अपना मुखड़ा देखनेकी प्रार्थना की। अपनी असफलतासे कुपित हो ऋषिने दर्पण फेंक दिया और राजमहलके मध्यमें बने सरोवरके किनारे जाकर बैठ गये। नारदने जलमें जब अपनी मुखाकृतिका प्रतिबिम्ब देखा तो बंदरका स्वरूप देखकर क्रोधित हो गये। अपने मनमें नारदने निश्चय किया कि आज भगवान्को उनके इस कृत्यके लिये या तो शाप दे दूँगा अथवा अपने प्राणोंकी आहुति दे दूँगा। ऐसा विचारकर नारद विष्णुलोककी ओर चल पड़े। मार्गमें ही भगवान् विष्णु विश्वमोहिनीके संग दिखायी दिये। भयंकर मर्मान्तक पीडा और भारी अपमानसे पीडित नारदने उनके समीप पहुँचकर भगवान्को अनेक प्रकारसे भला-बुरा कहा और अन्ततः अपने मनकी शान्तिके लिये शाप दे दिया। गोस्वामीजी लिखते हैं—

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥

(रा०च०मा० १। १३७। ७-८)

भगवान् श्रीहरि अपने भक्तके हितमें ऋषिका शा शिरोधार्य कर लिये और ऋषि-शापकी सत्य-प्रतिष्ठा-हे पृथ्वीपर रामके रूपमें अवतार ग्रहण किये। वनवासके समय जब जानकीजीका हरण हुआ, तब वान रूपधारी सुग्रीव और हनुमान्जीकी सहायतासे वे सीताजी रावणके बन्धनसे मुक्त कराकर पुनः उन्हें प्राप्त कि भगवान्ने जहाँ अपने भक्तके शापको सार्थक किया, अपनी विभिन्न लीलाओंके द्वारा जगत्का कल्याण किया। इस प्रकार लीला-वपुधारी भगवान् विष्णु विभिन्न माया-लीलाओंसे जगत्का सदैव कल्याण रहते हैं।

* * *

आर्षग्रन्थोंमें भगवल्लीला

श्रीमद्भागवतमें दिव्य लीला-तत्त्व

(डॉ० श्रीविद्यानिवासजी मिश्र)

श्रीमद्भागवत भगवत्-लीलाका एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसे श्रीवल्लभाचार्यजीने भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् विग्रह कहा है, इसका अभिप्राय यह है कि भागवत पढ़ते या सुनते ही एक ऐसे रसका प्रवाह उमड़ पड़ता है कि उसमें सब डूब जाते हैं—देह-गेह, इन्द्रिय, इन्द्रिय-विषय, मन-बुद्धि, चित्त-अहंकार, देश-काल, यहाँ तक कि अनुभव और अनुभव करनेवाला भी नहीं बचता। भागवतकी भूमिकामें कहा गया—

श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥

एक शर्त जरूर है, भागवत या मानस पढ़ना हो तो केवल चोंच मारनेका भाव न हो, बल्कि डूबनेका मन हो। डूबनेका मन तभी बनता है, जब त्रिताप प्रबल हो जाते हैं, अन्धकार निगल जाता है, दिक्कालका बोध नहीं होता, कर्ता और ज्ञाताका मद झर जाता है, मनुष्य अपनेको तृणसे भी तुच्छ तथा तरुसे भी अधिक सहिष्णु बना लेता है, मान लेनेके लिये नहीं, अपितु मान देनेके लिये प्रस्तुत हो जाता है और जब अपनी क्षुद्रता विशाल भगवत्कृपासुधा-वारिधिमें बहनेके लिये अकुला जाती है।

श्रीमद्भागवतका प्रारम्भ ऐसे ही भावसे होता है। व्यास महाभारत रचकर, पुराण रचकर, वेदको संहिताबद्ध करके भी मनमें खालीपनका अनुभव करने लगे, सोचने लगे—कुछ नहीं किया जिससे मन भरे, ज्ञानदीप दिखलाया, पर मेरा स्वयंका मन तो दीपित ही नहीं हुआ। नारद आये और बोले—'इतना सब कुछ किया, तब भी इतना पछतावा क्यों?' **अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो?'** व्यासने कहा—'हाँ, ऐसा ही कुछ है, आप ही मेरी इस खिन्नताका निदान बतायें।' नारदने कहा—'आपने भगवान् वासुदेवकी लीला नहीं गायी, नैष्कर्म्यकी बात की, पर अच्युत-भावके बिना नैष्कर्म्यका क्या अर्थ, और आँखोंके अंजन बने श्रीकृष्णके भावके बिना निरंजन ज्ञान भी मल ही है—

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।

आप समाहित-मनसे उस अच्युत-भावकी बात करें, जो एक बार मिल जाय तो च्युत ही नहीं होता। नारदने यह भी कहा कि मुझे भी जो इस लीलाका रस मिला, उसका इतिहास यह है कि मैं दासीका पुत्र था, मेरी माँने साधुओंकी सेवा की, मैं बचपनसे ही सत्संगमें—लीलानुवादमें रस पाने लगा, माँ चल बसी, साधु-मण्डलीके साथ विचरने लगा, मेरी प्रीति कथा-रसमें बढ़ती गयी और वह भगवान्के लिये आकुलतामें परिवर्तित हो गयी। इसी कारण मुझे कल्पान्तरमें नारद-देह मिली। भगवान् बड़े विचित्र हैं, ये निष्किंचन तो स्वयं हैं, जिसपर प्रीति करते हैं, उसे भी पहले निष्किंचन बना देते हैं। आज आप निष्किंचनताका अनुभव कर रहे हैं, आप उनकी प्रीतिके पात्र हो गये।'

ऐसे व्यासने ध्यान-योगसे भागवत-कथा रची, उसे शुकदेवको बतलाया और शुकदेवने मृत्युके शापसे पीडित राजा परीक्षित्को सुनाया। कथा सुनाते समय पहले यह संकेत किया कि भगवान् श्रीकृष्णने अपने महाप्रयाणके पहले उद्धवको भागवत-तत्त्वकी दीक्षा दी, उन्हें बदरिकाश्रम भेजा। विदुरकी भेंट उद्धवसे हुई, उद्धवने कौरवों-पाण्डवोंके महाविनाशकारी युद्धकी, यादवोंके कलह और विनाशकी, श्रीकृष्णके महाप्रयाणकी कहानी सुनायी और संक्षेपमें अपनी आँखोंके सामने घटती हुई-सी लीलाका स्मरण किया। उद्धव और विदुर दोनों भाव-विह्वल हो गये, विदुर कुछ और जानना चाहते थे, उद्धवने कहा—'भगवान्ने मैत्रेय ऋषिको आदेश दिया है कि आपको भागवत-तत्त्वका उपदेश करें।' इस प्रकार सूत-शौनक-संवाद, शुक-परीक्षित्-

संवाद, मैत्रेय-विदुर-संवाद और श्रीकृष्ण-उद्धव-संवाद—इन चार संवादोंमें भगवत्कथा पूरी होती है। परंतु कथाके लिये पात्रता आती है श्रीकृष्णके उस अनुग्रहसे जिसमें सब कुछ (जिसे कुछ कहा जा सकता है) छिन जाता है, बस रिक्तता भर जाती है, उस रिक्ततामें पर्युत्कण्ठा जगती है—कब मिलेंगे वे चरण, जिनके न्याससे धरती रोमांचित हुई।

इस उत्कण्ठाके तीन स्तर हैं, जैसा कि मृत्युके समय वृत्रासुरने कहा—एक उत्कण्ठा है असहाय चिरौटेकी, उसके पंख नहीं उगे हैं, दिनभर घोंसलेमें कुलबुलाता रहता है, घोंसलेके मुँहसे झाँकता रहता है, शाम होते ही भय और अकुलाहटसे माँकी बाट जोहने लगता है—कब आयेगी माँ और चोंच खोलकर स्वयं चारा डालेगी। इस अवस्थामें निस्सहायता नरम है और केवल एक ही सहारा मालूम है, दूसरा सहारा भी नहीं मालूम। दूसरी अवस्था है बछड़ेकी, जिसमें अपनी भी कुछ उछल-कूदकी शक्ति है, पर वह शक्ति माँके स्तन्यसे मिलती है। दिन ढलते ही जैसे बछड़ेको भूख सताती है और उसकी माँ भी अकुलाती-रँभाती हुई आती है तथा बछड़ेकी भूखसे पिन्हा जाती है—उत्कण्ठा दोनों ओर उग्रतर हो जाती है। तीसरी अवस्था है प्रियतम और प्रियतमाकी, जिसमें प्रयत्न और ज्ञान—इन दोनों शक्तियोंका विकास तो रहता है, परंतु आकुलताका चरम उत्कर्ष आ जाता है। इस आकुलतामें कुछ भी अपेक्षा नहीं रहती। बस, जैसे परदेश गये प्रिय प्रियाको आनेकी अवधि दे गये, अवधि बीतने लगी, प्रिया सोचने लगी—आ क्यों नहीं रहे हैं। शायद आ रहे हैं। नहीं, अब नहीं आयेंगे। क्यों नहीं आये! ऐसे कितने संकल्प-विकल्प होते हैं और उसकी प्रतीक्षा दुःसह हो जाती है, एक-एक पल छटपटाहटका एक शिखर बनता जाता है, साँसमें अकुलाहट समा जाती है, कमलनयनको देखनेके लिये आँखें बंदनवार बन जाती हैं—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

भागवतका आरम्भ ही श्रीकृष्णकी उपस्थिति और अनुपस्थितिके दो चित्रोंसे होता है। उपस्थितिका चित्र पहले लें। श्रीकृष्ण महाभारत-विजयके बाद युधिष्ठिरको भीष्मके पास ले जाते हैं, कहते हैं—'इनसे जो सीखना हो सीख लो।' युधिष्ठिर भीष्मके पैताने खड़े हो जाते हैं। भीष्म उपदे देकर गणना करते हैं कि अब सूर्य उत्तरायण होनेको है शरीर छोड़ना है। शरीर छोड़नेके पहले श्रीकृष्णसे प्रार्थ करते हैं—'सामने आ जाओ, मैं बस तुम्हें देखना चाहता हूँ तुम्हारी उसी अकुलाई—परेशान-मुख-छबिको अपने भी पाना चाहता हूँ। जब युद्धमें घोड़ोंकी टापोंसे रौंदी जा धरतीके धूलिकणोंसे सने हुए तुम्हारे लहराते केश बार-बा तुम्हारे पसीने-पसीने होते चेहरेपर आ जायँ और पसी पोंछने लगें, तुम्हारा कवच मेरे बाणोंसे छिद गया हो, तु मेरी बात रखनेके लिये कि 'युद्धमें हथियार धारण करने विवश कर दूँगा', अपनी प्रतिज्ञा भूल गये और रथका चक्र लेकर मुझे मारने दौड़ पड़े, मैं उस अकुलाहटका ध्या करना चाहता हूँ, मेरे वेध्य! आओ, मुझे वेध्य बनाओ'-

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्-
कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये ।
मम निशितशरैर्विभिद्यमान-
त्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा॥

श्रीकृष्णकी यह धूलिधूसर थकान और परेशानी ब मोहक है। बचपनमें भी जब वे गउओंकी धूलिसे सने व गायोंको आगे करके लौटते थे तो प्रतीक्षातुर गोपियों आँखोंके उत्सव बन जाते थे, विरह-व्रतकी उपासी आँखें पारण बन जाते थे। वह उपस्थिति एक महापर्व जीवनका महान् उत्सव है। ऐसे उत्सवपर हजार-ह विपदाएँ न्योछावर हैं, जिन विपदाओंके कारण वे झाँकने जाते हैं, जैसे कुन्तीने श्रीकृष्णके विदा होते समय कहा

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत् स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

'तुम जा रहे हो, तुम एक पल निहार देते थे, दे पर्वत, नदियाँ उल्लसित रहते थे, इसकी सब शोभा छी रहे हो तुम।' श्रीकृष्ण द्वारका चले गये, इन्द्रप्रस्थपुरी हो गयी, द्वारका विहँस उठी, उनसे मिलनेको आतुर बाट जोहती पत्नियाँ उमंगमें शिथिल उठ नहीं

बच्चोंको भेजा, इन्हें गोदमें ले लें, अपनी दृष्टि वहीं लिपटा दी और अन्तमें मिलनेकी अभिलाषा तो पूरी न होनी थी, पूरी नहीं हुई, अपनी अन्तरात्मासे कहा—'तुम मत चूको, भर लो उन्हें' और अन्तरात्मा तो भरी ही, उमगी भी, आँखें छलक आयीं, बहुत रोका कि प्रिय भीतर ही रहें, प्रियके मिलनका सुख भीतर ही रहे, पर वह सुख कहाँ समाता है, आँसू बनकर बह चला—

तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना
दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिम्।
निरुद्धमप्यास्त्रवदम्बु नेत्रयो-
र्विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात्॥

अब अनुपस्थितिकी प्रतीति करायें—

श्रीकृष्णका समाचार नहीं मिला। अर्जुन द्वारका गये, लौटे तो हर प्रकारसे लुटकर। उनका सारा तेज चला गया, युधिष्ठिर उन्हें देखते ही घबरा उठे, प्रश्न-पर-प्रश्न करने लगे, कौन पाप तुमसे हुआ कि तुम्हारा चेहरा श्रीहीन हो गया, अन्तमें अनुमान लगाया—'हो न हो इसका यह कारण है, कि श्रीकृष्ण चले गये और तुम्हें लगता है कि प्रेष्ठतम आत्मबन्धु और हृदयरूप श्रीकृष्णके बिना सब सूना है, नहीं तो ऐसी मलिनता क्यों तुम्हारे चेहरेपर होती'—

कच्चित् प्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनात्मबन्धुना।
शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक्॥

और अर्जुन कुछ देरतक चुप रहकर फूट-फूट कर रो पड़े, बोले—'महाराज, बन्धु बनकर हरिने मुझे धोखा दिया, ऐसे चले गये। मेरा वह सारा तेज लेते गये जिससे देवता भी विस्मयमें पड़ जाते थे। उनके वियोगमें सब अशुचि हो गया है। जैसे प्राण चले जायँ तो शरीर शव हो जाता है, वैसे ही यह पृथ्वी शव हो गयी है, इसे देखा नहीं जाता।'

उस विराट्की अनुपस्थितिका विराट् अनुभव ही भागवतका अनाच्छन्न आकाश है और ऐसे अनुभवकी छायामें मृत्युके बोधसे जगी हुई प्यास ही उस आकाशको पिघलाती है और ऐसा रस बरसता है कि मोक्ष भी अपार्थ (निष्प्रयोजन या अर्थहीन) हो जाता है, बड़ा-से-बड़ा सुख तुच्छ और हेय हो जाता है। मरण-पीडा ही द्वार है—दीक्षा है भागवतके श्रवणकी।

परीक्षित्की इस मरण-दीक्षासे प्रेरित होकर—जितनी देर गाय दूही जाय उससे अधिक कहीं न टिकनेवाले शुकदेव सात दिनोंतक गङ्गाके किनारे टिक गये एक प्रश्नका उत्तर देनेके लिये कि मृत्युके इस क्षणमें क्या करना चाहिये! इस रिक्तको कौन भरेगा? उत्तर है भागवत। जो व्यक्तिके रूपमें मर जाते हैं, विदेह हो जाते हैं, उन्हें कौन भरता है! यह भागवत। जो श्रीकृष्णके विरहमें ऐसे तड़पने लगते हैं, जैसे अपने प्राण हर रहे हों, प्रत्येक दिशामें उन्हें कहीं धरोहर रखा था, वह धरोहरी कहाँ गया, उन्हींकी तड़पनका, आत्माराम मुनियोंके मनकी अविराम लालसाका आलम्बन ही भागवतका आलम्बन है, ऐसा आलम्बन है जो साथ-ही-साथ उद्दीपन भी है, वही भाव भी है और अनुभाव भी है। श्रीकृष्ण प्यारके आलम्बन हैं, श्रीकृष्ण ही उद्दीपन भी हैं; क्योंकि जगत्की समस्त उद्दीपन-सामग्रीके वे आलम्बन हैं। मेघ उनके लिये आँसू बहाता है, चन्द्रमा उनके विरहमें पीला पड़ता है, समुद्र उनके लिये विलखता है। श्रीकृष्ण ही रोमांच हैं, अश्रुपात हैं, मूर्च्छा हैं। श्रीकृष्ण ही तरह-तरहके संचारी हैं। ईर्ष्या-असूयामें भी श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्ण ही प्यार हैं, शायद प्यार ही उनका सबसे अधिक साकार विग्रह है। श्रीकृष्णको देखना हो तो झुरमुटों-झाड़ियोंको देखो, जिनपर पर्त-की-पर्त श्रीकृष्णके विरहमें विह्वल गोपियोंकी चरण-रज पड़ी हुई है, उस रजने उन वनस्पतियोंका अर्धोन्मीलित चैतन्य उन्मीलित कर दिया है।

भागवतकार ऐसी चैतन्यलीलाके लिये पहले ज्ञानभूमि और कर्मभूमि तैयार करते हैं। तीसरे स्कन्धसे सातवेंतकमें एक तत्त्व-दर्शन देते हैं कि निर्गुण भी स्वेच्छासे कैसे और क्यों गुणवान् होता है! वे निखिल सृष्टिका विस्तार बतलाते हैं, अवतारोंके सोपानोंका वर्णन करते हैं, भगवद्भक्तोंकी लंबी परम्पराका परिदृश्य प्रस्तुत करते हैं—ध्रुव-जैसा बाल-हठी, वृत्र-जैसा पराक्रमी इन्द्रशत्रु, प्रह्लाद-जैसा असुर-पुत्र, बलि-जैसा दानाभिमानी, अजामिल-जैसा पापी कैसे नारायणकी ओर अभिमुख होते हैं, इसका वर्णन करते हैं।

इसके अनन्तर वे भागवतके हृदय श्रीकृष्ण-लीला-आख्यानके पास पहुँचते हैं। श्रीकृष्ण-लीलाका रस ज्ञान-

कर्म तथा भक्ति—इन तीनों सोपानोंको पार करके मिलता है, कच्चे घड़ेमें यह रस नहीं रखा जा सकता, बड़ी आँचमें पके घड़ेमें ही यह रस टिकता है। श्रीकृष्ण-लीलाका माधुर्य-आस्वादन करनेवाली इन्द्रियाँ पहले वन-चारणके लिये जाती हुई गौओंकी तरह श्रीकृष्णके चरणोंका अनुसरण करती हैं और जब श्रीकृष्णका रस उनमें भर जाता है तो वे आगे हो जाती हैं और श्रीकृष्ण उनके पीछे-पीछे चलने लगते हैं। जो आँखें श्रीकृष्णको निरखती हैं, श्रीकृष्णमय हो जाती हैं। फिर उनमें कुछ और देखना नहीं होता, श्रीकृष्ण ऐसी आँखोंको देखनेके लिये अकुला जाते हैं, श्रीकृष्ण स्वयं बछड़ा बन जाते हैं, गोप-बाल बन जाते हैं, गो-गोपियोंका वात्सल्य पानेके अभिलाषी। वृन्दावनसे श्रीकृष्ण प्रस्थान करते हैं तो अक्रूरको यमुना-जलमें और यमुना-तीरपर एक साथ दो-दो रूपोंमें श्रीकृष्ण दिखलायी पड़ते हैं—यमुना-तीरपर अर्थात् वृन्दावन मोरमुकुटधारी गोपबालरूप और यमुनामें चतुर्भुज विष्णुरूप। अक्रूरके रथपर वह विष्णुरूप ही जाता है, गोपाल वृन्दावनमें ही रह जाते हैं। इसलिये उद्धव वृन्दावन जाते हैं, बलराम जाते हैं, श्रीकृष्ण वृन्दावन नहीं लौटते, क्यों लौटें, वे तो वहाँ अभिव्याप्त हैं भूताकाशमें, चिदाकाशमें, बस कुरुक्षेत्रमें जहाँ उन्हें गीताका उपदेश देना है। सूर्य-ग्रहणके अवसरपर मथुरा-वृन्दावनसे आये बन्धुओंसे, सुहृदोंसे, सखियोंसे मिलते हैं, मानो अपनी ही बिछुड़ी हुई प्रकृतिसे मिलते हैं। गोपियाँ जब श्रीकृष्णसे मिलीं तो ऐसा लगा कि अब इतने दिनों बाद दीखे हैं, इन्हें अपलक देख लें, केवल देखें ही न, अपितु आँखोंके द्वारसे इन्हें हृदयमें रख लें और इन्हें भर लें, अब ये जाने न पायें। भागवतकार कहते हैं कि इन गोपियोंको वह भाव प्राप्त हुआ जो उनसे नित्य जुड़े लोगोंको भी कठिनतासे कभी-कभी मिलता है। गोपियोंको वह भाव सहज मिल गया, देखना ही होना हो गया।

गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं
यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति।
दृग्भिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वा-
स्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम्॥

श्रीकृष्णने उन्हें देखा और फिर उनके होकर उनसे मिले, कुशल-समाचार पूछा। कैसी विडम्बना है, श्रीकृष्ण क्षमायाची-स्वरमें पूछ रहे हैं—'सखियो! इस निठुर विस्मृतिशील सहचरकी याद तुम्हें आती है। कितने दिन हुए तुमसे मिला नहीं, दुष्टोंके संहारमें लगा रहा। तथा अन्य अनेक कार्योंमें मन अटका रहा। मुझे अकृतज्ञ न मानना, मैं तुम्हारा चिर ऋणी हूँ। यह संसार ही संयोग-वियोगका वितान है, दुरन्त विरह है।' इतनेमें ही श्रीकृष्णने सब कुछ कह दिया और गोपियाँ ऐसी निहाल हुईं कि उनका जीवकोश ध्वस्त हो गया, उनका देह-बन्धन नहीं रहा, वे भाव-रूप हो गयीं और उन्होंने कहा—'इस रस-बने देह-गेहमें बस तुम्हारे चरण-कमल खिलते रहें।'

जो योगेश्वरोंके अगाध हृदयमें कमल खिलता है, वह इस देह-गेहमें रहते हुए संसारी मनमें सदा-सदा खिलता रहे। भागवतकारने नारी-देहको और नारी-चित्तको जो प्रतिष्ठा दी, विशेष-रूपसे सहज-जीवन बितानेवाले देह और चित्तको; वह प्रतिष्ठा ब्रह्मा, नारद, शुक, उद्धव तकको स्पृहाका विषय है।

भागवतमें इसीसे कृष्ण जब इस धरा-धामपर लीलाका संवरण करते हैं, तब वे सबको बिदा कर देते हैं। उद्धवको ज्ञान देकर और अपनी चरणपादुका देकर कहते हैं—'जाओ बदरिकाश्रम, वहाँ जाकर भागवत-भाव जगाओ, नर-नारायणके साहचर्यका अनुभव कराओ।' उद्धव विज्ञानमय होकर भी सांनिध्य छोड़कर जाना नहीं चाहते, बार-बार जाते हैं, बार-बार लौटते हैं—

सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो
न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः।
कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके
बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः॥

इसके बाद द्वारकासे अलग प्रभास तीर्थ चले जाते हैं। उनके पहले बलराम योगक्रियासे शरीर त्याग करते हैं। श्रीकृष्ण अपने अधिष्ठान-रूप अनन्त मानुषभावके बिना होनेपर निपट अकेले नदीपर एक पीपलकी जड़पर सिर टेके लेट जाते हैं और अपना दायाँ चरण मोड़कर छातीपर रख देते हैं, जैसे जोखा कर रहे हों। इस चरणमें मेरे हृदयमें बसे प्रियजनोंकी कितनी प्रीति है, मेरा हृदय भी अनु… कर ले। लोहेके मुसलका एक टुकड़ा समुद्रमें छिटक… था, उसे मछलीके पेटसे जरा नामक व्याधने निकाला था, उसका तीर बनाया, छातीपर मुड़े पैरको दूरसे देखा, मृगकी आकृतिका भ्रम हुआ, उसने तीर चलाया,

आया तो उसे चतुर्भुज-रूप दीखा, चरणोंमें गिरा, अज्ञानमें पाप हुआ, कैसे निष्कृति हो, मुझे मार डालो। श्रीकृष्णने कहा—'तुम तनिक भी डरो मत, तुमने मेरी निष्कृति की है, मैंने यदुवंशमें जन्म लिया, ऋषिके शापका एक टुकड़ा मुझे भी लगना-ही-लगना था, उसके पूर्व यह देह नहीं छूटती, तुम अब दिव्य शरीर धारण करके स्वर्ग जाओ। 'जरा' भी चला गया।'

प्रभुको खोजते-खोजते उनके पदचिह्नोंको देखते-देखते दारुक वहाँ पहुँच गये, पदचिह्नसे अधिक बलवान् प्रभावी थी तुलसीकी मालाकी गन्ध जो श्रीकृष्णकी छातीपर विराजमान रहती है, दारुक रथ लेकर विह्वल होकर बोले—'प्रभु, आप मुझे छोड़कर क्यों आ गये, मैं कहाँ जाऊँ, मैं सारथि हूँ, आपको रथपर पाकर।' इतना कहते-कहते गरुडध्वज-रथ घोड़ों-समेत देवलोक चला गया, उसीके साथ पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, शार्ङ्गधनुष—वे सभी वैष्णव आयुध चले गये। श्रीकृष्ण निपट मनुष्य होकर रह गये, दारुकको उन्होंने बिदा किया—'द्वारका जाओ, यदुकुलके विनाशका समाचार दो, अन्त्येष्टिकी व्यवस्था करो, बचे लोगोंसे कहो—'द्वारका छोड़ दें, इन्द्रप्रस्थ चले जायँ', अर्जुन आते होंगे। समुद्र द्वारकाको मेरे जाते ही निगल जायगा।' क्या करता, दारुक भी चला गया। श्रीकृष्णके पास कोई नर नहीं रहा, नारायणका कोई साज नहीं रहा, जिस धरतीपर वे नंगे पैर बचपनमें चले, जिसे अपने स्पर्शसे पुलकित किया, जिसकी रजसे स्वयं शोभित हुए, उसी धरतीपर उसीकी धूलिमें सने श्रीकृष्ण जाने कब चले गये। किसी मनुष्यने नहीं देखा, केवल देवताओंने, पितरोंने, सृष्टिके विधाताने, उमा-महेश्वरने देखा कि धरतीका सर्वस्व छिना जा रहा है, जिसके सौभाग्यके लिये स्वर्ग तरसता है और तरसता रहेगा, देवताओंका मन ललचता रहेगा कि हाय हमें नरलीलाके रसमें हिस्सा क्यों न मिला, कल्प-कल्प जीनेसे क्या लाभ। अल्पायु मनुष्यने जो यह सम्भावना पायी कि अपनी ही सजातीय देहमें अधिष्ठित नारायणका स्पर्श करके स्वर्ग-अपवर्गके लाभका तिरस्कार कर दिया, उसे एक क्षणमें ही सृष्टिका सर्वस्व प्रयोजन प्राप्त हो गया।

भागवतकारने श्रीकृष्ण-लीला-रससे सिक्त भारतभूमिके लिये देवताओंकी तरसका जो वर्णन किया है, वह सबसे उत्तम राष्ट्रगीत ही नहीं, मानव-गीत भी है।

क्या होगा स्वर्ग लेकर? जिसमें योगके अतिशयमें नारायणकी स्मृति चली जाय, क्षणभरकी मानव-देह पाकर यह सम्भावना तो है कि नारायणका अभय-पद मिल सकता है, केवल एक क्षणमें झटकेसे लिये गये संकल्पसे सब अर्पित कर दो नारायणको, अपना कुछ न रखो।

भागवत भारतभूमिका हृदय है। जो पूरा अर्थ नहीं समझता, पर किसी एक क्षणमें कहीं किसी प्रसंगपर विचलित हो जाता है, अश्रु बहने लगता है और रोमांच हो जाता है, तो भागवत उसका हो जाता है।

भागवत अपनी एक ही साँसकी फूँकसे जड़को चेतन कर देता है, वृक्षोंमें पुलक भर देता है, नदियोंमें लहररूपी अंजलियोंमें कमलोपहार रख देता है कि चढ़ाओ उन चरणकमलोंपर जो तुम्हारे पुलिनोंपर महक रहा है—

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत-
मावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारे-
र्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥

भागवतका काव्य शरत्-काव्य है, मेघ बरसकर उजला हो जाय, नदीका जल घटकर निखर जाय, संतप्त पृथिवी काँस—वनराजियोंसे विहँस उठे, आकाश स्वच्छ हो जाय शुद्ध ब्रह्मकी तरह और उसमें अमृत-कलश चन्द्ररूपी अमृतसे भर जाय, भर क्या जाय, अमृत समाये न समाये, सारा रंग केवल श्यामलतामें समा जाय, सारा राग विराट् विरागमें समा जाय और वह विराग ही एकमात्र राग रह जाय, तब भागवतके रसका, समष्टिमें रासशील-नर्तनशील रसका सही मानेमें प्रादुर्भाव होता है। कैसे समझें और कैसे समझायें इसके मर्मको, भागवतकारकी दृष्टिको कैसे निरखें, जो दृष्टि शरद्-ऋतुके सरोवरमें खिले सरोजके भीतरी पटलोंकी शोभा चुराकर निहार रही है, निहार क्या रही है, समस्त रागोंकी रंगत हर रही है!

अब भागवत-कथाके किन-किन चुने प्रसंगोंपर विशद चर्चा करें, समझमें नहीं आता, कोई प्रसंग तो ऐसा नहीं है जिसे छोड़ा जा सके—'**दुस्त्यजस्तत्प्रसंगः।**'

उस बाल-लीलाकी बात करें, जिसके बारेमें कुन्तीने कहा था कि—'तुम्हारा अपराधी-भावसे बाँधा जाना मुझे बड़ा अच्छा लगता है' या गोपियोंके हाथकी कठपुतली बने

श्रीकृष्णकी बात करें—जो गोपियाँ जैसे नचातीं नाचते, गाते, कभी पीठक लाकर देते, कभी नापनेका वर्तन लाकर देते, कभी पादुका लाकर देते और कभी बाहें दबाते।

अथवा ब्रह्माने जब बछड़ों और ग्वाल-बालोंको छिपा दिया तब श्रीकृष्णने अपनेको हजार-हजार बछड़ों और ग्वाल-बालोंके रूपमें परिवर्तित करके स्वयं उनके अलंकरण, उनकी लकुटी, उनकी वेणु, उनका परिधान, उनका शृंगार बनकर जो कौतुक किया, उसकी बात करें।

और फिर उन गोपियोंकी उस आकुलताकी बात करें कि श्रीकृष्ण मानते नहीं गोचारणके लिये निकल गये हैं, उनके नलिन-सुन्दर पद जाने किन कँकरीली-पथरीली राहोंपर पड़ रहे होंगे, कितने कंटक-कुश चुभते होंगे, उनके चरण इतने कोमल कि हमें अपने अङ्गोंपर रखते डर लगता है कहीं वे कठोर अङ्गमें चुभ न जायँ, पर हाय रे, निर्मोही हमको तो सताते ही हैं, अपनेको भी सताते हैं, ऐसे चंचल, न खुद घर रहा जाता है, न किसीको घरमें चैनसे रहने देते हैं—कितना मन कदरा जाता है उनका इस तरह घूमना सोचकर—

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून्
नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति॥

अथवा उस पराक्रमका स्मरण करें—जब उन्होंने अकेले असुरों और मदान्ध द्वेषियोंका निकन्दन किया, सात-सात दुर्दान्त बैल एक साथ नाथ दिये, आँधीके ऊपर सवारी की, कालियके फणोंपर नाचे तथा कनिष्ठिका उँगलीपर गोवर्धन धारण किया, दावानल पिया, मल्लोंको पछाड़ा, वह भी सब सहजभावसे हँसते-हँसते। उस मित्रवत्सलताका स्मरण करें कि दीन-हीन सुदामाके धूलि-धूसर चरण आँसुओंसे पखारे, मित्रसे भर अंक भेंटकर अत्यन्त आनन्दित हुए, उनके ईश्वरत्वका आवरण हट गया, वे निवृत्त हो गये, उनकी आँखें उस आँधी-पानीवाली रातकी स्मृतिसे भर आयीं। जब वे सुदामाके साथ गुरुके आश्रमके लिये वनमें लकड़ी तोड़ने गये थे, कहो मित्र, वह रात याद है, एक दूसरेका हाथ थामे, एक दूसरेको अवलम्ब देते हुए हम भटकते रहे और पानी मूसलाधार बरस रहा था, कुछ सूझ नहीं रहा था, अहा! कैसा था वह मैत्रीका हाथ—

वयं भृशं तत्र महानिलाम्बुभि-
र्निहन्यमाना मुहुरम्बुसम्प्लवे।
दिशोऽविदन्तोऽथ परस्परं वने
गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः॥

या नित्य साथ रहनेवाली महिषियोंकी उस विरह-विह्वलताकी बात करें—जब उन्हें समस्त प्रकृति उनकी सह-दुःखभागिनी लगती थी, कुररी उनके लिये रात-रात टेरती थी, समुद्रकी चीत्कार बंद नहीं होती थी, मेघके आँसू नहीं थमते थे, क्या हो जाता है उसे; जिसे श्रीकृष्णकी विहँसती डीठ लग जाती है—

कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे
स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः।
वयमिव सखि कच्चिद् गाढनिर्भिन्नचेता
नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥

चित्तको यह चीरकर रख देती है दृष्टि। ऐसे विचित्त करनेवाले श्रीकृष्णका अन्तिम रूप मुझे वेधक लगता है। 'बहुतायत' में रहनेवाले काँस ऐसे अकेले, ऐसे निस्सहाय, क्या इसलिये कि चलते-चलते नरदेह तजते-तजते नरदेहकी समूची-की-समूची असहायता और निरुपायता झेल लेना चाहते हों, नरदेहकी पूरी पीडा आत्मसात् कर लेना चाहते हैं, बिना पीर समझे पीर हरेंगे कैसे। समझमें नहीं आता निठुर हैं या कोमल, कहीं कोई ममता नहीं, मोह-छोह नहीं और ऐसा बाँधते हैं मोह-छोहमें, ऐसी चित्त-विनाशिनी लीलाके साथ कौन हो, कृष्णका अनुगमन नहीं किया जा सकता, पर विवशता ऐसी है कि कृष्णके खिंचावमें जाने क्या है? जहाँ है वहाँ रहा नहीं जाता, बस व्रजका भाव बरबस उठता है, चलो, रुकना नहीं है, व्रजविहारीके लिये। व्रजी बनो, व्रज-हठी बनो, व्रज न बन सको तो व्रजकी रेतके कण बनो, कण बनकर भी ठहरो नहीं, उनके लीलासखियोंके चरणोंमें पड़कर हवाके कंधेपर सवार हो जाओ, उनके विरहमें सँवरायी यमुनाके जलमें उतर जाओ।

* * *

तुलसी-काव्यमें श्रीराम-लीला

(डॉ० श्रीशुकदेवरायजी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न)

सम्पूर्ण चराचर विश्व उस अव्यक्त ब्रह्मका व्यक्त रूप है। यह उसकी सृष्टि भी है और लीलाभूमि भी। यों तो उनकी लीला शाश्वत और निरन्तर है, फिर भी भगवल्लीलाके दो स्वरूप बताये गये हैं—(१) अन्तरङ्ग-लीला और (२) बहिरङ्ग-लीला। अन्तरङ्ग-लीला परम रहस्यमय है—परम गोपनीय है। यह या तो सिद्धों और साधकोंके लिये प्राप्य है या उनके लिये जो भगवत्कृपाके विशेष पात्र हैं। यह चर्म-चक्षुगोचर नहीं है—*'यह समुझि परै जब ध्यान धरै।'*

लीलाका दूसरा स्वरूप बहिरङ्ग है—जो उस निर्गुण-निराकारके सगुण-साकाररूपमें प्रकट होनेपर यथासमय हुआ करता है। प्रभुकी लीला विभिन्न अवतारों एवं रूपोंमें विविध प्रकारसे सम्पन्न होती है, जिसे वर्तमान देखता है, भूत उसे सँजोकर रखता है और भविष्य उससे प्रेरणा ग्रहण करता है। भक्त अपने आराध्यके इसी लीला-रूपको विशेष पसंद करता है। भक्तप्रवर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपने इष्ट पुरुषोत्तम श्रीरामके इसी लीलारूपकी आराधना की है और अपने काव्यमें वर्णन किया है। सम्भवत: इसीलिये इन्होंने अपने महाकाव्य 'मानस' का नाम 'श्रीरामचरितमानस' रखा। न केवल मानसमें, बल्कि अपनी समस्त छोटी-बड़ी रचनाओंमें वे इसी राम-लीलाको उद्घाटित करते रहे।

तुलसीके इष्ट श्रीराम हैं, जिन्होंने त्रेतायुगमें परब्रह्म परमेश्वर होते हुए भी श्रीदशरथजीके घर अवतार धारण किया था। सर्वप्रथम वे श्रीकौसल्याजीके सामने चतुर्भुज-रूपमें प्रकट हुए। माँ प्रसन्न तो हुईं, पर उन्होंने इस रूपको पसंद नहीं किया और आग्रह किया कि *'तजहु तात यह रूपा'* और *'कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।'* भगवान्ने अनुरोध स्वीकार किया और परिणामत: —*'सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।'*—यह है लीलाका महत्त्व और उसका रहस्य।

अरण्यकाण्डमें शूर्पणखा-प्रसंगके पूर्व ही श्रीरामने अपने श्रीमुखसे लीला करनेकी चर्चा श्रीसीताजीके साथ की है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उनके मानव-शरीर धारण करनेका उद्देश्य लीला करना है, श्रीराम कहते हैं—

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥

(रा० च० मा० ३। २४। १-२)

तुलसीदासजीके काव्योंमें वर्णित भगवल्लीलाओंको निम्नलिखित खण्डोंमें बाँटा जा सकता है—(१) बाल-लीला, (२) किशोर-लीला या माधुर्य-लीला, (३) रण-लीला और (४) ऐश्वर्य-लीला। प्रथम तीन लीलाओंमें प्रकारान्तरसे ऐश्वर्य-लीलाका पुट हो जाता है और इसीलिये लीलाएँ मधुर-मनोरम होते हुए भी महिमा-मण्डित हो जाती हैं—

देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोर।

(रा० च० मा० १। १०८)

श्रीरामचरितमानसके अतिरिक्त तुलसीके दूसरे काव्योंमें भी बाल-लीलाओंका वर्णन है। श्रीरामकी बाललीला पालनेसे प्रारम्भ होती है—

पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौं।

(गीता० १८)

एक दिन पलनेकी बाल-क्रीडामें ऐश्वर्य-लीला अनजाने समा जाती है। इष्ट-पूजनका दिन है। माताने बच्चेको स्नान कराया और शृंगार करके पलनेमें सुला दिया तथा स्वयं पकवान बनाने गयीं, पूजा कीं और नैवेद्य चढ़ायीं। फिर थोड़ी देरमें जब पुन: पूजा-घरमें गयीं तो देखीं—बच्चा खा रहा है। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वे दौड़ी पलनेके निकट आयीं तो देखीं बच्चा सो रहा है, फिर पूजा-घरमें गयीं तो बच्चा खा रहा था। वे विस्मय-विभोर हो गयीं। उनकी व्याकुलता देखकर बच्चेने अपना मुख खोल दिया तो माताने देखा—

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥

(रा० च० मा० १। २०१)

कालक्रमसे श्रीरामकी पलना-लीला दशरथ-अजिरमें उतरती है और दशरथ-अजिर-विहारी राम आँगनमें घुटनोंके बल सरकने लगते हैं—फिर चलनेका प्रयास करते हैं—

ठुमुकि चलत रामचंद्र बाजै पैजनिया।
अति आतुर पग धरत धाय गिरत परत लड़खराय

धाय मातु गोद लेत, दसरथ को रनियाँ।

मणिमय भूमिपर श्रीराम खेल रहे हैं—

कबहूँ ससि मागत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।

× × ×

कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिकै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं॥

(कवि० १। ४)

इसी बाल-क्रीडाके बीच कागके रूपमें काकभुशुण्डिजी आ जाते हैं और बालक राम उसे पकड़नेके लिये हाथ फैलाते हैं। कौआ उड़ता है। आकाशमें दूरतक जहाँ-जहाँ वह जाता है, उसे लगता है कि बालक उसे पकड़नेके लिये दौड़ा आ ही रहा है। अन्तमें बालक मुसकरा देता है—कैसी विचित्र स्थिति है, तभी तो मानसकारको कहना पड़ता है—

जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ॥

(रा० च० मा० ७। ८० (क))

यह है प्रभुकी बाल-लीलामें ऐश्वर्य-लीला।

प्रभुकी बाल-लीला कितना मनोरम है। श्रीराम खेलनेमें इतने मस्त हैं कि भोजनकी भी सुधि नहीं—

भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥

(रा० च० मा० १। २०३। ६)

माताके बुलानेपर—

ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥

(रा० च० मा० १। २०३। ७)

और भोजन भी क्या?

भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥
अनुज सखा सँग भोजन करहीं।

(रा० च० मा० १। २०३; १। २०५। ४)

नदी-किनारेका खेल कितना सुहावना है—

सरजू बर तीरहिं तीर फिरैं रघुबीर सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसें कटि पीत दुकूल नवीन फबै॥

(कवि० १। ७)

श्रीराम कुछ बड़े होते हैं, जनेऊ लेते हैं और फिर गुरुके घर पढ़ने जाते हैं, जहाँ—'*अलप काल बिद्या सब आई॥*' (रा० च० मा० १। २०४। ४)

श्रीरामकी अब किशोर-लीला प्रारम्भ होती है। सर्वप्रथम ये ऋषि विश्वामित्रके साथ यज्ञ-रक्षामें जाते हैं, जहाँ ताड़काका वध होता है—'***एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा।***' इसके बाद ये मुनिके साथ जनकपुरमें धनुष-यज्ञ देखने चल पड़ते हैं। मार्गमें गौतम-आश्रममें शापित अहल्याका उद्धार होता है—

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।

(रा० च० मा० १। २११(छं० १))

जनकपुर पहुँचनेपर माधुर्य-लीलाका प्रारम्भ बड़े संयत ढंगसे होता है। परंतु भ्रमणके समय इनके रूपपर मुग्ध होकर सखियाँ झरोखेसे फूल बरसा रही हैं, जो पुष्प-वाटिकामें मिलनेका संकेत है। श्रीरामकी पुष्प-वाटिका-लीला माधुर्यका प्रारम्भ है, जहाँ श्रीसीताको वे देख पाते हैं—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
भए बिलोचन चारु अचंचल।

(रा० च० मा० १। २३०। १-४)

दोनों माधुर्य-रूपमें डूब जाते हैं। चलते समय एकने—'*लोचन मग रामहि उर आनी।*' और दूसरेने '*सिव सोभा हियँ बरनि प्रभु*······ *।*'

आगे चलकर यही माधुर्य परिणयमें प्रकट हुआ।

सम्पूर्ण विवाह-प्रसंगकी लीला माधुर्यपरक है। जिसमें संयम, आदर्श और प्रेमका उत्तरोत्तर विकास है—

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर।

(रा० च० मा० ३। १। ३-४)

इस माधुर्यमें फिरसे ऐश्वर्य-लीला आ जाती है। जयन्तने उत्पात किया और प्रभुने सींक-धनुषका संधान किया। वह व्याकुल हो उठा। शरण कहीं नहीं मिली। तब प्रभुकी शरणमें आ गिरा। यहाँसे लीला उस ओर चलती है जहाँ प्रेमकी पराकाष्ठा प्रदर्शित होती है, जहाँ श्रीराम लता-पत्रादिकोंसे सीताका पता पूछते हैं—'*पूछत चले लता तरु पाँती।*' इसी विरही अवस्थामें ऐश्वर्य-लीला हो जाती है। कुम्भज ऋषिके आश्रमसे लौटते हुए शिव-सतीको विरही राम दूरसे ही दिखायी पड़ते हैं। 'सच्चिदानन्द'

कहकर शिवके प्रणाम करनेपर सती शंकाकुल हो जाती हैं और शिवके परामर्शपर वह परीक्षाके लिये सीताके वेशमें चल पड़ती हैं। मार्गमें सम्मुख सतीको देखकर रामचन्द्रजी कहते हैं—

कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

(रा० च० मा० १। ५३। ८)

सतीने जहाँ दृष्टि डाली, उन्हें सीताराम और लक्ष्मण ही दिखायी पड़े। प्रेमकी पूर्णताकी उद्भावना हनुमान्-राम-संवादमें स्पष्ट है—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

(रा० च० मा० ५। १५। ६-७)

प्रभुकी रणलीला जितनी रहस्यमयी है, उतनी ही कौतूहलपूर्ण है। ये लीलाएँ खर-दूषण-वधसे ही प्रारम्भ होती हैं और इस रण-लीलाकी पूर्णाहुति होती है लंकाके राम-रावण-युद्धमें। बालि-सुग्रीव-युद्ध भी इसी प्रसंगमें उल्लेखनीय है और परशुरामजीका वाक्-युद्ध भी। इन युद्ध-लीलाओंकी यह विशेषता है कि रामके वीर-वेशमें सौन्दर्य झलक मारता है, जिसे देखकर शत्रु भी विमुग्ध हो जाता है और संधि-प्रस्ताव भेजने लगता है। खर-दूषणने स्पष्ट ही कहा—

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥

(रा० च० मा० ३। १९। ५)

श्रीराममें वीरताके साथ धीरता है और शक्तिके साथ सौन्दर्य। इनका शर-संधान-लाघव एवं दृढ़ता आदि देखने योग्य है। रणभूमिमें शोणितसे लथपथ श्रीराम कितने सुन्दर लग रहे हैं—

श्रोनित-छीट छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं महा छबि छूटीं।
मानो मरक्कत-सैल बिसालमें फैलि चलीं बर बीरबहूटीं॥

(कवि० ६। ५१)

लड़ाईमें कभी अपने पक्षकी हानि और शत्रु-पक्षकी जय-जयकारसे श्रीराम विचलित नहीं होते। इनकी रणलीला भी तो विचित्र है—

उमा करत रघुपति नरलीला। खेलत गरुड़ जिमि अहिगन मीला॥

(रा० च० मा० ६। ६६। १)

बालि-युद्धमें तो इन्होंने—*'एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा।'* कहाँतक कहा जाय—*'हरि अनंत हरि कथा अनंता।'*

तुलसी-काव्यकी समस्त रामकथा लीलासे भरी है। इस लीलाका पार पाना सम्भव नहीं। इसका वर्णन कोई क्या करे? रचनाकारके ही शब्दोंमें—

'सागर सीप कि जाहिं उलीचे'॥

* * *

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामकी अन्तरङ्ग-लीलाएँ

(मानस-मराल डॉ० श्रीजगेशनारायणजी 'भोजपुरी')

अनन्त-ब्रह्माण्ड-नायक भगवान् श्रीरामकी समग्र लीलाओंको मुख्यतः दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—(१) अन्तरङ्ग-लीला और (२) बहिरङ्ग-लीला। श्रीरामचरितमानसमें दोनों प्रकारकी लीलाओंका वर्णन पूज्यपाद गोस्वामीजी महाराजने किया है। यहाँ हम भगवान् श्रीरामकी अन्तरङ्ग-लीलाओंकी चर्चा संक्षेपमें करेंगे।

भगवान्की अन्तरङ्ग-लीलाका प्रथम दर्शन उनके अयोध्यामें अवतरित होते ही होता है। जब अयोध्यामें भगवान्का अवतार हुआ तो महाराज दशरथजीने अभूतपूर्व उत्सवका आयोजन किया, उस समय अयोध्याकी अनुपम शोभा देखने ही योग्य थी। श्रीअवधके सद्यःप्रस्फुटित निसर्ग-सौन्दर्यके समक्ष देवलोक, नागलोक, शिवलोक और वैकुण्ठलोक तक भी फीके लगने लगे। भगवान् भास्कर जब अयोध्याके प्राङ्गणसे गुजरने लगे तो नगरके अलौकिक सौन्दर्यको देखकर ठगे-से रह गये। उनकी आगेकी यात्रा अनजाने स्थगित हो गयी और एक माहतक वे विमुग्धभावसे अयोध्याके सौन्दर्यका अवलोकन करते रह गये। गोस्वामीजी इस लीलाका वर्णन करते हुए लिखते हैं—

कौतुकं देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइँ जात न जाना॥
मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ॥
यह रहस्य काहूँ नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना॥

(रा० च० मा० १। १९५। ८; दोहा १९५; १९६। १)

पूरे एक महीने अयोध्यामें रात्रि नहीं हुई, किंतु प्रभुके

इस चरित्रको कोई जान नहीं पाया; क्योंकि यह भगवान्‌की गुप्त लीला थी। सूर्यनारायण अपने कुलमें पूर्ण ब्रह्मके अवतारके मनोहारी छवि-दर्शन-हेतु अयोध्यामें रुक गये। यह तो स्वाभाविक है; परंतु उनके रुक जानेसे अयोध्यामें अहर्निश प्रकाश और संसारमें अन्यत्र एक माहतक रात्रि या अन्धकारकी स्थिति बनी रही, यह अस्वाभाविक थी। फिर भी भगवान्ने अपनी विश्वविमोहिनी मायासे सभीको ऐसा अभिभूत कर दिया कि इस रहस्यको कोई जान नहीं पाया।

अपने बाल्यकालमें भगवान्ने एक और विचित्र लीला की। एक बार जब वे दूध पीकर पलनेमें सोये थे, तब माता कौसल्या अपने इष्टदेवके भोगके लिये प्रसाद बनाने लगीं। भगवान्‌का पूजनकर जब वे नैवेद्य लेने पाकशालामें गयीं तो यह विचित्र दृश्य देखकर चकित रह गयीं। उन्होंने देखा कि बालक राम वहाँ बैठकर प्रसाद-भक्षण कर रहे हैं। माँको जैसे अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं हुआ और दौड़कर वे शयन-कक्षमें गयीं, जहाँ कुछ देर पहले रामको पालनेमें सुलाकर आयी थीं। वहाँ जानेपर उनका कौतूहल और अधिक बढ़ गया। देखा, बालक राम गहरी निद्रामें सोये हैं। पुनः पाकशालामें गयीं तो देखा राम मुसकराते हुए भोजन कर रहे हैं—

एक बार जननीं अन्हवाए। करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए॥
निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना॥
करि पूजा नैबेद्य चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई॥
गै जननी सिसु पहिं भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदयँ कंप मन धीर न होई॥
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा॥
(रा० च० मा० १। २०१। १—७)

द्विधा-विभक्त अपने बालक रामकी इस अलौकिक लीलाको देखकर माँ समझ नहीं पा रही हैं कि एक ही बालक एक ही कालमें दो स्थलोंपर कैसे विराजमान है। माता कौसल्याके सुत-विषयक भ्रमका निवारण करनेके लिये भगवान्ने एक और लीलाकी रचना कर दी—

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥
(रा० च० मा० १। २०१)

श्रीरामने अपने मुखारविन्दमें माता कौसल्याको अखिल ब्रह्माण्डका दर्शन कराया। अगणित रवि, शशि, शिव, चतुरानन, सरिता-सिंधु और जंगलोंको देखकर माँ चकित-सी रह गयीं। किंतु माँको भयभीत देखकर भगवान्ने विराट्‌रूपका संवरण कर लिया तथा पुनः शिशुरू यथावत् हो गये। विस्मयवंत माता कौसल्याकी बुद्धिमें अ यह दृढ़ निश्चय हो गया कि जिसे मैं अज्ञानवश अपना पु मान बैठी थी, वस्तुतः वह तो जगत्‌का पिता है—

बिसमयवंत देखि महतारी। भए बहुरि सिसुरूप खरारी॥
अस्तुति करि न जाइ भय माना। जगत पिता मैं सुत करि जाना॥
(रा० च० मा० १। २०२। ६-

इस लीलाकी गोपनीयता कहीं प्रकट न हो जा इसलिये भगवान्ने अन्तमें माताजीसे आग्रह किया कि इ लीलाको आप कहीं भी किसीसे कहें नहीं—

हरि जननी बहुबिधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई॥
(रा० च० मा० १। २०२। ८)

भगवान्‌की गुप्त लीलाका एक हल्का-सा संकेत धनुषभंग-प्रकरणमें भी देखनेको मिलता है। धनुषभंगके पश्चा परशुरामजी अत्यन्त रोषावेशपूर्ण हो वहाँ पधारते हैं। लक्ष्मणसे संवादके पश्चात् उन्होंने श्रीरामके पराक्रमकी परीक्षा लेने-हेतु कहा कि 'अगर आप मेरे धनुषकी प्रत्य चढ़ा देंगे तो आपको मैं वीर मान लूँगा।' किंतु उस सम परशुरामको अत्यन्त विस्मय हुआ जब परशुरामका धनु उनके हाथसे छूटकर स्वयं श्रीरामके हाथमें चला गया। अ उनको निश्चय हो गया कि पूर्ण ब्रह्मका अवतार हो गया—

देत चापु आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥
जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन हृदयँ न प्रेमु अमात॥
(रा० च० मा० १। २८४। ८, दोहा १। २८

वनवासकालमें भगवान्ने अनेक लीलाएँ कीं, उन एक अन्तरङ्ग (गुप्त)-लीला भी है। एक दिन जब लक्ष्मण फल-मूल लेने जंगलमें गये तो एकान्त पाकर भगवा सीताजीसे कहा कि तुम अपनी प्रतिमूर्ति स्थापितकर अग्नि प्रवेश कर जाओ; क्योंकि अब मैं कुछ नरलीला करने रहा हूँ। रावण आकर तुम्हारी प्रतिकृतिका अपहरण कर जायगा तथा मैं नारदजीके शापको फलीभूत करनेके लि विरह-लीला करूँगा। इस गोपनीय लीलाका वर्णन महाकवि

अत्यन्त भावमयरूपमें किया है—

लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद।
जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद॥
सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता॥
लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥
(रा० च० मा० ३। २३, ३। २४। १—५)

इस गुप्त-लीलाको भगवान्ने इतनी बारीकीके साथ किया कि रात-दिन साथ रहनेवाले प्रिय लक्ष्मण भी इस रहस्यको नहीं जान पाये। लंका-विजयके पश्चात् भगवान् लक्ष्मणके द्वारा ही सीताकी अग्नि-परीक्षा कराते हैं तथा इसी व्याजसे नकली प्रतिबिम्बको जलाकर असली सीताको प्राप्त कर लेते हैं। अरण्यकाण्डसे लेकर लंकाकाण्डतक इस गुप्त-लीलाका सूत्र फैला हुआ है; लेकिन आश्चर्य है कि सभी लीलाओंमें साथ रहनेवाले श्रीलक्ष्मणजी भी इस गुप्त-लीलाको नहीं जान पाये।

वहीं भगवान्ने एक और गुप्त-लीला की। शूर्पणखाद्वारा प्रेरित होकर खर-दूषणके चौदह हजार सैनिकोंने श्रीरामपर चारों ओरसे आक्रमण कर दिया। शत्रुओंके मध्य घिरे हुए अकेले भगवान्को देखकर देवता भयभीत हो गये। उनके भय-निवारण-हेतु भगवान्ने एक अद्भुत लीला रच दी। उनकी बुद्धिपर मायाका ऐसा आवरण डाला कि सभी सैनिक परस्पर एक-दूसरेको राम समझने लगे; फिर क्या था! आपसमें लड़कर उन्होंने अपना विनाश कर लिया—

सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‌यो।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मर्‌यो॥
(रा० च० मा० ३। २० (छं० ४))

भगवान्की अन्तरङ्ग-लीलापर पटाक्षेप करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं कि जब लंका-विजय करके भगवान् अयोध्यामें आये तो चौदह वर्षसे प्रतीक्षारत नर-नारीके हृदयमें यह उत्कट अभिलाषा रही कि भगवान् सर्वप्रथम मुझसे मिलें। भगवान् भक्तवत्सल हैं, अतः अमित रूप धारण करके उन्होंने सबका मनोरथ पूर्ण किया—

प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥
(रा० च० मा० ७। ६। ४-५)

यद्यपि इस प्रकार उनकी अन्तरङ्ग-लीलाएँ तो उनके प्रत्येक कार्योंमें प्रतिभासित होती हैं, तथापि उसे हम जान नहीं पाते; परंतु जब हमें इसका ज्ञान होता है तो उस परब्रह्म परमात्मप्रभुकी इयत्ताका स्मरण हो आता है, तन-मन पुलकित हो जाता है और अन्ततः हृदयके आनन्द-विभोर होनेकी पराकाष्ठामें सर्वत्र उन्हीं लीलाधारीके दर्शन होने लगते हैं।

* * *

श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्णकी विश्वरूप-दर्शन-लीला

(डॉ० श्रीभीष्मदत्तजी शर्मा, साहित्याचार्य, एम्० ए० (संस्कृत-हिन्दी-दर्शनशास्त्र), एम्० एड्०, पी-एच्० डी०)

श्रीमद्भगवद्गीता भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् स्वरूप है। इसमें उनका पद-पदपर दर्शन होता है। गीतामें सम्पूर्ण वेद-शास्त्रोंका सार निहित है। गीताका सम्पूर्ण रहस्य या तो स्वयं परमात्मा श्रीकृष्ण जानते हैं या भगवान् श्रीवेदव्यास। यही एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णने अनुग्रहपूर्वक अपने परम भक्त अर्जुनको अपने विराट्‌रूपका दर्शन कराकर यह अनुभव कराया कि समस्त ब्रह्माण्ड उनके अंदर ही विद्यमान है।

यह समस्त जगत् भगवान्की ऐसी अनादि-अनन्त लीला है, जिसका पार पाना भगवत्-कृपाके बिना असम्भव है। शास्त्रोंमें परमपिता परमेश्वरकी आनन्दमयी क्रीडाको ही लीला कहा गया है। धर्मकी रक्षा, अधर्मके विनाश, सत्पुरुषोंके संरक्षण तथा दुष्टोंके निग्रहके लिये परमात्मा युग-युगमें अपनी अवतार-लीला करते रहते हैं। श्रीमद्भागवत महापुराणमें महारानी कुन्तीका यह कथन और भी सारगर्भित है कि भगवान्का अवतार भक्तियोगका विधान करने तथा उनकी लीलाएँ भक्तोंको सुख प्रदान करनेके लिये होती हैं। भक्तोंका आर्तनाद सुनकर उनकी रक्षा करनेके लिये वही परमात्मा कूर्म, मत्स्य, नृसिंह, परशुराम, वामन, राम, कृष्ण गणेश, शंकर, दुर्गा तथा सूर्य आदि अनेक रूपोंमें प्रकट

होकर अपनी लीलाके दर्शनद्वारा उनके कष्टोंका निवारण करते हैं। उनकी यह लीला नित्य है।

श्रीमद्भगवद्गीताका ग्यारहवाँ अध्याय विश्व-दर्शनयोगके नामसे विख्यात है। दसवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे उनकी विभूतियोंको सुनकर अर्जुनने उनसे उनके ईश्वरीय रूपको देखनेकी इच्छा प्रकट की। अर्जुनकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीकृष्णने उसे अपना विश्वरूप-दर्शन कराया। उनका यह विश्वरूप-दर्शन उनकी दिव्य लीला है। श्रीकृष्णने अर्जुनको जब यह बताया कि मैं सभी प्राणियोंका आत्मा हूँ—'**अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः**' तथा मैं ही समस्त प्राणियोंका आदि, मध्य और अन्त हूँ—'**अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च**' एवं आदित्योंमें मैं विष्णु, ज्योतियोंमें सूर्य, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, देवताओंमें इन्द्र हूँ और प्राणियोंमें चेतना, रुद्रोंमें शंकर, पर्वतोंमें सुमेरु पर्वत, सेनापतियोंमें स्कन्द, देवर्षियोंमें नारद, घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, हाथियोंमें श्रेष्ठ ऐरावत नामक हाथी हूँ एवं मनुष्योंमें मैं राजा, दैत्योंमें प्रह्लाद, पक्षियोंमें गरुड, सर्पोंमें वासुकि, शस्त्रधारियोंमें राम, नदियोंमें भागीरथी गङ्गा, विद्याओंमें अध्यात्मविद्या तथा सृष्टिका आदि-अन्त और मध्य मैं ही हूँ और अविनाशी काल भी मैं ही हूँ। तब अर्जुनको यह दृढ़ विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण साक्षात् परमपिता परमेश्वर हैं और यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैं इनका मानवरूपमें दर्शन कर रहा हूँ, किंतु उसे उनके ईश्वरीय रूपको देखे बिना पूर्ण संतुष्टि नहीं हो रही है। उचित भी यही है जब साक्षात् नारायण सम्मुख हों और उनका अनुग्रह भी भक्तपर हो तो फिर उनके परम ऐश्वर्यपूर्ण रूपका दर्शन भक्तोंको अवश्य मिलना चाहिये। अतः अर्जुनकी प्रार्थनापर परम अनुग्रहपूर्वक श्रीकृष्णने अपनी ऐश्वर्य-लीलाका दर्शन कराते हुए उससे कहा—'हे अर्जुन! तुम मेरे नाना प्रकारके एवं नाना वर्ण और आकारवाले सैकड़ों तथा हजारों रूपोंको मुझमें देखो। आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, अश्विनीकुमारों, मरुद्गणों तथा बहुत-से पहले न देखे हुए आश्चर्यमय मेरे रूपोंको देखो। मेरे शरीरमें एक ही जगह स्थित समस्त चराचर जगत्को और अन्य जो कुछ भी देखना चाहते हो, उसे देखो, किंतु मेरा यह विराट् रूप तुम अपने इन प्राकृत नेत्रोंसे नहीं देख सकते; इसलिये तुम्हें दिव्य चक्षु प्रदान कर रहा हूँ, उनसे समस्त विभूतियों और ब्रह्माण्डको मुझमें देखो—

> **पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।**
> **नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥**
> **पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।**
> **बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत॥**
> **इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।**
> **मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि॥**
> **न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।**
> **दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥**
>
> (गीता ११। ५-८)

वेदान्तदर्शनके अनुसार जो (आत्मा) मनुष्यके शरीरमें विद्यमान है, वही (आत्मा) ब्रह्माण्डमें व्याप्त है। इसी परम सत्यको साकार करनेके लिये श्रीकृष्णने अर्जुनको अपना वह विराट् रूप दिखाया, जो अनेक मुख-नेत्रोंवाला, अनेक अद्भुत दर्शनवाला, अनेक दिव्य आभूषणोंवाला, अनेक दिव्य शस्त्रोंको उठाये हुए, दिव्य मालाएँ धारण किये हुए, दिव्य गन्धका लेप किये हुए सब प्रकारसे आश्चर्यमय, प्रकाशमय, अनन्तरूप और सब ओर मुखवाला था। हजारों सूर्योंके प्रकाश-जैसा प्रकाश भी शायद ही उस विराट्रूपके प्रकाश-जैसा हो। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तथा अन्य सभी देवी-देवता, पितर, यक्ष, राक्षस, सिद्ध आदि सभी उस विराट्-रूपमें अर्जुनको दिखायी दिये। जिस प्रकार वेदवर्णित पुरुषसूक्तमें परमात्माके दिव्य स्वरूपके दर्शन होते हैं, उसी प्रकार अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके विराट्रूपमें सब कुछ देखा और उस दिव्य स्वरूपको देखकर उसने भगवान्की स्तुति करते हुए उनसे प्रसन्न होनेकी प्रार्थना की। भगवान्ने उन्हें आशीर्वाद दिया और युद्धमें विजयी होनेका वरदान दिया। फिर अर्जुनको अपना मानव-रूप दिखाकर विराट्-रूपसे भयभीत हुए अर्जुनको उन्होंने भयमुक्त किया। वास्तवमें यह सब भगवान् श्रीकृष्णकी ऐश्वर्य-लीला है। इससे यह सिद्ध होता है कि वस्तुतः परम सत्ता एकमात्र परब्रह्म परमात्मा ही है, अन्य सब भ्रममात्र है। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन हमें सदा स्मरण रखना चाहिये—

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(गीता ७। ७)

अर्थात् हे अर्जुन! मुझसे उत्कृष्ट अन्य कुछ नहीं है। मालाके सूत्रमें पिरोये हुए मणियोंके समान यह समस्त ब्रह्माण्ड मुझमें पिरोया हुआ है।

वेदान्तदर्शनमें **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'**—जगत्को मिथ्या और ब्रह्मको सत्य मानकर यह कहा गया है कि **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'**। अर्थात् यह सब कुछ ब्रह्म है, उससे अतिरिक्त कुछ नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णने अपना विश्वदर्शन कराकर अर्जुनको यह शिक्षा दी कि मैं ही सब कुछ हूँ। सब मेरा ही स्वरूप है। मेरेसे अतिरिक्त जो भी प्रतीति हो रही है, वस्तुतः वह भ्रम ही है। इस दिव्य ज्ञानको प्रदान करनेके लिये उन्होंने अर्जुनको यह दिव्य रूप दिखाया और कहा कि अनन्य भक्तिद्वारा ही मैं प्राप्य हूँ। इसलिये जो मेरे लिये कर्म करनेवाला, मेरे परायण, मेरा भक्त, अनासक्त तथा सब प्राणियोंमें वैररहित होता है, वही मुझे प्राप्त होता है। यहींसे भक्तियोगका प्रारम्भ होता है। जब व्यक्ति ईश्वरको ही सब कुछ समझने लगता है, तब वह एकमात्र उन्हींका भक्त हो जाता है। यही मानव-जातिके प्रति भगवान् श्रीकृष्णकी विश्वरूप-दर्शन-लीलाका दिव्य संदेश है।

'कुमारसम्भव'में वर्णित शिवलीला

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीरंजन सूरिदेवजी)

भारतीय चिन्तनमें 'लीला' शब्दकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। कोई भी विस्मयकारी कार्य 'लीला' हो जाता है। इस शब्दका अर्थ भी व्यापक है; किंतु 'लीला' शब्द प्रायः रामलीला और कृष्णलीलाके अर्थमें रूढ हो गया है। 'लीला'को सगुणोपासनाकी दृष्टिसे मानवकी भाँति व्यक्त शरीर परब्रह्मकी केलि-क्रीडाओंका वाचक शब्द माना जाता है। परंतु परब्रह्मकी यह क्रीडा निष्काम और निष्प्रयोजन होती है, अतएव अनेकान्तवादी दृष्टिसे भगवान्की लीला निर्गुण भी है। सगुण-रूपमें भोक्ता होकर भी निर्गुण-रूपमें अभोक्ता बना रहना भगवान्का लीलाविलास ही तो है।

प्रकृति और पुरुष अथवा शक्ति और शक्तिमान् लीला-निरत एक ही ब्रह्मके द्विधा-विभक्त रूप हैं और दोनोंका परस्पर नित्य सम्बन्ध है। नित्य-सम्बन्धसे उनकी लीला भी नित्य-निरन्तर चलती रहती हैं और उनकी लीलाकी यह निरन्तरता ही जागतिक जीवन-चक्रका मूलाधार है। लोकजीवनमें भी किसीका सामान्यसे कुछ विशिष्ट आचरण 'लीला' ही कहलाता है।

शक्ति और शक्तिमान् जिस समय परस्पर लीला करते हैं, उस समय वे दोनों आपसमें एक दूसरेके लीलाकार्योंसे सुसंगत रहते हैं, फिर भी लोकरञ्जनके लिये मनुष्य जैसी अनभिज्ञताकी स्थितिका प्रदर्शन करते हैं। वस्तुतः लीलाके समय शक्ति और शक्तिमान् असली रूपमें न होकर छायामूर्ति बन जाते हैं। इसलिये 'छद्मवेश' और 'अनुकृति' शब्द भी लीलाके ही पर्याय हैं।

महाकवि कालिदासने अपने 'कुमारसम्भव' महाकाव्यमें महाशक्ति पार्वती और महाशक्तिमान् परमेश्वर शिवकी अतिशय मोहक लीलाको अनभिज्ञतामूलक ललित भाव-संदर्भमें ही उपन्यस्त किया है। स्वरूप-शक्तिके साथ भगवान् शिवकी क्रीडा केवल लीला ही तो थी। चूँकि लीलामें लालित्य सहज-भावसे संनिहित रहता है, इसलिये लीला किसी प्रकारकी हो, अच्छी ही लगती है।

महादेव शिवको वरके रूपमें प्राप्त करनेके लिये महादेवी पार्वती कठोर तप कर रही थीं। उन्होंने अपने उग्र तपसे तपस्वियोंके भीषण तपको भी मात कर दिया था। परमेश्वर शिवको परमेश्वरी पार्वतीकी शिवभक्तिकी परीक्षा लेनेकी इच्छा हुई। वह ब्रह्मचर्यके तेजसे दीप्त तरुण तपस्वीका लीलारूप धारणकर पार्वतीके समक्ष उपस्थित हुए। जटाधारी ब्रह्मचारी शिव साक्षात् ब्रह्मचर्यके अवतारकी तरह दिखायी पड़ते थे। वह मृगचर्म एवं पलाशका दण्ड धारण किये हुए थे, उनकी वाणीमें प्रगल्भता थी।

अतिथि-सत्कारमें कुशल पार्वतीजीने आगे बढ़कर उस तरुण ब्रह्मचारीकी अगवानी की और विधिपूर्वक उसका आतिथ्य किया। कुछ क्षण-पश्चात् बिना किसी भूमिकाके

लीला-ब्रह्मचारी शिवजीने 'सुन्दरि!' 'कमलनयने!' 'सौम्यदर्शने!' 'कृशोदरि!' आदि विभिन्न प्रकारके मधुर सम्बोधनोंके साथ पार्वतीजीके उदात्त रूप, अलौकिक गुण, उच्च कुल और कठिन तपश्चर्याकी खूब प्रशंसा की। उसके बाद उनके तपोजनित कष्टपर दुःख और सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्होंने उनसे पूछा—

कियच्चिरं श्राम्यसि गौरि विद्यते
ममापि पूर्वाश्रमसंचितं तपः।
तदर्धभागेन लभस्व कांक्षितं
वरं तमिच्छामि च साधु वेदितुम्॥

(कुमारसम्भव ५। ५०)

'हे पार्वति! तुम अब कितने कालतक तपस्याका कष्ट उठाती रहोगी? मेरे पास भी पूर्व-संचित बहुत सारा तप है। उसका आधा भाग लेकर तुम अपने अभीष्ट वरको प्राप्त करो। अर्थात् तुम अपने अनुकूल पति प्राप्त करो। लेकिन मैं इतना अवश्य जानना चाहूँगा कि तुम्हारा अभीष्ट वर कौन है?'

तब पार्वतीजीने अपनी सखीकी ओर देखा। उनकी सखीने उस लीलावपु ब्रह्मचारीको बताया कि मेरी सखी पार्वतीके वर भगवान् शिव हैं। उन्हें प्राप्त करनेके लिये जब कोई दूसरा उपाय नहीं सूझा, तब यह अपने पिता पर्वतराज हिमालयकी आज्ञासे तपस्या करने हिमगिरिके गौरीशंकर शिखरपर स्थित मयूरोंसे मण्डित इस तपोवनमें चली आयी—

'जगाम गौरीशिखरं शिखण्डिमत्'॥

(कुमारसम्भव ५। ७)

उस सखीने लीला-ब्रह्मचारी शिवको आगे बताया कि मेरी सखी पार्वतीने इस तपोवनमें जिन वृक्षोंको स्वयं लगाया था, वे इसके कठोर तपके साक्षी बनकर अब फलोंसे लद गये हैं, किंतु महादेव शिवको पतिके रूपमें प्राप्त करनेका इसका मनोरथ अभीतक फलीभूत होनेकी बात तो दूर अंकुरित भी नहीं हो पाया है। (कु० सं० ५। ६०)

पार्वतीजीकी कठिन तपस्याके विषयमें उनकी सखीकी बात सुनकर लीला-शिवने किसी प्रकारकी प्रसन्नता नहीं व्यक्त की। उन्होंने पार्वतीजीसे पूछा—'तुम्हारी सखीने जो कुछ कहा है, क्या वह सत्य है या परिहासमात्र है?'

ब्रह्मचारीकी बात सुनकर जप करती हुई पार्वतीजीने अपनी स्फटिकमालाको अँगुलियोंसे समेटकर मुट्ठीमें ले लिया और सोच-विचारकर थोड़ेसे नपे-तुले शब्दोंमें कहा—

यथा श्रुतं वेदविदां वर त्वया
जनोऽयमुच्चैः पदलंघनोत्सुकः।
तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनं
मनोरथानामगतिर्न विद्यते॥

(कुमारसम्भव ५। ६

'हे वेदज्ञानियोंमें श्रेष्ठ! आपने मेरी सखीसे जो कुछ सुना है, वह सच है। [अपनी ओर संकेत करते हुए] यह तपस्विनी महादेवजी-जैसे उच्च पदस्थ महापुरुषको ही पतिके रूपमें प्राप्त करनेकी अभिलाषिणी है। अवश्य ही मेरी यह तपस्या उन्हींको प्राप्त करनेके लिये है। यही मेरी आकांक्षा है।'

पार्वतीजीके अभीष्ट वरको प्राप्त करनेके दृढ निश्चयको जानकर लीलामय शिव तनिक भी विचलित नहीं हुए, वरन् अपने लीला-विलासका और भी अधिक विस्तार करते हुए उन्होंने पार्वतीजीके समक्ष शिवकी तीव्र निन्दा शुरू कर दी। उन्होंने कहा—'हे पार्वति! भगवान् शिव तो चिता-भस्मसे धूसर अपने शरीरमें सर्प लपेटे रहते हैं। शवसंकुल श्मशानमें वास करते हैं और वह बूढ़े बैलपर सवारी करते हैं। विवाहके बाद जब तुम बूढ़े बैलपर अमङ्गल देवता शिवके साथ घूमने निकलोगी, तब सारे नगरवासी हँसेंगे। तीन-तीन आँखोंवाले उस पुरुषके न तो कुल-वंशका कोई पता है, न ही घर-परिवारका। उनकी धन-सम्पदाका अनुमान तो तुम इसीसे लगा सकती हो कि वे दिगम्बर हैं, नंगे घूमते हैं। कभी-कभी वस्त्रके नामपर व्याघ्रचर्म या हस्तिचर्म लपेट लेते हैं। उस अशुभ व्यक्तिमें तुम्हारा पति बननेकी एक भी योग्यता नहीं है, फिर तुम व्यर्थ ही उनमें क्यों आसक्त हो रही हो?'

अपने अभीष्ट पतिके विषयमें लीला-ब्रह्मचारीकी विपरीत बातें सुनकर पार्वतीजी क्रोधसे काँपने लगीं। फिर उन्होंने अत्यन्त धीरतापूर्वक शिवके बारेमें ब्रह्मचारीद्वारा कही गयी एक-एक बातका तर्कपूर्ण ढंगसे जोरदार खण्डन किया और ब्रह्मचारीकी दृष्टिमें शिवके गुणोंके सम्बन्धमें जितनी भी असम्मति और प्रतिकूलता थी उन सबका

सम्मत और अनुकूल सिद्ध किया।

पार्वतीजीने भर्त्सनाके स्वरमें ब्रह्मचारीसे कहा कि तुम्हारे-जैसे मूर्ख लोग ही महापुरुषोंके चरित्रसे अकारण द्वेष करते हैं, क्योंकि उन्हें उनके वास्तविक रूपका ज्ञान नहीं रहता है।

पार्वतीजीने अपने लीलामय शिवकी 'अलोकसामान्यता' और 'अचिन्त्यहेतुकता' को लक्ष्य किया था, इसलिये स्वयं उन लीलामयीने सर्वथा अविचलित-भावसे लीला-ब्रह्मचारीको अपने मनोभावके अन्तिम निष्कर्षसे अवगत कराते हुए कहा—

अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया
तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः।
ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं
न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते॥

(कुमारसम्भव ५। ८२)

'अरे ब्रह्मचारी! मैं इस प्रकारके विवादकी कोई आवश्यकता नहीं समझती। शिवजीके विषयमें तुमने जैसा कहा है, वह यदि बिलकुल ठीक भी हो तो भी मेरा मन एकमात्र उनमें ही रमा हुआ है। प्रेम करनेवाला कभी निन्दासे नहीं डरता।'

पार्वतीजीने अपनी बात समाप्त करते हुए कहा कि जो महापुरुषों या बड़ोंकी निन्दा करते हैं, केवल वे ही पापके भागी नहीं होते, अपितु निन्दा सुननेवाले भी पापके सहभागी होते हैं। पार्वतीजीके इस कथनपर ब्रह्मचारी भगवान् शिवके बारेमें और कुछ विरुद्ध वचन बोलता, इसके पूर्व ही पार्वतीजी वहाँसे चल पड़ीं।

पार्वतीजी ज्यों ही वहाँसे चलीं, त्यों ही लीलाधारी शंकरजीने अपना वास्तविक रूप धारण किया और मुसकराते हुए उन्हें यह कहकर जानेसे रोक दिया—

अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते॥

(कुमारसम्भव ५। ८६)

'हे नताङ्गि! मैं आजसे तुम्हारे तपद्वारा खरीदा हुआ तुम्हारा दास हूँ।' अपने चिराकांक्षित पतिको प्रत्यक्ष देखकर और उनके आश्वस्तपूर्ण वचनोंको सुनकर पार्वतीजी अपना सारा तपःक्लेश तत्क्षण ही भूल गयीं, क्योंकि अभीष्ट फलकी प्राप्तिसे पूर्वप्राप्त क्लेश मुरझाये मनको फिरसे हरा कर देता है।'

इस कथा-प्रसंगसे लीलातत्त्वके सन्दर्भमें महाकवि कालिदासकी यह केन्द्रिय भावचेतना उद्भावित होती है कि लीलोत्सुक शक्ति और शक्तिमान्‌की लीला 'अलोकसामान्य' तथा 'अचिन्त्यहेतुक' होती है और लीला-कालमें दोनोंकी मनःस्थिति भावैकरस रहती है। वस्तुतः शक्तिसे ही शक्तिमान्‌को अपने स्वरूपकी यथार्थ उपलब्धि होती है।

कुमारसम्भवमें महाकवि कालिदासद्वारा उपन्यस्त भगवान् शिव और भगवती पार्वतीकी यह लीला-कथा परमार्थतः जागतिक सृष्टिकी उत्पत्ति, विकास और लयकी ही अकथ कथा-गाथा है।

* * *

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति॥

(श्रीमद्भा० १०। ४७। १८)

श्रीकृष्णकी लीलारूप कर्णामृतके एक कणका भी जो रसास्वादन कर लेता है, उसके राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि सारे द्वन्द्व छूट जाते हैं। यहाँतक कि बहुत-से लोग तो अपनी दुःखमय—दुःखसे सनी हुई घर-गृहस्थी छोड़कर अकिंचन हो जाते हैं, अपने पास कुछ भी संग्रह-परिग्रह नहीं रखते, और पक्षियोंकी तरह चुन-चुनकर—भीख माँगकर अपना पेट भरते हैं, दीन-दुनियासे जाते रहते हैं; फिर भी श्रीकृष्णकी लीला-कथा छोड़ नहीं पाते। वास्तवमें उसका रस, उसका चसका ऐसा ही है—यही दशा हमारी हो रही है।

* * *

निर्गुणोपासनापरक रामस्नेहि संत-साहित्यमें भगवल्लीला-दर्शन

(खेड़ापा रामस्नेहि सम्प्रदायाचार्य श्रीपुरुषोत्तमदासजी शास्त्री)

शास्त्रोंमें अनन्त नाम-धाम-रूप एवं लीलावाले परमात्माके निर्गुण तथा सगुण दो रूपोंका विशेष रूपमें उल्लेख प्राप्त होता है। रामस्नेहि-पद्धतिमें इनमेंसे निर्गुण-नामोपासना-पद्धतिके माध्यमसे निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाका विशेष प्रतिपादन है। कारण कि इस सम्प्रदायके मूलप्रवर्तक श्रीजैमलदासजी महाराज (दुलचासर)-को वि० सं० १७६० के चातुर्मास्य-कालमें स्वयं भगवान्‌ने गूदड़ बाबाके रूपमें प्रकट होकर निर्गुण-नामोपासनाका उपदेश दिया था। गूदड़ बाबाके उपदेशको हृदयंगमकर पूर्वमें जैतराम नामवाले वे वैरागी साधु अपना सगुणोपासनापरक पूर्व-वेष छोड़कर जैमलदासजी 'रामस्नेही' बन गये।

इसके बाद उनके उपदेश-आदेशोंका प्रचार करनेवाले रामस्नेहिसम्प्रदायमें श्रीहरिरामदासजी महाराज (सिंहस्थल), श्रीरामदासजी महाराज (खेड़ापा[1]), श्रीद्यालदासजी महाराज (खेड़ापा[2]) आदि अनेक आचार्य हुए। सभी आचार्योंने अपनी वाणीमें स्पष्टरूपेण निर्गुण ब्रह्मका[3] प्रतिपादन किया है।

निर्गुण ब्रह्मपरक होते हुए भी रामस्नेहि-पद्धतिमें परमात्माके सगुणरूपका पूर्ण समादर किया गया है। आचार्योंके अनुभव-वाणीमें निर्गुण तथा सगुणकी भ्रान्ति-निवारणार्थ आचार्योंका स्पष्ट कथन है कि—

हरिया निर्गुण मूल है, सुरगुण शाखा पान।
भगति बीज फल मुगति है, और सकल ध्रम आन॥
सुरगुण निरगुण रामदास, तूं एकोकर जाण।
एक ब्रह्म सब बीचमें, सम्रथ पद निर्वाण॥
किस कूं निन्दिए वन्दिए, एक पिता अरु पूत।
निरगुण सुरगुण यूं भया, (ज्यूं) ताणै पेटे सूत॥

आचार्य-वाणीके अनेक स्थलोंमें इस तथ्यकी सत्यताके दर्शन होते हैं। समय-समयपर हुए परमात्माके विभिन्न अवतारोंमेंसे त्रेतायुगीन मयार्दापुरुषोत्तम श्रीरामावतार त द्वापरयुगीन लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णावतारकी भगवल्लील रामस्नेहि-जनोंको बहुत ही अनुकरणीय लगीं।

मरजादा पुरुषोत्तम, रामचन्द्र गुरु जेम।
लीला पुरुषोत्तम महीं, जदुपति कृष्ण सुप्रेम॥

इस कारण उन्होंने रामायण, श्रीमद्भागवत एवं श्रीमद्भगव आदि सद्ग्रन्थोंका मनोयोगपूर्वक स्वाध्याय करके इन दो अवतारोंकी भगवल्लीलाओंका सार-तत्त्व ग्रहण कर लिया

रामस्नेहि-जन रामनामरूपी परमधन देनेवाले गुरु महाराज परमात्माका साक्षात् अवतार मानते हैं। इस कारण उन्हों अपनी वाणीमें बड़े ही स्पष्ट शब्दोंमें गुरु भगवान् आध्यात्मिक भगवल्लीलाओंको तथा हृदयंगम किये राम-कृष्णकी भगवल्लीलाओंको समान-रूपसे दर्शाया है

१-खेड़ापाके तृतीय आचार्य श्रीपूरणदासजी महाराज वाणीके ग्रन्थ 'गुरुमहिमा' में रामावतारकी भगवल्लीला दर्शन इस प्रकार प्राप्त होता है—

अवतार कला षोडष कहाय, संजुक्त गुणां रेखा सु भाव।
इत सन्त नित्त अवतार धार, घट अनत कला गुण रेख सार॥१॥
वैहें[5] प्रगट अजोध्यापुरी नांम, यहां भइ नग्री काया स तांम।
ता पिता निमो दशरथ कंवार, यहां ब्रह्म तात जुग जुग मुरार॥२॥
हित मात कुशल्या कहूँ सोय, यहाँ भइ भक्ती जननी स कोय।
मांई समात[6] कैकई प्रवांन, अप्रीति यहां प्रगटी निधांन॥३॥
वैहें सीता भइ सतवन्त सुद्ध, यहां भई प्रियै पतिव्रता बुद्ध।
दिल साच वाच लछमण सु वीर, विज्ञान यहां कारण स धीर॥४॥
भये भर्थ चत्रघण[7], दोय भ्रात, वैराग्य त्याग ऐसे विख्यात।
सुत दोय भये बल बुध विशाल, इह ग्यान एक दूजे दयाल॥५॥
वड भीर धीर भृत कपीराज, इहां अग्याकारि निजमन अग्राज।
येह भयो समो आनन्द सुभाय, कोउ काल प्रगट असुरांन थाय॥६॥

---

[1] राम राम निर्गुण कर भक्ती, सगुण छाँड़ देवो आशक्ती। (श्रीद्याल-कृत ग्रन्थ परचीजी)

[2] भेष पन्थका संग तजि दीया, होय निरन्तर हरि पद लीया॥ (श्रीद्याल-कृत परचीजी)

[3] नमो निर्गुण नमो नाथू, नमो देव निरंजनम्। नमो सम्रथ नमो स्वामी, नमो सकल सिरंजनम्॥
(ब्रह्मस्तुति—श्रीहरिरामदासजी

[4] रस रामायण सिरमौर सार, भागोत वचन भागवत उचार। भारत भगवद्गीता विशेष, सो सार सार सब लियो देख॥
(जन्मलीला—श्रीपूरणदासजी म० खेड़ाप

[5] उधर, [6] विमाता, [7] शत्रुघ्न।

ताको ज नांम रांवण कहाय, ले गयो सीत पुर लंक मांय।
गढ त्रिकूट दुरंग[1] खाई कहाय, चौफेर घेर सूभर[2] भराय॥ ७ ॥
इक वाग जाग तहाँ सीत व्राज, जल सजल श्रोज कलियां पुलाज।
यहां प्रगट भयो रावण मनाज, सो बुध सीता ले गयो भाज॥ ८ ॥
पुर लंक अविद्या सिद्ध श्रूप, रंग सार ढार कीनी अनूप।
वन किलो दुरंग भ्रम रूप नांम, खाई स कुमत ता लगी तांम॥ ९ ॥
जल मोह द्रोह ता विच रहाय, चौफेर घेर सूभर भराय।
इक रमन भवन है वाग सिद्ध, ता कुसंग नांम कहिये प्रसिद्ध॥ १० ॥
विष लहर जहर कलियां नवीन, ता वीच जाय पधरायदीन।
भल भ्रात जास कुंभकरण नांम अहंकार यहां ऐसो गुलाम॥ ११ ॥
पुनि और विभीषण भ्रात थाय, सुधर्म यहां प्रगट्य सुभाय।
ताके ज वडो सुत मेघनाद, अपजस्स यहां जेठो असाद॥ १२ ॥
तख अवर भये ताके सुतान, वीतर्क तर्क इनके कितान।
वेहं भई मन्दोदरि प्रिये प्यार, माया स नार कीनो व्योहार॥ १३ ॥
वेह भयो समो ऐसें अशेष, ततकाल रामचन्द्र चढ़ वशेष।
गज बाज साज सिक्का तुरंग, सेन्या स चत्रगुंन[3] लीध संग॥ १४ ॥
वड सूरवीर जोधार सार, गिन कहा कहूं आवै न पार।
अरि मार सार अरू सीत लीध, अवतार धार येह काज कीध॥ १५ ॥

(२) खेड़ापाके द्वितीय आचार्य श्रीद्यालदासजी महाराजके ग्रन्थ 'श्रीगुरुप्रकरण' में 'भागवतसार'-प्रकरणके अन्तर्गत कृष्ण-चरित्र-वर्णनके रूपमें भगवल्लीला-दर्शन इस प्रकार वर्णित है—

आदम्म वंश तातें प्रतष्ट, श्रीकृष्ण रूप तारन्न सृष्ट।
अवतार धरण भगतां सिहाय, अरु ब्रह्मरिषी अवनी उछाय॥ १ ॥
वसुदेव भवन कृष्णां जनम्म, गोकल विचरत आनन्द परम्म।
सब बाल चिरत वय वृन्द ताम, अप्पार चरित असुरां विराम[4]॥ २ ॥
पूतना प्राण पय पान कीन, शंकटासुर मस्तक सजादीन।
पुनि तिणाव्रत्त तोडे किंवाड़, बक्कासुर वच्छासुर पछाड़॥ ३ ॥
जैं धनक भ्रात परलंब अन्त, डावानल राख्या गोप जन्त[5]।
किस भंग नाग दवनं विचार, सब गोप ग्वाल रक्षक मुरार॥ ४ ॥
पुनि नन्द वंचाए उरग अंत, व्रिजकन्या वर्त पूरण वरंत।
जंहै जिगपतनी हुय प्रश्न ताम, दुज ताइ खाय वेमुख विरांम॥ ५ ॥
धर गोरधन्न उद्धार कीन, पुनि कामधेनु ले शक्र दीन।
जिज्ञा विक्षेप कृष्णां वनाव, कर राम चिरत[6] गोपी उछाव॥ ६ ॥
दुरबुद्ध शंखचूड़स्स मार, अरिष्ट नाम केशी संघार।
अक्रूर दरश गवनं स्तूथ[7], प्रस्थान राम-कृष्ण ग जूथ॥ ७ ॥
व्रजनार व्रेहनी भई तांम, कटाक मुक्ख आरांम सांम।
सपलक्क-सुत्त[8] सांसो निवार, वैराट मुक्ख जमना विचार॥ ८ ॥
परवेश करत वस्तर छिनाय, सिद्धाम जास मुगतं मिलाय।
रंग फूल पैर माली किलान, दिवरूप कुबज्या गंध मान॥ ९ ॥
कवलियापीर गज मुष्ट मार, एहगत्तमत्त चाणूर छार।
भयकंप कंस हुय अन्तकाल, पुनि गुरु संदीपनि भेट बाल॥ १० ॥
मुथरा सुथान जादू प्रतष्ट, हित उग्रसेन जान्यो सिसष्ट।
बलदेव आद उद्धव मुरार, सब जुरासिंद्ध सेन्या संघार॥ ११ ॥
पुनि जमनइन्द कूं मींच दीध, तैहैं कुशस्थली अस्थांन कीध।
जेहैं वृच्छ कलप आदान राज, प्रापत सुधर्मा सभा काज॥ १२ ॥
जुध जीत रुकमनी हरिहै ताम, शिशपाल जीत खोयन[9] छिनांम।
वेहैं अप्रमान मद मेट सोइ, सब दुष्ट रए आपै स कोइ॥ १३ ॥
षणशंक्र जुद्ध कीनो बलष्ट, बाणासुर छेदे भुजा अष्ट।
जदुनाथ जीत जहां तहां सदाय, पुनि प्राग्य[10] जीत पर मार ताय॥ १४ ॥
पुनि अग्नि नीर सस्तर पहार, सब पवन अनड़ मिट पंच वाड़।
फिर पंच सृंग काटे दयाल, षोड़स्स सहंसशत हरिहै बाल॥ १५ ॥
पुनि नृपत चनेरी सजा दीध, हत मंथ्यावाद देवस्स कीथ।
नरपत्तशाल दतवक्र[11] मार, पुनि दइत समर कपि दुमन छार॥ १६ ॥
हत पंच सुरा दइतान आद, कर दगद पुरी-काशी विख्याद।
भारस उतार भूमीक सोय, पाण्डवां प्रीत आनन्द जोय॥ १७ ॥
कर राजसी जिग्ग[12] सन्तोष नृप्प, मनवंछ कर्म सिध काज अर्प।
पुनि विप्र श्राप जदुकुल संहार, सुर अज्ज इन्द वन्दन मुरार॥ १८ ॥
उलकासपात हुय पुरी मांय, परवास[13] छैत्र सब कूं ले जाय।
उद्ध संवाद दे तत्त बोध, आत्माराम आनन्द शोध॥ १९ ॥
इम लीला पुरुषोत्तमं, जदुपति कृष्ण कहाय।
रिषि मुनिजन अवतार संत, सतगुरु सबही मांय॥ २० ॥

* * *

१-दुर्गम, २-गहरा समुद्र, ३-चतुरंगिणी, ४-सफाया, ५-जन्तु=गौ आदि प्राणी, ६-रासलीला, ७-स्तुति, ८-श्वफल्क-पुत्र=अक्रूर, ९-अक्षौहिणी सेना, १०-प्राग्ज्योतिषपुर, ११-दन्तवक्त्र, १२-राजसूय यज्ञ, १३-प्रभास (पाटण)-क्षेत्र।

श्रीकृष्णकी लीलाओंसे पगे बुंदेली लोक-गीत

(डॉ० श्रीहरीमोहनजी पुरवार)

बुंदेलखण्डके जन-जीवनमें श्रीकृष्णका भगवत्स्वरूप जहाँ निरन्तर पूज्य है, वहीं भक्त गोपियोंके साथ उनकी तात्त्विक क्रीडा-लीला भी मननीय है। बुंदेलखण्डके गोपीभावपूर्ण लोकगीतोंमें जहाँ मन आनन्दविभोर हो जाता है, वहीं भगवान् श्रीकृष्णका यह सत्य संदेश प्राप्त होता है कि यह शरीर तो केवल वस्त्र है, इसलिये इस शरीरकी आत्माको परमात्माके साथ मिलने दो। लीला-क्रममें एक बार भगवान् श्रीकृष्ण एक गोपीके घर उसकी गाय दुहने गये, परंतु गोपीने गाय दुहनेसे मना करते हुए उलाहना दी—

कान्ह तोसे अब न दुहाऊँ गैयाँ।
भोर होत खिरकनमें ठाड़े, हेरत चोरकी नैयाँ।
कछु कारे, कछु ओढ़े कमरिया, बिचकत है मोरी गैयाँ॥

—परंतु श्रीकृष्ण वहाँसे हटे नहीं और अपनी तिरछी नजरोंसे गोपीको देखते रहे, जिससे गोपी अपना सब कुछ भूल गयी और श्रीकृष्णके आत्मिक सम्मोहनसे मोहित हो गयी। इस गीतमें इसीका वर्णन किया गया है—

बंक बिलोकन तिरछी चितवन, मन बस गे वा सेन दृगन की।
जबसें कछू न सुहात सखी री, मृदु मुसक्यान वा प्रेम लगन की॥
लोक-लाज कुल-कान न भावत, सुध न रही तब असन बसन की॥

वंशीवालेके नेत्रोंसे मोहित गोपी जब अपने अन्तःस्तलको देखती है तो अनायास ही भगवत्प्रेमके वशीभूत हो वह कहने लगती है—

कब मेरे मंदिर आय हौ प्यारे घनश्यामा प्रभू।
जैसी किरपा विदुर घर कीनी, जैसी गउअन की सुध लीनी,
जैसी खुसी द्रोपदी दीनी, जैसी कुबरी अपनी कीनी,
ऐसे हमको कभी अपनाय हो, प्यारे घनश्यामा प्रभू॥

जब गोपिकाने अपना यह वृत्तान्त व्रजभूमिसे बाहर रहनेवाली अपनी अन्य सखियोंको बतलाया, तब वे सखियाँ भी श्रीकृष्णके प्रेममें दीवानी होकर कहने लगीं—

चलौ सखी, बसिये तहँ जाइ जहाँ यदुराई॥
नीर बहै यमुना सुखदायी, पीर हटै एक बार नहायी।
बाजत ताल मृदंग सुहाई, गान करै ललितादिक आयी॥
शेष महेश आनंद बढ़ायी, आपनी आपनी सेवा जनायी।
कौन कहै उनकी प्रभुताई, सुर-नर-मुनि सब आनँद पायी॥

एक दिन सभी गोपियाँ इकट्ठी होकर श्रीकृष्णको घे लेती हैं और हास-परिहास करती हुई उनसे उनके श्यामवर्णके विषयमें प्रश्न करती हुई कहती हैं—

तुम हमें नीके लाला कैसे दैये गारी॥
तुमरे भ्रात सभी हैं गोरे, गोरे पितु महतारी।
सांची कहौ न कांची अब तुम भये कहाँसे कारी॥
हास-रास सुनके अरु गुन के, लजीं सभी सुकुमारी।
चतुर बंधु सुखसिंधु मुखनको इक टक रहीं निहारी॥

नटखट नन्दलाला एक दिन दुपहरीमें एक गोपीके घर मक्खन खाने घुस गये। छींकेपर मक्खनकी मटकी थी। उसी छींकेसे लटके हुए श्रीकृष्ण मक्खन खा रहे थे। इस समूची लीलाको देख वह गोपी मैया यशोदासे कृष्णकी शिकायत करने गयी। मैया उन्हें डाँटने लगी, परंतु कन्हाईको तो अब मक्खनका चसका लग गया था, इसलिये अब वे गोपियोंको रास्तेमें रोककर उनसे मक्खन छीननेकी लीला प्रारम्भ कर देते हैं। मक्खन छीननेमें कुछ-न-कुछ तो बरजोरी होती ही है, उसी बरजोरीका चित्र निम्न गीतमें है—

हटो छोड़ो तुम गैल मोरी, गागर ढुडकाई बड़े ढीट हो कन्हाई।
फटी रेसम की सारी, जर तार की किनारी, टूटी मोतिन लड़ न्यारी।
दूधके झकोरन में बहिंया मुरकायी, बड़े ढीट हो कन्हाई।

इसी बरजोरीमें गोपी अनमने-मनसे उलाहना देती हुई कहती है कि उसे न तो नन्दबाबासे डर है, न ही यशोदासे। यही उलाहना इस गीतमें वर्णित है—

छोड़ो न डगर हमारी कन्हैया, नांई डरत नन्द बाबासे।
छोड़ो आंचल जान देओ मोहन, फर जे सारी जरतारी कन्हैया।
ओड़े फिरत बटवारी कन्हैया।

एक बार श्यामकी मुरलीकी मधुर ध्वनि सुनायी पड़ी और वे सभी गोपियाँ अपने शरीरकी सुध-बुध भूल गयीं और श्यामकी मुरलीकी सुरीली तानसे मन्त्रमुग्ध हो गयीं। इसका चित्रण इस गीतमें इस प्रकार है—

कैसी मुरलिया बजाई कन्हैया प्यारे, कैसी मुरलिया बजाई।
गोपीं सभी जहँ जैसी, खड़ी थीं तैसीं सभी उठ धाईं॥
हाथ के भूषन पांव में पहिरे, सो पांवके हाथन लाई।

बंसगुपाल सदा देओ दरसन, धन्न-धन्न श्रीयदुराई॥

इन लीलाओंके बाद गोपियाँ यह महसूस करती हैं कि श्याम तो लीलाधारी हैं। यह सब उनकी लीलाओंका ही एक भाग है, क्योंकि श्यामसुन्दरका भेद तो वेदों, पुराणोंको भी नहीं मिल पाया है। इसी कारण वे स्वयं कहती हैं—

तुमरी लीला विचित्र मुरारि हो श्याम छलिया हो बड़े।
घर घर मिसरी माखन खाये, प्यारे सखन आनंद दिवाये॥
गोपिन पकर जैव जो पाये, उनके पति के रूप बनाये।
तुमरा बेदहु न पावें पार हो श्याम छलिया हो बड़े।

गोपियाँ साधारण गोपियाँ नहीं हैं। इनके विषयमें स्वयं श्रीकृष्णभगवान्ने ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्मखण्ड (२७। २३८—४०)-में कहा है—

यथाहं च तथा यूयं न हि भेदः श्रुतौ श्रुतः।
प्राणा अहं च युष्माकं यूयं प्राणा मम प्रभो॥
व्रतं वो लोकरक्षार्थं न हि स्वार्थमिदं प्रियाः।
सहागताश्च गोलोकाद् गमनं च मया सह॥
गच्छत स्वालयं शीघ्रं वोऽहं जन्मनि जन्मनि।
प्राणेभ्योऽपि गरीयस्यो यूयं मे नात्र संशयः॥

अर्थात् 'जैसा मैं हूँ, वैसी ही तुम हो। हममें-तुममें भेद नहीं है। मैं तुम्हारा प्राण हूँ और तुम भी मेरे लिये प्राणस्वरूप हो। प्यारी गोपियो! तुम लोगोंका यह व्रत लोक-रक्षाके लिये है, स्वार्थ-सिद्धिके लिये नहीं। क्योंकि तुम लोग गोलोकसे मेरे साथ आयी हो और फिर मेरे साथ ही तुम्हें वहाँ चलना है। अब शीघ्र घर जाओ। मैं जन्म-जन्ममें तुम्हारा ही हूँ। तुम मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर हो, इसमें संशय नहीं है।'

बुंदेली जन-मानसके मानस-पटलपर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंकी गहरी छाप है, जो हम सबको लोकगीतोंकी वाणीमें प्रस्फुरित होती स्पष्ट दिखलायी पड़ती है।

⁂

पुरातत्त्वमें श्रीकृष्ण-लीला-चरित्रके शिलापट्टकी प्राप्ति

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीराजेशकुमारजी उपाध्याय नार्मदेय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, आचार्य)

प्राचीन वस्तुओंका सभ्यता-संस्कृतिजन्य निदर्शन पुरातत्त्व कहलाता है। इतिहास, सभ्यता, शिक्षा, समाज, मान्यताएँ, कला आदि सबका वर्णन पुरातत्त्वमें होता है। विभिन्न प्रकारकी प्राचीन कालकी वस्तुएँ और उनका सांस्कृतिक निदर्शन पुरातत्त्वका प्रधान विषय है।

जहाँतक शहडोल जिलेके पुरातत्त्वका प्रश्न है—वहाँकी सर्वप्रथम पुरातात्त्विक खोज प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता पी० डी० बेंगलर महोदयने १८७३-७४ में की, जो कि अंग्रेज सरकारके एक प्रमुख पुरातत्त्व-अधिकारी थे। इसके बाद मेजर जनरल कनिंघम महोदयने १८८४-८५ में इस स्थानकी पुरातात्त्विक खोजकर अपने ग्रन्थ 'भारतीय पुरातत्त्व'के सातवें खण्डमें शहडोल जिलेका वर्णन किया है। बेंगलर महोदयकी रिपोर्टके समय शहडोलका नाम 'सहजोरा' था। फिर बादमें १८९८ की रिपोर्टसे यह 'शहडोल' हुआ। शहडोलके पुरातत्त्व और इतिहासको कलचुरी-कालीन इतिहासके माध्यमसे अनेक आधुनिक पुरातत्त्वविदोंने इसके खोज एवं प्रदर्शनमें अपना बहुत बड़ा योगदान दिया है तथा समय-समयपर पुरातात्त्विक सर्वेक्षणोंको पत्र-पत्रिकाओंके माध्यमसे जन-सम्मुख किया है।

सोहागपुरके इलाकेदार स्व० श्रीराजेन्द्रबहादुरसिंहजी एवं स्व० कुँअर मृगेन्द्रसिंहजीके द्वारा जिलेकी दुर्लभ मूर्तियोंका संग्रह करके पुरातात्त्विक निधिका संरक्षण किया गया है, जो राजाबागमें आज भी दर्शनीय है। यहाँका जिला-पुरातात्त्विक-संग्रहालय भी दर्शनीय है।

लीलाधर लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी लीलासे सम्बन्धित कलचुरी-कालीन शिलापट्ट भी इस जिलेमें सारसडोल और हर्रा नामक गाँवसे प्राप्त हुए हैं। इन शिलापट्टोंका वर्णन कनिंघम और बेंगलरके शोधपत्रोंमें नहीं है। इसकी सर्वप्रथम खोज किसने की यह तो निश्चित नहीं है, पर कुँअर मृगेन्द्रसिंहजीके संग्रहालयमें श्रीकृष्ण-लीलासे सम्बन्धित तीन शिलापट्ट रखे हुए हैं। कुछ शिलापट्ट अभी भी हर्रा नामक गाँवमें हैं। श्रीकृष्ण-जन्मसे सम्बन्धित माता देवकी-द्वारा उन्हें दूध पिलाये जाने आदिका अङ्कन-शिलापट्ट स्थानीय दुर्गा-मन्दिरके शीतला-मन्दिरमें अभी भी लगा हुआ है। श्रीमद्भागवतकी श्रीकृष्ण-लीलासे सम्बन्धित यहाँ प्रमुख चार शिलापट्ट हैं। इन चारों शिलापट्टोंमें श्रीकृष्ण-लीलाका सम्पूर्ण चरित्र दिखाया गया है—

प्रथम शिलापट्टमें—भगवान्‌के द्वारा पृथ्वीको

आश्वासन, वसुदेव-देवकीका विवाह और कंसद्वारा देवकीके छः पुत्रोंकी हत्या, भगवान्का गर्भ-प्रवेश, देवताओंद्वारा गर्भस्तुति, भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य, कंसके हाथसे छूटकर योगमायाका आकाशमें जाकर भविष्यवाणी करना, गोकुलमें भगवान्का जन्मोत्सव, पूतना-उद्धार, शकट-भंजन और तृणावर्त-उद्धार, नामकरण तथा बाल-लीला, श्रीकृष्णका ऊखलसे बँधा जाना और यमलार्जुन-उद्धार आदिके दृश्य हैं।

द्वितीय शिलापट्टमें—गोकुलसे वृन्दावन जाना, वत्सासुर और वकासुरका उद्धार, अघासुर-वध, ब्रह्माजीका मोह, धेनुकासुरका उद्धार, ग्वाल-बालोंको कालियनागसे बचाना, प्रलम्बासुर-उद्धार, गायों तथा गोपोंको दावानलसे बचाना, चीरहरण, वंशीवादन, गोवर्धन-धारण, श्रीकृष्णका अभिषेक, वरुणलोकसे नन्दजीको छुड़ाकर लाना, रासलीला, महारास, अरिष्टासुरका उद्धार, अक्रूर-प्रसंग, केशी-उद्धार, श्रीकृष्ण-बलरामका मथुरागमन, कुब्जापर कृष्ण-कृपा, कुवलयापीड हाथीका उद्धार, चाणूर-मुष्टिक आदि मल्लोंके साथ कंसके उद्धार आदिका चित्राङ्कन बड़ी प्रवीणतासे किया गया है।

तृतीय शिलापट्टमें—जरासंधसे युद्ध और द्वारकापुरी-निर्माण, रुक्मिणी-हरण, प्रद्युम्न-जन्म और शम्बरासुरका वध, शिशुपाल-वध, स्यमन्तकमणि, जाम्बवन्ती-सत्यभामा-विवाह और उषा-अनिरुद्ध-मिलन आदि प्रसंगके चित्रण हुए हैं।

चतुर्थ शिलापट्टमें—बाणासुर-युद्ध, राजा नृगकी कथा, बलरामजीका व्रज-आगमन, पौण्ड्रकका उद्धार, पाण्डवोंका राजसूययज्ञ, शाल्व-उद्धार, सुदामा-चरित्र, वसुदेवजीका यज्ञोत्सव, सुभद्राहरण, शिवस्तुति, भृगुजीद्वारा त्रिदेवोंकी परीक्षा, भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-विहारादिका चरित्राङ्कन है।

सम्भवतः इन प्रतिमाओंका निर्माण कलचुरी नरेशोंमें जो वैष्णवपंथी राजा थे, उन्होंने ही कराया होगा, क्योंकि बांधवगढ़में दशावतार विष्णुभगवान्के अनेकों शिलाखण्डोंमें उत्कीर्ण पट्ट मिलते हैं, जिनमें शेषशायी विष्णु, वाराह-अवतार, कच्छपावतार आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार मध्यप्रदेशमें अनेक स्थानोंसे श्रीकृष्णके जीवनसे सम्बन्धित शिलापट्ट प्राप्त हुए हैं।

उनमें हम देखें तो सम्पूर्ण मध्यप्रदेशके प्रमुख पुरातात्त्विक निधि-स्थलोंमें श्रीकृष्णका अङ्कन हमें दिखायी देता है। मध्यप्रदेशके सिरपुर जिला रायपुरके लक्ष्मण-मन्दिरके तोरणद्वारोंपर श्रीकृष्ण-लीला, कालियदमन, काम-पराजय, कंस-व केशी-वध आदिका चित्रण प्राप्त होता है। ७वीं सदी प्रतिहार-कालीन जिला विदिशासे प्राप्त केन्द्रीय संग्रहाल गूजरी महल ग्वालियरमें कृष्ण-जन्म एवं कृष्ण-लीला स्तम्भ प्राप्त होते हैं। रायपुर जिलेके तुरतुरिया नाम स्थानसे केशी-वध, अरिष्टासुर-वधकी प्रतिमाएँ प्राप्त हु हैं। ग्वालियरके चतुर्भुज-मन्दिर एवं मुरैनाके पढ़ावली मन्दिरके मण्डलकी दीवारोंके फलकोंपर श्रीकृष्ण-लील चरित्र अङ्कित है।

कलचुरी-कालीन गुर्गी जिला रीवाँसे प्राप्त भोपाल-संग्रहालयमें श्रीकृष्णजन्मकी प्रतिमा रखी है। चन्देल-कालीन श्रीकृष्ण-लीलाका अङ्कन खजुराहोमें प्राप्त होता है कच्छपघात-कालीन थगोन जिला गुनासे प्राप्त कुवलया-पीड-वधकी प्रतिमा प्राप्त हुई है। जिला दतियासे बाल गोवर्धनधारी श्रीकृष्ण तथा परमार-कालीन हिंगलाजगढ़ श्रीकृष्ण-जन्म एवं बाल-कृष्णकी लीलाओंका चित्रण त मूर्ति-अङ्कन प्राप्त होता है जो केन्द्रीय संग्रहालय इंदौरमें है मंदसौर एवं उज्जैनसे गोवर्धनधारी श्रीकृष्णकी प्रतिमा प्रा हुई है। कवर्धाके नागवंशी शासकोंके कालकी गो कृष्णकी प्रतिमा मोरमदवे मन्दिरसे प्राप्त हुई है। इस त बालकृष्ण, कालियदमन, अरिष्टासुर-वध, कुब्जानु कुवलयापीड-वध, चाणूर-वध, शल्य-वध, केशी-व गोवर्धनधारी कृष्णका अङ्कन वैष्णव प्रतिमाओंके अन्त प्राप्त होता है। ग्वालियरके गूजरी महलमें राधाका आलि माखन-चोरी, रास-क्रीडा, दधि-मन्थन, कंसके मल्ल युद्ध आदिके साथ भिंडके शिव-मन्दिरमें श्रीकृष्ण-ली कालिय-मर्दनके दृश्य मूर्ति-शिल्पमें है। मध्यप्रदेशके स जिलेमें बछरा नामक गाँवके स्तम्भपट्टपर पूतना-वध, गोवर्ध धारण, माखन-लीला, यमलार्जुन-उद्धार, तृणावर्त-वध, केशी वध, कालियदमनका सुन्दर अङ्कन किया गया है। मध्यप्रदे वैष्णव प्रतिमाओंके अन्तर्गत लीलाधारी कन्हैयाकी लीलाओं सजीव रूपमें उकेरनेका प्रयत्न किया गया है। चित्रक अन्तर्गत भी अनेक प्राचीन चित्र प्राप्त होते हैं। जि समय-समयपर राजाओं और चित्रकारोंके द्वारा इन्हें मा देकर शिल्प-जगत्की नयन-मनोहर वृद्धि की गयी है

* * *

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

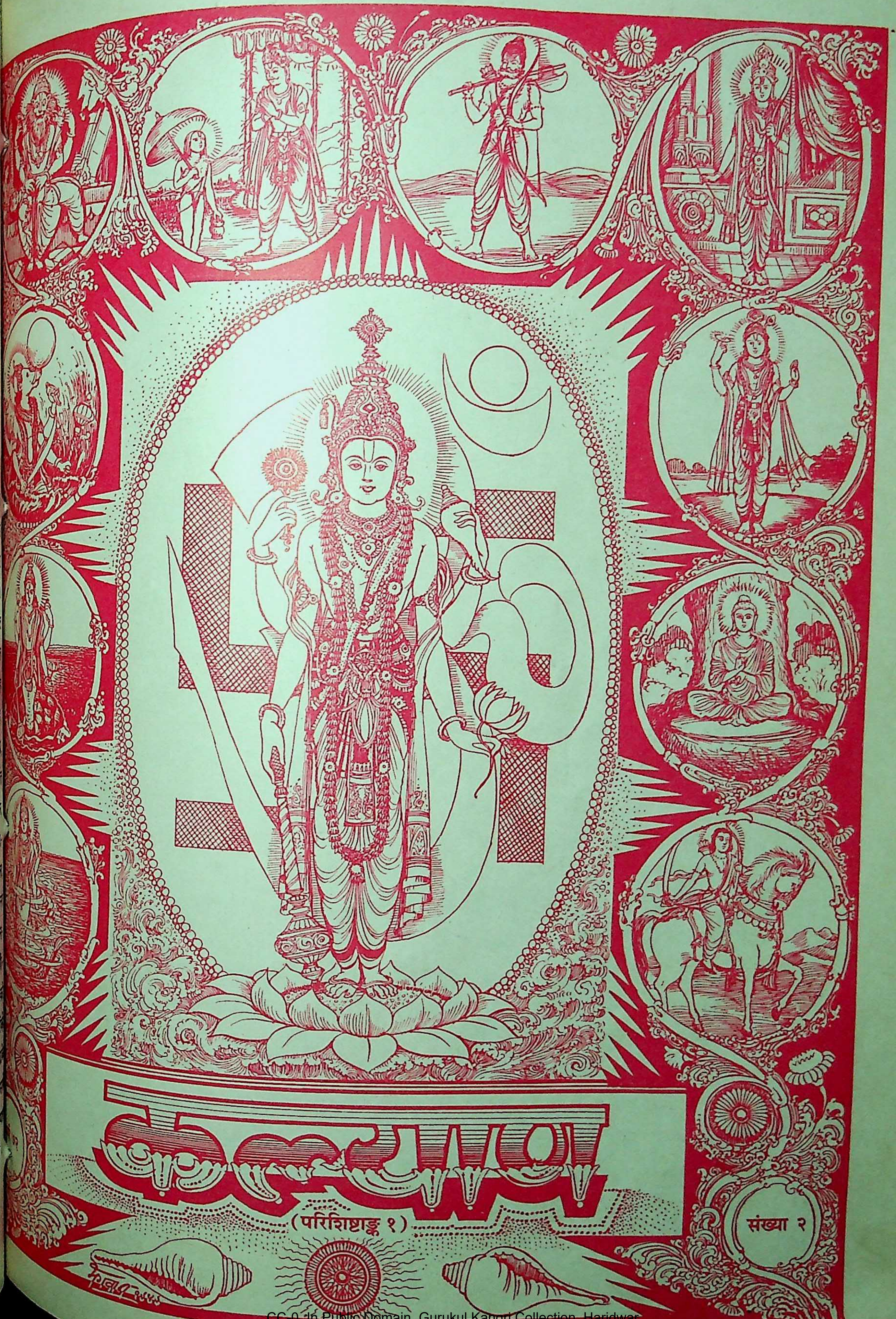

कल्याण

(परिशिष्टाङ्क १)

संख्या २

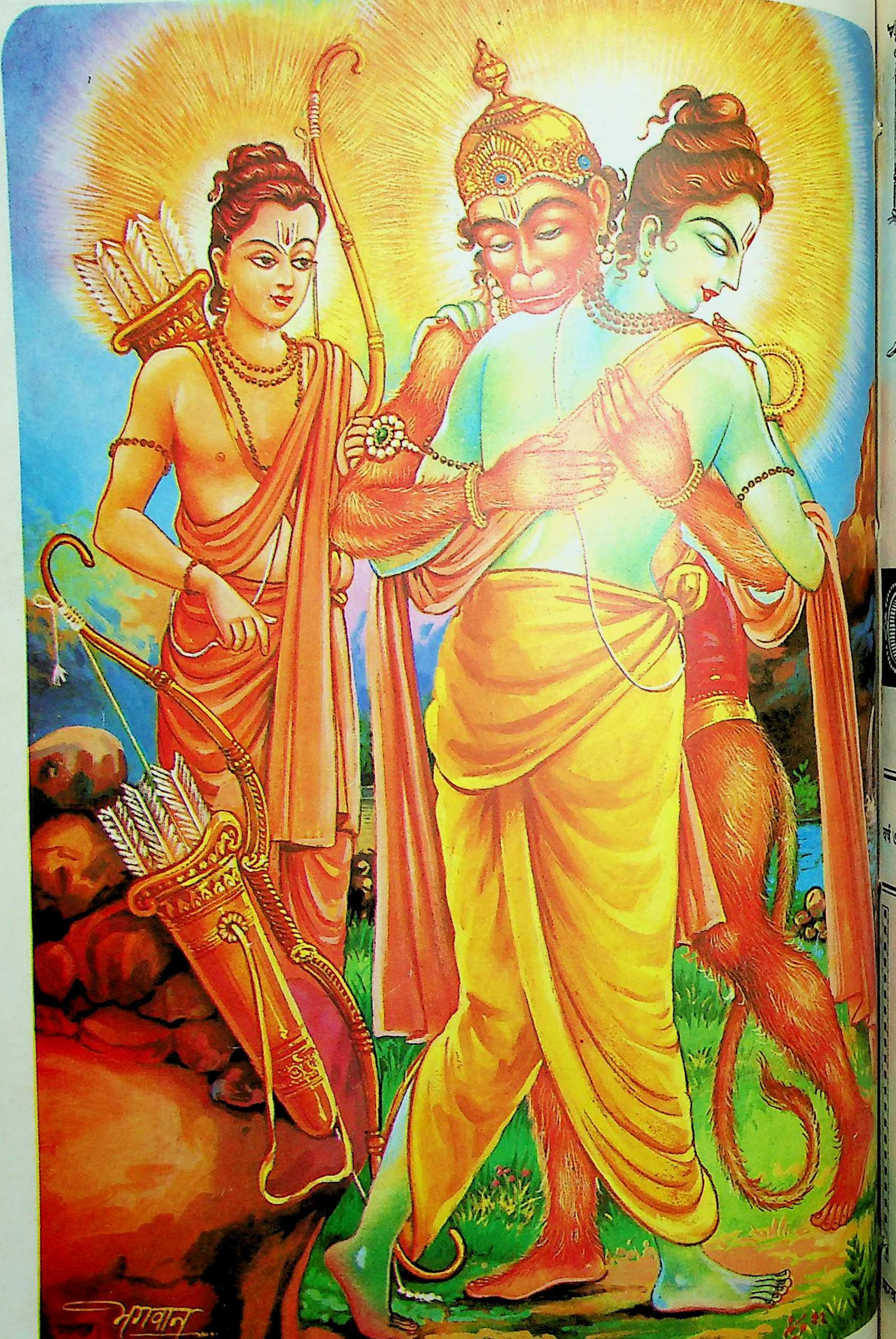

श्रीरामद्वारा हनुमान्‌जीको आलिङ्गन-दान

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

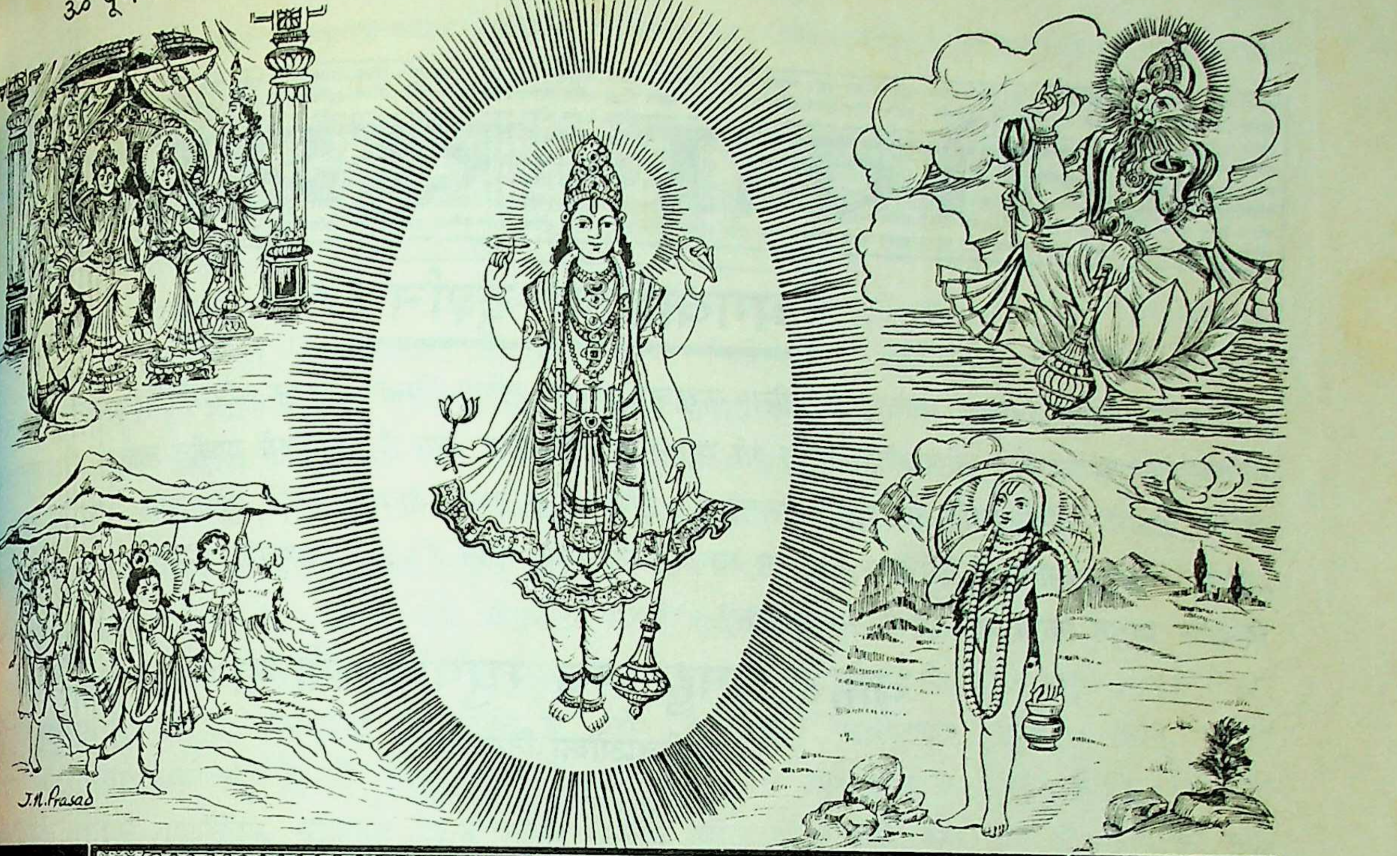

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

वर्ष ७२ गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०५४, श्रीकृष्ण-सं० ५२२३, फरवरी १९९८ ई० संख्या २ पूर्ण संख्या ८५५

श्रीरामद्वारा हनुमान्‌जीको आलिङ्गन-दान

इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति। यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम्॥
एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः। मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः॥
इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्गो रामस्तं परिषस्वजे। हनूमन्तं कृतात्मानं कृतकार्यमुपागतम्॥
(वा० रा०, युद्धका० १। १२—१४)

'मुझे जिसने यहाँ इतना प्रिय संवाद सुनाया, उसका मैं कोई उतना ही प्रिय कार्य नहीं कर पा रहा हूँ, इस बातसे मेरे मनमें बड़ी कसक है। आज मेरे पास पुरस्कार देने योग्य वस्तुका अभाव है, अतः इस समय इन महात्मा हनुमान्‌को मैं केवल अपना प्रगाढ़ आलिङ्गन प्रदान करता हूँ, क्योंकि यही मेरा सर्वस्व है—ऐसा कहते-कहते रघुनाथजीके अङ्ग-प्रत्यङ्ग प्रेमसे पुलकित हो गये और उन्होंने अपनी आज्ञाके पालनमें सफलता पाकर लौटे हुए पवित्रात्मा हनुमान्‌जीको हृदयसे लगा लिया।'

लीला-दर्शन

भगवल्लीला-दर्शन

[भगवत्प्राप्तिके निमित्त भगवान्‌की लीला-कथाका श्रवण, लीला-चिन्तन, मनन और निदिध्यासनके साथ-सा भौतिकरूपसे भगवान्‌की लीलाओंका दर्शन भी साधन-कोटिमें माना गया है। इसलिये प्राचीन कालसे ही भारतव विभिन्न क्षेत्रोंमें—तीर्थस्थलोंमें रामलीला, रासलीला, नृसिंहलीला तथा दशावतार आदि लीलाओंका आयोजन होता रहा है; जिसका आज भी दर्शनकर भक्तजन स्वयंको कृतकृत्य मानते हैं। इस प्रकारकी परम्परागत लीलाओंका दिग्दर्शन प्रस्तुत किया जा रहा है।—सम्पादक]

कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला

[रामलीलाओंका दिग्दर्शन]

(डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अयोध्या एवं काशीमें श्रीरामचरितमानसका प्रणयन किया। उनका यह महाकाव्य वर्तमान युगमें श्रद्धा-विश्वास तथा आस्थाका सबल आधार बन गया। महाकवि गोस्वामीजी बड़े ही प्रगतिशील दूरदर्शी कवि थे और अपने युगकी जनताके लिये राम-कथाका संदेश प्रचारित करने-हेतु उन्होंने 'रामलीला' का भी आयोजन किया। ***'हरि अनंत हरि कथा अनंता'*** कहकर उन्होंने उन सैकड़ों रामकथाओंकी ओर संकेत किया है, जो इस संसारमें प्रचलित हैं। विगत हजारों वर्षोंमें राम-कथापर आधारित नाटक खेले जाते रहे हैं। हरिवंशपुराणमें एक ऐसे ही रामकथापर आधारित नाटकके मंचनका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। कहते हैं कि त्रेतायुगमें जब रामका वनवास हुआ तो विरही अयोध्यावासी उनकी बाल-लीलाओंका स्मरण अभिनय करके विरहकी अवधि व्यतीत करते रहे। पुनः लव-कुशने राम-दरबारमें राम-कथाका गायन किया था। इनके मंचनकी शैलीके विषयमें हम कुछ भी नहीं जानते, शायद भरतके नाट्यशास्त्रसे पूर्वकी 'कुडिअट्टम' शैलीमें नाटक होते थे। तुलसी स्वयं रघुनायक-लीला, हनुमन्नाटक, पुत्तलिका-नाटक और छाया-नाटककी चर्चा करते हैं। भरतमुनि लोकधर्मी और नाट्यधर्मीकी चर्चा करते हैं। समृद्ध संस्कृत-साहित्यमें राम-कथापर आधारित अनेकमार्गीय नाटक हैं। मध्य युगमें 'ललित' और 'दशावतार' लीलाओं परम्परा थी, हरिकथा चलती थी। आधुनिक युगमें लोक और रामलीलाके साथ ही यूरोपसे आयातित मंच रामकथा (पारसी थियेटरोंमें) अवतरित हुई और स्व भारतमें सिनेमा, रेडियो, टी०वी०, वीडियो और आधु रंगमंचकी विविध शैलियोंमें राम-कथा देखी जा सक है। केवल भारतमें ही नहीं, विदेशोंमें भी रामकथाके मं हुए हैं।

'रामलीला' को समझनेके लिये 'राम' और 'लीला'- दोनोंको समझना आवश्यक है। काशीमें तुलसीके सम ही रामलीलाके अलावा कृष्णलीला (व्रजकी रासली भिन्न), वामनलीला, नृसिंहलीला, फाग-लीला, दशा और ध्रुवलीला [अब विलुप्त] होती रही है। इन्हें क नौटंकी, स्वाँग, तमाशा या नाटक नहीं कहा गया [ज इन सभी विधाओंमें राम-कथाओंका मंचन होता रहा इन सभी विधाओंमें राम-कथाओंका मंचन होता रहा बल्कि कहा गया 'लीला'। अतः 'लीला'के स्व विचार करना होगा।

लीला

'लीला' तो हमेशा प्रभुकी होती है, उनकी विस्तार ही लीला है। जब धर्म और भक्तपर संकट है तो करुणामय भगवान् अवतार धारणकर 'लीला'

हैं और भक्तगण इस अवतारकी स्मृति ताजा करने-हेतु तथा प्रभुके अद्भुत चरितका गुणगान करने-हेतु एवं उनके क्रियाकलापोंकी स्मृति दुहराने-हेतु जब अनुकरण करते हैं, अनुकीर्तन करते हैं तब उसे भी 'लीला' ही कहते हैं। नायिका विरहकी अवस्थामें प्रियके वेश, चाल और बोलीके अनुकरण करनेमें जो 'हाव' करती है, उस कौतुक-क्रीडाका नाम है 'लीला'। इसमें मनोरंजन भी है, साथ ही एक विशेष प्रकारसे भगवान्‌की पूजा, अर्चना, नाम-स्मरण तथा गुणानुवाद भी है। इसीसे तो रामनगरकी रामलीलाका संकल्प-वाक्य ही है—'**यत्कृत्वा चाथ दृष्ट्वा हि मुच्यते पातकैर्नरः**' अर्थात् इसे करने और देखनेसे मानव पापसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार लीला एक धार्मिक अनुष्ठान है, यज्ञ है, कर्मकाण्ड है, कीर्तन है, श्रद्धा-ज्ञापन है, विश्वासकी शोध है और आस्थाका दर्शन है। मायाके लोकमें मायापतिके मायामय दर्शन पाकर भक्त धन्य हो जाते हैं। 'लीला' बहुत कुछ है, पर 'नाटक' नहीं है।

लीलाके मुख्यतः तीन प्रकार बताये गये हैं— (१) नित्य-लीला, (२) अवतार-लीला और (३) अनुकरणात्मक लीला।

नित्य-लीला—

वैष्णव शास्त्रोंके अनुसार परम ब्रह्म सच्चिदानन्द परमात्मा साकेतधाममें अनवरत 'नित्य-लीला' में संलग्न है। इसी लीलाके अन्तर्गत विश्वका व्यापार चल रहा है। यह नित्य-लीला चिरन्तन, शाश्वत और अविराम परम आनन्ददायिनी है।

अवतार-लीला—

जीवोंका उद्धार करनेके उद्देश्यसे अवतीर्ण हो प्रभु जब अपनी पार्थिव लीलामें विश्वोपयोगी ऐश्वर्य-गुणोंको प्रस्तुत करते हैं तो उसे 'अवतार-लीला' कहते हैं। इस लीलाकी अति पावन भूमि रामावतारमें 'अयोध्या' है। साकेतकी नित्य-लीला अन्तरङ्ग लीला है, अयोध्याकी अवतार-लीला बहिरंग लीला है। अवतार-लीला सगुण और प्रकट-लीला है।

अनुकरणात्मक लीला—

राम (या अवतार)-द्वारा किये गये सारे क्रिया-कलापोंका उनके भक्तजन जब अनुकरण करते हैं तो उसे 'अनुकरणात्मक लीला' कहते हैं और यही इन दिनों चलित 'रामलीला' या अन्य लीलाएँ हैं।

'रामलीला' एक धार्मिक अनुष्ठान है, जिसका उद्देश्य है 'लोक-कल्याण'। रामलीलामें राम-कथाके अतिरिक्त धार्मिक कर्मकाण्ड पूरी गम्भीरता और विधि-विधानसे सम्पन्न किये जाते हैं। रामलीलाका आरम्भ ही संयोजक-द्वारा सविधि संकल्प लेनेसे आरम्भ होता है, जैसा किसी भी धार्मिक कार्यारम्भके लिये जरूरी है और समापन भी विधिवत् विसर्जन करके होता है।

प्रभु रामके यशका कीर्तन—'रामलीला' अपने विशुद्ध रूपमें '**रामकथावृत्तान्तदर्शनम्**' के साथ ही '**भावानुकीर्तनम्**' भी है। हम अधम जीव अपने प्यारे प्रभुसे विछुड़े विरही लोग हैं, उनकी नरलीलाका अनुकरण करके मनको धीरज बँधाते हैं और आशा करते रहते हैं कि अनुभूतिके किसी विरल क्षणमें, बड़े भाग जागे हों तो प्रभुकी एक झलक मिल जायगी, एक क्षणके लिये साक्षात्कार भी हो जायगा और यह भी अनुभूत सत्य है कि रामलीलामें कुछ विरल क्षणोंमें भक्तोंको अनेक बार प्रियके दर्शन हुए हैं, हालाते हालमें इलहाम हुआ है।

रामलीला केवल खेली नहीं जाती, बल्कि व्यापक अर्थमें पढ़ी, सुनी और देखी जाती है। रामलीला एक जीवन्त अनुभव है, एक सांस्कृतिक पर्व है; जो '**सत्यमेव जयते नानृतम्**'-का संदेश लेकर आती है।

भारतकी प्राचीन नगरी काशीमें परम्परागत-रूपसे जो रामलीलाएँ होती आ रही हैं, उन्हें यहाँ उदाहरण-रूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है।

वाराणसीमें रामलीला कबसे हो रही है, यह कहना सम्भव नहीं है। 'रामलीला' के प्रणेता मेघा भगत और तुलसीदास अवधमें 'रघुनायक-लीला' देखने जाते थे। तुलसी 'लीला', 'महानाटक' और नाट्य-शास्त्रके सूक्ष्म रहस्योंसे भलीभाँति परिचित थे। इसीलिये तो कहते हैं—

> **जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।**
> **सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥**
>
> (रा०च०मा० ७। ७२ ख)

तुलसी हनुमन्नाटकका भी उल्लेख करते हैं। किंवा उपलब्ध प्रमाणोंके अनुसार संवत् १६०० (मानसकी रचनासे

पूर्व)-के लगभग श्रीनारायणदास उर्फ मेघा भगतने रामलीलाका आयोजन किया (वाल्मीकिरामायणपर आधारित झाँकी-लीला) और यह लीला तबसे बराबर चल रही है।

प्राचीन नगरोंमें रामलीला कैसे होती थी, यह हम नहीं जानते, क्योंकि अधिकतर रामलीलाएँ (जैसे चित्रकूट (बाँदा), अयोध्या) कालान्तरमें बंद भी हो गयीं और अब कुछ कालसे नये रूपमें पुनः आरम्भ हुई हैं। आइये ४०० से अधिक वर्षोंसे अपरिवर्तित-रूपमें चल रही काशीकी रामलीलाओंका एक विहंगमावलोकन करें।

वाराणसी और उसके उपनगर—रामनगरकी लीलाओंमें तीन-तीन मंचीय रूप देखे जा सकते हैं। पहला है—प्राचीन चित्रकूटकी राम-लीला अर्थात् झाँकी 'रामलीला'। दूसरा है—तुलसीकी रामलीला अर्थात् 'चारघाटकी रामलीला' और तीसरा है—रामनगर-शैलीकी घटित 'रामलीला'।

चित्रकूटकी रामलीला—

यह लीला आज भी वाराणसीमें होती है। वैष्णव भक्त नारायणदास मानसकी रचनासे पूर्व काशीमें रामलीला करते थे। बादमें वे तुलसीके शिष्य बने और मेघा भगत कहलाये। उनकी लीलामें 'रामचरितमानस' का पाठ होने लगा, पर शैली वही वैष्णव मन्दिरोंकी झाँकीके दर्शनकी ही रही। इस रामलीलासे बहुत कथाएँ जुड़ी हैं। एक तो यह कि अयोध्यामें सरयू-तटपर मेघा भगतको राम-लक्ष्मण अपना धनुष-बाण सौंपकर चले गये, भगत उन्हें पहचान न पाये। बहुत दुःखी हुए। तब स्वप्नमें निर्देश मिला—'काशी जाकर रामलीला करो, वहीं हम दर्शन देंगे।' मेघा भगत धनुष-बाण लेकर काशी आये और रामलीला करने लगे, जिसमें आज भी एक दिन इस धनुष-बाणकी झाँकी होती है। इसी लीलाके भरत-मिलापमें अनेक आस्थावान् लोगोंको उस अरूपकी एक झलक मिली है। चित्रकूट-रामलीला-शैलीमें चित्रकूट (बाँदा) और अयोध्यामें भी लीला होती थी, पर ये लीलाएँ अब तिरोहित प्राय हो चुकी हैं। चित्रकूट-लीलासे ही सम्बद्ध एक चमत्कारी घटना है— सन् १८११ की, जिसमें पादरी मैकफर्सनके ललकारनेपर हनुमान्‌का चरित्र निभा रहे पं० टेकराम भट्ट प्रभुकी आज्ञा लेकर वर्षा ऋतुमें बाढ़ग्रस्त ४० हाथ चौड़ी वरुणा
छलाँग गये। हनुमान्‌जीके मुकुटकी समाधि और
आज भी वाराणसीमें विद्यमान हैं। बारम्बार इस
चमत्कार हुए हैं, अलौकिकताके प्रमाण मिले हैं
अभी हालमें जब बी० बी० सी० दूरदर्शनने
मिलापका वर्जित स्थलसे छायाङ्कन करना चाहा तो
कैमरा ही नहीं खुला।

चित्रकूटकी लीला बहुस्थलीय लीला है और २२
सम्पन्न होती है। इस लीलामें सर्वाधिक ध्यान शृंगारपर
है। राजरज, तीखा काजल, तिलक, बुलाक, नित्य नये
मुकुट, आभूषण, अलफी और गलेमें मोटी तुलसीकी माला—
मिलाकर एक अपूर्व दिव्य रूपकी सृष्टि करते हैं। इस
चरित्र-स्वरूप अल्पवयके बालक होते हैं। इसमें संवाद
अन्य कार्य-कलाप अत्यन्त सूक्ष्म और झाँकीके अंश
प्रतिदिन कथाके एक अंशकी झाँकी प्रस्तुत की
कर्मकाण्डके अंश विस्तारसे होते हैं। रामचरितमानस
तुलसीके अन्य पदोंका नारद-बानीमें पाठ होता है।
रंचमात्र भी परिवर्तन करना सदा अनिष्टकारी सिद्ध
चित्रकूटकी लीलामें अन्य रामलीलाओंकी तरह
जुलूस नहीं निकलता। जो यात्राएँ हैं भी, वे बिना
भड़कके अत्यन्त सादगीसे सम्पन्न होती हैं। इस
रामका गङ्गा पार करना, शबरी-मङ्गल, गिरि सुमेरुकी
(जिसके दर्शन करना काशीके रईस अपने लिये
मानते हैं), रावण-वध, अवध-प्रयाण (जिसमें
विमानको काशीके सम्पन्न व्यवसायी लोग आगेसे
अवधकी ओर ले जानेका प्रयास करते हैं और लंका-
निवासी उसे पीछे खींचकर रोके रखना चाहते हैं,
विमान हवामें उड़ता-सा कभी पचास कदम पीछे,
कदम आगे बढ़ता है और अयोध्याकी यह लहराती
घंटोंमें पूर्ण होती है।) और भरत-मिलाप (नाटी
भरत-मिलाप, विश्वका सबसे बड़ा मेला, सबसे छोटा
है—दर्शक चार-पाँच लाख, अवधि मात्र पाँच मिनट
राजगद्दीकी लीला अनुष्ठानसहित होती है। उसमें
धनुष-बाणकी झाँकी और अन्तमें दशावतारकी
सम्पन्न होती है। इस लीलामें अनेक भाग्यवान्

'भगवान्'की पहुनाईका गौरव प्राप्त होता है। भरत-मिलापमें प्रभुका पुष्पक विमान उठानेके लिये यादव भाइयोंमें होड़ लगती है। इस लीलामें वैष्णव (सिंगारिका), शैव (महाराज काशीनरेश—शिवके प्रतिनिधि) और रामभक्त (रामका विमान)-का अपूर्व संगम होता है, मथुरा-काशी-साकेतका मिलाप होता है। सच पूछें तो लीलामें सभी सम्प्रदायोंका अंशदान होता है। जन-साधारणकी धार्मिक निष्ठाका तो बिना देखे अंदाज करना भी मुश्किल है। यह 'लीला' कहीं अन्यत्र नहीं ले जायी जा सकती, क्योंकि यह दस-बीस कलाकारोंद्वारा मंचित नाटक नहीं है, इस लीलामें तो लाखों काशीवासी भाग लेते हैं।

'चित्रकूट-रामलीला-समिति' भाद्रपदमासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको 'वामन-लीला', आश्विनमें 'रामलीला' (कृष्ण पक्षकी नवमीसे शुक्ल पूर्णिमातक), होलीमें 'फाग-लीला' और वैशाख शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको नृसिंह-जन्म-लीला आयोजित करती है। ये सभी झाँकी लीलाएँ हैं। चित्रकूटकी रामलीला अनुसंधानकी अपेक्षा करती है; क्योंकि काशीमें एक और रामलीला 'लाटकी रामलीला' भी इतनी ही पुरानी बतायी जाती है और कहते हैं कि जब गोस्वामीजी हनुमान फाटकपर रहते थे, तब उन्होंनें इसे शुरू किया था। ये लीलाएँ '**आदौ रामतपोवनादिगमनम्०**' से आरम्भ होकर '**रावणकुम्भकर्णहननम्०**' तक चलती है। क्योंकि '**एतद्धि रामायणम्**' ऐसा कहा गया है। बादमें चित्रकूट- लीलामें कोपभवनसे आरम्भ और दशावतारकी झाँकीसे समापनतक लीला होने लगी। लाटकी लीलामें धनुषयज्ञ और पुरजनोपदेशकी लीलाएँ जुड़ गयी हैं। स्वयं तुलसीदासद्वारा आरम्भ की गयी अस्सी-स्थित तुलसी-घाटकी लीलाका भी यही क्रम है। इन लीलाओंका और अयोध्याके बाबा सरयूदासरचित श्रीरामकृष्ण लीलानुकरण-सिद्धान्तका क्या सम्बन्ध है, यह भी देखना होगा। क्या वैष्णव ग्रन्थोंमें लीला आयोजित करनेके, झाँकीके अथवा शृंगारके कोई विधान हैं?

अस्सीकी रामलीला और वाराणसी शहरकी अनेकानेक रामलीलाएँ

'अखाड़ा तुलसीदास'की देख-रेखमें विगत ४०० वर्षोंसे लीला होती आयी है। तुलसीदास इस अखाड़ेके पहले महन्त थे। लीलाकी प्राचीनता अखाड़ेके महन्तोंके वसीयतनामोंसे सिद्ध होती है।

तुलसी-घाटकी लीला १८ दिन होती है। देव-चरित्र अभिनयकी परम्परामें रामायणी पाठ करते हैं, धारक अभिनय करते हैं। संवाद खींचकर ऊँची आवाजमें बोले जाते हैं, संवादकी भाषा भोजपुरी, खड़ी बोली, व्रज और अवधी होती है। यह भी बहुस्थलीय लीला है और लगभग दो मीलके परिक्षेत्रमें सम्पन्न होती है। लंकाकी लीलाएँ जहाँ सम्पन्न होती हैं, उस मुहल्लेका नाम ही लंका पड़ गया है। मानसका पाठ नारद-बानी शैलीमें होता है। 'गौतम-चन्द्रिका' नामक ग्रन्थमें गोस्वामीजीद्वारा तुलसीघाटपर पूर्णिमाकी चाँदनीमें राजगद्दी-लीलाका आयोजन करनेका विशद विवरण दिया गया है, कहते हैं कि गोस्वामीजीने ध्रुव, प्रह्लाद और कृष्ण-लीलाओंका भी आयोजन किया था, जिनमें अब केवल 'कृष्णलीला' होती है, रामलीलाके बाद ही तुलसी-घाटपर 'कृष्णलीला' होती है जिसकी नागनथैया-लीला काशीकी अति प्रसिद्ध लीला है और यहाँकी लाखा-मेला भी अति प्रसिद्ध है। परम्परा वही झाँकीकी—गङ्गामें कृष्ण-कन्हैयाका कूदना और कालिय नागके फनपर खड़े होकर लाखों दर्शकोंको (जिनमें काशी-नरेश भी होते हैं) दर्शन देना। इस लीलाकी अवधि भी पाँच मिनट ही होती है, पर दर्शनका चमत्कार कालालीत होता है।

अस्सीकी रामलीला और वाराणसीकी अन्य लीलाओंकी एक विशेषता रंगकर्मकी दृष्टिसे अवलोकनीय है। यह है 'तुलसी-मंच' का विधान। काशीमें शिवपुर बाजार-स्थित रामलीला-मैदानमें भी इस मंचके दर्शन हो सकते हैं।

तुलसी-मंच है क्या? एक आयताकार मैदान (रामलीला-मैदान—पासमें एक सरोवर हो तो अति उत्तम), इसमें उत्तरकी ओर एक ऊँचा मंच (सात सीढ़ियोंका) और उसपर एक भव्य सिंहासन, जिसपर दिव्य स्वरूप (राम, लक्ष्मण और जानकी या राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र) विराज सकें। इसे मैं विष्णु-मंच कहना चाहूँगा। यह मंच सभी राम-लीलाओंमें होता है और इसपर सभी लीलाओंमें केवल स्वरूप विराजते हैं। मैदानके दूसरे छोरपर एक और सिंहासनयुक्त मंच (पाँच सीढ़ियों-जितना ऊँचा) होता है, जिसपर 'लीला' के राजपुरुष बैठते हैं—दशरथ, जनक, बालि, सुग्रीव और रावण। इसे मैं 'राज-मंच' कहना चाहूँगा। इन दोनों मंचोंको जोड़ता है—करीब एक मीटर चौड़ा गलियारा, जिसे 'जीवन-पथ' कहा जा सकता है। पूर्वकी ओर एक और

मंच (दो सोपान ऊँचा) है, जिसपर लीलाके स्त्री-पात्र विराजते हैं—दशरथका अन्तःपुर, जनकका रनिवास, कोपभवन, सुग्रीव-बालिका अन्तःपुर, अशोक-वाटिका। इसे हम 'देवी-मंच' कहना चाहेंगे और पश्चिमकी ओर एक सोपान ऊँचा एक मंच, जिसपर रामायणी बैठकर रामायण-पाठ करते हैं—इसे 'जन-मंच'की संज्ञा दी जा सकती है। आवश्यकता पड़नेपर देवी-मंचको जीवन-पथसे जोड़ा जा सकता है। जीवन-पथके दोनों ओर विराजते हैं दर्शक—रामभक्त। धनुषयज्ञके दिन 'राज-मंच' और 'जन-मंच' के बीच 'धनुष-मंच' बनता है—सार्वजनिक चुनौती-भरा राजाश्रयमें बना मंच। वनवासकी लीलाओंमें देवी-मंच और विष्णु-मंचके बीच भक्त और भगवान्के बीच प्रेम-पयोधि भरतके विराजने-हेतु नन्दीग्राम बनता है। लीला-स्थलके पासके सरोवरमें क्षीरसागरकी झाँकी, गङ्गापार होना तथा सेतु-बन्धन-जैसी लीलाएँ होती हैं। शेष लीलाएँ जीवन-पथपर या विष्णु-देवी अथवा राज-मंचपर होती हैं। तुलसीने बालकाण्डमें चार घाटकी स्पष्ट चर्चा की है। तुलसीके इस मंच-विधानमें चार घाट स्पष्ट बन जाते हैं। इन मंचोंके अनेक सार्थक अर्थ लगाये जा सकते हैं। यथा—

विष्णु-मंच	देवी-मंच	राज-मंच	जन-मंच
१. वैराग्य	भक्ति	ज्ञान	कर्म
२. मोक्ष	काम	अर्थ	धर्म
३. योग	तप	यज्ञ	जप
४. आत्मा	हृदय	मस्तिष्क	शरीर
५. काशी	मथुरा	अवध	हरिद्वार
६. परमार्थ	मनसा	वाचा	कर्मणा
७. योगशक्ति	उपासनाशक्ति	ज्ञान-शक्ति	क्रिया-शक्ति
८. बदरी-केदारधाम	जगन्नाथधाम	रामेश्वरधाम	द्वारकाधाम
९. शिव-पार्वती-संवाद	काक-गरुड-संवाद	याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद	तुलसी-संत-संवाद

—इन मंचोंको जोड़ते गलियारे भवसागर हैं, जिसे ज्ञान-कर्म-भक्तिके मार्गोंसे पार किया जा सकता है। सबका लक्ष्य है विष्णु-पदतक पहुँचना। भारतीय धर्म-दर्शनके सभी मार्गोंके दर्शन इस मंच-विधानमें होते हैं। प्रभुको पानेके अनेक मार्ग हैं, किसी भी मंच या मार्गसे यात्रा करें—उनतक पहुँच सकते हैं। ज्ञान और कर्म-मार्ग भक्तिके चौराहेसे सम्पूर्ण समर्पण (नन्दीग्राम) और अकाम प्रेमकी मंजिलोंसे होते हुए भक्तजन मोक्ष-प्राप्तितक करते हैं। इस प्रकार तुलसी-मंच नाटकका ही नहीं अपितु भारतीय अध्यात्मका मंच है। आप ढूँढ़ें तो अभी इसमें बहुत कुछ मिलेगा। रंगमंचकी दृष्टिसे तुलसी-मंचने दर्शक-पात्र-विभाजन-रेखा तोड़ी है और उनमें अद्भुत तादात्म्य स्थापित किया है।

वाराणसीकी रामलीलाओंमें शोभा-यात्राएँ उनका अनिवार्य अंग हैं। कम-से-कम तीन यात्राएँ अवश्य होती हैं—राम-विवाहकी बारात, नक्कटैया तथा भरत-मिलाप। नाक कटनेके बाद शूर्पणखा अपने भाई खर-दूषणको सेनासहित लेकर रामपर आक्रमण-हेतु चलती है तो इसे 'नक्कटैयाका जुलूस' कहते हैं। बनारसमें इन नक्कटैयाके जुलूसोंकी बड़ी ख्याति है और इनमें भी 'चेतगंज'की नक्कटैयाको 'लाखा मेला'की शोहरत प्राप्त है। राम-भरत-मिलनके बाद राम-पंचायतकी जो शोभायात्रा निकाली जाती है, उसे भरत-मिलापका जुलूस कहते हैं। इनमें गायघाटके भरत-मिलापका जुलूस अपने विशाल वानर-मुखौटोंकी मनोरम झाँकियोंके कारण दर्शनीय बन गया है। नक्कटैयाके जुलूसमें दुर्गा, कालीके विशाल मुखौटे और उनका युद्ध-नृत्य बड़ा आकर्षक होता है। वाराणसीकी सँकरी गलियोंमें विशाल मुखौटे धारण किये पात्रोंकी अस्त्र-चालन-कुशलता रोमांचकारी होती है। दुर्गा तथा कालीके मुखौटे धारण करना भी धार्मिक कृत्य माना जाता है और पात्र-मुखौटोंकी विधिवत् पूजा करके ही मुखौटे उठाते हैं। इन जुलूसोंमें झाँकियाँ, विमान, लाग (अनेक प्रकारका कौशलपूर्ण स्वाँग-जिसमें छुरी-कटारीको पेट तथा गर्दनमें धँसी हुई आरपार दिखाते हैं) आदि अनेक दर्शनीय चीजें होती हैं।

रामनगरकी रामलीला—

गङ्गा-पार, विगत पौने दो सौ वर्षोंसे कवि संरक्षणमें चल रही यह 'घटित-रामलीला' अनेक अपूर्व होनेके कारण विश्वविख्यात भी हो गयी है। प्र भारी संख्यामें देश-विदेशके विभिन्न भागोंसे पधारे विद्वान शोध-छात्र इस रामलीलाका अध्ययन करते हैं। साहि अनुशासन-परम्परा एवं पद्धतियोंका निर्वाह देखना ही

रामनगरकी रामलीला देखनी चाहिये।

रामनगरकी रामलीला महाराज उदितनारायणसिंहके समय राजाश्रयमें आयी, पर उसका वर्तमान स्वरूप स्थित हुआ रामकथा-मर्मज्ञ महाराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिंहके राज्यकालमें। महाराजके गुरु और महान् संत काष्ठजिह्वा स्वामीने लीला-स्थलोंका चयन किया और व्याख्या-परिचर्या लिखी। संतने पूरे रामनगरको रामलीलाका मंच बना दिया। महाराजने परिशिष्ट जोड़ा, पं० हरिहरप्रसादने 'प्रकाश टीका' लिखी, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने 'रामलीला चम्पू' लिखा और रीवाँ-नरेशके भ्राताने श्रीरघुराजसिंहके साथ मिलकर रामलीलाके संवादोंको साहित्यिक परिवेश प्रदान किया।

रामनगरकी रामलीला 'घटित-लीला' है। पात्र अपनी भूमिका निभाते हैं, दर्शक अपनी सुविधानुसार भौतिक आँखोंसे या मनकी दृष्टिसे लीला देख लेते हैं। कहीं कोई मंच-विधान नहीं। रामलीलाकी घटनाओंके स्थल निश्चित हैं, पात्र वहाँ अपना कार्य करते हैं। दर्शक सुविधानुसार उस कार्य-कलापमें शामिल होकर स्वयं पात्र बन जाते हैं। अवधमें वे अवधके नागरिक होते हैं, तो वनगमनमें ग्रामवासी, राम-बारातमें वे बाराती बनते हैं, तो रावणके दरबारमें दरबारी।

लीलामें काशी-नरेशकी सतत उपस्थितिके कारण लीलाकी गरिमा तो बढ़ती ही है, बराबर अनुशासन कायम रहता है। बीस-पचीस हजार दर्शकोंकी ऐसी अनुशासित भीड़ स्वयंमें एक आश्चर्यजनक लीला है। इस लीलाके दर्शनार्थ देशके कोने-कोनेसे राम-भक्त, साधु-संत (जो काशी-नरेशके एक मासतक अतिथि रहते हैं) और नियमसे रामलीलाका सेवन करनेवाले प्रतिदिन पधारते हैं। लीला एकतीस दिनतक चलती है। लीलाके साथ ही चलता है मेला और पधारते हैं असंख्य मेला-प्रेमी। सभी अर्थोंमें भव्य, विशाल और मनमोहक इस लीलामें (विद्युतीय) माइक-लाइटका प्रयोग नहीं होता। लीला शाम पाँच बजेसे आरम्भ होती है, पौने छः बजे विश्राम संध्या सातसे नौ बजेतक गैस-बत्ती और मशालकी रोशनीमें लीला होती है। रामलीलाके दिनोंमें सारा रामनगर राममय हो जाता है। सामने मंचपर प्रभुके दर्शन और साथ ही भीड़के पीछे हाथीपर विराजमान महाराज काशी-नरेशके दर्शनका एक अनूठा समाँ बँध जाता है। रामनगरमें मानस-पाठ बड़ा ही जोरदार होता है। रामनगरकी रामलीला-जैसा तादात्म्य कहीं अन्यत्र देखनेको नहीं मिलता। चतुर्दिक् नाम-कीर्तन, पोथियाँ लिये असंख्य नर-नारियोंद्वारा रामायणका पाठ और 'विश्व'-सा विस्तृत मंच कहाँ देखनेको मिलेंगे? मंचकी विशालताको केवल इस उदाहरणसे स्पष्ट किया जा सकता है। आज अंगद-विस्तारकी लीला है। प्रभु सुबेल पर्वतपर विराजमान हैं। यहाँसे अंगदजी आज्ञा लेकर रावणके दरबारकी ओर चलते हैं, जो आधा मील दूर है। उधर रावण एक ऊँचे टीलेपर स्थित अपने महलमें राग-रंगमें मस्त है और वहाँसे एक फर्लांग चलकर दरबारमें आता है। सीताजी दरबारसे दो फर्लांग दूर अशोकवाटिकामें भक्त स्त्रियोंसे घिरी बैठी हैं। यहाँसे न रावण-दरबार दीखता है,न सुबेल पर्वत। आप चाहें तो पात्रोंके साथ मीलोंकी यात्रा करें या फिर लीलाको भूलकर सीता माता या प्रभुके चरणोंमें बैठे रहें। अधिकतर लोग रावण-दरबारमें बैठकर रावण-अंगद-संवादका आनन्द लेते हैं।

रामलीलासे अधिक महत्त्व आरतीका होता है। बहुतसे लोग तो रात नौ-दस बजेके बीच केवल आरतीके दर्शन करने ही आते हैं। प्रतिदिन आरतीकी निराली-अलौकिक छटा होती है। रामनगरकी रामलीलाओंमें क्षीरसागरकी झाँकी, फुलवारी, धनुषयज्ञ, लंकादहन, लक्ष्मण-शक्ति, अंगद-विस्तार, रावण-वध, भरत-मिलाप और राजगद्दी आदिकी लीलाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। भरत-मिलाप मध्य रात्रिमें होता है। राजगद्दीके दिन रामनगरमें दीपोत्सव मनाया जाता है। दशहराके दिन महाराजकी सवारीका अतिरिक्त आकर्षण होता है।

काशीकी रामलीलामें कहीं भी परदे एवं नाट्यपटी आदिका प्रयोग नहीं होता, क्योंकि ***'मायाकृत बहुजवनिका, नाट्यसाल जगभ्राज। आपु करै, आपुहिं लखै, वन्दौ ते नटराज।'***—मायाद्वारा रचित दृश्य-बन्ध, जगत् ही लीला-मंच, प्रभु स्वयं लीला करें और स्वयं हीं देखें —ऐसा यह खेल है।

अरूपकी रूपाकार झाँकी आस्तिकको कृतकृत्य कर देती है। हमने रामनगरमें प्रभुके दीवानोंके दर्शन किये हैं। हाँ, अगर आप भाव-भक्ति-विहीन कोरे नास्तिक रंगकर्मी हैं तो मेरी नेक सलाह है कि आप 'रामलीला' न देखें, इसमें आपका समय नष्ट होगा।

खुले मैदानमें जन-समुद्रके बीच उभरे हुए मंच-द्वीपों-

पर स्वर्णमुकुटधारी स्वरूपोंकी झाँकी एक अविस्मरणीय अनुभव है। रामलीलामें यद्यपि लाइट-माइक नहीं होते, पर 'सिनेमास्कोपिक' और 'स्टीरियोफोनिक साउण्ड' का नैसर्गिक आनन्द प्राप्त होता है। जहाँ स्वयं सूर्य भगवान् लाइट-मैन बनें (नाटी इमलीके भरत-मिलापमें कितने ही बादल क्यों न छाये हों; ठीक समयपर पश्चिम आकाशमें खिड़की खोलकर सूर्यदेव अपूर्व मिलनपर अपनी स्पाट लाइट फेंकते हैं), उस लीलाको क्या कहें। यहाँ समय और स्थिति टेलिस्कोपिक होती है। समयातीत विदेहकी अनुभूति इस बहुमंचीय, बहुस्तरीय विविध दृश्यावलीयुक्त रामलीलामें ही हो सकती है। नाट्यशास्त्रके सूक्ष्म सूत्रोंके ताने और लोक-कलाओंके बानेसे बुनी, धर्मके सुर्ख-रंगी आस्थाओं चादर यह रामलीला और उसका सुख उसे ओढ़नेवाला ही जान सकता है।

अन्तमें वे कहते हैं—'***जाको जहाँ अर्थ है जैसो, लीला ललित लखावती तैसो***', अर्थात् जैसी भावना वैसा दर्शन। जो इस लीला-यज्ञका दर्शन करता है, वह भक्तिभावकी सुरसरिमें अवगाहन करता है, डूब जाता है; सुरस परम आनन्दकी उपलब्धि करता है और गूँगेके गुड़का आस्वादनकर मौन हो जाता है।

विदेशोंमें रामकी लीला

[विदेशोंमें भी भगवान् श्रीरामकी लीलाका मंचन किसी-न-किसी रूपमें होता है। विभिन्न देशोंकी विभि संस्कृतियोंमें रामकथापर आधारित प्रदर्शन—नृत्य, नाटक एवं नाटिकाके रूपमें प्रस्तुत किये जाते हैं, जिसे वहाँकी जनता बड़े चावसे देखती है। ये प्रदर्शन कहीं तो श्रद्धा-भक्तिभावसे और कहीं मनोरंजनकी दृष्टिसे भी होते हैं। इस प्रकार दुनियाके दूसरे देशोंमें भी इसका प्रचार-प्रसार भगवान् श्रीरामकी शाश्वत लीलाका और इसकी व्यापकताका परिचायक है। पाठकोंकी जानकारीके लिये कुछ विदेशोंके उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं।—सं०]

भगवान् श्रीरामकी कथा भारतसे बाहर विदेशके अनेक देशोंमें लोकप्रिय है। सभी देशोंकी अपनी-अपनी 'रामकथा' है, जो वाल्मीकि या तुलसीकी रामायणसे थोड़ी भिन्न है। रामकी कथापर आधारित इन देशोंमें छाया-नाट्य, पुत्तलिका-नाट्य, नृत्य-नाट्य और लोक-नाट्य होते हैं, जिन्हें रामकी कथा होनेके कारण 'रामलीला' कह सकते हैं। दक्षिण-पूर्व एशियाके देशोंमें रामकथा विशेष-रूपसे प्रचलित है। इन देशोंकी 'रामलीला' का एक संक्षिप्त दिग्दर्शन इस प्रकार है—

१—म्याँमार (वर्मा)

आधी सदी पूर्व वर्मा हमारे अखण्ड भारतका ही एक अंग था। यहाँ भारत, स्याम और थाईलैंडकी नाट्य-परम्पराका प्रभाव देखा जा सकता है, साथ ही इनकी अपनी अलग संस्कृति है।

वर्मामें अधिकतर प्रदर्शन धार्मिक उत्सवों और त्यौहारोंके साथ होते हैं। यहाँके प्रदर्शनोंको 'प्वे' कहते हैं। ये चार प्रकारके होते हैं-(१) योकथे प्वे, (२) नाट प्वे, (३) जाटग्यी तथा (४) यामा प्वे। इनका विवरण निम्न प्रकार है—

योकथे प्वे—यह वर्माका पुत्तलिका-नाट्य है। इसमें रामायणकी कथाएँ प्रस्तुत की जाती हैं।

नाट प्वे—यह एक तरहका अभिचार-नृत्य है।

जाटग्यी—यह मुखौटोंवाला नृत्य-नाट्य है। इसमें राम-कथा कही जाती है।

यामा प्वे—इस प्रदर्शनमें रामलीलाका मंचन इस प्रकार किया जाता है—छः दृश्योंकी एक नृत्य-नाट्य-लीला पहले दृश्योंमें—'मिथिलामें राजा जनक धनुष-यज्ञका आयोजन करते हैं और सीताके चित्रके साथ निमन्त्रण भेजते हैं अथकन पर्वतपर परशुराम तप कर रहे हैं और चित्र देखकर कुपित होते हैं; चित्रको उठाकर फेंक देते हैं। उड़ता हुआ चित्र दम्भिका पर्वतपर जा गिरता है, जहाँ दसगिरि (राव तप कर रहा है। चित्र देखकर दसगिरि मोहित हो जाता है और मिथिलाकी ओर चल पड़ता है।' दूसरे दृश्योंमें—'वे तपस्वी (विश्वामित्र) राम-लखनके साथ मिथिलाकी ओर चल पड़ते हैं।' तीसरे दृश्यमें—'धनुष-यज्ञ होता है दसगिरि असफल होता है। लखन धनुष उठा सकते हैं, वे रामको ऐसा करनेको कहते हैं।' चौथे दृश्यमें—'दस रामसे प्रतिशोध लेनेका संकल्प करता है। राम परशुरामका युद्ध होता है। परशुराम समर्पण करते हैं

पाँचवें दृश्यमें—'हमॉ-योन (दंडकवन)-में रावण स्वर्णमृग भेजता है। राम मृगके पीछे जाते हैं। सीता-हरण होता है' और छठे दृश्यमें—'सीता एक शालकी आड़में रावणका प्रणय निवेदन ठुकराकर अपनी रक्षा करती है।'

वर्मामें 'रामा' ड्रामेटिक क्लब है। इसमें यहाँके लोग दीपोत्सवके समय शृंखला-नाटक करते हैं। इस नाटकमें सात दिनमें सात काण्डोंकी लीला की जाती है। पहले राजाके संरक्षणमें तीस दिनतक लीला होती थी। क्लबके पास अपनी वेश-भूषा, वाद्य-यन्त्र और मुखौटे होते हैं। भारतसे इन लीलाओंका अच्छा सादृश्य है। इस लीलामें सीता और रामकी माताओंके अलावा सभी पात्र मुखौटे धारण करते हैं।

(२) कम्बोडिया (खमेर)

किसी युगमें (८०२—१४३१) खमेरके राजा दक्षिण-पूर्व एशियाके विशाल भूभागपर शासन करते थे। इनकी राजधानी अंकोर थी, जहाँ भव्य मन्दिर है (अंकोरवाट)। अब तो ये मन्दिर, जिनपर रामायण और महाभारतकी कथाएँ अङ्कित हैं, वनवास कर रहे हैं। इस देशमें भारी राजनीतिक उथल-पुथल मची है और इसका नाम 'कम्पूचिया' हो गया है। खमेरमें अच्छी नाट्य-शालाएँ हैं, जहाँ रामायण-सम्बन्धी लीलाएँ होती हैं। इनमेंसे कुछ प्रमुख प्रचलित रामलीला-नाट्यका विवरण इस प्रकार है—

लकन खाच बोरान— यह प्राचीन, शास्त्रीय, महिला-पात्रों द्वारा प्रस्तुत नृत्य-नाट्य है। संस्कृत-शिलालेखोंसे अनुमान होता है कि सातवीं सदीमें यहाँ देवदासी-प्रथा थी। ये देवदासियाँ अंकोरके बफूओन मन्दिरमें सेवा करती थीं। इस नाटिकामें रामायणपर आधारित प्रसंग प्रस्तुत होते हैं। इसमें पुरुष ऋषियों और विदूषककी भूमिका निभानेका काम करते हैं और लड़के बंदर बनते हैं। मुख्य भूमिकाएँ स्त्रियाँ ही करती हैं। शृंगार और वेश-भूषा 'थाई' संस्कृतिसे प्रभावित है।

नांग शेक् (शेक थोम)—यह छाया-नाट्य है। इसमें विशालकाय चर्म-पुत्तलियोंद्वारा रामायणकी कथा कही जाती है। दो कथा-वाचक काव्य-पाठ तथा संवाद बोलते हैं और वाद्य-वृंदमें ये ही धुनें बजती हैं। राम और सीताकी विशेष पुत्तलियाँ होती हैं और कुछ विशाल पुत्तलियोंमें पूरा स्वर्ण-महल, वृक्ष और पात्र देखे जा सकते हैं।

(३) इंडोनेशिया (हिंद एशिया)

द्वीपसमूहोंका यह सुन्दर देश है। यहाँ नानाविध प्रदर्शन होते हैं, जैसे—छाया-नाट्य, पुत्तलिका-नाट्य, शास्त्रीय नृत्य और धार्मिक नाटक (लीला)। इस देशकी राजधानी जकार्ता है। यहाँ अनेक रामकथा-ग्रन्थोंकी रचना हुई है, जिनमें सबसे ज्यादा प्रसिद्ध रामायण 'ककाविन्' (कवि योगेश्वर) है, यह ग्रन्थ संस्कृतकी महाकाव्य-शैलीमें लिखा गया है। अभिनयके साथ इसका पाठ होता है।

जावा—यह इंडोनेशियाका प्रमुख द्वीप है; जो मुस्लिम-धर्म प्रधान है, पर यहाँ रामायण-परम्पराकी सबसे अधिक छाप है।

यहाँ शताब्दियोंसे चर्म और चर्म-पुत्तलियोंके माध्यमसे रामकथा कही जाती है। चर्म-पुत्तलियाँ आंध्रकी 'थालुबोमालाटा'से मिलती हैं और शायद रामकथाके साथ ही इस देशमें आयी थीं। रामलीलासे सम्बन्धित इन पुत्तलियों और नाटकोंको वायांग या वाजांग नाम देते हैं। आइये क्रमसे देखें—

वायांग कुलित—चर्म-पुत्तलियोंका यह छाया-नाट्य सबसे अधिक लोकप्रिय है, इस विधामें रामायण और महाभारतकी कथा कही जाती है। इसे 'दालांग' भी कहते हैं। इसमें एक धार्मिक व्यक्ति प्रदर्शनसे पूर्व व्रत, उपवास और प्राणायाम-साधना करता है तथा श्वेतपटके पीछेसे यह धर्म-पुत्तलियोंको चलाता है, साथ ही सभी पात्रोंके गीत और संवाद बोलता है। इस प्रदर्शनमें 'गैमलान' नामक मधुर वाद्य-वृन्द बजते हैं।

बालीका वायांग कूलित— यह ४-५ घंटोंतक चलने वाला प्रदर्शन है। इसमें राम-कथाके साथ मनोरंजनका मसाला भी होता है।

रामायन बैले—यह सबसे पुराना प्रदर्शन है। यह जोग-जकार्ताके पास प्रम्बनानके शिव-मन्दिर (लार्ड-जांग ग्रांग)-में पूर्णिमाके अवसरपर चार रात प्रस्तुत किया जाता है। इसमें जोगजाके सुलतान और उनके परिवारके लोग अभिनय करते हैं। इस नृत्य-नाट्यमें सीता-हरणसे लेकर सीताकी अग्नि-परीक्षातककी कथा प्रस्तुत होती है। इसमें सीताको 'सीता', बालीको 'सुबाली' और लंकाको 'अलंका' कहा जाता है। इसी शिव-मन्दिरमें सम्पूर्ण रामायण चित्रित है।

बेरांग—यह भाव-समाधि (ट्राँस)-नाट्य है, इस विधामें रामकथा कही जाती है। मन्त्र-मुग्ध ग्रामीण कभी-कभी भावावेशमें रंगडा (चुड़ैल)-को मार डालना चाहते हैं।

धार्मिक 'बेरांगमें' पुरोहित पात्रोंका पवित्र जलसे मार्जन करता है।

केत्जक—बाली द्वीपमें होनेवाला यह बंदरोंका अनूठा नृत्य है। इसमें नाच-गान नहीं होता । लोग घेरा बनाकर बैठते हैं और 'त्जेक', 'त्जेक' ध्वनि करते हैं, बीचमें नर्तक रामकथाका अभिनय करते हैं।

'बालीके वायांग वांगमें' सीता-हरणसे लेकर रावण-वधतककी कथा मुक्तकाशी मंचपर अभिनीत होती है। इसमें रामनगर (वाराणसी)-की तरह दो दल रामायण (ककाविन)-का पाठ करते हैं। एक दल मूल पाठ करता है और दूसरा आधुनिक बाली-भाषामें उसका उल्था (अनुवाद) करता है।

(४) लाओस

थाईलैंडसे उत्तर-पश्चिममें स्थित 'लाओस' दक्षिण-पूर्व एशियाका छोटा-सा देश है। यहाँकी राजधानी 'लुआंग प्रबांग' है। यहाँका 'थानौलित' नृत्य दर्शनीय है—

थानौलित नृत्य—यह फालाम (प्रभु राम) और स्वर्णमृगकी कथापर आधारित है। इसमें फालक (लक्ष्मण) फालाम और सीडा (राम-सीता)-के साथ वन-विहार करते हैं। थोसकन (दशकंधर) सीतापर मोहित होता है। वह स्वर्णमृग भेजता है और राम उसका पीछा करते हैं। लक्ष्मणके जानेपर थासकन सीताका हरण कर लेता है। राम रावणपर हमला करते हैं और विजय प्राप्त करते हैं।

(५) मलेशिया

मलय द्वीप प्रायः इस्लाम-प्रधान देश है। यहाँकी राजधानी क्वालालम्पुर है। मलेशियामें रामकथाका ग्रन्थ है 'हेकायत सिरीराम'। यह इस्लामी और भारतीय कथाका मिश्रण है, जैसे यहाँ दशरथको हजरत आदमका पड़पोता (परपोता) बताया है। यहाँके रामकथाका मुख्य प्रदर्शन है—

वायांग कूलित—यह छाया-पुत्तली-नाट्य हिंद एशिया-जैसा ही है। पुत्तलियाँ कर्णाटकके यक्षगानकी पुत्तलियों-जैसी हैं। इसमें जावा द्वीप और थाईलैंडके अभिनय-शैलियोंका समावेश हुआ है। यहाँ भी एकाकी कलाकार ही पुत्तलियाँ नचाता है। परदेपर पुत्तलियोंकी छाया दीखती है। इसमें रामकथाके विभिन्न प्रसंग प्रस्तुत किये जाते हैं।

(६) श्रीलंका

श्रीलंका कभी भारतका ही अंग था, जो पहले सिंहल द्वीप कहलाता था। कुछ विद्वानोंका मत है कि वर्तमान लंका रामकथाकी लंका है ही नहीं, वह तो दूर दक्षिणमें थी। कि भी श्रीलंकामें आज भी सीता, रावण, विभीषण आदि सम्बन्धित स्थल हैं। श्रीलंकाके विद्वान् डॉ० गोदकुंब कहते हैं कि श्रीलंकाके द्वितीय सम्राट् 'पाण्डु वसदेव'के शासन-कालमें (५वीं सदी ईसा पूर्व) प्रथम बार 'को याकमा'की पूजा हुई थी। इसकी कथा इस प्रकार है—ए बार विष्णु (राम)-को शनिकी दशा लगी और वे वर्षके लिये वनमें चले गये। इस बीच रावण सीता अपनी राजधानी उठा ले गया। रावणका प्रस्ताव सी ठुकरा देती हैं। राम लौटते हैं और सीता-हरणका प चलनेपर उन्हें ढूँढ़ने पुनः वनमें चले जाते हैं। जब बा उनकी भेंट होती है तब उसकी सहायतासे वे लंका जलाकर सीताको वापस लाते हैं। राम अवध आये सीताने जब रावणका चित्र बनाया तो उन्होंने सीता निष्कासित कर दिया। वनमें सीताको लव-कुश पैदा हु यह कथा दशरथ-जातकमें मिलती है। 'हकेगलाकी (शिलाखण्ड) क्या द्रोणाचल पर्वतका खण्ड है (हनुमान् उखाड़ लाये थे), सीता एलिया कोविलके पा भूमि काली है? (क्या यह लंका-दहनका अवशेष है?) रावण एल्लाही सीताका बंदीगृह है?) ऐसे ही रा सम्बन्धित यहाँ अनेक स्थल हैं।

श्रीलंकामें भारतीय (तमिल) और सिंहली लोकक नृत्य-नाट्य होते हैं। यहाँका 'कांडयन नृत्य' लोकप्रि रामकथा-नृत्योंमें मुखौटोंका प्रयोग होता है। श्रीउदय अपने 'बैले-लंका-दहन'में लंकाके काष्ठ मुखौटोंका प्र किया था और चित्र देखनेसे आश्चर्य होता है कि इन मुखौ वाराणसीकी रामलीलाके मुखौटोंसे अद्भुत साम्य है।

(७) थाईलैंड—(प्राचीन नाम स्याम)

थाईलैंडकी रामायण है 'रामकीन'। यह 'रामकीर्ति' थाई-रूप है। यहाँ राम-कथाका आधार वाल्मीकि-राम माना जाता है। राम-कथा जावा और मलाया हो थाई पहुँची थी। यहाँकी रामकीन रामायण बाँग्ला 'मैथि 'भैरब कथा' (थाई)-से और 'कंब' रामायणसे भी है। रोचक कथाओंमें रावणकी कन्या 'सुवर्ण-मच्छ लंका जाते समय हनुमान्को रोकनेका प्रयास दिखा है। हनुमान् मच्छासे विवाह कर लेते हैं और उन्हें

नामक पुत्र होता है। अन्य लीलाओंमें 'मेयिलरावन'का अभिचार, काकासुर तथा अग्नि-परीक्षा आदि हैं। हमने बैंकाकमें एक नृत्य देखा था—'मणिमेखला'। इसमें भाई हनुमान् चार हाथवाले हैं। उनके मुखमें सूर्य-चन्द्रके दर्शन होते हैं। थाईलैंडमें 'खोन' नामक मुखौटायुक्त नृत्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसकी शोभायात्रामें योद्धा, राक्षस और वानर युद्ध-कौशल दिखाते चलते हैं। पुराने खोनमें पात्र नहीं बोलते थे, दो वाचक पाठवाचन करते थे। आधुनिक खोनमें स्त्री-पात्रोंकी भूमिका स्त्रियाँ ही करती हैं। इसमें रामकथाके प्रसंग प्रस्तुत किये जाते हैं। खोन-नाट्यमें रामका मुखौटा हरे रंगका और लक्ष्मणका सुनहरा होता है (आजकल राम और लक्ष्मण मुखौटा नहीं लगाते बल्कि मुकुट पहनते हैं)। रावणका भी मुखौटा हरा होता हैं, पर अनेक सिरवाला होता है, रावणको 'तोस-कंठ' कहते हैं। हनुमान्‌का मुखौटा सफेद होता है। सीता तथा मंदोदरी मुकुट धारण करती हैं। खोन कुछ-कुछ भारतकी कथकलीसे मिलता है।

थाईलैंडका राष्ट्रिय नाट्य 'राम-नाट्य' है, जिसमें सम्पूर्ण रामकीन प्रस्तुत की जाती है।

(८) रूसमें रामलीला

सन्·१९६० में भारतविद् श्रीमती नतालिया गुसेवाने राम-कथापर बच्चोंके लिये नाटक तैयार किया और इसका मंचन हुआ। बीस वर्षोंमें २०० प्रदर्शन हो चुके हैं। इस कम्पनीने भारतमें—दिल्ली (१९७४)-में तथा लखनऊ, पटना एवं भुवनेश्वर (१९७७)-में इस नाटकका मंचन किया है। सन् १९८० में इस कंपनीको 'जवाहरलाल नेहरू' पुरस्कार दिया गया। इस नाटककी सशक्त अभिनय-क्षमताका एक प्रभावी दृश्यका उल्लेख करना उचित होगा। जब सीता लक्ष्मण-रेखा पार करनेको उद्यत होती हैं तो दर्शक बच्चे चीख उठते हैं—'मत जाओ-मत जाओ'।

(९) बर्लिनमें (जर्मनी) राम-कथा नाट्य

यहाँ बच्चोंके थियेटर 'थेयाटर देयर फ्रि एण्ड शाफ्ट' (मैत्री थियेटर)-में सन् १९७६ में 'रामायण' खेला गया। यह प्रायोगिक नाटक था। दो घंटेमें सम्पूर्ण नाटक प्रस्तुत किया गया था। इसकी विशेषता यह थी कि राम और रावण या सीता और शूर्पणखा जैसे (अच्छे और बुरे) पात्रोंका अभिनय एक ही पात्र करता है। उसमें राम और रावण बने पात्रोंने जो कहा, उन दोनों रूपोंमें अनुराग-भावनाएँ ही सबसे महत्त्वपूर्ण हैं, जो सचमुच मानवीय किस्मकी हैं। 'रावणके अभिनय-आसनपर रामकी भूमिका अत्यन्त मुश्किल काम है।'

सीताने कहा—'सीताके रूपमें मैं बिलकुल पाक-साफ आचरणके लिये मजबूर कर दी गयी थी। मैंने बिना प्रणय-लीलाके ही प्रेम और स्नेह दिखानेकी कोशिश की थी।' लक्ष्मण बने पात्रने कहा— उस लड़केको कुछ भी तो नहीं मिलता। मेरे लिये यह कहनेका कोई कारण खोज पाना कि मैं भी आपके (रामके) साथ चलता हूँ, बड़ा मुश्किल था।

इस रामलीलाके सम्बन्धमें अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए निदेशिका श्रीमती एर्सेगने कहा— जो अपने रूपमें बाहरकी ओर ले जाता है, कहीं शून्यमें नहीं बल्कि प्रेम, मैत्री और वचन-पालन-जैसे अत्यन्त उदात्त मूल्योंकी ओर।

महासंचालिका श्रीमती एर्बने कहा— मैं इस महाकाव्यसे चकित हूँ। मैं उसके इस रूपसे यानी बौद्धिक, धार्मिक एवं दार्शनिक स्तरपर घटनाओंको वर्णित करनेकी इस कलासे मुग्ध हूँ। इसमें ऐसा रूप उभरा है, जो किसी-न-किसी तरह भारतीय है—भले ही बाहरसे भारतीय न लगे।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक देशोंमें भी रामलीलाकी झाँकीके दर्शन होते हैं। जैसे—मारीशस और सूरीनाममें भारतकी तरह ही रामलीला होती है। यहाँ 'नीग्रो', 'क्रियोल' और 'हिन्द एशिया' के लोग भी मूल भारतीय लोगोंके साथ उत्साहसे भाग लेते हैं। मंगोलियामें भी राम-जीवन-विषयक कथा और 'क्रिस्टल मिरर' अवलोकनीय हैं।

तुर्कीमें खोतानी 'राम-काव्य' प्रसिद्ध है और इसी तरह जापानमें 'होबुत्शुसू रामायण' तथा फिलीपीन्समें 'महार दिया लवना' प्रसिद्ध है। ये सभी देश अपने-अपने ढंगसे रामलीलाओंका मनमोहक, प्रेरक एवं शिक्षाप्रद भव्य आयोजन करते रहते हैं, जो निश्चित रूपसे रामलीलाके विश्वव्यापी प्रभावका द्योतक है।

[काशिराज डॉ० श्रीविभूतिनारायणसिंहजीके सौजन्यसे]

* * *

भगवान्‌के लीला-सहचर तथा उनके रोचक आख्यान

भगवान्‌के लीला-सहचर तथा भक्तोंके लीला-चरित्र और उनके रोचक आख्यान

(आचार्य श्रीसियारामदासजी नैयायिक, न्यायवेदान्ताचार्य, पी-एच्० डी०)

अनन्तानन्त ब्रह्माण्डसर्जक करुणावरुणालय प्रभुकी अनन्त लीलाओंको मुख्यतया तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है— (१) प्रकृतिपार दिव्यधामकी लीला, (२) बाह्यजगत्‌में अनुभूयमान श्रीराम-कृष्णादि अवतारोंकी लीला और (३) भगवदुपासनारत साधकके विमल मनमें प्रकट-लीला। इनमें प्रथम लीलाके आनन्दका अनुभव प्रायः मुक्त जीव ही करते हैं जो दिव्यधामवासी हैं। वे ही इसमें भगवान्‌के सहचर बनते हैं। द्वितीय एवं तृतीय लीलाका अनुभव बद्ध जीव भी करते हैं और प्रायः ये ही लोग लीला-सहचर भी हैं, जैसे—श्रीराघवकी रणलीलाके सहचर वानरराज सुग्रीवादि। पर तृतीय कोटिकी लीलाका अनुभव साधकोंको छोड़कर अन्य कोई सामान्य प्राणी नहीं कर सकता। हाँ, महापुरुषोंकी अनुकम्पासे तो सब कुछ सम्भव हो जाता है।

भक्तिमती शबरी इन दोनों प्रकारकी लीलाओंमें भगवान्‌की सहचरी हैं, इसकी पुष्टि 'भुशुण्डिरामायण'से होती है। पम्पासरोवरके पश्चिमी तटपर दुर्धर्ष तपस्वी महर्षि मतंग अपने शिष्योंके साथ साधनारत थे। गुरु-सेवार्थ शिष्योंद्वारा वन्य-पुष्पादि लाते समय श्रमातिरेकके कारण जो उनके शरीरसे स्वेदविन्दु गिरते थे; वे ही उनके तपःप्रभावसे तत्काल पुष्पवृक्ष बनकर पुष्परूपमें प्रकट हो जाते थे, जो न तो कभी मुरझाते थे और न ही डालसे झरते थे। मतंग-शिष्योंसे व्याप्त यह वनस्थली 'मतंगवन'के नामसे प्रसिद्ध हो चुकी थी। यह ऋषिकी तपश्चर्या या भगवद्भजनका प्रभाव ही था कि यहाँ महाकाय हाथी-जैसे प्राणी भी कोई हानि नहीं पहुँचा सकते थे। यहींपर महर्षि मतंग और उनके शिष्योंकी सेवा करनेवाली एक भील-महिला निवास करती थी। जिसकी प्रसिद्धि 'शबरी' नामसे ऋषियोंतक ही नहीं, अपितु दुर्दान्त दैत्योंतक हो चुकी थी; क्योंकि कबन्ध-जै क्रूर राक्षसने ही श्रीरामको 'शबरी'का परिचय दिया थ

शबरी जिन महर्षियोंकी सेवा करती थी, उन्होंने अ परमधाम-गमनके समय उससे कहा था—'तुम्हारे इ पवित्र आश्रमपर परमात्मा श्रीराम पधारकर तुम्हें अ दर्शनसे कृतकृत्य कर देंगे'—

आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम्॥

(वा० रा० ३।७४।

शबरी मतंगवनमें दिन-रात प्रभुके पधारनेकी प्रती करने लगी। अहा! कैसी प्रतीक्षा है—कभी तो कुटीके ब आकर मार्गपर बड़ी दूरतक सतृष्ण दृष्टिपात करती कि प्र आ रहे हैं या नहीं! और कभी शीघ्रतासे अंदर जाती कि प्रभुके लिये बिछाया गया आसन अस्त-व्यस्त तो नहीं गया! उसे पुनः बिछाकर व्यवस्थित करके बाहर आ जाती है

यह भीलांगना श्रीराम-प्रेममें मतवाली है। प्रती करते-करते पल नहीं; अपितु यौवन भी ढल गया, गुरुवचनोंसे विश्वास न डिगा। अब शबरीकी दृष्टि युवावस्था नहीं है कि मात्र दृष्टिपातसे मधुर फलोंको पहचान ले औ आराध्यके सत्कार-हेतु संचित कर ले। अतः वह रसनेन्द्रि सहायता लेने लगी अर्थात् चख-चखकर फलोंको ए करने लगी। अब तो जलपात्रको ढोनेकी सामर्थ्य भी शबरीके हाथोंमें नहीं है कि चखनेके पश्चात् हस्त-प्र करके फल चयन करे। इधर श्रीरामका वनमें प हो चुका है और उधर मतंगवनके आस-पासके सांख्यतत्त्ववेत्ता, यागादि धर्मोंके अनुष्ठाता, वेदपाठी, त और त्यागी ऋषियोंके लिये शबरीकी अधम जाति उसका उक्त आचरण असह्य हो उठा। वे कहते हैं कि अधम नारीको श्रीरामका दर्शन नहीं हो सकता।

शबरीका श्रीराम-प्रेम तो निरन्तर बढ़ता जा रहा है। सतत श्रीराम-स्मरणने उसे प्रेमकी पराकाष्ठापर अधिष्ठित कर दिया। अब फलोंको चखनेके पश्चात् भी 'ये फल अमुक वृक्षके हैं'—ऐसा ज्ञान शबरीके हृदयमें नहीं टिक पाता है। अतः 'राम! राम! राम!' ऐसा सुमधुर नामोच्चारण करके जो फल चखनेसे सुमधुर प्रतीत होता है, उसे ही प्रभु-सेवार्थ ले लेती है।

इधर प्रभु श्रीराम ऋषियोंको कृतार्थ करते हुए विचरण कर रहे हैं। उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—'मैं प्रेमकी मूर्तिमयी देवी शबरीका दर्शन करना चाहता हूँ। वे मेरी परम भक्ता हैं।' प्रभुसे मिलनेके लिये योगी, सांख्यतत्त्ववेत्ता, यागादि-कर्मानुष्ठाता, स्वाध्याय-परायण तपस्वी और त्यागी अर्घ्य लेकर खड़े हैं। परंतु प्रभु सर्वप्रथम शबरीकी कुटीपर ही पहुँचते हैं। शबरीके द्वारपर पहुँचकर प्रभुने कहा—'प्रिय मित्र! देखो, शबरी किस प्रकार उत्सुकतासे मेरे आगमनकी प्रतीक्षा कर रही है। भैया! मेरे दर्शनकी उत्कट लालसावाले इसके नेत्रोंको देखो। आज मैं निश्चित ही इसे सुखी बना दूँगा।'—ऐसा कहकर श्रीराघवने शबरीकी कुटीमें पहुँचकर दिखला दिया कि मैं भक्तिसे मिलता हूँ—'**भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया**'।

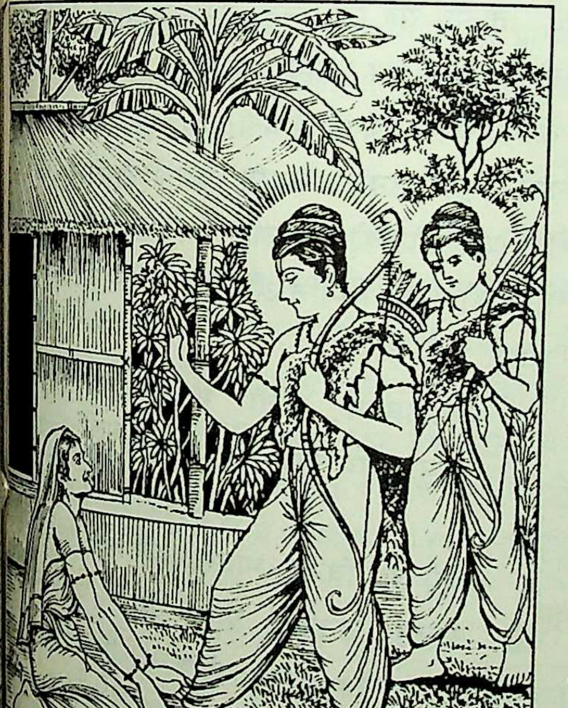

शबरीकी चिराभिलाषा पूर्ण हुई। प्रेमोन्मत्त शबरीने आतिथ्य-सत्कार किया। अनेक प्रकारके पदार्थोंके साथ अपनी भक्ता शबरीके उच्छिष्ट फलोंका भक्षण भी श्रीरघुनन्दनने कर लिया। स्वयं पितामह ब्रह्मा कह रहे हैं—

शबरीवदनोच्छिष्टैः प्रेमपूतैः फलै रसौ।
आत्मानं तर्पयामास सर्वाभ्यधिकसारवित्॥

(भुशुण्डिरामायण, दक्षिण खण्ड १६७। २३)

शबरीके मुखसे उच्छिष्ट फल उसके श्रीरामप्रेमके कारण पवित्र हो चुके थे। उन्हींसे दशरथनन्दन श्रीरामने अपनेको तृप्त किया, क्योंकि वे सर्वापेक्षया अधिक ही सारतत्त्वके ज्ञाता हैं। प्रभुने कहा—'शबरी! आज मैं तुम्हारे घर आकर तृप्त हो गया'—

अद्याहं खलु तृप्तोऽस्मि शबरि त्वद्गृहागतः।

(भुशुण्डिरामायण, द० ख० १६७। २७)

वस्तुतः अवाप्त-समस्तकाम प्रभु सर्वदा तृप्त हैं, पर भक्तोंसे सम्बद्ध वस्तुकी प्राप्तिके लिये अतृप्त-जैसे बने रहते हैं अर्थात् भक्तोंकी वस्तु प्राप्त करनेके लिये उतावले हो उठते हैं। अतः जिन्हें प्रभु-प्राप्तिकी इच्छा हो, उन्हें साधक या सिद्ध बननेकी अपेक्षा अधिक उचित यह है कि वे प्रभुके भक्तोंके बन जायँ। इसीलिये प्रभुने मात्र शबरीको ही नहीं, अपितु उसके सांनिध्यमें निवास करनेवाले पशु, पक्षी एवं ओषधियों तकको वरदान दे डाला।

शबरीको महान् पश्चात्ताप हुआ कि मुझ-जैसी अधम नारीने प्रेम-प्रवाहमें बहकर जगन्नियन्ता श्रीरामको अपना उच्छिष्ट खिला दिया। हा! मैंने महान् अनर्थ कर डाला। प्रभुने शबरीको समझाते हुए कहा—'शबरी! प्रेमरूपी वनमें निवास करनेवाली अतिशय धन्या शुकीने इन फलोंका आस्वादन किया था, जिससे ये मधुर हो गये थे—

जाने प्रेमवनीवास्तुः कापि धन्यतमाशुकी।
आस्वादयत् फलान्येतान्यतिमाधुर्यभाञ्जि यत्॥

(भुशुण्डिरामायण, द० ख० १६८। ९)

अतः तुम पश्चात्ताप न करो तात्पर्य यह कि इन मधुर फलोंसे मैं तृप्त हुआ हूँ। अतः माधुर्यका आधान करनेवाली

शुकीको अपने उच्छिष्ट कर्मको अनर्थकारक कर्म समझकर पश्चात्ताप नहीं करना चाहिये, क्योंकि स्वरूपतः कोई कर्म अच्छा या बुरा नहीं हो सकता, अपितु जिससे प्रभुकी प्रसन्नता हो, वही कर्म है अर्थात् अच्छा कर्म है—'**तत्कर्म हरितोषं यत्**' (श्रीमद्भा० ४। २९। ४९)। श्रीराघवेन्द्रने कहा कि मैं प्रेमके वशीभूत हूँ।'

शबरी चूँकि युगलोपासिका है। अतः श्रीविदेहनन्दिनी-रहित श्रीरामके साक्षात्कारसे लब्ध परमानन्दको अपूर्ण मानने लगी। तब प्रभुने कहा कि तुम्हें आगामी कल्पमें मेरे विहारस्थल प्रमोदवन (अयोध्याका एक प्रसिद्ध वन)-में जन्म प्राप्त होगा। उस समय तुम श्रीजूके सहित मेरा लीलामय साक्षात्कार करोगी। प्रमोदवन प्रभुकी विहारस्थली है। वहाँ निवास करनेवाले पशु-पक्षी तक प्रभुके लीला-सहचर हैं, फिर वहाँ जन्म लेनेवाली प्रेमोन्मत्ता शबरी यदि लीला-सहचरी हो जाय तो क्या आश्चर्य! श्रीराघवका शबरीके यहाँ पदार्पण देखकर ऋषियोंने भक्ता शबरी और भगवान् श्रीराघवकी भरपेट निन्दा की। भगवान्‌की निन्दासे परलोक बिगड़ता है, पर भक्तकी निन्दासे तो इहलोक और परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं—

हीयेतामुत्रिकं श्रेयो भगवन्मात्रनिन्दया।
ऐहिकं चामुत्रिकं च श्रेयस्तद्भक्तनिन्दया॥

(भुशुण्डिरामायण, द० ख० १६९। १६)

फलतः ऋषियोंके आश्रमके समीप प्रवहमान सरिता रक्तमयी हो गयी। हवन-सामग्रीमें कीड़ोंके प्रकोपके साथ ही अग्निहोत्रोपयोगी अग्नि भी बुझ गयी। अब न तो इहलोकका कोई कार्य कर सकते हैं और न ही परलोकका।

कर्मलोपके भयसे चारों ओर हाहाकार मच गया। इसी समय महर्षि अगस्त्य उन सबके बीच प्रकट हो गये। विचार-विमर्शके पश्चात् महर्षि कुम्भजने इन उपद्रवोंका कारण महापुरुषोंकी निन्दाको बतलाते हुए कहा कि बड़ोंकी निन्दा निन्दककी विद्या, वीर्य, यश और सम्पत्तिको नष्ट कर देती है—'**निन्दा हि महतां हन्ति विद्यां वीर्यं यशः श्रियम्**' (भुशुण्डिरा०, द० ख० १७०। १०)। अतः आप लोग परम पुरुष श्रीरामको प्रसन्न करें, वे अभी दूर नहीं गये हैं

तदनन्तर ऋषिगण अगस्त्यजीको आगे करके परमा
श्रीरामके समीप आये और क्षमा-याचना करने लगे। प्रभु
कहा कि मैं तो आप लोगोंका भक्त हूँ, आप लोगोंके लि
वनमें विचरण कर रहा हूँ। आपका अनिष्ट मेरी निन्
नहीं, अपितु महाभागा शबरीकी निन्दासे हुआ है।
भीलनी समझकर अपमानित मत कीजिये। वे तो सम
देवताओंकी भी प्रणम्या हैं। मानवोंकी क्या बात है?
चरणोंकी रजसे अतीर्थ भी तीर्थ हो जायँगे। अतः आप
ही प्रसन्न करें—

तस्याः पादरजःस्पर्शादतीर्थं तीर्थतामियात्।
अतो भूयः समाराध्या भवद्भिः सा किरातिनी॥

(भुशुण्डिरा०, द० ख० १७१।

तात्पर्य यह कि उनकी चरणरज धोकर नदीमें छोड़
तो वह तीर्थ बन जायगी। ऋषियोंने आकर शबरीको प्र
करके चरण-रजकी याचना की। शबरी बड़ी लज्जित हु
उसने स्वयं उठकर समस्त ऋषियोंको प्रणाम करके क
कि यदि छोटोंको बड़े लोग प्रणाम करें तो इससे अ
प्राणीकी आयु, सम्पत्ति और यश नष्ट हो जाते हैं, इसमें
संशय नहीं है—

अपकृष्टतमे जन्तौ महद्भिर्विहिता नतिः।
आयुः श्रियं यशो हन्ति तस्य नास्तीह संशयः॥

(भुशुण्डिरा०, द० ख० १७२।

शबरी बड़े विनीत-भावसे महर्षि अगस्त्यको प्र
और अन्ततः उन्हींकी प्रबल प्रेरणासे तत्तत् ऋ
आश्रमपर गयी। उसके चरण-रज-मिश्रित जलसे
पवित्र हो गयी। अग्निशालामें अग्नि प्रज्वलित हो
सभी उपद्रव शान्त हो गये। महर्षि अगस्त्यने
ऋषियोंके साथ उसकी बड़ी प्रशंसा की। तदन
अपने आश्रममें लौट आयी। प्रभुकी भक्तमहिमा-प्र
लीलाकी मुख्य सहचरी श्रीशबरी हैं। आगामी
प्रमोदवनमें लीला-सहचरी होनेका सौभाग्य
प्राप्त है।

※※※

श्रीहनुमंत-लीला

(स्वामी श्रीविद्यानन्दजी)

रामायण श्रीरामके कारण चरितार्थ हुई—यह सत्य है, परंतु उतना ही निर्विवाद सत्य यह भी है कि रामायण श्रीहनुमंतके कारण भी चरितार्थ हुई। स्वतन्त्र नाट्य-विद्याके अन्तर्गत रामायणके नायक श्रीरामके स्थानपर हनुमंत ही दीखते हैं, कारण सीता-खोजसे रावण-वधतकका घटना-क्रम तथा श्रीरामके अयोध्या लौटनेका संदेश पहुँचनेतकका समग्र लीला-नाट्य हनुमंतके ही चारों ओर घूमता है। ऐतिहासिक दृष्टिसे भी श्रीरामने परमधाम पधारनेके समय हनुमंतको ही अयोध्याका नेतृत्व सौंपा था। अत: कहा जा सकता है कि जैसे बिना श्रीरामके रामायणकी कथा नहीं, वैसे ही हनुमंतके बिना भी रामायण-कथाकी पूर्णता नहीं हो सकती।

श्रीहनुमंतका अग्रणीत्व—

श्रीहनुमंतका अग्रणीत्व उनकी जन्म-कथासे ही प्रारम्भ हो जाता है, जो तीन प्रकारसे विकसित होता है—(१) देह, (२) बुद्धि और (३) प्रताप।

हनुमंतकी माता अंजनी और पिता केसरी थे। अंजनी पूर्वजन्ममें पुंजिकस्थला नामकी श्रेष्ठ अप्सरा थीं। ऋषिके शापवश वानरी हुईं, तथापि उनका अप्रतिम लावण्य वरदानके कारण था। उनका लावण्य देखकर वायुदेव काम-मोहित हो गये और उन्होंने केसरीकी देहमें प्रवेश किया। अंजनीके पति होनेके साथ ही वे केसरी '**तेज प्रताप महा जग बंदन**' थे। वायुशक्तिसे विलक्षण गतिमान्, चपल तथा शक्तिसम्पन्न केसरी पिताके रूपमें श्रीहनुमंतको मिले थे। माताको अनुपम लावण्य प्राप्त हुआ था तथा महत्तेजके परिपूर्ण चरुपिण्डसे मानो ब्रह्मगोलक ही हनुमंतके रूपमें उत्पन्न हुआ था।

बलाढ्य-पितृत्व, सौन्दर्यशाली मातृत्व और ब्रह्मतेजका अवतरण—इन तीन सुवर्ण-सरिताओंसे युक्त मन:पिण्डयुक्त तेज-प्रभा ओतप्रोत हुई थी। जहाँ समर्थ रामदासजीद्वारा '**ईश्वरी**' कहकर सार्थक वर्णन किया गया, वहीं '**अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं०**' उनका ऐसा यथार्थ स्वरूप कहा गया। हनुमंतके श्रेष्ठत्वका यथार्थ वर्णन करते हुए '**जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्**' कहा जाता है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने '**बल बुधि बिद्या देहु मोहिं**' यह प्रार्थना हनुमंतसे की है। अध्यात्मक्षेत्रमें बुद्धिमान् मनुष्य ही भक्तिका आदर्श संस्थापित कर सकता है और जीवके उद्धारका मार्ग स्वत:के अनुसंधानसे प्राप्तकर दूसरोंको भी प्रेरित कर सकता है। हनुमंतकी लीलाओंसे प्रकट विराट् एवं कुशल- बुद्धिका परिचय मानवीय जीवोंको स्तम्भित कर देता है। समर्थ रामदास स्वामीने हनुमंतकी आरतीमें '**शक्तिबुद्ध जये ठायी। तेथे श्रीमंत धावती**' ऐसा भाव दिया है।

निर्भीक वक्तृत्व, शुद्ध स्मरण-शक्ति, वाक्-चातुर्य, युद्ध-कौशल, शास्त्र-पारंगतता तथा अनुभव-कौशल्य आदि राजदूत होनेमें आवश्यक गुण हनुमंतमें विद्यमान थे। रावणकी राजसभामें निर्भीक वक्तृत्वका परिचय उनके भाषणमें स्पष्ट परिलक्षित होता है। रावणको उन्होंने सशक्त शब्दोंमें नम्रतापूर्वक संदेश दिया, मार्मिक शब्दोंसे रावणकी त्रुटियाँ भी बतला दीं तथा अत्यन्त कुशलतासे सम्भाषणद्वारा नीति और सदाचारका पाठ भी पढ़ाया। उत्तम वक्तृत्व-शैली तथा वाक्-चातुर्य भी हनुमंतके पास थे। श्रीरामको हनुमंतके इन अगाध गुणोंकी पहचान ऋष्यमूक पर्वतपर प्रथम भेंटके समय ही हो गयी थी। श्रीराम लक्ष्मणसे कहते हैं—'सम्पूर्ण वेद-शास्त्रोंका इन्होंने अध्ययन किया है, ये अत्यन्त ज्ञानी हैं—ऐसा इनके बोलनेपर ही विदित हो जाता है कि इनके समान वाक्पटु संसारमें दूसरा कोई नहीं है।' हनुमंतकी स्मरण-शक्तिकी भी तुलना नहीं थी, श्रीराम इस बातको अच्छी तरह जान गये थे, तभी तो सीताको खोजनेका कार्य उन्होंने हनुमंतको ही सौंपा था। हनुमंतने सीताकी खोज तो की ही, साथ ही लंका नगरीका अत्यन्त सूक्ष्मतासे निरीक्षण भी किया। छोटी-छोटी बातोंको भी भलीभाँति स्मरण रखकर श्रीरामसे विस्तारपूर्वक बतला दिया, जिसमें सैन्य, संरक्षण-व्यवस्था, राज्यकी संरचना, संरक्षण-योजना और गुप्तमार्ग आदिका भी विषय सम्मिलित था। सीताकी खोजके अनन्तर युद्ध-कौशल भी दिखाया। लंकाकी कार्यसिद्धिमें युद्ध-कौशल, शास्त्र-पारंगतता, अनुभव-सम्पन्नता आदि इसीके द्योतक हैं। हनुमंतका अतुलनीय बुद्धि-वैभव तथा कार्यकुशलता अनेक प्रसंगोंमें द्रष्टव्य है—

जब द्रोणगिरि लानेके लिये जाते समय कपटसे मगरीने इन्हें निगला, जब अहिरावण तथा महिरावण एकसे सौ कैसे हो जाते हैं? इसका कारण ढूँढ़कर उन्होंने अमृतकुण्ड फोड़ा, जब चन्द्रसेनासे श्रीरामको घर लानेका वचन दिया, इन्द्रजित्की यज्ञाहुतिका ध्वंस किया और द्वापरयुगमें भीमका गर्व

चूरकर उसको श्रीकृष्णके व्यक्तित्वका रहस्य योगोपदेशद्वारा बतलाया इत्यादि।

जितना हनुमंतके देहका और बुद्धिका अग्रणीत्व है, उतना ही प्रतापका भी है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके कथनानुसार हनुमंतका प्रताप केवल त्रेतायुगतक ही सीमित नहीं है—**'*चारों जुग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा॥*'**—ऐसा कहते हुए आगे यह भी बताते हैं कि **'*साधु संत के तुम रखवारे। असुर निकंदन राम दुलारे॥*'** इसमें प्रतापकी व्याप्ति भी बतायी और प्रतापकी सामर्थ्य किस उपयोगके लिये है, यह भी दर्शाया। कृत, त्रेता, द्वापर और कलि—इन चारों युगोंमें दैवी शक्ति-सम्पन्न प्रभावी प्रतापी एकमेव हनुमंत ही हैं। इन्होंने अपनी सामर्थ्यका उपयोग केवल ऐसे साधु-संतोंके लिये ही किया, जिनकी अध्यात्म-सम्पदा केवल दीन-दुर्बलोंके उद्धारके लिये ही थी। हनुमंत दीनोंके तारणहार तथा अध्यात्म-प्रवणजनोंके पालनहार हैं अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णके वचनों—**'योगक्षेमं वहाम्यहम्'**-की पूर्ति करनेवाले प्रत्यक्ष हनुमंत ही हैं।

हनुमंतके साथ घटित अद्भुत घटनाओंसे यह सिद्ध होता है कि मात्र ईश्वर ही अपने भक्तको इतना सौभाग्य देकर गौरवान्वित कर सकता है। स्वयं प्रभु श्रीराम भक्त हनुमंतसे कहते हैं—'हे पुत्र, मैं तुझसे उऋण नहीं हो सकता'—**'*सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।*'**

तुलसीदासजीने इस अनुपम घटनाका कितने आर्त शब्दोंमें वर्णन किया है। हनुमंतने अपने सारे कर्तृत्व श्रीराम प्रभुको समर्पित कर दिया। श्रीराम प्रभु हनुमंतके आराध्य हैं। हनुमंतका अपने आराध्यके प्रति समर्पित-भाव इतना प्रचण्ड था कि आराध्यकी दीप्ति स्वतःमें समाहितकर आराध्यको भी दीप्तिमान् करनेका प्रभाव उन्होंने स्वतःमें निर्मित कर लिया था, जिसके साक्षी स्वयं जाम्बवंत हुए थे। कथा-प्रसंग अद्भुत होनेपर भी हनुमंतके प्रभावपूर्ण लीलाका यथार्थ वर्णन करनेवाला है। इन्द्रजित्से घनघोर युद्धमें सुग्रीव, नल, मयंद, द्विविद इत्यादि रथी-महारथी मृतवत् हो गये, केवल विभीषण तथा हनुमंत हाथमें मशालें लिये अँधेरी युद्ध-भूमिपर भ्रमण कर रहे थे। चारों ओर दुःखसे व्याप्त विह्वल करनेवाले आर्त-स्वर कानोंमें पड़ रहे थे, परंतु बोलनेकी स्थितिमें केवल जाम्बवंत ही थे। विभीषणने जाम्बवंतकी आवाज पहचानी और उनके पास जाकर पूछा—'हे आर्य! तीक्ष्ण बाणोंसे आपके प्राणोंका नाश तो नहीं हो रहा?' जाम्बवंत बोले—'मैंने तुम्हें स्वरके कारण पहचाना, परंतु तुम मुझे दिखायी नहीं दे रहे हो। अस्तु, हनु कहाँ हैं? जीवित तो हैं न?' विभीषण बोले—'राम, लक्ष अथवा सुग्रीव, अंगदकी पूछताछ छोड़कर आप हनुमंतकी पूछताछ क्यों कर रहे हैं? मारुतिके अतिरिक्त आप कि और से प्रेम नहीं करते क्या?' इस प्रश्नके उत्तरमें जाम्बवं कहे गये वचन लक्षणीय तथा चिन्तनीय हैं—'मैं मारुति पूछताछ इसलिये करता हूँ कि यदि वे जीवित हैं तो सभीके प्राण बचनेकी सम्भावना है, किंतु यदि हनुमंत जी नहीं रहे, तो हम सब मरेंगे यह निश्चित है।' इतनेमें ह आगे आ गये। जाम्बवंत बोले—'हनुमान्, तुम हिमाल जाओ, वहाँ सुवर्ण और कैलास—इन दो शिखरोंमें एक शिखर है, वहाँसे ये चार महौषधियाँ—मृत-संजीवनी, विशल्य सुवर्णकरणी तथा संधानी ले आओ। ये निरन्तर चमकती हैं, यही इनकी पहचान है। उन्हें लाकर तुम सबके प्राण सकोगे।' इसी कारण लक्ष्मणके भी प्राण बचे, यह सर्व सत्य है। ऐसे अलौकिक प्रतापके कारण ही हनुमंतको 'चिरं पद प्राप्त हुआ था।

लीला-लाघवी व्यक्तित्व—

पुत्रकामेष्टि-यज्ञमें अग्निदेवतासे पायस-दानके रूप पिण्ड दशरथको प्राप्त हुए थे, जिनका तीनों रानियोंमें वि हुआ था। कैकेयीके क्रोधित होनेके कारण उसको दिय पिण्ड पड़ा रह गया, जिसे संयोगसे चीलने झपट लिय बादमें वह अंजनीके हाथ लग गया। बाकी बचे दो तीनों रानियोंके हिस्सेमें आये। अतः राम, लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्नको अर्धपिण्डसे जन्म मिला, परंतु हनुमंत पूर्ण ब्रह्मगोलकके रूपमें जन्मे थे।

हनुमंतके पास जहाँ प्रगाढ़ बुद्धिमत्ता और चपल वहीं वाक्-पटुता और रण-कुशलता भी थी। साथ ही अखण्ड ब्रह्मचर्य तथा निष्काम कर्तव्यका योग था, सारे उत्कृष्ट गुण उनकी भक्तिके अंग मात्र ही थे। इसी उनकी असामान्य शक्ति सेवा-तत्पर बन पायी। बाल ऋषि-मुनियोंके साथ चंचलता प्रकट करनेवाला हनु होकर उनका दुष्टोंसे संरक्षण करने लगा। हनुमंतकी इतनी प्रबल थी कि भूख लगनेपर फल समझकर बिम्बपर ही उड़ान भर ली। जहाँ युद्धमें वे अतुलनी थे, वहाँ अशोक-वनमें असहाय एकाकी सीताके मन बड़ी सहृदयतासे जान पाये, कारण ऐसी मृदुता उनमें भरी थी। सीता-खोजके उपरान्त श्रीरामसे वृत्तान्त

इनके द्वारा कहे गये केवल **'दृष्टा सीता'** इन काव्यमय दो शब्दोंमें ही सीताकी खोज, उनकी सुरक्षा तथा उन्हें प्रत्यक्ष देखनेकी साक्षी—इन सारी बातोंका अनुबोध श्रीरामको हो गया तथा श्रीरामके लिये अब चिन्ता करनेकी बात नहीं है, यह अभिवचन भी मिल गया। अयोध्या लौटनेके समय भरतको समाचार देनेका काम भी श्रीरामने हनुमंतको ही सौंपा। हनुमंत उस कसौटीपर खरे उतरे तथा उन्होंने भगवान्‌को मन-ही-मन संतुष्ट कर दिया। हनुमंतने अलौकिक योगबलके आधारपर सुरसा राक्षसीको आश्चर्यचकित कर दिया। लंका नगरीमें प्रवेश करनेपर सूक्ष्म रूप धारण करके राक्षस-प्रासादोंके गवाक्षोंसे सीताको भी खोज निकाला, परंतु उस समय अनेक स्त्रियोंके वस्त्रहीन शरीरोंको देखनेपर भी हनुमंतके मनमें यत्किंचित् काम-विकार उत्पन्न नहीं हुआ। उन्होंने इतना मनोजय साधा था।

भक्ति, शक्ति, बुद्धि तथा युक्ति—इन चारों सम्मिलित गुणरूपी गुच्छोंको समाहित करनेका लाभ हनुमंतको प्राप्त था। स्वत: अथक कर्तव्य-सम्पन्न होनेके साथ चिरंजीवी होनेके संयोगने उनकी भक्तिके लिये काल भी कोई सीमा निर्धारित नहीं कर पाया। कलियुगमें भक्तिका किंबहुना ज्ञान-भक्तिके एकमेव आदर्श हनुमंत ही ठहरते हैं।

हनुमंतकी पारलौकिकता—

जहाँ लौकिक आचरणोंमें ही हनुमंतका व्यक्तित्व अलौकिक था, वहाँ अध्यात्मक्षेत्रमें तो वे विविधाङ्गी एवं सर्वोन्नत व्यक्तित्वके द्वारा सुवर्ण-शिखरपर पहुँच ही गये हैं। 'रामरहस्योपनिषद्'के अनुसार उन्होंने सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, शाण्डिल्य, मुद्गल आदि ऋषियोंके समक्ष राम-तत्त्वका प्रतिपादन किया था। इस उपनिषद्‌में दैवी अंशसे परिपूर्ण उनके प्रकट दिव्य शरीरका वर्णन मिलता है। हनुमंतके विविध उद्धार-लीलाओंसे उनकी पारलौकिक श्रेष्ठताके विषयमें कोई शंका बाकी नहीं रहती। उनके उद्गार हैं—

'नैव योज्यो राममन्त्रः केवलं मोक्षसाधकः।
ऐहिके समनुप्राप्ते मां स्मरेत् रामसेवकम्॥'

'राममन्त्र केवल मोक्ष-साधक है। जब आपत्ति-संकटकाल आये तो इन ऐहिक बातोंके लिये रामसेवक मानकर मेरा ही स्मरण करना।' जैसे सूर्य इतनी ऊँचाईपर होते हुए भी सामान्य घास-पत्तियोंको भी अपना प्रकाश प्रदान करता है, उसी प्रकार हनुमंत स्वतः ब्रह्माण्डके समान होते हुए भी सामान्य जनोंको ऐहिक दुःखोंसे छुटकारा दिला देता है। हनुमंतके कार्योंका आध्यात्मिक स्तर उच्च होते हुए भी वटवृक्षकी भाँति इतना व्यापक होता है कि उसमें लोक-जीवनके आधिभौतिक दु:ख भी समाविष्ट हो जाते हैं तथा आध्यात्मिक मार्गदर्शनद्वारा आत्मज्योतिकी ओर प्रवास भी निर्विघ्न हो जाता है। हनुमंतने श्रीरामसे अपने तीन भावोंको प्रकट किया—(१) देह-भाव, (२) जीव-भाव तथा (३) आत्मभाव—

'देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
आत्मदृष्ट्या त्वमेवाहमिति मे निश्चया मतिः॥'

'देहभावसे मैं तेरा दास हूँ, जीव-भावसे मैं तेरा अंश हूँ और आत्मभावसे तू और मैं एक ही हूँ।' ऐसा अपना नि:शंक मत हनुमंतने स्पष्ट किया है। युगों-युगोंसे चलनेवाला हनुमंतका जीवन इन तीनों भावोंका महान् आदर्श प्रस्तुत करता है। देहभावसे दीनोंका दुर्बलत्व हरण करते-करते आत्मभावसे सबका उद्धार करते जाना यही महान् दैवत है।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामको विष्णुका अवतार माना जाता है। श्रीराम और हनुमंतका जन्म एक ही ब्रह्मपिण्डसे हुआ है। ब्रह्मपिण्डके प्रभावके कारण ही बाल्यावस्थामें श्रीरामके द्वारा चमत्कारिक लीलाएँ घटित हुईं। ऐसा ही हनुमान्‌के साथ भी हुआ। अत: एक-से-एक वरदान प्राप्त हुए तथा विलक्षण सामर्थ्य तथा तेज हनुमंतके पास एकत्र हो गये, जैसे—इन्द्रसे वज्रदेह तथा सूर्यसे सभी शास्त्रोंका ज्ञान, आरोग्य और तेज प्राप्त हुआ। वरुणने अमरता प्रदान की, यमने अजरत्व दिया, कुबेरने अपनी विजयी गदाके साथ अजेयत्वका आशीर्वाद दिया, शंकरने सर्वशस्त्रोंसे अभय प्रदान किया, विश्वकर्माने चिरंजीवी रहनेका वरदान दिया, ब्रह्मदेवने अवध्यत्व, अमरत्व, महागतिमत्त्व तथा इच्छित रूप धारण कर सकनेकी सामर्थ्य प्रदान की। शक्ति, बल, बुद्धि एवं सामर्थ्यादि दैवी शक्तियोंका उपयोग हनुमंतने केवल लोक-कल्याणार्थ किया तथा कर रहे हैं। कभी उन्माद न करते हुए, नम्रताका स्थायीभाव रखते हुए सज्जनोंकी रक्षा और दुर्जनोंकी ताडना करते हुए उन्हें शिक्षा दी और आज भी हम सभीको दे रहे हैं।

सूर्यकी ओर की गयी उछाल भी साक्षात् भूलोकसे सत्यलोककी ओर की गयी उड़ान थी। ठोडीपर हुआ आघात सहन करनेपर उड़ान सफल हुई। ब्रह्मगोलक लोक-कल्याणार्थ अवतीर्ण करके आत्म-चैतन्यकी विश्व-चैतन्यके साथ गाँठ बाँध दी। मन और बुद्धिसे अतीत आत्मचैतन्य

मानवी जीवका मूलतः स्थायी रूप होता है। वह ब्रह्मचैतन्य ही साक्षी भावका प्रकट रूप धारण कर लिया। सत्यलोकमें निहित ब्रह्मतेजकी अवतरण-प्रक्रिया परिपूर्ण हुई। श्रीराम हनुमंतके लिये अवतीर्ण होते गये। हनुमंत उड़ानके संकेतसे ब्रह्मत्वके निकट पहुँचे। श्रीराम तथा हनुमान्ने परस्पर आलिंगन किया। अवतरण तथा उद्धरण-प्रक्रिया पूर्णदशाको प्राप्त हुई। चैतन्य जीव ब्रह्मचैतन्यमें लीन हो गया। गङ्गा-यमुनाके संगमके बाद फिर दोनों सरिताएँ गङ्गाके नामसे जैसे बहती हैं, उसी तरह जीव चैतन्य और ब्रह्मचैतन्य एकरूप होकर हनुमंतके नामसे भक्तिकी बाढ़को समृद्धि देते हुए निरन्तर गतिमान् है और रहेगा। हनुमंत-लीला अपार एवं अगाध है। इसमें किंचित् अवगाहन होनेपर भी मानव-जीवनकी सार्थकता निस्संदेह सध जाती है।

[अनुवादक—श्रीप्रभाकरजी पौण्डरीक]

* * *

श्रीहनुमान्जीकी विविध लीलाएँ

(मानसमणि पं० श्रीरामनारायणजी शुक्ल, शास्त्री, व्यास)

सीतापति भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका अवतार स्वामी-धर्मके आदर्शकी स्थापनाके लिये होता है। राजाको किस प्रकार प्रजाको धर्मकी शिक्षा देकर, उसे सन्मार्गपर चलाकर उसका लोक-परलोक बना देना चाहिये—अपने धर्म-मर्यादित लोक-ललित-लीलाओंमें मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामने यही किया। श्रीमारुतनन्दनजी श्रीमद्भागवत (५। १९। ५)-में कहते हैं—

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।

भगवान् प्राणिमात्रको मानवताकी शिक्षा देनेके लिये ही मनुज-अवतार लेकर लीला करते हैं, साथ ही अपने चरितसे वे धर्ममार्गका विस्तार करते हैं, जैसा कि इस श्रुतिवाक्यसे स्पष्ट भी है—

धर्ममार्गं चरित्रेण ……………………………।

(रामपूर्वतापनीयोपनिषद्)

—इन वचनोंकी प्रामाणिकता मर्यादावतारी प्रभुके स्वयंके वचनोंसे सिद्ध हो जाती है। वे कहते हैं—

भूयो भूयो भाविनो भूमिपाला
नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः।
सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणां
काले काले पालनीयो भवद्भिः॥

'हे भावी राजाओ! आप लोगोंको बारम्बार प्रणामकर श्रीराम याचना कर रहे हैं—यह जो सामान्य धर्मसेतु है, आप सभी लोग समय-समयसे इसका पालन—प्रचार-प्रसार करते रहेंगे [जिससे प्रजा इसका अनुसरणकर जीवनका लाभ प्राप्त कर ले]।' इस प्रकार जैसे श्रीराम स्वामी-धर्मका विजयध्वज फहराते हैं, ठीक इसी भाँति श्रीहनुमान्जी सेवा-धर्मका आदर्श पूरे विश्वमें स्थापित करते हैं। भगवान् शंकर ही हनुमान्के रूपमें अवतरित होते हैं—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस संकर भे हनुमान॥

(दोहावली १४२)

अवतार-लीला

श्रीमन्नारायणके मोहिनी-रूपको देखकर शिवजीका तेज विशीर्ण हो गया था, जिसे ऋषियोंने पत्रपुटकमें रख दिया था। समयसे भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोंमें विराजित दिव्य-विभूति वायुदेवने उस शिव-तेजको केसरी वानरकी धर्मपत्नी अञ्जनादेवीके कानोंके रास्ते उनके देहमें प्रविष्ट करा दिया। अञ्जनादेवीद्वारा महान् तप करनेपर परम संतुष्ट शिवजीने उन्हें वरदान दिया था कि हमारे तेजसे तुम्हें सर्वगुणसम्पन्न दिव्य पुत्रकी प्राप्ति होगी।

अवतरण-प्रसंगमें मारुतिजीका जन्म दो बार [कल्पभेदसे] माना जाता है—

(१) कार्तिक कृष्ण चतुर्दशिवारा। शनिके दिन भा पवन कुमारा॥

अगस्त्यसंहितामें लिखा है—

उर्जे कृष्णचतुर्दश्यां भौमे स्वात्यां कपीश्वरः।
मेषलग्नेऽञ्जनागर्भात् प्रादुर्भूतः स्वयं शिवः॥

(२) चैत्रे मासि सिते पक्षे पौर्णमास्यां कुजेऽहनि।

× × ×

एवं वानररूपेण प्रकटोऽभूत् क्षुधातुरः॥

अर्थात् चैत्र शुक्ल-पूर्णिमा, दिन भौमवारको मूँजकी मेखला, कौपीन (दिव्य लँगोट कसे हुए), कानोंमें चमकते स्वर्णकुण्डल एवं पीला यज्ञोपवीत धारण किये हुए महाछवियुक्त, स्वर्णवर्णके तुल्य देदीप्यमान देहकी कान्तिसे युक्त, मूँगेके समान रक्तिम आभायुक्त मुखवाले हनुमान्जी वानर-रूपमें भूखसे व्याकुल हुए ही प्रकट हुए—

जनमते जगी जठर की ज्वाल
गगन में मारी एक उछाल
बाल रवि लियो जानि फल लाल
तुम्हारी जय हो जय!!

बाल-लीला

छोटी गदा वपु छोटी लँगूर है शीश किरीट सुकाननवाला।
लाल लँगोट कसे पटपीत सुकण्ठ हियेपर मोतिन माला॥
खेलत खात फिरे गिरि कानन आनन पै रवि कोटि उजाला।
केशरि गोद लिये पुचकारत मातु दुलारि रही कहि लाला॥

माता अञ्जना अपने दूधके साथ श्रीरामकथामृत भी वत्सको पिलाती रहती थीं—

सेज पै पौढ़ि लिये सुत गोदमें रामकथा कहि दूध पिलावै।
पान करैं पय आतुर ह्वै मुख देखत और सुने सचुपावै॥
देर भये जननी गइ सोइ तो हाथन सों झकझोरि जगावै।
जागि परी तो कहैं हनुमान तूँ रामकथा मोहि क्यूँ न सुनावै॥

अहा! उनकी बाल-लीला भी कितनी दिव्य है, जिसमें वे रामकथामृत-रस-पानके लिये ही हठ करते हैं। यह हठ सर्वथा अलौकिक है, अप्राकृतिक है। इतना ही नहीं, निश्चित-रूपसे यह भक्त-हृदयकी पराकाष्ठा है, अपने आराध्यनिष्ठाकी चरम सीमा है। इस चरम और परमको लीलाके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है?

आञ्जनेय कुछ बड़े हुए। बालसुलभ चपलताके कारण वे गुफाके समीप प्रशान्त तपस्वी मुनियोंके पास जाकर कहते—'श्रीभगवन्नाम-कीर्तन करो बाबा! जिससे नामध्वनि सुनकर कीट-पतंग भी तर जायँ—उनका कल्याण हो जाय। समाधि लगानेसे तो केवल स्वयं मुक्त हो जाओगे। परोपकार करो महात्मन्!' इसी '**सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय**'की भावनासे भावान्वित हो भक्तराज प्रह्लादजीने भगवान् नृसिंहकी प्रार्थना करते हुए कहा था—

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः।
नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एको
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये॥
(श्रीमद्भा० ७। ९। ४४)

फिर तो जो संत नाम-कीर्तन करते, उनपर प्रसन्न होकर हनुमान्‌जी सुन्दर कन्द-मूल-फल भेंट करते। ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंसे सुन्दर सुस्वादु फल तोड़कर उन्हें फलाहार कराते। अन्य साधकोंकी पोथी, लँगोटी, धोती, अँचला पेड़पर टाँग देते, इतस्ततः बिखेर देते। अत्यन्त त्रस्त महात्माओंने सोच-विचारकर केसरी-किशोरको शाप दे दिया—'तुम जिस बलसे चंचल होकर ऊधम मचा रहे हो, उसे भूल जाओगे, जब कोई स्मरण करायेगा तभी कार्यमें प्रवृत्त हो सकोगे।' मारुतनन्दन प्रेम-विभोर हो नाचने लगे। यह देख मुनिगण आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने पूछा—'अरे बालक, हम लोगोंने तुम्हें शाप दिया है और तुम इतने प्रसन्न हो गये, क्या बात है?' अञ्जनीकुमार बोले—'मुझे शाप नहीं वरदान मिला है, जब मैं अपने बलको भूल जाऊँगा तभी तो प्रभुके बलका स्मरण रहेगा। अपने बलसे तो पस्त होनेका डर है, परंतु प्रभु बलसे मस्त हो जाऊँगा।' इसका एक दृष्टान्त श्रीरामचरितमानसके लंकाकाण्डमें प्राप्त होता है—'हनुमान्‌जी एवं लंकेश रावणके मध्य घोर युद्ध चल रहा था। हनुमंत शत्रुको पराजित न कर पा रहे थे। दशशीश रावण ही वहाँ शक्तिशाली पड़ रहा था, फिर तो प्रभुने सँभाल ही लिया'—

बुधि बल निसिचर परइ न पार्‌यो। तब मारुतसुत प्रभु संभार्‌यो॥
संभारि श्रीरघुबीर धीर पचारि कपि रावनु हन्यो।

बजरंगी विजयी हो गये। अस्तु, अब बाल हनुमान् शान्त हो गये। चंचलता बहुत कम हो गयी। एक दिन माता अञ्जनाने कहा—'बेटा! पढ़ने जाओ, क्या खेलमें ही दिन-रात लगे रहोगे?' मारुति बोले—माँ! तुम तो कथा सुनाती हुई मुझे बतलाती हो कि सब वेद, शास्त्र, पुराणका सार श्रीराम-नाम है, उसे तो मैं दिन-रात जपता हूँ, देखो मेरे रोम-रोममें रमणीय राम रम (चमक) रहा है—

किमि बरनों हनुमंत की कायकान्ति कमनीय।
रोम रोम में रमि रहा रामनाम रमनीय॥

माताने कहा—'हाँ ठीक है बेटा! पर ये तपस्वी संत लोग तुम्हारी जन्मपत्री देखकर कहते हैं कि ये हनुमान् शिवके अवतार हैं, तो बेटा! वैदिक सनातनधर्म-मार्ग तो शिवका ही है, उन्होंने तो स्वयं पूर्व-जन्ममें गुरु-अपमानके नाते काकभुशुण्डिजीको शाप देते हुए कहा है—***'जौं नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा॥'*** अस्तु, तुम्हें सनातन-परम्पराकी रक्षाके लिये गुरुकुलमें वेदाध्ययन तो करना ही होगा। तुम्हारे स्वामी श्रीराम जब-जब अवतार लेते हैं, सविधि गुरुकुलमें निवास करके ही अध्ययन करते हैं'—

गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥
जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥

× × ×

हनुमान्जीने आकाशमें जाकर सूर्यदेवसे समस्त शास्त्रोंका अध्ययन किया—

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्
सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम
ग्रन्थं महद्धारयन्नप्रमेयः॥

श्रीसूर्यनारायणने गुरुदक्षिणा-प्राप्तिके रूपमें मारुतिसे कहा—'जाओ ऋष्यमूक पर्वतपर मेरे अंशसे उत्पन्न सुग्रीवकी, उसके भाई बालिसे रक्षा करना। गुरु-आज्ञा-पालनसे तुम्हें अपने इष्टदेव श्रीरामका दर्शन भी वहीं हो जायगा, क्योंकि गुरुकृपापात्र ही भगवत्तत्त्वका ज्ञान साक्षात्कार कर सकता है'—'**आचार्यवान् पुरुषो वेद**'।

× × ×

हनुमान्जी ऋष्यमूक पर्वतपर सुग्रीवको सँभालते हुए अपने प्रभु श्रीरामका दर्शन पानेके लिये साधना करने लगे। भगवत्प्राप्ति नाम-जप और कथा-श्रवणसे सुलभ है। नाम-जपके विषयमें मानसमें लिखा है—

देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥

× × ×

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

मारुति तो श्रीराम-नामके स्वरूप ही हैं। कथा-श्रवणसे पाप कट जाते हैं और प्रभु सुलभ हो जाते हैं—

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम्।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्॥
धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुञ्चति।

(श्रीमद्भा० २। ८। ५-६)

अर्थात् नियमित कथा-श्रवणसे भगवान् अपने भक्तोंके हृदयमें विराजते हैं एवं उसके अन्तःकरणके समस्त दोषोंको धुन-धुन करके वैसे ही स्वच्छ कर देते हैं, जैसे शरद् ऋतुके आगमनसे समस्त जलाशयोंका जल स्वच्छ हो जाता है। इस प्रकार निर्मल-चित्त भक्त भगवान्के श्रीचरणोंके अपने हृदयमें प्रेम-रज्जुसे बाँध लेता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि हनुमान्जीके हृदय-मन्दिरमें प्रभुके श्रीचरणदेव विराजमान हैं—

युगल पदपद्म सुखसद्म पद्मालयं,
चिह्न कुलिशादि शोभाति भारी।
हनुमंत-हृदि विमल कृत परमंदिर,
सदा दासतुलसी-शरण शोकहारी॥

(विनय-पत्रिका ५१)

आञ्जनेय कथा-रसिक प्रसिद्ध ही हैं—

'जयति रामायण-श्रवण-संजात-रोमांच,
लोचन सजल, शिथिल वाणी।'

(विनय-पत्रिका २१)

महान् संत परमाचार्य श्रीदेवर्षि नारदजी नित्य हनुमान्जीको ऋष्यमूक पर्वतपर कथा सुनाते थे—

राम जनम सुभ काज सब कहत देवरिषि आइ।
सुनि सुनि मन हनुमान के प्रेम उमँग न अमाइ॥

(रामाज्ञा-प्रश्न ४। ४। १)

श्रीहनुमान्जी नित्य नियमसे प्रभु-चरित-श्रवणकर विह्वल हो जाते थे। एक दिन मारुतिने नारदजीसे पूछा—'आपको किस गुरुने व्यास—कथा-वाचक बनाया है। आपके श्रीमुखसे निकली हुई कथा-रसकी अमृतमयी धारा प्रवाहित होकर मुझे तो परमानन्दमें डुबो देती है।' नारदजीने कहा—'मेरे पिता ब्रह्माजीने ही मुझे भगवत्तत्त्वका ज्ञान कराया है'-

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा।

(श्रीमद्भा० १२। १३। १९)

देवर्षि कहते हैं—'मारुते! मेरे पिता विधिने कहा है कि व्यास-आसनपर बैठकर यही संकल्प करना कि 'संसारके समस्त जीव (मनुष्य) अखिल ब्रह्माण्डनायक (आधार) सर्वात्मा हरि भगवान्के भक्त हो जायँ।' भक्तराज महावीर वज्राङ्गने पूछा-'यह सत्य है?' नारदजी बोले—'हाँ सत्य है—परम सत्य है।'

यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति।
सर्वात्मन्यखिलाधारे इति संकल्प्य वर्णय॥

(श्रीमद्भा० २। ७। ५२)

मारुतनन्दन! मेरे पूज्य पिताजीने निर्मल-चित्तसे तीन बार समस्त वेदोंका अनुशीलन किया। उन्हें भगवत्प्रेम ही सार-रूपमें प्राप्त हुआ। भगवान्में प्रेम होना ही महापुरुषार्थ है-

भगवान् ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया।
तदध्यवस्यत् कूटस्थो रतिरात्मन् यतो भवेत्॥

(श्रीमद्भा० २। २। ३४)

विश्व-ब्रह्माण्डको अपने लीला-वैचित्र्यसे सराबोर करनेवाले भगवच्चरणानुरागी लीलाधारी श्रीहनुमान्जी नारदजीके कथा-रसरूपी परम प्रेमके लीला-समुद्रमें निमग्न हो गये।

* * *

जनकललीजीकी रुदन-लीला

(डॉ० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी, 'रत्नमालीय')

यस्याः कलांशकलया किल माययेदं
संचाल्यते प्रबलसंसृतिचक्रमञ्जः।
यन्नामसाररसिका भुवि भूरिभागा
गच्छन्त्यनामयपदं प्रणता वयं ताम्॥
यस्या विना करुणया करुणाब्धिमूर्तेः
प्राप्तिः कथंचिदिह दाशरथेर्न हि स्यात्।
सा सर्वदाऽनुपमनित्यपवित्रकेलिः
सच्चिन्मयी सुखनिधिः शरणं ममास्तु॥

(जानकीचरितामृतम् ५१। २७-२८)

'जिनकी कलाकी अंशमात्र शक्तिरूपिणी माया इस संसाररूपी प्रबलचक्रको अनायास चलाया करती है तथा जिनके नामरूपी सारका रसास्वादन करनेवाले बड़भागी लोग सर्वव्याधिरहित भगवद्धामको प्राप्त होते हैं, उन सर्वेश्वरी, रामवल्लभाको हम प्रणाम करते हैं। जिनकी कृपाके बिना करुणामूर्ति दाशरथिकी प्राप्ति किसी प्रकार भी नहीं होती, जिनकी क्रीडाएँ उपमारहित, एकरस रहनेवाली एवं पवित्र हैं, वे सत्-चित्-सुखमयी सर्वेश्वरी रामवल्लभा मेरी रक्षा करें।'

आज मिथिलेशके महलमें बड़ी बेचैनी छायी हुई है। जिसको देखो, उसीका चेहरा उतरा हुआ दिखायी पड़ता है। स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े, दास-दासी, पशु-पक्षी—सब-के-सब उद्विग्न हैं। चारों तरफसे लोग दौड़ते-उमड़ते चले आ रहे हैं। जो जहाँ सुनता है वहींसे व्यग्रतासे चला आ रहा है। कोई स्त्री पलनेमें अपने बच्चेको अकेला छोड़ दौड़ी चली आ रही है, तो कोई अपनी गोदमें बालक उठाये दौड़ी आ रही है। कोई दही मथना छोड़कर चली आ रही है, तो कोई घर-बुहारना अधूरा छोड़कर। कोई खूँटेपर बँधी गायको चारा-पानी देना भूल गया है, तो कोई कपड़ा बदलना। कोई नंगे पैर चली आ रही है, तो कोई एक ही पैरमें चप्पल लगाये। कोई ओखलमें चिउड़ा कूटना बाकी छोड़कर आ रही है, तो कोई दरवाजेकी सीकड़ लगाना भूल गयी है। कोई एक आँखमें ही काजल लगाये चली आ रही है, तो कोई पानी भरनेके लिये उबहन लिये ही दौड़ी चली आ रही है। सारे नगरमें खबर बिच्छूके डंककी तरह फैल गयी है कि आज मिथिलेशललीकी तबीयत खराब है। सारा रनिवास सुनयनाजी, कान्तिमतीजी, सुभद्राजी, सुदर्शनाजी, सुचित्राजी, सुखवर्धिनीजी, सहजासुन्दरिकाजी, मोहिनीजी, सुवृत्ताजी, क्षेमवर्द्धिनीजी, शशिकलाजी, शशिकान्ताजी, विदग्धाजी, विशालाक्षीजी, अशोकाजी, विनीताजी, शोभनाङ्गीजी और चन्द्रप्रभा आदि राजरानियोंकी उपस्थितिसे ठसाठस भरा है। सब-की-सब सुनयनाजीको धीरज बँधा रही हैं, किंतु हृदय तो सबका बैठा जा रहा है।

आज तो जानकीजीका रोना-चीखना ही नहीं बंद हो रहा है। कभी वे आँखें बंद कर लेती हैं, कभी थोड़ा खोलती हैं, कभी निःस्पन्द-सी पड़ जाती हैं, तो कभी हाथ-पैर पटकने लगती हैं, कान्तिमती और सुनयनाजी बार-बार उन्हें छातीसे सटाती हैं, दूध पिलानेका प्रयास करती हैं; किंतु जनकललीकी पीड़ा तो मानो शान्त होनेका नाम ही नहीं लेती। कोई कहता है कि बिटियाको कोई असाध्य बीमारी हो गयी है, तो कोई कहता है कि क्रूर ग्रह-बाधा है। तरह-तरहकी आशंकाओंसे सभीका मन अत्यन्त व्यथित है। सेवक वैद्यराजको बुलानेके लिये दौड़ाये जाते हैं। कोलाहल मचा हुआ है। कोई कहता है कि 'दृष्टि-दोषके कारण ही यह व्याधि उत्पन्न हुई जान पड़ती है। अतः किसी सुविज्ञ तान्त्रिकको ही व्याधि-शान्तिके लिये बुलाया जाय'—

दृष्टिदोषोद्भवो व्याधिर्हेतुरत्रावगम्यते।
तत आनीयतां कोऽपि तान्त्रिको व्याधिशान्तये॥

(जा० च० ३९। ६)

जब जनकपुरीकी यह विह्वलता पुरवासियोंके परमाराध्य, भक्तसहाय भगवान् शंकरके कानोंमें गूँजती है, तब वह सत्वर चल पड़ते हैं—एक वृद्ध, सिद्ध तान्त्रिकका वेश बनाये हुए। उनके मनमें जनकललीके दर्शनकी तीव्र लालसा है—

दर्शनार्थं ततो देवः सुताया मिथिलेशितुः।
विग्रहं वेष्टितं चक्रे कन्थया वार्द्धकेन च॥

(जा० च० ३९। १०)

गुदड़ी लपेटे, काँपता हुआ शरीर धारण किये हुए वे गलियोंमें पहुँचकर विज्ञापित करते हैं—'मिथिलापुरीके निवासियो! देश-देशका परिभ्रमण करता हुआ मैं तुम्हारे नगरमें आ गया हूँ। व्याधि-निवारण मेरा जीवन-व्रत है। किसी नगरमें मैं रातभरसे अधिक ठहरता नहीं और एक भी रोगी ठीक किये बिना अन्न-जल भी ग्रहण नहीं करता हूँ। किसीको यदि दुस्सह कष्ट हो तो आये और आरोग्य लाभ करे।'

जिस समय तान्त्रिकके आगमनकी खबर रनिवासमें पहुँचती है, उस समय लोगोंकी खुशीका ठिकाना नहीं रहता। सूखते धानमें जैसे पानी पड़ जाय, मरीचिकाग्रस्त म्रियमाण मृगको जैसे जल प्राप्त हो जाय, वैसे ही सब लोग उत्कण्ठित हो कह उठते हैं कि विधाताने बड़ी कृपा की।

शीघ्र ही राजमहलसे दक्षिका नामकी दासीको उस तान्त्रिकके पास भेजा जाता है। तान्त्रिकके पास पहुँचकर चरणोंमें गिरकर वह राजभवनमें चलनेकी प्रार्थना करती है—

तान्त्रिकोऽसि यदि ब्रह्मञ्छिशूनां सर्वकष्टहा।
महाराजसुतां पश्य प्रयायान्तःपुरं मया॥
समाह्वयति राजा त्वां तदर्थं प्रेषिताऽस्म्यहम्।
विलम्बो नात्र कर्तव्यस्त्वया लोकहितैषिणा॥

(जा० च० ३९। १७-१८)

'हे ब्रह्मन्! यदि आप शिशुओंके सभी कष्टोंको दूर करनेमें समर्थ तान्त्रिक हैं, तो मेरे साथ शीघ्र चलिये और महाराजकी पुत्रीको देखिये। महाराज जनकने आपको बुला लानेके लिये ही मुझे भेजा है। आप तो सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी ठहरे, अतः अब विलम्ब नहीं करना चाहिये।'

प्रसन्न-मन तान्त्रिक कहते हैं—'भद्रे! यदि ऐसी कोई बात है तो मैं अवश्य चलूँगा। किसी प्रकार व्यग्र होनेकी आवश्यकता नहीं है।'

ऐसा कहकर वे दासीके साथ अन्तःपुरमें जा पहुँचते हैं। उन्हें देखते ही मिथिलेश आसनसे उठकर साष्टाङ्ग प्रणाम करके सुनयनाजीके पास अन्तःप्रकोष्ठमें ले जाते हैं। वे भी आदरपूर्वक खड़ी होकर, स्वागत-प्रणाम-पुरस्सर उन्हें किशोरीजीके पास ले जाती हैं। रुग्ण शिशुको देखकर वृद्ध तान्त्रिक भावविह्वलतावश मूर्च्छित हो जाते हैं। प्रेममूर्ति भगवान् शंकर जो ठहरे—

तत्क्षणं शंकरो देवः प्रेममूर्च्छामुपागमत्॥

(जा० च० ३९। २५)

सुनयनाजीकी तो 'काटो तो खून नहीं' वाली स्थिति हो जाती है। वे विलखती हैं—

'हे विधि! यह कौन-सी विकट बीमारी प्रकट हुई है कि रोग दूर होना तो दूर चिकित्साके लिये आये हुए तान्त्रिकशिरोमणि भी मूर्च्छित हो गये। ब्राह्मण-मृत्युका दुर्दृश्य भी देखना पड़ेगा क्या?'—

को व्याधिरत्र संजातः मद्गेहे सुमहान् बली।
येन युक्ताऽस्ति मे पुत्री प्राणैरपि गरीयसी॥
तां चिकित्सितुमायातो योऽधुना तान्त्रिको महान्।
सोऽपि नूनं तदाक्रान्तो नष्टसंज्ञ इवेक्ष्यते॥

(जा० च० ३९। २६-२७)

सुनयनाजीद्वारा इस प्रकारका व्यग्र विलाप करते देख भोलेनाथकी भाव-समाधि भंग होती है। वे 'हरि! हरि!' कहते हुए आँखें खोलते हैं। हर्षित सुनयनाजी अपने भाग्यकी सराहना करती हैं—

'विप्रशिरोमणि! बड़े सौभाग्यकी बात है जो आपको व्याधिने छोड़ दिया और आप सचेत हो गये।' उनकी व्याकुलता लक्षितकर तन्त्राचार्य सान्त्वना देते हैं—'मेरी चिन्ता मत करो मइया। गुरुदेवकी कृपासे और तन्त्र-मन्त्र-नैपुण्यवश मैं किसी भी व्याधिकी पकड़से परे हूँ। कोई भी आधि-व्याधि मेरे पास फटक नहीं सकती। हे करुणामयी! आपके कारुण्यकी बलिहारी है कि आप मेरे ध्यानयोगको भी व्याधि मान बैठीं। मैंने गुरुदेवका ध्यानकर समस्त व्याधि जान ली है और इसका निदान मेरे सिरमें है'—

दृष्ट्वा त्वत्पुत्रिकाव्याधिं गुरुदेवः स्मृतो मया।
तेन यद्दर्शितं तन्त्रं तत्तु मे शिरसि स्थितम्॥

(जा० च० ३९। ३५)

अब आप देखती रहें। कुछ ही पलोंमें मैं इसे निर्मूल किये दे रहा हूँ। वे तीन बार पालनेकी परिक्रमा करते हैं और अपना सिर जनकतनयाके तलवोंमें सटा देते हैं। उनकी इस क्रियासे चकित सुनयनाजी कह उठती हैं—

'अहो योगिराज! आप यह कैसा अनुचित कर रहे हैं। आप वृद्ध हैं, ब्राह्मण हैं, लोगोंको नरकमें ढकेल रहे हैं। आप वृद्ध हैं, ब्राह्मण हैं

तन्त्रज्ञ हैं और परम योगी हैं। इस कन्याको आप आशीर्वाद ही प्रदान करें। हमारे-जैसे क्षत्रियकुलोत्पन्न लोगोंका स्थान तो आपके चरणोंमें ही है। चरणसे आपका शिर-स्पर्श हमारी कुलमर्यादाके विरुद्ध है।'

सुनयनाजीकी हिचकिचाहट देख तान्त्रिकाचार्य उन्हें थोड़ा डाँटते हुए कहते हैं—

'अरी माता! यह तान्त्रिक उपचार-प्रक्रिया है। इसमें टोकाटाकी नहीं करनी चाहिये। आप चुपचाप देखती रहें। आपकी कन्या कुछ ही पलोंमें नीरोग हो जायगी और मुसकराती हुई दुग्धपानद्वारा आपको हर्षित करेगी'—

इदानीमेव संहृष्टा स्मयमानमुखाम्बुजा।
कुलोद्योतकरीयं ते पयःपानं विधास्यति॥

(जा० च० ३९। ४३)

सब प्रकारसे सान्त्वना प्रदानकर तन्त्राचार्य मन-ही-मन जानकीजीकी स्तुति करने लगे—

जय जय शिशुरूपे तप्तचामीकराभे
विमलकमलनेत्रे पूर्णशीतांशुवक्त्रे।
निखिलभुवनजीवानन्दनिःश्रेयसे
श्रीजनकनृपतिगेहे क्रीडमाने प्रसीद॥

(जा० च० ३९। ४५)

'हे शिशुरूप धारण करनेवाली, तपाये हुए सोनेके समान निर्मल कान्तिवाली तथा उज्ज्वल कमलके समान नेत्रोंवाली और पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली किशोरी! आपकी जय हो! जय हो! समस्त भुवनके जीवोंको आनन्द और परम मङ्गल प्रदान करनेवाली जनकजीके महलमें खेलती हुई आप प्रसन्न होवें।'

जनकनृपतिकन्ये भावगम्ये शरण्ये
विरचितशिशुरूपे सच्चिदानन्दमूर्ते।
उरसि मम सदैवानेनरूपेण कामं
विहर ससुखमम्बोत्सङ्गसिंहासनस्थे॥

(जा० च० ३९। ५०)

'हे भावसे प्राप्त होनेमें सुलभ श्रीमिथिलेशकुमारीजी! प्राणिमात्रकी रक्षा करनेमें समर्थ, शिशुरूप धारण की हुई, सुनयनाजीके उत्संगरूपी सिंहासनपर विराजमान सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी! स्वेच्छानुसार आप इसी शिशुस्वरूपसे मेरे हृदयमें सुखपूर्वक विहार करती रहें।'

तान्त्रिकाचार्य (शंकरजी)-की भावभरी प्रार्थनासे संतुष्ट जानकीजी प्रकृतिस्थ हो जाती हैं, आरामसे आँखें खोल देती हैं और समूचे रनिवासमें आनन्दकी लहर दौड़ जाती है।

प्रसन्नमना जानकीजीको सुनयनाजी दूध पिलाती हैं और वे प्रेमपूर्वक, चिर-पिपासित-मुद्रामें—दुग्ध-पान करने लगती हैं। सारा वातावरण हर्ष-विभोर हो उठता है। राजा-रानी तन्त्राचार्यकी प्रशंसा करते हैं। वे उनके ऊपर स्वर्ण, कोष, पुर, राज्य न्योछावर करने लगते हैं, जिन्हें अस्वीकार करते हुए वे कह पड़ते हैं—

हरि! हरि! यह सब तो मेरे ऊपर बरसायी गयी हरि-कृपा एवं गुरुकृपाका प्रभाव है। मुझे स्वर्ण, कोष, राज्य आदिसे क्या लेना-देना? यदि आपकी कुछ देनेकी ही अभिलाषा है तो मुझे इस कुमारीद्वारा पहना हुआ कोई कपड़ा दे दीजिये। जबतक वह मेरे पास रहेगा, तबतक आपकी पुत्रीके पास कोई बीमारी नहीं फटक पायेगी। सुनयनाजी तत्काल वस्त्र देकर उनके चरणोंमें लोट जाती हैं। आशीर्वाद देकर मिथिलेशललीकी तीन बार पुनः परिक्रमा करके अपने सिरसे उनका पाद-स्पर्शकर आचार्यप्रवर विदा होते हैं।

ऐसी जगज्जननी जनकनन्दिनीजीको जी-भर प्रणाम—

तस्यै नमः सततमस्तु सहस्रकृत्वः
सीतेति नाम भुवनप्रथितं यदीयम्।
या सानुकम्पहृदयेन निजेन रामं
सर्वेश्वरं कृतवती परितो विमुग्धम्॥

(जा० च० १। २)

'जिन्होंने अपने सहज दयापरिपूर्ण हृदयद्वारा सब प्रकारसे सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजीको मुग्ध कर रखा है, जिनका 'श्रीसीताजी' ऐसा सुन्दर मनोहर मङ्गलकारी नाम आज तीनों लोकोंकी जिह्वापर विराजमान है, उन श्रीकिशोरीजीके लिये सहस्रों बार सर्वदा प्रणाम है।'

⁂

बालचरित बिलोकि हरषाऊँ

(श्रीआनन्दीलालजी यादव)

सुमिरत प्रभु लीला सोइ पुलकित भयउ सरीर॥

(रा० च० मा० ७। ७५ ख)

भगवान् श्रीरामकी बाल-लीलाओंके स्मरणसे काकभुशुण्डिजीका तन-मन पुलकित हो गया, और उन्होंने श्रीरामकी लीलाकथाकी महिमाका गुणगान करते हुए कहा—'हे पक्षिराज गरुडजी! जब-जब श्रीराम मनुष्य-शरीर धारण करते हैं, तब-तब मैं अयोध्यापुरीमें जाकर उनका जन्म-महोत्सव देखता हूँ और पाँच वर्षतक वहीं रहकर प्रभुकी बाल-लीलाएँ देखकर हर्षित होता हूँ'—

जन्म महोत्सव देखउँ जाई। बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई॥

(रा० च० मा० ७। ७५। ४)

अपने इष्टदेव बालरूप श्रीरामकी एक अलौकिक बाल-लीलाको सुनाते हुए काकभुशुण्डिजी बोले—हे गरुडजी! एक दिन अयोध्याके राजमहलके आँगनमें बालक राम अपने भाइयोंके साथ खेलते हुए विचरण कर रहे थे। उनका कोटिकाम-कमनीय श्याम-शरीर वस्त्राभूषणोंसे शोभायमान था। जब वह किलकारी मारकर मुझे पकड़ने दौड़ते, तब मैं दूर चला जाता था। इसपर वह मुझे रिझाने-हेतु पूआ दिखाते थे। जब मैं उनके चरणस्पर्श-हेतु उनके पास जाता, तब वह दूर भागते हुए मुड़-मुड़कर मेरी ओर देखते थे। साधारण बच्चों-जैसी इस लीलाको देखकर मुझे भ्रम हो गया कि प्रभु कौन-सी विचित्र लीला कर रहे हैं।

हे पक्षिराज! इतनी-सी शंका करनेसे मैं प्रभुकी मायासे मोहित हो गया। बालक राम मुझे चकित देखकर मुसकराकर मुझे पकड़ने दौड़े और मैं तुरंत आकाशमें उड़ गया। आकाशमें उड़ते हुए मैंने पीछे मुड़कर देखा कि मुझे पकड़ने-हेतु फैली हुई प्रभुकी भुजा मेरे बिलकुल पास थी।

मैं भयभीत होकर जैसे-जैसे आकाशमें दूरतक उड़ता, वैसे-वैसे ही वहाँ श्रीहरिकी भुजाको अपने पास देखता था—

तब मैं भागि चलेउँ उरगारी। राम गहन कहँ भुजा पसारी॥
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ भुज हरि देखउँ निज पासा॥

(रा० च० मा० ७। ७९। ७-८)

'हे गरुडजी! मैं ब्रह्मलोकतक उड़कर गया। वहाँ भी मैंने प्रभुकी भुजाको अपने पास देखा। श्रीरामकी भुजा औ मेरे बीच केवल दो अंगुलका फासला था। मैं अपनी गति अनुसार सातों आवरणोंको भेदकर आगे बढ़ा। वहाँ उनकी भुजा देखकर मैं व्याकुल हो गया'—

ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात॥
सप्तावरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि॥

(रा० च० मा० ७। ७९ (क-ख))

मैंने भयभीत होकर आँखें बंद कर लीं। आँ खोलनेपर मैंने अपनेको अयोध्यामें पाया और मुझे देख प्रभु मुसकराने लगे। ज्यों ही उन्होंने हँसनेके लिये मुँ खोला, त्यों ही मैं उनके मुखमें चला गया।

हे पक्षिराज! मैंने उनके उदरमें अनेक ब्रह्माण्डों समूह देखे, जिनकी विचित्र रचनाएँ एक-से-एक बढ़क थीं। ब्रह्माजी, शिवजी, सूर्य एवं चन्द्रमा, यम, लोकपाल पर्वत, भूमि, नदी, तालाब, वन, देवता, मनुष्य, किंनर, सि तथा विभिन्न प्रकारके जड-चेतन जीव देखे; जिन्हें क न देखा था और न ही कभी उनके बारेमें सुना था।

मैं प्रत्येक ब्रह्माण्डमें सौ वर्षतक रहा। प्रत्येक ब्रह्माण्ड रचना भिन्न थी। वहाँ अवधपुरी तथा सरयूजी भी भिन्न थीं। दशरथजी, कौसल्याजी तथा भरतजी आदि भाई भी भि थे। इस प्रकार मैंने प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रामावतारकी अ बाल-लीलाएँ देखीं। मैंने असंख्य ब्रह्माण्डोंमें एक ही देखे। इसके बाद मैंने अपने आश्रमपर कुछ समय व्य किया। राम-जन्मका समाचार सुनकर मैं अवधपुरी पहुँ और वहाँ कृपालु श्रीरामको देखा। दो घड़ीमें ही अने ब्रह्माण्डोंके लीला-दृश्य मेरे मानस-पटलपर एक ही द्रुतगतिसे घूम गये। अब मैं मोहरूपी बुद्धिसे थककर व्या हो गया। मेरी व्याकुलता देखकर प्रभु हँसने लगे और मैं मुँहसे बाहर आ गया। पुनः श्रीराम वही लड़कपनकी ली करने लगे। मेरे मनमें शान्ति नहीं थी—'मैं प्रभुकी प्रभु स्मरण करके सुध-बुध खो बैठा और 'हे आर्तजनोंके र

रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—पुकारता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा। प्रभुने अपनी मायाका विस्तार रोककर मेरे सिरपर हाथ रखा, जिससे मेरा सम्पूर्ण दुःख मिट गया'—

देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई॥
धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता॥
प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी॥
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयाल सकल दुख हरेऊ॥
(रा० च० मा० ७। ८३। १—४)

मैंने अनेक प्रकारसे प्रभुकी विनती की और कृपालु श्रीरामने मुझे सब गुणोंकी खान भक्ति प्रदान की। तबसे मुझे माया नहीं व्यापती है।

हे गरुडजी! श्रीराम और लक्ष्मणजीको नागपाशसे मुक्त करते समय आप मेरे समान ही प्रभुकी मायासे मोहित हो गये हैं। प्रभुकी कृपासे ही इससे छुटकारा सम्भव होगा। यह भी श्रीरामकी कृपा है कि आपने यहाँ आकर मुझे पवित्र किया है, जिससे प्रभुका गुणगान हुआ है। अस्तु; 'जब-जब श्रीराम मनुष्य-शरीर धारण करते हैं और भक्तोंके लिये बहुत-सी लीलाएँ करते हैं, तब-तब मैं अवधपुरीमें उनकी बाल-लीलाएँ देखकर हर्षित होता हूँ'—

जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं॥
तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ॥
(रा० च० मा० ७। ७५। २-३)

* * *

भगवान् शिवकी त्रिपुरदहन-लीला

(आचार्य श्रीगंगारामजी शास्त्री)

भगवान् शिवका एक नाम 'नटराज' भी है। नटोंका काम होता है अनेक प्रकारके चमत्कारपूर्ण करतब दिखाना, जिसे हम नटोंके खेल कहा करते हैं। भगवान् शिव ठहरे नटराज, इसलिये उनके कृत्य तो और भी अधिक रहस्यमय और चमत्कारोंसे भरे होंगे ही। उनकी त्रिपुरदहन-लीलाके सम्बन्धमें 'श्रीशिव महिम्नःस्तोत्र' श्लोक-संख्या १८ में कहा गया है—

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः॥

हे ईश! आपने त्रिपुरका ध्वंस करनेके लिये पृथ्वीको रथ, ब्रह्माको सारथि, सुमेरुको धनुष, सूर्य और चन्द्रको रथके पहिये और विष्णुको बाण बनाया। त्रिपुर तो आपके लिये तृणके समान था, परंतु उसे जलानेके लिये आपने इतना बड़ा आडम्बर (लीला) किया, यह किसलिये? जो ब्रह्मा तथा विष्णुसे अपराजेय कामदेवको दृष्टिविक्षेप-मात्रसे भस्म कर डालता है, उसके लिये त्रिपुरको जला देना तो मात्र तिनकेके समान है, फिर उसके लिये इतना और इस प्रकारका अभियान तो आडम्बर ही प्रतीत होता है। इच्छामात्रसे ही सृष्टिका संहरण करनेवाले शंकरके लिये किसी तन्त्रकी—साधनकी अपेक्षा ही नहीं। यह तो उक्त वस्तुओंको उन्होंने अपनी क्रीडाका साधन मात्र बनाया है।

शिवकी इस क्रीडाका—लीलाका वर्णन शिवपुराण, लिङ्गपुराण और महाभारतमें विस्तारके साथ किया गया है। भगवान्की छोटी-बड़ी प्रायः सभी लीलाओंमें कुछ-न-कुछ गूढ़ रहस्य छिपा रहता है, अतः उसीके सम्बन्धमें यहाँ कुछ विचार किया जा रहा है—

अन्तरिक्षमें बलवान् असुरोंके तीन पुर थे, जो सोने-चाँदी और लोहेके बने हुए थे। इन्द्र जब उन पुरोंको अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे भी पराजित न कर सका, तब सभी देवता ब्रह्माको आगे करके शिवजीके पास गये और उनसे उन तीनों पुरोंको नष्ट करनेकी प्रार्थना की। शिवजीने सभी देवताओं और विश्वकी समस्त उपलब्ध देश और कालके अन्तर्गत आनेवाली सामग्रीके सहयोगसे उन पुरोंको नष्ट करनेका बीड़ा उठाया। शिवजीके शताङ्ग-रथका निर्माण पृथ्वीसे हुआ। दिन-रात कला-काष्ठा और ऋतुएँ उस रथका अनुकर्ष—धुरेका लट्ठा हुईं। धर्म, अर्थ और काम—इन

तीनोंको संयुक्त करके रथकी बैठक बनायी गयी। सूर्य और चन्द्रमा रथके पहिये हुए। इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर—ये चारों उस रथको खींचनेवाले अश्व बने। धर्म, सत्य, तप और अर्थ उसकी लगाम हुए। वषट्कार चाबुक हुआ, गायत्री छन्द आगे बाँधनेकी रस्सी हुई, संवत्सर धनुष हुआ, सावित्री प्रत्यञ्चा हुई और ब्रह्मा सारथि बने।

कहीं इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है—अस्ताचल और उदयाचल ही इस रथके कूबर हैं। जुआ बाँधनेके लिये लट्ठे हैं। संवत्सर ही इसका वेग है। अयन ही चक्रका घूमना है अथवा उत्तरायण और दक्षिणायन ही रथकी धुरीके पट्टे हैं। मुहूर्त बन्धुर-आवरण और कला ही शम्या-शैल हैं। अन्तरिक्ष इस रथका रक्षावरण है। स्वर्ग और मोक्ष दो ध्वजाएँ हैं। श्रद्धा ही इस रथकी गति है। वर्ण और पदके स्वरसे युक्त मन्त्र ही इसका घंटा है। सहस्र फणसे भूषित शेषनाग इसके बन्ध हैं। दिशा और उपदिशा इस रथके पाद हैं। आवह, प्रवह आदि पवनके सात मार्ग ही इस रथके सप्त सोपान हैं। लगाम थामकर रथ चलानेवाले ब्रह्मा इसके सारथि हैं। प्रणव ही उनका चाबुक है। मेरु धनुष है, प्रत्यञ्चा वासुकि हैं। मन्दराचल बगलका दण्ड है। वेदरूपा सरस्वती इस धनुषका घंटा हैं। महातेजस्वी विष्णु इस धनुषके बाण हैं, अग्नि ही बाणकी नोकके शल्य हैं। यम इस बाणके पुंख हैं।

इस प्रकार पुराणोंमें जो शताङ्ग-रथका वर्णन किया गया है, उसमें देश और काल—इन दोनोंका एक साथ समावेश किया गया है। सूर्य और चन्द्रको रथके पहिये बतानेका आशय यही है कि सूर्य और चन्द्र तथा ग्रह, तारा, नक्षत्र आदिके भ्रमणसे ही यह विश्वरूपी रथ गतिमान् है।

इस प्रकार रथपर बैठकर महादेव शंकरने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर शरका संधान करते हुए पाशुपतास्त्रसे अभिमन्त्रित करके त्रिपुरका चिन्तन किया तो वे तीनों पुर मिलकर एक हो गये। उन तीनों पुरोंके एक होते ही भगवान् शंकरने उस त्रैलोक्यसार धनुषको खींचते हुए बाण छोड़ा। उस बाणके छोड़ते ही महान् आर्तनाद होने लगा और वे तीनों पुर, उनमें निवास करनेवाले राक्षसोंसहित जलकर पश्चिमी समुद्रमें गिर गये।

वास्तवमें त्रिपुरजयका यह कथानक एक रूपक है। विश्वके सृष्टिकर्ता ब्रह्मा इस रथके चलानेवाले हैं तथा काल ही इसकी गति है—

कालो हि भगवान् रुद्रस्तस्य संवत्सरो धनुः।
तस्माद् रौद्री कालरात्रिर्ज्या कृता धनुषोऽजरा॥

(महाभारत, कर्णपर्व ३४।

'काल ही भगवान् रुद्र हैं, जिनका संवत्सर धनु है—रुद्रकी शक्ति रौद्रीका ही नाम कालरात्रि है, जो क न टूटनेवाली इसकी प्रत्यञ्चा है।'

विष्णुके द्वारा पालित यह अग्नीषोमात्मक जगत् गतिशी है, इसलिये इन तीनोंको मिलाकर उनका बाण कहा गया है।

इषुश्चाप्यभवद् विष्णुर्ज्वलनः सोम एव च।
अग्नीषोमौ जगत् कृत्स्नं वैष्णवं चोच्यते जगत्॥

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जिस रथको चलानेवाले हों, वह शिवका रथ यह विराट् विश्व ही है। इसे शिवपुराणके युद्धखण्ड (८। ५)-में विस्तारके साथ बताया गया है—

अथ देवस्य रुद्रस्य निर्मितो विश्वकर्मणा।
सर्वलोकमयो दिव्यो रथो यत्नेन सादरम्॥

'भगवान् रुद्रका यह सर्वलोकमय दिव्य रथ विश्वकर्मा द्वारा यत्नपूर्वक आदरसहित बनाया गया है।' 'विश्वकर्मणा' इस शब्दका अर्थ जहाँ विश्वकर्माद्वारा प्राप्त होता है, वहाँ य संकेत भी स्पष्ट है कि संसारके प्राणियोंके कर्मों (तेज)-से ही यह रथ निर्मित हुआ है। महाभारतमें और भी स्पष्ट रूपसे संकेत है। जैसे—

तथैव बुद्ध्या विहितं विश्वकर्मकृतं शुभम्।
ततो विबुधशार्दूलास्ते रथं समकल्पयन्॥

(महाभारत, कर्णपर्व ३४।

'बुद्धिसे विहित और संसारभरके कर्मोंसे कृत' इ रथको उन देवश्रेष्ठोंने संकल्पसे बनाया।' हमारे मन संकल्प-विकल्प और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंके द्व मनोराज्यका यह रथ संकल्प-निर्मित है।'

'सर्वभूतमय यह रथ सुवर्णका है और सर्वसम्मत है इसका दाहिना चक्र सूर्य और बायाँ चन्द्रमा है'—

सर्वभूतमयश्चैव सौवर्णः सर्वसम्मतः।
रथाङ्गं दक्षिणं सूर्यः तद्वामः सोम एव च॥
(शिवपुराण, युद्धखण्ड ८। ६)

'पुरं शरीरमित्याहुः' इसके अनुसार यह शरीर ही पुर है। अध्यात्मपक्षमें इडा और पिंगला नामक नाडियाँ ही चन्द्र और सूर्य हैं। शिवसंहितामें कहा गया है—

एषा सूर्यपरामूर्तिर्निर्वाणं दक्षिणे पथि।
वहते लग्नयोगेन सृष्टिसंहारकारकः॥

इसीके लिये शिवपुराणमें सूर्यको रथका दाहिना चक्र कहा गया है और वामभागमें सोमवाहिनी इडा—'**तद्वामः सोम एव च**'। सूर्यकी द्वादश कला होती है और चन्द्रमाकी षोडश कला। इसलिये इन चक्रोंमें बारह और सोलह अरे बताये गये हैं—

दक्षिणं द्वादशारं हि षोडशारं तथोत्तरम्।
अरेषु तेषु विप्रेन्द्र आदित्या द्वादशैव तु॥
शशिनः षोडशारास्तु कला वामस्य सुव्रत।
ऋक्षाणि तु तथा तस्य वामस्यैव विभूषणम्॥
(शिवपुराण, युद्धखण्ड ८। ७-८)

सत्ताईस नक्षत्र भी बारह अरोंके मध्य कहे गये हैं, क्योंकि बारह राशियोंमें नवचरणात्मक भागोंमें सत्ताईस नक्षत्रोंका विभाजन किया गया है। त्रिपुरार्णवमें कहा गया है—

मनो बुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतम्।

मन, बुद्धि और चित्तको 'त्रिपुर' कहा गया है। तीन गुणोंसे युक्त इस शरीरमें तमोगुण ही लौह, सत्त्वगुण रजत और रजोगुण स्वर्ण है, जिनसे निर्मित यह त्रिपुर क्रियाशील है। गुण रस्सीको भी कहते हैं, जो बाँधनेके काम आती है। श्रीमद्भगवद्गीता (७। १३)-के अनुसार इन तीन गुणोंसे आबद्ध होकर ही संसार चल रहा है—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओंसे परे होकर ही तुरीया अवस्था प्राप्त होती है। इसी प्रकार इच्छा, ज्ञान और क्रियाका त्रित्व है और इसमें सामंजस्य होना ही त्रिपुरजय है। भाव यह है कि सत्त्व, रजस् और तमोगुणसे परे होना ही त्रिपुरजय है।

इस त्रिपुरके त्रिकोणरूपमें घूमनेसे जो वृत्त बनता है, उसे 'छान्दोग्योपनिषद्'में लोहित, शुक्ल और कृष्णका त्रिवृत्त कहा है। इसीको श्रुति—'**अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्**' कहती है। जिसके निरन्तर गतिमान् रहनेसे '**बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाम्**' की संकल्प-विकल्पात्मिका सृष्टि चलती है।

इस शरीरमें मूलाधारसे सहस्रार-पर्यन्त तीन ग्रन्थियाँ हैं—ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि—इन तीन ग्रन्थियोंका त्रिपुर है। यह शरीर ही रथ है, जिसके लिये ऋग्वेद (८। ५८। ३)-में कहा गया है—

ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम्।

'यह शरीररूपी रथ प्रकाशयुक्त है तथा पताकायुक्त है। इसके स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीर ही तीन चक्र हैं, जिनसे यह घूमता है, अथवा सत्, रज और तम—ये तीन चक्र हैं, अथवा इच्छा, ज्ञान और क्रिया ही तीन चक्र हैं, अथवा संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण—ये तीन प्रकारके कर्म ही तीन चक्र हैं। इसमें कामना और वासनारूपी अनेक अरे हैं, ये भलीभाँति स्थित हैं।'

प्रारम्भमें 'श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्र' को उद्धृत करते हुए '**रथाङ्गे चन्द्रार्कौ**'—कहा गया था, उसका तात्पर्य यह हुआ कि इस शरीररूपी रथके सूर्य और चन्द्रनाडीमें सदैव प्राणवायुका संचार होनेसे ही यह रथ गतिमान् है, वे ही इसके दो पहिये हैं—दाहिनी ओर पिंगला नामक सूर्यनाडीमें आदित्यकी बारह कला-रूप बारह अरे हैं, वामभागमें इडा नामक चन्द्रनाडीमें चन्द्रकी सोलह कला-रूप सोलह अरे हैं। ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि भेदनके लिये सुमेरु-मेरुदण्ड ही धनुष है, जिसमें सुषुम्नाकी प्रत्यञ्चा और प्रणवके शर-संधानसे इस त्रिपुरका भेदन होता है, जिसके लिये कहा गया है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥
(मुण्डकोपनिषद् २। २। ८)

यही त्रिपुरजय—परम कल्याणकारी भगवान् शिवकी त्रिपुरदहन-लीला है।

* * *

भगवान्‌की वामन-लीला

(डॉ० श्रीश्रीनिवासजी शर्मा, एम्० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच्० डी०)

भगवान्‌की लीलाएँ भक्तोंके हृदयको आनन्दकी रसधारामें निमग्न कर देती हैं। भगवान्‌के जन्म और कर्म दिव्य होते हैं। उनकी पूरी समझ तो भगवत्कृपापर निर्भर करती है। फिर भी अपनी-अपनी सूझ और शक्तिके आधारपर उनका वर्णन—व्याख्यान किया जाता है। आकाश अनन्त है। उसका पार पाना तो अति कठिन है, फिर भी जैसे प्रत्येक पक्षी अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार उड़ान भरते हैं, उसी तरह भगवान्‌की लीलाओंका सुनना-सुनाना अपनी सीमित मेधाके साथ सब करते हैं। अनन्त भगवान्‌की अनन्त लीलाएँ हैं। व्यक्ति जो कुछ करता है—वह कर्म है, परंतु भगवान् जो करते हैं; वे उनकी लीलाएँ हैं। ये लीलाएँ भारतीय संस्कृतिकी चेतनाके रसमय विस्तार हैं। वामन-अवतारकी लीला उनमेंसे एक है। भगवान्‌के चौबीस अवतारोंमें वामन-अवतारका अपना अलग महत्त्व है। जयदेवने अपने गीतगोविन्दमें दस अवतारोंमें उनकी गणना की है।

वामन-लीलाका महत्त्व इसलिये और रोचक एवं जिज्ञास्य बन जाता है, क्योंकि उनकी लीलाके आरम्भके बीज वैदिक वाङ्मयमें मिल जाते हैं। वामन-लीलासे सम्बन्ध रखनेवाले ऋग्वेदमें कई मन्त्र मिलते हैं। उनमें विष्णुसूक्तका निम्नलिखित मन्त्र ध्यान देने योग्य है—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥
(ऋग्वेद १। १५४। १)

अर्थात् विष्णुकी शक्तिका वर्णन करते हैं, जिन्होंने पृथ्वीके प्रदेशोंको नापा और अपने तीन बड़े डगोंसे आकाशको स्थापित किया।

वामन-लीलामें भगवान्‌के तीन बड़े डगोंका अद्भुत वन्दनीय वर्णन है। वामनभगवान्‌की लीला कई पुराणोंमें आयी है, परंतु श्रीमद्भागवतपुराणमें उसका भाव-भरित और भक्तजन-रंजक विस्तार है।

वामनभगवान्‌का जन्म अदितिके गर्भसे होता है। बलिद्वारा देवोंके पराभवके बाद कश्यपजीके कहनेसे माता अदिति पयोव्रत[1]का अनुष्ठान करती हैं। भगवान् देवोंका इष्ट सम्पादन करनेके लिये और अपनी लीला करनेके लिये भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन अवतरित हो हैं। पहले वे शंख, चक्र, गदा-पद्मधारी चतुर्भुज-रूपमें प्रक होते हैं। अत्यन्त आनन्दमयी वेला हो जाती है। देव-मुनि पितर स्तुतियाँ करते हैं, अदिति प्रसन्न होती हैं और कश्य जय-जयकार करते हैं। बादमें भगवान् ब्राह्मण-ब्रह्मचारीके रूप धारण कर लेते हैं। कश्यपको आगे करके उन जन्म-संस्कार और यज्ञोपवीत-संस्कार ऋषि लोग कराते हैं।

(ब्राह्मणके लिये यज्ञोपवीतका विधान सात वर्ष अथ ग्यारह वर्षकी अवस्थामें किया गया है। ऐसा माना जाता है कि जनेऊके निर्माता ब्रह्मा हैं, उसे त्रिगुणात्मक करनेवा विष्णु हैं और उसका ग्रन्थिवन्धन करनेवाले शिव हैं त गायत्रीदेवी इसे अभिमन्त्रित करती हैं। जनेऊके एक-ए धागेमें एक-एक देवी-देवताकी प्रतिष्ठा होती है। इस लोहेसे स्पर्श नहीं होना चाहिये। इसमें चाबी नहीं बाँध चाहिये। ऐसा करनेसे देवी-देवता उस जनेऊको छोड़कर च जाते हैं। ब्रह्मोपनिषद्‌में कहा है—'**यदक्षरं परं ब्रह्म तत्सूत्रमि धारयेत्**'। अर्थात् जो अविनाशी बह्म है, वही इस सू हैं—यह समझकर जनेऊको धारण करना चाहिये।)

भगवान् वामनदेवके यज्ञोपवीत-संस्कारके समय बृहस्प जनेऊ प्रदान किया, कश्यपने मूँजकी मेखला दी, सू गायत्री-मन्त्रका उपदेश किया। अदितिने कौपीन, ब्र कमण्डलु, सरस्वतीने रुद्राक्षकी माला और कुबेरने भिक्षा दिया। ऐसे दिव्य ब्राह्मण वटुकके रूपमें भगवान् सौन्द और तेजको विकीर्ण करते हुए सुशोभित हुए।

राजा बलि नर्मदा नदीके तटपर 'भृगुकच्छ' ना स्थलपर भृगुवंशी ब्राह्मणोंके संरक्षणमें अश्वमेध-यज्ञ कर थे। देवोंका हित-साधन करने और बलिपर कृपा कर लिये भगवान् वामनदेव उस यज्ञमें पधारे।

वे अपने उज्ज्वल तेजसे प्रभा विकीर्ण कर रहे थे। छोटे वटुकका था, पर उस रूपमें वे अतीव सुन्दर प्र हो रहे थे। दण्ड-कमण्डलु, छत्र, मेखला, यज्ञोपवीत- उनके बाल-ब्रह्मचारी-रूपकी दिव्य छटा अत्यन्त मन थी। पुराणोंमें भगवान्‌के इस अद्भुत रूपका चित्र प्रकार किया गया है—

---

[1] 'पयोव्रत-अनुष्ठान' पुत्र-प्राप्तिके निमित्त किया जाता है। श्रीमद्भागवतपुराणके अष्टम स्कन्धके सोलहवें अध्यायमें उसका विस्तृत वर्णन है।

मौंजीयुक् छत्रको दण्डो कृष्णाजिनधरो वटुः।
अधीतवेदो वेदान्तोद्धारको ब्रह्मनैष्ठिकः॥

अर्थात् उनकी मेखला और जनेऊ दोनों मूँजके थे। वे छत्र और दण्डको धारण किये हुए थे। उन्होंने काले मृगका चर्म धारण कर रखा था। ब्राह्मण-ब्रह्मचारीका रूप था। वेद पढ़े हुए थे। वेदान्तका उद्धार करनेवाले और ब्रह्मनिष्ठ लग रहे थे।

वामनरूपधारी भगवान् वासुदेव बलिके यज्ञकी ओर आये तो पृथ्वी काँपने लगी। पर्वत डिग गये। समुद्र क्षुब्ध हो उठे। आकाशमें तारा-मण्डल अव्यवस्थित हो गया।

बलिकी यज्ञशालामें अमित तेजस्वी बाल-वटुक वामनके पहुँचते ही सभी सभासद् हतप्रभ हो गये। सारे पुरोहित और उनके शिष्योंका तेज सिमट-सा गया। सब अपने-अपने आसनसे उठकर उनके स्वागतके लिये खड़े हो गये। सबने उन्हें प्रणाम किया। बलिने अपने भाग्यको सराहा और माना कि उनका यज्ञ सफल हो गया। उन्होंने भगवान् बाल-वटुकका स्वागत किया।

बलिने अपने यज्ञको सफल करनेकी भावनासे याचक-रूपमें आये ब्राह्मण-वटुकको अपना सब कुछ अर्पित करके उन्हें प्रसन्न करनेकी अभिलाषा प्रकट की—

गां काञ्चनं गुणवद् धाम मृष्टं
तथान्नपेयमुत वा विप्रकन्याम्।
ग्रामान् समृद्धांस्तुरगान् गजान् वा
रथांस्तथार्हत्तम सम्प्रतीच्छ॥

(श्रीमद्भा० ८। १८। ३२)

अर्थात् हे महाराज! आपकी जो इच्छा हो उसे आप मुझसे ले सकते हैं। आपको गाय चाहिये, सोना चाहिये, सुसज्जित घर चाहिये, स्वादिष्ट भोजन, पेय पदार्थ या ब्राह्मण-कन्या चाहिये, सम्पत्तिसे युक्त गाँव चाहिये, घोड़े, हाथी और रथ—जो भी इच्छा हो कहिये।

लीलाविहारी भगवान् वामन बलिके वंशकी प्रशंसा करते हैं—'महाराज, आपके कुलमें अनेक महापुरुष हुए हैं। हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु-जैसे वीर हुए हैं, प्रह्लाद-जैसे भगवान्‌के भक्त हुए हैं, आपके पिता विरोचन-जैसे ब्राह्मण-वत्सल हुए हैं। आप भी उसी परम्पराका पालन कर रहे हैं।'

बाल-ब्रह्मचारी—लीला-वेशधारी भगवान् वामन बलिके समर्पण और वचनपर दृढ़ रहनेकी अच्छी भूमिका तैयार कर रहे हैं। महाराज बलि अपने भाग्यकी सराहना कर रहे हैं। अपनेको सफल-मनोरथ मान रहे हैं, कृतार्थ मान रहे हैं, गद्गद हो रहे हैं और वामनभगवान्‌को अपने महलमें ले जाकर उनके चरण पखार रहे हैं। विविध रत्नाभरणोंसे सुसज्जित बलिकी पत्नी विन्ध्यावली स्वर्ण-कलशसे जल डाल रही हैं। ब्राह्मण पुरुषसूक्तसे स्तुति कर रहे हैं। उत्साह और आनन्दका समुद्र लहरा रहा है। बलि कह रहे हैं—'महाराज, मन करता है सभी कुछ आपके चरणोंमें अर्पित कर दूँ।'

(बलिकी पुत्री रत्नमालामें वामन वटुकको देखकर वात्सल्यभाव उमड़ पड़ता है। सोचती है कौन ऐसी भाग्यवती माँ होगी, जिसने इसे अपना दूध पिलाया होगा। मेरी भी यही कामना है, ऐसे बच्चेको अपना दूध पिलाऊँ। पर जब वामनके विराट्‌रूप और पराक्रमको देखा तो उसे मारनेकी इच्छा हुई। इन्हीं भावनाओंसे वह कृष्णवतारमें पूतना बनी। दूध पिलाना और मारनेकी इच्छा पूतनाके चरित्रमें है।)

वामनभगवान्‌ने बलिको वचनसे मजबूत बना लिया तो उन्होंने अपने पैरोंके मापकी तीन पग भूमि माँगी। बलि समझाते हैं, मेरे यहाँसे याचक इतना समृद्ध होकर जाता है कि उसे फिर माँगना ही नहीं पड़ता। इतनी भूमिसे क्या होगा? ब्राह्मण-वटुकने इतनेमें ही अपनी पूर्ण संतुष्टि दिखायी तो बलि सोचने लगे—'बेचारा बालक है, माँगना जानता ही नहीं, इसे माँगना आता ही नहीं। मुझ-जैसे राजासे कितना तुच्छ, नगण्य वस्तु माँग रहा है।' वे ब्राह्मण-वटुकसे कहते हैं—

अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसम्मताः।
त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा॥

(श्रीमद्भा० ८। १९। १८)

अर्थात् 'हे ब्राह्मणपुत्र! तुम्हारे वचन तो वृद्धों-जैसे हैं, पर तुम अभी बालक हो। तुम्हारी बुद्धि भी बालकों-जैसी है और तुम अपने स्वार्थके प्रति भी अनभिज्ञ-जैसे ही हो।'

वामन कहते हैं—'मैं संतोषी ब्राह्मण हूँ। इतनेसे ही संतुष्ट हूँ। जो संतुष्ट नहीं है, वह तीनों लोकोंको प्राप्त करके भी संतुष्ट नहीं होगा।' वामनके तर्कोंसे संतुष्ट होकर बलि महाराज हँसते हुए बोले—'माँग लो।' उन्होंने संकल्पके लिये जल उठाया। बलिके गुरु शुक्राचार्य उन्हें रोकते हुए बोले—'ये साक्षात् विष्णु हैं। देवताओंका हित साधने आये हैं। ये माया-माणवक (मायासे ब्रह्मचारी बने हुए) हरि हैं। तुम्हारी सारी सम्पत्ति छीन कर इन्द्रको दे देंगे।' बलि महाराज कहते हैं कि 'अब तो मैं वचन दे चुका। दूसरे मेरा स्वभाव भी मुझे ऐसा ही करनेके लिये प्रेरित कर रहा है, फिर दान, तप आदि कार्य तो मनुष्य अपने पूर्व-अभ्यासके अनुसार ही करता है'—

दानं तपो वाध्ययनं महर्षे
स्तेयं महापातकमग्निदाहम्।

ज्ञानानि चैवाभ्यसतां हि पूर्वं
भवन्ति धर्मार्थयशांसि नाथ॥

(वामनपुराण ९०। ११४)

अर्थात् 'हे महर्षे! दान, तप, अध्ययन, चोरी, महापातक, अग्निदाह, ज्ञान, धर्म, अर्थ और यश—ये पूर्वजन्मके अभ्याससे उत्पन्न होते हैं। मेरा अन्तर्मन मुझे प्रेरित कर रहा है।'

आज्ञा न माननेपर शुक्राचार्य बलिको शाप देते हैं—

मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद् भ्रश्यसे श्रियः॥

(श्रीमद्भा० ८। २०। १५)

—'मेरे शासनकी सीमाको पार करनेवाले तुम ऐश्वर्यसे नष्ट हो जाओगे।' शापग्रस्त होनेपर भी बलि अपने वचनसे नहीं डिगे। चरण धोये। चरणोदक सिरपर चढ़ाया, वामन-भगवान्‌की पूजा की और दानका संकल्प कर दिया।

भगवान् वामनका आकार बढ़ने लगा। सारा ब्रह्माण्ड, आकाश, दिशाएँ, पृथ्वी, समुद्र, वन तथा वनस्पति उसमें समा गये। बलिके साथ ही वहाँ उपस्थित सभी सभासदोंने भगवान्‌के उस विराट्-रूपका दर्शन किया। भगवान्‌ने एक पगसे समस्त पृथ्वी तथा आकाश और दिशाओंको ढक लिया। दूसरे पगमें सारा स्वर्गलोक आ गया। तीसरे पगके लिये रंचमात्र भी स्थान नहीं बचा। इस स्थितिको देख अत्यन्त विकल राक्षसोंने उपद्रव प्रारम्भ कर दिया, पर विष्णुके सैनिकोंने उन्हें खदेड़ दिया। भगवान्‌की इच्छासे गरुडने बलि महाराजको वरुणपाशमें बाँध लिया। भगवान्‌ने बलिसे कहा कि वचन पूरा न होनेसे तुम्हें नरकमें जाना पड़ेगा। बलि इससे विचलित नहीं हुए। बोले, महाराज—

पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम्॥

(श्रीमद्भा० ८। २२। २)

—तीसरा पग मेरे सिरपर रखें। मैं अपने वचनको झूठा नहीं होने दूँगा। उस समय राजा बलि बड़ी ही प्रशंसा-योग्य वचन बोलते हैं—

बिभेमि नाहं निरयात् पदच्युतो
न पाशबन्धाद् व्यसनाद् दुरत्ययात्।
नैवार्थकृच्छ्राद् भवतो विनिग्रहा-
दसाधुवादाद् भृशमुद्विजे यथा॥

(श्रीमद्भा० ८। २२। ३)

अर्थात् 'महाराज, मैं नरकमें जानेसे नहीं डरता। अपने पदसे हटनेसे नहीं डरता, वरुणपाशमें बँधनेसे नहीं डरता, असह्य कष्टसे नहीं डरता, परंतु मैं अपने असाधुवाद यानी अपयशसे डरता हूँ।'

पुनः वे कहते हैं कि घर, परिवार, देश तथा जातिकी आसक्तिसे क्या लाभ है? मेरी आपके प्रति प्रेमनिष्ठा बनी, इस कारण मैं अपनेको परम सौभाग्यशाली समझता हूँ। बलि वरुणपाशमें बँधे हुए हैं। प्रह्लादजी वहाँ आ जाते हैं। बलि उन्हें नेत्रोंसे प्रणाम करते हैं। वे भगवान्‌को प्रणाम करके कहते हैं—'प्रभु! आपका देना और लेना दोनों ही सुन्दर हैं।' ब्रह्माजी भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं—'आपने बलिका सर्वस्व ले लिया, अब आप इसे छोड़ दीजिये। यह दण्डके योग्य नहीं है। आप तो पत्र, पुष्प, फल तथा जलसे ही संतुष्ट हो जाते हैं, इसने तो अपना सब कुछ दे दिया। तब वामनकी लीला करनेवाले भगवान् कहते हैं'—

'ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम्।

(श्रीमद्भा० ८। २२। २

हे ब्रह्मन्! जिसपर मैं दया करता हूँ, उसकी सारी सम्पत्ति छीन लेता हूँ।

बलिने धनविहीन, पीडित, बन्धनग्रस्त, गुरु-शापित होकर भी अपना धर्म नहीं छोड़ा, सत्य नहीं छोड़ा। बलिपर मेरी कृपा है। मैं इन्हें वह स्थान देता हूँ, जो देवताओंको भी सुलभ नहीं है। ये सावर्णि मनुकालमें स्वर्गके राजा बनेंगे। तबतक ये सुतललोकमें रहेंगे और मैं सभी प्रकारसे इनके लिये संरक्षण प्रदान करूँगा।

इस प्रकार भगवान्‌की वामन-लीला भक्तोंके हृदयको अपनी सर्वव्यापी कृपाकी रसनीय धारामें सराबोर कर देनेवाली है। भगवान् जब कृपा करते हैं—तब तीन कदम यानी तीन चीजें माँगते हैं—तन, मन और धन। जो बलिकी तरह अपना तन, मन और धन भगवान्‌को समर्पित कर देता है, उसकी रक्षा भगवान् स्वयं करते हैं। ब्रह्मलीन प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके विनय-भरे शब्दोंसे इस लीलाको विराम दिया जाता है—

जा कारन वामन बने जिन नारायन नाम है।
तिनके पद-पाथोजमें पुनि-पुनि पुन्य प्रनाम है॥

* * *

शक्तिपीठ 'हिंगलाजदेवी' की लीला-कथा

(सुश्री धीरजबेन दिनकरभाई पटेल)

कई वर्ष-पूर्वकी यह एक अद्भुत सत्य घटना है। उस समय मैं विद्यालयकी छात्रा थी। मेरे पिता व्यापारी कृषक थे। माताजी बड़ी धार्मिक स्वभावकी थीं। एक दिन पिताजी अपने साथ एक विचित्र वेष-भूषाधारी 'फकीर' को लेकर घरपर आये। शिष्टाचारके अनुसार घरके सभी लोगोंने फकीरका अभिवादन किया। मैंने झटसे उनसे पूछा कि 'फकीर माने क्या?' उतना ही शीघ्र प्रत्युत्तर मुझे मिला—'फिकरकी फाकी करे, वह फकीर।' पिताजीने समझाया कि 'जो अपने मस्तकपर लदी हुई चिन्ता-रूपी गठरीको प्रभुके चरणोंमें समर्पित कर चिन्तामुक्त हो गया है, वह ईश्वरका नेकबंदा (भला दास) ही 'फक्कड़ साधु' या 'फकीर' है।' पिताजीकी बात मुझे समझमें आ गयी।

उन फकीरने जोगिया (गेरुआ) वस्त्र धारण कर रखा था। उनके ललाटमें सिंदूरका तिलक था और गलेमें चूना-पत्थरकी छोटी-बड़ी मालाएँ थीं। उनके कंधेपर झोली थी और हाथमें देवीका त्रिशूल था। मैंने उनके गलेकी सुन्दर मालाओंके बारेमें पूछा कि आपने इन्हें कहाँसे खरीदी है?' फकीरने कहा—'इनके बारेमें तो लंबा इतिहास है, क्या सुनना चाहती हो?' मैंने कह दिया—'अवश्य, कहिये क्या बात है?' फकीर स्वानुभव कहने लगे—

'मुझे यौवनकालमें सम्पूर्ण शरीरपर श्वेत कुष्ठ हो गया था। कई डॉक्टर, वैद्य-हकीमसे औषधोपचार करवाये, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ—'रोग बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की।' आखिर एक जोगी बाबासे रोग-निर्मूलनका उपाय पूछा। उन्होंने अपनी योगशक्तिसे कहा कि 'तुम पैदल ही 'हिंगलाजदेवी' के तीर्थस्थलकी यात्रा करो और देवीके दर्शन करके उनसे अपने किये हुए पापोंकी क्षमा-याचना करो, उस पवित्र स्थानमें दो वर्षतक मौनव्रतका पालन और तपस्या करो। तुम अवश्य रोगमुक्त हो जाओगे।'

डूबते हुएको तिनकेका सहारा चाहिये। सबको जीवित रहना अच्छा लगता है न! मैंने जोगी बाबाकी बात मान ली और पैदल ही 'हिंगलाजदेवी' के दर्शनोंके लिये चल पड़ा। वहाँ दो वर्ष मौन-धारण-पूर्वक देवीके मन्त्रका जप किया। महाशक्तिशाली 'हिंगलाजदेवी' की कृपासे मैं एकदम अच्छा—रोग-मुक्त हो गया। मेरे लिये तो 'हिंगलाजदेवी' ही मेरी माँ, मेरे पिता, मेरे सब कुछ हैं। उन महाशक्तिकी जियारत (यात्रा) एवं मिन्नत (प्रार्थना) हिंदुओंके साथ मुसलमान लोग भी करते हैं और अपनी मनःकामनाएँ सिद्ध करते हैं।'

फकीरका स्वानुभव सुनकर मैं तो आश्चर्यमें पड़ गयी। स्वभावसे ही शक्ति-उपासक होनेसे मेरी इच्छा 'हिंगलाजमाता-तीर्थ-क्षेत्र' की यात्रा एवं दर्शन करनेकी हुई। मैंने फकीरसे उस तीर्थ-क्षेत्रका पता तथा देवीकी महिमा और वहाँके इतिहास आदिके बारेमें पूछा।

मेरी उत्सुकता देखकर फकीर कहने लगे कि धर्मशास्त्रोंमें ५१ शक्तिपीठोंका वर्णन है। जहाँ-जहाँपर शिवपत्नी सतीके देहके खण्ड (टुकड़े) गिरे थे, वे ही शक्तिपीठ कहलाये। 'हिंगलाज'में सतीका 'कपाल' (या किरीट) गिरा था, इसीलिये ५१ शक्तिपीठोंमें 'हिंगलाज-पीठ' को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। 'हिंगलाजदेवी'का मन्दिर अग्निदेवीके नामसे समर्पण किया हुआ है। वहाँके लोग 'हिंगलाज' को 'हिंगुदा' भी कहते हैं। शक्तिके उपासकोंके लिये 'हिंगलाजदेवी'के क्षेत्रकी तीर्थयात्रा और देवीके दर्शन करना अति शुभ माना गया है।'

आतुरतावश मैंने फकीरसे पूछा—'हिंगलाजमाता'के मन्दिरतक पहुँचनेका कौन-सा सुगम मार्ग है?'

फकीरने कहा—'जब अखण्ड हिन्दुस्तान था (ई० स० १९४७ से पहले) तब लोग पश्चिम हिन्दुस्तानके 'कच्छ-प्रदेश' के 'नारायण-सरोवर' में स्नान और आदिनारायणमूर्तिके दर्शन करके 'कोटेश्वर' जाते थे, वहाँपर समुद्रस्नान करके 'कोटेश्वर-महादेव' के दर्शन करके जहाजमें बैठकर 'कराँची' पहुँचते थे। कराँचीसे 'मियानी-हिंगलाज रोडपर आगे ७० मील तय करके 'नागर ठांटा' पहुँचते थे और वहाँसे 'हिंगलाज पर्वत'की कंदरामें 'हिंगलाजदेवी'के दर्शन करते थे। मैं भी इसी मार्गसे तीर्थयात्रा करता हुआ 'हिंगलाज-क्षेत्र'में पहुँचा था।'

मैंने फकीरसे पूछा—'आपके गलेमें मालाएँ हैं, उनका नाम क्या है और वे कहाँ मिलती हैं?'

फकीरने कहा—'ये मालाएँ चूना-पत्थरके मणिसे बनती हैं। ऐसे पत्थर हिंगलाज-क्षेत्रमें ही मिलते हैं, अन्यत्र नहीं। ऐसी छोटी मालाके दानोंको 'ठुमरा' कहते हैं और बड़ी

मालाके दानोंको 'आशापुरी' कहते हैं। ऐसी मालाएँ खरीद करके यात्री हिंगलाजमाताके चरणोंमें अर्पण करते हैं। हिन्दूयात्री देवीको 'हिंगलाज' कहते हैं, मुसलमान यात्री देवीको 'बीबी नानी' कहते हैं।

मैंने उत्सुकतावश फकीरसे पूछा कि 'ठुमरा' और 'आशापुरी' दानोंके विषयमें क्या कोई चमत्कारिक कथा है?

फकीरने कहा—'हाँ, उस कथाको हिंगलाजदेवीकी 'लीला-कथा' कहते हैं। मैं तुम्हें 'लीला-कथा' संक्षेपमें सुनाता हूँ— एक बार कैलासपति शिव और देवी पार्वती आशापुरी जंगलमार्गसे 'हिंगलाजपीठ' जा रहे थे। शिवजीने पार्वतीसे कहा—'मैं थक गया हूँ और भूखा भी हूँ। तुम यहाँ 'खिचड़ी' पकाओ, तबतक मैं जंगलसे बाहर निकलनेका मार्ग ढूँढ़ता हूँ।'

शिवजीने पार्वतीकी रक्षाके लिये मन्त्रयुक्त भस्मकी रेखा भी खींच दी, इसलिये कि यदि कोई इस रेखाका उल्लंघन करे तो भस्म हो जाय। इसके बाद शिवजी सुरक्षाकी दृष्टिसे अपना अमोघ त्रिशूल भी पार्वतीको देकर वहाँसे निकल गये। पार्वती खिचड़ी बनाने लगीं। उसी समय एक भयंकर असुर वहाँपर आ धमका। घने जंगलमें अतीव सुन्दर पार्वतीको अकेली देखकर वह काम-पीड़ित हो गया और उन्हें पकड़नेके लिये दौड़ा। यह देख क्रुद्ध पार्वतीने शक्तिशाली शिव-त्रिशूल असुरके पेटमें भोंक दी। असुरके देहसे रक्तका फुहारा फूटा और रक्तबिन्दु खिचड़ीमें पड़ गये। अन्न अपवित्र हो गया।

कुछ ही समयमें शिवजी वापस लौटे और वहाँ अमङ्गल-दृश्य देखकर उन्होंने पार्वतीको शान्त किया। मृत्युमुखमें जा रहे असुरने शिवजीके चरणकमलोंमें अपना मस्तक रखकर प्रार्थना की कि जगदम्बा पार्वतीने ही अपने हाथसे त्रिशूल मेरे पेटमें घोंप दी है, अतः आपको मुझे मुक्ति देनी ही पड़ेगी।

भगवान् आशुतोष शिवने असुरको 'तथास्तु' कह दिया। असुरका शरीर छूट गया और शरीर भस्मका पहाड़ बन गया। असुरकी आत्मा 'शिवलोक' को प्राप्त हो गयी।

महादेवकी आज्ञासे महादेवी पार्वतीने सब अपवित्र हुआ खाद्यान्न वनमें फेंक दिया। खाद्यान्न—खिचड़ीके दाने तुरंत ही चूना-पत्थर हो गये और उन चूना-पत्थरोंको पवित्र 'ठुमरा' तथा 'आशापुरी' दाने (मणि) होनेका पार्वतीने वरदान दिया।

माता हिंगलाजकी लीला-कथा अद्भुत है।

* * *

परब्रह्मकी नित्यलीला

(श्रीरामपदारथसिंहजी)

ब्रह्मकी सत्ता स्वीकार करनेसे हृदयमें संतत्वका उदय होता है और 'ब्रह्म नहीं है'—ऐसा माननेसे असदाचारका आरम्भ होता है। श्रुतिकी उक्ति है—

असन्नेव स भवति। असद् ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेनं ततो विदुरिति॥ (तैत्तिरीयोप० २। ६)

अर्थात् यदि कोई यह समझता है कि ब्रह्म नहीं है तो वह असत् (सदाचार-भ्रष्ट) ही हो जाता है। यदि कोई यह समझता है कि ब्रह्म है तो इसे ज्ञानीजन संत—सत्पुरुष समझते हैं।

ब्रह्म आनन्दस्वरूप है। आनन्दस्वरूप ब्रह्मसे ही प्राणियोंका जन्म और जीवन है तथा प्रयाणके पश्चात् उसीमें प्रवेश भी होता है, यथा—

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। (तैत्तिरीयोप० ३। ६)

ब्रह्म आनन्दस्वरूप होनेसे आप्तकाम है। उसे न कोई कमी है और न कुछ प्रयोजन। इस स्थितिमें उसे सृष्टि-रचनादिमें प्रवृत्त होनेकी क्या आवश्यकता हुई? इस जिज्ञासाकी सम्भावना समझकर ब्रह्मसूत्रकार व्यासजीने उत्तर दिया है—

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।

(ब्रह्मसूत्र २। १। ३३)

अभिप्राय है कि परब्रह्मका विश्व-रचनादिमें प्रवृत्त होना, लोकमें जीवन्मुक्त आप्तकाम पुरुषोंद्वारा बिना स्वप्रयोजनके ही लोकहितमें प्रवृत्त होनेके समान लीलामात्र है। श्रीपराशरजीने श्रीविष्णुपुराणमें कथन है कि—

व्यक्तं विष्णुस्तथाव्यक्तं पुरुषः काल एव च।
क्रीडतो बालकस्येव चेष्टां तस्य निशामय॥

(१। २। १

अर्थात् परब्रह्म विष्णु जो व्यक्त, अव्यक्त, पुरुष और कालके रूपसे स्थित हैं, उनकी जगत्-रचनादि लीलाको बालकवत् क्रीडा ही समझे। जिस प्रकार खेलता हुआ बालक स्वभाववश किसी वस्तुको बनाता है और पुनः उसे बिगाड़ देता है, उस वस्तुके बनाने-बिगाड़नेमें उसका कोई अन्य प्रयोजन नहीं रहता है, उसी प्रकार जगत्के सृजन-संहारमें परब्रह्मका कोई अन्य प्रयोजन नहीं होता। सृजन-संहार लीलामात्र है। प्रयोजनानन्तर कृति ही लीला कहलाती है। क्रीडनशीलता आनन्दका स्वभाव है। इसीलिये आनन्दस्वरूप ब्रह्म पूर्णकाम होनेपर भी लीला-संलग्न रहता है। यह कहा नहीं जा सकता कि अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके सृजन-संहारकी लीलाका आरम्भ कब हुआ और अन्त कब होगा? यह अनादि-अनन्त और नित्य-प्रवर्ती होनेसे नित्य-लीला है।

आनन्दस्वरूप ब्रह्मकी लीला आनन्दस्वरूपा है। वस्तुतः स्वयं परब्रह्म ही नाना रूपोंमें प्रकट है। तैत्तिरीयोपनिषद्में उल्लिखित है कि परब्रह्मने विचार किया कि 'मैं प्रकट होऊँ और अनेक नाम-रूप धारण करके बहुत हो जाऊँ।' उसने तप किया, अपने संकल्पका विस्तार किया और जो कुछ देखने-समझनेमें आता है, उस समस्त जगत्की रचनाकर उसीमें वह प्रविष्ट हो गया, यथा—

स तपस्तप्त्वा इदꣳसर्वमसृजत यदिदं किं च। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। (तैत्तिरीयोप० २। ६)

अतः सब लीला होते हुए भी आनन्दकी लीला होनेसे आनन्दमयी है। इसे समझनेपर आनन्द-ही-आनन्द है, पर भावदृष्टिके बिना इस लीलाको देखकर भी वास्तविक रूपमें नहीं देखा जा सकता।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड परब्रह्मकी लीलाविभूतिमें है। लीलाविभूति एकपाद विभूति है। इसके परे असीम अनन्त त्रिपाद विभूति है। वह विशुद्ध सच्चिदानन्दमयी है। वहाँका सब कुछ सच्चिदानन्दमय है। वही परब्रह्मका नित्य-धाम है, जिसे परव्योम, परमपद, वैकुण्ठ, साकेत एवं गोलोकादि कहते हैं। अनेक नाम भावके भेदसे हैं। वहाँ उभय विभूतिनाथ परब्रह्म परिकरों-सहित सच्चिदानन्दमयी लीलामें रत है। वहींसे अखिल ब्रह्माण्डोंकी बहुरंगी लीलाओंका भी संचालन होता है।

परब्रह्म परम स्वतन्त्र होता हुआ भी प्रेमीके प्रेमाधीन है। इसलिये कभी-कभी स्वयं लीलाविभूतिमें भक्तोंके प्रेमाधीन हो उनके कल्याणके लिये ही लीला-विग्रह धारण करके मनोहारिणी लीलाएँ करता है—

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई॥
(रा० च० मा० १। १४४। ७)

लीलाविभूतिकी लीलाएँ प्रेमियोंकी लालसाके अनुसार होती हैं; तथापि अयोध्या, चित्रकूट, मथुरा, वृन्दावनादिमें जो दिव्य लीलाएँ हुई थीं, वे भक्तोंकी लालसाके ही परिणाम हैं। लीलाविभूतिकी लीलाएँ यद्यपि त्रिपादविभूतिके लीला-सुधा-सिन्धुके सीकरांश हैं, तथापि उनमें लोकचित्ताकर्षण एवं लोक-पावनकी असीम शक्ति संयुक्त है।

लीलाविभूतिकी लीलाएँ सीमित देश-कालमें होती हैं। इसलिये वे अनित्य प्रतीत होती हैं, किंतु बात ऐसी नहीं है। परब्रह्मके नाम-रूप, लीला-धाम—ये चारों परात्पर ब्रह्म ही हैं, सच्चिदानन्द-विग्रह और नित्य हैं—

रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥
(वसिष्ठसंहिता)

अतः परम प्रभुकी अवतारकालीन लीलाएँ भी नित्य ही हैं। उन लीलाओंके दर्शन आज भी उन भाग्यवान् भक्तोंको होते हैं, जिन्हें वह लीलाधन निज जनके रूपमें कृपापूर्वक वरण करता है। गोस्वामीजीकी तो मान्यता है कि प्रभु राम सीताजी और लक्ष्मणजी-सहित सब दिन चित्रकूटमें बसते हैं और राम-नामके प्रेमी जापकोंकी अभिलाषाएँ पूर्ण करते हैं—

चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत।
राम नाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत॥
(दोहावली ४)

त्रिपादविभूतिसे दूर होते हुए भी प्रेमीजन विभूतिनाथ परब्रह्मसे दूर नहीं होते, क्योंकि लीलाविभूतिमें रहते हुए भी जिनके चारु चित्तरूपी चित्रकूटमें लीलाकथारूपी मन्दाकिनीके सलिल-सुधासे सिंचित स्नेहके सुभग वन होते हैं, उनमें श्रीसीतारामजीका विहार आज भी होने लगता है—

रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु॥
(रा० च० मा० १। ३१)

इस प्रकार परब्रह्मकी परव्योममें होनेवाली नित्य-लीलाओंका प्रकाश भी प्रेमी भक्तोंके भावपूर्ण हृदयाकाशमें होने लगता है।

* * *

संत और सुधारक महात्मा कबीरकी सेवा-साधनासे भगवल्लीलाकी अनुभूति

ये कबीर अवश्य कोई जादूगर हैं!

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

'क्या कबीरका घर यही है?' सर्वजित नामक एक आगन्तुकने आवाज दी।

कबीर घरमें नहीं थे। उसने पुनः आवाज दी। 'अरे घरमें कोई है? हमें कबीरसे मिलना है। कहीं गलत मकानपर तो नहीं आ गये?'

कई बार द्वार खटखटाने तथा आवाज लगानेके बाद घरमेंसे कबीरजीकी पुत्री कमाली निकली और पुस्तकोंसे लदे बैलको देख मुसकराते हुए बोली—'घर तो यही है, पर वे अभी बाहर गये हैं। आप बैलपर इतनी पुस्तकें लादे हमारे यहाँ क्यों आये हैं? कृपया आप अपना परिचय तो दीजिये?'

'लड़की, तू मुझे नहीं जानती। जानेगी भी कैसे? एक पिछड़े हुए परिवारकी कन्या है न?'

'जिज्ञासाके कारण की गयी धृष्टताके लिये क्षमा करें, लेकिन आप कृपापूर्वक अपने विषयमें कुछ तो बतलाइये! आप यह पुस्तकोंसे लदा बैल क्यों लाये हैं? क्या पुस्तक बेचनेवाले हैं? मेरे बापू तो पढ़ना नहीं जानते! फिर हम जुलाहे गरीबीसे भरे अभावग्रस्त जीवनमें अपनी रोजी-रोटी ही बड़ी कठिनतासे जुटा पाते हैं, हम आपकी कोई पुस्तक नहीं खरीद सकेंगे। कमालीने अत्यन्त सहजतासे ये सारी बातें कह दीं।'

मूर्ख लड़की, तू पुस्तक बेचनेवाला समझकर मेरा अपमान कर रही है? अरे, मैं सर्वानन्द नामक प्रकाण्ड विद्वान् हूँ। इस क्षेत्रके अनेक विद्वानोंको शास्त्रार्थमें हरा चुका हूँ।

'सुना है, आपने अपना नाम बदल लिया है!'

'हाँ, यह तो तुमने सच ही कहा है और ठीक ही सुना भी है। चूँकि मैं विद्वत्तामें यहाँके सब पण्डितोंको पराजित कर चुका हूँ। मेरे बराबर कोई बड़ा पण्डित—विद्वान् नहीं है, अतः मैंने पाण्डित्यकी सार्थकता सिद्ध करनेके लिये अपना नाम सर्वानन्दसे बदलकर सर्वजित कर लिया है।'

'फिर हमारे यहाँ पधारना कैसे हुआ महाशय?'

'मेरी माताजी अपनी काशी-यात्रामें एक बार तुम पिताजीके सत्संगमें आयी थीं और उनसे मन्त्रदीक्षा गयी थीं।'

'यह तो अच्छा किया माताजीने!' अवश्य ही वे मन्त्रदीक्षासे लाभान्वित हुई होंगी! है न?

यह सुनकर सर्वजित क्रोधमें आ गये। परशुरामकी भृकुटि चढ़ाकर बोले—'मेरे पाण्डित्यकी व्यर्थता समझते मेरी माताजीने एक दिन मुझसे कहा था—'मैं तुझे तभी मानूँगी, जब तुम कबीरजीको शास्त्रार्थमें पराजित दोगे।' यह ताना मेरे मनमें काँटेकी तरह चुभा हुआ है। बार मैं उस शूलकी चुभनको महसूस करता हूँ। ईर्ष्यासे रहा हूँ। इस असह्य पीडासे अपने मन-मस्तिष्कको उबार इसीलिये इस बैलपर अपने शास्त्रोंको लादकर मैं कबीर साहबका घर ढूँढ़ता हुआ यहाँतक आया हूँ, शास्त्रार्थकर उन्हें हरानेके लिये।'

संसारमें जितने भी प्रतिभाशाली महापुरुष हुए उनके प्रारम्भिक जीवनके अध्ययनसे पता चलता है उनके जन्म, परिस्थिति, वातावरण या शरीरके किसी- किसी भागमें कोई जन्मजात कमी रही है, क्षतिपूर्ति उग्र किंतु समुन्नत-रूपमें करके उन्होंने तथा संसारका विशेष कल्याण किया है। पागलपनका एक रूप कह सकते हैं। जिन कमियोंको पूरा करनेकी चेष्टामें एक व्यक्ति बादमें हो उठता है, उन्हीं कमियोंकी पूर्तिके प्रयासमें दूसरा प्रतिभाशाली बन जाता है। माताके वचन काँटेकी तरह चुभ गये। उनका अहंकार-रूपी सर्प उठा! वे कबीरको नीचा दिखानेके लिये अपने बैलपर लादकर काशी आये और कबीरके घरके

पहुँचकर उन्होंने पुकारा था, 'क्या कबीरका घर यही है?' कबीरकी पुत्री कमाली तो धीरेसे बोली थी कि 'उनका घर तो ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी तकको नहीं मिला।' परंतु सर्वजितको यह बात सुनायी पड़ गयी।

इस उत्तरका मर्म न समझकर सर्वजित चकरा रहे थे कि इतनेमें कबीर साहब आ गये।

'महाशय, आप कौन हैं? आपने बड़ी कृपा की जो यह घर पवित्र किया! कहिये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?'

महान् आश्चर्य! आप सर्वजित नामक प्रकाण्ड विद्वान्को नहीं पहचानते। इस क्षेत्रके सभी लोग कहते हैं कि सर्वजितके समान विद्वान् अन्य कोई नहीं है। मैंने सभी विद्वानोंको पराजित किया है। मैं किसी भी विद्वान्से शास्त्रोंके सम्बन्धमें शास्त्रार्थ करनेको तैयार हूँ।

'यह तो मेरे लिए बड़े सौभाग्यका विषय है कि आप-जैसे महान् विद्वान्के दर्शन हुए। मुझे आपसे बहुत कुछ सीखनेको मिलेगा। मैं धन्य हुआ। पधारिये।'

'पहले यहाँ मेरे आनेका उद्देश्य सुन लीजिये।'

'कहिये, क्या सेवा करूँ?'

'मुझसे शास्त्रार्थ कीजिये। मैं आपको चुनौती देता हूँ कि ब्रह्म, ज्ञान, आत्मा, परमात्मा एवं वेद आदि किसी भी विषयपर आप मुझसे शास्त्रार्थ कर सकते हैं। प्रमाणके लिये और अपने तर्कोंकी पुष्टि-हेतु मैं सभी धर्मग्रन्थोंको अपने साथ बैलपर लादकर लाया हूँ। मेरे तर्क प्रमाणयुक्त होंगे। मैंने इनका गम्भीर अध्ययन किया है। मैं आपको हराकर ही साँस लूँगा।'

'आप कबीरके घर पहुँचे हैं'—यह बात गलत है। मेरी समझसे परे है। पता नहीं, आप क्या कहना चाहते हैं?'

'आपका घर कहाँ है?'

'विद्वन्! कबीरका कोई घर नहीं है'—

कबीरका घर सिखरपर जहाँ सिलहली गैल।
पाँव न टिके पिपीलिका पंडित लादे बैल॥

'तात्पर्य यह कि कबीरका घर शिखरपर अर्थात् अनन्त ब्रह्माण्डोंसे भी ऊपर है, जिसका मार्ग इतना फिसलन-भरा है कि चींटी तकके पैर उसपर जम नहीं सकते, जबकि पंडित तो लदे हुए बैलके साथ शिखरपर पहुँचना चाहता है।'

'आप व्यर्थकी बातें छोड़ मुझसे शास्त्रोंमें वर्णित विषयोंपर शास्त्रार्थ कीजिये।'

'भई! मैं तो एक साधारण अनपढ़ जुलाहा हूँ। शास्त्रोंकी इतनी धार्मिक पुस्तकें तो मैंने जीवनमें कभी देखी तक नहीं। इनमें कितना अथाह ज्ञान भरा है, मुझे तो इसका भी कुछ पता नहीं।'

'आप व्यर्थकी बातें करके हमें गुमराह कर रहे हैं।'

'नहीं, यह बात नहीं। सचमुच मुझे शास्त्रोंमें वर्णित धर्मका कुछ भी ज्ञान नहीं है।'

'याद कीजिये! मेरी माताजी एक बार अपनी काशी-यात्रामें आपके सत्संगमें गयी थीं। उन्होंने मेरे पाण्डित्यकी व्यर्थता बतायी और मुझे चिढ़ाते हुए कहा था कि वे मुझे तभी सर्वजित मानेंगी, जब मैं कबीरजीको शास्त्रार्थमें पराजित कर दूँगा। इसलिये मैं आपको हरा देनेके लिये पूरी तरह तैयार होकर आपके सामने खड़ा हूँ। आपको पराजित करके ही शान्त होऊँगा।' इतना कहनेके साथ ही सर्वजितने प्रश्न पूछना शुरू कर दिया—'यह बतलाइये कि यह जमाना कैसा है? दुनियाकी कैसी चलन है?'

कबीरदासने अत्यन्त सरल वाणीमें कहा—'आप मेरी उलटी-पलटी बातोंका मजाक न करें। मेरी राय तो यह है'—

डर लागै औ हाँसी आवै अजब जमाना आया रे॥
धन दौलत ले माल खजाना, बेस्या नाच नचाया रे।
मुट्ठी अन्न साधु कोई माँगे, कहैं नाज नहिं आया रे॥
कथा होय तहँ स्त्रोता सोवैं वक्ता मूँड़ पचाया रे।
होय जहाँ कहिं स्वाँग, तमासा, तनिक न नींद सताया रे॥
भंग तमाखू सुलफा गाँजा सूखा खूब उड़ाया रे।
गुरु चरनामृत नेम न धारै, मधुवा चाखन आया रे॥
उलटी चलन चली दुनियामें ताते जिय घबराया रे।
कहत कबीर सुनो भई साधो का पाछे पछताया रे॥

आपने तो युगका दर्शन ही दिखा दिया। खूब गहराईसे दुनियाको देखा-परखा है। भला बतलाइये तो 'इस युगका व्यवहार कैसा है? प्रजातन्त्रकी क्या अवस्था है? राज्यके

सिंहासनपर कैसे व्यक्ति जमे हुए हैं?'

कबीर—'प्रजातन्त्रका तो यह हाल है'—

बाबू ऐसो है संसार तिहारो, है यह कलि ब्यवहारा।
को अब अनख सहै प्रतिदिनको नाहिन रहन हमारा॥
सुमति सुभाव सबै कोई जानै, हृदया तत्त न बूझै।
निरजीव आगे सरजीव थापे, लोचन कछुव न सूझै॥
तजि अमरत बिष काहे अँचवूँ गाँठी बाँधू खोटा।
चोरनको दिय पाट सिंहासन साहुहिं कीन्हों ओटा॥
कह कबीर झूठो मिली झूठा ठग ही ठग ब्यवहारा।
तीन लोक भरपूर रह्यो है, नाहीं है पतियारा॥

सर्वजित—'यह संसार कैसा है?'

कबीर—

रहना नहिं देस बिराना है॥
यह संसार कागदकी पुड़िया बूँद पड़े घुल जाना है।
यह संसार काँटकी बाड़ी उलझ-पुलझ मरि जाना है॥
यह संसार झाड़ और झाँखर, आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो! सतगुरु नाम ठिकाना है॥

अन्तमें कबीरने कहा—'आपने मेरी बातें सुनीं—उसके लिये धन्यवाद। पर भाई, मैं यह स्वीकार करता हूँ कि शास्त्रार्थमें मैं आपसे नहीं जीत सकता। आपका पुस्तकीय अध्ययन गम्भीर है।'

सर्वजित—'फिर भी आप अपने सिद्धान्त तो स्पष्ट कीजिये। आखिर आप क्या कहना चाहते हैं? आपका मार्ग कौन-सा है?'

कबीर—'मैं जिस मार्गपर अग्रसर हो रहा हूँ, वह मार्ग इतना विशाल और कठोर है कि उसे सर्वसाधारण समझ नहीं पाते हैं।'

'आप उसे निर्गुण-उपासनाका नाम देते हैं न?'

इससे ज्यादा अच्छा तो उसे समन्वयवादका मार्ग कहना पसंद करूँगा! मैंने सभी सम्प्रदायों, शास्त्रों, धर्मग्रन्थों और रहस्यवादी विचारोंको इकट्ठाकर उनको एक बनाया है। उसमें योग-तत्त्व, वैष्णव-सम्प्रदाय तथा बुद्ध-धर्मके भी कुछ सिद्धान्त शामिल हैं। भारतमें इस समय अनेक धर्मोंका प्रभाव है। बिना इनके एकीकरणके मेरा निर्गुण-पंथ सफल नहीं हो सकता। मेरे सिद्धान्त गीताके सिद्धान्तोंसे भी मिलते हैं। कुछ उदाहरण तो दीजिये?

कबीर—

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्॥

'भाई, मैं तो योगमें ही आनन्द मानता हूँ और शरीर नवद्वारोंवाले घरसे सब कर्मोंको मनसे त्यागकर आनन्दपूर्व सच्चिदानन्द परमात्माके स्वरूपमें स्थिर रहना चाहता हूँ।'

'लोग कहते हैं कि आपके पंथमें फूल भी हैं, पर काँ अधिक हैं।'

यह कहना उचित है। इसमें लोगोंको उनकी जीर्ण-शीर्ण रूढियों एवं दूषित बातोंके लिये फटकारना भी पड़ा है। बुरा-भला कहनेकी वृत्तिके लिये मैं लज्जित हूँ। क्ष चाहता हूँ। मेरा निर्गुण-पंथ जनताके हितका साधन है। मैं धर्मके क्षेत्रमें महान् समानता लानेका प्रमाण दिया है। सं- साहित्यका यह एक मध्यम मार्ग है। मैं जानता हूँ कि……।

'कहिये, कहिये, कहते-कहते रुक क्यों गये?'

मैं अपढ़ जुलाहा हूँ, लिखना-पढ़ना जानता नहीं हूँ। मैं यह अनुभव करता हूँ कि शास्त्रार्थमें आप-जैसे सुशि महान् विद्वान्से नहीं जीत सकता। मैं अपनी हार मानता हूँ। मेरी हिम्मत आपसे शास्त्रार्थ करनेकी नहीं है।

सर्वजित—(संतुष्ट होकर) 'अगर आप अपनी हा मानते हैं तो यह बात लिखकर दे दीजिये।'

'क्षमा करें महोदय, मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ कि मैं पढ़ना-लिखना नहीं जानता। जो कुछ कविता कह हूँ, लोग उन्हें लिख लेते हैं। मैं सिर्फ अपने हस्ताक्षर कर जानता हूँ। वे अक्षर भी टेढ़े-मेढ़े बनते हैं। देखकर स्व लज्जा आती है। आप स्वयं लिख लें। मैं अपने हस्ता कर दूँगा।'

लीजिये मैं लिखता हूँ।

क्या लिखा आपने?

सर्वजितने कबीरको हरा दिया!

'लाइये मैं हस्ताक्षर कर देता हूँ।' (यह क कबीरजीने उस पर्चेपर बिना पढ़े ही हस्ताक्षर कर दि

सर्वजित खुशी-खुशी उन्हें लेकर अपनी मा

पास पहुँचे। माताजीको दिखाया तो वे आश्चर्यसे उछल उठीं। उनका चेहरा काले बादलोंकी तरह निराश हो गया।

'माताजी, आप पर्ची पढ़कर क्यों नाराज हो गयीं?'

'अरे मूर्ख, तूने ध्यानसे पढ़ा है कि उसमें क्या लिखा है?'

आप ही बतलाइये क्या लिखा है!

उसमें लिखा है कि 'कबीरने सर्वजितको शास्त्रार्थमें हरा दिया है।'

......मैं फिर काशी जाकर गलतीको दुरुस्त कराऊँगा। दुविधामें फँसे सर्वजित उलटे पाँव कबीरके पास पहुँच गये। 'अपने लिखनेमें ही गलती हो गयी। मेरा ध्यान कहीं भटक गया'—यह कहकर उन्होंने कबीर साहबसे नयी पर्चीपर हस्ताक्षर करनेकी प्रार्थना की। वे तैयार हो गये। सर्वजितने फिर लिखा और माताजीको पर्ची दिखायी।

अरे मूर्ख! इसमें तो फिर वही लिखा है—'कबीरने सर्वजितको शास्त्रार्थमें हरा दिया।'—ऐसा तीन बार हुआ। हैरान होकर सर्वजितने अपनी मातासे कहा—'माँ! ये कबीर अवश्य कोई जादूगर हैं। न जाने क्या जादू कर देते हैं कि मैं कुछ-का-कुछ लिख जाता हूँ।'

सर्वजित अन्धकारमें हैं, उनकी माताजी कबीरकी महानतासे परिचित थीं। वे सर्वजितको सम्बोधित करते हुए कहने लगीं—'तेरे गुप्त मनमें, तेरी अन्तरात्मामें कबीरकी विद्वत्ता बैठी है। ऊपरी मनसे तू कबीरको हरानेकी बात करता है, जबकि तू प्रारम्भसे ही उनसे हारा हुआ है।' अब सर्वजित अपने मिथ्याभिमानपर लज्जित थे। उन्होंने कबीर साहबसे क्षमा माँगी और उनके शिष्य बन गये। उनका शास्त्राभिमान दूर हो गया।

अभिमानग्रस्त रोगीके भीतर जो नैतिक दुर्बलताएँ होती हैं, उन्हें उसका मन दूसरोंपर आरोपित करता है। उसके मनमें गलत विश्वास जम जाता है कि वे अवगुण उसमें नहीं हैं, बल्कि दूसरे व्यक्तियोंमें हैं। कबीर साहबने अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टिसे सर्वजितके मनोविकारका मर्म जान लिया था।

अब सर्वजितका ज्ञान-गर्व टूट चुका था। महात्मा कबीरकी सेवा-साधनाने उन्हें परमार्थ-पथपर ला खड़ा कर दिया था। वे कबीरके समस्त ज्ञान-व्यवहार एवं क्रियाओंमें भगवत्-लीलाके चमत्कारका दर्शन कर रहे थे और शनैः-शनैः शान्तमना सर्वजित तत्त्वज्ञानकी ओर अग्रसर होते हुए यथार्थ तत्त्वज्ञानके उन्मुक्त द्वारसे साक्षात् भगवत्-लीलाकी अनुभूति कर रहे थे। उनको समस्त दृश्य-प्रपञ्च लीलामय ही दृष्टिगत हो रहा था।

◆

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी आदर्श लीलाएँ

(श्रीरामकृष्ण रामानुजदासजी 'श्रीसंतजी महाराज')

परब्रह्म परमात्मप्रभुकी दिव्यतम लीलाएँ तो इतनी गूढ़ और अगाध हैं कि सामान्य मनुष्य उन्हें समझ ही नहीं पाता, जबकि लीलामय प्रभुके समस्त लीलावतरण प्राणिमात्रके कल्याणके लिये ही हुआ करते हैं। इन लीलावतरणोंमें जहाँ भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ लीला-प्रधान होनेके कारण मानव-समुदायके लिये अनुकरणीय नहीं हैं, वहीं भगवान् श्रीरामकी लीलाएँ चरित-प्रधान होनेसे सभी मनुष्योंके लिये आदर्शमय होनेके कारण सर्वथा अनुकरणीय हैं। स्वामी श्रीवल्लभाचार्यजीने लीलाकी व्याख्या करते हुए लिखा है—

'लीला नाम विलासेच्छा'

अर्थात् लीला भगवान्की मौज-मस्ती है, क्रीडा है, यद्यपि उसका कोई उद्देश्य नहीं होता, परंतु यह लीला या क्रीडा किसी साधारण मनुष्यकी निरर्थक क्रीडा नहीं, बल्कि सोद्देश्यजनित है। भगवान्की प्रत्येक लीलाका कोई-न-कोई उद्देश्य अवश्य होता है। जैसे गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने लिखा है—

'भगत हेतु अवतरहिं गोसाईं।'

भगवान् भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेके लिये तथा उनके जीवनमें सुधार लानेके लिये एवं उन्हें शिक्षोपदेश देनेके लिये ही लीला करते हैं।

इसके अनुसार सगुण-साकार भगवान् लोकके कल्याणके लिये अपनी इच्छासे लीला करते हैं। परात्पर ब्रह्मके सगुण-

साकाररूपमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका अवतरण भी लोक-कल्याणार्थ एवं जन-जनके अनुकरणीय आदर्शके प्रतीक-रूपमें हुआ है।

भगवान् श्रीरामकी सारी लीलाएँ लोकको शिक्षा देनेके उद्देश्यसे हुई हैं, इसीलिये ईश्वर होनेपर भी वह अपने ऐश्वर्यको छिपाकर एक साधारण मनुष्य-जैसी लीला करते हैं। पग-पगपर लोक-व्यवहारके लीला-कार्योंमें आदर्श-मर्यादा-स्थापनहेतु सचेष्ट एवं तत्पर रहते हैं। उन्हें सदैव इस बातका ध्यान रहता है कि किसी भी कार्यमें लोक-शास्त्र-मर्यादाका कहीं उल्लंघन तो नहीं हो रहा है! प्रभुका सांसारिक अवतरण ही जब लीला है तो उनकी क्रियाएँ नाटक या लीला हैं, इसमें कहना ही क्या! भगवान् स्वयं कहते हैं—'**मनुष्यभावमापन्नः किंचित्कालं वसाम्यहम्**'—'मनुष्यभावको प्राप्तकर कुछ कालतक मैं यहीं निवास करता हूँ।' भगवान्के कार्योंमें अहं तथा स्वार्थ-भावना नहीं होती, इसीलिये उनकी क्रियाएँ लीला कहलाती हैं, जबकि मनुष्यमें अहं तथा स्वार्थभावना होती है, इसलिये उसकी क्रिया लीला नहीं कही जाती। आप्तकाम तथा वीतराग महापुरुषोंकी क्रियाएँ भी लीला कहलाती हैं।

भगवान् श्रीरामकी आदर्श लीलाओंके सम्बन्धमें महर्षि वाल्मीकिने कहा है कि 'हर मनुष्यका कल्याण भगवान् श्रीरामकी आदर्श लीलाओंका अनुकरण करनेसे हो सकता है। शास्त्र-मर्यादाके अनुसार आचरित होनेपर ही मनुष्यका सच्चा कल्याण होता है। जीवनमें संयम हो, सदाचार हो, सेवा हो तथा मर्यादाका पालन हो, यही भक्तिकी साधना है।' श्रीरामकी सारी लीलाएँ धर्मस्वरूप हैं। वे चरित-प्रधान मर्यादापुरुषोत्तम हैं। उनके दिव्य चरितमें अपार करुणाके मङ्गलमय स्रोत सर्वत्र लहराते नजर आते हैं। शील-शक्ति और सौन्दर्यकी त्रिवेणीका संगम उनके चरितमें सर्वत्र दीखता है। अहल्या-उद्धार-लीला-प्रसंगमें गोस्वामी तुलसीदासजीने विनय-पत्रिका (१००। ४)-में भगवान् श्रीरामका अनाविल शील दर्शाया है। जैसे—

सिला पाप-संताप-बिगत भइ परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय चरन छुएको पछिताउ॥

भगवान् श्रीरामके चरणरजसे अहल्याका उद्धार हो जाता है, शिला दिव्य नारी-रूपमें परिणत हो जाती है। चेतना और आनन्दकी मङ्गलमयी दृष्टिमें सृष्टिका ओर-छोर भीग जाता है। चारों तरफ हर्षका वातावरण दिखायी पड़ता है, परंतु शीलसिन्धु श्रीरामके हृदयमें शिलारूपमें नारीके चरण-स्पर्शजन्य पश्चात्ताप है। यह उनके शील एवं पावन चरितकी बहुत ऊँची भूमिका है। यहाँ उपकारजन्य आनन्दके साथ चरण-स्पर्शजन्य पश्चात्तापका सितासित-संगम है। यह उनके शीलसागरकी अनुपम झाँकी है।

गृध्रराज जटायुकी सेवासे द्रवित होकर उनको गोदमें लेना, अपनी जटासे उनके शरीरके रजको झाड़ना तथा उनके दु:खको देखकर सीता-वियोग-जैसे असह्य संतापको भी स्वयं भूल जाना और अपने हाथोंसे उनका अन्त्येष्टि-संस्कार सम्पन्न करना शीलसागर श्रीरामके शीलका अन्यतम उदाहरण है। आदर्श लीलाके अधिनायक भगवान् श्रीरामने गृध्रराज जटायुके प्रति जो पितृवत् आदरभाव उपस्थापित किया है, वह लोक-व्यवहारादर्शका चूडान्त निदर्शन है। जन-जनके लिये लोकोत्तम शिक्षण है। वनगमनद्वारा उन्होंने मानवमात्रको तपस्या करनेकी, सत्कर्म करनेकी, सत्संग करनेकी शिक्षा दी है। भगवान् श्रीराम जिस समय वनमें पधारे, उस समय उनकी युवावस्था थी, जगत्-जननी माँ सीता भी युवावस्थामें प्रवेश कर चुकी थीं। भरे यौवनमें उनका वनवास हुआ था। यौवनमें ही वनवासकी आवश्यकता होती है, क्योंकि वृद्धावस्थामें इन्द्रियाँ जब स्वतः दुर्बल हो जाती हैं, तब संयम-साधना, भगवच्चिन्तन आदिमें बाधा पड़ती हैं। अतः युवावस्थामें इन्द्रियोंका संयम ही सच्चा संयम कहा जाता है। शक्ति हो, सब प्रकारके भोग प्राप्त हों—फिर भी मन विषयोंमें न जाय, यही सच्चा संयम है। सेवा-साधनाद्वारा स्वयंको मुक्त करते हुए सर्वसाधारणको भी मुक्त करनेका—परमार्थ-पथमें अग्रसर करनेका युवावस्था सबसे अच्छा समय है। इसी लोक-कल्याणकी दृष्टिसे प्रभु राम लक्ष्मण एवं जनकनन्दिनीके साथ युवावस्थामें ही भोग-विरक्त होकर योगासक्त हो गये; जिसमें सुर, नर, मुनि, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व—सभीका निःश्रेयसप्रद कल्याण निहित था, सुनिश्चित था।

दशरथनन्दन सीतापति आदर्श लीलावतारी प्रभु श्रीराम

चाहे गुरु विश्वामित्रके साथ जानेकी अविचलित-भावसे मर्यादा-पालनकी आदर्श लीला हो, सीता-स्वयंवरमें परशुरामके समक्ष आदर्श शिष्टाचारका प्रदर्शन हो, पिताकी आज्ञाके पालनमें वनगमन-प्रसंगका आदर्श हो अथवा लोक-मर्यादाके आदर्श-संरक्षण-हेतु सीता-परित्यागकी लीला हो—ये सभी अपने-आपमें दिव्यतम लीलाएँ हैं, मानवीय मूल्योंकी स्थापनाके चूडान्त दृष्टान्त हैं। ये लीलाएँ अनुपम लोकोत्तर व्यवहारादर्शके साक्षात् अनुकरणीय सत्य-तथ्य, चिन्त्य-तत्त्व एवं महान् परमोपयोगी विश्वकल्याणकारक अलौकिक कार्य हैं, जो सदैव अनुकरणीय हैं—वरणीय हैं।

इस प्रकार भगवान् श्रीरामकी थोड़ी आदर्श लीलाओंद्वारा सभी साधकों तथा भक्तोंको सदाचार-साधन करनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है। सदाचारकी स्थापना प्राणिमात्रके लिये कल्याणप्रद है और इसीसे विश्वमें शान्तिकी स्थापना हो सकती है। इसी उद्देश्यसे भगवान्ने गीतामें कहा है—

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(गीता ४।८)

साधारणतः हमारी चेतना बहिर्मुखी होती है और यह बाहरके विषयोंमें मनमाना अनियन्त्रित-रूपसे दौड़ती रहती है। जिस प्रकार समुद्रमें गोते लगानेपर ही रत्नकी प्राप्ति की जाती है, उसी प्रकार भगवान् श्रीरामकी आदर्श-लीलाओंका विचारद्वारा मन्थन करनेपर ही सदाचारका मूल्य सुविदित होता है। सब कोई सदाचारी बनें, यही मूल प्रेरणा उनकी लीलाओंद्वारा प्राप्त होती है।

सदाचार सच्ची मानवता और भगवद्भक्तिकी आधारशिला है। भगवान् श्रीरामकी लीलामें इसीकी सच्ची शिक्षा दी गयी है। इसे समझनेके लिये शुद्ध हृदयकी आवश्यकता है। शुद्ध हृदयके निर्माणमें ईश्वर-नामके जप तथा कीर्तनका अधिक महत्त्व है, अतः सब कोई प्रेमसे प्रभुका नाम लें—

श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम॥

* * *

श्रीद्वारकाधीश प्रभुकी पारिजात-हरण-लीला

(श्रीजयन्तीलालजी जोशी 'शास्त्री')

श्रीद्वारकानाथ प्रभुकी लीलाएँ अपरम्पार हैं। भक्तगण बाललीला, कैशोरलीला, मथुरालीला एवं द्वारकालीलाके रूपमें इन लीलाओंका विभाजन करते हैं। ये लीलाएँ हैं तो एक ही परात्पर परब्रह्मकी, किंतु अवस्था एवं स्थानभेदसे विद्वानोंने इनका विविध रूपसे वर्णन किया है।

द्वारकाधीश श्रीकृष्णने माथुरमण्डलसे सौराष्ट्र प्रदेशमें निवास करनेका संकल्प किया। एतदर्थ देवशिल्पी विश्वकर्माद्वारा समुद्रतटपर द्वारका नगरीका निर्माण करवाया और समग्र यादवों-समेत वहाँपर निवास किया। प्रभुने द्वारकापुरीमें स्वर्गसे भी श्रेष्ठ राज-वैभव प्रस्थापित किया। तबसे उनका नाम द्वारकाधीश और द्वारकानाथ हुआ। द्वारकामें पधारनेके पश्चात् प्रभुने श्रीरुक्मिणी प्रभृति आठ पटरानियों एवं भौमासुरद्वारा अपहृत सोलह हजार एक सौ राजकुमारियोंके साथ विवाह सम्पन्न करनेकी लीला की।

भगवान् श्रीकृष्ण लीला-गृहस्थ बनकर गृहस्थधर्मका यथोचित पालन करते हैं। प्रभुकी इसी गार्हस्थ्यलीलाके अन्तर्गत 'पारिजात-हरण-लीला' का भी समावेश होता है।

श्रीमद्भागवतमहापुराण (१०।५९।३८—४१)-में इस लीलाका संक्षेपमें संकेत प्राप्त होता है। किंतु श्रीहरिवंशपुराणके विष्णुपर्वमें इस लीलाका ६५ से ७६वें अध्यायतक विस्तारसे वर्णन प्राप्त होता है।

आइये, उन श्रीद्वारकाधीश प्रभुकी उस दिव्यलीलाका आस्वादन करें।

एक समय द्वारकाधीश भगवान् श्रीकृष्ण मुख्य महिषी श्रीरुक्मिणीजीके व्रतोद्यापन-हेतु सपरिवार रैवतक पर्वतपर पधारे—

प्राप्तदारो महातेजा वासुदेवः प्रतापवान्।
रुक्मिण्या सहितो देव्या ययौ रैवतकं नृप॥
उपवासावसानं हि रुक्मिण्याः प्रतिपूजयन्।
तर्पयिष्यन् स्वयं विप्राञ्जगाम मधुसूदनः॥

(हरि० विष्णु० ६५।४-५)

वहाँ द्वारकाके सभी यदुकुमार, पटरानियाँ, दास-दासियाँ एवं अन्य लोग भी सम्मिलित हुए। व्रतकी समाप्ति होनेपर प्रभुने पवित्र ब्राह्मणोंका पूजन-अर्चन, भोजन एवं

मनोवाञ्छित दानसे सत्कार किया। राज्ञी रुक्मिणीका भी विशेष आदर किया। सभी स्वजनोंसे समन्वित प्रभु श्रीकृष्ण वहाँ विराजमान थे। उस समय उनसे मिलनेके लिये देवर्षि नारदजी वहाँ पधारे। भगवान्ने नारदजीका स्वागत किया एवं शास्त्रोक्त-विधिसे पूजन किया। प्रसन्न होकर देवर्षि नारदने स्वर्गके पारिजात वृक्षका एक पुष्प दिया। प्रभुने वह पुष्प अपने समीप विराजमान देवी रुक्मिणीजीको दे दिया—

सोऽर्चितो वासुदेवेन मुनिरर्च्यतमः सताम्।
पारिजाततरोः पुष्पं ददौ कृष्णाय भारत॥
तद्वृक्षराजकुसुमं रुक्मिण्याः प्रददौ हरिः।
पार्श्वस्था सा हि कृष्णस्य भोज्या नरवराभवत्॥

(हरि० विष्णु० ६५। १४-१५)

प्रभुका संकेत पाकर देवी रुक्मिणीने वह पारिजात-पुष्प अपने केशपाशमें लगा लिया। उस देवपुष्पको धारण करनेसे देवी रुक्मिणीकी शोभा द्विगुणित हो गयी। तदनन्तर देवी रुक्मिणीजीसे श्रीनारदजी बोले—'देवि ! यह पुष्प सर्वथा तुम्हारे योग्य है। तुम्हारे सम्पर्कसे यह पुष्प भी सफल हुआ है।' इतना कहनेके पश्चात् पुष्पकी महिमाका बखान करते हुए कहने लगे—'देवि ! यह पुष्प एक वर्षतक म्लान नहीं होता और मनोवाञ्छित सुगन्ध प्रदान करता है, इच्छानुसार सर्दी और गर्मी देता है तथा मनमें जिन श्रेष्ठ रसोंको प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो, उन्हें भी यह पुष्प स्वयं ही झरता (प्रदान करता) रहता है, इसके सेवनसे सौभाग्य, ऐश्वर्य एवं पुत्रकी प्राप्ति होती है, धारण करनेवालेके मनपसंद रंग बदलता है, कामनानुसार स्थूल और सूक्ष्म होता है तथा रात्रिके समय दीपककी भाँति प्रकाश देता है। पुष्पके प्रभावसे क्षुधा, पिपासा, ग्लानि एवं जरावस्था भी इच्छानुसार होती है। इस पुष्पसे गीत-संगीतका आनन्द भी प्राप्त होता है। स्वर्गकी सभी देवियाँ इस पारिजात-पुष्पको धारण करती हैं। एक वर्षके पश्चात् यह पुष्प स्वयं पारिजात वृक्षके समीप चला जायगा। इस पुष्पको धारण करनेसे तुम प्रभुकी सभी रानियोंमें सुन्दर एवं श्रेष्ठ बनी रहोगी।'

नारदजीके इन वचनोंको सुनकर द्वारकाधीश प्रभुकी अन्य रानियाँ रुक्मिणीका अभिनन्दन करती हैं एवं अपना आनन्द प्रकट करती हैं।

रानी सत्यभामा इस समय अपने शिविरमें विश्राम कर रही थीं। जब उनकी दासी आकर रुक्मिणीजीको प्राप्त हुए महिमायुक्त विशिष्ट पारिजात-पुष्पका वृत्तान्त उन्हें सुनाती है तो वे ईर्ष्यासे अत्यन्त क्रुद्ध हो जाती हैं एवं रुष्ट होकर कोपभवनमें जाकर विलाप करती हैं—

दन्दह्यमाना ज्वलनेन वर्धता
ईर्ष्यासमुत्थेन गतप्रभेव।
क्रोधान्विता क्रोधगृहं विविक्तं
विवेश तारेव घनं सतोयम्॥

(हरि० विष्णु० ६५। ५२)

श्रीसत्यभामा रुष्ट हो गयी हैं, यह जानकर श्रीकृष्णजी उन्हें मनानेके लिये वहाँ जाते हैं। प्रिया सत्यभामाकी स्थिति बहुत ही शोचनीय थी। वह बारम्बार कोपाविष्ट एवं मूर्च्छित हो जाती हैं। तब प्रभु दासीके हाथमेंसे व्यजन लेकर स्वयं व्यजन करने लगते हैं। प्रभुके श्रीहस्तसे आती हुई पारिजात-पुष्पकी सौरभसे सत्यभामा जान जाती हैं और उनको उपालम्भ देती हैं—'हे स्वामिन्! मैं तो आपको अपना एकमात्र समझती थी, परंतु आज यह बात मेरी समझमें आ गयी कि आपके भीतर मेरे लिये भी साधारण ही स्नेह है'—

मदीयस्त्वमिति ह्यासीन्मम नित्यं मनः प्रभो।
अद्य साधारणं स्नेहं त्वयि तावद् गतास्म्यहम्॥

(हरि० विष्णु० ६६। ४३)

श्रीद्वारकाधीशजी प्रिया सत्यभामाको अनुनय-विनय एवं माधुर्यसिक्त वचनोंसे समझाते हुए प्रेमसे मनाते हैं तथा वचन देते हैं कि यदि तुम्हारी इच्छा हो तो स्वर्गसे पारिजात वृक्ष लाकर जितने समयतक तुम चाहोगी, उतने समयतकके लिये तुम्हारे भवनके प्राङ्गणमें स्थापित कर दूँगा—

स्वर्गास्पदादानयित्वा पारिजातं द्रुमेश्वरम्।
गृहे ते स्थापयिष्यामि यावत्कालं त्वमिच्छसि॥

(हरि० विष्णु० ६७। ३

प्रभुके इन वचनोंसे आश्वस्त हुई श्रीसत्यभामाजी स्नान करके नूतन वस्त्रालंकार धारण करती हैं तथा प्रभुके लिये उत्तम भोजन बनाती हैं। इसके बाद श्रीकृष्ण नारदजीको ससम्मान निमन्त्रित करते हैं और उन्हें भोजन करानेके बाद स्वयं भोजन करते हैं।

भोजनोपरान्त श्रीकृष्ण और सत्यभामा जब नारदजीके

सम्मुख बैठते हैं तो वार्तालापके ही प्रसंगमें नारदजी कहते हैं कि यह पारिजात-पुष्प मुझे देवराज इन्द्रने दिया था, जो मैंने आपको दे दिया है। देवमाता अदितिकी सेवासे संतुष्ट होकर उनके पति महर्षि कश्यपने अन्य दिव्य वृक्षोंसे सार ग्रहण करके यह दैवी वृक्ष निर्मित किया है। इस वृक्षके मन्दार, पारिजात एवं कोविदार—ये तीन नाम हैं।

जब नारदजीने पारिजातकी महिमा बतायी तो प्रभुने निवेदन किया कि हे ऋषिवर्य! देवराज इन्द्रके पास जाकर आप मेरी प्रार्थना सुनाइये कि वह कुछ दिनोंके लिये मेरी रानियोंके पुण्य-दान-धर्मार्थ और मेरी प्रसन्नताके लिये पारिजात वृक्ष हमें प्रदान करें। यहाँका कार्य सम्पन्न हो जानेपर वृक्षको पुनः स्वर्गमें ले जा सकेंगे—

दत्तं श्रुत्वाभिकांक्षन्ति दातुं पत्न्यो मम प्रभो॥
पुण्यार्थं दानधर्मार्थं मम प्रीत्यर्थमेव च।
आनाययद् द्वारवतीं पारिजातं महाद्रुमम्॥
दत्ते दाने पुनः स्वर्गं तरुं त्वं नेतुमर्हसि।

(हरि० विष्णु० ६८। ६—८)

श्रीकृष्णका प्रस्ताव सुनकर नारदजीने कहा—'प्रभो ! आपकी बात मैं इन्द्रके समीप अवश्य पहुँचा दूँगा, किंतु मुझे लगता है कि इन्द्र यह प्रस्ताव मानेगा नहीं, क्योंकि पूर्वकालमें भगवान् शिवजीने मेरे द्वारा यह वृक्ष मँगवाया था, परंतु इन्द्रने शिवजीकी प्रार्थना करके वह वृक्ष स्वर्गमें ही स्थापित करा लिया था। वह इन्द्रपत्नी शचीका प्रिय क्रीडा-वृक्ष है।'

इसपर श्रीद्वारकाधीशप्रभुने नारदजीसे कहा कि मैं तो एक समयमें इन्द्रका छोटा भाई (उपेन्द्र-वामन) था। अतः मेरा इन्द्रसे माँगनेका अधिकार बनता है। फिर भी यदि इन्द्र नहीं देते हैं तो मैं युद्ध करके लाऊँगा; क्योंकि मेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ नहीं जाती।

तत्पश्चात् भगवान् द्वारकानाथके दूत बनकर देवर्षि नारद इन्द्रके समीप गये। इन्द्रने देवर्षिका स्वागत किया और आगमनका प्रयोजन पूछा। नारदजीने बताया कि मैं द्वारकाधीश-प्रभुका संदेश लेकर आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूँ। भगवान् श्रीकृष्णने आपसे प्रार्थना की है—'स्वर्गमें जो पारिजात वृक्ष है, वह कुछ दिनोंके लिये द्वारका भेज दीजिये। जिससे रानी सत्यभामाका धर्म-कार्य सम्पन्न हो एवं पृथ्वी-निवासी मनुष्य इस दिव्य वृक्षका दर्शन करके कल्याणान्वित हों'—

अयं दर्शितकल्याणो लोको लोकगणेश्वर।
पश्यन्त्वमरकल्याणं मत्प्रभावाच्च मानवाः॥

(हरि० विष्णु० ६९। ३६)

—इस प्रस्तावको सुनकर इन्द्रने कहा कि श्रीकृष्णका यह प्रस्ताव उचित नहीं है। स्वर्गकी वस्तुएँ मनुष्यलोकमें नहीं जा सकतीं। ऐसी मर्यादा है। इससे देवगण भी नाराज हो सकते हैं। जब श्रीकृष्ण सपत्नीक स्वर्गमें आयेंगे तब दिव्य वृक्षको देख सकेंगे। यदि स्वर्गकी सिद्धियाँ पृथ्वीलोकमें चली जायँगी, तो मनुष्य इष्ट-पूर्त-यज्ञ-दान आदि पुण्यकर्म क्यों करेंगे ? आप सत्यभामाके लिये स्वर्गसे वस्त्र, अलंकार, मणि, चन्दन आदि ले जाइये।

इन्द्रकी बात सुनकर नारदजीने कहा कि यदि आप पारिजात नहीं देंगे तो द्वारकाधीश आपके साथ युद्ध करके बलात् पारिजात वृक्ष ले जायँगे। इस बातसे इन्द्र क्रोधाविष्ट होकर कहते हैं—'मुनिश्रेष्ठ ! जबतक मैं संग्रामभूमिमें उपस्थित होकर चक्रपाणि श्रीकृष्णसे पराजित नहीं हो जाऊँगा, तबतक उन्हें पारिजात नहीं दूँगा'—

यावन्न संग्रामगतो जितोऽहं चक्रपाणिना।
पारिजातं न दास्यामि तावद् भो मुनिसत्तम॥

(हरि० विष्णु० ७०। ४६)

तत्पश्चात् नारदजी वापस द्वारकाधीशके पास आयें और इन्द्रके साथ जो बातचीत हुई थी, उसे विस्तारसे सुना दिया। इन्द्रके निर्णयको सुनकर श्रीकृष्णने भी ऋषिके माध्यमसे ही पारिजात-हरण करनेके अपने निश्चयसे इन्द्रको अवगत करा दिया।

'श्रीकृष्ण पारिजात-हरणार्थ स्वर्गपर आक्रमण करनेके लिये कृतनिश्चय हैं'—यह जानकर इन्द्रको बड़ी चिन्ता हुई। वे देवगुरु बृहस्पतिजीसे मिले और स्थितिसे अवगत कराये। बृहस्पतिजीने इन्द्रके दुर्व्यवहारकी निन्दा की और युद्धमें न्यायपूर्ण निष्कर्ष निकलनेका आश्वासन दिया।

बृहस्पतिजीने क्षीरसागर-तटपर तपश्चर्यामें लीन ऋषि कश्यप और माता अदितिको ये सब बातें निवेदित कीं। इस

प्रसंगसे वे दोनों बहुत व्यथित हुए। कश्यपजीने कहा कि इन्द्रने देवशर्मा ऋषिका जो अपराध किया था, उन्हींके शापका यह परिणाम है। मैं दोनोंके बीच युद्ध रोकनेका प्रयत्न करूँगा। बृहस्पतिके लौटनेपर अदिति और कश्यप दोनों भगवान् शिवकी आराधना-प्रार्थनामें लग गये—

तत्र सौम्यं महात्मानमानर्च वृषभध्वजम्।
वरार्थी कश्यपो धीमानदित्या सहितः प्रभुः॥

(हरि० विष्णु० ७२। २७)

उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् शिव प्रकट हुए और दोनोंको आशीर्वाद देकर बोले—'आपकी चिन्ता मैं जानता हूँ। इन्द्र-उपेन्द्र स्वाभाविक स्थितिमें आ जायँगे, श्रीकृष्ण पारिजात ले जायँगे। आप स्वर्गमें जाइये, आपके पुत्रोंका कल्याण होगा। कश्यप-अदिति शिवजीको प्रणाम करके उनके आदेशानुसार स्वर्गके प्रति प्रस्थान करते हैं।

दूसरे दिन भगवान् श्रीकृष्ण भी सात्यकि और प्रद्युम्नको साथ लेकर गरुडारूढ हो स्वर्गमें जा पहुँचे। वे नन्दनवनमें पधारे तो पारिजात वृक्ष स्वयं उनके पास आ गया। वे उसे गरुडपर स्थापित कर लिये। परिणामतः श्रीकृष्ण और इन्द्रके बीच घनघोर युद्ध प्रारम्भ हो गया।

इस भयानक युद्धसे जल, स्थल एवं आकाशमें सभी विकम्पित हो गये। तब ब्रह्माजीके आदेशसे कश्यप और अदिति दोनोंके मध्यमें आ गये एवं युद्ध-विरामके लिये समझाने लगे। दोनोंने कश्यप-अदितिको प्रणाम किया और युद्ध बंद किया।

तत्पश्चात् सब स्वर्गमें वापस लौटे। देवी शचीने श्रीकश्यप-अदितिका पूजन किया। अदितिने श्रीकृष्णको सूचित किया कि आप पारिजात वृक्ष द्वारकामें ले जाइये एवं रानी सत्यभामाके पुण्यकव्रत समाप्त होनेपर पुनः स्वर्गमें लौटा दीजिये—

उपेन्द्र द्वारकां गच्छ पारिजातं नयस्व च।
वध्वा सम्प्रापयस्वेश पुण्यकं हृदये स्थितम्॥
पुण्यके सत्यया प्राप्ते पुनरेष त्वया तरुः।
नन्दने पुरुषश्रेष्ठ स्थाप्यः स्थाने यथोचिते॥

(हरि० विष्णु० ७५। ३८-३९)

तदनन्तर कश्यप-अदिति एवं इन्द्र-शचीको प्रणाम करके पारिजात वृक्ष लेकर जब श्रीकृष्णजी प्रस्थानके लिये तैयार होते हैं तो शची कृष्णकी सभी पत्नियोंके लिये वस्त्र, रत्न, माला तथा अलंकार आदि उपहाररूपमें प्रदान करती हैं।

प्रद्युम्न, सात्यकि और पारिजातके साथ श्रीकृष्णके द्वारकापुरी पहुँचनेपर वहाँकी सारी प्रजा प्रसन्न हो जाती है एवं पारिजातका दर्शन करके मनोवाञ्छित फल प्राप्त करती है। श्रीद्वारकाधीशने पारिजात वृक्षको रानी सत्यभामाके भवनके प्राङ्गणमें स्थापित किया। सत्यभामाने अतिशय प्रसन्नतापूर्वक भगवान्का एवं दिव्य वृक्षराजका पूजन किया। सत्यभामाजीका पुण्यकव्रत समाप्त होनेपर एक वर्षके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने पारिजात वृक्षको पुनः स्वर्गलोकमें पहुँचा दिया—

संवत्सरे ततो याते केशिहामरसत्तमः।
पारिजातं पुनः स्वर्गमानयत् सर्वभावनः॥

(हरि० विष्णु० ७६। २६)

निखिल जगन्नियन्ता श्रीद्वारकाधीशने अपनी प्रिय महिषी सत्यभामाके सम्मानके लिये जो यह दिव्य लीला की, वह असुरोंको मोहित करनेवाली एवं श्रद्धालु भक्तगणके लिये संकीर्तनीय, संस्मरणीय एवं परम कल्याणकारिणी है।

⁂

मां भजन्तु विचक्षणाः

तस्माद् देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसम्भवम् । गुणसङ्गं विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः॥
निस्सङ्गो मां भजेद् विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः । रजस्तमश्चाभिजयेत् सत्त्वसंसेवया मुनिः॥

(श्रीमद्भा० ११। २५। ३३-३४)

यह मनुष्य-शरीर बहुत ही दुर्लभ है। इसी शरीरमें तत्त्वज्ञान और उसमें निष्ठारूप विज्ञानकी प्राप्ति सम्भव है; इसलिये इसे पाकर बुद्धिमान् पुरुषोंको गुणोंकी आसक्ति हटाकर मेरा भजन करना चाहिये। विचारशील पुरुषोंको चाहिये कि बड़ी सावधानीसे सत्त्वगुणके सेवनसे रजोगुण और तमोगुणको जीत ले, इन्द्रियोंको वशमें कर ले और मेरे स्वरूपको समझकर मेरे भजनमें लग जाय। आसक्तिको लेशमात्र भी न रहने दे।

⁂

भगवल्लीलाके दिव्य धाम

वृन्दावनकी निकुंजलीलाका रस-रहस्य—राधा

[मिले ही रहत मानो कबहुँ मिले ना]

(डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी, डी० लिट्०)

वृन्दावनके नवनिकुंज सुखपुंज महलमें नित्य-निरन्तर चलनेवाली केलिलीलाका रस-रहस्य दर्शनशास्त्र और तर्कशास्त्रके विवेचनका विषय नहीं है। वेद और वेदान्त हाथ जोड़कर जिस रंग-महलके द्वार खड़े हैं, उसमें न दास्यभावका प्रवेश है और न शान्तरसका।

जिस रसके वशीभूत होकर प्रभु ऊखलसे बँध जाते हैं, मैया साँटी दिखाती है तो भयभीत हो जाते हैं और **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** का समग्र ऐश्वर्य जिस गोकुल-रसके आगे बेसुध है, नन्दबाबा और यशोदा मैयाका हृदय जिस रसका अजस्र-स्रोत है, वह अलौकिक वात्सल्यरस भी वृन्दावनकी सीमापर ही रह जाता है।

वह सख्यभाव, जिसे न प्रभुकी मर्यादाका ध्यान है, न उनके गौरवका, जो प्रभुके ऐश्वर्य और भय—दोनोंसे अनभिज्ञ है, जो हरिसे धक्का-मुक्की करता है, आँखमिचौनी खेलता है और अपने मुखका ग्रास निकालकर प्रभुके मुखमें रख देता है, जो प्रभुसे दाँव लेता है और दाँव न देनेपर खुलासा कह देता है—

'जाति-पाँति हमसैं बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैंयाँ।'

—वह सख्यरस, जिसकी माधुरीमें डूबकर प्रभुको मैया यशोदाकी टेर भी सुनायी नहीं देती, वह महामहिमामय सख्यरस वृन्दावनकी परिक्रमा ही किया करता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि श्रृंगार रसराज है और उसका निवास व्रजयुवतियोंके मन और नयनोंमें है। नन्दनन्दनको छोड़कर कोई दूसरा उनके कटाक्षोंके मर्मको नहीं जान सकता। कोई कहे कि श्यामसुन्दर आ रहे हैं, तो व्रजाङ्गनाएँ ऐसी पुलकित-प्रमुदित हो जाती हैं कि उनके गहने हाथोंमें टस जाते हैं और जब यह सुध आती है कि कृष्ण मथुरासे नहीं लौटे, तो उनके आभूषण शिथिल हो जाते हैं—खिसकने लगते हैं।

गोपियोंका यह माधुर्यरस कितना भाग्यशाली है! किंतु यह रस भी वृन्दावनके घाटपर पानी भरता है और वृन्दावनकी राजधानी श्रीचक्रका बिंदु नवनिकुंज है।

वृन्दावनके नवनिकुंजमें न दिन है न रात, न नींद है न भूख। निकुंजविहारमें न एक ग्रास आरोगनेकी सुध है न एक घूँट पानी पीनेकी। भोजन-पानीकी स्थूलता महारस-विलासके आनन्दमें बाधा है—

रोम रोम तन यह सुख बिलसत भोजन भूख न प्यास।
रसिक बिहारी मगन रहत नित सहत न खटक उसास॥

उस रसविलासकी लालसामें ठाकुरको अपना प्रभाव और प्रताप भी किरकिरा लगता है—

ताहि सुहाय न ठकुरई बड़ प्रताप बिस्तार।

निकुंजलीला-रस विशुद्ध प्रेम-रस है। यह सहज स्वभाव-सिद्ध प्रेम है। उसका स्वभाव ही प्रेम है, इसलिये वहाँ प्रेमका कोई हेतु नहीं है। रूप, गुण और ऐश्वर्य आदि वहाँ बहुत छोटी बातें हैं।

इस निकुंज-लीलामें नित्य-निरन्तर अविनाभाव-सम्बन्ध सिद्ध है। श्यामा-श्याम या राधा-माधवके विलग होनेकी कल्पना तक नहीं, फिर भी ***'मिले ही रहत मानो कबहुँ मिले ना।'***

बाँहोंमें बाँहें मिलाकर युग-युगान्तरसे, कल्प-कल्पान्तरसे एक-दूसरेको निहार रहे हैं, फिर भी लगता है कि एक-दूसरेने एक-दूसरेको कभी देखा ही नहीं—

ऐसौ भ्रम होत मैं कबहू देख्यौ न री।

भावोंकी वहाँ कैसी सुकुमारता है कि—***'सांसा समुझि सुर बोलियै डोल नयन की कोर।'***

वहाँ सुकुमारताकी अत्यन्त दिव्यता है। रहःकेलिकी

वह तन्मयता जिसमें श्यामसुन्दर प्रियाजीके रस-विवश हैं। प्रेम-रसपानके लिये वे लाड़लीको नाना भाँतिसे रिझाते हैं, मोरोंके साथ नाचते हैं। शृंगारकुंजमें उनके मनमें लालसा होती है कि उन्हें राधाकी वेणी गूँथनेका सौभाग्य प्राप्त हो। अतः वे अपने कंघेरूपी कोमल करोंसे राधाका केश-सँवारते हैं।

वृन्दावनके रसिक भक्तोंका तन-मन-प्राण यह नित्य-निकुंजलीला ही है। वह सौन्दर्य, जिसकी एक किरण भी मनमें आ विराजे तो सर्वत्र सौन्दर्य-ही-सौन्दर्य खिल उठता है। वह पूर्ण सौन्दर्य, जो देश और कालकी सीमामें नहीं बँधा, वह सौन्दर्य, जिसे चन्द्रमा देख ले तो लज्जित हो जाय, कामदेव उसकी झाँकी पा ले तो सुध-बुध खो बैठे।

वह शोभा जो प्रतिपल—प्रतिक्षण नवीन ही बनी रहती है और प्रतिपल नवीनता ही उसकी एक मात्र अवस्था है। श्यामा-श्याम अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यकी निधि हैं। भक्तरसिक-शेखर स्वामी श्रीहरिदासजीकी वाणी है कि—

'राग ही में रंग रह्यौ रंग के समुद्र में ए दोउ आगे।

रसका समुद्र और वहाँ भी रसकी प्यास, अनन्त प्यास। सौन्दर्य-माधुर्यके समुद्रकी लहरें ही उन श्यामा-श्यामकी लीला हैं। प्रकृति-पुरुष तो उसकी छायामात्र हैं।

रसके आत्मप्रकाश, आत्म आस्वादन अथवा रसके आत्म-परिचयका दूसरा नाम है आनन्द। श्रुति कहती है—

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
'आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।
आनन्दो ब्रह्म।'

विश्वका उपादानकारण भी आनन्द है और निमित्त-कारण भी आनन्द है। उस आनन्दसे विश्वमें नित्य नये खेल, नया निर्माण और ध्वंस होता है। आनन्द ही विश्वका प्राण-तत्त्व है। विश्व-प्रपंच वस्तुतः आनन्दका ही प्रपंच है। योगी गोरखनाथ इसे 'चिद्विलास' कहते हैं। यह रस शाश्वत है और यह रस ही ईश्वर है—'**रसो वै सः**'। रस-समुद्रकी लहरोंका नाम ही लीला है। उन लहरोंसे ही विश्व आविर्भूत और तिरोभूत होता है। परंतु रसिक भक्तोंके लिये विश्व-प्रपंचके सम्बन्धमें सोचना साध्य नहीं है, उनका साध्य तो एक मात्र श्यामा-श्यामकी नित्य-केलि है, जहाँ ऐश्वर्य रसकी किरकिरी है। जो पूर्ण सत्ता है, पूर्ण आनन्द है वही प्रेम है, रस है, वही निकुंजलीला है। दूलह-दुलहिन, बिहारी-बिहारिन, प्रिया-लाल आदि नाम रसिक भक्तोंके प्राण-आधार हैं और निकुंजलीलाके दर्शनकी प्यास ही उनका जीवन-दर्शन है—

ऐसें ही देखत रहों जनम सुफल कर मानों।
छिन न टरों पल होंहु न इत उत रहों एक ही तानों॥

⁂

भगवल्लीलाधाम द्वारकाका माहात्म्य एवं इसमें भक्तोंद्वारा लीलानुभूति

(डॉ० श्रीकमलजी पुंजाणी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

पुराणोंमें वर्णित भारतकी सात पुण्यवती एवं मोक्ष-दायिनी नगरियों—अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, काञ्ची, उज्जैन तथा द्वारकामें द्वारकाका विशेष महत्त्व है। यह सौराष्ट्र (गुजरात)-के पश्चिमी समुद्रतटपर स्थित पवित्र तीर्थ-क्षेत्र है। भगवान् श्रीकृष्णके जीवनसे सम्बन्ध होनेके कारण इस तीर्थ-क्षेत्रका महत्त्व बढ़ गया है। इसके बिना चार धामकी यात्रा अपूर्ण रहती है।

महाभारतके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णका जन्म मथुरामें कंस तथा अन्य असुरोंके संहारार्थ हुआ था। इस कार्यको पूरा करनेके बाद श्रीकृष्ण द्वारका चले गये थे। आगे चलकर यादवोंने श्रीकृष्णके नेतृत्वमें द्वारकाको 'स्वर्णनगरी' बना दिया था। इस प्रकार द्वारका भगवान् श्रीकृष्णकी कर्म-भूमि है। उनके अन्तर्धान होनेके पश्चात् प्राचीन द्वारका समुद्रमें डूब गयी, केवल द्वारकाधीशके विशाल मन्दिरको समुद्रने नहीं डुबाया। आज देश-विदेशसे अनेक लोग द्वारकाकी यात्रापर आते हैं और भगवान् द्वारकाधीशके दर्शन करते हैं। इस भगवल्लीला-क्षेत्रमें अनेक संतों एवं भक्तोंको भिन्न-भिन्न प्रकारकी लीलानुभूतियाँ हुई हैं। यहाँ हम

विशिष्ट भक्तोंकी लीलानुभूतिका निरूपण करते हैं, जिनमें एक भक्त (विझांत) द्वारकाके निकटवर्ती गाँवमें निवास करते थे और दूसरे भक्त (पीपाजी) द्वारकाके दूरवर्ती प्रदेशमें रहते थे।

(१)

भक्त विझांतद्वारा लीलानुभूति

द्वारकासे आठ-दस कोसकी दूरीपर स्थित विसावाड़ा नामक गाँवमें आजसे लगभग दो सौ वर्ष-पूर्व विझांत नामके एक राजपूत रहते थे। वे भगवान् द्वारकाधीशके अनन्य भक्त थे। पूर्वजोंसे मिली पर्याप्त जमीन-जायदादके कारण उन्हें आजीविकाकी कोई चिन्ता नहीं थी। द्वारकाकी यात्रापर आनेवाले संतों और भक्तोंको वे अपनी हवेलीमें बुला लेते थे और उनकी सेवा-शुश्रूषा करके अपनेको कृतार्थ समझते थे। इस सेवा-परायणताके कारण भगवान् द्वारकाधीश एवं उनके भक्तोंके परमसेवी विझांतको विसावाड़ा और आस-पासके लोग 'विझांत भगत' कहकर बुलाने लगे।

विझांत भगतने एक व्रत ले रखा था—वे भगवान् द्वारकाधीशके मन्दिरकी ध्वजाके दर्शनके बाद ही अन्न-जल ग्रहण करते थे। प्रातःकाल अपने नित्यकर्मसे निवृत्त होनेके बाद वे अपनी घोड़ीपर सवार होकर द्वारकाकी ओर निकल पड़ते थे और भगवान् द्वारकाधीशकी ध्वजाके दर्शनकर घर लौट आते थे। मार्गमें इष्टदेवकी महिमाका गुणगान करते हुए दीन-दुखियोंकी सेवा-सहायता भी करते थे।

एक दिन जब विझांत भगत ध्वजाके दर्शन करके घरकी ओर लौट रहे थे, तब उन्होंने एक पगड़ीधारी वणिक्को झाड़ीके पीछे खाना खाते देखा।

गर्मीके दिन थे। प्याससे भगतजीका गला सूख रहा था, इसलिये उन्होंने घोड़ीको झाड़ीकी ओर घुमा लिया और वणिक्के निकट जाकर पूछा—'सेठजी, क्या द्वारकाकी यात्रापर निकले हैं?'

अपने पीछेसे आयी आवाजको सुनकर सेठजीने गर्दन घुमायी और सामने राजसी वस्त्रमें सुसज्जित घोड़ेपर सवार व्यक्तिको देखकर विनम्र स्वरमें उत्तर दिया—'सरकार! पोरबंदर जा रहा हूँ, रास्तेमें भूख लगी, इसलिये झाड़ीके पीछे बैठकर जलपान कर रहा हूँ। आइये, आप भी प्रसाद ग्रहण कीजिये—शुद्ध घीकी सुखड़ी और मसालेदार चिउड़ा है।

'भूख नहीं है सेठजी! बस, थोड़ा पानी पिला दें'—भगतजीने कहा।

'बिना कुछ खाये सबेरे-सबेरे पानी पियेंगे तो पाचन-क्रिया खराब हो जायगी, अतः सुखड़ीके एक-दो टुकड़े और दो-चार चम्मच चिउड़ा खा लीजिये, फिर पानी पी लीजियेगा'—सेठजीने आग्रह किया।

वणिक्की बात मानकर भगतजीने थोड़ा प्रसाद ग्रहण किया और फिर पानी पीकर धन्यवादके स्वरमें कहा—'मेरे साथ विसावाड़ा चलिये। भोजन और विश्रामके बाद पोरबंदर चले जाइयेगा।'

'नहीं सरकार! मुझे शामतक पोरबंदर पहुँचना है। बड़ी लड़कीके यहाँ कल सीमन्त है। चिट्ठी देरसे पहुँची, इसलिये गहने-कपड़े लेकर तुरंत घरसे निकल पड़ा'—सेठजीने स्थिति स्पष्ट की।

'मेरे विचारमें इतना जोखिम उठाकर अकेले जाना अच्छा नहीं है। आप तो जानते हैं कि यह काबाओंका मुल्क है, जिन्होंने वीर अर्जुनको भी लूट लिया था।' भगतजीने चेतावनी दी—'मेरी बात मानकर विसावाड़ा चलिये। मैं शामतक आपको पोरबंदर पहुँचा दूँगा।'

भगतजीकी बात मानकर सेठजी घोड़ीपर बैठ गये। अभी झाड़ीके बाहर ही निकले थे कि पीछेसे घोड़ोंकी टाप सुनायी दी। भगतजीने कहा—'सेठजी, डाकुओंके घोड़े इधर आ रहे हैं। आप गहनों-कपड़ोंकी गठरी मुझे देकर सामने की पगडंडीसे विसावाड़ा पहुँच जाइये और मेरी हवेलीपर ठहरिये, मैं झाड़ियोंको पार करते हुए आ रहा हूँ।'

भगतजीकी आज्ञाके अनुसार सेठजी घोड़ीसे उतर गये और पगडंडीपर दौड़ने लगे। भगतजीने झाड़ियोंके पीछेका मार्ग चुना, किंतु वे डाकुओंकी बंदूकका निशाना बनकर घोड़ीसे नीचे गिर पड़े। उन्होंने द्वारकाधीशका स्मरण किया। भगवान् द्वारकाधीश विझांत भगतके वेशमें हाथमें गठरी लिये डाकुओंके सामने खड़े हो गये।

'छीन लो इसके हाथसे गठरी।' डाकुओंके सरदारने अपने साथियोंको आदेश दिया।

ज्यों ही डाकू गठरी छीननेके लिये आगे बढ़े, विझांतके वेशमें खड़े द्वारकाधीश एकसे अनेक हो गये। प्रभुकी यह रूप-लीला देखकर डाकुओंकी आँखें चकाचौंधसे भर गयीं। वे अंधे-से होकर इधर-उधर दौड़ने लगे और अन्तमें भयभीत होकर भाग गये।

विझांत भगत प्रभुकी यह अनुग्रह-लीला देखकर विस्मित हो गये और बार-बार मस्तक झुकाकर उनके प्रति अपना नमन समर्पित करने लगे।

(२)

भक्त पीपाजीद्वारा लीलानुभूति

एक बार संत पीपाजी अपनी सहचरी सीतादेवीके साथ द्वारका पधारे। भगवान् द्वारकाधीशकी मनोरम मूर्तिके दर्शन करनेके बाद वे समुद्रतटपर गये और एक नाविकसे बोले—

'हम सोनेकी द्वारका देखना चाहते हैं। तुम जानते हो वह कहाँ है?'

'हाँ, नावमें बैठ जाइये!' नाविकने कहा।

दोनों हर्षित होकर नावमें बैठ गये। नाव जब समुद्रके मध्य पहुँची, तब संतने नाविकसे पूछा—'कठे द्वारका? (द्वारका कहाँ है?)

नाविकने पानीमें हाथ डालकर जवाब दिया—'अठे द्वारका।' (द्वारका यहाँ है।)

—ये शब्द सुनते ही भक्त दम्पती भगवान् द्वारकाधीशका स्मरण करते हुए पानीमें कूद पड़े।

अपने भक्तोंकी श्रद्धा अविचल बनाये रखनेके लिये भगवान् द्वारकाधीशने अपनी लीलासे पानीमें सोनेकी द्वारका निर्मित की। फिर रुक्मिणीजीको साथ लेकर वे भक्त दम्पतीका स्वागत करनेके लिये चल पड़े और उन्हें सम्मानपूर्वक राजमहलमें ले आये तथा अपने स्वजनों-परिजनोंका परिचय दिया। प्रभुके आतिथ्यका आनन्द लूटते हुए वे अपने घर-गृहस्थीको भी भूल गये।

एक दिन प्रभुने उन दोनोंसे पूछा—'क्या आपको अपने घरकी याद नहीं आती?'

'प्रभु! हमारा सच्चा घर तो यही है। मोह-माया और मिट्टी-पत्थरसे बने कँच्चे घरको हम क्यों याद करें?' संत पीपाजीने उत्तर दिया।

'आपकी बात सही है, परंतु आप तो द्वारकाकी यात्रापर निकले हैं। यदि आप घर न लौटेंगे तो लोग समझेंगे कि आप पानीमें डूब गये हैं, इसलिये मैं चाहता हूँ कि आप यथाशीघ्र घर लौट जायँ। मेरे भक्तोंके सम्बन्धमें कोई ऐसी-वैसी बातें करे, यह मुझसे सहन नहीं होता।'

'अच्छी बात है प्रभु! हम कल ही घर लौट जायँगे, परंतु लोग कैसे मानेंगे कि हमने सच्ची द्वारका देखी है?' पीपाजीने प्रश्न किया।

'इसके लिये मैं अपने शंख-चक्रकी छाप आपकी दाहिनी भुजापर अंकित कर देता हूँ।' इतना कहकर प्रभुने पीपाजीकी दाहिनी भुजापर अपने शंख-चक्रकी छाप अंकित कर दी और रुक्मिणीजीने सीतादेवीको अपनी साड़ी भेंट कर दी।

दूसरे दिन द्वारकाधीश और रुक्मिणीजी भक्त दम्पतीको समुद्रतटतक छोड़ने गये। वे समझ न पाये कि हम किस रास्तेसे गुजरकर समुद्रतटपर पहुँचे हैं। उनके कपड़े कोरे थे, किंतु हृदय तो भगवल्लीलाकी अनुभूतिसे पूर्णतः सराबोर हो चुका था।

◆

तस्मै नमोऽस्त्वथ सदाऽसकृदम्बिकाया नाथाय वायुतनयाभिधया स्मृताय।
यः श्रीविदेहतनयादशयानसून्वोर्लब्धानुकम्प्यजनमुख्य उदारसेवः॥
(जा० च० १।६)

जो श्रीविदेहकुमारी और श्रीदशरथनन्दनजीके कृपापात्रोंमें मुख्य हैं, जिनकी सेवा सकल मनोरथोंको सिद्ध करनेवाली है तथा जो कैङ्कर्य-लोभसे पवन-पुत्र श्रीहनुमान्-नामसे स्मरण किये जाते हैं, उन अम्बिकापति भगवान् श्रीसदाशिवजीके लिये हमारा बारम्बार सर्वदा प्रणाम है।

◆

भगवान्का लीलाधाम—भारत

(श्रीयज्ञनारायणजी त्रिपाठी)

पवित्रतम यह भारत देश भगवान् राम, कृष्ण और ऋषियोंकी जन्मस्थली तथा तपःस्थली रहा है। तीर्थोंकी मणिमालासे समन्वित इस देशमें काशी, वृन्दावन, गङ्गा एवं यमुना आदि सभी मुक्तिके धाम हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें कहा गया है—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

—ये सभी भगवान्के धाम हैं। इन धामोंमें रहकर शुभकर्म करनेपर अवश्य ही मुक्तिकी प्राप्ति होती है। इसी दृष्टिसे तीर्थ-विशेष काशीके सम्बन्धमें कहा गया है कि '**काशीमरणा-मुक्तिः**।' पुरुषोत्तमभगवान् श्रीरामने लंका-विजयोपरान्त जब कुल-पुरोहित महर्षि वसिष्ठके निर्देशानुसार सभी तीर्थोंकी यात्राका क्रम बनाया, तब उन्होंने तीर्थोंकी महिमा बताते हुए कहा कि—'सभी तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ धर्मारण्य है। जिसे ब्रह्मा, विष्णु और नीललोहित भगवान् महादेवने मिलकर स्थापित किया था।' इसी महिमाके कारण परिजनसहित प्रभु श्रीराम वहाँ पहुँचकर सुवर्णा नदीके दोनों ओर श्रीरामेश्वर तथा श्रीकामेश्वर शिवलिङ्गोंकी स्थापना की। इस पवित्र तीर्थस्थलके नाम चारों युगोंमें परिवर्तित हुए हैं, जैसे—

धर्मारण्यं कृतयुगे त्रेतायां सत्यमन्दिरम्।
द्वापरे वेदभवनं कलौ मोहेरकं स्मृतम्॥

अर्थात् सत्ययुगमें धर्मारण्य, त्रेतामें सत्यमन्दिर, द्वापरमें वेदभवन और कलियुगमें मोहेरक नाम प्रसिद्ध हुआ।

ईश्वरकी लीलामयी दृष्टिसे देखनेपर यह सार्वभौम देश बड़ा ही गौरवशाली रहा है। यहाँ त्रेतामें श्रीरामने और द्वापरमें श्रीकृष्णने अवतरित होकर भिन्न-भिन्न लीलाएँ करते हुए दुष्टोंका संहार किया। योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने मोहग्रस्त अर्जुनसे इसी आशयको स्पष्ट करते हुए कहा कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

(गीता ४। ७)

पुत्र-शोक-संतप्त धृतराष्ट्रका समस्त क्रोध भीमपर और गांधारीका पाँचों पाण्डवोंपर था। महाभारतका युद्ध समाप्त होनेपर जब विजयी पाण्डवोंने धृतराष्ट्रको प्रणाम किया, तब धृतराष्ट्रने खिन्न-मनसे सभीको गले लगाया, लेकिन भीमको गले लगाते समय उनकी नीयत बदल गयी और वे भीमको अपनी भुजाओंमें दबाकर उसके शरीरको तोड़ देना चाहते थे। परंतु मधुसूदन धृतराष्ट्रका आन्तरिक विचार ताड़ गये और भीमको झटका देकर दूर कर दिया तथा उसके स्थानपर भीमकी एक लौह-प्रतिमा धृतराष्ट्रकी बाँहोंमें दे दी, जिसे उन्होंने भीम समझकर दोनों हाथोंसे तोड़ डाला। जब गांधारी पाँचों पाण्डवोंको शाप देनेके लिये उद्यत हुईं तो निखिल ब्रह्माण्डनायक माधवने लीलामयी कृपा करके सम्पूर्ण क्रोध अपने ऊपर केन्द्रित करा लिया और शापको इस प्रकार सहर्ष स्वीकार किया कि 'यादव-समुदाय आपसमें लड़कर ही नष्ट होगा।' गांधारीके इस शापको सुनकर सभी काँपने लगे। यद्यपि प्रभुपर शापका किंचित्-मात्र भी प्रभाव पड़ना असम्भव है, तथापि भक्तोंकी रक्षाके लिये उन्होंने लीला-संवरणके समय शापको निमित्त बनाया था। तारणहार प्रभु कृष्णने मुसकानके साथ उस शापको अङ्गीकार करते हुए कहा—'शुभे! मैं जानता हूँ ऐसा होनेवाला है, वृष्णिकुलका संहारक मेरे अतिरिक्त और कौन हो सकता है?'

ऐसे लीलाधारीकी पावन तीर्थमयी भूमिपर कौन जन्म लेना नहीं चाहता है। फ्रांसके एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् जब इस देशमें आये तो यहाँके हिन्दूधर्मसे इतने प्रभावित हुए कि आजीवन यहीं रहकर इस धर्मके समक्ष नतमस्तक होकर भगवान्की भक्तिमें लग गये। एक और अंग्रेज इंजीनियर भारतमें बाँध बनाने-हेतु आये थे, परंतु वे भी प्रभु-लीलासे प्रभावित होकर संन्यासी बन गये। उन्होंने तो यहाँतक कहा कि—'आह! मैं भारत-भूमिपर क्यों नहीं पैदा हुआ, क्यों मैंने इतना समय व्यर्थ गँवाया?'

साधारण मानवकी तो बात ही क्या? इस अखण्ड ब्रह्माण्डनायक परमात्मप्रभुकी लीला-भूमिपर देवलोकवासी देवता भी जन्म ग्रहण करनेकी कामना करते हैं—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

(विष्णुपुराण २। ३। २४)

अतः इस पवित्रतम तीर्थ-भूमिमें जन्म लेकर ईश्वरकी भक्तिके अतिरिक्त दूसरे कार्योंमें एक भी क्षण नष्ट करना उचित नहीं है, क्योंकि मनुष्य-शरीर तो बड़े भाग्यसे मिलता है। प्रभु रामके अनन्य भक्त श्रीतुलसीदासजीने सही कहा है—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

(रा० च० मा० ७। ४३। ७)

◆

भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलास्थलीका महत्त्व

[श्रीवृंदावन एक पलक लौं रहिये]

(डॉ० श्रीविद्यानिवासजी मिश्र)

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलास्थली श्रीवृन्दावन-धाम मुझे बहुत लुभाता है। बार-बार जानेको मन करता है, कुछ गिनी-चुनी जगहें बची हैं जहाँ कुंज हैं, बालू हैं और घनश्यामके प्रतियोगी मोर हैं तथा बालूपर झरी हुई पत्तियों आदिको साफ करना ही कुंजविहारीकी सेवा है, कभी-कभी व्रजभाषाके पदोंके गायनकी गूँज है। श्रीवृन्दावन-विहारीकी महिमा अपूर्व है, पास बुलाते हैं और अन्तर्हित हो जाते हैं, खिझाते हैं और फिर अपनेसे दूर कर देते हैं, दूर करके एक और हूक भर देते हैं, ऐसे 'निपट निर्मोही'-से क्या वास्ता रखें। ऐसे ही वे बार-बार करते हैं, बार-बार तोड़ते हैं और सब कुछ छीनते रहते हैं। नाते-रिश्ते, मोह-छोह, मद-मात्सर्य, काम, क्रोध, लोभ, राग-द्वेष—सब छीकोंसे उतारकर ढरका देते हैं, उसमेंसे केवल ऊपरकी मलाई उतार लेते हैं। एकदम निःस्व कर देते हैं। इसके बाद कोई चारा नहीं रहता सिवाय उनके पास जानेके। परंतु जाना क्या इतना आसान है? कितनी तरहके संशयों और नकली आकर्षणोंके आवरण डाल देते हैं जिससे श्रीवृन्दावनकी राह दीखती ही नहीं। जो लोग श्रीवृन्दावनमें विराजते हैं, बस जाते हैं, नित्य भजन गाते हैं, सुनते हैं, श्रीबाँकेविहारीजीकी झाँकी प्राप्त करते हैं, उनको भी कभी-कभी राह भूल जाती है। वे पीठोंमें, गद्दियोंमें, आश्रमोंमें हरि-इच्छासे उलझ जाते हैं। श्रीवृन्दावनविहारीने उन्हें इन्हीं खिलौनोंमें अटका दिया है। उनके श्रीवृन्दावन-प्रवेशका श्लोक मैं प्रतिदिन कई बार पढ़ता हूँ कि—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥

एक ओर अभिनयकुशल नटकी तरह नाना प्रकारकी भूमिकाएँ ग्रहण करते हुए कितने विलग दीखते हैं, दूसरी ओर वरकी तरह—दूल्हेकी तरह कितने पास, कितने अपने दीखते हैं। क्या अद्भुत मोहिनी शोभा है, मानो मोर-मुकुट सिरपर विश्वके सातों रंगोंमें उनके स्निग्ध-श्यामल केशपाश ढक गये हों, कानोंमें कनेरके फूल खुँसे हुए, सुनहले-पीले उत्तरीय और अधोवस्त्रकी दमकमें नीलकमल-सी देहकी आभा खिलती हुई, गलेमें वनमाला पड़ी हुई, बाँसकी बाँसुरीके छिद्रोंको अधरामृतका लाभ मिलता हुआ, ग्वाल-बालोंके साथ श्रीवृन्दावनमें उनका प्रवेश होता है, जैसे रंगमंचपर नेपथ्यसे बड़े नाटकके नायकका प्रवेश हो। पर यह नायक अद्भुत है, श्रीवृन्दावनमें विहरणके लिये नंगे पैर आता है। उसके और श्रीवृन्दावनकी भूमिके बीचमें कोई अन्तराल नहीं है, बिना उस पैरके पड़े भूमि तृणांकुरोंसे पुलकित कैसे होगी, बिना तृणांकुरोंके गउओंकी तृप्ति कैसे होगी, बिना गउओंकी तृप्तिके गोपाल कैसे होंगे और बिना गोपाल हुए गोपीजनवल्लभ कैसे होंगे? बाँसुरी बजाकर जादू फेर देंगे—श्रीवृन्दावनपर और श्रीवृन्दावनवासियोंपर तथा फिर स्वयं गीत बनकर छा जायँगे कण्ठोंमें।

श्रीवृन्दावनमें वे क्यों बार-बार लुका-छिपी करते हैं? उनसे श्रीराधाका रूप सँभलता नहीं इसलिये या उनसे सहज जीवन जीनेवालेका सहज दुरावहीन प्यार, जिसमें कोई अधिकार नहीं, बस अधिकारहीनताका दर्द है; हमारे-उनके बीच परस्पर क्या हो सकता है, वे ठहरे परब्रह्म हम ठहरीं मूढमति ग्वालिनें। अपने भीतर भरा नहीं जाता। इतना सम्भार सँभालना परब्रह्मके बूतेका नहीं। श्रीवृन्दावन धरतीपर है सही, पर धरतीसे कुछ अलग है। वह धरती होनेका भाव भी है। वह है, उसी प्रकार जैसे श्रीराधा शरीरमात्र नहीं। वह परम प्रीतमकी प्रियाजू होनेका भाव है। ऐसे वृन्दावनकी यात्रा उस भावको ग्रहण करनेवाले मनसे होती है।

अपनी हालकी श्रीवृन्दावन-यात्राकी बात करूँ। कड़ी धूप थी, अभी आँखोंके सामने हरे-भरे बाग ताल तो नहीं आ रहे थे, पर धूपकी बिलैया जरूर लगी थी। ठीक पाँच बजे 'गभीरा' में बिल्वमंगल-गोष्ठी

हुई। उद्घाटनके बाद दो पद हवेली-संगीतकी शैलीमें गाये गये। पहला पद छित स्वामीका था—

'ए हो ब्रजराज अंचरा पसारि मंग्गौ ब्रज माहिं बसिवो।'

दूसरा था सूरदासका—

श्रीवृंदावन एक पलक लौं रहिये।

दूसरा पद बहुत मार्मिक लगा। मैं तो अधिक देर रुक न सका, श्रीबाँकेविहारीके दर्शनके लिये चला गया। ग्रीष्ममें फूलोंसे उनका शृंगार होता है, फिर अक्षयतृतीया थी, बेला और गुलाबका फूल-बँगला बना था। पूरा मन्दिर महँ-महँ महँक रहा था। ठाकुर इन फूलोंके बीच बाँके खड़े थे। मेरी आँखोंके सामने स्वामी हरिदासका प्रसंग झूम गया। जीव गोस्वामीने उनसे कहा—सबके पास ठाकुर हैं आपके पास नहीं। कहा जाता है स्वामी हरिदास ठाकुर-ठकुरानीकी स्तुति करने लगे और दोनों उनकी दोनों हथेलियोंपर आ विराजे, थिरकने लगे, साथ ही स्वामीजी भी थिरकने लगे।

इतनेमें दोनों विग्रह मिलकर एक हो गये। वही बाँकेविहारी हुए। शिवके अर्धनारीश्वर-रूपमें तो हर-गौरी अलग-अलग बायें-दायें रहते हैं, पर बाँकेविहारीकी छवि ऐसी है कि कभी उसमेंसे राधा झाँकती दिखायी पड़ती हैं और कभी माधव। इस मूर्तिमें सही अर्थमें ***'राधा भेल मधाई'***, -की ही झाँकी है अन्यथा अकेले माधवमें ऐसा सौभाग्य-गुण कहाँ होता।

शाम कुछ गहरी हुई, वृन्दावनसे चला और पदकी पंक्तियोंकी फिर सुधि आयी। श्रीवृन्दावनमें एक पल रहनेको मिल जाय तो कितना बड़ा भाग्य है। एक पल कम नहीं होता, पर पल-जैसा पल हो, पलक-जैसी पलक हो, झपे नहीं, एकटक वृन्दावनकी तरफ उत्सुक हो जाय, उदग्र हो जाय, इसी बेलामें तो श्यामसुन्दर लौटते हैं। गायें आगे, बछड़े गायोंसे भी आगे और उनके खुरसे मथी जाती धूलिसे धूसरित श्रमसीकरसे झलकित श्यामसुन्दर पीछे आ रहे हैं। दिनभरकी उपासी आँखोंको 'रूपपारनौ' (पारण) करायेंगे, व्रत सफल होगा—***'बावरी वे अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाँड़ि निहारति गोरो।'*** राधा किसी कोनेमें अधछिपी उस रूपपर अटकी हुई हैं, एक पल श्यामसुन्दर दिख जायँ; फिर क्या श्यामसुन्दर दीखते भी हैं और नहीं भी दीखते हैं। कभी भी पूरे नहीं दीखते। आँखें जहाँ फँसती हैं, फँसी रह जाती हैं। एकान्तमें तो और नहीं देख पातीं आँखें, क्योंकि तब रोम-रोम आँखें बन जाते हैं, आँखें कान बन जाती हैं तथा कान बन जाते हैं मुरलीकी तान। उन्हें देखते-देखते युग एक पल हो जाते हैं, उन्हें जोहते-जोहते पल युग बन जाते हैं। एक पल श्रीवृन्दावनमें रहना बड़ा सुख है और उससे बड़ा दुःख भी। परंतु इस दुःखमें एक आस्वाद है कि दुःखी होनेका मन करता है। काश, हम भी वैसे दुःखी हो सकते कि दुःखके अतिशयमें श्रीकृष्णको पानेकी इच्छा तज देते, श्रीकृष्णके गोलोकधाम जानेकी इच्छा छोड़ देते, बस यही मनाते रहते, यह चाह यह दारुण चाह बनी रहे।चाह रहती है तो सभी नर्म गान बन जाते हैं, पूरा जीवन श्रीकृष्णके हाथों लुटनेके लिये दही बन जाता है।

कई बार ऐसा भाव उठा है, फिर कुछ बाधाएँ घिर आयी हैं। बुद्धि कहती है कि श्रीवृन्दावन अब कहाँ, गोविन्द अब कहाँ, श्रीवृन्दावनमें वंशीकी तान अब कहाँ, कदम्ब-तमाल-करीलके सघन कुंज अब कहाँ? बड़े शानदार भवन हैं, वे ही आश्रम हैं, हर स्थानपर अधिकारकी लड़ाई है—वही वंशीवादन है, देवदूत होनेकी भयंकर प्रतिस्पर्धा है—वही परम पुरुषार्थ की चाह है। यहाँ एक पल भी रहना कितना असह्य लगता है। कभी-कभी कोई उत्तर नहीं मिलता। स्व० सत्यनारायण कविरत्नका विलाप याद आता है कि 'अब ब्रज ब्रज नहीं रहा, वह अब यात्रा नहीं रही, विचरण नहीं रहा, वह अब गद्दीका चिपकाव हो गया है, गद्दीके वैभवका स्थायीभाव हो गया है।'

दूसरी ओर श्रीवृन्दावनके साथ जुड़ी जनभावना कहती है—यह सब झूठ, लाला अभी भी यहीं हैं, लाली ही श्रीवृन्दावनकी धरती बन गयी है, लाला इस धरतीको छोड़कर जायँगे कहाँ? अक्रूरके साथ जो गये वे विष्णुके वैभवशाली चतुर्भुज-रूप थे। वह किशोर चपल बालक तो श्रीवृन्दावनमें ही रह गया। उसे श्रीवृन्दावनके कण-कणमें देखनेकी कोशिश करो।

मुझे श्रीवृन्दावनसे लौटते समय बराबर श्रीकृष्णके ये चाहक, श्रीराधाके ये चरणचंचरीक याद आते हैं और उस समयका एक-एक पल श्रीवृन्दावनकी रज बनकर रससे उमड़ जाता है। पर हाय रे प्रपंच और हाय रे लालाकी छलनाके ऐसे पल, जो ओसकी तरह ढुलक जाते हैं काली डामरकी सड़कपर; फिर तो लगता है कि श्रीवृन्दावनमें एक पलक लौं भी रहना हुआ नहीं।

* * *

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥

प्रभो! तुम्हारी लीला-कथा भी अमृतस्वरूप है। विरहसे सताये हुए लोगोंके लिये तो वह जीवन-सर्वस्व ही है। बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओं—भक्त कवियोंने उसका गान किया है, वह सारे पाप-ताप तो मिटाती ही है, साथ ही श्रवणमात्रसे परम मङ्गल—परम कल्याणका दान भी करती है। वह परम सुन्दर, परम मधुर और बहुत विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला-कथाका गान करते हैं, वास्तवमें भूलोकमें वे ही सबसे बड़े दाता हैं।

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण'का विशेषाङ्क **'भगवल्लीला-अङ्क'** पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है। पिछले कई वर्षोंसे सुविज्ञ जनोंका यह आग्रह था कि भगवत्-लीलासे सम्बन्धित साहित्य 'कल्याण'के विशेषाङ्क-रूपमें प्रकाशित किया जाय। मदनमोहन व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरकी असीम अनुकम्पासे इस वर्ष यह सुअवसर प्राप्त हुआ।

भगवान्‌के परम दिव्य नाम, स्वरूप, गुण और लीला-चरित इतने मधुर हैं कि उनके श्रवण-चिन्तन और मननसे व्यक्तिका मन स्वाभाविक रूपसे प्रभुमें आकृष्ट हो जाता है। इसलिये हमारे आर्षग्रन्थोंके वाङ्मय—साहित्यमें भगवान्‌के लीला-चरित्रोंका ही मुख्यरूपसे वर्णन हुआ है। यहाँ एक प्रश्न उठता है कि भगवान् और भगवान्‌की लीलामें परस्पर भेद है क्या? पर वास्तवमें ऐसा नहीं है। जैसे समुद्रके जल एवं उसके तरंगमें कोई भेद नहीं होता दोनों एक हैं और अभिन्न हैं; वैसे ही प्रभु और उनकी लीला भी परस्पर अभिन्न हैं। लीलाविहारी श्रीश्यामसुन्दर सर्वथा रसमय हैं, उनकी कोटि-कोटि कन्दर्प-कमनीय मनोहर-मूर्ति भावुक भक्तोंके लिये जैसी मनमोहिनी है, वैसी ही उनकी लीलाएँ भी मनमोहिनी हैं। अर्थात् भगवान् सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य हैं तो भगवान्‌की लीलाएँ भी सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप और नित्य हैं। इसीलिये बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्र अमलात्मा सिद्ध जन भी प्रभुके मधुर-मनोहर लीला-चरित और सगुण-साकार-स्वरूप-माधुरीमें मोहित हो जाते हैं तथा उनके लीला-चरित-गुणोंका चिन्तन करने लगते हैं। भगवान् शंकराचार्यने लिखा—

'मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा तं भजन्ते'

अर्थात् जिनकी इस भवाटवीसे मुक्ति हो गयी—ऐसे मुक्तजन भी लीलापूर्वक देह धारणकर भगवान्‌के लीला-चरितका गुण-गान किया करते हैं। इसीलिये आप्तकाम परम निष्काम, आत्माराम श्रीशुकदेवजी महाराजने नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त होते हुए भी महासंहिताका अध्ययन किया और श्रीमद्भागवतके रूपमें भगवान्‌के सगुण-साकार-स्वरूपके लीलाओंका अभिव्यञ्जन भी किया। यह बात सनकादि ऋषियोंके लिये भी कही जाती है।

जब शुद्ध ब्रह्म अपनी अचिन्त्य लीलाशक्तिसे कोटि-काम-कमनीय मनोहर सगुण-साकार-मूर्तिमें प्रादुर्भूत होते हैं, उस समय तत्त्वज्ञको भी उनका वह दिव्य दर्शन निर्विशेष ब्रह्म-दर्शनकी अपेक्षा अधिक आनन्दकी अनुभूति कराता है। जिस प्रकार सूर्यको दूरबीन आदि यन्त्रोंके द्वारा देखनेपर उसमें जो विचित्रता प्रतीत होती है, वह केवल नेत्रोंसे देखनेपर प्रतीत नहीं होती, उसी प्रकार लीला-शक्तिसे उपहित सगुण ब्रह्मदर्शनमें जो आनन्दानुभव होता है, वह शुद्ध-बुद्ध परमेश्वरके साक्षात्कारमें भी नहीं होता। इसी कारण सगुण-साकार सच्चिदानन्द भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन होनेपर तत्त्वज्ञ-शिरोमणि विदेहराज जनकने कहा था—

सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥

× × ×

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

महाराज जनकके उस बरबस ब्रह्मसुख-त्याग और रामदर्शनानुरागमें क्या कारण था? केवल यही कि अबतक वे शुद्ध परब्रह्म-रूप सूर्यको अपने नेत्रोंसे ही देखते थे, किंतु इस समय वे उसकी लीलाशक्तिरूप दूरबीन-यन्त्रसे उपहित स्वरूपका दर्शन कर रहे थे। केवल नेत्रसे दीखनेवाले आदित्यनारायणकी अपेक्षा दूरवीक्षणसे युक्त आदित्य-दर्शनमें विशेषता है।

वस्तुतः तत्त्वज्ञ केवल निवृत्तिक अन्तःकरणसे वैसी मधुरताका अनुभव नहीं कर सकते जैसी कि लीलाशक्तिके

योगसे आविर्भूत हुए भगवान्के सगुण-साकार-स्वरूपका साक्षात्कार करनेपर होता है।

इसीसे अमलात्मा तत्त्वज्ञ पुरुषोंको भक्तियोगके द्वारा अपने सौन्दर्य-माधुर्यका रसास्वादन करानेके लिये ही परब्रह्म परमात्मा अवतीर्ण होते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि भगवान्के अवतारका एक मुख्य प्रयोजन अमलात्मा परमहंसोंके लिये भक्तियोगका विधान करना भी है। इस प्रकार प्रभु—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

—के अनुसार साधुजनोंकी रक्षाके लिये, दुष्टोंके विनाशके लिये तथा धर्म-संस्थापनके लिये तो अवतार ग्रहण करते ही हैं, इसके साथ ही इनके अवतरित होनेका एक प्रयोजन यह भी है कि वे जिज्ञासु-साधकोंको भी अपना मधुरतम भक्तियोग प्रदानकर अनुगृहीत करें।

कुछ विज्ञजनोंका यह भी मत है कि भगवान् यद्यपि आप्तकाम, पूर्णकाम, परम निष्काम, आत्माराम हैं, अतएव उनके भीतर किसी प्रकारकी कामनाका होना तो सम्भव ही नहीं, फिर भी वे अपने आनन्द-विलासके लिये लीला करते हैं, जिसके फलस्वरूप भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। भगवत्-लीलासे अभिव्यक्त उल्लसित आनन्द प्रेमी भक्तोंको परम प्रफुल्लित करता है। परमात्मप्रभु अपने आनन्दस्वरूपका विस्तार करनेके लिये अनेक स्वरूपोंमें प्रकट होते हैं—**'एकोऽहं बहु स्याम्।'** श्रीकृष्णावतारके बाल-लीलाके संदर्भमें बालकृष्ण प्रभु मणिमय स्तम्भमें अपना सुन्दर प्रतिबिम्ब देखकर अत्यन्त आह्लादित होते हैं। उस प्रतिबिम्बको माखन देनेके लिये उद्यत होते हैं, माखन हाथसे गिर पड़ता है, तब रोने भी लगते हैं। यशोदा मैया इस लीलाको देखकर अपार आनन्दित होती हैं। इस प्रकारकी प्रभु-लीलाएँ अनन्त हैं—

'हरि अनंत हरि कथा अनंता'।

प्रस्तुत अङ्कमें आनन्दकन्द ब्रह्माण्डनायक परमात्मप्रभुके विभिन्न स्वरूपोंका, उनके लौकिक एवं अलौकिक गुणोंका, श्रीराम और श्रीकृष्णकी लीलाओके साथ-साथ पञ्चदेवोंके विभिन्न अवतारोंकी परम मनोहर लीलाओं—लीला-रहस्यों तथा उन अवतारोंके ऐकान्तिक भक्तों, सेवकों, उपासकों एवं मित्रभावान्वित तथा शत्रुभावान्वित लीला-सहचरोंके विभिन्न चरित्रोंका यथास्थान चित्रण करते हुए प्रभु-लीलाका दर्शन, साथ ही लीला-रहस्योंका उद्घाटन और लीला-कथाके प्रत्येक पक्षपर पठनीय, विचार-प्रेरक एवं अनुष्ठेय सामग्रीका समायोजन करनेका प्रयास किया गया है। जिससे सर्वसाधारणको परमात्मप्रभुकी लीलाओंका सम्यक् दर्शन-चिन्तन एवं मनन हो सके तथा संसारके लोगोंमें एकाग्रता, अनन्यता और सद्वृत्तियोंका उदय भी हो।

'भगवल्लीला-अङ्क' के लिये लेखक महानुभावोंने उत्साहपूर्वक जो सहयोग प्रदान किया है, उसे हम कभी भूल नहीं सकते। इस वर्ष हमने लेखक महानुभावोंसे सामान्य लेख न भेजकर विशेष लेखोंको भेजनेका अनुरोध किया था। हमें इस बातकी प्रसन्नता है कि इस बार कुछ विशिष्ट सामग्री भी प्राप्त हुई। यथासाध्य 'विशेषाङ्क' में उनके प्रकाशनका भी प्रयास किया गया। परंतु स्थानाभावके कारण सम्पूर्ण लेखोंको यथास्थितिमें प्रकाशित करना कथमपि सम्भव नहीं था। इस कारण कुछ लेखोंको संक्षिप्त भी करना पड़ा तथा कुछ लेख प्रकाशित नहीं किये जा सके, जिसके लिये हमें अत्यन्त खेद है। यद्यपि बचे हुए लेखोंमेंसे कुछ लेखोंको आगे साधारण अङ्कोंमें भी यथासाध्य प्रकाशित करनेका प्रयास करेंगे, फिर भी जिनके लेख प्रकाशित नहीं हो सके, उन लेखक महानुभावोंसे हम करबद्ध क्षमा-प्रार्थना करते हैं, कृपया हमारी विवशताको ध्यानमें रखकर अन्यथा न समझें तथा 'कल्याण' पर अपनी कृपामयी दृष्टि बनाये रखें। उन लेखक महानुभावोंके हम अत्यधिक कृतज्ञ हैं जिन्होंने कृपापूर्वक अपना अमूल्य समय लगाकर भगवान्की लीलाओंसे सम्बन्धित सामग्री तैयार करके यहाँ प्रेषित की है।

इस वर्ष **'भगवल्लीला-अङ्क'** के सामग्रीकी अधिकताके कारण इस अङ्कके साथ दो मासके **'परिशिष्टाङ्क'** निकाले जा रहे हैं। जिसमें 'फरवरी' मासका एक परिशिष्टाङ्क तो विशेषाङ्कके साथ ही समायोजित है तथा 'मार्च' मासका दूसरा परिशिष्टाङ्क भी साथ ही प्रेषित किया जा रहा है।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्र-हृदय संत-महात्माओं, साधक-भक्तों, आदरणीय विद्वान् लेखक महानुभावोंके चरणोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं, जिन्होंने **'विशेषाङ्क'** की पूर्णतामें किंचित् भी योगदान किया है। भगवान्की लीला-चरित्रों एवं भक्ति-भावनाके प्रचार-प्रसारमें वे ही निमित्त हैं, क्योंकि उन्होंके

भक्तिभावपूर्ण एवं उच्च-विचारपूर्ण लेखोंसे 'कल्याण' को सदा शक्ति-स्रोत प्राप्त होता रहता है।

हम अपने विभागके तथा प्रेसके उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोंको भी प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेह-भरे सहयोगसे यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका है। हम अपने त्रुटियों तथा व्यवहार-दोषके लिये सबसे क्षमा-प्रार्थी हैं।

'भगवल्लीला-अङ्क' के सम्पादनमें जिन भक्तों, साधकों, उपासकों, संतोंसे और विद्वान् लेखकोंसे हमें सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्हें हम अपने मानस-पटलसे विस्मृत नहीं कर सकते।

सर्वप्रथम मैं सर्वभारती 'काशिराज-न्यास' के अध्यक्ष महाराज काशिराज डॉ० श्रीविभूतिनारायणसिंहजीके प्रति अपना आभार व्यक्त करना चाहता हूँ, जिन्होंने भारतवर्षमें परम्परासे सम्पन्न होनेवाली रामलीलाओं तथा भारतसे बाहर विदेशोंमें होनेवाली रामलीलाओंसे सम्बन्धित लेख 'विशेषाङ्क'-के लिये भिजवानेका कष्ट किया। तदनन्तर मैं वाराणसीके समादरणीय पं० श्रीलालबिहारीजी शास्त्रीके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करता हूँ, जो निःस्वार्थ-भावसे 'कल्याण' को निरन्तर अपनी सेवाएँ समर्पित करते रहते हैं। 'गोधन'के सम्पादक श्रीशिवकुमारजी गोयलके भी हम आभारी हैं, जिन्होंने इस 'विशेषाङ्क' के लिये कई विशिष्ट महानुभावोंसे सामग्री एकत्र करके भेजनेका कष्ट किया तथा अपने पूज्य पिता श्रीरामशरणदासजीके संग्रहालयसे कई दुर्लभ सामग्रियोंको उपलब्ध कराया।

इस अङ्कके सम्पादनमें अपने सम्पादकीय विभागके वयोवृद्ध विद्वान् पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा एवं अन्य महानुभावोंने अत्यधिक हार्दिक सहयोग प्रदान किया है। इसके सम्पादन, संशोधन एवं चित्र-निर्माण आदिमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहयोग मिला है, वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते।

वास्तवमें 'कल्याण'का कार्य भगवान्‌का कार्य है, अपना कार्य भगवान् स्वयं करते हैं। हम तो केवल निमित्तमात्र हैं। इस बार **'भगवल्लीला-अङ्क'** के सम्पादन-कार्यके अन्तर्गत आनन्दकन्द परमात्मप्रभुकी मधुर-मनोहर लीलाओंका चिन्तन-मनन एवं स्मरणका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा है, जिसके फलस्वरूप भगवत्कृपासे विशेष आनन्दकी अनुभूति प्राप्त हुई। हमें आशा है, इस विशेषाङ्कके पठन-पाठनसे हमारे सहृदय पाठकोंको भी इस पवित्र लीला-कथा-रसपानका सुअवसर प्राप्त होगा तथा वे भक्ति-भाव-समन्वित आनन्दका अनुभव करेंगे।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये आप सबसे क्षमा-प्रार्थना करते हुए श्रीमद्भागवतकी कुछ पंक्तियाँ निवेदन करते हैं, जिन्हें श्रीशुकदेवजी महाराजने राजा परीक्षित्‌को लीला-कथाओंके निष्कर्षरूपमें सुनाया था। इसे पाठकोंको ध्यानपूर्वक पढ़कर आत्मसात् करनेका प्रयास अवश्य करना चाहिये-

हे कुरुश्रेष्ठ! विश्व-विधाता भगवान् नारायण ही समस्त प्राणियों और शक्तियोंके आश्रय हैं। जो कुछ मैंने संक्षेपमें कहा है, वह सब उन्हींकी लीला-कथा है। भगवान्‌की लीलाओंका पूर्ण वर्णन तो स्वयं ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते। [अतः] जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार जाना चाहते हैं अथवा जो लोग अनेक प्रकारके दुःख-दावानलसे दग्ध हो रहे हैं, उनके लिये पुरुषोत्तम भगवान्‌की लीला-कथारूप रसके सेवनके अतिरिक्त और कोई साधन कोई नौका नहीं है। ये केवल लीला-रसायनका सेवन करके ही अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं—

एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातु-
र्नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्नः ।
लीलाकथास्ते कथिताः समासतः
कार्त्स्न्येन नाजोऽप्यभिधातुमीशः॥
संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य॥

(श्रीमद्भा० १२। ४। ३९-४०)

—राधेश्याम खेमका
सम्पादक

* * *

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तकोंका सूचीपत्र

(दिसम्बर १९९७)

श्रीमद्भगवद्गीता

कोड		मूल्य		डाकखर्च
	गीता-तत्त्व-विवेचनी—(टीकाकार-श्रीजयदयालजी गोयन्दका)			
1	बृहदाकार.	८०.००	■	१९.००
2	,, ,, ग्रन्थाकार	४०.००	■	९.००
3	,, ,, साधारण संस्करण	३०.००	■	८.००
457	,, ,, अँग्रेजी अनुवाद	३५.००	■	८.००
800	,, ,, तमिल	५०.००	■	१३.००
	गीता-साधक-संजीवनी—(टीकाकार-स्वामी श्रीरामसुखदासजी)			
5	बृहदाकार	१००.००	■	२२.००
6	,, ,, ग्रन्थाकार	६०.००	■	१५.००
7	,, ,, मराठी अनुवाद	७०.००	■	१०.००
467	,, ,, गुजराती अनुवाद	७५.००	■	१५.००
458	,, ,, अँग्रेजी अनुवाद	४५.००	■	८.००
763	,, ,, बँगला अनुवाद	७०.००	■	१६.००
788	,, ,, **परिशिष्ट** -(७वाँ अध्याय)	३.००	■	१.००
8	**गीता-दर्पण**—(स्वामी रामसुखदासजी)	२५.००	■	५.००
504	,, ,, (मराठी अनुवाद) सजिल्द	२५.००	■	५.००
556	,, ,, (बँगला अनुवाद) सजिल्द	३५.००	■	५.००
468	,, ,, (गुजराती अनुवाद) सजिल्द	२५.००	■	५.००
784	**ज्ञानेश्वरी गुढ़ार्थ दीपिका**	१००.००	■	१५.००
748	**ज्ञानेश्वरी मूल गुटका**	२०.००	■	४.००
10	**गीता-शांकर-भाष्य**—	४०.००	■	६.००
581	**गीता-रामानुज-भाष्य**—	३५.००	■	५.००
11	**गीता-चिन्तन**—(श्रीहनुमानप्रसादजीपोद्दार)	२०.००	■	३.००
	गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, भाषा-टीका			
17	,, सचित्र, सजिल्द	१२.००	■	४.००
12	,, (गुजराती)	२०.००	■	४.००
13	,, (बँगला)	१५.००	■	४.००
14	,, (मराठी)	२०.००	■	४.००
726	,, (कन्नड़)	१८.००	■	५.००
772	,, (तेलगू)	१५.००	■	३.००
	गीता—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित,			
16	,, सजिल्द, मोटे अक्षरोंमें	१५.००	■	३.००
15	,, (मराठी अनुवाद)	२०.००	■	४.००
18	,, भाषा-टीका, टिप्पणी-प्रधान विषय, मोटा टाइप	९.००	■	२.००
771	,, ,, ,, (तेलगू)	९.००	■	३.००
502	,, मोटे अक्षर, सजिल्द	१३.००	■	३.००
718	,, तात्पर्यके साथ (कन्नड़)	८.००	■	२.००
743	,, ,, ,, (तमिल)	१३.००	■	३.००
815	,, श्लोकार्थ सहित(उड़िया)	१३.००	■	२.००
19	**गीता**—केवल भाषा	६.००	■	१.००
750	,, पाकेट साइज	३.००	■	१.००
663	,, केवल भाषा (तेलगू)	५.००	■	१.००
795	,, ,, ,, (तमिल)	५.००	■	१.००
700	**गीता छोटी साइज मूल**	१.००	■	१.००
20	,, भाषा-टीका पाकेट साइज	४.००	■	१.००
633	,, ,, (सजिल्द)	७.००	■	२.००
455	,, ,, (अँग्रेजी)	४.००	■	१.००
534	,, ,, (सजिल्द)	७.००	■	१.००

कोड		मूल्य		डाकखर्च
496	**गीता**—भाषा-टीका पाकेट साइज (बँगला)	४.००	■	१.००
714	,, ,, (असमिया)	५.००	■	२.००
21	**श्रीपञ्चरत्नगीता**—गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष	१०.००	■	२.००
22	**गीता**—मूल, मोटे अक्षरोंवाली	५.००	■	२.००
538	,, ,, ,, ,, सजिल्द	६.००	■	४.००
23	**गीता**—मूल, विष्णुसहस्रनाम-सहित	२.००	■	१.००
661	,, ,, पाकेट साइज (कन्नड़)	४.००	■	१.००
662	,, ,, ,, ,, (तेलगू)	३.००	■	१.००
793	,, ,, ,, ,, (तमिल)	४.००	■	२.००
739	,, ,, ,, ,, (मलयालम)	३.००	■	१.००
541	,, ,, ,, ,, (उड़िया)	२.००	■	१.००
488	**नित्यस्तुतिः**—गीता मूल, विष्णुसहस्रनाम-सहित	४.००	■	१.००
24	**गीता**—मूल(माचिस आकार)	२.००	■	१.००
566	**गीता**—तावीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (कम-से-कम ५०० प्रति एक साथ भेजी जा सकती है।)	०.१५	■	१.००
288	**गीताके कुछ श्लोकोंपर विवेचन**—	२.००	▲	१.००
289	**गीता-निबन्धावली**—	२.५०	▲	१.००
297	**गीतोक्त संन्यास या सांख्ययोगका स्वरूप**—	०.७५	▲	१.००
	गीता-माधुर्य—स्वामी रामसुखदासजीद्वारा			
388	,, ,, (हिन्दी)	८.००	▲	१.००
389	,, ,, (तमिल)	१०.००	■	२.००
390	,, ,, (कन्नड़)	४.५०	▲	२.००
391	,, ,, (मराठी)	८.००	▲	१.००
392	,, ,, (गुजराती)	५.००	▲	१.००
393	,, ,, (उर्दू)	८.००	▲	२.००
394	,, ,, (नेपाली)	५.००	▲	२.००
395	,, ,, (बँगला)	६.००	▲	१.००
624	,, ,, (असमिया)	६.००	▲	१.००
754	,, ,, (उड़िया)	६.००	▲	१.००
487	,, ,, (अँग्रेजी)	८.००	▲	१.००
679	,, ,, (संस्कृत)	६.००	▲	२.००
470	**गीता**-रोमन गीता मूल, श्लोक एवं अँग्रेजी अनुवाद	१०.००	■	२.००
503	**गीता दैनन्दिनी (1998)**— पुस्तकाकार-प्लास्टिक कवर	२५.००	■	४.००
615	,, ,, पाकेट साइज ,,	१२.००	■	३.००
506	,, ,, पाकेट साइज (साधारण)	१०.००	■	३.००
464	**गीता-ज्ञान-प्रवेशिका**-	१०.००	■	२.००
508	**गीता सुधा तरंगिनी**-गीताका पद्यानुवाद	४.००	■	१.००

रामायण

कोड		मूल्य		डाकखर्च
	श्रीरामचरितमानस-बृहदाकार, मोटा टाइप, सजिल्द			
80	,, ,, आकर्षक आवरण, राजसंस्करण	१८०.००	■	१९.००
81	,, ,, सटीक, मोटा टाइप, आकर्षक आवरण	९५.००	■	१०.००
697	,, ,, साधारण	७५.००	■	१०.००
82	,, ,, मझला साइज, सजिल्द	४५.००	■	५.००
456	,, ,, अँग्रेजी अनुवाद-सहित	७०.००	■	९.००
786	,, ,, अँग्रेजी (मझला साइज)	५०.००	■	६.००
83	,, ,, मूलपाठ, मोटे अक्षरोंमें, सजिल्द	५०.००	■	६.००
84	,, ,, मूल, मझला साइज	२५.००	■	४.००

- ■ कम से कम रु० ५०० की पुस्तकें एक साथ लेने पर ▲ चिह्न वाली पुस्तकोंपर ३०% एवं ■ चिह्नवाली पुस्तकों पर १५ % डिस्काउन्ट दिया जाता है। १५०० रु० की मूल्यसे अधिककी पुस्तकें एक साथ चलान करनेपर सामान्य पैंकिग खर्च नहीं लिया जाता तथा रेलभाड़ा बाद दिया जाता है।
- ■ जिन पुस्तकोंका मूल्य अंकित नहीं है वे अभी उपलब्ध नहीं है। बादमें मिल सकती हैं।
- ■ पुस्तकोंके मूल्योंमें परिवर्तन होनेपर पुस्तकपर छपा मूल्य ही देय होगा।
- ■ पुस्तकें डाकसे मँगवानेपर ५% पैकिंग खर्च, डाकखर्च तथा १० रु० प्रति पैकेट रजिस्ट्री खर्च अतिरिक्त देय है।
- ■ पूरी जानकारी हेतु सूचीपत्र मुफ्त मँगायें। विदेशोंमें निर्यातके लिए मूल्यका अलग सूचीपत्र उपलब्ध है।
- ■ जो पुस्तकें अन्य भाषाओंमें छपी हैं उनका विवरण भाषा क्रममें भी दिया गया है।

कोड		मूल्य		डाकखर्च
85	श्रीरामचरितमानस मूल, गुटका	१७.००	■	२.००
790	,, ,, श्रीरामचरितमानस केवल भाषा	५५.००	■	८.००
799	,, ,, गुजराती ग्रन्थाकार	८५.००	■	९.००
785	,, ,, गुजराती (मझला)	४५.००	■	५.००
	श्रीरामचरितमानस-अलग-अलग कांड			
94	,, ,, बालकाण्ड-सटीक	१२.००	■	२.००
95	,, ,, अयोध्याकाण्ड ,,	११.००	■	२.००
98	,, ,, सुन्दरकाण्ड ,,	३.००	■	१.००
101	,, ,, लंकाकाण्ड ,,	६.००	■	२.००
102	,, ,, उत्तरकाण्ड ,,	६.००	■	२.००
141	अरण्य, किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड सटीक	६.००	■	२.००
99	,, ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, गुटका	१.५०	■	१.००
100	,, ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, मोटा टाइप	३.००	■	१.००
	मानसपीयूष-			
86	टीकाकार—श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड)			
75	**श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण**—सटीक,			
76	दो खण्डोंमें सेट	१५०.००	■	१६.००
77	,, ,, केवल भाषा	१००.००	■	१०.००
583	,, ,, (मूलमात्रम्)	६५.००	■	११.००
78	,, ,, सुन्दरकाण्ड, मूलमात्रम्	१०.००	■	३.००
452				
453	,, ,, (अँग्रेजी अनुवादसहित सेट तीनों खण्डोंमें)	२५०.००	■	२५.००
454				
74	**अध्यात्मरामायण**—सटीक, सजिल्द	४०.००	■	५.००
223	**मूल रामायण**	१.००	■	१.००
	अन्य तुलसीकृत साहित्य			
105	**विनयपत्रिका**—सरल भावार्थसहित	१७.००	■	२.००
106	**गीतावली**— ,, ,, ,,	१७.००	■	२.००
107	**दोहावली**— ,, ,, ,,	८.००	■	२.००
108	**कवितावली**— ,, ,, ,,	९.००	■	२.००
109	**रामाज्ञाप्रश्न**— ,, ,, ,,	४.००	■	१.००
110	**श्रीकृष्णगीतावली**— ,, ,, ,,	३.००	■	१.००
111	**जानकीमंगल**— ,, ,, ,,	२.००	■	१.००
112	**हनुमानबाहुक**— ,, ,, ,,	१.५०	■	१.००
113	**पार्वतीमंगल**— ,, ,, ,,	२.००	■	१.००
114	**वैराग्यसंदीपनी**— ,, ,, ,,	१.००	■	१.००
115	**बरवै रामायण**— ,, ,, ,,	१.००	■	१.००
	सूर साहित्य			
555	**श्रीकृष्ण माधुरी**	१२.००	■	३.००
61	**सूर विनय पत्रिका**	१२.००	■	३.००
62	**श्रीकृष्ण बाल माधुरी**	१३.००	■	३.००
735	**सूर राम चरितावली**	११.००	■	३.००
547	विरह पदावली	१०.००	■	३.००
	पुराण, उपनिषद् आदि			
	श्रीमद्भागवत-सुधासागर—सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका			
28	भाषानुवाद, सचित्र, सजिल्द	९०.००	■	९.००
25	शुकसुधासागर बृहदाकार, बड़े टाइपोंमें ,,	२०० ००	■	२५.००
26	**श्रीमद्भागवत-महापुराण**—सटीक—			
27	दो खण्डोंमें सेट	१६०.००	■	२०.००
564,565	,, ,, ,, अँग्रेजी सेट	१५०.००	■	२०.००
29	,, ,, ,, मूल मोटा टाइप		■	७.००
124	,, ,, ,, मूल मझला	३५.००	■	६.००
	श्रीप्रेम-सुधासागर—श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्धका			
30	भाषानुवाद, सचित्र, सजिल्द	३०.००	■	५.००
31	**भागवत एकादश स्कन्ध**—सचित्र, सजिल्द	१६.००	■	३.००
	महाभारत—हिन्दी टीका-सहित, सजिल्द, सचित्र			
728	[छ: खण्डोमें] सेट	७२०.००	■	६५.००
38	**महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण**— हिन्दी टीका	१००.००	■	११.००
637	**जैमिनीय अश्वमेध पर्व**	५०.००	■	७.००

कोड		मूल्य		डाकखर्च
	संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा, सचित्र,			
39,511	सजिल्द सेट (दो खण्डोंमें)	१५०.००	■	[illegible]
44	,, **पद्मपुराण**-सचित्र, सजिल्द	८५.००	■	८.००
613	,, **शिवपुराण**-बड़ा टाइप ,,	७०.००	■	८.००
789	,, **शिवपुराण**-मोटा टाइप	८०.००	■	९.००
539	,, **मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क**	७५.००	■	९.००
46	,, **श्रीमद्देवीभागवत**-केवल भाषा	७०.००	■	[illegible]
48	**श्रीविष्णुपुराण**-सानुवाद, सचित्र, सजिल्द	५०.००	■	६.००
640	**नारद-विष्णु-पुराणाङ्क**	८०.००	■	६.००
279	**संक्षिप्त स्कन्दपुराण**-सचित्र, सजिल्द	१००.००	■	११.००
631	**सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण**	७५.००	■	८.००
517	**गर्गसंहिता**-सचित्र, सजिल्द	५५.००	■	[illegible]
47	**पातञ्जलयोग-प्रदीप**-पातञ्जलयोग-सूत्रोंका वर्णन	६०.००	■	३.००
135	**पातञ्जलयोगदर्शन-**	७.००	■	१.००
582	**छान्दोग्योपनिषद्**-सानुवाद शंकर भाष्य	५०.००	■	[illegible]
577	**बृहदारण्यकोपनिषद्**- ,, ,,	७०.००	■	१०.००
66	**ईशादि नौ उपनिषद्**-अन्वय-हिन्दी व्याख्या	३०.००	■	४.००
67	**ईशावास्योपनिषद्**-सानुवाद, शांकरभाष्य	२.५०	■	१.००
68	**केनोपनिषद्**- ,, ,,	७.००	■	१.००
578	**कठोपनिषद्**- ,, ,,	८.००	■	१.००
69	**माण्डूक्योपनिषद्**- ,, ,,	१५.००	■	३.००
513	**मुण्डकोपनिषद्**- ,, ,,	६.००	■	१.००
70	**प्रश्नोपनिषद्**- ,, ,,	६.००	■	१.००
71	**तैत्तिरीयोपनिषद्**- ,, ,,	१५.००	■	१.००
72	**ऐतरेयोपनिषद्**- ,, ,,	५.००	■	१.००
73	**श्वेताश्वतरोपनिषद्**- ,, ,,	१३.००	■	२.००
65	**वेदान्त-दर्शन**-हिन्दी व्याख्या-सहित, सजिल्द	२५.००	■	६.००
698	**मार्क्सवाद और रामराज्य** स्वामी करपात्रीजी	५०.००	■	८.००
639	**श्रीनारायणीयम्**-सानुवाद	२५.००	■	४.००
201	**मनुस्मृति दूसरा अध्याय सानुवाद-**			
	भक्त चरित्र			
40	**भक्तचरिताङ्क**-सचित्र, सजिल्द	८०.००	■	[illegible]
51	**श्रीतुकाराम-चरित**-जीवनी और उपदेश	२२.००	■	२.००
53	**भागवतरत्न प्रह्लाद-**	११.००	■	२.००
123	**चैतन्य-चरितावली**-सम्पूर्ण एक साथ	७०.००	■	१०.००
751	**देवर्षि नारद**	८.००	■	३.००
167	**भक्त भारती-**	७.००	■	१.००
168	**भक्त नरसिंह मेहता-**	३.००	■	१.००
169	**भक्त बालक**-गोविन्द-मोहन आदिकी गाथा	४.००	■	१.००
685	,, ,, (तेलगू)	३.००	■	१.००
170	**भक्त नारी**-मीरा, शबरी आदिकी गाथा	३.५०	■	१.००
171	**भक्त पञ्चरत्न**-रघुनाथ-दामोदर आदिकी	५.००	■	१.००
682	,, ,, (तेलगू)	५.००	■	१.००
172	**आदर्श भक्त**-शिबि, रन्तिदेव आदिकी गाथा	५.००	■	[illegible]
687	,, ,, (तेलगू)	३.००	■	१.००
173	**भक्त सप्तरत्न**-दामा, रघु आदिकी भक्तगाथा	४.००	■	१.००
174	**भक्त चन्द्रिका**-सखू, विठ्ठल आदि छः भक्तगाथा	४.००	■	१.००
175	**भक्त-कुसुम**-जगन्नाथ आदि छः भक्तगाथा	४.००	■	१.००
176	**प्रेमी भक्त**-बिल्वमंगल, जयदेव आदि पाँच	५.००	■	१.००
177	**प्राचीन भक्त**-मार्कण्डेय, उत्तङ्क आदि	३.५०	■	१.००
178	**भक्त सरोज**-गङ्गाधरदास, श्रीधर आदि	५.००	■	१.००
179	**भक्त सुमन**-नामदेव, राँका-बाँका आदि भक्तगाथा	५.००	■	१.००
180	**भक्त सौरभ**-व्यासदास, प्रयागदास आदि	५.००	■	१.००
181	**भक्त सुधाकर**-रामचन्द्र, लाखा आदि भक्तगाथा	५.००	■	१.००
182	**भक्त महिलारत्न**-रानी रत्नावती, हरदेवी आदि	३.५०	■	
183	**भक्त दिवाकर**-सुव्रत, वैश्वानर आदि आठ भक्तगाथा	३.५०	■	[illegible]
184	**भक्त रत्नाकर**-माधवदास, विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा	३.००	■	[illegible]
185	**भक्तराज हनुमान्**-हनुमान्जीका जीवनचरित्र	५.००	■	[illegible]
608	,, ,, (तमिल)	३.००	■	[illegible]
767	,, ,, तेलगू	२.५०	■	[illegible]
186	**सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र-**			

* **जय श्रीरामके** चित्र कम-से-कम २५०/१०० प्रति ही भेजे जा सकते हैं। फुटकर भेजनेमें चित्रोंके खराब होनेकी सम्भावना हैं।

कोड	मूल्य		डाकखर्च
187 प्रेमी भक्त उद्धव-	२.५०	■	१.००
642 ,, ,, (तमिल)	४.५०	■	१.००
686 ,, ,, (तेलगू)	३.००	■	१.००
188 महात्मा विदुर-	२.५०	■	१.००
189 भक्तराज ध्रुव-	२.५०	■	१.००
292 नवधा भक्ति-भरतजीमें नवधा भक्ति-सहित	३.००	▲	१.००
385 नारदभक्तिसूत्र-सानुवाद	१.००	▲	१.००
330 ,, ,, (बँगला)	२.००	▲	१.००
499 ,, ,, (तमिल)	१.००	▲	१.००
121 एकनाथ-चरित्र-	१०.००	■	२.००

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

कोड	मूल्य		डाकखर्च
683 तत्त्वचिन्तामणि (सभी खण्ड एक साथ)	६०.००	■	१०.००
814 साधन कल्पतरु	५०.००	■	१०.००
527 प्रेमयोगका तत्त्व-(हिन्दी)	९.००	■	२.००
242 महत्त्वपूर्ण शिक्षा-	९.००	■	३.००
521 प्रेमयोगका तत्त्व-(अँग्रेजी अनुवाद)	६.००	▲	२.००
528 ज्ञानयोगका तत्त्व-(हिन्दी)	८.००	▲	२.००
520 ,, ,, (अँग्रेजी अनुवाद)	८.००	▲	२.००
266 कर्मयोगका तत्त्व-(भाग-१)	६.००	▲	१.००
267 ,, ,, (भाग-२)	६.००	▲	१.००
303 प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय- (भ०यो०त०भाग १)	६.००	▲	१.००
298 भगवान्‌के स्वभावका रहस्य-(भ०यो०त०भाग २)	५.००	▲	१.००
243 परम साधन-भाग-१	६.००	▲	२.००
244 ,, ,, भाग-२	५.००		२.००
245 आत्मोद्धारके साधन-भाग-१	७.००	▲	२.००
335 अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति-(आ० सा० भाग-२)	६.००	▲	२.००
579 अमूल्य समयका सदुपयोग-	४.००	▲	१.००
666 अमूल्य समयका सदुपयोग- (तेलगू)	५.००	▲	१.००
246 मनुष्यका परम कर्तव्य-भाग-१	६.००	▲	२.००
247 ,, ,, भाग-२	६.००	▲	२.००
611 इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति-	५.००	▲	१.००
588 अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति-	६.००	▲	१.००
248 कल्याणप्राप्तिके उपाय-तत्त्वचिन्तामणि भाग-१	८.००	▲	२.००
275 ,, ,, ,, ,, (बँगला)	८.००	▲	२.००
249 शीघ्र कल्याणके सोपान- त० चि० २/१	७.००	▲	२.००
250 ईश्वर और संसार- ,, ,, २/२	७.००	▲	२.००
253 धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि- ,, ,, ३/१	५.००	▲	२.००
519 अमूल्य शिक्षा- ,, ,, ३/२	५.००	▲	१.००
251 अमूल्य वचन- ,, ,, ४/१	६.००	▲	२.००
252 भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा- ,, ,, ४/२	६.००	▲	२.००
254 व्यवहारमें परमार्थकी कला- ,, ,, ५/१	६.००	▲	२.००
255 श्रद्धा-विश्वास और प्रेम- ,, ,, ५/२	७.००	▲	२.००
258 तत्त्वचिन्तामणि- ,, ,, ६/१	५.००	▲	२.००
257 परमानन्दकी खेती- ,, ,, ६/२	५.००	▲	२.००
260 समता अमृत और विषमता विष- ,, ,, ७/१	६.००	▲	२.००
259 भक्ति-भक्त-भगवान्- ,, ,, ७/२	६.००	▲	२.००
256 आत्मोद्धारके सरल उपाय-	६.००	▲	२.००
261 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान-	२.००	▲	१.००
262 रामायणके कुछ आदर्श पात्र-	५.००	▲	१.००
768 ,, ,, (तेलगू)	५.००	▲	१.००
263 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र-	४.००	▲	१.००
720 ,, ,, (कन्नड़)	५.००	▲	१.००
766 ,, ,, (तेलगू)	४.००	▲	१.००
264 मनुष्य-जीवनकी सफलता-भाग-१	५.००	▲	२.००
265 ,, ,, भाग-२	५.००	▲	२.००
268 परमशान्तिका मार्ग-भाग-१	६.००	▲	२.००
269 ,, ,, भाग-२	६.००	▲	२.००
543 परमार्थ सूत्र संग्रह	५.००	▲	१.००
769 साधन नवनीत	५.००	▲	१.००
599 हमारा आश्चर्य-	५.००	▲	१.००
272 स्त्रियोंके लिये कर्तव्य शिक्षा-	५.००	▲	१.००
273 नल-दमयन्ती-	२.००	▲	१.००
645 ,, ,, (तमिल)	५.००	▲	१.००

कोड	मूल्य		डाकखर्च
274 महत्त्वपूर्ण चेतावनी-	३.००	▲	१.००
276 परमार्थ-पत्रावली-बँगला, प्रथम भाग	३.५०	▲	१.००
277 उद्धार कैसे हो?-५१ पत्रोंका संग्रह	४.००	▲	१.००
278 सच्ची सलाह-८० पत्रोंका संग्रह	५.००	▲	१.००
280 साधनोपयोगी पत्र-७२ पत्रोंका संग्रह	४.००	▲	१.००
281 शिक्षाप्रद पत्र-७० पत्रोंका संग्रह	६.००	▲	२.००
681 रहस्यमय प्रवचन	५.००	▲	२.००
282 पारमार्थिक पत्र-९१ पत्रोंका संग्रह	६.००	▲	२.००
284 अध्यात्म-विषयक पत्र-	४.००	▲	१.००
283 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ-	३.५०	▲	१.००
480 ,, ,, (अँग्रेजी)	४.००	▲	१.००
680 उपदेशप्रद कहानियाँ	५.००	▲	२.००
320 वास्तविक त्याग-	४.००	▲	१.००
285 आदर्श भ्रातृप्रेम-	३.००	▲	१.००
286 बालशिक्षा-	२.००	▲	१.००
287 बालकोंके कर्तव्य-	३.००	▲	१.००
290 आदर्श नारी सुशीला-	२.००	▲	१.००
312 ,, ,, ,, (बँगला)	२.००	▲	१.००
665 ,, ,, ,, (तेलगू)	३.००	▲	१.००
644 ,, ,, ,, (तमिल)	२.००	▲	१.००
291 आदर्श देवियाँ-	१.२५	▲	१.००
293 सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय-	१.००	▲	१.००
294 संत-महिमा-	१.००	▲	१.००
295 सत्संगकी कुछ सार बातें-(हिन्दी)	१.००	▲	१.००
296 ,, ,, ,, (बँगला)	०.५०	▲	१.००
466 ,, ,, ,, (तमिल)	१.००	▲	१.००
678 ,, ,, ,, (तेलगू)	१.००	▲	१.००
300 नारीधर्म-	१.५०	▲	१.००
301 भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म-	१.००	▲	१.००
310 सावित्री और सत्यवान-(हिन्दी)	१.५०	▲	१.००
609 ,, ,, ,, (तमिल)	१.५०	▲	१.००
664 ,, ,, ,, (तेलगू)	१.५०	▲	१.००
717 सावित्री-सत्यवान और आदर्श नारी सुशीला (कन्नड़)	३.००	▲	१.००
299 श्रीप्रेमभक्ति प्रकाश-ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप	२.००	▲	१.००
304 गीता पढ़नेके लाभ-	०.५०	▲	१.००
703 ,, ,, ,, (असमिया)	.५०	▲	१.००
536 गीता पढ़नेके लाभ और सत्यकी शरणसे मुक्ति- (तमिल)	२.५०	▲	१.००
305 गीताका तात्त्विक विवेचन एवं प्रभाव-	१.२५	▲	१.००
309 भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय- (कल्याण प्राप्तिकी कई युक्तियाँ)	१.५०	▲	१.००
311 वैराग्य, परलोक और पुनर्जन्म-	१.००	▲	१.००
317 अवतारका सिद्धान्त-	०.५०	▲	१.००
306 भगवान् क्या हैं?-	१.००	▲	१.००
307 भगवान्‌की दया-	१.००	▲	१.००
308 सामयिक चेतावनी-	.५०	▲	१.००
313 सत्यकी शरणसे मुक्ति-	०.५०	▲	१.००
672 ,, ,, (तेलगू)	१.००	▲	१.००
722 सत्यकी शरणसे मुक्ति और गीता पढ़नेसे लाभ (कन्नड़)	२.००	▲	१.००
314 व्यापार-सुधारकी आवश्यकता	०.५०	▲	१.००
623 धर्मके नामपर पाप -	०.२५	▲	१.००
315 चेतावनी-	०.५०	▲	१.००
316 ईश्वर-साक्षात्कार-नाम-जप सर्वोपरि साधन है-	०.५०	▲	१.००
318 ईश्वर दयालु और न्यायकारी है-	०.५०	▲	१.००
270 भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द-	०.५०	▲	१.००
271 भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो?-	०.५०	▲	१.००
319 हमारा कर्तव्य-	०.५०	▲	१.००
321 त्यागसे भगवत्प्राप्ति-(गजलगीतासहित)	०.५०	▲	१.००
326 प्रेमका सच्चा स्वरूप-	०.५०	▲	१.००
329 शोक-नाशके उपाय-	०.५०	▲	१.००
322 महात्मा किसे कहते हैं ?-			
324 श्रीमद्भगवद्गीताका प्रभाव			

कोड		मूल्य		डाकखर्च
328	चतु:श्लोकी भागवत-	०.५०	▲	१.००

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी) के अनमोल प्रकाशन

कोड		मूल्य		डाकखर्च
050	पदरत्नाकर-	३५.००	■	५.००
049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन-	४०.००	■	६.००
058	अमृत-कण-	१४.००	■	३.००
332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता-	१२.००	■	३.००
333	सुख-शान्तिका मार्ग-	११.००	■	२.००
343	मधुर-	११.००	■	२.००
056	मानव-जीवनका लक्ष्य-	९.००	■	२.००
331	सुखी बननेके उपाय-	९.००	■	२.००
334	व्यवहार और परमार्थ-	१०.००	■	२.००
514	दु:खमें भगवत्कृपा-	९.००	■	२.००
386	सत्संग-सुधा-	९.००	■	२.००
342	संतवाणी-ढाई हजार अनमोल बोल	१०.००	■	२.००
347	तुलसीदल-	१०.००	■	२.००
339	सत्संगके बिखरे मोती-	९.००	■	२.००
349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति-	१२.००	■	३.००
350	साधकोंका सहारा-	११.००	■	३.००
351	भगवच्चर्चा भाग-५	१५.००	■	३.००
352	पूर्ण समर्पण-	१५.००	■	२.००
354	आनन्दका स्वरूप-	८.५०	■	१.००
355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर	१०.००	■	१.००
356	शान्ति कैसे मिले ?-(लो०प० सुधार भाग-४)	१०.००	■	२.००
357	दु:ख क्यों होते हैं ?-	१०.००	■	२.००
387	प्रेम-सत्संग-सुधा-माला-	९.००	■	१.००
348	नैवेद्य-	९.००	■	२.००
337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श-	७.००	▲	१.००
336	नारीशिक्षा-	७.००	▲	१.००
340	श्रीरामचिन्तन-	८.००	▲	२.००
338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन-	८.००	▲	२.००
345	भवरोगकी रामबाण दवा-	७.००	▲	१.००
346	सुखी बनो-	६.००	▲	१.००
341	प्रेमदर्शन-	८.००	▲	२.००
353	लोक-परलोकका सुधार-(कामके पत्र भाग-१	८.००	▲	२.००
358	कल्याण-कुंज- (क० कुं० भाग-१)	६.००	▲	१.००
359	भगवान्‌की पूजाके पुष्प (,, ,, भाग-२)	६.००	▲	१.००
360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं (,, ,, भाग-३)	७.००	▲	२.००
361	मानव-कल्याणके साधन-(,, ,, भाग-४)	१०.००	■	२.००
362	दिव्य सुखकी सरिता- (,, ,, भाग-५)	५.००	▲	१.००
363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ-(,, भाग-६)	५.००	▲	१.००
364	परमार्थकी मन्दाकिनी- (,, ,, भाग-७)	४.००	▲	१.००
365	गोसेवाके चमत्कार-(तमिल)	३.५०	▲	१.००
366	मानव-धर्म-	५.००	▲	१.००
367	दैनिक कल्याण-सूत्र-	४.००	▲	२.००
368	प्रार्थना-इक्कीस प्रार्थनाओंका संग्रह	२.५०	▲	१.००
777	प्रार्थना पीयूष	२.००	▲	१.००
369	गोपीप्रेम-	२.००	▲	१.००
370	श्रीभगवन्नाम-	१.००	▲	१.००
373	कल्याणकारी आचरण-	१.००	▲	१.००
374	साधन-पथ-सचित्र	३.००	▲	१.००
375	वर्तमान शिक्षा-	२.००	▲	१.००
376	स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी-	२.५०	▲	१.००
377	मनको वश करनेके कुछ उपाय-	१.००	▲	१.००
378	आनन्दकी लहरें	१.५०	▲	१.००
379	गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य-	२.००	▲	१.००
380	ब्रह्मचर्य-	२.००	▲	१.००
381	दीनदुखियोंके प्रति कर्तव्य-	१.००	▲	१.००
382	सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन	१.५०	▲	१.००
344	उपनिषदोंके चौदह रत्न-	४.००	▲	१.००
371	राधा माधव रस सुधा (षोडशगीत) सटीक	१.५०	▲	१.००
383	भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा-	१.००	▲	१.००
384	विवाहमें दहेज	१.००	▲	१.००

परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजीके कल्याणकारी प्रवचन

कोड		मूल्य		डाकखर्च
465	साधन सुधा सिन्धु	७०.००	■	
400	कल्याण-पथ-	७.००	▲	
605	जित देखूँ तित तू—	७.००	▲	
406	भगवत्प्राप्ति सहज है	५.००	▲	
535	सुन्दर समाजका निर्माण	८.००	▲	
401	मानसमें नाम-वन्दना-	७.००	▲	
403	जीवनका कर्तव्य-	८.००	▲	
436	कल्याणकारी प्रवचन-(हिन्दी)	४.००	▲	
404	,, ,, ,, (गुजराती)	४.००	▲	
816	,, ,, ,, (बंगला)	३.००	▲	
405	नित्ययोगकी प्राप्ति-	६.००	▲	
407	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता-	४.००	▲	
408	भगवान्‌से अपनापन-	३.००	▲	
409	वास्तविक सुख-	५.००	▲	
411	साधन और साध्य-	४.५०	▲	
412	तात्त्विक प्रवचन-(हिन्दी)	४.५०	▲	
413	,, ,, (गुजराती)	४.००	▲	
414	तत्त्वज्ञान कैसे हो ?-	५.००	▲	
410	जीवनोपयोगी प्रवचन	४.००	▲	
822	अमृत बिन्दु	४.००	▲	
415	किसानोंके लिये शिक्षा-	१.००	▲	
416	जीवनका सत्य-	३.००	▲	
417	भगवन्नाम-	३.००	▲	
418	साधकोंके प्रति-	४.००	▲	
419	सत्संगकी विलक्षणता-	२.००	▲	
545	जीवनोपयोगी कल्याण मार्ग	२.००	▲	
420	मातृशक्तिका घोर अपमान-	२.००	▲	
421	जिन खोजा तिन पाइयाँ-	४.५०	▲	
422	कर्मरहस्य- (हिन्दी)	२.५०	▲	
423	,, (तमिल)	३.००	▲	
424	वासुदेवः सर्वम्-	३.००	▲	
425	अच्छे बनो-	३.००	▲	
426	सत्संगका प्रसाद-	४.००	▲	
431	स्वाधीन कैसे बनें-	१.००	▲	
702	यह विकास है या विनाश जरा सोचिये	१.००	▲	
652	हम कहाँ जा रहे हैं ? विचार करें	०.५०	▲	
589	भगवान् और उनकी भक्ति-	४.००	▲	
603	गृहस्थोंके लिये-	१.००	▲	
617	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम-	३.००	▲	
625	,, ,, (बँगला)	३.००	▲	
758	,, ,, (तेलगू)	३.००	▲	
796	,, ,, ,, (उड़िया)	२.००	▲	
427	गृहस्थमें कैसे रहें ?- (हिन्दी)	४.००	▲	
428	,, ,, ,, (बँगला)	२.५०	▲	
429	,, ,, ,, (मराठी)	५.००	▲	
128	,, ,, ,, (कन्नड़)	२.७५	▲	
430	,, ,, ,, (उड़िया)	४.००	▲	
472	,, ,, ,, (अँग्रेजी)	३.५०	▲	
553	,, ,, ,, (तमिल)	८.००	▲	
733	,, ,, ,, (तेलगू)	६.००	▲	
432	एकै साधे सब सधै-	३.००	▲	
655	,, ,, ,, (तमिल)	५.००	▲	
761	,, ,, ,, (तेलगू)	५.००	▲	
607	सबका कल्याण कैसे हो ? -(तमिल)	२.००	▲	
433	सहज साधना-	३.००	▲	
434	शरणागति- (हिन्दी)	२.००	▲	
568	,, ,, (तमिल)	४.००	▲	
757	,, ,, (उड़िया)	३.००	▲	
759	,, ,, (तेलगू)	३.००	▲	
435	आवश्यक शिक्षा-	२.००	▲	
730	संकल्प पत्र	२.००	▲	
515	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन-	१.००	▲	
606	,, ,, (तमिल)	२.००	▲	
770	अमरताकी ओर	४.००	▲	

कोड	मूल्य		डाकखर्च
773 भक्तके उद्धार	०.५०	▲	१.००
775 सत्संगके अमृत कण	०.५०	▲	१.००
580 गायकी महत्ता और उसकी आवश्यकता	०.५०	▲	१.००
438 दुर्गतिसे बचो-(हिन्दी)	१.००	▲	१.००
449 ,, ,, (बँगला) (गुरुतत्त्व-सहित)	२.००	▲	१.००
439 महापापसे बचो (हिन्दी)	१.००	▲	१.००
451 ,, ,, (बँगला)	१.००	▲	१.००
549 ,, ,, (उर्दू)	१.२५	▲	१.००
731 ,, ,, (तेलगू)	१.५०	▲	१.००
440 सच्चा गुरु कौन ?-	१.००	▲	१.००
781 अलौकिक प्रेम	०.५०	▲	१.००
442 संतानका कर्तव्य-(हिन्दी)	०.५०	▲	१.००
443 ,, ,, (बँगला)	१.००	▲	१.००
797 ,, ,, (उड़िया)	१.००	▲	१.००
591 ,, ,, (तमिल)	३.००	▲	१.००
444 नित्य-स्तुतिः-	१.००	▲	१.००
729 सार संग्रह	०.५०	▲	१.००
445 हम ईश्वरको क्यों मानें ? (हिन्दी)	१.००	▲	१.००
450 ,, ,, ,, ,, (बँगला)	१.५०	▲	१.००
554 ,, ,, ,, ,, (नेपाली)	०.२५	▲	१.००
446 आहार-शुद्धि- (हिन्दी)	०.५०	▲	१.००
632 सब जग ईश्वररूप है	४.००	▲	१.००
551 आहार-शुद्धि- (तमिल)	१.५०	▲	१.००
447 मूर्तिपूजा- (हिन्दी)	०.५०	▲	१.००
459 ,, ,, (बँगला)	१.००	▲	१.००
569 ,, ,, (तमिल)	१.५०	▲	१.००
734 मूर्तिपूजा-आहार-शुद्धि- (तेलगू)	२.००	▲	१.००
448 नाम-जपकी महिमा- (हिन्दी)	१.००	▲	१.००
571 ,, ,, ,, (तेलगू)	१.००	▲	१.००
550 ,, ,, ,, (तमिल)	१.५०	▲	१.००
723 नाम-जपकी महिमा-आहार-शुद्धि- (कन्नड़)	३.००	▲	१.००
441 सच्चा आश्रय	१.००		१.००
नित्यपाठ साधन-भजन-हेतु			
592 नित्यकर्म पूजा प्रकाश	२४.००	■	३.००
610 व्रत परिचय-	१८.००	■	३.००
245 एकादशी-व्रतका माहात्म्य	३.५०	■	१.००
052 स्तोत्ररत्नावली-सानुवाद	१५.००	■	२.००
117 दुर्गासप्तशती-मूल, मोटा टाइप	१०.००	■	२.००
118 ,, ,, ,, सानुवाद	११.००	■	२.००
489 ,, ,, ,, सजिल्द	१५.००	■	३.००
206 विष्णुसहस्रनाम-सटीक	२.००	■	१.००
226 ,, ,, मूलपाठ	१.००	■	१.००
740 ,, ,, ,, (मलयालम)	१.००	■	१.००
670 ,, ,, ,, (तेलगू)	१.००	■	१.००
737 ,, ,, ,, (कन्नड़)	१.५०	■	१.००
207 रामस्तवराज और रामरक्षास्तोत्र-			
211 आदित्य-हृदयस्तोत्रम्-हिन्दी-अँग्रेजी-अनुवाद-सहित	१.००	■	१.००
224 श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र-भक्त बिल्वमंगलरचित	२.००	■	१.००
674 ,, ,, ,, (तेलगू)	१.५०	■	१.००
231 रामरक्षास्तोत्रम्-	१.००	■	१.००
675 ,, (तेलगू)	१.५०	■	१.००
715 महामन्त्र राज स्तोत्रम्	२.५०	■	१.००
704 श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
705 श्रीहनुमतसहस्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
706 श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
707 श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
708 श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
709 श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
710 श्रीगङ्गासहस्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
711 श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
712 श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
713 श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
655 दत्तात्रेय-वज्रकवच-सानुवाद	२.००	■	१.००
229 नारायणकवच-सानुवाद	१.००	■	१.००

कोड	मूल्य		डाकखर्च
230 अमोघशिवकवच-सानुवाद	१.००	■	१.००
563 शिवमहिम्नस्तोत्र-	१.००	■	१.००
524 ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री-	२.००	■	१.००
054 भजन-संग्रह-पाँचों भाग एक साथ	१८.००	■	४.००
063 पद-पद्माकर-	५.००	■	२.००
140 श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली-३२८ भजनसंग्रह	१०.००	■	२.००
142 चेतावनी-पद-संग्रह-(दोनों भाग)	१०.००	■	२.००
144 भजनामृत-६७ भजनोंका संग्रह	५.००	■	१.००
153 आरती-संग्रह-१०२ आरतियोंका संग्रह	३.००	■	१.००
807 सचित्र आरतियां	५.००	■	१.००
208 सीतारामभजन-	१.५०	■	१.००
221 हरेरामभजन-दो माला (गुटका)	१.५०	■	१.००
222 ,, ,, ,, १४ माला	७.००	■	२.००
576 विनय पत्रिकाके पैंतीस पद	२.००	■	१.००
225 गजेन्द्रमोक्ष-सानुवाद, हिन्दी पद्य, भाषानुवाद	१.००	■	१.००
699 गङ्गालहरी	१.००	■	१.००
688 प्रश्नोत्तरी	१.००	■	१.००
227 हनुमानचालीसा- (पाकेट साइज)	१.००	■	१.००
695 ,, ,, ,, (छोटी साइज)	१.००	■	१.००
600 ,, ,, ,, (तमिल)	१.५०	■	१.००
626 ,, ,, ,, (बँगला)	१.००	■	१.००
676 ,, ,, ,, (तेलगू)	१.००	■	१.००
738 ,, ,, ,, (कन्नड़)	१.००	■	१.००
828 ,, ,, ,, (गुजराती)	१.००	■	१.००
228 शिवचालीसा-	१.००	■	१.००
203 अपरोक्षानुभूति-	१.००	■	१.००
774 गीताप्रेस-परिचय	४.००	■	१.००
139 नित्यकर्म-प्रयोग-	६.००	■	२.००
210 सन्ध्योपासनविधि-मन्त्रानुवादसहित	१.५०	■	१.००
220 तर्पण एवं बलिवैश्वदेवविधि- मन्त्रानुवादसहित	१.५०	■	१.००
236 साधकदैनन्दिनी-	२.००	■	१.००
209 रामायण-मध्यमा-परीक्षा-पाठ्यपुस्तक-	०.७५	■	१.००
614 सन्ध्या	१.००	■	१.००
बालकोपयोगी पाठ्यपुस्तकें			
573 बालक अङ्क (कल्याण वर्ष २७)	८०.००	■	९.००
461 हिन्दी बालपोथी (भाग-१)	२.००	■	१.००
212 ,, ,, (भाग-२)	२.००	■	१.००
684 ,, ,, (भाग-३)	२.००	■	१.००
764 ,, ,, (भाग-४)	४.००	■	१.००
765 ,, ,, (भाग-५)	४.००	■	१.००
125 ,, ,, रंगीन (भाग-१)	२.५०	■	१.००
216 बालककी दिनचर्या	२.००	■	१.००
214 बालकके गुण	२.५०	■	१.००
217 बालकोंकी सीख-	२.००	■	१.००
219 बालकके आचरण-	२.००	■	१.००
218 बाल-अमृत-वचन-	२.००	■	१.००
696 बाल प्रश्नोत्तरी	२.००	■	१.००
215 आओ बच्चों तुम्हें बतायें-	२.००	■	१.००
213 बालकोंकी बोलचाल-	२.००	■	१.००
145 बालकोंकी बातें-	५.००	■	१.००
146 बड़ोंके जीवनसे शिक्षा-	५.००	■	१.००
150 पिताकी सीख-	६.००	■	२.००
197 संस्कृतिमाला- (भाग-१)	२.००	■	१.००
516 आदर्श चरितावली-	३.००	■	१.००
396 आदर्श ऋषिमुनि-	३.००	■	१.००
397 आदर्श देशभक्त-	२.५०	■	१.००
398 आदर्श सम्राट-	३.००	■	१.००
399 आदर्श संत-	२.५०	■	१.००
402 आदर्श सुधारक	२.५०	■	१.००
136 विदुरनीति-	६.००	■	२.००
138 भीष्मपितामह-	८.००	■	१.००
116 लघु सिद्धान्त कौमुदी	२०.००	■	३.००
148 वीर बालक-	४.००	■	१.००
149 गुरु और माता-पिताके भक्त बालक-	४.००	■	१.००

कोड		मूल्य		डाकखर्च
152	सच्चे-ईमानदार बालक-	३.५०	■	१.००
155	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ-	३.००	■	१.००
156	वीर बालिकाएँ-	३.००	■	१.००
727	स्वास्थ सम्मान और सुख	२.००	■	१.००

स्त्रियोपयोगी एवं सर्वोपयोगी प्रकाशन

कोड		मूल्य		डाकखर्च
154	ज्ञानमणिमाला-	२.५०	■	१.००
202	मनोबोध	४.००	■	१.००
746	श्रमण नारद	२.००	■	१.००
747	सप्तमहाव्रत	२.००	■	१.००
542	ईश्वर	२.००	■	१.००
196	मननमाला-	१.२५	■	१.००
57	मानसिक दक्षता-	१५.००	■	३.००
59	जीवनमें नया प्रकाश-(ले० रामचरण महेन्द्र)	१०.००	■	२.००
60	आशाकी नयी किरणें- ,, ,, ,,	११.००	■	२.००
119	अमृतके घूँट-	९.००	■	२.००
132	स्वर्णपथ- ,, ,, ,,	८.००	■	२.००
55	महकते जीवनफूल- ,, ,, ,,	१५.००	■	३.००
64	प्रेमयोग-	१३.००	■	१.००
103	मानस-रहस्य-	२४.००	■	२.००
104	मानस-शंका-समाधान-	८.००	■	२.००
501	उद्धव-सन्देश-	१०.००	■	२.००
460	रामाश्वमेध-	१०.००	■	२.००
191	भगवान् कृष्ण-	३.००	■	१.००
601	,, ,, -(तमिल)	५.००	■	१.००
641	,, ,, (तेलगू)	४.००	■	१.००
193	भगवान् राम-	३.००	■	१.००
195	भगवान्पर विश्वास-	३.००	■	१.००
120	आनन्दमय जीवन	८.००	■	२.००
130	तत्त्व विचार	९.००	■	२.००
133	विवेक-चूड़ामणि-	८.००	■	२.००
701	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२.००	▲	१.००
742	,, ,, ,, (तमिल)	२.५०	▲	१.००
752	,, ,, ,, (तेलगू)	२.००	▲	१.००
762	,, ,, ,, (बंगला)	२.००	▲	१.००
826	,, ,, ,, (उड़िया)	२.००	▲	१.००
802	,, ,, ,, (मराठी)	२.००	▲	१.००
783	,, ,, ,, (अंग्रेजी)	२.००	▲	१.००
131	सुखी जीवन-	७.००	■	१.००
122	एक लोटा पानी-	८.००	■	२.००
134	सती द्रौपदी-	६.००	■	२.००
137	उपयोगी कहानियाँ-	५.००	■	१.००
157	सती सुकला-	२.५०	■	१.००
158	महासती सावित्री-	१.५०	■	१.००
147	चोखी कहानियाँ-	३.००	■	१.००
159	आदर्श उपकार- (पढ़ो, समझो और करो)	६.००	■	२.००
160	कलेजेके अक्षर- ,, ,, ,, ,,	६.००	■	२.००
161	हृदयकी आदर्श विशालता- ,, ,, ,, ,,	६.००	■	२.००
162	उपकारका बदला- ,, ,, ,, ,,	६.००	■	२.००
163	आदर्श मानव-हृदय- ,, ,, ,, ,,	६.००	■	२.००
164	भगवान्के सामने सच्चा सो सच्चा- ,, ,,	६.००	■	२.००
165	मानवताका पुजारी- ,, ,, ,,	६.००	■	२.००
166	परोपकार और सच्चाईका फल- ,, ,, ,,	६.००	■	२.००
510	असीम नीचता और असीम साधुता- ,, ,,	६.००	■	२.००
129	एक महात्माका प्रसाद-	१२.००	■	२.००
151	सत्संगमाला-	३.००	■	१.००

धारावाहिक चित्रकथा

कोड		मूल्य		डाकखर्च
190	बाल-चित्रमय श्रीकृष्णलीला-	६.००	■	२.००
192	बालचित्रमय रामायण-	४.००	■	१.००
238	कन्हैया-(धारावाहिक)	६.००	■	२.००
239	गोपाल- ,,	६.००	■	२.००
240	मोहन- ,,	६.००	■	२.००
241	श्रीकृष्ण- ,,	६.००	■	२.००
079	रामलला- ,,	६.००	■	२.००

कोड		मूल्य		डाकखर्च
529	श्रीराम (धारावाहिक)	६.००	■	२.००
756	गणेश ,,	४.००	■	२.००
204	ॐ नमः शिवाय (द्वादश ज्योतिर्लिंगोंकी कथा)	१०.००	■	२.००
787	जय हनुमान	१०.००	■	२.००
205	नवदुर्गा	५.००	■	२.००
779	दशावतार	६.००	■	२.००
537	बाल चित्रमय बुद्धलीला	३.००	■	२.००
194	बाल चित्रमय चैतन्यलीला	३.००	■	२.००
693	श्रीकृष्ण रेखा चित्रावली	६.००	■	२.००
656	गीता माहात्म्य की कहानियाँ	५.००	■	१.००
651	गो सेवाके चमत्कार	६.००	■	२.००

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

कोड			मूल्य		डाकखर्च
635	शिवाङ्क-	(कल्याणवर्ष ८)	८०.००	■	११.००
41	शक्ति-अङ्क-	(,, ,, ९)	८०.००	■	८.००
616	योगाङ्क -	(,, ,, १०)	६०.००	■	९.००
627	संत-अङ्क	(,, ,, १२)	९०.००	■	१०.००
604	साधनाङ्क-	(,, ,, १५)	७५.००	■	९.००
028	श्रीभागवत-सुधासागर-	(,, ,, १६)	९०.००	■	९.००
44	संक्षिप्त पद्मपुराण-	(,, ,, १९)	८५.००	■	८.००
539	मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क-	(,, ,, २१)	७५.००	■	[illegible]
43	नारी-अङ्क-	(,, ,, २२)	७०.००	■	८.००
659	उपनिषद अङ्क-	(,, ,, २३)	९०.००	■	९.००
518	हिन्दू-संस्कृति-अङ्क-	(,, ,, २४)	७५.००	■	९.००
279	संक्षिप्त स्कन्दपुराण-	(,, ,, २५)	१००.००	■	१०.००
40	भक्त-चरिताङ्क-	(,, ,, २६)	८०.००	■	९.००
573	बालक-अङ्क-	(,, ,, २७)	८०.००	■	९.००
640	स० नारद विष्णु पुराणाङ्क	(,, ,, २८)	८०.००	■	११.००
667	संतवाणी अंक	(,, ,, २९)	८५.००	■	९.००
587	सत्कथा-अङ्क-	(,, ,, ३०)	६५.००	■	८.००
636	तीर्थाङ्क-	(,, ,, ३१)	८५.००	■	१२.००
660	भक्ति अङ्क	(,, ,, ३२)	८०.००	■	११.००
46	संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत	(,, ,, ३४)	७०.००	■	८.००
574	संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क-	(,, ,, ३५)	७५.००	■	९.००
631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क	(,, ,, ३७)	७५.००	■	८.००
789	,, शिवपुराण-(बड़ा टाइप)	(,, ,, ३९)	८०.००	■	[illegible]
572	परलोक पुनर्जन्माङ्क	(,, ,, ४३)	७०.००	■	[illegible]
517	गर्ग-संहिता- [भगवान् श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन]	(,, ,,४४ एवं ४५)	५५.००	■	[illegible]
657	श्रीगणेश-अङ्क	(,, ,, ४८)	६०.००	■	१०.००
42	हनुमान-अङ्क-	(,, ,, ४९)	५०.००	■	६.००
791	सूर्याङ्क	(,, ,, ५३)	४५.००	■	६.००

कल्याण एवं कल्याण-कल्पतरुके पुराने मासिक अंक

कोड		मूल्य		डाकखर्च
525	कल्याणके विभिन्न-मासिक-अंक	३.००	■	१.००
602	**Kalyana-Kalpataru** (Monthly Issues)	२.५०	■	१.००

अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाशन

संस्कृत

कोड		मूल्य		डाकखर्च
679	गीतामाधुर्य	६.००	▲	२.००

बंगला

कोड		मूल्य		डाकखर्च
540	साधक-संजीवनी-पूरा सेट	७०.००	■	[illegible]
556	गीता-दर्पण-	३५.००	■	[illegible]
013	गीता-पदच्छेद-	१५.००	■	[illegible]
626	हनुमानचालीसा-	१.००	■	[illegible]
496	गीता भाषाटीका पाकेट साइज-	४.००	■	[illegible]
275	कल्याण-प्राप्तिके उपाय-(तत्त्व-चिन्ता० भाग-१)	८.००	▲	[illegible]
395	गीतामाधुर्य-	६.००	▲	[illegible]
428	गृहस्थमें कैसे रहें ? -	२.५०	▲	[illegible]
816	कल्याणकारी प्रवचन	३.००	▲	[illegible]
276	परमार्थ-पत्रावली- भाग-१	३.५०	■	[illegible]
449	दुर्गतिसे बचो गुरुतत्त्व-	२.००	▲	[illegible]
463	चित्र जय श्रीकृष्ण	१३.००	▲	[illegible]
450	हम ईश्वरको क्यों मानें- नाम जपकी महिमा	१.५०	▲	[illegible]
312	आदर्श नारी सुशीला-	२.००	▲	[illegible]
330	नारद एवं शांडिल्य-भक्ति-सूत्र-	२.००	▲	[illegible]

कोड	मूल्य		डाकखर्च
625 देशकी वर्तमानदशा तथा उसका परिणाम-	३.००	▲	१.००
762 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२.००	▲	१.००
469 मूर्तिपूजा-	१.००	▲	१.००
296 सत्संगकी सार बातें-	०.५०	▲	१.००
443 संतानका कर्तव्य	१.००	▲	१.००
मराठी			
748 ज्ञानेश्वरी मूल गुटका	२०.००	■	३.००
784 ज्ञानेश्वरी गूढ़ार्थ दीपिका	१००.००	■	११.००
7 साधक-संजीवनी टीका-	७०.००	■	१०.००
504 गीता-दर्पण-	२५.००	■	५.००
14 गीता-पदच्छेद-	२०.००	■	४.००
15 गीता माहात्म्यसहित-	२०.००	■	४.००
391 गीतामाधुर्य-	८.००	▲	२.००
429 गृहस्थमें कैसे रहें ?-	५.००	▲	२.००
गुजराती			
467 साधक-संजीवनी-	७५.००	■	१०.००
468 गीता-दर्पण-	२५.००	■	५.००
12 गीता-पदच्छेद-	२०.००	■	४.००
392 गीतामाधुर्य-	५.००	▲	२.००
799 श्रीरामचरितमानस-गुजराती ग्रन्थाकार	८५.००	■	९.००
785 ,, ,, मझला	४५.००	■	५.००
404 कल्याणकारी प्रवचन-	४.००	▲	२.००
544 चित्र जयश्रीकृष्ण	१३.००	■	
413 तात्त्विक प्रवचन-	४.००	▲	२.००
828 हनुमान चालीसा	१.००	■	१.००
तमिल			
800 गीता तत्त्वविवेचनी	५०.००	■	९.००
743 गीता मूल	१३.००	■	२.००
795 गीता भाषा	५.००	■	१.००
793 गीता मूल विष्णु सहस्त्रनाम	४.००	■	१.००
389 गीतामाधुर्य-	१०.००	■	२.००
127 उपयोगी कहानियाँ	५.००	■	२.००
646 चोखी कहानियाँ	५.००	■	१.००
600 हनुमानचालीसा	१.५०	■	१.००
794 विष्णु सहस्त्रनाम स्तोत्रम	१.००	■	१.००
601 भगवान् श्रीकृष्ण	५.००	■	१.००
603 भक्तराज हनुमान्	५.००	■	१.००
642 प्रेमी भक्त उद्धव	४.५०	■	१.००
647 कन्हैया (धारावाहिक चित्रकथा)	७.००	■	२.००
648 श्रीकृष्ण (,, ,,)	७.००	■	२.००
649 गोपाल (,, ,,)	७.००	■	२.००
650 मोहन (,, ,,)	७.००	■	२.००
742 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२.५०	▲	१.००
553 गृहस्थमें कैसे रहें ?-	८.००	▲	२.००
596 गीता पढ़नेके लाभ, सत्यकी शरणसे मुक्ति-	२.५०	▲	१.००
591 महापापसे बचो, संतानका कर्तव्य-	३.००	▲	१.००
466 सत्संगकी सार बातें-	१.००	▲	१.००
365 गोसेवाके-चमत्कार-	३.५०	▲	१.००
423 कर्मरहस्य-	३.००	▲	१.००
568 शरणागति-	४.००	▲	१.००
569 मूर्तिपूजा-	१.५०	▲	१.००
551 आहारशुद्धि	१.५०	▲	१.००
645 नल दमयन्ती	५.००	▲	१.००
644 आदर्श नारी सुशीला	२.००	▲	१.००
643 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३.००	▲	१.००
560 नाम-जपकी महिमा-	१.५०	▲	१.००
499 नारद-भक्ति-सूत्र	१.००	▲	१.००
606 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	२.००	▲	१.००
609 सावित्री और सत्यवान	१.५०	▲	१.००
607 सबका कल्याण कैसे हो ?	२.००	▲	१.००
655 एकै साधै सब सधै	५.००	▲	२.००
कन्नड़			
726 गीता पदच्छेद	१८.००	■	३.००
718 गीता तात्पर्यके साथ	८.००	■	२.००
661 गीता मूल (विष्णु सहस्त्रनाम सहित)	४.००	■	२.००
736 नित्यस्तुति आदित्य-हृदयस्तोत्रम्	१.००	■	१.००
738 हनुमत स्तोत्रावली	१.००	■	१.००
737 विष्णुसहस्त्रनाम	१.५०	■	१.००
721 भक्त बालक	४.००	■	१.००
716 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	४.००	▲	१.००
390 गीतामाधुर्य	४.५०	▲	१.००
128 गृहस्थमें कैसे रहे ?-	२.७५	▲	१.००
720 महाभारत के आदर्श पात्र	५.००	▲	१.००
717 सावित्री-सत्यवान और आदर्श नारी सुशीला	३.००	▲	१.००
723 नाम-जपकी महिमा और आहार शुद्धि	३.००	▲	१.००
725 भगवान्‌की दया एवं भगवानका हेतु रहित सौहार्द	२.००	▲	१.००
598 वास्तविक सुख	४.००	▲	१.००
722 सत्यकी शरणसे मुक्ति, गीता पढ़नेके लाभ	२.००	▲	१.००
असमिया			
714 गीता भाषा टीका-पाकेट साइज	५.००	■	२.००
624 गीतामाधुर्य-	६.००	▲	२.००
703 गीता पढ़नेके लाभ	.५०	▲	१.००
उड़िया			
813 गीता पाकेट साइज	४.००	■	१.००
815 गीता श्लोकार्थ सहित	१३.००	■	२.००
541 गीता मूल विष्णु सहस्त्रनाम सहित	२.००	■	१.००
817 कर्म रहस्य	२.००	▲	१.००
798 गुरु तत्त्व	१.००	▲	१.००
९97 सन्तान का कर्त्तव्य सच्चा आश्रय	१.००	▲	१.००
754 गीतामाधुर्य	६.००	▲	१.००
757 शरणागति	३.००	▲	१.००
430 गृहस्थमें कैसे रहें ?-	४.००	▲	१.००
796 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	२.००	▲	१.००
नेपाली			
394 गीतामाधुर्य-	५.००	▲	२.००
554 हम ईश्वरको क्यों माने	०.२५	▲	१.००
उर्दू			
393 गीतामाधुर्य-	८.००	▲	२.००
549 महापापसे बचो-	१.२५	▲	१.००
590 मनकी खटपट कैसे मिटे-	०.८०	▲	१.००
तेलगू			
692 चोखी कहानियाँ	४.००	■	१.००
682 भक्तपञ्चरत्न	५.००	■	१.००
686 प्रेमीभक्त उद्धव	३.००	■	१.००
687 आदर्शभक्त	५.००	■	१.००
685 भक्तबालक	४.००	■	१.००
688 भक्तराज ध्रुव	२.००	■	१.००
753 सुन्दरकाण्ड सटीक	३.००	■	१.००
691 श्रीभीष्मपितामह	८.००	■	१.००
732 नित्यस्तुति आदित्यहृदयस्त्रोत्रम्	१.००	■	१.००
676 हनुमान चालीसा	१.००	■	१.००
641 भगवान् श्रीकृष्ण	४.००	■	१.००
662 गीता मूल (विष्णु सहस्त्रनाम सहित)	३.००	■	१.००
663 गीता भाषा	५.००	■	१.००
670 श्रीविष्णु सहस्त्रनाम मूलम्	१.००	■	१.००
674 गोविन्द दामोदर स्तोत्र	१.५०	■	१.००
675 सं० रामायणम रामरक्षास्तोत्रम्	१.५०	■	१.००
677 गजेन्द्र मोक्षम्	१.००	■	१.००
771 गीता तात्पर्य सहित	९.००	■	१.००
801 श्रीललिता सहस्त्रनाम	२.००	■	१.००
772 गीता पदच्छेद अन्वयसहित	१५.००	■	१.००
767 भक्तराज हनुमान्	३.००	■	१.००

कोड	मूल्य	डाकखर्च
766 महाभारतके आदर्श पात्र	४.००	▲ १.००
760 महत्वपूर्ण शिक्षा	३.००	▲ १.००
768 रामायणके आदर्श पात्र	५.००	▲ १.००
733 गृहस्थमें कैसे रहे ?	६.००	▲ १.००
761 एकै साधे सब सधे	५.००	▲ १.००
759 शरणागत एवं मुकुन्दमाला	३.००	▲ १.००
752 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२.००	▲ १.००
734 आहार शुद्ध मूर्ति पूजा	२.००	▲ १.००
664 सावित्रि-सत्यवान	१.५०	▲ १.००
665 आदर्श नारी सुशीला	३.००	▲ १.००
666 अमूल्य समयका सदुपयोग	५.००	▲ १.००
672 सत्यकी शरणसे मुक्ति	१.००	▲ १.००
671 नामजपकी महिमा	१.००	▲ १.००
678 सत्संगकी कुछ सार बातें	१.००	▲ १.००
731 महापापसे बचों	१.५०	▲ १.००
758 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३.००	▲ १.००
689 भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	३.००	▲ १.००
690 बालशिक्षा	३.००	▲ १.००

कोड	मूल्य	डाकखर्च
मलयालम		
739 गीता विष्णु मूल	३.००	■ १.००
740 विष्णु सहस्त्रनाम मूल	१.००	■ १.००
चित्रसूची		
237 जयश्रीराम-भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण	१३.००	■
546 जयश्रीकृष्ण-भगवान् कृष्णाकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण (बंगला एवं गुजरातीमें भी)	१३.००	■
491 हनुमान्जी (भक्तराज हनुमान्)	५.००	■
492 भगवान् विष्णु-	५.००	■
560 लड्डू गोपाल (भगवान् श्रीकृष्णका बालस्वरूप)	५.००	■
548 मुरलीमनोहर (भगवान् मुरलीमनोहर)	५.००	■
437 कल्याणचित्रावली (कल्याणमें मुद्रित १५ चित्रोंका संग्रह)	८.००	■
776 सीताराम	५.००	■
812 नवदुर्गा (दुर्गाजी के नौ रूप)	५.००	■
630 गो सेवा	५.००	■
531 बाँके बिहारी	५.००	■

Our English Publications

457 Shrimad Bhagavadgita—Tattva-Vivechani (*By Jayadayal Goyandka*) Detailed Commentary	35.00	■ 8.00
458 Shrimad Bhagavadgita—Sadhak-Sanjivani (*By Swami Ramsukhdas*) (English Commentary)	45.00	■ 8.00
455 Bhagavadgita (With Sanskrit Text and English Translation) Pocket size	4.00	■ 1.00
534 ,, ,, ,, Bound	7.00	■ 1.00
470 Bhagavadgita—Roman Gita (With Sanskrit Text and English Translation)	10.00	■ 2.00
487 Gita Madhurya—English (*By Swami Ramsukhdas*)	8.00	▲ 1.00
452 Shrimad Valmiki Ramayana (With Sanskrit Text and English Translation) Set of 3 volumes	250.00	■ 25.00
456 Shri Ramacharitamanas (With Hindi Text and English Translation)	70.00	■ 8.50
786 ,, ,, (Midum Size)	50.00	■ 6.00
564 Shrimad Bhagvat (With Sanskrit Text and English Translation) Set	150.00	■ 20.00
by Jayadayal Goyandka		
477 Gems of Truth [Vol. I]	5.00	▲ 1.00
478 ,, [Vol. II]	5.00	▲ 1.00
479 Sure Steps to God-Realization	8.00	▲ 2.00
481 Why to Devine Bliss	4.00	▲ 1.00
482 What is Dharma? What is God?	1.00	▲ 1.00
480 Instructive Eleven Stories	4.00	▲ 1.00
520 Secret of Jnana Yoga	8.00	▲ 1.00
521 ,, ,, Prem Yoga	6.00	▲ 1.00
522 ,, ,, Karma Yoga	7.00	▲ 2.00
523 The Secret of Bhakti Yoga ,,	7.50	▲ 2.00

658 Secrets of Gita	4.00	▲
by Hanuman Prasad Poddar		
484 Look Beyond the Veil	6.00	▲
622 How to Attain Eternal Happiness ?	6.00	▲
483 Turn to God	7.00	▲
485 Path to Divinity	7.00	▲
by Swami Ramsukhdas		
498 In Search of Supreme Abode	4.00	▲
619 Ease in God-Realization	4.00	▲
471 Benedictory Discourses	3.50	▲
473 Art of Living	3.00	▲
472 How to Lead A Household Life	3.50	▲
620 The Divine Name and Its Practice	2.50	▲
486 Wavelets of Bliss & the Divine Message	1.50	▲
570 Let us Know the Truth	2.50	▲
638 Sahaj Sadhna	3.00	▲
634 God is Everything	2.50	▲
621 Invaluable Advice		
474 Be Good	2.50	▲
669 The Divine Name		
497 Truthfulness of Life	1.00	▲
476 How to be Self-Reliant	1.00	▲
552 Way to Attain the Supréme Bliss	2.00	■
Other Publications		
494 The Immanence of God (*By Madanmohan Malaviya*)	1.00	▲
562 Ancient Idealism for Modernday Living	2.00	▲
783 Abortion Right or wrong you Decide	5.00	■
808 Nava Durga		

विदेशमें पुस्तक-प्रचार

अब आप रुपयोंमें भुगतान देकर अपने विदेशोंमें रहनेवाले मित्रोंको **'गीताप्रेस-प्रकाशन'** डाकद्वारा उपहारस्वरूप भिजवा सकते हैं।

सम्पर्क करें—**व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर**—२७३००५

'कल्याण' एवं **'कल्याण-कल्पतरु'** के उपलब्ध विशेषाङ्क एवं मासिक **'कल्याण'** एवं **'कल्याण-कल्पतरु'** भी रुपयोंमें भुगतान देकर विदेशोंमें उपहारस्वरूप भिजवा सकते हैं।

सम्पर्क करें—**व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय-गीताप्रेस, गोरखपुर**—२७३००५

'कल्याण'—वर्ष ७२ (जनवरी १९९८ ई०) का विशेषाङ्क

"भगवल्लीला-अङ्क"

[परमात्मप्रभुकी सूक्ष्म एवं स्थूल लीलाएँ, भगवान् सदाशिवकी कल्याणकारी लीलाएँ, भगवान् राम तथा भगवान् श्रीकृष्णके आदर्श लीला-चरित्र, महाविष्णुके अनेक अवतारोंके रूपमें विभिन्न लीलाएँ एवं अनेक लीला-अनुचरों, उपासकोंके भावपूर्ण बहुरंगे एवं सादे चित्रों तथा सचित्र आवरणसे सज्जित।]

भारतमें—वार्षिक शुल्क रु० ८० (सजिल्द-रु० ९०), दसवर्षीय शुल्क रु० ५०० (सजिल्द-रु० ६००)

विदेशमें—वार्षिक शुल्क US $ 11 (रु० ४००), हवाई डाकसे US $ 22 (रु० ८००)

स्वयं ग्राहक बनिये और अपने स्नेहीजनोंको बनाइये!

'कल्याण' के पुराने, लोकप्रिय पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

नाम	कल्याण वर्ष	मूल्य रुपये	डाक खर्च	कुल मूल्य रु०	नाम	कल्याण वर्ष	मूल्य रुपये	डाक खर्च	कुल मूल्य रु०
शिवाङ्क	८	८० +	१२	९२	बालक-अङ्क	२७	८० +	१२	९२
शक्ति-अङ्क	९	८० +	१२	९२	सं० नारद-विष्णुपुराणाङ्क	२८	८० +	१२	९२
योगाङ्क	१०	६० +	१२	७२	संतवाणी-अङ्क	२९	८५ +	१२	९७
संत-अङ्क	१२	९० +	१२	१०२	सत्कथा-अङ्क	३०	६५ +	१२	७७
साधनाङ्क	१५	७५ +	१२	८७	तीर्थाङ्क	३१	८५ +	१२	९७
सं० महाभारत (दो खण्डोंमें)	१७	१५० +	३०	१८०	भक्ति-अङ्क	३२	८० +	१२	९२
सं० पद्मपुराण	१९	८५ +	१९	१०४	सं० श्रीमद्देवीभागवत	३४	७० +	१९	८९
सं० मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क	२१	७५ +	१२	८७	सं० योगवासिष्ठाङ्क	३५	७५ +	१२	८७
नारी-अङ्क	२२	७० +	१२	८२	सं० शिवपुराण	३६	८० +	१९	९९
उपनिषद्-अङ्क	२३	९० +	१२	१०२	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क	३७	७५ +	१२	८७
हिन्दू-संस्कृति-अङ्क	२४	७५ +	१२	८७	परलोक और पुनर्जन्माङ्क	४३	७० +	१२	८२
सं० स्कन्दपुराणाङ्क	२५	१०० +	१२	११२	गर्गसंहिता	४४-४५	५५ +	१६	७१
भक्त-चरिताङ्क	२६	८० +	१२	९२	श्रीगणेश-अङ्क	४८	६० +	१२	७२
					श्रीहनुमान-अङ्क	४९	५० +	१२	६२
					सूर्याङ्क	५३	४५ +	१२	५७

व्यवस्थापक—**'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

Also subscribe OUR ENGLISH MONTHLY

'THE KALYANA-KALPATARU'

Period-Oct. to Sept.

Annual subscription In India Rs. 50. Foreign US $ 8 (Rs. 300). By Air Mail US $ 16 (Rs. 600)

Special Number For Oct.—1997

'VEDĀNTA-NUMBER'

Manager—**'The Kalyana-Kalpataru'** P. O. GitaPress, Gorakhpur—273005 (India)

‘कल्याण’ के पुराने, लोकप्रिय पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

शिवाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ८, सन् १९३४ ई०]—यह शिवतत्त्व तथा शिव-महिमापर विशद विवेचनसहित शिवार्चन, पूजन, व्रत एवं उपासनापर तात्त्विक और ज्ञानप्रद मार्ग-दर्शन कराता है। यह एक मूल्यवान् अध्ययन-सामग्री है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका सचित्र परिचय तथा भारतके सुप्रसिद्ध शैव-तीर्थोंका प्रामाणिक वर्णन इसके अन्यान्य महत्त्वपूर्ण (पठनीय) विषय हैं।

शक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ९, सन् १९३५ ई०]—इसमें परब्रह्म परमात्माके आद्याशक्ति-स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, महादेवीकी लीला-कथाएँ एवं सुप्रसिद्ध शाक्त-भक्तों और साधकोंके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र तथा उनकी उपासना-पद्धतिपर उत्कृष्ट उपयोगी सामग्री संगृहीत है। इसके अतिरिक्त भारतके सुप्रसिद्ध शक्ति-पीठों तथा प्राचीन देवी-मन्दिरोंका सचित्र दिग्दर्शन भी इसकी उल्लेखनीय विषय-वस्तुके महत्त्वपूर्ण अङ्ग हैं।

योगाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १०, सन् १९३६ ई०]—इसमें योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एवं प्रकार और योग-प्रणालियों तथा अङ्ग-उपाङ्गोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। साथ ही अनेक योग-सिद्ध महात्माओं और योग-साधकोंके जीवन-चरित्र तथा साधना-पद्धतियोंपर रोचक, ज्ञानप्रद वर्णन हैं। यह विशेषाङ्क योगको कल्याणकारी और योग-सिद्धियोंके चमत्कारी प्रभावोंकी ओर आकृष्ट कर ‘योग’ के सर्वमान्य महत्त्वसे परिचय कराता है।

संत-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १२, सन् १९३८ ई०]—इसमें उच्चकोटिके अनेक संतों—प्राचीन, अर्वाचीन, मध्ययुगीन एवं कुछ विदेशी भगवद्विश्वासी महापुरुषों तथा त्यागी-वैरागी महात्माओंके ऐसे आदर्श जीवन-चरित्र हैं, जो पारमार्थिक गतिविधियोंके लिये प्रेरित करनेके साथ-साथ उनके सार्वभौमिक सिद्धान्तों, त्याग-वैराग्यपूर्ण तपस्वी जीवन-शैलीको उजागर करके उच्चकोटिके पारमार्थिक आदर्श, जीवन-मूल्योंको रेखाङ्कित करते हैं।

साधनाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १५, सन् १९४१ ई०]—यह अङ्क उच्चकोटिके विचारकों, वीतराग महात्माओं, एकनिष्ठ साधकों एवं विद्वान् मनीषियोंके साधनोपयोगी अनुभूत विचार और उनके साधनापरक बहुमूल्य मार्ग-दर्शनसे ओतप्रोत—महत्त्वपूर्ण है। इसमें साधना-तत्त्व, साधनाके विभिन्न स्वरूप—ईश्वरोपासना, योगसाधना, प्रेमाराधना आदि अनेक कल्याणकारी साधनों और उनके अङ्ग-उपाङ्गोंका शास्त्रीय विवेचन है। यह सभीके लिये उत्तमोत्तम दिशा-निर्देशक है।

संक्षिप्त महाभारत (सचित्र, सजिल्द दो खण्डोंमें) [वर्ष १७, सन् १९४३ ई०]—धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके महान् उपदेशों एवं प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओंके उल्लेखसहित इसमें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, योग, नीति, सदाचार, अध्यात्म, राजनीति, कूटनीति आदि मानव-जीवनके उपयोगी विषयोंका विशद वर्णन और विवेचन है। इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंके समावेशके कारण इसे शास्त्रोंमें ‘पञ्चम वेद’ और विद्वत्समाजमें भारतीय ज्ञानका ‘विश्वकोश’ कहा गया है।

संक्षिप्त पद्मपुराण (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १९, सन् १९४५ ई०]—इसमें (पद्मपुराण-वर्णित) भगवान् विष्णुके माहात्म्यके साथ भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार-चरित्रों एवं उनके परात्पररूपोंका विशद वर्णन है। भगवान् शिवकी महिमाके साथ इसमें श्रीअयोध्या, श्रीवृन्दावनधामका माहात्म्य भी वर्णित है। इसके अतिरिक्त शालग्रामके स्वरूप और उनकी महिमा, तुलसीवृक्षकी महिमा, भगवन्नाम-कीर्तन एवं भगवती गङ्गाकी महिमासहित यमुना-स्नान, तीर्थ, व्रत, देवपूजन, श्राद्ध, दानादिके विषयमें भी विस्तृत चर्चा है।

संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २१, सन् १९४७ ई०]—आत्म-कल्याणके महान् साधनों, उपदेशों और आदर्श चरित्रोंसहित इसमें मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत देवी-माहात्म्य (श्रीदुर्गासप्तशती), तीर्थ-माहात्म्य, भगवद्भक्ति, ज्ञान, योग, सदाचार आदि अनेक गम्भीर, रोचक विषयोंका वर्णन (इन दो संयुक्त पुराणोंमें) है।

नारी-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २२, सन् १९४८ ई०)—इसमें भारतकी महान् नारियोंके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र तथा नारीविषयक विभिन्न समस्याओंपर विस्तृत चर्चा और उनका भारतीय आदर्शोचित समाधान है। इसके साथ ही विश्वकी अनेक सुप्रसिद्ध महान् महिला-रत्नोंके जीवन-परिचय और जीवनादर्शोंपर मूल्यवान् प्रेरक सामग्री

उल्लेखनीय विषय हैं। माता-बहनों और देवियोंसहित समस्त नारीजाति और नारीमात्रके लिये आत्मबोध करानेवाला यह अत्यन्त उपयोगी और प्रेरणादायी मार्ग-दर्शक है।

उपनिषद्-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २३, सन् १९४९ ई०]—इसमें नौ प्रमुख उपनिषदों (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय एवं श्वेताश्वतर) का मूल, पदच्छेद, अन्वय तथा व्याख्यासहित वर्णन है एवं अन्य ४५ उपनिषदोंका हिन्दी-भाषान्तर, महत्त्वपूर्ण स्थलोंपर टिप्पणीसहित प्राय: सभीका अनुवाद दिया गया है।

हिन्दू-संस्कृति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २४, सन् १९५० ई०]—भारतीय संस्कृति—विशेषत: हिन्दू-धर्म, दर्शन, आचार-विचार, संस्कार, रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव, कला-संस्कृति और आदर्शोंपर प्रकाश डालनेवाला यह तथ्यपूर्ण बृहद् (सचित्र) दिग्दर्शन है। इस प्रकार भारतीय संस्कृतिके उपासकों, अनुसंधानकर्ताओं और जिज्ञासुओंके लिये यह अवश्य पठनीय, उपयोगी और मूल्यवान् दिशा-निर्देशक है।

संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २५, सन् १९५१ ई०]—इसमें भगवान् शिवकी महिमा, सती-चरित्र, शिव-पार्वती-विवाह, कुमार कार्तिकेयके जन्मकी कथा तथा तारकासुर-वध आदिका वर्णन है। इसके अतिरिक्त अनेक आख्यान एवं बहुत-से रोचक, ज्ञानप्रद प्रसंग और आदर्श चरित्र भी वर्णित हैं। शिव-पूजनकी महिमाके साथ-साथ तीर्थ, व्रत, जप, दानादिका महत्त्व-वर्णन आदि भी इसके विशेषरूपसे पठनीय विषय हैं।

भक्त-चरिताङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २६, सन् १९५२ ई०]—इसमें भगवद्विश्वासको बढ़ानेवाले भगवद्भक्तों, ईश्वरोपासकों और महात्माओंके जीवन-चरित्र एवं विभिन्न-विचित्र भक्तिपूर्ण भावोंकी ऐसी पवित्र, सरस, मधुर कथाएँ हैं जो मानव-मनको प्रेम-भक्ति-सुधारससे अनायास सराबोर कर देती हैं। रोचक, ज्ञानप्रद और निरन्तर अनुशीलनयोग्य ये भक्तगाथाएँ भगवद्विश्वास और प्रेमानन्द बढ़ानेवाली तथा शान्ति प्रदान करनेवाली होनेसे नित्य पठनीय हैं।

बालक-अङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २७, सन् १९५३ ई०]—यह अङ्क बालकोंसे सम्बन्धित सभी उपयोगी विषयोंका बृहद् संग्रह है। यह सर्वजनोपयोगी—विशेषत: बालकोंके लिये आदर्श मार्ग-दर्शक है। प्राचीन कालसे अबतकके भारतके महान् बालकों एवं विश्वभरके सुविख्यात आदर्श बालकोंके भी प्रेरक, शिक्षाप्रद, रोचक, ज्ञानवर्धक तथा अनुकरणीय जीवन-वृत्त एवं आदर्श चरित्र बार-बार पठनीय और प्रेरणाप्रद हैं।

संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २८, सन् १९५४ ई०]—'नारदपुराण' तथा 'विष्णुपुराण' के इस संयुक्त, संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तरमें पुराणोचित महत्त्वपूर्ण प्रसङ्गोंके वर्णनसहित, वेदोंके छहों अङ्गों—(शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द-शास्त्र) का विशद वर्णन तथा भगवान्‌की सकाम उपासनाका विस्तृत विवेचन है। 'विष्णुपुराण' के उल्लेखनीय विषयोंमें भगवान् विष्णुकी महिमा, जगत्‌की उत्पत्ति, भगवान् वराहद्वारा पृथ्वीका उद्धार, ध्रुव-प्रह्लाद-चरित एवं भगवान् श्रीकृष्णके विविध मनोरम लीला-चरित्रोंसहित इसमें गृहस्थोंके सदाचार, श्राद्ध-विधि, जातकर्म, उपनयन आदि विशिष्ट संस्कारोंका भी ज्ञानवर्धक वर्णन है। दो महत्त्वपूर्ण पुराण एकहीमें सुलभ होनेसे इसकी उपयोगिता बढ़ गयी है।

संतवाणी-अङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २९, सन् १९५५ ई०] संत-महात्माओं और अध्यात्मचेता महापुरुषोंके लोककल्याणकारी उपदेश-उद्बोधनों (वचन और सूक्तियों) का यह बृहत् संग्रह प्रेरणाप्रद होनेसे नित्य पठनीय और सर्वथा संग्रहणीय है।

सत्कथा-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३०, सन् १९५६ ई०]—जीवनमें भगवत्प्रेम, सेवा, त्याग, वैराग्य, सत्य, अहिंसा, विनय, प्रेम, उदारता, दानशीलता, दया, धर्म, नीति, सदाचार और शान्तिका प्रकाश भर देनेवाली सरल, सुरुचिपूर्ण सत्प्रेरणादायी छोटी-छोटी सत्कथाओंका यह बृहत् संग्रह सर्वदा अपने पास रखनेयोग्य है। और, इसकी कल्याणकारी बातें हृदयङ्गम करनेयोग्य और सर्वदा अनुकरणीय हैं।

तीर्थाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३१, सन् १९५७ ई०]—इस अङ्कमें तीर्थोंकी महिमा, उनका स्वरूप, स्थिति एवं तीर्थ-सेवनके महत्त्वपर उत्कृष्ट मार्ग-दर्शन-अध्ययनका विषय है। इसमें देव-पूजन-विधिसहित, तीर्थोंमें पालन करनेयोग्य तथा त्यागनेयोग्य उपयोगी बातोंका भी उल्लेख है। अत: भारतके समस्त तीर्थोंका अनुसंधानात्मक ज्ञान करानेवाला यह एक ऐसा संकलन है जो सभी तीर्थाटन-प्रेमियोंके लिये विशेष महत्त्वपूर्ण और संग्रहणीय है। (सन् १९५७ के बाद तीर्थोंके मार्गों और यातायातके साधनोंमें हुए परिवर्तन (संशोधित रूप) इसमें सम्मिलित नहीं हैं।)

भक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३२, सन् १९५८ ई०]—इसमें ईश्वरोपासना, भगवद्भक्तिका स्वरूप तथा भक्तिके प्रकारों और विभिन्न पक्षोंपर शास्त्रीय दृष्टिसे व्यापक विचार किया गया है। साथ ही अनेक भगवद्भक्तोंके शिक्षाप्रद-अनुकरणीय जीवन-चरित्र भी बड़े ही मर्मस्पर्शी, प्रेरणाप्रद और सर्वदा पठनीय हैं।

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३४, सन् १९६० ई०]—इसमें पराशक्ति भगवतीके स्वरूप-तत्त्व, महिमा आदिके तात्त्विक विवेचनसहित श्रीमद्देवीकी लीला-कथाओंका सरस एवं कल्याणकारी वर्णन है। श्रीमद्देवीभागवतके विविध, विचित्र कथा-प्रसंगोंके रोचक और ज्ञानप्रद उल्लेखके साथ देवी-माहात्म्य, देवी-आराधनाकी विधि एवं उपासनापर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। अत: साधनाकी दृष्टिसे यह अत्यन्त उपादेय और अनुशीलनयोग्य है।

संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३५, सन् १९६१ ई०]—योगवासिष्ठके इस संक्षिप्त रूपान्तरमें जगत्‌की असत्ता और परमात्मसत्ताका प्रतिपादन है। पुरुषार्थ एवं तत्त्व-ज्ञानके निरूपणके साथ-साथ इसमें शास्त्रोक्त सदाचार, त्याग-वैराग्ययुक्त सत्कर्म और आदर्श व्यवहार आदिपर सूक्ष्म विवेचन है। कल्याणकामी साधकोंके लिये इसका अनुशीलन उपादेय है।

संक्षिप्त शिवपुराण (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३६, सन् १९६२ ई०]—सुप्रसिद्ध शिवपुराणका यह संक्षिप्त अनुवाद—परात्पर परमेश्वर शिवके कल्याणमय स्वरूप-विवेचन, तत्त्व-रहस्य, महिमा, लीला-विहार, अवतार आदिके रोचक, किंतु ज्ञानमय वर्णनसे युक्त है। इसकी कथाएँ अत्यन्त सुरुचिपूर्ण, ज्ञानप्रद और कल्याणकारी हैं। इसमें भगवान् शिवके पूजन-विधिसहित महत्त्वपूर्ण स्तोत्रोंका भी उपयोगी संकलन है।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय पुस्तकालय

संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३७, सन् १९६३ ई०]—इसमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्नस्वरूपा प्रकृति-ईश्वरी श्रीराधाकी सर्वप्रधानताके साथ गोलोक-लीला तथा अवतार-लीलाका विशद वर्णन है। इसके अतिरिक्त कुछ विशिष्ट ईश्वरकोटिके सर्वशक्तिमान् देवताओंकी एकरूपता, महिमा तथा उनकी साधना-उपासनाका भी सुन्दर प्रतिपादन है। उपयोगी अनुष्ठेय सामग्रीके रूपमें इसमें अनेक स्तोत्र, मन्त्र, कवच आदि भी दिये गये हैं।

परलोक और पुनर्जन्माङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४३, सन् १९६९ ई०]—मनुष्यमात्रको मानव-चरित्रके पतनकारी आसुरी-सम्पदाके दोषोंसे सदा दूर रहने तथा परम विशुद्ध उज्ज्वल चरित्र होकर सर्वदा सत्कर्म करते रहनेकी शुभ प्रेरणाके साथ इसमें परलोक तथा पुनर्जन्मके रहस्यों और सिद्धान्तोंपर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। आत्मकल्याणकामी पुरुषों तथा साधकमात्रके लिये इसका अध्ययन-अनुशीलन अति उपयोगी है।

77083

गर्ग-संहिता (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४४-४५, सन् १९७०-७१ ई०]—श्रीराधाकृष्णकी दिव्य मधुर लीलाओंका इसमें बड़ा ही हृदयहारी वर्णन है। इसकी सरस-मधुर कथाएँ ज्ञानप्रद, भक्तिप्रद और भगवान् श्रीकृष्णमें अनुराग बढ़ानेवाली हैं।

श्रीगणेश-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४८, सन् १९७४ ई०]—भगवान् गणेश अनादि, सर्वपूज्य, आनन्दमय, ब्रह्ममय और सच्चिदानन्दरूप (परमात्मा) हैं। '**आदौ पूज्यो विनायकः**'—इस उक्तिके अनुसार भी गणपतिकी अग्रपूजा सुप्रसिद्ध और सर्वत्र प्रचलित ही है। महामहिम गणेशकी इन्हीं सर्वमान्य विशेषताओं और सर्वसिद्धि-प्रदायक उपासना-पद्धतिका विस्तृत वर्णन 'कल्याण' के इस (पुनर्मुद्रित) विशेषाङ्कमें उपलब्ध है। इसमें श्रीगणेशकी लीला-कथाओंका भी बड़ा ही रोचक वर्णन और पूजा-अर्चना आदिपर उपयोगी दिग्दर्शन है।

श्रीहनुमान-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४९, सन् १९७५ ई०]—इसमें श्रीहनुमान्‌जीका आद्योपान्त जीवन-चरित्र और श्रीरामभक्तिके प्रतापसे सदा अमर बने रहकर उनके द्वारा किये गये क्रिया-कलापोंका तात्त्विक और प्रामाणिक एवं सुरुचिपूर्ण चित्रण है। श्रीहनुमान्‌जीको प्रसन्न करनेवाले विविध स्तोत्र, ध्यान एवं पूजन-विधियाँ आदि साधनोपयोगी बहुमूल्य सामग्रीका भी उपयोगी संकलन है। अत: साधकोंके लिये यह उपादेय है।

सूर्याङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ५३, सन् १९७९ ई०]—यह सूर्य-महिमा, सूर्य-तत्त्व, सूर्यका प्रभाव, त्रिकाल-संध्यामें सूर्य, सूर्योपासनासे लाभ, सूर्योपासनासे रोग-निवारण आदि अनेक उपयोगी लेखोंसे अलंकृत है। अनेक प्रेरणाप्रद उपाख्यानोंके साथ दो मासिक अङ्क भी संलग्न हैं।

A

* * *

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' का उद्देश्य और इसके नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जन-जनको कल्याणके पथपर अग्रसरित करनेका प्रयत्न करना इसका एकमात्र उद्देश्य है।

नियम

१-भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान-वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याण-मार्गमें सहायक अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख 'कल्याण' में प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने-न-छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

२-'कल्याण' का वार्षिक शुल्क (डाक-व्ययसहित) भारतवर्षमें ८० रु० (सजिल्द विशेषाङ्कका ९० रु०) और विदेश (Foreign)-के लिये (नेपाल-भूटानको छोड़कर) US $ 11 डालर (Sea mail) रु० ४०० भारतीय मुद्रा तथा US $ 22 डालर (Air mail) रु० ८०० भारतीय मुद्रा नियत है।

३-**'कल्याण' का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरतक रहता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं।** यद्यपि वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं; तथापि जनवरीसे उस समयतकके प्रकाशित (पिछले) उपलब्ध अङ्क उन्हें दिये जाते हैं। 'कल्याण' के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते, छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।

४-**ग्राहकोंको वार्षिक शुल्क मनीआर्डर अथवा बैंकड्राफ्टद्वारा ही भेजना चाहिये।** वी० पी० पी० से 'कल्याण' मँगानेमें ग्राहकोंको वी० पी० पी० डाकशुल्क अधिक देना पड़ता है एवं 'कल्याण' भेजनेमें विलम्ब भी हो जाता है।

५-'कल्याण' के मासिक अङ्क सामान्यतया ग्राहकोंको सम्बन्धित मासके प्रथम पक्षके अन्ततक मिल जाने चाहिये। अङ्क दो-तीन बार जाँच करके भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयसे न मिले तो डाकघरसे पूछताछ करनेके उपरान्त हमें सूचित करें।

६-पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम ३० दिनोंके पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। पत्रोंमें **'ग्राहक-संख्या' पुराना और नया—पूरा पता स्पष्ट एवं सुवाच्य अक्षरोंमें लिखना चाहिये।** यदि कुछ महीनोंके लिये ही पता बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता बदलनेकी सूचना समयसे न मिलनेपर दूसरी प्रति भेजनेमें कठिनाई हो सकती है। यदि आपके पतेमें कोई महत्त्वपूर्ण भूल हो या आपका 'कल्याण' के प्रेषण -सम्बन्धी कोई अंनियमितता/सुझाव हो तो अपनी स्पष्ट 'ग्राहक-संख्या' लिखकर हमें सूचित करें।

७-रंग-बिरंगे चित्रोंवाला बड़ा अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) ही वर्षका प्रथम अङ्क होता है। पुनः प्रतिमास साधारण अङ्क ग्राहकोंको उसी शुल्क-राशिमें वर्षपर्यन्त भेजे जाते हैं। किसी अनिवार्य कारणवश यदि 'कल्याण'का प्रकाशन बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों उतनेमें ही संतोष करना चाहिये।

आवश्यक सूचनाएँ

१-ग्राहकोंको पत्राचारके समय अपना नाम-पता सुस्पष्ट लिखनेके साथ-साथ पिन कोड नम्बर एवं अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमें अपनी आवश्यकता और उद्देश्यका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

२-एक ही विषयके लिये यदि दोबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रका संदर्भ—दिनाङ्क तथा पत्र-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

३-**'कल्याण' में व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते।**

४-कोई भी विक्रेता-बन्धु विशेषाङ्ककी कम-से-कम २५ प्रतियाँ इस कार्यालयसे एक साथ मँगाकर इसके प्रचार-प्रसारमें सहयोगी बन सकते हैं। ऐसा करनेपर ६.०० रुपये प्रति विशेषाङ्ककी दरसे उन्हें (कमीशन) प्रोत्साहन-राशि दिया जायगा। जनवरी मासका विशेषाङ्क एवं फरवरी मासका साधारण अङ्क रेल-पार्सलसे भेजा जायगा एवं आगेके मासिक अङ्क (मार्चसे दिसम्बरतक) डाकद्वारा भेजनेकी व्यवस्था है।

५-जनवरी १९९८ के इस विशेषाङ्क **'भगवल्लीला-अङ्क'** के अन्तमें ही फरवरी मासका अङ्क भी संलग्न है। अतः ग्राहक महोदय फरवरी मासका अङ्क मँगानेके लिये कृपया पत्र-व्यवहार न करें।

'कल्याण' की दशवर्षीय ग्राहक-योजना

दशवर्षीय सदस्यता-शुल्क ५०० रुपये (सजिल्द विशेषाङ्कके लिये ६०० रुपये) हैं। विदेश (Foreign)-के लिये US $ 90 डालर (Sea mail) तथा US $ 180 डालर (Air mail)-का है। इस योजनाके अन्तर्गत व्यक्तिके अलावा फर्म, प्रतिष्ठान आदि संस्थागत ग्राहक भी बन सकते हैं। यदि 'कल्याण' का प्रकाशन चलता रहा तो दस वर्षोंतक ग्राहकोंको अङ्क नियमितरूपसे जाते रहेंगे।

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३
LICENCE NO.-3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT
प्र० ति० १-१-९८

परब्रह्म परमात्माका स्वरूप

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥

जो सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सर्वरूप, सबके परम कारण, परब्रह्म पुरुषोत्तम यहाँ—इस पृथ्वीलोकमें हैं, वही वहाँ परलोकमें अर्थात् देव-गन्धर्वादि विभिन्न अनन्त लोकोंमें भी हैं; तथा जो वहाँ हैं, वही यहाँ भी हैं। एक ही परमात्मा अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं। जो उन एक ही परब्रह्मको लीलासे नाना नामों और रूपोंमें प्रकाशित देखकर मोहवश उनमें नानात्वकी कल्पना करता है, उसे पुनः-पुनः मृत्युके अधीन होना पड़ता है, उसके जन्म-मरणका चक्र सहज ही नहीं छूटता। अतः दृढ़रूपसे यही समझना चाहिये कि वे एक ही परब्रह्म परमेश्वर अपनी अचिन्त्य शक्तिके सहित नाना रूपोंमें प्रकट हैं और यह सारा जगत् बाहर-भीतर उन एक परमात्मासे ही व्याप्त होनेके कारण उन्हींका स्वरूप है।

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन । मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥

परमात्माका परमतत्त्व शुद्ध मनसे ही इस प्रकार जाना जा सकता है कि इस जगत्में एकमात्र पूर्णब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण हैं। सब कुछ उन्हींका स्वरूप है। यहाँ परमात्मासे भिन्न कुछ भी नहीं है। जो यहाँ विभिन्नताकी झलक देखता है, वह मनुष्य मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है अर्थात् बार-बार जन्मता-मरता रहता है।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति। ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥ एतद्वै तत् ॥

यद्यपि अन्तर्यामी परमेश्वर समानभावसे सर्वदा सर्वत्र परिपूर्ण हैं, तथापि हृदयमें उनका विशेष स्थान माना गया है। परमेश्वर किसी स्थूल-सूक्ष्म आकार-विशेषवाले नहीं हैं, परंतु स्थितिके अनुसार वे सभी आकारोंसे सम्पन्न हैं। क्षुद्र चींटीके हृदयदेशमें वे चींटीके हृदय-परिमाणके अनुसार परिमाणवाले हैं और विशालकाय हाथीके हृदयमें उसके हृदय-परिमाणवाले बनकर विराजित हैं। मनुष्यका हृदय अङ्गुष्ठ-परिमाणका है, और मानव-शरीर ही परमात्माकी प्राप्तिका अधिकारी माना गया है। अतः मनुष्यका हृदय ही परब्रह्म परमेश्वरकी उपलब्धिका स्थान समझा जाता है। इसलिये यहाँ मनुष्यके हृदय-परिमाणके अनुसार परमेश्वरको अङ्गुष्ठमात्रपरिमाणका कहा गया है। इस प्रकार परमेश्वरको अपने हृदयमें स्थित देखनेवाला स्वाभाविक ही यह जानता है कि इसी भाँति वे सबके हृदयमें स्थित हैं, अतएव वह फिर किसीकी निन्दा नहीं करता अथवा किसीसे घृणा नहीं करता।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः । ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः ॥ एतद्वै तत् ॥

मनुष्यकी हृदय-गुफामें स्थित वे अङ्गुष्ठमात्र पुरुष भूत, भविष्य और वर्तमानका नियन्त्रण करनेवाले स्वतन्त्र शासक हैं। वे ज्योतिर्मय हैं। सूर्य, अग्निकी भाँति उष्ण प्रकाशवाले नहीं; परंतु दिव्य, निर्मल और शान्त प्रकाशस्वरूप हैं। लौकिक ज्योतियोंमें धूम्ररूप दोष होता है; ये धूम्ररहित—दोषरहित, सर्वथा विशुद्ध हैं। अन्य ज्योतियाँ घटती-बढ़ती हैं और समयपर बुझ जाती हैं; परंतु ये जैसे आज हैं, वैसे ही कल भी हैं। इनकी एकरसता नित्य अक्षुण्ण है। ये कभी न तो घटते-बढ़ते हैं और न कभी मिटते ही हैं।

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति । एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति ॥

जैसे वर्षाका जल एक ही है; पर वह जब ऊँचे पर्वतकी ऊबड़-खाबड़ चोटीपर बरसता है तो वहाँ ठहरता नहीं, तुरंत ही नीचेकी ओर बहकर विभिन्न वर्ण, आकार और गन्धको धारण करके पर्वतमें चारों ओर बिखर जाता है। इसी प्रकार एक ही परमात्मासे प्रवृत्त विभिन्न स्वभाववाले देव-असुर-मनुष्यादिको जो परमात्मासे पृथक् मानता है और पृथक् मानकर ही उनका सेवन करता है, उसे भी बिखरे हुए जलकी भाँति ही विभिन्न देव-असुरादिके लोकोंमें एवं नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकना पड़ता है, वह ब्रह्मको प्राप्त नहीं हो सकता।

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति। एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥

परंतु वही वर्षाका निर्मल जल यदि निर्मल जलमें ही बरसता है तो वह उसी क्षण निर्मल जल ही हो जाता है, उसमें न तो कोई विकार उत्पन्न होता है और न वह कहीं बिखरता ही है। इसी प्रकार, हे गौतमवंशीय नचिकेता! जो इस बातको भलीभाँति जान गया है कि जो कुछ है, वह सब परब्रह्म पुरुषोत्तम ही है, उस मननशील—संसारके बाह्य स्वरूपसे उपरत पुरुषका आत्मा परब्रह्ममें मिलकर उसके साथ तादात्म्यभावको प्राप्त हो जाता है। [कठोपनिषद्]

※※※

LIBRARY
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARIDWAR

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

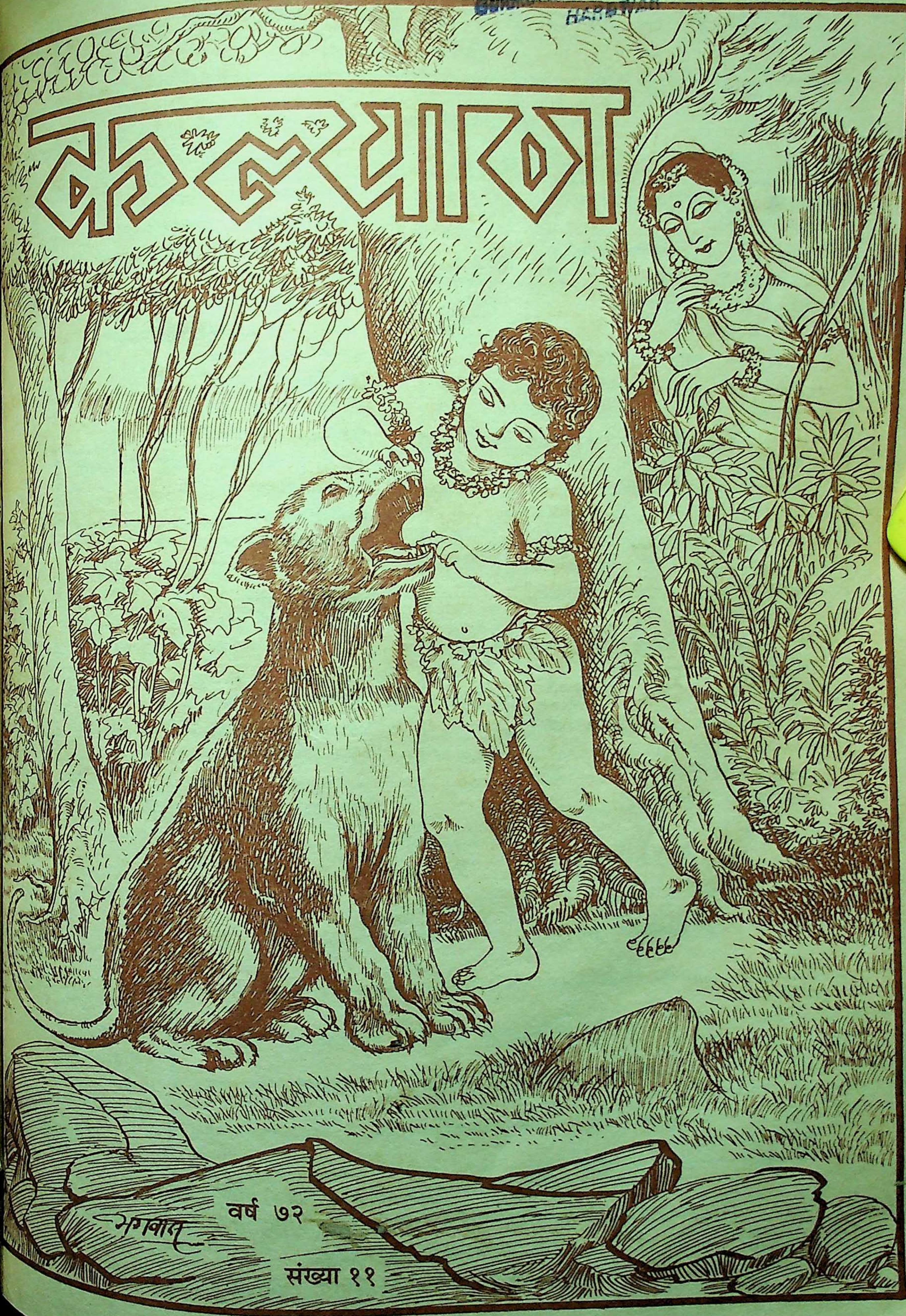

वर्ष ७२

संख्या ११

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,३५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, नवम्बर १९९८ ई०

विषय पृष्ठ-संख्या

१- भगवान् श्रीकृष्णका उद्धवजीको उपदेश ८२९
२- कल्याण (शिव) ८३०
३- पात्रता एवं श्रद्धा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ८३१
४- बुद्धिकी स्थिरताका सरल उपाय (श्री जय जय बाबा) ८३७
५- भगवत्कृपापर विश्वास (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ८४०
६- नाम-जप और संकीर्तन (एक संतका सदुपदेश) ८४२
७- साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ८४६
८- भगवान् शंकर आपके संतापोंको शान्त करें ८४८
९- साधक-प्राण-संजीवनी (गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज) ८४९
१०- श्रीकृष्णकी रासलीला एवं उसका आध्यात्मिक रहस्य (‘मानसरत्न’ संत श्रीसीतारामदासजी महाराज) ८५१
११- दीपावलीका नया दृष्टिकोण (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०) ८५३
१२- *लीला-चिन्तन*— .... ८५७—८६०
श्रीकृष्णलीला-चिन्तन—[दैनिक वत्सचारण-लीलाका वर्णन] ८५७
१३- परमात्माको प्रेम दीजिये (श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति) ८६१

विषय पृष्ठ-संख्या

१४- जीवन-रक्षक हैं पशु (श्रीनिरंकारसिंहजी) ८६४
१५- समतासे भगवत्प्राप्ति (श्रीबनवारीलालजी गोयन्का) ... ८६६
१६- कुछ अनुकरणीय गुण (श्रीरामनिवासजी लखोटिया) ८६८
१७- ‘कौन भाग्यवान आज जनक समान री’ [कविता] (श्रीनारायणदासजी ‘भक्तमाली’) ८६९
१८- कोटरका कबूतर [कहानी] (श्रीअमरनाथजी शुक्ल) ८७०
१९- कौटुम्बिक कलह—सर्वनाश (स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी) ८७१
२०- ‘जी रहे हैं लोग कैसे आजके वातावरणमें’ (श्रीअर्जुनलालजी बन्सल) ८७३
२१- *बाल-कल्याण*— .... ८७६—८७८
[१] बालवृत्तिकी अनुपम महिमा ८७६
[२] बालक अन्सारुल हककी दयालुता ८७७
[३] दुखी मुसाफिरकी सेवा करनेवाला बालक ८७८
२२- संन्यासी साधकों और कीर्तनकारोंसे नम्र निवेदन (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ८७९
२३- साधनोपयोगी पत्र ८८१
२४- पढ़ो, समझो और करो ८८३
२५- मनन करने योग्य—क्या गाँधीजीने झूठ बोला? (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०) ८८७
२६- श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना ८८८

* * *

चित्र-सूची

१-बीर बालक भरत (इकरंगा) आवरण-पृष्ठ
२-भगवान् श्रीकृष्णका उद्धवजीको उपदेश (रंगीन) मुख-पृष्ठ

* * *

इस अङ्कका मूल्य ४ रु०
विदेशमें—US$0.40
वार्षिक शुल्क वर्ष ७३ के लिये
डाक-व्यय-सहित (भारतमें) ९० रु०
(सजिल्द १०० रु०)
विदेशमें—US$11 (Sea Mail)
US$22 (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
(डाक-व्ययसहित)
(भारतमें) ६५० रु०
(सजिल्द ७५० रु०)
विदेशमें—US$ 90 (Sea Mail)
US$ 180 (Air Mail)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

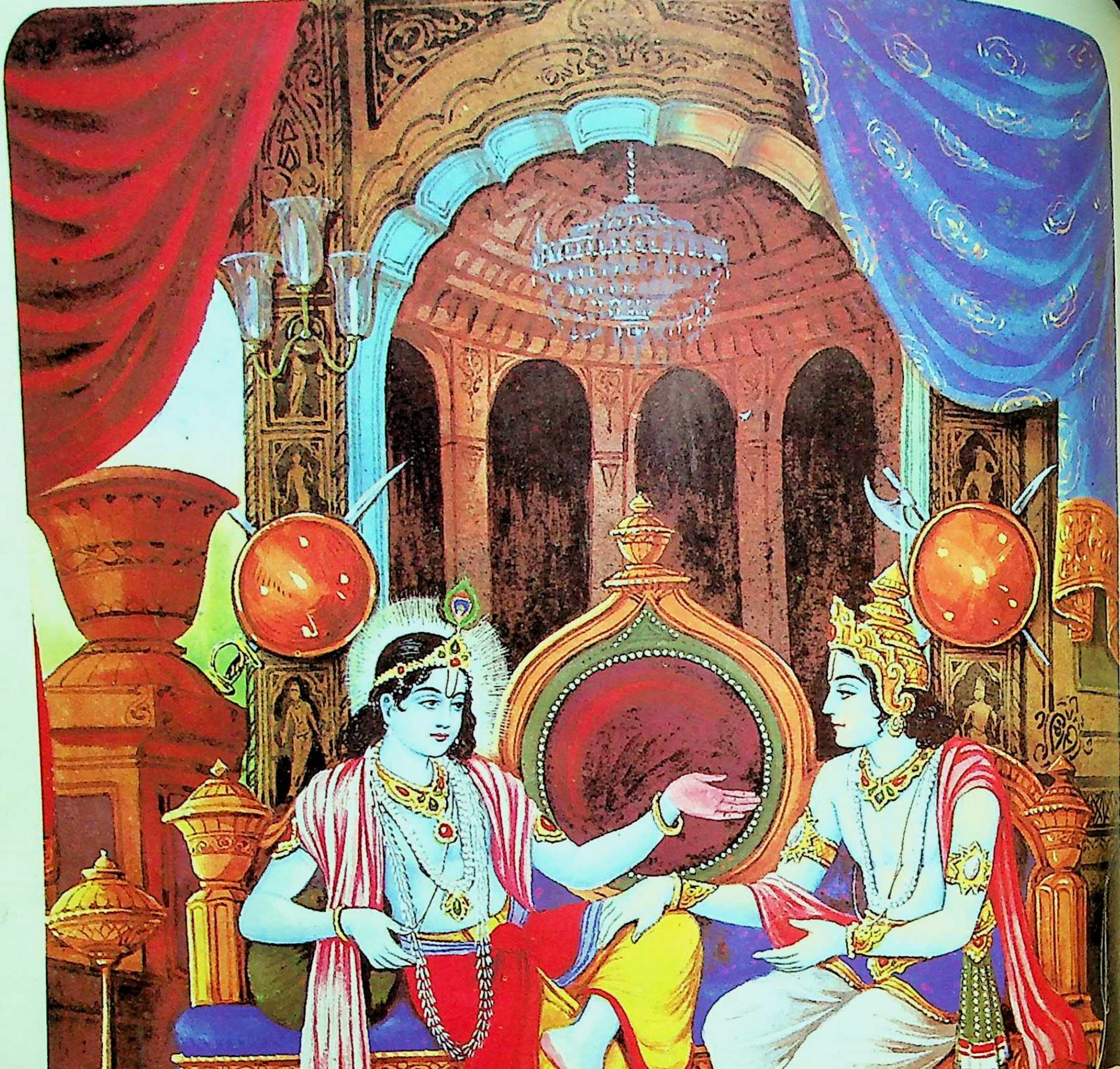

भगवान् श्रीकृष्णका उद्धवजीको उपदेश

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

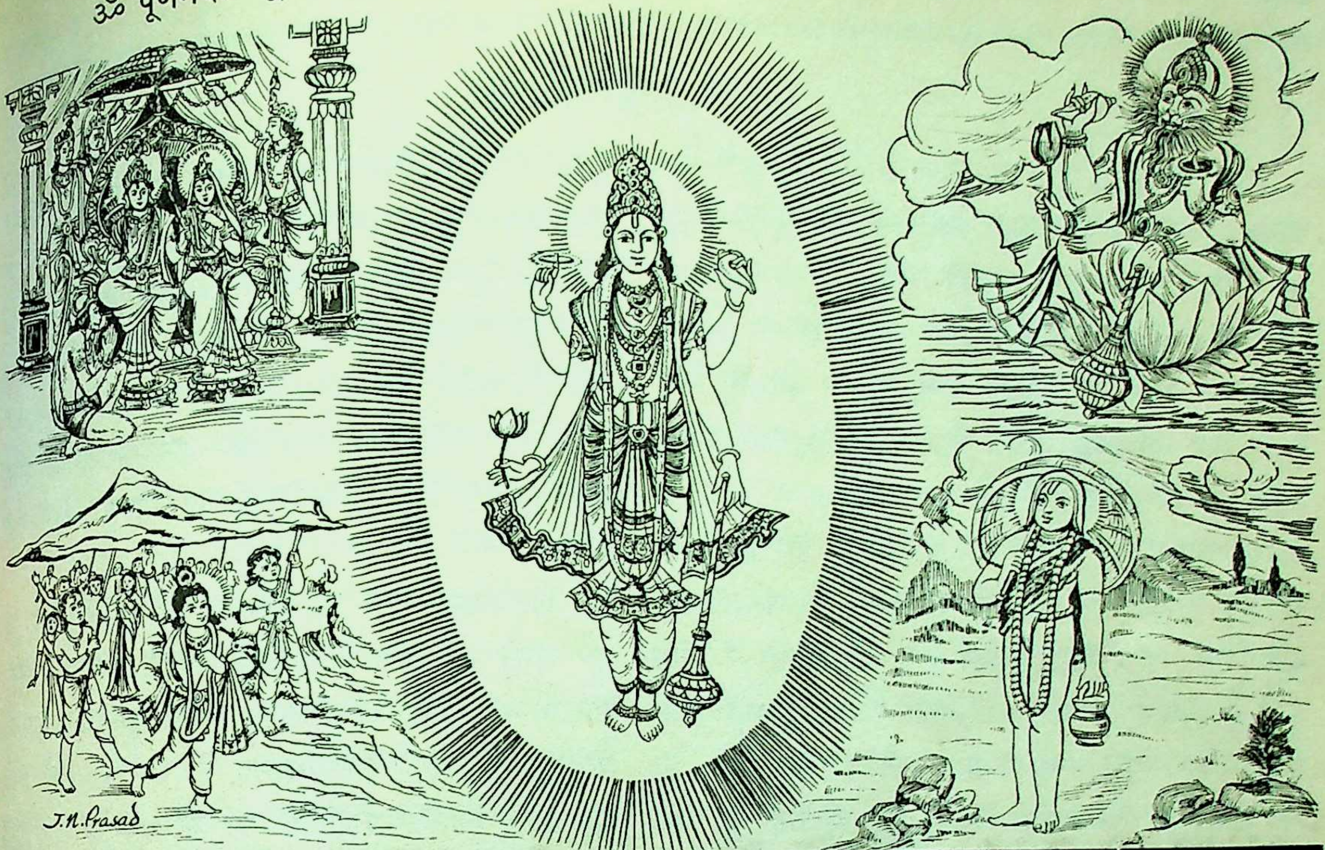

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वंते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

वर्ष ७२
गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, नवम्बर १९९८ ई०
संख्या ११
पूर्ण संख्या ८६४

भगवान् श्रीकृष्णका उद्धवजीको उपदेश

यथाग्निना हेम मलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम्।
आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम्॥
यथा यथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जनसम्प्रयुक्तम्॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। २५-२६)

जैसे आगमें तपानेपर सोना मैल छोड़ देता है—निखर जाता है और अपने असली शुद्ध रूपमें स्थित हो जाता है, वैसे ही मेरे भक्तियोगके द्वारा आत्मा कर्म-वासनाओंसे मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त हो जाता है, क्योंकि मैं ही उसका वास्तविक स्वरूप हूँ। उद्धवजी! मेरी परम पावन लीला-कथाके श्रवण-कीर्तनसे ज्यों-ज्यों चित्तका मैल धुलता जाता है, त्यों-त्यों उसे सूक्ष्म वस्तुके—वास्तविक तत्त्वके दर्शन होने लगते हैं—जैसे अंजनके द्वारा नेत्रोंका दोष मिटनेपर उनमें सूक्ष्म वस्तुओंको देखनेकी शक्ति आने लगती है।

कल्याण

याद रखो—तुम्हारी वही दशा है जो हरी-हरी घास खानेमें और बकरीके साथ सहवास करनेमें लगे हुए कुछ ही समय बाद कसाईके छूरेके नीचे आनेवाले बकरेकी होती है। तुम इस समय अपनी रुचिके अनुसार खान-पान, मौज-शौक, बाल-बच्चे, कुटुम्ब-परिवार, धन-ऐश्वर्य, पद-अधिकार, उन्नति-उत्थान और विकास-प्रकाश आदि अनेक प्रवृत्तियोंमें लगे हुए एक क्षणके लिये भी आत्मविचारके लिये समय नहीं पा रहे हो; पर यह निश्चय समझो—तुमको बिना ही जताये, तुम्हारी आवश्यक-से-आवश्यक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तिका कुछ भी खयाल न करते हुए मृत्युदेवता सहसा आ जायँगे और तुम्हारी सारी प्रवृत्तियोंका समूल उन्मूलन कर डालेंगे।

याद रखो—कसाईका बकरा पशु है, वह यह नहीं समझता कि कुछ ही क्षणों-पूर्व उसके सामने ही उसीके सदृश मोटा-ताजा एक बकरा तेज छूरीके घाट उतारा गया है, वही दशा तुम्हारी भी होनेवाली है। वह अज्ञानी है, पशु है; पर तुम तो मनुष्य हो। तुम्हें तो यह ज्ञान होना चाहिये कि जैसे मेरा एक सम्बन्धी बन्धु अभी मौतके विकराल गालमें चला गया है, वैसे ही मुझको भी जाना पड़ेगा और उस समय यहाँके 'मैं' तथा 'मेरे' कहलाने या माने जानेवाले तमाम पदार्थोंसे सारा सम्बन्ध टूट जायगा।

याद रखो—बुद्धिमान् मनुष्य वही है जो यह जानता है कि जन्मके साथ ही मेरी मृत्युका भी जन्म हो चुका है और वह प्रतिक्षण मरा जा रहा है। मृत्युका अन्तिम स्पर्श उसे निश्चय ही समाप्त कर देगा। अत: उसे अगले जन्मके लिये या जन्म-मृत्युके चक्रसे सदाको छूट जानेके लिये तैयार रहना और सफल उपाय करना है।

याद रखो—तुम्हारा यह जन्म तुम्हारे अनादि विशाल जन्म-ग्रन्थका एक अध्यायमात्र है। तुम्हारा शरीर मृत्यु-मालाका ही एक मनका है। यह तुम्हारा स्वरूप नहीं है। तुम्हारा असली स्वरूप इससे नित्य विलक्षण है। जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिका शिकार तो यह प्राकृतिक शरीर ही होता है, नित्य चेतन आत्मा नहीं। तुम नश्वर शरीर नहीं, नित्य चेतन आत्मा हो। सच्चिदानन्दघन परमात्माके सनातन अंश हो। अपने इस भगवदंश-स्वरूप या आत्मस्वरूपकी विस्मृतिके कारण ही अपनेको जन्म-मरणशील शरीर मानकर जन्म-मरणके अनिवार्य, पर मिथ्या चक्रमें फँस रहे हो।

याद रखो—तुम्हें मानव-शरीर इसीलिये मिला है कि तुम अपने उस असली परमार्थस्वरूपको पहचानो—अपने सनातन सत्य जीवनको उपलब्ध करो जो तुम्हारा स्वरूप है। पर तुम तो इतने आत्मविस्मृत हो रहे हो—इतने बाह्य प्रकृतिगत होकर—प्रकृतिको ही अपना स्वरूप मानकर उसीमें स्थित हो रहे हो कि जिसके कारण तुम्हारे अंदर अपने यथार्थ स्वरूपको जानने-समझनेका कभी प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। 'तुम कौन हो, कहाँसे आये हो, शरीर तथा नामके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है, यहाँके ममता-आसक्तिके प्राणी-पदार्थोंसे तुम्हारा क्या सम्पर्क है और वह क्यों है। शरीर छूटनेके बाद तुम्हें कहाँ जाना है'—इत्यादि जिज्ञासा तुम्हारे हृदयमें कभी उत्पन्न ही नहीं होती। यह कितना बड़ा महामोह है। इसी मोहके वश हुए तुम अपने सारे बुद्धि-विवेकको जो मनुष्यको पशुसे पृथक् करता है—पशुत्वकी प्राप्तिमें ही नहीं—पिशाच और राक्षस बननेकी प्रवृत्तिमें लगाये हुए हो और इसीमें जीवनकी सार्थकता मान रहे हो।

याद रखो—तुम्हारी यह स्थिति तुम्हारे लिये ऐसे भविष्यका निर्माण कर रही है जो घोर अन्धकारमय, अनन्त नरकमय, दुःखमय, मृत्युमय और अशान्तिमय है। अतएव जल्दी चेत करो। विवेकको अपने विनाशमें न लगाकर सच्चे विकासमें लगाओ। अपने परमात्मांश-स्वरूपको—आत्मस्वरूपको समझो और मानव-जीवनको सफल करो।—**'शिव'**

* * *

पात्रता एवं श्रद्धा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

संसारमें परमात्माकी प्राप्तिके लिये अतीव आवश्यकता है पात्रता एवं श्रद्धाकी। इसके विषयमें एक सुनी हुई कहानी है। कहोड नामके एक वेदपाठी ब्राह्मण थे और उनके पुत्रका नाम था अष्टावक्र। अष्टावक्र जब अपनी माँके पेटमें था, उस समय गर्भस्थ बालक अष्टावक्र अपने पिताके मुखसे वेदका अशुद्ध पाठ सुनकर अपनी माँके मुखसे अपने पिताकी अशुद्धि बताने लगा। इसपर उसे क्रोध आ गया और बोला कि अरे गर्भस्थ शिशु अभी तो तू पैदा ही नहीं हुआ, अपनी जननीके पेटके भीतरसे बोल रहा है! कहोडको इसमें अपना अपमान मालूम हुआ, यद्यपि बात ठीक थी। क्रोध आनेपर उसने अपनी पत्नीके गर्भवाले उदरपर लात मारी, जिससे उस गर्भस्थ बच्चेके कोमल अङ्ग जगह-जगह टेढ़े पड़ गये। जब वह लड़का पैदा हुआ तो आठ जगहसे टेढ़ा ही पैदा हुआ। आठ जगहसे टेढ़ा होनेके कारण उसका नाम अष्टावक्र रखा। अष्टावक्र जन्मके पहलेसे ही वेदोंका अनुभवी था, अतः बड़ा भारी प्रकाण्ड विद्वान् हुआ।

अष्टावक्रका एक मामा था जिसका नाम था उद्दालक। बाल्यावस्थामें अष्टावक्र अपने मामाके साथ खेल रहा था। दोनों समान अवस्थावाले थे।

एक बार वे दोनों आपसमें गेंद खेल रहे थे। खेलते समय अष्टावक्रने जब गेंद फेंकी तो जहाँ वह फेंकना चाहता था वहीं गेंद लगी तो उसने प्रसन्नतासे उच्च स्वरमें कहा कि मेरी विजय हो गयी। इसपर उसके मामाने कहा कि अरे, तू यहाँ विजय मना रहा है और तेरा बाप कैदमें पड़ा है। बालक आपसमें ताना मार ही देते हैं। इस बातको सुनकर अष्टावक्रने सोचा कि मेरा बाप कैदमें पड़ा है तो मेरा बाप और कोई है क्या? वह अपने नानाको ही अपना बाप समझता था। उसका मामा उसके नानाको पिताजी कहता तो वह भी पिताजी कहता था। उसकी माँ भी पिताजी कहती तो वह समझता कि ये सबके पिताजी हैं। जब अष्टावक्रने यह नयी बात सुनी तो वह अपनी माँके पास गया और पूछा कि माँ, मेरे पिताजी कहाँ हैं और कौन हैं? उसकी माँने उसके नानाजीकी तरफ इशारा करके कहा कि ये तेरे पिताजी हैं। इसपर बालकने कहा कि नहीं ये तो तेरे पिताजी हैं, उद्दालकके पिताजी हैं। बताओ, मेरे पिताजी कहाँ हैं? माँ, बताओ न मेरे पिताजी कहाँ हैं? लड़केका हठ सुनकर वह रोने लगी और बोली कि बेटा, क्या बताऊँ? उसने कहा कि नहीं माँ, बताना ही होगा। तब विवश होकर उसकी माँने कहा कि बेटा, यहाँ जनक नामका एक राजा है। उसके पास यदि कोई जाता है तो वह उससे कुछ प्रश्न करता है। उसके प्रश्नका जो सही उत्तर देता है उसे तो पुरस्कार देता है और जो सही उत्तर नहीं दे पाता उसे कैद कर लेता है। तेरे पिता भी वहीं गये थे और वे उत्तर नहीं दे सके तो राजाने उन्हें कैद कर लिया। अष्टावक्रने कहा—कोई बात नहीं। माँ डरती थी कि बापका बदला लेनेके लिये यह भी वहाँ जाकर कहीं फँस न जाय! उसे वह समझा-बुझाकर रोकना चाहती थी, किंतु वह रुका नहीं। वह अपने मामा उद्दालकके साथ राजा जनककी राजधानीमें गया। दोनों बालक राजाकी ड्योढ़ीपर खड़े होकर ड्योढ़ीवानोंसे बोले कि हम राजाकी सभामें जाना चाहते हैं। द्वारपालोंने कहा कि वहाँ बालक नहीं जा सकते। इसपर बालकोंने पूछा कि जो अवस्थामें बालक हैं वे नहीं जा सकते या जो ज्ञानमें बालक हैं वे नहीं जा सकते? यदि अवस्थामें जो बालक हैं वे नहीं जा सकते तब तो वहाँ हमारा अधिकार नहीं है; क्योंकि हम बालक-अवस्थामें हैं और यदि ज्ञानमें जो बालक हैं वे नहीं जा सकते तो हम लोगोंका अधिकार है। आप हमसे शास्त्रार्थ कीजिये। यदि हमें ज्ञानमें अयोग्य पायें तो रोक दीजिये। तब द्वारपालोंमें जो बुद्धिमान् था, उसने सोचा कि ये बालक जाने लायक हैं, अतः उन्हें जाने दिया और वे दोनों सभामें पहुँच गये। राजा समझदार थे, उन्होंने बालकोंको सभामें उपस्थित देखकर सोचा कि यदि द्वारपालने इन्हें मौका दिया है तो कुछ सोच-समझकर ही दिया है। कहोड-पुत्र अष्टावक्र वहाँ खड़ा हो गया। उन्हें आठ जगहसे टेढ़ा देखकर राजा हँसे और बाकी सब लोग भी हँसे तो

अष्टावक्र भी हँसने लगे। इसपर राजाने बालकसे पूछा कि हम लोग तो ठीक हँस रहे हैं, क्योंकि तुम्हारा शरीर एकदम अनोखा है। ऐसा किसीने कभी देखा नहीं। इसलिये हम लोगोंके हँसनेका हेतु तो ठीक है, परंतु हे ब्राह्मण! तुम्हारे हँसनेका क्या हेतु है? अष्टावक्रने कहा कि मेरे हँसनेका हेतु भी ठीक है। मैंने यह सुना था कि राजा जनकके यहाँ विद्वान् इकट्ठे होते हैं, वहाँ विद्वानोंकी सभा है। मैं तो यहाँ विद्वानोंकी सभा समझकर आया था, किंतु यहाँ तो चमारोंकी सभा है; क्योंकि चमार हड्डी और चमड़ेकी परीक्षा करते हैं। यहाँ आकर देखा कि कोई विद्वान् तो है ही नहीं, अतः यह मूर्खोंकी सभा है। सब चमार-ही-चमार इकट्ठे हो गये हैं और यह भी सोचकर मैं हँसा कि 'मैं कहाँ आ गया'। राजाने पूछा कि क्या ये सब चमार हैं? उसने कहा—हाँ, आचरणसे तो चमार ही हैं, क्योंकि चमार ही हड्डी और चमड़ेकी परीक्षा करते हैं। राजाने फिर पूछा कि आप यहाँ किसलिये आये? उन्होंने कहा कि मैंने सुना है कि 'राजा जनकके पास कोई भी विद्वान् ब्राह्मण आता है तो उससे कहा जाता है कि 'हम घोड़ेपर सवार हो रहे हों और एक पाँव घोड़ेके पाँवड़ेमें रख दें और दूसरे पैरको रखें इतनी देरमें हमको ज्ञान दे सकते हो क्या'? ज्ञान न दे सकनेके कारण आप उसे कैद कर लेते हैं। राजाने कहा—हाँ यही बात है। अष्टावक्र बोले—'मैं आपको ज्ञान देने आया हूँ।' राजाने कहा कि इतनी देरमें आप ज्ञान दे सकते हैं? अष्टावक्र बोले कि इतनी देरमें मैं तीन आदमियोंको ज्ञान दे सकता हूँ। जिसके पास जो चीज है—जैसे यह घड़ी है, इसे दूसरोंको देनेमें कितना समय लगेगा। उन्होंने घड़ीकी बात नहीं कही यह तो मैंने आपको समझानेके लिये कही है। राजाने घोड़ा मँगवाया और घोड़ेपर सवार होनेके लिये एक पैर पाँवड़ेपर रखा और दूसरा पैर ज्यों ही रखनेके लिये तैयार हुआ, त्यों ही अष्टावक्रने उपदेश देना आरम्भ कर दिया—'राजन्! मनको मुट्ठीमें पकड़ो।' राजाने कहा—'मनको मुट्ठीमें कैसे पकड़ें?' अष्टावक्रने कहा कि 'मन तुम्हारी मुट्ठीमें रहे, इधर-उधर बाहर न जाय।' राजाने कहा कि 'मनको मुट्ठीमें कैसे पकड़ा जा सकता है?' अष्टावक्रने कहा कि 'जिसका मन मुट्ठीमें नहीं है, उसे यह सवाल ही नहीं करना चाहिये कि इतने समयमें ज्ञान दो। इतने समयमें ज्ञान उसीको दिया जा सकता है, जिसका मन मुट्ठीमें हो। ज्ञान प्राप्त करनेके पात्र तो तुम हो नहीं और दोष देते हो उपदेशकको। पहले तुम स्वयं तैयार होओ—जैसा हम कहें या उपदेश दें, वैसा तुम करो। यदि तुम नहीं कर सकते तो दोष हमारा है या तुम्हारा?' राजाने कहा कि 'मैं इस प्रकार मनको मुट्ठीमें नहीं पकड़ सकता'। इसपर अष्टावक्रने कहा कि 'अगर तुम नहीं पकड़ सकते हो तो तुम्हें ज्ञान देना मेरे वशकी बात नहीं और तुमने जितने ब्राह्मणोंको बिना अपराध कैद कर रखा है उन्हें छोड़ दो'। अष्टावक्रकी इस बातपर संतुष्ट होकर राजाने सबको छोड़ दिया। उनमें अष्टावक्रका पिता कहोड भी था। इस प्रकार अष्टावक्रने सबको छुड़ा दिया। कहनेका अभिप्राय यह है कि यदि मनुष्य पात्र बन जाय तो महात्मा पुरुषोंके उपदेशसे बहुत थोड़े समयमें बहुतोंको ज्ञान हो सकता है। अब इस समय उच्चकोटिके महात्मा पुरुष भी कम हैं। जिस समय भगवान्ने गीताका उपदेश किया था, उस समय भी कम थे। क्योंकि भगवान् कहते हैं कि—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

(गीता ७।३)

हजारों आदमियोंमेंसे कोई एक आदमी मेरी प्राप्ति-रूप सिद्धिके लिये प्रयत्न करता है और उन प्रयत्न करनेवाले सिद्धोंमें कोई एक ही पुरुष मुझ परमात्माको तत्त्वसे जानता है। इससे यह सिद्ध होता है कि उस जमानेमें भी लाखों-करोड़ोंमें कोई एक महापुरुष हुआ करता था। इसीलिये मनुजीने कहा है कि एक ओर दस हजार आदमी इकट्ठे होकर यदि [वोट दें और] कहें कि यह धर्म है और दूसरी ओर चारों वेदोंके तत्त्वको जाननेवाला एक महापुरुष जिसे धर्म बतावे वहाँ महापुरुषकी बातका ही महत्त्व है। उन दस हजार आदमियोंका बताया हुआ धर्म नहीं माना जा सकता, उस एककी बात मानी जा सकती है। आजकल जो वोटकी प्रथा है, उसमें कोई चाहे उच्चकोटिका विद्वान् महात्मा हो या कोई मूर्ख हो उन दोनोंका समान मूल्य है। आजकल विद्वान् महात्माकी कीमत नहीं है। उस समय कीमत थी कि

दस हजार आदमी एक ओर और एक विद्वान् तत्त्ववेत्ता एक ओर तो उस एक आदमीकी बातका ही आदर होता था, न कि दस हजार आदमीकी बातका। संसारमें महापुरुष बहुत ही कम हैं और हैं भी तो दुर्लभ हैं। प्रथम तो हैं ही बहुत कम और हैं तो उनका मिलना बड़ा दुर्लभ है और मिल जाते हैं तो उनको पहचानना कठिन है, उनको हम पहचान नहीं सकते। हममें पहचाननेकी सामर्थ्य नहीं है। यदि वे दया करके अपना परिचय दे दें तो हम उनसे बहुत लाभ उठा सकते हैं। जैसे अष्टावक्रजीने कहा कि इतने समयमें [जो कि एक मिनटका भी समय नहीं—] मैं तीन आदमियोंको ज्ञान दे सकता हूँ, जीवन्मुक्त बना सकता हूँ। उनका दिया हुआ ज्ञान निष्फल नहीं जा सकता। अतः परमात्माकी प्राप्तिके लिये तो इतना समय ही काफी है। जैसे जब बिजली फिट हो जाती है तब स्विच दबानेके साथ ही रोशनी हो जाती है, बिलकुल विलम्ब नहीं होता, इसी प्रकार जब मनुष्य पात्र बन जाता है तब क्षणमात्रमें (मिनटके अंदर ही) परमात्माकी प्राप्तिका उपदेश पाकर उसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। अतः हम लोगोंको तैयार होना चाहिये। शास्त्रोंमें भी यह बात बतायी गयी है कि पात्रता प्राप्त होनेपर परमात्माकी प्राप्तिमें विलम्ब नहीं होता।

छान्दोग्य उपनिषद्में कथा आती है कि जबालाका पुत्र सत्यकाम अपने गुरुके पास उपदेश लेनेके लिये गया। गुरुने पूछा कि तुम्हारा गोत्र क्या है? जाबालने कहा कि 'मैंने इस विषयमें अपनी माँसे पूछा था तो उसने कहा कि मैं तुम्हारे पिताकी सेवा करती थी। उस समय मुझे मालूम नहीं था कि तुम्हारे पिताका गोत्र क्या है और तुम पैदा हुए।' इसपर गुरुजीने कहा ठीक है, तुम ब्राह्मणके पुत्र हो, क्योंकि तुम सत्यवादी हो, ब्राह्मण कभी मिथ्या नहीं बोलते। तुम्हारे पिताका गोत्र नहीं मालूम तो कोई बात नहीं, तुम्हारी माँके नाम 'जबाला' से तुम्हारा गोत्र चलेगा। फिर उन्होंने उसे शिक्षा दी। यज्ञोपवीत दिया और गायत्री-मन्त्रकी दीक्षा दी। शिक्षा देकर उसे आज्ञा दी कि इन चार सौ गायोंका तुम अनुगमन करो। जाते समय सत्यकामने कहा कि जब ये एक हजार हो जायँगी तब मैं लौटूँगा। इसपर वे मौन हो गये। मौनमें उनकी सम्मति और संकेत समझकर वह गायोंको वनमें ले गया। जब गौओंकी संख्या एक हजार हो गयी, तब उनमेंसे एक ऋषभ (साँड़)-ने कहा कि अब हमारी संख्या एक हजार हो गयी, अतः हमको गुरुजीके पास ले चलो। उस समय सत्यकामको ऋषभ (साँड़)-ने ब्रह्मका उपदेश दिया। इसके बाद क्रमशः अग्निदेवता तथा हंस और मद्गु नामके एक जलचर पक्षीने भी उपदेश दिया। इस प्रकार वनमें ही उसे इन चारोंने उपदेश दिया। सत्यकामको पूर्ण ज्ञान हो गया और उसे परमात्माकी प्राप्ति हो गयी। ब्रह्मज्ञान होनेपर वह १,००० गायोंके साथ गुरुजीके घर आया। गुरुजीने उसका मुख-मण्डल देखकर कहा—'वत्स! तेरे मुखमण्डलकी प्रसन्नता और शान्ति देखकर मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि तुम्हें ब्रह्मज्ञान हो गया।' सत्यकामने कहा—'प्रभु! आपकी कृपासे हो गया। फिर भी मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ, आप स्वयं मुझे उपदिष्ट करें। तदनन्तर गुरुने भी उपदेश दिया। सत्यकाम जब पात्र हो गया तो गुरुने भी थोड़े कालमें ही उपदिष्ट कर दिया। ज्ञान तो उसे पहले हो ही गया था। नाम मात्रके लिये गुरुसे भी सुन लिया।

उसमें पात्रता क्या थी? गुरुकी आज्ञाका पालन करना। गुरुने कहा था कि 'तुम इन चार सौ गायोंका अनुगमन करो।' उसने गुरुके कहनेपर यह प्रश्न नहीं किया कि 'इससे ज्ञान कैसे होगा?'—यह भी नहीं सोचा कि मैं तो ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये गुरुके पास आया हूँ और ये गुरुजी ब्रह्मज्ञानकी तो बात करते नहीं और कहते हैं कि 'तुम गायोंको जंगलमें ले जाकर चराओ।' भला आजके युगमें कौन उससे मुक्ति समझेगा और इस बातको सच मानेगा। बल्कि कहेगा कि मैं आपके यहाँ ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये आया हूँ या गायोंको चरानेके लिये। इसके अलावा आज कोई इस प्रकारसे शिक्षा लेनेके लिये आये तो उसे चार सौ गायें तो दूर रहीं, उससे यह कह दे कि हमारे घरमें गाय है और तुम प्रातःकाल तथा सायंकाल इसका दूध स्वयं दुह लाना। गायको थोड़ा घास भी खिला दोगे तो अच्छा होगा और दिनमें पढ़ा करना। तो वह भी उसे भार मालूम देगा कि देखो गुरुजी बड़े स्वार्थी हैं। ये तो गायकी सेवा करवाना

चाहते हैं और इसके बदलेमें मुझे ज्ञान देना चाहते हैं। अच्छा खैर, कोई दूसरा गुरु मिले ऐसी चेष्टा करें, इनसे क्या होना है। ऐसे स्वार्थीसे अपने किसी कामकी सिद्धि नहीं हो सकती। क्या कभी ऐसे शिष्यको ज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है? स्वयं भगवान् कहते हैं—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता ४। ३४)

गुरुसे ज्ञान इस प्रकार प्राप्त कर। 'प्रणिपात' कर नमस्कार करके नहीं बल्कि साष्टाङ्ग प्रणाम करके यानी गुरुके चरणोंमें लम्बा लेटकर प्रणाम कर। आजकल किसीसे कहा जाता है कि साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये तो कहते हैं कि हमें शर्म आती है। शुद्ध भावसे प्रश्न करनेका नाम 'परिप्रश्न' है। जिज्ञासु होकर शुद्ध भावसे प्रश्न करना चाहिये। 'सेवा' का अर्थ है गुरुके मनके और संकेतके अनुसार चलना, उनके आदेशके अनुसार चलना, हर समय उपस्थित रहना, उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते रहना। इस प्रकार गुरुके मनके अनुसार, आदेशके अनुसार सेवा करना सेवा है। ऐसा करनेपर वे तत्त्वदर्शी महात्मा ज्ञानी पुरुष तुझे ज्ञानका उपदेश करेंगे। प्रश्न हो सकता है कि यदि तत्त्वदर्शी ज्ञानी महात्मा पुरुष हैं तो उन्हें जिज्ञासुके प्रश्नका उत्तर देनेमें सेवासे, नमस्कारसे क्या प्रयोजन? प्रश्न करनेवाला चाहे जैसे भी प्रश्न करे। यह सेवा और नमस्कार क्यों? उत्तर यह है कि सेवा और नमस्कारसे वह पात्र है या अपात्र यह समझा जाता है। श्रद्धाका निर्णय होता है। क्या श्रद्धालुको ही ज्ञान देना चाहिये अन्यथा नहीं? प्रश्नकर्तामें यदि श्रद्धा नहीं हो तो उपदेश नहीं देना चाहिये। मूककी तरह चुप हो जाना चाहिये। वास्तवमें तत्त्वदर्शी महात्मा-ज्ञानी पुरुषको अपने निजी प्रयोजनकी सिद्धिके लिये सेवा नहीं करवानी है, प्रणाम नहीं कराना है, बल्कि उनका तो यह प्रयोजन है कि श्रोताका किस प्रकारसे हित हो। हित तभी हो सकता है, जब वह पात्र होगा और पात्र वही समझा जाता है जिसमें श्रद्धा होती है। ये तो साधारण श्रद्धाके नियम हैं। उच्चकोटिकी परम श्रद्धाकी बात तो गुप्त है, रहस्यकी बात है, वह पुस्तकोंमें कैसे मिल सकती है। जिनकी परम श्रद्धा होती है, उनकी परिस्थिति तो ऐसी होती है कि वे गुरुका दर्शन करके मुग्ध होते रहते हैं, उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते रहते हैं और उनकी आज्ञा मिलनेपर इतनी प्रसन्नता होती है कि शरीरमें रोमांच होने लगता है। उनकी आज्ञाका पालन करनेमें प्रसन्नता होती है। कभी-कभी तो वे इतने मुग्ध हो जाते हैं कि आज्ञा-पालन करनेमें विलम्ब असह्य हो जाता है। जिस ओरकी हवा चलती है उस ओर वह नहीं बैठता। उस ओर अपने गुरुको बैठाकर स्वयं दूसरी ओर बैठता है। जैसे मानो हवा पूर्वसे आ रही है तो वह पूर्वमें गुरुजीको बैठाता है और स्वयं पश्चिमकी ओर बैठता है; क्योंकि गुरुको स्पर्श करके जो हवा उसे स्पर्श करती है उससे ही ज्ञान हो जाय। हमारी स्पर्श की हुई हवा अपवित्र हो जाती है, क्योंकि हम अपवित्र हैं। हमारी स्पर्श की हुई अपवित्र हवा अगर गुरुको स्पर्श करे, वह तो एक प्रकारसे अपराध है। कोई भी चीज जिसे गुरु स्पर्श करें उसे हम स्पर्श करें वह तो ठीक है, पर हमारी स्पर्श की हुई वस्तुको गुरुजी स्पर्श करें वह तो हमारी उच्छिष्ट हो गयी। शिष्य यदि नदीमें स्नान करता है तो जिस ओरसे प्रवाह आता है उस ओर तो गुरुजीको रखता है और जिस ओर प्रवाह बहता है उस ओर स्वयं स्नान करता है। भाव यह रहता है कि जो जल गुरुका स्पर्श करके मेरा स्पर्श करेगा उससे मेरा कल्याण होगा। जल पवित्र तो है पर मुझे स्पर्श करनेपर अपवित्र होगा अतः उस जलको हम गुरुसे कैसे छूने दें। चलनेके समय जिस ओर उनकी छाया पड़े उस ओर हम कैसे चलेंगे। क्योंकि उनकी छायापर हमारे पैर पड़ेंगे। यदि कहो कि स्वामीपर तो नहीं पड़ते? तो उनकी छायापर तो पड़ते हैं न! हमें तो छायाको भी बचाना चाहिये। जिस जगह गुरुके पैर टिकेंगे वहाँ हम पैर कैसे रखें, क्योंकि वह तो हमारे मस्तक रखनेकी जगह है। हमें आगे चलना चाहिये। हमारे पैरपर गुरुके पैर पड़ें तो कोई आपत्ति नहीं। यदि हम गुरुके पीछे चलें तो उनके पैरोंकी बचाकर चलना चाहिये, इसलिये कि वह चरण-धूलि हमारे मस्तकपर धारण करनेकी वस्तु है।

गुरुके पहननेकी पादुकाओंको वह नहीं पहनता, क्योंकि वह उनको मस्तकपर रखनेकी वस्तु समझता है, पाँवमें रखनेकी नहीं। यदि हमारे पाँवकी पादुकाएँ हैं और उनको गुरुने पहन लिया तो वे हमारे पहननेकी चीज नहीं रहीं। प्रथम तो हमें उन्हें पहनने देना ही नहीं चाहिये, क्योंकि वे हमारे पैरोंकी जूती हैं, हम उन्हें कैसे दें। अपना पहना हुआ पुराना वस्त्र या पुराना जूता उच्छिष्ट है और हम वह गुरुजीको दें तो यह अपराध है। इस सम्बन्धमें सावधानी रखनी चाहिये। गुरुके काममें ली हुई चीजको वह बड़े हर्षसे लेता है। वह समझता है कि उन सब चीजोंमें गुरुके परमाणु प्रवेश कर गये हैं। उनको प्रसाद-रूपमें धारण करनेसे ही मुझे ज्ञान हो जायगा यह उसका भाव है। इसी प्रकारसे जो ब्रह्मचर्य-आश्रममें रहते वे भिक्षा लाकर गुरुको सौंप देते और गुरु अपने हाथसे छूकर उसको उसमेंसे जितना देते उसे वह प्रसाद समझकर पाता। गुरु लोग बड़े उच्चकोटिके होते थे। वे भोजन करके अपना उच्छिष्ट नहीं देते थे। किसीको उच्छिष्ट खिलाना पाप समझते थे। शिष्यके लिये तो गुरुके उपयोगसे अवशिष्ट वस्तु मुक्ति देनेवाला प्रसाद है तथापि गुरु समझते थे कि हमारे उच्छिष्टमें वह शक्ति नहीं है जो उसकी मुक्ति हो जाय। हमारे चरणोंकी धूलि या जलमें वह शक्ति नहीं है कि उसके धारण या पान करनेसे उसकी मुक्ति हो जाय। इसलिये वे इन बातोंसे बचते थे। यदि किसी शिष्यको गुरुकी सम्मतिसे [चोरी करके नहीं] ये चीजें मिल गयीं तो उसका उद्धार हो जाता था, कल्याण हो जाता था। उच्चकोटिके महापुरुष सदा-सर्वदा सावधान रहते थे, इन कानूनोंसे बचकर रहते थे और शिष्य उनकी सम्मतिसे इन बातोंको स्वीकार करते थे।

वे समझते थे कि यदि गुरुके गुणोंको हम चोरी करके लेंगे तो उसमें हमारी सफलता नहीं है। कर्णने चोरीसे परशुरामजीसे विद्या पढ़ी। जब परशुरामजीको मालूम हुआ कि इसने कपटसे मुझसे विद्या पढ़ी है तो उन्होंने उसे शाप दे दिया कि तुमने मुझसे जो विद्या पढ़ी है वह निष्फल होगी, क्योंकि तुमने चोरीसे विद्या पढ़ी। इसलिये चोरीसे जो चीज पढ़ी जाती है वह निष्फल होती है।

महात्मा पुरुषोंमें जिनकी श्रद्धा होती है उनके लिये भगवान्ने बतलाया है कि श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त हो जाता है—'**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्**' (गीता ४। ३९)। श्रद्धावान् कैसा होना चाहिये? जो साधनमें तत्पर हो और जिसकी इन्द्रियाँ वशमें हों। ऐसा पुरुष ज्ञानको पाकर परम शान्तिको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। ज्ञानकी प्राप्तिके बाद तुरंत ही परम शान्ति मिल जाती है, जिसे हम परमात्माकी प्राप्तिरूप शान्ति कहते हैं। मन और इन्द्रियोंका जितना संयम होता है उतना ही उसका साधन तेज समझा जाता है। अभिप्राय यह है कि जितनी उच्चकोटिकी श्रद्धा होगी उतना ही साधन तेज होगा और जितना साधन तेज होगा उतनी ही जल्दी मन और इन्द्रियाँ वशमें हो जायँगी। श्रद्धा पूर्ण होनेपर ये सब बातें उसमें घटेंगी और उसे ज्ञान हो जायगा। श्रद्धाकी कमीके कारण ही ज्ञानकी प्राप्तिमें विलम्ब होता है। बहुत-सी ऐसी बातें हैं जो श्रद्धा होनेसे स्वाभाविक ही आ जाती हैं। पुस्तकोंमें पढ़कर यदि यह बात समझमें आवे तो उसका इतना महत्त्व नहीं है जितना महत्त्व स्वाभाविक रूपसे आनेपर होता है। जब परम श्रद्धा होती है तब श्रद्धालुको वक्ताके हृदयके भावका ज्ञान स्वतः हो जाता है और वह उसके मनके अनुसार चलता है। जैसे पतिव्रता स्त्री पतिके मनके भावको स्वयं जान जाती है और जबतक वह मनके भावको नहीं जानती तबतक संकेतके अनुसार चलती है। इसी प्रकार श्रद्धालु महात्माओंके संकेतके अनुसार चलते हैं। प्रायः लोग महात्माओंके संकेतको नहीं समझते, वे तो उनके वचनोंके अनुसार चलते हैं। वचनकी अवहेलना करना श्रद्धालुके लिये तो मरणके समान है। जो परम श्रद्धालु है उससे वचनकी अवहेलना हो ही नहीं सकती। जैसे मदारी कठपुतलीको नचाता है उसी तरह श्रद्धालु महात्माके संकेतके अनुसार नाचता है। जैसे मनुष्यकी छाया मनुष्यके अनुसार ही चलती है, मनुष्य जैसी चेष्टा करता है उसकी छाया भी वैसी ही चेष्टा करती है, इसी प्रकार वह उनकी छाया हो जाता है। वहाँ भूल होनेकी गुंजाइश ठीक वैसे ही नहीं रहती, जैसे छायामें कभी भूल नहीं होती। जैसे मनुष्य अपना सिर हिलाता है वैसे ही छाया हिलाती है। छाया जड़ है और मनुष्य चेतन। छायामें कोई विशेषता नहीं रहती और चेतनमें विशेषता रहती है। उसके

शरीरमें बार-बार रोमांच होता है, अश्रुपात होता है, प्रसन्नता होती रहती है। प्रसन्नता और शान्तिमें चेतन हर समय मन्त्रमुग्धकी तरह मुग्ध रहता है। उसके रोमांच होने, अश्रुपात होने, प्रसन्नता होने और मन्त्रमुग्धकी तरह होनेमें विलम्ब नहीं होता। जब साधारण श्रद्धालुको विशेष विलम्ब नहीं होता, तब परम श्रद्धालुमें गुरुका भाव समाविष्ट हो ही जाता है। गौ जब बछड़ेको चाटने लग जाती है तो बछड़ेके रोमांच हो जाता है और उसी क्षण गायके थनोंमें दूध आ जाता है। बछड़ा उसे चूँघकर एकदम तृप्त हो जाता है। बछड़ेके चूँघनेमें दस-पंद्रह मिनट समय लग जाता है, क्योंकि वह दूध स्थूल चीज है और माँके थनोंसे भी धीरे-धीरे निकलकर बछड़ेके मुखके द्वारा उसके पेटमें जाता है। किंतु महात्माका प्रभाव तो क्षणमात्रमें पड़ जाता है। उसमें इतना समय नहीं लगता। जैसे धूपमें बैठनेपर सूर्यकी किरणोंका प्रभाव तुरंत ही पड़ जाता है। किंतु उसमें भी दो-चार मिनट लगते हैं, क्योंकि वह गर्म होता है। पर महात्माका प्रभाव तो सूर्यसे भी बढ़कर है। महात्माका प्रभाव बिजलीकी तरह दौड़ता है; जैसे बिजलीको छूनेके साथ ही उसका प्रभाव हो जाता है। उसमें सूर्यकी तरह विलम्ब नहीं होता। वास्तवमें महात्माका प्रभाव तो बिजलीसे भी बढ़कर है। बिजलीके प्रभावसे तो दुःख और अशान्ति होती है और उससे जीवन तक नष्ट हो सकता है, पर यहाँ महात्माके प्रभावका जो बिजलीकी तरह दौड़ना है, उससे अज्ञान नष्ट हो जाता है तथा दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, पापोंके समूहों, दुःखोंके समूहोंका क्षणमात्रमें नाश हो जाता है। जैसे बिजलीसे शरीर नष्ट हो जाता है, वैसे ही यहाँ इन सब चीजोंका विनाश हो जाता है। जैसे बिजलीको छूनेसे बिजलीके प्रभावकी वृद्धि होती है, उसी प्रकार भगवान्को छूनेसे, महात्माको छूनेसे, महात्माका प्रभाव पड़नेसे वह महात्मा बन जाता है। परमात्माके प्रभावसे वह परमात्मा बन जाता है। जैसे तारमें बिजली आनेसे तार बिजली ही बन जाता है, इसी प्रकार परम श्रद्धा होनेपर वह भी महापुरुष बन जाता है, उसमें महापुरुषत्व उतर आता है। जबालाके पुत्रका उदाहरण श्रद्धाका है, परम श्रद्धाका नहीं।

धौम्यने अपने शिष्य आरुणिसे कहा कि खेतमें वर्षाका पानी ऊपरकी क्यारीसे नीचेकी क्यारीमें आ रहा है, उसको रोक दो, जिससे ऊपरका जल ऊपर ही रहे। आरुणि खेतमें गया और उसने पानीके बहावको रोकनेकी बहुत कोशिश की। जिस रास्तेसे पानी नीचे जा रहा था, उस रास्तेपर वह बार-बार मिट्टी रखता और वह मिट्टी बह जाती। उस स्थानपर जब पानी नहीं रुका तो जहाँसे पानी आता था वहाँ वह खुद लेट गया। अब नीचे पानी जाना बंद हो गया। जब रात हो गयी, तब गुरुने अन्य शिष्योंसे कहा कि आज आरुणि नहीं आया, वह कहाँ गया? शिष्योंने कहा कि आपने ही तो आज्ञा दी थी कि तुम खेतमें पानी रोको। गुरुने कहा कि पानी रोकनेमें इतना समय क्यों लगा, उसे दिनमें भेजा था अब तो रात हो गयी, चलो उसकी खबर लें। गुरुको अन्य शिष्योंको भी दिखाना था कि श्रद्धाका कैसा स्वरूप है। अतः और शिष्योंको भी साथ लेकर गये। रातका समय था, अन्धकार छाया था। आरुणि जिस खेतकी क्यारीमें जल रोके हुए था, उसके नजदीक जाकर गुरुने आवाज दी—वत्स आरुणि! आवाज सुनते ही आरुणिने कहा—क्या आज्ञा है महाराज? गुरुजीने पूछा—क्या कर रहे हो? आरुणिने कहा कि गुरुजी, आपने जल रोकनेकी आज्ञा दी थी, जलको रोके हुए हूँ। मिट्टी डालनेपर नहीं रुका तो मैं स्वयं ही लेट गया। अभीतक उसे रोक रखा था। अब क्या आज्ञा है? उस जलको रोके रहूँ या और कोई दूसरी आज्ञा है। गुरुने कहा कि अब हमारी आज्ञा यह है कि अब तुम अपने घरपर जाओ, तुम स्नातक हो गये। तुम जिस कामके लिये आये थे, तुम्हारा वह काम हो गया। बिना पढ़े ही तुम्हें सारे शास्त्रों और वेदोंका ज्ञान हो गया, अतः तुम अब अपने घर जाओ। न कोई पानी रोकना था और न कोई और प्रयोजन था उसका काम सिद्ध करना था। तब आरुणि गुरुके चरणोंमें प्रणाम करके अपने घर चला गया। जिस ज्ञानकी प्राप्तिके लिये आया था, उसे वह ज्ञान अपने-आप ही हो गया। यह भी परम श्रद्धाकी बात नहीं है, क्योंकि इतना विलम्ब हुआ।

शास्त्रोंमें श्रद्धाकी बहुत-सी बातें उदाहरणरूपमें मिलती हैं, किंतु परम श्रद्धाकी बात शास्त्रोंमें नहीं मिलती। एक

श्रोताने पूछा कि जब शास्त्रोंमें परम श्रद्धाकी बात नहीं मिलती तो फिर आपने उसका स्वरूप कैसे समझा? इस विषयमें मेरा यह कहना है कि जिन पुरुषोंकी भगवान्में जितनी परम श्रद्धा थी और मिलती है, भगवान्की कृपासे उनसे भाव निकाला गया और हम क्या कहें। ईश्वरकी कृपासे क्या नहीं हो सकता है। मुझे यह विश्वास है कि ईश्वरकी कृपासे ऐसी बातें समझमें आ जाती हैं जो कि पुस्तकोंमें नहीं हैं। पुस्तकोंमें कितनी बातें लिखी जायँगी; क्योंकि सारी बातें पुस्तकोंमें नहीं आ सकतीं। बातें अनन्त हैं और भगवान्का प्रभाव भी अपरिमित है।

गीताके सात सौ श्लोकोंका जो भाव है, रहस्य है, वह इतना भरा हुआ है कि आप इसका अभ्यास करते रहें तो आपको नयी-नयी बातें मिलती रहेंगी। ये तो ७०० श्लोक ही हैं और सम्भव है भगवान्का यह व्याख्यान दो घंटेका रहा होगा, क्योंकि युद्धके समयमें कहा गया था। भगवान् नित्य हैं और उनके अवतारका जीवन तो बहुत लम्बा था तथा उनके जीवनकी बातें उनका व्याख्यान ही था। यदि सभी बातें समझें तो सभी कल्याण करनेवाली हैं। उनको तो भगवान्का परम भक्त ही समझ सकता है। गोपियोंके लिये तो भगवान्की प्रत्येक क्रिया मुक्तिको देनेवाली थी। भगवान् श्रीकृष्ण जो भी क्रिया कर रहे हैं, गोपियाँ उनको देखकर मुग्ध हो रही हैं, उनके अश्रुपात हो रहा है, रोमांच हो रहा है, भगवान् जो भी उपालम्भ दे रहे हैं और वे जो भी क्रिया कर रहे हैं उसमें किसीमें भी यह बात नहीं है कि यह नीचे दर्जेकी है और यह ऊँचे दर्जेकी है। उनके किसी भी उपदेश या आदेशमें यह बात नहीं कि यह घटिया है या यह बढ़िया; क्योंकि वह भगवान्का है। उनकी भगवद्बुद्धि है और भगवद्बुद्धि होनेके बाद उनके शरीरकी क्रिया-वचन और अन्य सब क्रियाएँ उन्हें अद्भुत आनन्द देनेवाली हो जाती हैं।

बुद्धिकी स्थिरताका सरल उपाय

(श्री जय जय बाबा)

ततोऽन्यथा किंचन यद्विवक्षतः
पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः ।
न कुत्रचित्क्वापि च दुःस्थिता मति-
र्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम्॥

(श्रीमद्भा० १। ५। १४)

[**नारदजीने व्यासजीसे कहा—**] जो पुरुष भगवान्की लीलाकथाके अतिरिक्त अन्य कुछ भी कहनेकी इच्छा करता है, वह उस इच्छासे ही निर्मित अनेक नाम और रूपोंके चक्करमें पड़ जाता है। उसकी बुद्धि भेद-भावसे भर जाती है। जैसे हवाके झकोरोंसे डगमगाती हुई डोंगी (छोटी नौका)-को कहीं भी ठहरनेका ठौर नहीं मिलता, वैसे ही उसकी चञ्चल बुद्धि कहीं भी स्थिर नहीं हो पाती।

संसारके प्रायः अधिकांश मनुष्योंकी यह एक बड़ी समस्या है कि वे अपनी बुद्धिको स्थिर नहीं कर पाते। इसके लिये अनेक शास्त्रोंमें कई उपाय बताये गये हैं, क्योंकि यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि बुद्धिकी स्थिरताके बिना भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती।

यहाँपर यह विचार करना है कि क्या कोई ऐसा सरल और अमोघ उपाय है, जिससे कि भोलेभाले अनपढ़ मनुष्योंको भी लाभ मिल सके?

भागवत-धर्मोंका निरूपण करते हुए योगीश्वर कविजी कहते हैं—

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये।
अञ्जः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान्॥
यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित्।
धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ३४-३५)

भगवान्ने भोलेभाले अज्ञानी पुरुषोंको भी सुगमतासे साक्षात् अपनी प्राप्तिके लिये जो उपाय स्वयं श्रीमुखसे बतलाये हैं, उन्हें ही भागवत-धर्म समझो। इन भागवत-धर्मोंका अवलम्बन करके साधक कभी विघ्नोंसे पीड़ित नहीं होता और नेत्र बंद करके दौड़नेपर भी अर्थात् विधि-

विधानकी त्रुटि हो जानेपर भी न तो मार्गसे स्खलित ही होता है और न पतित होता है।

साधनाका वह कौन-सा मार्ग है, जिसपर आँखें मीचकर भी दौड़ लगाये तो साधक न तो नीचे गिरेगा और न वह उस सन्मार्गसे भटकेगा?

वह मार्ग है भगवान्‌की परम पावन लीलाकथाका श्रवण और भगवन्नाम-कीर्तन। भगवान् स्वयं कहते हैं—

यथा यथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽसौ
मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं
चक्षुर्यथैवाञ्जनसम्प्रयुक्तम् ॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। २६)

मेरी परम पावन लीला-कथाके श्रवण-कीर्तनसे ज्यों-ज्यों चित्तका मैल धुलता जाता है, त्यों-त्यों उसे सूक्ष्म वस्तुके—वास्तविक तत्त्वके दर्शन होने लगते हैं—जैसे अञ्जनके द्वारा नेत्र-दोष मिटनेपर उनमें सूक्ष्म वस्तुओंको देखनेकी शक्ति आने लगती है।

भगवान्‌का एक नाम है—'अच्युत'। इसका अर्थ यह है कि जो कभी भी अपने सत्स्वरूपसे च्युत न हो—गिरे नहीं, हटे नहीं। जो भी व्यक्ति भगवान्‌की लीला-कथाका श्रवण तथा उनके नामोंका कीर्तन करेगा, उसकी बुद्धि भगवान्‌में स्थिर हो जायगी और वहाँसे नहीं हटेगी।

वेदोंमें गायत्री-मन्त्रका विशेष महत्त्व बताया गया है, क्योंकि उसमें बुद्धिकी स्थिरताके लिये सविता (सूर्य)-देवतासे प्रार्थना की गयी है। इसमें रहस्य यह है कि एक सूर्यदेवता ही स्थिर हैं। अन्य सभी नक्षत्र चलायमान हैं, अतः सविता देवताकी उपासनासे बुद्धि स्थिर हो जाती है।

भगवान् कहते हैं—

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥

(गीता २। ४१)

हे कुरुनन्दन! इस कल्याणमार्गमें निश्चय स्वभाववाली बुद्धि एक ही है। परंतु जो अव्यवसायी है अर्थात् जो प्रमाणजनित विवेक-बुद्धिसे रहित है, उनकी वे बुद्धियाँ बहुत भेदोंवाली होनेसे अनन्त हैं।

ईश्वर-प्राप्तिकी इच्छा अकेली ही रहती है। अतः साधकको अपनी बुद्धि पूर्णरूपसे उधर एक ही ओर लगानी चाहिये। अनेकताको छोड़कर एकतामें स्थित होना ही इस मार्गमें सफलताकी कुंजी है।

श्रुतिका आदेश है—

यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्ष-
मोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या
वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः॥

(मुण्डकोप० २। २। ५)

जिसमें स्वर्ग तथा पृथ्वी और इनके बीचका आकाश एवं समस्त प्राणोंके सहित मन गुँथा हुआ है, उसी एक सबके आत्मरूप परमेश्वरको जानो, दूसरी सब बातोंको सर्वथा छोड़ दो, क्योंकि यही अमृतका सेतु है।

संत-महात्माओंका सत्संग प्राप्त होनेपर ही उनकी कृपासे भगवान्‌की लीला-कथामें रुचि होती है तथा अन्य विषयोंसे विरक्ति हो जाती है।

जडभरतजी राजा रहूगणको उपदेश देते हुए कहते हैं—

यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः
प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः ।
निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षो-
र्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे॥

(श्रीमद्भा० ५। १२। १३)

रहूगण! महापुरुषोंके समाजमें सदा पवित्रकीर्ति श्रीहरिके गुणोंकी चर्चा होती रहती है। जिससे विषयवार्ता तो पास ही नहीं फटकने पाती और जब भगवत्कथाका नित्यप्रति सेवन किया जाता है, तब वह मोक्षाकांक्षी पुरुषकी शुद्ध बुद्धिको भगवान् वासुदेवमें लगा देती है।

ईश्वर और ईश्वरीय वस्तु तर्कगम्य नहीं है। हमारी तर्क करनेवाली बुद्धि क्षुद्र, छोटी-सी और सीमित है तथा ईश्वर और उनकी शक्ति अनन्त है, अतः बुद्धि उनका पार नहीं पा सकती। फिर भी कोई पूछे कि भगवान्‌के गुणगान और उनके नाम-संकीर्तनसे किस प्रकार अज्ञान दूर होकर भगवत्प्राप्ति होती है और उसकी प्रक्रिया क्या है, इसका उत्तर भागवतकार इस प्रकार देते हैं—

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः॥
(श्रीमद्भा० १२। १२। ४७)

यदि देश, काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न भगवान् श्रीकृष्णके नाम, लीला, गुण आदिका संकीर्तन किया जाय अथवा उनके प्रभाव-महिमा आदिका श्रवण किया जाय तो वे स्वयं ही हृदयमें आ विराजते हैं और श्रवण तथा कीर्तन करनेवाले पुरुषके सारे दुःख मिटा देते हैं—ठीक वैसे ही जैसे सूर्य अन्धकारको और आँधी बादलोंको तितर-बितर कर देती है।

इस लेखके प्रारम्भमें दिये हुए श्लोक **'ततोऽन्यथा किंचन०'**-में कहा गया है कि भगवान्‌की लीला-कथा और उनके गुणगानके अतिरिक्त कुछ भी कहनेकी इच्छामात्रसे बुद्धि भ्रमित होकर अस्थिर हो जाती है। अब यह बात कहते हैं कि जिस वाणीके द्वारा भगवान्‌के नाम, लीला, गुण आदिका उच्चारण नहीं होता, वह वाणी मृषा अर्थात् झूठी है—

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद् भगवानधोक्षजः।
तदेव सत्यं तदुहैव मङ्गलं
तदेव पुण्यं भगवद्‌गुणोदयम्॥
(श्रीमद्भा० १२। १२। ४८)

जिस वाणीके द्वारा घट-घटवासी अविनाशी भगवान्‌के नाम, लीला, गुण आदिका उच्चारण नहीं होता, वह भावपूर्ण होनेपर भी निरर्थक है—सारहीन है, सुन्दर होनेपर भी असुन्दर है और उत्तमोत्तम विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली होनेपर भी असत्कथा है। जो वाणी भगवान्‌के गुणोंसे परिपूर्ण है, वही परम पावन है, वही मङ्गलमय है और वही परम सत्य है।

मन वहाँ ठहरता है, जहाँपर उसे आनन्द मिलता है। बुद्धि वहाँ स्थिर होती है, जहाँपर उसे रस मिलता है, नित्य रमणीयता हो, अपनी रुचिका स्थान मिल जाय, नित्य नये-नये उत्सव हो रहे हों तथा दुःख और शोककी गंध भी न हो, भला वहाँसे मन और बुद्धि क्यों हटेंगे—अनन्तकालतक वहींपर स्थिर हो जायँगे।

उपर्युक्त अवस्था और इसका आनन्द अनिर्वाच्य होनेपर भी पहुँचे हुए ज्ञानी महापुरुष अपने शब्दोंद्वारा उस ओर इशारा कर देते हैं—

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते॥
(श्रीमद्भा० १२। १२। ४९)

जिस वाणीके द्वारा भगवान्‌के परम पवित्र यशका गान होता है, वही परम रमणीय, रुचिकर एवं प्रतिक्षण नया-नया जान पड़ता है। उससे अनन्तकालतक मनको परमानन्दकी अनुभूति होती रहती है। मनुष्योंका सारा शोक चाहे वह समुद्रके समान लंबा और गहरा क्यों न हो, उस वाणीके प्रभावसे सदाके लिये सूख जाता है।

यह कभी मत समझो कि भगवान्‌के उसी पुराने नामकी अथवा शास्त्रोंमें वर्णित भगवान्‌की उसी पुरानी लीलाकी पुनरावृत्ति करनेसे क्या लाभ होगा?

यह परम सत्य है कि भगवान्‌की तरह उनका नाम और उनकी लीला भी नित्य नयी है। वे कभी पुराने होते ही नहीं। भगवान् शाश्वत हैं तो उनका नाम और लीला भी शाश्वत और नित्य नये हैं। जैसे कि आप हर समय नया श्वास ही लेते हैं। आप कभी भी पुराना श्वास ले ही नहीं सकते, इसी प्रकार वर्तमानमें भगवान्‌के जिस नामका भी उच्चारण करेंगे वह नया ही होगा। शास्त्रोंमें तो यहाँतक कहा गया है कि जीव भगवन्नाम ले ही नहीं सकता। भगवान् ही जीवपर कृपा करके उसकी जिह्वापर नामके रूपमें अवतरित होते हैं। उनका यह नित्य नया अवतार है।

महाकवि भारवि कहते हैं—

तदेव रूपं रमणीयतायाः क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति।

रमणीयताका-सौन्दर्यका सच्चा रूप वही है जिसमें प्रत्येक क्षण नवीनता हो। अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यवाले भगवान् श्रीकृष्ण कभी पुराने होते ही नहीं, वे तो नित्य-नूतन हैं—

दिने दिने नवं नवं नमामि नन्दसम्भवम्।

* * *

भगवत्कृपापर विश्वास

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

मान और धनकी चाह किसको नहीं होती? संसारमें साधारणतया सभीको होती है। जिनको नहीं होती, वे अतिमानव हैं—महापुरुष हैं। इस दृष्टिसे यदि आपको धन-मानकी चाह है और वह आजकल और भी बलवती हो रही है तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्य तो तब होता जब अंदर छिपी हुई चाह अंदर-ही-अंदर दबकर मर जाती, उसका अस्तित्व ही नष्ट हो जाता।

जीवके अनन्त जन्मोंके भोगोंके संस्कार मनमें रहते हैं, उन संस्कारोंको लिये हुए वह मनुष्य शरीरमें आता है; यहाँ आनेपर यहाँकी परिस्थितिके अनुसार किसी-किसीके वे संस्कार प्रतिकूल नये संस्कारोंसे दब जाते हैं और किसी-किसीके अनुकूल नये संस्कारोंका बल पाकर विशेषरूपसे बढ़ जाते हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि अनुकूल सहायता और शक्ति मिलनेसे पूर्व संस्कारोंका बल और विस्तार बहुत बढ़ जाता है, क्योंकि उनकी सारी शक्तियोंको चारों ओरसे विकसित होनेका अवसर और सुभीता मिल जाता है। परंतु प्रतिकूल बाधक शक्तिका सामना होनेपर पूर्व संस्कारोंका बल बहुत क्षीण हो जाता है। कारण, उनको बाधक शक्तिका सामना करना पड़ता है, जिससे उनकी शक्तिका क्षय होता है और इस युद्धमें अपनी शक्तिके स्वाभाविक विकास और विस्तारका अवसर तथा सुभीता नहीं मिलता। यही नियम सबके लिये लागू होता है। अतएव हमारे सञ्चित कुसंस्कार यहाँ जब सत्संग, स्वाध्याय, सच्छिक्षा, सद्विचार, सद्वस्तुसेवन और भगवान्के भजनके प्रतापसे कुछ दब जाते हैं, तब हम समझ बैठते हैं कि हमारे सब कुसंस्कारोंका नाश हो गया और हम सर्वथा शुद्ध हो गये। होता यह है कि कुसंस्कार नष्ट नहीं होते, वे दब जाते हैं, दुबक जाते हैं, छिप जाते हैं और अनुकूल शक्तिका सहारा न मिलनेसे प्रतिक्षण क्षीण होते चले जाते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि सत्संग, सद्विचार, भजन आदि उपर्युक्त साधन चालू रहते हैं तब तो कुसंस्कारोंको सिर उठानेका मौका नहीं मिलता और अन्तमें वे भगवत्-शरणागति या तत्त्वज्ञानोदयके प्रभावसे मर जाते हैं; परंतु जबतक ऐसा नहीं होता, तबतक साधन न होनेसे अनुकूल वातावरण पाते ही उन्हें सिर उठानेका और बाधा न पाने तथा बाहरी सहायता मिल जानेसे प्रबलरूपसे आक्रमण करके अपनी अबाध सत्ता जमानेके लिये कोशिश करनेका मौका मिल ही जाता है। ऐसी दशामें बड़े-बड़े नामी-गिरामी तपस्वी और साधकोंका पतन देखा जाता है, हम लोग तो किस बागकी मूली हैं!

मनुष्यको भगवान्ने एक विवेकशक्ति दी है, जिसके द्वारा वह भले-बुरेका निर्णय कर सकता है। यह विवेकशक्ति मनुष्यमात्रमें होती है, चाहे उसके पूर्वसञ्चित कर्म कितने ही अशुभ क्यों न हों। मनुष्यको परमात्माकी यह खास देन है। यह विवेकशक्ति भी परिस्थितिके अनुसार जाग्रत्-सुप्त और तीव्र-मन्द हुआ करती है। जिस मनुष्यके आचरण जितने ही शुद्ध होते हैं, जिसके इन्द्रियद्वार जितने ही सत्के सेवनमें लगे रहते हैं, उनकी विवेकशक्ति उतनी ही जाग्रत् और तीव्र रहती है। जरा-सा बुरा संकल्प मनमें उठते ही यह विवेकशक्ति उसे यथार्थरूपमें उस संकल्पका स्वरूप बतलाकर उसे कार्यान्वित न करनेका आदेश करती है। इसीको 'अन्तर्ध्वनि' या 'आत्माकी ध्वनि' कहते हैं। कभी पहले-पहल कोई मनुष्य कुसंगवश चोरी या व्यभिचार करनेका मन करता है, तब अंदरकी यह आत्माकी आवाज उससे कहती है—'यह पाप है, बुरा कर्म है; इसे न करो।' परंतु उस मनुष्यका वर्तमान कुसङ्ग यदि बलवान् होता है तो वह उसके प्रभावमें आकर अन्तरात्माकी इस आवाजकी अथवा विवेकशक्तिके निर्णय और आदेशकी अवहेलना करके उस असत् कर्मको कर बैठता है। जहाँ एक बार ऐसा हुआ, वहीं उसका नया संस्कार उत्पन्न होकर विवेकशक्तिसे लड़ने लगता है। कुछ समयतक तो ऐसा चलता है; परंतु यदि कुसङ्ग और कुकर्म चालू रहते हैं तो विवेकशक्ति मन्द पड़ जाती है, वह सो-सी जाती है, ठीक निर्णय नहीं कर पाती और न ठीक आदेश या परामर्श देनेकी शक्ति रखती है। यही गीतोक्त राजसी बुद्धि है, जो धर्म-अधर्म और कर्तव्य-अकर्तव्यका यथार्थ निर्णय नहीं कर पाती। इसके बाद होते-

होते नवीन असत्संस्कारोंका समूह एकत्र होकर इस विवेक-बुद्धिको सर्वथा छिपा देता है और पूर्वजन्मार्जित कुसंस्कारोंको जगाकर—दोनों मिलकर एक नयी मोहाच्छादित बुद्धि उत्पन्न करते हैं, जो प्रत्येक कुसंस्कार और कुकर्मको सत्संस्कार और सत्कर्म बतलाकर उनका समर्थन करती है। यही गीतोक्त तामसी बुद्धि है, जिसकी महिमाका बखान करते हुए भगवान् कहते हैं—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

(गीता १८। ३२)

'हे अर्जुन! जो बुद्धि तमोगुणसे ढकी हुई अधर्मको धर्म बतलाती है और सभी बातोंमें उलटा निर्णय करती है, वह तामसी है।' इस तामसी बुद्धिके राज्यमें मनुष्य विपरीतगामी स्वभावतः ही हो जाता है, उसे अपने दोषपूर्ण काममें दोष नहीं दीखता। कहीं पूर्वके शुभ संस्कार कभी मौका पाकर चुपके-से उसे चेताते हैं। दबे हुए सच्चे हितैषीकी भाँति उसे सावधान करते हैं, तब क्षण-कालके लिये उसे दुःख होता है, वह मोहसे निकलना चाहता है; परंतु तामसी बुद्धि उससे सहजमें ऐसा होने नहीं देती। वह बड़े सुन्दर-सुन्दर मोहक दृश्य दिखा-दिखाकर उसे अपने ही आदेशके अनुसार चलनेके लिये ललचाती है और वह मनुष्य उसीको उत्तम और लाभप्रद मानकर उसी मार्गपर चलने लगता है। पहलेके किये हुए अपने शुभ आचरणोंको वह 'भूलमें जीवन व्यर्थ खोया गया' समझता है और वर्तमानके अशुभ आचरणोंको 'जीवनका वास्तविक लाभ'। पूर्वके बुरे संस्कारोंकी पूर्ण जागृति और सात्त्विक बुद्धि अथवा विवेकशक्तिकी लुप्तप्राय स्थितिके साथ ही तामसी बुद्धिके पूर्ण प्रभावकी इस शोचनीय अवस्थासे भगवान्‌की कृपासे ही मनुष्य निस्तार पा सकता है।

इधर कई बातें ऐसी हो गयीं जिन्होंने आपके कुसङ्ग और कुविचारोंकी पुष्टि की (चाहे वह अज्ञानकृत ही हो)। इस स्थितिमें तो क्या, अच्छे-अच्छे लोगोंका मन डगमगा जाना सम्भव है। परंतु विचारशील पुरुषको यहीं तो अशुभके साथ युद्ध करना है। यही तो लड़ाईका मौका है। इस लड़ाईमें विजय पाना ही पुरुषार्थ है। यही परम साधन है। 'क्या तुच्छ धन या मानकी इच्छा भगवान्‌के पथपर चढ़े हुए पुरुषको वापस लौटाकर नीचे गिरा सकती है?' ऐसा मनमें प्रश्न करके आत्माके निश्चयसे यह दृढ़ उत्तर देना चाहिये 'नहीं गिरा सकती'। बुद्धि कितनी ही तामसी हो जाय, यदि आत्मा जाग्रत् रहे, बुद्धिके साथ न मिल जाय, तो बुद्धिका तमोगुण ठहर नहीं सकता।

आप घबराइये नहीं, भगवान्‌का भरोसा रखिये। आत्मामें सत्साहस और आत्मनिर्भरता पैदा कीजिये। प्रलोभनोंको पछाड़िये। भगवान् मङ्गलमय हैं। उनके कल्याणमय वरद हस्तको अपने मस्तकपर देखिये, अनुभव कीजिये वे रक्षा करनेको तैयार हैं। घबराकर उनका तिरस्कार न कीजिये। वे सतत आपके साथ हैं। कहते हैं—

'मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।'

(गीता १८। ५८)

—फिर डर काहेका? हाँ, हिम्मत हार दी तो जरूर डर है। ये मनमें घुसे हुए चोर भाग जायँगे, यदि आपको भगवान्‌के आश्रयमें जाते देखेंगे। वे आपको रोकना चाहेंगे, लोभ और भय दिखाकर पथभ्रष्ट करना चाहेंगे; परंतु यदि आप सजग, सावधान और निश्चयपर अटल रहे तो वे निराश होकर आपके हृदयको छोड़कर कोई दूसरा घर ढूँढ़ेंगे।

भगवान्‌का नाम किसी भी भावसे लीजिये। मनमें प्रसन्नताका अनुभव कीजिये, भगवान्‌की कृपाको अपने ऊपर बरसते देखकर! देखिये, देखिये—अनवरत अपार वर्षा हो रही है, भगवत्कृपाके सुधासिन्धुके मधुर जलकी! देखकर शीतल, शान्त हो जाइये—नहाकर सारे पाप-तापोंको धो डालिये। पीकर अमृतमय—आनन्दमय, शान्तिमय स्वयं बन जाइये। विश्वास कीजिये—ऐसी ही बात है, इसमें तनिक भी बनावट नहीं है; सत्य है—सदा सत्य है। जो विश्वास करेगा, वही निहाल हो जायगा।

* * *

नाम-जप और संकीर्तन

[प्रश्नोत्तर]

प्र०—सबके लिये सुगम और सर्वोत्तम मार्ग क्या है?

उ०—नाम-जप करना सबके लिये सुगम और श्रेष्ठ है।

प्र०—नाम-जपमें रुचि कैसे हो?

उ०—रुचि होना ही कठिन है। रुचि हो जानेपर तो भजन छूटता ही नहीं। विषय-सेवनका अभ्यास अनेक जन्मोंसे पड़ा हुआ है। वह धीरे-धीरे बदलेगा। इसलिये उत्साहपूर्वक नाम-जप करते रहना चाहिये। इससे ऊबनेकी जरूरत नहीं है।

प्र०—श्रीकृष्ण-कीर्तन क्यों करना चाहिये?

उ०—श्रीकृष्ण हमारे प्यारे हैं, इसीलिये उनका कीर्तन करना चाहिये। प्यारेका नाम लेना हमारी न छूटनेवाली आदत है। इसलिये प्यारेके नामका जप, कीर्तन और उसका गुणानुवाद किये बिना रहा ही नहीं जाता। यह भक्तोंका मानो स्वभाव ही है। इसके लिये भले ही उनकी कोई निन्दा करे। यह एक नियम भी है कि जिस प्रकार बनियेसे व्यापार किये बिना नहीं रहा जाता, कामीसे स्त्रीका कीर्तन किये बिना नहीं रहा जाता, किसानोंसे खेती किये बिना नहीं रहा जाता, इसी प्रकार भक्तोंसे श्रीकृष्ण-कीर्तन किये बिना नहीं रहा जाता।

प्र०—महाराजजी! जो लोग लज्जा और संकोच छोड़कर कीर्तन करते हैं, उन्हें बहुत आदमी तो ढोंगी बताते हैं?

उ०—बताने दो ढोंगी। भौंरेको तो रस चूसनेसे काम। जो तमोगुणी होते हैं उन्हें ही भगवन्नाम-कीर्तनमें लज्जा आती है।

प्र०—क्या कीर्तन करनेसे ध्यान स्थिर रह सकता है?

उ०—कीर्तन भी ध्यान ही है। भगवद्भक्तको भगवान्‌का किसी भी प्रकार भजन-चिन्तन करनेसे आनन्द आ जाता है। भगवान्‌को याद करना और इस जगत्‌को भुलाना—यही हमारा लक्ष्य है। कीर्तन करो, कीर्तनसे थक गये हो तो जप करो, जपसे थक जाओ तो स्वाध्याय करो और स्वाध्यायसे भी थको तो ध्यान करो तथा ध्यानसे भी थक जाओ तो भगवच्चर्चा करो। समयको व्यर्थ बातोंमें नष्ट न करो। हर समय भगवान्‌का चिन्तन करते रहो।

प्र०—कीर्तनमें झाँझ पीटनेसे क्या पुण्य होता होगा?

उ०—यदि पुण्य नहीं होता होगा तो पाप भी तो नहीं होता। जब तुम सुल्फा, बीड़ी, तम्बाकू आदिका सेवन करने और ताश खेलनेको बुरा नहीं मानते तो इसीको क्यों बुरा मानते हो? कुछ न करनेसे तो यह अच्छा ही है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

(रा० च० मा० १। २८। १)

प्र०—श्रीकृष्ण-कीर्तनसे क्या लाभ है?

उ०—श्रीकृष्ण-कीर्तनसे साधकको भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन होते हैं और उन सिद्धोंको जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हो गये हैं, अपने प्यारेके नाम लेनेमें परम आनन्द आता है।

प्र०—महाराजजी, संकीर्तनोत्सवोंका लक्ष्य क्या होना चाहिये?

उ०—मैं तो कहता हूँ कि हरिनामसंकीर्तन हरिनाममें आसक्ति होनेके लिये ही होना चाहिये। भगवान्‌के दर्शन या किसी अन्य हेतुसे नहीं।

प्र०—तो क्या भगवन्नाममें आसक्ति होना भगवद्दर्शनसे भी बढ़कर है?

उ०—हाँ, अवश्य बढ़कर है। भगवन्नाममें आसक्ति हो जानेके बाद दर्शन हों चाहें न हों, साधकको परवा नहीं रहती। उसको दर्शन देनेके लिये तो भगवान् तैयार ही रहते हैं।

प्र०—मन तो लगता नहीं, ऐसी अवस्थामें क्या केवल जिह्वासे नाम-जप करते रहनेसे विशेष लाभ हो सकता है?

उ०—अवश्य लाभ होता है, क्योंकि सांसारिक काम भी बिना मन लगे करनेसे पूरा हो ही जाता है। जैसे बहीखातेका काम करते समय भी मन भ्रमण करता रहता है, किंतु इस प्रकार बिना मन लगे भी करते रहनेसे वह काम पूरा हो ही जाता है, वैसे ही बिना मन लगे केवल जिह्वासे ही जप करते रहनेपर भी सफलता अवश्य मिलेगी।

प्र०—नाम-जप, नामस्मरण और नामकीर्तनमें कौन श्रेष्ठ है? वाणीद्वारा होनेवाले, उपांशु और मानसिक जपोंमें कौन-सा जप उत्कृष्ट है?

उ०—साधारण जनताके लिये नामसंकीर्तन विशेष

लाभप्रद है और जो संयतचित्तवाले हैं, उनके लिये जप अधिक उपयोगी है। प्रारम्भमें उच्चारण करके जप करना चाहिये, फिर उपांशु और उसके बाद मानसिक जप करना अच्छा है। जैसे-जैसे मन समाहित होगा, वैसे-वैसे ही मानसिक जप अधिक प्रिय लगने लगेगा।

प्र०—संकीर्तनमें जो स्वर-ताल आदिका रस आता है, वह क्या बन्धनकारी है?

उ०—वह भक्तके लिये तो बन्धनकारक हो नहीं सकता, क्योंकि उसकी उसमें भगवदीयताकी भावना है—वह उसे श्रवण-रस न समझकर भगवद्रस समझता है। अतः भगवत्प्राप्तिका साधन होनेके कारण वह उसके बन्धनका कारण नहीं हो सकता। हाँ, जिज्ञासुकी अवश्य उसमें उपेक्षा रहती है, क्योंकि उसकी उसमें भगवद्भावना नहीं होती। इसके सिवा भगवत्प्रेम उसका लक्ष्य भी नहीं होता। वह तो भगवत्तत्त्वका जिज्ञासु है। अतः उसे ये स्वर-ताल भी विषयरूप प्रतीत होनेके कारण हेय ही प्रतीत होते हैं। परंतु बोधवान्‌की उनमें न तो हेयबुद्धि होती है और न उपादेयबुद्धि ही; उसकी दृष्टिमें तो सब कुछ ब्रह्मस्वरूप ही है।

प्र०—कुछ लोग आपके ऊपर आक्षेप करते हैं कि आप लोगोंको संध्या-गायत्रीका उपदेश न देकर संकीर्तनका ही उपदेश क्यों देते हैं?

उ०—भाई! मैं यह कब कहता हूँ कि संध्या मत करो। मैं तो कहता हूँ कि जो संध्या कर सकें वे अवश्य करें। किंतु जो अक्षर नहीं जानता, शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकता और न जिसे पढ़ने-लिखनेका समय है, वह मेरे कहनेसे संध्या कैसे याद कर सकता है? उससे मैं कह देता हूँ कि कीर्तन करो। यदि कीर्तनके लिये भी न कहूँ तो वे कुछ भी नहीं करेंगे।

प्र०—महाराजजी! बहुत-से पण्डित लोग कहते हैं कि कीर्तनमें ओंकारका उच्चारण नहीं करना चाहिये। इसे सब नहीं बोल सकते। शूद्रका इसे उच्चारण करनेमें अधिकार नहीं है।

उ०—यदि मना करते हैं तो मत बोलो, शास्त्रके विरुद्ध मत चलो। हमारा 'कृष्ण'-नाम तो सब नामोंसे बड़ा है। देखो, मुझे बंगाली स्वामीसे एक श्लोक प्राप्त हुआ है, उसमें श्रीकृष्ण-नामकी कितनी महिमा है—

वज्रं पापमहीभृतां भवगदोद्रेकस्य सिद्धौषधं
मिथ्याज्ञाननिशाविशालतमसस्तिग्मांशुबिम्बोदयः ।
क्रूरक्लेशमहीरुहामुरुतरज्वालाजटालः शिखी
द्वारं निर्वृतिसद्मनो विजयते कृष्णेति वर्णद्वयम्॥*

प्र०—लोग कहते हैं कि केवल जिह्वासे नाम-जप करते रहनेसे कोई लाभ नहीं, किसीने कहा है—

करमें तो माला फिरै, जीभ फिरे मुख माहिं।
मनुवाँ तो चहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥

उ०—ऐसा कहनेवालोंकी बात मत सुनो। उन्हें कहने दो। अपनेको तो जैसे बने वैसे भगवन्नाम-स्मरण करते रहना चाहिये। यदि मन भगवान्‌में लग जायगा तो फिर तो भजन करनेके लिये कहना ही नहीं पड़ेगा, क्योंकि उस व्यक्तिसे तो फिर निरन्तर भजन ही होगा। जबतक मन नहीं लगता तभीतक भजन करनेके लिये जोर लगाना पड़ता है। केवल जिह्वासे भजन करते-करते भी भजनमें मन लगने लगता है। जो काम अधिक समय तक किया जाता है, उसमें मनको लगना ही पड़ता है—यह नियम है।

प्र०—निरन्तर भगवदाकार वृत्ति कैसे रह सकती है?

उ०—तीव्र अभ्यास करनेसे वृत्ति क्षण-क्षणमें भगवान्‌का चिन्तन करती है। इसीको भगवदाकार वृत्ति कहते हैं। वृत्ति क्षण-क्षणमें बदला करती है। इसलिये विशेष प्रयत्न करनेपर ही उसे भगवदाकार किया जा सकता है। तथापि भक्त लोग पुरुषार्थ (अपने प्रयत्न)-को प्रधान नहीं मानते। वे तो कहते हैं कि जो कुछ होता है भगवत्कृपासे ही होता है।

प्र०—भगवान्‌की आज्ञा समझकर पुरुषार्थ करे और उससे जो लाभ हो उसे भगवान्‌की कृपासे हुआ समझे तो क्या हर्ज है?

उ०—यही तो भक्तोंका सिद्धान्त है। ऐसा ही तो मानना चाहिये। ऐसा माननेवालेको अभिमान नहीं होता।

प्र०—महाराजजी! बहुत-से विद्वान् लोग भगवन्नाम नहीं जपते?

---

* 'कृष्ण' इस दो वर्णोंवाले नामकी जय हो। वह पापरूपी पर्वतोंके लिये वज्र, संसार-रोगके आवेशको शान्त करनेके लिये अचूक औषध, अज्ञानरात्रिके सघन अन्धकारके लिये सूर्योदय, क्रूर क्लेशरूपी वृक्षोंके लिये प्रचण्ड ज्वाला-मालाओंसे मण्डित अग्नि और शान्तिसदनका खुला द्वार है।

उ०—भगवत्कृपा बिना श्रीभगवन्नाम नहीं लिया जाता और न उसमें प्रीति ही होती है।

प्र०—क्या निराकारोपासकोंके लिये भी कीर्तन उपयोगी है?

उ०—जप और कीर्तन दो वस्तुएँ नहीं हैं। जो जप करता है वह कीर्तन भी कर सकता है। निराकारोपासक भगवान्‌की सेवा तो नहीं कर सकते, किंतु जप या कीर्तन करनेका उन्हें पूर्ण अधिकार है। जप एवं कीर्तनसे वृत्ति भगवदाकार होती है। लक्ष्य निर्गुण हो अथवा सगुण, दोनोंमें ही जप या कीर्तनसे वृत्ति तदाकार हो जाती है। इसलिये जप और कीर्तन तो सभी कर सकते हैं। किंतु जिज्ञासु साकारोपासक एवं निराकारोपासक इन दोनोंसे ही विलक्षण होता है। उसके लिये श्रवण, मनन और निदिध्यासन ही मुख्य हैं, कीर्तन उनके लिये गौण है। वह श्रवण, मनन और निदिध्यासन तो करता ही है, किंतु थोड़ी देर जप या कीर्तन भी करे तो उसके लिये इससे कोई हानि नहीं है। ये तो उसके सहायक ही होंगे। किंतु उपासकोंके लिये ये ही मुख्य साधन हैं। वर्तमान कालमें तो कोई-कोई ऐसे उद्दण्ड जिज्ञासु होते हैं जो प्रणवका जप भी नहीं करते। वे कीर्तन क्या करेंगे। ऐसोंके लिये हमें कुछ नहीं कहना है। वे दुनियाकी बातें तो कर सकते हैं, परंतु कीर्तन नहीं कर सकते, जप नहीं कर सकते और न ध्यान ही कर सकते हैं।

प्र०—एक देवताका उपासक दूसरे देवताका नामकीर्तन और पूजनादि कर सकता है या नहीं?

उ०—अच्छी तरह कर सकता है। परंतु कर सकता है अपने इष्टदेवमें अनुराग होनेके लिये ही और तभी तक कर सकता है, जबतक अपने इष्टदेवमें पूर्ण अनुराग न हो। वैधी और गौणी भक्तिमें तो सभी कुछ कर सकता है, परंतु रागात्मिका भक्ति प्राप्त होनेपर सब छूट जाता है।

प्र०—संकीर्तन ज्ञान-प्राप्तिमें कारण हो सकता है या नहीं और हो सकता है तो किस प्रकार?

उ०—ज्ञानेच्छु साधकोंके लिये कर्म और उपासना अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये होते हैं। कीर्तन भी कर्म और उपासनाके ही अन्तर्गत है। अतः उससे उनके अन्तःकरणकी शुद्धि होगी और अन्तःकरण शुद्ध होनेपर उन्हें ज्ञानकी प्राप्ति होगी। किंतु ज्ञानेच्छुका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति नहीं होता वह तो प्रेमियोंका लक्ष्य है। अतएव भगवत्प्रेमियोंके लिये तो कीर्तन साधन है और साध्य भी तथा ज्ञानमार्गियोंके लिये वह केवल अन्तःकरणकी शुद्धिका ही साधन है।

प्र०—कहते हैं, योगसे चित्त शान्त होता है। क्या यह ठीक है?

उ०—यह भी ठीक है। परंतु जपके अंदर भी अनन्त सामर्थ्य है। इसलिये जपमें तत्पर हो जाना चाहिये। उसीसे सब कुछ प्राप्त हो जायगा।

× × ×

प्र०—संकीर्तनके समय जिस नामकी ध्वनि उच्चारण करे उसके साथ नामीका ध्यान करना आवश्यक है। किंतु महामन्त्रके एक चरणमें तो 'हरि' और 'राम' है तथा दूसरेमें 'हरि' और 'कृष्ण' नाम हैं। सो क्या एक पद बोलनेके समय श्रीरामका ध्यान करना उचित है और दूसरा पद बोलनेके समय उस ध्यानको बदलकर श्रीकृष्णका ध्यान करना चाहिये? ऐसी दुविधा होनेसे तो ध्यान ठीक नहीं हो सकता। ऐसी स्थितिमें क्या कर्तव्य है?

उ०—भक्तको सदैव एकमात्र अपने इष्टदेवका ही ध्यान करना चाहिये। मन्त्रमें जो इष्टदेवका नाम है वह तो उसका है ही। उसके अतिरिक्त जो अन्य नाम हैं वे भी अपने इष्टदेवके ही समझने चाहिये। जैसे महामन्त्रका जप या कीर्तन करते समय कृष्णका ही ध्यान करना चाहिये। जब वह *'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे'* पदका उच्चारण करे तो भी श्रीकृष्णका ही ध्यान रखे और यह समझे कि 'राम' भी श्रीकृष्णका ही नाम है; क्योंकि 'राम' उसीको कहते हैं जो सब जगह रमा हुआ है अथवा जिसमें योगीजन रमण करते हैं। श्रीकृष्णमें यह नाम पूर्णतया सार्थक है, क्योंकि वे सब जगह रमे हुए हैं और योगी उनमें रमण करते हैं। इसी प्रकार रामभक्तको जब वह *'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे'* उच्चारण करे तो भी श्रीरामका ही ध्यान करना चाहिये, क्योंकि रामका नाम 'कृष्ण' भी है। 'कृष्ण'-का अर्थ 'खींचनेवाला' है। जैसे श्रीकृष्ण मनको खींचते हैं उसी प्रकार रामजी भी उसे अपने ओर खींचते हैं। इसी प्रकार यदि शिवके नामका कीर्तन करें तो भी राम या कृष्णके भक्तोंको अपने इष्टदेवका ही ध्यान करना

चाहिये, क्योंकि उनके इष्टदेवका नाम 'शिव' भी है। शिवका अर्थ है—'मङ्गलकारी' सो राम और कृष्ण भी मङ्गलकारी हैं ही। अतः उनका नाम शिव भी हो ही सकता है। मैं तो यह कहता हूँ कि अच्छे-बुरे जो कुछ भी नाम हैं वे सब भगवान्के ही हैं। अतः भक्तको उनमें इष्टबुद्धि ही करनी चाहिये।

प्र०—विद्वान् लोग भगवान्का नाम क्यों नहीं जपते?

उ०—भगवत्कृपाके बिना भगवन्नाम नहीं लिया जाता और न उसमें प्रीति ही होती है। भगवत्कृपा कब और किसपर होती है—यह हम नहीं कह सकते।

प्र०—भगवान्का जोर-जोरसे नाम लेनेसे क्या लाभ है?

उ०—भक्त लोग अपने प्यारेका नाम जोर-जारेसे लेकर आनन्दित होते हैं।

प्र०—नामकीर्तनमें सबकी निष्ठा क्यों नहीं होती?

उ०—जिस प्रकार स्कूलमें दो सौ लड़के पढ़ते हैं, परंतु परीक्षामें सभी उत्तीर्ण नहीं होते। हाँ, बार-बार प्रयत्न करें तो और सब भी उत्तीर्ण हो सकते हैं; इसी प्रकार नामकीर्तनमें एका-एकी सबकी निष्ठा नहीं होती, किंतु बार-बार कीर्तन करनेसे सभीकी निष्ठा हो सकती है। आसक्तिका नाश होनेपर ही तुम्हें भगवन्नाम-निष्ठाकी उपलब्धि होगी। नामकीर्तन करनेसे मनुष्यकी तदाकार वृत्ति हो जाती है। जो राम-नाम-कीर्तन करते हैं वे रामको प्राप्त होते हैं तथा जो कृष्ण-नाम-कीर्तन करते हैं वे कृष्णको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार अपनी-अपनी धारणाके अनुसार हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सब ईश्वरको ही प्राप्त होते हैं।

प्र०—तत्त्वज्ञान या भगवत्प्राप्तिके लिये क्या साधना करनी चाहिये?

उ०—चोरी, हिंसा, व्यभिचार, नशा, जुआ, झूठ, गाली, चुगली, असम्बद्ध प्रलाप, दूसरेका अनिष्ट चिन्तन, परधन लेनेका संकल्प और देहमें आत्मबुद्धि—इन सबका त्याग और दैवीसम्पत्तिका ग्रहण—ये भगवत्प्राप्तिके साधारण उपाय हैं। त्यागकी भावना और भगवत्स्मरण—ये दो असाधारण साधन हैं। स्मरणका अर्थ है जप। जपके लिये मैंने तीन मन्त्र चुने हैं—

(१) **हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।**
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(२) **ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।**

(३) **ॐ नमः शिवाय।**

× × ×

प्र०—कीर्तन करनेकी विधि क्या है?

उ०—कीर्तनमें तीन बातोंपर दृष्टि रखनी चाहिये—(१) कीर्तनका स्थान, (२) कीर्तन करनेवाले और (३) दर्शक लोग। स्थान परम सात्त्विक और भगवान्के चित्र तथा ध्वजा, पताका आदिसे सुसज्जित होना चाहिये। दर्शकोंमें भी कोई नास्तिक या बहिर्मुख पुरुष न हो। कीर्तनकारोंको सब ओरसे चित्त हटाकर नेत्र मूँदे हुए अनन्य भावसे भगवान्की मधुर मूर्तिका चिन्तन करते हुए कीर्तन करना चाहिये। जब कीर्तन समाप्त हो जाय तभी नेत्र खोलने चाहिये। इस प्रकार कीर्तन करनेसे बहुत शीघ्र भगवत्कृपा होती है।

× × ×

जिज्ञासु—श्रीमहाराजजी! मैं आपका नाम सुनकर आया हूँ। मुझे क्या करना चाहिये? मेरा कल्याण किस प्रकार होगा, सो कृपा करके बताइये।

बाबा—तुम कौन-सा मन्त्र जपते हो?

जिज्ञासु—गायत्री-मन्त्रकी एक माला जपता हूँ।

बाबा—अरे! एक माला गायत्रीसे क्या होगा? कम-से-कम ग्यारह माला नित्य जपो तो कुछ चमत्कार हो सकता है।

जिज्ञासु—महाराज! मैं ब्राह्मण हूँ और एक व्यक्तिके यहाँ रसोई बनाता हूँ। गरीब आदमी हूँ। मुझे इतना समय नहीं मिलता जो ग्यारह माला जप सकूँ।

बाबा—अच्छा, तुम गायत्रीकी तो एक ही माला जपते रहो। किंतु इसके सिवा और सब समय काम-काज करते हुए ही 'राधेश्याम-राधेश्याम' जपा करो। इस प्रकार निरन्तर नाम-जप करनेसे बड़ा लाभ होता है, भगवन्नाममें बड़ी अद्भुत शक्ति है। इसका निरन्तर जप करनेसे भगवान्के दर्शन भी हो सकते हैं।—(एक संतका सदुपदेश) [क्रमशः]

* * *

साधकोंके प्रति—

भक्तिकी अलौकिक विलक्षणता

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ८११ से आगे]

'कोयला होय नहिं ऊजला सौ मन साबुन लगाय'—कोयलेपर सौ मन साबुन लगा दें तो भी वह साफ नहीं होगा; परंतु उसको अग्निमें रख दें तो वह चमकने लगेगा; क्योंकि वह अग्निसे अलग होनेपर ही काला हुआ है। अगर चमकते कोयले (अंगार)-से लकीर खींची जाय तो वह भी काली ही निकलेगी; क्योंकि वह अग्निसे अलग हो गयी। ऐसे ही जीव भगवान्‌से अलग होनेपर ही काला, तुच्छ हुआ है। अगर वह भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ ले तो वह चमकने लगेगा। तात्पर्य है कि जीव भगवान्‌से अलग होकर अपनेको कितना ही बड़ा मान ले, त्रिलोकीका अर्थात् अनन्त ब्रह्माण्डोंका अधिपति हो जाय, तो भी वास्तवमें वह छोटा-का-छोटा, त्रिलोकीका गुलाम ही रहेगा। परंतु वह भगवान्‌का दास हो जाय तो बड़े-से-बड़ा (नरसे नारायण) हो जायगा। नाशवान्‌के साथ मिलनेसे अविनाशी (जीव)-की फजीती ही है। उसकी इज्जत तो अविनाशीके साथ मिलनेसे ही है।

संसारमें भगवान् और उनके भक्त—ये दो ही दूसरेको बड़ा बनानेवाले हैं—

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥

(मानस, उत्तर० ४७। ३)

ये दोनों खुद बड़े हैं, इसलिये दूसरोंको भी बड़ा ही बनाते हैं, किसीको भी छोटा नहीं बनाते। कारण कि जो खुद छोटा होता है, वही दूसरेको छोटा बनाता है। जो खुद पराधीन होता है, वही दूसरेको पराधीन बनाता है। संसार कभी किसीको बड़ा बनाता ही नहीं, बना सकता ही नहीं! इसलिये जो संसारका आश्रय लेता है, वह छोटा हो जाता है। परंतु जो भगवान्‌का आश्रय लेता है, उनके साथ सम्बन्ध जोड़ता है, वह बड़ा हो जाता है—

बड़ सेयाँ बड़ होत है, ज्यों बामन भुज दंड।
तुलसी बड़े प्रताप ते, दंड गयउ ब्रह्मंड॥

जो सच्चे संत होते हैं, वे अपनी ओरसे किसीको अपना चेला नहीं बनाते। पारस तो लोहेको सोना बनाता है, अपने समान (पारस) नहीं बनाता; परंतु संत दूसरेको भी अपने समान (संत) ही बनाते हैं—

पारस में अरु संत में, बड़ो अंतरो जान।
वह लोहा कंचन करे, यह कर आपु समान॥

ऐसे सच्चे संतका चेला बनना गुलामी नहीं है, प्रत्युत गुरुभक्ति है। ऐसा गुरुभक्त दुनियाका गुरु हो जाता है। परंतु जिस संतके मनमें यह बात आती है कि मेरे इतने चेले हैं, इसलिये मैं बड़ा हूँ अथवा उसमें दूसरेको अपना चेला बनानेकी इच्छा होती है तो वह वास्तवमें चेलादास है, गुरु नहीं है। सच्चा गुरु चेलेके अधीन नहीं होता, चेलेके कारण अपनेको बड़ा नहीं मानता और चेलेको अपने अधीन नहीं बनाता। उसका यह स्वभाव भी भगवान्‌से ही आया है।

भगवान्‌पर विश्वास करनेसे ही मनुष्य बड़ा होता है। भगवान्‌के सिवाय वह कहीं भी विश्वास करेगा तो उसकी फजीती-ही-फजीती होगी। इसलिये संसार विश्वास करने योग्य नहीं है। उसकी तो सेवा करना अथवा विचारपूर्वक त्याग करना ही उचित है। कर्मयोगी संसारको सच्चा मानकर निष्कामभावसे संसारकी ही वस्तुको संसारकी सेवामें लगा देता है और ज्ञानयोगी आत्माको ही सच्चा मानकर विचारपूर्वक शरीरसे सम्बन्ध-विच्छेद करके असंगताका अनुभव करता है तो उन दोनोंकी मुक्ति हो जाती है। तात्पर्य है कि जो ईश्वरको न मानकर कर्मयोग अथवा ज्ञानयोगका साधन करते हैं, उनकी भी मुक्ति हो जाती है, पराधीनता मिट जाती है। परंतु भक्ति (प्रेम)-की प्राप्ति तो ईश्वरको सच्चा माननेसे ही होती है। मुक्तिमें संसारका सम्बन्ध छूटता है और भक्तिमें भगवान्‌से सम्बन्ध जुड़ता है।

कर्मयोग और ज्ञानयोग—दोनोंका परिणाम एक ही होता है (गीता ५। ४-५) अर्थात् दोनोंके परिणाममें मनुष्य जन्म-मरणसे मुक्त हो जाता है, सम्पूर्ण दुःखोंसे छूट जाता

है, पराधीनतासे छूट जाता है। मुक्त होनेपर संसारकी निवृत्ति तो हो जाती है, पर प्राप्ति कुछ नहीं होती। परंतु भक्तियोगसे संसारकी निवृत्तिके साथ-साथ परमात्माकी तथा उनके प्रेमकी प्राप्ति भी हो जाती है। मुक्तिमें तो जीव स्वयं रसका अनुभव करनेवाला होता है, पर भक्ति (प्रेम)-में वह रसका दाता हो जाता है, भगवान्‌को भी रस देनेवाला हो जाता है! कारण कि ज्ञानस्वरूप भगवान् ज्ञानके भूखे (जिज्ञासु) नहीं हैं, प्रत्युत प्रेमके भूखे (प्रेम-पिपासु) हैं—**'एकाकी न रमते'** (बृहदारण्यक० १। ४। ३)। अतः प्रेमकी प्राप्ति होनेपर प्रेमी भक्त भगवान्‌को भी तृप्त करनेवाला हो जाता है। परंतु उसमें यह विशेषता भी भगवान्‌से ही आती है, उसकी अपनी नहीं होती। तात्पर्य है कि जैसे कोई मनुष्य गङ्गाजलसे गङ्गाकी पूजा करे तो इसमें गङ्गाकी ही विशेषता हुई, खुद मनुष्यकी क्या विशेषता हुई? ऐसे ही भक्त भगवान्‌के दिये हुए प्रेमसे ही भगवान्‌की भूख मिटाता है।

भगवान्‌ने मनुष्यको तीन शक्तियाँ प्रदान की हैं—करनेकी शक्ति, जाननेकी शक्ति और माननेकी शक्ति। प्राप्त करनेकी शक्ति मनुष्यमें नहीं है, इसलिये संसारकी कोई भी वस्तु प्राप्त नहीं होती, हो सकती ही नहीं। संसार एक क्षण भी नहीं टिकता, निरन्तर बदलता रहता है, फिर वह प्राप्त कैसे हो सकता है? अगर संसार वास्तवमें प्राप्त होता तो कभी बिछुड़ता नहीं और हमारी भी सदाके लिये तृप्ति हो जाती। परंतु संसारसे कभी किसीकी तृप्ति नहीं होती, प्रत्युत तृष्णा बढ़ती है—***'जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई'***। भोगोंसे होनेवाली थकावटको ही मनुष्य भूलसे तृप्ति मान लेता है; जैसे—भोजन करते-करते जब और खानेकी सामर्थ्य नहीं रहती अर्थात् थकावट (असमर्थता) हो जाती है, तब उसको तृप्ति कह देते हैं। परंतु वास्तवमें यह तृप्ति नहीं होती, इसलिये पुनः भूख लग जाती है। प्राप्ति वास्तवमें परमात्माकी ही होती है, जो एक बार होती है और सदाके लिये होती है। कारण कि वास्तवमें परमात्मा सबको नित्य प्राप्त हैं, केवल अप्राप्तिका वहम मिटता है।

'करने' और 'जानने' की शक्तिका सदुपयोग करके मनुष्य शरीर-संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद और स्वरूपका बोध कर सकता है। परंतु 'मानने' की शक्तिका सदुपयोग करनेसे संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद और स्वरूप-बोधके साथ-साथ भगवत्प्रेमकी प्राप्ति भी हो जाती है। तात्पर्य है कि यद्यपि लौकिक साधन (कर्मयोग और ज्ञानयोग) मनुष्यके करनेका है, तथापि भगवान्‌पर विश्वास करनेसे जो काम साधकको करना चाहिये, वह काम (मुक्ति) भी भगवान् कर देते हैं और जो काम भगवान्‌के करनेका है, वह काम (दर्शन और प्रेम) भी भगवान् कर देते हैं* (गीता १०। १०-११)। जैसे किसी नगरमें एक व्यक्ति अपने घरमें बंद है। उस नगरके सब घर नगरकी चहारदीवारी (परकोटे)-में बंद हैं। अगर वह व्यक्ति अपने घरसे निकलना चाहे तो यह उसके हाथकी बात है, पर नगरकी चहारदीवारीसे निकलना उसके हाथकी बात नहीं है, प्रत्युत वहाँके राजाके हाथकी बात है। अगर राजा चाहे तो वह चहारदीवारीका दरवाजा भी खोल सकता है और उस व्यक्तिके घरका दरवाजा भी खोल सकता है, न खुले तो तोड़ भी सकता है। ऐसे ही भगवान् भक्तका सब काम कर देते हैं, उसके करने योग्य काम भी कर देते हैं! तात्पर्य है कि विवेक-विचारसे तो केवल लौकिक साधन सिद्ध होता है, पर विश्वाससे लौकिक और अलौकिक दोनों साधन सिद्ध हो जाते हैं। इसलिये माननेकी शक्ति (विश्वास) क्रियाशक्ति और विवेकशक्तिसे भी श्रेष्ठ और विलक्षण है।

शरीर भी हमारा नहीं है, मन-बुद्धि-प्राण भी हमारे नहीं हैं और उनके द्वारा होनेवाले चिन्तन-ध्यान-समाधि भी हमारे नहीं हैं—इस प्रकार 'पर' को अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरको अपना न माननेसे मनुष्य स्वाधीन (मुक्त) हो जाता है, उसकी पराधीनता सर्वथा मिट जाती है। स्वाधीन होनेपर मनुष्य भगवत्प्रेमका अधिकारी हो जाता है; क्योंकि जो पराधीन है, वह प्रेम नहीं करता, प्रत्युत मोह करता है। प्रेमकी प्राप्ति 'पर' के द्वारा नहीं होती, प्रत्युत

---

* मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥
(मानस, अरण्य० ३६। ५)

'जीव पाव निज सहज सरूपा'—यह कर्मयोग और ज्ञानयोगका फल है।

'पर' के त्यागसे और 'स्वकीय' के द्वारा होती है। परंतु भगवान्की कृपासे स्वाधीन अर्थात् मुक्त होनेसे पहले भी प्रेमकी प्राप्ति हो सकती है। जब भक्त विश्वासपूर्वक केवल भगवान्को अपना मान लेता है, तब उसका भगवान्में प्रेम हो जाता है। कारण कि प्रेमकी प्राप्ति अपने बल, तप, योग्यता आदिसे नहीं होती, प्रत्युत भगवान्को अपना माननेसे होती है। बल, तप, योग्यता आदिके द्वारा जो वस्तु मिलेगी, वह बल, तप आदिसे कम मूल्यकी ही होगी। अगर किसी साधनसे साध्य मिलेगा तो वह साधनसे छोटा ही होगा। इसलिये भगवान्को अपना माने बिना और कोई प्रेम-प्राप्तिका उपाय हो ही नहीं सकता। भगवान् भक्तके अपनेपनको ही देखते हैं, यह नहीं देखते कि वह बद्ध है या मुक्त*। जैसे बालक माँको पुकारता है तो माँ बच्चेकी योग्यता, बल, विद्या आदिको न देखकर उसके अपनेपनको देखती है और उसको गोदमें ले लेती है, ऐसे ही जब भक्त अपनी स्थितिसे असंतुष्ट होकर, पराधीनतासे व्याकुल होकर भगवान्को पुकारता है, तब भगवान् उसको अपना प्रेम प्रदान कर देते हैं। तात्पर्य है कि शरीर-संसारको अपना न माननेसे लौकिक साधन सिद्ध हो जाता है और भगवान्को अपना माननेसे अलौकिक साधन सिद्ध हो जाता है।

जिनमें मुक्तिकी इच्छा है और जो मुक्तिको ही सर्वोपरि मानते हैं, ऐसे साधक प्रेम (भक्ति)-की प्राप्ति तो दूर रही, प्रेमकी बातको भी समझ नहीं सकते! जैसे स्वार्थी आदमीकी दृष्टि दूसरेके हितकी तरफ जाती ही नहीं, ऐसे ही लौकिक साधनावाले मनुष्यकी दृष्टि अलौकिक प्रेमकी तरफ जाती ही नहीं। उसमें प्रेम-तत्त्वको समझनेकी सामर्थ्य ही नहीं होती। प्रेमकी बातको वही समझ सकता है, जिसके भीतर भक्तिके संस्कार हैं, भगवान्पर दृढ़ विश्वास है, भगवान्की कृपाका आश्रय है और जो भक्ति, भक्त और भगवान्का तिरस्कार नहीं करता। ऐसा साधक अगर मुक्त हो जाय तो उसको मुक्तिमें संतोष नहीं होता। अतः भगवान् कृपापूर्वक उसके मुक्तिके अखण्डरसको फीका करके प्रेमका अनन्तरस प्रदान कर देते हैं। अगर वह पहलेसे ही भगवान्पर दृढ़ विश्वास करके अपनापन कर ले तो भगवान् कृपापूर्वक उसको मुक्ति और भक्ति (प्रेम)—दोनों प्रदान कर देते हैं। (समाप्त)

* * *

भगवान् शङ्कर आपके संतापोंको शान्त करें

दिव्यापगाप्लवनपावकसेवनाभ्यां बिभ्रत्तनुं शुचिमपेतकलङ्कशङ्काम्।
दोषानुषङ्गरहितस्तिमिरोष्मशान्त्यै भूयाद् द्विजाधिपतिरीश्वरवन्दितो वः॥

[स्तुति-कुसुमाञ्जलि]

जैसे प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल तीनों समय गङ्गामें निमज्जन (स्नान) तथा अग्निकी सेवा (अग्निहोत्र)-से अति पवित्र अर्थात् बाह्य और आन्तरिक मलोंसे विरहित एवं कलंक और मानसिक चपलता आदि दोषोंकी आसक्तिसे रहित तथा ईश्वरों (समस्त राजाओं)-से वन्दित द्विजाधिपति (सद्-ब्राह्मण) अपने सदुपदेशके द्वारा शरणागतोंके अविद्यारूप अन्धकार और दुःखत्रयजनित संतापोंको शान्त करता है, वैसे ही (श्रीशङ्करजीके) मस्तकपर विराजित देवगङ्गा (मन्दाकिनी)-के आप्लवन (अवगाहन) और तृतीय नेत्रमें रहनेवाली अग्निके सेवनसे अति निर्मल, बाह्य और आन्तरिक मल एवं कलंककी शंकासे रहित दिव्य शरीरको धारण किया हुआ और रात्रिके संसर्गसे रहित वह ईश्वर (सदाशिव)-से वन्दित द्विजाधिपति (द्विजों नक्षत्रोंका अधिपति) अर्थात् भगवान् शङ्करके मस्तकपर विराजमान चन्द्रमा आपके अज्ञानरूप अन्धकार एवं आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक संतापोंको शान्त करें।

* * *

---

* रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥
(मानस, बाल० २९। ३)

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता—

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ७७० से आगे]

साधन जो करै, पूर्ण-तत्परता सौं करै, आलस्य, उपेक्षा एवं प्रमाद न छूइ जाय। जो साधन करै, वह सुरक्षित रहै। कोई कामना न बनै, भोग्य न बढ़न पावै। सादगी अपनावै। जहाँ ताँईं बनै विलासिता न बढ़ावै। सादा-आहार, सादा-वस्त्र, सादा-स्थान तथा अपने कूँ साधारण ही माननौं। अपने कूँ त्यागी, बैरागी, तपसी, ज्ञानी, भजनानन्दी तथा प्रेमी न जँचाबै। दिखायवेके ताँईं कोई साधन न करै। संसारी प्राणीनके साथ व्यवहार मात्र पालन करै। आसक्ति कहूँ न हौन पावै। साथ ही सब यही समझैं कि, हमसौं बडौ प्रेम करैं हैं—

'सबके प्यारे सब सौं न्यारे, ऐसी रहनी रहिये'।

सर्वथा मिटानौं है व्यर्थत्व। स्वभाव अति-उत्तम बनैं। सतत यही करनौं, यही कहनौं, यही सुननौं, यही विचारनौं।

× × ×

निम्नलिखित पाँचौन कूँ पूर्ण-तत्परता सौं पालन करै—(१) विश्वमें कोई हू शत्रु न रह जाय। (२) स्वभाव अति-उत्तम बनै। (३) कालाव्यर्थत्व—(**समय केवल श्रीभगवत् सम्बन्धी कार्यनमें ही व्यतीत होय**)। (४) निरन्तर श्रीनाम-जप—(**कछु करते हौयँ जिह्वा श्रीनाम-जप ही करती रहै**) और (५) लक्ष्यमें दृढ़ता।

अपने नियम कौ सदा स्मरण रहै कि, मोकूँ ये नियम-पालन करने हैं। सबरे नियम अपने नेत्रनके सम्मुख ही नाँचते रहैं। तब नियममें त्रुटि नहीं होय है। गड़बड़ी तौ तब ही होय है, जब नियमन कौ विस्मरण है जाय है। नियम-पालन सौं हूँ नियम चिन्तन कौ विशेष महत्त्व है।

× × ×

तीन प्रकार कौ चिन्तन वर्जित है—

(१) परदोष-चिन्तन। (२) विषय-चिन्तन और (३) व्यर्थ-चिन्तन—इनमें व्यर्थ-चिन्तन अति कठिन परै है। यापै विशेष ध्यान राखै। व्यर्थ-चिन्तन सौं बचिबेकी युक्ति निकारनौं तथा पूर्ण-तत्परता सौं काम लेनौं है। घबरायवेकी बात नहीं है। धैर्यपूर्वक काम करिवे सौं का नहीं है सकै है? लगि परै सच्चाई सौं। सफलता तौ मिलैगी ही।

भोग, वासना और भक्ति एक साथ नहीं रह सकैं हैं। जब ताँईं काऊ संसारी वस्तुमें रस आवै है, तब ताँईं श्रीभगवत्-प्रेम कहाँ? वैष्णव वही, जो कबहूँ श्रीभगवान्की आशा नहीं त्यागै और न कबहूँ मनुष्यकी आशा राखै। आसक्ति तथा मोह कौ नाश करिवे वारौ शस्त्र है—विवेक। साधु वही जो कबहूँ साधन सौं उदासीन नहीं होय है, कबहूँ चिन्ता नहीं करै और सदा-सर्वदा प्रसन्न बदन निर्भर और निश्चिन्त ही रहै है।

भक्ति ज्ञान वेराज्ञ
सनेह समझ समर्पण

अर्थात् भक्तिमें स्नेह, ज्ञानमें समझ और वैराग्यमें समर्पणकी परमावश्यकता है। स्नेहके बिना भक्ति, समझके बिना ज्ञान और समर्पणके बिना वैराग्य अधूरौ ही मान्यौ जाय है।

साधक अपने कूँ देखै कि, हम जी रहे हैं कौनके ताँईं?—अपने ताँईं?, संसारके ताँईं? अथवा श्रीभगवान्के ताँईं?

भक्तिकी तीन क्रिया हौयँ है—सेवा, स्नेह और समर्पण। साधक न कछू चाहै, न कछू राखै और न काहू कूँ अपनावै तौ अवश्य ही प्राप्त होयगौ, श्रीभगवत्-प्रेम।

अवकाश ही अनर्थ कौ मूल है। साधक कूँ बहिर्मुखी बनायवेमें नेत्र प्रथम हैं और अन्तर्मुखी बनायवेमें कान प्रथम हैं। जा काहूके अन्तःकरणमें आजतक श्रीभगवान् और संसार कौ प्रवेश भयौ है, इन दोउ मार्गन सौं ही भयौ है (**नेत्र और कर्ण**)। यासौं इनकूँ बहुत ही संभारै। नेत्रन सौं न संसार कूँ देखै और न कानन सौं संसार कूँ सुनै। जब-जब देखै और सुनै, तौ केवल श्रीभगवान् और श्रीभगवत्-जनन कूँ तथा इनके पवित्र यश कूँ ही देखै सुनै।

बुद्धि जब यह दृढ़ निश्चय करि लेय है कि, केवल श्रीभगवान् ही मेरे सर्वस्व हैं और कोई मेरौ नायँ। तब ही बुद्धिमें प्रियतम कौ प्रवेश होय है और तब ही संसार कौ

बन्धन टूटै है। साधकके जीवनमें (**प्रेम-पथके पथिकके जीवनमें**) व्यवहार शुद्धि, नियम-नष्ठा और प्रतिज्ञापालनकी परमावश्यकता है। (**यह श्रीउड़िया बाबाजी महाराज कौ महावाक्य है**)। श्रद्धा सकामी उपासक कूँ नहीं होय है। प्रथम तथा प्रधान वस्तु है प्रियतममें आत्मीयता। प्राणिमात्रकी अन्तरात्मा है, परमात्मा (**श्रीभगवान्**)। तब तौ प्राणिमात्रके ये ही आत्मीय भये। अपने आत्मीय सौं आत्मीयता हौनीं ही चहिए। न होय यही अनर्थ, महा अनर्थ है। जब यह निश्चय है जाय कि, केवल ये ही हमारे हैं, तब तौ सहजहीमें इनमें ममता, आसक्ति, मोह, स्वतः ही है जाय है। यामें देर नहीं लगै है। कारण कि, ममता, आसक्ति आदिक प्रवृत्तिकी क्रिया हैं। जो जीव कौ जन्म-जन्म कौ स्वभाव है। देर लगै है, निवृत्ति-मार्गके साधनमें। इनमें आसक्ति, ममता, मोह, हौनौं ही प्रेम है। जब प्रेम है जाय है, तब कछु करनौं नहीं परै है। स्वतः ही सब कछू होतौ रहै है। अतः अपनौं परम-कर्तव्य यही है कि, अपने जीवनधन सौं आत्मीयता करिवे कौ निरन्तर अभ्यास बढ़ातौ रहै।

× × ×

यदि कोई प्रशंसा करै, तौ समझनौ कि, यह सुझाव है, तुम ऐसे बनौ और अपने कूँ वैसौ ही बनावै। यदि कोई निन्दा करै, तब यह समझै कि, अब यह दोष हममें नहीं आवन पावै। प्रेम चाहै है बलिदान। बलिदान कौ अर्थ है—अपने कूँ तथा अपने संसार कूँ प्रियतम कूँ ही अर्पण करि दैनौं। अपने प्रियतमके अतिरिक्त अपने ताँईं कछु न रह जाय। दूसरौ अर्थ है—समस्त इन्द्रियन कूँ विषय सौं हटाय कैं इनमें (प्रभुमें) ही लगानौं। अर्थात् अपनी समस्त इन्द्रियन कौ विषय एकमात्र श्रीजीवनधन ही रहि जायँ। तब होय है प्रेम। केवल श्रीभगवत् सम्बन्ध सौं ही काहू सौं सम्बन्ध होय। अपने शरीर तथा स्वार्थके कारण नहीं। प्रेमकी ही कामना, प्रेमकी ही लालसा होय। याहीके ताँईं पूरौ प्रयत्न होय। प्रयत्न होय काहू प्रेमी संतके बताये अनुसार। संतके प्रति भाव बढ़ावै। कोई संत कृपा करिकै दैं, तब ही यह अलभ्य वस्तु प्राप्त होय है। रात-दिना याही कौ चिन्तन। यह न भूलै कि, शरीर यामें पूर्ण बाधक है। जब आठौ प्रहर तल्लीनता रहै है, तब होय है प्रेम।

× × ×

ममता हौनी चहिये तीन ठौर—हरि, गुरु और हरिजननमें। भजन-साधनके दो ही फल हैं—साधन-कालमें तज्जन्य सुखकी अनुभूति तथा अन्तमें भगवत्प्राप्ति। भजन त्रिगुणातीत वस्तु है। यह गुण नहीं चाहै है; क्यौंकि, तीन्यौं गुण भजनमें बाधक हैं। रज, तमकी बाधकता तौ स्पष्ट है ही, यामैं कछु कहनौं ही नहीं। रही सत्वकी बात—सो या कारण बाधक है कि, यामैं सात्विक-विघ्न धार्मिक कार्यनके बहाने सौं आवें है। या बहाने सौं यह साधक कूँ प्रपञ्चमें फँसाय दैवें हैं। जब साधक प्रपञ्चमें फँसि जाय है, तब यह धार्मिक-कार्य ही तौ हैं, ऐसौं समझि कै उनकूँ छोड़ि नहीं पावै है। या कारण सत्व हू बाधक है। प्रपञ्च इतनौं प्रबल-शत्रु है कि, जो याके पन्जेमें एक बार कैसैं हूँ फँसि गयौ, फिर यासौं छुटकारौ पानौं बहुत ही कठिन है। विकार तथा हृदयस्थ वासना तब ही नष्ट है सकैं हैं, जब जीव पूर्णरूपेण प्रेम-सिन्धुमें डूबि जाय है। बिना प्रेम-सिन्धुमें डूबे, इनसौं बचनौं कठिन ही दीखै है। हाँ, साधक यही करि सकै है कि, कोई नवीन वासना न बनन पावै तथा जैसें ही कोई विकार उठै, तैसैं ही वाकूँ श्रीसद्गुरु-भगवान्की आज्ञाके अवलम्ब सौं मिटायवे कौ प्रयत्न करै। जासौं उनके बढ़िवेकी आशंका ही समाप्त है जाय। गहरी खोज (**आत्म निरीक्षण**) करै। जब दीख जाय, तब या हृदयस्थ वासना कूँ वैराग्य रूपी शस्त्र सौं नष्ट करि डारै।

साधनमें तीन बात हौनी चहिएँ—श्रीसद्गुरु प्रदत्त, शास्त्र-प्रतिपादित और संत-आचरित। यदि ये तीन्यौं हैं, तौ श्रीभगवत्प्राप्तिमें कोई संशय ही नहीं, अवश्य ही होयगी। भक्ति-मार्गमें भाव ही प्रधान हैं। भावयुक्त-साधन ही फलदायक होय है। न जानैं प्रियतम काहे सौं रीझि जायँ। इनकी ये जानैं, साधक तौ श्रीसद्गुरु प्रदत्त और शास्त्र-सम्मत साधन ही करै और मनमें कोई इतर चाह न होय, नहीं तौ सब साधन वाहीमें खर्च है जायगौ। फिर भजन करैगौ, प्रतिष्ठा होयगी ही। जन समुदाय वाके पास पहुँचैगौ ही। इन सौं बड़ी सावधानी सौं बचतौ रहै। स्वदोष-दर्शन, परदोष-अदर्शन, पर सद्गुण और स्वदोष प्रदर्शन करिकैं चित्तमें प्रसन्नता होय, तौ श्रीभगवान् हृदयमें प्रगट होयँ हैं। जो वस्तु नहीं हैं अर्थात् अनित्य है—जैसैं जगत् और शरीर। माया इनकूँ तौ दिखावै है और जो वस्तु नित्य है—जैसैं आत्मा और परमात्मा। इनकूँ अपने आवरण सौं ढ़कि देय है अर्थात् इनकौ ज्ञान नहीं हौन देय है। [क्रमशः]

श्रीकृष्णकी रासलीला एवं उसका आध्यात्मिक रहस्य

('मानसरत्न' संत श्रीसीतारामदासजी महाराज)

'रास' शब्दका मूल रस है और रस स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। रासलीला काम-लीला नहीं है, वह तो काम-विजय-लीला है। इस लीलाका चिन्तन करनेसे काम-वासना नष्ट होती है। इसमें जीव और ईश्वरके मिलनका निरूपण है। श्रीमद्भागवत-महापुराणके प्रसिद्ध टीकाकार श्रीश्रीधर स्वामीकी मान्यता है कि रासलीलाके पाँच अध्याय पञ्च-प्राणोंके सूचक हैं। पञ्च-प्राणोंका ईश्वरके साथ रमण ही रास है। जो कामके अधीन होकर उसकी मार खाता है, वह साधारण जीव है और जो कामको मारकर उसको अपने अधीन करता है वह ईश्वर है। रासपञ्चाध्यायी काम-विजयके लिये है। रासलीला अनुकरणीय नहीं, चिन्तनीय है। उसका चिन्तन कामनाशी है। मनुष्यका सबसे बड़ा शत्रु काम ही है। जो शस्त्रसे घायल नहीं होता, वह योद्धा भी कामके पुष्प बाणसे घायल हो जाता है। कामसे क्रोध आदि बहुतसे दुर्गुण उत्पन्न होते हैं—'**कामात् क्रोधोऽभिजायते**' क्रोधसे संमोह पैदा होता है—'**क्रोधाद् भवति संमोहः**' और अन्तमें होता है—बुद्धिनाश—'**बुद्धिनाशात् प्रणश्यति**'। यदि काम भगवदर्पित कर दिया जाय तो वह कभी अंकुरित नहीं होगा।

संसारके सभी सुखोंका मनसे त्याग करके ईश्वरसे मिलनेके लिये, गोपियोंकी भाँति निकल पड़नेवालेको धन्य है। इसी कारणसे तो लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण गोपियोंका स्वागत करते हैं—

स्वागतं वो महाभागाः (श्रीमद्भा० १०। २९। १८)

भागवतकार गोपियोंको महाभाग्यशाली कहते हैं। नारदजी भी अपने भक्तिसूत्रमें गोपियोंका ही दृष्टान्त देते हैं—

यथा व्रजगोपिकानाम्॥ २१॥

ये गोपियाँ कोई सामान्य स्त्रियाँ नहीं, भगवान्की भक्त थीं। परमपूज्य संत श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराजके मतानुसार—'जो इन्द्रियोंद्वारा भक्तिरसका पान करे वही गोपी है—

गोभिः इन्द्रियैः भक्तिरसं पिबति इति गोपी।

भगवान्के दर्शनके समय जो स्त्रीत्व और पुरुषत्वका भाव भूल जाय, वही गोपी है। जबतक देहभान है, मनमेंसे काम निकलेगा नहीं तबतक रासलीलाका आध्यात्मिक रहस्य समझना कठिन होगा। रासलीला कोई साधारण स्त्रीकी नहीं, देहभान भूली हुई, देहाध्याससे मुक्त स्त्रीकी कथा है। देहाध्यास नष्ट होनेपर ही प्रभुकी चिन्मयी लीलामें प्रवेश मिलता है। प्रभु-प्रेममें जो पागल बना है, वही भाग्यशाली है। परमात्मा ऐसे जीवका ही स्वागत करते हैं।

गोपियोंके बारेमें नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके विचार बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं—

जिसको नहीं मुक्तिकी इच्छा, जिसे नहीं बन्धनका भान।
केवल कृष्ण सुखेच्छा हित, जिसके सब धर्म-कर्म मति-ज्ञान॥
ऐसे गोपीजन-मनमें लहराता प्रेम सुधा सागर।
इसीलिये रहते उसमें नित मग्न रसिक मणि नट नागर॥

(राधामाधव-चिन्तन)

सभी विषयोंका मनसे त्याग करके भगवान्के चरणोंमें जानेवाला जीव ही भगवान्को प्राप्त कर सकता है—

सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्। (श्रीमद्भा० १०। २९। ३१)

'**त्यक्त्वा**' शब्द विषयोंका शारीरिक त्याग दरसाता है और '**सन्त्यज्य**' शब्द विषयोंका मानसिक त्याग, असाधारण त्याग दरसाता है। जिसके मनमें ईश्वरके सिवाय कुछ भी नहीं है वही गोपी है। गोपियोंको सांसारिक सुखोंकी कोई अपेक्षा नहीं थी, वे तो सभी लौकिक सुखोंका त्याग करके आयी थीं। जीवकी परीक्षा कर लेनेके पश्चात् ही भगवान् उसे अपनाते हैं। प्रभुको विश्वास हो गया कि जीव शुद्ध भावसे मुझे मिलने आया है तो उन्होंने उसे अपना लिया।

रासलीलामें गोपियोंकी हर प्रकारसे परीक्षा कर लेनेपर ही भगवान्ने उन्हें दिव्य रसका दान दिया। प्रभुने एक साथ अनेक रूप धारण किये। जितनी गोपियाँ थीं उतने स्वरूप बना लिये और प्रत्येक गोपीके साथ एक-एक स्वरूप रखकर रासका आरम्भ किया। अनेक जन्मोंका विरही जीव गोपीरूपमें आज प्रभुके सम्मुख उपस्थित हो सका है। गोपियोंको—शुद्ध जीवोंको परमानन्द प्राप्त हुआ। जीव आज ईश्वरमय हो गया। वे दोनों एक हो गये। इस मिलनसे जीव और ईश्वर दोनोंको आनन्द हुआ। गोपियाँ श्रीकृष्णमय, भगवान्मय हो गयीं। यह

रासलीला विजातीय तत्त्वका, स्त्रीत्व और पुरुषत्वका नहीं, अंश और अंशीका मिलन है। आज गोपियाँ प्रभुमय बन गयीं। ब्रह्मरूप हो जानेके बाद जीवका स्वत्व नहीं रहता?

सांसारिक कर्तव्य-कर्मोंसे ऊपर उठ करके प्रभुकी ओर जाना ही तो जीवका धर्म है। अभिमानी जीव रासलीलामें प्रवेश नहीं पा सकता। पुरुषत्व तो अभिमान और अहंका सूचक है। ईश्वरके घरमें पुरुष अर्थात् अभिमानका कोई स्थान नहीं है। जो जीव गोपीभावसे जाता है, उसे वहाँ प्रवेश मिलता है। भगवान् तो स्वयं आनन्दस्वरूप हैं। उन्होंने अपने आनन्दके लिये नहीं, गोपियोंको आनन्द देनेके लिये ही रासलीलाका आयोजन किया था। गोपियोंको परमानन्द मिला। इस प्रकार शुद्ध जीवका ब्रह्मके साथ विलास ही रास है।

परमात्मासे साक्षात्कार होनेपर भी जीवको सावधान रहना चाहिये। ज्ञानी भी साक्षात्कार हो जानेपर अपने-आपपर नियन्त्रण नहीं रख पाता है, क्योंकि सिद्धि प्रसिद्धि होती है और प्रसिद्धि अभिमान। ऐसा होनेपर साधन छूट जाता है, परिणामतः जीव ईश्वरसे विमुख हो जाता है। मान और मद ही भगवान्‌की लीलामें बाधक हैं। जब गोपियोंमें मान और मदका संचार हुआ तो भगवान् अन्तर्धान हो गये।

वियोग ही संयोगका पोषक है। इस लीलामें प्रेम है, मोह नहीं। प्रेम अंतरमें होता है, मोह बहिरंगमें। प्रेमको त्यागकी अपेक्षा है, मोहको उपभोगकी। प्रेम विरहसे पुष्ट होता है और मोह संयोगसे। वियोगमें प्रिय पात्रका सतत स्मरण होता रहता है। वियोग तो विशेष प्रकारका योग है। श्रीकृष्णजीने ऐसे विशिष्ट योगका दान गोपियोंको दिया।

गोपियोंका मन श्रीकृष्णमें है। वृत्ति कृष्णाकार होनेके कारण अंतरंगमें संयोग और बहिरंगमें वियोग है। वे वनके पत्ते-पत्ते, फल-फूलसे श्रीकृष्णका पता पूछ रही हैं। वियोगके कारण गोपियाँ ऐसी बावली हो गयी हैं कि उन्हें यह भी याद नहीं है कि फूल-पत्ते तो जड़ हैं, बोल नहीं पाते। व्याकुल गोपियाँ श्रीकृष्णजीकी लीलाओंका अनुकरण कर रही हैं।

जीवका प्रभुमय हो जाना ही ध्यान तथा भक्तिकी पराकाष्ठा है और फल भी। भगवान्‌का ध्यान करते-करते संसारका विस्मरण हो जाता है। ध्यानमें तन्मयता हो जानेपर 'मेरापन' मिट जाता है। ध्यान तथा ध्येय एक हो जाते हैं। यही तो है मुक्ति। ध्यानमें तन्मयता होनेपर गोपियाँ सबमें श्रीकृष्णका दर्शन करने लगीं। सभीमें ईश्वरका अनुभव करनेवाला स्वयं भी ईश्वरमय बन जाता है। गोपियाँ श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए कह रही हैं—'अरी सखी! मैं ही कृष्ण हूँ।' गोपियाँ भागवत-रूप बन गयीं।

संयोगावस्थाकी अपेक्षा विरहावस्थामें प्रेमपात्रके साथ तादात्म्य अधिक होता है। इसीलिये वियोगको एक विशेष प्रकारका योग कहा गया है। इस योगका दान करनेके लिये ही श्रीकृष्णजी अदृश्य हो गये थे और इस प्रकार गोपियोंको अधिक निकट लाया गया। गोपियाँ ऐसी तल्लीन हुईं कि विरह होनेपर भी अंतरंगमें उन्हें संयोगकी अनुभूति हुई।

भगवान् साधन-सम्पत्तिसे संतुष्ट और प्रसन्न नहीं होते। भक्तोंकी दीनता ही एकमात्र साधन है, जो उन्हें प्रसन्न कर सकती है। जीव जबतक संसारसे प्रेम करता है, तबतक भगवान्‌को दया नहीं आती। परमात्मा पूरा प्रेम चाहते हैं। बिना पागल बने भगवान् नहीं मिलते। परमात्माको प्रसन्न करनेका साधन यही है कि जीव विरह व्याकुलतासे भगवान्‌के लिये आँसू बहाता रहे। जब गान और प्रलाप निष्फल रहे तो गोपियोंमें दैन्य भाव जागा और असल विरह वेदनाके कारण लोकलाजका त्याग करके रुदन करती हुई पुकारने लगीं—हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! गोपी-गीत विरह-गीत है, जिसे सुनकर श्रीकृष्णजी प्रत्यक्ष उपस्थित हुए थे।

श्रीकृष्ण रसस्वरूप हैं। गोपियाँ उनसे मिलनेके लिये छटपटाती थीं। उनका मिलन पाञ्चभौतिक शरीरका नहीं, अपितु आत्मा और रसात्माका मिलन था। इस लीलामें सूक्ष्म आध्यात्मिक शरीरोंका ईश्वरसे मिलन था। गोपियोंका पाञ्चभौतिक शरीर तो उनके अपने-अपने घरमें था। यहाँ तो उनका सूक्ष्म देहसे मिलन था।

सूक्ष्म शरीर सत्रह तत्त्वोंसे बना हुआ है। पाँच प्राण और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच-पाँच कर्मेन्द्रियाँ एवं मन और बुद्धि ये सब मिलकर सत्रह तत्त्व हुए। जब मन मरता है तब सूक्ष्म शरीर भी मरता है और भक्तिरस मिलता है। भौतिक देह-विलयके पश्चात् ही गोपियोंको रासलीलाका लाभ मिला था। यह तो जीवका मनसे परमात्माके साथ मिलन था—'व्रजस्त्रियः **कृष्णगृहीतमानसाः**' (श्रीमद्भा० १०। २९। ४) अर्थात्

जिनका श्रीकृष्णने मन हर लिया है, वे हैं गोपियाँ।

जीव जबतक भगवान्‌से मिलनेके लिये व्याकुल नहीं होता, तबतक वे मिल नहीं पाते। जब ईश्वरके वियोगमें प्राण छटपटाते हैं, तब जीव भगवान्‌से मिल पाता है। भगवान् श्रीकृष्ण तो सभी देहधारियोंमें आत्मारूपसे विराजित हैं। वे सभीके साक्षी और परमपति हैं। जीव मात्र गोपी है। प्रभुके लिये साधन करके थका हुआ जब वह (जीव) रोने लगता है तो प्रभु दयावश प्रकट हो जाते हैं।

भगवान्‌की यह लीला-कथा अमृत-स्वरूपा है, जो श्रवणमात्रसे पापोंका नाश करती है। उसका श्रवण मङ्गल एवं आनन्ददायी है। विरहाकुल जीवके लिये रासलीला जीवन-रूप है, जीवन-सर्वस्व है। इस लीलाका चिन्तन करनेसे काम-विकार नष्ट होता है—

भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। ४०)

* * *

दीपावलीका नया दृष्टिकोण

[माता लक्ष्मीका अपमान नहीं होना चाहिये]

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

हिंदू-तत्त्वज्ञानी अपनी प्रतीक-पद्धतिके लिये प्रसिद्ध हैं। उन्होंने देवी-देवताओंके रूपमें ऐसे प्रतीक बनाये हैं, जिनसे जन-साधारणको मौलिक विचार और शुभ भावनाएँ सदा ही मिलती रहती हैं। हमारी तीनों देवियाँ सरस्वती, दुर्गा और लक्ष्मी हमारे तीन प्रतीक हैं। खेद है कि हम इन प्रतीकोंका अर्थ भूलते जा रहे हैं। सरस्वती ज्ञान, दुर्गा शक्ति और लक्ष्मी धन-शक्तिकी प्रतीक हैं।

धनमें पवित्रताका समावेश

देवी लक्ष्मी धन-शक्तिकी प्रतीक हैं। भारतीय संस्कृतिके अनुसार और हिंदूधर्मके दृष्टिकोणसे देवी लक्ष्मी समाजकी आर्थिक शक्तिकी अधिष्ठात्री हैं। उनकी कृपासे आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त होती है।

हिंदू बड़े दूरदर्शी होते हैं। जो बात उन्हें उपयोगी प्रतीत होती है, उसे वे धर्मका अङ्ग बनाकर उसमें पवित्रता, शुचिता, देवत्व, सदुपयोग, श्रेष्ठता और संयमके दिव्यगुणोंका समावेश कर देते हैं।

धनको देवीका स्वरूप देनेका अर्थ है उसमें पवित्रताका समावेश करना। हम धनको समाजके लिये एक पवित्र शक्ति मानते हैं। समाजको सत्पथपर चलाते रहने, पिछड़ोंको आगे बढ़ाने, दैवी कार्योंकी पूर्तिके लिये धनका उपयोग होता रहे, इसलिये उसे देवीका रूप दिया गया है। लक्ष्मीजीकी पूजाका सच्चा अर्थ यह है कि धनका उपयोग हमारे समाज, व्यक्ति तथा देशके शुभ कार्योंमें हो। समाजकी भलाईमें ही वह व्यय हो। तभी धनकी सार्थकता है। यही लक्ष्मी-पूजा है।

लक्ष्मीजी भारतीय अर्थ-व्यवस्थाकी प्रतीक हैं। पैसेके उपयोगमें जो सावधानियाँ बरतनी चाहिये, वे लक्ष्मीजीकी पूजामें निहित हैं। जो लोग रुपयेका दुरुपयोग करते हैं, वे माता लक्ष्मीजीका प्रत्यक्ष अपमान करते हैं।

धनका सदुपयोग करें

धनको लक्ष्मीजीका रूप स्वीकार करनेपर प्रत्येक सद्‌गृहस्थ हिंदूको उसका सदुपयोग करना चाहिये। अर्थकी शक्तिका आजके युगमें हम पग-पगपर अनुभव करते हैं। उसका सदुपयोग कर हम जनता-जनार्दनकी सर्वाधिक सेवा कर सकते हैं। भारतीय शास्त्रकारोंके कुछ आधारभूत जीवन-सिद्धान्त स्मरण रखने चाहिये। धन पवित्र साधनोंसे कमाया जाय और जनताके हितमें व्यय किया जाय—

उतो रयिः पृणतो नोप दस्यति॥

(ऋग्वेद १०। ११७। १)

अर्थात् दान देनेवाले सत्पुरुषकी सम्पदा घटती नहीं, सदा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है।

सत्कार्योंमें लगाया हुआ धन बैंकमें जमा पूँजीके समान सुरक्षित है। धर्मशालाएँ, पुस्तकालय, प्याऊ, वृक्ष लगाना, स्कूल बनवाना, धर्मार्थ चिकित्सालयोंकी स्थापना, जानवरोंके

लिये जलका प्रबन्ध करना, ग्रामोंकी सफाईका प्रबन्ध और कुशाग्रबुद्धि छात्रोंकी शिक्षाका उचित प्रबन्ध करना—ये सब माता लक्ष्मीकी आराधना तथा सेवाके अचूक उपाय हैं। ये सत्कार्य समाजको ऊँचा उठानेवाले हैं। अपनी रुचि और आर्थिक सुविधाके अनुसार दान और सेवाका रूप स्थिर करना चाहिये।

जो धन पिछड़े हुए व्यक्तियोंके उत्थानमें लगता है, वह पूजाके समान फलदायी है। धन-संग्रहके लिये नहीं, समाजकी सेवामें व्यय होना चाहिये। कहा गया है—

अदित्सन्तं दापयतु प्रजानन्।

(अथर्ववेद ३। २०। ८)

अर्थात् कंजूसोंको भी निरन्तर दान देनेकी ही प्रेरणा देते रहिये।

स्वयं सत्कार्य करना ही यथेष्ट नहीं है। वह तो आपका कर्तव्य है ही, आपके आस-पास जितने मित्र हैं, उनको भी धनको पवित्र कार्योंमें लगानेकी प्रेरणा देनी चाहिये। उन अल्पबुद्धि कंजूसोंको समझाओ कि यह धन आपका नहीं, बल्कि सारे समाजका है। धन व्यर्थ ही जमा करते जानेका नहीं, सदुपयोग करनेका माध्यम है। उससे आप, आपकी संतान, आपका परिवार, आपका पड़ोस, प्रान्त, देश और समस्त देश लाभ उठा सकता है। अभावग्रस्त और पीड़ितोंके सेवाकार्यमें उसका व्यय होना चाहिये।

सुपात्र-कुपात्रका सदा ध्यान रखिये

लेकिन सहायता सुपात्रकी ही होनी चाहिये। आपने यदि कुपात्रकी सहायता की तो वह समाजमें उत्पात कर सकता है। खूब परखकर अच्छी वृत्तियोंवालेकी सेवा करनी चाहिये। शास्त्रोंमें कहा है—

रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।

(अथर्ववेद १८। ३। ४३)

अर्थात् दानमें सदा विवेकसे काम लो और सत्पात्रोंको ही दान करो।

आप जब सहायता करने निकलें तो पात्र-कुपात्रका सावधानीपूर्वक विवेक करें। धैर्यपूर्वक सोचें-विचारें। जो सद्वृत्तियोंवाले सुपात्र हैं, उन्नतिशील हैं, केवल उन्हींको दान दें। कुपात्रोंको दिया दान दाताको नरकमें ले जाता है।

न पापत्वाय रासीय॥

(अथर्ववेद २०। ८२। १)

अर्थात् कुपात्रोंको दान मत दीजिये। सर्पको दूध पिलानेकी भाँति कुपात्रतामें और भी वृद्धि न कीजिये।

दत्तान्मा यूषम्।

(अथर्ववेद ६। १२३। ४)

अर्थात् दान देनेकी दिव्य और उपयोगी परम्परा बंद नहीं होनी चाहिये। माता लक्ष्मी कहती हैं कि आपके पास ज्ञान, बल, योग्यता अथवा धन जो कुछ भी है समाज और पीड़ित व्यक्तियोंको देनेके लिये है, उसे दूसरोंके हितमें सम्पूर्ण जीवन लगाते रहिये।

ध्यानसे देखिये कि किस सद्वृत्तियोंवाले व्यक्तिको आपकी आर्थिक सहायताकी आवश्यकता है। अपने नामके विज्ञापनकी परवा मत कीजिये। सर्वश्रेष्ठ आर्थिक सहायता वह है जिसमें दाताका नाम नहीं बताया जाता।

यह धन सारे समाजका है

कस्य स्विद्धनम्॥ (यजुर्वेद ४०। १)

अर्थात् याद रखिये, आपके पास जो धन है, उसपर केवल आपका ही अधिकार नहीं है, वह धन तो सम्पूर्ण राष्ट्रका है और सामूहिक हितमें ही व्यय होना चाहिये।

माता लक्ष्मीका संदेश है कि धनपर कब्जा करके मत बैठो। परिवार, समाज और राष्ट्रके हितके लिये उसका सदुपयोग करते रहो।

व्यापारमें धार्मिक दृष्टिकोण ही रखिये

न स्तेय मद्मि॥

(अथर्ववेद १४। १। ५७)

अर्थात् चोरीका धन कभी भी कार्यमें मत लीजिये। जो न्यायोचित नहीं है, जिसमें ईमानदारी और श्रम नहीं लगा है, उसे त्याग दीजिये।

इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै।

(अथर्ववेद १८। २। ३८)

अर्थात् माता लक्ष्मीका संदेश है कि आप वस्तुस्थिति एवं नाप-तौलमें गड़बड़ी न कीजिये। अपने व्यापारमें नाप-

तौल पूरा दिया कीजिये। व्यापारमें किसी भी प्रकारकी बेईमानी हो, वह व्यापारको जड़मूलसे नष्ट कर देती है। पापका व्यापार थोड़े दिन तो चमकता दीखता है, पर अन्ततः वह गाँठकी पूँजी भी नष्ट कर देता है। माता लक्ष्मी कहती हैं—

प्र पततः पापि लक्ष्मि।

(अथर्ववेद ७। ११५। १)

अर्थात् पापकी कमाई छोड़ दीजिये। कठोर श्रम, अध्यवसाय और पुण्यभाव, सेवाभाव रखकर कमाया धन ही मनुष्यके पास ठहरता है।

पसीनेकी पुण्य कमाईसे ही मनुष्य सुखी और मानसिक दृष्टिसे तृप्त बनता है।

धनका उपयोग सद्गुणोंकी वृद्धिके लिये किया जाय

सद्गुण और लक्ष्मी—इनका परस्पर योग है। मनमें ईर्ष्या, द्रोह, द्वेष, लोभके भाव रखनेवालेका व्यापार नष्ट हो जाता है।

भारतीय ऋषियोंने धनकी ईमानदारी, उचित साधनों और सेवाभावको बहुत महत्त्व दिया है। कहा है—

रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः॥

(अथर्ववेद ७। ११५। ४)

अर्थात् यह आजमाया हुआ नुस्खा है कि ईमानदारीसे कमाया हुआ धन ही मनुष्यके पास ठहरकर उसे स्थायी लाभ पहुँचाता है।

धन उन्हींके पास ठहरता है, जो सद्गुणी नागरिक हैं अन्यथा दूसरी पीढ़ीमें दुराचारी संतानके द्वारा वह नष्ट कर दिया जाता है। अपनी संतानको सद्गुणी न बनाया तो विपुल सम्पदा भी स्वल्प कालमें नष्ट हो जाती है।

भारतीय मनीषियोंने सदा उत्तम और पवित्र साधनोंसे कमाये हुए धनको ही मान्यता दी है और धर्मके अन्तर्गत उसे स्थान दिया है। व्यापारमें धार्मिक दृष्टि रखनेसे गुप्त दैवी सहायताका विधान रहा है। अनैतिक साधनोंसे कमाये हुए धनसे कभी स्थायी लाभ नहीं दिखायी दिया है। आनेवाली पीढ़ीने उसे समाप्त कर दिया है। इसलिये धनका उपयोग सद्गुणोंके विकासमें ही होना चाहिये।

साधनोंकी पवित्रताका सदा ध्यान रखिये

माता लक्ष्मी हमें धनकी पवित्रता, साधनोंका औचित्य तथा अन्तःकरणकी शुद्धिका संदेश देती हैं। मनुष्य धनके पीछे अन्धा न हो जाय; छल, कपट, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, झूठ, अन्याय आदि अनैतिक उपायोंका प्रयोग न करे, असुरताकी गंदगीमें न फँस जाय—यही दृष्टिकोण सदा रहना चाहिये।

आज धनकी अपवित्रता, लालच, झूठ-फरेबके कारण भाई-भाईका व्यवहार छलपूर्ण है, मालिक-नौकरमें नहीं पटती, ग्राहक और दूकानदारके सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं, ये सब आर्थिक कारणोंकी स्वार्थमयी नीतिके कारण हैं। अतः ये सम्बन्ध मधुर बनने चाहिये।

अर्थ भी धनका महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। परमात्माकी एक शक्ति है। मानवताकी सेवा और सार्थकताका साधन है। इस सम्पदाका उपयोग मनुष्यकी महानताके विकासके लिये होना चाहिये।

ऋणसे मुक्तिका संदेश

जहाँ एक ओर पापकी कमाईसे सावधान किया गया है, वहाँ हमें ऋणग्रस्त होनेसे भी सचेत किया गया है। हम जितना कुछ धर्मके साधनोंसे कमायें, उसीमें अपना निर्वाह करें। व्यर्थके दिखावे, फैशनपरस्ती, नशाबाजी, सिनेमा आदि ऋण होनेके समस्त मार्गोंसे बचते रहें।

हम अपनी जिह्वापर लगाम रखें। नियम और संयमसे जीवन-निर्वाह करें। शास्त्रकारोंकी सलाह है—

अनृणो भवामि। (अथर्ववेद ६। ११७। १)

अर्थात् अपनी आमदनीमेंसे ही खर्च चलाओ। किसीके ऋणी मत रहो। किसी भी अवस्थामें अपनी आर्थिक स्थितिसे बाहर खर्च मत करो।

अनृणाः स्याम। (अथर्ववेद ६। ११७। ३)

अर्थात् मनुष्यो! संसारमें प्रसन्न और यशस्वी रहनेके लिये कर्जदार मत बनो। ऐसे काम मत करो जिससे ऋण लेना पड़े।

सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम॥

(अथर्ववेद ६। ११७। ३)

अर्थात् जो ऋणमुक्त है, उसीकी उन्नति होती है। ऋणग्रस्त व्यक्ति दिन-दिन घुलता जाता है।

धनका मद आसुरी माया है!

मूर्ख, अल्पज्ञ और अभिमानी पापियोंके हाथमें इकट्ठा हो जानेसे धन पतनका कारण बन जाता है। उधरसे सावधान रहना चाहिये।

लक्ष्मीजीको कुछ दिनोंके लिये असुरोंने अपने अधिकारमें रखा था। इसलिये धनपर आसुरी छाप है। दुष्ट और अपात्रोंके हाथोंमें इकट्ठा होकर धन आसुरी कार्योंमें लगता है और विकृत हो जाता है। बिलासी, काम-लोलुप, अविवेकी पुरुष धनके द्वारा अपवित्र, गंदे और अधार्मिक कार्य करते हैं, जो सर्वथा त्याज्य हैं। लक्ष्मीजी इन कार्योंसे अप्रसन्न होती हैं।

मूर्ख कुकर्मी व्यक्तियोंके पास आकर इसका दुरुपयोग कैसे किया जाता है, इसका उल्लेख 'कादम्बरी' में इस प्रकार किया गया है। इनसे सदा सावधान रहना और बचना चाहिये—

यथायथा चेयं चपला दीप्यते तथातथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। अनया····कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति। एतेषां प्रक्षाल्यते····दाक्षिण्यम्, हृदयम् मलिनीक्रियते, ·····अपह्रियते, सत्यवादिता उत्सार्यन्ते गुणाश्च। केचित्सम्पद्भिः प्रलोभ्यमाना····रागावेशेन बाध्यमानाः,····· विह्वलतामुपयान्ति। आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति।

अर्थात् कुसंस्कारी पापी और विलासी पुरुषोंके पास ज्यों-ज्यों धन बढ़ता है, त्यों-त्यों वह अधार्मिक, गंदे और दूषित कार्योंमें लगता है। वह कुविचारोंको उत्पन्न करता है जैसे दीपककी लौ केवल काली-काली कालिख ही उगलती है।

इसके किसी प्रकार अभाग्यवश पकड़ लिये जानेपर (अर्थात् लक्ष्मीजीके बुरे प्रभाव पड़ जानेपर) राजा तक बेसुध हो जाते हैं और मूर्खताओं तथा कुकर्मोंके निवासस्थान बन जाते हैं। उनकी उदारता धुल जाती है, हृदय मलिन हो जाता है, सत्यवादिता दूर हो जाती है और सद्गुण भाग जाते हैं।

कुछ लोग रुपयेके लालचमें पड़कर विकारों (वासनाओं, कुविचारों, हिंसादि क्रूर कर्मों, व्यभिचारकी दूषित योजनाओं)-के आक्रमणसे विवश होकर बेसुध हो जाते हैं। वे मरणासन्न लोगोंके समान अपने मित्रोंको नहीं पहचानते।

इस प्रकार धनकी त्रुटियोंसे सदा सतर्क रहना चाहिये। आगे कहा गया है—

मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, ·····नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्।···जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धजनोपदेशम्। आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने। सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति,·····तस्मै ददति,·····तस्य वचनं शृण्वन्ति,·····तं बहु मन्यन्ते, योऽहर्निशमनवरतमुपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्तव्यः स्तौति यो वा माहात्म्यमुद्भावयति।

अर्थात् कुसंस्कारी और कुविचारी धनी लोग झूठे बड़प्पनके घमंडमें भरकर देवताओंको नमस्कार नहीं करते।

जिन्हें प्रणाम करना चाहिये, उन्हें प्रणाम नहीं करते और बड़ोंको देखकर उनके सम्मानके लिये नहीं उठते।

विद्वान् वृद्धोंके उपदेशको समझते हैं कि बुढ़ापेकी निर्बलताके कारण बक-झक कर रहे हैं।

मन्त्रीके उपदेशसे अप्रसन्न होते हैं और समझते हैं कि यह अपनी बुद्धिकी हार है।

वे धनके मदमें इतने चूर रहते हैं कि भलाईकी बात कहनेवालेपर भी क्रोध करते हैं।

जो रात-दिन हाथ जोड़े रहते और झूठी प्रशंसा करते हैं और अपने कर्तव्य छोड़कर उनकी इष्टदेवताके समान स्तुति करते हैं या जो उनके बड़प्पनकी घोषणा करते हैं, वे उन्हींकी बात सुनते हैं, उन्हींका आदर करते हैं और उन्हींको अपने साथ रखते हैं।

उपर्युक्त सभी दुर्गुणोंमें लिप्त रहनेसे माता लक्ष्मीका अपमान होता है। हमें चाहिये कि हम इन दुर्गुणोंसे सदा-सर्वदा सावधान रहें। हमारे धनसे कोई ऐसा दुष्कर्म नहीं होना चाहिये, जिससे माता लक्ष्मी अपमानित हों।

लीला-चिन्तन

श्रीकृष्णलीला-चिन्तन —

दैनिक वत्सचारण-लीलाका वर्णन

अब तो श्रीकृष्णचन्द्र प्रतिदिन ही वत्सचारण करने जाते हैं। उनके महामरकतश्यामल सुकुमार श्रीअङ्गोंके अन्तरालसे प्रतिदिन ही एक अभिनव ओजकी धारा प्रस्फुटित होती है, दिन-पर-दिन वयसोचित मेधाका भी सुन्दर विकास होता जा रहा है, मनके उल्लासकी तो सीमा ही नहीं रही है और जब इस अपरिसीम उल्लासकी लहरियाँ वत्सचारणलीलाको सिक्त करने लगती हैं, उल्लासके आवेशमें यशोदाके नीलसुन्दर गोवत्सोंसे आवृत होकर अपनी परम रमणीय बाल्य-भङ्गिमाओंका प्रकाश करने लगते हैं, उस समय वृन्दाकाननके चर-अचर, स्थावर-जंगम समस्त अधिवासियोंकी दशा देखने ही योग्य होती है। सभी एक साथ ही किसी अनिर्वचनीय परमानन्दसिन्धुके अतल-तलमें समा जाते हैं। ऊपर आकाशमें सुर-समुदाय आनन्द-मूर्च्छित हो जाता है; उनकी चिरसङ्गिनी सुरवनिताएँ आनन्दविवश होकर बाह्यचेतनाशून्य हो जाती हैं; अमरविमान नीचेकी ओर ढुलककर गिरने लग जाते हैं, कदाचित् श्रीकृष्णकी अचिन्त्यलीलामहाशक्ति सबका नियन्त्रण न करती होती, विशुद्ध सख्यरसभावित गोपशिशुओंके साथ श्रीकृष्णचन्द्रके इस निराविल आनन्द-विहारमें व्याघात न हो जाय—इस उद्देश्यसे लीलाशक्ति अपने अदृश्य अञ्चलकी छोरपर इन विमान-पंक्तियोंको थाम न लेती तो सभी धरातलका स्पर्श करते होते। इधर पुरवासी—इनका तो कहना ही क्या है; निर्निमेष नयन, स्पन्दनहीन अवयव, जो जहाँ जैसे अवस्थित है, वह वहाँ वैसे ही रह जाता है। सबके प्राण रुद्ध हैं, बस वहाँ, उसी स्थलपर—जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र हैं, अग्रज बलराम हैं, श्यामसुन्दरके सहचर गोपशिशु हैं। व्रजदम्पतिकी समस्त वृत्तियाँ भी सिमटकर आ जाती हैं—यहीं अपने इस अनोखे वत्सपालके सस्मित मुखकमलपर, वे भी केवल इतना ही देख पाती हैं—उनके नीलमणि राम एवं गोपबालकोंसे परिवृत रहकर गोवत्सोंके साथ विविध विचित्र क्रीड़ामें संलग्न हैं और यह देख-देखकर नन्दरायके, नन्दरानीके प्रत्येक रोमसे आनन्दनिर्झर झरने लग जाता है तथा व्रजकी धराका आनन्दोच्छ्वास भी प्रत्यक्ष हो जाता है। न जाने कितनी बार पावसकी श्याम घटाएँ उसके वक्षःस्थलका अभिषेक कर जाती थीं, पर फिर भी ग्रीष्म आता और उसकी मुखश्री झुलस जाती; किंतु अब, जबसे नवजलधरसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र व्रजमें आये हैं, तबसे धराकी हरीतिमाका कभी ह्रास नहीं हुआ। तबसे प्रतिदिन ही व्रजकी धरापर कृष्णमेघकी स्निग्ध धारा प्रवाहित होती है, श्यामसुन्दरकी स्निग्ध अमल अङ्गकान्तिसे धरा नित्य श्यामलित रहती है और इस समय वत्सचारण करते हुए, गोशावकोंके मध्यमें विविध क्रीडा करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रकी अङ्गच्छटा तो सर्वथा अप्रतिम हो जाती है, धराका अणु-अणु इस छटाकी छायासे श्याममय हो जाता है, कण-कणमें नव-नव सुकोमलतम तृणाङ्कुर उदय हो जाते हैं, धराका आन्तरिक आह्लाद व्यक्त हो जाता है—इस प्रकार समस्त व्रजपुरको सुखसमुद्रमें निमग्न करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रकी वत्सचारण-लीला जब कुछ दिन चलती रहती है और वे इस कार्यके लिये पुरवासियोंकी दृष्टिमें सर्वथा कुशल, परम सुदक्ष सिद्ध होते हैं, तब श्रीकृष्णचन्द्रका उत्साह और भी बढ़ता है। अबतक व्रजेश्वरने प्रासादसंलग्न लघु गोष्ठके गोवत्सोंका ही भार श्रीकृष्णचन्द्रको सौंपा है; उसके भी अपरिमित असंख्य गोवत्स अवश्य हैं, पर बृहत् गोष्ठके गोवत्सोंको सम्मिलित किये बिना श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णरूपसे वत्सपाल जो नहीं हुए। अतएव श्रीकृष्णचन्द्र जनक-जननीके समक्ष, पुरवासियोंके समक्ष, अपनी योग्यताकी परीक्षा देकर उसमें पूर्णरूपसे सफल होकर, सबकी सम्मति पाकर अब बृहत् गोष्ठके भी समस्त गोवत्सोंको चरानेके लिये अतिशय उत्कण्ठित हो उठते हैं—

एवमहरहरहतविक्रमः क्रमसमेधमानसमेधमानसोल्लसतया तया वत्सचारणखेलया खेलयारूढमनसः प्रसृमरानमराननवरतवरतनुसहितान् स हि तान् प्रमोदयन् मोदयन्नपि व्रजवासिनः सह सहचरैर्बलभद्रेण च भद्रेण चरितवैचित्र्येण जननीजनकयोरानन्दं मुहुस्तन्वानस्तन्वा नवघनघटाश्यामलयाऽमलया

व्रजभुवं च श्यामलयन् यदि तस्यामेव लीलायां कुशलो बभूव तदा यावन्तो वत्सास्तावतामेव चारणाय पर्युत्सुक आसीत्। (श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः ७। ९)

व्रजराजकी अनुमति मिलनेमें अब विलम्ब ही क्या था; श्रीकृष्णचन्द्र समस्त गोवत्सोंके अधिनायक बन गये और त्रिभुवनजनपावनी जननी यशोदाकी प्रातश्चर्या यह बनी—किरणमालीकी स्वर्णिम किरणें व्रजपुरको रञ्जित करने आतीं, उससे पूर्व ही मैया अपने नीलमणिके शयनपर्यङ्कपर पुनः आ विराजतीं। व्रजराजमहिषी परिचित हैं अपने समस्त पुरवासियोंके स्वभावसे। उनके नीलमणिका दर्शन पानेके लिये गोपसुन्दरियोंके प्राणोंमें कितनी आतुरता है, व्रजरानीसे अब छिपा नहीं रहा है। निशाका अवसान होते ही गोपसुन्दरियाँ कोई-न-कोई बहाना लेकर आने लगती हैं और तबसे रात्रि आरम्भ होनेतक—जबतक श्रीकृष्णचन्द्र नन्दभवनमें विराज रहे हैं, तबतक उनका क्रम नहीं टूटता। विशाल व्रजपुर है, असंख्य गोपसुन्दरियाँ हैं और बहानोंका ही क्या अभाव है। कोई प्रातःकाल ही राम-श्यामके लिये निमन्त्रण लेकर आती है, व्रजरानी स्वीकार करें या न करें, कोई-न-कोई प्रतिदिन प्रस्ताव लायेगी ही—

जसोदा एक बोल जो पाऊँ।
राम कृष्ण दोउ तुम्हरे सुत कौं सखन समेत जिमाऊँ॥
जो तुम नंदराय सौं सकुचौ, तौ हौं उन्हें सुनाऊँ।
जो पै आज्ञा देहु कृपा करि, भोजन-ठाठ बनाऊँ॥

आजसे नहीं, प्रसूतिगृहमें थीं तबसे व्रजरानी देख रही हैं—गोपसुन्दरियोंके प्राण उनके नीलमणिमें ही समाये रहते हैं और वे घूम-फिरकर नन्दभवनकी ही परिक्रमा करती रहती हैं। नीलमणि जब पालने झूलने लगे, गोपसुन्दरियोंके तालबन्धपर नृत्य करने लगे, उस समय गोपसुन्दरियाँ आतीं एवं व्रजेश्वरीके चरणोंमें अपने आकुल प्राणोंकी अभिलाषा निवेदन करतीं—

यह नित नेम जसोदा जु मेरें तिहारौ लाल लड़ावन कौ।
प्रात समय उठ पलना झुलाऊँ, सकट-भँजन-जस गावन कौ॥
नाचत कृष्ण, नचावत गोपी, कर कठताल बजावन कौ।
आसकरन प्रभु मोहन नागर निरखि बदन सचु पावन कौ॥

—यह सुनकर व्रजरानीके नेत्र छलक उठते, 'बहिनो! नीलमणि तो तुम सबोंका ही है' कहकर उनकी गोदमें वे नीलमणिको रख देतीं और उनका मनोरथ पूर्ण होता। मैया यहाँकी रीतिसे परिचित हैं, उन्होंने देख लिया है, जो एक बार नन्दभवनमें आया है, उसने अपने मन, प्राण, सब कुछ नीलमणिको समर्पित कर दिये हैं—

ब्रज की रीति अनोखी री माई।
जो कोउ नंदभवन में आवत, ताकौ मन हरि लेत कन्हाई॥

न जाने कितनी बार संध्या-समय जननी यशोदाके भवनमें गोपसुन्दरियाँ आयी हैं अपना दीप प्रज्वालन करने, मानो उनके घर दीप प्रज्वलित करनेके साधन नहीं हों। इतना ही नहीं, दीप जलाकर वे बाहर गयी हैं और अपने मुखश्वाससे ही उस दीपको निर्वापितकर पुनः नन्दभवनमें लौट आयी हैं। जैसे हो, जिस मिससे हो, उनके नेत्रोंको नीलमणिके दर्शन होते रहें—इतना ही उन्हें अभिप्रेत है। नीलमणि उनके पलककी ओट हुए कि उनके प्राण हाहाकार कर उठते हैं—

घर नंद महर कें मिस-ही-मिस आवैं गोकुल की नारि।
सुंदर बदन बिन देखे कल न परत, भूल्यौ धाम-काम आछौ बदन निहारि।
दीपक लै चली बारि, बाट में बड़ै कर डारि, फिरि आवै छबि सो बयार देत नारि।
नंददास नंदलाल सौं लागे नयन, पलक की ओट मानौं बीते जुग चारि।

और न सही, नन्दसदनकी भित्तियोंपर, स्तम्भोंपर, गवाक्षमालाओंपर कितने सुन्दर मनोहारी चित्र अङ्कित हैं, उनकी शोभा देखनेके बहाने ही गोपसुन्दरियाँ एकत्र खड़ी रहती हैं। वे चित्रोंकी प्रशंसा करती हैं, पर नेत्र झुके रहते हैं भोजन करते हुए नन्दनन्दनकी ओर—

चित्र सराहत चितवत मुरि मुरि गोपी बहुत सयानी।

किसीको ब्राह्ममुहूर्तमें ही भ्रम हो जाता है—श्रीकृष्णचन्द्रकी वंशी बज रही है। वे जाग उठे हैं, तभी तो वंशी बजी है! और वह दौड़ पड़ती है नन्दप्राङ्गणकी ओर! वहाँ आकर नीलमणिको सोये सुनकर, वस्तुस्थिति व्रजेश्वरीको समझा देती है, उनसे अनुनय-विनय करने लग जाती है—

मैं जान्यौ, जागे जु कन्हाई, तातैं जसुमति! तेरे घर आई।
मेरे पिछवारें वैसेई सुरन सौं तिनहूँ मधुरी मुरलि बजाई।
जनम सुफल करि, बिनती चित धरि, अपने कान्ह किन देहु जगाई॥

और अब तो—जबसे वत्सचारण आरम्भ हुआ है—वहाँ व्रजपुरकी, वृन्दावनकी आभीर-सुन्दरियोंका प्रथम कृत्य बन गया है नन्दभवनका दर्शन!—

प्रात समय उठ चलहु नंदगृह, बलराम-कृष्ण-मुख देखिये।
आनँद में दिन जाय, सखी री! जनम सुफल कर लेखिये॥

× × ×

राम-कृष्ण पुनि बनहिं जायँगे चरन-कमल-रज लीजिये॥

व्रजरानीको यह सब ज्ञात है। पुरसुन्दरियोंका नीलमणिके प्रति यह प्रेमिल भाव देखकर उनका अन्तःकरण क्षण-क्षणमें आर्द्र हो उठता है। वे सबके प्रति सदय रहती हैं, यथायोग्य सबके मनोरथ पूर्ण हों—ऐसा अवसर वे प्रदान कर ही देती हैं। इसीलिये अब वे सूर्योदयसे पहले—गोपसुन्दरियोंकी भीड़ होनेसे पूर्व ही अपने नीलमणिका संलालन करती हैं। अन्यथा गोपसुन्दरियोंके आ जानेपर फिर नीलमणि शृङ्गार धराने बैठें और शान्तिसे शृङ्गार धरा लें, यह सम्भव जो नहीं। अस्तु, जननी अपने लड़ैते लालको जगाती हैं। फिर मुखप्रक्षालन, गात्रपरिमार्जन, अभ्यञ्जन, उद्वर्तन, स्नान, अनुलेपन आदि क्रियाएँ सम्पन्नकर आभूषण धारण कराती हैं। अनेक कौशलसे श्रीकृष्णचन्द्रको भोजन कराती हैं। भोजनके अनन्तर व्रजरानीका वात्सल्य उमड़ता है, अपने नीलसुन्दरको भुजपाशमें बाँध लेती हैं, शयनपर्यङ्कपर स्वयं पौढ़ जाती हैं। नीलमणि भी जननीके वात्सल्यसे आप्यायित होकर क्षणभरके लिये अपने नेत्र निमीलित कर लेते हैं, मानो वे जननीका मनोरथ पूर्ण करते हुए सचमुच निद्रित हो गये हों। जब इतना हो लेता है, तब श्रीकृष्णचन्द्र वनकी ओर चलते हैं। जननी भी अनुगमन करती हैं, रह-रहकर जननी अञ्चलसे मुख पोंछकर आदेश करती हैं—'बस, यहींतक, यहींसे, इस स्थानसे ही लौट आना, भला!' और तब श्रीकृष्णचन्द्र मधुमिश्रित कण्ठसे, मृदुल मधुर आश्वासनवचनोंसे जननीको परितृप्तकर उन्हें घर लौटा देते हैं। यह बनी है व्रजमहारानीकी दैनन्दिनी प्रातश्चर्या!—

तथा सति प्रतिदिवसमनुदित एव किरणमालिनि त्रिभुवनजनपावनजनन्या जनन्या जनन्यायकोविदया दयालुहृदयया स्वयमेव शयनोत्थापनमुखधावनपरिमार्जनाऽभ्यञ्जनोद्वर्तनस्नपनानुलेपनालंकरणकौशलानन्तरमाशयित्वा शाययित्वा च क्षणमनुगतोऽर्धपथपर्यन्तमित एव निवर्त्यतामिति प्रतिमुहुरतिवत्सलां मातरमेनामतिमृदुलमधुरतरेण वचसा निवर्त्य।

किंतु यह सब होकर भी बलराम एवं श्रीकृष्णचन्द्र व्रजकी सीमासे दूर गोवत्स चराने नहीं जा पाते। इसमें जननीका शासन अभीतक ज्यों-का-त्यों बना है। व्रजपुरके निकट रहकर ही वेणु, वेत्र, शृङ्ग, कन्दुक प्रभृति अनेक प्रकारकी क्रीडा-सामग्री लिये सुबल, श्रीदाम आदि अगणित गोपबालकोंके साथ मिलकर दोनों वत्सचारण करते हैं—

अविदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः।
चारयामासतुर्वत्सान् नानाक्रीडापरिच्छदौ॥

(श्रीमद्भा० १०। ११। ३८)

अवश्य ही उनकी यथेच्छ क्रीडाके लिये अब कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा। समीपमें व्रजदम्पति नहीं, वयस्क गोप-गोपी नहीं, परिचारिकाएँ भी नहीं; क्योंकि कुछ दिन सकुशल वत्सचारण होते देखकर सबके मनमें अनिष्टाशंकाएँ शिथिल पड़ गयीं। अतः राम-श्यामको निर्बाध क्रीडाका अवसर प्राप्त हो गया। कभी तो उनकी वंशी बजती। कभी दोनों भाई एवं गोपशिशु—सभी मिलकर बहुत-से बिल्व एवं आमलकी-फल एकत्र करते तथा उन्हें रज्जुनिर्मित क्षेपणयन्त्रके द्वारा ऊँचे आकाशमें, उत्तुङ्ग वृक्षोंकी शाखाओंपर फेंकते; होड़ लगती—कौन कितना ऊँचा, कितनी दूर निक्षेप कर सकता है। कभी एक विशाल मण्डलकी रचना होती तथा मण्डलके मध्यमें खड़े होकर राम-श्याम अपने मञ्जीरमण्डित चरणोंसे सुमधुर नृत्य करते। कभी दो विचित्र मण्डलियाँ निर्मित होतीं—एक ओर समस्त गोपशिशु होते और दूसरी ओर राम-श्याम। गोपबालक कम्बलसे, वस्त्रोंसे अपने अङ्गोंको ढक लेते, दोनों हाथ पृथ्वीपर टेक देते, ग्रीवा ऊँची करके सिरको भी ढक लेते, केवल नेत्रोंके समीप कुछ स्थल छोड़कर शेष अङ्ग आवृत हो जाता और यथासम्भव शृङ्ग आदिके आकार बनाकर कृत्रिम गो-वृषभ बनकर, सजकर एक पंक्तिमें खड़े हो जाते तथा उनके ठीक सामने राम-श्याम भी ऐसी ही साजसे सजकर, कृत्रिम वृषभ बनकर गरजने लगते। फिर परस्पर युद्ध आरम्भ होता। इस युद्धमें विजय तो प्रायः गोपशिशुओंकी ही होती; पर हारनेपर भी राम-श्यामके आनन्दका पार नहीं रहता तथा कभी-कभी इन सब क्रीडाओंसे श्रान्त होकर, इन्हें परित्याग कर राम-श्याम दोनों भाई किसी सरोवर-तटपर, किसी वृक्षकी सुशीतल छायामें जा विराजते। उनके विराजनेकी देर थी, फिर तो हंस-मयूरादि विविध विहंगम आकर उन्हें घेर लेते, अपनी ग्रीवा उठाकर, पंख प्रसारित कर मधुर कलरव आरम्भ करते। अब क्या चाहिये, श्रीकृष्णचन्द्रको क्रीडाकी एक वस्तु और मिल गयी। वे भी उन विहंगमोंके कल-कूजनका अनुकरण करने लग जाते। अपना मुख फुलाकर, संकुचितकर ठीक उनकी भाँति ही स्वर निकालते तथा सखामण्डली हँस-हँसकर लोट-पोट होने लगती। राम-

श्यामकी इन विविध क्रीडाओंको देखकर कौन कह सकता है कि ये अखिलब्रह्माण्डपति हैं, प्रकृतिसे सर्वथा परेकी वस्तु हैं तथा ऐसे अपने स्वरूपमें नित्य स्थित रहते हुए ही ये ठीक ऐसी लीला कर रहे हैं, मानो सर्वथा प्राकृत शिशु हों। नराकृति परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्रका बाल्यविहार, उनका यह प्राकृतानुकरण, प्राकृत मन-बुद्धिके द्वारा हृदयंगम कर लेना सम्भव जो नहीं! जो हो, नित्य अप्राकृतका यह प्राकृतानुकरण है अत्यन्त मधुर!—

क्वचिद् वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित्।
क्वचित् पादैः किङ्किणीभिः क्वचित् कृत्रिमगोवृषैः॥
वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम्।
अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा॥
(श्रीमद्भा० १०। ११। ३९-४०)

इस प्रकार विविध क्रीडाओंका रस लेते हुए, रसदान करते हुए राम-श्याम दोनों भाई एवं असंख्य गोपशिशु अपने तुमुल आनन्दकोलाहलसे व्रजको, वनको गुञ्जित करते रहते। इस आनन्दकोलाहलको दूरसे सुन-सुनकर ही व्रजरानी धैर्य धारण करतीं और जब मध्याह्न आने लगता, तब विविध खाद्य द्रव्योंकी छाक सजाकर परिचारिकाओंके द्वारा वनमें भेज देतीं। राम-श्याम छाक आरोगते—

सखनि संग हरि जेँवत छाक।
प्रेम सहित मैया दै पठाई, सबै बनाई है इक टाक॥
सुबल, सुदामा, श्रीदामा मिलि, सब सँग भोजन रुचि करि खात।
ग्वालनि कर तैं कौर छुड़ावत, मुख लैं मेलि सराहत जात॥
जो सुख कान्ह करत वृंदाबन, सो सुख नहीँ लोकहूँ सात।
सूर स्याम भक्तनि बस ऐसे ब्रह्म कहावत हैं नँद तात॥

जब छकहारी परिचारिकाएँ लौटने लगतीं, तब वयस्क गोपशिशुओंको आदेश दे जातीं—

'अरे! रे! शीघ्रमेवायं प्रागयनीयो व्रजधरणीशप्रणयिन्याः प्राणस्य प्राणः इति। (श्रीगोपालचम्पूः)

'अरे, ओ, सुनते हो, शीघ्र ही व्रजराजप्रणयिनी यशोदाके प्राणोंके प्राण इस नीलसुन्दरको घर लौटा ले जाना है।'

तबतक सचमुच दिन भी ढलने लगता। मुखमें पुष्प-तृणका ग्रास लिये गोवत्सोंको धीरे-धीरे चराते हुए श्रीकृष्णचन्द्र उन्हें व्रजकी ओर हाँक देते। पथमें भी उनकी क्रीड़ा होती ही रहती। कभी सुमधुर राग अलापते, कभी नृत्यका झंकार गूँज उठता, कभी हँस-हँसकर बालकोंको हँसाने लग जाते। न जाने उनके साथ मिलकर कितनी ऊधम करते, उनकी क्रीडाकी इति जो नहीं। ऊपरसे अमरवृन्द राशि-राशि कुसुमोंकी वर्षा करते रहते, पथ दिव्य कुसुमोंसे आस्तृत हो जाता और उसपर मन्द-मन्थर गतिसे चरण-निक्षेप करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र अपने गृहकी ओर चलते रहते—

सपुष्पतृणमुखान् वत्सान् व्रजाभिमुखान् विधाय शनैश्चारयन् गायन् नृत्यन् हसन् क्रीडन् ××× सुमनोभिश्च सुमनोभिर्वृष्यमाणः स्वगृहाय वर्त्म जगृहे। (श्रीगोपालचम्पूः)

यह है श्रीकृष्णचन्द्रके प्रतिदिनके वत्सचारणका एक अत्यन्त संक्षिप्त क्रम। प्रतिदिन ही वे प्रातःकाल वनमें जाते हैं और सायंकाल लौट आते हैं। आज भी गये थे और लौट रहे हैं, पर आज गये थे एक विशेष अभिसंधि लेकर। वत्सासुर-उद्धारकी भूमिका जो उन्हें प्रस्तुत करनी है। आज वनमें श्रीकृष्णचन्द्र क्रीडामें समय न व्यतीत कर, सर्वथा वत्ससंलालनमें ही संलग्न रहे। जिस आन्तरिक उल्लाससे उन्होंने आज गोवत्सोंकी परिचर्या की है, वह तो अभूतपूर्व ही हुई है। व्रजपुरवासियोंने यह संलालन देखा नहीं, उन्होंने कतिपय वयस्क गोपबालकोंके मुखसे सुन पाया है। पर इसे देखा है कंसके असुर गुप्तचरोंने। उन सबने श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रत्येक प्रेमिल चेष्टाके दर्शन किये। गोपबालकोंकी दृष्टि उन गुप्तचरोंपर नहीं गयी। अन्यथा उनका आनन्दकोलाहल शान्त हो जाता, उनके निर्बाध सुखमें व्याघात होता। इसीलिये योगमायाने वहाँ, उस दिशाकी ओर एक झीनी चादर डाल दी थी। गोपशिशु उस ओर देखकर भी गुप्तचरोंको इसीलिये नहीं देख पाये, उनकी गन्ध तक उन्हें नहीं मिली। वे तो वैसे ही परमानन्दमें निमग्न अपने प्राणसखा श्रीकृष्णचन्द्रके साथ व्रजमें लौट रहे हैं तथा आज उनको एक और विशेष कौतूहलकी वस्तु प्राप्त हो गयी है। मधुमंगलके नेत्रोंमें एक दिव्य शक्तिका उन्मेष हो गया है; आज दिनभर उसने आकाशमें क्या-क्या देखा है, वह सबको सुनाता रहा है। बालक पूरा समझ नहीं पाते, कुछ देख भी नहीं पाते, पर सुन रहे हैं बड़ी उत्सुकतासे। हाँ, उनके कर्णरन्ध्रोंमें सुरसुन्दरियोंके कोकिल कण्ठसे निस्सृत श्रीकृष्णस्तुति अवश्य प्रविष्ट हो रही है—

कमला-नायक, वैकुँठ-दायक, दुख-सुख जिन कैं हाथ।
काँध कमरिया, हाथ लकुटिया, बिहरत बछरनि साथ॥

परमात्माको प्रेम दीजिये

(श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

मानवकी रचना—

भगवान्‌के परम भक्त एक महान् संतको एक साधकने 'संसार और मानवकी रचना' के विषयमें कुछ प्रश्न पूछे। साधकके प्रश्न और संतके उत्तर इस प्रकार थे—

प्रश्न—महाराज! भगवान्‌ने इस संसारको क्यों बनाया?

उत्तर—संसार बनाया है तुम्हारे लिये।

प्रश्न—मुझे क्यों बनाया, मेरी रचना क्यों की?

उत्तर—तुम्हें बनाया है—उन्होंने अपने लिये। भैया! प्रभुने तुम्हारी रचना अपने लिये और अपनेमेंसे की है।

साधक संतकी भाषा नहीं समझ पाये। उन्होंने स्पष्टीकरणकी प्रार्थना की। संतका स्पष्टीकरण इस प्रकार था—

संसार बनाया है तुम्हारे लिये—

'जो जन्मता है, बढ़ता है, बदलता है, बिगड़ता है, अन्तमें मरता है; जिसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, जिसमें प्रतिपल परिवर्तन हो रहा है, उसे 'संसार' कहते हैं। तुम्हारा 'शरीर' संसारका एक नमूना है। तुम अपने शरीरको देखो। शरीरका एक दिन जन्म हुआ, फिर शरीर बढ़ने लगा, धीरे-धीरे शरीर बदल गया, बाल सफेद हो गये, आँखें कमजोर हो गयीं, कानोंसे कम सुनायी देने लगा, जोड़ोंमें दर्द रहने लगा, कमजोरी आ गयी। इस प्रकार शरीर बिगड़ने लगा। बिगड़ते-बिगड़ते यह शरीर एक दिन मर जायगा। आँखोंसे दिखायी देनेवाला यह सम्पूर्ण संसार इसी प्रकारका है। तुम्हारे परिवारके सदस्य, तुम्हारी सम्पत्ति, यह समाज, सब सजीव प्राणी—वृक्ष-पेड़-पौधे और समस्त निर्जीव पदार्थ जड़ प्रकृति आदि संसारमें ही शामिल हैं। प्रभुने इस विशाल संसारकी रचना तुम्हारे लिये की है। 'तुम्हारे लिये' का आशय है—'तुम्हारे शरीरके लिये'। प्रभुने 'तुम्हें' जो शरीर दिया है, उस शरीरको तुम कुशलतापूर्वक रख सको—बस केवल इसीलिये भगवान्‌ने संसारकी समस्त वस्तुओं, पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, फल-फूलों, ईंट-पत्थरों, विभिन्न प्रकारकी धातुओं आदिका निर्माण किया है। प्रभु कैसा उदार पिता है, जिसने अपनी संतानके सुख-सुविधाके लिये असंख्य प्रकारकी वस्तुओंका निर्माण किया है। विचार करनेपर तुम्हें अनुभव होगा कि मनुष्य इस संसारकी जितनी वस्तुओंका उपभोग करता है, उतनी वस्तुओंका उपभोग कोई भी दूसरा प्राणी नहीं करता। समस्त पशु-पक्षी एवं सजीव प्राणी जैसे जन्मते हैं, मृत्युपर्यन्त वैसे ही रहते हैं। हवा, जल तथा भोजनको छोड़कर वे संसारकी किसी भी वस्तुका उपभोग नहीं करते।'

—इतना कहते हुए संतका हृदय प्रभु-कृपाके अलौकिक आनन्दसे भर गया, आनन्दके आँसू बहने लगे। साधक भी आनन्द-विभोर हो गये।

तुम्हें बनाया है उन्होंने अपने लिये—

संतने इस 'गूढ सत्य' को इस प्रकार स्पष्ट किया—

(१) तुम 'शरीर' नहीं हो—'बेटा! प्रभुने भाई-बहनोंको विवेक दिया है। विवेकके प्रकाशमें गम्भीरतासे विचार करनेपर तुम्हें साफ-साफ अनुभव होगा कि तुम 'शरीर' नहीं हो, 'शरीर' तुम्हारा नहीं है, तुम अलग हो, शरीर अलग है। जिसे तुम मेरा सिर, मेरे कान, मेरे हाथ, मेरे पैर, मेरी आँखें कहते हो, जिसके परिवर्तनको तुमने देखा है; जिसके बचपन तथा यौवन और बुढ़ापेको तुमने देखा, जिसके सम्मान और अपमानको तुमने देखा, जिसकी निरोगता तथा रोगावस्थाको तुमने देखा, वह शरीर अलग है, तुम अलग हो। देखनेवाला सदैव उससे अलग होता है जिसे वह देखता है। तुम 'शरीर'को देखनेवाले हो; जिसे तुम 'मेरा' कहते हो; वह 'मैं' नहीं हो सकता। शरीर तो तुम्हें मिला है, किसीने दिया है, सदैव तुम्हारे पास नहीं रहेगा, देनेवाला इसे वापस ले लेगा। तुम सदैव यही कहते हो—मेरा मुँह, मेरे हाथ, मेरा पेट, मेरा शरीर। ऐसा नहीं कहते—मैं मुँह, मैं हाथ, मैं पेट, मैं शरीर। तुम कौन हो—इसकी जानकारी तुम्हें हो अथवा न हो; पर तुम इस सत्यका तो अनुभव कर सकते हो कि मैं 'शरीर' नहीं हूँ—शरीर मुझसे अलग है। जब विवेकके प्रकाशमें विचार करके तुम यह अनुभव कर लोगे कि मैं 'शरीर' नहीं हूँ, तब तुम्हें स्वतः यह अनुभव हो जायगा कि मैं 'प्रभु'का अंश हूँ, 'मेरा प्रभुसे ही नित्य सम्बन्ध है, जातीय सम्बन्ध है, आत्मीय सम्बन्ध है।' संत-महात्माओंने इस सत्यकी अनुभूति की है। श्रीगोस्वामीजी महाराजने कहा है—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥

(रा०च०मा० ७। ११७। २)

इसका आशय इस प्रकार है—'इस देहमें यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है।'

बेटा! प्रभु-प्रदत्त विश्वासके आधारपर दृढ़तापूर्वक इस सत्यको स्वीकार करो कि 'मैं प्रभुका अंश हूँ' और प्रभु-प्रदत्त विवेकके प्रकाशमें ज्ञानपूर्वक यह अनुभव करो कि 'मैं शरीर नहीं हूँ।'

(२) तुम 'मानव' हो—'मानव' की व्याख्या करते हुए संतने स्पष्ट किया, 'प्रभुने सभी भाई-बहनोंको 'शरीर' दिया है। 'शरीर' के साथ-साथ सभीको तीन अलौकिक शक्तियाँ भी दी हैं—बल, विवेक और विश्वास। प्रभुने इन शक्तियोंके सदुपयोग करनेकी स्वाधीनता भी दी है। जो भाई-बहन इन तीनों शक्तियोंका सदुपयोग करते हैं, वे 'मानव' हैं; जो इन शक्तियोंका दुरुपयोग करते हैं,वे 'अमानव' हैं।'

प्रभु-प्रदत्त बलके द्वारा शरीर, परिवारजन, समाज, संसार तथा भगवान्‌की सेवा करना, बुराईका उत्तर भलाईसे देकर प्रभुकी विश्व-वाटिकामें सेवाका संचार करना बलका सदुपयोग है। प्रभु-प्रदत्त विवेकके प्रकाशमें शरीर तथा परिवारजनोंकी ममता और कामनासे मुक्त होकर, परम स्वाधीन हो जाना विवेकका सदुपयोग है। संत, ग्रन्थ एवं भक्त-वाणीसे सुने हुए प्रभुमें अविचल आस्था, श्रद्धा और विश्वास कर लेना प्रभु-प्रदत्त विश्वासका सदुपयोग है।

संसारके सीमित और दुःखमिश्रित सुखसे आकर्षित होकर, दूसरोंको दुःख देना, उन्हें हानि पहुँचाना—बलका दुरुपयोग है। मिले हुए शरीर, स्वजन और सम्पत्तिको मेरी मानना, मेरे लिये मानना, 'शरीर' को 'मैं' मानना और इस भूलसे इनकी ममता, कामना तथा अभिमानमें आबद्ध हो जाना विवेकका दुरुपयोग है। संत, ग्रन्थ एवं भक्त-वाणीसे सुने हुए प्रभुके अस्तित्व, महत्त्व तथा अपनत्वको स्वीकार न करना, प्रत्युत यह मानना कि सांसारिक वस्तुओं एवं व्यक्तियोंके संयोगसे मुझे कुछ मिलता है; मेरी आवश्यकता-पूर्ति होती है और इनके वियोगसे मेरा कुछ बिगड़ता है, मेरी आवश्यकता-पूर्तिकी शक्ति, स्वाधीनता तथा सामग्रीका वियोग हो जाता है—यह विश्वासका दुरुपयोग है। जो इन शक्तियोंका दुरुपयोग करते हैं, वे वास्तवमें नर-शरीर धारण करनेपर भी राक्षस हैं। श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामने अपने श्रीमुखसे यही बात कही है—

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥

(७। ३९)

इसका आशय इस प्रकार है—'जो दूसरोंसे द्रोह करते हैं और परायी स्त्री, पराये धन तथा परायी निन्दामें आसक्त रहते हैं, वे पामर और पापमय मनुष्य नर-शरीर धारण किये हुए राक्षस ही हैं।'

अमानव पशुओंसे भी नीचा है, इसलिये अमानवकी तुलना पशुओंसे करना पशुओंका अपमान है। मानव देवताओंसे भी बहुत-बहुत ऊँचा है, इसलिये मानवकी तुलना देवताओंसे करना मानवका घोर अपमान है।

संतने कहा—'मानवकी महानता तथा वीरताको देखो। जो संसार साफ-साफ दिखायी देता है, उसे वह यह कहकर अस्वीकार कर देता है कि वास्तवमें यह संसार है ही नहीं, संसार तो परिवर्तनका पुंज है, संसारकी सत्ता ही नहीं है। जो परमात्मा दिखायी नहीं देते हैं, उन्हें वह यह कहकर स्वीकार कर लेता है कि दिखायी न देनेपर भी प्रभु हैं—सबमें प्रभुकी ही सत्ता है, वे ही इस जगत्‌के रचयिता, संचालक और मालिक हैं, सब कुछ उनका है, उनका प्रतिकूल विधान भी परम हितकारी है, वे ही मेरे हैं। उन्हें अपना सब कुछ समर्पित करके वह सदैवके लिये निश्चिन्त, निर्भय, निडर, निर्मल, निर्विकार, निर्मम, निष्काम तथा निर्वैर हो जाता है।'

'बेटा, तुम मानव हो। तुम्हें जो शरीर मिला है, उसका नाम 'मानव' नहीं है। शरीरका निर्माण पाँच तत्त्वोंसे हुआ है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। शरीर जन्मने-मरनेवाला है। शरीरके अंदर हाड़-मांस, रक्त, मज्जा, नसें आदि पदार्थ भरे हैं। इसलिये भगवान् श्रीरामने शरीरको अत्यन्त अधम कहा है। श्रीरामचरितमानसमें प्रभुकी वाणी है—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

(४। ११। ४)

इसका आशय है—'पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पाँच तत्त्वोंसे यह अत्यन्त अधम शरीर रचा गया है।'

संतने कहा—'प्रभु-प्रदत्त शक्तियों—बल, विवेक और विश्वासके सदुपयोगकी स्वाधीनता मिली है; ये शक्तियाँ भौतिक शरीरमें नहीं हैं, ये शक्तियाँ तुम्हारेमें हैं। शरीरका महत्त्व है सीमित क्रियात्मक सेवामें। बेटा! तुम तो सभीको

सेवा कर सकते हो—स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण-शरीरकी, परिवारजनोंकी, समाजकी, संसारकी, अपने स्वयंकी और अखिल लोकमहेश्वर, आनन्दस्वरूप, जगदाधार, जगत्पति भगवान्‌की भी। विश्वास करो, प्रभुने तुम्हारा निर्माण 'अपने लिये', 'अपनी सेवा' के लिये किया है।

(३) **'अपने लिये' का आशय**—संतने कहा—'बेटा! परमात्मा सब प्रकारसे पूर्ण हैं, फिर भी उन्होंने अपनी लीलासे, अपनी इच्छासे, अपनी मौजसे अपनेमें एक 'अपूर्णता'-को रख लिया। परमात्मा सब प्रकारसे आप्तकाम हैं अर्थात् उनकी किसी भी प्रकारकी आवश्यकता नहीं है, फिर भी उन्होंने अपनी लीलासे अपनेमें अपनी एक 'आवश्यकता' को रख लिया। परमात्मा सर्वसामर्थ्यवान् हैं, वे सब कुछ कर सकते हैं, फिर भी वे अपनी उस 'अपूर्णता तथा आवश्यकता'-को पूरी करनेमें असमर्थ हैं। कितनी रहस्यपूर्ण है प्रभुकी लीला! कितने आश्चर्यकी बात है कि सर्वसामर्थ्यवान् होते हुए भी परमात्मा अपनी उस आवश्यकताकी पूर्ति नहीं कर पाते हैं। अपनी उस आवश्यकताकी पूर्ति करनेकी सामर्थ्य उन्होंने केवल मानवको दी है। हे मानव! तू कितना महान् है! हे मानव! तू अपनी महिमाको पहचान! सर्वसामर्थ्यवान् परमात्मा अपनी जिस आवश्यकताकी पूर्ति नहीं कर पाते हैं, उसी आवश्यकताकी पूर्ति करनेकी सामर्थ्य उन्होंने तुझे दी है। हे मानव! प्रभुकी आवश्यकताकी पूर्ति करके उन आनन्दस्वरूप प्रभुको दिव्य, चिन्मय, अलौकिक आनन्द प्रदान कर रे मानव!'—इतना कहते-कहते संत भाव-विभोर हो गये। साधकका हृदय भी आनन्दसे भर गया।

साधकने पूछा—'महाराज! प्रभुकी वह कौन-सी आवश्यकता है जिसे केवल मानव ही पूरी कर सकता है, अन्य कोई नहीं; प्रभु भी पूरी नहीं कर सकते?

संतने उत्तर दिया—उस आवश्यकताका नाम है—'मानव-हृदयका प्रेम'। मानव-हृदयका प्रेम ही प्रभुकी आवश्यकता है, मानव-हृदयका प्रेम ही प्रभुकी भूख है, मानव-हृदयका प्रेम ही प्रभुकी प्यास है। वे मानव-हृदयका प्रेम ही चाहते हैं। अपनी इस आवश्यकताकी पूर्तिके लिये ही उन्होंने 'अपनेमेंसे' अपने प्यारे 'मानव' का निर्माण किया है। बेटा! तुम मानव हो। तुम्हारी रचना प्रभुने अपनेमेंसे की है और 'अपने लिये' की है। अपनेमेंसे की है—इसका आशय यह है कि तुम प्रभुके ही अंश हो, तुम उदार हो, प्रभु परम उदार हैं; तुम स्वाधीन हो, प्रभु परम स्वाधीन हैं, तुम प्रेमी हो, प्रभु परम प्रेमके भंडार हैं। तुम्हारा स्वरूप है—उदारता, स्वाधीनता तथा प्रेम। स्मरण रहे, 'शरीर' का निर्माण पाँच भौतिक तत्त्वोंसे किया गया है और 'मानव' का निर्माण प्रभुने 'अपनेमेंसे' किया है—अलौकिक तत्त्वोंके द्वारा। उन अलौकिक तत्त्वोंका नाम है—उदारता, स्वाधीनता तथा प्रेम। उदार बननेके लिये प्रभुने मानवको 'बल' दिया है; स्वाधीन बननेके लिये उन्होंने मानवको 'विवेक' दिया है और प्रेमी बननेके लिये प्रभुने अपने प्यारे-प्यारे मानवको 'विश्वास' दिया है। साथ ही 'बल, विवेक तथा विश्वास' के सदुपयोग करनेकी स्वाधीनता भी दी है। स्वाधीनताका आशय यह है कि यदि मानव चाहे तो इन तीनों शक्तियोंका सदुपयोग कर सकता है और वह न चाहे तो उसकी मौज है। सदुपयोगका परिणाम है—मानव-जीवनकी शानदार सफलता; शान्ति, मुक्ति, भक्ति तथा प्रभुकी आवश्यकताकी पूर्ति। सदुपयोग न करनेका परिणाम है मानव-जीवनकी घोर असफलता तथा अपमान, अपने हाथोंसे अपनी हत्या-अशान्ति, दुःख, चिन्ता, निराशा, अभाव, तनाव, बन्धन और पराधीनता। भगवान् श्रीरामने अपने श्रीमुखसे यही कहा है—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥
(रा० च० मा० ७। ४४)

इसका आशय है—'जो मनुष्य ऐसा साधन पाकर भी भवसागरसे न तरा, वह कृतघ्न और मंद बुद्धि है और आत्महत्या करनेवालेकी गतिको प्राप्त होता है।'

'अपने लिये' का आशय है—अपनी आवश्यकताको पूरी करनेके लिये। बेटा! विश्वास करो, प्रभुने तुम्हारा निर्माण अपना दास बनानेके लिये नहीं किया है! उन्होंने तुम्हारी रचना की है—अपना प्रेमी बनानेके लिये। तुम्हारा प्रेम ही उनकी आवश्यकता है, उन्हें केवल प्रेम ही प्यारा है, प्रेमियोंका ही अनुभव है—

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥
(रा० च० मा० २। १३७। १)

इसका आशय है—'श्रीरामजीको केवल प्रेम ही प्यारा है, जो जाननेवाला हो, जानना चाहता हो, वह जान ले।'

बेटा! प्रभुकी आवश्यकताको पूरी करो, उन्हें प्रेम दो, उनके प्रेमी बनो। तुम्हारा जीवन धन्य हो जायगा, तुम्हारा मानव-जीवन सफल हो जायगा।

* * *

जीवन-रक्षक हैं पशु

(श्रीनिरंकारसिंहजी)

सदियोंसे भारतकी अर्थव्यवस्थाका आधार और जन-जीवनकी संस्कृतिका अङ्ग रहनेवाले पशुओंको मारकर उनका मांस बेचनेका व्यापार पिछले कुछ वर्षोंमें भयावह सीमातक पहुँच गया है। सरकारने भी विदेशी मुद्राको अर्जित करनेके लिये पशुओंके निर्यातकी एक बड़ी योजना बनायी है। इस योजनाके अन्तर्गत देशमें बूचड़खानोंके विस्तारका कार्यक्रम बनाया गया है। १९८९-९० में ११० करोड़ और १९९१-९२ में १९५ करोड़ रुपयेका मांस निर्यात हुआ था। अब यह लक्ष्य लगभग ५०० करोड़ रुपये (या इससे भी कुछ और अधिक) प्रतिवर्ष कर दिया गया है।

आजादीके समय भारतमें ३०० बूचड़खाने थे। आज देशमें करीब ३६,०३१ लाइसेंसी बूचड़खाने हैं। इनमें प्रतिदिन औसतन ६०,००० पशुओंको मौतके घाट उतार दिया जाता है। इसके अतिरिक्त अवैध ढंगसे चलनेवाले हजारों बूचड़खानोंमें कितने पशुओंका वध किया जाता है, इसका तो कोई हिसाब ही नहीं है। कुल मिलाकर यदि पशुओंका वध इसी गतिसे होता रहा तो आगामी आठ-दस वर्षोंमें पशुओंके अकालका खतरा पैदा हो जायगा। कुछ लोगोंकी आर्थिक महत्त्वाकांक्षाकी पूर्तिसे जो असली खतरा पैदा होगा उसकी तो भरपाई भी नहीं की जा सकती और वह खतरा पैदा होगा पशुधनकी कमीके कारण, पर्यावरणके संतुलन बिगड़नेसे तथा सांस्कृतिक परम्पराके समाप्त होनेसे।

भारत सरकारके कृषि-मन्त्रालय तथा सहकारिता-विभागकी वार्षिक रिपोर्ट (१९८९-९०)-के अनुसार 'सारे देशमें ३,००० से अधिक बूचड़खाने हैं, जिनमें अधिकांश जीर्ण-शीर्ण, अव्यवस्थित तथा स्वच्छताकी दृष्टिसे मानकके विपरीत हैं। इन बूचड़खानोंमें काम करनेवाले कर्मचारियोंका स्वास्थ्य भी खतरेमें है। इसके साथ ही इनका मांस खानेवालोंके स्वास्थ्यको भी सदैव खतरा बना रहता है। इन बूचड़खानोंके आस-पास रहनेवाली दस करोड़की आबादी भयंकर प्रदूषणकी समस्यासे ग्रसित है।' संयुक्त राष्ट्रसंघकी रिपोर्टके अनुसार अनेक प्रकारकी बड़ी बीमारियाँ बूचड़खानोंसे ही मनुष्योंके भीतर प्रवेश करती हैं। ये बीमारियाँ बूचड़खानोंकी गंदगी और रोगी पशुओंके माध्यमसे ही मनुष्योंमें प्रवेश करती हैं, क्योंकि विकृतियोंपर नियन्त्रण नहीं कर पानेके कई कारण हैं। इसीलिये इन कसाईखानोंके आधुनिकीकरणकी बात भी की जाती है।

देशके बूचड़खानोंमें वध किये जानेवाले बड़े पशुओंमें सबसे अधिक संख्या भैंसों और बैलोंकी ही होती है। अब तो ऊँटोंका भी वध किया जा रहा है। एक रिपोर्टके अनुसार सूअरोंका इतने बड़े पैमानेपर वध किया गया है कि उनकी कई देशी जातियाँ ही लुप्त हो गयी हैं। वध किये जानेवाले भेड़ों तथा बकरोंकी संख्या भी क्रमशः ३५ तथा ४० प्रतिशत है। लगभग १० करोड़ मेढक यूरोपके लोगोंके स्वादिष्ट भोजनके लिये मार दिये जाते हैं। कुछ कम्पनियाँ चोरी-छिपे गायों और हाथियोंका भी शिकार कर उनका मांस निर्यात कर देती हैं।

दिल्लीके ईदगाहके बूचड़खानेमें १९९० में ६,२५,०८० भैंसें एवं १९,११,८५७ भेड़-बकरियोंका और १९९१ में ५,८८,९२२ भैंसें एवं १८,००,५५७ भेड़-बकरियोंका वध किया गया। इसी प्रकार मुंबईके देवनार बूचड़खानेमें हर साल २७,४६,००० पशुओंको मौतके घाट उतार दिया जाता है। देशमें 'अल कबीर एक्सपोर्ट प्रा०लि०' और 'एस्कार्ट्स'-जैसी कम्पनियाँ मांसके निर्यातका कार्य करती हैं। 'अल कबीर' के विश्वके ८ देशोंमें ८,००० तथा दिल्लीमें ७६ मांस-बिक्री-केन्द्र हैं। नयी आर्थिक नीतिमें विदेशी कम्पनियोंके लिये पूँजी-निवेशके द्वार खोल दिये गये हैं। उनकी नजर पहलेसे ही भारतके बहुत बड़े धन—'पशु-धन' पर है। यूरोपका तो मुख्य आहार ही मांस है। उनके लिये थोड़े समयमें ही भारतके सम्पूर्ण पशु-धनको डकार जाना कोई मुश्किल कार्य नहीं है।

वास्तवमें भारतमें पशुओंके वधकी समस्या उसके अर्थतन्त्र और पर्यावरणीय संतुलनके साथ-साथ सांस्कृतिक परम्परासे भी जुड़ी हुई है। मनुष्य और पशु तात्त्विक दृष्टिसे एक-दूसरेपर निर्भर हैं। इसलिये थोड़ेसे तात्कालिक लाभके लिये बहुत बड़ी कीमत चुकाना कोई बुद्धिमानीका कार्य नहीं है। अधिकांश कुटीर उद्योग-धंधे इन्हीं पशुओंपर निर्भर करते हैं। इसीलिये भारतीय संस्कृति मनुष्य और प्रकृतिके बीच सामंजस्य बनाये रखनेपर जोर देती है। इसीमें देशका

हित है।

भारत सरकारकी १९७० की रिपोर्टके अनुसार भारतमें ३ अरब ३६ करोड़ ४० लाखका पशु-धन है। इनमें २ अरब २४ करोड़ ८० लाख गाय, बैल तथा भैंसें और १ अरब १ करोड़ भेड़-बकरी, २० लाख घोड़े, बंदर, गधे और ऊँट हैं। इनके अतिरिक्त १ अरब १४ करोड़ २० लाख पोल्ट्री बर्ड्स अर्थात् मुर्गे-मुर्गियाँ आदि हैं; किंतु आज इतने वर्षों बाद इनकी संख्या कितनी है, इसका कोई हिसाब नहीं है। अबतक कितने पशुओंका वध हुआ, इसका भी कोई आँकड़ा उपलब्ध नहीं है। एक अनुमानके अनुसार आज भारतमें पशुओंकी संख्या लगभग ४६ करोड़ रह गयी है। सरकारी आँकड़ोंके अनुसार दूध देनेवाले पशुओंकी संख्या १९७१ में ६६ करोड़, १९८१ में ५६ करोड़ और १९९१ में घटकर ३८ करोड़ रह गयी। अधिकांश लोगोंके भोजनमें प्रोटीन तथा अन्य पोषक तत्त्वोंका प्रमुख माध्यम दूध ही है। एक ओर भारतकी आबादी १९७१ में ५९ करोड़से बढ़कर १९९१ में ८४ करोड़ हो गयी है, दूसरी ओर दुधार पशुओंकी संख्या ६६ करोड़से घटकर ३८ करोड़ हो गयी। इससे जन-स्वास्थ्यको होनेवाली हानिका अंदाजा आसानीसे लगाया जा सकता है।

भारतकी ग्रामीण अर्थव्यवस्थामें पशुओंके योगदानका अभीतक कोई विकल्प नहीं खोजा जा सका है। गाय और बैल भारतीय कृषिके मूलाधार हैं। खेतोंकी जुताई-बुआईसे लेकर फसलकी मड़ाई और ढुलाईतक सारा कार्य बैल ही करते हैं। भैंसोंका भी उपयोग सामानको ढोनेमें किया जाता है। इनके गोबरकी खादका आज भी कोई विकल्प नहीं है, जो अनाजका उत्पादन बढ़ानेके साथ ही भूमिकी उर्वराशक्ति भी बढ़ाती है।

आज हमें रासायनिक खादपर भी अधिक धनराशि व्यय करनी पड़ रही है। अनुमान है कि भारतमें ८ करोड़ ढुलाई करनेवाले पशु हैं, जिनसे लगभग ४ करोड़ अश्वशक्ति (हार्स पावर)-का कार्य होता है। इससे १० हजार मेगावाट बिजलीकी बचत होती है। सम्पूर्ण पशु-उद्योगका यथार्थ मूल्याङ्कन तो सम्भव नहीं है; क्योंकि यह सारे देशमें छोटी-छोटी इकाइयोंमें फैला हुआ है। फिर भी इसका मूल्याङ्कन लगभग ३० से ५० अरब रुपये किया गया है। भूमिकी उर्वराशक्ति बढ़ानेमें पशुओंका मूल्याङ्कन लगभग २० अरब रुपयेका किया गया है। इसी प्रकार १०,००० मेगावाट बिजलीके उत्पादनका मूल्य भी कई अरब रुपये होता है। कुल मिलाकर पशु-धनका बाजार-मूल्य ४ सौ अरब आँका गया है। इन पशुओंका वध करके इससे होनेवाली हानिकी भरपाई हम नहीं कर सकते हैं।

इस पृथ्वीपर मनुष्य तथा प्राकृतिक पर्यावरणके आपसी सम्बन्धोंकी शुरुआत उस समयसे होती है, जब मनुष्योंने सबसे प्रभावशाली प्राणीके रूपमें अपने कदम इस पृथ्वीपर रखे। हमारे देशमें व्यवस्थित ढंगसे खेतीका कार्य संसारमें सबसे पहले प्रारम्भ हुआ। जमीन तथा वातावरणकी विभिन्नताके कारण अच्छी वनस्पतियाँ, पेड़-पौधे तथा अच्छे जीव-जन्तु एवं अन्य प्राणिसमूहके कारण भारत विश्वमें अच्छी फसलोंको उगानेवाला केन्द्र सिद्ध हुआ। यहाँ सबसे पहले गेहूँ, जौ, धान उगाया गया। यह दुनियाका कृषि-प्रधान देश बना, जहाँ मिश्रित खेती-बारी और पशुपालन एक साथ होता रहा। लेकिन आज कुछ लोग इस ताने-बानेको ही समाप्त कर देना चाहते हैं।

पशुओंके वधसे सम्बद्ध एक मुकदमेमें दिल्लीके एक न्यायाधीशने जो आदेश दिया है, उसमें कई बातें विचारणीय हैं।

न्यायाधीशने अपने फैसलेमें लिखा है कि…'जहाँ पशुओंको कुछ लोगोंके लोभकी तथा स्वादकी पूर्तिके लिये वध किया जाता है, उसका सम्पूर्ण दृश्य ही अनियन्त्रित स्वतन्त्रताके परिदृश्यसे भरा है। इसे सरकारने अपनी अनभिज्ञतासे बढ़ाया है, थोड़ेसे आर्थिक लाभके लिये उसने निर्यातकी अनुमति दी है, जिससे पशुओंकी कमी होती जा रही है। इसके साथ ही पर्यावरणका भी चतुर्दिक् नाश हो रहा है। इस संदर्भमें जिस प्रकारकी घोर चुप्पी कृषि तथा पर्यावरण-मन्त्रालयने उस समय साधी है, जबकि बूचड़खानोंमें पशु-धनका वध किया जा रहा है। इसलिये यह न्यायालय निर्देश देता है कि 'भारत सरकारको जीवित प्राणियोंके प्रति अपना कर्तव्य निभाना चाहिये जो भारतीय संस्कृति तथा सभ्यताके अनुकूल हो, जिससे प्रकृतिमें सभी प्राणी आपसी प्रेमके साथ जियें। पशुओंके प्रति आदरकी भावना हमारी परम्परा तथा संस्कृति है। यह आवश्यक है कि पशुधनकी रक्षा और उसका संरक्षण हो। ऐसे कदम उठाये जायँ, जिनसे मांस-निर्यातके लिये जो भारी संख्यामें पशुवध किया जा

रहा है, उसे तुरंत नियन्त्रित किया जा सके। भोजनके लिये जीवित पशुओंका वध कर मांस-निर्यात बंद किया जाय। विदेशी निर्यातके लिये पशुओंके वधपर प्रतिबन्ध लगाया जाय। ऐसे आवश्यक कदम उठाये जायँ जो पशुओंके वधके नियन्त्रणके लिये जरूरी हों। यदि आवश्यक हो तो मांसकी निर्यात-नीतिपर पुनर्विचार किया जाय।

कुछ लोग पशुओंके वधके लिये यह तर्क देते हैं कि पशु अधिक चरते हैं। यही कारण है कि अनेक योजनाओंमें चरागाहोंको शामिल नहीं किया गया है। सारी योजनाएँ मनुष्यके सुख तथा मनोरञ्जनके आसपास ही घूमती हुई जान पड़ती हैं। मनुष्योंसे पशुओंको दूर करनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि यह प्रश्न तभी खड़ा होता है जब पशु मनुष्यके शत्रु बन जायँ। यह बात भी सही नहीं कि पशु-संख्या बढ़ जानेसे वे धरतीकी हर इंचपर छा जायँगे। यह बात हमारे अनुभव और अवलोकनके बिलकुल विपरीत है। उदाहरणके लिये कुत्तों तथा बिल्लियोंको—जिन्हें खाया नहीं जाता है, उनसे सड़कें तथा गलियाँ भरी हुई कभी भी नहीं दिखायी देतीं। प्रकृतिके अध्ययनसे स्पष्ट है कि जीवनकी निर्भरता तथा उसके निर्वहनके तरीके प्रकृतिने बड़ी ही सूक्ष्मता तथा आपसी कोमलताके साथ संतुलन बनाये रखी है। मनुष्यके ऐसे कार्य-कलाप जो प्रकृतिका अतिक्रमण करते हैं, बस उन्हींसे पर्यावरणका संतुलन बिगड़ जाता है। यदि उसे प्रकृतिपर छोड़ दिया जाय तो वह बिगड़ता नहीं है। प्रकृतिकी स्वयंकी एक ऐसी अदृश्य और नियन्त्रक शक्ति है, जो संतुलनको तबतक बनाये रखती है, जबतक कि उसे किसी नासमझी अथवा लोभमें बिगाड़ा न जाय।

मनुष्य भी सम्पूर्ण जीव-क्षेत्र तथा पर्यावरणका हिस्सा है। पशु और मनुष्य दोनों एक दूसरेपर आश्रित और निर्भर हैं। अतः मनुष्य जो कुछ भी करेगा, उसका प्रभाव पशुओंपर पड़ेगा। निरन्तर पशुओंके वधसे उसके स्रोतोंका आधार समाप्त होता जा रहा है तथा एक दिन वह बिलकुल नष्ट हो सकता है, फिर तो मनुष्यका अस्तित्व ही इस धरतीपर खतरेमें पड़ जायगा।

अतएव यह आवश्यक है कि पशु-धन, जो प्राणिमात्रका जीवन-धन है—उसके संरक्षण-संवर्धनके लिये राष्ट्रिय अन्ताराष्ट्रिय-स्तरपर हम सभीको जागरूक होना चाहिये और नैतिक-स्तरपर हृदयसे पूर्ण सम्बल—सहयोग प्रदान करना चाहिये।

समतासे भगवत्प्राप्ति

(श्रीबनवारीलालजी गोयन्का)

किसी भी परिस्थितिमें चाहे वह अनुकूल हो या प्रतिकूल, उसमें सुख या दुःख न हो—इसीको गीतामें समता होना बतलाया गया है और समता पूर्णरूपसे होते ही भगवत्प्राप्ति अथवा परम शान्तिकी प्राप्ति हो जायगी।

समभाव रखनेके बहुत उपाय हैं। एक बात तो यह पक्की समझले कि अनहोनी तो होगी नहीं और होनी टलेगी नहीं। यह समझकर अपना कर्तव्य-कर्म करते जायँ तो समता बड़ी आसानीसे आ जायगी। श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्मयोगमें भी समता रखनेको कहा गया है, ज्ञानयोगमें भी समता होना परम आवश्यक है और भक्तियोगमें भी समताकी बड़ी प्रधानता है।

सुखकी परिस्थिति आये, चाहे दुःखकी परिस्थिति आये—दोनों ही ठहरनेवाली तो हैं नहीं—(१) एक माँका बेटा मर गया, उस समय उसे कितना भारी दुःख होता है। पर वही दुःख एक वर्ष बाद वैसा नहीं रहता, अपने-आप कम हो जाता है; चालीस-पचास वर्ष बाद तो प्रायः याद आता ही नहीं। तो देखो दुःख कहाँ ठहरा? (२) एक संत थे, वे मौन रहा करते। भजनमें लगे रहते। पासमें एक काली लकड़ीकी तख्ती रखा करते, उसमें लिखा रहता यह भी ठहरेगा नहीं, फिर क्यों सुख-दुःख करते हो। कोई उनके पास आता, बोलता—'महाराज! मैं बड़ा सुखी हूँ। वही तख्ती सामने कर देते। यानी यह सुख भी तुम्हारा ठहरेगा नहीं।' दूसरा कोई आता वह बोलता—'महाराज! मैं बड़ा दुखी हूँ, तो वही तख्ती सामने कर देते। यानी यह दुःख भी ठहरेगा नहीं। मतलब व्यर्थमें क्यों दुखी हो रहे हो। (३) पहलेसे ही मनमें रखे ये सभी वस्तु, परिस्थिति साथी-संगी, भाई-बन्धु, पुत्र-पौत्र—यहाँतक कि अपना शरीर भी एक दिन बिछुड़ेगा, अकेले आये थे और अकेले ही जाना है। नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा रचा हुआ एक पद है। बड़े ही कामका है।

उसकी कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जा रही हैं—

जिस तड़क-भड़क औ मौज-मजोंमें फुरसत नहीं तुझे मिलती।
जिस गान-तान औ गप्प-शप्पमें सदा जीभ तेरी हिलती॥
इन सभी साज-सामानोंसे छुट जायेगा रिश्ता तेरा।

× × ×

जिस सबल देह सुन्दर आकृतिपर तू इतना अकड़ा जाता।
जिन विषयोंमें सुख देख रहा, पर कभी नहीं पकड़े पाता॥
इन धन, जौवन, बल, रूप सभीसे टूटेगा नाता तेरा।

× × ×

है जिनसे यह सम्बन्ध टूटना कभी नहीं तैंने जाना।
है जिनके कारण अहंकारसे नहीं बड़ा किसको माना॥
यह छूटेगा सम्बन्ध सभीसे, होगा जंगलमें डेरा॥

× × ×

रे भूले हुए जीव! यह सब कुछ पड़े यहीं रह जायेंगे।
जिनको तैंने अपना समझा, वे सभी दूर हट जायेंगे॥
हो जा सचेत! अब व्यर्थ गवाँ मत जीवन यह अमूल्य तेरा।

(१) जहाँ ज्ञान-मार्गसे ब्रह्मको प्राप्त हो गया है उस ब्रह्मप्राप्त महापुरुषकी स्थितिका वर्णन गीता (१४। २४-२५)-में किया गया है—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥

(२) जहाँ कर्मयोगसे कर्म करनेकी बात कही है, वहाँ भी सम रहकर करनेके लिये कहा है—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥
(गीता २। ३८)

(३) जहाँ भक्तियोगका गीतामें वर्णन आता है, वहाँ भी समताकी प्रधानता बतलायी है। भगवान्ने जो भक्तगण भक्तिमार्गसे सिद्ध हो गये हैं, उनका वर्णन गीता (१२। १३—१९)-में किया है।

प्रत्येक मनुष्यके सामने अनुकूल परिस्थिति और प्रतिकूल परिस्थिति आती है, पर भक्त प्रतिकूल आनेपर घबड़ाता नहीं। बल्कि कहता है—

देख दुःखका वेष धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे, नाथ!
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकड़ूँगा जोरोंके साथ॥
नाथ! छिपा लो तुम मुँह अपना, चाहे अति अँधियारेमें।
मैं लूँगा पहचान तुम्हें इक कोनेमें, जग सारेमें॥
रोग-शोक, धन-हानि, दुःख, अपमान घोर, अति दारुण क्लेश।
सबमें तुम, सब ही है तुममें, अथवा सब तुम्हरे ही वेश॥
तुम्हरे बिना नहीं कुछ भी जब, फिर मैं किस लिये डरूँ।
मृत्यु-साज सज यदि आओ, तो चरण पकड़ सानन्द मरूँ॥
दो दर्शन चाहे जैसा भी दुःख-वेष धारणकर, नाथ!
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें, मैं पकड़ूँगा जोरोंके साथ।

ऐसा मनका भाव बनाते ही दुःखकी जगह भगवान् दीखने लगेंगे—मनमें महान् शान्तिकी लहर उठने लगेगी। इससे भी ऊँचे प्रेमी संतके ये भाव हैं—

मिलती अगर सान्त्वना तुमको मेरे दुखसे, हे प्रियतम!
तो लाखों अतिशय दुःखोंसे घिरी रहूँगी मैं हरदम॥
किंचित्-सा भी यदि सुख देता हो तुमको मेरा अपमान।
तो लाखों अपमानोंको मैं मानूँगी प्रभुका बरदान॥

× × ×

मेरी आर्ति-विपत्ति कदाचित् तुम्हें सुहाती हो यदि श्याम!
तो रक्खूँगी इन्हें पास मैं सपरिवार नित, दे आराम॥

× × ×

प्यार तुम्हारा भरे हृदयमें, उठती रहे अनन्त तरंग।
इसके सिवा माँगकर कुछ भी, कभी करूँगी तुम्हें न तंग॥

ऐसे प्रेमीके पीछे-पीछे भगवान् घूमते रहते हैं। उस प्रेमीके मनकी तरंगोंका आनन्द लेनेके लिये—धन्य है ऐसे प्रेमीजनको। ऐसा हृदय तैयार न हो तो क्या करें। भगवान्को हृदयसे अपना माने और अपने ऊपर उनका पूरा अधिकार माने और उनके ऊपर अपना अधिकार मानता हुआ उनसे ऐसा कहे—

इस टूटी-फूटी नैयाको, भवसागरसे खेना होगा।
फिर निज हाथोंसे नाथ! उठाकर, पास बिठा लेना होगा॥

× × ×

भला-बुरा, सुख-दुःख, शुभाशुभ मैं न जानता कुछ भी नाथ!
जानो तुम्हीं, करो तुम सब ही, रहो निरन्तर मेरे साथ॥

× × ×

चरणोंको दृढ़ पकड़े हूँ, अब नहीं हटूँगा किसी तरह।
भले, फेंक दो, नहीं सुहाता अगर पड़ा भी इसी तरह॥
पर यह रखना स्मरण नाथ! जो यों दुतकारोगे हमको।
अशरण-शरण, अनाथ-नाथ, प्रभु कौन कहेगा फिर तुमको॥

* * *

कुछ अनुकरणीय गुण

(श्रीरामनिवासजी लखोटिया)

शुभ संकल्प—

यदि कोई व्यक्ति निरन्तर निराशा, असफलता, दुःख, कलह और बीमारी आदिकी ही बातें सोचंता रहेगा अथवा मनमें उन्हींकी कल्पना करता रहेगा, तब तो उसे प्रत्येक व्यक्ति, वस्तु एवं परिस्थितिमें विविध प्रकारके निराशाजनक तथा नकारात्मक भयानक चित्र ही दीखते रहेंगे। इसलिये यदि हम शुभ परिणाम चाहते हैं तो हमारे लिये यह नितान्त आवश्यक है कि हम नित्य शुभ संकल्प करें, अपने विचारोंको सकारात्मक बनायें और इन्हीं सकारात्मक विचारोंकी आधारभूमिपर उत्साह, आनन्द, सुख, शान्ति, उन्नति, सफलता, प्रेम, सेवा, मुक्ति तथा स्वस्थता आदिके सुन्दर संकल्प करते रहें। परिणामस्वरूप बाहरके वातावरण, संयोग, कारण और परिस्थितियाँ भी ठीक वैसी ही बन जायँगी और हमारा जीवन अपूर्व सुख-शान्तिसे ओतप्रोत हो जायगा। प्रायः यह देखनेमें भी आता है कि जो लोग रात-दिन अशुभ संकल्प करते हैं, वे स्वयं तो दुःखी रहते ही हैं, जगत्को भी न्यूनाधिकरूपसे दुःखी करते रहते हैं। इसके विपरीत शुभ संकल्प करनेवाले लोग स्वयं भी सुखी रहते हैं और संसारके भी प्राणियोंको सुख प्रदान करते हैं। जैसे—'सत्य बोलनेके शुभ संकल्पमात्रसे ही हमें अनेक असत्यादिक अधर्मों, पापोंसे तत्क्षण ही मुक्ति मिल जाती है, सत्य बोलनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है, उसके क्रियान्वयनसे लोकका कल्याण होता है, शास्त्र-मर्यादाकी प्रतिष्ठा होती है और निःश्रेयसप्रद परलोकमार्ग भी हमारे लिये प्रशस्त हो जाता है—ये हैं शुभ संकल्पोंके सुखद परिणाम।

प्रसन्नता—

व्यावहारिक जगत्में हमें कई बार ऐसे कर्म भी करने पड़ते हैं, जिनके सम्पन्न करनेका न तो हमारा उद्देश्य होता है और न ही हमें उन कार्योंमें आनन्द आता है। फिर भी किसी-न-किसी प्रतिबद्धतावश या यों कहिये कि विवशतावश अपनी इच्छा न होते हुए भी कुछ कार्य करने ही पड़ते हैं, चाहे वे पारिवारिक हों अथवा सामाजिक। जैसे—रिश्तेदारों एवं परिचित व्यक्तियोंकी देखभाल करना, सामाजिक कार्यक्रमोंमें जाना। ऐसे ही मनको उबानेवाले कुछ अन्य पारिवारिक एवं व्यावसायिक कार्योंमें भी हमें किसी-न-किसी रूपमें सहभागी बनना पड़ता है और उनसे बचनेका कोई उपाय भी नहीं होता। तो फिर क्यों नहीं हम ऐसे कर्म भी उतनी ही प्रसन्नतासे करें, जितनी प्रसन्नतासे हम अपने मनोवाञ्छित कर्म करते हैं। अनुभवके आधारपर हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि यदि हम ऐसे कार्य या कर्तव्य-कर्म प्रसन्नतापूर्वक करेंगे तो जीवनमें एक नया आनन्द पायेंगे और फिर ऐसे कार्योंसे हमें ऊब, तनाव या खिजलाहट कभी नहीं होगी। हाँ, इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि ये सभी कर्म शास्त्र-मर्यादाके अन्तर्गत प्राणिमात्रके कल्याणकी भावनाओंसे समन्वित हों।

श्रद्धा—

श्रद्धा एक सात्त्विक गुण है। वह सार्वभौमिक चेतनाकी अभिव्यक्ति है। अटूट आत्मविश्वास और दृढ़ संकल्पसे ही श्रद्धाका विकास होता है। वास्तवमें श्रद्धा अनन्त शक्तिका स्रोत है। आध्यात्मिक मार्गका अनुसरण करनेवाले साधकोंकी सारी बाधाएँ दूर करनेमें यदि किसी एक विशेष गुणके महत्त्वपूर्ण योगदानपर विचार किया जाय तो वह श्रद्धा ही है। यह बुद्धिसे परे है। जब विवेक, संकल्प, भाव एवं क्रियाका संतुलित समन्वय होता है, तब मानवके व्यक्तित्वमें ईश्वरके प्रति श्रद्धाका सुप्रभात अवतरित होता है। श्रद्धासे दिव्य भाव विकसित होते हैं और ईश्वर-प्रेम परिपक्व होता है। यह अन्धविश्वाससे पृथक् है। श्रद्धाका सही अर्थ है उस दृष्टिका विकसित होना, जिसमें आत्माकी परम सत्यता स्थायी रूपसे बनी रहती है। ऐसी श्रद्धामें ही आत्माकी दिव्य गरिमा प्रतिबिम्बित होती है।

सत्य—

इसमें कोई भी अतिशयोक्ति नहीं है कि परमात्माका स्वरूप सत्य है। मानव-जीवनका लक्ष्य भी सत्य है। हमारे विचार, व्यवहार, क्रिया एवं वाणीमें सत्यका ही सेवन होना चाहिये। परंतु वही सत्य सुन्दर है जो कल्याणकारी है। सत्यका ही संकल्प, ध्यान, मनन, प्रयोग एवं विचार करनेसे

सत्यमें श्रद्धा होती है। तभी हम सत्यका सेवन कर सकते हैं। सत्यका अटूट संकल्प असत्यमें लिपटी हुई हमारी बुद्धिको समझानेका प्रयत्न करता है, सन्मार्गपर आरूढ़ करता है। तात्पर्य यह है कि सत्यके आचरणसे बुद्धि शुद्ध होती है। इसलिये प्राणिमात्रको सत्यका ही आचरण करना चाहिये, क्योंकि सत्यकी ही सर्वत्र जीत होती है—'**सत्यमेव जयते**' और सत्यके समान दूसरा कोई धर्म भी नहीं है—'*धरमु न दूसर सत्य समाना।*'

दया—

दयाको धर्मका मूल कहा गया है। यह नितान्त सत्य है कि जब हम दीन-दुखियोंके प्रति सच्ची सहानुभूति एवं दयाभाव रखते हैं और उन्हें विपत्तिसे बचानेकी चेष्टा करते हैं तो हमारे विपत्तिकालमें भी दूसरे प्राणियोंसे सहजमें ही हमें सहायता एवं सहानुभूति प्राप्त हो जाती है। सर्वप्रथम तो किसी भी व्यक्तिपर दयाभाव होनेमात्रसे ही हमारा कल्याण होगा एवं हमारा हृदय निर्मल होगा। हमारे संकल्पमात्रसे दूसरोंके दुःख टल सकते हैं और हम भी दुःखरहित हो सकते हैं। दूसरोंकी सेवा करनेमें तो कई व्यक्ति समर्थ हैं; परंतु उनमें ऐसी शक्ति नहीं है कि वे विपत्तिके जालमें फँसे हुए दीन-दुखियोंके विपत्तिनाशका शुद्ध संकल्प ले सकें। अतएव दयाका संकल्प परोपकारकी दिशामें प्रथम सही कदम है।

नि:स्वार्थ प्रेम—

यह सर्वविदित है कि राधिकाजी भगवान्‌की आह्लादिनी शक्ति हैं। सारे विश्वको आनन्द पहुँचानेवाले भगवान्‌को वे आनन्द प्रदान करती हैं। इसीलिये हमारे शास्त्र कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं उनके अधीन हैं। अतएव हमारे भी सारे क्रिया-कलाप केवल भगवान्‌को आह्लादित करनेके लिये हों, हृदयके भाव, वाणीके शब्द एवं शरीरकी क्रियाएँ, सब-की-सब हमें मुक्त करनेवाली हों तो भगवान् स्वयं ही आकर हमें दर्शन देंगे। ऐसा भाव उच्च कोटिका भाव है। वास्तवमें भाव ही प्रधान है। श्रद्धा, प्रेम, शान्ति और माधुर्य—ये सब-के-सब भाव हैं। इन भावोंसे ओतप्रोत जो व्यक्ति अपने-आपको सबके लिये समर्पित कर दे, वही भगवान्‌का अनन्य भक्त है और सबको जीतनेका उपाय है—निष्काम भावसे दूसरोंके प्रति प्रेम-भाव रखना। ऐसे भावसे सब उसके अधीन हो जाते हैं। ईश्वरसे प्रार्थना है कि प्राणिमात्रके प्रति हममें निरन्तर नि:स्वार्थ प्रेम-भाव बना रहे, ऐसी शक्ति दे।

'कौन भाग्यवान आज जनक समान री'

सुधि बुधि भूलि गे, विलोकि के विदेहराज,
राम जू की मूरति सनेहमयी साँवरी।
राम हू बिसारि सुधि, सिया को विहाय, पाणि
गहत विलोकि, मणिखम्भ सिय-छाँव री।
प्रभु को विलोकि सिया, मण्डप-कलश भूलि,
साँवरे स्वरूप ही की दैन लगीं भाँवरी।
राम भये गौर, सिया साँवरी भई हैं देखि,
शारदा सी वधू बुधिवन्त भई बावरी॥
राम-सिया, शारदा, जनक के समान शुठि,
परम सुजान, जहाँ भूले हैं अपान री।
शिव भगवान, गुण ज्ञान के निधान भूले,
भान, तहाँ कहो कहा और को ठेकान री।
बालक-सयान, नर-नारी मतिमान कहैं,
कौन भागयवान आज जनक समान री।
'नारायण' सकल जहान मेरी जान, नहीं
भयो अन्य ठाम, ऐसो व्याह को विधान री॥

—श्रीनारायणदासजी 'भक्तमाली'

* * *

कहानी—

कोटरका कबूतर

(श्रीअमरनाथजी शुक्ल)

त्रेतायुगकी बात है। कैलास पर्वतपर पार्वतीजी भगवान् शिवके साथ प्रातः भ्रमण कर रही थीं। शिव बड़े प्रसन्न-चित्त थे। अचानक पार्वतीजीने उनसे कहा—'भगवन्, आप बड़े ज्ञानी हैं। जन्म-मरण और मोह-मायाके बन्धनोंसे परे हैं। इन सभी बन्धनोंसे छुटकारा पाकर मैं सदैव आपके साथ रह सकूँ, ऐसा ज्ञान मुझे भी दीजिये।'

पार्वतीजीकी इच्छापर भगवान् शिव मुस्करा पड़े। बोले—'ठीक है, मैं तुम्हें वह ज्ञान अवश्य दूँगा, किंतु इसके लिये कोई ऐसा एकान्त स्थान खोजना होगा, जहाँ हम दोनोंके अतिरिक्त कोई तीसरा न हो।' पार्वतीजी और भगवान् शिव दोनों ही हिमालयमें ऐसा स्थान खोजने लगे। घूमते-घूमते वे उत्तरी हिमालयके अत्यन्त मनोरम स्थानपर जा पहुँचे। वहाँ एक विशाल गुफा थी। दूर-दूरतक किसी प्राणीका चिह्नतक न था।

भगवान् शिवको वह गुफा पसंद आ गयी। पार्वतीजीके साथ वह उस गुफामें चले गये। आशाके विपरीत गुफामें उन्होंने कुछ पक्षी देखे। पक्षियोंको देखकर पार्वतीजी उदास हो गयीं। भगवान् शिवने उनकी मनोदशा भाँप ली। वहीं बैठकर उन्होंने साँसद्वारा प्राणवायु अपने अंदर खींचनी शुरू कर दी। ऐसा करते ही दूर-दूरतक फैली प्राणवायु शिवके अंदर सिमटने लगी। प्राणवायुके अभावमें वहाँ रहनेवाले सारे पक्षी निचले प्रदेशमें चले गये। अब पूर्ण एकान्त पाकर पार्वतीजीने संतोषकी साँस ली।

भगवान् शिव बोले—'अब यहाँ हम दोनोंके अतिरिक्त कोई नहीं है। मैं तुम्हें यहाँ अमरज्ञानका उपदेश दूँगा। ध्यानसे सुनना। बीच-बीचमें 'हुँकारी' भरती रहना, ताकि मुझे यह पता चलता रहे कि तुम सुन रही हो। ज्ञान देते समय मैं समाधिमें रहूँगा।

पार्वतीजीकी स्वीकृति पाकर भगवान् शिव समाधि लगाकर बैठ गये। उनके श्रीमुखसे अमरज्ञानकी अमरकथा फूटने लगी। सारी गुफा दिव्य आभा और सुगंधसे भर उठी। कथा सुनते-सुनते पार्वतीजी इतनी भाव-विभोर हो उठीं कि उन्हें तन्द्राने आ घेरा। कब नींद आ गयी, पता ही न चला।

अमरकथा समाप्त हुई, तो भगवान् शिवकी समाधि टूटी। देखा, पार्वतीजी तो बेसुध होकर सोयी पड़ी हैं। शिवजी चकित हो उठे। उन्हें जगाया। कुछ पूछने ही वाले थे कि पार्वतीजीने क्षमा-याचनाभरे स्वरमें कहा—'प्रभु, आपके श्रीमुखसे कथा सुनते-सुनते इतना आनन्द आया कि न जाने कब मुझे नींदने आ घेरा। मैं पूरी कथा नहीं सुन पायी।'

पार्वतीजीकी इस बातको सुनकर भगवान् शिव आश्चर्यमें डूब गये। बोले—'कथा कहते-कहते मैं बीच-बीचमें हुँकारी सुन रहा था और मुझे लग रहा था कि तुम कथा सुन रही हो। तुम सो गयी थी तो फिर अन्ततक 'हुँकारी' कौन भरता रहा?'

इस बातसे पार्वतीजी भी चौंकीं। भगवान् शिवने इधर-उधर देखा, तो गुफाकी छतमें एक कोटर दीखा। उस कोटरसे कबूतरके बच्चोंका एक जोड़ा उन्हें नीचे झाँकता हुआ दिखायी दिया।

बहुत सीमित प्राणवायुके वातावरणमें उन कपोत-शिशुओंको देखकर शिवको आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा, यह कोई मायावी जीव हैं जो कपोत-शिशुके रूपमें अमरकथा सुनते रहे। भगवान् शिवने कुपित हो पूछा—'कौन हो तुम? इस वेशमें यहाँ क्या कर रहे हो?'

कबूतरके बच्चोंमेंसे एक बोला—'भगवन्! हम यहाँ इस कोटरमें अण्डेके रूपमें थे। जब आपने यहाँकी प्राणवायुको अपनेमें समेट लिया, तो मेरी माँ यहाँसे उड़ गयी। हम अण्डेसे बाहर निकले, तो आपकी अमरकथा यहाँ गूँज रही थी। इस कथाके प्रभावसे हममें इतनी शक्ति आ गयी कि कथा सुनते हुए हम हुँकारी भरते रहे। प्राणवायुके अभावका हमपर असर नहीं हुआ।'

शिव प्रसन्न होकर बोले—'तुम अमरकथाके सच्चे पात्र थे, जो पूरी कथा सुन सके। तुम अमर हुए। इस स्थानपर जहाँ किसी अन्य जीव-जन्तुओंका स्थायी रूपसे रहना सम्भव नहीं होगा, वहाँ तुम दोनों सदा निर्विघ्न

निवास करोगे।'

शिव और पार्वतीजी तो वहाँसे चले गये, पर शिवके पार्थिव-रूपमें हिमलिंग उस गुफामें निर्मित हो गया। पार्वतीजीका सोया हुआ रूप छोटे हिमखण्डके रूपमें बन गया। वही क्षेत्र 'अमरनाथ' कहलाया।

आज भी अमरनाथकी पवित्र गुफामें कबूतरके जोड़े रहते हैं, जो कभी-कभी यात्रियोंके कोलाहलसे डरकर कोटरसे निकलकर उड़ते हुए दीख जाते हैं। [शिवपुराण]

कौटुम्बिक कलह—सर्वनाश

(स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी)

पिछले कुछ वर्षोंमें ही कालचक्र जिस द्रुतगतिसे अग्रसर हुआ है, उसे देखते हुए 'अपनी-अपनी ढफली अपना-अपना राग' का आलाप भी इतना बेसुरा हो गया है कि जहाँ एक ओर समाज तथा राजनीतिके मूल्योंमें गिरावट आयी है, वहीं पारिवारिक सम्बन्धोंकी मर्यादाएँ भी अपने किनारे तोड़कर अतीव उच्छृंखल हो उठी हैं।

प्राचीन भारतीय समाजमें जहाँ सभी भाइयोंका मिलकर रहना एक आदर्श आचारसंहिताके रूपमें प्रतिष्ठित था, वहीं अब चिराग लेकर ढूँढ़नेपर भी कोई सामूहिक परिवार परिलक्षित हो जाय तो यह अनहोनी घटनाके रूपमें आकाश-कुसुम-जैसा लगता है या उन्हें अँगुलियोंपर गिना जा सकता है। इस विषयकी पुनरावृत्ति अब अरण्य-रोदन ही प्रतीत होता है, क्योंकि भाई-भाइयोंके विग्रहकी परिणति महाभारतका दुर्धर्ष संग्राम मात्र ऐतिहासिक भूल बनकर रह गयी है।

पाँच हजार वर्ष पूर्वके दो भाइयोंका परस्पर विवाद जब अत्यन्त पेंचीदा बन गया तो मध्यस्थताके लिये कृष्ण-जैसे परम वीर, परम विचारक तथा शान्तिके अग्रदूतकी ओर एक पक्षकी दृष्टि गयी। धर्मराज युधिष्ठिरने उन्हें बुलाकर निवेदन किया—'गोविन्द! उत्तम कुलमें जन्म धारण करना तो पुण्य-कर्मके संचयका फल है जो व्यक्तिको सुलभ होता ही है, पर वृद्ध होनेपर भी धन-संग्रहका लोभ उसकी प्रज्ञाशक्तिको नष्ट कर देता है और वह लज्जाहीन बनकर धर्माचरणसे पतित हो जाता है। विनष्ट हुआ धर्म मानवको प्रभुताहीन बना देता है और धनाभाव ही उसका वध है। इस प्रकारके श्रीविहीन व्यक्तिसे उसके सुहृद् एवं आत्मीयजन मुँह मोड़ लेते हैं। मैं आज ऐसी ही परिस्थितिमें हूँ।

माधव! यह भी सच है कि निर्धनता उस व्यक्तिको क्रोधी बना देती है और मोहाच्छन्न व्यक्ति विवेकशून्य होकर क्रूर कर्म करनेको उद्यत हो उठता है। महाबाहो! बताइये इसमें मेरा क्या दोष है? मैंने तो महामना संजयद्वारा सुयोधनको इतना उदार प्रस्ताव भेज दिया था कि हम शान्ति चाहते हैं, अतः हम पाँचों भाइयोंको—'अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत तथा पाँचवाँ कोई भी एक गाँव दे दो, इसीपर हम युद्धको टाल देंगे'—

अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम्।
अवसानं भवत्वत्र किंचिदेकं च पञ्चमम्॥

(महा०, उद्यो० ३१। १९)

मधुसूदन! हमारी सामनीतिके असफल होनेपर तो युद्ध हमारा प्रधान कर्तव्य होगा ही, पर यदि **'अथवा प्रणिपातेन शान्तिः सैव गरीयसी'** नम्रता दिखानेसे शान्ति हो जाय तो यह सर्वश्रेयस्कर है। धृतराष्ट्र एवं सुयोधनसे मिलकर उन्हें युद्धसे विरत करनेमें सफलताका अर्थ होगा भरतवंशियोंकी रक्षा एवं सम्पूर्ण विश्वका हित, अतः केशव! मेरा विनम्र आग्रह है कि आप स्वयं संधि-प्रस्ताव लेकर उनके पास जायँ।

श्रीकृष्णके इन्द्रप्रस्थ शुभागमनकी सूचनासे सम्पूर्ण जनमानस प्रफुल्लित एवं रोमांचित हो उठा। दुर्योधनद्वारा यदुकुलतिलक श्रीकृष्णके लिये पूरे मार्गमें अत्यन्त दुर्लभ-देवोचित व्यवस्था की, परंतु उसकी अवहेलना कर वे सीधे हस्तिनापुरकी ओर बढ़ गये और कुछ क्षण कौरव-सभामें बैठकर नीति-निपुण विदुरके रमणीय गृहमें जा पहुँचे और वहाँ विदुरजीका आतिथ्य ग्रहण करके दुर्योधनके महलमें गये। दुर्योधनने श्रीकृष्णको भोजन-हेतु आमन्त्रित किया। केशवने गम्भीर-मुद्रामें अस्वीकार करते हुए कहा—'कुरुराज! नियमानुकूल दूतको अपना प्रयोजन सिद्ध हो जानेपर ही भोजन-सम्मान स्वीकार करना चाहिये। अभी मेरा उद्देश्य

पूर्ण नहीं हुआ है।

किसीके घर क्षुधातृप्तिके दो ही प्रयोजन होते हैं—एक तो विशेष प्रेम और दूसरा आपत्तिकाल। नरेश्वर! प्रेमसे तो तुम्हारा दूरका भी सम्बन्ध नहीं है और आपत्तिमें हम पड़े नहीं हैं। एक बात और भी कि तुम्हारा अन्न तो दुर्भावनासे दूषित भी है, जो मेरे योग्य नहीं है।'

कौरव-सभामें संधिदूतके रूपमें वसुदेवनन्दनका प्रभावशाली भाषण किसी राजनीतिके धुरंधर विद्वान्‌के लिये भी युगोंतक चिन्तनका विषय बन सकता है, किंतु दुर्योधनपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उसने अन्तमें स्पष्ट शब्दोंमें कृष्णसे कह दिया—'मधुसूदन! हम इन्द्रके सामने भी नतमस्तक नहीं हो सकते और ना ही दुर्योधनके जीते-जी पाण्डवोंको भूमिका उतना अंश भी नहीं दिया जा सकता, जितना एक बारीक सुईकी नोकसे छेदा जा सके'—

यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति॥

(महा०, उद्योग० १२७। २५)

भगवान् श्रीकृष्ण निरवसाद कौरव-सभाको विश्वरूप-दर्शन करवाकर भीतचित्त दुर्योधनके यहाँसे पाण्डवोंके पास आ गये और यहींसे महासमरकी भूमिका तैयार हो गयी।

उद्योगपर्वका यह आख्यान वर्तमान संदर्भमें हमारे लिये क्यों उपादेय है, यह विचार आवश्यक है।

वर्षों एक ही परिवेशमें पले-बढ़े भाइयोंके प्रेम-रसको कटुताकी अमर-बेलने सोख लिया। पारस्परिक प्रेमका पल्लव ठूँठ बन गया। जिन माता-पिताओंने भूखे रहकर भी अपने बेटोंको सुसंस्कारी बनाया, उन पुत्रोंके लिये दो माता-पिता भार बन गये। पारिवारिक सुदृढ़ रज्जुको चाटुकारी कुछ कौटुम्बियोंने मिलकर तार-तार कर डाला। दम्भचर्याने भ्राताओंको दैवहत बनाकर रख दिया।

समाजमें आज भी भले लोगोंकी कमी नहीं है। यदि किसी कुलवान् साधु पुरुषने भाई-भाइयोंके विग्रहको टालने-हेतु सत्य परामर्शद्वारा सामंजस्य स्थापित किया तो उसे अदूरदर्शी भ्राताओंने अस्वीकार कर दिया—

प्रतिघातेन सान्त्वस्य दारुणं सम्प्रवर्तते।
तच्छुनामिव सम्पाते पण्डितैरुपलक्षितम्॥

(महा०, उद्योग० ७२। ७०)

शान्ति-प्रयासोंसे गतिरोध पैदा होनेपर भीषण युद्ध-विभीषिका फैलने लगती है। विद्वानोंने इस संघर्षकी उपमा कुत्तोंके कलहसे दी है—

लाङ्गूलचालनं क्ष्वेडा प्रतिवाचो विवर्तनम्।
दन्तदर्शनमारावस्ततो युद्धं प्रवर्तते॥

(महा०, उद्योग० ७२। ७१)

'कुत्ते पहले पूँछ हिलाते हैं, तदनन्तर गुर्राते और गर्जते हैं, तत्पश्चात् एक-दूसरेके निकट पहुँचते हैं, फिर दाँत दिखाना और भूँकना प्रारम्भ करते हैं और अन्तिम परिणति गुत्थमगुत्था होती है।'

धर्मराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्णको सम्बोधितकर संधिदूतके रूपमें जानेसे पूर्व यही तो कहा था—

तत्र यो बलवान् कृष्ण जित्वा सोऽत्ति तदामिषम्।
एवमेव मनुष्येषु विशेषो नास्ति कश्चन॥

(महा०, उद्योग० ७२। ७२)

—श्रीकृष्ण! इन कुत्तोंमें जो बलवान् होगा, वह उस मांसको पा लेगा, जिसके लिये वे लड़े थे। यही दशा मनुष्योंकी है। इसमें कोई विशेषता नहीं।'

परस्पर भ्रातृगण ही कुत्तोंकी भाँति आचरण करने लगें तो परिवारकी अधोगति क्यों न होगी? परिवार ही तो गली, मुहल्ले ग्राम, नगर और राष्ट्रके उद्गम हैं। गो-मुख ही दूषित हुआ तो गङ्गाकी पवित्रतापर प्रश्नचिह्न लगना स्वाभाविक ही है।

जो महानुभाव इस भ्रातृद्रोहके रोगसे ग्रसित हों, उन्हें यह आख्यान पथ-प्रदर्शकके रूपमें ग्रहण करना चाहिये। जो पाठक सामंजस्य-स्थापन-भावोंके प्रति आस्थावान् हैं, उन्हें श्रीकृष्णके मार्गका अनुसरण करनेपर सफलता न मिली तो भी निरन्तर अनुसरण करते रहना चाहिये।

जो भ्रातागण दुर्योधनकी भाँति अहंके घोड़ेपर सवार चाटुकारिताकी लगामके अभ्यस्त हैं, उन्हें इस कण्टकाकीर्ण मार्गका पश्चात्तापसहित परित्याग कर देना चाहिये।

* * *

'जी रहे हैं लोग कैसे आजके वातावरणमें'

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

पश्चिमी देशोंकी चमक-दमक, खान-पान और रहन-सहनको आधुनिक समाज अपनी विशेषता मानकर ऐसे कँटीले मार्गपर चलता चला जा रहा है, जहाँ न मर्यादा है, न नैतिकता है, न धर्म है, न संस्कृति है, न परम्पराएँ हैं और न मान्यताएँ हैं। मानवता दानवताका उग्र रूप धारण कर चुकी है। मानव-संस्कृति पूर्व और पश्चिमके नामपर विभाजित हो चुकी है। हमने अपनी प्राचीन वैदिक परम्पराका त्याग कर, भोगवादी पश्चिमी सभ्यताको अपना लिया है। जिनका उन्मुक्त जीवन जीना ही एकमेव लक्ष्य है। इस व्यवस्थाका दुष्परिणाम यह निकला कि राम और कृष्णके देशमें भाई-बहन, पिता-पुत्री और माँ-बेटेके पवित्र रिश्ते भी कलंकित हो गये। पति-पत्नीका अटूट गठबन्धन और जन्म-जन्मान्तर साथ-साथ जीने-मरनेकी कसमें भी अर्थहीन हो गयीं। हमारे समाजमें कितनी विकृति आ गयी है, कितना पतन हो गया है, हमारा आज यह अत्यन्त विचारणीय विषय है।

हम जिन पश्चिमी देशोंकी नकल कर रहे हैं, वहाँके लोग भौतिक सम्पन्नताओंसे निराश होकर सुखकी खोजमें हिमालयकी कन्दराओंमें भटकते देखे जा सकते हैं। एक हम हैं कि अपनी संस्कृतिको जाननेका प्रयास तक नहीं करते। कैसा चरित्र था हमारे समाजका? कैसी थी हमारी वैदिक परम्पराएँ? कैसी व्यवस्था थी हमारे गृहस्थ-संचालनमें? कैसा धर्म था हमारी राजनीतिमें? आइये श्रीरामचरितमानसके एक प्रसंगसे सुखद जीवन जीनेकी प्रेरणा लें—

भगवान् श्रीरामको पिता दशरथजीने चौदह वर्षका वनवास दे दिया है। जानकीजी और लक्ष्मणके संग रामजी वनोंमें विचरते-घूमते चित्रकूटमें विश्राम करते हैं। इधर अयोध्यामें भरतलालजीने राजगद्दी अस्वीकार कर दी और गुरु वसिष्ठ, माताओं (कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी), लघुभ्राता शत्रुघ्न एवं नगरवासियोंके साथ अपने पितृतुल्य भाई श्रीरामजीको वनसे वापस लानेके लिये चित्रकूटकी ओर प्रस्थान कर रहे हैं। शृंगवेरपुरके राजा निषादराजके मार्गदर्शनमें पयस्विनी नदीके तटपर स्थित पर्वतशिरोमणि कामदगिरिपर निर्मित एक सुन्दर आश्रममें प्रवेश करते हैं। सामने ही घने वृक्षोंकी छायामें एक शिलाखण्डपर श्रीराम जानकीजीसहित विराजमान हैं, लक्ष्मणजी भी उनके समीप ही बैठे हैं।

भ्रातृप्रेम और वात्सल्यकी पराकाष्ठा

भरत प्रभुके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं, उनकी आँखोंसे गिरती हुई अश्रुधारा रामजीके चरणोंमें बह रही है। श्रीराम ज्यों-ज्यों भरतको ऊपर उठानेका प्रयास करते हैं, वह उतनी ही शक्तिसे चरणोंसे लिपटे जा रहे हैं। भरतजीका ऐसा स्नेह देखकर मातृस्वरूपा जानकीजी विचलित हो गयीं और स्नेहपूर्वक भरतका सिर सहलाने लगीं। माताका ऐसा वात्सल्य-भाव देखकर हिरणीके बच्चेकी भाँति कातर-दृष्टिसे निहारते हुए कहने लगे—'माँ! मैं अधम और पापी आपके स्पर्शके योग्य नहीं रह गया हूँ।' रामजी भरतके मनकी पीड़ाको भाँप लेते हैं। वह भरतको उठाकर अपने हृदयसे लिपटा लेते हैं। दोनोंकी आँखोंसे स्नेहके आँसुओंका सागर उमड़ पड़ता है। दोनों भाई आलिंगनबद्ध खड़े हैं। इस समय ऐसा लग रहा है, जैसे समस्त ब्रह्माण्ड स्थिर हो गया हो। इस दिव्य मिलनकी झाँकीका दर्शन कर आकाश-मण्डलके सभी देवता अपनेको धन्य मान रहे हैं। जैसे ही लक्ष्मणजीने भरतको सँभाला, वैसे ही शत्रुघ्न दौड़कर रामजी और जानकीजीको प्रणाम करते हैं, रामजी अपने इस छोटे भाईको अपने समीप बिठाकर सान्त्वना देते हैं।

गुरु और माताओंके प्रति श्रद्धा और कर्तव्य

मुनिराज वसिष्ठ एक ओर मौन खड़े हैं, रामजी अपने आसनसे उठकर गुरुके समीप पहुँचकर उनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं, वसिष्ठजी उनकी सभी प्रकारसे मङ्गलकामना करते हुए आशीर्वाद प्रदान करते हैं। तत्पश्चात् रामजी अपनी माताओंकी ओर जाते हैं। सर्वप्रथम कैकेयी माताके चरणोंमें प्रणाम करते हैं। कैकेयी रामजीका ऐसा स्नेह देखकर ठगी-सी खड़ी रह जाती हैं। अपने-आपको दोषी मानकर आशीर्वाद भी देना भूल जाती हैं। रामजी माता सुमित्रा और कौसल्याको भी प्रणाम करते हैं। भगवान् श्रीराम अयोध्यासे आये मन्त्रीगण और नागरिकोंके साथ-साथ वनवासियोंसे मिलकर प्रसन्न हो रहे हैं और उन्हें सभी प्रकारसे आश्वस्त करते हैं। इस प्रकार सभी परिजन लक्ष्मणजी और जानकीजीसे मिल रहे हैं। रात्रिका समय हो गया। सभी लोग विश्राम करने लगे हैं।

गृहस्थधर्म, भारतीय संस्कृतिके परिवेशमें

प्रात:कालका समय हो गया, जड़-चेतनके जीवन-प्रदाता भगवान् भास्कर पूर्व दिशामें उदित हो गये हैं। रामजी गुरु वसिष्ठ, गुरुपत्नी एवं माताओंको उच्चासनपर विराजमान कराकर सबकी वन्दना करते हैं। उसी समय महाराज जनकके दूतने उनके आगमनकी सूचना दी। श्रीराम गुरु वसिष्ठके साथ उपस्थित समाजको लेकर महाराज जनक और महारानी सुनयनाका द्वारपर स्वागत कर आदरपूर्वक आश्रममें ले आये। समस्त जनकपुरवासियोंको भी उचित आदर और सत्कारपूर्वक आश्रममें ठहराया गया। महाराज दशरथके चारों पुत्र महाराज जनक और महारानी सुनयनाके चरणोंमें प्रणाम कर उचित आसन ग्रहण करनेकी प्रार्थना करते हैं। महारानी कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी अपने कक्षमें विचारमग्न बैठी हैं।

जनकनन्दिनी सीता अपने माता-पिताको प्रणाम करती हैं। जानकीकी वेश-भूषा देखकर दोनों दु:खके अथाह सागरमें डूब जाते हैं। जनकनन्दिनी अपने माता-पिताको सभी प्रकारसे आश्वस्त करती हैं। जानकीजीके साथ महारानी सुनयना अपनी समधिनोंसे मिलने उनके कक्षमें जाती हैं। वे सर्वप्रथम महारानी कैकेयीको नमन करती हैं। कैकेयी सिर झुकाकर बैठ जाती हैं, जैसे मौन भाषामें कह रही हों, मैं अपराधिन आपका अभिवादन स्वीकार करने योग्य नहीं हूँ, होनीको कौन टाल सकता है। इस प्रकारसे आश्वस्त कर महारानी कौसल्या और सुमित्राका अभिवादन कर उनके समीप बैठ जाती हैं। कुछ देरतक वार्तालापके पश्चात् सुनयना लौट आती हैं।

पितृकुलकी मर्यादा बनाये रखना आदर्श नारीका सर्वप्रथम धर्म

संसारके समस्त सुख और वैभवमें पली-बढ़ी अपनी लाड़ली बेटीके वनवासी-स्वरूपको देखकर विदेहराज भी मानो देहधर्मसे प्रभावित हो अत्यन्त कातर और विचलित हो उठते हैं। जानकी अपने पिताके दग्ध-हृदयसे लगकर शीतलता प्रदान करते हुए कहती हैं कि आप ही तो मुझे मर्यादित जीवन जीनेकी शिक्षा दिया करते थे। माताजी भी सदैव आदर्श गृहस्थधर्मका पालन करनेकी प्रेरणा दी थीं। मैं आपकी शिक्षाके अनुरूप अपने पतिके सुख-दु:खमें साथ रहकर अपने पतिव्रतधर्मका पालन ही तो कर रही हूँ, इसमें विषादकी कौन-सी बात है!

पतिव्रतधर्मका पालन नारीका सर्वश्रेष्ठ आभूषण

अपनी पुत्रीके मुखसे नारीधर्मकी बातें सुनकर जनकजी कहते हैं—'हे पुत्री! आज मैं धन्य हो गया। तुमने संसारके समस्त वैभव त्याग कर पतिव्रतधर्मका पालन कर दोनों कुलोंको धन्य कर दिया।' सुनयना भी भाव-विभोर हो बेटीको सुखी रहनेका आशीर्वाद देते हुए कहती हैं कि 'जो पुत्री ससुरालमें पिताके कुलका सम्मान बढ़ाये और अपने पतिके प्रति पूर्ण समर्पित हो तथा परिवारके अन्य सदस्योंका यथायोग्य सम्मान और सेवा-शुश्रूषा करे, वह नारी महान् और संसारमें वन्दनीय होगी ही।'

बहुओंका सासके प्रति कर्तव्य

यदि एक ही स्थानपर विवाहिता कन्याके माता-पिता और ससुराल-पक्षके सास-ससुर आदि एकत्रित हों तो बहूके नाते ससुराल-पक्षको प्राथमिकता देनी चाहिये। यह हमारे वेदोंद्वारा प्रमाणित सत्य है। यह नीति सुखी गृहस्थधर्मके लिये आवश्यक है।

जानकी अपनी मातासे विदा लेकर अपनी सासुओंके कक्षमें प्रवेश कर सर्वप्रथम माता कैकेयीकी चरण-वन्दना कर, उनकी हीन-भावनाको दूर करते हुए कहती हैं—'हे माता! आप पश्चात्तापकी जिस अग्निमें जल रही हैं, वह सर्वथा असत्य है। सत्य तो यह है कि श्रीरामजीके भूलोकपर अवतरणका उद्देश्य पूर्ण होनेके लिये वनवास-लीला होनी ही थी। अत: आप सब माताएँ धैर्य धारण करें और हमारा पृथ्वीपर अवतरण सार्थक हो—ऐसा आशीर्वाद दें।' इतना कहकर जानकीजी माता कौसल्या और सुमित्राकी चरण-वन्दना कर उनके समीप बैठ जाती हैं। रात्रिका समय हो गया और तीनों माताएँ विश्राम करने लगी हैं। जानकीजीने अपने शरीरसे तीन दिव्य देह धारण कर सारी रात तीनों माताओंके चरणोंकी समान-रूपसे सेवा की।

राज्यके वैभव और सुखके प्रति अनासक्ति, भरतका अनुकरणीय चरित्र

प्रात:कालका समय हो गया है। अयोध्या और जनकपुरीके सम्पूर्ण समाजकी एक सभा गुरु वसिष्ठकी अध्यक्षतामें आयोजित हुई। गुरु वसिष्ठने श्रीरामको सम्बोधित करते हुए दोनों पक्षोंके सम्पूर्ण समाजके यहाँ आनेका प्रयोजन बताया। गुरुजीने कहा—'राम! तुम्हारे बिना अयोध्या सूनी हो गयी

है। भरत राजगद्दीपर बैठनेको तैयार नहीं हैं। राजगद्दी सूनी भी नहीं छोड़ी जा सकती, इसलिये तुम अयोध्यामें चलकर अपने कर्तव्यका पालन करो। भरत अपने बड़े भाईको हठपूर्वक मनानेकी चेष्टा कर रहे हैं। रामजी धर्म और कर्मकी अनेक प्रकारसे व्याख्या कर भरतको राज्य-कार्य-संचालनके लिये सहमत कर रहे हैं। इस समय ब्रह्म और धर्ममें शक्ति-परीक्षण हो रहा है। अन्तमें विजय धर्मकी होती है। भरत श्रीरामका आग्रह मान अयोध्या लौटनेको तैयार हो जाते हैं, परंतु इस शर्तके साथ कि राजगद्दीपर श्रीराम ही विराजमान होंगे। समस्याका निदान सोचा गया। भरतने कहा—'यदि रामजी मेरे एक प्रस्तावका सम्मान करें तो उसे सामने रखूँ।' रामजीने हाँ भर ली। भरतजीने अपने आँचलसे स्वर्णजड़ित पादुकाएँ निकालकर रामजीके चरणोंमें रखकर स्पर्श करनेकी प्रार्थना की। रामजीके पादुका-स्पर्श कर लेनेके बाद भरतने वे पादुकाएँ अपने सिरपर धारण कर लीं और सम्पूर्ण समाजको सम्बोधित कर कहने लगे—'मैं गुरु वसिष्ठजी, महाराज जनकजी, अपनी माताओं और समस्त प्रजाजनोंको साक्षी मानकर घोषणा कर रहा हूँ कि हे प्रभु श्रीराम! मैं आपके चिह्न-स्वरूप इन पादुकाओंको सिंहासनपर विराजमान कर आपकी आज्ञाके अनुसार अयोध्याकी प्रजाकी सेवा और रक्षा करूँगा। मैं अयोध्या नगरीसे बाहर एक कुटिया बनाकर वहींसे राज्य-संचालन करूँगा। इस चौदह वर्षकी अवधिमें वनवासियोंका वेष धारण कर केवल कन्द-मूल ग्रहण करूँगा। अन्तमें एक बात और सुन लीजिये प्रभु! यदि चौदह वर्षकी अवधि समाप्त होनेवाले दिन आप अयोध्या नहीं पधारे तो आपका यह तुच्छ सेवक उसी दिन अपने प्राणोंका बलिदान कर देगा।'

श्रीरामजीके आश्वस्त करनेपर भरतजी पुनः-पुनः उनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं। माता जानकी और भाई लक्ष्मणको भी यथायोग्य प्रणाम कर अपने समस्त समाजके साथ अयोध्या लौट आते हैं। भरतजी नन्दिग्राममें एक उच्चासनपर श्रीरामजीकी चरण-पादुकाओंको विराजमान कराते हैं। स्वयं मुनि-वेष धारण कर भगवान्‌की चौदह वर्षकी अवधि समाप्त होनेकी प्रतीक्षा करते हैं।

यह ऐसे परमादर्श और मर्यादाकी भावनाओंपर आधारित संस्कृति थी हमारे भारतकी और ऐसा पावन चरित्र था इसमें रहनेवालोंका। आजकी वर्तमान परिस्थितियोंमें यदि विचार करें तो भारतकी संस्कृति और चरित्र शब्दकोशतक सिमट कर रह गये हैं। समस्त प्रकृतिमें उथल-पुथल मची हुई है। भयंकर अपराधोंकी छत्रच्छायामें मानव साँस लेनेको विवश हो गया है। संत तुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानस (२। ७१। ६)-में लिखा है—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥

अर्थात् जिस राजाके राज्यमें प्रजा दुखी हो, उस राजाको नरक भोगना पड़ता है। आज इन दकियानूसी बातोंको कौन मानता है। आज किस राजाको अपनी प्रजाकी चिन्ता है, कौन-सा पुत्र माता-पिताकी आज्ञा मानता है, कौन-सा भाई अपने भाईको प्यार करता है, कौनसे शिष्य अपने गुरुओं और परिवार तथा समाजके श्रेष्ठ जनोंकी पग-वन्दना करते हैं, कौन भील और कोल-किरातोंको गले लगाता है, कौन-सा हनुमान् बनकर स्वामिभक्तिका उदाहरण प्रस्तुत करता है, कौन-सी सुनयना अपनी बेटीको गृहस्थधर्मकी शिक्षा देती है, कौन-सी सीता अपनी सासकी चरण-सेवा करती है, आज कहाँसे लायें कौसल्या और सुमित्रा-जैसी सासुओंको जो बहुओंको अपने कलेजेसे लगाकर रखें, कहाँसे लायें जानकी-जैसी पतिव्रता नारियोंको जो अपने पतिका साथ निभानेके लिये राजमहलोंके सुख और वैभव तकको त्याग दें। कहाँसे लायें भरतको जिसने राजगद्दीका त्याग कर एक अनुपम अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

राजा कैसा होना चाहिये, संत श्रीतुलसीदासजी श्रीरामचरितमानस (२। ३१५)-में लिखते हैं—

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥

मुखिया, नेता अथवा प्रशासक मुखके समान होना चाहिये, जो खाने-पीनेको तो अकेला है, परंतु बुद्धिमानीसे शरीरके सब अङ्गोंका पालन-पोषण करता है। आजके राजा कैसे हैं सब जानते हैं—*'नानक दुखिया सब संसारा'* आज सारा संसार सचमुचमें दुखी है, उसका एकमात्र कारण यही है कि हमने मानव-संस्कृतिको त्याग कर दानवताको गले लगा लिया है। यदि हम सुखी जीवन जीना चाहते हैं तो अपनी प्राचीन संस्कृतिको अपनाना होगा। वेदों और शास्त्रोंमें वर्णित तथा संत-महात्माओंद्वारा राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्थाके बारेमें बताये गये मार्गका अनुसरण करनेमें ही मानव-जातिका कल्याण निहित है।

◆

बाल-कल्याण

(१)

बालवृत्तिकी अनुपम महिमा

संसारके सभी धर्मोंमें बालवृत्तिकी महिमा और रुचिरताकी प्रशंसा पायी जाती है। किसी महापुरुषकी ऋजुता और सरलताका जब वर्णन करना होता है, तब उसके विषयमें प्रायः यह कहा जाता है कि 'वह बालककी तरह सरल है'। जिन समाजोंमें गाय विशेषरूपसे पवित्र और पूज्य नहीं मानी जाती, उनके साहित्यमें निष्पापताके लिये तो मेमनेसे उपमा दी जाती है; परंतु सरलताके लिये बालकसे ही उपमा दी जाती है। बालस्वभावमें किसी प्रकारका कपट या छल-प्रपञ्च नहीं होता। ईसाने तो यहाँतक कहा है कि—'इन नन्हे-नन्हे बालकोंको मत रोको। इन्हें मेरे पास आने दो; क्योंकि इन्हीं-जैसोंका स्वर्गका राज्य है।'

बालकृष्णकी बाल-लीलाओंसे श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका पूर्वार्ध ओतप्रोत है। उन लीलाओंको पढ़कर मनुष्य विभोर हो जाता है। किसी तरहकी चिन्ता नहीं, दौड़-धूप नहीं, जोड़-तोड़ नहीं। जीवनमें केवल विशुद्ध आनन्द है, दिव्य प्रसाद है। गोपालकृष्णकी बालवृत्ति हमारे चित्तको मुग्ध कर लेती है; परंतु हर-एक चरवाहे बालकके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि—

गवां संसर्गमात्रेण गोपो भवति बालिशः।

बालवृत्ति और है, बालिशता कुछ और है। अंग्रेजीमें 'चाइल्डलाइक' और 'चाइल्डिश'—ये दो विशेषण दो बिलकुल विरोधी वृत्तियोंके द्योतक हैं। श्रीमद्भगवद्गीताके पाँचवें अध्यायके चौथे श्लोकमें '**बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः**' कहा है। यहाँपर भी 'बाल' शब्दसे मूर्खता तथा अज्ञता ध्वनित की गयी है। हम संसारमें बालवृत्तिका परिपोष करना चाहते हैं, न कि बालिशताका।

पुरानी कहावत है—'खेलोगे, कूदोगे, होगे खराब।' अंग्रेजीमें भी कहावत है— `All work and no play makes jack a dull boy.` उसपर दूसरेने जवाब दिया है— `But all play and no work makes him worse.` हम प्रायः बालकके साथ खेल और खिलौनेका साहचर्य मानते हैं। बालक खेलता-ही-खेलता है। जब वह खेलता नहीं है, तब या तो रोता है, या सोता है। बस, इतनेमें उसकी जीवनचर्या सम्पन्न हो जाती है। मनुष्यको खेलमें आनन्द आता है और काममें कष्ट होता है, इसलिये वह कामसे जी चुराकर खेलनेके लिये भागता है। खेल उसके मनोविनोदका साधन है। वह उसे `'Recreation'`-संजीवन कहता है। तब प्रश्न यह होता है कि क्या हम दुनियाको खिलौना मानकर जीवनके साथ खिलवाड़ करना ही अपना परम पुरुषार्थ मानते हैं? लक्ष्मणने तावमें आकर कह दिया था कि '***कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं।***' परंतु वे उसे खेलनेके लिये उछालना नहीं चाहते थे, बल्कि गुस्सेमें आकर '***काचे घट जिमि***' फोड़ डालना चाहते थे। बालक जब चिढ़ जाता है, तब खिलौना फोड़ डालता है। उसका खेलना भी खेल ही है और फोड़ना भी खेल ही है। न खेलनेमें कोई संकल्प या योजना है और न फोड़नेमें ही। क्या हम इसी तरहके संसारका निर्माण करना चाहते हैं?

बालकोंके लिये तरह-तरहके नन्दनवनोंकी कल्पनाएँ की गयी हैं। उनके परिस्तान और आनन्दलोक ऐसे होंगे जहाँ उन्हें हरेक चीज बिना श्रमके अपने-आप मिलेगी। मेवे और पक्वान्न पेड़ोंमें लगे होंगे। कपड़े और खिलौने भी पेड़ोंमें लगे होंगे। उनके चमनमें कुछ ऐसे भी पेड़ होंगे, जिनमें तरह-तरहके पेय पदार्थोंके जाम लटक रहे होंगे। बालकोंके नन्दनवनमें सभी पेड़ कल्पतरु होंगे और इच्छामात्रसे उनके सारे मनोरथ पूर्ण होंगे। श्रम और चिन्तासे बचनेके लिये प्रौढ़ मनुष्यने भी इसी तरहके स्वर्गलोककी कल्पनामें मानसिक विश्राम पाया है; परंतु यह पुरुषार्थका रास्ता नहीं है, पलायनका रास्ता है।

बालकका जीवन उसकी लीला है। इसका यह अर्थ है कि खेलकी तरह परिश्रम भी उसकी क्रीडा होनी चाहिये। श्रीमद्भागवतमें हम देखते हैं कि बालकृष्णकी जितनी लीलाओंका और नटखट चेष्टाओंका वर्णन है, उनसे कोई-न-कोई लोककल्याणका प्रयोजन सिद्ध होता है। मक्खन-मलाईकी चोरी, ऊखलका खींचा जाना, छकड़ेका गिराया जाना आदि सभी उत्पातोंमें कोई-न-कोइ हेतु छिपा हुआ होता है। इसीलिये विष्णुर्महिम्नः स्तोत्रके मर्मज्ञ रचयिताने

कहा है—

क्वचिद् दिव्यं शौर्यं क्वचिदपि रणे कापुरुषता
क्वचिन्मृत्स्नाशित्वं क्वचिदपि च वैकुण्ठविभवः।
क्वचिद् गीताज्ञानं क्वचिदपि परस्त्रीविहरणं
चरित्रं ते नूनं शरणद विमोहाय कुधियाम्॥

तात्पर्य यह कि जिस खेलसे बालकका गूढ विकास नहीं होता, अर्थात् उसकी सांस्कृतिक उन्नति नहीं होती, वह खेल प्रशस्त नहीं है। खेल भी बालकके मनपर कुछ सामाजिक संस्कार करनेके लिये होते हैं। मनोविनोदमें भी अभिरुचिका विकास होता है। सारी कल्याणकारी क्रियाएँ सहजभावसे और आनन्दपूर्वक करनेकी वृत्तिका निर्माण करना ही खेलका उद्देश्य होना चाहिये। हम अपने सब कर्तव्य राग-द्वेषसे मुक्त होकर उत्साहपूर्वक और शौकसे करें, यही खेलका प्रयोजन होना चाहिये। अन्यथा खेलमेंसे निष्पापता और ऋजुताके बदले उत्पात और ओछापन पैदा होगा।

यह सृष्टि भी तो भगवान्की लीला ही कहलायी है। क्या उसकी तबीअत नहीं लगती थी? वह उकता गया था? अतएव अपना दिल बहलानेके लिये उसने यह भूल-भुलैया बनायी। जिस व्यापारमें तबीअत बहलती है, उसे खेल कहते हैं। गुजरातीमें तो खेलनेके लिये 'रमवुं' शब्द है। जिसमें आदमी रमता है, वह खेल है। ईश्वरकी लीलाका यदि यही अर्थ किया जाय तो वह बेचारा 'वैषम्य-नैर्घृण्य' दोषसे नहीं बच सकेगा, इसीलिये वेदान्तसूत्रमें '**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**' की व्याख्या करते हुए भाष्यकारने कहा है कि कृतकृत्य मुक्तपुरुष जिस प्रकार अपने लिये या अपने संकल्पकी पूर्तिके लिये कुछ नहीं करता, उसकी जो क्रियाएँ होती हैं, वे सहजभावसे अपने-आप होती हैं; परंतु सिद्धावस्थाके कारण उन क्रियाओंमें सहज शुचिता और चारुता होती है। उसी प्रकार भगवान्के लिये सृष्टिका निर्माण लीलामात्र है; मनुष्य भी जब जीवनसिद्ध हो जाता है, तब उसके जीवनमें सहज सुन्दरता और सहज पवित्रता होती है। सिद्धहस्त कलाकारके लिये कला ही खेल हो जाती है।

इस अनूठे अर्थमें हम इस जगत्को अपना क्रीडाङ्गण बनाना चाहते हैं, जिसमें मनुष्यकी वृत्ति अकलुषित तो रहेगी, परंतु अशिक्षित नहीं रहेगी। उसकी संस्कृति ही उसका स्वभाव होगा। उसके आचरणमें कृत्रिमता नहीं होगी, परंतु वह प्राकृत भी नहीं होगा। प्राञ्जलताके साथ-साथ उसमें सभ्यता भी होगी। वह बिना परिश्रमके फलकी आकांक्षा नहीं रखेगा, बल्कि अपने परिश्रमको ही अपनी लीला मानेगा। जिम्मेवारीसे छुटकारा नहीं चाहेगा। अपनी जिम्मेवारीको दूसरोंके साथ सम्बन्ध जोड़नेकी कड़ी समझेगा।

रवि ठाकुरने अपनी एक कवितामें बालवृत्तिका दिग्दर्शन किया है, जिसका भाव इस प्रकार है—बाप बालकसे कहता है—'ये चमकीले सफेद-सफेद कंकड़, कौड़ियाँ, छीपें और शङ्ख जुटा-जुटाकर घरमें कचरेका ढेर क्यों लगा रहा है?' बालक पूछता है—'आप भी तो चमकीली गोल-गोल चकतियाँ जुटा-जुटाकर अपनी संदूकमें रखते हैं। यदि वह कचरा नहीं है तो यह कचरा कैसे है?'

हम जीवनमें बालकोंकी निष्कपटता और स्वाभाविक सख्य-भावनाका विकास तो करना चाहते हैं, परंतु उनकी प्राकृतता और अबोधताका सम्पादन नहीं करना चाहते। बालवृत्तिका अर्थ है—निर्वैरताकी मनोवृत्ति। एक ही चमूके खिलाड़ियोंकी सहज स्नेहशीलता। इसे चाहे चमूवृत्ति कह लीजिये। बालकके लिये सभी गोईं-गुँय्या हैं। उसका कोई प्रतिपक्षी नहीं। जो दूसरे दलके खिलाड़ी हैं, वे भी तो सहयोगी ही हैं। जैसे संसदकी राजनीतिमें विरोधी पक्ष भी सहयोगी माना जाता है, उसी प्रकार हमारे लिये यह संसार एक बालवाटिका होगी, जिसमें कर्तव्य, परिश्रम और परस्परदायित्व—ये सभी भाव खेलकी तरह आनन्ददायक और सहजसाध्य होंगे। उनमें किसी तरहके प्रयास या क्लेशका भान नहीं रहेगा। हमारा जीवन हमारी लीला होगी और सारा जगत् एक स्वरसे एक ही वृन्दसंगीत गायेगा '**आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्।**' उस संगीतकी प्रतिध्वनिसे आसमान भी गूँजने लगेगा।

(२)

बालक अन्सारुल हककी दयालुता

बिहार प्रान्तके बेलवागंजके एक गरीब व्यक्तिके मकानमें एक दिन आग लग गयी। जो लोग उस समय उस मकानमें थे, भागकर बाहर निकल आये। बाहर आनेपर उन्हें याद आया कि एक छोटा बच्चा मकानमें ही रह गया है। वे लोग चाहते थे कि उस शिशुको निकाल लें; किंतु उस समयतक फूसका छप्पर धधक उठा था। मकान चारों ओरसे आगकी

लपटोंमें ढक गया था। किसीका साहस उसमें जाकर बच्चेको लानेका नहीं हुआ। बच्चेकी माता तथा उसके सम्बन्धी बाहर खड़े रो रहे थे।

आगकी लपटोंको देखकर वहाँकी पाठशालाके कुछ विद्यार्थी भी दौड़े आये और अग्नि बुझानेका प्रयत्न करने लगे। उनमेंसे एक विद्यार्थीने जैसे ही सुना कि जलते घरमें एक नन्हा बालक सोता हुआ रह गया है, वैसे ही उसने अपना कुर्ता उतार फेंका और दौड़कर आगकी लपटोंमें होता वह घरमें घुस गया। वह जानता नहीं था कि बच्चा किस स्थानपर है, अतः ढूँढ़नेमें उसे कुछ मिनट लग गये। बच्चेको गोदमें छिपाये दौड़ता हुआ जब वह निकला, बच्चेकी माताने दौड़कर अपने बच्चेको गोदमें ले लिया।

उस वीर बालकका नाम अन्सारुल हक था, जिसने अपनेको आगकी लपटोंमें डालकर शिशुके प्राण बचाये थे। अन्सारुल हक स्वयं पर्याप्त जल गया था और इसलिये अस्पताल जाकर उसे अपनी चिकित्सा करानी पड़ी; किंतु अपने सत्-साहससे उसने एक शिशुके प्राणके साथ मनुष्यताकी रक्षा की। कर्तव्यके लिये प्राण दे सकनेवाला ही तो सच्चा मनुष्य है।

(३)

दुखी मुसाफिरकी सेवा करनेवाला बालक

एक गाँवके रास्तेपर एक लँगड़ा नाविक एक दिन बैठा था। सख्त गरमी पड़ रही थी और अपनी टेकनेवाली लाठीके टूट जानेके कारण उस बेचारेसे चला नहीं जाता था। 'रास्तेमें कोई गाड़ी मिल जाती, तो अपने गाँवमें पहुँचा देती'—इस आशासे वह बैठा किसी गाड़ीकी बाट देख रहा था। इतनेमें वहाँ एक गाड़ी आयी। उसमें अपनेको बैठा लेनेके लिये उसने अर्ज की; परंतु गाड़ीवानने भाड़ा माँगा, उसके पास कुछ था नहीं, इससे वह नहीं जा सका। बहुत देरतक दूसरी कोई गाड़ी न आनेके कारण वह आखिरमें एक पेड़के नीचे जाकर सो गया। थोड़ी देरके बाद उसकी नींद टूटी तो देखता क्या है कि पानी पड़ रहा है और उसके ऊपर किसीने कपड़ा ओढ़ा दिया है और पास ही एक बालक टूटी हुई लाठीको रस्सीसे बाँधकर दुरुस्त करने बैठा है। यह देखकर लँगड़ेने उस लड़केसे पूछा—'हे भले लड़के! तू क्यों नंगा बैठा है और मेरे ऊपर अपने कपड़ेको क्यों डाल दिया है?'

बालकने जवाब दिया—'मैं इधरसे जा रहा था, इतनेमें तुम्हें मैंने पानीमें भीगते देखा। तुम गहरी नींदमें सोये थे, वर्षासे भीग जानेपर तुम जाग उठते और तुम्हारी नींद जाती रहती, यह बात मुझको अच्छी नहीं लगी। इसके सिवा, तुम बूढ़े हो, इससे सर्दी लगनेपर बीमार पड़ जाते। इसीलिये मैंने अपना कोट उतारकर तुम्हारे ऊपर डाल दिया। मैं बालक हूँ, इससे नंगा रह सकता हूँ। तुम्हारी लाठी टूटी हुई देखकर अपनी रस्सीसे उसे दुरुस्त करने बैठा हूँ। यह बँधकर तैयार हो जायगी और यहाँसे थोड़ी दूरपर मेरा गाँव है, वहाँ मेरे साथ तुम चलोगे तो अपने काकाकी नयी लाठी तुमको दिला दूँगा।'

उस बालककी यह बात सुनकर उस नाविकको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसकी आँखोंसे एकाएक आँसू गिरने लगे। यह देखकर लड़केने उससे पूछा—'तुम क्यों रो रहे हो?' यह सुनकर लँगड़ा बोला—'मेरा लड़का भी तुम्हारे-जैसा ही भला था और तुम्हारी-जैसी ही उसकी मधुर वाणी थी। पाँच वर्ष हुए, मैं जहाजमें नौकरी करने गया था। अब वह लड़का कहाँ होगा, यह याद करके रोता हूँ।'

यह सुनकर उस लड़केने पूछा—'उस लड़केका नाम क्या है?' लँगड़ा बोला—'उसका नाम विट्ठल है और मेरा नाम जीवो है।' नाम सुनकर वह लड़का एक बारगी लँगड़ेकी छातीसे चिपक गया और कहने लगा कि 'बाबा! मैं ही तुम्हारा विट्ठल हूँ।' फिर वह बालक उसको गाँवमें ले गया और अपने काकाको सब समाचार कह सुनाया। इसके बाद दोनों भाई मिले और खुशीसे एक साथ रहने लगे। तुरंत ही नयी लाठी तैयार की गयी और उसको लेकर नाविक जहाँ-तहाँ गाँवमें घूमने लगा। उसने उस पुरानी लाठीको, जिसे उस बालकने दुरुस्त किया था, आजीवन बचाकर रखा; क्योंकि उसी लाठीके कारण लड़केका और दोनों भाइयोंका मिलाप हुआ था।

* * *

संन्यासी साधकों और कीर्तनकारोंसे नम्र निवेदन

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[यह लेख बहुत पहले 'कल्याण' के ९ वें वर्षमें प्रकाशित हुआ था। वर्तमान समयमें इसकी विशेष उपयोगिता देखते हुए इसे पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।]

श्रीपरमात्मदेव तथा उनके भक्तोंकी कृपा और आज्ञासे आज मैं यहाँ संन्यासी साधकोंके आचरण और कीर्तनके सम्बन्धमें उन भावोंको लिखनेकी चेष्टा करता हूँ जो मुझे प्रिय लगते हैं। यद्यपि मैं अपनेको लिखने और इस तरह उपदेश-आदेश देनेका किसी तरह भी अधिकारी नहीं मानता, और न मुझसे ऐसे आचरण पूरी तौरसे बनते ही हैं, तथापि मुझको ऐसे शास्त्रीय तथा संतोंके आदरणीय आचार-विचार कुछ प्रिय मालूम होते हैं, इसीलिये ऐसी चर्चामें समय बिताना अपना अहोभाग्य समझकर कुछ प्रयास कर रहा हूँ। आशा करता हूँ, मेरे अन्यान्य साधक भाई भी ऐसे विचार यदा-कदा प्रकट करेंगे; क्योंकि ऐसा करनेसे मुझ-सरीखे लोगोंको उनके विचार पढ़नेको मिलेंगे और उन भाइयोंका भी कुछ समय सच्चर्चामें बीतेगा। संत-महात्मा तथा शास्त्रोंके वचनोंके अनुसार सत्संगमें सुने हुए और ग्रन्थोंमें पढ़े हुए जो कुछ विचार मैं यहाँ लिखता हूँ, उनमें यदि कोई बात अनुचित हो तो विज्ञ महानुभाव अपना ही बालक समझकर मुझे क्षमा करनेकी कृपा करेंगे।

साधकको हर्ष, शोक, काम, क्रोध आदिसे अलग रहनेकी पूरी कोशिश करनी चाहिये। कम-से-कम इनके वशीभूत तो कभी नहीं होना चाहिये। उसमें भी मुझ-जैसोंको तो राग-द्वेषस्वरूप कामिनी और काञ्चनसे उसी तरह डरना चाहिये जैसे साधारण लोग भूत, प्रेत, सर्प, व्याघ्रादिसे डरते हैं और यह समझना चाहिये कि जिस क्षण कामिनी-काञ्चनमें संन्यासी साधककी आसक्ति हुई कि बस, उसी क्षण उसका पतन हो गया।

यह कभी नहीं समझना चाहिये कि राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि अन्तःकरणके धर्म हैं। ये धर्म नहीं हैं, विकार हैं। जो इनको अन्तःकरणके धर्म समझ लेता है वह शरीर-नाश होनेतक अन्तःकरण रहनेके कारण इनका भी रहना अनिवार्य मानता है; फलतः वह अपनेको ज्ञानी मानकर भी ऐसा समझ लेता है कि राग-द्वेष, काम-क्रोधादि तो जबतक अन्तःकरण है तबतक रहेंगे ही, मेरा इनसे क्या सम्बन्ध है? वास्तवमें ऐसा समझना भ्रम ही है। जो ऐसा समझता है और राग-द्वेष, काम-क्रोध आदिसे बचनेकी कोशिश नहीं करता, वह ज्ञानी तो दूर रहा, अच्छा साधक भी नहीं है।

यह निश्चय समझ रखना चाहिये कि सच्चे ज्ञानीमें वस्तुतः काम-क्रोध आदि दोष रहते ही नहीं। जिसे खूब अच्छा बोलना आता है, जो शास्त्रवाक्योंद्वारा ब्रह्मका सुन्दर निरूपण कर सकता है अथवा जो ज्ञानपर अच्छे-अच्छे तर्कप्रधान निबन्ध लिख सकता है, वह ज्ञानी ही है, ऐसा नहीं समझना चाहिये। ये सब बातें तो ग्रन्थोंके पढ़नेसे हो सकती हैं। नाटकमें भी शुकदेवका पार्ट किया जा सकता है। ज्ञानी तो वह है जो अज्ञानके समुद्रसे सर्वथा तर गया। राग-द्वेष, काम-क्रोधादि अज्ञानमें ही हैं। ज्ञानमें तो इनका लेश भी नहीं।

जो लोग वास्तविक ब्राह्मी स्थितितक पहुँचनेसे पहले ही केवल पुस्तकीय ज्ञानके आधारपर अपनेको ज्ञानी मान बैठते हैं और विधि-निषेधसे मुक्त समझकर साधन छोड़ बैठते हैं, वे प्रायः गिर ही जाते हैं। क्योंकि जबतक अज्ञान है तबतक इन्द्रियोंके भोगोंमें आसक्ति है ही, और पाप होनेमें प्रधान कारण भोगोंकी आसक्ति ही है। फिर, जहाँ काम-क्रोधादि ही अन्तःकरणके अनिवार्य धर्म मान लिये जायँ, वहाँ तो कहना ही क्या? अतएव मुझ-जैसे साधकोंको तो बड़ी ही सावधानीके साथ दुर्गुणोंसे बचते रहनेका पूरा ध्यान रखना चाहिये। अपनेको राग-द्वेष, काम-क्रोध-लोभादि दोषोंसे हरदम बचाते रहना चाहिये। संन्यासाश्रममें तो साधकको कभी भूलकर भी स्त्री और धनके साथ किसी प्रकार भी सम्बन्ध न जोड़ना चाहिये। इनका संग ही न करना चाहिये। जो सिद्ध महापुरुष हैं, उनमें तो कोई ऐसा दोष रह ही नहीं सकता।

यह स्मरण रखना चाहिये कि ढोंगी ज्ञानीकी अपेक्षा अज्ञानी रहना अच्छा है; उसको पापोंसे डर तो रहता है। ढोंगी तो जान-बूझकर ढोंगकी रक्षाके लिये भी पाप करता है। अतएव ढोंगको कभी कल्पनामें भी न आने देना

चाहिये; सच्चा संन्यासी बनना चाहिये। और—

यावदायुस्त्वया वन्द्यो वेदान्तो गुरुरीश्वरः।
मनसा कर्मणा वाचा श्रुतेरेवैष निश्चयः॥

(तत्त्वोपदेश ८६)

—आचार्यचरणोंकी इस उक्तिके अनुसार शास्त्रकी विधिको सर्वदा मानते रहना चाहिये। संन्यासीके पालन करनेयोग्य कुछ धर्म ये हैं—गृहस्थोंका संग न करे। स्त्रीकी तो तस्वीर भी न देखे। धनका स्पर्श न करे। किसीके साथ कोई नाता न जोड़े। किसी भी विषयमें ममत्व न करे। मान-बड़ाई स्वीकार न करे। वैराग्यकी बड़ी सावधानीसे रक्षा करे। इन्द्रियोंको संयममें रखे। वस्तुओंका संग्रह न करे। जमात न बनावे। घर न बाँधे। व्यर्थ न बोले। ब्रह्मचर्य धारण करे। काम-क्रोध-लोभादिसे सदा मुक्त रहे। किसीसे द्वेष न करे। किसीमें राग न करे। नित्य आत्मचिन्तन या भगवत्स्मरणमें ही लगा रहे।

जो संन्यासी अपने इस संन्यास-धर्मका पालन नहीं करता वह प्रायः गिर जाता है। अतएव अपने आश्रमधर्मका पूरा पालन करना चाहिये। विधि-निषेधसे परे पहुँचे हुए महापुरुषोंके द्वारा भी लोकसंग्रहार्थ आदर्श शुभ कर्म ही हुआ करते हैं।

अगर भक्त बननेकी चाह हो तो भगवान्के शरण होकर भगवान्का सतत भजन करते रहना चाहिये। धन, मान, बड़ाई आदिकी चाहको मनमें न आने देना चाहिये। लोग भक्त समझें या कहें, इस बातकी परवा छोड़ ही देनी चाहिये। भगवान्का नाम और गुणकीर्तन प्रेमसे करते रहना चाहिये। जहाँतक बने, अपनी भक्तिको प्रकट नहीं होने देना चाहिये। लोग हमारी पूजा करें, हमारा सम्मान करें, ऐसा अवसर ही नहीं आने देना चाहिये। मान-बड़ाईसे सदा सावधानीसे बचते रहना चाहिये। स्त्रीका और स्त्रीसंगियोंका संग तो कभी नहीं करना चाहिये। धनका लोभ मनमें न आने देना चाहिये। प्रतिष्ठाको तो शूकरीविष्ठा ही समझना चाहिये।

कीर्तन करना चाहिये, खूब कीर्तन करना चाहिये; परंतु करना चाहिये श्रीभगवान्के प्रीत्यर्थ, लोकरञ्जनके लिये नहीं। लोकरञ्जनका कीर्तन बाह्य हो जायगा। कीर्तन करनेवालेके मनमें यह दृढ़ भाव निश्चयरूपसे होना चाहिये कि मेरे भगवान् निश्चय ही यहाँ मौजूद हैं और मैं उन्हींके सामने उन्हींके प्रीत्यर्थ उनके नाम-गुण गा रहा हूँ। भगवान्के नाम-गुणोंके अर्थका चिन्तन करते हुए—भगवान्का ध्यान करते हुए कीर्तनमें मस्त होना चाहिये। यदि ऐसा भाव न हो तो इस प्रकारका अभ्यास ही करना चाहिये। परंतु ऐसा कभी न सोचना चाहिये कि मेरे इस कीर्तनसे लोगोंको—देखने-सुननेवालोंको प्रसन्नता हुई या नहीं, उनका मन मेरी ओर आकर्षित हुआ या नहीं। भगवान्के नाममें श्रद्धा कीजिये, प्रेम कीजिये और श्रद्धा तथा प्रेममें सानकर ही भगवान्के नामका उच्चारण कीजिये। फिर आपके मुखसे निकला हुआ एक ही नाम चमत्कार उत्पन्न कर देगा। श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके श्रीमुखसे निकला हुआ एक ही नाम सुननेवालेको पागल कर देता था; क्योंकि उस नामके साथ श्रीचैतन्यकी प्रेमशक्ति भरी रहती थी।

एक बात और याद रखनी चाहिये। भगवान्का कीर्तन करनेवालोंको सदाचारी होना ही चाहिये, दैवी सम्पत्तिवान् बनना ही चाहिये। जो भगवान्का नाम लेकर नाचता-गाता है, परंतु जिसके आचरण शुद्ध नहीं हैं, उससे जनतापर अच्छा असर नहीं पड़ता। लोग उसको आदर्श मानकर आचरणोंकी ओर ध्यान नहीं देते, जिससे दूसरे लोगोंको कीर्तन तथा कीर्तन करनेवालोंपर, यहाँतक कि उनके कीर्तनीय भगवान्पर भी आक्षेप करनेका अवसर मिल जाता है। अतएव हमें अपनी जिम्मेवारी समझनी चाहिये। कहीं हमारे आचरणसे पवित्र संकीर्तन और हमारे भगवान्पर कोई कलंक न लगाने पाये। वास्तवमें पवित्र संकीर्तन और भगवान्पर तो कलंक लग ही नहीं सकता; तथापि कहनेके लिये भी हमारे दोषसे ऐसा क्यों होना चाहिये?

आचरण शुद्ध नहीं है तो भी कीर्तन करना चाहिये, परंतु एकान्तमें। आचरणोंकी शुद्धिके लिये भगवान्के सामने रोना चाहिये। भगवान्से भीख माँगनी चाहिये। परंतु सावधान! संकीर्तनके नामपर दुराचरणको कभी छिपाना नहीं चाहिये और दुराचारका समर्थन तो किसी भी हालतमें नहीं करना चाहिये।

संकीर्तनके नामपर वर्ण और आश्रमके कर्मोंकी अवहेलना या उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिये। स्वधर्मको पालते हुए ही कीर्तन करना चाहिये। ज्ञानकी, वैराग्यकी, सदाचारकी, वर्णाश्रमधर्मकी और संध्या-गायत्रीकी संकीर्तनके नामपर कभी निन्दा नहीं करनी चाहिये; बल्कि इनको अवश्यपालनीय समझना चाहिये, इन सबका आदर करना चाहिये और

यथायोग्य शास्त्रविधानके अनुसार पालन करना चाहिये।

संकीर्तनके नामपर पक्षपात या भगवान्‌के नामोंमें ऊँच-नीच-बुद्धि और दलबंदी नहीं करनी चाहिये। संकीर्तनका संगठन अवश्य करना चाहिये, परंतु दलबंदी नहीं। सरल पवित्र निष्कपट निष्काम अनन्य प्रेमभावसे भगवान्‌के पवित्र नामोंको स्वयं गाना चाहिये और दूसरोंको ऐसा करनेके लिये प्रेरणा करनी चाहिये। परंतु यथासाध्य उपदेशक, नेता अथवा आचार्य नहीं बनना चाहिये। पूजा, सत्कार, मान, बड़ाई आदिसे सदा अपनेको बचाते रहना चाहिये। धन और स्त्रीके लालचमें तो कभी पड़ना ही नहीं चाहिये।

संकीर्तनके समय मुक्तकण्ठसे भगवान्‌के नामोंका घोष करना चाहिये। ज्ञान, विद्वत्ता, पद, धन आदिके अभिमानमें चुप नहीं बैठ रहना चाहिये। खड़ा कीर्तन होता हो तो संकोच छोड़कर खड़े हो जाना चाहिये। कहीं हमारे किसी आचरणसे भगवन्नामसंकीर्तनका अपमान न हो जाय। परंतु नाचना चाहिये प्रेमावेश होनेपर ही, लोग-दिखाऊ नहीं। कलाका नृत्य दूसरी चीज है एवं प्रेममय भगवन्नामकीर्तनका दूसरी।

याद रखना चाहिये, भगवन्नामकीर्तन बहुत ही आदरणीय और ऊँचा साधन है। इसका ऊँची-से-ऊँची भावनासे साधन करना चाहिये; ऊँचे-से-ऊँचे आचरणोंसे युक्त होकर कीर्तन करना चाहिये। पवित्र पुरुषोंद्वारा किये हुए भगवन्नामकीर्तनकी ध्वनि जहाँतक पहुँचेगी वहाँतकके समस्त जीवोंका अनायास ही कल्याण हो सकता है।

साधनोपयोगी पत्र

[परमार्थ-पत्रावली]

(१)

महोदय! आपका एक पत्र 'कल्याण'-सम्पादकके नामका मुझे मिला। उसमें आपने 'कर्मयोगकी सुगमता' शीर्षक लेखके विषयमें जो शंकाएँ लिखी हैं उनका उत्तर इस प्रकार है—

इस लेखमें तात्त्विक नियमोंका उल्लंघन नहीं किया है। लेखको ध्यानपूर्वक पढ़नेसे और पूर्वापरका विचार करनेसे यह संदेह होनेकी गुंजाइश भी नहीं है। गीता हमारे अनुभवका अनुवाद नहीं है, भगवान्‌ने अपने अनुभवका दिग्दर्शन लोगोंके हितके लिये कराया है।

'कर्मयोगके साधनका आरम्भ देहाभिमान और अन्तःकरणकी मलिन-दशामें भी हो सकता है'—यह बात युक्तिसंगत अनुभवमें आनेवाली और गीतामें प्रमाणित है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥

(गीता ५। ११)

यदि आत्माकी मलिनावस्थामें कर्मयोगका आरम्भ नहीं हो सकता तो योगी लोग आत्मशुद्धिके लिये कर्म करते हैं यह कहना ही नहीं बन सकता। आपके दिये हुए गीताके प्रमाणोंसे यह बात तो सिद्ध होती है कि कर्मयोगके साधनमें मन और इन्द्रियोंपर मनुष्यका अधिकार होना चाहिये, परंतु यह प्रमाणित नहीं होता कि मन और इन्द्रियोंके शुद्ध हुए बिना कर्मयोगका आरम्भ नहीं हो सकता। कामना और आसक्ति छोड़कर कर्म करनेका नाम कर्मयोग है न कि कर्म करने मात्रका। कामना और आसक्तिके त्यागसे ही मनुष्यका अन्तःकरण स्वच्छ होता है एवं मन और इन्द्रियोंपर अधिकार होनेसे ही मनुष्य कामना और आसक्तिका भलीप्रकार त्याग कर सकता है, अतः मन और इन्द्रियोंको वशमें कर लेना एक बात है और अन्तःकरणकी शुद्धावस्था दूसरी बात है। दोनों एक बात नहीं है, यह बात समझ लेनेके बाद आपकी शंकाका अपने-आप समाधान हो सकता है। स्वभावसे जो कामना और आसक्तिपूर्वक कर्मोंका आचरण होता है वह मनुष्यको बाँधनेवाला है, उससे अन्तःकरण पवित्र नहीं बल्कि मलिन होता है और निष्कामभावसे किये हुए कर्मोंके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध होता जाता है। अतः स्वभावसे होनेवाले कर्मोंमें और कर्मयोगीद्वारा होनेवाले कर्मोंमें बहुत भेद है। यह समझ लेना चाहिये।

(२)

आपका पत्र मिला। अपनी समझके अनुसार आपके पत्रोंका उत्तर दे रहा हूँ।

१-आपने लिखा है कि १३ कोटि नाम-जप करनेसे श्रीभगवान्‌के दर्शन होते हैं। अतः इसके सम्बन्धमें तो वे ही

संत उत्तर दे सकते हैं, जिन्होंने यह लिखा है। किस रीतिसे जप करना चाहिये इसका उत्तर भी वही दे सकते हैं।

मैं इतना कह सकता हूँ कि भगवान्‌का जप मनुष्य जिस समय चाहे प्रारम्भ कर सकता है। और वह जप ध्यानसहित निष्कामभावसे होना चाहिये, मैं इसीको उत्तम रीति मानता हूँ। आपने मालाके विषयमें पूछी है सो माला तुलसीकी हो तो उत्तम है। चन्दनकी मालासे भी जप किया जा सकता है।

२-कितनी संख्यामें जप करनेपर भगवान् दर्शन देते हैं यह कह नहीं सकता। आप रामदास स्वामीका जपा हुआ मन्त्र जपते हैं तो बहुत ठीक है, मन्त्र बड़ा उत्तम है। इसके जपनेसे भी वही फल होता है, इसलिये मन्त्र-परिवर्तन करनेकी आवश्यकता नहीं है। अपने इष्टदेवका ध्यान करते हुए गायत्री-मन्त्रका जप किया जा सकता है।

३-अधिष्ठात्री होनेके कारण एक बार गायत्रीदेवीका स्मरण कर लेना चाहिये और अपने इष्टदेव रामजीका ध्यान तो निरन्तर करना चाहिये। गायत्री-मन्त्रमें परमात्माकी स्तुति, ध्यान और प्रार्थना है। वही परमात्मा साक्षात् राम-रूपमें प्रकट हुए हैं, अतः गायत्री-जपके द्वारा भी आप भगवान् रामकी ही उपासना करते हैं, यही समझना चाहिये।

४-ध्यान सदा मानसिक होता ही है। रही पूजा और जपकी बात। स्नानमें असमय होनेपर जप और पूजा भी मानसिक करनी चाहिये, किंतु पूजा करनेके पहले हाथ-मुँह धो लेना चाहिये। गायत्री-मन्त्रके सिवा अन्य मन्त्रोंका जप बिना स्नान किये भी किया जा सकता है, इसमें कोई दोष नहीं है।

५-आप सात घंटे जप करते हैं सो बहुत उत्तम है। भगवान्‌के जपमें समय और संख्याकी प्रधानता नहीं है। प्रधानता है श्रद्धा और प्रेमकी। यदि श्रद्धा और प्रेम हो तो भगवान्‌के दर्शन एक दिनमें ही हो जायँ। इसलिये भगवान्‌के दर्शनके लिये समय और संख्या नहीं बतलाया जा सकता। जितना तीव्र प्रेम होगा उतनी ही शीघ्रतासे भगवान् मिलेंगे। अतः भगवान्‌में प्रेम और विश्वास बढ़ाना चाहिये, उनके गुण और प्रभावको बार-बार याद करके प्रसन्न होना चाहिये।

६-उपांशुकी अपेक्षा मानसिक जप श्रेष्ठ है। उपांशु-जपके दस मालासे जितना फल होता है उतना ही फल मानसिक जपके एक मालासे होता है। इसलिये समय जितना भी लगे, मानसिक जप ही करना चाहिये। मनसे तथा प्रेमसे जितना भजन होता है उसका बड़ा मूल्य है। होंठ तथा जीभ न हिलकर केवल हृदयसे भगवान्‌का नाम-चिन्तन हो इसे मानसिक जप कहते हैं। साथ-ही-साथ वाणीसे भी जप होता रहे तो नींद आनेका डर कम रहेगा और वाणी भी सफल होगी। आँख खुली रखकर भी मनसे जप किया जा सकता है, जैसे कि संसारकी बात आँख खुले भी याद की जाती है।

७-जब निद्रा आने लगे तो आँख खोल लेनी चाहिये और सामने अपने इष्टदेवकी मूर्ति रखकर उसका ध्यान करना चाहिये।

८-मैं साधारण आदमी हूँ, अपना अनुभव क्या बताऊँ। शास्त्र एवं महापुरुषोंके वचनोंके आधारपर एवं अपनी बुद्धिसे जो समझमें आता है वही लिखता हूँ।

९-'गीताप्रेस' से 'प्रेमभक्ति-प्रकाश' नामक पुस्तक मँगाकर देखना चाहिये। उसमें जैसी श्रीविष्णुकी पूजाके लिये विधि बतायी गयी है, वैसे ही आप अपने इष्टदेव श्रीरामकी पूजा किया करें। प्रत्येक एकादशी, पूर्णिमाका व्रत करना चाहिये।

१०-जिस तरह दिनमें पूजा करें वैसी ही पूजा रातमें भी करें। बाह्य पूजासे मानस पूजा श्रेष्ठ है। मानस और बाह्य—दोनों प्रकारकी पूजा करना श्रेयस्कर है। माला तुलसीकी हो तो उत्तम है।

११-नींद तोड़नेके लिये टहलना उचित है। आसन भजनके लिये है, यदि आसनपर बैठे-बैठे नींद आ जाय, उससे तो टहलते हुए भगवान्‌का भजन बहुत उत्तम है। अतः नींद आते समय टहल-टहलकर भजन करना चाहिये। आसन तोड़नेसे कोई हानि नहीं है।

१२-व्रतके दिन अधिक माला जप करते हैं तो वह भी संख्याकी गिनतीमें शामिल होता है।

१३-घूमते-टहलते, उठते-बैठते, चलते-फिरते जो जप करते हैं उसे भी भगवान् नियत संख्यामें गिनते हैं, किसी भी अवस्थामें लिया हुआ भगवान्‌का नाम व्यर्थ नहीं जाता। भगवान्‌को हम भले ही भूल जायँ, पर भगवान् हमें नहीं भूल सकते।

'जय जय राम' मन्त्रका कितनी संख्यापर पुरश्चरण होता है और पुरश्चरणके बाद क्या करना चाहिये यह नहीं कह सकता। मानस-जपकी विधि आपने पूछी है तो उत्तर यह है कि होंठ और जीभको न हिलाते हुए हृदयसे जो जप होता है उसे मानसिक जप कहते हैं। समर्थ स्वामीको गुरु मान सकते हैं।

* * *

पढ़ो, समझो और करो

(१)

प्रेतात्माका और प्रेतसे पीड़ित व्यक्तिका उद्धार

हमारे धर्मशास्त्रोंमें भूत-प्रेतादिके होनेका खूब वर्णन आता है और इनके बड़े-बड़े अद्भुत चमत्कारोंकी सत्य घटनाएँ भरी पड़ी हैं। भूत-प्रेतादि योनियाँ क्यों मिलती हैं और किस पापके फलस्वरूप भूत-प्रेतकी योनियोंमें जाना पड़ता है और किन-किन साधनोंद्वारा भूत-प्रेतादिकी योनियोंसे छुटकारा मिलता है, यह बड़े विस्तारसे लिखा मिलता है। भूत-प्रेत हैं और भूत-प्रेतोंका पूज्य जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजके द्वारा किस प्रकारसे उद्धार हुआ, इससे सम्बन्धित एक सत्य घटना यहाँ प्रस्तुत है—

पूज्यपाद प्रात:स्मरणीय ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज उच्चकोटिके वीतराग ब्रह्मनिष्ठ सर्वशास्त्रनिष्णात धर्माचार्य और महान् संत थे। आपने भूत-प्रेतोंद्वारा सताये हुए अनेक मनुष्योंका उद्धार किया था। आपकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि आप भूत-प्रेतसे पीड़ित व्यक्तियोंका तो उद्धार करते ही थे, साथ ही उनपर आये हुए प्रेतात्माओंका भी उद्धार कर उसका कल्याण-मार्ग प्रशस्त कर देते थे। इसके फलस्वरूप उन प्रेतात्माओंको निकृष्ट योनिसे मुक्ति मिल जाती थी। भूत-प्रेतादि बननेका एकमात्र कारण आप अन्त्येष्टि क्रियाके साथ ही मृतकके निमित्त श्राद्ध, तर्पण, पिण्डदान आदि कर्म न करना ही मानते थे। भूत-प्रेतोंद्वारा सताया हुआ जो भी व्यक्ति आपकी शरणमें आता था, आप उससे सभी बातें विस्तारसे मालूम करते और फिर किसीको श्रीदुर्गा-पाठ कराने, किसीको गायत्री-मन्त्रका जाप कराने, किसीको गया जाने, किसीको श्राद्ध कराने, किसीको पार्वण-श्राद्ध कराने और किसीको श्रीमद्भागवतका सप्ताह आदि करानेकी आज्ञा और परामर्श दिया करते थे। इस प्रकार आपकी आज्ञाके अनुसार साधन किये जानेपर हजारों मनुष्यों, स्त्री-बच्चोंको भूत-प्रेतादिसे छुटकारा मिलता हुआ और उन भूत-प्रेतादिकोंका भी उद्धार होता हुआ प्रत्यक्ष देखा गया था। इससे सम्बन्धित एक सत्य घटनाका वर्णन करते हुए स्वामीजी कहते हैं—

एक बारकी बात है कि हम एक ब्राह्मण ब्रह्मचारीके साथ पैदल विचरते हुए एक ग्राममें पहुँचे और वहाँ एक स्थानपर बैठे हुए थे। इतनेमें एक ग्रामीण हमारे सामनेसे गुजरा। जाते समय तो उसका मुख सामनेकी ओर था और पीठ हमारी ओर थी। सहसा हमारी दृष्टि जब उसकी पीठकी ओर गयी तब हमने देखा कि उस आदमीकी पीठकी ओर कंधेपर एक प्रेत बैठा हुआ था, यह मैंने प्रत्यक्ष अपनी आँखोंसे देखा। इससे पहले हमने भूत-प्रेतोंकी बातोंको शास्त्रोंमें और पुराणोंमें पढ़ा और लोगोंके मुखोंसे सुना तो अवश्य था पर देखा आजतक कभी नहीं था। अब तो हमें उस प्रेतको प्रत्यक्ष देखकर बड़ा भारी आश्चर्य हुआ और इधर साथ ही उस ग्रामीण आदमीपर भी बड़ी दया आयी। हमने तत्काल अपने साथके ब्रह्मचारीको भेजकर उसको अपने पास बुलवाया। वह आकर हमारे पास बैठ गया। हमने उससे पूछा—'भाई, तुम कौन हो और कैसे हो?'

उसने कहा—'महाराज, मैं इसी गाँवमें रहता हूँ और बड़ा बीमार हूँ।' 'तुम्हारे क्या रोग है और क्या बीमारी है, हमने उससे पूछा?'

ग्रामीणने कहा—'महाराज, मुझे प्रेत सताता है।'

'तुम्हें यह प्रेतबाधा कबसे है?' हमने उससे पूछा।

'महाराज, काफी दिनोंसे है।' ऐसा उसने बताया।

'क्या तुमने इसका इलाज कराया है और किसीको दिखाया है?'

—यह सुनकर उसने बड़े उदास-भावसे कहा—'महाराज, बहुत इलाज कराया, पर लाभ कुछ नहीं हुआ।'

हमने पुनः उससे पूछा—'तुमने कौन-सा इलाज कराया था?'

उसने बताया—'गंडे-ताबीज बनवाये, यन्त्र-मन्त्र भी खूब कराये और अन्य अनेक उपाय किये, पर लाभ कुछ भी नहीं हुआ।'

'क्या वह प्रेत तुम्हें दीखता है?'

'महाराज, दीखता तो कभी-कभी है पर सताता हर समय है। मैं तो इस प्रेतके कारण बहुत परेशान हूँ,' उसने मर्माहत कर देनेवाले भावसे कहा।

हमने कहा—'तुम्हारी पीठपर बैठा हुआ वह प्रेत अभी कुछ देर पहले स्वयं हमने देखा है और तभी हमें मालूम हो गया कि तुम्हें प्रेतबाधा है। इसीलिये हमने तुम्हें यहाँ बुलाया है।'

कुछ क्षणोंतक वह अपलक मुझे आश्चर्यचकित होकर देखता रहा, फिर बोला—'महाराज, आप बिलकुल सत्य कहते हैं और वास्तवमें मुझे इस प्रेतके कारण असहनीय कष्ट है। कृपा करके आप किसी भी प्रकार इस प्रेतसे छुटकारा दिलाकर मेरा उद्धार करें महाराज!'

हमने कहा—'अच्छा तुम चिन्ता न करो। हम जो उपाय तुम्हें बताते हैं, तुम वह उपाय करो तो तुम्हें इस प्रेतसे छुटकारा मिल जायगा।'

उसने कहा—'महाराज, जो आज्ञा देंगे वही करूँगा, आप कृपाकर मुझे उपाय बतायें।'

हमने उसे किसी सात्त्विक-सदाचारी, आचारनिष्ठ शास्त्रज्ञ ब्राह्मणद्वारा जो ब्राह्मण चाय, तंबाकू, बीड़ी, सिगरेट, प्याज, लहसुन, सलजम आदि न पीता-खाता हो और दुर्व्यसनोंसे बिलकुल बचा हुआ हो, उससे जप और श्रीदुर्गापाठ आदि करानेको कहा—ऐसे ही ब्राह्मणके द्वारा बड़ी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक शास्त्रीय विधि-विधानके साथ हमारे बताये-अनुसार जब उसने समस्त अनुष्ठान सम्पन्न कराया तब वह प्रेत घबराकर उसके पाससे भाग गया और उस व्यक्तिको सदाके लिये उस प्रेतसे छुटकारा मिल गया। इधर उस प्रेतकी प्रेत-योनिसे भी उद्धार हो गया। यह बिलकुल सत्य घटना है। यह सब हमारी स्वयंकी अपनी आँखों-देखी सत्य घटना है; फिर भला शास्त्र-पुराणोंकी बातोंको झूठ कैसे माना जा सकता है?

स्वामीजीके मुखारविन्दसे यह कल्याणकारी घटना सुनकर मेरा सिर स्वतः उनके चरणोंमें नत हो गया। ऐसे थे हमारे परमदयालु कृपालु जीवोंका परम कल्याण करनेवाले और उद्धार करनेवाले परमपूज्यपाद प्रातःस्मरणीय ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज। जिन्होंने एक नहीं अनेकों जीवोंका भूत-प्रेतोंसे छुटकारा दिलाकर उद्धार किया था और अपने नेत्रोंसे स्वयं प्रेतोंको देखा था इससे बढ़कर भूत-प्रेत होनेका और जप-अनुष्ठानकी अद्भुत शक्तिका प्रत्यक्ष प्रमाण भला क्या हो सकता है?

(प्रस्तुतकर्ता—गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी पिलखुवा)

[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]

(२)

ईमानदारीका परिणाम

यह घटना लगभग १९५५-५६ की है। मेरे भुवाजीका भोजनालय था, जो बाईजीका बासाके नामसे विजयानगरम् (आंध्र)-में प्रसिद्ध था। उस भोजनालयमें अपने चार वर्षीय लड़की एवं दो वर्षीय लड़केके साथ मैं और मेरी पत्नी एक माहके लिये उस भोजनालयकी देखभालके लिये रहे। कारण मेरे भुवाजीको किसी कार्यवश (श्रीमद्भागवतकी कथा कराने) देश (निम्बी जोधांकि) जाना था। होटलमें कुन्दमल सीखवाल नामके एक सज्जन व्यक्ति भोजन बनाने-हेतु रहते थे। वह 'पादु' राजस्थानके थे। इसी बीच मेरा लड़का टाइफाइड होनेकी वजहसे बीमार पड़ गया। उन दिनों डॉक्टरी इलाजकी आज-जैसी सुविधा नहीं थी, अतः घरपर ही देशी इलाज चल रहा था; परंतु लड़केके स्वास्थ्यमें सुधार नहीं हो रहा था। उसका स्वास्थ्य इतना गिर गया था कि हमने उसके बचनेकी आशा छोड़ दी। लड़केकी हालत चिन्ताजनक थी। उसी बीच एक दिन एक व्यापारी कांटाभाजी (उड़ीसा)-से भोजनालयमें आया और सामान रखकर स्नान आदि करके बाजार चला गया। स्नानागार नहीं था। खुली जगहमें ही उसने स्नान किया और जल्दबाजीमें कपड़ेकी एक छोटी पुड़िया जहाँ स्नान किया था वहीं भूलकर चला गया। उसमें पचीस तोले सुवर्ण

एक चेन थी। उस पुड़ियापर मेरी पत्नीकी नजर पड़ी और उसे खोलकर देखते ही वह पसीना-पसीना हो गयी तथा उसे छुपाकर रख दी। मैंने किसीसे चर्चा नहीं करनेकी उसे सलाह दी, क्योंकि चर्चा करनेसे मालिक बहुत बनेंगे और चर्चा नहीं करनेसे जिसकी है, वह अवश्य खोजमें आयेगा ही। फिर वैसा ही हुआ भी। लगभग दिनके १२ बजे वह व्यक्ति रोता-बिलखता भोजनालयमें आया और कहा—महाराज, मैं बरबाद हो गया। मेरी चेनकी पुड़िया कहाँ गिरी, मुझे कुछ भी होश नहीं है। इतना कहनेके साथ ही वह निर्जीव-सा जमीनपर ढेर हो गया। मैंने उसे सान्त्वना देकर बिठाया और अंदरसे वह पुड़िया लाकर उसके हाथमें रख दी और कहा कि आप जहाँ स्नान किये थे, वहीं यह पुड़िया छूट गयी थी। मेरी पत्नीकी नजर पड़ी तो उसने सुरक्षित रख लिया, ताकि यह पुड़िया इसके असली मालिकको मिल सके, वरना और किसीके हाथ लग जाती तो शायद नहीं मिलती। वे सज्जन सुबह मेरे लड़केकी हालत देख ही चुके थे। उनके मुँहसे निकला मेरा पेट ठंडा किया है। भगवान् उस माँका पेट ठंडा रखे। फिर वे भोजन करके चले गये। करीब दो बजे मेरी पत्नी जो कमरेमें बच्चेको गोदमें लिये बैठी थी, पैरोंमें दर्द होनेके कारण उठी और एक पैर कमरेसे बाहर रखी (दूसरा कमरेमें ही था) तथा झुककर बच्चेको जमीनपर लिटाये ही थी कि कमरेमें लगी (सीमेंटके टीनकी) सीलिंग नीचे गिर गयी और कमरा सीमेंटके टूटे टुकड़ोंसे भर गया। बड़ी जोरकी आवाज भी हुई थी। वह एकदम घबराकर कमरेमें देखने लगी और विचार करने लगी कि यदि एक मिनट भी देर हो जाती तो दोनों माँ-बेटेकी जीवन-लीला ही समाप्त हो जाती। 'भगवत्कृपासे मेरे पैरोंमें दर्द न होता और उनकी प्रेरणा न होती तो मैं वहीं-की-वहीं बैठी रहती तथा बच्चेको भी न हटाती। भगवान् जो करता है अच्छा ही करता है'—ऐसा विचार करते हुए, वह मनमें प्रभुको नमस्कार करके सजल नेत्रोंसे बच्चेकी ओर देखने लगी। बच्चा वहाँसे उठकर गलियारेमें भागता हुआ नजर आया। वह खुद उसके पीछे दौड़कर पकड़कर लायी।

आज वह लड़का दो बच्चोंका बाप है। अपना व्यवसाय विशाखापट्टनम्‌में करता है। सुखी परिवार है। मैं तो केवल यही समझता हूँ कि यह सब उस सज्जनके आशीर्वादका ही प्रभाव है। जो मेरे लड़केको मौतके मुँहसे बचाया। उनको तथा इस घटनाको मैं कैसे भूल सकता हूँ। आखिर भगवान्‌ने ईमानदारीरूप उस सत्कर्मके लिये हमें प्रेरित किया और उसका तत्क्षण सुपरिणाम भी दिखा दिया।

—श्रीगोबर्धन ओझा

(३)

सास या जननी

कुछ वर्ष पहलेकी बात है। रामपुर छोटा-सा गाँव है। उसमें रामचंद सेठका नाम प्रसिद्ध था। खासी सम्पत्ति, सब प्रकारका सुख। गायें, भैंसें पर्याप्त संख्यामें। मलाईभरा दूध, अमृत-सी छाछ और घरके घीका शुद्ध आहार—इससे घरमें सभी स्वस्थ थे। सेठ मनके उदार थे, इससे आसपासके गाँवोंमें चारों ओर उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उनके पुत्रका विवाह हुए अभी थोड़े ही दिन हुए थे। पुत्रवधू खानदानी कुटुम्बकी सुशील कन्या थी।

घरमें बहुत दूध होता, इसलिये रोज ही मक्खन उतरता और उसका घी भी बनता। आज चूल्हेपर अद्धा टीन चढ़ी थी, जिसमें लगभग दस सेर मक्खन था। बाहर ओसारेमें सेठका पुत्र पूरी टीन लिये बैठा था, उसमें घी भरना था। रसोईमें सास-बहू दोनों थीं—बीचकी कोठरीमें ससुरजी बैठे माला फेर रहे थे। मक्खनका घी हो गया तब सासने बहूसे कहा—'मैं अद्धा बाहर रख आती हूँ, तुझको घूँघट निकालकर जाना पड़ेगा।' परंतु आर्यवधू सासको कैसे जाने देती? वह स्वयं अद्धा लेकर, घूँघट निकालकर चली। बीचकी कोठरीमें घुसी ही थी कि न जाने कैसे साड़ीका छोर पगमें अटक गया और हाथसे अद्धा गिर पड़ा। सारा घी बह चला, स्वयं गिरते-गिरते मुश्किलसे बची। घी बहुत गरम था, पर सौभाग्यसे वह कहीं जली नहीं। ससुर आवाज सुनते ही बोले—'खमा बेटा!' और रसोईमेंसे सास दौड़ी आयी तथा बहूको बाँहमें भरकर बोली—'बेटा! कहीं जली तो नहीं है

न? तुझे कहीं चोट तो नहीं लगी? घी ढुल गया, इसकी जरा भी चिन्ता नहीं है, कल फिर घी तैयार हो जायगा। तू चिन्ता मत करना।'

इतना सुनते ही बहू सासके चरणोंपर गिर पड़ी, हर्षातिरेकमें उसकी पलकें भीग गयीं, वह कुछ बोल नहीं सकी; पर मन-ही-मन कहने लगी—ये मेरी सासजी मेरी माँसे भी बढ़कर हैं। कहीं पीहरमें ऐसा हुआ होता तो कुछ भी नहीं तो माँ उलाहना जरूर देती।

ऐसी सास-बहू घर-घरमें हों तो इस पृथ्वीपर स्वर्ग ही उतर जाय।

—श्रीझबेर भाई बी० सेठ, बी० ए०

(४)

सहानुभूति और सेवा

सन् १९०८ की बात है। मेदिनीपुरमें एक अंग्रेज जज थे। उनका नाम था मि० किली। उनका जीवन बहुत ही ईमानदारीका तथा संयमी था। उन्होंने अपने घरके कामके लिये एक चपरासी रख लिया था। वह नौकर दिनभर साहबका काम किया करता।

एक दिन वह चपरासी बाहरसे डाक लेकर आया था। साहबके बँगलेमें प्रवेश करते ही एक पागल कुत्तेने उसके पैरमें काट खाया। साहब बरामदेमें बैठे देख रहे थे। वे तुरंत खड़े होकर दौड़े और चपरासीका पैर हाथमें लेकर मुँहसे चूसने लगे। पागल कुत्तेका विष चूसते जायँ और थूकते जायँ। परंतु साहबको जहर चूसनेकी आदत नहीं थी और मुँह भी गीला था। आधे घंटे बाद जब सारा विष चूस लिया गया, तब वह साहबको चढ़ने लगा। उन्होंने नौकरको आराम करनेके लिये छुट्टी दे दी और स्वयं हँसते-हँसते डॉक्टरके पास पहुँचे।

डॉक्टरने उनसे कहा—'आप इस बखेड़ेमें क्यों पड़े?' तब मि० किलीने उत्तर दिया कि 'बेचारा चपरासी पागल कुत्तेका इलाज करानेकी स्थितिमें नहीं था। मैंने इसीलिये जहर चूस लिया कि मेरी इलाज करा सकने लायक आर्थिक स्थिति है। चपरासीको पैसा देता तो वह शायद उन्हें बचा लेनेके लोभमें इलाज न कराता। मेरे इलाजके पैसे तो मुझे खर्च करने ही पड़ेंगे। इस प्रकार एक गरीबकी सेवा हो गयी।'

मि० किली सच्चे अर्थमें चपरासीके लिये 'नीलकण्ठ' थे।

—श्रीसुकेतु

(५)

अशरणके शरणदाता

सन् १९५६ की बात है। मैं एक फौजी विभागमें सिविलियन कर्मचारी हूँ तथा वहाँकी एक छोटी-सी मजदूर यूनियनका कार्यकर्ता भी। उक्त विभागके स्थानीय सर्वोच्च अधिकारीसे मेरी साधारण-सी बातपर अनबन हो गयी और वे उच्चाधिकारी मुझे हर प्रकारकी हानि पहुँचानेपर उतारू हो गये। उनके संकेतसे उक्त कार्यालयके लगभग साढ़े तीन हजार मजदूर मेरी एक जानके पीछे पड़ गये। मुझे जानसे मार डालनेकी बात सोची जाने लगी। कई बार लोगोंने मुझे अपमानित करने एवं मारने-पीटनेको घेर भी लिया, पर उन्हीं लोगोंके हृदयमें दयाका संचार हो जानेसे मैं बाल-बाल बचता रहा। उस दशामें मुझे ऐसा कोई अपना नहीं दिखायी देता था कि जिसके सामने जाकर मैं रोऊँ और शिकायत करूँ। अन्तमें अपना भला इसीमें सोचकर कि अशरणके शरणदाता परमात्मा हैं, मैंने उन्हींकी शरण ली और कारखानेसे एक सप्ताहकी छुट्टी लेकर श्रीरामचरितमानसकी इस चौपाई—

दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥

—के सम्पुटके साथ अत्यन्त आर्तभावसे मानसका पाठ प्रारम्भ कर दिया। पाठ-समाप्तिपर मैंने श्रद्धा-भक्तिसे श्रीरामचरितमानसकी विहित चौपाइयोंसे हवन किया। छुट्टी व्यतीत होनेपर जब मैं ड्यूटी अदा करनेके लिये कार्यालयमें उपस्थित हुआ, तब सबसे पहले अधिकारी महोदयने मुझे छातीसे लगा लिया और बड़े स्नेहसे घर-परिवारकी कुशल-क्षेम पूछी। उनके हृदय-परिवर्तनसे मैं भी गद्गद था। अन्य साथियोंका भी मेरे प्रति स्पष्ट सहज स्नेह-सहानूभूति झलक रही थी।

* * *

मनन करने योग्य

क्या गाँधीजीने झूठ बोला?

'गुरुदेव, आप तो कहा करते हैं कि गाँधीजी कभी भी झूठ नहीं बोलते? फिर उन्होंने झूठी बात कैसे इस पत्रमें लिखी?' कौतूहल बढ़ा तो एक छात्रने संत विनोबाजीसे पूछा—

'सत्य ही ईश्वर है', ऐसा महात्मा गाँधीजीने इसलिये कहा, क्योंकि वे अपने धर्ममें सत्यको सर्वोपरि मानते थे। वे प्राय: कहा करते थे कि 'सत्यतामें अकूत बल भरा है। आप सदा सत्य बोलिये, अपने विचारोंको सत्यतासे परिपूर्ण बनाइये और आचरणमें सत्यता बरतिये। अपने-आपको सत्यतासे सराबोर रखिये। ऐसा करनेसे आपको एक ऐसा प्रचण्ड बल प्राप्त होगा जो हजारों हाथियोंके बराबरका बल है। जो अपने आचार-व्यवहारमें सत्य है, उसकी समता भौतिक दृष्टिमें किसी भी बलके साथ नहीं की जा सकती।'

एक बार संत विनोबाभावेजीको गाँधीजीने एक पत्र लिखा। छात्रोंके सामने ही वह पत्र आया। सभी छात्र विनोबाजीको पत्र पढ़ते देखने लगे।

पत्र पढ़कर विनोबाजीके चेहरेपर चिन्तनकी लकीरें उभर आयीं। वे कुछ विचारमग्न हो गये; फिर उन्होंने पत्र फाड़ दिया।

आश्चर्य! गाँधीजी-जैसे विश्वविख्यात महात्माका पत्र। इधर विनोबाजीने उसे पढ़ा और बहुमूल्य धरोहरकी भाँति सहेजकर न रखनेके बजाय फाड़ दिया!

ऐसा होते देख आश्रमके छात्रोंको बड़ी हैरानी हुई। उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उन्होंने प्राय: देखा था कि विनोबाजी डाक और आनेवाले पत्रोंकी फाइल रखा करते थे। गाँधीजीके पुराने पत्र भी उनके कैश-बक्समें धन-सम्पत्तिकी भाँति सुरक्षित थे।

छात्रोंको बड़ी जिज्ञासा हुई कि विनोबाजीने पत्रको क्यों फाड़ दिया? वे सोच रहे थे कि कहीं कोई डाँट-फटकार तो नहीं दी है गाँधीजीने? किसी गलतीकी सजा हो या कटु टीका-टिप्पणी? किसका भय था कि यों पत्रके टुकड़े-टुकड़े कर डाले इन्होंने? भूतकी तरह सैकड़ों शंकाएँ उनके मनमें टकरा रही थीं। छात्रोंने डरते-सहमते स्वरमें फिर प्रश्न दोहराया। 'आपने गाँधीजीका कीमती पत्र रद्दीकी तरह टुकड़े-टुकड़े क्यों कर दिया?'

कुछ सकुचाते द्विविधाभरी मन:स्थितिमें विनोबाजीने कुछ कहना चाहा, किंतु शब्द आकर उनकी जबानपर रुक गये। 'इस पत्रमें कुछ गलत बातें लिखी थीं।'

छात्रोंने मन-ही-मनमें कहा—'गाँधीजी घोर सत्यवादी ठहरे। वे स्पष्ट शब्दोंमें सबके सामने जोर देकर कहते हैं कि हमारे वचन और कर्म सच्चे होने चाहिये। कोई मनुष्य मुँहसे बढ़-बढ़कर बातें करे और पेटमें झूठ छिपाये रहे तो यह बनावट अधिक देरतक ठहर नहीं सकती। आवाजमें, शब्दोंके प्रयोगमें, चेहरे तथा शरीरकी हलचलमें सच और झूठ स्पष्ट दीख पड़ता है। झूठे आदमीकी वाणीमें सिटपिटाहट, चेहरेपर निस्तेजता होती है। आँखें मिलाते वह झिझकता है। आशंका और गुप्त भयसे उसका मन अस्थिर एवं चिन्तित रहता है। असत्य बात इतनी अस्वाभाविक होती है कि सुननेवालेके मनमें अनायास ही अविश्वासके भाव उद्दीप्त हो उठते हैं। इस बीसवीं सदीमें झूठका बड़ा प्रचार है, बड़े कलात्मक ढंगसे झूठ बोला जाता है। ऐसा तो नहीं कि गाँधीजी-जैसे देव-पुरुष भी इस झूठके शिकार हो गये हों।'

छात्रोंने प्रश्न पुन: दोहराया, 'लेकिन गुरुदेव, आप तो कहते थे कि गाँधीजी कभी झूठ नहीं बोलते? फिर उन्होंने इस पत्रमें झूठी बात कैसे लिखी?'

विनोबाजीने बहुत सोच-समझकर जो शब्द कहे, वे स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य हैं। उन शब्दोंमें जो शाश्वत सत्य है वह मार्गदर्शक ही नहीं, धर्मका आधार भी है। वे बोले—'गाँधीजी झूठ नहीं बोलते, यह ध्रुव सत्य है, लेकिन····' वे कहते-कहते फिर रुक गये।

'लेकिन क्या गुरुदेव?'

'उस पत्रमें उन्होंने मेरी प्रशंसा की थी और मुझे नीति, धर्म, आचरण और जीवनमें सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति लिखा था।'

'फिर झूठ कैसे हुआ?'

विनोबाजीने कहा—'इस संसारमें मुझसे भी अधिक गुणी, संयमी, विद्वान्, सत्यवादी और तपस्या करनेवाले व्यक्ति मौजूद हैं। अत: गाँधीजीकी यह बात सच नहीं हो सकती थी। शायद किसी दृष्टिसे उनका यह मापदण्ड सच भी हो तो यह पत्र मुझमें अहंकार पैदा करता। जितनी बार इसे पढ़ता-देखता या सहेजता मेरा अहंकार बढ़ता ही जाता। अहंकार उन्नतिका बाधक है। यह मेरी भावी प्रगतिमें घातक होता। बस इसीलिये अहंकारकी जड़को ही उखाड़कर फेंक दिया।'

उनकी बात सुनकर मुझे महाभारतका यह उपदेश स्मरण हो आया—'**अहंकारनिवृत्तिर्हि निर्वाणायोपपद्यते**' (महाभारत) अर्थात् मोक्ष चाहते हैं तो अहंकाररूपी दोषसे बचे रहिये।

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

◆

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०५४ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०५५ तक रही है)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश-नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या ४८, १५, ७५,००० (अड़तालीस करोड़ पंद्रह लाख पचहत्तर हजार)

(ख) नाम-संख्या ७, ७०, ५२, ००००० (सात अरब सत्तर करोड़ बावन लाख)

(ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर अमेरिका, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंता, अंदरोली, अंधराठाढ़ी, अंधेरी (पूर्व), अंधेरी (प०), अंबहैटा, अंबाजोगाई, अंबाला छावनी, अंबाला सिटी, अकबरपुर, अकलतरा, अकादियामंडी, अकावाली, अकोट, अकोला, अक्कलकोट, अगरनगर-लुधियाना, अगस्तमुनि, अगसौली, अगू, अगौस, अचरोल, अचलपुर-सिटी, अछनेरा, अजगरा, अजबपुरा, अजमेर, अजासर, अटाली, अठाना, अतर्रा, अधियारीटोला बक्षेरा, अधोया, अनवली, अनूपपुर, अमझोर, अमनौर, अमरपुरा, अमरावती, अमरावतीघाट, अमृतपुर, अमृतसर, अमलीपाली, अमायन, अमोढ़ा, अमौली, अयोध्या, अरनिया चौहान, अरनेठा, अरबन इस्टेट, अरर, अररिया, अर्जुनपुर, अलकापुरी, अलगोल, अलवर, अलसीसर, अलिपुरा, अलीगढ़, अलीसरिया, अल्मोड़ा, अशोकनगर, असदपुर, असनावर, असरीखेड़ा, अहमदनगर, अहमदाबाद, अहार, अहिरवलिया, अहिरान, आगरा, आगरी (गणेश्वर), आगूचा, आटकोट, आटपाडी, आटरगा, आदर्शचवा, आनन्दपुर, आबुपुरा, आबूरोड, आमखेड़ा, आमलीझाड़, आरा, आलमगढ़, आशापुरा, आसनसोल, आसैर, आस्का, आहोर, इंगोहटा, इंदौर, इटावा, इलकल, इलाहाबाद, इसरौलीसेठ, इसौली, इस्माइलपुर, इस्लामपुर, ईंदपालसर, ईशाकचक, ईशुआ, ईश्वरनगर, ईश्वरपुर, ईसागढ़, उंडवा, उकाई डेम, उछटी, उजान गंगौली, उज्जैन, उटनूर, उडुपि, उदगीर, उदयपुर, उदयाखेड़ी, उदोतगढ़, उधौली, उन्हचक, उपाध्यायटोला, उपेहरा, उमट्टा, उमरखेड, उमरिया चौबे, उरई, उर्तुम, उल्दन, उस्तेहढ़, ऊँचिया, ऊगू, ऊदपुर, ऊमरी, ऊसरी, एलवी, ऐरनपुराकी छावनी, ओकनावाँ, ओझर, ओड़ेकेरा, ओलरापुर, ओसियाँ, औरंगाबाद, औराही मोतीनगर, औरूगेरुवा, औरेई, औरैया, कंगटी, कंगर-भोलगा, कंचलवाडाकलाँ, कंडोला, कंदकुर्ती, कंवाली, कंहौली, ककड़ई, ककराला, ककीरा, कचंदा, कच्चीगढ़ी, कटक, कटनी, कटबंध, कटरा (सलेहाड), कठलग, कठार, कठुआ, कड़ैल, कदमकुआँ, कदमतर, कनेई, कनोल, कन्नौज, कन्नौज (चित्तौड़गढ़), कपासन, कमासिन, कमेश्वर, कमोल, कमोला, करकेड़ी, करगीरोड, करधना, करनमेया, करनाल, करमाला, करम्मर, करवाड़, करसोग, कराड, करुई, करेली, करैरा, करींचलगली, कर्वी, कलकत्ता, कलक्टरघाट, कलमपुर, कलमेश्वर, कलवण, कलस, कलाऊ, कलुंगा, कलौलीजार, कल्दा, कल्याणपुरा, कवर्धा, कविलपुर, कष्टिकरी, कसराँवा, कसहा (पूर्व), कसारीडीह, कसूम्बो, कसोलर, कांकेर, कांडे पचौली, कांदीवली (प०), कांसाबेल, काँके, काँगड़ा, काँटाबाजी, काँधला, काँवट-टाऊन, काठगोदाम, काठडेरा, कादरगंज, कानकदा, कानपुर, कानपुरनगर, कामता, कामा, कामोल, कालंद्री, कालाडेरा, कालिम्पोड़, कालोबहाल, काशीपुर, किकिरिदा, किदवईनगर, किरहिंडी, किल्लघौबा, किरीबुरू टाउनशिप, कुंजी (भादरा), कुंडबु, कुंडल, कुँभराज, कुँवरपुर, कुँवारिया, कुआहेड़ी, कुकुड़ा खंडी, कुकुदा खंडी, कुचामन सिटी, कुटिलिया, कुटेनपाली, कुड़ाना, कुदरबाधा, कुपानगर, कुमटा, कुमारग्राम, कुमारधुवी, कुम्हारी, कुरमाली, कुराली, कुर्साकाँटा, कुल्लू कुसमी अतरिया, कुसाई कालोनी, कुसुमकला,

कुसुमकसा, कुसुम्मी, कुसैला, कूँचलवाडा, कूदन, कूर्डी, केउटी, केकड़ी, केज, केजड़, केथलाय, केर (मुनीजीकी धूणी), केर-दहियान, केलवाडा, केलवामाहीम, केशवनगर, केशोपुर (बेताड़ी), केसरपुरा, कैथल, कैराना, कैरूआ, कैलारस, कोंडारी, कोचस, कोच्चि, कोटड़ी, कोटवा नारायणपुर, कोटवाली, कोटा, कोटाडेम, कोठी, कोडपगल, कोडलहंगरमा, कोदंडा, कोदवाकला, कोमना, कोय्यूडा, कोरैय, कोरोराघवपुर, कोलगाँव, कोलपटा, कोलहंटा पटोरी, कोल्हापुर, कोसीकलाँ, कोहरौंद, कोहरौंद (लवन), क्योंझरगढ़, क्योड़क, कृष्णनगर, क्षतिसार, खंडवा, खगौल, खजूरना, खजूरी, खजूरीरूण्डा, खटौराकलाँ, खडकी, खड़गपुर, खड़हारा, खड़ात, खड़ान, खड़ावदा, खड़ौआ, खरकड़ीकलाँ, खरगोन, खरोसा, खलारी, खवासपुरा, खागा, खाग्रावारि, खातिगुड़ा, खातीबाबा, खानपुर-दुबली, खानपुर मेवान, खामखेड़ा, खामला, खालवागाँव, खितौली, खिरनी, खुँटपला, खुड़ीमोट, खुरई, खुशलाखेड़ी, खूँटलिया, खूँटापाली, खेडका-गुजर, खेडिया गुरुदेव, खेड़ली, खेड़ीराम, खेतड़ी, खेतिया, खेमादेई, खेरली, खैरई, खैरथल, खैरवा, खैरा, खोकसागुरि, खोरा, खोलीघाट-मुवाना, खौड़, खौना, खौलान, गंगरार, गंगाखेड, गंगापुर सिटी, गंगाबख्शपुरवा, गंजबासौदा, गख्हा, गजनई (सोहागपुर), गजुवाका-विशाखापट्टनम्, गड़सा, गढडा कंपा, गढ़कर्ला, गढ़दीवाला, गढ़पुरा, गढ़बसई, गढ़मोरा, गढ़वा, गढ़वाड़ा, गढ़ा, गढ़िया, गढ़ीदूलाराय, गणेशपुर, गणेशबाजार (बैजनाथ), गदरपुर, गनेड़ी, गम्हरिया (नेपाल), गया, गरसाहड़, गरोठ, गलगलहा, गलमा, गहासाँड़, गांतोक, गाँधीगंज, गाँधीग्राम, गाजियाबाद, गाजीपुर, गाडरवारा, गाड़ाटोल, गाल्हामऊ, गावरवाडी, गिरधरपुर, गिरिजास्थान, गीदड़वाहा, गुंजेवाही, गुंडगुर्की, गुडीहतनूर, गुड़गाँव, गुना, गुरसहायगंज, गुराड़ियाजोगा, गुरुपाली, गुरूर, गुलबर्गा, गुलेडगड्ड, गुहाला, गैंता, गैसड़ीबाजार, गोंडा, गोंदिया, गोइंदा, गोकुलकाटा, गोकुलकाढ़ा, गोगराबस्ती, गोगराबस्ती-गोहपुर, गोगोलाव, गोघटि, गोड़हिया नं० १, गोड़ापर, गोड़ाही, गोपालगंज, गोपेश्वर, गोबरौरा, गोरखपुर, गोरखप्रासी, गोला, गोलागोकरननाथ, गोलाघाट, गोविंदगढ़, गोविंदपुर, गोसाईगंज, गोसाईगाँव, गोसाईसर, गौतमपुरा, गौरा बगनहा, गौरिया बरारी, गौरीगंज, गौरीपुर-३ (नेपाल), ग्वालियर, घगोंट, घड़शीकनैता (क्यार), घाटशिला, घाटासेर, घुंसी, घुग्घली, घुटकूनवापारा, घेरा (हवाणी), घोंघा, घोंघौर, घोड़ासहन, घोड़ेगाँव, चंगईपुर, चंडीगढ़, चंडेश्वर, चडौम, चंडौस, चंदखुरी, चंदला, चंदवा, चंदा, चंद्रगुप्त किशोरनगर, चंद्रहटी, चक, चकमदारी, चक्रधरपुर, चनाखेत-टिहरी, चमरौला, चमाला, चरखी-दादरी, चरली, चरेगाँव, चांडिल, चाँदपुराकलाँ, चाँदरानी (डिण्डौरी), चाँदानगरी, चाँवलपानी, चाईबासा, चाचौड़ा, चारण, चिंगावनम, चिंचवड, चिंचोली, चिंहारा, चिकना, चिचवट, चिटगुप्पा, चिड़गाँव, चिड़ावा, चितभवन, चितौरा, चित्तौड़गढ़, चिराँवडा, चिराखान, चिलकहर, चिलौली, चीचगढ़, चीचली, चूरू, चूर्खी, चेचट, चेन्नई, चैसार-मथुराबाजार, चोतराका खेड़ा, चौक गौरीगंज, चौक सोनवर्षा, चौडागाँव, चौपाख, चौपासनी, चौकी चन्द्राहण, चौकी जम्बाला, छकना, छटना, छटी बम्होंरी, छड़ावद, छनछड़ा, छनवाड, छपरा, छापर, छाम, छिछोर, छैलडोंगरी, छोटापचगढ़, छोटी खाटू (खाटू खूर्द), जंगलोट, जगदलपुर, जगदीशपुर बघनगरी, जगम्मनपुर, जगरामपुरा, जगाधरी, जड़वा, जनापुर, जनोटीपालडी, जबलपुर, जमदहा, जमलापुर-ध्यान, जमशेदपुर, जमुआँ नयी बस्ती, जम्मू, जम्मू-तवी, जयनगर, जयपुर, जरागुरि, जरौली, जलगाँव, जलसैन, जलहल कुकुरमुड़ा, जलाड़ी, जलोल, जल्दापारा, जवाँसिया, जहरमऊ, जहाँगीराबाद, जहिराबाद, जाखल, जागीवाडा, जाजोता, जाजोद, जानडोल, जामनगर, जामोलाफोर्ट, जालंधर, जालना, जालसू रेलवे स्टेशन, जालौन, जावरा, जियाराम राघोपुर, जीरापुर, जुक्कल, जुट्ठा, जुलियासर, जूनालखानपुर, जे०के०पुरम्, जैजैपुरी, जैतारण, जैदपुर, जैसनी, जैसीनगर, जोगियारा, जोजवा, जोधपुर, जोध्या, जोया, जोरावरपुर, जोरी, जोरो, जोवडीहा, जौड़िया, जौरीबुजुर्ग, झझवाँपोखराराज, झबरेडा, झरगड़ा, झाँसड़ी, झाँसी, झाक, झाकड़ी, झामर, झालबड़दा, झालरापाटन, झिंगरई, झिंझाना, झिकटियारूकुंदी, झीरकन, झुंझूनू, झूँथरी, झोटवाड़ा, झोथराखेड़ा, टांड़ीपार, टापु, टिकरी, टिब्बी, टिसौरा, टिहिकिपाली, टीकर, टीबा-बसेई, टुंडी, टुकनोली, टूंडला, टेघरा, TOT ICSR (AREN), टोला गम्हरिया, टोला-शिवनराय, टोहना, ठाकुरपुर, ठाणे, ठाढ़ी, ठीकरी, डकाचा, डाकपत्थर, डाबडी, डाबरा, डाबला, डालामारा, डिंगरी, डिघारी, डिघी, डिडवाना, डिड़वाड़ी, डुमरिया, डुमरिया बुजुर्ग, डूमाईगढ़, डेढ़गावाँ, डेहरी-आन-सोन, डोंबिवली (पूर्व), डोरंडा, डौरावली, ढाना, ढालम, ढेकियाजुली, ढेगाडीह, ढोसर, तंवरा, तखागड़ा, तड़ोला, तरकेड़ी, तरतोली,

तरसूह, तरौका, तलमेंडा, तलवाड़ा टाउनशिप, तलाओ, तलोटी, तल्लीदेवतोली, तवड़ा, ताजनीपुर, ताजपुर, तालगुप्पा, तालबेहट, तालाबपुरा, तालिकोटि, तालेड़ा-जमात, तालेड़ी (मेवाड़), तितरा आशानंद, तितिरा, तियारा, तिरुप्पालैवनम्, तिरुवन्नमलै, तिरोजपुर, तिरोडा, तिलहर, तिलैया, तिलोई, तीखमपुर, तुनि, तुरा, तुलसीनगर राँझी, तुलसीपुर, तुसरा, तेंदूखेड़ासागोनी, तेजपुर, तेवाड़ीखोला, तोरनी, तोलियासर, तौरू, थड़ोली, थाची, थानाभवन, थामला, दगौरी, दडीबा, दतिया, दमुही, दमोह, दयाछपरा, दरौना, दलहट्टाबाजार, दलेलनगर, दसीयाँव, दांतीवाड़ा, दाऊदनगर, दाड़ी, दातारामगढ़, दातीवाड़ा, दाथघारि, दानापुर, दाभा, दामापुर, दामापुर (छटन), दाहागाँव, दिग्घी, दिघी, दिलकुशा, दिल्ली, दीनी, दीवलखेडा, दुगाहाखुर्द, दुधरा, दुधवारा, दुधौरा, दुबौली, दुब्बीबनास, दुर्ग, दुर्जनपुरवा, दुलावनी, देव, देवकिरारी, देवकुली (दुबौली), देवगढ़, देवगाँव, देवठी, देवतालाब, देवदरा, देवनगरपुराना, देवनाल, देवपारा, देवपुरा, देवराली-मसहारबारी, देवरिया, देवरी जमादार, देवरी नाहरमऊ, देवास, देवेंद्रनगर, देहरादून, दैपरा, दोघट, दोरवाँ, दौलतगढ़, दौलतपुर मिसरिख, दौसा, द्वारिकापुरी, द्वारीनयेपुरा, धकजरी, धनकोसा, धनसार, धनापुर, धनौंदा, धमधा, धमौरा, धरगाँव, धरणगाँव, धरमपुर, धराकड़, धरौन, धर्मगंज, धर्मपुरा, धामंदा, धार, धुबेनपाली, धुले, धैणी, धोइंदा, धोलाखेड़ा, धोबघट, धोरीमना, धौरहरा, धौलादेवी, ध्रांगध्रा, नगला अस्सू, नगला जैत, नगला लैत, नगला हिम्मत, नगावली, नथुवाबार, नधिरा, नयानगर, नयापुरवा, नयाबाजार भद्रक, नयीदिल्ली, नरकटा (विश्वनाथपुर), नरायणगढ़, नरेंद्रपुर, नलखेड़ा, नल्लजर्ला, नवलगढ़, नवापारा, नसीराबाद, नांद, नांदिया, नांदेड़, नाकोट, नागपुर, नागौद, नाग्रिजुली, नाचना, नाचनी, नाडोली, नाथद्वारा, नापासर, नायन, नारकंडा, नारेपुर (पश्चिम), नावंदी, नावडीह, नावली-वृंदावन (देवाला), नाहरगढ़, नाहली, नाहापाड़ा, निकासी, निजामाबाद, निटरी, निधवा, निनायां, निफाड, निरंजन भोंरट, निरसा, निर्मली, निशातगंज, नीदर, नीदर (मंडरायल), नीमच, नुह, नूराबाद, नेडसरा, नेनोद, नेपाल, नेरी, नेवादा, नेवारी, नेहरूनगर (भोपाल), नैनवाँ, नैनवारा, नैनीताल, नैमिषारण्य, नैल, नोएडा, नोनैती, नोहर, नौगाँव, नौघई, नौधना, न्यालकल, न्यौली, पंडरीतराई, पंढरपुर, पंतनगर, पँचरूखी, पकवाइनार, पक्खनपुर, पचपदरानगर, पचरूखिया कालेज, पचाड़ा, पचोखरा, पचोर, पचौरी, पटना, पटना (सतना), पटियाला, पटिहटा, पट्टुवा, पट्टीकलियाणा, पट्टीततारपुर, पट्ठानपट्टी, पठखौली, पठखौली-मलकौली, पठानकोट, पडरौना, पड़रियाखुर्द, पड़रीखुर्द, पड़िहारा, पतारी, पथरगुवाँ, पदमपुरा, पधानपालि, पनकी, पनगरानरैनी, परतवाड़ा, परभणी, परली-बैजनाथ, परवानू, परसाई-पिपरिया, परसापाली, परासी-चकलाल, परियर, परियर (परिहरि), परौली, पलसावद-पँवार, पलसोडा, पलारी, पलियाकलाँ, पलीकपोलस्यूं, पलेरा, पसपुला, पहाड़पुर, पहाड़पुर स्टेशन, पांडुकेश्वर, पांडेटोला-लालगढ़, पाँगना, पाटौदी, पाडगाँव, पानापुर, पानीपत, पालम, पालमपुर, पालवास, पालवी, पाली, पावटा, पाहड़पुर-पाण्डेडीह, पाहल, पिंपरीपुर्णा, पिपरातहसील, पिपरापाड़े, पिपरिया, पिपरियाकलाँ, पिपरियाकलाँ (भैरवघाट), पिपरी, पिपला, पिलखुवा, पिलोवानी, पिहोवा, पीपलज, पीपलरावाँ, पीपलवाडा, पीपरीगहरवार, पीपली आचार्यान्, पीपल्याजोधा, पीलीभीत, पुंडरी, पुंडीदीरी, पुजारगाँव, पुणे, पुनदह, पुनहा, पुनाहाना, पुनाहुर, पुरासी, पुरुलिया, पुलगाँव, पुवायाँ, पुष्कर, पूरेयोगा, पूरेरामदीन (असैदापुर), पूरेरामदीनका पुरवा, पूर्णिया, पेंडलवाडा, पेंड्रारोड, पेद्दापुर, पेशुआ, पेशोक टी०ई०, पैंची, पैकौरी, पोखरी, पोन्नेरी, पोरबंदर, पोहरी, पौना, प्रतापपुरा, प्रयागराज, प्रीतमपुरी, फतेगंजपूर्वी, फतेहपुर, फतेहाबाद, फरहदा, फरीदकोट, फरीदपुर (प्रेमपुर), फरीदाबाद, फरोदा, फर्रूखाबाद, फागी, फाजिल्का, फिरंगीपाड़ा कोटा, फिल्लौर, फुंडा, फुलझर, फुलपुररामा, फुलहर, फुलहर-१, फूलझर, फ्रामिंघम (यू०एस्०ए०), बंगलौर, बंदबहाल, बंधुछपरा, बंबेली, बंसरामऊ, बक्सर, बक्षेरा, बखरी, बगड़, बगड़ू जामुनटोली, बगरू, बगही, बगहा पश्चिमवारी, बगौता, बघवाड़ा, बघेरा, बछवाड़ा, बछौर, बटाला, बटौल (हरिहरपुर), बठोडा, बड़दूजोगी, बड़पार, बड़पारी, बड़फरा, बड़वानी, बड़हरा, बड़ागाँव, बड़ीबलिया, बड़ी बिजोलियाँ, बड़ौत, बड़ौदा, बथना, बदवार, बधमारा, बनखंडा, बनटोल, बनवारी-बसंत, बनियागाँव, बनियागाँव (कोंडागाँव), बनियानी, बनोली, बबेड़ी, बमनाला, बम्होरी, टीटोर, बयाना, बरकतपुर, बरगदही वसंतलाल, बरनमहगवां, बरमसर, बरमा ठाकुरवाड़ी, बरवाही, बरहापुर, बराकर, बरारी, बरीका नगला, बरुआ कुटीर-री, बरुआघाट, बरेली, बरोरा, बरोरी, बरौंधा, बलरामपुर तलगड़, बलवाड़ा, बलिया,

बलिया-नबाबगंज, बलीगाँव, बलेजी, बलौदा, बल्लूपुर, बसंतनगर, बसंतपुर, बसवा, बसिया, बसौनी, बसौरा, बहराइच, बहरी, बहरोड, बहादुरगढ़, बहादुरगढ़शहर, बहादुरपुर, बहादुरपुर (जागीर), बहादुरपुर-बहादुरपुर (इसोपुर), बिनवलिया, बहुआ, बहुआरा, बहेंगा, बांदरी, बांसवाड़ा, बाँसाकलाँ, बाँका, बाँकी, बाँगरोद, बाँदनवाड़ा, बाँदा, बाँदीकुई, बाँसी, बाँसीके लाला, बागपिपरिया, बागर, बाग्लुङ बाजार (नेपाल), बाघोली, बाजितपुर (झखड़ा), बाड़मेर, बाढ़, बाढ़ापुर, बाप, बाबई, बामनियाकलाँ, बाम्हनबाड़ा, बायतू, बारा, बाराबंकी, बालसी, बालाघाट, बालापुर, बालू-१, बालोद, बास, बिंदा, बिकाराबाद, बिछौदना, बिजनौर, बिजलवाडी, बिजौरी, बिझड़ी, बिडवाल, बिदियाद, बिनका, बिनाई, बिनिका, बिनौल, बिरलाग्राम नागदा, बिरसिंहपुर-पाली, बिरोल, बिलाड़ी, बिलासपुर, बिलौंद, बिल्धौ, बिल्सी, बिशुनपुर-बघनगरी, बिशुनपुरा, बिसरा, बिसरापार, बिसाऊ, बिसुंदनी, बिहटा, बिहार, बीकानेर, बी०कैथी, बीड, बीरबन्ना, बीरमपुर, बीरमपुर-गढ़शंकर, बीसापुरकलाँ, बुटाहरी, बुद्धिकामना, बुधलाडा, बुरदा, बुरहानपुर, बुरहीरोमा, बूँदी, बूरमाजरा, बेड़ा, बेतिया, बेनाचट्टी, बेनियाँका बास, बेनीकामा, बेनोडा, बेरछादातार, बेरलीखुर्द, बेराघाट, बेलखुरी, बेलगाम, बेलरगाँव, बेलसार, बेल्लूर, बेल्लूर (बू०), बैका-विष्णुपुर, बैरवार, बोकठा, बोकारोस्टील सिटी, बोडा, बोड़ा सम्बरराज़, बोतराई, बोताड, बोदवड, बोधन, बोबासर, बोबासर बीदावतान, बोरगाँव, बोरावड़, बोरीवली(पूर्व), बोरिस, बोरूंया, ब्रजराजनगर, ब्रह्मपुर, ब्रह्मावली, ब्रह्मोतरा, ब्रेहवी, भंजनगर, भंडारा, भंडारिया, भंडारिया (भारतगढ़), भंदेमऊ, भक्तिनगर, भगवानपुर, भटली, भटवाड़ी (टकनौर), भटेड़, भटेवरा, भटौली, भट्टकलाँ, भट्टीपारा, भदलियानोसर, भदवर, भदैनी, भभुआ, भमावद, भर, भरतपुर, भरथुआ, भरूब, भरेह, भरोसा, भलार, भलेरा, भवानीपुर, भाँवता, भाऊगढ़, भागनबीघा, भाठागाँव आर, भारौलीखुर्द, भावनपुर, भिंभौरी, भिखापाली, भिलाई, भिवानी, भीकनगाँव, भीखनीडीह टोला, भीखपाली, भीखर (नौबस्ता), भीलवाड़ा, भीष्मगिरि, भुन्ना, भुवनेश्वर, भुसावल, भूरा, भेड़वन, भैंसमुंडी (मगरलोड़), भैंसवाही, भैंसादरहा, भैरवपुर, भैसोदा, भोगपुर, भोपाल, भोलसा, भ्रमरपुर, मंगरूलदत्त, मंगलेश्वर, मंगलौर टाउन, मँगोनाकलाँ, मंचिरीयाल, मंझौर, मंडला, मंडावरी, मंडी, मंडीअटेली, मंडी गोविन्दगढ़, मंडी डबवाली, मंदसौर, मऊगंज, मऊरानीपुर, मकराना, मखदुमपुर, मखमेलपुर, मचला, मचाना, मछलीशहर, मजरा, मजेड़ा-सतगढ़, मझटोलवाबक्षेरा, मटेहनी, मडलौडामंडी, मड़ावदा, मडोरी, मणू, मतवाना, मत्तेपुर, मदनगंज, मदलोग, मदारीचक, मदुरै, मद्दूर, मधानिया, मधुरापुर, मधेपुरा, मनफरा, मनासा, मनिगाँव, मनिगाँव (बिनका), मनेला, मनैतापुर, मयसपुर (बैतड़ी-नेपाल), मरदानपुर, मरयाहे, मरारीटोला, मरौंदा, मर्दनपुरवा, मलंगवा (नेपाल), मलकली डेवढ़ी, मलकापुर, मलकौली, मलिनियाँदिरा, मलेहरा निवादा, मवीकलाँ, मसकनवाँ, मसवानपुर, मसवासी, मसानकुंडा, महताणी, महथी, महनियावास, महमदाबाजार, महमादा, महादेव, महादेवाँ, महाराजपुर, महावीरनगर-ढेंगाडीह, महासमुंद, महिदपुर, महियामा, महिषी, महिसारि, महुआखेड़ा, महुड़र, महू, महेंद्रकोट (नेपाल), महेशपुर, महेशवारा, महेशाफरकपुर, महोबा, महोली, मांडल, माँकरौल, माँडलगढ़, माचनूर, माचाडी, माचाडीचौक, माछरा, माजरा, माड़ीपुर, माणिकपुर, माणीकट्टा, मातिभिटा, माधोपुर, माधोपुर-गोविन्द, मानपुर, मानसा, मायागढ़ी-स्टेट, मायापुर, मार्कंडा, मालडाखुर्द, मालतीपुर(सरगुजा), मालाबाद, मालेगाँव, मालेरकोटला, मासलपुर, माहीम, मिड्ढेक्स (ब्रिटेन), मिर्जापुर, मिश्रौली, मिसरौली, मुंगो, मुंबई, मुईली, मुगलसराय, मुगो, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुजफ्फरा, मुबारकपुर, मुरलीगंज, मुरादनगर, मुरादाबाद, मुरैना, मुलताई, मुशेदपुर, मुसाफा, मूड़बरेली, मूल, मूलाकोट (चम्पावत), मूलाकोट (देवीधुरा), मूसलपुर, मेड़ता सिटी, मेदनीपुर, मेरठ, मेरापानी, मोडासा, मोतिमपुर, मोतिहारी, मोतीनगर, मोदीनगर, मोरध्वजनगरी मोराँ, मोहनपुरा, मोहनलालबाबाकी गढ़ी, मौजपुर, मौधा, मौधिया, म्याऊ, यमुनानगर, यवतमाल, युवराजपुर, येताला, येवला, रंझर, रंधाड़ा, रक्सेहा, रक्षालखुर्द, रघुराजगढ़, रजपुरा, रजौली, रटलाई, रठेरा, रणवीरसिंहपुरा, रतनगढ़, रतनपुरा, रतनादेसर, रतलाम, रत्ननगर, रत्ननगर-२, रत्नपुर, ररी, ररी (लहार), रवानियाँ, रहिनियापुर, रांहेरा, राँची, राजकोट, राजगंगपुर, राजगढ़, राजगीर, राजग्राम, राजनाँदगाँव, राजपुर, राजाकातोर, राजाका रामपुर, राजाका सहसपुर, राठ, राणावास, रातूरोड, रानापुर, रानिटोला, रानिया, रानीपुर, रानीपेट, रामकोट, रामगढ़, रामगढ़-जबंधे, रामदासपुर, रामदीरी (नकटी),

रामनगर, रामनगरपारा, रामनाथ-देवरिया, रामपट्टी, रामपुर-कोलियरी, रामपुरगूडा, रामपुर-पिपरिया, रामपुर-माधो, रामपुर-बक्षेरा, रामपुर-बखरा, रामपुरा, रायगढ़-वेहडा, रायथल, रायपुर, रायपुर-कर्चुलियान, रायपुर फोर्ट, रायपुर सानी, रायरंगपुर, रायसिंहनगर, राल, रावतपुरगाँव, रावतभाँटा, रावलवासखुर्द, रिंगनोद, रिसिया, रुदौली, रूड़की, रूच्चापार, रूपलीसर, रेंदड़ी, रेहटी, रैपुरादी०, रोकड़ी, रोपनछपरा, रोरा, रोलगाँव, रोसड़ा, रोसावाँ, रौंसरा, लंका, लक्ष्मणपुर मिश्रान, लक्ष्मीपुर-ककढ़ियाँ, लक्ष्मीपुर-सायत, लक्ष्मेश्वर, लखनऊ, लखनपुर, लखीसराय, लखुर्री, लखोरिया, लखौरी, लछुमनपुर, लडुगाँव, लतिवाड़ी, लत्ता, लभेड़ा-पिछोर, लवनपुर, लवहर फरना, लवाइच, लश्कर, लस्करी, लहरीतिवारीडीह, लहान (नेपाल), लहेरियासराय, लांडेवाडी, लाखेरी, लाछड़सर, लाडपुर, लातूर, लातेहार, लालगंज, लालपुर, लालपुरा, लालपुरा (भीम), लालसिंग, लालसोट, लालाके वाँसी, लावन, लासूर स्टेशन, लिलुआ, लीबंग हाउस, लुहारी-माछरौली, लेदरी, लेवा, लोइसींहा, लोईंग, लोटखेड़ी, लोपड़ा, लोहई, लोहरवाडा, लोहा, लौमुंडा, लौरिया, लौह, वगाईगाँव, वरबीघा, वराह क्षेत्र-३ (नेपाल), वरिकेल, वरूड, वरूड-जउलका, वर्दवान, वृंदावन, वल्लभनगर, वसिष्ठाश्रम-सुरखण्डनगरी, वांगणी, वाजुगाँवबाजार, वाडा, वातावारि, वानखेड, वानीपुर, वारसौल, वाराणसी, वारीसलीगंज, वालकोनगर, वालमेंडा, वास्कोडिगामा, वाहेगाँव-देभणी, विगाही, विजयग्राम, विजयनगरम्, विजयपुर, विदिशा, विद्यानगर, विरता, विरदा, विरौंधी, विलंदपुर, विलावर, विलौठी, विल्संडा, विशाखापट्टनम्, विशौनी, विश्वकर्मा, विश्वम्भरपुर, विश्वाँ, विषाड़, विष्णुपुर, वीना, वीरवाँ, वीसलपुर, वुर्जवाजी, वेरंखेड़ी गुसाई, वैजूपट्टी, वैदहा, वैर, वैशाली, व्यंकटेशनगर, व्यंकनेर, शंकरनगर, शकरा, शहजादपुर, शहरफाटक, शाहगढ़, शाहदरा, शाहपुर, शाहपुरकंडी टाउनशिप, शाहपुर-टहला, शाहपुर (पंडितटोल), शाहोपुर बरमा, शिंदे, शिकारपुरा, शिकोहाबाद, शिमला, शिवकाशी, शिवगंज, शिवगढ़, शिवगढ़-चौहानका, शिवपुर, शिवपुरा, शिवपुरी, शिवराजपुर, शिवाड़, शिशोद, शीतलापुरी, शुजालपुरमंडी, शेरगढ़, शेरुणा, श्रीगंगानगर, श्रीपुर, श्रीरामपुर, संखवास, संगमनेर, संगरिया, संगरियामंडी, संगरूर, संजौली, संतोषगढ़, संबलपुर, संयाहरड, संहौली, सकड़ोहल, सकरार, सक्ती, सचोली, सड़क परसुली, सड़रा, सतना, सतवारी, सतोहल, सथरा, सदरपुर, सनावल, सपरून, सबसुखपुर-पठकौली, समर-ब्रिज शोधी, समर्था, समालखा, सयालदह, सरखों, सरगाँव, सरत, सरयूपार, सरवाड़, सराईपाली, सरायदिगोशा, सरिया, सरूपगंज, सरेंधी, सरेई चम्पुआ, सरैया-गोपाल, सरैयाबाजार, सर्वोदयनगर-शिवपुरी, सवांसा, सवाईमाधोपुर, सस्तरा, सहरना, सहरी, सहार, सहारनपुर, सांगली, सांगानेर, सांभरलेक, साँकर, साईनछपड़ा-देवानन्द, साईन-मलंगस्थान, साकेत-पत्तेरापाली, सागर, सागोर, साजनसर, साठवाँ, सादूमल, सातारा, सादासर, सादुलपुर, साधपुर, साबड़ा, सामनेर, सामी, सायणी मौहरी, सायनकोलीवाड़ा, सारसंडा, सालासर, सालिमपुर, सालेवाडा, सालोन-बी, सावनेर, सासनी, सासाराम, साहिबगंज, साहिबाबाद, सिंगटौली, सिंघाना, सिंदुवारटोली, सिंद्री, सिंधाड़ा, सिंधिया, सिंधीतराई, सिकंदराबाद, सिकंद्रा, सिकराँ, सिगतौली, सिगोली-चारभुजाकी, सिघरावली, सितारगंज, सिधरावली, सिधौली, सिमलटापु, सिरपुरकागजनगर, सिरसुं, सिरहौल, सिरेगाँवखुर्द, सिलेपुर, सिलोही, सिलौतवासुदेव, सिवनी, सिवनीमालवा, सिहाल, सिहोरा, सीकर, सीतापुर, सीतामढ़ी, सीथल, सीनखेड़ा, सीवाँ, सीसवाली, सीहोर, सुंगरहा, सुंदरसी, सुंहेत, सुक्षीपूर्व, सुखबाग, सुगरता (गुनौर), सुगवाँ, सुजानगढ़, सुजानपुर-टीहरा, सुजानपुरा, सुजिया-महोलिया, सुतरी, सुनबेदा, सुभाषनगर, सुमावली, सुरपुरा, सुरिन्द्रपुर, सुरेबान, सुलगाँव, सूरजपुराकलाँ, सूरत, सेंट्रलपल्पमिल, सेंठा, सेऊ, सेतरावा, सेमरा, सेमरा-मेड्रौल, सेरूकहा, सेवर, सेहलंग, सैंतिया, सैदनपुर, सैदपुर, सैफाबाद, सोनई, सोनवला, सोनापुरहाट, सोनीपत, सोफ्ता, सोमगाव, सोरों, सोलापुर, सोहमई-कारीरात, सोहावल, हंसुवा, हजारीबाग, हटनी, हणेगाँव, हथौड़ाखेड़ा, हनुमानगढ़ (सीधी), हनुमानगढ़ जं०, हनुमानटोला बक्षेरा, हनुमानमोड़ (रंधाड़ा), हयातनगर, हरगनपुर, हरदा, हरदी, हरदुआकैम्प, हरनावदा शाहजी, हरनी, हरनौत, हरपुर, हरसूद, हरसोली, हरिद्वार, हरिपुरनायक, हरिहरछत्तर, हरिहरपुर (बघौल), हसदा (गोंड़गिरि), हसामपुर, हल्द्वानी, हलूरी, हलेपेठ शहापुर, हसुवा, हाँफा, हाजीनगर, हाजीपुर, हारीज, हार्सिकट्टा, हालीशहरकोना, हावड़ा, हास्पेट, हिंगणघाट, हिंडोरिया, हिंडौन, हिमतसर, हिमायतनगर, हिरनी, हिराकुद, हिसार, हिसारड्योढ़ी, हुबली, हुमायूँपुर, हूर, हेरौडा (नेपाल), हेसल, हैदरगढ़, हैदराबाद, होलंग, होशंगाबाद, होशियारपुर, ९९ ए०पी०ओ०।

* * *

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगीता-जयन्ती

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः। सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।

(गीता ६। ३०-३१)

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।'

आजके इस अत्यन्त संकीर्ण स्वार्थपूर्ण जगत्में दूसरेके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझनेकी शिक्षा देनेके साथ कर्तव्य-कर्मपर आरूढ करानेवाला और कहीं भी आसक्ति-ममता न रखकर केवल भगवत्सेवाके लिये ही यज्ञमय जीवन-यापन करनेकी सत्-शिक्षा देनेवाला सार्वभौम ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता ही है। इसका विश्वमें जितना वास्तविक रूपमें अधिक प्रचार होगा, उतना ही वह सच्चे सुख-शान्तिकी ओर बढ़ सकेगा।

मार्गशीर्ष शुक्ल ११, सोमवार, दिनाङ्क ३० नवम्बर १९९८ ई० को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व-दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य होने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन।

(२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन।

(३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण।

(४) गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके हेतु गीता-प्रचारार्थ एवं समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्य-परायण बनानेकी महती शिक्षाके लिये इस परम पुण्य दिवसका स्मृति-महोत्सव मनाना तथा उसके संदर्भमें सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन एवं भगवन्नाम-संकीर्तन आदि करना-कराना।

(५) महाविद्यालयों और विद्यालयोंमें गीता-पाठ, गीतापर व्याख्यान, गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र-छात्राओंको पुरस्कार-वितरण आदि।

(६) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीता-कथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्का विशेषरूपसे पूजन और आरती करना।

(७) जहाँ किसी प्रकारकी अड़चन न हो वहाँ श्रीगीताजीकी शोभायात्रा (जुलूस) निकालना।

(८) सम्मान्य लेखक और कवि महोदयोंद्वारा गीता-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करने और करानेका संकल्प लेना, तदर्थ प्रेरणा देना और—

(९) देश, काल, पात्र (परिस्थिति)-के अनुसार गीता-सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम अनुष्ठित होने चाहिये।

—**सम्पादक**

131580

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०-

LICENCE NO.-3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

प्र० ति० २०-१०-९८

॥ श्रीहरिः ॥

‘कल्याण’के अबतक प्रकाशित लोकप्रिय विशेषाङ्क

[गताङ्क-संख्या ९ से आगे]

कल्याण-वर्ष ३०, सत्कथा-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९५६ ई०) [कोड-नं० 587] जीवनमें सेवा, त्या वैराग्य, सत्य, अहिंसा, विनय, प्रेम, उदारता, दानशीलता, धर्म, नीति, सदाचार, राष्ट्र-प्रेम और भगवद्भक्ति औ सद्गुणोंका प्रकाश भर देनेवाली इसकी सरल, सुरुचिपूर्ण, सुसंस्कार-प्रदायिनी छोटी-छोटी सत्कथाएँ बड़ी रोचक औ प्रेरक हैं। इन लघु कथाओंकी पवित्र प्रेरणाएँ हर किसी चिन्तनशील व्यक्तिके लिये पथ-प्रदर्शक सिद्ध हो सक हैं। मूल्य रु० ७५ (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)।

कल्याण-वर्ष ३१, तीर्थाङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९५७ ई०) [कोड-नं० 636] इस विशेषाङ्कका तीर्थों महिमा, स्वरूप तथा स्थिति एवं तीर्थ-सेवनके महत्त्वपर उत्कृष्ट मार्ग-दर्शन अध्ययनीय है। देव-पूजन-विधिसहि तीर्थोंमें पालन करने योग्य तथा त्यागने योग्य इसका उपयोगी दिशा-निर्देश भी मननीय है। भारतवर्षके प्रायः सम्पू तीर्थोंका खोजपूर्ण सचित्र विवरण प्रस्तुत करनेवाला यह एक ऐसा संकलन है, जो तीर्थाटन-प्रेमियोंसहित पर्यटकों लिये भी पर्याप्त उपयोगी है। मूल्य रु० ८५ (सन् १९५७ के बाद तीर्थोंके मार्गों तथा यातायात-साधनोंमें हुए परिव इसमें संशोधित नहीं हैं—पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)।

कल्याण-वर्ष ३२, भक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९५८ ई०) [कोड -नं० 660] इसमें ईश्वरोपासना-सहित भगवद्भक्तिका स्वरूप-विवेचन तथा भक्तिके प्रकारों एवं विभिन्न पक्षोंपर शास्त्रीय दृष्टिसे व्यापक विचार कि गया है। साथ ही भगवद्भक्तोंके शिक्षाप्रद, अनुकरणीय जीवन-चरित्र भी इसमें बड़े मर्मस्पर्शी और प्रेरणाप्रद हैं मूल्य रु० ८० (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)।

कल्याण-वर्ष ३३, मानवता-अङ्क (सन् १९५९ ई०) इसमें मानवताका स्वरूप, सिद्धान्त, विकास तथा मान सद्गुणोंकी विस्तृत चर्चासहित मनुष्यत्वके गिरते मूल्यों तथा सच्ची मानवताका दिग्दर्शन शास्त्रीय परिप्रेक्ष्यमें कि गया है। साथ ही इसमें मानवोचित कर्तव्यों, संवेदनाओं, आदर्शों एवं विशेषताओंपर पौराणिक कथाओं तथा इतिवृत्तों माध्यमसे सेवा, आत्म-त्याग, प्रेम, बलिदान आदि मानवताके आदर्शोंको ‘स्व-कल्याण’ का साधन बताया गया है इस प्रकार परमात्म-प्राप्तिके अन्तिम लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये इसका अध्ययन-अनुशीलन प्रेरक और सर्वजनोप कहा जायगा। संक्षेपमें मानवताका उत्थान ही इसका मुख्य प्रतिपाद्य (विषय) है। [क्रमशः]

‘कल्याण’का वर्तमान विशेषाङ्क—‘भगवल्लीला-अङ्क’

[अब थोड़ा ही बचा है; कृपया अविलम्ब मँगायें]

‘कल्याण’का वर्तमान (जनवरी सन् १९९८ ई० का) विशेषाङ्क—**‘भगवल्लीला-अङ्क’** अब बहुत थोड़ा ही बचा है अतः इच्छुक महानुभावोंको इसे शीघ्र प्राप्त कर लेना चाहिये।

‘भगवल्लीला-अङ्क’में भगवान्‌के विभिन्न अवतारों तथा लीला-कथाओंके वर्णनसहित, भगवल्लीलानुरागी अ संत-महात्माओंके रोचक और प्रेरणादायी जीवन-चरित्र हैं। फरवरीके परिशिष्टाङ्कसहित कुल पृष्ठ-संख्या ४६०, ब आकर्षक लीलाचित्र १४, सादा चित्र ३ एवं अनेक सुन्दर रेखाचित्रोंसे सज्जित यह सचित्र बहुरंगे आवरणसे युक्त है। इ वार्षिक शुल्क रु० ८० (सजिल्द-रु० ९०)।

गीताप्रेस-पुस्तक-विक्रय-विभागमें परिशिष्टाङ्क-सहित केवल विशेषाङ्कका विशिष्ट संस्करण भी उपलब्ध है। इ मँगवानेपर पुस्तक-विक्रेताओंको नियमानुसार कमीशन दिया जायगा। इच्छुक पुस्तक-विक्रेताओंको सत्साहित्य-प्रचा अवसरसे विशेष लाभ उठाना चाहिये। केवल विशेषाङ्कके इस आवरणयुक्त, सजिल्द संस्करणका मूल्य ६५ रुपये मा

व्यवस्थापक—**‘कल्याण’-कार्यालय, पत्रालय-गीताप्रेस, गोरखपुर-२७३**

17084

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

LIBRARY
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARDWAR
23/3/98

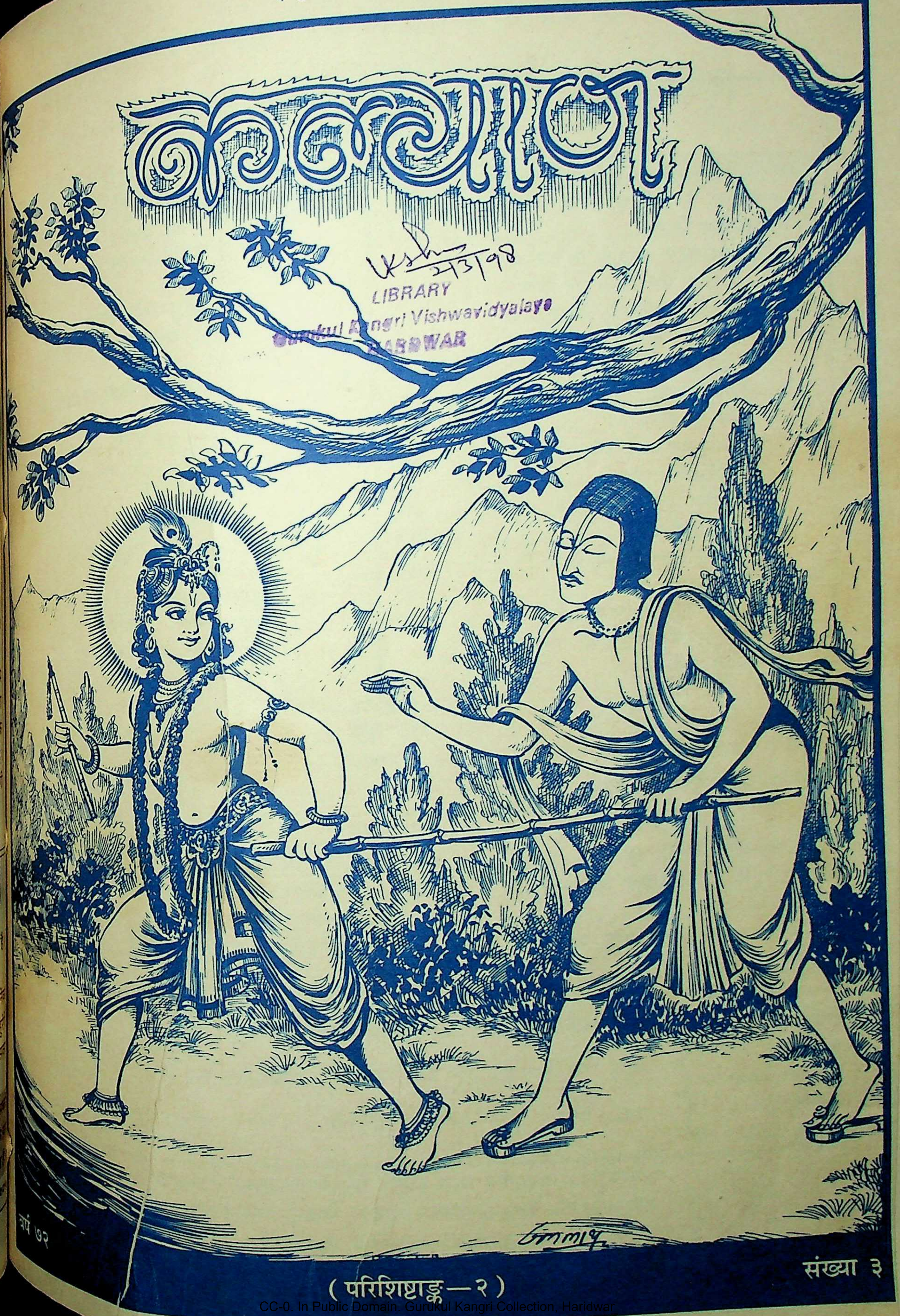

वर्ष ७२

संख्या ३

(परिशिष्टाङ्क—२)

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,३०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०५४, श्रीकृष्ण-सं० ५२२३, मार्च १९९८ ई०

विषय पृष्ठ-संख्या
१- भगवान्‌की त्रिगुणात्मिका लीला ४६१
२- श्रीरामलीला-चिन्तन .... ४६२—४७८
  [१] अयोध्यामें श्रीरामके लिये राज्याभिषेकका प्रस्ताव और उनका वन-गमन ४६२
  [२] अयोध्यामें भरतका आगमन (आर्त भरत) . ४६२
  [३] महाराज दशरथकी अन्त्येष्टि ४६३
  [४] भरतका चित्रकूट-प्रस्थान ४६४
  [५] भरत-मिलन ४६४
  [६] चित्रकूटकी मन्त्रणा ४६५
  [७] चरण-पादुकाकी प्राप्ति ४६६
  [८] नन्दीग्रामका तपस्वी ४६७
  [९] श्रीरामका पञ्चवटी-निवास ४६८
  [१०] सीताहरण-लीला ४६९
  [११] श्रीहनुमान्‌का लंकामें प्रवेश ४७१
  [१२] लंका-दहन-लीला ४७३
  [१३] श्रीरामका राज्याभिषेक ४७७
३- लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् (प्रो० श्रीइन्द्रवदनजी बी० रावल, एम्०ए०) ४७९

विषय पृष्ठ-संख्या
४- लीलावतार अवधूतश्रेष्ठ भगवान् 'श्रीदत्तात्रेय' (प०पू० दण्डी स्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज) ४८१
५- लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी आवन्त्य-लीला (श्रीबिहारीलालजी व्यास, एम्०ए०, एल्०टी०, आयुर्वेदरत्न) ४८५
६- लोकमर्यादा श्रीरामलीला (स्वामी श्रीपरमहंसजी महाराज) ४८८
७- वैष्णवदर्शनमें लीला-तत्त्व (डॉ० श्रीश्याम-शर्माजी वाशिष्ठ, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, शास्त्री, काव्यतीर्थ) ४९०
८- श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन .... ४९३—५०८
  [१] भगवान् श्रीकृष्णको माँ यशोदाद्वारा बाँधनेका उपक्रम ४९३
  [२] श्रीकृष्णकी ऊखल-बन्धन-लीला ४९९
  [३] ऊखलसे बँधे हुए दामोदरका यमलार्जुन बने हुए कुबेर-पुत्रोंपर कृपापूर्ण दृष्टिपात ५०५

चित्र-सूची

१-सूरके श्याम (इकरंगा) आवरण-पृष्ठ
२-भगवान्‌की त्रिगुणात्मिका लीला (रंगीन) मुख-पृष्ठ
(रेखा-चित्र)
३- श्रीभरतजीका पादुका-पूजन ४६७
४- लक्ष्मणजीद्वारा शूर्पणखाका अङ्ग-भङ्ग ४६९
५- जटायुपर कृपा ४७०
६- श्रीहनुमान्‌जीका ओषधिसहित पर्वत लेकर आना ... ४७६
७- श्रीकृष्णका लोढ़ेसे दहीका मटका फोड़ना ४९४
८- श्रीकृष्णका ऊखलपर खड़ा होकर छीकेपर रखा माखन बंदरोंको लुटाना ४९५
९- यशोदाजीद्वारा श्रीकृष्णका पकड़ा जाना ४९७

इस अङ्कका मूल्य ४ रु०
विदेशमें—US$0.40
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ८० रु०
(सजिल्द ९० रु०)
विदेशमें—US$11

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

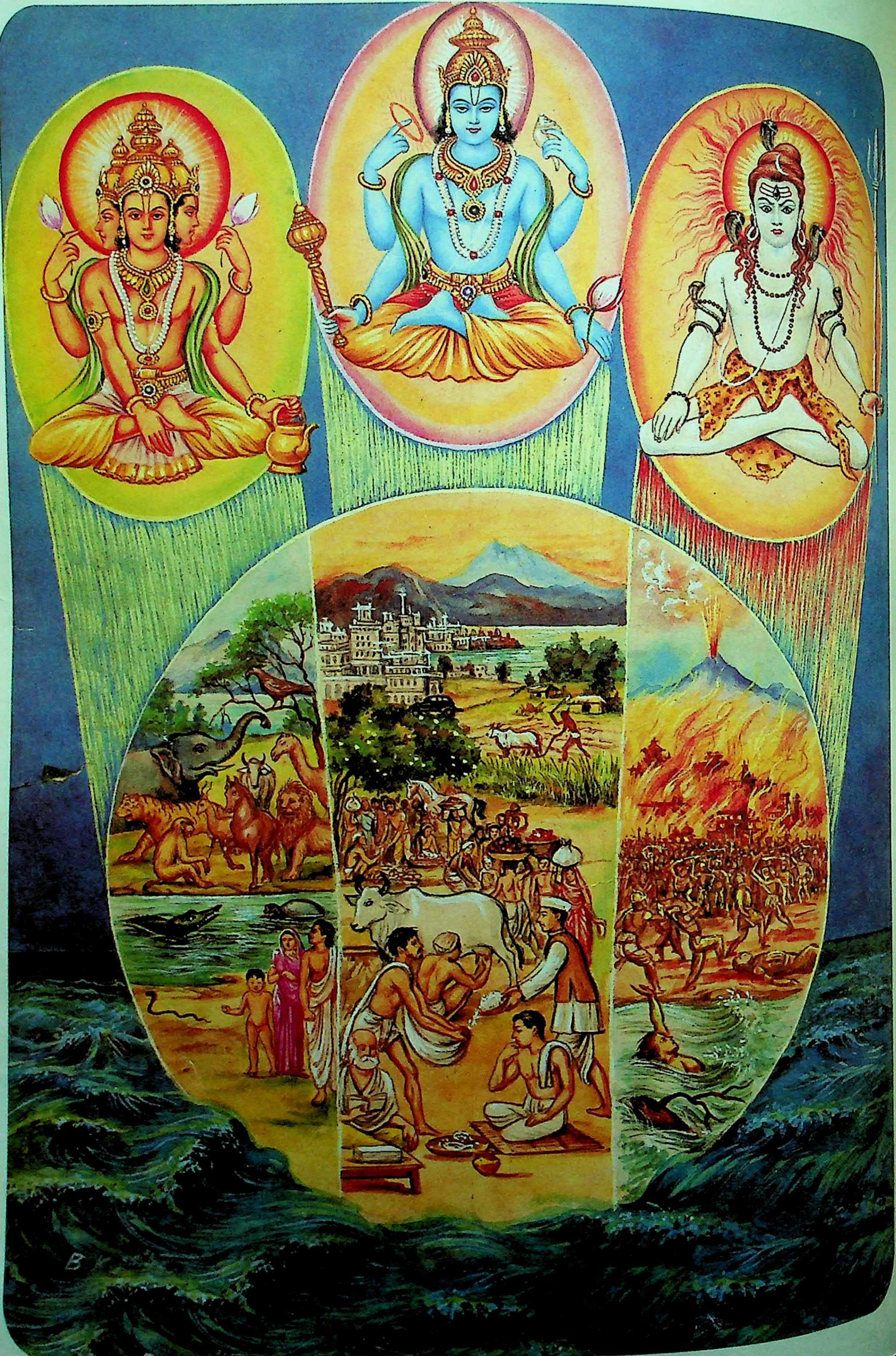

भगवान्‌की त्रिगुणात्मिका लीला

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

77084

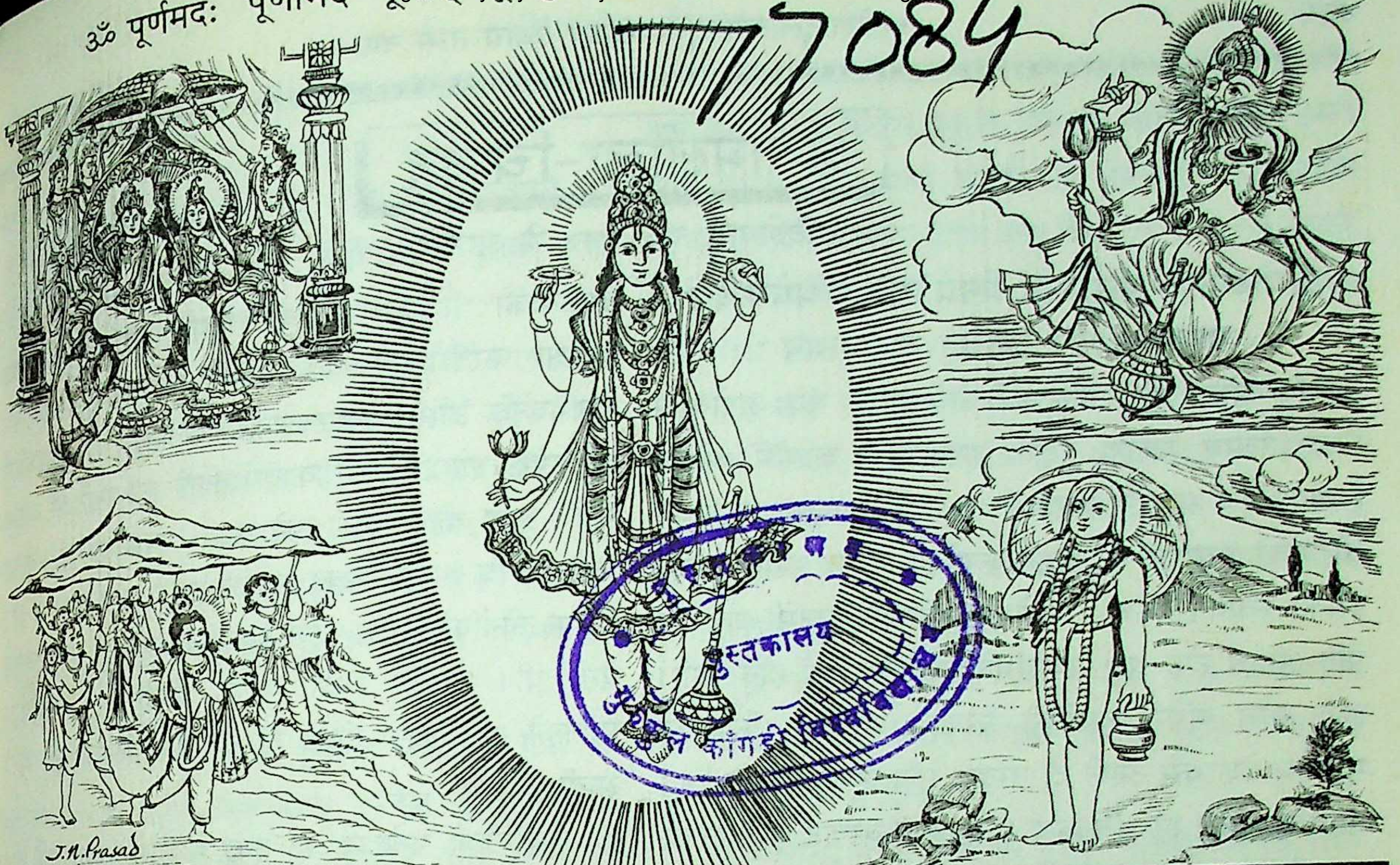

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय पुस्तकालय

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

वर्ष ७२

गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०५४, श्रीकृष्ण-सं० ५२२३, मार्च १९९८ ई०

संख्या ३

पूर्ण संख्या ८५६

भगवान्‌की त्रिगुणात्मिका लीला

स वा इदं विश्वममोघलीलः सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन्। भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः॥
न चास्य कश्चिन्निपुणेन धातुरवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः। नामानि रूपाणि मनोवचोभिः संतन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः॥

(श्रीमद्भा० १। ३। ३६-३७)

भगवान्‌की लीला अमोघ है। वे लीलासे ही इस संसारका सृजन, पालन और संहार करते हैं, किंतु इसमें आसक्त नहीं होते। प्राणियोंके अन्तःकरणमें छिपे रहकर ज्ञानेन्द्रिय और मनके नियन्ताके रूपमें उनके विषयोंको ग्रहण भी करते हैं, परंतु उनसे अलग रहते हैं। वे परम स्वतन्त्र हैं—ये विषय कभी उन्हें लिप्त नहीं कर सकते। जैसे अनजान मनुष्य जादूगर अथवा नटके संकल्प और वचनोंसे की हुई करामातको नहीं समझ पाता, वैसे ही अपने संकल्प और वेदवाणीके द्वारा भगवान्‌के प्रकट किये हुए इन नाना नाम और रूपोंको तथा उनकी लीलाओंको कुबुद्धि जीव बहुत-सी तर्क-युक्तियोंके द्वारा नहीं पहचान सकता।

* * *

श्रीरामलीला-चिन्तन

[विशेषाङ्क पृ० १४४ से आगे]

अयोध्यामें श्रीरामके लिये राज्याभिषेकका प्रस्ताव और उनका वन-गमन

विवाहोत्सवके अनन्तर सभी अयोध्या आ गये। अयोध्यामें नित्य उत्सव चलता रहा। राजकाजके कार्योंमें श्रीराम पिताका पूर्ण सहयोग करते थे। एक दिन महाराज दशरथने श्रीरामको युवराज-पद प्रदान करनेका प्रस्ताव रखा। सभीने इसका स्वागत किया। अयोध्यावासियोंके मनमें श्रीरामके प्रति अगाध स्नेह था। राज्याभिषेककी तैयारियाँ होने लगीं। इसी बीच मंथरा दासीकी प्रेरणासे महारानी कैकेयीने महाराज दशरथसे अपने दो वरदान माँग लिये, जिनके लिये महाराज पूर्वसे ही वचनबद्ध थे। पहला वरदान था भरतको राज्याभिषेक और दूसरा वरदान था श्रीरामको चौदह वर्षके लिये वनवास। यह सुनकर महाराज दशरथ अधीर और व्याकुल हो गये; पर वे अपने वचनोंकी सत्यताकी रक्षाके लिये विवश थे। अतः कैकेयीके वरदानको अस्वीकार नहीं कर सके। श्रीरामको जब इस घटनाक्रमकी जानकारी हुई तो वे अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर पिता श्रीदशरथजीसे मिले। उन्हें आश्वस्त किया और वन-गमनके लिये तत्पर हो गये। अपनी माताओंको भी समझाकर उनसे भी विदाई ली। जनकनन्दिनी जानकी और अनुज लक्ष्मण भी वन साथ चलनेको तैयार हो गये। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके बार-बार समझानेपर भी वे माने नहीं।

श्रीराम, लक्ष्मण और जानकी तीनोंने वल्कल-वस्त्र धारणकर वनके लिये प्रस्थान किया। सम्पूर्ण अयोध्यावासी शोकाकुल हो उठे, पर किसीका वश नहीं चला। मार्गमें प्रयागराजमें भरद्वाजमुनिके आश्रममें उनका आतिथ्य स्वीकार करते हुए वे चित्रकूट पहुँचकर वहाँ पर्ण-कुटीमें निवास करने लगे।

इधर महाराज दशरथ श्रीरामका वियोग सहन नहीं कर सके और अपने प्राण त्याग दिये। भरत, शत्रुघ्न दोनों भाई उन दिनों ननिहालमें थे। वहाँसे उन्हें बुलाया गया।

अयोध्यामें भरतका आगमन (आर्त भरत)

'आये……आ गये अयोध्याके अधीश्वर!' मन्थराने ही कैकेयीको दौड़कर समाचार दिया। उतावलीपूर्वक वह प्रतीक्षा करती रही थी भरतके आगमनकी। बार-बार राजभवनके ऊपरी भागपर जाकर देखती रही थी। कैकेयीकी जो उपेक्षा लोगोंने—सेविकावर्ग तकने कर रखी थी, उससे मंथरा क्रुद्ध थी। भरतसे उसे बहुत आशा थी। वह समझ बैठी थी कि भरत उसका सत्कार करेंगे। वह भरतके द्वारा अनेक लोगोंको कठोर दण्ड दिलानेकी योजना मनमें बनाये बैठी थी। भरतके रथकी ध्वजा दीखी—रथ कैकेयीके सदनकी ओर आता दीखा तो वह भवनके ऊपरसे दौड़ी आयी थी।

कैकेयीकी मनोदशा भी कुछ मंथरासे भिन्न नहीं थी। मंथरा तो समाचार देकर अपना शृंगार करने भागी। सदा आभूषण-लोलुपा यह कुब्जा दासी भरतके सम्मुख ऐसे ही कैसे चली जाय। लेकिन कैकेयीने नीराजन सजाया और स्वयं पुत्रका स्वागत करने द्वारपर आयी। उसने भरत-शत्रुघ्नका नीराजन किया। दोनोंको तिलक किया। दोनोंने उसकी चरण-वन्दना की तो भरतको उठाकर उसने हृदयसे लगाया और भवनमें ले आयी।

'वत्स! तुम्हारा कमलमुख इतना उदास क्यों है?' कैकेयीने भरतसे पूछा। अबतक उसने शत्रुघ्नकी ओर ध्यान ही नहीं दिया था। शत्रुघ्न उसके पीछे-पीछे आये थे। कैकेयीके मनसे उसके पुत्र भरत अब सम्राट् थे। शत्रुघ्नको उसकी तथा भरतकी सेवा करनी ही चाहिये। वह भरतसे ही कह रही थी—'तुम तो ऐसे हो रहे हो जैसे धूलिमें स्नान करके आये हो। शीघ्र स्नान करो। मेरे पितृ-गृहमें सब कुशल तो है?'

'वहाँ सभी सानन्द हैं। मातुल साथ आये हैं। वे अतिथिशालासे स्नान करके आयेंगे।' भरत अपनी व्यथामें अबतक यह देख ही नहीं सके थे कि कैकेयीके करोंमें चूड़ियाँ नहीं हैं, उसके भालपर सौभाग्य-बिन्दु नहीं है और वह श्वेत-वस्त्रा है। भरतका हृदय व्याकुल था। उन्होंने पूछा—'पिताजी कहाँ हैं? वे राजसभामें नहीं थे और यहाँ भी उन्हें देखता नहीं हूँ। हमें इतनी शीघ्रतामें क्यों बुलवाया

उन्होंने?'

'वत्स! तुम्हारे यशस्वी वृद्ध पिता परलोकवासी हो गये!' कैकेयीके स्वरमें शोक नहीं था। पुत्रको वह आश्वासन देना चाहती थी—'तुम्हें उनकी·······।'

'पिताजी! हाय पिताजी!' भरत-शत्रुघ्न दोनों रुदन करते भूमिपर गिरे—'आप मुझे मेरे अग्रजके करोंमें सौंपे बिना परलोक चले गये? मैं सोचता था कि अग्रज श्रीरामका राज्याभिषेक करके आप बड़े-बड़े यज्ञ करेंगे!'

'पुत्र, यह शोक करनेका समय नहीं है।' कैकेयीने समझानेकी चेष्टा की—'तुम्हें कर्तव्य-पालन करना है। दान-धर्म करना है।'

'पिताजीका देहान्त कैसे हुआ? क्या हो गया था उन्हें?' भरतके श्रवण कैकेयीका उपदेश सुन नहीं रहे थे·····'मरते समय क्या कहा था उन्होंने और अम्ब, मैं जिनका दास हूँ, जो अग्रज मेरे भाई, पिता, बन्धु, सर्वस्व हैं; वे श्रीराम कहाँ हैं? वे ही अब मेरे पिता हैं। उनके श्रीचरण ही मेरे सर्वस्व हैं।'

'हा सीताराम! हा लक्ष्मण! कहते तुम्हारे पिताने देह-त्याग किया था।' कैकेयीने धीरेसे कहा।

'तो श्रीराम, अम्बा सीता और भाई लक्ष्मण भी उस समय अयोध्यामें नहीं थे?' अब भरतने मस्तक उठाकर कैकेयीकी ओर देखा—'वे कहाँ गये थे? अब कहाँ हैं?'

'महाराजने रामको चौदह वर्षके लिये उदासीन तापसवृत्तिसे रहते हुए वनमें रहनेकी आज्ञा दे दी।' कैकेयीने शान्तस्वरमें कहा—'सीता और लक्ष्मण भी रामके साथ चले गये।'

'किस भूलसे, किस अपराधपर पिताने आर्य श्रीरामको वन भेजा?' भरतके स्वरमें रोष आ गया। पिताकी मृत्युका शोक पता नहीं कहाँ गया। उन्हें पितापर क्रोध आया—'अग्रजने परस्वापहरण किया था? परस्त्रीपर कुदृष्टि डाली थी? किसी ब्राह्मण या गौकी हत्या हो गयी थी उनसे?'

'नहीं भरत! रामसे ऐसा कुछ नहीं हुआ; हो ही नहीं सकता था। राम परस्त्रीकी ओर नेत्र ही नहीं उठाते। अपना ही स्वत्व उन्होंने कभी नहीं सँभाला, पर-स्वका अपहरण उनसे कैसे होगा! किसीकी हिंसा, किसीका अपराध रामसे स्वप्नमें भी सम्भव नही।' कैकेयीको मुक्तकण्ठसे रामकी निर्दोष प्रकृति स्वीकार करनी पड़ी। उसने स्पष्ट कहा—'तुम जानते ही हो कि महाराजने मुझे पहले दो वरदान देनेका वचन दिया था। मैंने एक वरदानमें तुम्हारे लिये राज्य और दूसरेमें रामके लिये चौदह वर्षका वनवास महाराजसे माँगा था।

'यह क्यों नहीं कहती कि बिना माँगे पतिकी हत्या माँगी थी मैंने?' भरतके नेत्र अंगार उगलने लगे—'भरतको ही क्यों छोड़ दिया? इसके वधका वरदान माँगती। तू मानवी तो नहीं है, कौन है आखिर तू? चराचरके प्राणप्रिय श्रीराम तुझे अप्रिय लगे?'

'मुझे चाहे जो कहो! किंतु, अब तुम अयोध्याके अधिपति हो।' कैकेयीने साहस करके कहा—'पिताकी अन्त्येष्टि करना है तुम्हें।'

ये कर्णकटु वचन सुनते ही भरतने श्रवण बंद कर लिये और कठोर स्वरमें बोले—'मेरी माँ कौसल्या रही हैं। उन तपस्विनीने सदा तुझ कुटिलासे बहनके समान स्नेह किया। तू 'अम्बा' कहने योग्य नहीं है। तू मेरी माता नहीं है। मैं तुझे सफल-मनोरथ नहीं होने दूँगा। भरतकी तू कोई नहीं है। मेरे इस वंशमें सदाकी रीति अग्रजको राज्य देनेकी है, वह अक्षुण्ण रहेगी। मैं वनमें जाकर अपने स्वामी, अपने अग्रजको चरण पकड़कर लौटा लाऊँगा।'

तदनन्तर शोक-संतप्त भरत कौसल्यादि माताओंसे मिले तथा गुरु वसिष्ठकी आज्ञासे पिताश्री महाराज दशरथकी अन्त्येष्टि सम्पन्न की।

महाराज दशरथकी अन्त्येष्टि

शुद्ध चन्दनकी चिता। महाराजके शरीरको सरयू-जलमें स्नान कराकर सविधि चितारोहण कराया गया। सरयू तटपर मध्याह्नमें वह चिता धू-धू करके जलने लगी।

स्नान करके, पिताको तिलोदक देकर भरत मौन लौटे। महर्षि वसिष्ठके आदेशानुसार दशगात्रकी प्रत्येक विधि सम्पन्न की भरतने। राज्यके सभी द्विजोंने, शूद्रों, सेवकों तथा वन्य जातियों तकने एकादशाहके दिन सम्पूर्ण श्मश्रु-केश मुण्डित कराये। इस मुण्डनके पश्चात् भरत शुद्ध हुए।

'हाय पिता! आर्यके करोंसे अन्त्येष्टि नहीं प्राप्त हुई आपको।' भरतकी अनेक रात्रियाँ इस दारुण व्यथामें व्यतीत

हुई थीं; किंतु उन्होंने किसी उत्तर-क्रियामें किंचित् भी शिथिलता नहीं प्रदर्शित की। त्रयोदशाहके कर्म—ब्राह्मणों एवं ज्ञातिजनोंको भोजन करानेका कर्म भी तेरहवें दिन मध्याह्नतक सम्पन्न हो गया।

भरतका चित्रकूट-प्रस्थान

अयोध्यामें सबकी ही रात्रि जागरण करते व्यतीत हुई थी। प्रभातमें श्रीरामके समीप चलना है, इस निर्णयने नागरिकोंको नवजीवन प्रदान किया था। सब-के-सब उत्साहपूर्वक यात्राकी प्रस्तुतिमें लगे थे।

दोनों भाइयोंने नन्दिनीकी परिक्रमा करके प्रणिपात किया। गौने दोनोंका मस्तक सूँघा।

महर्षि वसिष्ठके रथारूढ होकर शंखध्वनि करनेपर विप्रोंके स्वस्ति-पाठके साथ भरतका यह सम्पूर्ण दल चित्रकूटकी ओर प्रस्थान कर दिया।

भरत-मिलन

चित्रकूटके समीप पहुँचकर भरतने सबको रोक दिया—'सब लोग यहीं शान्त बैठें। हम वनमें अग्रजका स्थान ढूँढ़ते हैं।'

भरत-शत्रुघ्न, महर्षि वसिष्ठ, मन्त्री सुमन्त्र और निषादराज गुह वनमें प्रविष्ट हुए; किंतु वनकी सघनता देखकर भरतने सुमन्त्र तथा कुलगुरुको प्रार्थना करके लौटा दिया—'आप दोनों माताओंके समीप विराजें! अग्रजका उटज मिल जानेपर आप सबको हम वहाँ ले जायँगे।'

निषादराजने स्थान अवश्य देखा था; किंतु यहाँ पहुँचकर वे ऐसे भाव-विह्वल हो गये थे कि उन्हें स्थान भूल गया। वे केवल इतना स्मरण रख सके थे—'मन्दाकिनीके तटपर श्रीरामकी पर्णकुटी है।'

मन्दाकिनी-तटपर पहुँचनेसे पूर्व ही धुआँ उठता दीखा वनमें। शत्रुघ्नने संकेत किया—'वहाँ अवश्य मनुष्योंका आवास होना चाहिये।'

इधर-उधर वल्कल एवं मृगचर्म सूखते दीखे। मन्दाकिनीपर स्नान, संध्यादि करके लौटते एक तपस्वी मिल गये। उनसे पूछा तो उन्होंने दिशा-संकेत किया। कुछ पद और चलनेपर गुहने वृक्षोंमें बँधे कुश देख लिये। ये मार्ग पहचानके लिये लक्ष्मणने बाँधे थे।

आम्र, कटहल तथा केलेके वृक्षोंका सघन कुंज था। उनके मध्यमें वटवृक्ष देखते ही निषादराजने कहा—'श्रीरामकी पर्णकुटी उसी वृक्षके नीचे है।'

भरत पीछेकी ओरसे पर्णकुटीतक पहुँचे थे। उस सघन कुंजमें भी जहाँ-तहाँ वल्कल सूख रहे थे। कुटीमें पीछेकी ओर शुष्क काष्ठ, हरिण तथा वन्य भैसोंके सूखे कंडोंकी ढेरी थी। गुहने बतलाया—'यह संग्रह, यहाँ वन्य कोल-किरातोंने किया होगा। वर्षामें सूखा ईंधन मिलना कठिन होता है और शीतकालमें अग्नि प्रज्वलित रखना आवश्यक होता है। वनवासी जातियोंको इस प्रकारका संग्रह अत्यन्त आवश्यक लगता है।'

भरत-शत्रुघ्न गुहके साथ कुटीको दाहिने करके पीछेकी ओरसे आगे आ रहे थे। भूमिपर दृष्टि लगाये भरतको यव, वज्र, अंकुश, कमल-चिह्नोंवाला चरणचिह्न दीख गया—'ये आर्यके चरणचिह्न हैं!'

भरतने भाईको दिखलाया और दोनोंने वहाँ भूमिपर लेटकर दण्डवत् किया। वह पद-धूलि मस्तकपर लगाया।

'आज मैं अपने महर्षि-तुल्य अग्रजके दर्शन करूँगा! मन्दाकिनी-तटपर कुशासनपर वीरासन-मुद्रामें बैठे श्रीरामके आज मुझे दर्शन होंगे।' भरत बार-बार मार्गमें विह्वल-स्वरमें कहते आये थे—'आज श्रीसीताराम और लक्ष्मणके चरणोंका भी स्पर्श मुझे प्राप्त होगा।'

भाईके साथ भरत जब कुटीके सम्मुख आये तो निषादराजने संकेत किया। वटवृक्षके नीचे वेदिकापर ऋषि-मुनियोंके समूहके मध्य कुशके आसनपर सिंहस्कन्ध, इन्दीवर-सुन्दर, जटाधारी, वल्कल वसन, कृष्णाजिनोत्तरीय श्रीराम सीताके साथ ऐसे विराजमान थे, जैसे ब्रह्मलोकमें अपने तपस्वी पुत्रोंके मध्य स्वयं सृष्टिकर्ता बैठे हों।

श्रीरामका मुख मन्दाकिनीकी ओर था। लक्ष्मण सामने बैठे थे और श्रीराम उनको कोई उपदेश कर रहे थे। मुनिगण शान्त श्रवण कर रहे थे। भरत दौड़े—'मेरे नाथ! मेरी रक्षा करो! मुझे अपनाओ मेरे स्वामी! इस अधमको क्षमा करो आर्य!'

भरत दौड़कर प्रणाम करते भूमिपर गिरे। लक्ष्मणका मुख इसी ओर था। उन्होंने भूमिपर मस्तक रखकर

निवेदन किया—'आर्य! आपको भाई भरत प्रणाम कर रहे हैं।'

श्रीराम आतुर होकर उठे। धनुष गिरा, त्रोण गिरा, दक्षिण करका बाण गिरा और छूट गिरा उत्तरीय बना कृष्ण-मृगचर्म। श्रीरामने दौड़कर बलपूर्वक भाईको उठाकर हृदयसे लगाया। दोनों पुलक-पूरित गात्र, दोनोंके नेत्रोंसे चलती अश्रुधार। स्तब्ध रह गये देखनेवाले वनवासी मुनिगण! एक क्षणके लिये तो वायुकी गति भी स्तब्ध रह गयी थी।

शत्रुघ्न दौड़कर जब श्रीरामके चरणोंपर गिरे, तब श्रीरामने उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया और भरत दौड़कर श्रीजनकनन्दिनीके सम्मुख दण्डवत् गिरे—'अम्ब! इस अधम अपराधीको आप क्षमा करें!'

श्रीवैदेहीने स्नेहपूर्वक मस्तकपर कर रखकर कहा—'देवर! आप धैर्य रखें!'

जिस समय निषादराज गुह दण्डवत् करके श्रीरामका आलिंगन प्राप्त कर रहे थे, उस समय शत्रुघ्न श्रीमैथिलीको प्रणाम कर रहे थे और अपने चरणोंमें झुकते लक्ष्मणको भरतने हृदयसे लगा लिया था—'तात! तुम धन्य हो। वयमें मुझसे छोटे होकर भी मेरे वन्दनीय हो गये हो!'

श्रीरामने पुनः आकर भरतको हृदयसे लगाया। समीप बैठाया वेदीपर और इस प्रकार देखने लगे जैसे भरतको कभी देखा न हो या युगोंके पश्चात् देखा हो। अश्रु झर रहे थे कमल-दृगोंसे, शरीर पुलकित हो रहा था। स्वर स्पष्ट नहीं हो रहा था—'भरत! तुम्हारा इतना विवर्ण मुख! तुम तो पहचाने ही नहीं जा रहे हो!'

'पिताजी कहाँ हैं? कैसे हैं?' अपने जटामुकुटी भाईके शरीरको, उस शरीरपर पहने गये वल्कलको स्पर्श करके व्याकुल श्रीराम पूछने लगे—'तुम इस वेशमें? तुम वनमें कैसे? पिताजीके रहते तुम वनमें कैसे आ सके। कहीं उदार-विक्रम, सत्यशील पिता सुरधाम तो नहीं सिधारे? तुमने उन शोक-जर्जर वृद्ध पिताकी ठीकसे सेवा तो की! मेरी माता कौसल्या और सुमित्रा स्वस्थ तो हैं? राज्य आक्रान्त तो नहीं हुआ?'

'देवी कैकेयी सुखी, सुप्रसन्न हैं?' श्रीराम पूछते ही जा रहे थे और भरत, शत्रुघ्न, निषादराज सभी मस्तक झुकाये रुदन कर रहे थे—'ब्राह्मण, देवता तथा प्रजा प्रसन्न तो हैं? तुम कुलगुरुका, उनके प्रमुख शिष्य सुधर्माका सम्मान तो करते हो? तुमने धर्मज्ञ, विद्वान्, योग्य मन्त्री तो बनाये हैं? समयसे शयन-जागरणका नियम रखकर तुम अप्रमत्त तो रहते हो? तुम वन कैसे आये भाई?'

'मैं तो अधम हूँ, धर्मच्युत हूँ। मैं क्या राज्य-पालन करने योग्य हूँ?' भरतने अग्रजके चरण पकड़ लिये—'धर्मात्माओंका कुल है हमारा इक्ष्वाकु-कुल, इस कुलका परम्परागत धर्म है कि इसमें बड़ा भाई सिंहासनका अधिकारी होता है। अब आप चलकर अपना अभिषेक स्वीकार करें। आप ही मेरे पिता हैं। पिताने तो भरतको अन्तिम प्रणाम निवेदनका अधिकारी भी नहीं माना। भरतको मातामहके यहाँसे आकर केवल उनका शरीर मिला अन्त्येष्टि करनेके लिये।'

'पिताका शरीर नहीं रहा' यह सुनते ही श्रीराम व्याकुल होकर क्रन्दन करने लगे। लक्ष्मण, श्रीजानकी, भरत-शत्रुघ्न तथा गुह भी व्याकुल हो गये। इस अतिशय व्याकुलतामें निषादराज गुह पहले सावधान हुए। उन्होंने धैर्य धारण करके हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'आपके कुलगुरु, महामन्त्री और तीनों माताएँ असंख्य अयोध्या-निवासियोंके साथ यहाँ पधारी हैं।'

'कहाँ हैं वे?' श्रीराम उठ खड़े हुए। उन्होंने मुड़कर सबसे छोटे भाईकी ओर देखा—'शत्रुघ्न, तुम यहीं अपनी भाभीके समीप रहो। हम जाकर सबको यहीं ले आते हैं।'

श्रीराम-लक्ष्मण, भरत और निषादराज शीघ्रगतिसे चल पड़े। वहाँ उपस्थित मुनिगणोंने भी अब अपने आश्रमोंपर जाना उचित समझा।

श्रीजानकीके चरणोंके समीप बैठकर शिशुके समान क्रन्दन करते शत्रुघ्न उन्हें कैकय-प्रस्थानसे चित्रकूट पहुँचनेतकके सारे समाचार सुनाते रहे और वे करुणामयी जनकजा सिर झुकाये अश्रु-विमोचन करती रहीं।

चित्रकूटकी मन्त्रणा

अपने कुलगुरु, महर्षि वसिष्ठके चरणोंमें राम-लक्ष्मण प्रणत होकर उठे। माताओंका विधवा-वेश देखकर वे कमललोचन फूट-फूटकर रोये, माताओंने इस प्रकार हृदयसे लगाया—जैसे तत्काल जन्मे बछड़ेको गाय उमंगसे उमड़कर सूँघती हो।

सबको लेकर श्रीराम अपनी कुटियाके समीप आये। वहाँ मन्दाकिनीके तटपर सबने स्नान किया। श्रीजनकनन्दिनीने आकर सासुओंके चरणोंमें मस्तक रखा, सबने उन्हें हृदयसे लगाया। आशीर्वाद दिया। इतना शोक, इतना क्रन्दन; जैसे श्रीचक्रवर्ती महाराजका शरीर आज ही छूटा हो। वहाँका सारा दृश्य करुणार्द्र हो उठा।

तत्पश्चात् श्रीराम-लक्ष्मणने सचैल स्नान करके पिताको तिलोदक देकर तर्पण किया। 'श्रीचक्रवर्ती महाराजको इंगुदी-पिण्याकका पिण्डदान दिया गया।'

भरतसे श्रीरामने कहा—'भाई! तुमने यह जटा-वल्कल क्यों अपनाया? इतनी दूर वनमें सारे समाजको कष्ट देकर क्यों ले आये?'

'वह भाग्यहीन है जिसे आपके समीप आनेमें परम सुख नहीं प्रतीत होता।' भरतने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'पिताने कैकेयीकी प्रेरणासे जो कुछ किया, उसके परिणाम-स्वरूप स्वयं स्वर्ग सिधारे। कलंकी तो हुआ यह हत-भाग्य भरत। आप मुझपर प्रसन्न होकर राज्य स्वीकार कर लें तो पृथ्वी सौभाग्यशालिनी हो जाय।'

'भाई भरत! तुमपर मनमें भी किसी कुटिलताका आरोप करनेवालेके पुण्य नष्ट हो जायँगे। उसकी अधोगति होगी।' श्रीरामने चरणोंपर गिरे भाईको उठाकर समीप बैठाया—'तुम्हारा स्मरण, तुम्हारा यशोगान मनुष्यके दुःख-दोष, पाप-कलुष युग-युगतक निवृत्त करता रहेगा। तुम्हारी प्रत्येक चेष्टा परमोज्ज्वल है। माताका भी कोई दोष नहीं है। गुरु एवं माता-पिताको-शिष्यको-सुतको यथेच्छ आज्ञा देनेका अधिकार है। जो अपार स्नेहदान करता है, ताडन उसका स्वत्व होता है। पिता या माता कैकेयी मुझे राज्य दे सकते थे तो मुझे वनमें रहनेकी आज्ञा भी दे सकते थे। मैं पिताकी आज्ञाका पालन करने-हेतु चौदह वर्ष वनमें रहूँगा।'

चरण-पादुकाकी प्राप्ति

'आर्य! आप अब भी अयोध्या नहीं लौटते तो भरतको भी लक्ष्मणके समान अपने साथ चलनेकी आज्ञा दें!' भरतने कातर-कण्ठसे कहा—'अन्यथा भरत अवश्य आपके इन चरणोंके समीप ही प्राण-त्याग कर देगा।'

'भैया! मुझे अपने कर्तव्यपर स्थिर रहने दो और तुम भी कर्तव्यका पालन करो।' श्रीरामने स्नेहपूर्वक समझाना चाहा—'कर्तव्य कठोर होता है। तुम्हारे-जैसे सुकुमार मानसको कुछ कहते मुझे संकोच होता है; किंतु अयोध्याकी प्रजाको अनाश्रय तो नहीं छोड़ा जा सकता।'

'मैं इतना विवेकसम्पन्न नहीं हूँ। माता-पिताके सम्मुख शिशुको उचित-अनुचित सब प्रकारका हठ करनेका अधिकार है।' भरतने महामन्त्रीकी ओर देखा—'सुमन्त्रजी! मैं मौन होता हूँ। कुशासन बिछा दो! अब भरत यहीं देह-त्याग करेगा!'

'भरत! तुम-जैसे भाईसे ऐसी आशा नहीं थी। तुम चाहते हो कि राम कर्तव्य-भ्रष्ट हो जाय!' सुमन्त्र अथवा कोई भरतको अनशन करनेके लिये आसन कैसे बिछा देता। जब कोई हिला नहीं तो भरतने स्वयं वहाँ पड़े आसनोंमें-से एक बिछाया और उसपर दक्षिणकी ओर चरण करके लेट गये। यह देखकर श्रीराम उनके समीप आये। उनके स्वरमें रोष था—'उपवास ब्राह्मणका धर्म है, क्षत्रियका धर्म नहीं!'

'पिताजीने जीवनमें जो क्रय-विक्रय किया, जो दान किया, क्या उसे हम लौटा सकते हैं?' श्रीराम सरोष कहते गये—'तुम कहते हो कि मेरे स्थानपर तुम प्रतिनिधि बनकर वनमें रहोगे; किंतु मैं न होऊँ तभी तो कोई मेरा प्रतिनिधि बन सकता है। भरत! मेरा स्पर्श करके कहो कि ऐसा कार्य पुनः नहीं करोगे। मैं वनसे चौदह वर्ष-पश्चात् लौटूँगा। तबतक तुम्हें प्रजाका पालन करना है। तुम पृथ्वी-पालनमें समर्थ हो।'

'मेरे स्वामी! आप इस अपने दासपर प्रसन्न हो जायँ।' भरतने व्याकुल होकर अग्रजके चरण पकड़े—'मैंने बहुत धृष्टता की, क्षमा कर दें अज्ञ भरतको। भरतको निराश्रय मत कीजिये। चौदह वर्ष भरत जिसके सहारे व्यतीत करे, वह सहारा दीजिये इसे!'

'वत्स! तुम क्या चाहते हो?' श्रीराम स्नेह-विगलित स्वरमें बोले—'रामको कर्तव्य-च्युत करनेके अतिरिक्त जो कहोगे उसे राम अस्वीकार नहीं करेगा।'

'आप इनपर अपने श्रीचरण रख दें!' भरत उठे और दौड़े। कोई कुछ समझे, इससे पूर्व वे अपने शिविरसे जाकर श्रीरामके राज्याभिषेकके लिये लायी गयी सामग्रीमें-से स्वर्णखचित मलयज पादुकाएँ ले आये। उन्हें श्रीरामके सम्मुख रखकर हाथ जोड़कर बोले—'आप इन्हें एक बार स्वीकार कर लें तो राज्यका संचालन ये कर लेंगी। सिंहासनपर इनको आसीन करके भरत आश्रय प्राप्त कर लेगा। सेवकको सेवा अस्वीकार करनेका स्वत्व कहाँ है।'

'भाई!' संकोचीनाथ श्रीरामने पादुकाओंकी ओर देखा, भरतकी ओर देखा और सिर झुका लिया।

'स्वामी! आपका संकेत तृणको भी त्रिभुवनके शासनकी शक्ति देनेमें समर्थ है।' भरत अंजलि बाँधे कातर-कण्ठ कह रहे थे—'भरत आपकी पादुकाओंका प्रतिनिधि बननेका सौभाग्य चाहता है, इसे अस्वीकार मत कीजिये!'

'वत्स रामभद्र!' महर्षि वसिष्ठके नेत्र झरने लगे—'भरतका यह अनुरोध तुम्हें स्वीकार करना चाहिये।'

श्रीरामने अवनत वदन किये ही पादुकाएँ पहन लीं—केवल एक क्षणके लिये। दूसरे क्षण ही उन्होंने अपने चरण उनपरसे हटा लिये।

'मिल गया स्वामी! भरतको चौदह वर्षके लिये सहारा मिल गया!' भरतने दोनों पादुकाएँ उठाकर मस्तकपर रख लीं—'लेकिन भरतकी प्रतिज्ञा—बालहठ भी सुन लें! चौदह वर्षकी अवधि पूरी होते ही आपके चरणोंका दर्शन अयोध्यामें मैं न कर सका तो आपको अपना यह सेवक फिर नहीं मिलेगा। अग्नि-प्रवेश करके भरत शरीर छोड़ देगा। एक दिन भी अधिक प्रतीक्षा नहीं करेगा।'

'मैं अवश्य आऊँगा!' श्रीरामने स्थिर-कण्ठसे आश्वासन दिया—'अवधि पूर्ण होनेके अगले दिन ही अयोध्या पहुँच जाऊँगा।'

माता कैकेयीने एकान्तमें श्रीरामसे मिलकर प्रार्थना की—'श्रीराम! मुनिगण तुम्हें परमब्रह्म कहते हैं। मैंने तुम्हारे राज्याभिषेकमें बाधा दी। तुम्हें और सीताको वनमें निर्वासित किया!'

'अम्बा! आप अकारण दुःखी होती हैं।' रुदन करती माताको चरणस्पर्श करके श्रीरामने समझाया—'आपने त्रिभुवनके कल्याणका विधान किया है। अपने रामको कितना सुयश आपने दिया है, यह रामके अयोध्या लौटनेपर आप समझेंगी। आपने तो रामके लिये अकल्पनीय त्याग किया। सदाके लिये स्थायी अपयश स्वीकार किया। रामको ही आपका कृतज्ञ होना है।'

कैकेयीने रामको हृदयसे लगाया। स्तुति की और प्रदक्षिणा की। सभी माताओंकी चरण-वन्दना की श्रीरामने, लक्ष्मणने, सीताने। माताओंने हृदयसे लगाया, आशीर्वाद दिया। इस प्रकार सभीको सस्नेह सम्मानपूर्वक विदा किया।

नन्दीग्रामका तपस्वी

चित्रकूटसे चलकर चौथे दिन भरत अयोध्या पहुँचे। सूने राजपथ, उजड़ी अयोध्या, जैसे प्रत्येक वृक्ष-लता भी पूछती हो—'हमारे स्वामी आये?'

'शत्रुघ्न! तुम छोटे हो, अतः सेवाका सबसे अधिक भार भी तुमपर ही आता है।' भरतने छोटे भाईसे मार्गमें कहा—'तुम स्वीकार करो, सहयोग दो तो भरत नियमपूर्वक रहनेकी अपनी इच्छा पूरी कर सकता है।'

'आज यह अद्भुत व्यवहार क्यों?' शत्रुघ्न बोले नहीं। उन्होंने केवल हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया।

'तुम किसी प्रकारके बाह्य त्यागका आग्रह करोगे तो भरतका कोई नियम चल नहीं सकेगा।' भरतने ही कहा—'माताओंको, अन्तःपुरकी कुलवधुओंको भी कोई सँभालनेवाला चाहिये। मन्त्री, प्रजा, पुरजन सबको अपने मध्य एक सक्रिय शासक चाहिये। तुम यह सेवा स्वीकार कर लो।'

भरतने मन्त्रियोंको, प्रजा-प्रतिनिधियोंको, महासेनापतिको और सेनाध्यक्षोंको एकत्र किया—'राज्य श्रीरामका है। हम सब सेवक हैं। वे हमारे स्वामी लौटें तो उन्हें उनका राज्य सम्पन्न मिलना चाहिये। आप सब अप्रमत्त रहकर कर्तव्य-पालन करेंगे तब यह सम्भव होगा। सबको पूरी सावधानीसे अपना कार्य सम्पन्न करना है।'

भरतने नन्दिग्राममें पर्णकुटी बनवायी और कुलगुरुसे उत्तम मुहूर्त पूछकर उस पर्णकुटीमें सिंहासनपर श्रीरामकी

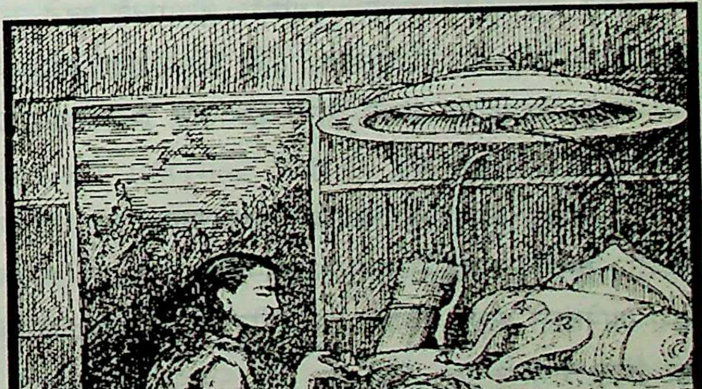

चरण-पादुका स्थापित की। राज्याभिषेक विधिसे पादुकाओंका विधिवत् अभिषेक एवं पूजन हुआ। भरतने पादुकाओंकी सेवा स्वीकार की। उन्होंने अपनेको श्रीराम-पादुकाका प्रतिनिधि घोषित किया।

सिंहासनके सम्मुख भूमिको सामान्य स्तरसे भी नीचा करके उसमें कुशकी साथरी बिछा ली भरतने अपने लिये।

कुशकी साथरीका आसन। वल्कल-वसन। मुखपर निरन्तर 'राम-राम-राम'-रटन और आहारके नामपर गोमूत्र-यावक भी व्रतोंकी बहुलतामें कभी-कभी। कृश होता गया भरतका ज्योतिर्मय देह। उनकी तपस्या—मुनियोंके लिये भी अकल्पनीय तप! सात्त्विक तपके सदा-सदाके लिये शाश्वत प्रतीक भरत—कोई दूसरा नाम सृष्टि ऐसे तपके संदर्भमें कभी नहीं पा सकेगी।

'अपना यह साम्राज्य अग्रजने मुझे न्यास (धरोहर)-के रूपमें चौदह वर्षके लिये दिया है।' भरतने पादुकाओंका अभिषेक करनेसे पूर्व घोषणा की—'उनकी ये पादुकाएँ ही सिंहासनासीन होंगी। इनके ऊपर ही छत्र लगेगा। सच्चिदानन्दघन अग्रजकी इन चिन्मय पादुकाओंका प्रतिनिधि मात्र है भरत।'

व्रत, संयम-नियम, जप-उपासना-अनुष्ठान अयोध्याका—पूरे राज्यके नागरिकोंका जीवन बन गया था। ऐसे राज्यकी व्यवस्था—व्यवस्था तो स्वयं चल रही थी। राज्यके कर्मचारियोंको केवल उसका द्रष्टा बने रहना था।

श्रीरामका पञ्चवटी-निवास

इधर चित्रकूटमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामको रहते कई दिन बीत गये। मिलनेवालोंका ताँता बँधा रहा। श्रीरामने लक्ष्मणसे अपनी यह इच्छा व्यक्त की—यह स्थान छोड़कर अन्यत्र चलना चाहिये।

'श्रीराम भाई तथा भार्याके साथ कल प्रातः दक्षिण प्रस्थान करेंगे'—यह समाचार आस-पास रहनेवाले, आकर बस जानेवाले कोल, किरात तथा भीलोंको सायंकालसे पूर्व ही मिल गया।

'दक्षिण जायँगे? सबके मन-प्राण व्याकुल हो गये। इन्होंने निश्चय किया है तो जायँगे ही, इन्हें रोका नहीं जा सकता।'

प्रातः श्रीराम लक्ष्मण और श्रीजनकनन्दिनीके साथ वहाँसे पञ्चवटीके लिये प्रस्थान कर गये।

अश्वत्थ, आँवला, बिल्व, आम्र और वट—ये पाँच वृक्ष आस-पास लगे हों तो उन्हें 'पञ्चवटी' कहते हैं। दण्डकारण्यकी पञ्चवटी ऐसी ही थी। स्थान रमणीक था। लक्ष्मणने लता-पत्रादिकोंसे एक सुन्दर पर्णशाला (कुटी)-का निर्माण किया। पर्णशाला देखकर श्रीराम-सीता प्रसन्न हुए और वे तीनों वहाँ निवास करने लगे।

पञ्चवटीमें श्रीरामने निवास किया—यह समाचार उधर आस-पास रहनेवाले राक्षसोंसे छिपा नहीं रह सका। रावणकी बहन शूर्पणखा अकेली उस वनमें विचरण करती हुई उस पर्णकुटीके निकट पहुँच गयी।

'इतना रूप! इतना सौन्दर्य मनुष्योंमें होता है?' दूरसे ही शूर्पणखाने राम और लक्ष्मणकी ओर देखा तो देखती ही रह गयी।

श्रीरामके समीप पहुँचकर उसने कटाक्षपातपूर्वक उनसे पूछा—'नवघन-सुन्दर! तुम कौन हो, इस घोर अरण्यमें क्यों आये हो?'

'सुन्दरि! हम दोनों भाई अयोध्याके नरेश चक्रवर्ती सम्राट् दशरथके पुत्र हैं। पिताकी आज्ञासे वनमें आये हैं। मेरा नाम राम है और मेरे छोटे भाईका नाम लक्ष्मण है। यह मेरी पत्नी सीता है।'

शूर्पणखाने रामसे विवाह करनेकी इच्छा व्यक्त की और कहा—'तुम्हीं मेरे उपयुक्त पति हो और मैं तुम्हारी उपयुक्त पत्नी हूँ।'

श्रीरामने भी हँसकर यह उत्तर दिया कि मैं विवाहित हूँ और पत्नी मेरे साथ है, साथ ही विनोदमें लक्ष्मणकी ओर संकेत करते हुए कहा—'यह मेरे छोटे भाई भी युवा हैं तथा वनमें पत्नी-विरहित हैं।' कामातुर शूर्पणखा परिहास समझनेकी स्थितिमें नहीं थी, वह लक्ष्मणकी ओर बढ़ी और उनके समक्ष अपने विवाहका प्रस्ताव रखा।

लक्ष्मणने कहा—'मैं तो उनका दास हूँ। मेरी पत्नी बनकर तुम दासी क्यों बनना चाहती हो, उनकी बनोगी तो मेरी स्वामिनी बन जाओगी।'

शूर्पणखाको यह तर्क ठीक लगा। वह पुनः रामके समीप लौटी। श्रीरामने उसे देखकर दूर रहते ही कह दिया—'देखती नहीं हो कि पत्नी मेरे पास है। मेरे भाईसे बिना कुछ आग्रह किये उनकी बातोंमें आ गयी!'

वह फिर लक्ष्मणकी ओर लौटी। रामने स्पष्ट संकेत

किया लक्ष्मणको कि दुष्टोंके साथ अधिक परिहास उचित नहीं। लक्ष्मणके लिये इतना संकेत पर्याप्त था। वह राक्षसी कुछ समझे, इससे पहले उसकी नाक और दोनों कान काट दिये श्रीरामानुजने।

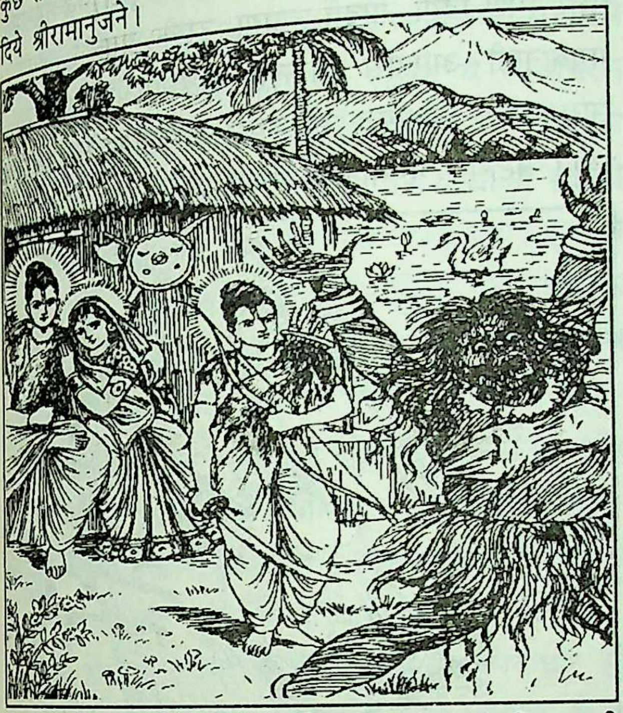

नाक और कानसे विहीन शूर्पणखा अकस्मात् चिल्लाती हुई अपने भाई खर-दूषणके पास पहुँची। खर-दूषण जब इन समाचारोंसे अवगत हुए तो क्रोधित होकर वनवासी दोनों भाइयोंपर उन्होंने आक्रमण करनेकी चेष्टा की, पर प्रभु श्रीरामने खर-दूषणका संहार कर दिया। जब यह समाचार लङ्कामें भी पहुँचा, तब वहाँ भी खलबली मच गयी। दशग्रीव रावण श्रीराम-लक्ष्मण और जनकनन्दिनी जानकीके वनवासकी पूरी बातोंसे अवगत हुआ। अब उसने सीताहरणकी एक योजना बनायी। मारीच नामक राक्षससे उसने स्वर्णमृगका रूप धारण करनेका आग्रह किया और साथ ही भय तथा प्रलोभनके द्वारा उसे अपनी बात माननेके लिये विवश भी कर दिया।

मारीचने स्वर्णमृगका रूप धारण किया और वह नकली स्वर्णमृगके रूपमें पञ्चवटीके पर्णकुटीके सामने विचरने लगा। सीता उस स्वर्णमृगको देखकर आकृष्ट हो गयीं। प्रभु रामसे उन्होंने मृगको पकड़नेका अथवा उसकी मृगछाला लानेका अनुरोध किया।

सीताहरण-लीला

श्रीराम सम्पूर्ण परिस्थितियोंको समझते हुए भी लक्ष्मणको वनमें सीताकी रक्षाके लिये सावधानकर उस मायावी मृगका पीछा करने लगे। मृगका पीछा करते-करते श्रीराम बहुत दूर जा चुके थे, उन्होंने अपना बाण मृगपर छोड़ दिया। मृगरूपी मारीचने श्रीरामके ही स्वरमें तीन बार लक्ष्मणको पुकारा और स्वयं परलोक सिधार गया।

इस आवाजको सुनकर सीता अत्यन्त व्याकुल हो गयीं और लक्ष्मणको उन्होंने रामकी रक्षाके लिये तुरंत जानेको विवश कर दिया।

लक्ष्मण माता सीताकी आज्ञाका उल्लंघन कैसे कर सकते? वे पर्णकुटीके चारों ओर धनुषकी नोकसे एक घेरा खींच गये और माता सीताको सावधान कर दिया कि इस रेखाका किसी भी प्रकार उल्लंघन नहीं करना है। ऐसा कहकर लक्ष्मण शीघ्रतापूर्वक वहाँसे चल पड़े।

उचित अवसर देखकर रावण पासकी झाड़ीमेंसे निकल पड़ा। वह संन्यासीका छद्म-वेष बनाये हुए था। उसने बड़े ही नम्र स्वरमें भिक्षाकी गुहार लगायी। माता सीता आतिथ्य धर्मके महत्त्वको जानती थीं, वे कुछ कन्द-मूल लेकर द्वारपर आयीं और उन्होंने उस साधुसे भिक्षा ग्रहण करनेके लिये कहा। रावण ज्यों ही आगे बढ़ा तो सहसा पीछे हट गया। वह महापण्डित तो था ही। मन्त्रशास्त्रका भी ज्ञाता था। लक्ष्मणद्वारा खींची गयी भस्म-रेखाके रहस्यको समझनेमें उसे देर न लगी। वह सावधान होकर बोला—'देवि! किसीने इस पर्णशालाको वेष्टित कर दिया है। मैं बद्ध भिक्षा स्वीकार नहीं करता। यदि भिक्षा देनी ही है तो रेखासे बाहर आकर भिक्षा दो।'

धर्मसंकट उपस्थित हो गया था माता सीताके समक्ष। एक ओर रामानुजकी चेतावनी और दूसरी ओर अतिथि त्रिदण्डीकी अवमानना। पर माताने साधु-सम्मानको ही महत्त्व दिया और वे रेखाका उल्लंघन कर भिक्षा लेकर बाहर आ गयीं।

पर यह क्या? ज्यों ही माता सीताने भिक्षा देनेका उपक्रम किया, त्यों ही रावण अपने असली वेशमें आ गया और बड़े ही तीव्र स्वरमें अट्टहास करते हुए उसने मैथिलीको रथके पिछले भागमें बैठा लिया और रथ लेकर रावण बड़े ही तीव्र वेगसे आकाशमें उड़ चला।

माता जानकी रोती-विलखती रह गयीं। वे आर्त स्वरसे

आर्यपुत्र और लक्ष्मणका नाम ले-लेकर पुकारने लगीं। मार्गमें जटायु मिले। वे महान् रामभक्त थे। उन्होंने रावणसे घनघोर युद्ध किया, पर वृद्ध जटायु कबतक लड़ते। दुष्ट रावणने तीक्ष्ण तलवारसे जटायुके पंख काट डाले। जटायु भूमिपर गिरे और मूर्च्छित हो गये।

इधर रावणने पुनः शीघ्रतासे रथको लङ्काकी ओर मोड़ दिया। फिर कुछ ही समयमें रावण अपनी नगरी लङ्कामें पहुँच गया। उसने सीताको अशोकवाटिकामें रख दिया और राक्षसियोंको उसकी देख-रेखमें लगा दिया।

इधर जब श्रीराम तथा लक्ष्मण वापस लौटे तो उन्होंने पर्णकुटीको सुनी पाया। सीता वहाँ नहीं थीं। श्रीराम सशंकित होकर लक्ष्मणसे पूछने लगे—भ्राता, तुम्हारी भाभी कहाँ हैं? श्रीलक्ष्मण अवाक् थे, क्या उत्तर देते। उनके आँखोंसे आँसू निकल पड़े। श्रीराम भी रोने लगे, वे सीताके वियोगमें अत्यन्त दुःखी हो आश्रमके वृक्षोंसे, पक्षियोंसे सीताके विषयमें पूछने लगे। पर कौन क्या बताता। सारी प्रकृति मौन हो शोक मना रही थी। श्रीराम अचेत हो गये, किसी प्रकार लक्ष्मणने उन्हें ढाढ़स बँधाया। श्रीरामकी तन्द्रा टूटी। वे बार-बार 'हा सीते! हा सीते! तुम कहाँ हो'—ऐसा कहते हुए पर्णकुटीकी ओर देखते जाते। धन्य है भगवन्! आपकी लीला। आप सर्वज्ञ होते हुए भी कैसी सामान्य मनुष्योंकी भाँति प्राकृत लीला करते हैं! आप स्वयं ही लीला रचते हैं और स्वयं ही लीलाका पात्र भी बन जाते हैं। आज आप सीताके वियोगमें व्यथित हो वृक्षोंसे उनका पता पूछते हैं?

पास ही स्थित लक्ष्मणने प्रभुको पुकारा और कहा—'भैया! ये देखो, किसी रथके पहियेके निशान दिखायी दे रहे हैं।' फिर क्या था, रथके चिह्नोंका अन्वेषण प्रारम्भ हो गया। आगे जानेपर राम-लक्ष्मणने देखा कि रथके चिह्न आगे-पीछे भूमिपर अनेक जगह दिखायी देते हैं, जिससे अनुमान हुआ कि यहाँपर कोई युद्ध हुआ है। लक्ष्मण बोले—'भैया! वह देखो, भूमिपर कोई महान् पक्षी लेटा हुआ है, चलो उसके पास चलें।' वह पक्षी और कोई नहीं रामभक्त जटायु था। कराहते हुए जटायु बोला—'प्रभो! मेरे अपराधको क्षमा करें। मैं वृद्ध था, इसलिये रावणसे युद्धमें पराजित हो गया, उसने मेरे पंख काट डाले, मैं सीता माताको छुड़ा न सका, रावण उन्हें हर ले गया है।'

गीधकी इतनी बातें सुनते ही श्रीरामका गला भर आया, वे पक्षिराज जटायुकी भक्तिको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने लहूलुहान जटायुको अपने करकमलोंका मधुर स्पर्श दिया, गोदमें उठाया, उसके घावोंको सहलाया। भगवान्‌की आँखोंसे निकली अश्रुधाराओंसे पक्षिराजका सारा शरीर अभिषिक्त हो गया। उसकी सारी पीडा जाती रही। जटायुने भगवान्‌की गोदमें ही प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। रामने उसे अपना परमधाम दे दिया और अपने पिताके समान ही उसकी अन्त्येष्टि की।

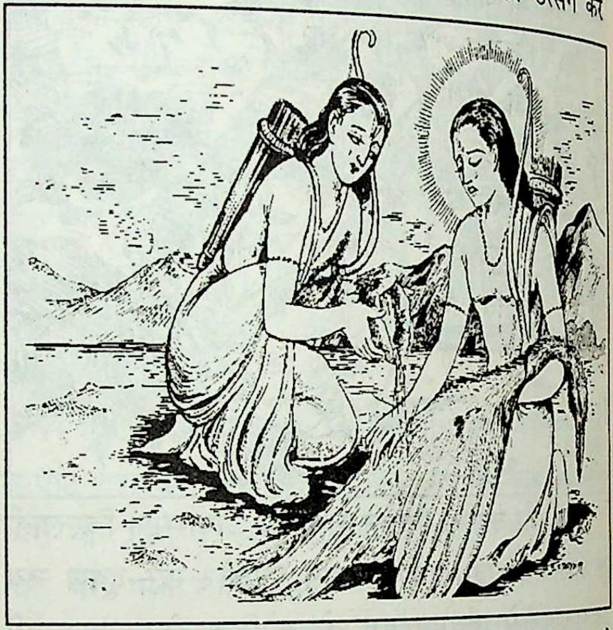

श्रीराम-लक्ष्मण आगे बढ़े तो उन्हें भक्तिमती शबरी मिली। भगवान्‌ने उसकी भक्तिके वशीभूत हो उसके जूठे बेर बड़े ही चावसे ग्रहण किये। फिर शबरीने श्रीरामको सीताका पता बतलाया तथा पम्पासरोवरके पास जानेको कहा और बताया कि वहाँ वानरराज सुग्रीव रहता है; वह सीताकी खोजमें सहायक होगा। श्रीराम-दर्शनसे शबरी मुक्त हो गयी।

श्रीराम सानुज वहाँसे पम्पासरोवरके पास आये। वहीं समीपमें ऋष्यमूक पर्वतपर सुग्रीव अपने बड़े भाई बालिके भयसे रहा करते थे। शापके भयसे बालि इस पर्वतपर आ नहीं सकता था। बालिने सुग्रीवकी पत्नीको भी छीन लिया था। अब सुग्रीव ऋक्षराज जाम्बवान्, हनुमान् तथा नल-नील—इन साथियोंके साथ इस पर्वतपर छिपकर रहा करते थे। सुग्रीवने पम्पासरोवरके पास विचरण करते हुए राम-लक्ष्मणको देखा तो वह चौंक उठा, उसने समझा कि ये

बालिके द्वारा भेजे हुए कोई मायावी पुरुष हैं। तब सुग्रीवने हनुमान्‌को उन दोनोंका पता लगानेके लिये भेजा। हनुमान् ब्रह्मचारी वेषमें वहाँ गये और बात-चीतमें उन्हें अपना प्रभु जानकर वे उनके चरणोंमें गिर पड़े। भगवान्‌ने हनुमान्‌का बहुत सम्मान किया और फिर हनुमान्‌ने भगवान्‌की सुग्रीवसे मैत्री करवा दी। सुग्रीवने श्रीरामको लाकर वे वस्त्राभरण दिखाये, जिन्हें सीता माताने रावणके रथमेंसे नीचे गिराया था। रामने 'हा जनकनन्दिनी!' कहकर उन वस्त्रोंको हृदयसे लगा लिया। उनका शोक एक बार फिर उमड़ पड़ा। पुनः वे अपने-आपको आश्वस्तकर सुग्रीवसे सीताका पता लगानेके लिये कहा। सुग्रीवने अपनी व्यथा बतायी और बालिसे प्राप्त कष्टको निवेदित किया। तब भगवान् बड़ी ही सूझ-बूझके साथ सुग्रीवको बालिके भयसे मुक्त किया और बालिको सद्‌गति प्रदान की। बालिपुत्र अंगदको युवराज-पद प्रदान किया और सुग्रीवको किष्किन्धाका राजा बना दिया। सुग्रीव आदि सब किष्किन्धापर रहने लगे।

इधर श्रीरामने लक्ष्मणके साथ ऋष्यमूक पर्वतपर ही चातुर्मास्यका समय व्यतीत किया। राजा सुग्रीव राज्य प्राप्तकर कुछ प्रमत्त हो गया था। उसे भगवत्कृपाका, भगवान्‌के द्वारा किये गये उपकारका खयाल ही नहीं रहा, वह यह भी भूल गया कि उसने सीतान्वेषणकी बात भगवान्‌से की थी। हनुमान्‌ने उन्हें सचेत किया, सुग्रीवको अपनी भूल मालूम हुई।

शेषावतार लक्ष्मण अत्यन्त रुष्ट थे सुग्रीवकी अनवधानतासे। वे सुग्रीवके पास गये और उनकी भर्त्सना की। सुग्रीव भयभीत हो क्षमा माँगने लगा, फिर शीघ्र ही वह वानरोंके साथ श्रीरामकी सेवामें पहुँचा। श्रीराम धीर थे, उदार थे, उन्होंने सुग्रीवको हृदयसे लगाया और सीतान्वेषणकी बात दुहरायी। उस समय ऋक्षराज जाम्बवान्, नल-नील, द्विविद-मयन्द, गय-गवाक्ष, धूम्रकेश आदि बड़े-बड़े महावीर वानर वहाँ उपस्थित थे। सुग्रीवकी सारी वानर-सेना भी वहीं थी। सभी आदेशकी प्रतीक्षामें थे, सभी प्रभु श्रीरामकी लीलाके सहायक थे। उनमें असीम बल था। वानरराज सुग्रीवने वानरोंकी सेनाओंको चारों दिशाओंमें माता सीताका पता लगानेकी आज्ञा दी और पवनपुत्र हनुमान्‌जीको विशेष निर्देश देकर दक्षिण दिशाकी ओर भेजा। श्रीरामने भी जब हनुमान्‌को विदाई दी तो अपनी नामाङ्कित मुद्रिका उन्हें दे दी। वे भगवान्‌की कृपाका आश्रय लेकर 'श्रीरामकी जय हो, जय हो' ऐसा सिंहनाद करके किलकारी मारते हुए चारों दिशाओंकी ओर उछलते-कूदते चल पड़े।

हनुमान्‌जीके दलमें जाम्बवान्, युवराज अंगद आदि महान् वीर थे। वे ज्यों ही आगे बढ़े, वहाँ उनकी वृद्ध सम्पातीसे भेंट हुई। सम्पाती जटायुका भाई था। अंगदने उन्हें जटायुके मोक्ष तथा सीताहरणकी बात बतलायी। रामदूतोंके स्पर्शसे जीर्ण सम्पाती पूर्ण स्वस्थ हो गये, उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त थी, उन्होंने बताया कि मैं यहींसे सीता माताको रावणकी अशोक-वाटिकामें बैठी हुई देख रहा हूँ, उनके मुखसे 'राम-राम' निकल रहा है। आँखोंसे आँसुओंकी अविरल धारा प्रवाहित हो रही है और राक्षसियाँ उनको घेरकर बैठी हुई हैं। तुम लोग निराश न होओ, शीघ्र समुद्र-लंघनकर लंकामें प्रवेश करो। अंगद आदि इन वचनोंसे आश्वस्त हो गये।

पर सौ योजन-विस्तीर्ण समुद्रको लाँघकर कौन लंका जाय और कौन पुनः समुद्र लाँघकर वापस आये। सभी वानर अपने बलका बखान करने लगे, किंतु कोई भी ऐसा नहीं था, जो समुद्र लाँघ भी ले और लाँघकर वापस भी आ सके। एक चुप्पी-सी सध गयी। ऋक्षराज जाम्बवान् वहींपर थे। वे हनुमान्‌जीके बल, वीर्य, पराक्रम, शक्ति-सामर्थ्यको अच्छी तरह जानते थे। बोल उठे—'हनुमान्! तुम तो वायुके पुत्र हो, तुम्हारी असीम गति है, अतः अपने पराक्रमको प्रकट करो, याद करो कि तुम कौन हो?'

जाम्बवान्‌जीके उद्‌बोधनसे सचमुच हनुमान्‌जीको अपने बलका स्मरण हो आया और वे एक झटकेके साथ उठ खड़े हुए। उन्होंने विशाल भयंकर रूप धारण कर लिया और लगे गर्जना करने। 'पवनपुत्रकी जय', 'महाबली हनुमान्‌की जय' वानर प्रसन्न होकर कूदने तथा जय-नाद करने लगे।

श्रीहनुमान्‌का लंकामें प्रवेश

हनुमान् कूदकर महेन्द्राचलके शिखरपर जा खड़े हुए; आगे उनके सामने विशाल सौ योजन-विस्तीर्ण सागर लहरा रहा था। हनुमान्‌जीने अपने प्रभु रामका स्मरण किया और 'जय श्रीराम' कहते हुए उन्होंने तीव्रगतिसे छलाँग लगायी।

रास्तेमें उन्हें मैनाक मिला, वह भी रामकार्यका सहयोगी था, उसने सोचा—मेरे प्रभु श्रीरामके कार्यके सहयोगी हनुमान् उड़ते हुए थक गये होंगे, इसलिये अपने शिखरपर विश्राम करनेके लिये अनुरोध किया; पर हनुमान्‌जीने उसे अपना मधुर स्पर्श देकर आश्वस्त किया और फिर वे आगे बढ़ चले। आगे सुरसा मिली, सिंहिका मिली और लंकिनी मिली; किंतु सभीके साथ बुद्धिमानीपूर्वक व्यवहार करते हुए पवनपुत्र श्रीहनुमान् सुबेल पर्वतपर स्थित लंकामें जा पहुँचे। बुद्धिमान् हनुमान्‌ने निश्चय किया कि यह राक्षसोंकी नगरी है, अतः अपनेको प्रकट करना ठीक नहीं, किसी भयके कारण नहीं, अपितु रामकार्यमें विलम्ब होगा, इसलिये। अतः हनुमान्‌ने रात्रिके अन्धकारमें सूक्ष्मरूपमें लंका-नगरीमें प्रवेश किया। लंकाका वैभव देखकर एक बार हनुमान्‌जी भी चौंक उठे; पर दूसरे ही क्षण वे संयत हो गये। उन्होंने सूक्ष्मरूपमें ही सारी लंकामें भ्रमण किया और वे देखने लगे कि सीता माता कहाँ हैं।

घूमते-घूमते हनुमान्‌जीको एक स्थानपर तुलसी-कानन दिखलायी दिया, महलद्वारपर 'राम-राम' लिखा था। लंकामें यह भवन! हनुमान्‌जी विस्मित हो उठे। राक्षसोंकी नगरीमें यह 'राम-राम'की ध्वनि कैसे? निश्चित ही यहाँ कोई रामभक्त रहता है, ऐसा निश्चयकर हनुमान्‌जी क्षणभरके लिये वहाँ रुक गये। ब्राह्मण-ब्रह्मचारीका वेश धारणकर वे द्वारपर जाकर 'जय श्रीसीताराम' कहकर पुकारने लगे।

विभीषण चौंके। रावणकी जय-जयकार जहाँ गूँजती है, उस लंकामें 'सीतारामकी जय' करनेवाला कौन? वे शीघ्र ही द्वारपर आये। दो रामभक्तोंका विलक्षण मिलन हुआ। भक्तको रामदूत मिला और रामदूतको अपने स्वामीका भक्त मिला। अहा! कितना मधुर था वह मिलन, कितनी मिठास थी, कितना त्याग था, कितना समर्पण था उस मिलनमें। दोनों भगवान्‌की कृपाका स्मरणकर मुग्ध हो गये। हनुमान्‌जीने अपने आगमनका प्रयोजन बताया और विभीषणने उन्हें माता सीताका पता बताकर सावधान भी कर दिया कि राक्षस बड़े मायावी हैं, महाबली हैं, अशोक-वाटिकातक पहुँचना बहुत ही कठिन है।

पर रामदूतके लिये कुछ भी कठिन नहीं था, वे पुनः सूक्ष्मरूपमें हो गये और शीघ्र ही अशोकवाटिकामें जा पहुँचे। अशोकवाटिकाके मध्य सरोवरके समीप एक विशाल मन्दिर था देवीका। समीपमें ही एक पर्णकुटी बनी थी। वहींपर एक विशाल शिंशपाका वृक्ष था। हनुमान्‌जीको उसी शिंशपा वृक्षके मूलमें ध्यानमें बैठी हुई राक्षसियोंसे घिरी माता वैदेहीके दर्शन हुए। हनुमान्‌जीने मन-ही-मन माँको प्रणाम किया, उनके शरीरमें रोमांच हो आया। रोम-रोम आनन्दसे भर गया। चाहते तो हनुमान्‌जी प्रकट हो जाते, पर वे अवसरकी प्रतीक्षामें थे। वे सूक्ष्मरूपमें शिंशपा वृक्षपर बैठ गये। उसी क्षण रावण आया और सीता माताको डराने-धमकाने लगा। पर त्रिजटा भी वहाँ थी। रावणके जानेपर वह बोली सीते! दशग्रीवसे व्यर्थ मत डरो, वह तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकता। मैंने सपनेमें रावणका अनिष्ट देखा है। अतः तुम शोक न करो। परंतु सीता तो अत्यन्त भीत थीं, एक ओर रामसे बिछोह, दूसरी ओर रावणकी भर्त्सना। वे सिसकियाँ भरने लगीं। अरुणोदय हो आया, सभी राक्षसियाँ चली गयीं।

इधर वृक्षपर बैठे हनुमान्‌जी उचित अवसर देखकर वृक्षसे कूदकर सामने आ गये। एक बार तो सीता चौंकीं, पर फिर उनके हृदयने कहा—यह तो कोई रामका सेवक मालूम पड़ता है। हनुमान्‌ने माताको प्रणाम किया और उनके हरण होनेसे लेकर लंकातक पहुँचनेका सारा वृत्तान्त उन्हें बता दिया और श्रीरामद्वारा दी हुई राम-नामांकित मुद्रिका भी उन्हें प्रदान कर दी। सीता माताके आनन्दाश्रु प्रवाहित हो चले, वे बार-बार सारा समाचार पूछने लगीं। कुशल-क्षेमके अनन्तर हनुमान् बोले—'माँ! मैं भूखा हूँ, इस वाटिकाके फलोंको देखकर मेरी भूख और भी बढ़ गयी है। आप आज्ञा दें तो अपनी बुभुक्षा शान्त करूँ। सीताने कहा—'वत्स! बड़े विकट बलवान् राक्षस इस वाटिकाकी रक्षा करते हैं, रावणको यह वाटिका बहुत प्रिय है।' ऐसा कहकर जानकीका मुख उदास हो गया। पर फिर कहा—'पुत्र! अपने आराध्यका स्मरणकर जी भरकर फल खाओ।'

हनुमान्‌के लिये इतना संकेत पर्याप्त था। क्षणभरमें ही उन्होंने सारी वाटिका उजाड़ डाली, वहाँके बड़े-बड़े रक्षक राक्षसोंको मार गिराया। अशोकवाटिकामें भगदड़ मच गयी। 'एक वानरने सारी वाटिका उजाड़ डाली है'—ऐसा समाचार राजमहलमें रावणके पास भी पहुँचा। रावण

चकित हो उठा कि यह कैसा बंदर है, जिसने अकेले ही ऐसा पराक्रम दिखलाया है। हनुमान् राजप्रासादके गोपुरपर कूदकर बैठ गये और वहाँसे सिंहनाद-सी गर्जना करने लगे। सारी लंकामें 'यह क्या, यह क्या'—इस प्रकारसे विचित्र दृश्य हो गया, किसीमें इतना साहस नहीं कि बंदरको पकड़ सके। रावण बड़े-बड़े राक्षसोंको भेजता, पर महाबली हनुमान् क्षणभरमें उसे यमलोक पहुँचा देते, कोई साधारण बंदर था जो कि पकड़में आता, 'अरे! रामदूत था—रामसेवक था। भगवान्के बलसे बली था।'

रावण सोचमें पड़ गया। अब वह अपने पुत्र मेघनादको वहाँ भेजा, पर यह क्या! हनुमान्के सामने मेघनादके भी सारे अस्त्र व्यर्थ हो गये। अन्तमें उसने ब्रह्मास्त्रका संधान किया। हनुमान्जी मर्यादाकी रक्षाके लिये उसके ब्रह्मास्त्रके बन्धनमें बँध गये। इसी युक्तिसे वे रावणके समक्ष भी जाना चाहते थे। अब हनुमान्को बन्धनमें देख राक्षस निर्भय हो गये। पवनपुत्रकी लीला भी विलक्षण ही थी। बन्धनमें बँधे हुए उन्हें राक्षस दशग्रीवके दरबारमें ले आये। रावण हनुमान्पर अत्यन्त क्रुद्ध था। पर हनुमान्जी निर्भीक सीना ताने खड़े थे। उनकी ऐसी धृष्टता देख रावण आग-बबूला हो उठा। उसने आज्ञा दी—'मार डालो इसको।'

पर दूत अवध्य होता है महाराज! विभीषण तथा मन्त्रियोंकी एक स्वरसे आवाज आयी। इसका अंग-भंग आदि करके दण्ड देना चाहिये, ऐसी शास्त्रमर्यादा है।

लंका-दहन-लीला

न चाहते हुए भी रावणने मन्त्रियोंकी बात मान ली और 'इसकी पूँछमें आग लगा दो', ऐसा रावणका आदेश पाकर सभी राक्षस उनकी पूँछमें कपड़ा लपेटने लगे। पर हनुमान्जीने पूँछ इतनी बढ़ा ली कि लंकाके सारे घरोंके वस्त्र लपेटनेपर भी वह बाकी ही बची रही। खिन्न हो राक्षसोंने तेल छिड़ककर पूँछमें आग लगा दी।

अब क्या था, हनुमान्जी कूद-कूदकर इस महलसे उस महल, इस प्रासादसे उस प्रासादमें आग लगाने लगे। थोड़ी ही देरमें सारी लंका धू-धूकर जलने लगी। सब ओर हाहाकार मच गया? किसीमें ऐसी सामर्थ्य नहीं कि वह आग बुझा सके। विभीषणका ही एक ऐसा भवन था जो बचा रहा, 'राम'-नामके प्रतापसे। लंका-दहन हो गया था। हनुमान्जी वहाँसे कूद पड़े, समुद्रमें पूँछकी अग्नि शान्त की और अब वे पुनः माता सीताके पास जा पहुँचे।

हनुमान् हाथ जोड़कर खड़े हो गये और श्रीरामके पास जानेकी अनुमति माँगने लगे।

'वत्स! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है, तुम अकेले ही स्वामीका कार्य करनेमें सक्षम हो। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है, पर पुत्र! श्रीरामका सुयश इसीमें है कि वे शीघ्र ही यहाँ आकर मुझे ले जायँ।' फिर उन्होंने आशीर्वाद देकर उन्हें जानेकी अनुमति प्रदान की। हनुमान् शीघ्र ही वहाँसे कूदे और समुद्र पारकर समुद्रके दूसरी ओर प्रतीक्षामें बैठे वानरसेनाके पास जा पहुँचे। हनुमान्जीकी जयकार सुनकर ही वानर समझ गये कि प्रभुका कार्य सिद्ध करके ही हनुमान् वापस लौटे हैं। 'मैंने माता सीताका दर्शन किया है', यह समाचार हनुमान्ने सबको सुनाया और लंका-दहन तथा अशोकवाटिका-ध्वंसका सम्पूर्ण वृत्तान्त भी बता दिया। जाम्बवान् आदिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने आज जी भरकर मधुवनके फलोंको खाया। सभी राजा सुग्रीवके पास किष्किन्धा चले आये। फिर सुग्रीव सभीको लेकर ऋष्यमूक पर्वतपर आये, जहाँ श्रीराम और लक्ष्मण उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

आ गये तुम लोग, सीताको देखा, वे कहाँ हैं, कैसी हैं? श्रीरामने आतुरतासे पूछा।

जाम्बवान्ने कहा—भगवन्! पवनपुत्र हनुमान्ने सीताका दर्शन किया है, वे स्वयं ही आपको बतलायेंगे।

हनुमान्ने भगवान् श्रीरामके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया और बताया—'प्रभो! आपकी कृपाशक्तिसे ही मुझे माताके दर्शन हुए हैं और फिर उन्होंने समुद्र-लंघन, लंका-दर्शन, सीता-संवाद, अशोकवाटिका-ध्वंस, लंका-दहनसे लेकर यहाँ पहुँचनेतककी सारी घटना उन्हें बता दी और माता सीताद्वारा दी हुई चूडामणि भी श्रीरामको सौंप दी तथा प्रार्थना की कि प्रभो! अब शीघ्र ही लंकाकी ओर प्रस्थान करना चाहिये। विलम्ब करना ठीक नहीं है। माता सीता आपके वियोगसे अत्यन्त व्यथित हैं।

'ऐसा ही हो, ऐसा ही हो' चारों ओरसे ऐसी ध्वनि आने लगी। अन्य दिशाओंमें जो यूथपति सेना लेकर सीताके अन्वेषणमें गये थे, वे भी सब आ चुके थे। उस

समय विजय-यात्राका एक विचित्र उल्लास तथा उत्साह सभीमें व्याप्त था। थोड़ी ही देरमें समुद्रकी ओर जानेकी व्यवस्था हो गयी। सुग्रीवने प्रभुसे निवेदन किया—'प्रभो! आप हनुमान्‌के कंधेपर विराजें और लक्ष्मण अंगदके कंधोंपर बैठेंगे।' राम-लक्ष्मणने कौतुकमें वैसा ही किया, फिर सारी सेनाके साथ श्रीराम-लक्ष्मण बड़ी ही शीघ्रतासे वनों, पर्वतों, खाइयों, उबड़-खाबड़ मार्गोंको पार करते हुए दक्षिण समुद्रके तटपर जा पहुँचे।

इधर रावणने अपने मन्त्रियोंको बुलाया और कहा—शत्रुसेना समुद्र-पार आ गयी है, अतः हमें क्या करना चाहिये। मन्त्रियोंने युद्ध करनेकी ही मन्त्रणा दी। विभीषण भी वहाँ बैठे थे। रावणके सगे भाई थे विभीषण, पर असुर होते हुए भी वे सत्त्वगुणसम्पन्न थे। आसुरी-भाव उन्हें छू भी न पाया था। वे महान् भगवद्भक्त थे। तामसी स्वभाववाले आसुरोंके बीच रहते हुए भी वे सदा दैवभावसे सम्पन्न रहते हुए 'श्रीराम'-नामका जप किया करते थे। महान् रामभक्त थे। आज दैत्यराज रावण विभीषणकी नीति जानना चाहा था।

विभीषण बोले—'मुझे तो मन्त्रीगणोंका परामर्श उचित नहीं लगता है। यद्यपि युद्धका अवसर उपस्थित है, किंतु युद्धके हेतुको समझ लेनेसे युद्धकी विभीषिकासे बचा जा सकता है। परायी स्त्रीका अपहरण आयु और यशका नाश करती है, यह पतनका मार्ग है। अतः रामसे युद्ध करना ठीक नहीं।'

पर मदोन्मत्त रावण कब माननेवाला था। उसने युद्धकी तैयारी करनेका आदेश दे दिया।

विभीषण बार-बार रामकी महिमाका वर्णन करते हुए रावणको सचेत करते रहे, परंतु उसने उनकी एक न मानी। रावण क्रुद्ध हो उठा और कहने लगा—'तू जिसकी प्रशंसा करता है, उसके ही पास चला जा', ऐसा कहकर रावणने विभीषणके वक्षःस्थलपर पाद-प्रहार किया। विभीषणको पाद-प्रहार उतना बुरा नहीं लगा, जितना कि रावणका धर्मसे विमुख होना। अब क्या था, विभीषणको एक पल भी लंकामें रहना भारी लगा। वह आकाश-मार्गसे होता हुआ उस स्थानकी ओर बढ़ चला, जहाँ उसके आराध्य श्रीराम स्थित थे। उसने भगवान्‌की शरणागत होना ही श्रेष्ठ समझा। इधर सुग्रीवने देखा कि आकाश-मार्गसे कोई उड़ता हुआ आ रहा है। उसने सेनाको सचेत किया कि कोई मायावी राक्षस आ रहा है। विभीषणने वानरी सेनाको युद्धके लिये संनद्ध देखा तो वह आकाश-मण्डलसे ही पुकारकर कहने लगा—'आप शरणागतवत्सल प्रभुको मेरा संदेश निवेदन कर दें कि दशग्रीवका भाई अधम राक्षस विभीषण रावणसे तिरस्कृत होकर उनकी शरणमें आया है।'

सुग्रीव संदेश लेकर स्वयं श्रीरामके पास पहुँचे। बुद्धिमान् श्रीरामने सुग्रीवसे पूछा—'मित्र! इस सम्बन्धमें तुम्हारी क्या सम्मति है?' तब सुग्रीव, अंगद आदिने उसे बन्धनमें रखने आदिका परामर्श दिया, पर रामदूत श्रीहनूमान्‌ने कहा—'प्रभो! इस समय यह आपकी शरणमें आया है, अतः इसे अपने शरणमें ही रखना चाहिये।'

श्रीरामको हनुमान्‌की बात अच्छी लगी। वे बोले—'शरणागतका त्याग अधर्म है। स्वयं रावण भी शरणमें आये तो मैं उसे स्वीकार करूँगा। एक बार भी जो पुकारकर कहता है कि भगवन्! मैं आपकी शरणमें हूँ, उसे मैं सम्पूर्ण प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है'—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा० रा०, युद्ध० १८। ३३)

—रामजीकी ऐसी वाणी सुनकर सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई। हनुमान् आदि बड़े ही सम्मानसे विभीषणको प्रभुके समीप लाये। विभीषण प्रभुका दर्शनकर भूमिपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम करने लगा। भगवान् विभीषणके पास गये और उठाकर उन्हें हृदयसे लगाया। रामने लक्ष्मणको सागरका जल लानेको कहा। जल आ गया तब कृपामूर्ति भगवान्‌ने विभीषणका तिलक किया और उसे लंकाका राजा बना दिया। राक्षसेन्द्र विभीषणकी जयकारसे वह प्रदेश प्रतिध्वनित हो उठा।

शरणागतवत्सल प्रभु श्रीरामकी जय-जयकार होने लगी। सब ओर प्रसन्नताकी लहर छा गयी। प्रभुकी शरण पाकर विभीषण निर्भय ही नहीं हुए, उन्हें लंकाका राज्य प्राप्त हो गया और सबसे बड़ी चीज मिली प्रभुके श्रीचरणोंमें अखण्ड प्रीति। विभीषण धन्य-धन्य हो गया।

अब समुद्र-पार जानेकी समस्या थी। विभीषणने उपाय बतलाया। श्रीरामने पहले सागरसे मार्ग देनेकी प्रार्थना की।

लक्ष्मणको यह नीति अच्छी नहीं लगी, पर रामने उन्हें रोक दिया। अन्तमें श्रीरामने धनुषपर बाणका संधान किया समुद्रको सोख डालनेके लिये, उसी समय समुद्रदेवता हाथ जोड़े उपस्थित हो गये और अपराधके लिये क्षमा माँगने लगे तथा उन्होंने कहा—'प्रभो! आप सेतुबन्धन कर दें और फिर उसी सेतुसे सारी सेना लंकामें पहुँच जायगी। समुद्रने यह भी बताया कि प्रभो! आपकी सेनामें विश्वकर्माके पुत्र नल-नील महान् शिल्पी हैं, उनके स्पर्शसे पत्थर जलमें डूबते नहीं, बल्कि तैरने लगते हैं।' यह कहकर समुद्रदेवता अन्तर्हित हो गये और इधर सेतु-निर्माणकी तैयारियाँ होने लगीं।

रामकृपासे दक्षिण समुद्रपर सेतुका निर्माण हो गया। श्रीरामने वहाँ नीलकण्ठ महेश्वरके दिव्य विग्रहकी स्थापना कर आराधना की, वे तो उनके आराध्यदेव थे। श्रीरामसे पूजित तथा स्थापित होनेसे भगवान् शंकर वहाँ 'श्रीरामेश्वर'-के नामसे प्रतिष्ठित हुए। यह सब देखकर वानरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और फिर श्रीरामकी आज्ञा प्राप्तकर सभी पुल पार करके सुबेल पर्वतपर आ पहुँचे।

इधर दशग्रीवके महलमें अनेक अपशकुन होने लगे। यह देखकर मन्दोदरी भयभीत हो गयी। रावणने उसे आश्वस्त किया।

दूसरी ओर जाम्बवान्ने रामको परामर्श दिया—'प्रभो! शत्रुका समाचार जाननेके लिये बालिपुत्र अंगदको लंकामें भेजना चाहिये।' तब प्रभु श्रीरामकी आज्ञा लेकर अंगद लंकामें जा पहुँचे। रावणके महलके समीप ही रावणका पुत्र अक्षमाली अपने साथियोंके साथ क्रीडा कर रहा था। वह अंगदको पकड़ना ही चाहता था कि अंगदने उसका पैर पकड़कर घुमाया और भूमिपर पटक दिया।

इसके बाद रामके बलसे बली अंगद रावणकी राजसभामें जा पहुँचा और रावणको फटकारते हुए अपने पिता बालिद्वारा उसे काँखमें बन्धनकी बात बताकर चिढ़ाने लगा। यह सुन रावण अट्टहास करते हुए रामकी निन्दा करने लगा। अंगद अपने प्रभुकी निन्दा कैसे सुन सकते थे। उन्होंने दोनों हाथोंको भूमिपर पटका तो समूची लंका हिल उठी। दशग्रीवकी सभामें जितने थे सब मुँहके बल गिर पड़े। स्वयं रावण गिरते-गिरते बचा। उसके चार मुकुट भूमिपर गिर पड़े। अंगदने उन मुकुटोंको बड़े वेगसे सुबेल पर्वतपर श्रीरामके चरणोंमें फेंक दिया।

'पकड़ लो इस वानरको, मार दो इसे' रावण चिल्लाया। किंतु अंगदके समीप किसीके जानेका साहस नहीं था। अंगदने बड़े वेगसे अपना दाहिना पैर भूमिपर जमाया और कहा—'रावण! तू बड़ी डींगे हाँकता है, यदि कोई मेरा पैर भूमिसे छुड़ा दे तो श्रीराम वापस लौट जायँगे। 'सीताको हम लोग हार गये'—ऐसा मान लिया जायगा।

राक्षस पहले एक-एक कर, फिर सभी एक साथ उठे और पैरको हिलाने लगे। पर रामकी शक्तिसे सम्पन्न अंगदका वे कुछ भी अनिष्ट करनेमें असमर्थ रहे। अब रावणकी बारी थी, वह बड़े ही गर्वसे उठा और अंगदके पास आया। उस समय अंगद बोले—'अरे रावण! मेरा पैर पकड़ते तुम्हें लज्जा नहीं आती? मेरे पैर पकड़नेसे अच्छा यह है कि मेरे स्वामीका पैर पकड़, उनकी शरणमें जा, वे तेरा उद्धार कर देंगे।

—ऐसा कहकर युवराज अंगद सीधे गगनमें उड़ गये। उन्हें कोई रोक न सका। वे सीधे प्रभु श्रीरामके पास चले आये और सारा समाचार उन्हें निवेदित कर दिया।

अंगदसे लंका-दुर्गके समाचार पाकर श्रीराम उठ खड़े हुए और बोले—'वीरो! आज इस अभिजित् मुहूर्तमें लंकापर चढ़ाई करनी है। चारों ओरसे नगरको घेर लो।'

प्रभुकी आज्ञा प्राप्तकर 'जय श्रीराम' का जयघोष करते वानरी सेनाने लंकापर आक्रमण कर दिया। इधर रावणने भी युद्धकी आज्ञा दी। घनघोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। इन्द्रजित्—मेघनादके साथ लक्ष्मणका भीषण युद्ध हुआ। लक्ष्मण मेघनादके नागपाशमें बँध गये, श्रीराम भी बन्धनमें बँध गये। यह भी भगवान्की लीला ही थी। सुषेण वैद्यके अमृत-सिंचित चार औषधियों—विशल्यकरणी, संजीवनी, व्रणरोपिणी तथा संरोहिणी—ने सबकी मूर्च्छाको दूर कर दिया, सभी बन्धन कट गये। फिर युद्ध ठन गया। बहुतसे राक्षस मार डाले गये। रावणने बड़े ही प्रयत्नसे कुम्भकर्णको जगाकर युद्धके लिये तैयार किया, पर श्रीरामके हाथों वह भी मारा गया।

अब मेघनादने मायावी युद्ध छेड़ दिया। कभी वह अदृश्य हो जाता और कभी प्रकट होकर युद्ध करने लगता। इससे वानरी सेना भयभीत हो गयी। पुनः लक्ष्मणके

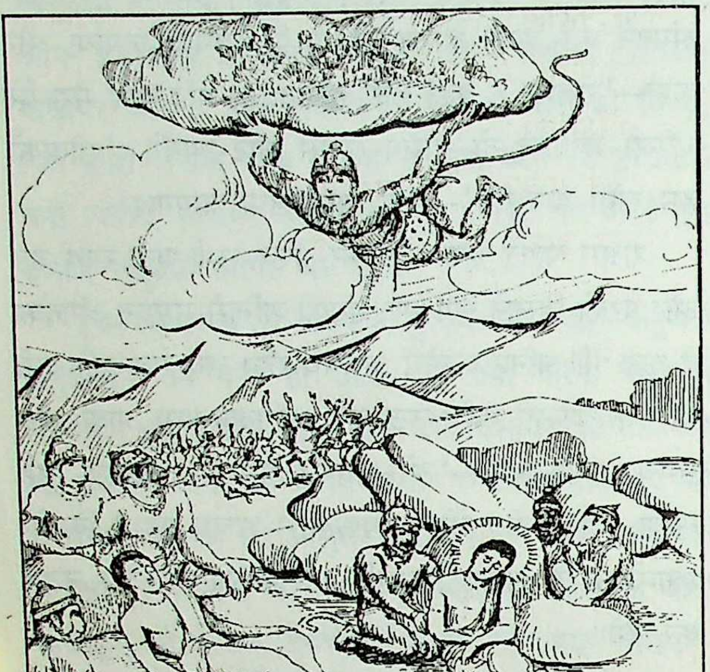

साथ मेघनादका भीषण संग्राम हुआ। पर मेघनादने एक विलक्षण शक्तिसे न केवल लक्ष्मणको मूर्च्छित कर डाला, बल्कि सारी सेना मूर्च्छित हो गयी। विभीषणके परामर्शसे सप्रयत्न हनुमान् शीघ्र ही संजीवनी औषधि ले आये। फिर सुषेण वैद्यने संजीवनी औषधिके प्रयोगसे लक्ष्मणको स्वस्थ बना दिया। अन्य वानर भी स्वस्थ हो गये। पुनः उसी क्षण वानरोंने युद्ध छेड़ दिया। आज श्रीलक्ष्मणने अद्भुत पराक्रम दिखलाया और मेघनादके मस्तकको एक सुतीक्ष्ण बाणसे काट डाला। उस समय आकाशसे सुमन-वृष्टि होने लगी।

रावणका अन्तिम सहारा भी टूट चुका था। पर रावण महान् वीर था, उसने पराजय स्वीकार नहीं की। अब उसे राम-ही-राम दिखलायी पड़े। उसका अन्तिम लक्ष्य रह गया था रामसे युद्ध करना। वह सारथीसे बोला—'शीघ्रता करो। राम-लक्ष्मणके सामने रथ ले चलो।'

इधर राम भी संनद्ध थे। दोनों ओरसे दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग होने लगा। आकाशमें भी देवता इस विलक्षण युद्धको देखने आ पहुँचे। उनमें ऐसा युद्ध हुआ, जिसके सम्बन्धमें यह प्रसिद्धि बन गयी—

'रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव'

खीजकर रावणने विभीषणपर शक्तिका प्रयोग किया, पर शरणागतवत्सल श्रीरामने वह शक्ति अपने ऊपर ले ली। पुनः राम-रावणका युद्ध छिड़ गया। माया-युद्ध—मायावी राक्षसका अन्तिम सहारा। पर श्रीरामने उसकी उस मायाको भी काट डाला। श्रीरामने एक साथ तीस बाण मारकर रावणके दसों मस्तक और बीसों भुजाएँ काट दीं, पर कोई अन्तर नहीं पड़ा। दशग्रीवकी भुजाएँ और सिर पुनः उग आये। यह क्रम बहुत देरतक चलता रहा। विभीषण यह दृश्य देख रहा था, वह चुप न रह सका, दौड़ता हुआ प्रभुके पास आया। बोला—'प्रभो! इसके नाभिमें अमृत है, यह उसी शक्तिसे जीवित है।'

रामको जब यह ज्ञात हुआ तब उन्होंने एक अमोघ शरका संधान किया, जिसने रावणके नाभिदेशके अमृतको सोख डाला। विदीर्ण हो गया दशग्रीवका वक्ष। त्रिलोकीको रुलानेवाला रावण भूमिपर गिर पड़ा, प्रभुने उसका उद्धार कर दिया।

आकाशसे पुष्प-वृष्टि होने लगी। श्रीरामकी जय-जयकार होने लगी। श्रीरामने लंकाके सिंहासनपर विभीषणका अभिषेक कर दिया।

'हनुमान्! तुम विभीषणकी आज्ञा लेकर सीताके समीप जाओ', श्रीरामने आञ्जनेयको आदेश दिया।

श्रीहनुमान् पुनः माताकी सेवामें पहुँचे। पर आज पहुँचे थे विजयका समाचार देने। अम्ब! श्रीरामका यह सेवक पवनपुत्र हनुमान् आपके पादपद्मोंमें प्रणाम करता है। माँका आशिष् पाकर हनुमान्ने सारा समाचार उन्हें दे दिया तथा कहा—'माँ! आप अभी सानुज श्रीराघवेन्द्रका दर्शन करेंगी।' ऐसा कहकर प्रणामकर हनुमान् वापस श्रीरामके पास लौट आये और बोले—'प्रभो! माता आपके दर्शनोंके लिये आतुर हैं।'

अनन्तर माता सीताको अग्नि-परीक्षा देनी पड़ी। उसी समय अग्निदेव तथा सभी देवता वहाँ उपस्थित हो गये और उन्होंने सीताके पातिव्रत्य-महिमाका गान किया। तब श्रीरामने अपनी अन्तरंगा शक्तिको ग्रहण किया, यह रामकी लीला ही तो थी। भला भगवान्से उनकी शक्ति कैसे अलग

हो सकती है? भगवान्‌को आदर्शकी शिक्षा देनी थी, इसलिये ऐसी लीला रची उन्होंने।

अब श्रीरामने अयोध्या वापस जानेकी घोषणा की। उन्हें भरतकी चिन्ता लगी थी, माताओंकी चिन्ता लगी थी। विभीषणने रामसे प्रार्थना की—'प्रभो! सेवकका आतिथ्य स्वीकार करें', पर राम बोले—'अभी वनवासकी अवधि थोड़ी शेष है, इसलिये तुम सुग्रीवादिकी सेवा करो।' दूसरे ही दिन प्रात:काल पुष्पक विमान उपस्थित हो गया। सभी भगवान् श्रीरामके साथ जाना चाहते थे; अत: प्रभुकी आज्ञा प्राप्तकर वे विमानमें आरूढ हो गये तथा विमान लंकासे अयोध्याकी ओर चल पड़ा।

श्रीराम जनकनन्दिनीको मार्गके सभी दृश्योंको दिखलाते हुए प्रयागके निकट पहुँच गये।

अब नीचे गङ्गा-यमुनाकी धारा स्पष्ट दीख रही है। संगमके आगे महर्षि भरद्वाजका आश्रम है। श्रीरामके इच्छानुसार विमान कुछ और आगे बढ़ गया। दूरसे देखकर श्रीरघुनाथने संकेत किया—'वह पुण्यसलिला सरयू और उसके तटपर इक्ष्वाकु-कुलकी अमित गौरवशालिनी पुरी अयोध्या दीख रही है।'

श्रीराम तथा श्रीलक्ष्मण और श्रीवैदेहीने आसनसे उठकर अंजलि बाँधकर जन्मभूमिको प्रणाम किया। वानर प्रसन्नतासे उछलने लगे। श्रीरामने कहा—'मुझे यह पावनपुरी वैकुण्ठसे भी अधिक प्रिय है।'

वनके चौदह वर्ष पूर्ण हो गये आज। अब अयोध्या शीघ्र पहुँचना है। उधर अयोध्यावासी श्रीरामके आगमनकी आतुरतासे प्रतीक्षा कर रहे थे। भरतने तो अपने पलक-पाँवड़े ही बिछा रखे थे। उस समय उनके एक-एक क्षण वर्षके बराबर बीत रहे थे।

आकाशमें सूर्यके मध्याह्न तेजके समान ज्योति:पुञ्ज चन्द्रोज्ज्वल विमान पुष्पक दिखायी पड़ा। नन्दिग्रामके आस-पास सम्पूर्ण भूमि लोगोंसे भरी थी। वाद्योंकी तुमुल ध्वनि गूँजने लगी और जयघोष होने लगा। विमानके उतरनेका स्थान राजसेवकोंने रिक्त कराया। पुष्पकने एक मण्डल लिया और पक्षीके समान पंख समेटकर पृथ्वीपर उतर गया।

अंजलि बाँधे, कृशकाय, जटाधारी भाई भरतको श्रीरामने विमानके द्वारपर देखा तो हाथ पकड़कर ऊपर चढ़ा लिया। दोनों भुजा फैलाकर मिले। दोनों इन्दीवर-सुन्दर, दोनोंके शरीर पुलकपूरित, दोनोंकी जटाएँ और स्कन्ध भीगते रहे दोनोंके अश्रुओंसे।

लक्ष्मणने आकर भरतके चरणोंमें प्रणाम किया। भरतने उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया। भरतने श्रीवैदेहीके चरणोंमें मस्तक रखा। सब भावविह्वल। एक शब्द भी कोई बोल नहीं पाता था।

यह एक अद्भुत दृश्य था श्रीराम और भरतके मिलनका। तदनन्तर श्रीरामने सर्वप्रथम गुरु वसिष्ठके चरणोंमें प्रणिपात किया, माताओंका अभिवादन किया। अयोध्यावासियोंसे तो वे इस प्रकार मिले—जैसे सबको यही लगा कि श्रीराम-लक्ष्मण सबसे पहले उनसे ही मिले हैं। भरतकी यह इच्छा थी कि श्रीरामका राज्याभिषेक यथाशीघ्र सम्पन्न किया जाय।

श्रीरामका राज्याभिषेक

'अभिषेकका समय श्रीचरण निश्चित कर दें तो उसके अनुरूप व्यवस्था की जाय।' भरतने महर्षि वसिष्ठके समीप जाकर निवेदन किया। 'अब राज्यकी सुचारु व्यवस्थाके लिये आवश्यक है कि अयोध्याके सम्राट्‌का शीघ्र अभिषेक सम्पन्न हो जाय।'

महर्षिने मुहूर्त निश्चित कर दिया। अयोध्यामें राज्याभिषेककी तैयारियाँ होने लगीं। सभी उत्साहित और प्रफुल्लित थे।

श्रीसीताराम रत्नजटित स्वर्णासनपर विराजमान हुए। औषधियुक्त पवित्र तीर्थोदकोंसे महर्षि वसिष्ठ तथा दूसरे ऋषि-मुनि-तापसोंने दोनोंको मन्त्र-पाठ करते हुए अभिषिक्त किया।

गगनसे सुमन-वर्षा हो रही थी। देवता जय-ध्वनि कर रहे थे। अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं। गन्धर्व बजाने-गानेमें लगे थे। सब ओर जयघोष हो रहा था।

पुण्य स्नानके पश्चात् विप्रपत्नियों, देवाङ्गनाओं तथा नगरकी प्रतिष्ठित वृद्धाओंने श्रीवैदेहीको वस्त्राभरण, पुष्पमाल्य एवं दिव्यवस्त्र धारण कराया। उनकी केश-सज्जा की। अङ्गराग लगाया और पुष्पाभरण-भूषित कराकर सिंहासनपर

श्रीरामके वाम-भागमें बैठाया।

श्रीरामने भी वस्त्राभरण धारण किया। अङ्गराग लगा। पुष्पमाल्यसे सज्जित वे आदिपुरुष सिंहासनासीन हुए। उनको पुष्पसार लगाया गया। अब महर्षि वसिष्ठने इक्ष्वाकु-वंशकी परम्परासे आता रत्न-मुकुट विप्रोंके मन्त्र-पाठके मध्य श्रीरामके मस्तकपर रखकर उसपर वह किरीट धारण कराया, जो सृष्टिकर्ताने स्वयं मनुको दिया था। श्रीजनक-नन्दिनीके मस्तकपर रत्नोज्ज्वल चन्द्रिका विभूषित हुई।

शत्रुघ्नने श्वेत छत्र धारण किया। यह चन्द्रोज्ज्वल अमृतवर्षी छत्र विश्वकर्माने महाराज इक्ष्वाकुके लिये प्रस्तुत किया था। विभीषण तथा सुग्रीवने चामर धारण किया। भरतने व्यजन उठाया करोंमें; किंतु श्रीरामने उन्हें रोक दिया। अग्रजके आदेशसे भरतको युवराजके आसनपर बैठना पड़ा। यौवराज्य-पदपर उनका अभिषेक उसी समय श्रीरामके आग्रहसे हुआ।

देवराज इन्द्रकी प्रेरणासे वायुदेव स्वर्ण-कमलोंकी माला लेकर उपस्थित हुए। श्रीरामके कण्ठमें उन्होंने पहनाया। वे पुष्प अत्यन्त सुरभित थे और कभी म्लान होनेवाले नहीं थे।

तुमुल वाद्य-ध्वनि, ऋषि-मुनिगण तथा विप्रवर्गके सस्वर वेद-पाठके मध्य महर्षि वसिष्ठने श्रीरामको तिलक लगाकर सूर्यवंशकी परम्परासे आता मणि-रत्न-मण्डित राजदण्ड श्रीरामके दक्षिण हस्तमें दिया। ऋषियों तथा विप्रवर्गने स्वस्तिवाचनपूर्वक राजतिलक तथा दण्ड-धारणका समर्थन किया। श्रीसीतारामको आशीर्वाद दिया।

श्रीराघवेन्द्रके अभिषिक्त होते ही भूमि रसवती हो गयी। कृषकोंके क्षेत्र बिना जोते-बोये फल देने लगे। कृषि तथा उद्यानके विनाशक तत्त्व मूषक, टिड्डियाँ, कीड़े एवं शुक-जैसे हानिकर पक्षियोंका स्वयं अभाव हो गया।

लताएँ तथा पुष्पतरु पुष्पभारसे झुके रहने लगे। उनपर भ्रमरोंने, पिक-पपीहोंने और मयूरोंने अपना आवास बनाया। सुस्वर पक्षियोंकी बहुलता हो गयी। फलोद्यानों तथा वनों-उपवनोंमें सभी ऋतुओंमें वृक्ष फलित-पुष्पित होने लगे। मनुष्योंके ही नहीं, पशु-पक्षी एवं कीटोंतकके मानस निर्मल हो गये।

मनुष्योंका शरीर सुपुष्ट, सुन्दर और स्वस्थ रहने लगा। स्त्री-पुरुष सबकी इन्द्रियाँ निर्विकार, चित्त शान्त। सब शम-दम-सम्पन्न। परिग्रह केवल यज्ञके लिये आवश्यक रह गया। लोभ विदा हो गया। काम परिवर्तित हो गया श्रीराम-प्रेममें। दाम्पत्य आवश्यक संतानोत्पादन तथा सेवाका साधन हो गया।

सब अपने अनुकूल, विधि-विहित आचारमें सुखी-संतुष्ट। ईर्ष्या, द्वेष, कपट, संघर्षसे सब असंस्पृष्ट। प्रचुर सामग्री सबके लिये सदा सुलभ हो गयी, तब लोभ और परिग्रह कोई क्यों करे? संतोष, तितिक्षा, तप प्रिय हो गया सबको। इन्द्रिय-भोगोंमें रुचि रही नहीं; क्योंकि सत्त्वस्थ अन्तःकरण अन्तरके अनन्त आनन्दका निधिपति हो गया।

साधक, संयमी, तपस्वी—ये शब्द रह गये। ऋषि, मुनि, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी वनोंमें रहते थे, उनके त्यागपूर्ण वेश थे, वे समाजके वन्दनीय थे; किंतु तितिक्षा, संतोष, अपरिग्रह, संयम एवं भगवत्प्रेम तो सामान्यजनोंमें भी उनके ही समान परिपूर्ण था।

लोगोंकी कुछ कठिनाइयाँ भी बढ़ गयीं श्रीरामके राज्यारूढ होते ही। सत्कार करनेवाले श्रद्धापूत-मानस मनुष्य थे; किंतु उनकी वह श्रद्धा-समन्वित सेवा स्वीकार करनेवाले अतिथि-अभ्यागत प्राप्त होने दुर्लभ हो गये थे। दाता तो सब होनेको उत्सुक थे; किंतु यह अवसर अधिकांशके लिये अलभ्य बन गया था; क्योंकि प्रतिगृहीता भी कोई कभी बनता था तो आवश्यकतासे विवश होकर नहीं, केवल अनुग्रहके कारण।

श्रीरामके राज्याभिषेकके साथ असंतोष केवल अपनी आराधना तथा धर्ममें सीमित हो गया। दैन्य स्वभावका सद्गुण रह गया। सम्पूर्ण पृथ्वी, सब प्राणी सत्यनिष्ठ, सुखी, सम्पन्न एवं सहज ही सद्गुण निरत हो गये।

◆

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्

(प्रो० श्रीइन्द्रवदनजी बी० रावल, एम्० ए०)

भारतीय तत्त्व-चिन्तनका आदि स्रोत वेद है। वैदिक ऋषियोंका तत्त्व-चिन्तन उपनिषदोंमें चरम सीमाको छूता है। भगवान् श्रीकृष्णने वत्स अर्जुनके निमित्त इन्हीं उपनिषदोंका दोहन करके सारे संसारको गीतामृत पिलाया है। हिन्दू धर्म और दर्शनकी जो अनुपम प्रस्थानत्रयी है, उसमें उपनिषद्‌को श्रुतिप्रस्थान, भगवद्गीताको स्मृतिप्रस्थान तथा ब्रह्मसूत्रको न्याय-प्रस्थानकी गरिमा प्राप्त है। इस त्रयीको लेकर जिस अति विशाल और गवेषणापूर्ण साहित्यराशिका सर्जन हुआ; उसकी तुलना कहीं नहीं।

'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'—यह सूत्र ब्रह्मसूत्रकार व्यासजीकी लेखनीका प्रसाद है। ब्रह्मसूत्रके दूसरे अध्यायके प्रथम पाद (स्मृतिपाद)-के प्रयोजनवत्त्वाधिकरणके अन्तर्गत यह सूत्र (२। १। ३३) शोभायमान है। इस प्रसिद्ध सूत्रको केन्द्र बनाकर लीला-विषयक विचार यहाँ प्रस्तुत है।

'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'—इस श्रुतिवचनके द्वारा एकत्वके सिद्धान्तका प्रतिपादन हुआ है। ये जो अनेक जड-चेतन पदार्थ हैं, सब एक परब्रह्म परमात्मा ही हैं—**'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म।'** मोटे अर्थमें वेदान्तका यह अद्वैत-सिद्धान्त है।

फिर भी द्वैतवादी सांख्यादि-दर्शन अनुभवकी भित्तिपर चढ़कर अद्वैतवादके विरुद्ध उँगली उठाते हैं। वे मानते हैं कि जगत्‌में जड और चेतन—ये दो बिलकुल अलग-अलग पदार्थ अनुभवमें आते हैं। दोनोंके मेलसे सृष्टिकी रचना होती है। जैसे घटके निर्माणमें कुम्हार और मिट्टी—ये दोनों अनिवार्य हैं।

दूसरी बात वे यह कहते हैं कि चेतन पदार्थ जो भी रचना या प्रवृत्ति करता है, उसके पीछे उसका कोई-न-कोई प्रयोजन अवश्य रहता है और **'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते'**—आदि दृष्टान्तोंसे आप्तकाम पूर्णकाम परमात्मामें न्यूनताका आरोप करते हैं।

एक बात है, चेतन होनेपर भी निष्प्रयोजन प्रवृत्ति देखनेको मिलती है, परंतु वह बालकमें या पागल मनुष्यमें मिलती है। बालकके हँसने या रोनेमें प्रयोजन नहीं होता। पागलकी चित्र-विचित्र चेष्टाएँ भी सप्रयोजन नहीं होतीं; क्योंकि प्रयोजनका होना अवबोध या जाग्रत्-बुद्धिका परिणाम है, जो बालक या पागलमें लागू नहीं हैं। किंतु सृष्टि-सर्जनको बालक या उन्मत्तवत् प्रवृत्ति मानना कैसे स्वीकार्य हो सकता है? अतः सांख्यके अनुसार इसे अचेतन-प्रकृतिकी प्रवृत्ति या रचना मानना चाहिये। यदि इसे चेतनकृत समझें तो उसके पीछे प्रयोजन होनेवाली बात भी माननी पड़ेगी।

सांख्यादि द्वैतवादियोंका और भी एक विचारणीय पहलू है। परमेश्वर करुणावान् है तो वह भला ऐसे गर्भ-जन्म-जरा-मरण-नरक आदि अनेकविध और अनन्त दुःखोंसे भरे जगत्‌का सर्जन कैसे कर सकता है। वह तो अपनी अपार करुणासे केवल सुखमय सृष्टिका ही निर्माण करता। अतः हमारी यह पीडाग्रस्त सृष्टि उस दयालु परमेश्वरकी रचना नहीं हो सकती।

इन सब विरोधी विचारोंका खण्डन करनेके लिये सूत्रकारने **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'**—इस सूत्रकी अवतारणा की है। सूत्रकार मुनिवर व्यास कहते हैं कि 'सृष्टि-सर्जन'की यह प्रवृत्ति केवल परमात्माकी 'लीला' है। यह जगत् परमात्माका खेल है। इस तरह खेल या लीलारूप प्रवृत्तिके उदाहरण दुनियामें भी पाये जाते हैं, जो इस विचारकी पुष्टि करते हैं।

प्रस्तुत सूत्रका भाष्य करते हुए श्रीमत् शंकराचार्य कहते हैं कि लोकमें जैसे कोई राजा या मन्त्री होता है; वह अपने एकाधिकारकी शक्तिसे **'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः'** होता है, उसकी एषणाएँ तृप्त हो चुकी होती हैं और उसे कोई प्रयोजन सिद्ध करना बाकी नहीं होता है, जिसके लिये उसे कोई प्रवृत्ति करनी पड़े; फिर भी उसकी प्रवृत्ति उद्यानादिमें क्रीडा-विहार आदि रूपमें होती रहती है। वह प्रवृत्ति निष्प्रयोजन ही होती है। श्रुतिने ठीक ही कहा है कि परमात्मा पूर्ण और आप्तकाम है। उसमें अपूर्णता या न्यूनताकी बात नहीं है। दूसरी बात यह है कि जैसे प्राणीके श्वास-प्रश्वासकी प्रवृत्ति

बिना किसी प्रयोजनके चलती रहती है, ऐसी निष्प्रयोजन स्वाभाविक प्रवृत्तिका ही तो नाम 'लीला' है। यह जगत्की प्रवृत्तिरूप सृष्टि-रचना भी केवल ईश्वरकी लीला है—स्वाभाविक, अनायास, निष्प्रयोजन।

ब्रह्मसूत्रके शांकरभाष्यकी 'भामती' टीकामें उसके इतिहासप्रसिद्ध लेखक श्रीवाचस्पति मिश्र इस बातको सरल ढंगसे समझाते हैं कि जो कार्य अल्प बल-वीर्य-बुद्धिवालोंको अतिदुष्कर या अशक्य लगता है, वही कार्य अति बल-वीर्य-बुद्धिवालोंको सुकर लगता है, मानो बायें हाथका खेल। जैसे, महासत्त्वोंके लिये भी अगाध महासागरके ऊपर मारुति प्रभृति वानरोंने सेतु बनाया। उसी महासागरको पार्थने बाणोंसे बाँधा और मुनि अगस्त्यने अंजलिमें समेटकर खेल-ही-खेलमें पी लिया। परमेश्वरकी यही तो विशेषता है कि उसकी यह सृष्टि-रचना हमें कितनी ही गूढ़ या अजीबो-गरीब क्यों न लगे, अपने अपरिमेय सामर्थ्यके कारण उसके लिये तो वह मात्र लीला है।

अब, उसकी ऐसी लीला क्यों है? ऐसा प्रश्न नहीं उठाया जा सकता; क्योंकि ऐसी लीला करना परमेश्वरका स्वभाव है और स्वभाव स्वतःसिद्ध होनेसे प्रश्नसे परे है। माँ अपने बच्चेसे प्रेम क्यों करती है? ऐसा अस्वाभाविक प्रश्न कोई नहीं करता; क्योंकि प्रेम करना माँका स्वभाव है। परमेश्वरमें सृष्टिकी ठीक ऐसी ही स्थिति है।

यहाँ **'न कुर्वीत वृथा चेष्टाम्'** वाला धर्मशास्त्रीय उपदेश आपत्ति नहीं बनता; क्योंकि यह उपदेश समाजकी स्वस्थ धारणाके लिये है। इसमें मनुष्यकी युक्तिहीन व्यर्थ चेष्टाओंका निषेध करके सदुद्देश्य तथा सार्थक चेष्टाओंकी प्रेरणा देनेका प्रयोजन है। परंतु यह सृष्टि मनुष्यकी नहीं, ईश्वरकी चेष्टा है—और वह भी लीलारूप है।

इस संदर्भमें स्पष्ट करना चाहिये कि शांकर-विचारमें पारमार्थिक अस्तित्व तो केवल ब्रह्मका है, सृष्टिका अस्तित्व तो प्रातिभासिक है, अविद्याकल्पित है; अतः सृष्टिको परमात्माकी लीला माननेपर लीलाका अर्थ अविद्या होता है। शांकरभाष्यकी न्यायनिर्णय-टीका इसीलिये कहती है कि—**'अनिर्वाच्या खलु अविद्या परमेश्वरस्य स्वभावः लीला इति च उच्यते।'**

आचार्य निम्बार्क बताते हैं कि पूर्ण ब्रह्म आनन्दमय है और उसका आनन्दातिरेक ही यह लीलारूप सृष्टि है। इससे ब्रह्ममें कोई भी न्यूनता या युक्तिहीनता सूचित नहीं होती। आचार्य रामानुज इसीको स्वाधीन परब्रह्मकी लीलारसिक-प्रवृत्ति—(Playful activity) कहते हैं। परब्रह्मकी इस लीलाको बड़ी सरलतासे समझानेका एक प्रयास अचिन्त्य-भेदाभेदवादी आचार्य बलदेव (१८ वीं शतीका पूर्वार्ध)-ने एक सादृश्यके सहारे किया है। वे कहते हैं कि गहरी नींद सोकर जागनेपर मनुष्य आनन्द-उल्लाससे भरा होता है और बिना किसी उद्देश्य या आवश्यकताके भी नाचने लगता है। इसमें उसकी निजानन्दी-मस्तीकी पूर्णता (fullness of spirit) है। परमेश्वरकी यह सृष्टि-रचना भी उसके अन्तरानन्दका उभार (overflow of the joy within) है। यही है परमेश्वरकी लीला।

संसार सुख-दुःखका झमेला नहीं है; अपितु परमेश्वरकी लीलाभूमि है, ऐसा भाव मनमें दृढ होनेपर तो बस, आनन्द-ही-आनन्द।

* * *

विलासविक्रान्तपरावरालयं नमस्यदार्तिक्षपणे कृतक्षणम्।
धनं मदीयं तव पादपङ्कजं कदा नु साक्षात्करवाणि चक्षुषा॥
कदा पुनः शङ्खरथाङ्गकल्पकध्वजारविन्दाङ्कुशवज्रलाञ्छनम्।
त्रिविक्रम त्वच्चरणाम्बुजद्वयं मदीयमूर्द्धानमलंकरिष्यति॥

(श्रीआळवन्दारस्तोत्र ३३-३४)

'लीलामात्रसे ही नीचे-ऊपरके सम्पूर्ण लोकोंको (त्रिविक्रम-रूपमें) नापनेवाले और प्रणतजनोंकी पीडाको हरनेके लिये कटिबद्ध मेरे परमधन आपके पाद-पङ्कजको नेत्रोंसे मैं कब प्रत्यक्ष देखूँगा? हे त्रिविक्रम! शंख, चक्र, कल्पवृक्ष, ध्वजा, कमल, अंकुश, वज्र आदि शुभ चिह्नोंवाले आपके चरण-युगल मेरे मस्तकको कब अलंकृत करेंगे?'

* * *

लीलावतार अवधूतश्रेष्ठ भगवान् 'श्रीदत्तात्रेय'

(प० पू० दण्डी स्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

77084

[विशेषाङ्क पृ०-सं० ३६७ से आगे]

भगवान् दत्तात्रेयके कतिपय लीला-प्रसंग धर्मग्रन्थोंमें [श्रीदत्तकल्पद्रुममें] इस प्रकारसे वर्णित है—

लीलाप्रसंग (१)—

कैलासपति भगवान् शिव एवं भगवती पार्वतीके कनिष्ठ पुत्र कार्तिकेय जब गुरु-दीक्षाकी प्राप्तिके लिये 'सह्याद्रि-पर्वत' के शिखरपर स्थित अत्रि-अनसूया-सुत लीलावतार भगवान् दत्तात्रेयके पास पहुँचे, तब उन्होंने लीलादत्तका बाह्य आचरण विकृत देखा। वे मदिराक्षीके साथ ही 'मदिरा' का सेवन कर रहे थे। अपनी महानताको छिपानेके लिये ही तथा अनधिकारी लोगोंको अपनेसे दूर रखनेके लिये ही लीला-विश्वम्भर दत्तात्रेयकी यह अवधूती लीला मानी जाती है। दत्तात्रेयने कार्तिकेयसे कहा कि 'मैं मदिरा एवं मदिराक्षीमें आसक्त हूँ, गंदा हूँ, असंयमी हूँ; अतः तुम कार्यसिद्धिके लिये किसी अन्यके पास जाओ।'

यह भ्रामक वाणी सुनकर कार्तिकेयने करबद्ध होकर विनम्र वाणीमें कहा—'भगवन्! आप तो सूर्य-जैसे महान् निष्पाप एवं अनासक्त हैं। यह सब तो आपकी लीला है।'

कार्तिकेयकी सत्य वाणी सुनते ही लीलावतार दत्तात्रेयने मुक्तहास्य कर दिया। वहाँके मदिरा एवं मदिराक्षी अदृश्य हो गये। लीलादत्तने कार्तिकेयकी योग्यताको देखकर उनपर अनुग्रह किया—

ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैतवासना।
महद्भयपरित्राणा विप्राणामुपजायते॥

अर्थात् 'महाभयसे रक्षा करनेवाली 'अद्वैत-वासना' ईश्वरकी कृपासे ही मनुष्योंको प्राप्त होती है, उनमें भी वेदाध्ययन करनेवालोंको यथाशीघ्र प्राप्त होती है।'

इस प्रकार कार्तिकेयको दत्तात्रेयने स्वात्मसंवित्का महोपदेश दिया, फलस्वरूप कार्तिकेयका ज्ञानपथ प्रशस्त हुआ और वे लीलावतार दत्तात्रेयके कृपाप्रसादसे महाज्ञानी हो गये। यही महोपदेश 'अवधूत-गीता'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसीलिये तो 'दत्तात्रेय' के विषयमें 'शाण्डिल्य-उपनिषद्' कहता है कि—

दत्तात्रेयं शिवं शान्तमिन्द्रनीलनिभं प्रभुम्।
आत्ममायारतं देवमवधूतं दिगम्बरम्॥

लीलाप्रसंग (२)—

'त्रिपुरा-रहस्य'के माहात्म्य-खण्डमें भगवान् दत्तात्रेयद्वारा परशुरामपर अनुग्रह किये जानेका विस्तृत वर्णन है।

परशुरामने अपने पिता महर्षि जमदग्निके वधके प्रतिशोधमें कई बार क्षत्रियवंशका नाश किया, तथापि उनको शान्ति नहीं मिली। अतः वे आध्यात्मिक-शान्तिकी खोजमें निकल पड़े। एक जगहपर परशुरामने संवर्तमुनिको देखा, जो उन्मत्त न होनेपर भी उन्मत्त-जैसा आचरण कर रहे थे—**'अनुन्मत्ता उन्मत्तवदाचरन्ति'**। परशुरामने उनको शीघ्र पहचान लिया। संवर्तमुनिने पूछा—'क्या चाहिये?' परशुरामने कहा—'आत्मबोध एवं परमोच्च शान्ति।' संवर्तमुनिने कहा कि 'इसके लिये तो आप महेन्द्रपर्वतपर अवधूतके वेशमें एकान्तवास करके मेरे गुरु भगवान् दत्तात्रेयसे मिलिये।' [देवगुरु 'बृहस्पति' के भाई] संवर्तमुनिकी वन्दना करके परशुराम वहाँसे चल पड़े। कई दिनोंके बाद वे महेन्द्रपर्वतपर पहुँचे। वहाँपर उन्होंने दत्तात्रेयको एक सुन्दरीके समीप बैठकर मद्यपान करते हुए देखा। विकृत बाह्य आचरणवाले लीलावतार भगवान् दत्तात्रेयको परशुराम पहचान गये। दत्तगुरुके चरणारविन्दमें उन्होंने प्रणाम किया एवं आगमनका प्रयोजन कहा। यह सुनकर दत्तात्रेयने अपनी विषयलिप्सा, मदिराप्रियता इत्यादिसे अपनेको अधम बताया और इच्छापूर्ति-हेतु किसी अन्य योग्य महात्माके पास जानेके लिये कहा।

यह सुनकर परशुराम बोले—'महामुनि संवर्तने आपकी लीलाके विषयमें मुझसे सब कुछ कहा है—

तथा चरेत वै योगी सतां वर्त्म ह्यदूषयन्।
जना यथावमन्येरन् गच्छेयुर्नैव संगतिम्॥

अर्थात् आत्मलक्षी योगीको ऐसा आचरण करना चाहिये कि लोग उसका अपमान करें और उसके संसर्गमें न

आवें—उससे दूर ही रहें, क्योंकि प्रशंसा आत्मोन्नतिमें बाधक होती है और निन्दा उन्नतिदायक। इसीलिये जबतक मैं आपसे गुरुदीक्षा एवं तत्त्वोपदेश प्राप्त न करूँगा, तबतक यहाँसे जाऊँगा नहीं।'

परशुरामकी उत्कृष्ट तत्त्वनिष्ठा देखकर लीलावतार दत्तात्रेय प्रसन्न हुए और उनको 'त्रिपुरा-उपासना'का रहस्य समझाया। कुछ वर्षों-पश्चात् परशुरामका अन्त:करण उपासनासे निर्मल हो जानेपर भगवान् दत्तात्रेयने उन्हें 'त्रिपुरा-रहस्य' (ज्ञानमार्गका मर्म) समझाया। सद्गुरुकी कृपासे परशुराम सिद्ध पुरुष हो गये। ऐसी ही अद्भुत लीलाएँ हैं लीलावतार भगवान् दत्तात्रेयकी। इसीलिये तो दत्तात्रेय-उपनिषद् (१। १)-में उनके विषयमें कहा गया है—

दत्तात्रेय हरे कृष्ण उन्मत्तानन्ददायक।
दिगम्बर मुने बालपिशाच ज्ञानसागर॥

लीलाप्रसंग (३)—

एक बार उच्च कोटिके साधक एवं ज्ञानपिपासु मुनि सांकृति ज्ञान-प्राप्तिहेतु अवधूतश्रेष्ठ भगवान् दत्तात्रेयके पास आये। सांकृतिको देखते ही लीलावतारने लीला प्रारम्भ की। मद्यपान करते हुए वे उन्मत्तवत् सांकृतिको अपशब्द बोलने लगे और उनके ऊपर लगातार पत्थर फेंकने लगे, परंतु सांकृति इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। यह देखकर दत्तात्रेय प्रसन्न हुए और उन्होंने स्वरचित लीला समेट ली। मद्यकुम्भ अदृश्य हो गया। दत्तात्रेयने सांकृतिको बुलाया और समीपमें बैठाकर स्नेहसे पूछा—'क्या चाहते हो?'

मुनि सांकृतिने सुअवसर देखकर प्रश्न किया—'अवधूतका लक्षण और ज्ञानीका स्वरूप क्या है?'

लीलादत्तने प्रत्युत्तर दिया—

अक्षरत्वाद् वरेण्यत्वाद् धूतसंसारबन्धनात्।
तत्त्वमस्यादिलक्ष्यत्वादवधूत इतीर्यते॥

अर्थात् जिस महापुरुषने अक्षर परब्रह्मका साक्षात्कार किया है अथवा परब्रह्मस्वरूप हो जानेपर कायासिद्धि (देहकी अजरत्व एवं अमरत्व-सिद्धि) प्राप्त कर ली है, जो प्राणिमात्रके लिये वरेण्य है, पूजनीय हो गया है, जिसके सभी सांसारिक बन्धन धूत हो गये हैं—अपने-आप टूट गये हैं, जिसका लक्ष्य प्रतिक्षण '**तत्त्वमसि**' है, जिसके स्वस्वरूपका स्फुरण सदैव बना रहता है—ऐसे गुणोंसे युक्त महापुरुषको 'अवधूत' कहते हैं।

लीलावतार अवधूतकुलशिरोमणि दत्तात्रेय आगे कहते हैं कि—'अतिवर्णाश्रमी (अवधूत) स्वेच्छानुसार साम्बर या दिगम्बर भ्रमण करनेवाला होता है। उसकी दृढ़ मान्यता है कि इस लोक एवं परलोकके फलकी सिद्धि और मुक्ति-हेतु मेरा कर्तव्य अशेष हुआ है। मैं परमानन्दसे परिपूर्ण हूँ। मुझे न तो पुत्र-धनकी कामना है, न परलोक-प्राप्तिकी। मैं निद्रा, भिक्षा, स्नान तथा शौचादिसे रहित हूँ। मैं परमतत्त्वको जानता हूँ, समझता हूँ। मुझे कोई भी संशय नहीं है। मुझे मनन, निदिध्यासन, समाधि इत्यादिकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं तो निर्लेप तथा अकर्ता हूँ। यदि मैं शास्त्रोक्त मार्गका आचरण करूँ तो इसमें कोई हानि नहीं। देह यदि स्नान, देवपूजा, भिक्षा इत्यादि करे, वाणी जपादि करे, बुद्धि ब्रह्मका ध्यान करे, किंतु मैं साक्षी (कूटस्थ) न तो कुछ करता हूँ, न करवाता हूँ। मैं 'आत्मा' का यथार्थ अनुभव करता हूँ, ब्रह्मानन्द मुझे सुस्पष्ट ही प्रतीत होता है। मेरे लिये अब कोई कर्तव्य शेष नहीं है। मैं महातृप्तिको प्राप्त हुआ हूँ, अतः मैं धन्य हूँ, धन्य हूँ, धन्य हूँ।'

लीला-दत्तात्रेयने मुनि सांकृतिको जो उपदेश दिया था, वह 'अवधूतोपनिषद्' नामसे प्रसिद्ध है। लीलावधूतके विषयमें कहा गया है कि—

अवभासात्मको भासः प्रकाशे सुखसंस्थितः।
लीलया रमते लोके सोऽवधूतोऽभिधीयते॥

—जगत्के प्रकाशक सूर्य, चन्द्र इत्यादिको भी प्रकाश देनेवाले, सदैव स्वात्मसुखमें स्थित, अपने लीलावश स्वच्छन्द विचरण करनेवाले महापुरुषको 'लीलावधूत' कहते हैं।

लीलाप्रसंग (४)—

श्रीमद्भागवत (७। १३)-में वर्णित है कि भक्तराज प्रह्लाद भी विकृत बाह्याचरणवाले लीलावतार दत्तात्रेयको पहचान न सके, अतः विनम्र वाणीमें उनका परिचय पूछते हुए अवधूत-वृत्तिके विषयमें उनसे ज्ञान-प्राप्तिका निवेदन करते हैं।

लीलादत्त बताते हैं कि 'मैं कभी सुन्दर वस्त्र पहनता

हूँ तो कभी वल्कल भी धारण करता हूँ, कभी तो दिगम्बर भी रहता हूँ; किंतु सदैव चित्तमें संतुष्ट ही रहता हूँ। कभी भूमिपर धूलिमें सो जाता हूँ तो कभी राजमहलमें छत्र-पलंगपर सोता हूँ। कभी देहपर भस्म रमाता हूँ तो कभी देह सुगन्धित चन्दनके लेपसे युक्त होता है। कभी हाथी-घोड़ा या रथपर सवार होकर विचरता हूँ तो कभी पिशाचकी भाँति पैदल ही घूमता रहता हूँ। मैं न तो विषयासक्त (संसारी) लोगोंकी निन्दा करता हूँ, न बुद्धिसम्पन्न लोगोंकी स्तुति (प्रशंसा) करता हूँ; बल्कि समस्त जीवोंका कल्याण चाहता हुआ मैं स्व-स्वरूपमें सदैव स्थित रहता हूँ।'

दत्तात्रेय-तन्त्रमें इसीलिये तो कहा गया है—

कदा योगी कदा भोगी कदा नग्नपिशाचवत्।
दत्तात्रेयो हरिः साक्षाद् भुक्तिमुक्तिप्रदायकः॥

लीलाप्रसंग (५)—

भगवान् दत्तात्रेय स्वयं साक्षात् अवतार-स्वरूप होते हुए भी पृथ्वीपर लीलाके मिषसे उन्होंने साधक-जीवनका अभिनय किया। वे जन्मसे ही 'पूर्ण ज्ञानी' थे, फिर भी पिता महर्षि अत्रिकी आज्ञासे वे गौतमी-वनमें गये और दीर्घकालपर्यन्त उन्होंने उत्कट तपस्या की; जिसके फलस्वरूप उस स्थानका नाम 'आत्मतीर्थ' पड़ा (ब्रह्मपुराण ११७।७—२०)। काशीखण्ड (उ० अ० ८४)-में इसीको 'दत्तात्रेयतीर्थ' के नामसे अभिहित किया गया है—

ज्ञानयोगनिधिं विश्वगुरुं योगिजनप्रियम्।
भक्तानुकम्पिनं सर्वसाक्षिणं सिद्धसेवितम्॥
(शाण्डिल्योपनिषद्)

लीलाप्रसंग (६)—

श्रीमद्भागवत (स्कन्ध ११, अ० ७—९)-में उनके चौबीस गुरुओंकी कथा वर्णित है, जो सुप्रसिद्ध है। भगवान् दत्तात्रेयने यहाँपर लीलाके उद्देश्यसे ही शिष्यभाव धारण किया है। अज्ञानी जनोंका सच्चा मार्गदर्शन करके उनका कल्याण करनेके लिये ही दत्तगुरुने यह कार्य किया है। जो व्यक्ति शिष्य बनकर समग्र जगत्को 'गुरु' के रूपमें देखता है, वह भविष्यमें 'जगद्गुरु' बन सकता है—

योगिराजं यतिश्रेष्ठमनसूयानन्दवर्धनम्।
भर्गं वरेण्यं विश्वेशं दत्तात्रेयं जगद्गुरुम्॥
(श्रीदत्तपूजाविधि ३)

लीलाप्रसंग (७)—

मार्कण्डेयपुराण (अ० १६)-में भगवान् दत्तात्रेयका एक लीलाप्रसंग इस प्रकार वर्णित है—एक बार दैत्यराज 'जम्भ' ने अपनी प्रचण्ड शक्तिसे स्वर्गके देवताओंको परास्त करके भगा दिया। पराजित इन्द्र सभी देवताओंके साथ देवगुरु बृहस्पतिकी शरणमें गये। तब देवगुरुने उन्हें 'सह्याद्रि-पर्वत' पर जाकर वहाँके लीला-विश्वम्भर भगवान् दत्तात्रेयको प्रसन्न करनेके लिये कहा। तदनुसार देवगण जब सह्याद्रिके शिखरपर पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि दत्तात्रेय तो लक्ष्मीके साथ बैठकर सुरापान कर रहे हैं और 'गन्धर्व' गान कर रहे हैं। देवगुरु बृहस्पतिने देवगणको पहलेसे ही सचेत कर दिया था कि दत्तात्रेय बाह्याचरणमें विकृत-से प्रतीत होंगे, फिर भी उनमें संशय मत करना। यह सब उनकी लीलामात्र है। इसीलिये देवगण 'दत्तात्रेय' के विकृत बाह्याचार (अवधूत-लीला)-से विचलित नहीं हुए और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सेवा करने लगे। यह देखकर लीलादत्तने उनके आगमनका प्रयोजन पूछा। देवगणने विस्तारसे अपने आनेका प्रयोजन बताया और विजय-प्राप्ति-हेतु सहायता करनेके लिये उनसे करबद्ध विनती की।

लीलावतार दत्तात्रेयने प्रत्युत्तर दिया—

मद्यासक्तोऽहमुच्छिष्टो न चैवाहं जितेन्द्रियः।
कथमिच्छथ मत्तोऽपि देवाः शत्रुपराभवम्॥

—मैं मद्य-सेवन करता हूँ, अपवित्र हूँ, जितेन्द्रिय भी नहीं हूँ, अतः मुझसे शत्रुके पराजयकी अपेक्षा तुम कैसे रखते हो?

लीलादत्तकी ऐसी भ्रम पैदा करनेवाली वाणी सुनकर देवगणने विनम्र वाणीमें कहा—

अनघस्त्वं जगन्नाथ न लेपस्तव विद्यते।
विद्याक्षालकशुद्धान्तर्निर्विष्टज्ञानजोषिते ॥

'हे जगत्के स्वामी! आपने विद्यासे—ज्ञानसे क्षालित किये हुए, विशुद्ध किये हुए, अन्तःकरणमें ज्ञानका प्रकाश किया है, अतः आप पापरहित एवं निर्लेप हैं। इसीलिये आपको कोई भी बुरी वस्तु दूषित नहीं करती।'

अनघेयं द्विजश्रेष्ठ जगन्माता न दुष्यते।
यथांशुमाला सूर्यस्य द्विजचंडालसंगिनी॥

—हे द्विजवर! जैसे द्विज और चांडालके एक साथ

स्पर्श करनेपर भी सूर्यकी किरणें दूषित नहीं होतीं, उसी प्रकार ये जगदम्बा लक्ष्मी भी पापरहित हैं।

देवगणोंकी सत्य वाणी सुनकर लीलावतार भगवान् दत्तात्रेय प्रसन्न हुए। उन्होंने देवगणोंसे कहा कि 'तुम सब दैत्योंके साथ पुनः युद्ध करो और उनसे लड़ते हुए उनको यहाँपर खींच लाओ।' देवगणोंने वैसा ही किया। लीला-प्रभु दत्तात्रेयकी योगदृष्टि दैत्य-सेनापर पड़ते ही उनकी शक्ति और बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। फलस्वरूप दैत्योंने भगवान् दत्तात्रेयके संनिकट बैठी हुई सौन्दर्यराशि भगवती लक्ष्मीका अपहरण किया। लीलादत्तकी इस लीलासे दैत्योंकी घोर पराजय हुई और देवगणोंको अपना स्वर्गलोक वापस मिल गया।

लीलावधूतके विषयमें अवधूत-उपनिषद् कहता है कि—

यथा रविः सर्वरसान् प्रभुङ्क्ते
हुताशनश्चापि हि सर्वभक्षः।
तथैव योगी विषयांस्तु भुङ्क्ते
न लिप्यते पुण्यपापैश्च शुद्धः॥

'अर्थात् सूर्यके समान रसोंको भोगनेवाला तथा अग्निके समान सर्वभक्षी होनेपर भी विषयोंका उपयोग करता हुआ आत्मक्रीड महापुरुष अनासक्त होनेके कारण पाप-पुण्यसे लिप्त नहीं होता, अपितु शुद्ध ही माना जाता है।'

लीलाप्रसंग (८)—

गर्गसंहिता (विश्वजित्-खण्ड)-में एक अद्भुत लीला-प्रसंग वर्णित है। भगवान् कृष्णके सुपुत्र प्रद्युम्न जब उद्धवजीके साथ दक्षिण भारतकी यात्रा कर रहे थे, तब मार्गमें एक स्थानपर लीलावधूत भगवान् दत्तात्रेयसे उनका मिलाप हुआ। विकृत बाह्याचरणवाले अवधूतश्रेष्ठ दत्तात्रेयको प्रद्युम्नजी पहचान न सके। उद्धवजीको पता था, अतः उन्होंने प्रद्युम्नजीसे कहा कि 'ये भगवान् विष्णुके अवतार महामुनि दत्तात्रेय हैं, जिनकी कृपासे आपके परदादा 'यदु'-को २४ गुरुओंकी कथारूप उपदेशसे परम सिद्धि प्राप्त हुई थी।' उद्धवजीकी बात सुनकर प्रद्युम्नजीने भगवान् दत्तात्रेयकी चरण-पूजा की और अवधूतकी आध्यात्मिक स्थितिके सम्बन्धमें उनसे तत्त्वोपदेश प्राप्त किया। लीलावतार दत्तात्रेयने उनसे संक्षेपमें कहा था—

'तुरीयातीत-उपनिषद्' के अनुसार 'अवधूती-स्थिति'में स्थित महापुरुष दुर्लभतर हैं। वे नित्य पवित्र, वैराग्यमूर्ति, ज्ञानरूप एवं वेद-पुरुष-स्वरूप हैं। उनका चित्त प्रतिक्षण प्रभुमें निमग्न रहता है और प्रभु प्रतिपल उनमें समाहित रहते हैं।

'ऐसा अवधूत महापुरुष स्व-स्वरूपके अनुसंधानद्वारा प्रपंचको मिथ्या जानकर, समस्त वस्तुओंका त्यागकर, अपने देहको शव (मुरदा)-के रूपमें देखता हुआ दिगम्बर होकर, शीत-उष्ण, सुख-दुःख, मान-अपमान, हर्ष-शोक, स्तुति-निन्दा और लाभ-हानि आदिमें समान रहकर, वर्णाश्रमके आचारसे रहित तथा उन्मत्त न होनेपर भी 'बालोन्मत्तपिशाचवत्' एकाकी विचरण करता हुआ स्वरूपध्यानद्वारा निरालम्बका आलम्बन करके अद्वैतनिष्ठा-परायण रहता है।' ऐसे महापुरुषके विषयमें कहा गया है कि—

'निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः॥'

त्रिगुणातीत-पदको प्राप्त लीलावधूतके लिये शास्त्रकी कोई विधि या नियम बाह्यरूपसे ग्राह्य नहीं होते तथा शास्त्रमें किया हुआ निषेध भी उनकी आध्यात्मिक स्वतन्त्रतामें बाधक नहीं होता।

विश्ववन्द्य जगद्गुरु आद्यशंकराचार्यजी ऐसे लीलावधूत (दत्तात्रेय)-के विषयमें 'जीवन्मुक्तानन्दलहरी'में लिखते हैं—

मौने मौनी गुणिनि गुणवान् पण्डिते पण्डितश्च
दीने दीनः सुखिनि सुखवान् भोगिनि प्राप्तभोगः।
मूर्खे मूर्खो युवतिषु युवा वाग्मिनि प्रौढवाग्मी
धन्यः कोऽपि त्रिभुवनजयी योऽवधूतेऽवधूतः॥

अर्थात् मौनीजनोंके साथ मौनी-जैसा, गुणवानोंके साथ गुणवान्-जैसा, पण्डितोंके साथ पण्डित-जैसा, दीनजनोंके साथ दीन-जैसा, सुखीजनोंके साथ सुखी-जैसा, भोगीजनोंके साथ भोगी-जैसा, मूर्खजनोंके साथ मूर्ख-जैसा, युवतियोंके साथ युवती-जैसा और वाग्मीजनों (प्रवचनकारों)-के साथ प्रौढ वक्ता-जैसा आचरण (व्यवहार) करनेवाले तथा अवधूतके साथ अवधूत-जैसा बर्ताव करनेवाले परमादरणीय (भगवान् दत्तात्रेय-जैसा) धन्य महापुरुष क्वचित् एकाध ही दिखायी पड़ते हैं।

'दत्तात्रेय-वज्रकवच' में स्पष्ट-रूपमें कहा गया है—

त्यागी भोगी महायोगी नित्यानन्दो निरंजनः।
सर्वरूपी सर्वदाता सर्वगः सर्वकामदः॥

अर्थात् 'लीलावतार भगवान् दत्तात्रेय एक ही साथ

त्यागी, भोगी, महायोगी तथा मायामुक्त नित्य आनन्दस्वरूप एवं विशुद्ध ज्ञानी हैं। वे एक ही साथ सब रूप धारण कर सकते हैं, सब जगह विचरण कर सकते हैं और सभीको सभी अभिलषित पदार्थ प्रदान करनेमें भी समर्थ हैं।'

लीलाप्रसंग (९)—

भगवान् विष्णुके (श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि) अवतार भू-भार-हरण करनेके लिये, भक्तजनोंका परित्राण एवं विरोधी-विग्रहों (रावण, कंसादि)-के संहार-हेतु ही पृथ्वीपर हुए हैं और होंगे। अवतारकार्य पूरा होनेपर वे देह-त्याग करके निजधाममें चले जाते हैं—'**तां तनुं विजहौ** .....' (श्रीमद्भा० १। १५। ३०)। विष्णुके लीलावतार दत्तात्रेयके विषयमें ऐसा नहीं है—वे अयोनिजसम्भव, सिद्धदेहसम्पन्न लीलापुरुष तो कल्पके अन्ततक एक ही देहसे रहेंगे। इनके अवतारकी यह विशेषता है। वे प्रतिदिन प्रातःकालसे लेकर रात्रिपर्यन्त लीलाके बहाने भारतके विभिन्न तीर्थोंमें विचरण करते हुए लोककल्याण करते रहते हैं। 'दत्तात्रेय-वज्रकवच'में इस लीलाके विषयमें लिखा गया है कि—

वाराणसीपुरस्नायी **कोल्हापुरजपादरः।**
माहुरपुरभिक्षाशी **सह्यशायी दिगम्बरः॥**

अर्थात् 'लीलावतार भगवान् दत्तात्रेय नित्य उत्तरप्रदेशके वाराणसी (काशी)-में गङ्गास्नान करते हैं, (महाराष्ट्र प्रदेशके) कोल्हापुरमें जपयोग-साधना (तथा भिक्षाटन) करते हैं, (मराठवाड़ाके) माहुरपुर (मातापुर, माहुरगढ़)-में भिक्षाग्रहण (भोजन) करते हैं और रातको सह्यादिके शिखरपर जाकर दत्तदिगम्बर शयन करते हैं।'

इस प्रकारकी प्रतिदिनकी उनकी लीला कोई असम्भव बात नहीं है, क्योंकि सिद्धदेहसम्पन्न भगवान् दत्तात्रेयके लिये देश और कालका व्यवधान गतिका बाधक नहीं होता। दत्तगुरु प्रतिदिन विभिन्न स्थानोंमें विचरण करते रहते हैं, फिर भी उनका स्मरण श्रद्धा-भक्तिपूर्वक करनेपर वे दयालु देव तुरंत दर्शन देते हैं। 'दत्तात्रेय-वज्रकवच'में उन्होंने ही कहा भी है—

अभक्त्या वा सुभक्त्या वा यः स्मरेन्मामनन्यधीः।
तदानीं तमुपागत्य ददामि तदभीप्सितम्॥

संत तुलसीदासजी भी अपना स्वानुभव कहते हैं कि—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

भगवान् दत्तात्रेयकी अनन्त लीला-कथाएँ अनेक ग्रन्थोंमें भरी पड़ी हैं। उनमेंसे कुछ लीला-कथाएँ भक्तोंके कल्याण-हेतु ही यहाँपर प्रस्तुत की गयी हैं, अस्तु—

दिगम्बराय दिव्याय दिव्यरूपधराय च।
सदोदितपरब्रह्म दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते॥
(नारदपुराण)

जो सदा दिगम्बर हैं अर्थात् वासनारूपी वस्त्रसे रहित हैं, दिव्यमूर्ति और दिव्य स्वरूपधारी हैं, जिन्हें सदा ही परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार होता रहता है, ऐसे लीलावतार भगवान् दत्तात्रेयको मेरा कोटिशः नमस्कार है।

* * *

लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी आवन्त्य-लीला

(श्रीबिहारीलालजी व्यास, एम्० ए०, एल्० टी०, आयुर्वेदरत्न)

जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मका उत्थान होता है, तब-तब भगवान् आवश्यकतानुसार अवतार धारण करते हैं। लीला-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका अवतार उनमें प्रमुख है। भगवान् श्रीकृष्णने इस धराधामपर अवतीर्ण होकर शिशुपन एवं किशोरपनकी व्रजलीलाके अतिरिक्त अनेक व्रजेतर लीलाएँ भी की हैं। द्वारकालीलासे जन-सामान्य परिचित हैं, किंतु गुरु सांदीपनिके आश्रममें—अवन्तिकामें शिक्षा-ग्रहणके समयकी एवं अवन्ती-सम्बन्धी लीलाओंसे अवगत कराना प्रस्तुत आलेखका प्रमुख विषय है।

श्रीकृष्णने कंसका वध करके माता-पिता—देवकी और वसुदेवको कारागारसे मुक्त करवाकर नाना उग्रसेनको यदुवंशियोंका राजा बना दिया। यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न होनेके पश्चात् श्रीकृष्ण एवं बलरामको किसी गुरुकुलमें शिक्षा-ग्रहणार्थ भेजनेके सम्बन्धमें परिजनोंमें परामर्श हुआ।

विद्याकी सनातन पुरी काशी है, किंतु काशिराज कंससे सहानुभूति रखनेवाले पौण्ड्रकके मित्र थे। कंससे उनका

सौहार्द था। उग्रसेनसे कभी उनकी बनी नहीं। अतः श्रीकृष्ण और बलरामको काशी भेजना उपयुक्त नहीं समझा गया। काशी-नरेशके अभिचारों एवं संतापोंसे पीडित तथा संतप्त विभिन्न मतावलम्बी विद्वान् काशी छोड़कर अन्यत्र चले गये थे। परम शैव महर्षि सांदीपनि भी भगवान् विश्वनाथकी आज्ञासे काशी छोड़कर महाकाल-नगरी अवन्ती जाकर बस गये थे। वहाँ उन्होंने नगरके समीप ही एक रमणीय स्थलपर अपना आश्रम बनाया।

श्रीवसुदेवजीकी पाँच बहनें थीं। उनमेंसे राजाधिदेवी अवन्ती-नरेश—राजा जयसेनके साथ ब्याही गयी थीं। अतः सुरक्षा एवं अध्ययन आदि सभी दृष्टिसे श्रीकृष्ण और बलरामको गुरु सांदीपनिके आश्रम—अवन्तिकामें भेजना उचित समझा गया। यद्यपि वटुकोंको गुरुकुल पैदल जानेकी ही परम्परा थी, किंतु मथुरासे अवन्तिका दूर होनेके कारण तथा सुरक्षाकी दृष्टिसे गोपनीय रूपसे रथद्वारा दोनोंको अवन्तिका भेजा गया। मथुरावासियोंमें श्रीकृष्ण और बलरामका नगरमें ही अज्ञातवासका प्रचार किया गया।

मथुराका विश्वस्त मन्त्री सारथि बनकर रथमें दोनों बालकोंको गोपनीय रूपसे बिठाकर मार्गमें योग्य स्थानोंपर विश्राम करते हुए अवन्तिका पहुँचा। आश्रम-भूमिसे पर्याप्त दूरसे ही संकर्षण और श्रीकृष्णने रथ त्याग दिया। मन्त्रीको रथसहित उनके अध्ययन-कालतक नगरमें ही रुकनेके लिये कहकर, उपवनसे सूखी आम्र-समिधाएँ लेकर श्रीकृष्ण और बलराम पैदल ही गुरु सांदीपनिके आश्रमपर पहुँचे। 'हम इन सूखे काष्ठके समान ही रसहीन हैं'—ऐसा कहकर नाम तथा कुल और गोत्रका उच्चारण करके गुरुदेवको दोनोंने प्रणाम किया।

बलराम और श्रीकृष्णके पदार्पण करते ही आश्रमकी दशा परिवर्तित हो गयी। वैसे पाँच-सात वर्षके ही बालक गुरु-आश्रममें आया करते थे, परंतु ये पर्याप्त बड़े थे। गुरु सांदीपनिने प्रथम दिवससे ही उनका शिक्षण प्रारम्भ कर दिया। वे दोनों भाई विधिपूर्वक गुरुकुलमें रहने लगे और गुरुदेव तथा गुरुपत्नीकी अपने इष्टदेवके समान ही सेवा करने लगे। गुरु सांदीपनिने दोनों भाइयोंको छः अङ्गों और उपनिषदों-सहित सम्पूर्ण वेदोंकी शिक्षा दी। इनके सिवा मन्त्र और देवताओंके ज्ञानके साथ धनुर्वेद, निरुक्त, धर्मशास्त्र, मीमांसा आदि वेदोंका तात्पर्य बतानेवाले शास्त्र एवं तर्क-विद्या आदिकी शिक्षा दी। साथ ही संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय—इन छः भेदोंसे युक्त राजनीतिका भी अध्ययन कराया। उन्होंने गुरुजीके केवल एक बार कहनेसे ही सारी विद्या सीख ली एवं मात्र चौंसठ अहोरात्रमें ही चौंसठ कलाओंका ज्ञान प्राप्त कर लिया।

आश्रममें पदार्पणके प्रथम दिन ही आश्रमवासी बालकोंके साथ उनकी मित्रता हो गयी। सुदामा नामका एक विप्र बालक तो उनका परम सुहृद् ही हो गया।

वर्षाकालमें एक दिन आश्रममें ईंधनका अभाव हो गया। श्रीकृष्ण-बलराम तो आश्रमकी सुविधाका ध्यान रखते हुए प्रत्येक कार्य स्वयं ही करते थे। इधर गुरुपत्नीको भी कृष्णपर पुत्रवत् प्रगाढ़ स्नेह हो गया था। इस वात्सल्यके कारण कृष्णको न कहते हुए सुदामाको वनसे ईंधन लानेके लिये कहा, किंतु सर्वज्ञ कृष्ण जान गये और सुदामाके साथ ईंधन लाने वनको चल दिये। कृष्ण-सुदामाको एक साथ निकलते देखकर गुरुपत्नी उन्हें रोकनेमें विवश रहीं। चलते समय उन्होंने थोड़ेसे भुने चने उनके स्वल्पाहारके लिये दिया तथा साथ ही यह भी कहा कि यदि पासमें ही कहीं थोड़ा-बहुत ईंधन मिल जाय तो उसे ही लेकर शीघ्र लौट आना।

दोनोंके निकलते ही घनघोर वर्षा होने लगी। शुष्क काष्ठकी खोजमें वे दोनों वनमें बहुत दूर निकल गये। वर्षा और अन्धकारके कारण रात्रिमें वनमें ठहरना पड़ा। जिस स्थानपर रात्रि बितायी थी, वह स्थान नारायण (नराना)-नामसे आज भी विद्यमान है। भूख लगनेपर सुदामाने अकेले ही चने खा लिये। कृष्ण इस रहस्यको समझ गये। प्रातः होनेके पूर्व रात्रिमें संगृहीत शुष्क काष्ठ लेकर शीघ्रतासे आश्रमकी ओर लौट चले। इधर श्रीकृष्ण तथा सुदामाके न लौटनेपर गुरुपत्नीने व्याकुल होकर गुरुदेवको सब बात बताकर उन्हें खोजनेके लिये कहा। प्रातः गुरुदेव कुछ शिष्योंके साथ उन्हें खोजने वनकी ओर चल दिये। गुरु मार्गमें ही कृष्ण-सुदामा ईंधनका गट्ठर लिये हुए मिल गये। गुरु उन्हें लेकर आश्रमपर लौट आये।

कृष्ण-सुदामाकी गुरु-भक्तिसे प्रसन्न होकर गुरुदेवने सम्पूर्ण विद्याओंमें निष्णात होनेका उन्हें आशीर्वाद दिया।

समावर्तनमें बूआ राजमाता राजाधिदेवी सपरिवार नागरिकोंके साथ उपस्थित हुईं। पुत्री 'मित्रविन्दा' अपनी मातासे श्रीकृष्णका गुणगान सुनकर पूर्वमें ही उनके प्रणय-पाशमें बँध गयी थी। अब तो प्रणय और भी दृढ हो गया।

निष्काम गुरुदेवने गुरु-दक्षिणामें कुछ भी नहीं माँगा, किंतु उनके विशेष आग्रहसे गुरुपत्नीने प्रभास-क्षेत्रमें डूबे हुए मृत पुत्रको जीवित लाकर देनेकी इच्छा व्यक्त की।

श्रीकृष्ण-बलराम तत्काल उसी रथसे, जो मथुरा ले जानेके लिये उपस्थित था, प्रभास-क्षेत्रके समुद्रतटकी ओर चल दिये। श्रीकृष्णको तटपर खड़ा हुआ देख सागर भयभीत हो गया और उसने मानव-रूपमें उपस्थित होकर उनकी पूजा-अर्चना की। गुरुपुत्रके बारेमें पूछनेपर सागरने बताया कि उसका हरण राक्षस पञ्चजनने, जो उसके तलमें रहता है, सम्भवत: किया हो। श्रीकृष्ण तत्काल सागर-तलमें जा पहुँचे। वहाँ राक्षसको मार डाला, पर गुरुपुत्रके न मिलनेपर उसके शरीरसे प्राप्त पाञ्चजन्य नामक शंख लेकर तटपर लौट आये और बलरामके साथ उसी रथसे यमराजकी राजधानी संयमिनी पहुँच गये। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने पाञ्चजन्य शंख बजाया। संयमिनीमें खलबली मच गयी। यमराजके सारे कर्मलेख मिट गये। सभी पापी निष्पाप हो गये। यमराजने कर्मवश आये हुए सांदीपनि-पुत्रको स्थूल शरीर प्रदानकर श्रीकृष्णको दे दिया। गुरुपुत्रको लेकर दोनों भाई अवन्तिका लौट आये और गुरुपत्नीको उनका पुत्र सौंप दिया। इस प्रकार गुरुदक्षिणा देकर, आश्रमवासियोंसे मिलकर, बूआके आग्रहपर कुछ समयके लिये अवन्तिराजका आतिथ्य स्वीकारकर अवन्तियोंको हृदयमें रखकर रथसे मथुरा चले गये।

गुरुकुलके आश्रमका वह स्थान जहाँ भगवान् श्रीकृष्णके पादोंका अङ्कन हुआ था, आज भी अङ्कपाद (अंकपात)-के नामसे जाना जाता है।

मथुरा पहुँचनेपर थोड़े समय-बाद ही कंस-वधसे क्षुभित मगधराज जरासंधने मथुरापर चढ़ाई कर दी। उसे सत्रह बार पराजित किया, किंतु बार-बारके आक्रमणके कारण प्रजा-हितको ध्यानमें रखकर आनर्तदेशमें सागरके मध्य विश्वकर्मासे द्वारकापुरीकी रचना करवाकर वहाँ निवास करने लगे।

अवन्तिराज जयसेनके निधनके पश्चात् राजमाता राजाधिदेवी अवन्ती-शासनकी संचालिका बनीं। पुत्री मित्रविन्दा बालिकासे किशोर होकर यौवनकी देहलीपर पदार्पण कर गयी। दोनों पुत्र विन्द और अनुविन्द दुर्योधनके वशवर्ती हो गये। वे अपनी बहनका विवाह दुर्योधनके साथ करना चाहते थे; किंतु माताके कारण उन्होंने स्वयंवरका आयोजन किया और दुर्योधनके साथ-साथ देश-विदेशके राजकुमारोंको उसमें आमन्त्रित किया गया। दोनों भाई द्वारका समाचार भेजनेके पक्षमें नहीं थे, परंतु माताको वे मना भी कैसे कर सकते थे कि अपने भाईको ही पुत्रीके स्वयंवरकी सूचना न भेजे।

स्वयंवरमें अनेक देशोंके राजकुमार आये। शिप्राके तटपर शिविरोंका नगर बस गया। सात्यकि प्रभृति थोड़ेसे शूर-वीर अश्वारोहियोंको साथ लेकर श्रीकृष्ण आये। महाराज दुर्योधन पधारे। विन्द-अनुविन्दने पूरे उत्साहसे स्वागत किया। श्रीकृष्णको सम्बन्धके नाते राजभवनमें ठहराया गया। राजमाता स्वयं उनके सत्कारमें लगी थीं। स्वयंवरके दिन निश्चित समयपर सभी राजकुमार यथास्थान स्वयंवर-सभामें बैठ गये। दुर्योधनको सभामें प्रवेश-द्वारके समीप ही बैठाया गया था। विन्द-अनुविन्दकी योजना थी कि प्रवेश करते ही बहन दुर्योधनको वरमाला डाल दे। मित्रविन्दा तो मन-ही-मन श्रीकृष्णका वरण कर चुकी थी। माताका अनुमोदन भी था। वह दुर्योधनको छोड़कर आगे बढ़ी ही थी कि विन्द-अनुविन्दने उसे रोकना चाहा। अन्य राजकुमारोंने विरोध किया कि राजकुमारी जिसे चाहेगी, वरेगी। राजकुमारोंके विरोधसे दोनों भाई सहम गये। मित्रविन्दा सीधे वहाँ पहुँच गयी जहाँ श्रीकृष्ण बैठे थे। वरमाला डालते ही श्रीकृष्णने राजकुमारीको अपनी भुजाओंसे उठा लिया और गरुडध्वज रथमें उसे बिठा लिया, जो सभासे बाहर ही खड़ा था। विन्द और अनुविन्द रोकना चाहते थे, किंतु माताके रोकनेपर रुक गये। दुर्योधन भी विवश रहा। श्रीकृष्ण द्वारका पहुँच गये। माताके आदेशसे दहेज द्वारका भेजा गया। द्वारकामें विधिवत् श्रीकृष्ण और मित्रविन्दाका विवाह हुआ। इस प्रकार अवन्तिकाकी राजकुमारी मित्रविन्दा भगवान् श्रीकृष्णकी पाँचवीं पटरानी बनीं।

* * *

लोकमर्यादा श्रीरामलीला

(स्वामी श्रीपरमहंसजी महाराज)

शान्तं सर्वगतं सूक्ष्मं परब्रह्म सनातनम्।
राजीवलोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम्॥

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम अवतार धारणकर जो-जो लीला करते हैं, वह मर्यादित-रूपसे करते हैं। उनके जीवनकी समस्त लीलाएँ आदर्श एवं मर्यादापर प्रतिष्ठित हैं, या यों कहें कि भगवान्को पाकर आदर्श और मर्यादाएँ ही सार्थक हुई हैं।

श्रीरामके चरित्रोंमें न्यूनता नहीं आयी, त्रुटि नहीं आयी, परिपूर्णके समस्त कार्य परिपूर्ण ही होते हैं। भगवान्की मानुषी लीलामें अपूर्णता खोजनेपर भी दृष्टिगोचर नहीं होती। जिस समय जैसा कार्य करना चाहिये, श्रीरामने उस समय वैसा ही कार्य किया। श्रीरामने ब्रह्म—ईश्वर होकर भी मानवोचित मानवता रखकर, मानव-जातिको मर्यादाका पाठ पढ़ाया। मानवताका उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया। मायातीत होकर भी उन्होंने मायाका आश्रय लेकर मानव-लीला की। जिसे आज भी हम लोग श्रीरामलीलाके नामसे सम्बोधित करते हैं। श्रीरामने राजा बनकर राज्यानुशासन भी सत्य, अहिंसा, शान्ति, त्याग एवं धर्ममर्यादाके अनुसार किया। धर्म-संस्थापनके लिये चरित्र किये, जिसके अधीन होकर प्राणी अपने कर्तव्यको कुशलतापूर्वक, मर्यादापूर्वक, शुद्ध उत्तमतापूर्वक पालन कर सके। धर्म साध्य नहीं है, साधन है। भगवान्का अवतार मर्यादा (मानवता) सिखानेके लिये होता है। अवतार साधन है, मनुष्य साधक है। अतएव श्रीरामने अपने चरित्रमें एकमात्र त्यागको प्रधानता दी है। त्यागसे ही श्रीरामने सबके मनपर अपना अधिकार जमा लिया। त्यागकी मर्यादा स्थापित करके श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम कहलाये। श्रीरामका चरित्र सार्वजनिक होनेसे मानवमात्रके लिये परम उपयोगी है, क्योंकि उसमें नियम, संयम, निश्चलता, निष्कामता, निश्छलता एवं त्यागशीलताकी प्रबलता है। अतएव श्रीरामका चरित्र सार्वजनिक रूपमें अनुकरणीय, श्रवणीय तथा पठनीय है। त्यागके बिना जीवन जीवन नहीं बल्कि बन्धन है, मोह है। श्रीरामकी लीलाएँ आदर्श-मर्यादापूर्ण होनेसे शिक्षाप्रद हैं।

श्रीरामका चरित्र राजपथ—सन्मार्ग है, आँख मूँदकर चले जाइये। गन्तव्य-स्थान साकेतधाम पहुँच जायँगे। श्रीरामने मानवधर्मके उत्थानके लिये अवतार धारण किया, भक्तोंको भक्ति-मर्यादाका पाठ पढ़ानेके लिये ही अपने चारुचरित्रोंका सुन्दर सेतु बना दिया, ताकि सर्वसाधारण प्राणी सुगमतासे भवसागरको पार कर सकें। श्रीरामके त्यागमय चरित्र सदैव समादरणीय हैं, संग्रहणीय हैं, पथ-प्रदर्शक हैं। लोकहित तथा लोकमर्यादाकी स्थापनाके लिये ही उन्होंने मानवीय लीलाएँ की हैं। उनकी लीलाओंमेंसे एक दिव्य लीला संक्षेपमें दर्शनीय है—

भगवान् श्रीरामने बाल्यकालमें पतंग उड़ानेकी लीला की। उन्होंने डोर-लगा पतंग इस प्रकार आकाशमें उड़ाया कि पतंग उड़ते-उड़ते देवलोक—स्वर्गमें जा पहुँचा और स्वर्गके देव-भवनकी खिड़कीके पास जाकर ठहरा। श्रीरामने डोर खींची, परंतु पतंग हिला ही नहीं, क्योंकि वहाँपर देवराज इन्द्रके पुत्र जयन्तकी पत्नी जयन्तीने उसे पकड़ लिया था, पँचरंगा पतंग देखकर सोचा यह साधारण मनुष्यका पतंग नहीं है। हो-न-हो परब्रह्मने पृथ्वीपर अवतार लिया है, लीला करते हुए पतंग उड़ाया है। अच्छा हुआ इस पतंगके द्वारा भगवान्के दर्शन करूँगी।

इधर श्रीराम सोचने लगे—लगता है पतंगको किसी देवगणने पकड़ लिया है, अतः उन्होंने वायुपुत्र हनुमान्से कहा—'हनुमान्! तुम इस पतंगकी डोरके साथ ऊपर चढ़ो और जाकर देखो किसने पतंगको पकड़ रखा है?' अपने आराध्यकी आज्ञा प्राप्त करके अंजनीनन्दन हनुमान्जी डोरके साथ ही नभोगामी हुए और देवलोकमें पहुँच गये। वहाँ सुर-भवनकी खिड़कीके पास देवाङ्गनाने पतंगको पकड़ रखा है, यह देख हनुमान्जीने समीप जाकर प्रणाम कर पूछा—'हे देवि! आपने पतंग क्यों पकड़ रखा है? छोड़ दीजिये।' जयन्तीने कहा—'हे भद्र! पतंग छोड़नेमें एक शर्त है' हनुमान्ने कहा—'वह क्या?' जयन्ती बोली 'जिसका यह पतंग है, जिसने उड़ाया है, उसका दर्शन कराओ तो मैं पतंग छोड़ दूँगी, अन्यथा मैं पतंग छोड़नेवाली नहीं।' यह सुनकर हनुमान्जी डोरको पकड़ देवलोकसे वापस मर्त्यलोकमें श्रीरामजीके पास आकर कहने लगे—'हे प्रभो! देवलोकमें देवराज इन्द्रकी पुत्रवधू जयन्तीने पतंग पकड़ रखा है। उसका आपमें अनुराग है। उसने कहा कि यह पतंग साधारण व्यक्तिका नहीं हो सकता है, यह तो

किसी भगवदवतारीका ही होना चाहिये। देव-शरीरको प्राप्त करनेवाले तो केवल पुण्यकर्मका फल भोगते हैं—'*धिग जीवन देव सरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे॥*' भगवद्भक्ति-रहित जीवनको धिक्कार है। मुझे श्रीरामके दर्शनोंकी तीव्र अभिलाषा है। मैं उनका दर्शन करनेके लिये आतुर हूँ। साथ ही उसने यह शर्त भी की कि 'श्रीरामके दर्शन कराओ तो पतंग छोड़ दूँगी।' भगवान् भाव-भक्तिके भूखे होनेसे कहने लगे—'हनुमान्! तुम जाकर उस जयन्तीसे कहो—मैं मर्यादापुरुषोत्तम आदर्श एवं मर्यादाकी स्थापनाके लिये ही अवतार लिया हूँ। अतएव मर्यादाके विपरीत अकेली स्त्रीसे मैं नहीं मिल सकता। लोक-लज्जाके अनुसार तुम भी मेरे पास नहीं आ सकती—तेरी भक्ति-भावना प्रबल है, अत: जिस समय मैं वनवासकी अवधिमें चित्रकूट आऊँगा, उस समय वहाँ देवगण मेरे रहनेके लिये पर्णशाला बनाने आयेंगे, तब तुम भी इन्द्रादि देवताओंके साथ लोकमर्यादाके अनुरूप वहाँ आकर मेरे दर्शनका सुख प्राप्त कर सकोगी।'

हनुमान्‌जी रामजीके कथनानुसार पुन: उस पतंगकी डोरके साथ ही स्वर्गलोक चल पड़े। वहाँ पहुँचकर हनुमान्‌ने देवाङ्गना जयन्तीसे श्रीरामके वचन सुनाये। श्रीरामके दर्शन-सम्बन्धी वचनोंको सुनकर जयन्ती अत्यन्त प्रसन्न हो गयी और बड़े ही भाव-विह्वलतासे हनुमान्‌जीका साभार प्रकटकर उसने पतंगको छोड़ दिया। श्रीरामने पतंगको खींचकर डोरको समेट लिया।

श्रीरामने धर्मनीति-लोकमर्यादाके कारण ही जयन्तीसे अकेले मिलना नहीं चाहा, क्योंकि नीति कहती है—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

(मनु० २। २१५)

अर्थात् माता, बहन या बेटीके साथ भी एक आसनपर न बैठे, क्योंकि बलवान् इन्द्रियोंका समूह विद्वान्‌को भी अपनी तरफ खींच लेता है। लोकापवादका ध्यान तो रखना ही चाहिये। लोकविरुद्ध कोई आचरण नहीं करना चाहिये। इसलिये श्रीरामके अवतारका उद्देश्य ही मर्यादाकी स्थापना और धर्मकी रक्षा करना था।

श्रीरामने सीताजीसे विवाह करनेके कुछ समय बाद माता कैकेयी और पिता दशरथजीकी आज्ञासे सत्यकी रक्षा एवं मर्यादाकी स्थापना करते हुए चौदह वर्षतकके लिये सीता-लक्ष्मणसहित वनमें पधारे। आगे चलकर चित्रकूटमें निवास किया। देवतागण भगवान्‌की पर्णशाला बनाने स्वर्गसे आये। उनके साथ जयन्ती भी चित्रकूट आयी, वहाँ श्रीराम तथा सीताके त्रिभुवनमोहन-स्वरूपका दर्शनकर वह कृतकृत्य हो गयी।

उधर रात्रिमें जयन्त अपने महलमें अपनी स्त्री जयन्तीको न देख आश्चर्यचकित हो गया कि मेरी स्त्री रात्रिमें कहाँ चली गयी? सारी रात चिन्तामें व्यतीत हो गयी। प्रात: जयन्ती इन्द्रादि देवताओंके साथ अपने देवलोकमें आयी। जयन्तने अपनी स्त्रीसे पूछा—'तुम रात्रिमें कहाँ गयी थी?' जयन्तीने कहा—'देवाधिदेव सर्वलोक-महेश्वर भगवान् श्रीरामके दर्शनार्थ देवराज आदि देवताओंके साथ चित्रकूट गयी थी।' यह सुनकर जयन्तके मनमें श्रीरामके प्रति वैरभाव उत्पन्न हुआ और वह बदला लेने-हेतु श्रीरामके पास कौएके वेशमें आया। चित्रकूटमें स्फटिक-शिलापर सीताजीके साथ श्रीराम विराजमान थे। तपस्वी-वेश देखकर काग-रूपधारी जयन्त सीताजीके चरणमें चोंच मारकर भागा। सीताजीके चरणसे रक्त बहता हुआ देखकर श्रीरामने धनुषपर सींकके बाणका संधान किया—'*सींक धनुष सायक संधाना*'। कौआ भयभीत होकर अपना निज रूप धारणकर पिताके पास गया। इन्द्रने इसे रामविमुख जानकर त्याग दिया। ब्रह्मधाम गया, शिवलोक गया, परंतु किसीने सहानुभूति नहीं प्रकट की। तदनन्तर नारदजीको दया आयी। उन्होंने जयन्तसे कहा—'तुम काग-वेशमें श्रीरामकी शरण जाकर '**त्राहि माम्-त्राहि माम्**' 'शरणागतकी रक्षा कीजिये, कृपया क्षमा कीजिये'— ऐसा पुकारना। शरणागतवत्सल दयालु रघुराई ऐसा सुनते ही तुम्हें मुक्त कर देंगे।' जयन्त कौएका वेश धारण करके भगवान्‌की शरणमें गया और कहा—

अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जानि नहिं पाई॥
निज कृत कर्म जनित फल पायउँ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ॥

(रा० च० मा० ३। २। १२-१३)

शरणागतकी आर्त-वाणी सुनकर भगवान् श्रीरामजीने मर्यादाकी रक्षाके लिये साम, दाम, दण्ड-भेदानुसार दण्डनीतिको अपनानेका निश्चय किया—

जौं नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा॥

(रा० च० मा० ७। १०७। ४)

अतएव भगवान्‌ने शरणागतके उद्धारके लिये उसी सींकसे उसकी एक आँख काना करके छोड़ दिया। भगवान् श्रीरामके दर्शन-महिमाके तत्त्व-रहस्य-गुणके प्रभावको जानकर

जयन्तका अज्ञान-आवरण नष्ट हो गया। उसने अपनी पत्नी जयन्तीसे जाकर कहा—'देवि! तुम धन्य हो, परब्रह्म राम तो स्वयं भगवान् हैं। मैं दर्शनकर कृतार्थ हो गया।'

भगवान् भरण-पोषणाधार, शरण्य, सर्वव्यापक, करुणाकर एवं षडैश्वर्य-गुण-सम्पन्न हैं। भगवान्‌की महिमाको देवता भी नहीं जानते। अतः निन्द्यकी निन्दामें निन्दाकी प्रवृत्ति नहीं होती, अपितु स्तुत्यकी स्तुतिमें निन्दाकी प्रवृत्ति होती है। ऐसा होनेपर भी श्रीरामरूपसे धर्मरूप और ब्रह्मरूप उभय-विध वेदार्थ अवतरित हैं। यही कारण है कि राम धर्ममूर्ति हैं—'**रामो विग्रहवान् धर्मः**' ऐसा कहा जाता है। मर्यादापुरुषोत्तममें मर्यादाका समन्वय धर्माभिप्रायसे है और लोकमर्यादाकी स्थापना ही श्रीरामके अवतारका प्रयोजन है। इसीलिये श्रीरामने अपने चरित्रके माध्यमसे मर्यादित आचारसंहिताका सदुपदेश दिया है तथा मर्यादाका अनुसरण करनेवाले जीवोंका सर्वविध कल्याण ही किया है।

अतः प्राणिमात्रको श्रीराम-नामका जप-कीर्तन एवं उनके अनुपम रूप-माधुर्यका ध्यान करते हुए उनके सुचरित्रोंको जीवनमें धारण करना चाहिये। साथ ही श्रीरामकी सुमधुर कथाका नियमपूर्वक प्रपठन-श्रवण करना चाहिये तथा उनके सर्वोत्तम आदर्शको आगे रखकर अपने समस्त व्यवहार-कार्यका सम्पादन करना चाहिये और अन्ततः उन्हीं मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी भक्तिमें अपनेको निमग्न करके मानव-जीवन सफल कर लेना चाहिये।

* * *

वैष्णवदर्शनमें लीला-तत्त्व

(डॉ० श्रीश्यामशर्माजी वाशिष्ठ, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, शास्त्री, काव्यतीर्थ)

भारतीय धर्म-दर्शनके संदर्भमें ब्रह्माण्डका प्रत्येक कार्य—सृष्टिसे प्रलय और प्रलयसे सृष्टिपर्यन्त लीला ही है। प्रायः समस्त धर्मदर्शन किसी-न-किसी रूपमें सृष्टिको परमात्माकी लीला ही मानते हैं, फिर चाहे वह उसे विवर्तवाद कहें या परिणामवाद।

श्रुतिमें '**एकोऽहं बहु स्याम्**' या '**इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते**' आदि सृष्टिके विषयमें जो कुछ कहा गया है, उसे परमात्माकी लीला ही माना गया है। वस्तुतः परमात्माका अवतार लेना भी एक लीला है।

वैष्णवदर्शनोंके अनुसार सृष्टिके अन्तर्गत जो कुछ हो रहा है, वह सब परमात्माकी लीला या खेल ही है और यह सृष्टिलीला सुखोन्मत्तके नृत्यकी तरह है, जिसका कोई प्रयोजन नहीं है।

इसीलिये संत तुलसीदासजीने लिखा है—

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गुसाईं॥

अर्थात् जैसे रंगमंचपर नट-नटी विभिन्न पात्रोंकी वेश-भूषामें अभिनय करते हैं, वैसे ही परमात्मा और उसकी शक्तियोंके द्वारा जो कुछ ब्रह्माण्डमें हो रहा है वह सब लीला ही है।

सामान्यतः भगवान्‌का चरित आदर्शपूर्ण होनेके कारण अनुकरणीय होता है, साथ ही चरित दिव्य एवं अलौकिक होनेके कारण वह लीला कहलाता है। अतएव श्रीरामचन्द्र मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं, उनका चरित आदर्श एवं अनुकरण-योग्य है, जबकि श्रीकृष्ण लीला-पुरुष हैं, उनका चरित लीला है, दिव्य है। इस लीलाविग्रहके कारण ही श्रीकृष्ण लोकरक्षकके साथ-साथ लोकरञ्जक भी हैं।

वैष्णवदर्शनमें 'लीला' शब्द एक विशिष्ट साधनतत्त्वके रूपमें प्रयुक्त हुआ है। इसमें लीलाको एक भक्तितत्त्वके रूपमें भक्तिसाधनाके लिये अपरिहार्य माना गया है। इसीलिये लिखा भी है—'**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**'।

लीला-तत्त्वका रहस्य

वैष्णव-भक्तिदर्शनके अनुसार लीला-तत्त्वके रहस्यको स्पष्ट करते हुए श्रीमद्भागवतके सुबोधिनी टीकाकारने लिखा है—

लीला नाम विलासेच्छा कार्यव्यतिरेकेण कृतिमात्रम्। न तया कृत्या बहिः कार्यं जन्यते। जनितमपि कार्यं नाभिप्रेतम्। नापि कर्तारं प्रयासं जनयति। किन्त्वन्तःकरणे पूर्णे आनन्दे तदुल्लासेन कार्यजननसदृशी क्रिया क्व चिदुत्पद्यते।

अर्थात् विलासकी इच्छाका नाम ही लीला है। यह लीला (विलासेच्छा) किसी भी प्रयोजनसे रहित केवल कृतिमात्र होती है। उस कृतिसे बाहर कोई कार्य उत्पन्न नहीं होता और यदि कार्य उत्पन्न भी हो जाय तो वह अभीष्ट नहीं होता और न ही कर्ताके प्रति कोई प्रयास उत्पन्न करता है। किंतु (वास्तविकता यह है कि) आनन्दसे परिपूर्ण अन्तःकरणमें उस आनन्दके उल्लाससे कार्योत्पत्ति-सदृश कोई विचित्र क्रिया ही उत्पन्न हो जाती है, बस वही

लीला है।

श्रीकृष्ण लीलापुरुष हैं, लीला-विग्रह हैं, वे परब्रह्म हैं एवं परिपूर्ण, परितृप्त तथा पूर्णकाम हैं। उनकी लीलाका कोई प्रयोजन नहीं होता, बल्कि उनकी लीला ही प्रयोजनस्वरूपा होती है। अतएव श्रीवल्लभाचार्यजीने ब्रह्मसूत्र (२। १। ३३)-पर अणुभाष्यमें लिखा है—

नहि लीलायाः प्रयोजनमस्ति लीला एव प्रयोजनत्वात्।

अतएव श्रीकृष्णको सभी प्राणियोंमें विलास करनेवाला तथा महारासके रसका उत्सुक कहा गया है—

महारासरसोल्लासी विलासी सर्वदेहिनाम्॥

राधा-कृष्ण अभिन्न एवं अद्वय हैं—एक हैं, फिर भी वे अपने लीला-विलासके लिये पृथक्-पृथक् हो जाते हैं, जैसे एक दालके दो दल। यह भी दिव्य लीला है। इसीसे कहा है—

येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धि-
देहाश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत्॥

(श्रीराधातापनीयोपनिषद्)

अर्थात् ये राधा और कृष्ण जो रसके सागर हैं वे एक ही हैं, किंतु लीलाके लिये ही पृथक्-पृथक् दो रूपमें हो गये हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ही परमेश्वर परब्रह्म हैं। विशेष-रूपसे श्रीकृष्णमें ईश्वरत्व एवं भगवत्ताका पूर्ण विकास है। अतः कहा भी है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिगोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

(ब्रह्मसंहिता ५। १)

भगवान् श्रीकृष्ण लीला-पुरुषोत्तम हैं। वैष्णवदर्शनके अनुसार व्रजचन्द्र व्रजराज श्रीकृष्णकी लीलाओंका रसास्वाद ही भक्तका काम्य, परम साध्य एवं परम पुरुषार्थ है। श्रीकृष्णके माधुर्य-रसका आस्वादन करानेके कारण ही इसे पञ्चम पुरुषार्थ कहा गया है—

पञ्चमपुरुषार्थ सेई प्रेममहाधन।
कृष्णेर माधुर्यरस कराय आस्वादन॥

(चै० च० १। ७। १३७)

भगवल्लीलाकी यही दिव्यता है कि मुक्त जीव भी लीलाके माध्यमसे भजन या रसास्वादनके लिये शरीर धारण करते हैं—

मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते।

लीला-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ सर्वातिशायिनी हैं। श्रीकृष्णकी दो दिव्य शक्तियाँ हैं—ऐश्वर्य एवं माधुर्य। श्रीकृष्णकी ऐश्वर्य-शक्ति भी माधुर्यमण्डित है। अतएव श्रीकृष्ण माधुर्यमूर्ति हैं। माधुर्य ही इनका कृष्णत्व है। अतः कृष्णका रूप, ऐश्वर्य एवं उनकी लीलाएँ—ये सभी कुछ माधुर्यमय हैं। इनके माधुर्यमें ही अद्भुत आकर्षण-शक्ति है—*'कृष्णमाधुर्येर एक स्वाभाविक बल।'* यही माधुर्य श्रीकृष्णकी भगवत्ताका सार है। *'माधुर्य ई भगवत्तार सार।'*

वल्लभदर्शनके अनुसार श्रीकृष्ण यों तो वस्तुतः गोलोकमें ही नित्य आनन्दमग्न रहते हैं, किंतु अवतार दशामें व्रजमें अवतरित होकर लीला-विलास करते गोचर होते हैं।

चैतन्यमतमें लीला-तत्त्व

चैतन्य-दर्शनमें लीला-तत्त्वका बहुत गम्भीर एवं तात्त्विक विवेचन किया गया है। चैतन्यमतके अनुसार लीलापुरुष श्रीकृष्णकी लीलाशक्ति माधुर्यप्रपूरित लीलारसका आस्वादन करानेके उद्देश्यसे श्रीकृष्णके भगवत्-रूपको प्रच्छन्नकर उनके मनमें व्रजविहारी नन्दनन्दन एवं यशोदातनय होनेका अभिमान जगा देती है और भगवान् श्रीकृष्ण अपनी स्वरूपा-शक्तिसे लीला-विलासमें प्रवृत्त हो जाते हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्णकी स्वरूपा-शक्ति भी तीन हैं—सत्से संधिनी, चित्से संवित् और आनन्दसे ह्लादिनी। लीला-तत्त्वकी दृष्टिसे इनमें ह्लादिनीका सर्वोच्च स्थान है। श्रीराधा ह्लादिनी-शक्तिरूपा हैं एवं मूर्तविग्रह हैं।

इस ह्लादिनीशक्तिसे भगवान् स्वयं आह्लादित होते हैं तथा दूसरोंको भी आह्लादित करते हैं।

चैतन्यमतके आचार्योंके अनुसार भगवान्‌की अनन्त शक्तियोंमें तीन प्रमुख हैं—(१) स्वरूपाशक्ति, (२) मायाशक्ति और (३) जीवशक्ति। इनमें स्वरूपाशक्ति ही चित्-शक्ति कही गयी है। अनन्तकोटि जीव ही जीवशक्ति हैं। इनमें चित्‌रूपा स्वरूपाशक्ति अन्तरङ्गा है। जीवशक्ति तटस्था है और मायाशक्ति बहिरङ्गा है। भगवान्‌की लीलाकी आधारभूता-शक्ति स्वरूपा-शक्ति है। श्रीजीवगोस्वामीके अनुसार भक्त-ध्येयको ध्यानमें रखकर भगवत्तत्त्वकी नराकारमें कल्पना करके उनकी शक्तियोंको स्त्रीरूपमें परिकल्पित किया गया है। इसीसे भगवान् अपनी शक्तियोंके साथ लीला-विलास करते हैं। यही नित्यलीला चिन्मयलीला एवं नित्यविहार कहलाता है। यही लीलाएँ भक्तोंके लिये अधिक ग्राह्य एवं सर्वाधिक आनन्ददायिनी होती हैं। कविराज श्रीकृष्णदासने लिखा भी है—

कृष्णेर जतेक खेला सर्वोत्तम नरलीला नरवपु ताहार स्वरूप।

गोपवेश वेणुकर नवकिशोर नटवर नवलीला हय अनुरूप॥

व्रजविहारी नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी लीलाभूमि व्रज है। व्रजमें ही शुद्ध माधुर्य है और परब्रह्म श्रीकृष्णके आनन्दरसका पूर्णतम विकास है। व्रज ही लीलाधाम गोलोक है। व्रजमें ही माधुर्यमूर्ति श्रीकृष्णके लीलारसकी ऐकान्तिक पुष्टि होती है, जबकि द्वारकामें ऐश्वर्यमिश्रित माधुर्य है, क्योंकि लीला एकाकी नहीं होती, अतः लीलाकी रसमयता एवं परिपूर्णताके लिये परिकर एवं धाम आदिकी कल्पना की गयी है। इसीसे उनकी लीलाओंका सान्द्र तद्रूप एवं नित्य-रसास्वाद सुलभ होता है।

भगवान्‌की लीलाएँ अनेक प्रकारकी होती हैं। किंतु भावके आधारपर कुंजलीला, निकुंजलीला आदि प्रमुख हैं, और धामके आधारपर व्रजलीला, गोवर्धनलीला एवं वृन्दावनलीला आदि मुख्य हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी लीला प्रकट एवं अप्रकट दो रूपोंमें होती है। जब लीलामें प्रपञ्च गोचर होता है तो 'प्रकट-लीला' कहलाती है और जब दृष्टिगोचर नहीं होता तो 'अप्रकट-लीला' कहलाती है—

प्रपञ्चगोचरत्वेन लीला प्रकटा स्मृता।
अन्यास्त्वप्रकटा यान्ति तादृश्यस्तदगोचराः॥

(लघुभागवतामृत)

वस्तुतः ब्रह्माण्डमें अहर्निश होनेवाली भगवान्‌की बाल्य, पौगण्ड आदि लीलाओंकी अपेक्षा व्रजधामकी नित्यलीलाओंका माधुर्यानन्द सर्वातिशायी है; क्योंकि व्रजमें भगवान् कृष्णका नित्यकिशोरभाव तथा व्रजललनाओंका नित्यकिशोरीभाव रहता है। जब श्रीकृष्ण अपने सम्पूर्ण परिकरसहित व्रजधाममें अवतरित होकर व्रजवासियोंके मध्य लीलारसास्वादन करते हैं तो यह 'प्रकट-लीला' होती है और मन्त्रोपासनाद्वारा तथा स्वारसिकी लीला 'अप्रकट-लीला' कहलाती है। वस्तुतः माधुर्यमय व्रजरसके साधकोंको प्रकट-लीला तथा मायाबद्ध जीवके लिये अप्रकट-लीलाका विधान है। दूसरे शब्दोंमें वन-वृन्दावनकी लीला प्रकट तथा मन-वृन्दावनकी लीला अप्रकट कही गयी है। इसी प्रकार व्रजमें होनेवाली प्रकट-अप्रकट-लीला नित्यलीला मानी गयी है, जबकि शेष नैमित्तिक लीला मानी गयी हैं। सामान्यतः शास्त्रोंमें लीलाके तीन रूप बतलाये गये हैं, जैसे—

(१) आन्तरिक-लीला, (२) सहज-लीला और (३) बहिर्लीला। आन्तरिक-लीला वन-वृन्दावनमें अर्थात् नित्यधाममें होती है। सहज-लीला नित्यवृन्दावनमें दिव्य रास-विलासके रूपमें होती है और बहिर्लीला सृष्टिपालन आदिके रूपमें होती है। रासविहारी श्रीकृष्णके भक्तोंको सहज-लीलासे प्राय माधुर्यप्रेमकी प्राप्ति परम काम्य होती है, किंतु यह भावदेह या सिद्धदेहसे सम्भव है। सामान्यतः भक्तजन प्रकट या आन्तरिक लीलाकी ही भावना करते हैं, जिसमें श्रीराधा एवं व्रज-गोपियाँ ही परिकरके रूपमें स्वीकृत हैं।

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ कामलीलाएँ नहीं हैं, वरन् श्रीकृष्णकी ह्लादिनी-रूपा श्रीराधा एवं श्रीकृष्णके दिव्य प्रेमैकरूपा हैं। अतः श्रीसनातनगोस्वामीजीने कहा भी है—'**ह्लादिनीशक्तिर्विलासलक्षणपरमप्रेमभूमैवैषा रिरंसा न तु काममयीति।**' श्रीकृष्णसुखैकतात्पर्यरूप प्रेम-रसका रसास्वादन ही इसका प्रयोजन है। क्योंकि जब प्रेम-प्रभावका ऊर्ध्वगमन होता है, तब वह लीला होती है और जब उसका अधोगमन होता है तब वह भोग कहलाता है।

यह लीला-माधुर्यकी दिव्यता एवं वैशिष्ट्य है कि सामान्यजन भी लीलारसका आस्वाद करते-करते दिव्य प्रेममय हो जाता है और वह बहिर्वृत्तियोंसे ऊपर उठकर स्वयं परमहंसरूपा गोपियोंके तुल्य लीला-विलास एवं रास-रसका अङ्ग ही हो जाता है। अतएव कहा भी है कि रसिक भक्तको स्वयं गोपीभावसे लीलारसास्वादन-रत गोपिकाओंके रूपमें ही अनुभव करना चाहिये—

आत्मानं चिन्तयेत् तत्र तासां मध्ये मनोहराम्।
रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्॥

(सनत्कुमार-तन्त्र ५२। ३३)

भगवान्‌का भी यही वचन है कि मैं भक्तोंके अनुरञ्जनके लिये ही ये लीलाएँ करता हूँ।

मद्भक्तानां विनोदार्थं करोमि विविधाः क्रियाः॥

श्रीव्यासजीके शब्दोंमें शीघ्र ही पराभक्तिकी प्राप्ति तथा अन्तःकरणकी परम शान्ति ही लीला-विलासका मुख्य प्रयोजन है—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। ३९)

⁂

श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन

भगवान् श्रीकृष्णको माँ यशोदाद्वारा बाँधनेका उपक्रम

क्षीरसिन्धुके मन्थनसे सुधा निकली थी। अमरवृन्द सुधाका पान करके तृप्त हुए थे; किंतु उस सुधामें वह सर्वथा अनुपम सुस्वाद कहाँ, जो व्रजेश्वरीके स्तन्यपीयूषमें है। इसीलिये अनादिकालसे जननीका स्तन्यपान करते रहनेपर भी सच्चिदानन्द, पूर्णब्रह्म, अनन्तैश्वर्यनिकेतन स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको यहाँ 'अलम्' का भान नहीं हुआ; प्रत्युत उनकी यह अमृतपानकी अभिलाषा निरन्तर बढ़ती ही जा रही है, अनवरत पीते रहनेपर भी तृप्ति होती ही नहीं। आज भी वे यशोदारानीके अङ्कमें विराजित होकर स्तनसे झरती हुई वात्सल्यसुधाका रस ले रहे हैं, अपने अरुण अधरोंके बीच जननीका स्तनाग्र लेकर, दोनों करपल्लवोंसे जननीका स्तनाग्र धारण किये, अतिशय उत्कण्ठित हुए, गूँ-गूँ शब्द करते हुए दूध पी रहे हैं, पर तृप्ति नहीं। ज्यों-ज्यों पीते हैं, त्यों-ही-त्यों क्षुधा और भी बढ़ती जा रही है। जिस परिमाणमें स्तनसे दूध झरता है, मानो उससे सहस्रगुने अधिक परिमाणमें पीनेकी लालसा श्रीकृष्णचन्द्रके हृदयमें उमड़ चलती है और यह देखकर पुनः व्रजेश्वरीकी वात्सल्यधारा भी अनन्तगुणित होकर दूधके रूपमें बहने लगती है; इससे फिर श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तन्यपानकी उत्कण्ठा बढ़ती है, इस प्रकार व्रजेश्वरीके स्तन्यदानकी एवं श्रीकृष्णचन्द्रके स्तन्यपानकी लालसामें होड़ लग रही है। मानो दोनों ही होड़ लगाकर असीमकी ओर दौड़ रही हैं।

किंतु अचिन्त्यलीला-महाशक्तिको अब आगेकी लीला सजानी है। इसीलिये वे स्तन्यदान एवं पानकी लीलाको बीचमें ही छोड़कर आगे बढ़ जाती हैं। जाकर उस चूल्हेकी आँचको तेज कर देती हैं, जिसपर यशोदारानी अपने नीलमणिको पिलानेके लिये दूध औटा रही थीं। सहसा आँच तेज हो जानेके कारण दूध उफनने लगता है। व्रजरानी तो अपने नीलमणिको स्तन्यदान करनेमें, पुत्रके स्मितसमन्वित मुखचन्द्रकी, उसपर बिखरी कुन्तल-राशिकी शोभा निहारनेमें तन्मय हो रही थीं; पर मानो किसीने बरबस उनकी तन्मयता तोड़ दी हो, तोड़कर दृष्टि भी उस ओर फेर दी हो—इस प्रकार अचानक जननीकी दृष्टि उफनते हुए दूधपर जा पड़ती है—

फिरि मति फेरी, गृह तन हेरी। अगिनि धर्‌यौ तौ, पय निसर्‌यौ तौ॥

फिर तो निमेष पड़ते-न-पड़ते जननी नीलमणिके मुखसे स्तनाग्र खींचकर उन्हें सहसा गोदसे उतारकर, वहीं भूमिपर बैठाकर दूधके समीप दौड़ पड़ती हैं। इसलिये नहीं कि जननीको नीलमणिकी अपेक्षा दूध अधिक प्यारा है; उन्हें तो यह चिन्ता लग रही थी कि यदि यह उफनकर चूल्हेमें गिर गया तो फिर पद्मगन्धा गौओंका परम सुमिष्ट दूध मैं आज नीलमणिको नहीं पिला सकूँगी। विशुद्ध प्रेमका यह भी एक स्वभाव है कि प्रेमी अपने प्रेमास्पदको सुख पहुँचानेके लिये प्रेमास्पदके संयोगसे प्राप्त होनेवाले अपने सुखका भी सहर्ष त्याग कर देता है। वात्सल्यरसघनमूर्ति यशोदारानीको श्रीकृष्णचन्द्रके स्पर्शसे कितना-कैसा सुख होता है, यह प्राकृत मनकी कल्पनामें समा ही नहीं सकता। अगणित योगीन्द्र-मुनीन्द्र सहस्र-सहस्र वर्षोंकी साधनाके उपरान्त केवल ध्यानमें, क्षणभरके लिये जिनका स्पर्श-सुख पाकर सदाके लिये आनन्दमत्त हो जाते हैं, उन्हें प्रत्यक्ष अपने वक्षःस्थलपर धारणकर स्तन्य पिलाते समय व्रजेश्वरी किस परमानन्द-सिन्धुमें निमग्न हो जाती होंगी—यह जड मन-बुद्धिके आकलनमें आनेवाली वस्तु नहीं है; किंतु अपने ऐसे अप्रतिम सुखका भी जननी नीलमणिके सुखके लिये त्याग कर देती हैं। जननीकी धारणा यह है—'मेरे स्तनदूधकी अपेक्षा इस पद्मसौरभवाले दूधमें अधिक जीवनी शक्ति है, इसकी तुलनामें वह अत्यधिक सुमिष्ट है, उसके पानसे मेरे नीलमणिके अङ्ग अधिक सुपुष्ट होंगे, मेरा नीलमणि उसे पीकर अधिक तृप्त होगा; पर वही दूध उफनकर नष्ट जो हो रहा है।' मैया इसे कैसे सहन कर सकती है? मैयाके लिये नीलमणिकी तृप्ति, नीलमणिका मङ्गल अपने सुखकी अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान् है। उस सुखके जानेसे नीलमणिकी तृप्ति होती हो, मङ्गल होता हो, नीलमणिके सुखकी सम्भावना दीखती हो, तो मैया इसके लिये सदा प्रस्तुत हैं। उन्हें यह भावना नहीं करनी पड़ती, उनका तो यह चिरंतन स्वभाव है; अवसर उपस्थित होते ही प्रेमका यह स्वभाव उनकी चेष्टामें व्यक्त हो जाता है। इसीलिये वे आज भी नीलमणिको छोड़कर दूधकी रक्षा करने चली गयीं। अस्तु!

इधर श्रीकृष्णचन्द्र रूठ गये। जननी यद्यपि जाते समय कह गयी थीं—

वत्स! निर्मञ्छनं भजामि, क्षणं तावन्मन्थनगर्गरी रक्ष्यतां त्वदीयं पयो वीक्ष्य यावद् द्रुतमहमायामि इति॥

(श्रीगोपालचम्पूः १।८।१६)

'मेरे लाल! बलिहारी जाऊँ। देख, तेरे दूधको सँभालकर मैं तुरंत आ रही हूँ। तबतक तू इस मन्थनभाण्डकी रक्षा करते रहना, भला!'

पर इससे उन्हें संतोष क्यों होने लगा! 'मैया मुझे क्षुधित—अतृप्त छोड़कर क्यों चली गयी? साथ क्यों नहीं ले गयी?' उन्हें तो इस बातका दुःख है। यही दुःख रोषमें परिणत हो गया। अरुण अधर-ओष्ठ प्रस्फुरित होने लगे, नेत्रोंमें अश्रु भर आये, भृकुटि और भी वङ्किम हो गयी। दाँतोंसे अधरको दबाकर रोषभरी दृष्टिसे वे इधर-उधर देखने लगे। उन्होंने देखा—जननी तो अँगीठीके समीप, उस ओर मुख किये दूधकी सँभालमें व्यस्त है; फिर तो रोष और बढ़ा। मन्थनभाण्डका मुँह पकड़कर वे उसे उलट देनेकी चेष्टा करने लगे, पर आज श्रीकृष्णचन्द्रमें इतना बल कहाँ जो यशोदारानीके हाथोंसे स्थापित दधिपूरित भाण्डको वे उलटा दे सकें। उलटना तो दूर, भाण्ड हिलातक नहीं। वे दाँत पीसकर पीछेकी ओर ताकने लगे। इतनेमें पास पड़े हुए एक शिलाखण्ड (लोढ़े)-पर दृष्टि पड़ गयी। बस, साधन मिल गया। लपककर उन्होंने लोढ़ेको हाथमें ले लिया और चले आये मन्थनभाण्डके समीप। एक बार पुनः देखा—जननीने इस ओर ताका या नहीं; किंतु जननी तो अभी भी उसीमें उलझी हुई थीं। अब तो श्रीकृष्णचन्द्रके लिये धैर्यकी सीमा आ गयी थी, जननीका यह व्यवहार असह्य हो गया था। उन्होंने लोढ़ेसे मन्थनभाण्डके ऊपरी भागपर एक प्रहार किया। खन्-खन् ध्वनि हुई, पर भाण्ड फूटा नहीं। साथ ही श्रीकृष्णचन्द्रका क्रोध किंचित् शिथिल पड़ गया; क्योंकि उन्हें भय होने लगा—'कहीं जननीने यह खन्-खन् ध्वनि सुन ली होगी तो?' उन्होंने भयमिश्रित नेत्रोंसे जननीकी ओर देखा; किंतु संयोगकी बात! जननी उसी प्रकार अभी भी दूधकी सँभालमें संलग्न थीं। यह देखकर श्रीकृष्णचन्द्रका भय तो जाता रहा, पर क्रोध द्विगुणित हो गया। इस बार उन्होंने पहलेकी अपेक्षा बहुत अधिक वेगसे लोढ़ेको मन्थनभाण्डके तल-देशसे टकरा दिया। फिर क्या था—चोटके अनुरूप ही भाण्डमें छिद्र हो गया; दहीकी धारा बह चली। श्रीकृष्णचन्द्रके भी उल्लासकी सीमा न रही।

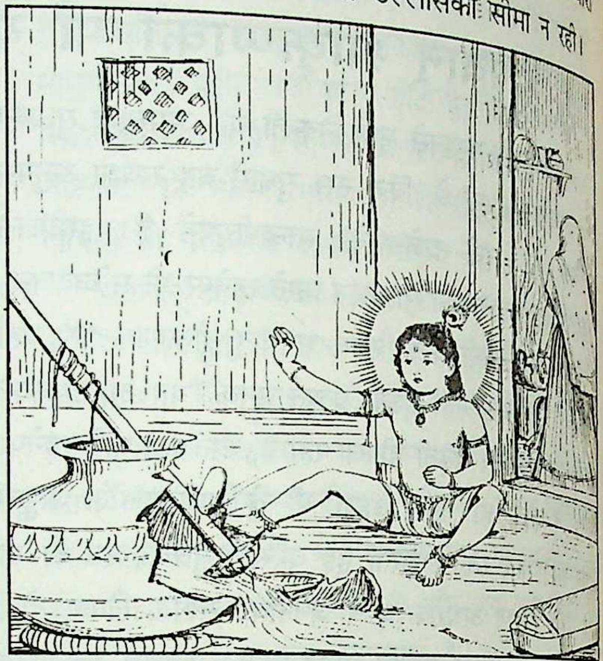

पर अब यहाँ रहना निरापद नहीं—बाल्यलीला-विहारी यह भी जान गये। मानो नन्दप्रासादके वास्तुदेवने उनके कानोंमें यह कह दिया हो—'यशोदाके नीलमणि! जानते हो, यह भाण्ड तुम्हारी पितामही वरीयसीके समयसे सुरक्षित आ रहा था। उसे फोड़कर तुमने अक्षम्य अपराध किया है, इसका दण्ड जननी तुम्हें अवश्य देंगी, यहाँसे शीघ्र जाकर कहीं छिप जाओ।' इस प्रकार किसीके द्वारा निर्दिष्ट हुए-से वे भाग चले, द्रुतगतिसे अलिन्दको लाँघकर स्तम्भोंकी ओटमें चले गये; फिर वहाँसे मृदु-मृदु चलकर नवनीतभंडारके समीप जा पहुँचे। भंडारके इस सम्मुखवर्ती द्वारकी साँकल खुली थी। बस, और क्या चाहिये; इससे सुन्दर छिपनेका स्थान और कौन-सा होगा? श्रीकृष्णचन्द्र द्वार खोलकर भीतर प्रवेश कर गये। भीतर जाकर पुनः इस द्वार-कपाटको तो ज्यों-का-त्यों बंद कर दिया तथा भंडारमें उद्यानकी ओर जो द्वार खुलता था, उसे खोल लिया। उन्हें दीखा—नवनीतसे भंडार भरा है, छीकोंपर सजा-सजाकर माखनसे भरे अगणित भाण्ड रखे हैं। यह वह भंडार है, जिसमें व्रजेशके इष्टदेव श्रीनारायणके भोगके लिये और अतिथि-सत्कारके लिये अतिशय पवित्र माखन सुरक्षित रहता है। ऐसे भंडारका एकच्छत्र राज्य पाकर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दमें निमग्न हो गये। गोपसुन्दरियोंके घर जाकर उनके भंडारमें

स्वच्छन्द क्रीडा करनेका अवसर तो अनेक बार मिल चुका है, पर अपने भंडारमें प्रवेश पा लेनेका यह सुयोग आज प्रथम बार उन्हें मिला है। वे फूले नहीं समाते। अस्तु,

जब इतनी लीला हो चुकती है, तब कहीं जाकर व्रजरानीका कार्य समाप्त हो पाता है। सुपक्व दूधको अँगीठीसे उतारकर वे पुनः मन्थनस्थानके समीप आती हैं। आकर देखती हैं—दधिभाण्ड फूटा पड़ा है, दधिसे सारा अलिन्द प्लावित हो रहा है! 'मेरे नीलमणिके अतिरिक्त यह कार्य और किसका हो सकता है? मैं उसे स्तन्यपान कराते-कराते छोड़ गयी थी, इसीसे वह अतिशय कुपित हो गया है और उसने भाण्डको फोड़ डाला है। वह भी कितनी चतुरतासे! मैं सुन तक न सकी! तथा यह सब करके वह कहीं भाग गया है।' जननीको यह तथ्य निर्णय करनेमें देर न लगी। सब समझकर वे हँसी रोक न सकीं, खिलखिलाकर हँस पड़ीं—

उत्तार्य गोपी सुशृतं पयः पुनः
प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम्।
भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म
तज्जहास तं चापि न तत्र पश्यती ॥

(श्रीमद्भा० १०। ९। ७)

यह तो हुआ। पर मेरा नीलमणि गया किस ओर है? मैं उसका कैसे पता पाऊँगी? जननीका कलेजा एक बार तो धक्-धक् करने लगता है; किंतु सहसा उनकी दृष्टि वहाँ प्रसरित दधिकी धाराओंपर अङ्कित श्रीकृष्णचरणचिह्नोंकी ओर चली जाती है। मानो वे चरणचिह्न मूक संकेत कर रहे हों—'मैया! हमारा अनुसरण करो, अपने नीलमणिका अनुसंधान पा लोगी।' सचमुच इन्हींके सहारे यशोदारानी अपने पुत्रको ढूँढ़ सकीं। अन्यथा इतने विशाल नन्दप्रासादमें छिपे नीलमणिको ढूँढ़ निकालना अकेली मैयाके लिये असम्भव था। मैया उन्हींको देखती चल पड़ीं। दहीपर तो चिह्न स्पष्ट थे ही, चरणतल दहीमें सन जानेके कारण आगे भी जहाँ-तहाँ अस्पष्ट चिह्न बन गये थे। नवनीत-भंडारतक क्रम मिलता गया। वहाँसे आगे विलुप्त हो गया था। व्रजेश्वरी समझ गयीं कि निश्चय ही नीलमणि नवनीतभंडारमें ही छिपा है तथा अपने करतलसे सिरका स्पर्शकर चिन्ता करने लगीं—'आह! अबतक तो इस अबोध शिशुने नारायण-भोगके लिये सुरक्षित समस्त नवनीतकी कमोरियोंको जूठा कर दिया होगा!'

कपाटके छिद्रसे जननीने झाँककर देखा तो देखती हैं—एक उलटा हुआ ऊखल है, उसीपर उनके नीलमणि खड़े हैं; उधरके द्वारपर एवं द्वारसे सटे आँगनमें सैकड़ों-हजारों बंदर बैठे हैं। नीलमणि छीकोंसे ले-लेकर वानरोंको यथेच्छ नवनीत लुटा रहे हैं। स्वयं कभी-कभी किंचिन्मात्र खा लेते हैं और शेष वानरोंको वितरण कर दे रहे हैं। साथ ही, मैया कहीं उनकी यह चोरी देखने आ तो नहीं गयी हैं, उनकी चोरीका भेद कहीं खुल तो नहीं गया है—इस प्रकार विचारकर शंकित नेत्रोंसे इधर-उधर देख भी रहे हैं। अपने पुत्रकी यह अनुपम झाँकी देखकर व्रजरानी सोचने लगीं—'आजतक तो मैं गोपसुन्दरियोंके मुखसे सुनती थी, पर विश्वास नहीं होता था; समझती थी कि वे सब बनाकर कहती हैं, पर आज इसकी सारी चेष्टाएँ मैं प्रत्यक्ष देख रही हूँ। सचमुच यह अतिशय चंचल हो गया है। इसका शासन करना आवश्यक है, अन्यथा यह अत्यन्त उच्छृङ्खल हो जायगा।' यह विचारकर वहीं पड़ी हुई श्रीकृष्णचन्द्रकी क्रीडामें काम आनेवाली स्वर्णछड़ीको जननी अपने हाथमें ले लेती हैं और पीछेसे जाकर उन्हें पकड़ लेनेके उद्देश्यसे धीरे-धीरे चल पड़ती हैं—

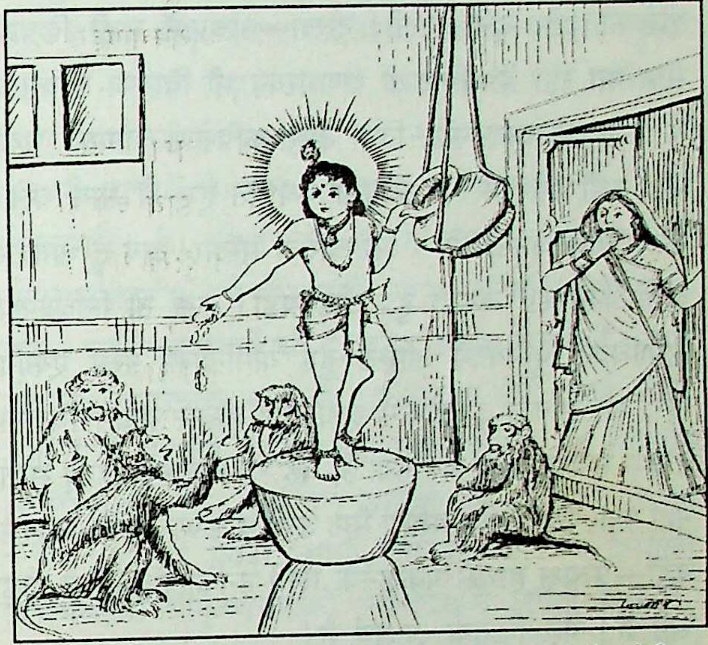

उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं
मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितम्।
हैयङ्गवं चौर्यविशङ्कितेक्षणं
निरीक्ष्य पश्चात् सुतमागमच्छनैः ॥

(श्रीमद्भा० १०। ९। ८)

मैयाने धीरेसे सम्मुखवर्ती द्वारके कपाट खोल लिये एवं

भीतर प्रवेश कर गयीं। श्रीकृष्णचन्द्र तो नवनीत वितरण करनेमें व्यस्त हैं, उन्हें जननीके आगमनका भान न हो सका; किंतु वानर भागने लगे। अत्यन्त निःशब्द पादनिक्षेप करती हुई शनैः-शनैः मैया उस ओर आ रही है, वानर यह देख रहे थे। इसीलिये वे उछल-उछलकर अशोकशाखाकी शरण लेने लगे। सहसा उनमें यह खलबली देखकर श्रीकृष्णचन्द्रने पीछेकी ओर दृष्टि डाली। दीखा—अंचलमें छड़ी छिपाये मैया आ रही है। फिर तो क्षणभरका भी विलम्ब न करके वे ऊखलसे कूद पड़े; जिस ओर कपिश्रेणी भागकर गयी थी, उसी ओर वे भी अत्यन्त भयभीत हुए-से भाग चले। उनके पीछे जननी भी—'अरे चोरोंके सरदार! अब तू भागकर कहाँ जायगा!' कहती हुई दौड़ पड़ीं। कहाँ तो निर्विकल्प समाधिकी भूमिकामें आरूढ हुए योगीन्द्रोंका परम एकाग्र मन, जो ज्ञानके आलोकमें ब्रह्मप्रवण होकर ब्रह्ममें विलीन होनेके सर्वथा योग्य बन गया है, वह भी श्रीकृष्णचन्द्रका स्पर्श नहीं पाता, कहाँ आज यशोदा मैया उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्रको—मनसे नहीं—प्रत्यक्ष हाथसे पकड़नेके लिये उनके पीछे-पीछे दौड़ रही हैं! यह कितना आश्चर्य है!

तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वर-
स्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत्।
गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिनां
क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः॥

(श्रीमद्भा० १०। ९। ९)

करि ग्यान-जोग-समाधि धारत ध्यान आवत हैं नहीं।
मन बुद्धि चित्त उपाव कौं करि, दौरि पावत हैं नहीं॥
जिहि कौं गह्यौ जसुधा चहैं बसुधा, परी मति मोह में।
नहिं जानि पूरनब्रह्म, पुत्रहि मानि कै, भरि कोह में॥

जो हो, श्रीकृष्णचन्द्रने सोचा कि आज जननीके कोपसे त्राण पानेका एक ही उपाय है—पुरद्वारके बाहर सभाभवनमें मैं चला जाऊँ। वहाँ बाबा होंगे, गोप होंगे, वहाँ चले जानेपर मैया तो वहाँ जा नहीं सकेगी; क्योंकि अन्तःपुरसे बाहर, गोपोंकी सभामें तो यह मुझे लेकर कभी नहीं जाती; फिर आज कैसे जायगी। यह निश्चय करके दौड़ते हुए श्रीकृष्णचन्द्र तोरणद्वारकी दिशामें ही मुड़ गये—**अथ पुरद्वारं न मातुर्गमनद्वारमिति मत्वा पलायनग्रहिलस्तद्दिशमेव जग्राह।** (श्रीगोपालचम्पूः १। ८। ३४)

सर्वज्ञ, सर्ववित्को आज इतनी-सी बातका भी पता नहीं कि व्रजेश्वर आज यहाँ नहीं हैं, सभाभवनमें कोई भी गोप नहीं है, सभी सुदूर गोवर्धनकी उपत्यकामें महोत्सवकी योजनामें लगे हैं। देश-कालसे जिनका ज्ञान कभी परिच्छिन्न नहीं होता, अतीत, वर्तमान, भविष्य—यह काल-भेद जिनके सामने नहीं है, जिनके समक्ष सब कुछ वर्तमान ही है—वे श्रीकृष्णचन्द्र बाल्यलीलावेशका रस लेते हुए आज ऐसे तन्मय हो रहे हैं कि उपर्युक्त छोटी-सी बात भी उनकी चित्तभूमिमें उदय नहीं हो रही है और वे सारी शक्ति लगाकर मैयाके उद्देश्यको विफल करनेके उद्देश्यसे सभाभवनकी शरण लेने जा रहे हैं। किंतु आज विश्वशरणको वहाँ शरण मिलेगी नहीं; क्योंकि यशोदारानी भी तुली हुई हैं। इसके अतिरिक्त बाहर जानेमें आज उन्हें कोई संकोच भी नहीं है; क्योंकि वे तो जानती ही हैं कि इस समय गोपेन्द्रकी सभास्थली जनशून्य है, वहाँ कोई भी गुरुजन नहीं। इसलिये निर्बाध वे भी पुत्रके पीछे-पीछे भाग रही हैं—

जननी तु तदानीं तत्राजनतां जानती तमेवानुयातवती।

(श्रीगोपालचम्पूः १। ८। ३४)

अवश्य ही एक बाधा तो आ ही गयी। बृहत् नितम्बभारसे दबी क्षीणकटि जननी यशोदाके लिये अधिक देरतक द्रुतगतिसे दौड़ना जो सम्भव नहीं। इसीलिये राजसभातक पहुँचते-पहुँचते मैयाकी गति मन्द पड़ जाती है। इतना ही नहीं, गमनवेगसे उनका केशबन्ध शिथिल पड़ जाता है, केशपाशमें ग्रथित प्रसून झर-झरकर मैयाके पीछे मार्गमें गिरते जा रहे हैं। अतिशय वेगसे दौड़नेके कारण यशोदारानीके सारे अङ्ग श्रान्त होते जा रहे हैं। इधर श्रीकृष्णचन्द्र सभाभवनमें जा पहुँचे हैं। पर वहाँ किसीको न पाकर वे कण्टकाकीर्ण उपवनका पथ पकड़ते हैं। ओह! अब तो यशोदारानी अतिशय व्याकुल हो जाती हैं। अबतक तो शरीर ही थका था, अब मनमें पीडा होने लगती है—'हाय! यदि नीलमणि अकेला इस वनकी ओर भाग गया, तब तो सर्वनाश हुआ! इसके सुकोमल अङ्ग काँटोंसे छिद जायँगे! नारायण! नारायण.........!' क्षणभरके लिये यशोदारानीके नेत्र निमीलित हो जाते हैं। मैयाके नेत्र बंद हुए कि बस, श्रीकृष्णचन्द्रकी गति भी बंद हो गयी; दृष्टि जो वनकी ओर थी, वह भी निमेषमात्रके

लिये मुड़कर जननीकी ओर हो गयी। बाल्यावेशके अन्तरालसे उनकी कृपाशक्ति झाँककर व्रजरानीकी इस दयनीय दशाका निरीक्षण करने लगी तथा देखते-देखते जननीके श्रान्त कलेवरको, जो अभी दस हाथ दूर था, खींचकर श्रीकृष्णचन्द्रसे दस अंगुलपर लाकर रख दिया। 'हैं! यह लो!! मैं तो दौड़कर नीलमणिके सर्वथा समीप आ गयी। अब यह कैसे भाग सकता है! अच्छा, फिर भाग रहा है! भाग; मैं भी देखती हूँ!'—उल्लासमें भरी जननीने लपककर पीछेसे श्रीकृष्णचन्द्रके कंधोंपर अपने हाथ रख दिये—

अन्वञ्चमाना जननी बृहच्चल-
च्छ्रोणीभराक्रान्तगतिः सुमध्यमा।
जवेन विस्रंसितकेशबन्धन-
च्युतप्रसूनानुगतिः परामृशत्॥
(श्रीमद्भा० १०। ९। १०)

कचभार श्रोनीभार भारी हारि बेगि परी महाँ।
उरहार की न सम्हार, भूषन धारि भूमि परी तहाँ॥
सुचि केसपासनि तै रुरी मुकतालि गूँथी टूटि कै।
श्रम-स्वेद-सीकर सोह आनन, फूल फैलत छूटि कै॥
प्रभु देखी जननी जबै, ब्याकुल श्रमतन जानि।
लागि दया, ठाढ़े भए तबहीं साराँगपानि॥ 8

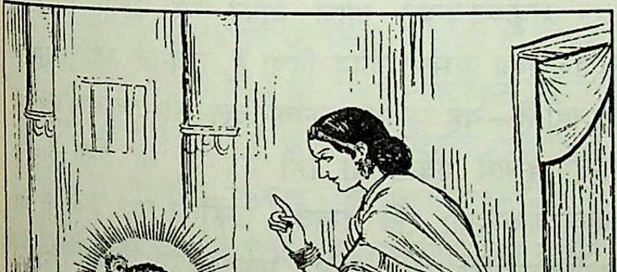

77084

श्रीकृष्णचन्द्र जननीके अपराधी हैं। जननी एक हाथ पकड़े भवनकी ओर उन्हें ले चलती हैं। इस समयकी झाँकी देखने ही योग्य है—श्रीकृष्णचन्द्र क्रन्दन कर रहे हैं, नेत्रोंमें लगा काजल अश्रुप्रवाहसे धुल-धुलकर कपोलोंको सिक्त कर रहा है। रुक-रुककर दूसरे हाथसे वे अश्रुमार्जन करने लगते हैं। भयविह्वल नेत्रोंसे बार-बार सिर उठाकर जननीके मुखकी ओर देखते हैं; किंतु जननीमें मानो आज दयाका लेश भी नहीं है। बार-बार वे स्वर्णछड़ीको ऊपर उठाती हैं तथा ऐसी मुद्रा बनाती हैं, मानो अब वे इस छड़ीसे सचमुच श्रीकृष्णचन्द्रके सुकोमल अङ्गोंपर प्रहार करेंगी ही। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र अतिशय आकुलकण्ठसे पुकार उठते हैं—'मेरी मैया! अब मैं ऐसा कभी नहीं करूँगा।' किंतु जननीका हृदय तनिक भी नहीं पसीजता और भी रोषभरी वाणीमें वे उनकी भर्त्सना करने लगती हैं। 'अरे चंचलमति! रे क्रोधी! रे लोभी! अरे वानरबन्धु! रे गृहलुण्ठनकारी! तूने गोकुलमें गोपसुन्दरियोंके घर जा-जाकर बड़ी उद्दण्डताएँ की हैं, बहुत उत्पात मचाये हैं; आज उन सब अपराधोंका दण्ड मैं तुझे अवश्य दूँगी। चल, बता, कहाँ हैं तेरे खिलौने? सब लाकर मुझे दे दे। मैं सारे खिलौने ले लूँगी और फिर देख इस छड़ीकी ओर, देखता है न! ....।' इस प्रकार जननी शमनको भी भय देनेवाले विश्वभयहारी श्रीकृष्णचन्द्रको भय दिखाने लगती हैं—

कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी
कषन्तमञ्जन्मषिणी स्वपाणिना।
उद्वीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं
हस्ते गृहीत्वा भिषयन्त्यवागुरत्॥
(श्रीमद्भा० १०। ९। ११)

ब्रजेन्द्रनन्दनका यह करुणक्रन्दन पार्श्ववर्ती आभीर-सुन्दरियोंके कानोंमें जा पहुँचता है। वे दौड़ पड़ती हैं। सबसे पहले एक वृद्धा गोपी आयी। श्रीकृष्णचन्द्रकी दशा देखकर उसका हृदय भर आया। यशोदारानीसे उसने कारण पूछा। संक्षेपमें व्रजेश्वरीने उसे सारी बात बता दी। फिर तो वह रोषमें भरकर बोली—

हरि के बदन तन धौं चाहि।
तनक दधि कारन जसोदा इतौ कहा रिसाहि॥
लकुट कैं डर डरत ऐसैं सजल सोभित डोल।
नील-नीरज-दल मनौ अलि-अंसकनि कृत लोल॥
बात बस समृनाल जैसैं प्रात पंकज-कोस।
नमित मुख इमि अधर सूचत, सकुच मैं कछु रोस॥
कतिक गोरस-हानि, जाकौं करति है अपमान।
सूर ऐसे बदन ऊपर वारिऐ तन-प्रान॥

मैयाने देखा—'सचमुच नीलमणि मेरी इन चेष्टाओंको सत्य मानकर अत्यधिक डर गया है।' वात्सल्यघनमूर्ति जननीके प्राणोंमें टीस होने लगी। मनमें आया—'नीलमणिको वक्ष:स्थलसे लगाकर, शत-सहस्र चुम्बनसे नहलाकर इसके आँसू पोंछ दूँ।' किंतु इसी समय लीलाशक्ति मैयाके हृदयमें लीलाके अनुरूप विवेक भरने लगी—'नहीं-नहीं नन्दरानी! ऐसा कभी मत करना! तुम्हारा यह रोष इस नीलमणिके प्रति थोड़े ही है! तुम तो नीलमणिके मङ्गलके लिये ही रोषका स्वाँग कर रही हो। भविष्यमें नीलमणि उच्छृङ्खल न हो जाय, तुम्हारा तो इतना ही उद्देश्य है। आज थोड़ा-सा धैर्य रख लो। आजसे पूर्व कभी तुमने नीलमणिका शासन नहीं किया तथा यह भी नितान्त सत्य है कि अब आगे भविष्यमें भी तुम कभी नीलमणिके प्रति, क्षणभरके लिये भी रूक्ष-भाव धारण नहीं कर सकोगी। यह तो तुम्हारे जीवनमें नीलमणिके प्रति प्रथम एवं अन्तिम अनुशासनकी लीला है। इससे तुम्हारे पुत्रका मङ्गल ही होगा, इसका अपार सुयश बढ़ेगा। अब बीचमें यदि तुम धीरज छोड़ दोगी तो नीलमणिका स्वभाव कैसे सुधरेगा? नहीं-नहीं, थोड़ी देरके लिये अपने प्राणोंकी वेदनाको छिपाये रहो, उसे सह लो, अनुशासनकी लीला हो जाने दो; इसके पश्चात् कोटि-कोटि प्राणोंके स्नेहसे नीलमणिको धो-पोंछकर लाड़ लड़ाना।' यशोदारानी एक उधेड़-बुनमें पड़ जाती हैं। इतनेमें एक दूसरी प्रौढ़ा गोपी रूक्षता और करुणाके मिश्रित स्वरमें यशोदारानीसे कहने लगती है—

हरि को ललित बदन निहारु।
निपटहीं डाँटति निठुर ज्यों, लकुट कर तें डारु॥
मंजु अंजन सहित जल कन चुवत लोचन चारु।
स्याम सारस मग मनहुँ ससि स्त्रवत सुधा सिंगारु॥
सुभग उर दधि बुंद सुंदर लखि अपनपौ वारु।
मनहुँ मरकत मृदु सिखर पर लसत बिसद तुषारु॥
कान्हहू पर सतर भौंहैं महरि! मनहिं बिचारु।
दास तुलसी रहति क्यों रिस निरखि नंदकुमारु॥

अब तो श्रीकृष्णचन्द्रके भयविजडित नेत्र यशोदारानीके लिये भी सर्वथा असह्य हो गये और उन्होंने अपने हाथकी स्वर्णछड़ी तो दूर फेंक ही दी। छड़ी फेंककर सोचने लगीं—'कुछ देरके लिये नीलमणिको बाँध दूँ। बन्धनके भयसे आगे यह उत्पात नहीं करेगा। साथ ही थोड़ी देरके लिये मैं भी निश्चिन्त हो जाऊँगी। आज अब मुझे स्वयं अकेले ही श्रीनारायणसेवाकी सारी व्यवस्था करनी है। रोहिणी बहिनको उपनन्दपत्नी भोजन कराये बिना यहाँ आने देंगी, यह असम्भव है। अत: वे मध्याह्नसे पूर्व आ नहीं सकेंगी। सारा गृहकार्य मुझे ही करना है। नीलमणि मुझपर मन-ही-मन अतिशय कुपित है। इधर मैं गृहकार्यमें लगी और उधर यह रूठकर कहीं जा छिपा तो फिर इसे ढूँढ़ना कठिन हो जायगा। इसलिये सर्वोत्तम उपाय यही है कि इसे बाँध दूँ।' इस प्रकार सोचकर यशोदारानीने मन-ही-मन श्रीकृष्णचन्द्रको बाँधनेका निश्चय कर लिया। मैया नहीं जानती कि वे वास्तवमें किन्हें बन्धनमें लानेका विचार कर रही हैं। वे श्रीकृष्णचन्द्रके अनन्त, असमोर्ध्व ऐश्वर्यसे परिचित नहीं हैं। उनके लिये तो श्रीकृष्णचन्द्र उनके गर्भ-प्रसूत शिशु हैं। जननीके लिये पुत्रका अनुशासन कर्तव्य है। वे तो अपना कर्तव्य ही पूरा करने जा रही हैं। पुत्र छड़ी देखकर अधिक भयभीत हो गया था, इसलिये छड़ी तो फेंक दी; पर शासन आवश्यक है इसलिये बाँधनेका विचार कर रही हैं—

त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला।
इयेष किल तं बद्धुं दाम्नातद्वीर्यकोविदा॥

(श्रीमद्भा० १०। ९। १२)

श्रीकृष्णचन्द्रने आज अपने घर उत्पात किया है, व्रजेश्वरीका कमोरा फोड़ दिया है, व्रजरानी अतिशय कुपित हो रही हैं—यह समाचार सुनकर दल-की-दल आभीरसुन्दरियाँ नन्दप्राङ्गणमें एकत्र हो रही हैं। पर जो आती है, वही श्रीकृष्णचन्द्रको रोते देखकर उन्हींका पक्ष लेती है और यशोदारानीको उनके कोटि प्राणप्रियतम नीलमणिकी दशा दिखाकर रिस छोड़ देनेके लिये समझाती है—

जसुदा देखि सुत की ओर।
बाल बैस रसाल पर, रिस इती कहा कठोर॥
बार-बार निहारि तुव तन, नमित-मुख दधि-चोर।
तरनि-किरनहिँ परसि मानौ, कुमुद सकुचत भोर॥
त्रास तैं अति-चपल गोलक, सजल सोभित छोर।
मीन मानौ बेधि बंसी, करत जल झकझोर॥
देत छबि अति गिरत उर पर अंबु-कन के जोर।
ललित हिय जनु मुक्त-माला, गिरति टूटैं डोर॥
नंद-नंदन जगत-बंदन करत आँसू कोर।
दास सूरज मोहि सुख-हित निरखि नंदकिसोर॥

श्रीकृष्णकी ऊखल-बन्धन-लीला

आभीर-सुन्दरियोंने श्रीकृष्णचन्द्रको जननीके अनुशासनसे मुक्त करनेका कम प्रयास नहीं किया, किंतु सब व्यर्थ। यशोदारानीने सबकी अनसुनी कर दी। उन्हें तो प्रतीत हो रहा है कि सभी दृष्टियोंसे नीलमणिको घड़ी-आध-घड़ीके लिये बाँधे रखना आवश्यक है, श्रेयस्कर है। अतः सबकी अवहेलनाकर वे श्रीकृष्णचन्द्रको बाँधने चलती हैं। किन श्रीकृष्णचन्द्रको ?

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः॥
तं मत्वाऽऽत्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम्।
गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा॥

(श्रीमद्भा० १०। ९ । १३-१४)

'जिन श्रीकृष्णचन्द्रमें न बाहर है न भीतर है, सर्वत्र व्याप्त रहनेके कारण जिनमें देशगत परिच्छिन्नता नहीं है; जिनका न तो आदि है न अन्त, त्रिकाल सत्य-तत्त्व होनेके कारण जिनमें कालकृत परिच्छिन्नता भी नहीं है; जो अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके सृजनसे पूर्व भी विराजित थे, अनन्त ब्रह्माण्डोंका विलय हो जानेके पश्चात् भी विराजित रहेंगे; जो अनन्त ब्रह्माण्डोंके अन्तरालमें अवस्थित हैं, साथ ही उनके बाहर भी विराजित हैं; जो स्वयं ही प्राकृत-अप्राकृत समस्त विश्वब्रह्माण्ड बने हुए हैं—उन अचिन्त्य-स्वरूप, अधोक्षज (इन्द्रियागोचर) नराकृति परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्रको अपना उदरजात पुत्र मानकर—जैसे कोई काष्ठ-पुत्तलिकाको बाँधने चले, इस प्रकार—व्रजमहिषी ऊखलसे बाँधने जा रही हैं!'

बन्धनका अर्थ क्या है ? किसी सीमित ओर-छोरवाली वस्तुको उसकी अपेक्षा एक अधिक विस्तारवाली वस्तुसे वेष्टित कर देना—लपेट देना। पर जननी श्रीकृष्णचन्द्रकी सीमा, उनका ओर-छोर कहाँ पायेंगी ? उनको लपेटनेके योग्य उनसे बड़ी वस्तु उन्हें कहाँ मिलेगी ? श्रीकृष्णचन्द्रको वे कैसे बाँध सकेंगी ? किंतु यह तत्त्वज्ञान वात्सल्यरस-घनमूर्ति यशोदारानीके हृदयको स्पर्श ही नहीं करता। वे तो प्रत्यक्ष प्रतिदिन उन असीमको अपनी भुजाओंमें बाँध लेती हैं, इस समय भी उनका एक हाथ उनकी एक मुट्ठीमें बँधा है। फिर भला, उनको उदरबन्धनके योग्य वस्तु क्यों नहीं मिलेगी ? वे तो आज श्रीकृष्णचन्द्रको अवश्य बाँधेंगी। इसीलिये अब अधिक विलम्ब न करके, अपने सिरकी स्खलित वेणीसे वेणीबन्धनकी सुकोमल पट्टडोरी (रेशमी डोरी) निकाल लेती हैं तथा उसे श्रीकृष्णचन्द्रके कटिदेशमें लपेटना आरम्भ करती हैं।

अब तो श्रीकृष्णचन्द्र उच्च स्वरसे क्रन्दन करते हुए बार-बार पुकारने लगते हैं—'अरी रोहिणी मैया ! दौड़, देख—मैया मुझे बाँध रही है; तू मुझे छुड़ा ले।' किंतु आज रोहिणी मैया भी यहाँ नहीं, जो आकर उन्हें छुड़ा सकें। वे तो उपनन्दके घर गयी हुई हैं। इसीलिये श्रीकृष्णचन्द्रका बन्धनसे छूटनेके लिये यह उपाय भी असफल हो जाता है। जिनके नामको केवल एक बार ग्रहण कर लेनेमात्रसे—छींकने, गिरने, फिसलनेके समय, विवश होकर एक नाम एक बार उच्चारण कर लेनेमात्रसे मनुष्यका अनादि कर्मबन्धन उसी क्षण छिन्न-भिन्न हो जाता है—ऐसा कर्मबन्धन जिसे मुमुक्षु पुरुष योगसाधन आदि बड़े-बड़े उपायोंके द्वारा बड़ी कठिनाईसे काट पाते हैं, वह तत्क्षण नष्ट हो जाता है; जिनके नामकी इतनी महिमा है—

यस्य ह वाव क्षुतपतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन् पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा विधुनोति यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते॥

(श्रीमद्भा० ५। २४। २०)

—वे श्रीकृष्णचन्द्र आज जननीके भावी बन्धनसे मुक्त होनेके लिये रो-रोकर पुकार रहे हैं, फिर भी उनकी रक्षा नहीं हो पा रही है। बाल्यलीला-विहारी व्रजेन्द्रनन्दन ! बलिहारी है तुम्हारी इस विश्वविमोहिनी लीलाकी।

वहाँ उपस्थित गोपसुन्दरियोंको तो अवश्य ही श्रीकृष्णचन्द्रका यह क्रन्दन असह्य हो गया है। वे अत्यन्त रूक्ष होकर व्रजेश्वरीको बार-बार समझाती हैं—

कहा भयौ जौ घर कैं लरिका चोरी माखन खायौ।
अहो जसोदा कत त्रासति हौ यहै कोखि को जायौ॥
बालक अजौं अजान न जानै केतिक दह्यौ लुठायौ॥
तेरो कहा गयौ ? गोरस कौ गोकुल अंत न पायौ॥

—पर नन्दरानी तो मानती नहीं। श्रीकृष्णचन्द्र भी बन्धनके भयसे अपने सारे अङ्गोंको हिलाकर जननीकी मुट्ठीसे छूटना चाहते हैं—कभी भूमिपर पसर जाते हैं तो कभी

जननीके पृष्ठदेशकी ओर छिपने लगते हैं; किंतु जननी न तो हाथ छोड़ती हैं न बन्धनका आग्रह। एक हाथसे श्रीकृष्णचन्द्रको दबाये रखकर दूसरे हाथसे उस पट्टडोरीको कटिमें लपेटनेकी चेष्टामें लगी हैं, प्राय: लपेट लेती हैं। अब गाँठ देने चलती हैं, पर गाँठ नहीं लगा पातीं; क्योंकि वह पट्टडोरी दो अंगुल छोटी पड़ गयी। क्षणभरके लिये मैया रुकीं। अपराधी पुत्रको बाँधकर शासन तो उन्हें करना ही है। अत: वेणीसे तुरंत उन्होंने दूसरी डोरी निकाल ली और उसे पहलीमें जोड़ दिया—

तद् दाम बध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः।
द्व्यङ्गुलोनमभूत् तेन संदधेऽन्यच्च गोपिका॥

(श्रीमद्भा० १०। ९। १५)

दूसरी डोरी जोड़कर, उसे श्रीकृष्णचन्द्रके उदरपर यथास्थान स्थापितकर जब मैया गाँठ देने चलीं तो पुनः दो अंगुलका अन्तर पड़ गया। मैयाने सोचा—'चंचल नीलमणि भागनेकी चेष्टामें अपने अङ्गोंको अत्यधिक कम्पित कर रहा है, इसीलिये डोरी इधर-उधर उलझकर पुनः दो अंगुल छोटी हो गयी है; इसे किंचित् और बड़ी बना लूँ।' यह सोचकर मैयाने अपनी कबरीमें बँधी तीसरी पट्टडोरीको भी निकाल लिया, उसे भी जोड़ लिया तथा यह करके उसे लपेटती हुई, पुनः श्रीकृष्णचन्द्रके पृष्ठदेशकी ओर गाँठ देनेके लिये अपना हाथ ले गयीं; किंतु इस बार भी पहलेकी भाँति ही गाँठ लगनेमें कठिनाईका अनुभव हुआ। मैयाने जब उस ओर नेत्र फिराकर देखा तो दीखा—ठीक दो अंगुलका व्यवधान इस बार भी हो रहा है। अब तो मैयाको अत्यधिक आश्चर्य होने लगा; क्योंकि पहली डोरी ही बन्धनके लिये पर्याप्त थी तथा उसमें दूसरी, तीसरी भी संनद्ध कर दी गयी; फिर भी दो अंगुलकी न्यूनता नहीं पूर्ण हुई। जननी यह निर्णय नहीं कर सकीं कि वास्तवमें डोरी कहाँपर, किस कारणसे उलझकर ठीक दो अंगुल इस बार भी छोटी रह गयी! कुछ भी कारण हो, यशोदा मैयाके पास न तो अवकाश है कि वे इसपर विचार कर सकें न उनके लिये यह सम्भव है कि अपने नीलमणिको बाँधनेका आग्रह ही वे छोड़ दें। किंतु कबरीमें अब अन्य पट्टडोरी तो है नहीं तथा श्रीकृष्णचन्द्रको छोड़कर दूसरे स्थानसे सुकोमल डोरी ले आना सम्भव भी नहीं। अब क्या हो? व्रजेश्वरी और कोई उपाय न देखकर समीपमें खड़ी गोपसुन्दरियोंसे ही कहती हैं—'बहनो ! वहाँ देखो, मेरी उस मणिपेटिकामें ऐसी कई पट्टडोरियाँ पड़ी हैं, उन्हें ला तो दो; आज मैं इसे बाँधूँगी ही।'

व्रजरानीका आदेश प्राप्त होनेसे गोप-सुन्दरियोंको अवसर मिल गया। उन सबने एक बार पुनः श्रीकृष्णचन्द्रके अनिन्द्यसुन्दर रूपकी ओर मैयाका ध्यान आकर्षितकर उनका रोष शान्त कर देनेकी चेष्टा की—

चितै धौं कमल-नैन की ओर।
कोटि चंद वारौं मुख-छबि पर, ए हैं साहु कै चोर॥
उज्ज्वल अरुन असित दीसति हैं, दुहुँ नैननि की कोर।
मानौ सुधा-पान कैं कारन, बैठे निकट चकोर॥
कतहिं रिसाति जसोदा इनसौं, कौन ज्ञान है तोर।
सूर स्याम बालक मनमोहन, नाहिंन तरुन किसोर॥

किंतु व्रजरानी और भी अधिक रोषभरी वाणीमें कह उठती हैं—'देखो ! तुम सबकी शिक्षाकी आवश्यकता मुझे नहीं है; मैं चाहती हूँ, पट्टडोरियोंको ला दो; नहीं ला सको तो चुपचाप शान्त बैठी रहो। तुम्हें यह सहन नहीं हो रहा हो तो नेत्र बंद कर लो, यहाँसे दूर चली जाओ; मैं तो इसे बाँधकर रहूँगी।'

आज प्रथम बार व्रजपुर-सुन्दरियोंने व्रजेन्द्रगेहिनीको इतनी उत्तेजित एवं ऐसा कठोर व्यवहार करते हुए पाया। उन्होंने देखा, यशोदारानी अत्यधिक कुपित हैं; यदि हम सब डोरियाँ लाकर उन्हें न देंगी तो पता नहीं रोषके आवेशमें अपने नीलमणिके प्रति वे कैसा व्यवहार कर बैठें। यह सोचकर कुछ गोपियाँ डोरी लानेके लिये दौड़ गयीं। इधर एक गोपीको मैयाकी बातसे अत्यधिक क्रोध आया; पर उसने अपना क्रोध प्रकट होने नहीं दिया। वह चटपट उठी, यशोदारानीका सुचिक्कण मन्थनरज्जु, जिससे वे अपने कोटिप्राणप्रिय नीलमणिके लिये प्रतिदिन दधिमन्थन करती थीं, लाकर मैयाके हाथपर रख दिया और व्यंग्यमें भरकर बोली—'नन्दगेहिनी ! यह पर्याप्त लंबी है, उन पट्टडोरियोंमें इसे जोड़ लो।' व्रजरानी उस गोपीके व्यंग्यको जान गयीं, मन-ही-मन हँसीं भी कि देखो, यह बावली मेरे कपट-

रोषको सत्य मान रही है। पर ऊपरसे संतोष प्रकट करती हुई, 'ठीक है बहन ! तुमने बहुत सुन्दर वस्तु ला दी' यह कहकर उसका अनुमोदन किया। वास्तवमें वह मन्थनरज्जु अत्यन्त सुकोमल—सुचिक्कण था भी; पट्टडोरीकी तुलनामें किंचित् स्थूल अवश्य था। पर उससे श्रीकृष्णचन्द्रके अतिशय सुकोमल अङ्गोंमें क्षत लगनेकी सर्वथा सम्भावना नहीं थी। इसीलिये मैयाने भी अविलम्ब उसे पूर्वसंनद्ध पट्टडोरीमें जोड़ लिया। जोड़कर पूरी सावधानीसे श्रीकृष्णचन्द्रका उदर-बन्धन करने लगीं। किंतु आश्चर्य ! महान् आश्चर्य!! इतने विस्तृत मन्थनरज्जुके जुड़नेपर भी पूर्ववत् वही दो अंगुलकी न्यूनता रह ही गयी। इस बार मैयाके विस्मयका पार नहीं रहा, पर उपस्थित गोपसुन्दरियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। कुछ नवतरुणियाँ हँसकर बोलीं—

व्रजदेवि! निवेदितमेवास्माभिः। स एष समुन्नतया मोहनतया कफल्लकमपि वेल्लयन् लोप्त्रमात्रसुकलतानन्दी परास्कन्दी संदीप्यते इति। (श्रीगोपालचम्पूः १। ८। ५५)

'व्रजेश्वरी ! हम सब तो जब उलाहना देने आयी थीं—तभी तुमसे कहा था कि यह कोई उत्कृष्ट मोहिनी विद्या जानता है। इसी विद्याके सहारे, जब यह नवनीत आदि अपहरण करने जाता है तब कफल्लकको[१] भी मात कर देता है; क्योंकि उस विद्याके बलसे इसे न तो कोई पकड़ सकता है, न बाँध सकता है; यह मनमानी करता है। दधि, दुग्ध आदि वस्तुओंका अपहरण करना, उसे स्वयं भोजन करना एवं वानर आदिको यथेच्छ वितरण करना—एकमात्र यही इसका काम है; इसीमें इसने पर्याप्त प्रसिद्धि पायी है, केवल इसीमें इसे सच्चा रस भी मिलता है। यह चौराग्रणी आज यहाँ भी उसी विद्याके प्रभावसे विजयी हो रहा है, तुम्हारे बन्धनमें नहीं आ रहा है।'

इन नवतरुणियोंकी बात सुनकर यशोदारानी यह सोचने लगती हैं कि 'हो-न-हो, इन्हीं सबने किसी स्तम्भन-विद्याका प्रयोगकर मेरे पुत्रके बन्धनमें बाधा डाली है। मेरा नीलमणि इन सबको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है, उसका बन्धन ये सहन नहीं कर सकतीं। जब मैंने इनकी बातोंकी उपेक्षा कर दी, तब इन्होंने स्तम्भन-विद्याका आश्रय लिया है और यही कारण है कि मैं नीलमणिको बाँध नहीं पा रही हूँ।' यह विचार आते ही मैया खीझी-सी होकर कहती हैं— नहीं-नहीं, मुझे बतलानेकी आवश्यकता नहीं; मैं जानती हूँ कि मेरे नीलमणिका बन्धन क्यों नहीं हो पा रहा है। यह उसकी मोहिनी विद्याका परिणाम नहीं,यह तो तुम लोगोंकी किसी निन्दनीय विद्याकी लीला है—

किंतु भवतीनामेव कापीयमवद्या विद्या।

(श्रीगोपालचम्पूः १ । ८ । ५६)

व्रजेश्वरीका यह सरस आक्षेप सुनकर क्या तरुणी, क्या वयस्का—सभी अट्टहास कर उठती हैं। पर जननी कहीं और कुपित न हो जायँ, इस आशङ्कासे हँसते हुए ही वे कहने लगती हैं—

तत्र भवति ! भवच्चरणेभ्यः शपथमाचरामः। नास्माकं विस्मापिकेयं विद्या विद्यते इति।

(श्रीगोपालचम्पूः १। ८। ५७)

'व्रजरानी! सुनो, हम सच कहती हैं, तुम्हारे चरणोंकी शपथ करके कह रही हैं—आश्चर्यमें भर देनेवाली यह विद्या, जिसके कारण यह घटना घटित हो रही है—हम लोगोंकी नहीं है, हमसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।'

इतनेमें वे गोपियाँ, जो यशोदारानीकी मणिपेटिकासे पट्टडोरी निकालने गयी थीं, बहुत-सी डोरियाँ लिये आ पहुँचती हैं। डोरी देखते ही मैयाका उत्साह नवीन हो जाता है। अवश्य ही उनका मन तो आश्चर्यसे भरा है। गोपियोंको शपथ करते देखकर वे सोचने लगी हैं कि सम्भवतः गर्गाचार्यके वचनोंके अनुसार कोई भागवती शक्ति मेरे नीलमणिमें समय-समयपर आविष्ट होती है, मेरे नीलमणिको उस सम्बन्धमें कुछ भी अनुभव नहीं होता और शक्ति काम करती रहती है; किंतु कुछ भी हो, नीलमणिको तो उन्हें बाँधना ही है; साथ ही इस आश्चर्यका भी अन्त पाना है। इसीलिये मैया पट्टडोरियोंको क्रमशः उसी पूर्वकी रज्जुमें जोड़ती हैं, एकके जुड़ जानेपर पुत्रके उदरमें लपेटकर परीक्षा करती हैं; पर परिणाम एक ही होता है, डोरी दो अंगुल न्यून पड़ जाती है। जिस क्षणसे दो अंगुल अन्तर पड़नेका व्रजेश्वरीको भान हुआ, तबसे उन्होंने जितनी

---

[१] चौर्यविद्याके आदि आचार्यका नाम 'कफल्लक' है।

डोरियाँ जोड़ी हैं, वे सब-की-सब ठीक दो अंगुल न्यून पड़ी हैं; मानो प्रत्येक डोरी किसी निश्चित अभिसंधिसे प्रत्येक बार दो अंगुलका व्यवधान रखकर पीछे हट जाती है। श्रीकृष्णचन्द्रके बन्धनसे विरत हो जाती है। नन्दभवनकी समस्त पट्टडोरियोंको एकत्रकर मैया एक-दूसरीसे संनद्ध करती हैं, पर किसीसे उनका उद्देश्य सफल नहीं होता। जननी प्रत्येक बार असफल हो रही हैं। उनकी इस असफलताको देखकर गोप-सुन्दरियाँ तो हँस ही रही थीं; अब मैयाका भी रोष जाता रहता है, वे स्वयं भी असफल प्रयासपर हँसने लगती हैं; किंतु इस आश्चर्यमयी घटनाको देख-देखकर क्षण-क्षणमें उनका विस्मय बढ़ता जा रहा है—

यदाऽऽसीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि संदधे।
तदपि द्व्यङ्गुलं न्यूनं यद् यदादत्त बन्धनम्॥
एवं स्वगेहदामानि यशोदा संदधत्यपि।
गोपीनां सुस्मयन्तीनां स्मयन्ती विस्मिताभवत्॥

(श्रीमद्भा० १०। ९। १६-१७)

विस्मयविस्फारित नेत्रोंसे जननी व्रजपुरन्ध्रियोंकी ओर देखने लगती हैं। अबतक उनकी दृष्टि एकमात्र अपने नीलमणिकी ओर, उनके उदर-बन्धनकी ओर केन्द्रित थी; पर अब वे गोपरामाओंकी ओर देखकर, मानो उनसे इस घटनाके अन्तर्निहित कारणका संकेत पाना चाहती हों, इस प्रकार शान्त खड़ी हो जाती हैं। गोपरामाओंको स्वयं भी अतिशय आश्चर्य हो रहा है। वे कहती हैं—

जगदेकधन्ये! चित्रमिदं यदतिपरिमितपरिमाणेन कनकमेखलासूत्रेण वेष्टितमिदमस्य कटितटं तदधुना गृहस्थितेन यावतैव दाम्ना न परिमीयते, सर्वमेव दामनिकुरम्बं द्व्यङ्गुलन्यूनमेव सम्पद्यते। तदवश्यमेव केनापि रहस्येन भवितव्यम्, तदितः परमेव विरमेति।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः ६। १०)

'यशोदारानी ! जगत्में एकमात्र धन्य तुम्हीं हो, नीलमणिकी जननी जो ठहरी। नीलमणिकी जन्मदात्री होकर अबतक तुमने एक-से-एक बढ़कर न जाने कितनी आश्चर्यमयी लीलाएँ देखी हैं। आज भी देखो। ओह ! सचमुच कितने आश्चर्यकी बात है—नीलमणिका कटि-देश अत्यन्त परिमित परिमाण (नाप)-वाले स्वर्णमेखलासूत्रसे तो आवृत है—जिस छोटे-से सूत्रमें तुमने स्वर्णमेखलाको ग्रथित किया था, वह सूत्र तो कटिको चारों ओरसे घेरे हुए है; किंतु उसी कटिको जब तुम आज पट्टडोरिकासे वेष्टित करने चलती हो, तब उसका परिमाण ही नहीं मिलता; वह कटि कितनी बड़ी है, यह पता ही नहीं चलता। देखो न, तुम्हारे भवनकी समस्त डोरियाँ जोड़ दी गयीं, किंतु कटिका परिमाण नहीं मिला। राशि-राशि डोरी जोड़कर तुमने देख लिया, किंतु सभी डोरियाँ दो अंगुल छोटी ही पड़ती गयीं। अतः निश्चित समझो, किसी रहस्यके कारण ही ऐसा हो रहा है; सम्भव है नीलमणिके भाग्यमें बन्धनयोग ही न हो, इसीलिये ऐसा हो रहा हो। अतः अब तुम नीलमणिके बाँधनेका प्रयत्न तो छोड़ ही दो।'

अब तो श्रीकृष्णजननी और भी आश्चर्य करने लगीं। अभीतक उनका ध्यान इस ओर गया ही न था कि सुबृहत् परिमाणमें योजित पट्टडोरिकाएँ तो लपेटते समय दो अंगुल न्यून पड़ रही हैं, पर ठीक उसी समय कटितट मेखलासे आवृत है। ये दो सर्वथा विरोधी बातें एक ही समयमें एक ही स्थलपर संघटित हो रही हैं। यह बात ध्यानमें आनेपर जननीका चित्त एक बार तो भ्रमित होने लगता है; पर तुरंत ही किसी अज्ञात शक्तिसे अनुप्राणित-सी होकर वे निश्चय कर लेती हैं कि इस अत्यन्त आश्चर्यजनक घटनाकी अवधि कहाँ है, कितनी डोरियाँ इसमें लगती हैं—यह बात तो देखने ही योग्य है, वे अवश्य इसका निर्णय करके ही छोड़ेंगी। इस निश्चयको कार्यान्वित करनेके उद्देश्यसे वे गोपियोंसे बोलीं—

अयि ! मद्गृहे नैतादृशान्यपराणि सन्ति दामानि, भवतीनां गृहेषु यानि वा सन्ति, तान्यप्यानयत इति।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः ६। १०)

'री बहनो ! देखो, अब मेरे घर तो ऐसी सुकोमल पट्टडोरिकाएँ हैं नहीं। अब तुम सबके घर ऐसी जितनी पट्टडोरियाँ हों, उनको ला दो।'

इससे पूर्व गोपिकाएँ श्रीकृष्णचन्द्रको छुड़ा लेनेके लिये व्याकुल थीं; क्योंकि वे अत्यन्त भयभीत होकर त्राण पानेके लिये विकल प्रतीत हो रहे थे। किंतु अब वे अपेक्षाकृत शान्त हो गये थे; गोप-सुन्दरियोंको भी निश्चय हो गया था

कि मैयाके लिये श्रीकृष्णचन्द्रको बाँध लेना सम्भव नहीं। साथ ही वे भी इस आश्चर्यमय रहस्यका अन्त न पाकर विस्मयके झूलेमें झूल रही थीं; वे भी उत्कण्ठित थीं कि देखें, इस आश्चर्यमयी घटनाका पर्यवसान किसमें कहाँ होता है! अतः मैयाका आदेश पाते ही वे सब दौड़ गयीं; जिसके घरमें जितनी पट्टडोरियाँ थीं, उन सबको उठा लायीं। देखते-ही-देखते उन सबने व्रजरानीके समक्ष डोरियोंका ढेर एकत्र कर दिया। कदाचित् कोई सोचे, श्रीकृष्णचन्द्रने गोपसुन्दरियोंके घर अनेक उत्पात किये हैं, उनके अगणित मटके फोड़े हैं, इसीलिये उन्हें डराकर अपना रिसभरा वैर चुकानेके लिये वे डोरियाँ ले आयी हों, तो यह बात नहीं; इस बार जननीके बन्धन-आग्रहसे क्रुद्ध होकर ले आयी हों, यह भी नहीं; जननीके आदेशका तिरस्कार करनेसे वे कुपित होंगी, इस भयसे उन्होंने डोरियाँ दी हों, सो भी नहीं; वे तो अतिशय आनन्द-कौतूहलसे प्रेरित होकर श्रीकृष्णचन्द्रके इस अलौकिक अद्भुत चरित्रको देखनेकी अभिलाषासे—दो अङ्गुलकी न्यूनता पूरी होती है या नहीं, इसका निर्णय करनेके उद्देश्यसे अपने-अपने घरकी समस्त डोरियाँ बटोर ले आयी हैं—

न क्रोधान्न च वैरतो व्रजपुरेश्वर्या न च त्रासतो
यासां येषु गृहेषु सन्ति परितो यावन्ति दामान्यथ।
तावन्त्येव हि ताभिरत्र परमादानन्दकौतूहलात्
लोकातीतचरित्रवीक्षणवशादानिन्यिरे तत्पुरः॥

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः ६ । ११)

अस्तु, व्रजेश्वरी उनमेंसे कुछको लेकर संग्रथित करती हैं, फिर उस विस्तृत रज्जुको श्रीकृष्णचन्द्रके उदरपर विराजित पट्टडोरीसे जोड़ती हैं; जोड़कर देखती हैं तो वह भी पूर्वकी भाँति दो अंगूल न्यून है। पुनः कतिपय डोरियाँ उठाती हैं, परस्पर योजितकर उदरकी डोरीसे बाँध देती हैं; पर लपेटनेके समय उसे भी उतना ही न्यून पाती हैं। इस प्रकार पुरसुन्दरियोंके द्वारा लायी हुई डोरियाँ भी समाप्त हो जाती हैं, पर दो अंगुलका अन्तर नहीं मिटता; मानो वह न्यूनता परब्रह्मका स्पर्श पाकर स्वयं परब्रह्म बन गयी है, ब्रह्मके समान ह्रास-वृद्धिसे रहित हो गयी है—न घटती है, न बढ़ती है, निरन्तर एक-समान दो अंगुलकी बनी हुई है—

ब्रह्मेवाऽजनि ह्रासवृद्धिरहिता सा द्व्यङ्गुलन्यूनता।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः ६ । ९)

ज्यों ही पट्टडोरियोंका वह ढेर समाप्त हुआ, वैसे ही आभीर-सुन्दरियोंके मुखपरसे हास भी अन्तर्हित हो जाता है; हासके स्थानपर भयमिश्रित प्रगाढ़ विस्मयकी लहरें नाचने लगती हैं। व्रजेश्वरीका कौतुककोप (कोपका स्वाँग), उससे अद्भुत नीलमणिके बन्धनका प्रयास उनके लिये विचित्र भीतिमूलक आश्चर्यका विषय बन जाता है। ओह ! कनक-मेखला ज्यों-की-त्यों बँधी है; न तो वह टूटी, न उसमें कभी किंचिन्मात्र भी स्पन्दन ही हुआ—होता कैसे, श्रीकृष्णचन्द्रके उदरमें यदि थोड़ी भी वृद्धि हुई होती तब तो मेखला टूटती या कम्पित होती। उदर तो ज्यों-का-त्यों है। किंतु उसी मेखलासे समन्वित उदरके निम्नतलमें, मेखलाकी समानान्तर रेखाके रूपमें लपेटते समय वह सुबृहत् लंबी डोरी दो अंगुल छोटी पड़ जाती है, डोरीके दोनों छोर मिल नहीं पाते; डोरीका वह विस्तार बीचमें न जाने कहाँ विलुप्त हो जाता है। गणना करते समय उस सुचिक्कण डोरीमें लगी अगणित सुन्दर गाँठें भी उदरके अग्रभागकी ओर दीख पड़ती हैं; किंतु जब कभी भी यशोदारानी पृष्ठदेशकी ओर मुख करके गाँठ देनेके लिये दोनों छोरोंको मिलाने चलती हैं, तब वही दो अंगुलका व्यवधान मिलता है। उदरके आगे गाँठोंसे भरा पट्टडोरीस्तूप पड़ा है, पर प्रत्येक बार ही डोरीके दोनों छोर मिलानेमें व्रजेश्वरी सर्वथा असफल हो रही हैं। यह वास्तवमें है कैसी, किसकी लीला ! सबने अपने-अपने घरकी समस्त डोरियाँ ला दीं, घरमें एक भी डोरी नहीं बची; फिर भी वह अल्प परिधिका कटिदेश वेष्टित न हो सका—यह अघट-घटन कैसे सम्भव हो रहा है…… ! गोप-सुन्दरियोंके नेत्र निष्पन्द हो गये, उन्हें गृह-पुत्र-परिजनकी विस्मृति हो गयी, मन-बुद्धिमें अवशिष्ट अन्य विषयोंके समस्त संस्कार भी विलुप्त हो गये। उनकी विचित्र ही दशा हो गयी—

निष्पन्दानि विलोचनानि विगतश्रद्धानि गेहं प्रति
स्वान्तानि प्रहताः समस्तविषये संस्कारशेषा अपि।
निर्दामानि बभूवुरेव भवनान्याभीरवामभ्रुवां
मात्रा कौतुककुप्तयाद्धुतशिशोर्बन्धानुबन्धे कृते॥

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः ६ । १३)

पुत्रको बाँधनेके प्रयत्नमें व्रजेश्वरी भी अब सर्वथा श्रान्त हो गयी हैं। समस्त अङ्गोंसे प्रस्वेदकी धारा बह रही है। वेणी तो कभी स्खलित हो चुकी थी, मालतीमालासे मैयाने केशोंको अवरुद्ध कर रखा था; पर अब वह माला भी टूट गयी है, ग्रथित मालतीकुसुम यत्र-तत्र बिखर गये हैं। बस, जननीका यही परिश्रम अपेक्षित था, यह परिश्रम श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंमें भर गया। भरते ही कृपाशक्ति प्रकट हो गयी तथा श्रान्त, हताश, निराश जननी 'मैं नीलमणिको नहीं बाँध सकूँगी, फिर भी अन्तिम बारके लिये प्रयत्न कर लूँ' यह सोचकर ज्यों ही गाँठ लगाने चली कि श्रीकृष्णचन्द्रने बन्धन स्वीकार कर लिया। जननीने बाँधनेके उद्देश्यसे जो पट्टडोरी अपनी कबरीसे सर्वप्रथम निकाली थी, उसीसे श्रीकृष्णचन्द्र बँध गये—

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने॥

(श्रीमद्भा० १० । ९ । १८)

व्रजेश्वरीका उद्देश्य पूर्ण हो गया। उनके लिये उनके पुत्रकी अचिन्त्यलीला—महाशक्तिने अपने नित्यमुक्त स्वामीको बन्धनमें डाल दिया। साथ ही इस परम मनोहर लीलाके अन्तरालमें स्वयं श्रीकृष्ण-जननीको ही निमित्त बनाकर प्रपञ्चमें अवस्थित जीवोंके लिये भी वे एक परम गूढ रहस्यका दिव्य संकेत छोड़ती गयीं। पट्टडोरीसे व्यक्त होनेवाली दो अंगुलकी न्यूनता एवं न्यूनता-पूर्तिकी ओटसे लीलाशक्ति यह मूक संदेश देती गयीं—जगत्के जीवो ! सुनो, देखो, यदि तुम परब्रह्म पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बाँधना चाहते हो तो उनके बन्धनका रहस्य जान लो—

भजज्जनपरिश्रमो निजकृपा चेति द्वाभ्यामेवायं बद्धो भवति, नान्यथेति यावत्तद्द्वयानुत्पत्तिरासीत्तावदेव दाम्नां द्व्यङ्गुलन्यूनताऽऽसीत्, सम्प्रत्युभयमेव जातमिति पुनरुद्यममात्रे तया क्रियमाण एव बन्धनमुररीचकार। (श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः ६। १५)

'भक्तका 'भजन-परिश्रम' एवं सर्वेश्वरकी 'स्वनिष्ठ-कृपा'— इन दोनोंके व्यक्त होनेपर ही सर्वेश्वर बन्धन स्वीकार करते हैं। इनके अतिरिक्त उन्हें बाँधनेका अन्य कोई साधन नहीं। जननीके जीवनमें प्रत्यक्ष देख लो, जबतक उपर्युक्त 'भजन-परिश्रम' एवं 'श्रीकृष्ण-कृपा'—ये दोनों अभिव्यक्त नहीं हुए थे, तबतक इन दोनोंकी सूचनाका संकेत बनकर डोरी भी दो अंगुल न्यून हो रही थी। अब देखो, दोनोंका आविर्भाव हुआ कि बस, तुरंत जननीके द्वारा उद्यममात्र होते ही श्रीकृष्णचन्द्रने बन्धन अङ्गीकार कर लिया[१]।'

श्रीकृष्णचन्द्र स्वेच्छासे ही बन्धनमें आये हैं। जबतक उनकी इच्छा नहीं थी, तबतक जननी उन्हें नहीं बाँध सकीं। जिस समय वे जननीसे हाथ छुड़ाकर भागना चाहते थे, उस समय उनकी ऐश्वर्यशक्तिको यह प्रतीत हुआ—'मेरे स्वामी जननीका बन्धन स्वीकार करना नहीं चाहते।' फिर क्या था, अविलम्ब वे काम करने लग गयीं; तत्क्षण ही श्रीकृष्णचन्द्रके उदरमें विभुताका विकास हो गया। अवश्य ही विभुताको यह भय था कि कहीं मेरे दर्शनसे व्रजेश्वरीके वात्सल्यमसृण हृदयमें आघात न लग जाय। इसीलिये जननी एवं अन्य पुरसुन्दरियोंसे अलक्षित रहकर ही वे अपना प्रभाव दिखाने लगीं। बाह्यदृष्टिमें मेखला-परिशोभित उदर ज्यों-का-त्यों बना रहा, उसमें तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ; पर उदरकी परिधि अनन्त—अपरिसीम बन गयी। अब विभु-उदरको वेष्टित करनेकी सामर्थ्य किसमें है ? असंख्य विश्वब्रह्माण्ड भी पङ्क्तिबद्ध होकर उस उदरको नहीं घेर सकते! किंतु जननी जब बन्धन-प्रयाससे श्रान्त हो गयीं, तब कृपाशक्तिका उन्मेष

---

[१] १-सर्वेश्वर भगवान्के भजनमें भक्त जब कायमनोवाक्से संलग्न होता है, निरन्तर साधना चलती है, तब साधनका अहंकार भी विगलित होकर साधन-जनित ही एक अनिर्वचनीय श्रान्ति—भगवत्-साक्षात्कारके लिये चरम सीमाकी गम्भीर व्याकुलता उत्पन्न होती है; व्याकुलता उत्पन्न हुई कि भगवान्में कृपाका आविर्भाव हो जाता है। फिर साक्षात्कार तो हो ही जाता है, भगवान् भक्तका बन्धन भी स्वीकार कर लेते हैं—भक्तके वशीभूत हो जाते हैं। अवश्य ही भगवान्के नित्यपरिकरोंका भजन, भजन-परिश्रम एवं उससे प्रकट होनेवाली भगवत्कृपा तथा साधक भक्तोंका भजन, भजन-परिश्रम एवं तज्जन्य भगवत्कृपा—इन दोनोंकी जाति, रूप एवं प्रकारमें महान् अन्तर होता है। इस लीलामें व्रजेश्वरीके भजनका रूप है—'वात्सल्यरसलिप्सु श्रीकृष्णचन्द्रको बन्धनमें डालनेका प्रयास, यह सफल न होनेपर उनकी निराशामयी व्याकुलता ही उनका भजन-परिश्रम है तथा फिर श्रीकृष्णका बन्धन-स्वीकारके लिये बाध्य हो जाना ही उनकी कृपाका प्रकाश है। किंतु ऐसे भजनकी कल्पना साधक भक्तोंमें होनी असम्भव-सी है, उनके लिये तो श्रद्धा-प्रेमपूर्वक श्रवण-कीर्तनादिरूप भजन ही सम्भव है।'

हो गया। कृपाशक्तिके आनेपर श्रीकृष्णचन्द्रकी अन्य समस्त शक्तियाँ या तो छिप जाती हैं, या आवश्यकता होनेपर उन्हींका अनुगमन करने लगती हैं। कृपाने श्रीकृष्णचन्द्रमें बँधनेकी इच्छा जगा दी तथा विभुताको अपना प्रभाव समेट लेनेका संकेत कर दिया। विभुता छिप गयी एवं श्रीकृष्णचन्द्र बन्धनमें आ गये। श्रीकृष्णचन्द्रके अनन्त ऐश्वर्य एवं कृपाके इस चमत्कारको न तो व्रजरानीने जाना, न गोप-सुन्दरियोंने। व्रजेश्वरीने तो यही समझा—'मुझे चित्तभ्रम हो गया था, व्यर्थमें ही मैंने इतनी डोरियाँ एकत्र कीं; भला, नीलमणिको बाँधनेके लिये इतनी डोरियोंकी क्या आवश्यकता थी। वह अपने अङ्गोंको हिला रहा था, इसीलिये मैं डोरीके छोरोंको मिलाकर गाँठ नहीं दे पाती थी; अन्तमें वह शान्त हो गया तो मैंने गाँठ लगा दी।'

अस्तु, उदर-बन्धन तो हो ही चुका था। जननीने उसमें दो-तीन पट्टडोरियाँ और जोड़ दीं; जोड़कर डोरीके दूसरे छोरोंको पास पड़े हुए एक ऊखलसे बाँध दिया तथा ऐसी गाँठ लगा दी कि श्रीकृष्णचन्द्र उन्हें कदापि खोल न सकें। इतना करके तब कहीं जननीने संतोषका श्वास लिया।

अबतक श्रीकृष्णचन्द्रके बहुत-से शिशुसखा वहाँ आ पहुँचे थे। अपने सखाकी यह दशा देखकर उन सबका मुख म्लान हो रहा था। जननीने उनकी ओर देखा एवं उन्हें पुचकारकर बोलीं—

भो भो भवद्भिरवलोकनीयोऽयं स्वयमात्मानं मोचयित्वा यदि पलायते तदाहमाकारणीया इति।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः ६। १६)

'पुत्रो ! इसे तुम सब देखते रहना, भला ! और देखो, यदि यह बन्धन खोलकर भागने लगे तो मुझे पुकार लेना।'

बालकोंको उपर्युक्त आदेश देकर जननी श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर देखने लगती हैं। अन्य गोप-सुन्दरियाँ प्रस्तर-प्रतिमाकी भाँति खड़ी हैं। उन्हें इतना तो भान है कि मैयाने अन्तमें श्रीकृष्णचन्द्रको बाँध ही लिया; पर इससे पूर्व जो उन्होंने आश्चर्य देखा है, उसका प्रभाव अभीतक उनपर है; वे प्रकृतिस्थ नहीं हो पायी हैं। केवल एक गोपीमें, मानो किसी अज्ञातशक्तिने, उसमें चेतना भर दी हो, इस प्रकार जननीकी सारी चेष्टाओंको देखनेकी क्षमता आ पायी है। उसने श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर देखा। बन्धनसे पूर्व तो वे प्रायः शान्त-से हो गये थे; पर ज्यों ही मैयाने ऊखलमें गाँठ लगायी कि उनके नेत्रोंसे पुनः झर-झर करता हुआ अश्रुप्रवाह बह चलता है। यह देखते ही गोपी तो व्याकुल हो गयी। इतनेमें मैया आँगनकी ओर मुड़ जाती हैं। अब गोपीसे रहा नहीं गया। आगे बढ़कर वह व्रजेश्वरीका हाथ पकड़ लेती है तथा नन्दनन्दनको शीघ्र-से-शीघ्र छुड़ा लेनेके उद्देश्यसे उनके मुखचन्द्रकी ओर देखनेके लिये उनसे प्रार्थना करती है—

मुख-छबि देखि हो नँद-घरनि!
सरद निसि कौ अंसु अगनित इंदु आभा हरनि॥
ललित श्री गोपाल-लोचन-लोल-आँसू-ढरनि।
मनहुँ बारिज बिथकि बिभ्रम, परे पर-बस परनि॥
कनक-मनिमय-जटित-कुंडल-जोति जगमग करनि।
मित्र-मोचन मनहुँ आए, तरल गति द्वै तरनि॥
कुटिल कुंतल, मधुप मिलि मनु, कियौ चाहत लरनि।
बदन कांति बिलोकि सोभा सकै सूर न बरनि॥

ऊखलसे बँधे हुए दामोदरका यमलार्जुन बने हुए कुबेर-पुत्रोंपर कृपापूर्ण दृष्टिपात

कज्जलमिश्रित अश्रुप्रवाह उनके कपोलोंको सिक्त कर रहा है; आकुल नेत्र बारम्बार आभीर-सुन्दरियोंसे कुछ मूक विनय, दया-याचना-सी कर रहे हैं; कुन्तलराशि मुखचन्द्रपर बिखर गयी है—इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र अतिशय करुण-अवस्थामें ऊखलसे बँधे खड़े हैं। गोप-सुन्दरियाँ उन्हें घेरे खड़ी हैं। सभी चाहती हैं—व्रजेश्वरी अब द्रवित हो जायँ, स्वल्प अपराधके लिये पर्याप्त दण्ड वे अपने नीलमणिको दे चुकीं। एकने यशोदारानीसे बन्धन खोल देनेकी प्रार्थना की—

जसुदा तेरौ मुख हरि जोवै।
कमल नैन हरि हिचिकिनि रोवै, बंधन छोरि जसोवै।

दूसरी समझाने लगी—

जौ तेरौ सुत खरौ अचगरौ, तऊ कोखि कौ जायौ।
कहा भयौ जौ घर कैं ढोटा, चोरी माखन खायौ॥

तीसरीने भी समझाया—

जसुदा यह न बूझि कौ काम।
कमल नैन की भुजा देखि धौं, तैं बाँधे हैं दाम॥
पुत्रहु तैं प्यारौ कोउ है री, कुल-दीपक मनि-धाम।
हरि पर वारि डारि सब तन, मन, धन गोरस अरु ग्राम॥

एक वृद्धा गोपीमें तो कुछ दैवी आवेश हो गया, उसके नेत्रोंमें रोष भर आया, सारे अङ्ग किसी विचित्र तेजःपुञ्जसे व्याप्त हो गये। वह यशोदारानीकी भर्त्सना करती हुई भगवत्तत्त्वकी बातें बताने लगी और श्रीकृष्णचन्द्रको छोड़ देनेके लिये व्रजेश्वरीको शपथ देने लगी—

(जसोदा) तेरौ भलौ हियौ है माई!
कमल-नैन माखन कैं कारन, बाँधे ऊखल ल्याई॥
जो संपदा देव-मुनि-दुर्लभ, सपनैंहु देइ न दिखाई।
याही तैं तू गर्ब भुलानी, घर बैठे निधि पाई॥
जो मूरति जल-थल मैं ब्यापक निगम न खोजत पाई॥
सो मूरति तैं अपनैं आँगन, चुटकी दै जु नचाई॥
तब काहू सुत रोवत देखति, दौरि लेति हिय लाई।
अब अपने घर के लरिका सौं इती करति निठुराई॥
बारंबार सजल लोचन करि चितवत कुँवर कन्हाई।
कहा करौं, बलि जाउँ, छोरि तू, तेरी सौंह दिवाई॥
सुर पालक, असुरनि उर सालक, त्रिभुवन जाहि डराई॥
सूरदास प्रभु की यह लीला, निगम नेति नित गाई॥

किंतु व्रजेश्वरीका हृदय तो आज मानो पाषाण बन गया है। वे किसीकी बातसे तनिक भी द्रवित नहीं होतीं; अपितु सबका इतना आग्रह देखकर उलटे खीझ जाती हैं और कहने लगती हैं—

जाहु चली अपनैं-अपनैं घर।
तुम हीं सबनि मिलि ढीठ करायौ, अब आईं छोरन बर॥
मोहिं अपने बाबा की सौहैं, कान्हहिं अब न पत्याउँ।
भवन जाहु अपनैं-अपनैं सब, लागति हौं मैं पाउँ॥
मोकौं जनि बरजौ जुवती कोउ, देखौ हरि के ख्याल।
सूर स्याम सौं कहति जसोदा, बड़े नंद के लाल॥

व्रजरानी इतनी कठोर तो कभी नहीं थीं! उन्होंने इतना रूक्ष व्यवहार तो हम सबसे आजतक कभी नहीं किया! गोपरामाओंके हृदयमें ठेस-सी लगती है। उन सबमें रोषका संचार हो जाता है। वे बोलीं—

ऐसी रिस तोकौं नँदरानी।
भली बुद्धि तेरैं जिय उपजी, बड़ी, बैस अब भई सयानी॥
ढोटा एक भयौ कैसैंहु करि, कौन-कौन करबर बिधि भानी।
क्रम-क्रम करि अब लौं उबर्‌यौ है, ताकौं मारि पितर दै पानी॥
को निरदई रहै तेरैं घर, को तेरैं सँग बैठै आनी।

तथा हृदयमें दुःखका भार लिये, अत्यन्त उदास, अतिशय खिन्न वे अपने घरकी ओर चल पड़ीं—

सुनहू सूर कहि-कहि पचिहारीं, जुवती चलीं घरनि बिरुझानी॥

पुरसुन्दरियाँ मुझे जननीके अनुशासनसे, जननीप्रदत्त बन्धनसे मुक्त कर देंगी—श्रीकृष्णचन्द्रकी यह आशा टू गयी। अब वे अश्रुपूरित कण्ठसे अग्रज बलरामका नाम ले-लेकर पुकारने लगते हैं; किंतु अग्रज यहाँ कहाँ; वे तो जननीके साथ उपनन्द-गृहमें हैं। फिर भी अनुजका आह्वान व्यर्थ नहीं होता। रोहिणी मैया कुछ भी न जान सकीं, पर रोहिणीनन्दन बलरामके हृत्तन्तुओंपर श्रीकृष्णचन्द्रका करुण क्रन्दन झंकृत हो उठा। वे व्याकुल हो उठे। माताके लौटनेमें तो अभी पहरभरका विलम्ब है। इतना धैर्य बलराममें कहाँ? वे भाग चले, क्षणोंमें ही निर्विघ्न नन्दभवनके समीप जा पहुँचे। मार्गमें कोई बाधा नहीं आयी; क्योंकि योगमायाने उपनन्दपत्नी एवं श्रीरोहिणीके स्मृति-पथमें, 'राम यहीं खेल रहा है या कहीं चला गया?' इस प्रश्नके सामने एक झीनी चादर डाल दी थी। अस्तु—

नन्दप्राङ्गणसे लौटती हुई कुछ व्रजपुरन्ध्रियोंने बलरामकी ओर देखा एवं बलरामने उनकी ओर। एक अतिशय व्यथित गोपी चटपट श्रीकृष्णचन्द्रके ऊखल-बन्धनकी सारी बा रामको सुनाने लगी—

हलधर सौं कहि ग्वालि सुनायौ।
प्रातहिं तैं तुम्हरौ लघु भैया, जसुमति ऊखल बाँधि लगायौ॥

फिर तो रोहिणीनन्दन दौड़ पड़े, श्रीकृष्णचन्द्रके समी चले आये। पर आह! अनुजकी दशा देखकर रोहिणीनन्दनके नेत्र तो छल-छल करने लगे—

यह सुनि कै हलधर तहँ धाए।

देखि स्याम ऊखल सौं बाँधे, तबहीं दोउ लोचन भरि आए॥

बलराम अपने हाथसे यशोदारानीका अंचल पकड़कर गद्गद-कण्ठसे बोले—

स्यामहिं छोरि मोहिं बाँधै बरु, निकसत सगुन भले नहिं पाए।
मेरे प्रान-जिवन-धन कान्हा, तिनके भुज मोहिं बँधे दिखाए॥

ओह! अग्रजकी बात सुनते ही यशोदारानीके प्राणोंमें टीस-सी होने लगी। उन्हें भान हुआ कि अब कठोरताके इस झूठे स्वाँगका निर्वाह करना उनके लिये तो असम्भव है; किंतु नहीं, उसी क्षण अचिन्त्यलीलामहाशक्तिने वात्सल्यरसघनमूर्ति यशोदारानीके मनको अपने हाथोंमें ले लिया। व्रजेश्वरी तो उमड़ते हुए वात्सल्य-सिन्धुमें बहने जा रही थीं, पर लीलाशक्ति उन्हें बाहर निकाल ले आयी तथा ऊपर अपना हाथ फेरकर कुछ समयके लिये धैर्य धारण करने योग्य बना डाला। अवश्य ही मैया अग्रजको बोलकर उत्तर न दे सकीं। केवल उनकी प्रार्थनाको अस्वीकार करते हुए अपना सिर किंचिन्मात्र हिला पायीं।

अब तो रोहिणीनन्दनको क्रोध हो आया। नेत्र और भी अरुण हो उठे। कुछ क्षण तिरछी चितवनसे जननीकी ओर देखकर वे बोले—

काहे कौं कलह नाध्यौ, दारुन दाँवरि बाँध्यौ,
कठिन लकुट लै तैं त्रास्यौ मेरैं भैया।
नाहीं कसकत मन, निरखि कोमल तन,
तनिक से दधि-काज, भली री तू मैया॥
हौं तौ न भयौ री घर, देखत्यौ तेरी यौं अर,
फोरतौ बासन सब, जानति बलैया।
सूरदास हित हरि, लोचन आए हैं भरि,
बलहू कौं बल जाकौ सोई री कन्हैया॥

इस बार जननी मन-ही-मन हँस पड़ती हैं। साथ ही यह अनुभव करती हैं कि अब यहाँ और रुकना उचित नहीं; अन्यथा वे अपना धैर्य खो बैठेंगी तथा इस प्रकार अबतकका सारा प्रयास निष्फल हो जायगा। इस विचारसे व्रजेश्वरी पार्श्ववर्ती प्राङ्गणमें चली जाती हैं। यहाँ रह जाते हैं—गोपशिशुओंसे आवृत, ऊखलमें निबद्ध श्रीकृष्णचन्द्र एवं उनकी ओर सकरुण दृष्टिसे देखते हुए रोहिणीनन्दन बलराम। इनके अतिरिक्त अन्तरिक्षमें अवस्थित हैं अमरवृन्द, जो श्रीकृष्णचन्द्रकी इस भक्तवत्सलताको निहार-निहारकर आनन्दसिन्धुमें डूब-उतरा रहे हैं। क्यों न हों? सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका जननीके प्रति यह आत्मसमर्पण इस योग्य ही है। समस्त लोकपालोंके सहित यह परिदृश्यमान जगत् जिनके वशमें है, जिनपर किसीका बन्धन—शासन नहीं है, जो नित्य परम स्वतन्त्र हैं, उन अनन्त ऐश्वर्यनिकेतन, यशोदानन्दन श्रीकृष्णचन्द्रने जननीके द्वारा दिये हुए बन्धनको स्वीकार कर आज वास्तवमें अपनी भक्ताधीनताको प्रत्यक्ष प्रकट जो कर दिया है—

एवं संदर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भृत्यवश्यता।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे॥

(श्रीमद्भा० १०। ९। १९)

जिस कृपा-वैभवका आस्वाद व्रजेश्वरीने पाया, उसे आजतक नारायणके नाभिकमलसे उत्पन्न, प्रापञ्चिक भक्तोंके आदिगुरु जगत्-विधाता ब्रह्माने भी न पाया, आत्मस्वरूप शंकरने भी कभी उसे अनुभव न किया, वक्षः-स्थलविलासिनी लक्ष्मीको भी वह न मिला। मुक्तिपर्यन्त पुरुषार्थदाता श्रीकृष्णचन्द्रसे जो प्रसाद गोपमहिषीने पाया, वह किसीने नहीं—

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्॥

(श्रीमद्भा० १०। ९। २०)

आज यह भी प्रत्यक्ष हो गया—यशोदानन्दन स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अनायास सुखपूर्वक पा लेनेका मार्ग कौन-सा है। व्रजवासियोंके समान केवल प्रेमके लिये ही प्रेम करनेवाले भक्तोंको वे जितने सुलभ हैं, उतने सुलभ किसी भी प्राणीके लिये नहीं—और तो क्या अपने आत्मभूत तत्त्वज्ञानियोंके लिये भी नहीं—

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥

(श्रीमद्भा० १०। ९। २१)

यह सब प्रत्यक्ष देखकर, अनुभवकर देववृन्द तो

आनन्दमत्त हो गये हैं, किंतु यशोदारानीके ध्यानमें बस, इतनी-सी बात है कि अपने चंचल नीलमणिको उन्होंने कुछ क्षणोंके लिये ऊखलसे बाँध दिया है। 'भर्त्सनासे अपनेको अपमानित मानकर, रूठकर कहीं वह वनकी ओर एकाकी भाग न जाय—इसकी उचित व्यवस्थामात्र मैंने की है।' वे तो इतना ही जानती हैं। इसीलिये दूसरे कक्षमें जाकर निश्चिन्त-मनसे गृहकार्यमें संलग्न हो गयी हैं।

इधर अनुजके प्रति इतनी कठोरता एवं अपनी प्रार्थनाकी जननीकृत उपेक्षा—दोनों ही रोहिणीनन्दनके लिये असह्य हो जाती हैं। वे क्रोधसे दाँत पीसने लगते हैं, किंतु श्रीकृष्णचन्द्रका क्रन्दन क्रमशः शान्त होने लगता है। जबतक गोपसुन्दरियाँ थीं, जननी उपस्थित थीं, तबतक तो वे अत्यन्त व्याकुल थे। पर उनके जानेके कुछ क्षणोंके पश्चात् ही वे शान्त होने लगे। धीरे-धीरे क्रन्दन समाप्त हो जाता है और अब तो उसके बदले उनके अरुण अधरोंपर मन्द मुसकान छा जाती है। अवश्य ही अभी यह मुसकान व्रजरानीके वात्सल्यरसपानसे मत्त हुए, अपने अनन्त ऐश्वर्यको विस्मृत हुए स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रकी नहीं है; यह मुसकान है उनके अधरोंकी ओटमें उनके लीलामञ्चकी अधिष्ठात्री योगमायाकी! वह व्यक्त हुई है अतिशय व्याकुल बलरामको आश्वासन देनेके लिये, क्षणभरके लिये बलराममें उनके अनुजके अनन्त असमोर्ध्व ऐश्वर्यका उन्मेषकर उनकी चिन्ता हर लेनेके लिये, साथ ही रसपानप्रमत्त श्रीकृष्णचन्द्रमें एक सुदूर अतीतकी—अपने परम भक्त नारदके द्वारा दी हुई प्रति-श्रुतिकी स्मृति जगानेके लिये। उस मुसकानने रोहिणी-नन्दनकी चिन्ता हर ली। ठीक वैसी ही एक किरण उनके अधरोंपर भी व्यक्त हो जाती है तथा नेत्रोंमें ऐश्वर्यका चित्रपट भर जाता है—

77084

निरखि स्याम हलधर मुसुकाने।
को बाँधै, को छोरै इनकौं, यह महिमा येई पै जाने॥
उतपति-प्रलय करत हैं येई, सेष सहसमुख सुजस बखाने।
जमलार्जुन तरु तोरि उधारन, कारन करन आपु मन माने॥
असुर सँहारन, भक्तनि तारन, पावन-पतित कहावत बाने।
सूरदास प्रभु भाव-भक्ति के, अति हित जसुमति हाथ बिकाने॥

श्रीकृष्णचन्द्र भी मानो जाग-से उठते हैं। नन्दसदनके समीप खड़े गगनचुम्बी यमलार्जुन वृक्षोंकी ओर उनकी दृष्टि चली जाती है। उसी क्षण बाल्यावेशके अन्तरालसे उनकी सर्वज्ञता-शक्ति संकेत करने लगती है—'लीलाविहारिन्! दामोदर! देखो नाथ! देवपरिमाणसे शतवर्ष पूर्वसे ये युग्म अर्जुन-वृक्ष यहाँ आकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। कुबेरपुत्र नलकूबर एवं मणिग्रीव ही वृक्ष बनकर तुम्हारी कृपाकी बाट देख रहे हैं! धनमदने इन्हें अंधा कर दिया था, किंतु तुम्हारे परम भक्त देवर्षि नारदकी इनपर कृपा हुई। देवर्षिने शाप देकर इन्हें वृक्ष-योनि दे दी, अनुग्रह करके तुम्हारे क्रीडा-प्राङ्गणके किनारे निवास दे दिया। तबसे बारम्बार ग्रीष्मके आतपका, पावसकी झड़ीका, शिशिरके हिमका और पवनके प्रचण्ड झंझावातका उपभोग करते हुए ये अपनी सारी मलिनता धो चुके हैं। अब समय पूर्ण हो चुका है, नाथ! अपना पावन स्पर्श दानकर इन्हें कृतार्थ करो, प्रभो! अवसर भी सुन्दर है, जननी गृहकार्यमें व्यस्त हैं'—

पुस्तकालय

कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः।
अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ॥
पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात्।
नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ॥

(श्रीमद्भा० १०। ९। २२-२३)

सर्वज्ञताशक्तिके उपर्युक्त संकेतपर श्रीकृष्णचन्द्र अपनी स्वीकृति दे देते हैं—

हरि चितए जमलार्जुन के तन।
अबहीं आजु इन्हैं उद्धारौं, ये हैं मेरे निज जन॥

× × ×

ये सुकुमार, बहुत दुख पायौ, सुत कुबेर के तारौं।
सूरदास प्रभु कहत मनहिं मन, यह बंधन तिह वारौं॥

* * *

श्रीदामोदराष्टकम्

नमामीश्वरं सच्चिदानन्दरूपं लसत्कुण्डलं गोकुले भ्राजमानम्।
यशोदाभियोलूखलाद्धावमानं परामृष्टमत्यन्ततो द्रुत्य गोप्या॥
रुदन्तं मुहुर्नेत्रयुग्मं मृजन्तं कराम्भोजयुग्मेन सातंकनेत्रम्।
मुहुः श्वासकम्पत्रिरेखाङ्ककण्ठस्थितग्रैवदामोदरं भक्तिबद्धम्॥
इतीदृक् स्वलीलाभिरानन्दकुण्डे स्वघोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तम्।
तदीयेशितव्येषु भक्तैर्जितत्वं पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति वन्दे॥
वरं देव मोक्षं न मोक्षावधिं वा न चान्यं वृणेऽहं वरेशादपीह।
इदं ते वपुर्नाथ गोपालबालं सदा मे मनस्याविरास्तां किमन्यैः॥
इदं ते मुखाम्भोजमव्यक्तनीलैर्वृतं कुन्तलैः स्निग्धरक्तैश्च गोप्या।
मुहुश्चुम्बितं बिम्बरक्ताधरं मे मनस्याविरास्तामलं लक्षलाभैः॥
नमो देव दामोदरानन्त विष्णो प्रसीद प्रभो दुःखजालाब्धिमग्नम्।
कृपादृष्टिवृष्ट्यातिदीनं बतानुगृहाणेश मामज्ञमेध्यक्षिदृश्यः॥
कुबेरात्मजौ बद्धमूर्त्यैव यद्वत् त्वया मोचितौ भक्तिभाजौ कृतौ च।
तथा प्रेमभक्तिं स्वकां मे प्रयच्छ न मोक्षे ग्रहो मेऽस्ति दामोदरेह॥
नमस्तेऽस्तु दाम्ने स्फुरद्दीप्तिधाम्ने त्वदीयोदरायाथ विश्वस्य धाम्ने।
नमो राधिकायै त्वदीयप्रियायै नमोऽनन्तलीलाय देवाय तुभ्यम्॥

जिनके कानोंमें मकराकृत कुण्डल सुशोभित हैं, जो गोकुलमें अपनी अलौकिक प्रभाका प्रसार करते हुए माँ यशोदाके भयसे छीकेपर रखे हुए माखनको चुरानेका प्रयत्न छोड़कर उलटाये हुए ऊखलपरसे भाग छूटते हैं और जिन्हें उसी दशामें नन्दरानी वेगपूर्वक दौड़कर पकड़ लेती हैं, उन सच्चिदानन्द-विग्रह सर्वेश्वर श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ। जननीके तर्जनसे भयभीत होकर रोते हुए वे बार-बार अपने दोनों सभीत नेत्रोंको युगल हस्तकमलोंसे मसल रहे हैं। बार-बार सुबकनेके कारण जिनके त्रिरेखायुक्त कण्ठमें पड़ी हुई मोतियोंकी माला कम्पित हो रही है, माता यशोदाने अपनी अनुपम भक्तिके बलसे उनकी कमरको रस्सीसे बाँध दिया है। इस प्रकार अपने दामोदर नामको चरितार्थ करते हुए श्रीनन्दनन्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो अपनी ऐसी-ऐसी लीलाओंके द्वारा गोकुलवासियोंको आनन्दसरोवरमें निमग्न करते तथा अपने दासोंपर इस प्रकार अपनी भक्तपरवशता प्रकट करते रहते हैं, उन लीला-विहारी प्रभुकी मैं पुनः प्रेम-पूर्वक शत-शत वन्दना करता हूँ। हे देव! यद्यपि आप वर देनेमें सब प्रकार समर्थ हैं, फिर भी मैं आपसे वररूपमें न तो मोक्षकी याचना करता हूँ और न मोक्षकी परम अवधिरूप श्रीवैकुण्ठादि लोकोंकी प्राप्ति ही चाहता हूँ। न मैं इस जगत्से सम्बन्ध रखनेवाला कोई दूसरा वरदान ही आपसे माँगता हूँ। मैं तो आपसे इतनी ही कृपाकी भीख माँगता हूँ कि नाथ! आपका यह बाल-गोपालरूप ही निरन्तर मेरी चित्तभूमिपर अवस्थित रहे; मुझे और वस्तुओंसे क्या प्रयोजन है। अत्यन्त नीलवर्ण, सुचिक्कण एवं कुछ-कुछ लालिमा लिये हुए घुँघराले बालोंसे घिरा हुआ तथा नन्दरानी यशोदाके द्वारा बार-बार चूमा हुआ तुम्हारा कमल-सा मुखड़ा तथा पके हुए बिम्बफल-सदृश लाल-लाल अधर-पल्लव मेरे मानस-पटलपर सदा थिरकते रहें; मुझे लाखों प्रकारके दूसरे लाभोंसे कोई प्रयोजन नहीं है। हे देव! हे दामोदर! हे अनन्त! हे विष्णो! तुम्हें प्रणाम है। प्रभो! मुझपर प्रसन्न होओ एवं दुःखसमूहरूप समुद्रमें डूबे हुए मुझ अति दीन एवं अज्ञ प्राणीको कृपादृष्टिकी वर्षासे निहाल कर दो और हे स्वामिन्! तुम सदा ही मेरे नेत्रगोचर बने रहो। हे दामोदर! जिस प्रकार तुमने अपने दामोदररूपसे ही ऊखलमें बँधे रहकर कुबेरके यमज पुत्रोंका वृक्षयोनिसे उद्धार तो किया ही, साथ-ही-साथ उन्हें अपना भक्त भी बना लिया, उसी प्रकार मुझे भी अपनी प्रेमभक्तिका दान करो। मेरा मोक्षके लिये तनिक भी आग्रह नहीं है। जगमगाते हुए प्रकाशपुञ्ज-सदृश उस रज्जुको प्रणाम है! सम्पूर्ण विश्वके आधारभूत तुम्हारे उदरको भी नमस्कार है; तुम्हारी प्रियतमा श्रीराधारानीके चरणोंमें मेरा बार-बार प्रणाम है और अनन्त लीलामय देवाधिदेव तुमको भी मेरा शत-शत प्रणाम है।

प्र० ति० ५-१-९८

तन्मङ्गलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः

श्रीकम्बुकौस्तुभसुधांशुविषामृतानां सौदर्यसौहृदसुखानुभवैकधाम।
यत्सत्यधर्मकृतनिष्प्रतिघप्रतिष्ठं तन्मङ्गलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः॥
आपीडबन्धनविधौ शयने च वर्ष्म पर्याप्तभोगविभवं बहुमन्यमानः।
यत्र प्रहृष्यतितरामुरगाधिराजस्तन्मङ्गलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः॥
अर्धं यदुत्पलदलैरुमयेन्दुगौरमर्धं श्रियार्चितमलिद्युति मालतीभिः।
विच्छित्तिमेत्यनिमिषेक्षणशुक्तिपेयां तन्मङ्गलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः॥
केशाश्रिता नयनवह्निशिखाभ्रसिन्धुझाङ्कारगर्भवपुषो जलदा वहन्ति।
यत्राद्भुतं स्थिरतडिद्रसितप्रसङ्गं तन्मङ्गलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः॥
हीनार्धनाभिनलिनालयसंकटत्वसातंकसंकुचितवृत्तिकदर्थिताङ्गः।
अर्धीचिकीर्षति तनुं द्रुहिणोऽपि यत्र तन्मङ्गलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः॥
दृग्वर्तिनौ रवितमीरमणावखण्डमूर्ती निजं च वपुरर्धमवेत्य वह्निः।
यत्राधिकं ज्वलति लाघवमागतोऽपि तन्मङ्गलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः॥
यस्मिन् गुणी सहृदयः सफलः समूलः स्वातन्त्र्यधामनि करात् पतितः स पद्मः।
कम्बुः स्थितस्तु धृततद्विपरीतरीतिस्तन्मङ्गलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः॥
पादाग्रनिर्गतमवारितमेव वारि यत्राधिरोहति शिरस्त्रिदशापगायाः।
अत्यद्भुतं च रुचिरं च निरंकुशं च तन्मङ्गलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः॥

(स्तुतिकुसुमाञ्जलि ४। १–८)

सत्य (गरुड) और धर्म (वृषभ)-में सुस्थिर हुआ जो (हरिहररूप) शरीर लक्ष्मी, पाञ्चजन्य शंख और कौस्तुभमणि एवं चन्द्रमा, विष और अमृतके पारस्परिक सौदर्य-सौहृद (सहोदरभावके प्रेम)-से होनेवाले आनन्दानुभवका एकमात्र आधार (निवासस्थान) है, अर्थात् जिस शरीरमें एक ओर (हरिरूप अर्धभागमें) पार्श्वमें लक्ष्मी, हाथमें पाञ्चजन्य शंख एवं वक्षःस्थलमें कौस्तुभमणिका निवास है, दूसरी ओर (शिवरूप अर्धभागमें) मुकुटपर चन्द्रमा, कण्ठमें विष एवं करतलमें अमृतका निवास है; वह भगवान् शिवका हरिहर-स्वरूप आप लोगोंका मङ्गल करे। जिस (शरीर)-में एक ओर (शिवरूप अर्धभागमें) तो जटाजूटको बाँधनेके लिये तथा दूसरी ओर (विष्णुरूप अर्धभागमें) शय्याके लिये अपने अङ्गोंको पर्याप्त देख अपने (शरीर)-को कृतार्थ (धन्य-धन्य) समझता हुआ शेषनाग [मनमें] अत्यन्त हर्षित होता है, वह सदाशिवका हरिहर-स्वरूप आपको मङ्गल प्रदान करे। जिस शरीरका चन्द्रमाके समान स्वच्छ एक अर्धभाग नीलकमलोंद्वारा पार्वतीजीसे पूजित और भ्रमरकी कान्तिके समान श्यामल है तथा दूसरा अर्धभाग जातीपुष्पोंद्वारा श्रीलक्ष्मीसे पूजित होकर देवताओंके नेत्ररूप चषकों (पानपात्रों)-से पीने योग्य (अत्यन्त दर्शनीय दिव्य शोभाको प्राप्त) होता है, वह सदाशिवका हरिहर-स्वरूप आपका कल्याण करे। जिस (हरिहर-स्वरूप)-के श्रीहरिरूप अर्धभागसम्बन्धी केशोंमें स्थित हुए मेघ, श्रीहररूप अर्धभागसम्बन्धी तृतीय नेत्रकी अग्नि और मस्तकपर स्थित हुई देवगङ्गाके गम्भीर झाङ्कार (शब्द)-से गर्भित होकर विद्युत्के आश्चर्यजनक शब्दको धारण करते हैं, वह सदाशिवका हरिहर-स्वरूप आपका मङ्गल करे। ब्रह्माजी भी जिस (हरिहररूप)-की विष्णु-रूपसम्बन्धी अर्धनाभिमें अपने आधारभूत कमलके अत्यन्त संकुचित रहनेके कारण अपनी स्थितिके भी अति संकुचित हो जानेसे [सब] अङ्गोंके पीडित हो जानेपर खिन्न हो अपने भी शरीरको आधा बनाना चांहते हैं, वह सदाशिवका हरिहररूप दिव्य शरीर आपको परम मङ्गल प्रदान करे। जिस (शरीर)-में लघुताको प्राप्त हुआ भी अग्नि अपने साथी सूर्य और चन्द्रमाको प्रभुके दाहिने और बाँयें नेत्रमें अखण्डित अर्थात् पूर्ण शरीरवाले देखकर ईर्ष्याके कारण [क्रोधसे] और भी अधिक प्रज्वलित होता है, वह श्रीशिवका हरिहर-स्वरूप आपका कल्याण करे। जिस (स्वतन्त्र शक्तिशाली शरीर)-में एक ओर अर्थात् शिवरूप अर्धभागमें गुणी (सूक्ष्म तनुओंसे युक्त), सहृदय (कर्णिकासहित), सफल (फलसहित) एवं समूल (मूल या नालसहित) कमलको हाथसे हटा दिया है अर्थात् उसे हाथमें धारण ही नहीं किया; दूसरी ओर (विष्णुरूप अर्धभागमें) उन पूर्वोक्त लक्षणोंके विपरीत अर्थात् निर्गुण, अहृदय (बिना हृदयवाले) और अफल (बिना फलवाले) एवं निर्मूल (मूलरहित) शंख (पाञ्चजन्य)-को भी हाथमें धारण कर लिया है, वह सदाशिवका मनोहर हरिहर-स्वरूप आपका कल्याण करे। जिसकी एक ओरके (हरि-रूप अर्धभाग-सम्बन्धी) पादाङ्गुष्ठसे निकली हुई गङ्गाका अति अद्भुत सुमनोहर और निरंकुश (उच्छृंखल) जल बिना किसी रोक-टोकके उसी शरीरकी दूसरी ओर (श्रीशिवरूप अर्धभाग-सम्बन्धी) मस्तकमें आरूढ हो जाता है, वह अत्यन्त अद्भुत चन्द्रमाकी किरणोंके समान स्वच्छ और निरंकुश अर्थात् स्वतन्त्र शक्तिशाली हरिहर-शरीर (श्रीशिवका हरिहर-स्वरूप) आपका मङ्गल करे।

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

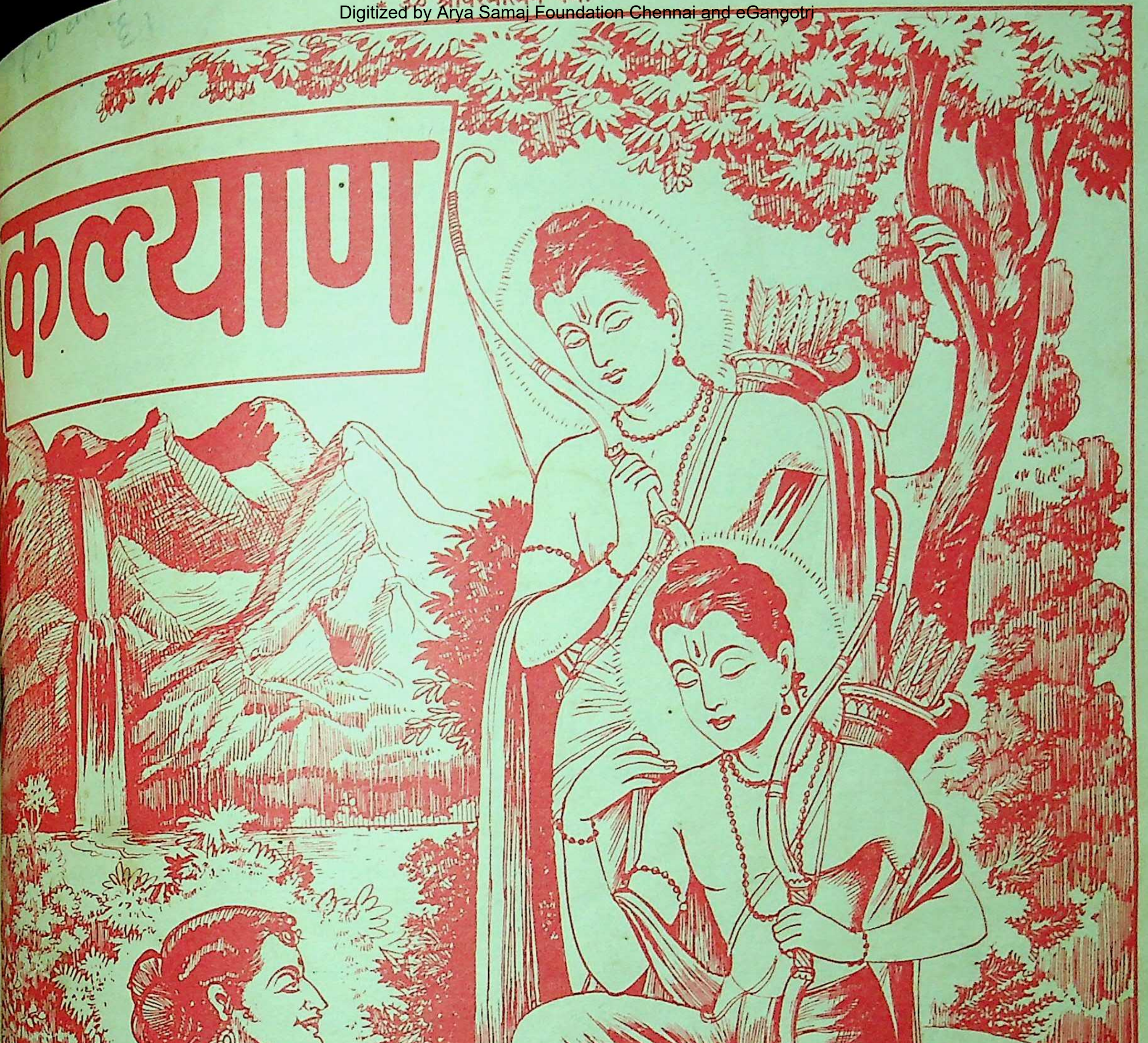

6/8/98

LIBRARY
...vidyalaya

वर्ष ७२ संख्या ४

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,३५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, अप्रैल १९९८ ई०

विषय — पृष्ठ-संख्या

१- पतितपावन राम नमोऽस्तु ते ५०९
२- कल्याण (शिव) ५१०
३- निष्कामभावकी सूक्ष्मता (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ५११
४- वामन-लीलाका रहस्य (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज) [प्रस्तुति—(प्रो०) श्रीबिहारीलालजी टांटिया] ... ५१५
५- संयमका अभ्यास (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ५१९
६- ज्योतिर्लिङ्ग भगवान् केदारेश्वरका प्राकट्य........ ५२३
७- साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ५२४
८- श्रीरुक्मिणीका प्रभुमें अनन्य प्रेम........................ ५२७
९- साधक-प्राण-संजीवनी (गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज) ५३३
१०- *श्रीरामलीला-चिन्तन*—
    पुरस्कार-वितरण ५३५

विषय — पृष्ठ-संख्या

११- *श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन*— ५३८–५४२
    [१] यमलार्जुनके अतीत जन्मकी कथा; यमलार्जुन-उद्धार ५३८
    [२] कुबेर-पुत्रोंको स्वरूप-प्राप्ति तथा उनके द्वारा श्रीकृष्णका स्तवन एवं प्रार्थना; श्रीकृष्णकी उनके प्रति करुणापूर्ण आश्वासन-वाणी..... ५३९
१२- साधनोपयोगी पत्र........................ ५४३
१३- *बाल-कल्याण*— ५४८–५५१
    [१] बालक श्रीकृष्णकी मनोहर लीलाएँ......... ५४८
    [२] राष्ट्रकी सबसे बड़ी सम्पत्ति ५५०
    [३] बालकोंके प्रति महात्मा श्रीरूपकलाजीके उपदेश ५५०
    [४] धर्मप्रचारके लिये जीवनकी आहुति देनेवाला विद्यार्थी ५५१
    [५] बालकका मनोरथ [कविता] ५५१
१४- पढ़ो, समझो और करो ५५२
१५- मनन करने योग्य........................ ५५६

~~~

चित्र-सूची

१-शबरीपर भगवान् श्रीरामकी कृपा (इकरंगा) आवरण-पृष्ठ
२-श्रीरामके बालचरित्र (रंगीन) मुख-पृष्ठ

~~~

इस अङ्कका मूल्य ४ रु०
विदेशमें—US$0.40
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ८० रु०
(सजिल्द ९० रु०)
विदेशमें—US$11

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

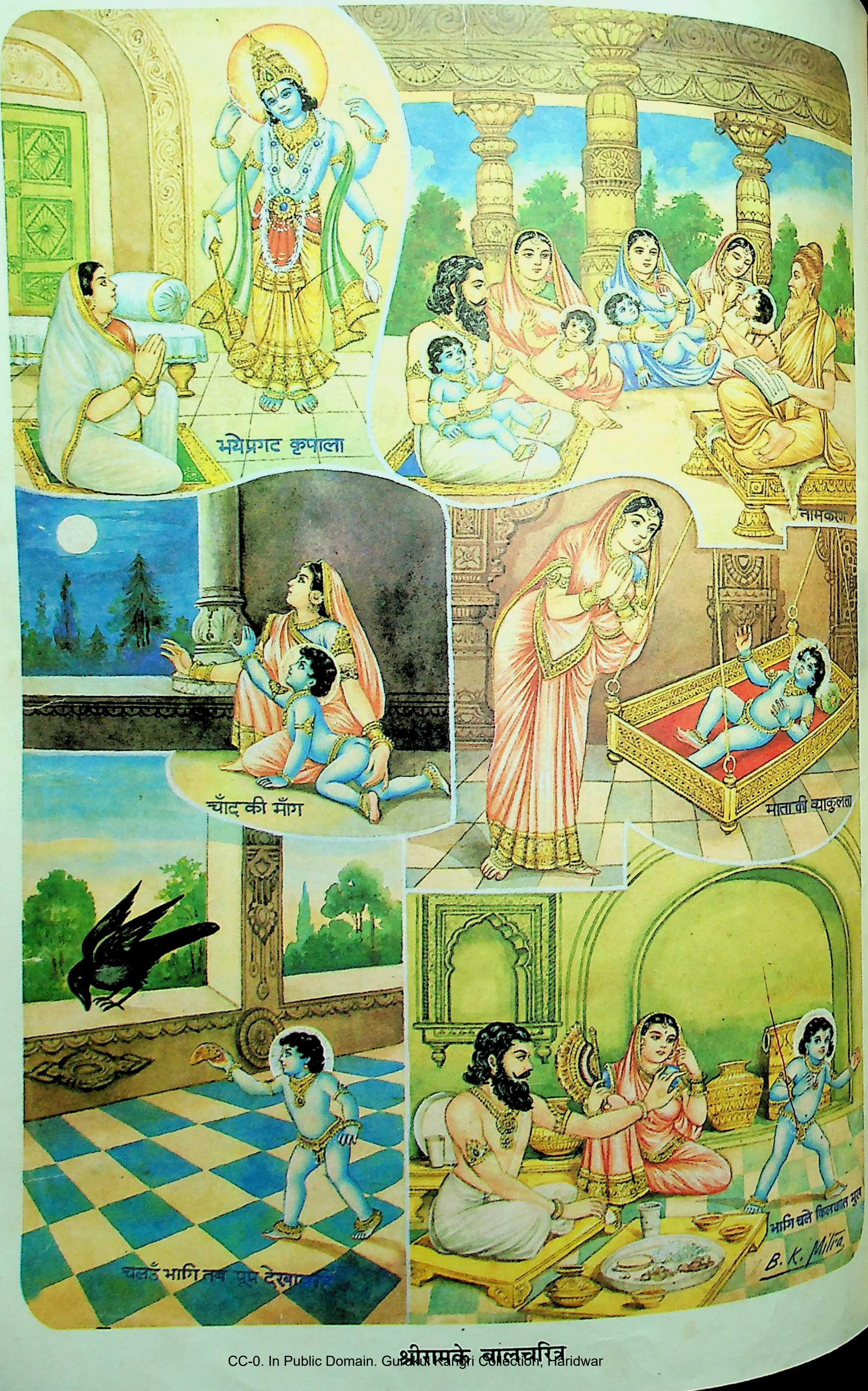
भये प्रगट कृपाला
नामकरण
चाँद की माँग
माता की व्याकुलता
चलउँ भागि तब पूप देखावा
भागि चले किलकात मुख
B. K. Mitra

श्रीरामके बालचरित्र

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

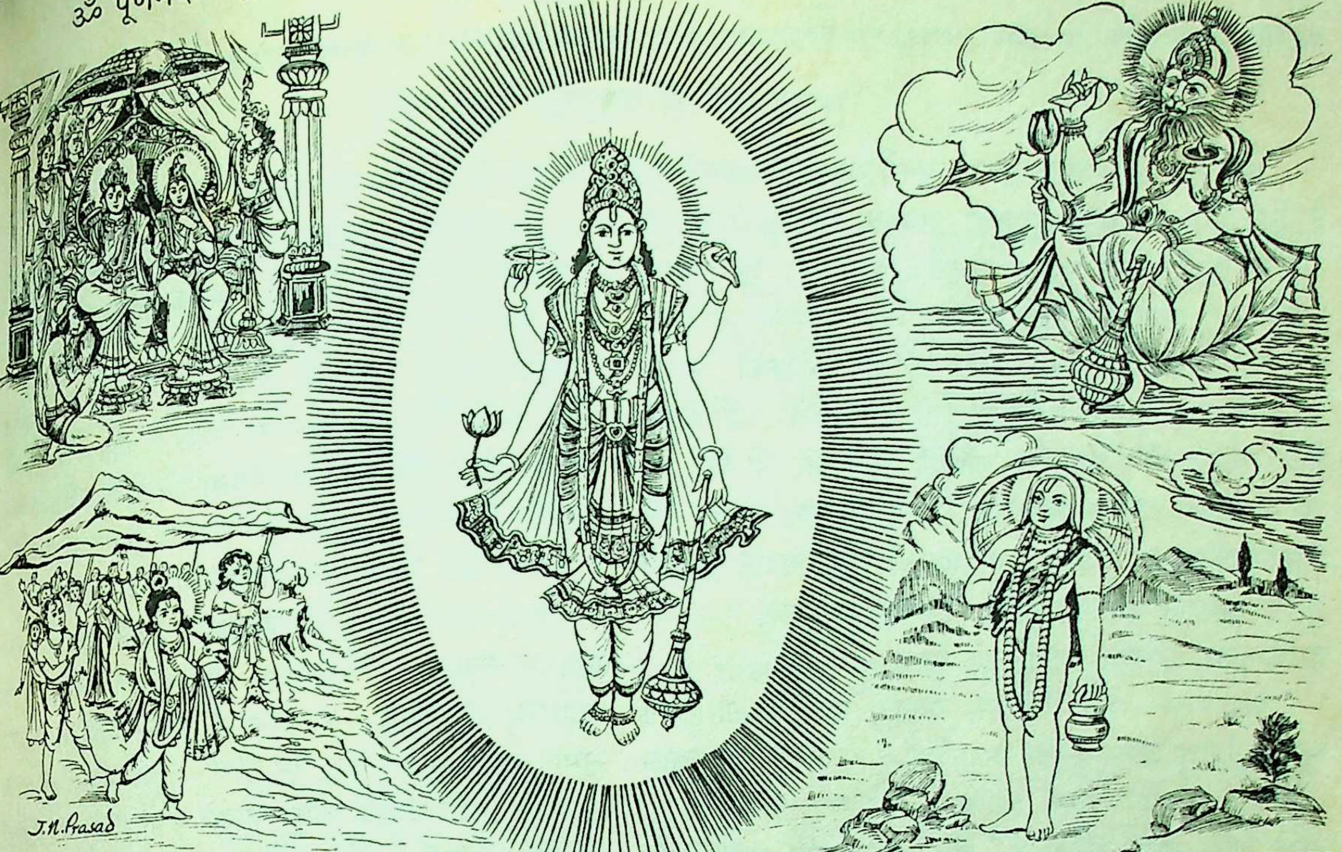

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

वर्ष ७२ | गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, अप्रैल १९९८ ई० | संख्या ४
पूर्ण संख्या ८५७

पतितपावन राम नमोऽस्तु ते

भुवनभावन राम नमोऽस्तु ते निजजनावन राम नमोऽस्तु ते। अधमधावनतारणतृष्णया पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥
सुरधराविधिशम्भुभिरर्थितः प्रकटितस्त्वमभूर्भुवि भारहृत्। सुखयितुं निजभक्तजनान् विभो पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥
त्वमसि भास्वरभास्करसंततिः कुमुदिनीकुलमोदनचन्द्रमाः। स्वजनचन्दन तापनिकन्दन पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥
निजपितुर्निजमातुरनारतं नयननन्दन चन्दन चेतसः। जनकजानिजजीवनवित्त हे पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

जगदाश्रय श्रीरामजी! आपको नमस्कार है। स्वजनरक्षक राम! आपको नमस्कार है। अधम जनोंका उद्धार करनेकी प्रबल इच्छासे दौड़नेवाले पतितपावन श्रीराम! आपको नमस्कार है। विभो! देवता, पृथ्वी, ब्रह्मा और शिवके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर (भू-) भारका हरण करनेके लिये और अपने भक्तजनोंको सुख देनेके लिये आप इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। अतः हे पतितपावन श्रीराम! आपको नमस्कार है! स्वजनोंके लिये चन्दनस्वरूप एवं त्रिविध तापोंको नष्ट करनेवाले श्रीराम! आप ही सूर्यवंशको दीप्तिमान् बनानेवाले हैं तथा आप ही (भक्तोंके) कुमुदसमूहको आनन्द देनेवाले चन्द्र हैं। हे पतितपावन श्रीराम! आपको नमस्कार है। अपने माता एवं पिताके नेत्रोंको सतत आनन्द प्रदान करनेवाले, हृदयके चन्दन और श्रीजानकीजीके जीवन-धन हे पतितपावन श्रीराम! आपको नमस्कार है।

◆

कल्याण

याद रखो—जबतक तुम्हारे मनमें यह धारणा बनी हुई है कि भोग-पदार्थोंमें सुख है, तबतक तुम सच्चे सुखके समीप कभी नहीं पहुँच सकते। भगवान्ने तो गीतामें भोगोंको दु:खयोनि—दु:ख उत्पन्न होनेका क्षेत्र बतलाया है।

याद रखो—जबतक भोग-पदार्थोंमें सुखकी भावना है, तबतक तुम उनका त्याग भी नहीं कर सकते। कहीं किसी हेतुसे किसी भोग-पदार्थका बाहरसे त्याग कर भी दोगे, तो भी मनमें यह धारणा रहेगी कि उस वस्तुमें सुख तो था, मैंने उसका त्याग कर दिया। अत: उसकी सुखरूपतामें तुम्हारी धारणा पूर्ववत् बनी ही रहेगी। इसका अर्थ यही हुआ कि तुमने मनसे उसका त्याग नहीं किया।

याद रखो—धन, परिवार, मकान, शरीरके आरामकी सामग्रियाँ तथा अन्यान्य भोग-पदार्थोंका त्याग करके एकान्तवास करनेवाले लोगोंके मनमें भी प्राय: यह बात रहती है कि हमने बड़ा काम किया है, जो इतनी उत्तम-उत्तम और ग्रहण करने योग्य महत्त्वकी वस्तुओंका त्याग कर दिया है—सारांश यह कि उन वस्तुओंका गौरव उनके मनमें बना है और जबतक गौरव है, तबतक मनसे त्याग कभी नहीं होता। वरं अवसर पाकर वे वस्तुएँ उस त्यागीके पास पुन: स्थूलरूपमें पहुँच जाती हैं और वह त्यागकी पोशाकमें ही उन्हें दूसरे-दूसरे नाम देकर स्वीकार कर लेता है।

याद रखो—जबतक किसी विषयमें त्याज्यबुद्धि, हेयबुद्धि, विषबुद्धि या मलिनबुद्धि नहीं होती, तबतक उसका पूर्णतया त्याग नहीं होता; परंतु हेयबुद्धि होनेपर जो त्याग होता है, उसमें न तो उन वस्तुओंके गौरवकी धारणा मनमें रहती है और न उनके त्यागमें अपने प्रति ही गौरवकी भावना होती है। कोई जंगलमें शौच होकर आवे, की हुई उलटीको नालीमें बहा दे, नाकसे बलगम छिनक दे, घरके कूड़े-करकटको बुहारकर बाहर फेंक दे, इधर-उधर बिखरे मैलेको साफ करके उसे कूड़ेमें डलवा दे या दुर्गन्धसे पूर्ण मरे चूहे आदि जीवोंको दूर फेंकवा दे, इन सब कामोंको करके क्या किसीके मनमें क़भी यह आता है कि हमने बड़े गौरवकी, ग्रहण करने योग्य उत्तम वस्तुओंका त्याग कर दिया अथवा कभी वह इस बातका गौरव या गर्व करता है कि मैंने इसको फेंककर बड़ा त्याग किया। शास्त्रोंने विषयोंको विषवत् त्यागनेकी, 'तजत बमन इव' आदि बातें इसीलिये कही हैं कि इनमें मलिनबुद्धि होनेपर जो त्याग होगा वह पक्का होगा और फिर कभी इनकी पुन: स्मृति नहीं होगी।

याद रखो—जबतक तुम्हारे मनमें भोग-पदार्थोंके-विषयोंके प्रति गौरव-बुद्धि है, तबतक उनका त्याग यथार्थत: होता ही नहीं। उनकी स्मृति होती रहती है और किसी-न-किसी रूपमें ग्रहण भी होता रहता है और उस ग्रहणके समय मनमें जरा भी घृणा या विपरीत भावना नहीं होती; वरं अपनी इस क्रियाका अनौचित्य ढकने या औचित्य सिद्ध करनेके लिये इसे 'समता'का नाम दे दिया जाता है, जो एक प्रकारकी प्रबल प्रवञ्चना होती है।

याद रखो—शास्त्रोंने प्रतिष्ठाको सूकरीविष्ठा कहा है, मान-सत्कारको संतोंने मीठा विष बतलाया है, धनादि पदार्थोंको विष्ठावत् असह्य कहा है, कामिनीको तप्त अङ्गारके समान बतलाया है। परंतु तुम सोचो, अपने अंदर देखो—क्या इन वस्तुओंकी प्राप्तिके समय तुम्हारे अंदर ऐसा भाव होता है या कुछ सुखकी प्रतीति होती है—हृदयमें मीठी-सी गुदगुदी होती है? यदि होती है तो तुम्हारा त्याग क्या सच्चा त्याग है?

याद रखो—विषयोंकी प्राप्तिमें सुखकी प्रतीति न होनेपर भी यदि मनमें यह भाव है कि हमने सुखोपभोगका—सुख देनेवाली बहुमूल्य वस्तुओंका त्याग कर दिया है तो भी तुम्हारा त्याग सच्चा नहीं है।

याद रखो—या तो सर्वत्र भगवद्बुद्धि होनी चाहिये—भगवान्के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तुका अस्तित्व ही न रहे और यदि रहे तो वह मलिन, दु:ख-दोषपूर्ण त्याज्य वस्तुके रूपमें रहे। उसकी ओर मन न जाय, वैसे ही जैसे निरामिषभोजी वैष्णवका मांसकी ओर मन नहीं जाता, मृत्युका ज्ञान रखनेवाले पुरुषका संखिया आदि विष खानेकी ओर नहीं जाता, सती पतिव्रताका परपुरुषकी ओर नहीं जाता और सच्चे अहिंसाव्रतीका किसीको मारनेकी ओर नहीं जाता।

याद रखो—जगत् नित्य सच्चिदानन्दघन परमात्मासे परिपूर्ण है। ये सब प्राणी उस आनन्दमयसे ही उत्पन्न हुए हैं, उन आनन्दमयमें ही जीवित रहते हैं और अन्तमें आनन्दमें ही समा जाते हैं। प्राणी ही नहीं, समस्त जड पदार्थ भी परमात्मस्वरूप ही हैं; परंतु जबतक ऐसी अनुभूति नहीं होती तबतक परमात्माको भुलानेवाले समस्त भोगोंमें दु:खबुद्धि, हेयबुद्धि, त्याज्यबुद्धिका होना परमावश्यक है। इसके बिना उनका त्याग होता ही नहीं। —'शिव'

* * *

निष्कामभावकी सूक्ष्मता

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

सत्संगमें सत्संगकी बात सुननेवाले जो भाई लोग आते हैं वे समझते हैं कि यहाँ आकर लाभ उठायें। वे अपनेको वक्ताका ऋणी समझते हैं, प्राय: वक्ता भी सुननेवालोंपर अपना ऋण समझते हैं यह मानते हैं कि हम श्रोताका उपकार कर रहे हैं किंतु ऐसा मानना उनकी भूल है, बल्कि वक्ताको तो यह मानना चाहिये कि श्रोताओंको जो लाभ होता है, उसका श्रेय वक्ताको नहीं; क्योंकि इसमें वक्ता तो निमित्तमात्र है—उसके मुँहसे जो उद्गार निकलते हैं, वे शास्त्रोंके आधारपर निकलते हैं और शास्त्ररूपी ज्ञान-धन वक्ताके घरके नहीं हैं। वह धन भगवान्‌के घरका है। अतएव उसे जो अपना धन मानता है, वह चोर है। वक्ताको यह कभी नहीं मानना चाहिये कि मैं बोलता हूँ। भगवान्‌ने उसको बोलनेके लिये जो निमित्त बनाया यह भगवान्‌की दया है। वक्ताको श्रोताका अपने ऊपर उपकार मानना चाहिये। क्योंकि यदि श्रोता नहीं होते तो वह किसे सुनाता। दूसरी बात यह है कि सुननेवाले जितने अधिक होते हैं वक्ताके हृदयमें उतने अधिक भाव पैदा होते हैं। अत: वक्ताको समझना चाहिये कि सुननेवाले मेरा उद्धार करनेवाले हैं। जो वक्ता ऐसा माने कि मेरा उद्धार हो गया यह उसकी मूर्खता है। सुननेवालोंको जो लाभ होता है, उससे ज्यादा लाभ वक्ताको होता है। प्रथम भगवद्‌विषयक भाव वक्ताकी बुद्धिमें आते हैं। बुद्धिका कुछ भाव मनमें, मनका कुछ ही अंश वाणीमें आता है, वह सब-का-सब कह नहीं सकता। जो कहता है वह श्रोता पूरा सुन नहीं पाता—मन इधर-उधर चला जाता है। जो सुना गया, मन उसका पूरा मनन नहीं कर सकता। जो मनन किया, उसका थोड़ा ही निश्चय बुद्धिमें आता है। जो निश्चयमें आया, वह सब-का-सब धारण नहीं होता। अतएव यह समझना चाहिये कि वक्तामें जितने भाव पैदा होते हैं, उतने श्रोताओंमें नहीं। इस न्यायसे वक्ताको श्रोताकी अपेक्षा विशेष लाभ है। श्रोता वक्ताकी थोड़ी-सी बात सुनकर अपने ऊपर वक्ताका उपकार मानता है, किंतु वक्ताको तो श्रोताओंका अपने ऊपर विशेष उपकार मानना चाहिये। यदि श्रोताओंके माननेकी बात बक्ता स्वयं मानने लगता है, तो भगवान् नाराज होते हैं। अतएव अपने-अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये।

श्रोता हो या वक्ता दोनोंके लिये मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाकी प्राप्तिकी अभिलाषा बड़ी बुरी चीज है। यह देखनेमें तो अमृतके समान है, परंतु परिणाम विषके समान है।

मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा मिलनेपर तो आनन्द आता है, परंतु है वह चीज बहुत बुरी। विषका लड्डू खाते समय तो मीठा लगेगा, पर नतीजा मृत्यु।

यह बात युक्तियोंसे समझमें आनेपर भी इनका त्याग नहीं होता। जैसे कुपथ्य करनेवाला रोगी समझ-बूझकर भी कुपथ्य कर लेता है। परंतु यदि यह बात बार-बार सुनता रहे तो कभी-न-कभी आचरणमें आयेगा ही।

यदि कोई जबरदस्ती उसे मान-बड़ाई दे तो वह उसे कलंक समझे। यदि यह बात उसे समझमें आ जाय तो बेड़ा पार है।

यदि दूसरेके सुखके लिये स्वीकार करना पड़े तो खूब सावधान रहे, किंतु स्वयं प्रसन्न न हो। बड़े जोखिमका काम है। त्यागमें तो फायदा-ही-फायदा है।

यदि किसीने मान-बड़ाईपर विजय प्राप्त कर ली तो उसने संसारको जीत लिया। वह भगवान्‌के नजदीक पहुँच गया।

यदि कोई महात्मा बनना चाहे तो उसे मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके त्याग बिना महात्मापन प्राप्त होना कठिन है।

वक्ता यदि ऐसा उपदेश दे जिसमें अपना स्वार्थ हो, उस उपदेशका असर नहीं होता। सुननेवाले सुनें और उनपर असर न हो तो वक्ताका ऐसा मानना कर्तव्य नहीं है कि श्रोता पात्र नहीं है, क्योंकि प्रेमसे नहीं सुनता। सुननेवालोंको दोषी (अपात्र) और अपनेको निर्दोष कभी नहीं मानना चाहिये; क्योंकि ऐसा करनेसे सुनानेवालोंका सुननेवालोंमें जो श्रद्धा-प्रेम होगा वह कम हो जायगा, जिससे नुकसान होगा। प्रत्येकको यह विचार करना चाहिये कि थोड़ा भी

अपना दोष हो तो उसे पूरा स्वीकार कर लेना चाहिये। यह शिक्षा हमें भरतजीसे लेनी चाहिये। भरतजी कहते हैं—

कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

जो अच्छे पुरुष होते हैं वे दोषको अपने ऊपर ले लेते हैं। कोई भी जिज्ञासु बनकर वक्ताके पास अपना अज्ञान दूर करानेके लिये जाता है तो वक्ताका कर्तव्य है कि उसका अज्ञान दूर करे। यदि वह उसका अज्ञान दूर नहीं कर सके तो वक्तामें समझानेकी कमी है। यह समझना चाहिये कि योग्यता होती तो उसका अज्ञान दूर हो जाता।

महात्माओंकी अलग-अलग कोटि होती है। जैसे एक साधक महात्मा होते हैं, जो भगवान्‌की प्राप्तिके निकट हैं। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥

जो ऐसे साधक हैं, वे महात्मा बननेवाले हैं। दूसरे वे हैं, जो वास्तवमें महात्मा बन चुके हैं। तीसरे वे हैं, जो दूसरोंको भी परमात्माकी प्राप्ति करा सकते हैं। वे ज्ञानी महात्मासे श्रेष्ठ हैं। चौथे कुछ ऐसे हैं, जो भगवान्‌के घरसे अधिकार लेकर आये हैं, जैसे भगवान्‌के दर्शन, स्पर्श तथा चिन्तनसे कल्याण हो जाता है, वैसे इनके दर्शन तथा स्पर्श आदिसे भी कल्याण हो जाता है।

यदि वक्ताके द्वारा श्रोताको विशेष लाभ नहीं होता तो वक्ता यह समझे कि मैं तो साधक हूँ और आप श्रोता भी साधक हैं। यदि मेरेमें करामात होती, शक्ति होती तो आपपर विशेष प्रभाव पड़ता। भगवान्‌ने बताया है—'ऐसा जो भक्त है वह मुझे प्रिय है।' भगवान्‌ने अपने प्रिय भक्तके जो लक्षण बतलाये हैं, वे लक्षण जिसमें हों, उनका असर दूसरेपर पड़ता है। जैसे सूर्यमें प्रकाश और गर्मी है, चन्द्रमामें शीतलता और प्रकाश है। उनका असर पड़ता है। जिसमें जो चीज होगी, वह उससे मिलेगी। वास्तवमें सच्चा महात्मा होता तो उसका असर पड़ता।

वक्ता महात्मा या साधक भी होता है। यह बात दूसरी है कि पात्र-भेदसे श्रोता वक्तापर अलग-अलग कल्पना कर सकता है। विपरीत श्रद्धावाला किसीके व्याख्यानको सुनकर एक कहता है—दंभ-पाखंड है। दूसरा कहता है—दंभ-पाखंड नहीं है, यह तो दुकानदारी है। तीसरा कहता है—दूकानदारी नहीं, क्योंकि रुपया-पैसा नहीं लेते, केवल ये मान-बड़ाई, पूजा, प्रतिष्ठा चाहते हैं; इसीलिये ऐसा करते हैं। चौथा कहता है—यह ठीक नहीं है। ये तो संसारमें अपने नामकी कीर्ति चाहते हैं। पाँचवाँ कहता है—ऐसा दोष क्यों लगाते हो? ये तो जिज्ञासु हैं—'**बोधयन्तः परस्परम्**' इस भगवद्‌वचनके अनुसार भगवद्‌विषयक चर्चा भगवान्‌के पास पहुँचनेके लिये करते हैं। छठा कहता है—ये तो अपने अनुभवकी बातें सुनाते हैं। इन्हें अनुभव हो चुका है, हमारे हितके लिये सुनाते हैं। सातवाँ कहता है—तुम भी नहीं समझे—ये साधन करके महात्मा थोड़े ही बने हैं, ये तो भगवान्‌के घरसे संसारके लोगोंका उद्धार करनेके लिये अधिकार लेकर आये हैं। ऐसा अलग-अलग भाव होता है। सुननेवालोंके लिये एक ही समय, एक ही स्थान, एक ही व्याख्यान—सब एक ही हैं, पर भिन्नताके कारण वे लाभ-हानि अलग-अलग उठाते हैं।

वक्ताको श्रोताकी योग्यतापर खयाल नहीं करना चाहिये। उसे अपने ही विषयमें सोचना चाहिये कि यदि मुझमें योग्यता होती तो भगवान् जरूर ध्यान देते। वास्तवमें वक्ताके हृदयमें ऐसा भाव हो तो लोगोंका कल्याण हो जाय। मान लो दिखाऊपनेमें भाव तो है कि लोगोंका कल्याण हो, किंतु लोगोंका कल्याण नहीं होता तो लोगोंका कसूर है—ऐसा मानना वक्ताके लिये कलंक है।

सत्संगमें लोग आते हैं, भगवच्चर्चा होती है, भगवच्चर्चा सुननेवाले प्रधान हैं। बहुतसे आदमी रुपया, कपड़ा या किसी स्वार्थकी सिद्धिके लिये आते हैं। स्वार्थ सिद्ध हो गया तो खाता डेढ़ा हो गया, पर जो सत्संगके लिये, अपनी आत्माके कल्याणके लिये आते हैं वे सत्संगकी बात सुनेंगे और उसे काममें लायेंगे तो उनकी आत्माका कल्याण होगा। यदि कल्याणका भाव लेकर आये और समय लगाया तथा जो फायदा होना था, वह हुआ नहीं तो इसकी जिम्मेदारी वक्तापर रही, वक्ता श्रोताका ऋणी रहा। वक्ता यदि कहे कि मैं अधिकारी नहीं, मेरेमें योग्यता

नहीं है। इसमें मेरे प्रमाणकी कमी है। इस विषयका यदि अधिकारी होता तो सुननेवाले अधिकारी हो जाते। इतना कह देनेपर भी वक्ता श्रोताके ऋणसे तबतक मुक्त नहीं हो सकता, जबतक सुननेवालेपर यह असर है कि हम अध्यात्मविषयका लाभ उठानेके लिये यहाँ आये हैं। ये लाभ पहुँचानेके पात्र हैं, हमको लाभ पहुँचा सकते हैं—यह धारणा है। वक्ता अपने शब्दोंसे अपनी जिम्मेदारी दूर कर देता है, पर वह अलग नहीं होता—यह ऋण है। इसलिये वह अपनेको आभारी मानता है। फिर भी श्रोताका ऋण तो रहता ही है।

परमात्माकी प्राप्तिके लिये आना हुआ तो परमात्माकी कृपासे परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। कल्याण हो जाय और उनका अभीष्ट सिद्ध हो जाय तो हमारे ऊपरका भार उतर गया। यदि कहो कि मैंने भूलसे मान लिया तो यह फायदेकी बात है। भगवान् समझेंगे कि भार तो मुझपर था इसने अपना मान लिया तो अच्छी बात है।

इसमें और भी रहस्यकी बात है। जैसे-अपनी सामर्थ्यकी बात नहीं, पर भगवान्‌की तो सामर्थ्यकी बात है, उनको तो सोचना चाहिये। ऐसा प्रकट होनेपर वक्ताका अपना कोई स्वार्थ नहीं रह जाता, वे भगवान्‌से इसकी दलाली भी नहीं माँगते, शुद्ध भावसे लोगोंका कल्याण चाहते हैं। आपके सिरका भार समझकर भगवान्‌को तो सोचना चाहिये। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, भगवान्‌की उपासना, भक्ति करनी चाहिये। उनसे कल्याण हो सकता है। सुननेवाला वक्ताकी प्रशंसा करे, वक्ता खुश होवे , तो भगवान् समझते हैं इसका भार यह खुद उतारेगा। वास्तवमें वक्ताका ऐसा भाव होना चाहिये कि ये लोग वास्तवमें कल्याणके लिये आये हैं, तो भगवान्‌का भजन, ध्यान करें। दूसरे वक्ताकी प्रशंसा करते हैं तो उसे खटकनी चाहिये।

कोई भी भूल नहीं हो और भूल मान ले तो उसमें मेरा कोई नुकसान नहीं है। वैसे मेरे ऊपर कोई भार न हो और अगर मान लिया तो मेरा नुकसान नहीं है। भगवान् सर्वज्ञ हैं, वे समझते हैं कि इनका उद्धार न होनेसे यह अपने ऊपर भार मानता है। जो भगवान्‌की प्राप्तिके उद्देश्यसे, अपनी आत्माके कल्याणके उद्देश्यसे यहाँ आता है, उसके उद्देश्यकी पूर्ति हो जाय तो मेरा कहना आप गलत मान सकते हैं। अभीष्टकी सिद्धि नहीं हो तो उस ऋणकी पूर्ति भगवान् कर सकते हैं। वे सर्वशक्तिमान् हैं, हमारी कोई गलती न हो तो भगवान्‌को बाध्य होकर उनके भावके अनुसार लाभ देना चाहिये। यदि नहीं हो तो भगवान् समझते हैं कि वक्ता मेरी भक्तिका बहाना करके अपनी मान-बड़ाई, पूजा-प्रतिष्ठा कराता है। भगवान् अपनी स्वयंकी जिम्मेदारी नहीं समझते। निर्दोष आदमीकी सिफारिश चलती है। हमारी यह धारणा है कि वहाँ सिफारिशकी भी आवश्यकता नहीं। वास्तवमें वक्ता निर्दोष हो और भगवान् नहीं आवें तो वहाँ भगवान् अपनी गलती मान लेते हैं। जैसे प्रह्लादके सामने भगवान्‌ने अपनी गलती स्वीकार की। प्रह्लादजीकी दृष्टिमें भगवान्‌की कोई गलती मालूम नहीं देती। भगवान् मान सकते हैं। उनकी सौजन्यता है।

प्रत्येक काममें अपना दोष समझना चाहिये। उसमें उसका कल्याण है—यह न्याय है। दोष नहीं हो और मान ले तो भगवान् दण्ड नहीं देते। दोषको स्वीकार कर लेनेसे उसका प्रायश्चित्त हो जाता है। हलका हो जाता है।

अपने ऊपर भार स्वीकार करे। अधिक भार हो तो कोई-न-कोई तो निपटारा होगा ही।

मैं सभी लोगोंसे सेवाके रूपमें निवेदन करता हूँ—शास्त्रोंको ध्यानमें रखकर अपनी साधारण बुद्धिसे जो समझमें आता है, वह सबके सामने रखता हूँ। गीता भगवान्‌की बात है। शास्त्रोंकी बात ऋषियोंकी बात है, उसका हम लोग पालन करें तो यह युक्तिसंगत, शास्त्रसंगत है कि साधन करनेसे हमारा कल्याण हो सकता है, यह निश्चित बात है। यह बात जोरसे कही जा सकती है। लेखमें, अखबारमें कोई प्रचार करे तो इसमें मुझे लज्जा, संकोचकी बात नहीं। मेरे लिये तो प्रसन्नताकी बात है। शास्त्रकी बात—ऋषियोंकी बात कहता हूँ और अपनेको ऋणी मानूँ तो मैं ऋणसे भी मुक्त हूँ। शास्त्रके अनुसार आप साधन करें तो आपका कल्याण हो जाय—फिर मुझपर ऋण कहाँ रहा? आपकी हमारे ऊपर दया हो तो ऋणसे मुझे मुक्त करनेका रास्ता है।

अपने शरीरकी—नाम-रूपकी पूजासे यदि कोई खुश

हो तो वह खतरेकी चीज है। ऐसा करके आप अपनेको ऋणी बनाना चाहते हैं। मैं यदि इच्छा करूँ कि मेरी पूजा-प्रतिष्ठा करो तो हमारे ऊपर ऋण भी चढ़ा और हमारे लिये खतरेकी चीज भी हुई। उसके लिये भगवान् जिम्मेदार नहीं हैं, इसके लिये मैं वाणीसे और बर्तावसे भी निषेध करता हूँ, क्योंकि इसमें मेरा अनिष्ट है। दयालु भाइयोंको दया करनी चाहिये। आप सभी मेरे नाम-रूपकी पूजा-प्रतिष्ठा करके क्या मेरा हित करते हैं? हमारी निन्दा या अपमान करें तो हमारा हित है। कबीरदासजी तो यहाँतक कहते हैं कि निन्दकको कुटिया बनवाकर अपने निकट बसाना चाहिये। हम लोग भी करें तो सौभाग्यकी बात है। इससे निन्दाके योग्य हमारा कार्य हो तो सुधार हो जाता है। निन्दकको गुरु समझकर अपना दोष दूर करना चाहिये। दोष नहीं है तो दण्ड नहीं है। दोष सुनकर बरदाश्त नहीं कर सकना—यह हमारी कमजोरी है। जहाँ हमारी मान-बड़ाई-पूजा-प्रतिष्ठा हो वहाँ विरोध करना चाहिये।

जो मेरी इच्छाके अनुसार, जिसको मैं चाहता हूँ वह मेरे शरीरकी सेवा कर दे, आराम पहुँचा दे तो उसका मैं आभारी तो हूँ, पर उसके लिये यह बात नहीं कि मेरी सेवा करनेसे, आराम पहुँचानेसे उसका कल्याण हो जाय। निष्कामभावसे करे तो कल्याण हो सकता है। निष्कामभावसे सेवा करे तो एक कुत्तेकी सेवा करनेसे भी कल्याण हो सकता है। निष्कामभावका माहात्म्य है—

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।

अपनी आत्माके कल्याणकी इच्छा निष्कामभाव है। परमात्माकी प्राप्तिके उद्देश्यसे, आत्माके कल्याण—परमात्माके दर्शनके उद्देश्यसे प्रवृत्ति हो तो वह दोषयुक्त नहीं है। महात्माका भाव समझमें आ जाय तो '**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्**' के अनुसार कल्याण हो जाता है। वास्तवमें मुक्तिकी इच्छा भी विलम्ब करानेवाली है, यह सूक्ष्मभाव है।

हम ऐसा मान लें कि मुक्ति तथा परमात्माके दर्शनकी कामना न रखे तो भय यह है कि जो कुछ वह करता है, उसे भी छोड़ बैठेगा। हमारी आत्माके कल्याणकी इच्छाकी अपेक्षा दुनियाके कल्याणकी इच्छा उच्च कोटिकी है। साथमें यह भाव हो कि दुनियाके कल्याणके साथ-साथ हमारा भी कल्याण हो तो इसमें भी अपनी कामनाका अंश आ गया। वास्तवमें निष्कामभाव जो है वह महात्मा हुए बिना समझमें नहीं आता। भाव तो निष्काम है। जनाता है तो निष्कामी नहीं और जानता है तो निष्कामी नहीं। अपनेको निष्कामी जानना, मानना, अपने-आपको निष्कामी कायम करना—यह भी कामना है। अहंकारके द्वारा होनेवाला कर्म है। मान्यता है, इसलिये कर्म हो गया, अहंकारका दोष आ गया। निष्कामभावकी सूक्ष्मता सूक्ष्मतमसे भी सूक्ष्मतम है।

विशेष बात

सत्संगमें जहाँ विद्वान् लोग व्याख्यान देने आते हैं। उसमें जहाँतक हो सके व्याख्यान नहीं देना चाहिये। वहाँ व्याख्यान देना तो बाजारू व्याख्यान है। क्योंकि वहाँ व्याख्यान देनेवाले बहुत हैं। घंटी बजायी जाती है। क्योंकि उसमें समय सीमित है। वक्ताको शास्त्रीय युक्तियुक्त प्रामाणिक बात बताकर लोगोंके कल्याणका मार्ग प्रशस्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये और श्रोताको आत्म-कल्याणके लिये वक्ताकी शास्त्रीय युक्तियुक्त प्रामाणिक बातोंको आचरणमें लाकर आत्मकल्याणका मार्ग प्रशस्त करना चाहिये।

* * *

दीर्घाण्यघान्यधिशुचीव भवन्त्यहानि हानिर्बलस्य शरदीव नदीजलस्य।
दुःखान्यसत्परिभवा इव दुःसहानि हा निःसहोऽस्मि कुरु निःशरणेऽनुकम्पाम्॥

(स्तुतिकुसुमाञ्जलि)

प्रभो! मेरे पाप ग्रीष्म-कालके दिनोंकी तरह अहर्निश बढ़ते जा रहे हैं। मेरा शारीरिक बल प्रतिदिन शरत्कालके नदी-जलके समान क्षीण होता जा रहा है और मेरे दुःख दुर्जनोंद्वारा किये गये तिरस्कारोंके समान असह्य हो गये हैं। हाय, अब मैं इन कष्टोंको नहीं सहन कर सकता। इसलिये हे नाथ! मुझ शरणहीन अनाथपर अब शीघ्र अनुकम्पा कीजिये।

* * *

वामन-लीलाका रहस्य

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

भगवान्‌की अनेक मङ्गलमयी लीलाएँ हैं। अनेक ढंगके भगवान्‌के भक्त हुए और भगवान्‌का अनेक रूपोंमें आविर्भाव हुआ।

कहते हैं, बलि पूर्वजन्मका कोई जुआरी था। एक दिन उसे जुएमें कहीं कुछ पैसे मिले। उन पैसोंकी उसने एक बड़ी सुन्दर माला खरीदी, भगवान्‌के लिये नहीं, अपनी किसी प्रियतमा वेश्याके लिये। माला हाथमें लिये कामान्ध जल्दी-जल्दी अपनी प्रियतमाका रूप-चिन्तन करते हुए जा रहा था कि किसी पाषाणसे ठोकर खाकर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। कुछ देरमें होश आया तो उसने अनुभव किया कि 'अब मैं मर जाऊँगा।' फिर सोचा—'ठीक है, मर तो जाऊँगा, लेकिन मेरी इस मालाका क्या होगा? मेरी यह सुन्दर माला मेरी प्रियतमातक तो पहुँची नहीं। हाँ ठीक है, मैंने कभी किसी महात्मासे सुना था कि कोई भी वस्तु 'शिवार्पण' कर देनेसे बहुत लाभ होता है। 'शिवार्पण' कर देनेसे कुछ होता होगा तो हो जायगा। न होगा तो भी मर तो रहा ही हूँ, माला बेकार तो जा ही रही है।' इस दृष्टिसे जुआरीने माला शिवजीको अर्पण कर दी।

जुआरी माला 'शिवार्पण' करके मर गया। यमराजके दूत पकड़कर ले गये। यमराजके सामने खड़ा किया। उन्होंने चित्रगुप्तसे कहा—'देखो, इसका बहीखाता।'

चित्रगुप्तने कहा—'यह तो जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरका पापी है।'

यमराजने कहा—'इसके पुण्य भी तो देखो।'

चित्रगुप्तने देखकर कहा—'पुण्य तो कोई है नहीं।'

यमराजने कहा—'फिर देखो!'

चित्रगुप्तने पुनः ध्यानपूर्वक देखा और कहा—'बस, अभी-अभी थोड़ी देर पहले जुएमें पैसा पाकर इसने माला खरीदी थी वेश्याके लिये। ठोकर खाकर रास्तेमें गिर पड़ा। इसने देखा कि माला अब निरर्थक हो रही है तो 'शिवार्पण' कर दिया। यह कोई भगवान्‌को माला अर्पण करनेवाला तो था नहीं, पर देखा जब मर ही रहे हैं तो 'शिवार्पण' कर दें, इसी भावनासे इसने माला 'शिवार्पण' कर दी। बस, यही एक इसका पुण्य है।'

यमराजने कहा—'भाई, इसका है तो कुछ पुण्य', फिर उन्होंने जुआरीसे पूछा—'भाई, तुम पहले पुण्यका फल भोगोगे या पापका?'

जुआरीने कहा—'सुन रहा हूँ—पाप तो जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरके हैं, उनको भोगने लगूँगा तो उनके अन्तका कुछ पता नहीं कि कब अन्त हो। इसलिये पहले पुण्यका फल भोगना चाहूँगा।'

यमराजने कहा—'तुम दो घड़ीके लिये इन्द्रलोकके मालिक बने।' जुआरी दो घड़ीके लिये इन्द्रलोकका मालिक बना। इन्द्रासनपर विराजमान हुआ। अप्सराएँ गुणगान करने आयीं, गन्धर्व गुणगान करने लगे। उन गन्धर्वोंमें नारद भी थे। नारदको हँसी आ गयी।

जुआरीने कहा—'इन्द्रके दरबारमें बे-अदबी, हँसते हो?'

नारदजीने कहा—'नहीं, नहीं, कुछ नहीं।'

जुआरीने कहा—'बताओ, क्यों हँसते हो?'

नारदजीने कहा—'हमको एक श्लोक याद आता है, इसको पूर्वमीमांसक भी मानते हैं और नैयायिक भी मानते हैं—

संदिग्धे परलोकेऽपि कर्तव्यः पुण्यसंचयः।
नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्तिको हतः॥

अर्थात् परलोकमें संशय हो तो भी पुण्यका संचय करते चलो। अगर परलोक नहीं है तो अस्तित्वका कोई नुकसान नहीं है। कहीं परलोक सत्य हुआ तो नास्तिक मारा जायगा।

जुआरी, तू जीवनपर्यन्त जुआ खेलता रहा। जुआमें कोई निश्चित आमदनी तो होती नहीं—'लग गया तो तीर नहीं तो तुक्का।' तूने यही सोचा कि 'शिवार्पण' करनेसे कुछ होता होगा तो हो जायगा, न होगा तो मर तो रहे ही हैं, माला तो बेकार जा ही रही है, शिवको अर्पण कर दें।' इस दृष्टिसे तूने शिवार्पण किया और उसका परिणाम यह हुआ कि दो घड़ीके लिये तुम इन्द्रलोकके स्वामी बन गये। इसलिये मुझे हँसी आ रही है।

जुआरी सिंहासनसे उतरा और नारदजीसे कहा—'गुरुदेव! अब हम सारे इन्द्रासनपर तुलसी रख देते हैं।' इतना कहनेके बाद वह किसी ब्राह्मणको बुलाया और चिन्तामणिका दान कर दिया, किसी ब्राह्मणको नन्दनवन, किसीको ऐरावत और किसीको अमृतके कुण्ड-के-कुण्डका दान कर दिया। इस प्रकार उस जुआरीने सम्पूर्ण इन्द्रलोकका ही दान कर दिया। इतनेमें दो घड़ी बीत गयी।

इन्द्र आये और बोले—'हमारा ऐरावत हाथी कहाँ है?'

उत्तर मिला—'जुआरी दान कर गया।'

इन्द्र *बोले*—'कामधेनु आदि कहाँ हैं?'

'सब कुछ जुआरीने दान दे डाला।' उत्तर मिला। बड़े बिगड़े इन्द्र। यमराजके पास आये। यमराज भी जुआरीको डाँटने लगे।

जुआरीने कहा—'भैया, हमें जो करना था हमने कर लिया, अब आपको जो करना हो कर लो।'

यमराजकी जब आँखें खुलीं तब उन्होंने कहा कि अब यह नरक नहीं जायगा, अब तो यह इन्द्र ही होगा। जब नाजायज उद्देश्यसे खरीदी हुई नाजायज पैसेकी मालाको संशय रहनेपर भी 'शिवार्पण' कर दिया, उसके फलस्वरूप दो घड़ीके लिये इन्द्र बना; फिर इस समय तो इसने विधिवत् इन्द्रलोकका ही दान कर दिया है। इसलिये यह इन्द्र ही होगा। वही जाकर राजा बलि बना।

राजा बलि बड़ा त्यागी था। अपना सर्वस्व भगवान् वामनको उसने शुक्राचार्यके मना करते रहनेपर भी सौंप दिया।

भगवान् वामनको 'उपेन्द्र' भी कहते हैं। गौओंने उन्हें अभिषिक्त करके 'गोविन्द' और 'उपेन्द्र' नामसे प्रसिद्ध किया है।

देवमाता अदिति अपने पुत्रोंके पराभवसे अत्यन्त खिन्न थीं। राजा बलि पहले तो संग्राममें इन्द्रके वज्रसे क्षत-विक्षत हो गया, परंतु शुक्राचार्य महाराजकी संजीवनी-विद्यासे उसका उज्जीवन हुआ। उसके बाद शुक्राचार्यने विधिवत् उससे यज्ञ करवाया और उसे दिव्य अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित किया, दिव्य तेजसे उपबृंहित किया, फिर राजा बलि विविध लोक-लोकान्तरोंको जीतकर राजा इन्द्र हो गया। सौ अश्वमेध करनेवाले ही इन्द्र होते हैं, परंतु राजा बलि पहले इन्द्र हो गया, फिर सौ अश्वमेधकी उसने तैयारी की।

देवमाता अदितिने पयोव्रत किया। पयोव्रतसे भगवान् सर्वान्तरात्मा सर्वेश्वर विष्णु प्रसन्न हो गये और आये। बोले—'वरदान माँगो!'

अदितिने कहा—'आप जानते ही हैं।'

भगवान्‌ने कहा—'हाँ! ये तुम्हारी बहुएँ जैसे रो रही हैं, वैसे ही दानवों-दैत्योंकी बहुएँ रोयें, यही चाहती हो। लेकिन इस समय असम्भव है। राजा बलि बड़ा प्रतापी है, ब्राह्मणनिष्ठ है। ब्राह्मणोंका उसपर विशेष अनुग्रह है। भृगुवंशियोंने उसको सबल बना रखा है, अनन्त तेजसे युक्त कर रखा है। परंतु हम तुम्हारा अभिप्राय पूरा करेंगे। भिक्षा माँगेंगे।'

भगवान् वामनका प्रादुर्भाव हुआ। उन्हें ब्रह्मचर्यव्रतमें दीक्षित किया गया। भगवती राजराजेश्वरी उमाने उनको भिक्षा प्रदान की। वनस्पतियोंने भी दण्ड-कौपीन आदि देकर भिन्न-भिन्न ढंगसे सम्मान किया।

अब भगवान् वामन चले उद्देश्य पूर्ण करनेके लिये। राजा बलिके यज्ञमें पहुँचे। सभी उनके तेजसे पराभूत हो गये। राजा बलिने बड़ा सम्मान-सत्कार-स्वागत किया और पूजन करनेके बाद कहा—'ब्रह्मन्! विप्रदेव! आज्ञा कीजिये। आपकी क्या सेवा करूँ? आप जो भी कहेंगे, वही होगा।'

भगवान्‌ने बड़ी प्रशंसा की—'राजन्! आपके कुलकी बड़ी महिमा है। यह कुल सदैव उदारहृदय, दीनदार, सदाचारी और सच्चरित्र रहा है। राजा विरोचनके पास देवताओंने आकर आयु माँगी। विरोचन यह जानते हुए भी कि ये हमारे दुश्मन हैं, उन्हें आयु दे दी। आपके पूर्वज हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपुका क्या कहना? इस प्रकार उन्होंने अनेकविध प्रशंसाओंका पुल बाँध दिया। राजा बलि प्रसन्न हुआ और बोला—'महाराज, आप जो कुछ कह रहे हैं, सब ठीक है, परंतु अब आप आज्ञा तो दीजिये।'

भगवान् वामनने कहा—'कुछ नहीं, सिर्फ तीन पग धरती चाहिये।'

राजा बलिने कहा—'आप बड़े बुद्धिमान् हैं, पर स्वार्थके प्रति अबुध भी। प्रशंसाके पुल बाँध दिये, फिर भी मुझसे माँगा भी तो केवल तीन पग भूमि? अरे, हमसे द्वीप माँग लेते, तीनों लोक माँग लेते।'

उन्होंने पुनः कहा—'ब्राह्मणकुमार! आपकी बातें तो वृद्धों-जैसी हैं, परंतु बुद्धि अभी बच्चोंकी-सी ही है। अभी तो आप बालक-जैसे ही हैं न, इसीसे अपना हानि-लाभ नहीं समझ पा रहे हैं? मैं तीनों लोकोंका एकमात्र अधिपति हूँ। अतः द्वीप-का-द्वीप दे सकता हूँ। फिर जो मुझे वाणीसे प्रसन्न कर ले और मुझसे केवल तीन पग भूमि माँगे—वह भी क्या बुद्धिमान् कहा जा सकता है? ब्रह्मचारीजी, जो एक बार कुछ माँगनेके लिये मेरे पास आ गया, उसे फिर कभी किसीसे कुछ माँगनेकी आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिये, अतः अपनी जीविका चलानेके लिये आपको जितनी भूमि आवश्यक हो, उतनी मुझसे माँग लीजिये। (श्रीमद्भागवत ८। १९। १८—२०)

भगवान् वामनने कहा—'राजन्! जिस ब्राह्मणमें संतोष नहीं है, वह नष्ट हो जाता है। संतुष्ट महीपति निन्दनीय है और असंतुष्ट ब्राह्मण! अगर हम तीन पग धरतीसे संतुष्ट नहीं होंगे, तो अनन्त धन-धान्यसे पूर्ण त्रैलोक्य प्राप्तकर भी संतुष्ट नहीं हो सकेंगे। इसीलिये चाणक्यनीति (८।१८) में कहा भी गया है—

असंतुष्टा द्विजा नष्टाः संतुष्टाश्च महीभुजः।

शुक्राचार्य महाराज सब सुन रहे थे। सोच रहे थे, यह क्या तमाशा है? तबतक यज्ञके पूर्वद्वारपर ऋग्वेदी ब्राह्मण बोल पड़ा—

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समुढमस्य पांसुरे ॥
(ऋग्वेद १। २२। १७)

शुक्राचार्यजीका माथा ठनका। वे सोचने लगे—'कहते हैं कि ज्ञान अपने-आपको बार-बार दोहराया करता है। कहीं ऐसा तो नहीं कि तीन पग माँगनेवाला यह वामन वटुक विष्णु ही हो?' उन्होंने कहा—'बेटा बलि! तीन पग न देना और जो चाहे देना। तीन पग देना खतरेसे खाली नहीं। यह विष्णु हैं, त्रैलोक्याधिपति हैं, हो सकता है तीन पग माँगकर तेरा चराचर विश्व—सर्वस्व हरण कर लें।'

शुक्राचार्यजी महाराज ज्ञान-विज्ञानके निधान हैं। सर्वदर्शी हैं, ब्रह्मविद्वरिष्ठ हैं। संजीवनी-विद्याके महान् आचार्य हैं। वे जो कुछ भी कह रहे थे, ठीक ही कह रहे थे।

आचार्य शुक्राचार्य पुनः बलिको सम्बोधित करते हुए बोले—'स्वयं भगवान् ही अपनी योगमायासे ब्रह्मचारी बनकर बैठे हुए हैं, ये तुम्हारा राज्य, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, तेज और विश्वविख्यात कीर्ति—सब कुछ छीनकर इन्द्रको दे देंगे। ये विश्वरूप हैं। तीन पगमें तो सारे लोकोंको नाप लेंगे। मूर्ख! तुम अपना सर्वस्व ही विष्णुको दे डालोगे तो तुम्हारा जीवन-निर्वाह कैसे होगा? ये विश्वव्यापक भगवान् एक पगमें पृथ्वी और दूसरे पगमें स्वर्गको माप लेंगे। इनके विशाल शरीरसे आकाश भर जायगा। तब इनका तीसरा पग कहाँ जायगा? तुम उसे पूरा न कर सकोगे। ऐसी दशामें मैं समझता हूँ कि प्रतिज्ञा करके पूरा न कर पानेके कारण तुम्हें नरकमें ही जाना पड़ेगा; क्योंकि तुम अपनी की हुई प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेमें सर्वथा असमर्थ हो जाओगे।' (भा० ८। १९। ३२—३५)

राजा बलिने कहा—'गुरुदेव, ठीक है। पर आपका शिष्य होकर झूठ बोलूँ, अस्वीकार कर दूँ? यदि ये ब्राह्मणदेव साक्षात् विष्णु हैं तब तो हमें जीतकर भी सब कुछ ले लेंगे। इन्होंने हिरण्याक्षको मारा कि नहीं? यह तो हमारा सौभाग्य है, जो स्वयं माँगने आये हैं। इनका हाथ नीचे होगा। हमारा हाथ ऊपर होगा।'

इस प्रकार राजा बलिने दृढ़तापूर्वक सत्यका पालन करना ही उचित समझा। श्रीशुक्राचार्यके बहुत समझानेपर भी सत्यका त्याग नहीं किया। शुक्राचार्य महाराज नाराज हो गये। शाप दे दिया; परंतु बलिने दान कर दिया। फिर क्या बात थी। भगवान्ने दो पगमें सब कुछ ले लिया। तृतीय पगका दान बाकी रहा।

भगवान् बोले—'तुमने तीन पग भूमि दान करनेकी प्रतिज्ञा की थी न? परंतु मैंने दो पगमें ही तेरा सब कुछ ले लिया, अभी एक पग तो बाकी ही रहा।'

भगवान्के पार्षदोंने राजा बलिको बाँध दिया। राजा बलिके भक्तसेवक युद्ध करनेको उद्यत हुए। विष्णुके महान् पार्षदोंने सबको खदेड़कर भगा दिया। बलिने उन्हें समझाया—'भाई! इस समय युद्धका समय नहीं है। काल भगवान् हमारे प्रतिकूल हैं। इस समय युद्ध मत करो। जो लोग कभी सामने खड़े नहीं होते थे, वे ही आज सामने हैं। जोरोंसे निनाद कर रहे हैं। कोई बात नहीं।'

यह सब प्रपञ्च चलता रहा। ब्रह्माजी आये, बोलना चाहते थे। इतनेमें विन्ध्यावली, जो बलिकी पत्नी थी, वह बोल पड़ी—'भगवन्! आपने अनन्त ब्रह्माण्डात्मक आधिभौतिक और आध्यात्मिक प्रपञ्च अपनी क्रीडाके लिये बनाया है, खेल खेलनेके लिये खिलौना बनाया है। दुर्बुद्धियुक्त लोग ही आपके बनाये खिलौनेको अपना मान लेते हैं। यह स्वर्गलोक हमारा, यह धरती हमारी, यह नन्दनवन हमारा—ऐसा मानकर गड़बड़ करते हैं। प्रभो! कर्तृत्व भी आपके अनुग्रहसे ही होता है। अधिष्ठान बिना कर्ता कहाँसे आया? कर्तृत्वका आरोप किसी अधिष्ठानमें ही होगा।' (श्रीमद्भा० ८। २२। २०)

ब्रह्माजीने कहा—'आप समस्त प्राणियोंके जीवनदाता हैं, स्वामी हैं, जगत्के रूपमें भी आप ही अभिव्यक्त हैं, देवोंके देव आप ही तो हैं। इसे छोड़ दीजिये। आपने इसका सर्वस्व ले लिया है, अतः अब यह दण्डका पात्र नहीं है। इसने अपना सम्पूर्ण भूलोक आपको समर्पित कर दिया है। पुण्यकर्मोंसे उपार्जित स्वर्गादि लोक—अपना सर्वस्व और आत्मातक आपको समर्पित कर दिया है। साथ ही ऐसा करते समय यह धैर्यसे च्युत बिलकुल नहीं हुआ है। प्रभो! जो मनुष्य सच्चे हृदयसे कृपणताको छोड़कर आपके चरणोंमें जलका अर्घ्य देता है और केवल दूर्वादलोंसे भी आपकी सच्ची पूजा करता है, उसे भी उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। फिर बलिने तो बड़ी प्रसन्नतासे धैर्य और स्थिरतापूर्वक आपको त्रिलोकीका दान कर दिया है। तब यह दुःखका भागी कैसे हो सकता है?' (भा० ८। २२। २१—२३)

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन वा।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥

(गौतमीय तन्त्र)

भगवान् ऐसे दयालु हैं कि वे भक्तिसे दिये हुए एक चुल्लू जल तथा एक तुलसीपत्रद्वारा ही अपनी आत्माको भक्तोंके लिये दे देते हैं।

यह सब क्रम चल रहा था।

भगवान्ने बलिसे कहा—'हमारा तीन पग पूरा नहीं हुआ।'

बलिने कहा—'पूछ लूँ एक बात!'

भगवान्ने कहा—'पूछ लो।'

बलिने कहा—'महाराज! कोई खरीददार कपड़ा खरीदनेके लिये बाजारकी एक दुकानपर गया। कहने लगा—'हम अपने हाथसे सौ रुपयेका एक हाथ रेशम खरीदेंगे। सौदा तय हो गया। मापने लगा तो हाथ लम्बा बढ़ा दिया। क्या यह ठीक था?'

भगवान् वामनने कहा—'जिस रूपमें उसने सौदा तय किया, उसी रूपमें उसे सौदा लेना भी था। कपड़ा लेते समय उसे हाथ बढ़ाना नहीं चाहिये था।'

बलिने कहा—'जिस रूपमें आपने दान लिया, उसी रूपसे मापते। कमी पड़ती तो आप हमसे और भी माँग लेते। आपने दान तो लिया छोटे रूपसे तथा मापना आरम्भ किया विराट्-रूपसे। जरा सोचिये, यह कोई न्याय है? अच्छा, छोड़िये इस बातको और इस प्रश्नका उत्तर दीजिये—धन बड़ा होता है या धनवान् बड़ा होता है?'

बलिके प्रश्नके उत्तरमें भगवान्को कहना पड़ा—'राजन्! धन बड़ा नहीं होता, धनवान् बड़ा होता है।'

बलि—'भगवन्! 'धनवान् बड़ा होता है धनसे' आपको यह मान्य है न?'

भगवान्—'हाँ, हाँ मान्य है।'

बलि—'तो मैं धनवान् हूँ न? मैं अपने-आपको ही अर्पित कर रहा हूँ, तीसरा पग पूरा करनेके लिये। तीसरा पग मेरे सिरपर रखिये और बस मेरा दान पूरा हो जायगा। अतः दानपूर्ति और सांगता-सिद्धिके लिये मुझ धनवान्के सिरपर ही आपके श्रीचरण प्रतिष्ठित हों।'

भगवान्के पास कोई उत्तर नहीं था। इतनेमें प्रह्लादजी आ गये। प्रह्लादने भगवान्की बड़ी स्तुति की।

भगवान्ने ब्रह्माजीसे कहा—'हमने इस (बलि)-का यश दिग्दिगन्तमें विकीर्ण—विस्तीर्ण करनेके लिये यह सब गड़बड़ किया है;' परंतु इसने कोई गड़बड़ नहीं किया। इसका ढंग बहुत सौम्य है।'

भागवतमें तो नहीं है, परंतु दूसरी जगह यह कथा है कि भगवान् बोले—'भाई! तुम्हें क्या दें।'

बलि बोले—'महाराज! हमारी जिधर भी दृष्टि जाय उधर हम आपका ही दर्शन करें।'

कहते हैं, राजा बलिकी बैठकके बावन दरवाजे हैं। भगवान्ने सोचा, न जाने किस दरवाजेपर बलिकी दृष्टि चली जाय? यही सोचकर बावनों दरवाजोंपर शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए सर्वान्तरात्मा, ब्रह्माण्डनायक, भगवान् पहरेदारके रूपमें विराजमान हो गये।

भगवान्की इस कृपालुताके कारण ही भक्तराज प्रह्लादने कहा—'महाराज! लोग कहते हैं कि आप देवताओंके पक्षपाती हैं, परंतु हमको तो लगता है कि आप हम असुरोंके पक्षपाती हैं। इन्द्र, कुबेरादि किसी देवताके पहरेदार—द्वारपाल तो आप कभी नहीं बने! परंतु हम असुरोंके आप द्वारपाल बन रहे हैं। इसलिये सदा-सर्वदा आप हमारे ही पास रहें।'

लीलाका रहस्य—

असली बात क्या थी। उस जुआरीने माला भगवान्को अर्पण कर दी थी। पत्र-पुष्प-फल-जल जो कुछ भी भगवान्के लिये अर्पित कर दिया जाय, वह अनन्त-गुणित होकर प्रतिफलित होता है। साथ-ही-साथ यह बड़ी ऊँची बात है कि जो अनात्मविद् है, वह अनात्माके प्रलोभनमें फँसकर आत्माको नरकमें भेजनेमें जरा भी हिचकता नहीं, अर्थात् अनात्मविद् धन-वैभवके लिये आत्माको नरकमें भी भेज सकता है। इसके विपरीत जो आत्मविद् हैं वे जानते हैं कि आत्माके लिये अनात्मा है, अनात्माके लिये आत्मा नहीं है। इसलिये किसी भी शर्तपर वे आत्माको नरकमें भेजना नहीं चाहते। अर्थात् किसी भी विषय-विलासमें आकर फँसकर, किसी भी ऐश्वर्य-वैभवके प्रलोभनमें आत्माको नरकमें भेजनेका उद्योग नहीं करते। आत्मविद् था राजा बलि। उसने झूठ बोलकर अपने-आपको और स्वयंको भी पतित नहीं बनाया, बल्कि धनको भगवान्के प्रति समर्पित कर दिया। हर हालतमें आत्माके अभ्युदय और मोक्षको चाहनेवाले राजा बलि उत्कृष्ट कोटिके भक्त हुए।

(प्रस्तुति—(प्रो०) श्रीबिहारीलालजी टाँटिया)

* * *

संयमका अभ्यास

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

असंयम ही वर्तमान संसारकी अशान्ति या अभावका कारण है

आज असत्-अभ्यासके कारण हम लोग इतने नये-नये अभावोंसे पीड़ित हो रहे हैं—जान-बूझकर इतने अधिक कष्ट सह रहे हैं, जिनकी कोई सीमा नहीं! चेष्टा करनेपर इन कष्टोंसे सहजहीमें छुटकारा मिल सकता है; परंतु हम इतने अबोध हैं कि अभावकी पीड़ासे जलकर भस्म हो जाना तो हमें स्वीकार है, परंतु जिसका सहजहीमें त्याग किया जा सकता है, उसे त्यागकर दुःखोंको कम कर देना हमें स्वीकार नहीं!

अंग्रेजी शिक्षाके प्रभावसे आजकल धनी तथा मध्यम श्रेणीके और दरिद्र—सभी गृहस्थ प्रायः एक ही तरहसे संसारमें रहना चाहते हैं। धनियोंके पास धन है, वे यदि मौज-शौकमें कुछ खर्च करें तो इतना दोष नहीं, परंतु जिनकी आमदनी नियमित है या बहुत थोड़ी है, वे यदि धनियोंकी नकल करना चाहेंगे तो उन्हें अवश्य ही दुःख और अभावसे पीड़ित होना होगा! इस साधारण बातपर भी आज कोई धीरजके साथ विचार करना नहीं चाहता। भारतवर्षके पुराने आदर्शके अनुसार गृहस्थी चलानेकी आदत हमने छोड़ दी, इसीसे आज हमारे यहाँ इतना अभाव और दारिद्र्य है। जो अपने शरीर और अपने स्त्री-बच्चोंके पेट भरने, उनके लिये गहने-कपड़े बनवाने और औषध-पथ्यका प्रबन्ध करनेमें ही इतने फँस रहे हैं कि वे दूसरेका दुःख तो क्या दूर कर सकते हैं? हमारे दादे-परदादे जिस प्रकार गृहस्थी चलाते और अपना जीवन-निर्वाह करते, उसी तरह हम भी करते तो हमारी कोई हानि नहीं होती। थोड़ी-सी आयमें सुखपूर्वक संसार-यात्रा चल सकती है। परंतु हमने अपने अभाव इतने बढ़ा लिये हैं कि उनके कारण जिनका भरण-पोषण अवश्य ही करना चाहिये—ऐसे अतिथि-अभ्यागत और दीन-दरिद्रोंकी सेवाके लिये हमारे पास पैसे ही नहीं हैं!

खानेमें, पहननेमें और दूसरी सभी बातोंमें, हम बड़े आदमियोंकी तरह या अंग्रेजी ढंगसे रहनेकी व्याकुलतापूर्ण चेष्टा करते हैं। इसीने हमारे शान्तिपूर्ण गृहस्थीमें अशान्ति भर दी है। अपनी अवस्थाके प्रतिकूल चलनेसे तथा भोग-विलासकी बहुत बढ़ी हुई लालसासे ही हम दिनोंदिन खोखले हो रहे हैं। क्या इसे रोकनेका कोई उपाय नहीं है? हम आदतके इतने गुलाम और विषयोंके सेवक बन गये हैं कि इन सब अभावोंकी पूर्ति किये बिना अपनेको मन्दभागी समझते हैं! परंतु इन सम्पूर्ण अभावोंका आधार कुछ भी नहीं है। अभावोंकी भावना न करनेसे ही तो सब कष्ट मिट जाते हैं, परंतु हम वैसा न करके 'हाय-हाय' पुकारते भटकते हैं। क्या यह वास्तवमें दुःखका विषय नहीं है? हम अपनी पुरानी आर्यसभ्यतासे विचलित हो गये हैं, इसीसे हमें इतना कष्ट है। आजकल इस तरहके अभावोंकी भावना करना हमारा अभ्यास या संस्कारगत विषय हो गया है। हमारे पूर्वज पूर्वकालमें इन सब अभावोंको अभाव ही नहीं समझते थे। अतएव इन सब अपनी डाली हुई आदतोंको, जो थोड़ी-सी चेष्टासे ही छूट सकती हैं, न छोड़कर उनको आश्रय देना और लगातार दुःख भोगना क्या सर्वथा पापका भोग करना नहीं है? यदि कहा जाय कि हमें इन सुखोंका अभ्यास हो गया है अब इन्हें कैसे छोड़ें? यह बात ठीक नहीं है, जिस आदतसे आगे चलकर दुःख होना निश्चित है, यह समझकर भी क्या उस आदतको छोड़नेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये?

भारतवर्षका सत्य आदर्श है संयम। भारतवर्षका आदर्श त्यागकी ओरसे पूर्णताको प्राप्त हुआ है, भोगकी ओरसे नहीं। भारतके भोजन, वस्त्र, भोग, विलास, घर-बाहर, आचार-व्यवहार, बातचीत और आमोद-प्रमोद सभी विषयोंमें संयमकी रक्षा हुई है, कहींपर भी संयमका उल्लंघन नहीं हो सकता था, यही इस देशका विशेषत्व है, परंतु आज इस संयमका अत्यन्त अभाव हो गया है। इसीसे हमें इतना दुःख और कष्ट है! जबतक इस ओर दृष्टि नहीं जायगी, तबतक देशोन्नतिके लिये सिर पीट-पीटकर मरने और सैकड़ों विश्वविद्यालय, धर्मकेन्द्र और सभाओंकी स्थापना करनेसे भी देशका वर्तमान यथार्थ अभाव किसी तरह दूर नहीं होगा।

इसीलिये जो यथार्थ देशहितैषी हैं और जो देशवासियोंका मङ्गल चाहते हैं, उनसे हमारी विनीत प्रार्थना है कि वे संयमके मार्गसे आदर्श सत्-शिक्षाकी व्यवस्था करें।

यदि प्रथमसे ही ऐसी शिक्षा दी जायगी तो बालकोंके संयमका अभ्यास संस्कारगत हो जायगा। हम देख रहे हैं कि आज संयम-शिक्षाके अभावसे ही हम भिखारीके सदृश अर्थके लिये आत्मविक्रय कर रहे हैं और बिना ही कारण अभ्यस्त अभावोंकी पूर्तिके लिये अधर्मका आश्रय लेते हैं। इससे हमारी जाति कितनी कमजोर हो रही है, इस बातको दूरदर्शी व्यक्ति सहजमें ही समझ सकते हैं।

जो लोग अभ्यासके द्वारा अपने अभावको संकुचित नहीं कर सकते या मतवाली इन्द्रियोंकी प्रबल विषय-लालसाको नहीं रोक सकते, उनके भाग्यमें और भी कितना दुःख है यह तो केवल विधाता ही बतला सकते हैं। संयमके बलसे ब्राह्मण ब्राह्मण और क्षत्रिय क्षत्रिय थे—आज संयमके अभावसे उन्हीं सब श्रेष्ठ जातियोंने दूसरोंका गुलाम बनना स्वीकार कर लिया है। इसीलिये उच्च जातिमें शूद्रत्वके लक्षण (मिथ्याचार-कपट आदि) विशेष रूपसे दिखलायी पड़ते हैं। 'धन नहीं चाहिये, नमक-मिर्चसे ही काम चल जाता है' आजकल ब्राह्मण पण्डित साहस करके ऐसा नहीं कह सकते! कारण, वे भी भोग और आरामकी गुलामी करना सीख गये हैं!

उपासनामें संयम

संसारके कष्ट और अभावका नाश कर सुनीति और सदाचारके विस्तारके लिये कुछ भीतरी और बाहरी दोनों प्रकारके संयमका अभ्यास करनेकी बड़ी आवश्यकता हो गयी है।

मनीषियोंने इस बातको जान लिया था कि जैसे और सब कामोंमें नियमोंको मानकर चलनेकी आवश्यकता है, उससे भी अधिक नियमोंके माननेकी आवश्यकता उपासनामें है, नहीं तो शिथिलता हो जाती है। एक बार प्रयत्न ढीला पड़ जानेपर फिर पहली स्थितिपर पहुँचनेमें बड़ा जोर आता है। मन बड़ी कठिनतासे वशमें होता है। जो लोग इसके साथ सदा-सर्वदा संघर्ष करते हैं, उनसे इसकी विक्षेप-शक्तिका बल छिपा हुआ नहीं है; अतएव नये साधकके लिये असंयतरूपसे उपासना करना कभी निरापद नहीं कहा जा सकता। इसमें एक और कठिनता है संचालककी। आजकल सभी गुरु हैं, शिष्य बनकर शासित होनेकी इच्छा सभीकी बहुत कम है। प्रायः सभी आध्यात्मिक उपदेशक अपनी-अपनी दूकान सजाकर बैठे हैं। सभी ग्राहकोंके लिये छटपटाते हैं। इसी प्रकार लोग भी जहाँ-तहाँ जिस-किसीके पाससे उपदेश लेनेमें लगे हुए हैं—सभी सस्तेमें और सुभीतेसे काम पटाना चाहते हैं। इस अवस्थामें जो होना चाहिये वही होता है। गुरु धर्मशिक्षाकी जगह अनेक बार अधर्मको आश्रय देते हैं। अतएव सर्वत्र नियमानुसार चलनेकी चेष्टा करना ही पौरुषका लक्षण है। कारण, विधिहीन कार्य व्यर्थश्रम ही माना जाता है।

भाषण और चिन्तनमें संयम

असंयत-रूपसे बोलनेकी तो आजकल बड़ी प्रवृत्ति है। साधनपथमें यह सबसे बड़ा विघ्न है, बहुत बोलनेमें हमसे अनेक समय जानमें और अनजानमें मिथ्या वाणीका प्रयोग हो जाता है और पुनः-पुनः ऐसा करनेसे उसीकी आदत पड़ जाती है, जो हमारे चित्तको बहुत ही अधिक दुर्बल बना देती है। यही हाल चिन्तनका है। हम इसमें भी बड़े असंयमी हैं। लगातार मनकी तरंगोंके अनुसार चिन्तन करते-करते उसको दुर्बल बना दिया जाता है। चिन्तनमें संयम न होगा तो दुर्गतिकी सीमा नहीं रहेगी। बुरा चिन्तन मनुष्यको जितना जीर्ण करता है, उतना और कोई नहीं कर सकता। जो बुरे चिन्तनमें लगे रहते हैं, बुरा कार्य करना उनके लिये स्वाभाविक होता है। जितना असम्भव, अनावश्यक और आपत्तिजनक चिन्तन मनमें होगा उतना ही चित्तमें विक्षेप होगा। याद रखना चाहिये कि चित्तसंयम ही चित्तशुद्धि है।

इन्द्रिय और विषय-भोगोंमें संयम

विषय-भोग और इन्द्रिय-चरितार्थतामें भी हम आजकल पूरे असंयमी हैं। इसीलिये हम सब ओरसे अकर्मण्य और दुर्बल हो रहे हैं। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। प्राचीन आर्यसभ्यताकी गति भोगोंकी ओर नहीं थी, वह थी त्याग और संयमकी ओर। इन्द्रियोंके दास बनकर ही आज हम कुत्तेकी तरह द्वार-द्वारपर भटकते फिरते हैं। इन्द्रिय-संयमसे ही पुरुषार्थ प्रकट होता है और इन्द्रिय-भोगसे ही मनुष्यमें कायरता आती है, विषय और इन्द्रिय-भोग करते-करते ऐसी तीव्र और बुरी आदत पड़ जाती है कि जब स्वभावसे ही मनके विराम होनेका अवसर आता है, तब भी हम निर्लज्जकी तरह उसे छोड़कर नहीं रह सकते।

व्यवहार, आहार और वेशभूषामें संयम

सामाजिक व्यवहारमें भी आज हम लोगोंमें कोई संयम नहीं है। सभी बिना सोचे-समझे बेहद फिजूल खर्च करते

हैं। विवाह, जनेऊ, कर्णछेदन और श्राद्धादिमें हम बहुत ही अधिक खर्च करते हैं। अवश्य ही कुछ बातोंमें बाध्य होकर व्यय करना पड़ता है, परंतु जहाँ हम संयम कर सकते हैं वहाँ भी तो नहीं करना चाहते। यही तो हमारी दुर्दशाकी सीमा है। मध्यम श्रेणीके गृहस्थ धनियोंका अनुकरण कर इस दुर्दशाको बुला लेते हैं! सभी बातोंमें अपनी सामर्थ्यके अनुसार व्यय करनेमें अपमान कौन-सा है? यह ठीक है कि कई बार बाध्य होकर व्यय करना पड़ता है, परंतु जिस कार्यसे दुःख और कष्ट होता है, उसको करना तो अपनी कमजोरी दिखलाना ही है। हमारी ऐसी दुर्दशा हो गयी है कि सामाजिक कामोंमें अधिक खर्च न करनेमें तो हम अपना अपमान समझते हैं, परंतु यदि हमारा पड़ोसी या कोई निकट-सम्बन्धी कष्टमें पड़ा कराहता है तो उसकी सहायता करनेके समय हमें नकारने या मुख मोड़नेमें कोई अपमान नहीं मालूम होता—हम लज्जाजनक कृपणताकी शरण लेनेमें जरा भी नहीं सकुचाते! यह कैसी दुर्बलता है? यह कैसी आर्यजन-दुर्लभ कुशिक्षा है?

इसके बाद आहारके असंयमको लीजिये। हमारे अनेक शिक्षित भाई आज यूरोपियन और मुसलमानोंका अनुकरण कर आहारके सम्बन्धमें जितना अनुचित असंयम प्रकट कर रहे हैं, उसे देखकर तो लज्जा आनी चाहिये। इतना ही नहीं, इस आहारमें खर्च इतना अधिक होता है कि दरिद्र और मध्यम श्रेणीके गृहस्थोंके लिये तो उसका चलाना कठिन हो जाता है। एक ओर तो विषय-लोलुपतासे इस प्रकार भोगोंकी बाहुल्यता हो रही है और दूसरी ओर मुट्ठीभर अन्नके लिये हमारे ही-जैसे कितने मनुष्य हाहाकार करते हुए घूम रहे हैं। पेट भर किया हुआ सादा भोजन ही हजम हो जाय तो वह मनुष्यको खूब बलवान् बना देता है—गुरुपाक द्रव्योंकी आवश्यकता ही क्या है? कुछ समय-पूर्व हमारे देशमें साधारण दाल-रोटी खानेवाले लोगोंने वीरताके बड़े-बड़े कार्य किये हैं। आज नाना प्रकारके व्यंजनों, अभक्ष्य पदार्थों और भाँति-भाँतिकी मिठाइयोंसे थाली जितनी अधिक भरी रहती है; उतनी ही प्लीहा, यकृत् एवं उदर आदिकी बीमारियाँ भी बढ़ रही हैं। सत्त्वगुण-प्रधान, सदाचार-प्रधान भारतवर्षमें ये सब अनाचार-अत्याचार क्यों होने लगे? यह आसुरी आहार इस प्रकारके देशमें कैसे सहन होता है, क्या इससे कोई मङ्गल होता है? विषय-भोगोंमें वैराग्य ही इस देशका आदर्श है। भोगोंसे तो केवल 'कर्म-भोग' ही भोगे जाते हैं, इनसे कोई लाभ नहीं होता। पाँच-छः प्रकारके शाक न हों तो हम भोजन नहीं कर सकते। जीभके प्रति इतना असंयत अनुराग दिखलाकर हम शरीरपर कितना अत्याचार करते हैं और अनावश्यक खर्चकर सम्पूर्ण गृहस्थको अभावकी चक्कीमें कितना पीसते हैं, यह बात कही नहीं जा सकती। आहारकी पवित्रताका हमें कोई खयाल नहीं है। इसीसे तो आज इस देशके प्रधान खाद्य दूध और घी भी अविमिश्रित (शुद्ध) प्रायः नहीं मिल सकते। स्वास्थ्य नष्ट हो रहा है, मन जड़ बनता चला जा रहा है, बुद्धि मलिन हो रही है, देशवासियोंकी आयु और धनका नाश हो रहा है, इस ओर किसीकी भी दृष्टि नहीं है, परंतु देशप्रेमकी बातें तो सभीके मुखसे सुननेको मिलती हैं।

गहने-कपड़ोंमें भी हम ठीक इसी तरह; वरन् इससे भी अधिक असंयमी हो गये हैं। पुरुषोंका फैशनमें और स्त्रियोंके गहने-कपड़ोंमें इतना अधिक व्यय होता है कि लोगोंका शुद्ध व्यवहारसे रहना कठिन हो गया है, लाभ कुछ भी नहीं। केवल व्यर्थ व्यय होता है। गहने-कपड़ोंसे मनुष्यकी शोभा वास्तवमें बढ़ती है या नहीं इस विषयमें मुझे तो संदेह है। परंतु मान भी लें कि शोभा बढ़ती है तो भी वैसी शोभा किस कामकी जो शरीरकी कुछ शोभा बढ़ाकर मनकी वृत्तियोंको और भी अधिक कुरूप बना देती है। इसमें लाभ होता है या हानि? जरा धीरताके साथ विचार करनेसे ही पता लग जायगा।

जगत्में दुःख और क्लेशोंकी सीमा नहीं है। कितने दुःखी, कितने आतुर असहाय-अवस्थामें पड़े हैं, जिनकी संख्या नहीं है। पृथिवीके इस दुःख-क्लेश-भारको यदि हम जरा-सा भी कम कर सकें, एक भी अनाथ, पीड़ित या पतितको आश्रय दे सकें या जरा-सा भी उसका दुःख-निवारण कर सकें तभी हमारा जीवन-धारण सार्थक है। उस 'सर्वभूतस्थ'-की इस प्रकार सेवा किये बिना उसको और किसी तरह संतुष्ट नहीं किया जा सकता। प्रत्येक जीवमें भगवान् हैं, यों समझकर जीवमात्रके प्रति करुणा—परवश होना ही यथार्थ मनुष्यत्व है—और इस तरहका पुरुषार्थ-साधन ही वास्तवमें आध्यात्मिक उन्नतिका परिचायक है। वास्तवमें यही भगवान्के समीप आत्मनिवेदन है। अशिक्षितको शिक्षादान, भूखेको अन्नदान, असहायको सहायता-दान, भीतको अभयदान, दुश्चरित्रको उपदेशदान, अधार्मिकको धर्म-पथपर लाने-जैसे कार्योंका इस दुरवस्थाग्रस्त देशमें कोई अभाव नहीं है। अपनी सामर्थ्य और सुविधाके अनुसार पहले किसी भी एक ऐसे कार्यमें

अपने पुरुषार्थका प्रयोग करना चाहिये।

इस लोक और परलोकमें मङ्गलदायक कुछ विचार नीचे लिखे जाते हैं।

१-कर्म ही उन्नतिकी सीढ़ी है, कर्म ही मुक्तिका निदान है। कर्म किये बिना कर्मबन्धनसे छुटकारा नहीं मिलता, **'कुरु कर्मैव तस्मात्त्वम्'** अवश्य ही कर्मका अर्थ शुभ कर्म है।

२-जगत्में परीक्षाएँ अनेक हैं। कभी उत्तीर्ण होओगे, कभी नहीं, इसके लिये निराश मत होना, पड़ गये हो, खड़े हो जाओ, फिर पड़ो तो फिर उठो। जो उठना चाहता है उसको बीच-बीचमें पड़ना भी होता है। जो कभी चलता नहीं उसके पड़नेकी आशंका तो कम रहती है, परंतु स्मरण रहे, जो एक पैर भी आगे बढ़ सकता है, वह उस निश्चेष्ट, आलसीकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

३-प्राय: हम सभी जन्मते ही शुकदेव नहीं हो गये। अतएव इस अति लुभावने संसारमें पैर फिसल जाना कोई अप्राकृतिक या अस्वाभाविक बात नहीं है। इसलिये फिसल गये हो तो लज्जा या भयसे उसे छिपाना मत चाहो। जिसपर विश्वास करते हो—ऐसे किसी अन्तरङ्ग मित्रके सामने अपना दोष प्रकट कर दो। इससे अन्त:करणका भार हलका होगा।

४-निर्जनमें आत्मध्यान करो, सर्वदा आत्मपरीक्षण करते रहो, मनके प्रति लक्ष्य रखनेसे ही मन कुपथसे हट जायगा।

५-सहजमें मनका विश्वास न करो, इसका चाञ्चल्य और विक्षेप जबतक दूर नहीं हो तबतक ऐसा कभी न समझना कि यह शान्त हो गया है।

६-यदि निरोगी और बलवान् बनना चाहते हो तो जितेन्द्रिय और मिताचारी बनना सीखो।

७-वृथा तर्क न करो, बिना अच्छी तरह समझे कुछ भी न बोलो।

८-बुरे कर्म छूटनेसे भगवच्चरणोंमें प्रेम होता है।

९-भगवान्को चाहते ही वे मिल जाते हैं। जैसे अत्यन्त क्षुधातुर मनुष्य भोजन या अत्यन्त पिपासातुर व्यक्ति जलके लिये छटपटाता है, भगवान्की इच्छा करनेवालेके मनमें भी ऐसी ही छटपटाहट या तीव्रता होनी चाहिये।

१०-भगवान्में अविश्वास है, इसीसे लोग मौतसे डरते हैं। जिसका भगवान्में विश्वास है, उसे मृत्युका भय नहीं है।

११-दूसरोंके लिये जीवन उत्सर्ग करो या न करो, जीवन तो जायगा ही, इसे कोई अटकाकर नहीं रख सकता। वही जीवन धन्य है जो दूसरोंके हितमें लग सके। ऐसे ही त्यागका नाम पुरुषार्थ है।

१२-सांसारिक सुख, आराम या भोग न चाहो, इनका मिलना तो कठिन है। पद-पदपर वंचित होनेसे मन:क्लेश अवश्य होगा।

१३-सर्वदा विचार-परायण होओ। सुख आये या दु:ख, स्थायी रहनेवाला कोई भी नहीं है। इसको स्थिर-भावसे विचार कर देखो! सुख या दु:ख किसीको भी अविचारपूर्वक ग्रहण न करो। किसी प्रकार भी मोहित मत होओ।

१४-वास्तवमें शरीरका नष्ट हो जाना मृत्यु नहीं है। पाप-वासना ही यथार्थ मृत्यु है। इस पाप-वासनासे ही मनुष्य सर्वदा जर्जरित होकर निरन्तर दु:ख भोगा करता है। मृत्यु इसकी अपेक्षा कभी अधिक कष्टकर नहीं है।

१५-जो **'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्'** हैं, उन्हें इसी जीवनमें जान लेना चाहिये। वासनाके उस पारका नाम ही 'तम:पार' है। यही महर्षि वसिष्ठकी उक्ति है। सबसे पहले वासनाके बन्धनसे अपनेको मुक्त करो; फिर देखोगे एक 'दिव्यधाम' तुम्हारे निकट प्रकाशित है, जहाँ चन्द्र-सूर्यका प्रकाश नहीं है, कोई अन्धकार नहीं है; पर सर्वत्र ही निर्मल शुभ्र ज्योति छिटक रही है—उसमें प्रवेश कर जानेपर फिर लौटना नहीं पड़ता। यही वैकुण्ठपतिका परम धाम है।

१६-जो वासनाको संयत कर सकता है; वही अन्धकारके उस पार पहुँचनेमें समर्थ होता है।

१७-भोग-त्याग या विषयोंमें वैराग्य जोरसे नहीं होता। विचार और साधनकी सहायतासे मन शान्त होनेपर विषयोंसे अपने-आप ही आसक्ति कम हो जाती है। साधनसम्पन्न और विचारवान् न होकर जो मिथ्या मोहके वशीभूत होकर संसारसे भाग छूटता है, वह कहीं भी ढूँढ़े सहारा नहीं पाता। असंस्कृत मनको लेकर वनमें जाओ या घरमें रहो, बात एक ही है। सभी जगह दु:खकी मूर्ति देखकर काँप उठोगे। मनको शान्त करो, समाहित करो फिर चाहे जहाँ विचरण करो। पहले मनको रोगसे छुड़ाओ—फिर घर-वन सभी अमृतमय मालूम होंगे।

१८-उपासनाके द्वारा जब मन वशमें हो जाय तब भगवत्प्रेमकी प्रतिष्ठा होती है। अतएव सब प्रकारसे प्रयत्नकर उपासनाका आश्रय ग्रहण करो और इस दुर्जय शत्रु मनको जीतनेकी चेष्टा करो।

१९-दिनमें कम-से-कम कुछ घंटे निर्जनमें ध्यान करो, सुभीता हो तो महीनेके बाद एक दिन निर्जनमें एकान्त-चित्तसे साधन करो, वर्षके अन्तमें, एक मास, पंद्रह दिन या एक सप्ताह किसी तीर्थस्थान या पुण्य भूमिमें वास करो और वहाँ उन थोड़ेसे दिनोंको केवल साधुसंगति, सत्-आलोचना और भगवत्-उपासनामें बितानेकी चेष्टा करो।

२०-शास्त्रविधिको अमान्य मत करो, शास्त्राचारसे द्वेष न करो, ऋषिवाक्योंको भ्रान्त मत समझो, धर्मशास्त्रों एवं गुरु-वाक्योंमें अश्रद्धा न करो। इन्हीं सबका नाम सदाचार है। इसीसे परम पद मिलता है।

२१-रोगसंकुल शरीर, असंस्कृत मन और अशुद्ध बुद्धिके द्वारा ऋषियोंके समाधिलब्ध ज्ञानका मर्म समझमें नहीं आता। यदि उनको समझना चाहते हो तो ब्रह्मचर्यमें प्रतिष्ठित होओ, संयमका अभ्यास करो और तपश्चर्यामें लगो। उपासना और संयमके बिना तुम कितने ही बड़े पण्डित क्यों न हो, ऋषियोंकी एक बात भी समझमें आनेकी आशा न करो!

* * *

ज्योतिर्लिङ्ग भगवान् केदारेश्वरका प्राकट्य

प्राचीन कालमें भगवान्‌के अंश नर और नारायणने तपस्या करनेकी अभिलाषासे बदरिकावनमें आश्रम बनाया। उन्होंने भगवान् शंकरसे प्रार्थना की कि वे पार्थिव लिङ्गमें विराजमान हों। यह प्रार्थना भगवान् शिवने स्वीकार कर ली और नर-नारायण-निर्मित लिङ्गमें प्रविष्ट हो उसमें निवास करने लगे।

वे देव उस लिङ्गकी परम श्रद्धाके साथ षोडशोपचार-आराधना करने लगे और वहीं कठिन तपस्या करने लगे। निराहार तथा जितेन्द्रिय होकर वे रात-दिन भगवच्चरणचिन्तन ही करते थे, अन्य कुछ भी व्यापार नहीं था।

इस प्रकार जब तप करते-करते बहुत समय व्यतीत हो गया, तब श्रीआशुतोष भगवान् प्रकट होकर बोले कि 'हे नर! हे नारायण! मैं तुम लोगोंकी तपस्यासे परम संतुष्ट हूँ। जो इच्छा हो वह वर माँगो। मैं बहुत प्रसन्नतापूर्वक दूँगा।'

शंकर भगवान्‌के ऐसे वचन सुनकर नर और नारायणने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे देवेश! हे जगन्निवास! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वर दीजिये कि आपका निवास सदा इस तीर्थमें हो। आप स्वयं अपने रूपसे इस क्षेत्रमें भक्तोंकी पूजा स्वीकार करें और उन्हें संसार-बन्धनसे मुक्त होनेमें सहायता करें। भगवान् सदा-शिवने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और ज्योति:स्वरूप हो स्वयं उस तीर्थमें विराजमान हुए। यह ज्योतिर्लिङ्ग केदारेश्वरके नामसे विख्यात हुआ। उस स्थानमें जाकर अनेक देवताओं तथा मुनियोंने भगवान्‌की आराधना की और अभिलषित फल पाया।

एक बार पाण्डव लोग इस पवित्र बदरिकाश्रममें गये। भगवान् शिवने उन्हें वहाँ देख मायासे महिषका रूप धारण कर लिया और वहाँसे चलने लगे। परंतु पाण्डवोंने भगवान्‌को पहचान लिया और उन्हें पकड़ लिया तथा परम भक्तिपूर्वक स्तुति की। उनकी भावमयी स्तुति सुनकर भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्न हुए और अपना रूप धारण कर प्रकट हुए। तब भगवान्‌ने कहा कि मैं तुम लोगोंसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हें जो वर माँगना हो माँगो। पाण्डवोंने भगवान्‌की स्तुति कर अनेक वर प्राप्त किये और संसारमें विविध प्रकारके सुख-भोग कर वे अन्तमें परमपदको प्राप्त हुए।

इन केदारेश्वरके दर्शनोंके लिये अभी भी असंख्य स्त्री-पुरुष जाते हैं। योगियोंकी सिद्धिका तो यह प्रधान स्थान है। यहाँ पिण्डदान करनेसे पितरोंका उद्धार होता है। इनके पूजनका माहात्म्य स्कन्दपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

यः पूजयति केदारं स गच्छेच्छिवमन्दिरम्।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा पितॄनुद्दिश्य भारत।
श्राद्धं ददाति विधिवत् तस्य प्रीताः पितामहाः॥

(रेवाखं० १२३। १७)

* * *

साधकोंके प्रति—

वास्तविक तत्त्वका अनुभव

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

है सो सुन्दर है सदा, नहिं सो सुन्दर नाहिं।
नहिं सो परगट देखिये, है सो दीखे नाहिं॥

कितनी विचित्र बात है कि परमात्मा हैं, पर वे दीखते नहीं और संसार नहीं है, पर वह दीखता है! इसका कारण यह है कि हमारे पास देखनेकी जो शक्ति है, वह सब संसारकी है। जिस धातुका संसार है, उसी धातुकी हमारी इन्द्रियाँ और अन्तःकरण (मन-बुद्धि) हैं। इसलिये उनसे संसार ही दीखेगा, परमात्मा कैसे दीखेंगे? इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि प्रकृतिके अंश हैं। प्रकृतिके अंशद्वारा प्रकृतिसे अतीत तत्त्वको कैसे देखा जा सकता है? प्रकृतिसे अतीत परमात्मतत्त्वको तो अपने-आपसे अर्थात् स्वयंसे ही देखा जा सकता है; क्योंकि स्वयं परमात्माका ही अंश है। तात्पर्य है कि शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि तथा संसार तत्त्वसे एक (नाशवान्, जड़) हैं और स्वयं तथा परमात्मा तत्त्वसे एक (अविनाशी चेतन) हैं। विचार करें कि क्या शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि और परमात्माकी तात्त्विक एकता है? कदापि नहीं। फिर उनके द्वारा परमात्माको कैसे देखा अथवा प्राप्त किया जा सकता है? असम्भव बात है। अतः हम स्वयंसे देखेंगे तो परमात्मा दीखेंगे और शरीरसे देखेंगे तो संसार दीखेगा। रहनेवालेसे रहनेवाला ही दीखेगा और बदलनेवालेसे बदलनेवाला ही दीखेगा।

स्वयंसे परमात्मा कैसे दीखते हैं—इसपर विचार करें! प्रत्येक मनुष्यको 'मैं हूँ'—इस रूपमें अपनी सत्ता (होनेपन)-का अनुभव होता है। 'मैं हूँ'—इसमें 'मैं' प्रकृतिका अंश है और 'हूँ' परमात्माका अंश है। अतः 'मैं' की 'नहीं'के साथ और 'हूँ' की 'है' के साथ एकता है। 'हूँ' और 'है'-का भेद 'मैं'-पनके कारण ही है। अगर 'मैं'-पन न रहे तो 'हूँ' नहीं रहेगा, प्रत्युत 'है' ही रहेगा। तात्पर्य यह हुआ कि स्वयंमें जो सत्ता अर्थात् अपना होनापन है, वह वास्तवमें परमात्माका ही है। वह होनापन सब जगह समान रीतिसे स्वतः-स्वाभाविक परिपूर्ण है।

हमसे यह भूल होती है कि हम परमात्मामें संसारको देखते हैं, जबकि देखना चाहिये संसारमें परमात्माको। 'नहीं' में 'है' को देखना तो सही है, पर 'है' में 'नहीं' को देखना गलती है; क्योंकि परमात्मा हैं और संसार नहीं है। इसलिये गीतामें आया है—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥

(१३। २७)

'जो नष्ट होते हुए सम्पूर्ण प्राणियोंमें परमात्माको नाशरहित और समरूपसे स्थित देखता है, वही वास्तवमें सही देखता है।'

ऐसा कोई क्षण नहीं है, जिसमें संसार न बदलता हो। बदलना-ही-बदलना इसका स्वरूप है। परंतु परमात्मा नहीं बदलनेवाले हैं। संसार रहे अथवा नष्ट हो जाय, वे नित्य-निरन्तर ज्यों-के-त्यों ही रहते हैं, उनमें कोई फर्क नहीं पड़ता। संसार एक क्षण भी टिकता नहीं और परमात्मतत्त्व एक क्षण भी मिटता नहीं। इसलिये जो बदलनेवाले नाशवान् संसारको न देखकर निरन्तर रहनेवाले अविनाशी परमात्माको देखता है, वही सही देखता है—**'विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति'**। परंतु जो परमात्माको न देखकर संसारको देखता है, वह सही नहीं देखता—

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते।
किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा॥

(महा० उद्योग० ४२। ३७)

'जो अन्य प्रकारका (अविनाशी) होते हुए भी आत्माको अन्य प्रकारका (विनाशी शरीर) मानता है, उस आत्मघाती चोरने कौन-सा पाप नहीं किया?'

जैसे, शरीरके बदलनेपर हम अपना बदलना नहीं देखते। बालकपनसे लेकर आजतक शरीर कितना बदल गया, पर हम कहते हैं कि मैं वही हूँ, जो बालकपनमें था। शरीर बदल गया, स्थान बदल गया, समय बदल गया, वस्तुएँ बदल गयीं, साथी बदल गये, परिस्थिति बदल गयी, अवस्था बदल गयी, क्रियाएँ

बदल गयीं, पर सब कुछ बदलनेपर भी स्वयं नहीं बदला। देश, काल आदिमें फर्क पड़ा, पर अपनेमें फर्क नहीं पड़ा। ऐसे ही संसार कितना ही बदल जाय, परमात्मा वैसे-के-वैसे ही रहते हैं। वस्तुभेद, व्यक्तिभेद और क्रियाभेद होनेपर भी तत्त्वभेद नहीं होता। हमारी दृष्टि उस परमात्मतत्त्वकी तरफ ही रहनी चाहिये। जैसे, कोई व्यापारी कोयला खरीदता और बेचता है, पर उसकी दृष्टि पैसोंपर ही रहती है कि इतने पैसे आ गये! व्यापारकी चीजें तो बदल जाती हैं, पर पैसा वही रहता है। ऐसे ही सब व्यवहार करते हुए भी हमारी दृष्टि परमात्मापर ही रहनी चाहिये।

यह सिद्धान्त है कि जो आदि-अन्तमें नहीं होता, वह वर्तमानमें भी नहीं होता और जो आदि-अन्तमें भी होता है, वह वर्तमानमें भी होता है। संसार पहले भी नहीं था और पीछे भी नहीं रहेगा, इसलिये संसार नहीं है। परमात्मा पहले भी थे और पीछे भी रहेंगे, इसलिये परमात्मा ही हैं। संसारको सत्यरूपसे देखनेवाले कहते हैं कि परमात्मा हैं ही नहीं और परमात्माको सत्यरूपसे देखनेवाले कहते हैं कि संसार है ही नहीं! संसारमें जो 'है'-पना दीखता है, वह उस परमात्माकी ही झलक है। जैसे रस्सीमें साँप दीखता है तो वास्तवमें 'है'-पना रस्सीमें है, साँपमें नहीं, पर रस्सीका 'है'-पना साँपमें दीखता है। ऐसे ही 'है'-पना परमात्मामें है, संसारमें नहीं है, पर परमात्माका 'है'-पना संसारमें दीखता है। जैसे चनेका आटा फीका होता है, पर जब उसमें चीनी पड़ जाती है, तब उससे बनी बूँदी मीठी लगती है। वह मिठास वास्तवमें चीनीकी ही है, बूँदीकी नहीं। ऐसे ही संसारमें जो 'है'-पना दीखता है, वह संसारका न होकर परमात्माका ही है।

अगर भक्तियोगकी दृष्टिसे देखें तो सब संसार परमात्मस्वरूप ही है! भगवान् कहते हैं—

'**मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति**' (गीता ७। ७)

'मेरे सिवाय इस जगत्का दूसरा कोई किंचिन्मात्र भी (कारण तथा कार्य) नहीं है।'

'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)

'सब कुछ परमात्मा ही हैं।'

'**सदसच्चाहम्**' (गीता ९। १९)

'सत् और असत् भी मैं ही हूँ।'

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥

(श्रीमद्भा० ११। १३। २४)

'मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे जो कुछ (शब्दादि विषय) ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ। अतः मेरे सिवाय और कुछ भी नहीं है—यह सिद्धान्त आप विचारपूर्वक शीघ्र समझ लें और स्वीकार करके अनुभव कर लें।'

परमात्माके विषयमें द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि अनेक मतभेद हैं, पर 'सब कुछ परमात्मा ही हैं'—यह सर्वोपरि सिद्धान्त है। सम्पूर्ण मत इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। साधकोंके मनमें प्रायः यह भाव रहता है कि कोई परमात्माकी सार बात, तात्त्विक बात, बढ़िया बात बता दे तो हम जल्दी परमात्मप्राप्ति कर लें। वह सार बात, तात्त्विक बात, बढ़िया बात, सबका खास निचोड़, निष्कर्ष यही है कि केवल परमात्मा-ही-परमात्मा हैं। 'मैं' भी परमात्मा हैं, 'तू' भी परमात्मा हैं, 'यह' भी परमात्मा हैं और 'वह' भी परमात्मा हैं अर्थात् परमात्माके सिवाय कुछ नहीं है।

अब प्रश्न होता है कि सब कुछ परमात्मा कैसे हुए? एक अपरा प्रकृति है, एक परा प्रकृति है और एक परा-अपराके मालिक परमात्मा हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहम्—यह आठ प्रकारकी अपरा (परिवर्तनशील) प्रकृति है। जीव परा (अपरिवर्तनशील) प्रकृति है। अपरा और परा—ये दोनों प्रकृतियाँ परमात्माका स्वभाव होनेसे परमात्मासे अभिन्न हैं अर्थात् इन दोनोंकी परमात्मासे अलग स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। शरीरकी अपरा प्रकृतिके साथ और शरीरीकी परा प्रकृतिके साथ एकता है। इस प्रकार परमात्मासे अलग किंचिन्मात्र भी कोई सत्ता न होनेसे स्थूल-से-स्थूल पृथ्वीसे लेकर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अहम् तक सब कुछ केवल परमात्मा ही हुए। इसलिये गीतामें अपरा, परा और वासुदेव अथवा क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम—इन तीनोंके वर्णनका तात्पर्य इनको एक बतानेमें ही है, तीन बतानेमें नहीं है।

अब प्रश्न होता है कि 'सब कुछ परमात्मा ही हैं'—इसका अनुभव कैसे हो? जगत्‌की स्वतन्त्र सत्ता न होते हुए भी जीवने जगत्‌को स्वतन्त्र सत्ता दी है—'**जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्**' (गीता ७। ५)।

जगत्‌को सत्ता देनेमें मुख्य कारण है—सुखभोगबुद्धि। जीवकी सुखभोगबुद्धिके कारण ही परमात्मा जीवको जड़ जगत्‌रूपसे दीखने लग गये और जीव स्वयं भी जगत्‌रूप हो गया*। अतः परमात्मतत्त्वके अनुभवमें सुखभोगबुद्धि ही खास बाधक है।

अब प्रश्न होता है कि सुखभोगबुद्धि कैसे नष्ट हो? इसको मिटानेके तीन मुख्य साधन हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। कर्मयोगके द्वारा सुखभोगबुद्धि सुगमतासे मिट सकती है। सम्पूर्ण सृष्टि पाञ्चभौतिक होनेसे एक ही है। जैसे एक ही शरीरके अनेक अंग होते हैं, ऐसे ही सम्पूर्ण शरीर एक ही सृष्टिके अनेक अंग हैं। अतः जैसे मनुष्य अपने शरीरके सभी अंगोंसे अलग-अलग यथायोग्य व्यवहार करते हुए भी सभी अंगोंका समान रूपसे सुख और हित चाहता है, किसी भी अंगका दुःख और अहित नहीं चाहता, ऐसे ही साधकको सभी प्राणियोंसे यथायोग्य व्यवहार करते हुए भी समान रूपसे सबके सुख और हितका भाव रखना चाहिये और किसीका भी दुःख और अहित नहीं चाहना चाहिये†। जैसे माँके हृदयमें अपना दुःख दूर करनेकी अपेक्षा भी अपने बेटेका दुःख दूर करनेका विशेष भाव रहता है, ऐसे ही साधकका भी दूसरेका दुःख दूर करनेका विशेष भाव होना चाहिये। दूसरोंको सुख देनेका भाव होनेसे अपनी सुखभोगबुद्धि स्वतः मिटती है।

ज्ञानयोगमें विवेकपूर्वक विचार करनेसे सुखभोगबुद्धिका नाश हो जाता है। जैसे, प्यासकी जलसे अलग स्वतन्त्र सत्ता नहीं है अर्थात् प्यास जलरूप ही है, ऐसे ही सुखासक्तिकी भी संसारसे अलग स्वतन्त्र सत्ता नहीं है अर्थात् संसारकी सुखासक्ति या सुखभोगबुद्धि संसाररूप ही है। जैसे मनुष्यको जलकी प्यास दुःख देती है, जल दुःख नहीं देता, ऐसे ही संसारकी सुखासक्ति ही दुःख देनेवाली है, संसार दुःख नहीं देता। अतः सुखासक्ति ही सम्पूर्ण दुःखोंका, अनर्थोंका, अवगुणोंका, पापोंका मुख्य कारण है—ऐसा विचार करनेसे संसारमें सुखभोगबुद्धि मिट जाती है।

भक्तियोगमें साधक 'सब कुछ भगवान् ही हैं'—इसको दृढ़तासे मान ले कि वास्तवमें बात यही है। माननेके बाद अनुभव स्वतः हो जायगा। अनुभव न होनेका दुःख जितना तेज होगा, उतनी ही जल्दी अनुभव होगा। जब सब रूपोंमें भगवान् ही हैं तो फिर वे मेरेको क्यों नहीं दीखते? अगर माँ मौजूद है तो फिर वह मेरेको गोदीमें क्यों नहीं लेती?—इस प्रकार छटपटाहट लगे तो बहुत जल्दी सुखभोगबुद्धिका नाश होकर परमात्माका अनुभव हो जायगा। परंतु संसारके सम्बन्धसे जितना सुख लिया है, उससे अधिक मात्रामें सुखभोगबुद्धिके न मिटनेका दुःख होना चाहिये।

अगर साधकमें सुखभोगबुद्धिको मिटानेकी उत्कट अभिलाषा हो, पर उसको मिटानेमें अपनेमें निर्बलताका अनुभव हो और साथ-साथ यह विश्वास हो कि सर्वसमर्थ भगवान्‌की कृपाशक्तिसे ही मेरी यह निर्बलता दूर हो सकती है तो ऐसी स्थितिमें वह भक्त होकर भगवान्‌के परायण हो जाता है। भगवान्‌के परायण होनेपर फिर स्वतः भीतरसे प्रार्थना, पुकार निकलती है, जिससे सुगमतापूर्वक सुखभोगबुद्धि मिट जाती है और एक परमात्माके सिवाय कुछ नहीं है—इसका अनुभव हो जाता है।

* * *

---

* त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्। मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥ (गीता ७। १३)

'इन तीनों गुणरूप भावोंसे मोहित यह सम्पूर्ण जगत् (प्राणिमात्र) इन गुणोंसे अतीत अविनाशी मुझे नहीं जानता।'

† आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन। सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥ (गीता ६। ३२)

'हे अर्जुन! जो अपने शरीरकी उपमासे सब जगह अपनेको समान देखता है और सुख अथवा दुःखको भी समान देखता है, वह परम योगी माना गया है।'

श्रीरुक्मिणीका प्रभुमें अनन्य प्रेम

श्रीमद्भागवतमें अनिर्वचनीय प्रेमके दो चरित्र बड़े ही पुनीत और अलौकिक हैं। प्रथम प्रेमकी जीवित प्रतिमा प्रातःस्मरणीया गोपबालाओंका और दूसरा भगवती श्रीरुक्मिणीजीका। विदर्भ देशके राजा भीष्मकके रुक्मी, रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली नामक पाँच पुत्र और रुक्मिणी नामकी एक सबसे छोटी कन्या थी। रुक्मिणीजी साक्षात् रमा थीं, भगवान्में उनका चित्त तो स्वाभाविक ही अनुरक्त था, परंतु लीलासे नारदादि तत्त्वज्ञानियोंके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णके माहात्म्य, रूप, वीर्य, गुण, शोभा और वैभवका अनुपम वर्णन सुनकर अपने मनमें उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि श्रीकृष्ण ही मेरे पति हैं। आरम्भमें साधकको अपना ध्येय निश्चय करनेकी ही आवश्यकता होती है। ध्येय निश्चित होनेके पश्चात् उसकी प्राप्तिके लिये साधन किये जाते हैं। जिसका लक्ष्य ही स्थिर नहीं, वह लक्ष्यबेध कैसे करेगा? भगवती रुक्मिणीने दृढ़ प्रत्यय कर लिया कि जो कुछ भी हो, चाहे जितना लोभ या भय आये, मुझे तो श्रीकृष्णको ही अपने जीवनाधार-रूपमें प्राप्त करना है। भक्त भगवान्‌को जैसे भजता है भगवान् भी भक्तको वैसे ही भजते हैं, श्रीरुक्मिणीने जब श्रीकृष्णका माहात्म्य सुनकर उनको पतिरूपसे वरण किया तो उधर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भी रुक्मिणीको बुद्धि, लक्षण, उदारता, रूप, शील और गुणोंकी खान समझकर—योग्य अधिकारी मानकर पत्नीरूपसे ग्रहण करनेका निश्चय कर लिया। श्रीरुक्मिणीके बड़े भाई रुक्मी भगवान् श्रीकृष्णसे द्वेष रखते थे, उन्होंने अपने माता-पिता और भाइयोंकी इच्छाके विपरीत रुक्मिणीजीका विवाह श्रीकृष्णसे न कर शिशुपालसे करना चाहा और उन्हींकी इच्छानुसार सम्बन्ध पक्का भी हो गया। जब यह समाचार श्रीरुक्मिणीजीको मिला तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ, उन्होंने अपना जीवन पहलेसे ही भगवान्पर न्योछावर कर दिया था। अब इस विपत्तिमें पड़कर उन्होंने अपने मनकी दशा के सम्बन्धमें श्रीकृष्णके प्रति निवेदन करनेके अभिप्रायसे एक छोटा-सा पत्र लिखा और एक विश्वासी वृद्ध ब्राह्मणको उसे देकर द्वारका भेज दिया। पत्र क्या था! प्रेम-समुद्रके कुछ अमूल्य और अनुपम रत्नोंकी एक मंजूषा थी। थोड़ेसे शब्दोंमें अपना हृदय खोलकर रख दिया गया था। नवधा भक्तिके अन्तिम सोपान आत्मनिवेदनका सुन्दर स्वरूप उसके अंदर था। ब्राह्मण देवता द्वारका पहुँचकर श्रीकृष्णचन्द्रके द्वारपर उपस्थित हुए। द्वारपाल उन्हें अंदर ले गया। भगवान् श्रीकृष्णने ब्राह्मण देवताको देखते ही सिंहासनसे उतरकर उनकी अभ्यर्थना की। अपने हाथोंसे उठाकर आसन दिया और आदरपूर्वक बैठाकर भलीभाँति उनकी पूजा की। ब्राह्मणके भोजन-विश्रामादि कर चुकनेपर भगवान् श्रीकृष्ण उनके पास जाकर बैठ गये और अपने कोमल कर-कमलोंसे उनके पैर दबाते-दबाते धीर-भावसे कुशल-समाचार पूछनेके बाद ब्राह्मणसे बोले—'महाराज! मैं उन सब ब्राह्मणोंको बारम्बार मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ जो सदा संतुष्ट रहते हैं, जो दरिद्र होनेपर भी सुखसे अपना जीवन बिताते हैं, जो साधु हैं, प्राणिमात्रके परम बन्धु हैं और जो निरभिमानी तथा शान्त हैं। ब्रह्मन्! आप अपने राजाके राज्यमें सुखसे तो रहते हैं? जिस राजाके राज्यमें प्रजा सुखी है, वही राजा मुझको प्रिय है।' इस प्रकार कुशल-प्रश्नके बहानेसे भगवान्‌ने ब्राह्मण और क्षत्रियोंके उस धर्मको बतला दिया जिससे वे भगवान्‌के प्रिय पात्र बन सकते हैं। ब्राह्मणने सारी कथा संक्षेपमें सुनाकर वह प्रेम-पत्रिका भगवान्‌को दिखलायी, जिसपर श्रीरुक्मिणीके द्वारा अपनी प्रेम-मुद्रिकाकी मुहर लगायी हुई थी। भगवान्‌की आज्ञा पाकर ब्राह्मणने पत्र पढ़कर सुनाया। पत्रमें लिखा था—'हे त्रिभुवनकी सुन्दरताके समुद्र! हे अच्युत! जो कानोंके छिद्रोंद्वारा हृदयमें प्रवेश करके (तीनों प्रकारके) तापोंको शान्त करते हैं, वे आपके सब अनुपम गुण और नेत्रधारियोंकी दृष्टिका जो परम लाभ है; ऐसे आपके मनोमोहन स्वरूपकी महिमा सुनकर मेरा चित्त आपपर आसक्त हो गया है, लोकलज्जाका बन्धन भी उस (प्रेमके प्रवाह)-को नहीं रोक सकता।

हे मुकुन्द! ऐसी कौन कुलवती, गुणवती और बुद्धिमती कामिनी है जो आप-जैसे अतुलनीय कुल, शील, स्वरूप,

विद्या, अवस्था, सम्पत्ति और प्रभाव-सम्पन्न पुरुषको विवाह-समय उपस्थित होनेपर पति-रूपसे वरण करनेकी अभिलाषा नहीं करेगी। हे नरश्रेष्ठ! आप ही तो मनुष्योंके मनको रमानेवाले हैं। अतएव हे विभो! मैंने आपको पति मानकर आत्मसमर्पण कर दिया है, अतएव आप यहाँ अवश्य पधारकर मुझे अपनी धर्मपत्नी बनाइये। हे कमलनयन! मैं अब आपकी हो चुकी, क्या सियार कहीं सिंहके भागको हर ले जा सकता है? मैं चाहती हूँ आप वीर-श्रेष्ठके भाग—मुझको सियार शिशुपाल यहाँ आकर स्पर्श भी न कर सके। 'यदि मैंने पूर्त (कुँआ-बावड़ी आदि बनवाना), इष्ट (अग्निहोत्रादि), दान, नियम, व्रत एवं देवता, ब्राह्मण और गुरुओंके पूजनद्वारा भगवान्‌की कुछ भी आराधना की है तो भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं आकर मेरा पाणिग्रहण करें और दमघोषनन्दन (शिशुपाल) आदि दूसरे राजा मुझे हाथ भी न लगा सकें। हे अजित! परसों विवाहकी तिथि है, अतएव आप एक दिन पहले गुप्त-रूपसे पधारिये, फिर पीछेसे आये हुए अपने सेनापतियोंको साथ लेकर शिशुपाल-जरासंध आदिकी सेनाको नष्ट-भ्रष्टकर बलपूर्वक मुझे ग्रहण कीजिये, यही मेरी विनम्र प्रार्थना है। यदि आप यह कहें कि तुम तो अन्तःपुरमें रहती हो, तुम्हारे बन्धुओंको मारे बिना मैं किस तरह तुम्हारे साथ विवाह कर सकता हूँ या तुम्हें हर कर ले जा सकता हूँ? तो मैं आपको उसका उपाय बताती हूँ, हमारे कुलकी सनातन रीतिके अनुसार कन्या पहले दिन कुलदेवी भवानीकी पूजा करनेके लिये बाहर मन्दिरमें जाया करती है। वहाँ मुझे हरण करना सुलभ है।' इतना लिखनेके पश्चात् अन्तमें देवी रुक्मिणी लिखती हैं—

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो
वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं
जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभिः स्यात्॥

(श्रीमद्भा० १०। ५२। ४३)

'हे कमललोचन! उमापति महादेव तथा उनके समान दूसरे ब्रह्मादि महान् लोग, अपने अन्तःकरणका अज्ञान मिटानेके लिये आपके जिस चरण-रजके कणोंसे स्नान करनेकी प्रार्थना करते रहते हैं, मैं यदि उस प्रसादको नहीं पा सकी तो निश्चय समझियेगा कि मैं व्रत-उपवासादिके द्वारा शरीरको सुखाकर व्याकुल हुए प्राणोंको त्याग दूँगी। (यों बारम्बार करते रहनेपर अगले) सौ जन्मोंमें तो आपका प्रसाद प्राप्त होगा ही।'

कुछ लोग कहते हैं कि इस पत्रमें कौन-सी बड़ी बात है? किसी पुरुषके रूप-गुणपर मुग्ध होकर घरवालोंकी इच्छाके विरुद्ध उसे प्रेमपत्र लिखना कौन-सी अच्छी बात है? परंतु ऐसा कहनेवाले सज्जन भूलते हैं। श्रीरुक्मिणीजीने किसी पार्थिव रूप-गुणपर मुग्ध होकर यह पत्र नहीं लिखा, पत्रके अन्तिम श्लोकसे स्पष्ट सिद्ध है कि रुक्मिणी किसी राजा या बलवान्‌को नहीं जानती और चाहती थीं। रुक्मिणी जानती थीं देवदेव महादेवादिद्वारा वन्दित-चरण कमललोचन साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णको! रुक्मिणीका त्याग और निश्चय देखिये! इष्ट, पूर्त, दान, नियम, व्रत और देवता-गुरु-ब्राह्मणोंकी पूजा आदि सबका फल रुक्मिणी केवल एक ही चाहती हैं। यही तो भक्तका निष्काम कर्म है। भक्तके द्वारा दान, यज्ञ, तप आदि सभी कर्म किये जाते हैं, परंतु किसलिये? धन, जन, भोग, स्वर्गादिके लिये नहीं केवल भगवान्‌को पानेके लिये घर, द्वार, परिवार, भाई-बन्धुका ममत्व त्यागकर। इसी प्रकार तो भगवत्प्राप्तिके लिये भक्तको लोकलज्जा और मर्यादाका बाँध तोड़कर आत्मसमर्पण करना पड़ता है। इतनेपर भी यदि भगवान् नहीं मिलते तो भक्त ऊबता नहीं। उसका निश्चय है कि आज नहीं तो क्या है, 'कभी सौ जन्मोंमें तो उनका प्रसाद प्राप्त होगा ही।' जहाँ इतना विशुद्ध और अनन्य प्रेम होता है, वहाँ भगवान् आये बिना कभी रह नहीं सकते। अतएव रुक्मिणीजीका पत्र सुनते ही भगवान्‌ने भक्तका संकट हरनेके लिये निश्चय कर लिया और ब्राह्मणसे कहने लगे—'भगवन्! जैसे रुक्मिणीका चित्त मुझमें आसक्त है, वैसे ही मेरा भी मन उसीमें लग रहा है। मुझे तो रातको नींद भी नहीं आती……मैंने निश्चय कर लिया है कि युद्धमें अधम क्षत्रियोंकी सेनाका मन्थन कर उसके बीचसे, काष्ठके भीतरसे अग्नि-शिखाके समान, मुझको एकान्त-भावसे भजनेवाली अनिन्दिताङ्गी राजकुमारी रुक्मिणीको ले आऊँगा।'

वही भक्त सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है, जो अपने अन्तरके

प्रेमकी प्रबल इच्छासे भगवान्‌के चित्तमें उससे मिलनेके लिये अत्यन्त व्याकुलता उत्पन्न कर दे। इस प्रकारकी अवस्थामें भगवान् भक्तसे मिले बिना एक क्षण भी सुखकी नींद नहीं सो सकते। जैसे भक्त अपने प्रियतम भगवान्‌के विरहमें तारे गिनता हुआ रात बिताता है, वैसे ही भगवान् भी उसीके ध्यानमें जागा करते हैं; ऐसी स्थिति हो जानेपर भगवत्प्राप्तिमें विलम्ब नहीं होता। भगवान् दौड़ते हैं इस प्रकारके भक्तको सादर ग्रहण करनेके लिये।

भगवान्‌का रुख देखकर चतुर सारथी दारुक उसी क्षण शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामक चार घोड़े जोतकर रथ ले आया और भगवान्‌ने उसपर सवार होकर रथ बहुत शीघ्र हाँकनेकी आज्ञा देकर विदर्भ देशके कुंडिनपुरके लिये प्रस्थान किया। ब्राह्मण देवता भी साथ ही थे।

श्रीरुक्मिणीजीने सारी रात जागते हुए बितायी, सूर्योदय होनेको आया, ब्राह्मण नहीं लौटे, रुक्मिणीकी विरह-व्यथा उत्तरोत्तर बढ़ रही थी, वह मनमें इस प्रकार चिन्ता करने लगीं कि 'अहो! रात बीत गयी, सबेरे मुझ अभागिनीके विवाहका दिन है। कमललोचन भगवान् श्रीकृष्ण अबतक नहीं आये, न ब्राह्मण देवता ही लौटे? क्या उन अनिन्दितात्मा श्रीकृष्णने मुझमें कहीं कोई निन्दनीय बात देखी है? क्या इसीलिये वे मेरे पाणिग्रहणका उद्योग करके नहीं पधारते? क्या भगवान्, विधाता और महादेव मुझ अभागिनीके प्रतिकूल हैं? क्या भगवती गिरिजा, रुद्राणी, गौरी भी मेरे अनुकूल नहीं हैं? इस प्रकार चिन्ता करती हुई श्रीरुक्मिणीजी, जिनका चित्त केवल गोविन्दकी चिन्तासे ही भरा हुआ है, जिनके नेत्रोंसे आँसू बह रहे हैं, अपने उन नेत्रोंको मूँदकर भगवान् हरिका ध्यान करने लगीं!

प्रेमके उदय होनेपर एक क्षणका वियोग भी भक्तके लिये असह्य हो उठता है; परंतु उस वियोगकी विकट दशामें वह अपने प्रियतम भगवान्‌पर कभी नाराज नहीं होता। उस समय वह अपना अन्तर टटोलता है, वह सोचता है कि 'प्रियतमके पधारनेमें क्यों विलम्ब हो रहा है? क्या मेरे हृदय-सिंहासनके सजानेमें कोई त्रुटि रह गयी है? क्या स्वागतकी तैयारीमें कोई कसर है?' इस अवस्थामें भक्त बड़ी सावधानीसे अपने हृदयके गम्भीरतम प्रदेशमें घुसकर चोरकी तरह उसमें छिपे हुए संसार-संस्कारके लेशको भी निकाल देना चाहता है, उसे यह दृढ़ विश्वास रहता है कि मेरी पूरी तैयारी होनेपर तो प्रियतम आये बिना कभी रह नहीं सकते; कहीं-न-कहीं मेरी तैयारीमें ही दोष है, रुक्मिणीजी इसीलिये चिन्ता करती हैं कि क्या श्रीकृष्णने मुझमें ऐसी कोई निन्दनीय बात देखी है जो प्रेममार्गके प्रतिकूल हो? जब व्याकुलता और बढ़ती है, धैर्य छूटने लगता है, तब वह भक्त सभी उपायोंको काममें लाता है, ऐसे समय ही उसे देवी-देवताओंका स्मरण होता है। जब उनसे भी आश्वासन नहीं मिलता, तब हृदय भर आता है। आँखें छल-छल करने लगती हैं, रोमांच हो आता है, चित्त सर्वथा निर्विषय होकर अपने प्रियतमकी एकान्त और अनन्य चिन्ताके विस्तृत सागरमें तरंगकी भाँति तल्लीन और एकरस बन जाता है। बस, यही भक्त और भगवान्‌के मिलनका शुभ समय होता है और इसी क्षणमें भक्त अपने भगवान्‌को पाकर संतुष्ट, तृप्त, पूर्णकाम और अकाम बनकर तद्रूप हो जाता है।

भगवान् श्रीकृष्णके ध्यानमें मग्न होते ही रुक्मिणीजीके बाँह, ऊरु, भुजा और नेत्र आदि अङ्ग भावी प्रियकी सूचना देते हुए फड़क उठे और उसी क्षण भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनका प्रिय समाचार लेकर वही वृद्ध ब्राह्मण आ पहुँचे। भगवान्‌की आगमन-वार्ता सुनकर रुक्मिणीजीको जो आनन्द हुआ वह वर्णनातीत है। श्रीकृष्ण और बलदेवका आगमन सुनकर रुक्मिणीके पिता राजा भीष्मकने उनके स्वागत और अतिथि-सत्कारका पूरा प्रबन्ध किया। भगवान्‌की भुवनमोहन रूपराशिको निरखकर नगरके नर-नारियोंका चित्त उसीमें रम गया और सभी प्रेमके आँसू बहाते हुए कहने लगे कि 'यदि हमने कभी कुछ भी सुकृत किया हो तो त्रिलोकके विधाता अच्युत भगवान् कुछ ऐसा करें कि ये मनमोहन अनूपरूप-शिरोमणि श्रीकृष्ण ही रुक्मिणीका पाणिग्रहण करें।' श्रीरुक्मिणीजी अम्बिकाकी पूजाके लिये गयीं। वहाँ देवीका पूजन कर बड़ी-बूढ़ियोंसे आशीर्वाद प्राप्तकर बाहर आकर अपने रथपर चढ़ना ही चाहती थीं कि इतनेहीमें माधव श्रीकृष्णचन्द्रने आकर शत्रुओंकी सेनाके सामने ही गरुडचिह्नयुक्त अपने रथपर तुरंत ही रुक्मिणीको

चढ़ा लिया और चल दिये। लोगोंने पीछा किया, परंतु किसीकी कुछ भी नहीं चली, भगवान् और बलदेवजी शत्रुओंका दर्प-दलनकर देवी रुक्मिणीसहित द्वारकामें आ पहुँचे और वहाँ विधिपूर्वक विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। श्रीकृष्णको रुक्मिणीसे (जो श्रीलक्ष्मीजीका अवतार हैं) मिलते देखकर पुरवासियोंको परम आह्लाद हुआ। भक्त और भगवान्के मिलन-प्रसंगमें किसे आनन्द नहीं होता?

अनन्यगति श्रीरुक्मिणीजी निरन्तर भगवान्की सेवामें रत रहतीं। एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण महाराजने प्रसन्नतापूर्वक मन्द-मन्द मुसकाते हुए रुक्मिणीसे कुछ ऐसी रहस्ययुक्त बातें कहीं, जिनको सुनकर रुक्मिणीजी थोड़ी देरके लिये व्याकुल हो गयीं। अपना समस्त ऐश्वर्य सौंपकर भी भगवान् समय-समयपर भक्तकी यों परीक्षा किया करते हैं, वह इसलिये कि भक्त कहीं ऐश्वर्यके मदमें मत्त होकर प्रेमकी अनिर्वचनीय स्थितिसे च्युत न हो जाय। यद्यपि श्रीरुक्मिणीजीके लिये ऐसी कोई आशंका नहीं थी, तथापि भगवान्ने अपने भक्तोंका महत्त्व बढ़ाने और जगत्को सच्चे प्रेमकी अनुपम शिक्षा देनेके लिये रुक्मिणीजीकी वाणीसे भगवत्प्रेमका तत्त्व कहलाना चाहा और इसीलिये उनसे रहस्ययुक्त वचन कहे। भगवान् बोले—'हे राजकुमारी! लोकपालोंके समान धनसम्पन्न महानुभाव, श्रीमान् तथा रूप और उदारतासे युक्त महान् बली नरपति तुमसे विवाह करना चाहते थे। कामोन्मत्त शिशुपाल तुम्हें ब्याहनेके लिये बरात लेकर आ पहुँचा था; तुम्हारे भ्राता और पिताने भी तुम्हारा विवाह शिशुपालके साथ करनेका निश्चय कर लिया था। तो भी तुमने सब प्रकारसे अपने योग्य उन राजकुमारोंको छोड़कर; जो किसी बातमें तुम्हारे समान नहीं है—ऐसे मुझ-जैसेको अपना पति क्यों बनाया? हे सुभ्रु! तुम जानती हो, हम राजाओंके भयसे समुद्र-किनारे आ बसे हैं, क्योंकि हमने बलवानोंसे वैर बाँध रखा है; फिर राज्यासनके अधिकारी भी नहीं हैं। जिनका आचरण स्पष्ट समझमें नहीं आ सकता, जो स्त्रियोंके वशमें नहीं रहते ऐसे हम-सरीखे पुरुषोंकी पदवीका अनुसरण करनेवाली स्त्रियाँ प्रायः कष्ट और दुःख ही उठाया करती हैं। हे सुमध्यमे! हम लोग स्वयं निष्किञ्चन (धन-सम्पत्ति-रहित) हैं और धन-सम्पत्तिरहित दरिद्र ही हमसे प्रेम करते हैं। धनवान् लोग प्रायः हमको नहीं भजते। जो लोग धन, जाति, ऐश्वर्य, आकार और अवस्थामें परस्पर समान हों, उन्हींसे मित्रता और विवाह करना शोभा देता है। अपनेसे अत्यन्त विषम परिस्थितिवालोंकें साथ विवाह या मित्रता कभी उचित नहीं होती। हे रुक्मिणी! तुम दूरदर्शिनी नहीं हो इसीसे बिना जाने तुमने मुझ-जैसे गुणहीनको नारदादिके मुखसे प्रशंसा सुनकर वर लिया, वास्तवमें तुमको धोखा हुआ। यदि तुम चाहो तो अब भी जिसके संगसे तुम इस लोक और परलोकमें सुख प्राप्त कर सको ऐसे किसी अन्य योग्य क्षत्रियको ढूँढ़ सकती हो। तुम्हारा हरण तो हमने शिशुपाल-दन्तवक्र आदि घमंडी राजा और हमसे वैरभाव रखनेवाले तुम्हारे भाई रुक्मीका दर्प-दलन करनेके लिये किया था; क्योंकि बुरे लोगोंका तेज नाश करना ही हमारा कर्तव्य है। इतना कहकर अन्तमें भगवान् बोले—

उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः।
आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः॥

(श्रीमद्भा० १०। ६०। २०)

'हे राजकुमारी! हम आत्मलाभसे ही पूर्ण होनेके कारण स्त्री, पुत्र और धनादिकी कामना नहीं रखते। हम उदासीन हैं, देह और गृहमें हमारी आसक्ति नहीं है। जैसे दीपककी ज्योति केवल प्रकाश करके साक्षी मात्र रहती है, वैसे ही हम समस्त क्रियाओंके केवल साक्षी मात्र हैं।'

भगवान्के इस रहस्यपूर्ण कथनपर हम क्या कहें? भगवान्ने इस व्याजसे भक्तको अपना वास्तविक स्वरूप और भक्तका कर्तव्य तथा उसके लक्षण बतला दिये। भगवती रुक्मिणीको (तुम ऐसे किसी अन्य योग्य क्षत्रियको ढूँढ़ सकती हो) इन शब्दोंसे बड़ी मर्म-वेदना हुई, वे मस्तक अवनत करके रोने लगीं, अश्रुधारासे शरीर भीग गया। दारुण मनोवेदनासे कण्ठ अवरुद्ध हो गया और अन्तमें अचेत होकर गिर पड़ीं। भगवान् रुक्मिणीकी इस प्रेम-दशाको देख मुग्ध होकर तुरंत पलंगसे उठे और चतुर्भुज होकर दो हाथोंसे रुक्मिणीको उठा लिया और दो करकमलोंसे उनके बिखरे हुए केशोंको सँवार कर आँसू पोंछने लगे। रुक्मिणीजीको चेत हुआ तब भगवान् बोले—'राजकुमारी! मैं तो हँसी करता था, तुम्हारे

चरित्रको मैं भलीभाँति जानता हूँ। तुम्हारे मुखसे प्रणयकोप प्रकट करनेवाली बातें सुननेके लिये ही मैंने इतनी बातें कही थीं।'

भगवान् भक्तकी परीक्षा तो बड़ी कठिन लिया करते हैं, परंतु फिर तुरंत सँभाल भी लेते हैं। भगवान्ने रुक्मिणीको बहुत समझाकर धैर्य बँधाया, तब भगवान्के चरणकमलोंकी नित्य अनुरागिणी देवी रुक्मिणी बड़े मधुर शब्दोंमें भगवान्से कहने लगीं—'हे कमलनयन! आपने जो ऐसा कहा कि 'मैं तुम्हारे समान नहीं था, तुमने क्यों मेरे साथ विवाह किया?' सो आपका कथन सर्वथा सत्य है, मैं अवश्य ही आपके योग्य नहीं हूँ। कहाँ ब्रह्मादि तीनों देवोंके या तीनों गुणोंके नियन्ता दिव्य शक्तिसम्पन्न आप साक्षात् भगवान्! और कहाँ मैं अज्ञानी तथा सकाम पुरुषोंके द्वारा पूजी जानेवाली गुणमयी प्रकृति! हे प्रभो! आपका यह कहना कि 'हम राजाओंसे डरकर समुद्रकी शरणमें आकर बसे हैं, सर्वथा सत्य है; क्योंकि शब्दादि गुण ही राजमान (प्रकाश पानेवाले) होनेके कारण 'राजा' हैं, उनके भयसे ही मानो समुद्रके सदृश अगाध विषय-शून्य भक्तोंके हृदयदेशमें आप चैतन्यघन आत्मारूपसे प्रकाशित हैं। आपका यह कहना भी ठीक है कि 'हमने बलवानोंसे वैर बाँध रखा है और हम राज्यासनके अधिकारी नहीं हैं।' बहिर्मुख हुई प्रबल इन्द्रियोंके साथ अथवा जिनकी प्रबल इन्द्रियाँ विषयोंमें आसक्त हैं उनसे कभी आपको प्रीति नहीं है। हे नाथ! राज्यासन तो घोर अविवेकरूप है। मनुष्य राजपदको पाकर ज्ञानशून्य कर्तव्यविमूढ़ होकर अन्धा-सा बन जाता है, ऐसे राजपदको तो आपके सेवकोंने ही त्याग दिया है फिर आपकी तो बात ही क्या है? हे भगवन्! आपने जो कहा कि 'हमारे आचरण स्पष्ट समझमें नहीं आ सकते।' वह सत्य ही है, आपके चरणकमलके मकरन्दका सेवन करनेवाले मुनियोंके ही आचरण स्पष्ट समझमें नहीं आते, पशु-समान अज्ञानी मनुष्य जिनकी तर्कना भी नहीं कर सकते ऐसे आपके अनुगामी भक्तोंका चरित्र ही जब इतना अचिन्त्य और अलौकिक है, तब आप जो साक्षात् ईश्वर हैं, उनके चरित्रका दुर्बोध या अलौकिक होना कोई आश्चर्य नहीं। आपने कहा कि 'हम निष्किञ्चन हैं, निष्किञ्चन ही हमसे प्रेम करते हैं; अतः हे स्वामी! जिन ब्रह्मादि देवताओंकी सभी पूजा करते हैं, वे भी जब सादर आपको पूजते हैं तब आप निष्किञ्चन तो नहीं हैं, परंतु एक तरहसे आप निष्किञ्चन ही हैं; क्योंकि आपसे भिन्न कुछ है ही नहीं। जो लोग धन-सम्पत्तिके मदसे अंधे हो रहे हैं और केवल अपने शरीरके पालन-पोषणमें ही रत हैं, वे आप कालरूपको नहीं जानते। आप पूजनीयोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, जगत्-पूज्य ब्रह्मादि आपको इष्टदेव मानकर पूजते हैं, उनके आप प्रिय हैं और वे आपके प्रिय हैं। आप सम्पूर्ण पुरुषार्थ और परमानन्दरूप हैं, आपको प्राप्त करनेकी अभिलाषासे श्रेष्ठ बुद्धिवाले लोग सब वस्तुओंका त्याग कर देते हैं। हे विभो! ऐसे श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुषोंसे ही आपका सेव्य-सेवक-सम्बन्ध उचित है; स्त्री-पुरुष-रूप सम्बन्ध योग्य नहीं है, कारण कि इस सम्बन्धमें आसक्तिके कारण प्राप्त हुए सुख-दुःखोंसे व्याकुल होना पड़ता है····इसलिये आपका यह कहना कि समान लोगोंमें ही मित्रता और विवाह होना चाहिये, यह ठीक ही है। आपने कहा कि 'नारदादिके मुखसे प्रशंसा सुनकर मुझे वर लिया', अतः हे भगवन्! ऐसे सर्वत्यागी मुनिगण ही आपके प्रभावको जानते और कहते हैं, आप जगत्के आत्मा हैं और भक्तोंको आत्मस्वरूप प्रदान करते हैं, यह समझकर ही मैंने आपका वरण किया है। आपने कहा कि 'तुम दूरदर्शिनी नहीं हो' सो प्रभो! आपकी भ्रुकुटियोंके बीचसे उत्पन्न कालके वेगसे जिनके समस्त विषय-भोग नष्ट हो जाते हैं—ऐसे ब्रह्मादि देवताओंको भी मैंने पति बनाना उचित और श्रेष्ठ नहीं समझा तो फिर शिशुपालादि तुच्छ लोगोंकी बात ही क्या है? हे गदाग्रज! हे प्रभो! सिंह जैसे अपनी गर्जनासे पशुपालकोंको भगाकर अपना आहार ले आता है वैसे ही आप शार्ङ्गधनुषके शब्दसे राजाओंको भगाकर अपना भाग—जो मैं हूँ, उसे हर लाये हैं; ऐसे आप उन राजाओंके भयसे समुद्रकी शरणमें आकर बसे हैं—यह कहना ठीक नहीं है। आपने कहा कि 'ऐसे पुरुषोंकी पदवीका अनुसरण करनेवाली स्त्रियाँ दुःख उठाया करती हैं', परंतु हे कमललोचन! अंग, पृथु, भरत, ययाति और गय आदि राजाओंके सिरमौर महाराजाओंने आपके भजनकी इच्छासे चक्रवर्ती-राज्य त्याग दिया और आपकी पदवी पानेके लिये वनोंमें जाकर तपमें लग गये। क्या उनको कोई कष्ट मिला? क्या वे आपको नहीं

प्राप्त हुए? वे तो सब कष्टोंसे पार होकर आपकी चरण-पदवी प्राप्तकर आपके परमानन्द-स्वरूपमें लीन हो गये हैं। भगवन्! आप सब गुणोंकी खान हैं, आपके चरणकमलोंके मकरन्द-सुगन्धका वर्णन साधुगणोंद्वारा किया गया है। लक्ष्मी सदा उसका सेवन करती हैं, भक्तजन उससे मोक्ष पाते हैं ऐसे चरण-कमलोंके मकरन्दकी सुगन्ध पाकर अपने प्रयोजनको विवेक-बुद्धिसे देखनेवाली कौन ऐसी स्त्री होगी जो आपको छोड़कर किसी मरणशील और कालके भयसे सदा शंकित दूसरे पार्थिव पुरुषका आश्रय लेगी? अतएव आपने जो यह कहा कि 'दूसरा पुरुष ढूँढ़ सकती हो' वह ठीक नहीं है। आप जगत्के अधिपति और सबके आत्मा हैं, इस लोक और परलोकमें सब अभिलाषाएँ पूरी करनेवाले हैं, मैंने योग्य समझकर ही आपको पति बनाया है। मेरी यही प्रार्थना है कि मैं देवता, पशु, पक्षी आदिकी किसी भी योनिमें भ्रमण करूँ, परंतु सर्वत्र आपहीके चरणोंकी शरणमें रहूँ। नाथ! जो लोग आपको भजते हैं, आप समदर्शी और निःस्पृह होते हुए भी उनको भजते हैं और आपको भजनेसे ही इस असार-संसारसे मुक्ति मिलती है। हे अच्युत! हे शत्रुनाशन! जो स्त्री-प्रधान घरोंमें रहकर गधेके समान बोझा ढोते हैं, बैलकी तरह नित्य गृहस्थीके कामोंमें जुते रहकर क्लेश भोगते हैं, कुत्तेके समान जिनका तिरस्कार होता है, बिलावकी तरह जो दीन बने हुए गुलामोंकी भाँति स्त्री आदिकी सेवामें लगे रहते हैं—ऐसे शिशुपालादि राजा उसी (अभागिनी) स्त्रीके पति हों; जिसके कानोंमें शिव-ब्रह्मादिकी सभाओंमें आदर पानेवाली आपकी पवित्र कथाओंने प्रवेश नहीं किया हो। हे स्वामिन्! जिसने आपके चरणारविन्दके मकरन्द-सुगन्धको कभी नहीं पाया अर्थात् जिसने आपके चरणोंमें मन लगानेका आनन्द कभी नहीं पाया, वही मूढ़ स्त्री बाहर त्वचा, दाढ़ी-मूँछ, रोम, नख और केशोंसे ढके हुए तथा भीतर मांस, हड्डी, रुधिर, कृमि, विष्ठा, कफ, पित्त और वातसे भरे हुए जीवन्मृत (जीते ही मुर्देके समान) पुरुषको पतिभावसे भजेगी। हे कमलनयन! आपने कहा कि 'हम उदासीन हैं, आत्मलाभसे पूर्ण हैं' सो सत्य है; क्योंकि निजानन्द-स्वरूपमें रमण करनेके कारण मुझपर अत्यन्त अधिक दृष्टि नहीं रखते, तथापि मेरी यही प्रार्थना है कि आपके चरणोंमें मेरा चित्त सदा लगा रहे। आप इस जगत्की वृद्धिके लिये उत्कृष्ट रजोगुणको स्वीकार करते हुए मुझ (प्रकृति)-पर जो दृष्टि डालते हैं, उसीको मैं परम अनुग्रह मानती हूँ। प्रभो! मैं आपके कथनको मिथ्या नहीं मानती; जगत्में कई स्त्रियाँ ऐसी हैं जो स्वामीके रहते भी अन्य पुरुषपर आसक्त हो जाती है····पुंश्चली स्त्रियोंका मन विवाह हो जानेपर भी नये-नये पुरुषोंपर आसक्त होता रहता है, किंतु चतुर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वे ऐसी असती स्त्रियोंसे विवाह कभी न करें। क्योंकि ऐसी स्त्रियाँ दोनों कुलोंको कलंकित करती हैं, जिससे स्त्रीके साथ ही पुरुषकी भी इस लोकमें अकीर्ति और परलोकमें बुरी गति होती है।'

इस प्रकार भगवान्‌को तत्त्वसे जाननेवाली प्रेमकी प्रत्यक्ष मूर्ति देवी रुक्मिणीजीने अपने भाषणमें भगवान्‌का स्वरूप, माहात्म्य, भगवत्प्राप्तिके उपाय, भक्तोंकी निष्ठा, भक्तोंके कर्तव्य और भगवान्‌से विमुख अधम जीवोंकी दशा तथा उनकी गतिका वर्णन किया। देवी रुक्मिणीके इस भाषणसे भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और सकाम भावकी निन्दा, निष्कामकी प्रशंसा तथा सब कुछ छोड़कर प्रेमसे भगवत्प्राप्तिके लिये व्याकुल रहनेवाले भक्तोंका महत्त्व बतलाते हुए उन्होंने कहा—

दूतस्त्वयाऽऽत्मलभने सुविविक्तमन्त्रः
प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत्।
मत्वाजिहास इदमङ्गमनन्ययोग्यं
तिष्ठेत तत्त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः॥
(श्रीमद्भा० १०। ६०। ५७)

'तुमने मुझको ही वरण करनेका दृढ़ निश्चय करके अपने आनेके प्रणकी सूचना देनेके लिये मेरे पास दूत भेजा और जब मेरे आनेमें कुछ विलम्ब हुआ, तब तुमने सब जगत्‌को शून्य देखकर यह विचार किया कि यह शरीर और किसीके भी योग्य नहीं है। इसका न रहना ही उत्तम है, अतएव मैं तुम्हारे प्रेमका बदला चुकानेमें असमर्थ हूँ। तुमने जो किया वह तुम्हारे ही योग्य है। मैं केवल तुमको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करूँगा।'

* * *

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता—

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[वर्ष ७१, संख्या १२, पृष्ठ-संख्या ८८० से आगे]

हाथन की शोभा तथा सौभाग्य है—

पुण्य-दान करिवे में। दीनन की सहायता करिवे में। गुरुजनन की तथा श्रीभगवत्सेवा करिवे में। याही में श्रीप्राणनाथकी कृपा कौ अनुभव करै।

× × ×

साधुवेष धारण करिकैं पूरी साधुता पालन करै, तबही कल्याण सम्भव है। बोलिवे में, समस्त क्रियान में तथा मनमें हूँ पूरी साधुता रहै। काहू बहाने सौं, काहू प्रकार सौं, काहू की अवज्ञा न करै। श्रीभगवत्-प्रेमके ताँईं ही जीवन तथा प्रेम-प्राप्तिके ताँईं ही पूर्ण-प्रयत्न करनौं चाहिये। यह अलभ्य बस्तु साधन-साध्य नही है, अपितु कृपासाध्य है। यह त्याग करि लिंगे, वैराग करि लिंगे, तब प्रेम तौ है ही जायगौ। यह भावना उचित नहीं। अतः प्रेम-प्राप्तिके ताँईं काहू शास्त्र और सन्तमें प्रगाढ़-श्रद्धा करनी ही परैगी। जहाँ अपनौं दृढ़-विश्वास होय वहाँ काहू सन्तमें शीघ्राति-शीघ्र प्रगाढ़ श्रद्धा करि लेय। श्रद्धा ही साधक कूँ बनावै है। बनायवे कौ क्रम है—साधारण साधक, प्रौढ़ साधक।

× × ×

श्रीसद्गुरुमें साधारण बुद्धि नहीं करै। श्रीसद्गुरु तथा श्रीभगवान्में अभेद माननौं। यह दृढ़ भाव बनि जाय कि, ये कारण ही निराकार ब्रह्म साकार बने हैं। यदि विचार करिकैं देख्यौ जाय, तौ ज्ञान-वैराग्य एवं प्रेम-देव हू श्रद्धाके ही फल हैं। श्रद्धा जितनी आवश्यक है, उतनी ही महा अलभ्य हू है। यह शिथिल न बनन पावै। श्रद्धा कूँ दिन-व-दिन सुदृढ़ बनाते रहनौं ही तौ साधन है। स्वभावमें कठोरता न छू जाय। श्रीप्रेम-देव अत्यन्त मृदु है। अतएव इनके निवास स्थान हृदय कूँ अत्यन्त कोमल बनावै। सरल बनावै। सत्यता सौं परिपूर्ण बनावै। कोई बिकार हृदयमें रहन ही न पावै। यह मानैं हैं कि—ये काम जीवके ताँईं सुगम नहीं हैं। तथापि, ये हैं परम-आवश्यक। प्रेम प्राप्तिके इच्छुक कूँ हृदय अति निर्मल एवं अति सरल बनानौं ही परैगौ। उपाय केवल एक ही है—श्रद्धामें दृढ़ता, सत्यता तथा पूरी तत्परता। यदि काहू साधकने श्रद्धा दृढ़ बनाय लई तौ, आगेकी समस्त उपलब्धियाँ सरल है जायँगी। साँची श्रद्धा होयवे पै अपने विचार बन्द है जायँ हैं। रह जाय है, केवल शास्त्र और सन्त आज्ञा। तब पाप बनि ही नहीं सकैं। कारण स्पष्ट है, जो करैगौ शास्त्र और सन्तकी आज्ञा सौं ही। तब उत्थान ही उत्थान।

× × ×

कटुता कौ सर्वथा अभाव। इतने बड़े संसारमें अपनौं एक हू शत्रु न बनै। न कहूँ आसक्ति, न काहू सौं विरोध। एक ही ईश्वरकी सन्तान होयवे सौं सबही अपने बन्धु ही हैं, क्योंकि **'मित्रस्य दृष्ट्या समीक्षामहे'**—यह वेद भगवान्की आज्ञा है। श्रीपरिक्रमाकी रज सदैव शरीरमें लगी ही रहै। दूसरौ तुम्हारी निन्दा भले ही करै, पर तुम काहूकी निन्दा कबहूँ मत करौ। कोई तुम्हारी हानि भलेही करै, पर तुम काहू की हानि कबहूँ मत करौ। कोई तुम्हारौ अपमान करै, तौ तुम सह लेउ, पर तुम काहू कौ अपमान कबहूँ मत करौ, न कबहूँ क्रोध करौ। (क्योंकि तप एवं यज्ञादिकोंमें जो भी दान दिया जाता है, क्रोध उन सबका हरण कर लेता है। इसलिये कभी भी क्रोध नहीं करना चाहिये।) शास्त्रन में लिख्यौ भी है—

तपते यजते चैव यच्च दानं प्रयच्छति।
क्रोधस्तु सर्वं हरति तस्मात् क्रोधं विवर्जयेत्॥

सहनशीलता सौं तप बढ़ै है। व्यर्थ चिन्तन न हौन पावै। श्रीभगवत्के सम्बन्धमें ही बोलनौं-सुननौं तथा चिन्तन करनौं। श्रीगीताजी (१२।८)-में भगवान्ने स्वयं कह्यौ है—

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

हम अपने मार्गमें ठीक चल रहे हैं, यह तब समझनौं, जब अपनौं स्वभाव दिन व दिन सरल बनतौ जाय। अति उत्तम बनतौ जाय।

एक वाक्य मिल्यौ—

हैं जितनी बातें दुनियाँ की, सब भूल गये कछु याद नहीं।

अपनेमें दुर्गुण बढ़ानौं पशुता लानौं हैं।

एवमेव अपनेमें सद्गुण बढ़ानौं दिव्यता लानौं हैं।

या समय भले ही कोई युग वर्त रह्यौ होय, तथापि अपने कूँ तौ सदैव सतयुगमें ही राखनौं हैं।

× × ×

मय्येव मन आधत्स्व—की व्याख्या है, श्रीकृष्ण भगवान्के कहवे कौ आशय है कि, मन कौ काम ही है संकल्प बनानौ। अब तुम ऐसौ अभ्यास बनाऔ कि, जब मनमें संकल्प उठैं, वे सबरे केवल मेरे ताँईं ही उठैं। कल्पना करौ कि, मोकूँ श्री प्राणनाथके दर्शन हौयँगे। मैं इनके श्री-चरणन में गिर परूँगौ, रोऊँगौ, ये मोकूँ उठामिंगे, पुचकारिंगे, प्यार करिंगे, अपने पीताम्बर सौं आँसू पौछिंगे, मैं धन्य बनि जाऊँगौ, मैं मरिकैं नित्य लीलामें पहुँचि जाऊँगौ, वहाँ मोकूँ इनकी सेवा प्राप्त होयगी, मैं सेवा करूँगौ। जहाँ ये खेलिंगे, मैं वा स्थल कूँ स्वच्छ करि दियौ करूँगौ। ये शयन करिंगे, मैं पंखा करतौ रहुँगौ। आदि-आदि। श्रीभगवान्के ताँईं करी गई कल्पना असत्य होते भये हू परम सत्य बनि जाय है। श्री गंगाजीमें कैसौ हू पानी परै, वह सब श्री गंगाजल ही बनि जाय है। एवंमेव कल्पना हूँ सत्य ही बनि जाय है।

मय्येव मन आधत्स्व—या महावाक्य कौ पालन बनै कि, मनके समस्त संकल्प केवल श्री प्रियतमके ताँईं ही बनिवे लगे, तब यह तौ निश्चय है ही गयौ कि, यह मन अब श्रीभगवान् कौ बनि गयौ। तब भगवद्-वस्तु श्री-भगवान्के ही काममें आवै, यह नियम उपासनामें है ही। मन्दिरमें जो धातुके पात्र श्रीठाकुरजीकी सेवामें रहैं हैं, उनकूँ अपने काममें नहीं लै सकैं हैं। तब-जबकि यह मन इनकी वस्तु बनि गयौ। तब अपने ताँईं कछु संकल्प नहीं बनाय सकै। अपनौ तौ जो कछु होयगौ, वह शरीरके प्रारब्धके अनुसार होतौ ही रहैगौ। याकी ओर ध्यान ही नहीं दैनौं। निरन्तर श्रीप्राणनाथके चिन्तन कौ ही अभ्यास बनावैं। न अपने ताँईं संकल्प ही बनावै और न संसारकी ओर ध्यान ही देय।

'बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी'

प्रवाही सृष्टिमें उथल-पुथल होती ही रहै है। हाँ, हमें तौ अपने जीवनधन सौं काम है। अपने सबरे संकल्प इनके ताँईं। शरीरकी सबरी चेष्टायें इनके ताँईं। खान, पान, शयन, तथा समस्त व्यवहार केवल इनके ताँईं ही हौयँ। जैसैं पतिव्रता कौ जीवन केवल अपने पतिके ताँईं ही रहै है। एवमेव अपने समस्त क्रिया कलाप हूँ केवल अपने श्रीप्राणनाथके ताँईं ही हौयँ। यहाँतक कि, जीनौं हूँ इनके ताँईं तथा मरनौं हूँ इनके ही ताँईं। शरीरमें, इन्द्रियन में तथा मनमें केवल इनकौं-ही-इनकौ अखण्ड साम्राज्य होय। अब—

'मयि बुद्धिं निवेशय'—कौ अर्थ है कि, अपनी बुद्धि कूँ मोमैं लगाय दे। बुद्धि कौ काम है निर्णय करनौं। यह करनौं आवश्यक है, यह अति आवश्यक है और यह अनावश्यक है। बुद्धि कौ यही काम है। तब बुद्धि सौं हूँ काम लेय मेरे ताँईं ही। बार-बार बुद्धि यही निर्णय करै कि—

'हमें चहिएँ केवल एक भगवान्'

—ये मेरे, मैं केवल इनकौ, बस बार-बार याही पाठ कूँ फेरतौ रहै। और कोई लौकिक कामना न बनन पावै। जब कोई कामना उठै तब केवल इनके ही ताँईं।

[क्रमशः]

श्रीरामलीला-चिन्तन

[गताङ्क पृष्ठ-संख्या ४७८ से आगे]

पुरस्कार-वितरण

अयोध्याकी राजसभामें आञ्जनेयने अपना स्थान उसी समय निश्चित कर लिया, जब श्रीरघुनाथ वैदेहीके साथ सिंहासनासीन हुए। अभिषेक तथा उपहारार्पण पूरा होते ही पवनकुमार श्रीराघवेन्द्रके पाद-पीठके पास तनिक दक्षिण वीरासनसे बैठ गये। उनका यह स्थान और यह मुद्रा सुनिश्चित हो गयी श्रीरामके सिंहासनासीन रहते। वे सम्राट्के सिंहासनपर बैठते ही बैठ जाते थे और उनके उठनेका उपक्रम करते ही उठ खड़े होते थे।

उपहारार्पणके अनन्तर सम्राट्की ओरसे पुरस्कार-वितरण प्रारम्भ हुआ। भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न सभी अभ्यागतोंको समुचित पुरस्कार देनेमें लगे। सूत, मागध, वन्दीजन तथा दूसरे सब कलाजीवी संतुष्ट किये गये। सबको यथेष्ट पुरस्कार प्राप्त हुआ। सबको लगा कि स्वयं सम्राट्ने उनको सम्मानित किया है। उनकी कलाकी प्रशंसा की है और उन्हें विशेषरूपसे पुरस्कृत किया है।

ब्राह्मणोंको, मुनिगणोंको विदा करते समय श्रीरघुनाथने उनसे अनुरोध किया—'आप सब इस सेवकपर अनुग्रह रखें। इससे कभी कोई प्रमाद होता दीखे तो इसे अनुशासित करें और यहाँ यज्ञका आयोजन हो तो आनेकी अनुकम्पा करें।'

सबने हर्षोत्फुल्ल कहा—'तुम्हारे यज्ञमें आमन्त्रित होकर आना हमारे लिये गौरवकी बात होगी।'

आगत मण्डलीक-नरेशों तथा प्रजा-प्रतिनिधियोंको पुरस्कृत करके विदा करनेके अनन्तर स्वजनों-सेवकोंको श्रीरघुनाथने यथेष्ट पुरस्कार दिया। वस्त्र, अन्न-धन, गौ, गज, अश्व, भूमि, ग्रामादि यथोचित-रूपमें देकर सबको सम्राट्ने संतुष्ट किया। कोई सेवक, कोई सम्बन्धी इस अवसरपर सत्कृत होनेसे छूटता नहीं था। सुमन्त्रादि सचिव ही नहीं, भरतादि भाई तथा भ्रातृपत्नियाँ भी स्नेहोपहारसे संतुष्ट की गयीं।

'तुम हमारे ऐसे ही आत्मीय बन्धु हो जैसे लक्ष्मण या भरत।' श्रीरामने स्वयं निषादराज गुहको अपने करोंसे वस्त्रालङ्कार पहनाये और उन्हें विदा करने द्वारतक आकर अङ्कमाल देते भरे-कण्ठसे बोले—'राम अब इस दायित्वसे दब गया है। अतः इसे अवसर न मिले तो तुम इसको विस्मृत मत करना। मेरी इच्छा है कि एक बार प्रतिदिन यहाँ दर्शन दे जाया करो। अयोध्याकी राजसभा अथवा रामके अन्तःपुरमें आनेके लिये तुम्हें अनुमतिकी कभी आवश्यकता नहीं होगी।'

निषादराजसे बोला नहीं जा रहा था। उनकी राजसभामें पदवृद्धि, उनके शासन-क्षेत्रकी सीमा-वृद्धि, उन्हें सम्राट्के पार्श्वमें प्रत्येक यात्रामें रहनेका अधिकार—इन सबके अतिरिक्त अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्की एक निषादके प्रति यह आत्मीयता—गुह अत्यन्त विभोर होकर गये अयोध्यासे। श्रीरामके समीपसे शरीर ही गया, राम तो उनके अन्तरमें अविचल आसीन हो चुके थे।

सब स्वजनोंका सत्कार हो जानेके पश्चात् श्रीराघवेन्द्रने लंकासे आये वानरोंको सम्मानित करना प्रारम्भ किया। अपने कण्ठकी रत्नमाला सुग्रीवके गलेमें डाल दी। अङ्गदकी भुजाओंमें अपने करोंसे अपने रत्नाङ्गद पहनाये।

'हनुमान्! तुमको जो अभीष्ट हो माँग लो।' सबके अन्तमें पवनकुमारकी ओर श्रीराघवेन्द्रने देखा। सब वानर-यूथप, विभीषणादि पुरस्कृत हो चुके थे।

'मेरे मुखसे आपका नाम बराबर निकलता रहे।' आञ्जनेयको कहाँ किसी पदार्थकी कामना थी—'जबतक सृष्टिमें आपकी भुवनपावनी कथा रहे, तबतक मैं सशरीर इस पृथ्वीपर रहूँ।'

'एमवस्तु! तुम स्वेच्छानुसार जीवन्मुक्त होकर मेरे भक्तोंके संरक्षक बनकर पृथ्वीपर रहो।' श्रीरामने प्रसन्न-स्वरमें हनुमान्के अभीष्टको स्वीकार किया।

'तुम जनपदमें, निर्जनमें, वन-पर्वतमें जहाँ कहीं भी रहो, वहीं सब भोग तुम्हारी सेवामें उपस्थित रहा करें।' सम्राज्ञी श्रीजनकनन्दिनीने वरदान दिया।

यह सब हुआ, किंतु श्रीमैथिलीका हृदय संतुष्ट नहीं हुआ। आजके महान् अवसरपर सम्राट्ने उन्हें भी उपहारार्पण किया है; किंतु जो उनको 'अम्बा' कहता है, जिसे उन्होंने अपना प्रथम पुत्र स्वीकार कर लिया है, जिसके उपकारोंको कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता, आजका परमानन्द-अवसर जिसके पौरुषसे प्राप्त हुआ, उसीको कोई पुरस्कार नहीं? वाणीसे दिया गया वरदान क्या पर्याप्त है उसके लिये? अन्तरके वात्सल्यका, कृतज्ञताका वाहक कोई प्रतीक-पदार्थ भी तो होना चाहिये।

इक्ष्वाकुकुलकी परम्परासे आती सुरदुर्लभ मणि-मुक्ता-माल्य इस अवसरपर श्रीरघुनाथने अपने करोंसे सम्राज्ञीके कण्ठमें डाली थी। अयोध्याके राज्य-कोषका सर्वश्रेष्ठ शृंगार। सुर-सम्राज्ञी शचीके लिये भी सुदुर्लभ। धनाध्यक्ष कुबेरका सम्पूर्ण कोष उसके सम्मुख तुच्छ। उस मालाकी मणियोंकी ज्योतिसे पूरी राजसभा जगमगा रही थी। उन मणियोंका प्रभाव अकल्पनीय था। उन्हें धारण करनेवालेकी कान्ति, ओज, बल बढ़ता रहता था। वे आयु, आरोग्य, यश, ऐश्वर्य-प्रदायिनी मणियाँ—उनमें एक-एक सम्पूर्ण राज्य-कोषसे अधिक मूल्यवान् एवं महत्त्वपूर्ण थीं। जनकनन्दिनीने वह माला कण्ठसे उतारकर करोंमें ले ली और श्रीराघवेन्द्रकी ओर बार-बार देखने लगीं। आजका यह स्नेहोपहार—इसे किसीको देते भी बड़ा संकोच। यह भी क्या किसीको देनेकी वस्तु है? लेकिन वात्सल्य मानता नहीं है। अतः अनुमतिकी अपेक्षा है।

'तुम जिसपर प्रसन्न हो, जिसे देना चाहती हो, उसे दे दो।' श्रीरामने अपनी अर्धाङ्गिनीकी दृष्टिका तात्पर्य समझकर उन्हें सहर्ष अनुमति दे दी। वे उदार-चक्रचूड़ामणि, उन्हें प्रसन्नता हुई श्रीजानकीके इस औदार्यसे।

श्रीजनकनन्दिनीने तनिक झुककर वह मणि-माला केशरीकुमारके कण्ठमें डाल दी। चौंककर हनुमान्जीने श्रीवैदेहीकी ओर देखा और फिर श्रीराघवेन्द्रके मुखकी ओर दृष्टि की। श्रीरामके अधरोंपर उन्हें स्मित-रेखा स्पष्ट दीख पड़ी। हनुमान्ने कण्ठमेंसे वह मणिमाला निकाल ली। उसे दोनों हाथोंमें लेकर मस्तकसे लगाया; फिर उसे लेकर उठ खड़े हुए और राजसभामें एक किनारे जा बैठे।

हनुमान्जीके कण्ठमें सम्राज्ञीने अपना सर्वोत्तम कण्ठाभरण डाल दिया, यह देखकर सबकी दृष्टि पवनकुमारकी ओर लग गयी। सभीके हृदयमें श्रीहनुमान्के सौभाग्यके प्रति प्रशंसाके भाव जागे। सबने समझ लिया कि पवनपुत्र सम्राज्ञीके अतिशय स्नेह-भाजन हैं।

पवनकुमारका ध्यान किसीकी भी ओर नहीं था। वे राजसभाके एकान्त कोनेमें जा बैठे थे और उस मालाको उलट-पलटकर बड़े ध्यानसे देख रहे थे। पूरी मालाको कई बार उलट-पलटकर देखनेके अनन्तर उन्होंने उसकी एक-एक मणियोंको घुमा-फिराकर देखना प्रारम्भ किया। मन्त्रीने समझा कि वे मालाकी ज्योतिर्मयी अकल्पनीय सुन्दर मणियोंको देखकर आश्चर्य-मुग्ध हो रहे हैं।

'अरे!' सब-के-सब चौंके जब मालाकी एक मणि हनुमान्ने तोड़नेके लिये मुखमें डाल ली। अधिकांशके अधरोंपर हास्य आया। किसीका मन्द स्वर भी सुन पड़ा—'वानर इन रत्नोंका मूल्य क्या जाने। वह इन्हें भी जीभपर रखकर परीक्षा करना चाहता है।'

पवनकुमारका ध्यान अन्यत्र कहीं नहीं था। उन्होंने अपने वज्रदन्तसे उस मणिको तोड़ डाला और मुखसे उसके टुकड़े हाथपर लेकर उनको उलट-पलटकर देखने लगे। कुछ निराश-भावसे मस्तकको झटका देकर उन्होंने उन टुकड़ोंको फेंक दिया। सिंहासनस्थ श्रीसीता-रामकी ओर देखा। श्रीजनकनन्दिनी अत्यन्त कुतूहलपूर्वक उनकी ओर देख रही थीं। जैसे माता अबोध शिशुकी अटपटी क्रीडा देखकर संतुष्ट हो रही हों। श्रीरघुनाथके अधरोंकी स्मित-रेखा और स्पष्ट हो गयी थी।

हनुमान्ने दूसरी मणि तोड़नेके लिये मुखमें डाली तो लोगोंके हृदयमें तीव्र वेदना उठी—'यह वानर इन अमूल्य रत्नोंको नष्ट कर रहा है। यह इतना बहुमूल्य पुरस्कार पानेका अधिकारी नहीं था। इसे राजसेवक रोकते क्यों नहीं।'

आञ्जनेयने उस मणिको भी दाँतोंसे तोड़ा और उसके टुकड़े भी हाथपर लेकर पहलेके समान देखकर फेंक दिये। जब तीसरी मणि तोड़नेके लिये उन्होंने मुखमें डाली, विभीषणसे रहा नहीं गया। वे बोल पड़े—'हनुमान्जी! आप इन सुरासुर-दुर्लभ रत्नोंको इस प्रकार क्यों नष्ट कर रहे हैं?

इनमेंसे एक-एक स्वर्गकी समस्त सम्पत्तिसे अधिक मूल्यवान् हैं। आप इनको तोड़कर इनमें क्या पाना चाहते हैं?'

'ये सचमुच मूल्यवान् हैं?' पवनकुमारने अब विभीषणकी ओर देखा—'जब अम्बाने मुझे पहनाया इसे, तो मैंने भी इन्हें मूल्यवान् ही समझा; किंतु वह मूल्य इनमें मुझे अबतक दीखा नहीं। मैंने जिन्हें तोड़ दिया, वे तो मूल्यहीन पाषाण मात्र हैं।'

'आप इस प्रकार तोड़कर उनमें उनका मूल्य देखना चाहते हैं?' विभीषणने पूछा—'अन्तत: आप उनमें क्या देखनेकी आशा करते हैं?'

'अपने सिंहासनासीन इन स्वामीके नाम तथा इस दिव्य रूपके अतिरिक्त भी सृष्टिमें कुछ मूल्यवान् है?' हनुमान्‌जीके स्वरमें आश्चर्य था। मानो वे यह समझ ही नहीं पाते हों कि इतनी सीधी बात विभीषण क्यों पूछ रहे हैं। 'अपने आराध्यका नाम या रूप ही अपनी उपस्थितिसे अन्यको मूल्यवान् बनाता है। इनमें कोई जिसमें न हो, वह तो हेय है, त्याज्य है। निर्मूल्य ही नहीं है, व्यर्थ भार भी है वह।'

'आपके इस विशाल शरीरमें इन दोनोंमेंसे क्या है?' विभीषणका स्वर कुछ चिढ़ा हुआ था। वे हनुमान्‌के इस तर्कको समझ नहीं सकते थे कि जिसमें 'राम'-नाम अथवा 'श्रीसीताराम'की छवि न हो, वह महामूल्यवान् मणि भी हो तो तोड़कर फेंक देने योग्य है। 'आपने देख लिया है कि आपके देहमें 'राम'-नाम अथवा 'श्रीसीताराम'का यह भुवन-पावन रूप है?'

'आप ठीक कहते हैं। मैंने कभी देखा नहीं है। मैं केवल विश्वास करता हूँ कि मेरे देहमें मेरे स्वामीके नाम और रूप दोनों हैं।' पवनकुमारने हाथकी मणि-माला पृथ्वीपर डाल दी। विभीषणकी ओर देखते उठ खड़े हुए—'आपने मुझे समयसे सचेत कर उचित ही किया है। मुझे देख लेना चाहिये। यदि इस देहमें स्वामीका नाम या रूप नहीं है तो यह भी व्यर्थ भार है। यह त्याज्य है।'

विभीषणसहित दूसरोंने भी कल्पना तक नहीं की थी कि उन शब्दोंकी ऐसी गम्भीर प्रतिक्रिया पवनकुमारपर होगी। कोई समझ नहीं सका कि हनुमान् क्या करने जा रहे हैं। उन श्रीअञ्जनीनन्दनने अपने दोनों हाथोंके वज्रनख अपने वक्षपर लगाया और वक्षका बाह्य चर्म चीरते चले गये। मस्तक झुकाकर देखा और उनके मुखपर संतोषका स्वस्थ-भाव प्रकट हुआ।

'श्रीपवनकुमारकी जय!'

'श्रीराम-प्रेम-परिपूर्ण आञ्जनेयकी जय!'

'श्रीराममय रामदूत हनुमान्‌की जय!'

गगन जयघोषसे गूँजने लगा। राजसभामें उपस्थित सबके कण्ठसे निकला। सबने चकित होकर स्पष्ट देखा कि हनुमान्‌के हृदयमें सिंहासनासीन श्रीसीताराम विराजमान हैं और उनके रोम-रोममें, शरीरके कण-कणमें 'राम'-नाम अंकित है। ऐसा लग रहा है कि उनके शरीरके कण 'राम'-नामसे ही निर्मित हैं।

विभीषण दौड़कर पवनकुमारके चरणोंपर गिर पड़े। श्रीरघुनाथने उठकर हनुमान्‌का हाथ पकड़ा। अन्यथा वे तो शरीरका चर्म चीरते चले जा रहे थे। श्रीरामके अमृत-स्यन्दी कर-स्पर्शसे हनुमान्‌के वक्षपर बना व्रण मिट गया। वह विदीर्ण चर्म पूर्ववत् स्वस्थ हो गया।

श्रीजनकनन्दिनीने अत्यन्त वात्सल्यपूर्वक हनुमान्‌के मस्तकपर अपना पद्मपाणि रखा; किंतु विभीषणकी ओर सरोष देखा—'इसे बन्दी रहकर ताड़ित होना पड़ेगा।'

'देवि! ये राक्षसेन्द्र भी अपने ही हैं।' स्वयं श्रीरघुनाथने विभीषणकी ओरसे क्षमा-याचनाके स्वरमें कहा।

'आपका अनुग्रह इसकी रक्षा कर लेगा।' वे आद्या अपने आराध्यके अनुरोधपर भी केवल इतनी अनुकम्पा कर सकीं।

'आपको ये पाषाण मूल्यवान् प्रतीत होते हैं?' श्रीपवनकुमारने झुककर अपने पैरोंके पास पड़ी वह मणिमाला उठाकर विभीषणकी अञ्जलिमें डाल दी—'आप इन्हें स्वीकार करें।'

विभीषणका मस्तक श्रद्धासे, कुछ लज्जासे भी झुक गया था। इस समय श्रीराघवेन्द्रने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। हाथ पकड़कर वे हनुमान्‌को ले गये और अपने पादपीठके समीप उन्हें सस्नेह बैठाकर स्वयं श्रीजानकीके साथ सिंहासनपर बैठे।

* * *

श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन

[गताङ्क पृष्ठ-संख्या ५०८ से आगे]

यमलार्जुनके अतीत जन्मकी कथा; यमलार्जुन-उद्धार

मन्दाकिनीका कल-कल नाद कैलासके उस सुरम्य उपवनको मुखरित कर रहा था। पुष्पित तरुश्रेणी, लतिकाएँ मन्द समीरका स्पर्श पाकर झूम रही थीं। राशि-राशि विकसित पद्मोंके सौरभसे समस्त वनस्थली सुरभित हो रही थी। शिखरका यह मनोरम दृश्य देवर्षिके भक्तिरसभावित चित्तमें नवरसका संचार कर रहा था, उनकी स्वरब्रह्मविभूषित देवदत्त-वीणासे झरती हुई रागलहरीमें, श्रीमुखसे निःसृत हरिगुणगानमें प्रतिक्षण नव उल्लासका हेतु बन रहा था। पर वही शोभा कुबेरतनय नलकूबर एवं मणिग्रीवके विषयविदूषित मनमें नव-नव भोगवासना उद्दीप्त कर रही थी, उनकी उद्दाम भोगप्रवृत्तिमें और भी आसुर भाव भरनेमें कारण बन रही थी। एक ही वस्तु पात्रभेदसे एक ही समय अमृत एवं विषके रूपमें परिणत हो रही थी। देवर्षि हरियशसुधाका पान करते हुए, सुधारससे उपवनको प्लावित करते हुए नर-नारायण-आश्रमकी ओर अग्रसर हो रहे थे तथा ये दोनों यक्षबन्धु अमर-वारविलासिनियों (अप्सराओं)-का दल एकत्र कर, वारुणी मदिराका पान कर, भगवान् शंकरके इस परम पावन तपोवनको भ्रष्ट करते हुए निरङ्कुश विहार कर रहे थे। अप्सराएँ विवस्त्रा थीं, ये दोनों भी दिगम्बर थे, मन्दाकिनीकी पुनीत धारामें प्रवेश कर उन्मत्त जलक्रीडामें संलग्न थे, अपने-आपको भूल-से गये थे। दैवयोगवश देवर्षि ठीक उसी स्थानसे होकर निकले। अप्सराओंकी दृष्टि उनपर पड़ी; सब-की-सब सकपका गयीं और लज्जित तथा शापशङ्कित होकर बाहर निकल आयीं, तटपर आकर शीघ्र-से-शीघ्र सबने वस्त्र धारण कर लिये—

रजत गिरि चढ़त जहँ बीचि सुरसरि बहति।
निकट तट बिटप तहँ बेलि सुमननि लहति॥
अमल जल कमल मकरंद झुकि-झुकि झरत।
पियत मधु मधुप, कलहंस कलरव करत॥
धनद-सुत करत तहँ केलि तरुनिनि सहित।
मदन-मद छकित, मदमत्त, बसननि रहित॥
मुनिहि लखि निलज जुग भ्रात बिलसत ब्यसन।
सकल तिय सकुचि, डर मानि धर तन बसन॥

पर ये दोनों कुबेरपुत्र? आह! इन्हें तो देवर्षिके आगमनका भान होकर भी भान नहीं। वैसे ही नग्न, उन्मत्त रहकर दोनों भुजा उठाये अप्सराओंको पुनः जलमें ही अत्यन्त शीघ्र उतर आनेके लिये चीत्कार कर रहे थे!

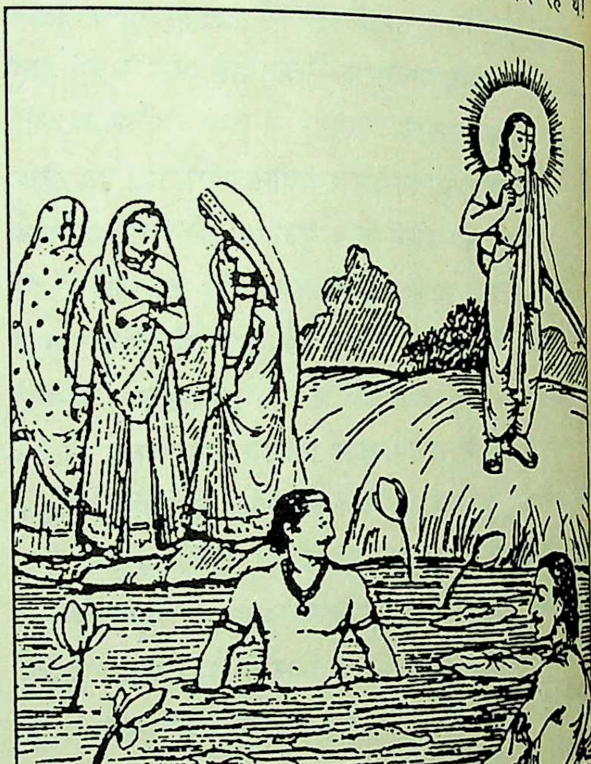

एक अचिन्त्य शक्तिने देवर्षिकी दृष्टि उनकी ओर फेर दी। उन्होंने देखा, देखते ही अन्तःकरण करुणासे आर्द्र हो उठा—'ओह! कहाँ तो ये कुबेरपुत्र और कहाँ इनकी यह दशा! इतना अधःपात!' तत्क्षण देवर्षिने उन्हें परिशुद्ध कर देनेकी, साथ ही उनके अनादि भवप्रवाहका भी अन्त कर देनेकी व्यवस्था कर दी। अपने परम अनुग्रहको क्रोधके आवरणमें छिपाकर, उसे शापका रूप देकर वे पुकार उठे—'जाओ, कुबेरतनय! तुम दोनों अपनी इस जडताके अनुरूप ही योनि ग्रहण करो—वृक्ष बनकर जन्म धारण करो; किंतु वृक्ष बनकर भी तुम्हारी स्मृति नष्ट नहीं होगी, मेरे अनुग्रहसे तुम्हें इस अतीत जीवनका सतत स्मरण रहेगा। सदा पश्चात्तापकी अग्निमें जलते रहोगे और फिर सौ देववर्षोंके अनन्तर श्रीकृष्णचरणारविन्दके स्पर्शका परम

सौभाग्य तुम्हें प्राप्त होगा। उस पुनीत स्पर्शसे तुम्हें पुनः कैवल्य प्राप्त होगा, पुनः देवशरीरमें तुम लौटोगे। साथ ही परम दुर्लभ हरिभक्ति भी तुम्हें मिल जायगी। सदाके लिये परम कृतार्थ होकर ही तुम लौटोगे—

अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः।
स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात्॥
वासुदेवस्य सांनिध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते।
वृत्ते स्वर्लोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः॥
(श्रीमद्भा० १०। १०। २१-२२)

सुत राजराज! नहिं कीन्ह लाज। **व्रजभूमि सोइ द्रुम होहु दोइ॥**
करुना-सुऐन, सुख-संत दैन। **करिहै जु घात, तब होहु पात॥**
प्रभु कौं निहारि, उर भक्ति धारि। **फिरि जाहु गेह, धरि दिव्य देह॥**

—यह कहकर देवर्षि चले गये तथा नलकूबर एवं मणिग्रीव यमलार्जुनवृक्ष बनकर उत्पन्न हुए वहाँ, जहाँ वर्षोंकी प्रतीक्षा पूर्ण होनेपर गोलोकविहारी स्वयंभगवान् पुरुषोत्तम गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रके परमधामका अवतरण हुआ—जहाँ, जिस अरण्यप्रदेशमें नन्दप्राङ्गणका आविर्भाव हुआ। उसी प्राङ्गणके एक पार्श्वमें खड़े अपने शाखापत्रोंको प्रकम्पित कर बारम्बार श्रीकृष्णचन्द्रका वे आतुरतापूर्वक आह्वान कर रहे थे।

अतीतकी ये सारी घटनाएँ ऊखलमें बँधे श्रीकृष्णचन्द्रके समक्ष वर्तमान बनकर आ जाती हैं। बनकर आयीं, यह भी कथनमात्र ही है। वास्तवमें तो ये उनके लिये नित्य वर्तमान ही हैं। केवल लीलाशक्ति उन बाल्यलीलाविहारीकी रुचिका अनुसरण करते हुए, उन्हें व्यवधानशून्य रसपान करानेके लिये उनकी ही आज्ञासे, उन घटनाओंपर यथायोग्य अतीत-अनागतकी यवनिका डाले रहती हैं। उपयुक्त अवसर आते ही उसे हटा देती हैं, श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंको छूकर उन्हें जगा देती हैं, फिर श्रीकृष्णचन्द्र सब कुछ देखने लगते हैं। अस्तु, आज भी वे इसी प्रकार सब देख रहे हैं और सोच रहे हैं—

देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ।
तत्तथा साधयिष्यामि यद् गीतं तन्महात्मना॥
(श्रीमद्भा० १०। १०। २५)

'देवर्षि नारद मेरे प्रियतम भक्त हैं। उन महात्मा ऋषिने जिस प्रकार इन वृक्ष बने हुए कुबेरपुत्रोंके उद्धारकी बात अपने मुखसे कह दी है, ठीक उसी प्रकार मैं इनका उद्धार करूँगा, इन्हें वृक्षयोनिसे मुक्तकर पुनः देवदेह देकर अपनी भक्ति भी दे दूँगा।'

इधर गोपशिशुओंकी दशा विचित्र ही है। अपने प्रिय सखाको जननीके बन्धनसे मुक्त करनेके लिये वे अतिशय व्याकुल हैं। अपनी विविध बाल-चेष्टाओंसे सभी श्रीकृष्णचन्द्रके प्रति सौहार्द एवं सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं, परस्पर परामर्श करते हुए युक्ति सोच रहे हैं। साथ ही उन्हें भय है कि कहीं जननी आ न जायँ। इसीलिये सब अतिशय सावधान हैं, रह-रहकर एक उस प्राङ्गणकी ओर जाकर देख आता है कि मैया क्या कर रही हैं। एक शिशु धीरेसे श्रीकृष्णचन्द्रके समीप जाता है। उनके ऊखलमें बँधे श्याम सुकोमल अङ्गोंको हाथसे स्पर्श करता है, पर तुरंत ही जननीके भयसे पीछेकी ओर हटकर देखने लगता है। उसके मनमें एक युक्ति सूझ पड़ती है और वह नन्दनन्दनके कानके समीप मुख ले जाकर कहता है—'अरे भैया! तू इसे खोल ले।' फिर अन्यान्य शिशुओंको भी अपने ध्यानमें आये उपायकी सूचना देता है। सभी सहर्ष उसका अनुमोदन करते हैं; कोई संकेतसे, कोई स्पष्ट, सभी धीरे-धीरे कह उठते हैं—'हाँ रे! बस, तू खोल ले और हमारे साथ भाग चल।'

अनन्त ऐश्वर्यनिकेतन श्रीकृष्णचन्द्र भी पुनः इसी रसस्रोतमें बह चलते हैं। ऐश्वर्यशक्ति जो अभी-अभी नलकूबर-मणिग्रीवकी दयनीय दशाकी सूचना देने आयी थी, गोपशिशुओंके मृदु मधुर कण्ठसे झरती हुई 'अरे खोल ले, कन्हैया! खोल ले और भाग चल' की मधुधारामें न जाने कहाँसे कहाँ बह गयी और व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र इसीमें पुनः निमग्न हो गये। सखाओंका यह परामर्श स्वीकार कर अतिशय उल्लसित होकर वे अपना बन्धन खोलनेके प्रयासमें लग जाते हैं। पर खोल पायेंगे, इसकी सम्भावना सर्वथा नहीं है। खोल लेना दूर, बन्धनकी गाँठतक उनके हाथ भी नहीं पहुँच पाते। जननीने पहलेसे ही सावधानी रक्खी है। प्रथम तो उन्होंने श्रीकृष्णचन्द्रके कटिदेश और ऊखलमें बहुत कम

व्यवधान रक्खा तथा फिर गाँठ लगायी ऊखलकी उस ओर, उस स्थानपर जहाँ उनके नीलमणि अपने हाथ न ले जा सकें। इसलिये यह युक्ति व्यर्थ सिद्ध हुई। अखिल जगत्के समस्त प्राणियोंका भवबन्धन संकल्पमात्रसे खोल देनेकी सामर्थ्य रखनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रमें आज यह शक्ति जो नहीं कि वे यशोदारानीके दिये हुए उस बन्धनको खोल लें, उस ग्रन्थिको छू तक लें। असफल, निराश, निरुपाय-से हुए वे सखाओंकी ओर देखने लगते हैं।

'अच्छा, ठहर, तेरे हाथ नहीं पहुँचते, मैं खोल देता हूँ।' कहकर एक गोपशिशु बन्धन खोलनेकी चेष्टा करने लगा। उसे विलम्ब होते देखकर दूसरा उसकी सहायता करने गया। दोनोंको असफल देखकर तीसरेने प्रयास किया। इस प्रकार क्रमशः कई गोपशिशुओंने गाँठ खोलनेका प्रयत्न किया; पर खुलना दूर, गाँठ हिलीतक नहीं। गोपशिशु नहीं जानते कि गाँठ लगाते समय व्रजेश्वरीने अपने अन्तस्तलमें संचित अनन्त वात्सल्यकी समस्त स्निग्धता उसमें भर दी है, अब उन गोपशिशुओंके हत्स्रोतसे प्रवाहित सख्यरसकी धारा, भले ही वह कितनी ही प्रबल क्यों न हो—वात्सल्यकी उस स्निग्धताको धो नहीं सकती। सख्यके स्रोतमें यह सामर्थ्य नहीं कि वह वात्सल्यकी स्निग्धताको आत्मसात् कर ले।* इसीलिये जननीकी लगायी वह गाँठ अविचल रहती है। शिशुमण्डली उदास-सी हुई व्रजेन्द्रनन्दनके मुखचन्द्रकी ओर देखने लगती है।

इसी समय अवसर देखकर श्रीकृष्णचन्द्रकी सर्वज्ञताशक्ति पुनः एक बार सँभलकर अर्जुन-वृक्षोंकी स्मृति दिलानेके उद्देश्यसे सेवामें उपस्थित हुई। परंतु अपने प्रभु स्वामीकी मुखमुद्रा, गोपशिशुओंकी वह अनुपम प्रेमिल चेष्टाएँ देखकर उसे यह साहस नहीं हुआ कि प्रकट होकर कार्य कर सके। बाल्यलीलाविहारी श्रीकृष्णचन्द्रका वह मधुमय बाल्यावेश भङ्ग हो, जननीके बन्धनसे मुक्ति पानेकी लालसामें, मधुरातिमधुर वात्सल्य-सुधा-रसपानमें पुनः ऐश्वर्यकी किरकिरी मिल जाय; यह तो सेवा नहीं, अपराध होता। इसीलिये श्रीकृष्णचन्द्रकी शिशूपम मुग्धताके आवरणमें छिपी रहकर ही, लीलाशक्तिके अञ्चलकी ओटसे ही सर्वज्ञताने सेवा आरम्भ की। पुनः वे यमलार्जुनवृक्ष श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंके सामने आ गये और वे सोचने लगे—'मेरी मुक्तिका उपाय तो सरल है····।' उनके मुखपर उल्लास भर जाता है और वे गोपशिशुओंसे चटपट कह उठते हैं—'भैयाओ! मेरे हाथ पहुँचते नहीं और तुम सबोंसे गाँठ खुली नहीं। अब एक बड़ा ही सुन्दर उपाय है। देखो, यह ऊखल बड़ा भारी है। अकेला तो इसे मैं खींच नहीं सकूँगा। मैं भी खींचता हूँ और तुम सब मिलकर धक्का देकर इसे पीछेसे लुढ़काते चलो। फिर देखो, चलें वहाँ, उन यमलार्जुन वृक्षोंकी ओर। देखो, दीखते हैं न? उन वृक्षोंके मध्यमें मेरे समा जाने भरको पर्याप्त स्थान है। वहाँ जाकर मैं तो उसके भीतरसे निकल जाऊँगा। पर यह ऊखल उसके भीतर जा नहीं सकेगा। साथ ही मैं इसे टेढ़ा भी कर दूँगा। फिर तो यह समा ही नहीं सकेगा, इस पार ही अटक जायगा। तब फिर उस पारसे मैं डोरीको झटके दूँगा। जहाँ मैंने पूरे बलसे डोरी खींची कि डोरी टूटी। बस, काम हो गया।'—युक्ति सुनते ही गोपशिशुओंके हर्षका पार नहीं रहा।

विचार क्रियामें परिणत होने चला। श्रीकृष्णचन्द्र अपने दोनों घुटने एवं दोनों हाथ पृथ्वीपर टेक देते हैं। शिशु अपनी फेंटे कस लेते हैं और जो-जो उनमें अधिक बलवान् हैं, वे ऊखलको पकड़कर ठेलनेका प्रयत्न करते हैं। बाल्यलीलाविहारी श्रीकृष्णचन्द्र भी अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसे अपनी ओर खींच रहे हैं। उनके अरुण अधरोंपर, सुचिक्कण अरुणाभ कपोलोंपर इसके सूचक चिह्न स्पष्ट अङ्कित हो जाते हैं। ऊखल भी धीरे-धीरे सरकने लगता है। लगभग अठारह मास पूर्व इसी प्राङ्गणमें श्रीकृष्णचन्द्रने रिङ्गणलीला आरम्भ की थी, घुटुरुआ चलते हुए वे खेलतें थे, श्रीअङ्गोंकी शोभा उस दिन भी ऐसी-सी ही थी—

वंधुक-सुमन-अरुन पद-पंकज, अंकुस प्रमुख चिह्न वनि आए।
नूपुर-कलरव मनु हंसनि सुत रचे नीड़, दै बाँह बसाए॥
कटि किंकिनि-बर हार ग्रीव, दर, रुचिर बाहु भूषन पहिराए।
उर श्रीबच्छ, मनोहर हरि-नख, हेम-मध्य मनि-गन बहु लाए॥

---

* वैष्णव दार्शनिकोंने सख्यरतिकी अपेक्षा वात्सल्यमें विशेषता मानी है।

सुभग चिबुक, द्विज-अधर-नासिका, स्त्रवन-कपोल मोहि सुठि भाए।
भ्रुव सुंदर, करुना-रस-पूरन लोचन मनहुँ जुगल जल-जाए॥
भाल बिसाल ललित लटकन मनि, बाल-दसा के चिकुर सुहाए।
मानौ गुरु-सनि-कुज आगें करि, ससिहिं मिलन तम के गन आए॥
उपमा एक अभूत भई तब, जब जननी पट पीत उढ़ाए।
नील जलद पर उडुगन निरखत, तजि सुभाव मनु तड़ित छपाए॥
अंग-अंग-प्रति मार-निकर मिलि, छबि-समूह लै-लै मनु छाए।
सूरदास सो क्यौं करि बरनै, जो छबि निगम नेति करि गाए॥

आज केवल इतना अन्तर अवश्य है कि कटिदेशमें एक ऊखल बँधा है तथा उससे बँधे श्रीकृष्णचन्द्र धीरे-धीरे अर्जुनवृक्षकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। उस दिन श्रीकृष्णचन्द्र स्पष्ट बोलना नहीं जानते थे, आज धीरे-धीरे स्पष्ट मधुमिश्रित कण्ठसे, बीचमें ठहर-ठहरकर गोपशिशुओंको सचेत करते जा रहे हैं कि कहीं कोई शिशु कौतूहलवश उच्च स्वरसे कुछ कह न बैठे, अन्यथा जननीके कानोंमें शब्द जाते ही वे दौड़ आयेंगी और समस्त प्रयास व्यर्थ हो जायगा।

इस प्रकार रिङ्गण करते हुए क्रमशः वे अर्जुनतरुके समीप जा पहुँचते हैं। उन्हें निकट आया देखकर उन युग्मवृक्षोंकी क्या दशा हुई, इसे कौन बताये? यह तो सत्य है कि वृक्षोंमें भी संवेदन-शक्ति होती है। उनकी संनिधिमें होनेवाले क्रूर कर्मकी वेदना उन्हें स्पर्श करती है और वे व्यथित होते हैं; समीपमें होनेवाली किसी सुखद घटनाका स्पन्दन उनमें भी होता है और वे सुखकी अनुभूति करते हैं। यह वृक्ष-साधारणकी बात है, इन अर्जुनतरुओंके लिये तो कहना ही क्या है। ये तो शापभ्रष्ट धनदपुत्र हैं। अपने इस परिणतरूपमें भी पूर्वके देवजीवनसे लेकर अवतककी समस्त स्मृति इनमें अक्षुण्ण है। सौ देव-वर्षोंकी सुदीर्घ प्रतीक्षाके पश्चात् अपने उद्धारका क्षण उपस्थित देखकर, स्वयं ऊखलसे बँधे पर उनका बन्धन-मोचन करनेके लिये उत्सुक भक्तवत्सल स्वयंभगवान् मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रको अपने इतना निकट पाकर उनके हृदयमें एक साथ किन-किन भावोंका उन्मेष हुआ—इसे वे ही जानते हैं, अथवा जानते हैं अन्तर्यामी। बाह्यदृष्टिसे तो केवल इतना ही देखना-जानना, कहना-सुनना सम्भव है कि श्रीकृष्णचन्द्रको अपने मूलके समीप उपस्थित देखकर एक बार उन वृक्षोंमें कम्पन हुआ, उनके स्कन्ध, शाखा, पत्र—सभी चञ्चल हो उठे! वे यमलार्जुनवृक्ष—नलकूबर-मणिग्रीव यह नहीं जान सके कि भवबन्धनमें पड़े प्राणियोंको एक बार किसी भी भावके द्वारा उनसे सम्बन्ध मान लेनेमात्रसे मुक्तिदान करनेवाले मुकुन्द, बाल्यलीलारसमत्त श्रीकृष्णचन्द्र आज जननीके दिये हुए उलूखल-बन्धनसे अपनी मुक्ति पानेकी अभिसंधि लेकर उनका आश्रय लेने आये हैं। यह जानना उनके लिये सम्भव ही नहीं। यह तो वे ही जान पाते हैं, जो अचिन्त्य सौभाग्यवश व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रकी अथवा उनके किन्हीं परिकरकी कृपाका एक कण पाकर उनके अनन्त ऐश्वर्यको भूल जाते हैं, जिनके हृदयकी बढ़ती हुई विशुद्ध प्रेमरसधारामें श्रीकृष्णचन्द्रका अनन्त ऐश्वर्य सदाके लिये विलीन हो जाता है, जो सदा उस रस-प्रवाहमें ही बहते हुए मात्र उनसे रागमय सम्बन्ध ही रख पाते हैं, सदा उन्हें अपने सखा, पुत्र, प्राणवल्लभके रूपमें ही अनुभव करते हैं। एकमात्र उनके लिये ही यह कल्पना, भावना, अनुभूति सम्भव है कि अनन्तब्रह्माण्डोदर स्वयंभगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आज दामोदर बने हुए, ऊखल-बन्धनसे मुक्ति पानेके लिये अर्जुनवृक्षके समीप आ सकते हैं, आये हैं। उनके अतिरिक्त दूसरा नहीं जान सकता। इसीलिये यमलार्जुनवृक्षोंको यह कल्पना नहीं हुई। उन्होंने सर्वसाधारणकी भाँति यही जाना कि अपने परम भक्त देवर्षिकी बात सत्य करनेके लिये, उनका (यमलार्जुनका) उद्धार कर उन्हें परम कृतार्थ करनेके लिये, ऊखल खींचते हुए धीरे-धीरे चलकर उनके निकट वे आ पहुँचे हैं—

ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः।
जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ॥

(श्रीमद्भा० १०। १०। २४)

—तथा यह देखकर ही, जानकर ही अपने शाखापत्रोंको स्पन्दितकर वे नाच उठे हैं।

अब विलम्बका समय नहीं है। कहीं यशोदारानी आ

न जायँ! वे गोपशिशु कौतूहलभरी दृष्टिसे उन गगनस्पर्शी वृक्षोंकी ओर देखने लगते हैं। इतनेमें तो श्रीकृष्णचन्द्र युग्म वृक्षोंके अन्तरालसे होकर उस पार जा पहुँचते हैं। छिद्रमें उनके प्रविष्ट होते ही ऊखल तो अपने-आप टेढ़ा हो जाता है—

इत्यन्तरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ।
आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम्॥

(श्रीमद्भा० १०। १०। २६)

गोपशिशु उत्साहमें भरकर धीरे-धीरे बोलने लगते हैं—'वाह! वाह! बस, कन्हैया! भैया!! ऊखल अड़ गया; अब तू खींच ले, केवल एक झटका दे दे……….।' बालगोपाल श्रीकृष्णचन्द्रके बिम्बविडंम्बि अधरोंपर भी एक मन्द मुसकान छा जाती है। वे दामोदर अपनी कटिसे बँधे ऊखलको तनिक अपनी ओर खींच लेते हैं। बस, फिर तो क्षणभर भी न लगा, अर्जुनतरुओंकी पृथ्वीमें धँसी जड़ें बाहर निकल पड़ीं, प्रकाण्ड मूलशाखा (धड़), अगणित उपशाखाएँ, सघन पल्लवजाल—सभी ऐसे स्पन्दित होने लगे मानो प्रबल झंझावात उन्हें लेकर उड़ चला हो। दामोदरका बाल्योचित बलप्रकाश ही उनके लिये सर्वथा असह्य हो गया और उनका अणु-अणु प्रकम्पित हो उठा। देखते-ही-देखते अत्यन्त घोर शब्द करते हुए, अतिशय वेगसे वे दोनों वृक्ष पृथ्वीपर गिर पड़े—

बालेन निष्कर्षयतान्वगुलूखलं तद् दामोदरेण तरसोत्कलितांघ्रिबन्धौ।
निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेपस्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ॥

(श्रीमद्भा० १०। १०। २७)

अवश्य ही वे इस भाँति ऐसे स्थानपर गिरे जहाँ एक भी गोपशिशु नहीं, एक भी गो-गोवत्स नहीं, गृह-रचनाका कोई अंश नहीं, केवलमात्र मणिजटित समतल भूमि है। इसीलिये किसीको भी किंचिन्मात्र भी कोई क्षत न लगा, नन्दप्रासादके किसी अंशको तनिक भी क्षति न पहुँची। किंतु इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं; वे जड वृक्षमात्र तो हैं नहीं, धनदपुत्र हैं और अब तो श्रीकृष्ण-चरणारविन्दका स्पर्श होनेके क्षणसे ही वे उनके निजजन बन गये हैं, उनमें समस्त भक्तगुणोंका विकास हो गया है, अमितशक्ति आ गयी है। वे अपनी किसी भी चेष्टासे किसीको तनिक भी कष्ट दें, यह सम्भव ही नहीं। इसीलिये गिरते समय शापजन्य अपने अन्तिम प्रारब्धका अवसान करते हुए वे वहाँ स्थानके अनुरूप ही अपनी शाखाओंको यथायोग्य संकुचित करते हुए गिरे। व्रजेन्द्रनन्दनके स्पर्शसे पूत हुए नलकूबर-मणिग्रीवकी इस चेष्टामें आश्चर्यकी बात ही क्या है। आश्चर्य, महान् आश्चर्य तो यह है कि इतने विशालकाय, वज्रसारके समान युग्म अर्जुनवृक्ष ऊखल-आकर्षणके वेगसे मूलोत्पाटित होकर टूट पड़े; किंतु जननी यशोदाके वात्सल्यसे प्रेरित, उनके द्वारा निर्मित, आग्रहमय वह बन्धन न खुला। ऊखलमें लगायी उनकी डोरी, ग्रन्थि न टूटी। श्रीकृष्णचन्द्रका वह बन्धन न टूटा—

चित्रं तुत्रोट तत्तत्र वज्रमज्जार्जुनद्वयम्।
न पुनर्मातृवात्सल्यनिर्बन्धमयबन्धनम्॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

अस्तु, जहाँ वे वृक्ष थे, वहाँ एक परम उज्ज्वल ज्योति चमक उठती है। मानो दो वृक्षोंके मध्यमें दावानल भभक उठा। फिर दोनोंकी ज्योति एकत्र मिल जाय, उनसे दिशाएँ आलोकित हो जायँ, इस प्रकार अपनी सम्मिलित ज्योतिसे दसों दिशाओंको उद्भासित करते हुए दो सिद्धपुरुष उनके अन्तरालसे प्रकट होते हैं और उलूखलनिबद्ध श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर चल पड़ते हैं—

तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ
सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः।

(श्रीमद्भा० १०। १०। २८)

ये युगल सिद्ध और कोई नहीं, धनदपुत्र नलकूबर एवं मणिग्रीव हैं, श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें न्योछावर होने जा रहे हैं—

निकसे उभय पुरुष दोउ बीर, पहिरें अद्भुत भूषन चीर।
जैसें दारु मध्य तैं आगि, निर्मल जोति उठति है जागि।
नंद-सुवनके पाइन परे, अंजुलि जोरि स्तुति अनुसरे।

× × ×

द्रुम अंतर ते कढ़े बिबिं ब्रंदारक सुखसींव।
गुन-मंदिर सुंदर महा नलकूबर-मनिग्रीव॥

कुबेर-पुत्रोंको स्वरूप-प्राप्ति तथा उनके द्वारा श्रीकृष्णका स्तवन एवं प्रार्थना; श्रीकृष्णकी उनके प्रति करुणापूर्ण आश्वासन-वाणी

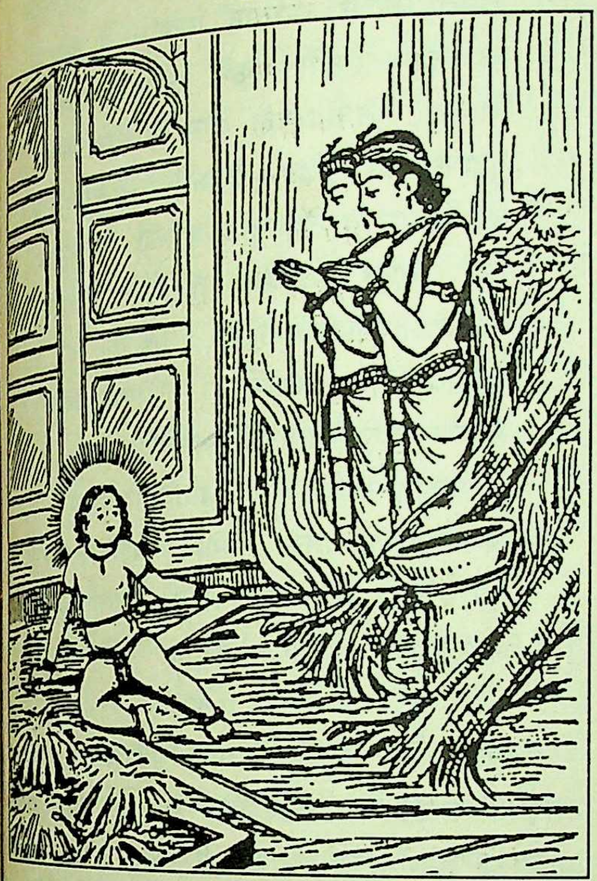

नतजानु हुए, अञ्जलि बाँधे वे धनदपुत्र—नलकूबर, मणिग्रीव श्रीकृष्णचन्द्रके चरणप्रान्तमें अवस्थित हैं, उन्हें प्रणाम कर रहे हैं। व्रजचन्द्रकी चरण-नखचन्द्रिकाने उनमें दिव्य ज्ञानका उन्मेष कर दिया है, नवनीरद-श्यामल श्रीअङ्गोंने रसकी सरिता बहा दी है। वे कभी तो उस ज्ञानके आलोकमें व्रजेन्द्रनन्दनके अचिन्त्य अनन्त ऐश्वर्यको प्रत्यक्ष अनुभव कर चमत्कृत होने लगते हैं और कभी रसपानसे उन्मत्त होकर अपनी सुध-बुध भूल जाते हैं। श्रीकृष्णचन्द्र चकित चञ्चल भीति-विजडित नेत्रोंसे उनकी ओर देख रहे हैं तथा उनके आश्चर्यविस्फारित पर रससिक्त नेत्र निष्पन्द होकर श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर लग रहे हैं। यह जानना सम्भव नहीं कि वास्तवमें कितने कालतक उनकी यह दशा रही है। अवश्य ही बाह्य दृष्टिसे देखनेपर तो कुछ ही क्षण बीते हैं और अब वे अखिल-लोकनाथ श्रीकृष्णचन्द्रकी महिमा गाने जा रहे हैं—

कृष्णं प्रणम्य शिरसाखिललोकनाथं
बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म॥

(श्रीमद्भा० १०। १०। २८)

किंतु हर्षातिरेकवश कण्ठ रुद्ध हो जाता है, वे कुछ भी बोल नहीं पाते। नेत्रोंसे अनवरत अश्रुकी वर्षा हो रही है; कपोल, वक्षःस्थल आर्द्र हो चुके हैं। वे अपने मुकुटमण्डित सिरको झुकाकर दूरसे तो वन्दना कर चुके, पर उसे श्रीकृष्णचन्द्रके चरणपल्लवसे स्पर्श करा देनेके लिये वे अत्यन्त व्याकुल हैं। किंतु शरीर विवश हो रहा है, जड-सा बनकर चेष्टाशून्य हो गया है। कुछ क्षणोंके पश्चात् किसी अचिन्त्य शक्तिकी प्रेरणासे उनके हाथोंमें स्पन्दन होता है और वे अनुभव करते हैं—सिरसे तो नहीं, पर हाथ बढ़ाकर कदाचित् चरणसरोजके स्पर्शका सौभाग्य सम्भव हो जाय। इस लालसासे ही वे अपने हाथ श्रीचरणोंके समीप ले जाते हैं। पर बाल्यलीलाविहारीका बाल्यावेश, बाल्यभङ्गिमा कुबेरपुत्रोंको यह सौभाग्य सहजमें देना जो नहीं चाहती। ऊखलसे बँधे होनेके कारण, धराशायी अर्जुन वृक्षोंके मध्यदेशमें ऊखलके अटके रहनेसे वे भाग तो नहीं सकते, पर अङ्गोंसे अमानव तेजकी किरणें बिखेरते, प्रज्वलित अग्निके समान चमचम करते हुए चार हाथोंको अपने लघु-लघु चरणोंकी ओर आते देखकर वे स्थिर कैसे रह सकते हैं। जितना अधिक-से-अधिक सम्भव है, उतना पीछेकी ओर हटकर वे भागनेका प्रयास करते हैं। अवश्य ही भाग नहीं पाते। किधर जायँ? कैसे जायँ? इसीलिये मुग्ध शिशुकी भाँति भयभीत-से होकर वे अपने करकमलोंको नचा-नचाकर उन्हें स्पर्श न करनेके लिये संकेत करने लगते हैं; फिर तो कुबेर-पुत्रोंमें यह शक्ति कहाँ कि उन्हें छू लें। जगत्में यह सामर्थ्य किसमें है जो श्रीकृष्णचन्द्रके न चाहनेपर स्वप्नमें भी क्षणभरके लिये उनकी छायाका भी स्पर्श कर ले? पर नलकूबर-मणिग्रीवके हाथ भी श्रीकृष्णपादारविन्दके स्पर्शका सौभाग्य पाये बिना आज लौटनेवाले नहीं। युगलबन्धुओंके नेत्रोंमें वह व्याकुलता भर आती है, जिसकी सीमा नहीं। बस, यह अपेक्षित थी। कुबेरपुत्र श्रीकृष्णचरणोंको अपने हाथोंसे वेष्टित कर लेते हैं। उनका रोम-रोम पुलकित हो उठता है। किंतु बाल्यलीलारसमत्त अनन्त-ऐश्वर्यनिकेतन श्रीकृष्णचन्द्र तो उस समय भी एक

अभिनव-रस-तरंगमें बह चलते हैं। वे सोचने लगते हैं—'जननीके मुखसे अनेकों बार देवताओंके स्वरूपका वर्णन सुन चुका हूँ। ये हैं तो दोनों कोई देवता, पर मेरे चरण क्यों पकड़ते हैं……?' लीलामयकी यह भावना रसमें सनी रहकर अत्यन्त मसृण होनेके कारण बाहरकी ओर फिसल पड़ी, वे कुबेर-पुत्रोंकी ओर देखकर पुकार ही तो उठे—

कहन लगे हरि तिन तन चाहि, तुम तौ कोउ देवता आहि।
इमि इहि गोकुल-गोप-दुलारे, क्यों हो पकरत पाँव हमारे॥

श्रीकृष्णचन्द्रकी इस परम दिव्य रसमयी भावनाको कौन ग्रहण करे? नलकूबर-मणिग्रीवके पास इसे धारण करने योग्य पात्र ही कहाँ है? यह तो धारण कर सकती हैं विशुद्ध-राग-परिभावितचित्ता गोपसुन्दरियाँ; इसे ग्रहण कर सकते हैं विशुद्ध-राग-रसिक व्रजपुर-गोप, गोपशिशु; इसे लेनेकी क्षमता है विशुद्ध-वात्सल्य-रसघनमूर्ति व्रजेन्द्रदम्पतिमें—जहाँ जिनके प्रेममें अनन्त-ब्रह्माण्ड-भाण्डोदर श्रीकृष्णचन्द्रके अनन्त ऐश्वर्यकी गन्ध तक नहीं, जिनकी चरण-रज-कणिकाकी छाया पड़नेसे प्रपञ्चके प्राणियोंको विशुद्ध-रागमार्गके पथिक बननेका अधिकार प्राप्त होता है। इसीलिये नलकूबर-मणिग्रीव इस मधुर रसका आस्वादन न पा सके। व्रजेन्द्रनन्दनकी वह रसमयी वाणी उनके चित्तमें उनकी पात्रताके अनुरूप भावका ही उल्लास कर सकी। उसका रूप यह बन गया। वे कुबेरपुत्र श्रीकृष्णचन्द्रकी महिमाका गान करने जा रहे थे, पर कण्ठ अश्रुपूरित होकर कर नहीं पा रहे थे। श्रीकृष्णचन्द्रकी इस रसीली उक्तिसे इतनी प्रबल, ऐसी गम्भीर धारा बह चली कि ऐश्वर्यज्ञान मानो उसमें सर्वथा डूब जानेके भयसे बरबस कण्ठसे बाहर निकलने लगा, नलकूबर-मणिग्रीव श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति करने लगे—

पुलकित सरोज-से करनि जोरि बोले तहीं।
जगतपति-नाथ! तो गुननि-गाथ जानैं नहीं।
सगुन यह रूप औ निगुन वेदवाणी कहैं।
अखिल तुव मध्य है, सकल जानि ग्यानी लहैं॥
सुजन जन लाज काज अवतार धारौ मही।
दनुज-दल दुष्ट पुष्ट बल मारि तारौ तहीं।
अब करि प्रभो! सुदृष्टि, करुना-क्रपा सौं भरी।
अभयपद दान देउ जन जानिये जू हरी॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः।
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः॥
त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः।
त्वमेव कालो भगवान् विष्णुरव्यय ईश्वरः॥
त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजस्सत्त्वतमोमयी।
त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित्॥
गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः।
को न्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः॥
तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे।
आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः॥
यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः।
तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः ॥
स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च।
अवतीर्णोऽशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम्॥
नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल।
वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः॥

(श्रीमद्भा० १०। १०। २९-३६)

'श्रीकृष्णचन्द्र! समस्त विश्वका चित्त आकर्षित करनेवाले नराकृति परब्रह्म! हे परमयोगेश्वर! तुम्हीं समस्त जगत्‌के आदि हो, तुम्हीं पुरुषोत्तम हो, कार्यकारणात्मक यह समस्त परिदृश्यमान जगत् तुम्हारा ही रूप है—यही अनुभूति तत्त्वदर्शी ब्राह्मणोंको होती है। समस्त भूतोंके देह-प्राण, अन्तःकरण, इन्द्रियाँ—इन सबके स्वामी तो तुम्हीं हो, नाथ! तुम्हीं सर्वशक्तिमान् काल हो, अव्यय तत्त्व हो, सर्वव्यापक हो, सर्वनियन्ता हो। तुम्हीं सत्त्वरजस्तमोमयी सूक्ष्म प्रकृति एवं प्रकृतिके कार्य हो। तुम्हीं समस्त स्थूल-सूक्ष्म शरीरोंकी सभी अवस्थाओंके साक्षी हो। अधिष्ठाता पुरुष भी तुम्हीं हो, श्रीकृष्णचन्द्र! तुम्हारे द्वारा परिचालित, तुम्हारी सत्तासे ही क्रियाशील प्राकृत मन-बुद्धि-इन्द्रियोंके द्वारा तुम्हें जान लेना सम्भव नहीं है। नाथ! देह आदिके अभिमानसे बँधा हुआ ऐसा कौन-सा व्यक्ति इस विश्वमें है, जो तुम्हें जान ले? क्योंकि स्वप्रकाशरूप होनेके कारण तुम तो सब जीवोंकी उत्पत्तिसे पूर्व भी एकरस वर्तमान रहते हो; फिर किस जीवकी सामर्थ्य है कि आदिस्वरूप तुमको जान ले। प्रभो! तुम्हीं वैकुण्ठनाथ भगवान् नारायण हो, तुम्हीं वासुदेव हो, प्रपञ्चविधाता भी तुम्हीं हो। अपने द्वारा ही प्रकाशित सत्त्वादि त्रिगुणोंसे अपनी महिमाको तुमने आच्छादित कर

रक्खा है। सच्चिदानन्द परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र! ऐसे महामहिम तुमको जान लेनेकी क्षमता हममें कहाँ। इसलिये हम तो तुम्हें प्रणाममात्र करनेके अधिकारी हैं, तुम्हारे चरणसरोजमें प्रणाम कर रहे हैं। भगवन्! जीवकी शक्ति नहीं कि वह ऐसी लीला कर ले, जैसी तुम करते हो। जब कभी भी प्रपञ्चमें अवतीर्ण होते हो, तब-तब ऐसे-ऐसे परम अद्भुत चरित्रोंका प्रकाश करते हो, जिनकी कहीं तुलना नहीं। तुम्हारी ये अतिशय आश्चर्यमयी लीलाएँ ही प्रमाण बनती हैं, ये अलोकसाधारण लीलाएँ ही इस बातका निर्णय करती हैं कि तुम अशरीर (प्राकृत शरीरसे रहित)-का शरीरधारियोंमें अवतरण हुआ है। वे ही तुम स्वयं इस बार जगत्‌का ऐहिक-आमुष्मिक—अशेष मङ्गलविधान करनेके लिये अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंसे अवतीर्ण हुए हो। भक्तोंके सर्वविध मनोरथोंको पूर्ण करना तुम्हारा नित्य स्वभाव है, नाथ! हे परमकल्याणस्वरूप! तुम्हें नमस्कार है! हे विश्वमङ्गलविधायक! तुम्हें नमस्कार है! परमशान्त! हृत्पद्मविहारिन् यदुपते! गोपते! तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार!!'

परम पुरुष सबही के कारन। प्रतिपारन तारन संघारन॥
ब्यक्त-अब्यक्त जु बिस्व अनूप। बेद बदत प्रभु तुम्हरौ रूप॥
तुम सब भूतन कौ बिस्तार। देह, प्रान, इंद्री, अहँकार॥
काल तुम्हारी लीला श्रीधर। तुम ब्यापी, तुम अब्यय ईश्वर॥
तुम हीं प्रकृति, पुरुष, महतत्व। धर, अंबर आडंबर सत्व॥
तुम हीं जीवन, तुम हीं जीय। सब ठाँ तुम, कोउ अवर न वीय॥

× × ×

इंद्रिन करि तुम जात न गहे। प्रगट आहि, पै परत न चहे॥
जैसें दिष्टि कुंभ कहुँ देखै। कुंभ तौ नहिं न दिष्टि कौं पेखै॥
कुंभ के दिष्टि होइ जब कबहीं। सो तुम-दिष्टिहि देखै तबहीं॥
तातैं तुम कहुँ बंदन करैं। जानि न परहु, परे तैं परैं॥

(नन्ददासकृत दशमस्कन्ध)

इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका स्तवन करते-करते, उनके अपारावारविहीन ऐश्वर्यसिन्धुमें अवगाहन करते-करते कुबेरपुत्रोंकी अनादि-संसरणजनित श्रान्ति तो मिट ही जाती है, साथ ही उनका चित्त भक्ति-रस-सुधा-पानके योग्य भी बन जाता है। उनकी अन्य समस्त वासनाएँ सर्वथा धुल जाती हैं, चित्त अतिशय विशुद्ध, निर्मल होकर भक्ति-पीयूषसिन्धुमें डूबनेके लिये लालायित हो उठता है। इसीलिये अब वे प्रार्थना करने लगते हैं—

वाञ्छावहे किमपि नापरमार्तबन्धो
त्वत्पादपङ्कजपरागनिषेविसङ्गात्।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

'दीनबन्धो! हमें और कुछ नहीं चाहिये; बस, इतनी-सी अभिलाषा है कि तुम्हारे चरणपङ्कजसे झरते हुए मकरन्दका पान करनेवाले साधुपुरुषोंका सङ्ग हमें निरन्तर मिलता रहे।'

—तथा यह होकर फिर यह हो जाय—

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥

(श्रीमद्भा० १०। १०। ३८)

भगवन्! हमारी वाणी निरन्तर तुम्हारा ही मङ्गलमय गुणगान करे, तुम्हारे मधुस्रावी नाम-रूप-गुण-लीला आदिके कथनमें नियुक्त रहे। कर्णेन्द्रिय सदा तुम्हारी रसमयी कथाके नाम-रूप-गुणगणके श्रवणमें ही लगी रहे। हमारे हाथ तुम्हारी सेवा-परिचर्याके कर्मोंमें ही व्यस्त रहें। मन तुम्हारे चरणपङ्कजकी स्मृतिमें ही रम जाय। तुम्हारे निवासभूत जगत्‌के सामने हमारा सिर सदा नत रहे, सबमें तुम्हें व्याप्त देखकर सबके चरणोंमें हम झुक पड़ें। हमारे नेत्र भी केवल निहारा करें तुम्हारे देहभूत संतोंको—

हे करुनानिधि! करुना कीजै, अपनी भाउ-भगति-रति दीजै॥
बानी तुमरे गुन-गन गनै, श्रवन परम पावन जस सुनै॥
ये कर अवर कर्म जिमि करैं, प्रभु की परिचर्या अनुसरैं॥
मन-अलि चरन-कमल-रस रसौ, चित्र कमल-जग भूलि न बसौ॥
हे जगदीस! जसोदा-नंदन, सीस रहौ नित तुव-पद-बंदन॥
तुमरी मूरति भक्त तुम्हारे, नित ही निरखहुँ नैन हमारे॥

कुबेरपुत्र यह कहकर मौन होने लग गये, नहीं-नहीं उनकी वाणी पुनः प्रेमावेशवश स्वतः रुद्ध होने लगी। अस्पष्ट स्वरमें, अश्रुसिक्त-कण्ठसे वे इतना और कह पाये—

देवर्षिणा तव पदाब्जमधुव्रतेन
भूयानकारि बत नौ शपता प्रसादः।
लीलालवोढजगदण्डपरःसहस्रो
येन त्वमक्षिविषयोऽद्भुतबालखेलः॥

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

'नाथ! तुम्हारे चरणसरोजके मधुपानका ही व्रत रखनेवाले देवर्षिने हमपर यथेष्ट कृपा की। अभिशाप देते समय उसमें अपना पूर्ण अनुग्रह भर दिया। ओह! लवमात्र लीलाके मिससे असंख्य ब्रह्माण्डोंको अपने अंदर धारण करनेवाले तुम आज इस अद्भुत बालक्रीडाकारी वेषमें हमारी दृष्टिके समक्ष आये हो। उनकी कृपासे ही तो महामहिम तुमको आज हम इस अभिनव शिशुवेशमें देख पा रहे हैं, प्रभो!'

अचिन्त्यलीलामहाशक्तिने भी उसी समय लीलामञ्चकी डोरी खींच दी। दृश्य बदला और शैशवलीलारसमें निमग्न हुए श्रीकृष्णचन्द्र क्षणभरके लिये सजग होकर ऐश्वर्यके तटपर आ विराजे—अपने भक्तोंकी महिमाका गान करनेके लिये अपने मुखारविन्दसे कुबेरपुत्रोंको कुछ आदेश देकर उनके कर्णपुटोंमें अपने कण्ठकी सुधा भर देनेके लिये, उनकी एक चिरवाञ्छा पूर्ण कर देनेके लिये। इसीलिये आते ही, अधरोंमें मन्द हास्य भरकर वे बोलने लग गये—

ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना।
यच्छ्रीमदान्धयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः॥
साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम्।
दर्शनान्नो भवेद् बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा॥
तद् गच्छतं मत्परमौ नलकूबर सादनम्।
संजातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः॥

(श्रीमद्भा० १०। १०। ४०-४२)

'कुबेरपुत्रो! सुनो, इस घटनाको मैं बहुत पूर्वसे ही जानता हूँ। तुम दोनों श्रीमदसे अंधे थे, परम कारुणिक देवर्षिने तुमपर अपनी कृपा बरसायी, शाप देकर तुम्हारा श्रीमद नष्ट कर दिया—यह सब मुझे ज्ञात है। जाओ, पुत्रो! अब तुम्हारे भवप्रवाहका अन्त हो चुका। यह भी देवर्षिके दर्शनका ही प्रसाद समझो। मुक्ति तो तुम्हें उसी दिन मिल चुकी थी, जिस दिन देवर्षिके दर्शन तुम्हें हुए। सुनो, सूर्योदय होते ही जैसे नेत्रोंपर छाया हुआ अन्धकार विलुप्त हो जाता है, वैसे ही समचित्त, मदेकनिष्ठ महापुरुषोंका दर्शन होते ही जीवका अज्ञान-अन्धकार, भवबन्धन भी विनष्ट हो जाता है। तरुयोनि तो तुम्हें मेरी परमाभक्तिकी प्राप्ति करा देनेके लिये प्राप्त हुई थी, बन्धनके लिये नहीं। महापुरुषोंके समागमसे बन्धन होना असम्भव है, उससे तो बन्धनका नाश ही होता है। तुम्हारे बन्धन टूट गये। मेरी अनन्य रति (भक्ति) भी तुम दोनों प्राप्त कर सके हो। जो तुम चाहते थे, वह तुम्हें मिल गयी। अब तुम्हारे लिये संसारमें पुनः पतनका भय सदाके लिये समाप्त हो चुका। अनन्तकाल-तकके लिये मेरे परायण हुए तुम दोनों अब अपने भवनकी ओर चले जाओ।'

तब बोले हरि करुनाधाम। पूरन हौंहि तुम्हारे काम॥
नारद प्रीतम भक्त हमारौ। तुम पर कियौ अनुग्रह भारौ॥
मो भक्तन कौ यहै सुभाउ। जैसैं उदित होत दिनराउ॥
सहजहिं निबिड़ तिमिर कौं हरै। अवर बहुत मंगल बिस्तरै॥
पुनि बोले हरि सब गुन-सींव। हे नलकूबर! हे मनिग्रीव!॥
अब तुम गवन भवन कौं करौ। मो माया डर तैं जिनि डरौ॥

नलकूबर-मणिग्रीव कृतार्थ हो गये। उनके प्राण नाच उठे हैं—'कदाचित् एक-दो क्षण भी और यहाँ विराम करनेकी आज्ञा मिल जाती! पर नहीं अब समय नहीं। श्रीकृष्णचन्द्रके समीपमें ही खड़े उन गोपशिशुओंके नेत्रोंमें भय भरा है, यह तो प्रभुके प्रियतम सखाओंके प्रति अपराध हो रहा है।'—कुबेरपुत्र चलनेके लिये प्रस्तुत हो गये। उन्होंने ऊखलमें बँधे श्रीकृष्णचन्द्रकी परिक्रमा की, उन्हें बार-बार प्रणाम किया; फिर जानेकी सूचना देकर उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े—

इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः।
बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम्॥

(श्रीमद्भा० १०। १०। ४३)

इहि प्रकार गुह्यक दुवौ, प्रभु बचननि उर धारि।
बेर-बेर दंडवत करि उत्तर दिशा सिधारि॥

देवर्षिके प्रति उनके हृदयमें अपरिसीम कृतज्ञता उमड़ आयी है। व्रजपुरके कण-कणके प्रति उनके रोम-रोमसे 'धन्य-धन्य' की घोषणा हो रही है—

धन्य-धन्य ऋषि-साप हमारे।
आदि अनादि निगम नहिं जानत, ते हरि प्रगट देह ब्रज धारे॥
धन्य नंद, धनि मातु जसोदा, धनि आँगन खेलत भय बारे।
धन्य स्याम, धनि दाम बँधाए, धनि ऊखल, धनि माखन-प्यारे॥
दीन-बंधु करुना-निधि हौ प्रभु, राखि लेहु, हम सरन तिहारे।
सूर स्याम के चरन सीस धरि, अस्तुति करि निज धाम सिधारे॥

* * *

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भाग्यवान् और अभागे कौन हैं?

भैया! तुम्हारा पत्र मिला। यहाँ कुछ भी अपना नहीं है। आज जिसको अपना मानकर छातीसे लगाया जाता है, वही कल हाथसे निकलकर पराया हो जाता है। यहाँ कोई ऐसी वस्तु है ही नहीं जो सदा हमारे साथ रहे। या तो वह चली जाती है या उसे छोड़कर हम चले जाते हैं। तुम्हारे पास आज धन है और कभी-कभी—मैं देखता हूँ—तुम्हें उस धनका अभिमान भी होता है। लोग तुम्हें 'भाग्यवान्' कहते हैं तो तुम्हें बड़ा सुख मिलता है, परंतु भैया! सच पूछो तो धनसे कोई भी 'भाग्यवान्' नहीं होता। संसारके धन, मान, प्रतिष्ठा, अधिकार सभी कुछ हों और हों भी प्रचुर परिमाणमें, परंतु मन यदि भगवान्के श्रीचरणोंमें न लगा हो तो वस्तुत: वह 'अभागा' ही है। *'ते नर नरकरूप जीवत जग, भवभंजन-पद बिमुख अभागी।'* भाग्यवान् तो वस्तुत: भगवच्चरणानुरागी ही है। *'अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी॥'* तुम्हें जो धनका अभिमान होता है यह भी तुम्हारी बड़ी गलती है। फिर तुम्हारे पास तो धन है ही कितना? तुमसे बहुत बड़े-बड़े धनी अब भी दुनियामें बहुत-से हैं। अबसे पहले ऐसे कितने हो गये हैं जिनकी धनराशिका कोई पार नहीं था; पर आज उनका वह अनन्त ऐश्वर्य कहाँ है? शिवि, मान्धाता, ययाति, रन्तिदेव आदिके धनसम्पत्तिका पार नहीं था, पर आज उसका कहीं पता नहीं है। न तो धनके होनेका अभिमान करना चाहिये और न यही अभिमान करना चाहिये कि यह मैंने कमाया है। यह भगवान्की चीज है, तुम्हें तो मिली है—भलीभाँति रक्षा करते हुए इसे भगवान्की सेवामें लगानेके लिये। तुम इसके व्यवस्थापक हो, स्वामी नहीं। खबरदार, कहीं मालिक न बन बैठना। नहीं तो, चोरीके अपराधमें बड़े घरकी हवा खानी पड़ेगी। तुम्हारा तो बस, यही काम है कि तुम व्यवस्थापूर्वक इसे स्वामीकी सेवामें लगाते रहो। इसीमें धनकी सार्थकता है और असलमें इसीलिये धनी लोग भाग्यवान् हैं कि उन्हें धनके द्वारा भगवत्सेवाका सौभाग्य मिला है। दीन-दुखी गरीब भाई, पति-पुत्रहीन दुखी बहिनें, अभावग्रस्त गृहस्थ, अनाथ बालक आदि सभी इस धनके द्वारा सेव्य हैं। यह समझकर नहीं कि वे दयाके पात्र हैं, बल्कि यह समझकर कि भगवान् ही उनके रूपमें अपने अधिकारसे उस धनको तुमसे चाहते हैं। तुम नि:संकोच और मुक्तहस्त होकर नम्रता और विनयके साथ उनका सम्मान करते हुए उनकी नि:स्वार्थ सेवा करो। उनसे न कुछ बदलेमें चाहो और न उनपर अहसान करो! ऐसा करोगे तो जरूर 'भाग्यवान्' कहलाओगे।

(२)

विषयोंमें सुख नहीं है

××× मौतके मुँहमें पड़े हुए मनुष्यका भोगोंकी तृष्णा रखना वैसा ही है जैसा कालसर्पके मुँहमें पड़े हुए मेंढकका मच्छरोंकी ओर झपटना! पता नहीं कब मौत आ जाय। इसलिये भोगोंसे मन हटाकर दिन-रात भगवान्में मन लगाना चाहिये। जबतक स्वास्थ्य अच्छा है, तभीतक भजनमें आसानीसे मन लगाया जा सकता है। अस्वस्थ होनेपर बिना अभ्यासके भगवान्का स्मरण होना भी कठिन हो जायगा।

धन-ऐश्वर्य, कुटुम्ब-परिवार सभी क्षणभङ्गुर हैं। इनकी प्राप्तिमें सुख तो है ही नहीं, वरं दु:ख ही बढ़ता है। संसारमें ऐसा कोई भी विचारशील पुरुष नहीं है जो विवेक-बुद्धिसे यह कह सकता हो कि इनमेंसे किसीसे भी उसे कोई सुख मिला है। यहाँकी प्रत्येक स्थितिमें विरोधी स्थिति वर्तमान है—सुख चाहते हैं तो मिलता है दु:ख, स्वास्थ्य चाहते हैं तो आती है बीमारी, प्रकाशके पीछे अन्धकार लगा है, जवानीके साथ बुढ़ापा सटा है, जीवनका विरोधी मरण सिरपर सवार है। यहाँ कौन-सा सुख है जिसमें आसक्त होकर मनुष्यको अपना जीवन नष्ट करना चाहिये। यह तो मूर्खता है जो हम विषयोंमें सुख मानकर दुर्लभ मानव-जीवनको खो रहे हैं। भगवान् श्रीराम कहते हैं—

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा गहइ परस मनि खोई॥

परंतु विचार कर देखिये, मनुष्य सचमुच इसी तरह अपने अमृतसे मानव-जीवनको विषय-विष बटोरने और चाटनेमें ही खो रहा है। इसीसे उसे एकके बाद दूसरे—लगातार दु:खोंकी परम्परामें ही रहना पड़ता है। याद रखना चाहिये, यहाँकी कोई भी चीज, कोई भी सम्बन्धी उसको दु:खोंसे नहीं छुड़ा सकता। भगवान्का भजन ही एक ऐसी चीज है जो मनुष्यको दु:खके सारे बन्धनोंसे छुड़ा सकता है। अतएव मन लगाकर खूब भजन कीजिये। बस रटते रहिये—

गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे
गोविन्द गोविन्द रथाङ्गपाणे।
गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण
गोविन्द दामोदर माधवेति॥

* * *

बाल-कल्याण

(१)

बालक श्रीकृष्णकी मनोहर लीलाएँ—१

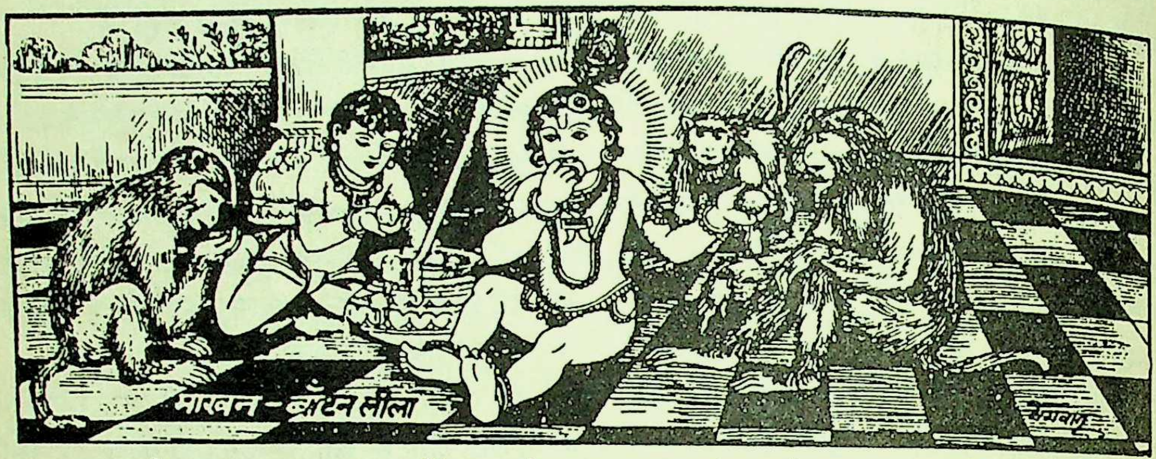

मोहन माखन-घरमें पैठा। सखा संग ले जमकर बैठा॥
बाँट रहा कपियोंको माखन। सारे व्रजका यह जीवनधन॥

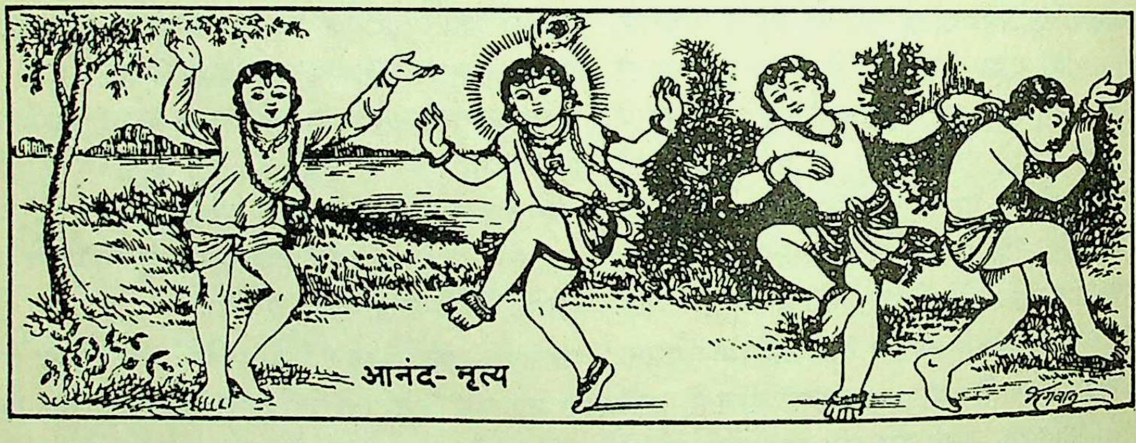

नाचें जमुना-तीर कन्हैया। अंग चलावें मुड़ैं बँकैया॥
संग सखा नाचे कर हैया। जो देखै सो जाय बलैंया॥

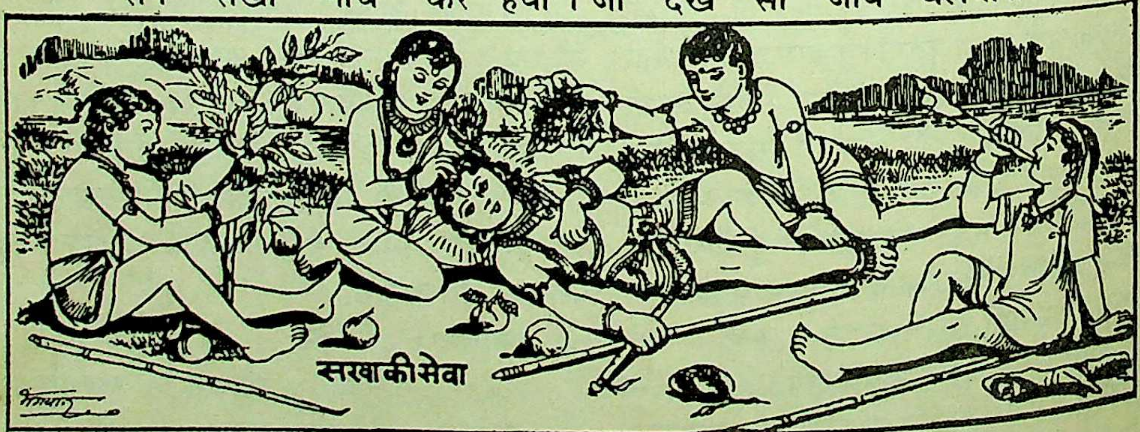

देख कदमकी शीतल छैया। लेट रहे हैं कुँवर कन्हैया॥
सेवा करते सखा सुजान। पंखा झलते भरते तान॥

बालक श्रीकृष्णकी मनोहर लीलाएँ—२

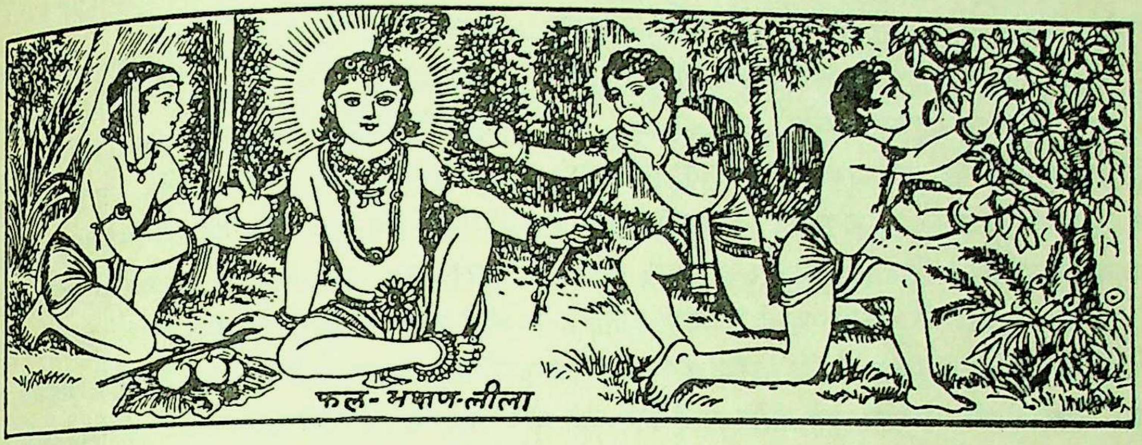

वनमें आये हैं सब ग्वाल। संग सखा इनका गोपाल॥
जो सबसे मीठा फल पाते। कृष्णचन्द्रको लाय खिलाते॥

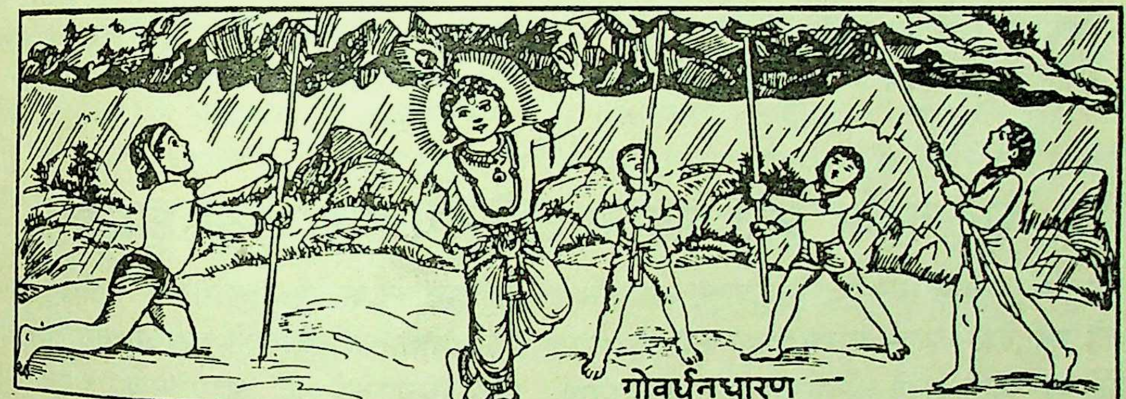

गोवर्धन श्रीकृष्ण उठाये। ग्वाल बाल हैं टेक लगाये॥
बरस बरस कर इन्द्र थकेंगे। हानि जरा भी कर न सकेंगे॥

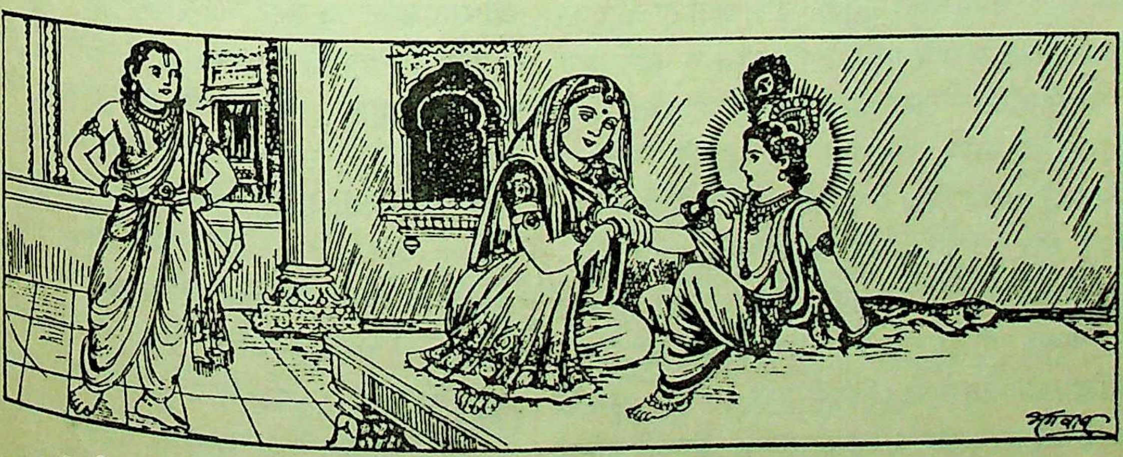

नन्ही-सी ये तेरी बैयाँ। कैसे उठा पहाड़ कन्हैया॥
लगी हाथ सहलाने मैया। हँसे देख यह दाऊ भैया॥

(२)

राष्ट्रकी सबसे बड़ी सम्पत्ति

राष्ट्रकी सबसे बड़ी सम्पत्ति है—उसके बच्चे। आजके बच्चे ही कलके नागरिक हैं। वे भविष्यकी आशा हैं और उन्हें ही आगे चलकर राष्ट्रका निर्माण करना है।

बच्चे मजबूत और पुष्ट बनें, इसके लिये उनके स्वास्थ्यपर विशेष ध्यान देनेकी जरूरत है। माता-पिताको चाहिये कि वे अपने बच्चोंको स्वस्थ, नौजवान बनायें। न सिर्फ माता-पिताको, बल्कि राष्ट्रको भी स्वस्थ बच्चोंपर गर्व होता है; लेकिन हम देखते हैं कि अधिकतर बच्चोंकी सेहत असावधानीके कारण गिर जाती है और उनमेंसे कई नीरोग नहीं होने पाते।

ज्यादातर बच्चोंकी मृत्यु चेचक, कुक्कुर-खाँसी, खसरा, कण्ठरोग, मियादी बुखार, क्षय और मलेरिया आदि रोगोंसे होती है। ये बड़ी भयंकर बीमारियाँ हैं, लेकिन अगर सावधानी बरती जाय तो इसमें संदेह नहीं कि हम इन बीमारियोंसे बच्चोंकी रक्षा कर सकेंगे।

सफाई सबसे जरूरी चीज है। बच्चोंमें स्वच्छ रहनेकी आदत डलवानी चाहिये। उनका आचार-व्यवहार सुन्दर होना चाहिये। वे रोज दाँतोंको साफ करें, स्नान करें, बालोंको कंघी करें, नाखून साफ रखें, साफ कपड़े पहनें और अपने पास रूमाल रखें। उन्हें सिखाया जाय कि शौचके लिये नियत स्थानका ही इस्तेमाल करें। भोजन करनेसे पहले हाथ धोयें। खानेकी चीजोंपर मक्खियाँ न बैठने दें और जिन वस्तुओंपर मक्खियाँ बैठी हों, उन्हें न खायें। व्यायाम जरूर करें। माता-पिताको चाहिये कि बच्चोंको पौष्टिक तत्त्ववाला भोजन दें, उनके स्वास्थ्यके प्रति जागरूक रहें और बीमार होनेपर तुरंत डॉक्टरसे सलाह लें।

कहनेका अभिप्राय यह है कि बीमारीके प्रति सजग रहने और बच्चोंको साफ रखनेसे बीमारीसे बहुत कुछ रक्षा हो सकती है। न सिर्फ यही, बल्कि शरीर स्वस्थ रहनेसे मानसिक उन्नति भी होती है। मन स्वस्थ होता है, अगर शरीर स्वस्थ रहे।

(३)

बालकोंके प्रति महात्मा श्रीरूपकलाजीके उपदेश

प्रिय बालको! सर्वशक्तिमान् परमकृपालु क्षमामन्दिर श्रीभगवान्‌को सभी देश-कालमें स्मरण किया करो और नाम जपो। हाथोंसे काम किये जाओ और सुरति श्रीभगवान्‌पर रखे रहो। पढ़नेमें भलीभाँति परिश्रम करो और परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके निमित्त श्रीभगवान्‌से अन्तःकरणसे प्रार्थना किया करो। श्रीहरिसे विनय, कर्तव्यपरायणता, उद्योग और सद्भाव—ये सिद्धिके लक्षण हैं। दम्भ बहुत बुरा है। ढाल बनो तो बनो, पर तलवार न बनो। जिह्वासे सावधान रहो, अर्थात् कब, कहाँ, क्या, कितना, कैसा और कैसे बोलना और खाना चाहिये, इससे सचेत रहो। अभिमान, आलस्य, वैर, फूट और डाहके निकट न जाओ। सत्यवादी, सत्यव्यवहारी, यशस्वी, दृढ़प्रतिज्ञ, दयाशील, शुचि, निर्मल, धीर, विनीत और उपकारी बनो। बहुत सोच-समझकर कोई प्रतिज्ञा करो। उसका सोच ही क्या जो बीत चुका। मनमें कभी नहीं हारनेके प्रभावका अनुभव करो। मन-चित्तको बुद्धिके अधीन रखो। विराग तथा शान्तिके सुखको जानो। अभ्यासके बल और प्रभावको समझो, प्रेमकी महिमा तथा प्रभुताको विचारो। किसीके साथ ऐसा व्यवहार मत करो कि जैसा तुम नहीं चाहते कि कोई तुम्हारे प्रति करे। कर्तव्यपालन करनेमें ठोस परिश्रम करनेसे न चूको। जो कार्य अभी-अभी कर सकते हो, उसे आगेके लिये नहीं उठा रखो। सोच-विचारका सदा अभ्यास करो। प्रतिरात्रि भूत तथा भविष्य-दिनके कार्योंका मनन-चिन्तन करते हुए श्रीभगवान्‌से प्रार्थना करना उचित है, जिससे कुमार्गकी ओर झुकनेसे या अनुचित वस्तुके लालचसे बच सको। अचल सुखके लिये श्रीभगवद्भक्तिकी बड़ी आवश्यकता है। दुःखकी जड़ पाप है और विषयासक्तिका फल नास्तिकता। अनात्मा, आत्मा, धर्मात्मा, महात्मा, परमात्माकी पहचान सविवेक हो। मृत्युको मत भूलो। मृत्यु निश्चित है और काल अचानक आ पड़ता है। विद्या सब अर्थोंसे बढ़कर है। इन्द्रियोंके विषयोंको हितकर न मानो। धन और धर्मका योगक्षेम साथ-साथ भलीभाँति हो सकता है। शरीर केवल चलता घर, रथ या मोटर मात्र है आत्माका। समयकी महिमा मत भूलो। समझनेवाला अन्तःकरण ही है, और समझ लिये जानेके योग्य भी अन्तःकरण ही है। चढ़ते-बढ़ते चले चलो। श्रीभगवद्भक्तोंसे सादर मिलो। अन्तःकरणमें श्रीभगवान् रहें, श्रीभगवान्‌में ही मन, चित्त, बुद्धि प्रेमसे लगे रहें।

(४)

धर्मप्रचारके लिये जीवनकी आहुति देनेवाला विद्यार्थी

आजसे लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व पटनेके पास नालन्दामें एक बड़ा विश्वविद्यालय था। भगवान् बुद्धने वहाँ रहकर व्याख्यान दिया था। भगवान् महावीर स्वामीने भी वहाँसे ज्ञान प्राप्त किया था और वहाँ अपने धर्मसम्बन्धी व्याख्यान दिये थे। उसकी ख्याति संसारमें फैली थी और आज जैसे हमारे देशके विद्यार्थी ज्ञानार्जनके लिये अमेरिका, यूरोप और जापान जाते हैं, उसी प्रकार उस समय चीन, कोरिया, श्याम, लंका, तुर्किस्तान और यूनान आदि देशोंसे विद्यार्थी नालन्दामें पढ़नेके लिये आते थे। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसाँग लिखता है कि—'संसारमें ऐसा एक भी देश नहीं है, जो नालन्दा-विश्वविद्यालयको न जानता हो, अथवा ऐसी कोई जाति नहीं है कि जिसका एक भी विद्यार्थी नालन्दामें शिक्षा लेकर महापण्डित न बना हो। ईसाकी सातवीं शताब्दीमें इस विद्यालयमें दस हजारसे अधिक विद्यार्थी पढ़ते थे और उनको हजारों अध्यापक पढ़ाते थे।'

उस विश्वविद्यालयमें पढ़नेके लिये ह्वेनसाँग चीनसे आये थे। यहाँ उनको विद्यार्थियों और अध्यापकोंद्वारा खूब सम्मान प्राप्त हुआ था। उनका व्यवहार ह्वेनसाँगके प्रति इतना अच्छा था कि इस चीनी विद्वान्को एक दिन भी ऐसा न लगा कि वह परदेशमें है। ह्वेनसाँग जब पढ़कर स्वदेश लौट गया, तब बहुत-सी बुद्धमूर्तियाँ और बौद्ध-धर्मके ग्रन्थोंकी हस्त-प्रतिलिपि अपने साथ लेता गया। उसे विदा करनेके लिये उसके प्रेममें मुग्ध अनेक विद्यार्थी सिन्धुनदीके मुहानेतक जानेके लिये तैयार हो गये; परंतु दुर्भाग्यसे ऐसा हुआ कि आधे रास्ते पहुँचते ही जहाज तूफानमें पड़ गया और उसमें पानी भरने लगा और डूबनेके लिये तैयार होने लगा। ह्वेनसाँगकी सारी मेहनतपर पानी फिरनेको आ गया। उस समय नालन्दाके विद्यार्थियोंने असाधारण साहसका परिचय दिया। उन्होंने सोचा कि यदि ये मूर्तियाँ और अमूल्य धर्मग्रन्थ नदीमें डूब गये तो हमारे धर्मका चीनमें प्रचार होनेका अवसर हाथसे चला जायगा। इसलिये अपना सर्वस्व त्यागकर उस स्मारककी रक्षा करनेका उन्होंने संकल्प किया और देहकी लालसा छोड़ अमर जीवनकी प्राप्तिके लिये वे नदीके प्रवाहमें कूद पड़े। देखते-देखते उनका पवित्र शरीर नदीतलमें प्रविष्ट हो गया। अपनी देह सरिताको समर्पण करके उन्होंने जहाजके भारको हल्का किया और ह्वेनसाँग तथा उन धर्मग्रन्थोंकी रक्षा हुई। आश्रमवासी विद्यार्थियोंका यह अपूर्व आत्मोत्सर्ग नालन्दा-विश्वविद्यालयके शिक्षणका प्रभाव था। इस प्रकार हमारे आर्यब्रह्मचारी विद्यार्थियोंके बलिदानसे ही चीन देशमें धर्मज्ञानका प्रसार हुआ।

स्वेच्छासे दिये गये इस प्रकारके बलिदानके उदाहरण तो आजके सुधरे देशोंके विश्वविद्यालयोंके इतिहासमें कदाचित् ही मिलेंगे।

(५)

बालकका मनोरथ

मैया! मैं अब खूब पढ़ूँगा।
कभी किसीसे नहीं लड़ूँगा॥
पढ़-लिख होऊँगा होशियार।
सभी करेंगे मुझसे प्यार॥
पैसे खूब कमाऊँगा मैं।
बढ़िया घर बनवाऊँगा मैं॥
भाई-बहिन प्राणसे प्यारे।
सुखी रहेंगे मुझसे सारे॥
उनसे कुछ न छिपाऊँगा मैं।
सबको हृदय लगाऊँगा मैं॥
मेरा सब कुछ होगा उनका।
अलग नहीं रक्खूँगा तिनका॥
सबको मैं अपना समझूँगा।
धनमें हिस्सा सबको दूँगा॥
मेरी बाड़ीके फल-मूल।
सुंदर और सुगंधित फूल॥
सबके वे आयेंगे काम।
सबको दूँगा मैं आराम॥
पर-पीड़ामें मैं रोऊँगा।
पर-सुख देख सुखी होऊँगा॥
अपना सुख मैं सबको देकर।
सुखी बनूँगा पर-दुख लेकर॥
भूखोंको दूँगा निज-भोजन।
सुखसे मैं कर लूँगा अनशन॥
निज-पर भेद मिटाऊँगा मैं।
यों परमेश रिझाऊँगा मैं॥
कोख तुम्हारी सफल करूँगा।
सुखसे जीकर सुखी मरूँगा॥

* * *

पढ़ो, समझो और करो

(१)

ईश्वरने दी बच्चेको नयी जिंदगी

यह घटना कुछ वर्ष पूर्वकी है। पारसनाथ रेलवे स्टेशनपर एक युवा दम्पति अपने पाँच-छः माहके बीमार बच्चेको लेकर चिन्तातुर-मुद्रामें ट्रेनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी समय मेरे एक परिचित व्यक्तिकी नजर उस दम्पतिपर पड़ी। वे अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक उनके समीप गये और उन्हें चिन्तित देखकर अतिशय स्नेह एवं सहृदयतापूर्वक उनकी चिन्ताका कारण जानना चाहा।

उक्त दम्पतिमेंसे एकने अपने बच्चेको दिखाते हुए कहा कि इस बच्चेका काफी इलाज करा चुका, अधिकांश डॉक्टरोंने जवाब भी दे दिया है। इलाज कराते-कराते हम लोग थक गये हैं। यहाँ परदेशमें रहकर अब और बच्चेका दुःख सहन नहीं हो पा रहा है। अब कोई और उपाय न होनेके कारण हम अपने गाँव जा रहे हैं। बच्चेको जो होना है, अब वहीं होगा। इतना कहनेके बाद पति-पत्नीकी आँखोंमें आँसू छलछला आये। वे बच्चेके जीवनसे बिलकुल निराश हो चुके थे। उस समय बिलकुल निरीह-सी अवस्थामें परंतु स्नेहिल दृष्टिसे कभी अपने बच्चेकी ओर देखते और किसी अदृष्ट-चमत्कारिक प्रत्याशाकी दृष्टिसे मेरी ओर।

उस परिचितने बच्चेको देखा। बच्चा सुखंडी रोगसे पीड़ित था। उन्होंने कहा—आपके बच्चेको कुछ नहीं होगा; आप निश्चिन्त रहिये। चलिये यहीं समीप ही मेरा घर है। ट्रेनके भी आनेमें अभी तीन-चार घंटेकी देर है। कितनी देर यहाँ बैठियेगा। इतना कहनेके बाद बड़े प्रेमसे उस परिचित दम्पतिको अपने घर ले आये।

वहाँ उनके भोजनादिकी व्यवस्था करके उन्होंने बताया कि बचपनमें मेरे लड़केको यही बीमारी हुई थी और किसीके बतानेपर महामरीचादि तेल बच्चेको लगाने लगा था, उसी तेलसे लड़का स्वस्थ हो गया था। उसी समयकी रखी हुई उस आयुर्वेदिक तेलकी दो शीशी उन्होंने बच्चेकी माँको दी और दिनमें तीन-चार बार तेलसे बच्चेकी मालिश करनेको कहा। उनके इस सहानुभूतिपूर्ण उदारता एवं साधुताको देखकर उनके प्रति अश्रुपूरित नेत्रोंसे कृतज्ञता प्रकट करते हुए उक्त दम्पति वहाँसे एक अभिनव आशा लेकर बिदा हुए। मानवका स्वभाव है कि वह बहुत जल्दी निराश हो जाता है, परंतु ईश्वर तो सबका खयाल रखते ही हैं। कहा भी गया है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

लगभग दो माह बाद पुनः वे दम्पति बच्चेके साथ उनके घर आये। इस बार उनके चेहरेपर खुशी स्पष्ट झलक रही थी। बच्चा भी स्वस्थ था। वे लोग उस परिचितके प्रति, जिन्होंने आयुर्वेदिक तेल दिया था बार-बार अपना आभार प्रकट करते हुए साथमें लाये हुए कपड़े एवं मिठाई आदि उनके हाथोंमें देने लगे। वे इन चीजोंको स्वीकार नहीं कर रहे थे; परंतु दम्पतिने कहा कि ईश्वरकी दया और आपकी दवासे मेरे बच्चेको नयी जिंदगी मिली है। आप न होते तो क्या होता ? यह तो हम लोग सोच भी नहीं सकते। यही सब कहते हुए वे दम्पति बार-बार उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते रहे। इसपर उन्होंने कहा कि न मै कोई डॉक्टर हूँ न वैद्य, सिर्फ अपने व्यक्तिगत अनुभवके आधारपर यह तेल दिया था। और वह भी मेरे यहाँ संयोगसे ही सुरक्षित बचा हुआ था। ईश्वरकी कृपासे असम्भव भी सम्भव हो जाता है और निराशामें आशाकी चमक देदीप्यमान हो जाती है। यह तो केवल आप लोगोंपर भगवान्‌की असीम कृपाका प्रत्यक्ष परिणाम है।

—राजेन्द्रप्रसाद गुप्त

(२)

शिव-पञ्चाक्षर-मन्त्रका अद्भुत अनुभव

यह घटना २९-५-९५ की है। जिस संस्थामें मैं कार्यरत था, उसीके माननीय अध्यक्ष महोदयसे कुछ सैद्धान्तिक विचारोंको लेकर मेरी अनबन हो गयी। उन्होंने मुझसे नौकरीका इस्तीफा जबरदस्ती ले लिया। मैंने भी इसे भगवान्‌की इच्छा समझकर संतोष कर लिया और इसके बादका जीवन नाम-जप करते हुए शिवजी महाराजके पावन चरणोंमें बितानेका मन-ही-मन संकल्प ले लिया। शिव-पञ्चाक्षरी मन्त्र (**नमः शिवाय**)-के जपके लिये

किसी विशेष साधन-पद्धतिकी आवश्यकता नहीं है, ऐसा 'कल्याण' के 'शिवपुराणाङ्क' में मैंने पढ़ा था। अतः इस प्रेरणासे मैं सोते-जागते शिव-पञ्चाक्षरी मन्त्रका जप मन-ही-मन करता रहा। उधर संस्थाद्वारा इस्तीफा मंजूर न होनेके समाचार भी मिलते रहे, परंतु मैं कार्यपर उपस्थित न हुआ। जून-जुलाई दो महीने बीत गये। साधन गुप्तरूपसे चलता रहा, जिसे केवल मैं और आशुतोष शिवजी ही जानते थे। भगवान्‌का स्वभाव ही **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** की प्रतिज्ञाको सदैव स्मरण रखनेका है। अस्तु, मेरे साथ भी वैसा ही हुआ।

दिनाङ्क १९ अगस्त १९९५ को प्रातःकाल अकस्मात् ब्राह्ममुहूर्तमें मेरे कानमें खरखराती हुई यह आवाज आयी—'सात दिनमें सब ठीक हो जायगा।' मैं जाग गया और घरमें सबको यह बात बता दी। यह आवाज सुननेके बाद निरन्तर मेरे मनमें यह कौतूहल बना रहा कि आखिर वह किसकी आवाज थी ? नाम-जपकी साधना तो अनवरत चल ही रही थी, फिर भी विशेष उत्सुकतापूर्वक अब मुझे सातवें दिनका इंतजार था। ठीक छठे दिन दिनाङ्क २४ अगस्त ९५ को शिवजी महाराजके मन्दिरसे दर्शन करके लौटते समय रास्तेमें अचानक माननीय अध्यक्ष महोदयकी जीप मेरे पास आकर रुकी और गाड़ीसे उतरते हुए उन्होंने मुझसे कहा—'अब कोई बात नहीं है। आप कामपर कलसे अवश्य उपस्थित हो जाइये।' भगवान् सदाशिवकी प्रेरणावश उनके कथनानुसार ठीक सातवें दिन दिनाङ्क २५ अगस्त ९५ को मैं कामपर उपस्थित हो गया। इस प्रकार अकस्मात् आगत यह विपत्ति मेरे लिये वरदान सिद्ध हुई, जिसकी वजहसे शिवजी महाराजकी खरखराती हुई ही क्यों न हो, आवाज सुननेका सौभाग्य मुझे मिला। हे औढरदानी आशुतोष! आप अपने सभी भक्तोंको अपनी आवाज सुनाकर सतत उनकी सहायता करें, यही करबद्ध प्रार्थना 'कल्याण'के माध्यमसे आपसे है।

—हरिचरण अवस्थी

(३)

पार्वण-श्राद्धसे प्रेतात्माका उद्धार

सितम्बर सन् १९७० की बात है। पिलखुवा हमारे निवास-स्थानपर हापुड़के सुप्रसिद्ध कर्मकाण्डी विद्वान् पं० श्रीबालकरामजी शास्त्री पधारे। उन्होंने श्राद्ध-तर्पण, पिण्डदान, गया-श्राद्ध आदिके द्वारा पितरोंका और भूत-प्रेतादिकोंका कल्याण कैसे होता है, इसे शास्त्रोंके प्रमाण देकर सिद्ध करनेके पश्चात् स्वयं अपनी आँखों-देखी पार्वण-श्राद्धके द्वारा प्रेतात्माके उद्धारकी एक सत्य घटनाका भी आद्योपान्त वर्णन किया, जिसे सुनकर लोग आश्चर्यचकित हो गये। शास्त्रीजीद्वारा सुनायी गयी घटना हम यहाँ उन्हींके शब्दोंमें दे रहे हैं।

हापुड़के एक अग्रवाल वैश्य हैं। जिनकी लड़कीका नाम सत्यवती है। वह गाजियाबादमें विवाही है। उसके माता-पिता, भाई-बन्धु आदि तो सभी सनातनधर्मी हैं, परंतु जहाँ वह लड़की विवाही है, वहाँके लोग कुछ आर्यसमाजी विचारोंके हैं। कुछ दिनों-पूर्व वह लड़की बीमार हो गयी और उसका बड़े-बड़े चिकित्सकोंसे इलाज कराया गया; पर उससे उसे कुछ भी लाभ नहीं हुआ। उसे कोई शारीरिक रोग तो था नहीं कि औषधियाँ काम करतीं। उसे तो था प्रेतावेश, जिसे उसके घरवाले समझ नहीं रहे थे। एक दिन सत्यवतीका भाई महेन्द्रकुमार अपनी इस बहनको देखनेके लिये गाजियाबाद गया और उसने उसकी ऐसी हालत देखी तो वह समझ गया कि सत्यवतीको कोई बीमारी नहीं है, अपितु उसे प्रेतावेश है—उसे प्रेत सताता है। जब उसके सामने ही सत्यवतीको प्रेतावेश हुआ, तब प्रेतने उससे अपने उद्धारकी माँग की और साथ ही अपना उद्धार होनेपर सत्यवतीको छोड़ देनेका वचन दिया । महेन्द्रकुमार उस प्रेतको उद्धारका आश्वासन देकर वहाँसे मेरे पास आया। मैं उस समय हापुड़में माहेश्वरियोंवाले भगवान् श्रीराधावल्लभजी महाराजके मन्दिरमें था। महेन्द्रकुमारने आकर मुझसे अपनी बहन सत्यवतीकी यह कष्टकर दुःख-गाथा सुनायी और उसने मुझसे कहा कि शास्त्रीजी किसी प्रकार हमारी बहनको सतानेवाले प्रेतका उद्धार हो ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे उस दुष्ट प्रेतसे मेरी बहनका छुटकारा हो ।

मुझे उसकी बहनकी दुःखद गाथा सुनकर बड़ा ही दुःख हुआ और मुझे उसपर बड़ी दया आयी। परंतु उस प्रेतका उद्धार हो तो कैसे हो, और लड़कीको उस प्रेतसे छुटकारा कैसे मिले, अब यह समस्या मेरे सामने आयी। उसका उस समय कोई तात्कालिक उपाय मुझे सूझ नहीं

रहा था कि अब हो तो क्या हो ? दैवयोगसे उस दिन हापुड़में सुप्रसिद्ध धर्माचार्य पूज्यपाद श्रीजगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज पधारे हुए थे, जो उस समय भगवान् श्रीराधावल्लभजी महाराजके मन्दिरमें ही ऊपरके कमरेमें विराजमान थे। मेरा ध्यान बरबस उनकी ओर गया, सोचा कि यदि लड़कीकी रक्षा हो सकती है तो बस पूज्यपाद जगद्गुरु महाराजके बताये उपायसे ही हो सकती है, अन्यथा नहीं।

मैं लड़कीके भाईको अपने साथ लेकर जगद्गुरुजी महाराजके श्रीचरणोंमें जा पहुँचा। पूज्य श्रीआचार्यचरण रात्रि अधिक होनेके कारण अभी-अभी विश्राम करनेके लिये लेटे ही थे कि हमारे आनेकी आहट सुनकर जाग गये और बैठते हुए हमसे बोले कि शास्त्रीजी, इस समय कैसे आना हुआ ?

महेन्द्रकुमारने पूज्य जगद्गुरु शंकराचार्यजी महाराजको अपनी बहनकी दु:ख-गाथा सुनाते हुए बताया कि महाराज, मेरी बहनके शरीरमें प्रेतका आवेश होता है और दुष्ट प्रेत मेरी बहनको बहुत ही सताता है, इस कारण बहनके साथ-ही-साथ हम सभी तथा इसके ससुरालवाले भी बड़े ही परेशान हैं। किसी प्रकार उस प्रेतसे छुटकारा मिले, ऐसा कोई उपाय बतानेकी कृपा करें।

श्रीआचार्यचरणने महेन्द्रसे पूछा कि तुम्हारी बहनके शरीरमें प्रेतका आवेश है, यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

महेन्द्रकुमारने महाराजश्रीको आद्योपान्त घटना सुनाते हुए कहा कि महाराज, मैं हापुड़से अपनी परेशान बहन सत्यवतीको देखनेके लिये गाजियाबाद गया हुआ था तो उस समय मेरी बहन सत्यवतीके शरीरमें प्रेतका आवेश था। मैंने प्रत्यक्ष उस प्रेतसे इस प्रकार बातें कीं—

मैं—तुम कौन हो ?

प्रेत—मैं एक प्रेत हूँ ।

मैं—तुम इसे क्यों सताते हो, क्यों कष्ट देते हो ?

प्रेत—मैं बड़े कष्टमें हूँ, मेरा उद्धार करो।

मैं—तुम अपने उद्धारका कोई उपाय हमें बताओ, जिसे करनेसे तुम्हारा उद्धार हो जाय और हमारी बहनका भी कष्ट दूर हो जाय।

प्रेत—तुम लोग मेरे निमित्त कोई ऐसा शुभ कर्म करो अथवा कराओ, जिससे मुझे शान्ति मिले और मेरा प्रेत-योनिसे उद्धार हो, तभी मैं तुम्हारी बहनको छोड़ूँगा।

मैं—हमारी इस बहनकी ससुरालवाले तो आर्यसमाजी विचारके हैं, इसलिये वे तो इन सब बातोंको मानते नहीं हैं और जब उनका इन सब बातोंमें विश्वास ही नहीं है, तो वे कुछ करेंगे ही नहीं। अब यदि हम तुम्हारे उद्धारके लिये कुछ करा दें, तो तुम यह बताओ कि क्या हमारे करनेसे तुम्हारा उद्धार हो जायगा कि नहीं ?

प्रेत—तुम करवा दो, तुम्हारे करानेसे भी मेरा उद्धार हो जायगा।

मैं—अब यह बताओ कि तुम्हारे उद्धारके लिये हम क्या उपाय करें ?

प्रेत—देख भाई ! मुझे तो इसका कुछ पता है नहीं कि किस शुभ कर्मके करनेसे मेरा उद्धार होगा, यह तो तुम किसी ब्राह्मणसे मालूम करो कि किस शुभ कर्मके करानेसे प्रेतका उद्धार होता है, तो फिर वह शुभ कर्म तुम मेरे निमित्त करवा दो, जिससे मेरा उद्धार हो जाय।

मैं—अच्छा हम तुम्हारे उद्धारका कोई-न-कोई उपाय अवश्य ही करा देंगे।

प्रेत—यदि तुमने मेरा उद्धार करा दिया तो मैं भी तुम्हारी बहनको छोड़ दूँगा।

मैं—अच्छा अब तो तुम इसे छोड़ दो।

प्रेत—तुम हमें यह वचन दो कि हमारे उद्धारका उपाय कितने दिनोंमें करा दोगे ?

मैं—आज मंगलवारका दिन है, हम आनेवाले रविवारतक तुम्हारे निमित्त कोई-न-कोई ऐसा शुभ कर्म अवश्य ही करवा देंगे कि जिससे तुम्हारा उद्धार हो जाय। इसलिये अब तुम इसे छोड़ दो।

प्रेत—बहुत अच्छा, अब मैं तुम्हारी इस बहनको छोड़ देता हूँ और फिर इसे मैं नहीं सताऊँगा। तुम आनेवाले रविवारतक मेरे उद्धारका कोई-न-कोई उपाय अवश्य करा दो। यदि तुमने मेरे उद्धारका कोई उपाय न कराया तो मैं पुनः आकर इसे सताऊँगा।

मैंने जब बार-बार उसे आश्वस्त किया, तब उसने मेरी बात स्वीकार कर ली और वह तुरंत उसी समय मेरी बहनको छोड़कर उसके शरीरसे चला गया। अब क्या था? उस प्रेतके

जाते ही एकदम बेहोश सत्यवती बिलकुल होशमें आ गयी—बिलकुल ठीक-ठाक हो गयी, वह ऐसी दिखलायी पड़ने लगी मानो इसे कुछ हुआ ही न हो ।

परम पूज्यपाद स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजने प्रेतकी बात सुनकर उससे पूछा—'क्या तुमने उस प्रेतके उद्धारका कोई उपाय कराया है ?'

महेन्द्रकुमारने कहा—'महाराजजी, हम उस प्रेतके उद्धारका उपाय पूछनेके लिये उसी दिनसे बराबर लगे हुए हैं। बहुतोंसे पूछा भी किंतु हमें कोई सफलता अबतक नहीं मिली है।'

शंकराचार्यजी महाराजने यह सब सुनकर परामर्श दिया कि तुम लोग सुप्रसिद्ध तीर्थ श्रीगढ़मुक्तेश्वरमें जाओ और वहाँपर जाकर पतित-पावनी कलिमलहारिणी भगवती भागीरथीके परम पवित्र तटपर बैठकर पार्वणश्राद्ध और तीर्थश्राद्ध करो तथा दो सदाचारी पण्डितोंको गायत्रीका जप करनेके लिये बैठा दो।

पार्वणश्राद्ध कौन कराये? अब यह समस्या सामने आयी। पूज्यपाद जगद्गुरु शंकराचार्यजी महाराजने कहा कि शास्त्रीजी, तुम्हीं श्रीगढ़मुक्तेश्वर जाकर इसका विधि-विधानसे सब कार्य सम्पन्न कराओ। तत्पश्चात् हम पूज्य महाराजश्रीकी आज्ञा शिरोधार्यकर उनके निर्देशानुसार श्रीगढ़मुक्तेश्वर व्रजघाटपर पहुँच गये और उधरसे महेन्द्र भी सत्यवती एवं उसके पति आदिके साथ वहाँ पहले ही पहुँच गया था।

वहाँ पहुँचनेपर पता चला कि सत्यवतीपर पुन: प्रेतका आवेश हो गया है और वह बेहोशीकी अवस्थामें एक झोपड़ीमें लेटी हुई है। भाईने लड़कीके शरीरमें आये उस प्रेतसे कहा कि पण्डितजीके आनेमें कुछ देर हुई है और अब पण्डितजी आ गये हैं, तुम्हारे उद्धारका सब कार्य करेंगे, तुम जरा धैर्य रखो।

सर्वप्रथम हम सभीने श्रीगङ्गाजीमें स्नान किया तथा वहाँके देवी-देवताओंका, दर्शन-पूजन आदि किया। तदनन्तर पार्वणश्राद्ध करानेका सब कार्य प्रारम्भ हुआ। दो पण्डित गायत्री-जप करनेके लिये बैठा दिये गये। लड़कीके पतिने अपने आर्यसमाजी विचारोंको छोड़कर बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ सनातन धर्मानुकूल जो हमने बताये थे, सब कार्य सम्पन्न किया। कर्म करते समय आधा कर्म हो जानेपर पार्वणश्राद्धने, गायत्री-मन्त्रने और माता गङ्गाजीने अपना ऐसा अद्भुत चमत्कार दिखाना प्रारम्भ किया कि लड़कीके भाईने हमसे आकर कहा कि शास्त्रीजी, हमारी बहन झोपड़ीमें बैठी हुई है और वह यह कहती है कि लाओ हमारा भाग। तब हमने उससे कहा कि पण्डितजी उपाय करा रहे हैं, तुम्हारे निमित्त शुभ कार्यमें ही हम सब लगे हुए हैं।

उसके पश्चात् पार्वणश्राद्धके समाप्त होते समय अकस्मात् ऐसा चमत्कार हुआ कि जो लड़की अबतक झोपड़ीमें बेहोश पड़ी हुई थी, वही लड़की सहसा सबके देखते-देखते उठी और उस झोपड़ीमेंसे निकलकर श्रीगङ्गाजीकी ओर चल दी। वह अपने मुखसे बार-बार यह कहती जाती थी 'लो अब मेरा उद्धार हो गया और अब मैं यहाँसे जा रहा हूँ।' ऐसा कहते-कहते वह श्रीगङ्गाजीके जलमें प्रवेश कर आगे बढ़ती ही चली गयी। यह देखकर सब लोग भयभीत हो गये। हम सभी यह सोचने लगे कि कहीं ऐसा न हो कि यह गहरे जलमें जाकर डूब जाय। मैंने उसके घरवालोंसे कहा कि तुम घबराओ नहीं, इसे अंदर जाने दो, चिन्ता न करो।

उसने अंदर जाकर कण्ठतक जलमें खड़ा होकर श्रीगङ्गाजीमें ज्यों ही गोता लगाया, त्यों ही उसके शरीरमें व्याप्त उस प्रेतका उद्धार हो गया और वह लड़की उस प्रेतसे छुटकारा पाकर पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न होकर जलसे बाहर आ गयी तथा सदा-सर्वदाके लिये उसे उस प्रेतसे छुटकारा मिल गया। अब तो सबमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी, सभी गद्‌गद हो गये ।

यद्यपि पार्वणश्राद्धद्वारा प्रेतका उद्धार और इस लड़कीका संकट दूर हो चुका था, परंतु फिर भी हमने बादमें पूज्यपाद जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराजके निर्देशानुसार तीर्थश्राद्ध भी कराया। सब कार्य करते-कराते सायंकाल हो गया और सब लोग बड़े ही प्रसन्न थे । इसी प्रसन्नतामें सब लोग मिलकर पतितपावनी भगवती भागीरथीके परम पवित्र तटपर श्रीगङ्गाजी महारानीकी पूजा-प्रार्थना करके लौट आये।

उसके पश्चात् फिर कभी उस लड़कीको कोई कष्ट नहीं हुआ और अब वह पूर्ण प्रसन्न और स्वस्थ है।

—भक्त श्रीरामशरणदासजी

* * *

मनन करने योग्य

आज मैंने जाना, भारतमें बुद्ध भगवान्‌का जन्म क्यों हुआ!

द्वितीय विश्व-महायुद्ध चल रहा था। भारतीय सैनिकोंकी एक टुकड़ी जापानी सैनिकोंका मुकाबला कर रही थी। एक भारतीय सैनिककी गोली सामने खड़े जापानी सैनिकके कंधेमें लगी और वह लड़खड़ाकर जमीनपर गिर पड़ा। घावसे बड़ी तेजीसे रक्त बह रहा था तथा वह जीवन और मृत्युके बीचकी घड़ियाँ गिन रहा था।

एक दूसरे भारतीय सैनिककी दृष्टि उस तड़पते हुए घायल जापानी सैनिकपर पड़ी। सैनिककी छटपटाहट देखकर उसकी सुप्त मानवता जाग उठी। उसके मनमें विचार उठा—'जीवनके अन्तिम क्षणमें इस प्रकार तड़पते हुए व्यक्तिकी कुछ सहायता करनी चाहिये; मृत्युके विन्दुपर शत्रुता कैसी ? वह विशुद्ध सेवा-भावनासे उस जापानी सैनिकके पास गया। उसने जमीनपर पड़े हुए उसके सिरको अपनी गोदमें उठा लिया और अपने पासके थरमसमेंसे थोड़ी चाय प्यालीमें उड़ेलते हुए कहा—'दोस्त! भगवान् बुद्धके देशके सैनिक कितने बहादुर होते हैं, यह तुमने मोर्चेपर देख ही लिया है। अब उसी देशके एक सैनिकके हाथोंसे प्यारभरी चाय भी पी लो'।

—इतना कहकर भारतीय सैनिक जापानी सैनिकको चाय पिलानेका उपक्रम कर ही रहा था कि जापानी सैनिकके मनमें प्रतिहिंसाका भाव जाग्रत् हो गया । उसने देखा— शत्रुका सैनिक उसकी परिचर्यामें व्यस्त है। सेवाके प्रतिदानस्वरूप उसका कृतज्ञ होना तो दूर रहा, उल्टे उसके मनमें प्रतिशोधकी भावना प्रबल हो गयी। उसने धीरेसे अपनी जेबसे कटार निकाली और भारतीय सैनिककी आँख बचाकर उसके पेटमें भोंक दी। ***'जाको राखे साइयाँ मारि सकै नहिं कोइ'***—जापानी सैनिकका वार चूक गया और कटार भारतीय सैनिकके किसी मर्मान्तिक स्थानपर नहीं लगी। फिर भी वार गहरा था; वह अचेत होकर जमीनपर लुढ़क गया।

दोनों सैनिक रणाङ्गणमें घायल पड़े थे। थोड़ी देर पश्चात् घायलोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाला दल वहाँ पहुँच गया। वह घायल सैनिकोंको उठाकर उन्हें चिकित्सा-शिविरमें ले गया। जापानी और भारतीय—दोनों सैनिक भी अन्य घायलोंके साथ चिकित्सा-शिविरमें पहुँचा दिये गये।

भारतीय सैनिक तीन दिनोंतक बेहोश-सा रहा। उसके बाद जब उसे पूरा होश आया तो वह शिविरमें भर्ती अन्य घायलोंको भी पहचानने लगा। उसके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा, जब उसने अपनी चारपाईसे तीसरी चारपाईपर उसी घायल जापानी सैनिकको देखा ।

चार-पाँच दिनमें भारतीय सैनिक चलने-फिरने लायक हो गया। डॉक्टरोंने भी उसे शिविरमें ही कुछ टहलनेकी अनुमति दे दी। बिस्तरसे उठकर वह चायका थरमस लिये उस जापानी सैनिकके पास पहुँचा । थरमसमेंसे प्यालीमें चाय डालकर जापानी सैनिककी ओर उसे बढ़ाते हुए कहा-'दोस्त! मुझे पहचानते हो? लड़ाईके मैदानमें तुम्हारा और मेरा परिचय हुआ था। उस समय मैं तुम्हें चाय पिलाना चाहता था, पर पिला न सका, अब लो यह चायकी प्याली'—यों कहते हुए उसने चायकी प्याली जापानी सैनिकके मुँहसे लगा दी। वह भी उसके प्यारसे अभिभूत होकर चाय पीने लगा, परंतु उसको अपनी करनीपर अत्यन्त पश्चात्ताप हो रहा था। उसका हृदय भर आया; अन्तर्व्यथाके चिह्न उसके मुखपर स्पष्ट झलक रहे थे।

उसकी ऐसी विचित्र दशा देखकर भारतीय सैनिकने प्रश्न किया—'दोस्त! क्या बात है? तुम इतने उदास क्यों हो गये?'

जापानी सैनिकका गला अवरुद्ध हो गया; अस्पष्ट शब्दोंमें वह केवल इतना ही कह पाया—'आज मैंने जाना कि भारतमें भगवान् बुद्धका जन्म क्यों हुआ!'

* * *

क्लेशहर नामामृत

(इस नामामृतका श्रद्धापूर्वक पाठ करनेसे दोषों तथा क्लेशोंका नाश होकर पुण्य तथा भक्ति प्राप्त होती है, निष्काम पाठसे मनुष्य मुक्तिकी ओर अग्रसर हो सकता है।)

श्रीकेशवं क्लेशहरं वरेण्यमानन्दरूपं परमार्थमेव।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
श्रीपद्मनाभं कमलेक्षणं च आधाररूपं जगतां महेशम्।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
पापापहं व्याधिविनाशरूपमानन्ददं दानवदैत्यनाशनम्।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
यज्ञाङ्गरूपं च रथाङ्गपाणिं पुण्याकरं सौख्यमनन्तरूपम्।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
विश्वाधिवासं विमलं विरामं रामाभिधानं रमणं मुरारिम्।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
आदित्यरूपं तमसां विनाशं चन्द्रप्रकाशं मलपङ्कजानाम्।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
सखड्गपाणिं मधुसूदनाख्यं तं श्रीनिवासं सगुणं सुरेशम्।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
नामामृतं दोषहरं सुपुण्यमधीत्य यो माधवविष्णुभक्तः।
प्रभातकाले नियतो महात्मा स याति मुक्तिं न हि कारणं च॥
(पद्म० भूमि० ७३)

भगवान् केशव सबका क्लेश हरनेवाले, सर्वश्रेष्ठ, आनन्दस्वरूप और परमार्थ-तत्त्व हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। संसारके लोग इच्छानुसार उसका पान करें। भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है। उनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं। वे जगत्के आधारभूत और महेश्वर हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। संसारके लोग इच्छानुसार उसका पान करें। (भगवान् विष्णु) पापोंका नाश करके आनन्द प्रदान करते हैं। (वे) दानवों और दैत्योंका संहार करनेवाले हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। संसारके लोग उसका इच्छानुसार पान करें। यज्ञ भगवान्के अङ्गस्वरूप हैं, उनके हाथमें सुदर्शनचक्र शोभा पाता है। वे पुण्यकी निधि और सुखरूप हैं। उनके स्वरूपका कहीं अन्त नहीं है। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। संसारके लोग उसका इच्छानुसार पान करें। सम्पूर्ण विश्व उनके हृदयमें निवास करता है। वे निर्मल, सबको आराम देनेवाले, 'राम' नामसे विख्यात, सबमें रमण करनेवाले तथा मुर दैत्यके शत्रु हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। संसारके लोग उसका इच्छानुसार पान करें। भगवान् केशव आदित्यस्वरूप, अन्धकारके नाशक, मलरूप कमलोंके लिये चाँदनीरूप हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उसे यहीं लाकर सुलभ कर दिया है, सब लोग उसका पान करें। जिनके हाथमें नन्दक नामक खड्ग है, जो मधुसूदन नामसे प्रसिद्ध, लक्ष्मीके निवासस्थान, सगुण और देवेश्वर हैं, उनका नामामृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। राजा ययातिने उसे यहीं लाकर सुलभ कर दिया है, सब लोग उसका पान करें।

यह नामामृत-स्तोत्र दोषहारी और उत्तम पुण्यका जनक है। लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुमें भक्ति रखनेवाला जो महात्मा मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल नियमपूर्वक इसका पाठ करता है, वह मुक्त हो जाता है, पुनः प्रकृतिके अधीन नहीं होता।

(महाराज ययातिका प्रजाको संदेश)

* * *

285
15-5-98

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३
प्र० ति० १०-३-९८
LICENCE NO.–3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

आवश्यक सूचना एवं निवेदन

इस वर्ष (जनवरी १९९८ ई०)-का विशेषाङ्क—**'भगवल्लीला-अङ्क'** जिसमें फरवरी मासका अङ्क संलग्न है-(मार्च मासके अङ्कके साथ) ग्राहकोंकी सेवामें भेजा जा चुका है। जिन ग्राहकोंका अग्रिम शुल्क समयसे प्राप्त हो गया था, उन्हें 'कल्याण' रजिस्ट्रीद्वारा तथा शेष ग्राहकोंको नियमानुसार वी० पी० पी० द्वारा प्रेषित किया जा चुका है। जिन ग्राहक महानुभावोंको रुपये भेजनेके बाद भी अभीतक रजिस्ट्री नहीं प्राप्त हुई है वे मनीआर्डरकी पावती रसीदकी फोटो-नकल जाँच-हेतु भेजनेकी कृपा करें।

जिन ग्राहकोंकी वी० पी० पी० वापस लौट आयी है, उनसे अनुरोध है कि वे विशेषाङ्कका शुल्क रु० ९४ का मनीआर्डर (वार्षिक शुल्क रु० ८० तथा १४ रु० वी० पी० पी० वापसी डाक-व्यय) भेजकर 'कल्याण' मँगवानेकी कृपा करें अथवा हमें पत्र लिखें, जिससे उन्हें रु० ९४ की वी० पी० पी० से अङ्क पुनः भेजा जा सके। सजिल्द विशेषाङ्क मँगानेके इच्छुक ग्राहकोंको १० रुपये जिल्दचार्जका अतिरिक्त जोड़कर भेजना चाहिये। कुछ ग्राहकोंका वार्षिक शुल्क वी० पी० पी० भेजनेके बाद विलम्बसे प्राप्त हुआ है, उनके रुपयोंका समायोजन वी० पी० पी० का भुगतान आनेके बाद उनके लिखे-अनुसार किया जा सकेगा।

चालू वर्ष (जनवरी १९९८ ई०)-का विशेषाङ्क भगवान्‌की लीलाओंसे ओत-प्रोत होनेके कारण **'भगवल्लीला-अङ्क'**- के नामसे निकाला गया है, जिसमें भगवान् शिव, भगवान् गणेश, भगवती जगदम्बा दुर्गा, भगवान् विष्णु तथा भगवान् सूर्यके विभिन्न लीला-चरित्रोंसहित महाविष्णुकी अवतार-कथाएँ एवं भगवान् श्रीराम, भगवान् श्रीकृष्णकी ऐश्वर्य-माधुर्यपूर्ण ललित-लीलाओंका सुन्दर वर्णन है, जिसे पढ़कर ग्राहक महानुभावोंको बहुत आनन्द आयेगा। अतः हमारा निवेदन है कि ग्राहक महानुभाव 'कल्याण' के नये ग्राहक अधिकाधिक संख्यामें बनायें तथा वार्षिक शुल्क ८० रु०, सजिल्दका ९० रु० मनीआर्डरद्वारा भिजवाकर विशेष आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करें।

व्यवस्थापक-**'कल्याण'—कार्यालय, पत्रालय-गीताप्रेस**—२७३००५ (गोरखपुर)

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर,
२-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक,
३-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल,
(गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये)
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता-गीताप्रेस, गोरखपुर,
४-सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका,
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता-गीताप्रेस, गोरखपुर,
५-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं।
गोविन्दभवन-कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कलकत्ता, (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकृत।)

मैं केशोराम अग्रवाल गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

केशोराम अग्रवाल
(गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये)
—**प्रकाशक**

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना

प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्ष भी गीताभवन, स्वर्गाश्रममें सत्संगके आयोजनकी व्यवस्था है। यहाँ **परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज**का चैत्र शुक्लपक्षके (अप्रैल-द्वितीय सप्ताह) अन्तमें पहुँचनेका विचार है। अन्य साधु एवं विद्वान् भी पधारनेवाले हैं।

सत्संग-हेतु आनेवालोंसे विनम्र निवेदन है कि वे सत्संग, साधन तथा भजनके उद्देश्यसे ही यहाँ पधारें; जलवायु-परिवर्तन आदिके उद्देश्यसे नहीं। यहाँके सीमित आवास-कालमें सभीको संयमित और नियमित साधक-जीवन बिताते हुए आयोजित सत्संग आदिके कार्यक्रमोंमें प्रतिदिन अनिवार्यरूपसे सम्मिलित होना चाहिये।

महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये; उन्हें किसी निकट-सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने आदि जोखिमकी वस्तुओंको जहाँतक सम्भव हो, नहीं लाना चाहिये। खाने-पीनेके सामानकी व्यवस्था यहाँ यथासाध्य की जाती है।

व्यवस्थापक—**गीताभवन, पो०-स्वर्गाश्रम**—२४९३०४

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

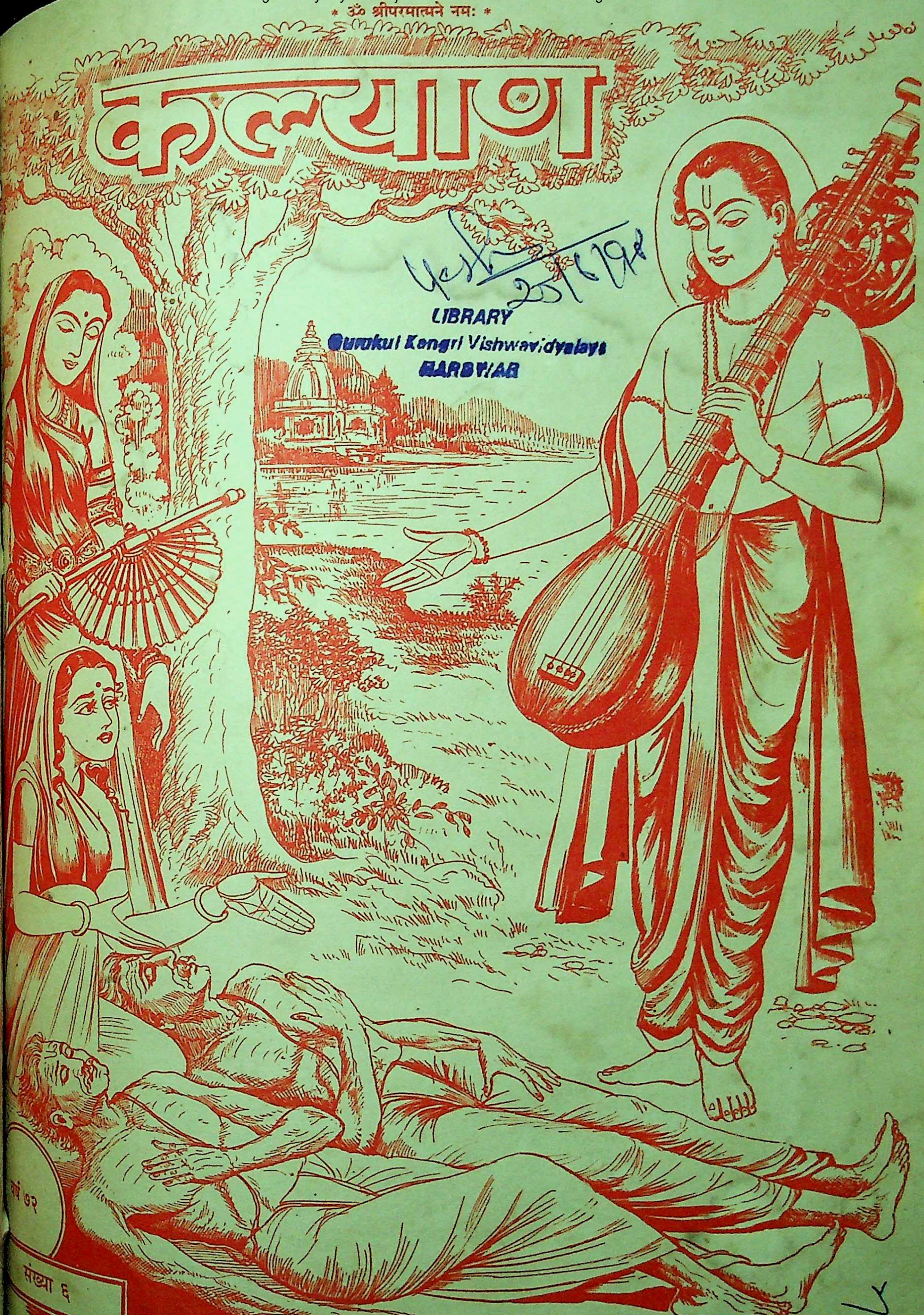

23/6/98
LIBRARY
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARDWAR

वर्ष ७२
संख्या ६

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,३५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर आषाढ़, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, जून १९९८ ई०

विषय — पृष्ठ-संख्या

१- भगवान्‌की लीलाओंका श्रवण करना चाहिये ६०५
२- कल्याण (शिव) ६०६
३- महत्त्वपूर्ण बात (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ६०७
४- आत्मचिन्तन (विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी) ६१४
५- सच्चा भिखारी (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ६१५
६- अच्छा बोलो (स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी) ६१९
७- साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ६२२
८- प्राणिमात्रके साध्य भगवान् सदाशिव ६२४
९- *लीला-चिन्तन*— .... ६२५—६३१
[क] श्रीरामलीला-चिन्तन .... ६२५—६२७
चुटकी-सेवा ६२५
[ख] श्रीकृष्णलीला-चिन्तन .... ६२८—६३१
प्रभुकी आँखमिचौनी लीला ६२८
१०- साधक-प्राण-संजीवनी (गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज) ६३२
११- एक पलके सत्संगसे अलौकिक आनन्द (प्रभु)-की प्राप्ति (श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति) .. ६३४
१२- पशु और पर्यावरण (श्रीपन्नालालजी मुन्धड़ा) .. ६३६
१३- आँख और पेटकी बीमारी (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ६३८
१४- *बाल-कल्याण*— .... ६४०—६४६
[१] बालकोंका रक्षण तथा शिक्षण ६४०
[२] ईमानदार बालक वीरेश्वर मुखोपाध्याय ६४६
१५- साधनोपयोगी पत्र ६४७
१६- पढ़ो, समझो और करो ६४८
१७- मनन करने योग्य—शुद्ध कमाई (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०) ६५१

* * *

चित्र-सूची

१-अपने पुत्रों (ज्ञान, वैराग्य)-के वार्धक्यसे दुखी भक्तिदेवीको नारदजीकी सान्त्वना (इकरंगा) आवरण-पृष्ठ
२-श्रीकृष्ण-लीलाके चार प्रसंग (रंगीन) मुख-पृष्ठ

* * *

इस अङ्कका मूल्य ४ रु०
विदेशमें—US$0.40
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ८० रु०
(सजिल्द ९० रु०)
विदेशमें—US$11

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

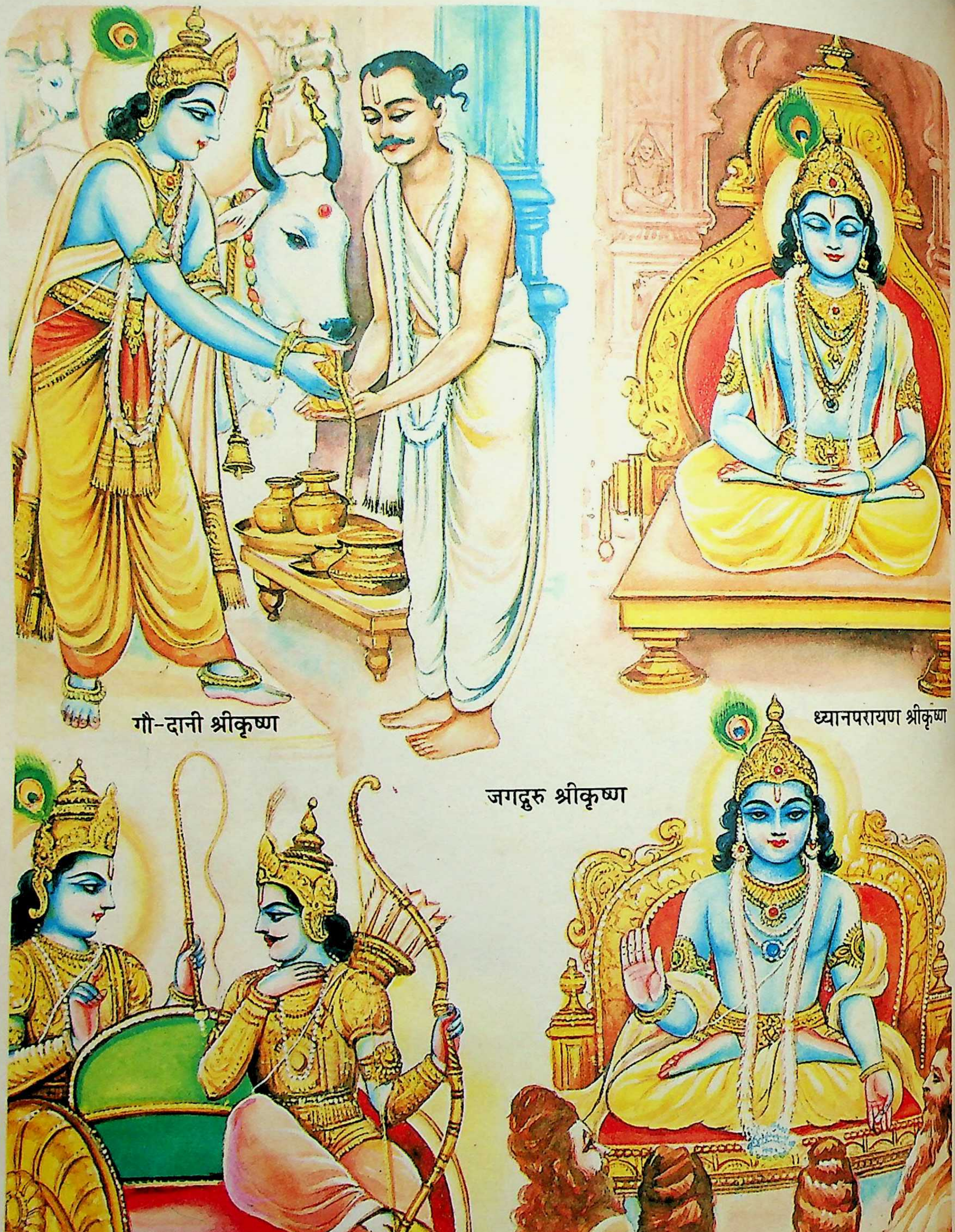

गौ-दानी श्रीकृष्ण

ध्यानपरायण श्रीकृष्ण

जगद्गुरु श्रीकृष्ण

गीतावक्ता श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण-लीलाके चार प्रसंग

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

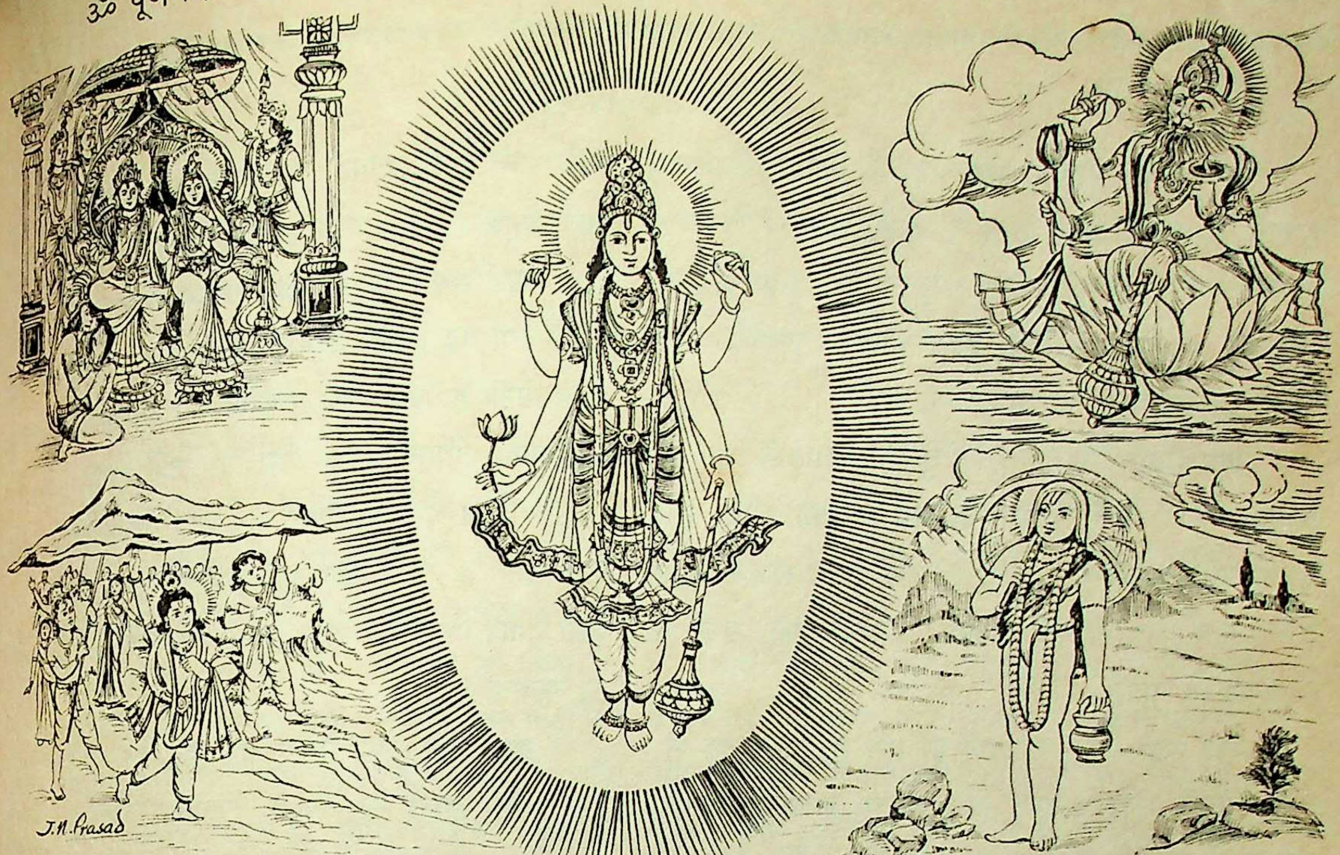

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

वर्ष ७२ } गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, जून १९९८ ई० { संख्या ६ / पूर्ण संख्या ८५९

भगवान्‌की लीलाओंका श्रवण करना चाहिये

इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयाऽऽत्त-
लीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि।
कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य
श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन्॥

(श्रीमद्भा० १०।९०।४९)

[**श्रीशुकदेवजी कहते हैं—**] परीक्षित्! प्रकृतिसे अतीत परमात्माने अपने द्वारा स्थापित धर्म-मर्यादाकी रक्षाके लिये दिव्य लीला-शरीर ग्रहण किया और उसके अनुरूप अनेकों अद्भुत चरित्रोंका अभिनय किया। उनका एक-एक कर्म स्मरण करनेवालोंके कर्मबन्धनको काट डालनेवाला है। जो यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाका अधिकार प्राप्त करना चाहे, उसे उनकी लीलाओंका ही श्रवण करना चाहिये।

कल्याण

याद रखो—भगवान् मङ्गलमय हैं, चाहे तुम्हें अच्छा न लगे, पर वे जो कुछ करते हैं, तुम्हारे अच्छेके लिये ही करते हैं। इसलिये कुछ कहना-सुनना हो, कुछ अभाव-अभियोग हो तो सच्चे मनसे हृदय खोलकर उन्हींसे कहो। किसी दूसरेसे कुछ भी आशा मत करो।

याद रखो—जगत्के लोग तुम्हारे स्वार्थकी बात मन लगाकर कभी नहीं सुनेंगे। वे उसी बातको रसके साथ सुनेंगे, जो उनके स्वार्थकी होगी। तुम उनके सामने अपना दुःख रोकर कुछ भी नहीं पाओगे। वे सुनेंगे नहीं, सुनेंगे तो लापरवाहीसे सुनेंगे।

याद रखो—एक भगवान् ही ऐसे हैं, जो तुच्छ-से-तुच्छ जीवके सुख-दुःखकी बात ध्यानसे सुनते हैं, सुनकर उसे सुखी करनेके लिये प्रयास करते हैं; क्योंकि वे सबके अपने हैं, सबके आत्मा है, सबके सुहृद् हैं, सबका सुख-दुःख उनका अपना ही सुख-दुःख है। इसीसे गीतामें भगवान्ने कहा है कि 'मुझको सुहृद् जानते ही शान्ति मिल जाती है।'

याद रखो—भगवान्की तुम्हारेमें ममता है, तुम कैसे हो इस बातको भगवान् नहीं देखते। वे देखते हैं केवल इस बातको कि उनमें तुम्हारा विश्वास है या नहीं। यदि तुम्हारा उनमें विश्वास-भरोसा है तो वे वैसे ही तुम्हारा सहज ही मङ्गल करेंगे, जैसे स्नेहमयी माता अपने मैले-कुचैले मलभरे पुत्रका करती है।

याद रखो—भगवान्पर विश्वास-भरोसा करनेसे ही भगवान्की सहज कृपाका अनुभव होता है, अतः दूसरी ओर, दूसरोंकी ओर ताकना छोड़ दो। किसी मनुष्यकी कृपाकी ओर या किसी कार्यविशेषकी ओर ललचायी दृष्टिसे न देखकर, सब ओरसे दृष्टि हटाकर अपनी दृष्टि केवल भगवान्की अमोघ कृपाकी ओर लगा दो। पुकारो, रोओ, उन अपने परम आत्मीयके सामने जो किसी अवस्थामें तुमसे घृणा नहीं करते, कभी किसी बातसे भी मन मैला नहीं करते, अपराधोंको बिसारकर अल्पसे गुणोंपर ही रीझ जाते हैं और जो अमोघ तथा अतुलनीय शक्तिशाली हैं।

याद रखो—मनुष्य यदि प्रसन्न भी हुआ तो वह क्या देगा? क्या वह तुम्हारे अभावकी निवृत्ति कर देगा; जो स्वयं अभावग्रस्त है, जो स्वयं तृष्णाके मारे व्याकुल है, जो खुद कामनाकी आगसे जल रहा है, वह तुम्हारे अभावकी निवृत्ति किस वस्तुको देकर कर देगा, वह तुम्हारी तृष्णाको कैसे शान्त कर देगा और वह तुम्हारी कामनाकी आग कैसे बुझा देगा। भिखमंगा कैसे किसी भिखारीके भिखारीपनको हर सकता है।

याद रखो—तुम मनुष्य हो, बुद्धिमान् हो, विवेकशील हो—एक छोटा-सा पक्षी पपीहा स्वातीके जलको छोड़कर प्राण निकलनेकी अवस्थामें भी दूसरा जल नहीं पीता, जलके लिये दूसरी ओर नहीं ताकता, अपनी टेकपर अड़ा रहता है, तब तुम मनुष्य होकर भी क्या इतने गये-बीते हो, जो सर्वसमर्थ सर्वज्ञ परम सुहृद् भगवान्को छोड़कर इधर-उधर ताकते हो! व्यभिचारिणी कुलटा स्त्रीकी भाँति जिस-तिसके हाथ अपने मनको बेचकर उसकी ओर ललचायी आँखोंसे देखते हो! तुम्हें लज्जा आनी चाहिये।

याद रखो—तुम्हारे ये संसारी बन्धु, संसारी पदार्थ, संसारी सुविधा—ये सभी तुम्हें समयपर ऐसा धोखा देंगे कि तुम उसे देखकर दंग रह जाओगे और अपनी भूलपर सिर पीटकर पछताओगे; पर उस समय कोई उपाय तुम्हारे हाथमें नहीं रह जायगा। अभीसे चेत जाओ और एकमात्र भगवान्को—भगवान्की कृपाको ही लक्ष्य बनाकर अपनी जीवन-नौकाको उन्हींके भरोसे छोड़ दो। डाँड़ चलाओ-विहित कर्म करो, पर आशा-भरोसा रखो—एकमात्र अपने नित्य साथ रहनेवाले और साथ देनेवाले केवल एक भगवान्का ही।

—'शिव'

महत्त्वपूर्ण बात

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

हम सभी लोग बहुत दिनोंसे परमात्माकी प्राप्तिकी चेष्टा कर रहे हैं, किंतु परमात्माकी प्राप्ति अभी हुई नहीं है। अपने मनमें है कि हम खूब प्रयत्न करते हैं, किंतु इसमें कमी है। प्रत्येक भाईको अपनी कमीकी ओर ध्यान देना चाहिये। संसारके विषय-भोगोंमें, पदार्थोंमें, अपने शरीरमें, कंचन और कामिनीमें, मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा आदिमें आसक्ति ही इसमें बाधक है। आसक्तिके कारण ही इच्छा पैदा होती है, काम और लोभकी उत्पत्ति होती है। इसीके कारण संसारके विषय-भोगोंमें ममता हो जाती है, आकर्षण हो जाता है, जिससे मनुष्य विषयोंमें डूब जाता है, भोगोंमें फँस जाता है। जैसे अज्ञानके कारण दलदलमें गाय फँस जाती है और अन्तमें तड़प-तड़प कर मरती है, पतंगे दीपककी शिखाको सुख समझकर उसके निकट जाते हैं और झुलस कर तड़प-तड़प कर मरते हैं। यही दशा विषयासक्त पुरुषोंकी है।

हमको सब प्रकारसे स्वार्थका त्याग करना चाहिये। शुरूमें रुपयोंका लोभ मनुष्यको गिरा देता है। रुपयोंको आदर देना, महत्त्व देना बहुत ही खतरेकी चीज है, परंतु विषयासक्त पुरुषको रुपयोंको आदर देना ही पड़ता है; क्योंकि वह विषयोंका दास है। यदि चित्तमें वैराग्य हो तो मनुष्य ऐश-आराम, स्वाद-शौकीनी, भोग-विलास आदिका क्षणमें त्याग कर सकता है। शस्त्ररूपी तीव्र असंग-अनासक्ति-वैराग्यके द्वारा अहंता, ममता, कामना, वासना, आसक्ति आदि फाँसियोंको काट सकता है—

अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥

(गीता १५। ३)

तात्पर्य यह कि इस संसाररूपी वृक्षकी जड़ें बहुत गहन हैं; जैसे अहंता, ममता, कामना, वासना, आसक्ति। संगका नाम राग और असंगका नाम वैराग्य है। वैराग्य भी तीव्र एवं दृढ़ होना चाहिये। तीव्र वैराग्यरूपी शस्त्रके द्वारा संसाररूपी वृक्षको मनुष्य काट सकता है। संसारमें सम्बन्धरहित होना ही संसार-वृक्षको काटना है। मनसे संसारका सम्बन्ध-विच्छेद करना ही उसको काटना है। इसके बाद उस पदका अन्वेषण करना चाहिये जहाँ जाकर फिर वापस नहीं आना पड़ता। 'पद' शब्दके अनेक नाम हैं, जैसे धाम, निधान, परमपद। 'पद' शब्दको इनमेंसे किसी भी नामसे उच्चारित किया जा सकता है—

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी॥

(गीता १५। ४)

भाव यह कि उस पदका, उस परमधामका, उस निजधामका—परमपदकी खोज करनी चाहिये, जिसे पाकर—जिस परमात्माको पाकर—जिस परमपदको पाकर फिर संसारमें लौटकर नहीं आना पड़े। उसको प्राप्त करनेका उपाय है—'मैं उस परमात्माकी शरण हूँ'—इस प्रकारसे उसकी शरण होना चाहिये, यह सबसे बढ़कर उपाय है।

जिस परमात्मासे इस संसारकी उत्पत्ति हुई है एवं विस्तार हुआ है, उस परमात्माकी शरण होना चाहिये। संसारमें सुख-बुद्धि करनेके कारण आसक्ति होती है। शरीरमें तथा संसारमें एवं भोगोंमें जो सुख-बुद्धि है वह अज्ञानसे है। वास्तवमें इसमें सुख है ही नहीं, मूर्खतासे सुख प्रतीत होता है। इस प्रकारसे प्रतीत होनेवाले सुखको सुख मानकर जीव इसमें फँस जाता है और वह जालमें फँसी हुई मछलीकी तरह तड़प-तड़प कर मर जाता है। ध्यान देना चाहिये कि संसारके सारे पदार्थ नाशवान्, क्षणभंगुर हैं, ऐसा समझकर इनसे वैराग्य करना चाहिये—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

इन्द्रियों और विषयोंका जो सम्बन्ध—संस्पर्श है और उससे उत्पन्न हुआ जो सुख है वह संस्पर्शजन्य सुख है। वह सांसारिक सुख इन्द्रियों और विषयोंके सम्बन्धसे होनेवाला है; उसको राजसी सुख बतलाया गया है। यह नाशवान् है, क्षणभंगुर है। यह आरम्भमें अमृतके समान दीखता है, इसमें जीव फँस जाते हैं और इसका परिणाम विषके समान

फलदायी होता है। भगवान् गीता (५। २२)-में कहते हैं कि वे सुख इन्द्रियों और विषयोंके सम्बन्धसे उत्पन्न होते हैं जो दु:खके हेतु हैं, आदि-अन्तवाले हैं, क्षणभंगुर हैं ऐसा समझकर विवेकी उनमें नहीं फँसते। जिसके चित्तमें थोड़ा विवेक है, वह नहीं फँसता, मूर्खलोग फँसते हैं। इस प्रकार समझकर मनुष्यको किसी प्रकार संसार और संसारके पदार्थोंको महत्त्व नहीं देना चाहिये। अपने किसी भी प्रकारके बड़प्पनका—पदका जैसे मैं ब्राह्मण हूँ, मैं संन्यासी हूँ, मैं पिता हूँ, मैं मैनेजर हूँ, मैं कलेक्टर हूँ—ऐसे ही और भी किसी प्रकारके पदका अपने मनमें कभी भी न अभिमान करना चाहिये, न आदर देना चाहिये। हाँ, दूसरोंके पदका आदर अवश्य करना चाहिये। दूसरोंका अनादर करनेका हमारा क्या अधिकार है। अपने नामका, रूपका, धनका, अपनी इज्जतका, अपने कुटुम्बका या अपने बलका यानी किसी भी प्रकारका अभिमान अपनी आत्माका पतन करनेवाला है। अभिमानसे बहुत दूर रहना चाहिये तथा इन नाशवान् पदार्थोंको भी महत्त्व नहीं देना चाहिये। जैसे धन है, विद्या है, बल है, अपना शरीर है, अपना किसी भी प्रकारका बड़प्पन है, अपनेमें गुण है, पद है या कोई भी आचरण है, कोई भी अपनेमें अच्छापन है आदि किसीको भी कभी महत्त्व नहीं देना चाहिये।

'इतने दिन हो गये अभीतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई है'—ऐसा मानकर कभी निराश भी नहीं होना चाहिये। क्योंकि परमात्माकी प्राप्तिके लिये जैसा प्रयत्न करना चाहिये वैसा आपने अभी किया नहीं। यदि किया भी है तो कम मात्रामें किया है, इसलिये वह नहींके समान है। परमात्माकी प्राप्तिके लिये बहुत समयकी आवश्यकता नहीं है। इसमें कोई बहुत कठिनाई नहीं है, इसमें कोई परिश्रमका काम नहीं है, केवल समझनेकी आवश्यकता है। अपने हृदयमें जो स्वार्थबुद्धि है उसका त्याग करना चाहिये, बाहरके त्यागसे कोई लाभ नहीं है। यदि लाभ है तो केवल मामूली, असली लाभ तो भीतरके त्यागसे है। यदि आपके दिलमें रुपयोंके लिये आदर है तो भगवान् आपसे बहुत दूर हैं। जो रुपयोंका दास है वह भगवान्‌का दास नहीं है, जहाँ काम है वहाँ राम नहीं है। जहाँ रुपयोंका आदर है वहाँ भगवान् नहीं है। मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाके लिये न तो हमें इच्छा करनी चाहिये और न ही प्राप्त होनेपर उसका आदर करना चाहिये। जैसे रुपयोंका आदर करना—उसको महत्त्व देना हमारे लिये हानिकर है, इसी प्रकार मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाको आदर देना हमारे लिये खतरनाक है। जिससे मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा हो ऐसा कार्य तो करना है, पर मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाको छूना नहीं है। मान-बड़ाई-प्रतिष्ठामें, शरीरमें और भोगोंमें जो आसक्ति है, प्रीति है, वह खतरेवाली चीज है, उसका त्याग करके आप कहीं भी रहें; चाहे गृहस्थमें, चाहे संन्यासमें—

खतरेवाली वस्तुको जिसने दीन्ही छाड़।
चाहे रहे बजारमें चाहे रहे उजाड़॥

आसक्ति खतरेकी चीज है। शरीरमें, संसारमें, भोगोंमें जबतक आसक्ति है, तबतक आप भगवान्‌से बहुत दूर हैं। गृहस्थाश्रम छोड़कर चाहे घोर जंगलमें चले जाइये कोई विशेष लाभ नहीं है। एकान्त स्थानमें रहो तो वहाँ भय पैदा हो सकता है, क्योंकि आपके चित्तमें वैराग्य नहीं है। जब चित्तमें वैराग्य नहीं है तो गृहस्थाश्रमका त्याग व्यर्थ है और जब चित्तमें वैराग्य हो, गृहस्थाश्रमका त्याग व्यर्थ है। वैराग्य नहीं है तो वनमें—एकान्तमें रहनेमें भी कोई लाभ नहीं है; क्योंकि जब वैराग्य नहीं है तो वहाँ भी फँसाव हो सकता है। यदि वैराग्य है तो हजारों-लाखों आदमियोंके बीचमें भी रहनेमें भी क्या कोई हानि है!

एक समय राजा जनक संन्यास लेना चाहते थे। जब उनकी स्त्रीको मालूम हुआ तो उसने पतिको समझाया कि आप संन्यास लेते हैं इसका तत्त्व मेरी समझमें नहीं आया। यदि आपके चित्तमें वैराग्य है तो संन्यासकी आवश्यकता नहीं है और वैराग्य है तो आप कहीं रहें संसारके विषय-भोग आपको दबा नहीं सकते और यदि चित्तमें वैराग्य नहीं है तो संन्यासाश्रमसे मुक्ति नहीं हो सकती चाहे आप कहीं चले जायँ। यदि कहें कि संन्यासाश्रम लेकर मैं बहुतोंको लाभ पहुँचाऊँगा, बहुतसे संन्यासियोंको लाभ पहुँचाऊँगा। साधु-संन्यासियोंको संन्यास लेनेसे ही लाभ पहुँच सकता है। यदि ऐसी बात है तो संन्यास लेनेपर संन्यासियोंको लाभ पहुँचेगा और गृहस्थीमें रहनेसे गृहस्थियोंको लाभ पहुँचेगा। हम लोग गृहस्थी हैं और हम लोगोंको गृहस्थीमें रहनेसे लाभ पहुँच सकता है; जैसे संन्यासियोंको संन्यास लेनेसे

पहुँच सकता है। जैसे आप संन्यास लेकर संन्यासियोंको लाभ पहुँचाना चाहते हैं वैसे हम गृहस्थियोंको लाभ पहुँचानेके लिये आपको गृहस्थमें रहना चाहिये। अपनी पत्नीकी युक्तिसंगत और शास्त्रसम्मत बात सुनकर राजा जनकने संन्यासका विचार अपने दिलसे निकाल दिया और फिर वे आजीवन ही गृहस्थाश्रममें रहे। सार बात यह है कि चित्तमें वैराग्य ही प्रधान है। वैराग्य यदि नहीं है तो चाहे वह कहीं रहे उसको कहीं लाभ नहीं है। और यदि वैराग्य है तो वह कहीं रहे उसे सब जगह लाभ है। देश और काल तो निमित्तमात्र हैं। असली चीज तो संसारसे वैराग्य और ईश्वरमें प्रेम है। ईश्वर-विषयक ज्ञान ही सबसे बढ़कर है। कर्मयोगकी सिद्धि बिना वैराग्य नहीं हो सकती, ज्ञानयोगकी सिद्धि परमात्माके तत्त्वको जाने बिना नहीं हो सकती और भक्तियोगकी सिद्धि प्रेमके बिना नहीं हो सकती। संसारसे वैराग्य और भगवान्‌से प्रेम भक्तिके मार्गमें ये दोनों ही बातें पहले हैं। ज्ञानके मार्गमें परमात्माका तत्त्व जानना सत् वस्तु है और संसारमें आसक्ति करना असत् वस्तु है, क्योंकि परमात्मा सत् है और संसार असत्—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(गीता २। १६)

तत्त्वयोगियोंका कहना है कि सत्‌का कभी अभाव नहीं होता और मिथ्या वस्तुका भाव नहीं होता, वह कभी शाश्वत नहीं रहता। जितने ये दृश्य पदार्थ हैं ये सभी नाशवान् हैं, क्षणभंगुर हैं, ये रह नहीं सकते। इस न्यायसे ये सब वस्तुएँ मिथ्या हैं, क्षणभंगुर हैं, मायामात्र हैं, ऐसा समझकर इनको भुला देना चाहिये। भावरूप जो वस्तु है वह परमात्मा है, सत् है, सत् होते हुए चेतन है और चेतन ही आनन्द है और परमात्मा सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप है। सत्-चित्-आनन्द-स्वरूपको छोड़कर जो मिथ्या नाशवान्—क्षणभंगुर पदार्थोंका आदर करता है वह मूर्ख है। भक्तिके मार्गमें प्रेम प्रधान है पर वह प्रेम अनन्य होना चाहिये। जिसका किसी दूसरी वस्तुमें प्रेम है उसको भगवान् नहीं मिलते। भगवान् कहते हैं कि वह भक्ति व्यभिचारिणी भक्ति है। जैसे पतिव्रता स्त्रीका अपने पतिमें प्रेम रहता है और दूसरे पुरुषोंमें भी प्रेम रहे तो वह स्त्री व्यभिचारिणी है। इसी प्रकार भगवान् कहते हैं कि जो मेरी भक्ति करता है और संसारके विषय-भोगोंमें उसकी आसक्ति रहती है, उसे भोग प्यारे लगते हैं तो ये सब मेरी प्रीतिमें कलंक हैं, उसमें व्यभिचार-दोष है। हरेक मार्गसे विचारनेपर यह बात सिद्ध होती है कि आसक्तिका अभाव होना ही चाहिये। आसक्तिका अभाव तीव्र वैराग्य है। तीव्र वैराग्यके बिना न तो ज्ञानयोगकी सिद्धि हो सकती है, न भक्तियोगकी सिद्धि हो सकती है, और न कर्मयोगकी ही सिद्धि हो सकती है। संसारके इन नाशवान्, क्षणभंगुर अनित्य पदार्थोंमें आसक्ति करना, प्रेम करना मूर्खता नहीं तो क्या है? यह तो अपने गलेमें फाँसी लगाकर मरना है। यह बड़ी भारी खतरेकी चीज है। यह अनादिकालसे है। जबसे यह सृष्टि है और जबसे प्राणीकी जीव संज्ञा हुई, तबसे यह दोष चला आ रहा है। अनादि होते हुए भी इसका विनाश हो सकता है, इसीलिये लोग चेष्टा करते हैं। अज्ञान अनादि होते हुए भी इसका विनाश होता है। ज्ञान एक ऐसी चीज है जिसके बराबर कोई नहीं है—

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

(गीता ४। ३८)

ज्ञानके द्वारा पापोंका—अज्ञानका नाश हो जाता है। जितने दोष हैं सारे दोष अज्ञानके कारण ही हैं। दोषोंके होनेमें अज्ञान ही मूल कारण है। अज्ञानको अविद्या भी कहा जा सकता है। सारे दोष अविद्या-आश्रित होते हैं। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि अज्ञानके अविद्या आदि जो पाँच क्लेश हैं उनका मूल कारण अविद्या है—

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः।

(योग० २। ३)

संसारमें पाँच क्लेश हैं—(१) अविद्या (अज्ञान), (२) अस्मिता, (३) राग, (४) द्वेष और (५) अभिनिवेश।

अस्मिताका नाम जड-बुद्धि है, जिसमें चेतनताका समावेश है। चेतन आत्मा और जड-बुद्धि इन दोनोंकी जो एकता है उसका नाम अस्मिता है। इसे अहंकारके नामसे कहा जा सकता है। अनुकूल पदार्थमें होनेवाली प्रीतिका नाम राग है और प्रतिकूल पदार्थमें होनेवाली प्रीतिका नाम द्वेष है। मरनेसे होनेवाले भयका नाम अभिनिवेश है।

महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि ये चार जो अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश (मरनेका भय) हैं इन सबकी जड़ अविद्या है—

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषाम्०।

(पा० योग० २।४)

कारणका नाश होनेसे कार्यका नाश अपने-आप हो जाता है। सुख और दुःखकी प्राप्तिमें अविद्या ही कारण है। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि '**हेयं दुःखमनागतम्**।' (पा० योग० २।१६) अनागत—जो आया नहीं—आनेवाला है, उसको अनागत कहते हैं, जो बीत गया उसको अतीत कहते हैं और जो मौजूद है उसको वर्तमान कहते हैं। अनागत दुःख त्याज्य है, उसका त्याग करना चाहिये। जो बीत गया उसका क्या त्याग करना, उसका तो अपने-आप ही त्याग हो गया। जो प्राप्त है, वर्तमानमें जो मौजूद है—क्षणमें अतीत होनेवाला है—भूत होनेवाला है उसका अपने-आप ही त्याग हो जायगा।

इसलिये बीते और आनेवाले दुःखका त्याग करना चाहिये। इसपर विचार करें कि दुःख होनेमें हेतु क्या है? महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि '**द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः**' (पा० योग० २।१७) 'त्यागने-हेतु जो दुःख है उसका हेतु जो संयोग है यानी जड और चेतनका संयोग। जड प्रकृतिको तथा चेतन पुरुषको कहते हैं। चेतन आत्मा और जड—इन सब पदार्थोंका जो समूह है—उनका जो संयोग है, इनके साथमें जो एकता है वह इनका हेतु है। संयोगका हेतु है अविद्या—अज्ञान '**तस्य हेतुरविद्या**' (पा० योग० २।२४)। उसके अभावको '**तदभावात् संयोगाभावो हानम्०**' (पा० योग० २।२५) कहते हैं अर्थात् उसके नाशसे सब दोषोंका नाश हो जाता है। संयोग और अस्मिता एक ही चीज है, वहाँ अस्मिताके बाद राग-द्वेष है। अतः मूलमें अस्मिता ही राग-द्वेष और अभिनिवेशका कारण है। अस्मिताके नाश होनेसे राग-द्वेष और भय सबका नाश हो जाता है। कारणका नाश होनेसे कार्यका नाश हो जाता है। यहाँ सांसारिक सुख-दुःखकी जो प्राप्ति है उसमें भी संयोग हेतु है। संयोगके नाश होनेसे संसारी सुखों-दुःखोंका नाश हो जाता है। अहंकारके नाश होनेसे यानी 'मैं' के नाश होनेसे राग-द्वेष और भय सबका नाश हो जाता है। 'मैं' अविद्याका एक अङ्ग है, अविद्या माने अज्ञान। देह अनात्म पदार्थ है, आत्मा नहीं है। देहमें जो आत्मबुद्धि है उसीका नाम अविद्या है। देहको यह समझना कि देह मेरी आत्मा है, देह मैं हूँ, इसका नाम अज्ञान है, देह नाशवान् है, अनित्य है और इसमें जो नित्य-बुद्धि है कि मैं सदा ही रहूँगा, उस बुद्धिका नाम ही अविद्या है। देहमें पवित्रताका जो अभिमान है कि मैं पवित्र हूँ, यह भी अविद्या है—अज्ञान है। पवित्र तो परमात्माका स्वरूप है, परमात्मविषयक ज्ञान पवित्र है। शरीर तो महान् अपवित्र चीज है। इस अपवित्र-समूहमें जो पवित्रताकी भावना है यानी शरीर बनकर कहना है कि मैं पवित्र हूँ, शरीर मैं हूँ—यह भी अविद्या है। मेरा शरीर यानी मैं पवित्र हूँ यह भी अविद्या है। संसारके विषय-भोगोंमें जो सुख-बुद्धि है वह भी अविद्या है। संसारके भोग प्रथम तो अनित्य हैं, नाशवान् हैं और यदि सच्चा समझो तो दुःख-रूप हैं। इस दुःखके भीतर जो सुख-बुद्धि है वह अविद्या है, विपरीत ज्ञान है। संसारके विषय-भोगोंमें सुख-बुद्धि, देहके भीतर आत्म-बुद्धि और इन नाशवान् तथा जड पदार्थोंमें नित्य-बुद्धि, इस देह आदि अपवित्र पदार्थोंमें पवित्र-बुद्धि आदि जो विपरीत भावना है इसका नाम अविद्या है, इसीका नाम अज्ञान है। इसके नाशसे सुख-शान्ति मिल सकती है और इसका नाश यथार्थ ज्ञानसे हो सकता है। इसलिये यथार्थ ज्ञानकी आवश्यकता है। यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिके बहुतसे साधन हैं। इसमेंसे निष्कामभावसे कर्म करना, ईश्वरकी भक्ति करना भी एक साधन है। ऐसे बहुतसे साधन हैं जिनकी तरफ ध्यान देकर अपने जीवनको उच्च कोटिका बनाना चाहिये।

मन बड़ा पाजी है, धोखेबाज है। हमें बुरी शिक्षा देता रहता है। कभी तो निराशा उत्पन्न करता है कि भगवान्‌की प्राप्ति कठिन है, मुश्किल है, असम्भव है जिससे उसका दिल टूट जाता है फिर वह साधनसे उपरत हो जाता है किंतु यह उसकी मूर्खता है। मनमें उत्साह रखना चाहिये। धीरता, वीरता, गम्भीरता, निर्भयता आदि भाव उत्पन्न होना चाहिये। इनकी वृद्धि होनी चाहिये। यदि ये भाव नहीं हैं तो पुरुष ही नहीं है, मनुष्य ही नहीं है, उसमें मनुष्यताका अभाव है। ये सब ईश्वरकी शरण होनेपर अपने-आप आ जाते हैं। जब यह निश्चय हो जाता है कि भगवान् हैं और मेरे सुहृद् हैं, सब जगह हैं। हमारे हितैषी हैं, सबके परम हितैषी

हैं—तब उसे परम शान्ति मिल जाती है—ऐसा भगवान् कहते हैं—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

'भगवान् हेतुरहित दयालु, हेतुरहित प्रेमी हैं, वे हमारे हैं, हमारे परम हितैषी हैं, सदा हमारे पास रहते हैं।' जो इस प्रकारसे समझता है उसको भय कैसे सता सकता है, उसके पास भय आ ही नहीं सकता। छोटा बच्चा जब माँका आश्रय ले लेता है, माँकी गोदमें बैठ जाता है तब दूसरे बच्चोंसे नहीं डरता। न ही बिडाल या कुत्तेसे ही डरता है; क्योंकि वह माँकी गोदमें बैठा है। माँ सब प्रकारसे उसकी रक्षा करती है। माँ तो अपनी शक्तिके अनुसार ही उस बच्चेकी रक्षा करती है, परंतु भगवान् तो माँसे भी बढ़कर है। माँ सर्वशक्तिशाली नहीं है, पर भगवान् सब प्रकारसे समर्थ हैं। उस सामर्थ्यवान्की गोदमें बैठ जाय तो निर्भयता अपने-आप ही आ जाय। पहले जब मनसे बैठने जायगा तब आगे जाकर प्रत्यक्ष भी बैठ सकता है। जबतक भगवान्की प्राप्ति नहीं होती, तबतक उसका दर्शन, स्पर्श, भाषण, वार्तालाप सब मानसिक ही होते हैं। भगवान्की शरण होकर, उनके भरोसेपर निर्भय होकर हमारे हृदयमें धीरता, वीरता, गम्भीरता, निर्भयताकी वृद्धि अवश्य होनी चाहिये। जिस मनुष्यमें ये गुण नहीं हैं वह अपनेको पुरुष कहे, पुरुषार्थी कहे, पौरुषवाला कहे तो उसकी गलती है। भगवान्का आश्रय लेकर जो पुरुषार्थ किया जाता है वह अवश्य सफल होता है। अतः हमको भगवान्का आश्रय लेकर प्रयत्न करना चाहिये।

संसारके किसी भी पदार्थका आश्रय लेना मूर्खता है, उसको आगे जाकर पश्चात्ताप करना पड़ता है; क्योंकि वह धोखेकी बात है। जैसे कोई ऐसा आश्रय ले ले कि मेरे पास बहुत रुपये हैं इनके ब्याजसे मेरा काम चल जायगा, मैं सब कुछ छोड़कर एकान्तमें जाकर भजन-ध्यान करूँ तो यह जो रुपयोंका आश्रय है वह मूर्खता है। किसी कारणसे वे रुपये नष्ट हो गये या उसे सरकारने ले लिया या हमारी सम्पत्तिको आग लग गयी या चोर-डाकू ले गये तो फिर उसके अभावमें हम बहुत दुःखी होकर मरेंगे; क्योंकि हमने मिथ्या वस्तुका आश्रय लिया। मिथ्या वस्तु रहनेवाली नहीं है, इस प्रकारका आश्रय लेना मूर्खता है। इसी प्रकारसे किसीने बिल्डिंगका यानी मकानका आश्रय ले लिया कि इसके भाड़ेसे मेरा काम चलेगा तो वह भी मूर्खता है। क्योंकि मकान भी जड वस्तु है, नाशवान् है, मिथ्या है, धोखा देनेवाली चीज है। इसी प्रकार किसीने किसी व्यक्तिका आसरा ले लिया और उसका तत्त्व समझा नहीं तो उसमें भी धोखेकी बात है। जैसे स्त्री अपने पतिका आश्रय ले लेती है, पुत्र अथवा शिष्य अपने माता-पिता या गुरुका आसरा ले लेता है, यह वास्तवमें युक्तिसंगत है। शास्त्रके अनुसार निष्कामभावसे है तब चिन्ताकी बात नहीं है उसका उद्धार हो सकता है, इसलिये कि उसका वह साधन है। किंतु मूर्खतावश यदि कोई ऐसा ही अपने मनमें किसीके लिये मान लिया; जैसे कोई दम्भी, पाखंडी आदमी है और समझ लिया कि इससे हमारा उद्धार हो जायगा तो उसका आश्रय कमजोर है, कच्चा है, उसको धोखा हो सकता है। आश्रय तो एक परमात्माका ही लेना चाहिये जिससे कभी धोखा नहीं हो सकता। आश्रय लेने योग्य तो परमात्मा ही हैं। शरण ग्रहण करनेके योग्य तो परमात्मा ही हैं, उनकी ही शरण लेनी चाहिये। परमात्माको छोड़कर संसारके जितने भी पदार्थ हैं किसीकी भी शरण नहीं लेनी चाहिये। बल्कि सिद्धान्त तो यह है कि धर्मका आश्रय नहीं लेना चाहिये बल्कि उसका पालन करना चाहिये। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि अर्जुन! सब धर्मोंका आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरण आ जा—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

(गीता १८। ६६)

तात्पर्य यह कि निष्कामभावसे धर्मका पालन करना बहुत उत्तम है, किंतु उसके ऊपर निर्भर होना नहीं चाहिये। धर्मका पालन आश्रय छोड़कर करना चाहिये—

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥

(गीता ६। १)

कर्मोंके फलोंका आश्रय न करके जो कर्मोंका आचरण करता है वही योगी और संन्यासी है। न तो अग्निको त्यागनेवाला संन्यासी है और न क्रियाको त्यागनेवाला योगी संन्यासी है। कर्मोंके फल और आसक्तिका त्याग करके

उसके आश्रयसे रहित होकर परमात्माके ध्यानमें नित्य रहना चाहिये '**त्यक्त्वा कर्म फलासङ्गम्**' (गीता ४। २०)। जड वस्तुका आश्रय लेना धोखेकी चीज है। इसलिये जड वस्तुका कभी आश्रय नहीं लेना चाहिये, इनका कभी भरोसा नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार यदि कोई पुरुष यह आसरा ले ले कि मेरा लड़का मुझे खर्चा भेजता रहेगा और मैं वनमें एकान्तमें रहकर भजन-ध्यान करके अपना जीवन बिताऊँगा तो अपनी जीविकाके लिये—अपने शरीर-निर्वाहके लिये जो लड़केका आसरा है वह भी धोखेकी चीज है। आज वह रुपया भेजता है, कल वह मर गया तो कौन भेजेगा? झूठा आश्रय है। कल लड़केका मन बदल जाय तो जीते-जी भी नहीं भेजेगा, अतः आसरा तो एक भगवान्‌का लेना चाहिये। जड पदार्थोंका, व्यक्तियोंका या सांसारिक पदार्थोंका आसरा कभी नहीं लेना चाहिये। अपने शरीरके भरोसे भी नहीं रहना चाहिये कि मैं अपना रोजगार करके अपना पेट भर लूँगा। औरोंकी अपेक्षा यह बात ठीक है, किंतु तुम बीमार पड़ सकते हो, शरीरसे बेकार हो सकते हो, असक्त होकर जी सकते हो तो शरीरका आसरा लेना भी व्यर्थ है। प्रारब्धका आसरा भी कामकी चीज नहीं, क्योंकि प्रारब्ध अच्छा-बुरा मिला हुआ ही रहता है और उसका तत्त्व न समझनेके कारण मनुष्यमें आलस्य आ जाता है। अतः आसरा तो कभी भी किसीका नहीं लेना चाहिये। शरीर-निर्वाहके लिये कोई भगवान्‌का आसरा ले तो कोई दोषकी बात तो नहीं है, किंतु एक प्रकारसे मूर्खता है। आत्माके कल्याणके लिये, मुक्तिके लिये तो भगवान्‌का आसरा लेना कोई दोष नहीं है, अपितु ऊँचे दर्जेकी चीज नहीं है और इससे भी ऊँचे दर्जेकी चीज तो यह है कि आत्माके कल्याणके लिये भी आसरा नहीं लेना चाहिये, आत्माका कल्याण हो चाहे मत हो इसकी मनमें कोई इच्छा नहीं रखनी चाहिये, न कोई उद्देश्य रखना चाहिये, न इसकी कोई परवाह करनी चाहिये। ईश्वरकी भक्ति करना, उसकी शरण जाना जीवका कर्तव्य है; इसलिये उसकी शरण होना चाहिये, न कि मुक्तिके लिये। लड़केका कर्तव्य है माता-पिताकी सेवा करना, जीवका कर्तव्य है ईश्वरकी भक्ति करना, उसकी शरण जाना, किंतु मुक्तिके लिये नहीं। भगवान् चाहे इसे नरकमें डाल दें कोई परवाहकी बात नहीं, किंतु अपने कर्तव्यसे नहीं चूकना चाहिये। हम अपने कर्तव्यका पालन करते रहें चाहे भगवान् अपने कर्तव्यका पालन न करें। भगवान् भी अपने कर्तव्यका पालन करें, इसलिये हम अपने कर्तव्यका पालन करें यह ओछापन है। हम यदि निष्कामभावसे अपने कर्तव्यका पालन करते रहेंगे, उसका बदला नहीं चाहेंगे तो भगवान् कहेंगे कि यह मेरा भक्त मेरेसे भी बढ़कर है। यह कहता है कि मैं भगवान्‌का दास हूँ और मैं कहता हूँ कि ऐसे भक्तोंका मैं दास हूँ, जिनको मुक्तिकी परवाह नहीं, किसी भी चीजकी परवाह नहीं, फिर जो निष्कामभावसे सेवा करते हैं ऐसे भक्तोंका तो मैं ऋणी हूँ। वाल्मीकिरामायणमें भगवान् श्रीरामने हनुमान्‌से कहा कि हनुमान्, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, तुमने मेरे बहुतसे कार्य किये हैं, मेरे सिरपर तुम्हारा ऋण है और मैं उस ऋणसे मुक्त भी नहीं होना चाहता, क्योंकि तुम्हारेपर कोई विपत्ति पड़े और तब मैं तुम्हारी मदद करूँ तब मैं तुम्हारेसे मुक्त होऊँ, ऐसा मैं नहीं चाहता। मैं तुम्हारे ऋणसे मुक्त होनेके लिये तुम्हारी विपत्ति देखना नहीं चाहता। यह भगवान्‌का निष्कामभाव है, किंतु हनुमान्‌जी कभी चाहते नहीं हैं कि भगवान् हमारे ऋणी रहें। यदि भक्त ऐसा माँगने लगे तो उसकी भक्तिमें कमी है।

अतः इन बातोंको ध्यानमें रखकर हमको रुपयोंका दास होकर नहीं जीना चाहिये, ऐसे जीनेसे तो मरना अच्छा है। यह सुनकर आप कभी आत्महत्या मत कर लेना। कहनेका भाव यह है कि इस प्रकारका निष्कामभाव हृदयमें होना चाहिये कि हमारा जीना हमारे लिये भार-रूप है। हमारा इस प्रकारसे सकामभावसे संसारमें जीना मरनेसे भी बुरा है यानी नीचे दर्जेका है, घृणा करनेकी चीज है। इसका अभिप्राय यह है कि यह दोष हमारेसे दूर रहे। 'इससे मरना अच्छा' का यह अभिप्राय नहीं है कि ऐसे जी कर क्या करेंगे, आत्महत्या करके मर ही जायँ तो अच्छा है। यह मरनेके लिये कहना नहीं है, यह कहना इसलिये है कि ऐसा जीना निन्दनीय है, अतः अपने जीवनको सफल बनाना चाहिये। उच्च कोटिका बनाना चाहिये। भगवान् कहते हैं—

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥
(रा० च० मा० ७। ४६। २)

यदि कोई मेरा दास कहलाकर दूसरे मनुष्योंकी आशा

रखे तो आप बताइये उसको मेरेपर विश्वास कहाँ? जो भगवान्‌पर निर्भर हो जाता है वह न तो किसी मनुष्यकी परवाह करता है और न जड पदार्थोंकी, न मरनेकी परवाह करता है न जीनेकी। उसके लिये सब समान है। इन सारी बातोंको उसने प्रभुपर छोड़ रखी है। भगवान् उसे जिस प्रकार रखते हैं उसीमें उसे आनन्द प्रतीत होता है। ऐसा जीवन उत्तम जीवन है। अपने जीवनका आसरा, शरीर-निर्वाहका आसरा, किसी जड पदार्थको बनाना या किसी प्राणीको—अपने पुत्रको या अपने भाईको या और किसीको बनाना ही या किसी चीजका आश्रय लेना ही मूर्खता है। यदि यह विशेष बात समझमें नहीं आये तो उसका जीवन प्रारब्धपर है। प्रारब्धसे ही सब जीते हैं, अतः उसे प्रारब्धपर ही छोड़ देना चाहिये। किंतु प्रारब्धपर छोड़ देनेका अभिप्राय यह नहीं मानना चाहिये कि निकम्मा हो जाय। कमकस नहीं हो जाना चाहिये। उसका यह अभिप्राय नहीं है, यह बात फलके लिये है। जो ईश्वरका विधान है उसके लिये यह कहना है कि हमने जैसे कर्म किये थे, उसके अनुसार ईश्वरका विधान बना है और उसीके अनुसार सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय भुगतने पड़ रहे हैं। इतने अंशको तो प्रारब्धपर छोड़ देना चाहिये। नये जो कर्म करने हैं उनको प्रारब्धपर नहीं छोड़ना चाहिये। भगवान् कहते हैं—हे अर्जुन! तेरा कर्म करनेमें अधिकार है, यह तेरा हक है, फलमें नहीं—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
(गीता २। ४७)

तुमको अपना कर्तव्य समझकर कर्म करना चाहिये। तेरा कर्म करनेमें अधिकार है, कर्मके फलमें कभी अधिकार नहीं, अधिकार मानना अनधिकार चेष्टा है, अनधिकार चेष्टा करनेसे कोई लाभ भी नहीं, क्योंकि सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय आदिकी प्राप्ति और जीवन-मरण सब प्रारब्धपर निर्भर करते हैं। उस प्रारब्धका नाम ही ईश्वरका विधान है। ये सब चीजें ईश्वरके विधानपर छोड़ देनेपर कोई दोषकी बात नहीं है। अपने कर्तव्यके पालनके लिये हम किससे मदद लेवें? मदद बिना लिये ही भगवान् दे रहे हैं, महात्मा लोग दे रहे हैं, शास्त्र दे रहे हैं। तुमको यह समझ लेना चाहिये कि हमारे द्वारा जो कुछ अच्छा काम हो रहा है उसमें भगवान्‌का हाथ है, महापुरुषोंका हाथ है अर्थात् ये हमें हर प्रकारसे मदद देनेके लिये सदा ही तैयार रहते हैं। इनसे लाभ नहीं उठानेमें हमारे स्वभावका दोष है। वह हमारे लिये बाधक है। इसका सुधार करना चाहिये। हमारे स्वभावका सुधार क्या ईश्वरकी कृपा या महापुरुषोंकी कृपासे नहीं होगा? महापुरुषों और ईश्वरकी कृपासे तो होगा ही। हमें यह मानना चाहिये कि जो कुछ हमारेमें अच्छी बात है वह तो सब ईश्वरकी कृपासे होती है और उसकी कृपासे ही होगी। मैं तो इसमें निमित्त मात्र हूँ, ऐसा समझकर काम करना चाहिये। जैसे भगवान् गीतामें अर्जुनको कहते हैं कि हे अर्जुन! ये प्रतिपक्षी सेनाके योद्धा मेरे द्वारा मारे हुए हैं, तुम निमित्त मात्र बन जा—'**निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्**'। इसी प्रकार हमको निमित्तमात्र बन जाना चाहिये। यदि अर्जुन वहाँ निमित्तमात्र नहीं बनता तो उसकी बड़ी भूल समझी जाती, किंतु वह बन गया। जिस तरह रथी अपने सारथीके हाथमें अपने घोड़ोंकी बागडोर सौंप देता है, इसी तरह हम लोगोंको निमित्तमात्र बन जाना चाहिये और अपने मन-इन्द्रियोंकी सब बागडोर भगवान्‌को सौंप देनी चाहिये। अर्जुनने जैसे भगवान्‌को सारथी बनाया था, इसी प्रकार इस संसार-सागरको पार होनेवाली यात्रामें हमें भगवान्‌को अपना सारथी बनाकर अपने इन्द्रियरूपी घोड़ोंकी बागडोर—मनकी बागडोर यानी मनकी वृत्तियोंकी बागडोर भगवान्‌के हाथमें सौंप देनी चाहिये। जैसा भगवान् कहें वैसा करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णजी युद्धके समय अर्जुनको जैसा कहते थे, वह वैसा ही करता था। दूसरे-दूसरे लोग जो कुछ बकते थे, उसकी तरफ ध्यान नहीं देता था। इसी तरह हम लोगोंको भी मन, बुद्धि, इन्द्रियोंकी बागडोर भगवान्‌के हाथमें सौंप देनी चाहिये। जैसे भगवान् चलावें वैसे चलना चाहिये। किये गये कार्यमें सफलता मिलनेपर भगवान्‌की सहायता समझनी चाहिये। भगवान्‌की मर्जीमें ही अपनी मर्जी मिला देनी चाहिये।

आत्मचिन्तन

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी)

भारतीय जीवनमें आत्मचिन्तनकी बड़ी महत्ता है। कहा गया है—मनुष्यको प्रतिदिन अपने चरित्रका पर्यवेक्षण करना चाहिये—'**प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।**

आत्मचिन्तनसे आत्मज्ञ बननेकी क्षमता उत्पन्न होती है। इसलिये उपनिषद् कहती है—'**आत्मानं विद्धि**', अर्थात् अपनी आत्माको जानो। कठोपनिषद्‌में नचिकेताको समझाते हुए यमराजने कहा है कि आत्मतत्त्वको जानना साधारण बात नहीं है। बहुत सारे ऐसे मनुष्य हैं, जिन्हें आत्मकल्याणकी चर्चा तक सुननेको नहीं मिलती; क्योंकि वे ऐसे वातावरणमें रहते हैं, जहाँ सुबह जागनेसे लेकर रातमें सोनेतक केवल विषय-चर्चा ही हुआ करती है, जिससे उनका मन अहर्निश आत्मचिन्तनके बजाय विषय-चिन्तनमें डूबा रहता है। फलतः आत्मतत्त्वके चिन्तनका अवसर ही नहीं मिलता और इसीलिये उन्हें आत्मज्ञान सुलभ नहीं हो पाता।

आत्मचिन्तनकी निष्ठा तर्कसे नहीं प्राप्त होती वरन् यह तभी प्राप्त होती है जब भगवत्कृपासे किसी महापुरुषका सत्संग मिलता है और उनसे लगातार आत्मचिन्तनका महत्त्व और उसकी विवेचना सुननेका सौभाग्य उपलब्ध होता है।

आत्मा नित्य ज्ञानस्वरूप है। यह न तो जन्मता है, न मरता है। यह अजन्मा और शाश्वत है। इसमें क्षय और वृद्धि-जैसी विकृतियाँ नहीं होतीं। शरीरके नष्ट होनेपर भी यह नष्ट नहीं होता। यह सनातनरूपसे अचल है—'**अचलोऽयं सनातनः।**'

गीता कहती है—जो आत्माको मारनेवाला मानता है तथा जो इसको मारा गया मानता है, वे दोनों ही आत्माको नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा न तो किसीको मारती है, न ही किसीके द्वारा मारी जाती है—

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥

जबतक मनुष्यको अपनी नित्यता और निर्विकारताका अनुभव नहीं हो जाता, जबतक वह अपनेको शरीर-जैसी अनित्य वस्तुसे भिन्न नहीं समझ लेता, तबतक उसे अनित्य वस्तुसे वैराग्य नहीं होता और न ही उसके अन्तःकरणमें नित्य तत्त्वकी अभिलाषा उत्पन्न होती है। इसीलिये भोगसुखकी आशाका परित्याग कर आत्माकी अमरताके प्रति दृढ़ अनुभूतिके साथ आत्मचिन्तन करना चाहिये।

उपनिषत्कारने रथ और रथीके रूपककी कल्पनाद्वारा आत्मचिन्तन करते हुए बताया है कि शरीर रथ है और आत्मा रथका स्वामी है, जिसमें बैठकर वह यात्रा करता है। बुद्धि इस रथका सारथि है। इन्द्रियाँ घोड़ोंके समान हैं और मन उनकी लगाम है। विविध विषय उन घोड़ोंके विचरणके मार्ग हैं। शरीर, इन्द्रिय और मनके साथ रहनेवाला आत्मा ही स्वयंको विषयोंका भोक्ता यानी भोग करनेवाला मानता है। यही भोग आत्मचिन्तनमें बाधक होता है, मनुष्यकी जीवात्माको आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लक्ष्यसे भटकाता है, जिससे आत्म-साक्षात्कार सम्भव नहीं हो पाता। किंतु जो आत्मचिन्तनमें लीन होता है, वही विज्ञानी अथवा विवेकी होता है और इन्द्रियरूपी घोड़ोंको वशमें करके उनकी गतिको सुधारता है, जिससे वे सावधान सारथिके अधीन रहकर निर्दिष्ट सुमार्गपर चलते हैं।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि जो आत्मचिन्तन करता है वह कभी विपत्तिमें नहीं पड़ता, वह स्वयं आत्मोद्धारमें समर्थ होता है। आत्मचिन्तनसे आत्मा योगयुक्त होता है और जो योगयुक्त आत्मासे सम्पन्न है, वह सभी जीवोंको अपनेमें और अपनेको सभी जीवोंमें स्थित देखता है। वही समदर्शी होता है। समदर्शी व्यक्ति ही राष्ट्रिय एकता और अखण्डताके लिये प्रयत्नशील होता है।

जो आत्मचिन्तन करता है वही अपने मनको वशमें रख सकता है, वही जितेन्द्रिय होता है। आज प्रत्येक दृष्टिसे जितेन्द्रियता आवश्यक है। परिवार-नियोजन, सीमा-सुरक्षा, आर्थिक विकास, राष्ट्रिय एकता, सामाजिक सद्भाव आदि आजकी कुछ ऐसी समस्याएँ हैं, जिसका समाधान आत्मचिन्तनसे ही सम्भव है। आत्मचिन्तनसे ही मनुष्य आत्मज्ञ होता है और जो आत्मज्ञ होता है, वही सर्वज्ञ हो जाता है। यही एकान्त-आत्मचिन्तनकी चरम परिणति या पराकाष्ठा है; जो अंशको अंशीसे मिला देता है। अज्ञानीको सर्वज्ञ बना देता है।

* * *

सच्चा भिखारी

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं
जियँ जाचिअ जानकीजानहि रे।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ,
जो जारति जोर जहानहि रे॥
गति देखु बिचारि बिभीषनकी,
अरु आनु हिएँ हनुमानहि रे।
तुलसी! भजु दारिद-दोष-दवानल
संकट-कोटि-कृपानहि रे॥

सारा संसार भिखारी है, सदासे भिखारी है, कुछ परमात्माके प्रेम-पागलोंको छोड़कर संसारमें ऐसा कोई नहीं जिसे कुछ भी न चाहिये। कोई भी अपनी स्थितिसे संतुष्ट नहीं है, इसीलिये जीव सदासे भिक्षापरायण है। परंतु उसकी भीखकी झोली कभी भरती नहीं। वह माँग-माँगकर जितना ही झोलीमें डालता है उतनी ही उसकी झोली खाली होती जाती है। अतएव उसका भिखारीपन कभी नहीं मिटता। कारण यही है कि वह माँगना नहीं जानता, वह उनसे माँगता है जो स्वयं भिखारी हैं और उन वस्तुओंको माँगता है जो सदा अभावमयी हैं। इसलिये मित्रो! यदि माँगते-माँगते थक गये हो, अपमान सहते-सहते तुम्हारे प्राण व्याकुल हो उठे हों तो एक बार उन जानकीजीवन श्रीरामसे माँगकर देखो! प्रसिद्ध परमहंस स्वामी श्रीकृष्णानन्दजीने एक वक्तृतामें कहा था—

'असली भिखारी जगत्में द्वार-द्वारपर तभीतक भटकता है, जबतक कि उसकी भीखकी झोली पूर्ण परमात्माके कृपा-कणोंसे नहीं भर जाती। भीखके लिये ही भगवान्ने हमें अन्तःकरणरूपी भीखकी झोली दी है। परंतु हम भीख माँगना नहीं जानते। इसीसे संसारके कीचड़से सने हुए कुत्सित चावलोंकी कनीसे ही झोली भर रहे हैं। जिस पवित्र अन्नसे अमृतपूर्ण भोजन बन सकता है, उसका तो एक कण भी हमें नहीं मिला। आओ भिखारी! एक बार कल्पतरुके नीचे खड़े हो मनचाही चीज माँग लो! सदाके लिये माँग लो! अपने रीते जीवन-कमण्डलुको अमृत-रससे भर लो। 'मा' 'मा' पुकारकर, 'प्राणप्रिय प्रियतम' पुकारकर, 'जगत्पति' के नामसे पुकारकर वाणी सफल कर लो! उस त्रिभुवन-मोहनरूपकी माधुरी-धारासे नयनोंको धो डालो, दर्शनकी तृष्णा मिटा लो। अपने मन, प्राण और इन्द्रियसमूहके प्रत्येक परमाणुको सुधासिन्धुके बिन्दुपानसे मतवाला बना दो। माँग लो, इस मनुष्य-शरीरके रहते-रहते ही। फिर सूअर होकर माँगना न पड़े, वहाँ तो विष्ठाकी ही भीख मिलेगी। अरे मनुष्य! जल्दी करो, 'नीके दिन बीते जा रहे हैं।' मनुष्य-वृत्तियोंसे पूर्ण अन्तःकरणरूपी पात्रमें ही उस राजराजेश्वरसे मनकी वस्तु माँगकर सदाके लिये तृप्त हो जाओ! अपने इस पवित्र पात्रको उसके प्रसादसे भर लो। तुम्हारी अनन्तकालकी कमी और कामना सदाके लिये पूरी हो जायगी। अच्छे अवसरकी प्रतीक्षामें जन्मको न गँवाओ।

भिखारीपर ही भगवान्की कृपा हुआ करती है। दीनता ही भगवान्की कृपादृष्टिको आकर्षित करती है, अभाव ही भाव-शक्तिका आह्वान करता है। सर्वशून्य दरिद्रता ही दयाके पूर्ण प्रकाशका प्रधान कारण है। अतएव सच्चा भिखारी बन सकना दुर्दशाकी बात नहीं, किंतु बड़े सौभाग्यका विषय है। परंतु प्रकृत भिक्षुक बनना बहुत ही कठिन है। ऐसा होनेके लिये अभिमानको भगा देना पड़ता है, अहंकारको चूर्ण कर देना पड़ता है। जिसका हृदय अभिमानसे भरा है वह क्या कभी यथार्थ अभावग्रस्त भिखारी बन सकता है? अभिमानसे अभिभूत हृदयमें क्या कभी दीनता टिक सकती है? महाप्रभु कहते हैं—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।

तृणकी अपेक्षा भी दीन और वृक्षके समान सहनशील बनकर भगवान्की सेवा करनी चाहिये। बड़ी कठिन बात है। इसीसे लोग इस पथपर नहीं चल सकते।

वास्तवमें भिखारी होना, नम्र बनना, निरभिमान होना जितना कठिन है, भगवान्को प्राप्त करना उतना कठिन नहीं है। एक सच्ची घटना है। एक आधुनिक सभ्यताभिमानी बाबू साहब बीमार हुए, बहुत तरहसे इलाज करवाया गया, परंतु कुछ भी लाभ नहीं हुआ। ऐलोपैथिक, होमियोपैथिक, वैद्यक, हकीमी आदि सभी तरहके इलाज हुए, परंतु रोग

दूर नहीं हुआ। अन्तमें श्रद्धालु गृहिणीकी सलाहसे देवकार्य करना निश्चय हुआ। पण्डितजीने सूर्यकी उपासना बतलायी। कहा कि 'बाबूजी प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्यनारायणको साष्टाङ्ग प्रणाम करके अर्घ्य दें।' बाबूने कहा—'साष्टाङ्ग प्रणाम कैसा होता है, मैं नहीं जानता, आप बतला दें।' पण्डितजीको तो अभ्यास था ही, उन्होंने पृथ्वीपर लेटकर साष्टाङ्ग प्रणामकी विधि बतला दी। इस प्रणामका ढंग देखकर बाबू साहब बड़े असमंजसमें पड़ गये, परंतु क्या करें, बड़े कष्टसे घुटने नीचे किये, माथा भी कुछ झुकाया परंतु जमीनपर पड़नेकी कल्पना आते ही वे दुखी हो गये। उन्होंने उठकर पण्डितजीसे कहा—'महाराज! बीमारी दूर हो या न हो, मुझसे ऐसा बेढंगा प्रणाम नहीं होगा।' सारांश यह कि जिसके शरीर-मन-प्राण अभिमानके विषसे जर्जरित हैं, वह देवताके चरणोंमें अपना सिर क्यों झुकायेगा? जगत्‌में जो पार्थिव अभिमान फूट निकला है, महारुद्रके संहार-शूलका दर्शन किये बिना वह मुरझायेगा नहीं। ऐसे अभिमानका त्याग करना जितना कठिन है, भगवान्‌को प्राप्त करना उतना कठिन नहीं है। जो चीज बहुत दूर होती है, उसीका मिलना कठिन होता है। भगवान् जगत्-प्रभु तो हमारे निकटसे भी निकट देशमें रहते हैं। परंतु वे तुम्हारे पास क्यों आवें? तुम तो स्वयं ही प्रभु (अहं) बन रहे हो! जगत्प्रभुके लिये तुमने जो हृदयासन बिछा रखा है वह तो बहुत ही क्षुद्र है। इतने छोटे आसनपर वे और तुम दोनों एक साथ नहीं बैठ सकते।

इसीसे गोसाईंजी महाराजने कहा है—

जहाँ राम तहाँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
'तुलसी' कबहुँ कि रहि सके रवि रजनी इक ठाम॥

जहाँ श्रीराम रहते हैं, वहाँ काम या विषयपरायण 'अहं' नहीं रह सकता और जहाँ यह काम निवास करता है, वहाँ राम नहीं रहते। सूर्य और रात्रि कभी एक साथ रह सकते हैं? अतएव 'मैं' और 'भगवान्' दोनों अन्धकार-प्रकाशकी भाँति एक साथ नहीं रह सकते। 'मैं' इस पदको हटाना पड़ेगा। तभी 'वे' यहाँ पधारकर विराजित हो सकेंगे। वे तो दुर्लभ नहीं हैं। साधक! झूठमूठ ही भगवान्‌को दुर्लभ बताकर उनपर कलंक क्यों लगाते हो? वे तुम्हारे हृदय-देशमें निवास करनेके लिये आते हैं, परंतु दरवाजा बंद पाकर लौट जाते हैं। तुम्हारे हृदय-कपाट खुले नहीं रहते, इसीसे ध्यानके समय श्रीराधाकृष्णकी मूर्तिसे वे तुम्हारे 'सामने' खड़े रहते हैं। यह कलंक असलमें हमारा है, उनका नहीं।

भीख ही ऐश्वर्य-शक्तिको बुलाती है। जो '**भिक्षा नैव च नैव च**' कहते हैं, वे भ्रमसे कहते हैं। यथार्थ भिखारी बन जानेपर तो ऐश्वर्य-शक्ति दौड़ी हुई आकर उसका आश्रय लेती है। इसीसे तो जगद्धात्री अन्नपूर्णा राजराजेश्वरी भिक्षुकप्रवर महादेवकी गृहिणी बनी हैं। महापण्डित महाप्रभुने भिखारी बनकर ही—कन्था-कौपीन धारण करके ही—तर्काभिमान चूर्ण करके ही अमूल्य 'नीलकान्तमणि' को प्राप्त किया था। यह भिक्षा ही उसके राज्यकी व्यवस्था है। पूर्ण दीन, पूर्ण निरभिमानी हुए बिना वह प्रियतम नहीं मिल सकता। दीन बनकर यही समझना होगा कि 'मेरा' कुछ भी नहीं है—वही मेरा सर्वस्वधन है। 'मैं' कुछ भी नहीं हूँ, विराट्‌रूपसे विश्वमें एकमात्र वही विराजित है। वास्तवमें वही तो सबकी सत्ता (आत्मा)-रूपसे स्थित है। तुम और मैं (देहेन्द्रियादि जड़पिण्ड) पीछेसे आकर उसको भगानेवाले कौन हैं? हमें इतना घमंड किस बातपर है? यह मनुष्यकी देह मिट्टीसे ही पैदा हुई है और एक दिन पुनः मिट्टी ही हो जायगी; फिर अभीसे मिट्टी क्यों नहीं बन जाते? भगवान्‌के सखा अर्जुनने मिट्टी होकर ही (अहंकार त्यागकर ही) कहा था—

'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥'

इसीलिये गीताका अमृतमय उपदेश देकर भगवान्‌ने उसके ज्ञानचक्षु खोल दिये। पूर्ण दीनतामय भावके सूक्ष्म सूत्रका अवलम्बन करके भावस्वरूप भगवान् प्रकट होते हैं। पापियोंके अत्याचारसे जब पृथ्वीपर दीनता छा जाती है, पुण्यका जब पूर्ण अभाव हो जाता है, तभी भगवान्‌का अवतार होता है। साठ हजार शिष्योंको साथ लेकर जिस समय ऋषि दुर्वासा वनमें पाण्डवोंकी कुटियापर पहुँचे, उस समय द्रौपदीके सूर्यप्रदत्त पात्रमें अन्नका एक कण भी नहीं था। उस पूर्ण अभावके समय—पूरी दीनताके कालमें—द्रौपदीने पूर्णरूप प्रभुको कातरस्वरसे पुकारकर कहा था—'हे द्वारकाधीश!

इस कुसमयमें दर्शन दो! हे दीनबन्धो! विपत्तिके इस तटहीन समुद्रमें तुम्हें देखकर कुछ भरोसा होगा।' द्रौपदीकी आर्त-प्रार्थना सुनकर जगत्प्रभु स्थिर नहीं रह सके। ऐश्वर्यशालिनी रुक्मिणी और सत्यभामाको छोड़कर भिखारिणी दरिद्रा द्रौपदीकी ओर दौड़े। द्वारकाके अतुलनीय ऐश्वर्यस्तम्भको भेदकर अरण्यवासी पाण्डवोंकी पर्णकुटीरमें विभूतिस्वरूपकी प्रखर प्रभा प्रकाशित हो गयी! द्रौपदीने कहा—'नाथ! क्या इतनी देर करके आना चाहिये?' भगवान् बोले—'तुमने मुझको द्वारकाधीशके नामसे क्यों पुकारा था, प्राणेश्वर क्यों नहीं कहा? जानती नहीं हो, द्वारका यहाँसे कितनी दूर है? इसीसे आनेमें देर हुई है।'

जो हमारे प्राणोंके अंदरकी प्रत्येक क्रियाको जानते हैं, उनके सामने माँगनेके लिये मुँह खोलना बुद्धिमानी नहीं है। भीखकी झोली बगलमें लेकर दरवाजेपर खड़े होते ही वे दया करते हैं। बस, हमें तो चुपचाप उनकी सेवा करनी चाहिये। हम दीन-हीन कंगाल हैं, द्वारपर पड़ रहना ही हमारा कर्तव्य है। उनका कर्तव्य वे जानते हैं, हमें उसके लिये क्यों चिन्ता करनी चाहिये? सेवकका दुःख-दर्द दूर करना चाहिये, इस बातको प्रभु स्वयं सोचेंगे, हमें तो मनमें कुछ नहीं करना चाहिये। यही निष्काम-भिखारीकी भाषा है। यथार्थ भिखारी तो प्रभुका दर्शन पानेके लिये ही व्याकुल रहता है। उनका दर्शन होनेपर माँगनेकी नौबत ही नहीं आती, सारे अभाव पहले ही मिट जाते हैं, समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, भिखारीकी घासपातकी झोपड़ी अमूल्य रत्नराशिसे भर जाती है, फिर माँगनेका मौका ही कहाँ रहता है? श्रीमद्भागवतमें कथा है—

सुदामा पण्डित लड़कपनसे ही भगवान् श्रीकृष्णके सखा थे—दोनों मित्र एक ही गुरुजीके यहाँ साथ ही पढ़ा करते थे। विद्या पढ़ लेनेपर दोनोंको अलग होना पड़ा। बहुत दिन बीत गये। परस्पर कभी मिलना नहीं हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकाके राजराजेश्वर हुए और गरीब सुदामा अपने गाँवमें भीख माँगकर काम चलाने लगे। सुदामाकी गृहस्थी बड़ी ही कठिनतासे चलती थी। एक दिन उनकी स्त्रीने कहा—'आप इतने बड़े पण्डित होकर भी कुछ कमाई नहीं करते। फिर इस विद्यासे क्या लाभ होगा?' सुदामा बोले—'ब्राह्मणी! मेरी विद्या इतनी तुच्छ नहीं है कि मैं उसे केवल नगण्य धन कमानेमें लगाऊँ?' इसपर ब्राह्मणी बोली—'अच्छी बात है आप इसे धन कमानेमें मत लगाइये! परंतु आप कहा करते हैं—'श्रीकृष्ण मेरे बालमित्र हैं'—सुना है वे इस समय द्वारकाके राजा हैं, उनसे मिलनेपर तो सहज ही आपको खूब धन मिल सकता है।' सुदामाने कहा—'तुम तो खूब सलाह दे रही हो! भगवान्से मेरी मित्रता है, क्या इसलिये मैं उनसे धन माँगूँ? मुझसे ऐसा नहीं होगा। मैं भक्तिको इतनी छोटी चीज नहीं समझता, जो तुच्छ धनके बदलेमें उड़ा दी जाय! तुम पगली हो गयी हो, इसीसे ऐसा कह रही हो।' ब्राह्मणी बोली—'स्वामिन्! मैं कहाँ कहती हूँ कि आप उनके पास जाकर धन माँगें। मैं तो यही कहती हूँ, जब वे आपके बालसखा हैं, तब एक बार उनसे मिलनेमें क्या हानि है? आप उनसे कुछ भी माँगियेगा नहीं।' स्त्रीके बहुत समझाने-बुझानेपर सुदामाने सोचा कि चलो, इसी बहाने मित्रके दर्शन तो होंगे और वह वहाँसे चल पड़े। थोड़ेसे चावलोंकी कनी पल्ले बाँध ली।

सुदामाजी द्वारकाजी पहुँचे। वहाँके बड़े-बड़े सोनेके महलोंको देखकर उनकी आँखें चौंधिया गयीं। श्रीकृष्णके महलपर पहुँचकर उन्होंने द्वारपालसे कहा कि 'जाओ, अपने स्वामीसे कह दो कि आपके एक बालसखा मिलने आये हैं।' महलोंकी छटा देखकर गरीब ब्राह्मण सोचने लगा कि कहीं श्रीकृष्ण मुझे भूल तो नहीं गये होंगे। परंतु अन्तर्यामीसे कुछ भी छिपा नहीं था। उनको पता लग गया कि पुराने प्राणसखा सुदामा द्वारपर खड़े हैं। भगवान् पलंगपर लेट रहे थे, श्रीरुक्मिणीजी चरण-सेवा कर रही थीं। भगवान् चमककर उठे और दरवाजेपर खड़े हुए बाल-बन्धुको आदरके साथ अंदर लिवा लानेके लिये दौड़े। पटरानियाँ भी पीछे-पीछे दौड़ीं।

साधक! तुम उनकी ओर एक पग आगे बढ़ोगे तो वे तीन पग बढ़ेंगे। उनकी अतुल दया ऐसी ही है। सखाको साथ लेकर भगवान् अन्तःपुरमें पधारे। पटरानियोंने मिलकर सुदामाके चरण धोये। उन्हें पलंगपर बिठाकर भगवान् स्वयं चँवर डुलाने लगे। भगवान्ने प्रेमसे कहा—'सखे! बहुत दिन बाद तुम मिले हो, मेरे लिये क्या लाये हो?' सुदामाने लज्जासे मुख नीचा कर लिया। इतने बड़े धनीको चावलोंकी टूटी कनी देते सुदामाको बड़ा संकोच हुआ, परंतु भगवान् श्रीकृष्णने उनकी बगलसे पुटलिया छीन ली और लगे चावल फाँकने! भक्तके प्रेमभरे उपहारकी वे उपेक्षा क्यों

करते? भगवान्ने एक मुट्ठी फाँककर ज्यों ही दूसरी हाथमें ली, त्यों ही भगवती रुक्मिणीजीने उन्हें रोक लिया। भगवान् मुट्ठी छोड़कर मुसकराने लगे। तदनन्तर वे बोले—भक्तमालके रचयिता महाराज श्रीरघुराजसिंहजी कहते हैं—

ऐसे सुनि प्यारी वचन, यदुनन्दन मुसकाइ।
मन्द मन्द बोले वचन, आनँद उर न समाइ॥
व्रजमें यशोदा मैया मन्दिरमें माखन औ,
मिश्री मही मोहन त्यों मोदक मलाई है,
खायो मैं अनेक बार तैसे मथुरामें आइ,
व्यंजन अनेक मोहि जननी जेंवाई है।
तैसे द्वारिकामें यदुवंशिनके गेह गेह,
सहित सनेह पायो भोजनमें लाई है,
रघुराज आजलों त्रिलोकहुमें मीत ऐसी,
राउरके चाउरते पाई ना मिठाई है।
खायो अनेकन यागन भागन मेवा रमा कर वागन दीठे,
देवसमाजके साधुसमाजके लेत निवेदन नाहि उबीठे।
मीत जु साँची कहौ रघुराज इते कस वै भये स्वादते सीठे,
पायो नहीं कतहूँ अस मैं जस राउर चाउर लागत मीठे॥

सुदामाके चावलोंकी महिमाका वर्णन करनेके बाद सभी सुदामाजीकी सेवामें लग गये। कुछ दिन मित्रके घर रहनेके बाद सुदामाने विदा माँगी। भगवान्ने संकोचसे अनुमति दे दी! ब्राह्मण खाली हाथों लौट चले। घरके पास पहुँचकर ब्राह्मणने देखा तो झोपड़ी नहीं है। वहाँ एक बड़ा सुन्दर महल बना हुआ है। ब्राह्मण सुदामाने सोचा—'किसी राजाने जमीन छीनकर महल बनवा लिया होगा।' ब्राह्मणको बड़ी चिन्ता हुई। फूसकी मड़ैया और पतिव्रता ब्राह्मणी भी गयी। इतनेमें सुदामा देखते हैं कि उनकी स्त्री महलके झरोखेमें खड़ी उन्हें पुकार रही है। ब्राह्मणने सोचा—दुष्ट राजाने ही स्त्रीको भी हर लिया है, पर वह बुला क्यों रही है? ब्राह्मण डरकर दौड़े। बड़ी कठिनतासे नौकर उन्हें समझा-बुझाकर घरमें ले गये। गृहिणीने बहुत ही नम्रतासे चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'प्राणेश्वर! डरें नहीं! यह अतुल सम्पत्ति आपकी ही है, आपके मित्रने यह आपको भेंट की है।' सुदामा बोले—'मैंने तो उनसे कुछ माँगा ही नहीं था।' ब्राह्मणीने कहा—'आपने प्रत्यक्ष नहीं माँगा, इसीसे उन्होंने आपको प्रत्यक्षमें कुछ भी नहीं दिया।' अन्तर्यामी यों ही किया करते हैं। ब्राह्मणकी दोनों आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। प्राणसखाके प्रेमकी स्मृतिसे सुदामा भावावेशसे विह्वल हो गये।

जगत्! देख जाओ, आज इस कंगालके ऐश्वर्यको देख जाओ! जो कल राहका भिखारी था, वही आज रत्नसिंहासनपर आसीन है। देख जाओ! आज पर्णकुटीमें त्रिभुवनव्यापिनी माधुरी छा रही है। संसार! तुम जिस भिखारीको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते थे, जिसको पद-दलित समझते थे, देख जाओ, आज वही भिखारी दीनताके रूपको भेदकर अखिल विश्वब्रह्माण्डमें वरणीय हो गया है।

भिखारी! जगत्की चुटकियोंकी ओर न देखो। जगत्के अपमानकी ओर दृष्टि मत डालो! विविध विपत्तियोंसे डरकर मत काँपो। तुम अपना काम अचल-चित्तसे किये जाओ। जितने ही बाधा-विघ्न और संकट बढ़ेंगे, उतना ही यह समझो कि तुम्हें गोदमें लेनेके लिये जगज्जननीका हाथ तुम्हारी ओर बढ़ रहा है। स्नेहमयी माता पुत्रको गोदमें लेनेसे पहले अंगोछेसे उसके शरीरको रगड़कर साफ करती है। साधक! इसी प्रकार जगज्जननी भी तुम्हें गोदमें लेनेसे पूर्व एक बार रगड़ेगी। इस रगड़से घबराना नहीं—डरना नहीं। यह समझना कि इस वेदनासे तुम्हारी यम-वेदना विध्वंस हो गयी है। इस कष्टसे तुम्हारा सारा कष्ट नष्ट हो गया है, अतएव साधक! हताश न होना!

* * *

परिवार-नियोजन-कार्यक्रमसे जीवन-निर्वाहके साधनोंमें तो वृद्धि नहीं हुई है, पर ऐसी अनेक बुराइयोंकी वृद्धि अवश्य हुई है, जिनसे समाजका घोर पतन हुआ है।

× × ×

जीवन-निर्वाहके साधनोंमें कमी (बेरोजगारी, निर्धनता आदि) होनेका कारण जनसंख्याकी वृद्धि नहीं है, प्रत्युत अपने सुखभोगकी इच्छाओंकी वृद्धि है। भोगेच्छाकी वृद्धि होनेसे मनुष्य आरामतलब, आलसी और अकर्मण्य हो जाता है, जिससे वह जीवन-निर्वाहके साधनोंका उपभोग (खर्चा) तो अधिक करता है, पर उत्पादन कम करता है।

* * *

अच्छा बोलो

(स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी)

शुक्लयजुर्वेदमें शिवसंकल्प-सूक्तके प्रत्येक मन्त्रके अन्तमें एक सुभाषित अनुस्यूत है—**'तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु'**। अर्थात् मेरा मन कल्याणकारक संकल्पयुत हो। वेदोंकी गूढ भाषाको अधिक परिमार्जित करते हुए मनके संकल्पका गुरुतर दायित्व वाणीको सौंपा गया है, ऐसा उपनिषद्का मानना है या यों कहें कि मनकी लगाम वाणीके अधीन है—

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता
मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि।

(ऐतरेयोपनिषद् शान्तिपाठ)

मेरी वाणी मनमें प्रतिष्ठित हो और मन वाणीमें। अर्थात् मनमें जैसा निश्चय किया गया हो वाणीसे वैसा ही बोले और वाणी जैसा बोले वैसा मनमें चिन्तन हो, दोनों परस्पर अनुकूल रहें।

वाणीकी गरिमाको प्रतिष्ठित करने-हेतु हमें छान्दोग्योपनिषद्की दो दिव्य आत्माओंके वार्तालापको हृदयङ्गम करना होगा। दोनों ब्रह्माके मानस पुत्र हैं, एक हैं परम भागवत मुनिश्रेष्ठ नारद और दूसरे हैं ब्रह्मनिष्ठ योगीश्वर सनत्कुमार।

नारदने सनत्कुमारके चरणोंमें प्रणाम कर कहा—'मैं आपके पास ज्ञान-प्राप्तिके उद्देश्यसे आया हूँ।'

परमर्षि सनत्कुमारने पूछा—'पहले यह तो स्पष्ट करो कि तुम क्या जानते हो।'

महामुनि नारदने कहा—'मैं चारों वेद, शास्त्र, पुराण, कल्प, इतिहास इत्यादि सभी जानता हूँ।'

निवृत्तपरायण ऊर्ध्वरेता सनत्कुमारने मुस्कराते हुए कहा—'मैं समझ गया तुम शब्दार्थमात्र ही जानते हो, नाममात्र ही जानते हो, क्योंकि तुमने जो गिनाये वे सब नाम ही हैं।'

'भगवन्! क्या नामसे भी बढ़कर कोई वस्तु है?

'निश्चय ही, नामसे बढ़कर वाक् (वाणी) है।'

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदःसामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यःराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याःसर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवाःश्च मनुष्याःश्च पशूःश्च वयाःसि च तृणवनस्पतीञ्श्वापदान्याकीटपतंगपिपीलिकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं च यद्वै वाङ्नाभविष्यन्न धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापयिष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतत्सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्स्वेति।

(छान्दोग्योप० ७। २। १)

कण्ठादि आठ स्थलोंमें स्थित वर्णाभिव्यञ्जक इन्द्रियको वाणी कहते हैं और वर्णको नाम कहते हैं। वाणी ही ऋग्वेदरूप नामको दर्शाती है। यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ अथर्ववेद, इतिहास-पुराण पञ्चम वेद, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पात-शास्त्र, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेदविद्या, भूतविद्या, धनुर्विद्या, ज्योतिष, गारुड, संगीतशास्त्र, द्युलोक, पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, हिंसक जन्तु, कीट, पतंग, पिपीलिका-पर्यन्त प्राणी, धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य, साधु और असाधु, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, जो कुछ भी हैं सभी वाणीके विषय हैं। यदि वाणी न होती तो न धर्मका ज्ञान होता न अधर्मका। न सत्यका न असत्यका, न साधुका, न असाधुका, न मनोज्ञका और न अमनोज्ञका ही ज्ञान हो पाता। शब्दोच्चारणद्वारा वाणी ही इन सबको विज्ञापित करती है। अतः नामसे श्रेष्ठ इस वाणीकी 'यह ब्रह्म है'—ऐसा समझकर उपासना करो।

ऐतरेयोपनिषद्का एक सूत्र **'अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्'**—अग्निके वाणी-रूपमें (मनुष्य-शरीरके) मुखमें प्रवेश-करनेकी पुष्टि करता है। अग्निका वाणीके रूपमें मुखमें प्रवेश कहकर अत्यन्त मनोवैज्ञानिक एवं तथ्यपरक बात कही गयी है। अग्निके स्वरूप एवं गुणपर विचार करें तो स्पष्ट है कि दाहिका शक्तिकी अन्तिम परिणति है भस्म। हमारी वाणी चूल्हेकी अग्नि है या दावानल। हमारे बोल मधुसिक्त हैं या रसरिक्त?

वाणी रसवती यस्य यस्य श्रमवती क्रिया।
लक्ष्मीर्दानवती यस्य सफलं तस्य जीवनम्॥

'जिसकी वाणी मधुर है, जो परिश्रमी है, दानी है, उसीका जीवन सफल है।' क्या सचमुच जो वाणी

भगवद्‌गुणानुवादमें रत है, वही सच्ची वाणी है—

सा वाग् यया तस्य गुणान् गृणीते
करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च।
स्मरेद् वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु
शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः॥

(श्रीमद्भा० १०। ८०। ३)

जो वाणी भगवान्‌के गुणानुवादमें रत हो, हाथ भगवत्-सेवामें लगे हों, मन चराचर प्राणियोंमें निवास करनेवाले प्रभु-स्मरणमें निमग्न हो तथा कान भगवत्-कथा-श्रवण-सिक्त हो, तभी सार्थक है।

वाणीका गुण '**सारं सुष्ठु मितं मधु**' होना चाहिये। उदाहरणार्थ क्या भगवती भुवनसुन्दरी जनकनन्दिनीसे यह आशा की जा सकती थी कि वे वाणीका संयम उस महायोगीके लिये विस्मृत कर देंगी जो रामके लिये—

न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे।
ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना॥

(वा०रा०अयो० ३१। ५)

—यह कह चुका हो। आँखपर कंकड़ लगनेके पूर्व ही हाथपर मार झेल लेनेवाला लक्ष्मण! अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व ही न रखनेवाला सौमित्र और उसके लिये विदेह-नन्दिनीके ये वचन?—

अनार्याकरुणारम्भ नृशंस कुलपांसन॥
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत्।

(वा०रा०अर० ४५। २१-२२)

अनार्य! निर्दयी, क्रूरकर्मा! कुलाङ्गार! मैं तुझे खूब समझती हूँ। श्रीराम किसी भारी विपत्तिमें पड़ जायँ, यही तुझे प्रिय है। यह है चूल्हेकी अग्नि और दावाग्निका अन्तर। क्या इसे वाणीकी गुण-ग्रहणताका समयोचित अनुपयोग नहीं कहेंगे? ऐसे प्रसंगोंको तर्कका विषय मानकर ही स्वीकार किया जा सकता है जैसा कि कवि 'जयदेव' ने (गीतगोविन्दके रचयितासे सर्वथा भिन्न) अपनी रचना 'प्रसन्न-राघव' की प्रस्तावनामें लिखा है—

येषां कोमलकाव्यकौशलकला लीलावती भारती
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते।

जिसकी वाणी काव्यकी कोमल-कान्त-पदावलीकी रचना करनेमें सहज ही समर्थ हो यदि वह तर्कशास्त्रके कर्कश और वक्र वाक्योंका भी गुम्फन कर सके तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात!

यह सही है कि '**मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा**'—वाणीकी कसौटीपर कम ही लोग खरे उतर पाते हैं; परंतु अनावश्यक मर्मभेदी वचनोंसे तो चुप्पी भी एक गुण है, क्योंकि मौन भी वाणीकी मुखरताका सर्वश्रेष्ठ उद्योग है—'**विभूषणं मौनं पण्डितानाम्**'।

जहाँ अन्तःकरण-चतुष्टय, आवरण और विक्षेप-शक्ति, अपरोक्षानुभव एवं ब्रह्मनिष्ठा-जैसे दुरुह विषयोंके निराकरण-हेतु आचार्य शंकरने लिखा है—

न गच्छति विना पानं व्याधिरौषधशब्दतः।
विनापरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैर्न मुच्यते॥

(विवेकचूडामणि ६४)

तात्पर्य यह कि जैसे बिना औषध-सेवन किये औषध शब्दके उच्चारणमात्रसे रोग नहीं जाता, इसी प्रकार अपरोक्षानुभवके बिना केवल '**अहं ब्रह्मास्मि**' कहनेमात्रसे कोई मुक्त नहीं हो सकता। वहीं वेदान्त-जैसे विषयको इतना सस्ता बना दिया गया है कि देशमें वेदान्त-सम्मेलनोंकी धूम-सी मच गयी है और श्रोता भी 'शाकाहारी अंडों' के नाश्ता-प्रेमी हो चले हैं। जबकि धर्म (कानून) की प्रथम पुस्तक 'मनुस्मृति (२। १६०)-का उद्घोष है—

यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम्॥

'वेदान्तके फलका उपभोग वही कर सकता है, जिसकी वाणी और मन सर्वदा शुद्ध एवं भलीभाँति रक्षित हो।'

'शिवमहिम्नःस्तोत्र'में गन्धर्वराज पुष्पदन्ताचार्यने अपने भाव व्यक्त करते हुए प्रार्थना की है—'हे ब्रह्मस्वरूप महादेव! अत्यन्त मधुर अमृत-तुल्य-वेद वाणीके निर्माता! आपको क्या देवगुरु बृहस्पतिकी वाणी भी आश्चर्यमें डाल सकती है (अर्थात् नहीं, फिर हमारे-जैसोंकी क्या गिनती?); फिर भी त्रिपुरनाशक! आप जगन्नियन्ताके गुणानुवादसे उत्पन्न पुण्यके द्वारा (संसारकी चर्चासे दूषित) अपनी वाणीको पवित्र कर डालूँ, इसलिये आपके प्रशस्ति-गानमें मेरी वाणी जुट गयी है—

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम्।

मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता॥

(शिवमहिम्न० ३)

प्रार्थनाका प्रयोजन परमेश्वरको रिझाना नहीं अपितु अपनी वाणीको पवित्र करना है।

'**तीर्थं च प्रियवादिता**' तक ही सीमित न रहकर धरित्रीकी प्राणदायिनी शक्तिमें अन्न और जलके साथ कल्याणकारी वचनोंको भी सम्मिलित किया गया है—'**पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्**'।

वाणीकी चार विशेषताओंका वर्णन विदुरनीति (४। १२)-में इस प्रकार प्राप्त है—

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः
सत्यं वदेद् व्याहृतं तद् द्वितीयम्।
प्रियं वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं
धर्मं वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम्॥

प्रथम तो बोलनेसे न बोलना अच्छा है, और दूसरा न बोलनेसे सत्य बोलना श्रेष्ठ है, तीसरी विशेषता है सत्य और प्रिय बोलना तथा चौथी विशेषता है गुण और धर्मसम्मत उत्तम वचन बोलना।

कहते हैं कलिदोष शमनका सफल और सरलतम उपाय है वाणीद्वारा हरिका नाम लेना—

जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्।
विष्णुलोकमवाप्नोति पुनरावृतिदुर्लभम्॥

(वृहन्नारदीय)

तात्पर्य यह कि जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि'—ये दो अक्षर विद्यमान हैं, वह पुनरावृत्तिरहित विष्णुलोकको प्राप्त होता है। परंतु हरिका नाम क्या इतना सहज है? वह अन्तिम समयमें जिह्वापर आ जायगा? संन्यासी होनेके नाते जीवनभर भिक्षावृत्तिका प्रश्रय लिया है। अन्तिम समयमें किससे माँगूँगा भिक्षा? पर याद आया क्यों न अपने शरीरके ही एक अङ्गसे भिक्षाकी याचना करूँ!

त्वामेव याचे मम देहि जिह्वे
समागते दण्डधरे कृतान्ते।
वक्तव्यमेवं मधुरं सुभक्त्या
गोविन्द दामोदर माधवेति॥

(स्तोत्ररत्नावली, श्रीकृष्णस्तोत्रम् ५१)

हे जिह्वे! मैं तुझीसे याचना करता हूँ कि अन्तिम समयमें जब दण्डपाणि यमराज मेरे शरीरका अन्त करनेको उद्यत हों, उस समय तू गोविन्द, दामोदर, माधव—इन मञ्जुल नामोंका उच्चारण करना न भूल जाना। क्या यह मधुर स्वर मेरी वाणीका भूषण बन पायगा? प्रभुके हाथोंका शृंगार बनना तो मधुर स्वरपर ही अवलम्बित है न! मुरलीका मधुर स्वर! उसका पोलापन! पर मुझमें तो छल-प्रपञ्च ठसाठस भरा है। मैं तो आकण्ठ अहंकारमें डूबा हुआ हूँ। क्यों लेंगे वे मुझे अपने हाथमें? क्या मैं मधुर स्वर निकालने योग्य हूँ? पहले वासनाओंसे रिक्त तो हो जाऊँ। परमेश्वरके ओठोंपर लग पाऊँ, ऐसा मेरा सौभाग्य कहाँ! मैं इस योग्य हूँ ही कहाँ! परमेश्वरके पैरोंकी जूती बन जाऊँ वही बहुत है। पर यह भी तो 'अहं'का ही एक रूप है कि उनके पैरोंकी जूती बननेका दु:साहस करूँ! अरे मेरे तनका चमड़ा तो प्रभु-भक्तकी जूतियोंमें लग जाय यही बहुत है।

आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम।
तेहि के पगकी पानहीं तुलसी तनु को चाम॥

(दोहावली ५९)

चाहे सूर कहते हों—'***सोइ रसना, जो हरि-गुन गावै***' या कबीर बताते हों—'***कहत कबीरा राम न जा मुख ता मुख धूल भरी***' या मलूकदासने गाया हो—'***अवसर न चूक भोंदूँ पायो भलो दाँव रे***' या गुरुदेवनानक अरदास कहते हो—'***कह नानक, भजु रामनाम नित, जातें होत उधार***' या मीराबाई प्रार्थना करती हों—

'जो कृपाल तन मन धन दीन्हों, नैन नासिका मुख रसना।
जाको रचत मास दस लागै, ताहि न सुमिरो एक छिना॥'

—या रसखान पुकारते हों '***त्यों रसखानि वही रसखानि, जु है रसखानि, सो है रसखानी***' या भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार उद्बोधित कर गये हों—

मधुर सदा हितकर, प्रिय साँचे वचन उचारत बानी।
विगत काम, मद, मोह, लोभ नहि सुख दुख सम कर जानी॥
राम नाम पीयूष पान रत, मानद परम अमानी।
पतितनको हरि लोक पठावन जग आवत अस ज्ञानी॥

अन्ततः सभीका मन्तव्य है कि वाणीकी सार्थकता प्रभुके गुणानुवादमें है।

* * *

साधकोंके प्रति—

परमात्मप्राप्तिमें सबका अधिकार

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

मनुष्यमात्र परमात्मप्राप्तिका समानरूपसे अधिकारी है; क्योंकि मनुष्य-शरीर परमात्मप्राप्तिके लिये ही मिला है। इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पारसी, यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदि कोई क्यों न हो, मात्र मनुष्य परमात्माको प्राप्त कर सकते हैं। आवश्यकता केवल परमात्मप्राप्तिकी उत्कट लालसाकी है। परंतु जबतक सत्संग नहीं मिलता अथवा कोई आफत नहीं आती, तबतक मनुष्य मानो बेहोशीमें रहता है! उसके भीतर परमात्मप्राप्तिकी लालसा जाग्रत् नहीं होती! ऐसे भी कई लोग हैं, जो यह मानते हैं कि शास्त्रोंका अध्ययन करना, पारमार्थिक पुस्तकें पढ़ना, पूजा-पाठ करना, साधन-भजन करना तो ब्राह्मणोंका अथवा साधुओंका काम है, हमारा काम नहीं है! ऐसे लोग परमात्मप्राप्तिके अधिकारी होते हुए भी परमात्माकी प्राप्तिको, उसकी आवश्यकताको नहीं समझ पाते।

परमात्माका सम्बन्ध जीवमात्रके साथ समान है। सभी जीव परमात्माके अंश हैं। पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि भी परमात्माके अंश हैं, पर उनमें परमात्मप्राप्तिकी योग्यता, अधिकार, सामर्थ्य और स्वतन्त्रता नहीं है। परंतु मनुष्य-शरीरमें परमात्मप्राप्तिकी योग्यता भी है, अधिकार भी है, सामर्थ्य भी है और स्वतन्त्रता भी है; क्योंकि मनुष्य बननेका उद्देश्य भी यही है। इसलिये जिसके भीतर परमात्मप्राप्तिकी लालसा है, वह चाहे पापी-से-पापी हो या पुण्यात्मा-से-पुण्यात्मा, निम्न-से-निम्न हो या ऊँच-से-ऊँच, वह परमात्मप्राप्तिका अधिकारी हो जायगा! अत: परमात्मप्राप्तिके विषयमें कभी किसीको निराश नहीं होना चाहिये। परंतु कोई परमात्माकी प्राप्ति चाहे ही नहीं, उसको परमात्मा कैसे मिलेंगे? जो चाहता है, उसीको परमात्मा मिलते हैं—'**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**' (गीता ४। १०) 'जो जिस प्रकार मेरी शरण लेते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार आश्रय देता हूँ।'

एक मार्मिक बात है कि परमात्माकी प्राप्ति ब्राह्मणको नहीं होती, क्षत्रियको नहीं होती, वैश्यको नहीं होती, शूद्रको नहीं होती, ब्रह्मचारीको नहीं होती, गृहस्थको नहीं होती, साधुको नहीं होती, वानप्रस्थको नहीं होती, भाइयोंको नहीं होती, बहनोंको नहीं होती, पापीको नहीं होती, पुण्यात्माको नहीं होती! तो फिर किसको होती है? 'साधक'को होती है। तात्पर्य है कि जो केवल परमात्मप्राप्तिकी इच्छा रखते हैं, उनको ही परमात्माकी प्राप्ति होती है। वर्ण, आश्रम, योग्यता, पद, अधिकार आदिका सम्बन्ध असत्‌का सम्बन्ध है। असत्‌का सम्बन्ध रखते हुए सत्‌की प्राप्ति कैसे हो सकती है? नहीं हो सकती। इसलिये ब्राह्मण होनेके नाते अथवा साधु होनेके नाते कोई परमात्मप्राप्तिका अधिकारी हो जाय—यह बात है ही नहीं। जिसके भीतर ब्राह्मणपनेका, साधुपनेका अभिमान नहीं है और जिसके भीतर परमात्मप्राप्तिकी जोरदार लालसा है, वही परमात्मप्राप्तिका अधिकारी है। जिसके भीतर परमात्मप्राप्तिकी अनन्य अभिलाषा नहीं है, वह ब्राह्मण अथवा साधु ही क्यों न हो, उसको परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी। अपने वर्णका अभिमान होनेके कारण ही अपनेमें बड़प्पन अथवा छोटापन दीखता है कि मैं तो ब्राह्मण हूँ अथवा मैं तो शूद्र हूँ! इसलिये परमात्मप्राप्तिके विषयमें अपनेको बड़ा मानना भी बाधक है और छोटा मानना भी बाधक है। साधकमें छोटे-बड़ेका अभिमान नहीं होना चाहिये, प्रत्युत परमात्मप्राप्तिकी भूख होनी चाहिये। भोजन वही करता है, जो भूखा हो, चाहे वह ब्राह्मण हो, चाहे शूद्र। ऐसे ही भगवत्प्राप्ति उसीको होती है, जिसमें जोरदार लालसा है।

शरीरसे संसारका काम अथवा सेवा तो हो सकती है, पर परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती। परमात्माकी प्राप्ति तो अपने-आपसे ही होती है और अपने-आपको ही होती है। शरीरकी प्रधानता व्यवहारमें है, परमार्थमें नहीं। इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चारों वर्ण सांसारिक व्यवहारके विषयमें हैं, परमात्मप्राप्तिके विषयमें नहीं।

ब्राह्मण ब्राह्मणके साथ, क्षत्रिय क्षत्रियके साथ, वैश्य वैश्यके साथ और शूद्र शूद्रके साथ रोटी-बेटीका व्यवहार करे तथा अपने वर्णके अनुसार कर्तव्य-कर्मका आचरण करे—इस विषयमें चारों वर्ण हैं। परंतु परमात्मप्राप्तिमें ये वर्ण काम नहीं आते। परमात्मप्राप्तिके लिये तो 'मैं अमुक वर्ण, आश्रम आदिका हूँ'—इस अहंताको ही मिटाना होगा और अनन्यभावसे 'मैं साधक (योगी, मुमुक्षु या भक्त) हूँ'—इसको स्वीकार करना होगा। अहंताको मिटाना क्या है? मैं न ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय हूँ, न वैश्य हूँ, न शूद्र हूँ, न ब्रह्मचारी हूँ, न गृहस्थ हूँ, न साधु हूँ, न वानप्रस्थ हूँ, प्रत्युत मैं तो केवल भगवान्‌का हूँ*। तात्पर्य है कि हमारी अहंताका सम्बन्ध भगवान्‌के साथ होना चाहिये, वर्ण-आश्रम आदिके साथ नहीं। जिसके भीतर वर्ण-आश्रम आदिकी मुख्यता है और भगवत्सम्बन्धकी गौणता है, उसको परमात्मप्राप्ति नहीं होती। इसलिये परमात्माकी प्राप्ति तब होगी, जब हमारी अहंताका सम्बन्ध परमात्माके साथ होगा कि 'मैं तो भगवान्‌का ही हूँ'†। जैसे, पहले स्त्रीमें यह अहंता होती है कि 'मैं कुँआरी हूँ', पर विवाह होनेपर यह अहंता बदल जाती है और 'मैं सुहागन हूँ'—यह अहंता दृढ़ हो जाती है। इतनी दृढ़ हो जाती है कि अगर उसका पति मर भी जाय तो भी उसमें 'मैं कुँआरी हूँ'—यह अहंता पुनः नहीं होती! वह विधवा तो हो जाती है, पर कुँआरी नहीं होती। ऐसे ही साधकमें 'मैं ब्राह्मण हूँ, मैं साधु हूँ' आदि कोई भी अहंता नहीं रहती, और 'मैं परमात्माका हूँ'—यह अहंता दृढ़ हो जाती है। मैं परमात्माका हूँ—यह भाव दृढ़ होनेपर परमात्मप्राप्तिकी तत्परता, लगन, उत्कट लालसा स्वतः जाग्रत् हो जाती है। इसलिये जो परमात्माकी प्राप्ति चाहते हैं, वे अपनेमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, पुरुष आदिका अभिमान न करें, प्रत्युत 'मैं तो भगवान्‌का हूँ'—ऐसा मानें। परमात्मप्राप्ति स्वयंको होती है, स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरको नहीं। शरीर चाहे ब्राह्मणका हो, चाहे अन्त्यजका हो, उससे तो सम्बन्ध-विच्छेद करना है।

मनुष्यमात्रका परमात्माके साथ अकाट्य सम्बन्ध है। मनुष्य चाहे स्वर्गमें जाय, चाहे नरकोंमें जाय, किसी भी योनिमें जाय, उसका परमात्मासे सम्बन्ध कभी टूटा नहीं, टूटेगा नहीं, टूट सकता नहीं। भगवान्‌का अंश भगवान्‌से अलग हो ही कैसे सकता है? परंतु असत्‌के साथ सम्बन्ध मान लेनेसे वह भगवान्‌का सम्बन्ध भूल गया। अगर वह अपना सम्बन्ध केवल भगवान्‌से मान ले और अनन्यभावसे उनको पानेकी इच्छा करे तो उसको भगवत्प्राप्ति हो जायगी। जो भगवान्‌को नहीं चाहता, उसको ऊँचा पद मिल जायगा, तत्त्वज्ञान मिल जायगा, सिद्धियाँ मिल जायँगी, पर भगवान् और उनका प्रेम नहीं मिलेगा। परंतु जो केवल भगवान्‌को ही चाहता है, वह अगर बिलकुल अनपढ़ और गँवार हो, भेड़-बकरी चरानेवाला हो, निम्न वर्णका हो, निम्न जातिका हो तो भी उसको भगवान् मिल जायँगे। कारण कि भगवान्‌के ही अंश होनेके नाते सब-के-सब मनुष्य भगवत्प्राप्तिके अधिकारी हैं।

'मनुष्य' नाम उसीका है, जो परमात्मप्राप्तिका जन्मजात अधिकारी हो! इसलिये सब-के-सब मनुष्य परमात्माको प्राप्त कर सकते हैं। परंतु परमात्माकी प्राप्ति शरीरके द्वारा नहीं होती, प्रत्युत, शरीरके सम्बन्ध-विच्छेदसे होती है। इसलिये भीतरमें परमात्माकी चाहना होनी चाहिये, बाहरसे शरीर कैसा ही हो, चाहे स्त्रीका शरीर हो, चाहे पुरुषका शरीर हो, चाहे ब्राह्मणका शरीर हो, चाहे चमारका शरीर हो। कारण कि ऊपरका चोला तो बदलनेवाला है, पर भीतरका स्वरूप बदलनेवाला नहीं। बदलनेवालेका सम्बन्ध बदलनेवाले (संसार)-के साथ है और न बदलनेवालेका सम्बन्ध न बदलनेवाले (परमात्मा)-के साथ है। न

---

* नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो नो वा वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धेर्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः॥

† अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥ (मानस, अरण्य० ११। ११)
सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥ (मानस, किष्किन्धा० ३)

बदलनेवालेके साथ बदलनेवालेका सम्बन्ध नहीं है और बदलनेवालेके साथ न बदलनेवालेका सम्बन्ध नहीं है। इसलिये 'मेरेमें योग्यता कम है, मेरे पुण्य कम हैं, मैं स्वस्थ नहीं हूँ, मैं विद्वान् नहीं हूँ, मेरे आचरण अच्छे नहीं हैं आदि बातोंको लेकर किसीको परमात्माकी प्राप्तिसे कभी निराश नहीं होना चाहिये। अच्छे-बुरे आचरण तो पीछे हैं, पर परमात्माका अंश पहले है। शरीर पीछे है, परमात्माका अंश पहले है।

मनुष्यमात्रका भगवान्‌के साथ साक्षात् सम्बन्ध है। उसमें किसी माध्यमकी जरूरत नहीं है। भगवान्‌ने किसी एक वर्ण, आश्रम आदिके मनुष्यको अपना अंश नहीं बताया है, प्रत्युत जीवमात्रको अपना अंश बताया है—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७)। इसलिये सब-के-सब मनुष्य परमात्मप्राप्तिके पूरे-के-पूरे अधिकारी हैं। जैसे, किसी माँके दस बालक हों तो बालकोंके लिये माँके दस हिस्से नहीं होते। दसों बालकोंके लिये माँ पूरी-की-पूरी है। एक-एक बालक पूरी माँको अपनी मान सकता है। कोई बालक ऐसा नहीं कहता कि माँका दसवाँ हिस्सा मेरा है अथवा इतनी माँ तो मेरी है, इतनी माँ तेरी है। ऐसे ही भगवान्‌के भी हिस्से नहीं होते। भगवान्‌के सब-के-सब अंश पूरे भगवान्‌की प्राप्तिके अधिकारी हैं। एक-एक मनुष्यके लिये भगवान् पूरे-के-पूरे हैं!

माँ किसी कारणको लेकर बालककी नहीं होती। क्या अनपढ़ और मूर्खकी माँ नहीं होती? क्या बीमारकी माँ नहीं होती? क्या माँ केवल पढ़े-लिखे और स्वस्थकी ही होती है? माँपर सब बालकोंका समान हक होता है, पर वह किसी योग्यता, पद, अधिकार, विद्या आदिके नाते नहीं होता, प्रत्युत माँके नाते होता है कि 'मेरी माँ है'! इसी तरह भगवान् हमारे हैं। छोटा हो या बड़ा हो, अच्छा हो या मन्दा हो, दुराचारी हो या सदाचारी हो, ऊँचा हो या नीचा हो, समझदार हो या बेसमझ हो, भगवान् सबके हैं। माँमें तो पक्षपात हो सकता है, पर भगवान्‌में पक्षपात होना सम्भव ही नहीं है—'**समोऽहं सर्वभूतेषु**' (गीता ९। २९), '***सब मम प्रिय सब मम उपजाए***' (मानस, उत्तर० ८६। २)। इसलिये हम कैसे ही हों, भगवत्प्राप्तिसे हमें कभी निराश नहीं होना चाहिये; क्योंकि इसीके लिये मनुष्य-शरीर मिला है।

~~~

प्राणिमात्रके साध्य भगवान् सदाशिव

इदं मधुमुखं विषं हरति जीवितं तत्क्षणादपथ्यमिदमाशितं व्यथयते विपाके वपुः।
इदं तृणगणावृतं बिलमधो विधत्ते क्षणाद्यदत्र मलिनोल्बणैर्द्रविणमर्जितं कर्मभिः॥
अतः प्रतनुवैभवोद्भवदखर्वगर्वक्ष्मापतिप्रणयसंभवं भुवि विडम्बनाडम्बरम्।
विहाय सुरवाहिनीपुलिनवासहेवाकिनो भजन्ति कृतिनस्तमीरमणखण्डचूडामणिम्॥

(स्तुति-कुसुमाञ्जलि)

इस संसारमें मनुष्य अत्यन्त मलिन और उल्बण [उग्र] कर्मोंद्वारा जिस धनका उपार्जन करते हैं, वह आरम्भमें मधुर प्रतीत होनेवाला विष है, अतएव तत्क्षण [उपभोग करते समय ही] भोक्ताके जीवनको नष्ट कर देता है। यह उपभोग करनेसे परिणाममें अतीव अपथ्य-कारक होकर अन्तमें शरीरको व्यथित कर देता है। [मलिन कर्मोंद्वारा उपार्जित] वह धन तृण-पुंजसे ढँका मानो एक बड़ा बिल [अन्धकूप] है, अतः उसमें प्रवेश [उपभोग] करनेमात्रसे ही वह मनुष्यका अधःपात कर देता है। इसी कारण बुद्धिमान् लोग इस असार-संसारमें अत्यन्त अचिरस्थायी [क्षणभङ्गुर] वैभवसे उत्पन्न महामदसे मत्त राजाओंकी प्रार्थनासे होनेवाले उपहास [अपमान]-के आडम्बरको छोड़कर गङ्गातटमें वास करते हुए एकमात्र चन्द्रशेखर सदाशिवकी आराधना करते हैं।

~~~

लीला-चिन्तन

श्रीरामलीला-चिन्तन—

चुटकी-सेवा

'आञ्जनेयने अयोध्या आकर हम सबको अपने आराध्य अग्रजकी सेवासे सर्वथा वञ्चित कर दिया है।' भरतादि तीनों भाई अन्तःपुरमें श्रीजनकनन्दिनीके समीप उपस्थित हुए—'हम उन पवनपुत्रकी तत्परतासे पराजित हैं। कोई भी सेवाका अवसर वे दूसरेको देते ही नहीं। वे सदैव सभी कार्योंके लिये पहलेसे ही प्रस्तुत मिलते हैं। पुत्र जब पीड़ित हों तो अम्बाके अतिरिक्त किसकी शरण जायँ? अतः आप अनुग्रह करके कोई उपाय निकालें।'

'हनुमान्‌ने तो मुझे भी सेवा-वञ्चित कर दिया है।' श्रीजानकीने कहा—'उसकी चल पाती तो रात्रिके एकान्तकी पाद-संवाहन-सेवा भी मुझे नहीं मिल पाती। अन्तःपुरमें भी वह सम्राट्‌के साथ लगा ही रहता है। रात्रिमें शयनकक्षमें भी उपस्थित रहनेका आग्रह कर रहा था। बड़ी कठिनाईसे स्वयं तुम लोगोंके अग्रज ही वारित कर सके उसे। वह वानर है, अतः मानवकी मर्यादा समझता ही नहीं।'

'आप कुछ करें।' भरतने अनुरोध किया। श्रीमैथिली अनुकूल हैं, यह देखकर उनको साहस हो गया था।

'क्या किया जा सकता है?' वैदेहीने सहज पूछ लिया।

'सम्राट्‌की सेवा-सूची बननी चाहिये और उसपर यह अंकित होना चाहिये कि कौन-सी सेवा किसे अर्पित की गयी है।' लक्ष्मणने सुझाव दिया—'उस सूचीपर यदि आप सम्राट्‌से हस्ताक्षर करा दें तो वह राजसदन एवं राजसभामें प्रामाणिक हो जायगी। उसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकेगा।'

'तुम लोग ऐसी सूची बनाकर मुझे दे दो।' श्रीजानकीने कहा—'हस्ताक्षर मैं करा दूँगी; किंतु अन्तःपुरकी सेवामें मेरा भाग रहना चाहिये।'

'यह आवश्यक तो नहीं है कि अयोध्याके सम्राट्‌की कोई सेवा किसी वानरको दी ही जाय?' शत्रुघ्नकुमारने पूछ लिया—'सम्राट्‌के स्वजन जब सेवा करनेको समुत्सुक हैं, किसी भी अन्यको यह अवसर देना कैसे उचित हो सकता है।'

'तुम लोगोंको जैसा उचित लगे, वैसी सूची बना लो।' श्रीजनकनन्दिनीको यह अच्छा तो नहीं लगा कि उनके हनुमान्‌को ही प्रभुकी सेवासे सर्वथा वञ्चित किया जाय, किंतु वे भी सेवाका अवसर न मिलनेसे झुँझला गयी थीं। अतः उन्होंने स्वीकृति दे दी। तीनों भाइयोंने प्रातः-उत्थानसे लेकर रात्रि-शयनतककी सम्राट्‌की समस्त सेवाओंकी सूची बनायी। बहुत सोचकर देख लिया कि कोई छोटी सेवा भी छूट न जाय। कौन-सी सेवा किसका दायित्व है, यह भी लिख लिया। सम्राट् किसीको बुलाना चाहें तो वह बुलानेकी सेवा तक अंकित कर ली गयी।

'आपके तीनों अनुज बहुत खिन्न हैं कि उन्हें आपकी सेवाका अवसर ही नहीं मिलता है।' श्रीसीताजीने एकान्तमें श्रीरघुनाथजीके करोंमें सूची देकर निवेदन किया—'उन्होंने यह सूची बनायी है। वे चाहते हैं कि आप हस्ताक्षर करके इसे विधान बना दें।'

'इसमें तुम्हारी भी स्वीकृति है?' श्रीराघवेन्द्रने पूरी सूची ध्यानपूर्वक देख ली। उसमें कहीं हनुमान्‌का नाम न देखकर उनके अधरोंपर हास्य आया। इन लीलामयका हास्य ही तो जनोन्मादकारिणी माया है। उसका मर्म कौन समझ पाया है। बिना कोई प्रतिवाद, बिना कोई संशोधन किये हस्ताक्षर करके अपनी मुद्रासे उसे अंकित कर दिया।

एकान्त-कक्षसे सम्राट्‌के बाहर निकलते ही पवनकुमार सम्मुख आये तो शत्रुघ्नने रोक दिया—'सम्राट्‌की सेवाका एक सुनिश्चित विधान बन गया है। सम्राट्‌ने उसे स्वीकृति दे दी है। अन्तःपुरसे सम्राट्‌के आगे लोगोंको सावधान करते चलनेकी सेवा मेरी है। आपको उस सेवा-विधानका उल्लंघन नहीं करना चाहिये।'

'मैं ऐसी धृष्टता नहीं करूँगा।' हनुमान्‌जीने पीछे हटते हुए विनम्र शब्दोंमें अनुरोध किया—'सेवा-विधानको मैं जाननेका अधिकारी होऊँ तो आप मुझे सूचित कर दें।'

वह सूची हनुमान्‌जीके हाथमें दे दी गयी। उसे उन्होंने आदिसे अन्ततक देख ली। तीनों भाइयोंके अधरोंपर स्मित

रेखा तो थी ही, श्रीरघुनाथजी भी मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे। पवनकुमारने सूची सम्राट्के करोंमें तब दी, जब वे राज-सभामें सम्राज्ञीके साथ सिंहासनासीन हुए। सूची करोंमें देकर हाथ जोड़कर बोले—'प्रभुकी जो सेवा इस सूचीमें न हो, उसे प्राप्त करनेकी यह दास प्रार्थना करता है।'

'सूचीमें जो सेवा न हो' भरतने लक्ष्मण और शत्रुघ्नकी ओर देखा—'ऐसी तो कोई सेवा ही नहीं है।' दोनोंकी मुखभंगी आश्वस्त थी। अतः भरतने कह दिया—'अवश्य वह सेवा जो इस सूचीमें न हो, आपका स्वत्व रहेगी।'

'क्योंकि प्रभुने सेवा-विधान अपने हस्ताक्षरसे स्वीकार किया है, यह भी अंकित करके हस्ताक्षर कर देनेका अनुग्रह करें।' हनुमान्ने प्रार्थना की।

'इस सूचीसे जो सेवा अवशिष्ट हो, वह हनुमान्जीका दायित्व रहेगी।' सूची सम्राट्के करोंसे लेकर भरतने उसपर नीचे इतना बढ़ा दिया। श्रीराघवेन्द्रने हस्ताक्षर करके उसे भी मुद्राङ्कित कर दिया।

'जब कभी सम्राट्को जम्हाई आयेगी, चुटकी बजानेकी सेवा यह दास करेगा।' सूचीपर हस्ताक्षर हो जानेके पश्चात् हनुमान्ने यह कहकर सबको चौंका दिया। सचमुच सूचीमें इस सेवाका कहीं उल्लेख नहीं था। इस सेवाका एक सुपरिणाम उसी क्षण पवनपुत्रको प्राप्त हुआ। उनको श्रीरघुनाथके पादपीठके समीप बैठे रहनेका वैधानिक स्वत्व प्राप्त हो गया। अभीतक वे वहाँ बैठते थे। किसीने अबतक आपत्ति नहीं की थी, किंतु अब तो कोई आपत्ति कर ही नहीं सकता था। राजसभामें, राजभवनमें, कहीं भी नगरमें या अन्यत्र भ्रमणमें श्रीरघुनाथजीके सम्मुख रहनेका अधिकार मिल गया आञ्जनेयको। क्योंकि श्रीराघवेन्द्रको जम्हाई कब आयेगी, इसका कोई निश्चित समय कैसे बताया जा सकता है। अतः पवनकुमारको तो उनके श्रीमुखपर सदा दृष्टि लगाये रहना है। उनकी दृष्टिमें व्याघात बननेका अधिकार किसीको नहीं रह गया।

दिन किसी प्रकार व्यतीत हो गया। भोजन, मध्याह्न-विश्राम पहले बीत चुका था। राजसभामें, कथा-श्रवणके समय, सायं-संध्यापूजन-कालमें, रात्रिके प्रथम प्रहरकी पुराण-चर्चामें हनुमान् श्रीरामके मुखपर दृष्टि लगाये सदा उनके सम्मुख उपस्थित रहे। अनेक लोगोंको कुछ असुविधा हुई; किंतु कोई कुछ कह सकता नहीं था। भरतादि भाइयोंको भी अटपटा लगा, परंतु संतोष यही था कि अब उन्हें भी सेवाका सुअवसर प्राप्त हो गया था।

रात्रि-विश्रामका समय आया। श्रीराम अपने एकान्त-कक्षमें प्रविष्ट होने लगे तो पवनकुमार भी साथ चले। श्रीजानकीजीने रोका—'हनुमान्! तुम्हें पहले भी समझाया गया है कि रात्रिमें मेरे इस शयन-कक्षमें तुम्हें नहीं आना चाहिये।'

'अम्ब! मेरे इन आराध्यको रात्रिमें जृम्भण (जम्हाई)-का वेग नहीं आता?' हनुमान्ने अत्यन्त भोलेपनसे पूछा।

'इसका आश्वासन मैं नहीं दे सकती।' श्रीसीताजीने कुछ हँसकर, कुछ झुँझलाकर कहा—'किंतु मैं तुम्हें अपने इस कक्षमें रात्रिमें आनेकी अनुमति नहीं दूँगी।'

'अच्छा अम्ब!' आञ्जनेयने कोई आग्रह नहीं किया। वे अविलम्ब पीछे हट गये। वहाँसे चले गये।

हनुमान् तो चले गये, किंतु अपने एकान्त-कक्षमें पहुँचते ही श्रीजनकनन्दिनी दूसरी भारी उलझनमें पड़ गयीं। उनके आराध्य पूरा मुख खोले शय्यापर पड़े थे। श्रीजानकीजीने पूछा—'आपको क्या हुआ है?'

कोई उत्तर नहीं। कोई संकेत भी ऐसा नहीं जो समझमें आये। श्रीरामने वाम कर उठाकर ऊपर संकेत कर दिया, किंतु ऊपर—कक्षके भीतर ऊपर तो कुछ नहीं था। वहाँ तो सदाकी भाँति मुक्तादाम-शोभित उज्ज्वल कौशेय वितान मात्र था। श्रीमैथिलीने हिलाया, जल पिलानेका प्रयत्न किया, किंतु कोई परिणाम नहीं। श्रीरामने मुख बंद नहीं किया। वे बोले नहीं। मुखमें जल लेना अस्वीकार कर दिया।

'अरी कोई है! शीघ्र अम्बाको सूचना दे। वे अभी यहाँ पधारें।' व्याकुल जनकनन्दिनीजीने द्वार-रक्षिकाको पुकारा—'तीनों अम्बाओंको बुला। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्नको भी पुकार ले।'

कुछ क्षणोंमें तो वहाँ राजसदनके सभी सदस्य, सब सेवक-सेविकाएँ एकत्र हो गयीं। माताओंके आते ही श्रीरामने शय्यासे उठकर हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया, किंतु मुख नहीं बंद किया। पूछनेपर केवल हाथसे ऊपर संकेत करते थे। यह संकेत किसीकी समझमें नहीं आता था।

'गुरुदेवको लेने जाओ!' माता कौसल्याने लक्ष्मणकी ओर देखा। भरतको आज्ञा दी—'राजकीय भिषक्को शीघ्र ले आओ।'

भिषक्का आना व्यर्थ था। उन्होंने नाड़ी-परीक्षण

किया। हृदयगति देखी, किंतु श्रीरघुनाथने कर-संकेतसे उनको सूचित कर दिया कि उनको कोई शारीरिक व्याधि नहीं। वे कोई औषधि ग्रहण नहीं करेंगे।

महर्षि वसिष्ठ लक्ष्मणसे समाचार पाकर उसी समय रथमें बैठकर राजसदन आ गये। श्रीरामने उनके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया, किंतु मुख बंद हुआ नहीं। वैद्यराजने निवेदन किया—'हनुस्तम्भका कोई लक्षण नहीं है।'

'हनुस्तम्भ तो नहीं है, किंतु हनुमान् कहाँ हैं?' महर्षिने इधर-उधर देखकर पूछा।

'हनुमान्?' अब सबका ध्यान गया। राजसदनके सभी लोग एकत्र हो गये और पवनकुमारका पता नहीं?

'उनको ढूँढ़ो। उन्हें यहाँ ले आओ।' महर्षिका आदेश हुआ—'श्रीराम बार-बार ऊपर संकेत कर रहे हैं। देखो कि इस कक्षके ऊपर शिखरपर क्या है?'

'कक्षके ऊपर शिखरपर।' अब सबका ध्यान संकेतकी ओर गया। शिखरपर कुछ है, यह अबतक तो किसीने सोचा नहीं था।

'आपको कुलगुरु बुला रहे हैं।' सेवक शिखरपर पहुँचे तो देखकर चकित रह गये। वहाँ हनुमान् बैठे हैं। उनके नेत्र निमीलित हो रहे हैं। अश्रुधारा अखण्ड चल रही है। शरीरका रोम-रोम उत्थित है। बार-बार गात्र कम्पित हो रहा है। वे तो दोनों करोंसे चुटकी बजाते कीर्तनमें तन्मय हैं—

'राम राम राम, सीता राम राम राम।
जय जय राम राम राम, सीता राम राम राम॥'

सेवकने पुकारा, हिलाया और संदेश दिया तो तन्मयता दूर हुई। चुटकी बजाते ही शिखरसे नीचे उतरे। गुरुदेवके पदोंमें प्रणाम करते समय श्रीराघवेन्द्रके मुखपर दृष्टि गयी तो चुटकी बंद कैसे कर दें?

'बंद करो इसे।' महर्षि वसिष्ठने आज्ञा दी। हनुमान्जीके चुटकी बजाना बंद करते ही श्रीरामने मुख बंद कर लिया। अब महर्षिने पवनकुमारसे पूछा—'तुम वहाँ शिखरपर बैठे क्या कर रहे थे?'

'स्वामीको जम्हाई आये तो चुटकी बजानेकी सेवाका दायित्व मुझे दिया गया है।' पवनकुमारने अत्यन्त भोलेपनसे कहा—'अम्बाने अपने कक्षमें मुझे आनेकी अनुमति नहीं दी और यह आश्वासन भी नहीं दिया कि रात्रिमें मेरे स्वामीको जम्हाई नहीं आयेगी। जम्हाई पता नहीं कब आये, अतः मैं चुटकी बजा रहा था कि जब भी आये, मैं अपनी सेवामें प्रमत्त न सिद्ध होऊँ।'

'वत्से! तुम श्रीरामके मुख खोले रहनेका मर्म समझ गयी हो।' महर्षिने स्नेहपूर्वक श्रीजनकनन्दिनीकी ओर देखा—'ये भक्तवत्सल अपनेमें तन्मय आश्रितके भावका सत्कार किये बिना रह नहीं सकते। हनुमान् चुटकी बजायेंगे तो इन्हें अखण्ड जम्हाई आयेगी ही। अतः तुम अपनी उस सेवा-सूचीमें संशोधन कर लो।'

महर्षि आदेश देकर विदा हुए तो श्रीजानकीजीने भरतकी ओर देखा—'वह सूची मुझे दे दो।'

सभी भाई अत्यन्त लज्जित थे। सूची लेकर श्रीजनकनन्दिनीने उसी समय फाड़ दी और स्नेहपूर्वक हनुमान्‌की ओर देखकर कहा—'वत्स! यह अपराध मुझसे हुआ था। मैं हार गयी तुमसे—तुम्हारी निष्ठासे। अब मुझपर दया करो। यह चुटकी बजाना बंद रखो और जैसे पहले सेवा कर रहे थे, वैसे ही सेवा करते रहो।

'सम्राट्‌की सब सेवा आपकी।' भाइयोंने एक स्वरसे स्वीकार किया—'अब आप हम सबपर अनुग्रह करें।'

'पवनकुमार! आजसे यह मर्यादा स्थापित हुई कि मेरी सेवा तुम्हारे अनुग्रहसे ही किसीको प्राप्त होगी।' श्रीरामने हनुमान्‌के मस्तकपर हाथ रखा—'अपनी सेवा मैं भी स्वयं दूसरेको तुम्हारी अनुमति लेकर ही दे सकूँगा।'

श्रीरामकी सेवाके साकार-स्वरूप पवनकुमारने आराध्यके चरणोंमें प्रणिपात किया। माताएँ अपने सदन आश्वस्त होकर पधारीं। भरतादि भी अपने भवन गये, किंतु अब यह रात्रि तो श्रीहनुमान्‌की श्रद्धा, सेवानिष्ठाका स्तवन करते ही व्यतीत होनी थी।

* * *

श्रीकृष्णलीला-चिन्तन—

प्रभुकी आँखमिचौनी लीला

व्रजरानीकी सरस शिक्षा, अपने नीलमणिको स्तन्य-पानसे विरत करनेका प्रेमिल प्रयास श्रीकृष्णचन्द्रके अरुण अधरोंपर स्मितका संचार कर देता है। वे और भी उल्लासमें भरकर जननीके वक्षःस्थलका अञ्चल खींचते हुए उसमें अपना मुखचन्द्र छिपा लेते हैं। मैया उन्हें रोकनेकी-सी बाह्य चेष्टा करती हुई कहती हैं—

जसुमति कान्हहिं यहै सिखावति।
सुनहु स्याम, अब बड़े भये तुम, कहि स्तन-पान छुड़ावति॥
ब्रज-लरिका तोहिं पीवत देखत, हँसत, लाज नहिं आवति॥
जैहैं बिगर दाँत ये अच्छे, तातैं कहि समुझावति॥
अजहूँ छाँड़ि कह्यौ करि मेरौ, ऐसी बात न भावति॥
सूर स्याम यह सुनि मुसुक्याने, अंचल मुखहिं लुकावत॥

इतनेमें सुबल, श्रीदाम, उज्ज्वल, वसन्त, कोकिल आदि सखा प्राङ्गणमें प्रवेश करते हैं। फिर तो श्रीकृष्णचन्द्र जननीके अङ्कमें रह सकें, यह सम्भव कहाँ। वे तत्क्षण गोदसे उतरकर भाग छूटते हैं। श्यामल श्रीअङ्गोंका त्रिभुवनमोहन-सौन्दर्य प्राङ्गणको उद्भासित करने लगता है। उस आलोकमें जननीके नेत्र तो निस्पन्द हो ही गये, अन्तरिक्षमें अवस्थित अमरवृन्द भी विथकित रह जाते हैं—

अजिर पद-प्रतिबिंब राजत, चलत उपमा-पुंज॥
प्रति चरन मनु हेम बसुधा, देति आसन कंज॥
सूर प्रभु की निरखि सोभा रहे सुर अवलोकि॥
सरद चंद चकोर मानौ, रहे थकित बिलोकि॥

दौड़ते हुए श्रीकृष्णचन्द्र तपन-तनयाके तीरपर जा पहुँचते हैं और वहाँ विविध विचित्र क्रीडाओंमें संलग्न हो जाते हैं। आज इन्हें अग्रज बलरामका सहयोग प्राप्त है, अन्यथा गत कई दिनोंसे दोनों भाई परस्पर खेलते-खेलते प्रतिदिन ही लड़ लेते थे। एक दिन तो श्रीकृष्णचन्द्र अग्रजसे इतना रूठ गये कि खेल छोड़कर व्रजेश्वरीके पास जा पहुँचे और दाऊ भैयाकी सारी करतूत उन्होंने मैयाको सुना दी—

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसौं कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ?
कहा करौं, इहि रिस के मारें खेलन हौं नहिं जात॥
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरौ तात॥
गोरे नंद, जसोदा गोरी, तू कत स्यामल गात॥
चुटकी दै-दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसुकात॥
तू मोहीं कौं मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै॥

जननीने जब गोधनकी शपथ लेकर सान्त्वना दी, तब कहीं जाकर श्रीकृष्णचन्द्र शान्त हुए, खेलमें पुनः जानेके लिये प्रस्तुत हुए—

मोहन-मुख रिस की ये बातैं, जसुमति सुनि-सुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत॥
सूर स्याम मोहिं गोधन की सौं, हौं माता तू पूत॥

कल भी दाऊ भैयाने श्रीकृष्णचन्द्रको डरा दिया। वे भयसे थर-थर काँपते हुए घर भागे, सीधे रोहिणी मैयाके पास गये एवं दाऊ भैयाकी इस कठोर चेष्टाकी खूब निन्दा की—

देख री, रोहिणी मैया! कैसे हैं बलदाऊ भैया,
यमुना के तीर मोहि झुझुवा बतायौ।
सुबल-श्रीदामा साथ, हँस-हँस बूझत बात,
आप डरपे और मोहि डरपायौ॥
जहँ-जहँ बोलैं मोर, चितै रहत ताही ओर,
भाजौ रे भाजौ रे भैया, वह देखौ आयौ।
आप गए तरु चढ़, मोहि छाड्यौ वाहि तर,
धर-धर छाती करै, दौर्‍यौ घर आयौ॥

सब बातें सुनकर रोहिणी मैयाने नीलमणिको कण्ठसे लगा लिया। फिर ब्राह्मणको बुलाकर विधिपूर्वक नीलमणिके ही हाथोंसे गोदान करवाया। तब नीलमणिको शान्ति मिली—

उछंग सौं लिये लगाय, कंठ सौं रहे लपटाय,
वारी रे वारी, मेरौ हियौ भरि आयौ।
परमानंद रानी द्विज बुलाय, बेद-मंत्र पढ़ाय,
बछिया कौं पूँछ गहि हाथहि दिवायौ॥

किंतु आज दोनों भाइयोंमें कोई झगड़ा नहीं। अतिशय प्रेमपूर्वक परस्पर एक-दूसरेका पक्ष समर्थन करते हुए दोनों क्रीडामें तन्मय हो रहे हैं। भुवनभास्कर क्रमशः ऊपर उठते हुए आकाशके मध्यमें आ गये, पर राम-श्यामकी क्रीडाका विराम नहीं हुआ। आज बलराम एक-से-एक बढ़कर सुन्दर खेलकी योजना रखते हैं तथा श्रीकृष्णचन्द्र एवं अन्य गोपशिशु उसीके अनुसार खेलने लगते हैं। घर लौटनेका

समय तो कबका समाप्त हो चुका है। पर यह स्मरण किसे है? आज तो श्रीकृष्णचन्द्रकी ही प्रत्येक बार विजय होती है। इस विजयोल्लासमें वे अन्य सब कुछ भूल गये हैं। इसी समय व्रजेश्वरीसे प्रेरित होकर रोहिणी मैया वहाँ आ पहुँचती हैं। बड़ी देरतक प्रतीक्षाके अनन्तर भी जब राम-श्याम घर नहीं पहुँचे, तब मैयाने अतिकाल होते देखकर श्रीरोहिणीको बुलाने भेजा है। अर्जुन वृक्षकी घटनाके अनन्तर मैयाको यह शङ्का लगी ही रहती है कि क्या पता कहीं फिर कोई वृक्ष न टूट पड़े। तनिक भी देर होते ही वे श्रीकृष्णचन्द्रको ढूँढ़ने निकल पड़ती हैं। आज ब्राह्मण-भोजनकी व्यवस्थामें लगी थीं। भूदेवोंकी सेवा छोड़कर आना सम्भव नहीं था, इसलिये श्रीरोहिणीको भेजा है। वे आकर देखती हैं—सभी गोपशिशु क्रीडामें उन्मत्त हैं, राम-श्याम उनके साथ दौड़ रहे हैं। बलराम-जननीके लिये यह सम्भव नहीं कि वे पुत्रोंके समीप जा सकें; क्योंकि उनके पहुँचते-न-पहुँचते सभी शिशु उनसे विपरीत दिशामें दौड़ पड़ते हैं। अत: रोहिणी मैया श्रीकृष्ण एवं बलरामका नाम ले-लेकर पुकारने लगती है—

सरित्तीरगतं कृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत्।
रामं च रोहिणी देवी क्रीडन्तं बालकैर्भृशम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ११। १२)

किंतु उत्तर कौन दे? श्रीरोहिणीजीकी पुकार भी उनतक पहुँचे तब तो, उस आनन्दकोलाहलसे तीर मुखरित है, समस्त उपवन निनादित हो रहा है। अब मैयाके मृदु कण्ठसे निकली ध्वनिमें—पुकारमें इतनी शक्ति कहाँ जो उसे भेदकर राम-श्यामका ध्यान आकर्षित कर सके। वे पुकारती-पुकारती थक गयीं, पर एक बारके लिये भी कोई उत्तर नहीं मिला। न मैया उनके पासतक पहुँच सकीं न वे उनके पास आये। खेलके आवेशमें भूले हुए दोनोंने रोहिणी मैयाकी ओर देखा तक नहीं। निरुपाय होकर बलराम-जननी लौट गयीं। घर आकर व्रजेश्वरीको ही बुलाने भेजा—

नोपेयातां यदाऽऽहूतौ क्रीडासङ्गेन पुत्रकौ।
यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ११। १३)

व्रजेश्वरीने आकर देखा मानो एक नीलोत्पल अपने ही परागसे सन गया हो, इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रके श्रीअङ्ग धूलिसे भरे हैं। मनोहर बाल्यभङ्गिमा-प्रकाश करते हुए वे बलराम एवं गोपशिशुओंके साथ खेल रहे हैं। मैयाका वात्सल्य उमड़ पड़ता है। स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगती है, अञ्चल भीग जाता है। गद्‌गदकण्ठसे वे श्रीकृष्णचन्द्रको बारम्बार पुकारने लगती हैं—

क्रीडन्तं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम्।
यशोदाजोहवीत् कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी॥

(श्रीमद्भा० १०। ११। १४)

श्रीकृष्णचन्द्रके पास उनकी पुकार पहुँच रही है या नहीं, इसकी चिन्ता किये बिना ही वे कहती जा रही हैं—

कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिब।
अलं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसि पुत्रक॥

(श्रीमद्भा० १०। ११। १५)

'मेरे लाल! अरे कृष्ण! कमलनयन! बेटा! सुन तो सही, अरे शीघ्र आ जा! देख! मैं तुझे स्तन पिलाने आयी हूँ, तू स्तन्य-पान तो कर ले। बहुत खेल चुका, अब खेल रहने दे। अरे तुझे भूख जो लग रही है। देख! खेलते-खेलते तू कितना थक गया है। अब आ जा!'

किंतु श्रीरोहिणीकी भाँति व्रजेश्वरीको भी इस आह्वानका कोई उत्तर नहीं मिलता। कुछ क्षण वे शान्त खड़ी रहती हैं, फिर बलराम एवं गोपशिशुओंको पुकारती हैं—

हे रामागच्छ ताताशु सानुजः कुलनन्दन।
प्रातरेव कृताहारस्तद् भवान् भोक्तुमर्हति॥
प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः।
एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान् यात बालकाः॥

(श्रीमद्भा० १०। ११। १६-१७)

'अरे! राम! कुलदीपक! तू आ जा, बेटा! और साथमें नीलमणिको भी ले चल। अरे देख, प्रात:काल तूने कलेऊ किया था, तबसे कुछ नहीं खाया; क्या तुझे भूख नहीं लगी? अवश्य लगी है, अब तो शीघ्र-से-शीघ्र भोजन करना चाहिये! यदुकुलभूषण! तू बात मान ले बेटा! देख, व्रजेश्वर भोजनपर बैठे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आ जा, हम लोगोंको भी तो सुख दान कर। और गोपबालको! सुनते हो, तुम सब भी अपने-अपने घर चले जाओ।'

इससे पूर्व न जाने कितनी बार व्रजेश्वरी राम-श्यामकी क्रीडा स्थगित कर अपने साथ भोजनके लिये घर ले गयी हैं तथा उन-उन अवसरोंपर श्रीकृष्णचन्द्र न सुनें, राम भी अनसुनी कर दें, पर गोपशिशु व्रजेश्वरीकी बात सुन लेते थे। वे खेलना छोड़ देते थे। फिर राम-श्याम किसके साथ खेलें? किंतु आज तो वे सब भी क्रीडामत्त हो रहे हैं। व्रजेश्वरी आयी हैं, यह भी उन्हें भान नहीं। अत: हारकर

मैया पुनः श्रीकृष्णचन्द्रका ही आह्वान करने लगती हैं—

नंद बुलावत हैं गोपाल।
आवहु बेगि बलैया लेउँ हौं, सुंदर नैन बिसाल॥
परस्यौ थार धर्‍यौ मग जोवत, बोलति बचन-रसाल॥
भात सिरात तात दुख पावत, बेगि चलौ मेरे लाल॥

श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान आकर्षित करनेके लिये आज यशोदारानीने न जाने कितनी युक्तियोंका आश्रय लिया—

धूलिधूसरिताङ्गस्त्वं पुत्र मज्जनमावह।
जन्मर्क्षमद्य भवतो विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः॥
पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान् स्वलंकृतान्।
त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः॥

(श्रीमद्भा० १०। ११। १८-१९)

'अरे श्रीकृष्ण! छिः छिः! देख, तेरे समस्त अङ्ग धूलिधूसरित हो रहे हैं। नहीं नहीं! अब मेरे साथ चल, शीघ्र स्नान कर ले। और आज तो तेरा जन्म-नक्षत्र है, स्नान आदि करके पवित्र होकर ब्राह्मणोंको गोदान कर। अरे! इधर देख, अभी-अभी यहाँ आये हुए इन गोपशिशुओंकी ओर तो देख। इनकी माताओंने इन्हें स्नान कराया है, भूषणोंसे भलीभाँति विभूषित होकर भोजन कर ले। इसके अनन्तर यथेच्छ खेल खेलना।'

इस प्रकार नीलमणिकी जननी बहुत कुछ कह गयीं; किंतु कोई परिणाम न निकला। श्रीकृष्णचन्द्रकी क्रीडा ज्यों-की-त्यों चलती रहती है। अब अन्तिम उपाय जो सम्भव है, जननी वही करने चलीं, वे अपने नीलमणिके पीछे-पीछे दौड़ने लगती हैं। संयोगसे सुबल दौड़ता हुआ उसी ओर मुड़ता है, जिधरसे जननी आ रही हैं। जननी हाथ बढ़ाकर सुबलको ही पकड़ लेती हैं। उसे पकड़ते ही श्रीकृष्णचन्द्र वहाँ आ पहुँचते हैं तथा सुबलकी पीठपर हँस-हँसकर मुक्की लगाने लगते हैं; नीलमणिको इतना समीप देखकर मैया सुबलको छोड़कर उनकी भुजा पकड़ लेती हैं। अब बलराम अपने-आप ही आकर जननीके कटिदेशसे लिपट जाते हैं। दोनोंके मुखारविन्दपर प्रस्वेदकण झल-झल कर रहे हैं, जननी अपने आँचलसे क्रमशः दोनोंका मुख पोंछने लगती हैं।

सघन तमालकी छायामें कुछ क्षण विश्रामकर व्रजेश्वरी राम-श्यामका हाथ पकड़े भवनकी ओर चल पड़ती हैं। कुछ दूर चलनेके अनन्तर श्रीकृष्ण एवं बलराम जननीके हाथोंसे अपनेको मुक्त कर लेते हैं। मैया बाधा भी नहीं देतीं, अपितु नीलमणिको अत्यन्त मन्द गतिसे चलते देखकर 'जो पहले पहुँचे, वह राजा!' यों कहकर उत्साहित करने लगती हैं—

हौं वारी, नान्हे पाइनि की दौरि दिखावहु चाल।
छाडि देहु तुम लाल! अटपटी यह गति मंद मराल॥
सो राजा जो अगमन पहुँचै, सूर सु भवन उताल।
जौ जैहैं बलदेव पहिलैं ही, तौ हँसिहैं सब ग्वाल॥

इस भाँति सर्वलोकपूज्य परम महेश्वर स्वयं भगवान् आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रको लाड़ लड़ाती हुई व्रजरानी चली जा रही हैं। अपने नीलमणिके अनन्त ऐश्वर्यकी ओर मैयाका ध्यान स्वप्नमें भी नहीं जाता। मैया सदा यही अनुभव करती हैं कि नीलमणि उनके गर्भ-जात पुत्र हैं। विशुद्ध वात्सल्यकी धारा उनके चित्तको निरन्तर सिक्त किये रहती है। इसीका यह परिणाम है—अगणित योगीन्द्र-मुनीन्द्र ध्यानमें क्षणभरके लिये भी जिनका स्पर्श पानेके लिये सदा लालायित रहते हैं, उन आऩन्दकन्द व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर मदनमोहन श्रीकृष्णचन्द्रको वे हाथ पकड़कर लिये जा रही हैं, इच्छानुसार उन्हें मुक्त कर देती हैं और फिर, 'कहीं चञ्चल श्रीकृष्णचन्द्र खेलनेके लिये उपवनकी ओर ही भाग न जायँ, भवन न जायँ' इस भयसे पुनः पकड़ लेती हैं। जो हो, भवन निकट ही है और वे राम-श्यामको लिये आ पहुँचती हैं, आकर उनके स्नान-भोजन आदिकी व्यवस्थामें लगती हैं—

इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं
मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप।
हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं
नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ११। २०)

तेल, उबटन, स्नान, अङ्गमार्जन, परिधान, अलंकारसे सुसज्जित कर व्रजेश्वरी राम-श्यामको व्रजेन्द्रके समीप भोजनालयमें ले जाती हैं। पुत्रोंको आया देखकर उनके स्मितसमन्वित मुखारविन्दके दर्शनमात्रसे अतिशय प्रमुदितचित्त हुए व्रजराज उन्हें अपनी गोदमें बैठा लेते हैं—

उपसन्नयोश्च तयोः प्रमुदितमना मनाक् स्मितपूर्वमवेक्ष्य वदनं निजमङ्कमारोपयामास व्रजराजः। (श्रीआनन्दवृन्दावन-चम्पूः)

श्रीकृष्णचन्द्र भोजन करते हैं—

जेंवत स्याम नंद की कनिया।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत, छबि निरखति नँद-रनिया॥
बरी, बरा, बेसन, बहु भाँतिनि, ब्यंजन बिबिध, अगनिया।
डारत, खात, लेत अपनैं कर, रुचि मानत दधि दोनियाँ॥

मिस्री, दधि, माखन मिस्रित करि, मुख नावत छबि धनिया।
आपुन खात, नंद-मुख नावत, सो छबि कहत न बनिया॥
जो रस नंद-जसोदा बिलसत, सो नहिँ तिहूँ भुवनिया।
भोजन करि नँद अचमन लीन्हौ, माँगत सूर जुठनिया॥

यमलार्जुन-पतनके दिनसे श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रतिदिनकी दिनचर्या प्रायः यही है। व्रजेश्वरीकी ओरसे श्रीकृष्णचन्द्रको अनुशासनका अब कोई भय नहीं रहा; क्योंकि मैयाने अपने शासनका इतना अनिष्ट परिणाम (वृक्षपतनकी दुर्घटना) देखकर यह निश्चय कर लिया है—'नीलमणिको किसी भी निमित्तसे मैं अब नहीं डाँटूँगी, यथासम्भव उसे उन्मुक्त क्रीडा करने दूँगी।' अतः श्रीकृष्णचन्द्र कलेऊ समाप्त होते ही प्रतिदिन यमुनातीरके उपवनमें खेलने चले जाते हैं। परंतु विलम्ब होते ही स्नेहपरवशा जननी ढूँढ़ने भी जाती ही हैं; तथा किसी दिन ढूँढ़नेपर भी श्रीकृष्णचन्द्रको जब नहीं पातीं तो प्रेमातिरेकवश विक्षिप्त-सी होकर उच्च स्वरसे प्रलाप-सा करने लगती हैं। अवश्य ही जननीका यह प्रेमोन्माद आरम्भ होते ही श्रीकृष्णचन्द्रके कानोंमें भी जननीकी पुकार चली ही जाती है और वे दौड़ते हुए आकर जननीके कण्ठसे लग जाते हैं—

कोउ माई! बोलि लेहु गोपालहिँ।
मैं अपनै कौ पंथ निहारति, खेलत बेर भई नँदलालहिँ॥
टेरत बड़ी बार भई मोकौं, नहिँ पावति घनस्याम तमालहिँ।
सिध जँवत सिरात, नँद बैठे, ल्यावहु बोलि कान्ह ततकालहिँ॥
भोजन करै नंद सँग मिलि कै, भूख लगी ह्वैहै मेरे बालहिँ।
सूर स्याम मग जोवति जननी, आइ गए सुनि बचन रसालहिँ॥

मध्याह्नके समय भी प्रतिदिन ही न्यूनाधिक अन्तरसे व्रजेश्वर एवं राम-श्यामके भोजनकी यह अभिनव झाँकी निहार-निहारकर पुरसुन्दरियाँ अपने नेत्र शीतल करती हैं—

धूसर धूरि अंग लपटाने, आनि नंद कहि दीन्हे।
झार धूरि सम्हारत अलकैं, बदन चूमि तहँ लीन्हे॥
उठि-उठि चलत न बैठत लालन, पितु पोंछैं-पुचकारैं।
षट-रस निरस लगत तिन कौं, सब खेल हिये में धारैं॥
सिसु खेलन कौ सोर सुनत प्रभु नजरि बरकि उठि धावैं।
टेरै नंद प्रीति के बाँधे लगे द्वार लौं आवैं॥
मिलत जाहिं बालक बृंदनि में जुगल बंधु अति प्यारे।
नर-नारिन के लगे रहत मन, छिनभर होत न न्यारे॥
जो परब्रह्म अलख, अबिनासी, घट-घट ब्यापक जो है।
निज माया करि सबहिं रमावतु, वाहि रमावतु को है॥

किंतु आज मध्याह्न-भोजनके अनन्तर भी व्रजेश्वरी अपने नीलमणिको भवनमें ही रोक रखनेमें सफल हो जाती हैं। मैयाने आँखमिचौनी खेलनेका प्रस्ताव जो कर दिया। इतना ही नहीं, समस्त गृहकार्योंको छोड़कर वे स्वयं नीलमणिके नेत्र मूँदनेके लिये प्रस्तुत हुई हैं—

बोलि लेहु हलधर भैया कौं।
मेरे आगैं खेल करौ कछु, सुख दीजै मैया कौं॥
मैं मूँदौं हरि आँखि तुम्हारी, बालक रहैं लुकाई॥
हरषि स्याम सब सखा बुलाए खेलन आँखि मुँदाई॥
हलधर कह्यौ, आँखि को मूँदै हरि कह्यौ, मातु जसोदा॥
सूर स्याम लए जननि खिलावति, हरष सहित मन मोदा॥

आजकी आँखमिचौनीमें प्रथम विजय श्रीकृष्णचन्द्रको ही प्राप्त होती है—

हरि तब अपनी आँखि मुँदाई।
सखा सहित बलराम छपाने, जहँ-तहँ गए भगाई॥
कान लागि कह्यौ जननि जसोदा, वा घर मैं बलराम॥
बलदाऊ कौं आवन दैहौं, श्रीदामा सौं काम॥
दौरि-दौरि बालक सब आवत, छुवत महरि कौ गात॥
सब आए रहे सुबल श्रीदामा, हारे अब कैं तात॥
सोर पारि हरि सुबलहिँ धाए, गह्यौ श्रीदामा जाइ॥
दै-दै सौहैं नंद बबा की, जननी पै लै आइ॥
हँसि-हँसि तारी देत सखा सब, भए श्रीदामा चोर॥
सूरदास हँसि कहत जसोदा, जीत्यौ है सुत मोर॥

व्रजेश्वरीको आज नीलमणिने, रामने, अन्य गोप-शिशुओंने ऐसे-ऐसे नये-नये खेल दिखलाये कि मैया आनन्दमुग्ध हो गयीं। आदिसे अन्ततक निर्णयकर्त्री मैया ही बनी और इसीलिये सबमें विजयश्री नीलमणिको ही मिली। नीलमणि परमानन्दमें निमग्न होकर मैयाके कण्ठमें झूलने लगते हैं। अंशुमाली अस्ताचलमें चले गये, तब कहीं इस आनन्दक्रीडाका अवसान हुआ। अब मैया नीलमणिको, रामको एवं अन्य समस्त गोपशिशुओंको ब्यारू कराती हैं। तदनन्तर गोप-सुन्दरियाँ अपने-अपने पुत्रोंको घर ले जाती हैं और श्रीकृष्णचन्द्र आज वहीं प्राङ्गणमें ही निद्रित हो जाते हैं—

आँगन मैं हरि सोइ गए री।
दोउ जननी मिलि कै हरुएँ करि, सेज सहित तब भवन लए री॥
नैंकु नहीं घर मैं बैठत हैं, खेलहिँ के अब रंग रए री॥
इहिँ बिधि स्याम कबहुँ नहिँ सोए बहुत नींद के बसहिँ भए री॥
कहति रोहिनी सोवन देहु न, खेलत दौरत हारि गए री॥
सूरदास प्रभु कौ मुख निरखत हरषत जिय नित नेह नए री॥

* * *

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता—

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं०श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[गताङ्क पृ०सं० ५६३ से आगे]

तपोमय जीवन—

भूलि न देंहि कुमारग पाऊ।

केवल प्रेमकी ही कामना, लालसा, एवं वासना बनै। रहनी अति ही उत्तम बनै। एक ही दोहामें श्रीतुलसीदासजीने सबरी रहनी भरि दई है। बड़े ही काम कौ है यह दोहा—

तुलसी ममता राम सौं, समता सब संसार।
राग, न रोष, न दोष, दुख, दास भये भव पार॥

× × ×

श्री ब्रजभूमि प्रेममयी है। श्री ब्रजरज प्रेम प्रदाता है। शरीरमें श्री ब्रजरज लगी ही रहै। यह निश्चय करि लेय कि, मेरौ प्रेम-पथमें नूतन जन्म भयौ है। अपनौं शरीर तथा संसार हू प्रेमके ही ताँईं बनैं। श्रीजीवनधनके प्रसन्न करिवे के ताँईं, इनकूँ सुख पहुँचायवे के ताँईं, प्रयत्न करनौं प्रेम ही है।

याके ताँईं उपाय सुझायौ है, श्रीमद्भागवतजीने—

प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् बिडम्बनम्।

श्रीभगवान् प्रसन्न हौयँ हैं, निष्काम भक्ति सौं। और तौ सब व्यर्थ ही है। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने याही कौ अनुवाद कियौ—

'रीझत राम सनेह निसोते'

अतएव लक्ष्य बनै केवल श्रीभगवत्-प्रेम ही। है तौ अति दुर्लभ वस्तु, तथापि श्रीजीवनधनके अनुग्रह सौं यदि कोई सच्चौ प्रेमी सन्त मिलि जाय, तौ वामें पूरी श्रद्धा करै। वाकौ ध्यान करै। *जगते रहु छत्तीस ह्वै, राम चरण छः तीन।* जो उत्साह, जो ललसा, आज है, यह शिथिल न परै, अपितु आयुके साथ-साथ यहू बढ़ते ही जायँ।

या पथमें अति आवश्यक हैं ११ बातें—

श्रद्धा, निरभिमानता, नम्रता, उदारता, क्षमा, प्रपंचराहित्य, सरलता, विकारन कौ अभाव, स्वभाव-संशोधन, सतत् सावधानता तथा महदनुग्रहकी आकांक्षा।

या पथ मैं बाधक हैं ११ बातें—

तर्क, रूक्षता, प्रपंच, स्त्री, बालक, द्रव्य एवं वैभव, भोग्य, कायरता, उत्साह-हीनता, अकर्मण्यता तथा स्वभाव मैं चंचलता।

चिन्तनमें—

इनकी कृपा कौ चिन्तन। अपने साधन कौ चिन्तन। अपनी रहनी कौ चिन्तन। अपने स्वभाव कौ चिन्तन। तथा सतत् चिन्तन अपने लक्ष्य कौ।

× × ×

जीवनमें सादगी रहै। समस्त साधु-समाज कूँ सम्मान ही दे। व्यर्थ बात, परचर्चा, परनिन्दा, तथा विवाद न करै। कम बोलै, भगवच्चर्चा ही करै। अध्यात्म-पथमें परम-कर्त्तव्य है—श्रद्धावान् बननौं। कोटिन जन्मन के सुकृतन कौ फल है—सात्विकी श्रद्धाकी उपज। यदि उत्थान चाहै, तौ पूर्ण-प्रण सौं श्रद्धा कूँ अपनावै। सात्विकी श्रद्धा ही साधन तथा साध्य कौ मूल है। श्रीप्राणनाथकी अपार दैन है, सात्विकी श्रद्धा। श्रद्धालु कौ पतन नहीं होय है। श्रद्धालु कौ जीवन एक आदर्श जीवन होय है। सात्विकी श्रद्धामें स्वार्थकी गन्ध हू नहीं रहै है। पूरी तत्परता सौं श्रीसद्गुरुकौ आज्ञा-पालन करनौं, यही श्रद्धा है।

श्रीगुरु आज्ञामें ही अपनौं परम सौभाग्य माननौं, अपने जीवनकी सफलता मान लैनौं, यह सात्विकी श्रद्धा है।

श्रद्धामें सहायक हैं—

श्रद्धालु जनन कौ सम्पर्क। श्रद्धालु जननमें श्रद्धा करनौं। श्रद्धालु जनन कूँ अपने सौं बहुत अधिक माननौं। इनमें भाव राखनौं। इनकौ अनुयायी बननौं। इनकूँ अपनौं पथ-प्रदर्शक माननौं आदि-आदि। श्रद्धामें भयंकर विघ्न है, अपनीं बुद्धि सौं काम लैनौं। हमारी श्रद्धा ठीक-ठीक चलि रही है, याकी परीक्षा है—श्रद्धा बढ़ती ही जाय।

तब समझौ कि, हम आध्यात्ममें प्रवेश करि रहे हैं जब—

सात्विक श्रद्धा बढ़ती ही जाय, अतृप्ति होय, दैन्य उपजै। सात्विकी श्रद्धा जा अन्त:करणमें रुकि जाय है, वहाँ समस्त सद्गुण स्वयं आयकैं निवास करैं हैं।

श्रद्धा करै। श्रद्धा ही विचारै। श्रद्धा कूँ सँभारतौ रहै। श्रद्धाके रुकिवे की तथा बढ़िवे की युक्ति सोचतौ रहै।

अबोध शिशुकी भाँति निरन्तर अपनी श्रद्धा महतारीकी गोदमें ही निश्चिन्त है कैं खेलतौ-किलकतौ रहै। फिर तौ यह श्रद्धा माँ अपने लाढ़िलेकी ऐसैं सँभार करैं हैं जैसें—*जिमि बालकहि राख महतारी॥*

श्रीश्रद्धा महारानीके रोकिवे के ताँईं सहज युक्ति है—साधनमें निष्ठा। श्रद्धा—साधनमें लगावै है और साधन—श्रद्धा रोकिवे की पात्रता प्रदान करै है। यदि साधक साधनमें प्रमाद करिवे लगौ, तौ श्रद्धा महारानी भागि जायँगी।

सात्विकी श्रद्धा जाके अन्त:करणमें रुकि जायगी, वह साधनमें पूर्ण तत्पर रहैगौ तथा पूर्ण सदाचारी बनैगौ। श्रद्धा, साधन तथा सदाचार—यह त्रिपुटी कही जाय है, ये तीन्यौं अन्योन्याश्रित हैं। यथा आरोग्य प्राप्तिके ताँईं—अनुपान, औषधि तथा पथ्य—ये तीन्यौं एक साथ काममें आवैं हैं। इनमें एककी कमी हौंते ही वे दौनौं ही व्यर्थ है जायँ हैं। ठीक ऐसें ही आध्यात्मपथमें त्रिपुटी एक साथ रहनी चहियें। तब ही पूर्ण लाभ होय है। एक ही वाक्यमें यह समझ लेनौं चहिये कि, जो तीन्यौं एक साथ लैकैं चलै है, वास्तवमें वही साधक कह्यौ जाय सकै है।

साधनमें सहायक हैं—

सात्विकी-श्रद्धा। पूर्ण सदाचार। निरभिमानता। दीनता। निष्कामता (भजन करिकैं भजन ही माँगनौं, कोई संसारी पदार्थ नहीं माँगनौं)। श्री गुरुजनन की सेवा। दीनन की सहायता। महत्-कृपा। समय कौ सदुपयोग। सदग्रंथ। सत्संग आदिक।

साधकके ताँईं परम आवश्यक हैं—

दृष्टि-संयम। कम बोलनौं। आवश्यक ही सुननौं। सात्विक, मित आहार। विचार-संयम। समय कौ सदुपयोग। स्वभावमें गम्भीरता। क्षमा। सरलता। उदारता। सहिष्णुता आदि-आदि।

विरक्त होय, तौ स्त्री जाति-मात्र सौं और गृहस्थ होय, परस्त्री मात्र सौं कैसें हूँ सम्पर्क न राखै।

बार-बार स्मरण करै—

श्रीचैतन्य भगवान्‌की शिक्षा, श्रीहरिदासजीके प्रति। श्रीसमर्थजीकी शिक्षा, अपने एक सेवकके प्रति। श्रीरामचरितमानसमें। श्रीरघुनाथजीकी शिक्षा, श्रीनारदजीके प्रति—

श्रीभागवत्‌जीकी आज्ञा है कि, परस्त्री कूँ अपनी मृत्यु ही देखै। रावण, कीचककी घटनाएँ आदि-आदि। अपनी साधना कौ अभिमान न करि बैठै। सन्तन की जीवनी अवश्य पढ़ै। अपने स्वभाव कूँ सुधारतौ ही रहै। अपने दुर्गुणन के हटायवे में विलम्ब न करै।

× × ×

द्वै बातन कौ अभ्यास बढ़ावै—

श्रीनाम-जप निरन्तर होतौ रहै। निरन्तर अपने आचरण कौ सुधार। इन दोऊ बातन में प्रमाद न हौंन पावै। सर्वथा परस्त्री, परद्रव्य कौ परित्याग। या बात कौ बहुत ही खयाल रहै कि, हमसौं काहूँ कौ अनिष्ट न हौन पावै। जब तुम गृहस्थ हौ, तौ गृहके समस्त प्राणिन कौ पालन-पोषण, सन्मार्गमें लगानौं तथा श्रीभगवत्-भक्त बनानौं—यह कर्त्तव्य है। सत्-प्रयत्नद्वारा द्रव्य संचय करनौं गृहस्थ कौ यहू कर्त्तव्य है। हाँ, यह सब करते भये हू इनमें ही आसक्त न है जानौं। सन्त श्रीकबीरदासजी कौ यह पद सदैव ध्यान राखनौं कि—

रहना नहीं देश विराना है।

जैसें योग्य डाक्टर अपने अस्पतालमें आये भये रोगीन की आरोग्यता कौ पूरौ खयाल राखै है, अपनौं पूर्ण-कर्त्तव्य हू पालन करै है, किंतु काहू रोगीमें आसक्त नहीं होय है। एवमेव—रहनी बनावै। जानैं इतनौं बड़ौ संसार रच्यौ है, वह याके पालन-पोषणमें पूर्ण-समर्थ है। तुम तौ निमित्त मात्र हौ। उचित यह है कि, संसारी वस्तुन कूँ प्रारब्धकी दैन समझि कैं इनके यथालाभमें ही सन्तोष करै। हाँ, पूर्ण-प्रयत्न करै अपने सच्चे घरके ताँईं सामान जुटायवे में। सच्चौ घर तौ सदैव एक ही है—परलोक। जो समस्त जीवन अपने समय, विद्या, चातुर्य, शरीर तथा सवरे अन्त:करण कूँ संसारी कामन में ही जुटाय कैं थकाय डारैं हैं, वे परलोकके सुधार सौं वंचित ही रह जायँ हैं। सबके प्यारे, सबसौं न्यारे, ऐसी रहनी रहिये। परलोकके सुधार कूँ आगेके ताँईं मत टालते जइयौं। कौंन जानैं भविष्यमें कैसौ समय आवै। यासौं आज ही सौं पूर्ण तत्परता, पूर्ण लगन, पूर्ण उत्साह तथा पूर्ण उल्लास सौं जुटि परौ जीवनकी सफलतामें।

* * *

एक पलके सत्संगसे अलौकिक आनन्द (प्रभु)-की प्राप्ति

(श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

सत्संगका आशय

चार शब्द हैं—सत्-चर्चा, सत्-चिन्तन, सत्-कार्य एवं सत्संग। दो या दोसे अधिक साधक भाई-बहन एक स्थानपर बैठकर सत्य या प्रभुकी जो चर्चा करते हैं, उसे सत्-चर्चा कहते हैं। एक साधक अकेलेमें बैठकर जप, तप, पूजा, पाठ, भजन आदिके रूपमें भगवान्का जो चिन्तन करता है, उसे सत्-चिन्तन कहते हैं। परहितके भावसे किये गये सभी कार्य सत्-कार्य कहलाते हैं। सत्संग इन तीनोंसे अलग है। उल्लेखनीय है कि सत्-चर्चा, सत्-चिन्तन तथा सत्-कार्य सत्संग तो नहीं हैं, परंतु सत्संगमें सहायक अवश्य हैं। ये तीनों सत्संगमें तभी सहायक होंगे जब आप इन तीनोंको इस उद्देश्यसे करेंगे कि इनके फलस्वरूप मेरे जीवनमें सत्संग होना चाहिये। सावधान! यदि आप इन तीनोंको किसी भी सांसारिक कामनाकी पूर्तिके उद्देश्यसे करेंगे तो आप संसारमें फँस जायँगे, फिर इन तीनोंसे आपको सत्संगमें सहयोग भी नहीं मिलेगा। कामना आपका सम्बन्ध नाशवान् संसारसे जोड़ देगी। इसलिये जीवनमें एकमात्र सत्संगके उद्देश्यसे ही सत्-चर्चा, सत्-चिन्तन एवं सत्-कार्य करने चाहिये।

सत्संगका आशय है—सच्ची बातको मान लेना, सत्यको स्वीकार कर लेना, सच्ची बातको अपने जीवनमें धारण कर लेना और झूठी बातको अस्वीकार कर देना। सावधान! सच्ची बातको सुनना, सुनाना, लिखना, याद कर लेना, पढ़ना, पढ़ाना आदि कार्य करणीय हैं, इन्हें करना चाहिये; परंतु जबतक आप सच्ची बातको मानेंगे नहीं, तबतक आपके जीवनमें सत्संग नहीं होगा।

संसारका सबसे सरल कार्य है—सत्संग

चौबीस घंटोंमें आप अपने शरीर, परिवार, समाज तथा संसारके अनेक कार्य करते हैं। विश्वास कीजिये, उन सबमें सबसे सरल कार्य है—सत्संग कर लेना। यह सबसे सरल कार्य कैसे है, क्यों है—इस सम्बन्धमें निम्न बातें महत्त्वपूर्ण हैं—

(१) सत्संग सभी कर सकते हैं—इस संसारके सभी भाई-बहन अपने जीवनमें सत्संग कर सकते हैं, चाहे उनकी बाह्य परिस्थिति कैसी भी हो। गरीब-अमीर, शिक्षित-अशिक्षित, सुखी-दुःखी, स्वस्थ-बीमार, व्यापारी-नौकरीपेशेवर, ग्रामीण-शहरी, युवा-वृद्ध, उच्च पदाधिकारी-सामान्य कर्मचारी अति व्यस्त, कम व्यस्त, अंधा-बहरा, अङ्गहीन, प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित आदि सभी मानव सत्संग कर सकते हैं। श्रीरामचरितमानस (१।२।१२)-की वाणी है—

सबहि सुलभ सब दिन सब देसा।

—इसका आशय है कि सत्संग सब देशोंमें तथा सब समय सभीको सुलभ है। आप किसी भी देश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय, मत या विचारधाराके हों, आप सत्संग कर सकते हैं।

(२) कहीं नहीं जाना—सत्संग करनेके लिये आपको किसी विशेष स्थानपर जानेकी आवश्यकता नहीं है। आप जहाँ हैं, जिस स्थानपर हैं, वहीं सत्संग कर सकते हैं। आप सत्-चर्चा, सत्-चिन्तन एवं सत्कार्यके लिये तीर्थस्थलों, प्रभुकी लीलास्थलियों अथवा किसी तपोभूमिमें जा सकते हैं।

(३) नौकरी, व्यवसाय, परिवार न छोड़ना—आप अपना व्यवसाय, नौकरी करते हुए और अपने परिवारके साथ रहते हुए सुविधापूर्वक सत्संग कर सकते हैं। परिवारमें रहना बन्धनका कारण नहीं है। बन्धन होता है परिवारजनोंमें ममता और उनसे कामना रखनेसे।

(४) समय न लगना—सत्संग करनेमें एक पलका समय भी नहीं लगता। सत्-चर्चा, सत्-चिन्तन, सत्-कार्यमें समय अपेक्षित है। यदि आपके पास एक श्वास भी बाकी है तो भी आप सत्संग कर सकते हैं।

(५) तत्काल फल मिलना—जिस क्षण आप सत्संग करेंगे, उसी क्षण आपको उसका फल मिल जायगा, अर्थात् आप दुःख, चिन्ता, भय, तनाव, क्रोध तथा संसारके बन्धनसे मुक्त हो जायँगे और आपको भगवत्प्रेम, भगवद्विश्वास, भगवत्-मिलनके अलौकिक आनन्दकी अनुभूति होगी। श्रीरामचरितमानस (१।२।१३; १।३।१-२)-में आया है—

अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥
मज्जन फल पेखिअ ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई॥

—इसका आशय है—वह सत्संगरूपी तीर्थराज अलौकिक और अकथनीय है एवं तत्काल फल देनेवाला है; उसका

प्रभाव प्रत्यक्ष है। इस तीर्थराजमें स्नानका फल तत्काल ऐसा देखनेमें आता है कि कौए कोयल बन जाते हैं और बगुले हंस। यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे, क्योंकि सत्संगकी महिमा छिपी नहीं है।

(६) **सभी परिस्थितियोंमें सम्भव**—यदि आपके जीवनमें अनुकूल परिस्थिति है, आपका जीवन सुखमय है तो भी आप सत्संग कर सकते हैं। यदि आपके जीवनमें घोर प्रतिकूल परिस्थिति है, आपका जीवन अत्यन्त दु:खमय है तो भी आप सत्संग कर सकते हैं। सत्संगके लिये विशेष प्रकारकी परिस्थिति अपेक्षित नहीं है।

(७) **भूतकालका प्रभाव नहीं**—आपका जीवन भूतकालमें चाहे जैसा भी रहा हो—अच्छा या बुरा, फिर भी अभी—वर्तमानमें आप सत्संग कर सकते हैं। श्रीरामचरितमानस (५। ४४। १; ५। ४८। २-३)- में भगवान् श्रीरामने अपने श्रीमुखसे यही बात बतायी है—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥

—इसका आशय यह है कि जिसे करोड़ों ब्राह्मणोंके वधकी हत्या लगी हो, सत्संगरूपी शरणमें आनेपर मैं उसे भी नहीं त्यागता। कोई मनुष्य सम्पूर्ण जड़-चेतन जगत्का द्रोही हो, यदि वह भी भयभीत होकर मेरी शरणमें आ जाय और मद, मोह तथा नाना प्रकारके छल-कपट त्याग दे तो मैं उसे बहुत शीघ्र साधुके समान कर देता हूँ।

(८) **'शरीर' की आवश्यकता नहीं**—आपका स्थूल शरीर चाहे जैसा हो—स्वस्थ, रोगी, वृद्ध, अङ्गहीन, अंधा, बहरा, छोटा, बड़ा, मोटा, पतला, दुबला, काला, गोरा, युवा आदि, फिर भी आप सत्संग कर सकते हैं। सत्संग करनेके लिये विशेष प्रकारके शरीरकी आवश्यकता नहीं है।

(९) **पराश्रय नहीं**—सत्संग करनेके लिये 'पर' अर्थात् दूसरोंका सहारा लेनेकी आवश्यकता नहीं है। 'पर'-का आशय उन सब वस्तुओं, व्यक्तियों अथवा प्राणियोंसे है जो जन्मते हैं, बढ़ते हैं, बदलते हैं, बिगड़ते हैं और अन्तमें मरते हैं। आपका शरीर, परिवारजन, सम्पूर्ण जड़-चेतन जगत् 'पर' की श्रेणीमें आता है। सत्संगके लिये पराश्रय अपेक्षित नहीं है।

(१०) **परिश्रम नहीं**—सत्संग करनेके लिये किसी भी प्रकारके शारीरिक तथा मानसिक श्रमकी आवश्यकता नहीं है। इसलिये कमजोर-से-कमजोर मानव भी सत्संग कर सकता है।

(११) **अभ्यास अपेक्षित नहीं**—जिस प्रकार संसारके कार्यों—भोजन बनाना, तैरना, साइकिल-मोटर चलाना-सीखना, दौड़ना, व्यायाम करना, कोई विशेष कार्य सीखना तथा मशीन चलाने आदिको सुचारु रूपसे करनेके लिये अभ्यास करनेकी आवश्यकता होती है, उस प्रकार सत्संग करनेके लिये अभ्यास करनेकी आवश्यकता नहीं है। अभ्यासका आशय है—बार-बार करना।

(१२) **सत्संग केवल एक बार**—आपको अपने इस दीर्घ मानव-जीवनमें केवल एक बार सत्संग करना है। बार-बार सत्संग करनेकी आवश्यकता नहीं है। आप सत्-चर्चा, सत्-चिन्तन, सत्-कार्य बार-बार कर सकते हैं, करना भी चाहिये; क्योंकि यदि आप एकमात्र सत्संगके उद्देश्यसे इन तीनों कार्योंको करेंगे तो आपको सत्संग करनेमें पर्याप्त सहयोग मिलेगा। स्मरण रहे, सत्-चर्चा, सत्-चिन्तन, सत्-कार्य बहुत अच्छे हैं, करणीय हैं; परंतु ये तीनों सत्संग नहीं हैं।

(१३) **विशेष समय, स्थान नहीं**—सत्संगका न तो विशेष समय है और न स्थान। ऐसा नहीं है कि आपको प्रात: चार बजे, मध्य रात्रि, दोपहर, सायं या अमुक समय और निश्चित स्थानपर बैठकर ही सत्संग करना है। आप जहाँ चाहें वहाँ—पूजाघर, मन्दिर, तीर्थस्थान, रसोई, शयन-कक्ष, सड़क, दुकान, ऑफिस, गाड़ीमें अथवा चलते-घूमते, खाते-पीते, संसारके कार्य करते कहीं भी और जब चाहें तब प्रात:, दोपहर, सायं, रात्रिमें, चौबीस घंटेमेंसे किसी भी क्षणमें सत्संग कर सकते हैं।

(१४) **योग्यता नहीं**—सत्संगके लिये बाह्य योग्यता—शिक्षा, विशेष विषयकी जानकारी अथवा शास्त्र-ज्ञान आदिकी आवश्यकता नहीं है। ग्रन्थ, संत, भक्त, भगवत्-वाणीका अध्ययन करना बहुत अच्छा है, सत्-कार्य है, इससे आपको सत्संगमें सहयोग मिलेगा। परंतु प्रभुने अपार कृपा करके सत्संगको इतना सरल एवं सुलभ बनाया है कि बाहरी योग्यता न होनेपर भी आप सत्संग कर सकते हैं।

(१५) **शक्ति, स्वाधीनता, सामग्री**—प्रभुने मानवमात्रको, सभी भाई-बहनोंको सत्संग करनेकी अपार सामर्थ्य प्रदान की है। मानवमात्रको सत्संग करनेकी स्वाधीनता भी दी है। स्वाधीनताका आशय यह है कि यदि आप चाहें तो अपने

जीवनमें सत्संग कर सकते हैं और यदि आप न चाहें तो आपकी इच्छा। प्रभुने ऐसा विधान नहीं बनाया है कि आप सत्संग करना चाहें और कर न सकें अथवा न करना चाहें तो कोई हठात्, बलात्, जबरदस्ती आपको सत्संग करवा दे। हाँ, संत, ग्रन्थ, भक्त, महापुरुष, पथप्रदर्शक आदि मानवमात्रको सत्संग करनेकी प्रेरणा दे सकते हैं, देते ही हैं, देते रहे हैं, देते रहेंगे—यह प्रभुका मङ्गलमय विधान है। बल, विवेक, विश्वासके रूपमें प्रभुने मानवमात्रको सत्संग करनेकी सामग्री भी प्रदान की है।

(१६) प्रभुप्रदत्त तत्त्व कम नहीं होते—प्रभुके दिये हुए तीनों तत्त्व—सत्संग करनेकी सामर्थ्य, स्वाधीनता तथा सामग्री, मानव-जीवनके किसी भी कालमें किंचित् मात्र भी कम नहीं होते; जीवनके अन्तिम क्षणतक ये यथावत् बने रहते हैं। इसलिये आप किसी भी समय सत्संग कर सकते हैं।

(१७) सत्संग कर्म नहीं है—आप जो भी कल्याणकारी पारमार्थिक कार्य करते हैं, वे सत्-कार्य कहलाते हैं न कि सत्संग। सत्संग कर्म नहीं है, अर्थात् सत्संग करनेके लिये आपको शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, बाह्य वस्तुओं एवं व्यक्तियोंकी सहायतासे किसी भी प्रकारका कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं है। कर्म करनेमें सामर्थ्य, समय, अभ्यास और श्रम आदि अपेक्षित हैं।

सत्संग करनेके लिये आपको कुछ भी नहीं करना पड़ेगा, केवल कुछ सच्ची बातोंको मानना होगा। सच्ची बातोंको मानना ही सत्संग है।

* * *

पशु और पर्यावरण

(श्रीपन्नालालजी मुन्धड़ा)

भारतीय संस्कृतिमें पशुओंको न केवल मनुष्योंके समानान्तर जीवन जीनेका अधिकार प्राप्त था, प्रत्युत उनको देवताओंके वाहनके रूपमें भी पूजा जाता था। गायको तो साक्षात् देवताओंकी जननीके रूपमें आदर एवं सत्कार प्राप्त था। यदि सदियों पहले भारत एक सोनेकी चिड़िया कहलाता था तो उसका मुख्य कारण भारतका पशु-सम्पदामें धनी होना ही था। यही कारण था कि कृषि एवं व्यापारके क्षेत्रमें भी भारत अग्रणी था। 'बेकारी' या 'बेरोजगारी'-जैसे शब्द भारतीय परम्पराके इतिहासमें दुर्लभ थे।

परंतु आज अत्यन्त दुर्भाग्यकी बात है कि पश्चिमी मृग-मरीचिकासे भ्रमित होकर अन्धाधुन्ध पाश्चात्त्य सभ्यताका अनुकरण किये जानेके कारण पशुओंको भ्रातृवत् व्यवहारके स्थानपर उन्हें समाजपर बोझ माना जाने लगा है। इसीका फल है कि आज भारत पर्यावरणकी दृष्टिसे प्रदूषित देशोंकी श्रेणीमें अग्रगण्य है। यहाँके पर्यावरणकी दुर्दशा अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका इत्यादि प्रदूषित देशोंसे भी बदतर है। १९८७ के वन-सर्वेक्षणसे पता लगता है कि जहाँ स्वतन्त्रता-प्राप्तिके समय भारतीय भूभागका १९.५२ प्रतिशत वन-प्रदेश था, वहाँ आज यह क्षेत्र घटकर १०.८८ प्रतिशत ही रह गया है, अर्थात् ३५-४० प्रतिशत वन-प्रदेशोंमें कमी आयी है एवं यह कमी निरन्तर बढ़ती ही जा रही है।

नियोजित विकासके क्षेत्रमें वनोंकी महत्त्वपूर्ण भूमिकाको योजना-निर्धारकोंने सही-सही नहीं आँका, यही कारण है कि योजना-व्ययका मात्र आधासे एक प्रतिशत ही वनोंपर खर्च किया गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि प्रति व्यक्ति वन्य क्षेत्रफल जो कि १६०५ वर्ग मीटर होना चाहिये, आज केवल ६७१ वर्ग मीटर ही रह गया है।

दुर्भाग्यवश भूमि-क्षरणकी प्रक्रियासे हो रही आर्थिक हानिको गम्भीरतासे नहीं लिया जा रहा है, जबकि यह एक महाविपदाका रूप धारण कर चुकी है। भूमि-क्षरणका एक और महत्त्वपूर्ण कारण है—रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशक दवाओंका बेरोकटोक प्रयोग, जो हमारे पर्यावरण तथा उपजाऊ भूमिपर कहर ढा रहा है, जबकि उपलब्ध आँकड़ोंसे यह निर्विवाद सत्य सिद्ध हो चुका है कि इनके प्रयोगसे उत्पादनमें कमी हुई है।

अधिक उत्पादनके नामपर रासायनिक उर्वरकों तथा फसलोंकी सुरक्षाके लिये कई प्रकारकी कीटनाशक दवाओंका प्रयोग आजकल धड़ल्लेसे हो रहा है। कृषिके क्षेत्रमें रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशक दवाओंके अधिकाधिक प्रयोगसे ये रसायन वायुमण्डलको भी दूषित करते हैं और कृषि-उत्पादनमें उनके जहरीले अवशेष प्रविष्ट कर जाते हैं जो कि अन्ततः मनुष्योंके शरीरमें नाना प्रकारके रोगोंको जन्म देते हैं। निस्संदेह मनुष्य पर्यावरणका प्रमुख घटक है। यदि मनुष्यके शरीरमें विकार उत्पन्न होते हैं तो सम्पू

पर्यावरण कलुषित हो जाता है। अतः स्वच्छ पर्यावरणके लिये मनुष्यका स्वस्थ होना ही अभीष्ट है।

इसके विपरीत यदि पशुओंके मल-मूत्रको सेन्द्रीय खाद एवं सेन्द्रीय कीटनाशकके रूपमें खेतोंमें प्रयोग किया जाय तो केवल खाद्य-उत्पादनमें ही वृद्धि नहीं होगी, बल्कि पर्यावरण भी स्वच्छ रहेगा; क्योंकि उस अवस्थामें रासायनिक उर्वरक तथा कीटनाशक दवाओंकी आवश्यकता नहीं रहेगी।

विभिन्न पशु-पक्षी अनूठे ढंगसे पर्यावरणको स्वच्छ रखनेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरणार्थ—मछलियाँ जलको स्वच्छ रखनेमें बहुत सहायक सिद्ध हुई हैं। उन्हींके कारण नदी, नाले, तालाब—यहाँतक कि समुद्रका जल भी स्वच्छ रहता है। गंदे पानीमें मच्छरोंके प्रजननसे मलेरियाका रोग फैलने लगता है। प्रयोगोंद्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि यदि गंदे पानीमें मछलियाँ छोड़ दी जायँ तो वे मलेरियाके कीड़ोंको खाकर मलेरियाकी रोकथाममें मदद करती हैं। सच तो यह है कि मछलियाँ पानीमें व्याप्त विषैले रासायनिकोंको भी उदरस्थ कर पानीको स्वच्छ रखनेमें मदद करती हैं। जो निश्चित रूपसे पर्यावरणको स्वच्छ बनाये रखनेमें सहायक हैं।

मेढक नदी-नालों तथा तालाबों आदिके आसपासके भूभागपर उत्पन्न हुए हानिकारक कीड़ोंको अपना भोजन बनाकर न केवल कृषि-उत्पादनमें मदद करते हैं, बल्कि पर्यावरणको भी स्वच्छ रखते हैं; क्योंकि उस दशामें इन कीड़ोंको मारनेके लिये कीटनाशक दवाइयाँ छिड़कनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती।

सूअर शहरों एवं गाँवोंकी गंदगी, यहाँतक कि व्यर्थ 'पालीथीन'-जैसे पदार्थोंको भी खाकर हजम कर सकता है एवं अपने मलके रूपमें कृषि-उत्पादनमें सहायक सेन्द्रीय खाद उपलब्ध कराता है। इस प्रकार वह मनुष्यको न केवल स्वच्छ पर्यावरण ही प्रदान करनेमें सहायता करता है, वरन् उसके भोजनके लिये अन्न-उत्पादनकी वृद्धिमें भी सहायक सिद्ध होता है।

भेड़-बकरियाँ जंगलोंमें चारा तो अवश्य खाती हैं; किंतु साथ ही जंगलको नुकसान पहुँचानेवाले कीड़े-मकोड़ोंको भी ग्रसित करती रहती हैं, साथ ही वे अपने मलके माध्यमसे पौधोंके बीजको इस प्रकार भूमिमें वापस पहुँचा देती हैं कि वे शीघ्र ही उगकर बड़े-बड़े वृक्षोंका रूप धारण कर लेते हैं।

गाय-भैंस-बैल एवं अन्य पशु घास-फूस एवं पेड़-पौधोंको खाकर हमें दूध-जैसा पौष्टिक आहार तो उपलब्ध कराते ही हैं, साथ ही हल जोतने और माल ढोनेका भी कार्य बखूबी पूरा करते हैं। इसके अतिरिक्त गोबर-गैसके रूपमें खाना पकाने-जैसी आवश्यकताओंके लिये ईंधन भी उपलब्ध कराते हैं, जिससे पर्यावरण भी स्वच्छ बना रहता है।

कई अन्य पशु—जैसे कि ऊँट, गधा, घोड़ा इत्यादि भी माल ढोने तथा वाहन खींचनेके लिये लाभकारी ढंगसे प्रयोगमें लाये जा सकते हैं। यातायातके लिये इन पशुओंका प्रयोग करनेमें हमें न तो पेट्रोल एवं डीजलपर निर्भर होना पड़ेगा और न ही बहुमूल्य विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ेगी। बल्कि ऐसा करनेसे तो पर्यावरण भी शुद्ध बना रहेगा; क्योंकि यह तो सर्वविदित ही है कि डीजल और पेट्रोल-वाहनोंसे निकलनेवाला धुँआ बुरी तरहसे पर्यावरणको दूपित करता है।

इसी प्रकार वनोंमें रहनेवाले सैकड़ों अन्य पशु-पक्षी जंगलमें फल, फूल और पत्ते खाकर अपने मलके द्वारा वनोंकी वृद्धिमें सहायता करते हैं।

किंतु दुर्भाग्यवश पशु एवं पक्षियोंको मात्र जीभके स्वादके लिये लाखोंकी संख्यामें कसाईखानोंमें काटा जाने लगा, त्योहारोंपर उनकी बलि चढ़ाई जाने लगी और वे शिकारके मुख्य निशाने बन गये। परिणाम यह हुआ कि न केवल हमारा देश, बल्कि सम्पूर्ण विश्व आज प्रदूषणकी भयावह स्थितिमें पहुँच गया है।

यदि हम प्रदूषणकी रोकथाम कर मानव-जातिके लिये एक स्वच्छ वातावरण उपलब्ध कराना चाहते हैं तो हमें प्रकृतिके सभी जीवोंको भ्रातृवत् प्रेमकर अपने साथ जीनेका अवसर प्रदान करना होगा; क्योंकि पशु एवं पक्षियोंके बिना अच्छे पर्यावरणकी कल्पना मात्र स्वप्न हो सकती है, यथार्थ नहीं।

अतः पर्यावरणको शुद्ध बनाये रखनेके लिये आज यह बहुत आवश्यक हो गया है कि हम इस संदर्भमें पशुओंकी महत्ता समझें, उनके साथ सामञ्जस्य स्थापित करें और उनका समुचित संरक्षण-संवर्धन करें।

आँख और पेटकी बीमारी

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

सभी मनुष्योंमें दो तरहकी बीमारी है—आँखकी बीमारी और पेटकी बीमारी। आँखकी बीमारी क्या है?—

इस दुनियामें एक अँधेरा, सबकी आँखमें जो छाया।
जिसके कारण सूझ पड़े नहीं, कौन हूँ मैं कहाँसे आया॥
कौन दिशाको जाना मुझको, किसको देख मैं ललचाया।
कौन है मालिक इस दुनियाका, किसने रची है यह माया॥

और पेटकी बीमारी क्या है?—

इस दुनियामें एक कूप है, जिसका पार कोई नहीं पावै।
जिसको भरने कारण प्राणी, देश-दिगन्तर को जावै॥
दीन भये पर घरमें जाकर, सेवा कर कर मर जावै।
भजन ध्यान चिन्तन ईश्वरका, जिसके कारण बिसरावै॥

इस विषयमें एक कहानी है। एक वैद्य थे। उनके पास एक रोगी पहुँचा। उसने वैद्यसे कहा कि मेरी आँखमें बड़ी पीड़ा हो रही है और पेटमें भी पीड़ा हो रही है। वैद्यने उसको लिटाकर उसका पेट देखा और आँख देखी। इतनेमें एक दूसरा रोगी आया। उसने भी कहा कि मेरी आँखमें और पेटमें बड़ी पीड़ा हो रही है। वैद्यने विचार किया कि यह कैसी हवा चली है, सबको एक ही बीमारी! वैद्यने दोनों रोगियोंके लिये अलग-अलग दवा लिख दी और कहा कि कम्पाउण्डरसे दवा ले लो। कम्पाउण्डरने दोनोंको दवाकी दो-दो पुड़िया बनाकर दे दी, एक आँखके लिये और एक पेटके लिये। वैद्यने समझा दिया कि देखो, यह आँखमें डालनेकी पुड़िया है। इसको रातमें सोते समय आँखमें डालना और बार-बार पलक झपकाना, जिससे आँखसे गरम-गरम पानी निकल जायगा। फिर सो जाना। इससे आँख ठीक हो जायगी। यह दूसरी पुड़िया पेटके लिये है। इसको एक पाव जलमें डालकर आगपर रख देना। जब जल एक छटाक रह जाय, तब वह काढ़ा छानकर पी लेना। इससे पेट ठीक हो जायगा और दस्त लगनेसे आँखमें भी लाभ होगा।

दोनों रोगी दवा लेकर चले गये। घर जाकर एक रोगीने तो ठीक वैसा ही किया, जैसा वैद्यने कहा था। आँखकी दवा आँखमें डाल दी और पेटकी दवा पेटमें। परंतु दूसरे रोगीने पुड़िया उलट दी! उसने पेटकी दवा आँखमें डाल दी और आँखकी दवा पेटमें डाल दी। आँखमें थोड़ा-सा कचरा भी पड़ जाय तो पीड़ा होने लगती है, पर उसने पेटका चूर्ण आँखमें डाल दिया! इससे आँखकी पीड़ा बढ़ गयी! आँखकी दवा ठंडी होती है, वह पेटमें चली गयी तो पेटकी पीड़ा बढ़ गयी! अब वह वैद्यको गाली देने लगा कि तेरे बापको मैंने मारा था क्या? वह तो अपनी मौत मरा था। फिर मेरेसे किस दिनका बदला लिया है। दूसरे दिन वह दवाखाना खुलनेसे पहले ही वहाँ जा बैठा। वैद्यजी आये और दवाखाना खोलकर उससे पूछा—कहो, कैसे हो?

वह बोला—कैसे क्या हूँ!

वैद्यने कहा—अरे, क्या हुआ?

वह बोला—हुआ क्या, जो तुमने किया, वही हुआ!

वैद्यने कहा—हमने क्या किया?

वह बोला—ऐसी दवा दे दी कि मेरी आँखकी पीड़ा भी बढ़ गयी और पेटकी पीड़ा भी बढ़ गयी! साफ कह देते कि मैं दवा नहीं देता! मेरे पास ज्यादा रुपया तो है नहीं, इसलिये उल्टी दवा दे दी।

वैद्यने कहा—भाई, पीड़ा कैसे बढ़ गयी? किसी आदमीको दवा जल्दी असर करती है, किसीको नहीं करती, यह तो अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार होता है, पर पीड़ा बढ़नेका तो कोई कारण ही नहीं है!

वह बोला—मैं तो भुक्तभोगी हूँ, मेरी पीड़ा तो बढ़ गयी!

इतनेमें दूसरा रोगी आया। वैद्यने उससे पूछा—कहो, तुम कैसे हो? वह बोला—महाराज, बहुत आराम है। एक-दो दस्त लगे, पेट भी ठीक है और आँखें भी ठीक हैं। यह सुनते ही पहला रोगी बोला—देखो, यह पैसेवाला आदमी है, इसको तो बढ़िया दवा दे दी, मेरेको घटिया दे दी! वैद्यने कहा—घटिया कैसे दे दी? जो दवा उसको दी, वही तुमको भी दी। तुम्हारी पुड़िया कैसी थी? रोगीने जेबसे चूर्णकी पुड़िया निकालकर वैद्यके सामने पटक दी और बोला—यह है वह पुड़िया। वैद्यने कहा—दूसरी पुड़िया? वह बोला—दूसरी तो मैं काढ़ा बनाकर पी गया! यह पुड़िया आँखमें डाली थी, दवा ज्यादा थी, इसलिये बच गयी। वैद्यने कहा कि इसको निकालो यहाँसे! उल्टी दवा तो यह खुद लेता है और कहता है कि तुमने मेरी पीड़ा बढ़ा दी!

इसी तरह हम सब लोग रोगी हैं। हमारी आँखकी बीमारी क्या है? वास्तविक बात सूझती नहीं है। खुद तो जानते नहीं, दूसरेकी मानते नहीं। जो अधूरा जानते हैं, उसीको पूरा मान लेते हैं कि बस, यही ठीक है। पेटकी

बीमारी क्या है? पेट कभी भरता ही नहीं! दरिद्रका भी पेट नहीं भरता और लखपति-करोड़पतिका भी पेट नहीं भरता। कितना ही मिल जाय तो भी कहते हैं कि क्या करें, काम नहीं चलता। इन दोनों रोगोंके लिये भगवान्ने हमें दो पुड़िया दी हैं—प्रारब्ध और पुरुषार्थ। आँखकी बीमारीके लिये 'पुरुषार्थ' है और पेटकी बीमारीके लिये 'प्रारब्ध' है। पुरुषार्थ करेंगे, सत्संग-स्वाध्याय, विवेक-विचार करेंगे तो आँखका रोग दूर होगा और अपने कर्तव्यका पालन करते हुए प्रारब्धपर विश्वास करेंगे कि जो हमारे भाग्यमें लिखा है, वही मिलेगा* तो पेटका रोग दूर होगा।

प्रारब्ध शोक-चिन्ता मिटानेके लिये है, आलसी-अकर्मण्य बनानेके लिये नहीं। जैसे, बेटा बीमार हो तो अपनी सामर्थ्यके अनुसार उसका भलीभाँति इलाज करते-करते अगर वह मर जाय तो मनमें इस बातको लेकर चिन्ता, शोक, दुःख नहीं होगा कि हमने अपनी तरफसे उसके इलाजमें कमी रखी। बेटा तो प्रारब्धके अनुसार ही मरेगा, पर अपने पुरुषार्थमें कमी होगी तो चिन्ता, शोक, दुःख होगा कि हमने अपने कर्तव्यका ठीक पालन नहीं किया! इसलिये जो करनेमें सावधान और होनेमें प्रसन्न रहते हैं, उनकी आँखका रोग भी ठीक हो जाता है और पेटका रोग भी। परंतु जो पुड़िया उलट देते हैं अर्थात् आँखके रोगके लिये प्रारब्ध और पेटके रोगके लिये पुरुषार्थ लगा देते हैं, उनके ये दोनों ही रोग बढ़ जाते हैं। ऐसे लोगोंसे सत्संग-स्वाध्याय, भजन-ध्यान करनेके लिये कहा जाय तो वे कहते हैं कि कैसे करें महाराज! हमारे तो भाग्यमें ही नहीं है। प्रारब्धसे मिलनेवाले धनके लिये रात-दिन पुरुषार्थमें लगे रहते हैं। सारा पुरुषार्थ पेटके लिये लगा देते हैं और आँखके लिये कुछ करते ही नहीं! भगवान्का नाम लेनेके लिये कहो तो कहते हैं कि नाम कैसे लें, मुखमें सौ मनका ताला लगा है! नाम लेना हमारे भाग्यमें लिखा ही नहीं है! भगवान्की ऐसी ही मरजी है, हम क्या करें? हमारा क्या दोष है?

अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितिका प्राप्त होना 'प्रारब्ध'-के अधीन है और प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग करना 'पुरुषार्थ' के अधीन है। इसलिये कर्तव्य-पालन, सत्संग-स्वाध्याय, भजन-ध्यान आदि करनेमें तो मनुष्य स्वतन्त्र है, पर धन कमानेमें स्वतन्त्र नहीं है। मनुष्य यह नियम तो ले सकता है कि मैं रोजाना इतनी माला जप करूँगा, इतना स्वाध्याय करूँगा, पर यह नियम नहीं ले सकता कि मैं रोजाना इतने रुपये कमाऊँगा। कारण कि भजन-ध्यान आदि करना पुरुषार्थके अधीन है और रुपये कमाना प्रारब्धके अधीन है। परंतु जहाँ पुरुषार्थ लगाना चाहिये, वहाँ प्रारब्ध लगा दिया और जहाँ प्रारब्ध लगाना चाहिये, वहाँ पुरुषार्थ लगा दिया। इससे दोनों बीमारियाँ बढ़ गयीं। पेटकी बीमारी बढ़नेसे जीवन-निर्वाहका खर्चा बहुत बढ़ गया। पढ़ाई-लिखाईमें, खान-पानमें, स्वाद-शौकीनीमें, रहन-सहनमें खर्चा बढ़ गया और कहते हैं कि स्टैण्डर्ड ऊँचा होना चाहिये! सारा पुरुषार्थ स्टैण्डर्ड ऊँचा करनेमें, पेट भरनेमें लगा दिया और आँखसे कुछ दीखता ही नहीं है कि भगवान् क्या हैं? संसार क्या है? मैं कौन हूँ? मेरेको क्या करना है? रात-दिन 'हाय पैसा! हाय पैसा!' करते हैं। अगर 'हाय भगवन्! हाय भगवन्!' करें तो निहाल हो जायँ! जिस लगनसे धन कमाते हैं, उस लगनसे साधन करें तो कल्याण हो जाय! परंतु साधनकी यह दशा है कि नित्य नियम पूरा हुआ तो सोचते हैं कि आजकी आफत तो मिटी! माला पूरी हुई तो मानो जेलसे छूट गये! दूकानमें रोज सौ रुपये कमाते हैं और वे सौ रुपये अगर सुबह ही पैदा हो जायँ तो भी दूकान दिनभर खोलकर बैठे रहेंगे। पर जप पूरा हो जाय तो माला लपेटकर रख देंगे! यह क्या है? यह उल्टी पुड़िया ले ली। इसलिये जो मिला है, उसमें संतोष करें; जो नहीं मिला है, उसकी कामना न करें; अपने कर्तव्यका तत्परतासे पालन करें, दूसरोंकी सेवा करें और भगवान्का भजन-स्मरण, सत्संग-स्वाध्याय करें तो आँखकी पीड़ा भी ठीक हो जायगी और पेटकी पीड़ा भी।

⁂

---

*'यद्भावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा। इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते॥'
'जो नहीं होनेवाला है, वह होगा नहीं और जो होनेवाला है, वह होकर ही रहेगा। चिन्तारूपी विषका नाश करनेवाली इस औषधका पान क्यों न किया जाय?'

प्रारब्ध पहले रचा, पीछे रचा सरीर।
तुलसी चिन्ता क्यों करे भज ले श्रीरघुबीर॥
होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥ (मानस, बाल० ५२। ४)

बाल-कल्याण

(१)

बालकोंका रक्षण तथा शिक्षण

माता जिस समय रजस्वला होती है उसी समयसे उसके गर्भाशयपर उसके आहार एवं विचारोंका प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो जाता है। इसलिये माताके रजस्वला होनेके समय ही बालकके निर्माणकी भूमिका प्रारम्भ हो जाती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे बालकके विकास-क्रमको अवस्थाके अनुसार सात भागोंमें बाँटा जाना चाहिये और उन अवस्थाओंके अनुकूल उसके पालन-पोषण तथा शिक्षणकी समुचित व्यवस्था होनी चाहिये। ये सात अवस्थाएँ हैं—(१) गर्भस्थ शिशु, (२) जबतक शिशु बैठने नहीं लगता, (३) एक वर्षतककी अवस्था, (४) दोसे चार वर्षतक, (५) पाँचसे नौ वर्षतक, (६) दस वर्षसे बारह वर्षतक और (७) युवावस्था।

१-गर्भस्थ शिशु

[१] गर्भवती होनेके पश्चात् स्त्रीको पवित्र विचार रखने चाहिये। सात्त्विक आहार करना चाहिये। उस समयके आहार एवं विचारका गर्भपर बहुत प्रभाव पड़ता है। उसे एकान्तमें रहना चाहिये और भगवान्‌का तथा पवित्र पुरुषोंके चरितका चिन्तन करना चाहिये।

[२] यदि स्त्री-पुरुष कामवासनासे ही संसर्ग करेंगे तो संतानमें भी मलिन संस्कार आयेंगे। केवल उत्तम संतानकी इच्छासे, गर्भाधान-संस्कारकी विधिसे, संतानमें जिन गुणोंको लानेकी इच्छा हो, वैसे गुणों तथा वैसे गुणशाली महापुरुषोंका चिन्तन करते हुए स्त्री-पुरुषोंको सहवास करना चाहिये।

[३] आयुर्वेदमें गर्भकी रक्षाके लिये जो प्रतिमास सेवन करनेकी ओषधियाँ कही गयी हैं, किसी अच्छे वैद्यकी सलाहसे उनका सेवन करना चाहिये।

[४] गर्भकी स्थिति ज्ञात होनेके पश्चात् बड़ी सावधानीसे माता-पिताको ब्रह्मचर्यका पूरा पालन करना चाहिये। माताको कामुकताके विचार, वैसी बातें और उत्तेजक साहित्यका पढ़ना सर्वथा छोड़ देना चाहिये।

[५] माताको लालमिर्च, चरपरा, खट्टा, बहुत शीतल, बहुत उष्ण भोजन तथा सब प्रकारके नशीले पदार्थ सर्वथा छोड़ देना चाहिये। इनके सेवनसे गर्भस्थ बालकको बहुत हानि होती है।

[६] माताको उन दिनों भगवान्‌की पूजा, जप, पाठ तथा देवाराधनमें विशेषरूपसे मन लगाना चाहिये। वह जैसे विचार करेगी, उसके बच्चेमें वैसे ही विचारोंकी प्रधानता होगी।

[७] गर्भवती स्त्रीको कोई भारी वस्तु नहीं उठानी चाहिये। दौड़ना नहीं चाहिये। अधिक श्रम नहीं करना चाहिये।

[८] गर्भवती स्त्री यदि सूर्य या चन्द्रमाके ग्रहणको देखेगी तो गर्भका बालक विकृताङ्ग उत्पन्न होगा।

[९] गर्भवती स्त्रीको परिवारमें पहले भोजन कराना चाहिये। उसकी यदि कोई वस्तु पानेकी इच्छा हो तो यथासम्भव उसे वह वस्तु दी जानी चाहिये।

२-जबतक शिशु बैठने नहीं लगता

[१] बच्चेके उत्पन्न होनेपर उसके नालोच्छेदन तथा सूतिकागृहकी रक्षाका उपयुक्त प्रबन्ध करना चाहिये। जातकर्म-संस्कार, सूतिकागृह-रक्षणसे लेकर षष्ठीपूजनतकके कर्म बहुत सावधानीसे करने चाहिये। विद्वान् ब्राह्मणसे इनकी विधियाँ जाननी चाहिये। नवजात शिशु एवं प्रसूता नारीके लिये अनेक प्रकारकी बीमारियों तथा पूतनादि ग्रहोंका भय होता है, अतः इस कालमें खूब सावधानी आवश्यक है।

[२] जबतक बालक माताका दूध पीता है, माताको अपने आहारमें सावधानी रखनी चाहिये। माताको कोई ऐसी वस्तु नहीं खानी चाहिये, जिससे बच्चा रोगी हो जाय। चरपरे, खट्टे, तेलसे बने भोजनके अतिरिक्त माताको पत्तोंके शाक तथा मूली-जैसे शीतल तथा कटहल-जैसे गरिष्ठ शाक और फल भी नहीं खाने चाहिये।

[३] बच्चेको दूध पिलानेका समय बना लेना चाहिये। चाहे जब दूध नहीं पिलाना चाहिये। दूध लेटे-लेटे या

खड़े-खड़े नहीं पिलाना चाहिये। सदा बैठकर गोदमें बालकको लिटाकर दूध पिलाना चाहिये।

[४] शिशुके अङ्गोंमें, पैरोंके तलुओंमें तथा सिरपर तेल मलना, नेत्रोंमें अञ्जन लगाना तथा उत्तम ओषधियोंकी उसे घुट्टी देना लाभदायक है; किंतु बालकको निद्रित करनेके लिये अफीम या कोई दूसरी नशीली वस्तु कभी नहीं देना चाहिये। बालकको पहली जन्मघुट्टी दी जाती है, उसमें पहली बार एक ही दफा यदि खसके दाने-जितनी असली कस्तूरी मिला दी जाय तो बच्चेको कभी सूखाका रोग नहीं होगा, न न्यूमोनिया ही होगा।

[५] बालक यदि स्वस्थ है तो खेलता रहेगा। यदि वह रोने लगे तो उसे तुरंत दूध मत पिलाइये। देखिये कि उसे क्या कष्ट है। उसे मक्खी, जूँ, खटमल या मच्छर तो नहीं तंग करते हैं। लघुशंकासे उसका बिछौना गीला तो नहीं हुआ है। उसकी असुविधा दूर कर देनेपर वह चुप हो जायगा।

[६] छोटे बच्चेको कपड़े पहनानेसे उसके अङ्गोंके विकासमें बाधा पड़ती है। उसको सोते समय आवश्यक वस्त्रसे ढक दीजिये; किंतु उसे वस्त्र पहनाइये मत। गहने तो उसे बिलकुल ही मत पहनाइये।

[७] बराबर गोदमें लिये रहनेसे बच्चेको गोदमें रहना अच्छा लगने लगता है और गोदमें लिये बिना वह रोता रहता है। इसलिये प्रारम्भसे उसे गोदमें कम लेना चाहिये। यदि गोदमें रहनेका स्वभाव पड़ गया है तो उसे धीरे-धीरे दूर करना चाहिये। सदा गोदमें रखनेसे पैरोंमें ताकत भी नहीं आती है।

[८] जो कुछ हाथमें आवे, उसे मुखमें डालना बच्चेका स्वभाव होता है। उसके हाथ स्वच्छ रखिये। उसके पास गंदे कपड़े मत रहने दीजिये। उसे मिट्टी या लकड़ीके ऐसे खिलौने मत दीजिये, जिनके रंग छूटते हों। यह रंग पेटमें जाकर बच्चेको हानि पहुँचाता है। रबड़के खिलौने उसके हाथमें एकदम मत दीजिये।

[९] यह मत सोचिये कि अबोध बच्चा कुछ समझता नहीं। बच्चा अपने आस-पासकी बातोंको बड़े ध्यानसे देखता है। उसपर उन बातोंके गम्भीर संस्कार पड़ते हैं। नवजात बालकके समीप भी माता-पिताको पूरा संयम रखना चाहिये। बच्चेके पास कोई काम-क्रोधकी चेष्टा नहीं होनी चाहिये।

[१०] मुख बनाकर, चिल्लाकर या दूसरे किसी भी प्रकारसे बच्चेको डराइये मत।

[११] बच्चा नहीं समझता, इसलिये उसे ऊटपटाँग बातें मत कहिये। उसे पाजी, गवाँर, साला आदि कहकर प्यार करना बहुत बुरा है। उसे उत्तम सम्बोधन दीजिये। उसे सद्गुणी बनाइये।

[१२] बच्चेके आस-पास भयानक या गंदे चित्र, खिलौने आदि मत रहने दीजिये। उसके पास ऐसे उत्तम चित्र और खिलौने रखिये, जिससे उसके मनपर अच्छे संस्कार पड़ें।

३-एक वर्षतककी अवस्था

[१] बालकमें जो भी दोष हैं, अज्ञानके कारण हैं। पाँच वर्षकी अवस्थातक तो बालकको मारना बिलकुल ही नहीं चाहिये। मारनेसे उसका स्वभाव सुधरनेके बदले बिगड़ेगा। उसे प्रेमसे और समझाकर सुधारिये।

[२] बालकको चाय या किसी प्रकारकी नशीली वस्तु मत दीजिये। उसे अपना जूठा भी कभी मत खिलाइये।

[३] बालकोंको चूमना उनके स्वास्थ्यके लिये हानिकारक है।

[४] धूलिमें उसे खेलने दीजिये और थोड़ी-बहुत चोट लगे तो ध्यान मत दीजिये। बच्चेको अभी कपड़े पहनानेकी आवश्यकता नहीं है।

[५] बालक इस वयतक आज्ञाकारी होता है। उसे 'ना' कहकर ही आप किसी कामसे रोक सकते हैं।

[६] बच्चेको डाँटिये मत। डराइये मत। दूसरोंको उसके सामने अपशब्द मत कहिये। उसे किसीको मारना मत सिखाइये।

[७] स्नेहवश बालकको मसालेदार भोजन, चाट, मिठाई आदि न खिलावें। उसे दूध, फल, मेवे तथा हल्का सात्त्विक भोजन ही दें।

[८] बच्चे अपनेसे बड़े बच्चोंका अनुकरण करते हैं। वे जितना अपनेसे बड़े बालकोंसे सीखते हैं, उतना माता-

पिता या शिक्षकसे नहीं सीखते। अतः बालककी सभी दशामें यह सावधानी रखनी चाहिये कि उसके पास बुरे स्वभाववाले उससे बड़ी अवस्थाके बालक न खेलें। अच्छे स्वभावके बालकोंके साथ उसे रखकर सरलतासे उसमें सद्गुण स्थापित किये जा सकते हैं।

[९] मिट्टी खाना या ऐसा ही कोई दोष बालकमें आ गया हो तो उसे मारिये मत। रोष मत प्रकट कीजिये। स्नेहपूर्वक यत्न करके दोषको दूर कीजिये।

[१०] कभी भी बालकको घूस मत दीजिये। अर्थात् यदि वह कोई अनुचित माँग करके रोवे तो उसकी माँग मत पूरी कीजिये। बालकपर क्रोध भी मत कीजिये। उचित माँगके लिये भी वह रोवे तो उसे कह दीजिये कि चुप होनेपर ही वह माँग पूरी होगी। उसे अनुभव करने दीजिये कि रोनेसे उसकी कोई माँग पूरी नहीं होती। उसके रोनेपर कोई ध्यान नहीं देता।

४-दोसे चार वर्षतक

[१] लगभग डेढ़ वर्षकी अवस्थामें बालक अपनी आवश्यकताएँ प्रकट करने लगता है। अब उसके शिक्षणका काल प्रारम्भ हो जाता है। उसमें उत्तम स्वभाव पड़े, इसका ध्यान इस अवस्थासे ही रखना चाहिये।

[२] बच्चेको शौच या लघुशंकाकी आवश्यकता होनेपर सूचित कर देना चाहिये। शौच होनेपर जलसे शरीर स्वच्छ होनेकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। बार-बार सूचना देकर, स्नेहसे समझाकर यह स्वभाव बच्चेमें डालिये।

[३] बच्चेको किसी दूसरेके पासकी वस्तु लेनेको उत्कण्ठित नहीं होना चाहिये।

[४] छड़ी, चाकू, अग्नि, दीपक या ऐसी ही दूसरी वस्तुएँ उसे नहीं छूनी चाहिये।

[५] ढाई वर्षकी अवस्थातक उसे अपने हाथसे भोजन करना, भोजनके पश्चात् भलीप्रकार हाथ-मुँह धोना तथा उन्हें पोंछना, स्नान करना और कपड़े पहनना आ जाना चाहिये।

[६] उसे मल-मूत्र-त्यागके उचित स्थानकी पहचान हो जानी चाहिये और ठीक स्थानपर ही ये कार्य करने चाहिये।

[७] प्रसन्नतासे सबको अभिवादन करना उसे आना चाहिये।

[८] बालक अब केवल आदेश देनेसे नहीं मान लेगा। उसे इन बातोंके लाभ मोटे रूपमें थोड़ेमें समझाइये। इनके विपरीत वह चले तो उसकी हानि बताइये।

[९] बार-बार सिखानेपर भी बालक कोई स्वभाव न छोड़े या कोई बात न सीखे तो रुष्ट मत होइये। बालकको दण्ड देना आवश्यक जान पड़े, तो उससे प्रसन्नमुखसे कह दीजिये कि अमुक कारणसे उससे दो या एक घंटे आप नहीं बोलेंगे। अथवा उसे गोदमें नहीं लेंगे। अपनी बातका स्थिरतासे पालन कीजिये। बालकपर इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ेगा।

[१०] बालकको एक साथ बहुत-सी बातें मत समझाइये। एक बार एक बात बताइये और वह भी सीधे ढंगसे।

[११] इस अवस्थामें बालकोंमें थूकना, छोटे कीड़ोंको तंग करना, मुख या नाकमें अँगुली डालना, बार-बार जननेन्द्रिय छूना आदि दोष आते हैं। इन्हें धीरे-धीरे समझाकर दूर करना चाहिये।

[१२] बालक इस समय प्रायः झूठ बोलने लगता है। उसे कुछ बोलना है। बोलना सीख रहा है वह। अतः आप कुछ पूछते हैं तो जो मुँहमें आता है, वह बोल जाता है। बालकसे कोई ऐसी टेढ़ी बात मत पूछिये कि वह झूठ बोले। यदि वह झूठ बोलता है तो उसकी बातपर ध्यान मत दीजिये। उसे दण्ड देकर या भय दिखाकर ऐसा मत बनाइये कि उसे भयवश झूठ बोलना पड़े।

[१३] 'तुम झूठ बोलते हो', 'तुमने चोरी की', 'तुमने अपराध किया'—इस प्रकारकी बात बालकसे मत कीजिये। बुराइयोंकी चर्चा ही मत कीजिये। उसे केवल कहिये—'यह बात ठीक नहीं कही। ठीक बात कहनी चाहिये।' इसी प्रकार उसके रोनेपर 'चींटी मर गयी'-जैसी बातें भी कहना ठीक नहीं। उससे कहिये—'कहीं किसी चींटीको तुमने रुलाया तो नहीं।' 'तुम पाजी हो'-जैसी बातें मत कहिये। कहना हो तो कहिये—'तुम अमुक काम ठीक नहीं करते। उसे ठीकसे करनेवाले लड़के भले होते हैं।'

[१४] बच्चेकी बातोंको प्रेमसे सुनिये, पर उसकी उन बातोंपर ध्यान मत दीजिये जो वह दूसरोंकी बुराई करता है।

[१५] बच्चेके प्रश्नोंको टालिये मत। उनके ठीक उत्तर समझाकर दीजिये। देरतक बालकके प्रश्नका उत्तर मत रोकिये।

[१६] 'हौआ' आदिसे बालकको मत डराइये। उसे भूतोंकी कहानियाँ मत सुनाइये। उसे सत्पुरुषों, भक्तोंकी सच्ची कथाएँ सुनाइये।

[१७] बालकसे दलील मत कीजिये। एक बातको बार-बार मत दुहराइये।

[१८] अच्छे कामके लिये बालकको पुरस्कार मत दीजिये। केवल प्रसन्नता प्रकट कीजिये। अनुचित कार्यके लिये मना करनेपर बालक रोये-चिल्लाये तो दृढ़तासे उसके रोनेकी उपेक्षा कर दीजिये। उसे न रोनेके लिये मनानेसे उसका स्वभाव बिगड़ता है। अच्छाईके लिये बालकको सुन्दर नाम 'उपाधि' देकर प्रोत्साहित कीजिये।

[१९] बालकको चिढ़ाइये मत और न उसकी हँसी उड़ाइये। बालक कुछ चाहता हो तो उसे बहकाइये मत। उसकी माँग क्यों पूरी नहीं होती, यह समझा दीजिये।

[२०] बालकके शरीर, वस्त्र या कार्यकी अनुचित प्रशंसा मत कीजिये। 'यह वस्तु मेरी है और यह तुम्हारी है'—ऐसी बातें उसे मत सिखाइये। निजत्वके भावको जहाँतक हो, कम कीजिये।

[२१] बालकको दूसरोंसे मिलना सिखाइये। छोटे-छोटे कार्योंमें सहायता करनेका उसे अभ्यास कराइये।

[२२] बालक गिरे और चोट लगे तो कह दीजिये—'जाने दो! अच्छे लड़के मजेसे सह लेते हैं।'

[२३] बालक किसीको मारे या गाली दे तो तुरंत रोकिये। प्रसन्नता मत प्रकट कीजिये।

[२४] बार-बार सिखाने-समझानेपर भी बालक त्रुटि करे तो समझना चाहिये कि कहीं अपनेमें, अपने समझानेकी रीतिमें त्रुटि है। पहले उस त्रुटिको ढूँढ़कर दूर करना चाहिये।

५-पाँचसे नौ वर्षतक

[१] भारतकी शास्त्रीय परम्पराके अनुसार इस अवस्थामें द्विज बालकका उपनयन-संस्कार हो जाना चाहिये और उसे ब्रह्मचर्याश्रमके नियमोंका स्वयं पालन करना चाहिये।

[२] यदि इससे पहले ठीक ढंगसे बालकका संरक्षण हुआ है तो अब वह स्वयं नियमोंका पालन करेगा। अब उसे इसके लिये बराबर प्रेरित नहीं करना होगा।

[३] इस अवस्थामें बालकमें सहनेकी पर्याप्त शक्ति होती है और उसके मनमें बहुत अधिक जिज्ञासा होती है। वह बहुत-सी बातोंको पूरी तरह जानना चाहता है। उसे इस अवस्थामें भलीप्रकार शिक्षा मिलनी चाहिये।

[४] बालकके शरीरकी धातुएँ इस समय परिपक्व हो रही हैं। डरिये मत, वह इस समय बहुत अधिक सर्दी-गरमी सह सकता है। इस समय उसके शरीरको सुख देनेसे सदाके लिये वह शीत-उष्ण सहनेमें असमर्थ हो जायगा।

[५] ब्रह्मचर्याश्रमके नियमोंके अनुसार युवावस्थातक बालकको छाता, जूता, तेल आदिका उपयोग नहीं करना चाहिये। उसे भूमिमें सोना चाहिये। जटा रखनी चाहिये और शरीरको वस्त्रोंसे ढके नहीं रहना चाहिये। यह सब सम्भव न हो, तो भी बालकको तख्तेपर सोनेका अभ्यास कराइये। उसे नंगे पाँव रखना अधिक अच्छा है। विलासकी वस्तुओंसे उसे सर्वथा दूर रखना चाहिये।

[६] इस अवस्थामें माता-पितासे भिन्न एक ऐसे व्यक्तिकी आवश्यकता हो जाती है, जो संयमी हो, सदाचारी हो, तितिक्षु हो और विद्वान् हो। बालक जिसपर श्रद्धा कर सके और युवावस्थातक जिसके संरक्षणमें रह सके। ऐसी व्यवस्था न हो सके तो पिताको ही यह उत्तरदायित्व लेना चाहिये। बालकको संयमित एवं नियमनिष्ठ होनेके लिये उसे अपनेको गम्भीर रखना होगा।

[७] पाँचसे दस वर्षतकके बालकको नियमित रखनेके लिये एक अंशमें दण्ड आवश्यक होता है। बालकको न तो बार-बार डाँटा जाय, न पीटा ही जाय। वह खूब नि:संकोच हिल-मिलकर खेल सके; किंतु उसके मनमें भूल करनेपर भय आवे, रुखाईसे मना करनेपर वह समझे कि उसे कठोर दण्ड मिल सकता है, यदि उसने आज्ञापालन नहीं किया। ऐसा स्वभाव आपको अपना बनाना चाहिये।

[८] बालकमें इस अवस्थामें सबसे तीव्र वृत्ति होती है—जिज्ञासा। उसे विश्वास हो कि अमुक नियमोंका पालन करनेसे तथा अमुक प्रकार रहनेसे उसका ज्ञान बहुत शीघ्र बढ़ सकता है तो वह स्वत: सावधानीसे नियमोंका पालन

करेगा। उसकी जिज्ञासाको उभाड़ते रहिये।

[९] कहानी सुनने तथा खेलनेकी वृत्ति बालकमें इस समय तीव्र होती है। उसे पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाएँ यदि आप सुनाते हैं तो उनका संस्कार जीवनभर उसपर रहेगा। उसे ऐसे खेल दीजिये कि उससे वह कुछ सीख सके। उससे बातें करते समय ऐसे शब्दोंका बार-बार उपयोग कीजिये जो उसके ज्ञानको बढ़ावें।

[१०] कष्ट सहना, अपने काम सब अपने हाथसे करना, स्थानको तथा वस्त्रोंको स्वच्छ करना, गुरुजनोंकी सेवा करना बालक पसंद करेगा यदि आप उसे प्रोत्साहित करेंगे। उसे ये सब कार्य आ जाने चाहिये।

[११] यदि संरक्षक मोहवश बालकमें चटोरापन न उत्पन्न करें तो बालक इस समय भोजनकी परवा नहीं करेगा। उसे सादा भोजन करने दीजिये। इस समय मिठाई, चाट, चाय आदिका स्वभाव डालना बालकका बहुत अहित करेगा।

[१२] बच्चेको अपने कार्योंका उत्तरदायित्व समझना चाहिये। उसके कामोंमें कम-से-कम सहायता देकर उसे स्वावलम्बी बनने दीजिये। लाड-प्यार और उसके वस्त्र, बिछौने, भोजनकी व्यवस्थामें अधिकता करनेसे बच्चेकी हानि ही होती है। आप उसे गुरुगृह न भेज सकें तो घरमें उसे संयम एवं स्वावलम्बनका जीवन बितानेको प्रेरित करते रहें। उसे गुरुकी तरह स्नेह तथा शिक्षण दें। अच्छे गुरुमें उसकी भक्ति-श्रद्धाको जगावें।

[१३] शिक्षाके लिये कुछ बातोंको रटना आवश्यक होता है। बालककी स्मरण-शक्ति इस समय रटनेके अनुकूल होती है। लेकिन उसे कम-से-कम रटना पड़े, यह प्रयत्न करना चाहिये। लंबे स्तोत्र, बहुत-से श्लोक या पद्य यदि आप उसे रटावेंगे तो दूसरी आवश्यक दिशाओंमें बालककी स्मरण-शक्ति ठीक काम नहीं कर सकेगी।

[१४] यदि बालकमें कई दोष आ गये हैं तो उनको क्रम-क्रमसे दूर कीजिये। एक दोष दूर करनेके लिये बालकको एक समय बता दीजिये और देखिये कि वह उसे किस प्रकार दूर करनेका प्रयत्न कर रहा है।

[१५] बालक इस अवस्थामें अपने संगके लोगोंसे बहुत अधिक सीखता है। वह बहुत अधिक अनुकरण करता है। उसे श्रेष्ठ संग मिले, इसका ध्यान रखना चाहिये। उसके सामने आपको अशुद्ध शब्द नहीं उच्चारण करने चाहिये। आप लिखने या बोलनेमें अशुद्धि करेंगे तो बालक यह स्वभाव पकड़ लेगा। ऐसे ही दूसरी सब त्रुटियोंके संसर्गसे दूर रखना चाहिये। बालकको गुरुकुलमें भेजनेकी प्रथा इस संसर्गदोषसे बचानेके लिये अत्यन्त उत्तम थी।

६-दस वर्षसे बारह वर्षतक

[१] स्थान, समाज एवं आहारके अनुसार दसवें वर्षके प्रारम्भसे लेकर बारहवें वर्षतक बालकमें संतानोत्पादक ग्रन्थियोंकी पुष्टि प्रारम्भ हो जाती है। यद्यपि उसमें वीर्यका बनना ग्यारह वर्षके बाद ही प्रारम्भ होता है, परंतु वीर्य-निर्माण करनेवाली ग्रन्थियाँ इससे पूर्व ही पुष्ट होने लगती हैं और इससे बालकमें एक प्रकारके शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनका सूक्ष्म आरम्भ हो जाता है। अभिभावकको इस समय पर्याप्त सावधान रहना चाहिये और उसे बालकके रहन-सहनपर ध्यान रखना चाहिये।

[२] बालकमें लज्जा, संकोचके साथ जननेन्द्रियसम्बन्धी जिज्ञासाका उदय भी इसी अवस्थामें होता है। अतएव उसे शरीरकी रचनाका सामान्य ज्ञान, शरीरके बाहरी एवं भीतरी अवयवोंके कार्योंका साधारण परिचय तथा ब्रह्मचर्यके पालनका शरीरकी दृष्टिसे महत्त्वकी शिक्षा मिलनी चाहिये। शरीर-रचना-प्रणालीका सामान्य परिचय बालकमें अनेक दुर्गुण आनेसे रोकेगा; क्योंकि उसके जिज्ञासाकी उचित ढंगसे पूर्ति होनेपर वह अनुचित मार्ग नहीं अपनावेगा।

[३] यदि बालकमें अधिक लज्जाशीलता आ रही है, वह झेंपने लगा है, चिड़चिड़ा हो रहा है तो सावधानीसे पता लगाना चाहिये कि उसमें किसी बुरी आदतका प्रारम्भ तो नहीं हो रहा है। बालकपर बिगड़नेसे कोई लाभ नहीं होगा। उसे शरीरकी रचना तथा उसे व्यवस्थित रखनेके उपाय समझाइये। चित्रों आदिसे उसे शिक्षा दीजिये। वह स्वयं संयमित रहनेके लिये प्रोत्साहित होगा।

[४] उत्तेजक भोजन, उत्तेजक साहित्य तथा गाने-बजाने, नाटक-सिनेमा एवं कुसंगसे बचानेकी इस समय सबसे अधिक आवश्यकता है।

[५] बालकको स्कूली शिक्षाके साथ नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिये तथा व्यावहारिक कार्योंमें सामान्यरूपसे अभ्यस्त होना चाहिये।

[६] बालकको सादगीकी ओर प्रोत्साहित कीजिये। सजे-बजे रहने तथा फैशनकी वस्तुओंकी ओर झुकनेकी उसकी मनोवृत्तिको प्रोत्साहित मत कीजिये।

[७] व्यावहारिक कार्योंमें बालकको अनुभव करने दीजिये। वह थोड़ी हानि उठाकर, चोट सहकर ही सीखेगा। यदि आप उसे बार-बार टोकेंगे, झिड़केंगे, लंबे उपदेश करेंगे तो वह उलटे मार्गमें जायगा। हानिके लिये उसकी भर्त्सना मत कीजिये। उसे धीरेसे कहिये—'ऐसा तो होता ही है। तुम फिर यह भूल नहीं करोगे। ऐसा करनेसे अमुक हानियाँ और नहीं होंगी।' इस प्रकार बालक बहुत अधिक सीखेगा।

[८] दस वर्षकी आयुके पश्चात् बालकको डाँटना और मारना नहीं चाहिये। उसके साथ मित्रके समान व्यवहार करना चाहिये।

[९] बालकको स्वयं अनुभव करने दीजिये। वह जिस कामको ठीक समझता है, उसे कर लेने दीजिये। उसे केवल अपने कामकी अच्छाई-बुराईपर सोचनेकी शिक्षा दीजिये। यदि आपने ठीक ढंगसे शिक्षा दी है तो बालकमें ये गुण होने चाहिये—

(क) वह कभी कोई बात आपसे नहीं छिपायेगा।
(ख) कभी कोई निन्दनीय काम जान-बूझकर नहीं करेगा।
(ग) बुरे लोगोंका साथ स्वयं छोड़ देगा।
(घ) दूसरोंके साथ ईमानदारीका व्यवहार करेगा।
(ङ) अपने निश्चयपर स्थिर रहना चाहेगा।

७-युवावस्था

[१] युवावस्था सद्गुणों और दुर्गुणों दोनोंकी जननी है। यह उपजाऊ भूमि-जैसी है। जैसा बीज पड़ेगा, वैसी फसल उत्पन्न होगी। अतएव अभिभावकों तथा युवकोंको भी सावधान रहना चाहिये।

[२] इस अवस्थामें कामवासनाके अंकुर उत्पन्न होने लगते हैं और उसमें मनका आकर्षण बढ़ता जान पड़ता है। इस अवस्थामें अज्ञानके कारण बहुत-से छोटे-बड़े दोषोंके आनेकी सम्भावना रहती है, जिनका पीछे बहुत बड़ा कुफल भोगना पड़ता है। इसलिये वैवाहिक जीवनमें प्रवेश करनेसे पूर्व युवकको वीर्यवहन-प्रणालीकी क्रिया, वीर्यका शरीरमें स्थान तथा वीर्यरक्षाका महत्त्व भलीप्रकार समझा देना चाहिये। यह शिक्षा अश्लीलतामें, कामुकतामें न जाकर शिक्षाके रूपमें होनी चाहिये और इससे लाभ भी होता है।

[३] अपने शरीरको सुदृढ़ रखनेकी प्रवृत्ति भी युवकमें होती है। उसे व्यायामके लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। साथ ही पौष्टिक ओषधियोंके विज्ञापनों एवं ओषधियोंसे उसे सावधान रहना चाहिये। ओषधिका सेवन कोई रोग न हो तो बिलकुल ही नहीं करना चाहिये।

[४] युवावस्थाकी सबसे प्रमुख प्रवृत्ति है—साहस। युवकमें खतरा उठानेकी अभिरुचि होती है। वह बीमार होने, चोट लगने तथा दूसरे कष्टोंकी चिन्ता बहुत कम करता है। उसकी नाड़ियोंमें जो नवीन उष्ण रक्त प्रवाहित हो रहा है, वह अपनी सार्थकता चाहता है। युवककी इस प्रवृत्तिको दबाना अच्छा नहीं है। सावधानीसे उसे उचित दिशामें मोड़ना चाहिये। घुड़सवारी, यान्त्रिक एवं रासायनिक शिक्षा, कठिन यात्राएँ, अनेक क्षेत्रोंमें प्रयोगात्मक शिक्षण उसके लिये उचित दिशाएँ हैं। यदि युवककी इस वृत्तिको ठीक-ठीक क्षेत्र एवं प्रोत्साहन मिल जाता है तो उसके अनेक दुर्गुण स्वयं दूर हो जायँगे।

[५] युवक उत्तरदायित्व सँभालना और पूरा करना जानता है। वह कर्तव्यका दृढ़तासे पालन कर सकता है। आवश्यकता इतनी है कि कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व उसपर लादा न जाय। उसे इनके कोरे उपदेश न किये जायँ। वह स्वयं अपना कर्तव्य स्थिर करे, स्वयं उत्तरदायित्व ले, इसके लिये उपयुक्त शिक्षा एवं परिस्थिति बनाना चाहिये।

[६] युवावस्थामें महत्त्वाकांक्षा होती है। उचित दिशामें लगा देनेपर युवक परिश्रमी और कर्तव्यनिष्ठ स्वयं हो जायगा अपनी महत्त्वाकांक्षाके कारण।

[७] यह प्रयत्न मत कीजिये कि युवक आपके अनुभवोंको बिना ननु-नच किये मानता चले। उसे स्वयं सोचने और अनुभव करने दीजिये। ऐसे समय उसे सेवाके कार्यमें मन लगानेकी आदत डालनी चाहिये।

[८] युवावस्थामें शिक्षाका अधिकांश भाग व्यावहारिक होना चाहिये। बौद्धिक शिक्षणका प्रयोग करके अनुभूत बनानेका अवसर मिलना चाहिये प्रत्येक युवकको।

[९] अनुशासनका पालन, सेवाकी प्रवृत्ति, विनय, सदाचार-निष्ठा, त्याग एवं कष्ट सहनेके लिये प्रत्येक समय तत्पर रहना—ये विशेष गुण युवकमें आने चाहिये। उसकी शिक्षाका क्रम इन बातोंको मुख्यता देकर ही स्थिर होना चाहिये।

(२)

ईमानदार बालक वीरेश्वर मुखोपाध्याय

बंगालके मालदा शहरके बाहर एक बड़े बगीचेमें एक तेरह-चौदह वर्षका लड़का घूम रहा था। इतनेमें बशीर मुहम्मद नामका एक काबुली मुसाफिर अपने साज-सामानके साथ वहाँ आ पहुँचा। वह थोड़ी देर वहाँ ठहरा और जाते वक्त रुपयोंकी एक थैली वहीं भूल गया। उस थैलीमें पाँच हजार रुपये थे। उस चौदह वर्षके बंगाली लड़केने उस थैलीको देखते ही उठा लिया और यह जानकर कि उसमें बहुत रुपया है—उसने ईमानदारी बरती और वह रुपया उसके असली मालिकको देनेका निश्चय किया।

उधर बशीर मुहम्मद जब कुछ दूर निकल गया, तब उसे रुपयोंकी थैली याद आयी। वह बहुत घबराया और बगीचेकी ओर उलटे पाँव दौड़ा। बालकने उसे चिन्तित देखकर पूछा—'क्या तुम्हारी कोई चीज खो गयी है?' व्यापारीने कहा—'मेरी रुपयोंकी थैली खो गयी है।' बालकने उसको थैली दिखाते हुए कहा—'ये अपने रुपये लो।' बशीर मुहम्मदने थैली खोलकर देखा कि उसमें एक भी रुपया कम नहीं है। फिर उसने बालकसे पूछा—'तुमने इतने रुपयोंके लालचको कैसे रोका? बालकने नम्रतापूर्वक कहा—'मैंने बचपनसे ही ऐसा सीखा है कि दूसरेके धनको मिट्टीके ढेलेके समान तुच्छ समझकर कभी भी चोरी नहीं करनी चाहिये।' बालककी बात सुनकर वह व्यापारी चकित हो गया और वह खुशीसे उसको पाँच रुपये इनाम देने लगा। पर लड़केने कहा—'मैंने तुम्हारा रुपया तुमको वापस दे दिया, यह मेरा धर्म ही था; इसमें इनामकी कौन बात है? न लौटाता तो जरूर बेईमानी करता।'

उस लड़केकी यह भलमनसाहत देखकर बशीर मुहम्मद उसको बहुत शाबाशी देने लगा और उसके इस भले कामकी खबर उसने समाचार-पत्रोंमें छपायी। उस बालककी साधुताकी कहानीके अन्तमें बशीर मुहम्मदने कहा है कि वह रुपया मेरे मालिकका था। यदि बालक वह रुपये खा गया होता तो मेरे मालिकका विश्वास मेरे ऊपरसे उठ जाता और मुझे कैदखानेमें जाना पड़ता। इसलिये इस बालकने मेरे ऊपर कितना बड़ा उपकार किया है, इसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। मैं कभी इस लड़केको भूल नहीं सकता और मैं प्रतिदिन यह प्रार्थना करूँगा कि प्रभु उसे लंबी उम्र और सुख प्रदान करे।

उस बालकका नाम 'वीरेश्वर मुखोपाध्याय' था। साधुताके गुणसे प्रत्येक मनुष्य इसी प्रकार लोकप्रिय और आशीर्वादका पात्र बन सकता है।

* * *

जनताकी आवश्यकताओंके अनुसार जीवन-निर्वाहके साधनोंमें वृद्धि न करके जनसंख्याको ही कम करना वैसे ही है, जैसे शरीरपर कोई कपड़ा ठीक न आये तो कपड़ेका आकार ठीक करनेकी अपेक्षा शरीरको ही काटकर छोटा करना! अथवा भोजनालयमें ज्यादा आदमी आने लगें तो ज्यादा भोजन न बनाकर आदमियोंको ही मारना शुरू कर देना!

मनुष्योंको पैदा होनेसे रोककर अधिक अन्न पैदा करनेकी चेष्टा वैसे ही है, जैसे बच्चेको गर्भमें न आने देकर माँका दूध अधिक पैदा करनेकी चेष्टा करना!

* * *

साधनोपयोगी पत्र

[परमार्थ-पत्रावली]

(१)

पत्र मिला। समाचार जाने। आपने अपना परिचय लिखा सो ज्ञात हुआ। आपके और विहारीलालजी तथा जयदेवजीके बीचमें जो झगड़ा लगा हुआ है, उसके समाचार लिखे सो ज्ञात हुए। आपने लिखा कि पूज्य पिताजीके देहान्तके समय उनके चरण छूकर जयदेवजीने मेरे बारेमें क्या सौगन्ध—शपथ खायी थी, वह उन्हें याद दिलाइये, सो ठीक है। श्रीजयदेवजी इस समय यहाँ नहीं हैं, वे नवद्वीप गये हैं।

आपने लिखा कि मैं जयदेवजीसे मेरे हककी रकम नहीं लेना चाहता। मैं जानता हूँ कि उनके पास देनेको कुछ नहीं है। किंतु जैसे पिताजीकी सम्पत्ति उन्हें मिली, वैसे ही कर्जके जिम्मेवार भी वे ही हों, सो आपका लिखना तो बहुत ठीक है, परंतु आप जानते हैं कि 'जब उनके पास देनेके लिये कुछ नहीं है तब कर्ज उनके जिम्मे होनेपर भी कर्ज नहीं चुकाया जा सकेगा' तो कर्ज तो कायम ही रहेगा। इसलिये यदि आप कर सकें तो आपको पिताजीके ऋणको तो चुका ही देना चाहिये। आप कोर्टमें बरी हो गये सो ठीक है, किंतु जयदेवजी जब ऋण नहीं चुकायेंगे तो पिताजी ईश्वरके यहाँ ऋणमुक्त होंगे नहीं। ऐसी अवस्थामें पिताजीको ऋणमुक्त करनेकी चेष्टा आपको करनी चाहिये।

आपने लिखा कि जब भजन करनेवाले पुरुष इस तरह एक बात कबूल करके फिर मुकर जायँ तो दुनियामें किसका भरोसा किया जाय, सो ठीक है; लेकिन जब जयदेवजीके पास कुछ है ही नहीं तब देंगे कहाँसे।

आपने लिखा कि यदि वे फिर राजी हो जायँ तो जगहका बँटवारा अब भी हो जाय और यह २० वर्षका मनमुटाव मिट जाय, सो आपका लिखना तो ठीक है परंतु जयदेवजी काम करनेके लिये नवद्वीप चले गये हैं।

आपने लिखा कि क्या आप इसमें हमारी मदद न करेंगे, यदि आप इस क्लेशको न मेट सकें तो फिर मिटनेकी उम्मीद रहती ही नहीं, सो ठीक है। इस विषयमें मेरी आपसे यह एक प्रार्थना है कि जयदेवजी इस समय बहुत कष्टमें हैं। उनके धनका बहुत अभाव है। इसीसे वे यहाँ काम करने आये थे और कामके लिये ही उन्हें नवद्वीप भेजा है। वे अपनी कमाईसे खर्च भी पूरा नहीं चला पा सकते हैं। इसलिये यदि आप अपना न्याययुक्त हक त्याग करके उनपर दया करके उदारताका व्यवहार करें और उनकी सुविधानुसार जैसे वे प्रसन्न रहें करनेको तैयार हों तो सब कुछ ठीक हो सकता है। यहाँ प्रायः सब प्रसन्न हैं। अपनी प्रसन्नताके समाचार लिखना चाहिये। सबसे सप्रेम यथायोग्य।

(२)

साधनके विषयमें आपने लिखा सो मालूम हुआ। साधन जैसा आप कर रहे हैं वह ठीक है। केवल इसमें इतना परिवर्तन कर लेना चाहिये—जैसे आप श्वास खींचते तथा निकालते समय 'ॐ' और '**सोऽहम्**' का क्रमशः जप करते हैं वैसा न करके श्वास खींचते तथा निकालते—दोनों समय ही 'ॐ' का जप करना चाहिये। एक ही लक्ष्य रहनेसे बहुत ज्यादा फायदा है।

आपने लिखा कि जबसे रामलीला-नाटकमें एक लड़केको गाते देखा, तबसे मन बार-बार उसीमें जाता है, सो ठीक है; किंतु अब तो उस लड़केको देखे बहुत दिन हो गये हैं और आप उसे भूल भी गये होंगे और नहीं भूले हों तो भुला देना चाहिये तथा फिर भी याद आये तो उसमें भगवान्‌का दर्शन करना चाहिये। फिर भी याद आये तो कोई हर्ज नहीं; क्योंकि जब वह भगवान्‌की स्मृतिमें सहायक हो गया तब क्या हर्ज है!

* * *

जहाँ वृक्ष अधिक होते हैं, वहाँ वर्षा अधिक होती है, फिर मनुष्य अधिक होंगे तो क्या अन्न अधिक नहीं होगा? प्रत्यक्ष बात है कि पहले जनसंख्या कम थी तो अनाज विदेशोंसे मँगाना पड़ता था; परन्तु अब जनसंख्या बढ़ गयी तो अनाज, फल आदि वस्तुएँ विदेशोंमें भेजी जाती हैं।

* * *

पढ़ो, समझो और करो

(१)

आज भी ईमानदारी जिंदा है

विदेशसे हम लोग बम्बईके शान्ताक्रूज हवाई अड्डेपर उतरे। लम्बी हवाई-सफरकी थकावट थी। जल्दीसे किसी अच्छे होटलमें जानेके लिये एक टैक्सी लेकर हम दोनों—पति-पत्नी 'मेरिन ड्राइव'की ओर बढ़े। वहाँ अनेक होटलोंमें पूछ-ताछ की, पर स्थान रिक्त न होनेके कारण आगे बढ़ना पड़ा। रात्रिके दो बजे हमें एक अच्छे होटलमें स्थान मिला। ड्राइवरने टैक्सीसे सामान निकालकर होटलके कर्मचारीको सौंप दिया और अपना किराया लेकर वह बिदा हो गया। लिफ्टसे होटलके ऊपरके तल्लेमें पहुँचनेपर जब हम लोग अपना सामान सँभालने लगे, तब मुझे अपना 'ब्रीफकेस' (छोटी पेटिका) वहाँ नहीं दिखायी दिया। ब्रीफकेस न देखकर मेरी दशा ऐसी हो गयी मानो मुझपर बिजली गिर पड़ी हो। मेरा मस्तिष्क चिन्तासे भर गया, मेरी स्थिति किंकर्तव्यविमूढकी-सी हो गयी। अपनेको सँभालकर मैंने तुरंत टेलीफोन उठाया और होटलके मैनेजरसे फोनपर पूछा। उत्तर मिला—'टैक्सीका सभी सामान आपके कमरेमें पहुँचा दिया गया है।' अब शंका होने लगी कि शायद हवाई अड्डेपर ही ब्रीफकेस छूट गया हो। मैंने हवाई अड्डेपर छूटे हुए सामानको सुरक्षित रखनेवाले कार्यालयको फोन किया। किंतु वहाँसे उत्तर मिला—'रातके चार बज रहे हैं, इस समय कुछ भी नहीं हो सकेगा। आप सुबह फोन कर लें।'

हम लोगोंकी नींद हराम हो गयी। विचार-विमर्श करते-करते सूर्योदय हो गया। मेरी पत्नी तो प्रार्थना कर रही थी और कह रही थी कि 'हमारे हककी चीज कहीं नहीं जा सकती, कहींसे मिल ही जायगी।' परंतु मुझे उसकी बातपर विश्वास नहीं हो रहा था। मैंने उसे उत्तर दिया—'यह बम्बई नगरी है, यहाँ गयी हुई चीज वापस नहीं मिलती।'

हम लोग इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि नीचेसे मैनेजरका टेलीफोन आया—'महाशयजी! नीचे आइये, एक सज्जन आपसे मिलने आये हैं। उनके हाथमें एक ब्रीफकेस भी है, शायद वह आपका ही हो।' आशाकी एक किरण चमकी, हृदयमें कुछ सान्त्वना आयी। मैं तुरंत लिफ्टसे नीचे आया, देखा—वही रातवाला टैक्सी-ड्राइवर ब्रीफकेस लिये खड़ा है। मैं उससे कुछ पूछूँ, इससे पहले ही वह बोल उठा—'साहब! मुझे बहुत दुःख है और मैं इसके लिये शर्मिंदा हूँ कि रातको आपका ब्रीफकेस टैक्सीमें ही रह गया। आपको बहुत परेशानी हुई होगी। मैं इसके लिये माफी चाहता हूँ।'

उसके इन शब्दोंको प्रत्यक्ष सुनकर भी मैं विस्मयाभिभूत था और सहज ही मानो कुछ विश्वास ही न हो रहा था। ड्राइवर कहता गया—'अभी प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर जब मैं टैक्सीकी सफाई करने लगा तो मुझे यह ब्रीफकेस दिखायी दिया और मैं तुरंत इसको लेकर यहाँ दौड़ा आया हूँ।' यह कहते हुए उसने ब्रीफकेस मेरे हाथमें थमा दिया और फिर बोला—'साहब! इसे अभी खोलकर देख लीजिये, आपका सब सामान ठीक-ठाक है न?'

मैंने ब्रीफकेस खोलकर देखा, सभी सामान यथावत् था। मैंने जेबसे सौ रुपये निकाले और ड्राइवरको देते हुए कहा—'आपको बहुत-बहुत धन्यवाद! हम आपके आभारी हैं। भारत-भ्रमणके लिये जो कुछ रकम हम लोग लाये थे, वह सब इसीमें थी। यह लीजिये आपका इनाम।'

'नहीं साहब! इनाम लेनेसे ईमान चला जाता है, हमें आप मिल गये और हमने आपकी चीज सही रूपमें सौंप दी, यह मालिककी कृपा है। अन्यथा मुझे पुलिस-चौकीमें जाना पड़ता। अच्छा नमस्कार………।'

टैक्सी-ड्राइवर चला गया। कुछ दिनों बाद जब मैं विदेश लौटा, तब वहाँके अपने मित्रोंसे मैंने गर्वसे कहा—'हमारे भारतमें आज भी ईमानदारी जिंदा है।'

—यूसूफ नूर कोडी

(२)

प्रभु-कृपासे रोग-मुक्ति

घटनाका आरम्भ जून १९७९ से होता है, जबकि मैं मेडिकल कॉलेज रोहतकमें कैंसरसे पीड़ित होनेके कारण दाखिल हुआ था। १५ दिनतक निरन्तर डॉक्टरोंके प्रयासके बाद भी जब मेरी मूत्र-नलीसे रक्तका बहना बंद नहीं हुआ, तब मुझे वहाँसे दिल्लीके एक नर्सिंग-होममें जाना पड़ा। जहाँपर विशेषज्ञ डॉक्टरोंकी देख-रेखमें एक सफल ऑपरेशन किया गया। तत्पश्चात् मैं ठीक हो सका था, परंतु १७ साल पश्चात् पुनः वही खून निकलना आरम्भ हो गया और मैं

बीमारीकी गम्भीरताको देखते हुए पुनः दिल्ली पहुँचा। विशेषज्ञ डॉक्टरने निरीक्षणके पश्चात् कहा—प्रिंसिपल साहब, आपका तो उद्धार हो गया। आप बड़े भाग्यशाली हैं। भला, इस बीमारीका रोगी कभी इतने वर्षोंतक जीवित रहा है? फिर भी आप पुनः पूर्ण जाँच करवायें। एक्सरे, ब्लडशूगर, बी०पी०, हृदय इत्यादिकी जाँचके अनुसार शरीरकी दशा अति गम्भीर हो चुकी थी। अर्थात् ब्लडशूगरके साथ ही पेशाबमें भी शूगरकी मात्रा असामान्य-रूपसे बढ़ गयी थी। हृदयका रोगी होनेके कारण ई० सी० जी० की रिपोर्ट भी चौंकानेवाली थी। अतः डॉक्टरने कहा कि हम रिस्क नहीं ले सकते। हो सकता है कि आप मेजपर ही रह जायँ, अतः आपकी पत्नी और बच्चोंकी सहमति अति आवश्यक है। संयोग ही कहिये, मैं यह अनुमति न प्राप्त कर सका।

एक अन्य डॉक्टरने मेडिकल कॉलेज रोहतक या ऑल इंडिया मेडिकल इन्स्टीच्यूटमें ऑपरेशन करानेका परामर्श दिया। अतः मैं वहाँसे निराश होकर अपने घर आ गया। अगले दिन मैं मेडिकल कॉलेज रोहतक गया। सी० एम्० ओ० तथा अन्य डॉक्टरोंकी भी यही राय थी कि ऑपरेशन करवाना ही पड़ेगा। रास्तेमें मैंने प्रभुसे प्रार्थना की कि 'हे प्रभो! अब तो आप ही इस पीड़ासे मुक्ति दिला सकते हैं। मेरी अन्तरात्माने निर्णय लिया कि मैं सर्वशक्तिमान् (भगवान्)-से ही अपना इलाज कराऊँ। मैंने अपने पुत्रसे कहा कि मुझे घर वापस ले चलो। फिर तो भगवत्कृपासे कारमें बैठनेके पश्चात् मैंने अनुभव किया कि मृत्युभय मेरे मस्तिष्कसे बहुत दूर हो चुका था। जबकि डॉक्टरोंने लगभग एक माहतक ही जीनेकी सम्भावना व्यक्त की थी। डॉक्टरोंके इन सम्भावनाओंके शब्द बार-बार मुझे याद आ रहे थे। सोचा कि यदि एक माह ही इस संसारमें रहना है तो क्यों न यह शेष समय भगवान्‌का नाम लेनेमें ही बिताया जाय।

घर पहुँचकर मैंने घरके सदस्योंसे कहा कि आजसे ही ३१ दिनतक मैं '**ॐ नमः शिवाय**' के अतिरिक्त और कोई शब्द नहीं बोलूँगा। अतः आप सब इस व्रतको पूरा करनेके लिये मुझे अपेक्षित सहयोग दें। मैंने अपना बिस्तर (चटाई) फर्शपर लगा लिया और प्रभुका नाम-जप आरम्भ कर दिया। दिन-रातमें चौदह-पंद्रह घंटे मन्त्रका उच्चारण करता रहता था। शेष समय सोने और दैनिक क्रियाओंमें व्यतीत होता था। श्रीमद्भगवद्गीताका सार अर्थात् अल्प आहार और मनुष्यके पाँचों शत्रुओंका त्याग ही स्वास्थ्य-लाभ करनेमें सहायक सिद्ध हुआ। भगवत्कृपासे मैं आज भी जीवित हूँ और अपने कर्तव्य पूरे कर रहा हूँ।

३१ दिनके बाद जब मैंने पुनः जाँच करवायी तो मेरा रक्तचाप, ब्लडशूगर और रक्तस्राव—ये सभी रोग इस शरीरको छोड़ चुके थे। इस आश्चर्यजनक चिकित्सकीय रिपोर्टको देखकर घरके सदस्य, मित्र और डॉक्टर सभी हैरान थे। मैं तो इसे परमात्मप्रभु आशुतोष भगवान् शिवकी प्रत्यक्ष अहैतुकी कृपा एवं '**ॐ नमः शिवाय**' के दिव्य प्रभावके अतिरिक्त कुछ नहीं मानता हूँ।

अतः मैं प्रार्थना करता हूँ कि जो भाई-बहन इन बीमारियोंसे पीड़ित हों अथवा ऐसे ही किसी भी परेशानियोंसे ग्रस्त हों, वे उन सभी चिन्ताओं-पीड़ाओंको दूर करनेके लिये अपने इष्टदेवके नामका उठते-बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते जप करते रहें, उनके विग्रहका ध्यान अपने मन-मन्दिरमें करते रहें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ऐसा करनेवाला व्यक्ति अवश्य ही अपनी पीड़ाओंसे मुक्त हो जायगा।

—ऋषिकेश वत्स, एम्० ए०, बी० टी०

(३)

भगवान् भक्तोंकी सुनते हैं

मैं १९९४ में नांदेड़ शहर कॉलेजमें पढ़ता था। इसी समय मुझे ऐसी खबर मिली कि मेरी दादी माँ बहुत बीमार हैं। यह खबर मिलनेके आठ-दस दिन बादतक भी जब मैं दादी माँको देखने किसी कारणवश न जा सका तो अचानक एक दिन दोपहरके समय मेरे गाँवका एक व्यक्ति आ पहुँचा। उसके चेहरेसे स्पष्ट नाराजगी झलक रही थी। उसने जल पीनेके बाद सरोष कहा—'अरे बंटू, तेरी दादी माँ, जो तुम्हें प्राणोंसे भी अधिक प्यार करती हैं—उनकी हालत बहुत खराब है। तू जितनी जल्दी हो सके गाँव चला जा, क्योंकि तेरी दादी माँका कुछ भी भरोसा नहीं है और वह बार-बार तुझे ही पुकार रही है।' यह बात सुनकर मेरा सारा शरीर सुन्न-सा हो गया, मैं बहुत घबरा गया। किसी-किसी तरह अपने-आपको सँभाला और तुरंत चल दिया, गाड़ी पकड़ ली। रास्तेमें मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगा कि मैं उसी समय क्यों नहीं चला गया, जब मुझे पहले खबर मिली थी।

जब मैं गाड़ीमें बैठा तो उस आदमीके बतानेके अनुसार सारा दृश्य आँखोंके सामने चलचित्रपट-जैसे घूमने लगा,

जिसके कारण मैं अस्वस्थ-सा बनता जा रहा था। मेरी आँखोंसे आँसू टपकने लगे थे। मुझे ऐसा लग रहा था कि वह मेरा ही नाम पुकार रही है।

मेरी दादी माँ मुझसे बहुत प्यार करती थीं, इसी कारण उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि वे मेरा विवाहोत्सव देखें—मेरी नवागत पत्नीको देखें। जैसा कि उन्होंने कई बार ऐसी भावनाएँ मेरे सामने प्रकट भी की थीं। यही सोच-सोचकर मेरा दिल बैठा जा रहा था कि यदि मेरी दादी माँको कुछ हो गया तो मैं उनकी इच्छा कैसे पूरी कर सकूँगा।

उसी समय अचानक ही किसी अन्त:प्रेरणासे मुझे अपने इष्ट-देवता श्रीगणेशजीकी याद आ गयी, क्योंकि मैं उनका पक्का उपासक हूँ, मैं हृदयसे उनकी भक्ति करता हूँ और दस वर्षसे हर महीनेकी 'संकष्टगणेशचतुर्थी' का व्रत करता हूँ। इसी कारण मुझे उनपर पूरा-पूरा भरोसा रहता है, क्योंकि मेरे ऐसे कुछ अनुभव हैं कि श्रीगणेशजीने असम्भवको सम्भव बना दिया था।

इसीलिये किसी अन्तर्हित दृढ़ इच्छा एवं विश्वासने मुझे बराबर आश्वस्त किया कि तुम्हारे इष्टदेव निश्चित ही तेरी दादी माँको ठीक करेंगे। तुम उनके चरणोंमें अपना सर्वस्व समर्पण कर दो। तत्काल मैंने सीटपर बैठे-बैठे आँख मीचकर पूरे विश्वासके साथ श्रीगणेशजीकी मानस-प्रार्थना करते हुए यह विनती की—'प्रभो! आप मेरी दादी माँको जीवन दे दें। कम-से-कम केवल छः महीनेके लिये भी मेरी दादी माँको बचा दें और यह भी सम्भव न हो तो मेरा छः महीनेका जीवन कम करके मेरी दादी माँको दे दें।' फिर क्या था, करुणावरुणालय श्रीगणेशजीने यह प्रार्थना सुन ली।

जब मैं गाँव पहुँचा तो सुना मेरी दादी माँ बात नहीं कर पा रही हैं। उन्होंने खाना-पीना तक छोड़ दिया है, पर जब मैं उनके पास पहुँचा तो मुझे लगा कि उन्होंने मुझे पहचान लिया; क्योंकि उनका चेहरा थोड़ा खिल उठा था। यद्यपि वे कुछ कहना चाहती थीं, तथापि कुछ भी कह पानेमें असमर्थ थीं।

उन्हें कालाज्वर हुआ था। उनकी पूरी जीभ काली पड़ गयी थी। सभी सगे-सम्बन्धी वहाँ एकत्र थे और यह समझ बैठे थे कि अब दादी माँका बचना मुश्किल है। इसलिये डॉक्टरको बुलाना उनके विचारसे व्यर्थ था। फिर भी मैंने डॉक्टरको बुलाया और कहा—'डॉक्टर साहब, मेरी दादी माँको बचा लीजिये, चाहे जितना भी खर्चा लगे उसकी परवाह नहीं।' कुछ चिकित्सकीय जाँच करनेके बाद उन्होंने बताया कि ईश्वरने चाहा तो सब ठीक हो जायगा। फिर वे कुछ औषधियाँ आदि देकर चले गये। इसके बाद मैं डॉक्टरके परामर्शानुसार दवाएँ देता रहा और साथ-ही-साथ विघ्न-विनाशक अपने उपास्य देवका निरन्तर नाम-जप करता रहा। इस नाम-जपका अद्भुत चमत्कार हुआ। दादी माँ कुछ ही दिनों बाद बोलने लगीं। एक दिन वे बोलीं—'बेटे! अब मैं बिलकुल ठीक हूँ, मुझे दवा मत दो।' मैं यह सुनकर अश्रुपूर्ण प्रसन्नतासे दादी माँके गले लग गया और मन-ही-मन श्रीगणपतिकी दिव्य कृपाका अनुभव कर भाव-विभोर हो उनके चरणोंमें लोट-पोट होने लगा। लगभग दस दिनोंमें मेरी दादी माँ बिलकुल स्वस्थ हो गयीं।

एक-दो महीने बाद मैंने श्रीगणेशजी एवं अपनी दादी माँके इच्छानुरूप एक अच्छी लड़की पसंद कर ली और शीघ्र ही उसके साथ मेरा विवाह सम्पन्न हो गया। अब दादी माँके चेहरेपर संतोष और आनन्दकी स्पष्ट झलक थी, मानो उनकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो गयी हों। शादीके बाद वे मेरी पत्नीके साथ पाँच महीनेतक आनन्दपूर्वक रहीं और अपने जीवनके बहुमूल्य अनुभवोंसे मेरी पत्नीको परिचित करायीं। जिसका अमिट प्रभाव मेरी पत्नीपर पड़ा। एक दिन आयुकी अवधि समाप्त हुई और १९९३ दिसम्बरके ९ तारीखको रातके ८-४५ बजे हमें छोड़कर ईश्वरके समीप चली गयीं। मुझे बहुत दुःख हुआ। फिर भी श्रीगणेशजीने मेरी सुन ली थी। तभी मेरी दादी माँकी इच्छा पूरी हो पायी थी।

इस घटनासे ईश्वरपर विशेषतया उपास्यदेव गणेशजीपर मेरी भक्ति एवं निष्ठा और अधिक दृढ़ होती गयी। साथ ही पूर्णरूपसे मुझे इसका अनुभव हुआ कि भक्ति-भावपूर्ण समर्पणकी भावनासे की गयी भक्तोंकी सच्ची प्रार्थनाको भगवान् कभी भी अस्वीकार नहीं करते हैं।

—जनार्दन ना० कऊटकर

* * *

मनन करने योग्य

शुद्ध कमाई

एक दिन एक धनी भक्तकी ओरसे ब्रह्मभोजका आयोजन था। क्षेत्रके समस्त साधु-संत, फकीर, भिखारी, अभावग्रस्त व्यक्तियोंको भोजन करानेके लिये आमन्त्रित किया गया था। विविध प्रकारके स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ बने थे। खीर, हलवा तथा पूड़ी-मिठाइयोंकी मधुर सुगन्ध चारों ओर फूलोंकी महककी तरह फैली हुई थी। जिसे भूख न भी हो, एक बार तो वह भी ललचाकर दावतमें आ बैठे। सर्वत्र बड़ी चहल-पहल थी। विशाल पैमानेपर उत्सवकी तैयारियाँ की गयी थीं।

मनुष्यका अहंभाव कितना विचित्र मनोविकार है। दुर्बल-चरित्र व्यक्तियोंकी क्षतिपूर्तिके जितने भी सकारात्मक विकृत उपाय हैं, उनमें अहंकार सबसे प्रधान है। यों तो अहंकारकी भावना थोड़ी-बहुत सबमें मौजूद होती है, किंतु अमीर व्यक्तियोंमें अपनी अहंपूर्तिकी उत्कट प्रधानता दिखायी देती है। वे अपनी दाम्भिकताको अपना सामाजिक अस्त्र बनाकर अपने बड़प्पनकी आकांक्षाको संतुष्ट करना चाहते हैं।

अपने प्रथम विश्व-भ्रमणमें गुरु नानक सुलतानपुरसे चलकर एमनाबाद (पाकिस्तान)-में सुतारभाई लालोके घर पहुँचे थे। भाई लालो एक मामूली हैसियतके विनीत, निर्धन, किंतु सच्चे भक्त थे। भक्तिके विज्ञापनमें उनका तनिक भी विश्वास न था। ऊँच-नीच, जाति-पाँतिके कृत्रिम भेद-भावमें न पड़कर वे प्रत्येक जरूरतमंद व्यक्तियोंकी सेवा-सहायता करने एवं संकटमें सहयोग करने तथा बीमारकी चिकित्सा करानेमें धर्मके कर्तव्यकी पूर्ति मानते थे। उनमें किसी प्रकारका न घमंड था, न द्वेष। थोड़ी-सी ईमानदारीकी कमाईसे ही वे तृप्त और संतुष्ट थे। वे वास्तविकतासे पलायनवादमें विश्वास न करते थे।

भाई लालोने गुरु नानकदेवजीकी बड़ी आवभगत की। बड़े प्रेमसे आदर-सत्कार किया। फिर विनय और दैन्य-भावसे अपनी हैसियतके अनुसार भोजनका प्रबन्ध किया। गुरुजीसे अपने गरीब घरमें ठहरनेका भी आग्रह किया। निरन्तर पूर्ण समर्पित-भावसे सेवामें तत्पर रहे।

गुरु नानक धर्मके क्षेत्रमें अत्यन्त उच्च स्थान रखते थे। मजहबी क्षुद्रता, कट्टरता, दिखावा आदि ऊपरी भेद-भाव त्यागकर सबको समान-दृष्टिसे देखते हुए वे ऊँच-नीच, बड़े-छोटे आदिका अन्तर नहीं मानते थे। सभी ईश्वरके पुत्र हैं। अतः सबको समाज और धर्ममें समान स्थान मिलना चाहिये, ऐसा उनका विचार था।

उसी गाँवमें मलिक भागो नामक एक धनाढ्य खत्री भी रहते थे। उन्हें अपनी जमीन-जायदाद, धन-सम्पत्ति एवं सामाजिक वैभवका बड़ा अभिमान था। आर्थिक क्षेत्रमें ऊँचा रहनेके साथ वह चाहते थे कि अपने धन-सम्पत्तिके बलपर धर्मके क्षेत्रका नेतृत्व, प्रतिष्ठित स्थान आदि भी उन्हें प्राप्त हो जाय। पाखंडी साधु तथा फकीर दान-दक्षिणाके लोभसे उनके घर भोजन करते थे और उनकी धार्मिकताका गुणगान कर उनका विज्ञापन किया करते थे। वे अपने दान, धर्म, कर्म आदिकी झूठी प्रशंसा सुनकर बड़े आनन्दित होते थे। उन्हें अपने धर्मका अभिमान था।

उस दिन उन्होंने अपने आत्मविज्ञापनकी छिपी हुई अभिलाषासे ही ब्रह्मभोजका विशाल आयोजन किया था। उस भोजमें गुरु नानकको निमन्त्रित किया गया था। गुरुजी असाधारण बुद्धि-विवेकके संत थे। बाह्याडम्बरमें उनका विश्वास न था। धर्मके क्षेत्रमें भक्ति, त्याग, सेवा, समर्पण आदिको ही वे महत्त्वपूर्ण मानते थे।

अधिकांश अमीरवर्ग धर्मका विज्ञापन अधिक करता है। सेवा, त्याग, प्रेम, करुणा, दया, क्षमा, आन्तरिक तथा बाह्यशुद्धि, इन्द्रियसंयम आदि कुछ भी धारण नहीं करता। धर्म उनके लिये प्रचार और अहं-प्रदर्शन मात्र होता है। अनेक अमीरोंकी कमाई शोषण, अत्याचार, अन्याय, चोरी-डकैती, भ्रष्टाचार तथा पापके द्वारा अर्जित की जाती है। गरीबोंको सताकर वे पैसेवाले बन जाते हैं। किन अनुचित साधनोंसे रुपया कमाया—इसे महत्त्व नहीं देते। धन तो आता-जाता रहता है। धनहीन पुरुषका पतन नहीं होता, शील तथा चरित्रसे हीन पुरुषका पतन हो जाता है। धन मनुष्यकी कमजोरियोंको ढकनेका एक साधन है।

ब्रह्मभोजमें भोजनार्थ गुरु नानकजीके आनेकी सभी प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रतीक्षा करते-करते काफी समय व्यतीत हो गया, पर गुरुजीका अभीतक कोई पता न चला। जो भी आदमी बुलानेके लिये दौड़ाया गया वह अभीतक आया नहीं। बड़ी प्रतीक्षाके बाद भी जब वे न आये तो मलिक भागो बहुत क्रोधित और उद्विग्न हो उठा।

मेरी प्रतिष्ठा, धन, रुपया-पैसा, जायदाद आदिका इतना अपमान! यह पहला साधु है जो स्वादिष्ट भोजन, दान-दक्षिणा, प्रतिष्ठा आदिकी इतनी उपेक्षा कर रहा है। देश-काल और पात्रका विचार कहीं करता। हर कोई तो अमीरोंकी मित्रता चाहता है, यह मेरी उपेक्षा कर रहा है। यह सोच-सोचकर मलिक भागो अत्यन्त क्रोधसे उन्मत्त-सा हो उठा।

वह स्वयं भागा-भागा गुरुजीके यहाँ भोजन लेकर पहुँचा। स्वादिष्ट पूड़ी, कचौरियाँ, मिष्टान्न, घीसे तरलतर उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थ थे। 'गुरुजी! सेवामें भोजन लाया हूँ। कृपया ग्रहण कीजिये। मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिये।'

गुरुजीने प्रेम और दयासे अमीर पूँजीपतिको देखा। धर्मके बाह्य आवरणोंको हटाकर वे मलिक भागोको उपदेश देना चाहते थे।

उन्होंने निर्धन भाई लालोसे भी रोटी मँगवायी। वह दीन-दरिद्र तो था, किंतु धर्मके क्षेत्रमें अद्वितीय धैर्य, क्षमा, विनय, चित्तवृत्तियोंके निरोध एवं आन्तरिक और बाह्य-शुद्धि, इन्द्रिय-संयम आदिके क्षेत्रमें अग्रगण्य था। बेचारा सकुचाता-शर्माता सूखी रोटी और दाल सेवामें ले आया।

अब गुरुजीके सामने दो भक्त खड़े थे—अमीर मलिक भागो, गरीब भाई लालो। दोनोंका भोजन सामने था—अमीरका मेवा-मिष्टान्न और गरीब भक्तकी सूखी रोटी-दाल।

गुरुजीने मिठाई-पूड़ी-कचौरियोंको बायें हाथमें लिया तथा भाई लालोकी सूखी रोटी दाहिने हाथमें। वहाँ और भी भक्त एकत्र होकर यह सब आश्चर्यसे देख रहे थे। गुरुजीने दोनों हाथोंकी मुट्ठियोंको दबाया। भाई लालोकी सूखी रोटीमेंसे दूधकी धारा बह निकली, मलिक भागोके मिष्टान्नसे रक्तकी धारा। यह देखकर सभी चकित रह गये। इससे बड़ा करिश्मा और क्या हो सकता था?

गुरुजीने कहा—मलिक भागो! तेरी पूड़ियाँ और मिठाइयाँ शोषण, अन्याय और धोखाधड़ीसे बनी हैं। यह गरीबोंको सताकर एकत्र किया हुआ धन है तथा भाई लालोकी रोटी सच्चे परिश्रमसे कमायी हुई है। इसीलिये इसमेंसे पवित्र दूधकी धारा प्रवाहित हुई है। शुद्ध कमाई वही है जिससे आदमी फलता-फूलता है। इसी कमाईमें बरकत है। तुम्हें भी गरीबोंको न सताकर परिश्रमसे पवित्र कमाई करनी चाहिये।

—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०

* * *

माधव! असि तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया॥
सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय, दसा हृदय नहिं आवै।
जेहि अनुभव बिनु मोहजनित भव दारुन बिपति सतावै॥
ब्रह्म-पियूष मधुर सीतल जो पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृगजल रूप बिषय कारन निसि-बासर धावै॥
जेहिके भवन बिमल चिंतामनि, सो कत काँच बटोरै।
सपने परबस परै जागि देखत केहि जाइ निहोरै॥
ग्यान-भगति साधन अनेक, सब सत्य झूँठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरि-कृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माहीं॥

* * *

॥ श्रीहरिः ॥

जनवरी १९९८ का विशेषाङ्क—‘भगवल्लीला-अङ्क’

[अभी उपलब्ध है, इच्छुक सज्जन मँगानेमें शीघ्रता करें]

वर्तमानमें मनुष्य अज्ञानवश भौतिक समृद्धिकी ओर आकर्षित है, जिसके फलस्वरूप वह आँख मूँदकर मिथ्या भोग-ऐश्वर्यकी ओर दौड़ रहा है। आज मानव मानसिक रूपसे घोर अशान्त, दिग्भ्रमित और अपने लक्ष्यसे भटककर किंकर्तव्यविमूढ़ है। यह इस मानव-जीवनका दुरुपयोग ही नहीं, अपितु श्रीभगवान्‌की अहैतुकी कृपासे केवल आत्मकल्याणके लिये प्राप्त इस दुर्लभ सुअवसरकी घोर उपेक्षा है। अतः इस भयावह स्थितिसे छुटकारा पाना है। वस्तुतः इस जीवनका महत्त्व और सदुपयोग एकमात्र आत्मोद्धारके लिये ही है। भगवद्भजनके बिना इस लक्ष्यकी प्राप्ति सम्भव नहीं। इस कठिन कलिकालमें भगवान्‌का भजन-स्मरण और भगवल्लीलाओंका चिन्तन ही सब प्रकारकी विपत्तियोंसे त्राण दिलानेवाला है—**‘हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्’**। भागवतकारका यह कथन निःसंदेह कल्याणकारी और सबके लिये मङ्गलकारी है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी इस क्रूर कलिकालसे उद्धार पानेके लिये भगवान्‌के गुणगान एवं लीलाचरित्रोंके चिन्तन आदिको ही एकमात्र अमोघ उपाय बताया है—

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

अर्थात् भगवान्‌का गुणगान और लीलाचिन्तनका आश्रय ही संसार-सागरसे पार होनेका सर्वोत्तम उपाय है। मानसकारके इस वेदविहित सर्वमान्य सिद्धान्तको सादर विनम्रतापूर्वक आत्मसात् करते हुए सबके कल्याणकी शुभ-भावनासे **‘कल्याण’** ने इस वर्ष (१९९८ ई० के) विशेषाङ्कके रूपमें **‘भगवल्लीला-अङ्क’** प्रकाशित किया है।

‘भगवल्लीला-अङ्क’ में परमात्माके निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार-स्वरूपके सरल विवेचनसहित उनकी लीलाओंका भावमय सुन्दर दिग्दर्शन है। विशेषतः भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्णके ऐश्वर्य, माधुर्यपूर्ण लीला-चरित्रोंका सरस वर्णन इसमें बड़ा ही हृदयग्राही है। इसके अतिरिक्त इसमें श्रीभगवान्‌के अनेक भक्तों एवं भगवल्लीलानुरागी भावुक संत-महात्माओंके प्रेरणादायी उज्ज्वल चरित्र भी उल्लिखित हैं।

फरवरीके परिशिष्टाङ्कसहित इसकी कुल पृष्ठ-संख्या ४६० है। इसमें आकर्षक बहुरंगे चित्र १४, इकरंगे चित्र २ हैं, एवं प्रसङ्गानुसार अनेक रेखाचित्रोंसे यह सज्जित है। इसका वार्षिक शुल्क रु० ८० (सजिल्दका रु० ९०), दसवर्षीय शुल्क रु० ५०० (अथवा सजिल्दका रु० ६००) है। **‘भगवल्लीला-अङ्क’** की सीमित प्रतियाँ ही उपलब्ध हैं और **‘कल्याण’** के सहृदय, सुविज्ञ पाठकोंद्वारा इसे अपनाये जानेके कारण यह प्रायः समाप्तिकी ओर है। अतः कल्याणप्रेमी सभी इच्छुक महानुभावोंको अब बिना किसी विलम्बके इसे शीघ्र प्राप्त कर लेना चाहिये।

आप कृपया अपने मित्रों और प्रेमी-परिचितोंको मँगाने-हेतु प्रेरित करके सत्साहित्यके प्रचार-कार्यमें सहयोगी बनें तथा आध्यात्मिक लाभ उठायें।

‘कल्याण’ के महत्त्वपूर्ण कुछ पुराने विशेषाङ्क

[पुनर्मुद्रणकी प्रक्रियामें—शीघ्र प्रकाश्य]

संक्षिप्त उपनिषद्-अङ्क (वर्ष २३)—श्रुतियोंका सारगर्भित सरल (हिन्दीमें) विवेचन। वेदोक्त ज्ञानके प्रकाशमें इसका आत्मकल्याणकारी और आध्यात्मिक मार्ग-दर्शन परमोपयोगी है।

संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क (वर्ष २५)—भगवान् शिव, भगवती सती एवं कुमार कार्तिकेयके विभिन्न ज्ञानप्रद आनन्ददायी लीला-चरित्र। शिवपूजनकी महिमा-सहित इसकी अनेक शिक्षाप्रद कथाएँ पठनीय हैं।

शिवोपासनाङ्क (वर्ष ६७)—शिव-तत्त्व एवं शिवोपासनापर तात्त्विक विवेचन तथा शिव-भक्ति एवं शिव-महिमा-विषयक अनेक रोचक, शिक्षाप्रद कथाओंसे युक्त।

श्रीराम-भक्ति-अङ्क (वर्ष ६८)—श्रीरामभक्तिके विभिन्न पक्षोंपर इसका विचार-प्रेरक, ज्ञानवर्धक कल्याणकारी मार्ग-दर्शन साधनोपयोगी है।

व्यवस्थापक—‘कल्याण’-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

27|6|98

प्र० ति० २०-५-९८

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३

LICENCE NO.-3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेसके कुछ नवीन प्रकाशन

अष्टविनायक [चित्रकथा] (कोड-नं० 829) भगवान् गणेश हिन्दूमात्रके सर्वप्रथम पूज्य देवता हैं। कोई भी माङ्गलिक कार्य बिना इनके पूजन-स्मरणके प्रारम्भ नहीं होता है। इनके स्मरणमात्रसे समस्त विघ्नोंका निवारण और सिद्धियोंकी उपलब्धि हो जाती है। प्रस्तुत पुस्तकमें मुद्गलपुराणके आधारपर भगवान् गणेशके आठ अवतारोंकी लीला-कथाओंका ध्यानके श्लोकोंसहित सरल भाषामें मनोहर चित्रण किया गया है। प्रत्येक कथाके साथ भगवान् गणेशके विभिन्न वाहनोंपर सवार उपासना-योग्य आकर्षक चित्र भी दिये गये हैं। पुस्तकमें नित्यपाठहेतु संकट-नाशन-गणेश-स्तोत्र, मङ्गल-श्लोक तथा आरती भी दी गयी है। यह पुस्तक आबाल-वृद्ध सबके लिये समान उपयोगी है। मूल्य रु० ६ मात्र। (मराठीमें भी छप रही है।)

भगवच्चर्चा (कोड-नं० 820) प्रस्तुत ग्रन्थ नित्यलीलालीन परम श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी छः भागोंमें अलग-अलग नामोंसे पूर्वप्रकाशित अनमोल पुस्तकोंका ग्रन्थाकार संकलन है। साधनोपयोगी इस ग्रन्थके अध्ययन, मनन तथा उसके अनुरूप आचरणसे सबका सहज कल्याण सम्भव है। अनेकों जीवनोपयोगी कल्याणकारी लेखोंसे सज्जित यह ग्रन्थ घरमें पढ़ने तथा उपहारमें देने योग्य बहुमूल्य रत्न है। कपड़ेकी मजबूत जिल्द तथा आकर्षक रंगीन लेमिनेटेड आवरणसहित मूल्य रु० ५० मात्र।

साधक-संजीवनी-परिशिष्ट (कोड-नं० 788) गीता अध्याय ७ से १२ तक एक साथ संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण। प्रस्तुत पुस्तकमें परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजद्वारा प्रणीत गीता अध्याय सातसे बारह-तकके विशेष भावोंका संग्रह है। ये भाव साधक-संजीवनीमें नहीं आ पाये हैं। पहले केवल ७ वें अध्यायका प्रकाशन हुआ था। अब इनका प्रकाशन साधक-संजीवनी-परिशिष्ट (अध्याय ७ से १२)-के नामसे किया गया है। यह पुस्तक प्रत्येक देश, वेष, धर्म, सम्प्रदायके साधकोंके लिये समान उपयोगी है। मूल्य रु० ८ मात्र।

सत्संग-मुक्ताहार (कोड-नं० 861) प्रस्तुत पुस्तकमें परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके नौ लेखोंका संग्रह है। इसमें स्वतः-प्राप्त परमात्मतत्त्व, कामना और आवश्यकता, भगवल्लीला-तत्त्व तथा शास्त्रीय विवादसे हानि आदिका बड़ा ही सुन्दर विवेचन किया गया है। कोई भी पाठक इसके स्वाध्यायसे वास्तविक तत्त्वका अनुभव करके अपने मानव-जीवनको सफल कर सकता है। मूल्य रु० ३ मात्र।

अमृत-बिन्दु (शिक्षासाहस्त्री) संशोधित एवं संवर्धित (कोड-नं० 822)—इस पुस्तकमें परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके अमृत-वाणीसे संकलित लगभग १,००० उपदेशात्मक सूक्तियोंका संकलन है। इन छोटे-छोटे उपदेशोंमें भरे हुए विलक्षण भाव किसी भी पाठकके विचारोंमें आमूल परिवर्तन कर उसे भक्ति-पथका पथिक बना सकते हैं। मूल्य रु० ४ मात्र।

तेईस चुलबुली कहानियाँ (कोड-नं० 827) प्रस्तुत पुस्तकमें भक्ति, सदाचार, त्याग और सेवा-जैसे उत्तम सद्गुणोंकी प्रेरणा देनेवाली तेईस चुनी हुई सुन्दर कहानियोंका संग्रह है। मूल्य रु० ६ मात्र।

अध्यात्मरामायण (तेलगू)—(कोड-नं० 845) यह ग्रन्थ भगवान् व्यासकी अद्भुत रचना है। इसमें मूर्तिमान् अध्यात्मतत्त्व भगवान् श्रीरामके लोकपावन लीला-कथाओंके सरस वर्णनके साथ भक्ति, ज्ञान, सदाचार-सम्बन्धी अनेक उपदेशोंका अद्भुत समावेश है। इस कल्याणकारी ग्रन्थको और अधिक उपयोगी बनानेके उद्देश्यसे इसका तेलगू भाषामें प्रकाशन किया गया है। सटीक, सचित्र, सजिल्द आकर्षक लेमिनेटेड आवरणसहित मूल्य रु० ५० मात्र।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**—२७३००५

LIBRARY
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARDWAR

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

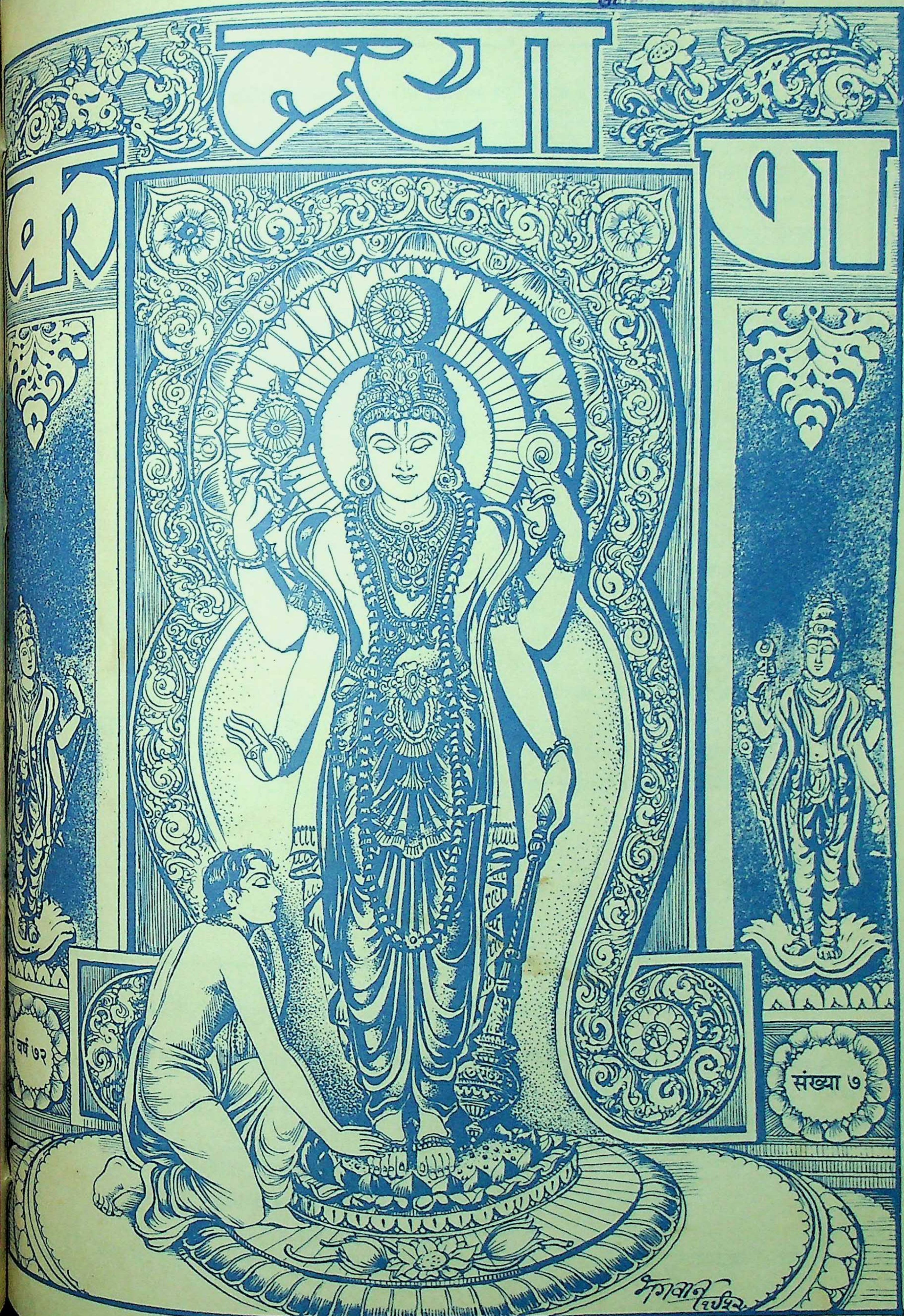
वर्ष ७२
संख्या ७
भगवान् ...

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,३५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, जुलाई १९९८ ई०

विषय — पृष्ठ-संख्या

१-सुरनि हित हरि कछप-रूप धार्‌यौ ६५३
२-कल्याण (शिव) ६५४
३-कल्याण-प्राप्तिका सरल साधन (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ६५५
४-परम प्रभु परमात्माकी अलौकिक लीला (स्वामी श्रीअच्युतानन्दजी) ६५७
५-विषय और भगवान् (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ६६१
६-भजन-उपासना कबतक करें? (श्री जय जय बाबा) ६६५
७-स्वामिकार्तिकाका शिवाराधन ६६६
८-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ६६७
९-*लीला-चिन्तन—* .... ६७०—६७५
  [क] श्रीरामलीला-चिन्तन .... ६७०—६७१
    पवनपुत्रको प्यारदान ६७०
  [ख] श्रीकृष्णलीला-चिन्तन .... ६७२—६७५
    व्रजवासियोंकी वृन्दावन जानेकी तैयारी ६७२
१०-एक पलके सत्संगसे अलौकिक आनन्द (प्रभु)-की प्राप्ति (श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति) .. ६७६

विषय — पृष्ठ-संख्या

११-सर्वव्यापक असीम चेतन शक्तियाँ तथा भौतिक सम्पदाएँ (श्रीनिहालचन्दजी कांसल) ... ६७७
१२-मानसमें गुरु-शिष्य-सम्बन्ध (डॉ० श्रीराम-शिरोमणिजी शुक्ल, एम्० ए०, डी० फिल्०) ६८१
१३-भगवान्‌के लिये भगवत्प्रेमीकी विरह-वेदना (श्रीबनवारीलालजी गोयन्का) ६८३
१४-क्या मानव-स्वभाव मांसाहारी है? (श्रीबाबूलालजी वर्मा) ६८५
१५-*बाल-कल्याण—* .... ६८८—६९२
  [१] राष्ट्रकी आत्मा आज मूर्च्छित है ६८८
  [२] छुट्टियोंका सदुपयोग कैसे हो? ६९०
  [३] भक्त सुव्रत ६९१
  [४] वीर बाला पद्मा ६९१
  [५] कौन महान्? [कविता] ६९२
१६-साधनोपयोगी पत्र ६९३
१७-अमृत-बिन्दु (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ६९५
१८-पढ़ो, समझो और करो ६९६
१९-मनन करने योग्य—मानव-सेवा पूजाका सर्वोत्तम स्वरूप (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०) ६९७

* * *

चित्र-सूची

१-भगवान् विष्णु (इकरंगा) आवरण-पृष्ठ
२-समुद्र-मन्थन (रंगीन) मुख-पृष्ठ

* * *

इस अङ्कका मूल्य ४ रु०
विदेशमें—US$0.40
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ८० रु०
(सजिल्द ९० रु०)
विदेशमें—US$11

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययस
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

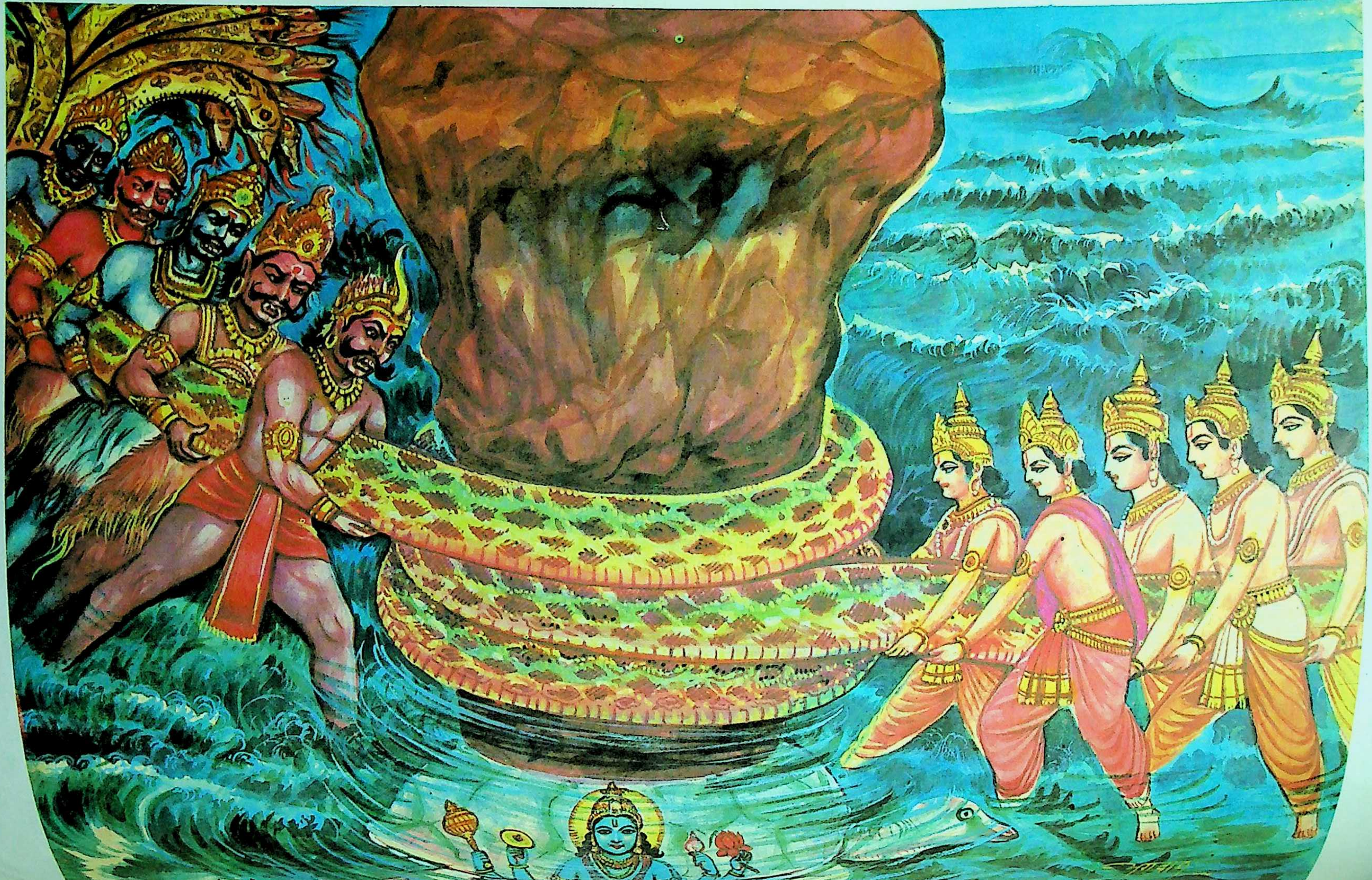

समुद्र-मन्थन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

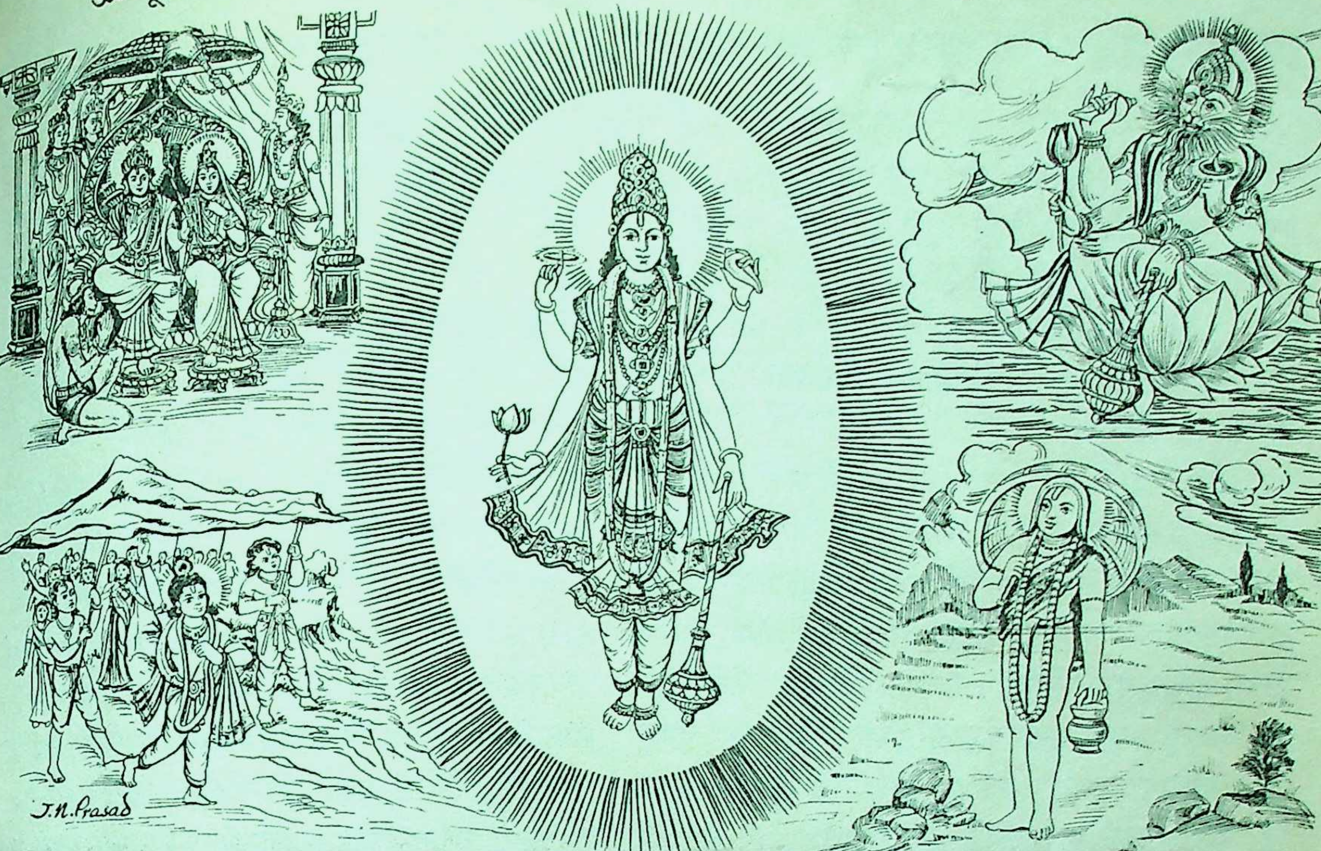

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

वर्ष ७२ गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, जुलाई १९९८ ई० संख्या ७
पूर्ण संख्या ८६०

सुरनि हित हरि कछप-रूप धार्‌यौ

सुरनि हित हरि कछप-रूप धार्‌यौ।
मथन करि जलधि, अमृत निकार्‌यौ॥
चतुर्मुख त्रिदसपति बिनय हरि सौं करी, बलि असुर सौं सुरनि दुःख पायौ।
दीनबंधु, दयाकरन, असरन-सरन, मंत्र यह तिनहिं निज मुख सुनायौ।
बासुकी नेति अरु मंदराचल रई, कमठ मैं आपनी पीठि धारौं।
असुर सौं हेत करि, करौ सागर मथन, तहाँ तैं अमृत कौं पुनि निकारौ॥

× × × ×

सुरनि की जीति भई, असुर मारे बहुत, जहाँ-तहँ गए सबही पराई।
सूर प्रभु जिहिं करै कृपा, जीतै सोई, बिनु कृपा जाइ उद्यम बृथाई॥

* * *

कल्याण

याद रखो—जगत्‌में छोटे-बड़े, नीचे-ऊँचे, अधम-उत्तम जितने भी जड-चेतन प्राणी हैं, सबमें भगवान् भरे हैं, सभी भगवान्‌से ओतप्रोत हैं। उनकी आकृति-प्रकृतिमें, खान-पानमें, व्यवहार-बर्तावमें चाहे जितना भेद हो, पर उन सबके अंदर नित्य समभावसे विराजमान भगवान्‌में तनिक भी भेद नहीं है।

याद रखो—जो मनुष्य इन सर्वस्वरूप, सर्वव्यापी, सर्वात्मा भगवान्‌की ओर देखता हुआ जगत्‌में व्यवहार करता है, उसके व्यवहारमें यथायोग्य व्यावहारिक विषमता रहनेपर भी मनमें कोई विषमता नहीं रहती। वह समतामें स्थित होकर वैसे ही विषम व्यवहार करता है, जैसे मनुष्य आत्मरूपसे सर्वत्र समान देखता हुआ भी अपने ही हाथसे दूसरे प्रकारका व्यवहार करता है और पैरसे दूसरे प्रकारका। पर उसके मनमें हाथ या पैर किसीके प्रति राग-द्वेष नहीं है। दोनोंमें ही समान आत्म-बुद्धि है। इसलिये व्यवहार कैसा भी हो, उससे जान-बूझकर न हाथका अपमान-अहित होता है और न पैरका ही। इसी प्रकार उस मनुष्यके द्वारा किसीका अपमान या अहित नहीं होता।

याद रखो—जो मनुष्य मनमें विषमता रखता है, अनेक प्रकारसे भेद-बुद्धि रखता है, पर बाहर सबको समान बताकर सबके साथ समान बर्ताव करना चाहता है, उसका यह साम्यभाव कभी सफल नहीं होता। क्योंकि भिन्न-भिन्न स्वभावोंवाले विभिन्न प्रकारके प्राणियोंसे सभी प्रसंगोंमें समताका व्यवहार सम्भव ही नहीं है। बुद्धिमान् तथा श्रेष्ठ विचारवाले पुरुषोंके प्रति जितने आदरका व्यवहार होगा, उतना मूर्ख और नीच विचारवाले पुरुषोंके साथ नहीं होगा। कुत्ते, गाय और हाथीके साथ किसी भी क्षेत्रमें एक-सा व्यवहार सम्भव नहीं। साँप-बिच्छूके साथ वैसा व्यवहार तुम नहीं कर सकते, जैसा गाय-बकरीके साथ करते हो। परंतु व्यवहारमें विषमता रखते हुए भी तुम आत्मरूपसे सबमें समान-भाव रख सकते हो। भगवत्-रूपसे मन-ही-मन सबको पूजनीय मानते हुए उनका सत्कार कर सकते हो।

याद रखो—भीतरकी समता ही सच्ची समता है; क्योंकि उसके प्राप्त होनेपर राग-द्वेषका, अपने-परायेका सर्वथा अभाव हो जाता है। फिर सभीमें समभावसे भगवद्बुद्धि रहती है, सभीके प्रति समान-भावसे श्रद्धापूर्वक सेवाका आचरण होता है। किसीका बुरा करनेकी बात मनमें कभी आ ही नहीं सकती। कहीं किसीसे कोई हानि हो भी जाती है तो भी मनमें वैसे ही उसपर क्रोध नहीं होता, जैसे दाँतोंसे जीभ कट जानेपर दाँतोंपर क्रोध नहीं होता।

याद रखो—भगवान्‌में स्थित रहकर अथवा सर्वात्मारूपसे विराजमान भगवान्‌की ओर देखता हुआ जो जगत्‌में व्यवहार करता है, उसका प्रत्येक कर्म भगवान्‌की पूजा होता है। वही यथार्थमें सर्वरूपोंमें विराजमान भगवान्‌का सर्वत्र पूजन कर सकता है। किसी भी देश, किसी भी काल और किसी भी पात्रमें उसके भगवान् उसकी आँखोंसे कभी ओझल नहीं होते, वह सर्वत्र उनको देख-देखकर श्रद्धावनत मस्तकसे प्रणाम करता है और उनकी विचित्र स्वरूपाकृतियाँ और भाव-भङ्गिमाओंको देख-देखकर मुग्ध होता रहता है। तुम यदि इस प्रकार सर्वत्र भगवान्‌को देख सको तो तुम्हारा भी विषम व्यवहार समरूप भगवान्‌की समरूप पूजामें परिणत हो जायगा।

याद रखो—जगत्‌में विषमता कभी मिट नहीं सकती। जगत् भगवान्‌का लीलाक्षेत्र है। लीलामें समता हो जाय तो लीला ही न रहे। जगत्‌में यदि प्रकृति साम्यभावको प्राप्त हो जाय तो जगत् ही न रहे। अतएव भगवान्‌की लीलाके लिये चित्र-विचित्र विभिन्न भावों, गुणों, आकृतियों और क्रियाओंकी आवश्यकता है, पर इन सारे भावों, गुणों, आकृतियों और क्रियाओंमें सर्वत्र समभावसे भगवान् भरपूर हैं। जो इन भरपूर भगवान्‌को देखकर, पहचानकर जगत्‌में व्यवहार करता है, उसमें जगत्‌की दृष्टिसे व्यावहारिक यथायोग्य विषमता रहते हुए ही उसका व्यवहार वस्तुतः समत्वपूर्ण होता है। वही सच्चा साम्यवादी है जिसका बाह्य विषम व्यवहार आभ्यन्तरिक समतासे उत्पन्न और समतासे युक्त है। परंतु जो केवल बाहरसे सम व्यवहारका प्रयत्न करता है और अंदर विषमता रखता है वह तो समताका रहस्य ही नहीं समझता। ऐसे विषमतासे उत्पन्न और विषमतासे युक्त साम्यवादसे सदा दूर रहो।

—'शिव'

~~~~~~
~~~~~~

कल्याण-प्राप्तिका सरल साधन

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

श्रीभगवान्‌के नामकी महिमा अपार है। केवल नाम-जपके प्रभावसे सब कुछ हो सकता है। इसलिये अबसे लेकर मरणपर्यन्त यदि भगवान्‌को कभी भूले नहीं, नित्य-निरन्तर भजन-ध्यान करता रहे, जी-तोड़ प्रयत्न करे तो फिर हमारे कल्याणमें देरी नहीं, जब आप जी लगाकर भजन करेंगे तो भजन होगा क्यों नहीं? भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

तात्पर्य यह कि जी लगाकर भजन करनेवालेको भगवान् सुलभ हैं। यदि आप कहें कि वे तो सुलभ हैं, पर उनका चिन्तन सुलभ नहीं है, ऐसी बात नहीं है। क्योंकि जब आपको निरन्तर चिन्तनसे भगवान्‌की सुलभताका अनुभव हो जायगा, आपका इस बातमें विश्वास हो जायगा तो फिर आपके लिये चिन्तन भी सरल हो जायगा। यदि चिन्तन नहीं होता है तो समझना चाहिये कि इस बातमें श्रद्धाकी कमी है, श्रद्धा करनी चाहिये। आरम्भमें तो श्रद्धा करनी पड़ती है, श्रद्धा होनेपर तो फिर स्वतः चिन्तन होने लगता है।

नामकी महिमा शास्त्रोंमें जो मिलती है, वह अल्प है। नामकी महिमा इससे भी बहुत ही अधिक है। नामकी महिमा जितनी गायी जाय उतनी ही थोड़ी है। आप कहें कि जितनी शास्त्रोंमें है, हमें तो उतनी ही महिमा नहीं मालूम पड़ती तो फिर विशेष तो मानी ही कैसे जाय? तो इसमें यह बात है कि नामकी महिमा जो शास्त्रोंने गायी है वह वास्तवमें पूर्ण सत्य है, पर जैसे उल्लूको प्रकाश नहीं दीखता और मनुष्यको मोतियाबिंद हो जानेपर नहीं दीखता पर सूर्य नहीं है, यह बात थोड़े ही है। जब मोतियाबिंदकी तरह अश्रद्धा दूर हो जायगी तब अपने-आप नाम-जपका फल दीखने लग जायगा। जिस प्रकार बिजलीका प्रभाव काठपर चढ़कर छूनेसे उसका असर नहीं होता, उसी प्रकार हमारेमें अश्रद्धारूपी काठ आ गया है, जिससे हमें लाभ नहीं दीखता।

आप कहें कि हम भजन करते तो हैं पर पापोंका नाश नहीं हुआ तो इसमें आपकी यह मान्यता—ऐसी श्रद्धा करना कि पाप-नाश नहीं हुआ ही कारण है। यदि आप यह श्रद्धा कर लें कि भजनसे पापोंका नाश हो रहा है तो देखिये कितना फायदा होता है। यही बात दैवी सम्पदाके विषयमें है। जो यह समझता है कि हमसे कोई बुराई नहीं हो सकती तो उससे कोई बुराई नहीं होती। जैसे हम लोगोंका यह निश्चय हो गया है कि 'हमसे बकरा नहीं काटा जा सकता' यह पक्का निश्चय है। पर सोचिये यदि हाथमें छुरी लेकर चलावें तो क्यों नहीं काटा जा सकता, क्या असमर्थता है? किंतु हमारा यह दृढ़ निश्चय होनेसे ऐसा हम करनेमें असमर्थ हैं। इसी प्रकार यदि हम यह निश्चय दृढ़ कर लें कि हमसे बुराई हो ही नहीं सकती तो मांस और अंडे खाने-जैसा घृणित कार्य हो ही नहीं सकता, इसी प्रकार यदि हम सभी पापोंको-बुराइयोंको मांस और अंडे खानेसे भी अधिक बुरा मान लें, दृढ़ निश्चय कर लें तो फिर कोई भी बुराई कैसे हो सकती है? निश्चय प्रबल हो तो बहुत फायदा हो सकता है। चाहे हमें खानेको न मिले, भूखे मर जायँ पर हमसे गाय नहीं काटी जा सकती, इसी प्रकार यह निश्चय कर लें कि भगवान्‌का भजन इतने लाभकी चीज है और वह हमसे कदापि नहीं छूट सकता तो फिर कभी नहीं छूटेगा। भगवान् श्रीराम कहते हैं—'मैं पिताकी आज्ञाका त्याग नहीं कर सकता, इसमें मैं असमर्थ हूँ।' उनके लिये पिताकी आज्ञा मान लेना ही सरल है। इसलिये हमें निश्चय पक्का करना चाहिये। फिर भजन-ध्यान छूट ही नहीं सकता।

महात्मा और शास्त्र कहते हैं कि कलियुगमें निष्काम कर्मका थोड़ा भी साधन उद्धार कर देता है। परमात्मामें थोड़ा भी प्रेम हो जाय तो वह अपने-आप बढ़कर उद्धार कर देगा। महात्माओंके—शास्त्रोंके इन वचनोंपर हमें श्रद्धा करनी चाहिये। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(९। ३०-३१)

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।'

इस प्रकार भगवान्ने सबके उद्धारके लिये रास्ता बतला दिया है। यह हमें मान लेना चाहिये। संसारमें कोई कैसा भी क्यों न हो, उसका भी कल्याण हो सकता है। भगवान् कहते हैं—

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३। २५)

'परंतु इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं, वे इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसारसागरको निःसंदेह तर जाते हैं।'

—इसे ऐसा ही मान लेना चाहिये।

भगवान् मानने और जाननेपर बहुत जोर देते हैं। सुननेकी अपेक्षा मानना उत्तम है और माननेकी अपेक्षा तत्त्वसे जान लेना और भी उत्तम है। जैसे एक बालकसे हम कहते हैं कि यह तुम्हारी माँ है, यह बाप है, चाचा है तो वह सुनकर उसे मान लेता है, फिर आगे जाकर जान जाता है कि इसका क्या मतलब है। इसी प्रकार हमें भी सुनी हुई बातोंको उसी तरह मान लेना चाहिये और फिर उसका तत्त्व जान लेना चाहिये। भगवान् कहते हैं—**'ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति'** (गीता ५। २९) 'जो मुझे तत्त्वतः जान लेता है वह शान्तिको प्राप्त हो जाता है।' भगवान्की इस बातको हमने सुन तो लिया पर इसे मानते नहीं। मान लें तो काम बन जाय।

भगवान्ने गीतामें जाननेपर विशेष बल दिया है। असलमें जो काम मनसे होता है वही दामी है। किसी भी क्रियामें यदि मनमें कोई स्वार्थ है तो वह नीचे दर्जेकी है। क्रियामें तीन ही बात प्रधान है—क्रिया या तो स्वार्थसे होती है या परमार्थसे अथवा इन दोनोंसे रहित। जहाँ स्वार्थ और परमार्थ दोनों ही नहीं हैं, उन क्रियाओंका तो बिलकुल ही त्याग कर देना चाहिये। प्रमाद और आलस्यसे तो बचे ही रहना चाहिये। सांसारिक स्वार्थकी क्रियासे भी बचना चाहिये। सारा समय भगवान्की ओर ही लगाना चाहिये। इसमें जोर लगावें तो बहुत ही जल्दी लाभ हो सकता है। जिस प्रकार जब हम यह समझ जायँगे कि यह गड्ढा है, इसमें हम गिर जायँगे तो प्राण-नाश हो जायगा तो हम उसके पास भी नहीं फटकेंगे, इसी प्रकार यदि हम पापोंको समझ लें तो फिर हम कभी पाप कर ही नहीं सकते। क्योंकि भगवान् कहते हैं—**'अधो गच्छन्ति तामसाः'** (गीता १४। १८)। तामसी व्यक्ति अधोलोकमें जाते हैं, यह समझनेपर फिर कोई भी दुर्गुण-दुराचार हमसे हो ही नहीं सकता। यदि लौकिक स्वार्थका चिन्तन भी हानिकारक मालूम देने लग जाय तो उससे छुटकारा हो सकता है। परमार्थ-विषय ही सबसे बढ़कर उच्च कोटिकी चीज है।

मैंने जो बात कही है, उसको एकान्तमें बैठकर बार-बार विचार करना चाहिये। 'चाहे सर्वस्व नाश हो जाय, पर जिससे ८४ लाख योनियोंमें भटकना पड़े वह काम हम नहीं करेंगे' इस प्रकार दृढ़तासे सोच लेनेपर हम वास्तवमें सुखी हो सकते हैं। ऐसा समझनेपर और काम गौण हो जाते हैं। यदि इन बातोंको हम समझ लेते तो हमें और काम खतरनाक दीखने लगते और सबसे पहले हम भजन ही करते। अभी तो मान्यतामें ही कमी है, फिर जानना तो बहुत दूर है। वस्तुके तत्त्वका ज्ञान होनेपर तो फिर काम खत्म हो जायगा। हमें अपने नित्यकर्मके साथ ५ मिनटके इस विचारको भी नित्यकर्ममें शामिल कर लेना चाहिये। रोज ५ मिनट इन बातोंका मनन करना चाहिये, रोज इसपर विचार करना चाहिये। यदि हमारे शरीरका नाश हो जाय तो हमारी क्या हानि है। क्योंकि ये सब तो नाशवान् हैं ही। मनुष्ययोनिके सिवा अन्य योनियोंमें आत्मकल्याणके लिये आगे नहीं हो सकते, इसलिये इस मनुष्यशरीरको पाकर अपना काम बना लेना चाहिये। शास्त्र कहते हैं—**'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'**। उठो, जागो और आत्मकल्याणकारी

श्रेष्ठ वचनोंको सुनकर, जानकर लक्ष्यकी प्राप्तिमें आगे बढ़ो। तुम अध्यात्मविषयमें सो रहे हो, इससे जागो। जागनेपर भी फिर सो सकता है, इसलिये कहा कि उठ जाओ और फिर उस तत्त्वको समझो। पर हम तो मोह-मायारूपी मदिरा पीकर नशेमें ऐसे चूर हो रहे हैं कि हमें कुछ भी मालूम है ही नहीं। इसमें जाननेकी बात कही है। केवल जाननेसे परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। हमें तो जाननेवाले महात्मासे जान लेना चाहिये। श्रुति, शास्त्र और महात्मा-पुरुषोंकी बातोंपर ध्यान देना चाहिये। वे हमें चेतावनी दे रहे हैं। हमें पागल और बालककी भाँति लापरवाही नहीं करनी चाहिये। नहीं तो इसका कुफल भुगतना पड़ेगा। विचारना चाहिये, पापी-से-पापी भी हो और आज ही मरनेवाला हो तो उसका भी जब कल्याण हो सकता है तो फिर हमारे पास तो बहुत समय है। इतनेपर भी यदि हम अपना आत्मकल्याण नहीं करते तो हमारे-जैसा मूर्ख और कोई है ही नहीं। हम नहीं मानेंगे तो शास्त्रों और महात्माओंकी तो कोई हानि है ही नहीं। हानि है तो हमारी है। अतः हमें विचार करना चाहिये। हमारा जिसमें परम हित है, उस कामके लिये प्राणपर्यन्त कोशिश करनी चाहिये। उस कार्यके लिये मर मिटना चाहिये। लोग तो धन और मान-बड़ाईके लिये मर मिट जाते हैं, जेल चले जाते हैं, प्राणीका त्याग कर देते हैं। इससे उन्हें मान मिलता है पर कल्याण तो नहीं होता। वस्तुतः कल्याणके लिये मरना ही असली चीज है। आदमी मरे तो ऐसा मरे कि फिर कभी मरना नहीं पड़े। धर्मके लिये मरे।

~~~

परम प्रभु परमात्माकी अलौकिक लीला

(स्वामी श्रीअच्युतानन्दजी)

परम प्रभु परमात्मा जब अपनी अहैतुकी कल्याणमयी दिव्य लीलामें संलग्न होते हैं, तब वे धरती, महिसुर अर्थात् ब्रह्मज्ञानी, साधु-संतों, भक्तों और देवताओंके हितार्थ लौकिक नररूपमें समय-समयपर अवतार धारण करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता (४। ७-८)-में कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

अर्थात् जब-जब धर्मकी हानि होती है और दुष्टोंकी वृद्धि होती है, तब-तब भगवान् अवतार लेकर साधुओंकी रक्षा करते हैं और पापियोंका संहार करते हैं। युग-युगमें परमात्मप्रभुके अवतार लेनेका यही मुख्य कारण है। इसीको स्पष्ट करते हुए गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज भी कहते हैं—

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥
(रा०च०मा० ७। ७२ क)

सर्वसाधारणको समझनेके लिये स्पष्ट-रूपमें वे कहते हैं—

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥
(रा०च०मा० ७। ७२ ख)

परब्रह्मका यह लौकिक अवतरण भी उनकी अलौकिक लीलाका परिणाम है। अब यहाँ समझनेकी बात यह है कि धर्मकी रक्षा तथा दुष्टोंके संहारके लिये जो नररूप अथवा अन्य रूपोंको प्रभु धारण करते हैं, वे स्वरूपतः कैसे हैं? उनकी स्वाभाविक लीला कैसी है? वह लीला किस तरह हो रही है? वस्तुतः उस लीलाको न तो कोई चर्मचक्षुसे देख सकता है और न ही दिव्य दृष्टिसे, प्रत्युत आत्मदृष्टिसे ही कोई जान सकता है। भगवान् कोई भी रूप धारण करके जो जागतिक लीला करते हैं, उस लीलाको बहुतोंने उक्त अवसरपर चर्मचक्षुसे देखा। उस प्रसंगको सद्ग्रन्थोंमें लिखा भी गया है, जैसे भगवान् विष्णुके रूपमें दानवोंका संहार करनेमें जो लीला हुई, उसका विस्तृत वर्णन पुराणोंमें पाया जाता है। त्रेतायुगमें पुरुषोत्तम भगवान् रामकी लीला भी रामायणमें विस्तृत-रूपसे वर्णित है। इसी तरह द्वापरयुगमें भी भगवान् श्रीकृष्णके रूपमें अवतार लेकर जो लीला की गयी, उसका भी वर्णन महाभारत और श्रीमद्भागवत महापुराणमें आया ही है। परंतु सर्वकालमें अहर्निश परम प्रभु परमात्माकी जो स्वाभाविक लीला हो रही है, उसको विरले ही व्यक्ति अथवा ऋषि-मुनि या संत-महात्मा जानते हैं।

श्रीरामचरितमानसमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रसंग आया है—भगवान् श्रीराम जब चित्रकूटके जंगलमें वाल्मीकिजीके
~~~

आश्रममें पधारते हैं, तब मुनिजीसे भगवान् पूछते हैं कि इस जंगलमें कोई स्थान बताइये जहाँ मैं निवास करूँ? वाल्मीकिजी उत्तरमें निवेदन करते हैं—

पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ॥

(रा०च०मा० २। १२७)

वाल्मीकिजीको संकोच होता है भगवान्‌से कुछ कहनेमें, फिर भी प्रश्न करते हैं कि आप वह स्थान बतायें, जहाँ आप न हों तो मैं भी आपको रहनेका स्थान दिखाऊँगा। यहाँ स्पष्ट है कि भगवान् श्रीराम स्वरूपतः निर्गुण-निराकार हैं, पर वाल्मीकिजी इसे इस प्रकार कहते हैं—

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥

तात्पर्य यह कि रामके स्वरूपको मन-बुद्धि, वाणी अथवा इन्द्रियोंसे भी नहीं जाना जा सकता। वेद भी जिनके सम्बन्धमें 'नेति-नेति' का उद्घोष करते हैं, वे राम अपने स्वरूपसे संसारकी सारी लीलाएँ देखते हैं। देखते ही नहीं हैं, अपितु ब्रह्मा, विष्णु और शंकरको नचाते भी हैं। इसको प्रमाणित करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥

पुनः इससे भी विशिष्टतम मार्मिक तथ्यको उद्घाटित करते हुए कहते हैं—

तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥

वाल्मीकिजी कहते हैं—हे राम! जब आपके स्वरूपको त्रिदेव भी नहीं जान सके, फिर दूसरे कौन लोग आपको जाननेमें समर्थ हो सकते हैं? आपके स्वरूपको तो वे ही जान सकते हैं, जिनको आप स्वयं जना देते हैं—अपने स्वरूपका वास्तविक ज्ञान करा देते हैं और इस प्रकार जो आपको तत्त्वतः जान जाते हैं, वे आपको जानकर आपसे निर्भेद हो जाते हैं—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

भगवान्‌के व्यक्त रूपको जानकर कोई निर्भेद नहीं हो सकता, बल्कि मोहित ही हो जाता है। श्रीरामचरितमानसमें अनेक स्थलोंपर इसका वर्णन हुआ है। भगवान् शंकरके समक्ष ही सतीजीको मोह हो जाता है। नारदजी-जैसे ऋषिश्रेष्ठ भी मोहित हो जाते हैं। लंकामें भगवान्‌को नागपाशमें बँधा देखकर गरुडजीको मोह हो जाता है, परंतु गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज स्पष्ट करते हैं कि भगवान् रामका स्वरूप चिदानन्दमय है, निर्मल है, निराकार है, सर्वव्यापक है, नित्य है, अविनाशी है, वहाँ मोहका कारण नहीं है। यथा—

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिग्यान रूप बल धामा॥
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघसक्ति भगवंता॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं॥

(रा० च० मा० ७। ७२। ३-८)

विनयपत्रिकामें भी गोस्वामीजी लिखते हैं—

सोक मोह भयहरण दिवस निसि देस काल तहँ नाहिं।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निमूल न जाहिं॥

संत कबीरदास भी रामके स्वरूपका वर्णन इस प्रकार करते हैं—राम मायारहित हैं और सारा संसार मायाका प्रसार है—

राम निरंजन न्यारा रे। अंजन सकल पसारा रे॥

स्वरूपके वर्णनमें कबीर साहबकी वाणी बहुत ही विचारणीय है। आगे वे कहते हैं—जहाँ प्रभु परमात्मा स्वरूपतः स्थित हैं, वहाँ न दिन है, न रात है, न सूर्य है, न चन्द्र है, न तारे हैं, न धरती है, न आकाश है, न पवन है, न पानी है; इतना ही नहीं वहाँ तो कालकी भी पहुँच नहीं है। वहाँ धूप और छाँह भी नहीं है। उसे वही जान सकते हैं, जिनकी वहाँ पहुँच है। वह स्वरूप सबसे भिन्न है, अद्वितीय है। यथा—

कहौं उस देसकी बतियाँ, जहाँ नहिं होत दिन रतियाँ।
नहिं रवि चन्द्र वो तारा, नहिं उजियार अँधियारा॥
नहिं तहँ पवन वो पानी, गये वहि देस जिन जानी॥
नहिं तहँ धरनि आकासा, करै कोइ संत तहँ वासा।
उहाँ गम काल की नाहीं, तहाँ नहिं धूप औ छाँहीं॥

इस स्थितिमें उस दिव्यतम लीला-स्वरूपका दर्शन कैसे हो? वहाँ कौन पहुँच सकता है? उसके लिये साधन क्या है? इस जिज्ञासाका समाधान प्रस्तुत करते हुए कबीरदासजी कहते हैं—

न जोगी जोग से ध्यावैं, न तपसी देह जरवावैं।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै॥
सोहंगम नाद नहिं भाई, न बाजै संख सहनाई।

निहच्छर जाप तहँ जापै, उक्त धुन सुन्न से आपै॥
मंदिर में दीप बहु बारी, नयन बिनु भई अँधियारी।
कबीरा देश है न्यारा, लखै कोई राम का प्यारा॥

महायोगी गोरखनाथजी महाराजकी वाणीमें भी ईश्वर-स्वरूपका वर्णन इस प्रकार है—

बस्ती न शून्यं शून्यं न बस्ती, अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिखर महिं बालक बोलहिं, वाका आँव धरहुगे कैसा॥

अर्थात् जहाँ परमात्मा स्वरूपतः हैं, वहाँ न तो कोई गाँव-घर है और न शून्य ही है। इसको समझना बड़ा कठिन है; क्योंकि परमात्मा बुद्धिसे तथा इन्द्रियोंसे परे हैं। भगवान् श्रीकृष्ण भी गीतामें कहते हैं कि जहाँ मेरा परमधाम है, वहाँ न सूर्य प्रकाशित होता है, न वहाँ चन्द्रमा है और न वहाँ अग्नि ही है। जो वहाँ पहुँच जाता है, वह लौटकर इस संसारमें नहीं आता है—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥
(१५। ६)

उपनिषद्में भी ठीक इसी तरहकी वाणी प्राप्त होती है। यथा—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥
(कठ० २। २। १५)

अर्थात् वहाँ (उस आत्मलोकमें) सूर्य प्रकाशित नहीं होता, चन्द्रमा और तारे भी नहीं चमकते और न यह विद्युत् ही चमचमाती है; फिर इस अग्निकी तो बात ही क्या? उसके प्रकाशमान होते हुए ही सब कुछ प्रकाशित होता है और उसके प्रकाशसे ही यह सब कुछ भासता है—**'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'**। यही तो परमात्मप्रभुकी अलौकिक लीलाका प्रत्यक्ष दृष्टान्त है, उनके समस्त लीलाओंकी सूक्ष्म तात्त्विक समष्टि है।

गुरु नानकदेवजी महाराज भी प्रभु परमात्माके स्वरूपके बारेमें कहते हैं—परमात्मा अलख हैं, अपार हैं, इन्द्रिय-ग्राह्य नहीं हैं, वहाँ न काल है न कोई कर्म ही है, न कोई जाति है न कोई योनि है। वहाँ कोई मर्म भी नहीं है—जो ऐसे परमात्मा हैं, उनपर अपनेको न्यौछावर करो। यथा—

अलख अपार अगम अगोचरि ना तिसु काल न करमा।
जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिसु भाउ न भरमा॥
साचे सचियार बिटहु कुरबाणु॥
ना तिसु रूप वरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु॥
ना तिसु मात पिता सुत बंधपना तिसु काम न नारी।
अकुल निरंजन अपर परंपरू सगली जोति तुमारी॥
घट-घट अंतरी ब्रह्म लुकाइआ घट घट जोति सवाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरमे ताड़ी लाई॥

ये राम सर्वव्यापी अर्थात् सबमें रमण करनेवाले सर्वशक्तिमान् हैं, वे (अपनी लीलामात्रसे) मच्छरको ब्रह्मा और ब्रह्माको मच्छरसे भी हीन बना सकते हैं। रामचरितमानसमें आया है—

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।
अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रबीन॥
जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥

जो प्रभु जड़को चेतन और चेतनको जड़ बना सकते हैं, ब्रह्माको मच्छरसे हीन और मच्छरको ब्रह्मा बना सकते हैं, उनके स्वरूपको और उनकी अलौकिक लीलाको सर्वसाधारण नहीं जान सकते हैं। इसीलिये उपनिषद्में कहा गया है कि परमात्मा कोई बहुत ग्रन्थोंके अध्ययनसे या प्रवचनसे अथवा बहुत श्रवणसे प्राप्त होने योग्य नहीं हैं। यथा—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूंस्वाम्॥
(कठ० १। २। २३)

अर्थात् यह आत्मा वेदाध्ययनद्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है और न धारणाशक्ति अथवा अधिक श्रवणसे ही प्राप्त हो सकता है। साधक जिस आत्माका वरण करता है, उस आत्मासे ही इसको प्राप्त किया जा सकता है। उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूपको अभिव्यक्त कर देता है। हमारे गुरुदेव (ब्रह्मलीन महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज) भी कहते हैं—

मन बुद्धि इन्द्रिन को गम नाहीं।
आतमगम्य सो राम, हो राम राम!
(महर्षि मेँहीँ पदावली)

आत्माद्वारा परमात्माकी प्राप्ति कैसे होगी? इसके लिये

सर्वप्रथम मनको एकाग्र करते हुए अपने इष्टदेवका मानस-ध्यान करना चाहिये। इसके बाद दृष्टियोगकी साधना होती है, जो सूक्ष्म साधना है। दृष्टियोगको विन्दु-ध्यान अथवा शून्य-ध्यान भी कहते हैं। इसी ध्यान-साधनाकी विवेचनामें श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजीको उपदेश करते हैं कि पहले मेरे सर्वाङ्ग-शरीरका ध्यान करो, फिर मुखारविन्दका ध्यान करो, पुनः शून्यका ध्यान करो फिर मेरे आत्मस्वरूपका ध्यान करो। यथा—

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः।
बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः॥

(११। १४। ४२)

अर्थात् बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि मनके द्वारा इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे खींचकर उस मनको बुद्धिरूपी सारथिकी सहायतासे सर्वाङ्गयुक्त मुझमें ही लगा दे।

तत् सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत्।
नान्यानि चिन्तयेद् भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम्॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। ४३)

अर्थात् फैले हुए चित्तको सब ओरसे खींचकर एक स्थानमें स्थिर करे और फिर अन्य अङ्गोंका चिन्तन न करता हुआ केवल मेरे मुस्कानयुक्त मुखारविन्दका ही ध्यान करे।

तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत्।
तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपि चिन्तयेत्॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। ४४)

अर्थात् मुखारविन्दमें चित्तके स्थिर हो जानेपर उसे वहाँसे हटाकर आकाशमें स्थिर करे; तदनन्तर उसे भी त्यागकर मेरे शुद्ध स्वरूपमें आरूढ हो और कुछ भी चिन्तन न करे। अन्तर-साधना करनेवाले जब साधनाओंका अन्त करते हैं, तब उनको परमात्मस्वरूपकी प्राप्ति होती है। वे ही परमात्माके अलौकिक लीलाको जान पाते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज रामचरितमानसमें प्रभुकी इस लीलाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

(रा०च०मा० १। ११८। ५—८)

यों तो भगवान्‌के विराट् रूपका भी दर्शन-वर्णन साधारण दृष्टिसे नहीं हो सकता। भगवान् श्रीकृष्ण जब महाभारतके मैदानमें अर्जुनको विराट्-रूप दिखाते हैं तो स्पष्ट-रूपमें कहते हैं—

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥

(गीता ११। ८)

अर्थात् मुझको तू अपने इन प्राकृत नेत्रोंद्वारा देखनेमें निःसंदेह समर्थ नहीं है, इसीसे मैं तुझे दिव्य अर्थात् अलौकिक चक्षु देता हूँ, इससे तू मेरी ईश्वरीय योगशक्तिको देख।

यही तो प्रभुकी अलौकिक लीला है, जिसमें वे अपने भक्तको स्व-स्वरूपका ज्ञान करानेके लिये स्वयं ही उसका सुगम मार्ग बताते हैं, मार्ग ही नहीं बताते अपितु स्वतः उसे अपने परमधाममें खींच लाते हैं। इस अलौकिक स्वरूपका ज्ञान अलौकिक लीलासे ही सम्भव है। लौकिक दृष्टिमें तो यह शक्ति ही कहा?

अतः दिव्यदृष्टिकी प्राप्ति कैसे हो? इसके लिये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज गुरु-रूपके (परमात्मप्रभुके) ध्यानका माध्यम बतलाते हैं। उस ध्यानके करनेसे ही दिव्य दृष्टिकी प्राप्ति होती है। दिव्य दृष्टिकी प्राप्तिमें अन्तःप्रकाश होता है, जिससे मोहरूपी अन्धकारका विनाश हो जाता है और संसारके सारे दोष-दुःख मिट जाते हैं। वे ही भगवान् रामकी गुप्त अथवा प्रकट लीला देखते हैं। भगवान्‌की वह लीला चाहे पहाड़ोंमें, जंगलोंमें, पृथ्वीपर या अन्तरमें क्यों न हो। यथा—

श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥
जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान॥

(रा०च०मा० १। १। ५—८, दोहा १)

अतः प्रभु परमात्माकी दिव्य और अलौकिक लीला देखनेके लिये स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकारकी उपासना करनी चाहिये। सगुणरूप-उपासना और अरूप-निर्गुण-उपासना करके परमात्माके अलौकिक लीलाको जाना जाता है। ऐसा ऋषियों एवं संतोंका मत है।

* * *

विषय और भगवान्

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

संसारके विषयोंमें न मालूम कैसी मोहनी है, देखते और सुनते ही मन ललचाता है, उनकी प्राप्तिके लिये अनेक उचित-अनुचित उपाय किये जाते हैं, मनुष्य मोहवश मन-ही-मन सोचता है कि इनकी प्राप्तिसे सुख हो जायगा, परंतु उसका विचार कभी सफल होता ही नहीं। कितने ही लोगोंके जीवन तो अभीष्ट विषयकी प्राप्ति होनेके पूर्व ही पूरे हो जाते हैं। सारा जीवन विषय-सुखके लोभमें अनन्त प्रकारकी मानसिक और शारीरिक विपत्तियोंको सहन करते-करते ही चला जाता है। किसीको कोई मनचाही वस्तु मिलती है तब एक बार तो उसे कुछ सुख-सा प्रतीत होता है, परंतु दूसरे ही क्षण नयी कामना उत्पन्न होकर उसके चित्तको हिला देती है और फिर तुरंत ही वह अशान्त और व्याकुल होकर उसको पूरी करनेकी चेष्टामें लग जाता है। वह पूरी होती है तो फिर तीसरी उदय हो जाती है। सारांश यह कि कामनाओंका तार कभी टूटता ही नहीं, वह बराबर बढ़ता चला जाता है। इसका कारण यह है कि संसारका कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जो अभावोंको सदा-सर्वदाके लिये मिटा देनेवाला हो। और जबतक अभावका अनुभव है तबतक सुखकी प्राप्ति असम्भव है। सारा संसार इसी अभावके फेरमें पड़ा हुआ है। अच्छे-अच्छे विद्वान्, बुद्धिमान् और चिन्तनशील पुरुष इस अभावकी पूर्तिके लिये ही चिन्तामग्न हैं। युग बीत गये, नाना प्रकारके नवीन-नवीन औपाधिक आविष्कार हुए और नित्य-प्रति हो भी रहे हैं; परंतु यह अभाव ऐसा अनन्त है कि इसका कभी शेष होता ही नहीं। बड़ी कठिनतासे, बड़े पुरुषार्थसे, बड़े भारी त्याग और अध्ययनसे मनुष्य एक अभावको मिटाता है, तत्काल ही दूसरा अभाव हृदयमें न मालूम कहाँसे आकर प्रकट हो जाता है! यों एक-एक अभावको दूर करनेमें केवल एक ही जीवन नहीं, न मालूम कितने जन्म बीत गये हैं, बीत रहे हैं और अभावकी जड़ न कटनेतक बीतते ही रहेंगे। कलमी पेड़की डालोंको काटनेसे वह और भी अधिक फैलता है, इसी प्रकार एक विषयकी कामना पूरी होते ही—उसके कटते ही न मालूम कितनी ही नयी कामनाएँ और जाग उठती हैं। किसी कंगालको राज्य पानेकी कामना है, वह उसकी प्राप्तिके लिये न मालूम कितने जप-तप, विद्या-बुद्धि, बल-परिश्रम आदिका प्रयोग करता है। उसे कर्मकी सफलताके रूपमें यदि राज्य मिल जाता है तो राज्य मिलते ही अनेक प्रकारकी ऐसी आवश्यकताएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिनका वह पहले विचार भी नहीं कर सका था। अब उन्हीं आवश्यकताओंकी पूर्तिकी कामना होती है और वह फिर वैसा ही दुखी बन जाता है। इसलिये आवश्यकता है अभावकी जड़ काटकर ऐसी वस्तुको प्राप्त करनेकी जो नित्य पूर्ण, सत् और सर्वाभावशून्य हो, जिसे पाकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता हो, आप्तकाम और पूर्णकाम हो जाता हो, अभावकी आग सदाके लिये बुझ जाती हो। यह सत् और पूर्ण वस्तु केवल परमात्मा है, परंतु उस परमात्माकी प्राप्ति वहाँतक नहीं होती, जहाँतक जगत्के विषयोंका मोह त्यागकर मनुष्य परमात्माको पानेके लिये एकान्त-इच्छुक नहीं हो जाता। जो इस परम वस्तुको पानेके लिये व्याकुल हो उठता है, उसके हृदयसे भोगोंकी शक्ति नष्ट हो ही जाती है, क्योंकि जहाँ भगवान्‌का प्रेम रहता है, वहाँ भोग-कामना उसी प्रकार नहीं ठहर सकती जिस प्रकार सूर्यके सामने अन्धकार नहीं ठहरता—

जो चाहौ हरि मिलनकौ, तजौ विषय विष मान।
हियमें बसैं न एक सँग, भोग और भगवान॥

जिन्हें भगवान्‌के मिलनकी चाह है उन्हें और समस्त इच्छाओंकी जड़ बिलकुल काट डालनी पड़ेगी। परंतु वह जड़ बड़ी मजबूत है, केवल बातोंसे उसका कटना सम्भव नहीं, उसे काटनेके लिये वैराग्यरूपी दृढ़ शस्त्रकी आवश्यकता है। विषय-वैराग्य हुए बिना कामनाका नाश नहीं होता। इसके लिये बड़े ही प्रयत्नकी आवश्यकता है। तनिकसे प्रयत्नमें घबरा जानेसे काम नहीं चलेगा। जब संसारके साधारण नाशवान् पदार्थोंको पानेके लिये मनुष्यको बहुत-से त्याग करने पड़ते हैं, तब अविनाशी परमात्माकी प्राप्तिके लिये तो विनाशी वस्तुमात्रका त्याग कर देना आवश्यक है ही। ऐसा कौन-सा कष्ट है जो अपने इस परम ध्येयकी प्राप्तिके लिये मनुष्यको नहीं सहना चाहिये? जो थोड़ेमें ही

घबरा उठते हैं, उनके लिये इस पथका पथिक बनना असम्भव है। यहाँ तो तन-मन और लोक-परलोककी बाजी लगा देनी पड़ती है। सब कुछ न्योछावर कर देना पड़ता है उस प्रेमीके चारु चरणोंपर! महात्मा श्रीकृष्णानन्दजी महाराज कहा करते थे—

एक धनी जमींदारका नौजवान लड़का किसी महात्माके पास जाया करता था, साधु-संगके प्रभावसे उसके मनमें कुछ वैराग्य पैदा हो गया, उसकी महात्मामें बड़ी श्रद्धा थी, वह प्रेमके साथ महात्माकी सेवा करता था। कुछ दिन बीतनेपर महात्माने कृपा करके उसे शिष्य बना लिया, अब वह बड़ी श्रद्धाके साथ गुरु महाराजकी सेवा-शुश्रूषा करने लगा। कुछ दिनतक तो उसने बड़े चावसे सारे काम किये, परंतु आगे चलकर धीरे-धीरे उसका मन चञ्चल हो उठा, संस्कारवश पूर्वस्मृति जाग उठी और कई तरहकी चाहोंके चक्करमें पड़नेसे उसका चित्त डावाँडोल हो गया। उसे महात्माके संगसे बहुत लाभ हुआ था, परंतु इस समय कामनाकी जागृति होनेके कारण वह उस लाभको भूल गया और उसके मनमें विषाद छा गया। एक दिन वह दुपहरकी कड़ी धूपमें गङ्गा-जलका घड़ा सिरपर रखकर ला रहा था, रास्तेमें उसने सोचा कि मैंने कितना साधु-संग किया, कितनी गुरु-सेवा की, कितने कष्ट सहे, परंतु अभीतक कोई फल तो नहीं हुआ। कहीं यह साधु ढोंगी तो नहीं है? इतने दिन व्यर्थ खोये!*

यह विचारकर उसने घड़ा जमीनपर रख दिया और भागनेका विचार किया। गुरु महाराज बड़े ही महात्मा पुरुष थे और परम योगी थे। उन्होंने शिष्यके मनकी बात जानकर उसे सचेत करनेके लिये योगबलसे एक विचित्र कार्य किया, उनकी योगशक्तिसे जलके जड़ घड़ेमेंसे मनुष्यकी भाँति आवाज़ निकलने लगी। घड़ेने पुकारकर पूछा—'भाई! तुम कहाँ जा रहे हो?' शिष्यने कहा—'इतने दिन यहाँ रहकर सत्संग किया, परंतु कुछ भी नहीं मिला, इसीलिये इसे छोड़कर कहीं दूसरी जगह जा रहा हूँ।' घड़ेमेंसे फिर आवाज़ आयी—'जरा ठहरो, मेरी कुछ बातें मन लगाकर सुन लो, मैं तुम्हें अपनी जीवनी सुनाता हूँ, उसे सुननेके बाद जाना उचित समझो तो चले जाना।' शिष्यके स्वीकार करनेपर घड़ा बोलने लगा—'देखो, मैं एक तालाबके किनारे मिट्टीके रूपमें पड़ा था, किसीकी भी कुछ भी बुराई नहीं करता था, एक जगह चुपचाप पड़ा रहता था, लोग आकर मेरे ऊपर मल-त्याग कर जाते, सियार-कुत्ते बिना बाधा पेशाब करते। मैं सभी कुछ सहता, मनका दुःख कभी किसीके सामने नहीं कहता। मेरा किसीके साथ कोई वैर नहीं था तो भी न मालूम क्यों एक दिन कुम्हारने आकर मुझपर तीखी कुदालका वार किया, मेरे शरीरको जहाँ-तहाँसे काटकर अपने घर ले गया। वहाँ बड़ी ही निर्दयतासे मूसलोंकी मार मारकर मेरा चकनाचूर कर डाला, पैरोंसे रौंदकर मेरी बड़ी ही दुर्दशा की। फिर वह एक चक्रमें डालकर मुझे घुमाने लगा, बड़ी मुश्किलसे जब घूमनेसे पिण्ड छूटा, तब मैंने सोचा कि अब तो इस विपत्तिसे छुटकारा होगा, परंतु परिणाम उलटा ही हुआ। कुम्हारने कुछ देरतक पीटकर मुझे कड़ी धूपमें डाल दिया और फिर जलती हुई आगमें डालकर जलाने लगा। इसके बाद वह मुझे एक दुकानपर रख आया, मैंने समझा कि अब तो छूट ही जाऊँगा; लेकिन

---

* जो साधक थोड़ेमें ही बहुत ऊँची स्थिति प्राप्त करनेकी आशा कर बैठता है, उसके मनकी इस प्रकारकी दशा समय-समयपर हुआ करती है, यह साधनमें विघ्न है,ऐसे समय घबराकर साधनको छोड़ नहीं बैठना चाहिये। धीरता और दृढ़ताके साथ बिना उकताये साधन किये जाना ही साधकका कर्तव्य है, सच्चे साधकको तो यह विचारनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं होती कि मेरी उन्नति हो रही है, या नहीं। जो हरिभजन और गुरु-शुश्रूषाके बदलेमें उन्नति चाहता है और उन्नतिकी कामनासे ही हरिभजन एवं गुरु-शुश्रूषा करता है वह तो हरिभजन तथा गुरु-शुश्रूषारूपी सहज धर्मको—प्रेमके परम कर्तव्यको उन्नतिके मूल्यपर बेचता है, वह सौदागर है, हरिभक्त और शिष्य नहीं। भक्त और शिष्यका तो केवल यही कर्तव्य है कि गुरूपदिष्ट मार्गसे निष्कामभावसे विशुद्ध प्रेमके साथ स्वाभाविक ही साधन करता रहे। मैं साधन कर रहा हूँ, ऐसी भावना ही मनमें न आने दे। ऐसी भावनासे अपने अंदर साधनपनका अभिमान उत्पन्न होगा और साधनके फलकी स्पृहा जाग्रत् हो उठेगी, ईश्वरेच्छासे इच्छित फल न मिलने या विपरीत परिणाम होनेपर उसके मनमें साधन और साधन बतलानेवाले सद्गुरुके प्रति शंका और अश्रद्धा हो जायगी, जिसका फल यह होगा कि वह साधनसे गिर जायगा। सच्चे साधकको फलकी चिन्ता ही न करनी चाहिये, फलकी बात भगवान् जाने, उसे फलसे कोई मतलब नहीं, अनुकूल हो तो हर्ष नहीं और प्रतिकूल हो तो शोक नहीं। भगवान् कहते हैं—

'न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।'

—जिस वस्तुको लोग प्रिय समझते हैं उसकी प्राप्तिमें तो वह हर्षित नहीं होता और जो वस्तु लोगोंकी दृष्टिमें बहुत ही अप्रिय है,

फिर भी नहीं छूट सका। वहाँ मुझे जो कोई भी लेने आता, ठोककर बजाये बिना नहीं हटता, यों लोगोंकी थप्पड़ खाते-खाते मेरे नाकोंदम हो गया। इस प्रकार कितना ही काल बीतनेपर मैं इस साधुके आश्रममें पहुँच सका हूँ, यहाँ मुझे पवित्र गङ्गाजलको हृदयपर धारण कर भगवान्‌की सेवा करनेका मौका मिला है। इतने कष्ट, इतनी भयानक यातनाएँ भोगनेके बाद कहीं मैं परम प्रभुकी सेवामें लग सका हूँ। जीवनभर महान् दुःखोंकी चक्कीमें पिसनेपर ही आज विश्वनाथकी चरण-सेवाका साधन बनकर धन्य हो सका हूँ। भाई! उन्नतिके—यथार्थ उन्नतिके ऊँचे सिंहासनपर चढ़नेवालेको प्रथम बाधा-विघ्न-जनित भयानक निराशाके थपेड़े अटल-अचलरूपसे सहने पड़ते हैं, शून्यताके घोर जलशून्य मरुस्थलको स्थिर-धीर-भावसे लाँघकर आगे बढ़ना पड़ता है। इस अग्निपरीक्षामें उत्तीर्ण होनेपर फिर कोई भय नहीं है। अतएव मेरे भाई! तुम निराश न होओ, जितना दुःख या कष्ट आवे, जितनी ही अधिक निराशा, शून्यता, अभाव और अन्धकारकी काली-काली घटाएँ जीवनाकाशमें चारों ओर फैल जायँ, उतना ही तुम भगवान्‌की ओर अग्रसर हो सकोगे। यातनाकी अग्निशिखा जितनी ही अधिक धधकेगी, तुम उतने ही शान्तिधामके समीप पहुँचोगे।'

घड़ेके सदुपदेशसे शिष्यकी आँखें खुल गयीं, उसने अपनी पूर्व स्थितिके साथ वर्तमान स्थितिकी तुलना की तो उसे साधना और गुरु-सेवाका प्रत्यक्ष महान् फल दिखायी दिया। वह घड़ेको उठाकर गुरुकी कुटियाको चल दिया और वहाँ पहुँचकर गुरुके चरणोंमें लोट गया।

इस दृष्टान्तसे यह समझना चाहिये कि हमें यदि सत्, चित्, आनन्द, नित्य-निरञ्जन परमात्माको प्राप्त करना है; तो किसी भी विपत्ति और कष्टसे घबराना नहीं चाहिये। संसारी विपत्तियाँ और कष्ट तो इस मार्गमें पद-पदपर आयेंगे। वास्तवमें अपने मनसे सारे भोगोंका सर्वथा नाश ही कर देना पड़ेगा। विरागकी आगमें विषयोंकी पूर्णाहुति दे देनी पड़ेगी। भगवान् तो कहते हैं—

यस्तु मां भजते नित्यं वित्तं तस्य हराम्यहम्।
करोमि बन्धुविच्छेदं स तु दुःखेन जीवति॥
संतापेष्वेषु कौन्तेय यदि मां न परित्यजेत्।
ददामि स्वपदं तस्मै देवानामपि दुर्लभम्॥

जो मेरा प्रेमसे भजन करता है, मैं उसके वित्तको (उसकी सम्पत्तिको) हर लेता हूँ (सम्पत्तिसे केवल रुपये ही नहीं समझने चाहिये, जिसका मन जिस वस्तुको सम्पत्ति समझता है वही उसकी सम्पत्ति है—जैसे लोभी धनको, कामी स्त्रीको और मानी मानको सम्पत्ति मानता है) और उसका भाइयोंसे, घरवालोंसे विच्छेद करवा देता हूँ, इससे वह बड़े ही दुःखसे जीवन काटता है। इतना संताप प्राप्त होनेपर भी जो मेरा त्याग नहीं करता, प्रेमसे मेरा भजन करता ही रहता है, उसे मैं अपना देव-दुर्लभ परमपद प्रदान कर देता हूँ। श्रीमद्भागवतमें एक दूसरी जगह भगवान् कहते हैं—

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम्॥
स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद् धनेहया।
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम्॥
तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम्।
अतो मां सुदुराराध्यं हित्वाऽन्यान् भजते जनः॥
ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः।
मत्ताः प्रमत्ता वरदान् विस्मरन्त्यवजानते॥
(श्रीमद्भा० १०। ८८। ८—११)

जिसपर मैं कृपा करता हूँ, उसके सारे धन (रत्न-धन, स्वर्ण-धन, पुत्र-धन, गो-धन, कीर्ति-धन) आदिको शनैः-शनैः हर लेता हूँ, तब उस दुःखोंसे घिरे हुए निर्धन मनुष्यको उसके स्वजन लोग भी छोड़ देते हैं। यदि फिर भी वह घरवालोंके आग्रहसे धन कमानेका कोई उद्योग करता है तो मेरी कृपासे उसके सारे उद्योग व्यर्थ हो जाते हैं। तब वह विरक्त होकर मत्परायण भक्तोंके साथ मैत्री करता है, तदनन्तर उसपर मैं अनुग्रह करता हूँ, उसे मुझ

उसको पाकर वह दुःखित नहीं होता। वह तो जानता है केवल अनन्यभावसे भजन करना, उसे लाभ-हानि, स्वर्ग-नरक, सिद्धि-असिद्धि और मोक्ष-बन्धनसे कोई लेन-देन नहीं। यदि भजन होता है तो वह सभी अवस्थाओंमें सदा परम सुखी है। उसके मनमें यदि कोई विपत्ति है तो यही है कि जब किसी कारणवश प्रभुका स्मरण छूट जाता है—

'कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥'

—वह तभी भयानक मनःपीड़ासे छटपटाता है, जब उसे प्रियतमकी पलभरकी विस्मृति हो जाती है—'तद्विस्मरणे परमव्याकुलता।'

परमसूक्ष्म, सत्-चैतन्य-घन, अनन्त परमात्माकी प्राप्ति होती है। इसीलिये लोग मेरी आराधनाको कठिन समझकर दूसरोंको भजते हैं और उन शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाले दूसरोंसे राज्य-लक्ष्मी पाकर उद्धत, मतवाले और असावधान होकर अपने उन वरदान देनेवालोंको भूलकर उन्हींका अपमान करने लगते हैं।

इसका यह अभिप्राय नहीं कि जिनके पास धन है, उनपर भगवान्‌की कृपा और उन्हें भगवत्प्राप्ति होती ही नहीं, अवश्य ही जबतक धनका अभिमान है और धनमें आसक्ति है तबतक भगवत्कृपा और भगवत्प्राप्ति नहीं होती। जिन्होंने अपना माना हुआ सर्वस्व भगवान्‌के चरणोंमें अर्पण कर दिया, जिनकी सारी अहंता-ममतापर भगवान्‌का अधिकार हो गया, वे अवश्य ही धन रहते हुए भी अकिञ्चन हैं, ऐसे धनी अकिञ्चनोंपर भगवान्‌की कृपा अवश्य ही है। त्याग मनसे ही होना चाहिये। परंतु जो लोग मनसे त्याग नहीं करते, जिनके अहंकार और ममत्वकी बीमारी बहुत बढ़ी हुई होती है, उन्हींके लिये भगवान् कृपाकर उपर्युक्त दिव्यौषधिकी व्यवस्था कर उन्हें रोगसे छुड़ाते हैं।

अतएव भगवान्‌के विधान किये हुए प्रत्येक फलमें मनुष्यको आनन्दका अनुभव होना चाहिये, जो हमारे परम पिता हैं, परम सुहृद् हैं, परम सखा हैं, परम आत्मीय हैं, उनकी प्रेमभरी देनपर जो मनुष्य मन मैला करता है, वह प्रेमी कहाँ है, वह परमात्माकी प्राप्तिका साधक कहाँ है, वह तो भोगोंका गुलाम और कामका दास है। ऐसे मनुष्यको नित्य, परम-सुखरूप समस्त अभावोंका सदाके लिये अभाव कर देनेवाले '**सत्यं शिवं सुन्दरम्**' परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिये प्रत्येक कष्ट और विपत्तिको भगवान्‌के आशीर्वादके रूपमें आदरपूर्वक सिर चढ़ाना चाहिये और सब विषयोंसे मन हटाकर सच्ची लगनसे एक चित्तसे उस परम सुहृद् परमात्माकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

हम लोग बहुत ही भूलमें हैं जो सर्वाधार भगवान्‌को छोड़कर बाह्य विनाशी वस्तुओंके पीछे भटक-भटककर अपना अमूल्य मानव-जीवन व्यर्थ खो रहे हैं। कामनाके इस दासत्वने—आठों पहरके भिखमंगेपनने हमें बहुत ही नीचाशय बना दिया है। हम बड़े ही अभिमानसे अपनेको 'महत्त्वाकांक्षा' वाला प्रसिद्ध करते हैं; परंतु हमारी वह महत्त्वाकांक्षा होती है प्रायः उन्हीं पदार्थोंके लिये जो विनाशी और वियोगशील हैं। असत् और अनित्यकी आकांक्षा—महत्त्वाकांक्षा कदापि नहीं है, हमें उस अनन्त, महान्‌की आकांक्षा करनी चाहिये, जिसके संकल्पमात्रसे विश्व-चराचरकी उत्पत्ति और लय होता है और जो सदा सबमें समाया हुआ है। जबतक मनुष्य उसे पानेकी इच्छा नहीं करता, तबतक उसकी सारी इच्छाएँ तुच्छ और नीच ही हैं। इन तुच्छ, नीच इच्छाओंके कारण ही हमें अनेक प्रकारकी याचनाओंका शिकार बनना पड़ता है। यदि किसी प्रकार भी हम अपनी इन इच्छाओंका दमन न कर सकें तो कम-से-कम हमें अपनी इन इच्छाओंकी पूर्तिकी कामना करनी चाहिये—भक्तराज ध्रुवकी भाँति—उस परम सुहृद् एक परमात्मासे ही। माँगना ही है तो फिर उसीसे माँगना चाहिये; उसीका 'अर्थार्थी' भक्त बनना चाहिये जिसके सामने इन्द्र, ब्रह्मा सभी हाथ पसारते हैं और जो अपने सामने हाथ पसारनेवालेको अपनाकर उसे बिना पूर्णताकी प्राप्ति कराये, बिना अपनी अनूप-रूप-माधुरी दिखाये कभी छोड़ना ही नहीं चाहता। परम भक्तवर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

जाकें बिलोकत लोकप होत,
बिसोक लहैं सुरलोग सुठौरहि।
सो कमला तजि चंचलता,
करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि॥
ताको कहाइ, कहै तुलसी,
तूँ लजाहि न मागत कूकुर-कौरहि।
जानकी-जीवनको जनु ह्वै जरि
जाउ सो जीह जो जाचत औरहि॥
जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं
जियँ जाचिअ जानकीजानहि रे।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ,
जो जारति जोर जहानहि रे॥
गति देखु बिचारि बिभीषनकी,
अरु आनु हिएँ हनुमानहि रे।
तुलसी! भजु दारिद-दोष-दवानल
संकट-कोटि-कृपानहि रे॥

* * *

भजन-उपासना कबतक करें?

(श्री जय जय बाबा)

संत-प्रवर श्रीरामकृष्ण परमहंसजी कहते हैं—'जबतक ईश्वरका नाम लेते ही आनन्दसे आँसू न बहने लगें तबतक उपासनाकी आवश्यकता है।' परमहंसजीका यह कथन उपासनाकी सीमा-रेखाको चित्रांकित करता है और साधकको निरन्तर साधना करते रहनेको प्रेरणा देता है, जबतक भगवत्प्राप्ति न हो जाय, उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति न हो जाय।

परंतु बहुतसे नासमझ वेदान्तकी दो-चार पुस्तकें पढ़कर अपनेको ब्रह्म मान बैठते हैं और '**अहं ब्रह्मास्मि**' अथवा '**शिवोऽहम्**', '**शिवोऽहम्**' बोलते रहते हैं। वे लोग कभी ईश्वरकी सगुण-उपासना नहीं करते और केवल ज्ञानाभिमानी बने फिरते हैं। ऐसे लोग न तो सद्गुरुकी शरणमें जाकर तथा शास्त्रीय मार्गपर चलकर उपासना-भजन-साधन ही करते हैं और न तपस्या-ध्यान इत्यादि साधनोंका सहारा ही लेते हैं। इस प्रकार वे बहुमूल्य मनुष्य-जीवन नष्ट करके अपने पैरोंमें स्वयं ही कुल्हाड़ी मारते हैं। आचार्य शंकर भगवत्पादने कहा है—

अकृत्वा शत्रुसंहारमगत्वाखिलभूश्रियम्।
राजाहमिति शब्दान्नो राजा भवितुमर्हति॥

(विवेकचूडामणि श्लोक ६६)

अर्थात् अपने शत्रुओंका संहार किये बिना तथा पृथ्वीकी सम्पदा इकट्ठा किये बिना यदि कोई कहता फिरे कि 'मैं राजा हूँ' तो इस शब्दके उच्चारणमात्रसे कोई राजा नहीं बन जाता।

इसी प्रकार काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि शत्रुओंका नाश किये बिना तथा आत्मज्ञानरूपी अमूल्य धन प्राप्त किये बिना कोई यह कहता फिरे कि 'मैं ब्रह्म हूँ' इससे वह ब्रह्म नहीं हो जाता।

'**अहं ब्रह्मास्मि**' अथवा '**शिवोऽहम्**' एक अनुभूति है, इसे बोलकर किसीको सुनानेकी आवश्यकता नहीं है। अरे भाई, यदि तुम ब्रह्म ही हो तब तो तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है; फिर '**अहं ब्रह्मास्मि**' किसे सुना रहे हो? तुमको ब्रह्मका किंचिन्मात्र भी बोध नहीं हुआ है, फिर भी तुम अपना अहंकार बढ़ानेके लिये ये शब्द दूसरोंको सुना रहे हो। जबतक अहंकार है, तबतक तुम मायाके क्षेत्रमें ही हो और अज्ञाननिद्रामें सोये हुएकी तरह नींदमें ही बड़बड़ा रहो हो; अभी जगे नहीं। अतः उठो, जागो और परम श्रेयकी प्राप्तिके लिये उस परमका वरण करो—उस श्रेष्ठ तत्त्वको जानो—'**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।**'

परमहंस रामकृष्णदेवने कहा—'तुम चाहे लाख बार अनुभव करो कि यह सब तमाशा है, पर हो तुम उन्हींके। उनसे तुम बच नहीं सकते। तुम स्वाधीन नहीं हो। वे जैसा करायें वैसा ही करना होगा। जबतक थोड़ा-सा भी 'मैं' है, तबतक तुम उस आद्याशक्तिकी ही सीमाके अन्तर्गत हो—अधीन हो, उनको छोड़कर नहीं जा सकते।'

जबतक आपको द्वैत दीख रहा है, तबतक ईश्वरकी उपासना नहीं छोड़नी चाहिये; क्योंकि द्वैतमें ही भय है। श्रीमद्भागवत (७। १२। १०)-में कहा गया है—

कल्पयित्वाऽऽत्मना यावदाभासमिदमीश्वरः।
द्वैतं तावन्न विरमेत् ततो ह्यस्य विपर्ययः॥

जबतक यह जीव आत्मसाक्षात्कारके द्वारा इस देह और इन्द्रियोंकी प्रतीतिमात्र निश्चय करके स्वतन्त्र नहीं हो जाता, तबतक 'मैं पुरुष हूँ और यह स्त्री है' यह द्वैत नहीं मिटता और तबतक यह भी निश्चित है कि ऐसे पुरुष यदि स्त्रीके संसर्गमें रहेंगे तो उनकी उसमें भोग्य-बुद्धि हो ही जायगी।

सत्स्वरूपका बोध तो हुआ नहीं और ज्ञानाभिमानके कारण ईश्वरका जो एकमात्र सहारा था, वह भी छोड़ बैठे तथा बेसहारा बन गये। जीवनमें यह सबसे अधिक अनर्थकारी और दुःखद स्थिति है। ऐसे समयमें विपत्ति आ पड़नेपर व्यक्ति अपनेको बिलकुल बेसहारा मानकर या तो आत्महत्या कर लेता है या फिर विक्षिप्त (पागल) हो जाता है। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—'**बुद्धिनाशात् प्रणश्यति**'—बुद्धिके नाश होते ही सर्वनाश हो जाता है। इस स्थितिसे बचनेके लिये बुद्धिमान् व्यक्ति कभी भी भगवान्की सगुण-उपासना नहीं छोड़ते।

समर्थ स्वामी श्रीरामदासजीने अपने दासबोध (सगुण भजन) नामक ग्रन्थमें कहा है—

हरिहर ब्रह्मादिक। हें जयाचे आज्ञाधारक।
तूं येक मानवी रंक। भजेसिना तरीं काय गेळे।

हरि, हर, ब्रह्मादि देवता भी जिनकी आज्ञा-पालन

करनेमें तत्पर रहते हैं, ऐसे उन परब्रह्म परमात्माका भजन तू एक तुच्छ मनुष्य नहीं करेगा तो इससे उनका क्या बनता-बिगड़ता है?

जो आत्मज्ञानी मुनि हैं, जिनकी हृदयग्रन्थिका भेदन हो चुका है तथा जिनका इस जगत्में कोई कर्तव्य शेष नहीं रहा है, वे भी भगवान्की निष्काम-भक्ति करते हैं। जैसा कि श्रीमद्भागवत (१। ७। १०)-में कहा भी गया है—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः॥

जो लोग ज्ञानी हैं, जिनकी अविद्याकी गाँठ खुल गयी है और जो सदा आत्मामें ही रमण करनेवाले हैं, वे भी भगवान्की हेतुरहित भक्ति करते हैं; क्योंकि भगवान्के गुण ही ऐसे मधुर हैं, जो सबको अपनी ओर खींच लेते हैं।

इसलिये आजीवन भगवान्की सगुण भक्ति तथा भजन-उपासना नहीं छोड़नी चाहिये।

~~~

स्वामिकार्तिकका शिवाराधन

जब स्वामिकार्तिकने युद्धमें तारकासुरको मार डाला तब देवता लोग दुन्दुभियाँ बजाने लगे और पुष्पोंकी वर्षा करने लगे; परंतु स्वामिकार्तिक शिवभक्त तारकके वधसे अत्यन्त दुःखित हुए। उन्होंने कहा कि यद्यपि पापीके मारनेमें दोष नहीं है, तथापि शिव-भक्तके मारनेका पाप अवश्य लगता है। इस प्रकारसे उनके चिन्तित होनेपर विष्णुभगवान् बोले—'हे शिवात्मज! श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण आदि इसमें प्रमाण हैं कि दुष्टके वधमें दोष नहीं होता। जो व्यक्ति दूसरेके प्राणोंसे अपने प्राणोंका पालन करता है, उसका वध करनेमें किसी प्रकारका प्रायश्चित्त नहीं होता। शक्ति रहते हुए भी जो पापी पुरुषको दण्ड नहीं देता वह उसके आधे पापका भोक्ता होता है। इसलिये हे देवसेनापते! तुमने इस दुष्टको मारकर पुण्य ही अर्जित किया है पाप नहीं।'

विष्णुदेवने पुनः कहा—'यदि तुम्हें रुद्रभक्तके हननका पश्चात्ताप ही हो तो तुम शिवका आराधन करो, जिससे सब पाप दूर हो जाते हैं। भुक्ति-मुक्तिकी इच्छा करनेवालेको शिवकी उपासना करनी चाहिये।' स्कन्दने विष्णुदेवके ऐसे वचन सुनकर विश्वकर्मासे तीन शुद्ध शिवलिङ्ग बनवाये। ब्रह्मादिक देवोंने उन लिङ्गोंकी विधिविहित रीतिसे प्रतिष्ठा की। उन लिङ्गोंके नाम 'प्रतिज्ञेश्वर', 'कपालेश्वर' और 'कुमारेश्वर' रखे गये। भगवान् शंकर स्वयं आकर उन लिङ्गोंमें विराजमान हुए और उन्होंने प्रसन्न होकर स्कन्दको अपने दर्शन दिये।

उनके दर्शन पाते ही कुमार उनके चरणोंपर गिरकर उनकी अनेक प्रकारसे स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा कि 'हे महाराज! मैंने अज्ञानवश आपके अनन्य-भक्त तारकका वध किया है। उसका पाप मेरे ऊपर सवार है। शिवभक्तके मारनेके पापसे छुटकारा मिलना कठिन है; परंतु मैं आप-जैसे शरणागतवत्सलकी शरणमें आया हूँ। आप मेरे अपराधको क्षमा कर मुझे अनुगृहीत करें।' इस प्रकार स्वामिकार्तिकने शिवजीसे मधुर वचनोंमें शिवभक्त-वधजनित अपराधसे मुक्त करनेकी प्रार्थना की। भगवान् शम्भुने प्रसन्न होकर कहा—'हे कुमार! तुमने जो काम किया है उससे मैं बहुत संतुष्ट हूँ। तुमने देवोंका बड़ा उपकार किया है। तुम्हारे द्वारा संस्थापित इन लिङ्गोंकी आराधना करनेसे और इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जायगा। जो सम्पूर्ण भूमण्डलके तीर्थोंमें स्नान करनेपर और सम्पूर्ण शिवलिङ्गोंकी आराधना करनेपर पुण्य प्राप्त होता है; वही पुण्य कुमारेश्वरकी सेवा (अर्चना) करनेसे प्राप्त होता है।' स्कन्दपुराणमें इसके माहात्म्यका वर्णन करते हुए इस प्रकार लिखा गया है—

यन्महीतलतीर्थेषु स्नाने स्यात् तु महत् फलम्॥
यच्चार्चितेषु लिङ्गेषु सर्वेषु स्यात् फलं च यत्।
आरोग्यं पुत्रलाभं च धनलाभं सुखं सुतम्॥
निश्चितं लभते मर्त्यः कुमारेश्वरसेवया।
(माहेश्वरखण्ड अ० ३४। ७०-७२)

~~~

साधकोंके प्रति—

सत्यकी खोज

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

शास्त्रोंमें लिखा है कि मनुष्यशरीर कर्मप्रधान है। जब मनुष्यके भीतर कुछ पानेकी इच्छा होती है, तब उसकी कर्म करनेमें प्रवृत्ति होती है। कर्मके दो प्रकार हैं—कर्तव्य और अकर्तव्य। निष्कामभावसे कर्म करना 'कर्तव्य' है और सकामभावसे कर्म करना 'अकर्तव्य' है। अकर्तव्यका मूल कारण है—संयोगजन्य सुखकी कामना। अपने सुखकी कामना मिटनेपर अकर्तव्य नहीं होता। अकर्तव्य न होनेपर कर्तव्यका पालन अपने-आप होता है। जो साधन अपने-आप होता है, वह असली होता है और जो साधन किया जाता है, वह नकली होता है।

मनुष्यमें यदि कोई कामना पैदा हो जाय तो वह पूरी होगी ही—ऐसा कोई नियम नहीं है। कामना पूरी होती भी है और नहीं भी होती। सब कामनाएँ आजतक किसी एक भी व्यक्तिकी पूरी नहीं हुईं और पूरी हो सकतीं भी नहीं। अगर कामना पैदा तो हो जाय, पर पूरी न हो तो बड़ा दुःख होता है! परंतु मनुष्यकी दशा यह है कि वह कामनाकी अपूर्तिसे दुःखी भी होता रहता है और कामना भी करता रहता है! परिणाम यह होता है कि न तो सब कामनाएँ पूरी होती हैं और न दुःख ही मिटता है। इसलिये अगर किसीको दुःखसे बचना हो तो इसका उपाय है—कामनाका त्याग। यहाँ शंका हो सकती है कि अगर हम कोई भी कामना न करें तो फिर कर्म करें ही क्यों? इसका समाधान है कि कर्म फलप्राप्तिके लिये भी किया जाता है और फलकी कामनाका त्याग करनेके लिये भी किया जाता है। जो कर्मबन्धनसे मुक्त होना चाहता है, वह फलेच्छाका त्याग करनेके लिये कर्म करता है। यह भी शंका हो सकती है कि अगर हम कोई भी कामना न करें तो हमारा जीवन कैसे चलेगा? जीवन-निर्वाहके लिये तो अन्न-जल आदि चाहिये? इसका समाधान है कि अन्न-जल लेते-लेते इतने वर्ष बीत गये, फिर भी हमारी भूख-प्यास मिटी है क्या? भूख-प्यास तो नहीं मिटी! अन्न-जलके बिना हम मर जायँगे तो क्या अन्न-जल लेते-लेते नहीं मरेंगे? मरना तो पड़ेगा ही। वास्तवमें हमारा जीवन कामना-पूर्तिके अधीन नहीं है। क्या जन्म लेनेके बाद माँका दूध कामना करनेसे मिला था? जीवन-निर्वाह कामना करनेसे नहीं होता, प्रत्युत किसी विधानसे होता है।

सब कामनाएँ कभी किसीकी पूरी नहीं होतीं। कुछ कामनाएँ पूरी होती हैं और कुछ पूरी नहीं होतीं—यह सबका अनुभव है। इसमें विचार करना चाहिये कि कामना पूरी होने अथवा न होनेकी स्थितिमें क्या हमारेमें कोई फर्क पड़ता है? क्या कामना पूरी न होनेपर हम नहीं रहते? विचार करनेसे अनुभव होगा कि कामना पूरी हो अथवा न हो, हमारी सत्ता ज्यों-की-त्यों रहती है। कामना उत्पन्न होनेसे पहले हम जैसे थे, कामनाकी 'पूर्ति' होनेपर भी हम वैसे ही रहते हैं, कामनाकी 'अपूर्ति' होनेपर भी हम वैसे ही रहते हैं और कामनाकी 'निवृत्ति' होनेपर भी हम वैसे ही रहते हैं। इस बातसे एक बल मिलता है कि यदि कामनाकी अपूर्तिसे हमारेमें कोई फर्क नहीं पड़ता तो फिर हम कामना करके क्यों दुःख पायें!

मनुष्यके सामने दो ही बातें हैं—या तो वह अपनी सभी कामनाएँ पूरी कर ले अथवा उनका त्याग कर दे। वह कामनाओंको पूरी तो कर सकता ही नहीं, फिर उनको छोड़नेमें किस बातका भय! जो हम कर सकते हैं, उसको तो करते नहीं और जो हम नहीं कर सकते, उसको करना चाहते हैं—इसी प्रमादसे हम दुःख पा रहे हैं।

जो कामनाओंको छोड़ना चाहता है, उसके लिये सबसे पहले यह मानना जरूरी है कि 'संसारमें मेरा कुछ नहीं है'। जबतक हम शरीरको अथवा किसी भी वस्तुको अपना मानेंगे, तबतक कामनाका सर्वथा त्याग कठिन है। अनन्त ब्रह्माण्डोंमें ऐसी एक भी वस्तु नहीं है, जो मेरी और मेरे लिये हो—इस वास्तविकताको स्वीकार करनेसे कामना स्वतः मिट जाती है; क्योंकि जब मेरा और मेरे लिये कुछ

है ही नहीं तो फिर हम किसकी कामना करें और क्यों करें? कामनाओंका सर्वथा त्याग तब होता है, जब मनुष्यका शरीरसे सम्बन्ध (मैं-मेरापन) नहीं रहता। अतः कामनाओंके सर्वथा त्यागका तात्पर्य हुआ—जीते-जी मर जाना। जैसे, मनुष्य मर जाता है तो वह किसी भी वस्तुको अपना नहीं कहता और कुछ भी नहीं चाहता। उसपर अनुकूलता-प्रतिकूलता, मान-सम्मान, निन्दा-स्तुति आदिका प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे ही कामनाओंका सर्वथा त्याग होनेपर मनुष्यपर अनुकूलता-प्रतिकूलता आदिका प्रभाव तो पड़ता नहीं और जीता रहता है! इसलिये महाराज जनक देहके रहते हुए भी 'विदेह' कहलाते थे। जो जीते-जी मर जाता है, वह अमर हो जाता है। इसलिये मनुष्य अगर सर्वथा कामना-रहित हो जाय तो वह जीते-जी अमर हो जायगा—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥

(कठ० २। ३। १४; बृहदा० ४। ४। ७)

'साधकके हृदयमें स्थित सम्पूर्ण कामनाएँ जब समूल नष्ट हो जाती हैं, तब मरणधर्मा मनुष्य अमर हो जाता है और यहीं (मनुष्यशरीरमें ही) ब्रह्मका भलीभाँति अनुभव कर लेता है।'

जब साधकके भीतर कामना-पूर्तिका महत्त्व नहीं रहता, तब उसके द्वारा सभी कर्म स्वतः निष्कामभावसे होने लगते हैं और वह कर्म-बन्धनसे छूट जाता है। सुखकी कामना न रहनेसे उसके सभी दोष नष्ट हो जाते हैं; क्योंकि सम्पूर्ण दोष सुखकी कामनासे ही पैदा होते हैं। साधकका जीवन निर्दोष होना चाहिये। सदोष जीवनवाला साधक नहीं हो सकता।

अब यह विचार करें कि दोष किसमें रहते हैं? संसारमें दो ही वस्तुएँ हैं—सत् और असत्। दोष न तो सत् (अविनाशी)-में रहते हैं और न असत् (विनाशी)-में ही रहते हैं। सत्में दोष नहीं रहते; क्योंकि सत्का कभी अभाव नहीं होता—**'नाभावो विद्यते सतः'** (गीता २। १६)। कामना अभावसे पैदा होती है। जिसका कभी अभाव नहीं होता, उसमें कोई कामना हो ही नहीं सकती और जिसमें कामना नहीं होती, उसमें कोई दोष आ ही नहीं सकता। असत्में भी दोष नहीं रहता; क्योंकि असत्की सत्ता ही नहीं है—**'नासतो विद्यते भावः'** (गीता २। १६)। जिसकी सत्ता ही नहीं है, उसमें (बिना आधारके) दोष कहाँ रहेगा? असत्की सत्ता न होना ही सबसे बड़ा दोष है, जिसमें दूसरा दोष आनेकी सम्भावना ही नहीं है। सत् और असत्के सम्बन्धमें भी दोष नहीं मान सकते; क्योंकि जैसे प्रकाश और अन्धकारका सम्बन्ध असम्भव है, ऐसे ही सत् और असत्का सम्बन्ध भी असम्भव है। तो फिर दोष किसमें हैं? दोष उसमें हैं, जिसमें कामना है। कारण कि सम्पूर्ण दोष कामनासे ही पैदा होते हैं—**'काम एषः०'** (गीता ३। ३७)। जब मनुष्य वस्तुके द्वारा सुख पानेकी कामना करता है, तब लोभ पैदा होता है। जब वह व्यक्तिके द्वारा सुख पानेकी कामना करता है, तब मोह पैदा होता है। जब वह अवस्थाके द्वारा सुख पानेकी कामना करता है, तब परिच्छिन्नता पैदा होती है। जैसे एक बीजमें मीलोंतकका जंगल विद्यमान है, ऐसे ही एक दोषमें सम्पूर्ण दोष विद्यमान हैं। ऐसा कोई दोष नहीं है, जिसमें सब दोष न हों। इसलिये जबतक एक भी दोष है, तबतक साधकको संतोष नहीं करना चाहिये। आंशिक दोष और आंशिक निर्दोषता (गुण) तो प्रत्येक मनुष्यमें रहते हैं। कोई भी मनुष्य सब प्रकारसे, सब समय और सबके लिये दोषी हो सकता ही नहीं; क्योंकि मूलमें वह परमात्माका ही अंश है*। अगर साधक सर्वथा निर्दोष होना चाहता है तो उसको संयोगजन्य सुखकी कामनाका सर्वथा त्याग करना होगा।

अब यह विचार करें कि कामना किसमें है? कई लोग ऐसा मानते हैं कि कामना मनमें रहती है। परंतु वास्तवमें कामना मनमें रहती नहीं है, प्रत्युत मनमें आती है—**'प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्'** (गीता २। ५५)। मन एक करण (अन्तःकरण) है। करणमें कोई कामना नहीं होती।

---

* ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥ (मानस, उत्तर० ११७। १)

क्या कलममें लिखनेकी कामना होती है? मोटरमें चलनेकी कामना होती है? नहीं होती। अगर ऐसा मानें कि कामना मनमें होती है तो फिर कामना-अपूर्तिका दुःख भी मनको ही होना चाहिये। परंतु कामना-अपूर्तिका दुःख कर्ता (स्वयं)-को होता है। अतः वास्तवमें कामना करण (मन-बुद्धि)-में नहीं होती, प्रत्युत कर्तामें होती है। करण कर्ताके अधीन होता है। परंतु कामनाकी पूर्ति और अपूर्तिसे होनेवाले सुख-दुःखरूप द्वन्द्वमें उलझे रहनेके कारण मनुष्यका विवेक काम नहीं करता और वह परवश होकर कामनाको मनमें होनेवाली मान लेता है।

अब यह विचार करें कि कर्ता कौन है? अगर मन कर्ता होता तो वह बुद्धिके अधीन होकर कार्य नहीं करता। परंतु यह सबका अनुभव है कि बुद्धि जिस कामको न करनेका निश्चय करती है, मन उसको करनेकी कामना छोड़ देता है और बुद्धि जिसको करनेका निश्चय करती है, मन उसको करनेकी कामना करने लगता है। परंतु बुद्धि भी स्वतन्त्र कर्ता नहीं है; क्योंकि बुद्धि भी एक करण (अन्तः-करण) है। जब मनुष्य किसी कामनाकी पूर्तिका सुख लेता है, तभी बुद्धि उस कामको करनेका निर्णय लेती है। परंतु सुखभोगका परिणाम दुःख होता है—ऐसा समझनेवाला मनुष्य कामना-पूर्तिके सुखका त्याग कर देता है तो बुद्धि सुखभोगमें प्रवृत्तिका निर्णय नहीं लेती, प्रत्युत उसका त्याग कर देती है। करण कर्ताके अधीन होता है और क्रियाकी सिद्धिमें अत्यन्त उपकारक होता है—'**साधकतमं करणम्**' (पाणि० अ० १। ४। ४२)। परंतु कर्ता स्वतन्त्र होता है—'**स्वतन्त्रः कर्त्ता**' (पाणि० अ० १। ४। ५४)। स्वरूप भी कर्ता नहीं है; क्योंकि अगर स्वरूपमें कर्तापन होता तो वह कभी मिटता नहीं। इसलिये गीतामें भगवान्‌ने स्वरूपमें कर्तापनका निषेध किया है—'**शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते**' (गीता १३। ३१)। वास्तवमें जो भोक्ता (सुखी-दुःखी) होता है, वही कर्ता होता है।

अब यह विचार करें कि भोक्ता कौन है? भोक्ता न तो सत् हो सकता है, न असत् हो सकता है; क्योंकि सत्‌में भोक्तापनका अभाव है और असत्‌में भोक्तापन सम्भव ही नहीं है। जब साधक विवेकपूर्वक शरीरसे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद कर लेता है, जो कि वास्तवमें है, तब न कर्ता रहता है, न भोक्ता रहता है, प्रत्युत एक चिन्मय सत्ता रहती है। इससे सिद्ध होता है कि वास्तवमें कोई कर्ता-भोक्ता नहीं है, केवल माना हुआ है। यहाँ एक बात ध्यान देनेकी है कि ज्ञान होनेपर जब साधकका 'शरीर' से सम्बन्ध नहीं रहता, तब उसका 'शरीरी' से भी सम्बन्ध नहीं रहता। कारण कि शरीरके सम्बन्धसे ही चिन्मय सत्ता 'शरीरी' कहलाती है। शरीरीका सम्बन्ध छूटनेपर चिन्मय सत्ता तो रहती है, पर उसकी 'शरीरी' संज्ञा नहीं रहती। चिन्मय सत्तामें सम्पूर्ण शरीरी एक हो जाते हैं। उस चिन्मय सत्ताको ही 'ब्रह्म' कहते हैं और उसमें स्वतःसिद्ध स्थितिको ही मुक्ति कहते हैं। मुक्तिमें जीवका ब्रह्मसे साधर्म्य हो जाता है अर्थात् जैसे ब्रह्म सच्चिदानन्द-स्वरूप है, ऐसे ही जीव भी सच्चिदानन्द-स्वरूप हो जाता है—'**इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः**' (गीता १४। २)। साधर्म्य होनेपर जीव जन्म-मरणसे मुक्त हो जाता है—'**सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च**' और वह शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, अजर, अमर तथा स्वाधीन हो जाता है। इसको योगकी प्राप्ति भी कहते हैं—'**तदा योगमवाप्स्यसि**' (गीता २। ५३)।

* * *

परिवार-नियोजनका कारण है कि मनुष्यका न तो 'ईश्वर' पर विश्वास है कि ईश्वर सबका पालन करनेवाला है, न अपने 'भाग्य' पर विश्वास है कि हरेक व्यक्ति अपने भाग्यके अनुसार पाता है और न अपने 'पुरुषार्थ' पर विश्वास है कि मैं अपने पुरुषार्थसे कमाकर परिवारका पालन-पोषण कर सकता हूँ।

× × ×

सरकारका कर्तव्य अपने देशमें जन्म लेनेवाले प्रत्येक नागरिकके जीवन-निर्वाहका प्रबन्ध करना है, न कि उसके जन्मपर ही रोक लगा देना। जन्मपर रोक लगाना वास्तवमें अपनी पराजय (प्रबन्ध करनेमें असमर्थता) स्वीकार करना है।

* * *

लीला-चिन्तन

श्रीरामलीला-चिन्तन—

पवनपुत्रको प्यारदान

'अपने वानर बेटेके लिये मैं आज स्वयं रन्धन करूँगी।' अत्यधिक स्नेह है श्रीजनकनन्दिनीका आञ्जनेयके प्रति। अत्यन्त प्रेम हो, श्रद्धा हो, स्नेह हो—ये सब प्रीतिकी वृत्तियाँ माध्यमकी अपेक्षा करती हैं। श्रम और पदार्थका—सेवाका माध्यम बनाकर ही ये व्यक्त होती हैं। आज ब्राह्ममुहूर्तमें उठते ही श्रीजानकीजीने अपने स्वामीसे अनुमति ली। रघुनाथजीने हँसकर अनुमति दे दी। अतः आज राजसभामें सम्राट्के साथ सिंहासनासीन रहनेकी भी आवश्यकता नहीं रह गयी।

प्रभातसे पूर्व ही स्नान एवं नित्यार्चन करके अयोध्याकी उन सम्राज्ञीने पाकशालामें प्रवेश किया। आज सबके लिये पृथक् रन्धन होगा। अब अवधेश्वरी अपने लाड़ले हनुमान्के लिये रन्धन करेंगी। सेविकाओंको केवल सहायता करनी है। सामग्री प्रस्तुत कर देने तथा अन्य ऊपरी कार्योंतक ही उनका सहयोग सीमित है। उत्सुकता-कुतूहलके कारण तीनों बहनें आ गयीं, किंतु उनको पाकशालामें प्रवेश मात्र मिला। आज रसोई तो श्रीजानकीजीको अपने करोंसे ही प्रस्तुत करनी है।

'जीजी अपने वानर बेटेके लिये व्यञ्जन बना रही हैं।' उर्मिलामें बहुत उत्साह है। वे सेविकाओंको संकेत या आदेश करनेके स्थानपर स्वयं सामग्री लेने दौड़ती हैं। चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय—चतुर्विध व्यञ्जन और एक-एक प्रकारमें अनगिनत भेद। मधुर, लवण, अम्ल, कटु, तिक्त तथा कषाय—सब रस, किंतु स्वयं श्रीवैदेहीजी बार-बार कहती हैं—'उसे मधुर ही प्रिय लगेगा। लवणयुक्त भी वह खा लेगा, किंतु कषाय, अम्ल, कटु और तिक्त उसे प्रिय नहीं हो सकते।'

प्रिय हों या न हों, व्यञ्जनमें सब रस प्रस्तुत करने हैं। सबको अत्यन्त स्वादिष्ट बनाकर रखना है। अवश्य ही मधुर रसका साम्राज्य है। मिष्टान्नकी बहुत अधिक वस्तुएँ हैं। लवण-पड़े व्यञ्जन भी बहुत हैं। शेष चारों रसोंके पदार्थोंको भी लवण अथवा शर्कराने या दोनोंके सहयोगने स्वादिष्ट बनाया है।

जो अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डोंकी इच्छामात्रसे सृष्टि करती हैं, वे स्वयं व्यञ्जन बनानेमें लगी हैं। एक-एक पदार्थकी राशियों और पदार्थोंकी संख्या नहीं है। श्रुतिकीर्तिने पूछ लिया—'जीजी! आप आज सम्पूर्ण अयोध्याको आमन्त्रित करनेवाली हैं?'

'चल! तूने तो मेरे हनुमान्का यह साधारण मानव-रूप ही देखा है।' स्नेहकी झिड़की मिली छोटी बहनको—'उसका वह वास्तविक अम्बरव्यापी कनक-भूधराकार-रूप देखती तो भयके मारे मूर्च्छित ही हो जाती। वह यहाँ आकर संकोचवश अपने इस रूपके अनुरूप ही भोजन करता है। भूखा रहता है प्रतिदिन। मैं आज उसे भरपेट भोजन कराऊँगी।'

'वे कनक-भूधराकार बनेंगे तो अपने प्राङ्गणमें बैठेंगे?' माण्डवीने आश्चर्यपूर्वक पूछा।

'प्राङ्गणमें बैठ लेगा।' श्रीमैथिलीजी रन्धनमें जुटी हैं। इन्हें दूसरी ओर देखनेका अवकाश नहीं है। 'वही तो उसका वास्तविक रूप है। ऐसा रूप कि उसकी गर्जनासे राक्षस-सेनापति तक भयसे भाग खड़े होते थे। स्वयं दशग्रीव उसकी वज्रमुष्टिके आघातसे भूमिपर मुखके बल गिर गया था।'

किस माताको अपने प्रिय पुत्रके सद्गुण, बल, वीर्य तथा शौर्यका वर्णन करनेमें सुख नहीं मिलता? रन्धन चल रहा था और चल रही थी पवनपुत्रकी पवित्र गाथा—'उसके बलकी, उसकी बुद्धिकी सीमा नहीं है। इतना होनेपर भी वह कितना विनम्र, कितना संकोची है। मेरे सम्मुख शिशुके समान भोला तथा सभीत बना रहता है।'

'कनक-भूधराकार-शरीर', सबको अत्यन्त उत्सुकता उत्पन्न हो गयी श्रीपवनकुमारके वास्तविक रूपको देखनेकी। माण्डवीजीने प्राङ्गणकी मणि-भूमिको पुनः मार्जन कराकर जलसे धुलवाया। उस पूरे प्राङ्गणमें स्वयं लग गयीं श्रुतिकीर्तिको लेकर नाना रंगोंके चित्राङ्कनमें। उसके दक्षिण भागसे सटाकर उत्तराभिमुख बहुत विस्तृत बहुमूल्य कौशेयास्तरण आस्तृत कराया। प्राङ्गण तोरण-पताकादिसे सज्जित हुआ।

स्वर्णके रत्नजटित थाल तो बहुत छोटे होते हैं। अतः स्वर्णके महाथाल (परात) स्वच्छ कराये गये। बहुत बड़े पात्र, जो समारोहोंमें सामग्री रखनेके काम आते हैं, भोजनके लिये स्वच्छ हुए। यह सब होता रहा और

श्रीजनकनन्दिनीजी रन्धनमें लगी रहीं। मध्याह्नतक उन्होंने रन्धनसे तनिक भी विराम नहीं लिया।

भाइयोंके साथ श्रीरघुनाथजीने मध्याह्न-स्नान करके संध्या कर ली। राजकीय पाकशालामें प्रस्तुत पदार्थोंसे ब्राह्मणोंको, अतिथि-अभ्यागतोंको, कुल-वृद्धोंको उन्होंने भोजन करा लिया, तब श्रीवैदेहीजीने प्रार्थना की—'आप नैवेद्य ग्रहण कर लें; क्योंकि मेरा हनुमान् तो आपके प्रसादका व्यसनी है।'

श्रीरघुनाथजीने भाइयोंके साथ भोजन कर लिया। लक्ष्मणजीने प्रस्ताव किया—'आज हनुमान्‌जीको हम सब मिलकर भोजन करायेंगे।'

सामग्रीकी विविधताको देखते हुए यह आवश्यक था कि परसनेमें सहायक साथ लिये जायँ। कोई सेविका साथ नहीं लेना था। अतः श्रीजानकीजीने अपने तीनों देवरों तथा बहनोंका सहयोग स्वीकार कर लिया। श्रीरघुनाथजी पृथक् आसनपर इस अनुपम सत्कारको देखने बैठ गये। आज शयन-कक्षमें विश्राम करने नहीं गये।

हनुमान्‌को श्रीजानकीजीने हाथ पकड़कर आसनपर बैठाया। अपनी वात्सल्यमयी अम्बाके स्नेहाग्रहसे जब वे केशरीकुमार अपने वास्तविक रूपमें बैठे तब उनका स्वर्णशैल-शरीर बैठनेपर भी राजसदनके शिखरको स्पर्श कर रहा था। उनकी प्रचण्ड मार्तण्ड-अङ्ग-कान्ति अद्भुत—आश्चर्यजनक थी। यह रूप देखकर भरत, शत्रुघ्न तथा तीनों राजवधुएँ विस्मित रह गयीं।

हनुमान् आनन्द-विभोर हो भोजन करने लगे। आज स्वयं अम्बा श्रीजानकीजीने रन्धन किया था। आजके स्नेहकी, स्वादकी कोई समता है? हनुमान्‌को पदार्थका स्वाद भी दीखता तो उन महाशक्तिके करोंसे प्रस्तुत पदार्थका, किंतु हनुमान्‌को तो पदार्थोंके कण-कणमें उनका अनन्त वात्सल्य प्राप्त था। अतः भोजनके पदार्थोंपर ध्यान कैसे जाता। वे दोनों हाथों बड़े पात्र उठाकर मुखमें डालने लगे। पेय तथा लेह्य-पदार्थ अपने पूरे शरीरपर लपेटने-पोतने लगे। उन्होंने खाद्य, चोष्य आदिका भेद दूर कर दिया। अनेक पदार्थ एक साथ मुखमें डाल लेते थे और मुख चलानेका भी कष्ट न करके कण्ठसे नीचे उतार देते थे। उनके भोजनका क्रम वैसे ही था, जैसे किसी महागह्वरमें उठाकर पात्र उड़ेल दिये जा रहे हों। पवनकुमारके सम्मुख पात्र पहुँचानेके लिये दौड़ लगानी पड़ी परसनेवालोंको। कोई पात्र आया और उठाकर मुखमें डाल लिया; फलतः परसनेवालोंको भी यह अवसर नहीं रहा कि शष्कुली (पूड़ी)-के साथ वे शाकका पात्र पकड़ा सकें। जो भी पात्र हाथमें आवे, शीघ्र दौड़कर दे दो, इतना ही किया जा सकता था।

पदार्थ कितने भी प्रस्तुत किये गये हों, इस क्रमसे कबतक चल सकते थे! बहनोंने ही नहीं, देवरोंने भी प्रश्न-भरी दृष्टिसे श्रीजनकनन्दिनीकी ओर देखना प्रारम्भ किया। भरतने सविनय पूछा—'राजकीय रन्धन-शालाको सूचित किया जाय?'

स्पष्ट था कि उस रन्धन-शालाके सेवक सम्पूर्ण शक्तिसे लगकर आहारपूर्तिमें समर्थ नहीं थे। अब तो कोई चमत्कार ही कुछ कर सकता था। स्मरण करनेपर सिद्धियाँ व्यञ्जन-पात्रोंको अक्षय बना देंगी। स्वयं अन्नपूर्णा सेवा करनेमें अपना सौभाग्य मानेंगी, किंतु परम स्नेह-भाजन पुत्रको सिद्धियोंके द्वारा परितृप्त करना तो जगदम्बाके वात्सल्यके उपयुक्त नहीं था।

श्रीजानकी उठीं। उन्होंने अपने आराध्यकी ओर कातर दृगोंसे देखा तो श्रीरघुनाथजी भी उठ खड़े हुए। एक साथ दो कार्य हुए। श्रीजनकनन्दिनीने श्रीराघवेन्द्रका उच्छिष्ट पात्र उठाया और उसमेंसे एक ग्रास स्वयं अपने करोंसे हनुमान्‌के मुखमें दिया। दूसरी ओर श्रीरघुनाथजीने हनुमान्‌के पीछे पहुँचकर उनके मस्तकके पिछले भागमें अपने दक्षिण हाथकी अनामिकासे लिखा—'**ॐ नमः शिवाय।**'

हनुमान्‌ने परितृप्तिकी डकार ली—'अम्ब! आज इस वानरकी जन्म-जन्मकी क्षुधा तृप्त हो गयी।'

श्रीलक्ष्मणलालने सहर्ष जलपात्र देकर कहा—'आपको अब आचमन तो कराया नहीं जा सकता। सरयू-स्नान ही आपका शरीर स्वच्छ करेगा।'

सबके मुखोंपर हास्य आ गया। हनुमान् बिना संकोच सरयू-स्नान करने कूद गये।

* * *

श्रीकृष्णलीला-चिन्तन—

व्रजवासियोंकी वृन्दावन जानेकी तैयारी

स्वर्णथालमें दीप सजाये व्रजेश्वरी तुलसीकाननकी ओर जा रही हैं। उनके उत्तरीय (ओढ़नी)-को दक्षिण करपल्लवमें धारण किये श्रीकृष्णचन्द्र पीछे-पीछे चल रहे हैं; किंतु वे देख रहे हैं अभी कुछ क्षण पहले वनसे लौटी हुई गायोंकी ओर, हुमक-हुमककर दुग्धपान करनेवाले गोवत्सोंकी ओर। गायोंके पार्श्वदेशमें वयस्क आभीर गोरक्षक खड़े हैं, उनके हाथोंमें लगुड सुशोभित हैं। वे इस प्रतीक्षामें हैं कि गोवत्स जब दुग्धपानसे तृप्त हो लें, तब उन्हें यथास्थान पहुँचा दें। यही दृश्य आज श्रीकृष्णचन्द्रके हृदयमें सहसा एक अभिनव भावका उन्मेष कर देता है। वे सोचने लगते हैं—कदाचित् मैं भी गोचारणके लिये वन जाता, फिर संध्या होती और उस समय वनसे लौटकर ऐसे ही गो-संरक्षण करता।

जो रसस्वरूप हैं, जिन रस-सागरकी एक बूँद रससे अगणित विश्व-प्रपञ्चमें रसका संचार होता रहता है, जिनकी रसकणिका पाकर विश्वके प्राणी आनन्दका अनुभव करते हैं—

रसो वै सः। रसꣳह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।

—वे आनन्दकन्द परब्रह्म पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आये ही हैं व्रजपुरमें रसपान जो करने! व्रजदम्पतिके क्रोडमें, नन्दप्राङ्गणमें, व्रजपुरकी वीथियोंमें, गोपसुन्दरियोंके गृहोंमें, गोकुलके उपवनमें रसकी सरिता बहाकर वे बाल्यरसका आस्वादन तो कर चुके। अब पौगण्ड-रसपानकी वासना उनमें उदय हुई। बस, यह इच्छामात्र ही अपेक्षित थी, अन्यथा उनकी अचिन्त्य लीला-महाशक्ति तो समस्त संघटन प्रस्तुत कर बहुत देरसे प्रतीक्षा कर रही हैं। श्रीकृष्णचन्द्रकी अनादि अनन्त लीला प्रपञ्चमें युग-युगोंसे प्रकट भी तो इसी क्रमसे होती है—बाल्यलीला गोकुलमें, पौगण्ड-कैशोर वृन्दारण्यमें। इसीका उपक्रम होने चला।

क्षण भी न लगा, बृहद्वनसे वृन्दावन जानेकी योजना लीलाशक्तिने व्रजेश्वरके राज्यमन्त्री, ज्येष्ठ भ्राता उपनन्दके अन्तस्तलमें स्फुरित कर दी। आज गोपेश्वरने राज्यमन्त्रणाके लिये व्रजपुरके सभी प्रमुख वृद्ध वयस्क गोपोंको निमन्त्रित किया है। उसीमें योगदान करने श्रीउपनन्द जा रहे हैं—उसी पथसे, जिसमें वह तुलसी-कानन है और श्रीकृष्णचन्द्र अपनी जननीके पास खड़े प्रदीपपंक्तिकी शोभा निहार रहे हैं। दृष्टि पड़ते ही उपनन्दके मनोराज्यमें स्पन्द आरम्भ होता है और वे मन-ही-मन तुरंत एक नया प्रस्ताव स्थिर कर लेते हैं। आज ही नहीं, जिस दिन पूतना आयी थी, उसी दिन उन्होंने निश्चय कर लिया था कि अब बृहद्वनका परित्याग करना ही होगा। तबसे वे प्रायः प्रतिदिन ही सुदूर वनप्रान्तरमें भ्रमण करते। भ्रमणका एक ही उद्देश्य होता—सम्पूर्ण नन्दव्रज बृहद्वनसे उठकर कहीं अन्यत्र बस जाता, इसके उपयुक्त स्थान ढूँढ़ना। कल उनका अन्वेषण पूर्ण हो चुका था। वृन्दावनका, गिरिराजके विशाल भूभागका, उसके कोने-कोनेका पर्यवेक्षण करके वे इस निश्चयपर पहुँच गये थे कि सभी दृष्टियोंसे परम सुखमय स्थान वही है तथा अधिक दूर भी नहीं है। अवश्य ही अबसे चार प्रहर पूर्व उनका निश्चय यह था कि किसी अन्य अवसरपर कुछ विलम्ब करके ही वे इसकी सूचना सबको देंगे, ग्रीष्म आनेतक वे इस योजनाको कार्यान्वित न करेंगे; किंतु पथमें वहाँ नन्दनन्दनको देखते ही सहसा उनके विचार बदल जाते हैं तथा आजकी सभाका मुख्य उद्देश्य उनके लिये तो, बस, वृन्दावन-गमन ही हो जाता है। इस उद्देश्यको लिये ही वे सभामञ्चपर आ विराजते हैं। बृहद्वन परित्याग करनेकी प्रेरणा तो उपनन्द, सन्नन्द आदि व्रजेशके सहोदर भ्राताओंको भी मिल चुकी थी। अवश्य ही वे लोग स्थानका निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि ऐसा सुखद स्थान कौन-सा हो, जहाँ व्रज बस सके। इसलिये वे सर्वथा मौन थे; पर आज वे लोग भी उसी पथसे आये। यशोदानन्दनको उन सबने भी देखा। उन सबके मनमें भी आज अपने विचार प्रकट कर देनेकी प्रबल प्रेरणा हुई। वे यह तो जान नहीं पाये कि यशोदाका वह मरकत-श्याम शिशु ही उनके अन्तस्तलमें अन्तर्यामी बनकर अनादिकालसे उनका नियन्त्रण कर रहा है, यह प्रेरणा भी उसकी ही है। पर आज वे भी मन-ही-मन कटिबद्ध हो गये कि इस विचारको व्रजेशपर अविलम्ब प्रकट कर ही देना है। राज्यसभामें आते ही अपने मनोभाव उन्होंने उपनन्दको तो बता ही दिये। उनका पूरा समर्थन भी

उन्हें तत्क्षण मिल गया तथा नित्य-नियम समाप्तकर श्रीकृष्ण-बलरामको अङ्कमें धारण किये व्रजराज ज्यों ही आकर अपने आसनपर विराजे कि उपनन्द आदि सभी भाइयोंने वह प्रस्ताव उनके एवं अन्य समस्त मान्य वयोवृद्ध गोपोंके सम्मुख रख दिया—

अथ कदाचिदपि तेनैवान्तर्यामिणा प्रेर्यमाणान्तःकरणैरुपनन्दसन्नन्दादिभिः स्थविराऽऽभीरमुख्यैः सरभसमास्थानीमास्थानीतमानसतया समास्थाय व्रजराजं सादरमूचे।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

श्रीउपनन्दके प्रति सबके मनमें सम्मान है। आयुमें वे सबसे बड़े हैं। उनके अगाध ज्ञानकी समता व्रजमें कोई कर नहीं सकता। कहाँ, कब, कैसे, क्या करना है—इसके लिये निर्भ्रान्त सम्मति एकमात्र उनकी ही होती है। श्रीकृष्ण-बलरामका शुभचिन्तक उनसे बड़ा और कौन होगा? इसलिये ही अपने भाइयोंका संकेत पाकर सबसे पहले वे ही बोले—

तत्रोपनन्दनामाऽऽह गोपो ज्ञानवयोऽधिकः।
देशकालार्थतत्त्वज्ञः प्रियकृद् रामकृष्णयोः॥

(श्रीमद्भा० १०। ११। २२)

वक्तव्य आरम्भ करनेसे पूर्व उपनन्दकी दृष्टि व्रजेशके अङ्कमें विराजित श्रीकृष्णचन्द्रसे जा लगती है। फिर तो वह नीलोत्पल-छवि उपनन्दके अन्तस्तलमें प्रविष्ट हो जाती है। उनके नेत्र निमीलित हो जाते हैं, मानो प्राणोंने कपाट रुद्ध कर लिये—कहीं वह सौन्दर्य-निधि कोई उठा न ले जाय। अर्धसमाधिकी-सी दशामें बृहद्वनकी परिस्थितिपर, अपने इस पैतृक आवासके त्यागके हेतुओंपर तथा वृन्दावनकी विविध सुविधाओंपर उपनन्द विशद विवेचन कर जाते हैं। उनकी वक्तृताका सारांश यह है—'अब बृहद्वनमें रहना अत्यन्त भयावह है। शत्रुओंको हमारी गतिविधिका पूरा ज्ञान हो गया है। यहाँ हम जितने एकत्र हैं, सभीके लिये गोकुल अपना है, व्रजेश्वरके ये दोनों पुत्र श्रीकृष्ण-बलराम हम सबके जीवनाधार हैं। यदि इनका जीवन सुरक्षित है तो हम सभी जीवित हैं। यदि ये दोनों शिशु नहीं रहे तो व्रजका एक भी प्राणी जीवित नहीं रहेगा। अतः हम जो भी गोकुलके हितैषी हैं, उन सबको, गोकुलका मङ्गल अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये ही यहाँसे अविलम्ब प्रस्थान कर देना चाहिये। अपना आवास कहीं अन्यत्र बनाना चाहिये। यहाँ एकके पश्चात् एक विपत्ति आती ही रहती है और जो भी आती है, वह आती है इन दो शिशुओंके अनिष्टका हेतु बनकर ही। हम सबकी अपनी संतति तो इनके साथ ही रहती है; इनके अनिष्टका अर्थ है हम गोपोंकी समस्त संततिका मूलोच्छेद। हम सब बड़ी गम्भीरतासे विचार करें—बालनाशिनी पूतना आयी, किसी प्रकार उस राक्षसीसे नन्दनन्दनकी रक्षा हुई। यह निश्चय श्रीहरिकी अपार अनुकम्पा ही थी कि वह विशाल शकट इस शिशुपर न गिरकर अलग गिरा। फिर वह तृणावर्त दैत्य आया, सुकुमार नन्दनन्दनको पहले तो अत्यन्त ऊपर—आकाशमें उड़ा ले गया। अनन्तर अपने ही कर्मविपाकसे वह शिलापर गिरकर चूर-चूर हो गया। वहाँ भी लोकपालोंने, नहीं-नहीं श्रीनारायणके पार्षदोंने ही इसकी रक्षा की; अन्यथा इसके जीवनकी कोई आशा किसीको नहीं रही थी। इतने प्रकाण्ड वे युग्म अर्जुन वृक्ष गिरे, उनके बीचमें यह शिशु आ गया, हम सबके बालक भी वहीं थे; पर पुनः नन्दरायके पुत्रकी रक्षा हो गयी, अन्य बालकोंको भी कोई क्षत न लगा। यह भी एकमात्र अच्युत श्रीहरिके द्वारा की हुई रक्षा है। मानव-सामर्थ्यसे परे है कि अर्जुन तरुओंके धराशायी होनेपर उनके नीचे हमारे शिशुओंकी रक्षा कोई कर ले। अतः भविष्यमें अब कोई असुरकृत अनिष्ट व्रजको ध्वंस न कर दे, इससे पूर्व ही हम सभी श्रीकृष्ण-बलरामको, अपने-अपने बच्चोंको, मित्र, कलत्र, गोधन, अनुचर आदिको लेकर यहाँसे अन्यत्र चले जायँ। कहाँ जायँ, इस सम्बन्धमें भी मैंने पूर्ण विचार कर लिया है। कई मासके अनवरत परिश्रमके पश्चात् मैंने यह निर्णय किया है कि हम सभी वृन्दावन चले जायँ। हम गोपोंके लिये प्रथम सुविधा तो गायोंके सम्बन्धमें देखनेकी है और वह वन सुकोमल तृणपर्णसे निरन्तर पूरित रहकर पशुओंके लिये तो सर्वथा हितकर है। नव-नव वृक्षोंसे, तरुमण्डित अगणित उपवनोंसे वृन्दावन नित्य हरित-श्याम बना रहता है। नैसर्गिक विस्तृत भूभाग स्थान-स्थानपर इस भाँति बने हैं कि हम असंख्य गोप-गोपियाँ, हमारा गोधन—सबको यथेष्ट आश्रय मिल सकता है। वह वन मनोरम पर्वत-श्रेणियोंसे विभूषित है; तृणलतादिमण्डित वृन्दाकाननकी शोभा देखने ही योग्य है। मेरी तो यह इच्छा है कि हम लोग आज ही चले चलें, शकट (छकड़े) अभी प्रस्तुत हो जायँ, अविलम्ब गोधन आगे भेज दिया जाय। अवश्य ही

यह मेरा प्रस्तावमात्र है, आप सभी विचार लें। आप सबको यदि मेरी योजना रुचिकर प्रतीत हो, तभी ऐसा हो।'

उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः।
आयान्त्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः॥
मुक्तः कथञ्चिद् राक्षस्या बालघ्न्या बालको ह्यसौ।
हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत्॥
चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत्।
शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः॥
यन्न म्रियेत द्रुमयोरन्तरं प्राप्य बालकः।
असावन्यतमो वापि तदप्यच्युतरक्षणम्॥
यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः।
तावद् बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः॥
वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम्।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम्॥
तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान् युङ्क्त मा चिरम्।
गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते॥

(श्रीमद्भा० १०। ११। २३—२९)

—ऐसा कहकर उपनन्दने आसन ग्रहण किया। समस्त सभासद् गोपोंमें उनकी वक्तृता परम उल्लास भर देती है। 'साधु-साधु' की तुमुल ध्वनिसे सभास्थल मुखरित होने लगता है। केवल व्रजेश्वर अभी भी किंचित् गम्भीर शान्त बैठे हैं। इसी समय सन्नन्द दैवावेश-जैसी मुद्रामें खड़े होकर व्रजेश्वरको ही लक्ष्य करके कहने लगते हैं—

तत् किमत्र निदानम्? नास्य जन्मलग्नलग्नमस्ति किमपि दूषणम्। सर्व एव शुभमात्रग्रहा ग्रहाः। तवापि लोकोत्तरमेवाऽदृष्टं दृष्टं च, येनैतज्जगत्पत्यंशकलितमपत्यं शकलितमहापदकस्मादेव देवदुर्लभं सम्पादितमस्ति। तदस्माभिरिदमनुमितम्,—'अस्यैव स्थलस्य दूषणमेतत्। तदिदमपहाय हायनमध्ये सर्वदा सुखदं सर्वर्तुगुणवृन्दावनं वृन्दावनं नाम वनं यामः।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

'व्रजेन्द्र! आप देख ही चुके हैं कि इतनी विपत्तियाँ आयीं। आखिर इसका कारण क्या है? श्रीकृष्णचन्द्रके जन्मलग्नमें भी कोई दोष नहीं है। सूर्यादि सभी ग्रह इसके मङ्गलप्रद हैं। आपके अलौकिक भाग्यको भी हम लोग देख ही चुके हैं। गर्गाचार्यके वचनके अनुसार तो यही प्रतीत होता है कि यह श्रीकृष्ण नारायणांश है। ऐसा समस्त विघ्नबाधाहारी देवदुर्लभ पुत्र आपको प्राप्त है। यह आपके लोकोत्तर भाग्यसे ही तो सम्भव हुआ है। फिर भी विपत्ति आ रही है। अतः हम लोगोंने तो सब कुछ सोच-समझकर यही अनुमान किया है कि इस भूमिका ही कोई यह दोष है कि यहाँ इतनी विपत्तियाँ आ रही हैं। हमें तो यही उचित प्रतीत होता है कि हम लोग इसे छोड़कर चले जायँ। हाँ, यदि आज जाना आपको अभिप्रेत न हो तो आज न सही; पर शीघ्र-से-शीघ्र इसी वर्ष किसी दिन यहाँसे हम लोग सर्वदा सुखद षड्ऋतुगुणभूषित वृन्दावन नामक वनमें अवश्य चले जायँ।'

सन्नन्दकी बात समाप्त होते-न-होते प्रमुख गोप पुकार उठते हैं—नहीं-नहीं, क्षणभरका भी विलम्ब नहीं करेंगे, आज ही चलना है। वस्तुतः सन्नन्दकी भी आन्तरिक इच्छा यही है, पर व्रजेश्वरके संकोचवश वे एक वर्षकी बात कह गये हैं। कुछ युवक गोप तो अपने आसनोंसे कूदकर व्रजेश्वरके पास जा पहुँचते हैं, हाथ जोड़कर अविलम्ब यात्राकी व्यवस्था करनेकी अनुमति माँगने लगते हैं। इस समय सबकी दृष्टि केन्द्रित हो गयी है श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर। सभी एक स्वरसे यही पुकार रहे हैं 'श्रीकृष्णकी रक्षाके लिये बृहद्वनका अविलम्ब परित्याग अनिवार्य है।' उनका यह उन्मुक्त प्रेमिलभाव व्रजेश्वरके नेत्रोंको आर्द्र कर देता है। श्रीकृष्णचन्द्रकी मङ्गलकामनासे प्रेरित गोपोंकी इस उत्कण्ठा, इस निश्चयके सामने व्रजेश्वर अपना सिर झुका देते हैं। उपनन्द-जैसे महापण्डित, प्रवीण मन्त्री, ज्येष्ठ भ्राताके परामर्शकी, उनके द्वारा निर्दिष्ट नीतिकी विजय क्यों न होती! सबको शीघ्र-से-शीघ्र व्यवस्था कर लेनेकी—भगवान् अंशुमाली बृहद्वनको आलोकित करने आ जायँ, तबतक प्रस्तुत हो जानेकी, उनके पुण्यदर्शनके उपरान्त प्रस्थान कर देनेकी अनुमति मिल जाती है।

व्रजेश्वरीको तो चिरवाञ्छित प्राप्त हो गया। अपने नीलमणिको अञ्चलमें छिपाकर अनिष्टकी आशंकासे न जाने वे कितनी बार रो चुकी हैं। 'नीलमणिको लेकर कहाँ चली जाऊँ, क्या करूँ, गोकुलमें तो रहना अब सम्भव ही नहीं है।' इस चिन्तासे न जाने वे कितनी बार व्याकुल हो चुकी हैं—

नाहिन गोकुल बास हमारौ।
बैरी कंस बसत सिर ऊपर, नित उठि करै खगारौ॥
गाँम-गाँम प्रति देश-देश प्रति, लोक-लोक प्रति जानी।
यह गोपाल कहाँ लै राखौं, कहत नंद की रानी॥
सकट पूतना तृनावर्त ते यहै बिधाता राख्यौ।

कैसें मिटै कह्यौ संतन कौ, गर्ग बचन यौं भाख्यौं॥
जद्यपि परब्रह्म अबिनासी, महतारी डर मानै।
परमानंद प्रीति ऐसी पुनि, सुक मुनि, ब्यास बखानैं॥

इसलिये आज उपनन्दके व्याख्यान, वृन्दावनकी महिमा तथा सर्वसम्मतिसे अविलम्ब बृहद्वन-परित्यागके निर्णयको सुनकर व्रजेश्वरीके अन्तस्तलमें भी अतिशय उल्लासका संचार हो जाता है। सभाभवनके एक द्वारपर वृद्ध वयस्क गोपसुन्दरियोंसे आवृत हुई वे घूँघट काढ़े खड़ी हैं तथा जैसे ही वृन्दावनगमनका निर्णय हुआ कि वे श्रीकृष्ण-बलरामको व्रजेश्वरके पाससे लानेके लिये एक परिचारिका भेज देती हैं। जननीका आह्वान सुनकर दोनों भाई पिताके अङ्कसे उतर पड़ते हैं, यशोदारानीके पास चले आते हैं। जननी उन्हें अन्तःपुरमें ले जाकर सुमिष्ट दूध पिलाती हैं। फिर उनके शयनकी व्यवस्था करती हैं।

यह सब हुआ; पर यदि कहीं भगवती पौर्णमासीने बृहद्वनसे जाना अस्वीकार कर दिया तो?—यह एक कठिन प्रश्न सामने उपस्थित हुआ। इन्हें यहाँ छोड़कर व्रजेश्वर चले जायँ, यह कैसे सम्भव है? समस्त व्रज, देवी पौर्णमासीका चिरऋणी है। अधिकांशकी धारणा है कि व्रजेश्वरको इस वृद्धावस्थामें नीलमणि-जैसे अप्रतिम सुन्दर विश्वविमोहन पुत्रकी प्राप्ति इन वृद्धा संन्यासिनीकी कृपासे ही हुई है। व्रजेश्वरको पुत्र होगा, यह भविष्यवाणी भी व्रजमें आकर देवी पौर्णमासीने ही सबसे पहले की थी। व्रजका प्रत्येक गोप, प्रत्येक गोपी—सभी इन्हें अतिशय आदर देते हैं। इनकी किसी भी आज्ञाका उल्लङ्घन कोई भी नहीं करता। अतः इन्हें छोड़कर जाना तो असम्भव है। व्रजेश्वरने तुरंत अपने छोटे भाई नन्दनको उनकी पर्णकुटीपर भेजा। सारी परिस्थिति सुनकर भगवतीने सहर्ष स्वयं भी वृन्दावन चलना स्वीकार कर लिया; फिर तो कहना ही क्या है! अपूर्व उत्साहसे व्रजपुरके समस्त गोप-गोपी यात्राकी व्यवस्थामें लग जाते हैं।

ज्योत्स्नोद्भासित बृहद्वनकी वह अन्तिम रात्रि पुरसुन्दरियोंके कङ्कण-झंकारसे, असंख्य शकटोंके तुमुल नादसे, गोपोंके 'है है, हो हो' शब्दसे, विशाल शृङ्गों एवं शङ्खोंकी ध्वनिसे, परिव्याप्त रहती है। किसीको क्षणभरके लिये भी विश्राम नहीं है। गोप दधि-नवनीत-पूरित भाण्ड, रत्नपेटिका, वस्त्र-आभूषणकी पेटी एवं अपनी अन्य गृहस्थ-सामग्री ला-लाकर बाहर राजपथपर खड़े शकटोंपर रखनेमें व्यस्त हैं। गोपसुन्दरियाँ उन सामग्रियोंको एकत्र कर अपने पति-पुत्र आदिको देनेमें लगी हैं। एक शकटके पूर्ण होते ही, गोप उसे जानेवाली पंक्तिमें खींचकर खड़ा कर देते हैं एवं अन्य रिक्तको द्वारपर लाकर पूर्ण करने लग जाते हैं। पौगण्ड-वयस्क शिशुओंको भी आज निद्रा नहीं, वे भी इस यात्राकी व्यवस्थामें हाथ बँटा रहे हैं। अवश्य ही राम-श्याम जननीसे लालित होकर सो गये हैं। उन्हें सुलाकर व्रजेश्वरी भी रोहिणीके सहित वृन्दावनयात्राके लिये तैयारीमें जुट पड़ती हैं। पर अगणित परिचारिकाएँ हैं, श्रीरोहिणी हैं। यशोदारानीको कार्य करने कौन दे? वे तो बस, एक कार्यमें संलग्न हैं। रामके लिये, नीलमणिके लिये, जिन-जिन वस्तुओंकी आवश्यकता पड़ती है, उन्हें बार-बार जाकर देख लेती हैं कि जिससे ये छूट न जायँ। नीलमणिके खिलौनोंकी पेटी तो स्वयं भर रही हैं। प्रत्येक खिलौनेमें एक मधुर स्मृति—नीलमणिकी लीलाका एक मधुर मोहन संस्मरण समाया हुआ है। हाथमें खिलौने आते ही व्रजेश्वरीके नेत्रोंमें वह चित्र नाच उठता है और वे परमानन्दमें निमग्न हो जाती हैं। निशा ढल जाती है। उषाके शीतल सुखद स्पर्शसे श्रान्त हुए गोपोंमें, गोपसुन्दरियोंमें नवीन स्फूर्तिका संचार हो जाता है; पर इतने समयमें मैया तो केवल एक ही कार्य करती रही हैं। उन खिलौनोंको कभी पेटिकामें भर देतीं, फिर निकालकर बिखेर देतीं, फिर सजा देतीं, फिर क्रमशः निकालकर बाहर छोड़ देतीं। बीच-बीचमें नीलमणिके शयनपर्यङ्कके समीप जाकर देख अवश्य आतीं। श्रीरोहिणीजी आकर जब यह कार्य भी मैयाके हाथसे ले लेती हैं, तब कहीं उन्हें भान होता है कि भुवनभास्कर उदय होने ही जा रहे हैं। यात्रासे पूर्व राम एवं नीलमणिको स्नान कराकर, विभूषित कर, कलेवा कराकर मैयाको प्रस्तुत कर रखना है, यह स्मृति भी उन्हें श्रीरोहिणी ही दिलाती हैं और तब वे शयनागारमें जाकर नीलमणिको जगाने लगती हैं—

जागौ, मोहन! भोर भयौ।
फूले कमल, कुमुद मुद्रित भए, तमचुर कौ सुर हारि गयौ॥
टेरत ग्वाल-बाल सब ठाढ़े, पूरब सौं पतंग उदयौ।
सुनत बचन जागे नँदनंदन, सूर जननि तब उछँग लयौ॥

* * *

एक पलके सत्संगसे अलौकिक आनन्द (प्रभु)-की प्राप्ति

(श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

करना और मानना—

जो कार्य 'पर या दूसरों'के सहयोगसे किया जाता है, उसे 'करना' कहते हैं। जिस कार्यको सम्पादित करनेके लिये 'पर या दूसरों' के सहयोगकी लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं होती, बल्कि जो 'अपने या स्वयं' से किया जाता है, उसे 'मानना' कहते हैं। 'पर'का आशय उन सभी वस्तुओं तथा व्यक्तियोंसे है जो जन्मते हैं, बढ़ते हैं, बदलते हैं, बिगड़ते हैं और मरते हैं या जिनमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, जो प्रतिपल बदलते हैं। आपका शरीर, आपकी इन्द्रियाँ, आपके मन, बुद्धि, परिवारजन एवं संसारके समस्त प्राणी, जड पदार्थ आदि सब 'पर' की श्रेणीमें आते हैं। अतः शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, वस्तुओं तथा व्यक्तियोंकी सहायतासे मानव जो अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ और पारमार्थिक कार्य—भजन-पूजन, जप-तप, स्वाध्याय आदि करता है, वे सब 'करने'-की श्रेणीमें आते हैं। करनेमें पराधीनता, पराश्रय, परिश्रम, प्रयास, अभ्यास, समय आदि अपेक्षित है। करनेमें कुछ कठिनाइयाँ भी हैं।

जो कार्य शरीर, इन्द्रियाँ, संसारकी वस्तुओं तथा व्यक्तियोंके सहयोगके बिना 'अपनेसे' किया जाता है, वह 'मानने' के अन्तर्गत आता है। आपने अपने शरीर, पति, पुत्रों, पत्नी, मकान, कार आदिको 'मेरा' माना। किसीने कहा—'अभी-अभी आपके मकानमें साँप गया है', आपने सुना, माना और भयभीत हो गये। विवाह होते ही एक लड़का उस लड़कीको अपनी पत्नी मान लेता है; लड़की उसे अपना पति मान लेती है। एक बारकी मान्यताके आधारपर जीवन-पर्यन्त वे पति-पत्नीके रूपमें रहते हैं। बच्चेका जन्म होते ही वे उसे अपना पुत्र मान लेते हैं। जो धर्म-भाई तथा धर्म-बहन बनते हैं, वे तत्काल एक-दूसरेको बहन-भाई मान लेते हैं। डॉक्टरके कहते ही आप यह मान लेते हैं कि मेरे शरीरमें अमुक रोग है। शरीरमें गाँठ दिखायी दी, जाँच करवायी गयी, डॉक्टरने बताया कि 'यह कैंसरकी गाँठ नहीं है।' आपने सुना, तत्काल माना और निश्चिन्त हो गये। 'करने'की तुलनामें 'मानना' बहुत सरल है।

उल्लेखनीय है कि 'सत्संग' करनेके लिये कुछ भी नहीं करना पड़ता, केवल कुछ सच्ची बातोंको 'मानना' होता है। यदि आपने उन बातोंको मान लिया तो आपके जीवनमें सत्संग हो गया।

> तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
> तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥
>
> (रा०च०मा० ५।४)

इसका आशय है—हे तात! स्वर्ग और मोक्षके सब सुखोंको तराजूके एक पलड़ेमें रखा जाय, तो भी वे सब मिलकर [दूसरे पलड़ेपर रखे हुए] उस सुखके बराबर नहीं हो सकते, जो लव (क्षण)-मात्रके सत्संगसे होता है।

कौनसा अधिक सरल—करना या मानना

उपर्युक्त विवेचनपर विचार करनेसे आपको स्पष्ट अनुभव होगा कि 'करने'में पराधीनता, पराश्रय, परिश्रम, प्रयास, समय आदि अपेक्षित हैं और 'मानने' में इन सबकी आवश्यकता नहीं है। इसलिये 'करने' की तुलनामें 'मानना' बहुत अधिक सरल है। सच पूछा जाय तो 'मानना' ही मानव-जीवनका परम पुरुषार्थ है, 'मानना' ही दुःख-निवृत्ति तथा प्रभु-प्राप्तिकी मूल साधना है, 'मानने'के लिये ही 'करना' होता है।

सावधान—

हमारे जीवनकी सबसे बड़ी भूल यही हो गयी कि हमने अबतक 'करने'पर ही बल दिया; जीवनका अधिक समय, शक्ति तथा योग्यता 'करने' में खर्च कर दी; 'मानने'-की अलौकिक और सुगम साधनापर हमने ध्यान ही नहीं दिया। शरीरके बिना जो भजन किया जाता है, उसमें 'करना' कुछ भी नहीं है, केवल कुछ बातोंको 'मानना' है।

क्या मानना है? किस आधारपर मानना है?

यदि आप शरीरके बिना या स्वके द्वारा किया जानेवाला भजन करना चाहते हैं तो आपको प्रभुके बारेमें कुछ बातोंको मानना होगा और आपके माननेका आधार होगा—गुरु, संत, भक्त तथा ग्रन्थ। आपने संत-वाणी, भक्त-वाणी और गुरु-वाणीमें परमात्माके बारेमें जिन-जिन बातोंको सुना है,

अपने धर्म-ग्रन्थों—वेद, पुराण, उपनिषद्, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीरामचरितमानस आदिमें जिन-जिन बातोंको पढ़ा है, उन सब बातोंको प्रत्यक्षकी भाँति मान लेना ही शरीरके बिना किया जानेवाला भजन या प्रभु-विश्वास है। प्रभु-विश्वासका आशय है—जिन प्रभुको आपने देखा नहीं है, जिन प्रभुको आप जानते ही नहीं हैं और जिन प्रभुसे आप आजतक मिले ही नहीं हैं, उन प्रभुके बारेमें जो कुछ सुना है—संतों, भक्तों तथा गुरुओंसे जो कुछ पढ़ा है—ग्रन्थोंमें, उसको वैसे ही मान लेना; जैसे कि प्रत्यक्ष रूपमें वे आपके सामने हों अथवा आप उन सब बातोंको ठीक-ठीक जानते हों। सावधान! सावधान!! सावधान!!! प्रभुकी महिमाको बार-बार सुनना-सुनाना, पढ़ना-पढ़ाना, प्रभुकी महिमाको लिखना, याद कर लेना, उसका चिन्तन करना बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है, करणीय है, परंतु भैया! जबतक आप प्रभुकी महिमामें विश्वास नहीं करेंगे, उसे स्वीकार नहीं करेंगे, उसे मानेंगे नहीं, तबतक आप 'करने' की कक्षामें रहेंगे, स्वके द्वारा किये जानेवाले भजनमें आपका प्रवेश नहीं होगा; आपको वास्तविक, स्थायी, सदा रहनेवाला, दिव्य, अलौकिक आनन्द भी नहीं मिलेगा। मानने या प्रभु-विश्वास करनेके बाद जो 'करना' होगा, वह बड़ा विचित्र होगा; आप कुछ ही समयतक भजन कर पायेंगे, फिर स्वतः शरीर और संसारसे सम्बन्ध टूट जायगा, आप प्रभु-मिलनके आनन्दमें मस्त हो जायँगे। आपको यह पता ही नहीं रहेगा कि आप कुछ कर रहे हैं। आपका 'करना' 'होने' में बदल जायगा। आपको यह अनुभव होगा कि जो कुछ आप कर रहे हैं, वह सब प्रभुकी कृपासे 'स्वतः' हो रहा है। जबतक आपको 'करने' का भास है, तबतक 'करने' का उद्देश्य रखें—'मानना'।

प्यारे प्रभुके बारेमें, उनकी महिमाके बारेमें आपको जो कुछ मानना है, वह इस प्रकार है—

परमात्मा हैं—प्रभु कहाँ हैं, प्रभु कैसे हैं, प्रभु क्या करते हैं—आप इन बातोंको चाहे न जानते हों; फिर भी इस बातको मानना है कि परमात्मा अवश्य हैं, अवश्य हैं। इसीका नाम है—प्रभुके अस्तित्वको स्वीकार करना। आपको अपने जीवनमें परमात्माकी आवश्यकता महसूस होती है और संत तथा सद्‍ग्रन्थ प्रभुके अस्तित्वको स्वीकार करते हैं। बस, इसी आधारपर यह मानना है कि प्रभु हैं।

* * *

सर्वव्यापक असीम चेतन शक्तियाँ तथा भौतिक सम्पदाएँ

(श्रीनिहालचन्दजी कांसल)

इस विशाल ब्रह्माण्डमें असीम अनन्त शक्तियाँ और भौतिक सम्पदाएँ भरी पड़ी हैं। हम सभी इसीसे उत्पन्न, इसीके द्वारा पालित-पोषित, इसीमें स्थित, इसीसे अभिन्न और इसीसे प्राप्त बुद्धि, शक्ति तथा साधनोंद्वारा इसीकी शोभा बढ़ानेके लिये कार्य कर रहे हैं और अन्तमें एक जल-तरंगकी भाँति इसीमें विलीन होकर पुनः इसमें ही उत्पन्न होनेवाले हैं।

मानव अपनी अहंमूलक चेतनामें रहता हुआ भी ब्रह्मसे अलग नहीं है। वह किसीको कुछ सिखलाता है, किसीसे कुछ सीखता है। जाने-अनजाने हमारा सबका परस्पर आदान-प्रदान होता ही रहता है। व्यक्ति जो कुछ भी करता है, उसका प्रभाव सारे विश्वपर पड़ता है और जो विश्वमें होता है, उसका प्रभाव प्रत्येक व्यक्तिपर पड़ता है। मानव क्षुद्र अहंताके कारागारमें अपने-आपको बाँधकर एक क्षुद्र प्राणी बना रहता है, इसी कारण समग्र चेतनाकी विशाल उपलब्धियोंके लाभसे वंचित रह जाता है। हम देखते हैं—इस ब्रह्माण्डका प्रत्येक पदार्थ तथा प्राणी अपने-अपने ढंगसे इसको सुन्दर, सुखद, शान्तिपूर्ण बनानेके लिये एक दूसरेको सहयोग दे रहा है। सूर्य प्रतिक्षण अपरिमित मापमें पानी सागरोंसे उठाकर पर्वतोंपर बरसाता है और पृथ्वीको हरा-भरा बनाता है। सारे प्राणियोंके भोजनके लिये अन्न, फल, फूल आदिकी उत्पत्तिका कारण अथवा साधन बनता है। चन्द्र फलों और सब्जियोंमें अमृत-रस भरता है। मधु-मक्खियाँ स्वाभाविक मधु तैयार कर रही हैं। रेशमके कीड़े रेशम तैयार कर रहे हैं। दूध देनेवाले पशु दूध दे रहे हैं तथा सुन्दर पुष्प सुगंध और सुन्दरता फैला रहे हैं। पृथ्वी, जल,

अग्नि, पवन तथा आकाश पाँचों तत्त्व अपने-अपने ढंगसे निर्धारित नियमोंके अनुसार अपना-अपना कार्य कर रहे हैं।

मानव सृष्टिका सर्वोत्कृष्ट प्राणी है। सृष्टिकर्ताने प्रत्येक मानवको महान् अनुशासन-शक्ति और निर्णायक बुद्धि दी है, जिससे यह प्रकृतिकी समस्त घटनाओंके कारणों तथा सब जड़ पदार्थों तथा चेतन प्राणियोंके गुण, कर्म तथा स्वभावकी जानकारी प्राप्त करके इसको सुव्यवस्थित तथा सबके लिये सुखद और कल्याणकारी बना सकता है। यह एक दूसरेके सहयोगसे बड़े-बड़े सागरों तथा दुर्गम पर्वतोंपर अपना मार्ग बना सकता है। भयानक उफनती हुई नदियोंपर पुल और बाँध बनाकर नियन्त्रणमें करके उन्हें कृषि-क्षेत्रको नष्ट करनेसे रोककर उनसे कृषि-क्षेत्रकी सिंचाई कर सकता है तथा विभिन्न प्रकारके कार्य करनेके लिये विद्युत्-शक्तिका उत्पादन कर सकता है। भयानक नरभक्षी पशुओंको अपने अधीन करके उनसे जो भी चाहे कार्य करवा सकता है। हजारों किलोमीटरकी दूरीपर बैठे हुए व्यक्तिको देख सकता है, उससे बात कर सकता है। भूमि अथवा सागरके गर्भमें पड़े हुए पदार्थकी जानकारी प्राप्त करके उसका अपनी इच्छाके अनुसार प्रयोग कर सकता है। कहा जा सकता है कि मानवके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। ये जो हमारे सामने रेलगाड़ियाँ, सड़कें, दूरभाष, दूरदर्शन, चलचित्र कम्प्यूटर तथा अणुशक्ति आदि हैं, ये सब मानवकी शक्तियाँ—पुरुषार्थ तथा खोजोंके ही परिणाम हैं।

सृष्टिकर्ता तथा संचालक परमात्माने इस सुन्दर सर्वाङ्गपूर्ण सृष्टिकी रचना की और अपने साकार प्रतिनिधिके रूपमें मानवको सौंप दी तथा कहा कि तुम योग-साधना, यम-नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, उपासना, प्रार्थना आदिके द्वारा अपना शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास करो, अपनी योग्यता और कार्य-कुशलता सिद्ध करो और उसी अनुपातमें अधिकार तथा वैभव प्राणिमात्रके कल्याणके लिये अथवा इस सृष्टिको सुव्यवस्थित करनेके लिये प्राप्त करते जाओ। अपने शरीरके अंदर तथा बाहर होनेवाली सब क्रियाओंका आधार इन चेतन शक्तियोंको मानकर स्वयं नाटकशालामें कार्य करनेवाले अभिनेताकी भाँति सब कार्य करते अथवा कराते हुए भी अपने-आपको अकर्ता तथा राग-द्वेष और तनावसे रहित अनुभव करते हुए आनन्द-विभोर रहो। बिना किसी फलकी इच्छाके लाभ-हानि, सफलता-असफलता, जीवन-मरण, सुख-दुःख आदिको एक-समान समझकर केवल अपना परम पवित्र कर्तव्य अथवा मेरी आज्ञाका पालन समझकर पूर्ण निष्ठा, लगन, तत्परता तथा कुशलतासे करो। यही मानव-जीवनका लक्ष्य है।

परंतु खेद है कि मानव ऐसे अद्भुत मानव-शरीरको प्राप्त करके भी अज्ञानवश अपनी असीम शक्तियों तथा अपने जीवनके लक्ष्यको भूलकर काम, क्रोध, लोभ आदि दुष्प्रवृत्तियोंमें फँसकर निराशा, भय, चिन्ता, हीन-भावना आदि दुर्गुणोंसे ग्रस्त हो गया है।

जिन व्यक्तियों अथवा राष्ट्रोंने मानव-जीवनके लक्ष्यको समझा, तत्परतासे वैज्ञानिक खोजें कीं, अपना विकास किया, अपनी योग्यता, कार्यकुशलता और कार्यक्षमता बढ़ायी, वे आत्मिक शान्ति और भौतिक समृद्धि प्राप्त करते गये। उनकी तत्परतापूर्वक की गयी खोजोंने उन्हें अग्नि, विद्युत्-शक्ति, अणु आदि अनेक सूक्ष्म शक्तियोंको तथा सब भौतिक पदार्थोंको उनके वशीभूत बना दिया। जिन व्यक्तियों अथवा राष्ट्रोंने ऐसा नहीं किया, वे पिछड़ गये। सब कुछ उनके सामने हस्तगत होते हुए भी वे दरिद्रता, अकर्मण्यता, भुखमरी आदिसे ग्रस्त रहे। वे स्वार्थके कारण एक दूसरेके प्रति घृणा तथा राग-द्वेषके कारण एक दूसरेसे लड़ने लगे। वे जीवनकी मूल आवश्यकताओं—भोजन, वस्त्र तथा उचित शिक्षासे भी वंचित हो गये।

जो व्यक्ति अथवा राष्ट्र सम्पन्न हो गये थे, वे उनकी दरिद्रता और आपसी फूट देखकर उनपर शासन करने लगे।

यह वास्तविकता है कि हमारा प्यारा राष्ट्र भारत भी सब प्रकारकी सम्पदाओं तथा शक्तियोंसे युक्त होता हुआ भी लगभग ८०० वर्ष इसी शोचनीय स्थितिमें रहा। यह विदेशियोंके अधीन रहा। उनके पैरों-तले रौंदा जाता रहा। जीवनकी मूल आवश्यकताओंसे वंचित रहनेके कारण खीज, असंतोष, आत्म-ग्लानि, आत्म-प्रताड़ना-जैसी पीड़ाएँ सहन करता रहा।

अब हमारे कर्तव्य—

अब हमारा कर्तव्य है कि हम एक दूसरेकी कटु आलोचना छोड़कर नागरिकोंको स्वार्थभावसे रहित मानव-

धर्म—मानवता, अध्यात्मवाद, आपसी प्रेम, सद्भाव तथा आनन्दका अनुभव करते हुए कर्मशीलताकी शिक्षा दें। विज्ञानकी तत्परतासे खोज और शोधकी शिक्षा दें, जिससे हम भौतिक समृद्धियों और आध्यात्मिक शक्तियोंको प्राप्त करके राष्ट्रको समृद्ध तथा शक्तिशाली कर सकें।

हमें यह अच्छी तरहसे समझ लेना है कि विज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान एक दूसरेके विरोधी नहीं हैं, एक दूसरेके पूरक हैं, एक दूसरेके बिना अधूरे हैं। विज्ञानका सम्बन्ध हमारे शरीरकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये निरन्तर चिन्तन, नित्य नये आविष्कार एवं अनुसंधानसे है और आध्यात्मिक ज्ञानका सम्बन्ध हमारे अंदर आत्मविश्वास, आत्म-नियन्त्रण और आत्म-शोधनकी भावना जाग्रत् करनेके लिये है। जैसे हमारा शरीर और आत्मा एक दूसरेके पूरक हैं विरोधी नहीं हैं, न ही आत्मा शरीरके बिना कुछ कार्य कर सकता है और न ही शरीर आत्माकी शक्तिके बिना कुछ कर सकता है। हमें मानना ही होगा कि ये एक दूसरेके पूरक हैं।

वास्तवमें अध्यात्म है अन्त:स्थित असीम शक्तियोंका ज्ञान, जिसको हम पूर्णत: भूल गये हैं। धर्मका उद्देश्य है मानवता—मानवको एक सच्चा मानव बनाना जो सदाचारी, न्यायशील, परोपकारी, सर्वप्रेमी, परिश्रमी, सहनशील और उत्साही हो। अध्यात्म मानवमें मानसिक शान्ति, आन्तरिक प्रसन्नता, आत्मानन्दका अनुभव, आत्म-विश्वास और कार्य-शक्ति एवं बुद्धिकी स्थिरता, मानसिक शक्तियोंका विकास, विचारोंकी स्पष्टता उत्पन्न करता है और मानवीय दुर्बलताओं—चिन्ता, भय, काम, क्रोध, निराशा आदिपर नियन्त्रण रखता है।

विज्ञानका उद्देश्य मनुष्यके लिये इन लक्ष्योंकी प्राप्तिमें सहायक होनेवाले साधनोंको जुटाना है। यदि धर्म किसी विकृत अथवा अनुचित धारणाको जन्म देता है तो विज्ञान उसका निवारण करता है और यदि विज्ञान सीमाका उल्लंघन करके मनुष्यको पशुताकी—क्रूरताकी ओर ले जाता है तो धर्म उसपर अंकुश रखता है।

यदि विज्ञान न होता—अनाज आदिका उत्पादन बढ़ानेके, चिकित्साके, शिक्षाके तथा आने-जानेके, पदार्थोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जानेके नये साधन विकसित न होते तो तीव्र गतिसे बढ़ रही जनसंख्याके लिये खाद्य-पदार्थों, वस्त्रों तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओंका पर्याप्तमात्रामें उत्पादन न हो सकता।

यदि धर्मकी, अध्यात्मकी शिक्षा न हो, लोगोंमें एक दूसरेके प्रति प्रेम और सद्भावनाका प्रचार न किया जाय, लोगोंमें सत्य, अहिंसा और अपरिग्रहका प्रचार न किया जाय तो लोगोंमें स्वार्थ-भाव तथा एक दूसरेके शोषणकी प्रवृत्ति बढ़ती है और वैज्ञानिक खोजोंसे प्राप्त सभी सुखके साधन दु:खके साधन बन जाते हैं।

आज जो हमारे राष्ट्रकी समस्याएँ हैं—कार्यालयोंमें, बैंकोंमें, डाकखानोंमें, रेलवे आदिमें ठीकसे कार्य न होना, उद्योग-शालाओंका उत्पादन कम होना, घूसखोरी, बेईमानी, वस्तुओंके मूल्य दिन-प्रतिदिन बढ़ना एवं आतंकवाद। इन सबका मूल कारण यही है कि हम अपने जीवन-लक्ष्य—कर्तव्य-धर्मको भूल गये हैं। हमारे राजनीतिक नेता अथवा नागरिक अपने अधिकार तो चाहते हैं, परंतु अपने राष्ट्रके प्रति तथा अपने पड़ोसीके प्रति हमारे क्या कर्तव्य हैं, यह वे सुननेको भी तैयार नहीं हैं। जबसे हमें स्वतन्त्रता मिली है, तबसे हमने अपने अधिकारोंकी प्राप्तिके लिये तो सब कुछ किया—हड़तालें कीं, राष्ट्रिय सम्पत्तियोंको नष्ट-भ्रष्ट किया, एक दूसरेके प्रति दुर्व्यवहार किया, एक दूसरेकी उचित तथा अनुचित आलोचना की, आतंकवाद फैलाया; परंतु यह समझनेका प्रयास नहीं किया कि कर्तव्य-पालनसे अधिकार स्वयमेव प्राप्त होते हैं। बल्कि इसके विपरीत राष्ट्रिय-अन्ताराष्ट्रिय समस्याओं एवं जनकल्याणकी भावनाओंकी उपेक्षाकर हम सभी अपने अधिकारपूर्तिमें ही लगे रहे।

इन सब समस्याओं तथा कुण्ठाओंका एकमात्र इलाज है—राष्ट्रमें राष्ट्र-भावनाका, विज्ञानका तथा अध्यात्मका संचार। हम जो कोई भी कार्य जहाँ भी करें; स्वयं अपने लिये नहीं अपितु पूर्ण कुशलतासे, आनन्दका अनुभव करते हुए राष्ट्रको समृद्धिशाली-शक्तिशाली बनानेके लिये करें। जब राष्ट्र समृद्ध होगा, तब सभीको अपने-अपने अधिकार स्वयं ही मिल जायँगे। हम अध्यात्मको समझें। अध्यात्मवाद है—प्राणिमात्रको एक ही ब्रह्मके, एक ही राष्ट्रके नागरिक समझकर उन सबसे हार्दिक प्रेम एवं सद्व्यवहार करना। हम स्वयं अपने अधिकारोंकी प्राप्तिके लिये संघर्ष छोड़कर

अपनी योग्यता बढ़ानेका तथा दूसरोंके अधिकारको प्रसन्नतापूर्वक देनेका यत्न करें। पिता पुत्रके अधिकार पुत्रको दे, पुत्र पिताके अधिकार पिताको दे। कर्मचारी उद्योगपतिके अधिकारको समझकर अधिक-से-अधिक अच्छा-से-अच्छा कार्य करें और उद्योगपति कर्मचारीका अधिकार समझकर अधिक-से-अधिक वेतन दें। अपनी योग्यताके आधारपर स्वयं प्राप्त हुआ अधिकार ही हार्दिक प्रसन्नताका स्रोत है।

अच्छा हो, यदि हम निराधार अर्थहीन धारणाओं—'विज्ञान अभिशाप है, भौतिकवाद त्याज्य है, जो भाग्यमें होता है वही मिलता है, पुरुषार्थसे कुछ नहीं होता आदि' को छोड़ें। इन धारणाओंसे हमारे नागरिकोंकी अकर्मण्यताके कारण हमारे पास भरपूर मात्रामें प्राकृतिक सम्पदा होते हुए भी विदेशियोंके सामने हमें अपना भिक्षापात्र रखना पड़ता है। उनसे हमें समय-समयपर सहयोग-राशि भी मिलती है। क्या यह शर्मनाक नहीं है? हम पाश्चात्त्य देशोंके सामने अपना भिक्षापात्र भी रखते हैं और उनको कोसते हुए भी नहीं थकते। आइये! हम उनसे बड़े आदरसे ज्ञान-विज्ञान सीखें और सोच-समझकर अपने अध्यात्मवादको समझें तथा उनको भी समझाएँ और सही अर्थोंमें यह सिद्ध करें कि विश्व एक परिवार है।

आज आवश्यकता है—वीर्यवान्, तेजस्वी, श्रद्धा-सम्पन्न, कर्मनिष्ठ, दृढ़ विश्वाससे युक्त, कर्तव्यपरायण और भौतिक विज्ञान तथा अध्यात्म-ज्ञानसे युक्त निष्कपट युवकोंकी। ऐसे ही युवकोंसे यह संसार प्रगतिशील, समृद्ध तथा सबके लिये कल्याणकारी एवं आनन्दमय बन सकता है।

हमें युवकोंमें यह विश्वास उत्पन्न करना है कि उनके अंदर इस संसारको सुन्दर बनानेके लिये अपार शक्तियों तथा ज्ञानका भण्डार है। अपने-आपको दुर्बल और शक्तिहीन मानना मूर्खता है। वे साहसी वीर्यवान् बनें। सब दायित्व अपने कंधोंपर लें। यह याद रखें कि वे स्वयं ही अपने भाग्यके विधाता हैं। सिंह-गर्जना कर आत्माकी महिमा घोषित करें। वे उठें, जागें, निर्भय होकर ललकारें और जबतक अपने लक्ष्य—'इस सृष्टिको सुन्दर बनाना-आनन्दमय बनाना'—प्राप्त न कर लें, तबतक चैन न लें।

आज हमें ज्ञानकी शिक्षा चाहिये। मनुष्य बनानेवाली शिक्षा चाहिये। आज हमें ऐसी शिक्षाकी आवश्यकता है जिससे हमारा चरित्र बने, उस चरित्रसे राष्ट्र आलोकित हो। सर्वाङ्गीण विकासकी आधारशिला हमारी आध्यात्मिक संस्कृति समृद्ध एवं सम्पन्न बने। हमारी मानसिक शक्ति बढ़े, हम एक दूसरेके कल्याणकी भावनासे कार्य करें, राष्ट्रको समृद्ध करनेकी भावनासे ओतप्रोत हों।

हमें दृढ़ निश्चयसे समझना है कि सभी धर्म तथा सम्प्रदायकी विचार-धाराएँ एक ही विशाल वृक्षकी शाखाएँ हैं, उनमें बाहरसे भले ही विभिन्नता प्रतीत हो, परंतु वास्तवमें वे अपने-अपने ढंगसे सबसे प्रेम, सेवा और सद्भावकी शिक्षा देते हैं।

विज्ञानने अब सिद्ध कर दिया है कि यदि हम किसीसे घृणा अथवा द्वेष, क्रोध अथवा अत्याचार करते हैं, उसी क्षण स्वयं हमारे ही शरीरके ग्रन्थि-तन्त्रपर उनका बुरा प्रभाव पड़ता है। ग्रन्थियोंके स्राव दूषित होते हैं और हमारे ही शरीरके अंदर अनेक शारीरिक अथवा मानसिक रोगोंके बीज स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं, जो समयपर अनेक रोगोंके रूपमें प्रकट होकर भयावह स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। यदि हम आनन्दका अनुभव करते हुए सबके प्रति प्रेम, सेवा और सद्भाव रखते हैं, तब हमारे ग्रन्थि-तन्त्रोंपर अच्छा प्रभाव पड़ता है, स्राव संतुलित एवं शक्तिशाली होते हैं, हम स्वास्थ्यका अनुभव करते हैं और यदि हम किसीसे घृणा अथवा द्वेष करते हैं, उस समय हम स्वयं अपनी ही हानि करते हैं।

अतः इन सभी समस्याओंका विवेकपूर्ण उपायोंसे उन्मूलन-उच्छेदन करते हुए आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तापोंका शमनकर प्राणिमात्रके सर्वविध कल्याण, अभ्युदय, उन्मेषकी सर्वोच्च उदात्त भावनाकी भित्तिपर आरूढ होकर अपने समस्त उत्कर्षविधायी कार्योंको भगवदर्पण करते हुए वैश्विक उन्नति-पथका मार्ग प्रशस्त करें, जिससे विश्व-शान्ति प्रतिष्ठापित हो सके, आध्यात्मिक पथ प्रकाशित हो सके और विश्व-ब्रह्माण्डकी अनन्त नैसर्गिक शक्तियों-सम्पदाओंका समुचित सदुपयोग उस मूल कारण परब्रह्म परमेश्वरके परिप्रेक्ष्यमें कार्यान्वित हो सके।

* * *

मानसमें गुरु-शिष्य-सम्बन्ध

(डॉ०श्रीरामशिरोमणिजी शुक्ल, एम्०ए०,डी०फिल्०)

विद्यार्थी या शिष्यका एकमात्र उद्देश्य होता है विद्याध्ययन और ज्ञान-प्राप्ति। इस उद्देश्यकी प्राप्ति-हेतु जो भी सत्-कर्तव्य उसे करना पड़े, करना चाहिये—यही शिष्य-धर्मकी मूल सीढ़ी है। ज्ञान-प्राप्ति-हेतु सद्गुरुकी प्राथमिक और अनिवार्य आवश्यकता होती है। बिना गुरुकी कृपाके ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। श्रीरामचरितमानसमें गुरुकी महिमा कई प्रसंगोंमें वर्णित है। आरम्भमें ही गुरु-वन्दना की गयी है—

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥

× × ×

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥

जहाँ सद्गुरुकी प्राप्ति एक समस्या है, वहीं शिष्यके स्वयंकी पात्रताका प्रश्न भी विचारणीय है। पात्रताका आशय यहाँ किसी विशेष धर्म, जाति तथा वर्गगत मापदण्ड या नियामक सूत्रसे नहीं है, प्रत्युत शिष्यकी जिज्ञासु-प्रवृत्ति, ज्ञान-पिपासा और ज्ञान-प्राप्तिके लिये निरन्तर सत्प्रयत्नकी सक्रियतासे है।

गुरुकुल-प्रणालीमें विद्यार्थी गुरुके आश्रममें विद्याध्ययन के साथ-साथ गुरुकी सेवा करता हुआ ज्ञान प्राप्त करता था। उसे जीवनके विविध क्षेत्रोंसे सम्बन्धित समाजोपयोगी व्यावहारिक ज्ञान दिये जाते थे। गुरु किसीको शिष्य बनानेमें बहुत सतर्क रहते थे। शिष्य बननेके बाद उसे गुरुके आदेशका पालन करना अनिवार्य होता था। मानसमें गुरु वसिष्ठ तथा विश्वामित्र एवं भरद्वाज मुनिके आदर्श चरित्र वर्णित हैं। राम और उनके भाइयोंके गुरु-रूपमें पहले वसिष्ठ तथा बादमें विश्वामित्रका वर्णन है। रामका व्यवहार नितान्त आदर्शपूर्ण है। शिष्यके विनय, सदाचार, सेवा, सम्मान तथा आदरभावयुक्त आचरणसे ही गुरु प्रसन्न होकर निःसंकोच अपना सम्पूर्ण ज्ञान शिष्यको दे देते हैं।

राममें आदर्श शिष्यके सारे गुण विद्यमान हैं। इसीलिये गुरु वसिष्ठ और विश्वामित्र उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाते। जब गुरु विश्वामित्रके साथ राम-लक्ष्मण जनकपुरमें जाते हैं, तब लक्ष्मण नगर देखनेकी तीव्र लालसासे संकुचित हो जाते हैं। परंतु राम उनकी भावना समझकर गुरुकी आज्ञा माँगते हुए कहते हैं कि यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं लक्ष्मणको नगर दिखा लाऊँ—

परम बिनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुर अनुसासन पाई॥
नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगर देखाइ तुरत लै आवौं॥
(रा०च०मा० १। २१८। ४—६)

रामके इन आदर्शमय वचनोंको सुनकर मुनि विश्वामित्र कितना सुन्दर उत्तर देते हैं—

सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता॥
(रा०च०मा० १। २१८। ७-८)

जहाँ शिष्यमें गुरुके प्रति सम्मान, विनय, संकोच-भाव और अनुशासन-पालन करनेकी हार्दिक दृढ़ निष्ठा होगी, वहाँ गुरु भी शिष्यके प्रति स्नेहपूर्ण और पुत्रवत् प्रेमभाव रखनेवाला होगा। यह एक आदर्श सम्बन्ध होगा। गुरुके प्रति रामका यह परम विनीत आदरयुक्त आचरण कई स्थलोंपर देखा जा सकता है। भरत-मिलाप-प्रसंगमें वसिष्ठजीने रामके प्रति जो अपनी धारणा अभिव्यक्त की है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—रामके सम्पूर्ण आदर्शोंका गम्भीर दिग्दर्शन है—

गुर पितु मातु बचन अनुसारी। खल दलु दलन देव हितकारी॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥
(रा०च०मा० २। २५४। ४-५)

राम तो आदर्श शिष्य-चरित्रके मूर्तिमान् विग्रह हैं ही, लक्ष्मण तथा भरत और शत्रुघ्न भी गुरुके प्रति पूर्णतः विनयावनत एवं सम्मान-भावसे ओतप्रोत हैं। परंतु इन सबसे बढ़कर शिष्य-धर्मको पूर्णतः उद्घाटित करनेवाला प्रसंग तो काकभुशुण्डिजीका है।

काकभुशुण्डिने कलियुगमें अयोध्यामें शूद्र-रूपमें प्रथम जन्म लिया। वे शिवभक्त तो थे, परंतु अभिमानी और

देवनिन्दक भी थे। वे उज्जैनमें एक शिवभक्त ब्राह्मणके पास कपटपूर्वक उनकी सेवा करते तथा ब्राह्मणोंके प्रति विद्वेष-भाव रखकर गुरुको दुःखी करते रहते थे—

गुर नित मोहि प्रबोध दुखित देखि आचरन मम।
मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति कि भावई॥

(रा०च०मा० ७, सोरठा १०५ ख)

जब भी काकभुशुण्डिजीके गुरु उनको यह बताते थे कि—'शिवजी भी हरिके अनन्य भक्त हैं तो यह बात उनको किसी भी प्रकार अच्छी नहीं लगती थी और इसी कारण वे अपने गुरुसे द्रोह रखने लगे; परंतु गुरुजी सब जानते हुए भी उन्हें वैसे ही समझाते रहे—ज्ञान देते रहे। वे वास्तविक गुरु थे, तभी तो शिष्यके विपरीत आचरण करनेपर भी वे अविचलित-भावसे और शिष्यके कल्याणकी भावनासे अपना कार्य करते रहे।

एक दिनकी बात है—काकभुशुण्डिजी मन्दिरमें शंकरजीका जप कर रहे थे, उसी समय उनके गुरुजी वहाँ पधारे, पर उन्होंने उन्हें सम्मान नहीं दिया—प्रणाम तक नहीं किया। शिष्यके इस अमर्यादित व्यवहारसे गुरुजी तनिक भी विचलित नहीं हुए, उन्हें थोड़ा भी क्रोध नहीं आया। परंतु स्वयं भगवान् शंकर इसे सह न सके और काकभुशुण्डिजीको सर्प हो जानेका शाप देते हुए उन्होंने कहा—'जो मूर्ख शिष्य गुरुसे ईर्ष्या करते हैं, वे रौरव नरकमें पड़ते हैं। तुम अवश्य इस दण्डके पात्र हो। गुरुके आनेपर भी तू अजगरकी भाँति बैठा रहा, इसलिये तू सर्प हो जा—

जौं नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा॥
जे सठ गुर सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं॥
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा॥
बैठि रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति ब्यापी॥

(रा०च०मा० ७। १०७। ४—७)

गुरुने शूद्र होनेपर भी काकभुशुण्डिजीको शिष्य बनाया; क्योंकि उनमें शिवके प्रति भक्ति थी, ज्ञानकी पिपासा थी। परंतु अहंकारके कारण जब वे ऐसे महान् गुरुका अपमान कर बैठे तो उन्हें दण्ड मिला। ऐसी स्थितिमें भी गुरुका शिष्यके प्रति वात्सल्यपूर्ण स्नेहभाव उमड़ पड़ा। जब वे शंकरजीकी स्तुति करते हुए उनसे इस शापकी मुक्तिके लिये वरदान माँगने लगे, तब प्रसन्न होकर शंकरजीने उन्हें हमेशा ज्ञानवान् बने रहने और अप्रतिहतगति होनेका वरदान दे दिया। तदनन्तर कुछ कालतक सर्प-योनिमें रहनेके बाद काकभुशुण्डिजीका अन्तिम जन्म ब्राह्मणके कुलमें हुआ। बिना औपचारिक शिक्षा प्राप्त किये पूर्व वरदानके प्रभावसे वे जन्मजात ज्ञानी हुए। इन भुशुण्डिजीकी रामके प्रति अप्रतिम भक्ति थी।

एक बार वे लोमश ऋषिके पास सगुण रामकी आराधनाके विषयमें पूछने गये। ऋषिने बार-बार निर्गुण-निराकार ब्रह्मकी ही महिमाका वर्णन किया। इसपर काकभुशुण्डिजीने हठपूर्वक पुनः कहा—'प्रभो! मुझे साकार ब्रह्म रामकी आराधनाके सम्बन्धमें बताइये।' और इसी हठके कारण अनेक युक्तियोंसे सगुणका पक्ष लेते हुए उन्होंने मुनिकी बात ध्यानपूर्वक नहीं सुनी। ऋषि क्रोधमें आकर उन्हें शाप दे बैठे—'जाओ, सबसे डरनेवाले कौएका-सा स्वभाव रखनेवाले तुम कौएका शरीर प्राप्त करो'—

मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि॥
सत्य बचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरहीं॥
सठ स्वपच्छ तव हृदयँ बिसाला। सपदि होहि पच्छी चंडाला॥

(रा०च०मा० ७। ११२। १३—१५)

बादमें लोमश ऋषिको अपने कृत्यपर पश्चात्ताप हुआ। उचित बातपर अड़े रहनेके कारण शिष्यपर उन्हें दया आयी और रामकथा सुनाकर उन्हें रामके शिशुरूपकी आराधनाका स्वरूप बताया।

काकभुशुण्डिको अपने कौएके शरीरपर भी कोई दुःख नहीं हुआ, क्योंकि इस दण्डके बावजूद वे अपने एकमात्र लक्ष्य—सगुण रामके आराध्य-स्वरूप-ज्ञानको प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ एक बात यह सिद्ध होती है कि यदि योग्य गुरु होगा तो अन्ततः वह शिष्यकी उचित हठवादिताको उचित सम्मान देगा ही। काकभुशुण्डिको जो वरदान, जो ज्ञान प्राप्त हुआ वह महान् था। उन्होंने रामभक्ति तथा अनन्त ज्ञानको प्राप्त करके अपना लक्ष्य पूर्णतः प्राप्त कर लिया। मुनिने आशीर्वाद दिया और आकाशवाणीसे उसकी पुष्टि भी हुई—

सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान।
कामरूप इच्छामरन ग्यान बिराग निधान॥

जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत।
ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत॥
(रा०च०मा० ७। ११३क-ख)

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि एक आदर्श शिष्यमें सत्य-ज्ञानके प्रति जो अटूट आग्रही निष्ठा, उसे प्राप्त करनेकी निरन्तर संलग्न-सक्रियता, उसके लिये कुछ भी त्याग करनेका जो उद्यम—साहस होना चाहिये—वह सब कुछ काकभुशुण्डिमें था। वे रामभक्ति तथा रामके शिशु-रूप—आराध्य-स्वरूपके ज्ञान-हेतु कौए-जैसा शरीर प्राप्त करके भी प्रसन्न रहते हैं; क्योंकि उन्हें अपना लक्ष्य—ज्ञान प्राप्त हो गया। यही कारण है कि काकभुशुण्डिजीको कौएके शरीरसे प्रेम है। इसी शरीरमें तो वे शिशु रामके सगुण-साकार-स्वरूपके साथ लीलामग्न होकर अपनी रामभक्तिके लक्ष्यको प्राप्त कर लेते हैं। नित्य-निरन्तर प्रभुका दर्शन करते हुए, उनके चरण-रजका पान करते हुए निर्भ्रम होकर उन्हींमें अपना एकत्व स्थापित कर लेते हैं—

तात यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल संदेह॥
(रा०च०मा० ७। ११४ क)

ऐसे ही गुरु-शिष्य-सम्बन्धोंकी आज आवश्यकता है, जिससे प्राणिमात्रकी आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक उन्नति हो सके, प्राणिमात्रमें उस संस्कारके बीज अंकुरित हों, जिससे सम्पूर्ण विश्वके लिये निर्हेतुक कल्याणका मार्ग प्रशस्त हो सके।

* * *

भगवान्‌के लिये भगवत्प्रेमीकी विरह-वेदना

(श्रीबनवारीलालजी गोयन्का)

आनन्दकन्द सच्चिदानन्दघन परात्पर पूर्ण परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें एक बार किये गये प्रणामकी तुलना दस अश्वमेध-यज्ञोंसे की तो जा सकती है; लेकिन कृष्ण-प्रणामकी विशेषता यह है कि दस अश्वमेध-यज्ञोंका कर्ता तो पुनर्जन्मोंको प्राप्त करता रहता है, परंतु कृष्णके चरणारविन्दोंमें प्रणति निवेदन करनेवालेकी तो पुनर्जन्मसे सदाके लिये मुक्ति हो जाती है। अतः ऐसे प्रभुको बार-बार नमस्कार है—

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥

ऐसे भगवान्‌के लिये जिसकी आँखोंसे अश्रुपात होते हैं, उसके एक अश्रुबिन्दुकी बराबरी दस हजार गङ्गाजलके घड़ेसे स्नान करनेवाला भी नहीं कर सकता है।

अभिप्राय यह कि भगवान्‌को पानेके लिये जिसके हृदयमें भगवद्-विरहकी अग्नि धधकती रहती है, वह दिन-रात रोता रहता है, उसे खाना-पीना तक नहीं सुहाता, नींद भी नहीं आती—नींद उड़ जाती है। ऐसा भाव-भावान्वित भगवत्प्रेमी भगवान्‌को कितना प्यारा होता है—इसका वर्णन तो असम्भव-सा ही है।

उसकी तीव्र विरह-वेदनाका किंचित् अनुमान उसी विरही भक्तश्रेष्ठकी दर्शनाभिलाषाकी करुण पुकारसे लगाया जा सकता है—

तूँ छलिया छिप छिप बैठ्यो अखियाँ मटकावै रे।
बाला मैं थारे बिनु दुःखी फिरूँ तूँ मौज उड़ावै रे॥
दिन नहीं चैन रात नहीं निंदियाँ,
जरा कह दो साँवरिये से आया करे।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल पीताम्बर झलकाया करे॥
यमुनातटपर धेनु चरावै, जरा बंशी की लटक सुनाया करे।
ललित किसोरी गउएँ लेकर मेरी गली नित आया करे॥

भगवद्-विरह जिसके हृदयमें प्रदीप्त हो उठा; उसको यहाँका कुछ भी नहीं सुहाता, वह दिन-रात केवल आँखोंसे अश्रुपात ही बहाता रहता है भगवान्‌को पानेके लिये। भगवत्प्रेमके विरहमें व्याकुल महाप्रभु चैतन्यके विषयमें कहा जाता है कि वे १८ वर्षोंतक जगन्नाथपुरीमें एक छोटी-सी कुटियामें अंदर बैठे इतने रोते कि उनके आँसुओंके जलसे कुण्ड-के-कुण्ड भर जाते।

ऐसे ही परमोत्कृष्ट भगवद्भक्तोंके सम्बन्धमें कहा गया कि 'उन मिलनातुर-विरहातुर परमात्माभिलाषियोंके लिये सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्डकी किसी भी प्रकारकी दूरी और विघ्न-बाधाएँ उनके मार्गको बाधित नहीं करतीं'—

मिलनेको प्रियतमसे जिसके प्राण कर रहे नित हा-हाकार।

गिनता नहीं मार्गकी कुछ भी दूरीको वह किसी प्रकार॥
नहीं ताकता किंचित् भी शत शत बाधा-विघ्नोंकी ओर।
दौड़ छूटता जहाँ बजाते मधुर बाँसुरी नंद-किसोर॥

अहा! यह भक्त तो प्रेममें बावला हुआ कह ही बैठता है—'प्यारे, यदि मुझे रुलानेमें ही तुम्हें आनन्द आता है तो मत आओ, मैं उसीमें सुखी हूँ'—

तेरे सुखमें सुखिया हूँ मैं तेरे लिये प्राण रोवे।
पण प्यारा तेरी राजी में है नित राजी मेरो मन।
प्राणाधिक दोनूँ लीकां को तूँ ही मेरा जीवन धन॥

यह है बावलापन और विरहाग्नि भगवत्प्रेमकी। राधाजी कहती हैं—

इन दुखिया अँखियान को सुख सिरजो ही नायँ।
देखत बने न देखते बिनु देखे अकुलायँ॥

—'इन आँखोंके लिये विधाताने सुख रचा ही नहीं। जब वे कभी आते हैं तो ये मेरी निगोड़ी आँखें इतने अश्रु बहाती हैं कि मैं उन्हें देख ही नहीं पाती और जब वे चले जाते हैं तब भी विरहाग्निमें जलनेवाली आँखें वैसे ही बरसती रहती हैं।' यह एकनिष्ठता एवं निरन्तरता है भगवत्प्रेमकी। यहाँ किसी भी प्रकारके अन्य जागतिक भावनाओं तथा पदार्थोंके लिये कोई स्थान ही नहीं; क्योंकि जैसे ज्ञान अथवा अज्ञान या प्रकाश अथवा अन्धकारका एक ही स्थानपर एक समयमें होना सम्भव नहीं, वैसे ही भगवत्प्रेमी भी कहलाता हो और जगत् भी सुहाता हो—यह द्वैत सम्भव नहीं। संतोंने कहा है—

प्रेम गली अति साँकरी ता में द्वै न समाय।

इस अद्वैतकी विरहाग्निको व्यक्त करता हुआ भगवत्प्रेमी अपने प्रियतमसे कहता है—

तरसा तरसा कर जी लेव तो भी तनै नहीं छोड़ूँ।
आकूँ नहीं दूसर मानी तेरे ही मैं जी जोड़ूँ॥
यदि प्यारे मेरे वियोगमें मिलता है तुझे आराम।
कभी नहीं मिलने का मैं व्रत लूँगा मेरे प्राणाराम॥

ऐसे व्याकुल, व्यथित-हृदय निष्कपट भक्तोंके लिये भगवान् भला निष्ठुर कैसे हो सकते हैं! वे तो भगवत्प्रेमीकी आँखोंके आँसू देखनेके लिये उसके पासमें ही छिपे-छिपे रहते हैं, बिलकुल पासमें ही; परंतु उसे भान नहीं कराते कि तूँ क्यों रोता है, मैं तो तुम्हारे सम्मुख ही खड़ा हूँ।

यदि हमारी ऐसी स्थिति नहीं है तो हम भी भगवान्से दीनतापूर्वक कहें—'प्रभु, आपके यहाँ जलकी कमी तो है नहीं। नदी, नद, नाले, समुद्र जलसे भरे हैं, थोड़ा-सा पानी मेरी आँखोंमें भी भर दें, जिससे जीवन भर आपके लिये आँसू बहाता रहूँ।' जब ऐसी भावना होगी—विरह-वेदना होगी तब भगवत्प्रेमका मार्ग प्रशस्त होगा; क्योंकि भगवत्प्रेमरूपी नदीके दो तट हैं—एक मिलन दूसरा विरह। इन दोनोंके बीचमें ही प्रेम-नदीकी धारा बहती रहती है।

गोपाङ्गनाओंके प्राणप्यारे श्यामसुन्दर जब मथुरा चले गये, तब वृन्दावनसे मथुरा अति निकट होनेपर भी प्यारेकी इच्छा-बिना वे वहाँ नहीं जातीं। नन्दजी जब कन्हैयाको मथुरा पहुँचाकर वापस व्रजमें आये तब यशोदा रानी कहती हैं—'आप जीवित ही आ गये!' (यानी कन्हैयाको छोड़ते समय आपके प्राण नहीं निकले)। तब नन्दजीने कहा—यशोदे! मेरे प्राण निकलने ही वाले थे कि इतनेमें ही कन्हैया मेरी गोदमें आकर बैठ गया और कहने लगा—'बाबा, बाबा, मैं फिर व्रज आऊँगा, मेरे लिये माखन-मिश्रीके लौंदे तैयार रखियो।' तब मैंने सोचा—'कन्हैया कह रहा है मैं फिर व्रज आऊँगो।' यदि वह कभी आया और यह सुना कि बाबा संसार छोड़कर चले गये हैं तो उसको कितना दु:ख होगा। अत: उसे जरा भी दु:ख न हो, मुझे चाहे जीवन भर क्यों न रोना पड़े, इसीलिये मैंने अपने प्राणोंको जाने नहीं दिया।

यह है विशुद्ध भगवत्प्रेम—'**तत्सुखे सुखित्वम्**'। ऐसे भगवत्प्रेमीके लिये कहा गया है—'**मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवता:।**' अर्थात् वसुंधराके किसी भागपर उसके पदार्पणसे पितर प्रसन्न होते हैं और देवता नृत्य करने लगते हैं। यह तो माहात्म्य है भगवत्प्रेमीका।

ऐसे भगवत्प्रेमी जितने दिन संसारमें रहते हैं, उनके द्वारा लाखों लोगोंका उद्धार होता रहता है। एक बार गङ्गाजीने ब्रह्माजीसे कहा—'मेरेमें स्नान करके लोग अपने पाप धोकर चले जायँगे तो मैं पापसे भर जाऊँगी।' तब ब्रह्माजीने कहा—'जब एक भगवत्प्रेमी तुम्हारेमें स्नान करने आयेगा, तब वह तुम्हारे सब पापोंको धो डालेगा।' अहा! ऐसे प्रेमी भक्तोंको सब कुछ त्याग करनेपर क्या मिलता है—'प्रेमके विरहमें अश्रु।'

~~~
~~~

क्या मानव-स्वभाव मांसाहारी है ?

(श्रीबाबूलालजी वर्मा)

मनुष्यको मांस नहीं खाना चाहिये; क्योंकि वह स्वभावत: मांसाहारी नहीं है। मानवके शरीरकी आन्तरिक संरचना शाकाहारी पशुओंके समान है या यों कहें कि शाकाहारी पशुओंकी अंदरूनी यान्त्रिक व्यवस्था मनुष्यों-जैसी है। सभी शाकाहारी पशु मुँहसे पानी पीते हैं। जैसे—गाय, बैल, भैंस, भैंसा, ऊँट, घोड़ा, हाथी, भेंड़, बकरी, हिरन, गधा, नीलगाय आदि और मनुष्य भी उन्हींकी तरह पानी पीता है; पर सभी मांसाहारी पशु जीभसे चाटकर पानी पीते हैं। जैसे शेर, भेड़िया, चीता, कुत्ता, बिल्ली, सियार, लोमड़ी आदि। इसलिये मांस खानेवाले लोग या तो पानी पीनेके ढंग बदलें और जीभसे चाटकर पानी पीयें अथवा मांस खाना छोड़ें।

अभी कुछ दिन पहले विचार-क्रान्ति-अभियानके अन्तर्गत 'शाकाहार वैज्ञानिक दृष्टिसे हितकर है'—इस विषयपर एक परिचर्चा आयोजित हुई थी। परिचर्चामें अनेक विचारकों और वैज्ञानिकोंने अपने शोधपत्रोंमें विचारों और तर्कपूर्ण मतोंको प्रस्तुत करते हुए संकलित तथ्यों और आँकड़ोंके आधारपर मांसाहारकी अपेक्षा शाकाहारको श्रेष्ठ भोजन सिद्ध करते हुए इस धारणाको कि 'मांसाहारी भोजन पौष्टिक एवं स्वास्थ्यप्रद होता है' निराधार सिद्ध कर यह स्पष्ट किया कि अंडा, मांस, मछली आदिमें पाया जानेवाला प्रोटीन अनेक विषैले तत्त्वोंसे युक्त होता है, जो अन्तत: शरीरको हानि ही पहुँचाता है और अनेक रोगोंका कारण भी बनता है। शुद्ध शाकाहारी खाद्य पदार्थों—जैसे दाल आदिमें मांसकी अपेक्षा अधिक सुपाच्य प्रोटीन रहता है। अंडेमें १३.३ प्रतिशत प्रोटीन, मछलीमें २१ प्रतिशत, मसूरकी दालमें २५.१ प्रतिशत, मूँग और उरदकी दालमें २४ प्रतिशत, मांसमें १८.५ प्रतिशत, मूँगफलीमें ३१ प्रतिशत, सोयाबीनमें ४३.२ प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है। कहा जाता है कि मांसमें बिटामिन 'ए' अधिक है; परंतु उतनी ही कीमतके दूध और पनीरमें कहीं अधिक मात्रामें बिटामिन 'ए' मिल सकता है।

नवीनतम अनुसंधानोंसे यह तथ्य प्रमाणित हुआ है कि हृदयरोग, कैंसर एवं उच्च रक्तचाप आदि गम्भीर बीमारियोंके शिकार शाकाहारियोंकी तुलनामें मांसाहारी अधिक होते हैं। मिशीगन विश्वविद्यालयके प्रोफेसर डॉ० न्यूबर्गका मत है कि मांसाहार करनेसे शरीरकी धमनियाँ मोटी हो जाती हैं और शरीरमें अनेक घातक रोग प्रविष्ट हो जाते हैं। इससे बहुमूत्र तथा गुर्देकी बीमारियाँ हो जाती हैं। अमेरिकी स्वास्थ्य-विशेषज्ञ डॉ० टाल्वाटने अनेक अनुसंधानोंके बाद प्राप्त नतीजोंके आधारपर बताया है कि मांसाहारसे आँतोंमें घाव हो जाते हैं जो कभी-कभी कैंसरका रूप धारण कर लेते हैं। डॉ० एलेक्जेन्डरका भी यही मत है। उन्होंने अपने शोध-निष्कर्षोंके आधारपर बताया है कि मांस और मछलीमें यूरिक एसिड नामक एक तीक्ष्ण और घातक विष होता है।

मांसाहारी अपने पक्षमें यह तर्क (कुतर्क) प्रस्तुत करते हैं कि पहले भी राजतन्त्रमें सभी राजा शिकार करते थे और मांसका सेवन करते थे। वे अपने तर्ककी पुष्टिमें यहाँतक कह जाते हैं कि राजा जनकके विवाहके बाद सीताकी बिदाईमें बड़े-बड़े पात्रोंमें 'मांस' भरकर भेजा था। पर वे मूर्खता और अज्ञानताके कारण अर्थका अनर्थ करते हैं। ध्यान रहे उस कालमें संस्कृत भाषाका प्रचलन था और संस्कृतमें उपर्युक्त स्थलमें प्रयुक्त 'मांस' का अर्थ है फलोंका रस या फलोंका गूदा। उसी प्रकार शिकारका मतलब था सैन्य-शिक्षा, उसका अभ्यास और युद्ध-कलाका प्रशिक्षण। राक्षसी प्रवृत्ति या 'राक्षसी-संस्कृति' ही मांस-सेवनको प्रोत्साहित करती है। प्रकृति (ब्रह्मा)-ने सृष्टिकी रचना की। हिन्दू-जीवनदर्शन (आर्य-जीवन-शैली)-में ऋषियोंका कथन है कि जीव-जन्तुओं और विविध प्राणियोंकी ८४ लाख योनियाँ हैं। जीव सभी योनियोंमें जन्म लेता है, विचरण करता है और भटकता रहता है। मानव-जीवन बड़ी मुश्किलसे मिलता है। मानव प्रकृतिकी सर्वश्रेष्ठ कलाकृति है। मानवमें मनुष्यत्वसे देवत्व और देवत्वसे

ईश्वरत्वको प्राप्त करनेकी अपरिमित क्षमता है। वह नरसे नारायण बन सकता है। बस, आवश्यकता है—स्वाभाविक-प्राकृतिक धर्मशास्त्रीय नियमों-कर्तव्योंके अनुपालनकी। प्रकृतिने सभी जीवोंके जीनेके लिये भोजनकी यथायोग्य व्यवस्था की है। प्रकृतिने कोई पदार्थ या जीव व्यर्थ या अनावश्यक नहीं बनाया है। कुछ प्राणियोंके लिये वनस्पतियाँ उगाया। जलमें मेढक, मछली, कछुआ आदि पैदा किया। जलके शुद्धीकरण और स्वच्छ जलके लिये ये जीव सफाई-कर्मचारी हैं। चील, कौवे, गिद्ध, कुत्ते तथा सूअर आदि धरतीके सफाई-कर्मचारी हैं। प्रकृतिने वायु-प्रदूषणको पीनेके लिये और वायुको शुद्ध करनेके लिये विभिन्न प्रकारके साँपोंको पैदा किया है।

संसारमें विचरण करनेवाले किसी भी जीव-जन्तु-जानवरको मारनेका हमें कोई अधिकार नहीं, परंतु मनुष्य अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिये कितनी नीचतापर उतर आया है जो निरीह जीवोंकी हत्या करता है, क्रूर अत्याचार करता है। इसकी रोकथामके लिये कोई कारगर व्यवस्था नहीं है। इसलिये अनेक जीव-जन्तुओं और प्राणियोंका धीरे-धीरे लोप होता जा रहा है।

आजके युगमें बुद्धिजीवी मानव आधुनिकता एवं प्रगतिशीलताकी चकाचौंधमें अनेक समस्याओंसे जूझ रहा है, जिसके कारण जीव-जन्तुओं और पशुओंके प्रति की जानेवाली क्रूरताओं तथा बर्बर अत्याचारोंकी जाने-अनजाने उपेक्षा करता है और उसे कोई महत्त्व नहीं देता, जबकि समस्त प्राणियोंको जीनेका प्रकृति-प्रदत्त अधिकार है। समस्त जीवधारियोंका सर्जक ईश्वर है। इसलिये मानवोंको यह चाहिये कि वे प्राकृतिक संतुलन-हेतु सभी प्राणियोंकी रक्षा करें, क्योंकि सभी मिलकर ही प्रकृतिका संतुलन बनाते हैं। अनबोल पशुओंके प्रति मनुष्यको निर्दयी, निष्ठुर, हृदयहीन न होकर करुणापूर्ण एवं दयार्द्र होना चाहिये। अतः आज आवश्यक हो गया है कि हम पशुओं और अन्य प्राणियोंके प्रति किये जाने वाले क्रूर एवं हिंसक अन्यायके विरुद्ध जागरूक और संवेदनशील हों।

भारत सरकारने 'जीव-जन्तु-कल्याण-बोर्ड' और 'वन्य जीव एवं पर्यावरण-संरक्षण-मन्त्रालय' बना रखा है। केन्द्र सरकारने १९६० में जीव-जन्तुओंके प्रति होनेवाली क्रूरताको रोकथामके लिये 'क्रूरता-निवारण-अधिनियम' बनाया था। बोर्डद्वारा इस संदर्भमें देशके २०० केन्द्रोंपर प्रतिवर्ष कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। जीव-जन्तु-संरक्षण तथा कल्याण-प्रशिक्षण-शिविर लगाये जाते हैं। वन्य जीव-रक्षा-सप्ताह भी मनाया जाता है। पर करोड़ोंका धन स्वाहा करने और कागजी खाना-पूर्तिके अतिरिक्त परिणाम शून्य ही रहता है।

एक ओर पश्चिमी दुनिया विशेषकर ब्रिटेनमें शाकाहारी भारतीय भोजनमें रुचि बढ़ रही है। गुजरातके अनेक भारतीयोंने लंदनमें शाकाहारी भारतीय भोजनके होटल और जलपानके केन्द्र स्थापित किये हैं। जहाँ ग्राहकोंकी अपार भीड़ होती है। बहुराष्ट्रिय कम्पनियोंकी फूड-प्रोसेसिंगद्वारा निर्मित बंद-डिब्बा खाद्य पदार्थोंकी खपत घटती जा रही है। दूसरी ओर विदेशी कम्पनियोंके खाद्य प्रसंस्करणके आधुनिक कारखाने भारतमें खोले जा रहे हैं। एक विदेशी कम्पनीने गुड़गाँव (हरियाणा)-में मक्का और गेहूँके आटेकी रोटियाँ बनानेका कारखाना खोल दिया है। कम्पनीका दावा है कि बंद-डिब्बा रोटी सामान्य रूपसे १० दिनतक और फ्रिजमें रखकर ५० दिनतक सेवन की जा सकती है।

लंदनके दो हजार होटलोंमें पापड़, कढ़ी, रायता, चपाती, नान तन्दूरी रोटी, छोले-भठूरे, पराठे, इडली, डोसा, साँभर आदि सैकड़ों खाद्य पदार्थ लोकप्रिय हो रहे हैं। जलपानमें जलेबी, रसगुल्ले, रसमलाई, गिलौरी, समोसे, पकौड़ी, आलूचाप, मटर-पनीर तथा छोले आदिपर अंग्रेज मोहित हैं। ब्रिटेनमें करीब १५ सालसे भारतीय भोजनका चलन बढ़ा है और बंद-डिब्बा अमेरिकी मटरके बजाय भारतीय दालोंको वहाँ पसंद किया जा रहा है। डिब्बा-बंद अमेरिकी भोजन-संस्कृतिका स्थान भारतीय भोजन-संस्कृति ले रही है। भारतीय मूलके और एशियायी लोगोंके अलावा अंग्रेज प्रतिदिन करीब डेढ़ करोड़ रुपयोंका भारतीय भोजन-जलपान या मसालोंका उपयोग करते हैं। ब्रिटेनमें चीनी भोजनकी अपेक्षा भारतीय भोजन अधिक लोकप्रिय हो रहा है। वहाँ 'हैम्बर्गर' (बछड़ेके मांससे निर्मित)-के बजाय आलूचिप्स तथा बंद-डिब्बा शाकाहारी फास्ट फूड लोग बड़े चावसे खाने लगे हैं।

भारतमें गोश्त-व्यवसायियोंद्वारा यह दलील दी जाती है कि यदि पशुओंका कटना बंद हो जाय और निजी कसाईघर तथा सरकारी बूचड़खाने बंद हो जायँ तो हजारों मांस-विक्रेता मुसीबतमें फँस जायँगे, बेरोजगार हो जायँगे और लाखों मांसाहारी भी जो महँगी दालों और सब्जियोंके बजाय सस्ते मांसपर निर्भर करते हैं, पोषणके लिये मांस उनके लिये सस्ता प्रोटीन प्राप्त करनेका साधन है। थोड़ी देरके लिये यदि उनका यह तर्क मान भी लिया जाय तो फिर चोर, डकैत, कातिल भी कह सकते हैं कि चोरी, डकैती आदि हमारा जन्मजात पैतृक धंधा है; भिखारियोंका भीख माँगना परम्परागत रोजगार है, देह-व्यापार करनेवाली वेश्याओंका भी जीनेका यही धंधा है; जुआघर, नाचघर चलाना भी रोजगारकी श्रेणीमें आता है, मादक पदार्थोंकी तस्करी और अवैध शराबकी भट्ठियाँ चलाना भी रोजगार-परक लघु उद्योग है, लाटरीका धंधा भी रोजी-रोटीका सहारा है। फिर शेयर घोटालेको भी एक उद्योग क्यों न माना जाय? इन सारे रोजगारमूलक धंधोंको सरकारने क्यों अवैधानिक करार दिया? ऐसे धंधे करनेवालोंको क्यों अपराधी माना जाय? दूसरा तर्क भी थोथा और निराधार है कि मांस उनके लिये प्रोटीन प्राप्त करनेका सस्ता साधन है। डॉक्टरों और वैज्ञानिकोंके अनुसार शाकाहारी भोजनमें मांसकी तुलनामें अधिक प्रोटीन और पोषकतत्त्व रहते हैं। भारतमें दालें और सब्जियाँ मांसके मुकाबले महँगी बताना सफेद झूठ है; क्योंकि भेड़-बकरी एवं भैंस आदिका मांस दालों, सब्जियों, फलों एवं दूध आदि सभीसे कई गुना महँगा है। भारतमें विविध प्रकारकी सब्जियोंका उत्पादन काफी मात्रामें होता है और विश्वके अन्य देशोंसे काफी सस्ती भी है। भारी मात्रामें फलों, सब्जियों और मेवों-मसालोंका भारतसे निर्यात होता है। अखिल भारतीय खाद्य-परीक्षक ऐसोसियेशनके अनुसार हर वर्ष चारसे पाँच हजार करोड़ रुपये मूल्यके फल और सब्जियाँ खपतके अभावमें नष्ट हो जाती हैं। यदि मांसाहारी लोग मांस खाना छोड़कर फलों और सब्जियोंका सेवन करें तो निरीह और बेजुबान पशुओंकी रक्षाके साथ इन खाद्य-पदार्थोंको भी बरबादीसे बचाया जा सकता है। हाँ! खाड़ीके देशोंमें कुछ ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ खनिज तेलके अलावा पीनेका पानी भी उनकी धरती और आकाशमें उपलब्ध नहीं है। वहाँ सब्जी ही नहीं, अन्नका एक दाना भी पैदा नहीं होता। सऊदी अरबमें पानी और वीयरका एक दाम होनेपर भी शराब पीना सख्त मना है। सऊदी अरब, बहरीन, ईराक, कुवैत, ओमान, कतर, सूडान आदि तेल-उत्पादक देशोंमें भारतसे आयातित सब्जियाँ आलूसे लेकर भिंडीतक ५० रुपयेसे १२५ रुपया प्रति किलोतक बिकती हैं। फिर भी भारतसे आयातित गोश्त महँगा (२४०रु० प्रति किलो) है। भारतके किसी रेस्तराँ या होटलमें मांसाहारी भोजनसे शाकाहारी भोजन आज भी काफी सस्ता है। अभी कुछ दिन पहले एक विशिष्ट व्यक्ति केरल गये थे। उनके सम्मानमें वहाँके मुख्य मन्त्रीने एक प्रीतिभोज आयोजित किया था। जिसमें करीब चार सौ लोग आमन्त्रित थे। एक पाँचतारा होटलमें ४५० रुपया प्रति थाल मांसाहारी भोजन मँगाया गया था। यद्यपि सेवन करनेके बाद अनेक लोगोंको अस्पतालमें दाखिल होना पड़ा और उन व्यक्ति-विशेषको भी दिल्ली आकर दो दिन उपवास करना पड़ा।

इस परिणामसे भी यह स्पष्ट होता है कि मानव-देहकी संरचना शाकाहारी है, अतः मांसाहार सदैव प्रतिकूल प्रभाव डालेगा ही।

आजकलके 'हरित-क्रान्ति-फार्मूला' से कोई सहमत हो अथवा न हो; पर जहाँ पशु-वध रोकनेका सवाल है तथा प्राणिमात्रपर क्रूरतम हिंसात्मक अत्याचारको सख्तीसे रोकनेका सवाल है, कत्लगाहोंको बंद करनेका प्रश्न है—उनकी पहलसे सुधारकी व्यापक सम्भावनाओंसे इनकार नहीं किया जा सकता। जीवोंके प्रति करुणाका भाव नैतिकता, मानवता और स्वास्थ्यके प्रश्नको हम कुछ देरके लिये भूल भी जायँ तब भी इन प्रयासोंके पीछे एक मजबूत आधार है—पालतू पशुओंका आर्थिक पहलू। मांस-निर्यातके कारण भारतको करोड़ों रुपयोंका घाटा उठाना पड़ रहा है; क्योंकि मांस-निर्यातके बजाय पशुओंसे प्राप्त अन्य पदार्थोंसे भारतको अधिक लाभ है। मौजूदा हालातमें यदि सरकारद्वारा पशुवधपर—विशेषकर गोवंश-वधपर कारगर ढंगसे पाबंदी न लगायी गयी तो 'डायनासोर' की तरह पालतू पशुओंकी प्रजातियोंके विलुप्त हो जानेका खतरा पैदा हो जायगा।

~~~
~~~

बाल-कल्याण

(१)

राष्ट्रकी आत्मा आज मूर्च्छित है

मैं बच्चोंको 'राष्ट्रकी आत्मा' कहता हूँ; क्योंकि ये ही हैं, जिनको लेकर राष्ट्र पल्लवित हो सकता है; ये ही हैं, जिनमें अतीत सोया हुआ है, वर्तमान करवटें ले रहा है और भविष्यके अदृश्य बीज बोये जा रहे हैं। जो बालक हमारे राष्ट्रके अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनोंके समाहार हैं वे ही बालक आज मूर्च्छित हैं, अचेत हैं। न उन्हें पता है, न उनके अभिभावक जानते हैं और न राष्ट्रके नेताओंको ज्ञान है कि उन्हें कहाँ जाना है, क्या बनना है, कैसे और क्या ढलना है। इसीलिये हलचलों और आन्दोलनोंके इस तूफानमें भी, जहाँ वाणी आज सबसे सस्ती हो गयी है, कुछ हो नहीं पाता है। राष्ट्रका रथ आगे बढ़ नहीं पा रहा है—क्योंकि राष्ट्रकी आत्मा आज सो गयी है; मूर्च्छित है।

देश स्वतन्त्र हो गया। हमें इसका अभिमान भी है कि हजारों वर्ष बाद हमने स्वतन्त्रतासे सिर उठाकर अपना चेहरा देखा; पर अपना चेहरा देखकर हमें ग्लानि होती है और हृदय एक अननुभूत व्यथासे भर जाता है। क्या इसी रूपकी उपलब्धिके लिये गाँधीजीने हमारी सत्प्रवृत्तियोंका युद्धमें आवाहन किया था? क्या है आज हमारे चारों ओर जिसमें हम अनुभव करें कि हम भारतीय हैं—हमारे जीवनमें, हमारे राष्ट्रके जीवनमें विश्वके लिये एक संदेश है। विश्वकी विकास-क्रियामें हमारा एक नियुक्त कार्य है। अंग्रेज चले गये, पर अंग्रेजी न गयी, 'अंग्रेजियत' और भी न गयी। हमारे बच्चे हमारे सामने 'विदेशी' होते जा रहे हैं। उनके चारों ओरका वातावरण विदेशी है, विजातीय है; उनका शिक्षण विजातीय है। उनको शासनने विजातीयताकी ओर प्रेरित किया है। जो अंग्रेजोंके जमानेमें होता था, वही आज है। वही शिक्षण, वही जीवनशैली, वही वातावरण। तब कैसे ये बच्चे राष्ट्रके भविष्यका निर्माण करेंगे?

योजनाओंकी बात बहुत सुननेमें आती है। पञ्चवर्षीय, सप्तवर्षीय योजनाएँ बन रही हैं, पर इन्हें बनानेवाले वही हैं जिनपर पश्चिमीय सभ्यतासे प्रेरित अर्थविज्ञानका प्रभाव है; जिनका शिक्षण और जीवन कैम्ब्रिज और ऑक्सफोर्डके साँचेमें ढला है। जिनके सामने कोई स्पष्ट चित्र नहीं कि वे अपने बच्चोंको क्या बनाना चाहते हैं? यह तो सभी कहते हैं कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति दूषित है; पर यत्न उसीके विस्तारका हो रहा है। यहाँ-वहाँ पैबंद लगाने या मुलम्मा कर देनेका कभी-कभी यत्न किया जाता है, पर वह सफल नहीं होता—हो भी नहीं सकता।

सबसे पहली आवश्यकता इस बातकी है कि हम समझें कि भारत क्या है, भारतीय सभ्यता क्या है, भारतीय संस्कृति क्या है और कौन-सी आन्तरिक शक्ति और प्रेरणा थी, जिससे शताब्दियोंके संघर्षयुक्त लंबे व्यवधानको पारकर भारतीय संस्कृति अक्षुण्ण रही? तब यह सोचें कि वर्तमान विश्वमें उसे आगे बढ़ानेके लिये किन नूतन संस्कारोंकी आवश्यकता है और हम उसकी मूल प्रेरणाओंको बदलते हुए एवं तेजीसे बदलते हुए विश्वमें कैसे सुरक्षित और पल्लवित रख सकते हैं। उसी भूमिकापर बच्चोंका, नयी पीढ़ीका जीवन गढ़ना होगा। स्वतन्त्रता एवं क्रान्ति हमें नवीन जीवन-दृष्टि देती है, पर आज हमारी जीवन-दृष्टि वही बनी हुई है जो ब्रिटिश-शासनमें थी। इसीलिये भूलसे साक्षरताको विद्याका, शिक्षाका पर्याय मान लिया गया है। वस्तुतः विद्या वह है जो प्रेयसे श्रेयकी ओर ले जाती है और शिक्षा इसी शक्तिके अर्जनकी साधना है।

पाश्चात्त्य-सभ्यताने हमपर संख्या-बलका जादू चला रखा है। उन्नतिका अर्थ आँकड़ोंकी भाषामें ही हम समझने हैं। 'फैक्टरी मेंटिलिटी' हर जगह व्याप्त हो गयी है। कपड़ेकी मिलोंकी तरह शिक्षाकी भी फैक्टरियाँ खुल गयी हैं और खुल रही हैं। उनकी सफलता एवं महत्ताका आकलन दिन-प्रतिदिन वृद्धिमान् आँकड़ोंसे की जाती है। कितना कपड़ा या लोहा इस वर्ष बना, इसी तरह कितने स्नातक इस वर्ष किस युनिवर्सिटीसे निकले, इसीपर शिक्षण-सफलताकी अङ्कगणित चलता है। गुणप्रधान (क्वालिटेटिव)-की अ

संख्याप्रधान (क्वांटिटेटिव)-दृष्टिकी स्थापनाने भारतीय संस्कृतिकी मूल प्रेरणाओंपर सबसे अधिक आघात किया है।

युनिवर्सिटियाँ ज्ञानके साधनास्थल नहीं, विक्रयस्थल बन गयी हैं। बच्चोंको देखिये—उच्छृंखल, अनियन्त्रित, जीवनकी बाह्य सुविधाओं एवं भोगोंके प्रति आसक्त, सिनेमा ही जिनका तीर्थ है और सिनेमा-स्टार जिनके आदर्श हैं, अनुशासनविहीन, आत्म-नियन्त्रणसे स्खलित, जीवनसे गेंदकी भाँति खिलवाड़ करनेवाले—क्या ये राष्ट्रका भविष्य बनायेंगे?

पर उनका दोष क्या है? हमने उन्हें ऐसे शिक्षक दिये, ऐसा वातावरण दिया। 'ज्ञानकी साधना ही जिनके लिये सब कुछ है'—ऐसे आचार्योंकी जगह विद्यादानको एक पेशा और 'कैरियर' मानकर चलनेवाले शिक्षकोंसे हमारी युनिवर्सिटियाँ भरी हुई हैं। ब्रह्मबल, तेज, तप एवं ज्ञानार्जनका स्थान धनकी वितृष्णाने ले लिया है। जैसे दुकानोंमें वस्तुओंकी बिक्री होती है, वैसे ही इनके यहाँ विद्या बिकती है। विद्या एवं ज्ञानका मापदण्ड चरित्र एवं जीवन नहीं, कागजोंपर छपे उपाधिपत्र हैं। कोई युग ऐसा भी था जब स्नातक केवल यह कहकर अपना परिचय देता था कि मैं अमुकका शिष्य हूँ। अमुकका शिष्य होना ही सबसे बड़ा प्रमाणपत्र था; क्योंकि विद्या पुस्तकोंके माध्यमसे नहीं, आचार्यके जीवनके माध्यमसे प्राप्त होती थी—एक जीवनके सम्पूर्ण संस्कार दूसरे जीवनको प्राप्त होते थे। गुरु या आचार्य अपना जीवन ही शिष्यको देता था। विद्या जीवनमें उतर आती थी, जीवनमें—उसके आचरणमें बोलती थी।

जिज्ञासा मानवकी पहली वृत्ति है। शिशुमें जिज्ञासा पहले होती है, वाणी बादमें फूटती है। इसी जिज्ञासाके कारण उसका मानसिक विकास होता है, यह जिज्ञासा परिस्थिति एवं संस्कारके अनुरूप होती है। ज्यों-ज्यों बच्चेकी दुनिया बढ़ती जाती है और उसके संस्कार बनते हैं, त्यों-त्यों जिज्ञासाका क्षेत्र भी विस्तृत होता जाता है।

जिज्ञासाके मूलमें तीन तत्त्व होते हैं—१-यह क्या है, २-क्यों है? और ३-कैसे है? जिज्ञासा ज्ञानका बीज है। इस जिज्ञासा-वृत्तिको विकसित करने और उसमें अच्छे संस्कार डालनेमें ही शिक्षाका उपयोग है। इसलिये जो शिक्षा मानवमें सद्वृत्तियोंको जागरित नहीं करती, जो उसे प्रेयसे श्रेयकी ओर नहीं ले जाती, जो उसके हृदयमें प्रविष्ट होकर उसे एक श्रेष्ठ जीवन-स्वप्नसे भर नहीं देती, वह शिक्षा नहीं है, केवल साक्षरता है और आज ऐसे साक्षर मूढ़ोंकी बढ़ती हुई संख्या ही जगत्की अनेक समस्याओंका कारण है।

इसलिये शिक्षाकी पहली समस्या है—भारतीय संस्कृतिके मूलाधारको समझकर उसके अनुरूप नवीन जीवन-निर्माणकी एक व्यापक योजना बनानेकी। दूसरी समस्या है—आचारवान्, ब्रह्मनिष्ठ, आत्मनिष्ठ, पैसा नहीं, बल्कि ज्ञानकी सिद्धि ही जिनके जीवनका लक्ष्य है, ऐसे शिक्षकोंको प्राप्त या तैयार करनेकी। तभी हमारे विद्यामन्दिर शक्ति एवं प्रकाशके प्रतीक बन सकते हैं।

परंतु बस इतना ही नहीं। यह मान लेना कि शिक्षार्थी पाठशालामें ही सीखता है, एक बड़ी भूल है। वह कुटुम्बमें, मार्गमें चलते हुए, अपने साथियोंके सम्पर्कमें, सर्वत्र कुछ-न-कुछ सीखता रहता है। वह अपने प्रति माता-पिता, कुटुम्बियों, मित्रों, साथियों और परिचितों-अपरिचितोंके व्यवहारसे भी बहुत कुछ सीखता है। इसलिये आवश्यकता है कि समाजका वातावरण आजकी भाँति दूषित न हो। उसका परिष्कार किया जाय। अर्थप्रधान जीवन-दृष्टिकी जगह धर्मप्रधान या कर्तव्यप्रधान जीवन-दृष्टिकी स्थापना, इसके लिये अत्यन्त आवश्यक है। उपयुक्त एवं पवित्र वातावरणके निर्माणके लिये आजकलके चलचित्रोंपर कड़ी देख-रेखकी आवश्यकता है। अश्लील चित्रोंका निर्माण एकदम रोक दिया जाना चाहिये।

इस तरहकी अनेक बातें सामने रखी जा सकती हैं; परंतु मूल बात यही है कि जबतक हमारे शिक्षणका पूरा ढाँचा नहीं बदलता और हमारी जीवन-दृष्टि भारतीय संस्कृतिके अनुरूप नहीं बनती, जबतक हम श्रेयस्करी जीवन-दृष्टिको नहीं अपनाते और जबतक हमारी शिक्षण-शालाएँ साक्षरता एवं पुस्तकीय ज्ञानके बिक्री-केन्द्र नहीं, बल्कि जीवनके मर्ममें प्रवेश करनेवाले स्वप्नों एवं आदर्शों, चरित्र एवं ज्ञानके साधना-केन्द्र, तपस्या-भूमि नहीं बनते, तबतक सब निरर्थक है—तबतक राष्ट्रकी आत्मा सोती रहेगी; तबतक लाख स्थूल योजनाएँ हमारे जीवनके क्षितिजको प्रकाशपूर्ण नहीं कर सकतीं।

(२)

छुट्टियोंका सदुपयोग कैसे हो?

भारतवर्षके स्कूल-कॉलेजोंमें वर्षभरमें लगभग छः महीनेका समय छुट्टियोंमें चला जाता है। इससे सालभरमें जितनी पढ़ाई होनी चाहिये, उसमें दो साल लग जाते हैं। इस प्रकार समय और धनका अपव्यय होता है। यह बहुत बड़ी राष्ट्रिय हानि है; परंतु इस ओर किसीका ध्यान नहीं जाता। आवश्यक मामूली छुट्टियोंके अतिरिक्त पूरा समय पढ़ाईमें दे देनेसे विद्यार्थी कई साल पहले योग्यता प्राप्त करके जीविका-अर्जन करने योग्य बन सकते हैं। दूसरे, जबतक विद्यार्थी-जीवन रहता है, तबतक प्रायः घरकी चिन्ता नहीं रहती। हॉस्टलों और बोर्डिंगोंमें एक-दूसरेकी देखा-देखी विद्यार्थी बेहद खर्च करने लगते हैं। गरीब पिता या अभिभावक ऋण लेकर, घर-जमीन बेचकर 'पुत्र पढ़ लेनेपर खूब पैसा कमायेगा'—इस आशासे उसकी माँग पूरी करते रहते हैं। इधर ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती है, त्यों-त्यों मनमें विकार बढ़ने लगते हैं। कुसंग मिलता है, सिनेमाके उत्तेजक दृश्य देखनेको मिलते हैं, घरके कामोंमें नफरत हो जाती है, फैशन और विलासिताके शिकार हो जाते हैं, जिससे उच्छृंखलता और चरित्रहीनता बढ़ जाती है। चारों ओर हानि-ही-हानि होती है। यदि वे छुट्टियाँ कम हो जायँ और पढ़ाईमें समय लगे तो वे सारी बुराइयाँ बहुत अंशमें अपने-आप दूर हो सकती हैं।

छुट्टियोंमें लड़के निरर्थक घूमते हैं या आलस्यमें समय बिताते हैं, इसलिये छुट्टियोंके समयमें मनोरंजनके साथ ही ज्ञान-वृद्धि हो, इसके लिये शिक्षा-मनीषियोंने यह सोचा कि 'अवकाशके समय विद्यार्थीगण अपने-अपने अध्यापकोंकी देख-रेखमें यात्रा-टोली बनाकर देशमें जहाँ-जहाँ उपयोगी स्थान हैं, वहाँ जायँ, सेवा करना सीखें, औद्योगिक केन्द्रोंको देखें, ऐतिहासिक स्थलोंका निरीक्षण करें और अपनी जानकारी बढ़ावें। ऐसी यात्रा-टोलियोंके लिये रेलवे-विभाग रेलका किराया कम करे और जहाँ-तहाँ सरकारी अधिकारी भी आवश्यक सहायता करें।' प्रस्ताव उचित है, क्योंकि ठीक-ठीक व्यवस्था और अनुशासनमें कार्य हो तो समयका कुछ उपयोग भी हो सकता है। विदेशोंमें व्यवस्थितरूपसे ऐसा होता भी है; परंतु हमारे यहाँकी स्थिति दूसरी ही है। यद्यपि उपर्युक्त निर्णयके अनुसार यहाँ छात्र-छात्राओंकी यात्रा-टोलियाँ बनने लगी हैं और उनका देश-भ्रमण भी आरम्भ हो गया है; पर इस यात्रामें जो निम्नलिखित बुराइयाँ पैदा हो रही हैं, उनके सम्बन्धमें भी कुछ विचार करना परम आवश्यक है—

१-ज्ञान-वृद्धिकी जगह विद्यार्थियोंमें सैर-सपाटे और मौज-शौककी प्रवृत्ति बढ़ रही है।

२-धनका खर्च बहुत बढ़ रहा है। इसके अनुपातमें लाभ बहुत ही कम होता है।

३-छुट्टियोंके दिनोंमें विद्यार्थी जो कुछ घरका काम-काज देखते-करते, उसे नहीं कर पाते हैं और घरकी जानकारीसे वञ्चित रह जाते हैं।

४-यात्रा-टोलीके विद्यार्थी अत्यन्त स्वच्छन्द हो जाते हैं। कई बार स्वयं आँखों देखा गया है कि विद्यार्थियोंकी ऐसी टोली जिस रेलके डिब्बेमें, बसमें, जहाजमें यात्रा करती है, उसमें अन्य यात्रियोंके नाकों दम आ जाता है। ये बिना टिकट या निम्नश्रेणीके टिकट लेकर भी उच्च श्रेणीके डिब्बेमें सवार हो जाते हैं और यात्रियोंको तंग करते हैं। दिल्लगी करना, ठहाका मारकर हँसना, चाहे जिसका मजाक उड़ाना, बड़े-बूढ़ों और गरीबोंसे छेड़खानी करना, ब्राह्मण-साधुओंको परेशान करना, पथिकोंको तंग करना, तरह-तरहकी बोलियाँ बोलना, ऐसी कई बातें टोलीके विद्यार्थी करते हैं कि जिनको देखकर बड़ी लज्जा आती है। पर कोई कुछ बोल नहीं सकता। अगर किसीने कुछ कहा तो टोली-की-टोली उसपर टूट पड़ती है और उस बेचारेकी बड़ी दुर्दशा की जाती है।

५-सदाचारका त्याग, संध्योपासनाका त्याग, पूजा-अर्चना तथा धार्मिक स्वाध्यायका त्याग, एक-दूसरेका जूठ खाना-खिलाना, सभीका एक साथ खाना, अभक्ष्य-भक्ष करना आदि कई ऐसी बातें हैं, जिनको विद्यार्थी घरमें नहीं

करते, परंतु इस यात्रा-टोलीके दोस्तोंके संकोचसे करते हैं। फिर उसमें अभ्यस्त हो जाते हैं। प्राय: तरुण अध्यापक ही टोलियोंमें साथ रहते हैं, जिनका विद्यार्थियोंपर कोई विशेष प्रभाव नहीं रहता। अतएव वे विद्यार्थियोंको किसी प्रकारकी रोक-टोक न करके उन्हींके साथ हो जाते हैं। ये बुराइयाँ आम तौरपर बढ़ रही हैं।

ऐसी यात्राओंमें ज्ञानवृद्धि, मनोरंजन और विभिन्न स्थानोंको देखनेका जितना लाभ होता है, उससे कहीं अधिक धनका नाश और सबसे बढ़कर तो सदाचारका नाश हो जाता है। इन बुराइयोंसे सर्वथा बचाकर यात्रा-टोलियोंकी व्यवस्था हो तो ठीक है, नहीं तो, आजकल जैसे जीवनका उच्चस्तर (हाई-स्टैंडर्ड) बनानेमें खर्च, फैशन, विलासिता, प्रमाद और असदाचार बढ़ रहा है, वैसे ही छुट्टियोंकी यात्रा-टोली भी बुराइयोंके बढ़ानेमें कारण होकर समाज और देशके लिये घातक सिद्ध होगी। इस विषयपर शिक्षा-विभागको, शिक्षण-संस्थाओंके संचालकोंको, अभिभावकोंको और संयमी विद्यार्थियोंको भी गहराईसे विचार करना चाहिये।

(३)

भक्त सुव्रत

बात इस कल्पकी नहीं, दूसरे कल्पकी है। उस समय नर्मदाके पवित्र तटपर अमरकण्टक क्षेत्रमें सोमशर्मा नामके एक ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नीका नाम था सुमना। भगवान् विष्णुकी आराधना करनेसे भगवत्कृपास्वरूप सोमशर्माको एक पुत्र हुआ, जिसका नाम उन्होंने सुव्रत रखा। पूर्वजन्मोंके भजनके प्रभावसे बालक सुव्रत जन्मसे ही भगवान्का भक्त था। वह सदा भगवान्का ध्यान किया करता था। उसने अपने साथी बालकोंके नाम भी भगवान्के नाम ही रख लिये थे। अपने साथियोंको वह केशव, गोविन्द, नारायण, दामोदर आदि भगवान्के नामोंसे ही पुकारता था। खेलने, पढ़ने, गाने, हँसने, देखने, चलने, भोजन करने तथा सोनेमें भी वह भगवान्का ही ध्यान करता था। सभी पदार्थोंमें, सभी प्राणियोंमें वह धर्मात्मा बालक केवल भगवान्को ही देखता था। उसे सदा सर्वत्र श्रीहरिके दर्शन होते थे।

सुव्रत अपने साथी बालकोंके साथ खेलते समय मधुर स्वरसे भगवान्के नाम तथा गुणोंको गाया करता था। जब माता उससे कहती—'बेटा! तुझे भूख लगी होगी; आ, भोजन कर ले।' तब वह मातासे कहता—'माँ! भगवान्का नाम अमृतके समान है, मैं उसीसे तृप्त रहता हूँ। मुझे भूख नहीं लगती।'

भोजनके समय वह भोजन करनेसे पहले संकल्प करता—'इस अन्नसे भगवान् विष्णु तृप्त हों।' सोनेके लिये लेटते समय वह कहता—'मैं योगनिद्रापरायण भगवान् श्रीकृष्णकी शरण आया हूँ।' इस प्रकार उठते-बैठते, वस्त्र पहनते, खाते-पीते—सब समय वह भगवान् वासुदेवका ध्यान किया करता था और उन परम प्रभुको समस्त वस्तुएँ समर्पित करके भगवान्के प्रसादस्वरूप ही उनका उपयोग करता था। इस प्रकार उसकी सब क्रियाएँ तथा उसका मन भगवान्में ही लगे रहते थे।

युवा होनेपर वैडूर्य पर्वतपर सिद्धेश्वर तीर्थके निर्जन वनमें सुव्रतने भगवत्प्राप्तिके लिये तपस्या आरम्भ की। अपने मनको उसने एकमात्र श्रीहरिके ध्यानमें स्थिर कर दिया। उसकी तपस्या तथा भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान्ने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिये। सुव्रतने भगवान्की स्तुति की और भगवान्से वरदान माँगा—'मेरे माता-पिता सशरीर आपके धामको जायँ।' भक्तिके प्रभावसे सुव्रत अपने माता-पिताके साथ भगवान्के उस नित्य धामको गया, जहाँ मृत्युका कभी प्रवेश नहीं होता।

(४)

वीर बाला पद्मा

पद्माका जन्म भोपाल-राज्यमें एक गरीब कृषक क्षत्रियके घरमें हुआ था। जब पद्मा केवल ढाई वर्षकी थी, उसके माता-पिताकी मृत्यु हो गयी। सोलह वर्षके भाई जोरावरसिंहने अपनी छोटी बहनका पालन-पोषण किया। जोरावरसिंह बालक होनेपर भी वीर पुरुष था। उसने अपनी बहनको बचपनसे ही भाला-तलवार आदि चलाने तथा घुड़सवारीकी

शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी। पद्माने मन लगाकर युद्ध-विद्या सीखी और वह कुशल योद्धा हो गयी। घरके प्रबन्धमें भी वह खूब चतुर थी।

धीरे-धीरे पिताका धन समाप्त हो गया। जोरावरसिंहपर बहुत-सा कर्ज हो गया। जिस महाजनका कर्ज था, उसने अनेक बार उलाहने दिये, खरी-खोटी सुनायी और अन्तमें भोपाल-दरबारमें नालिश कर दी। कर्ज तो था ही, राज्यने जोरावरसिंहको कैद कर लिया। अब बेचारी पद्मा अकेली रह गयी। भाईके कैद हो जानेका उसे बहुत अधिक दुःख था। उसने भाईको छुड़ानेका निश्चय किया। अब उसने स्त्रीका वेश छोड़ दिया और एक राजपूत सैनिकका वेश धारण करके वह ग्वालियर पहुँची। उस समय ग्वालियर-नरेश थे महाराज दौलतरावजी सेंधिया। पद्माने पद्मसिंह नाम बताकर सेनामें नौकरी पानेकी प्रार्थना की। निशाना लगाने, घुड़सवारी करने एवं भाला चलाने आदिके कार्योंमें उसकी परीक्षा ली गयी और उनमें वह सफल रही, उसे सेनामें नौकरी मिल गयी।

उन दिनों सेंधिया और अंग्रेज सरकारमें युद्ध छिड़ा हुआ था। तीन वर्षतक यह युद्ध चलता रहा। पद्माने इस युद्धमें इतनी वीरता दिखायी कि वह साधारण सैनिकसे हवलदार बना दी गयी। उसकी जाँघ तथा भुजामें कई बार गोलियाँ लगीं; किंतु सदा वह स्थिर रही। शत्रुओंको उसके सामनेसे भागना ही पड़ता था। वह अपनेको सावधानीसे छिपाये हुए थी। स्नानादिके लिये सबसे पृथक् चली जाती थी। उसे एक ही चिन्ता थी—अपने भाईको कारागारसे छुड़ानेकी। उसे जो वेतन मिलता था, उसमेंसे बहुत थोड़ा खर्च करती अपने लिये, शेष बचाकर रखती जाती थी।

कुछ लोगोंको संदेह हुआ कि यह बिना मूछोंका हवलदार उनके साथ कभी स्नानादि क्यों नहीं करता। क्यों वह सदा कपड़े पहने रहता है। एक सैनिकने छिपकर पद्माका पीछा किया और उसे पता लग गया कि वह स्त्री है। जब यह समाचार सेंधिया-दरबारमें पहुँचा, तब राजाने बुलाकर पद्मासे पुरुषवेश धारण करनेका कारण पूछा। पद्मा रो पड़ी, उसने अपने भाईके बंदी होनेकी बात बतायी। महाराज सेंधिया उसकी वीरता तथा भ्रातृभक्तिसे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सरकारी खजानेसे कर्जका धन भोपाल भिजवा दिया और पत्र लिख दिया कि जोरावरसिंहको कैदसे छोड़कर तुरंत ग्वालियर भेज दिया जाय।

जोरावरसिंह छूट गये। ग्वालियर आकर अपनी बहनसे मिलकर वे बहुत प्रसन्न हुए। महाराज सेंधियाने जोरावरसिंहको सेनामें एक अच्छा पद दे दिया और पद्माका विवाह एक सेनापतिके साथ करवा दिया।

(५)

कौन महान् ?

धन-दौलत अधिकार-मानसे होता कोई नहीं महान।
पर-दुख सुखी, दुखी पर-सुखमें जो, वह है पापोंकी खान॥
पर-सुख-साधनके निमित्त जो निज-सुख कर देता बलिदान।
वह अमूल्य आभूषण जगका वही जगतमें मनुज महान॥
अपना स्वार्थ साधनेको जो करता औरोंका नुकसान।
वह मानव जगका कलंक है, मानवताका शत्रु महान॥
जो स्वार्थी नर साधु-संत सज ठगता है धोखा देता।
'बगुला भगत' नीच वह धर्मजगतका गौरव हर लेता॥
पढ़-लिख जो उपाधि धारण कर पर-सुख हरता साहंकार।
पढ़े-लिखे हिंसक उस पशु-मानवको बार-बार धिक्कार॥

साधनोपयोगी पत्र

[परमार्थ-पत्रावली]

(१)

आपके प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार हैं—

(१) **प्रश्न**—मैं आपसे साकार-रूप श्रीकृष्णभगवान्‌का खाते-चलते, सोते और नौकरी करते तथा शौच-दशामें अलग-अलग ध्यान लिखा हुआ चाहता हूँ।

उत्तर—आपका प्रश्न ठीकसे समझमें नहीं आया। जो भी स्वरूप आपके इष्ट हो, उसे हर समय देखनेमें कोई आपत्ति नहीं है। हर समय एक ही रूपका ध्यान किया जा सकता है।

(२) **प्रश्न**—निरन्तर नाम-जपका अभ्यास अभीतक पूर्णरूपसे नहीं हो पाया। कैसे हो? निरन्तर ईश्वरके प्रेम-वियोगमें आँसू कैसे बहें?

उत्तर—नामका जप निरन्तर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। चेष्टा करनेसे ही अभ्यास होगा। साथ-साथ सत्संग अथवा सत्संगके अभावमें सत्-शास्त्रोंका पठन-पाठन करना चाहिये। इससे नाममें प्रीति होकर अपने-आप चेष्टा हो सकती है। जब भगवान्‌में प्रेम हो जायगा तब प्रेम-वियोगमें आँसू बह सकते हैं। भगवान्‌में प्रेम होनेके लिये भगवान्‌के स्वरूप, लीला, गुण, प्रभाव और रहस्यका बार-बार मनन करना चाहिये।

(३) **प्रश्न**—भगवान्‌को मन-बुद्धि कैसे अर्पण किये जायँ?

उत्तर—मन-बुद्धिको भगवान्‌में लगाना ही उनके अर्पण करना है। भगवान्‌को ही सर्वोपरि सर्वशक्तिमान् समझनेसे अर्पण हो सकता है। जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँ-वहाँसे मनको हटाकर 'एक परमात्मा ही सब जगह आनन्दरूपसे व्याप्त हैं'—ऐसा निश्चय करके उनके ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। इस प्रकार भगवान्‌का निरन्तर चिन्तन करनेसे, उनकी आज्ञाका पालन करनेसे तथा उनके प्रत्येक विधानमें संतोष माननेसे अर्पण हो सकता है।

(४) **प्रश्न**—भगवान्‌को जल्दी प्राप्त करने तथा वह हमारी प्रार्थना जल्दी सुन लें इसके लिये कौन-सा तरीका है?

उत्तर—नाम-जप तथा उनके स्वरूपका ध्यान-स्तुति-प्रार्थना एवं आज्ञा-पालन करनेसे भगवान् जल्दी ही प्रसन्न हो सकते हैं।

(५) **प्रश्न**—संसारसे वैराग्य कैसे हो? चित्त अपने शरीरकी सुध-बुध कैसे भूल जाय?

उत्तर—विषयोंमें दुःख और दोष-दर्शन करने, वैराग्यवान् पुरुषोंका संग करने तथा भजन-ध्यान एवं सत्संग करनेसे हृदय शुद्ध होता है, जिससे शरीरकी सुध-बुध नहीं रहती। समयको अमूल्य समझने तथा मृत्युको याद रखनेसे वैराग्य होता है।

(६) **प्रश्न**—सत्संगमें नाम-जप करना चाहिये या नहीं?

उत्तर—करना चाहिये।

(२)

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः नीचे दिया जाता है—

(१) **प्रश्न**—अपनेको भगवत्-शरणागत समझनेवालोंके लिये शरीर-यात्रार्थ भोजन-वस्त्र, शीत-उष्ण, मान-अपमान, प्राणरक्षादि-कार्यमें स्वयं यत्नशील क्यों होना चाहिये?

उत्तर—शीत-उष्ण, मान-अपमानमें तो प्रयत्नशील होनेकी कोई जरूरत नहीं। इनमें तो सम रहनेके लिये ही भगवान्‌ने कहा है। परंतु शरीर-निर्वाहके लिये भगवत्प्रीत्यर्थ न्याययुक्त चेष्टा करनेकी भगवान्‌ने आज्ञा दी है, इसलिये भगवान्‌की आज्ञा मानकर शरीर-यात्राके लिये चेष्टा करनी चाहिये। जो भगवदर्पण-बुद्धिसे की हुई भोजन-वस्त्रादिकी चेष्टा है, उससे भी भगवत्प्राप्ति होती है। इसके लिये गीता (९। २६—२८) देखनी चाहिये। राग-द्वेषसहित किये हुए कर्म ही बाँधनेवाले होते हैं, राग-द्वेषरहित विषयोंका सेवन तो आत्मोद्धारमें सहायक बतलाया है। ज्ञानी लोग भी कर्तृत्वाभिमानका त्यागकर इन्द्रियोंके द्वारा चेष्टा करते हैं, इस सिद्धान्तके अनुसार भी करनेमें कोई दोषकी बात नहीं है। क्योंकि कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी बिना कुछ किये नहीं रह सकता, बिना क्रियाके जीवन-निर्वाह भी नहीं होता

और जब कुछ करना ही है तो सब कुछ भगवदर्थ ही करना चाहिये, भगवदर्थ की हुई सभी न्याययुक्त चेष्टाएँ भगवत्प्राप्तिमें सहायक होती हैं।

(२) **प्रश्न**—जब मनुष्य किसीकी भी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है तो उसे संसारमें 'पति' और 'पिता' नामसे पुकारे जानेका क्या अधिकार है? ये निरर्थक नाम शास्त्रोंने भगवान्‌को छोड़कर दूसरोंको क्यों दिये?

उत्तर—'पिता' और 'पति' भगवान् तो मुख्यतासे हैं ही; पर भगवान् वह कार्य स्वयं आकर नहीं करते, किसीको निमित्त बनाकर करवाते हैं, इसलिये शास्त्रोंमें जो पिताकी जगह काम करता है उसे पिता, पतिकी जगह काम करनेवालेको पतिका दर्जा दिया गया है। और इनकी आज्ञा-पालनका फल भी भगवत्प्राप्ति बतलाया है।

(३) **प्रश्न**—जब साकार परमात्मा खाते-पीते हैं और सभी कुछ करते हैं तो उनके उपासकोंको बिना भगवान्‌को प्रत्यक्ष खिलाये स्वयं क्यों खाना-पीना चाहिये?

उत्तर—यह बहुत दूरकी बात है। जब बहुत ऊँचे दर्जेका प्रेम होता है तभी भगवान् प्रकट होकर खाते हैं। जबतक ऐसी ऊँची भावना नहीं हो जाती तबतक वे प्रकट होकर नहीं खाते। इसलिये उस अनन्य-प्रेमकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये भावनासे ही भोग लगाकर खाना चाहिये और जब भगवान् प्रकट होकर खाने लगें तब तो जैसा आपने लिखा है, वैसा ठीक है।

(४) **प्रश्न**—जिनको प्रतिमामें सोलहों आने भगवद्बुद्धि न हो और जब प्रतिमा भोजन करती न दीखे तो भी जबरदस्ती भगवान्‌का प्रसाद समझकर भूखको तृप्त करनेकी आड़में 'भगवदर्पण' शब्दकी वंचना करना कहाँतक ठीक है? जब एक सांसारिक कोटिका प्रेमी—जैसे माँ अपने प्रिय पुत्रको बिना खिलाये नहीं रह सकती तो उससे ऊँचे स्तरके प्रेमीको शबरीके बेर और सुदामाके तंदुल भोग लगानेवालेको साक्षात् न खिलाकर प्रतिमादिको भोग लगाकर खा लेना प्राणोंकी ममताके सिवा और क्या है? हम प्रतिमाको खाते देखते नहीं किंतु यों ही मान लेते हैं। तब स्वयं प्रसादको क्यों मुखके भीतर देते हैं?

उत्तर—यह कोई अपनी भूखको तृप्त करनेकी आड़में 'भगवदर्पण' शब्दकी वंचना नहीं है। जबतक वह उस योग्य नहीं है तबतक भावनासे भोग लगाकर खा लेनेमें क्या दोष है? शबरी और सुदामाका उदाहरण दिया सो तो ठीक है, किंतु जबतक कोई शबरी-सुदामा-जैसा अनन्य-प्रेमी नहीं बना है, तबतक वह ऐसा करे तो उसमें कोई दोषकी बात नहीं। आपके इस प्रश्नका कुछ उत्तर तीसरे प्रश्नके उत्तरमें भी आ गया है।

(५) **प्रश्न**—गीताका अभ्यास-योग (छठे तथा आठवें अध्यायमें वर्णित योग-क्रिया) सबको संध्याके समान नित्यप्रति करना चाहिये अथवा ये साधनाएँ केवल योगावलम्बियोंके लिये ही लागू हैं?

उत्तर—योगावलम्बीके लिये यानी योगका साधन करनेवालेके लिये तो मुख्य है ही, किंतु यदि सभी लोग संध्याकी तरह नित्यप्रति इसका अभ्यास करें तो यह बड़े हितकी बात है और यह बड़ा अच्छा साधन है। जैसे गीतामें कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग—ये साधन बतलाये हैं, उसी प्रकार यह अभ्यास-योग भी एक उच्च कोटिका साधन है।

(६) **प्रश्न**—जब भगवान्‌ने स्पष्ट कहा है कि '**एकांशेन स्थितो जगत्**' और आचार्य श्रीशंकरने भी माना है कि '**सत्यपि भेदापगमे नाथ तावकीनोऽहं न मामकीनस्त्वम्। सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥**' तब '**अहं ब्रह्मास्मि**' और '**तत्त्वमसि**' वाक्योंका सीधा—सबके समझने योग्य अर्थ क्या हो सकता है? जब परमात्माके एक-एक रोममें करोड़ों ब्रह्माण्डके जीव भरे पड़े हैं तो किसी एक खास जीवको अपनेको परमात्मा या ब्रह्म समझनेका क्या अधिकार है?

उत्तर—'**एकांशेन स्थितो जगत्**' यह कथन भक्तिकी दृष्टिसे है और श्रीशंकराचार्यजीका यह कहना कि '**सत्यपि भेदापगमे नाथ तावकीनोऽहं न मामकीनस्त्वम्**' तथा '**अहं ब्रह्मास्मि**' और '**तत्त्वमसि**' ज्ञानकी दृष्टिसे है।

* * *

अमृत-बिन्दु

आजतक जितने भी महात्मा हुए हैं, वे भगवत्कृपासे ही जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञ और भगवत्प्रेमी हुए हैं, अपने उद्योगसे नहीं।

× × ×

व्यापारमें तो लाभ और नुकसान दोनों होते हैं, पर सत्संगमें लाभ-ही-लाभ होता है, नुकसान होता ही नहीं।

× × ×

तत्त्वज्ञान होनेपर काम-क्रोधादि विकारोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है।

× × ×

जो दूसरोंका अनिष्ट करता है, वह वास्तवमें अपना ही महान् अनिष्ट करता है और जो दूसरोंको सुख पहुँचाता है, वह वास्तवमें अपनेको ही सुखी बनाता है।

× × ×

जिसका स्वभाव शुद्ध बन जाता है, वह अधोगतिमें नहीं जा सकता।

× × ×

लोग हमें अच्छा मानें या न मानें, अच्छा जानें या न जानें, अच्छा कहें या न कहें, पर हमारे भाव अगर अच्छे हैं तो हमारे चित्तमें हर समय प्रसन्नता रहेगी और मरनेपर सद्गति होगी।

× × ×

संसार विजातीय है और विजातीय वस्तुसे सम्बन्ध होता ही नहीं, केवल सम्बन्धकी मान्यता होती है। सम्बन्धकी मान्यता ही अनर्थका हेतु है; जिसके मिटते ही मुक्ति स्वतःसिद्ध है।

× × ×

अगर कोई खराब चिन्तन आ जाय तो सावधान हो जायँ कि यदि इस समय मृत्यु हो जाय तो क्या गति होगी? अगर सब समय प्रभुका स्मरण होता रहे तो मृत्यु कभी भी आ जाय, कोई चिन्ता नहीं है।

× × ×

दुःख आनेपर प्रसन्न होना बहुत ऊँचा साधन है।

× × ×

सांसारिक पदार्थ, मान, बड़ाई, प्रशंसा, आराम, सत्कार आदिका प्रिय लगना पतनका कारण है।

× × ×

भोगोंकी प्रियता जन्म-मरण देनेवाली और भगवान्‌की प्रियता कल्याण करनेवाली है।

× × ×

एक अहम्‌के त्यागसे अनन्त सृष्टिका त्याग हो जाता है; क्योंकि अहम्‌ने ही सम्पूर्ण जगत्‌को धारण कर रखा है।

× × ×

सत्संगकी बातोंको महत्त्व देनेसे वृत्तियोंमें बहुत फर्क पड़ता है और विकार अपने-आप नष्ट होते हैं।

× × ×

भोगोंमें जितनी आसक्ति होती है, उतनी ही बुद्धिमें जड़ता आती है, जिससे सत्संगकी तात्त्विक बातें पढ़-सुनकर भी समझमें नहीं आतीं।

× × ×

जबतक हमारी दृष्टिमें असत्‌की सत्ता है, तबतक विवेक है। असत्‌की सत्ता मिटनेपर विवेक ही तत्त्वज्ञानमें परिणत हो जाता है।

× × ×

सुखदायी परिस्थितिको रखनेमें तो सब परतन्त्र हैं, पर सुखकी इच्छाको छोड़नेमें सब स्वतन्त्र हैं।

× × ×

जो नहीं है, उसकी सत्ता मानकर उसको पानेकी अथवा मिटानेकी इच्छा करना असत्‌का संग है।

× × ×

अपनेमें और दूसरोंमें निर्दोषताका अनुभव होना तत्त्वज्ञान है, जीवन्मुक्ति है।

× × ×

वस्तु, व्यक्ति और क्रियाका सम्बन्ध मनुष्यको पराधीन बनानेवाला है। इनसे असंग होनेपर ही मनुष्य स्वाधीन हो सकता है।

—श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज

~~~
~~~

पढ़ो, समझो और करो

(१)

नारी—नारायणी

शारदा बहिन हमारी पड़ोसी हैं। क्रूर विधाताने अठारह वर्षकी सुकुमार अवस्थामें ही उनके सुहागको छीन लिया। जीवनमें लगी हुई ठोकरोंसे उनमें आश्चर्यजनक सहनशीलता आ गयी है। उनके एक पुत्र था। पुत्रकी भावी आशामें वे दु:खके जहरकी घूँट हँसते-हँसते पी जातीं। परंतु ईश्वरने उनके इस आशा-दीपको भी बुझा दिया। उनका पुत्र दुर्घटनामें मारा गया। उन्होंने ट्रक-ड्राइवरकी जिस प्रकारसे रक्षा की, वह हमारे समाजके लिये उज्ज्वल गौरवकी बात है। यह उज्ज्वल गाथा इस प्रकार है—

उत्तरायण बालकोंका प्रिय उत्सव है, उस दिन बालकोंका पतंगके पीछे दौड़नेका बावलापन शराबके नशेके समान बड़ा तीव्र बन जाता है।

नीले आकाशमें दो बड़े सुन्दर पतंगोंमें पेच लग गया। दोनों पक्षके पतंग उड़ानेवाले सावधानीसे डोरा खींच रहे थे। मृत्युके समीप पहुँचे हुए मनुष्यकी जीवन-डोरीके समान पतंगोंका डोरा अब टूटा तब टूटा हो रहा था।

एक पतंग कटा, तुरंत पतंगके पीछे बच्चे दौड़ने लगे और 'काटो····काटो····पकड़ो-पकड़ो' का शोर मचाते हुए आगे बढ़ने लगे। दीपक (शारदा बहिनका पुत्र) आकाशमें पतंगकी ओर देखता हुआ दौड़ा जा रहा था। दौड़ता-दौड़ता वह सड़कपर जा पहुँचा। सामनेसे मालसे भरी हुई एक ट्रक पूरे वेगसे आ रही थी। ड्राइवरको भी ध्यान नहीं रहा। जब ड्राइवरका ध्यान दीपककी तरफ गया, तब दीपक और ट्रकके बीचमें पाँच-सात फुटका ही अन्तर रह गया था। ड्राइवरने ब्रेक लगाया, परंतु ब्रेक काबूमें नहीं आ सका और दीपककी पतंग प्राप्त करनेकी अभिलाषा अधूरी ही रह गयी। ट्रक उसके ऊपरसे निकल गयी!

मुकद्दमेके फैसलेका दिन था। सब लोग शारदा बहिनका बयान सुननेके लिये आतुर थे। वे बयान देनेवालोंके कटघरेमें आकर खड़ी हो गयीं और कभी ड्राइवरकी ओर तथा कभी न्यायाधीशकी ओर देखने लगीं। उनका मन विचारके झूलेपर झूल रहा था। लंबे विचारके बाद उनके होठ खुले। उनके शब्दोंने नारी-हृदयका परदा उठा दिया। ····'मैं गरीब विधवा हूँ, मेरा आधार मेरे उगते हुए बच्चेपर ही था। दीपक मेरा जीवन था, मेरा श्वास था। पर बहुत बार मनुष्यको जो अच्छा लगता है, वह ईश्वरको कहाँ लगता है? ईश्वरको कुछ दूसरी ही बात अच्छी लगी और उन्होंने मेरे बच्चेको छीन लिया। मेरे एकमात्र आधारके चले जानेसे मैं निराधार हो गयी। जैसे मेरा आधार मेरे दीपकपर था, वैसे ही इन भाई (ड्राइवर)-के कुटुम्बका आधार भी इन भाईपर ही होगा। इनके भी स्त्री होगी, छोटे बच्चे होंगे, परंतु इनको यदि जेलमें ढकेल दिया जाय तब? तब इनका कुटुम्ब निराधार हो जायगा। मुझे निराधारताका अनुभव है। जो कुछ बना, उसमें तो मेरे भाग्यका ही दोष है। इन भाईको जेलमें ढकेल देनेसे क्या मुझे मेरा दीपक वापस मिल जायगा? कभी नहीं। फिर मैं किसलिये इनके कुटुम्बको निराधार बनाऊँ। किसलिये इतना बखेड़ा? मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप इनको छोड़ दें।'

शारदाके ये वाक्य सुनकर न्यायाधीश तक आश्चर्यमें डूब गये। सब इस नारीको नारायणीके रूपमें देखने लगे। शारदा बहिन अपनी बातपर पक्की रहीं।

अन्तमें ड्राइवरको छोड़ दिया गया। एक नारी-हृदयको संतोष मिला। इस नारायणीको सभीने मन-ही-मन नमस्कार किया।

—मधुकान्तजी भट्ट

(२)

आजके आदर्श संत

आधुनिक युग भोगप्रधान है, किंतु इस भोगप्रधान युगमें भी त्यागका जीवन अपनानेवाले दो-चार महापुरुषोंका अस्तित्व इस ओर संकेत करता है कि सनातन जीवनके मूल्य कभी पूर्णतया लुप्त नहीं होते। फ्रांससे एक ऐसे ही महापुरुषका आगमन इस देशमें हुआ है। कलकत्तेमें अपने एक भाषणके तारतम्यमें श्रीपायरने अपने त्यागमय जीवनके अनुभवोंपर प्रकाश डालते हुए 'चीथड़ा-सम्प्रदाय' की

कहानी जनताके सामने रखी है। श्रीपायर एक धनी पिताके पुत्र थे और उनके पिता एक प्रसिद्ध मिलमालिक थे। केवल उन्नीस वर्षकी आयुमें श्रीपायरने अपने पितासे अपना उत्तराधिकार माँग लिया। पिताने पुत्रके अनुरोधको स्वीकार किया और उनके हिस्सेकी पैतृक सम्पत्ति उन्हें दे दी। श्रीपायरने इस विराट् पैतृक सम्पत्तिको केवल दो घंटोंमें गरीबोंमें बाँट दिया। इसके बाद उन्होंने त्याग और सेवाका जीवन शुरू किया। जीवन-निर्वाहके लिये वे सड़कपर चीथड़े बीनकर उन्हें बेच लेते थे और उदरपोषणके बाद जो कुछ बच रहता था, उसे गरीबोंमें बाँट देते थे। इस कार्यने उन्हें एक नयी प्रेरणा प्रदान की। उन्होंने धीरे-धीरे एक दलकी स्थापना की और उसका नाम रखा 'चीथड़ा-सम्प्रदाय'। इस दलके सदस्य सड़कोंपर चीथड़े बीनकर बेचने लगे और इस प्रकार प्राप्त होनेवाले धनको दरिद्र-नारायणकी सेवामें लगाने लगे। धीरे-धीरे इस आन्दोलनने इतना सुन्दर रूप लिया कि अच्छे-अच्छे लोग इस सेवा-कार्यकी ओर आकृष्ट होने लगे। भारतके लोगोंको सम्भवतः इस बातपर विश्वास करना कठिन होगा कि चीथड़े बीनकर इस दलने फ्रांसमें गरीबोंके लिये पिछले कुछ वर्षोंमें २,२५० सुन्दर मकानोंका निर्माण किया है। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि सद्भावना होती है तो कोई भी कार्य असम्भव नहीं होता। फ्रांसमें इस संतका कितना बड़ा प्रभाव है—इसका एक प्रमाण यह है कि इन्होंने रेडियोपर जनतासे गरीबोंके लिये धन अथवा वस्त्रकी एक अपील की थी। इस अपीलमें उन्होंने एक होटलका पता दिया था, जहाँ उसी दिन उन्हें कुछ दान प्राप्त हुआ था। केवल तीन सप्ताहके अंदर होटल दानके रूपमें आनेवाले पैकेटों तथा रुपयेके लिफाफोंसे भर गया था। इन तीन सप्ताहोंमें दानके रूपमें जो कुछ आया, उसका मूल्य पाँच करोड़ रुपयेके लगभग था। यह छोटी-सी घटना इस बातका एक प्रमाण है कि त्यागी मनुष्यके प्रति जनता आज भी आकर्षित होती है। आवश्यकता केवल इतनी है कि उसके मनमें वस्तुतः लोक-कल्याणकी भावना हो और उसके विचारों तथा आचरणमें वास्तविक पवित्रता हो। इस साधनाके आगे अन्य सारी साधनाएँ हतप्रभ हो जाती हैं। कोई कारण नहीं कि जो प्रयोग फ्रांस-जैसे भोगप्रधान देशमें सफल हुआ, वह भारतमें सफल न हो। यहाँ इस प्रकारके प्रयोगके लिये अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल परिस्थितियाँ हैं। आवश्यकता केवल इतनी ही है कि इस क्षेत्रमें श्रीपायर-जैसे पवित्र और लोकसेवारत व्यक्ति अग्रसर हों।

[प्रेषक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी]

* * *

मनन करने योग्य

मानव-सेवा पूजाका सर्वोत्तम स्वरूप

अनाथ संतानोंकी सेवा

अपने अनाथ-आश्रमको दिखाती हुई वे बोलीं—'देखिये, ये वे अनाथ बच्चे हैं, जो मुझे अस्पतालके कूड़ेके ढेर, शहरकी गंदी बस्तियोंकी नालियों, इधर-उधर छिपे बदबूदार मलबों, नदियोंके किनारे पड़े आखिरी साँस लेते अधमरे अनेक नवजात शिशुरूपमें मिले हैं, जिन्हें आप इस अनाथालय या उसके स्कूलमें पढ़ते हुए देख रहें हैं।' 'इधर आइये!' कहकर वे उस कमरेमें ले गयीं जो छोटेसे अस्पतालका ही एक छोटा रूप था।

वहाँ हमने देखा अनेक नवजात शिशु पशु-पक्षियों-जानवरोंके छोटे-छोटे बच्चोंके रूपमें पाले जा रहे थे। किसीको ग्लूकोज चढ़ाया जा रहा था, किसीको ताकतके इन्जेक्शन देकर जीवित रखे जानेका प्रयास किया जा रहा था। एक डॉक्टर बड़ी सतर्कतासे उन्हें जीवित रखने-हेतु ऑक्सीजन देनेमें लगे थे, कुछ दाइयाँ छोटे शिशुओंकी गंदगी साफ करनेमें लगी थीं। दवाइयोंका भंडार था, छोटे बच्चोंकी प्राथमिक चिकित्साका समस्त सामान, चिकित्साके उपकरण, इन्जेक्शन, बच्चोंका दूध, भोजन, नहलानेका विविध सामान मौजूद था। स्वयं उस अनाथालयकी संचालिका प्रत्येक नवजात शिशुके स्वास्थ्यकी परीक्षा कर रही

थीं, माताकी तरह उनके जीवन-रक्षाके लिये जी-तोड़ परिश्रम कर रही थीं।

हर उम्रके छोटे बच्चे खेल रहे थे। कुछ नर्सें उन्हें खिला रही थीं। भला बताइये, इन असंख्य बच्चोंका क्या अपराध है, जिन्हें जन्म देकर भी अबोध हालतमें हत्या कर दी जाती है या कुत्तों, सियारों, सूअरोंके खानेके लिये गंदी नालियोंमें बहा दिया जाता है?

इसका कारण चाहे जो भी हो—अशिक्षा, गरीबी, अपराधबोध या कुछ और भी। परंतु क्या यह ठीक है? और यदि ठीक नहीं है तो इसपर नियन्त्रण या इसका समाधान तो होना ही चाहिये।

'फिर देशके लिये परिवार-नियोजनका, जनसंख्याको नियन्त्रित करनेका क्या उपाय है?'

'एक विस्तृत शिक्षा-योजनाका विकास जिसमें संतानोत्पादन, विवाह एवं बच्चोंकी शिक्षा भी सम्मिलित हो। जनसंख्या और संतान-उत्पादनके सम्बन्धमें जनताको सचेत करना, अनाथ या लावारिस शिशुओंकी प्राणरक्षा, पालन-पोषणकी सुव्यवस्था एवं आयोजित केन्द्रिय संगठनकी आवश्यकता है।'

'भारतीय माताओं, कुँवारी बालिकाओं, अपढ़ गाँवकी महिलाओंके लिये आप क्या आवश्यक मानती हैं?' मेरे ऐसा पूछनेपर वे गम्भीर हो उठीं। क्रोध, निराशा और चिन्ताके भाव उनके चेहरेपर उभर आये। बोलीं—'माफ कीजिये, यदि मैं यह कहूँ कि भारतमें सबसे बड़ी बाधा अंधविश्वासकी है तो कोई अत्युक्ति न होगी; इसलिये सबसे आवश्यक है उन्हें शिक्षित कर समस्याओंसे जूझनेकी स्थायी शक्ति प्रदान करना। हाँ, जनसंख्या-नियन्त्रणके सम्बन्धमें इतना स्पष्ट-रूपसे कहा जा सकता है कि गर्भ-निरोधके सम्बन्धमें ब्रह्मचर्य ही सर्वोत्तम उपाय हो सकता है। भ्रूणहत्या या शिशु-हत्या, नवजात शिशुओंकी हिंसा पाप है—अपराध है, कानूनका दण्डनीय अपराध है।'

विधवा बहिनोंकी सेवा

यह वृन्दावन है! भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाभूमि! हमारा सर्वाधिक पवित्र तीर्थ—धार्मिक नगर!

मैं भगवद्भजनाश्रमके बाहर खड़ा देख रहा हूँ। सफेद वस्त्र पहने, ढलती आयु, जीर्ण-शीर्ण चेहरें, गमगीन मुखमुद्रा, हाथमें मालाएँ लिये मानव-कंकालोंकी एक लंबी पंक्ति भिक्षापात्र लिये भागती चली जा रही है—कौन हैं ये महिलाएँ?

'देर हुई, तो क्या होगा?' उसमेंसे एक महिला बोली—'भाई, भूखे ही रहना पड़ेगा। ये लोग दया करके दानस्वरूप भोजनकी व्यवस्था कर देते हैं। सुबह-शाम भजन-कीर्तन कराते हैं। किसी तरह अपना दुःख-दर्द भुलाकर बुढ़ापा काट रही हूँ—अब तो यमुना मैया समेट लें, यही प्रार्थना करती रहती हूँ।'

'आप यों निराश्रित बुढ़ापा काट रही हैं? क्या आपका कोई पुत्र या सम्बन्धी सेवा-सहायता-सुरक्षाके लिये नहीं है?'

'मैं बहुत दिन पहले बंगालसे यहाँ आयी थी। वहाँ विधवा होते ही आखिरी समय व्यतीत करनेके लिये मोक्ष-प्राप्तिकी कामनासे यहाँ भेजते हैं। पहले तो खर्चेके पैसे भी भेजते थे। अब कोई कुछ नहीं भेजता—ये लोग दया करके दानस्वरूप दो समयके भोजनका प्रबन्ध कर देते हैं! मुझ-जैसी यहाँ लगभग दो हजार विधवाएँ हैं—कुछ तो कम आयुकी हैं—उनके कुचक्र चलते रहते हैं। बेटा, यह भूख सब बुरे काम करवाती है।'

यह है हमारे देशमें आज भी विधवाओंकी दुर्दशा। हम नारीको पूज्या मानते हैं। माताके रूपमें उसकी वन्दना करते हैं, पर दैनिक व्यावहारिक जीवनमें आज भी महिलाएँ तिरस्कृत, उपेक्षित, अशिक्षित हैं। रोजी-रोटी अर्जित करने योग्य न होनेके कारण उन्हें वैधव्य जीवनमें बड़े संकटका सामना करना पड़ता है।

मानव-उद्धार अथवा नारी-सेवाके रूपमें हमारा यह नैतिक एवं धार्मिक कर्तव्य है कि हम ऐसी बेसहारा, वृद्ध, बीमार, लाचार, अशक्त विधवाओंकी सेवा-सहायताका दान करें। हर प्रकारसे उनकी आर्थिक उन्नतिकी योजनाएँ बनायें, उन्हें घरेलू उद्योग-धंधे सिखलाएँ, तभी इनका कल्याण सम्भव है। यह जीवन परोपकारके लिये है। अतः याद रखिये—दयाके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है—**'न धर्मो दयासमः।'**

लावारिस लाशोंका अन्तिम संस्कार

'यह ठेलेमें मानव-शवको कौन ले जा रहा है? अति

साधारण वस्त्र, मैला-सा पाजामा, फटे जूते हैं; परंतु दीन-दुनियासे बेख़बर श्मशानकी ओर लाश लेकर मस्त चला जा रहा है? महाराज! आप यह क्या कर रहे हैं? यह तो बड़ा घृणित कर्म है?

'जी, यह लावारिस लाश है। अस्पतालमें प्रत्येक लाशका दाहकर्म करनेके लिये मात्र छोटी-सी रकम दी जाती है। पेशेवर लोग इतनी कम मजदूरीपर लावारिस लाशोंका दाहकर्म नहीं करते। लाशें पड़ी सड़ा करती हैं, बदबू मारती हैं, मक्खियाँ भिनभिनाती हैं; परंतु कोई भी कम मजदूरी लेकर इनका अन्तिम संस्कार नहीं करना चाहता। मैंने धर्मका उपयोग इन लावारिस लाशोंको ठिकाने लगानेमें किया है।'

'भला यह घिनौना चांडालोंका काम आपने क्यों शुरू किया?' इस सवालसे वे चिन्तित-दु:खी हो व्यथित वाणीसे बोले—

'जी, मैं खुद बड़ा गरीब हूँ। बुरे दिन आ पड़े थे। सब क्षेत्रमें बीमारी फैली थी। मेरी वृद्धा माँ बीमार पड़ी, फिर मर गयी। मुझ गरीबकी माँका अन्तिम संस्कार करनेको कोई नहीं आया। ठेलेमें डाल किसी तरह दाहकर्म किया। तभी संकल्प कर लिया था कि मानव-सेवाका सबसे उत्तम धार्मिक रूप मेरे लिये इन लावारिस लाशोंको श्मशान पहुँचाना, अन्तिम संस्कार करना होगा। रोजगारसे जो भी समय बचता है, उसमें यही करता हूँ। जब कमी पड़ती है तो अपने पाससे अन्तिम संस्कारोंमें पैसा खर्च करता हूँ। अब तो यही सेवा करते-करते बूढ़ा हो चला हूँ। यही मेरा पूजन है! इसीसे शान्ति मिलती है कि मैंने समाजकी सेवा की है।'

फिर आह छोड़ते हुए बोले—'पता नहीं, मुझ गरीबकी शवको कौन ठिकाने लगायेगा। मरनेके बाद क्या होगा? कौन जाने?'

'नहीं, यों निराश न हों। अब भी आप-जैसे सेवा-समर्पित भक्त हैं, जो आपकी तरह मानव-सेवाको महत्त्व देते हैं। अत: निरन्तर कर्म (सेवा) करते रहनेमें ही अपना अधिकार समझना चाहिये। योगक्षेमका भार तो भगवान्ने ही ले रखा है। इसीलिये भगवान् कृष्णने गीतामें अर्जुनको 'कर्मयोग'का उपदेश दिया है। समाज तथा मानव-जीवनकी रात-दिनके सेवारूपी कर्मसे अपना सम्बन्ध जोड़ते हुए मुक्तिका अनुभव करनेका महान् पाठ पढ़ाया है।'

अब वे पूर्णत: आश्वस्त होते हुए अपने कार्यमें तत्पर हो गये थे।

श्मशानमें मुर्दोंकी आँखोंकी तलाशमें जुटा एक डॉक्टर

मेहसाणा जिलेके सिद्धपुरमें सरस्वती नदीके किनारे स्थित श्मशानघाट एक डॉक्टरकी कर्मभूमि है। वे प्रतिदिन सूर्योदयके पूर्व ही चिकित्सा-यन्त्रोंके साथ श्मशानमें पहुँच जाते हैं और जलाये जानेके लिये लायी जानेवाली लाशोंसे मुर्दोंकी आँखें, मृतकके परिवारवालोंकी सहमतिसे निकालते हैं, जो किसी अंधेके काम आ सकती हैं। ६७ वर्षीय इस डॉक्टरको किसी प्रकारका रिकार्ड बनानेकी तृष्णा नहीं है, परंतु अबतक वे तीन हजार जोड़ी आँखें ढोलका-स्थित 'भारतीय रेडक्रास सोसाइटी'के माध्यमसे विभिन्न आँखोंके संग्रह-केन्द्रों (Eye Banks)-में भिजवा चुके हैं।

वे डॉक्टर बताते हैं कि मृतकके परिवारवालोंको आँखें दान करनेके लिये सहमत करना सहज नहीं है। उन्होंने बताया कि लगभग आधे लोग मृतककी आँखोंका दान करनेसे इनकार कर देते हैं। ऐसा पुरानी मान्यताओंके कारण है। लोगोंका मानना है कि यदि मृतककी आँखें निकाल ली गयीं तो वह अगले जन्ममें अंधा पैदा होगा। डॉक्टरने यह अभियान १९८४ में अपने २७ वर्षीय युवा पुत्रके एक सड़क-दुर्घटनामें मारे जानेके बाद शुरू किया था। उनका पुत्र भी डॉक्टर था और उसकी आँखोंके दानमें गहरी दिलचस्पी थी। चालीस वर्षसे सिद्धपुरमें डॉक्टरी करनेवाले इस डॉक्टरको लोग काफी सम्मान देते हैं, परंतु अभी भी नेत्र-दान करनेकी बात करनेपर कई लोगोंमें 'जाइये-जाइये' जैसे अपमानके शब्द सुनने पड़ते हैं, जिससे वे कभी भी निराश नहीं हुए। सही अर्थोंमें मानव-सेवाका सर्वोत्तम कर्तव्य पूरा कर रहे डॉक्टरको जाननेवाले बताते हैं कि १९९३ में उन्होंने अपने छोटे बेटेके विवाहके कार्यक्रमको बीचमें छोड़ एक आपातकालीन ऑपरेशन किया था। सिद्धपुरके नागरिक सही अर्थोंमें उन्हें 'आँख खोजनेवाला मसीहा' कहते हैं। मानव-सेवाका एक आदर्श

रूप इन्होंने अपने सत्कर्मसे प्रत्यक्ष कर दिखाया है। यह है धर्मका व्यावहारिक उपयोग। काश, हम भी धर्मको अपने दैनिक व्यावहारिक जीवनमें उतारें!

बीमार मुसाफिरोंकी सेवा-चिकित्सा

मैं बंबई-जैसे महानगरके रेलवे स्टेशनपर घूम रहा था। देखता हूँ स्टेशनके प्लेटफार्मपर पड़े हुए बीमार, अपंग, बेसहारा, अनजान, अशक्त मुसाफिर गंदे वस्त्रोंमें असहाय हालतमें पड़े किसीके सहारेकी आशा लगाये हैं और अनेक स्वयंसेवक ऐसे दीन-हीन अनाथ वृद्ध बीमार अनजान मरीजोंको ले जा रहे हैं। मैं आश्चर्यसे पूछता हूँ—'इन आखिरी साँस लेते हुए मानव-लाश-जैसे व्यक्तियोंका आप क्या करेंगे? ये तो बेकार हो चुके हैं?'

'जी, हम मदर टेरेसाके संस्थानके स्वयंसेवक हैं। यह संस्था मानव-सेवाके लिये प्रायः हर महानगरमें अपने संस्थान खोले हुए है। दुनियामें—हमारे समाजमें जिनके कोई सहायक-संरक्षक, सेवा-शुश्रूषा-चिकित्सा करनेवाले नहीं हैं, शहरके भीड़-भरे स्थानोंसे ऐसे लोगोंको हम एकत्र कर अपने आश्रममें ले जाते हैं और इन्हें सेवाद्वारा स्वस्थ हालतमें ले आते हैं।'

किंतु इनमेंसे ऐसे भी निर्बल रोगी हैं, जिनके जीवित बचनेकी कोई आशा नहीं है। हम देखते हैं कि चाहे जितनी भी चिकित्सा की जाय, वे तो निश्चितरूपसे मरेंगे ही। ऐसे अकेले मरनेवाले रोगियोंको अपने सेवाकेन्द्रमें ले जाकर आप क्या करेंगे?

'हम उन्हें जीवनकी आखिरी साँसतक अकेले होनेका अहसास नहीं होने देते। हम उन्हें बार-बार विश्वास दिलाते हैं कि उनका भी समाजमें कोई रखवाला, संरक्षक, निकट-सम्बन्धी है। साथ देनेवाला है। ऐसा करनेसे उन्हें मृत्युभय नहीं होता। निराश, क्रुद्ध अथवा परिवार-समाजसे असंतुष्ट रहनेसे उनके गुप्त मनपर जो मानसिक हीनताका भाव रहता है, उससे नाराज होनेके बजाय हम उनके प्रति प्रेम-सहानुभूति और सहनशीलता दिखाते हैं। इस सहृदयतासे वे आखिरी समयतक यह मानते हैं कि समाजमें उनका कोई है। वे अकेले नहीं हैं। मदर टेरेसाका यह सेवाकार्य बहुत दिनसे यों ही चला आ रहा है।'

'लेकिन मदर टेरेसा तो ईसाई हैं। उन्हें अन्य धर्मोंके अनाथ-बीमार व्यक्तियोंसे भला क्या सरोकार है?'

'सेवामें धर्म गौण है। हम हर एकको एक व्यक्ति—मानव मानते हैं। आदमी चाहे किसी धर्म-सम्प्रदायका हो, आखिर है तो वह मानव ही। बस मानव मानकर ही हम सबकी सेवा तन, मन और धनसे करते हैं। ऐसी परिस्थितिमें धर्मकी बात तो उससे पूछते तक नहीं। हमें तो मानवताकी सेवा ही करनी है। रूढियोंका पालन भय उत्पन्न करता है। अज्ञात चेतनामें दबे हुए मृत्यु-भयके कारण ही ज्यादातर मरीज दुःखी रहते हैं। यह भय हम दूर करते हैं।'

मदर टेरेसाका यह सेवाकार्य मानवताकी सेवाका एक उत्कृष्ट उदाहरण है। निःस्वार्थ-भावसे दीन-हीन व्यक्तियोंपर दया करना, सेवाके लिये अपना सब कुछ न्योछावर कर देना ही धर्म है। मनुष्य चाहे जिस किसी स्थितिमें हो, किसी भी अवस्थामें क्यों न हो, उसे पीड़ित मानवताकी कुछ-न-कुछ सेवा करनी ही चाहिये। धार्मिक सामाजिक सेवाएँ करना मनुष्यका परम कर्तव्य है। बुरी हालतमें भी यथाशक्ति जरूरतमंद लोगोंको लाभ पहुँचाना और समाजके उत्थानके लिये कार्य करना हर एकका कर्तव्य है। यही धर्मका दैनिक और व्यावहारिक उपयोग है।

धर्म एक जीवित बल है। आजके स्वार्थों, भ्रष्टाचारों, हिंसा और उच्छृंखलताभरे युगमें धर्मका व्यावहारिक उपयोग ही हमारा सहायक बन सकता है। आर्योचित नैतिक आचरण ही संसारको सुखी और शान्त बना सकता है। इसीके उपयोगसे समाजके क्रियाकलाप ठीक किये जा सकते हैं। खेद है कि हम धर्मके बाह्याडम्बरोंतक ही सीमित रहते हैं, उसके मूलरूप परोपकारको नहीं अपनाते—

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः
परोपकाराय सतां विभूतयः॥

अर्थात् नदियाँ अपना जल स्वयं नहीं पीतीं, वृक्ष स्वयं अपने फल नहीं खाते, मेघ स्वयं अपने लिये पानी नहीं बरसाते। सज्जनोंका सब कुछ दूसरोंके उपकारके लिये ही होता है।

—डॉ॰ श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰

* * *

॥श्रीहरिः॥

‘कल्याण’ के अबतक प्रकाशित लोकप्रिय विशेषाङ्क

(अट्ठाईसका पुनर्मुद्रण सम्पन्न; कुछ और पुनर्मुद्रणकी प्रक्रियामें)

[‘कल्याण’ के अबतक प्रकाशित विशेषाङ्कोंकी कुल संख्या तथा उनकी उपलब्धता-विषयक जानकारीके लिये अनेक प्रेमी सज्जनों एवं जिज्ञासु महानुभावोंके पत्र प्रायः आते ही रहते हैं। अतएव सबके सुविधार्थ अबतक प्रकाशित (कुल=७१) विशेषाङ्कोंकी यह संक्षिप्त सूची यहाँ प्रस्तुत है। जो विशेषाङ्क पुनर्मुद्रित हो चुके हैं उनके आगे उनका वर्तमान मूल्य (डाकखर्च छोड़कर) अङ्कित है; कुछ और पुनर्मुद्रणकी प्रक्रियामें हैं जिनकी उपलब्धता-विषयक जानकारी ‘कल्याण’के प्रेमी जनोंको समय-समयपर आगामी अङ्कोंसे मिलती रहेगी।]

कल्याण-वर्ष १. केवल साधारण अङ्क (सन् १९२७ ई०) प्रथम वर्षमें विशेषाङ्क प्रकाशित नहीं हुआ।

कल्याण-वर्ष २. श्रीभगवन्नामाङ्क (सन् १९२८ ई०) **‘यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि’**—श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीभगवान्‌के इस उद्घोषके अनुसार इस विशेषाङ्कमें भगवन्नामकी महिमा तथा भगवन्नामजपकी महत्तापर प्रेरणादायी प्रचुर सामग्री है।

कल्याण-वर्ष ३. भक्ताङ्क (सन् १९२९ ई०) भगवद्भक्तोंकी महिमाको उजागर करनेवाली भगवान्‌के प्रिय भक्तों एवं संत-महात्माओंके उज्ज्वल जीवन-चरित्रों और सरस तथा प्रेरक भक्त-गाथाओंका यह अमूल्य संग्रह है।

कल्याण-वर्ष ४. श्रीमद्भगवद्गीताङ्क (सन् १९३० ई०) श्रीमद्भगवद्गीतापर इसकी मार्ग-दर्शक सामग्री और गीताविषयक तात्त्विक विवेचन उपयोगी है।

कल्याण-वर्ष ५. रामायणाङ्क (सन् १९३१ ई०) श्रीमद्वाल्मीकिरामायणसहित, श्रीरामचरितमानसादि एवं अन्यान्य रामायणोंपर आधारित प्रचुर सामग्रीके अतिरिक्त इसमें श्रीरामायणके आदर्श चरित्रों एवं महान् पात्रोंका प्रेरणादायी दिग्दर्शन है।

कल्याण-वर्ष ६. श्रीकृष्णाङ्क (सन् १९३२ ई०) योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके बहुआयामी लोकोत्तर विभिन्न चरित्रोंपर तात्त्विक प्रकाश एवं **‘कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्’**—श्रीकृष्णकी भगवत्ताके विषयमें शास्त्रीय विवेचनके अतिरिक्त इसमें श्रीकृष्णके लीलाविहारी-स्वरूपकी सार्थक व्याख्या—इसकी अध्ययनीय उपयोगी विषय-वस्तु है। इसके साथ ही इसमें कुछ सुप्रसिद्ध कृष्ण-भक्तोंके सरस, प्रेरक चरित्र भी हैं।

कल्याण-वर्ष ७. ईश्वराङ्क (सन् १९३३ ई०) ‘परमात्मतत्त्व’—परमेश्वर अथवा ईश्वरतत्त्वपर मनीषियोंके महत्त्वपूर्ण विचारोंका यह विस्तृत संग्रह है। इसके अतिरिक्त ईश्वर-भक्तों, आस्तिकों एवं भगवद्विश्वासी, ईश्वरोन्मुख साधकोंके जीवन-चरित्र इसके मुख्य आकर्षण हैं।

कल्याण-वर्ष ८. शिवाङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९३४ ई०) इसमें शिव-तत्त्व तथा शिव-महिमाके विशद विवेचनसहित, शिवार्चन, व्रत, पूजन एवं उपासनापर तात्त्विक ज्ञानप्रद मार्ग-दर्शन है। इसके अतिरिक्त द्वादश-ज्योतिर्लिङ्गोंके सचित्र परिचयसहित, इसमें भारत तथा विश्वके प्रमुख शैव तीर्थों तथा मन्दिरोंका प्रामाणिक रोचक वर्णन भी महत्त्वपूर्ण (पठनीय) विषय हैं। मूल्य रु० ८० *(पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)*

कल्याण-वर्ष ९. शक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९३५ ई०) परब्रह्म परमात्माके आद्याशक्ति-स्वरूपके तात्त्विक विवेचनके साथ इसमें महादेवीकी लीला-कथाएँ एवं सुप्रसिद्ध शाक्त-भक्तों और साधकोंके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र एवं उनकी उपासना-पद्धतिपर इसमें उत्कृष्ट उपयोगी सामग्री उपलब्ध है। भारतके सुप्रसिद्ध शक्तिपीठों तथा प्राचीन देवी-मन्दिरोंका सचित्र दिग्दर्शन भी इसकी उल्लेखनीय विषय-वस्तुके महत्त्वपूर्ण आकर्षण हैं। मूल्य रु० ७० *(पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)*

कल्याण-वर्ष १०. योगाङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९३६ ई०) इस विशेषाङ्कमें योगकी व्याख्या, योगका स्वरूप-परिचय, योगके प्रकार और प्रणालियोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। योगके अङ्ग-उपाङ्गोंपर इसमें उपयोगी चर्चाके साथ, अनेक योग-सिद्ध, महात्माओं तथा योग-साधकोंके जीवन-चरित्र एवं विभिन्न योग-साधना-पद्धतियोंका भी रोचक, ज्ञानप्रद वर्णन है। सारांशतः इस विशेषाङ्कमें योग-जैसे कठिन और दुरूह विषयको भी रोचक-वर्णन-शैलीद्वारा सर्वसाधारण जनोंके लिये सरल बना दिया गया है। अतः योगके कल्याणकारी प्रभावों और योग-सिद्धियोंके चमत्कारी परिणामोंकी जानकारीद्वारा जन-जनको ‘योग’ की ओर आकृष्टकर महान् ‘योग-विद्या’के सर्वमान्य महत्त्वसे परिचय करानेका यह विशेषाङ्क सार्थक उपक्रम है। मूल्य रु० ६० *(पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)*

[क्रमशः]

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३

प्र० ति० २०-६-९८

LICENCE NO.-3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT.

नवीन प्रकाशन

१. **श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (अंग्रेजी दो खण्डोंमें) कोड-नं० 452, 453**—श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणका अंग्रेजी संस्करण पूर्वमें तीन खण्डोंमें प्रकाशित था। अब इसे फोटो टाइप सेटिंगसे सेट कराकर दो खण्डोंमें प्रकाशित किया गया है। मूल्य रु० २२०.००, डाकखर्च (रजिस्ट्रीसे) रु० ३५.००

२. **एकनाथी भागवत (मराठी भाषामें) कोड-नं० 853**—एकनाथी भागवत श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धपर महाराष्ट्रके प्रसिद्ध संत श्रीएकनाथजी महाराजकी बृहत् टीका है। इस ग्रन्थमें उद्धवगीता, अवधूतोपाख्यान, राजा निमि और नौ योगीश्वर-संवाद आदिकी भक्तिपरक मनोहर व्याख्या की गयी है। महाराष्ट्रमें इस ग्रन्थका विशेष आदर है तथा घर-घरमें इसका नित्य पारायण किया जाता है। महाराष्ट्रके श्रद्धालु भक्तोंके आग्रहको ध्यानमें रखकर प्रथम बार इस ग्रन्थका प्रकाशन 'गीताप्रेस, गोरखपुर' से किया गया है। आकर्षक लेमिनेटेड रंगीन चित्रावरण-सहित, सजिल्द, पृष्ठ-संख्या ७२०, ग्रन्थाकार मूल्य रु० ७५.००, डाकखर्च (रजिस्ट्रीसे) रु० २२.००

३. **ज्ञानेश्वरी मूल (मराठी) [मझला आकार] कोड-नं० 859**—'गीताप्रेस, गोरखपुर' से प्रकाशित संत ज्ञानेश्वरकी अमरकृति ज्ञानेश्वरी गूढार्थ-दीपिका ग्रन्थाकार तथा ज्ञानेश्वरी मूल गुटका (मराठी)-की अत्यधिक माँगके बाद सम्प्रति ज्ञानेश्वरी मूल (मझला आकार) भी अब प्रकाशित किया गया है। मूल्य रु० ३०.००, डाकखर्च (रजिस्ट्रीसे) रु० १८.००

४. **अष्टविनायक (मराठी) कोड-नं० 857**—भगवान् श्रीगणेशजीका स्मरण-पूजन और दर्शनसे समस्त विघ्नोंका निवारण होता है और सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। प्रत्येक माङ्गलिक कार्योंमें प्रथम पूजाके अधिकारी श्रीगणेशजीकी पुराणोंमें अनेक कथाएँ मिलती हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें मुद्गलपुराणके आधारपर श्रीगणेशजीके आठ अवतारोंकी लीलाकथाओंका सरल भाषामें बड़ा ही मनोहर चित्रण किया गया है। जिनके नाम क्रमशः वक्रतुण्ड, एकदन्त तथा धूम्रवर्ण आदि हैं। प्रत्येक कथाके साथ श्रीगणेशजीके विभिन्न वाहनोंपर सवार आकर्षक उपासना-योग्य चित्र भी है। पुस्तकके अन्तमें नित्य पाठ-हेतु संकट-नाशन-गणेश-स्तोत्र, नित्य पठनीय मङ्गल श्लोक तथा गणेशजीकी आरती भी दी गयी है। मूल्य रु० ६.००, डाकखर्च रु० २.००

५. **नवदुर्गा (उड़िया) कोड-नं० 863**—सृष्टिकी आदिशक्ति माँ दुर्गाके नवों रूपोंका अलग-अलग सम्यक् परिचय देनेवाली इस पुस्तकमें आर्ट पेपरपर आकर्षक रंगीन चित्र, उपासना-विधि और इससे प्राप्त होनेवाले फलोंका अत्यन्त सरल ढंगसे कथारूपमें वर्णन है। (हिन्दी एवं असमियाँ भाषामें भी उपलब्ध है)। मूल्य रु० ६.००, डाकखर्च रु० २.००

६. **भक्तराज हनुमान् (उड़िया) कोड-नं० 854**—इस पुस्तकमें भक्तप्रवर श्रीहनुमान्जीके अनुकरणीय जीवन-चरित्रके साथ-साथ श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्मरामायण, श्रीरामचरितमानस, पद्मपुराण एवं ब्रह्माण्डपुराण आदिमें उद्धृत अनेक प्रेरक प्रसंगोंका संकलन है। अब हिन्दीके अतिरिक्त उड़ियामें भी उपलब्ध है। मूल्य रु० ३.००, डाकखर्च रु० १.००

७. **श्रीदुर्गाचालीसा (कोड-नं० 851)** 'श्रीदुर्गाचालीसा' भगवती दुर्गाकी आराधनाका सरल एवं उत्तम साधन माना जाता है। पाठकोंकी विशेष माँगपर प्रकाशित इस पुस्तकमें श्रीदुर्गाचालीसाके अतिरिक्त श्रीविन्ध्येश्वरीचालीसा, विन्ध्येश्वरीस्तोत्र, अम्बाजी तथा श्रीदेवीजीकी आरती भी है। पाकेट-साइजमें मूल्य रु० १.००, डाकखर्च रु० १.००

शीघ्र प्रकाश्य

सुन्दरकाण्ड मूल, लघु आकार (कोड-नं० 858)—यह पुस्तक हनुमानचालीसा, संकटमोचन, हनुमानाष्टक तथा भगवान् श्रीजानकीनाथ, रामायण और हनुमान्जीकी आरती एवं किष्किन्धाकाण्डके अन्तिम दोहेके साथ है। मूल्य रु० २.००, डाकखर्च रु० १.००

हरीपाठ (मराठी) कोड-नं० 855—महाराष्ट्रके घर-घरमें नित्य पाठके लिये एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक। मूल्य रु० २.००, डाकखर्च रु० १.००

हनुमानचालीसा (उड़िया) कोड-नं० 856—हिन्दी, तमिल, बँगला, तेलगू, गुजराती एवं कन्नड़के बाद प्रथम बार उड़िया संस्करण भी। मूल्य रु० १.००, डाकखर्च रु० १.००

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**—२७३००५

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

LIBRARY
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARDWAR

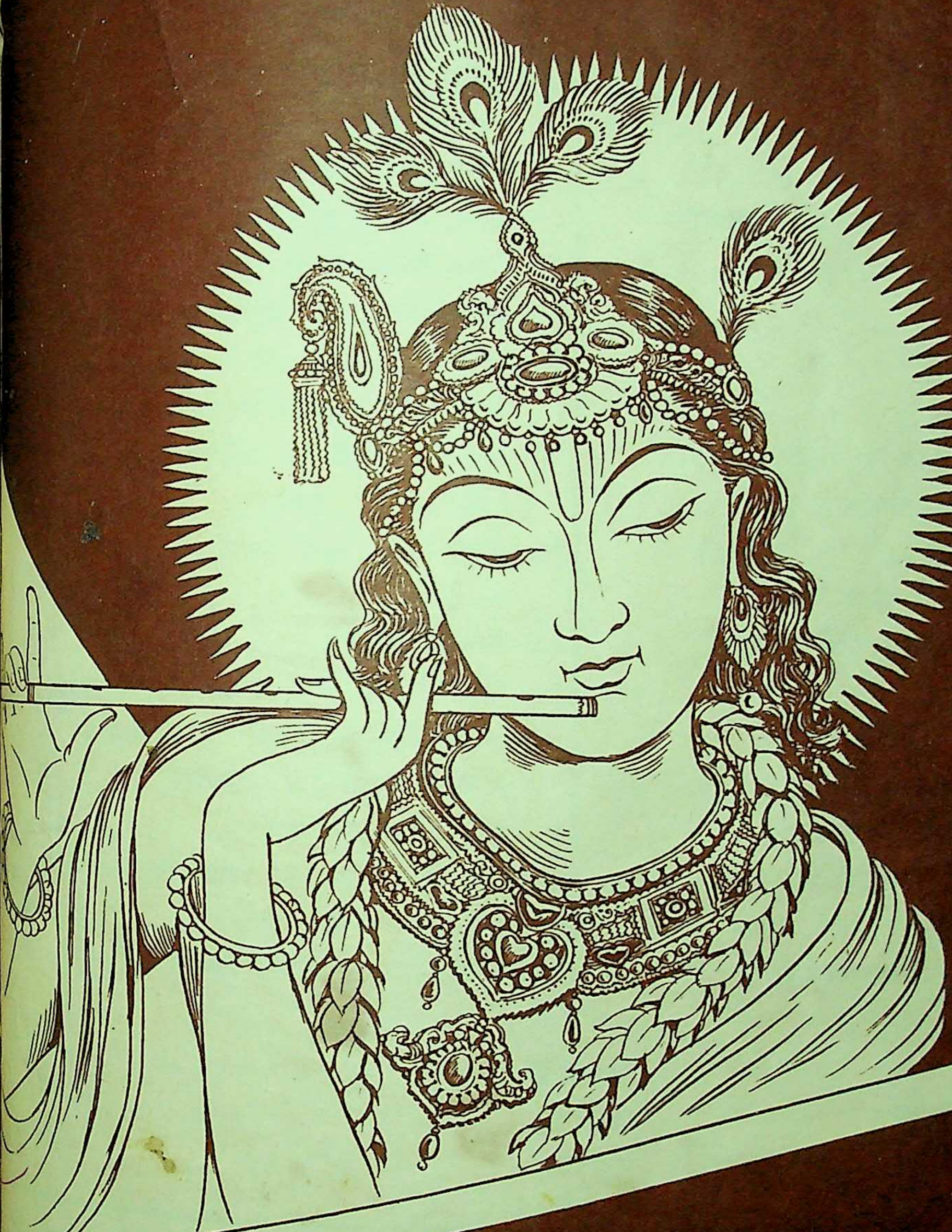

कल्याण

वर्ष ७२

संख्या ८

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,३५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, अगस्त १९९८ ई०

विषय पृष्ठ-संख्या

१-श्रीराधारानीकी चरण-वन्दना ७०१
२-कल्याण (शिव) ७०२
३-मानव-जीवनकी सफलताका उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ७०३
४-दान दो [कविता] ७०९
५-राम-नाम तारक मन्त्र है (श्रीहिमांशुशेखरजी) ७१०
६-महापापीके उद्धारका परम साधन (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ७१२
७-धर्मशास्त्र ही एकमात्र सच्चे मार्ग-प्रदर्शक हैं (पं० श्रीदेवेन्द्रकुमारजी पाठक 'अचल', रामायणी, साहित्येन्दुशेखर, साहित्यप्रभाकर, आयुर्वेद-विशारद) ७१३
८-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ७१५
९-साधक-प्राण-संजीवनी (गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज) ७१७
१०-एक पलके सत्संगसे अलौकिक आनन्द (प्रभु)-की प्राप्ति (श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति) ..७१९
११-प्रारब्धका खेल—हँसके खेल या रोके झेल (श्रीसुभाषजी लखोटिया) ७२४
१२-प्रभुके अवतारोंकी लीला (डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता) ७२५
१३-श्राद्ध-समीक्षा (पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र) ७२७
१४-ग्रामोत्थानसे सम्पूर्ण क्रान्ति (श्रीजगदीशचन्द्रजी पन्त) [प्रेषक—श्रीलक्ष्मीनारायणजी मोदी] ७३४
१५-शाकाहार—मधुमेहकी सर्वोत्तम औषधि (श्रीपन्नालालजी मुन्धड़ा) ७३७
१६-अमृत-बिन्दु (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ७३९
१७-साधनोपयोगी पत्र ७४०
१८-पशु-चर्म तथा सींगों आदिके मिश्रणसे निर्मित जेलेटीन् डालकर बनायी गयी आइसक्रीमसे सावधान (सुश्री पद्मा अग्रवाल) ७४२
१९-पढ़ो, समझो और करो ७४३
२०-मनन करने योग्य (डॉ श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्०डी०) ७४६
२१-भगवान्‌की सहज कृपामें विश्वास करो ७४८

~~~

चित्र-सूची

१-मुरलीधर भगवान् श्रीकृष्ण (इकरंगा) आवरण-पृष्ठ
२-सिंहासनासीन श्रीराधाजी (रंगीन) मुख-पृष्ठ

~~~

इस अङ्कका मूल्य ४ रु०
विदेशमें—US$0.40
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ८० रु०
(सजिल्द ९० रु०)
विदेशमें—US$11

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

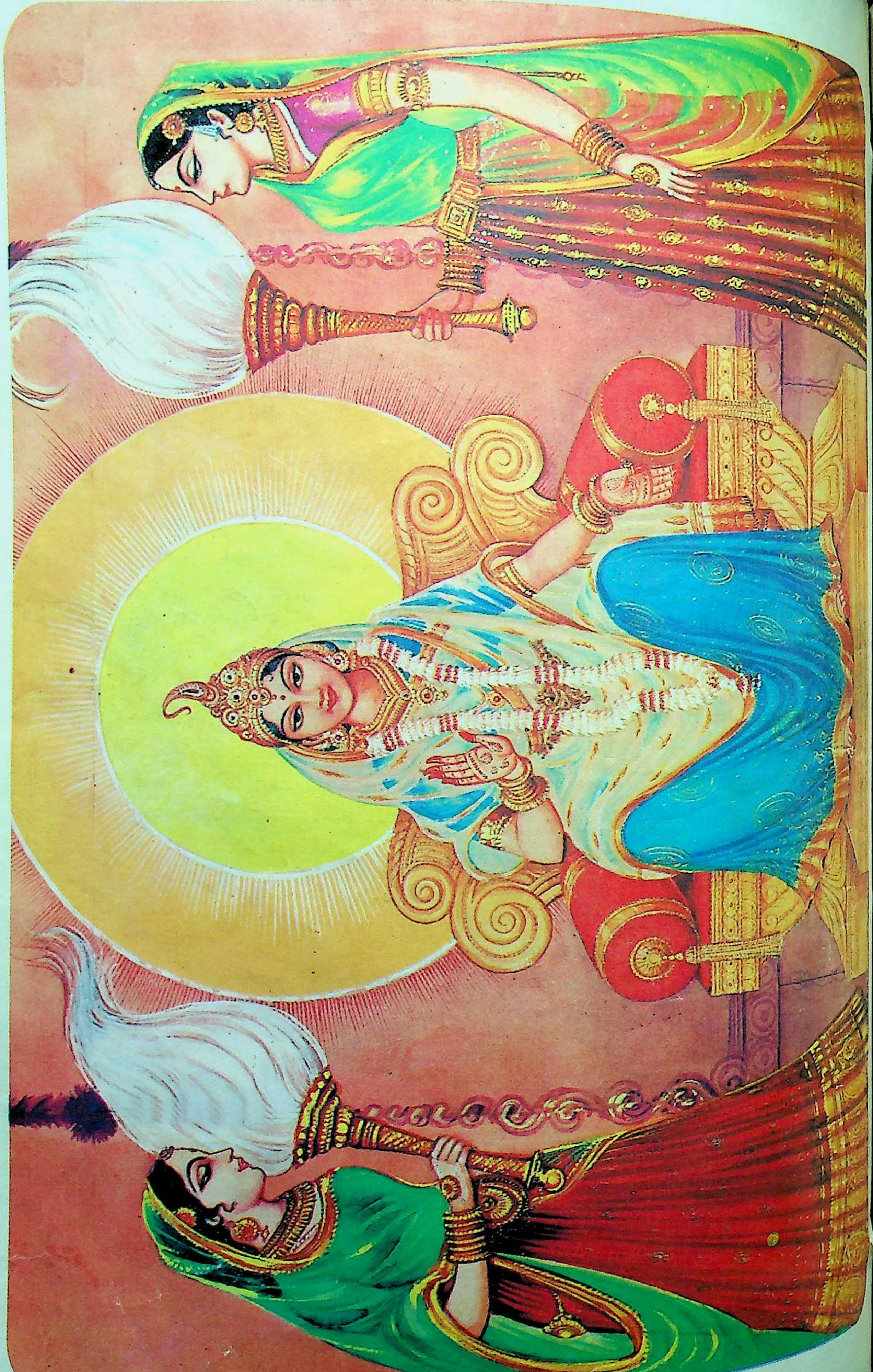

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

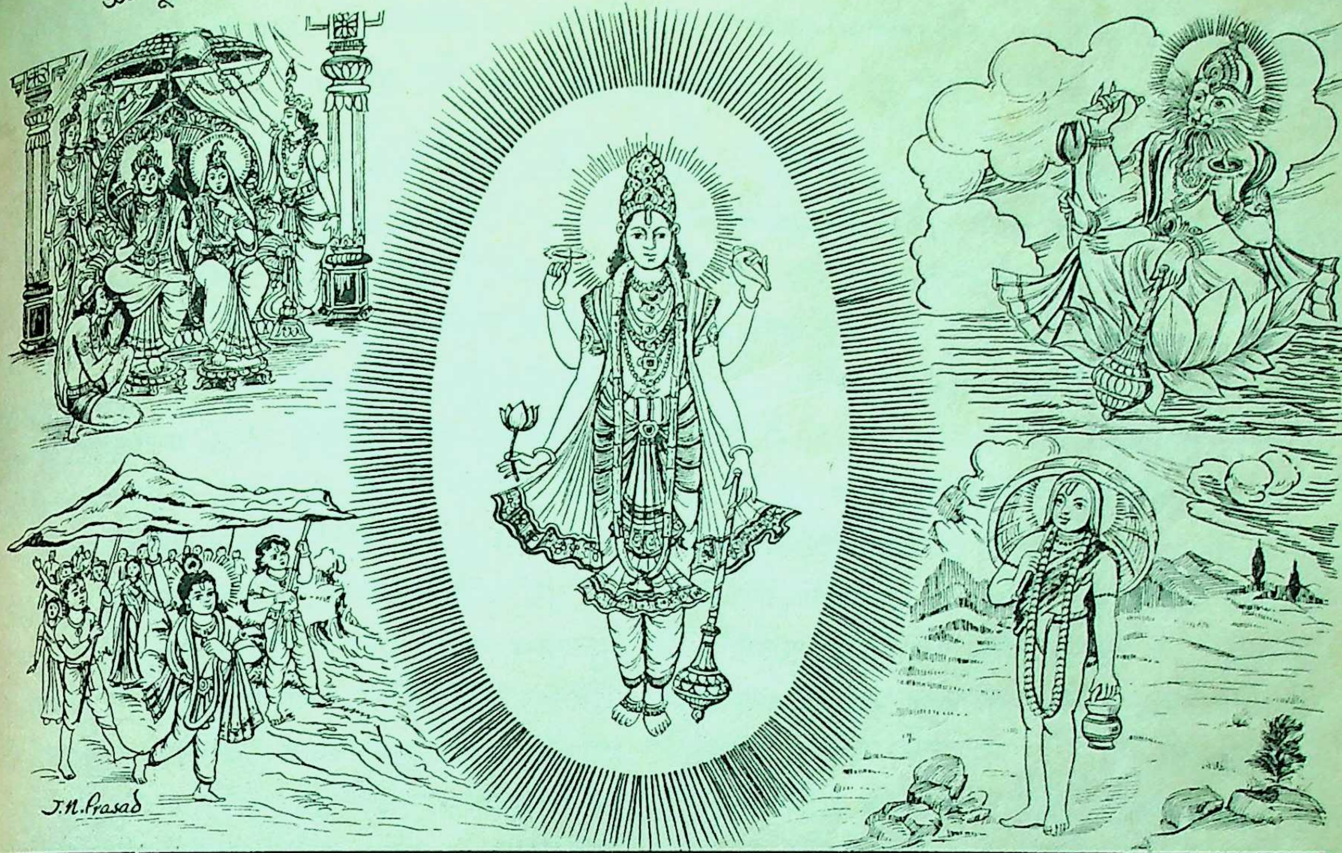

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

वर्ष ७२ गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, अगस्त १९९८ ई० संख्या ८ पूर्ण संख्या ८६१

श्रीराधारानीकी चरण-वन्दना

श्रीराधारानी-चरन बंदौं बारंबार।
जिन के कृपा-कटाच्छ तें रीझैं नंदकुमार॥
जिन के पद-रज-परस तें स्याम होयँ बेभान।
बंदौं तिन पद-रज-कननि मधुर रसनि के खान॥
जिन के दरसन हेतु नित बिकल रहत घनस्याम।
तिन चरननि में बसै मन मेरौ आठौं जाम॥
जिन पद-पंकज पर मधुप मोहन-दृग मँड़रात।
तिन की नित झाँकी करन मेरौ मन. ललचात॥
'रा' अच्छर कौं सुनत ही मोहन होत बिभोर।
बसै निरंतर नाम सो 'राधा' नित मन मोर॥

(पद-रत्नाकर)

कल्याण

पापको छोटा समझकर उससे कभी बेखबर न रहो; याद रखो, आगकी जरा-सी चिनगारी बड़े भारी शहरको जला देती है, एक छोटा-सा बीज बड़े भारी जंगलका निर्माण कर सकता है। यह मत समझो कि काम-क्रोध-लोभका क्षणिक आवेश हमारा क्या बिगाड़ सकेगा, इनको समूल नष्ट करनेका सतत प्रयत्न करते रहो। असावधानी विनाशको बहुत शीघ्र बुला लाती है; सचेत रहो, सावधान रहो, जीवन-महलके किसी भी दरवाजेसे काम-क्रोध-रूपी किसी भी चोरको अंदर न घुसने दो और सावधानीके साथ, जो पहले घुसे बैठे हों, उन्हें दृढ़ता और शूरताके साथ निकालनेकी प्राणपणसे चेष्टा करते रहो, सावधानी ही साधना है।

पापोंके सरदार राग-द्वेष हैं और इनका राजा है अज्ञानजनित अहंभाव, उसे सिंहासनसे उतारकर भगवान्‌का गुलाम बना दो और सिंहासनपर सदाके लिये भगवान्‌को बिठा दो, फिर ये गुलाम-के-गुलाम दोनों राग-द्वेष सीधे हो जायँगे और राजा—भगवान्‌के अनुकूल ही बरतेंगे। द्वेष उन वृत्तियों या व्यापारोंसे लड़ेगा जो भगवान्‌के विरुद्ध होंगे और राग उनसे प्रेम करेगा जो भगवान्‌के अनुकूल होंगे। 'अहं'-का साथी एक और है, वह है 'मम'। इस 'मम' को भगवान्‌के चरणोंमें बाँध दो, यानी यह समझ लो कि बस, भगवान्‌के चरण ही मेरे हैं, 'मम' को और कहीं भी भटकने मत दो। फिर इस 'मम' के बन्धनमें प्रेमकी डोरी फँसाकर टानो, भगवान् तुम्हारे पास आप ही चले आयेंगे।

जगत्‌में जो कुछ है, सब भगवान्‌की ही मूर्ति है, यह समझकर सबसे प्रेम करो, सबकी पूजा करो, अपना जीवन सबके लाभके लिये समर्पण कर दो। भूलकर भी ऐसा काम न करो, जिससे सबमेंसे किसी एकका भी अहित हो, एकके भी कल्याणमें बाधा पहुँचे। दीन, हीन, सरल, असहाय बच्चे माँको ज्यादा प्यारे हुआ करते हैं, भगवान्‌रूपी जगज्जननीको भी उसके गरीब बच्चे अधिक प्रिय हैं, इसलिये यदि तुम माताका प्यार पाना चाहते हो तो माताके उन प्यारे बच्चोंसे प्रेम करो, उन्हें सुख पहुँचाओ, माता स्वयं ही प्रसन्न होकर अपना वरद हस्त तुम्हारे मस्तकपर रख देंगी, तुम सहज ही कृतार्थ हो जाओगे।

दुखियामें, अनाथमें, भूखेमें, रोगीमें, असहायमें, विधवामें, अपाहिजमें, मूक पशुओं और पक्षियोंमें, विपद्ग्रस्तोंमें, पापमें डूबे हुए लोगोंमें, पथ भूले हुए पथिकोंमें, शत्रुतासे बरतनेवालोंमें तथा आडम्बरी लोगोंमें भगवान्‌को देखो और उनकी यथायोग्य पूजा कर—तन, मन, धनसे यथोचित उनका हित कर भगवान्‌के प्रियपात्र बनो।

सुख न पहुँचा सको तो दुःख तो किसीको न पहुँचाओ, धरतीपरसे पापका भार हलका न कर सको तो पापमय जीवन बनाकर उसके भारको बढ़ाओ मत। जीवनको प्रभुमय, सादा, स्पष्ट, सरल एवं श्रद्धामय बनाओ और विवेकको सदा साथ रखो।

इन्द्रियोंपर और मनपर विजय पानेकी चेष्टा करो, अपनी कमजोरियोंसे सावधान रहो, धीरजके साथ परमात्मापर भरोसा रखकर इन्द्रियोंको बुरे विषयोंकी ओर जानेसे रोको, मनको प्रभु-चिन्तन या सत्-चिन्तनके कार्यमें रोककर कुविषयोंसे हटाओ।

उखड़ो मत, झल्ला न उठो, झुँझलाना छोड़ दो, धीरतासे सुनो, अपनी झूठी निन्दा भी चुपचाप सुनो, फिर शान्त चित्तसे विचार करो, क्यों वह तुम्हारी निन्दा करता है? जरूर कोई कारण मिलेगा, अधिकांशमें तो अपनी कोई कमजोरी ही मिलेगी, उसे दूर करो और निन्दकका उपकार मानो। फूलो मत, हर्ष-विह्वल न हो उठो, बड़ाई सुनकर अपनी कमजोरियोंको न भूल जाओ और उनसे लापरवाह न बनो। बड़ाईका कारण अपनेको समझकर अभिमान न करो, परमात्माका धन्यवाद करो, जिसने तुमसे बड़ाईका काम करवाया। बड़ाई करनेवालोंका उपकार मानो, परंतु परमात्मासे प्रार्थना करो कि वह बड़ाई न दें। बड़ाईको कभी गले न लगाओ, बड़ी मीठी छुरी है, अजब हलाहलकी मीठी घूँट है; बड़ाईसे सदा दूर भागो। बड़ाईके लिये कोई कार्य न करो।

—'शिव'

* * *

मानव-जीवनकी सफलताका उपाय

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्रत्येक मनुष्यको मानव-जीवन पाकर अपनी आत्माका कल्याण अवश्य कर लेना चाहिये, इसीलिये यह दुर्लभ मानव-तन मिला है। यदि मानव ऐसा नहीं करता तो शास्त्र उसे आत्महा कहता है—

> नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
> प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
> मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
> पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥
> (श्रीमद्भा० ११। २०। १७)

यह मनुष्य-शरीर समस्त शुभ फलोंकी प्राप्तिका मूल है और अत्यन्त दुर्लभ होनेपर भी अनायास सुलभ हो गया है। इस संसार-सागरसे पार जानेके लिये यह एक सुदृढ़ नौका है। शरण-ग्रहणमात्रसे ही गुरुदेव इसके केवट बनकर पतवारका संचालन करने लगते हैं और स्मरणमात्रसे ही मैं अनुकूल वायुके रूपमें इसे लक्ष्यकी ओर बढ़ाने लगता हूँ। इतनी सुविधा होनेपर भी जो इस शरीरके द्वारा संसार-सागरसे पार नहीं हो जाता, वह तो अपने हाथों अपने आत्माका हनन—अध:पतन कर रहा है।

आत्माका कल्याण भगवन्नाम-स्मरणसे होता है। इसे प्रत्येक मानव चाहे गृहस्थी हो, चाहे ब्रह्मचारी हो, वानप्रस्थी हो या संन्यासी, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य या शूद्र कोई हो सभी भगवन्नाम-स्मरणद्वारा आत्म-कल्याण कर सकते हैं। उससे सभीका कल्याण हो सकता है।

भगवान्‌ने गीता (८। १४)-में भी अर्जुनसे कहा है—

> **अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।**
> **तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥**

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

आत्म-कल्याणका भाव संसारसे मुक्ति पानेसे है। मुक्ति प्राप्त करनेमें मनुष्यमात्रका कल्याण है और अधिकार है। जो लोग इस प्रकार कहते हैं कि मुक्ति किसी वर्ण-विशेष या आश्रम-विशेष अथवा देश-काल-विशेषमें ही होती है, उनकी बातें न कभी सुननी चाहिये न माननी चाहिये। वे अपना सिद्धान्त अपने पास ही रखें। ऐसे झूठे बन्धनोंमें जकड़कर एवं सिद्धान्तोंको बनाकर वे अपना और मुक्तिका भी पतन करते हैं। इसलिये उन लोगोंके बन्धनमें नहीं आना चाहिये। ये सब झूठे बन्धन भगवान्‌के बनाये हुए नहीं हैं। ये तो कुछ लोगोंने स्वार्थरत होकर सिर्फ अपनी मान-प्रतिष्ठाके लिये बना दिये हैं। अस्तु, कुछ भी हो मुक्तिके लिये सभीका दायरा खुला है; फिर इस कलिकालमें तो भगवान्‌की उदारताकी सीमा ही नहीं है। इस प्रकारका मौका पाकर भी अगर हम लोग मुक्तिसे वंचित रह जाते हैं तो समझना चाहिये कि हमारा बड़ा भारी दुर्भाग्य है। किसी भी मनुष्यका अपनी आत्माका कल्याण होना कठिन बात नहीं है बहुत ही साधारण-सी बात है। मुक्तिका होना हमने कठिन मान लिया है, यह केवल मात्र हम लोगोंके दिलकी कमजोरी है, यह हानि करनेवाली बात है। इसलिये यह सिद्धान्त रखना चाहिये कि परमात्माकी प्राप्ति—मुक्तिकी प्राप्ति करना मनुष्यके लिये कोई कठिन काम नहीं है। मनुष्य चाहे जैसा भी हो—पापी-से-पापी एवं मूर्ख-से-मूर्ख क्यों न हो उसका उद्धार बहुत ही शीघ्र—शीघ्र-से-शीघ्र हो सकता है। हम लोगोंको रुपया कमानेमें जितना परिश्रम करना पड़ता है, भगवान्‌की प्राप्ति करनेमें उस प्रकार उतना परिश्रम नहीं करना पड़ता, एक पैसा भी खर्चा नहीं करना पड़ता और समय भी बहुत कम लगता है। भगवान्‌की प्राप्ति न होनेपर हम लोग जो अज्ञानवश ऐसा मान बैठते हैं कि हम लोगोंपर भगवान्‌की दया नहीं है, भगवान्‌का हमपर कोप है यह तो भगवान्‌पर कलंकका आरोप करना है।

भगवान्‌की हम लोगोंपर बड़ी भारी दया है, भगवान्‌की दयाकी तो कोई सीमा ही नहीं है। भगवान्‌की बड़ी भारी दयाका ही यह परिणाम है कि जिससे आप लोगोंके लिये इस प्रकारके देश-काल-स्थान एवं बुद्धि प्रदान की है। फिर भी यदि आप भगवान्‌को कलंक लगाते हैं, उनको कोसते

हैं तो आपकी मरजी है। इतनेपर भी भगवान् हम लोगोंकी बातोंपर ध्यान नहीं देते, क्योंकि वे समझते हैं कि ये सब नादान हैं। माता-पितापर संतानद्वारा लांछन लगानेपर तो माता-पिता संतानको घरसे निकाल सकते हैं या उसका त्याग कर सकते हैं, परंतु भगवान् तो हम लोगोंको न तो घरसे ही निकालेंगे और न हम लोगोंपर कृपा करनी ही त्यागेंगे।

महात्मा और भगवान् इन लोगोंका यही नियम है कि वे लोगोंसे, चाहे कोई कैसा ही हो, सम्बन्ध जोड़ना जानते हैं तोड़ना नहीं जानते। परंतु यदि कोई स्वयं उनसे सम्बन्ध तोड़ना चाहे तो वे क्या करें। साधु, धर्मराज और ईश्वर—ये तीनों ही उच्च कोटिके होते हैं ये कभी भी किसीका अनिष्ट नहीं चाहते, सबका हित ही चाहते हैं। बालक चाहे जितना भी कुपात्र क्यों न हो, परंतु माँ-बाप कभी कुपात्र नहीं होते। माँ-बापमें तो कभी-कभी स्वार्थ-बुद्धि हो जानेके कारण दोष पाया भी जा सकता है, परंतु इनमें ये बातें नहीं पायी जा सकतीं।

सबसे बढ़कर बात यह है कि सब परमात्माका ही स्वरूप है। ऐसा समझकर सदा आनन्दमें मुग्ध होना चाहिये। जो भी कुछ है वह सब भगवान्का ही स्वरूप है **'वासुदेवः सर्वमिति'**—इस बातको भगवान्ने गीता (७। १९)-में बतलाया है। पूरा श्लोक इस प्रकार है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

इस श्लोकका भाव इस प्रकार है—'बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त जो पुरुष, 'सब कुछ वासुदेव ही हैं'—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।' इसलिये हम लोगोंको भी समझ लेना चाहिये कि यही हमारा अन्तिम जन्म है, इसके बाद हम लोगोंको और जन्म नहीं लेना पड़ेगा ऐसा विश्वास कर लेना चाहिये। क्योंकि विश्वास ही फलदायक होता है। इस प्रकारका विश्वास कर लेनेमें आप लोगोंका लगता ही क्या है? ऐसा विश्वास करनेपर हम लोगोंकी मुक्ति हो या न हो मान लेनेमें कोई नुकसान तो है ही नहीं।

एक पुरानी बात है। हम लोगोंके देश मारवाड़में राजपूत लोग थे। उन लोगोंको फतहपुरके नवाबने अपने पास बुलाया और उनसे कहा कि तुम सब लोग मुसलमान बन जाओ। उन लोगोंने मुसलमान बननेसे इनकार कर दिया। तब नवाबने राजपूतोंसे कहा—'यदि तुम लोग मुसलमान होना नहीं चाहते हो तो मत बनो, परंतु मर्दुमशुमारी (मनुष्य-गणना)-में तुम मुसलमानोंके साथ अपना नाम लिखवा दो। इतनी बात तुम हमारी मान लो। तुम लोगोंका जो धर्म है उसका तुम लोग उसी प्रकार पालन करो, उसमें किसी प्रकारकी रोक-टोक नहीं होगी।' वे बेचारे समझे कि मुसलमानोंकी लिस्टमें नाम लिखवा देनेमें हम लोगोंको आपत्ति ही क्या है? हम लोग राजपूत हिंदू-धर्मका पालन करेंगे। उन लोगोंने नवाबकी बात मान ली और अपना नाम मुसलमानोंकी लिस्टमें रखवा दिया। वे अपने धर्मका पालन भी करते रहे। अन्तमें कट्टर मुसलमान बन गये जो आज 'क्यामखानी' नामसे प्रसिद्ध हैं। थोड़े दिनों विवाह-शादी आदि तो अपनी परम्पराके अनुसार चले, बादमें वह भी धीरे-धीरे बंद होकर सब काम चौपट हो गया। मान लेनेका यह नतीजा है।

ऐसी ही बात गङ्गाजीकी शरणमें जानेकी हैं। गङ्गाजीकी शरणमें जानेपर बहुत शीघ्र उद्धार हो सकता है। गङ्गाजीमें स्नान करनेसे पापोंका नाश हो जाता है। और मनुष्योंकी मुक्ति हो जाती है ऐसा माना जाता है। हम लोग गङ्गाजीमें स्नान करते हैं, गङ्गाजल-पान करते ही हैं इस बातमें तो कोई कमी है नहीं, कमी है केवल न माननेकी। यदि मान लें कि गङ्गा-स्नानसे मुक्ति हो जाती है तो निश्चय ही मुक्ति हो सकती है।

परमात्माको प्राप्त करनेके लिये दो प्रकारके साधन बतलाये गये—

पहला साधन है संसारमें सब लोगोंमें परमात्माका स्वरूप समझना और दूसरा साधन है इसी जन्मको अन्तिम जन्म समझ लेना।

८४ लाख योनियोंके बाद जो यह मनुष्य-शरीर हमें मिला है इसे ही आखिरी जन्म समझना चाहिये। इस मनुष्य-जन्मको पाकर भी यदि हम लोगोंका कल्याण नहीं हुआ तो बड़े शर्मकी बात है। हम लोग यदि भगवान्के

लिये मनुष्य-जन्मके योग्य नहीं होते तो भगवान् हम लोगोंको क्यों मनुष्य-जन्म देते? भगवान् चाहते तो हम लोगोंको बंदर, गधा, कुत्ता, तिर्यक्—किसी भी योनिमें जन्म दे सकते थे। उन्हें हम लोगोंको जन्म देनेमें स्वतन्त्रता थी। भगवान् हम लोगोंको जैसा शरीर देते तो उसमें हम लोगोंको क्या कोई एतराज़ होता? भगवान्ने अपनी इच्छासे हम लोगोंको जो भी जन्म दिया वह हम लोग बन गये। यदि जन्म लेनेमें सबकी इच्छा अथवा स्वतन्त्रता होती तो फिर सभी लोग मनुष्य-जन्म ही लेना पसंद करते। भले ही मनुष्य-जन्म लेकर भूखों ही मरना पड़ता; यह गधा, कुत्तों आदिकी योनिको तो कोई भी पसंद नहीं करता।

८४ लाख योनियोंमें केवल मनुष्य-शरीरसे ही भगवान्की प्राप्ति हो सकती है। इसलिये इस मनुष्य-शरीरमें ही सब जन्मोंका अन्तिम जन्म है। 'यह मनुष्य-जन्म ही आगेके बहुतसे जन्मोंका अन्त करनेवाला है'—ऐसा विश्वास कर लेना चाहिये। मान लेनेपर कल्याण हो सकता है, इसमें किसी प्रकारकी शंका होनी नहीं चाहिये।

जो कुछ हो रहा है सब भगवान्की लीला हो रही है। आप लोग सिनेमा-थियेटर नाटक आदिमें जाकर, जो लीला देखा करते हैं, वह लीला तो मनुष्योंकी बनायी गयी बनावटी लीला है। परंतु यह सब जो कुछ भगवान्की इच्छासे हो रहा है यह मनुष्यकी बनायी हुई लीला नहीं है। यह सब भगवान्की लीला है, इसको असली लीला समझकर आनन्द-मग्न होना चाहिये। इस प्रकारका भाव होनेपर हम लोगोंमें राग-द्वेषका अभाव हो जायगा और राग-द्वेष न रहनेपर काम एवं क्रोधका अपने-आप ही नाश हो जायगा। क्योंकि राग-द्वेषसे ही काम और क्रोधकी उत्पत्ति होती है। इसलिये सबको भगवान्की माया समझ लेनेपर राग-द्वेषका अभाव होकर उनसे काम एवं क्रोधका नाश ही होता है इतनी-सी ही बात नहीं है बल्कि इसके नाश होनेके साथ-साथ हम लोगोंके मनमें जो ईर्ष्या, भय, वैर आदि होते हैं उनकी भी साथ-ही-साथ समाप्ति हो जाती है। इसलिये यह जो कुछ भी चेष्टा होती है सब भगवान्की ही लीला है, ऐसा मानना और भाव रखना बहुत ही दामी चीज है। इसके अतिरिक्त यदि आपने मान लिया कि यह सब भगवान्की लीला हो रही है तो ऐसा मान लेनेपर आप लोगोंको इस प्रकारकी सुख-शान्ति एवं आनन्दकी प्राप्ति होगी जो आजतक आप लोगोंको निश्चय ही जन्म भरमें नहीं मिली है। हम आपसे निश्चित रूपसे कह सकते हैं कि इस प्रकार सबमें सब प्रकारकी चेष्टाको भगवान्की लीला समझ लेनेपर आप लोगोंको वह शान्ति मिलेगी जो आजतक नहीं मिली है। यह शान्ति तबतक मिलती रहेगी जबतक आप सब चेष्टाओंको भगवान्की लीला मानते रहेंगे। इस प्रकार ये तीन बातें हो गयीं—

१-यह जो कुछ भी है सो परमात्माका स्वरूप है।

२-यह मनुष्य-जन्म सब जन्मोंका आखिरी जन्म है। इस जन्मके बाद हम लोगोंको दूसरा जन्म नहीं लेना पड़ेगा। यह मानव-शरीर हम लोगोंको भगवान्की दयासे मिला है। जब भगवान्की ही हम लोगोंपर इतनी भारी दया है तो क्या तब भी हमारा कल्याण होनेमें किसी प्रकारका संदेह है? ऐसा कभी नहीं मानना चाहिये।

३-'जो कुछ भी चेष्टाएँ हो रही हैं सब भगवान्की लीला हो रही है'—ऐसा समझकर आप लोग लीला देखते रहें।

—इस प्रकारसे ये तीन बातें बतलायी गयी हैं जो केवल माननेसे कल्याण कर देनेवाली हैं।

अब तीन बातें ऐसी बतलायी जायँगी जिन्हें मानकर करना चाहिये, इसमें परिश्रम बहुत थोड़ा है परंतु लाभ अधिक है। बहुत कम परिश्रम होनेके साथ-साथ उसमें लाभका कोई ठिकाना नहीं है, ऐसी बात बतलायी जाती है।

आपके घर या बाहर जो कोई भी आपसे बड़ा हो, किसी प्रकारसे भी—अवस्था, ज्ञान, आचरण, पद एवं वर्ण और आश्रम या किसी भी प्रकारसे बड़ा हो उनको प्रातःकाल उठनेके बाद और स्नान करनेके अनन्तर नम्रतापूर्वक उनके पास जाकर नमस्कार कर लेना चाहिये। यह सब एक मिनिटका काम है। कोई कठिन काम नहीं है बस नमस्कार ही तो करना है, परिश्रम इसमें क्या लगता है। अपनेसे बड़ोंको नित्यप्रति निष्कामभावसे नमस्कार करनेसे अहंकारका नाश होता है। अहंकारका नाश होनेके साथ परस्परमें जो घरमें लड़ाई-झगड़ा एवं वैमनस्य आदि रहता है वह भी शान्त हो जाता है। क्योंकि इस परिपाटीसे प्रायः एक-

दूसरेकी लड़ाई मिट जाती है, खुनस मिट जाती है। नमस्कार करना क्षमा करनेका एक माध्यम हो जाता है। जब आप लोग रोज ही नमस्कार करेंगे तब आपसे किसी प्रकार कसूर नहीं होगा। जब कसूर ही नहीं होगा तब माफी करने-न-करनेका तो कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। इस प्रकार नित्य नमस्कार करनेसे आप लोगोंसे भूल होगी नहीं और इससे घरमें लड़ाई-झगड़े नहीं होंगे। ये सब घरसे बिदा हो जायँगे। अगर आप पूज्योंको साष्टाङ्ग नमस्कार करेंगे, तब बड़ोंके आशीर्वादके कारण आपके बल, आयु, कीर्ति एवं विद्याकी वृद्धि होगी। यह आप लोग प्रत्यक्ष देखते होंगे कि इस प्रकारसे प्रणाम—नमस्कार करनेवालेके लिये हम लोग क्या कहते हैं? यह लड़का बड़ा अच्छा है, बड़ा ही विनयी एवं बड़ा सुशील है और बड़े ही सुन्दर स्वभावका है, अपने माँ, बाप, गुरुजनों एवं बड़ोंको नित्य नमस्कार करता है। इस प्रकार नमस्कार करनेसे आपको प्रत्यक्षमें यशकी प्राप्ति होती है। नमस्कार करनेसे माता-पिता, गुरुजनोंको संतोष होता है जिससे वे आशीर्वाद देते हैं जिसके फलस्वरूप आपके बल-आयु-विद्या एवं यशकी वृद्धि होती है। नमस्कार करना धर्मका एक खास अंग है। भगवान् भी गीता (१७। १४)-में इस बातको साफ-साफ कहते हैं—**'देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्'**। देवता, ब्राह्मण, गुरु एवं प्राज्ञ—इनका पूजन करना, नमस्कार करना, सेवा करना कितनी उच्च कोटिकी चीज है। लोगोंको अपनेसे पूज्योंको नमस्कार करनेमें जो व्यर्थमें पाप, भय, शंका-संकोच होता है इनको मनसे सर्वथा हटा देना चाहिये। पूज्योंको प्रणाम करनेमें हम लोगोंको जो लज्जा-संकोच—शर्म-सी प्रतीत होती है वह नरकमें डालनेवाली चीज है। इसलिये इस शर्मको आग लगा देनी चाहिये। अच्छे कामोंको करनेमें कभी भूलकर भी संकोच-शर्म नहीं करना चाहिये। शर्म तो झूठ-कपट-चोरी-व्यभिचार करनेमें तथा मांस-मदिराके सेवनमें और दंभ-पाखण्ड—इन सब अवगुणों-दुर्गुणों-दुराचारोंके आचरण करनेमें करनी चाहिये। ये सब शर्म करनेके स्थान हैं। श्रेष्ठ कामोंमें—पूज्योंको नमस्कार करने आदिमें तथा कल्याण करनेकी जो चीजें हैं उनमें शर्म करना नरकमें डालनेवाली चीज है। जैसे उत्तम कर्म करने—गायत्री-जप एवं संध्या करनेकी इच्छा तो होती है परंतु संकोच-शर्म लगती है कि देखनेवाले क्या कहेंगे? इसी प्रकार दुःखी-दीन-अनाथोंकी सेवा करनेमें भी शर्म लगा करती है, बड़ोंको नमस्कार करनेमें भी शर्म लगती है। अच्छे कामोंमें शर्म लगनेसे अच्छे कामोंके करनेमें व्यवधान पड़ जाता है, जो कल्याण करनेमें आफत बनकर नरकमें ले जानेका कार्य करती है। इसे त्याग देना चाहिये।

किसीसे भी जब आपकी भेंट हो तब उससे हँसकर बोलना चाहिये। उनसे बातचीत करते समय उनको संतोष करानेकी चेष्टा करनी चाहिये। यह बहुत दामी चीज है। इसमें भी किसी प्रकारका परिश्रम नहीं है।

जिस कामको करनेसे किसीकी आत्माको दुःख पहुँचे उस कामको कभी नहीं करना चाहिये। इसमें भी कोई परिश्रम नहीं है। इससे तो परिश्रम करनेका ही त्याग हो जाता है, जो उस कामके करनेमें परिश्रम करना पड़ता उस कामको न करनेसे परिश्रम नहीं करना पड़ा और समयकी भी बचत हो गयी।

इसी प्रकार जितने सांसारिक भोग्य पदार्थ हैं उन सभी सांसारिक भोगोंका त्याग कर डालना चाहिये। उनका त्याग करनेमें भी किसी प्रकारका परिश्रम नहीं है, बल्कि उसमें भी परिश्रमका त्याग ही है। वस्तुतः भोगोंको भोगनेमें ही परिश्रमका काम है उनको त्याग देनेमें किसी प्रकारके परिश्रमका काम नहीं है। उनको त्यागनेमें क्या परिश्रम रखा है, बस त्याग दो। भोगोंको भोगनेमें ही—करनेमें ही परिश्रम है। यदि आप कोई भी काम करते हैं और छोड़ दें तो आपका परिश्रम-मेहनतका काम खतम हुआ या बढ़ा? परिश्रम तो सोलहों आने खत्म हो गया न? क्योंकि संसारके जितने भी प्रकारके भोगके साधन हैं, उनकी सिद्धि बिना आशा किये नहीं हो सकती। आशामें परिश्रम एवं उसके साथ-साथ छल-कपट आदि पाप-कर्म भी करने पड़ते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने गीता (१८। ४८)-में अर्जुनसे कहा कि अर्जुन! संसारके सभी आरम्भ आगमें धूएँकी तरह दोषसे परिपूर्ण हैं—पापसे परिपूर्ण हैं—

सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः॥

—इसलिये इन सब प्रकारके कार्योंका त्याग करनेके

साथ-साथ परिश्रम घटनेके साथ-साथ ही उन कर्मोंसे होनेवाले पाप-कर्म भी घट जाते हैं। साधु लोगोंको एवं संन्यासाश्रममें यह आदेश दिया जाता है कि उन्हें सभी प्रारम्भोंका स्वरूपतः त्याग कर देना चाहिये। तात्पर्य यह कि सभी प्रारम्भोंका बाहर और भीतरसे त्याग कर देना चाहिये। यदि कोई भीतरसे उनका त्याग करके बाहरसे उन्हें करते भी हैं तो भी उसे अन्तमें त्यागनेमें तकलीफ नहीं होगी, परंतु यदि मनसे त्याग नहीं किया है और बाहरसे दिखाऊ त्याग किया है तो उसमें तो कठिनता ही है। इसलिये बाहर एवं भीतरसे कर्मोंको त्याग कर देना ही वास्तवमें उच्च कोटिका त्याग है। गृहस्थाश्रमके लिये बाहरी कर्मोंका त्याग करना शास्त्रानुसार शास्त्रसम्मत नहीं है। बाहर एवं भीतरके कर्मोंका त्याग तो साधुओंके लिये बतलाया गया है। साधुके लिये बतलाया गया है कि उसे कैसा बनना चाहिये।

साधुको नेत्रोंसे अंधेकी तरह, कानोंसे बहरेकी तरह, हाथोंसे टूटे हुए हाथकी तरह, पैरोंसे पंगुकी तरह, वाणीसे गूँगेकी तरह होना चाहिये। इसका मतलब यह है कि साधुओंके लिये सभी आरम्भोंका त्याग करनेकी बात कही गयी है। कानसे बहरेकी तरह बननेका भाव है कि साधुको भगवत्-चर्चाके सिवाय और कोई दूसरी बात सुननी ही नहीं चाहिये। दुनिया चाहे जो कुछ भी कहती रहे।

श्रीजडभरतजी महाराज अपने पूर्वजन्मकी बातें जानते थे। वे अपने गृहस्थाश्रममें रहते हुए, परिश्रम करते हुए भी उन सब कर्मोंसे वस्तुतः वे इतने उपराम थे कि जडकी तरह हो गये थे। इसलिये उनका नाम जडभरत हो गया। उनके सभी आचरण उपराम-जड़की तरह होते थे। घरवालोंने जडभरतको विद्या पढ़ानेकी कोशिश की। उनसे कहा जाता कि बोलो 'क ख ग घ ङ' तो उनके कहनेसे वे भी बोल देते 'क ख ग घ ङ'। दूसरे दिन जब पढ़ाईका क्रम आगे बढ़ानेकी बात आती तब पूछा जाता कि कलका पाठ क्या याद हुआ? जडभरत चुप रहते। फिर पूछा जाता क्या कलकी बात—कलका पाठ सब भूल गये? इसी प्रकार प्रतिदिन पढ़ाते 'क ख ग घ ङ' और प्रतिदिन पिछला पाठ पूछते, परंतु सब सफाचट। घरवालोंने समझ लिया कि जब इतना अधिक परिश्रम करनेके बाद भी यह पूरा वर्णमाला नहीं सीख सका तब यह क्या पढ़ेगा? घरवालोंने तंग आकर जडभरतको पढ़ानेकी चेष्टा ही छोड़ दी। घरवालोंने सोचा कि यह पढ़ाई-लिखाई तो करेगा ही नहीं अब इससे खेतीका काम करवाना चाहिये। उन्हें खेतके काममें लगाये रखनेके लिये उन्होंने निश्चय किया। जडभरत खेतमें जाते और खेतमें ही बैठे रहते। उन्हें किसीसे कुछ सम्बन्ध नहीं, जडभरत जो ठहरे। जडभरतकी यह स्थिति देख घरवालोंने कहा कि अगर तुमसे और कुछ नहीं हो सकता तो खेतमें ही रहा करो और वहाँ जो अपने खेतमें गाय-भैंस आदि पशु चरने आवें तो उन्हें लाठी लेकर अपने खेतमेंसे निकालकर किसी दूसरेके खेतमें खदेड़ दिया करो।

एक ओर जडभरतका खेत था और उसकी बगलमें दूसरोंका खेत। पशु आदि जब चरने आते तो जडभरत उनको दूसरेके खेतमें न खदेड़कर अपने ही खेतकी ओर खदेड़ दिया करते। दूसरे दिन घरवालोंने जाकर देखा कि अपने खेतमें सुखसे गाय-भैंस इकट्ठे हैं और सारे खेत साफ कर रहे हैं। घरवालोंने जडभरतसे कहा कि तुमसे कहा गया था कि चरनेके लिये आनेवाले पशुओंको दूसरेके खेतमें कर देना, इन्हें अपने खेतमें क्यों घुसा रखा है? जडभरतने कहा कि 'आपने यह कहा था कि यह हाथमें लाठी रखो और पशुओंको खदेड़ दिया करो', मैंने पशुओंको खदेड़ दिया। तब घरवालोंने कहा कि 'मूर्ख, यह तो अपना खेत है, तुमको दूसरेके खेतमें खदेड़नेके लिये कहा गया था।' यह सुनकर जडभरत हँसने लगते और घरवालोंसे पूछते कि 'अपना और दूसरेका क्या चीज होती है?' घरवालोंने जडभरतसे कहा—मूर्ख, तुमको इतना भी ज्ञान नहीं है कि यह अपना खेत है और यह दूसरेका—परायेका। [इस प्रकारके ज्ञानमें ही तो खराबी थी।] तब घरवालोंने जडभरतसे खेतका काम भी छुड़ा दिया। इसके बाद घरवालोंने जडभरतको आदेश दिया कि तुम खेतमें क्यारी बनाओ। जडभरतने कहा—क्यारी क्या? घरवालोंने कहा—मूर्ख, क्यारी बनायी जाती है, क्या तुम क्यारी नहीं समझते। देखो, वह सामने जो ऊँची-सी जगह है, उसे फावड़ा लेकर खोदकर उसे गढ़ेमें डालो और उसे चारों तरफसे बराबर

करो। जडभरत सोचने लगे कि ये क्या बोलते हैं? तब घरवालोंने कहा—मूर्ख समझा नहीं? देख, क्यारी ऐसे बनती है—दो-चार परात मिट्टी उठाकर उसकी क्यारी बनाकर बतलाया कि इस प्रकारसे क्यारी बनती है। जडभरतके 'ठीक है'—कहनेपर घरवाले जडभरतको क्यारी बनानेकी शिक्षा देकर चले गये। पीछेसे जडभरतने एक जगहसे मिट्टी खोदकर दूसरी जगह क्यारी नहीं बनाकर उसे खूब ऊँचा कर दिया। दूसरा काम बढ़ा दिया। दूसरे दिन घरवाले खेतमें आये और जडभरतका काम देखे तो बोले—रे मूर्ख, तुमने यह क्या कर दिया। मूर्ख, तुमको तो क्यारी बनानेके लिये कहा गया था। क्या क्यारी इस प्रकार बनती है? जब इस जगहपर मिट्टी पड़नेके बाद समतल हो चुकी तब तुमको मिट्टी डालनेका काम बंद कर देना चाहिये था। ऐसा करके तो तुमने दूना काम बढ़ा दिया। इसे अब समतल कौन करेगा। समझा नहीं, मूर्ख कहींका। [इस बातको समझे कौन! किसीको समझना हो तो समझे, न समझनेवालेको समझाना ही नहीं है।] आखिर घरवालोंने तंग आकर कह दिया कि तुम किसी भी प्रकारका काम करने लायक नहीं हो। अब कोई भी काम मत करो, केवल बैठे रहो। जडभरतने कहा—बहुत ठीक। वे खेतमें बैठे रहते और उनको चाहिये ही क्या, खूब परमात्माका ध्यान करते और ध्यानमें मग्न रहा करते। आठ पहरोंमेंसे कभी एक पहर घरमें आ जाया करते और घरवाले उसे भोजन करा दिया करते।

एक दिनकी बात है, जडभरतको ध्यानावस्थामें कुछ विलम्ब हो गया और वे भोजनके लिये घरपर देरीसे पहुँचे। उनकी भाभीने देखा कि सुंडमसुंड-मोटा-तगड़ा जडभरत सामने खड़ा है। जडभरतके घरपर आनेमें देर होनेपर उनकी भाभीने उनके भोजनका खयाल छोड़ दिया था, पर जब उन्होंने देखा कि जडभरत सामने है तब बचा हुआ भोजन जो खानेसे बचनेपर रख छोड़ा था—जिसे जूठा कहा जाता है, उसे लाकर जडभरतकी थालीमें उसमेंसे आधा परोस दिया। 'बहुत ठीक है' कहकर जडभरतने खूब प्रेमसे प्रसाद पा लिया। उनकी भाभी भी मन-ही-मन सोचने लगी कि यह भी कोई पशु ही है जो इस प्रकारका भी भोजन नहीं छोड़ता। इसके बाद जडभरतके भोजन कर लेनेपर जो थोड़ा खाना बच गया था, उसे नाँदमें डाल दिया, जिससे अमृतके समान सुगंध आने लगी। जडभरतका भाई जब घर आया और उसे भी वह सुगंध मालूम होने लगी तब उसने अपनी स्त्रीसे पूछा कि क्या बात है, आज यह सुगंध कैसी आ रही है? ऐसे चावल तो कभी नहीं बने थे। उसकी स्त्रीने कहा कि यह सुगंध चावलोंमेंसे ही आ रही है। फिर स्त्रीसे पूछा—चावल किसने बनाये थे। स्त्रीने कहा कि चावल तो मैंने ही बनाये थे, पर पता नहीं क्यों आज चावल बहुत ही स्वादिष्ट बने हैं? पतिने कहा—ऐसे ही स्वादिष्ट चावल रोज बनाया करो। स्त्रीने सोचा क्या हरज है, मैं तो इस प्रकारके चावल बनानेकी विधि सीख ही गयी हूँ। इस प्रकारके चावल बनानेमें क्या कठिनाई है? उसने दूसरे दिन सब चावलोंको नाँदमें डाल दिया और पकानेके लिये उसमेंसे निकालकर पकाया। आधे घंटेके बाद उसे थालीमें परसकर अपने पतिके खानेके लिये लायी। पतिने चावल खाते ही कहा—ये चावल क्या बने हैं इसमें तो अजीब-सी दुर्गन्ध आ रही है। इसमें तो किसी प्रकारका स्वाद ही नहीं है। जैसे चावल रोज बनते हैं उनसे भी खराब है, कलका-सा स्वाद तो है ही नहीं। उनकी स्त्रीने कहा—मैंने तो ये चावल जैसे कल बनाये थे वैसे ही आज भी बनाये। न मालूम क्यों कल स्वादिष्ट बन गये और आज क्यों नहीं बने। [उनको क्या मालूम कि इन चावलोंको स्वादिष्ट बनानेवाला कौन है। श्रद्धा तो थी नहीं इनमें।] इस प्रकार जडभरत ममता-अहंता-रागरहित होकर विचरण किया करते थे।

साधुको कानोंसे बहरेकी तरह रहना चाहिये, इसका तात्पर्य है कि कानोंसे केवल मात्र परमात्म-विषयक बातोंका ही श्रवण करना चाहिये और दूसरी संसार-विषयक बातें सुने ही नहीं, चाहे जो भी कहा करे।

साधुओंको नेत्रोंसे अंधेकी तरह व्यवहार करनेका तात्पर्य है कि जब रातमें चले, तब नेत्रोंसे थोड़ा दूर तकका रास्ता केवल देख लेना चाहिये और फिजूल इधर-उधर नहीं देखना चाहिये। नेत्रोंसे केवल महापुरुषोंका दर्शन करना चाहिये एवं मन्दिरोंमें जाकर देवतादिके दर्शन तथा सत्-शास्त्रोंका ही अध्ययन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त

नेत्रोंको अन्य प्रकारका परिश्रम नहीं देना चाहिये।

हाथोंसे लूलेकी तरह व्यवहार करनेका तात्पर्य है कि हाथोंसे केवल परोपकार एवं भगवान्‌की सेवा करे, इसके सिवाय और अन्य प्रकारका परिश्रम करनेकी आवश्यकता नहीं है।

पैरोंसे लँगड़ेकी तरह व्यवहार करनेका तात्पर्य है कि केवल महापुरुषकी सत्संगतिमें जाय तथा तीर्थादि देव-मन्दिरोंके दर्शनादि करने जाय, पैरोंसे बेकार परिश्रम नहीं करे।

वाणीसे गूँगेकी तरह व्यवहार करनेका तात्पर्य है कि वाणीसे केवल भगवत्-विषयक वार्ता ही करनी चाहिये। इसके सिवाय दूसरी बातें करनी ही नहीं चाहिये।

अब यह पूछा जाता है कि जिस प्रकार प्राचीन कालमें साधु-महात्माओं एवं संन्यासियोंके लिये इस प्रकारकी शिक्षा दी जाती थी, वैसा यदि अब सारी कर्मेन्द्रियोंसे केवल भगवान्‌के ही निमित्त काम किये जायँ तो फिर मनुष्यको भोजन कहाँसे मिले? शरीर-निर्वाह किस तरह हो?

इसके लिये बतलाया गया है कि अजगर-वृत्तिसे काम चलाना चाहिये। जैसे अजगरको अपने स्थानपर ही जो कुछ मिल जाता है वह उसीसे काम चलाता है, उसी प्रकार साधु-संन्यासियोंको भी अपने स्थानपर जो कुछ मिल जाय, उसीसे काम चला लेना चाहिये। फिर भी पूछा जाता है कि इस प्रकार अगर अपने स्थानपर भोजन प्राप्त न हो तो फिर किस प्रकारसे निर्वाह करना चाहिये? तो खयाल करना चाहिये कि 'खाना कैसे मिलेगा' यह चिन्ता तो आपको अभी लगी है, पहले तो नहीं थी न? जब आप अपनी माताके पेटमें थे, उस समय क्या आपको पेटकी चिन्ता थी? उस समय आपके पास भोजन कौन पहुँचाता था? और जब आप पैदा हुए थे तब आपकी माताके स्तनोंमें भी दूधका इंतजाम किसने किया था? आपने अगर यह सब इंतजाम कभी भी नहीं किया तो जिसने यह सब इंतजाम किया था अब भी आपको उसीके ऊपर भरोसा रखना चाहिये। क्योंकि उसका नाम विश्वम्भर है। आप जरा विचार करके देखें—जो जलचर-थलचर एवं पशु-पक्षी, कीट-पतंग हैं, उनके भी किसी प्रकारकी खेती-दूकान-व्यवसाय-दलाली या अन्य किसी प्रकारका रोजगार है क्या? ये भी जीवित रहते हैं या नहीं? इसी प्रकार अपने जीवनको प्रारब्ध—भगवान्‌के अधीन छोड़ देना चाहिये। जब भगवान् विश्वम्भर सबका पालन-पोषण स्वयं करते हैं तब किसी प्रकारकी चिन्ता करनी ही नहीं चाहिये। इस प्रकारकी चिन्ता भीतरसे त्याग देनी चाहिये।

दान दो

भूखे जनको अन्न-दान दो, प्यासेको दो जलका दान।
वस्त्रहीनको वस्त्र-दान दो, मानहीनको सच्चा मान॥
भय-विह्वलको अभय-दान दो, शरणहीनको आश्रय-दान।
शोक-विकलको शान्ति-दान दो, आतुर जनको सेवा-दान॥
दुःख-पतितको धैर्य-दान दो, रोगी जनको औषध-दान।
पथ भूलेको मार्ग-दान दो, दो निराशको आशा-दान॥
ज्ञानहीनको ज्ञान-दान दो, संशयालुको श्रद्धा-दान।
धर्महीनको धर्म-दान दो, नास्तिकको ईश्वरका ज्ञान॥
जो, जिसको, जब आवश्यक हो, करो तभी उसको वह दान।
जो तुम कर सकते हो; पर मत करो कभी उसपर अहसान॥
मत समझो दाता अपनेको, करो न कुछ भी तुम अभिमान।
सविनय करो समर्पण प्रभुको, प्रभुकी वस्तु सहित सम्मान॥

* * *

राम-नाम तारक मन्त्र है

(श्रीहिमांशुशेखरजी)

राम-नामकी उपादेयता एक अनुभूत सत्य है। यह समस्त पातकोंका नाशक तथा महामङ्गलकारी है। राम-नामका जप करके अगणित व्यक्तियोंने अपना एवं दूसरोंका कल्याण किया है। इस शब्द-ब्रह्मकी अनन्त शक्तिके सामने कोई प्रश्न-चिह्न नहीं लगाया जा सकता।

जब महर्षि वाल्मीकिने मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे जिज्ञासावश पूछा कि 'इस समय संसारमें समस्त प्राणियोंका हित करनेवाला, गुणवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, वीर्यशाली, दृढव्रत, विद्वान्, आत्मवान्, क्रोधजयी, दृढप्रतिज्ञ, सदाचारी, किसीकी भी निन्दा न करनेवाला तथा संग्राममें कुपित होनेपर जिससे देवता भी भयभीत हो उठते हैं—ऐसा एकमात्र प्रियदर्शन पुरुष कौन है?' तब उनके इस प्रश्नके उत्तरमें नारदजीने श्रीरामका नाम लिया था। उनके लोकोत्तर शीलका निरूपण करते हुए उन्होंने कहा था कि श्रीराम गम्भीरतामें महासागर तथा धैर्यमें हिमालय पर्वतके समान हैं—

समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥

(वा०रा० १। १। १७)

राम-नामकी इस अलौकिक शक्तिका एकमात्र कारण है रामकी परब्रह्मता। राम धर्मके मूर्तिमान् रूप हैं—'**रामो विग्रहवान् धर्मः**' (वा०रा० ३। ३७। १३)। कुछ लोग रामको ईश्वर नहीं मानते, इसलिये राम-नाममें उनकी श्रद्धा नहीं है। शास्त्रोंमें इस बातके अनेक प्रमाण हैं कि संसारके कल्याणके लिये परमात्मा समय-समयपर मानव-रूपमें अवतरित होकर सज्जनोंकी रक्षा तथा दुष्टोंका संहार करते हैं।

श्रीरामके ईश्वरत्वका उल्लेख एक नहीं, अनेक प्रामाणिक शास्त्रोंमें सर्वत्र द्रष्टव्य है। वाल्मीकीयरामायणके बालकाण्ड तथा अन्य स्थलोंमें इस सत्यको उद्घाटित किया गया है कि देवाधिदेव भगवान् विष्णुने राक्षसोंके समूल विनाशके लिये महाराज दशरथके यहाँ अवतार लिया था।

सुमेरु-पर्वतके शिखरपर ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान सनक, सनन्दन, सनत्कुमार तथा सनातन नामक ऋषियोंके समक्ष देवर्षि नारदने श्रीरामको नारायणके रूपमें सम्बोधित करते हुए निम्नलिखित शब्दोंमें उनकी वन्दना की थी—

यो दैत्यहन्ता नरकान्तकश्च
भुजाग्रमात्रेण च धर्मगोप्ता॥
भूभारसंघातविनोदकामं
नमामि देवं रघुवंशदीपम्।

(वा०रा० माहात्म्य २। १७-१८)

अर्थात् 'जो राक्षसोंका संहार तथा नारकीय दुःखोंका अन्त करनेवाले हैं, जो अपनी भुजाग्रमात्रसे धर्मकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, पृथ्वीके भारका विनाश जिनका मनोरञ्जनमात्र है और जो उस मनोरञ्जनकी सदा कामना करते हैं, उन रघुकुलदीपक श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ।'

राम-नामकी शक्तियाँ

महाराज दशरथके पावन गृहमें जब समस्त लोकोंके पालक भगवान् विष्णु अवतरित हुए तो उनके जन्मके ग्यारहवें दिन गुरु वसिष्ठने उनका नाम 'राम' रखा। शास्त्रीय प्रमाणोंके आधारपर करपात्रीजी महाराजने यह सिद्ध किया है कि जैसे छोटेसे बीजमें विशाल वटवृक्ष छिपा रहता है, वैसे ही सम्पूर्ण चराचर जगत् 'राम'-नामक महामन्त्रमें समाविष्ट है। शक्तिके तीन प्रकार बतलाये गये हैं—उत्पादिनी, पालिनी तथा संहारिणी। ये त्रिविध शक्तियाँ राम-नामकी आश्रयभूता तथा 'रेफ' अर्थात् रकार समन्विता हैं—

यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महान् द्रुमः।
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्॥
रेफारूढा मूर्तयः स्युः शक्तयस्तिस्र एव च।

राम-नामको ओंकारकी भाँति ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रात्मक भी माना गया है। कहा जाता है कि राम-नामका 'रेफ' अर्थात् 'र' अक्षर अग्नि 'म' अक्षर विष्णु तथा दोनोंके मध्य स्थित आकार ब्रह्माका प्रतीक है—

रेफोऽग्निरहमेवोक्तो विष्णुः सोमो म उच्यते।
आवयोर्मध्ये ब्रह्मा रविराकार उच्यते॥

भयका नाशक

राम-नाम भय दूर करता है। श्रद्धा और विश्वासके साथ राम-नामका जप करनेवालोंके दुःस्वप्न सुस्वप्नमें बदल जाते हैं। प्रह्लादकी कथा विश्व-विश्रुत है। हिरण्यकशिपुने उन्हें बहुत सताया था, परंतु प्रह्लादका बाल भी बाँका नहीं हुआ; क्योंकि उन्होंने श्रीहरिके पावन नामका अवलम्बन ग्रहण कर रखा था। भक्त प्रह्लादने स्पष्ट शब्दोंमें इस महान् सत्यको उद्घाटित करते हुए अपने पिता हिरण्यकशिपुसे कहा—

रामनामजपतां कुतो भयं
सर्वतापशमनैकभेषजम् ।
पश्य तात मम गात्रसंनिधौ
पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥

'राम-नामका जप करनेवालोंको भय कहाँ? राम-नामका जप समस्त तापोंकी निवृत्तिका एकमात्र औषध है। हे तात! देखिये, मेरे शरीरके संनिकट प्रज्वलित अग्नि भी मुझे शीतल जलके समान अनुभूत हो रही है।'

उलटा जप भी कल्याणप्रद

'राम' यह परमात्माका नाम है और सब लोगोंको इसके जपका समान अधिकार है। श्रीचैतन्यमहाप्रभु कहते हैं कि '*हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥*'—'इस महामन्त्रको जो कोई भी प्रफुल्लित होकर सुनेगा अथवा उसका गान करेगा, उसके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होंगे।'

आदिकवि वाल्मीकि पहले रत्नाकर डाकूके नामसे कुख्यात थे। जनश्रुति है कि वे राहगीरोंको लूटकर अपनी आजीविका चलाया करते थे। एक दिन ईश्वरकी प्रेरणासे उनमें सद्बुद्धिका उदय हुआ और उन्होंने सत्संग करनेका दृढ़ निश्चय किया। वे राम-नामके जपका प्रयास करने लगे, परंतु जन्म-जन्मान्तरोंके बद्धमूल कुसंस्कारोंके कारण उनकी जिह्वासे राम-नामका शुद्ध उच्चारण ही नहीं हो पाता था। तब उन्होंने प्रतिलोम-क्रमसे राम-नामका जप करना आरम्भ किया। 'मरा'-'मरा' की अविच्छिन्न विपरीत नाम-ध्वनिसे ही वातावरण पवित्र हो गया। राम-नाममें अविचल श्रद्धा तथा विश्वासके कारण वाल्मीकि दस्युवृत्तिसे मुक्त होकर महान् संत बन गये और उन्होंने विश्वके आदिकाव्य 'रामायण' के प्रणयनका श्रेय प्राप्त किया, वे ही आदिकवि कहलाये।

रामसे बड़ा रामका नाम

'राम' शब्दका अभिप्रेत अर्थ शरीरधारी जीव नहीं, प्रत्युत सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और परम कृपालु ईश्वर है। ईश्वर प्रत्येक प्राणीके अंदर समानरूपसे विराजमान हैं। 'राम' शब्दसे उन अनन्त ज्ञान तथा शक्तिसे सम्पन्न परमात्माका ही प्रत्यभिज्ञान होता है। इसीलिये राम-नामको रामसे भी बड़ा माना गया है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें॥
(रा०च०मा० १। २३। ५)

और भी—

निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥
(रा०च०मा० १। २३)

ब्रह्मरूप रामने तो एक तपस्वीकी पाषाण बनी नारीका उद्धार किया था, परंतु राम-नामने तो अगणित दुर्जनोंको सद्बुद्धि प्रदानकर उनका कल्याण किया है—

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
(रा०च०मा० १। २४। ३)

इसमें संशय नहीं कि राम परब्रह्मके अवतार हैं, परंतु उनके वरदायक नामकी महिमा उनसे भी बढ़कर है—

ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥
(रा०च०मा० १। २५)

कराल-कलिकालरूपी अथाह समुद्रको पार करनेके लिये राम-नाम एक सुदृढ़ जहाज है। रामके नामको कल्पतरु कहा गया है जो लोक-परलोक दोनोंके लिये फलदायक है, आवश्यकता है श्रद्धा तथा विश्वासके साथ राम-नाम परायण होनेकी ।

* * *

महापापीके उद्धारका परम साधन

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

प्रश्न—'मैं बड़ा ही पापी हूँ। जीवनभर मैंने पाप किये हैं। परधन-हरण, व्यभिचार, हिंसा, ब्राह्मण-साधुओंका अपमान, माता-पिताको कष्ट देना और सबसे वैर करना आदि कोई भी ऐसा पाप नहीं, जो मैंने बड़े चावसे चित्त लगाकर न किया हो। इस प्रकारके पाप ही मेरे जीवनके मुख्य काम रहे हैं। मैं ऊपरसे बड़ा भक्त बना रहता था, लोगोंको उपदेश करता था, पर अंदर-ही-अंदर पापोंकी बात सोचता और करता था। अब भी पापोंसे छूट नहीं पाया हूँ। मुझे अपनी करतूतोंपर बड़ा पछतावा है। मैं नरकोंके भयसे सदा काँपता रहता हूँ। घुल-घुलकर हृदयसे रोता हूँ कि हे भगवन्! मेरा निस्तार कैसे होगा? मुझ नीचको कौन अपनायेगा? हाय! क्या मेरे लिये कोई उपाय नहीं है? क्या मैं प्रभुकी कृपा और उनके प्रेमको प्राप्त कर ही नहीं सकता? कोई उपाय हो तो बतलाइये!'

उत्तर—'उपाय क्यों नहीं है? ऐसा कौन जीव है जिसके लिये प्रभुकी कृपाका द्वार बंद हो? प्रभु ही यदि पापीको नहीं अपनायेंगे तो कौन अपनायेगा? वे पतितपावन हैं, बड़े ही दयालु हैं। भैया! तुम घबराओ नहीं। तुमपर तो उनकी कृपा बरसने लगी है—तभी तो तुम्हें अपनी करतूतोंपर पछतावा हो रहा है, तभी तो तुम नरकके भयसे काँपते, निस्तारके लिये रोते और प्रभुकृपा तथा प्रभुप्रेमको प्राप्त करनेके उपाय पूछते हो? जिस कृपाने तुम्हें ऐसी वृत्ति दी है, वही कृपा तुम्हारा निस्तार करेगी, वही तुम्हें भगवान्से भी मिला देगी! उस कृपापर विश्वास करो। मनमें निश्चय कर लो कि—एकमात्र भगवान् ही ऐसे परम दयालु हैं, जो पापियोंको अपनाते हैं। स्नेहमयी माता जैसे अपने बच्चेकी गन्दगी अपने हाथों साफ करती है, वैसे ही भगवान् अपने ही हाथों अपने जनके महापापोंका नाश करके उसे अपने हृदयसे लगा लेने योग्य पवित्र बना लेते हैं और बड़े हर्षसे हृदयसे लगा लेते हैं। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वेश्वर हैं, उनकी कृपासे पापोंका समूल नाश हो जायगा, उनकी भक्ति प्राप्त होगी और उनकी सेवाका अधिकार मिल जायगा। बस, एक वे ही ऐसे हैं, वे ही मेरे परम आश्रय हैं, वे ही मेरे एकमात्र रक्षक हैं, उनके सिवा मुझे कहीं भी ठौर नहीं। इस प्रकार निश्चय करके उनके भजनमें लग जाओ, फिर देखते-ही-देखते तुम्हारा तमाम कायापलट हो जायगा। तुम महान् साधु और भगवान्के अनन्य भक्त बन जाओगे। एक तुम्हीं क्यों, सच पूछो तो इस घोर कलियुगमें आज ऐसे कितने लोग हैं जो कुसङ्गमें पड़कर मनको मथ डालनेवाली प्रबल इन्द्रियोंके गुलाम होकर भी पाप-पथसे बिलकुल बचे हों? ऐसे कितने लोग हैं जिन्होंने जवानीको गधापचीसीमें बुरे काम न किये हों और जिनका जीवन आदिसे अन्ततक निष्पाप, सर्वथा शुद्ध और परम पावन रहा हो? जिनका जीवन ऐसा पवित्र है, वे निश्चय ही परम पूज्य हैं, उनके चरणरज:कणको प्राप्त करनेवाला भी पावन हो सकता है। परंतु ऐसे लोग बिरले ही हैं। अधिकांश जनसंख्या तो आज ऐसी ही है, जो पापके कीचड़में फँसी है। ऊपरसे भले ही साफ मालूम हो। ऐसी दशामें उन लोगोंको अवश्य ही भाग्यवान् और भगवान्का बड़ा कृपापात्र समझना चाहिये, जो अपने बुरे कर्मोंके लिये पश्चात्ताप करते हैं, उनसे छूटनेका प्रयास करते हैं और भगवान्की कृपा तथा प्रेमकी प्राप्तिके लिये व्याकुल हो उठते हैं। वे दयालु भगवान् यही तो चाहते हैं। उनकी कृपा-सुधावृष्टिकी प्राप्तिके लिये इतना ही पर्याप्त है। पापोंका सच्चा प्रायश्चित्त हृदयके पश्चात्तापमें है और भगवान्की उस कातर प्रार्थनामें है—जिसमें अपनी बेबसीका सच्चा हाल बतलाकर भगवान्से कृपादान करनेके लिये रोया जाता है।

तुम पश्चात्ताप करो, रोओ, भगवान्से क्षमा-प्रार्थना करो और सबसे आवश्यक बात है, भगवान्की कृपापर विश्वास करके, एकमात्र उन्हींको अपना परम रक्षक, सच्चा स्वामी, परम बन्धु, परम धन, परम इष्ट और परम आश्रय मानकर उनके भजनमें लग जाओ। बीत गयी सो बीत गयी; जो बुरे-भले कर्म बन गये सो बन गये। अब जितनी उम्र बाकी है, उसे भगवान्को सौंप दो। प्रत्येक श्वासमें उनका नाम जपो, उनका पावन स्मरण करो, प्रत्येक कार्य उनकी पूजाके लिये करो। फिर वे अपने-आप ही तुम्हें अपना लेंगे। देर नहीं होगी। देखते-ही-देखते तुम महान् पवित्र और उनके परम प्रेमी बन जाओगे। उनकी प्रतिज्ञाको याद करो—

श्रीभगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३०-३१)

'यदि कोई अत्यन्त पापी भी अनन्यभाक् होकर (एकमात्र मुझको ही अपना रक्षक, स्वामी, आश्रय और परम इष्टदेव मानकर) मुझको भजता है (मेरे शरण होकर मेरे ही परायण होकर परम दृढ़ विश्वासके साथ हृदयकी निर्भरताके साथ मेरा सेवन करता है) वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है (उसने दृढ़रूपसे यही निश्चय कर लिया है कि एकमात्र परम शरण्य श्रीभगवान्‌के भजनके सिवा अब मुझे और कुछ भी नहीं करना है); ऐसे निश्चयवाला वह बहुत शीघ्र (देखते-ही-देखते) धर्मात्मा बन जाता है और नित्य रहनेवाली (भगवत्-प्राप्तिरूप) परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य समझ कि मेरा भक्त (पापकर्मसे सर्वथा न छूटा हुआ भी उपर्युक्त प्रकारसे मुझको ही एकमात्र परम आश्रय और परम रक्षक मानकर मेरा भजन करनेवाला) कभी नष्ट नहीं होता (अर्थात् कल्याणके मार्गसे कभी नहीं गिरता—वह मेरी कृपासे सर्वथा निष्पाप बनकर और मेरे द्वारा सुरक्षित होकर शीघ्र ही मुझको प्राप्त हो जाता है)।'

भगवान्‌की इस अमर आश्वास-वाणीपर विश्वास करो और अपनेको उनके चरणोंपर डालकर निश्चिन्त हो जाओ। यही परम साधन है, जो बड़े-से-बड़े पापीका क्षणोंमें उद्धार कर देता है।

धर्मशास्त्र ही एकमात्र सच्चे मार्ग-प्रदर्शक हैं

(पं० श्रीदेवेन्द्रकुमारजी पाठक 'अचल', रामायणी, साहित्येन्दुशेखर, साहित्यप्रभाकर, आयुर्वेद विशारद)

धर्मशास्त्र मानवमात्रके प्राण हैं। इन्हें आधार, गुरु एवं सर्वस्व भी कहा जाता है। इनका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। वेदादिशास्त्र, स्मृतियाँ, पुराणेतिहास तथा रामायण आदि सद्ग्रन्थ परम कल्याणकारी धर्माचरणका ही उपदेश देते हैं। धर्मशास्त्रोंमें जीवनको सुखमय और सफल बनानेके उत्तम साधन पद-पदपर प्रतिष्ठित हैं। धर्मशास्त्रोंका हृदय अतिशय उदार है। जब कोई भी मनुष्य कर्तव्याकर्तव्यके विषयमें ज्ञानशून्य होने लगे, निर्णय न ले सके अथवा दिग्भ्रमित होने लगे, तब उसे धर्मशास्त्रोंसे आज्ञा लेकर अपने कार्यका सम्पादन करना चाहिये, क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी गहन होती है—'**गहना कर्मणो गतिः।**' इसलिये क्या कर्म है? क्या अकर्म है? इस विषयमें विद्वान् लोग भी मोहित हो जाते है—'**किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।**' इस स्थितिमें एकमात्र शास्त्र ही कार्य और अकार्यकी व्यवस्थामें प्रमाण होते हैं—'**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।**' वर्तमानकी भीषण विभीषिकाकी परिस्थितिमें भव-संतरणके लिये धर्मशास्त्र ही सच्चे आश्रय हैं। धर्मशास्त्रोंका अनुशीलन, चिन्तन, मनन एवं पारायण करना प्रत्येक मनुष्यका पुनीत कर्तव्य है। धर्मशास्त्र ही '**सत्यं शिवं सुन्दरम्**' का उद्घोष करनेवाले मार्ग-प्रदर्शक हैं। वर्तमानमें भोग, ऐश्वर्य एवं धन आदिके प्रति बढ़ते मोहने पापाचार, अनाचार, अत्याचार और अगणित दुराचारोंको जन्म दे रखा है। इस विषयमें भागवद्धर्मके प्रतिपादक श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि—धनसे ही मनुष्योंमें चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, मद, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जुआ और शराबकी प्रवृत्ति बढ़ती है। इसलिये कल्याणकामी पुरुषको अर्थनामधारी अनर्थको दूरसे ही त्याग देना चाहिये—

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥

(श्रीमद्भा० ११। २३। १८-१९)

नाना प्रकारके दुःखोंमें उलझा रहनेवाला व्यक्ति दुःखसे दूर होनेका उपाय जान नहीं पाता, परिणामस्वरूप और भी दुःखी होता जाता है। धर्मशास्त्रोंने इन दुःखोंसे छुटकारा पानेका उत्तम मार्ग बताते हुए कहा है—

ये दम्भान्नाचरन्ति स्म येषां वृत्तिश्च संयता।
विषयांश्च निगृह्णन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥
प्रत्याहुर्नोच्यमाना ये न हिंसन्ति च हिंसिताः।
प्रयच्छन्ति न याचन्ते दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥

(महा०, शान्तिपर्व ११०। ३-४)

'जो दम्भयुक्त आचरण नहीं करते, जिनकी जीविका नियमानुकूल चलती है और जो विषयोंके प्रति बढ़ती हुई इच्छाको रोकते हैं, वे दु:खोंको लाँघ जाते हैं। जो दूसरोंके कटु वचन सुनाने या निन्दा करनेपर भी स्वयं उन्हें उत्तर नहीं देते, मार खाकर भी किसीको नहीं मारते, स्वयं देते हैं, परंतु दूसरोंसे माँगते नहीं, वे दुर्गम संकटसे पार हो जाते हैं।'

जो मनुष्य संसारमें रहकर भी यदि सांसारिक विषय-जालोंमें न उलझें, परमार्थ दृष्टिसे सबकी सेवा करें तो वे ईश्वरके अतिनिकट होते चले जाते हैं। ऐसे ही व्यक्तियोंको सदा संतुष्ट रहकर कण-कणमें अपने इष्टके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है—

संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तिरेव च।
न च तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥

महाभारतके शान्तिपर्वमें भी ऐसी बात कही गयी है—

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्॥

'लोकमें जो काम-सुख है और स्वर्गमें जो देव-सम्बन्धी महान् सुख है, वे तृष्णाके क्षय और संतोषद्वारा प्राप्त सुखके सोलहवें भागके बराबर भी नहीं हैं।' धर्मशास्त्र उपदेश देते हुए बारम्बार बताते हैं कि बाह्य इच्छाओंको समेट लो, क्योंकि इनसे व्यर्थका बन्धन ही होता है।

गरुडपुराणका कहना है कि अपने-अपने गृहस्थ-धर्म-कर्मका विधिवत् पालन करनेवाला पुरुष भी स्वाभाविक रीतिसे मोक्षपद प्राप्त कर लेता है—

स्वकर्मधर्मार्जितजीवितानां शास्त्रेषु दारेषु सदा रतानाम्।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि मोक्षः पुरुषोत्तमानाम्॥
(गरुडपु० १०९। ४३)

अपने साधनसे ही जीवनका परम लक्ष्य प्राप्त कर लेनेका उद्देश्य होना चाहिये। इस उद्देश्यकी प्राप्तिमें संयम-नियमकी प्रमुख भूमिका होती है। गीता (२। ६१)-में कहा गया है—

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

'जो संयमी होता है और जिसकी इन्द्रियाँ वशमें होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर और तत्त्वमें प्रतिष्ठित होती है।'

वस्तुत: यदि मनुष्य अशुभ विचार, अभक्ष्य-भोजन, कलुषित भाव तथा निन्द्य-आहार-विहारसे सुरक्षित रहे तो नि:संदेह दीर्घायु प्राप्त कर लेता है।

श्रीरामचरितमानस तो धर्मशास्त्रोंका सार है। इसमें रामकथामें प्रेम उत्पन्न होना ही मुख्य धर्मके रूपमें निरूपित है। इस रामकथाके श्रद्धापूर्वक श्रवण-मनन आदिसे धर्मके प्रबल शत्रु काम, क्रोध तथा मोह आदिका नाश होता है—

बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥

—विशाल हृदय और विमल बुद्धिकी प्राप्ति होती है—

अस मानस मानस चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥

—यह अज्ञानका नाश करती है—

महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥

—इससे सर्वविध कल्याण एवं सर्वमङ्गलकी प्राप्ति होती है—

सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु॥

—सांसारिक विषय-रस-निवृत्तिके लिये इसका श्रवण आवश्यक है—

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥

—इससे दृढ़ रामभक्ति प्राप्त हो जाती है—

रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग॥

—और यह जन्म-मरणरूपी रोगकी दवा है—

भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥

—रामकथा भवसागर-संतरणके लिये अमोघ उपाय है—

सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥

—इससे विषय, विवेक एवं ऐश्वर्यकी सहज प्राप्ति हो जाती है—

समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान॥

इस प्रकार पग-पगपर ये सभी धर्मशास्त्र मानवोंपर कृपा करनेके लिये पथ-प्रदर्शकके रूपमें सर्वदा प्रदर्शित होते हैं। ये समस्त धर्मशास्त्र वर्तमानमें हम सबके लिये अभिनन्दनीय तथा प्रात:स्मरणीय होते हुए आचरणीय हैं।

* * *

साधकोंके प्रति—

सत्यकी खोज

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ६६९ से आगे]

जहाँ योग है, वहाँ भोग नहीं होता और जहाँ भोग है, वहाँ योग नहीं होता—यह नियम है। परंतु एक अवस्था ऐसी भी होती है, जिसमें साधकको योगका, ज्ञानका अथवा प्रेमका अभिमान हो जाता है और वह मान लेता है कि मैं योगी हूँ, मैं ज्ञानी हूँ अथवा मैं प्रेमी हूँ। कारण कि अनादिकालसे जीवमें यह आदत पड़ी हुई है कि वह जिसके साथ सम्बन्ध करता है, उसका अभिमान कर लेता है; जैसे—धन मिलनेसे 'मैं धनी हूँ' आदि। मैं योगी हूँ—यह वास्तवमें योगका भोग है; क्योंकि इसमें योगका संग है, योगके साथ अहम् मिला हुआ है। मैं ज्ञानी हूँ—यह वास्तवमें ज्ञानका भोग हैं; क्योंकि इसमें ज्ञानका संग है, ज्ञानके साथ अहम् मिला हुआ है। मैं प्रेमी हूँ—यह वास्तवमें प्रेमका भोग है; क्योंकि इसमें प्रेमका संग है, प्रेमके साथ अहम् मिला हुआ है। भोग न रहनेपर योगी, ज्ञानी और प्रेमी नहीं रहता अर्थात् व्यक्तित्व सर्वथा मिट जाता है। कारण कि योग, ज्ञान या प्रेम मिलनेसे मनुष्य उनके साथ एक हो जाता है अर्थात् वह योगस्वरूप, ज्ञानस्वरूप या प्रेमस्वरूप हो जाता है, इसलिये उनका अभिमान नहीं होता। जबतक व्यक्तित्व रहता है, तबतक पतनकी सम्भावना रहती है। इसलिये जो योगका अभिमानी है, वह कभी भोगमें भी फँस सकता है; जो ज्ञानका अभिमानी है, वह कभी अज्ञानमें भी फँस सकता है; जो मुक्तिका अभिमानी है, वह कभी बन्धनमें भी फँस सकता है*; जो प्रेमका अभिमानी है, वह कभी रागमें भी फँस सकता है।

जब योग, ज्ञान और प्रेमका अभिमान (भोग) नहीं रहता, तब साधक मुक्त हो जाता है। मुक्त होनेपर भी साधकने जिस मत (प्रणाली)-को मुख्यता दी है, उसका एक सूक्ष्म संस्कार रह जाता है, जिसको अभिमानशून्य अहम् कहते हैं। जैसे भुने हुए चने खेतीके काम तो नहीं आते, पर खानेके काम आते हैं, ऐसे ही वह अभिमानशून्य अहम् जन्म-मरण देनेवाला तो नहीं होता, पर (अपने मतका संस्कार रहनेसे) अन्य दार्शनिकोंसे मतभेद करनेवाला होता है। तात्पर्य है कि उस सूक्ष्म अहम्‌के कारण मुक्त पुरुषको अपने मतमें संतोष हो जाता है। जबतक अपने मतमें संतोष है, अपनी मान्यताका आदर है, तबतक दूसरे दार्शनिकोंके साथ एकता नहीं होती। साधन तो अलग-अलग होते हैं, पर साधन-तत्त्व एक होता है अर्थात् कर्मयोग, ज्ञानयोग आदि सभी साधन मिलकर साधन-तत्त्व होता है। मुक्त पुरुषका मत साधन-तत्त्व होता है। परंतु वह साधन-तत्त्वको ही साध्य मानकर उसमें संतोष कर लेता है।

जीव ईश्वरका अंश है, इसलिये वह जिस मतको पकड़ लेता है, वही उसको सत्य दीखने लग जाता है। अतः साधकको चाहिये कि वह अपने मतका अनुसरण तो करे, पर उसको पकड़े नहीं अर्थात् उसका आग्रह न रखे। न ज्ञानका आग्रह रखे, न प्रेमका। वह अपने मतको श्रेष्ठ और दूसरे मतको निकृष्ट न समझे, प्रत्युत सबका समानरूपसे आदर करे। गीताके अनुसार जैसे '**मोहकलिल**' का त्याग करना आवश्यक है, ऐसे ही '**श्रुतिविप्रतिपत्ति**' का भी त्याग करना आवश्यक है (गीता २। ५२-५३); क्योंकि ये दोनों ही साधकको अटकानेवाले हैं। इसलिये साधकको जबतक अपनेमें दार्शनिक मतभेद दीखे, सम्पूर्ण मतोंमें समान आदरभाव न दीखे, तबतक उसको संतोष नहीं करना

---

*येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥ (श्रीमद्भा० १०। २। ३२)

'हे कमलनयन! जो लोग आपके चरणोंकी शरण नहीं लेते और आपकी भक्तिसे रहित होनेके कारण जिनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं है, वे अपनेको मुक्त तो मानते हैं, पर वास्तवमें वे बद्ध ही हैं। वे यदि कष्टपूर्वक साधन करके ऊँचे-से-ऊँचे पदपर भी पहुँच जायँ तो भी वहाँसे नीचे गिर जाते हैं।'

चाहिये। अपनेमें मतभेद दीखनेपर वह साधन-तत्त्वतक तो पहुँच सकता है, पर साध्यतक नहीं पहुँच सकता। साध्यतक पहुँचनेपर अपने मतका आग्रह नहीं रहता और सभी मत समान दीखते हैं—

पहुँचे पहुँचे एक मत, अनपहुँचे मत और।
'संतदास' घड़ी अरठ की, ढुरे एक ही ठौर॥
नारायण अरु नगर के, 'रज्जब' राह अनेक।
कोई आवौ कहीं दिसि, आगे अस्थल एक॥

मतभेदको लेकर आचार्योंमें लड़ाई नहीं होती, प्रत्युत उनके अनुयायियोंमें लड़ाई होती है। कारण कि अनुयायियोंको मुक्तावस्थाका अनुभव तो हुआ नहीं, पर मतका आग्रह (पक्षपात) रह गया, जबकि आचार्योंको अनुभव हो चुका है! आचार्योंके मतभेदसे अनुयायियोंमें अपने मतके प्रति राग और दूसरे मतके प्रति द्वेष पैदा हो जाता है। राग-द्वेष होनेसे सत्यकी खोजमें बड़ी भारी बाधा लग जाती है। परंतु राग-द्वेष न होनेपर साधक सत्यकी खोज करता है कि जब वास्तविक तत्त्व एक ही है तो फिर मतभेद क्यों है? इसलिये वह मुक्तिमें भी संतोष नहीं करता। सत्यकी खोज करते-करते वह खुद खो जाता है और **'वासुदेवः सर्वम्'** शेष रह जाता है!

जिस साधकमें पहले भक्तिके संस्कार रहे हैं, उसको मुक्तिमें संतोष नहीं होता। इसलिये जब उसको मुक्तिका रस भी फीका लगने लगता है, तब उसको प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है। भक्ति साधन भी है और साध्य भी—**'भक्त्या सञ्जातया भक्त्या'** (श्रीमद्भा० ११। ३। ३१)। साधन-भक्तिमें साधन और साध्य दोनों भगवान् होनेसे अपने मतका आग्रह सुगमतासे छूट जाता है और साध्य-भक्ति अर्थात् प्रतिक्षण वर्धमान प्रेमकी प्राप्ति स्वतः हो जाती है। प्रेमकी प्राप्ति होनेपर 'सब कुछ भगवान् ही हैं'—ऐसे भगवान्‌के समग्र स्वरूपका साक्षात् अनुभव हो जाता है और साध्यमें अगाध प्रियता जाग्रत् हो जाती है। प्रियता जाग्रत् होनेपर किसी एक मतमें आग्रह नहीं रहता, सभी मतभेद गलकर एक हो जाते हैं। मुक्तिमें तो अखण्डरस, एकरस मिलता है, पर भक्तिमें अनन्तरस, प्रतिक्षण वर्धमान रस मिलता है। प्रेम सम्पूर्ण साधनोंका अन्तिम फल अर्थात् साध्य है। प्रत्येक साधकको अपने-अपने साधनके द्वारा इसी साध्यकी प्राप्ति करनी है। इसलिये मनुष्ययोनि वास्तवमें साधनयोनि अथवा प्रेमयोनि है; क्योंकि मनुष्यजन्म परमात्मप्राप्तिके लिये ही हुआ है और परमात्मप्रेमकी प्राप्तिमें ही मनुष्यजन्मकी सफलता है।

मनुष्य और साधक पर्याय हैं। जो साधक नहीं है, वह वास्तवमें मनुष्य भी नहीं है। जो साधक है, वही वास्तवमें मनुष्य है। मनुष्यका खास कर्तव्य है—सत्यको स्वीकार करना। परमात्मा हैं—यह सत्य है और संसार नहीं है—यह भी सत्य है। सत्यको सत्य मानना भी सत्यको स्वीकार करना है और असत्यको असत्य मानना भी सत्यको स्वीकार करना है। जिसके साथ हमारा सम्बन्ध है, उसके साथ सम्बन्ध मानना भी सत्यको स्वीकार करना है और जिसके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं है, उसके साथ सम्बन्ध न मानना भी सत्यको स्वीकार करना है। मूलमें एक ही सत्य है। वह यह है कि एक समग्र भगवान्‌के सिवाय और कुछ है ही नहीं—**'वासुदेवः सर्वम्'**। (समाप्त)

* * *

आवश्यकता ही आविष्कारकी जननी है। यदि जनसंख्या बढ़ेगी तो उसके पालन-पोषणके साधन भी बढ़ेंगे, अन्नकी पैदावार भी बढ़ेगी, वस्तुओंका उत्पादन भी बढ़ेगा, उद्योग भी बढ़ेगा। फिर जनसंख्या-वृद्धिकी चिन्ता क्यों?

मनुष्यके पास केवल पेट ही नहीं होता, प्रत्युत दो हाथ, दो पैर और एक मस्तिष्क भी होता है, जिनसे वह केवल अपना ही नहीं, प्रत्युत कई प्राणियोंका भरण-पोषण कर सकता है। फिर जनसंख्या-वृद्धिकी चिन्ता क्यों?

* * *

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता—

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ६३३ से आगे]

हमारे कहवे कौ यह तात्पर्य कबहूँ नहीं कि, घरके जीवन कौ पालन-पोषन न करै—यद्वा-घर त्याग कैं दिखाऊ विरक्त बनि जाय, नहीं-नहीं, कदापि नहीं। जब ताँईं भोग्य है, रहै गृहस्थमें ही, किंतु—अपने पूर्व जन्मन की कमाई संसारी कामनमें ही खर्च न करि डारै। परदोष-दर्शन, परनिन्दा, द्रोह, कठोरता तथा हिंसा इनकौ सर्वथा परित्याग करि देय। जब संसारी काम करै, तौ पूरी लगन सौं जुटि परै है, ऐसैं ही जब भजनमें लगै, तब पूरे उल्लास सौं याहू में जुटि परै। ईमानदारी तौ तब है, जब भजनमें १०० गुनौं उत्साह अधिक होय।

श्रद्धावान्, गम्भीर, सरल, पूर्ण-सदाचारी, सुशील, नम्र, गुरुजन-सेवी, दीन-सहायक, परोपकारी, उदार एवं क्षमाशील बनिवे कौ अभ्यास बढ़ावै।

× × ×

श्रीजीवनधनमें प्रेम बढ़ायवे कौ पूर्ण-प्रयत्न करतौ रहै, इनसौं कबहूँ काम न करबावै। ये तौ केवल आत्मीयता तथा प्रियताके ही पात्र हैं। परम-कल्याणके ताँईं जीवनमें दो बातैं परम-कर्तव्य है—सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान तथा संयोग-वियोग आदिक द्वन्द्व जो आय जायँ उनकूँ सहतौ जायँ। हाँ, आगेके ताँईं अपनौं मार्ग परिमार्जित तथा उज्ज्वल बनातौ जाय। कैसी हू परिस्थिति आय जाय, परंतु पारस्परमें वैमनष्यता न हौंन पावै। यदि नैकहूँ अवकास मिलै, तौ भजन करिवे में न चूकै। या जीवन कूँ अधिक झंझटन में न फँसावै।

× × ×

उतनौं ही काम बढ़ावै जामें—शान्ति रहै, पाप न करनौं परै, छल न करनौं परै, दूसरेकी जीविका न हरनी परै। स्वभावमें विकार न बढ़न पावैं और भजनमें बाधा न परै। अधिक लाभ-हानिकी सम्भावना न हौय। यही विचारतौ रहै तथा पूर्ण-प्रयत्न करतौ रहै कि, याही जीवनमें भजन बनि जाय। व्यर्थ बोलनौं, व्यर्थ देखनौं, व्यर्थ सुननौं तथा व्यर्थ विचारनौं—इन चारौं व्यर्थन सौं साधक कूँ सदैव बचनौं चहिए। यदि साधक या उपदेशामृतके पालनमें दृढ़ प्रतिज्ञ है जाय, तौ लोक तथा परलोक सहजमें ही सुधारि जायँ।

× × ×

सद्वाक्य-पालनकी विधिपर अधिक ध्यान राखनौं—प्रथम सद्वाक्य कूँ पढ़ै यद्वा सुनै तत्पश्चात विचार करै। फिर क्रमशः शनैः-शनैः धारणामें लावै। तदनु शुभ अवसरमें पालन करिवे की प्रतिज्ञा करै। प्राण-पण सौं पालन करिवे की दृढ़ प्रतिज्ञा करि डारै तथा वा प्रतिज्ञा कूँ पूर्ण-प्रयत्न सौं पालन करै। शुभ अवसर है—श्रीराम-नवमी, श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, मार्गशीर्ष-शुक्ला पञ्चमी, माघ-शुक्लामें श्रीगुरुवार तथा कार्तिक-शुक्ला षष्ठी।

× × ×

परम-कल्याण कौ मार्ग हौं—श्रीसद्गुरु भगवान्में पूर्ण-श्रद्धा, पूर्ण भगवद्-भाव। किंतु अन्य महात्मन में अवज्ञा बुद्धि न होय और अपने इष्ट में पूर्ण-भाव होय। इष्ट कौ भजन, पूजन, वन्दन, प्रार्थना, ध्यान तथा सानिध्य बढ़ातौ ही जाय। इनसौं प्रेम करिवे कौ अभ्यास करै। आत्मीयता कौ अनुभव करै। उत्तम प्रकार तौ यही है कि, इनके ताँईं अपनौं सर्वस्व-समर्पण करतौ जाय। इनसौं कछु इच्छा न करै। तथापि यदि कछु याचना ही करनी परै, तौ इनसौं ही करै। अन्य साधकन के श्रीभगवान् तथा हमारे श्रीभगवान् सब एक ही हैं। ऐसौ भाव राखनौं। श्रीभगवान्के काहू स्वरूपमें तिरस्कार बुद्धि न हौन पावै। एक ही श्रीभगवान्के ये सब स्वरूप हैं, ऐसौ विचार राखै। काहू भावुकके भावमें भूलिकैं हूँ साधारण भाव न लावै। दूसरेके भजनमें सहायता करनौं, यह सर्वोत्तम पुण्य है। काहू के साधनकी आलोचना न करै। एक ही

श्रीभगवान्‌की प्राप्तिके ताँईं अनेकन मार्ग हैं। श्रीभगवत्-प्राप्ति सबकूँ है सकै है, यही विचार राखनौं। महत्-अपराध सौं बहुत ही बचतौ रहै। जो भावुक श्रीभगवान्‌के जा रूपकी भावना करै है, अवसर आयवे पै श्रीभगवान् वा भावुकके ताँईं वाही रूप सौं दर्शन दैयँ हैं। यह सिद्धान्त है—

यद् यद् धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत् तद् वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥

(श्रीमद्भा० ३। ९। ११)

× × ×

श्रीभगवद्‌के विषयमें कबहूँ विवाद न करै। समय, द्रव्य, शरीर, इन्द्रिय, परिकर तथा अन्तःकरण—इन सबनकूँ क्रमशः श्रीभगवत्‌की ओर ही झुकामतौ रहै। इन सबन की सार्थकता याही में है। जहाँ-जहाँ अपनौं मोह होय, उन सबन कूँ श्रीभगवत्‌में समर्पण करतौ जाय। इनसौं (प्रभुसौं) यही कहतौ रहै—**'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।'** यह महावाक्य साधक के बड़े ही काम कौ है—***'सबु करि माँगहिं एक फलु राम चरन रति होउ।'*** श्रीप्राणनाथ सौं सम्बन्ध जोरि लैनौं, यही बड़ी भारी बुद्धिमत्ता है। साधक कौ परम-कर्तव्य यही है कि, शीघ्राति-शीघ्र श्रीजीवनधन सौं कोई सम्बन्ध निश्चित करि डारै। माता-पिता आदिक गुरुजनन में श्रद्धा राखै। इनकी आज्ञा-पालन करै तथा इनकी सेवामें अपनौं परम सौभाग्य मानैं। ***'जननी सम जानहिं परनारी'***—या महावाक्यके पालन कौ बहुत ही ध्यान राखै। अपनी सौं बड़ी अवस्था बारीन में मातृभाव। बराबर बारीन में भगिनीभाव तथा छोटीन में पुत्रीभाव सौं सदैव बर्ताव राखै। परस्त्री-स्पर्श महापाप समझै। चालीस वर्षकी अवस्था सौं पीछैं ब्रह्मचर्यके पालन कौ अधिक विचार राखै।

× × ×

गृहस्थके ताँईं निर्देश है—अत्यन्त परिश्रम सौं, छल-कपट रहित शुद्धतापूर्वक कमाये भये अन्न सौं ही अपनौं तथा अपने कुटुम्ब कौ पालन करै। शुद्ध अन्न सौं शुद्ध मन बनै है। अपनी कमाई कौ भरोसौ राखै। परद्रव्य सौं सर्वथा बचतौ ही रहै। अपने कुटुम्बिन सौं स्वधर्म-पालन करातौ रहै।

समझाय कैं, शास्त्रनकी बातनसे, जैसें बनै अपने जनन सौं श्रीभगवत् आराधना अवश्य ही करातौ रहै। दैवे कौ ही विचार राखै, लैवे कौ कम। सेवा करिवे कौ ही विचार राखै, सेवा लैवे कौ कम। सन्मान दैवे कौ ही विचार राखै, अपने सन्मान कौ कम। सबकूँ सुख पहुँचायवे कौ ही विचार राखै।

मित्र भले ही चाहें अनेकन हौयँ, किंतु श्रीभगवत्-सृष्टिमें अपनौं एक हू शत्रु न बनावै। दूसरे कौ अनिष्ट कबहूँ न करै। या कामके ताँईं काहू कूँ अनुमति न दे। मन सौं हूँ कबहूँ न सोचै। जहाँ ताँईं है सकै, उपकार ही करै, याही के ताँईं दूसरे कूँ अनुमति दे, यही सोचै।

× × ×

दो बातन कूँ सदाँ भुलातौ रहै—(१) अपने सौं यदि काहू कौ उपकार बनि गयौ होय। (२) काहू ने अपने साथ कौई अपकार करि दियौ होय।

× × ×

दो बातन कूँ कबहूँ न भूलै—(१) अपने साथ यदि काहू ने उपकार कियौ होय। (२) दुर्भाग्य सौं यदि अपने सौं काहू कौ अपकार बनि गयौ होय।

जीवन भर दुःख मानतौ रहै, अपनी भूलके ताँईं पश्चात्ताप करै, सम्भव होय तौ क्षमा याचना करि लेय, त्यागिवेके योग्य दुर्गुण हैं। धारण करिवे के योग्य सद्‌गुण हैं। अहंकार न आवन पावै। सद्‌ग्रन्थन कौ स्वाध्याय अवश्य करै। योग्य पुरुषन की जीवनी अवश्य ही पढ़ै तथा उनके सद्‌गुणन कूँ अपनेमें धारण करिवे कौ अभ्यास करै। दीनता कौ भाव बढ़ातौ ही रहै। एक-एक क्षण कूँ बहुत सावधानी सौं परमावश्यक सत्कार्यन में ही व्यतीत करिवे कौ अभ्यास करै। इन्द्रियन की भोग-लिप्सा कम करतौ जाय। साधनके ताँईं स्वस्थ शरीरकी परमावश्यकता है। अतएव स्वास्थ्य कौ बहुत ही ध्यान राखै। चिन्ता, शोकादिक मनमें अशान्ति उत्पन्न करैं हैं। अतएव साधक कूँ इनसौं बहुत ही बचनौं चहिए। सवरे शुभ कर्मन कौ, सवरे सद्विचारन कौ, स्वाध्याय तथा सत्संग आदिकन कौ फल एक यही है कि, भजन करिवे की रुचि उत्पन्न होय। चाहैं मालाकी संख्या सौं होय, चाहैं घन्टानके विचार सौं होय। भजन कौ नियम अवश्य रहै। जितनौं नियम भजनके ताँईं बनावै, वाकूँ नित्य ही पूर्ण करि डारै। भजनमें प्रमाद, आलस्य तथा उपेक्षा न हौन पावै। भजन करिकैं भजन ही माँगै। [क्रमशः]

* * *

एक पलके सत्संगसे अलौकिक आनन्द (प्रभु)-की प्राप्ति

(श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

किन सच्ची बातोंको मानना है—

प्रभुने सभी भाई-बहनोंको तीन शक्तियाँ दी हैं—'बल, विवेक और विश्वास।' ये तीनों ही शक्तियाँ सत्संग करनेकी अमोघ सामग्री हैं। इनके आधारपर ही सभी भाई-बहनोंको कुछ सच्ची बातें माननी हैं। जिस पल आप उन बातोंको मानेंगे उसी पल आपके जीवनका सम्पूर्ण दुःख सदैवके लिये सर्वांशमें जड़मूलसे मिट जायगा और आपको अलौकिक आनन्दकी अनुभूति होगी।

विचित्र रियायत—

प्रभु बड़े दयालु हैं। उन्होंने सत्संग करनेके लिये ऊपर लिखी तीन शक्तियाँ दी हैं। यदि आप इन तीनोंमेंसे किसी एक शक्तिका भी सदुपयोग कर लेंगे तो शेष दो शक्तियोंका सदुपयोग स्वतः हो जायगा। अब आपका उत्तरदायित्व केवल इतना ही रहा कि आप किसी एक शक्तिके आधारपर 'सत्संग' कर लें, सच्ची बातोंको मान लें।

विवेकके आधारपर माननेवाली बातें—

विवेकका आशय उस शक्तिसे है जिसके द्वारा आप कुछ सच्ची बातोंको भलीभाँति जानते हैं; इतनी अच्छी तरहसे जानते हैं कि उन बातोंके लिये आपको किसीसे पूछने या समझने अथवा कहीं पढ़ने-सुननेकी जरूरत नहीं है। विवेक प्रभु-प्रदत्त पथ-प्रदर्शक है, गुरु है।

विवेकके प्रकाशमें गम्भीरतापूर्वक विचार करनेपर आपको अनुभव होगा कि आप निम्न सच्ची बातोंको जानते हैं, जिन्हें आपको मानना है—

(१) बुराई नहीं करना—

जब कोई दूसरा व्यक्ति आपके साथ बुरा व्यवहार करता है, जैसे—वह आपकी निंदा, आलोचना, आपका अपमान, अनादर, तिरस्कार करता है; आपको हानि पहुँचाता है; आपको धोखा देता है; आपके साथ झूठ बोलता है; आपकी सम्पत्तिपर अपना अधिकार करनेका प्रयास करता है, तब वह व्यक्ति आपको बहुत खराब लगता है, क्योंकि वह बुराई कर रहा है। विवेकके प्रकाशमें आपको पता चल गया कि वह व्यक्ति मेरे साथ बुराई कर रहा है। आप इस बातको जान गये। मानव मात्र जानता है कि ये सब बुराइयाँ हैं।

अब आप यह व्रत लीजिये कि मैं अपने जीवनमें, किसी भी प्रकारके भय अथवा प्रलोभनसे, किसी भी व्यक्तिके साथ, कभी भी, किसी भी प्रकारकी बुराई नहीं करूँगा। भूतकालमें मैंने जो बुराइयाँ की हैं, अब मैं उन बुराइयोंकी पुनरावृत्ति नहीं करूँगा। यह व्रत लेना ही सत्संग है, अपने विवेकका आदर है, प्रभु-प्रदत्त 'गुरु' की आज्ञाका पालन है, उनके प्रति की जानेवाली सच्ची श्रद्धा है, जीवनकी मूल साधना है।

विशेष सावधानी—

जो आपके साथ बुराई नहीं करता है, उसके साथ आप भी बुराई नहीं करते हैं। परंतु जब कोई व्यक्ति आपके साथ बुराई करता है तब आप उसे बुरा समझते हैं, उसका बुरा सोचते हैं, उसकी निंदा, आलोचना, बुराई करते हैं। विचार कीजिये, बुराई न करनेवालेके साथ कोई सामान्य व्यक्ति भी बुराई नहीं करता। यह कोई विशेष बात नहीं है। अब आप साधक हैं, अतः आपको इस बातकी विशेष सावधानी रखनी है कि आप बुराई करनेवालेके साथ भी बुराई नहीं करेंगे। यह साधना आप अपने परिवारसे आरम्भ कीजिये; मित्रों, सम्बन्धियों, सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंके साथ कीजिये। फिर तो आपका जीवन आनन्दसे परिपूर्ण हो जायगा।

कोई हमसे लड़ाई करे, हमारा अहित करे तो—

सामान्यतया परिवारके सदस्य, मित्र, सम्बन्धी, निकट सम्पर्कमें रहनेवाले व्यक्ति ही परस्पर निंदा, आलोचना, अपमान, बुराई आदि करते हैं। यदि इनमेंसे कोई व्यक्ति आपकी निंदा, आलोचना करे तो आप उसके प्रतिकारमें निंदा मत कीजिये। शान्त हृदयसे विचार कीजिये। यदि उसकी आलोचना ठीक है, वास्तवमें वह अवगुण आपमें है, तब तो हृदयसे उसे धन्यवाद दीजिये कि उसने आपके उस अवगुणको बता दिया, जिसकी तरफ अबतक आपका ध्यान ही नहीं गया। यदि वह अवगुण आपमें नहीं है तो एकदम निश्चिन्त रहिये, क्योंकि प्रभुकी दृष्टिमें आप निर्दोष हैं। अवसर मिले तो अपनी स्थितिको स्पष्ट कर दीजिये और उसके प्रति करुणाका भाव रखिये कि उसने अज्ञानतावश निंदा करने-जैसी बुराई करके अपनी ही हानि कर ली। चुपचाप, गुप्तरूपसे, सहृदयतापूर्वक उसके सुधारके लिये प्रभुसे प्रार्थना कर दीजिये।

यदि वह आपको शारीरिक अथवा आर्थिक हानि पहुँचानेका प्रयास करे तो यथाशक्ति अपनी सुरक्षाकी व्यवस्था कीजिये। उसे बुरा मत समझिये, अपने दुःखके लिये उसे दोषी मत मानिये, उसके अहितकी भावना मत रखिये। इस प्रकारकी

कार्यवाही कीजिये ताकि आप सुरक्षित रह सकें और वह सुधर जाय, उसका हित हो जाय। शान्त हृदय एवं कारुण्यभावसे उसके हितके लिये आप उसे बाह्य दंड भी दे सकते हैं। सावधान! दंड देते समय आपके हृदयमें लेशमात्र भी क्रोध, द्वेष अथवा बुरा भाव नहीं रहना चाहिये। भगवान् श्रीरामने रावणको और भगवान् श्रीकृष्णने पूतनाको दंड दिया—करुणा-भावसे, उनके हित, कल्याण तथा उद्धारके लिये। न कि किसी ईर्ष्यादि द्वेष-भावसे।

बुराइयोंकी सूची—

आपके साथ किया गया दूसरोंका जो व्यवहार आपको अच्छा नहीं लगता, स्थूल-रूपमें वही बुराई है। झूठ, कपट, चोरी, विश्वासघात, धोखा, चुगली, निंदा, आलोचना, अपमान, निरादर, तिरस्कार, दूसरोंकी सम्पत्तिपर अपना अधिकार करना आदि स्पष्ट दीखनेवाली वे बुराइयाँ हैं जिन्हें आप जानते हैं। ममता, कामना, जगत्‌का आकर्षण आदि वे सूक्ष्म बुराइयाँ हैं जिन्हें विचारशील व्यक्ति ही जान पाते हैं। अभिमान, अहंकृति, मैंपनका आभास अति सूक्ष्म बुराइयाँ हैं।

जिस क्षण आप यह व्रत लेंगे कि अब मैं अपने जीवनमें किसी भी प्रकारकी बुराई नहीं रखूँगा—उसी क्षण आपका सत्संग हो जायगा।

(२) कामनाका त्याग—

यह आपके जीवनका अनुभव है अथवा इस बातको आप अच्छी तरह जानते हैं कि आप कामना-पूर्तिमें पूर्णतया पराधीन हैं। कामना करना तो आपके वशकी बात है, लेकिन उस कामनाको पूरी करना आपके वशकी बात नहीं है। जब कामना पूरी नहीं होती है तब आपको दुःख होता है। आप दुःख चाहते नहीं हैं। कामनाकी अपूर्ति ही दुःख, चिन्ता, भय, क्रोध, राग, द्वेष आदिका मूल कारण है। अब आप यह व्रत लीजिये कि मैं अपने जीवनमें किसी भी प्रकारकी कोई कामना नहीं रखूँगा—यही वास्तविक सत्संग है। जिस क्षण आप कामनाका त्याग करेंगे उसी क्षण आपका सत्संग होगा।

(३) ममताका त्याग—

इस संसारकी कुछ वस्तुओं तथा व्यक्तियोंको व्यक्तिगत मानना और उनसे सुख लेनेकी आशा करना वास्तवमें ममता है। विचार करनेपर आपको अनुभव होगा कि संसारकी सभी वस्तुओं और व्यक्तियोंको आप 'अपनी' नहीं मानते हैं। इस विशाल संसारमें केवल तीन चीजें हैं जिनके बारेमें आपके हृदयमें यह भाव रहता है कि ये 'मेरी' हैं। इन तीनों चीजोंका नाम है—प्रभु-प्रदत्त शरीर, प्रियजन या परिवारके सदस्य और सम्पत्ति।

'इस शरीरको मैंने नहीं बनाया, मुझे याद नहीं है कि मैंने हाथ, मुँह, आँख, कान, हृदय एवं शरीरके अन्य अङ्गोंकी रचना की; अपनी इच्छासे मैंने इस परिवारमें जन्म नहीं लिया; मैं अपने शरीरको जैसा चाहूँ, वैसा नहीं रख सकता; मैं इस शरीरको जबतक चाहूँ, तबतक नहीं रख सकता; शरीरपर मेरा लेशमात्र भी अधिकार नहीं चलता; मैं शरीरमें होनेवाले परिवर्तन, बीमारी तथा शरीरकी मृत्युको नहीं रोक सकता; शरीर अपनी गतिसे चल रहा है'—इन सब बातोंपर आप गम्भीरतासे विचार करेंगे तो आपको स्पष्ट अनुभव होगा कि मुझे जो शरीर मिला है, वह मेरी व्यक्तिगत चीज नहीं है, किसीका दिया हुआ है, मुझे मिला हुआ है, कुछ समयतक मेरे पास रहेगा, देनेवाला इसे पुनः वापस ले लेगा। जो शरीर आपके सबसे अधिक निकट है, जब वह भी आपका नहीं है तो परिवारके सदस्य और सम्पत्ति, जो अपेक्षाकृत दूर हैं, वे आपके कैसे हो सकते हैं?

जिस क्षण आप यह व्रत लेंगे कि शरीर-परिवार-सम्पत्तिके रूपमें जो कुछ मुझे मिला है,उसे मैं अपनी व्यक्तिगत सामग्री नहीं मानूँगा, उसी क्षण आपके जीवनमें सत्संग होगा। शरीर, परिवारजन तथा सम्पत्तिको प्रभुकी धरोहर मानकर सँभालना—इनकी सेवा करना तो वास्तवमें प्रभुकी पूजा है। आप पूजा कीजिये, बड़ा आनन्द मिलेगा।

एक महत्त्वपूर्ण शंका—

आपके मनमें यह प्रश्न पैदा हो सकता है कि ममताके बिना बालकोंका लालन-पालन, उनकी सेवा, शिक्षा एवं विवाह, वृद्ध तथा बीमार परिवारजनोंकी सँभाल, वस्तुओं एवं सम्पत्ति आदिकी देख-रेख—ये सब कार्य कैसे सम्पन्न होंगे; ममताके बिना पारिवारिक तथा सामाजिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जायगी; अपने राष्ट्रको अपना नहीं मानेंगे तो राष्ट्रिय प्रेम नहीं रहेगा। जिन बालकोंको हम अपना बालक नहीं मानते हैं, जो व्यक्ति हमारे परिवारके सदस्य नहीं हैं, हम उनकी सँभाल नहीं करते हैं, हम उनकी सेवा भी नहीं करते हैं; इसी प्रकार दूसरोंकी सम्पत्तिकी देख-रेख भी हम नहीं करते हैं। यदि हम अपने शरीर, परिवारके सदस्यों और सम्पत्तिको 'अपना' नहीं मानेंगे तो इनकी सेवा तथा सँभाल कौन करेगा?

—आपकी इस शंकाका समाधान इस प्रकार है—

सेवा करें, सँभालें, पर स्वार्थ न रखें—बोलचाल एवं दैनिक व्यवहारमें आप अपने शरीर, परिवारके सदस्यों तथा सम्पत्तिको अपना कहें, जैसे—यह मेरा मकान है, यह मेरी

जमीन-जायदाद है, ये मेरी वस्तुएँ हैं, यह मेरी पत्नी है, पुत्री है, यह मेरा पुत्र है, पति है, ये मेरे माता-पिता हैं, यह मेरा शरीर है, कागजोंमें भी आप अपना ही नाम लिखवायें—इसमें कोई हानि नहीं है। यदि आप यह कहेंगे—यह मेरे पति, पुत्र, माता-पिता, पत्नी आदि नहीं हैं, यह मेरी सम्पत्ति नहीं है तो आपका पारिवारिक एवं व्यावहारिक जीवन बिगड़ जायगा। इसलिये व्यवहारमें इन्हें 'यह मेरा है'—ऐसा कहें और अपना मानकर इनकी सेवा करें, सँभालें—ठीक वैसे ही जैसे अबतक आप कर रहे हैं। लेकिन सेवा तथा सँभालमें अपना स्वार्थभाव न रखें।

अपना स्वार्थ क्या है—

गहराईसे विचार करनेपर आपको अनुभव होगा कि आप इनको (शरीर-परिवारजन-सम्पत्तिको) इसलिये नहीं सँभालते हैं कि ये सब आपके हैं, बल्कि आप इन्हें इसलिये सँभालते हैं कि इनसे आपको सुख-सुविधा-आराम मिल रहा है, भविष्यमें भी मिलेगा, आप बालकोंका लालन-पालन 'अपना' मानकर नहीं करते हैं, इसलिये करते हैं कि इन बालकोंसे हमें भविष्यमें सुख मिलेगा, ये वृद्धावस्था, बीमारी, असमर्थतामें हमारी सेवा करेंगे, हमारा वंश चलता रहेगा—बस यही आपका स्वार्थ है। आप स्वार्थका त्याग कर दीजिये, सुख लेनेकी इच्छा-आशा-कामनाको छोड़ दीजिये और अपना मानकर इनकी खूब सेवा कीजिये, सम्पत्तिको सँभालिये—आपको किसी भी प्रकारकी हानि नहीं होगी। बड़े-बड़े कारखानों एवं बैंकोंके मैनेजर कारखानों तथा बैंकोंको अपना नहीं मानते हैं, फिर भी स्वार्थवश पूरी सँभाल करते हैं। सेवा करनेवाले भाई-बहन किसीको अपना नहीं मानते हैं, जानते ही नहीं कि वे कौन हैं, फिर भी भरपूर सेवा करते हैं।

सुखकी आशा, स्वार्थ कैसे-क्यों छोड़ें—

यदि आप निम्नलिखित बातोंपर विचार करेंगे तो आप सुगमतापूर्वक स्वार्थका त्याग कर सकेंगे—

(क) सुख भोगना, इस जीवनका लक्ष्य नहीं है—प्रभु-कृपासे आपको मानव-जीवन मिला है। इस जीवनका लक्ष्य सुख भोगना नहीं है। श्रीरामचरितमानस (७। ४४। १-२)-में भगवान् श्रीराम हमें यही उपदेश देते हैं—

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

इसका आशय है—हे भाई! इस शरीरके प्राप्त होनेका फल विषय-भोग (सुख) नहीं है। [इस जगत्के सुखोंकी तो बात ही क्या,] स्वर्गका सुख भी बहुत थोड़ा है और अन्तमें दुःख देनेवाला है। अतः जो लोग मनुष्य-शरीर पाकर विषयों (सुखों)-में मन लगा देते हैं, वे मूर्ख अमृतको बदलकर विष ले लेते हैं।

स्मरण रहे, इन्द्रियोंके सारे सुख तो पशु-पक्षीकी योनियोंमें भी मिल जायँगे। यदि आप स्वर्गका सुख भी भोग लेंगे तो भी उसका अन्तिम परिणाम दुःख ही होगा। मानव-जीवन लौकिक सुख-भोगके लिये नहीं है। इस जीवनका लक्ष्य है—शान्ति, मुक्ति, प्रेम, प्रभु-मिलनके अलौकिक आनन्दकी प्राप्ति कर लेना।

(ख) स्वार्थी बन जाना—यदि आप अपने बालकोंका लालन-पालन स्वार्थवश करेंगे, प्रियजनोंके साथ स्वार्थपूर्ण व्यवहार करेंगे तो आपके बालक एवं प्रियजन स्वार्थी बन जायँगे। विचार कीजिये—आपको सेवाभावी पुत्र-प्रियजन चाहिये या स्वार्थी। आपमें विद्यमान स्वार्थकी भावना आपकी संतान, पत्नी, पति, भाई, बहन आदि परिवारजनोंको स्वार्थी बना देगी। फिर जबतक आपसे उनका स्वार्थ पूरा होगा, आपसे उन्हें सुख मिलेगा, तबतक तो वे आपकी सेवा करते रहेंगे और जब आप उनको सुख देनेमें असमर्थ हो जायँगे, तब वे आपकी सेवा करना बंद कर देंगे अथवा समाजके भय तथा अपनी प्रतिष्ठाके लिये, आपको एक भार समझकर, जैसे-तैसे आपकी बाह्य सेवा कर दिया करेंगे। उस समय आपको भयंकर दुःख होगा।

(ग) दुःख नहीं मिटना—यह आपके जीवनका अनुभव है कि आप इस संसारकी जिन-जिन वस्तुओं और व्यक्तियोंको अपना मानते हैं, उन्हींके बिगड़ने तथा वियोग होनेपर आपको दुःख होता है। आप जानते ही हैं कि आपके पास जो कुछ है, एक दिन वह आपके पास नहीं रहेगा। उसका वियोग निश्चित है। जिस दिन वियोग होगा, आप भयंकर दुःखमें आबद्ध हो जायँगे। जिन वस्तुओं एवं व्यक्तियोंको आप अपना नहीं मानते हैं, उनके वियोगमें आपको लेशमात्र भी दुःख नहीं होता है। दुःखका मूल कारण 'ममता' है न कि शरीर, परिवारजन तथा सम्पत्तिका वियोग।

(घ) कुछ नहीं दे सकते—सुखकी आशा करना आपकी भूल है, क्योंकि आपके परिवारका कोई सदस्य या अन्य कोई भी व्यक्ति आपको कुछ नहीं दे सकता। कैसे? विचार कीजिये, आप क्या चाहते हैं, आपका शरीर क्या चाहता है। आप चाहते हैं—मेरा दुःख मिट जाय, मुझे प्रभु मिल जायँ और आपके शरीरकी जरूरत है—हवा, भोजन, जल, वस्त्र, प्रियजन, संसारकी वस्तुएँ आदि। क्या आपके परिवारका कोई भी

सदस्य या कोई भी व्यक्ति आपका दुःख मिटा सकता है, आपको प्रभुसे मिला सकता है, कदापि नहीं। हाँ, वह दुःख-निवृत्ति तथा प्रभु-प्राप्तिका उपाय बता सकता है। उसके बताये हुए उपायको आपको ही अपनाना होगा। दुःख मिटेगा—ममता तथा कामनाके त्यागसे; प्रभु मिलेंगे—सब कुछ प्रभुका माननेसे। रही बात शरीरकी, जिसने आपके शरीरका निर्माण किया है, उसने शरीरकी व्यवस्था भी की है। व्यवस्था की है पहले और निर्माण किया है बादमें। शरीरको जो कुछ मिलना है, वह पूर्वनिश्चित है। इसीका नाम है—प्रारब्ध। आप शरीरकी सेवा करते रहें, चिन्ता न करें, क्योंकि यह शरीर आपका अपना नहीं है। किसीकी धरोहर है।

(ङ) चिन्ता होना—आपके जीवनमें जबतक ममता रहेगी, तबतक किसी भी उपायसे आपकी चिन्ता नहीं मिटेगी, आप मानसिक तनावसे ग्रस्त रहेंगे। जिनमें आपकी ममता है, वे मिट जायँगे—शरीर एवं प्रियजनोंकी मृत्यु हो जायगी, समस्त सम्पत्ति अन्ततः नष्ट हो जायगी, फिर भी आपकी चिन्ता यथावत् बनी रहेगी। स्मरण रहे, शरीर छूट जाता है, ममता-कामना सूक्ष्म शरीरके साथ आपके साथ जाती है। इसलिये स्थूल शरीरके नाश होनेके पूर्व ही ममता-कामनासे मुक्त हो जाना आवश्यक है—परम श्रेयस्कर है।

(च) दुरुपयोग होना—'यह मेरी है'—ऐसा मानकर आप अपने शरीर-स्वजन-सम्पत्तिका दुरुपयोग कर सकते हैं। आप कह सकते हैं—मेरा पुत्र है, मेरी पत्नी है, मेरी सम्पत्ति है—मैं जैसा चाहूँ, वैसा करूँगा। आपकी इस बातको सुनकर दूसरे भी चुप हो जायँगे। परंतु 'दूसरों' की धरोहर मानकर आप उसका दुरुपयोग नहीं कर सकेंगे। आपके हृदयमें यह हिचकिचाहट रहेगी—दूसरोंकी चीज है, दुरुपयोग करनेपर वे उलाहना देंगे, आपके परिवारजन, पड़ोसी, सम्बन्धी, समाजके व्यक्ति सभी आपको दुरुपयोग करनेसे रोकनेका प्रयास करेंगे।

(छ) राग-द्वेष होना—यदि आप पहले ही यह आशा कर लेंगे कि मेरे बालक बड़े होकर मेरी सेवा करेंगे, बहू मेरी आज्ञाका पालन करेगी, मेरा शरीर स्वस्थ ही रहेगा तो आप राग-द्वेषमें फँस जायँगे। यदि आपकी आशा पूरी हो गयी तो जो आपकी आशा पूरी करेंगे, उनमें आपका राग (मोह) हो जायगा। यदि आपकी आशा पूरी नहीं हुई तो जिन्होंने आपकी आशा पूरी नहीं की, उनसे आपको द्वेष हो जायगा, उनपर आपको क्रोध भी आयेगा। द्वेष आपको चौबीस घंटे जलाता रहेगा। राग उस दिन आपको बहुत रुलायेगा, जिस दिन जिनमें आपका राग है, उनकी मृत्यु होगी। यदि आपकी मृत्यु पहले हो गयी तो अन्तिम समयमें आपको उनकी याद आयेगी, उनकी चिन्ता होगी, उन्हें छोड़नेका भीषण दुःख होगा, जिनमें आपका राग है। आपकी मृत्यु बहुत दर्दनाक बन जायगी। ये दोनों कार्य होंगे ही—चाहे पहले उनकी मृत्यु हो चाहे आपकी।

(ज) प्रभुकी मान लें—आप प्रभु-विश्वासी हैं, यदि आप इस बातको मानते हैं कि इस सम्पूर्ण संसारके निर्माता, संचालक एवं स्वामी (मालिक) परमात्मा हैं तो आपको यह बात माननी ही होगी कि शरीर-परिवार एवं सम्पत्तिके रूपमें इस संसारका जो अंश मेरे पास है, जिसे मैं अपना मानता हूँ, उसके भी मालिक परमात्मा हैं। अब आप अपने शरीर एवं परिवारजनोंको अपने प्यारे प्रभुका मेहमान मानकर इनकी भरपूर सेवा कीजिये और सम्पत्तिको प्रभुकी धरोहर मानकर इसकी रक्षा, सुरक्षा एवं देख-रेख कीजिये। इसका सदुपयोग कीजिये। आपके दैनिक व्यावहारिक जीवनमें इस मान्यतासे लेशमात्र भी अड़चन नहीं आयेगी, प्रत्युत परिवारकी सेवासे आपका परिवार स्वर्गसे भी सुन्दर बन जायगा, सम्पत्तिका सदुपयोग करके आप सम्पत्तिके बन्धनसे मुक्त हो जायँगे। आपका जीवन प्रभुकी अखण्ड स्मृति, उनकी अगाध प्रियता, सद्भाव तथा सेवाके अलौकिक आनन्दसे भर जायगा। इसीका नाम है—प्रभुमें विश्वास करना, प्रभुको मानना।

(४) शरीर मेरा नहीं है, मैं शरीर नहीं हूँ—

प्रभुके चरणोंमें शान्त होकर बैठिये, विचार कीजिये। आप इस सच्ची बातका अनुभव करेंगे कि जो शरीर मेरे पास है, वह मेरा नहीं है, मैं शरीर नहीं हूँ। विचार कीजिये—क्या इस शरीरको आपने बनाया है, क्या आपने अपनी इच्छासे इस परिवारमें जन्म लिया है? क्या आप अपने इस शरीरको जबतक चाहें और जैसा चाहें, तबतक और वैसा ही रख सकते हैं, क्या शरीरपर आपका नियन्त्रण चलता है?—इन सब प्रश्नोंका एक ही उत्तर है—नहीं, नहीं, नहीं। आपको अनुभव होगा—यह शरीर मेरा तो नहीं है, मुझे मिला हुआ है, देनेवाला इसे वापस ले लेगा, सदैव यह मेरे पास नहीं रहेगा।

अब सोचें—मैंने इस शरीरके बचपन तथा यौवनको देखा; मैंने इस शरीरको नीरोग एवं रोगी देखा; मैंने इस शरीरके सम्मान तथा अपमानको देखा; मैंने इस शरीरके परिवर्तनको देखा। देखनेवाला सदैव उससे अलग होता है, जिसे वह देखता है। मैं तो देखनेवाला हूँ। जिस शरीरको मैं 'मेरा' कहता हूँ, जैसे ये मेरे हाथ हैं, मेरे पैर हैं, मेरे कान

हैं, मेरी आँखें हैं, मेरे शरीरमें सब जगह दर्द है, आदि, क्या वह 'मैं' हो सकता है। कहनेवाला सदैव उससे अलग होता है, जिसे वह 'मेरा' कहता है। अपनेको शरीर मानकर जब आप किसीको 'मेरा' कहते हैं, आप किसीको देखते हैं तो क्या आपको यह अनुभव नहीं होता कि 'मैं' वह नहीं हूँ जिसे मैं 'मेरा' कहता हूँ, जिसे मैं देखता हूँ। आपके हृदयमें प्रश्न पैदा होगा—फिर मैं कौन हूँ? जिस क्षण आप इस सच्ची बातको मान लेंगे कि 'मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है'—बस उसी क्षण आपको यह अनुभव हो जायगा कि—'मैं प्रभुका अंश हूँ, प्रभु मेरे हैं'। प्रभुने आप सभी भाई-बहनोंको यह विचित्र शक्ति भी दी है कि आप संत-भक्त तथा ग्रन्थ-वाणीमें लिखी और सुनी हुई इस बातको भी इसी पल मान सकते हैं कि—'मैं प्रभुका अंश हूँ, प्रभु मेरे हैं।' इस सच्ची बातको अनेक बार सुनने-पढ़नेके बाद भी आप इसे क्यों नहीं मान पा रहे हैं? जिस क्षण आप यह मानेंगे—मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है—उसी क्षण आपका सत्संग होगा।

(५) मिली हुई सामग्री मेरे लिये नहीं है—

इसका आशय यह है कि शरीर-परिवार एवं सम्पत्तिके रूपमें आपको संसारकी जो सामग्री मिली है, उसके द्वारा आपकी माँग पूरी नहीं होगी, अर्थात् आप जो चाहते हैं, वह नहीं मिलेगा। आप चाहते हैं—मेरा दुःख मिट जाय, मुझे शान्ति, मुक्ति, भक्ति, भगवान् मिल जायँ। मिली हुई सामग्रीसे दुःख नहीं मिटेगा, प्रभु नहीं मिलेंगे। इसलिये यह आपके लिये नहीं है। हाँ, मिली हुई सामग्रीके द्वारा यदि आप सेवा करेंगे तो आप दुःखसे मुक्त होकर प्रभुकी ओर उन्मुख होंगे। इस दृष्टिसे मिली हुई सामग्री शरीर-परिवार-समाज तथा संसारकी सेवाके लिये है, आपके लिये नहीं। जिस क्षण आप यह सच्ची बात मानेंगे कि जो कुछ मुझे मिला है, वह मेरे लिये नहीं है, उसी क्षण आपका सत्संग होगा।

(६) मिले हुएका वियोग सुनिश्चित है—

आप जानते ही हैं कि आपको जो शरीर-परिवार एवं सम्पत्ति मिली है, एक दिन यह मिली हुई सामग्री आपके पास नहीं रहेगी। वह दिन अवश्य आयेगा, जब आपको अपना शरीर, परिवार तथा सम्पत्ति यहीं छोड़कर यहाँसे अन्तिम विदाई लेनी होगी। यह भी सम्भव है कि आपके सामने ही परिवारके सदस्य अथवा सम्पत्तिका वियोग हो जाय। मिली हुई सामग्री सदैव आपके पास नहीं रहेगी। जबतक यह सामग्री है तबतक सेवा कीजिये। 'स्थूल शरीर' को श्रमी, संयमी, सदाचारी, स्वावलम्बी बनाये रखना स्थूल शरीरकी सेवा है। 'सूक्ष्म शरीर' को ममता, कामना, राग, द्वेष, दीनता तथा अभिमानसे मुक्त करके निर्मल एवं पवित्र बनाये रखना सूक्ष्म शरीरकी सेवा है। 'कारण शरीर' को कर्तापनके अभिमानसे मुक्त करके सर्वथा अहंकार-शून्य बनाकर इसके अस्तित्वको मिटा देना कारण शरीरकी सेवा है। तीनों शरीरोंकी सेवा कीजिये, तीनों शरीरों और सम्पत्तिके माध्यमसे अपने स्थूल शरीर, परिवार, समाज तथा संसारकी सेवा कीजिये और 'आप' प्रभुकी सेवा कीजिये। मैं प्रभुका हूँ, प्रभु ही मेरे अपने हैं—इस सच्ची बातको मानना ही प्रभुकी सेवा है। मिले हुएका वियोग होगा—इस बातको माननेके दो परिणाम होंगे—मिली हुई सामग्रीमें ममताका नाश और मिले हुएके द्वारा सेवाका शुभारम्भ। जिस क्षण आप इस सच्ची बातको मानेंगे कि मिले हुएका वियोग सुनिश्चित है, उसी क्षण आपका सत्संग होगा।

(७) जगत् नहीं है—

जगत्के रूपमें आपको जो कुछ दिखायी पड़ रहा है, वह है ही नहीं—इसका आशय यह है कि संसारकी प्रत्येक वस्तु प्रतिपल बदल रही है, इसमें निरन्तर परिवर्तन हो रहा है, इसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, यह बदलकर विनाशकी ओर जा रही है। यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं है। आपको मिला हुआ शरीर संसारका एक नमूना है। यह शरीर भी बदल रहा है। यह बदलाव प्रतिपल हो रहा है। आँखोंसे दिखायी नहीं देता। परंतु बुद्धिसे विचार करनेपर स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिपल परिवर्तन हो रहा है। इसीलिये कहा जाता है—जगत्का अस्तित्व नहीं है, जगत् तो परिवर्तनका पुञ्ज है। जगत् है ही नहीं। जो वस्तु एक पल पहले जैसी थी, वही वस्तु एक पल बाद वैसी नहीं रही, वह बदल चुकी है। इस सच्ची बातको मानते ही जगत्की ममता तथा कामनाका नाश हो जाता है। जिस क्षण आप इस बातको मानेंगे कि जगत् नहीं है, उसी क्षण आपका सत्संग होगा।

सबसे पहले किस बातको मानें—

ऊपर लिखी सातों बातें सच्ची हैं, आप इन बातोंको भलीभाँति जानते हैं। सबसे पहले आप उस सच्ची बातको मान लीजिये जो आपको सबसे सरल लगती है। एक बातको मानते ही दूसरी बातको माननेकी सामर्थ्य स्वतः आ जायगी। फिर आप सभी बातें मान लेंगे। इसी क्षण इस साधनाको आरम्भ कीजिये।

* * *

प्रारब्धका खेल—हँसके खेल या रोके झेल

(श्रीसुभाषजी लखोटिया)

चाहे हम व्यापारी हों, चाहे पारिवारिक हों और चाहे सामाजिक हों, जब कभी भी कोई समस्या हमारे सामने आती है तो हमें चाहिये कि हम उस समस्याका सामना बुद्धिसे करें, विवेक एवं विचारसे करें। परंतु समस्याके समाधानका सबसे आसान तरीका यह है कि हम प्रारब्धकी बातको स्वीकार करें। 'प्रारब्ध' एक ऐसा शब्द है जिसके अंदर एक शब्दमें हजारों, लाखों, करोड़ों व्यक्तियोंको सुख-शान्ति देनेकी शक्ति है। अगर आप और हम कोई अच्छा कार्य कर रहे हैं तो निश्चय ही इस सत्कर्मका हमारे भविष्यमें बननेवाले प्रारब्धपर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। यह प्रश्न कई बार मनमें आता है, विशेषकर उस व्यक्तिके मनमें, जो लोगोंकी सेवा करता है, लोगोंकी मदद करता है, किसीको धोखा नहीं देता, किसीको कष्ट नहीं पहुँचाता, किसीका दिल नहीं दु:खाता, फिर लोग उसे धोखा क्यों देते हैं, लोग उसे परेशान क्यों करते हैं? इस प्रश्नका उत्तर बार-बार वह अपने मनसे पूछता है, परंतु मन जवाब नहीं दे पाता। लेकिन जब वह व्यक्ति आध्यात्मिक जगत्से सम्बन्ध स्थापित करता हुआ अध्यात्मसे भाव-भावान्वित होता हुआ हमारे आध्यात्मिक ग्रन्थोंको पढ़ता है तब उसके मनको शान्ति मिलती है और तब उसे पता चलता है कि उसके पुराने प्रारब्ध खराब थे। उसीके कारण वर्तमानमें स्वयं अच्छा होते हुए, स्वयं किसीको दु:ख नहीं देते हुए भी वह व्यक्ति परेशान हो रहा है और कष्ट उठा रहा है तथा लोग उसे तंग कर रहे हैं। ऐसी स्थितिमें कई बार आदमीका मन विचलित हो जाता है—वह किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है और सोचता है कि आखिर मैं क्यों अच्छा रहूँ, अच्छे कार्य करूँ? जब अच्छा रहने और अच्छे कार्य करनेपर भी लोग मेरे प्रति अच्छा व्यवहार नहीं करते, तब इन सत्कर्मों एवं सदाचरणोंसे क्या लाभ? ऐसा सोचना केवल स्वयंकी ही कमजोरी है; क्योंकि अगर आज हम किसीका अच्छा कर रहे हैं, भला कर रहे हैं तो उसका पुण्य हमारे आनेवाले प्रारब्धको अच्छा करेगा। इसलिये हमें चाहिये कि अगर आज हमें किसी प्रकारकी परेशानी हो रही है तो वह हमारे प्रारब्धका ही खेल है—उसीका प्रतिफल है, जिसे चाहे हम हँसके खेलें या रोके झेलें।

अपने प्रारब्धकर्मोंका ही परिणाम है कि आज एक व्यक्ति बहुत अमीर है तो दूसरा अत्यन्त गरीब। अब तो हम अपने पूर्वनिर्मित प्रारब्धके बारेमें कुछ कर नहीं सकते, परंतु भविष्यमें अपना प्रारब्ध अच्छा बने, उसके लिये तो हम सत्कर्म कर ही सकते हैं। अत: हमको चाहिये कि हम अपने पुराने प्रारब्धको दोष न दें, अगले जन्मके प्रारब्धको पवित्रतम और श्रेष्ठतम बनानेके लिये उत्कृष्टतम सत्कर्म करते रहें; जिससे पुराने प्रारब्धके दोष इसी जन्ममें समाप्त हो जायँ और इस समयके किये सत्कर्मोंसे भविष्यके अच्छे प्रारब्धका निर्माण हो।

परिवारमें अशान्ति, व्यापारमें साझेदारद्वारा धोखा, सामाजिक संगठनमें अपने ही मित्रोंद्वारा विश्वासघात—यह सब नाशवान् जगत्की बातें हैं। हमें इन बातोंसे लगाव न रखकर अपने प्रारब्धके ऊपर आस्था रखनी चाहिये। ऐसी आस्था रखनेपर हमारा वर्तमान और भविष्य निश्चित रूपसे सुदृढ़ होगा और हमें किसी प्रकारकी मानसिक चिन्ताएँ तथा तनावग्रस्त करनेवाली शक्तियाँ हरा नहीं सकती। अत: हमारे जीवनमें अगर कोई परेशानी, कोई समस्या आती है तो धैयपूर्वक अविचलित भावसे हमें केवल अपना कर्तव्य करते रहना चाहिये, सन्मार्गपर निरन्तर बढ़ते ही रहना चाहिये। जब हम ऐसा करते रहेंगे तब हम पायेंगे कि अच्छे कर्मोंके सम्पादनसे ही पुराने संचित कर्म या प्रारब्धके पाप कटते जाते हैं।

मनकी शान्तिका नाम है प्रारब्धकी आस्था, जिसे हम चाहे हँसके मान ले या दु:खी होकर झेलते रहें। इसी कर्मयोगका संदेश देते हुए भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(गीता २। ४७)

अर्थात् (हे अर्जुन!) तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो।

अभिप्राय यह कि प्राणिमात्रको प्राप्त सुख-दु:खादि द्वन्द्वात्मक परिस्थितियोंमें अनुद्वेग एवं दृढ़ स्थैर्यभावसे निर्लिप्त होकर निष्कामपूर्वक अत्यन्त उत्साहसे कल्याणकारी सत्कर्मोंका सम्पादन करते रहना चाहिये, क्योंकि निष्काम कर्मयोगका आश्रय ग्रहण कर प्राणिमात्र त्रिविध दु:खोंसे मुक्त होकर आत्यन्तिक निवृत्ति (परमात्मा)-को प्राप्त कर लेता है।

* * *

प्रभुके अवतारोंकी लीला

(डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता)

सामान्यतया जब लीलाकी बात होती है तो सहज ही यह समझा जाता है कि लीला माने 'रामलीला' या 'रासलीला'। उत्तर भारतमें आज ये ही दो विधाएँ विशेष-रूपसे प्रचलित हैं।

वैष्णव-परम्परामें जो रासलीलाएँ होती हैं वे मथुरा और ब्रजभूमिकी अप्रतिम धरोहर हैं। वैसे भी वैष्णव-साहित्यमें लीलाकी बहुत अधिक महत्ता है। भक्त वैष्णव-लीलामें विशेष विश्वास करते हैं। भगवान् विष्णु सृष्टि-निर्माण करते हैं और असम्पृक्त रहकर नित्य लीला करते हैं; फिर भी जब कभी क्रीडा करनेकी उनकी इच्छा हुई, तब अवतार धारण कर अपने ही ब्रह्माण्डमें प्रवेश करते हैं, तो यही होती है उनकी अवतार-लीला। जब भक्त उस अवतार-लीलाका अनुकरण करते हैं, तब इसे अनुकरण-लीला कहा जाता है। इस हरिलीलाका अनुकरण ही रामलीला और कृष्णलीला है।

महाराष्ट्रमें लीलाको 'ललित' कहते हैं और इस विधामें दशावतार-लीलाका आयोजन होता है। काशीके 'चित्रकूट-रामलीला' में अन्तिम दिन 'दशावतार' की झाँकी प्रस्तुत की जाती है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीद्वारा स्थापित अस्सी (वाराणसी)-की कृष्णलीलामें एक दिन 'दशावतार' की झाँकी होती है।

तमिलनाडुमें दो हजार वर्ष-पूर्व भगवान् शंकरकी ६४ लीलाएँ प्रस्तुत की जाती थीं और इनका आधार था '**तिरूविलैया इल पुराणम्**' (श्रीलीला-पुराणम्)। 'भरतनाट्य' और जयदेवके 'गीतगोविंद' के आधारपर ओडीसी-नृत्यमें भी दशावतारकी कथा कही जाती है। दस अवतारोंमें राम और कृष्णकी कथाएँ समृद्ध हैं और उनकी लीलाएँ करना सबको रुचिकर लगता है। अन्य अवतारों—नृसिंह, वामन और बुद्धकी लीलाओंमें भी सामग्री मिलती है। परशुराम और बलरामके दर्शन राम और कृष्णकी लीलामें ही हो जाते हैं; फिर भी कानपुर (उत्तरप्रदेश)-में 'परशुरामी' लीला होती है जो वास्तवमें रामलीलाका ही अङ्ग है।

हरिवंशपुराणमें एक लीलाका विवरण प्राप्त होता है, जिसमें द्वारकाके राजकुमार प्रद्युम्नने असुरराज वज्रनाभके नगरमें प्रवेश पाने और असुरराजका वध करनेके लिये 'भदे' नामक नटका वेष धारण किया और अपने यादव पुरुष और स्त्री सहयोगियोंकी मण्डली बनाकर वज्रपुर पहुँचे। उनकी मण्डलीने राजधानीमें प्रदर्शनकी अनुमति चाही, परंतु उन्हें पहले 'स्वपुरा' नामक उपनगरमें ही लीला करनेकी अनुमति मिली। उन लोगोंने 'रामायण' महाकाव्यपर आधारित राम-जन्मकी लीला की—(**रामायणं महाकाव्यमुद्देश्यं नाटकीकृतम्**)। इस अद्भुत लीलाका दर्शन करते हुए असुर दर्शक आश्चर्यचकित हो मण्डलीकी वेशभूषा, संस्कार और अभिनयकी सराहना-प्रशंसा करते रहे।

लीलाकी सफलतासे तत्काल उन्हें राजाके समक्ष राजभवनके अंदर लीला करनेका निमन्त्रण मिला। आरम्भमें नृत्य और वादन हुआ। तब मण्डलीकी महिला सदस्योंने 'गङ्गा-अवतरण' गायन किया। इसे सुनकर असुर बहुत प्रभावित हुए। मङ्गलाचरण हुआ। तब प्रद्युम्नने एक श्लोक पढ़ा जो गङ्गा-अवतरणसे सम्बद्ध था और इसके साथ '**सम्यक् स्वाभिनयान्वितम्**' भाव-नृत्य भी किया। इसके बाद उन लोगोंने नलकूबरसे मिलने जाती रम्भाको रावणद्वारा मार्गमें रोकनेकी कथा प्रस्तुत की। इसमें मनोवतीने रम्भाकी, शूरने रावणकी, प्रद्युम्नने नलकूबरकी और साम्बने विदूषककी भूमिका निभायी। मायाद्वारा मञ्चपर कैलास पर्वत दिखाया गया, दुष्ट रावण शापग्रस्त हुआ और रम्भाको नलकूबरने आश्वस्त किया।[1] नारद ऋषिकी महिमाका नृत्याभिनय हुआ। असुरोंने प्रसन्न होकर नटोंकी प्रशंसा की और उन्हें भरपूर पुरस्कार दिया।

उपलब्ध जानकारीके अनुसार काशीमें मेघा भगत और गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने रामलीला आरम्भ की, साथ ही उन लोगोंने अन्य लीलाएँ भी आयोजित कीं। इनमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीद्वारा स्थापित तुलसीघाटपर कृष्णलीला होती है। जनश्रुतिके अनुसार प्राचीन कालमें यहाँ ध्रुवलीला, नृसिंहलीला भी होती थी। मेघा भगतद्वारा प्रारम्भ की गयी चित्रकूट-लीलामें 'वामनलीला', 'नृसिंहलीला' और 'फागलीला' आज भी होती है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीद्वारा प्रारम्भ की गयी 'कृष्णलीला'-की कथा बड़ी रोचक है। नामसे भ्रम होता है कि यह

---

[1] १-रम्भाभिसारकौवेरनाटकं ननृतुस्ततः। शूरो रावणरूपेण रंभावेषमनोवती॥
नलकूबरः प्रद्युम्नः सांबस्तस्य विदूषकः। कैलासोरोपितश्चापि मायया यदुनन्दनैः॥

व्रजकी रासलीला-जैसी लीला होगी, परंतु ऐसा है नहीं। जहाँ व्रजकी रासलीलामें नृत्य-गायन प्रमुख होता है, वहीं तुलसीकी रामलीलामें संगीत नहीं होता। अस्तु, यहाँकी 'कृष्णलीला' भी रामलीलाकी ही परिपाटीमें होती है।

कृष्णलीला तुलसीघाटपर होती है, इसमें रामलीलाकी भाँति स्थान-परिवर्तन नहीं होता। इसमें तीस-पैंतीस पात्र भाग लेते हैं। लीलाका जयकार ***'बोल वृन्दावन बिहारीलालकी जय'*** के उद्घोषसे होता है।

कृष्णलीला प्रतिवर्ष कार्तिक कृष्ण अष्टमीसे आरम्भ होकर मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदातक चलती है। इस कृष्णलीलामें इक्कीस प्रसंग होते हैं। काशीका यही 'लाखा मेला' है। इस लीला-प्रसङ्गमें—गङ्गातटपर कृष्ण गेंद खेलते हैं। नौकाओंके घेरेमें बने जलीय मञ्चके तटपर कदम्बवृक्षपरसे कन्हैया 'कालीदह' में कूद जाते हैं। यमुना (गङ्गा)-जलसे विशालकाय कालिय नाग प्रकट होता है और कृष्ण उसके फनपर खड़े वंशी बजाते हैं। नाग-नथैया जलीय मञ्चकी दो बार परिक्रमा होती है। दर्शकोंमें काशी-नरेश भी होते हैं, जो भगवान् कृष्णकी पूजा करते हैं। लाखों दर्शकोंके बीच यह पाँच मिनटकी अद्भुत लीला ठीक संधिकालके समय सम्पन्न हो जाती है। इस लीलामें संवाद नहीं होते, केवल 'दिव्य झाँकी' का दर्शन-सुख पाकर भक्त दर्शक भाव-विह्वल और धन्य-धन्य हो जाते हैं।

नृसिंहलीला—

वैशाख शुक्ल १४ (नृसिंह-चतुर्दशी-) को सायंकाल पाँच बजे नरहरिपुरामें नृसिंह मन्दिरके पास, नृसिंह चबूतरेपर यह लीला होती है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कुछ समय इस स्थानपर भी रहे थे।

यह लीला केवल एक दिनकी है। मङ्गलाचरणके साथ लीला आरम्भ होती है। इस लीलामें केशवराम-रचित कथाका पाठ होता है तथा प्रह्लादका जन्म (आश्विन कृष्ण पञ्चमीको) एवं उनके विद्यारम्भ-प्रकरणमें गुरु शुक्राचार्यके यहाँ पाटीपर 'राम-राम, कृष्ण-कृष्ण एवं गोपाल' लिखना तत्पश्चात् हिरण्यकशिपुद्वारा विष देना, हाथीके पैरों-तले कुचलवाना, पर्वतसे गिराना और इसके साथ ही आगमें जलाने आदिकी लीलाएँ होती हैं। इसके बाद हाथ-पैर बाँधकर प्रह्लादजी हिरण्यकशिपुके सामने लाये जाते हैं। असुरराज पूछता है—*'राम ही देउ देखाई, जो तो ही राखन हार हैं'*। तब खम्भ फाड़कर नृसिंह प्रकट होते हैं। *'नरदेह-मुख हरिको धर्यो।'* नृसिंहभगवान् असुरको गोदमें लिटा लेते हैं और उदर विदारकर वध करते हैं। पुनः हर्षोल्लासपूर्वक प्रह्लादका राज्याभिषेक और अन्तमें आरती होती है।'

वामनलीला—

भाद्रपद शुक्ला १२को वामनद्वादशीके दिन यह लीला की जाती है। यह एक दिनकी लीला है। काशीमें 'चित्रकूट' नामक स्थान है। यहाँ एक भवनके द्वारपर वैकुण्ठलोक बनता है, जहाँ विष्णु और लक्ष्मी विराजते हैं और ब्रह्मा, महेश, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र आदि देवता खड़े होकर विष्णुभगवान्‌की स्तुति करते हैं। भक्त-मण्डली वामनभगवान्‌के भजन गाती है।

भजन समाप्त होनेपर आकाशवाणी होती है; फिर लीला चित्रकूट-भवनसे चलकर पासहीमें स्थित धूपचण्डी तालावके तटपर आती है। यहाँ समुद्रमन्थन-लीला होती है। रत्नोंकी झाँकीके बाद लीला पुनः चित्रकूट-भवनके सामने मैदानमें आ जाती है। यहाँ राजा बलि यज्ञ करते हैं। वामनभगवान् पधारते हैं और दानमें तीन पग धरती माँगते हैं। राजा संकल्प करना चाहते हैं, पर शुक्राचार्य मना करते हैं। जब राजाको रोकनेके लिये शुक्राचार्य कमण्डलुकी टोंटीमें घुस जाते हैं, तब भगवान् टोंटीमें एक कुशसे पानी गिरनेके लिये छिद्र करना चाहते हैं, उस समय शुक्राचार्यकी एक आँख फूट जाती है। अब राजाद्वारा संकल्प होता है। वामनभगवान् दो पगोंमें आकाश-पाताल नाप लेते हैं, तीसरे पगमें राजा बलि अपने-आपको प्रस्तुत करता है। भगवान् उसके सिरपर पैर रख देते हैं। राजा पातालमें चला जाता है और वह भगवान्‌के चरण पकड़ लेता है। भगवान् उसे अभयदान देते हैं, तत्पश्चात् आरती सम्पन्न होती है।

फागलीला—

फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशीको सायंकाल नरहरिपुरामें नरसिंह-चबूतरापर लीला आरम्भ होती है। सीता, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्नका शृंगार होता है, हनुमान्‌जीका भी शृंगार होता है। मङ्गलाचरणके बाद होली आदि खेलते हैं। तीन 'तामझाम' लाये जाते हैं, जिनमें एकपर राम-लक्ष्मण, दूसरेपर भरत-शत्रुघ्न और तीसरेपर श्रीहनुमान्‌जी विराजते हैं। जानकीजी वहीं रह जाती हैं। यहाँसे शोभायात्रा प्रारम्भ होती है। नरहरिपुरासे दारानगर-विश्वेश्वरगंज-भैरोनाथ-चौखम्बा-ठठेरी बाजार-लक्खी चौतरा-रानी कुआँ-चौक-नारियल बाजार होते हुए रेशम कटरा पहुँचती है और अन्तमें आरतीके साथ लीला सम्पन्न होती है।

* * *

श्राद्ध-समीक्षा

श्राद्धसे जगत्‌की तृप्ति

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

आज श्राद्धकर्मपर श्रद्धा कम होती जा रही है। कारण यह है कि शास्त्रसे जनताका सम्पर्क कम होता जा रहा है। आज आस्तिक जनता भी प्राय: इतना ही समझ पाती है कि श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति अपने मृत माता-पिता आदि सम्बन्धियोंको अन्न-पानी देकर तृप्त कर रहा है। यह कम लोग जानते हैं कि वह व्यक्ति अकेले अपने सगे-सम्बन्धियोंको ही नहीं, अपितु ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सभी प्राणियोंको तृप्त कर रहा है। ब्रह्मपुराणने कहा है—

एवं विधानतः श्राद्धं कृत्वा स्वविभवोचितम्।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् प्रीणाति मानवः॥

(चतुर्वर्गचिन्तामणि परि० ख० अ०१)

अर्थात् जो व्यक्ति अपनी सम्पत्तिके अनुसार शास्त्रकी बतायी विधिसे श्राद्ध करता है, वह [केवल अपने सगे-सम्बन्धियोंको ही नहीं, अपितु] सम्पूर्ण संसारको संतृप्त कर देता है।

श्राद्धसे पूजा भी हो जाती है—

तृप्ति ही नहीं, उस व्यक्तिके द्वारा किये गये इस श्राद्धसे जगत्‌के पूज्योंकी पूजा भी हो जाती है। तीनों अग्नि, तीनों लोक, तीनों देव, चारों वेद, चारों आश्रम, चारों वर्ण, चारों पुरुषार्थ, चारों दिशाएँ, चारों युग और वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध-रूप चतुर्व्यूह भी पूजित हो जाते हैं—

तेषां त्रयः पूजिताश्च भविष्यन्ति तथाग्नयः।
पूजिताश्च त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥
पूजिताश्च भविष्यन्ति चतुरात्मा तथाप्यहम्॥

(वाराहपुराण)

सबसे बढ़कर श्रेयस्कर—

इस तरह श्राद्धसे एक ओर सम्पूर्ण जगत्‌को तृप्ति मिल जाती है और दूसरी ओर सभी पूज्यवर्ग भी पूजित हो जाते हैं। श्राद्धकी यह महनीय महिमा आँककर ही शास्त्रने घोषणा कर दी है कि श्राद्धसे बढ़कर और कोई श्रेयस्कर कर्म नहीं है—

श्राद्धात् परतरं नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद् विचक्षणः॥

(सुमन्तु)

श्राद्धकर्ताको भी लाभ—

जो श्राद्ध सम्पूर्ण संसारको तृप्त कर सकता है, वह अपने अनुष्ठाताकी उपेक्षा कैसे कर सकता है? वह अपने अनुष्ठाताकी आयुको बढ़ा देता है, पुत्र प्रदानकर वंश-परम्पराको अक्षुण्ण रखता है, धन-धान्यका अम्बार लगा देता है, शरीरमें बल-पौरुषका संचार करता है, पुष्टि प्रदान करता है और यशका विस्तार करता है—

आयुः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्।
पशून् सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्॥

(यम-स्मृति)

श्राद्धसे मुक्ति—

इस तरह श्राद्ध सांसारिक जीवनको सुखमय बनाता है, परलोकको सुधारता है और अन्तमें मुक्ति भी प्रदान करता है—

योऽनेन विधिना श्राद्धं कुर्याद् वै शान्तमानसः।
अपेतकल्मषो नित्यं याति नावर्तते पुनः॥

(कूर्मपुराण)

श्राद्धग्रन्थके पाठसे भी लाभ—

शास्त्रने श्राद्धकी आवश्यकता यह कहकर भी व्यक्त की है कि यदि कोई श्राद्धकी विधि बतानेवाले ग्रन्थका पाठ करता है, तो इससे उसकी भी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं एवं अमरता भी प्राप्त होती है—

इमं श्राद्धविधिं पुण्यं कुर्याच्चापि पठेच्च यः।
स सर्वकामसंयुक्तो ह्यमृतत्वं च विन्दति॥

जो श्राद्ध करता है, जो इसके विधि-विधानको जानता है, जो श्राद्ध करनेकी सलाह देता है और जो 'श्राद्धका

अनुमोदन करता है—इन सभीको श्राद्धका फल मिल जाता है।

श्राद्ध न करनेसे हानि-ही-हानि—

किसी अत्यन्त उपादेय वस्तुके न करनेसे होनेवाली हानियोंका आँकना कठिन नहीं होता, किंतु शास्त्रने श्राद्धके न करनेसे होनेवाली जो हानियाँ बतायी हैं, उन्हें जानकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अतः श्राद्ध-तत्त्वसे परिचित होना और इसके अनुष्ठानके लिये तत्पर रहना अत्यन्त आवश्यक है।

शास्त्रसे यह सामान्य बात ज्ञात होती है कि मृत व्यक्तिका अपने पुत्र आदि सगे-सम्बन्धियोंसे इतना गहरा लगाव होता है कि इनके दिये बिना उसे न तो अन्न मिल सकता है और न पानी। जब मृत व्यक्ति इस महायात्रामें अपना स्थूल शरीर भी नहीं ले जा सकता है, तब अन्न और पानी कैसे ले जा सकेगा? इस समय उसके सगे-सम्बन्धी जो कुछ देते हैं, वही उसे मिलता है। इसलिये शास्त्रने मरनेके बाद सबसे पहले उसे स्नान कराकर वस्त्र आदिसे भूषित करके टिकठी उठानेके पहलेसे ही उसे पिण्ड-पानीके रूपमें खाने-पीनेकी व्यवस्था कर दी है। रोना-धोना इसलिये मना कर दिया है कि दाहकर्मके पहले जो कुछ इसके सगे-सम्बन्धी देते हैं, वही उसे खाना-पीना पड़ता है। पिण्ड-पानी न देकर यदि आँसू और कफ देंगे तो इन्हें ही बेचारेको खाने-पीनेके लिये विवश होना पड़ता है।

यह तो मृत व्यक्तिकी इस महायात्रामें रास्तेके भोजन-पानीकी बात हुई। परलोक पहुँचनेपर भी उसके लिये वहाँ न अन्न होता है और न पानी। यदि सगे-सम्बन्धी न दें, तो भूख-प्याससे उन्हें वहाँ बहुत ही दारुण दुःख होता है—

लोकान्तरेषु ते तोयं लभन्ते नान्नमेव च।
दत्तं न वंशजैर्येषां ते व्यथां यान्ति दारुणाम्॥

(सुमन्तु)

यह तो हुई श्राद्ध न करनेसे मृत प्राणीके कष्टोंकी कथा। श्राद्ध न करनेवालेको भी पग-पगपर कष्टका सामना करना पड़ता है।

श्राद्ध न करनेवालेको कष्ट—

मृत प्राणी बाध्य होकर श्राद्ध न करनेवाले अपने सगे-सम्बन्धियोंका रक्त चूसने लगता है—

श्राद्धं न कुरुते मोहात् तस्य रक्तं पिबन्ति ते।

(ब्रह्मपुराण)

साथ-ही-साथ वे शाप भी देते हैं—

पितरस्तस्य शापं दत्त्वा प्रयान्ति च।

(नागरखण्ड)

फिर इस अभिशप्त परिवारको जीवनभर कष्ट-ही-कष्ट झेलना पड़ता है। उस परिवारमें पुत्र नहीं उत्पन्न होता, कोई नीरोग नहीं रहता, लम्बी आयु नहीं होती, किसी तरह कल्याण नहीं प्राप्त होता और मरनेके बाद नरक जाना पड़ता है—

(क) न तत्र वीरा जायन्ते नारोगा न शतायुषः।
न च श्रेयोऽधिगच्छन्ति यत्र श्राद्धं विवर्जितम्॥

(हारीतस्मृति)

(ख) श्राद्धमेनं न कुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते।

(विष्णुस्मृति)

श्राद्ध न करनेवालेकी अकर्मण्यतासे सारा-का-सारा संसार ही तृप्तिके सुखसे वंचित हो जाता है।

श्राद्ध शब्दका अर्थ—

अभियुक्तोंने बताया है कि 'श्राद्ध' शब्द 'पङ्कज' शब्दकी तरह योगरूढ है। 'पाचक' शब्दकी तरह यौगिक नहीं। यौगिक शब्द अपनी योगशक्तिके[२] द्वारा प्रकृति और प्रत्ययके

---

[१] -श्रद्धया दीयते यस्मात् तेन श्राद्धं निगद्यते इति बृहस्पतिवाक्ययोगप्रदर्शनार्थम्।
तेन अन्यत्र प्रयोगाभावाद् योगशब्दाच्च योगरूढोऽयं श्राद्धशब्दः॥

(श्राद्धप्र०, पृ० ७)

[२] -शक्तिस्त्रिधा—(१) रूढिः, (२) योगः, (३) योगरूढिश्च।

(वैयाकरणसिद्धान्त लघुमन्जूषा १। ३९)

लभ्य अर्थको बेरोक-टोक सर्वत्र बताते रहते हैं। जैसे—'पाचक' शब्द यौगिक है। यह शब्द 'पच्' धातुसे ण्वुल् (अक) प्रत्यय लगाकर बनता है। पच् धातुका अर्थ है—पाक-क्रिया और ण्वुल्का अर्थ है—उस पाक-क्रियाका कर्ता '**पचतीति पाकः**'। जो-जो पाक-क्रियाका सम्पादन करता है, सबको 'पाचक' कहा जाता है। कोई चेतन पकाता है तो उसको भी पाचक कहा जाता है और कोई अचेतन लवणभास्कर आदि चूर्ण पकाता है, तो उसे भी पाचक कहा जाता है। इस तरह '**पचतीति पाचकः**' इस व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थपर कहीं कोई रोक-टोक नहीं लगती।

शब्दकी दूसरी शक्तिका नाम है—योगरूढ। इसमें प्रकृति-प्रत्ययसे लभ्य अर्थ गृहीत होता है, किंतु बेरोक-टोक नहीं। क्योंकि रूढि इसे एक ही अर्थमें नियन्त्रित कर देती है। इस रोकके कारण यह योगरूढ शब्द व्युत्पत्ति-लभ्य सही अर्थोंको बतानेकी क्षमता खो देता है, इसका उदाहरण है—'पङ्कज' शब्द। '**पङ्कात् जातः पङ्कजः**' इस व्युत्पत्तिसे लभ्य अर्थ है—पङ्कसे उत्पन्न हुआ। किंतु योगशक्तिसे उत्पन्न यह अर्थ रूढिसे उत्पन्न कमलरूप अर्थ-विशेषमें रूढ हो जाता है। अतः पङ्कसे उत्पन्न किसी अन्य वस्तुको पङ्कज नहीं कहा जाता। यही कारण है कि जोंकको हम पङ्कज नहीं कहते।

इसी तरह श्राद्ध शब्द योगरूढ है। श्राद्धकर्ममें श्रद्धाकी नितान्त अपेक्षा होती है। योगसे इसका अर्थ इस प्रकार होता है—वह कर्म जिसके करनेका प्रयोजन श्रद्धा हो—'**श्रद्धा प्रयोजनमस्य इति श्राद्धम्**[१]।' किंतु योगरूढ होनेके कारण मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे किये गये दान-रूप अर्थ-विशेषमें यह नियन्त्रित भी हो जाता है, अतः श्रद्धासे किये हुए सभी कर्मको हम श्राद्ध नहीं कहते। विवाह आदि माङ्गलिक कर्ममें भी श्रद्धासे बहुत कुछ दिया जाता है। इस कारण हम विवाह आदिको श्राद्ध नहीं कहते। किसीका विवाह दस दिनाङ्कको तय हुआ। किसी व्यक्तिको इस दिनाङ्कमें संदेह उत्पन्न हो गया। इसके निराकरणके लिये वह उसके पितासे यही नहीं पूछता कि आपके पुत्रका श्राद्ध दस दिनाङ्कको ही तय है न? क्योंकि हिन्दुओंके जीवनमें शास्त्र उतरा रहता है। उसे पता है कि शास्त्रने मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे दिये गये दान-कर्मको ही श्राद्ध कहा है। भला विवाह आदि माङ्गलिक कर्मोंमें इसे वह 'श्राद्ध' शब्दका प्रयोग कैसे कर सकता है? श्राद्धको योगरूढ मानकर ही इसका लक्षण शास्त्रने इस प्रकार किया है—

प्रेतान् पितृंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत् प्रियमात्मनः।
श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम्॥

(शाण्यापनि हेमाद्रिमें)

अर्थात् अपने प्रिय भोजनकी वस्तुको मृत पितरोंके उद्देश्यसे जिस कर्ममें श्रद्धापूर्वक प्रदान किया जाता है उसे 'श्राद्ध' कहते हैं—

स्मृतियोंद्वारा की गयी श्राद्धकी यह परिभाषा भी वेदके अर्थका ही अनुसरण करती है, वेदने कहा है—

इदमिद् वा उ नापरम्।

(अथर्व० १८। २। ५०)

सायणके अनुसार इसका अर्थ है—हे मृत पुरुष! (**इदं इत् वा उ**) यही तुम्हारा भोजन है जिसे श्राद्धमें हम तुम्हें दे रहे हैं। (**अपरं न**) इसके अतिरिक्त तुम्हारे भोजनका और कोई आधार नहीं है।

मृत पितरोंका श्राद्ध होता है—

जिन पितरोंको श्राद्ध-देशमें बुलानेके लिये अग्निसे प्रार्थना की जाती है, वे पितर मृत ही हो सकते हैं, न कि जीवित। अथर्ववेदका एक मन्त्र है—

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे॥

(अथर्व० १८। २। ३४)

सायणके अनुसार इसका अर्थ है—(**ये निखाताः**) जो पितर निखनन-संस्कारके द्वारा भूमिमें गाड़कर संस्कृत

---

[१] -(क) पाणिनिके ५। १। ११० सूत्रके अन्तर्गत आये 'चूडादिभ्य उपसंख्यानम्' वार्तिकसे अण् प्रत्यय।
(ख) श्रद्धया दीयते यस्माच्छ्राद्धं तेन निगद्यते।

किये गये हैं। (**ये परोप्ता:**) जो पितर दूर देशमें काठकी तरह छोड़कर संस्कृत किये गये हैं। (**ये दग्धाः**) जो फिर अग्निमें दाह-संस्कारके द्वारा संस्कृत हुए हैं। (**ये च उद्धिताः**) जो पितर ऊपर पितृलोकमें जा पहुँचे हैं। इस तरह जिनके भिन्न-भिन्न संस्कार किये गये हैं। (**तान् आ वह**) उन पितरोंको (**हे अग्ने**) हे अग्निदेवता! (**हविषे अत्तवे**) इस हविको खानेके लिये (**आ वह**) बुला दीजिये।

पितरोंके लिये प्रयुक्त ये सब-के-सब विशेषण और आगेका लेखांश मृत पितरोंमें ही घटते हैं जीवितमें नहीं। कोई श्रद्धालु पुत्र अपने पिता आदिको भोजन करानेके लिये न तो पहले कहीं जमीनमें गाड़ता है, न दूर-देशमें काठकी तरह फेंक आता है, न अग्निमें जलाता है और न ऊपर कहीं लटका ही देता है। यदि कोई हठवश ऐसा करता है तो अपने माता-पिताको घोर यातना देता है और यह यातना श्रद्धावश नहीं हो सकती। ऐसा करना या तो जड़तावश हो या दुराग्रहवश।

मन्त्रोंमें अग्निदग्ध (ऋक् १०। १५। १४), अथर्ववेद (१०। १५। १४), अग्निष्वात्त (१९। ५८) आदि विशेषण मिलते हैं। वे भी मृत पितरोंमें ही अन्वित हो सकते हैं, जीवित नहीं। इनका अर्थ बदल भी नहीं सकता। शतपथने कहा है—'अग्निष्वात्त' उन पितरोंको कहते हैं, जिन्हें अग्नि जलाकर स्वाद लेता है—**यानग्निरेव दहन् स्वदयति, ते पितरोऽग्निष्वात्ताः** (शत० का० २)

जीवित पिता आदिके श्राद्धका निषेध—

शास्त्रने जीवित माता-पिता आदिके श्राद्धका निषेध किया है, यह यथार्थ प्रतीत होता है।

किसीके पिता मर गये हैं, प्रपितामह भी मर गये हैं परंतु पितामह जीवित हैं? ऐसी स्थितिमें व्यक्ति श्राद्ध किसका करे, किसका न करे? इसका स्पष्टीकरण करते हुए शास्त्रने यह कहा है कि श्राद्ध मृत पिता और मृत प्रपितामहका करे, पितामहका नहीं। क्योंकि ये अभी जीवित हैं। पितामहका श्राद्ध इसलिये निषिद्ध है कि ये अभी जीवित हैं, मृत नहीं। मृत तो पिता और प्रपितामह हैं। अतः इन्हीं दोनोंका श्राद्ध होना चाहिये। यह शास्त्रका आदेश है—

पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः।
पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत् प्रपितामहम्॥

(मनु० ३। २२१)

इसी तरह किसीके पिता अभी जीवित हैं और प्रपितामह तथा पितामह मर गये हैं, ऐसी परिस्थितिमें शास्त्र कहता है कि पुत्र पिताका श्राद्ध न करे क्योंकि ये अभी जीवित हैं। मृत हैं पितामह आदि। अतः पितामह, प्रपितामह, वृद्ध प्रपितामह—इन तीन पुरुषोंका श्राद्ध करे—

ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत्।

(मनु० ३। २२०)

इस शास्त्रका तात्पर्य जीवित माता-पिताके श्राद्धके निषेधमें तीन पीढ़ी ही पर्यवसित होता है।

यहाँ मनुने एक विकल्प बताया है कि मृत पितामह आदिकी भूख-प्यास मिटानेके लिये जो तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराने-हेतु निमन्त्रण दिया जाता है, वह तीन ब्राह्मणोंको न देकर दोको ही दे, एक ब्राह्मणके स्थानपर अपने पिताको ही भोजन करा दे?

ध्यान देनेकी बात यह है कि इस विकल्पमें तीन ब्राह्मणोंको भोजन करानेकी जगहपर दो ब्राह्मणोंको भोजन कराये और तीसरे ब्राह्मणकी जगह अपने जीवित पिताको ही भोजन करानेका विधान है। अर्थात् ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे जैसे ब्राह्मणोंको तृप्ति मिलती है, वैसे पितरोंको भी तृप्ति मिल जाती है, वैसे पिताको भोजन करानेसे भी पितरोंकी तृप्ति सम्भव है।

किंतु इस विकल्पसे यह सिद्ध नहीं होता कि जीवित पिताका श्राद्ध शास्त्र-सम्मत है। क्योंकि यहाँ पिताको ब्राह्मणोंकी जगहपर भोजन कराया जा रहा है, न कि उनका श्राद्ध किया जा रहा है, नहीं तो जो दो ब्राह्मणोंको भोजन कराया जा रहा है, उन दोनोंको भी श्राद्ध कराया जा रहा

है यह प्रत्यक्षतः विरुद्ध है।

जीवितोंके श्राद्धका शब्दतः भी निषेध—

शास्त्रने जीवित माता-पिता आदिके श्राद्धका शब्दतः भी निषेध किया है। इस सम्बन्धमें हेमाद्रिने विष्णुस्मृतिका एक वचन उद्धृत किया है—

पितरि पितामहे प्रपितामहे जीवति, नैव कुर्यात्।

ब्राह्मणोंके भोजनसे पितरोंकी तृप्ति—

वेदने बताया है कि ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे वह पितरोंको प्राप्त हो जाता है—

इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु
विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम्।

(अथर्व० ४। ३४। ३८)

(**इमम् ओदनम्**) इस ओदनोपमभक्षित भोजनको (**ब्राह्मणेषु नि दधे**) ब्राह्मणोंमें स्थापित कर रहा हूँ। यह भोजन विस्तारसे युक्त है और स्वर्गलोकको जीतनेवाला है। इस तथ्यको स्पष्ट करते हुए मनुजीने लिखा है—

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः।
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः॥

(मनु० १। ९५)

अर्थात् जिस ब्राह्मणके मुखसे देवता 'हव्य' को और पितर 'कव्य' को खाते हैं, उन ब्राह्मणोंसे बढ़कर कौन होगा?

पितरोंको श्राद्धान्न मिलता कैसे है?

यहाँ ऐसी जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि 'श्राद्धमें दिये गये पदार्थ पितरोंको मिलते कैसे हैं?' क्योंकि कर्म भिन्न-भिन्न होते हैं और तदनुसार मरनेके बाद गतियाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। कोई देवता बन जाता है, कोई पितर, कोई प्रेत, कोई हाथी, कोई चींटी, कोई चिनारका वृक्ष और कोई तृण। इस छोटेसे पिण्डसे हाथीका पेट भर सकता है क्या? चींटीपर वह पिण्ड पड़े तो चींटी दम ही तोड़ देगी। तृण उसे कैसे खा सकेगा? देवता अमृतसे तृप्त होते हैं, पिण्डसे उन्हें कैसे तृप्ति मिलेगी? इन प्रश्नोंका शास्त्रने बड़ा सुलझा समाधान कर दिया है, जैसे—

(क) जो लोग देवलोक या पितृलोकमें पहुँचते हैं, वे मन्त्रोंके द्वारा बुलाये जानेपर उन-उन लोकोंसे तत्क्षण श्राद्धदेशमें आ जाते हैं और निमन्त्रित ब्राह्मणोंकी शरीरमें सटकर भोजन कर लेते हैं। सूक्ष्मग्राही होनेसे सूक्ष्मकणोंके आघ्राणसे ही उनका भोजन हो जाता है, वे तृप्त हो जाते हैं। भगवती सीताने ससुर आदि तीन पुरुषोंको श्राद्धमें भोजनके अवसरपर तीन ब्राह्मणोंको उनके शरीरमें सटकर बैठते देखा था। यह दृश्य तब उपस्थित हुआ था, जब भगवान् रामने श्राद्ध करते समय अपने पिता, पितामह और प्रपितामहका आवाहन किया था। यह दृश्य देखते ही सीताजी तुरंत वहाँसे हट गयीं। वे डर गयी थीं कि उनके ससुर आदि जो भोजन करने आये हैं, वे इस वनवासी वेषको देखकर सहन न कर पायेंगे। इसे देखते ही वे फिर मूर्च्छित हो जायँगे। इस तरहकी घटना पहले घट चुकी थी। वन जाते समय जब सीता अपने अङ्गोंसे अलंकार उतारने लगीं तो यह देखते ही दशरथजीको इतनी वेदना हुई कि वे तुरंत मूर्च्छित हो गये। इस बारका वेष तो बिलकुल वनवासिनीका था? इसे देख उन्हें पहलेसे भी अधिक वेदना होगी। (ब्रह्माण्डपु० एवं पद्मपु०)

(ख) पितरोंमें कर्मानुसार कुछ पितर देवलोक जाते हैं और कुछ पितृलोक। कर्मवश ये अन्तरिक्षमें वायवीय शरीर धारणकर रहते हैं। अन्तरिक्षमें रहनेवाले इन पितरोंको 'श्राद्धका काल' आ गया है, यह सुनकर ही तृप्ति हो जाती है। ये 'मनोजव' होते हैं। अर्थात् इन पितरोंकी गति मनकी गतिकी तरह होती है। वे स्मरणसे श्राद्धदेशमें आ जाते हैं और ब्राह्मणोंके साथ खाकर, भोजनकर तृप्त हो जाते हैं। इनको सब लोग इसलिये नहीं देख पाते हैं कि इनका शरीर वायवीय होता है—

तृप्यन्ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितम्।
अन्योऽन्यं मनसो ध्यात्वा सम्पतन्ति मनोजवाः॥
तैर्ब्राह्मणैः सहाश्नन्ति पितरो ह्यन्तरिक्षगाः।
वायुभूतास्तु तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परां गतिम्॥

(हेमाद्रिधृत कूर्मपुराण-वचन)

कभी-कभी पिता आदि तीन पितरोंके लिये तीन योग्य ब्राह्मण नहीं मिलते। ऐसी स्थितिमें एक ही योग्य ब्राह्मणको

भोजन कराया जाता है। इस अवसरपर प्रश्न उठता है कि उन तीनों पितरोंके लिये तीन ब्राह्मण तो मिले नहीं, फिर एक ही ब्राह्मण-शरीरमें वे तीनों कैसे संलग्न होंगे और कैसे भोजन पायेंगे? इस प्रश्नके उत्तरमें शास्त्रने बताया है कि तब वे तीनों पितर उस एक ही ब्राह्मण-शरीरमें संलग्न हो जाते हैं। पिता ब्राह्मणके हृदयमें, पितामह बायें अङ्गमें, प्रपितामह दायें अङ्गमें और पिण्ड-भक्षक पितर पीछे भागमें संलग्न होकर भोजन पा लेते हैं—

उरस्थाः पितरस्तस्य वामपार्श्वे पितामहाः।
प्रपितामहा दक्षिणतः पृष्ठतः पिण्डभक्षकाः॥

(हेमाद्रिधृत कूर्मपुराण)

उन पितरोंको सब लोग इसलिये नहीं देख पाते कि उनका शरीर वायवीय होता है—'**वायुभूताः**'।

भगवान्‌ने गीतामें यही बात कही है—

भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥

(गीता १५। १०)

ज्ञानवान् तो उन्हें देखते ही हैं।

(ग) हाँ, कुछ परिस्थितियोंमें पितरोंका श्राद्धदेशमें आना सम्भव नहीं होता, ऐसी स्थितिमें विश्वनियन्ताने ऐसी व्यवस्था कर रखी है, जिसके अनुसार श्राद्धकी सामग्री उनके अनुरूप होकर उनके पास पहुँच जाती है। इस व्यवस्थाके अधिपति हैं—पितरों आदिके अधिष्ठाता अग्निष्वात्त आदि—'**अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः।**'

गोत्र और नामके उच्चारणके साथ जो अन्न-जल आदि सामग्री पितरोंको दी जाती है, उसकी, अनुरूप—समुचित व्यवस्था अग्निष्वात्त आदि आजानज पितर करते रहते हैं। यदि पिता देवता बन गये हैं तो श्राद्धका अन्न उन्हें 'अमृत' के रूपमें परिणत होकर मिलता है और यदि गन्धर्व बन गये हैं तब वह अन्न नाना भोगोंके रूपमें प्राप्त होता है। यदि पशु बन गये हैं तो तृणके रूपमें मिलेगा। इसी तरह नागयोनिमें वह अन्न वायु-रूपमें, राक्षस बन जानेपर आमिष-रूपमें, दानवयोनिमें मांस-रूपमें और मनुष्य बन जानेपर विविध प्रकारके भोग्य रसके रूपमें परिणत होकर मिलता है—

देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः।
तस्यान्नममृतं भूत्वा देवत्वेऽप्यनुगच्छति॥
गन्धर्वे भोग्यरूपेण पशुत्वेऽपि तृणं भवेत्।
श्राद्धान्नं वायुरूपेण नागत्वेऽप्यनुगच्छति॥
पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथामिषम्।
दानत्वे तथा मांसं प्रेतत्वे रुधिरोदकम्।
मनुष्यत्वेऽन्नपानादिनानाभोगरसो भवेत्॥

(देवल, चतुर्वर्गचिन्तामणिधृत)

आज भी वैसी व्यवस्था—

विश्वनियन्ताने मृत प्राणीकी तृप्तिके लिये जैसी व्यापक व्यवस्था बना रखी है, उसी तरहकी आंशिक व्यवस्था आज भी विश्वमें चालू है। भिन्न-भिन्न राष्ट्रके भिन्न-भिन्न सिक्के होते हैं। भारतमें रुपये-पैसे हैं, रूसमें रूबल, इंग्लैंडमें पौंड, सिलिंग, पेन्स और अमेरिकामें डालर तथा अरब राष्ट्रोंमें दीनार।

प्रत्येक देशमें उसका अपना ही सिक्का चलता है। दूसरे देशमें वह नहीं चलता। फिर भी प्रत्येक देशका दूसरे देशोंके साथ जो लेन-देन चलता है, उसकी व्यवस्था 'विश्व-बैंक' के द्वारा होती है। प्रत्येक देशमें 'एक्सचेंज ऑफिस' होता है, जो दूसरे देशके सिक्केके मूल्यको आँककर अपने देशके सिक्केके रूपमें बदल देता है। इंग्लैंडमें रुपये भेजने हैं, इंग्लैंडके किसी व्यक्तिने भारतमें आये अपने सदस्यको कुछ पौंड भेजे, तो यहाँका एक्सचेंज ऑफिस उनके अनुरूप रुपये-पैसे बनाकर देता है। रूस उसे रूबल बनाकर देता है और अमेरिका डालर बनाकर। जब नगण्य मनुष्य ऐसी व्यवस्था कर सकता है तब विश्वनियन्ता अपनी समर्थ-व्यवस्थामें श्राद्धके अन्नको भिन्न-भिन्न रूपोंमें परिणतकर अधिकारीके पास पहुँचानेकी व्यवस्था नहीं होती तो उसकी कमी मानी जाती।

धनाभावमें भी श्राद्ध आवश्यक—

पिछली पंक्तियोंसे स्पष्ट हो जाता है कि श्राद्ध कार्य अपरिहार्य है, किंतु धनकी परिस्थिति तो एक-सी रहती नहीं। कभी-कभी धनका अभाव तो हो ही जाता है। ऐसी

परिस्थितिमें जबकि श्राद्धका अनुष्ठान अपरिहार्य है, श्राद्ध कैसे किया जाय? यह समस्या आ जाती है।

शास्त्रने धनके अनुपातसे कुछ व्यवस्था की है, जैसे—

(१) यदि अन्न-वस्त्रके खरीदनेमें पैसोंका अभाव हो, तो उस परिस्थितिमें शाकसे श्राद्ध कर देना चाहिये—

तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि।

(२) यदि शाक खरीदनेके लिये पैसे न हों, तो तृण-काष्ठ आदि बेचकर पैसे इकट्ठा करे और उन पैसोंसे शाक खरीदकर श्राद्ध करे—

तृणकाष्ठार्जनं कृत्वा प्रार्थयित्वा वराटकम्।
करोति पितृकार्याणि ततो लक्षगुणं भवेत्॥

(पद्मपु० सृष्टिखं० ५२। ३१०)

इतने श्रमसे किये गये श्राद्धका फल लाख-गुना होता है।

(३) देश-विशेष और काल-विशेषके कारण लकड़ियाँ नहीं मिलतीं तो ऐसी परिस्थितिमें शास्त्रने बताया है कि घाससे श्राद्ध हो सकता है। घास काटकर गायको खिला दे। यह व्यवस्था पद्मपुराणने दी है। इसके साथ ही इसने इस सम्बन्धकी एक छोटीसी घटना प्रस्तुत की है—

एक व्यक्ति अभावसे अत्यन्त ग्रस्त था। उसके पास इतना पैसा नहीं था कि वह शाक खरीद सके और श्राद्ध कर सके। आज ही श्राद्धकी तिथि थी। कुतप-काल भी आ पहुँचा था। इस कालके बीतनेपर श्राद्ध नहीं हो सकता था। बेचारा घबरा गया, रो पड़ा। श्राद्ध करे तो कैसे करे? एक विद्वान्ने उसे सुझाया—अभी कुतप-काल है, शीघ्र ही घास काटकर पितरोंके नामपर गायको खिला दो। वह दौड़ा-दौड़ा गया और घास काटकर लाया तथा गायोंको खिला दिया। इस श्राद्धके फलस्वरूप उसे स्वर्ग मिला—

एतत्पुण्यप्रसादेन गतोऽसौ सुरमन्दिरम्।

(पद्मपु० सृ०खं० ५२। ३१९)

(४) ऐसी भी परिस्थिति आ जाती है कि घासका भी मिलना सम्भव नहीं होता, तब श्राद्ध कैसे करे?

—इसके लिये शास्त्रने यह समाधान किया है कि श्राद्धकर्ताको देश-कालवश घासका मिलना भी सम्भव न हो तो श्राद्धकर्ता एकान्त-स्थानमें चला जाय, दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर निम्नलिखित श्लोक बोलकर पितरोंसे प्रार्थना करे—

न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्य-
च्छ्राद्धोपयोगि स्वपितॄन् नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ
भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य॥

अर्थात् हे मेरे पितृगण! मेरे पास श्राद्धके उपयुक्त न तो धन है, न धान्य आदि और कुछ। हाँ मेरे पास आपके लिये श्रद्धा और भक्ति है। मैं इन्हींके द्वारा आपको तृप्त करना चाहता हूँ। आप तृप्त हो जायँ। (मैंने शास्त्रकी आज्ञाके अनुरूप) दोनों भुजाओंको आकाशमें उठा रखा है।

किसी-न-किसी तरह श्राद्ध करना ही है—

उपर्युक्त अनुकल्पोंसे स्पष्ट हो जाता है कि किसी-न-किसी तरह श्राद्ध अवश्य करे। शास्त्रने स्पष्ट शब्दोंमें श्राद्धका विधान भी दिया है और न करनेका निषेध भी किया है। अतः श्राद्ध करे ही, श्राद्ध छोड़े नहीं।

ऋतौ मूलैः फलैर्वापि तथाप्युदकतर्पणैः।
पितृतृप्तिं प्रकुर्वीत ………………॥
नैव श्राद्धं विवर्जयेत्।

(धर्मसिन्धुमें उद्धृत)

* * *

जन्म-मरणका कार्य (जनसंख्याका नियन्त्रण) मनुष्यके हाथमें नहीं है, प्रत्युत सृष्टिकी रचना करनेवाले ईश्वर और प्रकृतिके हाथमें है। ईश्वर और प्रकृतिके विधानसे जनसंख्याका नियन्त्रण अनादिकालसे स्वतः-स्वाभाविक होता आया है। अगर मनुष्य उनके विधानमें हस्तक्षेप करेगा तो इसका परिणाम बड़ा भयंकर होगा।

* * *

ग्रामोत्थानसे सम्पूर्ण क्रान्ति

(श्रीजगदीशचन्द्रजी पन्त)

ग्रामीण उर्जाका स्रोत—गोवंश

एक अनुमानके अनुसार भारतके ग्रामीण क्षेत्रोंमें बैलोंद्वारा उपलब्ध की जा रही उर्जा लगभग ४०,००० मेगावाटके बराबर है। इसके बावजूद पशुओंकी नस्ल-सुधारकी वर्तमान नीति एवं प्रक्रिया उर्जा-उपलब्धिको बढ़ानेकी न होकर केवल दुग्ध-उत्पादनको बढ़ानेके लिये ही है। इसके परिणामस्वरूप भैंस-प्रजातिको प्रोत्साहन मिला है, क्योंकि ये गायकी अपेक्षा दूध अधिक देती हैं और इनके दूधमें घी भी अधिक मात्रामें होता है; इसी कारण गायका दूध गुणात्मक दृष्टिसे अच्छा होनेपर भी भैंसके दूधसे कम कीमतपर बिकने लगा। ट्रैक्टरोंके बढ़ते उपयोगके कारण तथा नस्ल-सुधार-नीतिकी अदूरदर्शिताके कारण बैलों एवं अन्य नर-प्रजातियोंकी उपेक्षासे मांसके व्यापारको बढ़ावा मिल रहा है, जिसे निर्यातके कारण और भी विशेष प्रोत्साहन मिला है। इसके कारण दूध देनेवाली भैंस और गायोंके दूध निकालनेकी प्रक्रिया भी बड़ी क्रूर और अमानवीय हो गयी है। परम्परागत विधिके अनुसार पहले बच्चेको दूध पिलाया जाता था, उसके पश्चात् गाय अथवा भैंसका दूध दुहा जाता था, जिससे ममता-प्रेरित प्राकृतिक हारमोनोंके स्रावके फलस्वरूप गाय और भैंस दूध दिया करती थीं, परंतु अब यान्त्रिक विधिसे भैंस एवं गायोंको इंजेक्शनद्वारा दूध देनेके लिये मजबूर किया जाता है और गम्भीर पीड़ाकी परिस्थितिमें उनका दूध निकाला जाता है। बाजारू-संस्कृतिका यह अमानवीय कृत्य इस देशपर हावी हो जानेके कारण आज नित्यप्रति हमारे ग्रामीण उर्जाका सुगम स्रोत धीरे-धीरे सूख रहा है; जबकि आयातित डीजलके दाम दिन-प्रतिदिन बढ़नेवाले हैं और उसकी माँग भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जायगी। सर्वनाशका यह खेल आज हमारी आँखोंके सामने बड़े नियोजित ढंगसे बहुत बड़े पैमानेपर नयी सोच-समझके अनुसार होता हुआ प्रतीत हो रहा है।

परम्परागत खेती-बारी—

भारतकी परम्परागत कृषि-व्यवस्था जो टिकाऊ थी और इस देशकी संस्कृतिके अनुरूप थी—वह गाय और बैलोंपर केन्द्रित थी। हमारे ऋषियोंने मूलतः गोवंशके वधका निषेध किया। ग्रामीण उर्जाके स्रोत बैलके संवर्धनके लिये यह आवश्यक भी था, क्योंकि उसीकी उर्जासे कृषिका विस्तार सम्भव था और तभी अकाल-जैसी परिस्थितियोंके उत्पन्न होनेपर देशको बचाया जा सकता था। गायका दूध परिवारकी आवश्यकताके लिये ही था बिक्रीके लिये नहीं, जिसके फलस्वरूप महिलाओं और बच्चोंके स्वस्थ रहनेकी पक्की गारंटी रहती थी। गौकी सेवा महिलाएँ और बच्चे किया करते थे। पुरुष कृषि-कार्यके साथ-साथ उन्हें चराने तथा उनके व्यापारमें अपना समय लगाते थे, ताकि गोवंशका प्रसार हो। भारतीय संस्कृतिके साक्षात् प्रतीक वासुदेव श्रीकृष्णने यों ही गोप-गोपियोंके साथ अपना बचपन नहीं बिताया था—गोवंशके प्रचारकी उनकी निश्चित योजना थी, भारतको महान् भारत बनानेके लिये। गायोंको चरानेके लियें गाँवमें गोचर हुआ करते थे, जो स्थानीय भूमिहीन कृषक मजदूरोंको पीनेका पानी तथा ईंधन एवं पशुओंको मुफ्त चारा उपलब्ध कराते थे। परिवारोंमें पल रही गायें जब दूध देना बंद कर देती थीं, तब उन्हें गौशालाओंको दान कर दिया जाता था। गौशालाएँ और गोचरभूमि क्रमशः ग्रामोद्योग और कृषिके केन्द्र-बिन्दु थे।

पीनेके पानी और ईंधनकी समस्या—

भैंसके दूधके फलते-फूलते व्यापारके फलस्वरूप गायोंकी सेवा, गौशालाओं एवं गोचरभूमिके संरक्षण-संवर्धनकी धज्जियाँ उड़ गयी हैं, इसके परिणामस्वरूप भारतकी टिकाऊ कृषि-व्यवस्था—खेती-बारी आज खतरेमें पड़ गयी है। टिकाऊ कृषि-व्यवस्थाके कारण हर गाँवके तालाब और कुएँ वर्षभर मनुष्यों और पशुओंको पर्याप्त पीनेका पानी उपलब्ध कराते थे। खेतोंमें उत्तम प्रकारकी प्राकृतिक खाद जो गोबरसे बनती थी, इस्तेमाल होती थी तथा खेतोंकी उर्वरा-शक्ति बरकरार रहती थी। गायके घी, दही, दूध, गोमूत्र और गोबरके समुचित अनुपातसे बने पञ्चगव्यको वैज्ञानिकोंने सबसे प्रभावी कीटनाशक औषधि माना है।

आयुर्वेदके अनुसार कई बीमारियोंकी औषधिरूपमें पञ्चगव्यका इस्तेमाल किया जाता है। रासायनिक खाद तथा कीटनाशक दवाइयोंके अधिकाधिक प्रयोगसे आज खेतोंमें बहुत अधिक सिंचाई करनी पड़ती है और साथ ही खेतोंकी उर्वरा-शक्तिका भी दिन-प्रतिदिन क्षरण होता जा रहा है। गाँवोंके तालाब और कुएँ पानीकी अत्यधिक खिंचाईके कारण सूखते जा रहे हैं और पशु तथा आदमीके पीनेके लिये भी आज ग्रामीण क्षेत्रोंमें शुद्ध पानी उपलब्ध नहीं है। इस घटनाक्रमके लिये भैंसके दुग्धके व्यापारको दोष नहीं दिया जा रहा है, वरन् उसके फलस्वरूप नासमझीमें छोड़ी गयी गोसेवाके दृष्टिकोणको इसके लिये जिम्मेदार माना जा रहा है। इसका उदाहरण है यह प्रचलित कहावत—'जब बाजारमें दूध मिल जाता है तो घरमें गाय पालनेकी क्या जरूरत है।'

आधुनिक अर्थशास्त्रियोंका यह तर्क कि देशकी बढ़ती हुई जनसंख्याको भरपेट भोजन देनेके लिये पशुओंकी संख्या कम करनी चाहिये, यह त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है। गोचर क्षेत्रकी सूखी घास और कृषि-कार्यसे उपजे अन्य प्रकारके व्यर्थ पदार्थोंको खाकर ये पशु उपयोगी गोबर तथा गोमूत्र किसानोंको देते थे, जिनसे बहुमूल्य प्राकृतिक खादके साथ-साथ सूखे उपले तैयार होते थे, जो घरोंमें ईंधनके काममें लाये जाते थे। आज जो गोबर-गैस तैयार करनेका आधुनिक तरीका है, वह भी गोवंशके गोबर और गोमूत्रके उर्जाके स्रोतपर ही अवलम्बित है। ग्रामीण क्षेत्रोंमें इसके अतिरिक्त किसी और वैकल्पिक उर्जाकी व्यवस्था भी नहीं है। वृक्षोंको काटकर ईंधनकी आपूर्ति लंबे समयतक सम्भव नहीं है। देहातमें ईंधनकी कमीके कारण ही वृक्षोंके कटनेकी दुर्घटना इस देशमें व्यापक पैमानेपर हुई है, जिससे पर्यावरण-प्रदूषणका खतरा बढ़ गया है। वृक्षारोपणके सरकारी प्रयास अन्य विकास-योजनाओंकी तरह अधिक प्रभावी सिद्ध नहीं हो पा रहे हैं; क्योंकि उनके नियोजन और क्रियान्वयनमें लोगोंकी भागीदारी नहींके बराबर है।

आजके नरक—शहरोंके उपनगर—

गोसेवाकी उपेक्षासे देहातमें गोचर बिखर गये हैं और भूमिहीन कृषक मजदूर शहरोंकी ओर पलायनके लिये मजबूर हो गये हैं। देहातसे शहरोंकी ओर इस पलायनके कारण आज देशकी लगभग १० करोड़ जनसंख्या अनुमानतः ५ हजार उपनगरोंमें नारकीय जीवन बिता रही है। इतनी संख्यामें लोगोंने गाँव छोड़ दिया है और शहर इन्हें अपना नहीं रहे हैं—ये कहींके नहीं हैं, धरतीपर साक्षात् नरकमें रहना ही इनकी नियति बन गयी है। जनसंख्याकी अधिकताके कारण ये उपनगर बीमारियोंके कीटाणुओंके भण्डार बन गये हैं, जहाँसे इस देशके कोने-कोनेमें नित्य नयी बीमारियाँ महामारीके रूपमें फैल रही हैं। प्राथमिक स्वास्थ्य-सुविधाओंकी यहाँ समुचित व्यवस्था नहीं की गयी है। यद्यपि आँकड़ोंके अनुसार इन उपनगरोंकी आबादी देशकी कुल शहरी आबादीका २५-३० प्रतिशत है, मुंबई शहरकी आधी यानी ५० प्रतिशत आबादी उसके उपनगरोंमें बसती है, दिल्लीकी ४० प्रतिशत आबादी उसके उपनगरोंमें रहती है। वह दिन दूर नहीं जब कई शहरोंकी अधिसंख्य आबादी इन उपनगरोंमें निवास करेगी। अर्थात् शहरोंका आभिजात्य जीवन और उपनगरोंका नारकीय जीवन जो वर्षोंसे आर्थिक असमानताजनित विद्वेष फैला रहा है, अब वह कबतक विद्रोहके रूपमें नहीं फूटेगा! स्पष्ट है कि मुंबईसे यह प्रक्रिया आरम्भ हो सकती है और फिर दिल्ली दूर नहीं।

अब क्या हो सकता है—

शहरी उपनगरोंकी दुर्दशाकी ओर तत्काल ध्यान देनेकी आवश्यकता है। यदि हम ग्रामोत्थानकी निश्चित संकल्पना कर इन उपनगरोंके अधिकाधिक निवासियोंको अपने नारकीय अस्तित्वको छोड़नेके लिये राजी कर सकें तो निश्चितरूपसे इस समस्याका समाधान सम्भव है। क्या इन उपनगरवासियोंको गाँव लौटकर वहाँके जातिवादी दुराग्रहोंसे मोर्चा लेनेके लिये तैयार किया जा सकता है? जबतक देशकी राजनीतिसे जातिवाद और अन्य संकीर्णताएँ नहीं निकाली जातीं, तबतक देशको आगे ले जाना मात्र मृगमरीचिका ही सिद्ध होगी और यह तभी सम्भव होगा जब राजनीतिकी जड़ अर्थात् गाँव-स्तरसे इन जातिवादी एवं अन्य संकीर्णताओंका उन्मूलन कर दिया जायगा। इसके लिये उपनगरोंके हजारों

ऐसे युवाओंका चयन किया जाना होगा जो देहात लौटकर ग्रामोत्थानका बीड़ा उठानेको राजी होंगे। इन युवाओंकी हर प्रकारकी मदद देशके प्रबुद्ध नागरिक, स्वैच्छिक संगठन, प्रवासी भारतीय आदि करनेको यदि कटिबद्ध हो जायँ तो देशमें समानता एवं सद्भावनाकी सम्पूर्ण क्रान्ति कुछ ही वर्षोंमें क्रियान्वित हो सकती है।

ग्रामोत्थान—

ग्रामोद्योगोंकी सुनिश्चित व्यवस्था किये बिना शहरी, उपनगरोंके युवाओंको देहातकी ओर लौटाना सम्भव नहीं होगा। पिछले ५० वर्षोंसे ग्रामोद्योगोंको बढ़ावा देनेकी बातें तो सुनी जाती रही हैं, लेकिन हुआ ठीक इसका उलटा ही। ग्रामोद्योग टिक नहीं पाये, अधिकतर उनकी ओर हमारी संवेदना सतही रही है। उनके लिये बाजार निर्मित नहीं हो पाये। यह कहा जा चुका है कि ग्रामोत्थानके बिना शहरी उपनगरोंमें बसे आर्थिक असमानताकी आगमें झुलसते-सुलगते युवाओंको देहात वापस नहीं लाया जा सकता है और यदि ये वापस देहात नहीं लौटे तो स्थिति उत्तरोत्तर भयावह होती जायगी। अत: ग्रामोद्योगके सामानके लिये बाजार निर्मित करना, आज हमारे नगरोंको सुरक्षित रखनेके लिये एकमात्र साधन रह गया है। इसका नियोजन और कार्यान्वयन देशके प्रबुद्ध वर्ग, स्वैच्छिक संगठन और समाजसेवी भारतीय मिलकर कर सकते हैं।

गौशाला-केन्द्रित ग्रामोद्योग—

ग्रामोद्योगके लिये एक सुदृढ़ आधारस्तम्भकी आवश्यकता है और वह आधारस्तम्भ बन सकता है 'गौशाला', जहाँ परिवारोंमें पल रही वे गायें और भैंसें इकट्ठी होंगी, जिन्होंने दूध देना बंद कर दिया होगा। उनके गोबर-गोमूत्रसे उत्तम प्रकारकी प्राकृतिक खाद और कीटनाशक दवाइयोंके साथ-साथ रसोई-गैस भी पैदा होगी, जो सीधे ही ग्रामवासियोंके घरोंमें पाइपोंद्वारा पहुँचायी जा सकेगी। इससे प्रकाशकी व्यवस्था हो सकेगी और ईंधनकी समस्याका समाधान भी किया जा सकेगा। इन गौशालाओंद्वारा क्षेत्रके पशुओंकी नस्ल-सुधारका काम भी किसानोंके आवश्यकतानुसार हाथमें लिया जा सकता है। अर्थात् गौशालाके संचालनसे ही व्यापक ग्रामीण रोजगारका सृजन हो सकेगा। तरह-तरहके ग्रामोद्योग इन गौशालाओंसे स्थानीय कच्चे मालकी उपलब्धिके आधारपर चलाये जा सकेंगे। इस बातपर विशेष ध्यान देना होगा कि ये गौशालाएँ किसी सीमित लाभमें न उलझें; अन्यथा इनकी स्थापनाका उद्देश्य विकृत हो जायगा।

गौसेवा-केन्द्रित जीवन-पद्धति—

दुर्भाग्यसे गाय आज देशमें एक समस्या बन गयी है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारतमें केवल एक राज्य ऐसा है जहाँ सदियोंसे गोवध पूर्णरूपसे प्रतिबन्धित है और वह है जम्मू-कश्मीर-राज्य। इसीलिये कभी भी इस राज्यमें गोवधकी बात नहीं सुनी जाती है। गाय किसकी है?—इस सवालने गायका सबसे अधिक नुकसान किया है। आज परिस्थितियाँ ऐसी बन गयी हैं कि गाय किसीकी नहीं है। मुसलमान गोहत्याके आरोपसे बचनेके लिये इससे दूर रहते हैं और हिन्दूने केवल इसकी पूजा की है। आधुनिकताकी होड़ने गायको अकेला छोड़ दिया है। इसको मारनेवाला न हिन्दू है न मुसलमान, बल्कि आजकी जीवन-पद्धति है। इसलिये पुन: गोसेवा-केन्द्रित जीवन--पद्धतिको हमारे समाजमें वापस लाना होगा। इससे न केवल बचपनसे ही परिवारोंमें जीवमात्रके प्रतिनिधिके रूपमें गायके प्रति संवेदना जागेगी, अपितु महिलाओं और बच्चोंको पर्याप्त पोषण भी मिलेगा। इस प्रकार घरोंमें पलनेवाली गायें जब दूध देना बंद कर देंगी, तब उनकी देख-भाल ग्रामकी गौशालाओंमें हुआ करेगी। इसलिये गो-संवर्धनकी दृष्टिसे गौशालाओंकी स्थापनाके कार्यको एक आन्दोलनके रूपमें चलानेकी आवश्यकता है। ये गौशालाएँ ग्रामोद्योगके केन्द्र बनेंगी और देहातमें गोचर-व्यवस्थाको फिरसे कायम करनेमें सक्रिय योगदान करेंगी। फिर तभी सम्भव होगी गोचर-केन्द्रित कृषि-व्यवस्थाकी पुन:स्थापना, जो भारतकी टिकाऊ खेती-बारीका मेरुदण्ड था। तभी सम्भव होगा गोसेवासे ग्रामोत्थान और तभी घटित होगी देशभरमें 'ग्रामोत्थानसे समानता और सद्भावनाकी सम्पूर्ण क्रान्ति।'

[प्रेषक—श्रीलक्ष्मीनारायणजी मोदी]

~~~
~~~

शाकाहार—मधुमेहकी सर्वोत्तम औषधि

(श्रीपन्नालालजी मुन्धड़ा)

प्राय: अनुचित, अशुद्ध, असंतुलित आहारके कारण ही मनुष्य मधुमेह-जैसे भयंकर रोगसे ग्रस्त हो जाता है और इसलिये इसका उपचार भी उचित, शुद्ध एवं संतुलित आहार ही है।

विदेशोंमें हुए परीक्षणों तथा शोधोंसे परीक्षकों और शोधकोंने निष्कर्ष-रूपसे इस सत्यको स्वीकार किया है कि मांसाहार एवं पशु-अवयवोंका भक्षण मधुमेहका मुख्य कारण है।

डॉ०एल०एच० न्युवर्ग तथा डॉ०ओ०एस०परेटने मधुमेहके कारणोंपर कई वर्षोंतक अस्पतालों एवं परीक्षणालयोंमें शोध करनेके बाद कहा कि मांसाहारके कारण मांसाहार-भक्षीके मूत्रमें अत्यधिक अवाञ्छित गाद (स्लेग) एकत्र हो जाती है, जिसकी मात्रा ७० ग्राम प्रतिदिनतक देखी गयी है, जबकि शाकाहारभोजीके मूत्रमें मात्र २०-२५ ग्राम। इस अवाञ्छित गादका किडनीपर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण मधुमेह तथा उससे उत्पन्न होनेवाले रोगोंके साथ किडनी तथा हृदय अस्वस्थ हो जाते हैं।

आज यदि शाकाहारियोंको मधुमेह और मंधुमेहके कारण रक्तचाप, हृदय, किडनी, मस्तिष्ककी नशोंमें रक्तका जमना आदि कई रोग होते हैं तो इनके मुख्य कारण हैं—शाकाहारीके शरीरमें मांसाहारीका रक्ताधान। इसके साथ ही ऐसे कई टूथपेस्टोंका व्यवहार जिनमें पशुओंकी हड्डीके चूरेका उपयोग होता है। ऐसी जाम, जेली, आइसक्रीम, चॉकलेट, मसाले, कास्मेटिक्सका प्रयोग, जिनमें पशुओंके अवयव मिले रहते हैं। ऐसी दवाइयोंके कैप्स्यूल आदिका उपयोग जो प्राय: जेलेटीन्से बनते हैं और जेलेटीन् पशुओंके बेकार अवयवोंसे बनती है। इस जेलेटीन्का उपयोग गोंदकी जगह भी किया जाता है। इस प्रकार अन्यान्य रूपोंमें हम लोग किसी-न-किसी प्रकार अनपेक्षित ही मांसाहार करते रहते हैं, जो हमारे स्वास्थ्यके लिये बहुत ही घातक है।

कई शाकाहारी भी कहनेको तो असंतुलित कुछ नहीं खाते, पर मौका मिलते ही बादाम, पिस्ता एवं मेवा आदिके मिष्टान्न खाते नहीं थकते। यहाँतक कि उपवासमें भी अत्यधिक प्रोटीन एवं अत्यधिक वसावाले पदार्थ खाते हैं। उन्हें ज्यादा प्रोटीन एवं वसा (घी, तेल)-के कारण यह रोग हो जाता है।

कुछ वर्षों पहले चिकित्सा-वैज्ञानिकोंने कुत्ते, गाय, सूअर आदिकी 'पेनक्रिया' से इन्सुलिन बनाना शुरू किया और दावा किया कि अब मधुमेही मधुमेहसे छुटकारा पा सकेगा; पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। आज लाखों मधुमेही प्रतिदिन इन्सुलिनका इन्जेक्शन लेते हैं, इससे सम्भवत: मधुमेहपर अंकुश तो लगा रहता है, परंतु वास्तविक अंकुश लगता है शर्करा-पदार्थोंके न खानेसे ही; क्योंकि जब शर्करा ही कम खायेंगे तो शरीरमें शर्करा स्वत: कम होगी। इसलिये कई चिकित्सकोंका मत है कि इन्सुलिनका रोगीपर केवल मनोवैज्ञानिक असर होता है, परंतु चूँकि इन्सुलिन पशुओंकी 'पेनक्रिया' से बनती है, इसलिये इन पशुओंकी कई बीमारियाँ भी रोगीको लगनेकी सम्भावना रहती है। इन चिकित्सकोंके विचारमें इन्सुलिन-आधारित मधुमेहियोंको धीरे-धीरे इसकी मात्रा कम करते हुए इसे लेना बंद कर देना ही उचित है।

हिन्दूधर्ममें जनेऊका धार्मिक महत्त्व तो प्राय: सभी जानते हैं, परंतु इसका वैज्ञानिक आधार भी है। जनेऊके कारण जनेऊ-धारककी रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। या यों कहें कि जनेऊ अपने धारककी रोगोंसे रक्षा करता है। जर्मनीके चिकित्सा-विशेषज्ञोंने मुझे बताया कि यदि मूत्र-त्यागके २-३ मिनट पहले जनेऊ कानमें ठीकसे बाँध लिया जाय तो इसके कानोंकी नशोंपर होनेवाले प्रभावके कारण मूत्र-सम्बन्धित रोगों तथा किडनीके रोगोंसे जनेऊ-धारककी रक्षा होती है। उन्होंने तो यहाँतक कहा कि ब्रिटेन तथा फ्रांसमें किडनीके ऐसे रोगी जो डायलसिस्पर निर्भर करते हैं, वे अपनी जेबमें जनेऊ रखते हैं एवं मूत्र-त्यागके पहले इसका उपयोग करते हैं और इससे उनको लाभ भी मिलता है।

जाने-माने आहार-विशेषज्ञ डॉ०जोय् शेल्बि रिलेके अनुसार चकातरा मधुमेहमें अति उपयुक्त फल है। इसे

खानेसे मधुमेह होनेकी सम्भावना कम रहती है और यदि मधुमेहका रोग हो तो तीन चकातरे दिनमें तीन बार खाने चाहिये और यदि मधुमेह शुरू ही हुआ है या होनेकी सम्भावना है तो दिनमें तीन चकातरे खाने चाहिये। उनके विचारमें यदि मधुमेही इन्सुलिन नहीं ले रहा है तो १५-२० दिनोंमें उसे काफी लाभ होगा और यदि इन्सुलिन ले रहा है तो अधिक समय लग सकता है।

मधुमेहमें आँवला—जिसमें विटामिन सी प्रचुर मात्रामें होता है, बड़ा लाभकारी है। एक बड़े चम्मच आँवलेके रसके साथ एक कप करेलेका रस यदि दिनमें दो बार लिया जाय तो वह स्वयं शरीरमें स्वाभाविक रूपसे डेढ़ दो महीनोंमें शरीरके लिये आवश्यक इन्सुलिनकी पूर्ति करने लग जाता है। हाँ, इस समय मधुमेहीके लिये यह विशेष आवश्यक हो जाता है कि वह उचित आहार ही ग्रहण करे।

ब्रिटेनके विशेषज्ञोंका मत है कि ४-५ करेलोंका रस सुबह खाली पेट लेनेसे तथा करेलेके बीजोंका पावडर भोजनमें उपयोग करनेसे मधुमेहीको अत्यधिक लाभ होता है, क्योंकि करेलेमें कुछ ऐसे विटामिन्स होते हैं, जो मधुमेहके कारण होनेवाले रोग जैसे—रक्तचाप, आँखोंके रोग, यौन रोग आदिसे उसकी रक्षा भी करते हैं।

भारतीय औषधि-अनुसंधान-केन्द्रके परामर्शानुसार चिकित्सककी रायसे लिये जा रहे आहारके साथ यदि पचीससे सौग्राम तक मेथीके बीजका प्रयोग किया जाय तो मधुमेहीको आश्चर्यजनक लाभ मिलनेकी प्रबल सम्भावना रहती है।

चना मधुमेहके रोगमें अति लाभदायक है, अनुसंधान-कर्ताओंके मतमें अधिक मात्रामें चना (ब्लेक ग्राम) तथा चनेका सत्तू, चनेसे बने पदार्थ खिलानेसे धीरे-धीरे मधुमेहका रोगी स्वस्थ होने लगता है।

कुछ चिकित्सकोंका मानना है कि मधुमेहीको दी जानेवाली अंग्रेजी दवाएँ (डायनिल, डायविनिज़, डी०बी०आई०) भी कुछ समय बाद मधुमेहके प्रसारसे मधुमेहीकी रक्षा नहीं कर सकतीं। उनका कहना है कि 'गुँवारका गोंद' खाना मधुमेहीके लिये अति लाभप्रद है, वे तो यह भी कहते हैं कि जब गायोंको गुँवार खिलाया जाता था तो उस दूधमें गुँवारके असरके कारण दूध पीनेवालेको मधुमेह नहीं होता था। आज भी यदि भारतीय नस्लकी गायको गुँवार खिलाकर उसका दूध पिया जाय तो मधुमेही स्वस्थ हो सकता है।

जापान और जर्मनीमें तो गुँवारके गोंदको शुद्ध कर उसकी कैप्स्युलें मधुमेहियोंको उनके उपचार-हेतु दी जाती हैं और इन कैप्स्युलोंका औषधिके रूपमें निर्यात भी होता है। वहाँ काली गायको गुँवार, करेला, काला जामुन, चना, बेलपत्र, आमपत्र, नीमपत्र, चकातरा आदि खिलाकर उस दूधको 'मधुमेह-दूध' (डायबिटिक मिल्क)-के नामसे मधुमेहियोंके उपचारके लिये भी उपयोगमें लाया जाता है।

एक्यूप्रेसर चिकित्सकोंकी रायमें प्रतिदिन १०-१५ मिनट सुबह घूमना तथा दिनमें ५-७ बार हथेलीको तंबाकू बनानेकी क्रियाकी तरह रगड़ना भी मधुमेहीको स्वस्थ करनेमें सहायक होता है।

अन्तमें विविध शाकाहारी औषधियोंसे मधुमेहपर समुचित नियन्त्रणके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है—

इन्सुलिन और औषधियाँ करती नहीं उपचार मधुमेहका।
शुद्ध, संतुलित शाकाहार ही नाश करता मधुमेहका॥

उपर्युक्त प्राकृतिक (शाकाहारी) उपचारों, प्रयोगों, उपयोगों एवं वैज्ञानिक अनुसंधानोंके आधारपर हम निर्विवाद-रूपसे यह कह सकते हैं कि 'शाकाहार ही मधुमेहका सर्वोत्तम समाधान है।'

* * *

संतति-निरोधकी भावनासे मनुष्य इतना क्रूर, निर्दय, हिंसक हो जाता है कि गर्भमें स्थित अपनी संतानकी भी हत्या (भ्रूणहत्या या गर्भपात) करनेमें हिचकता नहीं, जो कि ब्रह्महत्यासे भी दुगुना पाप है।

* * *

अमृत-बिन्दु

अपने लिये कर्म करनेसे अकर्तव्यकी उत्पत्ति होती है।

× × ×

कालरूप अग्निमें सब कुछ निरन्तर जल रहा है, फिर किसका भरोसा करें? किसकी इच्छा करें?

× × ×

सत् असत्का विरोधी नहीं है, प्रत्युत उसको सत्ता देनेवाला है। सत्की जिज्ञासा ही असत्की विरोधी है।

× × ×

भगवान्के साथ दृढ़ अपनापन सम्पूर्ण दोषोंको खा जाता है।

× × ×

धनीलोग तो दूसरेको नौकर बनाते हैं, पर संतलोग दूसरेको भी संत ही बनाते हैं।

× × ×

निष्कामभावसे बुद्धि स्थिर होती है और अभ्याससे मन स्थिर होता है। कल्याण बुद्धिकी स्थिरतासे होता है, मनकी स्थिरतासे नहीं। मनकी स्थिरतासे सिद्धियाँ होती हैं।

× × ×

जो सदाके लिये और सबके लिये है, उसकी प्राप्ति 'योग' है। जो सदाके लिये और सबके लिये नहीं है, उसकी प्राप्ति 'भोग' है।

× × ×

सत्के बिना असत्को देख नहीं सकते और असत्के बिना सत्का वर्णन नहीं कर सकते।

× × ×

वास्तविक त्याग वह है, जिसमें त्याग-वृत्तिका भी त्याग हो जाय।

× × ×

धर्मका मूल है—स्वार्थका त्याग और दूसरेका हित।

× × ×

धर्मके अनुसार खुद चले—इसके समान धर्मका प्रचार कोई नहीं है।

× × ×

किसीका भी कल्याण होता है तो उसके मूलमें किसी संतकी अथवा भगवान्की कृपा होती है।

× × ×

'आशीर्वाद दीजिये'—ऐसा न कहकर आशीर्वाद पानेका पात्र बनना चाहिये।

× × ×

अपने कर्तव्य (धर्म)-का ठीक पालन करनेसे वैराग्य हो जाता है—*'धर्म तें बिरति'* (मानस ३ । १६ । १)। यदि वैराग्य न हो तो समझना चाहिये कि हमने अपने कर्तव्यका ठीक पालन नहीं किया।

× × ×

संसार कभी किसीको दुःख नहीं देता, प्रत्युत उससे माना हुआ सम्बन्ध ही दुःख देता है।

× × ×

कामनापूर्वक किया गया सब कार्य असत् है, उसका फल नाशवान् होगा।

× × ×

परमात्मतत्त्वका वर्णन नहीं होता, प्रत्युत अनुभव होता है।

× × ×

कुछ भी चाहना गुलामी है और कुछ नहीं चाहना आजादी है।

× × ×

मुक्ति स्वयंकी होती है, शरीरकी नहीं। अतः मुक्त होनेपर शरीर संसारसे अलग नहीं होता, प्रत्युत स्वयं शरीर-संसारसे अलग होता है।

× × ×

जिसमें राग हो जाता है, उसमें दोष नहीं दीखते और जिसमें द्वेष हो जाता है, उसमें गुण नहीं दीखते। राग-द्वेषसे रहित होनेपर ही वस्तु अपने वास्तविक रूपसे दीखती है।

× × ×

साधकको सत्य-तत्त्वका अनुयायी होना चाहिये, किसी व्यक्ति, सम्प्रदाय आदिका अनुयायी नहीं।

—श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज

* * *

साधनोपयोगी पत्र

(१)

दैन्यका सच्चा अर्थ

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपके प्रश्नोंका उत्तर निम्नलिखित है—

दैन्यसे अभिप्राय है—'अभिमानका नाश'। अभिमानी मनुष्यसे दूसरोंका अपमान हुए बिना नहीं रहता। किसी-न-किसी वस्तुको, परिस्थितिको, भावको लेकर वह अपनेको ऊँचा और दूसरेको नीचा समझता है। पर यह अभिमान उसको साधनपथसे गिरा देता है। इसीलिये श्रीचैतन्यदेवने कहा था—'**तृणादपि सुनीचेन**' अर्थात् जो अपनेको एक राहमें पड़े तिनकेसे भी नीचा माने, उसको किस बातका अभिमान होगा? यह दैन्य सहज—स्वाभाविक होना चाहिये। दैन्यका भी एक अभिमान हो जाया करता है। 'मेरे जीवनमें कितना दैन्य है और दूसरे लोग कितने अभिमानी हैं, अत: मैं उनसे अच्छा हूँ—सद्‌गुणी हूँ'—ऐसा बड़प्पनका भाव मनमें आ जाता है। इससे सावधान रहना चाहिये। मनुष्य भगवान्‌से प्रार्थना करते समय अपना दैन्य प्रकट करता है; पर वस्तुत: उसमें दैन्यका पता तभी लगता है, जब दूसरा कोई उसके किसी गुणपर आघात करे और वहाँ सहज दैन्यके कारण उसे क्षोभ तो हो ही नहीं, वरं यह ध्यानमें आये कि यह सच कह रहा है और उसके प्रति सद्भाव हो। ऐसा दैन्य भगवान्‌को बड़ा प्रिय होता है और भगवत्कृपा-प्राप्ति या साक्षात् भगवत्प्राप्तिका यह एक अमोघ परम सरल साधन है कि अपनेमें सच्चे अर्थमें असमर्थताका बोध होकर दैन्य आ जाय और दीनबन्धु भगवान्‌की सहज सुहृदता और सर्वशक्तिमत्तामें अखण्ड विश्वास हो जाय। यह होते ही तत्काल भगवत्कृपा प्रकट होकर फलित हो जाती है, उसके सारे पाप कट जाते हैं, वह प्रभुका निजजन बन जाता हैं और उसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। जैसे बिजलीके 'ऋणात्मक' या 'अभावात्मक' (Negative) और 'धनात्मक' या 'भावात्मक' (Positive) दो तारोंके मिलते ही विद्युत् उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही 'दीनता' और 'सर्वशक्तिमत्ता' अर्थात् 'अभाव' और 'पूर्णत्व' के यथार्थतया मिलते ही परिपूर्णतम परम साध्य भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। अतएव अपनेको सच्चे अर्थमें 'दीन' बना ले और भगवान्‌के अनन्त शक्तिमय सौहार्दमें अखण्ड अनन्य विश्वास कर ले।

दूसरे प्रश्नके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि ……सज्जनकी स्थिति वही जानते हैं और जानते हैं सर्वज्ञ भगवान्। मुझको कुछ भी पता नहीं। हाँ, मुझसे वे अवश्य ही अत्यन्त उच्च हैं, उनके साथ मेरी तुलना करना ही भूल है। वे यदि अमूल्य रत्न हैं तो मैं काँचका एक नगण्य तीखा टुकड़ा हूँ। अपनी बात मैं क्या बताऊँ? दूसरे क्या कहते हैं, क्या मानते हैं—यह उनकी अपनी दृष्टि है। और उनको मैं समझाने जाऊँ तो वे समझेंगे भी नहीं। पर मेरी अपनी दृष्टिसे मैं सभी साधारण मनुष्योंकी भाँति दुर्बलताओंसे भरा एक मनुष्य हूँ। मुझमें कोई भी विशेषता नहीं है। एक विशेषता है और उसे मैं मुक्तकण्ठसे निस्संकोच स्वीकार करता हूँ कि अकारण कृपालु, स्वभावसे ही सुहृद् सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की मुझपर अनन्त कृपा है, (जो सभीपर है) और उस कृपासे ही मुझे पद-पदपर उसका अनुभव होता है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

प्रार्थनासे रोगमुक्ति

प्रिय बहिन! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। दैवी अनुष्ठान करानेकी शक्ति नहीं है तो कोई बात नहीं, आप स्वयं अपने मनसे अपनी ही करुण भाषामें सर्वशक्तिमान् सहजसुहृद् भगवान्‌से प्रार्थना कीजिये। इस साधनके सिवा मेरी जानकारीमें कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे मैं आपको बता सकूँ। विश्वासपूर्वक की हुई प्रार्थनासे मानसिक तथा शारीरिक सभी प्रकारके रोगोंका नाश हो सकता है। 'साइंस ऑव थॉट रिव्यू' नामक एक इंग्लैंडके पत्रमें श्रीगिल्बर्ट हेनरी गेज नामक सज्जन लिखते हैं—'जर्मनीके एक आदमीको 'शैशविक पक्षाघात' (पोलियो)-का रोग जन्मके पहले हो गये। वर्ष हो गया था। फलत: उनके दोनों पैर बेकार हो गये। उसके लिये प्रार्थना की गयी। चार महीनेके बाद समाचार मिला कि उनके पैरमें नवीन शक्ति आ गयी है। ४८ सालसे जो मांसपेशियाँ मरी हुई थीं, वे सक्रिय हो गयी हैं, उनका जीवन सब चिन्ताओंसे मुक्त, भगवत्-विश्वासपूर्ण और

प्रफुल्लित हो गया है।'

प्रार्थनामें होना चाहिये विश्वास। आप करके देखिये। इसमें कोई हानि तो है ही नहीं। शेष भगवत्कृपा।

(३)

पापका प्रायश्चित्त—पश्चात्ताप

प्रिय बहिन, सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपकी मानस व्यथाका कारण तो बहुत ठीक है, परंतु अब उसके लिये चिन्ता-विषाद करनेसे कोई लाभ नहीं। बचपनमें गलती हो गयी, उसके लिये सबसे बड़ा प्रायश्चित्त तो पश्चात्ताप ही है और वह आपको है ही। अब आपका जीवन परम पवित्र है, कहीं कोई दोष आपमें है नहीं। यही प्रायश्चित्त है। इसपर भी यदि आप और कुछ करना चाहें तो पापनाश तथा प्रभुकृपाके विश्वासके साथ *'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'*—इस मन्त्रकी सौ माला (प्रत्येक माला १०८ दानोंकी) धीरे-धीरे जप कर लें। इससे आपके पापका नाश हो जायगा।

घरमें या बाहर किसीसे भी, पतिदेवसे भी इस बातकी कभी भूलकर भी चर्चा मत कीजिये। यह उनको धोखा देना नहीं है—उनको दुश्चिन्ता, दुःख और नये भयानक कलहसे बचाना है। मेरे पास एक उदाहरण है—एक बड़े सीधे हृदयकी बहिनने सरलतासे अपने बचपनकी कोई भूल स्वामीको बता दी। वह स्वयं निर्दोष भी थी। परंतु उसकी बात सुनते ही पतिको इतना क्षोभ हुआ कि उसने अपनी संतानवती पत्नीको सदाके लिये घरसे निकाल दिया। वह नितान्त दुखी हो गयी। उसका दस वर्षका सुखी विवाहित जीवन मटियामेट हो गया। पतिको बहुत समझाया भी गया, पर उसका मन नहीं पलटा। अतएव आप अपनी इस बातको कहीं भी प्रकट करनेकी भूल मत कीजियेगा।

अब जीवनको परम पवित्र रखिये। सर्वथा पतिकी अनुगामिनी और सेवापरायण बनकर रहिये। भगवान्के पवित्र नामोंका जप कीजिये। विश्वासपूर्वक भगवत्प्रार्थना कीजिये। भगवत्कृपासे बड़े-से-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। भगवान्की शरण ग्रहण कीजिये—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

अतएव अशान्ति और चिन्ताको त्यागकर भगवत्कृपापर विश्वास कीजिये। शेष भगवत्कृपा।

(४)

किसका जीवन सफल है?

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। निम्नलिखित पंक्तियोंमें अपने सभी प्रश्नोंका उत्तर संक्षेपमें समझ लीजिये—

अग्नि ईंधनसे तृप्त नहीं होती, समुद्र जलसे तृप्त नहीं होता, काल प्राणियोंसे तृप्त नहीं होता और मनुष्य भोगोंसे तृप्त नहीं होता।

जिसके जीवनमें त्याग हो, जिसका धन गरीबोंकी सम्पत्ति हो, जिसका बल दीनोंका संबल हो, जिसका मन विश्वप्राणिरूप भगवान्की सेवामें लगा हो, वही धन्य है। उसीका जीवन सफल है।

उस धनसे क्या, जो अभावग्रस्तोंके काममें नहीं आता; उस बलसे क्या, जो निर्बलकी रक्षा नहीं करता; उस श्रवणसे क्या, जो आचरणमें नहीं आता और उस जीवनसे क्या, जो जितेन्द्रिय नहीं है।

जो दुःखोंके आनेपर घबराये नहीं और सुखोंकी इच्छा ही न करे—वही स्थितप्रज्ञ है। भक्त वह है, जो अनुकूल प्राणिपदार्थोंको प्राप्त करके हर्षित नहीं होता, प्रतिकूल प्राणिपदार्थोंसे द्वेष नहीं करता, अनुकूल प्राणिपदार्थोंके नष्ट हो जानेपर शोच नहीं करता और प्रतिकूलके नाशकी तथा अनुकूलको प्राप्त करनेकी आकांक्षा नहीं करता, जो समस्त शुभाशुभका परित्याग करके केवल भगवान्का हो जाता है।

ज्ञानी वह है, जो प्रिय-प्राप्तिमें हर्षित नहीं होता, अप्रियकी प्राप्तिमें उद्विग्न नहीं होता।

शेष भगवत्कृपा।

पशु-चर्म तथा सींगों आदिके मिश्रणसे निर्मित जेलेटीन् डालकर बनायी गयी आइसक्रीमसे सावधान

(सुश्री पद्मा अग्रवाल)

आजके समाजमें, बाजारमें निर्मित आइसक्रीमोंका उपयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। कितनी ही भयंकर सर्दी क्यों न हो, शादीका समारोह, सहभोज अथवा जन्मदिन-पार्टीको आइसक्रीमके बिना फीका समझा जाता है। बच्चोंसे लेकर बड़ोंतकको आइसक्रीम शौकसे खाते देखा गया है।

क्या आपने इन स्वादभरी आइसक्रीमोंके सम्बन्धमें कभी विचार किया है? इन सभी बाजारी आइसक्रीमोंमें जेलेटीन् डाला जाता है। कैमेस्ट्रीमें एम्०एस्०सी० मेरी एक सहेलीने जेलेटीन्के बारेमें मुझे बताया कि यह अशुद्ध वस्तु है। मैंने 'ऑक्सफोर्ड इलस्ट्रेटेड डिक्शनरीमें देखा—जेलेटीन् (Gelatin)-का अर्थ (Glue) 'सरेस' दिया है। जबकि इसी डिक्शनरीके पेज नं० ४०५ में 'सरेस' (Glue)-का अर्थ दिया है—"A hard brittle thing made by boiling hides, horns etc. And yielding a sticky substance when boiled." नालन्दा अद्यतन कोषके ९४२ पेजपर 'सरेस' का अर्थ इस प्रकार बताया गया है—'यह एक प्रकारका लसदार पदार्थ है, जो चमड़ेको उबालकर बनाया जाता है और गोंदके समान होता है।'

हमें आइसक्रीम बनानेवालोंसे जानकारी मिली है कि आइसक्रीम तैयार करते समय कुछ चम्मच जेलेटीन् पानीमें कुछ देर भिगा देते हैं। जब वह फूलकर गाढ़ा और लसदार हो जाता है, तब उसे आइसक्रीम जमानेवाले पात्रमें मिला देते हैं। ज्यादातर आइसक्रीमोंको नरम बनानेके लिये इसी विधिका प्रयोग किया जाता है।

कितना ज्यादा अनर्थ हो रहा है। भारतकी जनता कुछ समय पूर्व मटकोंमें कुल्फी जमाया करती थी। हमारे हिन्दूधर्मके सभी देवी-देवताओंको कितना कष्ट है, हम धार्मिक बनकर, शाकाहारी बनकर उसी रसोईमें आरामसे आइसक्रीम बना और खिला रहे हैं, जो कि जेलेटीन् डालकर निर्मित की जाती है।

आइसक्रीमसे दाँत और आँत सभी खराब होते हैं। भारतकी धर्मपरायण जनताको धोखा हो रहा है। जिन लोगोंको यह जानकारी नहीं थी, वे यह जान लें कि बाजारमें बिकनेवाले आइसक्रीम अशुद्ध एवं अपवित्र वस्तुओंके योगसे निर्मित किये जाते हैं, जो धार्मिक, नैतिक, आर्थिक एवं स्वास्थ्य तथा शरीर-विज्ञानकी दृष्टिसे भी हानिकर हैं। अतः आप आइसक्रीम न स्वयं खायें और न दूसरोंको ही खिलायें।

बाजारी आइसक्रीम खायें तो पहले पता कर लें कि जेलेटीन् तो नहीं डाला गया है? अन्यथा घरमें ही बिना जेलेटीन्वाली आइसक्रीम तैयार करें। छोटे-छोटे बच्चे आइसक्रीम शौकसे खाते हैं, उन बेचारोंको क्या पता कि हमें बचपनसे ही मांसाहारी बनाया जा रहा है। कितनी भयावह एवं दुःखद स्थिति है, जहाँ अमेरिका-जैसा पाश्चात्त्य-संस्कृति-सम्पन्न राष्ट्र शाकाहारकी ओर बढ़ रहा है, क्योंकि उसकी मान्यता हो गयी है—'शाकाहारी चीजें हमें स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त रखती हैं।' वहीं जीवमात्रके संरक्षण-संवर्धनकी संस्कृतिका पोषक, अहिंसाका समर्थक धर्म-संस्कृति-प्रधान देश भारतके नागरिकोंसे जाने-अनजाने प्राकृतिक भारतीय आहार-विधि—शाकाहार-पद्धतिकी अवहेलना हो रही है और उनमें मांसाहारकी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।

अतः हम भारतीय नागरिकोंका यह पुनीत एवं आवश्यक कर्तव्य हो जाता है कि इस सम्बन्धमें जन-जनमें राष्ट्रिय संचेतनाका संचारकर अपने राष्ट्रका एवं राष्ट्रिय संस्कृतिका संरक्षण करें। इसीमें हमारा एवं हमारे राष्ट्रका कल्याण निहित है।

आइये, हम परस्पर शाकाहारी बननेकी दृढ़ प्रतिज्ञा करें।

* * *

पढ़ो, समझो और करो

(१)

दाह-संस्कारमें त्रुटिका दुष्परिणाम

पता नहीं, मेरे इस धर्मप्राण भारतके ऋषि-मुनियोंकी संतान हिंदुओंको आज न जाने क्या हो गया है कि जो उन्हें अपना तो सब कुछ बुरा प्रतीत होने लगा है और दूसरे देशोंका सब कुछ अच्छा लगने लगा है। यहाँ भारतीयोंको शास्त्रानुसार मरना और मरनेपर दाहकर्म-संस्कार कराना भी अच्छा नहीं लगता। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि प्राचीन सनातनधर्मानुसार, शास्त्रानुसार दाहसंस्कारको एकदमसे समाप्त करनेके लिये विदेशी तकनीकी प्रबिधिपर आधारित अनेक महानगरोंमें विद्युत् शवदाह-गृहकी स्थापना की जा चुकी है और उन्हींमें मुर्दोंको बिना किसी क्रियाके ऐसे ही बिजलीसे फूँक दिया जाता है। दिल्ली, बंबई, कलकत्ता आदिमें तथा और भी कई जगह, यह कार्य प्रारम्भ भी हो चुका है।

दाह-संस्कारमें तनिक भी कमी रहनेसे मृतक आत्माको अगले जन्ममें कितना दुष्परिणाम भोगना पड़ता है, आजके पाश्चात्य सभ्यताके रंगमें रँगे लोग इसकी तनिक भी परवा नहीं करते हैं। सनातनधर्मानुसार दाह-संस्कार न करनेसे क्या-क्या भयंकर दुष्परिणाम भोगने होते हैं; शास्त्रोंमें आयी पुनर्जन्मकी बातें अक्षर-अक्षर सत्य कैसे हैं और आशुतोष भगवान् श्रीशंकरकी उपासनासे पुत्र-प्राप्ति और मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति कैसे होती है—इस सम्बन्धकी एक बिलकुल सत्य घटना नीचे दी जा रही है—

मार्च सन् १९६० की बात है। हम मुजफ्फरनगर गये थे। एक दिन सहसा काली नदीके किनारे देव-मन्दिरोंके दर्शन करते हुए किसी संतके सत्सङ्गकी तलाशमें घूम रहे थे। अकस्मात् एक जगह एक तख्तपर विराजमान, गीताका पाठ करते हुए संत दृष्टिगोचर हुए। संतजीको सारी गीता कण्ठस्थ थी और उन्होंने उपनिषद् भी खूब देखे थे। आप योगाभ्यासी भी थे। शुभ नाम था—श्रीस्वामी मदनानन्द सरस्वती। प्रसङ्ग चलनेपर महाराजजीने कहना प्रारम्भ किया—

'मेरा जन्म जिला कानपुरके तहसील देरापुरमें संवत् ११४२में हुआ था। मैं जातिका दुबे ब्राह्मण था। हमारी माताजीके चार लड़कियाँ हुईं; पर उनके लड़का कोई नहीं हुआ। वह लड़का न होनेके कारण दिन-रात चिन्तित रहा करती थीं। किसी संतके बतानेके अनुसार उन्होंने पुत्र-प्राप्तिके लिये आशुतोष भगवान् श्रीशंकरकी शरण ली। हमारे गाँवके बाहर एक भगवान् श्रीशंकरजीका मन्दिर था। हमारी माताजीने पुत्र-प्राप्तिके निमित्त उन्हींकी पूजा-आराधना करना प्रारम्भ कर दिया। भगवान् शंकर बड़े ही दयालु हैं। उन्होंने हमारी माताजीकी प्रार्थना सुनी। पर जहाँ शास्त्रानुसार पूजन करनेसे भगवान् श्रीशंकर प्रसन्न हुए, जहाँ उनकी कृपासे पुत्र-प्राप्तिका शुभ अवसर हाथमें आया, वहाँ अकस्मात् एक कार्य शास्त्रविरुद्ध होनेके कारण एक घोर अनर्थ भी हो गया।

बात यह हुई कि इसी दरम्यान अकस्मात् हमारे पूज्य बाबा श्रीपरमसुख दुबेजीका स्वर्गवास हो गया। आपकी आयु उस समय लगभग ९० वर्षकी थी। शरीर पूरा होनेपर उन्हें मृतक-घाट अर्थात् श्मशान-भूमिमें ले जाया गया। हमारे यहाँ शास्त्रानुसार प्रथा है कि सूर्यास्त होते समय मुर्दा नहीं फूँका जाता। सूर्यास्तके समय मुर्दा फूँकना पाप माना जाता है। इसलिये सब कोई सूर्यास्त होनेसे पहले ही मुर्दा फूँक देते हैं। हमारे घरवालोंने अज्ञानतावश यह शास्त्रविरुद्ध कर्म कर डाला। 'सूर्यास्त हो रहा है, इस समय नहीं फूँकना चाहिये' इस बातकी तनिक भी परवा न कर सूर्यास्तके समय ही दाह-संस्कार कर डाला।

इस शास्त्रविरुद्ध दाहकर्म-संस्कारका घोर दुष्परिणाम यह हुआ कि अब उन्हीं बाबाको मुझ पोतेके रूपमें आकर आजतक उस पापका फल भोगना पड़ रहा है। अर्थात् मेरी एक आँखसे मुझे हाथ धो बैठना पड़ा।

बात यह हुई कि एक दिन रात्रिमें हमारी माताजीको बाबाजीने स्वप्न-दर्शन देकर कहा—'तुम लोगोंने हमारा दाहकर्म सूर्यास्तके समय कर दिया, इसलिये हमारा क्रियाकर्म भ्रष्ट हो गया। शंकर-पूजनसे तुम्हारे पुत्र होगा। हम ही तुम्हारी कोखसे पुत्र बनकर जन्म लेंगे; किंतु सूर्यास्तके समय हमारा दाहकर्म करनेके कारण हमारा एक नेत्र जाता रहा। अब हम ही तुम्हारे एक नेत्रवाले पुत्र होंगे।'

माताजीने यह स्वप्न देखा और उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

उन्होंने बाबाकी यह भविष्यवाणी सबको सुनायी। स्वप्नके कुछ दिनों पश्चात् ही मेरी माताजीके गर्भ रहा। स्वप्नकी भविष्यवाणीके अनुसार मैं एक आँखवाला पुत्र उत्पन्न हुआ।

माताजीको मेरी एक आँख न होनेका बड़ा कष्ट रहा। जब मैं कुछ बड़ा हुआ और बोलने लगा तो मैं सबके सामने बाबा होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण देने लगा। मैं सबको यह बताने लगा कि ‘यह मेरी लाठी है, जिसे मैं पूर्वजन्ममें बूढ़ा होनेके कारण लेकर चला करता था। यह मेरा अँगरखा है, जिसे मैं पहना करता था। अमुक-अमुक हमारे रिश्तेदार हैं।’ ये सब बातें बतानेपर भी हमारी माताजीने हमारी बातोंपर कोई ध्यान नहीं दिया। आगे चलकर हम बड़ी-बड़ी विचित्र बातें बताने लगे। पूर्वजन्ममें जब हम बाबा थे, उस समयके गाड़े हुए रुपये बताकर सबके सामने निकाल कर दिखाये। यह देखकर सब आश्चर्यचकित रह गये।

(२)

‘पूर्वजन्मका ज्ञान’

पिलखुवा, हमारे स्थानपर सुप्रतिष्ठित विद्वान् शास्त्रार्थ-महारथी पं०श्रीबिहारीलालजी ‘शास्त्री’ काव्यतीर्थ पधारे थे। उन्होंने अपने मुखसे प्रसंगवश पूर्वजन्मके सम्बन्धकी श्रीरामनाम जपने, श्रीगङ्गास्नान करने और दानपुण्य करनेकी अद्भुत महिमाकी एक अपनी घटना सुनायी थी। वह सत्य घटना संक्षेपमें इस प्रकार है—

जिला बदायूँमें एक जगह है उझानी। एक बार उझानीके पासके ही किसी गाँवके रहनेवाले कुछ राजपूत लोग आये थे। वे लोग निजी वाहनसे अपने गाँवसे श्रीभगवती भागीरथीका स्नान करनेकी दृष्टिसे सपरिवार जा रहे थे। अपने गाँवसे चलकर जब वे लोग उझानी आये, तब चौराहेपर विश्राम करनेकी दृष्टिसे वे लोग कुछ देरके लिये रुक गये। बिलकुल सड़कके पास ही उन दिनों कुछ कंजर लोग रहा करते थे। उन कंजरोंकी वहाँपर झोंपड़ियाँ पड़ी हुई थीं। इन ठाकुर लोगोंके साथमें इनका एक छोटा बालक था, जिसकी आयु लगभग ५ वर्षकी थी। वह बालक अपने घरवालोंके पाससे चलकर उन सामनेवाले कंजरोंके पास उनकी झोंपड़ियोंमें पहुँच गया। उसने वहाँपर जाकर एक कंजरीका नाम लेकर पुकारा। कंजरकी उस स्त्रीको उस बालकके इस प्रकार बिना जाने-पहचाने अपना नाम लेकर पुकारनेपर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उस बालकसे पूछा—‘अरे, तू किसको पुकारता है? तू कौन है?’ इसपर उस लड़केने कहा—‘क्या तू मुझे नहीं जानती? क्या तू मुझे भूल गयी?’ कंजरीने कहा—‘मैं तो तुझे जानती ही नहीं कि तू कौन है और कहाँका रहनेवाला है?’ फिर भूलनेकी बात ही क्या है?

ठाकुरके लड़केने कहा—‘मैं तेरा पति हूँ। तू मेरी स्त्री है।’ उस कंजरीको एक छोटेसे बच्चेके मुखसे यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी—‘क्या यह छोटा-सा ४-५ वर्षका बच्चा है और कहाँ मैं इतनी बड़ी आयुकी स्त्री; फिर कैसे यह मुझे अपनी स्त्री बताता है?’

कंजरीने कहा—‘अरे, तू मेरा पति कैसे बन गया? मैं तो तुझे जानती भी नहीं हूँ कि तू कौन है। मेरा पति तो कभीका मर गया है। अब मेरा पति कहाँसे आ गया? तू यह क्या कहता है?’

उत्तरमें उस लड़केने कहा—‘तुझे पता नहीं कि तेरे पतिका नाम मोहनसिंह कंजर था?’

उसने कहा—‘हाँ, मेरे पतिका नाम मोहनसिंह कंजर था, पर तू कोई मोहनसिंह कंजर थोड़े ही है। वह तो मर गया?’

उस लड़केने पुनः कहा—‘मैं ही तेरा पति मोहनसिंह कंजर हूँ।’ इतना कहनेके साथ ही वह बालक अपने पूर्त्रजन्मकी कहानी बताते हुए कहने लगा—‘मैं पहले जन्ममें तेरा पति मोहनसिंह कंजर था और अब मैंने इन ठाकुरोंके घरमें आकर जन्म ले लिया है।’ फिर उसने वहाँपर बैठे हुए सब कंजरोंको भी पहचान लिया। उसने उस समयकी और सब बातें भी बतानी प्रारम्भ कर दीं और बहुत-सी गुप्त बातें भी, जो उससे पूछी गयीं, उसने उन्हें बतायीं। उसकी बतायी हुई सभी बातें सत्य थीं, उन्हें सुनकर सभी कंजरोंने और कंजरियोंने स्वीकार किया। इसलिये उन्होंने झटसे उस बालकको अपनी गोदमें उठा लिया।

इधर जब उन ठाकुरोंने देखा कि हमारा बच्चा यहाँपर खेल रहा था और अब देखते-देखते वह किधर चला गया। अब वे बच्चेकी तलाश करने लगे। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब उनकी दृष्टि सामने कंजरोंकी झोंपड़ियोंकी ओर गयी तब उन्होंने देखा कि वह बच्चा कंजरोंके पास है। कंजर उसे

अपनी गोदमें उठाकर बड़े प्रेमसे खिला रहे हैं। ठाकुर लोग भागे हुए वहाँपर गये और जाकर उन कंजरोंसे अपने बालककी माँग की। कंजरोंने कहा—'नहीं, यह तो हमारा मोहनसिंह कंजर है। हम इसे अपने पास रखेंगे।'

ठाकुरोंने उन कंजरोंको बहुत कुछ समझाने-बुझानेका प्रयत्न किया कि किसी प्रकार यह हमारे बालकको हमें सौंप दें, पर वे लाख समझानेपर भी उसे देनेके लिये तैयार नहीं हुए। अब तो ठाकुरों और कंजरोंमें परस्पर बड़ी छीना-झपटी और कहा-सुनी हो गयी।

जब झगड़ा बहुत ज्यादा बढ़ गया और कोई निर्णय नहीं हो सका, तब ठाकुरोंने थानेमें जाकर पुलिसको इस बातकी सूचना दी कि 'हमारे बालकको कंजरोंने ले लिया है। उनसे हमारा बालक हमको दिलवाया जाय।' पुलिस घटनास्थलपर पहुँच गयी। उसने कंजरोंसे उस लड़केको ठाकुरोंको देनेके लिये कहा और उन्हें धमकाया भी, समझाया भी, फिर भी वे कंजर लड़केको देनेके लिये तैयार नहीं हुए।

जब किसी भी प्रकार विवाद नहीं सुलझा तब पुलिस उस बालकको कंजरोंसे अपने कब्जेमें लेकर उझानीके सुप्रतिष्ठित रईस रायबहादुर श्रीव्रजलाल भदावरजीके सामने ले गयी। ठाकुर लोग और वह कंजर भी वहाँपर पहुँच गये। वह ठाकुरोंका ५ वर्षका बालक श्रीभदावरजीके सामने पहुँचते ही उन्हें पहचान लिया। उसने उनका शुभ नाम लेकर कहा कि 'भदावरजी! राम राम।'

रायबहादुर श्रीव्रजलाल भदावरजीको उस छोटेसे बालकके मुखसे यह शब्द सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने चकित होकर उस बालकसे पूछा—'भाई तू कौन है? इसके पहले तो हमसे आजतक तू कभी मिला नहीं है; फिर तू हमें कैसे जानता है? तूने हमें कहाँ देखा है?' इसपर उस बालकने कहा—'रायबहादुर साहब! मैं पूर्वजन्मका आपका कंजर हूँ। मेरा नाम मोहनसिंह है और मैं जब कंजर था तब उस समय आपके घरपर आकर आपकी कोठीके लिये खसके पर्दे बनाया करता था।'

माननीय रायबहादुर साहबने जब ये बातें सुनीं तो वे दंग रह गये। उस बालककी बतायी सभी बातें अक्षरशः सत्य थीं। उन्होंने उस बालककी बातोंकी पुष्टि करते हुए कहा कि मोहनसिंह कंजर हमारी कोठीके लिये खसके पर्दे बनाया करता था। इसके बाद रायबहादुर साहबने उन कंजरोंको समझा-बुझाकर, उस बालकको उन ठाकुरोंको दिलवा दिया।

अब माननीय रायबहादुरजीने मुझे बताया कि 'इस बालकका कंजरसे धनाढ्य ठाकुरोंके घरमें जन्म लेनेका कारण यह है कि जब यह पूर्वजन्ममें मोहनसिंह कंजर था तब उस समय यह इतना संयमी और सात्त्विक था कि कभी भी मांस नहीं खाता था। किसी भी जीवको न तो कभी मारता था और न उनका शिकार ही करता था। इसकी श्रीगङ्गाजीमें इतनी श्रद्धा-भक्ति थी कि कंजर होते हुए भी यह श्रीगङ्गा-स्नान करनेके लिये जाया करता था और नित्य श्रीरामनामका जाप किया करता था। इसने गरीब होकर भी अपनी खून-पसीनेकी गाढ़ी कमाईका पैसा-पैसा जोड़कर ४०० रुपये इकट्ठे किये थे और ये रुपये मुझे देकर मेरे द्वारा एक कुआँ भी बनवाया था। जिससे सब लोग उस कुएँका पानी पीकर अपनी प्यास बुझा सकें। इसी श्रीरामनामके जप करनेसे, गङ्गाके स्नान करनेसे, कुआँ बनवाने और जीवोंपर दया करने आदि पुण्योंके प्रतापसे इसे ऐसा जन्म प्राप्त हुआ है।'

[प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी]

(३)

देवीकी दया

आजादी मिलनेपर क्वेटामें साम्प्रदायिक दंगे चल रहे थे। वहाँपर एक मुसलमान होटल-मालिकके यहाँ एक वफादार हिंदू नौकर था। उसका नाम था चोइथराम।

एक दिन कुछ दंगाइयोंने होटल-मालिक और उसकी बीबीको कुरान और सूअरकी शपथ दिलायी और चोइथरामका क़त्ल करनेको कहा।

रातको होटल-मालिकने सोते हुए चोइथरामका काम-तमाम करनेका विचार किया। तब उसकी बीबीने उसे बहुत समझाकर कहा कि 'ऐसी बेसिर-पैरकी शपथ वास्तवमें शपथ नहीं कही जा सकती। हर एक मनुष्यका वास्तविक धर्म तो स्वामिभक्त नौकरकी रक्षा करनेका है, विश्वासघात करके उसको यमलोक भेजनेका काम तो जघन्य पाप है। कुरान आदिका शपथ तो प्राणिमात्रके कल्याणके लिये—जीवन

रक्षाके लिये ग्रहण किया जाता है।' इतना समझानेपर भी मूढ़ होटल-मालिकके कानोंपर जूँतक नहीं रेंगी।

तब होटल-मालिककी बीबीने धर्म-संकट देख पतिसे नौकरके लिये चाय बनानेकी आज्ञा माँगी। उसने पतिसे कहा कि 'मैं चाहती हूँ कि नौकरको मरनेसे पहले चाय पिला दूँ, फिर आप नौकरको मृत्युके घाट पहुँचावें।' अब होटल-मालिक बिस्तरपर पड़ा आराम करने लगा।

मौका देखकर होटल-मालिककी बीबीने चोइथरामको जगाकर उसे क्वेटासे नौ-दो ग्यारह हो जानेको कहा। वह वहाँसे भाग कर जोधपुर चला गया।

जोधपुर आनेपर चोइथरामने उस देवीके प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए बताया, 'मेरा जीवित-शरीर उस देवीकी ही दया है।'

(४)

पहलेसे बचानेकी व्यवस्था

बात कुछ वर्ष पूर्वकी है, जब मेरे लघु भ्राता माध्यमिक विद्यालय बड़ोदियामें कक्षा ८ में अध्ययन करते थे। भगवान्‌की महान् कृपा-प्रेरणासे ये बचपनसे ही नियमपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा-पूजा किया करते थे। बड़ोदियामें ये छोटे कमरेमें रहते थे, इनके साथ दो और साथी थे। वहाँ स्थित श्रीदाऊजीके मन्दिरका दर्शन करना, सत्संग करना एवं धार्मिक पर्वोंपर सेवामें कुछ हाथ बँटाना इनका नित्य-नैमित्तिक कार्य हो गया था। एक बार रात्रिके समय जब ये सो रहे थे, तब अचानक ऊपर रखी हुई लकड़ियोंका ढेर खिसक गया और ऊपरसे सभी लकड़ियाँ गिर गयीं, पर इसके कुछ समय पूर्व ही ये सोते हुए ऐसे घबराकर उठे, मानो इनको किसीने हाथ पकड़कर अलग गिरा दिया हो। ये ज्यों ही वहाँसे अलग हटे, त्यों ही लकड़ियोंका ढेर नीचे गिर पड़ा। स्थान संकीर्ण होनेके कारण इन्होंने जलानेकी लकड़ियाँ कमरेमें ही ऊपर जमा कर दी थीं। उतनी आवाज होनेपर दो साथी जो दूर सो रहे थे, वे उठ आये। उन्होंने अत्यन्त घबराकर इनको आवाज दी, देखा तो बिलकुल आरामसे बाल-बाल बचे हुए बैठे हैं। सभीकी स्थिति अवाक्-सी हो गयी। यह प्रसंग मुझे सुनाते-सुनाते वे गद्‌गद हो गये। मैं भी बहुत प्रभावित हुआ कि भगवान् किस तरह रक्षा करते हैं। यदि इनकी निद्रा न खुली होती तो इनका बचना असम्भव ही था। परंतु वहाँ तो बचनेकी व्यवस्था पहलेसे थी। बचानेवालेने बचा ही लिया था।

[प्रेषक—पुरुषोत्तम पण्ड्या 'साहित्यरत्न']

* * *

मनन करने योग्य

'शाहजी! आपने ऐसा क्यों किया? अरे, इतना दान किया ही था चालीस-पचास रुपये और दे देते तो आपके नामकी तख्ती दानवीरोंमें लग जाती। लोगोंको मालूम होता कि आपने दानमें दस हजार रुपये दिये।'

श्रीजमशेदजी मेहता समाज-कल्याण और धर्मके कार्योंमें गहरी दिलचस्पी रखते थे। उन्होंने अपने सहयोगसे शिक्षण-संस्थाएँ, अस्पताल, पुस्तकालय, गोशालाएँ, प्याऊ, मन्दिर, धर्मशालाएँ आदि कितनी ही संस्थाएँ खोल रखी थीं। अनाथों, गरीबों और विद्यार्थियों आदिकी सहायता वह अनेक प्रकारसे किया करते थे।

एक बार कराँचीके सार्वजनिक चिकित्सालयकी सहायताके लिये धन इकट्ठा किया जा रहा था। यह एक धार्मिक और समाजोपयोगी कार्य था। हर कोई अपनी-अपनी आर्थिक स्थितिके अनुसार दान कर रहा था। धनकी अत्यन्त थोड़ी राशि भी दानमें स्वीकार की जा रही थी।

दान इकट्ठा करनेके लिये एक समिति बनी। समितिने यह निर्णय किया कि बड़े पूँजीपतियोंको आकर्षित करनेके लिये शिलापट्टपर उनके नाम अंकित किये जायँ, जिससे उन्हें समाजमें सम्मान मिल सके, उनके दानका विज्ञापन हो सके, लोग दान-दाताओंकी वाहवाही करें। इस प्रकार सम्मान और वाहवाहीसे आकर्षित होकर पूँजीपति अधिक-से-अधिक दान करेंगे।

समितिके निर्णयानुसार सार्वजनिक रूपसे इसकी घोषणा भी कर दी गयी कि—'जो सज्जन दस हजार रुपये

चिकित्सालयके दान-कोषमें देंगे, उनके शुभ नामकी संगमरमरकी पट्टिकाएँ चिकित्सालयकी दीवारपर लगा दी जायँगी।'

पूँजीपतियोंने नामकी प्रसिद्धि, अपनी फर्मके विज्ञापन और यशकी आकांक्षासे भरपूर दान किया। उनके नामोंकी पट्टिकाएँ भी लगीं।

मनुष्य सब कुछ छोड़ दे परंतु उसकी प्रशंसाकी भूख तथा अपनी तारीफ सुननेकी चाह और यशकी आकांक्षा नहीं छूटती! मानव-प्रकृतिकी सबसे बड़ी प्रेरणा महत्त्वपूर्ण कहलानेकी उसकी गुप्त लालसा है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी तारीफ़ सुनना पसंद करता है। विलियम जेम्सने लिखा है कि 'आदमीके स्वभावमें सबसे गहरा भाव दूसरोंसे सम्मान पानेकी लिप्सा है'। प्रशंसा मनुष्यकी कभी पूरी न होनेवाली क्षुधा है। जो कुशल व्यक्ति दूसरोंकी इस भूखको ईमानदारीसे शान्त कर सकता है, वह लोगोंको अपनी मुट्ठीमें कर सकता है।

लेकिन श्रीजमशेदजी मेहता यशकी इच्छा और लिप्साके प्रति अत्यन्त सतर्क रहनेवाले व्यक्ति थे। यश और प्रसिद्धिसे दूर भागनेका उनका स्वभाव ही बन गया था। अतः अपने इसी स्वभावके अनुसार उन्होंने दस हजारसे कुछ कम ही रुपये दानके कोषमें दिये। फलतः उनके नामकी पट्टिका नहीं लगायी गयी।

इतना बड़ा दान और फिर भी नामकी संगमरमर-पट्टिका न लगवाना—अजीब व्यक्ति थे मेहताजी! क्या वे महत्ताकी आकांक्षा एकदम नहीं रखते थे?

उनकी यह प्रवृत्ति देखकर एक सज्जनने उनसे अपनी शंकाके निवारणार्थ प्रश्न किया—

'शाहजी, आपने ऐसा क्यों किया? अरे साहब! वहाँ दस हजार ही दे देते, कम क्यों दिये? चालीस-पचास रुपयेकी क्या बात थी? इतने और दे देते तो आपके शुभ नामकी पट्टिका चिकित्सालयमें लग जाती।'

वे कुछ देर चुप रहे। क्या बात थी उनके मनमें?

कहिये मेहताजी, आपकी अनुमति होती तो चालीस-पचास रुपये आपकी ओरसे हम ही दे देते। आपके शुभ नामकी पट्टिका तो लग जाती! क्या आप समाज-सेवाके कार्योंको प्रोत्साहित नहीं करना चाहते? क्या रहस्य है यह? क्या आपमें दानके माध्यमसे बड़ा कहलानेकी लालसा नहीं है?

उत्तरमें मेहताजीने धीरेसे कहना शुरू किया—

'मित्रो! समाज-सेवाके लिये दान करना अच्छी बात है। बिना धनके कोई भी बड़ा काम नहीं हो सकता। हर समाज-सेवीको धनकी आवश्यकता तो पड़ती ही है।'

'सो तो सब मानते हैं, लेकिन····।'

'लोक-सेवाके कार्योंमें नाम होनेकी होड़से ही तो सारी दान-प्रवृत्ति बदनाम हो रही है। हमें समाजकी जनहितकारी प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहन देना चाहिये।' मेहताजी बोले।

'आखिर नाम-पट्टिकामें क्या हर्ज है?'

मेहताजीने कहा—'जनहितकारी कार्योंमें त्याग-भावना होनी चाहिये, प्रशंसा या विज्ञापनकी थोथी प्रवृत्ति नहीं। नामोंकी पट्टिकाएँ लगवानेकी होड़ दान या जनहितकी भावना नहीं, आत्म-प्रशंसा और विज्ञापनकी व्यापारिक प्रवृत्ति है। महत्ता प्रदर्शित करनेकी ललक है, सेवाका भाव नहीं।'

'तो क्या सत्कार्योंके लिये लोगोंको प्रशंसित और पुरस्कृत करना अनुचित है?'

'नहीं, नहीं'—मेहताजीने स्पष्ट किया, अच्छे कार्योंकी तारीफ़ होनी चाहिये। यथोचित गुणग्राहिताका बड़ा मूल्य है। लोगोंको दूसरी किसी वस्तुकी उतनी आवश्यकता नहीं जितनी आत्मपूजाके पोषणकी। प्रशंसाके शब्द हर किसीकी स्मृतिमें वर्षोंतक प्रातःकालीन नक्षत्रोंके संगीतकी भाँति गूँजते रहते हैं।

लेकिन दानके क्षेत्रमें आत्मप्रशंसा आत्महत्या है। यह छिछली, स्वार्थमय और प्रायः कपटपूर्ण होती है। यह कटु सत्य है कि कुछ लोग गुणग्राहिता और प्रशंसाके इतने भूखे होते हैं, इतने इच्छुक होते हैं कि कोई भी वस्तु निगल जाते हैं।

आज हम सब ऐसी भूख जगा बैठे हैं कि सूईके दानका भी प्रचार हो, तनिक-सा पैसा दिया जाय पर उसका अधिक-से-अधिक विज्ञापन हो, लोग बड़े दान-दाताओंकी सूचीमें उन्हें देखें और उनकी अमीरी और परोपकारकी दाद दें।

यह स्वार्थकी, दिखावेकी दुष्प्रवृत्ति हटनी चाहिये। धर्म

तो गुप्त रखनेकी भावना है, प्रचार और विज्ञापनकी प्रवृत्ति नहीं।

मनुष्य विज्ञापन और प्रसिद्धिके लोभमें दान करता है। वह धनसे धर्मके क्षेत्रमें प्रसिद्ध होना चाहता है। धन तो आत्माकी तुष्टि, गुप्त सेवा और कल्याणके लिये खर्च होना चाहिये। यहाँ दिखावेका कोई स्थान नहीं है।

श्रीजमशेदजी मेहताके गुप्तदानका यह उदाहरण प्रत्येक उदार भक्तको आचरणमें उतारना चाहिये। इसी पवित्र आचरण-भावनाके संस्थापन-हेतु भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥
(गीता १८।५)

अर्थात् यज्ञ-दान तथा तप—ये पवित्र धर्म-कर्म मनुष्यको कभी नहीं छोड़ने चाहिये। इन्हें करना सभीका नैतिक और आवश्यक सांस्कृतिक कर्तव्य है। ये कर्म बुद्धिमानोंको पवित्र करनेवाले हैं।

—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०

भगवान्की सहज कृपामें विश्वास करो

मनुष्य दुर्बल प्राणी है। जन्म-जन्मान्तरसे उसे विषय-सेवनका अभ्यास है, संग भी विषयी जगत्का है। काम, क्रोध, लोभ, मोहके वश सदा वह योनि-योनिमें रहता आया है। इसलिये मनमें विकारों तथा दोषोंका रहना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। परंतु भगवान्की कृपासे जब मनके दोष दीखने लगते हैं तथा उनके रहनेका दुःख होने लगता है, तब वे नष्ट होने लगते हैं—*'जाने ते छीजहिं कछु पापी।'* वास्तवमें संसारके प्राणि-पदार्थोंमें सुखकी कल्पना किसी-न-किसी अंशमें बनी ही रहती है, इसीसे अनुकूल विषयोंमें आसक्ति रहती है, उनके प्राप्त करनेकी कामना होती है तथा उनके न मिलने या नष्ट हो जानेपर दुःख होता है। और इसी कारण मनुष्यकी, जानते-समझते हुए भी, बुरे कर्ममें प्रवृत्ति होती है। कई बार भगवान्के नामपर भी नासमझीसे विषयासक्तिवश विषय-सेवन होता रहता है। पर भगवत्कृपापर विश्वास करके भगवान्के बलसे इस प्रवृत्तिको तथा इस प्रकारकी इच्छाओंको सर्वथा नष्ट कर देना चाहिये। इन्द्रिय-सुख-लालसा, मानकी इच्छा, शरीरके आरामकी कामना, अनुकूल प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिकी लालसा—ये सभी हमारी यथार्थ भगवत्-प्रीतिमें बाधक हैं; परंतु इनका त्याग सहज नहीं है। इसलिये इनके त्याग या नाशकी सच्ची इच्छा जाग्रत् करके अपनेको सर्वथा निर्बल मानकर सर्वसमर्थ प्रभुके शरण हो जाना चाहिये। प्रभु निर्बलके बल हैं, असहायके सहायक हैं। वे ऐसे करुणामय हैं कि शरण होनेवालेके पापोंसे घृणा तो करते ही नहीं—छोटे बच्चेका मल जैसे माँ अपने हाथसे धो देती है, उसी प्रकार स्वयं उसके पापोंको धोकर साफ कर देते हैं, पापके मूलतकका नाश कर देते हैं।

'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥'
'..... पापयोनयः .... तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥'

—उनकी घोषणा है। वे शुद्ध होनेपर अपनाते हों, ऐसी बात नहीं है। कोई कैसी भी—बुरी-से-बुरी हालतमें हो, वह यदि भगवान्की शरणमें चला जाता है तो भगवान् उसे तुरंत अपना लेते हैं और तुरंत उसके पापोंका नाश कर देते हैं। अच्छा होनेपर रोगी वैद्यके पास क्यों जाय? रोगकी अवस्थामें ही वह जाता है और वैद्य उसे अच्छा कर देते हैं। वैद्यकी सफलता रोगीको अपनाकर उसे अच्छा करनेमें ही है। इसीसे भगवान् पुनीतोंकी परवा नहीं करते, शरण आये पामरोंपर प्रीति करते हैं—

ऐसी कवन प्रभुकी रीति?
बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति॥

इसलिये कभी भी निराश न होकर सदा आशावादी रहना चाहिये। भगवान् करुणासागर हैं, उनकी सहज कृपासे हमारे सारे पाप-ताप तुरंत वैसे ही नष्ट हो जायँगे, जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है। और यह विश्वास करना चाहिये कि भगवान्ने मुझे अपना लिया है। जहाँ ऐसा विश्वास होने लगेगा, वहाँ स्वाभाविक ही पाप-ताप नष्ट होने लगेंगे और जहाँ यह विश्वास सुदृढ़ और निश्चित हो जायगा, वहाँ फिर पाप-ताप रहेंगे ही नहीं। सारी अशान्ति नष्ट होकर शान्तिकी उपलब्धि हो जायगी—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

* * *

॥ श्रीहरिः ॥

‘कल्याण’ के अबतक प्रकाशित लोकप्रिय विशेषाङ्क

[गताङ्क-संख्या ७ से आगे]

कल्याण-वर्ष ११, वेदान्ताङ्क (सन् १९३७ ई०) इसमें भारतीय संस्कृतिके महत्तम धर्म-दर्शन-‘वेदान्त’-की बृहत् व्याख्यासहित वेदान्त-आधारित ज्ञान (चिन्तन)-को परमात्मप्राप्तिका प्रमुख साधन और आत्मकल्याणको मनुष्य-जीवनका परम प्राप्तव्य बताया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मज्ञानियों एवं वेदान्त-मार्गीय साधकोंके जीवन-दर्शन, सिद्धान्त तथा चरित्रोंपर ज्ञानवर्धक रोचक सामग्री प्रस्तुत की गयी है।

कल्याण-वर्ष १२, संत-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९३८ ई०) [कोड-नं० 627] महामहिम संतोंकी महिमासे मण्डित, उनकी शिक्षाओं, उपदेशों और पवित्र प्रेरणाओंसे पूरित यह ‘संत-अङ्क’ नित्य पठनीय और सर्वदा सेवनीय है। इसमें प्राचीन, अर्वाचीन, मध्ययुगीन एवं कुछ विदेशी संतों तथा भगवद्विश्वासी महापुरुषोंसहित अनेकों त्यागी, विरागी महात्माओंके आदर्श चरित्रोंका ऐसा रोचक वर्णन है कि जिसे पढ़कर परमार्थकी ओर सहज प्रवृत्ति होती है। मूल्य रु० ९० (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)।

कल्याण-वर्ष १३, मानसाङ्क (सन् १९३९ ई०) तुलसीकृत श्रीरामचरितमानसका सम्पूर्ण, मूल चौपाइयोंके साथमें सरल, सुललित हिन्दी-अनुवाद इसमें दिया गया है। ‘मानस’-सम्बन्धी कुछ खोजपूर्ण विशेष लेख एवं भावपूर्ण अनेक सुन्दर बहुरंगे चित्र इसकी उल्लेखनीय विशेषताओंके रूपमें चर्चित रहे हैं। (वर्तमानमें यह तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस सटीक (सचित्र, सजिल्द) बृहदाकार एवं ग्रन्थाकार संस्करणोंके रूपमें अलगसे उपलब्ध है।)

कल्याण-वर्ष १४, गीतातत्त्वाङ्क (सन् १९४० ई०) ‘मानसाङ्क’ की तरह ही इसमें श्रीमद्भगवद्गीताके मूल श्लोकोंके साथ सरल-सुबोध भाषामें प्रश्नोत्तरोंके रूपमें गीताकी विस्तृत, बड़ी ही सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। गीताकी विशेषताओं एवं महत्त्वपर प्रकाश डालनेवाले कुछ तात्त्विक लेख भी इसमें दिये गये हैं। (वर्तमानमें यह ‘श्रीमद्भगवद्गीता-तत्त्वविवेचनी’ टीकाके नामसे प्रसिद्ध है तथा सचित्र, सजिल्द ग्रन्थाकारमें अलगसे उपलब्ध है।)

कल्याण-वर्ष १५, साधनाङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९४१ ई०) [कोड-नं० 604] यह विशेषाङ्क उच्च कोटिके विचारकों, वीतराग महात्माओं, एकनिष्ठ साधकों एवं विद्वान् मनीषियोंके साधनोपयोगी अनुभूत विचारोंका बृहत् संग्रह है। इस दृष्टिसे साधनाके विभिन्न स्वरूपों, प्रकारों और साधना-मार्गोंका बहुमूल्य दिग्दर्शन करानेवाली इसकी साधनापरक लेख-सामग्री अत्यन्त उपयोगी है। अतः आत्मकल्याणकामी पुरुषों और साधकोंको इसका मार्ग-दर्शन अवश्य प्राप्त करना चाहिये। मूल्य रु० ७५ (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध।)

कल्याण-वर्ष १६, भागवताङ्क (सन् १९४२ ई०) कलि-पाप-ताप-संतप्त भयावह भव-समुद्रसे संतरण करानेवाली, भगवत्कथामृत-पीयूषिणी—श्रीमद्भागवतकी रसमयी कथाओंका यह बृहत् संग्रह विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित हुआ था। सम्पूर्ण भागवतके सरस हिन्दी-भावानुवादके साथ इसमें श्रीमद्भागवतमहापुराणकी महिमापर प्रकाश डालनेवाले कुछ विशेष लेख, श्रीमद्भागवतमाहात्म्य, पूजन-अर्चन एवं पारायण-विधि आदिपर महत्त्वपूर्ण सामग्री दी गयी है। इससे इसकी उपयोगिता और लोकप्रियतामें और भी अधिक वृद्धि हुई है। (वर्तमानमें यह ग्रन्थाकार मूल संस्कृतके साथ, हिन्दी-अनुवाद-युक्त दो खण्डोंमें एवं केवल भाषानुवाद एक ही भागमें अलगसे उपलब्ध है।)

कल्याण-वर्ष १७, संक्षिप्त महाभारताङ्क (सन् १९४३ ई०) महाभारतकी अत्यधिक महिमा और उसमें अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंका समावेश होनेके कारण शास्त्रोंमें इसे ‘पञ्चम वेद’ और विद्वत्समाजमें ‘भारतीय ज्ञानका विश्वकोश’ कहा गया है। इस ग्रन्थका पूर्वार्ध संक्षिप्त तथा सरल हिन्दी (अनुवादसहित)-में विशेषाङ्कके रूपमें तथा उत्तरार्ध (ग्यारह मासिक साधारण अङ्कोंमें क्रमशः प्रकाशित हुआ था। वर्तमानमें यह ‘संक्षिप्त महाभारत’ के नामसे सचित्र, सजिल्द दो खण्डों [कोड-नं० 39, ५12]-में उपलब्ध है।

कल्याण-वर्ष १८, संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायणाङ्क (सन् १९४४ ई०) वेद जिस परम तत्त्वका निरूपण करते हैं वही श्रीमन्नारायणतत्त्व श्रीमद्रामायणमें श्रीराम-रूपमें वर्णित है। इसीलिये श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी लोकमें वेद-तुल्य प्रतिष्ठा है। मूल ग्रन्थ संस्कृतमें है। हिन्दी-पाठकोंके सुविधार्थ ‘कल्याण’ के विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित वाल्मीकीय रामायणका यह संक्षिप्त और सरल हिन्दी-रूपान्तर बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। अब यह ग्रन्थाकार केवल हिन्दीमें [कोड-नं० 77] एवं संस्कृत मूलके सहित हिन्दी-अनुवाद भी दो खण्डोंमें [कोड-नं० 75, 76] अलगसे (सजिल्द ग्रन्थाकारमें) भी उपलब्ध है। [क्रमशः]

व्यवस्थापक—**‘कल्याण’-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

16/10/98

1/6159

प्र० ति० २०-७-९८

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३

LICENCE NO.-3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

[illegible]नवरी १९९८ ई० का विशेषाङ्क 'भगवल्लीला-अङ्क' मँगानेमें शीघ्रता करें

'कल्याण'-प्रेमियोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस वर्षके विशेषाङ्क—'भगवल्लीला-अङ्क'को सहृदय पाठकोंद्वारा अधिकाधिक रूपमें अपनाये जानेके कारण २,३५,००० प्रतियोंका उसका बृहत् संस्करण अब प्रायः समाप्तिकी ओर है। अतः जो इच्छुक सज्जन थोड़ी बाकी बची इन प्रतियोंसे विशेष लाभ उठाना चाहें, उन्हें मँगानेमें अब शीघ्रता करनी चाहिये।

'भगवल्लीला-अङ्क' में भगवान्के निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार—विभिन्न स्वरूपों तथा अवतारोंकी दिव्य लीलाओंका सुन्दर भावमय वर्णन है। विशेषतः भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्णके ऐश्वर्य-माधुर्यपूर्ण सरस लीलाचरित्र और मङ्गलमयी कथाएँ इसमें बड़ी मनोरम हैं। इसके अतिरिक्त भगवद्भावोंको बढ़ानेवाले भगवान्के लीला-सहचरों, भावुक भक्तों और भगवल्लीलानुरागी, विरागी संत-महात्माओंके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र भी इसमें बड़े हृदयस्पर्शी और जीवनोपयोगी हैं। अनेक भावमय बहुरंगे, सादे तथा बहुतसे रेखाचित्रोंसे युक्त यह विशेषाङ्क अवश्य संग्रहणीय है। वार्षिक शुल्क रु० ८० (सजिल्दका रु० ९०), दसवर्षीय शुल्क रु० ५०० (सजिल्दका रु० ६००) है। कम-से-कम २५ प्रतियाँ एक साथ मँगाकर अपने यहाँसे वितरण करनेवाले उत्साही महानुभावों एवं पुस्तक-विक्रेताओंको प्रति-विशेषाङ्क रु० ६ प्रोत्साहन-राशि (कमीशन-रूपमें) दी जाती है। इच्छुक सज्जनोंको जनसेवाके इस पुनीत कार्यमें सहयोगी बनकर विशेष लाभ उठाना चाहिये।

व्यवस्थापक—**'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

'कल्याण' के दो महत्त्वपूर्ण विशेषाङ्कोंका पुनर्मुद्रण

१-शिवोपासनाङ्क (कोड-नं० 586) कल्याण-वर्ष ६७ (सन् १९५३ ई०)-में प्रकाशित यह विशेषाङ्क पाठकोंकी विशेष माँगपर पुनर्मुद्रित किया गया है। इस अङ्कमें शिव-तत्त्व एवं उपासना-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सामग्रीके अतिरिक्त भगवान् विष्णुकी शिवोपासना, जगन्माता लक्ष्मीकी शिवनिष्ठा, भगवान् नृसिंहकी शिवभक्ति एवं महर्षि वसिष्ठ, महर्षि दुर्वासाकी शिवोपासना और महर्षि लोमश, महामुनि गर्ग, वाल्मीकि आदिकी शिव-शरणागति, भक्ति और उपासना-विषयक सुन्दर आख्यान प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त शैवतीर्थ, द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग एव सुप्रसिद्ध शिव-मन्दिरोंके वर्णन-सहित अनेक शिवभक्तोंके रोचक तथा प्रेरक चरित्र भी इसमें दिये गये हैं। सजिल्द, पृष्ठ-सं० ४६४, मूल्य रु० ६०, डाकखर्च रु० २३, रजिस्ट्रीसे।

२-श्रीरामभक्ति-अङ्क (कोड-नं० 628) कल्याण-वर्ष ६८ (सन् १९४९ ई०)-में प्रकाशित इस अङ्कमें श्रीरामभक्तिके विभिन्न पक्षोंपर प्रेरक कल्याणकारी मार्गदर्शन है। वस्तुतः इस कलिकालमें संतप्त, दुःख-दारिद्र्य-ग्रस्त नाना कष्ट-पीड़ित आहत और अशान्त मानव-मनके लिये एकमात्र श्रीरामकी भक्तिका आश्रय और लीला-कथाओंका सेवन—श्रवण, मनन, चिन्तन आदि ही शान्तिप्रद और कल्याणकारी हैं। इसके अतिरिक्त इस अङ्कमें श्रीरामतत्त्व एवं श्रीरामके दिव्य गुण-गणोंका विवेचनसहित, उनकी परम मनोहर लीलाओंका चित्रण एवं श्रीराम-भक्तों, सेवकों, उपासकों और लीला-सहचरोंके विभिन्न चरित्रोंका प्रतिपादन है। भक्ति, ज्ञान, साधना, सत्प्रेरणा और रोचकताकी दृष्टिसे यह अत्यन्त उपादेय है। इसकी पृष्ठ-सं० ४९६ तथा मूल्य रु० ६५ है, डाकखर्च रु० २२, रजिस्ट्रीसे।

शीघ्र प्रकाश्य

भगवान् सूर्य— (कोड-नं० 867) 'गीताप्रेस'से (१० $\frac{१}{२}$" × १४ $\frac{१}{२}$" के) विशेष आकार-प्रकारमें प्रथम बार प्रकाशित इस पुस्तकमें भगवान् सूर्यके बारह महीनोंमें अलग-अलग स्वरूपोंके ध्यान-उपासना, लीला-कथाका अनुपम चित्रण है तथा प्रत्येक स्वरूपके आर्टपेपरपर उपासना-योग्य आकर्षक चित्र भी हैं। पुस्तकके अन्तमें भगवान् सूर्यके उपासना-हेतु सुन्दर स्तोत्र भी दिये गये हैं। मूल्य रु० ३५, डाकखर्च रु० १८, रजिस्ट्रीसे।

नवीन प्रकाशन

हरीपाठ (मराठी) (कोड-नं० 855) महाराष्ट्रके घर-घरमें नित्य पाठ-हेतु संत ज्ञानेश्वरद्वारा रचित महत्त्वपूर्ण पुस्तक। मूल्य रु० २, डाकखर्च रु० १.००

हनुमानचालीसा (उड़िया) (कोड-नं० 856) हिन्दी, तमिल, बँगला, तेलगू, गुजराती एवं कन्नड़के बाद अब उड़ियामें भी उपलब्ध।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARDWAR

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

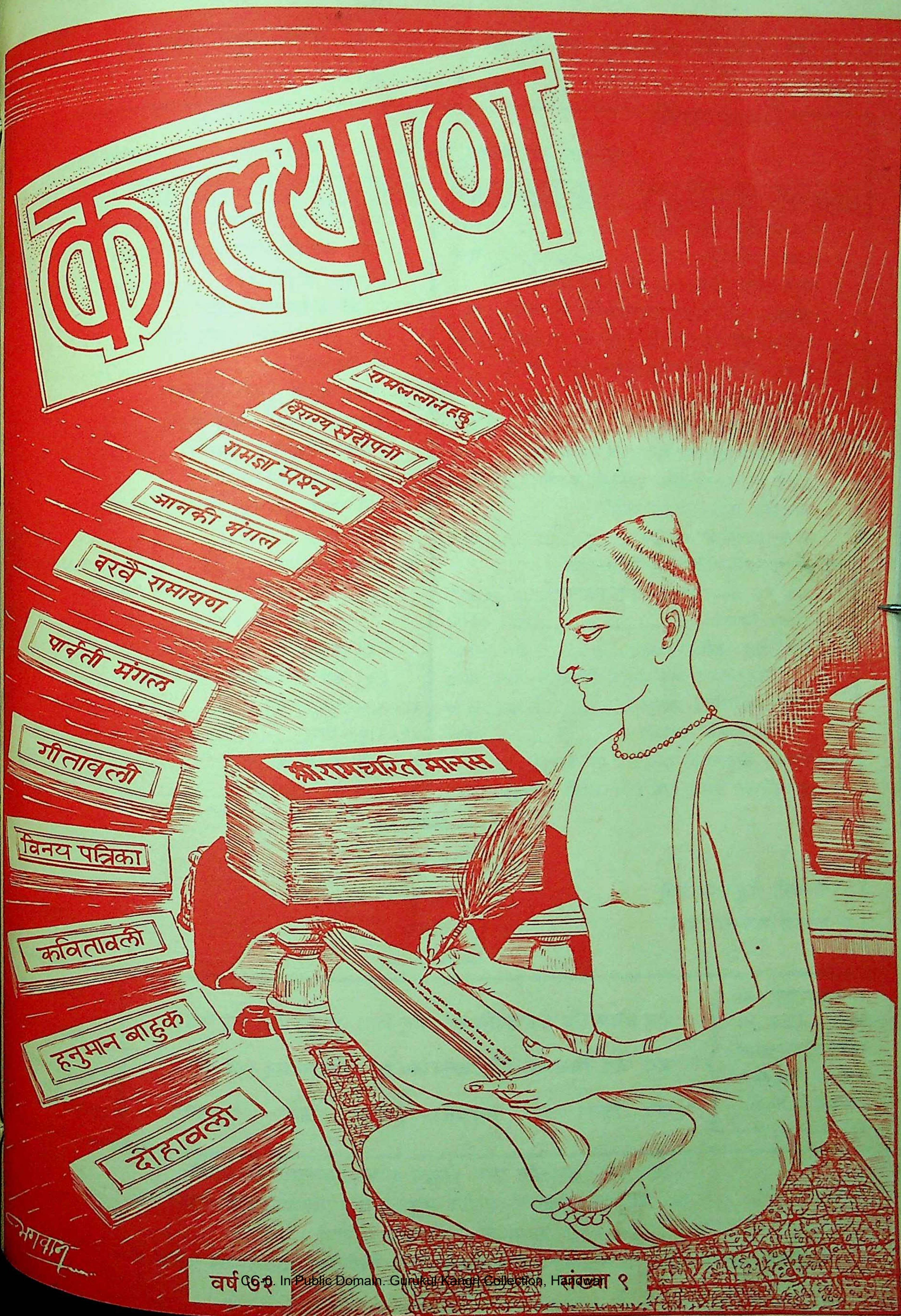
रामललानहछू
वैराग्य संदीपनी
रामाज्ञा प्रश्न
जानकी मंगल
बरवै रामायण
पार्वती मंगल
गीतावली
विनय पत्रिका
कवितावली
हनुमान बाहुक
दोहावली
श्रीरामचरित मानस
भगवान

वर्ष ७२ संख्या १

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,३५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, सितम्बर १९९८ ई०

विषय — पृष्ठ-संख्या

१- भगवती शाकम्भरीका ध्यान ७४९
२- कल्याण (शिव) ७५०
३- सगुण-साकार भगवान्‌का दर्शन एवं प्रभाव (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ... ७५१
४- भगवान्‌से क्या माँगना चाहिये (श्री जय जय बाबा) ... ७५८
५- श्रीराधा-महिमा (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ७६०
६- मनुष्यको कितना चाहिये? ७६३
७- कर्तव्यपरायणता और शरणागति (ब्रह्मलीन श्रद्धेय संत स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ७६४
८- साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ७६७
९- साधक-प्राण-संजीवनी (गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज) ७६९
१०- *लीला-चिन्तन*— .... ७७१—७७७
    [क] श्रीकृष्णलीला-चिन्तन .... ७७१—७७४
        नन्दनन्दनकी भुवनमोहिनी वंशीवादन-लीला .. ७७१
    [ख] श्रीरामलीला-चिन्तन .... ७७५—७७७
        अयोध्याके कथावाचक ७७५
११- भगवान् श्रीकृष्णकी रासलीला एवं इसका आध्यात्मिक रहस्य (श्रीअर्जुनलालजी बन्सल) ७७८

विषय — पृष्ठ-संख्या

१२- सुखी जीवनका महामन्त्र—'मुसकराते रहिये' (डॉ० श्रीभुवनेश्वरप्रसादजी वर्मा 'कमल' एम्०ए०, डी०लिट्०) ७८०
१३- सार्वजनिक सम्पत्तिका ट्रस्टी (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०) ७८२
१४- पालने रघुपति झुलावै [कविता] ७८४
१५- भगवन्नाम-जपकी अद्भुत महिमा (श्रीबनवारीलालजी गोयन्का) ७८५
१६- श्रीकृष्ण-संकीर्तन [कविता] (श्रीगंगाप्रसादजी भट्ट, बी०ए०, एल्-एल्०बी०, साहित्यरत्न) ७८६
१७- *बाल-कल्याण*— .... ७८७—७९०
    [१] तरुणो! अपना पथ चुन लो (श्रीस्वामी श्रीशिवानन्दजी महाराज) ७८७
    [२] गुरुभक्त बालक आरुणि ७८९
    [३] बालिका विक्टोरियाकी सच्चाई ७९०
१८- साधनोपयोगी पत्र ७९१
१९- अमृत-बिन्दु ७९२
२०- पढ़ो, समझो और करो ७९३
२१- मनन करने योग्य ७९५

* * *

चित्र-सूची

१-गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-भगवती शाकम्भरी देवी	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

* * *

इस अङ्कका मूल्य ४ रु०
विदेशमें—US$0.40
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ८० रु०
(सजिल्द ९० रु०)
विदेशमें—US$11

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

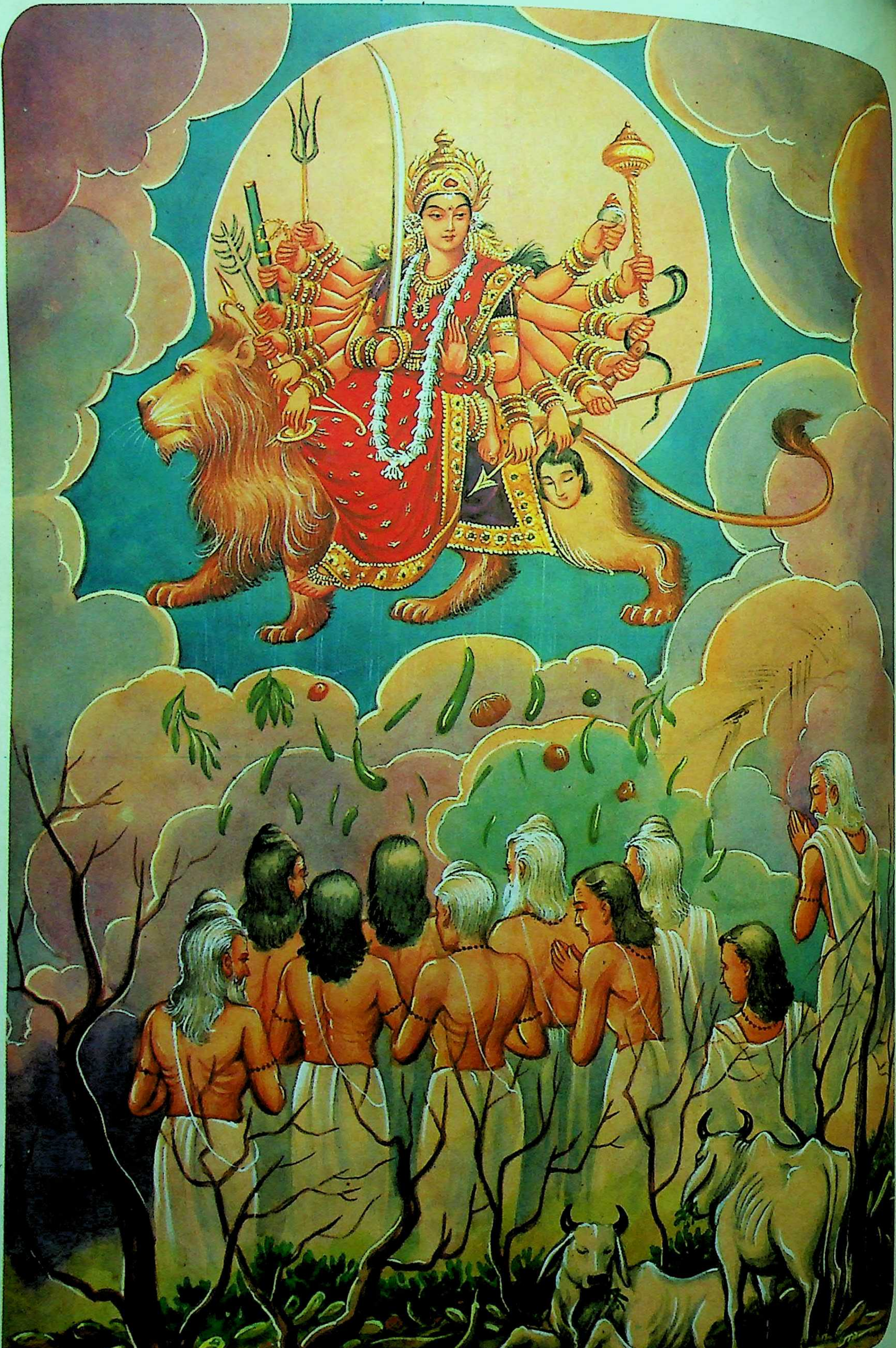

भगवती शाकम्भरी देवी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

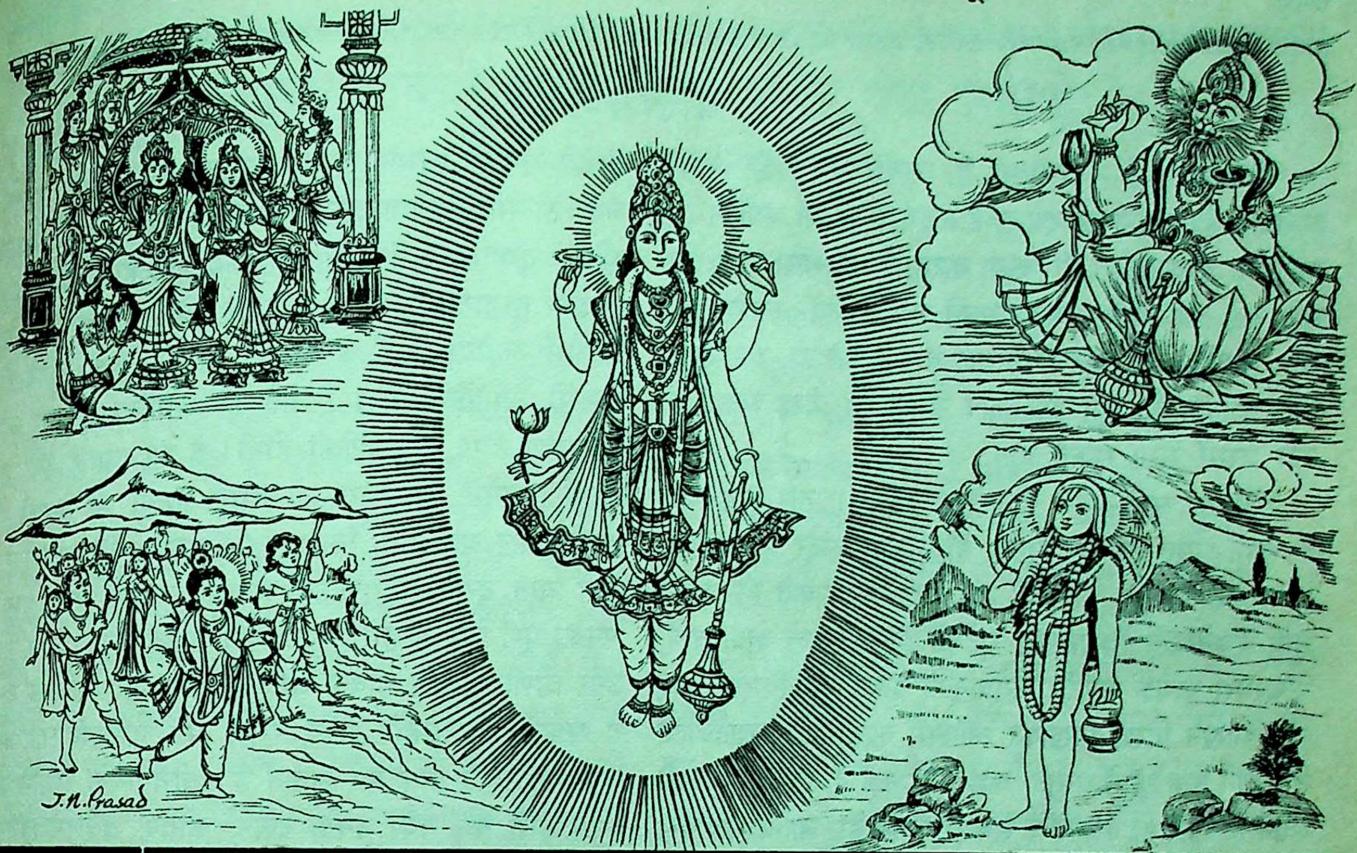

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

वर्ष ७२ | गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, सितम्बर १९९८ ई० | संख्या ९
पूर्ण संख्या ८६२

भगवती शाकम्भरीका ध्यान

शूलं पाशकपालचापकुलिशं बाणान् सृणिं खेटकं
शंखं चक्रगदाहिखड्गमभयं खट्वाङ्गदण्डंधराम्।
वर्षाभाववशाद्धतान् मुनिगणान् शाकेन यारक्षयत्
त्रैलोक्या जननीं महेशदयितां तां स्तौमि शाकम्भरीम्॥

(पद्मपुराण)

जिन्होंने अपने हाथोंमें क्रमशः शूल, पाश, कपाल, धनुष, वज्र, बाण, अंकुश, मूसल, शंख, चक्र, गदा, सर्प, तलवार, अभयमुद्रा, खट्वाङ्ग और दण्ड धारण कर रखा है तथा वर्षाके अभावमें दीर्घकालतक अकाल पड़ जानेके कारण जिन्होंने अपने शरीरसे शाक आदि पदार्थोंको उत्पन्न करके मृतप्राय मुनियोंके प्राणोंकी रक्षा की थी, उन त्रैलोक्य-जननी, भगवान् शंकरकी प्रिय वल्लभा भगवती शाकम्भरीकी मैं स्तुति करता हूँ।

* * *

कल्याण

विश्वास करो—परमात्मा है, सर्वत्र व्याप्त है, सबमें ओतप्रोत है; वह परम दयालु है। हम कैसे भी क्यों न हों, वह सदा हमारा हित ही किया करता है; विश्वास करो, तुम उसे बड़े प्यारे हो, उसके अपने हो, उसीके स्वरूप हो, चाह करनेपर इस बातको प्रत्यक्ष कर सकते हो, वह तुमसे मिल सकता है। तुम उसे जान सकते हो, देख सकते हो और उसमें समा सकते हो।

विश्वास करो—तुम दीन-हीन नहीं हो, तुम शुद्ध-बुद्ध हो, तुम अमृत हो, तुम महान् हो, तुम्हारे अंदर परमात्माकी शक्ति भरी है, तुम चाहो तो सब कुछ कर सकते हो; दूसरी सृष्टि रचनेवाले विश्वामित्र, मुर्देको जिलानेवाले शुक्राचार्य, पत्थरमेंसे प्रत्यक्ष सशरीर भगवान्‌को प्रकट करानेवाले प्रह्लाद और माखन दिखा-दिखाकर आँगनमें कन्हैयाको नचानेवाली गोपियोंमें तथा तुममें वस्तुतः कोई फर्क नहीं है, तुम भगवान्‌को उतने ही प्यारे हो, जितने वे सब थे; तुममें इस बातका विश्वास नहीं है, यही कमी है, दृढ़ विश्वास करो और भगवान्‌के वैसे ही प्यारको प्रत्यक्ष पाकर परम सुखी हो जाओ! स्मरण रखो, आत्मविश्वास ही सफलताकी कुंजी है, विजयका मूल मन्त्र है और परमात्माकी कृपाको खींचनेवाला चुंबक है।

विश्वास करो—जगत्‌में एक ऐसी स्थिति है, जिसमें अज्ञान, मोह, आसक्ति, दुःख, अशान्ति, स्वार्थ, शोक, द्वेष, मोह, वैर, विषाद, विषमता, मेरे-तेरेकी कल्पना भी नहीं है। जहाँ पूर्ण ज्ञान है, पूर्ण प्रेम है, पूर्ण शान्ति है, पूर्ण समता है, पूर्ण प्रकाश है, पूर्ण आनन्द है और वह स्थिति तुम्हें अवश्य मिल सकती है, तुम वही बन सकते हो। मनको आनन्द, प्रकाश, प्रेम, शान्ति और समतासे भर लो। चित्तकी शुद्धिका यही अर्थ है कि उसमें केवल दिव्य आनन्द, प्रकाश, प्रेम, शान्ति और समताकी पूर्णता हो, वह इन्हींसे भरा रहे। आनन्द ही प्रकाश है, प्रकाश ही सत् है, वही चेतन है, वही प्रेम और वही शान्ति है, उसीमें समता भरी है, वही सच्चिदानन्दघन है। बस, उसीसे चित्तके कोने-कोनेको भर लो। उसके सिवा सभी विचार अशुद्ध हैं, चित्तके लिये अस्पृश्य हैं।

मनको निर्विषय करो, परमात्माके सिवा अन्य विषय-चिन्तनको सर्वथा हटाओ, ऐसा न हो सके तो शुभ विषयोंका चिन्तन करो। आनन्द, सुख, ज्ञान, शान्ति, समता, परोपकार, दया, प्रेम, करुणा, अहिंसा, सेवा, दान, मैत्री, ब्रह्मचर्य, संयम आदि भावोंका संग्रह और पोषण करो। तुम्हारे मनके अनुसार तुम्हारा वातावरण बन जायगा, तुम्हें वैसा ही संग मिलेगा और उसीके अनुसार तुम्हारी क्रियाएँ होंगी। तुम्हारे मनमें द्वेष न होकर प्रेम होगा तो उसकी झलक तुम्हारी आँखोंपर, तुम्हारे चेहरेपर और तुम्हारी वाणीमें आयेगी; तुम्हें देखते ही, तुम्हारी वाणी सुनते ही, तुम्हारी आँखोंसे आँख मिलते ही लोगोंका तुम्हारी ओर आकर्षण होगा, प्रेम-झाँकी होगी। वे भी तुम्हारे प्रेमी बन जायँगे। मनमें प्रेम होगा तो तुमसे क्रिया भी प्रेमकी ही होगी, फल यह होगा कि जगत् तुम्हारा प्रेमी बन जायगा, यही बात दूसरे सद्‌गुणोंकी समझो। स्मरण रखो, तुम्हारे मनका पूर्ण प्रेम, तुम्हारे मनकी पूर्ण शान्ति तुम्हारे शरीर, नेत्र और वाणीमें प्रकट होकर जगत्‌को प्रेम और शान्तिका दान दे सकती है। तुम्हारे दर्शन, स्पर्श और भाषणसे लोग प्रेम और शान्तिको प्राप्त कर सकते हैं। श्रीचैतन्यके स्पर्शमात्रसे लोग प्रेमी बन गये; उनके दर्शन, कीर्तन, श्रवणसे हिंसक जन्तु प्रेममत्त हो नाचने लगे, काकभुशुण्डिजीके आश्रमके इर्द-गिर्द चार-चार कोसमें आसुरी सम्पत्ति नहीं घुसने पाती थी। तुम भी ऐसे ही बन सकते हो।

मनमें सद्भावनाओंको भरे रखो, सबका भला चाहो, सबका कल्याण चाहो, सबमें परमात्माकी भक्ति फैलने, सबमें सात्त्विक भाव बढ़ने और सबमें प्रेम-विस्तार होनेकी भावना करो। विश्वास करो, तुम्हारे दृढ़ भावसे, तुम्हारी प्रबल शुद्ध इच्छाशक्तिसे तुम्हारी भावनाएँ, तुम्हारे संकल्प सत्य हो सकते हैं, तुम अपनी सद्भावनासे अनेक दुखियों, रोगियों, अज्ञानियों और पापियोंको दुःखमुक्त, रोगमुक्त, अज्ञानमुक्त और पापमुक्त कर उन्हें सुखी बना सकते हो।

विश्वास करो—तुम अपनी सद्भावनाओंसे, सत्-विचारोंसे, सात्त्विक संकल्पोंसे अपने आसपास ही नहीं—सारे भूमण्डलपर सद्भावना, सद्विचार और सात्त्विक संकल्पोंका विस्तार कर सकते हो। स्वयं परम सुखी हो सकते हो और जगत्‌के लोगोंको सुखी बना सकते हो। तुम यदि सत्संकल्पोंके कारण चित्तकी वृत्तियोंको आनन्दमय, पुण्यमय, प्रकाशमय, शान्तिमय और समतामय बना सके तो विश्वास करो, तुम भगवान्‌के अत्यन्त समीप पहुँच गये। तुम्हारा मनुष्य-जीवन सफल हो गया। यह तुम्हारे हाथकी बात है। सोचो, विचार करो और दृढ़ताके साथ मनको सद्विचारोंसे भरनेके प्रयत्नमें प्राणपणसे लग जाओ। —'**शिव**'

~~~
~~~

सगुण-साकार भगवान्‌का दर्शन एवं प्रभाव

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान् धर्मकी रक्षाके लिये सगुण-साकार-रूप धारण करते हैं, उस अवस्थामें यदि मानवको भगवान्‌में भगवान् समझकर दर्शन हो जाय तो उसके प्रभावसे बेड़ा पार हो जाय। भगवान्‌के दर्शनके प्रभावसे हमारेमें जितने दुर्गुण और दुराचार हैं वे सब मिट जाते हैं तथा सद्‌गुण और सदाचार अपने-आप ही आ जाते हैं, उसके लिये और कोई उपाय नहीं करना पड़ता। किंतु यह तभी होता है जब भगवान्‌को भगवान् समझा जाय, अन्यथा नहीं। क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णने जब अवतार लिया था तब हजारों लोगोंको उनके दर्शन होते थे, किंतु सब उनको भगवान्‌के रूपमें नहीं समझते थे। दुर्योधन आदिको भी दर्शन होते थे पर उन्हें भगवान्‌का रूप नहीं समझते थे जिससे उनकी मुक्ति नहीं हुई। श्रद्धा-विश्वासकी कमी थी। महाभारतके सभापर्वमें वर्णन आया है कि भगवान्‌ने दुर्योधनकी सभामें अपना विश्वरूप दिखलाया था, पर भगवान्‌के विदा होनेके बाद दुर्योधनने उनकी निन्दा की और कहा यह तो तमाशा दिखाना है—बाजीगरी है, इन्द्रजालका तमाशा है, ऐसा तो हम भी जानते हैं। भगवान् तो अपना विश्वरूप दिखावें और वह उसे इन्द्रजालका तमाशा बताकर उसकी खिल्ली उड़ावे तो उसकी मुक्ति भला कैसे हो? इसीलिये भगवान् कहते हैं कि 'हे अर्जुन! तेरा और मेरा जो संवाद है वह गुप्त बात है। बड़े रहस्यकी बात है जो मैंने कही और तूने जाना। तू मेरा अतिशय प्यारा है इसलिये मैंने तेरे हितके लिये यह बात कही है—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥

भगवान्‌ने प्रतिज्ञा करके यह बात कही कि यह मेरा परम वचन है। स्वयं भगवान् अपने वचनकी प्रशंसा कर रहे हैं तथा इसे सर्वगुह्यतम बता रहे हैं। इसलिये कि एक तो गोपनीय बात होती है, उससे ऊँची गुह्यतर तथा उससे भी और ऊँची गुह्यतम होती है और उससे भी जो श्रेष्ठ होती है, वह होती है सर्वगुह्यतम। इस मेरी बातको तू विशेषतासे सुन। मैंने पहले भी श्लोक देकर समझाया है। ९ वें अध्यायके अन्तमें जो बात कही है, वही बात भगवान् अर्जुनसे फिर कह रहे हैं कि तू मेरा अतिशय प्यारा है। यह कहकर भगवान् कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥*

(गीता १८। ६५-६६)

इन श्लोकोंमें चार-चार बातें आयी हैं—(१) मेरेमें मनको लगा दो, (२) मेरा भक्त हो जा, यानी मेरेमें ही प्रेम कर, (३) मेरी ही पूजा कर और (४) मुझे ही नमस्कार कर। फिर (१) शास्त्रविहित समस्त कर्मोंका मुझमें समर्पण कर दे, (२) मेरी शरणमें आ जा, (३) सभी पापोंसे मुक्त कर दूँगा, और (४) तू शोक मत कर।

मैं तुमसे प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि तू मेरा प्यारा है। इस प्रकार करनेसे तू सदाके लिये मेरेको ही प्राप्त हो जायगा, फिर तू मुझसे कभी अलग होगा ही नहीं। इस प्रकार प्रशंसा करके भगवान् आगेके श्लोकमें कहते हैं कि—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥

ये जो बातें मैंने तुमसे कहीं, इन्हें जो तपहीन हैं उनसे नहीं कहना, क्योंकि वे पात्र नहीं हैं अर्थात् अपात्रको नहीं कहना। और जो मेरा भक्त नहीं है, मेरेमें जिसकी प्रीति नहीं है, उससे तो भूल करके भी नहीं कहना, क्योंकि यह सर्वगुह्यतम बात है। जो सुनना नहीं चाहते उनको अपनी तरफसे नहीं कहना चाहिये तथा जो मेरे गुणोंमें दोषकी कल्पना करते हैं, उनसे भी कभी नहीं कहना।

लोग भगवद्दर्शनके प्रभावके बारेमें जिज्ञासा करते हैं तो भगवान्‌के दर्शनके प्रभावको बतलानेकी मेरी सामर्थ्य नहीं है, किंतु यत्किंचित् जो भी कहा जाता है, हम स्तुति करते हैं। वह स्तुति भी एक अंशमात्र भी नहीं होती। वास्तवमें तो

---

* 'हे अर्जुन! तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है। सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।'

यह एक प्रकारसे उनकी निन्दा ही है। जैसे किसीके पास पारस हो या कोई अरबपति हो और उसको लखपति कहा जाय, लखपतियोंमें उसका नाम लिखवाया जाय कि वह लखपति है तो वह हँसता है कि यह मूर्ख है और समझता नहीं। अरे लखपति क्या, सैकड़ों लखपति तो हमारे यहाँ रोज नये बनते हैं अर्थात् लाखों रुपये तो रोज हमारे घर आते हैं। यह क्या कहता है? हमारे पास तो पारस है और उस पारससे न मालूम कितनोंको हम लखपति बनाते हैं। भगवान्के प्रभावसे, उनके दर्शनके प्रभावसे मनुष्योंके अवगुण, दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, पाप, दुःख सबका विनाश हो जाता है। यह तो भगवान्के दर्शनके आभासका फल है, साक्षात् भगवान्के दर्शनका यह फल नहीं है। भगवान्के साक्षात् दर्शनका फल तो परम शान्ति, परम आनन्दकी प्राप्ति, परम प्रेमकी और सदाके लिये परमात्माकी प्राप्ति है। उसका असली फल तो यही है। उनके लिये यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं कि 'हे प्रभो! हमारेमें जो दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, पाप, क्लेश हैं, उन-उनका नाश कर दो।' इस प्रकार भाटकी तरह हमें भगवान्से प्रार्थना करनेकी जरूरत नहीं पड़ती। एक प्रार्थनाके अन्तर्गत ही यह सब बात आ जाती है कि 'हे प्रभो! हमें आप दर्शन दें।' भगवान्के दर्शन होनेके बाद ये सब रह ही नहीं सकते। जैसे सूर्यभगवान्को हम यह कहें कि 'हे सूर्यभगवान्! आप हमें दर्शन दें तथा हमारे यहाँ जो अँधेरा है उसे दूर कर दें', यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि जब सूर्यका दर्शन होगा तो क्या वहाँ फिर अँधेरा रहेगा, वह तो आप ही खत्म हो जायगा, बल्कि सूर्यके उदय होनेके पहले जो आभास होता है, उससे ही खत्म हो जाता है। सूर्योदयके पाँच-दस मिनट पहले दृष्टि फैलाकर देखनेपर आपको कहीं भी अन्धकार नजर नहीं आयेगा, क्योंकि उसके उदय होनेके पहले आभाससे ही वह अन्धकार भाग जाता है; क्योंकि वहाँ अन्धकारकी दाल नहीं गलती, फिर सूर्यके सामने तो अन्धकार आ ही नहीं सकता है। इसी प्रकार भगवान्के सम्मुख दुर्गुण-दुराचार तो आ ही नहीं सकते, इनके लिये हमें प्रार्थना करनेकी जरूरत नहीं है। भगवान्से मिलनेके लिये ही प्रार्थना करनी है। मिलनेके लिये एक ही प्रार्थना करनी है कि 'हमारा आपमें विशुद्ध प्रेम हो, अनन्य प्रेम हो।' यदि हमें विशुद्ध और अनन्य प्रेम मिल जाय तो भगवान्से यह कहनेकी भी आवश्यकता नहीं कि आप हमें दर्शन दें, क्योंकि जब भगवान्में अनन्य और विशुद्ध प्रेम हो जाता है, फिर भगवान् वहाँ आये बिना रह ही नहीं सकते। भगवान्से हम यह जोर देकर कहें कि आप हमें अनन्य और विशुद्ध प्रेम दें और आप हमारे पास न आयें तो भगवान् इस बातको बर्दाश्त नहीं कर सकते। भगवान्को बाध्य होकर आना पड़ता है, भगवान् तो यहाँतक कहते हैं कि यह तो तुम मुझे दंड दे रहे हो, जो मुझे आनेके लिये मना कर रहे हो। इसपर एक छोटीसी कहानी याद आ गयी—

एक महापुरुष थे। उन्हें परमात्माकी प्राप्ति हो गयी थी। वे जहाँ निवास करते थे उस देशके राजाको भी परमात्माकी प्राप्ति हो गयी। राजाको इतना आनन्द हुआ कि वह आनन्द समाया नहीं। राजाने सोचा कि क्या मेरे राज्यमें और भी कोई ऐसा पुरुष है जिसे परमात्माकी प्राप्ति हो चुकी हो? इस बातकी परीक्षाके लिये उसने प्रत्येक व्यक्तिके घरपर दूत भेजकर इसका पता लगानेकी युक्ति सोची। राजाने अपने दूतोंको भेजा और कहा कि तुम यह पूछकर आओ कि अगर किसीको कोई अमूल्य वस्तु मिल जाय तो उसे क्या करना चाहिये? जवाबमें किसी-किसीने भयसे यह कह दिया कि हमें नहीं मालूम, किसीने कहा कि तिजोरीमें रखना चाहिये, किसीने कहा कि नंगी तलवारोंका पहरा बैठा देना चाहिये और किसीने कहा कि किसीका विश्वास नहीं करना चाहिये। इस प्रकार अपनी-अपनी बुद्धिसे सबने जवाब दिया। एक चना बेचनेवाला था जिसे परमात्माकी प्राप्ति हो चुकी थी। उसने यह उत्तर दिया कि यदि आपको अमूल्य वस्तु मिली है तो फिर आप हल्ला क्यों करते हैं, डुग्गी पिटवानेसे क्या लाभ? राजाने सबका उत्तर पढ़ा और सबको रद्दीकी टोकरीमें डाल दिया, किंतु उस चना बेचनेवालेका उत्तर पढ़कर राजाको यह अनुभव हुआ कि यह महापुरुष है। राजाकी सवारी हाथी था। अतः उसीपर बैठकर उसकी दुकानका पता पूछकर उसके पास आया। प्रजाके नाते वह हाथ जोड़कर राजाके सामने आकर खड़ा हो गया और कहा कि महाराज, आपने बड़ी कृपा की। बताइये मैं आपके योग्य क्या सत्कार करूँ? मैं तो यहाँ चना बेचता हूँ। आदेश दें तो चनोंका बोरा जो बेचनेसे खाली पड़ा है,

उसे आपके लिये बिछा दूँ, मेरे पास आपके स्वागतके लिये यही है। कोई कम्बल भी नहीं है फिर दुशाला तो आये कहाँसे। इतना कहकर बोरा बिछा दिया और राजा उसपर बैठकर बोला कि तुम्हारे बोरेपर बैठकर मुझे जो गौरव और प्रसन्नता है वह गलीचों और गद्दोंपर बैठनेपर नहीं है। उसपर तो सदा ही बैठता हूँ। मैंने जो प्रश्न सबसे पूछा था उसका उत्तर क्या तुमने ही दिया था कि अमूल्य वस्तु मिल गयी तो हल्ला क्यों मचाते हैं? उसने कहा—हाँ हजूर, मैंने ही दिया था, अगर कोई अपराध हुआ हो तो माफ करें। राजाने कहा कि अपराधकी तो कोई बात नहीं है, बल्कि तुम्हारे उत्तरसे तो मुझे जो संतोष हुआ, ऐसा किसीके उत्तरसे नहीं हुआ। तुमने बहुत ठीक बात कही। मुझे सावधान कर दिया—सचेत कर दिया। मैं तुमपर बहुत खुश हुआ, मुझे बड़ा संतोष हुआ। अब मैं तुम्हें संतुष्ट करना चाहता हूँ। मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ? तुम जो कहो मैं करनेको तैयार हूँ। उस चना बेचनेवालेने कहा कि महाराज, यदि आप मुझे वचन दें तो मैं अपने हृदयकी बात आपसे कहूँ। राजाने सोचा कि मेरे कोई लड़का नहीं है, यह ज्यादा-से-ज्यादा मेरा राज्य भी माँग लेगा तो ऐसे महापुरुषके हाथमें राज्य भी चला जाय तो प्रजाका कल्याण होगा और अपने पास जो चीज नहीं है उसे तो कोई माँग भी नहीं सकता। [जैसे मुझसे कोई कह दे कि भारतवर्षका राज्य तुम मुझे दिला दो। कोई नहीं कहेगा, क्योंकि सब समझते हैं कि भारतवर्षका राज्य दिलाना इसके वशकी बात नहीं। जो चीज हमारे हाथमें नहीं, उसके लिये कैसे कहेगा?] यह सोचकर राजाने कहा कि जो चीज हमारे अधिकारमें है उसमें जो तुम माँगोगे, वह मैं तुम्हें दे दूँगा, यह मैं वचन देता हूँ। इसपर उसने कहा कि मेरी यही माँग है कि आज तो आप मेरे यहाँ पधारे, यह आपकी बड़ी भारी कृपा है, परंतु भविष्यमें न तो आप हमारे यहाँ आयें और न कभी मुझे बुलायें। राजाने कहा—अरे, यह क्या माँगा? इसपर उसने कहा कि तो क्या मैं आपसे राज्य माँगूँ? आप ही सोचें मैं आपसे क्या माँगूँ। राजाकी आँखें खुलीं कि ऐसे महापुरुषके लिये, जिसे परमात्माकी प्राप्ति हो चुकी है, राज्य तो कलंक है, राज्य लेकर क्या करेगा? राजाने फिर कहा कि महाराज, आपने कहा कि मुझे बुलाना नहीं, तो आपको बुलानेकी तो हमारी सामर्थ्य ही नहीं है कि मैं आपको बुलाऊँ, किंतु मुझे आनेके लिये मना क्यों किया? उसने उत्तर दिया कि यदि आप यहाँ आयेंगे तो बहुत लोग आकर मुझे तंग करेंगे कि आप राजाके पास हमारी सिफ़ारिश कर दें। मैं अपना चना बेचकर गुजारा करता हूँ, उसमेंसे ही समय निकालना पड़ेगा और यह मेरी इच्छा नहीं कि मैं अपने शरीरके निर्वाहके लिये किसीसे याचना करूँ। चाहे शरीर न रहे, किंतु अपने शरीरके पोषणके लिये मुझे याचना करनी पड़े, यह मेरे लिये कलंक है तथा मैं आपके राज्यके पैसेका क्या करूँगा? वह मेरे कामकी चीज नहीं है। इसीलिये मैंने यह कहा कि आप यहाँ मिलने न आयें और न मुझे बुलायें। राजा बोले—बात यह है कि आप-जैसा पुरुष मुझे मिल गया, किंतु मैं यह नहीं समझता था कि आप वरदानमें ऐसी बात माँगेंगे। खैर, मेरी बुद्धिमें यह बात ही नहीं थी। अच्छा आपने अपने साथ सत्संग करनेमें रुकावट क्यों डाली? उसने कहा कि यदि आपको अमूल्य वस्तु मिल गयी तो आपको हमारी जरूरत ही क्या है? और यदि मुझे आपकी जरूरत होगी तो अपने लिये तो मैंने अपना आना खुला रख ही रखा है। मैं आपके पास आ जाऊँगा, इसके लिये तो कोई मनाही है नहीं। मैं अपनी खुशीसे आपके पास आऊँगा, इसपर तो रोक नहीं है। मैंने तो आपको रोका है और यदि मुझे गरज पड़ेगी तो मैं आपके पास आ जाऊँगा, किंतु आपको कोई गरज नहीं होनी चाहिये, क्योंकि आपको अमूल्य वस्तु मिल गयी यानी आपको तो परमात्माकी प्राप्ति हो गयी है। अतः आपको मुझसे मिलनेमें क्या फायदा? इसीलिये मैंने आपका आना रोक दिया और अपना आना खुला रखा। मैंने यह कहा है कि आप मुझे नहीं बुलावें, यह नहीं कहा है कि मैं आपके पास नहीं आऊँगा। इसपर राजाने कहा कि मैं आपको नहीं बुलाऊँगा तथा मैं आपके पास नहीं आऊँगा इसपर तो बन्धन है, इसलिये मेरी आपसे यह प्रार्थना है आप मुझे बुला भी सकते हैं और मेरे यहाँ आ भी सकते हैं। आप तो यह सब कर सकते हैं न, किंतु आपको कोई इच्छा नहीं, कोई गरज नहीं, कोई जरूरत नहीं। चनेवालेने कहा कि आपका कहना ठीक है, पर मुझे गरज नहीं है यह मैं कब कहता हूँ, मैं तो कहता हूँ कि मुझे आवश्यकता होगी तो मैं आऊँगा। मैं यह भी नहीं कहता कि आपको परमात्माकी प्राप्ति हो गयी इसलिये गरज नहीं और मुझे पहलेसे ही प्राप्ति

है इसलिये गरज नहीं। मुझे गरज होगी तो मैं आ जाऊँगा, क्योंकि मेरे लिये तो मार्ग खुला हुआ है। राजाने कहा कि यद्यपि आपको कोई गरज नहीं है, फिर भी मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे ही समय-समयपर बुला लिया करें, क्योंकि आप तो मुझे बुला सकते हैं। उसने कहा—हाँ, आवश्यकता होगी तो बुला लूँगा। यह है निष्कामभाव।

अब आप खयाल करके देखें कि इसमें कितना त्यागका रहस्य भरा हुआ है। राज्यकी या धनकी कोई परवाह नहीं और यह अहंकार भी नहीं कि मुझे किसी प्रकारकी आवश्यकता नहीं।

तात्पर्य यह कि भगवान्‌के दर्शनके प्रभावसे दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, पाप, क्लेश और दुःख आदि सबका अत्यन्त अभाव हो जाता है। भगवान्‌के दर्शनके प्रभावसे तो ऐसा होना मामूली बात है, क्योंकि यह सब तो भगवान्‌के दर्शनके आभाससे हो जाता है। सूर्यका उदाहरण देकर मैंने आपको बतलाया कि सूर्यभगवान्‌के दर्शनके लिये हम प्रार्थना करें और सूर्यभगवान् हमारे यहाँ आ जायँ तो क्या वहाँ अन्धकार रहेगा। अतः सूर्यसे यह प्रार्थना करनी बेकार है कि आप हमारे अन्धकारका नाश कर दें। हम दर्शनके लिये प्रार्थना करते हैं तो उसके अन्तर्गत ही वे सब बातें आ जाती हैं। प्रश्न उठता है कि जब दर्शनके आभासमात्रसे दुर्गुण, दुराचार, पाप, क्लेश आदिका अत्यन्त अभाव हो जाता है, फिर भगवान्‌के दर्शनसे क्या लाभ होता है? इस विषयमें मेरा कहना है कि भगवान्‌के दर्शनसे सदाके लिये परम शान्ति और परम आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है। परमात्माका यथार्थ ज्ञान हो जाता है, ऐसा होना स्वाभाविक है। यह कोई महत्त्वकी चीज नहीं है। जैसे सूर्यभगवान् हमारे यहाँ आ जायँ तो उनके आनेपर यहाँ प्रकाश हो जाना स्वाभाविक है। सूर्यके तापसे स्वाभाविक ही शीतका निवारण हो जाता है। इसी प्रकार अज्ञानका निवारण हो जाना, परम शान्ति और परम आनन्दका मिल जाना तो साधारण-सी बात है। भगवान्‌का दर्शन होकर जो नित्य-मिलन है, वह विशेष महत्त्वकी चीज है। भगवान् उसके हो जाते हैं, वह भगवान्‌को खरीद लेता है और भगवान् उसके अधीन हो जाते हैं यह अलौकिक बात है। भगवान्‌को भगवान् माननेसे, समझनेसे, विश्वास हो जानेसे ये सब बातें हो जाती हैं। भगवान्‌के प्रभावको जाननेसे भगवान्‌में जो अनन्य प्रेम हो जाता है वह एक अद्भुत बात है। भगवान्‌में अनन्य और विशुद्ध प्रेम होनेसे भगवान् मिलते हैं। यदि कोई कमी रह भी जाती है, तो वह भगवान्‌के दर्शन होनेसे पूरी हो जाती है, वह सम्बन्ध फिर कभी टूटता ही नहीं। जब भगवान्‌के संगसे या एक क्षणके दर्शनसे अद्भुत लाभ हो जाता है, फिर उनका संग रहे तो बात ही क्या है? दर्शन होनेके बाद फिर हम संग छोड़ नहीं सकते। हमारी यह ताकत नहीं कि हम भगवान्‌के संगको छोड़ सकें। यदि भगवान् अन्तर्धान हो जाते हैं तो इसमें हमारा वश नहीं, फिर भी वे हमारे मनको तो चुराकर ले ही जाते हैं। भगवान् भाग जाते हैं, पर साथ-साथ हमारे हृदयको भी ले जाते हैं। फिर शरीरमें हमारा मन नहीं रहता, मनसे भगवान्‌का चिन्तन होता रहता है। उन्हें हम कभी भूल नहीं सकते। भगवान्‌के दर्शनकी और भगवान्‌के संगकी महिमा हम क्या बतला सकते हैं? भगवान्‌के भेजे हुए कोई महापुरुष यहाँ आ जायँ और हम उन्हें पहचान लें तो उनके दर्शनका महत्त्व भी अलौकिक है फिर भगवान्‌की तो बात ही क्या है? हमारे दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन आदि दोष तो उनके दर्शनसे ही दूर हो जाते हैं। इतना ही नहीं हमारेमें सद्‌गुणों और सदाचारकी बाढ़ आ जाती है। किसी साधनके बिना ही हमारे हृदयमें परम शान्ति और परम आनन्दकी लहरें उठने लगती हैं।

यह सब उन महापुरुषोंके संग यानी दर्शनसे होता है। कैसे महापुरुषोंके? भगवान्‌के भेजे हुए वेदव्यासजी-जैसे महापुरुषोंके। प्रश्न उठता है कि जिस समय वेदव्यासजी यहाँ थे उस समय ऐसी बात देखनेमें तो नहीं आती थी, क्योंकि उनके दर्शन तो हजारों आदमी करते थे। उनके ही क्यों उस समय तो भगवान् श्रीकृष्णजी भी थे, उनके भी दर्शन हजारों आदमी करते थे। वह तो बिना समझा साधारण दर्शन है, उसका ऐसा महत्त्व नहीं है। जिन्होंने वेदव्यासजीको महापुरुष समझकर दर्शन किया है उनकी तरफ ध्यान देकर देखना चाहिये। स्वाभाविक ही वेदव्यासजीके दर्शन हजारों-लाखों आदमियोंको होते थे, इसी प्रकार भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन भी हजारों-लाखों आदमियोंको होते थे। यद्यपि उनका दर्शन होना भी लाभकी बात है, किंतु हमने जो महिमा बतायी वह तो उनके ज्ञानसे ही है, बिना ज्ञानके नहीं। ज्ञान होनेसे उनमें स्वाभाविक ही श्रद्धा हो जाती है, प्रेम हो जाता है फिर उसकी तो बात ही क्या है?

एक छोटीसी कहानी है—कुछ आदमी एक गाँवसे दूसरे गाँव जा रहे थे। सायंकालका समय था। बरसातके साथ इतनी जोरसे आँधी आयी कि मनुष्यको अपना हाथ भी नहीं दीखता था। ऐसी परिस्थितिमें वे सभी व्याकुल हो गये। किंतु भगवान्‌की दयासे उस जंगलमें यात्रियोंके ठहरनेके लिये एक धर्मशाला थी। उस धर्मशालामें कई कमरे थे, जिनमें वे ठहर गये। उस समय दियासलाई आदि साधन नहीं थे। हवा ठंडी चल रही थी, इसलिये सब चाहते थे कि यदि आग होती तो उससे ताप भी लेते, रसोई बनाकर भोजन भी कर लेते और दीपक जलाकर रोशनी भी कर लेते। उनके पासमें सामान सब था। बरतन, घी, आटा आदि भोजनकी सब चीजें थीं; किंतु केवल आग नहीं थी। इधर-उधर खोजनेपर भी आग नहीं मिली। वहाँ जितने कमरे थे उनमें एक कमरा गरम था, बाकी सब ठंडे थे। उस गरम कमरेमें रहनेवालोंने सोचा कि क्या कारण है कि यह कमरा गरम है, बाकी सब ठंडे। उन्होंने खोज की। खोज करनेसे कमरेके एक कोनेमें राखसे ढकी हुई आग मिल गयी। ऊपर राख आयी हुई थी, इसलिये वह दीखती नहीं थी। राख हटाये तो वहाँ आग मिल गयी। ईंधन और लकड़ी तो वहाँ पड़ी ही थी, आग मिलनेसे उसको जला दिया। आगके जलनेपर आस-पासके कमरेवाले भी दौड़कर आये और कहा कि हमको भी थोड़ी आग दो। उन्होंने पूछा कि क्या करोगे आगका? जवाब मिला कि रसोई बनायेंगे तथा दीपक जलायेंगे। उन्होंने आग ले जाकर रसोई बनायी, दीपक जलाया और आराम किया। फिर और दो आदमी आये और बोले कि हमें भी थोड़ी आग दो। उनमेंसे एकसे पूछा कि तुम हो कौन और इसका क्या करोगे? उसने कहा कि मैं ब्राह्मण हूँ और परमात्माकी प्राप्तिके लिये अग्निहोत्र करूँगा। उसके बाद रसोई बनाकर भोजन भी करूँगा। दूसरे आदमीसे भी इसी तरह पूछा तो उसने कहा कि मैं भी अग्निहोत्र करूँगा। 'किसलिये करोगे' यह पूछनेपर उसने कहा कि हम धनके लिये अग्निहोत्र करेंगे। पहलेसे पूछनेपर उसने कहा था कि मैं परमात्माकी प्राप्तिके लिये निष्कामभावसे अग्निहोत्र करता हूँ। सबको उन्होंने आग दे दी। इस प्रकार सबने अपनी इच्छा-पूर्ति की। यह दृष्टान्त है उसे दार्ष्टान्तमें इस प्रकार घटाना चाहिये।

यहाँ यात्रियोंका तथा हमारा जो संग है उसी प्रकारका है। वहाँ जो अन्धकार है वह यहाँ माया है जिसमें हम सब पड़े हैं। जिस प्रकार जंगलमें घोर अँधेरा है, उसी तरह हम मायारूपी घोर अँधेरेमें पड़े हैं। हमारे पास सब सामग्री है पर आग नहीं है। आगसे सभी काम हो सकते हैं। आगका ज्ञान गरम कमरेसे हुआ और ज्ञान होनेके बाद उन्होंने आगसे लाभ उठाया। फिर जिनकी आगमें (अग्निदेवताके रूपमें) श्रद्धा थी उन्होंने यज्ञ किया। वे समझते थे कि अग्नि देवता हैं। दूसरे लोग भी आगसे लाभ उठा रहे हैं पर कितना? रसोई बनानेका और प्रकाश करनेका। जो ब्राह्मण निष्कामभावसे श्रद्धापूर्वक अग्निहोत्र करता है, वह परमात्माकी प्राप्तिके लिये करता है तथा जो सकामी ब्राह्मण हैं उन्होंने सकामभाव यानी धनकी प्राप्तिके लिये यज्ञ करके धनका लाभ लिया। इसी तरह भगवान्‌के नामका, गङ्गा तथा महापुरुषों और ईश्वरका संग है। ये सभी अग्निकी भाँति हैं। जिस प्रकार जब अग्निका ज्ञान नहीं था तब भी कमरा तो गरम था ही, इसी प्रकारसे यद्यपि महापुरुषोंका ज्ञान नहीं है तब भी सामान्य लाभ तो सबको मिलता ही है। इसी तरह ईश्वरका ज्ञान नहीं है, गङ्गाजीमें श्रद्धा नहीं है तब भी गङ्गामें स्नान करनेसे और ईश्वरके नामका जप बिना प्रभाव जाने करनेसे भी सामान्य यानी साधारण लाभ तो मिलता ही है। यदि भगवान्‌के नामके प्रभावका ज्ञान हो जाय तो विशेष लाभ हो सकता है। मान लें हम मोटरोंमें चलते हैं और बीचमें कहीं नदी आ गयी और हमें मालूम नहीं है कि यह गङ्गा है या मन्दाकिनी है या कौन-सी नदी है। पर हमने नदी समझकर स्नान कर लिया, तब भी हमको लाभ तो होता है, किंतु यदि हम गङ्गा समझकर स्नान करते तो विशेष लाभ होता। इसी प्रकार हम बिना ज्ञानके भगवन्नामका जो उच्चारण कर रहे हैं, उससे भी लाभ है और 'यह भगवान्‌का नाम है' जैसे 'राम' भगवान्‌का नाम है और हम इसका उच्चारण कर रहे हैं—'राम-राम' जप रहे हैं तो ज्यादा लाभ है। कोई महात्मा हैं और उनका हमें ज्ञान नहीं है तब भी हमको लाभ है और हमें यदि मालूम हो जाय कि ये महात्मा हैं तो उससे और विशेष लाभ है। जैसे भगवान् श्रीकृष्णको गोपियाँ जानती थीं। अर्जुन जानते थे, ऋषि लोग जानते थे और भी बहुत-से लोग जानते थे। गीता

(१०। १२-१३)-में अर्जुन कहते हैं—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे॥

अर्थात् हे प्रभो! सभी ऋषि, देवर्षि नारद, असित, देवल, व्यास आदि मुनि आपको परम ब्रह्म, परम धाम, परम पवित्र, शाश्वत पुरुष, दिव्य पुरुष, आदिदेव, अज तथा सर्वव्यापी कहते हैं और आप स्वयं भी तो कहते हैं।

भगवान् स्वयं अर्जुनसे कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

(गीता ४। ६)

—'मैं अज, अविनाशी और सब भूतोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको वशमें करके अपनी योगमायासे संसारमें अवतार लेता हूँ।' इस तरह अर्जुन भगवान्‌को जानता था और बहुत लाभ उठाता था। यह है ज्ञानसे लाभ उठाना। इससे भी ज्यादा लाभ होता है श्रद्धासे। जिन्हें अग्निका साधारण ज्ञान है वे भी उससे लाभ उठा रहे हैं। अग्निसे वे रसोई बना रहे हैं, दीपक जला रहे हैं—इतना लाभ तो उठा ही रहे हैं; किंतु उनकी यह श्रद्धा नहीं है कि अग्नि देवता हैं, अतः इस लाभसे वंचित रहते हैं। ब्राह्मणको विश्वास है कि अग्नि देवता हैं, वह सकामभावसे अग्निकी उपासना करता है तो उसे रुपया भी मिल जाता है। दूसरे ब्राह्मणकी श्रद्धा भी है और उसका भाव भी निष्काम है। वह सोचता है कि अग्निसे रुपया क्या माँगूँ, मैं यदि निष्कामभावसे उपासना करूँगा तो मेरी आत्माका उद्धार हो जायगा। क्योंकि वह निष्कामभावसे उपासना करता है। इसी प्रकार सब विषयोंमें समझना चाहिये। ईश्वर और महापुरुषको पाकर यदि हम उनसे सांसारिक काम लेते हैं तो उन कामोंकी सिद्धि तो हो जाती है, किंतु वह हमारी मूर्खता है जो हम उस महात्मासे या ईश्वरसे सांसारिक लाभ उठाते हैं, जैसे कोई मुझसे १०० रु० महीनेके रोजगारका तरीका पूछे और उसे मैं बतला दूँ या कोई ज्ञानी वैद्यसे कहे कि हमारा लड़का बीमार है कोई दवा बता दें और वह उसकी नाड़ी देखकर दवा बता दे या कोई किसी ज्योतिर्विद्‌से कहे कि हम रुपया कमानेके लिये जा रहे हैं आप हमें कोई ऐसा मुहूर्त बता दें जिससे हमें सफलता प्राप्त हो जाय। इसी प्रकार कोई बीमारीकी निवृत्तिके लिये, कोई धनके लिये, कोई पुत्रके लिये, कोई किसी प्रकारकी कामना-पूर्तिके लिये ईश्वर और महात्माके द्वारा अपनी सिद्धि चाहता है तो वह सिद्धि तो हो जाती है, किंतु वह तुच्छ लाभ है। यदि निष्कामभावसे हम ईश्वर और महात्माकी सेवा करें, उपासना करें, उनका संग करें तो हमारा कल्याण हो सकता है। इसी प्रकार गङ्गाजी हैं। यदि गङ्गाजीमें हम कोई कामना लेकर स्नान करें और गङ्गाके प्रभावका ज्ञान नहीं है तब भी स्नान करनेसे लाभ है। ज्ञान होनेसे और विशेष लाभ है। गङ्गामें श्रद्धा होनेसे और अधिक लाभ है। गङ्गाके विषयमें क्या कहा जाय इनके नामका उच्चारण करनेसे मुक्ति हो जाती है। गङ्गाका दर्शन करनेसे मुक्ति हो जाती है। 'गङ्गा-गङ्गा' ऐसा शब्द उच्चारण करें तो भी हमारा कल्याण हो सकता है। हमारी श्रद्धा हो तो हमारी मुक्ति हो सकती है। यदि इतनी श्रद्धा न होकर थोड़ी भी श्रद्धा हो कि गङ्गामाता, हम आपके यहाँ आये हैं, मेरे कोई लड़का नहीं है, आप मुझे लड़का दे दें। कोई कहे कि मैं दरिद्र हूँ, आप मुझे रुपया दे दें, कोई कहे कि मेरे ऊपर ऋण है, आप ऋण दूर कर दें तो गङ्गामाता यह काम भी कर सकती हैं। गङ्गासे यदि हम छोटी चीज माँगें तो हमारा छोटापन है। गङ्गासे तो हमें वह चीज माँगनी चाहिये जिससे हमारा कल्याण हो जाय। अतः श्रद्धा हम जितनी करें उतनी थोड़ी है। यदि गङ्गाके बारेमें हम यह कहें कि यह भगवान्‌के चरणोंका जल है तो ठीक है, यह भी श्रद्धा है। परंतु इतना समझते हुए भी यदि हम यह कहें कि यह तो साक्षात् भगवान् ही हैं, साक्षात् भगवान् गङ्गा होकर बह गये। इससे हमको वही लाभ होगा जो भगवान्‌के दर्शनसे होना चाहिये। इस प्रकार जितनी श्रद्धा करे उतनी ही कम है। इसी प्रकार भगवान्‌के भजनकी बात है। रुपयोंके लिये, धनके लिये, स्त्री-पुत्र आदिके लिये भजन करते हैं तो इससे हमें स्त्री, पुत्र, धन आदि चीजें मिलती हैं। यदि भजन अपनी आत्माके कल्याणके लिये करें तो आत्माका कल्याण हो जाता है। कई आदमी 'हे नाथ-हे नाथ' कहकर भगवान्‌के दर्शनके लिये भजन करते हैं। ऐसे हम भगवान्‌को पुकारें या नारायण नामसे पुकारें, हृदयसे, विश्वाससे, श्रद्धासे पुकारें तो भगवान् आ सकते हैं—दर्शन दे सकते हैं। जिस समय हम

पुकारते हैं, उस समय यदि हमारे हृदयमें यह निश्चय रहे कि हम पुकारते तो हैं, किंतु भगवान् आयेंगे नहीं, तो भगवान् भी समझते हैं कि यह मुझे बुलानेके लिये नहीं पुकारता है, इसकी आदत पड़ गयी है पुकारनेकी, इसके दिलमें यह विश्वास नहीं है कि मैं आऊँगा। फिर भला भगवान् क्यों आयेंगे? श्रद्धा और विश्वास होना चाहिये। श्रद्धा और निष्कामभाव हो तो और ज्यादा लाभ है। श्रद्धा तो यह भी है कि अपने भगवान्‌का भजन और भक्ति रुपयोंके लिये या राज्यके लिये करते हैं। जैसे ध्रुवजीने भगवान्‌की भक्ति की। महापुरुषोंके संग और दर्शनसे लाभ होता है, इसमें तो बात ही क्या है, गङ्गाके संग और दर्शनसे भी लाभ होता है। प्रश्न उठता है कि महापुरुष गङ्गासे भी बढ़कर हैं क्या? हाँ, इसमें क्या कहना, धर्मराज युधिष्ठिरने भक्तराज विदुरजीसे कहा—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥

(श्रीमद्भा० १। १३। १०)

प्रभो! आप-जैसे भगवान्‌के प्यारे भक्त स्वयं ही तीर्थस्वरूप होते हैं। आप लोग अपने हृदयमें विराजमान भगवान्‌के द्वारा तीर्थोंको भी महातीर्थ बनाते हुए विचरण करते हैं।

तात्पर्य यह कि महापुरुष तीर्थोंमें जाते हैं, तीर्थोंको तीर्थ बनानेके लिये जाते हैं। अपने पवित्र होनेके लिये नहीं, बल्कि तीर्थोंको पवित्र करनेके लिये जाते हैं। ब्रह्माजीने जब गङ्गाजीको आज्ञा दी कि तुम मृत्युलोकमें जाकर वहाँके लोगोंको पवित्र करो तो गङ्गाजी रोकर बोलीं कि महाराज, मेरेमें हजारों-लाखों आदमी आकर स्नान करेंगे और सबका पाप मेरेमें इकट्ठा होगा। वे तो मेरेमें स्नान करके पवित्र हो जायँगे, फिर मेरी क्या दशा होगी, ब्रह्माजीने कहा कि तू चिन्ता मत कर, कारण कि—

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः॥

(श्रीमद्भा० ९। ९। ६)

तात्पर्य यह कि कोई भी एक महापुरुष यदि तुम्हारेमें आकर स्नान कर लेगा तो तेरे सारे पाप भस्म हो जायँगे। जितने भी तीर्थ बने हैं वे सब महापुरुषोंके चरणोंके प्रतापसे और ईश्वरकी कृपाके प्रतापसे बने हैं। पर वैसे महापुरुष अब कहाँ हैं?

भगवान् निराकाररूपसे सब जगह हैं तथा प्रेमसे प्रकट होते हैं। जिनके लिये भगवान् प्रकट होते हैं, उनको जो दर्शन होता है, उस दर्शनकी विशेष महिमा है। जब भगवान् स्वाभाविक ही अवतार लेते हैं तब उस समय भी लोगोंको दर्शन होता है, पर उस समय तो जिनमें श्रद्धा और प्रेम होता है उनको ही ज्यादा लाभ होता है बाकीको कम लाभ होता है। मैंने आपको चार प्रकारके लाभ बताये— १-सामान्य यानी साधारण लाभ, २-मुख्य लाभ, ३-विशेष लाभ और ४-लाभ है अनन्य। भगवान्‌की जो प्राप्ति है अनन्य लाभ है, भगवान्‌के द्वारा जो और चीजोंकी प्राप्ति है विशेष लाभ है। भगवान्‌के द्वारा उत्तम गुण, उत्तम भाव और उत्तम आचरणकी प्राप्ति वास्तवमें विशेष लाभ है और सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्ति सामान्य लाभ है। लाभ तो होता ही है—चाहे सामान्य लाभ हो, चाहे विशेष लाभ हो या अनन्य लाभ हों—पूर्ण लाभ हो। ये सब अलग-अलग लाभ होते हैं। इसी प्रकार गङ्गाजीसे, भगवान्‌के नामके जपसे, साधनसे, महापुरुषोंसे लाभ होता है। यह खयाल रखना चाहिये कि परमात्माकी प्राप्तिसे, दर्शनसे, भाषणसे, स्पर्शसे, वार्तालापसे, संगसे जो लाभ होता है वह एक नम्बरका लाभ है। उससे बढ़कर दुनियामें और कोई लाभ नहीं है। जो लाभ महापुरुषोंसे होता है वह दो नम्बरका लाभ है। इसी प्रकार साधनोंसे भी लाभ होता है। गङ्गास्नान, तीर्थ, व्रत, जप, ध्यान, उपवास, कर्मयोग, भक्तियोग—ये सब साधन हैं, साधनके द्वार हैं। इनके द्वारा भी हम लोगोंको उत्तम-से-उत्तम लाभ हो जाता है। इन सब पदार्थोंसे साधारण लाभ भी होता है, विशेष लाभ भी होता है और उत्तम-से-उत्तम लाभ भी होता है। अपना भाव उच्च कोटिका होना चाहिये। हमारे भावमें निष्कामभाव हो तो वह बड़े उच्च कोटिकी चीज है। स्वार्थका त्याग और हृदयमें श्रद्धा तथा प्रेमका भाव बड़े उच्च कोटिका भाव है। भगवान्‌में प्रेम होना चाहिये, श्रद्धा होनी चाहिये और निष्कामभाव होना चाहिये। ऐसा भाव होकर यदि भगवान्‌का दर्शन हो या संग हो तो इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है। [पुराने प्रवचनसे]

* * *

भगवान्से क्या माँगना चाहिये

(श्री जय जय बाबा)

भगवद्भक्तों, संतों, साधकों एवं सत्संग-प्रेमियोंमें सत्संगके समय सहज ही यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि भगवान्से क्या माँगना चाहिये? कीमती-से-कीमती और जीवनका परम कल्याण करनेवाली ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो भगवान्से माँगी जाय?

महापुरुषोंने बहुत सोच-विचार कर यह निर्णय किया है कि भगवान्से यदि माँगना ही है तो एक ही वस्तु माँगो—'हे प्रभो! ऐसी कृपा कीजिये कि जीवनपर्यन्त मैं कभी भी आपके पादपद्मोंसे अलग न होने पाऊँ।' भगवान्से माँगनेकी यही सर्वोत्तम वस्तु है। इस कलिमल-कल्मष-भवाटवीसे निकलनेका—मुक्त होनेका ऐसा कोई दूसरा अमोघ उपाय हो सकता है क्या?

मुनि सुतीक्ष्णकी निष्कामभक्तिसे प्रसन्न होकर जब भगवान् श्रीरामने कहा—'हे मुनि! मुझे परम प्रसन्न जानो। जो वर माँगो, वही मैं तुम्हें दूँ।' तब मुनिने कहा—'मैंने कभी वर तो माँगा ही नहीं। मुझे समझ ही नहीं पड़ता कि क्या झूठ है और क्या सत्य है (क्या माँगूँ, क्या न माँगूँ)? अतः हे रघुनाथजी! हे दासोंको सुख देनेवाले! आपको जो अच्छा लगे, मुझे वही दीजिये।' तब प्रभुने कहा—'हे मुने! तुम प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और समस्त गुणों तथा ज्ञानके निधान हो जाओ।'—

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर मागहु देउँ सो तोही॥
मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा। समुझि न परइ झूठ का साचा॥
तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई॥
अबिरल भगति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना।

(रा०च०मा० ३। ११। २३—२६)

इतना प्राप्त करनेके बाद जब मुनि सुतीक्ष्णको माँगनेकी इच्छा हुई ही, तब वे बोले—'प्रभु! आपने जो वरदान दिया वह तो मैंने पा लिया।' अब मुझे जो अच्छा लगता है वह दीजिये—'हे प्रभो! हे श्रीरामजी! छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीसहित धनुष-बाणधारी आप निष्काम (स्थिर) होकर मेरे हृदयरूपी आकाशमें चन्द्रमाकी भाँति सदा निवास कीजिये'—

अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम॥

(रा०च०मा० ३। ११)

मुनि सुतीक्ष्णने भगवान्‌को माँग लिया। दूसरे शब्दोंमें उनकी अनपायिनी भक्ति ही माँगी। वीतराग परम निष्काम बुधजनोंकी तरह श्रेयका ही वरण किया। उनको जो माँगना था, उन्होंने माँग लिया।

बहुतसे लोग भगवान्‌की भक्ति करते हैं, परंतु जब उनपर दुःख पड़ता है—विपत्ति आती है और भगवान्से प्रार्थना करनेपर भी उनका दुःख, उनकी विपत्ति जाती नहीं, तो वे भगवच्चरणारविन्दोंसे विमुख हो जाते हैं और दूसरा सहारा ढूँढ़ने लगते हैं। ऐसे लोग थोड़ा-सा दुःख और विपत्ति आ पड़नेपर अपना धैर्य खो देते हैं तथा भगवान्से विमुख होकर अपना घोर अनिष्ट कर बैठते हैं। इसीलिये महात्मा लोग कहते हैं कि कभी भी किसी भी अवस्थामें अपने इष्टदेवका परित्याग नहीं करना चाहिये। भगवान् कहते हैं—

हानिकाले परित्यज्य मां जनोऽन्यत्र गच्छति।
तस्य त्रैकालिकी हानिर्जायते नात्र संशयः॥

(आदिपुराण २८। १)

जो मनुष्य हानिकालमें मुझे छोड़कर दूसरेका सहारा ढूँढ़ता है, उसकी 'त्रैकालिकी' हानि होती है, इसमें कोई संशय नहीं है। त्रैकालिकी हानिका अर्थ यह है कि उसकी मेरेमें अश्रद्धा हो जानेके कारण तीन कालमें भी फिर उसको मेरा सहारा नहीं मिलता और वह जन्म-मृत्युरूपी संसारमें निरन्तर भटकता रहता है, इससे बड़ी हानि और क्या हो सकती है?

गुरुनानक कहते हैं—*'जो प्रभु कीनो सो भल मानो। उस ते होय नहीं कुछ बुरा। होर कहो किन कुछ करा'* अर्थात् प्रभुके विधानको कल्याणकारी मानो। उनके हाथसे कभी किसीका बुरा नहीं हो सकता और उनके अतिरिक्त दूसरा कर्ता भी कौन है?

यदि विचार किया जाय तो ईश्वरसे दुःख प्राप्त हो ही नहीं सकता। उनके पास दुःख है ही नहीं तो फिर वे जीवोंको दुःख कैसे दे सकते हैं! यह बात केवल कल्पना ही नहीं, अपितु युक्तिसे भी समझी जा सकती है। ईश्वरमें पूर्ण सत्त्वगुण है और पूर्ण सत्त्वमें केवल सुख-ही-सुख है, आनन्द-ही-आनन्द है, वहाँ लेशमात्र भी दुःख नहीं रह सकता। दुःख हमारे अज्ञानके कारण प्रतीत हो रहा है।

महारानी कुन्तीने तो भगवान् श्रीकृष्णसे शाश्वत विपत्तिका वरदान माँगा था—

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

(श्रीमद्भा० १। ८। २५)

हे जगद्गुरो! हमारे जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें; क्योंकि विपत्तिमें ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन होनेपर फिर जन्म-मरणके चक्करमें नहीं पड़ना पड़ता।

'भगवान् मारें या तारें उनका आश्रय कभी नहीं छोड़ूँगा' ऐसी दृढ़ निष्ठा होनी चाहिये।

महाभागवत संत यामुनाचार्य भगवान्‌से कितनी हृदयस्पर्शी और भावपूर्ण प्रार्थना करते हैं—

निरासकस्यापि न तावदुत्सहे
महेश हातुं तव पादपङ्कजम्।
रुषा निरस्तोऽपि शिशुः स्तनंधयो
न जातु मातुश्चरणौ जिहासति॥

(आळवन्दारस्तोत्र २९)

जैसे मातृस्तनपान करनेवाले बालकको कभी माता क्रोधित होकर अपनेसे दूर कर देती है तो भी वह बालक मातृचरणोंका आश्रय नहीं छोड़ता और रोता हुआ फिर माताके पास चला जाता है, वैसे ही हे महेश! यदि आप मुझे अपने चरणोंसे दूर भी कर देंगे तो भी मैं आपको कभी नहीं छोड़ूँगा, मेरी गति निरन्तर उधर ही रहेगी।

यह है समर्पणकी पराकाष्ठा, निष्ठाकी पूर्णता। एक बार भगवच्चरणारविन्दोंके स्पर्शका कोई आनन्द प्राप्त कर ले, फिर उसको कोई भी उनसे अलग नहीं कर सकता। उसके सामने कितने ही प्रलोभन आयें, वह उनकी पूरी उपेक्षा कर देगा।

भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजीसे कहते हैं—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद् विनान्यत्॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १४)

जिसने अपनेको मुझे सौंप दिया है, वह मुझे छोड़कर न तो ब्रह्माका पद चाहता है और न देवराज इन्द्रका। उसके मनमें न तो सार्वभौम सम्राट् बननेकी इच्छा होती है और न वह स्वर्गसे भी श्रेष्ठ रसातलका ही स्वामी होना चाहता है। वह योगकी बड़ी-बड़ी सिद्धियों और मोक्ष तककी अभिलाषा नहीं करता।

भगवच्चरणारविन्दोंमें प्रपत्ति, शरणागति, आत्मनिवेदन (—ये तीनों एक ही हैं) करनेमें क्या जादू है, क्या विशेष रस-आनन्द मिल जाता है कि भक्त स्वर्गादि, यहाँ तक कि मोक्षकी भी उपेक्षा कर देता है। क्या यहाँ भागवतकार अतिशयोक्ति तो नहीं कर रहे हैं? नहीं, नहीं, श्रीमद्भागवत त्रिकालदर्शी महापुरुषकी रचना है। इस ग्रन्थमें आदिसे अन्ततक परम सत्यका ही वर्णन और विचार किया गया है। ग्रन्थका आरम्भ ही **'सत्यं परं धीमहि'** (श्रीमद्भा० १। १। १)-से किया गया है तथा इसकी समाप्ति भी **'सत्यं परं धीमहि'** (श्रीमद्भा० १२। १३। १९)—इन शब्दोंसे ही की गयी है। इसमें कभी भी असत्य बात या अतिशयोक्ति नहीं हो सकती।

भगवच्चरणारविन्दोंमें पूर्ण आत्मनिवेदन करनेमें जो अवर्णनीय आनन्द मिलता है वह तो वे भाग्यवान् ही जान सकते हैं, जिनको यह आनन्द मिला है; परंतु मैं तो अपनी तुच्छ बुद्धिसे कहता हूँ कि—

(१) अहंकारके कारण ही जीव महादुःख भोगता हुआ नरकादि नाना योनियोंमें भटक रहा है।

(२) भगवच्चरणारविन्दोंकी शरणमें जानेपर इस अहंकारका पूर्णरूपसे नाश हो जाता है, जिसके फलस्वरूप भक्तको एक विशेष प्रकारका अवर्णनीय आनन्द मिलता है, उसकी तुलनामें उसे स्वर्गादि अत्यन्त हेय और तुच्छ जान पड़ते हैं।

(३) एक बार जिसको उपर्युक्त आनन्द प्राप्त हो जाता है, वह उसे छोड़ना ही नहीं चाहता, वह जानता है कि भगवच्चरणारविन्दोंसे बिछुड़ते ही अज्ञानान्धकार तथा उसके फलस्वरूप नाना दुःख उपस्थित हो जायँगे।

भगवान् श्रीकृष्णका सारथि दारुक भगवच्चरणारविन्दोंसे बिछुड़ जानेके कारण अत्यन्त व्याकुल हो गया। किसी प्रकार खोजते-खोजते उसने भगवान् श्रीकृष्णको अश्वत्थ-वृक्षके नीचे विराजमान पाया। दारुक भगवान् श्रीकृष्णसे निवेदन करता है—

अपश्यतस्त्वच्चरणाम्बुजं प्रभो
दृष्टिः प्रणष्टा तमसि प्रविष्टा।
दिशो न जाने न लभे च शान्तिं
यथा निशायामुडुपे प्रणष्टे॥

(श्रीमद्भा० ११। ३०। ४३)

प्रभो! रात्रिके समय चन्द्रमाके अस्त हो जानेपर राह चलनेवालोंकी जैसी दशा हो जाती है, आपके चरणकमलोंके दर्शन न पाकर मेरी भी वैसी ही दशा हो गयी है। मेरी दृष्टि नष्ट हो गयी है और चारों ओर अँधेरा छा गया है, अब न तो मुझे दिशाओंका ज्ञान है और न मेरे हृदयमें शान्ति ही है।

भगवच्चरणारविन्दोंके वियोगमें प्रत्येक भक्तकी ऐसी ही दशा हो जाती है, यही कारण है कि एक बार भगवत्पादपद्मोंमें भक्तका अनुराग हो जानेपर वह उन्हें नहीं छोड़ना चाहता। इसीलिये भक्त भगवान्‌से यही वर माँगता है कि—'प्रभो! मैं कभी भी आपके चरणकमलोंसे अलग न होऊँ।'

* * *

श्रीराधा-महिमा

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

'श्रीराधा कौन हैं?' श्रीराधाका अस्तित्व सत्य है या कविकल्पनामात्र? राधाका स्वरूप नित्य अनादि अनन्त एकरस है या साधन-जगत् अथवा कल्पना-जगत्में उसका उत्तरोत्तर विकास हुआ है? श्रीराधा हैं तो उनका भगवान् श्रीकृष्णके साथ क्या सम्बन्ध है, राधा उनकी परिणीता पत्नी हैं या परकीया? श्रीराधा विलासप्रिय—(जैसा कि बहुत-से कवियोंने उनका वर्णन किया है—) स्वच्छन्द रमणकर्त्री हैं या साधन-जगत्की आदर्श परम त्यागमयी देवी हैं? 'उनमें क्या-क्या गुण हैं और उनकी कैसी क्या-क्या लीलाएँ हैं?' ये तथा ऐसे ही अनेक प्रश्नोंका उत्तर देनेकी न तो मुझमें योग्यता है, न शक्ति है, न बुद्धि है, न अधिकार है और न आवश्यकता ही है। श्रीराधाजीके अनन्त रूप हैं, उनमें अनन्त गुण हैं, उनके स्वरूपभूत भाव-समुद्रमें अनन्त विचित्र तरंगें उठती रहती हैं और उनको विभिन्न लोगोंने विभिन्न दृष्टियोंसे देखा है, अतएव उनके सम्बन्धमें इतना ही कहा जा सकता है कि जो उन्हें जिस भावसे जानना चाहते हैं, वे उसी भावसे जान सकते हैं।

प्रेमी संत-महात्माओंके मतानुसार यही जान पड़ता है कि एकमात्र सच्चिदानन्दघनविग्रह भगवान् श्रीकृष्ण ही विभिन्न दिव्य रूपोंमें लीलायमान हैं। वह एक ही परमतत्त्व श्रीकृष्ण श्रीराधा और अनन्त गोपीजनोंके रूपमें दिव्यतम, मधुरतम स्वरूपभूत लीला-रसका आस्वादन करता रहता है। इस आस्वादनमें वस्तुतः आस्वादक तथा आस्वाद्यका कोई भेद नहीं है। परम तत्त्व श्रीकृष्ण निरुपम, निरुपाधि, सत्, चित्, आनन्दघन हैं; सत् 'संधिनी,' चित् 'चिति' और आनन्द 'ह्लादिनी' शक्ति हैं। ये 'ह्लादिनी' शक्ति स्वयं 'श्रीराधा' हैं, संधिनी 'वृन्दावन' बनी हैं और 'चिति' समस्त लीलाओंकी व्यवस्थापिका तथा आयोजिका 'योगमाया' हैं। श्रीराधा ही लीलाविहारके लिये अनन्त कायव्यूहरूपा गोपाङ्गनाओंके रूपमें प्रकट हैं। भगवान् श्रीकृष्ण एकमात्र 'रस' हैं और उन दिव्य मधुरातिमधुर रसका ही यह सारा विस्तार है। भगवान् और भगवान्की शक्ति—ये ही वस्तुतः रस-तत्त्व हैं; अन्य समस्त रस तो विरस (विपरीत रस), कुरस (कुत्सित रस) और अरस (रसहीन)-रूपसे पतनकारी हैं। अतएव सच्चिदानन्द-विग्रह परमरस-रसराज श्रीकृष्णमें और सच्चिदानन्दविग्रहा आनन्दांशघनीभूता, आनन्द-चिन्मय-रस-प्रतिभाविता रसमयी श्रीराधामें तत्त्वतः कुछ भी अन्तर नहीं है। नित्य एक ही नित्य दो बने हुए लीला-रसका वितरण तथा आस्वादन करते रहते हैं। परंतु भगवान्की केवल मधुरतम लीलाओंका ही नहीं, उनकी लीलामात्रका ही तत्त्वतः एकमात्र आधार उनका परम शक्ति—राधारूप ही है। शक्तिसे ही शक्तिमान्की सत्ता है और शक्ति रहती है शक्तिमान्में ही। अतः अनादि, सर्वादि, सर्वकारणकारण, अद्वय ज्ञान-तत्त्वरूप सच्चिदानन्दघन व्रजरसनिधि श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी ह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजीका परस्पर अभिन्न तथा अविनाभाव नित्य अविच्छेद्य तथा ऐक्य-सम्बन्ध है। श्रीराधा पूर्ण शक्ति हैं—श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान् हैं; श्रीराधा दाहिका शक्ति हैं—श्रीकृष्ण साक्षात् अग्नि हैं; श्रीराधा प्रकाश हैं—श्रीकृष्ण भुवन-भास्कर हैं; श्रीराधा ज्योत्स्ना हैं—श्रीकृष्ण पूर्ण चन्द्र हैं। इस प्रकार दोनों नित्य एक-स्वरूप हैं। एक होते हुए ही श्रीराधा समस्त कृष्णकान्ताओंकी शिरोमणि ह्लादिनी शक्ति हैं। वे स्वमन-मोहन-मनोमोहिनी हैं, भुवनमोहन-मनोमोहिनी हैं, मदन-मोहन-मनोमोहिनी हैं। वे पूर्णचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रके पूर्णतम विकासकी आधारमूर्ति हैं और वे हैं अपने विचित्र विभिन्न भावतरङ्ग-रूप अनन्त सुख-समुद्रमें श्रीकृष्णको नित्य निमग्न रखनेवाली महाशक्ति। ऐसी इन राधाकी महिमा राधाभावद्युति-सुवलित-तनु श्रीकृष्णचन्द्रके अतिरिक्त और कौन कह सकता है? पर वे भी नहीं कह सकते; क्योंकि राधागुण-स्मृति-मात्रसे ही वे इतने विह्वल तथा मुग्ध, गद्गद-कण्ठ हो जाते हैं कि उनके द्वारा शब्दोच्चारण ही सम्भव नहीं होता।

मैं तो रसशास्त्रसे सर्वथा अनभिज्ञ, नितान्त अज्ञ हूँ। इसलिये रस-शास्त्रकी दृष्टिसे कुछ भी कहना मेरे लिये सर्वथा अनधिकार चेष्टा है। अतः इस विषयपर कुछ भी न

कहकर जिनका दिव्यातिदिव्य पद-रज-कण ही मेरा परम आश्रय है, उन श्रीराधाजीके सम्बन्धमें कुछ शब्द उनकी कृपासे लिख रहा हूँ। जिन श्रीराधाजीकी अयाचित कृपासे मुझे उनका जो कुछ परिचय मिला है और जिन्होंने अपने महान् अनुग्रहदानसे मुझ पतित पामरको अपनाकर कृतार्थ किया है, वे अपनी अचिन्त्य महिमामें स्थित श्रीराधाजी न तो विलासमयी रमणकर्त्री हैं, न उनका उत्तरोत्तर क्रमविकास हुआ है, न वे कविहृदय-प्रसूत कल्पना हैं और न उनमें किसी प्रकारका गुण-रूप-सौन्दर्याभिमान ही है। वे नित्य सत्य एकमात्र अपने प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरकी सुखविधाता हैं। वे इतनी त्यागमयी हैं, इतनी मधुर-स्वभावा हैं कि अचिन्त्यानन्त गुण-गणकी अनन्त आकर होकर भी अपनेको प्रियतम श्रीकृष्णकी अपेक्षासे सदा सर्वसद्गुणहीन अनुभव करती हैं, वे परिपूर्ण प्रेमप्रतिमा होनेपर भी अपनेमें प्रेमका सर्वथा अभाव देखती हैं; वे समस्त सौन्दर्यकी एकमात्र निधि होनेपर भी अपनेको सौन्दर्यरहित मानती हैं और पवित्रतम सहज सरलता उनके स्वभावकी सहज वस्तु होनेपर भी वे अपनेमें कुटिलता तथा दम्भके दर्शन करती और अपनेको धिक्कार देती हैं। वे अपनी एक अन्तरङ्ग सखीसे कहती हैं—

सखी री! हौं अवगुन की खान।
तन गोरी, मन कारी, भारी पातक-पूरन प्रान॥
नहीं त्याग रंचकहू मन में, भर्‍यौ अमित अभिमान।
नहीं प्रेम कौ लेस, रहत नित निज सुख कौ ही ध्यान॥
जग के दुःख अभाव सतावैं, हो मन पीरा-भान।
तब तेहि दुख दृग स्त्रवै अश्रु-जल, नहिं कछु प्रेम निदान॥
तिन दुख-अँसुवन कौं दिखरावौं हौं सुचि प्रेम महान।
करौं कपट, हिय-भाव दुरावौं, रचौं स्वाँग सग्यान॥
भोरे मम प्रियतम विमुग्ध ह्वै करैं विमल गुन-गान।
अतिसै प्रेम सराहैं, मो कूँ परम प्रेमिका मान॥
तुमहू सब मिलि करौ प्रसंसा, तब हौं भरौं गुमान।
करौं अनेक छद्म तेहि छिन हौं, रचौं प्रपंच-बितान॥
स्याम सरल-चित ठगौं दिवस-निसि, हौं करि विविध विधान।
धिग जीवन मेरौ यह कलुषित, धिग यह मिथ्या मान॥

इस प्रकार श्रीराधाजी अपनेको सदा-सर्वदा सर्वथा हीन-मलिन मानती हैं, अपनेमें त्रुटि देखती हैं—परम सुन्दर गुणसौन्दर्यनिधि श्यामसुन्दरकी प्रेयसी होनेकी अयोग्यताका अनुभव करती हैं एवं पद-पदपर तथा पल-पलमें प्रियतमके प्रेमकी प्रशंसा तथा उनके भोलेपनपर दुःख प्रकट करती हैं। श्यामसुन्दरके मथुरा पधार जानेपर वे एक बार कहती हैं—

सद्गुणहीन, रूप-सुषमासे रहित, दोषकी मैं थी खान।
मोह-विवश मोहनको होता मुझमें सुन्दरताका भान॥
न्योछावर रहते मुझपर, सर्वस्व समुद कर मुझको दान।
कहते, थकते नहीं कभी—'प्राणेश्वरि!' 'हृदयेश्वरि!' 'मतिमान'॥
'प्रियतम! छोड़ो इस भ्रमको तुम'—बार-बार मैं समझाती।
नहीं मानते, उर भरते, मैं कण्ठहार उनको पाती॥
गुण-सुन्दरता-रहित, प्रेमधन-दीन, कला-चतुराई-हीन।
मूर्खा, मुखरा, मान-मद-भरी मिथ्या, मैं मतिमन्द-मलीन॥

× × ×

रहता अति संताप मुझे प्रियतमका देख बढ़ा व्यामोह।
देव मनाया करती मैं—'प्रभु! हर लें सत्वर उनका मोह'॥

श्रीराधाके गुण-सौन्दर्यसे नित्य मुग्ध प्रियतम श्यामसुन्दर यदि कभी प्रियतमा श्रीराधाके प्रेमकी तनिक भी प्रशंसा करने लगते, उनके प्रति अपनी प्रेम-कृतज्ञताका एक शब्द भी उच्चारण कर बैठते अथवा उनके दिव्य प्रेमका पात्र बननेमें अपने सौभाग्य-सुखका तनिक-सा संकेत भी कर जाते तो श्रीराधाजी अत्यन्त संकोचमें पड़कर लज्जाके मारे गड़-सी जातीं। एक बार उन्होंने श्यामसुन्दरसे रोते-रोते कहा—

तुमसे सदा लिया ही मैंने, लेती-लेती थकी नहीं।
अमित प्रेम-सौभाग्य मिला, पर मैं कुछ भी दे सकी नहीं॥
मेरी त्रुटि, मेरे दोषोंको तुमने देखा नहीं कभी।
दिया सदा, देते न थके तुम, दे डाला निज प्यार सभी॥
तब भी कहते—'दे न सका मैं तुमको कुछ भी, हे प्यारी!
तुम-सी शील-गुणवती तुम ही, मैं तुमपर हूँ बलिहारी'॥
क्या मैं कहूँ प्राणप्रियतमसे, देख लजाती अपनी ओर।
मेरी हर करनीमें ही तुम प्रेम देखते नन्दकिशोर!॥

श्रीराधाजीका जीवन प्रियतम-सुखमय है। वे केश सँवारती हैं, वेणीमें फूल गूँथती हैं, मालतीकी माला पहनती हैं, वेश-भूषा, साज-शृङ्गार करती हैं, पर अपनेको सुखी करनेके लिये नहीं; वे सुस्वादु पदार्थोंका भोजन-पान करती हैं, परंतु जीभके स्वाद या अपने शरीरकी पुष्टिके लिये नहीं; वे दिव्य गन्धका सेवन करती हैं, पर स्वयं उससे आनन्द-लाभ करनेके लिये नहीं; वे सुन्दर पदार्थोंका निरीक्षण करती हैं, पर अपने नेत्रोंको तृप्त करनेके लिये नहीं; वे मधुर-मधुर संगीत-ध्वनि सुनती हैं, पर अपने कानोंको सुख पहुँचानेके लिये नहीं; वे सुख-स्पर्श प्राप्त करती हैं, पर अपने त्वगिन्द्रियकी प्रसन्नताके लिये नहीं। वे चलती-फिरती हैं, सोती-जागती हैं, सब व्यवहार-बर्ताव करती हैं, पर अपने लिये नहीं; वे जीवन-धारण भी अपने लिये नहीं करतीं। वे यह सब कुछ करती हैं—केवल और केवल अपने परम प्रियतम श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये!

वस्तुतः वे सदा-सर्वदा यही अनुभव करती हैं कि उनके समस्त मन-इन्द्रिय, उनके समस्त अङ्ग-अवयव, उनके चित्त-बुद्धि, उनका चेतन आत्मा—सभीको श्रीकृष्ण अपने नित्य-निरन्तर सुख-संस्पर्श-दानमें ही संलग्न बनाये रखते हैं, अन्य किसीका भी वे कभी संकल्प भी करें, इसके लिये तनिक-सा अवकाश नहीं देते या क्षणभरके लिये किसी अङ्गकी वैसी स्व-संस्पर्शरहित स्थिति ही नहीं होने देते। श्रीराधाजी अपनी परिस्थिति बतलाती हैं—

स्रवननि भरि निज गिरा मनोहर, मधु मुरली की तान।
सुनन न दै कछु और सब्द, नित बहिरे कीन्हे कान॥
लिपट्यौ रहै सदा तन सौं मम, रह्यौ न कछु बिबधान।
अन्य परस की स्मृति न रही कछु, भयौ चित्त इकतान॥
अँखियन की पुतरिन में मेरे निसि-दिन रह्यौ समाय।
देखन दै न और कछु कबहूँ, एकै रूप रमाय॥
रसना बनी नित्य नव रसिका चाखत चारु प्रसाद।
मिटे सकल परलोक-लोक के खारे-मीठे स्वाद॥
अंग-सुगंध नासिका राची, मिटी सकल मधुबास।
भई प्रमत्त, गई अग-जग की सकल सुबास-कुबास॥
मन में भरि दीन्ही मोहन निज मुनि-मोहनि मुसकान।
चित्त कर्‌यौ चिंतन-रत चिन्मय चारु चरन छबिमान॥
दई डुबाय बुद्धि रस-सागर, उछरन की नहिं बात।
आय मिल्यौ चेतन में मोहन, भयौ एक संघात॥

अतएव श्रीराधाके शृङ्गार-रसमें तथा जागतिक शृङ्गारमें नामोंकी समताके अतिरिक्त किसी भी अंशमें, कहीं भी, कुछ भी तुलना ही नहीं है। तत्त्वतः और स्वरूपतः दोनों परस्पर सर्वथा विपरीत, भिन्न तथा विषम वस्तु हैं। लौकिक शृङ्गार होता है—काममूलक, कामकी प्रेरणासे निर्मित! इन्द्रिय-तृप्तिकी स्थूल या सूक्ष्म काम-वासना ही उसमें प्रधान हेतु होती है।

साधारण नायक-नायिकाके शृङ्गार-रसकी तो बात ही नहीं करनी चाहिये, उच्च-से-उच्चतर पूर्णताको पहुँचा हुआ दाम्पत्य प्रेमका शृङ्गार भी अहंकारमूलक सुतरां कामप्रेरित होता है; वह स्वार्थपरक होता है, उसमें निज-सुखकी कामना रहती है। इसीसे इसमें और उसमें उतना ही अन्तर है, जितना प्रकाश और अन्धकारमें होता है। यह विशुद्ध प्रेम है और वह काम है। मनुष्यकी आँख न होनेपर तो वह केवल दृष्टिशक्तिसे ही हीन—अन्धा होता है, परंतु काम तो सारे विवेकको ही नष्ट कर देता है। इसीलिये कहा गया है—'**काम अन्धतम, प्रेम निर्मल भास्कर**' काम अन्धतम है, प्रेम निर्मल सूर्य है। इस काम तथा प्रेमके भेदको भगवान् श्रीराधा-माधवकी कृपासे उनके बिरले प्रेमी भक्त वैसे ही जानते हैं, जैसे अनुभवी रत्न-व्यापारी—जौहरी काँच तथा असली हीरेको पहचानते और उनका मूल्य जानते हैं। काम या काममूलक शृङ्गार इतनी भयानक वस्तु है कि वह केवल कल्याण-साधनसे ही नहीं गिराता, सर्वनाश कर डालता है। कामकी दृष्टि रहती है अधः इन्द्रियोंकी तृप्तिकी ओर एवं प्रेमका लक्ष्य रहता है ऊर्ध्वतम सर्वानन्दस्वरूप भगवान्‌के आनन्दविधानकी ओर। कामसे अधःपात होता है, प्रेमसे दिव्यातिदिव्य भगवद्रसका दुर्लभ आस्वादन प्राप्त होता है। कामके प्रभावसे विद्वान्‌की विद्वत्ता, बुद्धिमान्‌की बुद्धि, त्यागीका त्याग, संयमीका संयम, तपस्वीकी तपस्या, साधुकी साधुता, विरक्तका वैराग्य, धर्मात्माका धर्म और ज्ञानीका ज्ञान—ये सभी बात-की-बातमें नष्ट हो जाते हैं।

इसीसे बड़े-बड़े विद्वान् भी 'राधा-प्रेम' के नामपर, उज्ज्वल शृङ्गार-रसके नामपर पापाचारमें प्रवृत्त हो जाते हैं और अपनी विद्वत्ताका दुरुपयोग करके लोगोंमें पापका प्रसार करने लगते हैं।

अतएव जहाँ भी लौकिक दृष्टि है, भौतिक अङ्ग-प्रत्यङ्गोंकी स्मृति है, उनके सुख-साधनकी कल्पना है, इन्द्रिय-भोगोंमें सुखकी भावना है; वहाँ इस दिव्य शृङ्गार-रसके अनुशीलनका तनिक भी अधिकार नहीं है। रति, प्रणय, स्नेह, मान, राग, अनुराग और भावके उच्च स्तरोंपर पहुँची हुई श्रीगोपाङ्गनाओंमें सर्वोच्च 'महाभाव'-रूपा श्रीराधाकी काम-जगत्से वैसे ही सम्बन्ध-लेश-कल्पना नहीं है, जैसे सूर्यके प्रचण्ड प्रकाशमें अन्धकारकी कल्पना नहीं है। इस रहस्यतत्त्वको भलीभाँति समझकर इसी पवित्र भावसे जो इस राधा-माधवके शृङ्गारका अनुशीलन करते हैं, वे ही वास्तवमें योग्य अधिकारका उपयोग करते हैं। नहीं तो यह निश्चित समझना चाहिये कि जो लोग काममूलक वृत्तिको रखते हुए इस शृङ्गार-रसके क्षेत्रमें प्रवेश करेंगे, उनकी वही दुर्दशा होगी, जो मधुरताके लोभसे हलाहल विषपान करनेवालेकी, या शीतलता प्राप्त करनेकी अभिलाषासे प्रचण्ड अग्निकुण्डमें उतरनेवालेकी होती है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि योग्य अधिकारी ही इस श्रीराधारानीके दिव्य शृङ्गार-राज्यमें प्रवेश कर सकते हैं। इस दिव्य प्रेम-जगत्में प्रवेश करते ही एक ऐसे अनिर्वचनीय परम दुर्लभ विलक्षण दिव्य चिदानन्दमय रसकी उपलब्धि होती है कि उससे समस्त विषय-व्यामोह तो सदाके लिये मिट ही जाता है, दुर्लभ-से-दुर्लभ दिव्य देवभोगोंके आनन्दसे ही नहीं, परम तथा चरम वाञ्छनीय ब्रह्मानन्दसे भी अरुचि हो जाती है। श्रीराधा-माधव ही उसके सर्वस्व होकर उसमें बस जाते हैं और उसको अपना स्वेच्छा-संचालित लीला-यन्त्र बनाकर धन्य कर देते हैं।

* * *

मनुष्यको कितना चाहिये?

एकोऽपि पृथिवीं कृत्स्नामेकच्छत्रां प्रशास्ति च। एकस्मिन्नेव राष्ट्रे तु स चापि निवसेन्नृपः॥
तस्मिन् राष्ट्रेऽपि नगरमेकमेवाधितिष्ठति। नगरेऽपि गृहं चैकं भवेत् तस्य निवेशनम्॥
एक एव प्रदिष्टः स्यादावासस्तद्गृहेऽपि च। आवासे शयनं चैकं निशि यत्र प्रलीयते॥
शयनस्यार्धमेवास्य स्त्रियाश्चार्धं विधीयते। तदनेन प्रसङ्गेन स्वल्पेनैवेह युज्यते॥
सर्वं ममेति सम्मूढो बलं पश्यति बालिशः। एवं सर्वोपयोगेषु स्वल्पमस्य प्रयोजनम्॥
तण्डुलप्रस्थमात्रेण यात्रा स्यात् सर्वदेहिनाम्। ततो भूयस्तरो भोगो दुःखाय तपनाय च॥

जो राजा अकेला ही समूची पृथ्वीका एकच्छत्र शासन करता है, वह भी किसी एक ही राष्ट्रमें निवास करता है। उस राष्ट्रमें भी किसी एक ही नगरमें रहता है। उस नगरमें भी किसी एक ही घरमें उसका निवास होता है। उस घरमें भी उसके लिये एक ही कमरा नियत होता है। उस कमरेमें भी उसके लिये एक ही शय्या होती है, जिसपर वह रातमें सोता है। उस शय्याका भी आधा ही भाग उसके पल्ले पड़ता है। उसका आधा भाग उसकी रानीके काम आता है। इस प्रसङ्गसे वह अपने लिये थोड़ेसे ही भागका उपयोग कर पाता है। तो भी वह मूर्ख गवाँर सारे भूमण्डलको अपना ही समझता है और सर्वत्र अपना ही बल देखता है। इस प्रकार सभी वस्तुओंके उपयोगोंमें उसका थोड़ा-सा ही प्रयोजन होता है। प्रतिदिन सेरभर चावलसे ही समस्त देहधारियोंकी प्राणयात्राका निर्वाह होता है। उससे अधिक भोग दुःख और संतापका कारण होता है। (महाभारत, अनुशासनपर्व १४५)

* * *

कर्तव्यपरायणता और शरणागति

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय संत स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

किसी भी साधकको किसी भी अप्राप्त वस्तु, सामर्थ्य और योग्यताकी आवश्यकता नहीं है; परंतु मिले हुएका दुरुपयोग नहीं करेंगे—इस निर्णयकी सभीको आवश्यकता है। हम इस बातको अपनी बात मान लें कि जो हमें मिला है उसका हम दुरुपयोग नहीं करेंगे और जो नहीं मिला है उसे माँगेंगे नहीं, क्योंकि जो दाता है वह हमसे अधिक हमारे सम्बन्धमें जानता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं केवल ईश्वरवादियोंकी बात कहता हूँ। आप ईश्वरवादी हों अथवा अनीश्वरवादी, भौतिकवादी हों अथवा अध्यात्मवादी, इससे कोई हानि नहीं होती; क्योंकि एक बात सभीके लिये समान है। कौनसी बात? पहली बात तो यह कि जो मिला है वह किसीका दिया हुआ है, अपना नहीं है और दूसरी बात यह कि वह अपने लिये नहीं है। जो भी आपको मिला है वह न आपका है, न आपके लिये है। किसीका दिया हुआ है और किसीके लिये है, तो जिसके लिये है उसीका नाम जगत् है और जिसका दिया हुआ है; आस्तिक भाषामें उसीका नाम प्रभु है। जिस भाईको, जिस बहनको जो मिला है, वह प्रभुका दिया हुआ है और वह सब जगत्के लिये है; फिर अपने लिये क्या है? भैया, अपने लिये तो प्रभु हैं। अपनेको प्रभुसे क्या मिलेगा? यह तो बात कोई ज्यादा मूल्यवान् नहीं है। अपनेसे प्रभुको मिलेगी आत्मीयता, प्रियता, आस्था और विश्वास—ये सारी बातें साधकसे साध्यको मिलती हैं और यही बात मूल्यवान् है। तो क्या ये साधककी अपनी वस्तुएँ हैं? नहीं-नहीं, साध्यने दी हैं; इसलिये कि हम ये तुम्हें दिये देते हैं, तुम हमें वापस लौटा देना। फिर हम तुम्हारे दिये हुएसे अपनेको कृतकृत्य मानेंगे। ऐसा साध्यको क्यों सूझा? यह तो वे ही जानें, अपनेको पता नहीं; परंतु बात मेरी दृष्टिसे अक्षरशः सत्य है।

आपके ऊपर कितना दायित्व रह गया? यदि दिये हुएको अर्थात् मिले हुएको अपना मानकर दोगे, तो उसके बदलेमें बहुत-सा मिलेगा और उन्हींका मानकर दोगे तो स्वयं वे मिलेंगे। इतनीसी बात है, भाई! है तो मिला हुआ। किससे मिला हुआ है? जिसकी आपने सत्ता स्वीकार की। यदि जगत्की सत्ता स्वीकार की तो जगत्से मिला है; प्रभुकी सत्ता स्वीकार की तो प्रभुसे मिला है।

आपको जो मिला है उसका आप दुरुपयोग नहीं करेंगे—क्या यह बात आपको असम्भव मालूम होती है? जो मिला है उसका आप दुरुपयोग नहीं करेंगे, यह निर्णय करना यदि असम्भव नहीं है तो यह निर्णय भविष्यके लिये नहीं छोड़ना है। इस निर्णयमें किसी औरका आश्रय भी नहीं लेना है। स्वयंके द्वारा ही यह निर्णय कर लेना है कि हमें जो कुछ भी मिला है, उसका हम दुरुपयोग नहीं करेंगे। इस निर्णयके पश्चात् भी यदि आप दुरुपयोग कर बैठे तो अपनेको असमर्थ मानकर उससे व्यथित होना बहुत आवश्यक है। साधकके जीवनमें जो असमर्थता है वह इस अर्थमें नहीं है कि जो उसे करना चाहिये था, वह कर नहीं सकता; बल्कि इस अर्थमें होनी चाहिये कि जो उसे करना चाहिये था वह उसने किया नहीं। एक तो असमर्थता ऐसी है कि अंधेको देखनेकी शक्ति नहीं है, वह बेचारा देख नहीं सकता। यह नहीं, इस प्रकारकी असमर्थता साधकके जीवनमें नहीं आती है। साधकके जीवनमें इस प्रकारकी असमर्थता है कि जिसे वह कर सकता है, उसे उसने नहीं किया। सच पूछिये तो वही शरणागतिका अधिकारी है, परंतु आजकल शरणागतिके लिये उत्साहित किया जाता है, शरण्यकी महिमा गाकर। जैसे कोई कामुक पुरुषसे कहे कि अमुक स्त्रीकी नाक बड़ी अच्छी है, उसकी आँखें बड़ी सुन्दर हैं, उसके कान बड़े अच्छे हैं, उसकी वाणीमें बड़ा रस है। ऐसा क्यों होता है? इसलिये कि इस वर्णनसे उसकी कामना तीव्र हो जाय, यह आजकलकी प्रथा है। परंतु वास्तवमें यह अपने प्यारेका अपमान है। आप विचार करें, बड़ी गम्भीरतासे विचार करें। अपनी असमर्थताकी व्यथा यदि हमें शरणागत नहीं कर सकती और सामर्थ्यका सद्व्यय यदि हमें असंगता नहीं दे सकता तो क्या वास्तवमें शरणागति होगी भी? क्या वास्तवमें असंगता होगी? यदि

मिले हुएका दुरुपयोग आप नहीं रोक सकते तो क्या आपमें कर्तव्यपरायणता आयेगी? कदापि नहीं। अतः मिले हुएका हम दुरुपयोग नहीं करेंगे; इस निश्चयके बाद कर्तव्यपरायणता आप चाहोगे तो आ जायगी, न चाहोगे तो आ जायगी। परंतु एक बात और विशेष आयेगी। कौन-सी बात? यह कि उस कर्तव्यपरायणताका अभिमान नहीं बनेगा। आप कहें कि यह क्यों नहीं कहते कि हम तो मिले हुएका सदुपयोग करेंगे। यह क्यों कहें कि दुरुपयोग नहीं करेंगे। यदि आप कहें कि हम मिले हुएका सदुपयोग करेंगे तो कर्तव्यपरायणताके आधारपर आपका सीमित अहं जीवित रहेगा; यह क्षति होगी। इसलिये यह मत सोचिये कि हम सत्य बोलेंगे, बल्कि यह सोचिये कि हम झूठ नहीं बोलेंगे। यह मत सोचिये कि हम किसीकी सेवा करेंगे, बल्कि यह सोचिये कि हम किसीको हानि नहीं पहुँचायेंगे। यह मत सोचिये कि हम किसीको आदर देंगे; परंतु यह सोचिये कि हम किसीका अनादर नहीं करेंगे। यह मत सोचिये कि हम किसीका भला करेंगे; बल्कि यह सोचिये कि हम किसीका बुरा नहीं करेंगे। क्यों? इसलिये कि जो निर्णय निषेधात्मक होता है उसमें सामर्थ्यकी अपेक्षा नहीं होती, उसका अभिमान नहीं होता, उससे अहं सुन्दर नहीं बनता; अहंका नाश होता है। इसलिये यदि आप विश्राम चाहते हैं तो विश्राम चाहे साधन हो, चाहे साध्यरूप हो; विश्राम उसीको मिलेगा जो मिले हुएका दुरुपयोग नहीं करेगा। उसको जरूर विश्राम मिलेगा। वह चाहे तो मिले, न चाहे तो मिले। आप विचार कीजिये, जिस समय आपने यह निर्णय कर लिया कि हम मिले हुएका दुरुपयोग नहीं करेंगे, उसी समय दो स्थितियाँ आपके सामने आ जायँगी—या तो सद्व्यय होने लगेगा या विश्राम मिलेगा। जब सद्व्यय होने लगे तब एक सजगता रखनी होगी, वह यह कि यह मत मान बैठिये कि हमने किया था। क्यों? आपने दुरुपयोग न करनेका निर्णय किया। आपने सद्व्यय करनेकी प्रतिज्ञा नहीं की है। अतः जब सद्व्यय होने लगे तब उसका अभिमान मत कर बैठना। इससे क्या लाभ होगा? तो भैया, फल कौन माँगता है? जो कुछ करता है। जब कुछ किया ही नहीं, वह फल क्यों माँगेगा? निष्कामता आ जायगी कि नहीं? फलासक्ति मिट जायगी कि नहीं? आप विचार करें। आप कुछ तब माँगते हैं जब आप कुछ कर्म करते हैं, तभी आप फलप्राप्तिके अधिकारी भी होते हैं; किंतु जब आपने कुछ किया ही नहीं, तब आपको फल माँगनेका क्या अधिकार है? देखिये, जहाँ करनेका कुछ अभिमान नहीं मालूम होता, वहाँ फलमें आसक्ति भी नहीं मालूम होती, फलकी आशा भी नहीं होती, फलका चिन्तन भी नहीं होता। जब करनेका अभिमान रहता है, तभी फलका चिन्तन भी रहता है, फलकी आसक्ति भी रहती है। इसलिये जो वर्तमान कर्तव्य-कर्म आपने किया, यदि उसके करनेके अन्तमें उसकी स्मृति आती है, अथवा उसके फलकी स्मृति होती है, अथवा निरन्तर भविष्यके कामका स्मरण आता रहता है तो समझना चाहिये कि सद्व्यय करनेका अभिमान है और जिसको सत्य बोलनेका अभिमान है वह चाहे युधिष्ठिर ही क्यों न हो, कभी-न-कभी झूठ अवश्य बोलेगा।

आप सोचिये, भगवान् श्यामसुन्दरको क्या मजाक सूझा! आजतक आपने किसीसे नहीं सुना होगा, हमने तो किसी कथावाचकसे भी नहीं सुना कि युधिष्ठिर झूठ बोले। यह सुना कि कृष्ण बड़ा नटखट था, युधिष्ठिरसे झूठ बुलवा लिया। यही न कहते हैं सब लोग? कोई नहीं कहता कि युधिष्ठिर झूठ बोले। जरा सोचिये तो, उस नटखटका नटखटपन तो देखिये! यदि पाण्डवोंसे यह बात पूछी जाय कि भैया! यह बताओ कि विजय-कामना तुम्हारे मनमें थी कि नहीं, तो कोई अस्वीकार नहीं कर सकता है? पाण्डव कह सकते हैं कि हम विजय नहीं चाहते थे? मैं आपसे पूछता हूँ कि कामनाके रहते हुए कोई सत्यका अनुसरण कर सकता है? यह प्यारे श्यामसुन्दरकी महिमा देखो। हाय, कलंक अपने ऊपर और विजय दूसरेको! विचार करो, ऐसा दोस्त मिलेगा दुनियामें जो कलंक अपने ऊपर ले और कामनापूर्ति तुम्हारी करे? हमारे प्यारे इस ढंगसे काम करते हैं। आपके पास तो कुछ था ही नहीं हजरत, जो था वह मिला हुआ था और उसका सदुपयोग करनेके लिये विवेकरूपी विधान भी मिला था। विधान आपके पास, सामर्थ्य आपके पास और करनेकी स्वाधीनता आपके

पास, फिर आप उसका अभिमान करते हैं! यदि अभिमान करें तो कोई ऐसा जज नहीं है जो फाँसीका हकदार न हो जाय। यदि जज लिखता है कि मैंने फाँसी दी तो बदलेमें उसे फाँसी मिलेगी कि नहीं? यदि मजिस्ट्रेट लिखता है कि मैंने सजा की तो उसके बदलेमें उसको सजा मिलनी चाहिये कि नहीं? हर मजिस्ट्रेट जानता है कि पावर सरकारकी है, मेरी नहीं है, कानून सरकारका है, मेरा नहीं है। सरकारकी दी हुई पावरसे, सरकारके दिये हुए विधानसे वह काम कर देता है। इसलिये मजिस्ट्रेट अपराधी नहीं होता। उसी प्रकार हमें और आपको वस्तु मिली है, योग्यता मिली है, सामर्थ्य मिली है, विवेकरूपी विधान मिला है और प्रभुने उसके उपयोगकी पूरी स्वाधीनता दी है। तो यदि हम यह निर्णय कर लें कि मिले हुएका दुरुपयोग नहीं करेंगे, तो आप सच मानिये, कर्तव्यपरायणताका अवतरण होगा आपके जीवनमें। यह जो कर्तव्यपरायणता है, मालूम है वह क्या है? यह भौतिक जगत्‌की साधना है। कर्तव्यपरायणताके दो फल हैं—करनेके रागकी निवृत्ति और सुन्दर समाजका निर्माण। इसलिये जब मानवके हृदयमें कर्तव्यपरायणताकी अभिव्यक्ति होती है तो उसे राष्ट्रकी आवश्यकता नहीं रहती है, यह पहचान है। जिस समाजको राष्ट्रकी आवश्यकता रहती है, उस समाजके बारेमें समझना चाहिये कि वह कर्तव्यपरायणतासे बहुत दूर है, चाहे उसने बढ़िया सड़कें बना दी हों, चाहे सबको खाना दे दिया हो; सम्मान दे दिया हो, पर कर्तव्यसे बहुत दूर है। उसका परिणाम मालूम है क्या होगा? दो देशोंमें, दो दलोंमें, दो व्यक्तियोंमें संघर्ष होगा। राष्ट्रके द्वारा शान्तिकी स्थापना सम्भव नहीं है। इसलिये भाई, विश्राममें जीवन है, विश्राम ही जीवन है। दोनों ही बातें ठीक हैं। 'विश्राममें जीवन है, विश्राम ही जीवन है', यदि यह पाठ हमें याद हो जाय, यदि हम इसे स्वीकार कर लें, तो विश्राम मिल सकता है। आप जानते हैं, विश्राममें कोई पराधीन नहीं है। क्यों? आप जो कुछ करते हैं उसके पूर्व और उसके अन्तमें क्या विश्राम नहीं था? क्या बोलनेसे पहले और न बोलनेमें विश्राम था। बोलनेके अन्तमें क्या विश्राम नहीं है? तो विश्राम अप्राप्त नहीं है भाई! विश्राम तो प्राप्त ही है। अब उस प्राप्त विश्राममें आपकी आस्था कितनी है, आपकी श्रद्धा कितनी है, आपकी आत्मीयता कितनी है, आपका उसमें विश्वास कितना है! किसमें? जो विश्राम प्राप्त है उसमें। इस दृष्टिसे हम दुरुपयोग नहीं करेंगे, यह हम सबके लिये अनिवार्य है, अत्यन्त आवश्यक है।

अब आगे सोचिये कि जब सदुपयोग होने लगे, तब उसका अभिमान मत करना कि हमने किया है। उससे क्या होगा कि किये हुएके फलकी जो आसक्ति थी, किये हुएका जो चिन्तन होता था, उसका अपने-आप नाश हो जायगा; अत: जहाँ किये हुएके फलकी आसक्तिका नाश हो गया, किये हुएका चिन्तन-नाश हो गया, वहाँ अल्पकालके लिये विश्राम आ जायगा। फिर जो कार्यक्रम अनन्तके विधानसे निश्चित है उसकी उत्पत्ति होगी और उसकी पूर्ति होकर उसकी निवृत्ति होगी। इस प्रकार प्रत्येक कार्यके आदि एवं अन्तमें विश्राम मिलेगा। उसी विश्राममेंसे भौतिकवादीको शक्ति अर्थात् सामर्थ्य और अध्यात्मवादीको मुक्ति तथा आस्तिकवादीको भक्ति मिलेगी। अथवा यों कहो कि उस विश्राममें सामर्थ्य, असंगता और विरहकी जागृति होगी। विरहकी जागृतिमें प्रेमका प्रादुर्भाव है। असंगता ही स्वाधीनताकी जननी है और सामर्थ्य ही कर्तव्यका प्रतीक है। इस दृष्टिसे जीवन कर्तव्यपरायणता, असंगता और शरणागतिसे युक्त होगा। विश्राम योगानन्द है, स्वाधीनता निजानन्द है और 'वह' प्रेमानन्द है। इस प्रकार हम सबका जीवन योगानन्द, निजानन्द और प्रेमानन्दसे अभिन्न होगा, यह निर्विवाद सत्य है।

* * *

लोग गर्भ-परीक्षण करवाते हैं और गर्भमें कन्या हो तो गर्भपात करा देते हैं, क्या यह नारी-जातिको समान अधिकार देना है? क्या यह नारी-जातिका सम्मान करना है?

* * *

साधकोंके प्रति—

मुक्ति और प्रेम

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

परमात्माके अन्तर्गत जीव है और जीवके अन्तर्गत संसार है। कारण कि संसारकी सत्ता जीवके अधीन है—**'ययेदं धार्यते जगत्'** (गीता ७। ५) और जीवकी सत्ता परमात्माके अधीन है—**'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः'** (गीता १५। ७)। जब जीव संसारको अपनेसे अधिक महत्त्व देता है, तब वह बँध जाता है और जब अपनेको संसारसे अधिक महत्त्व देता है, तब वह मुक्त (स्वरूपमें स्थित) हो जाता है। परंतु जब वह अपनेसे भी अधिक परमात्माको महत्त्व देता है, तब वह भक्त (प्रेमी) हो जाता है।

जबतक जीव शरीर-संसारको अपनेसे भी अधिक महत्त्व देता है, तबतक उसका अभाव (दारिद्र्य) नहीं मिटता। उसको अनन्त ब्रह्माण्डोंका आधिपत्य मिल जाय तो भी उसका अभाव बना रहता है। अभाव होनेसे उसके जीवनमें दो बातें रहती हैं—मिली हुई वस्तुमें ममता और जो नहीं मिली है, उसकी कामना। ममता और कामनाके रहते हुए मुक्ति नहीं होती और मुक्ति हुए बिना अभाव नहीं मिटता। जब जीव अपनेको संसारसे अधिक महत्त्व देता है अर्थात् उसने जितनी सच्चाईसे, दृढ़तासे, विश्वाससे और निःसंदेहतासे शरीरकी सत्ता-महत्ता मानी है, उतनी ही सच्चाईसे, दृढ़तासे, विश्वाससे और निःसंदेहतासे स्वयं (स्वरूप)-की सत्ता-महत्ता मान लेता है और अनुभव कर लेता है, तब उसके जीवनमें अभावका सर्वथा अभाव हो जाता है। अभावका अभाव होनेपर प्राप्त वस्तु, परिस्थिति आदिमें ममता नहीं रहती। अप्राप्तकी कामना मिट जाती है। भोग और संग्रहकी रुचिका नाश हो जाता है। प्राप्त वस्तुका दुरुपयोग नहीं होता। मृत्युका भय मिट जाता है। फिर जीवन-निर्वाहकी आवश्यक वस्तुएँ उसको समयसे पहले ही प्राप्त होने लगती हैं; जैसे—जन्मसे पहले माँका दूध प्राप्त होता है। लोभ न रहनेसे वस्तुएँ उसके पास आनेके लिये लालायित रहती हैं।

एक ही दोष अथवा गुण स्थानभेदसे अनेक रूपसे प्रकट होता है। शरीर (अनित्य, नाशवान्)-को अपनेसे अधिक महत्त्व देना अर्थात् शरीरको अपना स्वरूप मानना मूल दोष है, जिससे सम्पूर्ण आसुरी-सम्पत्ति उत्पन्न होती है। अपने चेतन स्वरूप (नित्य, अविनाशी)-को शरीरसे अधिक महत्त्व देना मूल गुण है, जिससे सम्पूर्ण दैवी-सम्पत्ति प्रकट होती है। अपनेको शरीरसे अधिक महत्त्व देनेका तात्पर्य है कि हमारी सत्ता शरीरके अधीन नहीं है अर्थात् शरीरके बिना भी हम रह सकते हैं और रहते हैं, जी सकते हैं और जीते हैं। शरीरके सम्बन्धसे हम बँधते हैं और सम्बन्ध-विच्छेदसे मुक्त होते हैं। शरीर संसारसे अभिन्न है; अतः एक शरीरके साथ सम्बन्ध होनेसे संसारमात्रके साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है।

जब जीव परमात्माको अपनेसे भी अधिक महत्त्व देता है अर्थात् वह जिस सच्चाईसे, दृढ़तासे, विश्वाससे और निःसंदेहतासे शरीरको अपना और अपने लिये मानता है, उसी सच्चाईसे, दृढ़तासे, विश्वाससे और निःसंदेहतासे परमात्माको अपना और अपने लिये मान लेता है, तब वह भक्त (प्रेमी) हो जाता है। परमात्माको अपनेसे अधिक महत्त्व देनेसे मुक्तिका रस भी फीका हो जाता है!

परमात्मा सम्पूर्ण संसारके परम प्रकाशक, परम आधार, परम आश्रय और परम अधिष्ठान हैं। जीव उस परमात्माका ही अंश है। जो अपनेसे अभिन्न है, उस परमात्माको अपनेसे अलग मानना और जो अपनेसे भिन्न है, उस शरीर-संसारको अपना और अपने लिये मानना सम्पूर्ण दोषोंका मूल है। परमात्माको अपना मानना सत्‌का संग है और शरीर-संसारको अपना मानना असत्‌का संग है। जो मिला है और बिछुड़ जायगा, उस शरीर-संसारको अपना माननेसे ही जो वास्तवमें अपना है, वह अपना नहीं दीखता। इसीका परिणाम है कि मनुष्यको अपने जीवनमें अशान्ति, दुःख, अभाव, नीरसता, पराधीनता, बन्धन आदि दोषोंका अनुभव होता है। जबतक मनुष्यको शरीर अपना और अपने लिये

प्रतीत होता रहेगा, तबतक वह कितना ही साधन कर ले, तपस्या कर ले, अभ्यास कर ले, श्रवण-मनन-निदिध्यासन कर ले, उसको परमशान्ति नहीं मिलेगी, उलटे उसमें अभिमान पैदा हो जायगा कि मैं इतना जानकार हूँ, मैं तपस्वी हूँ, मैं ऊँचा साधक हूँ आदि। अभिमानसे सब दोष उत्पन्न होते हैं और पुष्ट होते हैं। तात्पर्य है कि शरीरको अपना मानकर वह कुछ भी करेगा, उससे उसके अभावकी पूर्ति नहीं होगी। इसलिये यह सिद्धान्त है कि जो मिला है और बिछुड़ जायगा, वह हमारे कुछ काम नहीं आ सकता। हाँ, उसके द्वारा दूसरोंकी सेवा कर सकते हैं; क्योंकि वह दूसरोंका तथा दूसरोंके लिये ही है। सेवा अथवा त्यागके सिवाय उसका और कोई उपयोग नहीं है।

अनेक शास्त्रोंका अध्ययन करनेसे, बहुत व्याख्यान सुननेसे, बहुत-सी बातें जान लेनेसे ही जीवनमें दुःख, अशान्ति, अभाव, पराधीनता आदिका नाश नहीं हो सकता। उससे मनुष्यकी बुद्धि बलवती बन सकती है, पर सम (स्थिर) नहीं हो सकती। बुद्धि बलवती होनेसे मनुष्य अच्छा व्याख्यान दे सकता है, पुस्तकें लिख सकता है, अनेक विद्याएँ सीख सकता है, शास्त्रार्थमें दूसरेको हरा सकता है, बड़े-बड़े प्रश्नोंका उत्तर दे सकता है, पर पराधीनतासे नहीं छूट सकता। अगर मनुष्य चाहे तो वह शास्त्रोंके अध्ययनके बिना भी यह अनुभव कर सकता है कि जो वस्तु मिली है और बिछुड़ जायगी, वह अपनी और अपने लिये नहीं है। उसको अपनी और अपने लिये न माननेपर ममता और कामना नहीं रहती। ममता और कामना न रहनेपर बुद्धि सम हो जाती है। बुद्धि सम होनेसे असत्से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है अर्थात् शरीर-संसारकी सत्ता, महत्ता और अपनापन सर्वथा नहीं रहता।

जब मनुष्य अपनेको अधिक महत्त्व देता है, तब वह मुक्त हो जाता है। मुक्त होनेपर 'मैं मुक्त हूँ' ऐसा एक सूक्ष्म अहम् (अभिमानशून्य अहम्) रह जाता है, जिससे दार्शनिक मतभेद पैदा होते हैं। परंतु जब वह अपनेसे भी परमात्माको अधिक महत्त्व देता है, तब उसका वह सूक्ष्म अहम् प्रेममें परिणत हो जाता है, आत्मरति भगवद्रतिमें परिणत हो जाती है*। प्रेमकी प्राप्ति होनेपर सभी भेद मिट जाते हैं। मुक्ति तो साधन है, पर प्रेम साध्य है। प्रेमकी प्राप्तिमें ही मानव-जीवनकी वास्तविक पूर्णता है, सफलता है।

मुक्ति होनेपर जिज्ञासाकी पूर्ति हो जाती है और दुःखोंकी सर्वथा निवृत्ति हो जाती है; परंतु प्रेमकी प्राप्ति होनेपर न तो प्रेमकी पूर्ति होती है, न क्षति होती है और न निवृत्ति ही होती है, प्रत्युत उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है—'**प्रतिक्षणवर्धमानम्**' (नारद० ५४)। इस प्रेमकी प्राप्ति भगवान्में अपनापन करनेसे होती है—'***मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई***'। कारण कि भगवान्ने भोग और मोक्ष तो मनुष्यके लिये बनाये हैं, पर मनुष्यको अपने लिये बनाया है कि वह मेरेसे प्रेम करे, मैं उससे प्रेम करूँ। भगवान्ने भोगके लिये क्रियाशक्ति दी है, मोक्षके लिये विवेक दिया है और अपने लिये प्रेम दिया है। प्रेमकी भूख भगवान्में भी है—'**एकाकी न रमते**'। प्रेम भगवान्को भी तृप्त करनेवाला है। इसलिये प्रेम सबसे ऊँची चीज है। प्रेमसे आगे कुछ नहीं है।

⁂

जब मनुष्यकी हत्याको बहुत बड़ा पाप मानते हैं और अपराधी मनुष्यको भी फाँसीकी सजा न देकर आजीवन कारावासकी सजा देते हैं, तो फिर यह गर्भपात क्या है? क्या यह निरपराध मनुष्यकी हत्या नहीं है?

गर्भमें आये जीवको अनेक जन्मोंका ज्ञान होता है, इसलिये भागवतमें उसको 'ऋषि' (ज्ञानी) नामसे कहा गया है। अतः गर्भपात करनेसे एक ऋषिकी हत्या होती है। इससे बढ़कर और पाप क्या होगा?

⁂

---

* ज्ञानमार्गी अपनेको अधिक महत्त्व देता है और भक्तिमार्गी भगवान्को अधिक महत्त्व देता है।

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता—

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ७१८ से आगे]

भजन सौं तृप्त न हौन पावै। जितनौं क्षण भजनमें व्यतीत होय, वाही क्षण कूँ सार्थक समझै। भजनमें रुचि बढ़ातौ ही रहै। बड़े प्रेमके साथ भजन करै। श्रीभगवत्-नामके उच्चारणमें शीघ्रता न करै। भजनके समय अन्य कार्यन कौ विचार न उठन पावै। वास्तवमें जीवन तौ याही क्षण है—ऐसौ विचारिकैं बड़े उत्साह सौं भजन करै। जैसौ चहिये, वैसौ भजन, मैं न करि पायौ, यह खेद रहै, किंतु अपनी ओर सौं भजन करिवेमें कबहूँ त्रुटि न हौन पावै।

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥
(रा०च०मा० २। ३२६। १)

ऐसौ भजन बनै, तब समझै कि भजन भयौ। सुख मिलै भजन करिवे ते एवं दुःख कौ कारण केवल एक ही होय, भजनमें कमी है जानौं। ऐसौ भाव बनै कि, निरन्तर भजन ही करूँ, और कछु न करनौं-धरनौं परै। जब हठीलौ मन न मानै, याचना पै उतारू है ही जाय, तब यही माँगै कि—मेरे जीवन-सर्वस्व! मोसौं अपनौं भजन कराय लेउ। वास्तवमें मुक्तिप्रद सच्ची याचना तौ केवल यही है। अन्य याचनाएँ तौ भव-बन्धनमें बन्धन ही दृढ़ करावैंगी।

सर्वोत्तम जीवन तौ यही है कि बन्यौ रहै संसारी, किंतु अन्तःकरणमें प्रियतम सौं (प्रभु सौं) मिलिवेकी उत्कट उत्कण्ठा उठती ही रहै। ऐसे उच्च भावन कूँ यथाशक्ति प्रकट न हौवन देय। केवल पीकैं चुपचाप ही बैठि जाय। सुअवसर कूँ प्रमादमें कबहूँ न आमन देय। याकी सार्थकता श्रीप्राणनाथके रिझायवेमें ही है। यह स्मरण राखै कि मैं बहुत कछु करि सकूँ हूँ। यदि न करूँ, तौ यह मेरी भारी भूल है। परिस्थिति बस जो कछु सामने आय परै, वाकूँ श्रीभगवान्की दैन समझिकैं सहर्ष स्वीकार करते भये, श्रीभगवत्-स्मरण कूँ सँभारते भये, संसारकी यात्रा पूर्ण करनौं चहिये। अत्यन्त विनीत भाव सौं श्रीप्राणनाथकी संनिधिमें केवल एक यही याचना होय—

अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥
(रा०च०मा० २। १०७। ८)

× × ×

या विश्व-प्रपञ्चमें सत् का है? और असत् का है? याकूँ ठीक-ठीक जान लैनौं ही ज्ञान है। अन्तःकरणमें प्रियतमके अतिरिक्त और कोई वासना न रहै—यह है वैराग्य। अपने इष्ट कूँ जो प्रिय होय तथा जासौं वे प्रसन्न हौते हौयँ, वही करनौं ही है—भक्ति। अपने और प्रियतमके मध्य जो उपस्थित है जाय, वाकौ त्याग करनौं ही है—त्याग। जो असत् जानिवेमें आयौ है, वासौं चित्त कौ सर्वथा हटि जानौं ही है—वैराग्य। और बाकौ तन-मन-बचन सौं सर्वथा त्यागि दैनौं ही है—त्याग। अब बच्यौ सत्। याकूँ पायवेके ताँईं प्रयत्न करनौं ही है—भक्ति। सेवामें निष्कामता तथा भाव कौ हौनौं परमावश्यक है। प्रियतमके सुखार्थ जो कियौ जाय है, वही है सेवा।

जाग्रत्की तौ दूरि स्वप्नमें हू प्रियतमके अतिरिक्त दूसरी वस्तु न आवै। सब स्थिति, परिस्थितिनमें केवल और केवल प्रियतम ही नैंन, मन, प्राण और तनमें समायौ रहै। यहाँ तक कि अपने शरीरकी हू सुधि न रहै, याही स्थिति कौ नाम है सिद्धावस्था। जहाँ जायकैं सबरे संकल्प और विकल्पन कौ उठनौं हूँ सर्वथा बंद है जाय है, वही है प्रियतम कौ देश। भजनानन्द तौ श्रीभगवत्-प्राप्ति सौं हूँ बढ़िकैं है। याही सौं भजन कौ आनन्द तौ भजन करिवे वारे कूँ अवश्य ही प्राप्त होय है। अब श्रीभगवत्-प्राप्ति कब होय? अनुभूति कब होय? ये श्रीभगवत् इच्छा पै निर्भर है। जब ये (प्रभु) चाहैं तब।

निन्दा करिवेकी का बात, सुननौं हू पाप है। सबरे अनर्थन कौ मूल है परदोष-दर्शन। याही सौं विरोध, घृणा, वैर, आदिक उत्पन्न हौयँ हैं। बहिर्मुखता, व्यवहारमें अति दक्षता, जन-संसर्गमें अभिरुचि, आत्मरति नहीं हौन देयँ हैं।

अवसर पै सावधान रहनौं ही यथार्थ सावधानता है। प्रेम-प्रासिके ताँईं तीव्रतम वैराग्य, सतत इष्ट-चिन्तन, अभिमान और ममता कौ सर्वथा त्याग परमावश्यक है।

स्वार्थमें विवेक नहीं और लोभमें अवधि नहीं होय है। औषधिमें पथ्य, प्रेममें तथ्य और व्रतमें नियमकी परमावश्यकता है। वयस, वपु, विद्या और वित्तमें ही वासना कौ वास होय है। वासना यदि सत्कर्ममें लगै, तौ सद्-वासना बनैं और यदि असत्-कर्ममें लगै, तौ असत्-वासना बनैं है। वासना कूँ यदि विवेकपूर्वक व्यवहार कियौ जाय, तौ वह वासना हू उपासना बनि जाय है। जाकूँ प्रमाद करिवेमें विलम्ब नहीं, पाप करिवेमें संकोच नहीं और अनादर करिवेमें विचार नहीं, वह राजसी प्रकृति कौ ही मान्यौ जाय है। औषधि जैसौ आहार, ऋषि जैसौ आचार और वेद तथा तत्त्व कौ विचार या पथमें परमावश्यक है।

× × ×

जो सतत श्रीभगवत्-चिन्तन करै है, वाकूँ अन्त समय श्रीभगवत्-स्मृति बनी ही रहै है। जब ताँईं प्रबल उत्कण्ठा न होय, तब ताँईं ही साधन कठिन जानि परै है। प्रबल उत्कण्ठा होते ही सब साधन सुलभ है जायँ हैं। चित्त कौ दुराग्रह, इन्द्रियन कौ अनिग्रह और वित्त कौ संग्रह साधक कौ काल है। जो श्रीभगवान् सौं विमुख करै, वही विषय है। दूसरी कोई हू वस्तुकी चाह जाकूँ मिटाय न सकै, वही है सच्ची चाह। समय, शक्ति और सम्पत्ति कौ उपयोग व्यर्थ, स्वार्थ या परार्थमें होय है। यदि व्यर्थमें होय, तौ नष्ट है जाय है, स्वार्थमें होय, तौ भोग्य प्राप्त होय है और यदि परार्थमें होय, तो अभ्युदय होय है।

काहू सौं विरोध और कोई वासना लैकैं न मरै, मृत्युके पूर्व ही इनकूँ मिटाय दे। कोई वासना न होय, न सत् और न असत्। दोउ प्रेमकी बाधक हैं। कोई शत्रु नहीं। सहिष्णुताकी पराकाष्ठा है जाय। कोई गारी दे, निन्दा करै, मारै—सब सह ले। अजातशत्रु बनै। बुद्धि जब तपोमयी और विवेकमयी बनै है, तब ही श्रीभगवत्-रतिकी पात्रता आवै है। तपोमयी कौ अर्थ है—भोग-विरुद्ध और विवेकमयी कौ अर्थ है—परदोष-दर्शन-रहित। जब इन दोऊनकी सिद्धावस्था होय है, तब ही प्रेम-राज्यमें प्रवेश पावै है। माया सौं तरिवेके ताँईं दृढ़ महदाश्रय और महत्की आज्ञा कौ प्राणपण सौं पालन ही एकमात्र उपाय है। दूसरौ कोई उपाय नहीं।

भक्ति-पथ कौ पथिक भूलिकैं हूँ कुमार्गमें पाँव नहीं धरै है। वैर कूँ हूँ जो प्रेममें परिवर्तित करि देय सोई वैष्णव। श्रीभगवान्में जो भाव क्षण-क्षण बढ़तौ रहै वह रति। भक्ति याजन करिवे वारे कूँ एक ही अन्तराय है—महद्-अपराध। याकौ कोई प्रायश्चित्त हू नहीं। जब प्रपञ्च बढ़ै, तब प्रमाद बनै। यासौं प्रपञ्च ही प्रमाद कौ जनक है। प्रमाद ही मोह तथा मृत्यु है। प्रपञ्च सौ बचनौं ही मुक्ति है। एकमात्र संत ही शान्ति, समता, सरलता, संतोष और स्नेहके धाम हैं। आश्रय और आशय केवल श्रीभगवान् कौ ही होय, तब ही साधन सफल होय है। मन पूर्ण रूप-सौं शान्त तौ तब ही होय है, जब केवल अपने श्रीसद्गुरुदेव और इष्ट कूँ ही अपनौं जीवन-सर्वस्व निश्चय करि लियौ जाय है। या निश्चयमें दृढ़ता हौनीं चहिये। उद्वेग तौ अपने किये सौं ही होय है। जब सहिष्णुता, क्षमा, धृति, दीनता, निरभिमानता आदिक हमारौ स्वभाव बनि जायँ हैं, तब हीं हमारी प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक विचार पवित्र बनैं हैं और तब ही स्वभाव दिन-व-दिन सरलाति सरल बनतौ जाय है। जब स्वभाव अति सरल और पवित्रतम बनि जाय है, तब ही जीवन पवित्रतम बनै है। पवित्रतम जीवन ही श्रीजीवनधन-सौं प्रेम करिवे कौ अधिकारी होय है।

लक्ष्यमें पूरी दृढ़ता होय तथा सांसारिक कोई चाह न होय। अपने-आप कूँ और अपने पूरे संसार कूँ इनकी सेवामें ही अर्पण करि दे। यदि पूरी सृष्टिमें अपने ताँईं कोई है, तौ केवल एक श्रीभगवान् ही हैं। तब समझै कि, अब मेरौ मुख इनकी ओर (प्रभुकी ओर) भयौ है। अब ही या मार्गमें प्रवेश नहीं मान्यौ जायगौ। प्रवेश तौ तब होयगौ, जब कोई महापुरुष बाँह पकरिकैं लै जायँगे। हाँ, ऐसी स्थिति जब जीव की बनै है, तब प्रभु काहू न काहू संत कूँ वा जीवकी बाँह पकरिवे भेजि ही देयँ हैं। संतके मिलते ही जब जीव अपने जीवनधन प्रभु सौं मिलिवे कूँ तड़फै है, तब संत वाकी बाँह पकरिकैं अपने प्रियतमकी ओर लैकैं धरि भागैं हैं। वा स्थितिमें बड़ी द्रुत गति सौं जीव कौ मार्ग तय है जाय है और अपने प्राणनाथकी परमसुखद गोदमें जाय बैठै है। जहाँ जायकैं ही सबरी वासना और उपासनान की इति-श्री होय है। [क्रमशः]

लीला-चिन्तन

श्रीकृष्णलीला-चिन्तन—

नन्दनन्दनकी भुवनमोहिनी वंशीवादन-लीला

किसीने नहीं जाना—व्रजेशतनयने वंशीवादनकी शिक्षा कब, किससे ली। एक दिन सहसा वह अमृतपूरका प्रवाह बह चला एवं समस्त व्रजवासी उसमें निमग्न हो गये। कुछ क्षणोंके लिये सबकी चेतना विलुप्त हो गयी; जब वे प्रकृतिस्थ हुए, तब भी अपने-आप निर्णय नहीं कर पाये कि यह क्या वस्तु है! कतिपय गोपसुन्दरियोंने अवश्य देखा—प्रस्फुटित पीतझिंटी पुष्पोंकी झुरमुटको परिवेष्टित कर गोपशिशु आनन्द-कोलाहल कर रहे हैं और उसके अन्तरालमें अपनेको छिपाये, अपने बिम्बारुण अधरोंपर हरित बाँसकी वंशी धारण किये श्रीयशोदाके नीलमणि स्वर भर रहे हैं। अपलक नेत्रोंसे जड पुत्तलिकाकी भाँति वे तो खड़ी-खड़ी देखती रह गयीं; पर उनके प्राणोंकी अनुभूतिका स्पर्श पाकर मानो पवन पुनः द्विगुणित चञ्चल हो उठा और उसने ही क्षणभरमें इतने विस्तृत व्रजपुरमें, व्रजपुरके प्रत्येक आवासमें, आवासके कोने-कोनेमें यह सूचना भर दी कि यह तो व्रजरानीके नीलमणिकी—नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रकी बजायी हुई मोहन वंशीध्वनि है!

यह ध्वनि वृन्दावनको झंकृत करके ही नहीं रह गयी। अन्तरिक्षको भी आत्मसात् करने ऊपर उठी, पातालको प्रकम्पित करने नीचे चली गयी। उधर तो मेघसमूह सहसा रुद्ध हो गये। स्वर्गायक तुम्बुरुकी दशा विचित्र हो गयी, आश्चर्यमें निमग्न विस्फारित नेत्रोंसे बारंबार वृन्दावनकी ओर झाँककर वह उस उन्मद नादका अनुसंधान पाना चाहता था। सनक-सनन्दन प्रभृति ऋषिवर्गका चिर-अभ्यस्त ध्यान टूट गया, विक्षिप्तचित्त होकर वे इस मधुर रवमें डूबने-उतराने लगे। विधाताके आश्चर्यका भी पार नहीं और उधर दानवेन्द्र बलिकी उत्सुकताकी सीमा नहीं; चिरशान्त-स्वभाव बलि आज अतिशय चञ्चल हो उठे। भोगीन्द्र अनन्तदेव भी आज घूर्णित होने लगे। समस्त ब्रह्माण्डका भेदन करती हुई यह ध्वनि सर्वत्र परिव्याप्त हो गयी, सब ओर रससिन्धु उमड़ चला—

रुन्धन्नम्बुभृतश्चमत्कृतिपरं कुर्वन्मुहुस्तुम्बुरुं
ध्यानादन्तरयन् सनन्दनमुखान् विस्मापयन् वेधसम्।
औत्सुक्यावलिभिर्बलिं चटुलयन् भोगीन्द्रमाघूर्णयन्
भिन्दन्नण्डकटाहभित्तिमभितो बभ्राम वंशीध्वनिः॥

(श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धुः)

व्रजपुर वृन्दावनका प्रत्येक अधिवासी वहीं आ पहुँचा, जहाँसे उन्मद नाद प्रसरित हो रहा था। किंतु श्रीकृष्णचन्द्र यह भीड़ देखकर संकुचित हो गये, वंशीको अधरोंसे हटाकर संकोच छिपानेके उद्देश्यसे किसी अन्य बाल्यक्रीडाका उपक्रम करने चले। इतनेमें व्रजरानी भी आ गयीं। उनके प्राणोंको भी इस मोहनध्वनिने स्पर्श किया था तथा उत्कण्ठाके प्रबल आवेगमें बहकर ही वे यहाँ आयी थीं। फिर तो श्रीकृष्णचन्द्रको अपने लज्जानिवारणका समुचित स्थान प्राप्त हो गया। वे दौड़कर जननीके कण्ठसे जा लगे, उनके अञ्चलमें अपना मुख छिपा लिया। व्रजरानीके नेत्र छल-छल करने लगे।

अब आजसे, इस क्षणसे गोपसुन्दरियोंकी दिनचर्यामें एक और नवीन कार्यक्रम बना। श्रीकृष्णचन्द्र जिसे जहाँ मिलते, बस, उसकी ओरसे एक ही प्रार्थना होती—'मेरे लाल! तनिक-सी वंशी तो बजा दे।' विशेषतः जब श्रीकृष्णचन्द्र व्रजेश्वरके, व्रजरानीके अङ्कको सुशोभित करते होते, उस समय दल-की-दल व्रजसुन्दरियाँ एकत्र हो जातीं और कहने लगतीं—

हे कृष्ण मातृकुचचूचुकचूषणेऽपि
नालं यदेतदधरोष्ठपुटं तवासीत्।
तेनाद्य ते कतिपयेषु दिनेष्वकस्मात्
कस्माद् गुरोरधिगतः कलवेणुपाठः॥

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

'कृष्णचन्द्र! मेरे नीलमणि! विचित्र बात है। भला, देखो—कहाँ तो तुम्हारे ये सुकोमल, नन्हे-से अधर-ओष्ठपुट जननीके स्तनपानके लिये भी समर्थ न थे और

कहाँ उसी अधरपर वंशी धारण कर इन्हीं कुछ दिनोंमें इतनी मधुर वंशी बजाना तुम सीख गये! अरे बताओ तो सही, इतने अल्प समयमें अकस्मात् इस मधुर वंशीवादनकी शिक्षा तुमने किस गुरुसे प्राप्त कर ली!'

निर्मञ्छनं तव नयामि मुखस्य तात
वेणुं पुनर्ललन वादय वादयेति।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू:)

'वत्स! मेरे लाल! तेरे चन्द्रमुखकी बलैया लेती हूँ। तू फिर वंशी बजा दे; बजा दे साँवरे, बजा दे!'

श्रीकृष्णचन्द्र भी व्रजपुरन्ध्रियोंका यह प्रोत्साहन पाकर बाबा-मैयाके समक्ष वंशीमें रस भरने लगते तथा वंशी उनके अधरोंका रस पाकर स्वयं रसमयी बनकर वृन्दावनमें सरिता प्रवाहित कर देती—

ऊचुर्यदा स्वजननीजनकोपकण्ठे
तं वादयन्नथ तदा सरसीकरोति॥

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू:)

उस समय ऊपर आकाशका दृश्य भी देखने ही योग्य होता। अन्य सुर-समुदायकी बात दूर, हंसवाहन चतुर्मुख स्रष्टाकी प्रेमविकृति दर्शनीय होती—

अष्टाभिः श्रुतिपुटकैर्नववैणवकाकलीं कलयन्।
शतधृतिरपि धृतिमुक्तो मरालपृष्ठे मुहुर्लुठति॥

(विदग्धमाधव)

'अपने आठ कर्णपुटोंके द्वारा उस नवीन मधुरास्फुट वेणुध्वनिका रस-पान करते हुए ब्रह्मा विभोर होने लगते, उनका धैर्य छूट जाता तथा वे वहीं हंसके पृष्ठदेशपर प्रेमविवश हो बारंबार लोटने लगते।'

सुरेन्द्रके सहस्र नेत्रोंसे अश्रुबिन्दु झरने लगते। सरलमति गोप आश्चर्यचकित होकर देखते—गगन मेघशून्य है, फिर भी बूँदें गिर रही हैं, शीतल सुखद वृष्टि हो रही है; वन, प्रान्तर आर्द्र होते जा रहे हैं; वृन्दावनकी भूमि किसी अभिनव वर्षाधारासे सिक्त हो रही है—

चित्रं वारिधरान् विनापि तरसा यैरद्य धारामयै-
र्दूरात् पश्यत देवमातृकमभूद् वृन्दाटवीमण्डलम्।

(विदग्धमाधव)

नन्हे-से नन्दनन्दनकी वेणुध्वनिसे वृन्दाकाननमें स्थावर-वैपरीत्य तो अनिवार्य घटना होती—

द्रवति शिखरवृन्देऽचञ्चले वेणुनादै-
र्दिशि दिशि विसरन्तीर्निर्झराप: समीक्ष्य।
तृषितखगमृगाली गन्तुमुत्का जडा तैः
स्वयमपि सविधाप्ता नैव पातुं समर्था॥

(श्रीगोविन्दलीलामृतम्)

'वेणुनादका स्पर्श पाते ही स्थिर पर्वतश्रेणियोंके शिखरसमूह द्रवित हो जाते, पाषाण तरल बनकर चारों ओर बह चलते, अनेक निर्झरोंका सृजन हो जाता। उन्हें देखकर तृषित विहंगमकुल, मृगयूथ पीनेके लिये उत्कण्ठित हो जाते, चाहते कि दौड़कर जा पहुँचें; किंतु उनके अङ्ग अवश हो जाते, उनमें एक विचित्र सुखमयी जडता आ जाती तथा स्वयं निकट आयी हुई उस वारिधाराका पान करनेकी सामर्थ्य भी वे खो बैठते—

वंशीनादैः सरसि पयसि प्रापिते ग्रावधर्मं
हंसीः संदानितपदयुगाः स्तम्भिताङ्गी रिरंसुः।
आसन्नीशाः स्वयमपि जडा बद्धपादा न गन्तुं
ताभ्यो दातुं न बिसशकलं नापि भोक्तुं मरालाः॥

'वंशीनादका चमत्कारी प्रभाव सरोवरके जलको जमाकर प्रस्तरका रूप दे देता। सरोवरमें संतरण करते हुए हंसिनीयूथके पैर भी जमे हुए जलके संसर्गमें आकर बँध जाते, साथ ही ध्वनिका मधुपान कर उनके समस्त अङ्ग भी निश्चल हो जाते। यही दशा हंसकुलकी होती। घन होकर प्रस्तररूपमें परिणत जलके उज्ज्वल तलमें उनके पादयुगल भी बद्ध हो जाते, वैसी ही जडता उनके अङ्गोंमें भी आ जाती। अन्तस्तलमें हंसिनीको अपना प्यार समर्पित करनेकी वासना लिये, अपनी सङ्गिनीको प्रेमोपहार दान करने एवं स्वयं भोजन करनेके उद्देश्यसे चञ्चुपुटोंमें मृणालखण्ड धारण किये वह मरालकुल भी जहाँ-का-तहाँ रुद्ध हो जाता। न तो मरालीको ही मृणाल प्रदान कर पाता, न स्वयं ही भक्षण कर पाता।'

पहले तो श्रीकृष्णचन्द्र वंशी बजानेमें संकोच करते, व्रजसुन्दरियोंका अतिशय प्रेमिल आग्रह होनेपर ही, जननीकी मनुहार पानेपर ही बजाते; पर क्रमशः उनका संकोच शिथिल हो गया। फिर तो यमुना-पुलिन रह-रहकर मोहन-वंशीनादसे निनादित होने लगा तथा जितने क्षण वह स्वरलहरी काननको गुंजित करती रहती, उतने समयमें वहाँ न जाने क्या-से-क्या होता रहता—

नँदलाल बजाई बाँसुरी श्रीजमुनाके तीर री।
अधर कर मिलि सप्त स्वर सौं उपजत राग रसाल री॥

व्रजजुबती धुनि सुनि उठ धाईं, रही न अंग सँभार री।
छूटी लट लपटात बदन पर, टूटी मुक्ता-माल री॥
बहत न नीर, समीर न डोलत बृंदा-बिपिन सँकेत री।
सुनि थावर अचेत चेतन भए, जंगम भए अचेत री॥
अफल फरे, फल-फूल भए री, जरे हरे भए पात री।
उमग प्रेम जल चल्यौ सिखर तें, गरे गिरिन के गात री॥
तृन न चरत मिरिगा-मिरिगी दोउ, तान परी जब कान री।
सुनत गान गिरि परे धरनि पर, मानौं लागे बान री॥
सुरभी लाग दियौ केहरि कौं, रहत श्रवन हीं डार री।
भेक भुजंगम फन चढ़ि बैठे, निरखत श्रीमुख चारु री॥
खग रसना रस चाख बदत नहिं, नैन मूँदि मुनि धार री।
चाखत फलहि न परे चोंच ते, बैठे पाँख पसार री॥
सुर नर असुर देव सब मोहे, छाए ब्योम विमान री।
चत्रभुजदास कहौ, को न बस भए या मुरली की तान री॥

अस्तु, वृन्दावन आनेके कुछ ही दिनों पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्रने सर्वप्रथम इसी उन्मद वेणुनादका प्रकाश किया, मानो यहाँकी अग्रिम लीलाओंमें चिरसहचरी वंशीको अपने अधरोंपर धारण कर मङ्गलाचरण करने चले हों। साथ ही उनकी चञ्चलता भी बृहद्वनकी अपेक्षा यहाँ अतिशय बढ़ गयी। अवश्य ही चञ्चलताका क्षेत्र इस बार दूसरा है। यहाँ वे किसीके घर नहीं जाते, दधि-दुग्धका अपहरण नहीं करते, किसीके भी मटके नहीं फोड़ते । यहाँ तो कलेऊके अनन्तर सीधे वनमें या गोष्ठमें चले जाते हैं। छायाकी भाँति रोहिणीनन्दन बलराम उनका अनुसरण करते हैं, उनकी प्रत्येक चपल चेष्टाओंका अनुमोदन करते हैं, उनमें योगदान कर उनको प्रोत्साहित करते हैं तथा वहाँ गोष्ठमें, वनमें, उनकी क्रीडाका माध्यम अब बन गये हैं—गौ, गोवत्स, वृषभ। उनके साथ विविध क्रीडा करनेमें ही मध्याह्न हो जाता है और फिर संध्या आ जाती है। इसीलिये शंकितचित्त व्रजराज अब स्वयं भी प्रतिदिन गो-चारणमें सम्मिलित होने लगे हैं। व्रजरानीका भी अधिकांश समय गोष्ठमें ही व्यतीत होता है। पर ऐसे चञ्चलका नियन्त्रण सम्भव जो नहीं। व्रजदम्पति देखते रह जाते हैं और श्रीकृष्णचन्द्र विश्राम करते हुए किसी विशालकाय साँड़की ग्रीवापर-पीठपर उछलकर चढ़ जाते हैं। पीछे राम उसकी पूँछ पकड़कर उमेठना आरम्भ करते हैं और वहाँ श्रीकृष्णचन्द्र उसके सींगोंको पकड़कर उसे उठकर चलनेका संकेत करते हैं। कभी कुछ गोवत्सोंको या गायोंको एकत्र कर लेते हैं, उन्हें अपने इच्छानुसार नचाते हैं और स्वयं नाचते हैं। दोनों भाई राजपथपर जा रहे हैं, इतनेमें शकटमें जुते बलीवर्द दीख पड़े; फिर तो उनके शृङ्गोंको पकड़कर उनसे विविध क्रीडा करना अनिवार्य है। भयभीत नन्दरानी कितना भी निवारण करें, व्रजेश कितना भी समझायें, पर राम-श्याम कहाँ मानते हैं। व्रजदम्पतिकी दृष्टि अन्य ओर गयी, वे किसी अन्य कार्यमें संलग्न हुए कि बस, दोनों ही भागे और फिर निश्चित है कि वे वहीं मिलेंगे, जहाँ सुदूर वनमें किंचित् वयस्क गोपशिशु वत्सचारण कर रहे हैं या युवक गोप गोचारणमें संलग्न हैं। अपने प्राणप्रतिम नीलमणिको, रामको इतनी दूर अकेले गये देखकर, सुनकर जननीका हृदय धक्-धक् करने लगता तथा उस दिन संध्याके समय अपने भुजपाशमें बाँधकर—जबतक दोनों निद्रित नहीं हो जाते, तबतक—वे समझाती रहतीं; किंतु नीलमणिका उत्तर तो यह होता—

मैया री! मैं गाय चरावन जैहौं।
तूँ कहि, महरि! नंदबाबा सौं, बड़ौ भयौ, न डरैहौं॥
श्रीदामा लै आदि सखा सब, अरु हलधर सँग लैहौं।
दह्यौ-भात काँवरि भरि लैहौं, भूख लगै तब खैहौं॥
बंसीबट की सीतल छैयाँ खेलत में सुख पैहौं।
परमानंददास सँग खेलौं, जाय जमुनतट न्हैहौं॥

उत्तर सुनकर जननीका रोम-रोम आनन्द-परिपूर्ण तो अवश्य हो जाता; पर इतने नन्हे-से नीलमणिको वे अभी वनमें गोचारण करने भेजेंगी, यह तो स्वप्नमें भी कल्पना नहीं होती। यशोदारानी किसी प्रकार प्रसंग बदलकर नीलमणिको सुला पातीं।

अब श्रीकृष्णचन्द्र अपने वयके तीसरे वर्षमें प्रविष्ट हो चुके हैं। उनके शैशवके अन्तरालमें कुमारभावकी झाँकी स्पष्ट हो गयी है। उनका वस्त्र-परिधान-महोत्सव भी सम्पन्न हो चुका है। जननी अपने स्नेहसिक्त करोंसे नीलमणिको वस्त्र (पीली धोती) धारण कराती हैं। उल्लासमें भरकर यत्नपूर्वक बड़े मनोयोगसे वे पहन भी लेते हैं, पर दूसरे ही क्षण उसमें बन्धनकी अनुभूति कर स्वयं खोलकर फेंक भी देते हैं।

पुनः उस सुन्दर पीताम्बरको देखकर धारण करनेकी इच्छा जाग्रत् होती है, जननीसे माँगकर स्वयं धारण करनेका प्रयास करते हैं, पर अपने हाथों धारण करनेमें कुछ अंश आवृत एवं कुछ अनावृत रह जाता है। उस समय उन्हें लज्जाका अनुभव होता है तथा और भी अधिक प्रयत्नसे वे वस्त्र धारण करने चलते हैं। प्रतिदिन ही उनके वस्त्र-परिधानकी यह मनोहर लीला होती है—

वस्त्रं दधाति जननीनिहितं प्रयत्नात्
क्षिप्रं च बन्धनधिया स्वयमुज्जहाति।
भूयस्तदर्दति बिभर्ति च यस्य चोर्ध्वं
व्रीडां विकल्प्य लघु नित्ययति स्म कृष्णः॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

किंतु उसी पीताम्बरसे जब वे दो-तीन-चार विशालकाय वृषभोंके शृङ्गोंको एक साथ जोड़कर उन्हें खींचना आरम्भ करते हैं, उस समय भयविह्वल व्रजरानी चीत्कार कर उठती हैं; व्रजेश्वरका हृदय भी दुर-दुर करने लगता है। पर उपाय क्या हो, नीलमणि सुनते जो नहीं। प्रत्युत प्रतिदिन उनकी ऐसी चपलता बढ़ती जा रही है, मानो जननी-जनकके हृदयको कँपा देनेवाली ऐसी क्रीडामें उन्हें अधिकाधिक रस आ रहा हो। जब देखो, तभी वे गायोंसे, गोवत्सोंसे, वृषभोंसे खेलते मिलेंगे। और फिर बलरामका सहयोग उन्हें प्राप्त है, अब किसका भय! जननीको सूचना देनेवाले तो दाऊ भैया ही हैं; वे ही जब सम्मिलित हैं, तब चिन्ता किस बातकी। अतः रक्षाका और कोई उपाय न देखकर व्रजेश्वरने व्रजरानीसे परामर्श कर यह निश्चय किया—

यदि गोसङ्गावस्थानं विना न स्थातुं पारयतस्तर्हि व्रजसदेशदेशे वत्सानेव तावत्संचारयतामिति।

(श्रीगोपालचम्पूः)

'यदि सचमुच राम-श्याम गायोंका संग छोड़ नहीं सकते, उनके निकट रहना इन्हें इतना प्रिय है तो फिर अच्छा यह है कि ये दोनों व्रजके निकट रहकर छोटे बछड़ोंको चराया करें।'

श्रीकृष्णचन्द्रको मनोवाञ्छित प्राप्त हो गया। बस, इतना ही विलम्ब है—ज्योतिषी मुहूर्त निश्चित करेंगे एव उस दिन महर्षि शाण्डिल्य पधारकर वत्सचारण-महोत्सव सम्पन्न करेंगे।

पुरवासियोंके आनन्दका पार नहीं। राम-श्याम अपनी नित्य नूतन बाल्यभङ्गिमाओंका प्रकाश कर उनका आनन्दवर्धन करते आये हैं, अपने मधुर वचन सुना-सुनाकर प्रत्येकका मनहरण करते रहे हैं। परमानन्दमें विभोर पुरवासियोंको तो यह अनुसंधान ही नहीं था कि नीलमणि क्रमशः बढ़कर इस योग्य बन गये हैं। व्रजेश्वरका निर्णय सुनकर उनकी स्मृति जागी और उन्होंने अनुभव किया कि राम-श्यामको वत्सपालक बना देना सर्वथा उचित है। गोचारण, वत्सचारण तो गोपजातिका स्वधर्म है। सबके जीवन-सर्वस्व नीलमणिसे यदि व्रजेश्वर स्वधर्मका आचरण करवायें तो इसका समर्थन कौन नहीं करे, सबने एक स्वरसे इस योजनाका स्वागत किया। राम-श्यामके वत्सपाल बननेकी तैयारी आरम्भ हुई। अस्तु, मुहूर्त कभी निकले, पुरवासी तो अपनी कल्पनाके नेत्रोंसे नीलमणिको वत्सचारण करते हुए अभीसे देखने लग गये—

एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितैः।
कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः॥

(श्रीमद्भा० १०। ११। ३७)

उन्हें इस क्षणसे ही दीख रहा है—वह देखो! विचित्र-भूषण-वसन-विभूषित असंख्य गोपशिशु हैं, बलराम हैं, नहीं-नहीं सौन्दर्यसरितामें इतनी लहरें उठकर घनीभूत हो गयी हैं। और वहाँ देखो, इन सबके नायक नन्दनन्दनको। अहा! वहाँ तो कोटिचन्द्र एकत्र एक साथ सुधाकी वर्षा कर रहे हैं—

बल समेत सिसु सब अभिराम। कंचन-भूषन कंचन-दाम॥
तिन मधि अधिनाइक जु नंद कौ। बरषत अमी जु कोटि चंद कौ॥

* * *

श्रीरामलीला-चिन्तन—

अयोध्याके कथावाचक

अयोध्याकी प्रजा अत्यन्त सुखी थी। राज्यमें कहीं कोई रोगी नहीं था। सर्प-भय, वृश्चिक आदिका भय, अकाल-महामारीका भय अथवा चोर-डाकुओंका भय नहीं रह गया था। दैहिक, नैसर्गिक तथा देवताओंके प्रकोपका कोई भय नहीं रह गया था।

कोई नारी विधवा नहीं होती थी। बालक या युवाकी मृत्यु नहीं होती थी। वृद्ध मरते भी थे तो किसी दीर्घायु स्वजनके सम्मुख। उससे कम आयुके व्यक्तिकी मृत्यु नहीं होती थी।

राज्यमें कोई व्यभिचारी, सुरापायी, द्यूतलिप्सु नहीं था। लोग कृपण नहीं थे। लोभी नहीं थे। सब प्रसन्न रहते थे। सेवा-परायण थे। सबको दूसरोंको सुख देना प्रिय था। सब दूसरोंको प्रसन्न रखनेमें ही प्रसन्न रहते थे।

वणिक् भी लोभहीन व्यापार करते थे। केवल अपना पारिश्रमिक प्राप्त करके संतुष्ट रहते थे और धनका संग्रह दान अथवा यज्ञके लिये ही करते थे। राज्यमें स्थान-स्थानपर प्रशस्त मार्ग एवं सरिताओंपर सेतु बनाये गये थे। कूप, वापी, सरोवरोंकी बहुलता थी। सामान्य ग्रामोंके समीप भी फलोद्यान एवं पुष्पोद्यान थे।

गृहस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके गृहोंमें पृथक् अग्निशाला थी, जो अतिथिके आगमनका मानो मार्ग ही देखती हो। ग्रामोंमें उपासना-गृह थे। राजकीय अतिथिशालाओंके अतिरिक्त लोगोंने धर्मशालाएँ, कूप, सार्वजनिक उद्यान बनवाये थे।

ब्राह्मण वेदाध्ययन-अध्यापन, यजन-याजनमें लगे रहते थे। क्षत्रिय शस्त्र-शिक्षण तथा शास्त्राध्ययनमें लगे रहते थे; किंतु उन्हें किसीकी रक्षाका अवसर ही नहीं आता था। वैश्य केवल लोगोंको पदार्थ सुलभ करनेके उद्देश्यसे व्यापार करते थे। शूद्र—सेवक पुरस्कार-निरपेक्ष सेवा करते थे।

धन्वन्तरिके समान भिषक् थे। राज्यमें चिकित्सालयोंकी पर्याप्त व्यवस्था थी; किंतु उनका कार्य नवीन औषधियोंके शोध तथा निर्माणतक सीमित हो गया था। किसीको रोग ही नहीं होता था तो वे उपचार-कार्य कहाँसे पाते।

न्याय सुलभ था। स्थानीय ऋषि-मुनि न्याय-विधान दे सकते थे और स्थानीय शासन-कर्मचारी उसके अनुसार दण्ड-व्यवस्था दे सकता था। कोई झूठ नहीं बोलता था, अतः साक्षीकी आवश्यकता नहीं थी। कोई भी सीधे सम्राट्के सम्मुख उपस्थित हो सकता था।

न्यायालय निष्क्रिय नहीं थे। उनमें विवाद उपस्थित होते थे; किंतु विचित्र विवाद। ऐसे मधुर विवाद कि उनमें दण्ड-विधानकी नहीं, सौजन्य-पूर्ण समझसे संधि करा देना ही आवश्यक होता था। प्रायः वादी कहता था कि अमुक क्षेत्र, भवन अथवा धन उसका नहीं है, परंतु कोई दूसरा उसे लेनेके लिये उसपर अनुचित दबाव डाल रहा है। प्रतिवादीका पक्ष होता था वह धन, भवन, क्षेत्र या उद्यान न्यायतः उस दूसरेका—वादीका ही है। वह उसे स्वीकार कर ले तो प्रतिवादी उसकी सुरक्षा—चिन्तासे मुक्त हो।

लोगोंके मुखपर बार-बार श्रीरामकी प्रशंसा, श्रीरामका गुणगान आता था। जिसे देखो वह सगर्व कह रहा है—'हमारे सम्राट् ऐसा करते हैं।' 'राम, राम, राम'—लोगोंकी वाणीका भूषण बन गया था यह शब्द। दिशाएँ इस पावन नामसे सर्वत्र पवित्र होती रहती थीं।

पृथ्वीके समान क्षमाशील और सबके धारक-पोषक, जलके समान सरस—सबको स्वच्छ पवित्र करनेवाले, अग्निके समान तेजस्वी तथा आपत्तिसे त्राण करनेवाले, वायुके समान सबके प्राण, आकाशके समान समीप रहकर भी अस्पृश्य, समुद्रके समान अविचल, श्री-ह्री-कीर्ति-धर्मके नित्य-निवास श्रीराघवेन्द्र-जैसा सम्राट् धराने दूसरा नहीं पाया। अतः राम-राज्य सदाके लिये शासनोंका आदर्श बन गया।

जब देशमें शान्ति रहती है, प्रजा पेट-पालनकी चिन्तासे परित्राण पा जाती है, तब समृद्ध जनपदमें भगवती सरस्वतीकी सम्यक् आराधना होती है। कलाके लिये उर्वर क्षेत्र हैं वे

जो समृद्ध हैं और संघर्षोंसे सुरक्षित हैं। राम-राज्यमें भरपूर शान्ति थी और सम्यक् समृद्धि थी, अतः कलाके प्रत्येक क्षेत्रमें आश्चर्यजनक उन्नति हुई। परंतु वह उन्नति उच्छृंखल नहीं हो सकती थी; क्योंकि सबमें श्रद्धा थी, संयम था।

भोग-प्रवण, अर्थ-प्रधान समाजकी कला उच्छृंखल होती है। वह वासनाको उत्तेजित करनेवाली, मानवको पशु या दानव बनाकर पतनके गर्तमें गिरानेवाली होती है।

प्रतिभा तीक्ष्ण तलवार है। वह संयमी, सद्भावना-सम्पन्न सत्पुरुषोंके करोंमें होगी तो समाजके लिये सुरक्षाका आश्वासन बनेगी और उन्मत्त व्यक्तिके करोंमें होगी तो उसका तथा औरोंका भी अङ्गच्छेद करेगी। उत्पातको उत्पन्न करेगी।

श्रीरामके शासनने सुरक्षा दे रखी थी, समृद्धि दे रखी थी तो साथ ही संयम तथा सात्त्विकतासे भी प्रजाको सम्पन्न बना रखा था। अतः कला श्रद्धा-संवलिता, धर्मभाविता और अध्यात्मोन्मुखी थी। उसका उद्भव ही आराधनाके उद्देश्यसे होता था।

मूर्तिकार अपनी कलाको मन्दिर-निर्माणमें कृतार्थ करते थे। पाषाण, काष्ठ आदिके शिल्पियोंकी साधना थी आराधना-गृहोंको सज्जित करना। चित्रकार अपनी तूलिका, अपने सम्राट्का शौर्य, शील प्रकट करनेमें अथवा भगवदवतार-विग्रहोंकी विविध भंगियोंको व्यक्त करनेमें पवित्र करते थे। घर-घरमें गूँजता संगीत भगवद्-गुणगानसे वातावरणको पावन करता। अधिकांश नर-नारी भावुक थे। उनके लिये लेखनी, तूलिका अथवा तक्षण श्रीरामपादारविन्दमें तल्लीन करनेके साधन थे। वंशी, वीणा आदि वाद्य प्रत्येक गृहोंके शृङ्गार थे; किंतु वे आराधना-कक्षमें अथवा एकान्तमें बजते थे अन्तरको उन्मुख करनेके लिये।

कोई भी कुलनारी अथवा पुरुष निःसंकोच किसी मन्दिरमें कभी कोई वाद्य उठा ले सकता था अथवा नृत्य करने लग सकता था। दर्शकोंके नेत्र अश्रुवर्षण करने लगते थे। लोग भावमग्न हो उठते थे। सहज स्वाभाविक हो उठी थी हरिभक्ति। किसीके कण्ठसे किसी भी क्षण संगीत-धारा फूट पड़ती थी और श्रोताओंको आत्मविस्मृत करके अपने आराध्यके चिन्तनमें समाहित कर देती थी।

शासनकी समूची व्यवस्था प्रायः भरतपर निर्भर थी और उसका संचालन लक्ष्मण और शत्रुघ्न करते थे। प्रजाका सीधा सम्पर्क शत्रुघ्नसे ही था; क्योंकि प्रजासे प्राप्त 'कर'को कोषमें सुरक्षित करना, पारितोषिक-वितरण तथा प्रजाकी सुख-सुविधा-सुरक्षाका ध्यान रखना शत्रुघ्नने अपना दायित्व बना लिया था।

श्रीरामने तो लक्ष्मणको युवराज बनाना चाहा था; किंतु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया था। अतः राजपरिवार, राजसदनके सेवक एवं राजकुलके स्वजन-सम्बन्धियोंके सत्कारका भार उनपर था। वे इनकी सुख-सुविधापर दृष्टि रखते थे।

भरतको दोनों भाइयोंके कार्योंका विवरण सुन लेना था और आवश्यक निर्देश दे देने थे; क्योंकि सर्वत्र लोग संतुष्ट थे। सम्राट्से लेकर सामान्य कर्मचारियोंतक किसीके समीप अधिक कार्य-भार नहीं था। समस्त राज्य-सेवकोंको आदेश था कि प्रजाके किसी वर्ग, किसी सदस्य, किसी स्थानकी कोई सुख-सुविधा-सुरक्षाकी माँग आनेपर तत्काल उसकी पूर्ति करके तब अपने उच्चाधिकारीको सूचना दी जाय। परंतु इसके अवसर आते ही नहीं थे।

ग्राम-ग्राम, नगर-नगरमें लोग यज्ञका, विशेष आराधनाका, कथा-कीर्तनका, ज्ञानसत्रका आयोजन करते ही रहते थे और उनमें उत्साहपूर्वक वेदज्ञ ब्राह्मणोंको, विरक्त मुनिगणोंको आमन्त्रित करते रहते थे। यही गौरवका तथा स्पर्धाका विषय था सबके लिये।

सानुज सम्राट् प्रजाके पुत्रोत्सव, विवाहोत्सव तथा ऐसे पुण्य आयोजनोंमें यथासम्भव सम्मिलित होते थे। सम्पूर्ण राज्यमें ऐसे आयोजन चलते ही रहते थे, अतः अनेक बार सम्राट्की ओरसे उनके प्रतिनिधिरूपमें उनके किसी अनुज अथवा मन्त्रीका आ जाना आश्चर्यका अथवा आवेदकके अपमान-अवज्ञाका प्रतीक नहीं था; किंतु सर्वसमर्थ सम्राट् इसका अवसर नहीं आने देते थे। सबको लगता था कि सम्राट्का वह सर्वाधिक स्नेहभाजन है और सम्राट् उसके आयोजनोंमें, उत्सवोंमें सानुज सोत्साह सम्मिलित होते हैं। उन प्रजावत्सलके उपहार ऐसे अवसरोंपर प्रत्येकको पर्याप्त मात्रामें प्राप्त होने ही हैं।

प्रत्येक सदन नित्य कथा-कीर्तनसे पवित्र रहता था। प्रत्येक स्त्री-पुरुष कलाकार था—किसी-न-किसी कलाका विशेष आराधक और उसकी कला अन्तर्मुख करनेवाली, सात्त्विक तथा अपने परमोदार, सद्गुणैकधाम सम्राट्को समर्पित थी। फिर भी समस्त राज्यमें मूर्तिकार, शिल्पी, संगीतज्ञ, लीलाभिनय-निपुण व्यक्तियों अथवा मण्डलियोंका सम्मान बहुत बढ़ गया था। बहुत बढ़ गया था भगवत्कथा-श्रवण करानेवालोंका समादर। फलस्वरूप इनकी संख्या भी बहुत बढ़ गयी थी। इस वर्गमें भी कोई अर्थलुब्ध नहीं था। उलटे यह वर्ग प्रायः इतना वीतराग कि श्रोताओंको इनकी सेवाका अवसर कठिनतासे सुलभ होता था।

सब कथाकार, लीलाभिनयकर्ता, कीर्तनकार, गायक, मूर्तिकार तथा शिल्पीवर्गने अपना आदर्श बना लिया था शिवशर्माको। सेवाको स्वीकार करनेका आग्रह करते ही वे कह देते थे—'सम्राट्के कथावाचक, सुरासुर सबके श्रद्धेय महापण्डित शिवशर्माजी हमारे शिक्षागुरु हैं। हम उनके पदानुगामी शिष्य हैं। पदार्थोंका हमें प्रयोजन ही नहीं है। आप सबकी श्रद्धा ही पर्याप्त है। परिग्रह तो पाप है। आप हमें इस पङ्कमें डालनेका प्रयत्न न करें, यही आपकी अनुकम्पा।'

निखिलकलागुरु, समस्त विद्याओंके आद्याचार्य, योगियोंके आदर्श संरक्षक, वैराग्यके मूर्त-विग्रह श्रीशिवशर्माजीसे आप अपरिचित नहीं हैं। उन गङ्गाधर, धूर्जटि, चन्द्रमौलि, त्रिलोचन, नीलकण्ठ, भस्माङ्गराग, अहिभूषण, कपालमाली, कृत्तिवास कामारिसे कोई आर्य आस्तिक अपरिचित कैसे हो सकता है? उन वृषभध्वज, भूतनाथ, आशुतोषने अयोध्यामें शिवशर्मा नाम अङ्गीकृत कर लिया था।

भगवान् उमाकान्त राज्याभिषेकके समय श्रीराघवेन्द्रका दर्शन करने अयोध्यामें पधारे थे। दूसरे सब नृपतियोंने, देवताओंने, दिक्पालोंने सम्राट्को अपने उपहार अर्पित किये; किंतु नित्य-अपरिग्रही सृष्टिका प्रलय करके उसकी विभूतिको अङ्गराग बनानेके व्यसनी स्थाणु शिवके समीप क्या था जो उपहारमें अर्पित करते? नवीन सम्राट्को डमरू, कपाल, त्रिशूल, सर्प अथवा अपना पहना गजचर्म तो दिया नहीं जा सकता था। भोले बाबाको भूल ही गया कि कुबेर उनके अनुचर हैं और अन्नपूर्णा—जगद्धात्री वामाङ्गमें ही स्थित हैं। वे स्तवनके अनन्तर स्वयं बोले—'श्रीराम! इस अवसरपर आप मुझसे कुछ माँग लें।'

सर्वेश्वरेश्वर, निखिलभुवनैकसम्राट्से कुछ माँग लेनेको कहनेका साहस त्रिपुरारिके अतिरिक्त दूसरा कोई कर भी तो नहीं सकता था, नवीन सम्राट् भी सुनकर प्रसन्न हुए। दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर बोले—'आप मुझपर प्रसन्न ही हैं तो मेरी सभाके कथावाचक बन जायँ।'

'एवमस्तु!' औढरदानी भी हँसे—'इसका अर्थ है कि तुम मुझे अपने समीप ही रखना चाहते हो। अच्छी बात, आजसे शिवशर्मा तुम्हारी धरापर इस युगलस्वरूपसे साक्षात् एकत्र रहनेतक अयोध्याका कथावाचक हुआ।'

अर्थ-गर्भ बना यह आशीर्वाद। शिवशर्मा अयोध्यासे उस दिन अन्तर्हित हो गये, जिस दिन भगवती जनक-नन्दिनीको सौमित्र रथमें बैठाकर वनमें ले गये।

जो प्रलयङ्कर हैं, पूरी सृष्टिके साक्षी तो वही हैं। एक ब्रह्माण्डकी अनेक प्रलयोंके वे प्रत्यक्ष साक्षी, उनसे अच्छा सृष्टिकी उत्पत्ति-प्रलयका वर्णन करनेवाला दूसरा कोई कहाँसे आयेगा। सब अवतार उनके सम्मुख हुए। सब सत्पुरुषोंको देखा उन्होंने। अतः पुराण-कथाओंके वे प्रत्यक्ष द्रष्टा। ज्ञान, वैराग्य एवं भक्तिके, योगके विविध साधनोंके वे परमाचार्य। नरक-स्वर्ग, भूलोक, पाताल, महः, जनः, तपः तथा सत्यलोक एवं दिक्-लोकोंमें भी कोई इन हरिप्रियका अनदेखा है? अब ये स्वयं कथावाचक बन गये तो ब्रह्मलोकमें भी ऐसी कथा क्या कभी सुलभ होगी?

श्रीशिवशर्माकी कथा-श्रवणके आकर्षणने पृथ्वीके ही नहीं, ब्रह्मलोक तकके महर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, काण्डर्षि, राजर्षि-वर्गको मुनिमण्डलको, सिद्धोंको, साधकोंको अयोध्याका नित्य-अतिथि बना दिया था।

* * *

भगवान् श्रीकृष्णकी रासलीला एवं इसका आध्यात्मिक रहस्य

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

महर्षि वेदव्यासजी महाराजने श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। श्रीकृष्णने भूलोकमें अवतरित होते ही अपनी बाल-सुलभ लीलाओंसे व्रजवासियोंका मन मोह लिया था। कन्हैयाने गोपियोंको प्रसन्न करनेके लिये उनके घरोंमें घुसकर माखन-चोरीकी लीला की। इसी प्रकार वे प्रतिदिन नयी-नयी लीलाएँ रचाकर गोप-ग्वालों और व्रजबालाओंकी मन:कामनाएँ पूर्ण किया करते थे। जिन गोपियोंने भगवान्को पति-रूपमें पाकर उनके साथ आनन्द-विहार करनेकी इच्छा प्रकट की थी, उनकी उस कामनाको पूर्ण करने एवं सभी प्रकारसे उन्हें आनन्दित करनेके लिये प्रभु रासलीला किया करते थे।

'रास' शब्दका मूल शब्द है 'रस' और रस स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। भगवान् अपने रसका आस्वादन स्वयं भी करते हैं तथा अपने ही विभिन्न अंशोंको भी कराते हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी परम दिव्य अन्तरङ्ग आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजी और उनकी निजस्वरूपा कृष्ण-प्रेममयी गोप-बालाओंके साथ होनेवाली कन्हैयाकी रस एवं माधुर्यसे ओत-प्रोत लीलाका नाम है 'रास'। यह रासलीला लीलामय भगवान्का ही स्वरूप है। रासलीलाके माधुर्यका आस्वादन परम भावमयी श्रीकृष्णप्रेम-स्वरूपा गोपियाँ ही कर सकती हैं। ब्रह्माजी, शंकरजी और नारदजीने भी गोपी-भावसे इस लीलाके दर्शन किये थे। इस दिव्य नित्य-रासका दर्शन भाव-चक्षुओंसे ध्यानावस्थित योगीगण भी करते हैं। इन गोपियोंके दिव्य भावको साधारण स्त्री-पुरुष-जैसा मानना भगवान्के प्रति घोर अपराध है। ये गोपियाँ भगवान्की अन्तरङ्ग शक्तियाँ हैं और श्रीकृष्णके संग इनका सम्बन्ध भी दिव्य है। अत: श्रीकृष्ण और गोपियोंकी रासलीला सर्वथा भगवान्की दिव्य लीला ही है, श्रीकृष्णने अपनी ही प्रतिबिम्बस्वरूपा गोपियोंसे ही आत्मक्रीडा की है। रासलीलाका माधुर्य और रस सात्त्विक भावोंके निर्मल हृदयसे झरता है। आइये, श्रीकृष्ण-प्रेम और गोपीभावमें आकण्ठ डूबकर बालकृष्णकी इस अनूठी लीलाके दर्शन करें—

शरद् ऋतुका आगमन हो गया है, समस्त प्रकृति सौन्दर्यमयी हो गयी है। चारों ओर विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंकी गन्धसे सारा वातावरण अत्यन्त मनोहारी हो गया है। वायु इन सुगन्धोंको अपने आँचलमें समेटी हुई इतराती-इठलाती बह रही है। आज ऐसी ही सुगन्धिसे परिपूर्ण है शरद् ऋतुकी पूर्णिमा। रात्रिका प्रथम प्रहर प्रारम्भ हो गया है। नक्षत्रपति चन्द्रमा अपने पूर्ण यौवनको विकसित कर उदित हो गये हैं। श्रीकृष्ण यमुनाके किनारे वंशीवटपर कदम्बके नीचे बैठे हैं। वंशी, गोप-वधुओंके साथ रास-विहार करनेकी श्रीकृष्णकी इच्छाको भाँप लेती है और धीरे-धीरे उनके होठोंका स्पर्श करती है। श्रीकृष्णकी मुरलीका स्वर सुनकर व्रजसुन्दरियाँ अपने-अपने घरोंसे निकलकर बड़े वेगसे उस ओर दौड़ पड़ीं, जिधरसे मुरलीका स्वर सुनायी दे रहा था। आजका यह वंशीनाद केवल उन्हीं गोपियोंको सुनायी पड़ा, जिन्हें श्रीकृष्णके महारासमें प्रवेशका वरदान प्राप्त था। श्रीकृष्णकी बाँसुरी बजती रही। गोपियाँ अपने प्रियतमसे मिलनकी लालसाके कारण बेसुध वंशीवटकी ओर चलती चली जा रही थीं। महर्षि वेदव्यास रासपञ्चाध्यायीमें गोपियोंकी इस दशाका वर्णन करते हुए लिखते हैं—

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः॥
परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः।
शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम्॥
लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। ५—७)

वंशीध्वनि सुनकर जो गोपियाँ दूध दुह रही थीं, वे अत्यन्त उत्सुकतावश दूध दुहना छोड़कर चल पड़ीं। जो चूल्हेपर दूध औंटा रही थीं, वे उफनता हुआ दूध छोड़कर और जो लपसी पका रही थीं, वे पकी हुई लपसी बिना उतारे ही ज्यों-की-त्यों छोड़कर चल दीं। जो भोजन परस रही थीं वे परसना छोड़कर, जो छोटे-छोटे बच्चोंको दूध पिला रही थीं वे दूध पिलाना छोड़कर, जो पतियोंकी सेवा-शुश्रूषा कर रही थीं, वे सेवा-शुश्रूषा छोड़कर और जो स्वयं

भोजन कर रही थीं, वे भोजन करना छोड़कर अपने कृष्णप्यारेके पास चल पड़ीं। कोई-कोई गोपी अपने शरीरमें अङ्गराग, चन्दन और उबटन लगा रही थीं और कुछ आँखोंमें अंजन लगा रही थीं। वे उन्हें छोड़कर तथा उलटे-पलटे वस्त्र धारण कर श्रीकृष्णके पास पहुँचनेके लिये चल पड़ीं।

श्रीकृष्णके प्रति जब किसी भी प्रकारकी आसक्ति हो जाती है, चाहे वह किसी भी रूपमें हो तो जीवको भौतिकतासे मोक्ष और मुक्ति मिल जाती है। इसी भौतिक अवस्थासे मुक्त ये गोपियाँ कन्हैयाके समीप पहुँच जाती हैं। श्रीकृष्ण उनका स्वागत करते हुए रात्रिके समय आनेका कारण पूछ रहे हैं। गोप-ललनाएँ मौन खड़ी हैं, उत्तर न दे पानेकी स्थितिमें अपनी दृष्टि पृथ्वीकी ओर करके अपनी मौन-पीड़ा व्यक्त कर रही हैं। श्रीकृष्ण इनको पतिव्रत एवं गृहस्थ-धर्मका पालन करनेकी प्रेरणाके साथ भौतिक संसारकी ओर संकेत करते हुए समझा रहे हैं कि अपना घर-बार छोड़कर एकान्त वनमें, वह भी रात्रिके समय परपुरुषके साथ आनन्दकी दृष्टिसे आना सर्वथा अनुचित है। अपने परिवारके प्रति निर्दिष्ट कर्तव्योंका पालन करना ही सर्वोपरि धर्म है। मेरे विचारसे तुम सबको वापस अपने-अपने घर लौट जाना चाहिये। यदि तुम अपने पतिकी सेवा, बच्चोंका पालन-पोषण एवं अन्य परिवारजनों तथा गायों-बछड़ोंकी देख-भाल करते समय एक बार भी मुझे स्मरण कर लोगी तो तुम्हें अवश्य ही मुक्ति प्राप्त होगी।

श्रीकृष्णकी ये अप्रिय बातें सुनकर गोपियाँ दुःखके अथाह सागरमें डूब गयीं। उनके लाल-लाल बिम्ब-फल-जैसे अधरोष्ठ शोकके कारण गर्म श्वासोंके तापसे सूख गये। आँसुओंका काजल बहता हुआ वक्षःस्थलपर लगी केसरको धोता हुआ पृथ्वीपर गिरने लगा। कन्हैयाके साथ रासक्रीडाकी मनः-कामना पूर्ण न होनेकी अवस्थामें गोपियाँ विह्वल हो रही हैं, उन्होंने मौन रहकर कृष्णको संकेत कर दिया है कि उनका उपदेश सुननेकी शक्ति अब उनके शरीरमें नहीं रह गयी है। अपने अश्रुओंपर नियन्त्रण कर गोपियाँ श्रीकृष्णसे प्रार्थना करती हुई कहती हैं—हे माधव! आप तो समस्त ब्रह्माण्डके पति हैं, यदि कोई स्त्री आपको अपने पतिरूपमें देखती है अथवा मानती है तो उसे दोष नहीं लगता। आप ही हमारे स्वामी हैं, अपनी शरणागति प्रदान कर हमारी मनःकामना पूर्ण करें। ऐसा कहते हुए सभी गोपियाँ श्रीकृष्णके मुखकी ओर निहारने लगीं।

श्रीशुकदेवजी महाराज राजा परीक्षित्‌को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—

इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः।
प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत्॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। ४२)

हे राजन्! योगेश्वरोंके भी ईश्वर निज आत्मस्वरूपमें रमण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने जब व्रज-रमणियोंकी व्यथा एवं व्याकुलतासे परिपूर्ण वाणीको सुना, तब उनका हृदय द्रवीभूत हो गया और हँसते हुए अपने हाथसे सबके आँसू पोंछकर उनके साथ हास-विलास करने लगे।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण सबको अपनी विलास-क्रीडासे आनन्दित करते हुए अपने दिव्य स्वरूपानन्दसे तृप्त करने लगे। देवलोकके समस्त देवता भी भगवान्‌की इस ऐश्वर्यमयी महारासलीलाके दर्शन कर रहे हैं। अपनी प्रसन्नता एवं श्रद्धाके अनुरूप आकाशमण्डलसे पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं। यक्ष, गन्धर्व और किन्नर भगवान्‌के रास—नृत्यके साथ लय और तालका समावेश कर नृत्य और गायन करने लगे हैं। इस प्रकार श्रीराधा और सखियोंके साथ भगवान्‌ने अपनी दिव्य अन्तरङ्ग लीलासे सबकी जन्म-जन्मान्तरोंकी अभिलाषा पूर्ण की।

श्रीशुकदेवजी महाराज कहते हैं—'हे राजन्! पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्ण जन्म-मृत्यु आदि विकारोंसे रहित अविनाशी परब्रह्म हैं, मायावी गुणों और भावोंसे रहित हैं, वे तो जीवोंके परम कल्याणके लिये ही आविर्भूत होते हैं।'

जीवका भगवान्‌के साथ सम्बन्ध चाहे कामका हो, क्रोधका हो, भय अथवा स्नेहका हो, एकात्मता अथवा सौहार्दका हो, वे निश्चय ही भगवान्‌में तन्मय हो जाते हैं। जिस प्रकार गोपियाँ कृष्णके संग स्नेहका बन्धन रख मोक्षको प्राप्त हो गयीं, इसी प्रकार श्रीकृष्णसे सम्बन्ध रखनेपर समस्त जगत् बन्धनमुक्त हो सकता है—

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। १५)

* * *

सुखी जीवनका महामन्त्र—'मुसकराते रहिये'

(डॉ०श्रीभुवनेश्वरप्रसादजी वर्मा 'कमल', एम्०ए०, डी०लिट्०)

'मुसकराते रहिये'—यह एक ऐसा महामन्त्र है, जिसे कार्यान्वित करने और जीवनमें उतारनेमें मानवका आत्यन्तिक कल्याण संनिहित है। प्रसन्नता जीवनकी चरम उपलब्धि है, परम पुरुषार्थ है। उसीका जीवन सार्थक है जिसने जीतमें, हारमें, सुखमें, दुःखमें, हँसना सीखा है। दुःखमें अथवा पराजयमें रोनेवाला व्यक्ति या तो कायर है या मूर्ख है, ऐसा व्यक्ति जिंदगीके अर्थ और उसके मर्मको नहीं जानता। वह विद्याबल या धनबलपर समाजमें चाहे कितना ही ऊँचा क्यों न उठ गया हो, फिर भी वह मरे हुएके समान है। जिंदगी तो जिंदादिलीका पर्याय है। जिसके जीवनमें जिंदादिली और प्रसन्नता नहीं है, जो प्रसन्न रहना नहीं जानता, वह जीते हुए भी मरे हुएके समान है।

सर्वविदित है कि भगवान् रामके राज्याभिषेककी तैयारियाँ हो रही थीं, पर दूसरे ही क्षण समाचार प्रसारित हुआ कि अवधेशने राज्याभिषेकके कार्यक्रमको स्थगित कर रामको चौदह वर्षोंका वनवास दे दिया है। ऐसी परिस्थितिमें कल्पना कीजिये उस व्यक्तिकी मनःस्थितिकी, जिसके जीवनमें यह उथल-पुथल मची, जिसे आकाशकी ऊँचाईसे सीधे पातालकी गहराईमें धकेल दिया गया। पर वाह रे राम! गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी लिखते हैं—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥

रघुकुलको आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके मुखारविन्दकी जो शोभा राज्याभिषेकसे (राज्याभिषेककी बात सुनकर) न तो प्रसन्नताको प्राप्त हुई और न वनवासके दुःखसे मलिन ही हुई, वह (मुखकमलकी छबि) मेरे लिये सदा सुन्दर मङ्गलोंकी देनेवाली हो।

श्रीगोस्वामीजीने एक जगह बड़ी सटीक उपमा दी है—***'छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई'॥*** —जैसे वर्षा ऋतुमें छोटी नदियाँ थोड़े ही जलसे आप्लावित होकर इतराने लगती हैं तथा थोड़ेसे धनकी प्राप्तिमें क्षुद्र मनुष्य इतरा जाता है और अप्राप्तिमें शोकाकुल हो जाता है—यह सब बचपना है, मूर्खता है। ऐसे ही छुद्र नदियों एवं मनुष्योंकी भाँति हम सबने भी घर-द्वार, भूमि-भवन, धन-दौलत, मान-प्रतिष्ठा, पति-पुत्र, नौकरी-व्यवसायको आवश्यकतासे अधिक महत्त्व दे रखा है, जिसकी प्राप्तिमें हमें हर्ष और अप्राप्ति या विनाशमें शोकको प्राप्ति होती है।

ऐसी विषम परिस्थितियोंमें समदर्शिता लानेहेतु हमें शिक्षा लेनी चाहिये महापुरुषोंके जीवनसे। भगवान् रामका राज्य छिन गया; उन्हें वन-वनकी खाक छाननी पड़ी। जो व्यक्ति राजभवनमें राजसी ठाट-बाटका जीवन व्यतीत करता था, उसे ही आज नंगे पाँव धूप-वर्षा-शीतकी चादर लपेटे पगडंडियोंकी धूल फाँकनी पड़ी। मनुष्यके जीवनमें इससे भी अधिक दुःख-दर्दकी कोई बात हो सकती है क्या? आज-जैसा युग होता तो वह पिताके ऐसे निर्णयको स्पष्टरूपसे अस्वीकार कर देता; पर रामका मनोबल तो देखिये! सहनशीलता और आज्ञाकारिताकी प्रतिमूर्ति राम वनमें लक्ष्मणसे (मैथिलीशरण गुप्तके शब्दोंमें) कहते हैं-

संतुष्ट मुझे तुम देख रहे हो वनमें।
सुख धन-धरतीमें नहीं, किंतु निज मनमें॥

सुख कहाँ है? धन-दौलतमें? राज्याभिषेकमें? राजसी ठाट-बाटमें? मान-सम्मानमें? नहीं। सुखकी भावना तो मनमें निवास करती है। **'मानो तो देव, नहीं तो पत्थर।'** यह तो माननेकी बात है। महात्मा सूरदासजी (गोपियोंकी ओरसे उद्धवके प्रति) कहते हैं—

ऊधौ मन माने की बात।
दाख छुहारा छाँड़ि अमृत फल, बिषकीरा बिष खात॥

एक व्यक्ति धन-सम्पन्नतामें ही सुख मानता है, दूसरा व्यक्ति धनहीनताको ही अपना सुख-सौभाग्य समझता है। महात्मा कबीरदास कहते हैं—

सुख के माथे सिल पड़ै, जो नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुःख की, जो पल-पल नाम रटाय॥

त्यागमूर्ति भरतजीके अप्रतिम चरित्रसे आप भलीभाँति परिचित हैं। उनके जीवनकी गहराईमें आप प्रवेश कर जरा देखिये तो पता चलेगा कि जिस राज्यके लिये कैकेयीने अयोध्यामें बवंडर पैदा कर दिया, उस राज्यकी ओर

भरतजीने निहारातक नहीं, चौदह वर्षोंतक राज्यके सच्चे अधिकारी भगवान् रामकी चरणपादुकाको सिंहासनासीन कर वे स्वयं राजधानीसे दूर भूमिके नीचे एक कुटिया बनाकर वहीं तपस्वीका जीवन व्यतीत करते रहे। भरतजीके जीवनका भी वही उच्च आदर्श था, जो रामके जीवनका था। रामकी ही भाँति भरतजीको भी धन-दौलत, मान-मर्यादाकी लेशमात्र अभिलाषा-आकांक्षा नहीं थी। वे उन वस्तुओंमें सुखकी परछाईं भी नहीं देखते। उनके जीवनका सच्चा सुख तो रामके श्रीचरणोंकी भक्तिमें था। वे कहते हैं—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

(रा०च०मा० २। २०४)

गुरु नानकने भी भौतिक सुखोंको झूठा सुख माना था। वे कहते हैं—***'झूठे सुख को सुख कहै, मानत है मन मोद।'*** कहनेका तात्पर्य यह कि सांसारिक सम्पदाओंका जो सुख है, वह झूठा सुख है। जो स्वयं नश्वर है, वह शाश्वत सुख कहाँसे दे सकता है। ऐसी स्थितिमें हमें चाहिये कि उनकी ओरसे उदासीन और अनासक्त रहकर हम हर हालतमें हँसमुख-जीवन जीनेकी कला सीख लें। जैसा कि निम्न पंक्तियोंसे अभिव्यक्त होता है—

तेरे फूलों से भी प्यार, तेरे काँटों से भी प्यार।
जो भी देना हो सो दे दे करतार, दुनिया के करनहार॥

कितनी अच्छी भावना है। यदि हम ईश्वरकी सत्तामें विश्वास करते हैं, उन्हें सर्वशक्तिमान् और सृष्टिका नियन्ता मानते हैं, उन्हें अपना जनक और भर्ता मानते हैं, तो उनकी प्रसन्नतामें ही अपनी प्रसन्नता माननी चाहिये। वे हमें फूलोंका उपहार (धन-दौलत, मान-प्रतिष्ठादि) दें तब भी और काँटोंका उपहार (दरिद्रता, रोग-शोकादि) दें तब भी, हमें उनकी दी हुई वस्तुओंका—परिस्थितियोंका आदर करना चाहिये और प्रसन्न-मनसे उन्हें स्वीकार करना चाहिये।

खेल-कूदके मैदानमें जो खिलाड़ी विजेता होता है उसे कप, शिल्ड, ट्रॉफी, पदक और अन्य अनेक प्रकारके पुरस्कार मिलते हैं तथा जो बाजी हार जाता है उसे या तो कुछ नहीं मिलता अथवा जीते हुएकी अपेक्षा बहुत कम मिलता है। इसके लिये बाजी हारनेवाला खिलाड़ी क्या पुरस्कारदातापर आक्रोश प्रकट करेगा या बैठकर रोयेगा? उसे तो और भी अधिक उत्साहके साथ प्रसन्नतापूर्वक आगामी क्रीडा-प्रतियोगितामें विजयी बननेके लिये अभ्यास करनेमें जुट जाना चाहिये। इसे ही 'स्पोर्ट्स मैन स्पीरिट' या 'खिलाड़ीकी भावना' कहते हैं। जीवनकी दौड़ भी ऐसी ही है। जीवनके पग-पगपर प्रतियोगिताएँ और परीक्षाएँ हैं। उनमें सफलता प्राप्त करनेके लिये हमें प्रसन्न और स्वस्थ रहकर तैयारी करनी है।

स्वतन्त्र भारतके प्रथम राष्ट्रपति डॉ० श्रीराजेन्द्रप्रसादजीने अपने राजभवनकी दीवारपर प्रेरणादायक निम्नाङ्कित पंक्तियाँ लिखवा कर टँगवा रखी थीं। वे प्रतिदिन उनका अवलोकन कर उनसे प्रेरणा ग्रहण करते थे और विषम परिस्थितियोंमें भी मुसकराते रहते थे—

हारिये न हिम्मत, बिसारिये न हरि नाम,
जाही विधि राखे राम, ताही बिधि रहिए।

इतिहास साक्षी है कि महान् व्यक्ति बड़ी-से-बड़ी मुसीबतोंमें भी धैर्यपूर्वक मुसकराते रहे हैं। समरकंदका बादशाह तैमूरलंग युद्धमें बीस बार पराजित हुआ, पर उसने कभी हिम्मत न हारी; अन्ततः उसकी जीत हुई। पंचनद नरेश महाराज पुरु, पराजित होनेपर भी विश्वविजेता सिकन्दरके सामने अवनत नहीं हुए। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र पुत्रशोकमें भी विह्वल, विचलित नहीं हुए और अपने धर्मपर दृढ़ रहे। ऐसे सैकड़ों-हजारों उदाहरण हैं, जिनका उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं है। वस्तुतः विपत्तियोंमें रोने-धोने तथा हतोत्साहित होनेकी अपेक्षा धैर्य धारण कर दृढ़तापूर्वक उनका मुकाबला करनेमें ही सच्चा पौरुष, पुरुषार्थ और जीवनका साफल्य है।

महाराज भर्तृहरिने कहा है—**'विपदि धैर्यम्'**—अर्थात् विपत्तिमें धैर्य धारण कर मुसकराते रहना ही मानव-जीवनकी चरितार्थता है।

तो आइये, आजसे हम सभी जीनेकी कला सीख लें। अपने पूर्वार्जित् कर्मोंके अनुसार भगवान्‌के द्वारा दिये गये सुख-दुःखको समभावसे देखें। पूरी हिम्मत और जिंदादिलीके साथ मुसकराते हुए जीवन-यापन करनेका संकल्प लें। ईश्वर और उनके विधानमें विश्वास रखते हुए उनके द्वारा दिये गये फूलों और काँटोंको प्रेमोपहार मानकर स्वीकार करें, शिरोधार्य करें। हर हालतमें मुसकराते रहें।

* * *

सार्वजनिक सम्पत्तिका ट्रस्टी

(डॉ०श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

'सम्राट्! यह देखिये, आज फिर भोजन बनाते हुए मेरा हाथ जल गया । बड़ी पीड़ा हो रही है। उफ़!'

पीड़ासे व्याकुल होकर सम्राज्ञीने बादशाहसे फरियाद की !

'अरे! यह क्या! तुम्हारे फूल-जैसे कोमल हाथोंमें तो फफोले उठ आये हैं!' बादशाहने सहानुभूति-भरे शब्दोंमें बेगमसे कहा। उनके शब्दोंमें प्यारकी मृदुता थी।

सचमुच उस दिन बेगमके हाथ भापसे फिर झुलस गये थे। बेचारी नाज-नखरोंमें पली हुई थीं। उन्हें भोजन बनानेका अभ्यास न था। राजसी परिवारमें प्रारम्भिक जीवन व्यतीत करनेवाली राजपरिवारकी लड़कीके लिये खुद हाथसे भोजन बनाना भी हिमालय-जैसा कठोर काम था।

उनके वालिदके यहाँ प्रत्येक कार्यके लिये नौकर हाजिर रहता था। शाहजादीके मुँहसे फ़रमाइश निकलते ही हुक्मका पालन होता था। वे सारे दिन बिस्तरपर आराम-फरमाया करतीं, ख़ानसामाँ भोजन बनाकर शाही-मेजपर लगाता। वे तो सब्जीमें नमक-मिर्चके कम-ज्यादा होने तककी शिकायत किया करती थीं। रोटीके मोटी होने या जल जानेकी खराबी निकाला करती थीं। लेकिन जबसे उनकी शादी दिल्लीके सम्राट् नासिरुद्दीनसे हुई है, तबसे तो जैसे उनकी दुनिया ही बदल गयी है।

अब उन बेचारीको भारत-सम्राट्की बेगम होते हुए भी स्वयं ही अपना भोजन बनाना पड़ता है। उन्होंने भोजन बनाना सीखा अवश्य है, पर अभी पर्याप्त अभ्यास नहीं हुआ है। वे खुद खाना तो बनाती हैं, पर कई बार उसकी भापसे बेचारीकी उँगलियाँ जल जाया करती हैं। मृग-जैसे नेत्रोंमें कड़वा धुआँ लग जानेसे आँसू बहने लगते हैं। कभी रोटियाँ कच्ची रह जाती हैं, तो कभी जल जाती हैं। कभी आटेमें पानी अधिक गिर जानेसे वह गीला हो जाता है और चकले या बेलनपर बुरी तरह चिपक जाता है। उनकी बेली हुई रोटियाँ कहीं मोटी रहती हैं तो कहींसे फट जाती हैं। कभी छोटी रह जाती हैं तो कभी चकलेके आकारके बराबर हो जाती हैं। भोजन बनानेकी कलामें वह अपनेको पूरी तरह असफल पाती हैं।

'कमबख्त रोटी फूलती ही नहीं!' बेगम झुँझलाते हुए कह उठतीं—'भोजन बनाना भी एक अजीब मुसीबत है!'

कई बार उनके-मनमें आया कि सम्राट् नासिरुद्दीनसे अपनी भोजन पकाने-सम्बन्धी असमर्थता जाहिर करें।

साहस कर कह डालें—'जनाब! मैं दिल्लीके सम्राट्की सम्राज्ञी हूँ, कोई रोटी पकानेवाली नाचीज बावर्चिन नहीं हूँ। आप गद्दीपर बैठते हैं तो मैं भी तो पूरी जनानखानेकी मालकिन हूँ। आपकी सेवाके लिये बेशुमार नौकर हैं तो मेरी चाकरीके लिये भी दस-पाँच लौडियाँ तो रहनी चाहिये। सम्राज्ञीकी हैसियतके मुताबिक मेरी इज्जत होनी चाहिये, फिर यह आपकी कैसी हिमाकत है कि भोजन मुझसे ही पकवाते हैं। मेरे फूल-से कोमल हाथ जल जाते हैं। खंजन-सरीखे सुन्दर नेत्रोंमें आँसू आ जाते हैं। मक्खन-सी मुलायम त्वचा खुरदरी और संगमरमर-सी सफेद रंगत काली पड़ जाती है। एक बेगमसे अपना खाना पकवाना सरासर अन्याय है। कोई बावर्चिन रखी जाय।'

ये क्रान्तिकारी विचार बेगमके दिल और दिमागको विक्षुब्ध कर देते, पर शिकायत-भरे ये शब्द उनके ओठोंपर आते-आते जैसे रुक जाते। जबानपर जैसे ताला लग जाता। वह कुछ भी न बोल पातीं। बस उद्विग्न हो चुप रह जातीं।

'ऐसे कई मौके आये, पर उद्विग्नतामें ही खिसक गये। कौन कहे। चलो, फिर कभी देखा जायगा।' यह सोचती रहतीं। लेकिन आग मनमें सुलगती ही रही।

पर आज उनकी मनोव्यथा चरम सीमापर पहुँच चुकी थी। 'नहीं……आज जुबान खोलनी ही पड़ेगी। बस, अब अधिक नहीं सहा जाता।' उन्होंने सोचा।

वे भोजन पकाते-पकाते क्रुद्ध हो घायल सर्पिणी-सी उठीं और झुँझलाती हुई सीधे बादशाह नासिरुद्दीनके पास शिकायत कर दीं—

'सम्राट्! यह देखिये, आज आपका भोजन पकाते हुए मेरा हाथ जल गया। हाय, बड़ी बुरी तरह जला है? बड़ी पीड़ा हो रही है। सहा नहीं गया तो आपको दिखाने चली

आयी! यह देखिये, कैसे फफोले उठ आये हैं!!'

दिल्लीके सम्राट् नासिरुद्दीन टोपियाँ सी रहे थे। उनका सिद्धान्त था कि जनताके कोषमेंसे अपने निजी खर्चके लिये पैसा न लिया जाय। खुद मेहनत करके अपनी जीविका उपार्जित की जाय। इसी सिद्धान्तको अन्जाम देनेके लिये शासन-प्रबन्धसे बचे हुए समयमें टोपियाँ सीते और गरीबोंकी तरह गुजर-बसर करते। किसीको इस गुप्त रहस्यका पता न था।

नासिरुद्दीनने प्रेमभरी दृष्टि अपनी प्यारी बेगमपर डाली। प्रेमपूर्वक उनका हाथ अपने हाथमें लेकर देखा तो दरअसल मलिकाका हाथ बुरी तरह झुलस गया था। उसपर बेरहम फफोले उभर आये थे। वे मन-ही-मन बड़े दुःखी हुए! कुछ देर अपलक बेगमका दुःखभरा मुखमण्डल निहारते रहे।

आन्तरिक पीड़ाके शिकन बेगमके चाँद-जैसे मुखड़ेपर स्पष्ट थे, जैसे चन्द्रमाके इर्द-गिर्द घिरे हुए काले बादलोंके टुकड़े।

वे आज बड़ी विक्षुब्ध थीं। जब सम्राट्ने कुछ न कहा तो फिर कहने लगीं—'सम्राट्! इतने बड़े देशके मालिक होकर भी क्या आप रोटी बनानेके लिये···मेरे आरामकी खातिर···एक बावर्चिन नहीं रख सकते? देखिये मेरे हाथ आज कितनी बुरी तरह जल गये हैं! मुल्कके मालिककी बेगमकी यह गमगीन हालत!! आपको मुझपर रहम नहीं आता? आप यह सब कैसे गवारा कर लेते हैं?'

सम्राट्को बेगमके जले हुए हाथ देखकर सचमुच बड़ा सदमा पहुँचा! लज्जा और आत्मग्लानिसे वे पानी-पानी हो गये! उस समय वे कुछ भी बोल पानेमें असमर्थ हो रहे थे।

वे सोच रहे थे—'मैं ही बेगमकी शिकायतका गुनहगार हूँ। दुनियाके इतिहासमें शायद ही कोई सम्राज्ञी मेरी पतिव्रता बेगमकी तरह खाविन्दकी रोटी पकाती होगी। मैं चाहे शाही खजानेसे अपने निजी खर्चके लिये कुछ न लूँ, पर मेरी वजहसे इस बेचारीको भी परेशानी उठानी पड़े, यह और सम्राज्ञियोंकी तरह आराम और सुख-सुविधाएँ न पाये, यह तो वाजिब नहीं है!'

फिर भी बेगमको प्यारसे समझाते हुए नासिरुद्दीन बोले—'प्यारी मलिका! मुझे मुल्कका मालिक न कहो!'

'आप दिल्लीके इतिहास-प्रसिद्ध तख़्तपर शासन कर रहे हैं। आपको जनताके भाग्यके वारे-न्यारे करनेका पूरा हक हासिल है। आपका हुक्म ही कानून है; फिर आप मुल्कके मालिक नहीं, तो भला दूसरा कौन है?'

'नहीं, नहीं, मालिक तो सिर्फ खुदा ही है!'

'हुजूर, फिर आप क्या हैं? सुनूँ तो दिल्लीका सम्राट् अपने-आपको क्या मानता है?'

'मैं तो एक नाचीज खिदमतगार हूँ!'

शहंशाहका यह संक्षिप्त उत्तर सुनकर बेगम उलझनमें पड़ गयीं। वह कुछ भी नहीं समझीं।

स्पष्टीकरणकी दृष्टिसे उन्होंने आगे पूछा—

'हुजूर, आपने अपने-आपको खिदमतगार कैसे कहा? यह बात कुछ समझमें नहीं आयी।'

उत्तरके लिये वह उत्सुकतापूर्वक सम्राट्के मुँहकी ओर ताकने लगीं।

हलकी-सी प्यार-भरी मुसकराहट चेहरेपर लाकर सम्राट् नासिरुद्दीन बोले—'अरे मलिका! मेरी बात तो दिनके प्रकाशकी तरह साफ है। उसमें उलझन-जैसी बात ही कहाँ है? तुम देखती नहीं, मैं राजकार्यसे समय बचाकर टोपियाँ सी-सी कर खुदकी मेहनतसे जो थोड़ेसे पैसे कमाता हूँ, उसमें ही अपना गुजर-बसर करता हूँ······हमारे मुल्कमें लोग आलस्यमें बैठे रहने और हरामखोरी करनेको ही बड़प्पन मानते हैं। वे इस बातका घमंड करते हैं कि उनके नौकर-चाकर ही उनका सारा काम कर देते हैं······हमारे अभागे मुल्कमें ऐसे भी काहिल राजा हुए हैं, जिनके कपड़ा पहनाने, उतारने और जूता खोलने-बाँधने तकका काम नौकर करते रहे हैं। अभी भी जिन अमीरोंके पास जमीन-जायदाद है, वे बड़े कहलानेवाले आदमी इस बातमें शान समझते हैं कि उन्हें कुछ काम नहीं करना पड़ता······सारा दिन बैठे-बैठे आराम फरमाते ही बीत जाता है······जिनके लड़के-बच्चे कमाऊ हो गये हैं, उनके माँ-बाप सोचते हैं कि अब उन्हें काम क्यों करना चाहिये···हाय! यह अभागा देश····गलतीसे उन लोगोंको संत-महात्मा मानता है जो

मेहनत रत्तीभर नहीं करना चाहते!……क्या अमीर और भाग्यवान्‌की यही परिभाषा है बेगम?

बेगम सुनकर चकरा गयीं। उन्होंने विषयको फिर बदला।

बोलीं—'दिल्लीका सारा शाही खजाना तो आपके हाथमें है। इसमेंसे खर्च करनेसे भला आपको कौन रोकता है?'

'तुम मेरा मतलब नहीं समझी, बेगम! इस सरकारी खजानेमें भला मेरा क्या है?'

'फिर यह विशाल साम्राज्य किसका है?'

'अरे, यह तो सब इस मुल्ककी—प्रजाकी चीज है……और……प्रजाके कामोंमें ही खर्च होनी चाहिये।'

'परंतु खर्च करनेमें भला आपका हाथ कौन पकड़ता है' बेगमने सुझाव दिया।

'यह ठीक है कि सरकारी खजानेको यदि मैं अनुचित तरीकेसे भी खर्च करूँ तो आज कोई प्रजाजन मेरा हाथ न पकड़ेगा……।'

'सम्राट् कुछ कहते-कहते रुक गये।'

'तो फिर आपको क्या डर है?' बेगमने उनका पीछा न छोड़ा, भला आपको किसे हिसाब देना है? आपसे हिसाब माँगनेकी किसकी हिम्मत है?

नासिरुद्दीन कुछ देर चुप रहे।

फिर बोले—आज किसी औरको हिसाब भले न देना पड़े, परंतु 'कल खुदाके सामने तो हिसाब देना ही पड़ेगा। बेगम, तुम जरा गहराईसे तो सोच कर देखो। हम राजा लोग सार्वजनिक सम्पत्तिके ट्रस्टी हैं। रिआयाकी तरफसे उसीके इंतजामके लिये खर्च करनेवाले हैं। मैं अगर इस अमानतमें खयानत करूँ, प्रजाके पैसेको खुद अपने व्यक्तिगत काममें लाऊँ तो अल्लाहके सामने गुनहगार ठहराया जाऊँगा……।'

यह कहते-कहते सम्राट्‌की आँखें गीली हो उठीं।

वह हृदयके गहन तलसे निकली हुई सच्ची बात असर किये बिना न रही। बेगम अपना दुःख भूल गयीं। उनको सम्राट्‌के परिश्रम और अपनी पाँचों उँगलियोंकी कमाईपर निर्भर रहनेका लाभ मालूम हो गया। उन्होंने अनुभव किया कि मेहनतके मामलेमें सम्राट् और श्रमिक एक-से ही हैं। दोनों मजदूरोंमें कोई अन्तर नहीं है।

वह बादशाहकी मेहनतकी कमाई और ईमानदारीकी प्रशंसा करती हुई महलमें वापस लौट गयीं।

सोचती जाती थीं—'वाकई, सम्राट्‌ने ठीक ही कहा है, जिस मुल्कमें आलसी धनाढ्य सम्मान पाते हों, निठल्ले भाग्यवान् कहलाते हों और श्रमिकोंको छोटा, तिरस्कृत और अभागा या अछूत समझा जाता हो, उस देशका भविष्य क्या होगा? श्रमसे जी चुरानेवालोंपर जितनी विपत्तियाँ आयें कम हैं, उन्हें जितनी अवनति देखनी पड़े, उतनी ही थोड़ी है। कठोर श्रमसे ही राष्ट्रकी समृद्धि हो सकती है।'

मलिकाने प्रण किया कि भविष्यमें वे कभी भी सम्राट्‌का भोजन पकानेके लिये दासीकी माँग पेश नहीं करेंगी।

* * *

पालने रघुपति झुलावै

पालने रघुपति झुलावै।
लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै॥
केकिकंठ दुति श्यामबरन बपु, बाल बिभूषन बिरचि बनाए।
अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए॥
सिसु-सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पदपल्लव लाए।
मनहुँ सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सों सचु पाए॥
उपर अनूप बिलोकि खेलौना किलकत पुनि पुनि पानि पसारत।
मनहुँ उभय अंभोज अरुन सों बिधु-भय बिनय करत अति आरत॥
तुलसिदास बहु बास बिबस अलि गुंजत, सुछबि न जाति बखानी।
मनहुँ सकल श्रुति ऋचा मधुप ह्वै बिसद सुजस बरनत बर बानी॥
(गीतावली)

* * *

भगवन्नाम-जपकी अद्भुत महिमा

(श्रीबनवारीलालजी गोयन्का)

गोस्वामीजीने भगवन्नामकी कितनी विशेष महिमा कही है। भगवान्‌के निर्गुण-सगुण दोनों स्वरूपोंसे नामरूपी (भगवान्)-को बढ़कर बताया है—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥
(रा० च० मा० १। २३। १-२)

अर्थात्—निर्गुण और सगुण—ब्रह्मके दो स्वरूप हैं। ये दोनों ही अकथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं। मेरी सम्मतिमें नाम इन दोनोंसे बड़ा है, जिसने अपने बलसे दोनोंको अपने वशमें कर रखा है।

भगवन्नाम लेते समय इसका खयाल रखे कि नाम और नामीमें भेद नहीं है, क्योंकि भगवान्‌ने कहा है—'**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि**'—मैं यज्ञोंमें जपयज्ञ हूँ। अत: भगवन्नाम-जपयज्ञसे तो साक्षात् भगवान्‌से ही अपनी जिह्वाका स्पर्श हो रहा है। नाम भगवान्‌को मिलानेवाला साधन भी है और साक्षात् रामस्वरूप भी है। इसीलिये गोस्वामीजीने लिखा कि नाम सगुण और निर्गुण भगवान्‌के दोनों रूपोंसे बड़ा है; क्योंकि यह दोनों रूपोंको मिला सकता है।

मनुष्य-शरीरमें असंख्य रोएँ हैं। नाम लेते समय ऐसा हम अनुभव करें कि प्रत्येक रोमसे भगवन्नामकी ध्वनि निकल रही है। इस प्रकारका भाव-चिन्तन होनेपर आगे जाकर यह अनुभव होगा कि पूरा शरीर रामनाममय हो रहा है।

जो प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवन्नाम लेता रहता है—वह जिह्वासे भगवान्‌का स्पर्श तो करता ही है, साथ ही भगवान् रामका अत्यन्त प्यारा भी बन जाता है।

जैसे भगवान्‌के रामनामकी इतनी महिमा है, वैसे ही यदि भगवान् श्रीकृष्णको पाना हो तो 'श्रीराधा' नामकी भी अनुपम महिमा है। राधा-नाम निरन्तर जपनेवालेको श्रीराधासहित श्रीकृष्ण—दोनों ही मिलेंगे, इसमें किसी भ्रमके कारण कभी भी संदेह न करें।

देखिये, भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

'चाहे सो खरीद ले मुझको, मुझे सुनाकर राधा नाम'

भगवन्नामकी कितनी भारी महिमा है। कोटि-कोटि मुखोंसे भी इसका गान करके पार नहीं पाया जा सकता। इस कलियुगमें तो यही एक सहारा है। ध्यान लगे या न लगे, मन भी पूरा लगे या न लगे, पर लेते रहें नाम—नाम जपनेवालेको निश्चित रूपसे भगवान् मिलेंगे, भव-बन्धनसे मुक्ति मिलेगी—

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि भव उतरउँ पारा॥

भगवन्नामकी कितनी महिमा है, यह जितनी गायी जाय उतनी थोड़ी है। उसकी महिमाका तो वर्णन ही असम्भव है। जैसे कोई यह कहे कि सूर्यका प्रकाश कितना है यह मैं बतलाऊँ, तो क्या वह पूरा सूर्यका प्रकाश बतला सकता है? दूसरा यदि कोई यह कहे कि आकाशको नापकर बताऊँ, तो क्या वह आकाशको नापकर बता सकता है? जब आकाशको नापा नहीं जा सकता, सूर्यके प्रकाशको भी नहीं नापा जा सकता, फिर कोई यह कहे कि भगवन्नामकी पूरी महिमा मैं बताऊँ, यह तो उसकी बालचपलता मात्र है।

जैसे लोभीके पास ज्यों-ज्यों धन बढ़ता है त्यों-त्यों वह प्रसन्न होता जाता है, पर साथ ही ज्यादा धनकी उसकी लालसा भी बढ़ती रहती है। वैसे ही भगवन्नाम-जपके लोभीको भी नाम-जपकी प्रसन्नता तथा लालसा ***'दिन दूनी रात चौगुनी'*** बढ़ती ही चली जाती है। यदि भगवन्नामके लोभीसे पूछा जाय कि तुम क्या लोगे, तो वह यही कहेगा बस, अनन्त कालतक मेरी ज्यादा-से-ज्यादा रुचि भगवन्नाम लेनेमें बढ़ती ही जाय।

गोस्वामीजी लिखते हैं—श्रीहनुमान्‌जी महाराजने राम-नामसे भगवान् रामको अपने वशमें कर लिया—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
(रा० च० मा० १। २६। ६)

भगवन्नाम-जप जीभसे तो बड़ी सरलतासे होता है और गलेसे उसकी धीमी-धीमी ध्वनि भी निरन्तर हो सकती है। परम पूज्य श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दका बतलाया करते थे कि श्वास तथा नाड़ी-जप भी निरन्तर होते रहना चाहिये, जिससे नाड़ी-श्वासकी ध्वनिके साथ नाम स्वतः जुड़ जाय। पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार तो कहा करते थे—मुझे भगवन्नाम-जप और भगवत्कृपासे जितना लाभ हुआ, उतना और किसी साधनसे इतना जल्दी नहीं हुआ।

एक राम-नामके आढ़तिया थे। वे बही-खाता तथा रोकड़ आदि साथमें रखते और जगह-जगह लोगोंसे भगवन्नाम-जपकी माला-संख्या उसमें लिखवा कर बहीमें जमा कर लेते। एक बार वे भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी

पोद्दारको लेकर श्रीगाँधीजीके पास गये। गाँधीजीने हँसकर पोद्दारजीसे कहा—तूँ दलाली करने आया है, फिर गाँधीजीने तकियेके नीचेसे अपनी माला दिखायी और बोले, मैं इस मालासे निरन्तर नाम-जप करता रहता हूँ।

एक दम्पति (पति-पत्नी) थे। पत्नीने रातको तोलकर बताया, मैने १॥ सेर जप किया है। पतिने कहा, मैंने आज २ सेर जप किया है। एक संतने पूछा—ये तोलकर जप कैसे होता है। तब उन्होंने कहा—एक नामपर एक गेहूँ या चना सरका देते हैं, इस प्रकार प्रात:से रातको सोनेतक करते रहते हैं, फिर तोलकर यह पता लगाते हैं कि आपसमें किसका आज अधिक जप हुआ।

एक रसोई बनानेवाला था—उसका नाम था इशर। वह रातको नींदमें भी जोर-जोरसे भगवन्नाम बोलता रहता, कितना जबर्दस्त भाव था भगवन्नामके प्रति उसका। ऐसे ही हम सब भी उस भगवन्नाममें अपनेको झोंक दें तो धन्य हो जायँ।

श्रीकृष्ण-संकीर्तन

(श्रीगंगाप्रसादजी भट्ट, बी०ए०, एल्-एल्०बी०, साहित्यरत्न)

जय जयति कृष्ण गिरिधर गोपाल,
जय जय त्रिभुवन-मोहन दयाल।
छविधाम श्याम मुखमण्डलपर,
अभिराम नेत्र मधुमय विशाल॥ जय जयति०॥
जय ओंकार प्रेमावतार,
लीलाधर व्रज-माधुरी-सार।
जय असुरनिकन्दन जन-उर-चन्दन,
धर्म*पाल जय प्रणतपाल॥ जय जयति०॥
छवि देखि रावरो नन्दलाल!
वसुदेव-देवकी जन निहाल!
व्रज-रेणु धेनु सरि धन्य गोपिका,
नन्द यशोदा ग्वाल-बाल॥ जय जयति०॥
जगमग ज्योतिर्मय दिव्यरूप,
आनन्द-कन्द विस्मय-स्वरूप।
उन्नत ललाट शोभित विशेष,
वैजयन्ती माला उर-प्रदेश॥ जय जयति०॥
आजानुबाहु नटवर नागर,
गौरव-मण्डित नर रुचिर वेश।
सिर मोर-पक्ष भृगुलता वक्ष,
जय जयति भक्त-वत्सल कृपाल॥ जय जयति०॥
मकराकृत कुण्डल कुटिल केश,
पीताम्बर शोभित कटि-प्रदेश।
आयतन वक्ष वर वृषभ कन्ध,
रोमावलि पुलकित कलित रन्ध्र।
चिन्मय लीलामय देह-यष्टि,
करुणा-आपूरित चपल दृष्टि।
जगमग गोरोचन तिलक भाल,
मोहिनी मूर्ति दर्शन निहाल॥ जय जयति०॥
शुक-ठोर नासिका अभ्यन्तर,
आवर्तित वेद-ऋचा अक्षर।
नीलार्ध शंख ज्यों कलित कर्ण,
तडिताभ श्वेत वाहन सुपर्ण।
उल्लसित कण्ठ उच्छलित अधर,
पर सामवेदका नर्तित स्वर।
मनहर प्रफुल्ल शतदल सनाल,
जय पाञ्चजन्य-युत महाकाल॥ जय जयति०॥
सौदामिनि-आभायुत मुकुन्द,
छवि देखि मुग्ध शरदेन्दु कुन्द।
अधरामृत मुरली मधुर तान,
निज जन-हित चित्त मङ्गल वितान।
वृन्दावन नर्तित महारास,
राधा-व्रज-वल्लभ चिद्‌विलास।
राकापति उडगण सुर-समाज,
आनन्द-सिन्धु सब मग्न आज।
हर्षित वसुन्धरा पोर-पोर,
वर वेणु निनादित नभविभोर।
पग नटनि छरकि थिरकनि सुताल,
छक प्रेमामृत कण-कण निढाल॥ जय जयति०॥
जनमें जो वृन्दावन प्रमाण,
गोविन्द उन्हें भी ललित प्राण।
जब चक्रपाणि द्विज-धेनु-पाल
प्रतिपाल, करे क्या कलि कराल?॥ जय जयति०॥

---

* श्रीकृष्ण-जन्मोत्सवके अवसरपर चिह्नित पद-पंक्तिके स्थानपर 'अभिनन्दन प्राकट्य-काल' पढ़ना चाहिये।

बाल-कल्याण

(१)

तरुणो! अपना पथ चुन लो

(श्रीस्वामी श्रीशिवानन्दजी महाराज)

क्या यही वह भूमि है, जिसे चक्रवर्ती भरतके चरणोंने कभी पवित्र किया था? क्या आजके तरुण उसी भारतमाताकी संतान हैं, जिसने कभी भीष्म, अर्जुन, याज्ञवल्क्य और नचिकेताको जन्म दिया था? निस्संदेह वही है; क्योंकि बाहरी संस्कृतियोंके इतने समाघातोंके बाद भी, इस पुण्यभूमिमें उस महान् प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृतिके पदचिह्न अब भी अवशेष हैं, यहाँकी धरतीमें आज भी योगियों, संतों, प्रतापी शासकों और गहन मनीषियोंके पद-परागकी सुरभि अभिव्याप्त है।

भारतमाता! तब तुम्हें कौन-सी व्यथा सता रही है? तुमने क्यों ऐसी निर्बल संतान जनना प्रारम्भ कर दिया है—जिनमें न प्रतिभा है, न नैतिक बल है और न है संकल्पकी दृढ़ता? क्यों तुम्हारे ऊपर ऐसी विपत्ति आ पड़ी कि जिस कोखने श्रीराम और भगवान् बुद्धको जन्म दिया, उसी कोखसे दुर्बल संकल्पवाले चरित्रहीन तरुण जन्म लेने लगे? नहीं-नहीं, यह रोग तुम्हारे अन्तर्मर्मको प्रभावित नहीं कर सकता। यह तो केवल क्षणिक ज्वर है।

भारतमाताकी तरुण संतानो! महान् योगियों और संतोंके वंशजो! उठो, तन्द्रा छोड़ दो, तुम्हारी माता तीव्र यातना पा रही है। जिसने तुम्हें जन्म देकर पाला-पोसा, उस जननीका हृदय आज व्यथित है। उसका जीवन-श्वास है—अध्यात्म। तुम्हारा प्रत्येक कुकर्म उस श्वासको अवरुद्ध कर देता है, तुम्हारे प्रत्येक कुवचन और कुविचार उसको अरुचिसे उद्विग्न कर देते हैं, वह अब अधिक सहन करनेमें असमर्थ है।

भारतमाताने तुमसे अपेक्षा की थी कि तुम मानवताके आध्यात्मिक नेता बनोगे, पर निकले तुम विदेशी भौतिकवादी संस्कृतिके अभागे अनुगामी! भारतमाताने तुमसे अपेक्षा की थी कि तुम अध्यात्मशक्तिकी महान् विभूति बनोगे, बुद्धिके अवतार बनोगे और पवित्रताकी महान् आत्मा बनोगे, परंतु अब योगका नाम लेते ही तुम्हारी जान काँपती है, ईश्वर और संतोंके नाम आते ही तुम कान मूँद लेते हो और ऐन्द्रिय सुखकी परछाईंके पीछे तुम दौड़ते रहते हो। क्या माँको इस तरह हताश करना तुम्हारे लिये उचित है? कभी नहीं, कदापि नहीं।

भारतकी तरुणाई! जागो। क्या तुमने अपना पाठ नहीं दुहराया है? विदेशी सभ्यताकी शताब्दियोंकी अधम दासतासे तुम्हें क्या मिला? सिनेमासे, सस्ते उपन्यासोंसे, होटलोंसे और जुआघरोंसे तथा चाय, कहवा और मादक पेय-पदार्थोंसे कौन-सा आनन्द और सुख तुम्हें मिला है—सिवा रोग, स्नायुविशृंखलता, मानसिक विकृति, चारित्रिक दिवालियापन और धूमिल बुद्धिके? जब तुम अपनी सुन्दर देहको कुत्सित अङ्गरागोंसे आलिप्त करते हो, जब तुम ईश्वरप्रदत्त विशुद्ध वायुके बदले तंबाकूके धूम्रसे अपने फेफड़ोंको आपूरित करते हो, जब तुम सूर्य और वायुको संरुद्ध करनेवाली एवं भारतीय जलवायुके प्रतिकूल पश्चिमी वेश-भूषा अपने शरीरपर लाद लेते हो तथा जब तुम भड़कीली नेकटाई और शौकीन हैट-बूटसे लैस हो जाते हो, तब तुम अपने ऊपर ही मृत्युदण्डकी व्यवस्था कर देते हो। हाँ, वासना और विलासके अन्ध उन्मादमें तुम इसे लख नहीं पाते।

आओ, मैं तुम्हें निस्तारका उपाय बतलाऊँ। यह उपाय कोई नया नहीं है। यह तुम्हारे रक्तमें वर्तमान है। यह ऐसी संस्कृतिका अभिज्ञान है जो तुम्हारे हृदयपटलपर गहरे रूपसे अंकित है। केवल तुम इसे जानते नहीं, मुझे तुम्हें स्मरणमात्र दिलाना है, मुझे शिक्षा नहीं देनी है।

जीवनका उद्देश्य मरण न होकर कुछ उच्चतर लक्ष्य है। जीवनका अन्त मृत्यु न होकर सत् और महत्‌की प्राप्ति है। जीवनके उद्देश्य मोटरगाड़ी, सिगरेटके डब्बे, बँगले और बैंकके खाते नहीं हैं। तुम्हीं एक क्षण शान्त होकर सोचो तो तुम्हें तुरंत यह समझमें आ जायगा कि इन सब विलास-सामग्रियोंने दुःखोंको हजारगुना बढ़ाया है।

क्या तुम अपना मन जानते हो? क्या तुम्हें विचारपर भी विचार करनेका अवसर मिला है? नहीं, तुम्हें इसका अवकाश कहाँसे मिले? इसीलिये तुम, असद्विचार उठने न पायें, इसका निवारण नहीं जानते, जीवनमें विनाशके क्षणोंको रोकनेका उपाय तुम्हें नहीं मालूम, मनकी शान्ति और वास्तविक सुख पानेका साधन तुम नहीं जानते।

मनको परिष्कृत करनेके विविध प्रकार हैं। तुम्हें उन सबको अपनाना पड़ेगा। मन और शरीरके बीच बहुत ही सूक्ष्म सम्बन्ध है; जो शरीरकी स्नायुओंको उत्तेजित कर देता है, तथा मनके लिये भी अहितकर होता है। तुम्हारे भीतर प्रचुर शक्ति और ऊर्जा है। तुम्हें इनका उपयोग जानना चाहिये। स्नायुओंको उत्तेजित करनेसे उनका सदुपयोग नहीं हो सकता। मदिरा और सिगरेटमें कोई ओज नहीं है, वे तो उलटे तुम्हारे ओजका दुरुपयोग कराके विनाश करते हैं। इन सबसे कोसों दूर रहो। जब तुम मांस-मदिरासे विरहित शुद्ध पोषक आहार ग्रहण करोगे, तभी तुम अपने आन्तरिक ओजकी निधिमें वृद्धि कर सकोगे और बलवान् एवं शक्तिशाली बन सकोगे। तभी तुम्हारा मन शान्त होगा, तुम्हें आनन्दकी प्राप्ति होगी।

मनकी कुपथपर जानेकी स्वयं ही कुटेव होती है। उसीको लोग आदत कहते रहते हैं। तुम्हारा अपनी आदतोंपर पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिये, तब वे आदतें न रह जायँगी। तुम मनके ऊपर शासन करोगे, मन तुम्हारे ऊपर शासन नहीं करेगा, तब तुम स्वस्थ आदतें डालनेमें समर्थ हो सकोगे। लौह संकल्पके साथ समस्त अस्वस्थ और अनैतिक आदतोंपर विजय प्राप्त करो। तुम ऐसा कर सकते हो, तुम्हीं अकेले कर सकते हो और तुम तभीतक कर सकते हो, जबतक तुम तरुण हो।

ब्रह्मचर्यमें अधिष्ठित हो जाओ। वीर्य तुम्हारे भीतर वह शक्ति है, जिसे तुम चाहे जीवनमें बड़ी सफलता प्राप्त करनेके लिये, चाहे अद्भुत चमत्कार प्राप्त करनेके लिये, चाहे पाण्डित्य प्राप्त करनेके लिये, चाहे विश्रुत कलाकार बननेके लिये, चाहे व्यक्तिगत आकर्षणशक्ति और तेजस्वी स्वास्थ्य प्राप्त करनेके लिये नियोजित कर सकते हो। इस बातको भलीभाँति समझ लो। भीष्म समरमें इसलिये अजेय थे कि वे ब्रह्मचारी थे। हनुमान् इतना शौर्य इसलिये दिखला सके कि वे ब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचर्य तुम्हें दमकती देह, दीर्घ-जीवन, सशक्त मस्तिष्क, हृदयानन्द और आकर्षक व्यक्तित्व प्रदान करता है, अतः शास्त्रविधिसे इसका पूर्णतः पालन करो।

उन सभी प्रकारके उपन्यासों और अख़बारों, पत्र-पत्रिकाओं और चित्रोंसे अपनेको दूर रखो, जो तुम्हारी पाशविक प्रवृत्तियोंको उत्तेजित करते हों। क्या तुम पशु हो? मनुष्य-योनिमें जन्म लेकर क्या तुम पशुका अनुकरण करना चाहोगे? कितनी लज्जाजनक बात है। तुम्हें अपने निम्नतर संस्कारोंके साथ असहयोग करना चाहिये। तभी तुम यथार्थ पुरुष बनोगे। यदि तुम्हारा मन सिनेमाकी ओर दौड़ता है तो अनशन और प्रार्थना करो। गंदे साहित्यको जला डालो। कामोद्दीपक उपन्यासोंकी होली मना डालो।

गीता, उपनिषद् और धार्मिक ग्रन्थोंका अध्ययन करो। तुम्हारा मन इससे ऊर्ध्वोन्मुख बनेगा। तब मनमें कोई विक्षोभ न उठेगा। जब मन शान्त हो जायगा, तब तुम इसकी प्रकृति पहचान सकोगे। तुम मनके महान् स्रोतोंका सदुपयोग करना सीख जाओगे। तुम अंदरसे शक्ति प्राप्त करने लगोगे। तुम मानसिक शान्तिका आनन्द उठाना जान लोगे। तुम शाश्वत सुख और आनन्द-प्राप्तिका साधन पा लोगे।

जब तुम्हारा मन शान्त और अविचल होगा, तब तुम्हारा शरीर भी स्वस्थ और शक्तिशाली हो जायगा। तुम्हारा हृदय पवित्र हो जायगा और तुम्हारी इच्छाशक्ति अप्रतिहत बन जायगी। मुँहसे जो शब्द कहोगे, वह होकर रहेगा। मनमें कोई विचार करोगे, वह तुरंत कार्यान्वित होकर रहेगा। तुम सिंहका अनुभाव प्राप्त कर लोगे। तुम्हारा शब्द कानून बन जायगा। तुम्हारी कामना परिपूर्ण हो जायगी। तुम द्युतिमान् देवपुरुषकी तरह चमक उठोगे। तब तुम समझोगे कि जीवनका प्रयोजन अपने स्रोतका परिज्ञान है, मनुष्यताका लक्ष्य ईश्वरकी प्राप्ति है और यह जगत् इसलिये है कि तुम इसके भीतर इसके स्रष्टाको पा सको।

जब मन अविचल और हृदय शुद्ध हो जाता है, तब ईश्वरकी ज्योति उसमें छिटक जाती है और उसके भीतरसे अव्याहतरूपसे प्रसृत होती रहती है। तब तुम ईश्वरको जान जाओगे। तब तुम यह भी जान जाओगे कि वस्तुतः तुम स्वयं ही ईश्वर हो। ईश्वरकी ज्योति तुम्हारे द्वारा आलोकित होगी,

ईश्वरकी शक्ति तुम्हारे द्वारा कार्य करेगी, ईश्वरका परमानन्द तुमसे विसृत होगा।

तब भारतमाता आनन्द मनायेगी और प्राचीन ऋषि, महात्मा, योगी तथा महापुरुष भी आनन्द मनायेंगे और तुम्हारे ऊपर अपने आशीर्वादकी वर्षा करेंगे। तुम अमृतत्व प्राप्त करोगे, तुम्हारा नाम अमर होगा और तुम्हारी कीर्ति अक्षय होगी।

भगवान् करे तुम सभी महापुरुष तथा परम भागवत इसी जन्ममें और अभी हो जाओ। यही हमारी परमात्मासे हार्दिक विनय है।

(२)

गुरुभक्त बालक आरुणि

बरसातके दिन थे। आकाशमें बादल छाये हुए थे। ऋषिवर धौम्य सुखसे अपने आश्रममें विराजमान थे और शिष्योंको विद्यादान कर रहे थे। प्राचीन भारतके विद्वान् ब्राह्मण नगरके बाहर आश्रम बनाकर निवास करते थे, वहीं जप-तप करते और अपने शिष्योंको पढ़ाते-लिखाते थे। शिष्य भी सदा उन्हींके आश्रममें निवास करते थे और पढ़ने-लिखनेके साथ-साथ तन-मन-धनसे गुरुकी सेवा-शुश्रूषा करते थे। आश्रमकी खेती-बारीका कार्य भी सँभालते थे। ऋषिवर आयोदधौम्य ऐसे ही गुरु थे और उनके आश्रममें निवास करनेवाले शिष्योंकी संख्या सैकड़ोंतक जा पहुँची थी।

सहसा बादल घने हो गये। आकाशमें बिजली चमकने लगी और कानोंके पर्दे फाड़नेवाली गड़गड़ाहटसे दसों दिशाएँ काँप उठीं। इसके साथ ही बूँदा-बाँदी प्रारम्भ हुई और फिर मूसलाधार पानी बरसने लगा—मानो आकाश ही फट पड़ा हो। बात-की-बातमें जहाँ देखो वहीं पानी-ही-पानी फैल गया। गुरुजी चिन्तित होकर बोले—'ऐसा पानी तो कभी नहीं बरसा। यदि खेतका बाँध पक्का न किया गया तो उसकी सारी फसल बह जायगी।'

'मेरी कुटी रिसती है। जाकर देखूँ, उसमें पानी न भर जाय।' पहला शिष्य बोला और वहाँसे चला गया।

'मेरी कुटीका पिछला भाग टूट गया है। अब उसकी क्या दशा होगी! चलकर देख-भाल करूँ।' दूसरा शिष्य बोला और अपनी कुटीकी ओर चल दिया।

'मेरे वल्कल-वसन तो बाहर ही पड़े हैं, कहीं बह न जायँ।' तीसरा शिष्य बोला और वह भी जल्दी-जल्दी वहाँसे निकल गया।

इस प्रकार एक-न-एक बहाना बनाकर लगभग सभी शिष्य खिसक गये। अब तो आरुणि शान्त न रह सका, उठकर खड़ा हुआ और बोला—'मुझे आज्ञा दीजिये भगवन्! मैं जाता हूँ और बाँध पक्का किये देता हूँ।'

गुरुजीने कहा—'जाओ बेटा! तुम्हीं जाओ; परंतु इतना याद रखना कि बाँध कच्चा न रहने पाये, परिश्रम भले ही अधिक करना पड़े।'

गुरुके शब्द सुनते ही आरुणि दौड़ते-दौड़ते खेतपर पहुँचा, तो देखता क्या है कि बाँध एक ओरसे टूट गया है और उसके रास्ते खेतका पानी अरटिसे बहा जा रहा है। बस, आरुणि एक क्षणके लिये भी नहीं रुका—बाँधको मिट्टीसे भरनेकी चेष्टा करने लगा और इसके साथ ही मानो उसके तथा वर्षाके बीच युद्ध छिड़ गया। पानी कहता था कि 'आज छोड़ कल न बरसूँगा और आरुणि कहता था कि बाँध कल नहीं, आज पक्का करूँगा।' परंतु आरुणिकी चल एक भी नहीं रही थी। वह जबतक मिट्टीका एक लौंदा रखता और दूसरा बनाने लगता था, तबतक पहला लौंदा बह जाता था।

अब आरुणि क्या करे? कैसे गुरुकी आज्ञाका पालन हो? कैसे बाँध पक्का बने? कैसे खेतका पानी रुके? क्या वह वर्षासे हार मान ले और खेतका पानी बह जाने दे? परंतु आरुणि हार माननेवाला नहीं, जीतपर मरनेवाला बालक था। जब उसे कुछ न सूझा, तब उसने वर्षापर विजय पानेके लिये एक बिलकुल नया अनोखा उपाय खोज निकाला—वह स्वयं टूटे हुए बाँधके स्थानपर जा लेटा। अभिप्राय यह कि उसने मिट्टीके बाँधके स्थानपर हाड़-मांसका बाँध बना डाला और हाड़-मांसके उस जीवित बाँधके सामने वर्षाको हार माननी पड़ी—खेतके बहते हुए पानीको रुकना पड़ा।

जब दूसरे दिन गुरुजी शिष्योंको पढ़ाने बैठे, तब उनमें

आरुणिको न देखकर चिन्तित स्वरमें बोले—'आज आरुणि दिखायी नहीं देता। कहाँ गया वह?'

'कल संध्या-समय खेतकी ओर जाता दिखायी दिया था!'—पहला शिष्य बोला।

'अपनी कुटीमें पड़ा होगा। पढ़ने-लिखनेमें उसका जी लगता ही कहाँ है! इतना दिन चढ़ आया और वह अभी सो ही रहा है।'—दूसरा शिष्य बोला।

'कुटी तो उसकी सूनी पड़ी है। कामचोर तो वह है ही, मैं समझता हूँ, कल अवसर पाकर कहीं भाग निकला है।'—तीसरा शिष्य बोला।

परंतु गुरुजी कुछ न बोले, चुपचाप खेतकी ओर चल पड़े और वहाँ पहुँचकर लगे करुण स्वरमें पुकारने—'आरुणि!…आरुणि!!…बेटा आरुणि!!!'

जब कहींसे कोई उत्तर न मिला, तब गुरुजी व्याकुल होकर खेतमें चक्कर काटने लगे। अन्तमें वे ठीक स्थानपर जा पहुँचे, तो देखते क्या हैं कि बेसुध आरुणि टूटे हुए बाँधको घेर रखा है, उसके शीतसे अकड़े हुए शरीरपर गीली मिट्टीकी तहें जम गयी हैं और वह धीमे-धीमे साँस ले रहा है।

असल बात समझनेमें गुरुजीको विलम्ब न लगा। उनकी आँखोंसे टप-टप आँसू गिरने लगे। वे आरुणिको तुरंत आश्रममें उठा लाये। उन्होंने अपने हाथों उसका शरीर धोया-पोंछा, उसपर तेलका मालिश किया और फिर उसे गरम कपड़ोंसे ढँक दिया। आरुणि थोड़ी देर बाद होशमें आ गया। अब तो गुरुजी बहुत प्रसन्न हुए और उसके सिरपर हाथ फेरते-फेरते बोले—'बेटा! तुम्हारी गुरुभक्तिपर मुझे अभिमान है। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुमको सारी विद्याएँ प्राप्त हो जायँ, तुम सुखसे जीवन बिताओ और खूब नाम कमाओ।' कहना नहीं होगा कि गुरुके वचन सफल हुए।

(३)

बालिका विक्टोरियाकी सच्चाई

बचपनमें ही माता-पिताने विक्टोरियाको उत्तम गुण एवं शील-सम्पन्न बनानेका पूरा प्रयत्न किया था। राजकुलमें विक्टोरिया ही एकमात्र संतान थी, अतः इंग्लैंडका राजमुकुट उसके सिरको भूषित करेगा, यह पहलेसे निश्चित था। यह प्रयत्न बड़ी सावधानीसे माता लुइसा करती थीं कि उनकी पुत्रीमें कोई दुर्गुण न आने पाये। विक्टोरियाको खर्चके लिये सप्ताहमें एक निश्चित रकम मिलती थी। वह प्रायः उस पैसेसे खिलौने खरीदकर साथी बच्चोंको बाँट दिया करती थी। माताने उसे कह रखा था कि किसीसे कर्ज या उधार नहीं लेना चाहिये।

एक दिन अपनी आठ वर्षकी अवस्थामें विक्टोरिया अपनी शिक्षिकाके साथ बाजार गयी। खिलौनोंकी दूकानपर जाकर उसने एक छोटा-सा सुन्दर बक्स पसंद किया। उसके पैसे शिक्षिकाके पास रहते थे। शिक्षिकाने बताया कि इस सप्ताहके पैसे समाप्त हो गये हैं। दूकानदारने कहा—'आप बक्स ले जाइये। पैसे पीछे आ जायँगे।'

बालिका विक्टोरियाने कहा—'मैं उधार नहीं लूँगी। मेरी माताने मुझे मना कर रखा है। आप बक्स अलग रख दें। अगले सप्ताह जब मुझे पैसे मिलेंगे, तब मैं उसे ले जाऊँगी।' एक सप्ताह बाद पैसे मिलनेपर विक्टोरियाने जाकर वह बक्स खरीद लिया।

एक दिन विक्टोरियाका मन पढ़नेमें नहीं लग रहा था। उसकी शिक्षिकाने कहा—'थोड़ा पढ़ लो! मैं जल्दी छुट्टी दे दूँगी।'

बालिकाने कहा—'आज मैं नहीं पढ़ूँगी।'

शिक्षिका बोली—'मेरी बात मान लो।'

बालिका मचल गयी—'मैं नहीं पढ़ूँगी।'

माता लुइसाने यह सुन लिया और पर्दा उठाकर उस कमरेमें आ गयीं और पुत्रीको डाँटने लगीं—'क्या बकती है!'

शिक्षिकाने कहा—'आप नाराज न हों, राजकुमारीने एक बार मेरी बात नहीं सुनी है।'

बालिका विक्टोरियाने तुरंत शिक्षिकाका हाथ पकड़कर कहा—'आपको याद नहीं है, मैंने दो बार आपकी बात नहीं मानी है।'

बचपनका यह उदार, स्थिर एवं सत्यके पालनका स्वभाव ही था कि अपने राज्य-कालमें महारानी विक्टोरिया इतनी विख्यात तथा प्रजाप्रिय हो सकीं।

* * *

साधनोपयोगी पत्र

[परमार्थ-पत्रावली]

मनुष्यको अपने जीवनमें दुःख और कठिनाइयोंका सामना प्रारब्धानुसार करना ही पड़ता है। उनको सहन करके भगवान्‌पर दृढ़ विश्वास रखते हुए उनके भजन, ध्यान और सत्संगकी विशेष चेष्टा करते रहना चाहिये।

मनुष्यको धैर्य धारण करके अपने धर्मपर डटे रहना चाहिये। आपत्ति पड़नेपर भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। कष्ट सहन करनेके लिये ही तैयार रहना चाहिये। महाभारतमें कहा गया है कि—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥

(स्वर्गारोहणपर्व ५। ६३)

अर्थात् मनुष्यको किसी कालमें भी कामसे, लोभसे, भयसे या जीविकाके लिये भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। क्योंकि धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य हैं, जीव नित्य है और उसका हेतु जीविका अनित्य है, इसलिये किसी तरह भी मनुष्यको धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये।

दिन-रात अखंड कीर्तन करनेका आयोजन किया, सो बहुत अच्छी बात है। आप पत्र-व्यवहार करनेमें किसी तरहका संकोच न करें, इसमें मुझे किसी तरहका कष्ट नहीं है। उत्तर देनेमें देरी जरूर होती है—सो इसके लिये आपको दुःख नहीं मानना चाहिये।

आपके पहले पत्रकी शंकाओंका उत्तर क्रमसे नीचे लिखा जाता है—

(१) आत्माको शास्त्रकारोंने अचल और सनातन लिखा है सो ठीक ही है। शरीर-त्यागके बाद आत्मा कहीं आता-जाता नहीं है, स्थूल शरीरसे सूक्ष्म शरीर अलग हो जाता है; आत्मा तो सब जगह व्याप्त है ही। आत्मा सदा ही पवित्र है। अज्ञानवश अपने स्वरूपको भूला हुआ है, इसीसे शरीरके साथ उसका सम्बन्ध-सा हो गया है। आत्मा और प्राण भिन्न-भिन्न हैं, प्राण जड़ है, आत्मा ज्ञानस्वरूप है। वास्तवमें आत्मा अकर्ता, अभोक्ता है, तथापि अनादिकालके अज्ञानसे—भ्रमसे अपनेको कर्ता-भोक्ता समझता है।

(२) पुण्यकी अधिकतासे ब्राह्मण-जातिमें जन्म होता है यह ठीक है, तथापि मनुष्य-शरीर पाप और पुण्य दोनोंका ही भोग करनेके लिये मिलता है। इस शरीरसे यदि यह जीव तत्परतासे साधन करे तो जन्म-मरणसे छूटकर परमात्माको प्राप्त कर सकता है। एक ही शरीरसे सब कर्मोंका भोग खतम नहीं हो जाता, अतः मुक्ति न होनेतक अच्छे-बुरे कर्मोंका फल भोगनेके लिये नाना योनियाँ प्राप्त करनी पड़ती हैं।

(३) भक्तिके प्रभावसे मनुष्य भगवान्‌में निवास करता है इसमें कुछ भी संदेह नहीं है, परंतु ऐसे भक्त बहुत कम होते हैं और जीवोंकी कोई गिनती नहीं है। जीव असंख्य हैं, इसी कारण आजतक सब जीव खतम नहीं हुए। किसी दिन संसारके सब जीव खतम हो जायँ तो इसमें हरज ही क्या है! महाप्रलयके बाद मुक्त जीव भी फिर जन्म लेता है यह कहना युक्तिसंगत नहीं है। अतः यही समझना चाहिये कि जीव अनादि और असंख्य हैं, उनमेंसे जो परमात्मामें मिल जाता है उसका संसारसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता, वह सदाके लिये संसारसे छूट जाता है, परंतु ऐसे बहुत ही कम होते हैं। बहुत योनियोंको देखते हुए मनुष्योंकी संख्या बहुत कम है। उनमें भी भक्त तो कोई बिरला ही होता है। तब सब खतम कैसे होवे?

(४) भगवान् सबके कर्मानुसार फल भुगतानेवाले हैं और इसीलिये उनको नाना योनियोंमें उत्पन्न करते हैं। यह जीव राग-द्वेषके वश होकर पाप-पुण्य करता है, अतः उसका फल उसे भोगना ही पड़ता है।

(५) रामके भक्त साकेतलोकको जाते हैं यह ठीक है और आत्मा चलती-डुलती नहीं यह भी सर्वथा ठीक है, इस लोकसे दूसरे लोकमें जाना-आना आत्माका नहीं है। सूक्ष्म शरीरका है। आत्मा तो वहाँ पहलेसे ही मौजूद है। यह बात ज्ञात होनेपर ही अच्छी तरह समझमें आ सकती है।

अमृत-बिन्दु

सांसारिक सुखसे कभी सांसारिक दुःख नहीं मिट सकता—यह नियम है।

× × ×

वर्तमानका ही सुधार करना है। वर्तमान सुधरनेसे भूत और भविष्य दोनों सुधर जाते हैं।

× × ×

अपनेको कभी सिद्ध नहीं मानना चाहिये, प्रत्युत सदा साधक ही मानना चाहिये। सिद्ध माननेसे धोखा ही होता है।

× × ×

मुक्ति बाहरके त्यागसे नहीं होती, प्रत्युत भीतरके वैराग्यसे होती है।

× × ×

परमात्मतत्त्वके सिवाय अन्यकी जितनी भी स्वीकृति है,उतना ही अज्ञान है।

× × ×

गुरु शिष्यको कोई नया ज्ञान नहीं देता, प्रत्युत उसके भीतर पहलेसे विद्यमान जो ज्ञान है, उसको ही जाग्रत् करता है।

× × ×

सच्चा गुरु दूसरेको गुरु ही बनाता है, चेला नहीं बनाता। जो चेला बनाना चाहता है, वह चेलादास होता है।

× × ×

सद्गुण-सदाचारको अपनेमें माननेसे अभिमान आता है और दुर्गुण-दुराचारको अपनेमें माननेसे वे स्थायी हो जाते हैं।

× × ×

अपनेमें विशेषता देखना अहंताको, परिच्छिन्नताको और देहाभिमानको पुष्ट करता है।

× × ×

परमात्मतत्त्व अनुभवस्वरूप है। केवल हमारी दृष्टि उधर नहीं है।

× × ×

संसारमें तो 'करने' से उन्नति होती है, पर पारमार्थिक मार्गमें 'न करने' से उन्नति होती है।

× × ×

अपने भीतर कमी (दोष) होती है, तभी बाहरी कुसंगका असर पड़ता है। कारण कि आकर्षण सजातीयतामें होता है, विजातीयतामें नहीं।

× × ×

सत्संग, सद्विचार, सच्छास्त्र और दुःख—ये चारों विवेकीके लिये संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करानेवाले हैं।

× × ×

दुःखी व्यक्ति ही दूसरेको दुःख देता है। पराधीन व्यक्ति ही दूसरेको अपने अधीन करता है।

× × ×

अज्ञानी तो बीते हुएको स्वप्नकी तरह मानता है, पर ज्ञानी (विवेकी) वर्तमानको स्वप्नकी तरह मानता है।

× × ×

हमारा स्वरूप सत्तामात्र है। उस सत्तामें कुछ भी मिलाना अज्ञान है, बन्धन है।

× × ×

जो खुद भले नहीं हैं, जिनका स्वभाव भलाई करनेका नहीं है, उन्हींको ऐसा दीखता है कि आज भलाईका जमाना नहीं है!

× × ×

संसारकी प्राप्ति होनेपर तृष्णा बढ़ती है और दुःख होता है। परंतु परमात्माकी प्राप्ति होनेपर प्रेम बढ़ता है और आनन्द होता है।

× × ×

मनुष्य-शरीरकी महिमा विवेकको लेकर है, क्रियाको लेकर नहीं।

× × ×

हम जिससे सुख लेंगे, उसका दास होना ही पड़ेगा। सुखका भोगी कभी स्वाधीन नहीं हो सकता।

× × ×

तत्त्वज्ञान अर्थात् अज्ञानका नाश एक ही बार होता है और सदाके लिये होता है।

× × ×

वस्तुका महत्त्व नहीं है, प्रत्युत उसके सदुपयोगका महत्त्व है।

× × ×

—श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज

* * *

पढ़ो, समझो और करो

(१)

भगवत्कृपाका अद्भुत चमत्कार

भारतके सुप्रसिद्ध महान् धर्माचार्य परमपूज्यपाद प्रातः-स्मरणीय श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज एक बड़े ही उच्चकोटिके वीतराग ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष थे। उनसे सम्बन्धित भगवत्कृपा सम्बन्धी एक सत्य घटना, जिसे उन्होंने मुझे सुनाया था, यहाँ प्रस्तुत है। आशा है पाठक इसे बड़े ही ध्यानसे पढ़कर साक्षात् भगवत्कृपाका अनुभव करेंगे।

परम पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजने एक बार श्रीकुरुक्षेत्र जाकर वहाँके तीर्थोंका, मन्दिरोंका और कुरुक्षेत्रके आस-पासके सभी तीर्थों एवं देवमन्दिरोंके दर्शन करनेका विचार किया। अतः वे अपने साथ एक-दो ब्राह्मण ब्रह्मचारियोंको साथमें लेकर पैदल ही कुरुक्षेत्रके लिये प्रस्थान कर गये। एक हाथमें दण्ड और दूसरे हाथमें मिट्टीका करवा लेकर ब्रह्मचारियोंके साथ पैदल घूम-घूमकर तीर्थोंके और सभी मन्दिरोंके दर्शन करने लगे। दैवयोगसे उन दिनों कुरुक्षेत्रमें और आस-पासके क्षेत्रोंमें वर्षा न होनेके कारण सूखा पड़ गया था। जिसके कारण खेती सूख गयी थी और तालाब, कुएँ, बावड़ी आदिके भी पानी सूख गये थे। जलाभावके कारण चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। पशु-पक्षी भी पानी न मिलनेके कारण प्याससे मरने लगे थे, सर्वत्र सभीमें चिन्ता व्याप्त थी। स्वामीजी विश्रामकी दृष्टिसे पासके ही तीर्थ-स्थानपर एक देवमन्दिरमें ठहरे हुए थे। वहाँपर उन्होंने एक अत्यन्त करुणाजनक दृश्य देखा। मन्दिरके पास एक बहुत बड़ा तालाब था और सूखा पड़नेके कारण उसका सारा पानी सूख गया था। उस बड़े तालाबके एक छोटेसे गड्ढेमें बहुत थोड़ा पानी रह गया था। पानी न होनेके कारण तालाबकी हजारों मछलियाँ मर चुकी थीं तथा शेष बची हजारों मछलियाँ उसी छोटेसे गड्ढेके पानीमें एक जगह एकत्र हो गयी थीं और पानीके अभावमें छटपटा रही थीं। ऊपरसे बड़ी तेज गर्मी पड़ रही थी, गड्ढेका पानी भी एक दो-दिनमें सूखनेवाला था, ऐसा होनेपर तो हजारों बाकी बची उन मछलियोंको मरनेसे नहीं रोका जा सकता था। स्वामीजीसे यह करुणाजनक दृश्य नहीं देखा गया। वे मर्माहत हो उठे और किसी प्रकार इन बेचारी मछलियोंके प्राण बचाये जायँ, इसपर वे विचार करने लगे।

उस गाँवके लोगोंको जब आपके शुभागमनका समाचार मिला तो सभी स्त्री-पुरुष आपके दर्शनार्थ भागे चले आये और सबने मिलकर आपके श्रीचरणोंमें यह करबद्ध प्रार्थना की कि महाराजजी बहुत दिनोंसे वर्षा न होनेके कारण खेतीको बड़ा नुकसान पहुँच रहा है, तालाब और कुएँ आदिके भी जल सूख गये हैं। अब तो पशु-पक्षी सभी पानीके बिना मरने लगे हैं। आप ऐसी कृपा करें कि वर्षा हो जाय और सबको सुख-शान्ति प्राप्त हो!

पूज्य जगद्गुरुजी महाराजने कहा कि भाई! भगवान्की कृपा चाहते हो तो उन्हें प्रसन्न करो। वही तुम्हारे ऊपर कृपा कर वर्षा करके तुम्हारा दुःख दूर करेंगे।

महाराजजी! भगवान्को प्रसन्न करनेका साधन क्या है? क्या किया जाय जिससे भगवान् प्रसन्न होकर हमपर कृपा करें। आप इसका कोई उपाय बतायें?

पूज्य जगद्गुरुजीने कहा—भगवान्को प्रसन्न करनेका तात्कालिक उपाय यही है कि तुम यहाँके जीवोंपर कृपा करो, तभी भगवान् तुमसे प्रसन्न होकर तुम्हारे ऊपर कृपा करेंगे।

ग्रामीणने कहा—महाराज! हममें इतनी सामर्थ्य कहाँ है कि हम यहाँके जीवोंपर कृपा करें, हम तो सर्वथा असमर्थ हैं?

पूज्य जगद्गुरुजीने कहा—हम तुम्हें भगवान्को प्रसन्न कर उनकी कृपा प्राप्त करनेका ऐसा ही साधन बतायेंगे, जो तुम कर सकोगे।

महाराज, आप आज्ञा दीजिये, हम उसका अवश्य पालन करेंगे।

पूज्य जगद्गुरुजी महाराजने सामनेके उस सूखे तालाबकी ओर संकेत करके कहा—देखो उस तालाबका सारा पानी सूख गया है, जिसके कारण हजारों मछलियाँ मर चुकी हैं और बाकी जीवित बची मछलियाँ उस छोटेसे गड्ढेके जलमें एक जगह इकट्ठी होकर पानीके बिना छटपटा रही हैं। यदि इन्हें जल देकर इनकी रक्षा नहीं की गयी तो एक-दो दिनमें ही ये भी जलके बिना तड़प-तड़पकर प्राण दे देंगी।

आतुरता एवं उत्सुकतावश ग्रामीणोंने एक स्वरसे कहा—महाराजजी हम क्या करें?

पूज्य जगद्गुरुजीने कहा—तुम इनके ऊपर कृपा करो

तो भगवान् स्वयं तुम्हारे ऊपर कृपा करेंगे।

महाराज क्या कृपा करें?

इन मछलियोंके लिये जल ला करके इस तालाबमें डालो।

महाराजजी, जल तो है ही नहीं, फिर लायें कहाँसे!

ग्रामीणोंकी यह आवाज सुनकर पूज्य जगद्गुरुजी महाराज स्वयं उठे और पासके कूएँपर पड़ी बाल्टीको लटकाकर जल खींचनेको उद्यत हो गये। यह देख सभी ग्रामीण स्तब्ध रह गये, फिर क्या था तत्काल ग्रामीणोंने कुएँमेंसे जल निकाल-निकालकर उस तालाबमें ले जाकर डालने लगे। अब तो जिसे देखो वही पानी लिये ही दौड़ रहा था। कोई बाल्टीमें तो कोई घड़ेमें, और कोई कनस्तरमें जल ले-ले जाकर तालाबमें छोड़ने लगा। अब तालाबमें जल-ही-जल दीख रहा था। मछलियोंका छटपटाना बन्द हो गया था, उनके प्राणोंकी रक्षा जो हो गयी थी।

भगवान्‌की कृपा क्या हुई?

मछलियोंकी प्राण-रक्षारूपी किये गये यज्ञसे भगवान् ग्रामीणोंपर अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस जीव-रक्षा-यज्ञका तत्काल प्रत्यक्ष अद्भुत चमत्कार यह हुआ कि कई दिनोंसे जो आकाश बिलकुल साफ था और बादल नामको भी नहीं थे, सबके देखते-देखते वह आकाश एकदमसे बादलोंसे भर उठा, मेघोंका गरजना और विद्युत्‌का चमकना शुरू हो गया तथा मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ हो गयी। देखते-ही-देखते चारों ओर जल-ही-जल भर गया। चारों ओर प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी। उस क्षेत्रके सूखा-पीड़ित लोगोंके खुशीका ठिकाना न रहा। सभी महाराजश्रीके श्रीचरणोंमें गिर पड़े और कहने लगे—महाराजजी! आपका यह कहना कि तुम यहाँके जीवोंपर कृपा करो तो तुम्हारे ऊपर भगवान् कृपा करेंगे, यह बात अक्षरशः सत्य निकली। इस भगवत्कृपाके अद्भुत चमत्कारसे हम सभी लोग चकित-थकित हैं। आज हमलोगोंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है कि जीव-प्रसन्नता ही भगवत्-प्रसन्नता है, जीव-सेवा ही शिव-सेवा है। अतः प्राणिमात्रको भगवान् ही मानकर उसकी सेवा करनी चाहिये।

ऐसे थे परम दयालु कृपालु हमारे पूज्यपाद जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज, जिन्होंने मछलियोंके प्राणोंकी रक्षा करके सबके ऊपर भगवत्कृपाका अद्भुत चमत्कार दिखाकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया था।

(प्रस्तुतकर्ता—गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी पिलखुवा)

[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]

(२)

देशी गायके घी एवं गोमूत्रका चमत्कार

जमशेदपुर (बिहार)-के साकचीमें श्रीकान्तीलाल सेठकी पुत्री सुश्रीश्वेता निर्लेश सेठका जन्म ३ जनवरी सन् १९९८ को हुआ था। जन्मसे १९ दिनोंतक स्वस्थ रहनेके बाद जब भी वह दूध पीती थी उल्टी कर देती थी, उसे कुछ भी हजम नहीं होता था। दस दिनोंतक इसी अवस्थामें रहनेके बाद चिकित्सकोंके परामर्शपर बेरीयम पिलाकर एक्सरे करवाया गया, जिसकी रिपोर्ट देखकर डॉक्टरने कहा इसकी भोजन नली बन्द है। एक दूसरे डॉक्टरने भी बताया कि शल्य चिकित्सा ही इसका एकमात्र उपाय है, जिसमें ५० प्रतिशत ही सफलताकी आशा है। टाटा मुख्य अस्पतालके डॉक्टरोंने भी यही सलाह दी। तबतक बच्ची १ माह १० दिनकी हो चुकी थी। होम्योपैथ डॉक्टरका भी उपचार चला, परंतु इससे भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।

निराश हो शिशुके अभिभावक बिष्टुपुरमें साध्वी प्रीति सुधाजी एवं साध्वी मधुस्मिताजीके पास बच्चीको लेकर गये। बीमारीके सम्बन्धमें समस्त जानकारी प्राप्त कर उन्होंने उसे मन्त्र सुनाया तथा गायके घीको नाले (नाभी)-में डालने तथा गोमूत्रकी मालिश करनेकी सलाह दी। जिसके दो दिनके प्रयोगसे ही श्वेताकी भोजन नली धीरे-धीरे खुलने लगी और इसके एक माह बाद उसने शौच करना भी शुरू किया, साथ ही उल्टी भी बन्द हो गयी। अब उसका वजन बढ़कर ४.५ किलोग्राम हो गया, जबकि १९ वें दिन बच्चीका वजन मात्र २ किलो ६०० ग्राम ही था। इस बीच उपचारके रूपमें केवल घी एवं गोमूत्रका प्रयोग चलता रहा। अब वह पूर्णरूपसे स्वस्थ है। देशी गायके घी एवं गोमूत्रका यह एक अनूठा चमत्कार है।

(पुरुषोत्तमदास झुनझुनवाला)

(३)

व्यसनके बन्धनसे मुक्ति

रमणलाल हमारे पड़ोसी थे। सीढ़ीसे गिर जानेके कारण उनके छोटे लड़के निरंजन (नीरू)-के पैरकी हड्डी टूट गयी थी। जब हड्डीके वैद्यको दिखलाया गया तो उन्होंने तुरंत अस्पताल ले जानेकी राय दी।

रमणलाल सवा सौ रुपये मासिकके नौकर थे। उनकी घबराहटका पार नहीं रहा। अस्पतालका खर्च सहन करनेकी न उनकी स्थिति थी, न शक्ति!

परंतु डॉक्टर देसाईके साथ उनकी कुछ जान-पहचान

थी। [देसाई उनके मालिकोंके फेमिली डॉक्टर थे।] वे तुरंत ही डॉ० देसाईके यहाँ पहुँचे और उनसे सारी बातें बतायीं। डॉ० देसाईने नीरूको अस्पतालमें भर्ती करा दिया।

डॉ० देसाई सर्जन थे। वे नगरके बड़े अस्पतालमें काम करते थे। उनका हाथ ऑपरेशनपर इतना 'सेट' हो गया था कि जहाँ रोगीको यह पता लग जाता कि उसको डॉ० देसाईकी देख-रेखमें रखा गया है, उसका आधा रोग तो वहीं कम हो जाता। वे सर्जन होनेके साथ ही सज्जन भी थे। सोनेकी थालीमें लोहेकी कीलकी तरह मनुष्यमें सद्गुण होनेपर भी एकाध दुर्गुण भी होता ही है। डॉ० देसाई सद्गुणोंके सागर थे, परंतु उस सागरमें दुर्गुणका एक नन्हा-सा झरना भी बहता था। वह झरना था व्यसनका—सिगरेट उनके लिये प्राण थी। सिगरेटका व्यसन उनके साथ जोंककी तरह इस प्रकार चिपक गया था कि सिगरेटके बिना वे ऑपरेशन ही नहीं कर पाते।

आज नीरूका ऑपरेशन होनेवाला था। उसे सबेरे नौ बजे ऑपरेशन थिएटरमें ले जाया गया। बाहर बैठे हुए रमणलाल और उनकी पत्नीके कलेजे धक्-धक् कर रहे थे। 'अब क्या होगा?' का भाव उनके चेहरेपर स्पष्ट दिखायी दे रहा था। गहरी चिन्ताके बादलोंने उनके मुखका तेज हर लिया था। उनकी आँखें और कान 'ऑपरेशन थिएटर' की ओर लगे थे। ठीक सवा दस बजे डॉ० देसाई ऑपरेशन सम्पन्न करके बाहर निकले। उनके मुखपर विजयका स्मित झलक रहा था।

डॉ० देसाईने कहा—'रमण भाई! चिन्ता मत करो, ऑपरेशन अच्छी तरह हो गया है।' यह सुनकर रमणलालके शरीरमें चेतना आयी।

नीरूको एक महीने बाद अस्पतालसे छुट्टी मिली!

× × ×

दो महीने पहले नीरूके ऑपरेशनके समय रमणलालके चेहरेपर जैसा भाव था, वैसा ही भाव आज भी उनके मुखपर छाया है। वे जल्दी-जल्दी डॉ० देसाईके यहाँ आये। डॉ० देसाई अख़बार पढ़ रहे थे। रमणलालकी गम्भीर मुख-मुद्रा देखकर डॉ० देसाई भी विचारमें पड़ गये। रमणलालने कहा—'डॉक्टर साहेब! नीरूके पैरमें कुछ दिनोंसे सूजन आ रही है।'

रमणलालके घर आकर डॉक्टरने नीरूको देखा। कुछ देर विचार करके उन्होंने कहा—'रमणभाई! इसे पुनः अस्पतालमें भर्ती करना पड़ेगा।'

नीरूको पुनः अस्पतालमें भर्ती किया गया। उसके पैरका एक्सरे लिया गया। एक्सरे देखकर डॉक्टर गम्भीर हो गये। उन्होंने रमणलालको बुलाया और कहा—'रमणभाई! मेरे हाथसे जो कभी नहीं हो सकता था, ऐसा काम इस बार मुझसे हो गया है। नीरू मेरी भूलका शिकार हो गया। मैं जब उसका ऑपरेशन कर रहा था, उस समय मेरी सिगरेटकी राख उसके पैरके अंदर पड़ गयी थी। इसीलिये अब फिर ऑपरेशन करना पड़ेगा। प्रायश्चित्तरूपमें मैं आजसे सिगरेटको अपने जीवनसे सदाके लिये दूर कर रहा हूँ। और हाँ, मेरी भूल भी मुझे ही भोगनी चाहिये, अतः इस बारके ऑपरेशनका तथा अस्पतालका जितना खर्च होगा, उतना मैं दूँगा। चिन्ता मत करना।'

रमणलाल तो आश्चर्यसे देखते ही रह गये और मन-ही-मन कह उठे—'यह डॉक्टर है या देवता?'

जब ऑपरेशन करके डॉ० देसाई ऑपरेशन थिएटरसे बाहर निकले, तब उनके मुखपर विजयका स्मित नहीं था, परंतु व्यसनके बन्धनसे छूटनेकी पहली सीढ़ीपर चढ़नेका आनन्द अवश्य था।

—श्रीमधुकान्तजी भट्ट

* * *

मनन करने योग्य

आर्यावर्त देशमें चित्रवर्मा नामक एक राजा थे। शिव और विष्णु—दोनोंमें उनका अनन्य प्रेम था। राजाकी सबसे छोटी एक कन्या थी। दैवज्ञको कुण्डली दिखायी गयी। उसने कहा—यह कन्या पार्वतीकी तरह माङ्गल्यमयी, दमयन्तीकी भाँति परम सुन्दरी, सरस्वतीके समान समस्त कलाकी विज्ञाता तथा लक्ष्मीके समान सद्गुणसम्पन्ना होगी। दस हजार वर्षोंतक पतिके साथ ऐश्वर्य भोगेगी और इसे आठ पुत्र होंगे। लेकिन एक दूसरे ब्राह्मणने कहा—चौदहवें वर्षमें यह कन्या वैधव्य प्राप्त करेगी। राजा बड़े चिन्तित हुए।

कन्याका नाम सीमन्तिनी था। वह अपने वैधव्यकी बात सखीसे सुनी। जब वह बड़ी हुई तो एक दिन याज्ञवल्क्य मुनिकी पत्नी मैत्रेयीकी शरणमें गयी और बोली—माताजी! मैं आपकी शरणमें हूँ, मुझे सौभाग्य (सुहाग) बढ़ानेवाला कोई कर्तव्य बतलाइये। मैत्रेयीने कहा—सोमवारका व्रत करो।

उपवासपूर्वक शिव-पार्वतीका पूजन करो। इससे घोर-से-घोर विपत्ति आनेपर भी तू उबर जायगी। व्रतको कठिनतम परिस्थितियोंमें भी छोड़ना नहीं।

समयानुसार निषध देशके राजा नलके पौत्र चन्द्राङ्गदसे सीमन्तिनीका विवाह हुआ। अभी चन्द्राङ्गद ससुरालमें ही थे तो एक दिन मित्रोंके साथ नौकापर सवार हो यमुना-पार जानेको तैयार हुए। नौका सभी सवारों और मल्लाहोंसहित भँवरमें डूब गयी। हाहाकार मच गया। सीमन्तिनीके पिता चित्रवर्मापर प्रलय ढा गया। वे यमुना-किनारे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। सीमन्तिनी भी मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। सीमन्तिनीके श्वशुर इन्द्रसेन रानियोंसमेत दुःखद समाचार सुनकर अचेत हो गये।

फिर चित्रवर्मा अपनी बेटीको अनेक प्रकारसे समझा-बुझाकर धीरज बँधाये। अपने दामादके लिये उनके बन्धु-बान्धवोंसे और्ध्वदैहिक कर्म करवाये। सीमन्तिनी चितारोहण करने जा रही थी, परंतु पिताने स्नेहसे रोक लिया। वह विधवा जीवन व्यतीत करने लगी; लेकिन उसने सोमवार-व्रत करना नहीं छोड़ा। इस समय सीमन्तिनीकी आयुका चौदहवाँ वर्ष था।

सीमन्तिनीके शिवाराधन करते हुए तीन वर्ष व्यतीत हो गये। उसके श्वशुरका राज्य खुद उन्हींके भाइयोंने छीन लिया और उन्हें पत्नीसहित कैद कर लिया।

उधर यमुना-जलमें डूबनेके बाद सीमन्तिनीके पतिकी मृत्यु नहीं हुई, बल्कि वह पाताल लोकमें चला गया। पातालकी नाग-कन्याएँ उसे नागराजके पास ले गयीं। नागराजने उससे कहा—तुम यहीं रहो, यहाँ किसी सुखकी कमी नहीं है। परंतु राजकुमारने कहा—मैं नवविवाहित हूँ और अभी तो मैं ससुरालसे विदा भी नहीं हुआ था कि यह घटना घट गयी। मैं माता-पिताका एकलौता पुत्र हूँ। मेरी पत्नी शिवाराधनमें लीन रहती है। वहाँ मेरे लिये सभी शोक कर रहे होंगे। नागराज! आप कृपा करके मुझे वहाँ पहुँचा दें।

नागराजने राजकुमारको एक घोड़ा दिया, जो इच्छागतिवाला था। उसपर आरूढ़ हो कुछ नागकुमारोंके साथ राजकुमार वहाँसे शीघ्र ही चल पड़ा और कुछ ही देरमें यमुना-जलके बाहर आ गया। वहाँ यमुना-तटपर यों ही कुछ देरतक घूमता रहा। संयोगवश, सीमन्तिनी सखियोंके साथ वहाँ स्नान करने आयी थी। उस दिन सोमवारका ही दिन था।

सीमन्तिनी जब राजकुमारको देखी, तब उसे तो वह उसके पति-जैसा ही दिखलायी पड़ा। लेकिन सीमन्तिनी तो पतिको मृत जानकर विधवाका ही जीवन व्यतीत कर रही थी। कैसे विश्वास हो कि वह उसका पति ही है? राजकुमार चन्द्राङ्गद भी इस रहस्यको छिपाकर सीमन्तिनीसे बोला—'शीघ्र ही तुम्हारा पति तुम्हें प्राप्त होगा।'

राजकुमार पातालसे आये हुए नागराजके पुत्रोंके साथ राज्यमें गया। नागकुमारोंने राज्यसिंहासनपर अधिकार किये हुए बन्धुओंसे जाकर कहा—अब चन्द्राङ्गद आ गया है। सिंहासन खाली करो। वह डूबकर मरा नहीं था, बल्कि पातालमें चला गया था और वहाँसे हम नागकुमारोंकी सहायतासे शक्तिसम्पन्न होकर लौट आया है।

शस्त्रास्त्रसज्जित नागकुमार सैनिकोंके साथ चन्द्राङ्गदको देख डरसे शत्रुओंने सिंहासन छोड़ दिया। चन्द्राङ्गदके माता-पिताको जब पुत्रके लौटनेकी बात मालूम हुई, तब वे प्रसन्नतासे भावविभोर हो दौड़ पड़े। पूरे राज्यमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी। सीमन्तिनीके माता-पिताके प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। राजा चित्रवर्माने बेटी सीमन्तिनीको बुलाकर वैधव्यके चिह्नोंको हटवाया। फिर बेटी, दामादको विदा किया। इसके बाद राज्याभिषेकपूर्वक इन्द्रसेनने अपने बेटेको सिंहासनपर बैठाया। सीमन्तिनी-चन्द्राङ्गद दस हजार वर्षोंतक सुख भोगते रहे। आठ पुत्र और एक कन्या उन्हें हुई—

दशवर्षसहस्राणि सीमन्तिन्या स्वभार्यया।
सार्धं चन्द्राङ्गदो राजा बुभुजे विषयान् बहून्॥
प्रासूत तनयानष्टौ कन्यामेकां वराननाम्।
रेमे सीमन्तिनी भर्त्रा पूजयन्ती महेश्वरम्।
दिने दिने च सौभाग्यं प्राप्तं चैवेन्दुवासरात्॥

(स्क० ब्रह्मोत्तरखण्ड ८। १७५-१७६)

यह है अटूट व्रत-निष्ठाका सुपरिणाम। जिसके कारण वैधव्य जीवन व्यतीत करती हुई सीमन्तिनीको अकल्पनीय सौभाग्यकी प्राप्ति हुई—

विचित्रमिदमाख्यानं मया समनुवर्णितम्।
भूयोऽपि वक्ष्ये माहात्म्यं सोमवारव्रतोदितम्॥

(स्क० ब्रह्मोत्तरखण्ड ८। १७७)

—श्रीमुसाफिरजी ब्रह्मचारी

* * *

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' के अबतक प्रकाशित लोकप्रिय विशेषाङ्क

[गताङ्क-संख्या ८ से आगे]

कल्याण-वर्ष १९, संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द)(सन् १९४५ ई०) [कोड-नं० 44] यह पद्मपुराणका संक्षिप्त ाद है। इसमें भगवान् विष्णुके माहात्म्यके साथ भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार-चरित्रों एवं उनके परात्पर स्वरूपका ानप्रद वर्णन है। भगवान् शिवकी महिमाके साथ इसमें श्रीअवध, द्वारिका एवं श्रीवृन्दावन आदि भगवान्‌के लीला-धामोंका त्म्य भी वर्णित है। इसके अतिरिक्त इसमें शालग्रामके स्वरूप, महिमा, तुलसी-वृक्षका महत्त्व, भगवन्नाम-कीर्तन एवं भगवती के माहात्म्यसहित यमुना-स्नानका फल, तीर्थ, व्रत, देव-पूजन, श्राद्ध तथा दान आदिके विषयमें भी (विभिन्न उपाख्यानोंके ों) विस्तृत चर्चा है। इस प्रकार यह पुराण वैष्णवोंको अधिक प्रिय है। मूल्य रु० ८५ (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)।

कल्याण-वर्ष २०, गो-अङ्क (सन् १९४६ ई०) भारतीय संस्कृति, धर्म, अध्यात्म, विचार तथा चरित्रकी महाशक्ति और धार–विश्व-जननिरूपा गोमाता है। गायके इसी महत्त्व, महिमा और उसकी सबके लिये समान उपयोगिता-विषयक बहुमूल्य -दर्शन करानेवाला यह '**गो-अङ्क**' अत्यधिक जनप्रिय हुआ था। इसमें गो-रक्षण, गो-संवर्धन और गोकुल (गो-वंश)-के युदय-हेतु विश्वस्त परम्परागत एवं वैज्ञानिक उपायोंपर प्रकाश डाला गया है। साथ ही गो-वंशकी दिशा, दुर्दशा, उपेक्षा और ानवीय व्यवहार-विषयक विस्तृत जानकारी और विश्लेषण भी इसके अत्यधिक उपयोगी हैं। इस प्रकार गो-रक्षणकी सार्वकालिक वश्यकता, अनिवार्यता और सर्वमान्य महत्त्वपर इसकी बेबाक़ सप्रमाण सामग्री मार्मिक होनेसे इसका विचारोत्तेजक दिशा-श अन्यतम है।

कल्याण-वर्ष २१, संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९४७ ई०) [कोड-नं० 539] मकल्याणकारी महान् साधनों, उपदेशों और आदर्श चरित्रोंसहित इसमें मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत '**देवी-माहात्म्य**' (श्रीदुर्गासप्तशती), -माहात्म्य, भगवद्भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, योग, सदाचार आदि अनेक रोचक, ज्ञानप्रद उपयोगी विषयोंका वर्णन (इन दो संयुक्त णोंमें) है। अतः कल्याणकामी पुरुषोंके लिये इनका अनुशीलन लाभप्रद है। मूल्य रु० ७५ (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)।

कल्याण-वर्ष २२, नारी-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९४८ ई०)[कोड-नं० 43] इसमें भारतकी महान् नारियोंके ादायी आदर्श चरित्र तंथा नारीविषयक विभिन्न समस्याओंपर विस्तृत चर्चा और उनका भारतीय आदर्शोचित समाधान साथ ही विश्वकी अनेक सुप्रसिद्ध महान् महिला-रत्नोंके जीवन-परिचय और आदर्शोंपर मूल्यवान् प्रेरक सामग्री इसके खनीय उपयोगी विषय हैं। इस प्रकार यह विशेषाङ्क माता-बहनों तथा देवियोंसहित समस्त नारीजाति और नारीमात्रके आत्मबोध करानेवाला अत्यन्त उपयोगी और प्रेरणादायी मार्ग-दर्शक है। मूल्य रु० ७० (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)।

कल्याण-वर्ष २३, उपनिषद्-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९४९ ई०) [कोड-नं० 659] उपनिषदें ज्ञानकी निधि जीवनकी सभी दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली ये ऐसी अखण्ड परम ज्योति हैं जो परमात्माके पुनीत पथकी प्रदर्शिका हैं। , केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय और श्वेताश्वतर—इन मुख्य नौ उपनिषदोंके मूल, पदच्छेद, अन्वयके सरल हिन्दीमें व्याख्या इस '**उपनिषद्-अङ्क**' की मुख्यतः प्रतिपाद्य विषय-सामग्री है। इस तरह वेदोक्त (वैदिक) ज्ञानके शमें श्रुतियोंका यह सरल, सारगर्भित विवेचन परमोपयोगी, अनुशीलन आत्मकल्याणकारी और सेवन भारतीय अध्यात्मके कोटिस्थ मार्गका सच्चा अनुसरण है। मूल्य रु० ९० (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)।

कल्याण-वर्ष २४, हिन्दू-संस्कृति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९५० ई०) [कोड-नं० 518] भारतीय संस्कृति—विशेषतः -धर्म, दर्शन, आचार-विचार, संस्कार, रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव, कला-संस्कृति और आदर्शों (प्रतीकों)-पर प्रकाश नेवाला यह एक तथ्यपूर्ण बृहद् (सचित्र) दिग्दर्शन है। इसकी विषय-वस्तु भारतीय संस्कृतिके उपासकों, अध्येताओं और संधानकर्ताओंसहित श्रद्धालु-जिज्ञासुओंके लिये भी अवश्य अध्ययनीय, उपयोगी और मूल्यवान् दिशा-निर्देशकके रूपमें अभिनव -कोश है। वस्तुतः '**कल्याण**' के इस पुराने विशेषाङ्कको यदि अपने विषयका '**विश्व-ज्ञान-कोश**' कहा जाय तो कोई अत्युक्ति गी। मूल्य रु० १०० (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)।

कल्याण-वर्ष २५, संक्षिप्त-स्कन्दपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९५१ ई०) [कोड-नं० 279] इसमें भगवान् शिवकी मा, सती-चरित्र, शिव-पार्वती-विवाह, कुमार कार्तिकेयका जन्म तथा उनके विभिन्न चरित्र एवं तारकासुर-वधका वर्णन है। के अतिरिक्त इसमें वर्णित अनेक शिक्षाप्रद आख्यान, रोचक ज्ञानप्रद-प्रसंग और आदर्श चरित्र सेवनीय हैं। शिव-पूजनकी पासहित तीर्थ, व्रत, जप तथा दान आदिके महत्त्वका वर्णन इसके अन्य उपयोगी पठनीय विषय हैं। मूल्य रु० १०० संस्करण उपलब्ध)।

10/12/2000

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—

प्र० ति० २०-८-९८

LICENCE NO - 3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

कल्याण-वर्ष २६, भक्तचरिताङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९५२ ई०) [कोड-नं० 40] भगवद्विश्वासको बढ़ाने अनेकों भगवद्भक्तों तथा संतोंके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र एवं विभिन्न विचित्र भक्तिपूर्ण भावोंकी इसमें ऐसी पवित्र, म और सरस कथाएँ हैं जो मानव-मनको भगवत्प्रेम (भक्ति)-सुधारसमें अनायास निमग्न कर देती हैं। इस प्रकार रोचक, ज्ञान भक्तिपूर्ण भावोंसे युक्त बार-बार अनुशीलनयोग्य ये भक्तगाथाएँ भगवद्विश्वास और प्रेमानन्दको बढ़ानेवाली होनेसे आनन्द शान्तिप्रद और प्रेरक हैं। मूल्य रु० ८० (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)।

कल्याण-वर्ष २७, बालक-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९५३ ई०) [कोड-नं० 573] बालकोंसे सम्बन्धित स उपयोगी विषयोंका यह एक बृहत् संग्रह है। यों तो यह सर्वजनोपयोगी है, पर विशेषतः बालकोंके लिये यह बड़े काम उत्तम मार्ग-दर्शक है। इसमें प्राचीन कालसे अबतकके हमारे भारत देशके महान् बालकों एवं विश्वभरके सुविख्यात आ बालकोंके भी प्रेरक, शिक्षाप्रद, रोचक, ज्ञानवर्धक और अनुकरणीय ऐसे जीवन-वृत्त एवं उज्ज्वल चरित्र हैं, जो बार-ब पठनीय और स्मरणीय हैं। मूल्य रु० ८० (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)।

कल्याण-वर्ष २८, संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९५४ ई०) [कोड-नं० 640] 'नारदपुर तथा 'विष्णुपुराण' के इस संयुक्त तथा संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तरमें शिक्षाप्रद, महत्त्वपूर्ण (पुराणोचित) कथाओंके अतिरिक्त, वेदों छहों अङ्गों (—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द-शास्त्र)-का विशद वर्णन तथा भगवान्‌की सकाम उपासना विस्तृत विवेचन है। 'विष्णुपुराण' के उल्लेखनीय विषयोंमें—भगवान् विष्णुकी महिमा, जगत्‌की उत्पत्ति, भगवान् वराहद्वारा पृथ्व उद्धार, ध्रुव-प्रह्लाद-चरित एवं भगवान् श्रीकृष्णके विविध मनोरम लीला-चरित्र हैं। इसके अतिरिक्त इसमें गृहस्थोंके सदा श्राद्ध-विधि, जातकर्म, उपनयन आदि विशिष्ट उपयोगी विषयोंका भी ज्ञानवर्धक वर्णन है। इस प्रकार दो महत्त्वपूर्ण पुराणों उपलब्धता एकहीमें सुलभ होनेसे इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गयी है। मूल्य रु० ८० (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)।

कल्याण-वर्ष २९, संतवाणी-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) (सन् १९५५ ई०) [कोड-नं० 667] संत-महात्माओं अध्यात्मचेता महापुरुषोंके लोककल्याणकारी उपदेश-उद्बोधनों (वचन-सूक्तियों)-का यह बृहत् संग्रह जीवनोपयोगी और प्रेरणा है। संतोंके अनुभूत विचारों और उपदेशोंमें निहित सर्वहितकारी बिशुद्ध भावना तथा संवेदनशीलता सर्वकालिक लोककल्या होती है। अतः इसके स्वयंसिद्ध जनहितकारी विचारोंसे श्रद्धालुओंको विशेष लाभ उठाना चाहिये। मूल्य रु० ८ (पुनर्मुद्रित संस्करण उपलब्ध)। [क्रमशः]

व्यवस्थापक—'**कल्याण**'-**कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर**—२७३००

गुजराती भाषामें छः नवीन प्रकाशन

१-अनन्य भक्तिसे भगवत्प्राप्ति (गुजराती)[कोड-नं० 877]—प्रस्तुत पुस्तकमें ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयद गोयन्दकाद्वारा भक्ति तथा उसकी अनन्त विशेषताओंका बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है। निष्कामकर्मसे भगवत्प्राप्ति, ईश्वर महापुरुषोंका प्रभाव, भगवान्‌के स्वभावका रहस्य आदि अनेक विषयोंपर इतने सरल ढंगसे प्रकाश डाला गया है कि पुस्तक साधार से-साधारण व्यक्तिकी आध्यात्मिक उन्नतिके लिये विशेष सहयोगी है। मूल्य रु० ६, डाकखर्च रु० ३

२-उपदेशप्रद कहानियाँ (गुजराती) [कोड -नं० 818]—प्रस्तुत पुस्तकमें ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके लेखोंसे संगृहीत ज्ञान, वैराग्य, सेवा, सदाचार आदि अनेक गुणोंकी संवर्धक कहानियोंका सुन्दर संकलन है। कहानियोंकी भाषा वर्णनशैली इतनी सहज तथा बोधगम्य है कि आबाल-वृद्ध सबके लिये सच्ची पथ-प्रदर्शक हैं। मूल्य रु० ५, डाकखर्च रु० २

३-भक्त-सुधाकर (गुजराती) [कोड-नं० 875]—इस पुस्तकमें भक्त गोवर्धन, भक्त बालकराम, भक्त-परिवार आदि भक्तोंके चरित्रका सुन्दर संग्रह है। भगवद्विश्वास, श्रद्धा, लोककल्याण आदि श्रेष्ठ विचारोंसे ओतप्रोत ये भक्त-चरित्र भगवद् प्राप्तिमें सहज सहायक हैं। मूल्य रु० ५, डाकखर्च रु० २

४-भक्तराज हनुमान् (गुजराती) [कोड-नं० 806]—प्रस्तुत पुस्तकमें रामायण और पुराणोंके आधारपर हनुमान्‌जीके अलौकिक चरित्रका बड़ा ही सरस चित्रण किया गया है। इसकी भाषा इतनी सुन्दर तथा प्रसादगुणसे युक्त है कि जितनी बार पढ़ी यह नित्य नवीन बनी रहती है। मूल्य रु० ३, डाकखर्च रु० १

५-श्रीरामचरितमानस मूल (मझला) (गुजराती) [कोड-नं० 878] सितम्बर मासके प्रथम सप्ताहके अन्ततक तैयार जानेकी सम्भावना है। मूल्य रु० २५, रजिस्ट्रीसे खर्च रु० १७

६-श्रीरामचरितमानस (पाकेट-साइज) (गुजराती) [कोड-नं० 879] सितम्बर मासके द्वितीय सप्ताहके अन्ततक तैया हो जानेकी सम्भावना है। मूल्य रु० १५, डाकखर्च रु० ५

श्रीदुर्गासप्तशतीके दो नवीन संस्करण

१-श्रीदुर्गासप्तशती मूल (पाकेट-साइज) [कोड-नं० 876] दुर्गाचालीसासहित—छोटा होनेसे यह संस्करण नित्य- एवं यात्रा आदिमें साथ रखनेके लिये विशेष सुविधाजनक है। मूल्य रु० ५, डाकखर्च रु० २

२-श्रीदुर्गासप्तशती (केवल हिन्दी) [कोड-नं० 866] प्रत्येक अध्यायका श्लोक-संख्याके साथ क्रमशः हिन्दी-अ पाठ-विधि एवं स्थान-स्थानपर संस्कृतके स्तुतिपरक श्लोकोंसहित्त। मूल्य रु० ८, डाकखर्च रु० ३

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**—२७३००

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

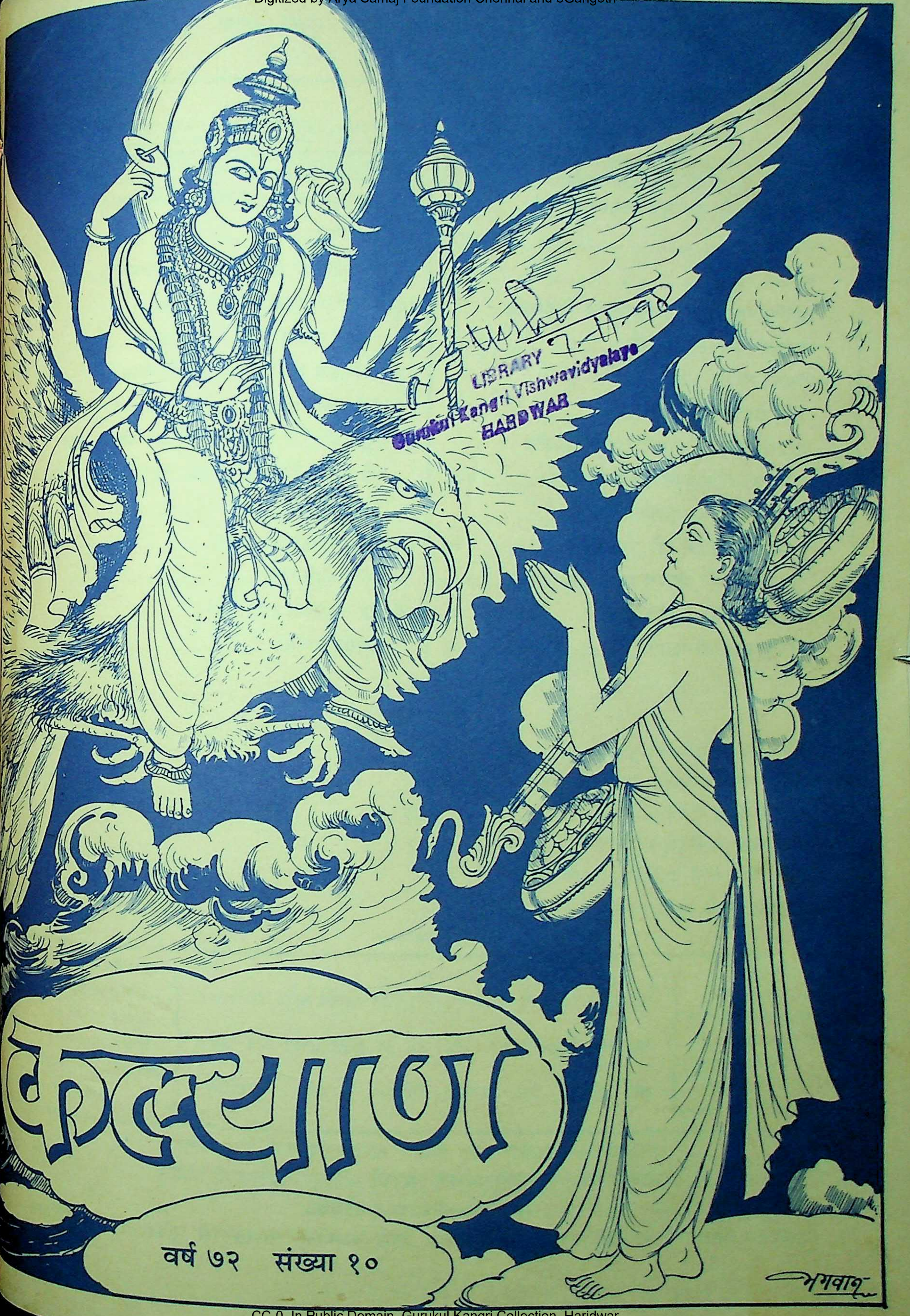

7-11-98
LIBRARY
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARDWAR

कल्याण

वर्ष ७२ संख्या १०

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,३५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, अक्टूबर १९९८ ई०

विषय — पृष्ठ-संख्या

१- देवर्षि नारदको भगवान्‌के विश्वरूपका दर्शन एवं वर-प्राप्ति ७९७
२- कल्याण (शिव) ७९८
३- ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सत्संगकी कुछ अमूल्य बातें ७९९
४- मुक्तिका साधन—भक्ति (डॉ० श्रीवल्लभदासजी मेहता) ८०२
५- नादब्रह्म—मोहनकी मुरली (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ८०४
६- श्रीकृष्णका गो-प्रेम [कविता] (श्रीजानकीप्रसादजी खरे 'गिरिजेश') ८०७
७- श्रीरामनामामृतम् (श्रीरामचन्द्रजी पाण्डेय 'रसिक') ... ८०८
८- साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ८०९

विषय — पृष्ठ-संख्या

९- अनन्तकी खोज (श्रीवीरनारायणजी शर्मा, एडवोकेट) ....
१०- कर्मका तत्त्व (श्रीकेशोरामजी अग्रवाल) ८१२
११- जीवनकी सफलताका सरल उपाय (सुश्री पूर्णिमा एल० 'तुलसीदास') ८१५
१२- गर्भपातके विषयमें धर्मशास्त्रके वचन [संकलनकर्ता—श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन] ८१७
१३- भूमियाने फिर न कभी चोरी की और न झूठ ही बोला! [कहानी] (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०) ८२०
१४- पढ़ो, समझो और करो ८२२
१५- मनन करने योग्य ८२
१६- श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना ८

~~~

चित्र-सूची

१-देवर्षि नारदपर नारायणकी कृपा (इकरंगा) आवरण-
२-देवर्षि नारदको भगवान्‌के विश्वरूपका दर्शन (रंगीन) मुख-
३-रुचिकी पितरोंसे बातचीत (सादा) पृष्ठ ८
४-रुचिके समक्ष पितरोंका प्रकट होना (,,) (,,) ८२
५-रुचिको देनेके लिये प्रम्लोचाका अपनी कन्या मालिनीको जलसे प्रकट करना (,,) (,,) ८२६

~~~

इस अङ्कका मूल्य ४ रु०
विदेशमें—US$0.40
वार्षिक शुल्क वर्ष ७३ के लिये
डाक-व्यय-सहित (भारतमें) ९० रु० (सजिल्द १०० रु०)
विदेशमें—US$11 (Sea Mail)
US$22 (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
(डाक-व्ययसहित)
(भारतमें) ६५० रु०
(सजिल्द ७५० रु०)
विदेशमें—US$ 90 (Sea Mail)
US$ 180 (Air Mail)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

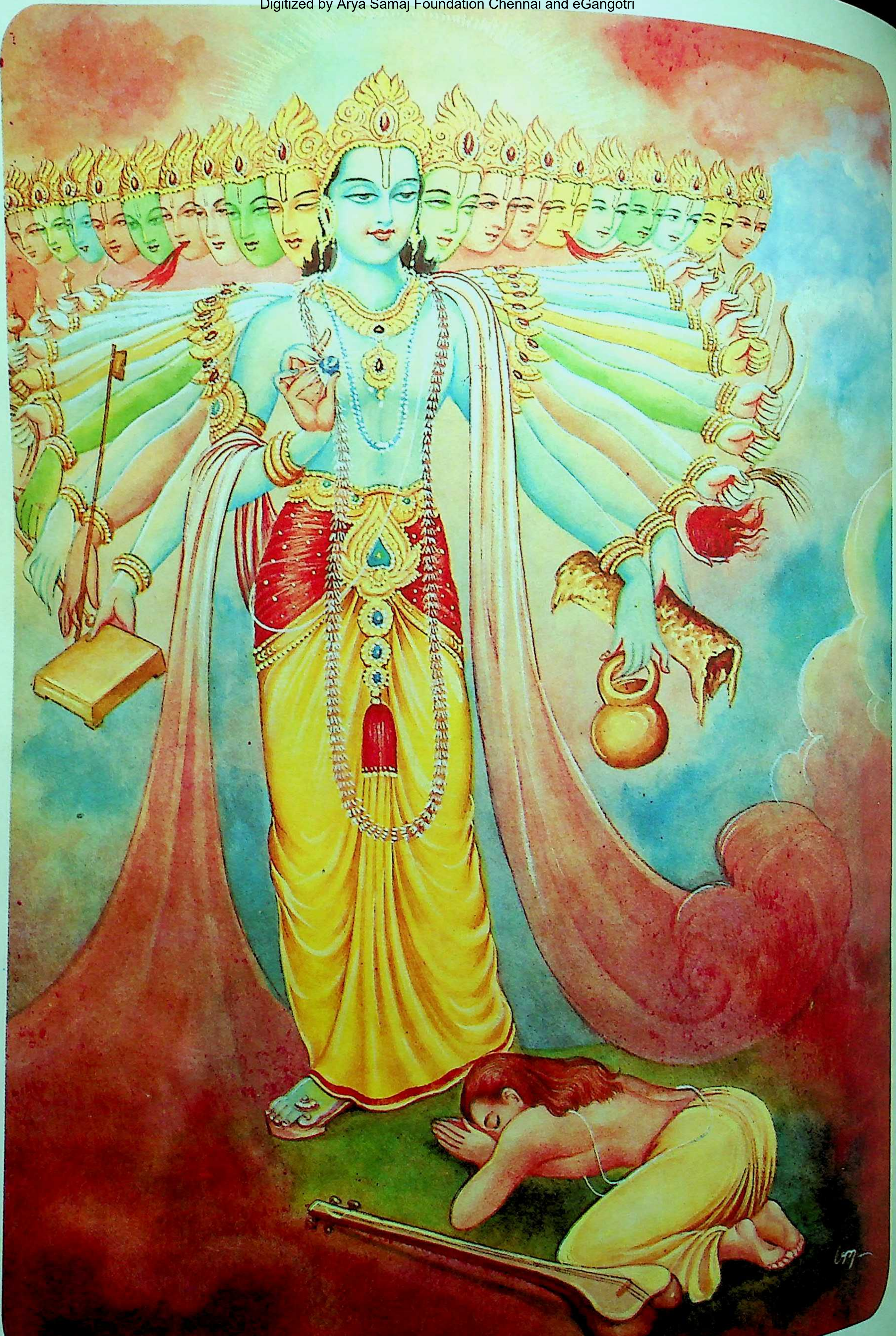

देवर्षि नारदको भगवान्‌के विश्वरूपका दर्शन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

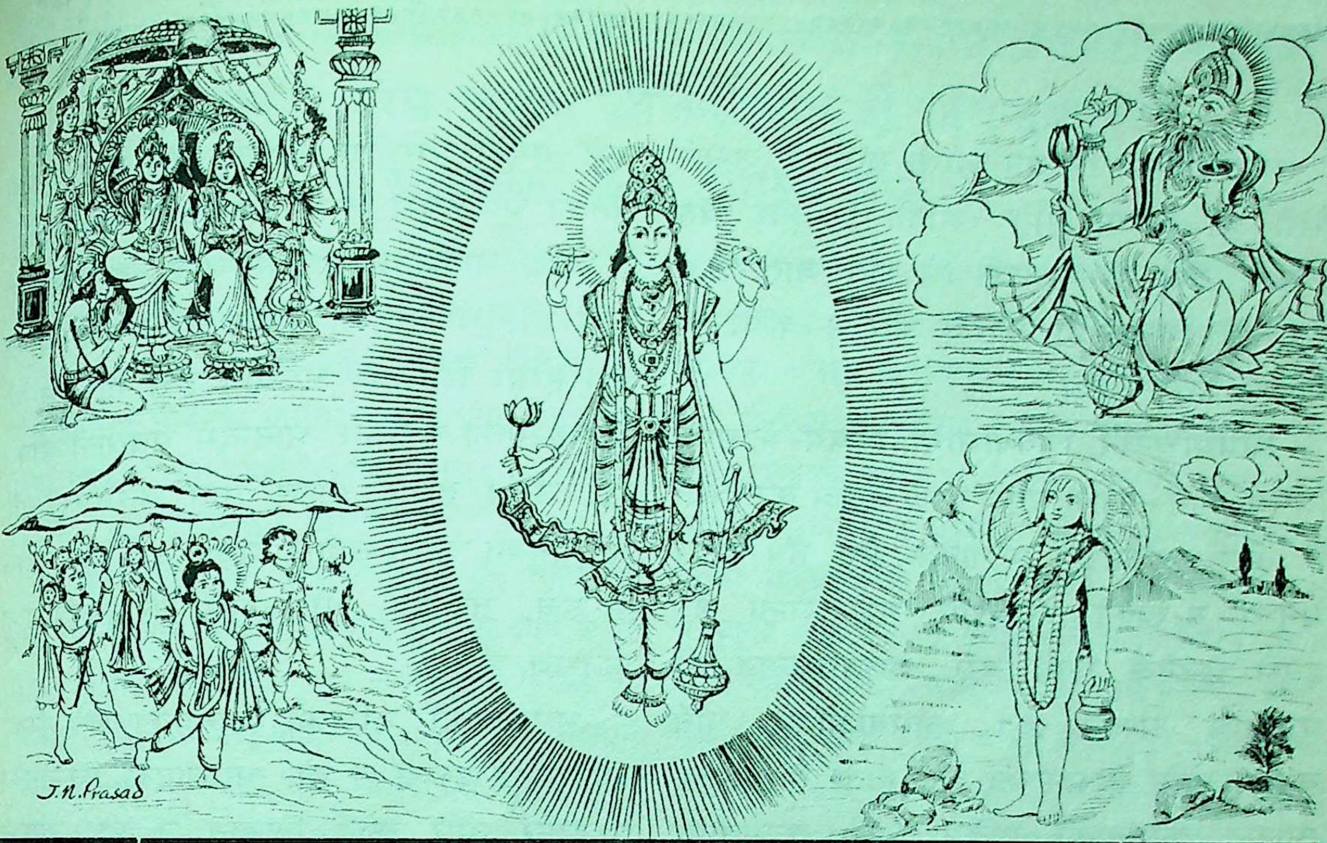

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

वर्ष ७२
गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, अक्टूबर १९९८ ई०
संख्या १०
पूर्ण संख्या ८६३

देवर्षि नारदको भगवान्‌के विश्वरूपका दर्शन एवं वर-प्राप्ति

अद्य मे तपसो देव यमस्य नियमस्य च।
सद्यः फलमवाप्तं वै दृष्टो यद् भगवान् मया॥
वर एष ममात्यन्तं दृष्टस्त्वं यत् सनातनः।
भगवन् विश्वदृक् सिंहः सर्वमूर्तिर्महान् प्रभुः॥

(महाभारत, शा०प० ३३९। १६-१७)

[देवर्षि नारदकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने अपने विश्वरूपका दर्शन दिया एवं उनसे इच्छित वर माँगनेको कहा। देवर्षि नारदने कहा—] देव! जब मैंने आप भगवान्‌का दर्शन पा लिया, तब मुझे तप, यम और नियम—सबका फल तत्काल ही मिल गया। भगवन्! आप सम्पूर्ण विश्वके द्रष्टा, सिंहके समान निर्भय, सर्वस्वरूप, महान् एवं सनातन प्रभु हैं। आपका जो दर्शन हो गया, यही मेरे लिये सबसे बड़ा वरदान है।

कल्याण

मनुष्य जैसा चिन्तन करता रहता है, उससे वैसी ही क्रिया होने लगती है और वह क्रमशः वैसे ही वातावरणसे घिर जाता है।

विषयचिन्तन ही पतन है और भगवच्चिन्तन यथार्थ उत्थान है।

विषयचिन्तन, विषयासक्ति, विषय-कामना, विषय-भोग—सभी महान् दुःख उत्पन्न करनेवाले हैं और नरकाग्निमें जलानेके हेतु हैं। इनसे मनुष्य दुःखकी परम्परामें पड़ जाता है। इनसे छूटनेके लिये बस, भगवच्चिन्तन ही एकमात्र साधन है। कामनाओंकी पूर्ति कामनाओंके विस्तारका हेतु होती है। सच्चा आनन्द कामनाकी पूर्तिमें नहीं, कामनापर विजय प्राप्त करनेमें है।

श्रीभगवान् मङ्गलमय, आनन्दमय, ऐश्वर्यमय, ज्ञानमय, दयामय, प्रेममय, सौन्दर्यमय, माधुर्यमय और सामर्थ्यमय हैं। वे प्रत्येक प्राणीके स्वाभाविक ही सुहृद् हैं। उनसे माँगना हो तो यही माँगना चाहिये कि 'हे भगवन्! तुम जो ठीक समझो, मेरे लिये वही विधान करो। तुम जो चाहो सो मुझे दो, मैं चाहूँ सो मत दो! ऐसी शक्ति दो जिससे मेरे मनमें कोई कामना ही न पैदा हो; और यदि हो तथा वह तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध हो तो उसे तुरंत नष्ट कर दो। उसे पूरी तो करो ही मत।'

भगवान्की रुचिके सामने अपनी रुचि रखनेसे कोई लाभ नहीं होता। उनकी रुचि ही कल्याणमयी है। उनकी रुचिके लिये सदा अपनी रुचिका त्याग कर देना चाहिये।

जो भगवान्की रुचिसे होनेवाले सच्चे आनन्दका परम लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें अपनी आसक्ति, अपनी रुचि और अपनी रतिका पूर्णरूपसे त्याग कर देना चाहिये।

बस, भगवान्की जो रुचि है, वही हमारी रुचि हो; भगवान्की इच्छा ही हमारी इच्छा हो। हमारे गिरनेपर भगवान् हँसें तो हम भी उस हँसीको देखकर आनन्दमें मतवाले होकर हँस उठें। हमारे गौरव प्राप्त करनेपर यदि भगवान्का चेहरा उदास दीखे, उन्हें वह गौरव न रुचे, तो हमें भी उसमें नरकयन्त्रणाका अनुभव हो।

भगवान्की रुचिकी अनुकूलताके सिवा और कोई इच्छा न हो, भगवान्के चिन्तनको छोड़कर और कोई चिन्तन न हो, समस्त जीवन उन्हींके प्रति निवेदन की हुई एक प्रार्थना हो। हृदयमें केवल उन्हींका सिंहासन रहे। सारे कर्म उन्हींकी सेवाके लिये हों। इस प्रकार सदा सर्वार्पण हुआ रहे। 'हम' पर हमारा अधिकार न हो, भगवान्का हो। हमारा 'हम' उनके प्रति अर्पित हो जाय।

हमारा मन, हमारी बुद्धि, हमारी इन्द्रियाँ, सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा उन्हींकी चीज बन जायँ और उन्हींकी सेवामें लगी रहें।

भगवान्के बिना जीवनमें भयंकरता-ही-भयंकरता भरी है। क्योंकि सारा सौन्दर्य, सारा माधुर्य, सारा प्रकाश, सारा ऐश्वर्य, सारी विभूति, सारा प्रेम, सारा ज्ञान, सारा यश, सारी श्री, सारी शक्ति, सारा बल, सारा पुरुषार्थ तो उन्हींमें है। उनके बिना जो कुछ है, वह तो भयानक है, दुःखमय है, विकराल है, प्रलयपीड़ा है, एक घोर यन्त्रणामय नरक है।

—'शिव'

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सत्संगकी कुछ अमूल्य बातें

प्राणिमात्रको यावन्मात्र जीवोंकी सेवा करनी चाहिये और उन्हें सुख पहुँचाना चाहिये तथा परमात्माको हर समय याद रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये। जिन्हें विवेकसहित वैराग्य हो गया, उन्हें सब कुछका ज्ञान हो गया। वैराग्यवान् होनेका उपाय है वैराग्यवान् पुरुषोंका संग।

समयकी अमूल्यता

हर समय उद्यमशील होना चाहिये, पाँच मिनट भी फालतू नहीं बिताना चाहिये। समयको उत्तरोत्तर दामी बनाना चाहिये। फालतू आदमियोंसे बात करनेकी तो फुरसत ही नहीं होनी चाहिये। फालतू काम नहीं करना चाहिये, जिसमें न स्वार्थ हो और न परमार्थ, ऐसे कामके पास जाना ही नहीं चाहिये। निकम्मा नहीं रहना चाहिये।

तीन प्रकारकी कमाई करे तो बहुत उत्तम है

(१) मनसे भजन और ध्यान करे, (२) वाणीसे सत्य और प्रिय वचन बोले तथा (३) भगवन्नामका जप और शरीरके द्वारा परोपकार करे।

—उपर्युक्त बातोंका पालन करनेवाला व्यक्ति पारसका भी महापारस बन जाता है—आनन्दमूर्ति बन जाता है यानी आनन्दका सदाव्रत देनेवाला बन जाता है।

सहनशील बनने, भारी-से-भारी आपत्तिको हर्षके साथ सहन करने तथा संकट सहनेसे मनुष्य पक्का होता है। यावन्मात्र जीवोंपर दया करनी चाहिये। निरन्तर भगवत्-चिन्तन करना चाहिये। इससे जल्दी ही कल्याण हो जाता है, यह शास्त्रोंका निचोड़ और सब बातोंका सार है।

धन्यवाद देनेलायक पुरुष कौन है? जिसका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाता। जिसका मन निरन्तर भगवान्के चिन्तनमें लगा रहता है। जिसकी वाणी भगवान्के नामका जप और सत्य भाषण करती है। जिसका समय भगवान्के गुण, प्रेम, प्रभाव तथा रहस्यभरे कथामृतके श्रवण-मनन और पठन-पाठनमें बीतता है। जिसके हाथ तथा पैर और शरीरसे दूसरोंका उपकार होता है।

कुछ बड़े ही रहस्यकी बातें

इस स्वर्गाश्रम-गङ्गातटपर वटवृक्षके नीचे की हुई सत्संगकी बातें याद करे और परमात्मासे प्रार्थना करे कि 'हे प्रभो! हे दीनबन्धो! आपकी प्रेम-भक्तिमें ऐसा समय बीतनेका अवसर फिर कब आयेगा।' जो बातें यहाँ हुई हैं उन्हें बारम्बार याद करना चाहिये। परमात्माके प्रेम और उनके प्रभावके विषयकी चर्चाको बार-बार याद करना चाहिये, उनका मनन करना चाहिये और एकान्तमें बैठकर विचार करके अपना कर्तव्य निश्चित करना चाहिये तथा तदनुकूल आचरण करना चाहिये। जो बात आत्मामें युक्ति-संगत एवं हितकारी निश्चित हो जाय, उसे कटिबद्ध होकर काममें लाना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रत्यक्ष फल—परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकारके साधनसे, जो परमात्मा कोसों दूर मालूम देता है या दीखता ही नहीं, वही परमात्मा रोम-रोम—पत्तों-पत्तोंमें दीखने लगेगा। संसार दुःखमयके बदले आनन्दमय हो जायगा, भगवत्स्वरूपमें निष्ठावालेको परम शान्तिका साम्राज्य प्राप्त हो जायगा। तात्पर्य यह कि चारों ओर शान्ति-ही-शान्ति स्थित हो जायगी।

इस मनुष्य-जन्मके समयकी कीमतके समान देवताओंके समयकी कीमत भी नहीं है। मनुष्य-जन्म पाकर जो आत्म-कल्याण प्राप्त न करे उसे धिक्कार है। लोक-सेवा खूब करनी चाहिये। कोई-कोई सेवा भजनसे भी बढ़ जाती है—*'समयका बोया मोती निपजे।'*

पाँच आदमियोंको बेगार समझकर रसोई जिमानेसे कोई फल नहीं है। यदि उन्हें ही हँसते हुए भगवान् या महात्मा समझकर जिमावे, सबमें ईश्वर-बुद्धि करे तो यह ईश्वरको ही भोजन कराना है। यदि सकामभाव हो तो स्वर्ग मिलता है और निष्कामभाव हो तो मुक्ति मिलती है।

मनुष्य-जन्म पाकर भलाई करके जाय, बुराई करके नहीं। अपने साथ बुराई करनेवालेकी भी भलाई करे, इससे बढ़कर संसारमें और ऊँचा दर्जा है ही नहीं, वह मनुष्य मनुष्यरूपमें नारायण है। स्त्री हो तो स्त्रीरूपमें लक्ष्मी है। बुराई करनेवालेके साथ न तो बुराई करे और न भलाई ही, यह दो नंबरमें है। बुराई करनेवालेके साथ बुराई और भलाई करनेवालेके साथ भलाई करना यह तीसरे नंबरकी

नीति है, परंतु साधु-दृष्टिमें तो नीचे ही दर्जेकी है। यह बात तो पशुओंमें भी देखी जाती है। अपनी भलाई करनेवालेकी भलाईको भूल जाना कृतघ्नता है। भलाई करनेवालेके साथ बुराई करनेवालोंकी नीचता तो कही ही नहीं जा सकती।

दो बातें याद रखनी चाहिये—(१) अपने साथ रत्तीमात्र भी भलाई किसीने की हो तो उसे न भूले और (२) अपनेसे कोई अपराध हो गया हो तो उसे जबतक संतोष न करा सके, तबतक अपना अपराध याद रखे।

दो बातोंको तुरंत भूल जाय—(१) अपने साथ किसीने बुराई की हो और (२) अपने द्वारा किसीका उपकार हुआ हो।

सबसे बढ़कर बात

अपने समयको उत्तरोत्तर कीमती बनाना चाहिये। जो मनुष्य समयकी कीमत जान गया वह धन्य है। परमात्माकी प्राप्ति एक क्षणमें हो सकती है, वह क्षण अभी हो जाय तो अभी परमात्मा मिल सकता है। वह क्षण कैसा है? जिसे परमात्मा प्राप्त होता है वही जानता है। वह क्षण हठात् मिल सकता है। किसी समय ऐसी शिक्षाकी बात हमें मिल जाय और समझमें आ जाय तो एक क्षणमें परमात्माकी प्राप्ति हो जाय। कभी किसी क्षण भगवान्‌का नाम उच्चारण करते-करते यदि ऐसा प्रेम हो जाय तो उसी क्षण भगवान् प्रकट हो जायँ। उस प्रेमके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये और भगवान्‌के आगे रोना चाहिये। प्रेम परमात्माकी दयासे ही होता है। परमात्माकी कितनी दया है कि हम लोगोंकी वृत्ति परमार्थकी ओर जाती है।

व्यावहारिक अमूल्य उपदेश—लड़का न होनेपर किसीके लड़केको गोद नहीं लेना चाहिये। यदि नाम चलानेका उद्देश्य हो तो विचार करना चाहिये कि लोगोंकी तीन-चार पीढ़ी-पूर्वका नाम तो कोई नहीं लेता।

स्त्रियोंके लिये कुछ नियम—किसीसे लड़ाई न करे। ***'हरे राम०'*** मन्त्रकी १४ माला जपे, नीलमें रँगा कपड़ा न पहने। मिलका कपड़ा न पहने। दूसरे पुरुषको बुरी दृष्टिसे न देखे। स्त्रियोंको लिखना-पढ़ना सीखना चाहिये। घरमें जो खरचा लगे उसको बराबर ब्योरेवार लिख ले तो बहुत फायदा है। रोकड़ जोड़ना आदि बातें भी सीखनी चाहिये। नहीं तो पतिके मरनेके बाद उनका घर बिला जाता है, क्योंकि स्त्रियोंको कुछ पता नहीं रहता है।

स्त्रियोंमें प्रधान दोष है—वाणीमें संयमका अभाव। मूढ़ता। मर्म समझनेकी शक्तिका अभाव। सकाम भाव। बात सुने पर उसका उलटा अर्थ समझना।

अनन्य प्रेम होनेके लिये कुछ बातें—प्रेमी भगवान्‌को अपने चित्तसे कभी बिसारे नहीं। प्रेमीके मनके अनुकूल चले। प्रेमीके मनकी बात यदि नहीं जाने तो उनके आदेशके अनुकूल चले। सर्वस्व प्रेमीके अर्पण करे। अपना सर्वस्व भगवान्‌के अर्पण करनेसे भगवान्‌के सर्वस्वका मालिक हो जाता है। अपना मित्र यदि धनी भी हो तो उसका धन लेनेकी आशा नहीं करनी चाहिये। धन लेनेकी आशा प्रेममें कलंक लगानेवाली है। प्रेमकी रक्षा करनेमें प्रेमी व्यक्ति स्वयं ही हेतु है, जैसे महाराज युधिष्ठिर अपने धर्मकी रक्षा अपने-आप ही करते थे। इसी प्रकार अपनी इज्जतकी रक्षा अपने ही हाथ है। मुझसे जो प्यार करता है उससे मैं प्यार करता हूँ, मेरेमें जितना ही जिसका प्रेम है वह मुझे उतना ही प्यारा है। भगवान्‌का यह वचन है कि—'**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**।' निष्कामभावसे प्राणी मात्रके साथ जो प्रेम करता है वह भगवान्‌को मोल ले लेता है। 'ऐसा बर्ताव महापुरुषोंने किया है', इस बातपर आँख मींचकर विश्वास करना चाहिये। जिस प्रेममें ईर्ष्या न हो वह प्रेम ऊँचे दर्जेका है। नीच पुरुष भी भगवान्‌की भक्ति करनेसे उत्तम ही समझने योग्य है जैसे—अजामिल।

चार बातें बहुत दामी हैं—(१) कोई व्यक्ति छोटे दरजेसे बड़े दरजेपर हो जाय तो उसे बड़ा ही मानना चाहिये। (२) किसीका पर्दाफास नहीं करना चाहिये। (३) नौकरसे होने लायक काम नौकरसे कराना चाहिये और (४) जिससे मन फट जाय उसके पास नहीं रहना चाहिये।

समयकी अमोलकताको हर समय याद रखनी चाहिये। जितना मन लगाकर भजन और शास्त्रका अभ्यास करनेसे जितना लाभ एक वर्षमें होता है उतना लाभ बिना मनके सौ वर्षोंमें भी नहीं होता। दो बातोंसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती—एक

तो साधनके न करनेसे दूसरा युक्ति नहीं जाननेसे। भगवान्के भजनके समान पापको नष्ट करनेवाला संसारमें कोई नहीं है। भगवान्के एक नामकी ही इतनी सामर्थ्य है कि वह सम्पूर्ण पापोंका नाश कर सकता है। मन लगाकर भजन, ध्यान, सत्संग करनेके लिये मनसे हरदम लड़ाई करता रहे और मनको समझाता रहे कि ऐसी अवस्थामें तेरी मृत्यु हो जायगी तो तेरी क्या दशा होगी!

ज्यादा लाभ होनेवाले काममें समय बिताना चाहिये। सबसे ऊँचे चार काम हैं—

(१) ऊँचे दरजेकी वार्ता अनुभवी पुरुषोंद्वारा सुनना। (२) जप-सहित ध्यान करना। (३) गीताजीका अर्थ और भाव-सहित विचार करना एवं (४) भगवान्के नामका जप करना तथा श्रीमद्भगवद्गीताके मूल श्लोकोंका पाठ करना। —इस चौथी बातके सौ वर्ष करनेसे जितना फायदा है, उतना ऊपरवाली बातोंको काममें लानेसे पाँच-सात वर्षमें हो सकना सम्भव है। प्राय: मनुष्य यह चौथी बात ही करते हैं। युक्ति-सहित साधन करनेसे बहुत जल्दी परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। कर्म आसक्तिसे रहित होकर करे। उसके सिद्ध होने-न-होनेमें समान भाव रखे। मृत्युको हर समय सामने खड़ी देखे, वह चाहे जब ले जाय हर समय तैयार रहे। क्योंकि वह कृतकृत्य है। निष्कामभावसे तन, मन तथा धन दूसरेके काममें लग जाय तो वही काममें आया। बाकी धूलमें गया। सत्ययुगमें स्वाभाविक ही सतोगुणी वृत्ति होती है, किंतु केवल सतोगुणी वृत्तिसे ही कल्याण नहीं होता। कल्याण तो होता है साधनसे ही।

भगवान्का भक्त जिस रूपकी प्राप्तिके लिये इच्छा करे, भगवान् उसी रूपमें उसे प्राप्त हो जाते हैं। जैसे निराकार, साकार, दो भुजा, चार भुजा, विराट् स्वरूप इत्यादि।

एलोपैथिक तथा होमियोपैथिक दवा कभी नहीं लेनी चाहिये, प्राण भले ही चले जायँ। माता-पिताके कहनेपर भी नहीं लेनी चाहिये, क्योंकि त्यागी हुई वस्तु कभी ग्रहण नहीं करनी चाहिये, जैसे भीष्मपितामह और श्रीरामचन्द्रजी। दुःखोंको प्राप्त होनेपर भी आनन्द ही माने।

श्रीगीताजीका अर्थ बहुत सरल है उसका भी सार त्यागसे भगवत्प्राप्ति है।

'गजल-गीता'का पाठ रात्रिमें सोते समय करना चाहिये।

'प्रेम-भक्ति-प्रकाश' नित्य प्रेमसे सोच-समझकर पढ़ना चाहिये।

मुझे यह बात सबसे ज्यादा प्रिय है—गीता और ग्रन्थोंका प्रचार। लेख लिखकर छोड़ जानेसे संसारका बहुत हित होता है, जैसे ऋषि-मुनि। श्रीगीताजीका प्रचार सत्संग छोड़कर भी करना उत्तम है। नित्य सत्संग करनेवालोंको अन्तकालतक मुक्ति-प्राप्तिमें शंका नहीं है। यदि कोई नित्य सत्संग करनेके लिये आज ही नियम ले ले और वह यदि आज ही रात्रिमें मर जाय तो उसका उद्धार हो जायगा।

उत्तम श्रद्धाके कुछ उदाहरण—उत्तम श्रद्धा राजा द्रुपदकी महादेवजीके वचनोंमें थी। उनके वचनसे अपनी कन्याको पुत्र मानकर उसका विवाह भी कर दिया। जबालाके पुत्र सत्यकामकी गुरु-वचनोंमें। शुकदेवजीकी राजा जनकके वचनोंमें। द्रोणाचार्यकी महाराज युधिष्ठिरके वचनोंमें। भगवान् चाहे न मिलें पर उनमें अनन्य प्रेम जल्दी होना चाहिये। भगवान्में प्रेम लगाकर संसारमें जीनेसे बढ़कर आनन्द ही नहीं है। भगवान्के भक्तोंकी पहचान यह है कि जिनके मिलनेसे भगवान्में प्रेम हो जाय तथा भगवान्की याद आ जाय।

महात्मा पुरुषोंके आचरणोंको याद करनेमें बहुत लाभ है। जैसे—शारीरिक व्याधि चाहे जितनी हो उस समय भीष्मजीको याद कर ले। जिस जगह न्याय करनेका काम पड़े उस जगह प्रह्लादजीको याद कर ले। अपने साथ द्वेष करनेवालोंपर भी दया करनी चाहिये, जैसे जयदेव कवि। अपने शत्रुओंकी भी दूसरे मनुष्योंसे रक्षा करे, जैसे महाराज युधिष्ठिर। माता-पिताकी सेवा करनेमें श्रवण-जैसा एवं आज्ञा-पालनमें रामजी-जैसा आचरण करना चाहिये। प्रेम करनेकी इच्छावालोंको भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा भगवान् श्रीकृष्णजीका बर्ताव याद करना चाहिये। विषयासक्त पुरुषोंको महाराज शुकदेवजी तथा ऋषभदेवजीको याद करना चाहिये।

* * *

मुक्तिका साधन—भक्ति

(डॉ० श्रीवल्लभदासजी मेहता)

'मुक्तिकी ओर अग्रसर करानेवाले साधनोंमें सर्वश्रेष्ठ स्थान केवल भक्तिका है। स्व-स्वरूपके अनुसंधानका नाम भक्ति है।' आदिगुरु श्रीशंकराचार्यजीके इन शब्दोंको आधार बनाकर हम अपनी अल्प बुद्धिके अनुसार विवेचन करनेका प्रयास करते हैं। हमारे पुराण-पुरुष श्रीशुकदेवजीने अपने पिता परम ज्ञानी श्रीवेदव्यासजीसे प्रश्न किया कि 'मैं कौन हूँ?' उन्होंने उत्तर दिया—'जो ब्रह्म आनन्द और विज्ञान-स्वरूप है, चित्तके द्वारा सारे संकल्पोंको देना ही मानो उसे ग्रहण कर लेना है, जिसके संकोचसे जगत्का विनाश और विकाससे निर्माण होता है, वही सच्चिदानन्द-स्वरूप ब्रह्म मैं हूँ, दूसरा नहीं हूँ।' इस उत्तरसे श्रीशुकदेवजी संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने सोचा—यह तो मैं पहलेसे ही जानता था। इसमें इन्होंने कौन-सी नयी बात बता दी। श्रीशुकदेवजीको यह भ्रम होना स्वाभाविक था; क्योंकि निकटतम व्यक्तिद्वारा दिया गया ज्ञान मोहजनित होनेके कारण अज्ञानके आवरणसे ढका रहता है। श्रीव्यासजी श्रीशुकदेवजीके मनकी बात जान गये; उन्होंने राजा जनकके पास उन्हें मिथिलापुरी भेजा और कहा कि 'राजा विदेहके पास जाओ और ज्ञानार्जन करो।'

पिताके निर्देशपर हिमालयके उच्च शृंगोंको पार करके कलकल ध्वनि करती भक्ति-स्वरूपिणी गङ्गाके किनारे-किनारे श्रीशुकदेवजी विदेह नगर पहुँचे। उस नगरकी शोभा देखते ही बनती थी। परम शान्ति वहाँ व्याप्त थी। द्वारपालसे लेकर सभी नागरिक एवं राजकर्मचारी निष्ठापूर्वक निःस्पृहभावसे अपने-अपने कर्तव्यकर्मोंमें व्यस्त दिखायी दे रहे थे। श्रीशुकदेवजीने राजप्रासादके द्वारपालके माध्यमसे महाराज जनकके पास अपने आगमनका संदेश पहुँचाया।

संदेश सुनकर राजा जनकने उन्हें वहीं द्वारपर ठहरनेके लिये कहलवाया। साधारण जनोंके मध्यकी बात होती तो राजा जनकके इस व्यवहारपर कुछ आपत्ति हो सकती थी; परंतु यह तो दो परम ज्ञानियोंके मध्यकी बात थी। अतः इस व्यवहारसे न द्वारपाल चकित थे और न ही श्रीशुकदेवजी, यह प्रथम परीक्षा थी। सात दिनतक द्वारपर ही रहकर उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ी। ज्ञानार्जन-हेतु धैर्य-परीक्षणका यह पहला सोपान कहा जा सकता है।

फिर प्राङ्गणमें उन्हें ठहरनेके लिये कहा गया। प्राङ्गणमें राजाका वैभव देखकर श्रीशुकदेवजी विभ्रमित नहीं हुए। प्राङ्गणसे चारों ओर देखना सहज सम्भव था। मतिभ्रमकी स्थितिसे परे बुद्धि इस बातका प्रतीक है कि ज्ञान-प्राप्तिहेतु बुद्धि बिलकुल निर्मूल है, स्वच्छ है और धुंध-रहित है।

इस प्रकार एक सप्ताह और बीता, तत्पश्चात् उन्हें अन्तःपुरमें लाया गया, जहाँ राजप्रासादकी युवतियाँ उनकी सेवामें लगी थीं। नाना प्रकारके भोज्य तथा भोग-सामग्रीसे उनका सत्कार किया गया। श्रीशुकदेवजी इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उनकी समभाव-स्थिति बनी रही।

जब राजा जनकने श्रीशुकदेवजीके इस परमोच्च स्थितिको जान लिया, तब उन्होंने उनसे भेंट की और उनका सत्कार किया। इस कथा-रूपकसे स्पष्ट होता है कि स्व-स्वरूप जाननेके लिये मोह-त्याग, धैर्य-धारण, निर्मल मन-बुद्धि तथा समभावके सोपानोंसे गुजरकर विदेह-जैसे गुरुके समक्ष पहुँचना होगा।

श्रीशुकदेवजी यद्यपि ज्ञानकी चर्चामें ज्ञानमूर्ति ही थे, तथापि ज्ञानके व्यवहारमें अधूरे थे अर्थात् शिष्य थे। परंतु विदेह थे विशेष देहवाले अर्थात् आसक्ति-रहित ज्ञानी। गुरु ज्ञान होता है और ज्ञान ही गुरु होता है। गुरु सब कर्म करता हुआ इस अहंकारसे शून्य होता है कि 'मैं कर्म कर रहा हूँ' वह यह भलीप्रकार जानता है कि 'मैं जो कर रहा हूँ उसका नियन्ता अथवा करानेवाला कोई और है जिसने इस देहको माध्यम बना दिया है', जिससे वह कोई नियति-विरुद्ध कार्यमें संलग्न नहीं होता। महाराज जनक इसके प्रतीक थे।

महाराज जनकने ज्ञानकी व्याख्या आरम्भ की—'परिपक्व ज्ञानसे निर्वाणरूपी परम शान्ति प्राप्त होती है। वासनाओंका सम्पूर्ण त्याग ही श्रेष्ठ त्याग है, वही विशुद्ध अवस्था है और वही मोक्ष है। इस तत्त्वका ज्ञान जीवन्मुक्त बनाता है। उसके लक्षण हैं—सुखों तथा दुःखोंसे अनासक्त और हर्ष-क्रोध, दृष्टिका काम एवं शोक आदिसे अन्तःकरणका मुक्त होना। आकांक्षारहित तथा अपेक्षारहित अनायास ही अन्तर्मुखी हो जाना। जन्म-मरण, उन्नति एवं मान-अभिमानका त्यागी होना। विनाश आदिकी सभी स्थितियोंमें एक समान रहना—न तो 'मैं' का भाव होना और न ही 'पराया'-भाव। इन गुणोंसे युक्त तुम बाहर और अन्तःकरणमें उस परब्रह्मको देखते हुए पूर्ण मुक्तावस्थामें साक्षी भर रहते हो, तुम मुक्त हो।'

तात्पर्य यह कि स्व-स्वरूपको जाननेवाला स्वयंका साक्षी होता है; किंतु इस सोपानतक पहुँचनेके लिये आधार

है शम, आत्मचिन्तन और सत्संग आदि। इन्द्रियोंका दमन करना शम है। आत्मानुभव, सद्ग्रन्थ (शास्त्र) तथा गुरुके वचनोंमें श्रद्धा तथा ऐक्यभावसे अभ्यासद्वारा आत्मचिन्तन होता है। आत्मचिन्तनमें यह दृढ़ विश्वास होता है कि यह दृश्य-अदृश्य उस विराट्की समग्र क्रिया है, चित्तकी धड़कन उसका अंशमात्र है। यह आत्मदृष्टि है। इसकी प्राप्ति गुरु (भगवत्)-कृपा या सत्संगसे होती है। अन्तःकरणकी शुद्धि सत्संगकी गङ्गामें स्नान करनेसे ही होती है।

ज्ञान कब जाग्रत् होता है, इसकी पहचानके लिये जिन गुणोंका अनुभव होना चाहिये, संक्षेपमें वे ये हैं—शुभेच्छा, वैराग्यके साथ सत्-आचरण, इन्द्रियोंके विषयोंके प्रति अनुरागमें क्षीणता, चित्तशुद्धि, सम्पर्ककी अनिच्छा, अभ्यासके द्वारा पदार्थोंमें अनासक्ति और भेद-बुद्धिका अभाव।

इनके विकाससे हृदयकी गाँठ खुल जाती है और यही वह ज्ञान है, जिससे मायाके बन्धन काटे जा सकते हैं; परंतु यह समझना सरल काम नहीं है। इस आत्म-ज्ञानके ही सम्बन्धमें 'महोपनिषद्'में ऋभु ऋषिने अपने पुत्र निदाघको उपदेश दिया कि 'सांसारिक व्यवहारोंमें जो-जो नष्ट होता जाय, उस-उसकी उपेक्षा करते चलो और जो-जो प्राप्त होता जाय, उसे त्यागपूर्वक ग्रहण करते जाओ। ऐसा करनेपर बुद्धि जलमें कमल-पत्रके समान असम्पृक्त होगी।' तदनन्तर भक्तिके लिये वह आनन्द (शिव)-का धरातल तैयार होगा, जिसपर वह सुरसरिकी भाँति अवतरित होगी। इस धरातलकी पुष्टि हमें श्रीराम तथा श्रीहनुमान्के संवादमें भी मिलती है। इस सम्बन्धमें प्रभु श्रीरामका कथन विचारणीय है। श्रीहनुमान्जीने श्रीरामजीसे जिज्ञासा की—

'प्रभु, मैं मुक्तिका रहस्य जानना चाहता हूँ, कृपा करके मुझे उपदेश दीजिये।'

श्रीरामने जिज्ञासु भक्त हनुमान्जीसे कहा—'मैं ज्ञानद्वारा मुक्ति प्राप्त करना श्रेष्ठ मानता हूँ। लोकवासना, शास्त्रवासना तथा देहवासनाके कारण प्राणीको यथार्थ ज्ञान नहीं मिल पाता। वासना शुभ और अशुभके भेदसे दोनों प्रकारकी होती है। शुभमें मन लगाना चाहिये, अभ्यासद्वारा यह सम्भव है। इसके साथ-साथ आसक्तिका नाश करना भी आवश्यक है। चित्तकी स्थिरता वासनाका नाश करती है। जब मोक्ष-प्राप्तिकी वासनाका भी त्याग करोगे, तब मन-बुद्धिके साथ चित्त-वासनाको छोड़कर ब्रह्ममें पूर्णतया लीन हो जाओगे।' (मुक्तिकोपनिषद्)

भगवान् श्रीरामके इस उपदेशमें भक्तकी वह स्थिति स्पष्ट होती है, जिसमें वह अपने भगवान्के साथ एकाकार हो जाता है। श्रीहनुमान्जी परम ज्ञानी (**बुद्धिमतां वरिष्ठम्**) भक्त हैं। श्रीमद्भगवद्गीता (१२। १९-२०)-में भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥

तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य अनिकेत है, वह स्थिर-बुद्धि (ज्ञानी) भक्तिमान् पुरुष मेरा प्रिय है। जो मेरे द्वारा कहे हुए अमृततुल्य कर्मको श्रद्धापूर्वक मेरी शरणमें रहते हुए अपने जीवनमें उतारते हैं, वे मेरे अतीव प्रिय हैं।

वास्तविकता तो यह है कि साधन आवश्यक है, परंतु भगवत्कृपाके बिना मनुष्य कृतकार्य नहीं होता। यदि साधन भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यसे भगवान्की प्रीतिके हेतु की जाय तो भगवान्की कृपा विशेषरूपसे प्राप्त होती है। साधनसे भक्तकी आस्था, श्रद्धा तथा भक्तिमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। इससे शरणागतिकी प्राप्ति होती है।

शरणागति प्राप्त होनेपर कुछ शेष नहीं रहता। हमें यहाँ स्मरण रखना होगा कि शरणागतिकी स्थिति लानेके लिये श्रीशुकदेवजी-जैसा केवल जप नहीं, प्रत्युत ज्ञानपूर्वक जप (भगवत्स्मरण या नामस्मरण) करना होगा, इसमें निदाघ (ऋषि-पुत्र)-की भाँति जलमें कमल-पत्रके तुल्य असम्पृक्तता प्राप्त करनी होगी, अर्थात् ज्ञान तथा वैराग्यके युगल स्वरूपके साथ भक्ति माताको हृदयंगम करना होगा।

किंतु यह जितना सरल दीखता है उतना है नहीं। तप-त्यागके धरातलपर विराट्की अंशरूपा गङ्गाको धारण करनेके लिये जिस प्रकार भगवान् शिवने साधन किया, वह करना होगा, तब कहीं भागवती शक्ति, कुण्डलिनी-स्वरूपा आह्लादिनी भक्ति सहस्रारमें आकर समाहित होगी। उसका वह परम समावेश आनन्दमयी मुक्तिका ही स्वरूप है। फिर, मैं भक्ति हूँ, मैं उपासना हूँ और मैं मुक्ति हूँ यह सतत चलता रहेगा। उस स्थितिमें तो पता ही नहीं चलेगा कि कब प्रातः हुआ और कब संध्या हुई तथा कब दिन-रात हुए। ऋतुएँ बीतीं और वर्ष-के-वर्ष बीत गये—इस प्रकारकी भक्ति एवं शरणागतिके उस परम शिखरपर पदारूढ हो मनुष्य इहलीला समाप्त कर परम अविनाशीसे मिलनेके लिये प्रयाण करेगा, क्योंकि—

जीव उसीका अंश है, फिर तो अंशको अंशीमें मिलना ही चाहिये।

'ईस्वर अंस जीव अबिनासी।'

नादब्रह्म—मोहनकी मुरली

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

नादात्मकं नादबीजं प्रयतं प्रणवस्थितम्।
वन्दे तं सच्चिदानन्दं माधवं मुरलीधरम्॥
नादरूपं परं ज्योतिर्नादरूपी परो हरिः॥

'नाद ही परम ज्योति है और नाद ही स्वयं परमेश्वर हरि है।'

नाद अनादि है। जबसे सृष्टि है तभीसे नाद है। महाप्रलयके बाद सृष्टिकी आदिमें जब परमात्माका यह शब्दात्मक संकल्प होता है कि 'मैं एक बहुत हो जाऊँ', तभी इस अनादि नादकी आदि-जागृति होती है। यह नादब्रह्म ही शब्दब्रह्मका बीज है। वेदोंका प्रादुर्भाव इसी नादसे होता है। नादका उद्भव परमेश्वरकी सच्चिदानन्दमयी भगवती स्वरूपाशक्तिसे होता है और इस नादसे ही विन्दु उत्पन्न होता है। यह विन्दु ही प्रणव है और इसीको बीज कहते हैं—

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादस्तस्माद्विन्दुसमुद्भवः॥
नादो विन्दुश्च बीजश्च स एव त्रिविधो मतः।
भिद्यमानात् पराद् विन्दोरुभयात्मा रवोऽभवत्॥
स रवः श्रुतिसम्पन्नः शब्दो ब्रह्माभवत् परम्॥

'सच्चिदानन्दरूप वैभवयुक्त पूर्ण परमेश्वरसे उनकी स्वरूपाशक्ति आविर्भूत हुई, उससे नाद प्रकट हुआ और नादसे विन्दुका प्रादुर्भाव हुआ। वही नाद, विन्दु तथा बीजरूपसे तीन प्रकारका माना गया है। बीजरूप विन्दु जब भेदको प्राप्त हुआ, तब उससे इस प्रकारके शब्द प्रकट हुए। वह शब्द ही श्रुतिसम्पन्न श्रेष्ठ शब्दब्रह्म हुआ।'

यही नाद क्रमशः स्थूलरूपको प्राप्त होता हुआ समस्त जगत्में फैल जाता है। पाँच भूतोंमें सबसे पहले महाभूत आकाशका गुण शब्द है। यह नादका ही एक रूप है। आदि-नादरूप बीजसे ही पञ्चतत्त्वकी उत्पत्ति मानी गयी है। इस स्थूल नादकी उत्पत्ति अग्नि और प्राणके संयोगसे होती है। ब्रह्मग्रन्थिमें प्राण रहता है, इस प्राणको अग्नि प्रेरणा करती है। अग्निमें यह प्रेरणा आत्मासे प्रेरित चित्तके द्वारा होती है। तब प्राणवायु अग्निसे प्रेरित होकर नादको उत्पन्न करता है। यह नाद नाभिमें अति सूक्ष्म, हृदयमें सूक्ष्म, कण्ठमें पुष्ट, मस्तकमें अपुष्ट और वदनमें कृत्रिमरूपसे आकार धारण करता है। कहते हैं कि 'न' कार प्राण है और 'द' कार वह्नि है और प्राण तथा वह्निके संयोगसे उत्पन्न होनेके कारण ही इसको 'नाद' कहते हैं।

योगी लोग इसी नादकी उपासना करके ब्रह्मको प्राप्त किया करते हैं। हठयोगशास्त्रोंमें इसका बड़ा विस्तार है। मुक्तासन और शाम्भवी मुद्राके साथ इस नादका अभ्यास किया जाता है। इस नादसाधनासे सब प्रकारकी सिद्धियाँ मिलती हैं। अनाहतनाद योगियोंका परम ध्येय है। शास्त्रोंमें नादको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धिका एक साधन माना है। नादके बिना जगत्का कोई भी कार्य नहीं चल सकता। पाञ्चभौतिक जगत्में आकाश सर्वप्रधान है और आकाशका प्राण नाद ही है। इसीसे जगत्को नादात्मक कहते हैं। नादका माहात्म्य अपार है। संगीतदर्पणकी एक सुन्दर उक्ति है कि देवी सरस्वतीजी नादरूपी समुद्रमें डूब जानेके भयसे ही वक्षःस्थलमें सदा तुम्बी धारण किये रहती हैं—

नादाब्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती।
अद्यापि मज्जनभयात् तुम्बं वहति वक्षसि॥

संगीत और स्वरका तो प्राण ही नाद है। गीत, नृत्य और वाद्य नादात्मक हैं। नादद्वारा ही वर्णोंका स्फोट होता है। वर्णसे पद और पदसे वाक्य बनता है। इस प्रकार समस्त जगत् ही नादात्मक है।

यह नाद मूलतः परमात्माका ही स्वरूप है। जब भगवान् लीलाधाममें अवतीर्ण होते हैं, तब उनके दिव्य विग्रहमें जितनी कुछ वस्तुएँ होती हैं सभी दिव्य सच्चिदानन्दमयी भगवत्स्वरूपा होती हैं। इसीसे अवतारविग्रहकी वाणीमें इतना माधुर्य होता है कि उसको सुनते-सुनते चित्त कभी अघाता ही नहीं और यह चाहता है कि लाखों-करोड़ों कानोंसे यह मधुर ध्वनि सुननेको मिले, तब भी तृप्ति होनी कठिन है। चिदानन्दमय श्रीकृष्णस्वरूपमें तो इस नादका भी पूर्णावतार हुआ था। श्यामसुन्दरकी सच्चिदानन्दमयी मुरलीका

मधुर निनाद ही यह नादावतार था। इसीसे उस मुरलीनिनादने प्रेममय व्रजधाममें जडको चेतन और चेतनको जड बना दिया। मोहनके वेणुनिनादने वृन्दावनके प्रत्येक आबाल-वृद्धमें, प्रत्येक पशु-पक्षीमें, स्थावर-जंगममें, पत्र-पत्रमें और कण-कणमें प्रेमानन्द भर दिया। उस वंशीनादको सुनकर विमानोंपर चढ़ी हुई सुरबालाओंके धैर्यका बन्धन छूट गया। वे सहसा मुग्ध हो गयीं। उनकी कवरियोंमें खोंसे हुए नन्दन-काननके कमनीय कुसुम हठात् वहाँसे खिसककर मर्त्यभूमिपर गिर पड़े। गन्धर्वकन्याएँ संगीत भूलकर मतवाली-सी झूमने लगीं। ऋषि, मुनि, तपस्वी, परमहंस और योगियोंकी ब्रह्मसमाधि भंग हो गयी। बरबस उनका मन वीणास्वरसे विमोहित मृगकी भाँति मुरलीध्वनिमें निमग्न हो गया। सुधाकरकी चाल बंद हो गयी। श्रीकृष्णके उस वेणुविनिर्गत ब्रह्मनादामृतका पान करनेके लिये बछड़ोंने स्तनोंका चूँघना छोड़कर केवल उन्हें मुँहमें ही रहने दिया। गौएँ चरना भूल गयीं। सुरम्य वृन्दारण्यके विहंगोंने मधुर काकलीका त्यागकर वंशीध्वनिसे झरनेवाले अनिर्वचनीय आनन्दका उपभोग करनेके लिये आँखें मूँद लीं और श्रवणपात्रोंका मुख उस सुधाधाराके प्रवाहमें लगा दिया। सिंह-मृग आदि वनचर प्राणी भय और हिंसा भुलाकर मुरलीमनोहरको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये और कान तथा आँखोंको अतृप्त बोध करने लगे। महिषी कालिन्दी अपनी ऊर्मिभुजाओंको फैलाकर परम प्रियतमका आलिङ्गन करनेके लिये दौड़ पड़ीं। इस प्रकार दिव्य धामकी दिव्य सुधाधारा समस्त धरामण्डलमें बह चली। चेतन जीव जडवत् अचल हो गये। और साक्षात् रसराजकी रसधारासे प्लावित होकर वृक्ष ही नहीं, सूखे काठतक रस बरसाने लगे। सूरदासजीने कहा है—

जब हरि मुरली-नाद प्रकास्यौ।
जंगम जड़, थावर चर कीन्हे, पाहन जलज बिकास्यौ॥
स्वर्ग-पताल दसौं दिसि पूरन, ध्वनि-आच्छादित कीन्हौ।
निसि हरि कल्प समान बढ़ाई, गोपिनि कौं सुख दीन्हौ॥
मैमंत भए जीव जल-थल के, तनु की सुधि न सम्हार।
सूर स्याम-मुख बेनु मधुर सुनि, उलटे सब व्यवहार॥

एक सखी रसोई बना रही थी, इतनेमें मोहनकी मुग्धकारिणी मुरली बजी। मुरलीध्वनिके साथ ही मुरलीधरकी मधुर छबि सखीके ध्याननेत्रोंके सामने आ गयी। इधर उस रसवर्षिणी मुरलीध्वनिने रस बरसाकर चूल्हेकी तमाम लकड़ियोंके हृदयको गीला कर दिया, उनमेंसे रस बहने लगा। आग बुझ गयी। परम भाग्यवती सच्चिदानन्दप्रेमिका गोपी प्रेमका उलाहना देती हुई-सी बोली—

मुरहर रन्धनसमये मा कुरु मुरलीरवं मधुरम्।
नीरसमेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतरताम्॥

'हे मुरारे! भला भोजन बनाते समय तो कृपाकर इस मुरलीकी मधुर तान न छेड़ा करो। देखो, तुम्हारी मुरलीध्वनिसे मेरा सूखा ईंधन रसयुक्त होकर रस बहाने लगता है, जिससे चूल्हेकी आग बुझ जाती है।' इस जादूभरी मुरलीके नादने सबको उन्मत्त कर दिया। महान् योगी भी इससे नहीं बचने पाये। बचते भी कैसे? योगियोंके अनाहत नादकी जननी तो यह मुरली ही है। वंशीध्वनिकी महिमा गाते हुए भक्त कहते हैं—

ध्यानं बलात् परमहंसकुलस्य भिन्द-
न्निन्दन् सुधामधुरिमानमधीरधर्मा।
कन्दर्पशासनधुरां मुहुरेव शंसन्
वंशीध्वनिर्जयति कंसनिषूदनस्य॥

'निर्बीज समाधिनिष्ठ परमहंसोंकी समाधिको हठात् तोड़ डालनेवाली, सुधाके माधुर्यको फीका बना देनेवाली, धैर्यवान् पुरुषोंके धैर्यको तोड़कर उनकी अधीरताको उत्तेजित करनेवाली, कामदेवपर विजयदुन्दुभी बजाकर उसे अपने शासनमें रखनेवाली, भगवान् श्रीकृष्णकी यह वंशीध्वनि विश्वमें सब ओर विजयिनी हो रही है।'

वृन्दावननिवासी चराचर जीवोंका परम सौभाग्य था जो वे इस वंशीध्वनिको सुनते थे। और उन गोपीजनोंके भाग्यकी तो ब्रह्मादि देवतागण भी ईर्ष्या करते हैं। जिनको आवाहन करनेके लिये मोहन स्वयं अपनी इस मधुर मुरलीकी मधुर तान छेड़ा करते थे। वे सुनती थीं और मुग्ध होती थीं, चेतनाका विसर्जन कर देती थीं, परंतु सुनना कभी छोड़ती ही नहीं थीं। संध्याको गोधूलिके समय जब प्राणधन श्यामसुन्दर वनसे लौटते थे, उस समय व्रज-बालाओंके झुंड-के-झुंड घरोंसे निकलकर रास्तोंमें उनकी प्रतीक्षा करते थे। एक दिन एक नवीन व्रजगोपी मुरलीध्वनिकी प्रतीक्षामें

घरके बाहर दरवाजेपर खड़ी थी, उसे देखकर वंशी और वंशीधरकी महिमाका ब्याजसे बखान करती हुई दूसरी महाभागा गोपी कहती है—

सुनती हो कहा भजि जाहु घरै बिंध जाओगी नैनके बाननमें।
यह बंसी 'निवाज' भरी बिषसों बगरावति है बिष प्राननमें॥
अबहीं सुधि भूलिहौ भोरी भटू भँवरौ जल मीठी-सी ताननमें।
कुलकानि जो आपनी राखि चहौ दै रहौ अँगुरी दोउ काननमें॥

वंशीनादसे आकृष्ट गोपीजनोंकी प्रेमविह्वल दशाका वर्णन भगवान् वेदव्यासजीने श्रीमद्भागवतमें बहुत ही सुन्दर रूपसे किया है। श्रीमद्भागवतका वेणुगीत प्रसिद्ध है। भावुक भक्तजन उसे अवश्य पढ़ें-सुनें।

भक्त रसखान कहते हैं—

कौन ठगौरी भरी हरि आजु, बजाई है बाँसुरिया रँगभीनी।
तान सुनी जिनहीं तिनहीं तब ही कुल-लाज बिदा करि दीनी॥
घूमै घरी-घरी नंदके द्वार, नवीनी कहा कहूँ बात प्रबीनी।
या ब्रजमंडलमें रसखानि सु कौन भटू जो लटू नहिं कीनी॥
बजी सुबजी रसखानि बजी, सुनिकै अब गोकुल-बाल न जीहै।
न जीहै कदाचित काननकौं, अब कान परी वह तान अजी है॥
अजी है, बचाओ, उपाय नहीं, अबलापर आनिकै सैन सजी है।
सजी है हमारो कहा बस है, जब बैरिन बाँसुरी फेरि बजी है॥
आज अली एक गोपलली भई बावरी, नेकु न अंग सँभारै।
मातु अघात न देवन पूजत, सासु सयानि सयानि पुकारै॥
यों रसखानि फिरो सगरे ब्रज आन कुआन उपाय बिचारै।
कोउ न कान्हराके करतें वह बैरन बाँसुरिया गहि डारै॥
ऐ सजनी वह नंदकुमार सु या बन धेनु चराइ रह्यो है।
मोहनी तानन गोधन गायन बेनु बजाइ रिझाइ रह्यो है॥
ताही समै कछु टोनौं करो रसखानि हिये सु समाइ रह्यो है।
कोउ न काहुकी कानि करै सिगरौ ब्रज बीर बिकाइ रह्यो है॥

मोहनकी मुरलीसे प्रभावित व्रजधामकी कुछ कल्पना भक्त कविके उपर्युक्त शब्दोंसे की जा सकती है। एक गोपी बाँसुरीसे तंग आकर अपनी सखियोंसे कहती है—

अब कान्ह भये बस बाँसुरिके, अब कौन सखी! हमकों चहिहै।
वह रात दिना सँग लागी रहै, यह सौतको सासन को सहिहै॥
जिन मोह लियौ मन मोहनकौ, रसखानि सु क्यों न हमें दहिहै।
मिलि आओ सबै कहुँ भाजि चलें, अब तो ब्रजमें बँसुरी रहिहै॥

दूसरी एक बाँसके साथ बाँसकी बनी बाँसुरीकी तुलना कर और उसे वंशका नाम बिगाड़नेवाली बतलाती हुई कहती है—

वै मगदायक अंधनिके, तुम अच्छिनहूकी सुचाल बिगार्‍यो।
वै जलथाह बतावत हैं, तुम प्रेम अथाहके बारिधि पार्‍यो॥
वै बर बास बसाय भले, तुम बास छोड़ाय उजारमें डार्‍यो।
का कहिये, हरिकी मुरली! तुम आपने बंसको नाम बिगार्‍यो॥

दूसरी कहती है—अरी मुरली! तेरे सौभाग्यका क्या कहना है—

अधर सेज नासा बिजन स्वर मिल चरन दबाय।
अरी सोहागिनि मुरलिया! लियो स्याम बिलमाय॥

तीसरी एक मुरलीके साथ ईर्ष्या करती हुई बड़े विनययुक्त शब्दोंमें मुरलीसे पूछती है—

मुरली! कौन तप तैं कियो।
रहत गिरधर मुखहि लागी, अधरको रस पियो॥
नंदनंदन. पानि परसे तोहि तन मन दियो।
सूर श्रीगोपाल बस किय, जगतमें जस लियो॥

मुरली उत्तर देती है—

तप हम बहुत भाँति कर्‍यो।
हेम बरिखा सही सिरपर घाम तनहिं जर्‍यो॥
काटि बेधी सप्त सुरसों हियो छूछो कर्‍यो।
तुमहि बेगि बुलायबेको लाल अधरन धर्‍यो॥
इतने तप मैं किये तबही लाल गिरधर बर्‍यो।
सूर श्रीगोपाल सेवत सकल कारज सर्‍यो॥

मैंने बड़े-बड़े तप किये हैं, जीवनभर सिरपर जाड़ा और वर्षा सहती रही, ग्रीष्मकी ज्वालामें मैंने तनको तपाया। काटी गयी, शरीरको सात स्वरोंसे बिंधवाया। हृदयको शून्य कर दिया। कहीं कोई गाँठ नहीं रहने दी। इतना तप करनेपर लालने मुझको बरा है।

प्राणधन श्रीगोपालके अधरामृतका पान चाहनेवाले प्रत्येक भक्तको वंशीकी इस साधनाका अनुकरण करना चाहिये। याद रहे, जबतक लौकिक सुख-दुःखमें समता और सहिष्णुता नहीं आती, जबतक प्रियतम प्रभुके लिये तन-मनकी बलि नहीं दे दी जाती, जबतक हृदयको अन्य वासनासे शून्य नहीं कर लिया जाता, तबतक प्रियतमके मधुर आलिंगनका सुख हमें नहीं मिल सकता।

मोहनकी यह मुरली आज भी बजती है, सदा बजती रहेगी। परंतु जो मुरलीकी भाँति साधनामें प्रवृत्त होगा, वही इस मधुर ध्वनिको सुन सकेगा। वृन्दावनके प्रातःस्मरणीय

भगवत्-सखाओंने और अन्तरंगा शक्ति गोपीजनोंने अपनेको इस मुरलीकी साधनामें सिद्ध करके ही मुरलीकी ध्वनिको सुन पाया था।

उस मुरलीमें क्या बजता है और उससे जगत्‌को क्या दिया जाता है? इसका उत्तर यह है कि ह्लादिनी सुधाका अनिर्वचनीय आनन्द ही इस मधुर ध्वनिके द्वारा सबको दिया जाता है। '**कलं वामदृशां मनोहरम्।**' इस कलपदामृत वेणुगीतसे '**क्लीं**' पदकी सिद्धि होती है। कल=क्+ल=क्ल। इसमें वामदृक् यानी चतुर्थ स्वर ईकार संयुक्त करनेपर 'क्लीं' बनता है। यह मनोहर है यानी मनके अधिष्ठाता देवता चन्द्रको या चन्द्रबिन्दुको हरण करता है। अतएव क्+ल्+ई+ं-के संयोगसे '**क्लीं**' बनता है। यह '**क्लीं**' कामबीज है। मुरलीध्वनि ही कामबीज है। यह काम भगवत्-काम है। अतएव साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है। व्रजधामके कामविजयी—मन्मथ-मन्मथ-मोहन तप-वैराग्ययुक्त अधिकारसम्पन्न अपने भक्त साधकोंमें इस कामबीजको वितरणकर उन्हें अपनी ओर खींच लेते हैं, उनके सर्वस्वका मोह छुड़ाकर, उनका सब कुछ भुलाकर उन्हें सहसा आकर्षित कर लेते हैं। साथ ही नरकोंकी ओर आकर्षित करनेवाले, मन और इन्द्रियोंको विक्षुब्ध कर आत्माका पतन करनेवाले, विषय-विषका पान करके उन्मत्त बनानेवाले गंदे कामके वशीभूत हुए जगत्‌के जीवोंको भी उस घृणित कामजालके फंदेसे छुड़ाकर पवित्र मधुर रसका आस्वादन करानेके लिये इस चिन्मय नादका संचार करते हैं। कामबीजकी बड़ी महिमा है। भगवान्‌का सृष्टि-संकल्प ही कामबीज है। यही नादस्वरूप है। इसीसे सृष्टि होती है और यही जगत्स्वरूप बन जाता है। शास्त्र इस '**क्लीं**' रूप कामबीजसे पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति बतलाते हुए इसका स्वरूप निर्देश करते हैं—

ककारो नायकः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
ईकारः प्रकृती राधा महाभावस्वरूपिणी॥
लश्चानन्दात्मकः प्रेमसुखं च परिकीर्तितम्।
चुम्बना श्लेषमाधुर्यं विन्दुनादं समीरितम्॥

'क' कार सच्चिदानन्दविग्रह नायक श्रीकृष्ण हैं। 'ई' कार महाभावस्वरूपा प्रकृति श्रीराधा हैं। 'ल' कार इन नायक-नायिकाके मिलनात्मक प्रेमसुखका आनन्दात्मक निर्देश है और नादविन्दु इस माधुर्यामृतसिन्धुको परिस्फुट करनेवाले हैं।

यह श्रीराधा-कृष्णका मिलन दिव्य है। यह आत्मरमण है। यह अपने ही स्वरूपमें सच्चिदानन्द भगवान्‌की लीला है। इस लीलाका विकास '**क्लीं**' रूप मुरलीनिनादसे ही होता है। यह मुरलीनाद स्वयं सच्चिदानन्दमय है। ब्रह्मरूप है। यही नादब्रह्म है।

* * *

श्रीकृष्णका गो-प्रेम

(श्रीजानकीप्रसादजी खरे 'गिरिजेश')

मैया मोहि गैया बहुत पियारी।
जब जब चलत फिरत मग सोचत बातें या हितकारी॥ मैया०॥
कलित कछारन कालिन्दी-तट नितप्रति घेर चराऊँ।
बाँध कलेऊ ग्वाल-बाल सँग हँसि-हँसि खाउँ-खिलाऊँ॥
हरी-हरी कोंपल-तृन कोमल इन्हें चरावै भावै।
सदा अहितकारी पशुअनसे रक्षा मोहि सुहावै॥
काली विषसे दूषित भौ जल गऊ अहित मैं जानी।
तत्क्षण नाथ नाग खों काढो तब कहुँ मोहि सुहानी॥
गौ तृणके 'गिरिजेश' उपज हित विस्तृत भूतल पायो।
जाहीं तें मैं गिरि गोवर्धन बृजजनसे पुजवायो॥

* * *

श्रीरामनामामृतम्

(श्रीरामचन्द्रजी पाण्डेय 'रसिक')

सनातन धर्म-साधनाकी धारामें 'राम' शब्दका महत्त्व शाश्वत कालसे निरूपित है। आजतकके धर्मसाहित्येतिहासके वैज्ञानिक अनुसंधानोंसे भी यह पता चलता है कि प्राचीन सत्-शास्त्रोंसे लेकर समकालीन साहित्यमें भी रामतत्त्वकी चर्चा अत्यन्त व्यापक-रूपसे विवेचित है। कुछ ग्रन्थोंमें रामतत्त्वके स्वरूपमें समत्व है और कुछमें विषमत्व। सुखद आश्चर्यकी बात है कि रामतत्त्वके बहुविध स्वरूपका वर्णन प्रात:स्मरणीय संत श्रीतुलसीदासजीने अत्यन्त कुशलताके साथ अपने ग्रन्थरत्न 'मानस'में ग्रथित कर सार्वभौमिक, सार्वदेशिक तथा सार्वकालिककी त्रिवेणीसे सनातन धर्म-साधनाकी धाराको सहज स्वाभाविक गौरव प्रदान किया है। इस असार संसारमें अध्यात्म-तत्त्व-चिन्तन-धाराके एक वर्त्मके सारको, मानव-जीवनके लक्ष्यको अतिशय प्यारसे निरूपित करते हुए कहा है कि वे ही मनुज इस जगत्में धन्य हैं, कृती हैं, यशस्वी हैं, अमर हैं, मुक्त (मुक्ति-प्राप्त) हैं, जो निरन्तर भगवान् श्रीराम-नामके अमृतका पान कर रहे हैं—

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा।
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्॥

(रा० च० मा० ४, श्लोक २)

वे सुकृती (पुण्यात्मा पुरुष) धन्य हैं, जो वेदरूपी समुद्र [-के मथने]-से उत्पन्न हुए कलियुगके मलको सर्वथा नष्ट कर देनेवाले, अविनाशी, भगवान् श्रीशम्भुके सुन्दर एवं श्रेष्ठ मुखरूपी चन्द्रमामें सदा शोभायमान, जन्म-मरणरूपी रोगके औषध, सबको सुख देनेवाले और श्रीजानकीजीके जीवनस्वरूप श्रीरामनामरूपी अमृतका निरन्तर पान करते रहते हैं।

स्वयं समस्त आगम-निगम इसके रससे आप्यायित हुए हैं, अर्थात् व्यापकरूपसे इस नामामृतका बखान किये हैं। अनेक सिद्धों, मुनियों, योगियों एवं भक्तोंने अत्यन्त अनुरक्त होकर इस श्रीरामनामामृतका पान किया है, जिसके फलस्वरूप वे आज भी अमर हैं। इस घोर कलिकालमें जहाँ आज सर्वत्र हिंसा, पाप, भ्रष्टाचार, अत्याचार, अन्याय एवं आतंकका बोलबाला है, वहाँ इससे बचनेके लिये या फिर इन बीमारियोंको दूर करनेके लिये निश्चय ही भगवान् श्रीरामका नाम सर्वोत्कृष्टतम अमोघ उपाय है। इतना ही नहीं यह तो आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक—समस्त तापत्रयों, भवबन्धनों एवं रोगोंकी महान् औषधि है। ध्यातव्य है कि किसी औषधिके सेवन करनेसे ही कोई रोग समाप्त होता है, देखनेमात्रसे नहीं। अत: सर्वविध अभ्युन्नतिके लिये अनिवार्यरूपसे श्रीरामनामामृतका आश्रयण करना चाहिये।

भगवान् रामने तो कुछ ही व्यक्तियोंका उद्धार किया है, परंतु प्रभुके इस नामने कितनोंका ही उद्धार किया है और युग-युगतक करता रहेगा; इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। हाँ, जिन्हें लेशमात्र भी संशय हो वे अवश्य ही इसका परीक्षण करके देख सकते हैं। अस्तु, अधिक क्या कहा जाय, गोस्वामीजीने तो कहा ही है कि वेद-पुराण और संतोंका मत यही है कि समस्त पुण्योंका फल श्रीरामजी (या रामनाम)-में प्रेम होना है—

'बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥'

(रा० च० मा० १। २७। २)

सार-रूपमें कहा जा सकता है कि जब स्वयं भगवान् अपने अमृतस्वरूप नामके महत्त्वको नहीं कह सके, तो हम सभी अधम जीव कहाँसे उनकी महिमाको पूर्णत: गा सकते हैं—वर्णित कर सकते हैं—

'कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥'

(रा० च० मा० १। २६। ८)

* * *

साधकोंके प्रति—

भक्तिकी अलौकिक विलक्षणता

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

जिस साधनमें अपना उद्योग मुख्य होता है, वह लौकिक होता है और जिस साधनमें भगवान्‌का आश्रय मुख्य होता है, वह अलौकिक होता है। कर्मयोग और ज्ञानयोग—ये दोनों लौकिक साधन हैं; क्योंकि इनमें अपना उद्योग मुख्य है, इसलिये भगवान् कहते हैं—**'उद्धरेदात्मनात्मानम्'** (गीता ६। ५) 'अपने द्वारा अपना उद्धार करे'। परंतु भक्तियोग अलौकिक साधन है; क्योंकि इसमें भगवान्‌का सम्बन्ध मुख्य है, इसलिये भगवान् कहते हैं—**'तेषामहं समुद्धर्ता'** (गीता १२। ७) 'उनका उद्धार मैं करता हूँ'। तात्पर्य है कि भगवान्‌का सम्बन्ध होनेसे सब अलौकिक हो जाता है, अन्यथा सब लौकिक ही है।

लौकिक साधनमें जगत् और जीवकी मुख्यता होती है; क्योंकि 'यह संसार है और मैं हूँ'—इस प्रकार जगत् और जीव दोनों हमारे प्रत्यक्ष होनेसे लौकिक हैं। परंतु अलौकिक साधनमें भगवान्‌की मुख्यता होती है; क्योंकि भगवान् हमारे प्रत्यक्ष न होनेसे अलौकिक हैं। यद्यपि लौकिक और अलौकिक—दोनों ही साधनोंमें विवेक-विचार और श्रद्धा-विश्वासकी आवश्यकता है, तथापि लौकिक साधनमें विवेक-विचारकी मुख्यता है और अलौकिक साधनमें श्रद्धा-विश्वासकी मुख्यता है। तात्पर्य है कि जगत्‌के लिये और अपने लिये 'विचार' की आवश्यकता है एवं भगवान्‌के लिये 'विश्वास' की आवश्यकता है।

विचारकी आवश्यकता उस विषयमें होती है, जिस विषयमें हम कुछ जानते हैं, कुछ नहीं जानते अर्थात् अधूरा जानते हैं। जगत् और स्वयंके विषयमें हम यह तो जानते हैं कि 'संसार है और मैं हूँ', पर 'संसार क्या है? मैं क्या हूँ? इनका स्वरूप क्या है?'—इस प्रकार हम इनको तत्त्वसे (यथार्थरूपसे) नहीं जानते। इसलिये जगत् और जीव—दोनों विचारके विषय हैं।

विश्वासकी आवश्यकता उस विषयमें होती है, जिस विषयमें हम कुछ भी नहीं जानते, जो हमारे लिये सर्वथा अज्ञात है। भगवान्‌के विषयमें हम कुछ भी नहीं जानते, इसलिये भगवान् विश्वासके विषय हैं। तात्पर्य है कि 'भगवान् हैं'—इस प्रकार उनपर विश्वास ही हो सकता है, 'वे कैसे हैं'—इस प्रकार उनपर विचार नहीं हो सकता, तर्क नहीं चल सकता। भगवान्‌को मानने अथवा न माननेमें मनुष्य स्वतन्त्र है।

जिसको हम देखते हैं अथवा जानते हैं, उसपर विश्वास नहीं होता; क्योंकि वह तो हमारे सामने ही है। विश्वास उसीपर होता है, जिसको देखा अथवा जाना नहीं है, प्रत्युत सुना और माना है। जैसे माता-पिताको हमने देखा अथवा जाना नहीं है, प्रत्युत सुना और माना है। तात्पर्य है कि माता-पिताको हम केवल विश्वासके आधारपर ही अपना मानते हैं, इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। ऐसे ही भगवान्‌को भी हम शास्त्रोंसे अथवा संतोंसे सुनकर मानते हैं। शास्त्र और संत भगवान्‌के विषयमें कहते हैं कि भगवान् हमारे हैं, हमारेमें हैं, अभी हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वसुहृद् हैं, सर्वसमर्थ हैं और अद्वितीय हैं। इसपर विश्वास करना हमारा काम है और विश्वास करने अथवा न करनेमें हम स्वतन्त्र हैं।

भगवान्‌को प्राप्त तो कर सकते हैं, पर उनका वर्णन, चिन्तन, ध्यान नहीं कर सकते। प्राप्त इसलिये कर सकते हैं कि हम उनके ही अंश हैं। भगवान्‌की पूरी महिमाको बतानेवाला कोई शब्द, विशेषण, युक्ति या दृष्टान्त संसारकी किसी भाषामें है ही नहीं। भगवान् तो सर्वथा ही अलौकिक हैं। इसलिये शास्त्रोंसे अथवा संतोंसे सुनकर हम भगवान्‌को मान तो सकते हैं, पर जान नहीं सकते। भगवान्‌को केवल विश्वाससे और उनकी कृपासे ही जान सकते हैं*। इसके

---

* सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥
(मानस, अयोध्या० १२७। २)

सिवाय और कोई उपाय है ही नहीं।

वास्तवमें किसी-न-किसीपर विश्वास किये बिना मनुष्य रह सकता ही नहीं। अगर वह भगवान्‌पर विश्वास नहीं करेगा तो फिर अपने-आपपर अथवा संसारपर विश्वास करेगा। अपने-आपपर विश्वास करनेसे अगर वह शरीरको अपना स्वरूप मान लेगा तो उससे सम्पूर्ण दोषोंकी उत्पत्ति होगी—**'देहाभिमानिनि सर्वे दोषाः प्रादुर्भवन्ति'***। शरीर-संसारपर विश्वास करना महान् घातक है। शरीर-संसारपर विश्वास करके ही जीव जन्म-मरणरूप बन्धनमें पड़ा है, अन्य कोई कारण नहीं है। इसी तरह भगवान्‌पर विवेक-विचार करना भी महान् घातक है; क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्य भगवान्‌को बुद्धिका विषय बना लेगा और कोरी बातें सीख जायगा, हाथ कुछ लगेगा नहीं! सीखा हुआ ज्ञान अभिमान पैदा करता है और भगवान्‌से विमुख करता है, जो मनुष्यके पतनका हेतु है।

संसारपर विश्वास करनेसे सम्पूर्ण दोषोंकी उत्पत्ति होती है। जैसे, वस्तुपर विश्वास करनेसे लोभ उत्पन्न होता है। व्यक्ति (शरीर)-पर विश्वास करनेसे मोह उत्पन्न होता है। परिस्थितिपर विश्वास करनेसे अभिमान उत्पन्न होता है कि 'मैं बड़ा धनी हूँ, ऊँचे पदवाला हूँ' आदि, अथवा दीनता उत्पन्न होती है कि 'मेरे पास कुछ नहीं है, मैं बड़ा अभागा हूँ' आदि। अवस्थापर विश्वास करनेसे परिच्छिन्नता उत्पन्न होती है कि 'मैं बालक हूँ, मैं जवान हूँ' आदि। यद्यपि कोई भी मनुष्य दोषी नहीं बनना चाहता, तथापि नाशवान्‌पर विश्वास करके वह न चाहते हुए भी दोषी बन ही जाता है। कारण कि नाशवान्‌पर विश्वास ही एक ऐसा दोष है, जिससे अनन्त दोष पैदा होते हैं।

मनुष्य देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, क्रिया, घटना, परिस्थिति और अवस्थाके परिवर्तनका भी अनुभव करता है और अभावका भी। फिर भी वह उसपर विश्वास करता है तो यह अन्धविश्वास है। वास्तवमें विश्वास अन्धा ही होता है। विश्वासकी आँख नहीं होती और जहाँ आँख होती है, वहाँ विश्वास नहीं होता। कारण कि जो प्रत्यक्ष दीखता है, उसपर विश्वास क्या करें? परंतु जैसा दीखता है, वैसा न मानकर और तरहसे मानना 'अन्धविश्वास' कहलाता है; जैसे—संसार प्रत्यक्ष बदलते हुए और नष्ट होते हुए दीखता है, फिर भी उसपर विश्वास करना 'अन्धविश्वास' है। विवेक-विरुद्ध विश्वास ही अन्धविश्वास होता है। इस अन्धविश्वासका परिणाम यह होता है कि वह अधर्मको धर्म और उलटेको सुलटा मान लेता है†! वह पराधीनताको स्वाधीनता, तुच्छताको श्रेष्ठता, पतनको उत्थान मान लेता है। मनुष्य भगवान्‌का अंश होनेके नाते स्वयं बड़ा है, पर संसारपर विश्वास करके वह उसके अधीन हो जाता है, छोटा हो जाता है और इसको अपना बड़प्पन मान लेता है। संसारमें जितना दुःख हो रहा है, संताप हो रहा है, अनर्थ हो रहा है, जन्म-मरण हो रहा है, वह सब संसारपर विश्वास करनेसे ही हो रहा है।

मनुष्य सोचता है कि हमारे पास धन हो जायगा तो हम बड़े आदमी हो जायँगे। जिसके पास थोड़ा धन हो, उसको छोटी पार्टी कहते हैं और जिसके पास ज्यादा धन हो, उसको बड़ी पार्टी कहते हैं तो बड़ा धन ही हुआ, पार्टीकी तो फ़जीती हुई! तात्पर्य है कि अगर धनके कारण मनुष्य अपनेको बड़ा मानता है तो धन बड़ा हुआ, मनुष्य छोटा (निकृष्ट) हुआ। पदके कारण अपनेको बड़ा मानता है तो

---

* अगर मनुष्य अपने-आपको शरीर मानकर उसपर विश्वास करेगा तो उसका वही परिणाम होगा, जो संसारपर विश्वास करनेका होता है; क्योंकि शरीर और संसार एक हैं। अगर वह अपने-आपको सत्तामात्र मानकर विश्वास करेगा तो उसका वही परिणाम होगा, जो परमात्मापर विश्वास करनेका होता है; क्योंकि अपनी सत्ता और परमात्माकी सत्ता एक है।

† अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥
(गीता १८। ३२)

पद बड़ा हुआ, वह छोटा हुआ। चेलोंके कारण अपनेको बड़ा मानता है तो चेले बड़े हुए, वह छोटा हुआ। लोग हमें बहुत मानते हैं, इसलिये हम बड़े हो गये तो वास्तवमें लोग बड़े हुए, खुद तो छोटा ही हुआ। हम ब्राह्मण हैं, इसलिये हम बड़े हैं तो वास्तवमें जाति बड़ी हुई, खुद तो छोटा ही हुआ। हम साधु हैं, इसलिये हम बड़े हैं तो वास्तवमें आश्रम बड़ा हुआ, खुद तो छोटा ही हुआ। हम मिनिस्टर हैं, इसलिये हम बड़े हैं तो वास्तवमें मिनिस्टरी बड़ी हुई, खुद तो छोटा ही हुआ। इस प्रकार बल, विद्या, मान, आदर, प्रशंसा आदि जिस चीजसे मनुष्य अपनेको बड़ा मानता है, वह चीज तो बड़ी हो जाती है और मनुष्य छोटा हो जाता है। परंतु छोटा होनेपर भी वह अपनेको बड़ा मान लेता है! नाशवान्‌के सम्बन्धसे उसको यह होश ही नहीं रहता कि दूसरी वस्तुके कारण मैं बड़ा कैसे हुआ? स्वयं अविनाशी और अपरिवर्तनशील होते हुए भी वह विनाशी और परिवर्तनशीलसे अपनी उन्नति, बड़प्पन मानता है—यह कितने आश्चर्यकी बात है! सांसारिक वस्तुओंसे अपनेको बड़ा मानना वास्तवमें हमारी फजीती है, पतन है, परतन्त्रता है, निन्दा है, तुच्छता है।

मनुष्य जिस वस्तुकी इच्छा करता है, उसीके पराधीन हो जाता है। इच्छा करनेवाला तो छोटा हो जाता है, पर इच्छित वस्तु बड़ी हो जाती है। परंतु वह भगवान्‌की इच्छा करता है तो वह बड़ा हो जाता है अर्थात् उसका वास्तविक बड़प्पन प्रकट हो जाता है। कारण कि भगवान् बड़े हैं, इसलिये वे दूसरेको भी बड़ा ही बनाते हैं। परंतु संसार तुच्छ है, इसलिये वह दूसरेको भी तुच्छ ही बनाता है।

प्रकृति और उसका कार्य शरीर तथा संसार 'पर' अर्थात् दूसरा है। जो 'पर' को लेकर अपनेको बड़ा मानता है, वह वास्तवमें पराधीन ही हो जाता है। परंतु भगवान् 'स्वकीय' अर्थात् अपने हैं। जो अपना होता है, उसकी अधीनता पराधीनता नहीं होती। जैसे माँ अपनी होती है तो उसके अधीन होना गुण है, अवगुण नहीं है। लोग भी उसकी प्रशंसा करते हैं कि यह मातृभक्त अथवा पितृभक्त है। उसकी कोई निन्दा नहीं करता कि यह तो माँका गुलाम है! कारण कि शरीरकी दृष्टिसे माता-पिता हमसे बड़े हैं। भगवान् स्वरूपकी दृष्टिसे अपने हैं, इसलिये भगवान्‌की अधीनता पराधीनता नहीं है, प्रत्युत स्वाधीनताका मूल है, स्वाधीन होनेका खास उपाय है। परंतु जो सुख लेनेकी इच्छासे संसार या भगवान्‌को अपना मानता है, वह पराधीन हो जाता है। सुख चाहनेवाला कभी स्वाधीन नहीं हो सकता। कारण कि 'पर' (शरीर)-के अधीन हुए बिना सुखका भोग हो सकता ही नहीं।

'पर' को अपना मानना पराधीनताका मूल है। जबतक हम शरीरको अपना मानते रहेंगे, तबतक पराधीनता कभी छूटेगी नहीं, छूट सकती ही नहीं। शरीरके छूटनेपर भी पराधीनता नहीं छूटेगी। शरीर ('पर') तो बदलता रहेगा, पर पराधीनता निरन्तर रहेगी। शरीर टिकेगा नहीं और पराधीनता मिटेगी नहीं। अगर कोई कहे कि मुक्ति (स्वाधीनता) पानेके लिये तो शरीरकी सहायता लेनी आवश्यक है तो यह मान्यता भी ठीक नहीं है। स्वाधीनताका साधन पराधीन कैसे हो सकता है? पराधीनताके द्वारा स्वाधीनता कैसे प्राप्त हो सकती है? अतः मुक्तिको, तत्त्वज्ञानको, प्रेमको प्राप्त करनेमें शरीर सहायक नहीं है, प्रत्युत शरीरका त्याग (सम्बन्ध-विच्छेद) सहायक है। त्यागका अर्थ है—शरीरमें अहंता-ममताका त्याग। बन्धन अहंता-ममतासे होता है, शरीरसे नहीं। शरीरकी सत्ता और महत्ता देकर उसको अपना मानते हुए कभी मुक्ति नहीं हो सकती। इसलिये शरीरको आवश्यकतानुसार अन्न-जल-वस्त्र तो देना है, पर शरीरसे सम्बन्ध जोड़कर अन्न-जल-वस्त्र लेनेवाला नहीं बनना है। देनेवाला मालिक होता है और लेनेवाला गुलाम होता है। शरीरकी सेवा करनेवाला परतन्त्र नहीं होता, प्रत्युत उससे कुछ चाहनेवाला परतन्त्र होता है। सेवा करनेवाला तो ऊँचा उठ जाता है, पर लेनेकी इच्छावालेका पतन ही होता है। [क्रमशः]

अनन्तकी खोज

(श्रीवीरनारायणजी शर्मा, एडवोकेट)

[वर्ष ७१, संख्या ७, पृष्ठ ६४३ से आगे]

(९)

परमाराध्यको प्राप्त करनेके लिये सतत उनकी आराधना करता रहा; परंतु क्या मजाल कि उनकी पहचानकी कोई झलक भी मिले। हारकर बैठ गया और आराम करने लगा। उसी समय एक सरल उपाय मनमें आया और मैंने उनकी सुन्दर-सी एक मनोवाञ्छित प्रतिमा बनाकर उसे एक कक्षमें स्थापित कर लिया तथा कपाट बंद कर अपने इष्टदेवके सामने बैठकर ध्यानमग्न हो गया और लगा रट लगाने उनके सजीव-साकार-दर्शनकी। थोड़ी ही देरमें शास्त्रका यह उद्घोष मेरे कानोंमें सुनायी देने लगा—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

जब मेरी ध्यान-तन्द्रा भंग हुई और मैंने कक्षके कपाट खोल बाहर दृष्टि डाली तो सर्वत्र अपने परमाराध्यका फैला हुआ आलोक मुझे दिखायी देने लगा और उससे स्पन्दित प्रत्येक वस्तुमें उनके दर्शन होने लगे।

(१०)

न-न-न-ना। अभी परमाराध्यके पूर्ण दर्शन तो हुए ही नहीं। भूल गया मैं गीताके उस पावन संदेशको; जहाँ श्रीभगवान्‌ने स्वयं कहा कि 'प्रत्येक जीव मेरा अंश है। तू स्वयं भी उसी परम प्रकाशका एक मूल्यवान् गण्य अंश है।' यही नहीं—'**तत् त्वम् असि**' और इसीको ललकारकर कहा स्वामी विवेकानन्दने—'स्वयंको पहचानो।' अरे वाह! संतशिरोमणि कबीरने तो उनका साक्षात्कार ही करा दिया इन पंक्तियोंमें—

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढै बन मांहिं।
ऐसैं घटि घटि रांम है, दुनियां देखै नांहिं॥

हे प्रभु, मुझे क्षमा करना। मैं अपने घटमें विराजे आपके परम-तत्त्वको, जिससे मेरा सारा जीवन संचालित है, उसे पहचान नहीं पाया। उस परम प्रिय, परम श्रेष्ठ आलोकमय प्राणतत्त्वको बारम्बार नमन।

(११)

हमारे धर्मग्रन्थ एक स्वरमें उद्घोष कर रहे हैं कि हमारे प्रभु प्रतिदिन हमारे घरमें आते हैं। वे हमारे सुख-दुःखमें सदा हमारे साथ रहते हैं। बालकके जन्मकी खुशीके अवसरपर वे हमारे साथ उसके जन्मोत्सवमें सम्मिलित रहते हैं तथा उस नन्हे शिशुके जन्मोत्सवपर प्रत्येक पदार्थ और उल्लासमें उनका ही वास रहता है तथा मृत्युरूपी दुःखके घनघोर अन्धकारके क्षणोंमें धैर्य बँधाते हुए वे ही तो हमारी अन्तरात्मामें विराजमान हैं, अन्यथा हम उस दुःखको सहन न कर पाते। अपनी आत्मामें विराजमान परमात्माके परम तत्त्वको कैसे भूल बैठा। रे मूढ मन! यह कैसी मूढता है तेरी।

(१२)

तन, मन, धन और जीवन सभी कुछ तो उन्हीं परम पिताकी कृपासे प्राप्त हुए हैं। इस सर्वस्वको उनपर न्योछावर करनेमें संकोचकी क्या बात है? ये न तुम्हारे कभी थे, न कभी होंगे, न तुम इन्हें साथ लाये थे और न साथ ले जाओगे। फिर इन्हें प्रभुको अर्पण करनेमें सोच-विचारकी आवश्यकता नहीं। सुनते नहीं कबीरकी तात्त्विक वाणी—

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझकौं सौंपतां, क्या लागै है मेरा॥

अपनी समस्त प्रिय वस्तुओंका नैवेद्य बना लो और इस मन्त्रके साथ एक अंजलीमें भरकर अपने प्रभुको अर्पण कर दो—'**त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये**'। प्रभु तुम्हारी इस भेंटको अवश्य स्वीकार करेंगे और फिर तुम संत कबीरकी तरह जीवनपर्यन्त निश्चिन्त हो जाओगे; क्योंकि तब तुम नहीं वरन् परम प्रभु स्वयं तुम्हारी चिन्ता करेंगे—

माला हिले न कर हिले, मुखसे कहूँ न राम।
मेरा साँई मुझको भजे, मैं करता आराम॥

(१३)

तुम्हें जहाँ-कहीं भी सत्य, सदाचार, परोपकार, धर्म, धर्माचरण, सरलता, सौजन्य, दान-पुण्य, करुणा, दया, प्रेम, सद्भाव, होम, धूप, दीप, नैवेद्य, भजन-कीर्तन, वेदपाठ, देव-पूजा, तुलसी-पूजा, गौ-सेवा, नारीकी रक्षा और सम्मान दिखायी दे तो समझ लो वहीं कहीं अदृश्य-रूपमें प्रभुका वास्तविक वास है तथा सत्य, सदाचार, परोपकार, धर्माचरण, करुणा, दया तथा प्रेमादि उनकी ही असीम कृपाके मनोहारी झरने हैं, जो भक्तजनोंकी प्रभु-दर्शनकी तृषाको तुष्टि प्रदान कर रहे हैं।

(१४)

जो निरन्तर निर्निमेष श्रीहरिके ध्यानमें लीन रहते हैं, जो परम योगी और विरागी हैं, जिनका शाश्वत स्वभाव शिव है, जो त्रिशूल तथा त्रिनेत्रधारी प्रलयंकर होते हुए भी क्षणभरमें प्रसन्न हो जाते हैं, जिनके वामाङ्गमें भूधरसुता जगदम्बाके रूपमें सुशोभित हैं, जिनकी जटाओंमेंसे भागीरथी प्रवाहित हो रही हैं, जिनके भालपर बालेन्दु देदीप्यमान हैं, जो कण्ठमें गरल धारण किये हुए हैं, जिनके वक्ष:स्थलपर शेषनाग विहार कर रहे हैं, विभूति जिनका आभूषण है और नन्दी जिनका वाहन है, वे कोई और नहीं वरन् आदिशक्तियुक्त, देवताओंके परम आराध्य देवाधिदेव महादेव हैं। रे मूढ मन! अपनी मूढता त्याग उनके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम कर। वहीं अपना स्थायी स्थान बना ले और रट लगाये रहो—'**ॐ नमः शिवाय**' की; फिर तो आश्वस्त रहो कि तुम्हारा कल्याण निश्चित है।

(१५)

प्रकाशको ढूँढ़ने निकली प्रकाशकी एक किरण। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब उसे महाप्रकाश मिला तो वह अपने अस्तित्वको भूल महाप्रकाशमें विलीन हो गयी। अपने अस्तित्वको अलग माननेवाली अभिमानिनी जलकी बूँद सागरमें गिरते ही अपने अस्तित्वको खो बैठी और महासागर कहलाने लगी। ज्ञानके अथाह सागरमें अवगाहन-हेतु उतरा एक जिज्ञासु छात्र उसकी गहराई नापते-नापते उसमें विलीन हो विद्यासागर बन बैठा। अरे, सुनी नहीं ध्यानसे तुमने स्वामी रामकृष्ण परमहंसकी यह लघु कथा—'एक दिन नमककी एक सलोनी गुड़िया समुद्रकी गहराई नापने उसमें उतर गयी। नापते-नापते वह समुद्रमें विलीन होकर अदृश्य हो गयी।' इसी प्रकार परमात्माको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आत्माका विलय परमात्मामें हो जाता है और वह एकाकार हो जाता है। रे मन, ढूँढ़ो इसी प्रकार अपने परम पिताको और ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसीमें एकाकार हो जाओ।

(१६)

अरे, पञ्चवटीमें बनी पर्णकुटीके द्वारपर इस घोर रात्रिमें यह कौन धनुर्धर अडिग प्रहरीके रूपमें खड़ा पहरा दे रहा है? इसका कौन-सा स्वार्थ निहित है इसमें और इसे इन सबसे क्या प्रयोजन है? अरे, अरे! यह तो श्रीरामकी आत्मा एवं उनके प्राणाधार शेषावतार लक्ष्मण हैं, जो वनवासमें श्रीसीतारामके साथ वनमें उनके अनन्य सेवकके रूपमें आये हैं। त्रिलोकीनाथ और तीनों लोकोंकी स्वामिनी इस कुटियामें शयन कर रहे हैं और उनके शयनमें कोई बाधा न हो—इस कारण यह अपराजेय योद्धा अपने परम पवित्र कर्तव्य-पालनमें रत है। सुनते नहीं श्रीमैथिलीशरण गुप्तकी यह उद्घोषणा—

मर्त्यलोक-मालिन्य मेटने
स्वामी संग जो आयी है।
तीन लोककी लक्ष्मीने
यह कुटी आज अपनायी है॥
वीरवंशकी लाज वही है,
फिर क्यों वीर न हो प्रहरी।
विजन देश है, निशा शेष है,
निशाचरी माया ठहरी॥

(१७)

जिन्होंने इच्छाओं, आकांक्षाओं, आशाओं, अभिलाषाओं, चिन्ताओं और तृष्णाओंको सदा—सर्वदाके लिये तिलाञ्जलि दे दी है, वे ही वास्तवमें राजाओंके राजा, बादशाहोंके बादशाह और सम्राटोंके सम्राट् हैं। ईश्वर-प्राप्तिके मार्गमें उक्त वस्तुएँ ही बाधक हैं, जो साधकको सही मार्गसे भ्रष्ट कर उसे पतनके गर्तमें धकेल देती हैं। सुनते नहीं संत कबीरदासकी चेतावनी—

चाह गई चिंता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिन को कछू न चाहिये, सो जग साहनसाह॥

(१८)

रे मन! किसीको कुछ दान देकर अथवा भोजन कराकर भूलकर भी यह मत सोच बैठना कि तुमने उसे कुछ देकर या खिलाकर उसपर बड़ा उपकार किया है। वास्तविकता तो यह है कि यह उसकी बड़ी कृपा है कि उसने तुम्हारे दान या भोजनको ग्रहण कर लिया। तुम तो निमित्त मात्र थे। देनेवाला तो कोई और (ईश्वर) है। अस्तु, दान देते समय दानका हाथ ऊपर उठाते ही अपनी दृष्टिको नीची करते जाओ। सुना नहीं तुमने संत तुलसीदासका कविवर रहीमसे किया गया प्रश्न और रहीमद्वारा दिया गया उस प्रश्नका उत्तर—

***प्रश्न*—कहाँसे सीखे रहीम जू, ऐसी देनी देन।**
ज्यों ज्यों कर ऊँचो उठै, त्यों त्यों नीचे नैन॥

—संत तुलसीदास

***उत्तर*—देनहार कोई और है, देत रहत दिन रैन।**
लोग भरम मोपै करें, ताते नीचे नैन॥

—रहीम

जगत्पिता एवं जगदम्बाके स्वरूपको जीव-जन्तु, कीट-पतंग, वनस्पति एवं सभी चराचर भलीभाँति पहचानते हैं। रे मूढ मन, फिर तू उन्हें पहचाननेमें भूल क्यों करता है? जानते नहीं चम्पाके पुष्पसे प्रश्न करनेपर उसने क्या ही प्रासंगिक उत्तर दिया था—

***प्रश्न*—चम्पा तो में तीन गुन रूप रंग अरु बास।**
अवगुन तो में कौन हौ, भ्रमर न आवे पास॥
***उत्तर*—चम्प वरन हैं राधिका भ्रमर श्याम को दास।**
जननी अपनी जानि कै भ्रमर न आवै पास॥

(२०)

हे गणनायक! क्षमा कीजिये। मुझसे बड़ी त्रुटि हुई है। मुझे तो सर्वप्रथम आपको ही स्मरण एवं नमन कर कार्य प्रारम्भ करना चाहिये था। आप तो तीनों लोकोंमें सर्वप्रथम सभी देवताओंद्वारा पूज्य और आराध्य हैं। यही नहीं, पुत्र होकर भी अपने पिताद्वारा भी आप प्रथम आराध्य हैं। आपके स्मरणके बिना किया गया कार्य सदैव अपूर्ण है। हे अष्टसिद्धि और नवनिधिके दाता विघ्नविनाशक गिरिजानन्दन! आपको बारम्बार नमन। स्वीकार कीजिये मेरी प्रार्थना और सफल बनाइये मेरे समस्त शुभ कार्य।

(२१)

जिसे परमप्रभुपर विश्वास है उसके पास सब कुछ है, जिसे प्रभुपर विश्वास नहीं है उसके पास कुछ भी नहीं है। सर्वसम्पन्न होते हुए भी वह परम निर्धन है। प्रभुके नाममात्रपर भरोसा करनेसे आश्चर्यजनक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं; क्योंकि उनपर विश्वास करना जीवन है और अविश्वास करना मृत्यु। सत्य है—'**विश्वासः फलदायकः**'।

(२२)

अरे, अरे ध्यानपूर्वक सुनो। बड़े मधुर और सुन्दर शब्दोंमें कह रहे हैं गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि
सो छाड़िये कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी॥

(२३)

ईश्वरसे सदा प्रार्थना करनी चाहिये—'हे प्रभु, आप अपनी दयासे सदा मेरी रक्षा कीजिये। मुझे सदा असत्यसे सत्य, अन्धकारसे प्रकाश और मृत्युसे अमरताकी ओर जानेकी प्रेरणा दीजिये। '**असतो मा सद्‌गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय।**' हे प्रभु, आपकी कृपा, दयादृष्टि और दिशाबोधके बिना मेरा कल्याण सम्भव नहीं।

(२४)

अरे, तुमने सुना नहीं? श्यामविहारी, श्यामसुन्दर, घनश्याम सुन्दर सलोने प्यारे कृष्ण कन्हैयाके ही नाम हैं। उनके नाममें और विशेषकर उनके श्याम-वर्णमें अद्भुत गुण हैं। श्यामके श्याम-रंगमें डूबनेमें ही अपार आनन्द है। ज्यों-ज्यों श्याम-रंगमें डूबोगे, त्यों-त्यों तुम्हारा जीवन और शरीर निर्मल तथा उज्ज्वल होगा। श्यामके रंगमें डूबनेसे मीरा श्याममय हो गयी तथा नेत्रहीन सूरदासने श्यामका अलौकिक दर्शन पाकर स्वयंको धन्य कर लिया और इसी कारण कविवर बिहारीने श्याम-रंगकी महिमा यों कही—

यां अनुरागी चित्त की गति समुझे नहिं कोइ।
ज्यौं-ज्यौं बूड़ै स्याम-रँग, त्यौं-त्यौं उज्ज्वलु होइ॥

* * *

कर्मका तत्त्व

(श्रीकेशोरामजी अग्रवाल)

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥
(गीता ४। १८)

श्रीमद्भगवद्गीताके इस श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको मानवका प्रतिनिधि बनाकर कर्मका तत्त्व समझाया है। कर्मका तत्त्व समझाना इसलिये आवश्यक है कि कर्मका तत्त्व समझकर जो मनुष्य कर्म करता है उसके कर्म उसको बाँधनेवाले नहीं होते। प्रत्येक मनुष्यको जबतक शरीर रहता है कर्म करने आवश्यक हैं—

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
(गीता ३। ५)

कोई भी मनुष्य किसी भी परिस्थितिमें क्षणमात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। गीता (१८। ११)-में भगवान्ने इसी बातको दूसरे ढंगसे कहा है कि—**'न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः'**—कोई भी देहधारी कर्मका सर्वथा त्याग नहीं कर सकता। जबतक कर्मोंका तत्त्व जानकर कर्म न किये जायँ उन कर्मोंके संस्कार कर्तापर पड़ते हैं, वे उसे जन्म-मरणके चक्करमें डालते रहते हैं।

भगवान् कहते हैं कि कर्मका तत्त्व गहन है। बड़े-बड़े विद्वान् कर्म-अकर्मके विषयमें मोहित हो जाते हैं। कर्मको अकर्म तथा अकर्मको कर्म समझ लेते हैं। एक धारणा है कि मनुष्य शरीरद्वारा ही कर्म करता है। भगवान्ने गीतामें कहा है कि मनुष्य शरीर, वाणी और मन—इन तीनोंसे कर्म करता है यानी केवल शरीरसे ही कर्म नहीं होते। कर्म मन और वाणीद्वारा भी होते हैं। शरीरसे कोई कर्म न करे तो भी मनसे कर्म होते रहते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णने गीता (४। १७)-में 'कर्म', 'अकर्म', 'विकर्म' प्रत्येकके साथ **'बोद्धव्यं'** पद देकर इसपर विशेष जोर दिया है कि प्रत्येकके स्वरूपको अवश्य समझना चाहिये। इस बातके कहनेमें ऐसा आशय प्रतीत होता है कि कर्ताके भावके परिवर्तनसे कर्म अकर्म एवं विकर्ममें परिणत हो जाता है। अकर्म कर्म तथा विकर्ममें परिणत हो सकता है और विकर्म दीखते हुए भी कर्म एवं अकर्मका रूप धारण कर लेता है। भावका कर्मके साथ गहरा सम्बन्ध है। उदाहरणतः यदि हम शास्त्रोक्त देवताकी पूजा करते हैं तो यह सात्त्विक कर्म है। निष्कामभावसे फलकी इच्छा और आसक्ति न रखकर यदि पूजा करते हैं तो यह कर्म अकर्म हो जाता है यानी कर्म बाँधनेवाला नहीं रहता। यही कर्म फलकी इच्छा, जैसे धनादिकी प्राप्तिके लिये किये जानेसे कर्म हो जाता है, यानी इसके संस्कार पड़ते हैं, यह बाँधनेवाला हो जाता है—जन्म-मरणका हेतु बन जाता है। यही कर्म किसी दूसरे व्यक्तिको कष्ट पहुँचानेके लिये किये जानेसे विकर्म हो जाता है, यानी निषिद्ध कर्म हो जाता है, कर्ताके भावसे कर्मका स्वरूप बदल जाता है।

वास्तवमें कर्म बाँधनेवाले नहीं हैं, बाँधनेवाले हैं हमारे भाव, जिनका हमने कर्मोंके साथ सम्बन्ध जोड़ लिया है। मात्र कर्म तो वास्तवमें क्रियाशक्ति ही है, परंतु उन कर्मोंके साथ हम अपना कर्तापनका सम्बन्ध जोड़ लेते हैं तथा कर्म करनेके औजार शरीर-इन्द्रिय आदिको अपना मानकर कर्मके साथ ममताका सम्बन्ध जोड़ लेते हैं और कर्मके फलस्वरूप अमुक फल मुझे मिलना चाहिये, ऐसी कामना और उस पदार्थ तथा कर्ममें आसक्ति रखकर कर्म करते हैं इससे हमारा कर्मोंके साथ चेप हो जाता है, यानी बन्धन हो जाता है। अहंकार, ममता, आसक्ति और फलेच्छा इनमेंसे एकका भी सम्बन्ध यदि कर्मके साथ है तो वह कर्म अवश्य बाँधनेवाला है। संस्काररूपमें परिणत होकर उसे जन्म-मरणमें डालता रहता है। गीता (१८। १२)-में भगवान्ने कहा—ऐसे किये हुए कर्मोंका फल मनुष्यको यहाँ अथवा परलोकमें अवश्य भोगना पड़ता है।

भगवान्ने गीता (५। १४)-में स्पष्ट कहा है कि कर्मोंके साथ कर्तापनका एवं कर्मफलका सम्बन्ध मनुष्य स्वयं जोड़ता है, मेरे द्वारा जोड़ा हुआ नहीं है। यदि मेरा जोड़ा हुआ यह सम्बन्ध होता तो मनुष्य इस सम्बन्धको तोड़ भी नहीं सकता था। स्वयंका जोड़ा हुआ स्वयं ही तोड़ सकता है।

अतः प्रश्न उठता है कि कर्मका 'तत्त्व' क्या है? यानी

कर्म किस प्रकार किये जायँ, जिससे वे हमें बाँधें नहीं। इस विषयमें तीन बातोंपर विशेष ध्यान देना है। सबसे पहले यह विचार करना है कि मनुष्य-शरीरका एकमात्र उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है। भोगोंका भोगना एवं संग्रह करना यह हमारा उद्देश्य नहीं है। इस लक्ष्यका विकल्परहित निर्णय होनेसे हमारा प्रत्येक कर्म भगवत्प्राप्तिके लिये, भगवान्‌के प्रेमकी प्राप्तिके लिये और भगवत्प्रीत्यर्थ होगा। अथवा कर्तव्य-पालन करना मात्र ही मेरा उद्देश्य है, यह भाव होगा। **'कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।'** मुझे अपना कर्तव्य मात्र करना है, मेरा सम्बन्ध केवल कर्तव्यसे है। कर्तव्यका सम्बन्ध केवल दूसरोंके हितमें रहता है, अपने भोग या संग्रहमें कर्तव्य कर्म नहीं होता है।

दूसरी बात हमें कर्तव्य करते समय अपनी पूरी शक्ति लगाकर कर्म करना चाहिये। यदि शक्ति पूरी नहीं लगी तो हमारा कर्मसे सम्बन्ध बना रहेगा। जैसे हमारे घरमें कोई बीमार हो गया। हमने उसके उपचारकी व्यवस्थामें शिथिलता बरती, पूरी शक्ति, योग्यता नहीं लगायी तो हमें वह कर्मकी असावधानी बार-बार तंग करेगी, हमारे मनसे उस कर्मका सम्बन्ध बना रहेगा। यदि मान लो उसका शरीर चला गया तो हमें दो प्रकारके दुःख होंगे—एक तो उसके शरीर जानेका, दूसरा उपचार करनेमें असावधानीका। यदि हमने पूरी सावधानी बरती तो पहला दुःख भी उतना नहीं होगा, दूसरा दुःख तो होगा ही नहीं। इसी बातको भगवान्‌ने गीता (३। ९, १९, २६)-में **'समाचर'** पद देकर पूरी कार्य-कुशलतासे कर्म करनेके लिये कहा है। गीता (३। २३)-में अपना स्वयंका उदाहरण देकर **'अतन्द्रितः'** पदसे असावधानीसे रहित होकर कर्म करनेकी भगवान्‌ने हमें प्रेरणा दी है।

तीसरी बात है कर्म करनेमें भावकी पूरी पवित्रता होनी चाहिये। किसी भी कर्ममें अपना स्वार्थभाव जरा भी नहीं रहना चाहिये। जिनसे कर्मका सम्बन्ध है, उनके हितका भाव ही रहना चाहिये। अपना स्वार्थ, फलकी इच्छा एवं आसक्ति आदि रहनेसे वह कर्म बाँधनेवाला हो जाता है। जो मनुष्य अपने स्वार्थके लिये कर्म करते हैं, उनको भगवान्‌ने फटकारा है कि वे पापको खाते हैं अर्थात् उनका जीवन पापमय है। **'भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्'** (गीता ३। १३)। यहाँ केवल भोजन करनेकी बात ही नहीं बल्कि मात्र अपने व्यक्तिगत स्वार्थके लिये कर्म करनेवालेके लिये यह कहा है, 'पकाकर खाना' तो केवल उपलक्षण मात्र है। **'यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः'** गीता (३। ९)-में यही बात कही है। कर्तव्य मात्र पालनके भावसे जो कर्म किया जाता है, वह बाँधनेवाला नहीं होता अर्थात् स्वार्थके लिये सकामभावसे किये जानेवाले सभी कर्म इस मनुष्य-योनिमें बाँधनेवाले हैं।

कर्मका तत्त्व समझकर कर्म हुआ अथवा नहीं, इस पहचानके लिये भगवान्‌ने गीता (४। १८)-में कहा है। इसमें संक्षेपसे ये सारी बातें आ गयी है। **'कर्मण्यकर्म यः पश्येत्'** इस पहले चरणमें भगवान्‌का अभिप्राय प्रतीत होता है कि जिस कर्मयोगीने अपने कर्मको कर्तव्य समझकर निःस्वार्थभावसे अहंकाररहित, आसक्तिरहित, ममतारहित होकर कर्म किया है, उसका कर्म अकर्म हो जायगा। कर्म करनेके अन्तमें उसका उस कर्मसे किसी पदार्थसे बिलकुल सम्बन्ध नहीं रहेगा। कर्म एवं पदार्थका चिन्तन नहीं रहेगा। सहज निवृत्ति आ जायगी, उसका कर्म बाँधनेवाला नहीं रहेगा। उस कर्मका कोई संस्कार उसके अन्तःकरणपर नहीं पड़ेगा। यह निवृत्ति स्वाभाविक होगी। एक तो हम स्वयं कर्म करना नहीं चाहते, वह सहज निवृत्ति नहीं है। उस कर्म न करनेमें हमारेमें आलस्यके—शारीरिक आराम आदिके भाव रह सकते हैं, परंतु इस कर्मयोगीकी यह निवृत्ति स्वाभाविक है। उसमें किसी प्रकारकी वासना, कामना नहीं रहती। क्रियाशक्तिका दूसरोंके हितमें सदुपयोग हो गया—जैसे पंखा चलाया चल पड़ा, बंद किया बंद हो गया। पंखाका कोई आग्रह नहीं कि चलना है या बंद होना है। इसी प्रकार उस कर्मयोगीके शरीरसे स्वतः ही दूसरोंके हितके कर्म होते हैं, उनसे जरा भी लेप नहीं रहता।

'अकर्मणि च कर्म यः' (**पश्येत्**) इस चरणमें भगवान्‌ने बताया, प्रतीत होता है कि उस कर्मयोगीमें कोई कर्म करनेकी रुचि नहीं रहती है। वह सहज निवृत्त है। फिर भी उसके शरीरसे लोगोंके हितके लिये, लोकसंग्रहके लिये स्वतः कर्म होनेकी स्फुरणा होती है। **'यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः'** अर्थात् उसके अन्तःकरणमें जरा भी

कामना, वासना नहीं रहती है। न कर्म करनेकी, न किसी पदार्थको प्राप्त करनेकी। वह इतना निवृत्त है कि कर्म होने-न-होनेसे उसपर कोई असर नहीं पड़ता है। '**तस्य कार्यं न विद्यते**' परंतु फिर भी उसके शरीरसे लोकसंग्रहके निमित्त कर्म होते रहते हैं। उसके कर्म अकर्म ही होते हैं अर्थात् बाँधनेवाले नहीं होते।

'**कर्मण्यकर्म यः पश्येत्**' तथा '**अकर्मणि च कर्म यः**'—ये दोनों बातें एक-सी ही प्रतीत होती हैं, परंतु इनमें विशेष भाव प्रतीत होता है। पहलेमें जोर इस बातपर है कि कर्म करते समय कर्मके अन्तमें कर्मयोगीका कर्मसे, पदार्थसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रहता। वह सहज निवृत्त हो जाता है।

दूसरे चरणमें यह आशय प्रतीत होता है कि कर्मका प्रारम्भ होते समय कर्मयोगीकी संकल्परहित यानी सहज निवृत्त-अवस्था होती है। कर्मके अन्तमें, बीचमें तथा प्रारम्भमें उसकी सहज निवृत्त-अवस्था है। दोनों चरण एक-दूसरेकी पुष्टि करते हैं। दोनों चरण देकर यह कहनेका अभिप्राय प्रतीत होता है कि यदि कर्म करनेके अन्तमें अथवा प्रारम्भमें किसी समय सहज निवृत्ति नहीं है तो वह कर्म अकर्म नहीं है। यानी वह कर्म कर्मका तत्त्व समझकर नहीं हुआ है, वह कर्म बाँधनेवाला है, 'अशुभ'-से सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। कर्मका तत्त्व समझकर कर्म होनेसे अशुभसे सर्वथा सम्बन्धरहित हो जाता है, यह भगवान्ने गीता (४। १६)-में कहा है।

गीता (४। १८)-के उत्तरार्धमें भगवान्ने ऐसे कर्मके तत्त्वको समझकर कर्म करनेवाले कर्मयोगीकी महिमा बताते हुए कहा है—'वह बुद्धिमान् है।' काजलकी कोठरीमें घुसकर काजल न लगे यानी कर्म करके कर्मोंसे न बँधे, यह बहुत विशेष बुद्धिमानी है। वह योगी है उसने भगवत्प्राप्ति कर ली है। वह कृतकृत्य है यानी उसे जो करना था वह कर लिया है, उसे कोई कर्तव्य करना बाकी नहीं रहा।

सभी भाई-बहनोंसे मेरी प्रार्थना है कि गीताके श्लोकोंका मनन करें। इन बातोंको जीवनमें लाकर अपना कर्तव्य-कर्म करें तो हम बहुत शीघ्र ही जीवन्मुक्तकी अवस्था प्राप्त कर सकते हैं।

जीवनकी सफलताका सरल उपाय

(सुश्री पूर्णिमा एल० 'तुलसीदास')

आजकलकी परिस्थितिमें प्रायः प्रत्येक व्यक्ति परेशान है, निराश है; जिससे आस्थाहीन होता जा रहा है। प्रत्येक समझदार व्यक्तिके मनमें एक ही चिन्ता है कि हम कहाँ जा रहे हैं? भविष्य कैसा होगा? चारों ओर बेईमानी, बदमाशी और दादागिरी। स्वार्थ और क्रूरताकी तो सीमा ही नहीं है। अनैतिकता एवं कुकृत्योंका सर्वत्र ताण्डव-नृत्य हो रहा है। कहीं किसी प्रकारकी सुख-शान्तिकी आशा नहीं। अकेला आदमी क्या करे? परंतु विचारणीय बात यह है कि जब हम सभी ऐसा सोचते हैं, तब हम 'अकेले' कैसे? यदि सचमुच संसार इतना बुरा होता तो चलता थोड़े? केवल ठग-ही-ठग होते तो पग-पगपर उपकार करनेवाले कहाँसे आते? सुख-शान्तिकी आशाकी कोई किरण न झलकती तो क्या अभीतक सब आत्महत्या न कर डालते?

सच तो यह है कि दुनिया हमेशा ऐसी थी और ऐसी रहेगी; पर देखना यह है कि हम किस पक्षमें हैं। प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्तिको सैकड़ों निर्णय करने पड़ते हैं। इन्हीं छोटे निर्णयोंमें हमारे जीवनको परिवर्तित करनेकी क्षमता है।

एक छोटा-सा उदाहरण—बहुत आसान। हम यह सोचनेकी आदत डालें कि बिना स्वयंको कष्ट दिये हम किसीकी भलाई कैसे कर सकते हैं? यह कोई भी कर सकता है। कई प्रकारके विचार आयेंगे। अच्छा लगा तो किया, नहीं तो अपना गया ही क्या? ऊपरसे जबरदस्त फायदा। पूछिये क्या?

व्यर्थकी चिन्ताओंसे मुक्तिका सहज सुलभ लाभ। हमारे जीवनका आधा क्लेश उसी समय दूर हो जाय, जिस समय हम सांसारिक आसक्तियोंका त्याग कर दें। अपने-आपकी अवनतिसे उतनी ईर्ष्या उत्पन्न नहीं होती, जितनी दूसरेकी उन्नतिसे ईर्ष्या उत्पन्न होती है। नयी साड़ी पहननेका आनन्द कड़वा नहीं होता, अगर जेठानीकी साड़ीपर नजर नहीं जाती।

आनन्दके विभिन्न प्रकारोंमेंसे वही आनन्द पूर्ण संतोष दे पाता है, जब हम नि:स्वार्थ-भावसे कोई अच्छा काम करते हैं। यह एक स्पष्ट चुनौती है। आप स्वयं देख लें। नि:स्वार्थ परोपकारमें बाधा यह आती है कि जिसकी सहायता हम करना चाहते हैं, वह कहीं हमारे लिये एक बोझ न बन जाय, हमारी भलाईका फायदा उठा करके हमारी बदनामी न करने लगे। इस भयके कारण ही कितने लोग भलाई करनेकी प्रबल इच्छाको दबा लेते हैं। जीवनकी सफलतामें यह भय एक बहुत बड़ी बाधा बन जाता है, परंतु इसका भी एक बहुत सरल उपाय है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति अपना सकता है।

यह उपाय है पशु—जीव-जन्तुके कल्याणके कार्योंमें जुट जाना। उनके कल्याणके कार्यमें उपकृत व्यक्तिकी बेईमानीका कोई भय नहीं और इसका भी भय नहीं है कि एक बार सहायता करनेसे पशु भविष्यमें एक बोझ बन जायँगे। वे न तो कुछ माँगते हैं, न दोष दे सकते हैं, न प्रशंसा कर सकते हैं।

आप धर्म समझकर रास्तेके कुत्तेको कुछ बची-खुची रोटियाँ दे सकते हैं। कुछ दाल-चावलके दाने चिड़ियोंको दे सकते हैं। जो घोड़े, बैल, गधे, ऊँट सामान ढोते हैं या सवारीके काम आते हैं, उनकी हालत देख करके फिर उनका उचित उपयोग कीजिये। प्राणियोंके उपकारसे ही हम वास्तविक सुखका आनन्द प्राप्त करते हैं, अपना पेट भरते हैं और सरदर्दसे लेकर अन्यान्य बीमारियोंसे मुक्त होते हैं। इन प्राणियोंके हम सब प्रकारसे ऋणी हैं—इस सत्यको भूल जानेके कारण ही कुछ संकीर्ण दृष्टिवाले लोग ही पशु-कल्याणको व्यर्थ कार्य मानते हैं; परंतु मूक प्राणियोंका आशीर्वाद कितना आनन्ददायी परिणामवाला होता है यह तो समय ही आपको बतायेगा। अतुलनीय आत्म-तृप्ति है पशु-कल्याण करनेमें, पशु-सेवा करनेमें। आप पशु-कल्याणका कार्य प्रारम्भ करके देखिये तो!

मन प्रफुल्लित हो जायगा, एक अद्भुत आनन्दका अनुभव होगा। पशु-कल्याणका कार्य आप व्यक्तिगत ढंगसे या किसी अच्छी संस्थाको सहारा दे करके भी कर सकते हैं। व्यक्तिगत सहायता सीमित रह जाती है, परंतु अच्छी संस्थाके माध्यमसे हम कई हजार पीड़ित प्राणियोंको राहत देनेका पुण्य कार्य कर सकते हैं। पशु-कल्याणके कार्यसे देशका, समाजका और स्वयंका कल्याण होता है।

गरीब हो या अमीर, देशके पशु-पक्षीका प्रभाव पर्यावरण, स्वास्थ्य, समाज और अर्थ आदिपर प्रत्यक्ष या परोक्षरूपमें पड़ता ही है। इसलिये पशु-सम्पदाकी संरक्षा-सुरक्षा हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक हो जाता है; क्योंकि वे सुख-शान्तिके आधार हैं। इसके साथ ही पशु-कल्याणका निर्मल कार्य हमें आत्मबल, आत्मतृप्ति और आत्मसुखसे परिपूर्ण करता है। अन्यान्य मानसिक क्लेशोंसे मुक्त करता है।

पशु-कल्याणके कार्यका सर्वोच्च लाभ है आध्यात्मिक लाभ; फिर भी हमने उन्हें असीम कष्ट दिया, उनकी हत्या की। उनका ऋण चुकाना तो दूर रहा, उन्हें प्राय: घृणाकी दृष्टिसे ही देखते रहे। क्या उनका शाप मनुष्य-जातिको नहीं लगेगा? यदि उनके शाप न भी लगें तो क्या वह सर्वव्यापक अन्तर्यामी हमारे इन अत्याचार-अन्यायोंको क्षमा करेगा? आज हमारे समाजकी स्थिति इसीलिये इतनी भयानक होती जा रही है कि हम पाप और पुण्यके रहस्यको भूलते जा रहे हैं, जीव-प्रेमसे हमारी भावनात्मक दूरी बढ़ती जा रही है, जिसका परिणाम आज सामने है। पशु-पक्षीका ऋण न भूलते तो आजके बच्चे अपने माता-पिताको वृद्धाश्रम क्यों भेजते? पशु-पक्षीका ऋण चुकानेवालोंके हृदयमें एक प्रगाढ़ तृप्ति रहती है, क्योंकि जो पशु-पक्षीका ऋण भी नहीं भूलता, वह पितृ-ऋण, गुरु-ऋण और देव-ऋणको भी नहीं भूलेगा। पशु-कल्याणका कार्य एक महायज्ञ है, जो पूर्णत: जीव-दयापर आधारित है, लोकोपकारी है तथा ईश्वरकृपासे जीवनकी सफलता-हेतु एक सरल उपाय है—मानव-जीवनके चरम लक्ष्य-प्राप्तिका एक विशेष साधन है।

अब निर्णय हम सभीको करना है कि हम ऐसे सरल उपायका चयन कर मानव-जीवनकी सार्थकता सिद्ध करें अथवा इसके विपरीत आचरण कर अपने-आपको भवकूपमें डुबो दें!

* * *

गर्भपातके विषयमें धर्मशास्त्रके वचन

(१) गर्भपात ब्रह्महत्यासे दुगुना पाप है और इसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है—

यत्पापं ब्रह्महत्याया द्विगुणं गर्भपातने।
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते॥

(पाराशरस्मृति ४। २०)

'ब्रह्महत्यासे जो पाप लगता है, उससे दुगुना पाप गर्भपात करनेसे लगता है। इस गर्भपातरूपी महापापका कोई प्रायश्चित्त भी नहीं है, इसमें तो उस स्त्रीका त्याग कर देनेका ही विधान है।

(२) गर्भपात करनेवालेका देखा हुआ अन्न न खाये—

भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव संस्पृष्टं चाप्युदक्यया।
पतत्रिणावलीढं च शुना संस्पृष्टमेव च॥

(मनुस्मृति ४। २०८)

'भ्रूणहत्या करनेवालेका देखा हुआ, रजस्वला स्त्रीका स्पर्श किया हुआ, पक्षीका खाया हुआ और कुत्तेका स्पर्श किया हुआ अन्न न खाये।'

(३) गर्भपात करनेवालेका अन्न खानेसे पाप लगता है—

अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम्॥

(मनुस्मृति ८। ३१७)

'भ्रूणहत्या करनेवाला अपना अन्न खानेवालेको, व्यभिचारिणी स्त्री पतिको, शिष्य तथा यजमान गुरुको और चोर राजाको अपना-अपना पाप दे देते हैं।'

(४) गर्भपात करानेवाली स्त्रीसे बातचीत न करे—

गर्भपातं च या कुर्यान्न तां सम्भाषयेत् क्वचित्॥

(पाराशरस्मृति ४। १९)

'जो स्त्री गर्भपात कराये, उससे कभी वार्तालाप न करे।'

(५) गर्भपात करनेवाली स्त्रीको प्रणाम न करे—

भर्तृघ्नीं पुष्पिणीं जारां सूतिकां गर्भपातिनीम्॥
कृतघ्नीं च तथा चण्डीं कदाचिन्नाभिवादयेत्।

(नारदपुराण, पूर्व० २५। ४०-४१)

'स्त्रियोंमें जो पतिकी हत्या करनेवाली, रजस्वला, परपुरुषसे सम्बन्ध रखनेवाली, सूतिका, गर्भपात करनेवाली, कृतघ्न और क्रोधिनी हो, उसे कभी प्रणाम न करे।'

(६) गर्भपात करनेवालेके उद्धारका कोई उपाय नहीं है—

ब्रह्महत्यादिपापानां प्रोक्ता निष्कृतिरुत्तमैः।
दम्भिनो निन्दकस्यापि भ्रूणघ्नस्य न निष्कृतिः॥

(नारदपुराण, पूर्व० ७। ५३)

'श्रेष्ठ पुरुषोंने ब्रह्महत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त बताया है, पाखंडी और परनिन्दकका भी उद्धार होता है; किंतु जो गर्भके बालककी हत्या करता है, उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं है।'

(७) गर्भपात करनेवाले नरकोंमें जाते हैं—

भ्रूणहा पुरहन्ता च गोघ्नश्च मुनिसत्तम।
यान्ति ते नरकं रोधं यश्चोच्छ्वासनिरोधकः॥

(विष्णुपुराण २। ६। ८)

'हे मुनिसत्तम! भ्रूणहत्या करनेवाले, ग्रामनाशक और गोहत्यारे लोग 'रोध' नामक नरकमें जाते हैं, जो श्वासोच्छ्वासको रोकनेवाला है।'

(८) गर्भपात करनेवालेकी अगले जन्ममें संतान नहीं होती—

पूर्वे जनुषि या नारी गर्भघातकरी ह्यभूत्।
गर्भपातेन दुःखार्ता साऽत्र जन्मनि जायते॥

(वृद्धसूर्यारुणकर्मविपाक ४७७। १)

'जो स्त्री पूर्वजन्ममें गर्भपात करनेवाली होती है, वह इस जन्ममें भी गर्भपातका दुःख भोगनेवाली होती है अर्थात् उसकी संतान नहीं होती।'

वन्ध्येयं या महाभाग पृच्छति स्वं प्रयोजनम्।
गर्भपातरता पूर्वे जनुष्यत्र फलं त्विदम्॥

(वृद्धसूर्यारुण० ६५९। १, ८५६। १ आदि)

'जो कोई स्त्री पूछती है कि मैं इस जन्ममें वन्ध्या (संतानहीन) किस कारण हुई, तो इसका उत्तर है कि यह पूर्वजन्ममें तेरे द्वारा किये गये गर्भपातका ही फल है।'

गर्भपातनपापाढ्या बभूव प्राग्भवेऽण्डज।
साऽत्रैव तेन पापेन गर्भस्थैर्यं न विन्दति॥

(वृद्धसूर्यारुण० ११८७। १)

‘हे अरुण! जो स्त्री पूर्वजन्ममें गर्भपात करती है, इस जन्ममें उस पापके कारण उसका गर्भ नहीं ठहरता अर्थात् वह संतानहीन होती है।’

(९) गर्भपात करनेवाली स्त्रीके मरनेपर आशौच नहीं होता—

स्त्रीणां च पत्यादिहन्त्रीणां हीनजातिगामिनीनां गर्भघ्नीनां कुलटानां च पूर्वोक्तात्मघातादिपापयुक्तानां च मृतौ नाशौचम्। तत्र तासां शवानां स्पर्शाश्रुपातवहनदहनान्त्यकर्माणि न कुर्यात्। स्पर्शादिकरणे ज्ञानाज्ञानाभ्यासादितारतम्येन कृच्छ्रातिकृच्छ्रसान्तपनचान्द्रायणादिप्रायश्चित्तानि सिन्ध्वादिग्रन्थान्तरतो ज्ञेयानि।

(धर्मसिन्धु, आशौचप्रकरण)

‘पति आदिकी हत्या करनेवाली, नीच जातिसे गमन करनेवाली, गर्भहत्या करनेवाली, कुलटा और आत्महत्या आदि पाप करनेवाली स्त्रियोंके मरनेपर आशौच नहीं होता। इसमें उनके शवका स्पर्श, अश्रुपात, वहन और शवदाह-रूप अन्त्य कर्मोंको नहीं करना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसे ज्ञान, अज्ञान और अभ्यास आदिके तारतम्यसे कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, सान्तपन, चान्द्रायण आदि प्रायश्चित्तोंको ‘निर्णयसिन्धु’ आदि ग्रन्थोंसे जानकर करने चाहिये।’

[संकलनकर्ता—श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन]

* * *

कहानी—

भूमियाने फिर न कभी चोरी की और न झूठ ही बोला!

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

‘कृपया मेरे घर आज भोजन ग्रहण कर मुझे कृतार्थ कीजिये। मुझे संतोष और सुख मिलेगा।’ भूमियाने गुरु नानकदेवजीसे विनीत-भावसे प्रार्थना की।

गुरु नानकदेवजी सत्य बोलने और चोरी न करनेपर सदा ही जोर देते थे। वे कहते थे कि सर्वोच्च मंजिलतक पहुँचनेके लिये मनुष्यको जीवनमें सचाई और ईमानदारीका सीधा मार्ग अपनाना चाहिये। जिस आदमीने सत्यको जीवनका उद्देश्य बना लिया है, वह भटक नहीं सकता। स्वर्गका द्वार प्रत्येक मनुष्यके लिये खुला हुआ है, जो चाहे उसमें प्रवेश कर सकता है। परमात्माने श्रेष्ठ, शुभ और पुण्य कार्योंको बड़ा ही सरल बनाया है। सत्यके अनुसरणसे इस राजमार्गपर चलनेका प्राणिमात्र अधिकारी है। झूठ बोलने, बनावटीपन या दुराव-छिपावसे गलत बातको छिपानेके लिये बहुत सोचने-समझने-विचारने और सँभल-सँभलकर बात करने या आचरण करनेकी जरूरत होती है, परंतु सत्यके आचरणमें तनिक भी खट-पट नहीं। चोरी या बनावटी जिंदगी बितानेके लिये बड़ी तिकड़म लगानी पड़ती है, किंतु ईमानदारीसे रहना बेहद आसान है। कम बुद्धिका आदमी भी ईमानदारीके व्यवहारद्वारा जिंदगी बड़ी सुगमतासे व्यतीत कर सकता है और इसमें उसे कुछ भी परेशानी नहीं उठानी पड़ती। इस प्रकार जुआ, व्यभिचार, ढोंग, कालाबाजार, सट्टा, सरकारी टैक्सकी चोरी इत्यादि झूठका कोई भी रास्ता ग्रहण करनेपर कठिनाई होती है, परंतु सच बोलकर जीविका कमाने और जिंदगी जीनेका रास्ता बेहद आसान है। इसमें मेहनत तो पड़ती है, किंतु बदनामी, सजा या ऐसे ही अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंसे बचे रहते हैं। गुरु नानकदेवजीके इन विचारोंसे भूमिया नामक चोर भी प्रभावित हुआ और गुरुजीकी सेवामें प्रवृत्त होकर उनसे भोजन करनेका आग्रह करने लगा।

भूमिया चोर ढाकाका निवासी था। अपने शुरूके जीवनमें वह बिगड़ चुका था। रोजगारके तौरपर उसने चोरी, डकैती और हिंसाका रास्ता पकड़ लिया था।

वह दिनमें राहगीरोंको लूटता और रातको चोरी करता था। सारा गाँव उसके अत्याचारोंकी वजहसे थर-थर काँपता था। उसने गाँववालोंको हुक्म दे रखा था कि किसी भी साधु तथा फकीरको रातमें अपने घर आश्रय न देकर उसे

मेरे घर भेज दिया करो।

संयोगसे गुरु नानकदेवजी उस ग्राममें रात्रिमें घूमते-घूमते पहुँच गये। गाँव नया था, वहाँ कोई भी उन्हें जानता न था। कहाँ ठहरें?

आपको भूमियाके यहाँ ठहरना होगा। वही एक आश्रय-स्थान है। गाँववालोंने बताया।

भूमियाका हृदय-परिवर्तन होने लगा था। वह सन्मार्गपर आना चाहता था। उसे बदनामीका जीवन त्यागनेकी इच्छा थी।

आपका व्यवसाय क्या है? गुरुजीने भूमियासे प्रश्न किया। वह कुछ सकुचाया। कुछ लज्जित-सा हुआ। आखिर, कैसे… कहे कि चोरी, डकैती और हिंसा ही तो उसका धंधा है; फिर भी पश्चात्ताप एवं आत्मग्लानिके स्वरमें भूमियाने गुरुजीको अपने पूर्व-जीवनके सम्बन्धमें सब कुछ सच-सच बतला दिया।

'तुम प्रायश्चित्त करना चाहते हो'—गुरुजी कहने लगे, 'यह उचित ही है। लोग समझते हैं कि झूठ, कपट, चोरीका रास्ता सरल और सत्य, न्याय, ईमानदारीका रास्ता कठिन है, लेकिन असल बात ऐसी नहीं है। झूठ-कपटसे नरक और सत्य ग्रहण करनेसे स्वर्गका द्वार खुलता है, जहाँ हर कोई आसानीसे पहुँच सकता है। भूमिया! तुम चाहो तो अब भी बेरोक-टोक उसमें सहभागी हो सकते हो; पर तुम्हें मेरी कुछ शर्तें माननी होंगी।'

'वे क्या हैं महाराज'? उसने आग्रह किया।

'भूमिया! संकल्प करो कि भविष्यमें सदैव सत्य ही बोलोगे, सत्यका ही अनुसरण करोगे, जिसका नमक खाओगे उसकी कभी बुराई या हानि नहीं करोगे, किसी गरीबको नहीं सताओगे।'

'मैं वायदा करता हूँ कि ऐसा ही करूँगा।' भूमियाने सिर झुकाकर सारे संकल्प ले लिये और वह पिछले जन्मोंके कुकर्मोंके लिये बार-बार क्षमा-याचनापूर्वक पाक-साफ जिंदगी जीने लगा। यह एक नये जीवनका सुप्रभात था।

गंदी आदतें मनुष्यके गुप्त मनमें जब गहरी जड़ें जमा लेती हैं, तब बड़ी कठिनाईसे छूटती हैं। झूठ, कपट, चोरी, हिंसा, छल तथा ढोंग आदि दुष्प्रवृत्तियाँ बार-बार मनुष्यको लुभाती हैं और नरककी ओर खींचती रहती हैं।

एक रात वह फिर चोरी करने राजाके घर पहुँचा। बहुत-सा मूल्यवान् सामान एकत्र कर चलनेकी तैयारी की, पर उसे भूख लग रही थी, वह रसोई-घरमें जा पहुँचा। एक बर्तनमें खानेकी कोई वस्तु देखकर मुँहमें डाल ली। वह वस्तु चटपटी, नमकीन और स्वादिष्ट थी। वह उसे अधिकाधिक खाता गया। एकाएक उसे गुरुजीको दिये हुए वचनकी स्मृति आयी। उसने प्रण किया था कि 'जिसका नमक खाऊँगा उसकी बुराई या हानि नहीं करूँगा।' सद्भावना प्रबल हुई, अन्तरात्माने धिक्कारा। पश्चात्ताप उदित हुआ।

उसके सुप्त मनमें तीव्र उथल-पुथल होने लगी। आखिर विवेकने वासनाको परास्त किया, अतः चुपचाप सामान छोड़कर वापस गुरु नानकदेवजीके पास आया। जब राजाने सारा सामान बिखरा हुआ पाया तो उसने चोरकी तलाशका आदेश जारी किया। सच निभानेके वचनके अनुसार भूमियाने राजाके पास आकर सारा किस्सा कह सुनाया—

'महाराज, जबसे आपका नमक खाया है, तभीसे मेरी अन्तरात्मा मुझे कुकर्मोंके लिये धिक्कार रही है। भविष्यमें ऐसा नहीं होगा। इस बार अपराध क्षमा किया जाय।'

राजा प्रसन्न हो उठा, इसलिये कि एक पापीका स्वयं ही सुधार हो रहा था। उसने भूमियाको रोजगार दिया। उस दिनके पश्चात् भूमियाने फिर न कभी चोरी की और न झूठ ही बोला।

* * *

जिसका मरना निश्चित है, उसके भरोसे संतति-निरोध करा लेना कितनी बेसमझीकी बात है! अभी एक-दो संतान है, वह अगर मर जाय तो क्या दशा होगी?

* * *

पढ़ो, समझो और करो

(१)

विलक्षण संतसेवी भक्त बालक

गोलोकवासी पूज्यपाद स्वामी श्रीपूर्णानन्दतीर्थजी (श्रीउड़ियाबाबाजी) महाराज एक बड़े ही विश्वविख्यात उच्च कोटिके महापुरुष थे। एक बार आप हमारी करबद्ध प्रार्थनापर पिलखुवा हमारे स्थानपर कृपाकर पधारे थे। आपने अपनी आँखों-देखी और अपने जीवनमें घटी एक पूर्वजन्मके महान् योगी और नित्यप्रति 'माप्-माप्' चिल्लाकर संतोंको पूड़ियाँ खिलाकर उनकी सेवा करनेवाले अद्भुत विलक्षण संतसेवी भक्त बालककी एक महान् आश्चर्यजनक सत्य घटना हमें सुनायी थी, जो यहाँ प्रस्तुत है। आशा है, पाठक इस आदर्शपूर्ण घटनाको पढ़कर अवश्य लाभान्वित होंगे। पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीने घटनाका विवरण सुनाते हुए कहा—

मैं किसी भी सवारीमें कभी भी नहीं बैठता। अत: जहाँपर भी मुझे आना-जाना होता है, पैदल ही आता-जाता रहता हूँ। यह मेरा एक नियम है। मैं अपने पैदल चलनेके नियमके अनुसार एक बार उड़ीसा देशमें विचरण करता हुआ पैदल ही एक जगह जा रहा था। रास्तेमें एक ग्राम पड़ा। जब मैं उस ग्राममें अंदर घुसा और एक गृहस्थ ब्राह्मणके मकानके सामनेसे होकर आगेकी ओर बढ़ा, तब मुझे काषाय वस्त्र पहने देख एक दुधमुँहा—बहुत छोटा-सा सुन्दर बालक अचानक उस मकानसे निकला और झटसे मेरी ओर बड़ी तेजीके साथ दौड़ा तथा पीछेसे आकर उसने मेरी चादरको अपने दोनों हाथों तथा मुँहसे पकड़ लिया। मैं बड़ी मस्तीके साथ चला जा रहा था। एकाएक चादर पकड़े जानेके कारण अप्रत्याशित रूपसे झटका लगा तो मैं खड़ा हो गया। जब मैंने मुड़कर देखा तो एक बहुत ही सुन्दर छोटा-सा बालक मेरी चादर अपने दोनों छोटे-छोटे हाथोंसे पकड़े और अपने मुँहसे दबाये हुए है। मैंने अपनी चादर उस बालकसे छुड़ानेका भरसक प्रयत्न किया, परंतु वह बालक भला छोड़नेवाला कहाँ था? उसने छोड़नेके बदले उलटे और बड़े जोरोंसे चादर पकड़ ली और मुझे आगे बढ़नेसे रोक दिया। मुझे उस बालकका यह हठ देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ; क्योंकि यह बालक न तो मेरा पूर्वपरिचित था और न ही मुझे जानता था, फिर भी यह मेरी चादर इस प्रकार पकड़ करके क्यों खींच रहा है, यह मुझे क्यों नहीं छोड़ रहा है। मैं इस अद्भुत रहस्यको बिलकुल भी नहीं समझ सका। अब मैंने उस अद्भुत विलक्षण बालकसे कहा—'अरे बेटा! छोड़ो न मेरी इस चादरको।

बालकने मुझे अपनी अँगुलीके संकेतसे अपने घर चलनेको कहा और तोतली वाणीमें बोला—'माप्-माप्'।

मैं उस अद्भुत बालकके इस प्रकार बार-बार 'माप्-माप्' कहनेके रहस्यको और उसके आशयको नहीं समझ सका। मैं लाचार होकर उसके साथ चल दिया। वह आगे-आगे मेरी चादर पकड़कर चल रहा था और मैं उसके पीछे-पीछे चल रहा था। जब वह अपने साथ मुझे लेकर घरके अंदर घुसा तो घरमें घुसते ही बड़े जोरोंसे 'माप्-माप्' चिल्लाना प्रारम्भ कर दिया। घरमें उसके माता-पिताने जब अपने बच्चेके मुखसे तोतली बोलीमें 'माप्-माप्' का शब्द सुना तो वे बड़े प्रसन्न हुए। वे समझ गये कि यह गेरुए वस्त्रवाले किसी साधु महात्माको पकड़ लाया है। इसी कारण प्रसन्न होकर 'माप्-माप्' चिल्ला रहा है। जब उन्होंने मुझे देखा तब बड़ी ही प्रसन्नतापूर्वक प्रेमसे प्रणाम किया और आसन बिछाकर बिठाया। मैंने उसके माता-पितासे पूछा—

क्या यह आपका बालक है?

बालकके पिताने कहा—'जी हाँ महाराज, यह हमारा ही बालक है।'

मैंने फिर पूछा—यह मुझे यहाँपर क्यों पकड़कर लाया है?

उसने कहा—महाराज, आप गेरुए कपड़े जो पहन रखे हैं, इसलिये।

गेरुआ कपड़ा पहननेसे इसका क्या मतलब है? मैंने कुछ कौतूहलसे उसकी ओर देखते हुए पूछा।

महाराजजी, यह जिसे भी गेरुआ कपड़ा पहने देखता है, बस यह उसे ही पकड़कर ले आता है। बालकके पिताने बड़ी सरलतासे कहा।

मैंने रहस्यके उद्घाटनकी दृष्टिसे पूछा—चाहे गेरुआ कपड़ा पहननेवाला कोई भी हो?

उसने कहा—महाराजजी, यह बालक आपको ही नहीं, जो भी इस रास्तेसे गेरुआ कपड़ा पहने साधु-संत-महात्मा आता-जाता है बस, यह उसे ही पकड़कर अपने साथ ले आता है। किसी गृहस्थी सांसारिक मनुष्यसे तो यह बालक कभी बातें भी नहीं करता। हाँ, साधु-संतोंको देखते ही यह प्रसन्न हो जाता है तथा उसके पीछे दौड़ पड़ता है और जबतक उसे पकड़कर अपने साथ घरपर नहीं ले आता, तबतक इसे चैन ही नहीं पड़ता। यदि कभी इसके सामनेसे होकर कोई साधु-महात्मा चला जाता है और इसकी पकड़में नहीं आता, उस समय इसे एक प्रकारसे बड़ा दुःख होता है। उस समय इसे देखनेपर ऐसा लगता है मानो इसके शरीरसे प्राण ही निकल गये हों।

एक क्षण रुककर मैंने पूछा—ऐसा यह क्यों करता है?

उस लड़केके पिताने बड़े भोलेपनसे कहा—महाराज, हम तो एक साधारण गृहस्थ सांसारिक आदमी हैं, हम भला इस बातको क्या समझ सकते हैं!

क्या इसे किसीने ऐसा करना सिखाया है?

नहीं महाराज, इसे भला सिखाता कौन?

यह कबसे ऐसा करता है?

महाराज, यह तो जन्मसे ही ऐसा करता है। इसे किसीने ऐसा करना सिखाया थोड़े ही है। इसने जबसे चलना-बोलना सीखा है, तभीसे गेरुआ वस्त्र पहननेवाले साधु-महात्माओंके पीछे-पीछे दौड़ता है तथा उन्हें पकड़कर अपने साथ लाता है और उनकी सेवा करता है। इसके बाद ही उन्हें यहाँसे आगे जाने देता है।

परंतु मुझे तो शीघ्र ही आगे जाना है।

महाराज, चले जाइयेगा, पर अभी नहीं।

अभी क्यों नहीं?

बाबा, यह आपको अब जाने थोड़े ही देगा। यह अब आपकी सेवा करेगा और 'माप्-माप्' वाला कार्य करेगा।

मैंने बड़ी उत्सुकतासे पूछा—यह बालक 'माप्-माप्' क्या चिल्लाता है और 'माप्-माप्' वाला कार्य क्या करेगा?

बालकके पिताने कहा—यह बालक जिस-किसी भी साधुको देखता है उसे ही पकड़कर लाता है और अपनी माँसे 'माप्-माप्' कहता है। छोटा बच्चा होनेके कारण पूरा शब्द तो यह बोल नहीं पाता, इसलिये यह 'माप्-माप्' कहता है। इसका मतलब यह है कि 'माँ, जल्दीसे पूड़ी बना और इस बाबाको खिला।'

तो यह बालक हमें भी अभी आगे नहीं जाने देगा?

पहले यह अपनी 'माप्-माप्'वाली बात पूरी कर लेगा, तब आपको आगे जाने देगा। इसलिये महाराज, अब आप हमारे इस बालककी पकड़में आ गये हैं तब शान्तिपूर्वक इस आसनपर बैठिये और अभी इसकी माँ स्नान करके आपके लिये पूड़ियाँ बनायेगी, आप उससे तृप्त होकर जहाँ जाना होगा चले जाइयेगा। जबतक आप इसकी माँकी बनायी हुई पूड़ियाँ नहीं खा लेंगे, तबतक यह बालक आपको जाने नहीं देगा।

उस विलक्षण संतसेवी बालकके अद्भुत क्रिया-कलापोंकी गाथा उसके पितासे सुनकर मैं भावविभोर हो गया और सोचने लगा—अच्छा, इस बालककी जैसी इच्छा होगी, हम वैसा ही करेंगे। मैं उसके दिये आसनपर बैठ गया। वह बालक भी मेरे पास ही बैठ गया। उसकी माँने जल्दी-जल्दी स्नान किया और बड़ी पवित्रताके साथ प्रेमपूर्वक गरम-गरम पूड़ियाँ बनायीं, तत्पश्चात् भगवान्‌को भोग लगाकर उसने मुझे भी खिलाया। जब मैं खा-पी चुका तो वह बालक बड़ा प्रसन्न हुआ। अब उसने जो मुझे अपनी पकड़में ले रखा था, अपना वह हठ ढीला कर दिया; कारण कि उसका असली कार्य साधुसेवा करना पूरा हो चुका था। अब ज्यों ही मैं आगे जानेके लिये उद्यत हुआ, त्यों ही उस बालकने संकेतसे कहा—'बाबा, अब जाओ'। मैंने चलते समय उसके माता-पितासे कहा—'यह तुम्हारा बालक कोई साधारण बालक नहीं है। यह महान् विलक्षण बालक है। तुम्हारा कोई महान् पुण्योदय हुआ है, जिससे तुम्हें अपने इस जीवनमें ऐसा अद्भुत विलक्षण बालक प्राप्त हुआ है। यह बालक किसी पूर्व-जन्मका महान् योगी है। इसे किसी भी प्रकारका कोई कष्ट न हो और इसकी साधु-संतोंकी सेवामें किसी प्रकारकी भी विघ्न-बाधा न पड़े, तुम लोग इसका पूरा-पूरा ध्यान रखना।'

मैं इस प्रकारके साधु-संतोंकी सेवा करनेवाले अद्भुत विलक्षण बालकको देखकर आश्चर्यचकित रह गया और दाँतोंतले अँगुली दबा ली। इस सत्य घटनासे यह सत्य सिद्ध हो जाता है कि इस धर्मप्राण भारतदेशमें जन्मजात ऐसे-ऐसे अद्भुत विलक्षण बालक अब भी जन्म लेते हैं। वास्तवमें यह भारतभूमि अत्यन्त अद्भुत दिव्य भूमि और देवभूमि है, भगवान्‌की अवतारस्थली है। इसलिये भारतमें तो ऐसे-ऐसे धर्मात्मा-पुण्यात्मा बालकोंका जन्म लेना ही सार्थक है। ऐसे ही बालकोंके जन्मसे भारतभूमि कृतकृत्य होती है और भारत

राष्ट्र गौरवान्वित होता है।

(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुवा)

[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]

(२)

मनुष्यमें देवता

रायचन्दभाईका बंबईमें जवाहरातका बड़ा व्यापार था। उन्होंने एक दूसरे व्यापारीसे सौदा किया। सौदेमें यह निश्चय हुआ कि अमुक तिथिके अंदर, अमुक भावमें वह व्यापारी रायचन्दभाईको इतने जवाहरात दे दे। सौदेके अनुसार लिखा-पढ़ी हो गयी। कंट्रैक्टके दस्तावेजपर हस्ताक्षर हो गये।

परिस्थितिने पलटा खाया। जवाहरातकी कीमत इतनी अधिक बढ़ गयी कि वह व्यापारी यदि रायचन्दभाईको कंट्रैक्टके भावसे जवाहरात दे तो उसको इतनी अधिक हानि हो कि उसे अपना घर-द्वारतक बेचना पड़े।

रायचन्दभाईको जब उस जवाहरातके वर्तमान बाजार-भावका समाचार मिला, तब वे तुरंत ही उक्त व्यापारीकी दूकानपर पहुँचे। रायचन्दभाईको देखते ही वह व्यापारी घबरा गया और बड़ी ही नम्रतासे कहने लगा—'रायचन्दभाई! मैं अपने उस सौदेके लिये बहुत ही चिन्तातुर हूँ। जैसे भी हो, वर्तमान बाजार-भावके अनुसार मैं जवाहरातके नुकसानके रुपये आपको चुका दूँगा, आप चिन्ता न करें।'

रायचन्दभाईने कहा—'क्यों भाई! मैं चिन्ता कैसे न करूँ। जब आपको चिन्ता होने लगी है, तब मुझको भी होनी ही चाहिये। हम दोनोंकी चिन्ताका कारण तो यह कंट्रैक्टका दस्तावेज ही है न? यदि इस दस्तावेजको नष्ट कर दिया जाय तो दोनोंकी चिन्ताकी पूर्णाहुति हो जाय।'

व्यापारीने कहा—'ऐसा नहीं; मुझे आप दो दिनकी मुहलत दीजिये। मैं कैसे भी व्यवस्था करके आपके पैसे चुका दूँगा।'

रायचन्दभाईने दस्तावेजको फाड़कर टुकड़े-टुकड़े करते हुए कहा—'इस दस्तावेजसे ही आपके हाथ-पैर बँध रहे थे। वर्तमान बाजार-भाव बढ़ जानेसे मेरे तीन-चार लाख रुपये आपकी ओर निकलते हैं। परंतु मैं आपकी वर्तमान परिस्थिति जानता हूँ। मैं ये रुपये आपसे लूँ तो आपकी क्या दशा हो? रायचन्द दूध पी सकता है, खून नहीं।'

वह व्यापारी रायचन्दभाईके चरणोंमें पड़ गया और उसके मुखसे निकल पड़ा—'आप मनुष्य नहीं देवता हैं।'

छल-कपट, ठगी, झूठ और धोखेबाजीसे किसी भी प्रकार दूसरे मनुष्यकी बुरी परिस्थितिका लाभ उठानेके लिये आतुर आजका समाज इस महापुरुषके जीवन-प्रसंगसे प्रेरणा प्राप्त करे।

[श्रीमधुकान्तजी भट्ट]

* * *

मनन करने योग्य

पितरोंकी कृपामयी लीला

याज्ञवल्क्यस्मृतिमें एक महत्त्वपूर्ण श्लोक आया है—

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः॥

(याज्ञ० आचाराध्याय २७०)

इसका आशय यह है कि श्राद्ध-तर्पण आदि क्रियाओंद्वारा पितरोंकी श्रद्धापूर्वक उपासना करनेसे वे प्रसन्न तथा संतृप्त हो जाते हैं और दीर्घ आयु, संतान, धन, विद्या, स्वर्ग, सुख, राज्य तथा मोक्ष प्रदान करते हैं अर्थात् ऐहलौकिक और पारलौकिक सभी अभ्युदय पितरोंकी कृपासे प्राप्त हो जाते हैं।

जिस प्रकार भगवान् अपनी लीला दिखाते हैं तथा जैसे देवी महामाया अपना खेल दिखाती हैं—प्राकट्यलीला प्रदर्शित करती हैं वैसे ही पितर भी साक्षात् देवता हैं, इनकी भी नित्य नूतन लीला हुआ करती है। शास्त्रकी आज्ञा है कि पितरोंकी आराधना नित्य ही करे। पञ्च-महायज्ञ मनुष्यके लिये नित्यके कर्म हैं, उनमें पितरोंका श्राद्ध-तर्पणरूप आराधना-कर्म पितृयज्ञ कहलाता है। जो पिता-पितामह कलतक हमारे साथ थे, वे ही पितर-रूपमें पितृलोकमें निवास करते हैं और अपनी संतान-परम्पराके कल्याणके लिये समय-समयपर प्रकट होकर अनेक लीला दिखलाते हैं। ऐसी ही एक लीला यहाँ प्रस्तुत है—

बहुत प्राचीन कालकी बात है। रुचि नामक एक प्रजापति थे। उनका मन संसारमें नहीं लगता था। वे विरक्त-भावसे संसारमें विचरण करते रहते थे। सभी साधनोंसे सम्पन्न होते हुए भी न तो उन्होंने अपना घर बसाया और न ही उन्हें किसी भी ऐश्वर्य-भोगादि साधनोंमें स्पृहा-लिप्सा ही रही। वे अनासक्त-भावसे रहा करते थे। ऐसे ही उनका बहुत समय बीत गया। पितर दिव्य दृष्टिसम्पन्न होनेके कारण अपनी संतान-परम्पराकी प्रत्येक सूक्ष्म-स्थूल क्रियाके द्रष्टा

होते हैं और समय-समयपर उसे भले-बुरेका बोध भी कराते रहते हैं। महात्मा रुचिकी संसारसे विरक्तता और मुनि-वृत्ति देखकर उनके पितर बड़े ही विचारमें पड़ गये; क्योंकि संसारकी व्यवस्थाके लिये उस समय धार्मिक और योग्य राजाकी आवश्यकता थी। राजाके अभावमें सर्वत्र अराजकता व्याप्त थी। क्योंकि रुचि गृहस्थ-धर्मसे पराङ्मुख हो निवृत्ति-पथके पथिक बन चुके थे। ऐसा देखकर पितरोंने निश्चय किया कि हमें रुचिके पास चलना होगा और उसे उसके कर्तव्यका बोध कराना होगा। संसारका कल्याण करना होगा।

फिर ऐसा ही हुआ। पितर रुचिके पास आये और उसे गृहस्थ-धर्मका उपदेश दिये तथा गार्हस्थ्यकी महिमा बताते हुए कहने लगे—

'बेटा! गृहस्थ पुरुष समस्त देवताओं, पितरों, ऋषियों और अतिथियोंकी पूजा करके पुण्यमय लोकोंको प्राप्त करता है, वह '**स्वाहा**' के उच्चारणसे देवताओंको, '**स्वधा**' शब्दसे पितरोंको तथा अन्नदान (बलिवैश्वदेव) आदिसे समस्त प्राणियों एवं अतिथियोंको उनका भाग समर्पित करता है, अतः तुम गृहस्थ-आश्रम स्वीकार करो, ऐसा न करनेपर तुम्हें इस जन्ममें तथा जन्मान्तरमें भी क्लेश ही उठाना पड़ेगा। अतः तुम हमारी बात मानो, हम तुम्हारे हितकी बात बता रहे हैं, तुम्हारे गृहस्थ-धर्मसे संसारका कल्याण होना है, अतः तुम विवाह कर लो।'

पितरोंकी यह कल्याणमयी लीला उस समय रुचिकी समझमें नहीं आयी, उन्होंने कहा—'पितरो! परिग्रह मात्र ही अत्यन्त दुःख एवं पापका कारण होता है।' यही सोचकर मैंने स्त्री-परिग्रह नहीं किया। जितेन्द्रिय विद्वानोंको चाहिये कि वे अनेक जन्मोंद्वारा संचित कर्मरूपी पङ्कमें सने हुए आत्माका सदुपासनारूपी जलसे प्रक्षालन करें। आप लोग क्यों मुझे कर्मजालमें फँसा रहे हैं।

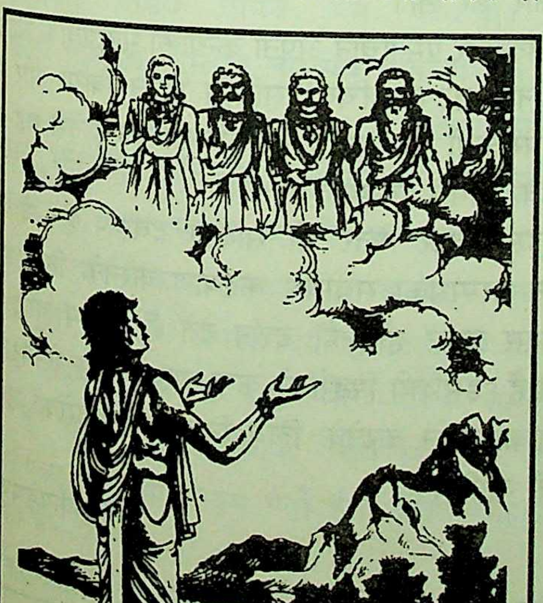

पितर बोले—'बेटा! तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है, किंतु जो कर्म आसक्तिरहित होकर किया जाता है, वह बन्धनका हेतु नहीं बनता। विहित कर्मका पालन करते हुए जो मनुष्य संयम करते हैं, वह संयम अन्तमें उसे मोक्षकी प्राप्ति कराता है। कर्म अविद्यारूप होनेपर भी विधिके पालनद्वारा शोधित विषकी भाँति मनुष्योंका उपकार करनेवाला ही होता है। इसके विपरीत वह विद्या भी विधिकी अवहेलनासे निश्चय ही बन्धनका कारण बन जाती है, अतः वत्स! तुम हमारा कहना मानो, विधिपूर्वक स्त्री-परिग्रह करो। इसीमें सब प्रकारसे भलाई है।' इतना कहकर पितर अदृश्य हो गये।

पितरोंकी बात सुनकर महात्मा रुचि बहुत उद्विग्न हो गये। वे बहुत समयतक विचार करते रहे, किंतु अन्तमें उन्होंने अपने पितरोंकी बातको ही ठीक समझा। उनके द्वारा बताये गये मार्गका ही अनुसरण करनेमें परम कल्याण माना। रुचि तो वृद्ध हो गये थे, तपस्यासे उनका शरीर जर्जर हो गया था, ऐसेमें भला कौन पिता अपनी कन्या उन्हें देता, उनका चित्त व्यथित हो उठा। उसी समय पितरोंने लीलासे उनकी बुद्धिमें प्रेरणा की, तुम ब्रह्माजीकी उपासना करो, वे पितामह हैं, समस्त लोकोंके पितर हैं, उनकी कृपासे तुम्हारा मार्ग प्रशस्त होगा।

रुचिने उस अज्ञात प्रेरणासे ब्रह्माजीकी आराधना की। आराधनासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने यथेष्ट वर प्रदान किया और कहा कि तुम श्रेष्ठ पत्नीकी प्राप्तिके लिये अपने पितरोंकी स्तुति करो, वे तुम्हारा सर्वविध कल्याण करेंगे। पितर संतुष्ट हो जायँ तो वे क्या नहीं कर सकते, कौन ऐसी वस्तु है, जो वे नहीं दे सकते।

ब्रह्माजीके कथनके अनुसार रुचिने नदीके एकान्त तटपर पितरोंका तर्पण किया और बड़े ही भक्तिभावपूर्वक पितरोंकी स्तुति की। कुछ समय बाद रुचिके समक्ष एक बहुत ऊँचा तेज:पुंज प्रकट हुआ, जो पूरे आकाशमें व्याप्त हो गया। उस महान् तेजको देखकर रुचिने पुनः स्तुति

प्रारम्भ कर दी।[१] स्तुतिके पूर्ण होनेपर दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए पितर उस तेजसे बाहर निकले। रुचिने श्रद्धापूर्वक पितरोंकी पूजाके समय जो फूल, चन्दन, अङ्गराग आदि सामग्री पितरोंको समर्पित की थी, पितर उन सबको धारण किये हुए सामने खड़े दिखायी दिये। अपने पितरोंका दर्शनकर रुचिको बड़ा ही आनन्द हुआ। रुचिने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया।

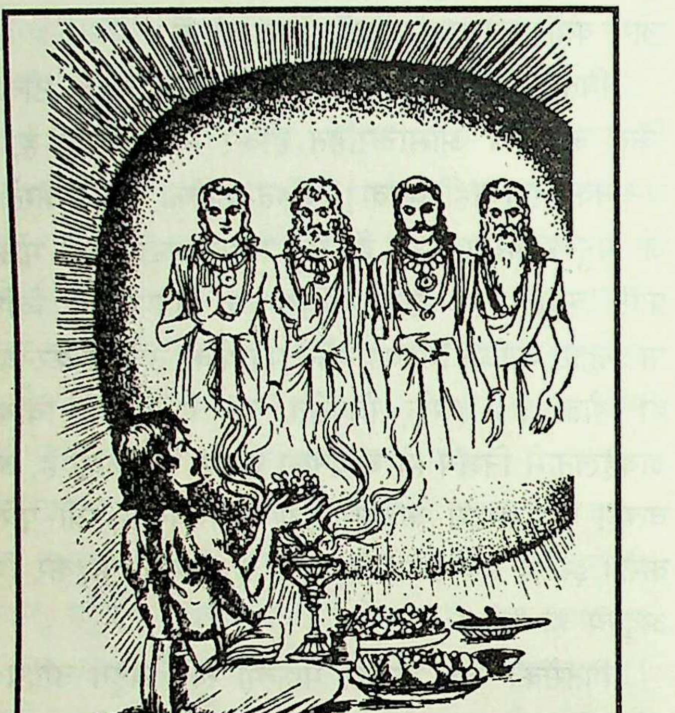

पितरोंने रुचिसे जब कहा कि—वत्स! कोई वर माँगो, तब रुचिने संतान-प्राप्तिकी इच्छासे अभिलषित पत्नी-प्राप्तिका वर माँगा। पितर बोले—'वत्स! ऐसा ही होगा। तुम्हें यहीं इसी समय एक दिव्य मनोहर पत्नी प्राप्त होगी और तुम्हारा पुत्र 'मनु' होकर सम्पूर्ण पृथ्वीका स्वामी बनेगा। तुम्हारा सब प्रकार अभ्युदय हो। तुम्हारे द्वारा की गयी यह स्तुति हमें अत्यन्त प्रीति प्राप्त करानेवाली है, जो भी श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उससे प्रसन्न होकर पितर उसका सर्वविध कल्याण करेंगे।' ऐसा कहकर पितर अन्तर्धान हो गये।

रुचि पितरोंकी कृपापर मुग्ध हो ही रहे थे कि उसी समय उस नदीके भीतरसे सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न एक मनोहर कन्याको लेकर प्रम्लोचा नामक अप्सरा प्रकट हुई और रुचिसे कहने लगी—'महात्मन्! यह मेरी अत्यन्त प्रिय तथा सभी प्रकारसे मनोहर कन्या है। यह वरुणके पुत्र महात्मा पुष्करसे उत्पन्न हुई है। मैं इस सुन्दरी कन्याको तुम्हें पत्नी बनानेके लिये समर्पित करती हूँ। इसे ग्रहण करो। इससे तुम्हें एक महान् पुत्रकी प्राप्ति होगी जो 'मनु'के नामसे प्रसिद्ध होगा।'

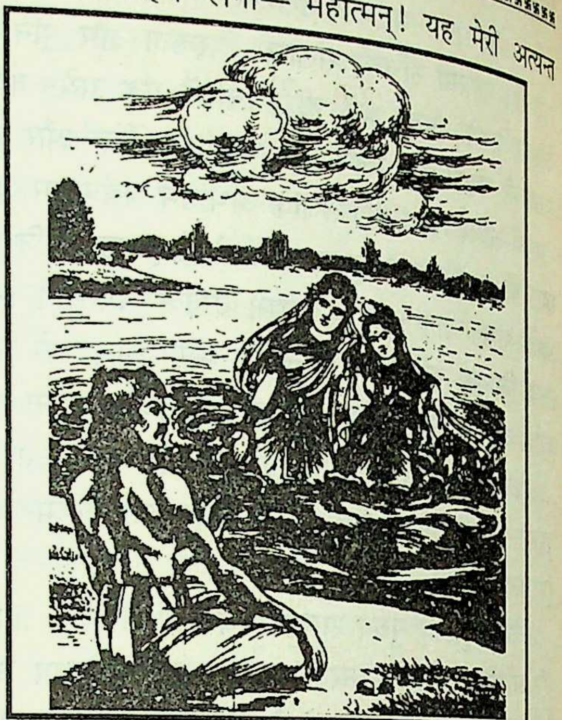

पितरोंका वर अमोघ था, पितरोंने बतलाया ही था कि अभी-अभी तुम्हें दिव्य पत्नी प्राप्त होगी और हुआ भी वैसा ही, रुचिने 'तथास्तु' कहकर प्रम्लोचाकी बात स्वीकार कर ली।

तदनन्तर प्रम्लोचाने अपनी कन्याको महर्षियोंके सांनिध्यमें वहीं नदी-तटपर रुचिको सविधि प्रदान किया और उससे एक पराक्रमी पुत्र प्राप्त हुआ। रुचिका पुत्र होनेसे वह 'रौच्य मनु'के नामसे विख्यात हुआ।

इस प्रकार पितर भी साक्षात् देवरूप हैं। वे अपनी संतान-परम्पराका सर्वविध कल्याण करनेके लिये समय-समयपर प्रकट होते हैं, दर्शन देते हैं, उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं। इसलिये पितरोंकी कृपा प्राप्त करनेके लिये, उनकी लीलाका दर्शन करनेके लिये नित्य ही पितरोंकी उपासना करनी चाहिये।

[मार्कण्डेयपुराण]

---

[१] मार्कण्डेयपुराणमें महात्मा रुचिद्वारा की गयी पितरोंकी यह स्तुति जो 'पितृस्तोत्र' कहलाता है, प्रायः अनेक पुराणोंमें समानरूपसे प्राप्त होती है, पितरोंकी प्रसन्नताकी प्राप्तिके लिये इस स्तोत्रका पाठ किया जाता है। इस स्तोत्रकी बड़ी महिमा है। श्राद्ध आदिके अवसरोंपर ब्राह्मणोंके भोजन करते समय भी इसका पाठ करने-करानेका विधान है।

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये श्रीहरिके नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(बृहन्नारदीयपुराण)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवान्के नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मङ्गलमय भगवान्के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय भगवान्की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण, जप-कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष चालीस करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी। प्रसन्नताकी बात है कि गत वर्षकी अपेक्षा इस वर्ष लोगोंने बड़े उत्साहसे भगवन्नामका जप किया तथा जप करनेवाले साधक महानुभावोंकी संख्यामें वृद्धि भी हुई। विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं, उनके अनुसार अड़तालीस करोड़ पंद्रह लाख पचहत्तर हजार मन्त्र-नाम-जप हुए हैं, जिन्हें अगले माह (नवम्बर)-में प्रकाशित किया जा रहा है। पिछले वर्ष इस नाम-जपकी संख्या लगभग पैंतीस करोड़ इकहत्तर लाख दो हजार थी। अतः आप महानुभावोंसे इस वर्ष पचास करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा वि०-सं० २०५६ तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्के इस प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष,

ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं—

(१) जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनाङ्क ४।११।१९९८ ई०) बुधवार रखी गयी है। इसके बाद भी किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा सं० २०५६ को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

(२) सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

(३) एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार माला (एक माला) जप तो अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

(४) संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अङ्गुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीकी माला उत्तम होगी।

(५) यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समयपर आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

(६) बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

(७) संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्णा कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रतिमन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जन जपकी संख्याकी सूचना ही भेजें, जप करनेवालोंके नाम आदि नहीं। सूचना भेजनेवालोंको अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें अवश्य लिखना चाहिये।

(८) प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

(९) जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर और प्रभावक बनते हैं।

(१०) सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण'—सम्पादकीय विभाग,
गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

प्रार्थी—
राधेश्याम खेमका
सम्पादक—'कल्याण'

* * *

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' का आगामी (जनवरी १९९९ ई० का) विशेषाङ्क

'वेद-कथाङ्क'

(ग्राहकोंसे नम्र निवेदन)

विश्व-वाङ्मयकी अमूल्य निधि—वेद हमारी संस्कृतिके मूल स्रोत तथा अक्षय ज्ञान-ज्योतिके अद्भुत प्रकाशोद्गम हैं। धर्मके साथ-साथ अध्यात्म, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, शिल्प-उद्योग, मर्यादा, जीवन-दर्शन आदि ऐसा कौन-सा विषय है, जिसका प्रतिपादन वेदोंमें न किया गया हो। इसीलिये मनीषियोंने इन्हें कालातीत अक्षय ज्ञानका निधान—'**भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति**' कहा है और समस्त धर्मोंका मूल—'**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्**' बताया है। अतएव वेदके स्वरूप, महत्त्व तथा सिद्धान्तसे परिचित होना हमारा—प्रत्येक भारतीयका नितान्त आवश्यक कर्तव्य है—

१-वेदोंके इस महत्तम ज्ञानसे सर्वसाधारण जन परिचित हो सकें—इस दृष्टिसे आगामी वर्ष—जनवरी १९९९ ई० में 'कल्याण'-विशेषाङ्कके रूपमें '**वेद-कथाङ्क**' प्रकाशित करनेका निर्णय लिया गया है। इस अङ्कमें सम्पूर्ण वेद-वाङ्मयका परिचय, वेदोंके प्रमुख प्रतिपाद्य विषयोंका विवेचन, वेदोंकी पवित्र ऋचाओंमें भगवत्तत्त्वदर्शन एवं वेदोंमें वर्णित आध्यात्मिक कथाओंका रोचक, ज्ञानप्रद दिग्दर्शन रहेगा। इसके अतिरिक्त इसमें मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंके उदात्त चरित्र, प्रमुख भाष्यकारोंके जीवन-वृत्त एवं वेदोंके प्रति पाश्चात्त्य विद्वानोंकी अवधारणासहित सूर, तुलसी तथा कबीर आदि लोकवन्द्य महाकवियोंके साहित्यमें वेद-मीमांसा इत्यादि अनेक ज्ञानवर्धक उल्लेखनीय विषयोंपर भी उपयोगी चर्चा रहेगी। अनेक बहुरंगे, सादे तथा रेखा-चित्रोंसे सज्जित और आकर्षक सचित्र आवरणसे युक्त यह विशेषाङ्क सबके लिये ज्ञानप्रद, उपादेय एवं पूर्ववर्ती 'कल्याण'-विशेषाङ्कोंकी परम्परानुगत लोकप्रियताका प्रतिनिधित्व करनेवाला 'सर्वप्रिय' सिद्ध होगा—ऐसी आशा है।

२-इस वर्ष डाकखर्चसहित मुद्रण-सामग्रियोंके मूल्यमें अत्यधिक वृद्धि हो जाने एवं अन्यान्य आवश्यक खर्चोंके बढ़ जानेके कारण न चाहते हुए भी हमें विवश होकर 'कल्याण' के वार्षिक शुल्कमें रु० १० की वृद्धि करनी पड़ी है। तदनुसार **नये वर्षके लिये 'कल्याण' का वार्षिक शुल्क रु० ९० (सजिल्द विशेषाङ्कका रु० १००) है। विदेशके लिये (समुद्री डाकसे) US $ 11 (ग्यारह डालर), (हवाई-डाकसे) US $ 22 (बाईस डालर) पूर्ववत् ही है। आशा है 'कल्याण' के सहृदय, सुविज्ञ, प्रेमी पाठक परिस्थितिजन्य हमारी विवशताको समझते हुए इस अपरिहार्य वृद्धिको सहर्ष सहजभावसे स्वीकार करेंगे।**

३-प्रतिवर्ष वार्षिक शुल्क भेजनेके उपक्रम तथा श्रमसे बचनेके लिये **इच्छुक सज्जन एक ही बारमें दस वर्षोंके लिये निर्धारित शुल्क-राशि रु० ६५० (अथवा सजिल्दके लिये रु० ७५०) भेजकर दसवर्षीय ग्राहक बन सकते हैं। विदेशके लिये दसवर्षीय शुल्क (समुद्री डाकसे) US $ 90 (अथवा हवाई-डाकसे US $ 180) है।**

४-इस अङ्कमें मनीआर्डर-फार्म संलग्न है। आगामी वर्ष-७३ (सन् १९९९ ई०)-के निमित्त शुल्क-राशि भेजनेके उद्देश्यसे ग्राहक महानुभावोंको इस मनीआर्डर-फार्मका सदुपयोग करना चाहिये। **मनीआर्डर-फार्मके पिछले भागमें, पीछेकी ओर आपका पूरा पता संलग्न है, जिसको ध्यानपूर्वक पढ़ लेना चाहिये। पतेमें यदि कोई परिवर्तन आवश्यक हो तो कृपया (इस पतेमें कोई सुधार न करके) एक पोस्टकार्डपर अपना शुद्ध पता लिखकर कार्यालयको तुरंत भेज दें। तदनुसार आपके पतेमें आवश्यक सुधार कर लिया जायगा।**

५-पुराने ग्राहकोंसे यह सानुरोध निवेदन है कि वे मनीआर्डर अथवा पत्र भेजते समय उसपर अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य अङ्कित किया करें। ऐसा करना कार्यकी शीघ्र सम्पन्नतामें विशेष सहायक है। सामान्यतः ग्राहकोंद्वारा मनीआर्डर/ इत्यादि-प्रेषणके समय ग्राहक-संख्याका उल्लेख न किये जानेपर कार्यमें अनावश्यक विलम्ब, समयकी बरबादी तथा कार्यालयके अतिरिक्त कार्य-भारकी वृद्धि होती है। अतः इस अवाञ्छित स्थितिसे बचने-बचानेके लिये सभी सज्जनोंसे अपेक्षित सहयोगकी आशा की जाती है।

६-नये वर्षके निमित्त ड्राफ्ट/मनीआर्डर आदि प्राप्त होने एवं उसके समायोजनमें ४-५ सप्ताहका समय प्रायः लग जाता है। अतः सभी ग्राहकोंको अपनी शुल्क-राशि शीघ्रातिशीघ्र, अधिकतम १५ दिसम्बर सन् १९९८ तक अवश्य भेज देनी चाहिये। गत वर्षकी तरह इस वर्ष भी हमारा यह प्रयास है कि ग्राहकोंको नया विशेषाङ्क—'वेद-कथाङ्क' भेजनेका शुभारम्भ फरवरीके प्रारम्भसे ही हो, जिससे फरवरीके अन्ततक सभी ग्राहकोंको प्राप्त हो सके। **जिन ग्राहकोंसे शुल्क-राशि समयसे (अधिक-से-अधिक दिसम्बरके अन्ततक) अग्रिम प्राप्त न होगी, उन्हें गत वर्षोंकी तरह नियमानुसार विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा भेजा जायगा। फलस्वरूप उन्हें अतिरिक्त राशि रु० ५.०० वी०पी०पी०-पोस्टेजके रूपमें देय होगी।**

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३
प्र० ति० २०-९-९८
LICENCE NO.–3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT.

७-जिन ग्राहकोंको किसी कारणवश नये वर्ष (सन् १९९९ ई०)-में यदि 'कल्याण'का ग्राहक न रहना हो तो वे कृपया एक पोस्टकार्डपर 'मनाही' की सूचना इस कार्यालयको अविलम्ब और अवश्य भेज दें; जिससे उन्हें विशेषाङ्ककी वी०पी०पी० रोकी जा सके और 'कल्याण'-कार्यालयको भारी डाकखर्चका नुकसान न उठाना पड़े।

८-'कल्याण'-प्रचारके इच्छुक सज्जन, पुस्तक-विक्रेता एवं समाजसेवी संस्थाएँ विशेषाङ्ककी कम-से-कम ५० प्रतियाँ एक साथ मँगाकर सद्भावोंके प्रचार-कार्यमें सहयोगी बन सकते हैं। इस निमित्त उन्हें रु० १० (दस रुपये) प्रति ग्राहककी दरसे प्रचार-प्रोत्साहन-राशि दी जायगी। कम-से-कम २५ प्रतियाँ एक साथ मँगवानी आवश्यक हैं; इससे कम मँगवानेवालोंको १० रु० प्रति अङ्ककी प्रोत्साहन राशि नहीं दी जा सकेगी। साधारण (मासिक) अङ्क 'कल्याण'-कार्यालयसे सीधे भेजे जायँगे, यदि चाहें तो साधारण अङ्क-वितरणकी व्यवस्था स्वेच्छया स्वयं भी कर सकते हैं।

९-**जयपुरके ग्राहकोंसे** अनुरोध है कि वे 'कल्याण'के निमित्त हमारे जयपुरके अधिकृत विक्रेता—**गीताप्रेस-पुस्तक-प्रचार-केन्द्र** बुलियन बिल्डिग, जौहरी बाजार, जयपुर—३०२००३ (दूरभाष—५६३३७९)-के यहाँ जनवरीके प्रथम सप्ताहतक अपना वार्षिक शुल्क कृपा कर अवश्य जमा करा दें। जिससे आपको नये वर्षका विशेषाङ्क—'वेद-कथाङ्क' प्राप्त करनेमें प्राथमिकता प्राप्त हो सके।

व्यवस्थापक—**'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर**—२७३००५

विनम्र सूचना

कतिपय तकनीकी कारणोंसे 'कल्याण'के अक्टूबर मासके अङ्कमें पृष्ठ-संख्या कम करनी पड़ी। हमारा प्रयास है कि नवम्बर मासके अङ्कमें पृष्ठ-संख्या बढ़ाकर अतिरिक्त पठनीय सामग्री उपलब्ध करा दी जाय।

गीता-दैनन्दिनी १९९९ ई० (सं० २०५५-५६)

छप गयी है दो आकार—चार प्रकारमें

पुस्तकाकार साइज—(८'' × ५$\frac{१}{४}$'')

(क) नवीन विशिष्ट संस्करण (कोड-नं० 874)—फोमका रेक्सीन कवर एवं सुनहरे कोने-सहित विशिष्ट संस्करण, प्रत्येक तारीखके लिये अलग पृष्ठ, श्रीमद्भगवद्गीताका मूलपाठ, प्रत्येक मासके अन्तमें एक अतिरिक्त पृष्ठ, प्रारम्भमें शीघ्र कल्याणकारी लेख, तिथि, वार, व्रत, सूर्योदय, सूर्यास्त आदि, दैनिक गीताभ्यासके लिये अत्युपयोगी। मूल्य रु० ३५ (डाकखर्च रजिस्ट्रीसे रु० १८)।

(ख) सामान्य संस्करण (कोड-नं० 503)—गत वर्षोंकी भाँति अच्छे कागजपर सुन्दर छपाई, श्रीमद्भगवद्गीताका मूलपाठ (संस्कृत एवं रोमन) व्यवहार एवं गीताभ्यासके लिये अत्युपयोगी, जीवनोपयोगी सूत्र, तिथि, वार, व्रत आदि। अच्छे प्लास्टिकका आवरण, सुन्दर बहुरंगा चित्र, मूल्य रु० २५ (डाकखर्च रजिस्ट्रीसे रु० १७)।

पाकेट-साइज—(५$\frac{३}{४}$'' × ३$\frac{३}{४}$'')

प्रतिवर्षकी भाँति सम्पूर्ण गीता, तिथि, वार, व्रत आदि अनेक नित्योपयोगी सूचनाएँ, रूलदार पृष्ठ।

(कोड-नं० 506)—कपड़ेका आवरण, सुन्दर बहुरंगा चित्र, मूल्य रु० १०.०० (डाकखर्च रु० ४.००)।

(कोड-नं० 615)—प्लास्टिक आवरण तथा बहुरंगा चित्र, मूल्य रु० १२ (डाकखर्च रु० ४.००)।

गीताभवन-औषधालय

'गीताभवन-औषधालय', स्वर्गाश्रमद्वारा शास्त्रोक्त-विधिसे गङ्गाजलद्वारा विशुद्ध आयुर्वेदिक औषधियोंका निर्माण होता है। आप अपनी आवश्यकतानुसार औषधियाँ मँगवा सकते हैं।

व्यवस्थापक—**गीताभवन, पत्रालय-स्वर्गाश्रम, पिन—२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश)** (उ० प्र०)

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

LIBRARY
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARDWAR

कल्याण

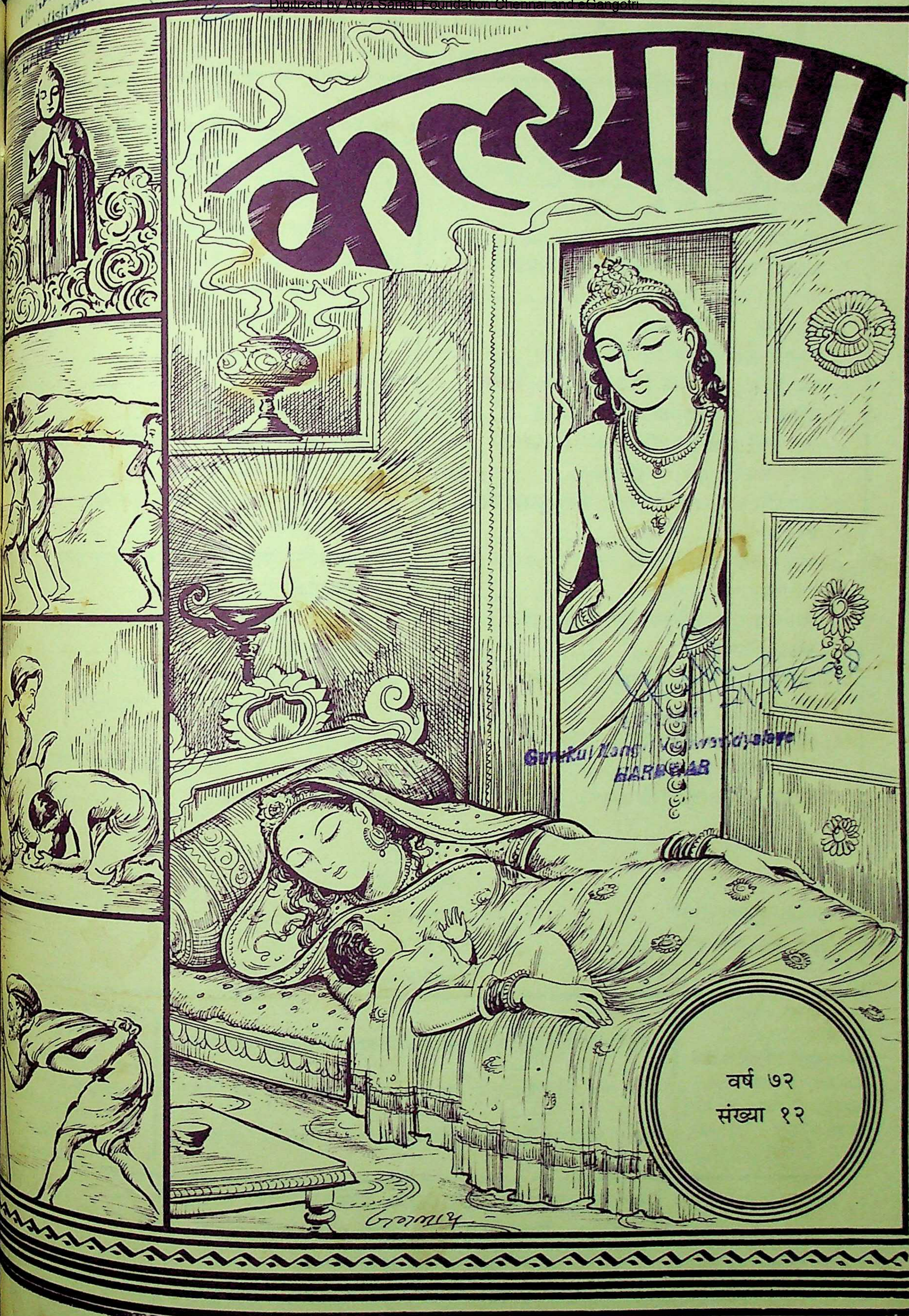

Gurukul Kangri Vishwavidyalaya
HARDWAR

वर्ष ७२
संख्या १२

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,३५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, दिसम्बर १९९८ ई०

विषय — पृष्ठ-संख्या

१- कृष्ण-बलरामका वन-विहार ८९३
२- कल्याण (शिव) ८९४
३- ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सत्संगकी कुछ अमूल्य बातें ८९५
४- 'नर-सेवा—नारायण-सेवा' (स्वामी श्रीसत्यमित्रानन्दगिरिजी महाराज) ८९८
५- सब भगवान्‌की पूजाके लिये हो (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ९००
६- ईश्वर कहाँ रहते हैं (डॉ० श्रीभुवनेश्वरप्रसादजी वर्मा 'कमल',एम्०ए०, डी०लिट्०) ९०१
७- साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ९०३
८- जनसंख्याकी वृद्धि रोकनेके अमानुषिक उपाय (श्रीपन्नालालजी मुन्धड़ा) ९०७
९- नाम-जप और संकीर्तन [एक संतका उपदेश] ... ९०९
१०- *लीला-चिन्तन*— .... ९१२—९१४
 श्रीरामलीला-चिन्तन—[भगवान् श्रीरामकी दिनचर्या] ९१२
११- कलियुगमें भगवत्साक्षात्कारका सरल साधन (गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी पिलखुवा) [प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल] ९१५

विषय — पृष्ठ-संख्या

१२- साधक-प्राण-संजीवनी (गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज) ९१६
१३- सत्य-प्रेम-करुणा—एक चिन्तन (श्रीराधाकृष्णजी बजाज) ९१९
१४- मरीचि आदि महर्षियोंकी लोककल्याण-कारक लीला ९२१
१५- *बाल-कल्याण*— .... ९२३—९२६
 [१] बालकका कल्याण ९२३
 [२] बालक अबूशहमाका सत्यके लिये आत्मबलिदान ९२५
 [३] बालकोंद्वारा ईश-प्रार्थना [कविता] ९२६
१६- साधनोपयोगी पत्र ९२७
१७- वाराणसीमें गोपाष्टमी-महोत्सव [उत्तर प्रदेश सरकारद्वारा गोसेवा-आयोगके गठनकी घोषणा] ९२९
१८- पढ़ो, समझो और करो ९३१
१९- मनन करने योग्य—श्रेष्ठ कौन है? (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०) ९३३
२०- संख्या ३ से १२ तक प्रकाशित लेखादिकी वार्षिक विषय-सूची ९३७

* * *

चित्र-सूची

१-भगवान् बुद्धका वैराग्य	(इकरंगा)	आवरण-पृष्ठ
२-कृष्ण-बलरामका वन-विहार	(रंगीन)	मुख-पृष्ठ

* * *

इस अङ्कका मूल्य ४ रु०
विदेशमें—US$0.40
वार्षिक शुल्क वर्ष ७३ के लिये
डाक-व्यय-सहित (भारतमें) ९० रु० (सजिल्द १०० रु०)
विदेशमें—US$11 (Sea Mail)
US$22 (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

दसवर्षीय शुल्क
(डाक-व्ययसहित)
(भारतमें) ६५० रु०
(सजिल्द ७५० रु०)
विदेशमें—US$ 90 (Sea Mail)
US$ 180 (Air Mail)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

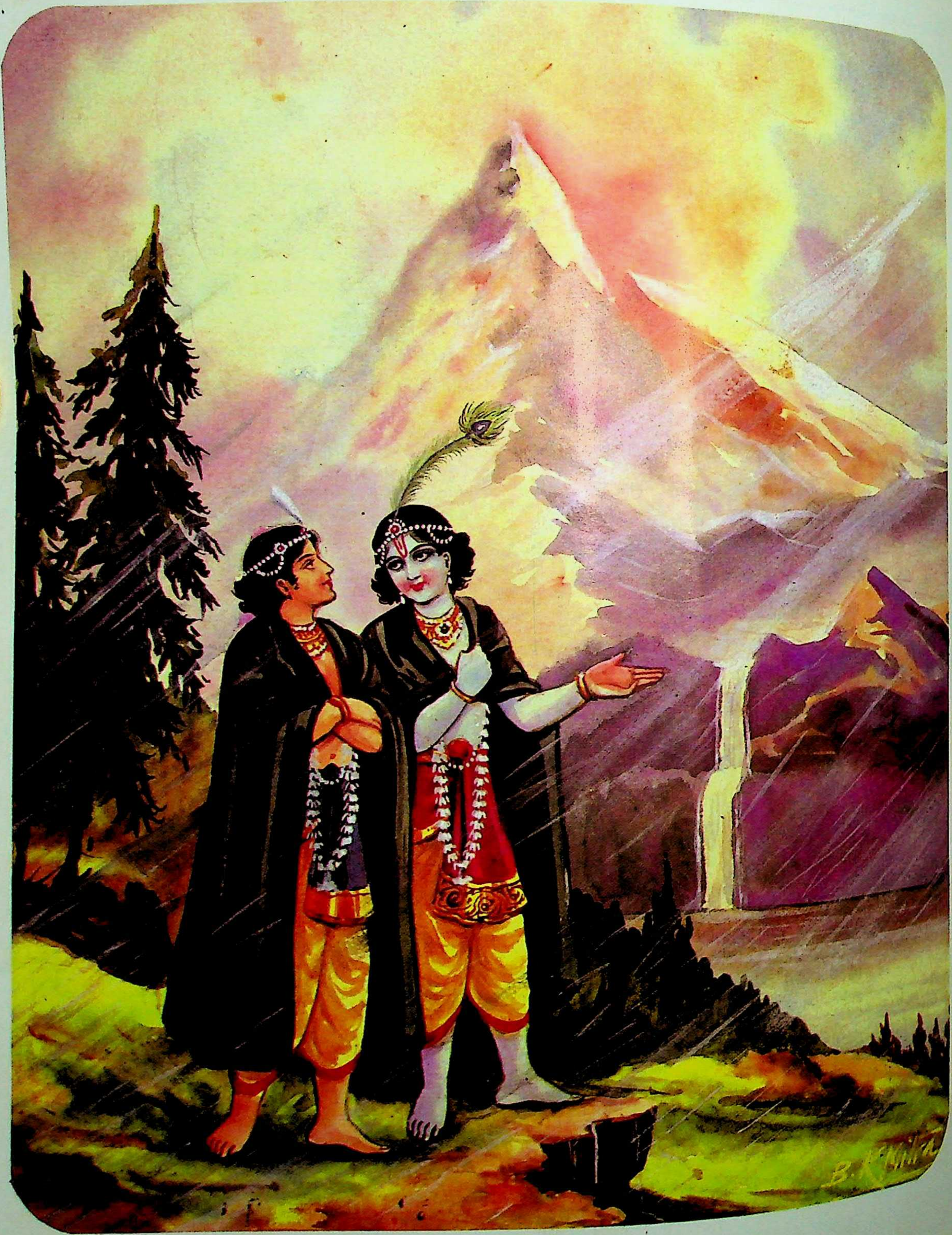

कृष्ण-बलरामका वन-विहार

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

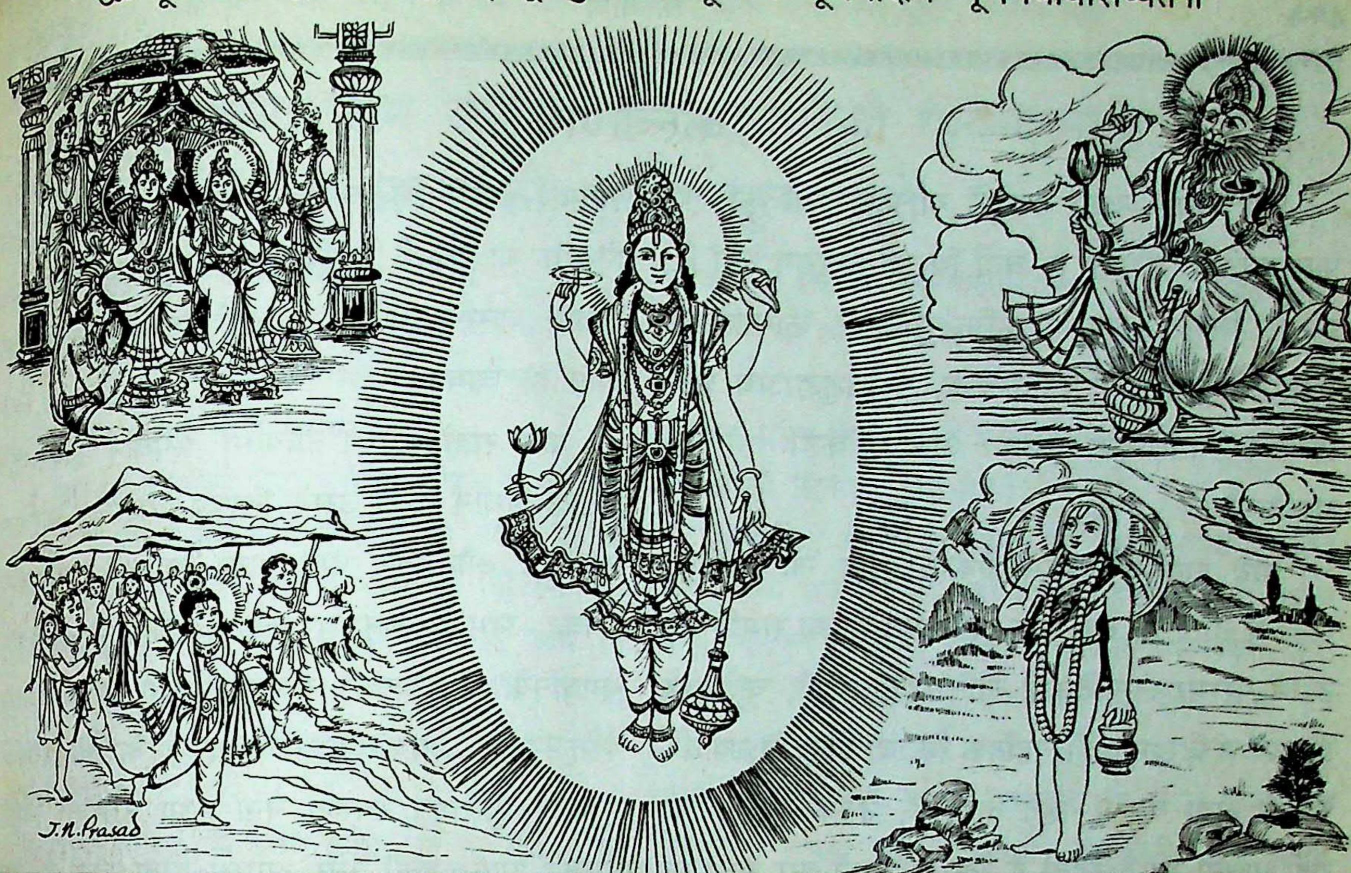

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

वर्ष ७२
गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०५५, श्रीकृष्ण-सं० ५२२४, दिसम्बर १९९८ ई०
संख्या १२
पूर्ण संख्या ८६५

कृष्ण-बलरामका वन-विहार

आजु बन राजत जुगल किसोर।
दसन-बसन खंडित मुख मंडित, गंड तिलक कछु थोर॥
डगमगात पग धरत सिथिल गति, उठे काम-रस-भोर।
रति-पति सारँग अरुन महा छबि, उमँगि पलक लगे भोर॥
स्त्रुति अवतंस बिराजत हरि-सुत, सिद्ध-दरस-सुत ओर।
सूरदास-प्रभु रस-बस कीन्ही, परी महा रन जोर॥

कल्याण

याद रखो—जहाँ बदलेमें या फलरूपमें कुछ भी प्राप्त करनेकी कामना है, वहाँ विशुद्ध अनुराग नहीं है। इसीसे विशुद्ध अनुराग भुक्ति-मुक्तिकी कामनावाला संसारी मनुष्य नहीं कर सकता, न विशुद्ध प्रेम परम प्रियतम भगवान्‌के सिवा अन्यत्र कहीं हो ही सकता है।

याद रखो—संसारमें एकके साथ जो दूसरेका सम्बन्ध होता है, वह चाहे व्यक्तिगत हो या समष्टिगत, उसमें परस्पर लेन-देनकी नीति रहती ही है, चाहे वह प्रकटमें न दिखायी दे। यहाँतक कि जो लोग निःस्वार्थ-भावसे सेवा या पर-हित करते हैं, उनके हृदयमें भी यह भावना छिपी रहती है कि वे अपने इस सेवा या पर-हित-कार्यके द्वारा एक लोकोपकारी महान् आदर्श उपस्थित कर रहे हैं, वरं बहुत गहरेमें जाकर देखा जाय तो उनमें किसी-न-किसी रूपमें मान-पूजा या ख्याति-प्रशंसाकी कामना छिपी रहती है।

याद रखो—जो लोग निःस्वार्थभावसे देवाराधन, जनसेवा आदि कार्य करते हैं, वे भी कम-से-कम इस कार्यके द्वारा अन्तःकरणकी शुद्धि तो चाहते ही हैं और अपनेको सर्वथा निष्काम मानकर केवल मुक्तिके लिये ही साधना करते हैं, उनमें भी संसार-दुःख-निवृत्ति या जन्म-मृत्युके चक्रसे छूटनेकी कामना रहती है। अतएव जहाँतक एकमात्र भगवान्‌में परम प्रियतम-बुद्धि नहीं होती और प्रियतम-सुखके लिये ही जीवन नहीं बन जाता, वहाँतक किसी-न-किसी रूपमें अन्याभिलाषा रहती ही है। जहाँतक अन्याभिलाषा है—किसी भी रूपमें भुक्ति-मुक्तिकी कामना है, वहाँतक विशुद्ध प्रेम नहीं है। वह एक प्रकारका लेन-देनका व्यापार ही है। कम लाभका हो या अधिक लाभका—साधनाके फलस्वरूप किसी लौकिक दुःखकी निवृत्ति या किसी लौकिक वस्तुकी प्राप्ति हो जाय अथवा जन्म-मरणरूप दुःखकी निवृत्ति या मुक्तिकी प्राप्ति हो जाय।

याद रखो—परम प्रियतम भगवान् अपने प्रेमी भक्तके अधीन होकर उसके विशुद्ध प्रेमरसका आस्वादन करते हैं और वह प्रेमी भक्त अपनेमें सदा-सर्वदा प्रेमका अभाव अनुभव करता हुआ परम प्रियतम भगवान्‌के स्वभावकी महिमा गाता रहता है और भुक्ति-मुक्ति सबका विसर्जन देकर केवल प्रियतम-सुखका मूर्तिमान् स्वरूप बना हुआ उत्तरोत्तर विशुद्ध प्रेमकी अनन्तताकी ओर अग्रसर होता रहता है। यही परम प्रियतम भगवान्‌के साथ विशुद्ध प्रेमसम्पन्न भक्तका सम्बन्ध होता है और यह सम्बन्ध केवल प्रेमके लिये ही होता है और होता है परम प्रियतम भगवान् और विशुद्ध (भुक्ति-मुक्ति-वासनालेश-शून्य) प्रेमी भक्तमें ही।

याद रखो—ऐसा विशुद्ध प्रेमी भक्त वस्तुतः मुक्त ही होता है और वह वस्तुतः पराशान्तिको प्राप्त होता है। बल्कि मुक्ति और शान्ति अनायास ही अपनेको धन्य करनेके लिये उसकी सेवामें नियुक्त रहती हैं। अतः किसी प्रकारका भी कोई बन्धन उसको नहीं रहता और न किसी भी प्रकारकी कोई परिस्थिति उसकी शान्तिमें तनिक बाधक हो सकती है। हाँ, एक बन्धन उसमें अवश्य रहता है, वह है विशुद्ध प्रेमका बन्धन, जिसमें भगवान् स्वयं उसके साथ बँधे रहते हैं और इस बन्धनसे वह कभी मुक्त होना नहीं चाहता। यही तो उसका स्वरूप-सौन्दर्य है।

—'शिव'

* * *

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सत्संगकी कुछ अमूल्य बातें

तन-मन-धनसे सेवा करना

निष्कामभावसे रुपये लगाना (धन)। एक दिन भगवान्का भजन करना (तन)। एक मिनट मनसे भगवान्का चिन्तन करना (मन)। फलमें तीनों बराबर हैं।

मैं आजकल लोगोंकी सेवा शरीरसे तो एक या दो घंटा करता हूँ। बाकी मनसे १-२ घंटासे भी ज्यादा करता हूँ। मैं अपने मनमें यही सोचता रहता हूँ कि लोगोंका उद्धार किस तरह हो। यदि मेरे संनिपात हो जाय तो यह बात वायु-प्रकोपसे बाहर हो जायगी कि सबका कल्याण कैसे हो, उद्धार कैसे हो। इसी प्रकार मेरे मुखसे निकलेगा।

श्रीगीताजीका घर-घर प्रचार करना चाहिये, रोम-रोममें रमानी चाहिये। संसारकी परम सेवा करनेवालोंके उद्धारमें तो संशय ही नहीं है, केवल भाव रखनेवालोंका भी उद्धार हो सकता है। अपने धर्मका पालन करनेसे कल्याण होना निश्चित है। उदाहरणमें, जैसे गुरु गोविन्दसिंहके पुत्र। श्रीगीताजीका प्रचार सम्पूर्ण जातियोंमें—अंग्रेजों तथा मुसलमानोंमें भी करना चाहिये। जिस समाजमें विद्या और त्याग होगा वह समाज कभी नहीं गिर सकता, क्योंकि विद्या और त्याग मनुष्यके दो पंख हैं। असली पंख तो त्याग है और दूसरी है विद्या।

लोग ध्यानका आदर नहीं करते; परंतु जो अनन्य ध्यानसे जिसका आदर करते हैं वह उसे प्राप्त होता है। भगवान्की प्राप्ति होनेमें संदेह क्या है, जबकि ध्यानसे ही जीवन-मुक्त हो जाता है। अग्नि, गाय, ब्राह्मण, तुलसी और गङ्गा—इनका देवताके समान आदर करना चाहिये। वर्तमान समयमें अकाल आदि जो-जो आपत्तियाँ पड़ी हुई हैं, वहाँ अन्न आदिकी सहायता दी जाय तो यह सात्त्विक दान है। जो भगवान्के नामका जप और स्वरूपका ध्यान करता रहता है, उसे भगवान् स्वयं आकर दर्शन देते हैं। आश्रय, प्रेरणा, आज्ञा, शिक्षा, उपदेश और वरदान—ये एक-से-एक तेज हैं। प्रेरणाके अनुसार साधन करनेसे वरदानके माफिक लाभ हो सकता है। जिस आदमीमें जो गुण हो उसका चिन्तन करनेसे उसका गुण उसमें आ जाता है, जैसे श्रीभगवान्का और भगवान्के भक्तोंका चिन्तन करनेसे उनके गुण चिन्तन करनेवालोंमें आ जाते हैं। भजन-ध्यान होनेमें साधन करनेवालोंके पास रुपया होनेकी अपेक्षा ऋण होना ज्यादा बाधक है। श्रीभगवान्की पूर्ण कृपा तो सदा ही है, इस समय विशेष कृपा है। चेष्टा न करनी बहुत मूर्खता है, अपनी तरफकी त्रुटि है।

पाँच बातें अमूल्य हैं—प्रेम, ज्ञान, श्रद्धा, उपरामता और वैराग्य—ये सब रुपयोंसे नहीं मिलते। इनमें प्रेम ही प्रधान है। प्रेम करनेवालोंको साकार-निराकार-स्वरूपकी प्राप्ति होती है, ज्ञानवालेको सच्चिदानन्दघनकी प्राप्ति होती है। श्रीभगवान्के दर्शनकी भी इच्छा नहीं रखनी चाहिये। यदि दर्शनकी इच्छा नहीं रखनेसे साधन ढीला हो तो भगवान्के मिलनेकी इच्छा रखनी चाहिये। मनुष्यको ऐसा बनना चाहिये, पहले तो स्वयंको भगवत्प्राप्ति हो जाय, बादमें जिसके बारेमें बताये कि उसको प्राप्ति हो गयी उसे सत्य माना जाय और फिर वह जिसे कह दे उसे प्राप्त हो जाय—बादमें उसके चितवनमात्रसे ही भगवत्प्राप्ति हो जाय। श्रीगीताजीकी महिमा और श्रीगीताजीके प्रचारके बराबर दूसरे काममें लाभ नहीं है, मुझे जो कुछ लाभ देखनेमें आता है वह श्रीगीताजीका प्रभाव है। *'गीता गङ्गा गायत्री गौ गोविन्दका नाम। इन पाँचोंकी शरणसे पूर्ण होय सब काम॥'* यद्यपि इन एक-एककी शरणसे भी बेड़ा पार है तो भी गीता और गोविन्दका नाम इनमें भी प्रधान है। गीता ज्ञानका प्रवाह है। भजन-ध्यान करना, सात्त्विक पदार्थ खाना, संयमसे रहना तथा शान्तिमय भाव रखना चाहिये।

भजन—प्रेममें विह्वल होकर निष्कामभावसे नित्य-निरन्तर भगवान्के नामका जप करना भजन है।

ध्यान—साकार अथवा निराकार भगवान्के स्वरूपमें चित्तकी एकाग्रता ही ध्यान है और भगवान्के सिवाय ध्यान करनेवालेको अपने-आपका भी ज्ञान नहीं रहे तो उसका नाम 'समाधि' है।

सत्संग—सत्पुरुषोंके द्वारा जितने समयतक भगवद्विषयक वार्ता सुनी जाय, उसका नाम साधारण पुरुषोंके लिये सत्संग है। परंतु परम श्रद्धालु पुरुषोंके लिये उन सत्पुरुषोंके दर्शन, भाषण, स्पर्श तथा चिन्तनसे भी सत्संग बनता रहता है;

क्योंकि उनको पद-पदपर शिक्षा मिलती रहती है।

सद्विद्या—जिस विद्याके द्वारा परमात्मामें प्रेम हो उसीका नाम सद्विद्या है।

सत्-शास्त्र—जिन शास्त्रोंके द्वारा संसारसे वैराग्य और परमेश्वरमें प्रेम हो जाय उन्हींका नाम सत्-शास्त्र है।

परम सेवा—जिन आचरणोंके द्वारा जीवोंको परम सुख मिले वही परम सेवा है।

जैसे लोग नये कामके सीखनेमें लगाते हैं उसी तरह योगदर्शनके अनुसार साधन करनेमें एक-दो घंटा रोज लगाना चाहिये। जिनके घरमें नित्य कथा-सत्संग होता है, उनके भाग्यकी बड़ाई कोई भी नहीं कर सकता। भगवान्‌का काम करे और उसका भार उनपर ही छोड़ दे।

हरि-चरणोंमें प्रेम होनेके लिये आठ बातें सार हैं

(१) **भगवान्‌की शरण**—जो कुछ सुख-दुःखादि प्राप्त हों, उनको भगवान्‌की आज्ञासे प्राप्त हुआ मानकर आनन्दके सहित स्वीकार करना।

(२) **जीवोंकी परम सेवा**—सबको भगवान्‌की भक्तिमें लगानेकी कोशिश करना।

(३) **सत्संग**—भगवद्भक्तोंका संग करना, यदि उनका संग न मिले तो उनके भक्तोंका संग भी बहुत लाभदायक है।

(४) **एकान्त-साधन**—एकान्तमें परमेश्वरके ध्यान करनेकी चेष्टा करना। यदि ध्यान नहीं लगे तो ध्यान लगानेके लिये श्रीगीताजीके ध्यान-विषयक श्लोकोंके अर्थका विचार करना।

(५) **व्युत्थान-समयका साधन**—परमेश्वरके स्वरूपका चिन्तन करता हुआ चलते-फिरते सब समय परमेश्वरके नामके जपका अभ्यास करना।

(६) **साधनोंमें हेतु**—भगवान्‌के सिवाय और किसी चीजकी भी इच्छा नहीं करनी, केवल भगवान्‌के मिलनेकी उत्कट इच्छा करनी।

(७) **भगवदर्थ कर्म**—जिस काममें भगवान् राजी हों, उस कामको करनेकी चेष्टा यानी हिंसा-वर्जित सदाचारका पालन करना।

(८) **सम्पूर्ण जीवोंकी सेवा करना**—निष्कामभावसे सब जीवोंकी सेवा यानी मनुष्योंको तथा सब जीवोंको जिस प्रकारसे सुख पहुँचे वैसी चेष्टा।

—इन सभी बातोंको काममें लानेसे भगवान्‌में बहुत ही जल्दी प्रेम हो सकता है। इनमेंसे एक भी बात काममें लानेसे भगवान्‌में बहुत ही जल्दी प्रेम हो सकता है, परमात्मा मिल सकते हैं। इन बातोंमें एक-से-एक अधिक लाभदायक है। आठवाँकी अपेक्षा सातवाँ नंबर अधिक लाभदायक है। इसी प्रकार सातकी अपेक्षा छः इस क्रमसे समझना चाहिये। गीताजीका अर्थसहित पाठ करनेसे बहुत लाभ है, क्योंकि अन्तकालमें याद रह जाय तो उद्धार हो जाय। चलते समय सब जगह परमात्माको देखना चाहिये। इस तरह साधन करनेसे बहुत लाभ होता है। नेत्रोंसे जो चीज देखनेमें आये उसे उस रूपमें न देखे, क्योंकि वास्तवमें सबमें एक परमात्मा ही परिपूर्ण है। जो दीखता है सो है नहीं, जैसे संसार और मृगतृष्णाका जल तथा तिरमिरा। ये दृष्टान्त भी यहाँ घटते नहीं। वास्तवमें एक आनन्दघन ही है। आनन्द है, बोध है, जो ज्ञान-स्वरूप है। इस प्रकार विचार करनेसे पहले तो आनन्दकी लहर उठती हुई-सी मालूम पड़ती है, पीछे और साधन बढ़नेसे एक ज्ञान-स्वरूप ही रह जाता है।

अपनी ओरसे तो मुसलमानोंको भी किसी तरहकी तकलीफ नहीं पहुँचानी चाहिये। अपनी चाहे जितनी शक्ति हो तो भी उनको कष्ट नहीं देना चाहिये। हिन्दुओंको मदद देनी चाहिये। जैसे जबरदस्ती मुसलमानोंको हिन्दू बनाना अन्याय है, वैसे ही हिन्दुओंको मुसलमान बनाना अन्याय है। गीतामें एक-एक शब्द हीरा-मानिककी तरह जड़ा है। मेरा मत गीता है। गीताके विरुद्ध चाहे वेद ही क्यों न हो मुझे मान्य नहीं है। गीता श्रुति-स्मृति—सबका सार है। अर्जुन भगवान्‌का भक्त तो अच्छा था, परंतु भगवान्‌को साक्षात् जाननेमें कुछ त्रुटि रहनेके कारण इतने भारी भक्तमें भी कुलका मोह हो गया। माया ऐसी चीज है कि अद्भुत घटना घटा देती है। भगवान्‌में प्रेम होनेका उपाय है भगवद्भक्ति।

भगवद्भक्ति ही प्रेमका स्वरूप है, भगवान्‌में जो अत्यन्त अनुराग है, उसका नाम प्रेम है और उस भगवद्भक्तिका जो भेद है, उसका पूरी तरह पालन करनेसे भगवान्‌में अनन्य प्रेम हो जाता है।

नवीन नवधा भक्ति

(१) **सत्संग**—भगवद्भक्तोंके दर्शन-चिन्तन-स्पर्शसे तथा उनके वचन सुननेसे अति हर्षित होना 'सत्संग' है।

(२) **कीर्तन**—प्रेममें मग्न होकर हर समय भगवन्नामका स्मरण तथा प्रेम और भगवन्नामके प्रभावसहित भगवान्‌के गुणोंका कथन करना 'कीर्तन' है।

(३) **स्मरण**—सारे संसारमें भगवान्के स्वरूपका चिन्तन करना 'स्मरण' है।

(४) **शुभेच्छा**—भगवान्के दर्शनकी और उनमें प्रेम होनेकी उत्कट इच्छा होनी 'शुभेच्छा' है।

(५) **संतोष**—जो कुछ आकर प्राप्त हो उसे पतिव्रता स्त्रीकी भाँति भगवदाज्ञासे प्राप्त हुआ मानकर आनन्दसे स्वीकार करना 'संतोष' है।

(६) **सेवा**—सभी जीवोंको परमेश्वरका स्वरूप समझकर निष्कामभावसे उनकी सेवा और सत्कार करना 'सेवा' है।

(७) **निष्काम कर्म**—निष्काम-भावसे शास्त्रोक्त सभी कर्मोंमें ईश्वरके अनुकूल बर्तना अर्थात् जिससे परमेश्वर प्रसन्न हों, वे ही कर्म करना 'निष्काम कर्म' है।

(८) **उपरामता**—संसारके भोगोंसे चित्तको हटाना 'उपरामता' है।

(९) **सदाचार**—ईश्वरमें प्रेम होनेके लिये अहिंसा तथा सत्य आदिका पालन करना 'सदाचार' है।

भगवन्नाम-जपका साधन बढ़ाना चाहिये, किंतु काम नहीं छोड़ना चाहिये। भगवन्नाम-जपका साधन एक-एक माला करके प्रतिदिन बढ़ाना चाहिये। ब्रह्मचर्याश्रम, गीताका प्रचार, सत्संगका प्रचार—ये सब काम बहुत अच्छे हैं, लोगोंसे कहा भी जाता है। आगे समय बहुत खराब आ रहा है। जितना आराम है उससे लाख गुना दुःख है। दृष्टान्तमें, मनुष्यके एक जन्मका किया हुआ पाप ८४ लाख योनियोंमें भोगना पड़ता है तथा स्त्रीके साथ किये गये एक मिनटके सुखका परिणाम-दुःखभोग लाखों वर्ष नरकमें भोगना पड़ता है। एक झूठ बोलनेसे सैकड़ों जन्म नरकमें रहना पड़ता है। जो जितना ही आरामका त्यागी होगा, वह उतना ही भगवान्के नजदीक होगा। नास्तिकोंमें भी थोड़ा त्याग है, उनको आदर प्राप्त करानेमें उनके त्यागकी ही महिमा है।

संन्यास-आश्रमके तो ताला लग गया, एक गृहस्थाश्रम ही है, इसमें निश्चिन्त होकर भजन-ध्यान करो। मैं कौन हूँ, कहाँसे आया हूँ, मुझे क्या करना चाहिये और मैं क्या कर रहा हूँ?

मैं परमात्माका अंश हूँ, ८४ लाख योनियोंसे संसार-चक्र-भ्रमण करता-करता आया हूँ। अपने स्वरूपको पहचानना ही मेरा कर्तव्य है। क्या कर रहा हूँ यह विचार करना चाहिये।

दो बात त्यागनेसे बहुत लाभ है—स्त्रियोंका संग और ब्राह्मणोंसे द्वेष।

दो बात सदा करनेके लायक है—सदाचारका पालन और विद्याका अभ्यास।

श्रीरामचन्द्रजी तथा श्रीकृष्णचन्द्रजीका किसी भी ब्राह्मणके साथ द्वेष नहीं था। वे सभीको प्रसन्न रखते थे। श्रीराम और श्रीकृष्ण आदिके कालमें भी हम कुछ-न-कुछ थे ही। उस समय नहीं चेतनेके कारण अभीतक जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़े हुए हैं। अब भी चेतना चाहिये जिससे आगेके जन्म-मरणसे छुटकारा मिल जाय। संसारकी उन्नतिके लिये भक्ति और विद्यालयोंद्वारा गीताका प्रचार करना चाहिये, ब्राह्मणोंका मन-वाणी-शरीरसे सत्कार करना चाहिये तथा विद्वानोंका तो विशेष रूपसे ही। अपने भक्तिके प्रचारमें जो लोग विघ्न नहीं करते, वह भी उनकी मदद ही है। सिद्धि दिखाना यद्यपि निन्दाकी बात है तब भी भक्त लोग उस कामको संसारके हितके लिये कर लेते हैं। भगवान्का बर्ताव देखकर चित्तमें गद्गद-भाव तथा अश्रुपात होना चाहिये। जैसे विषका कीड़ा विषमें ही प्रसन्न रहता है तथा मैलेका कीड़ा मैलेमें ही प्रसन्न रहता है, उसी तरह संसारके लोग संसारमें राजी रहते हैं। परंतु वास्तवमें उनका दुःख देखकर भी महात्मा लोग उनको मैलेसे निकालकर मारना नहीं चाहते, उसी प्रकार संसारके लोग संसारमें राजी हैं, इसलिये उनको भगवान् जबरदस्ती कैसे निकालें। भगवान् श्रीकृष्णके साथ दुर्वासा मुनिका बर्ताव तथा अश्वत्थामाद्वारा पाण्डवोंके पुत्रोंको अन्यायसे मारनेपर भी अश्वत्थामापर क्षमा। ब्राह्मणोंका इतना कड़ा बर्ताव होते हुए भी ब्राह्मणोंके साथ नम्रताका बर्ताव था। एक समय श्रीकृष्णभगवान्से जब अश्वत्थामाने सुदर्शनचक्र माँगा, तब भगवान्ने विचारा कि इसको देनेसे यह कोई अन्याय कर देगा, पर इसे मना करना भी ठीक नहीं। तब भगवान्ने चक्रको बहुत भारी कर दिया और बोले—तुमसे उठे तो ले जा।

प्रश्न—कामना छोड़नेके बाद भी कुछ बाकी रहता है क्या?

उत्तर—बहुत-सा काम हो जाता है, थोड़ा बाकी रहता है।

* * *

'नर-सेवा—नारायण-सेवा'

(स्वामी श्रीसत्यमित्रानन्दगिरिजी महाराज)

सेवाका मनुष्य-जीवनमें बड़ा महत्त्व है। मनुष्य-जीवनकी सार्थकता इसीमें है कि दूसरोंकी सेवा करे। सेवाका भाव तभी जागेगा, जब हम दूसरेके भीतर परमात्माको देखें; क्योंकि सभी भूत-प्राणियोंमें अविनाशी परमात्माका तत्त्व समाविष्ट है। यदि कोई केवल अपने लिये ही जीता है तो उसका कोई श्रेष्ठ जीवन नहीं कहा जा सकता। जो दूसरेके लिये सहायक नहीं हो सके, उसके जीवनका फल ही क्या है? हमारे शास्त्रोंने कहा है—

यो नात्मजे न च गुरौ न च भृत्यवर्गे
दीने दयां न कुरुते न च बन्धुवर्गे।
किं तस्य जीवितफलं हि मनुष्यलोके
काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुंक्ते॥

इसका अभिप्राय यह है कि जिसमें प्राणिमात्रके प्रति दयाभाव—सेवाभाव नहीं है, उसका जीवन तो केवल अपना पेट भरनेके उद्देश्यसे बहुत दिनोंतक जीवित रहनेवाले कौवेके समान है। ठीक ऐसे ही मनुष्य केवल भोजन करे, कपड़े पहन ले, किसी प्रकारसे रह ले, जीवन चला ले—और फिर विचार करे कि मेरा जीवन सार्थक चले तो यह मनुष्य-जीवनकी सार्थकता नहीं। उच्च कोटिका जीवन जीनेमें ही मानव-जीवनकी सार्थकता है।

शास्त्रोंकी दृष्टिसे, संसारके सारे श्रेष्ठ पुरुषोंकी दृष्टिसे—मनुष्य-शरीर सर्वश्रेष्ठ है, जब वह नारायणकी सेवा करनेका प्रयत्न करे। इसीलिये उसे 'नर' कहा जाता है।

प्रश्न यह उठता है कि क्या नारायणकी सेवा मन्दिरमें ही होती है? नहीं। चलता-फिरता हजारों आदमियोंका समुदाय दिखायी देता है—उसमें कुछ रोगी हैं, कुछ बीमार हैं। किसीको कुष्ठ रोग हो गया है तो कोई विकलाङ्ग है। इन असहाय, पीड़ित तथा दुःखी लोगोंमें परमात्माका दर्शन कर जब मानव-मनमें सेवा-सहायताका भाव जाग्रत् होगा, तब नरके द्वारा यह नारायणकी सेवा होगी।

गरीब देशोंकी समस्या तो और भी विकट है। वहाँ गरीबीकी रेखासे नीचे बड़ी संख्यामें लोग जी रहे हैं। ऐसे कितने ही लोग हैं, जिनके पास अपने मकान नहीं हैं। कितने ऐसे लोग हैं जो अपने बच्चोंको पढ़ा नहीं पाते या जिस किसी प्रकार कुछ पढ़ा पाते हैं। रोगी होनेपर अपने बच्चोंको, अपने परिवारवालोंको किसी अच्छे अस्पतालमें भर्ती कराकर इलाज नहीं करा पाते हैं। ये सारी परिस्थितियाँ देखनेके बाद हमारे भीतरका—मनका भगवान् जागना चाहिये। जब मनका भगवान् जागता है तो ऐसे दुःखी लोगोंके भीतर बैठे नारायणकी सेवाका भाव जागता है।

आपको भगवान्‌ने सम्पत्ति दी है। आप अपने गाँवमें देखते हैं कि ऐसे कई बच्चे हैं जिनके पास कपड़े नहीं हैं, परंतु उन्हें बुद्धि मिली है। उनका परीक्षा-परिणाम अन्य सम्पन्न बच्चोंसे अच्छा आता है, परंतु उनके अभिभावक विवश हैं और आगे पढ़ानेकी क्षमता उनमें नहीं है। ऐसी परिस्थितिमें आपका पुनीत कर्तव्य होता है कि आप संकल्प लें कि इनसे मेरे गाँवका, मेरे देशका नाम होगा, इसलिये मैं इन्हें पढ़ाऊँगा। जिस दिन आपने यह संकल्प लिया, उस दिन भगवान् बड़े प्रसन्न होंगे। वे तुरंत विचार करेंगे कि यह साधारण नर है, परंतु नारायण-सेवाका विचार किया है। उन बालकोंमें कोई डॉक्टर बन जाता है, कोई इंजीनियर बनता है और कोई आई० ए० एस० अधिकारी बनकर विविध प्रकारसे राष्ट्रके लिये अपनी सेवाएँ समर्पित करता है, जिससे दिनानुदिन राष्ट्रका चतुर्दिक् कल्याण होता है। इन राष्ट्र-सेवारूपी अंकुरोंको यदि सींचा न जाता तो वे बीज वृक्ष नहीं बन पाते और यदि वृक्ष ही नहीं बन पाते तो इतने फल कहाँसे लगते? इनकी योग्यता समाजको समर्पित कहाँ हो पाती? अतः जिसने गरीबको पढ़ाया—उसने नरके भीतर नारायणको देखा।

दूसरी ओर गरीबकी कन्या है। पैसेके अभावमें बड़ी आयुतक अपना घर नहीं बसा पाती। उसका पिता चिन्तामें निरन्तर पीड़ा सहन करता हुआ जवानीमें ही बुढ़ापेका अनुभव करने लगता है। उस समय हम सभीको मिलकर, सेवा-सहायताका दान कर उस गरीबकी कन्याके विवाहकी व्यवस्था करनी चाहिये। ऐसे पुनीत कार्योंसे समाजकी एक बड़ी समस्याका समाधान तो होगा ही—साथ ही, उस गरीब

कन्या एवं उसके पिताके भीतर विराजमान भगवान् प्रसन्न होंगे कि अभीतक इन्होंने मुझे मन्दिरमें देखा था, परंतु अब नरके भीतर मुझ नारायणको देखा।

नरके भीतर नारायणके दर्शन, अपने देशकी समस्याओंके समाधानमें बहुत सहायक हो सकते हैं। अत: प्राणिमात्रको यह बतानेका प्रयत्न होना चाहिये और प्रत्येक गरीब, असहाय, दु:खी प्राणियोंसे यही प्रार्थना करनी चाहिये—

मुझमें तुझमें बस भेद यही, मैं नर हूँ तुम नारायण हो।
मैं हूँ संसारके हाथोंमें, संसार तुम्हारे हाथोंमें॥

यह देशकी ही नहीं, विश्वकी समस्या है। संसारमें धनी कम, विपन्न अधिक हैं। अत: आज हम सबको बहुत विचार करनेकी आवश्यकता है। हम गङ्गा, गोदावरी, यमुना और कृष्णामें स्नान करें। तीर्थोंमें जायँ। पुरोहितोंकी सेवा करें—अच्छी बात है, परंतु प्राचीन परम्पराओंके साथ, वर्तमान कालमें—नरके भीतर नारायणकी शोध करनेकी सबसे बड़ी आवश्यकता है। झोपड़ियोंमें जायँ। गरीब बस्तियोंमें जायँ। उन्हें सिखायें कि आदमीको कैसे रहना है? उनकी गरीबी सम्भवत: दूर नहीं कर सकते, किंतु संस्कार डालनेका प्रयत्न तो अवश्य ही कर सकते हैं। उन्हें सिखायें कि वे स्वच्छ रहें, स्वच्छ पानी पीयें, स्वच्छ हवा और स्वच्छ वातावरणमें रहें। निरक्षर न रहें। पढ़ें-लिखें—ऐसा चिन्तन तो गरीबोंको दे ही सकते हैं।

बच्चों, प्रौढ़ोंके लिये रात्रि-पाठशालाएँ खोल सकते हैं। बिना शिक्षण-शुल्क लिये कुछ समय पढ़ा-लिखा सकते हैं। यह नरके भीतर नारायणकी सेवा ही है। डॉक्टर भी विचार करें कि धनियोंसे ही पैसा लेना है—गरीबोंसे नहीं। उनका अच्छी तरह, भलीभाँति निदान करें। जरूरतमंदोंको दवा बाँटें। जीवनमें कुछ समय ऐसा निकालें कि अपनेसे नीचेके लोगोंकी ओर देखें। उनकी कठिनाईका अनुभव करें। संसारके लिये अपने जीवनको प्रेरणाप्रद बनावें। नरके भीतर नारायणकी सेवाका काम व्यापक स्तरपर होना चाहिये।

परमात्माने इस संसारको आनन्दकी बगिया बनाया था। प्रेमकी केसर-सुगन्धि यहाँ महकती थी। अपना वृन्दावन-देश—इसने सारे विश्वको प्रेम, शान्ति, समताका संदेश दिया। हम सबके भीतर, परमात्माकी कृपासे नरके भीतर नारायणके दर्शनका विचार जगना चाहिये। गाँधीजी बिहारमें चम्पारण गये। लोगोंके शरीरपर कपड़ा नहीं था। गाँधीजी संन्यासी नहीं थे। बैरिस्टर बनकर आये थे। चम्पारणके किसानोंसे पूछा—'आधे तनपर कपड़ा क्यों?' उन्होंने कहा—'हम लोगोंके पास कपड़े नहीं हैं, पहनें कहाँसे?'

गाँधीजीने सोचा—नरके भीतर नारायणके दर्शन करूँगा। उन्होंने उसी समय अपने सारे कपड़े उतार दिये। दो वस्त्रसे जीवन व्यतीत किया। विनोबाजी गाँधीजीके साथी थे—उनका एक विचार तभी परिपक्व हो गया कि दूसरोंके हितके लिये ही जीवन-धारण करना है।

जब हम दूसरोंके लिये जियेंगे तो स्वत: ही हमें अपने जीवनकी सार्थकता समझमें आयेगी। हमें सर्वत्र परमात्म-प्रभुका ही दर्शन होगा। अत: हमें चाहिये कि हम अस्पतालों, अनाथालयों तथा अन्धाश्रमोंमें जायँ। वहाँकी सेवासे नारायण प्रसन्न होंगे। वनवासियोंमें, अस्पतालोंमें जायँ और अपनी सेवासे नारायणको प्रसन्न करनेका यत्न करें।

जो कुछ भी हमारे पास है, वह सब समाजका ही है। अत: उसे हम समाजको देते रहें। देनेसे मन शुद्ध होगा। जीवन शुद्ध और श्रेष्ठ होगा। मानसिक कठिनाई दूर होगी। पूरा विश्व ही हमारा परिवार है, इसलिये हमारी सम्पूर्ण भारतीय-संस्कृति **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** तथा **'सर्वे भवन्तु सुखिन:'** की उदात्त भावनाका मुक्तकण्ठसे उद्घोष करती है। इस आदर्शमय भावनासे ओतप्रोत होनेपर सारा-का-सारा संसार परमात्मरूप ही दिखायी पड़ेगा, हरिसे भिन्न और कुछ नहीं दिखायी देगा। ऐसे भगवन्मय बुद्धिवाले पुरुषोंको परमार्थ गति प्राप्त होती है, वह दु:खमय भव-सागरसे पार हो जाता है—

हरिरेव जगज्जगदेव हरि-
र्हरितो जगतो नहि भिन्नतनु:।
इति यस्य मति: परमार्थगति:
स नरो भवसागरमुत्तरति॥

अत: मनुष्य-जीवनको सार्थक करें। नरके भीतर नारायणके दर्शन करते हुए उनकी निष्काम-भावसे सेवा करें। ईश्वर करे, हमारा-आपका जीवन कठिनाइयोंसे मुक्त हो।

[प्रेषक—श्रीशालिगरामजी स्वर्णकार]

* * *

सब भगवान्की पूजाके लिये हो

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

श्रीभगवान्को छोड़कर संसारमें सभी कुछ दुःखमय है। यहाँ जो सुख दीखता है, वह यदि वास्तविक है तो भगवान्के सुख-समुद्रका कोई एक कणमात्र है और यदि वास्तविक नहीं है तो सुखके रूपमें दुःख ही सामने आ रहा है। उसका रूप वैसे ही छिपा है, जैसे किसीके विनाशके लिये बनायी हुई मिठाईमें विष छिपा रहता है।

श्रीभगवान्के सम्बन्धसे ही सबका सम्बन्ध है, श्रीभगवान्के प्रियत्वसे ही सबमें प्रियभाव है। भगवान्के बिना तो यह जगत् भयंकर है। चारों ओरसे काटनेको दौड़ता है। ऐसे भगवत्-सम्बन्धरहित विषयोंमें जो ममत्व और सुखबुद्धि हो रही है, यही मोह है। भगवान्ने भोगोंको 'दुःखयोनि'—दुःख उपजानेवाला बतलाया है। चाहे वे एक व्यक्तिके लिये हों या समस्त विश्वके लिये। जो मनुष्य अपने सुखके लिये भोगादि न चाहकर समष्टिके लिये चाहता है, वह अवश्य ही उदार और त्यागी है, परंतु वह भी है यथार्थमें भूलमें ही। भूलमें न होता तो 'दुःखयोनि' विषयोंमें उसे सुख दीखता ही कैसे? भोगोंसे वैराग्य हुए बिना यथार्थ भगवत्प्रेमका सच्चा विकास नहीं होता। जबतक मनोभूमिमें विषयानुरागका गंदा कीचड़ भरा हुआ होता है, तबतक उसमें बोया हुआ प्रेमका बीज उगता नहीं। उगना तो दूर रहा, प्रेमका यथार्थ बीज वहाँ पहुँचता ही नहीं। चित्तभूमि जब वैराग्यके द्वारा शुद्ध हो जाती है तभी उसमें भगवत्प्रेमका बीज बोया जा सकता है और तभी वह अंकुरित, पुष्पित और फलित होता है। परंतु इस वैराग्यका उदय भी अन्तःकरणकी शुद्धिकी अपेक्षा रखता है और वह होती है भजनसे। भजन ही अन्तःकरणके मलको जला डालनेवाली आग है। इसलिये भजन करना चाहिये और विचार तथा भगवत्प्रार्थनाके द्वारा भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न करते रहना चाहिये। जब भगवत्प्रेमकी झाँकी हो जायगी, तब जगत्के सभी सुख नीरस, व्यर्थ और हेय लगने लगेंगे; फिर सहज ही उनसे मन हट जायगा। भक्तवर नागरीदासजी (किशनगढ़के भगवद्भक्त महाराज)-ने भगवत्प्रेमकी जरा-सी झाँकी होनेके बाद यह पद गाया है। इसमें अपने पहले जीवनके लिये उन्होंने कितना पश्चात्ताप किया है, देखिये—

किते दिन बिनु बृन्दाबन खोये।
यों ही बृथा गये ते अबलौं राजस-रंग समोये॥
छाड़ि पुलिन फूलनिकी सैया, सूल-सरनि सिर सोये।
भीजे रसिक अनन्य न दरसे, बिमुखनिके मुख जोये॥
हरि बिहारकी ठौर रहे नहिं, अति अभाग्य बल बोये।
कलह सराय बसाय भट्यारी माया राँड बिगोये॥
इकरस ह्याँ के सुख तजिके ह्वाँ कबौं हँसे कबौं रोये।
कियो न अपनो काज, पराये भार सीसपर ढोये॥
पायो नहिं आनंद लेस मैं सबै देस टकटोये।
नागरिदास बसै कुंजनमें जब सब बिधि सुख भोये॥

यह है राजाके आनन्दका असली स्वरूप। परंतु यह असली रूप दीख पड़ता है—भोगोंके मायाजालसे छूटनेपर ही।

मेरा इससे यह मतलब नहीं है कि घर-बार छोड़कर कहीं चले जाना चाहिये। कोई कहीं भी जाय, जबतक मनमें राग (आसक्ति) है, तबतक फँसावट है ही। सबकी अपनी-अपनी अलग दुनिया है और अलग-अलग छोटे-बड़े क्षेत्र हैं। सम्राट् अपने बड़े भारी राज्यके कार्योंमें राग-द्वेष करता है, दूकानदार छोटी-सी दूकानदारीके सम्बन्धसे उतनी-सी दुनियामें और बच्चा खेलके खिलौनेमें। दुःखी सभी हैं, रोना सभीको है—क्योंकि प्रतिकूलताके दर्शन सबको होते हैं, प्रतिकूलतामें ही दुःख और द्वेष है। इसीलिये घर न छोड़कर घरकी मालिकी छोड़नी चाहिये। अपने सब कुछपर श्रीभगवान्का अधिकार स्थापित करके भगवान्की पूजा करनेके लिये घरमें रहना चाहिये। घर भगवान्का पूजा-मन्दिर बने, हम पुजारी बनें। आसक्ति भगवान्में हो, घरमें नहीं; घरकी चीजें प्यारी हों तो इसीलिये कि वे भगवान्की हैं, भगवान्की पूजाके लिये हैं! पूजाके लिये न हों तो—

जरौ सो सम्पति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद करत न सहज सहाइ॥

× × ×

अंजन कहा आँख जेहि फूटैं, बहुतक कहौं कहाँ लौं।

जैसे घर भगवान्का, वैसे ही यह सारा जगत् भगवान्का—बस इसी नाते जगत्में रहना, जगत्के कार्य करना; प्यारे भगवान् जिस कार्यमें लगा दें उसीको करना। आसक्ति भगवान्में—कार्य भगवान्का। वे चाहे जगत्के विकासके रूपमें अपनी सेवा करावें या विनाशके रूपमें। याद रखनेकी इतनी ही बात है—भोगोंमें सुख नहीं, सुख एकमात्र भगवान्में है। जगत् भोगोंसे सुखी होगा, यह भ्रान्त धारणा है, सुखी होगा भगवान्से। चाहे भोग न रहें—उनकी पूजाके लिये रहें और वे रखना चाहें तो वह भी उत्तम है—असलमें सेवा भगवान्की करनी है, भोगोंकी नहीं। भोगोंसे भगवान्को रिझाना है, भगवान्से भोगोंको पाना नहीं!

* * *

ईश्वर कहाँ रहते हैं

(डॉ० श्रीभुवनेश्वरप्रसादजी वर्मा 'कमल', एम्० ए०, डी० लिट्०)

वैसे तो ईश्वर सर्वव्यापी हैं, वे कण-कणमें विराजते हैं, सम्पूर्ण दृश्य जगत् उस परम सत्तासे ओतप्रोत है, फिर भी ऋषि-मुनियोंने उनके आवासके कुछ विशिष्ट स्थान निर्धारित किये हैं। ईश्वरकी सर्व-व्यापकताका उद्घोष करते हुए गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—*'हरि ब्यापक सर्बत्र समाना।'*

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने वनवासके क्रममें महर्षि वाल्मीकिके आश्रमपर पधारकर जब उनसे पूछा कि मुझे चौदह वर्षोंके वनवासकी अवधि व्यतीत करनेके लिये वनप्रान्तरमें कोई उपयुक्त स्थान बतलाइये, तब महर्षिने बड़े ही सहज भावसे भगवान् रामसे निवेदन किया—

पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि दिखावौं ठाउँ॥
(रा० च० मा० २। १२७)

अर्थात् हे भगवन्! पहले आप मुझे यह बतलानेकी कृपा करें कि आप कहाँ नहीं हैं? जब आप सर्वत्र विराजमान हैं, सर्वव्यापी हैं, तब फिर आपके रहनेके लिये उपयुक्त स्थान बतलानेका प्रश्न ही कहाँ उठता है!

फिर भी महर्षि वाल्मीकिने भगवान् रामकी संतुष्टिके लिये और भक्तों, साधकोंकी जानकारीके लिये कुछ विशिष्ट स्थलोंकी चर्चा की, जो भगवान्के रहनेके लिये उपयुक्त स्थान हो सकते हैं। वे हैं—

(१) **जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥**
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥
(रा० च० मा० २। १२८। ४-५)

अर्थात् जिनके कान समुद्रकी भाँति आपकी कथारूपी अनेक सुन्दर नदियोंसे निरन्तर भरते रहे हैं, परंतु कभी पूरे (तृप्त) नहीं होते, वैसे भक्तोंका हृदय आपके रहनेके लायक बड़ा ही उपयुक्त स्थान है।

(२) **लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥**
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥
(रा० च० मा० २। १२८। ६—८)

अर्थात् जिनके नेत्ररूपी चातक आपके दर्शनरूपी मेघके लिये सदा लालायित रहते हैं तथा जो भारी नदियों, समुद्रों और झीलोंका निरादर करते हुए आपके सौन्दर्यरूपी मेघकी एक बूँद जलसे ही तृप्तिका अनुभव करते हैं, वैसे भक्तोंका हृदय आपके रहनेके लिये अति उपयुक्त स्थान है।

(३) **जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।**
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु॥
(रा० च० मा० २। १२८)

अर्थात् आपके यशरूपी निर्मल मानसरोवरमें जिसकी जिह्वा हंसिनी बनी हुई आपके गुण-समूहरूपी मोतियोंको चुगती रहती है, वैसे भक्तका हृदय आपके निवासका उपयुक्त स्थल है।

(४) **प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥**
तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
(रा० च० मा० २। १२९। १—५)

अर्थात् जिसकी नासिका प्रभुके पवित्र और सुवासित प्रसादको नित्य आदरके साथ सूँघती है, जो प्रभुको अर्पण करनेके पश्चात् ही भोजन करते हैं, जो प्रभुके प्रसादरूप ही वस्त्राभूषण धारण करते हैं, जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणोंके प्रति नम्रता और प्रेमसे झुक जाते हैं, जिनके हाथ नित्य भगवान् रामके चरणोंकी पूजा करते हैं, जिनके हृदयमें रामका ही भरोसा है किसी औरका नहीं तथा जिनके चरण भगवान् रामके तीर्थोंमें अनायास ही पहुँच जाते हैं, हे भगवन्! ऐसे ही महान् भक्तोंका मन आपके रहनेके लिये उपयुक्त स्थान है।

(५) **मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा॥**
तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना॥
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी॥
सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ॥
(रा० च० मा० २। १२९। ६—८, २। १२९)

अर्थात् जो आपके मन्त्रराज (राम-नाम)-को नित्य जपते हैं और परिवार-सहित आपकी पूजा करते हैं, जो अनेक प्रकारसे तर्पण और हवन करते हैं, जो ब्राह्मणोंको भोजन कराकर बहुत दान देते हैं तथा जो गुरुको आपसे भी बड़ा जानकर सम्मानपूर्वक उनकी सेवा करते हैं और यह

सब करनेके पश्चात् सबका एकमात्र फल यही चाहते हैं कि आपके चरणोंमें उनकी प्रीति हो, हे भगवन्! ऐसे ही लोगोंके मन-मन्दिरमें आप भगवती सीतासहित निवास कीजिये।

(६) काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया॥
(रा० च० मा० २। १३०। १-२)

अर्थात् जो काम, क्रोध, मद, मान, मोह, लोभ, क्षोभ, राग, द्रोह, कपट, दंभ और मायासे रहित हैं, हे भगवन्! ऐसे ही भक्तोंका निष्कलुष हृदय आपके रहनेके लिये उपयुक्त स्थान है।

(७) सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
(रा० च० मा० २। १३०। ३—५)

अर्थात् जो सबके प्रिय और हितकारी हैं, जिनके लिये सुख-दुःख और प्रशंसा-निन्दा समान हैं, जो सत्य और प्रिय वचन बोलते हैं, जो जागते-सोते आपके ही शरणागत हैं और आपको छोड़कर जिनका और कोई दूसरा आश्रय नहीं है, हे राम! ऐसे ही भक्तोंका मन (हृदय) आपके रहनेके लिये उपयुक्त स्थान है।

(८) जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी॥
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥

अर्थात् जो परायी स्त्रीको मातृवत् देखते हैं, पराये धनको विषतुल्य देखते हैं, जो दूसरोंका उत्कर्ष देखकर हर्षित और दूसरोंका कष्ट देखकर दुःखित होते हैं तथा जिन्हें आप प्राणोंसे भी प्यारे हैं, हे भगवन्! उन्हींका मन आपके रहने योग्य शुभ भवन है।

(९) स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥
(रा० च० मा० २। १३०)

अर्थात् जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं, ऐसे ही भक्तोंका मन-मन्दिर भगवती सीता और अनुज लक्ष्मणसहित आपके रहनेका सर्वोत्तम स्थान है।

(१०) अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥

अर्थात् जो अवगुणोंको छोड़कर सबके गुणोंको ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गौकी रक्षाके लिये संकट सहते हैं, नीति-निपुणताके कारण जिनकी जगत्‌में मर्यादा है, हे प्रभु! ऐसे ही भक्तोंका सुन्दर मन आपके रहने योग्य उपयुक्त स्थान है।

(११) गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥

अर्थात् जो गुणोंको आपका और अवगुणोंको अपना समझते हैं, जिन्हें सब प्रकारसे आपका ही भरोसा है तथा आपके भक्त जिन्हें प्यारे लगते हैं, हे भगवन्! सीताजीसहित आपके बसने लायक स्थान ऐसे ही भक्तोंका हृदय है।

(१२) जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई॥

अर्थात् जाति-पाँति, धन-धर्म, बड़ाई, प्रशंसा, घर-बारका सुख आदि सबको छोड़कर जो केवल आपको ही हृदयमें धारण किये रहते हैं, ऐसे ही भक्तोंका हृदय, हे राम! आपके निवास करनेके लिये उपयुक्त स्थल है।

(१३) सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा॥

अर्थात् जिनकी दृष्टिमें स्वर्ग, नरक और मोक्ष समान है, क्योंकि वे सब जगह धनुष-बाण धारण किये हुए आपको ही देखते हैं तथा जो मन, वचन और कर्मसे आपका दास है, हे भगवन्! ऐसे ही भक्तोंका हृदय आपका वासस्थल होनेके लायक है।

(१४) जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥
(रा० च० मा० २। १३१)

अर्थात् जिसे संसारमें कभी कुछ नहीं चाहिये तथा जिसका आपके प्रति सहज स्नेह भाव है, हे भगवन्! ऐसे ही भक्तोंके हृदयमें आप निरन्तर निवास करें, वही आपके रहने योग्य सर्वोत्तम स्थान है।

भगवान्‌के रहने योग्य उपर्युक्त चौदह स्थलोंको यदि हम ध्यानसे देखें तो पायेंगे कि वे अलग-अलग चौदह स्थान नहीं हैं, वरन् वे सब मिलकर एक ही स्थानका संकेत करते हैं और वह है—भक्तका निष्कलुष हृदय। यदि साधक प्रयत्नपूर्वक उपरिलिखित चौदह विशिष्टताओंमेंसे किसी एक विशिष्टताको अपना लेता है तो निश्चय जानिये, उसका हृदय भगवान्‌का आगार बन जाता है और भगवान् निरन्तर वहाँ अपना आसन जमा लेते हैं। भगवान् वहीं रहते हैं; कहीं नहीं जाते और भक्त जब चाहता है, अपनी गर्दन झुकाकर उस उरवासी भगवान्‌के दर्शन कर लेता है।

* * *

साधकोंके प्रति—

विज्ञानसहित ज्ञान

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

जितने भी शास्त्र (दर्शन) हैं, उनके दो विभाग हैं—ईश्वरको माननेवाले और ईश्वरको न माननेवाले। ईश्वरको माननेवाले शास्त्रोंमें गीता मुख्य है। गीताका खास सिद्धान्त है—'**वासुदेवः सर्वम्**' अर्थात् सब कुछ परमात्मा ही हैं। जिन दार्शनिकोंने अपने दर्शन (अनुभव)-में, अपने मतमें पूर्ण संतोष कर लिया, वे तो वहीं रुक गये, पर जिन्होंने अपने दर्शनमें संतोष नहीं किया, उन्होंने '**वासुदेवः सर्वम्**'-का अनुभव कर लिया। '**वासुदेवः सर्वम्**'का अनुभव होनेपर सम्पूर्ण दार्शनिकोंमें और उनके दर्शनोंमें परस्पर मतभेद सर्वथा मिट जाता है और वे सब एक हो जाते हैं।

शास्त्रोंमें जगत्, जीव और परमात्मा—इन तीनोंका ही विवेचन आता है; क्योंकि इन तीनोंके सिवाय चौथी कोई वस्तु है ही नहीं। इन तीनोंको गीताने अनेक नामोंसे कहा है; जैसे—'जगत्'को अपरा, क्षेत्र, क्षर आदि, 'जीव'को परा, क्षेत्रज्ञ, अक्षर आदि और 'परमात्मा'को ब्रह्म, पुरुषोत्तम आदि नामोंसे कहा है। भगवान्ने गीतामें अपरा (जगत्) और परा (जीव)—दोनोंको ही अपनी प्रकृति (स्वभाव या शक्ति) बताया है (७। ४-५)। जैसे शक्तिमान्के बिना शक्तिकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती, ऐसे ही परमात्माके बिना जगत् और जीवकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। परमात्माके ही एक अंशमें जीव है और जीवके ही एक अंशमें जगत् है—'**ययेदं धार्यते जगत्**' (गीता ७। ५)। इसलिये गीतामें जगत्, जीव और परमात्माके वर्णनका तात्पर्य उनको अलग-अलग बतानेमें नहीं है, प्रत्युत सबको एक और अभिन्न बतानेमें ही है[1]।

परा और अपरा—दोनों प्रकृतियोंके साथ परमात्माका समान सम्बन्ध है। परंतु परा प्रकृतिका सम्बन्ध अपरा प्रकृतिके साथ नहीं है। कारण कि परा और अपरा—दोनोंका स्वभाव अलग-अलग है। परा नित्य अपरिवर्तनशील तथा अविनाशी है और अपरा (शरीर-संसार) निरन्तर परिवर्तनशील तथा विनाशी है। परा प्रकृति परमात्माका अंश होनेसे परमात्माके ही स्वभाववाली है अर्थात् जैसे परमात्मा नित्य अपरिवर्तनशील तथा अविनाशी स्वभाववाले हैं, ऐसे ही उनका अंश परा प्रकृति भी है। तात्पर्य यह हुआ कि जीव परमात्माका अविभाज्य अंश है और शरीर संसारका अविभाज्य अंश है।

जीव तथा परमात्मा 'प्राप्त' हैं और स्थूल-सूक्ष्म-कारण-शरीर तथा संसार 'प्रतीति' हैं। 'प्राप्त' सत्-रूप है और 'प्रतीति' असत्-रूप है। असत्की तो सत्ता विद्यमान नहीं है और सत्का अभाव विद्यमान नहीं है—'**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः**' (गीता २। १६)। तात्पर्य है कि 'प्राप्त' दीखता नहीं है, पर उसकी सत्ता मौजूद है और 'प्रतीति' दीखती तो है, पर उसकी सत्ता मौजूद है ही नहीं। मैं अमुक वर्ण, आश्रम आदिका हूँ—यह 'प्रतीति'को लेकर है और मैं साधक (योगी, मुमुक्षु, भक्त आदि) हूँ—यह 'प्राप्त' को लेकर है। जब मनुष्यमें 'प्रतीति' की मुख्यता होती है, तब वह संसारी होता है और जब उसमें 'प्राप्त'-की मुख्यता होती है, तब वह साधक होता है। इसलिये साधकमें 'प्राप्त'की मुख्यता होनी चाहिये। प्रतीतिकी मुख्यता होनेसे साधनकी सिद्धिमें बहुत कठिनता होती है। मुक्ति अथवा भक्तिकी प्राप्ति प्रतीतिको नहीं होती, प्रत्युत 'प्राप्त' (स्वयं)-को ही होती है। इसलिये भगवान्ने सातवें अध्यायमें अपने भक्तोंके चार प्रकार (अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी) बताकर नवें अध्यायमें कहा कि दुराचारी, पापयोनि, स्त्रियाँ, वैश्य, शूद्र, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय—ये सभी व्यक्ति चार प्रकारके भक्त बन सकते हैं (७। १६; ९। ३०—३३)।

---

[1] एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्॥ (श्वेताश्वतर० १। १२)

'अपने ही भीतर स्थित इस ब्रह्मको ही सर्वदा जानना चाहिये; क्योंकि इससे बढ़कर जानने योग्य तत्त्व दूसरा कुछ भी नहीं है। भोक्ता (जीवात्मा), भोग्य (जगत्) और उनके प्रेरक परमेश्वरको जानकर मनुष्य सब कुछ जान लेता है। इस प्रकार यह तीन भेदोंमें बताया हुआ ब्रह्म ही है अर्थात् जीव, जगत् और परमात्मा—तीनों समग्र ब्रह्मके ही रूप हैं।'

इसी बातको दूसरे शब्दोंमें कहें तो भगवान्‌की प्राप्ति दुराचारी, पापयोनि, स्त्रियाँ, वैश्य, शूद्र, ब्राह्मण तथा क्षत्रियको नहीं होती, प्रत्युत 'भक्त' (स्वयं)-को होती है![1] (गीता ९। ३३)। इसलिये शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिकी मुख्यता रखनेवाला कोई भी मनुष्य भोगी तो बन सकता है, पर योगी नहीं बन सकता।

जो 'प्राप्त' है, वह 'परा प्रकृति' है और जो 'प्रतीति' है, वह 'अपरा प्रकृति' है। परा और अपरा—दोनों ही प्रकृतियाँ भगवान्‌की होनेसे भगवत्स्वरूप हैं—'**सदसच्चाहमर्जुन**' (गीता ९। १९)। परंतु जीव (परा)-ने जगत् (अपरा)-को धारण कर लिया अर्थात् उसको स्वतन्त्र सत्ता और महत्ता देकर अपना मान लिया—'**मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति**' (गीता १५। ७)। यही जीवकी मूल भूल है, जिसके कारण वह जगत् बन गया (गीता ७। १३) अर्थात् जगत्‌की तरह परिवर्तनशील, जन्मने-मरनेवाला बन गया। इस भूलको मिटानेके लिये साधकको चाहिये कि वह 'परा'-को अर्थात् अपने-आपको भगवान्‌के अर्पित कर दे और 'अपरा' को अर्थात् शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिको संसारके अर्पित कर दे, संसारकी सेवामें लगा दे। 'मैं भगवान्‌का और भगवान्‌के लिये ही हूँ'—ऐसा स्वीकार कर लेना अपने-आपको भगवान्‌के अर्पित करना है और 'शरीर संसारका और संसारके लिये ही है'—ऐसा अनुभव कर लेना शरीरको संसारके अर्पित करना है। इस प्रकार भगवान्‌की चीज भगवान्‌को दे दी—यह 'भक्तियोग' हो गया, संसारकी चीज संसारको दे दी—यह 'कर्मयोग' हो गया और न तो भगवान्‌से तथा न संसारसे ही कुछ चाहनेसे स्वयं असंग हो गया—यह 'ज्ञानयोग' हो गया। इस प्रकार कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग तीनों सिद्ध होनेसे परा और अपराकी स्वतन्त्र सत्ताकी मान्यता मिट जाती है और '**वासुदेवः सर्वम्**' का अनुभव हो जाता है।

जो अपना कल्याण चाहता है, वह अगर अपरा (जगत्)-को सच्चा मानता है तो उसके लिये 'कर्मयोग' (भौतिक साधना) है, अगर परा (जीव अर्थात् चेतन)-को सच्चा मानता है तो उसके लिये 'ज्ञानयोग' (आध्यात्मिक साधना) है और अगर परमात्माको सच्चा मानता है तो उसके लिये 'भक्तियोग' (आस्तिक साधना) है। अगर वह किसीको भी सच्चा नहीं मानता तो भी उसका कल्याण हो जायगा! कारण कि किसीको भी न माननेसे उसपर संसार आदिका प्रभाव नहीं पड़ेगा और वह स्वतः निर्विकल्प हो जायगा। मनुष्यपर उसी वस्तुका असर पड़ता है, जिसको वह सच्चा मानता है।

हमने संसारकी चीज संसारको दे दी तो अब हम संसारसे कुछ चाहनेके अधिकारी ही नहीं रहे। इसी तरह भगवान्‌की चीज भगवान्‌को दे दी तो हमें स्वतः प्रेमकी प्राप्ति हो जायगी (गीता ७। १७)। प्रेमसे बढ़कर कोई चीज है ही नहीं, जिसकी चाहना हम भगवान्‌से करें। संसारकी चीज संसारको देना 'योग' है और संसारसे कुछ चाहना 'भोग' है। भगवान्‌की चीज भगवान्‌को देना 'योग' है और भगवान्‌से कुछ माँगना 'भोग' है।

वास्तवमें मनुष्यशरीर कर्मयोनि अथवा भोगयोनि नहीं है, प्रत्युत साधनयोनि अथवा प्रेमयोनि है; क्योंकि भगवान्‌ने मनुष्यको प्रेमके लिये ही बनाया है—'**एकाकी न रमते**'। इसलिये प्रेमकी प्राप्ति मनुष्यजन्ममें ही हो सकती है। सम्पूर्ण योनियोंमें एक मनुष्य ही ऐसा है, जो भगवान्‌को अपना मान सकता है, भगवान्‌से कह सकता है कि मैं तेरा हूँ, तू मेरा है अथवा केवल तू-ही-तू है। कारण कि भगवान्‌ने संसारको जीवोंके लिये बनाया है और मनुष्यको अपने लिये बनाया है। मनुष्यमें संसारको अपना न माननेकी और भगवान्‌को अपना माननेकी जो योग्यता और सामर्थ्य है, वह भी वास्तवमें भगवान्‌की ही दी हुई है। भगवान्‌की दी हुई योग्यता और सामर्थ्यसे ही मनुष्य भगवान्‌से प्रेम करता है।

संसार निरन्तर बदलनेवाला (अप्राप्त) है तथा अपना नहीं है, फिर भी वह हमारेको प्रिय लगता है और परमात्मा

---

[1] नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो नो वा वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धेर्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः॥

'मैं न तो ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय हूँ, न वैश्य हूँ, न शूद्र हूँ; न ब्रह्मचारी हूँ, न गृहस्थ हूँ और न संन्यासी ही हूँ; किंतु सम्पूर्ण परमानन्दमय अमृतके उमड़ते हुए महासागररूप गोपीकान्त श्यामसुन्दरके चरणकमलोंके दासोंका दासानुदास हूँ।'

सब देश, काल आदिमें ज्यों-के-त्यों विद्यमान (नित्यप्राप्त) हैं तथा अपने हैं, फिर भी वे हमारेको प्रिय नहीं लगते! इसका कारण यह है कि हम संसारकी निन्दा तो करते हैं, पर उसकी सत्ता और महत्ता नहीं है तथा वह अपना नहीं है—यह अनुभव नहीं करते। इसी तरह हम परमात्माकी महिमा तो गाते हैं, पर उनको सत्ता और महत्ता देकर अपना स्वीकार नहीं करते। इसलिये साधकका खास काम है—विवेकपूर्वक संसारको अपना न मानना और श्रद्धा-विश्वासपूर्वक भगवान्‌को अपना मानना, जो कि वास्तविकता है।

जब मनुष्य संसारको अपना और अपने लिये मान लेता है, तब उसको अपनी और संसारकी (परा और अपराकी) स्वतन्त्र सत्ता प्रतीत होने लगती है। इसका परिणाम यह होता है कि जीव जगत्‌के अधीन (पराधीन) हो जाता है और जन्म-मरणमें पड़कर दुःख पाता है (गीता ८। १९, १।८)। इस पराधीनतासे छूटनेके लिये साधकके लिये तीन खास बातें हैं—

१-मेरा कुछ नहीं है।

२-मेरेको कुछ नहीं चाहिये।

३-मेरेको अपने लिये कुछ नहीं करना है।

(१) हमारा स्वरूप (स्वयं) सत्तामात्र है। इस स्वरूपके साथ कुछ भी नहीं है। संसारकी कोई भी वस्तु और क्रिया स्वरूपतक नहीं पहुँचती। तात्पर्य यह हुआ कि अपने पास अपने सिवाय कुछ भी नहीं है। 'मैं' कहलानेवाला स्थूल-सूक्ष्म-कारणशरीर भी अपने साथ नहीं है और हम उसके साथ नहीं हैं। अगर शरीर हमारे साथ रहता तो हमारे अनेक जन्म कैसे होते? हम अनेक शरीर कैसे धारण करते? अगर हम शरीरके साथ रहते तो मुक्ति कभी होती ही नहीं। प्रत्येक देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, क्रिया, परिस्थिति, अवस्था आदिमें निरन्तर परिवर्तन होता है, उत्पत्ति-विनाश होता है, पर अपनेमें (स्वरूपमें) कभी किंचिन्मात्र भी परिवर्तन, उत्पत्ति-विनाश नहीं होता। इन देश, काल आदि सबके अभावका अनुभव हमें होता है, पर अपने अभावका अनुभव कभी किसीको नहीं होता। परिवर्तनशील एवं नाशवान् वस्तु (शरीर-संसार) अपरिवर्तनशील एवं अविनाशी तत्त्वके साथ कैसे रह सकती है और उसके क्या काम आ सकती है? अमावस्याकी रात सूर्यके साथ कैसे रह सकती है और सूर्यके क्या काम आ सकती है? सांसारिक शरीर, बल, बुद्धि, विद्या, योग्यता, सुन्दरता आदि संसारके ही काम आते हैं, हमारे काम किंचिन्मात्र भी नहीं आते। तात्पर्य है कि अपरा प्रकृति और उसके कार्य शरीर-संसारके द्वारा हमें कुछ भी नहीं मिलता, हमारी किंचिन्मात्र भी पुष्टि नहीं होती, हित नहीं होता, हो सकता भी नहीं। अनन्त ब्रह्माण्ड मिलकर भी हमारी पूर्ति, संतुष्टि नहीं कर सकते। इसलिये अनन्त सृष्टियों, अनन्त ब्रह्माण्डोंमें एक भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो हमारी हो और हमारे लिये हो!

जीव और परमात्मा—दोनों ही अकिंचन हैं। जीव इसलिये अकिंचन है कि उसके लिये संसारमें 'मेरा कुछ नहीं है' अर्थात् उसका भगवान्‌के सिवाय और किसीसे सम्बन्ध नहीं है और परमात्मा इसलिये अकिंचन हैं कि उनके सिवाय दूसरी कोई सत्ता नहीं—'**मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति**' (गीता ७। ७), '**सदसच्चाहम्**' (गीता ९। १९)। जबतक जीवकी दृष्टिमें संसारकी सत्ता है, तबतक उसके पास कुछ नहीं है और जब उसकी दृष्टिमें संसारकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती, तब भगवान्‌के सिवाय कुछ नहीं है—'**वासुदेवः सर्वम्**'। उसकी भगवान्‌के साथ आत्मीयता हो जाती है—'**ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्**' (गीता ७। १८), '**मयि ते तेषु चाप्यहम्**' (गीता ९। २९)। इसलिये भगवान्‌ने रुक्मिणीजीसे कहा है कि 'हम सदाके अकिंचन हैं और अकिंचन भक्तोंसे ही हम प्रेम करते हैं और वे हमारेसे प्रेम करते हैं—

निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजनप्रियाः।

(श्रीमद्भा० १०। ६०। १४)

भगवान् दर्शन भी अकिंचन भक्तोंको ही देते हैं—'**त्वामकिञ्चनगोचरम्**' (श्रीमद्भा० १। ८। २६)। इसलिये कोई भी वस्तु अपनी और अपने लिये नहीं है—ऐसा स्वीकार करके अनुभव करते ही हम अकिंचन हो जाते हैं, भगवान्‌के प्रेमी हो जाते हैं—'**प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः**' (गीता ७। १७)।

(२) इच्छा अभावसे पैदा होती है। सत्तामात्रका अपने स्वरूपमें कभी अभाव नहीं होता—'**नाभावो विद्यते सतः**'

(गीता २। १६)। इसलिये अपनेमें कोई इच्छा नहीं होती। जब अनन्त सृष्टिमें कोई वस्तु हमारी और हमारे लिये है ही नहीं और कोई वस्तु स्वयंतक पहुँच सकती ही नहीं, हमें प्राप्त हो सकती ही नहीं, तो फिर किसकी इच्छा करें और क्यों करें? जिस शरीरको हम 'मैं', 'मेरा' और 'मेरे लिये' मानते हैं, वह शरीर भी हमें आजतक प्राप्त हुआ नहीं, प्राप्त है नहीं, प्राप्त होगा नहीं, प्राप्त होना सम्भव ही नहीं। कारण कि वह निरन्तर बदलता है और हम निरन्तर रहते हैं। तात्पर्य है कि शरीरका स्वयंसे कभी संयोग हुआ ही नहीं; क्योंकि ये दोनों ही परस्पर विरुद्ध स्वभाववाले हैं। इसलिये न तो हमें संसारसे कुछ चाहिये और न भगवान्‌से ही कुछ चाहिये। संसारसे इसलिये कुछ नहीं चाहिये कि उसके पास ऐसी कोई वस्तु है ही नहीं, जो वह हमें दे सके। भगवान्‌से भी शान्ति, मुक्ति, सद्गति, दर्शन आदि कुछ नहीं चाहिये; क्योंकि इनको देना भगवान्‌का कर्तव्य है, जो उनके अधीन है। हमारा काम भगवान्‌को उनका कर्तव्य बताना नहीं है, प्रत्युत अपने कर्तव्यका पालन करना है। हमारा कर्तव्य यह है कि हम भगवान्‌के सिवाय किसीको भी अपना न मानकर अपनेको सर्वथा अर्पण कर दें और भगवान्‌से कुछ भी न माँगें; क्योंकि वास्तवमें भगवान्‌के सिवाय अपना कोई है ही नहीं।

एक मार्मिक बात है कि भगवान्‌के सिवाय दूसरी वस्तुको अपना माननेसे भगवान्‌से सम्बन्ध-विच्छेद होता है। इसी तरह भगवान्‌से कोई वस्तु माँगनेसे उस वस्तुके साथ सम्बन्ध होता है और देनेवाले (भगवान्)-से सम्बन्ध-विच्छेद होता है। मनुष्यसे यही भूल होती है कि वह मिली हुई वस्तुओंको तो अपना मानता है, पर उनको देनेवालेको अपना नहीं मानता! मिली हुई वस्तुएँ तो बिछुड़ जायँगी, पर भगवान् नहीं बिछुड़ेंगे।

(३) सत्तामात्र हमारे स्वरूपमें कोई क्रिया नहीं है। क्रियामात्र प्रकृतिमें ही होती है। स्वयं किंचिन्मात्र भी कुछ नहीं करता—'**नैव किञ्चित्करोमीति**' (गीता ५। ८), '**नैव किञ्चित्करोति सः**' (गीता ४। २०)। मनुष्य जो कुछ करता है, कुछ-न-कुछ पानेके लिये ही करता है। जब सृष्टिमात्रमें कोई भी वस्तु हमारी और हमारे लिये है ही नहीं, तो फिर किसको पानेके लिये कर्म किया जाय? इसलिये हमें अपने लिये कुछ करना है ही नहीं।

अगर हम शरीर आदि किसी भी वस्तुको अपने साथ मानें तो कभी सर्वथा निष्काम हो सकते ही नहीं; क्योंकि शरीरको रोटी-कपड़ा आदि सब कुछ चाहिये। सर्वथा निष्काम हुए बिना क्रियाका त्याग भी नहीं हो सकता; क्योंकि कामना-पूर्तिके लिये क्रिया करनी ही पड़ेगी। इसलिये 'मेरा कुछ नहीं है'—यह अनुभव होनेपर 'मेरेको कुछ नहीं चाहिये'—ऐसा अनुभव करनेकी सामर्थ्य आ जाती है, और 'मेरेको कुछ नहीं चाहिये'—यह अनुभव होनेपर 'मेरेको कुछ नहीं करना है'—ऐसा अनुभव करनेकी सामर्थ्य आ जाती है।

'मेरा कुछ नहीं है'—ऐसा माननेसे मनुष्य ममतारहित हो जाता है, 'मेरेको कुछ नहीं चाहिये'—ऐसा माननेसे कामनारहित हो जाता है और 'मेरेको (अपने लिये) कुछ नहीं करना है'—ऐसा माननेसे कर्तृत्वरहित हो जाता है। ममतारहित, कामनारहित और कर्तृत्वरहित होनेसे मनुष्य 'स्व' में स्थित अर्थात् 'मुक्त' हो जाता है[१]। अगर साधक अपनी सत्ताको परमात्माकी सत्ताके अर्पित कर देता है अर्थात् 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं'—ऐसी आत्मीयता (अभिन्नता) स्वीकार कर लेता है तो वह 'स्वकीय'में स्थित अर्थात् 'भक्त' हो जाता है।

अगर कोई साधक ज्ञानमार्ग (निर्गुणोपासना)-का आग्रह रखकर भक्तिमार्ग (सगुणोपासना)-की उपेक्षा, अनादर, खण्डन, निन्दा अथवा तिरस्कार करता है तो उसको मुक्त होनेके बाद भी भक्तिकी प्राप्ति नहीं होगी। अगर साधक अपने साधनका आग्रह न रखे, भक्तिकी उपेक्षा, तिरस्कार न करे, प्रत्युत उसका आदर करे तो उसको मुक्त होनेके बाद भक्तिकी प्राप्ति स्वतः-स्वाभाविक हो जायगी। इसलिये गीतामें भगवान्ने '**येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि**' (४। ३५) पदोंसे कहा है कि 'तत्त्वज्ञान होनेपर सम्पूर्ण

---

[१] विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः। निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥
एषा ब्राह्मी स्थितिः………………………। (गीता २। ७१-७२)

प्राणियोंको निःशेषभावसे पहले अपनेमें देखेगा' (**द्रक्ष्यसि आत्मनि**)—यह मुक्तिकी प्राप्ति है, और 'उसके बाद मेरेमें देखेगा' (**अथो मयि**)—यह भक्तिकी प्राप्ति है। वास्तवमें हम शरीरके साथ कभी मिल सकते ही नहीं और परमात्मासे कभी अलग हो सकते ही नहीं। अतः मुक्त होना और भक्त होना वास्तविकता है।

मुक्तिमें तो सूक्ष्म अहम्की गंध रह जाती है, जिससे द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि मतभेद पैदा होते हैं, पर प्रेमकी प्राप्तिमें अहम्का सर्वथा अभाव हो जाता है[1], जिससे सम्पूर्ण मतभेद मिटकर '**वासुदेवः सर्वम्**' का अर्थात् परा-अपराके सहित भगवान्के समग्ररूपका अनुभव हो जाता है। यही 'विज्ञानसहित ज्ञान' है, जिसको जाननेके बाद फिर कुछ जानने योग्य शेष रहता ही नहीं—'**यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते**' (गीता ७। २) और जिसको जानकर साधक जन्म-मरणरूप संसारसे मुक्त हो जाता है—'**यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्**' (गीता ९। १)। इसी विज्ञानसहित ज्ञानका वर्णन भगवान्ने सातवें, नवें, दसवें और ग्यारहवें अध्यायमें किया है। फिर बारहवें अध्यायमें इसका निर्णय किया है कि केवल ज्ञानकी अपेक्षा विज्ञानसहित ज्ञान श्रेष्ठ है। कारण कि 'ज्ञान'में निर्गुणकी उपासना है और 'विज्ञान'में सगुण (समग्र)-की उपासना है। सगुणकी उपासना समग्रकी उपासना है। परंतु निर्गुणकी उपासना समग्रके एक अंगकी उपासना है; क्योंकि निर्गुणमें गुणोंका निषेध होनेसे उसके अन्तर्गत सगुण (समग्र) नहीं आ सकता, जबकि सगुण (समग्र)-में किसीका भी निषेध न होनेसे निर्गुण भी उसके अन्तर्गत आ जाता है। इसलिये सगुणका उपासक विज्ञानसहित ज्ञानको अर्थात् सगुण-निर्गुण, साकार-निराकारके सहित भगवान्के समग्ररूपको जान लेता है (गीता ७। २९-३०)।

'ज्ञान'से मुक्ति प्राप्त होती है और 'विज्ञान'से भक्ति प्राप्त होती है। मुक्तिमें परमात्मासे सधर्मता होती है—'**मम साधर्म्यमागताः**' (गीता १४। २) और भक्तिमें परमात्मासे आत्मीयता (अभिन्नता) होती है—'**ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्**' (गीता ७। १८)। अन्तिम प्रापणीय तत्त्व भक्ति ही है; अतः इसीकी प्राप्तिमें मानवजीवनकी पूर्णता है।

* * *

जनसंख्याकी वृद्धि रोकनेके अमानुषिक उपाय

(श्रीपन्नालालजी मुन्धड़ा)

जनसंख्या बढ़ रही है, इसे रोकना अनिवार्य है। क्यों बढ़ रही है, इसे जाननेके लिये इसपर चिन्तन करना समयकी बर्बादी है। जब नकल कर प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण होनेका सर्टिफिकेट मिल जाय तो फिर पढ़कर समय बर्बाद क्यों? सन् १९६५ में पोल एवं विलियमने अपनी पुस्तक 'फेमिन' में लिखा कि १९७५तक भारतकी बढ़ रही जनसंख्या भोजनके अभावमें उसी तरह मरेगी जैसे कसाईखानोंमें भेड़ें मरती हैं। क्या यह चेतावनी यथेष्ट नहीं? तो क्या हम जनसंख्या-वृद्धि रोकनेके लिये भारतीय संस्कृतिके उच्च आदर्शोंकी, मानवताके श्रेष्ठ प्रतिमानोंकी तिलाञ्जलि दे देंगे? नैसर्गिक उपायों—शम-दम-ब्रह्मचर्य एवं संयम आदिका मजाक उड़ाते रहेंगे? अमानवीय कृत्योंका सहारा लेकर यों ही हम भारतीय जन-धन, स्वास्थ्य-संस्कृतिका निरन्तर ह्रास करते रहेंगे? मानवीय संवेदनाओंसे पूर्ण भारतीय संस्कृति-मर्यादाका पक्षधर कोई भी व्यक्ति ऐसा घृणित कार्य करनेका विचार नहीं कर सकेगा, न तो इस कार्यके लिये सहमति ही प्रदान करेगा। फिर कितनी विडम्बना है, हम वही तो कर रहे हैं!

हमारे यहाँ जनसंख्या कम करनेके कई तरीके बड़े जोर-शोरसे अपनाये जा रहे हैं। उनमें गर्भ-निरोधक गोलियाँ तथा गर्भपात-जैसा अमानवीय तरीका भी शामिल है। एक सर्वेक्षणके अनुसार गर्भ-निरोधक गोलियोंका इस्तेमाल करनेवाली महिलाओंमें गर्भाशयमें कैंसर होनेकी सम्भावना सामान्य महिलाओंसे चार गुना अधिक होती है। विशेषज्ञोंके अनुसार १९९६ में टाटा मेमोरियल अस्पताल, मुंबईमें ६,८३६ महिलाओंपर किये गये सर्वेके अनुसार गर्भ-

---

[1] प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥ (मानस, उत्तर० ४९। ३)

निरोधक गोलियोंके कारण १,६९९ महिलाओंमें स्तन-कैंसर पाया गया, जो कि २४.९ प्रतिशत था तथा १,६३० महिलाओंके बच्चेदानीके मुँहपर कैंसर पाया गया। अमेरिकन सोसायटीके सर्वेके अनुसार अमेरिकामें इन गोलियोंके कारण प्रतिवर्ष ३४ से ३६ हजार महिलाओंको गर्भाशयका कैंसर होता है, जिनमें ४-५ हजार महिलाओंकी मृत्यु भी हो जाती है।

गर्भपात या गर्भमें ही मानव-हत्या, कितना नृशंस कृत्य है। गर्भसे बाहर आनेपर तो मानव-हत्या फाँसीका कारण बन सकती है, पर गर्भमें हत्या करना क्या अपराध नहीं माना जाना चाहिये? कैसी विडम्बना है! सरकारी आँकड़ोंके अनुसार १९७६ में २,०६,७१० गर्भपात हुए, १९८१ में १८,२१,००४ गर्भपात हुए एवं १९९० से १९९३के बीच सिर्फ स्वीकृति-प्राप्त संस्थाओंमें १८,१०,१०० गर्भपात हुए।

गर्भपात कराते समय डॉक्टर अपनी सड़सीसे क्या-क्या करता है तथा उस समय उस शिशुकी क्या दशा होती है, इसे कौतूहलवश जाननेके लिये अमेरिकाके डॉ० बर्नार्ड नाथनसनने अल्ट्रासाउंड मूवी बनायी। जिसे 'साइलेन्ट स्क्रीम' के नामसे जाना जाता है। इस मूवी फिल्मका १९८४ में 'नेशनल राइट्स टू लाइफ कन्वैन्शन' कनास सिटी, मिस्सौरीमें विवरण देते हुए सम्मेलनकी एक महिला प्रतिनिधि मिसेस् सेंडी रसेलने जो विवरण दिया, उसे पढ़कर मन घृणा, करुणासे विलख उठता है। शिशुके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको सँड़सीसे तोड़ा जाता है, ताकि उसे सक्सन ट्यूबके माध्यमसे बाहर निकाला जा सके। इस प्रणालीमें १५ मिनट लगे और छोटी-सी ही यह फिल्म है; पर जब स्वयं डॉक्टरने इस फिल्मको देखा तो घृणासे अपना व्यवसाय छोड़कर चला गया, वापस नहीं आया। अमेरिकाके मान्य राष्ट्रपति श्रीरोनाल्ड रीगनने इस फिल्मको देखा तो उन्होंने कहा—'जो लोग गर्भपातके पक्षधर हैं, कृपया इस फिल्मको देखनेके बाद अपने विचार प्रस्तुत करें।' श्रीरीगन गर्भपात-कानूनको बदलनेके इच्छुक थे, पर क्या किया जा सकता है। हिंसाने अहिंसाको मूर्च्छित कर दिया है, वह आज गौतम बुद्ध, भगवान् महावीरकी कर्मभूमि भारतमें असहाय है।

डॉ० मेरी शारलीबने अपने चालीस वर्षोंके अनुभवके आधारपर लिखा है कि 'संतति-निरोधके उपायोंको काममें लेते रहनेका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि स्त्रीमें प्रसन्नताकी कमी, चिड़चिड़ापन, अनिद्रा, उद्विग्नता, हृदय एवं मस्तिष्ककी कमजोरी, रक्त-प्रवाहकी कमी, हाथ-पैरोंमें सुन्नता तथा मासिक धर्मकी अनियमितता आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं।'

आवश्यकता है, बढ़ रही जनसंख्याके सही कारणोंके जानने एवं उनके निराकरणकी। प्राचीन परम्परागत उपायोंपर विचार करनेकी, उन्हें क्रियान्वित करनेकी। शम-दमसे इन्द्रियनिग्रहपूर्वक ब्रह्मचर्य धारण कर पूर्ण संयम बरतते हुए सहज ही इसका प्राकृतिक—स्वाभाविक समाधान हो सकता है। ऐसा होते ही हम निर्बाध गतिसे अपने विकास-पथपर—अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर होते जायँगे।

~~~

उत्पादनको बढ़ाना चाहते हैं, पर उत्पादक-शक्ति (जनसंख्या)-का ह्रास कर रहे हैं—यह कैसी बुद्धिमानी है?

× × ×

एक-दो संतान होगी तो घरका काम ही पूरा नहीं होगा, फिर समाजका काम कौन करेगा? खेती कौन करेगा? सेनामें कौन भरती होगा? सच्चा मार्ग बतानेवाला साधु कौन बनेगा? बूढ़े माँ-बापकी सेवा कौन करेगा?

× × ×

जन्मपर तो नियन्त्रण, पर मौतपर कोई नियन्त्रण नहीं—यह कैसी बुद्धिमानी है? जो मृत्युपर नियन्त्रण नहीं रख सकता, उसको जन्मपर भी नियन्त्रण रखनेका अधिकार नहीं है। अगर वह ऐसा करेगा तो इसका परिणाम नाश-ही-नाश होगा!

~~~

नाम-जप और संकीर्तन

[गताङ्क पृ०-सं० ८४५ से आगे]

१-जबतक किसी चीजका लोभ नहीं होता, तबतक उसे पाने और सुरक्षित रखनेकी धुन सवार नहीं होती। इसीसे जबतक हमारा नाममें लोभ नहीं होता, तबतक नाम-जपमें प्रीति होना भी कठिन है। नामका लोभ होनेपर तो स्वत: ही हर समय जप होने लगेगा। फिर तो एक मिनट भी व्यर्थ बात करना बुरा जान पड़ेगा। जिस प्रकार धनके लोभीको पाँच मिनट भी अपने व्यापारको छोड़ना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार भगवन्नामका लोभी पाँच मिनट भी व्यर्थ बात नहीं कर सकता।

२-जप सबसे कठिन चीज है। मैं तो ज्ञान और ध्यानसे भी जपको कठिन समझता हूँ। लोग ज्ञानकी बातें तो रात-दिन कर सकते हैं, परंतु उन्हें जप करना कठिन लगता है। सब प्रकारकी बातें छोड़कर निरन्तर एक ही मन्त्रको जपते रहना साधारण बात नहीं है। जपमें बड़ी विलक्षण शक्ति होती है।

३-नाम मन्त्रसे भी बड़ा है, क्योंकि मन्त्र-जपमें विधिका बन्धन है, जबकि नाम-जपमें विधि-विधानकी कोई आवश्यकता नहीं है। जैसा कि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥

(रा० च० मा० १। २५। ४)

नामकी यह महिमा कोई कल्पना नहीं, सर्वथा सत्य है।

४-जिसकी राम-नाममें निष्ठा हो गयी, उसके लिये संसारमें क्या काम बाकी रहा?

५-तुम जिस समय कृष्ण-नाम लो, उस समय अपनेको गोलोकमें समझो।

६-नामके अभ्याससे नाम मधुर लगने लगेगा। जैसे ध्यान करनेवालेको दिव्य गंध एवं दिव्य दर्शनादि चमत्कार होते हैं, वैसे ही नाम-जप करनेसे भी होंगे। भगवान्‌के दर्शनोंकी चाह होगी तो वे भी तत्काल दर्शन देंगे। विश्वास होनेपर तो केवल नाम-जपसे भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं। जो काम अधिक करता है वह भजन भी अधिक करेगा। जो काम नहीं करता उससे भजन भी नहीं हो सकता। हाँ, भजन धीरे-धीरे बढ़ाते जाओ तो काम अपने-आप कम होता जायगा। यदि भजनमें अत्यन्त प्रेम है तो घर छोड़कर एकान्तमें भजन कर सकते हो। भजनमें कोई विघ्न कर ही नहीं सकता। इसलिये पहले अभ्यास करना चाहिये, कुछ समय भजन-कीर्तनादि करना चाहिये और थोड़ी देर गुणानुवाद करना चाहिये। इससे भजनमें मन लग जायगा। यदि पैसे पास हों तो साधु-सेवा भी करो।

७-श्रीकृष्णके गुणानुवादमें कर्मकाण्डकी तरह आचार-विचारका कोई नियम नहीं है। वहाँ तो गौ दुहते, झाड़ू देते, दही मथते तथा हर एक काम करते हुए व्रजबालाएँ श्रीकृष्णका गुणगान किया करती थीं।

८-'कल्याण' मासिक पत्रने ध्यानसहित नाम-जपकी महिमा गाकर संसारका बड़ा उपकार किया है, क्योंकि सब लोग जपके साथ ध्यान नहीं करते। अत: ध्यानके बिना उन्हें विशेष लाभ भी नहीं होता। भजन कैसे करना चाहिये, इस विषयमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

कामिहिं नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

(रा० च० मा० ७। १३० (ख))

लोभीकी भाँति नाम अधिकाधिक मात्रामें जपना चाहिये और कामीकी भाँति निरन्तर स्वरूपका ध्यान करना चाहिये।

९-इष्टदेवके अनन्त नाम और अनन्त रूप हैं, किंतु हमारा तो एक नाम और एक रूपमें ही अनन्य प्रेम होना चाहिये।

१०-भगवान्‌से भगवन्नाम अलग है, परंतु भगवन्नामसे भगवान् अलग नहीं हैं। नामके अंदर भगवान् हैं।

११-गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी *'नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं'*॥ —इस चौपाईको सब लोग गाते हैं, किंतु फिर भी भगवन्नाम नहीं जपते और भगवन्नामकीर्तन भी नहीं करते। भगवान् तो अनन्त सौन्दर्यकी खान हैं, फिर भी उनकी ओर मन नहीं जाता। इसका कारण यही है कि श्रीभगवान्‌का कृपाकटाक्ष नहीं है। अपना पुरुषार्थ भी हो और भगवत्कृपा भी हो, तभी काम बनता है।

१२-ऋषियोंने यह निश्चय किया है कि भगवच्चिन्तन ही विधि है और जगच्चिन्तन ही निषेध है। जगच्चिन्तनका परिणाम ही यह देह है। भगवच्चिन्तन करनेसे यह दिव्य हो जायगा। अत: सर्वदा भगवान्‌का चिन्तन करना चाहिये। बस, भगवन्नामकी रट लगा दो—

'नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥'

(रा० च० मा० १। २७। ७)

१३-जो जितना अधिक जप करेगा, उसे उतनी ही अधिक शीघ्र सिद्धि मिलेगी। सोलह नामके महामन्त्रकी

कम-से-कम सोलह माला, द्वादशाक्षर-मन्त्रकी कम-से-कम बारह माला और '**ॐ नमः शिवाय**' मन्त्रकी कम-से-कम पचास मालाजप नित्यप्रति करनी चाहिये। अधिक जितनी कर सके उत्तम है। जिस व्यक्तिको जिस मन्त्रमें प्रीति हो, उसे उस एक ही मन्त्रका जप करना चाहिये। त्यागकी भावनाके लिये परद्रव्यका त्याग करे, पुरुषार्थसे यथावश्यक द्रव्योपार्जन करे, विषयोंमें आसक्तिका त्याग करे, यथालाभ-संतुष्ट रहे तथा ब्याज-के-ब्याज (सूद-दर-सूद)-से बचे। इन नियमोंका पालन किये बिना तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इससे भी शीघ्र तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिका उपाय है सद्गुरुकी प्राप्ति। सद्गुरु मिल जानेसे उसे शीघ्र ही सिद्धि हो जाती है। सद्गुरु जो नियम बतलावें, उन्हींका पालन करे।

१४-अधिक जप करनेसे शरीरके परमाणु मन्त्राकार हो जाते हैं।

१५-भगवन्नाम-स्मरण करनेके लिये शुचि-अशुचि, सुसमय-कुसमय और सुस्थान-कुस्थानका विचार नहीं करना चाहिये।

१६-भगवान्‌के अनन्त नाम हैं, अनन्त शक्तियाँ हैं, अनन्त रूप हैं और अनन्त भाव हैं। किन्हीं-किन्हीं महानुभावने अनन्त नाम और अनन्त शक्तियाँ—ये दो ही पक्ष माने हैं। इस प्रकार जब उनके अनन्त नाम हैं तो 'श्रीकृष्ण', 'श्रीराम' और 'श्रीशिव'—ये भगवन्नाम क्यों नहीं हो सकते। जो इन्हें भगवन्नाम नहीं मानते, वे उक्त सिद्धान्तसे अनभिज्ञ हैं।

१७-कीर्तन करनेवालोंको संध्या अवश्य करनी चाहिये। यह नहीं सोचना चाहिये कि हम कीर्तन करते हैं, हमें संध्या करनेकी क्या आवश्यकता है।

१८-कीर्तन करनेवाले भक्तोंसे मेरा निवेदन है कि वे कीर्तन करते समय बिना भावकी विशेषताके दिखावटी गिर पड़ना, मूर्च्छित हो जाना, रोना-नाचना आदि न करें तो अच्छा हो। यदि अत्यन्त बढ़े हुए भावके आवेशमें कोई सावधान न रह सकता हो तो दूसरी बात है।

१९-भाई, मैं यह नहीं कहता कि ध्यान मत करो। किंतु एक आदमी तो केवल ध्यान ही करता हो और दूसरा ध्यान भी करता हो तथा समय मिलनेपर कीर्तन भी—तो थोड़े ही दिनोंमें देख लोगे कि कौन अधिक उन्नति करता है।

२०-कलियुग सब युगोंसे खराब है, फिर भी देवताओंने भगवान्‌से प्रार्थना की कि हम कलियुगमें पैदा हों। इसका कारण यही है कि इस युगमें केवल श्रीभगवन्नाम-जप और कीर्तनसे ही मोक्ष मिल जाता है।

२१-सब यज्ञोंमें जपयज्ञ श्रेष्ठ है, क्योंकि और यज्ञोंमें तो यह देखना होता है कि उसमें काना न हो, कुष्ठी न हो, विधुर न हो, अविवाहित न हो; किंतु जपयज्ञमें ऐसी कोई बात नहीं देखी जाती। इसमें तो चाहे बालक हो, चाहे बूढ़ा हो, चाहे स्त्री या शूद्र हो, सभीका अधिकार है।

२२-मैं अपने अनुभवसे कह सकता हूँ कि आजकल भगवन्नाम-जप और जितेन्द्रियता ही सब कुछ है। तत्त्वज्ञान कलियुगी जीवोंकी समझमें नहीं आ सकता। तत्त्वज्ञान तो पवित्र हृदयवालोंको ही होता है और हृदय तब पवित्र होता है, जब सब प्रकारकी पवित्रताओंका पालन किया जाय।

२३-सबसे कठिन चीज क्या है? जप। और बुद्धिको पवित्र करनेवाली चीज क्या है? जप। जप यदि एक आसनसे किया जाय तो बहुत अच्छा है।

२४-जिस दिन हमारी नाममें आसक्ति हो जायगी, उसी दिन भक्ति महारानी आ जायँगी।

२५-भगवन्नाम-कीर्तनसे ही उद्धार हो सकता है—

देखो जी ऐसो राम नाम रसखान।
मूरख याको मरम न जानें पीवें चतुर सुजान॥

२६-जिनकी विचारमें रुचि नही है और जो भगवद्गुणानुवादमें ही मस्त हैं, वे ही उत्तम हैं। पापकर्मोंको ध्वंस करनेके लिये भी जप करनेकी आवश्यकता है। इसीसे ज्ञान-वैराग्य-युक्त भक्तिकी प्राप्ति होगी। इसको भी अनिर्विण्ण-चित्तसे करना चाहिये। देहनाशपर्यन्त इसे तत्परतासे करते रहना चाहिये। पुनः-पुनः चिन्तन करनेको ही अभ्यास कहते हैं और यही पुरुषार्थ है। ईश्वर-चिन्तनमें आनन्द आवे अथवा न आवे, उसे तो प्रतिज्ञापूर्वक करते ही रहना चाहिये। मन भागता रहे तो भी कोई चिन्ता नहीं, किंतु नियमपूर्वक चिन्तनकी प्रतिज्ञा करनी ही चाहिये। भगवान् उसीपर दया करते हैं जो उनका चिन्तन करता है। जिस प्रकारसे भगवान्‌में मन लगे वही करना चाहिये। जपमें मन कम लगे तो कीर्तन करे या स्तोत्रपाठ अथवा स्तुतिपरक पदोंका गान करे।

२७-अभ्यास करनेसे हम निद्राको जड़-मूलसे उखाड़ सकते हैं, किंतु यह काम चार दिनके अभ्याससे नहीं होगा। इसलिये जल्दबाज नहीं होना चाहिये। यह निश्चय कर लेना चाहिये कि मैं आजन्म भगवन्नाम लेता रहूँगा। नित्यके नाम-जपका हिसाब लिखें। इस प्रकार प्रतिज्ञा करनेसे भजन होगा। भजन तो हठपूर्वक भी करना चाहिये। भजन करनेवालोंके लिये अतिआहार और अतिपरिश्रम निषिद्ध हैं।

जप करते हुए मन भटके तो भटकने दो। जपमें इतनी शक्ति है कि वह अधिक होनेसे अपने-आप मनको एकाग्र करनेमें सहायता करेगा। हम एकाग्रताकी अपेक्षा भी प्रतिज्ञापूर्वक नियमित रूपसे जप करनेमें विशेष लाभ समझते हैं। जैसे तीन घंटे भजनका तथा नित्यप्रति गीतापाठका नियम कर लिया जाय। नित्यप्रति साधन करनेकी प्रतिज्ञा कर ली जाय तो इससे बड़ा लाभ होगा। यदि लाभ न भी दीखे तो भी कोई हर्ज नहीं। इस जन्ममें नहीं तो अगले जन्ममें लाभ दिखायी देगा। कभी-न-कभी तो आनन्द आयेगा ही।

२८-एक बार एक मुसलमानने मेरे पास आकर पूछा कि हमारा उद्धार कैसे हो सकता है। मैंने कहा—'भैया, 'अल्लाह-अल्लाह' रटा करो। 'अल्लाह-अल्लाह' रटनेसे तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा और हिंसा आदि बुरे कर्म छूट जायँगे, क्योंकि यह भी एक प्रकारका कीर्तन ही है।'

२९-माला भगवत्स्वरूप है। जिस मालासे हम जप करते हैं, उसमें एक प्रकारकी शक्ति पैदा हो जाती है। अतः मालाको जल्दी-जल्दी नहीं बदलना चाहिये।

३०-कीर्तनसे एकाग्रता उत्पन्न होती है। शब्दमें रूपके समान ही आकर्षणशक्ति है। इसलिये प्रभु श्रीकृष्णने वंशी और रूप दोनोंसे ही सबको वशमें किया था। मिलकर कीर्तन करनेसे तुमुल ध्वनि होती है। दूसरी बात यह है कि कीर्तन करनेवालोंमेंसे यदि एकका चित्त भी सत्त्वगुणमय होगा तो सभीके चित्तोंमें सत्त्वगुणका आविर्भाव हो जायगा। इस प्रकार पहले कीर्तनद्वारा चित्तकी एकाग्रता लाभ कर लेनेपर प्रभुका ध्यान होगा।

३१-भगवान् और भगवान्‌के नाममें कोई भेद नहीं है, अतः प्रेमसे भगवन्नाम जपना चाहिये—

जोई नाम सेई कृष्ण भज निष्ठाकरि।
नामेर सहित आछे आपनि श्रीहरि॥

३२-जबतक पाप रहेगा, तबतक श्रीकृष्ण-नाममें प्रेम नहीं हो सकेगा।

३३-जब पास बैठनेसे ही दूसरे व्यक्तिकी जपमें प्रवृत्ति होने लगे, तब समझो कि जापकका नाम-जप सिद्ध हुआ।

३४-जप किये बिना न रहा जाय, यहाँतक कि जप पूरा न होनेपर खाना-पीना भी अच्छा न लगे, तब समझो कि जप सिद्ध हुआ। इसीको जपनिष्ठा कहते हैं।

३५-पाठ आदि अन्य साधनोंसे तो मनोरञ्जन भी होता है, ये प्रवृत्तिकी ओर ले जाते हैं। किंतु जप निवृत्ति-मार्ग है और भगवान्‌की ही ओर ले जाता है। वास्तवमें जप ही सबसे मुख्य है, किंतु उसमें मन कठिनतासे लगता है।

३६-भगवान्‌के स्वरूपमें तो प्रेम हो सकता है, परंतु नाममें प्रेम होना कठिन है। जिसने बहुत समयतक सेवा की हो, उसे ही नाममें प्रेम हो सकता है। भगवान्‌का नाम उनके स्वरूप और सेवा दोनोंकी अपेक्षा सूक्ष्म है।

३७-स्मरण ही प्रेमका स्वरूप है। स्मरण करनेसे ही प्रेम होता है। बिना स्मरण किये केवल जप करनेसे विशेष लाभ नहीं होता। जब इष्ट-नाममें प्रेम हो जाता है तो नाम लेनेके साथ ही गद्‌गदता होकर आँसू आ जाते हैं और बेहोशी होने लगती है। जो प्रेमसे भगवान्‌का नाम लेता है, भगवान् उस भक्तका स्मरण करते हैं। देखो, एक ओर श्रीराधिकाजी 'कृष्ण-कृष्ण' कहती रहती हैं तो दूसरी ओर श्रीकृष्ण 'राधे-राधे' की रट लगाये रहते हैं। इससे निश्चय होता है कि जप इष्टदेवके स्मरणपूर्वक होना चाहिये। देखा जाता है कि बहुत लोग माला लेकर जप भी करते रहते हैं और भाईसे लड़ाई अथवा मुकदमेबाजीकी बातें भी। ऐसे जपसे भला क्या लाभ होगा? होगा भी तो अगले जन्ममें भले ही हो। तत्काल लाभ तो स्मरणपूर्वक जप करनेसे ही होगा।

३८-जपके समय ये चार काम नहीं करने चाहिये—(१) बोलना, (२) इधर-उधर देखना, (३) सिर या गर्दन हिलाना और (४) हँसना। जैसा कि कहा है—

जपकाले न भाषेत नान्यानि प्रेक्षयेद् बुधः।
न कम्पेत शिरोग्रीवां दन्तान् नैव प्रकाशयेत्॥

३९-भगवान्‌के मङ्गलमय नाम उच्चारण करनेसे करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं—ऐसा विद्वानोंने निश्चय किया है।

४०-भगवान् उत्तमश्लोक (पवित्रकीर्ति)-का नाम जानकर लिया जाय अथवा बिना जाने—वह पापोंका नाश करता ही है।

४१-ज्ञानी या भक्तसे कोई अपराध (पाप) बन जाय तो उसे शास्त्रोक्त प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं है। वह केवल जपसे ही दूर हो जायगा। बस, जप ही उसका प्रायश्चित्त है। [समाप्त] **(एक संतका उपदेश)**

लीला-चिन्तन

श्रीरामलीला-चिन्तन —

भगवान् श्रीरामकी दिनचर्या

अव्यवस्थित दिनचर्या अशान्त मानस एवं अपूर्ण व्यक्तित्वका प्रतीक है। मर्यादापुरुषोत्तम पृथ्वीपर मानवकी धर्ममर्यादाके स्थापनार्थ पधारे थे, अतः उन्हें श्रुति-शास्त्र-सम्मत दिनचर्याका भी आदर्श स्थापित करना ही था। उनकी दिनचर्या सम्राट्की दिनचर्या; किंतु सामान्य व्यक्तिके लिये भी उसमें बहुत कुछ अपनाने योग्य आदर्श हैं। आज वह हमारे लिये भले अशक्य हो; किंतु हमारे पूर्व-पुरुष कैसा जीवन व्यतीत करते थे, एक आदर्श आस्तिक व्यक्तिका भारतमें दैनिक जीवन कैसा था, यह इसका परिचायक है।

ब्रह्ममुहूर्तके प्रारम्भमें अर्थात् सूर्योदयसे तीन घंटे पूर्व ही निद्रा त्यागकर सर्वप्रथम हस्त-मुखका प्रक्षालन करके शय्याके समीप रखे आसनपर आसीन होकर स्थिर-चित्तसे ध्यान करते थे मर्यादापुरुषोत्तम। अपने स्वरूपका ध्यान—निर्मल, निष्कल, निर्विकार तथा अद्वितीय और एक-रस परिपूर्ण परम तत्त्वका ध्यान।

नियमतः सम्राट्का उत्थापन मङ्गल-वाद्यों तथा वन्दीजनोंके स्तवनसे होता था; किंतु वस्तुतः तो यह उत्थापन निद्रात्याग नहीं था। श्रीजनकनन्दिनी ही जानती थीं कि सम्राट् स्वतः जग जाते हैं। मङ्गल-वाद्य एवं वन्दियोंका यशोगान तो उन्हें ध्यानसे जगानेमें निमित्त हैं। ध्यानसे उठकर वे पुण्य-श्लोक पुरुषोंका—अपने कुलके महान् पूर्वजोंका, ब्रह्मा-शिव प्रभृति अपनी विभूतियोंका स्मरण करके नित्य-शौचसे निवृत्त होते हैं।

विशुद्ध नवनीत-कोमल मृत्तिका एवं ऋतुके अनुकूल उष्ण, कवोष्ण अथवा शीतल जल प्रस्तुत रहता है हस्त-पाद-मार्जन-प्रक्षालनके लिये। सुगन्धित औषधि-सम्पुटित दन्तधावन सम्राट्के लिये भिषक्-श्रेष्ठ स्वयं निर्मित करते हैं। उसका उपयोग करनेके पश्चात् अनुजोंके साथ सरयू-स्नान करने पधारते हैं। स्नान, संध्या, सूर्योपस्थान, नित्य-हवनके अनन्तर देव-मन्दिरोंमें दर्शन करके लौटनेमें पर्याप्त विलम्ब होता है। राजसदन आकर भी पहले गो-पूजन, मङ्गलगज, अश्व, मधु, घृत एवं आदर्श (दर्पण)-का दर्शन करके तब वस्त्राभरण, अङ्गराग, पुष्पमाल्य धारण होता है।

कोई कर्तव्यमें प्रमाद नहीं करता; किंतु एक निश्चित नियम है कि सम्राट् अङ्गराग, पुष्पमाल्य, आहार अथवा ताम्बूल-ग्रहणसे पूर्व पूछेंगे ही एक-एक स्वजन, सेवक, सेविकाका नाम लेकर कि वह पदार्थ उन सबको प्राप्त हो गया अथवा नहीं। केवल श्रीजानकी और हनुमान् इसके अपवाद हैं। इन्हीं दोनोंको सम्राट्के सेवनके अनन्तर ये पदार्थ प्रसाद-रूपमें प्राप्त करनेका स्वत्व है। शेष सबको—सभी सेवकोंको ये पदार्थ प्रथम प्राप्त हो चुके हों, तभी सम्राट् इन्हें स्वीकार करेंगे। ऋतुओंके अनुसार, दिनके अनुसार, पर्वके अनुसार वस्त्र, आभरण, अङ्गराग, पुष्पमाल्यके रंगमें, जातिमें परिवर्तन होता है।

अलंकृत होकर श्रीराघवेन्द्र पितृतर्पण करते हैं। ब्राह्मणोंका पूजन करके उनको गौ, अन्न, वस्त्र, स्वर्णादिका दान करते हैं। तब सदनसे बाहर राज-दर्शनके लिये उपस्थित प्रजावर्गके लोगोंसे मिलनेके पूर्व भाइयोंको, स्वजनोंको, नगरके सुहृद्-सखाओंको समय मिलता है। उनसे उनका वृत्त पूछते हैं। उचित सम्मति एवं सहायता देते हैं। प्रजाजनोंसे मिलते समय उनके उपहार स्वयं सप्रेम स्वीकार करते हैं। उनके समाचार पूछते हैं। उनको तथा सेवकोंको भी सत्कृत करते हैं—पुरस्कृत करते हैं।

यह सब करते हुए मध्याह्न हो जाता है। भाइयोंके साथ पुनः सरयू-स्नान करने पधारते हैं। मध्याह्न-स्नान, संध्या करके राजसदन लौटनेपर पहले आगत-अतिथियोंको, ब्राह्मणोंको भोजन कराते हैं स्वयं। इससे पूर्व गौओंको, अग्निको, पक्षियोंको उनका भाग प्राप्त हो चुका होता है। वृद्धोंको तथा वृद्ध सेवक-सेविकाओं तकको भोजन कराके तब भाइयोंके साथ स्वयं भोजन करते हैं। आचमनके अनन्तर ताम्बूल ग्रहण करके अत्यल्प समय मिलता है

मध्याह्न-विश्रामको। यह समय भी निद्राके लिये नहीं है। इस समयमें अन्त:पुरकी नारियों तथा सेविकाओंको अपनी बात सम्राट्को सुनानेका समय मिलता है।

दिनका तृतीय प्रहर भारतीय दिनचर्यामें उपार्जनका काल है—लौकिक कर्तव्य पूरा करनेका समय। इससे पूर्व ही सम्राट् उठकर अलंकार, अङ्गराग, पुष्पमाल्य धारण कर लेते हैं और हनुमान्‌को आगे करके रथमें विराजमान होकर राजसभामें उपस्थित होते हैं। कुलगुरु ब्रह्मर्षि वसिष्ठ, सभी मन्त्रीगण, प्रजा-प्रधान, सब भाई उपस्थित मिलते हैं राजसभामें। अयोध्याके सम्राट्की राजसभा—किसी भी दिन कोई भी लोकपाल, दिक्पाल, सुर, देवता, यक्ष, किन्नर एवं नाग आदि सम्राट्की सेवामें उपस्थित हो सकते हैं।

राजसभाके और सदनके, नगरके भी सेवक अत्यन्त विनम्र हैं। सब जानते हैं कि सम्राट् आगतसे कुशल-प्रश्नके समय अवश्य पूछेंगे—'आपको यहाँ कोई असुविधा तो नहीं हुई? नगरमें, राजसभामें आपको सुविधापूर्वक पहुँचाया गया? उचित वाहन प्राप्त हुआ आपको? पान्थशालामें प्रबन्ध ठीक है?'

आगत अस्वीकार ही न कर दे तो उसे नगर-द्वारसे रथमें लाया जाता है। सेवक आग्रह करते हैं कि यह पान्थशालामें आहार अथवा अल्पाहार स्वीकार करके तब सम्राट्के समीप जाय। अपरिचित ऋषि, मुनि, विप्रवर्ग राजसभामें प्रवेश करते ही—'सावधान!' शब्दोच्चारण करते हैं, सम्राट् स्वयं उठकर उन्हें प्रणाम करते हैं, आसन देकर अर्घ्य, पाद्यादि निवेदित करते हैं।

देवता ही नहीं, अनेक बार दैत्य, दानव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर तथा नागोंके प्रमुख पधारते हैं। मानव-नरेश, कला-प्रवण लोग अथवा वन्य जातियोंके लोग भी आते हैं। कोई भी दिन ऐसा नहीं होता, जिस दिन शतशः अभ्यागत राज-दर्शनार्थ न आते हों। आगतोंकी कभी ही कोई समस्या होती है। अधिकांश लोग आते हैं सम्राट्का दर्शन करने और उनके श्रीचरणोंमें अपना कोई अतिशय प्रिय उपहार निवेदित करने।

श्रीराघवेन्द्र किसी भी वन्य पुरुषको, किसी अत्यन्त दरिद्र-कृशकाय तापसको, किसी सेवक-वर्गसे आये व्यक्तिको देखकर सिंहासनसे उठकर दौड़ पड़ते हैं। अस्त-व्यस्त उसे उठाकर हृदयसे लगाकर पुलक-पूरित हो जाते हैं। निषादराज गुह प्राय: प्रतिदिन आते हैं। प्रतिदिन उनके साथ यही होता है। श्रीराम उनसे ऐसे आतुरभावसे मिलते हैं, जैसे युगोंके पश्चात् मिले हों।

भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान्, सुमन्त्रादि सब सतत सावधान रहते हैं। परंतु भक्तवत्सल, अनन्त दयार्णव, उदार-शिरोमणि सम्राट् सबके अपने हैं। प्रतिदिन राजसभामें आनेवाले नगरके सखा, प्रजा-प्रधान तकको कभी नहीं लगा कि भाववश्य श्रीरामका ध्यान आज उनकी ओर कम गया। प्रत्येक आगतका उसके भावके अनुसार सत्कार करनेमें ये ही समर्थ हैं। अनेकके सम्बन्धमें आदेश हो जाता है—'आपने अपने रामको इतना पराया समझा कि पान्थशालामें ठहरे!'

इतना पर्याप्त होता है। भाइयोंमें लक्ष्मण या शत्रुघ्न उस आगतका सब उपकरण पान्थशालासे राजसदन उठा ले जायँगे। श्रीरघुनाथ स्वयं उसे लेकर राजसदन न भी जायँ तो भरत अवश्य उसके साथ जायँगे। अब दिनमें अनेक बार सम्राट् उसके सम्बन्धमें पूछेंगे। विदा होते समय आगतोंको सम्राट्के अत्यधिक उपहार तो प्राप्त होंगे ही, वाहन प्राप्त होंगे और अधिकांशको सम्राट् स्वयं पहुँचाने चल पड़ेंगे।

श्रीरामका स्वभाव ही है कि परिचित-अपरिचित कोई मिले, स्वयं स्मितपूर्वक उससे पहले बोलेंगे। उसका संकोच स्वयं दूर कर देंगे। ऐसे मिलेंगे जैसे वह बहुत-बहुत परिचित हो उनसे। सचमुच इन सर्वसुहृद्से कोई अपरिचित कैसे हो सकता है।

राजसभाका समय नियत तो है प्रजाको न्यायदान करनेके लिये; किंतु कभी कोई न्यायकी माँग करने आये, ऐसा अवसर ही प्रजाको प्राप्त नहीं होता। एक ही निश्चित अभियोग बार-बार उपस्थित होता है। कभी भी कोई वणिक्, प्रजा-प्रधान, वन्य जातिका सेवक उपस्थित होकर किसी राजकर्मचारीके विरुद्ध उपस्थित कर देता है। प्राय: कुमार शत्रुघ्नके विरुद्ध यह अभियोग उपस्थित होता है—

'हमें सम्राट्की सेवासे वंचित किया गया है। हमारे उपहार अस्वीकृत हुए हैं। हमारा अनधिकार? हमारा अपराध क्या है? हम षष्ठांशसे अधिक दे रहे हैं, यह सत्य है; किंतु सम्राट् क्यों हमें परिग्रहके लिये बाध्य करें। हम इतने उत्तम गज, अश्व, गौ या रत्न, मणि, औषधि क्या करेंगे? यह राजसेवाके उपयुक्त—परंतु इसे स्वीकृति क्यों नहीं मिलती? कुमार तथा दूसरे राजसेवक हमारी अनुपस्थितिमें अथवा हमारी अस्वीकृतिकी उपेक्षा करके हमारे यहाँ इतने

बहुमूल्य उपहार क्यों रखवा देते हैं?'

इन अभियोगोंका एक ही उत्तर सम्राट्के समीप है। ये सस्मित कह देंगे—'राजसेवक तथा कुमार शत्रुघ्न जानते हैं कि आप अपने इस सेवकके, जिसे आपने सम्राट् बना दिया है, स्वजन हैं। अतः आपको अपने-आपको असुविधामें, अल्पभोगमें रखनेका अधिकार नहीं है। आप क्यों मानते हैं कि आपका सदन सम्राट्का नहीं है और सम्राट्की वस्तु अयोध्या ही आनी चाहिये। वह आपके यहाँ सुरक्षित रहे, आप उसका उपयोग करके उसे कार्यक्षम बनाये रहें तो आवश्यकता होनेपर मैं मँगा भी सकूँगा।'

दिवसके तृतीय प्रहरके अन्तमें राजसभा विसर्जित होती है। सम्राट् कभी अपनेको विदार-ध्वज स्यन्दनपर और कभी महागजपर जो चतुर्दन्त, श्वेत पर्वतके समान शुभ्र एवं विशाल है, बैठकर नगर-दर्शनके लिये निकलते हैं।

भवनोंसे लाजा, दूर्वांकुर, पुष्प, केशर-चन्दनकी अनवरत वर्षा होती रहती है। वाद्य बजते हैं, ब्राह्मण वेदपाठ करते, सूत-मागध-वन्दी स्तवन करते साथ चलते हैं। सब भाई, पवनकुमार, प्रायः सब मन्त्री एवं प्रजा-प्रधान भी साथ होते हैं। केवल ऋषिगण राजसभासे अपने आश्रम चले जाते हैं।

सम्राट् पान्थशाला देख सकते हैं। वहाँ रुके किसी अभ्यागत-विशेषसे मिल सकते हैं। नगरमें किसी सुहृद् या श्रेष्ठीके सदनमें कुछ क्षणोंके लिये पधार सकते हैं। किसी देवमन्दिरमें, ऋषि-आश्रममें अथवा किसी शिल्पी, कवि, चित्रकारकी कला-शालाको कृतार्थ कर सकते हैं। नगरके किसी फलोद्यान, पुष्पोद्यान, वापी अथवा सरोवरको देखने जा सकते हैं। किन्हीं भी औद्योगिक संस्थानोंको देख सकते हैं। राजसभासे उठनेपर सम्राट् स्वयं अकस्मात् ही सूचित करते हैं कि वे आज किधर पधारेंगे।

पथोंके दोनों ओर आपण-श्रेष्ठी करोंमें उपहार लिये खड़े रहते हैं। स्थान-स्थानपर नीराजन होता है। प्रायः सम्राट्की ओरसे श्रीभरतलाल उपहार स्वीकृत करते हैं और पारितोषिक देते, घोषित करते चलते हैं। सम्राट् जहाँ पधारते हैं, वहाँके सदनपति, सेवकादि सबको विशेष रूपसे पुरस्कृत किया जाता है।

मार्गमें कहीं कोई भी आगे आ सकता है। अपना आवेदन प्रस्तुत कर सकता है; किंतु ऐसा अवसर नहीं आता। होता यह है कि सम्राट् स्वयं किसी तपस्वीको, वृद्धको, नगर-श्रेष्ठीको या सेवकको समीप बुला लेते हैं। जो उन्हें क्षीणकाय, अल्पधन, अल्प-सज्जित लगे, अवश्य बुला लेंगे—'आप इतने अपरिग्रही, इतने वीतराग हैं।'

अब वह कितना भी अस्वीकार करे, उसका सामान्य भवन भी विशेष बन जायगा। उसमें अपार सम्पत्ति एवं बहुमूल्य उपकरण आ जायँगे। बालकोंको तो विशेष रूपसे सम्राट् समीप बुलाकर स्नेह करते हैं। उनके उपहार स्वयं स्वीकार करते हैं और साग्रह उन्हें पुरस्कृत करते हैं। प्रायः सम्राज्ञी इस नगर-भ्रमणमें साथ नहीं होतीं; किंतु अवसर-विशेषपर वे साथ होती हैं। उस समय नारियोंका सत्कार बढ़ जाता है।

नगर-भ्रमणके अनन्तर सायं-स्नान, संध्या-तर्पणका नित्यकर्म सम्पन्न होता है और तब श्रीराघवेन्द्र रात्रिके प्रथम प्रहरमें कथास्थलमें पधारते हैं। राजसदनकी स्त्रियाँ तथा नगरकी सम्मानित महिलाएँ भी पृथक् स्थानमें बैठती हैं। श्रीशिवशर्माजी (भगवान् शंकर) तो प्रधान कथा-वाचक हैं ही, आगत ऋषि-महर्षि, विद्वान् भी पुराण, इतिहास अथवा शास्त्रका प्रवचन करते हैं।

रात्रिके द्वितीय प्रहरके प्रारम्भमें अल्पाहार करके सम्राट् अपने निजी मन्त्रणा-कक्षमें गुप्तचरोंसे विवरण सुनते हैं। मन्त्रियोंसे मन्त्रणा करते हैं। यह कार्य अल्प समय लेता है। भाइयोंको भी यह समय प्राप्त होता है। इससे अवशिष्ट समय मध्य रात्रितक राजसदनके सामान्य कक्षमें नागरिक एवं राजसदनके सदस्योंके साथ कलाजीवी—कवि, विदूषक, नृत्य-संगीतकारोंकी कलाको देखने और उन्हें पुरस्कृत करनेका है।

मध्य रात्रिमें सम्राट् अपने अन्तःपुरके शयनागारमें पधारते हैं। यह सामान्य दिनचर्या है। विशेष पर्वोंपर, उत्सवोंके समय, किसी सम्मानित जनके आगमनपर, कोई विशेष नाट्याभिनय अथवा नगरमें कहीं किसीके यहाँ महोत्सव होनेपर इस दिनचर्यामें तदनुकूल परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन होता ही रहता है। सामान्य दिनचर्याको ही इतना कम समय मिलता है कि वह विशेष बन गयी है। सम्राट्को आखेट-यात्रा भी करनी होती है और राज्य-भ्रमणकी यात्राएँ भी। उनकी विशेष व्यवस्था बनती है।

* * *

कलियुगमें भगवत्साक्षात्कारका सरल साधन

(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी पिलखुवा)

इस संसारमें सभी प्राणी—चींटीसे लेकर हाथीतक, बच्चेसे लेकर बूढ़ेतक और गरीबसे लेकर राजा-महाराजातक सभी सुख चाहते हैं। सभी सुखकी तलाशमें हैं। दुःख कोई नहीं चाहता, किंतु हैं सभी दुःखी। वस्तुतः सच्चा सुख वही प्राप्त कर सकेगा जो भौतिक सुखोंकी असलियतसे सावधान होकर वास्तविक सुख अर्थात् भगवान्‌की कृपा-प्राप्तिके लिये सचेष्ट है।

इस संसारमें अधिकांश लोग तरह-तरहके सुस्वादु भोजन, आधुनिकतम सुविधाओंसे युक्त मकान, कार, नौकर तथा अन्य भौतिक साधनोंको सुखद समझकर उनके पीछे अंधोंकी तरह दौड़ रहे हैं। किंतु यदि आप किसी बड़े धनपति या शासनारूढ नेतासे एकान्तमें पूछें कि क्या वह वास्तवमें अपने लक्ष्यको प्राप्त कर संतुष्ट तथा सुखी है तो वह यही उत्तर देगा कि संतोषका नाम न लो। अभी तो मेरी न जाने कितनी असीमित आकांक्षाएँ हैं। वह अपने दुःखों एवं असंतोषको बार-बार याद करके हमेशा तनावग्रस्त ही बना रहता है। कोई भी धनी या बलशाली व्यक्ति अपनेको पूर्ण सुखी तथा संतुष्ट होनेका दावा कर ही नहीं सकता।

यदि इस अनित्य संसारमें धन-धाम, स्त्री-पुरुष आदिमें सुख होता तो असंख्य भोगैश्वर्य-सम्पन्न व्यक्ति अपनेको पूर्ण सुखी तथा संतुष्ट होनेका दावा करता दिखायी देता। फिर भला गोपीचन्द अपना राजपाट क्यों त्यागते! महाराज भर्तृहरि वन-वन क्यों घूमते? भक्त प्रह्लाद अपने साधन-सम्पन्न पिता राजा हिरण्यकशिपुसे विमुख क्यों होते! विभीषण अपने भाई रावणकी नीतियोंसे असहमत क्यों होते, भगवान् बुद्ध राजपाट त्यागकर जंगलका रास्ता क्यों अपनाते? महाराज हरिश्चन्द्र चांडालके हाथों क्यों बिकते? इन सब ऐतिहासिक घटनाओंसे यही सिद्ध होता है कि सच्चा सुख भौतिक तथा आधुनिक सुख-सुविधाओंमें निहित है ही नहीं।

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने चेतावनी दी है—

राम नाम नहिं लेत हैं रच रच बाँधे बाग।
तुलसी तिनकी देह लखि चोंच सँभारे काग॥
कूकर सूकर करत है खान पान तनु-भोग।
यह तन वृथा न खोइये तुलसी भजने जोग॥

उनके कहनेका भाव यह है कि अपने शरीरको क्यों वृथा सजा-सँवार रहे हो—इसे तो एक-न-एक दिन मिट्टीमें मिलना ही है। अपना समय क्यों वृथा केवल खाने-पीनेमें ही गँवा रहे हो? खाने-पीनेमें ही यदि सुख होता तो सूअर-कुत्ते आदि भी तो खा-पीकर सुखी हो जाते। यह शरीर बड़े पुण्यसे मिलता है। इसकी सार्थकता तो भगवान्‌का भजन करनेमें है, उसका पावन स्मरण करनेमें ही है।

हमारे धर्मशास्त्रोंमें भगवत्प्राप्तिके साधनोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। अलग-अलग युगमें भगवत्प्राप्तिके अलग-अलग साधन बताये गये हैं। योग-यज्ञ, जप-तप, ज्ञान-ध्यान, दान आदिको भगवत्प्राप्तिका साधन बताया गया है। हमारे ऋषि-महर्षि, संत-महात्मा तथा भक्तजन घोर तपस्या करके ज्ञानके माध्यमसे जीवात्मा एवं परमात्माके स्वरूपको पहचानकर तथा साधक ध्यान, दान और परोपकारके माध्यमसे भगवत्साक्षात्कार कर अपना जीवन सार्थक करते रहे हैं। किंतु कलियुगमें मानवका इतना पतन होता जा रहा है कि वह न तो योग कर सकता है न तप। आजके प्रदूषित विचारोंके वातावरणमें सच्चा ज्ञान प्राप्त करनेवाले विरले ही होते हैं। सिनेमा, दूरदर्शन तथा दूषित विचारोंके परिवेशमें ध्यान करना, मनको एकाग्र रखनेका दावा भी विरले व्यक्ति ही कर सकते हैं। रही बात यज्ञ-दानकी तो भौतिक सुख-सुविधाओंकी मृगमरीचिकामें फँसा व्यक्ति यज्ञ-दानकी तब सोचेगा, जब पहले अपनी तथा अपने परिवारकी असीमित महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्ति कर लेगा।

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने कलियुगी जीवोंके लिये भगवत्प्राप्तिका सरल साधन इस प्रकार बताया है—

न मिटै भवसंकटु दुर्घट है तप, तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलिमें न बिरागु न ग्यानु कहूँ, सबु लागत फोकट झूठ-जटो॥
नटु ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक-कौतुक-ठाट ठटो।
तुलसी जो सदा सुखु चाहिअ तौ, रसनाँ निसिबासर रामु रटो॥

(कवितावली ७। ८६)

उनके इस कथनका सार है कि भगवान्‌के पावन नामके

जाप तथा उनकी पावन लीला-स्वरूपका चिन्तन करनेसे ही हमारा कल्याण सम्भव है।

एक प्रेमी संतने कहा है—

जिनको रुचि हो सो करे बेशक प्राणायाम।
यहाँ तो प्राण पुकारते घड़ी-घड़ी घनश्याम॥
जिनको भावे सो करो, निराकारका गान।
यहाँ तो मनमें रम रही राम-नामकी तान॥
जिनको रुचता हो करे निराकारका ध्यान।
यहाँ तो कढ़ती ही नहीं मनसे हरि मुस्कान॥

महर्षि वेदव्यासजी कीर्तन तथा लीला-चिन्तनको ही कलियुगमें सबसे सरल साधन बताते हुए लिखते हैं—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

संत कबीरदासजी महाराज कहते हैं—

कबिरा सब जग निर्धना धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सोइ जानिये राम नाम धन होय॥

संत सूरदासजीने तो भगवान् श्रीकृष्णकी पावन तथा दिव्य लीलाओंका चिन्तन करते-करते संसारके सर्वश्रेष्ठ महाकविके रूपमें प्रतिष्ठा अर्जित की। बाल-लीलाओंका जितना सुन्दर तथा सजीव चित्रण जन्मान्ध संत श्रीसूरदासजी महाराजने किया अन्य कोई कर ही नहीं सकता। सूरदासजी महाराज श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंपर रीझकर गा उठते हैं—

सोभा मेरे स्यामहिं पै सोहै।
बलि-बलि जाउँ छबीले मुख की, या उपमा कौं को है॥
या छबि की पटतर दीबे कौं सुकबि कहा टकटोहै?
देखत अंग-अंग-प्रति बानक, कोटि मदन-मन छोहै॥
ससि-गन गारि रच्यौ बिधि आनन, बाँके नैननि जोहै।
सूर स्याम सुंदरता निरखत, मुनि-जन कौ मन मोहै॥

(सूरसागर पद ७७६)

सूरदासजी महाराजद्वारा वर्णित श्रीकृष्ण-लीलाओंसे सराबोर ‘सूरसागर’ कृष्णलीलाका अनुपम वाङ्मय विग्रह ही है।

संसारके साहित्य-मनीषियोंका कथन है कि भगवान् श्रीकृष्णकी वत्सलतासे उनकी प्रेरक लीलाओंसे पूरा संसार उत्प्रेरित हो रहा है। भगवान्की लीलाओंका चिन्तन करनेसे स्वतः हृदयमें उनके प्रति वास्तविक अनुराग तथा प्रेम उत्पन्न होता है। भगवन्नाम-जप या संकीर्तन करते समय भगवान्के स्वरूप तथा उनकी लीलाओंकी ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। भगवन्नाम-जपसे हमारा सर्वश्रेष्ठ यज्ञ स्वतः सम्पन्न हो जाता है, जैसा कि भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें अपने श्रीमुखसे कहा है—**‘यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि’**। यदि हमने औरोंको भगवन्नाम-जप तथा भगवल्लीला-चिन्तनकी शिक्षा—प्रेरणा दी तो यह हमारा सर्वश्रेष्ठ दान स्वतः हो जायगा। भगवन्नाम-जप तथा लीला-चिन्तन बिना एकाग्रताके सम्भव ही नहीं है।

‘योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः’।

अनेक भारतीय मनीषियों एवं दिव्य विभूतियोंने धर्मशास्त्रोंके गहन अध्ययन एवं अनुभूतियोंके उपरान्त यही निष्कर्ष घोषित किया कि भगवन्नाम-संकीर्तन तथा भगवल्लीला-चिन्तनसे ही भगवत्साक्षात्कार तथा सच्ची सुख-शान्ति मिल सकती है। धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजने तो भगवत्साक्षात्कारकी प्राप्ति-हेतु अपने ग्रन्थोंमें रासलीला-तत्त्वका सुन्दर विवेचन करते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि भगवान्की पावन लीलाएँ तथा उनका चिन्तन हमारे मन-मस्तिष्कको तथा जीवनको सन्मार्गपर ले जानेकी पूर्ण क्षमता रखता है।

[**प्रेषक**—श्रीशिवकुमारजी गोयल]

* * *

मनुष्यशरीरको बड़ा दुर्लभ बताया गया है। मनुष्यशरीरमें आकर जीव अपना और दूसरोंका भी कल्याण कर सकता है। परंतु उस जीवको ऐसा दुर्लभ मौका न मिलने देना, संतति-निरोध करके उसको जन्म ही न लेने देना अथवा जन्म लेनेसे पहले ही गर्भपात करके उसकी हत्या कर देना कितना महान् पाप है!

* * *

साधक-प्राण-संजीवनी

[दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते]

साधुमें साधुता—

(गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

[गताङ्क पृ०-सं० ८५० से आगे]

मायाके कार्यनके दो प्रकार हैं—आभास और तम। जैसें आकाशमें चन्द्रमा एक ही है, किंतु दृष्टि-दोषके कारण दूसरौ चन्द्रमा न होते भये हू एकके द्वै दीखें हैं। अर्थात् वस्तु न होते भये हू दिखाई दै रही है, यह है आभास। दूसरी बात नवग्रह आकाशमें घूमते ही रहैं हैं। तौऊ तमके कारण राहु-केतु दिखाई नहीं देयँ हैं। होते भये हू वस्तु दिखाई नहीं दै रही है, यह है तम। या आभास और तम कूँ ही विक्षेप कहैं हैं।

× × ×

धाम चिन्मय वस्तु है। याकौ कण-कण तृण-तृण चिन्मय ही होय है। किंतु प्राकृतिक जीव कूँ जाकी दृष्टि दूषित है, सब प्राकृतिक ही दीखै है। जो प्राकृतिक जगत् सौं ऊपर उठिकैं भाव-जगत्में प्रवेश करि चुके हैं, उनकूँ ही धाम तथा धामकी प्रत्येक वस्तु सच्चिदानन्दघन ही दीखै है। अब प्रश्न यह उठै है कि, जिनकूँ प्राकृतिक ही दिखाई देय है उनकूँ का करनौं चहिए? यदि धाममें रहैं, तौ अपराध बनै। चिन्मय कूँ प्राकृतिक देखैं। तौ का यहाँ सौं भागि जानौं चहिए? कम-सौं-कम बाहर रहवे सौं अपराध तौ नहीं बनैगौ? नहीं-नहीं? ऐसौ नहीं? घबरायवे की बात नहीं? धाम सौं बाहर नहीं जाय? धाममें ही रहै और जैसौ धामकौ स्वरूप शास्त्र और संतन नें बतायौ है, वैसौ ही चिन्तन करै। यदि अपने कूँ वैसौ नहीं दीखै, तौ याके ताँईं खेद होय और प्रियतम सौं प्रार्थना करै कि, मेरे जीवनधन! मो अपने अबोध बालक कूँ हूँ अपनौं वास्तविक स्वरूप दिखाऔ। अन्यथा मोसौं प्रतिक्षण अपराध ही बनते रहैगें। और मैं आपकी गोदमें रहते भये हू आपसौं जन्म-जन्म कूँ भटकि जाऊँगौ। हे मेरे प्राणाधार! मोकूँ अपनाय लेउ। या प्रकार सौं रोय-रोय कैं अपने प्रियतम कूँ रिझायवेमें ही लग्यौ रहै और धामके जा व्यक्ति और वस्तुमें दोष-दृष्टि भई होय, तुरंत—तत्क्षण, वा ही सौं, विनम्रतापूर्वक क्षमा-याचना करि ले। ऐसौ करिवे सौं कलान्तरमें धाम कौ वास्तविक स्वरूप दीखिवे लगैगौ और फिर जो मस्ती तथा परमानन्द कौ स्वाद आवैगौ, वह स्वयं ही अनुभव करिवे लगि जायगौ। फिर सब दोष-दृष्टि कौ निवारण है जायगौ। या प्रकार साधक कूँ अन्तमें धामकी प्राप्ति है जायगी। साधक कौ परम-कर्तव्य है कि, धैर्य सौं काम लैतौं रहै। धीरज न त्यागै और श्रीसद्गुरु कौ दृढ़ आश्रय राखै। मन लगिवे न लगिवेकी चिन्ता न करै। चिन्ता करै केवल और केवल श्रीसद्गुरुकी आज्ञा-पालनकी। अपने मन बुद्धि सौं कह देय कि, अब तुम्हारौ सब काम समाप्त है गयौ। तुम अब सुख सौं चैनकी नींदमें सोय जाऔ और मोकूँ मेरे श्रीसद्गुरुदेवकी आज्ञा-पालन करन देउ। बस, फिर तौ सब काम अति-शीघ्र ही सम्पन्न हौते ही जायँगे और एक दिन ऐसौ आवैगौ कि जीव नित्य कूँ अपने प्रियतमकी गोद कौ खिलौना बनि जायगौ। भजन-साधन कियौ जाय है कि, हमारौ प्रभुके श्रीचरणन में भाव बनै, प्रेम है जाय। परंतु यदि भजन-साधन करते भये हू भाव और प्रेम नहीं उपजै, तौ चिन्ता नहीं करै। जबतक प्राण रहैं, तबतक बड़ी तत्परता और सत्यता सौं भजन-साधन करतौ ही रहै, तौ अपने कूँ हूँ प्राण परिहार पीछैं वही गति मिलैगी, जो गति—भाव और प्रेम वारे कूँ मिलै है।

× × ×

देहाध्यास भगवत्प्राप्तिमें महा बाधक है। सावधान! यह न हौन पावै। देहाध्यास-निवृति कौ उपाय है कि, यह देह काहू कूँ दुखद न बनै। विशुद्ध अन्तःकरण तथा विशुद्ध-आचरण होय, तब ही हृदयमें प्रेमकी उत्पत्ति होय है। कोई कछु कहै, कोई कछु करै, मोकूँ सब सहन करनौं है। यह दृढ़-संकल्प ही साधुता है। वह साधु कैसौ? जो सहनशील न होय। साधु तौ सदा सहिष्णु, क्षमाशील, उदार, होय है।

ईर्ष्या, पतनकी खाई है। हठ सदैव दुखदाई ही होय है। स्वभाव उत्तम बनै। स्वभाव उत्तम होयवे सौं विचार उत्तम बनै हैं, तदनुसार क्रिया उत्तम बनै हैं। परिणाममें उत्थान ही हौंतौ जायगौ। मन खाली भयौ कि, प्रेम-देव पधारे। प्रेमके अभाव कौ अनुभव करै, रोवै, ग्लानि होय कि, मैं प्रेमी नहीं बनि पायौ। ये जन्म हूँ व्यर्थ ही गयौ। का करूँ ? कैसें करूँ? यदि याके ताँईं उत्कट-लालसा होती, यदि याके बिना जीवन भार है जाँतौ, तौ प्रियतम कौ वियोग सहन नहीं हौंतौ और विरहाग्निमें पजरि जाँतौ, तौ प्रियतम स्वयं ही आयकैं प्रदान करते। प्रेम न भयौ सो तौ है ही, परंतु मैं तौ इतनौं अधम हूँ कि, याके ताँईं इच्छा हू नहीं होय है। प्रयत्न करिवै की का बात? विषयन में ही सुख मानूँ हूँ और दिन रात डूब्यौ ही रहूँ हूँ, का करूँ? ऐसे अधम कौ कौन उपाय? हाय! हाय! जीवन यौं ही जायगौ? फिर जिन-जिन प्रेमीन की जीवन-गाथा, पढ़िवे, सुनिवे, देखिवे में आयी होय, उनकौ विचार, रहनी, लगन तथा प्रेम कौ अनुशीलन, मनन, करै तथा उनके गुणन कूँ धारण करिवे की चेष्टा करै। फिर कामना करै कि, मैं हूँ कवहूँ ऐसौ प्रेमी बनुंगौ का? इनकी भाँति प्रियतमके प्रेम-सिन्धुमें डूबुंगौ का? सतत यही धुन सवार रहै कि कैसें श्रीभगवत्-प्रेमी बनूँ? कैसें श्रीभगवत्-प्रेम मिलै?

जो करै, प्रियतमके ताँईं ही करै। अपनौं स्वार्थ छू न जाय, अपने समस्त संकल्प, क्रिया-कलाप केवल अपने उपास्य देव (**इष्ट-देव**)-के ताँईं ही हौयँ, यही है—उपासना और यदि उपास्यके ताँईं न है कैं अपने ताँईं है रहै हैं, तौ यही है—वासना, यही है कपट और यही है आत्म-बंचना। जबतक कपट है, तबतक श्रीभगवान् बहुत ही दूर हैं। संतके वचनमें अनुभव, करुणा तथा आचरण कौ अमोघ बल होय है। आश्रयकी दृढ़तामें कमी है वे सौं, विश्वासमें कमी होय है और विश्वासकी कमी सौं ही, चिन्ता कौ प्रवेश होय है। चिन्ता, श्रीभगवत्-चिन्तन सौं दूर करि देय है। चिन्ता, चित्तमें रहै है। यदि चित्तमें निरंतर श्रीभगवत्-चिन्तन होयवे लगे, तौ चिन्ता कूँ प्रवेश करिवे कौ अवसर ही नहीं मिलैगौ। कर्ममें बाधक है काम (**कर्म फलेच्छा**)।

भक्तिमें बाधक है लोभ (**स्व सुखेच्छा**)। ज्ञानमें बाधक है क्रोध (**भेद बुद्धि**)। और ये ही नरकके द्वार हैं। समस्त साधनन कौ फल है, मनोनिग्रह। वही मनोनिग्रह भक्ति सौं सुलभ बनि जाय है। जितने साधन प्रेम-प्राप्तिके ताँईं कहे गये हैं, वे सब तौ तैयार ही हैं। यथार्थ वस्तु तौ है—आत्माकी भूख। भूख लगी कि, प्रेम भयौ। प्रेमी कूँ वियोगमें शोक, मोह, क्रोध, विरोध, राग-द्वेष, अहंकार आदिक विकार स्पर्श हू नहीं करि पावैं हैं। विरोध कौ अभाव निरोध। विरोधके कारण कूँ अपनौं दोष समझै तथा वाके ताँईं प्रायश्चित्त करै। तौ विरोध प्रेममें पलटि जाय है। जो श्रीभगवान् सौं विमुख करै, सो संसार। जब स्वार्थ मनमें आवै, तब ही दूसरे कौ अमङ्गल करिवेकी बात सूझै है। असूया, मत्सर तथा द्वेष जाके हृदयमें हैं, वाकूँ शान्ति कहाँ। पूर्ण बलिदान चहिए। हृदयके काहू कौनेमें स्वसुखकी इच्छा, कामना, बासना कौ अंकुर हू न रहै—यह है बलिदान। भोग सौं बुद्धि मलीन और त्याग सौं बुद्धि शुद्ध बनै है। यदि त्याग कौ किंचित हू अहंकार रह्यौ, तौ मन, बुद्धि, चित्त सब-के-सब अपवित्र है जायँगे। ऊँची वृत्ति, तौ ऊँचे विचार। ऊँचे विचार, तौ ऊँची क्रिया।

प्रेमीकी पहचान है कि, इनके अतिरिक्त और कोई कामना न हो। सुख हू इनसौं और दुख हू इनसौं ही (**सुखदश्च मे दुःखदश्च मे**)। साधन होय, वैराग्य होय, नियम-संयम सब होय, किंतु; यदि प्रेम न होय, तौ सब वैसैं ही फीके हैं—‘*लवन बिना बहु बिंजन जैसैं*’॥

अपने इष्टके नाम, रूप, लीला और धामके सेवन करिवे सौं इष्टमें प्रेम होय है। बिना प्रेम सब व्यर्थ। प्रियतम सौं मिलवेकी चटपटी सतत् बनी ही रहनी चहिए। कब मिलिगें? कब मिलिगें? उनसौं यौं बतराऊँगौ, यौं बतराऊँगौं। या प्रकार सेवा करूगौं, ये करूगौं, वो करूगौं। यही तो अनुराग है। प्रेम कूँ पंचम पुरुषार्थ कह्यौ जाय है। जब चार्‌यौं पुरुषार्थन (**अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष**)-कौ त्याग करै। तब ही प्रेम प्राप्त होय है। प्रेम-पथके पथिक कूँ ये सब त्यागने ही परैं हैं। [क्रमशः]

* * *

सत्य-प्रेम-करुणा—एक चिन्तन

(श्रीराधाकृष्णजी बजाज)

सत्य—'**सत्यमेव जयते**'—यह हमारे राष्ट्रका आदर्श वाक्य है। भारतीय संस्कृतिका यह निचोड़ है। '**सत्यमेव जयते**' का अर्थ है—सत्य सदा विजयी ही होता है, सत्य कभी हारता नहीं, बशर्ते कि वह शुद्ध सत्य हो। स्वराज्यके इन ५० सालोंमें सत्य दो भागोंमें बँट गया। एक शुद्ध नैतिक सत्य तथा दूसरा कानूनी सत्य। कानूनी सत्यका अर्थ है कानूनी जामा पहनाया हुआ 'असत्य'।

आजकल असत्यको कानूनी जामा पहनानेके इस कार्यमें वकीलोंकी बहुत बड़ी फौज लगी हुई है। वकीलोंके घर इस विद्याके महाविद्यालय हैं और आजकी प्रचलित न्याय-पद्धति इसका समर्थन करती है। तात्पर्य यह कि आजकी न्याय-पद्धति शुद्ध सत्यपर आधारित न होकर असत्यपर आधारित है। सत्यकी सत्यताके लिये, उसकी पवित्रताके लिये इस भेदको समझनेकी आवश्यकता है। हमारे रामभाऊजी म्हसकरका एक उदाहरण है, उन्होंने एक भाईपर अपना दिया पैसा लौटानेके लिये केस किया था, विरोधी पक्षके वकीलने कहा—जबरदस्ती मुझसे डाक्युमेंटपर हस्ताक्षर करा लिये हैं। मजिस्ट्रेटकी मौजूदगीमें रामभाऊजीने प्रतिवादीसे कहा—यदि तुम कह दो कि हमने डाक्युमेंटपर जबरदस्ती दस्तखत कराया है, तो मैं केस वापस ले लूँगा। वकील साहबने कहा—आप प्रतिवादीसे नहीं पूछ सकते, उसकी तरफसे मैं वकील हूँ। जो कुछ पूछना चाहते हैं, वह मुझसे पूछिये। मजिस्ट्रेट चुप रहे, वकीलकी बात चली। यह कानूनी सत्य है।

आजकी न्याय-पद्धतिमें सत्य-शोधन करनेकी अपेक्षा कानून क्या कहता है, इतना ही देखनेको मिलता है। पाँच हजारका प्रतिज्ञायुक्त नोट है, उसपर चार आनेका टिकट नहीं लगा तो वह नोट नाजायज माना जायगा। अंग्रेजोंने चार आने वसूल करनेके लिये पाँच हजारका लेखन नाजायज कर दिया। सत्य कहेगा कि चार आने नहीं लगाये तो उसके बदले चार सौ आने दण्ड कर दो, परंतु प्रतिज्ञाबद्ध नोटपर सही सत्य है, तो न्याय उस सत्यको अस्वीकार नहीं करेगा। इस न्याय-पद्धतिमें हाईकोर्टके न्यायाधीश और सुप्रीम कोर्टके न्यायाधीशोंका वादी-प्रतिवादीसे प्रत्यक्ष सम्बन्धकी आवश्यकता ही नहीं। कागजपर क्या लिखा है और वकील उसका क्या अर्थ करते हैं, इसी आधारपर सारा निर्णय होता है। सत्य-शोधनकी चिन्ता न तो वकीलोंको है, न न्यायाधीशोंको। जबतक भारतकी यह न्याय-पद्धति बदलेगी नहीं, तबतक भारतमें नैतिकता पनपेगी नहीं। बिना नैतिकताके भारतका या भारतीय संस्कृतिका उत्थान होना सम्भव नहीं। आज तो हमारी सत्य-अहिंसापर आधारित सार्वजनिक संस्थाएँ भी शब्दोंकी खींचतान कर कानूनी अर्थ लगानेमें, असत्यको कानूनी सत्य बनानेमें पीछे नहीं है। आज सम्पूर्ण भारतीय मानवोंमें असत्यरूपी कानूनी सत्यकी हवा सर्वत्र व्याप्त है। इस हवाको बदले बिना सत्याधृत आदर्श राष्ट्रके विकासकी शुरुआत भी नहीं हो सकती। यह बहुत ही बुनियादी गम्भीर विषय है। पुरानी कथाएँ सुनते हैं कि न्यायाधीश लोग सत्य-शोधनके लिये अनेक प्रयास करते थे और वे ही न्यायाधीश प्रशंसनीय माने जाते थे, जो सत्यका शोधन करके निर्णय लें।

प्रेम—संत श्रीविनोबाजी हमेशा कहते थे कि दिलोंको जोड़ना मेरा जीवन-कार्य है। इसके लिये उन्होंने दुनियाके कुल धर्मोंके धर्मग्रन्थोंका सार प्रस्तुत किया है और उसमें यह दिखाया है कि सत्य-अहिंसा आदि धर्मके सार तत्त्व सब धर्मोंमें समान हैं, लक्ष्य-प्राप्ति एक ही है। रास्ते भिन्न-भिन्न हैं। जहाँ कहीं कुछ अन्तर है, वह पंथोंमें अनुयायियोंके राग-द्वेषसे उत्पन्न हुआ है। वास्तविक बात यह है कि मानवमात्र सत्य-प्रेम-करुणा चाहनेवाला है। कोई भी असत्य, आपसी झगड़ा एवं द्वेष नहीं चाहता। दीनोंपर दया करना सभी धर्मोंमें पुण्य माना गया है।

आज हमारे देशमें ही नहीं, अपितु सारी दुनियामें बहुमतसे जो निर्णयकी पद्धति चली है, उसके परिणामको दर्शानेवाला आँकड़ा विचित्र ही प्रतीत होता है—उसमें ५१% का अर्थ होता है १००% और ४९% का अर्थ हो जाता है शून्य प्रतिशत। इस पद्धतिने सारी दुनियामें द्वन्द्व-युद्ध फैला दिया, इसकी जगह हमारे प्राचीन शास्त्रोंने सर्वसम्मति अविरोध-निर्णयकी पद्धति सुझायी है। शास्त्रोंकी आज्ञा है—'**सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे**' किसीका भी विरोध न हो, इस प्रकार शुभ कार्योंका प्रारम्भ हो।

विरोधीके विचारमें जो सत्यांश हो, उसका ग्रहण करनेपर विरोधकी शक्ति क्षीण हो जाती है। अविरोध-निर्णयमें शुरूमें अधिक समय लग सकता है, परंतु निर्णयके बाद

अविरोध-क्रियान्वयन शीघ्र हो सकता है। हमेशा भिन्न विचारवालोंके कथनमेंसे सत्यांश मिलना अधिक सम्भव है। मैं सोचता हूँ कि सभाओंमें समान विचारवालोंको कम समय देना चाहिये और भिन्न विचारवालोंको अधिक समय देना चाहिये। उनकी बातोंपर जितना ही अधिक गौर किया जायगा, सत्य-शोधनमें उतनी ही अधिक मदद मिलेगी।

सर्वसम्मतिके निर्णयमें एक खतरा है, हर व्यक्तिको 'व्हीटो-पॉवर' मिल जाता है। जिसके फलस्वरूप केवल एक व्यक्ति पूरे निर्णयको रोक सकता है, इसके समाधानके लिये यह सोचा गया है कि यदि किसी भी प्रस्तावके सम्बन्धमें $\frac{१}{६}$ से अधिक विरोध न हो तो उसे प्राय: सर्वसम्मति (नियर-युनॅनिमिटी) मानी जाय और $\frac{१}{६}$ से अधिक विरोध हो तो कोई निर्णय न लिया जाय, अपितु उसपर बार-बार विचार किया जाय। यदि इस पद्धतिका प्रयोग किया जाय तो आजकी तरह न तो रोज मन्त्रिमण्डल बदलेंगे,न ही पार्टियोंमें टूटन होगी। उसकी जगह परस्पर हृदयमें एकता होगी और दिल जुड़े रहेंगे।

करुणा (रोजी-रोटी)—आज प्रत्यक्षमें सबसे बड़ा प्रश्न रोजी-रोटीका है। रोजी-रोटी सबको मिले, सभी पार्टियाँ, सभी पक्ष इस बातको मानते हैं कि 'हर हाथको काम और हर पेटको रोटी मिले।' परंतु आजकी सरकारें रोजी-रोटी देनेके लिये बड़े-बड़े कारखाने एवं केन्द्रीय उद्योग बढ़ा रही हैं, उनसे सौको काम मिलता है तो हजार बेकार होते हैं। बेकारीकी समस्या घटती नहीं, बढ़ती ही जाती है।

पहले बैलोंसे खेती होती थी, जिसके फलस्वरूप हल जोतने आदिके कार्यमें मानव-शक्तिका अधिकाधिक सदुपयोग होता था। उनकी जगह जबसे ट्रैक्टरका प्रयोग शुरू हुआ तभीसे बैल बेकार हुए, करोड़ों लोग बेकार हुए और साथ ही यन्त्रके लिये तथा डीजलके लिये करोड़ों रुपया विदेश भेजना पड़ता है। किसानोंका खर्च बढ़ता गया। गहरी जुताईके कारण भूमिकी उर्वराशक्ति भी धीरे-धीरे कम हो रही है। अभिप्राय यह कि कृषि-प्रधान मानवशक्ति-सम्पन्न भारतभूमिका भविष्य उज्ज्वल न होकर अन्धकारमय है। केमिकल्स फर्टिलायजरोंसे गाँवोंमें भूमि बंजर होती जा रही है। बड़े-बड़े कारखानोंमें केमिकल्स खाद तैयार होते हैं, उससे शुरूमें पैदावार तो अधिक हुई, परंतु बादमें भूमिकी उर्वराशक्ति घट गयी। पहले प्रति एकड़ केमिकल्स खाद कम देनी पड़ती थी, अब भूमिकी शक्ति घटनेसे चौगुनी देनी पड़ती है। अत: भूमिकी उर्वराशक्ति बनाये रखना है, इस खेतीको जिंदा रखना है तो देशी गायके गोबर-गोमूत्रकी खाद देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त इस विकट समस्याका कोई समाधान नहीं—कोई साधन नहीं। रासायनिक कीटनाशक बड़े-बड़े कारखानोंकी विषैली दवाओंसे हर साल हजारों लोग मौतके घाट उतर जाते हैं। भूमि और जलमें भी विष आता है, जिसके परिणामस्वरूप अन्न और सब्जी आदि खाद्य-पदार्थ भी विषाक्त हो जाते हैं। जिसके प्रयोगसे गऊ और माताके दूधमें भी सूक्ष्म जहर पाया गया है। भारतकी सौ करोड़ जनताको क्षीण करने और मृत्युके मुखमें पहुँचानेका यह सोचा-समझा वैदेशिक यान्त्रिक षड्यन्त्र है।

इन कीटनाशकोंके बदले गोबर-गोमूत्र, नीम आदिकी दवाओंका सहारा लिया जाय तो बिना जहरके उत्तम कीटनाशक तैयार हो सकते हैं। इन कीटनाशकोंसे भूमिमें जो फसलके उपयोगी जन्तु केचवा आदि हैं, वे पनपेंगे, मरेंगे नहीं, इससे भूमिकी उर्वराशक्ति बढ़ेगी। अन्न और जलमें जहर नहीं आयेगा। मानव समृद्ध होगा।

आज संकर बीज चलाये जा रहे हैं। जो केन्द्रीय प्रयाससे तैयार होते हैं। इन बीजोंसे जो अन्न तैयार होता है, उसमें पुन: जर्मीनेशनकी ताकत नहीं रह जाती। इसका मतलब हुआ कि नपुंसक—बलहीन अन्न पैदा होगा, उसे खाकर मनुष्य बलहीन और नपुंसक बनेगा।

अत: भविष्यमें राष्ट्रकी समृद्धिके लिये तथा 'हर हाथको काम और हर पेटको रोटी'—इस लक्ष्यकी पूर्तिके लिये करुणा एवं उदारतापूर्वक हमें खेतीमें ट्रैक्टरका प्रयोग कम करना होगा, रासायनिक खादोंको कम करना होगा। केमिकल्स कीटनाशकोंको बंद करना होगा और संकर बीजोंको हटाना होगा। इन चारोंके बदले गोरक्षा की जानी चाहिये, ताकि कम खर्चेमें परिवहन मिले। खेतीकी जोत ठीक हो, खेतीके लिये खाद मिले, उर्वराशक्तिको बढ़ानेवाले कीटनाशक मिलें, अन्न-जलमें जहर आना बंद हो, किसानके घरमें ही बीज पैदा हो। ऐसा करनेसे किसानोंका धन-व्यय कम होगा, गाँव स्वावलम्बी होंगे, गाँवोंमें रोजगार बढ़ेगा और भविष्य अन्धकारमय न होकर उज्ज्वल होगा। भूखोंको रोटी देनेसे अधिक करुणा क्या हो सकेगी? यही तो करुणाका महान् कार्य है।

* * *

मरीचि आदि महर्षियोंकी लोककल्याण-कारक लीला

शास्त्रोंका तथा स्वयं भगवान्का भी यही उद्घोष है कि ऋषि-मुनि, संत-महात्मा तथा भगवद्भक्त भगवान्से बढ़कर हैं और वे भगवान्के अत्यन्त प्रिय भी हैं—'**यो मद्भक्तः स मे प्रियः**'। ऐसा इसीलिये कि वे दैवी सम्पत्तिसे आप्लावित रहते हैं और समष्टिके कल्याणकी तीव्र भावनासे भावित रहते हैं। उनके सदाचरण सर्वदा सभीके लिये अनुकरणीय हैं। उनका स्वयंका कोई स्वार्थ नहीं रहता, केवल परमार्थ ही उनका स्वार्थ रहता है। संतोंने ऐसी-ऐसी दिव्य लीलाएँ की हैं, जिनके श्रवण, मनन तथा चिन्तनसे भी परम कल्याण हो जाता है, लोक-परलोक दोनों बन जाते हैं। ऐसी ही कुछ लीलाएँ यहाँ दी जा रही हैं—

बहुत प्राचीन कालकी बात है, ब्रह्माजीके मानसपुत्र मरीचि आदि ऋषि तपका अनुष्ठान किया करते थे और स्वाध्याय, साधन-भजन किया करते थे। उन्हीं दिनोंकी बात है, अत्रिके कुलमें 'अङ्ग' नामके एक बड़े ही धर्मात्मा राजा हुए, वे अत्रिके समान ही तेजस्वी थे। उनका एक पुत्र हुआ, जो 'वेन' नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह धर्मके तत्त्वको तनिक भी नहीं समझता था। उसका जन्म मृत्युकी कन्या सुनीथाके गर्भसे हुआ था। मातृकुलके दोषके कारण अधर्ममें ही उसे विशेष रुचि थी, वह बड़ा ही कामी और लोभी निकला। उसने धर्मकी मर्यादा भंग कर दी और वैदिक धर्मका उल्लंघन करने लगा। उसने यह क्रूर प्रतिज्ञा कर ली थी कि किसीको भी यज्ञ, हवन, पूजा-पाठ, जप, तप, साधन एवं भजन आदि नहीं करने दिया जाय। मैं ही भगवान् हूँ, सब लोग मेरी ही पूजा करें।

कुछ दिनोंतक ऐसा चला, किंतु भगवान्के विधानमें अधर्मकी, अन्यायकी, अनीतिकी सत्ता कबतक ठहर सकती है? वेनके आचरणसे साधु-संत, ऋषि-मुनि—सभी प्राणी यहाँतक कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें हाहाकार मच गया। सभी कष्टमें पड़ गये, धर्मकी गति ही रुक गयी। यज्ञोंके अभावमें, पितृकर्मोंके अभावमें देवता-पितर सभीको कष्ट होने लगा। वेन तो ऐसा चाहता ही था। परंतु कबतक? अन्तमें वात्सल्यमय भगवान्से अपनी प्रजाका दुःख देखा नहीं गया। उन्होंने मरीचि आदि ऋषियोंके मनमें प्रेरणा की।

उस प्रेरणासे प्रेरित हो मरीचि आदि ऋषि वेनके पास गये और उससे बोले—'राजन्! राजा ईश्वरका अंश ही होता है, राजाको तो प्राण देकर भी अपनी प्रजाका पालन करना चाहिये; किंतु आप इसके सर्वथा विपरीत आचरण कर रहे हैं, आप ऐसा अधर्म—ऐसा अत्याचार न करें।' किंतु मोह, अज्ञान तथा अहंकारकी मूर्ति वेनको महर्षियोंकी बात अच्छी नहीं लगी, वह क्रोधसे तमतमा उठा और महर्षियोंकी अनेक प्रकारसे भर्त्सना करने लगा।

महर्षियोंको वेनका ऐसा आचरण अच्छा नहीं लगा। वे चाहते तो उसी समय उसे अपनी क्रोधाग्निसे भस्म कर सकते थे, किंतु क्रोधसे तो तपस्या क्षीण हो जाती है, अतः उन्होंने वैसा नहीं किया। दैवी लीला भी कुछ ऐसी थी, महर्षियोंको तो जगत्के कल्याणकी लीला करनी थी। वेनको यों ही शापवश समाप्त कर देनेसे उनका उद्देश्य अधूरा रह जाता। महर्षियोंने सोचा—इसके शरीरका मन्थन करनेसे जगत्का कल्याण होगा, अतः दैवी प्रेरणासे प्रेरित होकर उन्होंने विलक्षण लीला प्रारम्भ कर दी। वेनका हठ देखकर उनमें कोपका आवेश तो हो ही चुका था, इसलिये उन्होंने राजा वेनको पकड़कर बाँध लिया। उस समय वह उछल-कूद मचाने लगा, परंतु महर्षियोंने उसे छोड़ा नहीं और रस्सियोंसे बाँध डाला।

यद्यपि वेन महाबली था, महान् पराक्रमी था, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही उसके आधिपत्यमें था और साथ ही वह तामसी एवं आसुरी शक्तियोंका साक्षात् बिम्ब ही था, किंतु सात्त्विक शक्तिके सामने आसुरी शक्तिका नर्तन कबतक चलता? अपनेको सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिशाली, प्रभुतासम्पन्न तथा भगवान् ही समझनेवाला वेन आज सत्त्वसम्पन्न मरीचि आदि ऋषियोंके सामने असहाय-सा भूतलपर पड़ा था। भगवान्की लीला ही इसमें हेतु थी।

महर्षियोंने सर्वप्रथम वेनकी बायीं जंघाका मन्थन किया। मन्थनके फलस्वरूप कुछ ही क्षणोंमें एक काले रंगका पुरुष उत्पन्न हुआ जो बहुत छोटे कदका था। वह भयभीत हो मुनियोंके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

उसे व्याकुल देख महर्षि अत्रिने कहा—'**निषीद**' (बैठ जा)। इससे उसका 'निषीद' नाम पड़ गया और वह निषाद वंशका प्रवर्तक हुआ।

तदनन्तर महर्षियोंने पुनः अरणीकी भाँति वेनकी दाहिनी भुजाका मन्थन किया। उससे अग्निके समान एक तेजस्वी पुरुष प्रकट हुआ। जो भयंकर टंकार करनेवाले आजगव नामक धनुष, दिव्य बाण तथा कवच-कुण्डल धारण किये हुए था। उसके उत्पन्न होते ही सर्वत्र आनन्द छा गया, क्षणभरमें ही यह समाचार सर्वत्र फैल गया, सभी प्राणी वहाँ एकत्र होने लगे। उस दिव्य पुरुषके प्रादुर्भूत होते ही अधर्मगामी वेन स्वर्गगामी हुआ। उत्पन्न पुरुष उसका पुत्र ही कहलाया। ऐसे महात्मारूप पुत्रने उत्पन्न होकर अपने पिता 'वेन' को '**पुम्**' नामक नरकसे तार दिया। उसकी सद्गति हुई।

उस दिव्य पुरुषका नाम था पृथु। ब्रह्मा आदि सभी देवता वहाँ उपस्थित हुए। उसका राज्याभिषेक करनेके लिये सभी नदियाँ तथा स्वयं समुद्र जल लेकर वहाँ आये। सभीने मिलकर महाराज पृथुका अभिषेक किया। उस समय महर्षियोंने प्रजाको सम्बोधित कर कहा—'ये महाराज पृथु सम्पूर्ण पृथ्वीके अधिपति होंगे और प्रजाओंका भरण-पोषण करेंगे। उस समय पृथ्वीका यह रूप नहीं था, जो आज दिखलायी पड़ रहा है। यह घटना सृष्टिके आदिकी है। उस समय पृथ्वीका रूप ऊबड़-खाबड़ था, भूमि समतल नहीं थी, कृषि-योग्य भूमिका अभाव था। जिसके कारण अन्न, गोरक्षा, खेती और व्यापार आदिका कोई भी कार्य सम्भव नहीं हो पाता था। तब महाराज पृथुने भूमिको समतल बनाया। अपने धनुषकी नोकसे पर्वतोंको उखाड़ डाला। भूमिका जो-जो भाग समतल होता गया, प्रजा वहीं बसने लगी। उस समय प्रजाका आहार केवल फल-मूल ही था। महात्मा पृथुका ऐसा भयंकर रूप देखकर भयभीत हो पृथ्वी गौका रूप धारण कर उनकी शरणमें आयी। तब महाराज पृथुने उससे कहा—'देवि! तुम मेरी आज्ञा मानकर समस्त प्रजाकी रक्षा करो; क्योंकि तुम सबको धारण करनेमें समर्थ हो। इस समय तुम मेरी पुत्री बन जाओ। पृथुकी आज्ञानुसार भूदेवी महाराज पृथुकी पुत्री बन गयी और तभीसे पृथुकी पुत्री होनेसे यह भूमि 'पृथ्वी' कहलाने लगी। महाराज पृथुने इस पृथ्वीका विभाग और शोधन किया, जिससे यह अन्नकी खान और समृद्धिशालिनी बन गयी।

गोरूपा पृथ्वीने कहा—'राजन्! इस समय मैं गायके रूपमें हूँ और मेरी अमृतमयी दुग्धधारासे सम्पूर्ण सृष्टिका आप्लावन होगा, अतः आप किसीको बछड़ा बनायें, जिसके लिये मैं स्नेहयुक्त अपना दूध प्रदान कर सकूँ। राजा पृथुने स्वायम्भुव मनुको बछड़ा बनाया। अपने हाथसे ही गोरूपा पृथ्वीका दोहन किया और गोरूपा पृथ्वीका वह दुग्ध विभिन्न अन्नोंके विशालतम राशिके रूपमें परिवर्तित हो गया। उसी अन्नसे प्रजाने जीवन धारण किया। उस समय ऋषि, देवता, पितर, नाग, दैत्य, यक्ष, पुण्यजन, गन्धर्व, पर्वत और वृक्ष—सबने पृथ्वीका दोहन किया। इस गो-दोहनमें उनके दूध, बछड़े, पात्र और दुहनेवाले—ये सभी पृथक्-पृथक् थे। यथा—ऋषियोंने चन्द्रमाको बछड़ा बनाया, बृहस्पतिने दुहनेका काम किया, तपोमय ब्रह्म उनका दूध था और वेद ही उनके पात्र थे।

इस प्रकार सभीने गोरूपा पृथ्वीका दोहन कर अपने-अपने अभिलषित पदार्थ प्राप्त किये। यह गोरूपा पृथ्वी तभीसे सबके लिये धारण-पोषण तथा रक्षण करनेवाली बन गयी। यह सब प्रताप महाराज पृथुका ही था। उनके ही शौर्य एवं पराक्रमसे पृथ्वी वसुन्धरा हो गयी। सृष्टिमें सर्वत्र आनन्द छा गया। सबका कल्याण हो गया। कदाचित् दैवी प्रेरणा न होती और ठीक समयपर लीलामय भगवान् वेनको मथनेवाली बुद्धि मरीचि आदि महर्षियोंको प्रदान नहीं करते और महर्षिगण भगवान्की लीलासे प्रेरित होकर मन्थन-लीला नहीं करते तो पृथ्वीका संस्कार करनेवाले महात्मा पृथुका आविर्भाव नहीं होता और चराचर प्राणियोंकी क्षुधा-निवृत्ति हो नहीं पाती, सृष्टिका विस्तार ही नहीं होता। भगवान्के इन लीला-सहचरोंको बार-बार नमन है।

[ब्रह्मपुराण]

* * *

बाल-कल्याण

(१)

बालकका कल्याण

भगवान् शंकरका एक मनोहर प्रतीक है—बालक। उनका एक पुण्य नाम है—'सद्योजात' और उत्पन्न होनेके बाद 'रुदन करना' उनका यह एक अद्भुत कर्म है। बालक जब माताके उदरमें होता है, तब उपनिषद्के अनुसार वह भगवान्से प्रार्थना करता है कि 'हे प्रभो! यदि इस बन्धनसे मुक्त हो जाऊँगा तो फिर हे नारायण! मैं तुम्हींको भजूँगा, योगकी उपासना करूँगा और तुम्हारा ध्यान करूँगा।' परंतु इस मायावी जगत्का वातावरण देखते ही वह रोने लगता है। एक अंग्रेज विद्वान् कहते हैं कि 'हम दुनियामें आये थे, तब रोने लगे थे और हमारा अनुभव हमें बतलाता है कि हम किसलिये रोये थे।' अंग्रेज कवि टेनिसन तो जीवनभरकी प्रक्रियाको एक महारुदनका रूप देते हैं—

> What am I?
> An Infant crying in the night.
> An Infant crying for the light.
> And with no language but a cry.
>
> —Tennyson

'मैं क्या हूँ? मैं रात्रिमें रोनेवाला बालक हूँ, मैं जीवनप्रकाशके लिये रोनेवाला बालक हूँ और रोने-चिल्लानेके सिवा मेरे पास कोई भाषा नहीं है।'

बालक शब्दका सम्बन्ध 'बल' धातुके साथ स्पष्ट दीख पड़ता है। इस धातुका अर्थ है—श्वास लेना अथवा जीना। ऐसा अर्थ होता है और प्रेरक-भेदसे जिलाना या पोषण करना भी अर्थ होता है। अतएव जो जीवित है और जिसका पोषण किया जाता है, उसे हम लोग 'बालक' कहते हैं। भगवान् नारदके कथनानुसार सोलह वर्षकी उम्रतक बालक कहा जा सकता है। इसी प्रकार सोलह वर्षतककी कन्या, जिसको 'बाला' कहा जाता है, उसका भी शारीरिक तथा मानसिक पोषण दूसरेसे हुआ करता है। फिर सुभाषितमें कहा है कि 'सोलह वर्षका होनेपर पुत्रको मित्रके समान मानना चाहिये।' यह वाक्य भी इसी अर्थकी पुष्टि करता है। अतएव 'सद्योजात' तुरंतके जनमे हुएसे लेकर सोलह वर्षकी उम्रवाले तकको 'बालक' कह सकते हैं; परंतु आजकल विशेषतापर ध्यान न देकर सामूहिक हिसाबमें कूद पड़नेकी परिपाटी चली है, इससे हमें संकोचमें नहीं पड़ना है। इस सोलह वर्षतकके बालकमें शिशु, किशोर आदि उम्रके अनुसार भेद होते हैं और स्त्री-पुरुषका जाति-भेद होता है, इसीके साथ-साथ शारीरिक संगठनमें, सौन्दर्यका, वर्णका, गूढ शक्तियोंका और अव्यक्त गुणोंका भी भेद होता है तथा जब इन सारे भेदोंके अनुरूप व्यवस्था होती है तो वह व्यक्ति एवं समाज—दोनोंके लिये हितकर होता है। ये भेद गर्भाधानसे ही आरम्भ हो जाते हैं। माता-पिताके स्वभावका असर होता है, इतना ही नहीं वृत्ति, विचार, समय और दृष्टि आदिके अनेक प्रभाव इन भेदोंकी उत्पत्तिमें कारण होते हैं। 'संध्या' के समयके कारण हिरण्याक्ष-जैसा असुर उत्पन्न हुआ और नारदजीके बोधके कारण प्रह्लाद-जैसे भक्तका आविर्भाव हुआ। ऐसे अनेक दृष्टान्त प्रसिद्ध हैं। फिर सिंह-सिंहनीके बच्चे सिंह ही होते हैं और बकरा-बकरीके बकरा-बकरी ही होते हैं, यह भी प्रकृतिका नियम है। इसी प्रकार धार्मिक माता-पिताकी संतान धार्मिक, शूरवीर माता-पिताकी शूरवीर, बुद्धिमान्की बुद्धिमान् तथा डरपोककी डरपोक होती है और इस प्रकृतिसिद्ध नियमके कारण ही मानव-जातिके समस्त हितैषियोंने आनुवंशिक इतिहासको, विवाहकी योग्यताको तथा गर्भाधानकी संस्कारशुद्धिको मानव-जातिके उन्नति-विचारमें प्रधान स्थान दिया है।

आधुनिक समयमें जो सर्वोदयकी भावना विशेषरूपमें दिखायी देती है, उसकी सिद्धिमें कितने ही कारण मुख्यरूपसे बाधक हैं। एक तो हमने देखा कि सब बच्चोंको समान मानकर उनको एक ही लकड़ीसे हाँकनेकी परिपाटी है। दूसरी खास आवश्यकता यह है कि बालकोंको पढ़ानेपर ही नहीं, उनको अच्छा बनानेपर लक्ष्य रखना चाहिये। कहा

जाता है कि शिक्षाका मुख्य हेतु यह है कि—'बालकमें जो प्राकृतिक संस्कार रहते हैं, उनका पूर्ण विकास करना।' पर यह सिद्धान्त ठीक नहीं। क्या बालकोंमें—किसीमें यदि दुष्टताके, वैरके, द्वेषके या दूसरे कोई अनिष्ट संस्कार होंगे तो हम शिक्षाके द्वारा उनकी पुष्टि करेंगे या उनका विकास करेंगे? आजकल धार्मिक शिक्षाको बिलकुल हटा दिया गया है और नीति-अनीतिके स्पष्ट सिद्धान्त भी बालकको नहीं बताये जाते। सत्य, दया, संयम, पवित्रता, ईश्वरभक्ति, धर्म और ईश्वरमें श्रद्धा—इन सबमें दृढ़ता नहीं करायी जाती, परंतु 'चरित्र-निर्माण' का गोलमटोल आदर्श रखा जाता है। इस परिस्थितिका एक कारण यह भी है कि इन सारी चीजोंके निर्माणका काम ऐसे मनुष्योंके हाथोंमें आ पड़ा है, जो स्वयं रज:प्रधान हैं। जो सकामतामें, उपभोगमें, सत्ताके लोभमें और धनके लोभमें सराबोर हो रहे हैं। अतएव इनको स्वयं ही धर्म या सदाचारकी विशेष प्रेरणा नहीं मिलती, तब ये दूसरोंको कहाँसे देंगे?

बालककी शिक्षाके विषयपर विचार करते समय यह मौलिक विचार उपस्थित करना आवश्यक प्रतीत होता है। अत: खास आवश्यकता है सदाचारी जीवनके शिक्षणकी; क्योंकि उसीके द्वारा दुनियाके सब मनुष्य हिलमिलकर अथवा कम-से-कम विसंवादसे रह सकते हैं। बालकमें उसके कौटुम्बिक धर्मके अनुसार आदर्शोंकी समानता पहले जगनी चाहिये। यदि नीति और धर्मके विचारोंमें ही बड़ा भेद होगा तो फिर मनुष्योंमें तालबद्धता आयेगी ही कैसे? एक समूह स्वच्छन्द (मनमाने) आचारको मानता हो और दूसरा संयमित आचारको मानता हो तो दोनोंमें मेल कैसे हो सकेगा? खास करके, इसी कारणसे आजकलकी दुनियामें नास्तिक—स्वच्छन्दवादी और थोड़े-बहुत आस्तिक—परम्परावादियोंके दो बड़े विभाग हो गये हैं। इसीलिये भिन्न-भिन्न धर्मोंकी जातियाँ अपने लिये अलग-अलग स्वतन्त्र देशोंकी माँग करती हैं। इसी कारणसे जिस देशमें धर्मपरिनिष्ठित राज्य नहीं होता, वहाँ प्रजाके धर्मका धीरे-धीरे अथवा जल्दीसे क्षय होकर नाश हो जाता है। इस विषयमें सब स्वीकार करें उसको मानना और सब न मानें उसको उड़ा देना—इस परिपाटीका आश्रय लेकर धर्मको उड़ा दिया जाता है और परिणाममें पुण्य और पारदर्शी आदर्शोंसे विहीन प्रजा बढ़ती जाती है!

बालकोंकी शिक्षाके अङ्गस्वरूप एक दूसरा प्रश्न भी बहुत मार्मिक है, वह है—बालक और बालाओंके सहशिक्षणका। इस विषयमें यूरोप और अमेरिकाका अनुकरण करना ठीक नहीं मालूम होता। यह स्वयं वहाँ भी सदाचारके लिये बहुत ही हानिकारक सिद्ध हुआ है; ऐसे वहाँके प्रमाण हैं और भारतमें भी हाईस्कूलों और कॉलेजोंमें इसके दुष्परिणाम दीख चुके हैं। अतएव इस प्रथाको तो त्याज्य ही समझना चाहिये। ऐसा कहा जाता है कि अमुक उम्रतक सहशिक्षणमें हर्ज नहीं है और इसमें कुछ तथ्यांश भी कदाचित् हो, तथापि दूषित भावनाके बीज फैले, ऐसे प्रसंगोंको पहलेसे ही क्यों उठाना चाहिये? इस प्रकार विचार करके प्राथमिक शिक्षासे ही लड़के तथा लड़कियोंके अलग-अलग शिक्षणकी पुरानी प्रणालीको ही जारी रखना चाहिये। जिन देशोंमें लड़के-लड़की साथ-साथ घूम-फिरकर, एक दूसरेके सम्पर्कमें आकर, साथ-साथ नाच आदि करके विवाह करते हों, उन देशोंमें चाहे यह प्रथा चल सकती है; परंतु हमारे देशमें तो भारतीय सतीत्वका आदर्श—आदर्शकी दृष्टिसे भी—कायम रखना हो तो हमें सहशिक्षणके आपातरमणीय लाभोंको तिलाञ्जलि देनी ही पड़ेगी। सतीत्वकी भावना समस्त देशको उन्नत करती है और स्वच्छन्दाचार समस्त देशको ऐन मौकेपर दगा देता है। यूरोप आदिकी प्रजाकी प्रयोगशालाएँ हमें यही बतला रही हैं। धर्महीन प्रजा जैसे राज्यके प्रति बलवा करनेका अपना हक जाहिर कर देती है, ऐसे ही सतीत्वके आदर्शसे हीन प्रजा भी खुले तौरपर दुराचारमें लग जाती है। आदर्शोंकी रक्षाके लिये सहशिक्षणको बंद करना आवश्यक है। फिर लड़के-लड़कियोंके स्कूल अलग होनेपर उनको योग्यतानुसार शिक्षा देनेका काम भी सुगम हो जाता है।

अवश्य ही शिक्षामें व्यायाम, हस्त-उद्योग, विविधता आदिकी उपयोगिता दिखायी जाती है, वह लगभग सर्वसम्मत मानी जाती है। अतएव उस विषयपर यहाँ पिष्टपेषण नहीं करना है। अभी तो जिस वस्तुकी खास आवश्यकता है, ऐसी बातोंपर ही ध्यान खींचा गया है। बालककी शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति हो और उस उन्नतिकी व्यवस्था उसकी योग्यता देखकर की जाय, इसीको मुख्यतया ध्यानमें रखना चाहिये, सबकी एक-सी और एक ही प्रकारकी प्रगति करनेकी ओर नहीं! परंतु

समस्त समाजके सम्पूर्ण अङ्ग पुष्ट हों और एक दूसरेके साथ एक ही शरीरके भिन्न-भिन्न अङ्गोंकी भाँति सहकारितासे अपने-अपने काम करें, यही इष्ट आदर्श है। ऐसी समाजकी सर्वाङ्गीण एकताका आदर्श राज्यके दबावसे, मनुष्यके हुक्मसे या जहाँगीरीसे नहीं आ सकता, नहीं चल सकता। ऐसे आदर्शके लिये वेदधर्म-जैसे पूजनीय, पूर्ण और पुण्यधर्मकी भूमिका ही आवश्यक है।

उपसंहारमें हमें यह कहना है कि बालक पुरुषका पुरोगामी है, इसलिये वही मानव-समाजका बीज है। उसे विशुद्ध और व्यवस्थित रखना चाहिये। उसे योग्य भूमिकामें योग्य खाद तथा पानीसे पालना चाहिये और वह दूसरेको पोषण देने योग्य बन जाय, तबतक उसकी सँभाल उचितरूपमें रखनी तथा उसकी ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्तिको सुमार्गपर प्रेरित करके सुपुष्ट करनी चाहिये। मानव-जीवन और समाज एक अमूल्य विरासत है, यह व्यर्थ उड़ा देनेके लिये नहीं है। अथवा मनमौजी प्रयोगोंमें खो देनेके लिये भी नहीं है। इसके पीछे मानवके सुख-दुःखका इतिहास है और इसके सामने मानवका भविष्य विराजमान है। यदि दुनियाकी शान्ति, पुष्टि और तुष्टि साधारणरूपमें भी साधनी हो तो धर्म, ब्रह्मचर्य, ईश्वर-श्रद्धा और पराविद्याके ज्ञानके आदर्शोंको मानवका नेतृत्व करनेवाली प्रजाको अङ्गीकार करना ही पड़ेगा—क्या बालककी जीवन-योजनामें, क्या बालिकाओंकी जीवन-योजनामें, क्या युवकों और युवतियोंकी जीवन-योजनामें और क्या प्रौढ़ोंकी जीवन-योजनामें—सर्वत्र यही प्रेरकशक्ति सिद्धि प्रदान कर सकती है?

(२)

बालक अबूशहमाका सत्यके लिये आत्मबलिदान

मक्का शहरमें द्वितीय खलीफा हजरत उमर अपने न्याय एवं कर्तव्यनिष्ठाके लिये विशेष विख्यात रहे हैं। खलीफाका पुत्र अबूशहमा बचपनसे ही जंगल और गुफाओंमें भगवान्की आराधना एवं प्रार्थना करता भटका करता था। एक राजकुमारका इस प्रकार संसारसे उदासीन हो जाना सभीके लिये चिन्ताका विषय था; किंतु खलीफा अपने पुत्रकी भगवन्निष्ठासे बहुत प्रसन्न थे और उसे प्रोत्साहित करते रहते थे।

खलीफा उमरने इस्लामके धर्म-नियमोंके अनुसार शासनविधान बनाया था। वे स्वयं राजकोषसे केवल चार आने दैनिक अपने खर्चके लिये लेते थे। इस्लामी राज्यका शासक राज्यकार्य चलाते हुए भी मीठे और चटपटे भोजनसे वञ्चित रहकर संयमका कठोर जीवन बिताये तो ऐसे आदर्श पिताके आचरणका प्रभाव उसके पुत्रपर भला, क्यों नहीं पड़ेगा!

हजरत उमरने शराब पीने-पिलाने और बेचनेपर बहुत कड़ा प्रतिबन्ध लगा रखा था। इस सम्बन्धका अपराध करनेवालेको पचास कोड़े लगानेका दण्ड घोषित हो चुका था। इस घोषणासे शराब पीने तथा बेचनेवालोंमें आतङ्क फैल गया था। एक शराबके ठेकेदारने हजरतके पुत्र अबूशहमाको बहकाकर अंगूरोंका रस पिला दिया और उसने स्वयं ही हजरतके पास उनके पुत्रके शराब पीनेकी शिकायत की। उसे आशा थी कि खलीफा अपने पुत्रको बहुत कड़ा दण्ड नहीं दे सकेंगे और इससे नियत किया दण्ड ढीला हो जायगा।

भरे दरबारमें अबूशहमाको बुलाकर खलीफाने पूछा। बालक अबूशहमाने बड़े धैर्यसे कहा—'मैंने अंगूरका रस पिया है। मैं कसूरवार हूँ। मुझे सजा मिलनी चाहिये।' खलीफाने नियत दण्ड ५० कोड़े लगानेकी आज्ञा दे दी। एक शाहजादेको इतना कठोर दण्ड दिया गया, यह सुनकर लोग रो पड़े।

सुकुमार-शरीर बालक अबूशहमापर जल्लादके कोड़े पड़ रहे थे। उसका सुन्दर देह लहूलुहान् हो रहा था। दस कोड़े लगते ही बालकके प्राण निकल गये। हजरत उमरने पुत्रकी मृत्युक्रिया की, शोक मनाया; किंतु दण्ड-विधानकी रक्षाके लिये शेष ४० कोड़े उनकी आज्ञासे अबूशहमाकी समाधिपर मारे गये।

खलीफा उमरका न्याय पूरे अरबमें विख्यात हो गया। इस्लामी राज्योंसे शराबका नामोनिशान मिट गया। बालक अबूशहमाके बलिदानने शराबको इस्लाममें सदाके लिये बंद कर दिया।

(३)

बालकोंद्वारा ईश-प्रार्थना

स्वामीके शुचि चरण-कमलमें सादर शीश झुकाऊँ मैं।
दुखियोंके संताप-हरणकी शक्ति विलक्षण पाऊँ मैं॥
दो ऐसा वरदान दयामय! दीनोंको अपनाऊँ मैं।
सारा सुख दुखियोंको देकर, उनका सुख बन जाऊँ मैं॥
छाता बनकर, मेह-घामसे उनकी देह बचाऊँ मैं।
कंकड़-काँटे लगें नहीं, उनकी जूती बन जाऊँ मैं॥
अंधोंकी लकड़ी बन करके, सूधे मार्ग चलाऊँ मैं।
भटक रहे जो लक्ष्य भुलाकर, उनको पथ दिखलाऊँ मैं॥
गुणसमूहको प्रकट करूँ, अवगुणको सदा दुराऊँ मैं।
धागा बनूँ अंग निज देकर, सबके छिद्र छिपाऊँ मैं॥
पुत्रहीनका सुपूत बनकर, उसको सुख पहुँचाऊँ मैं।
जिसके कोई नहीं, उसीका निज जन ही बन जाऊँ मैं॥
हिम्मत हारे हुए व्यक्तिको हिम्मत सदा बँधाऊँ मैं।
निपट निराश जनोंको आशाका आलोक दिखाऊँ मैं॥
जीवनहीन प्राणियोंको, निज जीवन सौंप जिलाऊँ मैं।
निष्प्राणोंमें प्राण फूँककर, दे अवलम्ब उठाऊँ मैं॥
मूर्च्छित तमसाच्छन्न जनोंको देकर बोध जगाऊँ मैं।
ज्ञान-भास्करकी किरणोंसे, तमको तुरत मिटाऊँ मैं॥
प्रभुके निर्मल लीला-रसकी सरस रागिनी गाऊँ मैं।
मुरझी हृदय-कुसुम-कलिकाको पूर्णतया विकसाऊँ मैं॥
सूखे नीरस प्राणोंमें, रस-सुधा सदा बरसाऊँ मैं।
श्रद्धाकी शुचि सुधा पिलाकर, नित उनको सरसाऊँ मैं॥
गतविश्वास संशयी पुरुषोंका विश्वास बढ़ाऊँ मैं।
प्रभुकी महिमा सुना-सुनाकर चरण-शरण दिलवाऊँ मैं॥
भयभीतोंको अभय चरणका आश्रय अचिर कराऊँ मैं।
चिदानन्दमय सत्य सनातन निर्भय पद पहुँचाऊँ मैं॥
प्रभुके करुण हृदयके दर्शन दीनोंको करवाऊँ मैं।
अशरण-शरण पतित-पावन प्रभुका संधान बताऊँ मैं॥
प्रभुकी प्रेम-अमिय-रस-धारा उज्ज्वल अमल बहाऊँ मैं।
काम-स्वार्थका मल धो, मा धरतीको सफल बनाऊँ मैं॥

साधनोपयोगी पत्र

(१)

जीवनका उद्देश्य और उसकी पूर्तिके उपाय

आप……घंटे जप और……घंटे स्वाध्याय कर रहे हैं, सो बड़ी अच्छी बात है। श्रीभगवान्के प्रेमकी प्राप्तिको छोड़कर जीवनका और कोई भी उद्देश्य न रहे तथा जीवनमें प्रतिक्षण होनेवाली प्रत्येक चेष्टा इसी उद्देश्यके लिये हो। जैसे गङ्गाका प्रवाह स्वाभाविक ही समुद्रकी ओर जाता है, उसी प्रकार जीवन-प्रवाह भगवान्की ओर ही चले—ऐसा प्रयत्न हम लोगोंको करना चाहिये। इस प्रयत्नमें प्रधान बातें हैं—भगवान्की अहैतुकी कृपामें विश्वास, भगवान् ही एकमात्र प्राप्त करने योग्य सर्वश्रेष्ठ परम वस्तु हैं-यह निश्चय, भगवान्की ओरसे हटानेवाले अत्यन्त प्रिय-से-प्रिय और आवश्यक-से-आवश्यक पदार्थमें तुच्छ और त्याज्य-बुद्धि, भगवान्की नित्य-निरन्तर स्मृति बनाये रखनेकी भरपूर चेष्टा, भगवान्के पवित्र नामोंका निरन्तर उच्चारण और भगवत्सेवाके भावसे ही शरीर, मन और वाणीसे क्रिया करना।

भगवान्की कृपा ऐसी अमोघ और अनिवार्य शक्ति है कि वह असाध्यको भी साध्य बना देती है। अपनी तमाम इच्छाओंको, तमाम भावनाओंको भगवत्कृपाके अर्पण कर देना चाहिये। भगवत्कृपा सभीपर है, परंतु हमने अपनेको निर्भरताके साथ भगवत्कृपाके प्रति अर्पण नहीं कर दिया है। अर्पण ही—सब कुछ भगवान्को पूर्णरूपसे सौंप देना ही भगवत्कृपाके परम लाभकी प्राप्तिका प्रधान साधन है। बड़ी सीधी-सी बात है, यदि मनुष्य कर सके। भगवान्की कृपा तैयार खड़ी है हमारे सामने, हमारा कल्याण करनेके लिये—बस, विश्वास करके उसपर निर्भर हो जाइये।

मनुआ महाराजकी बात आपने लिखी, सो बहुत ठीक है। मन बड़ा ही बलवान् और चञ्चल है। वह कामनाओंसे भरा है और ज्यों-ज्यों कामनाओंकी पूर्ति होती है, त्यों-ही-त्यों उसकी कामनाका क्षेत्र बढ़ता जाता है। उसका बल और उसकी चञ्चलता इसमें सहायता करते हैं। यदि कामनाओंका दमन कर लिया जाय—एकमात्र भगवत्कृपाके ऊपर ही सब कुछ छोड़ दिया जाय, तो यही मन अपना सारा बल इसी काममें लगा देगा और चञ्चलता तो कामनाओंका त्याग करनेमें ही नष्ट हो जायगी। फिर रह जायगी अखण्ड शान्ति और अपार आनन्द। याद रखना चाहिये, कामनाकी पूर्तिमें—वासनाकी तृप्तिमें दुःख बढ़ते हैं। आनन्द तो, सच्चा आनन्द तो वासना-कामनापर विजय प्राप्त करनेपर प्राप्त होता है। कामनाओंकी पूर्तिसे होनेवाले आनन्दमें और कामनाओंके विजयसे होनेवाले आनन्दमें बड़े महत्त्वका भेद है; परंतु हमें तो उस आनन्दका अनुभव ही नहीं है, इसीसे हम कामनापूर्तिके आनन्दको आनन्द मानकर—जो वस्तुतः सच्चे आनन्दका सच्चा आभास भी नहीं है—विषयोंके पीछे भटक रहे हैं। आप चेष्टा कीजिये मनको श्रीभगवान्के चिन्तनमें लगानेकी। निरन्तर ऐसा विचार और निश्चय कीजिये कि भगवान्से बढ़कर सुन्दर, मधुर और ऐश्वर्यपूर्ण पदार्थ कोई है ही नहीं। यदि मन केवल उन्हींकी कामना करने लगेगा तो वह निहाल हो जायगा। आपको भी निहाल कर देगा। फिर तो आप आनन्दमें सराबोर हो जाइयेगा।

(२)

सच्चा एकान्त और भगवत्प्रेम

मनुष्य कुछ सोचता है, होता वही है जो श्रीनन्दनन्दनने रच रखा है। ***'जो कछु रचि राख्यो नँदनंदन मेटि सकै नहिं कोय।'*** वस्तुतः बाहरी एकान्तका महत्त्व भी क्या है? सच्चा एकान्त तो वह है, जिसमें एक प्रभुको छोड़कर चित्तके अंदर और कोई कभी आये ही नहीं। शोक-विषाद, इच्छा-कामना आदिकी तो बात ही क्या, मोक्ष-सुख भी जिस एकान्तमें आकर बाधा न डाल सके। जबतक चित्तमें नाना प्रकारके विषयोंका चिन्तन होता है, तबतक एकान्त और मौन दोनों ही बाह्य हैं और इनका महत्त्व भी उतना ही है, जितना केवल बाहरी दिखावेके लिये होनेवाले कार्योंका होता है। उन महापुरुषोंको धन्य है, जो एकमात्र श्रीकृष्णके ही रंगमें पूर्णरूपसे रँग गये हैं, जिनका चित्त जगत्के विनाशी सुखोंकी भूलकर भी खोज नहीं करता, जिनकी

चित्तवृत्ति संसारके ऊँचे-से-ऊँचे प्रलोभनकी ओर भी कभी नजर नहीं डालती, जिनकी आँखें सर्वत्र श्यामसुन्दरके दिव्य स्वरूपको देखती हैं और जिनकी सारी इन्द्रियाँ सदा केवल उन्हींका अनुभव करती हैं। सच्चा एकान्तवास और सच्चा मौन उन्हीं महात्माओंमें है।……

……मेरे बाबत भ्रान्तिपूर्ण धारणा किसीके हृदयमें नहीं होनी चाहिये। इस प्रकारकी भ्रान्ति रहनेसे आगे चलकर भ्रान्तिनाश होनेपर, या किसी भी कारणवश भाव बदल जानेपर मनमें बड़ा पश्चात्ताप हुआ करता है कि 'हाय! हम बड़ी भूलमें रहे। यदि इतना प्रेम श्रीभगवान्में करते—इतना उनकी ओर झुकते तो न मालूम कितना लाभ उठाया होता।' और वास्तवमें है भी ऐसी ही बात। भगवान्के साथ मनुष्यकी तुलना ही कैसी—चाहे कोई कितना ही बड़ा महात्मा क्यों न हो? हवाके एक जरा-से झोंकेसे गिर जानेवाली बालूकी भीतका सहारा किस कामका? मनुष्यमें न मालूम कितने और कैसे-कैसे संस्कार भरे रहते हैं। उनमेंसे यदि कभी कोई उभड़कर सामने आ जाता है तो हम जिसे अच्छा पुरुष मानते चले आते हैं, उसके प्रति भी हमारी घृणा हो सकती है। किसी कारणवश हमारी धारणा भूलसे भी बदल सकती है। निर्दोष तो एक श्रीभगवान् हैं और उनमें धारणा बदलनेका भी कोई कारण नहीं है; अतएव अपनी सारी श्रद्धा, भक्ति और भावुकताको उन्हींके प्रति समर्पण करना चाहिये। फिर मैं तो महात्मा भी नहीं हूँ।……

आपका प्रेम भगवान्की ओर मुड़ जाय, इसका उपाय यही है कि भगवान्का महत्त्व कुछ समझिये। मुझमें जो आपका इतना प्रेम है, उसके मूलमें भी तो यही भावना है न कि आप मुझमें किसी अंशमें भगवत्प्रेमका आभास पाते हैं—चाहे वह आपकी मूल धारणा हो? फिर आप मूलकी क्यों अवहेलना करना चाहते हैं? उनके प्रेमका अधिकारी प्रत्येक जीव है। 'नरकका कीड़ा' क्या उस स्नेहमयी माताके अतिरिक्त—जिसका हृदय अपने प्रत्येक बच्चेके लिये सदा ही स्नेहसे भरा रहता है—किसी दूसरी माँसे पैदा हुआ है? आप इस बातको भूल जाइये। भगवान्का प्रेम सबको प्राप्त हो सकता है, इसमें जरा भी संदेह नहीं है। हाँ, होनी चाहिये उस प्रेमकी प्राप्तिके लिये सच्ची चाह। भगवत्प्रेमकी चाह अपने-आप ही नरकसे निकालकर वैकुण्ठमें ले जायगी। तमाम दूषित भावनाएँ, तमाम पाप-ताप भगवत्प्रेमकी चाहकी प्रचण्ड आगमें जलकर खाक हो जायँगे। चाह कीजिये। उनके प्रेमको पानेकी इच्छा जाग्रत् कीजिये। संकल्प पढ़ते थे, अब मनसे संकल्प कर लीजिये कि उनका प्रेम प्राप्त होगा ही।

(३)

भगवत्कृपा

कृपाकी बात लिखी सो कृपा तो भगवान्की सदा सबपर और अनन्त है। हम लोग उस कृपापर जितना ही अपनेको छोड़ सकें, उतना ही लाभ उठा सकते हैं। जो कुछ भी भगवत्कृपाको सौंप दिया गया, वही सुरक्षित हो गया। भगवान्की कृपाके लिये कुछ भी असम्भव या असाध्य नहीं है। सभी स्थितियोंमें सभी प्रकारकी सहायता प्राप्त करनेके लिये भगवान्की कृपाका ही आवाहन करना चाहिये। सबसे अधिक कृपाके प्रसादका पात्र तो वह है, जो अपनी सारी इच्छाओंको सम्पूर्णतया भगवत्कृपाके प्रति समर्पण करके उस कृपासे बननेवाले प्रत्येक विधानमें परम आनन्दका अनुभव करता है। जबतक हम कुछ चाहते हैं, हमारी स्वतन्त्र इच्छा वर्तमान है, तबतक भगवत्कृपापर पूर्ण निर्भरता नहीं है। ऐसा न हो तो कम-से-कम अपनी प्रत्येक आवश्यकताके लिये तो भगवान्की कृपाकी ओर ही ताकते रहना चाहिये। दूसरा भरोसा कोई रहे ही नहीं, तभी उस कृपाका चमत्कार देखनेमें आता है। तभी मनुष्यको यह अनुभव होता है कि वह जिसे असम्भव मानता था, वही भगवत्कृपासे अनायास ही सम्भव हो गया और इस भगवत्कृपाका द्वार सबके लिये खुला है। जो भी चाहे, इसे पा सकता है। क्योंकि भगवान् सबके—जीवमात्रके सुहृद् हैं; कृपामय ही नहीं, मित्र हैं। कृपा तो परायेपर होती है। प्रेममें तो और भी निकटका सम्बन्ध है। बस, यही करनेका प्रयत्न कीजिये।

वाराणसीमें गोपाष्टमी-महोत्सव

[उत्तर प्रदेश सरकारद्वारा गोसेवा-आयोगके गठनकी घोषणा]

यया सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
तां धेनुं शिरसा वन्दे भूतभव्यस्य मातरम्॥

जिस गौसे यह स्थावर-जंगम अखिल विश्व व्याप्त है, उस भूत और भविष्यकी जननी गौको मैं सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ल ८ को गोपाष्टमी-महोत्सव मनानेकी परम्परा प्राचीन कालसे भारतमें चली आ रही है। इसी दिन आनन्दकन्द ब्रह्माण्डनायक लीलापुरुषोत्तम मदनमोहन श्यामसुन्दर व्रजेन्द्रनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने सर्वप्रथम गोचारण प्रारम्भ किया था। उस समय इनकी अवस्था पाँच वर्षकी थी। माता यशोदाने मना किया और कहा—'अभी छोटे हो, कुछ दिनों बाद बड़े हो जानेपर ही गोचारणके लिये जाना।' पर श्यामसुन्दर मचलने लगे और कहने लगे कि 'माँ, मैं तो आज ही गाय चराने जाऊँगा।' अन्तमें माँ यशोदाको स्वीकार करना पड़ा। माँने कहा—'लाला, खाली पैर मत जाना। पगरखी (जूता) पहनकर जाना।' मदनमोहन श्यामसुन्दरने उत्तर दिया—'माँ, यह कैसे हो सकता है? हमारी गायें जब खाली पैर जाती हैं तो मैं पगरखी पहनकर कैसे जा सकता हूँ।' अन्तमें श्यामसुन्दर खाली पैर ही अपने ग्वाल-बालोंके साथ सर्वप्रथम गाय चराने गये। उस दिनकी ही स्मृतिमें यह गोपाष्टमी-महोत्सव देशके विभिन्न भागोंमें—जहाँ भी गोशाला एवं गोसदन स्थापित है, बड़े समारोहसे मनाया जाता है। इस दिन प्रायः लोग गोपूजन करते, अपने क्षेत्रकी गोशालाओं एवं गोसदनोंमें जाकर गायोंको घास-चारा, गुड़ तथा भोजनादि खिलाते, उनका शृंगार करते, भजन-कीर्तन तथा गोमहिमापर व्याख्यान होते। गोपालनके निमित्त गोशालाओंको आर्थिक सहायता और दान देते। कुछ स्थानोंमें तो लोग उस दिन अपने कारबार-व्यापारको भी बंद रखते और पूरी तरह गोसेवा-दिवसके रूपमें यह गोपाष्टमी-महोत्सव मनाते।

इस वर्ष वाराणसीमें सप्ताहव्यापी गोपाष्टमी-महोत्सव मनाया गया। जिसके अन्तर्गत एक सप्ताहतक वहाँ गायोंसे सम्बन्धित विभिन्न कार्यक्रम चलते रहे। वाराणसीमें महामना पं० मदनमोहन मालवीयजीद्वारा संस्थापित 'काशी-जीव-दया-विस्तारिणी गौशाला' के अन्तर्गत आजकल तीन शाखाएँ गोसेवाके कार्यमें संलग्न हैं—(१) सदर गोशाला, (२) गोकुल (बावन विघा) गोशाला तथा (३) रामेश्वर गोशाला। इन तीनों शाखाओंमें गोपाष्टमी-महोत्सव समारोहपूर्वक मनाया गया। रामेश्वर गोशालामें तो इस अवसरपर एक सप्ताहव्यापी ग्रामोदय-मेला भी आयोजित किया गया। जिसमें गायोंसे सम्बन्धित ग्रामोद्योगकी प्रदर्शनी लगायी गयी; जिससे ग्रामीण जनताको यह जानकारी प्राप्त हो सके कि गोपालन और गोसेवा आर्थिक समृद्धि प्राप्त करनेका मुख्य साधन है, आज सर्वसाधारणमें कुछ लोगोंको गोपालन आर्थिक दृष्टिसे भारस्वरूप प्रतीत होता है। परंतु वास्तवमें गाय ही हमारा वास्तविक धन है और हमारी समृद्धिका आधार है। यह समृद्धि लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारकी है।

भारतीय संस्कृति और हमारे शास्त्र यह मानते हैं कि गायमें सम्पूर्ण देवी-देवताओंका निवास है। यदि सभी देवताओंका पूजन एक साथ करना हो तो केवल गोमाताके सेवा-पूजनसे सबकी पूजा सम्पन्न हो सकती है; क्योंकि गायको सर्वदेवमयी ही कहा गया है—

सर्वे देवाः स्थिता देहे सर्वदेवमयी हि गौः॥

(बृहत्पाराशरस्मृति ५। ३५)

अपने शास्त्रोंके अनुसार भवसागरसे तरनेका और जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होनेका परम साधन गौ ही है। इसके साथ ही धार्मिक दृष्टिसे उद्देश्यपूर्वक गोसेवा करनेसे लौकिक समृद्धि भी प्राप्त होती है, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव कोई भी कर सकता है। यह तो हुआ शास्त्र-विश्वासके आधारपर पारलौकिक समृद्धि और गोसेवाका आध्यात्मिक पहलू।

अब आर्थिक दृष्टिसे भी गहराईसे विचार किया जाय तो हमें मालूम होगा कि गाय हमारी लौकिक समृद्धिका भी मुख्य साधन है। आर्थिक समृद्धिकी रीढ़ है कृषि और भारत

कृषि-प्रधान देश है। प्राचीन कालसे ही कृषि-कार्यमें गोवंशकी प्रधानता रही है। गोमूत्र और गोबरकी खादके प्रयोगसे तथा बैलोंके द्वारा जमीनपर हल चलानेसे भूमिकी उर्वराशक्ति बढ़ती है। यद्यपि आजकल गोबर-गोमूत्रकी खादके स्थानपर रासायनिक खादोंका प्रयोग और बैलोंके स्थानपर खेतीमें ट्रैक्टरका प्रयोग हो रहा है, जो भविष्यके लिये अत्यन्त घातक है। रासायनिक खाद तथा ट्रैक्टरका प्रयोग जमीनकी उर्वराशक्ति नष्ट कर देता है। साथ ही रासायनिक खाद तो मीठा विष (Slow poison) है, जो स्वास्थ्यको भी खराब कर देता है। वास्तवमें गोमय, गोमूत्र, गोदुग्ध और गोघृत आदि गायसे उत्पन्न पदार्थ तो अच्छे स्वास्थ्यके लिये औषधिका कार्य करते हैं।

विश्वविख्यात वैज्ञानिक 'अलबर्ट आइन्सटीन' ने स्वर्गीय डॉ० अमरनाथ झाके द्वारा भारतको यह चेतावनी दी थी और कहा था कि अमरीकामें रासायनिक खाद और ट्रैक्टरके प्रयोगके कारण वहाँकी भूमिकी उर्वराशक्ति चार सौ वर्षकी खेतीके बाद समाप्त हो गयी तथा अधिकांश खेती बंजर हो गयी। जबकि भारतमें १० हजार वर्षकी खेतीके बाद भी यहाँकी भूमिकी उर्वराशक्तिका ह्रास नहीं हुआ, इसका कारण यही है कि प्राचीन कालसे ही यहाँ गोबर एवं गोमूत्रकी खादोंका प्रयोग होता रहा और बैलोंद्वारा जमीन जोती जाती रही। यदि इस ओर ध्यान नहीं दिया गया तो भविष्यमें इसके घातक परिणाम हो सकते हैं। अतः सरकारको इस ओर विशेष ध्यान देकर व्यापकरूपसे देशमें गोबर-गोमूत्रकी खाद तैयार करानी चाहिये तथा बैलोंद्वारा चालित हलका प्रयोग करना चाहिये। जिससे देशकी कृषियोग्य भूमि उर्वर बनी रहे और देशकी जनताको स्वास्थ्यप्रद खाद्य-सामग्री उपलब्ध हो।

गोसेवा-आयोगके गठनकी घोषणा

प्रसन्नताकी बात है कि उत्तर प्रदेश सरकारने इस ओर ध्यान देनेका प्रयास किया है। पिछले दिनों गोपाष्टमी-महोत्सवके अवसरपर रामेश्वर गोशालामें उत्तर प्रदेशके मुख्य मन्त्री माननीय श्रीकल्याण सिंहजी वहाँ पधारे थे। उन्हें गोशालाकी ओरसे एक प्रतिवेदन प्रदान किया गया। जिसमें गोसेवा और गोसंर्वधनसे सम्बन्धित निम्नलिखित कुछ आवश्यक बातोंपर मुख्य मंत्रीजीका ध्यान आकृष्ट किया गया—

१-गोवंशकी हत्या पूर्णरूपसे बंद करनेके लिये प्रदेशमें एक सुदृढ़ कानून बनाया जाय।

२-गोपालनके लिये चारागाहके निमित्त प्रदेशकी खाली भूमि गोशालाओंको प्रदान की जाय तथा उनकी सुचारुरूपसे व्यवस्था और देखभाल भी करायी जाय।

३-विभिन्न स्थानोंमें पशु-चिकित्सालय स्थापित किये जायँ तथा पशु-चिकित्सक तैयार किये जायँ और निःशुल्क औषधि-वितरणकी व्यवस्था की जाय।

४-अच्छी नस्लके देशी साँड़ तैयार किये जायँ और उन्हें विभिन्न स्थानके गोशालाओं एवं गोसदनोंमें रखा जाय।

५-जिन स्थानोंपर गोशालाएँ नहीं हैं, वहाँ नयी गोशालाएँ, भूमि आदिकी सुविधा देकर स्थापित करायी जायँ, जिससे उस क्षेत्रके कमजोर तथा बीमार गोवंशके पालन-पोषणकी समुचित व्यवस्था की जा सके।

६-अच्छी नस्लकी देशी गायें तैयार करायी जायँ, जिन्हें गोपालनके इच्छुक जनताको वितरित किया जा सके।

७-कृषि आदि कार्योंमें गोवंशका अधिकाधिक प्रयोग किया जाय।

इस प्रतिवेदनके उत्तरमें मुख्य मन्त्रीजीने अपने भाषणमें बताया कि प्रदेश सरकारद्वारा उत्तर प्रदेशमें 'गोसेवा' आयोगका गठन शीघ्र किया जा रहा है। इस आयोगके गठित हो जानेपर गोहत्यापर पूर्ण प्रतिबन्ध लग जायगा। इसके साथ ही प्रतिवेदनकी अन्य बातें भी गोसेवा-आयोगमें समाहित हो गयी हैं। यदि कोई बात छूट गयी होगी तो उसे भी समाहित कर लिया जायगा।

अभी-अभी कुछ समय पूर्व प्रादेशिक समाचारोंसे यह ज्ञात हुआ कि उत्तर प्रदेश सरकारके मन्त्रिमण्डलने यह निर्णय लिया है कि प्रदेशकी खाली भूमि गायोंके चारागाहके लिये गोशालाओंको पट्टेपर दे दिया जाय। इस समाचारको सुनकर देशकी गोभक्त जनतामें प्रसन्नताकी लहर होना स्वाभाविक है। उत्तर प्रदेश सरकारने यदि गोरक्षा एवं गोसंवर्धनके निमित्त इन कार्योंको कार्यान्वित किया तो यह पूरे देशकी प्रादेशिक सरकारोंके लिये एक आदर्श मार्गदर्शन होगा और प्रदेशकी जनताको आत्मसंतोषकी प्राप्ति होगी, साथ ही पूरा राष्ट्र गौरवान्वित होगा।

—राधेश्याम खेमका

* * *

पढ़ो, समझो और करो

(१)

एक महात्माका आतिथ्य

जिन सच्चे साधु-संतोंको हम अपनी अज्ञानताके कारण ढोंगी, लालची, आडम्बरी आदि भाँति-भाँतिके रूपमें समझते हैं, कभी-कभी वे भी हमारे सम्मुख इस प्रकार उपस्थित होते हैं कि उनकी एक ही करामातमें हमारे हृदयका सारा अज्ञान रफूचक्कर हो जाता है और उसी क्षण श्रद्धा तथा भक्तिसे उनके पाद-पद्मोंमें हमारा हृदय स्वत: ही नत हो जाता है। ऐसी अनेक आत्माएँ साधारणतया हमारे सम्मुख उपस्थित होती हैं, फिर भी हम देखते ही रह जाते हैं। अफसोस!

कुछ वर्ष पूर्वकी बात है। हम तीन साथी पाताल-भुवनेश्वरकी गुफा देखने गये। यह गुफा अल्मोड़ेके गंगोलीहाट नामक क्षेत्रके निकट स्थित है। स्थान बड़ा रमणीय है, जहाँके मनोहारी दृश्य नास्तिकोंके हृदयमें आस्तिकताकी लहर-सी पैदा कर देते हैं। अस्तु! हमने गुफाकी प्रत्येक चमत्कारिताका निरीक्षण किया। तदनन्तर गुफाके बाहर एक जलस्रोतके निकट धूनी रमाये एक बाबाके सम्मुख बैठकर अपनी थकान मिटाने लगे।

महात्माजीको हम सबने दण्डवत्-प्रणाम किया। मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही। जब मैंने देखा कि महात्माजीके सम्मुख कैप्स्टन, सीजर, नेशनल गोल्ड फ्लेक, बीड़ी तथा सुपारी इत्यादि तरह-तरहके पैकेट और संतरेके चार दाने भी रखे हैं। पास ही राम-कृष्ण-शिव आदि देवताओं और उर्वशी-जैसी अप्सराओंके रंगीन चित्र भी रखे हैं।

मैंने और मेरे साथियोंने यह निश्चय कर लिया कि ये महात्माजी शायद उसी श्रेणीके हैं, जो सच्चे साधु-संतोंका नाम बदनाम करते हैं। सम्भवत: मुझे उनपर क्रोध भी आया और मेरे साथी तो अंग्रेजी भाषामें उन्हें अंटसंट कहने भी लगे।

महात्माजीने हमसे परिचय पूछा और वे भगवत्-सम्बन्धी चर्चा करने लगे। उनकी भगवत्-चर्चामें भी मुझे, *'जिन्ह कें रही भावना जैसी'* के अनुसार काम-क्रोध-लोभ ही दिखायी देने लगे। एकाएक कैप्स्टनके डिब्बेको देखकर मेरे मुँहमें पानी भर आया; क्योंकि यहाँ पर्वतीय प्रदेशोंमें ऐसी सिगरेट अन्यत्र कहाँ उपलब्ध थी—आखिर मैं अपने व्यसनको काबूमें न कर सका। मैंने कहा—'महात्माजी! और बात तो होती रहेगी, हम इस समय आपके अतिथि हैं, कुछ आवभगत होनी ही चाहिये—बस, हमें एक-एक संतरा, एक-एक कैप्स्टन और एक-एक सुपारीकी आवश्यकता है।'

मेरी बात सुनकर महात्माजी हँसे और इतने हँसे कि हँसते ही रहे।

हमने उन्हें पागल भी समझा।

'अब आये राहपर' वे बोले—'अच्छा बेटा, तुम सिगरेट भी पीता है!' हाँ! इच्छा बड़ी प्रबल होती है, कैप्स्टनका डिब्बा देखा तो मुँहमें पानी भर आया, परंतु काश! मेरे पास कुछ नहीं है, जो मैं तुम-जैसे भोले अतिथियोंकी सेवा कर सकूँ।

उन्होंने कैप्स्टनका डिब्बा उठाया—'बोले, यह लो कैप्स्टन!' [डिब्बा खाली था] वे बोले—'अच्छा सीजर पिओगे?' उन्होंने सीजरका पैकेट उठाया [वह भी खाली था]। वे हँसकर बोले—'लो पिओ! अच्छा बीड़ी ही सही।' उन्होंने बीड़ीका बंद डिब्बा उठाकर खोला तो उसमें गोबर भरा था, 'अरे! अच्छा सुपारी चबाओगे?' [पैकेट उठाकर] 'लो!' [वह सुपारी न थी, तुलसीकी मालाके बिखरे दाने थे]। 'लो! फिर संतरे खाओ।' [उठाकर] वह केवल संतरेका बाहरी खोखला था।

महात्माजी फिर ठहठहाकर हँसने लगे—'तृष्णा बड़ी बुरी चीज है बेटा!'

हम चित्रलिखित-से उनके सभी चमत्कार देखने लगे और समझ न पाये कि ये क्या कर रहे हैं। एकाएक मेरा एक साथी बोल उठा—'महात्माजी, यह क्या! हम आपके अतिथि हैं और आप मजाक-सा कर रहे हैं।' वे हँसते हुए बोले—'बेटा! मजाक नहीं सच है और बिलकुल वास्तविक चीजें तुम्हें दिखा रहा हूँ! देखो, यदि तुमको पीना ही है तो क्रोधको पिओ, सिगरेट नहीं। यदि तुमको खाना ही है तो अहंकार खाओ, संतरे नहीं। यदि तुमको चबाना ही है तो राग-द्वेषादि विकारोंको चबा जाओ, सुपारी नहीं और यदि तुमको पागल ही होना है तो यह देखो, [कृष्णका चित्र दिखाकर] इसके लिये बनो। [दूसरा चित्र अप्सराका दिखाकर] इसके लिये नहीं। मैं यही तुम भोले अतिथियोंका

सत्कार कर सकता हूँ। जो मेरा वास्तविक आतिथ्य है, इसे ग्रहण करो।'

उस समय हमारे आत्माके सामनेसे एक परदा-सा उठता अनुभव हुआ और हमने महात्माजीके चरण पकड़ लिये।

इस घटनाको बीते कई साल हो गये हैं। शायद मेरे दो साथी सँभल भी गये हैं, पर मैं अभागा फिर भी न सँभल सका। काश! मैं भी सँभल पाता! चाहे मैं न सँभलूँ, पर मुझे विश्वास है कि मेरे भाई जो इस घटनाको पढ़ेंगे, सुनेंगे और समझेंगे, वे अवश्य ही सँभल जायँगे।

—श्रीदेवेन्द्रकुमारजी गन्धर्व

(२)

यह व्यापार

भाव बढ़ने-बढ़नेकी धारणासे खरीदकर इकट्ठी की हुई मूँगफली अकस्मात् आग लगकर सब भस्मीभूत हो जायगी, ऐसी कल्पना भी किसने की थी? लालाजीकी तो मानो छाती ही बैठ गयी। कैसे न बैठती! दूसरोंसे रकम लेकर, जितनी खरीदी जा सकती थी, उतनी मूँगफली खरीद ली थी। भाईका अन्तकाल हुए अभी थोड़े ही दिन बीते थे कि यह घावको ताजा करनेवाली नयी विपत्ति आ गयी। इस विषादके साथ खड़ा तीखापन था। अपनी इच्छा न होते हुए भी भाईने मूर्खताभरी मूँगफलीकी खरीद की और उसकी व्यवस्था किये बिना ही वह इस दुनियाको छोड़कर चला गया और उसके बाद यह दुर्दशा आ पड़ी।

अग्निके कारण आयी इस विपत्तिके समय कितने ही व्यापारी, सगे-सम्बन्धी आश्वासन देने लालाजीके पास आये। परंतु लालाजीके इस व्यापारमें जिनकी रकम लगी थी, वे बाबू जब आये तब तो लालाजी काँप उठे। बात शुरू होते ही लालाजीने उनसे कहा—'बाबूजी! मैं बिलकुल टूट गया हूँ। मेरा भाई मर गया और मुझे भी मारता गया। मेरी जरा भी इच्छा नहीं थी परंतु····'लालाजीकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। आश्वासन देने आये हुए बाबूने फोन करके अपना खाता मँगवाया।

खाता आया और बाबू उसे खोलकर उसके पन्ने उलटने लगे। लालाजी लगभग पैरोंमें पड़कर कराह उठे, बोले—'बाबूजी, घावपर नमक! जरा तो विचार कीजिये। मैं इस समय कैसे क्या करूँगा, अभी कुछ दिन ठहरिये, पीछे····'

बात यह थी कि खाता मँगवानेवाले बाबूने लालाजीको एक बड़ी रकम व्यापारके लिये ब्याजपर उधार दे रखी थी; परंतु ऐसे बुरे समयमें उन्हें खाता उलटते देखकर लालाजी घबराकर विनती कर रहे थे।

बाबूने खातेके जिस पन्नेमें उधारकी रकम लिखी थी और इकरारनामा था, उस पन्नेको खातेसे निकाला और फाड़कर दूर फेंक दिया बिना किसी हिचकके। लालाजी तो आँख फाड़कर उनकी ओर देखते रह गये। बाबूने कहा—'लालाजी, आपकी आबरू मेरे हाथमें है और मेरी आबरू आपके हाथमें है। मेरे रुपये और इकरार सब आपके भाईके साथ था। वे जीवित होते तो चाहे जिस दिन रकम वसूल हो जाती। वे गये तो उनके साथ यह उधार और इकरार भी टूट गया। छाती हो तो दूसरी रकम ले जाइयेगा। यह तो व्यापार है व्यापार।' इतना कहकर बाबूजी उठे और चलते बने।

लालाजी तो इस व्यवहारको देखकर अवाक् रह गये। अन्तरमें धन्यवाद देते रहे—वाह रे तेरी मर्दानगी, वाह तेरी खेल-दिली! धन्य।

—श्रीशशीकान्त प्र० दवे

(३)

कलियुगी कामधेनु

गोमाताकी महिमा एवं महत्त्वकी युगोंसे चर्चा होती आ रही है। युगोंसे हमारे ऋषियोंके आश्रम, गुरुकुल तथा राजाओं-महाराजाओंके प्रासादोंसे लेकर सामान्य सद्गृहस्थोंके भवनतक गोमाताके बिना सूने माने जाते रहे हैं। गोमाताने भी समय-समयपर उसका प्रतिदान चुकाया है। वसिष्ठ ऋषिके आश्रममें विश्वामित्र जब अपने शताधिक सेवकों तथा सैनिकोंसहित पहुँचे तब गोमाताके प्रभावसे सेवा-सत्कारकी दिव्य व्यवस्था देख चकित हो गये। उन्होंने लोभवश जब ऋषिसे उसी गायको देनेका आग्रह किया तो वे तैयार न हुए। शक्ति मदमें चूर राजाने जब गायको हाँक ले जानेका प्रयास किया तो गायने ही विकराल रूप धारण कर उन्हें मार भगाया। गोमातासे सम्बन्धित इसी प्रकारकी अनेकानेक शिक्षाप्रद, प्रेरणाप्रद एवं चमत्कारी घटनाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें गोमाताके विवेक, शक्ति एवं प्रभावकी अद्भुत झलक मिलती है। देखा जाय तो गोमाताका महत्त्व गङ्गाकी भाँति परिलक्षित होता है जो भुक्ति और मुक्ति दोनोंके देनेमें सक्षम है। कामधेनु गाय कामदुघा अर्थात् इच्छामात्रसे समस्त अभिलाषाओंकी पूर्ति करनेवाली होती है और निरन्तर बिना प्रसवादिके ही दुग्ध प्रदान किया करती है।

सृष्टिगत परम्पराके विपरीत जब कोई घटना होती है तो उसे देख-सुनकर हम चकित हो जाते हैं। आज भी गायोंके साथ यत्र-तत्र ऐसे प्रसंग प्रकट हो जाते हैं। उदाहरणके लिये राजधानी दिल्लीमें स्वामी करपात्रीजीद्वारा स्थापित श्रीधर्मसंघ-संस्थाके प्राङ्गणमें कुछ वर्ष पूर्वतक एक गाय बिना बच्चा पैदा किये ही नियमित दूध दिया करती थी। इसके दर्शनके लिये दूर-दूरके लोग आते थे। बहुधा इसे स्वामी करपात्रीजीके तपका प्रताप कहा जाता था। कहते हैं उसका दूध पर्याप्त मधुर पौष्टिक और मात्रामें पर्याप्त होता था। खानेके लिये सामान्य आहार दिया जाता था, किंतु उसके रख-रखावकी बड़ी पवित्र व्यवस्था थी।

प्रथम बार यह सुनकर मुझे आश्चर्य तो हुआ, परंतु साथ ही यह विश्वास दृढ़ हो उठा कि हमारी पौराणिक कथाएँ कोरी कल्पनाएँ नहीं हैं। ऐसे ही दुग्धामृत प्रदान करनेवाली एक कलियुगकी कामधेनुकी घटना इस प्रकार है—यह घटना मेरे सहोदर अनुजसे सम्बन्धित है। वे गंगापुर सीटी राजस्थानमें रहते हैं। उनके पास सामान्य कदवाली और अत्यन्त ही सीधी एक गाय है। सीधी तो इतनी है कि छोटे-छोटे बच्चे उसके कान, सींग, गर्दन, पीठको सहलाते और उसके साथ खेलते हैं। इसके साथ ही उसके और भी गुण हैं, जिससे वह कुछ पुरानी गायोंकी ही भाँति विलक्षण प्रतीत होती है। वह विगत सात वर्षोंसे लगातार बिना दुबारा ब्याये ही नियमित रूपसे दोनों समय दूध देती आ रही है।

सामान्य रूपसे दुधार गायें अधिक-से-अधिक सालभरतक दूध देती हैं और उसके लिये नाना प्रकारके प्रबन्ध करने होते हैं। जैसे बछड़ेको सामने रखना, पेन्हवाना या कुछ चारा आदि सामने रखना। किंतु इस गायके लिये कुछ भी नहीं किया जाता। यदि वह बँधी नहीं रहती तो आवाज देकर बुलानेपर एक बुद्धिमान् मानवकी भाँति समीप आकर खड़ी हो जाती है। दूध दूहते समय ताजा ब्यायी गायकी तरह थनमें हाथ लगाते ही दूध उतर आता है और डेढ़-दो लीटर दूध दूहनेके बाद उसे छोड़ दिया जाता है। पुनः वह अपने इच्छित स्थानपर चली जाती है। यह क्रम दोनों ही समयका है।

आरम्भमें साल पूरा होनेपर जब वह नियमित दूध दे रही थी तो लोगोंको आश्चर्य हुआ था और तबसे आजतक दूर-दूरके लोग उसे देखनेके लिये आते हैं। परिवारके साथ ही समीपवर्ती लोगोंमें भी इस गायके प्रति निरन्तर आस्था बढ़ती जा रही है। लोग इसे नन्दिनी, कामधेनु आदि विविध नामोंसे सम्बोधित कर सम्मान देते हैं। पशु-चिकित्सक तथा जानकार लोग उसे देखकर चकित हैं।

उत्सुक जन स्वयं जाकर इस गायका प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं।

—योमिराज श्रीबलिराजसिंहजी

110323

* * *

मनन करने योग्य

श्रेष्ठ कौन है?

पहला दृश्य

[मञ्चपर कोलाहल उभरता है। कौन श्रेष्ठ है? ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीन बड़े देवताओंमें कौन सबसे बड़ा है? यही विवादका कारण है। धीरे-धीरे तीनों देवताओंके भक्त झगड़ते हुए प्रवेश करते हैं और अपने-अपने प्रिय देवताके गुणोंका बखानकर उनकी श्रेष्ठताके तर्क प्रस्तुत करते हैं।]

पहला भक्त—मेरा तर्क सुनो! इधर मेरी बातपर ध्यान दो। सृष्टिका निर्माण करनेवाले ब्रह्माजी हैं। ब्रह्माजी अतीतके महान् देवता हैं। अतीतको श्रद्धासहित प्रणाम किया जाता है। उनकी पूजा-उपासनाका सर्वाधिक माहात्म्य है। ब्रह्माजीका चतुर्मुख स्वरूप है। वे अपने चारों मुखोंसे सृष्टि करते हैं। उनके बिना एक कणमात्रकी भी कल्पना नहीं की जा सकती है। अतः वे ही महान् हैं। ब्रह्माजी ही श्रेष्ठतम देवता हैं।

दूसरा भक्त—ब्रह्माकी उत्पत्ति विष्णुजीके नाभि-कमलसे हुई है। विष्णुजी पालन-पोषण-रक्षण-विकास—सब कुछ करते हैं। वे वर्तमानके देवता हैं। विष्णुजीके चार हाथ हैं—खेती, उद्योग, कला और साहित्य। यों उन्हें हजार मुँह, हजार पाँव, हजार हाथ और हजार नामोंवाला देवता कहा गया है। विष्णु विराट् जनताके प्रतीक देवता हैं। विश्वके आधार होकर भी वे आकाशकी तरह निराकार हैं। पालनकर्ता होनेसे उनका स्वरूप किसानकी तरह श्यामवर्ण होना कितना सहज है…और जो उत्पादनके देवता होंगे, वे

लक्ष्मीके पति तो होंगे ही। वे परमपिता हैं। माननीय ही नहीं, पूजनीय भी हैं। अब कौन विष्णुजीको महान् न कहेगा! विष्णुजी सबसे बड़े देवता हैं। उनकी कोई बराबरी नहीं कर सकता।

तीसरा भक्त—रहने भी दो। आदर्श परिवारके प्रमुख, सद्‌गृहस्थ, विभिन्न प्रकृतिके जीवोंमें ऐक्य स्थापित करनेवाले, उन्हें भाईचारा, प्रेम और साहचर्यके पवित्र सूत्रमें बाँधनेवाले, दूसरोंके हितके लिये विष-पान तक करनेवाले, सदा शान्त, शीतल मस्तिष्कवाले, अपनी उग्रतामें प्रलयंकर किंतु क्षणमें सौम्य होनेवाले, कामजयी, सर्वहारा एवं उपेक्षितोंके प्रति सद्भाव रखनेवाले, सनातन देवता शिवजी ही सर्वश्रेष्ठ हैं। कौन है विश्वमें, जो पारिवारिक सुखोंके धार्मिक आधार भगवान् शिवकी बराबरी कर सके? अरे भाई, वे भगवान् शिव ही तो हैं जो समस्त देवोंमें एकमात्र ऐसे देवता हैं, जिन्हें राजसिंहासन और राजमुकुट आदि कभी नहीं भाया, फिर भी वे देवादिदेव महादेव कहलाते हैं तथा भक्तोंमें सर्वाधिक पूज्य माने जाते हैं। उनकी पूजाके लिये किसी भी प्रकारके बाह्याडम्बरकी जरूरत नहीं है, न कीमती मूर्ति या भव्य मन्दिरकी ही। पत्थरका कोई टुकड़ा शिवलिङ्ग बनाकर पूजा जा सकता है। वे ही ऐसे लोकप्रिय, देवताओंके पालक और ईश्वर, सम्पूर्ण विश्वके स्वामी, विश्वरूप, सनातन ब्रह्म और स्वात्मरूप हैं, जिन्हें समस्त लोकतन्त्र सिर झुकाता है। वे वरदायक हैं। वर-स्वरूप हैं और वरण करने योग्य हैं। मैं तो उन भगवान् शिवको ही सर्वश्रेष्ठ कहूँगा।

चौथा भक्त—***(समझाते हुए)*** अरे! यों परस्पर झगड़नेसे कोई निर्णय तो होगा नहीं। किसी मान्य निर्णायककी जरूरत है, जो निष्कर्ष निकाल सके। हमें किसी विद्वान् मनीषी निर्णायकको तीनों देवताओंके पास भेजना चाहिये, जो उन देवोंकी परीक्षा कर यह निर्णय करे कि सर्वश्रेष्ठ कौन देवता है? उनका निर्णय सर्वमान्य होना चाहिये।

तीनों भक्त—किंतु कौन ऐसा विद्वान् मनीषी निर्णायक हो सकता है? आओ हम सब इसपर विचार करें। निष्पक्ष, बुद्धिमान्, विद्वान् निर्णायक कौन है? यह तो सर्वोच्च पद है। 'कौन इतना योग्य है?'

[सब सोचते हैं।]

पहला भक्त—***(उल्लसित होकर)*** मिल गया? उनसे अधिक विद्वान् निर्णायक अन्य कोई नहीं हो सकता। मेरा प्रस्ताव सुनकर आप निर्णय करें।

दूसरा भक्त—वह निर्णायक कोई और देवता है या मानव?

पहला भक्त—हैं तो मानव, किंतु विद्या, बुद्धि और विवेकमें सर्वश्रेष्ठ। समस्त पृथ्वीपर बहुसंख्यक मानव-समाजमें उनसे अधिक विद्वान्, बुद्धिमान्, विवेकशील, ज्ञानी, नीतिनिपुण और कोई निर्णायक नहीं है। उनमें देवत्व प्रचुरतासे है, वे सर्वथा निष्पक्ष हैं। वे आदर्श निर्णायक हैं। किसी पक्षको अनुचित लाभ नहीं देते।

दूसरा भक्त—कहो, कौन हैं वे आदर्श निर्णायक? हम भी विचार करें।

पहला भक्त—इस महत्त्वपूर्ण पदके हेतु परीक्षा लेनेके लिये विद्वान् भृगुजी ही उपयुक्त पात्र हैं। वे ही निष्पक्ष उचित सर्वमान्य निर्णय कर सकते हैं। उन्हींके निर्णयपर हम सब सहमत हो सकते हैं। भृगुजी सबसे उत्कृष्ट निर्णायक रहेंगे।

सभी—ठीक है। हम सब भृगुजीके लिये सहमत हैं। परीक्षा लेनेका महान् उत्तरदायित्व विद्वान् परीक्षक भृगुजीको ही सौंपना चाहिये। हम सब चलकर उनसे विनती करते हैं कि वे हमारी समस्याका उचित समाधान निकालें। सर्वमान्य निर्णय सुनायें। झगड़ा शान्त हो।

[वे सब भृगुजीके पास जाते हैं तथा विनयपूर्वक भृगुजीसे निर्णायक बननेका निवेदन करते हैं।]

भृगुजी—भक्तो, मुझे निर्णायक बनाकर आप बड़ी द्विविधामें डाल रहे हैं। कहाँ तो यह तुच्छ प्राणी, कहाँ सर्वशक्तिमान् तीन बड़े देवता! आकाश-पातालका अन्तर है……। मैं कैसे उनकी परीक्षा ले सकूँगा!

सभी भक्त—आप चाहे जो भी कहें, इस पृथ्वीपर आपके समान बुद्धिमान्, विवेकी, ज्ञानकी पूँजीसे समृद्ध विद्वान् निर्णायक अन्य कोई मानव नहीं है। आप हर दृष्टिसे निर्णायक बननेके पात्र हैं। अतः कृपा करके हम सबका आग्रह स्वीकार कर इस महान् उत्तरदायित्वका वहन कीजिये। हमें निराश न कीजिये। आपका निर्णय ही सर्वमान्य हो सकेगा, अन्यथा हमारा झगड़ा यों ही चलता रहेगा और हर पक्ष अपना ही समर्थन करता रहेगा। ***(सभी भक्त चरण-स्पर्श करते हैं।)*** अच्छा, यदि आप

भृगुजी—***(बड़े ही विनयभरे स्वरमें)*** अच्छा, यदि आप सबका यही आग्रह है और मेरे निर्णयमें इतना विश्वास है

तो मैं निर्णायकका उत्तरदायित्व ग्रहण करता हूँ। अब मैं तीनों देवताओंके पास जाकर अपने ही ढंगसे उनके गुणोंका परीक्षण करूँगा। तभी किसी मान्य निर्णयपर आ सकूँगा। यह कार्य बड़ा कठिन है। निर्णायकको सबका कोपभाजन बनना पड़ता है।

[सभी भक्त प्रसन्न होकर 'भृगुजीकी जय' बोलते हैं।]

दूसरा दृश्य

[ब्रह्माजीकी सभामें भृगुजीका प्रवेश]

ब्रह्माजी—(आश्चर्यसे) अरे! आज हमारी सभामें यह कौन आ रहे हैं? *(कुछ ध्यानपूर्वक देखकर)* अरे! ये तो मनीषी आचार्य भृगु हैं! परम विद्वान् भृगुजी! महान् चिन्तक भृगुजी! आज सभामें ऐसे उच्चकोटिके विचारशील महापुरुषको पाकर हम धन्य हो रहे हैं।

भृगुजी—(प्रवेश करते समय मन-ही-मन) 'मुझे ब्रह्माजीके धैर्य, मानसिक संतुलन और आन्तरिक शान्तिकी परीक्षा लेनी है। मनु महाराजने धर्मके दस लक्षणोंमें धृतिको पहला स्थान दिया है। मानव-धर्मके विशाल भवनको खड़ा करनेके लिये दृढ़ नींवके रूपमें धैर्यको स्थान दिया जाता है। धैर्यका सहायक गुण है उत्साह और उत्साहका सहायक गुण है धीरज—संकटमें भी शान्तिपूर्ण मानसिक संतुलन। कार्य जितना बड़ा होगा, उद्देश्य जितना महान् होगा, उसी अनुपातमें तीव्र उत्साह, अविचल धैर्य और मानसिक संतुलनकी आवश्यकता होगी। धैर्यकी परीक्षा विशेष परिस्थितियोंमें ही होती है। धैर्य ही धर्म-साधक गुणोंकी प्रथम सीढ़ी है। मैं न इन्हें नमस्कार करूँगा, न इनकी स्तुति ही करूँगा। देखता हूँ इस मानहानिकी इनपर क्या प्रतिक्रिया होती है? ये शान्त—संतुलित बने रहते हैं या उग्र क्रोधी हो उठते हैं? कितना संतुलन है इनमें?'

[भृगुजी बिना आदर-सत्कार-नमस्कार किये सभामें प्रवेश करते हैं। ब्रह्माजीके प्रति आवश्यक सज्जनोचित शिष्टाचार तकका पालन नहीं करते हैं।]

ब्रह्माजी—(अशिष्टतासे आग-बबूला होकर क्रोधसे जल उठते हैं।) भृगु! तुम्हें क्या सामान्य शिष्टाचार तक नहीं आता। क्या व्यवहार-नीतिसे शून्य हो गये हो? बिना शिष्टाचारके न कोई किसीका मित्र है और न कोई शत्रु ही। शिष्ट व्यवहारसे ही सज्जन या दुर्जनकी पहचान होती है·····। *(लगता है आयु अधिक हो जानेसे····भृगुकी विवेक-बुद्धि पंगु हो गयी है। वे सज्जनोचित शिष्टाचारतक भूल गये हैं! आज तो व्यवहारमें बड़े असभ्य-जंगली-से दिखायी दे रहे हैं।)*

[ब्रह्मा क्रोधसे आग-बबूला हो उठते हैं। मानसिक संतुलन और धैर्य खो बैठते हैं।]

भृगुजी—(दूरसे ही जाते हुए) यह क्रोध! यह उद्विग्नता! मैंने अब इन्हें जान लिया। ब्रह्माजी शान्त और संतुलित नहीं हैं।

[भारी-मन और निराश-मुद्रामें भृगुजी बाहर चले जाते हैं। वे सोच रहे हैं—]

शुक्लीकरोति मलिनानि दिगन्तराणि
चन्द्रो न शुक्लयति चात्मगतं कलंकम्।
नित्यं परार्थघटनाहितमानसानां
स्वार्थोद्यमो भवति नो महतां कदाचित्॥

अर्थात् चाँद अपनी चाँदनीसे दिग्-दिगन्तरोंके अन्धकारको तो दूर कर देता है, परंतु अपने कलंकको नहीं मिटा पाता। परोपकारी महापुरुष परोपकारमें ही लगे रहते हैं, कभी स्वार्थकी चिन्ता नहीं करते।

तीसरा दृश्य

[अब भृगु शिवजीकी परीक्षा लेने आ गये हैं। शिवजीके सम्मुख खड़े हैं। वे उनकी भी मानहानि करते हैं। उनके मानसिक संतुलनकी परीक्षा लेना चाहते हैं।]

शिवजी—'भृगुजी! आइये! *(हार्दिक स्नेहसे)* आपका स्वागत-सत्कार करना मेरा सौभाग्य है। मेरी भुजाएँ आपका आलिंगन करनेको फैली हुई हैं। मेरे हृदयसे लग जाइये।' आपका स्वागत है। आज आपने हमें दर्शन देकर कृतार्थ किया। हम धन्य हुए।

[हृदयसे लगनेको बढ़ते हैं]

भृगुजी—(शिवजीके हृदयसे लगना अस्वीकार करते हुए पीछे हटकर) हे शिव, तुम लोक और परलोक तथा वेदकी मर्यादामें नहीं रहते। अपनी उग्रतामें प्रलयंकर हो। जल्दी ही उत्तेजित हो उठते हो। क्रोधित होकर रौद्ररूप धारण कर लेते हो····सृष्टिका अन्त अपने ताण्डवसे कर देते हो। अतः मैं तुमसे गले नहीं मिलना चाहता····पीछे ही रहूँगा।

शिवजी—(अपनी मानहानिसे भड़क कर उनकी भृकुटी तन जाती है। नेत्र क्रोधसे लाल-लाल हो जाते हैं। वे भृगुको दण्डित करनेके लिये त्रिशूल उठा लेते हैं।) अशिष्ट भृगु! तुमने आज मेरा अपमान किया है। तुम्हें इस मानहानिकी सजा देनी ही होगी।

[बीचमें पार्वतीजी आकर शिवजीको रोकती हैं]

पार्वतीजी—(अनुनय-विनय करती हुई) भगवन्! रहने भी दीजिये। आप इस अशिष्टताकी उपेक्षा कीजिये। मेरे ऊपर कृपा कीजिये। इन्हें जाने दीजिये। इस समाजमें अशिष्ट लोगोंकी उपेक्षा ही करनी चाहिये।

भृगुजी—(मन-ही-मन) मैंने आज देख लिया कि शिवजीमें भी सहिष्णुताकी कमी है। अतः अब मुझे यहाँसे अविलम्ब चले जाना चाहिये। ***(जाते हैं)***

चौथा दृश्य

[अन्तमें भृगुजी विष्णुजीके पास उनके भवनमें पहुँचते हैं। उस समय विष्णुजी अपने शयनकक्षमें विश्राम कर रहे हैं।]

भृगुजी—(विष्णुजीको विश्राम करते हुए देखकर मनमें सोचते हैं) मैं भी ठीक समयपर यहाँ पहुँचा हूँ। विष्णुजी थके-माँदे शय्यापर विश्राम कर रहे हैं, किंतु मुझे तो इनके स्वभावकी परीक्षा करनी है। इन्हें भी किसी प्रकार क्रोधित करना होगा। क्रोध एक ऐसा दुष्ट मनोविकार है जिससे मनुष्य विवेकशून्य हो जाता है। जीवनमें मानसिक शान्ति प्राप्त करनेके लिये हर अवस्थामें शान्ति और विवेकसे काम लेना चाहिये। हमें समय-समयपर अपना आत्मनिरीक्षण करना चाहिये। पर इन्हें क्रोधमें कैसे फँसाऊँ····अच्छा, इनके वक्षःस्थलपर लात मारता हूँ। जब इनकी निद्रा टूटेगी तब क्रोध इन्हें आयेगा।

[वक्षःस्थलपर लात मारते हैं। तुरंत ही विष्णुजी भृगुको नमस्कार कर श्रद्धा और सम्मानसे आसनपर बगलमें बैठाते हैं]

विष्णुजी—महामुने! मुझे आपने अपने शुभागमनकी शुभ सूचना क्यों नहीं दी? क्षमा करें, इसी कारण इतने महान् ऋषिका समुचित आदर-सम्मान न कर सका। शिष्टाचारका पालन बड़प्पनकी कसौटी है। आपके पाँवोंमें चोट पहुँची है·····इसका मुझे दुःख है। आप शीलवान् हैं। कृपया मेरे अपराधको क्षमा कीजिये। लाइये, आपके पाँव सहला दूँ। मेरे कठोर वक्षःस्थलके स्पर्शसे उनमें चोट लगी होगी।

भृगुजी—(मन-ही-मन) अपराधी होनेपर भी विष्णुजीका मुझसे क्षमा माँगना उनकी क्षमाशीलता स्पष्ट करती है। इससे उनका आत्मतेज बढ़ गया है। मेरा तेज घट गया है। सचमुच ये ही सबमें बड़े हैं। ***(वे चुप हैं)***

विष्णुजी—भृगुराज! आप महान् आध्यात्मिक विभूति हैं। आपके चरणोंमें तीर्थोंकी पवित्रता, धर्मकी आस्था, ईश्वरकी निष्ठा निवास करती है। उनके स्पर्शसे मेरे पाप धुल गये हैं। लाइये,आपके चरणकमल दबाकर अपने दोष दूर कर लूँ। आपके चरणोंमें ही क्षमाका निवास है। आपकी चोट पाकर मैं पापमुक्त हुआ।

[ऐसा कहते-कहते विष्णुजी भृगुके चरणोंको पकड़ लेते हैं और श्रद्धापूर्वक अपने हाथोंसे सहलाते हुए, 'आपके चोट तो नहीं लग गयी?' कहकर बार-बार प्रेमसे उनके चरण सहलाते हैं।]

भृगुजी—(विष्णुजीकी प्रगाढ़ क्षमाशीलता देखकर चकित हो जाते हैं और कहते हैं—) मुझे अब परीक्षाका फल मिल गया है। श्रेष्ठतम विष्णुजी ही हैं। क्रोधमें सजा देना, बदला निकालना तो पशुत्व है। हर नासमझ क्रोधमें आकर भयंकर उत्पात कर सकता है, किंतु धैर्यपूर्वक शान्तहृदयसे आगा-पीछा सोचकर ठंडे दिमागसे निर्णय लेना श्रेष्ठ पुरुषोंका ही कार्य है। क्षमासे मनका क्रोध दूर हो जाता है। क्षमाद्वारा हम दूसरेको सुधरनेका, अपनी गलती महसूस कर सही रास्तेपर आनेका एक अवसर देते हैं। विष्णुजीकी क्षमाशीलता देखकर मैं चकित हो गया हूँ। वे विनयशील भी हैं। उनका स्वभाव भी मधुर है। अतः मेरा निर्णय है कि विष्णु ही सर्वश्रेष्ठ देवता हैं। वे ही परीक्षामें सफल रहे हैं। देव विष्णु, आप ही सर्वश्रेष्ठ देवता हैं।

विष्णुजी—धन्य मुनिवर! आशीर्वाद दीजिये कि इन गुणोंका मैं अधिकाधिक विकास करता रहूँ। किसीसे कभी ईर्ष्या-द्वेष न करूँ। सदा पाप-निवारण करता रहूँ। भगवान्के चरणोंमें श्रद्धा-भक्ति बनी रहे। गुणीका आदर करता रहूँ। प्रिय मधुर वाणी बोलता रहूँ।

[चरण छूते हैं]

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

अर्थात् विपत्तिमें धैर्य, उन्नतिमें क्षमा, सभामें भाषण-कुशलता, युद्धमें पराक्रम, यशमें रुचि और वेदशास्त्रके अध्ययनमें व्यसन—महान् पुरुषोंमें ये गुण स्वभावतः ही पाये जाते हैं।

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

* * *

॥ श्रीहरिः ॥

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

‘कल्याण’

-के ७२वें वर्ष (वि०सं० २०५४-५५, सन् १९९८ ई०)-के तीसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्क एवं फरवरी अङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या
१-अच्छा बोलो (स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी) ६१९
२-अनन्तकी खोज (श्रीवीरनारायणजी शर्मा, एडवोकेट) ८१२
३-अमृत-बिन्दु (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ६९५, ७३९, ७९२
४-आँख और पेटकी बीमारी (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ६३८
५-आगामी ७३वें वर्ष (सन् १९९९ ई०)-का विशेषाङ्क—‘वेद-कथाङ्क’ ६०१
६-आत्मचिन्तन (विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी) ६१४
७-ईश्वर कहाँ रहते हैं (डॉ० श्रीभुवनेश्वरप्रसादजी वर्मा ‘कमल’, एम्० ए०, डी० लिट्०) ९०१
८-एक पलके सत्संगसे अलौकिक आनन्द (प्रभु)-की प्राप्ति (श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति) ६३४, ६७६, ७१९
९-कर्तव्यपरायणता और शरणागति (ब्रह्मलीन श्रद्धेय संत स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ७६४
१०-कर्मका तत्त्व (श्रीकेशोरामजी अग्रवाल) ८१५
११-कलियुगमें भगवत्साक्षात्कारका सरल साधन (गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी पिलखुवा) [प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल] ९१५
१२-कल्याण (शिव) ५१०, ५५८, ६०६, ६५४, ७०२, ७५०, ७९८, ८३०, ८९४
१३-कल्याण-प्राप्तिका सरल साधन (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ६५५
१४-कुछ अनुकरणीय गुण (श्रीरामनिवासजी लखोटिया) ८६८
१५-(श्री)कृष्णकी रासलीला एवं उसका आध्यात्मिक रहस्य (‘मानसरत्न’ संत श्रीसीतारामदासजी महाराज) ८५१
१६-कोटरका कबूतर [कहानी] (श्रीअमरनाथजी शुक्ल) ८७०
विषय पृष्ठ-संख्या
१७-कौटुम्बिक कलह—सर्वनाश (स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी) ८७१
१८-क्या मानव-स्वभाव मांसाहारी है? (श्रीबाबूलालजी वर्मा) ६८५
१९-क्या सोचोगे? (श्रीबालकृष्णजी बलदुआ) ५६९
२०-गर्भपातके विषयमें धर्मशास्त्रके वचन [संकलनकर्ता—श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन] ८१९
२१-गोरक्षाके प्रस्ताव [प्रेषक—श्रीदिनेशचन्द्रजी गुप्त] ... ५९५
२२-गोसेवा-व्रतसे ब्रह्मज्ञान (चक्रवर्ती श्रीरामाधीनजी चतुर्वेदी) ५७३
२३-ग्रामोत्थानसे सम्पूर्ण क्रान्ति (श्रीजगदीशचन्द्रजी पन्त) [प्रेषक—श्रीलक्ष्मीनारायणजी मोदी] ७३४
२४-जनसंख्याकी वृद्धि रोकनेके अमानुषिक उपाय (श्रीपन्नालालजी मुन्धड़ा) ९०७
२५-‘जी रहे हैं लोग कैसे आजके वातावरणमें’ (श्रीअर्जुनलालजी बन्सल) ८७३
२६-जीवनकी सफलताका सरल उपाय (सुश्री पूर्णिमा एल० ‘तुलसीदास’) ८१७
२७-जीवन-रक्षक हैं पशु (श्रीनिरंकारसिंहजी) ८६४
२८-ज्योतिर्लिङ्ग भगवान् केदारेश्वरका प्राकट्य ५२३
२९-दीपावलीका नया दृष्टिकोण (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ८५३
३०-धर्मशास्त्र ही एकमात्र सच्चे मार्ग-प्रदर्शक हैं (पं० श्रीदेवेन्द्रकुमारजी पाठक ‘अचल’, रामायणी, साहित्येन्दुशेखर, साहित्यप्रभाकर, आयुर्वेद-विशारद) ७१३
३१-‘नर-सेवा—नारायण-सेवा’ (स्वामी श्रीसत्यमित्रानन्दगिरिजी महाराज) ८९८
३२-नादब्रह्म—मोहनकी मुरली (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ८०४

विषय पृष्ठ-संख्या

३३-नाम-जप और संकीर्तन (एक संतका सदुपदेश) ८४२, ९०९
३४-निष्कामभावकी सूक्ष्मता (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ५११
३५-पढ़ो, समझो और करो................५५२, ५९७, ६४८, ६९६, ७४३, ७९३, ८२२, ८८३, ९३१
३६-परम प्रभु परमात्माकी अलौकिक लीला (स्वामी श्रीअच्युतानन्दजी) ६५७
३७-परमात्माको प्रेम दीजिये (श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति) ८६१
३८-पशु और पर्यावरण (श्रीपन्नालालजी मुन्धड़ा) ६३६
३९-पशु-चर्म तथा सींगों आदिके मिश्रणसे निर्मित जेलेटीन् डालकर बनायी गयी आइसक्रीमसे सावधान (सुश्री पद्मा अग्रवाल) ७४२
४०-पात्रता एवं श्रद्धा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ८३१
४१-प्रभुके अवतारोंकी लीला (डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता) ७२५
४२-प्रारब्धका खेल—हँसके खेल या रोके झेल (श्रीसुभाषजी लखोटिया) ७२४

४३-*बाल-कल्याण*—

[१] बालक श्रीकृष्णकी मनोहर लीलाएँ...........५४८
[२] राष्ट्रकी सबसे बड़ी सम्पत्ति.....................५५०
[३] बालकोंके प्रति महात्मा श्रीरूपकलाजीके उपदेश...५५०
[४] धर्मप्रचारके लिये जीवनकी आहुति देनेवाला विद्यार्थी ५५१
[५] बालकका मनोरथ [कविता] ५५१
[६] बालोपयोगी दिनचर्या.................................५८९
[७] छोटे बालककी सच्चाई.............................५९१
[८] दृढ़निश्चयी बालक गंगाराम ५९२
[९] तुम्हारा कर्तव्य [कविता] ५९२
[१०] बालकोंका रक्षण तथा शिक्षण ६४०
[११] ईमानदार बालक वीरेश्वर मुखोपाध्याय ६४६
[१२] राष्ट्रकी आत्मा आज मूर्च्छित है ६८८
[१३] छुट्टियोंका सदुपयोग कैसे हो?..................६९०
[१४] भक्त सुव्रत ६९१
[१५] वीर बाला पद्मा ६९१
[१६] कौन महान्? [कविता].............................६९२
[१७] तरुणो! अपना पथ चुन लो (श्रीस्वामी श्रीशिवानन्दजी महाराज) ७८७
[१८] गुरुभक्त बालक आरुणि ७८९
[१९] बालिका विक्टोरियाकी सच्चाई..................७९०
[२०] बालवृत्तिकी अनुपम महिमा ८७६
[२१] बालक अन्सारुल हककी दयालुता ८७७
[२२] दुखी मुसाफिरकी सेवा करनेवाला बालक...८७८
[२३] बालकका कल्याण ९२३
[२४] बालक अबूशहमाका सत्यके लिये आत्मबलिदान ९२५
[२५] बालकोंद्वारा ईश-प्रार्थना [कविता] ९२६

४४-बुद्धिकी स्थिरताका सरल उपाय (श्री जय जय बाबा) ८३७
४५-ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सत्संगकी कुछ अमूल्य बातें....७९९, ८९५
४६-भगवत्कृपा और भक्त (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)...........५६४
४७-भगवत्कृपापर विश्वास (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)............८४०
४८-भगवत्प्राप्ति करानेवाला अत्यन्त सरल सुगम साधन (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ५५१
४९-भगवन्नाम-जपकी अद्भुत महिमा (श्रीबनवारीलालजी गोयन्का) ७८५
५०-श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना ८८८
५१-श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना ८२७
५२-भगवान्‌की सहज कृपामें विश्वास करो ७४८
५३-भगवान्‌के लिये भगवत्प्रेमीकी विरह-वेदना (श्रीबनवारीलालजी गोयन्का) ६८३
५४-भगवान् शंकर आपके संतापोंको शान्त करें.........८४८
५५-भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तवत्सलता (श्री जय जय बाबा) ५६८
५६-भगवान् श्रीकृष्णकी रासलीला एवं इसका आध्यात्मिक रहस्य (श्रीअर्जुनलालजी बन्सल) ७७८
५७-भगवान्‌से क्या माँगना चाहिये (श्री जय जय बाबा) ७५८
५८-भजन-उपासना कबतक करें? (श्री जय जय बाबा)६६५
५९-भूमियाने फिर न कभी चोरी की और न झूठ ही बोला! [कहानी] (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)..........................८२०

विषय पृष्ठ-संख्या

६०-मनन करने योग्य ५५६, ५९९, ६५१, ६९७, ७४६, ७९५, ८२४, ८८७, ९३३
६१-मरीचि आदि महर्षियोंकी लोककल्याण-कारक लीला ९२१
६२-महत्त्वपूर्ण बात (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ६०७
६३-महापापीके उद्धारका परम साधन (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ७१२
६४-मानव-जीवनकी सफलताका उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ७०३
६५-मानसमें गुरु-शिष्य-सम्बन्ध (डॉ० श्रीराम-शिरोमणिजी शुक्ल, एम्० ए०, डी० फिल्०) ६८१
६६-मुक्तिका साधन—भक्ति (डॉ० श्रीवल्लभदासजी मेहता)८०२
६७-श्रीराधा-महिमा (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ७६०
६८-राम-नाम तारक मन्त्र है (श्रीहिमांशुशेखरजी) ७१०
६९-(श्री) रामनामामृतम् (श्रीरामचन्द्रजी पाण्डेय 'रसिक') ८०८
७०-(श्री) रुक्मिणीका प्रभुमें अनन्य प्रेम....................५२७
७१-*लीला-चिन्तन—*
१—श्रीरामलीला-चिन्तन
[१] अयोध्यामें श्रीरामके लिये राज्याभिषेकका प्रस्ताव और उनका वन-गमन.................४६२
[२] अयोध्यामें भरतका आगमन (आर्त भरत) ४६२
[३] महाराज दशरथकी अन्त्येष्टि ४६३
[४] भरतका चित्रकूट-प्रस्थान..............................४६४
[५] भरत-मिलन ४६४
[६] चित्रकूटकी मन्त्रणा ४६५
[७] चरण-पादुकाकी प्राप्ति ४६६
[८] नन्दीग्रामका तपस्वी....................................४६७
[९] श्रीरामका पञ्चवटी-निवास ४६८
[१०] सीताहरण-लीला ४६९
[११] श्रीहनुमान्का लंकामें प्रवेश ४७१
[१२] लंका-दहन-लीला ४७३
[१३] श्रीरामका राज्याभिषेक ४७७
[१४] पुरस्कार-वितरण ५३५
[१५] वानरोंकी विदाई......................................५७५
[१६] हनुमान्जीको उपदेश-प्रदान..........................५७७
[१७] चुटकी-सेवा..६२५
[१८] पवनपुत्रको प्यारदान..................................६७०

विषय पृष्ठ-संख्या

[१९] अयोध्याके कथावाचक ७७५
[२०] भगवान् श्रीरामकी दिनचर्या........................९१२
२—श्रीकृष्णलीला-चिन्तन
[१] भगवान् श्रीकृष्णको माँ यशोदाद्वारा बाँधनेका उपक्रम ४९३
[२] श्रीकृष्णकी ऊखल-बन्धन-लीला..............४९९
[३] ऊखलसे बँधे हुए दामोदरका यमलार्जुन बने हुए कुबेर-पुत्रोंपर कृपापूर्ण दृष्टिपात ५०५
[४] यमलार्जुनके अतीत जन्मकी कथा; यमलार्जुन-उद्धार ५३८
[५] कुबेर-पुत्रोंको स्वरूप-प्राप्ति तथा उनके द्वारा श्रीकृष्णका स्तवन एवं प्रार्थना; श्रीकृष्णकी उनके प्रति करुणापूर्ण आश्वासन-वाणी ५४३
[६] वृक्षोंके टूट जानेपर भी श्रीकृष्णको अक्षत पाकर माता-पिताका उल्लास ५७९
[७] प्रभुकी आँखमिचौनी लीला........................६२८
[८] व्रजवासियोंकी वृन्दावन जानेकी तैयारी ६७२
[९] नन्दनन्दनकी भुवनमोहिनी वंशीवादन-लीला ७७१
[१०] दैनिक वत्सचारण-लीलाका वर्णन ८५७
७२-लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी आवन्त्य-लीला (श्रीबिहारीलालजी व्यास, एम्० ए०, एल्० टी०, आयुर्वेदरत्न) ४८५
७३-लीलावतार अवधूतश्रेष्ठ भगवान् 'श्रीदत्तात्रेय' (प० पू० दण्डी स्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज) ४८१
७४-लोकमर्यादा श्रीरामलीला (स्वामी श्रीपरमहंसजी महाराज) ४८८
७५-लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् (प्रो० श्रीइन्द्रवदनजी बी० रावल, एम्० ए०) ४७९
७६-लौकिक सुख एवं अलौकिक सुख—अन्तर (श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति) ५८६
७७-वामन-लीलाका रहस्य (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज) [प्रस्तुति—(प्रो०) श्रीबिहारीलालजी टांटिया] ५१५
७८-वाराणसीमें गोपाष्टमी-महोत्सव [उत्तर प्रदेश सरकारद्वारा गोसेवा-आयोगके गठनकी घोषणा] ९२९
७९-विषय और भगवान् (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ६६१

विषय पृष्ठ-संख्या
८०-वैष्णवदर्शनमें लीला-तत्त्व (डॉ० श्रीश्यामशर्माजी वाशिष्ठ, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, शास्त्री, काव्यतीर्थ) ४९०
८१-शाकाहार—मधुमेहकी सर्वोत्तम औषधि (श्रीपन्नालालजी मुन्धड़ा) ७३७
८२-शास्त्रीय विवादसे हानि (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ५८४
८३-श्राद्ध-समीक्षा (पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र) ७२७
८४-संन्यासी साधकों और कीर्तनकारोंसे नम्र निवेदन (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ८७९
८५-संयमका अभ्यास (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ५१९
८६-सगुण-साकार भगवान्‌का दर्शन एवं प्रभाव (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ७५१
८७-सच्चा भिखारी (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ६१५
८८-सत्य-प्रेम-करुणा—एक चिन्तन (श्रीराधाकृष्णजी बजाज) ९१९
८९-सब भगवान्‌की पूजाके लिये हो (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ९००
९०-समतासे भगवत्प्राप्ति (श्रीबनवारीलालजी गोयन्का) ८६६
९१-सर्वव्यापक असीम चेतन शक्तियाँ तथा भौतिक सम्पदाएँ (श्रीनिहालचन्दजी कांसल) ६७७
९२-साधक-प्राण-संजीवनी (गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज) ५३३, ५६२, ६३२, ७१७, ७६९, ८४९, ९१७
९३-साधकोंके प्रति—(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ५२४, ५७०, ६२२, ६६७, ७१५, ७६७, ८०९, ८४६, ९०३
९४-साधनोपयोगी पत्र ५४७, ५९३, ६४७, ६९३, ७४०, ७९१, ८८१, ९२७
९५-सार्वजनिक सम्पत्तिका ट्रस्टी (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ७८२
९६-सुखी जीवनका महामन्त्र—'मुसकराते रहिये' (डॉ० श्रीभुवनेश्वरप्रसादजी वर्मा 'कमल', एम्० ए०, डी० लिट्०) ७८०
९७-स्वामिकार्तिकका शिवाराधन ६६६

पद्य-सूची

१-(श्री)कृष्णका गो-प्रेम (श्रीजानकीप्रसादजी खरे 'गिरिजेश') ८०७
२-(श्री)कृष्ण-संकीर्तन (श्रीगंगाप्रसादजी भट्ट, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, साहित्यरत्न) ७८६
३-'कौन भाग्यवान आज जनक समान री' (श्रीनारायणदासजी 'भक्तमाली') ८६९
४-शरणागति (श्रीगंगाप्रसादजी गुप्ता) ५६१

संकलित पद्य-सूची

१-कृष्ण-बलरामका वन-विहार ८९३
२-दान दो ७०९
३-पालने रघुपति झुलावै ७८४
४-श्रीराधारानीकी चरण-वन्दना ७०१
५-सुरनि हित हरि कछप-रूप धार्‌यौ ६५३

संकलित सामग्री

१-क्लेशहर नामामृत (महाराज ययातिका प्रजाको संदेश) (पद्म० भूमि० ७३) ......(चौथे अङ्कका तीसरा आवरण-पृष्ठ)
२-तन्मङ्गलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः (तीसरे अङ्कका चौथा पृष्ठ)
३-(श्री)दामोदराष्टकम् (तीसरे अङ्कका तीसरा आवरण-पृष्ठ)
४-देवर्षि नारदको भगवान्‌के विश्वरूपका दर्शन एवं वर-प्राप्ति ७९७
५-पतितपावन राम नमोऽस्तु ते ५०९
६-पितृस्तोत्र.........(बारहवें अङ्कका तीसरा आवरण-पृष्ठ)
७-प्राणिमात्रके साध्य भगवान् सदाशिव ६२४
८-ब्रह्मलीन योगिराज पूज्य देवरहा बाबाके वचनामृत...........(पाँचवें अङ्कका चौथा आवरण-पृष्ठ)
९-भगवती शाकम्भरीका ध्यान ७४९
१०-भगवान् श्रीकृष्णका उद्धवजीको उपदेश ८२९
११-भगवान्‌की त्रिगुणात्मिका लीला ४६१
१२-भगवान्‌की लीलाओंका श्रवण करना चाहिये ६०५
१३-मनुष्यको कितना चाहिये? ७६३
१४-शिवजीद्वारा कालसे मार्कण्डेयकी रक्षा ५५७

* * *

पितृस्तोत्र*

रुचिरुवाच

अर्चितानाममूर्तानां पितृणां दीप्ततेजसाम्। नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम्॥
इन्द्रादीनां च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा। सप्तर्षीणां तथान्येषां तान् नमस्यामि कामदान्॥
मन्वादीनां मुनीन्द्राणां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा। तान् नमस्याम्यहं सर्वान् पितृनप्सूदधावपि॥
नक्षत्राणां ग्रहाणां च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा। द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः॥
देवर्षीणां जनितॄंश्च सर्वलोकनमस्कृतान्। अक्षय्यस्य सदा दातॄन् नमस्येऽहं कृताञ्जलिः॥
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च। योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः॥
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु। स्वयम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे॥
सोमाधारान् पितृगणान् योगमूर्तिधरांस्तथा। नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम्॥
अग्निरूपांस्तथैवान्यान् नमस्यामि पितॄनहम्। अग्नीषोममयं विश्वं यत एतदशेषतः॥
ये तु तेजसि ये चैते सोमसूर्याग्निमूर्तयः। जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः॥
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः। नमो नमो नमस्ते मे प्रसीदन्तु स्वधाभुजः॥

रुचि बोले—जो सबके द्वारा पूजित, अमूर्त, अत्यन्त तेजस्वी, ध्यानी तथा दिव्यदृष्टिसम्पन्न हैं, उन पितरोंको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जो इन्द्र आदि देवताओं, दक्ष, मारीच, सप्तर्षियों तथा दूसरोंके भी नेता हैं, कामनाकी पूर्ति करनेवाले उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ। जो मनु आदि राजर्षियों, मुनीश्वरों तथा सूर्य और चन्द्रमाके भी नायक हैं, उन समस्त पितरोंको मैं जल और समुद्रमें भी नमस्कार करता हूँ। नक्षत्रों, ग्रहों, वायु, अग्नि, आकाश और द्युलोक तथा पृथ्वीके भी जो नेता हैं, उन पितरोंको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। जो देवर्षियोंके जन्मदाता, समस्त लोकोंद्वारा वन्दित तथा सदा अक्षय फलके दाता हैं, उन पितरोंको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। प्रजापति, कश्यप, सोम, वरुण तथा योगेश्वरोंके रूपमें स्थित पितरोंको सदा हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। सातों लोकोंमें स्थित सात पितृगणोंको नमस्कार है। मैं योगदृष्टिसम्पन्न स्वयम्भू ब्रह्माजीको प्रणाम करता हूँ। चन्द्रमाके आधारपर प्रतिष्ठित तथा योगमूर्तिधारी पितृगणोंको मैं प्रणाम करता हूँ। साथ ही सम्पूर्ण जगत्के पिता सोमको नमस्कार करता हूँ तथा अग्निस्वरूप अन्य पितरोंको भी प्रणाम करता हूँ; क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् अग्नि और सोममय है। जो पितर तेजमें स्थित हैं, जो ये चन्द्रमा, सूर्य और अग्निके रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं तथा जो जगत्स्वरूप एवं ब्रह्मस्वरूप हैं, उन सम्पूर्ण योगी पितरोंको मैं एकाग्रचित्त होकर प्रणाम करता हूँ। उन्हें बारम्बार नमस्कार है। वे स्वधाभोजी पितर मुझपर प्रसन्न हों।

* * *

---

*गत अक्टूबर मासके अङ्कमें पृष्ठ-संख्या ८२४ पर *'मनन करने योग्य'* स्तम्भके अन्तर्गत **'पितरोंकी कृपामयी लीला'** शीर्षकसे एक आख्यान प्रकाशित किया गया है। जिसमें मार्कण्डेयपुराणमें आये 'पितृस्तोत्र'की चर्चा है। मार्कण्डेयपुराणमें महात्मा रुचिद्वारा की गयी पितरोंकी यह स्तुति जो 'पितृस्तोत्र' कहलाता है, प्रायः अनेक पुराणोंमें समानरूपसे प्राप्त होती है, पितरोंकी प्रसन्नताकी प्राप्तिके लिये इस स्तोत्रका पाठ किया जाता है। इस स्तोत्रकी बड़ी महिमा है। श्राद्ध आदिके अवसरोंपर ब्राह्मणोंके भोजन करते समय भी इसका पाठ करने-करानेका विधान है। उक्त स्तोत्रको प्रकाशित करनेके लिये पाठक महानुभावोंके कई पत्र प्राप्त हुए हैं। अतः उसे पाठकोंकी सुविधाके लिये यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। —सं०

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—

प्र० ति० २०-११-९८

LICENCE NO.-3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

जनवरी १९९९ ई० का विशेषाङ्क

'वेद-कथाङ्क'

(१) वर्तमान वर्ष (सन् १९९८)-के अन्तिम मास-दिसम्बरका यह अङ्क आपकी सेवामें प्रस्तुत है। आगामी वर्ष (जनवरी १९९९)-का विशेषाङ्क-**'वेद-कथाङ्क'** दिसम्बरके मध्यतक प्रकाशित हो सकता है। जिसे ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार आगामी दो महीनों—जनवरी-फरवरीमें (फरवरी-परिशिष्टाङ्कके साथ) ग्राहक सज्जनोंकी सेवामें भेजनेका प्रयास है।

(२) **'वेद-कथाङ्क'** में वेद-वाङ्मयका परिचय, वेदोंकी महिमा तथा वेदतत्त्व-मीमांसासहित वेदोंमें वर्णित आध्यात्मिक कथाओंका रोचक, ज्ञानप्रद विवेचन रहेगा। प्रसंगानुसार बहुरंगे तथा सादे आकर्षक चित्र भी रहेंगे। **'वेद-कथाङ्क'** के महत्त्व तथा विशेषताओंका आकलन करते हुए यह आशा की जाती है कि यह विशेषाङ्क भी 'कल्याण'के पूर्ववर्ती विशेषाङ्कोंकी तरह ही अपने प्रतिपाद्य विषयका पूर्ण प्रतिनिधित्व करनेवाला लोकप्रिय अङ्क सिद्ध होगा।

(३) जिन ग्राहकोंने आगामी वर्ष (१९९९)-के लिये शुल्कराशि यदि अभीतक न भेजी हो तो उन्हें अब रु० ९० (अथवा सजिल्दके लिये रु० १००) अविलम्ब भेज देना चाहिये, जिससे उन्हें **'वेद-कथाङ्क'** शीघ्र भेजा जा सके। जिन सज्जनोंसे वार्षिक शुल्क दिसम्बरके मध्यतक प्राप्त न हो सकेगा, उन्हें गत वर्षकी तरह विशेषाङ्क (रु० ५ वी० पी० पी० खर्च अतिरिक्त जोड़कर) रु० ९५ की वी०पी०पी० से भेजा जायगा। पुराने ग्राहकोंसे निवेदन है कि जिन्हें सजिल्द विशेषाङ्क प्राप्त करना हो तो वे कृपया शीघ्र मनीआर्डरद्वारा रु० १०० (सजिल्दका मूल्य) भेजनेकी कृपा करें; क्योंकि सजिल्द विशेषाङ्क वी० पी० पी० द्वारा भेजनेमें कठिनाई है।

(४) वी० पी० पी० भेजनेकी प्रक्रिया आरम्भ होनेके बाद जिन ग्राहकोंसे मनीआर्डर प्राप्त होगा, उसका समायोजन समयसे न हो सकनेके कारण, न चाहते हुए भी उन्हें विशेषाङ्क वी० पी० पी० द्वारा भेजा जा सकता है। इस स्थितिमें ग्राहक महानुभावोंको चाहिये कि वे अविलम्ब वी० पी० पी० छुड़ाकर किसी अन्य सज्जनको 'नया ग्राहक' बना दें। ऐसा करके 'कल्याण' को अनावश्यक आर्थिक हानिसे बचानेके साथ, इसके पावन प्रचार-कार्यमें भी आप सहज सहयोगी बन सकेंगे।

(५) जिन ग्राहकोंद्वारा मनीआर्डरसे राशि भेजे जानेके बाद यदि वी० पी० पी० पहुँचनेपर छुड़ा ली जाती है तो मनीआर्डर-राशि उनका अगला निर्देश न मिलनेतक नियमतः आगामी वर्षके वार्षिक शुल्कके निमित्त जमा कर ली जाती है। यदि ग्राहक महानुभाव वी० पी० पी० छुड़ाकर किसी अन्यको ग्राहक बना देते हैं तो उन्हें 'नये ग्राहक'का नाम-पता, वी० पी० पी० छुड़ानेकी सूचनाके साथ अपने मनीआर्डर भेजनेका विवरण भी स्पष्ट अक्षरोंमें लिखकर शीघ्र भेज देना चाहिये। जिससे उनके भेजे हुए मनीआर्डरकी जाँच-पड़ताल करवाकर उनका तथा उनके द्वारा बनाये हुए नये ग्राहकका अङ्क यथाशीघ्र भेजा जा सके।

(६) **'वेद-कथाङ्क'** रजिस्ट्री / वी० पी० पी० द्वारा यदि मार्चके प्रथम सप्ताहतक न मिले तो आप अपनी ग्राहक-संख्या लिखकर इस विषयकी आवश्यक जानकारी 'कल्याण' कार्यालयको अवश्य करा दें।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

110323

Compiled
1999-2000

SARASWATI SUPPLY AGENCY
Specialist
Wedding Cards & Screen Printing
All Type of BINDING with golden printing